Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी ग्रन्थावली

(द्वितीय खण्ड)

गोस्वामी तुलसीदास

अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी-ग्रन्थावली

[द्वितीय खण्ड]

गोस्वामी तुलसीदास

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी

[संवत् २०२९]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रकाशक :
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी।
६३/४३, उत्तर बेनिया बाग,
वाराणसी

प्रथम आवृत्ति :
विजया दशमी, संवत् २०२९ वि०
(१७ अक्तूबर : सन् १९७२)

मूल्य :
अजिल्द २२) रु०
सजिल्द २४) रु०

मुद्रक :
सुधीर कुमार चतुर्वेदी
सुदर्शन मुद्रक,
६३/४२, उत्तर बेनिया बाग, वाराणसी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गोस्वामीजीके हस्ताक्षर

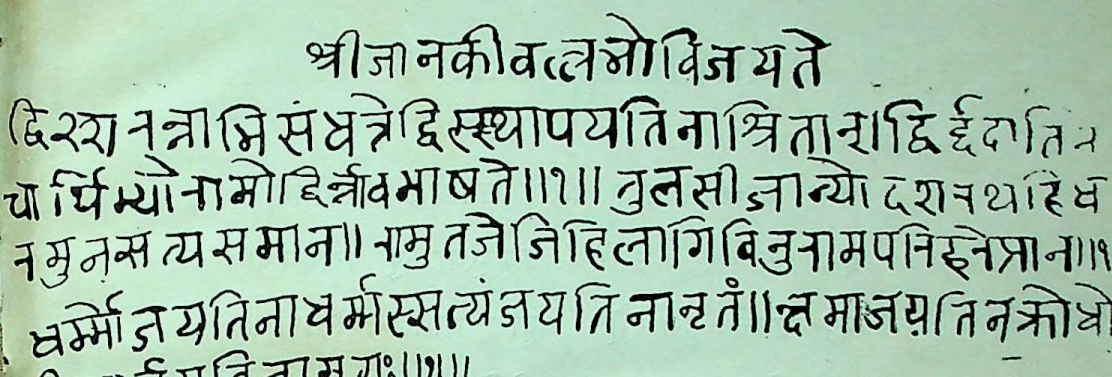

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

द्विश्शरन्नाभिसंधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्। द्विर्द्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्न्नावभाषते॥१॥ तुलसी जान्यो दशरथहि धरमु न सत्य समान॥ रामु तजे जिहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान॥१॥ धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतं॥ क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुराः॥१॥

[संवत् १६६९ में गोस्वामी तुलसीदासजीके परम प्रिय मित्र
राय टोडरमलके पंचनामेपर गोस्वामीजी - द्वारा
लिखित यह अंश राय टोडरमलके वंशज
श्री आनन्दबहादुर सिंहके अनुग्रहसे
प्राप्त हुआ है।]

॥ श्री जानकीवल्लभो विजयते ॥

द्विश्शरं नाभिसंधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्द्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नविभाषते ॥ १ ॥
तुलसी जान्यो दशरथहि धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जिहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥ १ ॥
धर्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतं।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुराः ॥ १ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बालमीकि तुलसी भयौ

त्रेता काव्य निबन्ध करी सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरै ब्रह्महत्या जु परायन॥
अब भक्तन सुख हेत बहुरि भाषा बिस्तारी।
राम-चरित-रस-मत्त अनँत निसि दिन ब्रतधारी॥
संसार अपारके पार कहँ सुगम रूप नौका लयौ।
कटि कुटिल जीव निस्तार हित - बालमीक तुलसी भयौ॥

—नाभादासजी : भक्तमाल छप्पय १२९

●

रामललानहछू, त्यों बिरागसंदीपिनी हू, बरवै बनाइ बिरमाई मति साईंकी।
पारबती जानकीके मंगल ललित गाय, रम्य राम-आज्ञा रची कामधेनु नाईंकी॥
दोहा औ कवित्त, गीत-बन्ध कृष्ण-रामकथा, रामायन बिनै माहिं बात सब ठाईंकी।
जगमें सोहानी जगदीसहूके मनमानी, संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाईंकी॥

—पंडित रामगुलाम द्विवेदी

●

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समर्पण

॥ श्रीमंगलमूर्तये नमः ॥

॥ श्रीरामचन्द्राय नमः ॥

॥ श्री सीतायै नमः ॥

॥ श्री हनुमते नमः ॥

बल - बुधि - विद्या - तेज - तप - ज्ञान - निधान सुजान ।
रामचरित - मानस बिमल, स्वोकुरु श्री हनुमान ॥
बरनत सीताराम - गुन - ग्राम आठहूँ जाम ।
कोटिक संकट काटिकै, देहु भगति अविराम ॥
सिया - राम - गुन - गन - मगन, सहज सुमंगल - मूल ।
मारुत - सुत नित हित - सहित, सदा रहउ अनुकूल ॥
जय जय जय - संकट - हरन, प्रनतारति - हर नाम ।
अर्पित अति सति भगति - तेँ, राम - कथा अभिराम ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परिषद्‌की ओरसे • • •

• • • कृतज्ञता-भावन

जिस अनुराग, निष्ठा और तत्परतासे तुलसी-ग्रन्थावलीके संपादक-मंडलने विशेषतः आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी तथा पंडित श्रीकृष्ण शुक्लने दिनरात परिश्रम करके इस द्वितीय खंडका संपादन किया, उसके लिये मौखिक कृतज्ञता व्यक्त करके हम उनके ऋणसे उऋण नहीं हो जा सकते।

इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थावलीके प्रकाशनका सारा श्रेय परिषद्‌के उपाध्यक्ष श्रीसीतारामजी सेकसरियाको ही है जिन्होंने अत्यन्त आत्मीयता और तत्परताके साथ द्वितीय खंडके लिये बंगाल पेपर मिल-वालोंसे कागज दिलाने तथा आर्थिक साधन जुटानेमें अप्रतिम सहयोग दिया है। उसके लिये परिषद्‌की ओरसे उन्हें हार्दिक धन्यवाद और साधुवाद देना मैं अपना सात्त्विक कर्त्तव्य समझता हूँ। परम रामभक्त और रामायण-प्रेमी श्रीभागवतदास छत्रीके प्रपौत्र श्रीरामकुमार सिंहने तुलसीदासजीके शेष सब ग्रन्थोंकी श्रीभागवतदास-द्वारा संपादित मूल प्रति देकर, श्री शान्ति-स्वरूप गुप्तजीने सन् १९०३ में श्रीबालमुकुन्द गुप्त-द्वारा कलकत्तेसे प्रकाशित षोडश-रामायणकी प्रति देकर, अहरौराके प्रसिद्ध विद्वान् पंडित श्री सदायतन पाण्डेयजीने विनयपत्रिकाकी प्रति देकर, श्रीवियोगी हरिजीने अपनी नव-संपादित विनय-पत्रिकाकी प्रकाशित प्रति देकर तथा महन्त श्रीरामदेव दासजीने तुलसीदासजीके अन्य ग्रन्थोंकी सटीक प्रतियाँ उपलब्ध कराकर जो अमूल्य सहयोग दिया है उसके लिये हम परिषद्‌की ओरसे उनके बहुत ऋणी हैं। जिन अन्य अनेक महानुभावोंने इस द्वितीय खंडके लिये अनेक सुझाव देकर तथा अन्य अनेक प्रकारोंसे हमारे इस दुःसाध्य कार्यको भी सुसाध्य कर दिया उन सबके भी हम हृदयसे आभारी हैं।

श्री १०८ नारायण स्वामीने हिन्दी विश्वकोष, संस्कृत-हिन्दी-कोष, संस्कृत-अंग्रेजी-कोष, उर्दू-हिन्दी कोष, सुधाकर द्विवेदीका रामचरितमानसका संस्कृतानुवाद तथा संतसिंह पंजाबीकी प्राचीन टीकाओंकी पुस्तकें उपलब्ध कराकर इस काममें अपूर्व सहायता की है। उनके हम बहुत-बहुत कृतज्ञ हैं।

संयोगसे इस द्वितीय खंडका आकार बहुत अधिक बढ़ गया है। इसमें गोस्वामीजीके प्रामाणिक १२ सटीक ग्रन्थोंके अतिरिक्त वे सभी प्राप्त अन्य ग्रन्थ भी मूल रूपमें प्रकाशित किए जा रहे हैं जिनकी प्रामाणिकता विवादग्रस्त है। साथ ही गोसाईं-चरित, मूल गोसाईं-चरितके साथ-साथ गोस्वामीजीके जीवन-चरित अथवा तुलसी-साहित्य संबंधी अनेक लेख भी तृतीय खंडके रूपमें इसी खंडके अन्तमें प्रकाशित करनेका विचार था किन्तु ग्रन्थका कलेवर अत्यधिक बढ़ जानेसे और साधनका अभाव हो जानेसे तृतीय-खंड निकालनेका विचार अभी छोड़ दिया है।

जिन अनेक सज्जनों या संस्थाओंने इस ग्रन्थकी सौ-सौ या पचास-पचास प्रतियाँ ली हैं या जो इस द्वितीय खंडके अग्रिम ग्राहक बने हैं उनका हम हृदयसे अनुग्रह मानते हैं।

विजया दशमी,
संवत् २०२९
काशी।

गयाप्रसाद ज्योतिषी
व्यवस्थापक,
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संपादकोंकी ओरसे • • •

• • • निवेदन

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् । आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥
यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले । तावद्रामायणी कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥
सदूषणापि निर्दोषा सखराऽपि सुकोमला । नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥

[कविताकी डालीपर बैठकर मधुरसे मधुर वाणीमें राम-रामकी कूक लगानेवाले वाल्मीकि-रूपी कोयलको मैं प्रणाम करता हूँ ।

जबतक पृथ्वीपर पर्वत और नदियाँ बनी रहेंगी तबतक रामायणकी कथा भी लोगोंमें कही-सुनी जाती रहेगी ।

दूषण राक्षसकी कथा होनेपर भी जो दूषण-रहित है और खर राक्षसकी कथा होनेपर भी जो अत्यन्त कोमल (सरस) है, ऐसी रामायणी कथा जिसने रची है उस कवि (वाल्मीकि और वाल्मीकिके अवतार तुलसीदास)-को मैं प्रणाम करता हूँ ।]

संवत् २०३१में होनेवाली श्रीरामचरितमानस-चतुःशताब्दीके अवसरपर प्रकाशनार्थ प्रस्तावित तुलसी-ग्रन्थावलीका द्वितीय खंड प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक हर्ष और संतोष हो रहा है । महावीर पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीकी महती कृपा और प्रेरणासे ही यह दुरूह और विराट् कार्य सुखपूर्वक संपन्न हो सका है । यद्यपि बाबा बेनी माधवदास (वास्तवमें बिहारीदास), पं० रामगुलाम द्विवेदी और डा० माताप्रसाद आदिने १२ ग्रन्थ, डा० भगीरथ प्रसाद दीक्षितने १४, शिवसिंह सेंगरने १८, शिव बिहारीलालने १६, रामनरेश त्रिपाठीने ३०, खोज रिपोर्टोंके अनुसार ३६ तथा डा० उदयभान सिंहने ५१ ग्रन्थ गोस्वामीजीके माने हैं तथापि अधिकांश विद्वानोंने उनके अग्रांकित बारह ग्रन्थ ही प्रामाणिक समझे हैं—

१. रामचरितमानस, २. गीतावली, ३. कवितावली, ४. कृष्ण-गीतावली, ५. विनय-पत्रिका, ६. दोहावली, ७. रामलला-नहछू, ८. वैराग्य-संदीपनी, ९. रामाज्ञा-प्रश्न, १०. बरवै रामायण, ११. जानकी-मंगल और १२ पार्वती-मंगल । सर जॉर्ज ग्रियर्सनने १८९३ में 'इण्डियन एन्टीक्वेरी' नामक पत्रमें तुलसीदासके रचे हुए २१ ग्रन्थ गिनाए हैं—'रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, दोहावली, छप्पय रामायण, राम सतसई, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, वैराग्य-संदीपनी, रामलला-नहछू, बरवै रामायण, रामाज्ञा-प्रश्न, संकट-मोचन, विनयपत्रिका, (हनुमान-) बाहुक, रामशलाका, कुण्डलिया रामायण, कड़खा रामायण, झूलना रामायण, रोला रामायण तथा कृष्ण-गीतावली ।' आगे चलकर उन्होंने 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलिजन ऐण्ड एथिक्स' में बारह ग्रन्थोंको ही प्रामाणिक मानकर उन्हें बड़े और छोटे दो वर्गोंमें विभाजित किया—

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बड़े ग्रन्थ : रामचरितमानस, दोहावली, गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका और कृष्ण-गीतावली।

छोटे ग्रन्थ : रामलला नहछू, वैराग्य-संदीपनी, बरवै रामायण, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल और रामाज्ञा प्रश्न।

'बंगवासी प्रेस'की ओरसे जो सूची प्रकाशित हुई थी उसमें आए हुए कलिधर्माधर्म-निरूपण, हनुमानचालीसा और कवित्त-रामायण भी यदि ग्रियर्सनकी सूचीमें जोड़ लिए जायँ तो संख्या २१ से २४ हो जाती है। मिश्र बन्धुओं ने अपने 'हिन्दी-नवरत्न' में 'पदावली रामायण'का भी उल्लेख किया है। बम्बईके 'भारतीय विद्या-भवन'की ओरसे प्रकाशित 'भारतीय विद्या' पत्रिकामें 'श्रीरामनाम-कला-कोश-मणि-मयूख' नामक एक और भी ग्रन्थका पूरा पाठ दिया गया है। इस प्रकार गोस्वामीजीके नामसे २६ ग्रन्थ प्रसिद्ध हो जाते हैं। नागरीप्रचारिणी-सभाके भी खोजके विवरणोंमें तुलसी नामक कविके ३६ ग्रन्थोंके नाम गिनाए गए हैं।

शिवसिंह-सरोजमें शिवसिंह सेंगरने लिखा है—'गोस्वामीजीने ४६ कांड रामायणकी रचना की—७ कांड चौपाई रामायण, ७ कांड कवितावली रामायण, ७ कांड गीतावली रामायण, ७ कांड छंदावली रामायण, ७ कांड बरवै रामायण, ७ कांड दोहावली रामायण और ७ कांड कुण्डलिया रामायण।' इसके अतिरिक्त उन्होंने निम्नांकित ११ ग्रन्थोंके नाम और दिए हैं—१. सतसई, २. रामशलाका, ३. कृष्ण-गीतावली, ४. हनुमत-बाहुक, ५. कड़खा छन्द, ६. जानकी-मंगल, ७. पार्वती-मंगल, ८. रोला छन्द, ९. झूलना छन्द, १०. संकट-मोचन और ११. विनय-पत्रिका।

मूल गोसाईंचरितमें गोस्वामीजीके रचे हुए १३ ग्रन्थ बताए गए हैं—१. राम-गीतावलीके कुछ छन्द (संवत् १६२८-३१), २. कृष्ण-गीतावली (१६२८), ३. रामचरितमानस (१६३१) ४. दोहावली (१६४०), ५. सतसई और ६. विनयपत्रिका (१६४२), ७. रामलला-नहछू, ८. पार्वती-मंगल ९. और जानकी-मंगल (१६४३), १०. हनुमान-बाहुक, ११. वैराग्य-संदीपनी, १२. रामाज्ञा प्रश्न और १३. बरवै रामायण (१६६९)। गोस्वामीजीके सर्वमान्य १२ ग्रन्थोंकी सूचीमें इस सूचीके अनुसार केवल सतसई नहीं है। इसमें कवितावलीके बदले हनुमान-बाहुकका नाम है।

सन् १९०३ में श्रीबालमुकुंद गुप्तने बंगवासी प्रेससे षोडश-रामायण नामसे जो तुलसी-ग्रन्थावली छपवाई थी और जिसकी प्रति श्री शान्तिस्वरूप गुप्तके सौजन्यसे हमें प्राप्त हो पाई, उसमें १२ प्रसिद्ध सर्वमान्य ग्रन्थोंके अतिरिक्त अग्रांकित ग्रन्थ भी हैं—हनुमानचालीसा, छप्पय रामायण, कलिधर्माधर्मनिरूपण, रामायण-छन्दावली, कुण्डलिया रामायण और तुलसी-सतसई, किन्तु हनुमान-बाहुक तो कवितावलीके साथ ही संलग्न मिलता है।

हमने तुलसी-ग्रंथावलीके इस द्वितीय खंडमें टीकाके लिये केवल १२ ग्रंथ ही लिए हैं। हनुमान-बाहुकको कवितावलीसे अलग करके छापा गया है किन्तु उसे कवितावलीका ही अंग मान लेना चाहिए। पंडित रामगुलाम द्विवेदीने एक कवित्तमें गोस्वामीजीके बारह ग्रन्थोंका नाम इस प्रकार दिया है—

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रामललानहछू त्यों बिराग-संदीपनी हू, बरवै बनाइ बिरमाई मति साईंकी।
पारबती-जानकीके मंगल ललित गाय, रम्य राम-आज्ञा रची कामधेनु नाईंकी॥
दोहा औ कवित्त, गीतबन्ध कृष्ण-कथा कही रामायन बिनै माहिं बात सब ठाईंकी।
जगमें सोहानी जगदीसहूके मन मानी, संत-सुखदानी बानी, तुलसी गोसाईंकी॥

राय अम्बिकानाथ सिंह 'लाल साहब', नायन हाउस, महिपाल नगर रायबरेलीके निजी पुस्तकालयसे गोस्वामीजीके दो और ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि मिली—श्रीहनुमान-साठिका, श्रीबजरंग-बाण। विस्तृत ४०५ छन्दावली बरवै रामायणकी प्रति जौनपुरके राजा साहब पंडित यादवेन्द्रदत्त दुबेने भिजवा दी जो उन्होंने सन् १९५३ में सं० १८७३ की दो प्रतियोंके आधारपर संपादित कराकर छपवाई थी। डा० रामकुमार वर्मा-द्वारा संपादित तथा हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-द्वारा प्रकाशित उसकी दूसरी प्रति भी प्राप्त हो गई। इस प्रकार यह प्रयत्न किया गया कि गोस्वामीजीके द्वारा रचे बताए जानेवाले अधिकसे अधिक ग्रन्थोंका संग्रह इसमें प्रकाशित कर दिया जाय। इनमेंसे जो सर्वमान्य १२ ग्रन्थ हैं उसका तो अर्थ दिया जा रहा है, शेष ग्रन्थोंके मूल पाठ ही दिए जा रहे हैं। ज्ञान-दीपिकाकी प्रतिलिपि दतिया राज्य पुस्तकालयसे श्री उदयशंकर दुबेने भेजी है जिसका संपादन श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' ने किया है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभाने गोस्वामीजीकी तीन-सौवीं जयन्तीके अवसरपर दो खण्डोंमें गोस्वामीजीकी जिन बारह रचनाओंको मान्य करके प्रकाशित किया था उसी क्रमसे यह ग्रन्थावली भी प्रकाशित की जा रही है। यही क्रम भागवतदास छत्री-द्वारा प्रकाशित तथा संपादित तुलसी-ग्रन्थावलीमें भी है।

श्रीरामचरितमानस

तुलसी-ग्रन्थावलीके प्रथम खंडमें श्रीरामचरितमानस सम्पूर्ण और सटीक प्रकाशित किया गया था। हमें हार्दिक संतोष है कि व्यापक रूपसे उस पाठ और टीकाका आदर हुआ और उसकी सराहना हुई। बहुतसे मित्रोंने बहुतसे सुझाव भी दिए। कुछ पाठों और अर्थोंके संबंधमें भी कुछ विद्वानों और रामायण-प्रेमियोंने अपने महत्त्वपूर्ण संकेत, शंका, प्रश्न और सुझाव लिख भेजे। हमें बड़ी प्रसन्नता है कि समस्त भारतके तुलसी-प्रेमियों और विद्वानोंने उसका समादर करके और उसके प्रति गहन रुचि प्रदर्शित करके अत्यन्त आत्मीयता और सहृदयताका परिचय दिया।

विनयपत्रिका

गोस्वामीजीकी सभी रचनाओंमें रामचरितमानसके पश्चात् विनयपत्रिकाका सबसे अधिक आदर है। इस ग्रंथमें गोस्वामीजीने रचना-कालका कहीं उल्लेख नहीं किया है जो किसी भी विनय-पत्रिका (अर्जी)-में होना ही चाहिए था। यद्यपि यह पत्रिका विभिन्न समयमें लिखे हुए मुक्तक पदोंका संग्रह है तथापि यह स्वयं अपनेमें विनयपत्रिकाका पूरा इतिहास या प्रबंध ही है जिसमें गोस्वामीजीने अपने प्रभु रामके अतिशय प्रिय सभासदोंसे अनुनय करके अपने प्रभुकी महिमा, अपनी दीनता, कलि-जन्य दुःख आदिका वर्णन करके प्रभु राजा रामसे प्रार्थना की है कि आप मुझे शरणमें ले लीजिए। उन्होंने रामसे प्रार्थना की है कि आप स्वयं यह पत्रिका पढ़िएगा और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सभासदोंसे आग्रह किया है कि आप लोग यह पत्रिका प्रभुकी सेवामें उपस्थित कर दीजिएगा। सबकी रुचि देखकर लक्ष्मणने वह पत्रिका राजा रामकी सभामें उपस्थित कर दी और अंतमें वह पत्रिका प्रभु रामने स्वीकार कर ली।

विनय-पत्रिकामें वास्तविक विनयके दो ही पद हैं—

जयति सच्चिद् - व्यापकानन्द यद्ब्रह्म - विग्रहव्यक्त - लीलावतारी। ..... से
दास तुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप वैदेहि रानी ॥ ४३ ॥ ..... तक

और—

जयति राजराजेन्द्रराजीवलोचन राम नाम कलिकामतरु-सामशाली। .....से लेकर
दास तुलसी चरण शरण संशय-हरण देहि अवलंब वैदेहि भर्ता ॥ ४४ ॥ ..... तक

ये ही दो पद वास्तवमें विनय-पत्रिका हैं। इसके पूर्व रामकी सभाके सभासदों (देवताओं)-से, रामके भाइयोंसे, हनुमानसे तथा सीतासे अनुनय है और उपर्युक्त दोनों पदोंके पश्चात् रामकी वन्दना, प्रार्थना, स्तुति, जय-जयकार तथा दुहाई है। अंतिम दो पदोंमें विनयपत्रिका उपस्थित की जाने, पंचोंकी संस्तुति और भगवान् राम-द्वारा स्वीकृतिका विवरण है—'परी रघुनाथ हाथ सही है।' इस प्रकार यह ग्रन्थ विनय-पत्रिका भेजनेसे लेकर उसकी स्वीकृति होने-तकका प्रबन्ध काव्य है जिसमें उन्होंने रामसे तो कलिकालके लोगों-द्वारा अपने ऊपर अत्याचारकी दुहाई दी ही है, साथ ही शिवजीसे भी कहा है कि आपके नगर (काशी)-वाले मुझे बड़ा कष्ट दे रहे हैं, इनसे बचाइए—

गाँव बसत, बामदेव! मैं कबहूँ न निहोरे। अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे।
बेगि बोलि, बलि, बरजिए करतूति कठोरे। तुलसी बलि ऊँब्यो चहैं, सठ साख सिहोरे॥

भागवतदास छत्रीकी प्रति तथा अहरौराके पंडित श्री सदायतन पांडेयजीसे प्राप्त विनयपत्रिका-की प्रति, श्री वियोगी हरिजीकी 'विनय-पत्रिकाके नवीनतम संस्करण तथा महन्त श्री रामदेवदास-जी द्वारा प्रदत्त श्री श्रीकान्तशरणजीकी संपादित सम्पूर्ण विनय-पत्रिकाके आधारपर इसका संपादन किया गया है। बहुतसे पदोंकी टेकमें या बीचमें भी कुछ अनावश्यक 'जो, तो, प्रभु, राम' आदि अनेक ऐसे शब्द आ गए हैं जिनसे छन्द टूट जाता है। ऐसे बाधक शब्द या तो निकाल दिए गए हैं या कोष्ठकमें रख दिए गए हैं।

गीतावली

ललित और भाव-भरे मधुर पदोंमें काण्ड-क्रमसे गीतावलीमें पूरे रामचरितका वर्णन है। किन्तु इसे क्रमिक कथाकी दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसकी सारी पद-रचना राग-रागिनियों-के निर्देशके साथ हुई है। इसके आरम्भमें रामके बाल-रूपका और अंतमें राजा-रूपका अत्यन्त मनोरम वर्णन किया गया है। इसमें राम-राज्यकी समृद्धिका भी बड़ा विशद वर्णन है। रामकी दिनचर्या भी इसमें दी गई है। मूल गोसाईं-चरितके अनुसार जिस समय गोस्वामीजी चित्रकूटमें थे उस समय सूरदासजी उनसे मिलने आए और उन्होंने अपने सूरसागरके पद उन्हें सुनाए। उससे प्रभावित होकर ही गोस्वामीजीने ललित पदोंमें रामकी कथा लिखी। सूरदासजी गोस्वामीजीसे मिलने आए

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हों या न आए हों, किन्तु गोस्वामीजीका वृन्दावन जाना तो निश्चित ही है। नट-नागरकी उस लोकपावन लीला-भूमिमें पदार्पण करनेपर गोस्वामीजीने जब उनकी ललित कथाका गान सूर-जैसे उच्च कोटिके कवि और महात्माके पदोंमें श्रवण करके रस प्राप्त किया तो उससे ही प्रभावित होकर तुलसीदासजीने निश्चय किया कि इसी शैली और इसी भाषामें रामके संबंधमें भी क्यों न कुछ गेय पद रचे जायँ। इससे ही प्रेरित होकर उन्होंने समय-समयपर राम-संबंधी पदोंकी रचना करके बाल रामकी छवि और लीलाओंका अत्यन्त सरस और हृदयग्राही वर्णन किया तथा राजा रामके रूप, वैभव तथा रागरंगके वर्णनके अनेक पद रच डाले। इन प्रसंगोंके अतिरिक्त रामके वियोगमें कौशल्याका शोक, वनपथमें जाते हुए राम, लक्ष्मण, सीताके प्रति ग्रामीण नारियोंकी स्नेहाभिव्यक्ति निश्चय ही अत्यन्त हृदयहारिणी और मनोरम है।

कृष्ण-गीतावली

गोस्वामीजी रामभक्त अवश्य थे किन्तु उनमें साम्प्रदायिक कट्टरताका लेश भी न था। उन्होंने इस प्रकारकी संकुचित वृत्तिकी सर्वत्र निन्दा करके सदा समन्वयका ही प्रयत्न किया। यही कारण है कि वृन्दावन-यात्राके अवसरपर उन्होंने कृष्ण-लीला-संबंधी पदोंकी रचना कर डाली। इसमें कुल ६१ पद हैं। किन्तु इनसे ही प्रकट हो जाता है कि ब्रजभाषापर भी गोस्वामीजीका कैसा असाधारण अधिकार था। यह मुक्तक प्रबंध-काव्य है जिसमें कृष्णका पूरा चरित तो नहीं, किन्तु एक-एक मुक्तक पदमें एक-एक लीलाकी कथा सरसताके साथ दे दी गई है। इस प्रकार इन थोड़ेसे मुक्तक पदोंमें ही कृष्णकी बाल-लीलासे लेकर भ्रमरगीत-तककी कथा समा गई है। अन्तके दो पदोंमें द्रौपदी-चीर-हरणका भी बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है।

कवितावली और हनुमान-बाहुक

कवितावलीकी रचना भी ग्रन्थके रूपमें नहीं की गई। इसकी रचना वृन्दावनसे लौट आनेके पश्चात्से लेकर अन्तकालतक होती रही। वस्तुतः कवित्त-सवैयोंमें ग्रन्थ रचनेकी बात उन्होंने सोची भी न होगी। प्रतीत होता है कि समय-समयपर विभिन्न स्थानोंपर विभिन्न भाव आनेपर वे ब्रज भाषामें इस पद्धतिपर जो कुछ लिखते गए वह संगृहीत होता गया और अन्तमें इसे कवित्त-रामायण या कवितावलीका नाम दे दिया गया। इसके उत्तर-काण्डमें जो वर्णन आया है वह मानसकी कथासे मेल नहीं खाता। फिर भी अन्नपूर्णा, काशी, प्रयाग, चित्रकूट आदिके स्वतंत्र वर्णन यह अवश्य सिद्ध करते हैं कि उन स्थानोंपर कविके मुखसे जो उद्‌गार निकले वे आगे चलकर एक साँचेके होनेके कारण एक ही संग्रहमें संगृहीत कर लिए गए। इसमें रुद्रबीसी, मीनकी सनीचरी और महामारीका भी वर्णन आया है जो उनके जीवन-कालके अंतिम दिनोंकी घटनाएँ है। इसी कोटिके छन्दोंमें और ब्रज-भाषामें होनेके कारण बाहु-पीडाके समय रचा हुआ हनुमान-बाहुक भी इसीके साथ संलग्न मिलता है जिसमें ४४ ओजस्वी छन्द हैं। इस ग्रन्थावलीमें हनुमान-बाहुक स्वतंत्र रूपसे अलग दे दिया गया है।

पंडित रामकुमार दासजीका कथन है—'कवितावलीके लंकाकाण्डमें पद्य ३० से ५५ तक २६ पद्योंमें हनुमानजीकी वीरता-संबन्धी पद्योंका संग्रह है। वैसे तो मुझे कई पद्योंपर ऐतराज है क्योंकि ये यहाँके न होकर अन्यत्रके हैं किन्तु ४५ वें पद्यका दूसरा तुक 'कौनके तेज बलसीम भट भीमसे, भीमता निरखि करि नयन ढाँके' से तो साफ है ही कि यह पद्य हनुमान-बाहुकमें होना चाहिए या उत्तर काण्डमें अन्य देवताओंके वर्णनके साथ।'

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पंडित रामकुमार दासजीने कवितावलीके पाठक्रमपर भी गम्भीर विचार किया है। उनका कथन है—'कवितावली एक संग्रह ग्रन्थ है जिसमें गोस्वामी तुलसीदासजीके लिखे स्फुट सवैये, रूप-घनाक्षरी, मनहरन कवित्त, झूलना एवं छप्पय आदि पदोंका संग्रह है परन्तु यह संग्रह अवश्य ही गोस्वामीजीका किया नहीं है। यह तो गोस्वामीजीके बाद किसीने अपनी सूझ-बूझके अनुसार क्रम लगाकर संकलन किया है जो कहीं-कहीं उलटा-पलटा हो गया है जैसे रामचरितमानसमें जनकके दूतोंने दशरथजीसे—'सुनहु महीपति-मुकुट-मनि' (१।२९१)से 'अब' न आँखि तर आवत कोऊ' (१।२९३।५) तक धनुर्भंग और परशुराम-पराजयकी कथा बताई थी। अतः कवितावलीका 'काल कराल नृपालनके'···से सिधाये तक' (१।२२) यह पद मानस-कथित 'दूत-वचन-रचना' का संक्षिप्त रूप है अथवा 'सुनि सरोष भृगुनायक'से 'गवन वन कीन्हाँ'का सुस्पष्ट रूप है। अतः, इस पदके बाद संग्रहका सत्रहवाँ पद 'दूलह श्री रघुनाथ बने'से 'पल टारति नाहीं' होना चाहिए और उस 'काल कराल-नृपालनके'—पदके पूर्व 'भूप मंडली प्रचण्ड चण्डीसको दंड खण्ड्यौ'से 'नाम राम लखन कुमार कौसलेसके' होना चाहिए। जानकी-मंगलके पद १७७-१७८ में बरातके लौटते समय मार्गमें परशुराम-पराजयका संकेत है—

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिये। डाँटहिं आँखि देखाइ कोप दारुन किये॥
राम कीन्ह परितोष रोष रिस परिहरि। चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि॥

यह वाल्मीकीय रामायणके अनुसार है परन्तु वाल्मीकीय-रामायणमें लक्ष्मणका परशुरामसे बोलना नहीं है और कवितावलीमें 'रोषे-माखे लखन अकनि अनखौही बातें—हैं। बारातके लौटाते समय 'भूप मण्डली प्रचण्ड'—और 'सोइ हौं बूझत राजसभा' परशुरामके शब्द हैं। इससे निश्चित है कि कवितावलीके प्रचलित संग्रहके सोलहवें पदके बाद 'भूप मंडली प्रचण्ड'—से 'कुमार कौसलेसके' चार पद हैं तब 'काल कराल नृपालनके' और अंतमें 'दूलह श्री रघुनाथ बने'—पद होना चाहिए।

मेरी समझसे तो किसी संग्रहकारकी गलतीको जान लेनेके बाद भी उस गलतीके अनुसार लिखना या क्रम देना टीकाकार या सम्पादककी बुद्धिमता नहीं है (आत्मबल-हीनताका द्योतक है)। रामचरितमानसमें है—

जिहि बिधि कपट कुरंग संग, धाइ चले श्रीराम। सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम।

श्री रामचन्द्रजीके 'कपट कुरंग संग धाइ चलने'की विधिका संकेत बरवै रामायणमें ऐसा है—

जटा मुकुट, कर सर-धनु संग मरीच। चितवनि बसति कनखियन अँखियन बीच॥

इसका सुस्पष्ट वर्णन कवितावलीके 'प्रेम-सों पीछे तिरीछे प्रियहिं चितै'से 'धनुसो शर जोरे' पद है। संकलन-कर्ता महानुभावकी असावधानीसे यह पद अयोध्याकाण्डका २६ वाँ हो गया है। वास्तवमें यह पद अरण्यकाण्डका अंतिम सवैया है और यही होना चाहिए।

महाकवि गुणाढ्यकी कपाल-कल्पित सीता-त्यागकी कहानीको जिन लोगोंने सत्य मानकर पल्लवित पुष्पित किया है उन लोगोंने लवणासुर-वधको कथाको भी उसीमें जोड़ते हुए लिखा है कि लवणासुरको मारने मधुवन (मथुरा) जाते हुए शत्रुघ्नने रास्तेमें जिस एक रात्रि वाल्मीकि आश्रमपर निवास किया था उसी रात्रि सीताजीके पुत्रोंका जन्मोत्सव था आदि। वह वाल्मीकि आश्रम ब्रह्मा-वर्तमें कल्पित किया गया है जो अयोध्यासे मथुरा (मधुवन) जाते समय कहना सर्वथा असंभव है

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्योंकि वह अयोध्यासे पश्चिमोत्तर है। कवितावली उत्तरकांडके कवित १३८, १३९, १४० तीन कवित्तोंमें किसी सीतावटका माहात्म्य है जो वारिपुर और दिगपुरके बीचमें वर्णित है। यह वारिपुर दिगपुर वाराणसी जिलेमें भीटी एवं ज्ञानपुर स्टेशनके पास है जो अयोध्यासे दक्षिण (कुछ पूरब लिए हुए) है और रामचरितमानस-कथित वाल्मीकि-आश्रमसे भी सर्वथा भिन्न है।'

उत्तर प्रदेशके श्रीरामचरित-मानस-चतुःशती-समारोह-समितिके अध्यक्ष श्री जनार्दन दत्त शुक्लने इस संबंधमें निम्नांकित विवरण भिजवाया है—

'(१) स्थान : इस स्थानका नाम सीतामढ़ी है जो गाँव नरियार, भूमिसंख्या ५७५में गङ्गा-तटपर स्थित है। इस स्थलसे पूर्वकी ओर गङ्गा-तटपर ही ५-६ फर्लांगकी दूरीपर दीघ नामक गाँव स्थित है। सम्भवतः कालान्तरमें गाँव वारिपुरका बारीपुर और ग्राम दिगपुरका दिघवर और दीघपुर परिवर्तित होकर केवल दीघ रह गया है।

यह स्थान इलाहाबाद-वाराणसी (छोटी लाइन)-के रेल-मार्गके जिला इलाहाबादके भीटी रेलवे स्टेशन (बरीत बाजार)-से दक्षिण-पूर्व पाँच मीलपर गङ्गातटके उत्तरी किनारेपर स्थित है जो ग्राण्ड ट्रङ्क रोड जुङ्गीगंज (जिला वाराणसी)-से जानेवाली जुंगीगंज-धनतुलसी कंकड़ रोडपर १२.४ किलो मीटर चलकर बाईं ओर लगगग तीन फर्लाङ्ग कच्चा मार्ग गङ्गा-तटपर पड़ता है और सीतामढ़ी कहलाता है। वहाँ आषाढ़ शुक्ल ९को प्रतिवर्ष मेला लगता है जिसमें इलाहाबाद, वाराणसी और मिर्जापुर जिलोंके असंख्य ग्रामीण भक्त जन आते हैं।

(२) जनश्रुतियाँ और किंवदंतियाँ : स्थानीय लोगों और जनसाधारणसे वार्ता करनेपर ज्ञात हुआ कि श्रीवाल्मीकिका आश्रम यहींपर था और लवकुश यहीं पैदा हुए थे। इद दिनों यहाँ मन्दिरके महन्त पंडित अमरनाथ मिश्र हैं जिनके पूर्वज ७-८ पीढ़ी, लगभग ३०० वर्ष पूर्वसे इस पवित्र स्थलपर पूजा-अर्चना करते आए हैं। यहाँपर ऋषि वाल्मीकिकी काले पत्थरकी लगभग १-१।२ फुट ऊँची प्राचीन प्रस्तर मूर्ति स्थित है। शेष मूर्तियाँ श्रीराम, सीता, लक्ष्मणकी संगमरमरकी हैं, जो नवीन ज्ञात होती हैं। पहले ये मूर्तियाँ एक कच्चे खपरैल छाए हुए कोठेमें प्रतिष्ठित थी, किन्तु अब ७-८ वर्षसे मकानकी भाँति पक्के कमरेमें अवस्थित कर दिया गया है। उसी कमरेके उत्तरमें एक शंकरजीका मन्दिर है। शंकर और नन्दीकी मूर्त्ति पुरानी है।

उपर्युक्त मन्दिरोंके दक्षिण गंगा-तटकी ओर विशाल प्राचीन वट वृक्ष है और वट बृक्षसे गंगाजीका करार केवल ५० गज मात्र है। बट वृक्षका प्राचीन तना अवशेष नहीं है, किन्तु जटाओंके भूमिमें प्रविष्ट होनेसे ५०-१०० शाखाओं-प्रशाखाओंके रूपमें बट वृक्ष अपने पुरातन रूपका स्मरण कराता है। उक्त मन्दिरके उत्तरमें और शिव-मन्दिरके पीछे भी एक विशाल बट वृक्ष है जो उतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। उसका मूल वृक्ष अतीतकी गोदमें विलीन हो चुका है।'

हमने कवितावलीका पाठक्रम वही रक्खा है जो भागवतदास छत्रीकी प्रतिमें और नागरी प्रचारिणी सभाकी प्रतिमें है किन्तु श्रीरामकुमारदासजीका मत अवश्य विचारणीय है।

दोहावली

दोहावली भी मुक्तक रचना है। इसमें २३ सोरठे और ५५० दोहे हैं। इन दोहोंमें भगवन्नाम-माहात्म्य, धर्मोपदेश तथा नीतिका निर्देश किया गया है। भक्ति-सम्बन्धी दोहे भी इसमें पर्याप्त हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इसमें आए हुए दोहोंमेंसे प्रायः आधे दोहे मानस, रामाज्ञा-प्रश्न और वैराग्य संदीपिनीमें भी मिलते हैं। अतः, निश्चय ही यह बहुत पीछेका संग्रह है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजीने या उनके किसी शिष्य, प्रेमी या भक्तने उपर्यंकित ग्रन्थोंमेंसे कुछ दोहे लेकर तथा कुछ दोहे और जोड़कर यह ग्रन्थ प्रस्तुत कर दिया है। इसके कुछ दोहोंमें वाल्मीकीय रामायणके उत्तर कांडकी कथा (सीता-वनवास लवकुश-जन्म, भूमि-प्रवेश)-का संकेत भी है।

रामाज्ञा-प्रश्न

इसमें सात सर्ग हैं। प्रत्येक सर्गमें सात-सात दोहोंके सात-सात सप्तक हैं। कहा जाता है कि गोस्वामीजीने प्रह्लादघाटपर रहनेवाले अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषीको काशीनरेशके कोपसे बचानेके लिये इसकी रचना शकुन विचारनेके उद्देश्यसे की थी। इसके बहुतसे दोहे रामचरित-मानससे लिए गए हैं। इसमें राम-कथाका वर्णन भी है और अन्तिमसर्गके सातवें सप्तकमें शकुन विचारनेकी विधि भी बताई गई है। इसमें भी वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकांडकी सीता-वनवास-वाली कथा मिलती है।

वैराग्य-संदीपिनी

इसकी शैलीके कारण बहुत लोग इसे गोस्वामीजीकी रचना नहीं मानते। दोहे-चौपाइयोंमें रचे हुए इस ग्रन्थमें तीन प्रकाश तथा ६२ छन्द हैं। आदिमें मंगला-चरण, पहले प्रकाशमें सन्त-स्वभाव वर्णन, दूसरे प्रकाशमें सन्त-महिमा वर्णन तथा तीसरे प्रकाशमें शांति-वर्णन है।

बरवै रामायण

६९ बरवै छन्दोंमें रचे हुए इस ग्रन्थको भी ७ कांडोंमें विभक्त करके पूरी रामकथा संक्षेपके साथ कह दी गई है। इसके बरवै इतने मधुर और मनोहर हैं कि उसका आनन्द पढ़नेसे ही मिल सकता है। बहुतसे लोगोंका कहना है कि गोस्वामीजीने स्फुट बरवै छन्दोंकी ही रचना की थी जो पीछे संगृहीत होकर ग्रन्थके रूपमें बँध गए। कहा जाता है कि अपने मित्र रहीमके आग्रहपर गोस्वामीजीने बरवै छन्दोंमें संक्षेपतः रामकथाकी रचना की थी। प्रसिद्ध है कि रहीमके एक मित्र सरदारकी कवयित्री पत्नीने एक बरवै छन्द लिखकर रहीमके पास भेजा। रहीम उस छन्दपर इतने मुग्ध हो गए कि उन्होंने बरवै छन्दमें पूरा नायिका-भेद ही लिख डाला। पीछे हरिभक्त रहीमने गोस्वामीजीसे अनुरोध किया कि आप भी इस छन्दमें रामकथा लिखें। गोस्वामीजीको भी यह छन्द अत्यन्त मधुर और प्रिय लगा और उन्होंने भी इस छंदमें रामकथा लिखी। जौनपुरके श्रीयुवराज-दत्त द्वारा प्रकाशित तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित संस्करणमें ४०५ छन्द हैं जिनमेंसे केवल आकर्षक और रसीले बरवै छाँटकर संगृहीत कर लिए गए जो इसमें दिए गए हैं। तुलसी-ग्रन्थावलीके इस खंडमें वह विस्तृत बरवै-रामायण भी दे दिया गया है जिसे पहले जौनपुरके राजा यादवेंद्र तत्त दूबेजीने छपवाया था और फिर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयागने।

रामलला-नहछू

नहछूके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है कि यह किस अवसरकी रचना है। कर्णवेध और उपनयनके समय तथा विवाहके लिये बारातके प्रस्थान करनेके पूर्व बालक या वरको नाइन पीढ़ेपर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बैठाकर उसके पाँवोंमें महावर लगाती है और अपनी नहरनीसे उसके नखका इस प्रकार स्पर्श करती है मानो उसके नख काट रही हो। इसीको नहछू कहते हैं। नहछूकी प्रथा सम्पूर्ण पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहारमें प्रचलित है। विवाद इस बातपर है कि इस नहछूमें विवाहके अवसरका उल्लेख है या किसी अन्य संस्कारके अवसरका। मूल गोसाईंचरित्रमें लिखा है कि पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल और नहछूकी रचना एक साथ मिथिलामें हुई—

मिथिलामें रचना किए, नहछू, मंगल दोय।

किन्तु उसमें समयका उल्लेख नहीं है। गोस्वामीजीने पार्वती-मंगलकी रचनाका जो समय दिया है उसकी गणना करके महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदीने उसका समय (जय संवत्) १६४२ ठहराया है। इसलिये लोगोंका अनुमान है कि इन तीनों ग्रन्थोंकी रचना १६४१-४३ के बीच हुई है। किन्तु कन्नू स्वामी पिल्लईका कथन है कि संवत् १६४२ की फाल्गुन शुक्ल पंचमीको तो रविवार था, गुरुवार नहीं। काशीके प्रसिद्ध ज्योतिषी श्रीगणेशदत्त पाठकजीने गणना करके १५८२ की फाल्गुन शुक्ल पंचमीको ही गुरुवार होना बताया है। अतः इन तीनों ग्रन्थोंकी रचना ठेठ अवधीमें संवत् १५८२ में हुई। दोनों मंगल तो एक ही साँचेमें ढले जान पड़ते हैं किन्तु यह प्रश्न विचारणीय रह ही गया कि नहछूकी रचना किस अवसरको ध्यानमें रखकर हुई। सभासे प्रकाशित तुलसी-ग्रन्थावलीके संपादकोंने पण्डित रामगुलाम द्विवेदीका यह मत स्वीकार कर लिया है कि विवाहके समय राम मिथिलामें थे, वे बारातके साथ आए नहीं इसीलिये उस समय नहछूकी क्रिया हुई ही नहीं। अतः निश्चय ही यह नहछू उपनयन या कर्णवेधके समयका है। अन्य लोगोंका मत है कि चाहे बारातके समय राम भले ही अयोध्यासे न चले हों किन्तु सारा कृत्य मिथिलामें अवश्य हुआ होगा और नहछूमें उसी अवसरका वर्णन है। पर इसमें वर्णन है कि कौशल्या उन्हें गोदमें लिए बैठी हैं। अतः, यह जनकपुरका तो वर्णन हो नहीं सकता। किन्तु यह विवाद पूर्णतः निःसार है। वास्तविक बात यह है कि इन अवसरोंपर स्त्रियाँ जो गीत गाती रही हैं उनके बदले भगवन्नामसे संबद्ध गीतोंका चलन करनेके लिये गोस्वामीजीने विवाहके अवसरपर गाए जानेके लिये रामके नहछूका उल्लेख करके २० सोहर छन्दोंमें उसकी रचना कर दी। यों भी यह नहछू विवाहके ही प्रसङ्गका है क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा है—

दूलहके महतारि देखि मन हरखइ हो।

वास्तवमें इस रामलला नहछूमें 'रामलला'का अर्थ है कोई भी वर (दूल्हा), क्योंकि प्रत्येक वर विष्णु-रूप समझा जाता है और प्रत्येक माता कौशल्या-रूपा।

जानकी-मंगल

जानकी-मंगलमें १९२ सोहर तथा हरिगीतिका छन्द हैं जिनमें रामके विवाहका वर्णन है। कहते हैं कि गोस्वामीजीने वाल्मीकीय रामायणकी प्रतिलिपि करनेके पश्चात् इस ग्रन्थकी रचना की। इसीलिए उसका प्रभाव इसपर स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है। मानसके विवाह-वर्णनसे इसमें यही अन्तर है कि फुलवारी-लीला इसमें नहीं है। कथाका आरंभ धनुष-यज्ञसे ही होता है। इसमें लक्ष्मणके कोपके पश्चात् ही श्रीरामचन्द्रजी धनुष तोड़नेके लिये तत्पर नहीं होते वरन् तब होते हैं जब जनक उनके बलके प्रति सन्देह प्रकट करते हैं—

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं। तदपि उचित आचरन पाँच भल बोलहिं।

और आगे कहते हैं—

देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि।

तब विश्वामित्र द्वारा यह कहे जानेपर कि—

धनु सिन्धु नृपबल जल बढ़्यो रघुबरहिं कुंभज लेखहू,

रामने धनुष तोड़ डाला।

दूसरा अन्तर यह है कि इसमें बारातके लौटते समय मार्गमें परशुराम मिलते हैं, धनुष टूटते ही नहीं।

पार्वती-मंगल

जानकी-मंगलके समान ही उसी शैली और भाषामें १४८ सोहर और १६ हरिगीतिका छंदोंमें गोस्वामीजीने पार्वती-मंगलकी रचना की है। इस ग्रन्थकी रचनाका समय भी उन्होंने ग्रन्थके पाँचवें छन्दमें दे दिया है—

जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन। अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिन-छिन॥

गणनासे अनुसार यह समय संवत् १५८२ वि० में पड़ता है। अतएव उसी समय इसकी रचना हुई। मानसकी शिव-कथाका आधार जहाँ शिवपुराण है वहाँ पार्वती-मंगलपर महाकवि कालिदासके कुमार-सम्भवकी छाया स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

दोनों मंगलोंकी भाषामें बड़ा प्रवाह है। शब्द एकके पश्चात् एक फिसलतेसे चले आते हैं। ये ग्रन्थ ही इस बातके सबसे बड़े प्रमाण हैं कि कवि अवध-क्षेत्रके आचार-विचारसे भली भाँति परिचित है।

गोस्वामीजीके इन सभी बड़े और छोटे ग्रन्थोंका सम्पादन भागवत-दास छत्रीकी प्रतिके अनुसार ही किया गया है।

हनुमान-चालीसा

गोस्वामीजीके नामसे प्रसिद्ध ग्रन्थोंमें हनुमान-चालीसाकी बड़ी प्रतिष्ठा है किन्तु लगभग ३० वर्ष पहले सन् १९४०के लगभग 'कल्याण'में श्री विनायकजीका 'गोस्वामीजीके नाम-राशि' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें लिखा था कि गोंडा जिलेका तुलसीपुर गाँव बसानेवाले देवीपाटन-निवासी तुलसीदासने हनुमान्-चालीसा लिखा था। दो-तीन वर्ष पूर्व भोपालके तुलसी-दल पत्रमें भी एक लेख था कि १८ वीं शताब्दीमें भोजपुरके किसी तुलसीदासने हनुमान-चालीसा लिखा था। हनुमान्-चालीसाकी भाषा और शैलीसे भी स्पष्ट है कि यह गोस्वामीजी की रचना नहीं है किन्तु सुप्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथ मिश्रने तो इसे मानसकार गोस्वामीजीका ही लिखा मानकर इसकी टीका की है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी-सतसई

सतसई-सप्तककी भूमिकामें आचार्य श्यामसुन्दरदासने लिखा है—

'तुलसी-सतसई वास्तवमें गोसाई तुलसीजीके फुटकर दोहोंका संग्रह है। पंडित रामगुलाम द्विवेदीके साथ कुछ लोगोंको सतसईके गोसाईजी-रचित होनेमें संदेह है, क्योंकि इसमें कूट रचनाओंकी अधिकता है। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदीने उसे किसी गाजीपुर-निवासी तुलसी कायस्थकी रचना माना है क्योंकि उसमें गणितका बहुत गहरा ज्ञान प्रदर्शित किया गया है जो एक कायस्थके ही उपयुक्त हो सकता है। कुछ ऐसे शब्दोंका भी व्यवहार हुआ है जो गाजीपुरके अतिरिक्त और कहीं प्रयोगमें नहीं आते। यदि इस प्रकारकी तर्क-शैलीसे काम लिया जाय तो गोसाईंजीके 'गनी, गरीब' आदि शब्दोंके प्रयोग करनेसे कोई गोसाईंजीको ईरान ले दौड़ेगे और उनकी ज्योतिष-सम्बन्धी रचनाओंके कारण उन्हें एक अन्य तुलसी ज्योतिषीकी कल्पना करना पड़ेगी। फिर जो लोग सतसईको गोसाईंजीकी रचना नहीं मानते वे दोहावलीको उनकी मानते हैं। परन्तु दोहावलीके लगभग डेढ़ सौ दोहे सतसईमें मिलते हैं और दोहावली भी कूट रचनाओंसे खाली नहीं हैं। सतसईमें की गई जानकी-उपासनासे भी लोगोंको इसके तुलसीकृत होनेमें संदेह होता है। परन्तु बेनी-माधव (बिहारीदास)-के मूल गोसाईं-चरित्रसे स्पष्ट है कि जिस समय उन्होंने सतसईकी रचना की उस समय उनका झुकाव जानकीजीकी ओर अधिक हो रहा था। गोसाईंजीने स्वयं सतसईका रचना काल दिया है—

अहि-रसना २, थन-धेनु ४, रस ६, गनपति-द्विज १, गुरुवार।
माधव सित सिय-जनम-तिथि, सतसैया अवतार।

इसके अनुसार संवत् १६४२ वैशाख मासमें सीताकी जन्मतिथि (शुक्ल पक्षकी नवमी)-को यह ग्रन्थ लिखा गया। बेनीमाधवदास (बिहारीदास)-ने भी इस ग्रन्थके लिखे जानेका यही समय दिया है। सं० १६४०में गोसाईंजीने जनकपुरकी यात्रा की। बेनीमाधवदास (बिहारीदास)-ने तो उन्हें जानकीजीके हाथकी खीर-तक खिलाई है। तुलसी-सतसईके राजनीति और आत्मबोध-निरूपण सर्ग तो राजा जनकके स्मारकसे लगते हैं। फिर जानकीकी भक्ति राम-भक्तिकी विरोधिनी भी तो नहीं है। उन्होंने सतसईमें भिन्न-भिन्न विषयोंपर जो मत प्रकट किए हैं उनका अन्य ग्रन्थोंसे विरोध भी नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इस सतसईके कर्ताने अपना निवास-स्थान गंगाके किनारे लोलार्क-कुंडके पास बताया है। यह स्थान गोसाईं तुलसीदासके अलावा किसीका निवास-स्थान नहीं हो सकता—

रवि चंचल अरु ब्रह्मद्रव, बीच सुबास बिचारि। तुलसिदास आसन करे, अवनि सुता-उर धारि॥

इन सब बातोंसे हमें इस सतसईको गोसाईंजी-कृत माननेमें कोई अड़चन नहीं जान पड़ती।

तुलसी-सतसईमें सात सर्ग हैं। प्रथम सर्गमें भक्ति-विषयक दोहे हैं, द्वितीयमें उपासना-परक भक्तिके, तीसरेमें सांस्कृतिक वक्रोक्तिसे राम-भजन किया गया है, चौथे, पाँचवे और छठेमें क्रमशः आत्मबोध, कर्म-सिद्धान्त और ज्ञान-सिद्धान्त-सम्बन्धी दोहे और सातवें सर्गके दोहोंमें राजनीतिका निरूपण किया गया है। सूक्तिकी जो कसौटी ऊपर निर्धारित की गई है उसपर गोसाईंजीके सब दोहे खरे नहीं उतरते। कुछ कबीरकी साखीके ढंगके कोरे उपदेश मात्र हैं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जिनका महत्त्व यही है कि उनमें एक महान् तथ्यका कथन है। परन्तु कथनमें कितना भी महत्वपूर्ण तथ्य क्यों न हो जब तक वह प्रभावपूर्ण भी न हो तबतक उसका उतना मूल्य नहीं हो सकता।

इसी प्रकार तुलसी-सतसईका एक सर्ग कूट कविताओंसे भरा है जिनकी रचना केवल इसलिये की गई जान पड़ती है कि गोसाईंजी भी अपने समयकी सभी प्रचलित शैलियोंमें अपनी सिद्धहस्तता दिखाना चाहते थे। अन्यथा उनसे कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दिखाई देता। तुलसी-सतसईपर दो टीकाएँ हैं और दोनोंमें कूटोंके अर्थके सम्बन्धमें मतभेद दिखाई देता है।'

इतना होनेपर भी गोसाईंजीकी सतसईमें सुन्दर मार्मिक सूक्तियाँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं।

श्रीरामनाम-कला-कोष-मणि-मयूख

सन् १९४३ में सीतापुरके एक छात्रने 'श्रीसीताराम चतुर्वेदीको श्रीरामनाम-कला-कोशल मणि-मयूख नामकी हस्तलिखित पुस्तक लाकर दी, जिसकी लंबाई ११ अंगुल और चौड़ाई ४ अंगुल है। ग्रन्थके प्रारम्भमें नामवाला पृष्ठ नहीं था, किन्तु ग्रन्थके अन्तमें लिखा है—

इति श्रीरामनामकलाकोषमणिमयूखा श्रीमद्गोस्वामि गुसाई तुलसिदासजी कृत सम्पुरणम्।
श्रीराम रामराम श्री सिताराम, सीताराम। श्री सीतारामजी सदा सहाए॥

इससे स्पष्ट है कि ग्रन्थका नाम 'श्रीरामनामकलाकोषमणिमयूख' है। इसके प्रत्येक खंडको ग्रन्थकारने संपुट कहा है और प्रत्येक संपुटके नीचे संख्याके पश्चात् इस प्रकार लिखा है—'इति श्रि ५ श्री रामनामकलाकोषमणिमयूखा (प्रथम) संपुट सम्पूर्ण।

जिस प्रकार संत लोग पहले बीजक लिखा करते थे वैसे ही यह भी दोहोंमें रचा हुआ बीजक ग्रन्थ है और जैसे बीजकका ठीक-ठीक अर्थ लगाना कभी-कभी कठिन होता है वैसे ही कहीं-कहीं इसका भी अर्थ लगाना कठिन है।

प्रथम संपुटमें ४५ दोहे, द्वितीयमें ११, तृतीयमें ३४, चतुर्थमें ३२, और पंचममें ४१ हैं। इसकी भाषा अवधी है किन्तु जिसने इसकी प्रतिलिपि की है उसे ह्रस्व-दीर्घका कोई ज्ञान नहीं था। इसीलिए प्रायः सभी दोहोंके पाठ विकृत हैं।

यह ग्रन्थ कितना प्रामाणिक है और यह गोस्वामीजी-द्वारा रचा हुआ है या नहीं, यह तबतक ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता जबतक इसकी अन्य प्रतियाँ न मिल जायँ। किन्तु यह तो निश्चय है कि इसकी रचना किसी असाधारण व्यक्तिने की है जो भारतीय तत्त्वज्ञानके सभी रूपोंसे और भारतीय सृष्टि-रचनाके सिद्धान्तोंसे पूर्णतः परिचित था। अतः, इस दृष्टिसे इसकी रचनाका श्रेय श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीको दिया जा सकता है। इतना होनेपर भी दो ऐसे कारण हैं जिनसे यह गोस्वामीजीकी कृति नहीं प्रतीत होती। एक तो यह है कि 'सरल कवित'के पक्षपाती गोस्वामीजीने ऐसी कठिन रचना कर कैसे दी और दूसरी यह कि ग्रन्थकानाम इतना बड़ा उन्होंने कैसे रख दिया। इस ग्रन्थकी प्रतिलिपि जिस

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कागजपर की गई है, वह 'निल मागनम निसी बोनम' (जो हितकर नहीं वह महान् नहीं) लातिन सूक्तिके पानी छापका 'मालक्रम ऐंड हेनरी' नामकी कंपनीका कागज है। अतः, यह सन् १७२२ के पीछे प्रतिलिपि की गई है। इसका पीछेका पुट्ठा दीमक खा गए हैं, फिर भी पुट्ठेके निर्माणसे ज्ञात होता है कि लंबे और सँकरे आकारमें सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीकी जिस प्रकारकी गीताकी पोथियाँ लिखी मिलती हैं, वैसी ही लिखी गई है। इसमें एक-एक पृष्ठपर केवल दाईं ओर एक एक दोहा है और पृष्ठ–संख्याके बदले दोहोंके दोनों ओर दोहेकी संख्या दी गई है। इसकी पूरी प्रतिलिपि भारतीय विद्या-भवन, बंबईके प्राध्यापक प्रो० चन्द्रशेखर पांडेयने कृपा करके भेज दी जो श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुनशी और आचार्य सीताराम चतुर्वेदीके सम्पादकत्वमें वर्ष ५, अंक १,२,३, (सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर सन् १९४६)-में 'भारतीय विद्या' पत्रिकामें छपी थी।

नर-काव्य

गोस्वामीजीने जितना कुछ लिखा सब देव-काव्य ही लिखा किन्तु अपने अभिन्न मित्र भदैनी-निवासी चौधरी तोडर या टोडरकी मृत्युपर वे काव्याश्रु बहाए बिना न रह सके और उन्होंने लिखा—

राय टोडरके प्रति

चार गाँवको ठाकुरो, मनको महा महीप। तुलसी या कलिकालमें, अथयो टोडर दीप॥
तुलसी राम-सनेह-को सिरपर भारी भार। टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुनगन बाग। ये दोउ नैनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥
राम धाम टोडर गए, तुलसी भए असोच। जिय-को मीत पुनीत बिन, यही जानि संकोच॥

गोस्वामीजीके काव्योंकी भाषा

गोस्वामीजीने संस्कृतके धुरंधर विद्वान् होते हुए भी राम-काव्योंकी रचना तत्कालीन लोक-भाषाओंमें की—

पूर्वी अवधी : बरवै रामायण, रामलला नहछू।
पश्चिमी अवधी : जानकीमंगल, पार्वतीमंगल।
मध्य या बैसवाड़ी अवधी (कोमल-कान्त-पदावलीमें) : रामचरितमानस।
पश्चिम ब्रजभाषा : गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, वैराग्य-संदीपिनी।
पूर्वी ब्रजभाषा : श्रीकृष्ण-गीतावली, कवितावली।

मानसका पाठ

मथुराके मानस - शोध-संस्थानके सदस्य श्रीजगदीशप्रसाद चतुर्वेदी तथा ज्योतिषाचार्य श्रीचन्द्रशेखर चतुर्वेदीका मत है कि गोस्वाजोजीने आठ पंक्ति (अर्द्धाली) अर्थात् चार चौपाइयोंपर नियमित रूपसे एक दोहा (या सोरठा) लिखा है और दो सौ अर्द्धालियोंपर एक हरिगीतिका छन्द लिखा है। इस प्रकार उन्होंने ४५ भागोंमें पूरा ग्रन्थ रचा है। उन्होंने अपने छपे हुए पत्रकके ऊपर यह छन्द भी लिखा है—

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चौपाईकी आठ पंक्ति पै, दोहा एक बनायौ। दो सौ पै हरिगीति छन्दमैं, अपनो नाम दिखायौ॥
दैनिक पाठ हेतु तुलसीने, यौं इक भाव रचायौ। ऐसे पैंतालिस भागनमैं, पूरो मानस गायौ॥

उनका विचार है कि पूरे रामायणका इसी प्रकार संशोधन और संपादन कर दिया जाय।

तुलसी-ग्रन्थावलीके प्रथम खंडमें बताया जा चुका है, कि रायबरेली जनपदके बिरारी ग्राम-निवासी बाबू रणबहादुर सिंहके पास रामायणकी जो प्रति विद्यमान है उसमें प्रति आठ-आठ अर्द्धालियोंपर एक-एक दोहा लगाकर सातों काण्ड एक-रूप कर दिए गए हैं किन्तु उसे किसीने आज-तक प्रामाणिक नहीं माना। इसलिये परिषद्की ओरसे मानस-शोध-भवनके उपर्युक्त सज्जनोंसे यह निवेदन किया गया है कि आप लोग इस प्रकारका एक संस्करण संपादित करके प्रकाशित कीजिए तभी विद्वानोंको विचार करनेमें सुगमता होगी और वे आपके मतका महत्त्व समझ पावेंगे।

सूकरखेत

सूकरखेतके संबंधमें दो लेख हमें प्राप्त हुए हैं, एक श्रीउदयशंकर दुबेका और दूसरा श्री विष्णुदत्त दीक्षितका। श्रीउदयशंकर दुबेने अपने लेखमें कुछ मानसकी प्रतियोंके आधारपर लिखा है कि गोस्वामीजीने कुरुक्षेत्रमें मानसकी कथा सुनी। दीक्षितजीने सरयू-घाघराके संगमपर परासके पासके वाराह-क्षेत्रको ही सूकरखेत माना है जहाँ गोस्वामीजीने अपने गुरुसे कथा सुनी। अयोध्याके प्रसिद्ध मानस-तत्त्वान्वेषी पंडित रामकुमारदासजीने भी यही माना है कि अयोध्यासे १४ मील पश्चिम कमियार और परासके पास सरयू-घाघरा-संगमवाला वाराह क्षेत्र ही मानस-कथित सूकरखेत हो सकता है जहाँ आज भी प्रतिवर्ष पौष मास-भर कल्पवासका मेला लगता है जैसा कि प्रति माघभर प्रयागमें। जनकपुरसे ४५ मीलपर भी एक वाराह क्षेत्र है पर वह अप्रसिद्ध है। एटा ज़िलेके सोरोंका नाम तो अभी-अभी थोड़े दिनोंसे लिया जाने लगा है और वह आन्दोलन समाप्त भी हो गया क्योंकि आजतक उन आन्दोलनकारी सज्जनोंने यह कृपा नहीं की कि वहाँ प्राप्त रामचरितमानसकी फोटो छपवाते या उसके अनुसार मूल पाठ ही छाप देते।

'कृपासिन्धु नररूप हरि' या 'हर' मैंसे पंडित रामकुमार दासजीने 'कृपा सिन्धु नर रूप हर' पाठ ही ठीक माना है जिसके प्रमाणमें उन्होंने 'गुरु पितु मातु महेस भवानी' तथा अयोध्याके 'मेरे गुरु मातु पितु संकर भवानियै' देते हुए कहा है—'मेरी समझसे तो इस सोरठेमें किन्हीं नरहरि गुरुका संकेत मानना क्लिष्ट कल्पना ही है। अयोध्याके श्रावण कुंजकी (संवत् १६९१ विक्रमीकी) प्रतिमें आरंभके चार पन्ने और ९६ संख्यावाला पन्ना बहुत पीछेका है।' डा० गोवर्धननाथ शुक्लने भी 'नररूप हर' पाठ ही शुद्ध बताया है किन्तु जाबालि-संहिताके 'नररूपः स्वयं हरिः' से 'हरि' पाठ ही ठीक प्रतीत होता है।

तापस-प्रसंग

पंडित रामकुमारदासजीने तापस-प्रसंगको क्षेपक माना हैं और इसपर उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तिका भी लिखी है। तुलसी-ग्रन्थावलीके संपादक-मंडलने बहुत गम्भीर छानबीन करके और प्रमाण देकर सनत्कुमारको ही तापस माना है। डा० गोवर्द्धननाथ शुक्लने एक पत्रमें इस विषयपर विचार करते हुए लिखा है कि 'सनकादि ब्रह्माके मानस पुत्र थे और वे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चारों सदैव इकट्ठे रहते हैं कभी अकेले नहीं रहते।' किन्तु पुराणोंमें अनेक स्थानोंपर केवल सनत्कुमारके ही अकेले जानेका वर्णन मिलता है अन्य किसीके नहीं, जिसके उदाहरण तुलसी-ग्रंथावलीके प्रथम खंडके तापस-प्रसंगमें पृष्ठ ४५६ पर दे भी दिए गए हैं। देवी भागवतमें भी उनका ऐसा ही वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्म खंडके ८७ वें अध्यायमें भी विवरण आया है कि केवल सनत्कुमार ही श्रीकृष्णके पास आए—

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तेजोराशि ददर्श सः। दद्दशुस्ते च मुनयोऽप्याकाशे च समुज्ज्वलम् ॥ १५ ॥
तेजसोऽभ्यन्तरे वत्स कुमारं कनकप्रभम्। यथैव पंचवर्षीयं नग्न - बालक - मीप्सितम् ॥ १६ ॥
आविर्बभूव सहसा साभमध्ये च नारद। उत्तिष्ठमानं सहसा तं दृष्ट्वा मुनिपुंगवाः ॥ १७ ॥
प्रणेमुर्मुनयः सर्वे शौरिश्च प्रणनाम तम्। सस्मितं सिक्तनेत्रञ्च कृत्वा युक्तिञ्च सादरम् ॥ १८ ॥
स सर्वानाशिषं कृत्वा समुवास च संसदि। उवाच तांश्च शौरिञ्च भगवन्तं सनातनम् ॥ १९ ॥
सनत्कुमार उवाच—'

[एक बार श्रीकृष्णकी सभामें मैत्रेय, च्यवन आदि बहुतसे बड़े-बड़े ऋषि आए बैठे थे कि इतनेमें वे ऋषि और श्रीकृष्ण देखते क्या हैं कि आकाशमें बड़ा चमचमाता तेजपुंज चमक उठा है। उस तेजपुंजके भीतर सोनेके-से वर्णका एक पाँच वर्षका-सा नंगा कुमार उतरकर सभामें आ खड़ा हुआ! उसे श्रीकृष्णने तथा मुनियोंने उठकर प्रणाम किया और उसने भी मुसकराकर स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे बड़े आदरके साथ शीलपूर्ण शब्दोंमें सबको आशीर्वाद देकर सभामें आसन ग्रहण कर लिया और फिर सनातन भगवान् श्रीकृष्णसे तथा ऋषियोंसे कहा। सनत्कुमार बोले—'] सनत्कुमारका ऐसा विवरण अकेलेका ही पुराणोंमें मिलता है। अतः ये सनकादिक एकत्र भी रहते थे और इनमें सनत्कुमार ही ऐसे थे जो अलग अकेले भी भ्रमण करते रहते थे। यही कारण था कि वनमें केवल सनत्कुमार ही रामसे मिलने चले गए थे।

श्री उदयशंकर दुबेने पटनेकी बिहार राष्ट्रभाषा परिषत् पत्रिका, अप्रैल १९७० के अंकमें 'मानसमें तापस-प्रसंग' शीर्षक बहुत बड़ा लेख लिखा है जिसके अनुसार मानसका तापस-प्रसंग इतना ही नहीं, वरन् बहुत विस्तृत है। किन्तु उस विवरणसे स्पष्ट है कि वह पूरा अंश किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रक्षिप्त है। अतः वह प्रामाणिक नहीं माना जा सकता क्योंकि वह एक ही प्रतिमें मिला है, अन्य कहीं किसी प्रतिमें उतने विस्तारके साथ तापस-प्रसंग नहीं मिलता।

मानसमें गिरिजा-पूजन

रामचरितमानसमें सीता-द्वारा गिरिजा-पूजन गोस्वामीजीका ही लिखा है (किसी दूसरेका मिलाया क्षेपक नहीं)-पर मानससे पहले (जानकी-मंगलके रचना-कालतक) गोस्वामीजीने सीता-द्वारा गिरिजा-पूजन करानेकी कल्पना नहीं की थी। इसीसे जानकी-मंगलमें सीताकृत गिरिजा-पूजन नहीं है। मानसमें और तदुत्तर कालीन रचना गीतावलीमें गिरिजा-पूजन है।

गोस्वामीजीका जन्म-संवत्

पार्वती-मंगलके प्रारम्भमें गोस्वामीजीने उसकी रचनाका समय 'जय संवत्, फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन। अस्विन बिरचे मंगल' (पार्वती-मंगल-५) दिया है। कनू स्वामी पिल्लईने संवत् १५८२ में

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हो जय संवत्की फागुन सुदी पंचमीको गुरुवार मानकर कहा है कि संवत् १६४२ के जय संवत्में तो फागुन सुदी पंचमीको रविवार था। जहाँतक अश्विनी नक्षत्रकी बात है वह तो प्रति वर्ष फाल्गुन शुक्ला अष्टमीके आस-पास पड़ता ही है। इससे यह सिद्ध है कि गोस्वामीजीका जन्म १५५४ में ही हुआ है। तुलसी–सतसईमें भी जो संवत् दिया गया है वह भी इसी तथ्यकी पुष्टि करता है।

सतसईका रचनाकाल गोस्वामीजीने यह दिया है—

अहि-रसना (२) थन-धेनु (४) रस (६), गनपति-द्विज (१) गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसइया अवतार॥

काशीके श्री गणेशदत्त पाठक ज्योतिषीजीने भी गणना करके बताया है कि सं० १५८२ के जय संवत्में ही फाल्गुन शुक्ला पंचमीको गुरुवार था।

इसके अनुसार संवत् १६४२ के वैशाख मासमें सीताकी जन्मतिथि (वैशाख शुक्ला नवमी), गुरुवारको यह ग्रन्थ लिखा गया। दोहावलीकी अपेक्षा सतसई अधिक प्रामाणिक है क्योंकि इसमें रचनाकाल भी दिया हुआ है। यद्यपि यह ग्रन्थ भी संग्रह-ग्रन्थ ही है तथापि इसमें अनेक दोहे ऐसे भी हैं जो अन्य किसी ग्रन्थमें प्राप्त नहीं होते।

गोस्वामी तुलसीदासकी रची हुई 'ज्ञान-दीपिका' नामक भी एक पुस्तक कही जाती है। इसके प्रारम्भमें इसका रचनाकाल इस प्रकार दिया हुआ है—

संवत सोलह सौ गये, इकतीस अधिक विचार।
सुकुल पक्ष आषाढ़की, दुइज पुष्य गुरुवार।
ता दिन उपजी दीपिका, पाँच ज्योति परवान।
धर्म, ज्ञान, अरु, ब्रह्म पुन, प्रभु स्वरूप विज्ञान।

इसके अनुसार संवत् १६३१ के आषाढ शुक्ल पक्षकी द्वितीया गुरुवारको पुष्प नक्षत्रमें ज्ञान-दीपिकाका जन्म हुआ। इस प्रकार गोस्वामीजीने अपने चार ग्रंथोंमेंसे रामचरितमानस, पार्वती-मंगल, तुलसी सतसई और ज्ञान-दीपिकामें उनका रचना-काल दिया है जिनमेंसे सबसे प्रारम्भिक रचना पार्वती मंगलको है १५८२की। अतः, १५८३,१५८९ या १६००में गोस्वामीजीका जन्म मानना अत्यन्त अप्रामाणिक है। अयोध्याके मानस-तत्त्वान्वेषी पंडित रामकुमारदासजीका भी यही मत है।

कुछ त्रुटियाँ

जामनगरके श्री टी०जी० परमारने भी कृपा करके तुलसी ग्रंथावलीके प्रथम खण्ड (श्रीराम-चरितमानस)-में आई हुई कुछ भूलोंकी ओर संपादक-मंडलका ध्यान आकृष्ट किया था जिनका मार्जन संस्कार-पत्रमें कर दिया गया है। हम उनके कृतज्ञ हैं।

नील जलज दोउ नयन बिसाला। बिकट भृकुटि, लटकन बर माला।

यह अर्द्धाली कुछ प्रतियोंमें नहीं है किन्तु यह होनी चाहिए। गीतावलीमें इसी प्रसङ्गमें २२ वें पदमें रामके रूपका वर्णन करते हुए दिया गया है—

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोयन नील सरोजसे भ्रमर मसि बिन्दु विराज।
गभुआरी अलकावली लसै लटकन ललित ललाट।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी एक प्रतिके लिपिकारने यह पंक्ति छोड़ दी और उससे की हुई वह भूल अन्य प्रतियोंमें भी होती चली आई। किन्तु बहुत-सी पुरानी प्रतियोंमें यह अर्द्धाली मिलती है। गोस्वामीजी राजीवनयन रामके नेत्रोंका वर्णन भला कैसे छोड़ सकते थे ?

इसी प्रकार अरण्यकांडकी पंक्ति ४६१ भी (चहुँ दिसि रेख खँचाई अहीसा) कुछ प्रतियोंमें प्राप्त है और कुछमें नहीं। किन्तु यह रेख खींचनेकी बात बहुत महत्त्व की है क्योंकि आगे चलकर रावण-द्वारा हर लिए जानेपर गीतावलीमें इसका स्पष्ट उल्लेख किया हुआ है—

आरत बचन कहत बैदेही।

कहि कटु बचन रेख लाँघी मैं तात ! छमा सो कीजै— —गीतावली

इसलिये यह पंक्ति भी पाठमें ले ली गई है। उसका स्रोत वहीं नीचे आनन्द रामायणसे दिया गया है–

ततः स धनुषः कोट्या रेखां कृत्वा समन्ततः। (आनन्दरामायण)

महाकाव्य और रामचरितमानस

बहुतसे विद्वानोंने रामचरितमानसके महाकाव्यत्वपर अनेक शंकाएँ खड़ी की हैं। उनका कथन है—

'वाल्मीकिके समयसे महाकाव्यकी जो परिपाटी चली और जिसे लघुत्रयीके प्रसिद्ध प्रणेता कविता-कामिनी-कांत महाकवि कालिदासने तथा बृहत्त्रयीके कवि माघ, भारवि और श्रीहर्षने पुष्ट और प्रौढ किया तथा जिसकी उदात्त परम्परा संस्कृतमें ही नहीं भारतकी अन्य भाषाओंके महाकाव्योंमें भी अक्षुण्ण बनी रही उसके अनुसार रामचरितमानसकी रचना नहीं की गई और न महाकाव्यके पूर्ण सौष्ठवकी ही उसमें प्रतिष्ठा की गई। उनके कथनानुसार गोस्वामीजीने रामचरित-मानसके प्रारम्भमें बड़ी लम्बी-चौड़ी वन्दना और बहुत बड़ी भूमिका दे दी है जिसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। प्रारम्भमें गणेश, सरस्वती, शंकर, गुरु, वाल्मीकि, हनुमान, राम और सीताकी वंदनाके पश्चात् उन्हें सीधे (तुलसी-ग्रंथावली खंड १ पंक्ति संख्या २१२८)—

अवधपुरी रघुकुल-मनि-राऊ। बेद-बिदित तेहि दसरथ नाँऊ।

—से ही मानसका प्रारम्भ कर देना चाहिए था। प्रारम्भमें सन्तों और खलोंकी वन्दना, मानसका रूपक, रामायणके उत्पन्न होनेका इतिहास, नारद-मोह, प्रताप-भानु, मनु-शतरूपा और शंकर-पार्वतीके विवाहकी कथा आदि बालकांडमें पूर्णतः अनावश्यक हैं और उत्तरकांड भी रामके राज्याभिषेकके वर्णन १६५ पृ० ६२५ (पंक्ति) पर समाप्त कर देना चाहिए था—

वह सोभा समाज-सुख, कहत न बनै खगेस। बरने सारद-सेष-स्रुति, सो रस जान महेस॥

इसके पश्चात्का सारा अंश प्रबन्ध काव्य और महाकाव्यकी दृष्टिसे पूर्णतः असंगत है।

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजीने मानसमें स्थान-स्थानपर वेदकी दुहाई दी है तथा अवसर-अनवसर देवताओंको फूल बरसाते, नगाड़े बजाते, स्तुति करते या विमानोंपर चढ़कर तमाशा देखने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

और अप्सराओंको नाचते दिखाया है। महाकाव्यमें इस प्रकारकी असङ्गत, असम्बद्ध, अस्वाभाविक और निरर्थक बातोंका समावेश नहीं होना चाहिए जो महाकाव्यकी प्रतिष्ठित मर्यादासे मेल नहीं खाता।

इसी प्रकार 'सुन्दर' शब्द और उसके पर्याय, 'मनोहर, रुचिर' आदिका इतना धुआँधार प्रयोग किया गया है कि अनेक स्थानोंपर वह असङ्गत और और निरर्थक प्रतीत होता है। आँख, मुख, हाथ पैरकी कमलसे उपमाकी तो भरमार है। इसी प्रकार कामदेव और रति भी सुन्दरताकी उपमाके लिये जहाँ-तहाँ ला खड़े किए जाते हैं और वे भी एक-दो नहीं, करोड़ों और अरबों। इतना ही नहीं, यदि हाथी, मोर, तोता, बाग आदि भी सुन्दर हैं तो उनकी उपमा भी कामदेवके ही हाथी, मोर, तोते, बागसे दी गई है। सर्पका मणिसे, मछलीका पानीसे, चातकका मेघसे, मृगका नादसे प्रेम भी सैकड़ों बार प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार स्थान-स्थानपर उद्धारके लिये शबरी, गीध, निषाद, वानर, भालू, विभीषण, अजामिल,गणिका,व्याध आदिकी दुहाई दी गई है। यह प्रयोग केवल मानसमें ही नहीं, अन्य ग्रन्थोंमें भी प्रचुरताके साथ किया गया है। यह पुनरावृत्ति भी काव्यदोष ही है।'

उन लोगोंका कथन है कि 'अयोध्या-कांडके अतिरिक्त अन्य सब कांडोंकी रचना अत्यन्त शिथिल और प्रभावहीन है, यहाँतक कि दोहे-चौपाईका क्रम, दोहोंकी छन्द-रचना आदि भी अत्यन्त अव्यवस्थित है। अरण्यकांडसे लेकर उत्तरकांड-तक इतनी अधिक स्तुतियाँ और उपदेश भरे पड़े हैं कि वे सब महाकाव्यकी मर्यादा और पद्धतिके नितान्त प्रतिकूल हैं। स्थान-स्थानपर जहाँ गुणोंके वर्णनकी बात आती है वहाँ वेद, शारदा, गणेश, नारद, शेष और शिव भी उनका वर्णन करनेमें हारे, थके हुए और असमर्थ बताए गए हैं। स्थान-स्थानपर 'स्वप्नमें' की भी अनावश्यक आवृत्ति की गई है (जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी)।'

रामचरितमानसके महाकाव्यत्वके विरुद्ध जो ये आपत्तियाँ उठाई गई है उसीके प्रसङ्गमें कहा गया है कि 'इसकी रचना भागवतकी शैलीपर की गई है, इसलिये यह पुराण है, महाकाव्य नहीं, क्योंकि जितनी बातें ऊपर लिखी गई हैं वे सब पुराणोंके लिये उचित हैं, महाकाव्योंके लिये नहीं।'

इन आलोचकों और समीक्षकोंने यह विचार नहीं किया कि प्रत्येक सुकवि अपना अलग मार्ग बनाता है—

लीक लीक गाड़ी चलै, लीकहि चलै कपूत। लीक छाँड़ि तीनइ चलैं, सायर, सिंह, सपूत॥

वाल्मीकिने वैदिक छन्दोंको छोड़कर पूर्णतः नवीन शैलीमें आदिकाव्य रामायणकी रचना की। महाकवि कालिदासने अपने रघुवंशमें महाकाव्यकी परिपाटीके विरुद्ध एक नायकके बदले पूरे रघुवंशको नायक बनाया और मेघदूतमें ऐसे यक्ष और यक्षिणीको नायक-नायिका बनाया जिनके कहीं कोई नामतक नहीं है, 'कश्चित्' कहकर छोड़ दिया। गोस्वामीजीने रामचरितमानसकी रचना इसलिये की कि वे केवल मनोरंजन करनेवाले काव्यकी रचना नहीं करना चाहते थे, वे उसके माध्यमसे 'रामादिवद्वर्त्तितव्यं न रावणादिवत्'के सिद्धान्तके अनुसार समाजमें राम, भरत, सीता और हनुमान्‌की प्रतिष्ठा करना चाहते थे, निर्गुण, अलख निरंजनके चक्करमें पड़े हुए भारतीय हिन्दू समाजको भक्तिके मार्गमें प्रवृत्त करना चाहते थे, काकको पिक और बकको मराल बना देना चाहते थे। यह बात उन्होंने स्थान-स्थानपर कही भी है। अतः, रामचरित-मानसका अध्ययन और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विश्लेषण इसी दृष्टिसे करना चाहिए, किसी रूढ परिपाटीके आधारपर नहीं। और फिर उन्होंने तो स्वान्तःसुखाय लिखा है, अपने मनके प्रबोध और आनन्दके लिये। उन्हें जिस रचना-शैलीमें आनन्द मिला उसीमें रचना की।

गोस्वामीजीकी काव्य-प्रतिभाका चमत्कार केवल मानसमें ही नहीं, गीतावली, कवितावली श्रीकृष्ण-गीतावली, तुलसी-सतसई, दोहावली तथा विनयपत्रिकामें अत्यन्त प्रौढ रूपसे प्राप्त है। वे इतने कुशल और सिद्ध कवि थे कि उन्होंने अपने समयकी सभी रचना-पद्धतियोंमें महाकाव्य, गीत, दोहे, बरवै, कवित्त और ग्राम्य गीत लिख डाले। यदि कुंडलिया रामायण और छप्पय रामायण आदिको भी उनकी रचना मान लिया जाय तो विभिन्न प्रकारकी प्रचलित सभी पद्धतियोंमें उन्होंने रामका ही इसलिये गुणगान किया कि जिसकी जिस शैलीमें रुचि हो उसे उसी माध्यमसे रामकथा मिल जाय और उसके अनुसार वह आचरण भी करने लगे।

वे किसी दार्शनिक वादके पक्षपाती नहीं थे। वे न तो वेदान्तवादी थे न विशिष्टाद्वैतवादी थे। वे ज्ञान और भक्ति दोनोंको समान रूपसे हितकारी समझते थे किन्तु भक्तिको सरल मार्ग मानते थे। वे रामको ही परब्रह्म समझते थे इसलिये सारे विश्वको सियाराममय मानते थे। उन्हें किसी भी मत या संप्रदायसे किसी प्रकारका वैर या विरोध नहीं था। वे सबका समान आदर करते थे। रामके अनन्य भक्त होते हुए भी उन्होंने शिवके प्रति विशेष निष्ठा दिखाकर और उन्हें गुरु मानकर काव्यके क्षेत्रमें ही नहीं, भारतके दार्शनिक क्षेत्रमें भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। सबके प्रति आदर-भावना व्यक्त करके उन्होंने सहनशीलता और दूसरोंकी भावनाके सम्मानका ऐसा आदर्श उपस्थित किया है कि आज उनका मानस प्रत्येक समाज, पंथ, संप्रदाय और जातिके लिये मान्य और पूजनीय बन गया है।

दीप-शिखा कवि तुलसीदास

संस्कृतके कवियों में तीन ऐसे प्रसिद्ध महाकवि हुए हैं जिन्हें उन्हींकी रचनाओं में आए हुए विशेष शब्दोंके आधारपर विशेष नाम दे दिए गए हैं। इन मूर्धन्य कवियोंमें महाकवि कालिदासको 'दीपशिखा' कवि, भारविको 'आतपत्र भारवि' और माघ को 'घंटा माघ' कहा गया है। महाकवि कालिदासने रघुवंशमें इन्दुमतीके स्वयंवरका वर्णन करते हुए लिखा है कि इन्दुमतीकी सखी सुनन्दा, स्वयंवरमें आए हुए प्रत्येक राजाका अत्यन्त विस्तृत परिचय इन्दुमतीको देती चलती थी और इंदुमती उस राजाको अस्वीकार करके और उसे प्रणाम करके आगे बढ़ जाती थी। उस समय उस राजाका मुख कैसा हो जाता था इसका विवरण देते हुए महाकवि कालिदासने लिखा है—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

[जैसे रात्रिके समय हाथमें चलदीप (मशाल) लेकर कोई चले तो जिस भवनके आगेसे मशाल बढ़कर आगे निकल जाती है वह भवन प्रकाश हट जानेके कारण धुंधला पड़ जाता है वैसा ही धुंधला उस राजाका मुंह भी पड़ जाता था जिसे प्रणाम करके इन्दुमती आगे बढ़ जाती थी।]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तात्पर्य यह है कि जैसे मशाल या दीप-शिखाके आगे बढ़ जानेपर भवन धुँधला पड़ जाता है वैसे ही महाकवि कालिदास जिस किसी कविके आगेसे निकल जाते हैं वह धुँधला पड़ जाता है। कालिदासके आगे किसीकी कविता अच्छी नहीं लगती। इसी प्रकार अर्थगौरववाले भारवि भी जब छतरीके समान आ जाते हैं तब सब कवि उसके नीचे छिपकर लुप्त हो जाते हैं। और जब माघ कवि घंटा बनकर गूँजने लगते हैं तब उनकी ध्वनिके आगे किसी अन्य कविकी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। इसी आधारपर तीनों कवियोंके तीन विशिष्ट नाम दिए गए हैं।

महाकवि तुलसीदासको भी 'दीपशिखा' कवि कहा गया है, किन्तु इनकी 'दीप-शिखा' की बहुत बड़ी विशेषता है। महाकवि कालिदासकी दीपशिखा तो जिसके सामनेसे निकल जाय उसे धुँधला कर देती है किन्तु गोस्वामी तुलसीदासजीकी दीपशिखा तो ऐसी है कि सुन्दरकी भी सुन्दरतर बना डालती है—

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई॥

[छबि-गृह (छबिघर या शीशमहल)-में भीतर चारों ओर नीचेसे ऊपर-तक सहस्रों गोल-गोल दर्पण लगे होते हैं और वह स्वयं इस कारण स्वभावसे ही बहुत सुन्दर लगता है किन्तु जब रात्रिके समय उस भवनके बीच दीपक ला रक्खा जाता है तब उस भवनकी शोभा और चमक उन सहस्रों दर्पणोंमें प्रतिबिम्बित दीपकके प्रकाशसे सहस्रगुनी होकर उस भवनकी सुन्दरतामें चार चाँद लगा देती है।] उसी प्रकार यद्यपि रामकी कथा स्वयं अपनेमें सुन्दर है ही किन्तु 'दीपशिखा' कवि तुलसीका आश्रय पाकर वह और भी अधिक प्रकाशमान, सुन्दर, आकर्षक और सर्वहृदयग्राही बन गई है। इतना ही नहीं, गोस्वामी तुलसीदासजीके रामचरितमानसके संपर्कमें भी जो कवि आया वही प्रसिद्ध हो गया। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीको 'दीपशिखा' कहा गया है।

मानस-चतुःशतीके अवसरपर अखिल भारतीय विक्रम परिषद्ने यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपकर हमें गौरवान्वित किया है। हम परिषद्के आभारी हैं।

हम पुनः यह कह देना अपना धर्म समझते हैं कि संपादक-मंडल इसे पूर्णतः शुद्ध और त्रुटिरहित कहने या कहलानेका दंभ नहीं करता। हम उन सज्जनोंके अत्यन्त कृतज्ञ होंगे जो कृपा करके हमारी त्रुटियोंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करेंगे जिससे अगले संस्करणमें उसका परिष्कार किया जा सके।

उत्तर बेनिया बाग,
विजयादशमी, सं० २०२९,
काशी।

—सीताराम चतुर्वेदी
(सम्पादक-मंडलकी ओरसे)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गोस्वामीजीके आठ चित्र

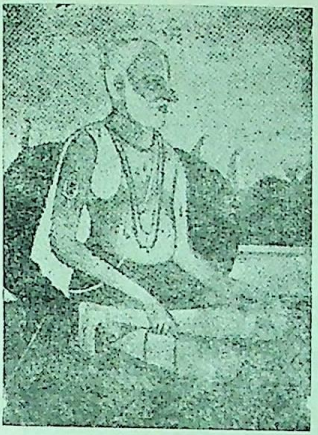

श्री राघववल्लभाशरणजीके स्थानका चित्र

तुलसी मंदिर, भदैनी (काशी) का चित्र

खड्गविलास प्रेस-द्वारा मुद्रित चित्र

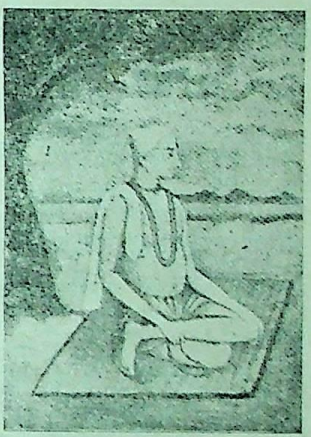

श्री राय कृष्णदासजीसे प्राप्त चित्र

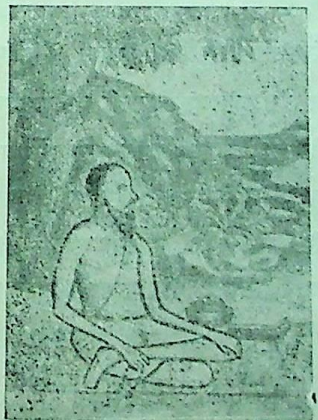

सर्वप्रथम लंदन में प्रकाशित चित्र

किशनगढ़ नरेशके संग्रहमें सुरक्षित चित्र

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

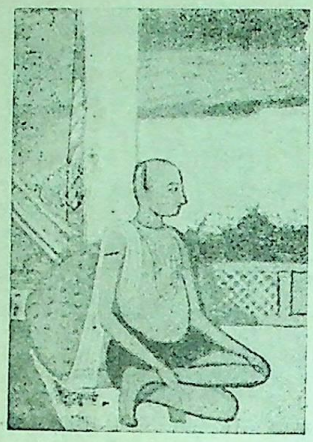

प्रह्लादघाट (वाराणसी)-वाला चित्र

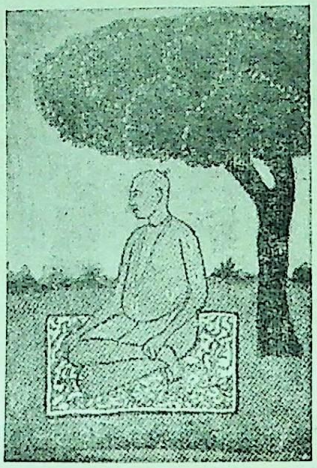

याज्ञिक संग्रहमें संरक्षित चित्र

गोस्वामी तुलसीदासजीके जो आठ चित्र ऊपर दिए गए हैं इनमेंसे कोई भी प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता क्योंकि कुछ चित्रोंमें उनके हाथमें खुली माला दिखाई गई है। माला-जपके नियमके अनुसार या तो दाहिना हाथ गोमुखीमें डालकर माला जपी जाय या वस्त्रसे माला ढक ली जाय। वैरागी लोग तो गलेमें एक झोली डाले रहते हैं और उसीमें माला जपते हैं। खुले हाथ खुली माला जपना निषिद्ध है।

द्विजातिके लिये नियम है कि वह केवल एक वस्त्र (धोती) पहनकर भोजन, देवपूजन और तर्पण न करे। दूसरा वस्त्र (अंगोछा), दुपट्टा या वस्त्र बाएँ कन्धेपर रक्खे। केवल श्राद्धमें अपसव्य होनेपर ही दाएँ कंधेपर जनेऊ और दुपट्टा रक्खा जाता है।

वास्तवमें ये सब चित्र कल्पित हैं। श्रीराघववल्लभाशरणजीके स्थान (संकटाघाट, वाराणसी)-वाला अथवा उनकी जवानीका किशनगढ़-नरेशके संग्रहवाला चित्र ही अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है जिसे कुछ सुधारकर और पहाड़-वृक्ष-नदी जोड़कर सर्वप्रथम लंदनमें प्रकाशित किया गया था। खड्ग-विलास प्रेस, याज्ञिक-संग्रह तथा प्रह्लादघाट-वाले चित्र तो अत्यन्त अप्रामाणिक और अभव्य हैं। तुलसी मन्दिर, भदैनी, काशीवाला चित्र श्रीराघववल्लभाशरणजीके स्थान-वाले चित्रसे कुछ मिलता-जुलता है। श्रीरायकृष्णदासजी-वाला चित्र अधिक सौम्य और भव्य है किन्तु यह भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रधान सम्पादक : सीताराम चतुर्वेदी

सम्पादक-मण्डल

पण्डित श्रीकृष्ण शुक्ल
पण्डित रामकुमार चौबे
डॉ० स्वामीनाथ शर्मा
पण्डित रमापति शुक्ल
डॉ० दशरथ ओझा
पंडित लालधर त्रिपाठी
पं० रामावतार पांडेय

पण्डित करुणापति त्रिपाठी
डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल
डॉ० किशोरदास स्वामी
श्री गुलाब खण्डेलवाल
डा० बैजनाथ मिश्र
श्री विश्वनाथ मुकर्जी
पं० गयाप्रसाद ज्योतिषी

डॉ० किशोरीलाल गुप्त
पंडित विष्णुकान्त शास्त्री
पंडित यज्ञनारायण चतुर्वेदी
डॉ० छबिनाथ पाण्डेय
पंडित धर्मशील चतुर्वेदी
श्री इन्द्रचन्द्र नारंग
श्री चन्द्रशेखर पांडेय

परामर्श-मण्डल

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र
श्री वियोगी हरिजी

श्री गोरेलाल गिरिवर
श्री श्रीकान्त शरणजी

पण्डित रामकुमारदासजी
श्री सन्त छोटेजी

सहायक-मण्डल

श्री सीताराम सेकसरिया
श्री लक्ष्मीनिवास बिरला
श्री रामकुमार भुवालका
श्री नन्दकिशोर झाझड़िया

श्री रामेश्वर टाँटिया
श्री नथमल भुवालका
श्री गिरिधारीलाल मेहता
श्री नथमल केडिया

श्री मनसुख राय मोर
श्री हनुमानप्रसाद धानुका
श्री गजाधर सोमानी
श्री शान्तिस्वरूप गुप्त

सेवानिधि ट्रस्ट, कलकत्ता हलवासिया ट्रस्ट, कलकत्ता

ग्रन्थ-समाहर्त्ता

श्री बजरंगबली गुप्त
राजा यादवेन्द्रदत्त दुबे
प्रो० चन्द्रशेखर पाण्डेय
श्री शान्तिस्वरूप गुप्त
राय अम्बिकानाथ सिह

श्री वियोगी हरिजी
पंडित सदायतन पाण्डेय
श्री श्रीकान्तशरणजी
श्री उदयशंकर दुबे

महन्त श्री रामदेवदासजी
डॉ० उमाकुमारी मौडवेल
श्री रामकुमार सिंह
(भागवतदास छत्रीके प्रयोग)
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

व्यवस्था-मण्डल

श्री विश्वनाथ मुखर्जी	डॉ० भानुशंकर मेहता	श्री कमला राय
पंडित चन्द्रदत्त त्रिपाठी	डॉ० किशोरदास स्वामी	डॉ० श्रीमती जयशीला पाण्डेय
सन्त छोटेजी	श्री भानुदत्त चतुर्वेदी	श्री नरेन्द्रकुमार शास्त्री
डॉ० छविनाथ पांडेय	डॉ० के० राजशेषागिरि राव	श्री त्रिवेणीप्रसाद दुबे
डॉ० शशिभूषण शुक्ल	श्री रामेश्वर महतो	प्रो० महेश्वरप्रसाद सिंह
डॉ० सन्तनारायण उपाध्याय	श्री रामगोपाल शर्मा	डॉ० कमलमोहन
श्री छाँगुर राय प्रबल	डॉ० नारायणदत्त शर्मा	पं० व्रजभूषण त्रिपाठी
श्री रामअवधेश त्रिपाठी	श्री वासुदेव शास्त्री	महन्त रामदेवदासजी
श्री श्यामदेव सिंह	डॉ० मुरलीधर	श्री रामकृष्ण शास्त्री
श्री बाबूलाल गर्ग	श्री जनार्दन पाण्डेय	डॉ० नरेशचन्द्र बंसल
श्री मोती बी०ए०	श्री कमलधारी सिंह 'कमलेश'	श्री सारनाथ मिश्र
श्री श्रीकृष्ण सिंह	श्री दुर्गाप्रसाद सिंह	श्री कुसुमाकर
श्री शिवकुमार श्रोझा	श्री मानसजी शास्त्री	श्री मनोहरलाल गौड़
श्री केशवचन्द्र मिश्र	श्री मुसद्दीलाल गुप्त	श्री आद्याप्रसाद उपाध्याय
श्री श्रीशचन्द्र पाण्डेय	श्री रामप्रीति पाण्डेय	श्री श्यामकिशोर तिवारी
श्री गुलाब खंडेलवाल	डॉ० सूर्यनारायण द्विवेदी	श्री सुरेशचन्द्र शर्मा
श्री श्रीपाल जैन दिवा	श्री नागेश्वरनाथ मिश्र	श्री मोतीलाल गुप्त

अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी

कार्य-समिति

पंडित कमलापति त्रिपाठी	पंडित सीताराम चतुर्वेदी	पंडित गयाप्रसाद ज्योतिषी
अध्यक्ष	मन्त्री तथा प्रधान सम्पादक	व्यवस्थापक

उपाध्यक्ष

श्री सीतारामजी सेकसरिया
पंडित रामकुमार चौबे

सदस्य

श्री १०८ नारायण स्वामी

पंडित श्रीकृष्ण शुक्ल	पंडित कान्तानाथ पाण्डेय	डॉ० किशोरीलाल गुप्त
पंडित करुणापति त्रिपाठी	पं० रमापति शुक्ल	डॉ० स्वामीनाथ शर्मा
डॉ० किशोरदास स्वामी	श्री गुलाब खण्डेलवाल	पं० यज्ञनारायण चतुर्वेदी
पंडित विष्णुकान्त शास्त्री	डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल	डॉ० छबिनाथ पांडेय

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी-ग्रन्थावली

[द्वितीय खंड]

ग्रन्थ-तालिका

ग्रन्थ		पृष्ठ
१. श्रीरामलला-नहछू	सटीक	१
२. वैराग्य-संदीपिनी	,,	५
३. बरवै-रामायण	,,	१४
४. पार्वती-मंगल	,,	२१
५. जानकी-मंगल	,,	३८
६. रामाज्ञा-प्रश्न	,,	६०
७. दोहावली	,,	१११
८. कवितावली	,,	१९०
९. हनुमान-बाहुक	,,	२९६
१०. गीतावली	,,	३१२
११. श्रीकृष्ण-गीतावली	,,	५५१
१२. विनय-पत्रिका	,,	५८५
फुटकर पद	मूल	८०९
श्रीरामशलाका-प्रश्नावली	,,	८१०
१३. श्रीहनुमान्-चालीसा	मूल	८१२
१४. श्रीसंकट-मोचन	,,	८१४
१५. श्रीहनुमान्-साठिका	,,	८१५
१६. श्रीबजरंग-बाण	,,	८१८

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ग्रंथ	मूल	पृष्ठ
१७. श्रीछप्पय रामायण	,,	८२१
१८. कलिधर्माधर्मनिरूपण	,,	८२३
१९. बरवै रामायण (विस्तृत)	,,	८३१
२०. रामायण-छन्दावली	,,	८४३
२१. कुंडलिया रामायण	,,	८४८
२२. तुलसी-सतसई	,,	८८५
२३. श्रीरामनामकला-कोष-मणि-मयूख	,,	९०५
२४. ज्ञान-दीपिका	,,	९११
२५. तुलसी-हजारा (कुछ दोहे)	,,	९२९

परिशिष्ट

अभिधान-कोष	पं० श्रीकृष्ण शुक्ल	९३०
समीक्षा तथा शोध-प्रबन्ध-सूची	डा० बैजनाथ मिश्र	९८६
रामचरित-साहित्य	,,	९८८
मानसके टीकाकार	,,	९९१
मानस-कोष	श्रीरामचन्द्र सिंह	९९१
रामायण-कालीन भारत		९९२

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

तुलसी-ग्रन्थावली

[द्वितीय खंड]

१

श्रीरामलला--नहछू

सोहर[1] छंद

आदि सारदा-गनपति-गौरि मनाइय हो। रामलला-कर नहछू[2] गाइ सुनाइय हो।
जेहि गाये सिधि होय,परम निधि पाइय हो। कोटि जनम-कर पातक दूरि सो जाइय हो॥ १॥
कोटिन बाजन बाजहिं दसरथ-के गृह हो। देवलोक सब देखहिं आनँद अति हिय हो।
नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो। कौसिल्याके हरष न हृदय समातै हो॥ २॥
आलहि[3] बाँसके माँड़व मनिगन-पूरन हो। मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो।
गंगा-जल-कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो। जुवतिन मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो॥ ३॥

सबसे पहले सरस्वती, गणेश और पार्वतीको मनाकर रामका वह नहछू गाकर सुनाए डालता हूँ जिसके गानेसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ[4] तथा परम निधियाँ[5] तो (अपने आप) प्राप्त हो ही जाती हैं, साथ ही करोड़ों जन्मोंके पाप भी दूर भाग खड़े होते हैं॥ १॥ आज महाराजा दशरथके घर अनेक प्रकारके बाजे ढमाढम बजे चले जा रहे हैं। देवलोकके देवतागण बड़े हर्षके साथ आ-आकर यह आनन्द-भरा-उत्सव देख रहे हैं। अयोध्या नगर तो सजा हुआ इतना अधिक सुहावना लग रहा है कि उसका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता। माता कौशल्याके हृदयमें इतना हर्ष उमड़ा पड़ रहा है कि उनके हृदयमें समाए नहीं समा पा रहा है॥ २॥ रत्नोंसे जड़े हुए हरे-हरे बाँसोंके मण्डप बनवाकर ला छवाए गए हैं जिनमें टँकी हुई मोतियोंकी झालरें चारों ओर लटकती हुई झूल और झूम रही हैं। बातकी बातमें गंगाजलका कलसा भरवा मँगाया गया और युवतियाँ मंगल गीत गा-गाकर रामको नहलाने लगीं॥ ३॥

---

१. पुत्र-जन्मके अवसरपर गाए जानेवाले गीतका छंद। २. विवाहके समय नख काटनेका उत्सव। ३. आले=हरे। ४. आठ सिद्धियाँ: अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। ५. नौ निधियोंके नामसे प्रसिद्ध कुबेरके नव रत्न—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व। महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥ रामका विवाह जनकपुर (मिथिला)में हुआ था जहाँ कौशल्या नहीं गई थीं। यहाँ रामललाका अर्थ है कोई भी वर (दूल्हा) क्योंकि प्रत्येक वर विष्णु-रूप समझा जाता है और प्रत्येक वरकी माता कौशल्या-स्वरूपा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गज-मुकुता-हीरा-मनि चौक पुराइय हो। देइ राम-कहँ सुअरघ लेइ बैठाइय हो।
कनक-खंभ चहुँ ओर मध्य सिंहासन हो। मानिक-दीप बराय बैठि तेहि आसन हो॥ ४॥
बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन[1] हो। बिहँसत आव लोहारिनि हाथ बरायन हो।
अहिरिनि हाथ दहेड़ि सगुन लेइ आवइ हो। उनरत[2] जोबन देखि, नृपति मन भावइ हो॥ ५॥
रूप-सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो। जाकी ओर बिलोकहि, मन तेहि साथहि हो।
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो। केसरि परम लगाइ सुगंधनि बोरा हो॥ ६॥
मोचिनि बदन-सँकोचिनि हीरा माँगन हो। पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो।
बतिया-सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो। कनक-रतन-मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥ ७॥
कटि-कै छीन बरिनिया छाता-पानिहि हो। चंद्र-बदनि मृग-लोचनि सब रस-खानिहि हो।
नैन बिसाल नउनिया भौं चमकावइ हो। देइ गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥ ८॥
कौसिल्याकी जेठि[3] दीन्ह अनुसासन हो। नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो।
गोद लिहे कौसिला बैठि रामहि बर हो। सोभित दूलह राम सीस-पर आँचर हो॥ ९॥

गज-मोती और हीरे आदि रत्नोंसे चौक पूर डाले गए। रामको अर्घ्य[4] देकर (उस चौकमें) ला बैठाया गया। वहाँ चारों ओर सोने ही सोनेके खंभे लगे हुए थे जिनके बीचों-बीच (बढ़िया) सिंहासन ला रक्खा गया था। झट माणिक्यका दीपक ला बाला गया और रामलला सिंहासनपर आ विराजमान हुए। ॥ ४ ॥ (जिन्होंने भी सुना कि) राजा दशरथके घरमें मातृका-पूजन हो रहा है वे सब नवेलियाँ बहुत बन-ठनकर लपकी चली आ रही हैं। लोहारिनको देखो तो वह भी हाथमें लोहेका छल्ला लिए हँसती चली आ रही है। सगुन मनाती हुई वह अहीरिन भी हाथमें दहेड़ी (दही-भरी हाँड़ी) लिए चली आ रही है जिसकी उभरती हुई जवानी देख-देखकर राजाकी भी बाछें खिली पड़ रही हैं ॥ ५ ॥ सलोनी तमोलिन हाथमें पानका बीड़ा लिए बढ़ी चली आ रही है। वह जिसकी ओर देख भर लेती है उसीका मन खींच धरती है। गोरी दर्जिन अपने (गोरे-गोरे) हाथोंमें ऐसा केसरिया जोड़ा-जामा लिए चली आ रही है जो केसरमें रँगकर न जाने किस-किस सुगन्धमें डुबो लाई है (सुगन्धसे भरा हुआ है) ॥ ६ ॥ राजा दशरथके उस सजीले आँगनमें सकुचाई खड़ी लजीली मोचिन हाथमें जूता-जोड़ी लिए नेगमें हीरा लेनेके लिये मचली खड़ी है। लच्छेदार बात करनेमें अलबेली गोरी मालिन रत्नोंसे जड़ा हुआ सोनेका मौर (मुकुट) लिए खड़ी-खड़ी मुसकराए जा रही है। ॥ ७ ॥ चन्द्रमाके समान चमचमाते मुखड़ेवाली, मृगनयनी, बड़ी रसीली, पतली कमरवाली बारिन (दोना-पत्तल बनानेवाली) हाथमें छाता ताने खड़ी है। बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नाउन (नाईकी पत्नी) आँखें चमका-चमकाकर बड़ी मस्तीके साथ रानियोंको धुआँधार गालियाँ गाए चली जा रही है। ॥ ८ ॥

कौशल्याजीसे जेठी किसी बड़ी बूढ़ीने कहा—'जाओ, सिंहासनपर बैठकर नहछू करवा लो।' सुनते ही वर रामको गोदमें लेकर कौशल्या उनका नहछू कराने जा बैठीं। दुलहे रामके सिरपर माता

---

१. मातृका-पूजन। २. उभरता हुआ। ३. अवस्थामें बड़ी। ४. अर्घ = अर्घ्य (जल, गंध, पुष्प, अक्षत)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाउनि अति गुन-खानि तौं वेगि बोलाई हो। करि सिँगार अति लोन तौं बिहँसति आई हो।
कनक-चुनिन-सों लसित नहरनी लिय कर हो। आनँद हिय न समाइ देखि रामहि बर हो॥१०॥
कान-क कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। गज-मुकुता-कर हार कंठ, मन मोहइ हो।
कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो। रानि-कै दीन्हीं सारी अधिक बिराजइ हो॥११॥
काहे रामजिउ[1] साँवर, लछिमन गोर हो। की दहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर[2] हो।
राम अहहिं दसरथ-कै, लछिमन आन-क हो। भरत-सत्रुहन भाइ तौं श्रीरघुनाथ-क हो॥१२॥
आज अवधपुर आनँद नहछू राम-क हो। चलहु नयन भरि देखिय सोभाधाम-क हो।
अति बड़भाग नउनियाँ छुऐ नख हाथ-सों हो। नैनन्ह करति गुमान तौं श्रीरघुनाथ-सों हो॥१३॥
जो पग नाउनि धोवइ राम धोवावइँ हो। सो पग-धूरि सिद्ध-मुनि दरस न पावइँ हो।
अतिसय पुहुप-क माल राम-उर सोहइ हो। तिरछी चितवनि, आनँद मुनि मुख जोहइ हो॥१४॥
नख काटत मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहि हो। पदुम-राग-मनि मानहु कोमल-गातहि हो।
जावक-रचित अँगुरियन्हँ मृदुल सुठारी हो। प्रभु-कर चरन पछालत अति सुकुमारी हो॥१५॥

कौशल्याने अपना आँचल फैला ढँका। ॥ ९ ॥ झट चटकीली नाउन तुरन्त बुलवा भेजी गई। वह भी बहुत बन-ठनकर सिंगार-पटार करके मुसकराती हुई हाथमें हीरेकी कनियोंसे जड़ी सोनेकी नहरनी लिए चली आई। वरके रूपमें रामको देखकर उसके हृदयमें ऐसा आनन्द उमड़ा कि समाए नहीं समा पा रहा था ॥१०॥ उसके कानोंमें सोनेकी तरकी (कर्णफूल) और उसकी नाकमें बेसर झलमला रहा था। उसके गलेमें गजमुक्ताका हार लटक रहा था और कंठमें मणिका कंठा बँधा जगमगा रहा था। उसके हाथोंके कंगन, कमरकी करधनी और पैरोंके नूपुर तो छमाछम बजे ही चले जा रहे थे, उसपर रानीकी दी हुई साड़ी तो और भी अधिक खिली पड़ रही थी ॥ ११ ॥

(इतनेमें किसी महिलाने छेड़ा—) 'कहो, राम साँवले और लक्ष्मण गोरे क्यों हैं? क्या रानी कौशल्याको कभी धोखा तो नहीं हो गया था? (कि किसी दूसरेको राजा दशरथ समझ बैठी हों)। ऐसा लगता है कि राम तो दशरथके हैं, लक्ष्मण किसी औरके हैं। हाँ, भरत और शत्रुघ्न तो दोनों रामके ही छोटे भाई हैं' ॥ १२ ॥

चलो! आज अयोध्यामें रामके नहछूका जो उत्सव मनाया जा रहा है (देख आया जाय)। चलो, सलोने रामको चलकर भर-आँखों देख आया जाय। सचमुच नाउन बड़ी बड़भागिनी है जिसने अपने हाथसे रामके पैरोंके नख छूए हैं। इसीलिये वह रामकी ओर बड़ी गुमान-भरी आँखोंसे देख रही है (कि अब तो मैं सिद्धों और देवताओंसे भी बड़ी हो गई हूँ) ॥१३॥ क्योंकि, जिन पैरोंको नाउन धो रही है और राम धुलवा रहे हैं, उन पैरोंकी धूल-तकका दर्शन भी सिद्ध और मुनियोंको नहीं मिल पाता।

रामके हृदयपर (गलेमें) अनेक प्रकारके पुष्पोंकी मालाएँ बड़ी फब रही हैं। मुनिजन बैठे उनका मुँह जोहते और उनकी तिरछी चितवनका रस ले रहे हैं ॥१४॥ जब रामके बड़े ही कोमल और पद्मरागमणि (पोखराज)-के रंगवाले नख काटे जा रहे थे उस समय जब वे मुसकरा रहे थे उस मुसकराहटका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता। उनकी सुन्दर कोमल (सुडौल) उँगलियोंमें बड़े सुहावने ढंगसे महावर रच दिया गया है। अत्यन्त छबीली (नाउन) बैठी प्रभु रामके चरण धोए चली जा रही है ॥ १५ ॥

---

१. रामजी तो। २. धोखा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भइ निवछावरि बहु बिधि जो जस लायक हो। तुलसिदास बलि जाउँ देखि रघुनायक हो।
राजन दीन्हें हाथी, रानिन्ह हारउ हो। भरि गे रतन-पदारथ सूप हजारउ हो ॥१६॥
भरि गाड़ी निवछावरि नाऊ लावइ हो। परिजन करहिं निहाल, असीसत आवइ हो।
तापर करहिं सुमौज बहुत दुख खोवहिं हो। होइ सुखी सब लोग अधिक सुख सोवहिं हो ॥१७॥
गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो। रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो।
हिलि-मिलि करत सवाँग सभा-रस-केलिय हो। नाउनि मन हरषाइ सुगंधन मेलिय हो ॥१८॥
दूलह-कै महतारि देखि मन हरषइ हो। कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरषइ हो।
रामलला-कर नहछू अति सुख गाइय हो। जेहि गाये सिधि होइ परम निधि पाइय हो ॥१९॥
दसरथ राउ सिंहासन बैठि बिराजहिं हो। तुलसिदास बलि जाहि देखि रघुराजहिं हो।
जे यह नहछू गावैं, गाइ सुनावइँ हो। ऋद्धि-सिद्धि-कल्यान-मुक्ति नर पावइँ हो ॥२०॥

॥ इति श्री गोसाँई तुलसीदासजी-विरचित श्रीरामलला-नहछू संपूर्णम् ॥

वहाँ जो जिस योग्य था, उसे अनेक प्रकारके न्योछावर दिए जाने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि मैं भी रामको देख-देख कर उनपर बलि जाता हूँ। महाराजा दशरथने तो न्योछावरमें हाथी दिए और महारानीने हार दिए। इस प्रकार (न्योछावरमें दिए गए) रत्न-मणियोंसे हजारों सूप भर गए।[1] ॥ १६ ॥ नाईको इतना सामान मिला कि वह गाड़ीमें भर-भरकर न्योछावरका सामान लिए चला आ रहा है। अपनी प्रजाको राजा इतना निहाल (सन्तुष्ट) किए डाल रहे हैं कि वे आशीष देते हुए अपने घर लौट रहे हैं। वे उस धनका आनन्द लेते हुए अपने सभी दुःख मिटाए डाल रहे हैं। वहाँ जिसे देखो वही अत्यन्त सुखी होकर सुखकी नींद सो रहा है। ॥ १७ ॥ रनिवासकी सभी स्त्रियाँ प्रभुको गाली गाए चली जा रही हैं। रामलला भी माता कौशल्याको देख-देखकर सकुचा रहे हैं (कि ये गालियाँ हमारी माताको लग रही हैं)। स्त्रियाँ हिलमिलकर स्वाँग रचतीं और अपनी मंडलीमें आनन्द मना रही हैं। सुगन्धमें बसी हुई नाउनका तो पूछना ही क्या! वह तो अपने मनमें फूली नहीं समा रही है। ॥ १८ ॥ दूल्हेकी माता (कौशल्या, यह आनन्द) देख-देखकर मनमें इतनी हर्षित हो रही हैं कि धुआँधार इतना दान दिए जा रही हैं मानो मेघकी झड़ी लग गई हो।

(आप लोग भी) रामललाका वह नहछू बड़े सुखके साथ गाइए, जिसे गानेसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ तथा निधियाँ अपने आप हाथ आ जाती हैं। ॥ १९ ॥ महाराज दशरथ सिंहासनपर विराजमान हैं। तुलसीदास भी रामको देख-देखकर उनपर बलि हुए जा रहे हैं। जो लोग यह नहछू गावेंगे और गाकर सुनावेंगे वे मनुष्य अवश्य ऋद्धि, सिद्धि, कल्याण और मुक्ति प्राप्त करेंगे ॥ २० ॥

॥ श्रीरामलला-नहछू पूर्ण हुआ ॥

१. सूपमें न्योछावरकी सामग्री रखकर वरके सिरपर घुमाकर न्योछावर (दान) किया जाता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२

वैराग्य-संदीपिनी

दो०—राम - बाम - दिसि जानकी , लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय , सुर - तरु तुलसी तोर ॥ १ ॥
तुलसी मिटै न मोह - तम , किये कोटि गुन - ग्राम।
हृदय - कमल फूलै नहीं , बिनु रवि - कुल - रवि राम ॥ २ ॥
सुनत, लखत, स्रुति-नयन-बिनु, रसना - बिनु रस लेत।
बास नासिका - बिनु लहै , परसै बिना - निकेत[1] ॥ ३ ॥
सो०—अज अद्वैत अनाम , अलख रूप, गुन-रहित जो।
मायापति सोइ राम , दास - हेतु नर - तनु धरेउ ॥ ४ ॥
दो०—तुलसी यह तन खेत है , मन - बच - कर्म किसान।
पाप - पुन्य द्वै बीज हैं , बवै सो लवै निदान ॥ ५ ॥

रामकी बाईं ओर जानकी और दाहिनी ओर लक्ष्मण विराजमान हैं। तुलसीदास (अपने मनसे) कहते हैं कि यह (इस स्वरूपका) ध्यान कल्पवृक्षके समान तेरा सब कल्याण ही कल्याण करेगा ॥१॥ तुलसीदास कहते हैं कि करोड़ों गुण होने और कर्म करनेपर भी हृदयपर छाया हुआ मोहका अन्धकार नहीं मिट पाता। सूर्यवंशके सूर्य-रूपी रामके उदय हुए बिना हृदय-कमल नहीं खिल पाता। (रामका दर्शन किए बिना हृदयको आनन्द नहीं मिलता) ॥ २ ॥ वह (ब्रह्म) बिना कानके सुनता, बिना आँखोंके देखता, बिना जीभके सभी रसोंका स्वाद लेता, बिना नाकके गंध लेता और बिना शरीरके ही सब कुछ स्पर्श कर लेता है ॥ ३ ॥ जो परमात्मा अजन्मा, अद्वैत, अकेला, नाम-रहित, रूप-रहित और गुणोंसे भी रहित है उसी मायापति रामने ही तो अपने भक्तों के हितके लिये मनुष्यका रूप धारण कर रक्खा है ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह शरीर खेतके समान है। मन, वचन और कर्म ही किसान हैं। (इस खेतमें बोनेके लिये) पाप और पुण्य ही दो प्रकारके बीज हैं। अतः, जो किसान (मनुष्य) जो कुछ (पाप या पुण्य) बोवेगा वही तो अन्तमें काट पावेगा ॥ ५ ॥

---

१. हाथ, शरीर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी यह तन है तवा, तपत सदा त्रय ताप।
सांत होइ, जब सांतिपद, पावै राम - प्रताप ॥ ६ ॥
तुलसी बेद-पुरान-मत, पूरन सास्त्र बिचार।
यह बिराग - संदीपिनी, अखिल ज्ञानको सार ॥ ७ ॥

सन्त-स्वभाव-वर्णन

दो०—सरल बरन, भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै संत जन, ताहि परी पहिचानि ॥ ८ ॥
अति सीतल अति ही सुखदाई। सम, दम, राम-भजन अधिकाई।
जड़ जीवनको करै सचेता। जग - माहीं बिचरत यहि हेता। (९)
दो०—तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि बहु संत।
पर - काजै परमारथी, प्रीति लिये निबहंत ॥ १० ॥
की मुख पट दीन्हें रहै, जथा - अर्थ भाषंत।
तुलसी या संसारमें, सो बिचारयतु संत ॥ ११ ॥
बोलै बचन बिचारि - कै, लीन्हें संत सुभाव।
तुलसी दुख - दुरबचनके, पंथ देत नहिं पाँव ॥ १२ ॥
सत्रु न काहू - करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि।
तुलसी यह मत संत - को, बोलै समता - माँहि ॥ १३ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि यह शरीर उस तवेके समान है जो सदा तीनों (दैहिक, दैविक और भौतिक) तापोंसे सदा तपा रहता है। रामके ही प्रतापसे जब ये (ताप) शान्त (शीतल) हो जायँ तभी शांति मिल पा सकती है ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि वेद और पुराणोंकी जो सम्मति है और सम्पूर्ण शास्त्रोंका जो विचार है उस सम्पूर्ण ज्ञानका ही निचोड़ यह 'वैराग्य-संदीपिनी' है ॥ ७ ॥

सन्तके स्वभावका वर्णन

तुलसीदास कहते हैं कि जैसे सरल वर्णोंका और सरल भाषाका अर्थ भी सरल होता है वैसे ही सन्तजन भी (भीतर और बाहर) सरल ही सरल होते हैं ॥ ८ ॥ जिनका हृदय अत्यन्त शान्त हो, जो सदा सबको सुख ही सुख देते रहते हों, जो शान्ति और संयमके साथ रामके भजनमें ही अपना समय बिताते हों, जो अचेतन (मूढ)-को भी चैतन्य (ज्ञानी) बनाते रहते हों और जो यही करनेके लिये विचरण करते रहते हों, वे ही सन्त कहलाते हैं। (९) तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे सन्त तो कहीं बिरले ही मिल पावेंगे। धन्य है वह धरती जहाँ बहुतसे ऐसे सन्त जन मिल जायँ जो परमार्थी हों तथा दूसरोंका हित करनेमें ही लगे हुए अपना जीवन बिता डालते हों ॥१०॥ तुलसीदास कहते हैं कि इस संसारमें विचारवान् सन्त वही है जो बोले तो यथार्थ (सत्य) बोले नहीं तो अपने मुँहमें कपड़ा ठूँसे रक्खे (चुप रहे) ॥११॥ तुलसीदास कहते हैं कि सन्त-स्वभाववाले पुरुषको चाहिए कि वह जो बोले वह विचारकर बोले। वह न किसीको दुःख पहुँचावे और न मुँहसे कोई बुरी बात निकाले ॥ १२ ॥ तुलसीदास तो उसीको सन्त समझते हैं जिसका न कोई मित्र हो, न कोई शत्रु ही और जो सबसे समान भावसे बोलता हो ॥१३॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अति अनन्य - गति इंद्री - जीता। जाको हरि - बिनु कतहुँ न चीता।
मृगतृष्ना सम जग जिय जानी। तुलसी ताहि संत पहिचानी। (१४)

दो०—एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
राम - रूप - स्वाती - जलद, चातक तुलसीदास॥ १५॥
सो जन जगत-जहाज है, जाके राग न दोष[1]।
तुलसी तृष्ना त्यागिकै, गहै सील - संतोष॥ १६॥
सील गहनि, सबकी सहनि, कहनि हीय - मुख राम।
तुलसी रहिए यहि रहनि, संत - जननको काम॥ १७॥
निज संगी निज सम करत, दुरजन मन दुख दून।
मलयाचल हैं संत जन, तुलसी दोष - बिहून॥ १८॥
कोमल बानी संतकी, स्रवै अमृतमय आइ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन[2] होइ जाइ॥ १९॥
अनुभव-सुख उतपति करत, भव-भ्रम धरै उड़ाइ।
ऐसी बानी संतकी, जो उर भेदै आइ॥ २०॥
सीतल बानी संतकी, ससि - हूँ - तें अनुमान।
कोटि तपनि तुलसी हरै, जो कोउ धारै कान॥ २१॥

तुलसीदास कहते हैं कि सन्त उसीको समझना चाहिए जो भगवान्‌में भली-भाँति तन्मय हो चुका हो, जिसके चित्तमें हरिके अतिरिक्त और कोई न आ बसा हो और जो इस संसारको मृगतृष्णाके समान मिथ्या मानता हो। (१४) तुलसीदास कहते हैं कि मुझे तो एक रामका ही भरोसा, एक ही बल, एक ही आशा और एक ही विश्वास है। इसलिये मैं तो एक मात्र राम-रूपी (स्वातीके) बादलके लिये ही चातक बना बैठा हूँ॥ १५॥ तुलसीदास कहते हैं कि वही मनुष्य संसार-सागरसे पार करानेके लिये जहाज बना बैठा है, जिसके हृदयमें न तो संसारके प्रति प्रेम ही है न द्वेष ही है और जो सब प्रकारकी तृष्णा छोड़कर शील और सन्तोष ग्रहण किए बैठा है॥ १६॥ तुलसीदास कहते हैं कि सन्तोंका यही काम है कि वे शीलवान् होकर रहें, उन्हें कोई कुछ कहे भी तो सब सह लें, हृदयमें रामका ही ध्यान करें, मुखसे रामका ही नाम लें और ऐसे ही जीवन बिता डालें॥१७॥ तुलसीदास कहते हैं कि संत-जन तो उस मलयाचलके समान निर्दोष होते हैं, जो दुर्जनोंका दूना दुःख अपनाकर भी उन्हें अपने ही समान सन्त बना लेते हैं[3]॥१८॥ तुलसीदास कहते हैं कि सन्तोंकी कोमल वाणी तो ऐसा अमृत बनकर बहती रहती है कि उसे कोई कठोर मनवाला भी सुन ले तो मोम बनकर पिघल उठे॥१९॥ तुलसीदास कहते हैं कि सन्तोंकी वाणी ऐसी होती है कि वह हृदयको भेदकर वहाँ जमकर बैठ जाती है और हृदयमें ऐसा आत्मानुभवका सुख उत्पन्न करती है कि सारे संसारिक भ्रम दूर हो मिटते हैं॥२०॥ सन्तोंकी वाणी तो चन्द्रमा (चाँदनी)-से भी अधिक शीतल होती है। तुलसीदास कहते हैं कि जो सन्तोंकी वाणी सुनकर (उसके अनुसार आचरण) करता है उसके मनकी सारी तपन शान्त हो जाती है॥ २१॥

---

१. द्वेष। २. मोम। ३. मलयाचलके सब वृक्षोंमें चन्दनकी गन्ध आती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाप - ताप सब सूल नसावै। मोह-अंध रबि-बचन बहावै।
तुलसी ऐसे सदगुरु साधू। बेद-मध्य गुन बिदित अगाधू। (२२)

दो०—तन-करि, मन-करि, बचन-करि, काहू दूषत नाहिँ।
तुलसी ऐसे संत-जन, राम-रूप जग - माहिँ॥ २३॥
मुख देखत पातक हरै, परसत करम बिलाहिँ।
बचन सुनत मन-मोह गत, पूरब भाग मिलाहिँ॥ २४॥
अति कोमल अरु बिमल रुचि, मानसमें मल नाहिँ।
तुलसी मन रत होइ रहै, अपने साहिब - माहिँ॥ २५॥
जाके मन - तें उठि गई, तिल-तिल तृष्ना - चाहि।
मनसा, बाचा, कर्मना, तुलसी बंदत ताहि॥ २६॥
कंचन काँचहि - सम गनै, कामिनि काठ - पषान।
तुलसी ऐसे संत जन, पृथिवी ब्रह्म - समान॥ २७॥

कंचनको मृतिका करि मानत। कामिनि काठ-सिला पहिचानत।
तुलसी भूलि गयो रस एहा। ते जन प्रगट रामकी देहा। (२८)

दो०—आकिंचन, इन्द्रिय - दमन, रमन राम इकतार।
तुलसी ऐसे संत जन, बिरले या संसार॥ २९॥

और तब वह (संतकी शीतल वाणी) पिछले जन्मोंके पापोंसे उत्पन्न होनेवाले सारे दुःख जड़से मिटा डालती है। सूर्यके समान प्रकाश-भरे उसके वचन सारे मोहरूपी अंधकारको दूर कर डालते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिन सन्तोंके अगाध गुणोंका वर्णन वेदोंने किया है वे तो सद्गुरुके समान हैं। (२२) तुलसीदास कहते हैं कि शरीर, मन और वाणीसे जो किसीकी बुराई नहीं करते, ऐसे संत जन तो इस जगतमें रामके ही समान हैं॥२३॥ जब किसीके पूर्व जन्मका सौभाग्य (पुण्य) उदय होता है तभी ऐसे सन्त जन मिल पाते हैं जिनके दर्शन मात्रसे सारे पाप दूर हो मिटते हैं, जिनका स्पर्श पाकर मनुष्य कर्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता हैं तथा जिनके वचन सुनते ही मनका सारा मोह नष्ट हो मिटता है॥ २४॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो सदा अत्यन्त दयासे भरे और निर्मल (पवित्र) होते हैं, जिनके मनमें किसी प्रकारका पाप अथवा विकार नहीं आ पाता, उन्हींका मन अपने स्वामी (परमात्मा)-में लीन हो पाता है॥२५॥ तुलसीदास मन, वचन और कर्मसे उन सन्तोंकी वन्दना करते हैं जिनके मनसे तृष्णा (लालच) और कामना तिल-तिल करके (पूर्णतः) दूर हो गई है॥२६॥ तुलसीदास कहते हैं कि पृथ्वीपर ऐसे संत जन भगवान्‌के ही समान हैं जो सोनेको काँचके समान तथा स्त्रीको काठ और पत्थरके समान (निरर्थक) मानते हैं॥२७॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो सोने (सम्पत्ति)-को मिट्टीके समान और स्त्रीको काठ और पत्थरके समान मानते हैं तथा संसारका सारा भौतिक आनन्द भूले बैठे हैं, उन मनुष्योंको समझना चाहिए कि वे रामके ही शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। (२८) तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे सन्त जन संसारमें बिरले ही मिलेंगे जो अत्यन्त दरिद्र होकर रहते हों, इन्द्रियोंका दमन किए बैठे हों और एकनिष्ठ होकर पूरेके पूरे राममें रम गए हों (राममय हो गए हों) ॥२९॥ जिनके मनमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अहंवाद, 'मैं - तैं' नहीं, दुष्ट - संग नहिं कोइ।
दुखते दुख नहिं ऊपजै, सुखते सुख नहिं होइ ॥ ३० ॥
सम कंचन - काँचै गिनत, सत्रु - मित्र सम दोइ।
तुलसी या संसारमें, कहत संत जन सोइ ॥ ३१ ॥
बिरले बिरले पाइए, माया - त्यागी संत।
तुलसी कामी, कुटिल, कलि, केकी - काक अनन्त ॥ ३२ ॥
'मैं - तैं' मेट्यो मोह - तम, ऊगो आतम - भानु।
संत - राज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु[1] ॥ ३३ ॥

सन्त-महिमा-वर्णन

सो०—को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संतकी।
जिनके बिमल बिबेक, सेस, महेस न कहि सकत ॥ ३४ ॥
दो०—महि पत्री करि, सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी, गनपतिसों तदपि, महिमा लिखी न जाइ ॥ ३५ ॥
धन्य धन्य माता - पिता, धन्य पुत्रबर सोइ।
तुलसी जो रामहिं भजै, जैसेहु कैसेहु होइ ॥ ३६ ॥
तुलसी जाके बदनतें, धोखेउ निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी, मेरे तनको चाम ॥ ३७ ॥

अहंकार नहीं है, जो 'मैं और तू' का भेद नहीं करते, जो दुष्टोंकी संगति नहीं करते, जिनके हृदयमें दुःखके साधनोंसे दुःख और सुखके साधनोंसे सुख नहीं उत्पन्न होता, ॥ ३० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि इस संसारमें उन्हींको सन्त कहना चाहिए जो सुवर्ण और काँचको एक समान समझते हों और जिनके लिये शत्रु और मित्र दोनों एक-से हों ॥३१॥ तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे सन्त तो कोई बिरले ही पाए जाते हैं जो सारी माया त्याग बैठे हों। हाँ, इस कलिकालमें मोर और कौवेके समान कामी और कुटिल लोग तो बहुतसे सन्तके वेषमें घूमते मिल जाते हैं ॥ ३२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सन्तको इसी लक्षणसे पहचानना चाहिए कि उसके मनमें 'मैं और तू' का अज्ञान मिटा चुका हो और उसके हृदयमें आत्मज्ञानका सूर्य उदय हो चुका हो। उसीको सन्तोंमें सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए ॥ ३३ ॥

संत-महिमा-वर्णन

तुलसीदास कहते हैं कि जिस महापुरुषके विचार निर्मल हों ऐसे सन्तकी महिमाका वर्णन एक मुँहसे कौन कर पा सकता है जब कि (सहस्रों मुँहवाले) शेष और (पाँच मुखवाले) महादेव भी नहीं कर पा सकते ॥ ३४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि पृथ्वीको कागज, समुद्रको मसीपात्र (दावात) तथा कल्पवृक्षको लेखिनी बनाकर स्वयं गणेश भी सन्तोंकी महिमाका वर्णन करने बैठ जायँ तब भी वह वर्णन पूरा नहीं हो पा सकता ॥३५॥ तुलसीदास कहते हैं—'धन्य हैं वे माता-पिता और धन्य है उनका वह श्रेष्ठ पुत्र जो जैसे भी बन पड़ता है वैसे रामका भजन करता है' ॥३६॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसके मुँहसे अनायास भी 'राम' नाम निकल पड़ता हो, उसके पाँवके जूते तो मेरे शरीरके चमड़ेसे बननेके योग्य हैं ॥ ३७ ॥

---

१. लक्षण, पहचान।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भगत सुपच तुलसी भलो, भजै रैनि - दिन राम।
ऊँचो कुल केहि कामको, जहाँ न हरिको नाम[1] ॥ ३८ ॥
अति ऊँचे भूधरनि - पर, भुजँगनके अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख, अन्न अरु पान ॥ ३९ ॥
अति अनन्य जो हरि - को दासा। रटै नाम निसि-दिन प्रति-स्वासा।
तुलसी तेहि समान नहिं कोई। हम नीके देखा सब लोई। (४०)
जदपि साधु सबही बिधि हीना। तद्यपि समताके न कुलीना।
यह दिन - रैनि नाम उच्चरै। वह नित मान - अगिनिमें जरै। (४१)
दो०—दास रता इक नाम-सों, उभय लोक-सुख त्यागि।
तुलसी न्यारे ह्वै रहै, दहै न दुखकी आगि ॥ ४२ ॥

शांति-वर्णन

दो०—रैनिके भूषन इंदु है, दिवसको भूषन भानु।
दासको भूषन भक्ति है, भक्तिको भूषन ज्ञान ॥ ४३ ॥
ज्ञानको भूषन ध्यान है, ध्यानको भूषन त्याग।
त्यागको भूषन शांति-पद, तुलसी अमल, अदाग ॥ ४४ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि वह श्वपच (चाण्डाल) भक्त अच्छा है जो रात दिन 'राम' नामका भजन किया करता हो। वह ऊँचा कुल किस कामका जहाँ श्री हरिका नाम-तक न लिया जाता हो ॥ ३८ ॥ अत्यन्त ऊँचे पहाड़ोंपर तो सर्प ही रहा करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उससे तो नीचेके स्थान ही अच्छे हैं जहाँ ईख, अन्न और पान (पीनेको जल) तो मिल जाया करता है ॥ ३९ ॥ पर सबसे उत्तम तो हरिका भक्त ही है जो रात-दिन और हर साँसमें 'राम' नाम रटा करता है। तुलसीदास कहते हैं कि हमने भली-भाँति सबको परख देखा है, पर उसके (राम-नाम रटनेवालेके) समान हमें कोई नहीं मिला। (४०) भले ही साधु सब तरहसे नीचा हो फिर भी कोई ऊँचे कुलवाला उसकी बराबरी नहीं कर सकता क्योंकि यह (साधु) तो दिन-रात 'राम' नामका उच्चारण करता रहता है और वह (कुलीन) दिनरात झूठी शान (अभिमान)-की ज्वालामें ही जला मरता है (प्रतिष्ठा पानेकी ही चिन्तामें घुला करता है)। (४१) दोनों लोकोंके सुख त्यागकर एक मात्र 'राम' नाममें ही लीन रहनेवाला दास (हरि-भक्त) सब प्रपंचोंसे दूर रहता है इसलिये दुःखकी आगमें कभी जलता ही नहीं (मान-अपमानके फेरमें न पड़नेके कारण सदा सुखी रहता है।) ॥ ४२ ॥

शान्तिका वर्णन

जिस प्रकार रात्रिकी शोभा चन्द्रमासे और दिनकी शोभा सूर्य्यसे है वैसे ही दास (राम-भक्त)-की शोभा 'भक्ति'से और भक्तिकी शोभा ज्ञानसे होती है ॥ ४३ ॥ जैसे ज्ञानकी शोभा ध्यानसे और ध्यानकी शोभा त्यागसे होती है उसी प्रकार तुलसीदास कहते हैं कि त्यागकी शोभा इसीमें है कि सब पापोंसे दूर रहकर निष्कलंक 'शान्ति' प्राप्त कर ले ॥ ४४ ॥ पापोंसे दूर और निष्कलंक 'शान्ति-पद'

१. विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्। —भागवत : ७।९।१०

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अमल, अदाग, सांतिपद सारा। सकल कलेसन करत प्रहारा।
तुलसी उर धारै जौ कोई। रहै अनं - दसिन्धु - महँ सोई। (४५)
बिबिध - पाप - संभव जो तापा। मिटहिं दोष - दुख दुसह कलापा।
परम सांति - सुख रहै समाई। तहँ उतपात न भेदै आई। (४६)
तुलसी ऐसे सीतल संता। सदा रहैं यहि भाँति इकंता।
कहा करैं खल लोग भुजंगा। कीन्हें गरल सील जो अंगा। (४७)

दो०—अति सीतल अति ही अमल, सकल कामना - हीन।
तुलसी ताहि अतीत गनि, बृत्ति सांति लय-लीन॥ ४८॥

जो कोइ कोप धरै मुख बैना। सम्मुख हतै गिरा - सर पैना।
तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं। सो सीतल कहिए जग - माहीं। (४९)

दो०—सात दीप नव खंड लौं, तीनि लोक जग-माहिं।
तुलसी सांति - समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥ ५०॥

जहाँ सांति सतगुरुकी दई। तहाँ क्रोधकी जर जरि गई।
सकल काम - बासना बिलानी। तुलसी यहै सांति - सहिदानी। (५१)
तुलसी सुखद सांतिको सागर। संतन गायो करन उजागर।
तामें तन - मन रहै समोई। अहं - अगिनि नहिं दाहै कोई। (५२)

ही ऐसा है जिससे सभी क्लेशोंका नाश हो मिटता है। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके मनमें यह (शान्ति) आ जाती है वह आनन्दके समुद्रमें नींद लेता (सदा आनन्दमें मग्न रहता) है। (४५) अनेक प्रकारके पापोंसे उत्पन्न उसके सारे क्लेश, दुःसह दुःख और दोष सब नष्ट हो जाते हैं। वह ऐसी परम शान्ति और सुखमें जा समाता है जहाँ किसी प्रकारका कोई उत्पात नहीं घुस पा सकता। (४६) तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे शान्त चित्तवाले सन्त जन इस प्रकारसे सदा एकान्तमें (मस्त) रहते हैं कि सर्पके समान दुष्ट लोग उनका कुछ नहीं कर पा सकते हैं क्योंकि उन्होंने तो (शिवके समान) विषको भी अंगका शील (भूषण) बना लिया है। (४७) सभी कामनाएँ निकल जानेसे जिनके हृदय अत्यन्त शीतल और निर्मल हो गए हैं और जिनकी सारी मनोवृत्तियाँ शान्त हो गई हैं, तुलसीदास कहते हैं कि उन्हींको साधु (सन्त) समझना चाहिए॥ ४८॥ तुलसीदास कहते हैं कि क्रोधमें भरकर जो कोई सामने खड़ा होकर मुखसे कठोर वचनके तीखे बाण चला रहा हो, उसपर भी जिसे लेशमात्र क्रोध न हो उसीको संसारमें 'शान्त' समझना चाहिए। (४९) तुलसीदास कहते हैं कि पृथ्वीके सातों द्वीप, नवों खंड और तीनों लोकोंमें शान्तिके समान और कोई दूसरा सुख नहीं है॥ ५०॥ जिसे सद्गुरु-रूपी वैद्यने 'शान्ति'-रूपी औषधि दे डाली हो उसका क्रोधरूपी ज्वर स्वयं जलकर भस्म हो जाता है तथा उसकी सारी काम-वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। तुलसीदास कहते हैं कि 'शान्ति' की यही पहिचान है। (५१) तुलसीदास कहते हैं कि सुखसे भरे समुद्रके समान जो 'शान्ति' है उसे जगत्में प्रसिद्ध करनेके लिये ही सन्तोंने उसका वर्णन किया है। यदि उस (शान्ति)-में कोई शरीर और मनसे लीन हो जाय तो उसे अहंकारकी आग कभी नहीं जला पा सकती (जिसे पूर्ण रूपसे 'शान्ति' प्राप्त हो जाती है उसमें अहंकार तो लेश मात्र भी नहीं रह जाता)। (५२)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दो०—अहंकारकी अगिनिमें, दहत सकल संसार।
तुलसी बाँचैं संत-जन, केवल सांति-अधार॥ ५३॥
महा सांति-जल परसि-कै, सांत भए जन जोइ।
अहं-अगिनितैं नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ॥ ५४॥
तेज होत तन तरनिको, अचरज मानत लोइ।
तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होइ॥ ५५॥
जद्यपि सीतल, सम, सुखद, जगमें जीवन प्रान।
तदपि सांति, जल जनि गनौ, पावक तेज प्रमान॥ ५६॥
जरै, बरै अरु खीझि खिझावै। राग-द्वेष-महँ जनम गँवावै।
सपनेहु सांति नहीं उन देही। तुलसी जहाँ-जहाँ ब्रत एही। (५७)

दो०—सोइ पंडित, सोइ पारखी, सोई संत सुजान।
सोई सूर, सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥ ५८॥
सोइ ज्ञानी, सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, राग-द्वेषकी हानि॥ ५९॥
राग-द्वेषकी अगिनि बुझानी। काम-क्रोध-बासना नसानी।
तुलसी जबहिं सांति गृह आई। तब उर ही उर फिरी दोहाई। (६०)

सारा संसार अहंकारकी आगमें भस्म हुआ जा रहा है। तुलसीदास कहते हैं कि सन्त जन केवल 'शान्ति'का सहारा लेकर ही उस (अहंकार)-से बचे रह जाते हैं॥ ५३॥ जो कोई परम शान्ति-रूपी जलका स्पर्श हो जानेपर शान्त हो जाता है, उसे चाहे कोई जितना भी उभाड़े (अहंकारकी ओर उन्मुख करे) परन्तु अहंकारकी आग उसे फिर नहीं जला पा सकती॥ ५४॥ लोग आश्चर्य मानेंगे पर तुलसीदास कहते हैं कि जो व्यक्ति पानी (पूर्ण शान्त) हो जाता है उसके शरीरमें सूर्यका-सा तेज तो आ जाता है फिर भी वह कभी आग नहीं हो पाता (उसमें अहंकार-रूपी अग्निका समावेश नहीं होता) ॥५५॥ यद्यपि संसारमें पानी शीतल होता है और सबको समान रूपसे सुख भी देता है, फिर भी 'शान्ति'-को जल (निष्प्राण) समझनेकी भूल न कर बैठना, उसमें तो अग्निका-सा तेज आ जाता है॥५६॥ वास्तवमें राग-द्वेष ही आग है। जो उसीमें दिनरात पड़ा रहता है वह उसी आगमें जलता-बलता और उसीमें खीझता-सीझता है। तुलसीदास कहते हैं कि जो जीवनका यही सिद्धान्त मान बैठा हो, ऐसे प्राणीको स्वप्नमें भी शान्ति नहीं मिल पा सकती। (५७) तुलसीदास कहते हैं कि वही पंडित है, वही परखनेवाला है, वही संत है, वही चतुर है, वही शूर है, वही चैतन्य है, वही प्रसिद्ध योद्धा है, ॥ ५८॥ वही ज्ञानी है, वही गुणी पुरुष है, वही ब्रह्म और वही ध्यान लगानेवाला है—जिसकी चित्तवृत्तिमें राग-द्वेषके कारण कभी कोई विकार नहीं आ पाता और जिसके मनमें राग-द्वेष नहीं है उसीमें ऊपरके सारे गुण मानने चाहिएँ॥ ५९॥ तुलसीदास कहते हैं कि जब प्राणीके हृदयमें राग-द्वेषकी आग बुझ जाती है तथा काम-क्रोधकी वासना नष्ट हो जाती है, तब उस प्राणीके हृदय-रूपी घरमें 'शान्ति' आ समाती है। तब उस (शान्ति)-की दोहाई ('रक्षा करो रक्षा करो'की पुकार) क्रमशः एकसे दूसरे हृदयमें फैल जाती है (सब उस शान्तिको ही अपना परम रक्षक मानने लगते हैं)। (६०) तुलसीदास

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दो०—फिरी दोहाई रामकी, गे कामादिक भाजि।
तुलसी ज्यों रबिके उदय, तुरत जात तम लाजि॥ ६१॥
यह बिराग - संदीपनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।
अनुचित बचन बिचारिकै, जस सुधारि तस लेहु॥ ६२॥

॥ इति श्री गोसाईं तुलसीदास-विरचित श्रीवैराग्यसंदीपिनी संपूर्णा॥

कहते हैं कि जैसे सूर्यके उदय होनेपर सारा अन्धकार तुरन्त घबराकर भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार रामकी दोहाई फिरते ही कामादि (काम, क्रोध, लोभ और मोह) विकार भी नष्ट हो मिटते हैं॥६१॥ (तुलसीदास कहते हैं—) 'सज्जनो! इस 'वैराग्य-संदीपिनी' को शुद्ध चित्तसे सुनना। यदि कहीं कोई अनुचित बात जान पड़े तो उसे सुधारकर ग्रहण कर लेना'॥ ६२॥

॥ वैराग्य-संदीपिनी पूर्ण हुई॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

३

बरवै रामायण

बालकांड

केस - मुकुत सखि मरकत-मनि - मय होत। हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥ १ ॥
सम - सुबरन, सुषमाकर, सुखद न थोर। सीय अंग, सखि! कोमल, कनक कठोर॥ २॥
सिय-मुख सरद-कमल-जिमि किमि कहि जाइ। निसि मलीन वह, निसि-दिन यह बिगसाइ ३॥
बड़े नयन, कटि भ्रुकुटी, भाल बिसाल। तुलसी मोहत मनहिं मनोहर बाल ॥ ४ ॥
चंपक - हरवा अँग - मिलि अधिक सोहाइ। जानि परै सिय-हियरे जब कुँभिलाइ ॥ ५ ॥
सिय! तुव अंग - रंग मिलि अधिक उदोत। बेलि हार पहिरावौं, चंपक होत ॥ ६ ॥
साधु, सुसील, सुमति, सुचि, सरल सुभाव। राम नीति-रत, काम कहाँ यह पाव ? ॥ ७ ॥

बालकांड

देखो सखि! सीताके बालोंमें गुंथे हुए मोती (उनके बालोंका रंग लेकर) नीलम जैसे लगने लगते हैं, परन्तु फिर ज्यों ही हाथमें ले लिए जाते हैं त्यों ही वे मोतीके मोती जैसे श्वेत बनकर चमक उठते हैं ॥ १ ॥ देखो सखि! सुवर्णके समान सुनहरा, बहुत ही छबीला और बहुत सुहावना सीताका शरीर तो बड़ा कोमल है, (उसे स्वर्णके समान कैसे कहा जा सकता है क्योंकि) सुवर्ण तो कठोर होता है ॥ २ ॥ सीताके मुखड़ेको शरत्के कमलके समान कैसे कहा जा सकता है ? क्यों कि वह (कमल तो) रात्रि होनेपर संकुचित हो जाया करता (कुम्हला जाया करता) है, और यह (मुख-कमल तो) रात-दिन सदा ही खिला रहता है ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं कि बड़े-बड़े नेत्रोंवाली, कँटीली भौंहोंवाली और चौड़े मायेवाली यह मनोहर बाला (सीता) सबका मन मोहे डाल रही हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि चम्पेका हार सीताके अंगके रंगसे मिलकर बड़ा सुहावना तो लगता है पर वह चंपेका हार उनके हृदयपर पड़ा हुआ जाना तभी जा पाता है जब वह कुम्हला जाता है (अन्यथा अंगके रंगसे मिलनेके कारण वह शरीरपर पड़ा पहचान ही नहीं पड़ता है) ॥ ५ ॥ (एक सखी कहती है—) 'देखो सीता! जब मैं तुम्हें बेलेका (श्वेत) हार पहना देती हूँ तो वह तुम्हारे अंगके (सुनहरे) रंगसे मिलकर चम्पेके हार जैसा ही सुहावना लगने लगता है' ॥ ६ ॥ (रामकी उपमा कामदेवसे देना ठीक नहीं है) क्योंकि राम तो ऐसे साधु, सुशील, सद्बुद्धिवाले, पवित्र, सरल स्वभावके और नीति-परायण हैं कि कामदेवमें भला वे गुण कहाँ धरे हैं ? ॥ ७ ॥ देखो सखि! (राम)-के माथेपर केशरका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुंकुम-तिलक भाल, स्रुति कुंडल लोल। काक-पच्छ मिलि, सखि! कस लसत कपोल ॥ ८ ॥
भाल तिलक सर, सोहत भौंह-कमान। मुख-अनुहरिया केवल चंद समान ॥ ९ ॥
तुलसी बंक बिलोकनि, मृदु मुसुकानि। कस प्रभु-नयन कमल-अस कहौं बखानि ॥१०॥
कामरूप-सम तुलसी राम-सरूप। को कबि समसरि करै, परै भवकूप ? ॥११॥
चढ़त दसा यह, उतरत जात निदान। कहउँ न कबहूँ करकस भौंह-कमान ॥१२॥
नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन। निरखि निसाकर-नृप-मुख भए मलीन ॥१३॥
कमठ-पीठ धनु सजनी! कठिन अँदेस। तमकि ताहि ए तोरिहि, कहब महेस ॥१४॥
नृप निरास भे निरखत, नगर उदास। धनुष तोरि, हरि सब-कर हरेउ हरास ॥१५॥
का घूँघट मुख मूँदहु नबला नारि ? चाँद सरगपर सोहत यहि अनुहारि ॥१६॥
गरब करहु रघुनंदन! जनि मन-माँह। देखहु आपनि मूरति सिय-कै छाँह ॥१७॥
उठी सखी हँसि मिस-करि कहि मृदु बैन। सिय-रघुबरके भए उनींदे नैन ॥१८॥

तिलक लगा है, कानोंमें कुण्डल झूल रहे हैं और काकपक्ष-जैसे (बहाए-सँवारे हुए) सिरके बालोंके साथ उनके गाल कैसे चमक रहे हैं ॥ ८ ॥ (यद्यपि) उनके माथेका तिलक बाणके समान और भौंहें धनुषके समान हैं, तथापि उनका मुख तो चन्द्रमाके ही समान (शान्त) है (उनमें वीरता और शान्ति दोनों हैं) ॥ ९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके मधुर-मधुर मुसकानभरे नेत्रोंको कमल-जैसा कैसे कह सकता हूँ क्योंकि उनकी चितवन तो तिरछी है (कमलमें भला यह गुण कहाँ !) ॥१०॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके स्वरूपको कामदेवके रूपके समान बताकर कौन कवि अपनेको भव-कूपमें ला डुबावे (कामदेवसे रामकी तुलना करनेका पाप ले) ॥ ११ ॥ (तुलसीदास कहते हैं कि) मैं रामकी भौंहोंको उस कर्कश धनुषके समान नहीं कह सकता जो चढ़ते समय तो तन जाता है और उतरनेपर ढीला पड़ जाता है। (प्रभुकी भौंहें तो चढ़ाव और उतार दोनों ही स्थितियोंमें समान ही रहती हैं) ॥१२॥ नित्य नियमके अनुसार उदय होनेवाले अरुणके समान जब राम (धनुष तोड़नेके लिये) उठकर खड़े हुए तो उन्हें देखते ही चन्द्रमा-रूपी राजाओंके मुंह धुँधले पड़ गए ॥१३॥ (एक सखी दूसरीसे कहती है–) 'देखो सखी! हमें यही शंका हुई जा रही है कि यह शंकरका धनुष कच्छपकी पीठके समान कठोर है। हम तो शिवसे यही कहते (मनाते) हैं कि ये (राम) उसे तमककर तोड़ डालें, ॥१४॥ (जब शंकरजीका धनुष किसीके उठाए नहीं उठ पाया और) यह देखकर सब राजा लोग जब निराश हो बैठे और जनकपुरके नागरिक भी उदास हो चले तब रामने वह धनुष तोड़कर सबकी निराशा और उदासी (हरास) दूर कर डाली ॥१५॥ (एक सखी सीतासे कहती है–) 'अरी नई बहू! अब क्या अपना मुँह घूँघटसे ढके जा रही हो ? अरी! तुम्हारा ही मुँह देखकर तो यह आकाशका चन्द्रमा चाँदनी छिटकाए हुए है (तुम मुँह ढक लोगी तो चन्द्रमाकी चमक भी जाती रहेगी) ॥१६॥ देखिए राम! आप (अपने सौन्दर्यपर) बहुत न ऐंठिए। आपको देखना हो तो सीताकी परछाईंमें अपनी मूर्त्ति देख सकते हैं (सीताकी परछाईं-तक इतनी स्वच्छ दर्पण-जैसी है कि आप अपनी प्रतिच्छाया भी उसमें देख सकते हैं) ॥१७॥ सब सखियाँ कोमल वाणीमें हँसकर यह कहती हुई उठ खड़ी हुईं कि–'राम-जानकीकी आँखें उनींदी हो चली हैं, चलो, राम-जानकीको सोने दिया जाय' ॥ १८ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सींकँ धनुष, हित-सिखन, सकुचि प्रभु लीन । मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन ॥१९॥

अयोध्याकांड

सात दिवस भे साजत सकल बनाउ । का पूछहु, सुठि राउर सरल सुभाउ ॥२०॥
राज-भवन सुख बिलसत सिय-सँग राम । बिपिन चले तजि राज, सुबिधि बड़ बाम ॥२१॥
कोउ कह नर-नारायण, हरि-हर कोउ । कोउ कह बिहरत बन मधु-मनसिज दोउ ॥२२॥
तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान । राम-लखनके रूप न देखेउ आन ॥२३॥
तुलसी जनि पग धरहु गंग-महँ साँच । निगा-नाँग करि नितहिं नचाइहि नाच ॥२४॥
सजल कठौता कर गहि कहत निषाद । चढ़हु नाव पग धोइ, करहु जनि बाद ॥२५॥
कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ । निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ ॥२६॥

वाल्मीकि-वचन

द्वै भुज-कर हरि रघुबर सुंदर बेष । एक जीभ-कर लछिमन दूसर शेष ॥२७॥

अरण्यकांड

बेद-नाम कहि, अँगुरिनि खंडि अकास । पठयो सूपनखाहि लखनके पास ॥२८॥

रामने तो बहुत सकुचाते हुए सीखनेके लिये एक साधारण-सा सींकका धनुष माँगा था पर राजा दशरथने उन्हें एक (बढ़िया) धनुष मँगवा थमाया जो प्रभुने बहुत प्रसन्न होकर ले लिया ॥१९॥

अयोध्याकाण्ड

(रानी कैकेयीसे दासी मन्थरा कहती है—) 'आपका स्वभाव तो बहुत भोला और सीधा है। आज नगरकी सजावट होते सात दिन हो गए और आप मुझसे आज पूछने बैठी हैं ?' ॥ २० ॥ इसे भाग्यका ही फेर समझना चाहिए कि जो राम राजभवनमें सीताके साथ सुखपूर्वक विलास (आनन्द) करते थे, वे आज राज्यका परित्याग करके वन चले जा रहे हैं ॥ २१ ॥ (राम-लक्ष्मणको वनमें विचरण करते देखकर) कोई कहने लगा कि हो न हो ये दोनों नर और नारायण ही हैं। कोई कहने लगा कि ये विष्णु और शंकर हैं और कोई इन्हें वनमें विहार करनेवाले कामदेव और वसन्तका अवतार बताए डाल रहा था। ॥ २२ ॥ तुलसीदासकी बुद्धि बहुत अनुमान करके भी ठगी-सी रह जाती है क्योंकि राम और लक्ष्मणका-सा स्वरूप कहीं उसे देखनेको नहीं मिल पाया ॥२३॥ (गंगाकी महिमाका वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं–) 'देखिए ! मैं सच कहे देता हूँ कि कहीं गंगामें पैर न बढ़ा रखिएगा, नहीं तो ये आपको निपट नंगा करके सदा नचाती रह जायँगी (आपको शिव बना देंगी)' ॥२४॥ केवट अपने हाथोंमें जलसे भरा हुआ कठौता लेकर रामसे कहता है—'देखिए ! मुझसे बहुत विवाद (टंटा) न कीजिए। (पार जाना हो तो चुपचाप) अपना पैर धोकर नावपर चढ़ जाइए' ॥ २५ ॥ रामको देखकर गाँवकी स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं)—'देखो सखी ! कमल तो रातमें मुंद जाता है, पर रामके ये कमलके समान कोमल पैर तो काँटोंसे बिंधे रहनेपर भी नित्य खिले ही रहते हैं ॥ २६ ॥ (वाल्मीकि कहते हैं—) राम तो सुन्दर वेष बनाकर आए हुए दो भुजावाले विष्णु हैं और लक्ष्मण भी एक जीभवाले दूसरे शेष ही हैं ॥ २७ ॥

आरण्यकाण्ड

वेद (श्रुति=कान) और आकाश (=नाक) कहकर और उँगलियोंसे काटनेका संकेत करके रामने शूर्पणखाको लक्ष्मणके पास समझा भेजा (कि इसके नाक-कान काट लो) ॥२८॥ सोनेकी लताके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हेम - लता सिय - मूरति मृदु मुसुकाइ । हेम - हरिन - कहँ दीन्हेउ प्रभुहिं देखाइ ॥२९॥
जटा-मुकुट, कर सर-धनु, संग मरीच । चितवनि बसति कनखियन, अँखियन-बीच ॥३०॥

राम-वाक्य

कनक-सलाक, कला-ससि, दीप-सिखाउ । तारा-सिय कहँ लछिमन ! मोहिं बताउ ॥३१॥
सीय-बरन - सम केतकि अति हिय हारि । किहेसि भँवर - कर हरवा हृदय बिदारि ॥३२॥
सीतलता ससिकी रहि सब जग छाइ । अगिनि-ताप ह्वै तन-कहँ सँचरत आइ ॥३३॥

किष्किंधाकांड

स्याम - गौर दोउ मूरति लछिमन - राम । इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम ॥३४॥
कुजन-पाल, गुन-बर्जित, अकुल, अनाथ । कहउँ कृपानिधि राउर कस गुन-गाथ ॥३५॥

सुंदरकांड

बिरह आगि उर ऊपर अति अधिकाइ । ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ ॥३६॥
डहकु न, है उजियरिया निसि नहिं, घाम । जगत जरत अस लाग मोहिं बिनु राम ॥३७॥

समान सुन्दर मूर्त्तिवाली सीताने मंद मुसकानके साथ प्रभुको सुवर्णका मृग उँगली उठा दिखाया ॥२९॥ मुकुटके समान जटा बाँधकर हाथोंमें धनुष-बाण लेकर राम कनखियोंसे देखते हुए मारीच (स्वर्ण मृग)-के पीछे जो लग चले उनकी वह छबि मेरी आँखोंमें आ बसी है ॥३०॥ (सीताके वियोगमें लक्ष्मणसे राम पूछने लगे)–'बताओ लक्ष्मण ! सोनेकी सलाईके समान, चन्द्र-कलाके समान, दीवेकी लौके समान और तारेके समान (सुहावनी) मेरी सीता कहाँ हैं ? ॥ ३१ ॥ देखो ! सीताके रंगके समान सुनहरा बननेकी होड़में थककर जब यह केतकी अपने जीमें बहुत हार मान बैठी तब इस दुःखसे (ऊबकर) उसने अपनी छाती फाड़ ली (और अपना रङ्ग छिपानेके लिये) छातीपर भौंरोंका हार डाले बैठी है। (केतकी जब फूलकर फट जाती है तो काँटे होनेपर भी भौंरे उसपर आ टूटते हैं। कविने कल्पना की है कि केतकी जब सीताके शरीरके समान सुनहरी न हो सकी तो उसने लाजके मारे अपनी छाती फाड़ डाली और भौंरोंको उसपर इसलिये बुला बैठाया कि सीताके रङ्गसे धुँधले मेरे रङ्गको न कोई देख पावेगा और न मेरे रङ्गको सीताके रङ्गसे धुँधला बताकर मेरा अपमान करेगा) ॥ ३२ ॥ सारे संसारमें छाई हुई चन्द्रमाकी शीतलता मेरे शरीरमें आगकी तपन बनकर समाई पड़ रही है ॥ ३३ ॥

किष्किन्धाकाण्ड

श्याम और गौर वर्णवाले राम-लक्ष्मणकी अत्यन्त सुन्दर और उज्ज्वल कीर्त्ति चारों ओर जा छाई है ॥३४॥ तुलसीदास कहते हैं–'हे कृपालु ! आपके गुणोंकी गाथा मैं कहाँतक कहूँ क्योंकि आपने तो गुणोंसे रहित, कुलसे हीन और अनाथ (वानर-भालू-जैसे) नीचों-तकको भी शरणमें ले डाला' ॥३५॥

सुन्दरकाण्ड

(सीता कहती हैं—) 'जब विरहकी ज्वाला हृदयमें भभककर ऊपर उठने लगती है तब ये दोनों आँखें मेरी बैरिन बनकर उसे (आँसुओंसे) बुझा डालती हैं ॥ ३६ ॥ (फिर वे रातको दिन समझकर अपने मनसे कहती हैं—) अरे मन ! तू धोखेमें मत आना । यह उजेली रात नहीं है; यह तो (दिनकी चिलचिलाती) धूपकी चौंध है । मुझे तो रामके विरहमें यह सारा जगत् (आगकी लपटोंमें) जलता-सा जान पड़ने लग रहा है ॥ ३७ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अब जीवन - कै है कपि आस न कोइ। कनगुरिया - कै मुँदरी कंगन होइ ॥३८॥
राम-सुजस - कर चहुँ जुग होत प्रचार। असुरन-कहँ, लखि लागत जग अँधियार ॥३९॥

कपि-वाक्य

सिय - बियोग-दुख केहि बिधि कहउँ बखानि। फूल-बानतें मनसिज बेधत आनि ॥४०॥
सरद-चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि। बिधुहिं जोरि कर बिनवति कुल-गुरु जानि ॥४१॥

लंकाकांड

बिबिध बाहिनी बिलसति सहित - अनन्त। जलधि-सरिस को कहइ, राम भगवंत ॥४२॥

उत्तरकांड

चित्रकूट पय - तीर सो सुर-तरु - बास। लखन-राम-सिय सुमिरहु तुलसीदास ॥४३॥
पय नहाइ, फल खाहु, परिहरिय आस। सीय-राम-पद सुमिरहु तुलसीदास ॥४४॥
स्वारथ - परमारथ - हित एक उपाउ। सीय-राम - पद तुलसी प्रेम बढ़ाउ ॥४५॥
काल कराल बिलोकहु होइ सचेत। राम-नाम जपु, तुलसी प्रीति - समेत ॥४६॥
संकट - सोच - बिमोचन, मंगल - गेह। तुलसी राम - नाम- पर करिय सनेह ॥४७॥

(सीता कहती हैं–)'देखो हनुमान् ! अब मुझे जीवनकी कोई आशा नहीं रह गई है। (तुम देख ही रहे हो कि) यह कानी उँगली (कनिष्ठिका)-की अँगूठी भी मेरे हाथका कंगन बनी जा रही है।' (मैं वियोगमें इतनी दुर्बल हो गई हूँ कि अँगूठीमें पूरा हाथ चला जा रहा है) ॥ ३८ ॥ रामके सुन्दर यशका जैसे-जैसे चारों युगोंमें प्रचार हो रहा है, वैसे-वैसे असुरोंको संसारमें अँधेरा ही अँधेरा (विनाश ही) दिखाई पड़ता जा रहा है ॥३९॥ (हनुमान् लंकासे आकर सीताकी दशाका वर्णन रामसे कर रहे हैं—) 'सीताके वियोग-दुःखोंका वर्णन मैं किस प्रकार करूँ ? (इतना ही समझ लीजिए कि) कामदेव आ-आकर उन्हें अपने पुष्प-बाणोंसे दिनरात बेधे डाल रहा है ॥४०॥ चारों ओर शरत्की चाँदनी फैलानेवाले चन्द्रमाको भी जब वे देखती हैं तो उन्हें अपना कुल-गुरु (सूर्य) जानकर सीता हाथ जोड़कर उनसे विनति करने लगती हैं (कि मेरा दुःख दूर कर डालो)' ॥ ४१ ॥

लंकाकाण्ड

जिसके साथ अनन्त (शेषावतार लक्ष्मण)-के साथ अनेक वाहिनियाँ (सेनाएँ)शोभा दे रही हैं उस भगवान् (विष्णु-स्वरूप) रामको (सामान्य) समुद्रके समान कैसे बताया जा सकता है जिसमें केवल अनेक वाहिनियाँ (नदियाँ) मात्र आ-आकर पड़ती रहती हैं ॥ ४२ ॥

उत्तरकाण्ड

तुलसीदास कहते हैं कि चित्रकूटमें पयस्विनी (मन्दाकिनी)-के तटपर जिनका कल्पवृक्ष-जैसा निवास-स्थान बना हुआ है, उन्हीं राम, लक्ष्मण और सीताका स्मरण किया करो ॥४३॥ तुलसीदास कहते हैं कि पयस्विनीमें स्नान करके फल खाओ और सब आशाएँ छोड़कर बैठे राम-जानकीके चरणोंका स्मरण करते रहो ॥४४॥ तुलसीदास कहते हैं कि स्वार्थ और परमार्थ दोनोंकी सिद्धिका केवल एक ही उपाय है कि सीता-रामके चरणोंमें प्रेम बढ़ाते चलो ॥४५॥ तुलसीदास कहते हैं कि सावधान होकर भयंकर कालका ध्यान रखे चलो (यह समझते रहो कि न जाने कब काल आ जाय) और प्रेम-सहित राम-नामका जप करते रहो ॥४६॥ तुलसीदास कहते हैं कि संकट और शोक दूर करनेवाले और सदा मंगल करनेवाले राम-नामसे प्रेम बनाए रहो ॥ ४७ ॥ कलियुगमें ज्ञान, वैराग्य योग या समाधि किसीसे कुछ काम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कलि नहिँ ज्ञान, बिराग, न जोग-समाधि। रामनाम जपु, तुलसी, नित निरुपाधि ॥४८॥
राम - नाम दुइ आखर हिय हित जानु। राम-लखन-सम, तुलसी सिखब न आनु ॥४९॥
माय, बाप, गुरु, स्वामि, राम - कर नाम। तुलसी, जेहि न सोहाइ, ताहि बिधि बाम॥५०॥
राम - नाम जपु तुलसी होइ बिसोक। लोक सकल कल्यान, नीक परलोक ॥५१॥
तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास। सबतें अधिक राम जपु, तुलसीदास ॥५२॥
महिमा राम - नाम - कै जान महेस। देत परम पद कासी, करि उपदेस ॥५३॥
जान आदि - कबि तुलसी नाम - प्रभाउ। उलटा जपत कोल - तें भे ऋषिराउ ॥५४॥
कलस - जोनि जिय जानेउ नाम - प्रताप। कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जाप ॥५५॥
तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि। बेद-पुरान पुकारत, कहत पुरारि ॥५६॥
रामनाम - पर तुलसी नेह निबाहु। ऐहि-तें अधिक, न ऐहि सम जीवन-लाहु ॥५७॥
दोष - दुरित - दुख - दारिद - दाहक नाम। सकल सुमंगल - दायक, तुलसी, राम ॥५८॥
केहि गिनती - महँ गिनती ? जस बन-घास। राम जपत भे तुलसी, तुलसीदास ॥५९॥
आगम - निगम - पुरान कहत करि लीक। तुलसी, नाम राम-कर सुमिरन नीक ॥६०॥

सधनेवाला नहीं है। तुलसीदास कहते हैं कि केवल नित्य विशुद्ध राम-नामका जप किया करो ॥ ४८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि 'राम' नामके दो अक्षरोंको राम-लक्ष्मणके समान हृदयसे अपना हित करनेवाला समझो। इसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं जो सीखनेको कहा जाय ॥४९॥ तुलसीदास कहते हैं कि माता, पिता, गुरु, स्वामी और राम-नाम जिसे अच्छा नहीं लगता तो समझो कि विधाता ही उससे मुँह फेरे बैठा है ॥ ५० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सब चिन्ता छोड़कर केवल राम-नामका जप करो, क्योंकि उसीसे इस लोकमें भी कल्याण होता है और परलोक भी सध जाता है ॥ ५१ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि तप, तीर्थ-यात्रा, यज्ञ, दान, नियम और उपवास, इन सबसे अच्छा है कि बैठकर केवल राम-नामका जप किया करो ॥५२॥ राम-नामकी महिमा यदि कोई जानता है तो शंकर ही जानते हैं जो काशीमें तारक मन्त्र (ॐ रामाय नमः या केवल 'राम')-का उपदेश देकर (मरनेवाले) प्राणियोंको परम पद (मुक्ति) दे डालते हैं ॥५३॥ राम-नामका प्रभाव यदि कोई जान पाया तो आदि-कवि वाल्मीकि ही जान पाए जो कोल जातिके होनेपर भी उलटा नाम (मरा) जपकर ऋषिराज हो गए ॥ ५४ ॥ घटयोनि (घड़ेसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य ऋषि) भी राम-नामका प्रताप जानते हैं, जिन्होंने मनमें राम-नाम जपकर खेल-खेलमें ही पूरा समुद्र सोख डाला ॥ ५५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम-नामका स्मरण करनेवालेको चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) सरलतासे प्राप्त हो जाते हैं, यह बात वेद और पुराण भी पुकार-पुकारकर कहते हैं और यही शंकर भी कहते हैं ॥ ५६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम-नामसे प्रेम करते रहोगे (राम-नाम जपते रहोगे) तभी तुम्हारा निर्वाह हो पावेगा। जीवनमें इससे बढ़कर या इसके समान दूसरा कोई लाभ नहीं है ॥५७॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम-नाम तो सारे दोष, पाप, दुःख और दरिद्रता सबको भस्म भी कर डालता है और सभी प्रकारका कल्याण भी करता है ॥५८॥ देखो ! तुलसीको कौन पूछता था ? वह तो वनकी एक घास ही थी न ! (मैं तो अत्यन्त तुच्छ प्राणी ही था) परन्तु रामका नाम जपनेसे ही तुलसी भी 'तुलसीदास' हो गए (आदरणीय हो गए) ॥५९॥ वेद, शास्त्र और पुराण रेखा खींचकर (दावेके साथ) कहते हैं और तुलसीदास भी यही कहते हैं कि राम-नामका स्मरण करना बहुत ही अच्छा है ॥६०॥ राम-नामका स्मरण करते रहो और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुमिरहु नाम राम-कर, सेवहु साधु । तुलसी उतरि जाहु भव-उदधि अगाधु ॥६१॥
काम - धेनु हरि - नाम, काम - तरु राम । सुलभ चारि फल, तुलसी, सुमिरत नाम ॥६२॥
कहत-सुनत सब, तुलसी, समुझत कोय । बड़े भाग अनुराग राम - सन होय ॥६३॥
एकहि एक सिखावत जपतै आप । तुलसी, राम - प्रेम करु, बाधक पाप ॥६४॥
मरत, कहत सब सब-कहँ, सुमिरहु राम । तुलसी, अब नहिं जपत समुझि परिनाम॥६५॥
राम - नाम जपु, तुलसी, आलस छाँड़ु । राम-बिमुख कलिकाल-क होउ न भाँड़ु ॥६६॥
राम-नाम-सम, तुलसी, मित्र न आन । जो पहुँचाव राम-पुर तनु - अवसान ॥६७॥
नाम - भरोस, नाम - बल, नाम - सनेहु । जनम-जनम रघुनन्दन तुलसिहिं देहु ॥६८॥
जनम-जनम जहँ-जहँ तन तुलसिहिं देहु । तहँ - तहँ राम निबाहिब नाम - सनेहु ॥६९॥

॥ इति श्री गोसाँई तुलसीदासजी-विरचित बरवै-रामायण[1] संपूर्णम् ॥

साधुओंकी सेवा करते रहो। तुलसीदास कहते हैं कि इतनेसे ही तुम अगाध भवसागर पार कर जाओगे ॥ ६१ ॥ हरिका नाम कामधेनुके समान है और रामचन्द्र भी कल्पवृक्षके समान हैं। तुलसीदास कहते हैं कि राम-नामका स्मरण करनेवालेको चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) सुलभ हो जाते हैं ॥६२॥ तुलसीदास कहते हैं कि सभी लोग कहते-सुनते तो हैं पर समझ कोई-कोई पाता है कि जब बड़ा भाग्य ही होता है तभी रामसे प्रेम हो पाता है ॥६३॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो स्वयं राम-नामका जप करता है वह दूसरेको भी यही सिखाता है कि रामसे प्रेम करते रहो, वे ही सब पापोंका नाश कर सकते हैं ॥६४॥ सब लोग सबसे मरते समय 'राम नाम'का स्मरण करनेको कहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जब उसका परिणाम (मुक्ति) समझते ही हो तो अभीसे क्यों नहीं राम-नाम जपना प्रारंभ कर देते ॥ ६५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि आलस्य छोड़कर रामके नामका जप करते चलो। रामसे विमुख रहकर कलिकालके भाँड़ न बनो ॥ ६६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम-नामके समान दूसरा कोई मित्र नहीं है जो शरीर छूट जानेपर भी तुम्हें रामके धामतक पहुँचा आवे ॥ ६७ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'रघुनन्दन ! जन्म-जन्ममें हमपर यही कृपा कीजिए कि हमें राम-नामका ही भरोसा हो, राम-नामका ही बल हो और रामनामसे ही प्रेम हो' ॥ ६८ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'राम ! हमें यही वर दीजिए कि प्रत्येक जन्ममें हम जो भी शरीर पावें उस शरीरसे राम-नामके प्रेमका ही निर्वाह करते रहें' (रामका नाम जपते रहें) ॥ ६९ ॥

॥ गोसाईं तुलसीदासजी-द्वारा रचा हुआ बरवै रामायण पूर्ण हुआ ॥

१. विस्तृत बरवै रामायण परिशिष्टमें देखिए ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

४

पार्वती-मंगल

बिनइ गुरुहिँ, गुनि-गनहिँ, गिरिहिँ, गन-नाथहिँ। हृदय आनि सिय-राम धरे धनु-भाथहिँ।
गावउँ, गौरि - गिरीस - बिबाह सुहावन। पाप-नसावन, पावन, मुनि-मन-भावन ॥ १ ॥
कबित-रीति नहिँ जानउँ कबि न कहावउँ। संकर-चरित-सुसरित मनहिँ अन्हवावउँ।
पर - अपबाद - बिबाद - बिदूषित बानिहिँ। पावनि करउँ सो गाइ भवेस-भवानिहिँ ॥ २ ॥
जय संबत, फागुन सुदि, पाँचैं, गुरु दिन[1]। अस्विनि बिरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिन-छिन।
गुन-निधान हिमवान धरनि-धर-धुर धनि। मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन-तिय-मनि ॥ ३ ॥
कहहु, सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह-कर। लीन्ह जाइ जग-जननि जनम जिन्हके घर।
मंगल-खानि भवानि प्रगट जब-तें भइ। तब-तें रिधि-सिधि-संपति गिरि-गृह नित नइ ॥ ४ ॥

गुरु, गुणिजन, गिरिराज (हिमाचल) एवं गणेशकी वन्दना करके तथा तूणीर और धनुष धारण किए हुए रामको और सीताको हृदयमें बसाकर शंकर और पार्वतीके विवाहका सुन्दर प्रसङ्ग गाकर सुनाए देता हूँ जिसे सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं, जो पवित्र है और जो मुनियोंको बड़ा प्रिय लगता है ॥१॥ मैं न तो काव्य-रचनाको ही कोई रीति जानता न मुझे कवि कहलानेकी ही साध है, किन्तु अपने मनको शंकरके चरित्रकी सरितामें नहला अवश्य लेना चाहता हूँ। ॥ २ ॥ दूसरोंकी बुराई और विवाद (बकवाद) करनेसे अपवित्र बनी हुई अपनी वाणीको शङ्कर-पार्वती (-के विवाह)-का प्रसङ्ग गाकर पवित्र किए लेता हूँ। जय[1] नामके संवत्सर (१५८२) की फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी, गुरुवारको, अश्विनी नक्षत्रमें मैं इस 'पार्वती-मंगलको'[2] रचना कर रहा हूँ जिसे सुनकर क्षण-क्षणपर सबको सुख ही सुख प्राप्त होगा ॥ २ ॥

पर्वतोंमें सब गुणोंसे भरे हुए और धन्यवादके पात्र हिमाचल हैं, जिनकी गृहिणी मेना त्रैलोक्यकी स्त्रियोंमें रत्न (सर्वश्रेष्ठ) हैं ॥ ३ ॥ जिनके घरमें साक्षात् जगत्‌की माताने ही आकर जन्म लिया हो उनके भाग्यकी सराहना कोई करना भी चाहे तो बताओ किस प्रकार कर सकता है ? सब मंगल करनेवाली भवानी (पार्वती) जबसे प्रकट हुईं तबसे हिमाचलके घरमें नित्य नई-नई ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति बढ़ती चली जाने लगी ॥ ४ ॥

१. काशीके प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित गणेशदत्त पाठकने गणना करके बताया है कि 'जय' नामके जिस संवत्सरकी फाल्गुन शुक्ला पंचमीको गुरुवार और अश्विनी नक्षत्र पड़ा था वह १५८२ में पड़ा था। उस समय गोस्वामीजीकी अवस्था २८ वर्षकी थी।

२. पार्वतीमंगल, जानकी-मंगल और रामलला-नहछू तीनों मंगल एक ही दिन लिख डाले गए थे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नित नव सकल कल्यान - मंगल - मोदमय मुनि मानहीं।
ब्रह्मादि सुर, नर, नाग - अति अनुराग भाग बखानहीं॥
पितु, मातु, प्रिय परिवार हरषहिं निरखि, पालहिं, लालहीं।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्र - भूषन - भालहीं॥ ५॥

कुँवरि सयानि बिलोकि मातु-पितु सोचहिं। गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं।
एक समय हिमवान - भवन नारद गए। गिरिवर-मैना मुदित मुनिहिं पूजत भए॥ ६॥
उमहिं बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भइ। मुनि मन कीन्ह प्रनाम, बचन आसिष दइ।
कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ। रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ॥ ७॥
अति सनेह सति भाय पायँ परि पुनि-पुनि। कह मैना मृदु बचन-'सुनिय बिनती मुनि!
तुम तिभुवन तिहुँकाल - बिचार-बिसारद। पारबती-अनुरूप कहिय बर, नारद!'॥ ८॥
मुनि कह-'चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ-जहँ। गिरिवर! सुनिय सरहना राउरि तहँ-तहँ।
भूरि भाग तुम-सरिस कतहुँ कोउ नाहिन। कछु न अगम, सब सुगम, भयो बिधि दाहिन॥ ९॥

दाहिन भए बिधि, सुगम सब, सुनि तजहु चित चिन्ता नई।
बर प्रथम बिरचा बिरचि, बिरची मंगला मंगलमई॥

आनन्दमें भरे हुए सभी मुनिराज (पार्वतीके प्रकट होनेको) सब प्रकारसे कल्याण और मंगल करनेवाला मानते हैं। ब्रह्मा आदि देवता, मनुष्य, नाग सब बड़े प्रेमसे हिमाचलके भाग्यकी सराहना करते रहते हैं। पार्वतीको देख-देखकर पिता, माता और सभी परिवारके लोग हर्षित होते हैं और प्यारसे उनका लालन-पालन करते हैं। (पार्वतीजी) दिन-दिन ऐसे बढ़ने लगीं जैसे शुक्ल पक्षमें चन्द्रभूषण शंकरके ललाटपर स्थित बाल चन्द्रमाकी चाँदनी बढ़ती चलती है॥ ५॥

कुमारी पार्वती जब सयानी हो चलीं तो पिता-माताको बड़ी चिन्ता सताने लगी। वे रात-दिन इसी उधेड़बुनमें पड़े रहने लगे कि पार्वतीको उसके योग्य वर (पति) कैसे मिले। इसी बीच एक दिन नारद मुनि घूमते-घामते हिमाचलकी ओर आ निकले। गिरिराज और मेनाने बड़े आदरसे मुनिकी आवभगत की॥६॥ माता मेनाने पार्वतीको बुलाकर नारदके पैरोंपर ला पड़ाया (प्रणाम कराया)। नारदने पार्वतीको मन ही मन तो (जगन्माता मानकर) प्रणाम किया, पर प्रकट रूपमें आशीर्वाद दिया। पार्वती अपने पिताके कंधेसे लगकर खड़ी हुई बड़ी सुन्दर लग रही थीं। उनका रूप ऐसा सलोना था कि उसका वर्णन किया नहीं जा सकता। बस जिसने उन्हें देखा है, वही उसे समझ सकता है॥७॥ मेनाने बड़े स्नेह और सच्चे भावसे नारद मुनिके पैरोंपर बार-बार गिरकर कोमल वाणीसे पूछा—'मुनिराज! मेरी एक विनति है। आप तो त्रैलोक्यमें तीनों कालों (भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्)-का विचार कर सकनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इसलिये पार्वतीके योग्य कोई वर कहीं आपको जानमें हो तो बतलाइए।' (८) नारद मुनिने कहा—'मैं चौदहों भुवनों तथा संसारमें जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ-वहाँ गिरिराज हिमाचल! आपकी मैं बड़ी प्रशंसा सुनता हूँ। आपके समान भाग्यशाली मुझे कहीं कोई दिखाई नहीं देता। आपके लिये कहीं कोई काम कठिन नहीं है। भाग्य आपके साथ है, अतः, आपके लिये सब कुछ सुगम है। (९) जब विधाता साथ हैं और आपके लिये सब कार्य सुगम हैं, तब यह नई चिन्ता चित्तसे निकाल फेंकिए। विधाताने पहले वरकी रचना की तब इस मंगलमयी मंगला देवी (पार्वती)-की रचना

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिधि - लोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही।
हिमवान - कन्या जोग बर बाउर बिबुध - बंदित सही ॥१०॥
मोरेहु मन अस आव, मिलिहि बर बाउर'। लखि नारद-नारदी उमहिँ सुख भा उर।
सुनि सहमे परि पाइँ, कहत भए दंपति।'गिरिजहि लागि हमार जिवन, सुख, संपति ॥११॥
नाथ! कहिय सोइ जतन, मिटइ जेहि दूषन'। 'दोषदलन'-मुनि कहेउ–'बाल-बिधुभूषन।
अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन। कोटि कल्पतरु - सरिस संभु-अवराधन ॥१२॥
तुम्हरे आस्रम अबहिँ ईस तप साधहिँ। कहिय उमहिँ मन लाइ जाइ अवराधहिँ'।
कहि उपाय दंपतिहिँ मुदित मुनिवर गए। अति सनेह पितु मातु उमहिँ सिखवत भए ॥१३॥
सजि समाज गिरिराज दीन्हँ सब गिरिजहि। बदति जननि–'जगदीस!जुवति जिनि सिरजहि'।
जननि-जनक उपदेस महेस - निसेवहि। अति आदर-अनुराग-भगति मन भेवहि ॥१४॥
भेवहि भगति मन, बचन, करम अनन्य गति हर-चरनकी।
गौरव, सनेह, सँकोच, सेवा जाइ केहि बिधि बरनकी ॥

की है। ब्रह्मलोकमेँ भी आपकी चर्चा चलती रहती है और स्वयं ब्रह्माने भी यही कहा है कि हिमाचलकी कन्याके योग्य यदि कोई वर है तो वही बावला वर है जिसकी वन्दना सब देवता निरंतर करते रहते हैँ ॥१०॥ मैं भी यही समझता हूँ कि इस कन्याको मिलेगा तो वही बावला वर ही मिलेगा।' नारद मुनिकी यह नारदी (अटपटी, रहस्यभरी) बात सुनकर पार्वती तो प्रसन्न हो उठीँ किन्तु माता-पिता तो यह सुनते ही काँप उठे और मुनिराजके पैरोँपर गिरकर बोल उठे—'हमारा जीवन, सुख और सम्पत्ति सब कुछ इस गिरिजाके लिये ही है!। ११ ॥ इसलिये नाथ! कोई ऐसा उपाय बतलाइए कि इसका यह दोष मिट जाय।'

नारद मुनिने उन्हेँ समझाया कि 'चन्द्रभूषण शंकर तो स्वयं सब दोष मिटा डाल सकते हैँ। साहसके साथ साधन किया जाय तो अवश्य सफल होता है और सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है। शंकरकी आराधना तो करोड़ोँ कल्पवृक्षोँके समान फल बरसाती है ॥ १२ ॥ शंकर आजकल आपके आश्रममेँ (हिमालयपर) ही बैठे तप कर रहे हैँ। पार्वतीसे कहो कि मन लगाकर शंकर भगवान्‌की आराधना जा करेँ।'

माता-पिताको उपाय बताकर आनन्दपूर्वक उधर नारद मुनि गए, इधर बड़े स्नेहसे पिता-माता भी पार्वतीको (तपस्याकी) शिक्षा देने लगे ॥ १३ ॥ हिमाचलने पार्वतीकी तपस्याकी सारी तैयारी पूरी कर धरी। माता मेना मनमेँ कह उठीँ–'भगवान् कुछ भी बनाना पर कन्या न बनाना।' इधर माता-पिताके उपदेशसे पार्वती भी शंकरकी सेवामेँ जा जुटीँ। उन्होँने अत्यन्त आदर, प्रेम और भक्तिके साथ अपना मन (उनकी सेवामेँ) जा लगाया ॥ १४ ॥

पार्वतीने अपना मन शंकरकी भक्तिमेँ ऐसा डुबो धरा कि मन, वचन और कर्मसे एक मात्र शंकरके चरणोँको छोड़कर उनका किसी दूसरी ओर ध्यान ही नहीँ रह गया। उन्होँने जिस गौरव (आदर), स्नेह और संकोच (कि मैं शिवको पति बनाने चली हूँ)-के साथ शिवकी सेवा की उसका वर्णन किया भी जाय तो किस प्रकार किया जाय ? इतनेपर भी गुण, रूप और यौवनसे पूर्ण उस सुन्दरी (पार्वती)-को

१. इच्छा प्रकट करती हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गुन-रूप, जोबन-सींव, सुन्दरि निरखि छोभ न हर हिए।
ते धीर, अछत बिकार-हेतु, जे रहत मनसिज बस किए ॥१५॥

देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ। कहेउ, करिय सुर-काज, साज सजि धायउ।
बामदेव - सन काम बाम होइ बरतेउ। जग-जय-मद निदरेसि, पायेसि फर तेउ ॥१६॥
रति पति-हीन मलीन बिलोकि बिसूरति। नीलकंठ मृदु सील - कृपामय मूरति।
आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ। सिव उदास, तजि बास, अनत गम कीन्हेउ ॥१७॥
उमा नेह-बस बिकल, देह सुधि-बुधि गई। कलप-बेलि बन बढ़त, बिषम हिम जनु हई।
समाचार सब सखिन जाइ घर-घर कहे। सुनत मातु-पितु-परिजन दारुन दुख दहे ॥१८॥
जाइ देखि अति प्रेम उमहिँ उर लावहिँ। बिलपहिँ, बाम बिधातहिँ दोष लगावहिँ।
जो न होहिँ मंगल-मग सुर-बिधि बाधक। तौ अभिमत फल पावहिँ करि श्रम साधक ॥१९॥

साधक - कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम - को।
को सुनइ, काहि सोहाइ घर, चित चहत चन्द्र ललाम - को ॥

देखकर भी शंकरका मन डोलकर न दिया। जो लोग मन डिगानेवाले सब कारण होते हुए भी कामदेवको अपने वशमें किए रहते हैं, वास्तवमें वे ही धीर पुरुष होते हैं ॥ १५ ॥ देवताओंने देखा कि अवसर अच्छा है। उन्होंने झट कामदेवको बुलाकर कहा—'बस, तुम देवताओंका इतना काम जाकर कर डालो तो बड़ा काम हो (कि शिवके मनमें पार्वतीके प्रति प्रेम जगा दो)'। इतना सुनते ही कामदेव सज-धजकर चल दिया। उसने जाकर शंकरके साथ बड़ा उलटा-सीधा व्यवहार प्रारंभ कर दिया। जगद्विजयी होनेके मदमें उसने शिवका जो निरादर किया उसका फल भी उसे वैसा ही मिल गया (वह भस्म हो गया) ॥ १६ ॥ कामदेवकी स्त्री रतिको पति-हीन, दुखी और कलपती देखकर कोमल स्वभाववाले, कृपाकी मूर्त्ति, आशुतोष भगवान् नीलकण्ठने उसे सन्तुष्ट करते हुए वर दे दिया (कि द्वापरमें कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नके रूपमें कामदेव अवतार लेकर तुम्हारा पति होगा और यह अंगहीन होकर भी सबको प्रभावित करता रहेगा)। पर उसके पश्चात् उदासीन (विरक्त) शिव वहाँ ठहरे नहीं, वह स्थान छोड़कर अन्यत्र चले गए ॥ १७ ॥ इधर शंकरके प्रेममें पार्वती व्याकुल हो उठीं। उनकी सारी सुध-बुध जाती रही मानो वनमें बढ़ती हुई कल्पलताको पाला मार गया हो। यह सारा समाचार पार्वतीकी सहेलियोंने घर-घर ले जा पहुँचाया जिसे सुनकर माता मेना तथा परिवारके अन्य सभी लोग बहुत दुखी हो चले ॥१८॥ उन सबने जाकर पार्वतीको जो देखा तो अत्यन्त प्रेम-विह्वल होकर उन्हें हृदयसे पकड़ लिपटाया। वे रो-रोकर सारा दोष भाग्यको देने लगे कि यदि देवता और विधाता (भाग्य) ऐसे शुभ काममें अड़ंगा न लगाया करें तो साधक लोग श्रम करनेपर मनोवाञ्छित फल अवश्य पा लिया करें ॥ १९ ॥

सब लोगोंने तपस्या करनेवालों (साधकों)-के कष्ट सुना-सुनाकर पार्वतीको घर लौट चलनेका बहुत आग्रह किया परन्तु उनका आग्रह सुनता कौन था और घर अच्छा किसे लगता था जब कि चित्त चन्द्र-ललाम (शंकर)-में जा लगा हो। पार्वतीने सबको समझा बुझा-कर और अपना मन पक्का

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समुझाइ सबहिँ, दृढ़ाइ मन, पितु - मातु - आयसु पाइकै।
लागी करन पुनि अगम तप, तुलसी कहै किमि गाइकै ॥२०॥

फिरेउ मातु-पितु-परिजन लखि गिरिजा-पन। जेहि अनुराग लाग चित, सोइ हितु आपन।
तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु। मुनि-मनसहुँ-तें अगम तपहिं, लायउ मनु ॥२१॥
सकुचहिँ बसन - बिभूषन परसत जो बपु। तेहि सरीर हर-हेतु अरंभेउ बड़ तपु।
पूजहि सिवहिँ, समय तिहुँ करहि निमज्जन। देखि प्रेम, ब्रत, नेम सराहहिँ सज्जन ॥२२॥
नींद न भूख-पियास, सरिस निसि-बासर। नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हर।
कंद-मूल-फल असन, कबहुँ जल-पवनहिँ। सूख बेलके पात खात दिन गवनहिँ ॥२३॥
नाम अपरना भयो परन जब परिहरे। नवल, धवल, कल कीरति सकल भुवन भरे।
देखि सराहहिँ गिरजहिँ मुनिवर-मुनि बहु। अस तप सुना न दीख, कबहुँ, काहू, कहुँ ॥२४॥

काहू न देख्यौ, कहहिँ यह तप जोग फल फल-चारि-का।
नहिँ जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर - कुमारिका ॥
बटु - बेष, पेखन पेम, पन, ब्रत, नेम ससि-सेखर गए।
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहिँ, बचन मृदु बोलत भए ॥२५॥

करके पिता-माताकी आज्ञा लेकर पुनः इतनी कठिन तपस्या प्रारंभ कर दी कि तुलसीदास उसका वर्णन करना भी चाहें तो कैसे कर पा सकते हैं ? ॥ २० ॥

फिर तो पार्वतीने रोगके समान सब सुख-भोगोंको और सर्पोंके समान अपने कुटुम्बियोंको त्याग दिया और ऐसी तपस्या ठान दी जिसकी कल्पना तक भी मुनि लोग नहीं कर पा सकते ॥ २१ ॥ पार्वतीके जिस कोमल शरीरको स्पर्श करनेमें उनके वस्त्र और आभूषण-तक संकोच करते थे, उसी कोमल शरीरसे उन्होंने शंकरके लिये कठिन तप करना आरम्भ कर दिया। तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न और सायं) स्नान करके वे शिवकी पूजा करने लगीं। उनके प्रेम, व्रत और नियमको जो भी सज्जन देखते थे वे ही सराहना कर उठते थे ॥ २२ ॥ उन्हें (पार्वतीको) न नींद ही लगती थी, न भूख-प्यास ही सताती थी। उनके लिये दिन और रात सब एक हो गए थे। उनकी आँखोंमें आँसू, मुखमें (शिवका) नाम, शरीरमें पुलक और हृदयमें केवल शिवका ही ध्यान रह गया था। वे कभी कंद, मूल और फल खाकर, तो कभी केवल जल और वायु पीकर ही रह जाती थीं। कभी-कभी तो केवल बेलके सूखे पत्ते ही चबाकर वे दिन बिता देती थीं ॥ २३ ॥ और जबसे उन्होंने पत्ते चबाने भी छोड़ दिए तबसे उनका नाम 'अपर्णा' (पत्ते भी छोड़ देनेवाली) पड़ गया। फिर तो उनके (तपकी) नवीन, उज्ज्वल और सराहनीय कीर्त्ति सब लोकोंमें जा छाई। गिरिजाकी (ऐसी कठोर) तपस्या देखकर ऋषि और महर्षि भी उनकी सराहना करते हुए कहने लगे कि कभी, कहीं, किसीको ऐसी कठिन तपस्या करते न तो सुना ही है, न देखा ही है ॥ २४ ॥ सब लोग कहने लगे कि ऐसी तपस्या कहीं देखी नहीं गई है। यही तो ऐसी तपस्या है कि इससे चाहें तो चारों पदार्थ मिल सकते हैं। पर्वतराजकी कन्या (पार्वती) किसे चाहती हैं यह बात न तो कोई जान ही पा रहा था न किसीसे वे बता ही रही थीं। तब स्वयं भगवान् शंकर ही ब्रह्मचारीके वेषमें उनके प्रेम, प्रण, व्रत और नियम आदि परखनेके लिये वहाँ जा पहुँचे। (आते ही) शंकरने मन ही मन अपनेको गिरिजाके हाथ समर्पण कर दिया और फिर कोमल वाणीसे कुछ कहने चले ॥ २५ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ। मोर कठोर सुभाय, हृदय खसि आयउ॥
बंस प्रसंसि, मातु-पितु कहि सब लायक। अमिय बचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक॥२६॥
'देवि! करौं कछु बिनय, सो बिलग न मानिबि। कहौं सनेह, सुभाय, साँच जिय जानिबि॥
जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता-कर। तीय-रतन तुम उपजिहु भव-रतनाकर॥२७॥
अगम न कछु जग तुम-कहँ, मोहिं अस सूझइ। बिनु कामना कलेस, कलेस न बूझइ॥
जौ बर लागि करहु तप, तौ लरिकाइय। पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय?॥२८॥
मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि। सुधा कि रोगिहिं चाहति, रतन कि राजहिं?'
लखि न परेउ तप-कारन बटु हिय हारेउ। सुनि प्रिय बचन सखी-मुख गौरिं निहारेउ॥२९॥

गौरी निहारेउ सखी-मुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
तप करहि हर-हितु-सुनि बिहँसि बटु कहत मुरुखाई महा॥
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो।
हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो॥३०॥

कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं। अगुन, अमान, अजाति, मातु-पितु-हीनहिं॥

गिरिजाकी यह दशा देखकर करुणानिधान शंकर बड़े दुखी हो चले और उनके हृदयमें बड़ा पछतावा होने लगा कि मैंने इनके साथ बड़ा ही कठोर व्यवहार किया है। उनके वंशकी प्रशंसा करके तथा माता-पिताको परम योग्य बताकर वे ऐसे अमृतके समान वचन बोले जो सुननेमें बड़े मधुर लगते थे– ॥ २६ ॥ 'देवि! मैं आपसे जो विनय कर रहा हूँ उसे आप कुछ और न समझ बैठिएगा। अपने चित्तमें केवल इतना ही समझिएगा कि मैं बड़े प्रेमसे अपने मनका सच्चा-सच्चा भाव बताए डाल रहा हूँ। आपने संसारमें जन्म लेकर अपने माता-पिताका बहुत यश बढ़ाया है। आप इस संसार-सागरमें स्त्रियोंमें रत्न होकर उत्पन्न हुई हैं॥ २७ ॥ मैं तो यही समझता हूँ कि संसारका कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो आपको सरलतासे मिल न जा सके। फिर भी आप किसी कामनाके बिना ही इतना कष्ट उठाकर भी उसे कष्ट नहीं मान रही हैं। यदि आप केवल वरकी प्राप्तिके लिये यह तप ठाने हुए हैं तो यह आपका सरासर लड़कपन है। जब घर बैठे पारस मणि हाथ लग सकता हो तब सुमेरुपर जानेकी भला क्या आवश्यकता है? ॥२८॥ मेरी तो यही समझमें नहीं आ रहा है आप किसी कामनाके बिना यह क्लेश उठानेका कष्ट क्यों कर रही हैं। क्या अमृत भी कहीं रोगीको खोजता फिरता है या रत्न भी क्या राजाको खोजता फिरता है?' ब्रह्मचारी पूछ-पूछकर हार गए, पर उन्हें गौरीके तपका कोई कारण समझमें न आकर दिया। बटुके प्रिय वचन सुनकर गौरीने अपनी सखीकी ओर चितवन घुमा फेरी (कि तुम्हें बता दो)॥ २९ ॥

जब गौरीने सखीकी ओर देखा, तब सखीने गौरीका संकेत पाकर तपका कारण बताते हुए कहा—'ये तो शंकरसे विवाहके लिये तप कर रही हैं।' यह सुनकर तो बटु ठठाकर हँस पड़े और बोले—यह तो बड़ी भारी मूर्खताकी बात है। जिसने भी आपको यह उपदेश दिया है कि इतना क्लेश उठाकर बावले वरको वरण करो, वह निश्चय ही आपका बड़ा भारी शत्रु है। यह मैं स्वभावसे ही आपके हितकी बात कहे दे रहा हूँ॥ ३० ॥ भला यह तो बताइए कि आप क्या समझकर उस तिड़-बिड़ंगे वरपर रीझ बैठी हैं? उसमें न गुण है, न उसका कहीं मान है, न उसकी कोई जाति है, न उसके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भीख माँगि भव खाहिँ, चिता नित सोवहिँ। नाचहिँ नगन, पिसाच-पिसाचिनि जोवहिँ ॥३१॥
भाँग-धतूर अहार, छार लपटावहिँ। जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहिँ भावहिँ ॥
सुमुखि सुलोचनि ! हर मुख पंच, तिलोचन। बामदेव फुर नाम काम-मद-मोचन ॥३२॥
एकउ हरहि न बर गुन, कोटिक दूषन। नर-कपाल, गज-खाल, ब्याल, बिष, भूषन ॥
कहँ राउर गुन - सील - सरूप सुहावन। कहाँ अमंगल बेष, बिसेष भयावन ॥३३॥
जो सोचहिँ ससिकलहिँ सो सोचहिँ रौरेहिँ। कहा मोर मन धरि, न बरिय बर बौरेहिँ ॥
हिये हेरि हठ तजहु, हठे दुख पइहहु। ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितइहहु ॥३४॥

पछिताब भूत - पिसाच - प्रेत जनेत अइहैं साजिकै।
जम-धार - सरिस निहारि सब नर - नारि चलिहइँ भाजिकै ॥
गज - अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरिकै।
कोउ प्रगट, कोउ हिय कहहि 'मिलवत अमिय-माहुर घोरिकै' ॥३५॥

तुमहिँ सहित असवार बसह जब होइहहिँ। निरखि नगर नर-नारि बिहँसि मुख गोइहहिँ ॥
बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ। अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ? ॥३६॥

माता-पिताका ही ठीक-ठिकाना है। वह महादेव भीख माँगकर खाते, नित्य श्मशानपर जा पड़ते और पिशाच-पिशाचिनियोंके आगे नंगे होकर नाचते हैं ॥ ३१ ॥ उनका भोजन भी है भाँग और धतूरा। शरीर-पर भी वे भस्म पोते रहते हैं। वे योगी हैं, जटाधारी हैं और बड़े क्रोधी हैं। संसारका कोई भोग-विलास उन्हें भाता नहीं। देखो सुमुखी ! सुलोचनी ! यों भी देखो तो महादेवके पाँच मुँह और तीन आँखें हैं। उनका वामदेव (टेढ़ा देवता) नाम सचमुच बड़ा सटीक है। वे कामदेवका मद भी झाड़े बैठे हैं ॥ ३२ ॥ महादेवमें अच्छा गुण ढूँढने चलो तो एक भी न मिलेगा। हाँ, दोष जानना चाहो तो करोड़ों हैं। मनुष्यकी खोपड़ी, हाथीकी खाल, साँप और विष—ये ही उनके आभूषण हैं। कहाँ आपका यह सुन्दर गुण, शील और स्वरूप और कहाँ उनका वह भयानक और अमंगल रूप ॥३३॥ जो लोग चन्द्रकलाके लिये दुखी हैं (कि वह कहाँ शिवके सिरपर जा फँसी) वे आपके लिये भी पछतावेंगे (कि एक तो चन्द्रकला महादेवके सिरपर रहकर अपनी प्रतिष्ठा गँवाए बैठी है, दूसरे आप भी उसे वर बनाकर अपना जीवन बिगाड़ बैठीं)। इसलिये मेरा कहना मानिए और उस पागल वरके फेरमें न पड़िए। हृदयमें भली भाँति समझ-बूझकर आना हठ छोड़ दीजिए क्योंकि इस हठसे केवल दुःख ही दुःख हाथ लगेगा ॥ ३४ ॥ मैं बताए देता हूँ कि जब भूत, प्रेत और पिशाच बारात चढ़ाकर यहाँ आवेंगे तब आप हाथ मल-मलकर पछताइएगा। यमराजकी सेनाके समान (वह बारात) जो भी स्त्री-पुरुष देखेंगे सब भाग खड़े होंगे। हाथीकी खालके साथ जब आपकी सखियाँ आपके दिव्य दुकूल (चादर)-का गँठबन्धन करने लगेंगी उस समय वे सब मुँह फेर-फेरकर हँसेंगी। उस समय कुछ तो प्रकट और कुछ मनमें तो कहेंगी ही कि यह तो अमृतके साथ विष घोलकर मिलाया जा रहा है ॥ ३५ ॥ देखिए, जब शिव आपके साथ बैलपर चढ़कर चलेंगे, तब नगरके सारे नर-नारी देख-देखकर हँसीसे मुँह छिपा बैठेंगे।' उस ब्रह्मचारीके जो मनमें आ रहा था वही टेढ़ी-सीधी बातें करता बड़बड़ किए चला जा रहा था, किन्तु अचल-सुता (पार्वती)-का मन ऐसा अचल था कि उसपर (उस बटुके कुतर्कोंके) पवनका कोई प्रभाव नहीं पड़ पा रहा था। (३६) किसीके सच्चे स्नेह और सच्ची रुचिको जो पलटना

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साँच सनेह, साँचि रुचि, जो हठि फेरइ। सावन-सरित सिंधु-रुख सूप-सोँ घेरइ॥
मनि-बिनु फनि, जल-हीन मीन तनु त्यागइ। सो कि दोष-गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ॥३७॥
करन-कटुक बटु-बचन बिसिख-सम हिय हए। अरुन नयन, चढ़ि भ्रुकुटि, अधर फरकत भए॥
बोली फिरि लखि सखिहि, काँप तन थरथर। 'आलि! बिदा करु बटुहिं बेगि, बड़ बरबर॥३८॥
कहुँ तिय होहि सयानि सुनहि सिख राउरि। बौरेहिके अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि।
दोस-निधान इसान, सत्य सब भाखेउ। मेटि को सकइ सो आँक जो बिधि लिखि राखेउ॥३९॥
को करि बाद - बिबाद, बिषाद बढ़ावइ? मीठ ताहि कबि कहहिं, जाहि जोइ भावइ।
भइ बड़ि बार आलि! कहुँ काज सिधारहिं। बकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहिं॥४०॥

जनि कहहि कछु बिपरीत, जानत प्रीति-रीति न बातकी।
सिव-साधु - निंदक मन्द अति, जोउ सुनै सोउ बड़ पातकी॥
सुनि बचन, सोधि सनेह, तुलसी साँच, अबिचल, पावनो।
भए प्रगट करुनासिंधु संकर, भाल चंद्र सुहावनो॥४१॥
सुन्दर गौर सरीर भूति भलि सोहइ। लोचन-भाल बिसाल, बदन मन मोहइ।
सैल-कुमारि निहारि मनोहर मूरति। सजल नयन, हिय हरष, पुलक तनु पूरति॥४२॥

चाहता हो, उसका प्रयास वैसा ही व्यर्थ है जैसे कोई समुद्रकी ओर बहनेवाली सावनकी नदीको सूप (छाज)से रोकनेकी चेष्टा करता हो। जैसे मणिके बिना सर्प और पानीके बिना मछली अपना शरीर त्याग देती है वैसे ही जो जिसके साथ प्रेम करता है वह क्या कभी उसके गुण-दोषोंपर विचार किया करता है? ॥ ३७ ॥ उस ब्रह्मचारीके कर्णकटु वचनोंने पार्वतीके हृदयको बाणके समान जा बेधा। उनकी आँखें लाल हो उठीं, भौंहें तन गईं और ओठ फड़कने लगे। थर-थर काँपती हुई वे सखीकी ओर देखकर बोलीं—'देखो सखी! इस बहुत बड़बड़ करनेवाले ब्रह्मचारीको झटपट यहाँसे बिदा करो। ॥ ३८ ॥ कोई समझदार स्त्री हो तो भलेही आपकी ऐसी सिखावन बैठकर सुन ले? पर मैं तो अब उसी पागलके प्रेममें पड़कर पगली हो बैठी हूँ। आपने सत्य ही कहा है कि ईशान (महादेव)में सब दोष ही दोष हैं। पर विधाताने मेरे भाग्यमें जो लेख लिख छोड़ा है, उसे कौन मिटा पा सकता है? ॥ ३९ ॥ आपसे व्यर्थ बकबक करके कौन अपना जी भारी करे? कवि उसीको कि मीठा (प्यारा) बताते हैं जो जिसको भाता हो (अच्छा लगता हो)। देखो सखी! इन्हें बड़ी देर हुई जा रही है। किसी कामसे कहीं जाना हो तो चले जायँ। ऐसा न हो कि कहीं फिर कुछ बकने लगें क्योंकि कुछ मनमें बैठे ऊटपटाँग सोच रहे हैं॥ ४० ॥ ये कोई उलटी-सीधी बात न कह बैठें, क्योंकि ये बकवादी क्या जानें प्रेम कैसे किया जाता है। शिव और साधुकी जो निन्दा करता है वह अत्यन्त मूर्ख होता है और जो (इनकी निन्दा) सुनता है उसे भी बड़ा पाप लगता है।'

तुलसीदास कहते हैं कि (पार्वतीकी) बात सुनकर और उनके सच्चे, अटल और पवित्र प्रेमको परखकर सिरपर सुन्दर चन्द्रमा धारण किए हुए करुणानिधान शंकर अपने रूपमें आ खड़े हुए ॥ ४१ ॥ (शंकरके) सुन्दर और गोरे शरीरपर पुती हुई विभूति (भस्म) चमाचम चमचमा रही थी। उनके चौड़े मस्तकपर (तीसरा) नेत्र और उनका मुखड़ा मनको मोहित किए डाल रहा था। शंकरकी यह मनोहर मूर्ति देखते ही पार्वतीके नेत्र डबडबा चले, हृदय फूल उठा और शरीर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुनि पुनि करइ प्रनाम, न कछु आवत कहि। 'देखौं सपन कि सौंतुख ससिसेखर, सहि !'
जैसे जनम-दरिद्र महामनि पावइ। पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ ॥४३॥
सफल मनोरथ भयउ, गौरि सोहइ सुठि। घरतें खेलन मनहुँ अबहिं आई उठि।
देखि रूप अनुराग महेस भये बस। कहत बचन जनु सानि सनेह-सुधा-रस ॥४४॥
'हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ। पारबती तप-प्रेम-मोल मोहिं लीन्हेउ।
अब जो कहहु सो करउँ बिलंब न यहि घरि'। सुनि महेस मृदु बचन पुलकि पाँएन्हिं परि॥४५॥

परि पाँयँ, सखि-मुख कहि जनायो आप बाप-अधीनता।
परितोषि गिरिजहिं, चले बरनत प्रीति नीति - प्रबीनता॥
हर हृदय धरि, घर गौरि गवनी, कीन्ह बिधि मनभावनो।
आनंद - प्रेम समाज, मंगल गान, बाज बधावनो ॥४६॥

सिव सुमिरे मुनि सात, आइ सिर नाइन्हिं। कीन्ह संभु सनमान, जनम-फल पाइन्हिं।
'सुमिरहिं सकृत तुम्हइँ जन तेइ सुकृतीबर। नाथ जिन्हहिं सुधि करिय तिन्हहिं सम तेइ,हर।४७।
सुनि मुनि-बिनय महेस परम सुख पायउ। कथा-प्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ।

रोमाञ्चित हो उठा ॥ ४२ ॥ वे बार-बार (शंकरको) प्रणाम किए जा रही थीं। उनके मुँहसे कुछ बोल नहीं निकल पा रहा था।' (वे मन ही मन सोचे जा रही थीं कि) 'क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ या सचमुच शशि-शेखर शंकरको प्रत्यक्ष देख रही हूँ ?' जैसे कोई जन्मका दरिद्री कोई श्रेष्ठ रत्न पा जाय और उसे देखकर भी उसके मनमें विश्वास न हो पावे (वही दशा पार्वतीकी हुई जा रही थी) ॥ ४३ ॥ उनके सारे मनोरथ सफल हो गए। उस समय गौरी ऐसी सलोनी लग रही थीं मानो अभी घरसे खेलनेके लिये उठी चली आई हों। उनका रूप और प्रेम देखकर शंकर तो जैसे उनपर लट्टू हुए पड़ रहे थे। वे प्रेमके अमृतसे भरे वचन बोले—॥ ४४ ॥ 'मुझे आजतक किसीने भी ऐसा कृतज्ञ (वशमें) नहीं किया (जैसा तुमने किया है)। पार्वती ! तुमने तो अपनी तपस्या और प्रेमसे मुझे मोल ले डाला (अपना बना लिया)। देखो, अब विलंब करनेकी आवश्यकता नहीं है। अब जो कहो वही करनेको तैयार हूँ।' शंकरके ये वचन सुनकर पार्वती पुलकित होकर उनके पैरोंपर जा पड़ीं। ॥ ४५ ॥ शंकरके चरणोंपर गिरकर चन्द्रमुखी पार्वतीने अपनी सखीके मुँहसे कहलाया —'मैं तो अपने पिताके अधीन हूँ (विवाह तो मेरे पिता ही निश्चय करेंगे)।' तब पार्वतीको ढाढ़स देकर, उनकी प्रीतिकी सराहना करते हुए शंकर उठकर चले गए। गौरी भी महादेवको हृदयमें धारण करके घर लौट आईं। विधाताने उनके मनकी बात रख ली। उनका सारा समाज (परिवार) आनन्द और प्रेममें मग्न होकर मंगल गान कर उठा और चारों ओर बधाइयाँ बजने लगीं ॥ ४६ ॥

शिवने ज्यों ही स्मरण किया त्यों ही सप्त ऋषियोंने (शिवको) आ सिर नवाया। शंकरने भी उनकी बड़ी आवभगत की। ऋषियोंने भी समझा कि हमें जन्म लेनेका फल मिल गया (कि शिवने हमें स्मरण किया है)। वे बोले—'शंकर ! जो मनुष्य बड़े पुण्यसे आपका ध्यान करते हैं वे बड़े ही पुण्यात्मा हैं। किन्तु प्रभु जिनका स्मरण करते हैं, उनके समान तो वे ही हैं (दूसरा कोई नहीं है)' ॥४७॥ मुनियोंके ये वचन सुनकर शंकर बहुत प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने सारा प्रसंग मुनियोंको सुना डाला और कहा—'आप सब लोग हिमाचलके घर जाकर (पार्वतीके विवाहका) प्रसंग जा छेड़िए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'जाहु हिमाचल-गेह प्रसंग चलायहु। जो मन मान तुम्हार तौ लगन लिखायहु ॥४८॥
अरुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि। नारि कुसल इहि काज, काज बनि आइहि'।
'दुलहिनि उमा, ईस बर, साधक ए मुनि। बनिहि अवसि यह काज', गगन भइ अस धुनि ।४९।
भयउ अकनि आनंद महेस-मुनीसन्हँ। देहिँ सुलोचनि सगुन, कलस लिऐ सीसन्हँ।
सिव-सौं कहि दिन-ठाउँ बहोरि मिलन जहँ। चले मुदित मुनिराज गए गिरिवर-पहँ ॥५०॥

गिरि-गेह गे अति नेह, आदर पूजि, पहुनाई करी।
घरवात[1] - घरनि - समेत कन्या आनि सब आगे धरी॥
सुख पाइ, बात चलाइ, सुदिन सोधाइ, गिरिहिँ सिखाइकै।
ऋषि सात प्रातहिँ चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइकै ॥५१॥

बिप्रबृन्द सम्मानि, पूजि कुल-गुरु-सुर। परेउ निसानहिँ घाउ, चाउ चहुँ दिसि पुर।
गिरि, बन, सरित, सिंधु, सर सुनइ जो पायउ। सब-कहँ गिरिबर-नायक नेवति पठायउ ॥५२॥
धरि धरि सुंदर बेष चले हरषित हिय। चौंर, चीर, उपहार, हार, मनिगन लिय।
कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन। हरषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन ॥५३॥
तोरन, कलस, चँवर, धुज बिबिध बनाइन्हि। हाट पटोरन्हि छाय, सफल तरु लाइन्हि।

यदि आप ठीक समझें तो उनसे विवाहका लग्न-पत्र भी हाथों हाथ लिखवाते लाइएगा ॥ ४८ ॥ मेनासे मिलकर यदि अरुन्धती (वशिष्ठकी पत्नी) ही विवाहकी बात चलावें तो काम बन जायगा क्योंकि स्त्रियाँ ऐसे कामोंमें बहुत कुशल होती हैं।' तभी ऐसी आकाशवाणी हुई—'पार्वती दुलहिन होंगी, शंकर वर होंगे और ये मुनि लोग साधक होंगे। यह काम अवश्य हो जायगा' ॥ ४९ ॥ आकाशवाणी सुनकर शिव और सप्तर्षि-गण बड़े प्रसन्न हुए। उसी समय सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ अपने सिरोंपर जल-भरे कलश लिए हुए शुभ शकुनकी सूचना देने आ पहुँचीं। शिवसे फिर मिलनेका स्थान और समय निर्धारित करके मुनि-गण आनन्दपूर्वक हिमाचलके घर जा पहुँचे ॥ ५० ॥

ज्यों ही सप्तर्षिगण हिमाचलके घर पहुँचे त्यों ही हिमाचलने बड़े स्नेह और आदरसे पूजा करके उनकी बड़ी आवभगत की। (हिमाचलने) गृहिणी-समेत घरकी संपत्ति तथा कन्या उनके आगे ला उपस्थित की। यह देखकर ऋषिगण बहुत सुखी हुए। विवाहकी चर्चा चलाकर, मुहूर्त ठीक कराकर तथा गिरिराजको समझाकर सप्तर्षि-गण[2] सुन्दर लग्न-पत्रिका लिखवाकर आनन्दपूर्वक प्रातः-काल ही वहाँसे चल पड़े। ॥ ५१ ॥

फिर हिमवान्ने ब्राह्मणोंका सम्मान करके कुलगुरु और कुलदेवताकी पूजा की। डंके-नगाड़े बज उठे। नगरमें चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। पर्वत, वन, नदी, समुद्र तथा तालाब आदि जिन-जिनके भी नाम गिरिराजने सुन पाए सब (के स्वामियों)-को निमंत्रण लिख भेजे गए ॥ ५२ ॥ वे सब भी बन-ठनकर, हर्षित होकर चँवर, वस्त्र, उपहारकी सामग्री हार और मणि आदि ले-लेकर (हिमवान्के न्योतेमें) चल पड़े। हिमवान्ने हर्षपूर्वक मंडप सजवानेका काम लगवा दिया। सुहागिनी स्त्रियाँ हर्षित हो-होकर मंगल गान करने लगीं ॥ ५३ ॥ अनेक प्रकारके तोरण, कलस, चँवर, ध्वजा आदि स्थान-स्थानपर सजवा धरे गए। रेशमी वस्त्रोंसे सब हाट छवा डाले गए। फल-सहित पेड़ ला लगाए गए। पार्वतीके

---

१. घरकी सम्पत्ति। २. विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गौरी - नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय। जनु ऋतुराज-मनोज-राज रजधानिय ॥५४॥
जनु राजधानी मदनकी बिरची चतुर बिधि और ही।
रचना बिचित्र बिलोकि, लोचन बिथक ठौरहि ठौर ही॥
यहि भाँति ब्याह - समाज सजि, गिरिराज मग जोवन लगे।
तुलसी, लगन लै दीन्ह मुनिन्हहुँ, महेस आनँद-रँग-पगे ॥५५॥
बेगि बुलाइ बिरंचि बँचाइ लगन तब। कहेन्हि 'बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब'।
बिधि पठए जहँ-तहँ सब सिव-गन धावन। सुनि हरषहिं सुर, कहहिं निसान बजावन॥५६॥
रचहिं बिमान बनाइ, सगुन पावहिं भले। निज निज साज-समाज साजि सुर-गन चले।
मुदित सकल सिव-दूत भूत-गन गाजहिं। सूकर, महिष, स्वान, खर-बाहन साजहिं ॥५७॥
नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ावहिं। अज, उलूक, बृक-नाद गीत, गन गावहिं।
रमा-नाथ, सुर-नाथ, साथ सब सुरगन। आए जहँ बिधि - संभु, देखि हरषे मन ॥५८॥
मिले हरिहि हर, हरषि सुभाखि सुरेसहि। सुर निहारि सनमानेउ मोद महेसहि।
बहु बिधि बाहन, जान, बिमान बिराजहिं। चली बरात निसान गहागह बाजहिं ॥५९॥
बाजहिं निसान, सुगान नभ, चढ़ि बसह बिधु-भूषन चले।
बरषहिं सुमन, जय जय करहिं सुर, सगुन सुभ मंगल भले॥

नैहर (मायके)-का बखान मैं करना भी चाहूँ तो किस प्रकार कर सकता हूँ मानो वसन्त और कामदेवकी राजधानी ला सजाई गई हो, ॥ ५४ ॥ मानो चतुर विधाताने कामदेवकी यह दूसरी ही राजधानी रच खड़ी की हो। वहाँकी विचित्र रचना देखकर स्थान-स्थानपर आँखें जा टिकती थीं। इस प्रकार विवाहकी तैयारी करके गिरिराज भी बारात आनेकी बाट देखने लगे।

तुलसीदास कहते हैं कि इधर आनन्दमें मग्न सप्तर्षियोंने महादेवको लग्न-पत्रिका ला थमाई ॥ ५५ ॥ झट ब्रह्माको बुलवाकर और लग्न-पत्रिका बँचवाकर शंकरने कहा कि सब देवताओंको न्योता भेजकर (बारात चढ़ाकर) ब्याहने चल पड़िए। ब्रह्माने जहाँ-तहाँ शिवके सब गणोंको दूत बनाकर (न्योता लेकर) भेज दिया। यह सुनना था कि सब देवता प्रसन्न हो उठे और सबने डंके बजवा दिए ॥ ५६ ॥ वे सब अपने-अपने विमान सजाने लगे। उन्हें अच्छे-अच्छे शकुन मिलते गए। देवता लोग अपना-अपना समाज साजकर बारात सजाकर चल दिए। शिवके सब दूत भूत-प्रेत भी प्रसन्न हो-होकर गरजने लगे। वे सब सूअर, भैंसे, कुत्ते और गदहोंकी सवारियाँ सजाने लगे ॥ ५७ ॥ वे सब अनेक प्रकारके नाच नाचते हुए मौजमें भरे चले जा रहे थे। शिवके गण लोग बकरे, उल्लू और भेड़ियोंकी बोलीमें गीत गाते जा रहे थे। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु और देवराज इन्द्र भी अपने साथ देवताओंको लिए दिए वहाँ आ पहुँचे जहाँ शंकर और ब्रह्मा विराजमान थे। इनको आया देखते ही सब प्रसन्न हो उठे ॥ ५८ ॥ महादेवने विष्णु भगवान्‌से तो भेंट की और देवराज इन्द्रसे बातचीत की। महादेवने देवताओंकी ओर देखकर बड़ी प्रसन्नतासे उनका सम्मान किया। अनेक प्रकारके वाहन, रथ और विमान आदि वहाँ शोभा दे रहे थे। धूमधड़ाकेके साथ डंके-नगाड़े बज उठे और बारात चल पड़ी ॥ ५९ ॥ डंके बज उठे, आकाशमें गाने होने लगे। चन्द्रभूषण शंकर अपने (बूढ़े) बैलपर सवार होकर चल पड़े। देवता-गण जय-जयकार करते हुए उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। मार्गमें सुन्दर शुभ शकुन मिलते जा रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि पशुपति

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी बराती भूत - प्रेत - पिसाच पसुपति - सँग लसे।
गज-छाल, ब्याल, कपाल - माल, बिलोकि बर, सुर - हरि हँसे ॥६०॥
बिबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ। आपन-आपन साज सबहिं बिलगायउ।
प्रमथनाथ-के साथ प्रमथगन राजहिं। बिबिध भाँति मुख, बाहन, बेष बिराजहिं ॥६१॥
कमठ-खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं। नर-कपाल जल भरि-भरि पियहिं-पियावहिं।
बर अनुहरत बरात बनी, हरि हँसि कहा। सुनि हिय हँसत महेस, केलि कौतुक महा ॥ ६२॥
बड़ बिनोद मग, मोद न कछु कहि आवत। जाइ नगर नियरानि बरात बजावत।
पुर खरभर, उर हरषेउ अचल-अखंडल। परब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधु-मंडल ॥६३॥
प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहिं। भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि।
चले भाजि गज-बाजि, फिरहिं नहिं फेरत। बालक भभरि भुलान, फिरहिं घर हेरत ॥६४॥
दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब। घर-घर बालक बात कहन लागे तब।
'प्रेत, प्रमथ, बैताल बराती, भूत भयानक। बरद चढ़ा बर बाउर, सबइ सुबानक ॥६५॥
कुसल करइ करतार कहहिं हम साँचिय। देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय'।
समाचार सुनि सोच भयउ मन मैनहिं। नारदके उपदेस कवन घर गे नहिं ॥६६॥

महादेवके साथ अनेक भूत-प्रेत-पिशाच आदि बाराती चढ़े चले जा रहे थे। वर रूपमें महादेवको गजकी खाल, सर्प, नरमुंडोंकी माला आदि पहने हुए देख-देखकर देवता और भगवान् विष्णु हँसते जा रहे थे ॥ ६० ॥ सब देवताओंको बुलाकर भगवान् विष्णुने कहा कि अब हम लोग नगरके निकट आ पहुँचे हैं। इसलिये सब लोग अपना-अपना साज अलग करके हट चलो। प्रमथनाथ महादेवके साथ उनके अनेक प्रकारके मुँहवाले और अनेक प्रकारके बाहन और वेषवाले प्रमथ-गण (भूत-प्रेत) शोभा दे रहे थे ॥६१॥ वे कछुवेकी ठठरीपर चमड़ा मढ़-मढ़कर डंके बजा रहे थे और नर-कपालोंमें पानी भर-भरकर पी और पिला रहे थे। विष्णु भगवान्ने हँसकर कहा—'वाह! अब वरके अनुरूप बारात बन पाई है।' इस प्रकारकी हँसी-विनोदकी बातें सुन-सुनकर शिव भी मन ही मन हँसते चले जा रहे थे ॥६२॥ मार्ग भर इतना अधिक मोद-विनोद (हँसी-ठट्ठा) होता रहा कि उस आनन्दका वर्णन नहीं हो सकता। बाजे-गाजेके साथ जब बारात नगरके निकट आ पहुँची, तब नगरमें खलबली मच गई, अचलों के आखंडल (पर्वतेन्द्र हिमवान्) इतने अधिक प्रसन्न हुए मानो पूर्ण चन्द्र-मण्डलको देखकर समुद्र उमड़ पड़ा हो ॥६३॥ बारात आती देखकर अगवानी करनेवाले लोग बड़े हर्षसे बढ़ चले। पर बारात देखते ही वे ऐसे काँप उठे कि उनसे न तो ठहरते बन पा रहा था न भागते ही। हाथी-घोड़े तो ऐसे हड़बड़ाकर भागे कि लाख लौटानेपर भी नहीं लौट रहे थे। (भयसे) हड़बड़ाकर भागते हुए बच्चे ऐसे पैंड़ा भूल गए कि सब अपना-अपना घर खोजते फिर रहे थे ॥६४॥ सब बारातियोंको जनवासा देकर उनके लिये सारी व्यवस्था ठीक कर दी गई। (भागे हुए) बालक अपने-अपने घर जाकर कहने लगे कि 'बारातो क्या हैं कि भयानक प्रेत, प्रमथ, बैताल और भूत आ पहुँचे हैं, और वर भी ऐसा बावला-सा है जो बैलपर चढ़कर आया है—सारा ठाठ निराला बना हुआ है ॥ ६५ ॥ सच कहते हैं, विधाता ही कुशल कर तो करें। कहीं जीते बच गए तभी और बारातें देखनेको मिल पावेंगी।' यह सब समाचार सुन-सुनकर मैनाका तो जी धक रह गया। वे कहने लगीं—'नारदके उपदेशने किसका घर नहीं मटियानेट

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घर - घाल - चालक, कलह - प्रिय, कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ - सारथी॥
उर लाइ उमहिँ अनेक बिधि, जलपति जननि, दुख मानई।
हिमवान कहेउ 'इसान महिमा अगम, निगम न जानई'॥६७॥
सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चली। जहँ-तहँ चरचा चलइ हाट-चौहट-गली।
श्रीपति, सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि। हँसहिं कमल-कर जोरि, मोरि मुख पुनि-पुनि॥६८॥
लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर। भे सुंदर सतकोटि-मनोज-मनोहर।
नील निचोल छाल भइ, फनि मनि-भूषन। रोम रोमपर उदित रूपमय पूषन॥६९॥
गन भे मंगल-बेष मदन-मन-मोहन। सुनत चले हिय हरषि नारि-नर जोहन।
संभु सरद-राकेस, नखत-गन सुर-गन। जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन॥७०॥
गिरिबर पठए बोलि लगन - बेरा भइ। मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लइ।
होहिं सुमंगल सगुन, सुमन बरषहिं सुर। गहगह गान-निसान-मोद-मंगल पुर॥७१॥
पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। इत बिधि, उत हिमवान, सरिस, सब लायक।

धरा ?' ॥ ६६ ॥ 'नारद कहलाते तो हैं बड़े परमार्थी, पर दूसरोंका घर बिगाड़नेमें बड़े पक्के और झगड़ा लगानेमें तो सबके गुरु हैं। वैसे ही बर-रक्षा करनेवाले सप्तर्षि भी निकले जो सब स्वार्थके ही सगे हैं।' इस प्रकार उमाको हृदयसे लगाकर माता मेना मन ही मन झींकती हुई दुखी हो रही थी। तब हिमवान्‌ने आकर (उन्हें समझाते हुए) कहा—"देखो ईशान-देव (शंकर)की महिमा इतनी अगम है कि वेद और शास्त्र भी उसे नहीं जान पा सकते' ॥ ६७ ॥

यह सब सुनकर मेनाके जीको कुछ ढाढ़स मिला। एक सखी जो बारात देखने चली गई थी (उसने देखा कि) हाटों, चौराहों और गलियोंमें जहाँ देखो वहीं यही चरचा चल रही है। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु, सुरपति इन्द्र और देवता-गण यह सब सुन-सुनकर बार-बार अपने कर-कमलोंकी आड़ करके मुँह फेर-फेरकर हँसते जा रहे थे ॥ ६८ ॥ शंकरने लोगोंकी यह दशा देखी और बड़ा गलचौर होते सुना तो उन्होंने अगणित कामदेवोंके समान मनोहर और सुन्दर वेष बना लिया। उनका गजचर्म झट नीले रंगका उत्तरीय (चादर) बन गया, सब सर्प रत्नोंके आभूषण हो गए, उनके रोम-रोमपर सुन्दर चमचमाते सूर्य चमक उठे (सारा शरीर चमक उठा) ॥ ६९ ॥ उनके सभी गण मंगल वेषवाले छबीले कामदेवके समान सुन्दर हो उठे। लोगोंने यह सब सुना तो सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो-होकर बारात देखने निकल पड़े। उस समय शंकर तो मानो शरत्‌की पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान, देवता नक्षत्रोंके समान और चारों ओरसे देखनेवाले नागरिक चकोर बने खड़े थे ॥ ७० ॥

तभी गिरिराजने बुलावा भेजा कि लग्न (विवाह)की वेला हो रही है। मंगल अर्घ्यके पाँवड़े (आगे-आगे जलकी धार) देते हुए लोग उन्हें लिवाने चल दिए। उस समय सभी मंगलकारक शुभ शकुन होने लगे और देवतागण पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। चारों ओर गीत गाए जाने लगे, ढमाढम डंके बज उठे और नगरमें चारों ओर आनन्द-मंगल छा गया ॥ ७१ ॥ पहली ही ड्योढ़ीपर दोनों समधियोंका सुन्दर सुखदायक मिलाप हो गया। इस ओर ब्रह्मा और उस ओर हिमवान् दोनों

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मनि-चामीकर चारु थारि सजि आरति । रति सिहाहिँ लखि रूप, गान सुनि भारति ।।७२।।
भूरि भाग अनुराग पुलक-तनु मुद-मन । मदन मत्त गजगवनि चलीं बर परिछन ।
बर बिलोकि बिधु-गौर सु अंग उजागर । करति आरती सासु मगन सुख-सागर ।।७३।।

सुख-सिंधु-मगन, उतारि आरति, करि निछावरि, निरखिकै ।
मग अरघ, बसन, प्रसून भरि लेइ चलीं मंडप हरषिकै ।।
हिमवान दीन्हेउ उचित आसन सकल सुर सनमानिकै ।
तेहि समय साज-समाज सब राखे सुमंडप आनिकै ।।७४।।

अरघ देइ मनि-आसन बर बैठायउ । पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमी अँचवायउ ।
सपत रिषिन्ह बिधि कहेउ, बिलंब न लाइय । लगन देर भइ बेगि बिधान बनाइय ।।७५।।
थापि अनल, हर बरहि बसन पहिरायउ । आनहु दुलहिनि बेगि, समउ अब आयउ ।
सखी सुआसिनि संग गौरि सुठि सोहति । प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति ।।७६।।
भूषन बसन समय-सम सोभा सो भलि । सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फलि ।

एक-जैसे परम योग्य समधी थे । मणि-जटित सोनेके सुन्दर थालोंमें आरती सजा लाई गई । (आरती लानेवाली स्त्रियोंका) सुन्दर रूप देख-देखकर रति भी (वैसा रूप पानेके लिये) तरसी पड़ रही थी और उनके गीत सुन-सुनकर सरस्वती भी लजा बैठी थी ।।७२।। बड़े भाग्य और अनुरागमें भरी हुई, पुलकित शरीर और प्रसन्न मनसे कामदेवके मतवाले गजके समान झूमकर चलनेवाली स्त्रियाँ परिछन[1] (परीक्षण) करने चल दीं। चन्द्रमाके समान गौर वर्णवाले और अंग-अंगसे दीप्तिमान् (सुन्दर) वरको देखकर सुखके समुद्रमें मग्न हुई सास (मेना) उनकी आरती करने लगीं ।। ७३ ।।

सुखके सागरमें डूबी हुई मेना आरती उतारकर वरको देखकर न्योछावर करके (वरके आगे-आगे) मार्गमें अर्घ्य (जलकी धार) देती, वस्त्र बिछाती और फूल बिखेरती हुई हर्षपूर्वक वरको मंडपमें लिवा ले चलीं। हिमवान्ने सब देवताओंको सम्मानपूर्वक उचित आसनोंपर ले जा बैठाया। उसी समय विवाहकी सारी साज-सामग्री ला-लाकर रख दी गई ।।७४।। अर्घ्य (जल, गंध, पुष्प, अक्षत) देकर मणिमय आसनपर वरको ला बैठाया गया। फिर पूजा करके मधुपर्क (दही, घी, मधु, शक्कर, जल मिलाकर) दिया गया और अमृतसे आचमन कराया गया। सप्तर्षियोंने ब्रह्मासे कहा कि अब विलंब न कीजिए, लग्नका समय हो गया है। विवाह-कार्यका विधान शीघ्र आरम्भ कर दीजिए ।। ७५ ।। अग्नि-स्थापन करके वर शंकरको वस्त्र पहनाया गया। फिर ब्रह्माने कहा—'अब समय हो गया है, शीघ्र दुलहिनको (मंडपमें) लिवा लाइए।' सुहागिन सखीके साथ (मंडपमें आती हुई) गौरी ऐसी सलोनी लगे रही थीं मानो सौन्दर्यकी मूर्त्ति प्रत्यक्ष होकर जगत्को मोहे डाल रही हो ।। ७६ ।। समयके अनुसार सजे हुए (पार्वतीके) आभूषण और वस्त्र ऐसे अच्छे जँच रहे थे मानो शोभाकी नवीन लता सौन्दर्यके फलोंसे पूर्ण फलवती हो उठी हो। भला बताइए तो

---

१. परिछन = परीक्षण : वरके जाते या वधूके आते समय स्त्रियाँ हाथमें मूसल और सिलका बट्टा लेकर परिछन करती हैं कि जिस पालकीमें वर या वधूको भेजा या लाया जा रहा है वह ठीक है या नहीं, स्त्रियाँ उसे नीचे-ऊपर देखती हैं, वर या वधूपर मूसल और सिल-बट्टा घुमाती हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कहहु काहि पटतरिय गौरि गुन-रूपहिं। सिन्धु कहिय केहि भाँति सरिस सर-कूपहिं ॥७७॥
आवत उमहिं बिलोकि सीस सुर नावहिं। भये कृतारथ जनम, जानि सुख पावहिं।
बिप्र बेद-धुनि करहिं, सुभासिष कहि-कहि। गान,निसान,सुमन-झरि,अवसर लहि-लहि ॥७८॥
बर-दुलहिनिहिं बिलोकि सकल मन रहसहिं। साखोच्चार समय सब सुर-मुनि बिहँसहिं।
लोक-बेद-बिधि कीन्ह लीन्ह जल-कुस कर। कन्यादान संकलप कीन्ह धरनीधर ॥७९॥
पूजे कुल-गुरु देव, कलस-सिल सुभ धरि। लावा-होम-बिधान, बहुरि भाँवरि परि ॥
बंदन बंदि, ग्रंथि-बिधि करि, ध्रुव देखेउ। भा बिबाह सब कहहिं जनम-फल पेखेउ ॥ ८० ॥

पेखेउ जनम-फल, भा बियाह, उछाह उमगहिं दस दिसा।
नीसान, गान, प्रसून - झरि, तुलसी सुहावनि सो निसा ॥
दाइज बसन - मनि - धेनु - धन - हय - गय - सुसेवक - सेवकी।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहिं पियारी पेवकी ॥८१॥

सही कि पार्वतीके रूप और गुणोंकी तुलना की भी जाय तो किससे की जाय ? भला समुद्रको कुएँ या तालाबके समान कैसे बताया जा सकता है ? ॥ ७७ ॥ पार्वतीको आते देखकर देवता लोग सिर नवाने लगे और यह जानकर सुखी होने लगे कि उनका जन्म लेना सार्थक हो गया। वेद-ध्वनि करते हुए ब्राह्मण शुभाशीर्वाद दिए चले जा रहे थे। अवसरके अनुकूल गाना-बजाना भी होने लगता था तथा फूलोंकी वर्षा भी होने लगती थी ॥ ७८ ॥ वर और दुलहिनको देख-देखकर सब लोग प्रसन्न हुए जा रहे थे। शाखोच्चारके[1] समय सब देवता और मुनि लोग बैठे हँस रहे थे (क्योंकि आदिदेव शिवके पिता, पितामह और प्रपितामहके लिये किसीका नाम नहीं लिया जा रहा था)। हिमवान्ने सभी लौकिक और वैदिक रीति पूरी करके हाथमें जल और कुशा लेकर कन्या-दानका संकल्प कर दिया ॥७९॥ फिर उन्होंने कुल-गुरु और कुल-देवताका पूजन किया। शुभ कलश ला रक्खा गया। सिल[2] ला रक्खी गई और लाजा-होम[3] करके भाँवरें पड़ने लगीं। पूज्योंकी वन्दना करके गँठ-बंधनका विधान किया गया और ध्रुवका दर्शन कराया गया (विवाहके समय कन्याको वर ध्रुव तारा देखनेको कहता है, जिसका अभिप्राय यह होता है कि हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध ध्रुव तारेके समान अचल हो गया)। सब लोग कहने लगे कि (शंकर-पार्वतीका) विवाह हो गया। यह देखकर सब अपना जन्म सफल समझने लगे ॥ ८० ॥ विवाह हो चुकनेपर सब लोग अपना-अपना जन्म लेना सफल समझने लगे। दसों दिशाओंमें विवाहका उत्सव मनाया जाने लगा। डंके-निगाड़े बज उठे, फूलोंकी वर्षा होने लगी। तुलसीदास कहते हैं कि वह रात्रि सबको अत्यन्त सुहावनी लगने लगी। गिरिराज हिमाचलने अपनी प्यारी कन्या पार्वतीके विवाहमें दहेजके रूपमें वस्त्र, मणि, गौएँ, धन, घोड़े, हाथी, कर्मठ दास और दासियाँ प्रसन्नता-पूर्वक दे डालीं ॥ ८१ ॥

---

१. शाखोच्चार : विवाहके समय वर और कन्याके प्रपितामह, पितामह और पिताका तीन तीन बार नाम लिया जाता है। २. सिलपर वधूका पैर उठाकर वर रखता है और कहता है कि इसपर पैर रक्खो तुम पत्थरके समान सदा दृढ बनी रहना। ३. लाजा-होम : विवाहके समय धानकी खीलोंसे हवन करके अग्निके फेरे दिए जाते हैं। तीन फेरोंमें कन्या आगे और वर पीछे रहता है, चौथे फेरेमें वर आगे और कन्या पीछे रहती है। इसीको भाँवर पड़ना कहते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बहुरि बराती मुदित चले जनवासहिँ। दूलह - दुलहिनि गे तब हास-अवासहिँ।
रोकि द्वार, मैना तब कौतुक कीन्हेउ। करि लहकौरी हर बड़ सुख दीन्हेउ ॥८२॥
जुआ खेलावत गारि देहिँ गिरि-नारिहिँ। आपनि ओर निहारि प्रमोद पुरारिहिँ ॥
सखी सुवासिनि, सासु पाउ सुख सब बिधि। जनवासहिँ बर चलेउ सकल मंगलनिधि ॥८३॥
भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर। बैठाए गिरिराज धरम-धरनी - धुर ॥
परसन लगे सुवार, बिबुध जन जेवँहिँ। देहिँ गारि बर नारि मोद मन भेवहिँ ॥८४॥
करहिँ सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह[1]। जेइँ चले हरि दुहिन[2] सहित सुर भाइन्ह ॥
भूधर भोर बिदा करि साज सजायउ। चले देव सजि जान निसान बजायउ ॥८५॥
सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि। कीन्हि बड़ाई बिनय सनेह सुहावनि ॥
गहि सिवपद कह सासु बिनय मृदु मानबि। गौरि-सजीवनि मूरि मोरि जिय जानबि ॥८६॥
भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिँ। हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिँ ॥
उमा मातु-मुख निरखि नयन जल मोचहिँ। 'नारि जनम जग जाय, सखी कहि सोचहिँ ॥८७॥
भेंटि उमहिँ गिरिराज सहित-सुत-परिजन। बहुत समुझाइ भाँति फिरो बिलखत मन ॥
संकर गौरि - समेत गए कैलासहि। नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहिँ ॥८८॥

यह सब हो चुकनेपर बाराती लोग आदन्दपूर्वक जनवासे चले गए और तभी दुलहा और दुलहिन कोहबरमें ले जाए गए। मेनाने द्वार छेंककर विनोद किया और शंकर-पार्वतीको जुआ खेलाकर बहुत सुख दिया ॥ ८२ ॥ जुआ खेलाते समय सब मेनाको गाली गाए चली जा रही थीं। शंकर अपनी ओरसे प्रसन्न हुए जा रहे थे (कि हमारी कोई माता ही नहीं है तो गाली लगेगी किसे)। सुहागिन सखियाँ और सास बड़ी मगन हुई जा रही हैं। वहाँसे मंगलके निधान वर (शंकर) जनवासे चल दिए ॥८३॥ फिर सब देवताओंको बुलाकर जेवनार कराई गई। धर्मात्मा गिरिराजने सबको बुला बैठाया। रसोइए लोग ला-लाकर परोसने लगे और सभी देवता भोजन करने जा बैठे। हर्षित मनसे सुन्दरी स्त्रियाँ बैठकर गाली गाने लगीं ॥ ८४ ॥ सुघर शहनाईके साथ गानेवाली स्त्रियाँ मंगलगीत गाने लगीं। विष्णु भगवान् भी ब्रह्मादेव (दुहिन=द्रुहिण=ब्रह्मा) तथा देवताओंको अपने साथ ले चले। प्रातःकाल पर्वतराजने बिदाईका सारा साज बना सजाया। देवतागण भी अपनी-अपनी सवारियाँ सजा-सजाकर डंके बजाते हुए चल दिए ॥ ८५ ॥ (गिरिराजने) सब देवताओंको पहिरावा (वस्त्र-आभूषण आदि) देकर सम्मानित किया और मधुर स्नेह-पूर्ण विनयके साथ सबकी प्रशंसा की। शिवके पाँव पकड़कर सास (मेना) कहने लगीं कि मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें कि पार्वतीको मेरे प्राणोंकी सजीवन बूटी ही समझते रहिएगा ॥ ८६ ॥ (बिदा करते समय) माता मेना भी पार्वतीसे भेंटने लगीं। फिर भेंटकर हुँकर-हुँकरकर रोती हुई (पार्वतीसे मिलनेके लिये ऐसी दौड़ती थीं) मानो लवाई गाय अपने बछड़ेके लिये दौड़ती हो। माताका मुँह देखती हुई पार्वती नेत्रोंसे आँसू बहा रही हैं। सखियाँ यही कहती हुई सोच कर रही थीं कि 'स्त्रीका जन्म ही संसारमें व्यर्थ होता है' ॥८७॥ गिरिराज हिमवान् भी अपने पुत्र और परिवार-सहित पार्वतीसे भेंट करके बहुत कुछ समझा-बुझाकर दुःखित हृदयसे लौट पड़े। उधर पार्वतीके साथ भगवान् शंकर भी कैलास पर्वतपर लौट गए और

---

१. शहनाई के साथ गानेवाली गौनहारिनियाँ। २. दुहिन (द्रुहिण) = ब्रह्मा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उमा - महेस - बियाह-उछाह भुवन भरे। सबके सकल मनोरथ बिधि पूरन करे ॥
प्रेम - पाट-पट - डोरि गौरि-हर-गुन-मनि। मंगल हार रचेउ कवि-मति-मृगलोचनि ॥८९॥

मृग - नयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो।
उर धरहु जुवती जन, बिलोकि तिलोक सोभा-सार सो॥
कल्यान - काज, उछाह, ब्याह सनेह - सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं ॥९०॥

॥ इति श्री गुसाईं तुलसीदासजी-विरचित शिव-पार्वती-मंगल-संपूर्णम् ॥

सब देवता शंकरको सिर नवा-नवाकर अपने-अपने लोक लौट गए ॥ ८८ ॥ इस प्रकार शंकर-पार्वतीके विवाहका उत्सव समस्त लोकोंमें छा गया। विधाताने सबके मनोरथ पूर्ण कर दिए। कवि (तुलसीदास)-की बुद्धि-रूपी मृगलोचनी सुन्दरीने शंकर-पार्वतीके गुण-रूपी रत्नोंको प्रेमके रेशमके तागेमें पिरोकर इस 'पार्वती-मंगल' नामक मंगल हारकी रचना की है ॥ ८९ ॥

यह सुन्दर रत्नोंका मंगल-हार (कविकी बुद्धि-रूपी) मृगनयनी चन्द्रमुखीने महिलाओंके लिये रचा है। हे युवतीजन ! इस मंगल-हारको त्रैलोक्यकी शोभाका निचोड़ जानकर अपने हृदयपर धारण कर लो। तुलसीदासजी कहते हैं कि ब्याह आदि मंगल कार्यों और उत्सवोंमें जो इसे प्रेमपूर्वक गावेंगे, उनका मन उमा-महेश्वरके प्रसादसे प्रेम और आनन्दसे पूर्ण हो जायगा ॥ ९० ॥

॥ श्री पार्वती-मंगल पूर्ण हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

५

जानकी-मङ्गल

मङ्गल छन्द

गुरु, गनपति, गिरिजापति, गौरि, गिरा-पति। सारद, सेष, सुकवि, स्रुति, संत सरल मति॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहिँ सिर नावौं। सिय-रघुबीर-बिबाह जथामति गावौं॥१॥
सुभ दिन रच्यौ स्वयंवर मंगल-दायक। सुनत स्रवन, हिय बसहिँ सीय-रघुनायक॥
देस सुहावन, पावन, बेद बखानिय। भूमि-तिलक-सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय॥२॥
तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर। सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुख-सागर॥
जनक नाम तेहि नगर बसै नर-नायक। सब-गुन-अवधि, न दूसर पटतर लायक॥ ३॥
भयउ, न होइहि, है न, जनक-सम नरवइ। सीय सुता भइ जासु सकल मंगलमइ॥
नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु-परिजन। करि मत, रचेउ स्वयंबर सिव-धनु धरि पन॥४॥

(तुलसीदास कहते हैं कि) गुरु, गणेश, शंकर, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती, शेष, श्रेष्ठ कवि (वाल्मीकि) वेद तथा सरल स्वभाववाले सन्त जनोंको हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रणाम करता हूँ और अपनी बुद्धिके अनुसार राम-जानकीके विवाहका प्रसंग गाकर सुनाता हूँ॥ १॥ जानकीका कल्याण-दायक स्वयंवर ऐसे शुभ दिनमें रचा गया कि उसे सुनते ही राम-जानकी हृदयमें आ बसते हैं। सब देशों में सबसे सुन्दर, पवित्र, वेद-विख्यात, तीनों लोकोंकी भूमियों में श्रेष्ठ तिरहुत (तीरभुक्ति = मिथिला)नामका एक देश है॥२॥ उसी देशमें परम प्रसिद्ध जनकपुर नामका नगर है जहाँ सब सुखोंसे सम्पन्न लक्ष्मी-रूपिणी सीता प्रकट हुई थीं। उसी नगरमें उस नगरके राजा जनक निवास करते थे, जो सब गुणोंसे सम्पन्न थे और जिनकी बराबरीका कोई दूसरा योग्य राजा था नहीं॥ ३॥ जनकके समान ऐसा श्रेष्ठ राजा न कोई हुआ, न है और न होगा ही, जिनकी पुत्री सीता सब कल्याणकारी गुणोंसे परिपूर्ण थीं। जब राजा जनकने देखा कि कुमारी सीता सयानी हो चली हैं तो उन्होंने अपने गुरु और कुटुम्बियोंको बुलाकर यह निश्चय किया कि इसके लिये स्वयंवर रचा जाय और उसके लिये शिवका धनुष तोड़नेकी टेक रख दी गई (कि जो शिवका धनुष तोड़ देगा उसीसे सीताका विवाह किया जायगा)॥ ४॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पन धरेउ सिव-धनु, रचि स्वयंबर, अति रुचिर रचना बनी।
जनु प्रगटि चतुरानन दिखाई चतुरता सब आपनी॥
पुनि देस-देस सँदेस पठयउ, भूप सुनि सुख पावहीं।
सब साजि-साजि समाज राजा जनक-नगरहिं आवहीं॥ ५॥

रूप, सील, बय, बंस, बिरुद, बल, दल भले। मनहुँ पुरंदर-निकर उतरि अवनी चले॥
दानव, देव, निसाचर, किन्नर, अहिगन। सुनि धरि-धरि नृप बेष चले प्रमुदित मन॥ ६॥
एक चलहिं, ऐक बीच, एक पुर पैठहिं। एक धरहिं धनु धाइ, नाइ सिर बैठहिं॥
रंगभूमि, पुर, कौतुक एक निहारहिं। ललकि लोभाहिं नयन, मन फेरि न पारहिं॥ ७॥
जनकहिं एक सिहाहि, देखि सनमानत। बाहर-भीतर भीर, न बनै बखानत॥
गान-निसान-कोलाहल कौतुक जहँ-तहँ। सोय-बियाह-उछाह जाइ कहि का-पहँ?॥ ८॥
गाधि-सुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ। नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ॥
पूजि, पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन। कहेउ भूप—'मोहिं सरिस सुकृत किय काहु न'॥९॥

'काहू न कीन्हेउ सुकृत' सुनि मुनि मुदित नृपहिं बखानहीं।
महिपाल - मुनि को मिलन-सुख महिपाल-मुनि-मन जानहीं॥

शिवका धनुष-तोड़नेकी टेक रखकर स्वयंवर-मंडपकी ऐसी सुन्दर रचना कर दी गई मानो विधाताने अपनी सारी चतुराई प्रत्यक्ष ला दिखाई हो। यह कर चुकनेपर राजा जनकने देश-देशान्तरमें इस स्वयंवरका संदेश कहला भेजा, जिसे सुनकर सब देशोंके राजा प्रसन्न हो उठे। फिर क्या था! सब देशोंके राजा अपने-अपने साज-समाजके साथ जनकपुरमें आ पहुँचने लगे॥ ५॥

सभी राजा रूप, शील, अवस्था, श्रेष्ठ वंश, प्रतिष्ठा, पराक्रम और सेनाकी शक्तिमें इतने (बढ़े-चढ़े) थे मानो बहुत-से इन्द्र एक साथ पृथ्वीपर आ उतरे हों। स्वयंवरका समाचार सुनकर देवता, दानव, राक्षस, किन्नर और नाग जातिके लोग भी राजाका वेष बना-बनाकर प्रसन्नता-पूर्वक चल पड़े॥ ६॥ (उनका ऐसा ताँता लगा कि) कुछ आ पहुँच चुके थे, कुछ मार्गमें चले आ रहे थे और कुछ लोग नगरमें प्रवेश कर रहे थे। एक-एक राजा आ-आकर झपटकर धनुष उठाने तो चलता था (पर जब उसे उठातक नहीं पाता था तब) सिर नवाकर बैठ रहता था। कुछ तो ऐसे भी थे कि रंगभूमिका और जनकपुरका ही दृश्य देख-देखकर उनके नेत्र और मन बड़ी उत्सुकतासे ऐसे ललचाए पड़ रहे थे कि उधरसे वे अपना मन नहीं हटा पा रहे थे॥ ७॥ कुछ तो जनकका वैभव देख-देखकर मनमें तरसे जा रहे थे और उनका सम्मान कर रहे थे। नगरके बाहर और भीतर इतनी भीड़ आ जमी थी कि उसका वर्णन करते नहीं बन रहा है। जहाँ-तहाँ गाना-बजाना, राग रंग और खेल-तमाशा हो रहा था। सीताके विवाहका ऐसा उत्सव भला किससे कहते बन सकता है॥ ८॥

उन्हीं दिनों गाधिके पुत्र मुनि विश्वामित्र भी अयोध्या जा पहुँचे थे। राजा दशरथने उनका बड़ा सम्मान किया और उन्हें घर लिवा ले गए। ऐसा प्रिय अतिथि पाकर राजाने उनकी पूजा करके उनका बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया। राजा कह उठे—'मेरे जैसा पुण्य किसीने नहीं किया' (कि आप-जैसे महापुरुषका अनायास यहाँ पदार्पण हो गया)॥ ९॥ 'मेरे-जैसा आज कोई पुण्यात्मा नहीं है'—यह सुन-सुनकर विश्वामित्र भी बड़े प्रसन्न होकर राजा दशरथकी प्रशंसा करने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनुराग, भाग, सोहाग, सील, सरूप बहु भूषन भरीं।
हिय हरषि सुतन - समेत रानी आइ ऋषि-पायँन परीं ॥१०॥

कौसिक दीन्हि असीस सकल प्रमुदित भईं। सींची मनहुँ सुधा-रस कलप-लता नईं॥
रामहिं भाइन-सहित जबहिं मुनि जोहेउ। नैन नीर, तनु पुलक, रूप मन मोहेउ ॥११॥
परसि कमल-कर सीस हरषि हिय लावहिं। प्रेम-पयोधि-मगन मुनि, पार न पावहिं॥
मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं। बार-बार दसरथके सुकृत सराहहिं ॥१२॥
राउ कहेउ कर जोरि सुवचन सुहावन। 'भयउँ कृतारथ आज, देखि पद पावन॥
तुम प्रभु पूरन-काम, चारि-फल-दायक। तेहि-तें बूझत काज डरौं मुनि-नायक' ॥१३॥
कौसिक सुनि नृप-बचन ,सराहेउ राजहिं। धरम-कथा कहि, कहेउ, गयउ जेहि काजहिं॥
जबहिं मुनीस महीसहिं काज सुनायउ। भयउ सनेह-सत्य-बस उतर न आयउ ॥१४॥

आयउ न उतर, बसिष्ठ लखि, बहु भाँति नृप समुझायऊ।
कहि गाधि-सुत - तप - तेज, कछु रघुपति - प्रभाउ जनायऊ॥
धीरज धरेउ गुरु-वचन सुनि, कर जोरि कह कोसल-धनी।
'करुनानिधान सुजान प्रभु - सों उचित नहि बिनती घनी' ॥१५॥

लगे। राजा दशरथ और मुनि विश्वामित्रके परस्पर मिलनेमें जो उन्हें सुख मिल रहा था वह राजा जनक और मुनि ही जानते थे। प्रेम, भाग्य, सौभाग्य, शील, रूप और आभूषणोंसे पूर्ण रानियाँ हर्षपूर्वक अपने पुत्रों-सहित ऋषिके चरणोंमें आ पड़ीं॥ १० ॥ विश्वामित्रने उन्हें आशीर्वाद दिया तो सब रानियाँ ऐसी प्रसन्न हो उठीं मानो नई कल्पलताको अमृतसे सींच दिया गया हो। जब मुनिने भाइयों-सहित रामको देखा तो उनके नेत्र सजल हो उठे, शरीर पुलकित हो उठा और और उनका रूप देखकर मन मोहित हो उठा॥ ११ ॥ मुनिने अपने कमलके समान हाथसे रामका सिर थपथपाकर उन्हें छातीसे ले चिपकाया और प्रेमके समुद्रमें ऐसे मग्न हो गए कि उसे पार न कर सके (प्रेममें भर उठे)। वे उनकी कोमल और मनोहर मूर्त्ति बार-बार आदरपूर्वक देखनेके लिये ललचाए पड़ रहे थे और बार-बार राजा दशरथके पुण्योंकी सराहना करते जा रहे थे ॥१२॥ राजा भी हाथ जोड़कर मधुर वचन कहने लगे--'आज आपके पवित्र चरणोंका दर्शन पाकर हम सब कृतार्थ हो गए। प्रभो! आपकी तो सब कामनाएँ पूर्ण हैं और आपको चारों फल देनेकी शक्ति है। मुनिराज! इसीसे मैं आपके पधारनेका कारण पूछते बहुत डर रहा हूँ' ॥ १३ ॥ विश्वामित्रने राजाके वचन सुनकर उनकी बड़ी सराहना की। फिर कुछ धार्मिक चर्चा करके बतला दिया कि हम किस कामसे आए हैं। जब मुनिने राजाको अपने आनेका कारण बतलाया तब वे (राम-लक्ष्मणके) स्नेह और (आज्ञा पालन करनेका वचन देनेके) सत्यके फेरमें ऐसे उलझ गए कि उनसे कुछ उत्तर देते नहीं बना ॥१४॥

जब वशिष्ठने देखा कि राजा कुछ उत्तर नहीं दे रहे ह तब उन्होंने राजाको बहुत समझाया-बुझाया। उन्होंने विश्वामित्रके तप और तेजका तथा रामके प्रभावका पूरा परिचय दे दिया। गुरुके वचन सुनकर कोशल-नरेशको बड़ा ढाढ़स हुआ और वे हाथ जोड़कर बोले—'करुणानिधान सुजान प्रभुसे इतनी विनति नहीं करनी चाहिए थी (आपसे राम-लक्ष्मणको रोक रखनेका इतना अधिक आग्रह

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाथ मोहिँ बालकन-सहित पुर-परिजन। राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर - बन ॥
दीन बचन बहु भाँति भूप मुनि-सन कहे। सौंपि राम अरु लखन पाँयँ-पंकज गहे ॥१६॥
पाइ मातु-पितु-आयसु गुरु-पायँन परे। कटि निषंग, पट पीत, करनि सर-धनु धरे ॥
पुरवासी - नृप - रानिन - संग दिये मन। बेगि फिरेउ करि काज कुसल रघुनंदन ॥१७॥
ईस मनाइ असीसहिँ जय-जस पावहु। न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु ॥
चलत सकल पुर-लोग बियोग-बिकल भए। सानुज भरत सप्रेम राम - पाँयँन नए ॥१८॥
होहिँ सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ। राम-लखन मुनि-साथ गवन तब कीन्हेउ ॥
स्यामल - गौर किसोर मनोहरता - निधि। सुषमा सकल सकेलि मनहुँ बिरचे बिधि ॥१९॥

बिरचे बिरंचि बनाइ, बाँची रुचिरता रंचौ नहीं।
दस-चारि भुवन निहारि देखि बिचारि नहिं उपमा कही ॥
रिषि-संग सोहत जात मग, छबि बसति सो तुलसी हिए।
कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर, संग मधु-माधव लिए ॥२०॥

गिरि-तरु-बेलि-सरित-सर बिपुल बिलोकहिँ। धावहिँ बाल सुभाय, बिहँग-मृग रोकहिँ ॥
सकुचहिँ मुनिहि, सभीत बहुरि फिरि आवहिँ। तोरि फूल, फल, किसलय माल बनावहिँ ॥२१॥

नहीं करना चाहिए था ॥१५॥ नाथ ! मैं और ये बालक, नगर और कुटुम्बके लोग घरमें या वनमें सर्वत्र आपकी ही कृपासे रक्षा पा रहे हैं।' इस प्रकार राजाने मुनिसे अनेक दीन वचन कहे। राम और लक्ष्मणको मुनिके हाथों सौंपकर राजाने उनके चरण-कमल पकड़ लिए ॥ १६ ॥ दोनों भाई माता-पिताकी आज्ञा पाकर पहले गुरु वशिष्ठके पैरों पड़े, फिर उन्होंने कमरमें तरकश बाँधकर, पीला वस्त्र पहनकर, हाथोंमें धनुष-बाण ले लिया। पर राजा, रानी और पुरवासियोंका मन उन्हींमें लगा हुआ था। वे कहने लगे—'देखो रघुनन्दन ! मुनिका सब काम पूरा करके कुशलपूर्वक शीघ्र ही लौट आना' ॥१७॥ शंकरको मनाकर वे आशीर्वाद देते हुए कहने लगे—'तुम विजयी और यशस्वी होओ। स्नान करनेमें समय न बिताओ, विलम्ब न करो।' राम-लक्ष्मणके चलनेपर सब नगरके लोग उनके वियोगसे व्याकुल हो उठे। भरतने भी भाई शत्रुघ्नके साथ प्रेमपूर्वक रामके चरण छुए ॥ १८ । चलते समय ऐसे शुभ शकुन मिले मानो वे इनके मंगलकी सूचना दे रहे हों। राम-लक्ष्मण दोनों मुनिके साथ चल पड़े। वे दोनों किशोर अवस्थावाले साँवले और गोरे कुमार ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो विधाताने सारीकी सारी शोभा एकत्र करके इन्हींकी रचना कर डाली हो ॥१९॥ विधाताने सारीकी सारी शोभा इन्हींके बनानेमें लगा दी, कुछ भी बचा नहीं छोड़ी। चौदहों लोकोंमें ढूंढ आनेपर भी इनकी-सी सुन्दरताकी उपमा कहीं ढूँढे नहीं मिलती। ऋषिके साथ-साथ मार्गमें जाते समय जैसी उनकी शोभा थी वह ज्योंकी त्यों तुलसीदासके हृदयमें आ बसी है। ऐसा लगता है मानो वसंत और चैत्र मासको साथ लिए-दिए सूर्य भगवान् उत्तर दिशाकी ओर बढ़े चले जा रहे हों (यहाँ विश्वामित्रको सूर्य, रामको वसंत तथा लक्ष्मणको माधव या चैत्र मास कहा है) ॥ २० ॥ ये दोनों भाई बहुतसे पहाड़, वृक्ष, लता, नदी और तालाब देखते हुए चले जा रहे थे। बाल-स्वभावके कारण ये दौड़ते और विचरते हुए मृगों और पक्षियोंको रोकने तो चलते थे पर मुनिके संकोच और डरके कारण फिर लौट आते थे। वे फल, फूल और पत्ते तोड़-तोड़कर माला गूँथ लेते थे ॥ २१ ॥ उनका आमोद-प्रमोद देख-देखकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखि बिनोद - प्रमोद, प्रेम कौसिक उर । करत जाहिं घन छाँह, सुमन बरषहिं सुर ॥
बधी ताड़का, राम जानि सब लायक । विद्या-मंत्र-रहस्य दिए मुनिनायक ॥२२॥
मग-लोगनके करत सफल मन - लोचन । गे कौसिक-आस्रमहिं बिप्र-भय-मोचन ॥
मारि निसाचर-निकर जज्ञ करवायउ । अभय किए मुनिबृन्द, जगत जस गायउ ॥२३॥
बिप्र - साधु-सुर-काज महामुनि मन धरि । रामहिं चले लिवाइ धनुष-मख मिस करि ॥
गौतम - नारि उधारि पठै पति - धामहिं । जनक-नगर लै गयउ महामुनि रामहिं ॥२४॥
लै गयउ रामहिं गाधि - सुवन बिलोकि पुर हरषे हिए ।
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव, गुरु, भूसुर लिए ॥
नृप गहे पाँयँ, असीस पाई, मान - आदर अति किए ।
अवलोकि रामहिं अनुभवत मनु ब्रह्मसुख सौगुन दिए ॥२५॥
देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ । बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ ॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर । जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर ॥२६॥
पुन्य-पयोधि मातु-पितु, ए सिसु सुर-तरु । रूप-सुधा-सुख देत नयन अमरनि बरु ॥

विश्वामित्रका हृदय प्रेमसे उमड़ा पड़ रहा था। मेघ उनके ऊपर छाया करते चले जा रहे थे और देवता फूलोंकी वर्षा करते जा रहे थे। मार्गमें ही रामने ताड़काको ढेर कर डाला। तब रामको योग्य जानकर मुनिराजने सब विद्याएँ और मंत्रोंका सारा रहस्य उन्हें बता समझाया ॥२२॥ ये मार्गके लोगोंके मन और नेत्र सफल करते हुए, ब्राह्मणोंको भयसे मुक्त करनेके लिये विश्वामित्रके आश्रमपर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने राक्षसोंको मारकर मुनिका यज्ञ आरंभ करा दिया और मुनियोंको ऐसा निर्भय कर दिया कि जगत्‌में सब लोग उनका यश गा उठे ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् ब्राह्मण, साधु और देवताओंका कार्य (राक्षसोंका विनाश) करना मनमें निश्चय करके धनुष-यज्ञ दिखानेके बहाने महामुनि विश्वामित्र इन्हें अपने साथ लेकर मिथिला चल दिए। मार्गमें गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याका उद्धार करके रामने उसे उसके पतिके लोक भेज दिया। फिर रामको महामुनि अपने साथ जनकपुर लिवा ले चले ॥ २४ ॥

विश्वामित्र जब रामको लेकर जनकपुरमें पहुँचे तो नगर देखकर राम बहुत प्रसन्न हुए। समाचार पाते ही राजा जनक भी मन्त्री, गुरु और ब्राह्मणोंके साथ इन्हें लिवा ले जानेके लिये आ पहुँचे। राजा जनकने विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम किया, उनसे बहुत आशीर्वाद पाया और फिर उन्होंने उनका बहुत आदर-सम्मान किया। रामको देखकर जनकको ऐसा आनन्द मिला मानो सौगुने ब्रह्म-सुखका अनुभव कर लिया हो ॥ २५ ॥ रामकी मनोहर मूर्ति देखकर राजा जनकका मन उनपर रीझ उठा और वे उनके स्नेहमें ऐसे जा बँधे कि अपना सारा वैराग्य भी भूल बैठे। वे प्रसन्न होकर सराहना करते हुए सोचने लगे कि विधाता सचमुच बड़ा चतुर है, जिसने ऐसा अच्छा भवसागर बना धरा, जहाँ ऐसे राम-जैसे पुरुष-रत्न उत्पन्न होते हैं ॥ २६ ॥ इनके माता-पिता सचमुच पुण्यके समुद्र हैं और ये बालक कल्पवृक्षके समान हैं, जो अपने अमृत स्वरूपका सुख देते हुए नेत्रोंको अमर बनाए डाल रहे हैं (जो इन्हें एक बार देख लेता है उसके नेत्र इन्हें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'केहि सुकृतीके कुँवर' कहिय मुनिनायक। 'गौर-स्याम छबिधाम धरे 'धनु-सायक ॥२७॥
बिषय-बिमुख मन मोर सेइ परमारथ। इन्हहिँ देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ'॥
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि 'सुनि महिपालक। ए परमारथ-रूप ब्रह्ममय बालक ॥२८॥
पूषन - बंस - बिभूषन दसरथ - नंदन। नाम राम अरु लखन सुरारि-निकंदन' ॥
रूप, सील, बय, बंस राम परिपूरन। समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन ॥२९॥

लागे बिसूरन समुझि पन मन बहुरि धीरज आनि - कै।
लै चले देखवन रंगभूमि अनेक बिधि सनमानि - कै॥
कौसिक सराही रुचिर रचना, जनक सुनि हरषित भए।
तब राम - लखन समेत - मुनि - कहँ सुभग सिंहासन दए ॥३०॥

राजत राज-समाज जुगल रघुकुल-मनि। मनहुँ सरद-बिधु उभय, नखत धरनी-धनि॥
काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुह-लोचन। गौर-स्याम सत-कोटि-काम-मद-मोचन ॥३१॥
तिलक ललित सर, भ्रुकुटी काम-कमानै। स्रवन बिभूषन रुचिर देखि मन मानै॥
नासा, चिबुक, कपोल, अधर, रद सुन्दर। बदन सरद-बिधु-निंदक सहज मनोहर ॥३२॥
उर बिसाल, बृष कंध, सुभग भुज अति बल। पीत बसन, उपबीत, कंठ मुकुताफल॥

निरन्तर देखते ही रह जाते हैं)। जनकने पूछा कि 'धनुष-बाण धारण किए हुए सुन्दरताके भंडार, ये गोरे और साँवले वीर किस पुण्यात्माके कुमार हैं ? ॥२७॥ विषय-वासनासे दूर रहकर केवल परमार्थकी उपासना करनेवाला मेरा मन, इन्हें देखकर कुछ अपना बड़ा स्वार्थ होता जानकर ही इनमें मग्न हो चला है।' मुनिने पुलकित होकर प्रेमपूर्वक कहा—'राजन्! ये परमार्थ-रूपी ब्रह्ममय बालक हैं॥ २८॥ ये सूर्यवंशके विभूषण राजा दशरथके पुत्र हैं। इनके नाम राम और लक्ष्मण हैं। ये देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं।' राजा जनकको जब रामके रूप, शील, अवस्था, और वंशका पूर्ण परिचय मिल गया तो वे (सीताके स्वयंवरके निमित्त) किए हुए अपने प्रणके लिये बहुत पछताने लगे॥ २९॥ राजा जनक अपने प्रणके कारण मनमें बहुत पछताने लगे। पर फिर धीरज धरकर उनका अनेक प्रकारसे सम्मान करके वे उन्हें धनुषय-ज्ञकी रंगभूमि दिखानेके लिये साथ लिवा ले चले। विश्वामित्रने रंगभूमिकी रचनाकी इतनी प्रशंसा की कि सुनकर जनक प्रसन्न हो उठे। फिर राम और लक्ष्मणके साथ मुनि विश्वामित्रको उन्होंने उत्तम सिंहासनपर ले जा बैठाया॥ ३०॥ उस राजसमाजमें दोनों रघुवंश-भूषण (राम और लक्ष्मण) ऐसे शोभा दे रहे थे मानो राजा-रूपी तारोंसे भरी पृथ्वीपर ये दो शरत्के चन्द्रमा आ चमके हों। सिरपर काक-पक्ष (पीछेको बहाए हुए बाल), कमलके समान सुन्दर नेत्र, गोरे और साँवले वर्णवाले (राम-लक्ष्मण) अरबों कामदेवोंका मद झाड़े डाल रहे थे॥ ३१॥ कामदेवके धनुषके समान उनकी दोनों भौंहोंके बीच सुन्दर तिलक भी बाणके समान शोभा दे रहा है। उनके कानोंमें झलकता दमकता हुआ कुण्डल देखकर सबका मन उनपर रीझा पड़ रहा है। उनकी सुगढ़ नाक, ठोड़ी, गाल, ओठ, दाँत और शरत्के चन्द्रमाको भी लजानेवाला उनका सलोना-सा मुखड़ा स्वभावसे ही चित्त चुराए डाल रहे हैं॥३२॥ इनकी छाती चौड़ी है, कंधे बैलके डिल्लके समान उठे हुए हैं, भुजाएँ अत्यन्त बलशाली और सुन्दर हैं, पीले वस्त्र, यज्ञोपवीत, कंठमें मोतीकी मालाएँ, कमरमें तरकश और अपने कमलके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कटि निषंग, कर-कमलन्हि धरे धनुसायक। सकल अंग मनमोहन जोहन-लायक ॥३३॥
राम-लखन-छबि देखि मगन पुरजन। उर आनँद, जल लोचन, प्रेम पुलक तन ॥
नारि परसपर कहहिं देखि दुहुँ भाइन्ह। 'लहेउ जनम-फल आज जनमि जग आइन्ह' ॥३४॥
'जग जनमि लोचन-लाहु पाए' सकल सिवहिं मनावहीं।
'बर मिलौ सीतहि साँवरो हम हरषि मंगल गावहीं' ॥
ऐक कहहिं—'कुँवर किसोर, कुलिस-कठोर सिवधनु है महा।
किमि लेहिं बाल मराल मंदर, नृपहिं अस काहु न कहा' ॥३५॥
भे निरास सब भूप बिलोकत रामहिं। 'पन परिहरि सिय देब जनक बत स्यामहिं' ॥
कहहिं एक 'भलि बात, ब्याह भल होइहि। बर-दुलहिनि लगि जनक अपन पन खोइहि' ॥३६॥
सुचि सुजान नृप कहहिं 'हमहिं अस सूझइ। तेज, प्रताप, रूप जहँ-तहँ बल बूझइ ॥
चितइ न सकहु राम-तन, गाल बजावहु। बिधि-बस बलउ लजान, सुमति न लजावहु ॥३७॥
अवसि रामके उठत सरासन टूटिहि। गवनिहि राजसमाज, नाक असि फूटिहि ॥
कस न पियहु भरि लोचन रूप-सुधा-रसु। करहु कृतारथ जनम, होहु कस नरपसु ॥३८॥

समान कोमल हाथोंमें धनुष-बाण लिए हुए हैं। इस प्रकार इनके अंग-अंग ऐसा मनको मोहित किए डाल रहे हैं कि बस देखते ही बनता है ॥ ३३ ॥ राम और लक्ष्मणकी सुन्दरता देख-देखकर नगरके लोग फूले नहीं समा रहे हैं। उनके हृदयमें आनन्द उमड़ चला है, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु उमड़ चले हैं और प्रेमसे शरीर पुलकित हुआ जा रहा है। दोनों भाइयोंको देख-देखकर स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं—'हमने जबसे संसारमें जन्म लिया है तबसे आज ही तो हम अपने जन्मका फल पा सकी हैं' ॥३४॥ 'संसारमें जन्म लेकर आज ही जन्मका लाभ पा सकी हैं'। सब बैठी शिवजीसे यही मनौती मना रही हैं कि 'सीताको वर मिले तो यही साँवला वर मिले और हम सब प्रसन्न होकर मंगल गीत गावें।' एक कहती है—'सखी ! ये कुमार तो अभी किशोर अवस्थाके (बहुत छोटे हैं) और शिवका धनुष है वज्रके समान बहुत कठोर। क्या कोई जाकर राजाको नहीं समझा सकता कि भला ये हंसके बच्चे कैसे मंदराचल उठा पावेंगे ?' ॥ ३५ ॥

रामको देखते ही सभी राजा निराश हो बैठे (और कहने लगे—) '(कुछ भी कहो) राजा जनक तो अपना प्रण तोड़-ताड़कर इन्हीं साँवले वरको सीता सौंप देंगे।' दूसरा राजा कहने लगा—'बड़ा अच्छा होगा। ऐसे वर और दुलहिनके लिये राजा जनक अपना प्रण तोड़ बैठें तो विवाह बढ़िया होगा' ॥ ३६ ॥ पवित्र विचारवाले अच्छे जानकार राजा कहने लगे—'हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि तेज, प्रताप, रूप और बलका जहाँतक प्रश्न है, वहाँतक रामकी ओर कोई आँखतक उठाकर देख नहीं सकता, फिर क्या व्यर्थ बैठे गाल बजाए जा रहे हो ! तुम्हारे दुर्भाग्यसे तुम्हारा बल तो लज्जित हो ही बैठा है। अब कमसे कम अपनी सुबुद्धिको तो मत लजाओ। (तुम्हारा बल तो देख ही लिया गया कि किसीसे यह धनुष तिलभर भी टसकाए न टसक सका, अब मूर्खताकी बातें कहकर अपनी बुद्धिको भी क्यों लजाए दे रहे हो ?) ॥ ३७ ॥ तुम्हारी नाक तो अभी कटी जाती है कि जहाँ राम उठे कि धनुष टूटा। फिर यहाँ एक भी राजा बैठा न दिखाई देगा। तब फिर क्यों नहीं आँखोंभर इनके सौन्दर्यके अमृतका रस पीकर अपने जन्म सफल किए लेते हो ? क्यों मनुष्य होकर पशु बने जा रहे हो ?' ॥ ३८ ॥ दोनों राजकुमारोंके बीच

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुहुँ दिसि राजकुमार बिराजत मुनिवर । नील-पीत-पाथोज - बीच जनु दिनकर ॥
काक-पच्छ रिषि परसत पानि-सरोजनि । लाल कमल जनु लालत बाल-मनोजनि ॥३९॥

'मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू ।
बिनु काज राज-समाज-महँ तजि लाज आपु बिगोवहू' ॥
सिख देइ भूपति साधु भूप अनूप छबि देखन लगे ।
रघुबंस-कैरव-चंद चितइ चकोर जिमि लोचन ठगे ॥४०॥

पुर-नर-नारि निहारहिं रघुकुल-दीपहिं । दोस नेह-बस देहिं बिदेह महीपहिं ॥
एक कहहिं–'भल भूप, देहु जनि दूषन । नृप न सोइ बिनु-बचन, नाक बिनु-भूषन ॥४१॥
हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ । पन-मिस लोचन-लाहु सबन-कहँ दीन्हेउ ॥
अस सुकृती नरनाह जो मन अभिलाषिहि । सो पुरइहि जगदीस पैज-पन राखिहि ॥४२॥
प्रथम सुनत जो राउ राम-गुन-रूपहिं । बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहिं ॥
अब करि पैज पंच-महँ जो पन त्यागै । बिधि-गति जानि न जाइ, अजस जग जागै ॥४३॥
अजहुँ अवसि रघुनन्दन चाप चढ़ाउब । ब्याह-उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब' ॥
लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति-भामिनि । कहत बचन, रद लसहिं दमक जनु दामिनि ॥४४॥

मुनिवर ऐसे विराजमान थे, मानो नीले और पीले कमलोंके बीच सूर्य आ विराजे हों। अपने कर-कमलोंसे मुनि उन दोनोंके काकपक्ष (सिरके बाल) ऐसे सहलाए जा रहे थे मानो लाल कमल छोटे-छोटे कामदेवोंका दुलार कर रहा हो ॥ ३९ ॥

(भले राजा कह रहे थे—) 'कामदेवके समान चित्तको चुरानेवाली इन मधुर मूर्त्तियोंको आदर-पूर्वक क्यों नहीं भर-आँखों देख लेते । व्यर्थ क्या इस राजसमाजमें निर्लज्जोंकी भाँति अपना मुँह छिपाए बैठे हो ।' वहाँ आए हुए सज्जन राजा अन्य राजाओंको इस प्रकार शिक्षा देते हुए उन दोनों अनुपम राजकुमारोंकी छबि निहारने लगे । उनके नेत्र मानो रघुवंश-रूप कमुदिनीको खिला देनेवाले चन्द्रमा (राम)-को देखकर ठगेसे रह गए (एकटक देखने लगे) ॥४०॥ नगरके नर-नारी इन रघुकुलके दीपों (राम-लक्ष्मण)-को देखते जा रहे हैं और (प्रण करनेके कारण) स्नेहवश राजा जनकको कोसे जा रहे हैं । एक कह उठा—'राजाको कुछ न कहो । वे बड़े अच्छे हैं, क्योंकि जो मनुष्य अपने वचनका पालन नहीं करता वह वैसे ही शोभा नहीं देता जैसे बिना लौंगकी नाक (सूनी लगती है) ॥ ४१ ॥ हमारी समझमें तो राजाने बहुत अच्छा किया कि प्रण करनेके बहाने हम सबके नेत्र तो सफल कर दिए (कि राम-लक्ष्मणके दर्शन हो गए) । ऐसे जो पुण्यात्मा राजा अपनी टेक रखकर सबकी अभिलाषाएँ पूरी करते रहते हैं, जगदीश्वर उनकी सारी अभिलाषाएँ स्वयं पूरी करेंगे ॥ ४२ ॥ यदि राजा जनकने रामके गुण और रूपके विषयमें पहलेसे सुन लिया होता तो उन्हें बुलाकर सीता ब्याह देते । तब कोई राजा उन्हें दोष न देता । पर अब तो पंचोंके बीच प्रण कर चुकनेपर यदि प्रण त्याग बैठते हैं, तो विधाता क्या करते यह तो नहीं कहा जा सकता पर उनकी जग-हँसाई तो अवश्य होती ही ॥ ४३ ॥ अब भी हम कहे देते हैं कि राम ही धनुष चढ़ावेंगे और उन्हींके विवाहके उत्सवके मंगल गीत तीनों लोकोंमें गाए जायेंगे । राजा जनककी पत्नी (महारानी सुनयना) झरोखेसे झाँक रही थीं ।' वे जब बोलने लगती थीं तो उनके दाँत ऐसे चमकते थे जैसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि, सुन्दरि सोहही ।
मुनि ढिग देखाए सखिन्ह कुँवर, बिलोकि छबि मन मोहही ॥
सिय-मातु हरषी, निरपि सुषमा अति अलौकिक रामकी ।
हिय कहति-'कहँ धनु, कुँवर कहँ, बिपरीत गति बिधि बामकी' ॥४५॥
कहि प्रिय बचन सखिन्ह-सन रानि बिसूरति । 'कहाँ कठिन सिव-धनुष, कहाँ मृदु मूरति ॥
जो बिधि लोचन-अतिथि करत नहिँ रामहिँ । तौ कोउ नृपहिँ न देत दोस परिनामहिँ ॥४६॥
अस असमंजस भयउ न कछु कहि आवै' । रानिहि जानि ससोच सखी समुझावै ॥
'देवि ! सोच परिहरिय, हरष हिय आनिय । चाप चढ़ाउब राम, बचन फुर मानिय ॥४७॥
तीनि काल-कर ज्ञान कौसिकहिँ करतल । सो कि स्वयंबर आनहि बालक बिनु बल ?'॥
मुनि-महिमा सुनि रानिहि धीरज आयउ । तब सुबाहु-सूदन-जस सखिन सुनायउ ॥४८॥
सुनि सिय भयउ भरोस, रानि हिय हरषइ । बहुरि निरखि रघुबरहिँ, प्रेम मन करषइ ॥
नृप-रानी-पुर-लोग राम-तन चितवहिँ । मंजु मनोरथ-कलस भरहिँ अरु रितवहिँ ॥४९॥
रितवहिँ-भरहिँ धनु निरखि छिन, छिन निरखि रामहिँ सोचहीँ ।
नर-नारि हरष-बिषाद-बस, हिय सकल सिवहिँ सँकोचहीँ ॥

बिजली दमक उठी हो ॥ ४४ ॥ (महारानीके दाँत) मानो बिजली-जैसे चमक रहे थे। उनका रूप तो रतिकी सारी सुन्दरताका निरादर करते हुए बहुत ही सुन्दर लग रहा था। सखियोंने (महारानीको) मुनिके पास बैठे हुए राजकुमार दिखला दिए। उनकी छबि देखते ही तो (रानी) उनपर रीझ गईं। रामकी अत्यन्त अलौकिक सुन्दरता देखकर सीताकी माता हर्षित हो उठीं। वे अपने मनमें सोचने लगीं—'कहाँ यह (कठोर) धनुष और कहाँ ये (अत्यन्त कोमल) राजकुमार ! विधाताकी लीला भी बड़ी विचित्र है (इनके तोड़े धनुष कहाँ टूट पावेगा ?) ॥ ४५ ॥ सखीसे प्रिय वचन कहती हुई रानी बड़े सोचमें पड़ गईं—'कहाँ यह शंकरजीका कठोर धनुष और कहाँ इनकी यह कोमल मूर्त्ति ! यदि विधाताने रामको हमारी आँखोंका अतिथि न बनाया होता (दिखाया न होता) तो पीछे कोई राजाको दोष न देता ॥४६॥ अब तो बड़ा असमंजस आ पड़ा है। कुछ कहते नहीं बन रहा है।' महारानीको चिन्तित देखकर एक सखी समझाने लगी—'देवी ! आप चिन्ता क्या कर रही हैं ? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए क्योंकि धनुष कोई चढ़ावेगा तो राम ही चढ़ावेंगे। मेरी यह बात आप गाँठ बाँध लीजिए ॥ ४७ ॥ तीनों कालोंका ज्ञान तो विश्वामित्रकी मुट्ठीमें है (विश्वामित्र तो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान सबका भेद जानते हैं)। भला उन्हें किसी बलका भरोसा न होता तो क्या वे इन बालकोंको कभी स्वयंवरमें लाते ?' रानीने मुनिका यह प्रताप सुना तो उनके मनको बड़ा ढाढ़स मिला। तब सखियोंने वह कथा भी कह सुनाई कि किस प्रकार रामने सुबाहु नामक राक्षसको मारकर यश कमाया है ॥ ४८ ॥ यह सुनकर सीताको भी भरोसा हो चला और महारानी भी बहुत प्रसन्न हुईं। फिर रामको देखकर उनके हृदयका सारा प्रेम उन्हें (रामकी ओर) खींच ले गया। राजा, रानी और नगरके लोग सब रामकी ओर ही देखे जा रहे हैं। वे अपने सुन्दर मनोरथ-रूपी कलश भरते और रीता किए डाल रहे हैं ॥४९॥ वे क्षण भरके लिये धनुष देखकर तो अपने मनोरथ-रूपी कलशको उँडेल देते हैं पर दूसरे ही क्षण फिर भरने लगते हैं (धनुषको देखकर उन्हें निराशा होती है पर फिर यही मनोरथ करते हैं कि सीताका विवाह रामसे हो हो)। दूसरे ही

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तब जनक-आयसु पाइ- कुलगुरु जानकिहिं लै आयऊ।
सिय - रूप-रासि निहारि लोचन-लाहु लोगन पायऊ ॥५०॥
मंगल भूषन - बसन मंजु तन सोहहिं। देखि मूढ़ महिपाल मोह-बस मोहहिं ॥
रूप-रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ। नील-कमल-सर-सेनि मयन जनु डारइ ॥५१॥
छिन सीतहिं छिन रामहिं पुरजन देखहिं। रूप - सील - बय - बंस - बिसेष बिसेखहिं ॥
राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक। दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक ॥५२॥
प्रेम - प्रमोद परस्पर प्रगटत - गोपहिं। जनु हिरदय गुन-ग्राम-थूनि थिर रोपहिं ॥
राम-सीय बय, समौ, सुभाय सुहावन। नृप-जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन ॥५३॥
सो छबि जाइ न बरनि देख मन मानै। सुधा-पान करि मूक कि स्वाद बखानै ?
तब बिदेह-पन बंदिन प्रगटि सुनायउ। उठे भूप आमरषि, सगुन नहिं पायउ ॥५४॥
नहिं सगुन पायउ रहे मिस करि एक, धनु देखन गए।
टकटोरि कपि ज्यौं नारियर, सिर नाइ सब बैठत भए ॥

क्षण राम (-की कोमलता)-को देखकर चिन्तित हो उठते हैं। इस प्रकार सभी स्त्री-पुरुष हर्ष और विषादके झूलेमें झूलते हुए शिवको मनाए जा रहे हैं (कि किसी प्रकार राम-सीताका विवाह हो जाय)।

इसी सयय जनककी आज्ञा पाकर कुल-गुरु (शतानन्द) जानकीको (रंगभूमिमें) लिवा लाए। सीताका रूप देखते ही सबके नेत्र सफल हो गए ॥ ५० ॥ सीताके शरीरपर मंगल वस्त्र और आभूषण शोभा दे रहे थे। उन्हें देख-देखकर मूढ राजा अज्ञानतावश मोहित हुए जा रहे थे। रूपवती सीता जिस ओर स्वभावसे ही देख लेती थीं, उसी ओर ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव नीले कमलोंके बाण छोड़े दे रहा है ॥ ५१ ॥ नगरवासी भी क्षणमें सीताकी ओर देखते और क्षणमें रामकी ओर (कि इनकी ही जोड़ी ठीक है)। वे दोनोंके रूप, शील, अवस्था और वंशकी समानतापर विशेष रूपसे विचार किए जा रहे हैं (कि सब दृष्टियोंसे यही सम्बन्ध ठीक है)। जब रामने जानकीको और जानकीने रामकी ओर देखा तब कामदेव दोनोंकी ओर देख-देखकर अपने पुष्प-बाण सुधारने लगा (दोनोंके हृदयमें एक दूसरेके प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया) ॥ ५२ ॥ राम और जानकी परस्पर एक दूसरेके प्रति अपने हृदयका प्रेम और प्रमोद प्रकट भी करते जा रहे हैं और फिर (लोक-लाज-वश) उसे छिपाए भी जा रहे हैं मानो दोनों एक-दूसरेके गुणोंकी थूनी (सहारेके बाँस) हृदयमें दृढ करके बैठाए जा रहे हैं। राम और जानकीकी अवस्था, समय और स्वभाव ऐसा सुहावना लग रहा है मानो राजसी यौवन और सुन्दरता दोनों भरपूर राम और जानकीके रूपमें आ पहुँचे हों ॥५३॥ वह छबि ऐसी है कि उसका वर्णन करते नहीं बन रहा है, केवल देखकर ही मन भरा जा रहा है। क्या गूंगा अमृत पीकर भी कभी उसका स्वाद बतला सकता है ?

तभी बन्दी जनोंने सभासदोंको राजा जनकका प्रण कह सुनाया। प्रण सुनना था कि राजा लोग बड़े तपाकके साथ उठ खड़े हुए पर उन्हें शकुन अच्छे नहीं हुए (वे धनुष नहीं उठा पाए) ॥५४॥ जब धनुष नहीं उठ पाया तब सब यही बहाना कर-करके बैठ गए कि 'हम तो धनुष देखने गए थे'। जैसे बन्दर नारियलको टटोलकर बैठ रहता है, वैसे ही कुछ राजा तो धनुषको छूकर ही (लाजसे) सिर झुकाकर बैठ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इक करहिँ दाप, न चाप सज्जन-बचन-जिमि टारे टरै ॥
नृप नहुष - ज्यों, सबके बिलोकत बुद्धि-बल बरबस हरै ॥५५॥
देखि, सपुर-परिवार जनक हिय हारेउ । नृप-समाज जनु तुहिन बनज-बन मारेउ ॥
कौसिक जनकहि कहेउ 'देहु अनुसासन । देखि भानु-कुल-भानु इसान-सरासन' ॥५६॥
'मुनिवर ! तुम्हरे बचन मेरु-महि डोलहिँ । तदपि उचित आचरत, पाँच भल बोलहिँ ॥
बान बान-जिमि गयउ, गवहिँ दसकंधर । को अवनीतल इन - सम बीर धुरंधर ॥५७॥
पारबती-मन सरिस अचल धनु-चालक । हहिँ पुरारि, तेउ एक-नारिब्रत-पालक ॥
सो धनु कहि अवलोकन भूप-किसोरहि । भेद कि सिरिस-सुमन-कन कुलिस कठोरहिँ ॥५८॥
रोम रोम छबि निंदति सोम-मनोजनि । देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि' ॥
मुनि हँसि कहेउ 'जनक ! यह मूरति सो हइ । सुमिरत सकृत मोह-मल सकल बिछोहइ ॥५९॥
सब मल-बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू ।
धनु-सिन्धु नृप-बल-जल बह्यो रघुबरहिँ कुंभज लेखहू ॥'
सुनि, सकुचि, सोचहिँ जनक, गुरु-पद बंदि रघुनंदन चले ।
नहिँ हृदय हरष-विषाद कछु, भे सगुन सुभ मंगल भले ॥६०॥

रहे । कुछ राजा बड़े अहंकारके साथ उठे तो सही पर जैसे सत्पुरुषके वचन किसीके डिगाए नहीं डिगते वैसे ही धनुष भी उनके हिलाए नहीं हिलकर दिया । सबके देखते-देखते राजाओंकी बुद्धि और उनका बल वैसे ही नष्ट हो गया जैसे राजा नहुषकी बुद्धि नष्ट हो गई थी (जो ब्राह्मणोंसे पालकी उठवाकर इन्द्राणीसे मिलने चला था और ब्राह्मणोंके शापसे सर्प हो गया था) ॥ ५५ ॥

विश्वामित्रने जनकसे कहा—'सूर्यवंशके सूर्य रामको भी आज्ञा दें कि वे शंकरका धनुष जा देखें ।' (जनकने कहा)—'मुनिवर ! आपके कहनेपर तो सुमेरु पर्वत और पृथ्वी-तक डोल सकती हैं, फिर भी वही करना उचित लगता है जिसे पंच लोग ठीक कहें । देखिए, बाणासुर तो बाणके समान भाग खड़ा हुआ और दशकंध रावण भी आया और चल दिया । भला उनके समान धुरंधर वीर पृथ्वीपर है कौन ? ॥ ५७ ॥ पार्वतीके मनके समान अडिग इस धनुषको यदि कोई उठा सकता है तो केवल शिव ही उठा सकते हैं पर वे भी एक नारी-व्रती हैं (उनके तो एक नारी पार्वती हैं ही । वे धनुष तोड़कर दूसरी नारी नहीं ब्याहना चाहेंगे) । उसी धनुषको आप राजकुमार (राम)-को देखनेके लिये कह रहे हैं ? क्या सिरसके फूलका केसर कहीं कठोर हीरेको बेध पा सकता है ? ॥५८॥ जिनके रोम-रोमकी शोभा चन्द्रमा और कामदेवकी शोभाको भी लजाए डाल रही है, वह मूर्त्ति तो बस देखने भरकी है, उसे मलिन न कीजिए ।' (राम देखने भरको सुन्दर हैं, धनुष उठवानेके फेरमें इनकी शोभा मत बिगड़वाइए)' मुनिने हँसकर कहा—'जनक ! यह वही मूर्त्ति है, जिसका केवल एक बार स्मरण करने-भरसे सारा अज्ञान-रूपी मैल दूर हो मिटता है ॥ ५९ ॥ देखिए जनक ! इस मूर्त्तिको समस्त मलों (पापों)-को दूर करनेवाला जानकर इसका खेल तो देखिए । जिस धनुष-रूपी समुद्रमें राजाओंका बल पानीके समान बहकर जा समाया, उसी धनुष-रूपी समुद्रको सोखनेके लिये रामको कुम्भज (अगस्त्य ऋषि) ही समझो ।' यह सुनकर जनक बहुत सकुचाते हुए बड़े सोचमें पड़ गए । इतनेमें गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके राम उठ चले । उनके हृदयमें न कुछ हर्ष था न विषाद । (रामके उठकर चलते ही) सभी मंगल-कारक शुभ शकुन होने लगे ॥ ६० ॥ देवता भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बरिसन लगे सुमन सुर, दुंदुभि बाजहिं । मुदित जनकपुर-परिजन नृप-गन लाजहिं ॥
महि - महिधरनि लखन कह बलहिं बढ़ावन । राम चहत सिव-चापहिं चपरि चढ़ावन ॥६१॥
गए सुभाय राम जब चाप - समीपहि । सोच-सहित परिवार बिदेह-महीपहि ॥
कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ । गौरि, गनेस, गिरीसहि सुमिरि सँकोचइ॥६२॥
होति बिरह-सर-मगन देखि रघुनाथहिं । फरकि बाम भुज नयन देहिं जनु हाथहिं ॥
धीरज धरति, सगुन बल रहत सो नाहिंन । बर किसोर, धनु घोर, दैव नहिं दाहिन ॥६३॥
अंतरजामी राम मरम सब जानेउ । धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेउ ॥
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ । जनु मृग-राज-किसोर महा गज गंजेउ ॥६४॥

गंजेउ, सो गर्जेउ घोर, धुनि सुनि भूमि - भूधर लरखरे ।
रघुबीर जस-मुकुता बिपुल सब भुवन - पटु पेटक भरे ॥
हिय मुदित, अनहित रुदित मुख, छबि कहत कवि धनु-जागकी ।
जनु भोर चक्क, चकोर, कैरव सघन कमल तड़ागकी ॥६५॥

नभ-पुर मंगल गान-निसान गहागहे । देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे ॥
तब उपरोहित कहेउ, सखी सब गावत । चलीं लेवाइ जानकिहिं भा मनभावत ॥६६॥

फूल बरसाने और दुंदुभी बजाने लगे । जनकपुरके लोग हर्षित हो उठे और राजा लोग लाजसे गड़ चले । लक्ष्मणने पृथ्वी और पर्वतोंको ललकार कहा—'देखना, अपना बल बढ़ाए रखना (बलपूर्वक सँभाले रहना), राम अब शिवका धनुष चढ़ाने ही वाले हैं ॥६१॥ जब राम साधारण रीतिसे धनुषके पास पहुँचे तब राजा जनक और उनका परिवार सब बड़ी चिन्तामें पड़ गए । सीताके मनमें भी बड़ी धुकधुकी बढ़ी जा रही थी पर संकोचवश वे कुछ कह नहीं पा रही थीं । वे बैठी पार्वती, गणेश और शिवको चुपचाप मनाए जा रही थीं ॥ ६२ ॥ और रामकी ओर देखकर विरहके तालमें डूबी पड़ रही थीं । पर (इसी समय उनकी) बाईं भुजा और आँख जो फड़की तो मानो उन्हें बड़ा सहारा मिल गया । उनके मनमें बड़ा धीरज तो हुआ (पर वे मनमें) सोचने लगीं कि इस सगुनके बलका भरोसा क्या ? ॥ ६३ ॥ अन्तर्यामी राम तो झट सब ताड़ गए । उन्होंने खेल ही खेलमें धनुष उठाकर उसे कान-तक तान खींचा । सीताका प्रेम देखकर रामने धनुषको ऐसे तोड़ फेंका मानो सिंहके बच्चेने बड़े भारी गजराजको फाड़ फेंका हो ॥ ६४ ॥

रामने ज्यों ही धनुष तोड़ा त्यों ही इतना भयानक कड़ाकेका धमाका हुआ कि उसकी ध्वनि मात्रसे पृथ्वी और पर्वत दहल उठे । सभी लोकोंके चतुर लोग रामके यशके मोती अपने पिटारोंमें भरने लगे (रामका यश गाने लगे) । कुछ अमंगल समझकर जिनके मुख रुआँसे हो चले थे वे खिल उठे । कवि उस समयके धनुष-यज्ञकी भूमिकी शोभाका वर्णन करता हुआ कहता है कि मानो भोरका समय जानकर जो लोग चकवा, चकोर और कुमुदकी भाँति कुम्हला गए थे, वे अब तडागके सघन कमलोंके समान खिल उठे (प्रसन्न हो गए) ॥ ६५ ॥ कल्पवृक्षके समान सुन्दर लहलहाते हुए अपने मनोरथ सफल होते देखकर आकाश तथा नगरमें मंगल गान होने लगे और ढमाढम डंके-नगाड़े बज उठे । तब पुरोहित (शतानन्द)-की आज्ञा पाकर वे सभी सखियाँ गाती-बजाती जानकीको लिवा ले चलीं जिनके मनकी चाह पूरी हो गई थी ॥ ६६ ॥ जानकीके कर-कमलोंमें जो जयमाला (दूबमें गुंथी हुई

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ। बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ?
सीय सनेह-सकुच-बस पिय-तन हेरइ। सुरतरु-रुख सुर-बेलि पवन जनु फेरइ ॥६७॥
लसत ललित कर-कमल माल पहिरावत। काम-फंद जनु चंदहि बनज फदावत ॥
राम-सीय-छबि निरुपम, निरुपम सो दिन। सुख-समाज लखि रानिन आनँद छिन-छिन ॥६८॥
प्रभुहिं माल पहिराइ जानकिहिं लै चली। सखी मनहु बिधु-उदय मुदित कैरव-कली ॥
बरषहिं बिबुध प्रसून हरषि कहि जय जय। सुख-सनेह भरे भुवन, राम गुरु-पहँ गय ॥६९॥

गे राम गुरु-पहँ, राउ - रानी नारि - नर आनँद - भरे।
जनु तृषित करि-करिनी-निकर सीतल सुधा-सागर परे ॥
कौसिकहिं पूजि, प्रसंसि, आयसु पाइ, नृप सुख पायऊ।
लिखि लगन, तिलक-समाज सजि, कुल-गुरुहिं अवध पठायऊ ॥७०॥

गुनि-गन बोलि कहेउ नृप माँड़व छावन। गावहिं गीत सुआसिनि, बाज बधावन ॥
सीय-राम-हित पूजहिं गौरि-गनेसहिं। परिजन-पुरजन - सहित प्रमोद नरेसहिं ॥७१॥
प्रथम हरदि-बंदन करि मंगल गावहिं। करि कुल-रीति, कलस थपि, तेल चढ़ावहिं ॥
गे मुनि अवध, बिलोकि सुसरित नहायउ। सतानंद सत-कोटि नाम-फल पायउ ॥७२॥

महुएकी माला) पड़ी थी उसकी अतुलनीय शोभाका वर्णन भला कौन कवि कर सकता है ? स्नेह और संकोचमें पड़ी हुई सीता अपने प्रिय रामकी ओर देखे जा रही थीं, मानो पवन अपने भौंकेसे कल्पलताको कल्पवृक्षकी ओर झुकाए दे रहा हो ॥६७॥ जानकी जब अपने कमलके समान हाथोंमें शोभा देनेवाली सुन्दर जयमाला रामको पहनाने लगीं तब ऐसा जान पड़ा मानो चन्द्रमाको कामदेवके फंदेमें कमल फँसाए ले रहा हो। राम और सीताकी शोभा भी उपमासे परे है (बेजोड़ है) और इस शुभ दिनकी भी उपमा नहीं दी जा सकती। ऐसा सुखका समाज देखकर रानियाँ क्षण-क्षणपर आनन्दित हुई जा रही हैं ॥ ६८ ॥ रामको जयमाल पहना चुकनेपर सखियाँ सीताको लेकर ऐसे चलीं, मानो चन्द्रमाके उदय होते ही कुमुदिनीकी कली खिल उठी हो। देवता लोग हर्षित होकर जय-जयकार करते हुए पुष्प-वर्षा करने लगे। सभी लोक सुख और स्नेहसे भर चले। राम भी उठकर गुरु विश्वामित्रके पास चले गए ॥ ६९ ॥

इधर राम तो गुरुके समीप गए, उधर राजा जनक, रानी सुनयना और सभी स्त्री-पुरुष ऐसे आनन्दित हो उठे मानो प्यासे हाथी और हथिनियोंका समूह शीतल अमृतके समुद्रमें जा पहुँचा हो। विश्वामित्रकी पूजा और प्रशंसा करके तथा उनकी आज्ञा पाकर राजा जनक बहुत सुखी हुए। राजा जनकने तिलककी तैयारी करके, लग्न-पत्रिका लिखवाकर अपने कुल-गुरु (शतानन्द)को अयोध्या भेज दिया ॥ ७० ॥ राजाने गुणियों (अच्छे कारीगरों)-को बुलाकर मंडप छानेको कह दिया, सोहागिन स्त्रियाँ गीत गाने लगीं और चारों ओर बधावे बजने लगे। अपने परिवार और नगरवासियोंके सहित राजा जनक बड़े मगन हो उठे। वे राम और जानकीके कल्याणके लिये गौरी-गणेशकी पूजा करने लगे ॥ ७१ ॥ पहले हरिद्रा-मंगल करके मंगल-गीत गाए गए। फिर कुलकी रीति करके कलशकी स्थापना की गई और तेल चढ़ाया गया (हलदी और तेल मिलाकर कन्याको मला गया)। इधर मुनि शतानन्द अयोध्या जा पहुँचे। वहाँ सुन्दर सरयू नदीमें स्नान करके उन्होंने सौ करोड़ भगवन्नाम जपनेका फल पा लिया ॥७२॥ राजा दशरथने जब उनके आगमनका समाचार सुना तो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नृप सुनि, आगे आइ, पूजि सनमानेउ। दीन्हि लगन कहि कुसल, राउ हरषानेउ॥
सुनि, पुर भयउ अनंद बधाव बजावहिं। सजहिं सुमंगल कलस, बितान बनावहिं॥७३॥
राउ, छाँड़ि सब काज, साज सब साजहिं। चलेउ बरात बनाइ, पूजि गजराजहिं॥
बाजहिं ढोल-निसान सगुन सुभ पाइन्हि। सिय-नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि॥७४॥

नियरानि नगर बरात हरषी, लेन अगवानी गए।
देखत परसपर, मिलत, मानत, प्रेम-परिपूरन भए॥
आनन्द पुर कौतुक-कोलाहल बनत सो बरनत कहाँ।
लै दियो तहँ जनवास, सकल सुपास नित नूतन जहाँ॥७५॥

गे जनवासहिं कौसिक राम-लषन लिएँ। हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिएँ॥
हृदय लाइ लिएँ गोद, मोद अति भूपहिं। कहि न सकहिं सत सेस अनंद अनूपहिं॥७६॥
राय कौसिकहिं पूजि, दान बिप्रन्ह दिए। राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए॥
ब्याह - बिभूषन - भूषित भूषन - भूषन। बिस्वबिलोचन बनज - बिकासक पूषन॥७७॥
मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ। मनहु काम - आराम कल्पतरु फूलेउ॥
पठई भेंट बिदेह बहुत, बहु भाँतिन। देखत देव सिहाहिं अनंद बरातिन॥७८॥

उन्होंने आगे आकर मुनिकी बड़ी पूजा करके उनका बहुत सम्मान किया। मुनिने राम-लक्ष्मणका कुशल समाचार कहकर लग्न-पत्रिका निकाल थमाई। (पत्रिका बाँचकर) राजा दशरथ प्रसन्न हो उठे। नगरमें समाचार पहुँचना था कि सब लोग हर्ष-विह्वल हो उठे। बधावे बजने लगे। लोग घर-घर मंगल कलश सजाने और चँदोवे तानने लगे॥ ७३॥ राजा दशरथ भी सब काम-धाम छोड़कर बारात सजवानेमें लग गए। गजराजकी पूजा करके वे बारात लेकर चल पड़े। ढोल-नगाड़े बज उठे और चारों ओर अच्छे ही अच्छे शकुन मिलने लगे। अब ये लोग सीताके मायके जनकपुरके निकट जा पहुँचे॥ ७४॥

नगरके निकट पहुँचते ही बारात हर्षित हो उठी। (जनकपुरके) लोग अगवानीके लिये आ पहुँचे। (दोनों समधी) देखते ही परस्पर गले मिलने लगे और एक दूसरेका सम्मान करके प्रेमसे परिपूर्ण हो गए। नगरमें इतना आनन्द, कौतुक और कोलाहल मच गया जिसका वर्णन किया भी जाय तो कहाँतक किया जाय? सबको जहाँ-जहाँ सब प्रकारसे नवीन सुविधा थी वहाँ-वहाँ ले जा ले जाकर जनवासा दे दिया गया॥ ७५॥ मुनि विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मणको लेकर जनवासे जा पहुँचे। बारात देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हो उठे। राजा दशरथ इतने आनन्दमें भर उठे कि उन्होंने राम-लक्ष्मणको हृदयसे उठा लगाया और गोदमें ले बैठाया। इस अनुपम आनन्दका वर्णन सौ शेष भी मिलकर करना चाहें तो नहीं कर पा सकते॥ ७६॥ राजा दशरथने विश्वामित्रकी बहुत पूजा की और ब्राह्मणोंको बहुत दान दिया। रामके कल्याणके लिये उन्होंने सारे मंगल कार्य कर डाले। सभी संसारके लिये दर्शनीय, कमलको खिलानेवाले सूर्य-रूपी रामने भूषणोंके भूषण होते हुए भी विवाहके सारे आभूषण जा पहने॥७७॥ वे बारातके बीच विराजमान होकर ऐसे अच्छे लग रहे थे मानो कामदेवकी वाटिकामें कल्पवृक्ष फूल उठा हो। जनकने अनेक प्रकारकी जो बहुत सी भेंट वहाँ भेजीं उन्हें देख-देखकर देवता भी तरस उठे और बाराती प्रसन्न हो उठे। दोनों कुलगुरुओंने वेदके अनुसार सारी कुलकी रीतियाँ पूरी कर डालीं॥ ७८॥ फिर जनकने बड़ी प्रसन्नतासे बारातको

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बेद-बिहित कुल-रीति कीन्हि दुहुँ कुल-गुर। पठई बोलि बरात जनक प्रमुदित उर॥
जाइ कहेउ 'पगु धारिय' मुनि-अवधेसहिं। चले सुमिरि गुरु-गौरि-गिरीस-गनेसहिं॥७९॥

चले सुमिरि गुरु, सुर सुमन बरषहिं, परे बहु-बिधि पाँवड़े।
सनमानि सब बिधि जनक, दसरथ किए प्रेम कनावड़े॥
गुन सकल सम समधी, परसपर मिलत अति आनँद लहे।
जय धन्य, जय जय धन्य, धन्य, बिलोकि सुर-नर-मुनि कहे॥८०॥

तीन लोक अवलोकहिं नहिं उपमा कोउ। दसरथ-जनक-समान जनक-दसरथ दोउ॥
सजहिं सुमंगल साज, रहस रनिवासहिं। गान करहिं पिक-बैनि सहित परिहासहिं॥८१॥
उमा-रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं। कपट नारि-बर-बेष बिरचि मंडप गईं॥
मंगल आरति साजि, बरहिं परिछन चलीं। जनु बिगसीं रबि-उदय कनक-पंकज कलीं॥८२॥
नख-सिख-सुन्दर राम-रूप जब देखहिं। सब इन्द्रिन-महँ इंद्र-बिलोचन लेखहिं॥
परम प्रीति कुल-रीति करहिं गज-गामिनि। नहिं अघाहिं अनुराग, भाग भरि भामिनि॥८३॥
नेगचार-कहँ नागरि गहरु लगावहिं। निरखि-निरखि आनंद सुलोचनि पावहिं॥
करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं। प्रेम-मगन प्रमदागन तनु न सम्हारहिं॥८४॥

बुलावा भेजते हुए कहलाया कि 'मुनि विश्वामित्र और अवधेश राजा दशरथसे जाकर निवेदन करो कि आप लोग पदार्पण कीजिए।' तब (विश्वामित्र और दशरथ बारात लेकर) गुरु, पार्वती, शंकर और गणेशको स्मरण करके चल पड़े॥ ७९॥ जब ये लोग गुरुका स्मरण करके चले तब देवता लोग फूलोंकी वर्षा करने लगे। मार्गमें अनेक प्रकारके पाँवड़े (बिछावन) पड़ गए। जनकने सब प्रकारसे सम्मान करके राजा दशरथको अपने प्रेममें बाँध लिया। दोनों समधी सभी गुणोंमें समान थे। वे परस्पर मिलते हुए बहुत आनन्दित हुए जा रहे थे। यह देखकर देवता, मनुष्य और मुनिगण सब जय-जय, धन्य-धन्य कहते जा रहे थे॥८०॥ तीनों लोकोंमें ढूँढनेपर भी उनकी उपमा कहीं नहीं मिल रही थी। बस, दशरथ और जनक दोनों दशरथ तथा जनकके समान ही थे। सब लोग मंगल साज सजाने लगे। रनिवासमें भी आमोद-प्रमोद होने लगा। बड़े हास-परिहास (हँसी-विनोद)-के साथ पिकबैनी स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं॥ ८१॥ पार्वती और लक्ष्मी आदि देवताओंकी स्त्रियाँ भी यह सुन-सुनकर बहुत हर्षित हुई जा रही थीं। वे भी साधारण स्त्रियोंका-सा वेष धरे मंडपमें जा पहुँचीं। सब स्त्रियाँ मिलकर मंगल आरती सजाकर ऐसी प्रसन्न होकर वरका परिछन करने चल दीं मानो सूर्यके उदय होनेपर सुनहरे कमलकी कलियाँ खिल पड़ी हों॥ ८२॥ जब वे रामका स्वरूप नीचेसे ऊपर-तक देखने लगीं तब वे यही समझ बैठीं कि हमारी एक-एक इन्द्रियमें इन्द्रके नेत्र (सहस्रों आँखें) खुल पड़ी हों। वे सभी गजगामिनी सुन्दरियाँ बड़े प्रेमके साथ कुलकी रीति करने लगीं। प्रेम और सौभाग्यसे भरी वे स्त्रियाँ (रामका अनुपम सौन्दर्य देख-देखकर) अघा नहीं रही हैं॥ ८३॥ वे चतुर स्त्रियाँ नेग लेने-देनेके बहाने देर लगाए जा रही हैं और वे सुलोचनी सुन्दरियाँ प्रभुका सौन्दर्य देख-देखकर मगन हुई जा रही हैं। वरकी आरती उतारकर न्योछावरके लिये प्रभुको देखे जा रही हैं (कि इनपर क्या नहीं न्योछावर किया जा सकता, सब कुछ न्योछावर किया जा सकता है)। वे सुन्दरियाँ रामके प्रेममें ऐसी मगन हो उठीं कि अपने अंग-तक नहीं सँभाल पा रही थीं॥ ८४॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नहिं तनु सम्हारहिं, छबि निहारहिं, निमिष-रिपु जनु रन जए॥
चक्कवै - लोचन राम-रूप - सुराज - सुख भोगी भए।
तब जनक, सहित - समाज राजहिं उचित रुचिरासन दए।
कौसिक - बसिष्ठहिं पूजि, पूजे राउ दै अम्बर नए॥८५॥

देत अरघ रघुबीरहिं मंडप लै चलीं। करहिं-सुमंगल गान उमँगि आनँद अलीं॥
बर बिराज मंडप-महँ बिस्व बिमोहइ। रितु बसंत बन-मध्य मदन जनु सोहइ॥८६॥
कुल-बिवहार बेद-बिधि चाहिय जहँ जस। उपरोहित दोउ करहिं मुदित मन तहँ तस॥
बरहिं पूजि, नृप दीन्ह सुभग सिंहासन। चलीं दुलहिनिहिं ल्याइ पाइ अनुसासन॥८७॥
जुवति-जुत्थ-महँ सीय सुभाइ बिराजइ। उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ॥
दुलह-दुलहिनी देखि नारि-नर हरषहिं। छिन-छिन गान-निसान, सुमन सुर बरषहिं॥८८॥
लै-लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिं। कुँवर-कुँवरि-हित गनपति-गौरि पुजावहिं॥
अगिनि थापि, मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ। कन्या-दान-बिधान सकल नृप कीन्हेउ॥८९॥

संकल्पि सिय रामहिं समर्पी सील - सुख - सोभामई।
जिमि संकरहिं गिरिराज गिरिजा, हरिहिं श्री सागर दई॥

वे सुन्दरियाँ अपने शरीरकी सारी सुध-बुध भूलकर प्रभुकी छबि निहारे जा रही थीं मानो उनकी आँखोंने निमिष(पलक)-रूपी शत्रुको जीत लिया हो (जिससे पलकें नहीं गिर रही थीं) और रामके सौन्दर्यका उत्तम राज्य उनके चक्रवर्ती नेत्रोंकी मुट्ठीमें आ गया हो। तब जनकने राजा दशरथको और उनके समाजको यथोचित उत्तम आसनोंपर ला बैठाया। फिर विश्वामित्र और वशिष्ठकी पूजा करके उन्होंने राजा जनककी पूजा की और उन्हें नवीन-नवीन वस्त्र ला पहनाए॥८५॥ अर्घ्य देती हुई (आगे आगे जलकी धार गिराती हुई) स्त्रियाँ रामको मंडपमें लिवा ले चलीं और आनन्दमें मग्न होकर मंगल गीत गाने लगीं। मंडपमें विराजते हुए राम सारे विश्वको ऐसे विमोहित किए डाल रहे थे मानो वनमें वसन्त (लक्ष्मण)-के साथ कामदेव (राम) शोभा दे रहे हों॥ ८६॥ वेदकी विधिके अनुसार जहाँ जैसा कुलाचार किया जाना चाहिए था वहाँ दोनों ओरके पुरोहित प्रसन्नतापूर्वक वैसा ही कुलाचार किए जा रहे थे। वरकी पूजा करके राजा जनकने जब उन्हें सुन्दर सिंहासनपर सँभाल बैठाया तब उनकी आज्ञा पाकर सखियाँ दुलहिन (सीता)-को भी मंडपमें लिवा लाईं॥ ८७॥ इन युवतियोंके बीच जानकी स्वभावसे ही ऐसी अच्छी लग रही थीं कि उनकी उपमा देनेमें (असफल होकर) सरस्वती भी लजाकर भाग खड़ी हुई। दुलहा और दुलहिनको देखकर सब स्त्री-पुरुष फूले नहीं समा रहे थे, क्षण-क्षण पर गीत गाए जा रहे थे, डंके-नगाड़े बजा रहे थे और देवता फूलोंकी वर्षा किए जा रहे थे॥ ८८॥ सुहागिन नारियाँ नाम ले-लेकर मंगल-गान कर रही थीं तथा राजकुमार और राजकुमारीके कल्याणके लिये गौरी-गणेशकी पूजा कर रही थीं। राजा जनकने अग्निकी स्थापना करके हाथमें कुशा और जल लेकर कन्या-दानका विधान पूरा कर दिया (कन्यादान कर दिया)॥ ८९॥ उन्होंने संकल्प करके शील, गुण और शोभासे पूर्ण सीताको रामके हाथमें उसी भाँति समर्पित कर दिया जैसे गिरिराज हिमाचलने शंकरको पार्वती, और सागरने हरिको लक्ष्मी समर्पित कर दी थी। फिर सिन्दूर-वंदन हुआ (कन्याकी माँगमें वरने सेंदुर भरा) और लावा परछने (लाजा-

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सिंदूर-बंदन, होम लावा, होन लागीं भाँवरी।
सिल-पोहनी करि, मोहनी-मन हर्‌यौ मूरति साँवरी ॥९०॥

यहि बिधि भयो बिबाह-उछाह तिहूँ पुर। देहिं असीस मुनीस, सुमन बरषहिं सुर॥
मनभावत बिधि कीन्ह, मुदित भामिनि भईं। बर-दुलहिनिहिं लेवाइ सखी कोहबर गईं ॥९१॥
निरखि निछावरि करहिं बसन-मनि छिन-छिन। जाइ न बरनि बिनोद, मोदमय सो दिन॥
सिय-भ्राता-के समय भौम तहँ आयउ। दुरी-दुरा करि नेग सुनात जनायउ ॥९२॥
चतुर नारि बर-कुँवरिहिं रीति सिखावहिं। देहिं गारि लहकौरि-समौ सुख पावहिं॥
जुवा खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन। जीति-हारि-मिस देहिं गारि दुहुँ रानिन ॥९३॥
सीय-मातु मन-मुदित उतारति आरति। को कहि सकइ अनंद, मगन भइ भारति॥
जुवति-जूथ रनिबास रहस-बस यहि बिधि। देखि-देखि सिय-राम सकल मंगल-निधि ॥९४॥

मंगल-निधान बिलोकि लोचन-लाह लूटति नागरी॥
दइ जनक तीनिहुँ कुँवरि, कुँवर बिबाहि सुनि आनँदभरी॥

हवन)-के साथ-साथ भाँवरें पड़ने लगीं। सिलपोहनी करके (शिलापर कन्याका पैर रखवाकर उसे दृढ रहनेको वर कहता है) रामकी साँवली मूर्त्तिने मोहिनी जानकीका मन भी हर लिया॥ ९०॥

इस प्रकार विवाहका कार्य सम्पन्न हो गया और तीनों लोकोंमें आनन्द ही आनन्द आ छाया। सब मुनीश्वर उन्हें आशीर्वाद देने लगे और देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे। स्त्रियाँ तो बहुत ही आनंदित हुई जा रही थीं कि विधाताने हमारे मनकी अभिलाषा पूरी कर दी। यह हो चुकनेपर वर और दुलहिनको सखियाँ कोहबर (कुहक-गृह)-में लिवा ले गईं॥ ९१॥ क्षण-क्षणपर रामको देख-देख कर रानियाँ वस्त्र और रत्न न्योछावर किए डाल रही थीं। उस आनंदमय दिन कितना विनोद (हँसी-खेल) हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय सीताके भाई-के स्थानपर भौम (भूमि-पुत्र मंगल) आ पहुँचे और अन्तर्पट (ओट) देकर गँठबन्धन खोलते हुए अपना नाता बताकर नेग माँगने लगे। [प्रायः कोहबरमें आमोद-प्रमोद और वर-कन्याको दही-गुड़ चटानेका कार्य हो चुकनेपर साली-सरहज गँठबन्धनकी गाँठ खोलतीं और नेग माँगती हैं। कहींपर यह कार्य साला करता है। यहाँ सालेके स्थानपर भौम (भूमिके पुत्र और सीताके भाई मंगल) आए थे]॥ ९२॥ चतुर स्त्रियाँ सीताको खेलकी अनेक रीतियाँ सिखाती हैं और लहकौर (जुएमें जीतनेवाला दाँव) बताते समय गाली गाती हुई प्रसन्न होती हैं। जुआ खेलाते समय सयानी स्त्रियाँ बड़ा खेल करने लगीं। वे जुएमें हार-जीतके बहाने दोनों ओरकी रानियोंको गाली गाने लगीं॥ ९३॥ सीताकी माता जितने प्रसन्न मनसे आरती उतारने लग रही थीं उस आनन्दका वर्णन कौन कर सकता है जब कि स्वयं सरस्वती ही आनन्दमें मग्न हुई पड़ी थीं। इस प्रकार रनिवासकी नवेलियाँ समस्त मंगलोंके भंडार राम और जानकीको देख-देखकर आनंदित हुई जा रही थीं॥ ९४॥ नगरकी स्त्रियाँ मंगलके भंडार राम-जानकीको देख-देखकर अपने नेत्रोंका लाभ लूटे ले रही थीं। जनकने (अपनी और अपने भाई कुशध्वजकी) तीनों कुमारियोंको भी तीनों राजकुमारों (भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न)-के साथ ब्याह दिया—यह जानकर तो वे भी आनंदित

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कल्यानमों कल्यान पाइ, बितान छबि - मय मोहई ॥
सुर-धेनु, ससि, सुरमनि - सहित मानहुँ कलपतरु सोहई ॥९५॥

जनक-अनुज-तनया दुइ परम मनोरम । जेठि भरत कहँ ब्याहि रूप रति-सय सम ॥
सिय लघु भगिनि लषन-कहँ रूप-उजागरि । लषन-अनुज स्रुतिकीरति सब-गुन-आगरि ॥९६॥
राम-बिवाह-समान ब्याह तीनिउ भए । जीवन-फल, लोचन-फल बिधि सब-कहँ दए ॥
दाइज भयउ बिबिध बिधि, जाइ न सो गनि । दासी, दास, बाजि, गज, हेम, बसन, मनि ॥९७॥
दान-मान-परमान प्रेम-पूरन किय । समधी-सहित बरात बिनय-बस करि लिय ॥
गे जनवासेहिं राउ, संग सुत सुत-बहु । जनु पाए फल चारि सहित साधन चहुँ ॥९८॥
चहुँ प्रकार जेवनार भई बहु भाँतिन्ह । भोजन करत अवधपति सहित-बरातिन्ह ॥
देहिं गारि बर नारि, नाम लै दुहुँ दिसि । जेंवत बढ़ेउ अनंद, सोहावनि सो निसि ॥९९॥

सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने बाजहिं भले ।
नृप कियो भोजन-पान, पाइ प्रमोद, जनवासहिं चले ॥
नट, भाट, मागध, सूत, जाचक जस-प्रतापहिं बरनहीं ।
सानन्द भुसूर-बृन्द मनि - गज देत मन करषै नहीं ॥१००॥

हो उठीं। कल्याणमें भी कल्याण पाकर वह मंडप इतना अधिक मोहक हो उठा मानो कामधेनु, चन्द्रमा और चिन्तामणिके साथ कल्पवृक्ष शोभा दे रहा हो ॥ ९५ ॥ जनकके छोटे भाई कुशध्वजकी भी दो परम सुन्दरी कन्याएँ थीं जिनमेंसे सैकड़ों रतियोंके समान सुन्दरी बड़ी कन्या माण्डवीका विवाह भरतके साथ कर दिया गया। सीताकी छोटी बहिन सुन्दरी उर्मिलाका लक्ष्मणके साथ तथा माण्डवीकी छोटी बहिन गुणवती श्रुतिकीर्त्तिका विवाह शत्रुघ्न-के साथ कर दिया गया ॥९६॥ ये तीनों विवाह भी वैसी ही विधिके साथ किए गए जैसी विधिके साथ रामका विवाह हुआ था। विधाताने इस प्रकार सबको जीवन और नेत्रोंका लाभ दे डाला (सबके जीवन और नेत्र सफल हो गए)। दहेज तो इतने प्रकारके दिए गए कि उनकी कोई गिनती नहीं है। जनकने दासी, घोड़े, हाथी, सुवर्ण, वस्त्र, रत्न आदि देकर दशरथको सम्मान और प्रेमसे परिपूर्ण कर दिया और समधी (दशरथ)-सहित सारी बारातको अपने विनयपूर्ण व्यवहारसे अपने वशमें कर लिया। राजा दशरथ अपने पुत्रों और पुत्र-बधुओंके साथ जनवासे पहुँच गए मानो चारों साधनों (त्याग, संग्रह, संयम और कर्म)-के सहित चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) पा गए हों ॥९७, ९८॥ अनेक प्रकारके व्यंजनोंसे सजी हुई चारों प्रकारकी (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य) जेवनारें लगा दी गईं। अवधेश राजा दशरथ बरातियोंके साथ बैठकर जीमने लगे। जनकपुरकी महिलाएँ दोनों ओरके नाम ले-लेकर गालियाँ गाने लगीं। उस सुहावनी रात्रिमें बैठकर जीमनेमें बड़ा ही आनन्द आया ॥९९॥ उस सुहावनी रात - भर मधुर गीत होते रहे और अच्छे-अच्छे बाजे बजते रहे। राजा भी जीमकर, पान खाकर आनन्द-पूर्वक जनवासे लौट गए। नट, भाट, मागध, सूत (कथावाचक) और मंगन आ-आकर दशरथ-के यश-प्रतापका वर्णन करने लगे। (वे भी इतने प्रसन्न थे कि) आनन्दपूर्वक ब्राह्मणोंको रत्न और हाथी आदि लुटाते उन्हें कोई संकोच नहीं हो रहा था ॥१००॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

करि-करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह। जनक कीन्ह पहुनाई अगनित भाँतिन्ह ॥
'प्रात बरात चलिहि' सुनि भूपति-भामिनि। परि न बिरह-बस नींद, बीति गइ जामिनि ॥१०१॥
खरभर नगर, नारि-नर बिधिहिं मनावहिं। बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं ॥
सकल चलनके साज जनक साजत भऐ। भाइन्ह-सहित राम तब भूप-भवन गऐ ॥१०२॥
सासु उतारि आरती करहिं निछावरि। निरखि-निरखि हिय हरषहिं मूरति साँवरि ॥
माँगेउ बिदा राम तब, सुनि करुना-भरी। परिहरि सकुच, सप्रेम पुलकि पाँयन्ह परी ॥१०३॥
सीय-सहित सब सुता सौंपि कर जोरहि। बार बार रघुनाथहिं निरखि निहोरहिं।
'तात! तजिय जनि छोह, मया राखबि मन। अनुचर जानब राउ-सहित पुर-परिजन ॥१२४॥

जन जानि, करब सनेह, बलि' कहि दीन बचन सुनावही।
अति प्रेम बारहिं बार रानी बालकन्हि उर लावही ॥
सिय चलत, पुरजन-नारि, हय, गज, बिहँग, मृग ब्याकुल भए।
सुनि बिनय, सासु प्रबोधि, तब रघुबंस-मनि पितु-पहँ गए ॥१०५॥

परेउ निसानहिं घाउ, राउ अवधहिं चले। सुरगन बरषहिं सुमन, सगुन पावहिं भले ॥
जनक जानकिहिं भेंटि, सिखाइ सिखावन। सहित-सचिव-गुरु-बंधु चले पहुँचावन ॥१०६॥

राजा जनकने बार-बार विनय करके कुछ दिनोंके लिये बारातको और रोके रक्खा। इस बीच जनकने उनकी इतनी आवभगत की, इतनी पहुनाई की कि कुछ पूछिए मत। राजा जनककी रानीने जब यह सुना कि कल तड़के ही बारात कूच करनेवाली है तब वियोग होनेके भयसे सुनयनाको रातभर नींद नहीं आई और सारी रात यों ही जागते बीत गई ॥१०१॥ यह सुनकर नगर-भरमें खलबली मच गई और स्त्री-पुरुष विधातासे यही मनाने लगे कि राम बार-बार ससुराल आते रहा करें। राजा जनक भी विदाईकी सब तैयारियाँ करने लगे। इधर राम भी अपने सभी भाइयोंके साथ रनिवासमें आ पहुँचे ॥१०२॥ सासने आरती उतारकर न्योछावरें कीं। बार-बार (रामकी) साँवली मूर्ति देख-देखकर वे प्रसन्न हुई जा रही थीं। जब रामने साससे बिदा माँगी, तब सुनते ही वे रुआँसी-सी हो गईं और संकोच छोड़कर प्रेमसे पुलकित होकर रामके पैरों पर जा पड़ीं ॥१०३॥ सीताके साथ-साथ सब कन्याएँ सौंपकर, हाथ जोड़कर वे बार-बार रामको देख-देखकर उनसे विनय करने लगीं—'देखो तात! प्रेम न छोड़ना और ममता बनाए रखना। नगर और परिवार-सहित राजा (जनक)-को सदा अपना सेवक समझते रहना ॥१०४॥ मैं तुमपर बलि जाती हूँ। तुम हम सबको अपना सेवक जानकर स्नेह बनाए रखना।' ऐसा कहकर दीन वचन कहती हुई रानी बार-बार कुमारोंको हृदयसे लगाने लगीं। सीताकी बिदाईकी बात सुनकर नगरके पुरुष और स्त्री ही नहीं, घोड़े-हाथी, पशु-पक्षी सभी व्याकुल हो उठे। सासकी विनय सुनकर और उन्हें समझा-बुझाकर रघुवंशमणि राम अपने पिताके पास लौट आए ॥१०५॥

नगाड़े बज उठे और राजा दशरथने अयोध्याके लिये प्रस्थान कर दिया। देवता फूल बरसाने लगे। चारों ओर अच्छे अच्छे शकुन होने लगे। राजा जनक भी जानकीसे भेंट करके और उन्हें शिक्षा देकर, मंत्री, गुरु और बंधुओंको साथ लेकर राजा दशरथ और (बारात) को नगरकी सीमा-तक पहुँचाने चल दिए ॥ १०६ ॥ राजा दशरथ प्रेमसे पुलकित होकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रेम पुलकि कह राय 'फिरिय अब राजन।' करत परसपर बिनय सकल गुन-भाजन ॥
कहेउ जनक कर जोरि 'कीन्ह मोहिं आपन। रघु-कुल-तिलक सदा तुम उथपन-थापन॥१०७॥
बिलग न मानब मोर, जो बोलि पठायउँ। प्रभु-प्रसाद जस जाति, सकल सुख पायउँ' ॥
पुनि बसिष्ठ आदिक मुनि बंदि, महीपति। गहि कौसिकके पाँय, कीन्हि बिनती अति।१०८।
भाइन्ह-सहित बहोरि बिनय रघुबीरहिं। गदगद कंठ, नयन जल, उर धरि धीरहिं ॥
'कृपासिंधु सुखसिंधु सुजान-सिरोमनि। तात! समय सुधि करबि छोह छाँड़ब जनि'।१०९।

जनि छोह छाँड़ब बिनय सुनि रघुबीर बहु बिनती करी।
मिलि भेंटि सहित-सनेह, फिरेउ बिदेह मन धीरज धरी ॥
सो समौ कहत न बनत कछु, सब भुवन भरि करुना रहे ॥
तब कीन्ह कोसलपति पयान, निसान बाजे गहगहे ॥११०॥

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिऐ। डाँटहिं आँख देखाइ कोप दारुन किऐ ॥
राम कीन्ह परितोष, रोष-रिस परिहरि। चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि ॥१११॥
रघुबर-भुज-बल देखि उछाह बरातिन्ह। मुदित राउ, लखि सनमुख बिधि सब भाँतिन्ह ॥
यहि बिधि ब्याहि सकल सुत, जग जस छायउ। मग-लोगनि सुख देत अवधपति आयउ॥११२॥

(जनकसे) कहने लगे—'राजन्! अब आप लौट जायँ।' सभी गुणोंसे भरे हुए दोनों राजा परस्पर कृतज्ञता प्रकट करने लगे। फिर जनकने कहा—'रघुकुलके तिलक! आपने मुझे अपनाकर (मुझपर बड़ी) कृपा की। आप सदासे ही उजड़े हुओंको बसाते आए हैं ॥१०७॥ मैंने आपको अयोध्यासे यहाँ बुलवा भेजा (यही बड़ी धृष्टता हुई) इसका बुरा न मानिएगा। आपकी कृपासे अपनी क्षत्रिय जातिमें बड़ा यश मिला और मुझे सब सुख प्राप्त हो गया।' फिर जनकने वशिष्ठ आदि मुनियोंकी वन्दना करके मुनि विश्वामित्रके चरण पकड़कर उनकी बहुत अभ्यर्चना की ॥१०८॥ फिर उन्होंने राम और उनके भाइयोंसे रुँधे कंठसे, नेत्रोंमें जल भरकर बड़े धैर्यके साथ प्रार्थना की, 'कृपासिंधु! सुखके भांडार! सुजान-शिरोमणि तात! समय-समयपर हमारी सुधि लेते रहिएगा और प्रेम न छोड़िएगा।' ॥१०९॥ 'प्रेम न छोड़िएगा'—यह विनय सुनकर रामने जनकका बहुत सम्मान किया। फिर बड़े स्नेहसे उन्हें गले लगाकर बहुत धीरज धारण करके राजा जनक लौट चले। उस समय सर्वत्र ऐसी करुणा आ छाई थी कि उसका वर्णन करते नहीं बन रहा है। यह सब हो चुकनेपर कोशलपति दशरथने वहाँसे प्रस्थान कर दिया और ढमाढम बाजे बज उठे ॥११०॥

वे जब चले जा रहे थे उसी समय मार्गमें ही भृगुनाथ परशुरामसे मुठभेड़ हो गई। वे हाथमें फरसा लिए हुए, क्रोधसे सबको आँखें दिखाते और डाँटते चले आ रहे थे। रामने उनका क्रोध और विरोध दूर करके उन्हें इतना संतुष्ट कर दिया कि वे अपना शार्ङ्ग धनुष रामको सौंपकर अपने नेत्र सफल करते हुए वहाँसे (सह्याद्रिपर तप करने) चले गए ॥१११॥ रामकी भुजाओंका बल देखकर सभी बाराती उत्साहित हो उठे। सब प्रकारसे विधाताको अपने अनुकूल जानकर राजा दशरथ भी बड़े प्रसन्न हो रहे थे। इस प्रकार सभी पुत्रोंको ब्याहकर, संसारमें अपना सुयश फैलाते हुए और मार्गमें लोगोंको सुख देते हुए अवधपति दशरथ अयोध्या लौट आए ॥११२॥ चारों ओर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

होहिं सुमंगल सगुन, सुमन सुर बरषहिं। नगर कोलाहल भयउ नारि-नर हरषहिं ॥
घाट - बाट - पुर - द्वार - बजार बनावहिं। बीथी सींचि सुगंध, सुमंगल गावहिं ॥११३॥
चौकैं पूरैं चारु, कलस - ध्वज साजहिं। बिबिध प्रकार गहगहे बाजन बाजहिं ॥
बंदनवार - बितान - पताका घर-घर। रोपैं सफल सपल्लव मंगल तरुवर ॥११४॥

मंगल बिटप मंजुल बिपुल, दधि, दूब, अच्छत, रोचना।
भरि थार आरति सजहिं सब सारंग-सावक-लोचना ॥
मन - मुदित कौसल्या, सुमित्रा, सकल भूपति-भामिनी।
सजि साजि परिछन चलीं रामहिं, मत्त-कुंजरगामिनी ॥११५॥

बधुन्ह-सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं। बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं ॥
करहिं निछावरि छिन-छिन मंगल मुद भरीं। दुलह-दुलहिनिन्ह देखि प्रेम-पय-निधि परीं ॥११६॥
देत पाँवड़े अरघ चलीं लै सादर। उमगि चलेउ आनंद भुवन भुइँ - बादर ॥
नारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं। नैन-लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं ॥११७॥
भवन आनि सनमानि सकल मंगल किऐ। बसन-कनक-मनि-धेनु दान बिप्रन्ह दिऐ ॥
जाचक कीन्ह निहाल असीसहिं जहँ-तहँ। पूजे देव-पितर सब राम-उदय-कहँ ॥११८॥

मंगल शकुन होने लगे, देवता पुष्प बरसाने लगे। नगर भरमें कोलाहल मच गया (कि बारात लौट आई, बारात लौट आई)। सभी स्त्री-पुरुष हर्षित हो उठे। लोग घाट, मार्ग, नगर, हाट और द्वार सजाने लगे। सब गलियाँ सुगंधित जलसे सींची जाने लगीं। चारों ओर मंगल-गीत गाए जाने लगे ॥११३॥ चौक पूर दिए गए। सुन्दर कलशों और ध्वजाओंसे घर सजाए जाने लगे। अनेक प्रकारके बाजे ढमाढम बज उठे। घर-घर बंदनवार बाँध दिए गए, चँदोवे ताने जाने लगे और पताकाएँ फहरा दी गईं। पल्लवों और फलोंसे लदे हुए मंगलकारक वृक्ष (केला, सुपारी, आम) रोप दिए गए ॥११४॥ बहुतसे मंगलकारक सुन्दर पेड़ रोप दिए गए, दही, दूब, अक्षत, रोचना (घोली हुई रोली, लाल हलदी) आदि थालोंमें लगा-लगाकर सब बाल-मृगनयनी सुन्दरियाँ आरती सजाने लगीं। कौशल्या, सुमित्रा आदि सभी रानियाँ प्रसन्न मनसे सज-धज-कर मस्त हाथीके समान मंद गतिसे चलनेवाली स्त्रियोंके साथ रामका परिछन करनेके लिये चल पड़ीं ॥११५॥ वहाँ पहुँचकर बहुओं और चारों पुत्रोंको माताएँ भर आँखों निहारने लगीं और प्रसन्नतापूर्वक बार-बार उनकी आरती उतारने लगीं। वे आनन्द-मंगलमें भरी हुई क्षण-क्षणपर न्योछावर किए डाल रही थीं। दुलहों और दुलहिनोंको देख-देखकर वे प्रेमके समुद्रमें डुबकियाँ लगाए जा रही थीं (बहुत प्रसन्न हो रही थीं) ॥११६॥ अर्घ्यके पाँवड़े देती हुई (आगे आगे जल-धार गिराती हुई) वे उन्हें आदर-पूर्वक लिवा ले चलीं। पृथ्वीसे लेकर बादल-तक सभी (चौदहों) भुवनोंमें आनन्द ही आनन्द उमड़कर जा फैला। स्त्रियाँ (पालकियोंके) उहार उघाड़-उघाड़कर दुलहिनोंको देखने लगीं और अपने नेत्रोंका लाभ पाकर अपना जन्म सफल समझने लगीं ॥११७॥ उन्हें घरमें लाकर रानियोंने सम्मानपूर्वक सब मंगल कार्य पूरे कर लिए और ब्राह्मणोंको वस्त्र, सुवर्ण, मणि, तथा गायें दानमें दीं। उन्होंने मंगनोंको इतना निहाल कर दिया कि वे जहाँ-तहाँ असीसें देते फिरने लगे। रामके सकुशल लौट आनेकी प्रसन्नतामें उन्होंने सब देवताओं और पितरोंकी (श्रद्धाके साथ) पूजा की ॥११८॥ सबका नेगचार करके (सबको नेग या पुरस्कार देकर)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नेगचार करि दीन्ह सबहिँ पहिरावनि । समधी सकल, सुआसिनि, गुरुतिय, पावनि ॥
जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिँ । मनहुँ कुमुद बिधु-उदय मुदित मन बिगसहिँ॥११९॥

बिगसहिँ कुमुद जिमि देखि बिधु, भइ अवध सुख सोभामई ।
ऐहि जुगुति राम-बिबाह गावहिँ सकल कवि, कीरति नई ॥
उपबीत - ब्याह - उछाह जे सिय-राम-मंगल गावहीँ ।
तुलसी सकल कल्यान ते नर - नारि अनुदिनु पावहीँ ॥१२०॥

॥ इति श्री गुसाइँ तुलसीदासजी-विरचित जानकी मंगल-संपूर्णम् ॥

रानियोंने सब सम्बन्धियों, सुहागिनों, गुरुपत्नी अरुन्धती और सब पावनियों (धोबिन, नाउन, आदि पुरस्कार पानेकी अधिकारिणियों)-को वस्त्र उठा पहनाए । (दुलहे-दुलहिनोंकी) चारों जोड़ियाँ देख-देखकर वे असीसती हुई ऐसी प्रसन्न होकर घरसे बिदा हो चलीं मानो चन्द्रमाके उदय होते ही आनन्दके मारे कुमुदिनियाँ खिल पड़ी हों ॥११९॥ अयोध्यापुरी तो सुखसे पूर्ण होकर ऐसी शोभामयी हो गई, जैसे चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न होकर कुमुद खिल पड़े हों ।

इसी प्रकार सभी कवि रामके उस विवाहका वर्णन करते हैं जिसकी नवीन कीर्त्ति संसार भरमें जा फैली है । तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग उपवीत (जनेऊ) और विवाहके उत्सवोंमें राम-जानकीका यह मंगल गावेंगे उन स्त्री पुरुषोंको दिनोंदिन सभी कल्याण (सुख) प्राप्त होते रहेंगे ॥१२०॥

॥ श्री जानकी-मंगल पूर्ण हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

६

रामाज्ञा-प्रश्न

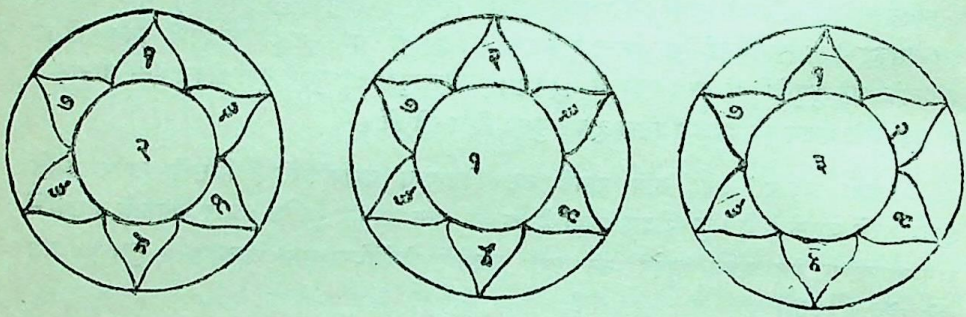

अष्टोत्तर सत कमल फल, मुष्टी तीनि प्रमान।
सप्त सप्त तजि सेष - को, राखै सब बिलगान॥
प्रथम सर्ग जो सेष रह, दूजे सप्तक होइ।
तीजे दोहा जानिए, सगुन बिचारब सोइ॥

इस अष्टोत्तरशत (१०८) कमलका फल तीन मुष्टियों (चक्रों)-के द्वारा प्रमाणित कर दिया जाता है। इन तीनों चक्रोंको सात-सातके वर्गमें बाँटकर अलग कर रखना चाहिए। प्रथम चक्रमें जो बचे अर्थात् जिस अङ्कपर उँगली पड़े उसे सर्ग, दूसरे चक्रमें जिस अंकपर उँगली पड़े उसे सप्तक और तीसरे चक्रमें जिसपर उँगली पड़े वह दोहा मानकर उसके अनुसार शकुनका फल समझना चाहिए।

[सीता-सहित भगवान रामका ध्यान करके—

पहले चक्रमें कहीं जिस अंकपर उँगली रक्खोगे वह सर्गका द्योतक होगा। दूसरे चक्रमें जिस अंकपर उँगली रक्खोगे वह सप्तकका द्योतक होगा और तीसरे चक्रमें जिस अंकपर उँगली रक्खोगे वह दोहेका द्योतक होगा। मान लीजिए आपने पहले चक्रमें १, दूसरे चक्रमें ४ और तीसरे चक्रमें ४ पर उँगली रक्खी तो आपको सर्ग १ के चौथे सप्तकका चौथा यह दोहा मिलेगा—

कोसल - पालक - बाल - उर, सिय मेली जयमाल।
समउ सुहावन सगुन भल, मुद मंगल सब काल॥

यह शकुन अच्छा है। कार्य सिद्ध होगा।]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रथम सर्ग

सप्तक–१

बानि, बिनायक, अंब, रबि, गुरु, हर, रमा, रमेस।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, मंगल देस-बिदेस ॥ १ ॥
गुरु, सरसइ, सिंधुर-बदन, ससि, सुरसरि, सुर-गाइ।
सुमिरि चलहु मग मुनित मन, होइहि सुकृत सहाइ ॥ २ ॥
गिरा, गौरि, गुरु, गनप, हर, मंगल, मंगल-मूल।
सुमिरत कर-तल सिद्धि सब, होइ ईस अनुकूल ॥ ३ ॥
भरत, भारती, रिपुदवन, गुरु, गनेस बुधबार।
सुमिरत सुलभ सुधर्म फल, बिद्या, बिनय, बिचार ॥ ४ ॥
सुरगुरु, गुरु, सिय, राम, गन-राउ, गिरा, उर आनि।
जो कछु करिय सो होइ सुभ, खुलहिं सुमंगल-खानि॥ ५ ॥
सुक्र सुमिरि गुरु, सारदा, गनप, लखन, हनुमान।
करिय काज, सब साज भल निपटहि, नीक निदान॥ ६ ॥
'तुलसी' तुलसी, राम, सिय, सुमिरि लखन, हनुमान।
काज बिचारेहु सो करहु, दिन-दिन बड़ कल्यान ॥ ७ ॥

प्रथम सर्ग

सप्तक—१

रविवारको सरस्वती, गणेश, पार्वती, गुरु, महादेव, लक्ष्मी तथा लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका स्मरण करके सभी कार्य आरम्भ करो तो देश और विदेश सर्वत्र शुभ और कल्याण होगा ॥ १ ॥ सोमवारको गुरु, वृहस्पति, सरस्वती, गणेश, गंगा और कामधेनु गौका स्मरण करके प्रसन्न मनसे यात्रा करो तो तुम्हारे पुण्य निश्चय ही सहायक होंगे। तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा ॥२॥ मंगलवारको सरस्वती, पार्वती, गुरु, शिव, और मंगल करनेवाले गणेशका स्मरण करते ही सारी सिद्धियाँ हाथ आ जाती हैं और शंकर भी अनुकूल हो जाते हैं ॥३॥ बुधवारके दिन भरत, सरस्वती, शत्रुघ्न, गुरु तथा गणेशका स्मरण करनेसे अच्छे धर्मका फल (पुण्य), विद्या, विनय-शीलता एवं सद्विचार प्राप्त हो जाते हैं ॥४॥ वृहस्पतिवारको गुरु, सीता, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, महाराजा दशरथ तथा सरस्वतीको हृदयमें धारण करके जो भी कार्य करोगे वह सुफल होगा। तुम्हारे कल्याणकी खान खुल जायगी (तुम्हारा सदा कल्याण होता रहेगा) ॥५॥ शुक्रवारके दिन गुरु, सरस्वती, गणेश, लक्ष्मण तथा हनुमान्‌का स्मरण करके अपना कार्य करना प्रारंभ कर दो। सब प्रकारसे भला होगा और अंतमें परिणाम भी अच्छा होगा। सब काम ठीक हो जायगा ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो कार्य करनेका विचार किया है वह कार्य तुलसीदासके प्रभु राम, जानकी, लक्ष्मण एवं हनुमानका स्मरण करके आरम्भ कर दो। दिनोंदिन तुम्हारा कल्याण होता रहेगा ॥७॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक–२

दसरथ - राज न ईति-भय, नहिं दुख -दुरित - दुकाल।
प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब, सब सुख, सदा सुकाल ॥ १ ॥
कौसल्या-पद नाइ सिर, सुमिरि सुमित्रा - पाँय।
करहु काज मंगल - कुसल, बिधि - हरि - संभु सहाय ॥ २ ॥
बिधि-बस बन मृगया फिरत, दीन अंध मुनि साप।
सो सुनि बिपति-बिषाद बड़, प्रजहिं सोक - संताप ॥ ३ ॥
सुत-हित बिनती कीन्ह नृप, कुल - गुरु कहा उपाउ।
होइहि भल संतान, सुनि, प्रमुदित कोसलराउ ॥ ४ ॥
पुत्र-जाग करवाइ ऋषि, राजहिं दीन्ह प्रसाद।
सकल सुमंगल - मूल जग, भूसुर - आसिरबाद ॥ ५ ॥
राम-जनम घर-घर अवध, मंगल गान - निसान।
सगुन सुहावन, होइ सुत, मंगल - मोद - निधान ॥ ६ ॥
राम, भरत, सानुज लखन, दसरथ - बालक चारि।
तुलसी सुमिरत सगुन सुभ, मंगल कहब पचारि ॥ ७ ॥ (१४)

सप्तक—२

महाराज दशरथके राज्यमें प्रजाको छहों ईतियों (अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, तोते और बाहरी आक्रमण)-का भय नहीं था। पाप और दुष्काल (प्रजा-कष्ट)-का भी भय नहीं था। सारी प्रजा आनंद-मंगलसे पूर्ण थी, सबके मन प्रसन्न रहा करते थे और सबके लिये सदा सुख और सुकाल बना हुआ था ॥१॥ कौशल्या माताके चरणोंमें सिर नवाकर तथा सुमित्राके चरणोंका स्मरण करके कार्य आरम्भ कर दो। सब प्रकार कुशल-मंगल होगा। ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी आकर सहायता करने लगेंगे ॥२॥ अंध मुनि (श्रवणकुमारके पिता)-के शापसे दुर्भाग्यवश भगवान् रामको भी वनमें आखेट करते फिरना पड़ रहा है। यह संवाद सुनकर (अयोध्याकी) प्रजामें बड़ी विपत्ति, ग्लानि, शोक और संताप आ छाया ॥३॥ (वृद्धावस्था-तक कोई सन्तान न होनेपर) जब महाराज दशरथने अपने कुल-गुरु महर्षि वशिष्ठसे पुत्र-कामनाकी प्रार्थना की तब मुनिने उपाय बताते हुए कहा कि इससे तुम्हें उत्तम सन्तान होगी। यह सुनकर कोशलराज महाराज दशरथका जी खिल उठा ॥४॥ महर्षि वशिष्ठने शृङ्गी ऋषिसे पुत्रेष्टि यज्ञ करवाकर महाराजको प्रसाद रूपमें यज्ञका चरु दिलवा दिया। वह चरु ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे संसारके लिये सम्पूर्ण मंगल करनेवाला सिद्ध हुआ (ऋषिने जो चरुका प्रसाद दिया उसीके प्रभावसे लोक-मंगलके लिये राम आदि चारों पुत्रोंका जन्म हुआ) ॥ ५ ॥ जैसे रामके जन्म होनेपर अयोध्यामें घर-घर बाजे बजने और मंगल गीत गाए जाने लगे उसी प्रकार तुम्हारा यह शकुन भी इतना सुन्दर है कि तुम्हारे यहाँ भी आनंद और मंगल देनेवाला पुत्र जन्म लेगा ॥६॥ तुलसीदास ललकारकर कहते हैं कि राजा दशरथके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों पुत्रोंका स्मरण करनेसे तुम्हारा शकुन शुभ होगा और आनंद-मंगल होगा ॥७॥ (१४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक–३

भूप - भवन भाइन्ह-सहित, रघुबर बाल - बिनोद।
सुमिरत सब कल्यान जग, पग-पग मंगल मोद ॥ १ ॥
करन - बेध, चूड़ा - करन, श्रीरघुबर - उपवीत।
समय, सकल कल्यानमय, मंजुल मंगल गीत ॥ २ ॥
भरत सत्रुसूदन लखन - सहित सुमिरि रघुनाथ।
करहु काज, सुभ साज सब, मिलहि सुमंगल साथ ॥ ३ ॥
राम-लखन कौसिक - सहित सुमिरहु, करहु पयान।
लच्छि-लाभ, जय, जगत-जस, मंगल सगुन प्रमान ॥ ४ ॥
मुनि - मख-पाल कृपाल प्रभु - चरन-कमल उर आनु।
तजहु सोच, संकट मिटिहि, सत्य सगुन जिय जानु ॥ ५ ॥
हानि, मीचु, दारिद, दुरित, आदि - अंत - गत बीच।
राम - बिमुख अघ आपने, गए निसाचर नीच ॥ ६ ॥
सिला - साप - मोचन चरन सुमिरहु, 'तुलसीदास'।
तजहु सोच, संकट मिटिहि, पूजिहि मन-कै आस ॥ ७ ॥ (२१)

सप्तक–३

महाराज दशरथके घरमें राम अपने भाइयोंके साथ बाल-क्रीडा कर रहे हैं जिसका स्मरण करनेसे संसारमें सब प्रकारका कल्याण होगा और प्रत्येक क्षण आनन्द-मंगलसे बीतेगा ॥ १ ॥ (भाइयोंके साथ) रामका कनछेदन, मुण्डन और यज्ञोपवीत हुआ। ऐसे सम्पूर्ण कल्याणमय समयमें सुन्दर-सुन्दर मंगल गीत गाए गए ॥ २ ॥ भरत, शत्रुघ्न तथा लक्ष्मणके साथ-साथ रामका स्मरण करके कार्य आरम्भ कर दो। सब प्रकारका शुभ और मंगल तुम्हारे साथ रहेगा ॥ ३ ॥ (यात्रा करते समय) महर्षि विश्वामित्रके साथ जाते हुए राम तथा लक्ष्मणका स्मरण करके प्रस्थान करो। तुम्हें लक्ष्मीका लाभ होगा (धन मिलेगा) और संसारमें यश भी मिलेगा। शकुनका ऐसा ही मंगलकारक फल है ॥४॥ ऋषि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाले कृपालु रामके चरण-कमल हृदयमें धारण कर लो। सब चिन्ताएँ छोड़ दो, तुम्हारे सभी संकट दूर हो जायँगे। इस शकुनको अपने मनमें सत्य ही समझो ॥ ५ ॥ रामसे विमुख रहनेके कारण नीच राक्षस अपने ही पापसे नष्ट हो गए। उनका आदि भी हानिप्रद रहा, अन्त भी मृत्युका कारण हुआ और मध्य भी दरिद्रता और पापसे भरा रहा ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि शिला(अहल्या)-को शापसे मुक्त करनेवाले चरणोंका स्मरण करो। चिन्ता छोड़ दो। तुम्हारे सब संकट दूर हो जायँगे और मनोकामनाएँ पूरी हो जायँगी ॥ ७ ॥ (२१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक–४

सीय-स्वयंबर समउ भल, सगुन साध सब काज।
कीरति, बिजय, बिबाह-बिधि, सकल सुमंगल काज ॥ १ ॥
राजत राज - समाज - महँ राम, भंजि भव - चाप।
सगुन सुहावन, लाभ बड़, जय पर - सभा प्रताप ॥ २ ॥
लाभ - मोद - मंगल - अवधि, सिय - रघुबीर - बिबाह।
सकल सिद्धिदायक समउ, सुभ, सब काज उछाह ॥ ३ ॥
कोसल - पालक - बाल - उर, सिय मेली जयमाल।
समउ सुहावन, सगुन भल, मुद - मंगल सब काल ॥ ४ ॥
हरषि बिबुध बरषहिं सुमन, मंगल गान-निसान।
जय जय रबिकुल-कमल-रबि, मंगल - मोद - निधान ॥ ५ ॥
सतानंद पठये जनक, दसरथ सहित - समाज।
आये तिरहुति, सगुन सुभ, भए सिद्ध सब काज ॥ ६ ॥
दसरथ पूरन - परब-बिधु, उदित समय - संजोग।
जनक - नगर - सर कुमुद-गन, 'तुलसी' प्रमुदित लोग ॥ ७ ॥ (२८)

सप्तक–४

सीताके स्वयंवरका समय बहुत मंगलकारी है। इस समय सब कार्य सिद्ध करनेका अच्छा शकुन है। कीर्ति, विजयके साथ विवाहकी बात पक्की होगी तथा विधाता सभी मंगल ही मंगल करेंगे ॥ १ ॥ शिवका धनुष तोड़कर राम वहाँ आए हुए राजाओंके समाजमें बड़े अच्छे लग रहे हैं। यह सुन्दर शकुन बता रहा है कि उनके प्रतापसे परायेकी सभामें जानेपर भी लाभ होगा और विजय प्राप्त होगी ॥ २ ॥ राम और जानकीका विवाह अत्यन्त लाभ और कल्याणकारक है। यह सुअवसर बड़ा शुभ तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ देनेवाला है। अतः सभी कार्य उत्साहपूर्वक पूरे होंगे ॥ ३ ॥ कोशलेश राजा दशरथके पुत्र रामके गलेमें सीताने जयमाला पहना दी। ऐसे सुहावने समयका शकुन बहुत अच्छा है। सारा समय आनन्द-मंगलसे बीतेगा ॥ ४ ॥ सब देवता प्रसन्न हो-होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। मंगल गान होने और डंके बजने लगे। सब लोग कहने लगे—'हे सूर्यकुल-रूपी कमलके सूर्य राम! आप आनन्द और मंगलके भाण्डार हैं। आपकी जय हो, जय हो' ॥ ५ ॥ राजा जनकने मुनि शतानन्दको समाज-सहित महाराजा दशरथको लिवा लानेके लिये (अयोध्या) भेज दिया। वे ऐसे शुभ शकुनसे तिरहुत (जनकपुर)-में आए कि सब कार्य सिद्ध हो गए ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जब यथासमय महाराज दशरथ पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान जनकपुरमें आ उदित हुए (आ पहुँचे) तब (राजा दशरथके आते ही) लोग जनकपुर-रूपी तालाबके कुमुद रूपी लोग (जनकपुवासी) प्रसन्न हो उठे ॥ ७ ॥ (२८)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक–५

मन मलीन मानी महिप, कोक - कोकनद - वृंद।
सुहृद - समाज चकोर - चित, प्रमुदित परमानंद ॥ १ ॥
तेहि अवसर रावन-नगर, असगुन असुभ अपार।
होहिं, हानि-भय-मरन - दुख - सूचक बारहिं बार ॥ २ ॥
मधु - माधव दसरथ - जनक, मिलब राज ऋतुराज।
सगुन सुवन नव दल सुतरु, फूलत फलत सुकाज ॥ ३ ॥
बिनय पराग, सुप्रेम रस, सुमन सुभग संवाद।
कुसुमित काज रसाल तरु, सगुन सुकोकिल - नाद ॥ ४ ॥
उदित भानुकुल - भानु लखि, लुके उलूक नरेस।
गए गँवाइ गरूर-पति, धनु-मिस हये महेस ॥ ५ ॥
चारि चारु दसरथ-कुँबर, निरखि मुदित पुर लोग।
कोसलेस: मिथिलेसको समउ, सराहन जोग ॥ ६ ॥
एक बितान बिबाहि सब सुवन सुमंगल-रूप।
तुलसी सहित-समाज सुख, सुकृत-सिंधु दोउ भूप ॥ ७ ॥ (३५)

सप्तक–५

(धनुष टूट जानेपर) चकवे और कमल-रूपी अभिमानी राजा तो बड़े दुखी हो बैठे पर चकोर-रूपी मित्र-समाजका चित्त प्रसन्न और परम आनन्दित हो उठा ॥ १ ॥ उसी समय रावणके नगर (लंका)-में अपार अशुभ अपशकुन होने लगे। बार-बार होते रहनेवाले (ये अपशकुन) हानि, भय, मृत्यु और दुःखकी सूचना देने लगे ॥ २ ॥ महाराजा दशरथ तथा जनक परस्पर ऐसे मिले जैसे वसन्तमें चैत्र और बैशाख मिल जाते हैं। इन दोनों राजा-रूपी वृक्षोंमें सफलता और शुभ शकुनके रूपमें कार्यकी सिद्धिके नवीन दल (पत्ते) फूलते-फलते दिखाई पड़ने लगे ॥ ३ ॥ (इन दोनों राजाओंमें) विनय-रूपी पराग और प्रेम-रूपी सुरस (मकरन्द) भरा हुआ था। इनके वचन पुष्पके समान बड़े ही सुन्दर लगते थे। इस प्रकार ये दोनों राजा आमके वृक्ष-रूपी शुभ कार्यके बौरोंसे लद उठे (कार्यकी सिद्धिके पुष्प खिल उठे) और शुभ शकुनकी कोयलें कूक उठीं ॥ ४ ॥ सूर्यकुलके सूर्य रामको उदय हुआ देखकर उलूक-जैसे (दुष्ट) राजा जहाँ-तहाँ जा छिपे। धनुष-भंगके बहाने शंकरने उन्हें ऐसा पछाड़ा कि वे अपना गर्व और प्रतिष्ठा सब खोकर वहाँसे भागते ही दिखाई दिए ॥ ५ ॥ जनकपुरके लोग महाराज दशरथके चारों पुत्रोंको देख-देखकर बड़े प्रसन्न हुए जा रहे थे। कोशलेश दशरथ तथा मिथिलेश जनकके लिये यह अवसर (भाग्य) सराहनेके योग्य था ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि चारों राजकुमारोंका एक ही मण्डपमें विवाह करके अपने समाज-सहित दोनों राजा ऐसे दिखाई पड़ रहे थे जैसे वे सुख और पुण्यके समुद्र हों ॥ ७ ॥ (३५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक–६

दाइज भयउ अनेक बिधि, सुनि सिहाहिं दिसि-पाल।
सुख - संपति - संतोषमय, सगुन सुमंगल - माल ॥ १ ॥
बर-दुलहिनि सब परसपर, मुदित पाइ मन-काम।
चारु चारि जोरी निरखि, दुहुँ समाज अभिराम ॥ २ ॥
चारिउ कुँवर बियाहि पुर, गवने दसरथ राउ।
भए मंजु मंगल सगुन, गुरु - सुर - संभु - पसाउ ॥ ३ ॥
पंथ परसु-धर आगमन - समय, सोच सब काहु।
राज-समाज बिषाद बड़, भय-बस मिटा उछाहु ॥ ४ ॥
रोष - कलुष लोचन - भ्रुकुटि, पानि परसु - धनु - बान।
काल कराल बिलोकि मुनि, सब समाज बिलखान ॥ ५ ॥
प्रभुहिं सौंपि सारंग मुनि, दीन्ह सुआसिरबाद।
जय - मंगल - सूचक सगुन, राम - राम - संबाद ॥ ६ ॥
अवध अनंद बधावनो, मंगल गान - निसान।
'तुलसी' तोरन - कलस पुर, चँवर - पताक - बितान ॥ ७ ॥ (४२)

सप्तक–६

(विवाहके उपरान्त) महाराज जनकने अनेक प्रकारके सुख और सम्पत्तिसे पूर्ण सन्तोष-जनक दहेज दिया। यह शकुन अच्छा मंगल देनेवाला है ॥ १ ॥ चारों वर (राजकुमार) और दुलहिनें सब प्रकारकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जानेपर परस्पर बहुत प्रसन्न हुईं। सुन्दर (वर और वधुओंकी) चारों जोड़ी देखकर दोनों समाजके लोग प्रसन्न हो उठे ॥ २ ॥ महाराजा दशरथने चारों राजकुमारोंका व्याह हो चुकनेपर अपने नगरको प्रस्थान कर दिया। भगवान् शंकर, गुरु तथा देवताओंकी कृपासे उन्हें बड़े सुन्दर मंगलदायक शकुन हुए ॥ ३ ॥ जाते समय मार्गमें परशुरामको आते देखते ही सब घबरा उठे। उस राज-समाजपर बैठे बिठाये विपत्ति आ पड़नेके भयसे सबका जी धुक-धुक करने लगा ॥ ४ ॥ परशुरामकी क्रोधसे लाल आँखें, विकट भौंहें, तथा हाथमें फरसा और धनुष-बाण लिए हुए भयंकर कालके वेषमें देखकर सारा राज-समाज व्याकुल हो उठा ॥ ५ ॥ फिर (राम तथा लक्ष्मणसे वाद-विवादमें परास्त होकर) मुनिवर परशुरामने (भगवान् विष्णुका) शार्ङ्ग धनुष रामको सौंप दिया और वे आशीर्वाद देकर (तपस्या करने) चल दिए। इस प्रकार राम तथा परशुरामका यह संवाद विजय और मंगलदायक शकुन है ॥ ६ ॥ अयोध्यापुरीमें आनन्दके बधावे बज उठे और नगाड़ोंकी गूँजके साथ मंगल गीत गाए जाने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि सारे नगरमें स्थान-स्थानपर तोरण, कलश, चँवर, पताका और वितान ला सजाए गए ॥७॥ (४२)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक–७

साजि सुमंगल आरती, रहस - बिबस रनिवास।
मुदित मातु परिछन चलीं, उमगत हृदय हुलास ॥ १ ॥
करहिं निछावरि आरती, उमगि उमगि अनुराग।
बर-दुलहिनि अनुरूप लखि, सखी सराहहिं भाग ॥ २ ॥
मुदित नगर नर-नारि सब, सगुन सुमंगल - मूल।
जय धुनि मुनि, सुर दुंदुभी बाजहिं, बरषहिं फूल ॥ ३ ॥
आए कोसलपाल पुर, कुसल समाज - समेत।
समउ, सुनत - सुमिरत सुखद, सकल सिद्धि सुभ देत ॥ ४ ॥
रूप-सील - बय - बंस - गुन - सम बिबाह भे चारि।
मुदित राउ - रानी सकल, सानुकूल त्रिपुरारि ॥ ५ ॥
बिधि-हरि-हर अनुकूल अति, दसरथ - राजहिं आज।
देखि सराहत सिद्ध, सुर, संपति, समउ, समाज ॥ ६ ॥
सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर, भूमिसुर, गो-गन, गंगा, राम ॥ ७ ॥(४९)

सप्तक–७

सारा रनिसास आनन्दमें मग्न हुआ जा रहा है। माताओंका हृदय प्रसन्नताके मारे उछला पड़ रहा है। वे सब प्रसन्न हो-होकर परिछन करनेके लिये चल पड़ी हैं ॥ १ ॥ प्रेमकी उमंगमें भर-भरकर वे आरती करके न्योछावरें किए डाल रही हैं। वरोंके अनुरूप दुलहिनोंको देख-देखकर सभी सखियाँ अपने भाग्यकी सराहना किए जा रही हैं ॥ २ ॥ नगरके सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो उठे हैं। मुनि लोग जय-जयकार कर रहे हैं और देवता-गण दुन्दुभी बजाते हुए फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं। यह शकुन परम कल्याणकारक है ॥ ३ ॥ कोशलेश दशरथ अपने समाजके साथ कुशल-पूर्वक अपने नगर (अयोध्यापुरी) लौट आए। ऐसे समयकी बातें सुन-सुनकर तथा स्मरण कर-करके बड़ा ही सुख प्राप्त होता है। इस शकुनसे सब प्रकारके मंगल और सिद्धियाँ मिलती हैं ॥ ४ ॥ चारों कुमारोंके विवाह उनके समान रूप, शील, सौजन्य, अवस्था, वंश और गुणोंके अनुसार ही हुए। सब रानियोंके सहित महाराज दशरथ बड़े प्रसन्न थे कि शंकर भगवान्‌की आज हमपर बड़ी कृपा है ॥ ५ ॥ आज महाराज दशरथपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभीकी अत्यन्त कृपा है। ऐसे अवसरपर महाराजकी सम्पत्ति, सौभाग्य वेलां और उत्सव देख-देखकर सिद्ध और देवता सब उनकी बड़ी सराहना किए जा रहे हैं ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि प्रथम सर्गका यह उनचासवाँ दोहा अत्यन्त सुन्दर और शुभ शकुनवाला है। देवता, ब्राह्मण, गो, गंगा और राम सभी आपपर प्रसन्न हैं ॥ ७ ॥ (४९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

द्वितीय सर्ग

सप्तक–१

समउ राम - जुवराज - कर, मंगल - मोद - निकेतु ।
सगुन सुहावन, संपदा, सिद्धि, सुमंगल - हेतु ॥ १ ॥
सुर - माया - बस कैकई, कुसमय कीन्हि कुचाल ।
कुटिल नारि-मिस होइ छल, अनभल आजु कि काल ॥ २ ॥
कुसमय कुसगुन कोटि - सम, राम - सीय - बनबास ।
अनरथ-अनभल-अवधि जग, जानब सरबस-नास ॥ ३ ॥
सोचत पुर - परिजन सकल, बिकल राउ रनिबास ।
छल-मलीन-मन तीय - मिस, बिपति - विषाद-बिनास ॥ ४ ॥
लषन - राम - सिय - बनगमन, सकल अमंगल - मूल ।
सोच, पोच, संताप - बस, कुसमय संसय - सूल ॥ ५ ॥
प्रथम बास सुरसरि - निकट, सेवा कीन्हि निषाद ।
कहब सुभासुभ सगुन-फल, बिसमय - हरष - बिषाद ॥ ६॥
चले नहाइ प्रयाग प्रभु, लषन, सीय, रघुराज ।
तुलसी जानब सगुन फल, होइहि साधु - समाज ॥ ७॥ (५६)

सप्तक—१

आनन्द-मंगल करनेवाले रामके युवराज होनेका समय (उत्सव) सब आनन्द मंगल करनेवाला तथा सम्पदा, सिद्धि और कल्याणके लिये सुन्दर शकुन है ॥१॥ देवताओंकी मायासे प्रेरित होकर कैकेयीने असमयमें ही कुचाल ठान दी । उस कुटिला स्त्रीके बहाने आज या कलमें कुछ अमंगल ही होनेवाला है ॥ २ ॥ सारा जगत् जानता है कि ऐसे कुसमयमें राम-जानकीका वनवास होना ऐसे करोड़ों अपशकुनोंके समान है जिससे सब प्रकारके अनर्थ, अमंगल और सर्वनाश होंगे ॥ ३ ॥ (वनवासका प्रसंग सुनकर) सारे पुरवासी, परिवारके लोग तथा महाराजा दशरथ - सहित सब रानियाँ चिन्ताके मारे व्याकुल हुई जा रही हैं । उस कपटी मनवाली स्त्री (मंथरा)-के कारण आज विपत्ति, दुःख और नाशका वातावरण उपस्थित हो गया है ॥४॥ राम, लक्ष्मण और जानकीका वन-गमन सारे अमंगलकी जड़ है । (यह प्रसंग) कुसमयमें चिन्ता, उदासी, दुःख, सन्देह और वेदनाका कारण बन गया ॥५॥ (वन-यात्रामें रामका) पहला डेरा गंगाके तीरपर पड़ा, जहाँ निषादराज गुहने (रामकी) बड़ी सेवा की । यह शकुन आश्चर्य, हर्ष और विषादसे भरा हुआ शुभ और अशुभ दोनों प्रकारका फल देता है ॥६॥ लक्ष्मण और जानकीके साथ रघुराज राम प्रयागमें स्नान करके (आगे) बढ़ चले । तुलसीदास कहते हैं कि शकुनका फल अच्छा होगा ॥७॥ (५६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक–२

सीय, राम, लोने लषन, तापस - वेष अनूप।
तप तीरथ जप जाग - हित, सगुन सुमंगल - रूप ॥ १ ॥
सीता - लखन - समेत प्रभु, जमुना उतरि नहाइ।
चले सकल संकट - समन, सगुन सुमंगल पाइ ॥ २ ॥
अवध सोक - संताप बस, बिकल सकल नर-नारि।
बाम बिधाता राम - बिनु, माँगत मीचु पुकारि ॥ ३ ॥
लखन, सीय, रघुबंस-मनि, पथिक - पाँय उर आनि।
चलहु अगम मग सुगम सुभ, सगुन सुमंगल - खानि ॥ ४ ॥
ग्राम - नारि - नर मुदित मन, लखन, राम, सिय देखि।
होइ प्रीति पहिचानि बिनु, मान विदेस बिसेखि ॥ ५ ॥
बन मुनिगन रामहिं मिलहिं, मुदित सुकृत-फल पाइ।
सगुन सिद्ध - साधक दरस, अभिमत होइ अघाइ ॥ ६ ॥
चित्रकूट पय-तीर प्रभु, बसे भानुकुल - भानु।
तुलसी तप, जप, जोग-हित, सगुन सुमंगल जानु ॥ ७ ॥ (६३)

सप्तक – २

तपस्वीके वेशमें राम, जानकी और लक्ष्मणकी शोभा बड़ी अनोखी बन उठी है। तपस्या, तीर्थ यात्रा, जप और यज्ञ आदिके लिये यह शकुन बहुत अच्छा है ॥१॥ जानकी और लक्ष्मणके साथ प्रभु रामने यमुनामें उतरकर स्नान किया और फिर आगे बढ़ चले। यह शकुन सारे संकटोंका नाश करके मंगल करता है ॥२॥ शोक और संतापसे अयोध्याके सारे नर-नारी व्याकुल हुए जा रहे हैं। आज रामके न होनेपर विधाताकी इस प्रतिकूलतापर सभी पुकार-पुकारकर मृत्यु माँग रहे हैं (रामके बिना वे जीना भी नहीं चाहते) ॥३॥ पथिकके रूपमें राम, जानकी और लक्ष्मणके चरणोंका हृदयमें धारण करके अगम मार्गमें भी चलोगे तो मार्ग सुगम हो जायगा। यह शकुन शुभ और कल्याणसे भरा है ॥४॥ राम, लक्ष्मण और जानकीको देख-देखकर (वन-मार्गके) गाँवोंके स्त्री-पुरुष हृदयमें फूले नहीं समा रहे हैं। परदेशमें तो यों भी बिना जान-पहचानके ही प्रेम बढ़ जाता है ॥५॥ अपने पूर्व जन्मके पुण्योंके फलके कारण ही वनके मुनि लोग रामसे आ आकर मिलते जा रहे थे। इस शकुनका फल यही है कि प्रभुके दर्शन मात्रसे सारी सिद्धियाँ पूरी होती और सम्पूर्ण मनोकामनाएँ सफल होती हैं ॥६॥ सूर्य-कुलके सूर्य राम चित्रकूटमें पयस्विनी (मन्दाकिनी)-के तटपर जा बसे। तुलसीदास कहते हैं कि तप, जप तथा योग साधनेके लिये यह शकुन बहुत अच्छा है ॥७॥ (६३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—३

हंस-बंस - अवतंस जब, कीन्ह बास पय - पास।
तापस, साधक, सिद्ध, मुनि, सब - कहँ सगुन सुपास ॥ १ ॥
बिटप, बेलि फूलहिं फलहिं, जल-थल बिमल बिसेषि।
मुदित किरात, बिहंग, मृग, मंगल - मूरति देखि ॥ २ ॥
सींचति सीय सरोज - कर, बये बिटप - बट बेलि।
समउ सुकाल किसान-हित, सगुन सुमंगल केलि ॥ ३ ॥
हय हाँके, फिरि दखिन दिसि, हेरि हेरि हिहिनात।
भये निषाद विषाद - बस, अवध सुमंतहि जात ॥ ४ ॥
सचिव सोच-व्याकुल सुनत, असगुन अवध - प्रवेस।
समाचार सुनि सोक - बस, माँगी मीचु नरेस ॥ ५ ॥
राम राम कहि राम - सिय, राम-सरन भे राउ।
सुमिरहु सीता - राम अब, नाहिंन आन उपाउ ॥ ६ ॥
राम - बिरह दसरथ - मरन, मुनि-मन अगम सुमीचु।
तुलसी मंगल मरन-तरु, सुचि सनेह - जल सींचु ॥ ७ ॥ (७०)

सप्तक—३

सूर्य-वंशमें श्रेष्ठ रामने जब (चित्रकूटपर) पयस्विनीके तटपर डेरा डाल लिया, तब वहाँके तपस्वियों, साधकों, सिद्धों एवं मुनियोंको ऐसा जान पड़ा कि यह हमें सब प्रकारकी सुविधा दिलाने-वाला शकुन है ॥१॥ (जबसे राम वहाँ आ बसे) तबसे वहाँके वृक्ष और लताएँ और भी अधिक फूलने-फलने लगीं। (राम और लक्ष्मणकी) मंगल मूर्त्तियाँ देख-देखकर (चित्रकूटके) किरात, पशु और पक्षी बड़े आनन्दित हुए जा रहे थे ॥२॥ सीता अपने लगाए हुए वट-वृक्ष और लताओंको अपने कर-कमलोंसे नित्य सींचती जाती हैं। यह शुभ शकुन इस बातका सूचक है कि किसानोंके लिये मंगल-दायक सुकाल होगा ॥३॥ (रामको चित्रकूटमें निवास करते जानकर जब सुमंत्र रथ लेकर अयोध्या लौटने लगे तब) रथके घोड़े दक्षिणकी ओर देख-देखकर हिनहिनाने लगे। सुमंत्रको अयोध्या लौटते देखकर निषादराज भी अत्यन्त दुखी हुए ॥४॥ सुमंत्रके अयोध्यामें प्रवेश करते ही अपशकुन होने लगे। उन्हें शोकसे व्याकुल सुनकर और रामका समाचार जानकर दशरथ भी बहुत दुखी हुए। उन्होंने (सब प्रकारसे हताश होकर) विधातासे यही माँगा कि मुझे मृत्यु ही दे डालो (क्योंकि रामके बिना वे जीवित नहीं रहना चाहते थे) ॥५॥ महाराज दशरथ राम-राम, सीताराम कहते हुए रामकी शरणमें चले गए (उनका देहावसान हो गया)। (तुलसीदास कहते हैं कि) आप भी सीता-रामका स्मरण करो। इसके अतिरिक्त (मुक्तिका) कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥६॥ रामके वियोगमें महाराज दशरथकी मृत्यु ऐसी उत्तम हुई जिसकी मुनि लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी मंगलमय मृत्युके वृक्षको पवित्र स्नेह-रूपी जलसे सींचो। (ऐसी मंगलमय मृत्यु पानेके लिये रामसे सच्चा स्नेह करो) ॥७॥ (७०)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—४

धीर, बीर, रघुबीर - प्रिय, सुमिरि समीर - कुमार।
अगम, सुगम सब काज करु, करतल सिद्धि बिचार ॥ १ ॥
सुमिरि सत्रुसूदन - चरन, सगुन सुमंगल मानि।
पर-पुर बाद - बिबाद - जय, जूझ - जुआ जय जानि ॥ २ ॥
सेवक - सखा - सुबंधु - हित, सगुन बिचारु बिसेखि।
भरत नाम गुन - गन बिमल, सुमिरि सत्य सब लेखि ॥ ३ ॥
साहिब समरथ सील - निधि, सेवत सुलभ सुजान।
राम सुमिरि सेइय सुप्रभु, सगुन कहब कल्यान ॥ ४ ॥
सुकृत - सील - सोभा - अवधि सीय सुमंगल - खानि।
सुमिरि सगुन तिय-धरम हित, कहब सुमंगल जानि ॥ ५ ॥
ललित लखन - मूरति, हृदय आनि धरे धनु-बान।
करहु काज सुभ सगुन सब, मुद - मंगल - कल्यान ॥ ६ ॥
राम - नाम पर रामते, प्रीति, प्रतीति, भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल-कोस ॥ ७ ॥ (७७)

सप्तक—४

धीर, वीर और रामके परम प्यारे पवनपुत्र हनुमान्‌का स्मरण करके सुगम या अगम (सरल या कठिन) जो कार्य चाहो कर डालो। कार्यकी सिद्धि (सफलता) अपने हाथमें ही आई समझ लो ॥१॥ शत्रुघ्नके चरणोंका स्मरण करके इस शकुनको मंगलकारक मानकर पराये नगरमें शास्त्रार्थ, युद्ध या जूएमें अपनी जीत निश्चित समझो (इस शकुनसे मंगलकारक विजय मिलती है) ॥२॥ सबको छोड़कर निर्मल गुणोंसे युक्त भरतके शुभ नामका स्मरण करो। यह शकुन विशेष रूपसे सेवकों, मित्रों और कुटुम्बी जनोंके कल्याणके लिये हितकारक है ॥३॥ शीलके निधान समर्थ प्रभु रामकी सेवा सुलभ समझकर उनका स्मरण और सेवन करो। यह शकुन तुम्हारा सदा कल्याण ही करेगा ॥४॥ अत्यन्त पुण्य, शील और शोभावाली तथा सभी प्रकारका मंगल करनेवाली सीताका स्मरण करो। इस शकुनको स्त्री-धर्मके लिये कल्याण और मंगलकारक समझो ॥५॥ धनुष-बाण धारण किए हुए लक्ष्मणकी सलोनी मूर्तिका हृदयमें ध्यान करते हुए सब काम कर डालो। यह शकुन सभी प्रकारके आनन्द, मंगल और कल्याणके लिये शुभ है ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामसे भी अधिक जो रामके नामपर ही प्रेम, विश्वास और भरोसा रखकर (रामनामका) स्मरण करता है, उसके लिये यह शकुन मंगल ही मंगल करनेवाला है ॥७॥ (७७)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—५

गुरु - आयसु आये भरत, निरखि नगर-नर-नारि।
सानुज सोचत, पोच बिधि, लोचन मोचत बारि॥ १॥
भूप-मरन, प्रभु - बन - गवन, सब बिधि अवध अनाथ।
रोवत समुझि कुमातु-कृत, मींजि हाथ, धुनि माथ॥ २॥
बेद-बिहित पितु-करम करि, लिये संग सब लोग।
चले चित्रकूटहि भरत, ब्याकुल राम - बियोग॥ ३॥
राम - दरस हिय हरष बड़, भूपति - मरन - बिषाद।
सोचत सकल समाज, सुनि राम - भरत संबाद॥ ४॥
सुनि सिय - आसिष, पाँवरी पाइ, नाइ पद माथ।
चले अवध संताप - बस, बिकल लोग सब साथ॥ ५॥
भरत - नेम - ब्रत - धरम सुभ, रामचरन - अनुराग।
सगुन समुझि साहस करिय, सिद्ध होइ जप - जाग॥ ६॥
चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय - लखन समेत।
राम - नाम - जप जापकहिं, तुलसी अभिमत देत॥ ७॥ (८४)

सप्तक—५

गुरु वशिष्ठकी आज्ञा पाते ही ननिहालसे भरत अयोध्याके लिये चल दिए। (अयोध्या) नगरकी नर-नारियोंको (शोकमें मग्न) देखकर वे और उनने भाई शत्रुघ्न बड़ी चिन्तामें पड़ गए और विधाताकी इस प्रतिकूलतापर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ १॥ कुटिल माता कैकेयीके कुकृत्योंके कारण महाराज दशरथकी मृत्यु तथा रामका वन-गमन सुनकर और अयोध्याको सब प्रकारसे अनाथ देखकर भरत हाथ मल-मलकर, सिर पीट-पीटकर रोने लगे॥ २॥ वैदिक विधिके अनुसार अपने पिताका अन्त्येष्टि-कर्म करके रामके वियोगसे व्याकुल भरत सबको साथ लेकर चित्रकूटको चल पड़े॥ ३॥ यद्यपि सारा समाज महाराज दशरथकी मृत्युसे बहुत दुखी था, पर रामका दर्शन पाकर वह हृदयमें अत्यन्त हर्षित हो उठा। पर राम और भरतका संवाद सुनकर सारा समाज फिर बड़ी चिन्तामें पड़ गया॥ ४॥ रामका उपदेश सुनकर, आशीर्वाद पाकर भरतने प्रभुके चरणोंमें सिर जा नवाया। फिर प्रभुकी चरण-पादुका लेकर दुःखसे व्याकुल लोगोंके साथ वे अयोध्या लौट आए॥ ५॥ भरतका नियम, व्रत, धर्म और रामके चरणोंमें प्रीति सब अच्छे शकुनके द्योतक हैं। यह जानकर साहसपूर्वक अपना कार्य किए जाओ। तुम्हारे जप, यज्ञ आदि सब सिद्ध होंगे॥ ६॥ जानकी और लक्ष्मणके साथ प्रभु राम चित्रकूटमें ही जमकर निवास करने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि राम-नामका जप करनेवाले जापक (भक्त)-को सब प्रकारके मनोवाञ्छित फल प्राप्त होंगे॥ ७॥ (८४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—६

पय पावनि, बन-भूमि भलि, सैल सुहावन पीठ।
रागिहिं सीठ बिसेष थल, बिषय-बिरागिहि मीठ ॥ १ ॥
फटिक - सिला मंदाकिनी, सिय - रघुबीर - बिहार।
राम-भगत - हित सगुन सुभ, भूतल भगति - भँडार ॥ २ ॥
सगुन सकल संकट-समन, चित्रकूट चलि जाहु।
सीता - राम - प्रसाद सुभ, लघु साधन, बड़ लाहु ॥ ३ ॥
दिये अत्रि-तिय जानकिहिं, बसन - बिभूषन भूरि।
राम - कृपा संतोष, सुख, होहिं सकल दुख दूरि ॥ ४ ॥
काक - कुचालि, बिराध-बध, देह तजी सरभंग।
हानि - मरन - सूचक सगुन, अनरथ - असुभ - प्रसंग ॥ ५ ॥
राम - लखन - मुनिगन मिलन, मंजुल मंगल - मूल।
सत - समाज तब होइ जब, रमा - राम अनुकूल ॥ ६ ॥
मिले कुंभ - संभव मुनिहिं, लखन, सीय, रघुराज।
तुलसी साधु - समाज - सुख, सिद्ध-दरस, सुभ काज ॥ ७ ॥ (९१)

सप्तक—६

पवित्र पयस्विनी (मंदाकिनी) नदीका तट, श्रेष्ठ वनकी भूमि और सुन्दर पर्वतपर निवास—ये सब रागियोंको प्रिय नहीं हैं। ये सभी स्थल विरागियोंको बहुत अच्छे लगते हैं ॥१॥ मंदाकिनीके तटकी स्फटिक शिलापर, राम-जानकीका विहार रामभक्तोंके लिये शुभ शकुनका सूचक है। यह स्थान पृथ्वीपर भक्तिका भांडार है ॥२॥ मैं ऐसा उपाय बताए देता हूँ जो है तो छोटा-सा (साधारण) पर जिसमें लाभ बहुत भारी है कि तुम झटपट चित्रकूट चले जाओ जहाँ राम और जानकीकी कृपासे तुम्हारा कल्याण ही कल्याण होगा और इस शकुनसे सभी संकट कट जायँगे ॥३॥ चित्रकूटमें महर्षि अत्रिकी धर्मपत्नी अनसूयाने जानकीको बहुतसे आभूषण और वस्त्र दे डाले। रामकी कृपासे तुम्हें सन्तोष और सुख होगा, तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायँगे ॥ ४ ॥ काक (कौवे)-का रूप बनाकर जयन्तने जानकीके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया (उनके स्तनपर चोंच जा मारी)। (रामने) विराधका वध किया और शरभंग ऋषिने अपना शरीर त्याग दिया। ये सब प्रसंग ऐसे अनर्थ और अशुभ-कारक हैं कि यह शकुन हानि और मृत्युका सूचक है ॥ ५ ॥ राम और लक्ष्मणका मुनियोंसे मिलना बहुत शुभ और मंगल-कारक है। सत्संगति तो तभी प्राप्त होती है जब राम-जानकी प्रसन्न रहें ॥ ६ ॥ राम, लक्ष्मण और जानकीसे अगस्त्य मुनि जाकर मिले। तुलसीदास कहते हैं कि सन्त जनोंका समाज सुख देता और उनके दर्शनसे सब काम सिद्ध तथा शुभ होते हैं ॥ ७ ॥ (९१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—७

सुनि मुनि - आयसु, प्रभु कियो, पंचबटी बसवास।
भइ महि पावनि परसि पद, भा सब भाँति सुपास ॥ १ ॥
सरित - सरोवर सजल सब, जलज बिपुल बहु रंग।
समउ सुहावन, सगुन सुभ, राजा - प्रजा - प्रसंग ॥ २ ॥
बिटप - बेलि फूलहिँ - फलहिँ, सीतल, सुखद समीर।
मुदित बिहग - मृग - मधुप - गन, बन-पालक दोउ बीर ॥ ३ ॥
मोदाकर गोदावरी, बिपिन सुखद सब काल।
निर्भय मुनि जप - तप करहिँ, पालक राम कृपाल ॥ ४ ॥
भेंट गीध रघुराज - सन, दुहुँ दिसि हृदय हुलास।
सेवक पाइ सुसाहिबहि, साहिब पाइ सुदास ॥ ५ ॥
पढ़हिँ पढ़ावहिँ मुनि-तनय, आगम, निगम, पुरान।
सगुन सुबिद्या लाभ-हित, जानब समय समान ॥ ६ ॥
निज कर सींचति जानकी, 'तुलसी' लाइ रसाल।
सुभ दुतीय उनचास भलि, बरसा, कृषी, सुकाल ॥ ७ ॥ (९८)

सप्तक—७

(अगस्त्य) मुनिकी आज्ञा पाकर प्रभु रामने पंचवटीमें जाकर वहाँ निवास-स्थान बना लिया। उनके चरणोंका स्पर्श करके पंचवटीकी भूमि पवित्र हो गई। वहाँ सब प्रकार (प्रभुके रहने)-की सुविधा हो गई ॥ १ ॥ वहाँ (पंचवटी)-के सभी नदी और तालाब जलसे भरे हुए हैं। उनमें अनेक रंगोंके बहुतसे कमल फूले हुए हैं। यह शकुन राजा और प्रजा दोनोंके लिये अच्छा और शुभ है ॥२॥ (पंचवटीके) जिस वनके रक्षक दोनों वीर राम तथा लक्ष्मण हैं, वहाँके वृक्ष और लताएँ बहुत फूलती-फलती रहती हैं, वहाँ सुखदायक पवन चला करता है, वहाँके पशु-पक्षी और भौंरे बड़े ही प्रसन्न रहते हैं ॥३॥ गोदावरी नदीके पासके वन सदा सब कालमें सुख देते हैं। मुनि लोग निर्भय होकर जप-तप आदि करते हैं। उनकी रक्षा कृपालु राम ही करते हैं ॥ ४ ॥ जब गृध्रराज (जटायु)-से रामकी भेंट हुई तो दोनोंको हार्दिक प्रसन्नता हुई क्योंकि सेवक (गृध्र)-को श्रेष्ठ स्वामी मिल गया और स्वामी (राम)-को श्रेष्ठ सेवक मिल गया ॥ ५ ॥ मुनियोंके बालक वेद, शास्त्र और पुराण पढ़ते-पढ़ाते हैं। यह शकुन विद्या-प्राप्तिके लिये बहुत अनुकूल और उत्तम समझना चाहिए ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि जानकी अपने हाथ आमका पेड़ रोपकर अपने हाथों सींचती उन्हें हैं। यह दूसरे सर्गका उनचासवाँ दोहा वर्षा, कृषि और सुकालके लिये बहुत शुभ है ॥ ७ ॥ (९८)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तृतीय सर्ग

सप्तक—१

दंडक - बन पावन - करन - चरन - सरोज - प्रभाउ ।
ऊसर जामहिँ, खल तरहिँ, होइ रंक - तें राउ ॥ १ ॥
कपट-रूप, मन - मलिन गइ सूपनखा प्रभु - पास ।
कुसगुन कठिन कुनारि - कृत, कलह, कलुष, उपहास ॥ २ ॥
नाक - कान - बिनु बिकल भइ, बिकट, कराल, कुरूप ।
कुसगुन, पाउँ न देब मग, पग - पग कंटक, कूप ॥ ३ ॥
खर, दूषन देखी दुखित चले साजि सब साज ।
अनरथ,असगुन,अघ, असुभ, अनभल,अखिल अकाज ॥ ४ ॥
कटु कुठायँ करटा रटहिँ, फेकरहिँ फेरु कुभाँति ।
नीच निसाचर मीचु - बस, अनी मोह - मद - माति ॥ ५ ॥
राम - रोष - पावक प्रबल, निसिचर सलभ समान ।
लरत, परत, जरि - जरि मरत, भये भसम जग जान ॥ ६ ॥
सीता - लखन - समेत, प्रभु सोहत 'तुलसीदास' ।
हरषत सुर बरषत सुमन, सगुन सुमंगल - बास ॥ ७ ॥ (१०५)

तृतीय सर्ग

सप्तक—१

भगवान् रामके चरण-कमलोंने दण्डक-वनको इतना पवित्र कर डाला कि वहाँकी ऊसर भूमि भी उपजाऊ हो गई, दुष्ट (राक्षस आदि) भी भवसागरसे पार हो गए और दरिद्र राजा भी सम्पत्तिवान् हो गए ॥१॥ कपटी रूप बनाकर मलिन मनवाली शूर्पणखा प्रभु रामके पास जा पहुँची । इस कठोर दुष्टा स्त्रीके कुकृत्यसे झगड़े, उपहास और पाप उठ खड़े हुए । अतः, यह शकुन अच्छा नहीं है ॥ २ ॥ नाक-कान कट जानेपर शूर्पणखा बहुत व्याकुल हो उठी । उसका रूप अत्यन्त विकट, भयानक और भद्दा हो गया । यह शकुन अच्छा नहीं है । किसी कार्यके लिये पैर मत बढ़ाना नहीं तो पग-पगपर काँटे और कुएँ मिलेंगे ॥३॥ जब खर और दूषणने अपनी बहिन शूर्पणखाको बहुत दुखी देखा तो वे सेना सजाकर चल पड़े । (चलते समय) उन्हें ऐसे अनर्थकारी अपशकुन होने लगे जो सभी कार्योंमें विघ्न डालने वाले, पापपूर्ण, अशुभ और अहितकर थे ॥ ४ ॥ कौवे बुरे स्थानपर बैठे कर्कश काँव-काँव किए जा रहे हैं और सियार बुरे ढंगसे रोए जा रहे हैं । (इतने अपशकुनोंके होते हुए भी) ये नीच राक्षस मृत्युके निकट आए चले जा रहे हैं और उनकी सेना भी मोह और मद (अहंकार)-में चूर हुई चली आ रही है ॥ ५ ॥ रामका क्रोध तो प्रचण्ड अग्निके समान है और ये राक्षस फतिंगोंके समान हैं (जो प्रभुकी क्रोधाग्निमें पड़कर स्वयं भस्म हो जानेपर तुले हुए हैं) ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जानकी और लक्ष्मणके साथ प्रभु राम बहुत शोभा दे रहे हैं । देवता प्रसन्न होकर उनपर फूलोंकी वर्षा किए जा रहे हैं । यह शकुन आनन्द-मंगल करनेवाला है ॥ ७ ॥ (१०५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—२

सुभट सहस - चौदह - सहित भाइ काल - बस जानि।
सूपनखा लंकहिँ चली, असुभ-अमंगल - खानि ॥ १ ॥
बसन सकल सोनित - समल, बिकट बदन, गत गात।
रोवति रावनकी सभा, तात! मात! हा भ्रात ॥ २ ॥
काल ? कि मूरति कालिका ? काल - राति बिकराल ?
बिनु पहिचाने, लंकपति - सभा सभय तेहि काल ॥ ३ ॥
सूपनखा सब भाँति गत, असुभ, अमंगल - मूल।
समय साढ़ साती - सरिस, नृपहिँ, प्रजहिँ प्रतिकूल ॥ ४ ॥
बरबस गवनत रावनहिँ, असगुन भए अपार।
नीच गनत नहिँ मीचु - बस, मिलि मारीच बिचार ॥ ५ ॥
इत रावन, उत राम - कर, मीचु जानि मारीच।
कपट कनक - मृग - बेष तब, कीन्ह निसाचर नीच ॥ ६ ॥
पंचवटी - बट - बिटपतर, सीता - लखन - समेत।
सोहत तुलसीदास - प्रभु, सकल सुमंगल देत ॥ ७ ॥ (११२)

सप्तक—२

जब शूर्पणखाने देखा कि चौदह हज़ार योद्धाओंके साथ मेरे भाई कालके गालमें जा पहुँचे (मारे जा चुके) हैं तब वह अशुभ और अमंगलकी खान शूर्पणखा लंकाके लिये चल पड़ी ॥१॥ उसके सारे वस्त्र रक्तसे लथपथ हो गए थे, उसका मुख बड़ा भयंकर हो चला था और उसका शरीर भी मुरझा चला था। वह रावणके दरबारमें जाकर 'हाय भ्राता! हाय पिता! हाय माता! कहती हुई डाढ़ मार-मारकर रोने लगी ॥ २ ॥ उसे पहचान न सकनेके कारण रावण तथा उसके सभासद् उसे देखकर बहुत डर गए कि यह काल है ? या कालिका है ? या भयंकर कालरात्रि ही आ पहुँची है ? ॥३॥ सब प्रकारसे गई बीती वह शूर्पणखा अशुभ और अकल्याण उत्पन्न करनेवाली लग रही थी। उस समय वह राजा (रावण) तथा लंकाकी प्रजा दोनोंको ही नष्ट कर डालनेवाला साढ़े साती शनैश्चर बनकर चली आई थी ॥४॥ मारीचसे मिलनेका विचार करके ज्योंही रावण हठपूर्वक चला, त्योंही उसे बहुतसे अपशकुन दिखाई पड़ने लगे। किन्तु सिरपर काल नाच रहा था इसलिये उसने उन अपशकुनोंकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया ॥५॥ तब उस राक्षस मारीचने सोचा कि (यदि रावणकी बात न मानी तो) इधर रावणके हाथसे मारा जाऊँगा और उधर गया तो रामके हाथसे मारा जाऊँगा। यह समझकर वह कपटी सोनेका मृग बनकर चल दिया (कि कमसे कम रामके हाथसे मारे जानेपर मुक्ति तो मिल जायगी) ॥ ६ ॥ (नासिकमें गोदावरीके तटपर) सीता और लक्ष्मणके साथ तुलसीदासके प्रभु राम सब प्रकारका मंगल करते हुए शोभा दे रहे थे ॥७॥ (११२)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—३

माया - मृग पहिचानि प्रभु, चले सीय-रुचि जानि।
बंचक, चोर, प्रपंच - कृत, सगुन कहब हित-हानि ॥ १ ॥
सीय - हरन - अवसर सगुन, भय, संसय, संताप।
नारि - काज - हित निपट गत, प्रगट पराभव, पाप ॥ २ ॥
गीधराज रावन - समर, घायल बीर बिराज।
सूर सुजस संग्राम - महि, मरन सुसाहिब - काज ॥ ३ ॥
राम - लखन बन - बन बिकल फिरत सीय-सुधि लेत।
सूचत सगुन बिषाद बड़, असुभ, अरिष्ट, अचेत ॥ ४ ॥
रघुबर, बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर।
सिय-सुधि कहि, 'सिय-राम' कहि, तजी देह मति-धीर ॥ ५ ॥
दसरथ-तें दस-गुन भगति - सहित तासु करि काज।
सोचत बंधु - समेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराज ॥ ६ ॥
तुलसी सहित - सनेह नित, सुमिरहु सीताराम।
सगुन सुमंगल सुभ सदा, आदि, मध्य, परिनाम ॥ ७ ॥ (११९)

सप्तक—३

उस मायावी मृगको पहचानकर सीताकी प्रेरणासे राम (उस मृगके पीछे-पीछे) चल दिए। यह शकुन ठगी और चोरीके प्रपंचका है, अतः इससे हित नहीं होगा। शकुन अच्छा नहीं है ॥१॥ सीता-हरणके समयके इस शकुनसे भय, संशय और संताप मिलता है। स्त्रियोंके कामके लिये तो यह बहुत ही बुरा है। इससे हार (पराजय) होगी और पाप मिलेगा ॥२॥ रावणसे युद्ध करके गृध्रराज जटायु घायल हुआ पड़ा है। उसने रणभूमिमें शूरवीर होनेका यश पाया और अपने स्वामीके हितके लिये युद्धमें प्राण दिए ॥३॥ राम और लक्ष्मण व्याकुल होकर वन-वन सीताकी खोजमें घूम रहे हैं। यह शकुन बड़े दुःख, अशुभ, अरिष्ट और अमंगलका सूचक है। (शकुन अच्छा नहीं है) ॥४॥ रामने देखा कि जटायु घायल हुआ पड़ा है। उस (जटायु)-ने भी दोनों वीर भाइयोंको देखते ही सीताका सारा समाचार बता दिया और फिर उस धीर जटायुने सीता और रामका स्मरण करते हुए अपना शरीर छोड़ दिया ॥५॥ रामने महाराज दशरथसे दस-गुनी भक्तिके साथ जटायुकी अन्त्येष्टि क्रिया की। कृपालु राम और उनके भाई लक्ष्मण दोनों (जटायुकी मृत्युपर) बड़े शोकाकुल और दुखी हुए ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि नित्य प्रेमपूर्वक सीता और रामका स्मरण करते रहो। इस शकुनसे तुम्हारे कामका आदि, मध्य और परिणाम (अंत) सब शुभ और मंगलकारक होगा ॥७॥ (११९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—४

सकल काज सुभ, समउ भल, सगुन सुमंगल जानु।
कीरति, बिजय, बिभूति भलि, हिय हनुमानहिं आनु ॥ १ ॥
सुमिरि सत्रु - सूदन - चरन चलहु, करहु सब काज।
सत्रु - पराजय, नित बिजय, सगुन सुमंगल - साज ॥ २ ॥
भरत - नाम सुमिरत मिटहिं, कपट, कलेस, कुचालि।
नीति - प्रीति - परतीति - हित - सगुन सुमंगल - सालि ॥ ३ ॥
राम - नाम कलि काम - तरु, सकल सुमंगल - कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि जग, पग - पग परमानंद ॥ ४ ॥
सीता - चरन प्रनाम करि, सुमिरि सुनाम सनेम।
सुतिय होहिं पति - देवता, प्राननाथ - प्रिय - प्रेम ॥ ५ ॥
लखन ललित मूरति मधुर, सुमिरहु सहित-सनेह।
सुख - संपति - कीरति - बिजय, सगुन सुमंगल - गेह ॥ ६ ॥
तुलसी, तुलसी - मंजरी, मंगल - मंजुल - मूल।
देखत, सुमिरत, सगुन सुभ, कलप-लता फल - फूल ॥ ७ ॥ (१२६)

सप्तक—४

यह शकुन बहुत शुभ और मंगलदायक है। तुम्हारे सभी कार्य यथासमय ठीक होते रहेंगे। हनुमानका हृदयमें स्मरण करते रहो। तुम्हें बहुत कीर्ति, विजय और ऐश्वर्य प्राप्त होगा। १॥ शत्रुघ्नका स्मरण करके सब कार्य कर डालो। तुम्हारे सभी शत्रु पराजित हो जायँगे और तुम्हारी विजय होगी। यह शकुन सब प्रकारसे मंगलदायक है ॥२॥ भरतका नाम लेते ही सब कपट, क्लेश और कुचालें नष्ट हो जायँगी। यह शकुन तुम्हारी नीति, प्रेम और विश्वासकी सिद्धिके लिये अत्यन्त कल्याणकारक है ॥३॥ कलियुगमें केवल रामका नाम ही कल्पवृक्षके समान सम्पूर्ण मंगल कर सकता है। इसे जपते रहनेसे ही सारी सिद्धियाँ अपने आप हाथमें आ जाती हैं और संसारमें पग-पगपर परम आनन्द प्राप्त होता रहता है ॥४॥ जो स्त्री सीताके चरणोंमें प्रणाम करके नियमपूर्वक उनका स्मरण करेगी वह श्रेष्ठ स्त्री अवश्य पतिव्रता होगी और उसे अपने प्राणनाथ (पति)-का बहुत ही प्यारभरा प्रेम मिलता रहेगा। (स्त्रियोंके लिये यह शकुन बहुत उत्तम और शुभ है) ॥५॥ लक्ष्मणकी सुन्दर और मधुर (कोमल) मूर्तिका प्रेमपूर्वक स्मरण (ध्यान) करते रहो। यह शकुन सब प्रकार मंगल करेगा। इससे सुख, सम्पत्ति, कीर्ति और विजय प्राप्त होगी ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि तुलसीकी संजरी बड़ी कोमल और और कल्याण करनेवाली होती है। यह शकुन बतलाता हैं कि इसका दर्शन और स्मरण करनेसे यह कल्पलताके फल और फूलके समान सारी मनोकामनाएँ पूरी कर देती है। इसका दर्शन करनेवाला सदा फलता-फूलता रहेगा, प्रसन्न और सुखी रहेगा) ॥७॥ (१२६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—५

खल बल - अंध कबंध - बस, परे सुबन्धु - समेत।
सगुन सोच - संकट कहब, भूत - प्रेत दुख देत ॥ १ ॥
पाई नीच सुमीचु भलि, मिटा महामुनि - स्राप।
बिहँग-मरन, सिय-सोच मन, सगुन समय संताप ॥ २ ॥
कहि सबरी सब सीय-सुधि, प्रभु सराहि फल खात।
सोच - समय संतोष, सुनि सगुन सुमंगल बात ॥ ३ ॥
पवन-सुवन - सन भेंट भइ, भूमि-सुता - सुधि पाइ।
सोच-बिमोचन सगुन सुभ, मिला सुसेवक आइ ॥ ४ ॥
राम - लखन - हनुमान - मन, दुहुँ दिसि परम उछाहु।
मिला सुसाहिब सेवकहिं, प्रभुहिं सुसेवक - लाहु ॥ ५ ॥
कीन्ह सखा सुग्रीव प्रभु, दीन्हि बाँह रघुबीर।
सुभ सनेह - हित सगुन-फल मिटइ सोच, भय, भीर ॥ ६ ॥
बली बालि बल-सालि दलि, सखा कीन्ह कपिराज।
'तुलसी' राम कृपालु-को, बिरद गरीब-नेवाज ॥ ७ ॥ (१३३)

सप्तक—५

राम अपने भाई लक्ष्मणके साथ चलते हुए दुष्ट और बलके मदमें अंधे कबंधके फंदेमें जा फँसे। इस शकुनसे शोक और संकटकी सूचना मिलती है। भूत-प्रेतके दुःखकी संभावना है ॥ १ ॥ उस नीच कबन्धने (रामके हाथसे मरकर) अच्छी मृत्यु पाई। महामुनि (दुर्वासा)का शाप दूर हो गया। मनमें पक्षी जटायुकी मृत्यु और सीताके वियोगका शोक बने रहनेके कारण यह शकुन भय और दुःख देनेवाला होगा। (शकुन बहुत बुरा है) ॥ २ ॥ शबरीने सीताकी खोजका उपाय रामको कह सुनाया। राम भी उसके दिए हुए फल खाते जा रहे थे और सराहना करते जा रहे थे। चिन्तामें पड़े हुए रामको सीताकी खोजका आधार पाकर बड़ा सन्तोष हुआ। अतः, यह शकुन कल्याण-कारक है (अच्छा समाचार सुननेको मिलेगा) ॥ ३ ॥ पवनपुत्र हनुमान्‌से रामकी भेंट हुई। सीताके श्रेष्ठ सेवक हनुमान् आकर रामसे मिले। यह शकुन शुभ है। सब चिन्ताएँ दूर हो जायँगी ॥ ४ ॥ इधर राम और लक्ष्मण तथा उधर हनुमान् दोनोंको (एक दूसरेसे मिलकर) अत्यन्त आनन्द और सुख मिला। श्रेष्ठ सेवक हनुमान्‌को रामके समान श्रेष्ठ प्रभु तथा राम-जैसे श्रेष्ठ प्रभुको हनुमान्-जैसा श्रेष्ठ सेवक मिल गया (प्रभु और सेवक दोनों ही अपने अपने रूपमें श्रेष्ठ मिल गए)। परस्पर मेल-मिलाप करानेके लिये यह उत्तम शकुन है ॥५॥ प्रभु रामने सुग्रीवको अपना सखा बना लिया और उसे अपने भुजबलका सहारा दे दिया। अतः, इस शकुनका फल प्रेमके लिये अत्यन्त शुभ है। चिन्ता और भयका सारा बोझ दूर हो जायगा ॥ ६॥ रामने बलवान् बालिका वध करके सुग्रीवको वानरोंका राजा बना दिया। तुलसीदास कहते हैं कि कृपालु रामका तो बिरद (नाम) ही है दीनोंपर दया करनेवाला ॥ ७ ॥ (१३३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—६

बन्धु-बिरोध न कुसल कुल, कुसगुन, कोटि कुचालि।
रावन रबिको-राहु सों, भयो काल-बस बालि॥ १॥
कीन्ह बास बरषा निरखि, गिरिवर सानुज राम।
काज बिलंबित, सगुन-फल, होइहि भल परिनाम॥ २॥
सीय-सोध कपि-भालु सब, बिदा किए कपि-नाथ।
जतन करहु, आलस तजहु, नाइ राम-पद माथ॥ ३॥
हनूमान हिय हरषि तब, राम जोहारे जाइ।
मंगल-मूरति मारुतिहिं-सादर लीन्ह बुलाइ॥ ४॥
डाँटे बानर-भालु सब, अवधि गए, बिन काज।
जो आइहि, सो काल-बस, कोपि कहा कपिराज॥ ५॥
जानि-सिरोमनि जानि जिय, कपि बल-बुद्धि-निधान।
दीन्हि मुद्रिका मुदित प्रभु, पाइ मुदित हनुमान॥ ६॥
'तुलसी' करतल सिद्धि सब, सगुन सुमंगल-साज।
करि प्रनाम रामहिं, चलहु, साहस-सिद्ध सुकाज॥ ७॥ (१४०)

सप्तक—६

अपने बन्धुओंसे झगड़ा बढ़ानेमें कभी कुलका कुशल नहीं होता। यह शकुन अशुभ है। अनेक प्रकारकी कुचालें (विरोधकी बातें) उठ खड़ी होंगी। देखो, रावण-रूपी सूर्यके लिये राहुके समान प्रबल बालि भी (भाईसे विरोधके कारण) मारा गया। ॥१॥ वर्षा ऋतु आनेपर राम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ (प्रवर्षण) पर्वतपर डेरा डालकर रहने लगे (क्योंकि वर्षाके कारण न तो सीताकी ही खोज की जा सकती थी, न युद्ध ही किया जा सकता था)। आपका आगेका कार्यक्रम कुछ दिनोंके लिये टल जायगा। इस शकुनका फल अन्तमें अच्छा मिलेगा॥२॥ कपिराज सुग्रीवने सभी वानर-भालुओंको सीताकी खोजके लिये भेज दिया। रामके चरणोंमें सिर नवाकर आलस्य छोड़कर अपना कार्य सिद्ध करनेका उपाय करते रहो॥ ३॥ तब हनुमान्‌ने प्रसन्न होकर रामको जा प्रणाम किया। मंगलमूर्ति पवनकुमार हनुमान्‌को रामने आदरपूर्वक अपने पास बुला बैठाया॥ ४॥ सुग्रीवने क्रोधपूर्वक सभी वानर-भालुओंको डाँटकर कहा कि बिना काम किए (सीताकी खोज लगाए बिना) अवधि बीत जानेपर जो लौटकर आवेगा वह अवश्य मारा जायगा॥ ५॥ रामने हनुमान्‌को बहुत ज्ञानवान्, बलवान् और बुद्धिमान् जानकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी मुद्रिका निकाल थमाई जिसे लेकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हो उठे (कि राम मुझे इतना मानते हैं)॥ ६॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामको प्रणाम करके अपने कार्यके लिये चल दो। यह शकुन मंगलोंसे पूर्ण है। कार्यकी सिद्धि तुम्हारे हाथमें आई धरी है। साहस करो तो काम अवश्य सिद्ध होगा॥७॥ (१४०)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—७

नाथ हाथ माथे धरेउ, प्रभु - मुँदरी मुँह मेलि।
चलेउ सुमिरि सारंग - धर, आनिहि सिद्धि सकेलि ॥ १ ॥
संग नील, नल, कुमुद, गद, जामवंत, जुवराज।
चले राम-पद नाइ सिर, सगुन सुमंगल - साज ॥ २ ॥
पैठि बिबर मिलि तापसिहि, अँचइ पानि, फल खाइ।
सगुन सिद्धि-साधक दरस, अभिमत होइ अघाइ ॥ ३ ॥
बनचर बिकल बिषाद-बस, देखि उदधि अवगाह।
असमंजस बड़ सगुन-गत, बिधिबस होइ निबाह ॥ ४ ॥
सब सभीत संपाति लखि, हहरे हृदय हरास।
कहत परसपर गीध-गति, परिहरि जीवन - आस ॥ ५ ॥
नव तनु पाइ देखाइ, प्रभु - महिमा - कथा सुनाइ।
धरहु धीर, साहस करहु, मुदित सीय-सुधि पाइ ॥ ६ ॥
'तुलसी' राम-प्रभाउ कहि, मुदित चले संपाति।
सुभ तीसर उनचास भल, सगुन सुमंगल - पाँति ॥ ७ ॥ (१४७)

सप्तक—७

(हनुमान्‌को मुद्रिका देकर) रामने उनके मस्तकपर हाथ फेर दिया। तब हनुमान् वह मुद्रिका अपने मुँहमें रखकर और शार्ङ्ग धनुष-धारी रामका स्मरण करके (सीताकी खोज लेनेके लिये) लंकाको चल पड़े, जहाँसे वे पूर्ण कार्य सिद्ध कर लावेंगे ॥ १ ॥ उनके साथ नील, नल, कुमुद, गद, जामवंत और युवराज अंगद भी रामको सिर नवाकर चल पड़े। इस शकुनसे मंगल ही मंगल होगा ॥ २ ॥ फिर उन सबने गुफामें जाकर और तपस्विनीसे मिलकर फल खाए और जलपान किया। (तपस्विनीके) दर्शनसे सभी सिद्धियाँ मिल गई हैं। अतः, इस शकुनसे सब मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी ॥ ३ ॥ (जब रामने समुद्रपर क्रोध किया) उस समय समुद्रमें जितने जलचर जीव थे वे सब दुःखके मारे व्याकुल हो उठे और समुद्र भी खलबला उठा। यह देखकर सभी लोग बड़े असमंजसमें पड़ गए और सोचने लगे कि अब तो विधाता ही काम बनावें तो बनावें ॥ ४ ॥ संपातीको देखते ही सबके हृदय दहल उठे पर तभी उस (सम्पाती)-का शरीर नवीन हो गया और वह दिखलाकर उसने प्रभु रामकी अपार महिमाकी कथा कह सुनाई। उसने कहा कि धीरज रखकर साहस करोगे तो सीताकी खोज पाकर प्रसन्न हो जाओगे ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामका प्रभाव सबको बतलाकर संपाती (नवीन शरीर धारण करके) प्रसन्नतापूर्वक चला गया। तीसरे सर्गके इस उनचासवें शकुनसे सब शुभ और मंगल होगा ॥ ७ ॥ (१४७)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चतुर्थ सर्ग

सप्तक--१

राम-जनम सुभ सगुन भल, सकल सुकृत-सुख-सार।
पुत्र-लाभ, कल्यान बड़, मंगल चारु बिचार॥ १॥
दसरथ कुल-गुरुकी कृपा, सुत-हित जाग कराइ।
पायस पाइ, बिभाग करि, रानिन्ह दीन्ह बुलाइ॥ २॥
सब सगरभ सोहहिं सदन, सकल सुमंगल-खानि।
तेज, प्रताप, प्रसन्नता, रूप न जाहिं बखानि॥ ३॥
देखि सुहावन सपन सुभ, सगुन सुमंगल पाइ।
कहहिं भूप-सन मुदित मन, हरष न हृदय समाइ॥ ४॥
सपन सगुन सुनि, राउ कह, कुल-गुरु-आसिरबाद।
पूजिहि सब मन-कामना, संकर-गौरि-प्रसाद॥ ५॥
मास, पाख, तिथि, जोग सुभ, नखत, लगन, ग्रह, बार।
सकल सुमंगल-मूल जग, राम लीन्ह अवतार॥ ६॥
भरत, लखन, रिपु-दवन सब सुवन सुमंगल-मूल।
प्रगट भए नृप-सुकृत-फल, 'तुलसी', बिधि अनुकूल॥ ७॥ (१५४)

चतुर्थ सर्ग

सप्तक—१

रामके जन्मको सारे पुण्यों और सुखोंका निचोड़ (तत्त्व) समझना चाहिए। अतः, यह शकुन बहुत शुभ और उत्तम है। इससे पुत्र-लाभ होगा, बड़ा कल्याण होगा और अच्छे-अच्छे मंगल कार्य होंगे॥ १॥ महाराज दशरथने कुलगुरु वशिष्ठकी कृपासे पुत्रेष्टि यज्ञ ला करवाया। उस यज्ञसे उन्हें जो प्रसाद-रूप पायस (चरु) मिला वह सब उन्होंने रानियोंको बुलाकर उन्हें भाग लगाकर बाँट दिया॥ २॥ सभी मंगलमयी रानियाँ गर्भवती होकर भवनमें शोभा देने लगीं। उनके मुखपर तेज और प्रताप झलकने लगा। उनका रूप ऐसा सुहावना था कि उसका वर्णन करते नहीं बनता॥३॥ सुन्दर शुभ स्वप्न देखकर तथा मंगलदायक शकुन पाकर सब रानियोंने प्रसन्न चित्तसे वह स्वप्न राजाको कह सुनाया। उनके हृदयमें इतनी प्रसन्नता उमड़ी पड़ रही थी कि हृदयमें समाए नहीं समा रही थी (वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठी थीं)॥४॥ उनका उत्तम स्वप्न और शकुन सुनकर राजाने कहा कि यह सब कुलगुरु वशिष्ठका आशीर्वाद है। शंकर और पार्वतीकी कृपासे तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी॥ ५॥ शुभ चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें नवमी तिथि, अभिजित नक्षत्र एवं श्रेष्ठ योग, लग्न, ग्रह और वारको संसारका सम्पूर्ण मंगल करनेवाले रामने आकर अवतार लिया॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि इसी प्रकार मंगल करनेवाले भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी विधाताकी कृपा और महाराजा दशरथके पुण्योंके फलके रूपमें आ प्रकट हुए॥ ७॥ (१५४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक-२

घर - घर अवध बधावने, मुदित नगर - नर - नारि।
बरषि सुमन, हरषहिँ बिबुध, बिधि, त्रिपुरारि, मुरारि ॥ १ ॥
मंगल गान, निसान नभ, नगर मुदित नर - नारि।
भूप-सुकृत-सुरतरु निरखि, फरे चारु फल चारि ॥ २ ॥
पुत्र - काज कल्यान नृप, दिए दान बहु भाँति।
रहस - बिबस रनिवास सब, मुद - मंगल दिन - राति ॥ ३ ॥
अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद।
मुदित मातु - पितु - लोग लखि रघुबर बाल-बिनोद ॥ ४ ॥
करन - बेध, चूड़ा - करम, लौकिक - बैदिक काज।
गुरु-आयसु भूपति करत, मंगल साज - समाज ॥ ५ ॥
राज-अजिर राजत रुचिर, कोसल - पालक बाल।
जानु - पानि - चर चरित बर, सगुन सुमंगल - माल ॥ ६ ॥
लहे मातु - पितु भाग - बस, सुत जग - जलधि ललाम।
पुत्र-लाभ-हित सगुन सुभ, 'तुलसी', सुमिरहु राम ॥ ७ ॥ (१६१)

सप्तक—२

(रामके जन्म लेनेपर) घर-घरमें बधाइयाँ बज उठीं। नगर (अयोध्या)-के सभी स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न हो उठे। सब देवता हर्षित हो-होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी बड़े प्रसन्न हुए जा रहे थे ॥ १ ॥ आकाशमें मंगल गान हो रहे थे तथा नगाड़े बजते जा रहे थे। नगरके स्त्री-पुरुष आनन्दित होकर कहने लगे कि—'देखो ! ये चारों कुँअर राजा दशरथके पुण्यके कल्पवृक्षके मनोहर फल हैं' ॥ २ ॥ पुत्रोंके कल्याणके लिये राजा दशरथने सबको अनेक प्रकारके दान दे डाले। सारे रनिवासमें दिन-रात आनन्द-मंगल मनाया जाने लगा। सभी लोग आनन्दमें मग्न हो चले ॥ ३ ॥ अयोध्यामें दिन-दिन नये-नये प्रकारके आमोद-प्रमोद होते और बधावे बजते रहते थे। रामकी बाल-क्रीडाएँ देख-देखकर माता-पिता तथा अन्य सभी लोग प्रसन्न हुए जा रहे थे ॥ ४ ॥ गुरुकी आज्ञासे महाराज दशरथने वैदिक और लौकिक रीतिके अनुसार सभी पुत्रोंके मुण्डन, कनछेदन आदि सभी मांगलिक कार्य पूरे कर डाले ॥ ५ ॥ कोशलेश राजा दशरथके आँगनमें चारों बालक हाथों और घुटनोंके बल चलते और मनोहर बाल-लीलाएँ करते हुए बड़े प्यारे लग रहे थे। इस शकुनसे कल्याणकी वृद्धि समझनी चाहिए ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सौभाग्यवश माता-पिताने इस श्रेष्ठ संसार-रूपी समुद्रमें सुन्दर पुत्र-रत्न प्राप्त कर लिए। अतः, पुत्र-लाभके लिये यह शकुन बड़ा शुभ है। रामका स्मरण किए जाओ ॥७॥ (१६१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—३

बाल - बिभूषन - बसन - धर, धूरि - धूसरित अंग ।
बाल-केलि रघुबर करत, बाल - बंधु सब संग ॥ १ ॥
राम, भरत, लछिमन ललित, सत्रु - समन सुभ नाम ।
सुमिरत दसरथ-सुवन सब, पूजिहि सब मन - काम ॥ २ ॥
नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ ।
ललित बसन, भूषन ललित, ललित अनुज-सिसु साथ ॥ ३ ॥
सुदिन सोधि, मंगल किए, दिये भूप व्रत - बंध ।
अवध बधाव बिलोकि सुर, बरषत सुमन सुगंध ॥ ४ ॥
भूपति, भूसुर, भाट, नट, जाचक पुर - नर - नारि ।
दिये दान, सनमानि सब, पूजे कुल - अनुहारि ॥ ५ ॥
सखी, सुआसिनि, बिप्र-तिय, सनमानी सब राय ।
ईस मनाय असीस सुभ, देहिं सनेह सुभाय ॥ ६ ॥
राम-काज कल्यान सब, सगुन सुमंगल - मूल ।
चिरजीवहु तुलसीस सब, कहि सुर बरषहिं फूल ॥ ७ ॥ (१६८)

सप्तक—३

बालकोंके वस्त्र और भूषण पहने हुए रामका सारा शरीर धूलसे लथपथ है । वे अपने सब भाइयों और साथी बच्चोंको साथ लिये बाल-लीलाएँ कर रहे हैं ॥१॥ उनके शुभ नाम हैं राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न । महाराज दशरथके सभी पुत्रोंका स्मरण करोगे तो सब मनोकामनाएँ पूरी हो जायँगी ॥२॥ रामका नाम भी बड़ा सुन्दर है, इनकी लीलाएँ भी सुन्दर हैं, इनके वस्त्र और आभूषण भी सुन्दर हैं और इनके साथके सभी छोटे भाई और बच्चे भी बड़े सुन्दर हैं ॥३॥ शुभ दिन शोधकर महाराजने इनके मंगलकारक व्रतबंध (यज्ञोपवीत) करा दिए । अयोध्यापुरीमें मंगल बधावा होते देखकर सब देवता पुष्पों और सुगंधित पदार्थोंकी वर्षा करने लगे ॥४॥ महाराज दशरथने अपने कुलके अनुसार ब्राह्मणों, भाटों, नटों, याचकों एवं नगरके स्त्री-पुरुषोंको दान और सम्मान देकर उनकी बड़ी पूजा की ॥५॥ महाराजने (रानियोंकी) सभी सखियों, सौभाग्यवती स्त्रियों और ब्राह्मणियोंको भी (दान आदि देकर) बड़ा सम्मान किया । वे सब शंकरको मनाती हुई स्वाभाविक स्नेहसे शुभाशीर्वाद देने लगीं ॥६॥ रामके सभी कार्य बड़े कल्याणकारी हैं । यह शकुन बहुत मंगलकारी है । देवता लोग यह कहते हुए पुष्पोंकी वर्षा किए डाल रहे थे कि तुलसीदासके प्रभु राम चिरजीवी हों ॥७॥ (१६८)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—४

राम-जनम सुभ काज सब, कहत देव - रिषि आइ।
सुनि-सुनि मन हनुमानके, प्रेम न उमँग अमाइ॥ १॥
भरत स्याम-तन राम-सम, सब गुन - रूप - निधान।
सेवक सुख-दायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान॥ २॥
ललित लाहु लोने लखन, लोयन - लाहु निहारि।
सुत ललाम लालहु ललित, लेहु ललकि फल चारि॥ ३॥
मंगल - मूरति मोद - निधि, मधुर मनोहर बेष।
राम - अनुग्रह, पुत्र - फल, होइहि सगुन बिसेष॥ ४॥
सोधत मख - महि जनकपुर, सीय सुमंगल - खानि।
भूपति - पुन्य - पयोधि जनु, रमा प्रगट भइ आनि॥ ५॥
नाम सत्रु - सूदन सुभग, सुखमा - सील - निकेत।
सेवत, सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत॥ ६॥
बालक कोसल - पालके, सेवक - पाल कृपाल।
तुलसी - मन - मानस बसत, मंगल मंजु मराल॥ ७॥ (१७५)

सप्तक—४

देवर्षि नारदने राम-जन्मके सभी शुभ कृत्य सबको आ बतलाए। यह चर्चा सुनकर हनुमानके मनमें भी इतना अधिक प्रेम और आनंद उमड़ा कि हृदयमें समाए नहीं समा रहा है॥१॥ सभी गुण तथा रूपके भांडार भरत भी रामके ही समान सांवले थे। वे सदा तत्परतापूर्वक प्रभु रामकी आज्ञा माननेवाले सेवक थे। उनका स्मरण करनेसे सब प्रकारका कल्याण होता है॥ २॥ सुन्दर लक्ष्मणका दर्शन बहुत श्रेष्ठ, लाभदायक और नेत्रोंको सुख देता है। राजा दशरथके अन्य बालक भी बड़े ही सुन्दर हैं। (इनके नामका स्मरण करके) बड़े चावसे चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) प्राप्त कर लो॥ ३॥ मंगलकी मूर्त्ति, आनन्दके भांडार, सुन्दर और मनोहर वेषवाले रामकी कृपासे तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा। इस शकुनकी यही विशेषता है॥ ४॥ जनकपुरमें यज्ञके लिये भूमि शुद्ध करते हुए महाराजा जब हल चला रहे थे तभी सब सुमंगलोंकी खान सीता ऐसी आ प्रकट हुईं मानो जनकके पुण्यके सागरसे लक्ष्मी ही आ निकली हों॥ ५॥ सुख और शीलके भांडार शत्रुघ्नका नाम बड़ा ही सुन्दर है, जिनके चरणकी सेवा बड़ी सरलतासे की जा सकती है और बड़ा सुख मिल सकता है। इससे सब प्रकारके सुमंगल मिल जायँगे॥ ६॥ कोशलेश दशरथके पुत्र (राम) अपने सेवकोंके पालक और बड़े कृपालु हैं। वे तुलसीदासके मन-रूपी मानसरोवरमें मंगलकारी हंसके रूपमें सदा निवास करते रहते हैं॥ ७॥ (१७५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—५

जनक - नंदिनी जनकपुर, जब-तें प्रगटीं आइ।
तब - तें सब सुख - संपदा, अधिक-अधिक अधिकाइ ॥ १ ॥
सीय - स्वयंबर जनकपुर, सुनि-सुनि सकल नरेस।
आए साज - समाज सजि, भूषन - बसन सुदेस ॥ २ ॥
चले मुदित कौसिक अवध, सगुन सुमंगल साथ।
आए सुनि, सनमानि गृह आने कोसलनाथ ॥ ३ ॥
सादर सोरह भाँति, नृप, पूजि पहुनई कीन्हि।
बिनय - बड़ाई देखि मुनि, अभिमत आसिष दीन्हि ॥ ४ ॥
मुनि माँगे, दसरथ दिए, राम - लखन दोउ भाइ।
पाइ सगुन - फल सुकृत-फल, प्रमुदित चले लेवाइ ॥ ५ ॥
स्यामल - गौर किसोर बर, धरे तून - धनु - बान।
सोहत कौसिक - सहित मग, मुद - मंगल - कल्यान ॥ ६ ॥
सैल, सरित, सर, बाग, बन, मृग, बिहंग बहुरंग।
'तुलसी', देखत जात प्रभु, मुदित गाधि - सुत - संग ॥ ७ ॥ (१८२)

सप्तक—५

जबसे जनक-नंदिनी (सीता) जनकपुरमें आकर प्रकट हुईं, तबसे नगरमें सब प्रकारकी सुख-सम्पदा दिनोंदिन अधिक ही अधिक बढ़ती चली गई ॥ १ ॥ जनकपुरमें सीताके स्वयंवरका समाचार सुन-सुनकर सभी राजा सुन्दर वस्त्र, आभूषण एवं लाव-लश्करके साथ बन-ठनकर आ पहुँचे ॥२॥ मंगल-कारक शकुनके साथ प्रसन्नतापूर्वक विश्वामित्र भी अयोध्यापुरीको चल पड़े। उनका आगमन सुनकर महाराजा दशरथ उन्हें बड़े सम्मानके साथ भवनमें लिवा लाए ॥ ३ ॥ महाराज दशरथने आदर-पूर्वक षोडशोपचार[1] (सोलह प्रकार)-से उनका पूजन और आतिथ्य-सत्कार किया। राजाका वह विनय और सम्मान देखकर मुनिने उनके मनके अनुकूल आशीर्वाद दिया ॥ ४ ॥ मुनि विश्वामित्रके माँगनेपर राजाने उन्हें दोनों भाई राम और लक्ष्मण सौंप दिए। शुभ शकुन और अपने पुण्योंका फल पाकर मुनि आनन्दपूर्वक दोनों भाइयोंको साथ लिवा ले चले ॥ ५ ॥ आनन्द, मंगल और कल्याण करनेवाले साँवले और किशोर राम और लक्ष्मण दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके साथ वनके मार्गमें चलते हुए बड़े प्यारे लग रहे थे ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि मुनि विश्वामित्रके साथ प्रभु राम वनके मार्गमें पर्वत, नदी, तालाब, उपवन, वन तथा अनेक प्रकारके पशु-पक्षी देखते चले जा रहे थे ॥ ७ ॥ (१८२)

---

१. आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमस्नानं वसनाभरणानि च ॥
गंधं पुष्पं धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा। [आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गंध (चन्दन आदि), पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और वन्दन (प्रणाम)]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—६

लेत बिलोचन - लाभ सब, बड़भागी मग - लोग।
राम - कृपा - दरसन सुगम, अगम जाग - जप - जोग ॥ १ ॥
जलद-छाँह, मृदु मग-अवनि, सुखद पवन अनुकूल।
हरषत बिबुध बिलोकि प्रभु, बरसत सुर - तरु - फूल ॥ २ ॥
दले मलिन खल, राखि मख, मुनि सिख-आसिष दीन्हि।
बिद्या बिस्वामित्र सब, सुथल समर्पित कीन्हि ॥ ३ ॥
अभय किए मुनि राखि मख, धरे बान - धनु - भाथ।
धनु-मख - कौतुक जनकपुर चले गाधि-सुत साथ ॥ ४ ॥
गौतम - तिय - तारन चरन - कमल आनि उर देखु।
सकल सुमंगल सिद्ध सब करतल, सगुन बिसेखु ॥ ५ ॥
जनक पाइ प्रिय पाहुने, पूजे पूजन - जोग।
बालक कोसल - पालके, देखि मगन पुर - लोग ॥ ६ ॥
सनमाने आने सदन, पूजे अति अनुराग।
'तुलसी' मंगल सगुन सुभ, भूरि भलाई भाग ॥ ७ ॥(१८९)

सप्तक—६

मार्गके लोग बड़े भाग्यवान् हैं जो इनके (राम-लक्ष्मणके दर्शनोंसे) नेत्रोंका लाभ प्राप्त किए जा रहे हैं। यज्ञ, जप और योग तो सबके लिये अगम (कठिन) हैं, पर रामकी कृपा और उनके दर्शनसे लोगोंको यज्ञ, जप और योग सुगम हो गया है ॥ १ ॥ (जिस समय मुनि विश्वामित्रके साथ राम और लक्ष्मण चले जा रहे थे) उस समय बादल उनके ऊपर छाया करते जा रहे थे, मार्गकी भूमि कोमल हो गई थी और सुखदायक तथा समयके अनुकूल पवन बहने लगा था। देवता भी प्रभुको देखकर हर्षित हो-होकर कल्पवृक्षके फूल ला-लाकर बरसाते चले जा रहे थे ॥ २ ॥ (विश्वामित्रके) यज्ञस्थलकी रक्षा करते हुए प्रभु रामने सब दुष्ट राक्षसों (ताड़का, सुबाहु आदि)-को मार-कर ढेर कर डाला। मुनिने उन्हें बहुत आशीर्वाद भी दिए और अनेक प्रकारकी शिक्षाएँ भी दीं। उस सुन्दर यज्ञ-भूमिपर (सुपात्र) रामको मुनि विश्वामित्रने सब विद्याएँ (बला और अतिबला) भी समर्पित कर दीं (जिनसे न थकावट होती न भूख-प्यास लगती)। ३ ॥ रामने धनुष, बाण और तरकश धारण करके यज्ञस्थल-की रक्षा करते हुए मुनिको निर्भय कर दिया। फिर वे गाधिके पुत्र विश्वामित्रके साथ जनकपुरमें धनुष-यज्ञका समारोह देखने चल दिए ॥ ४ ॥ अपने हृदयमें गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याका उद्धार करनेवाले (रामके) चरण-कमलोंका ध्यान करो। इस शकुनकी विशेषता यही है कि सारी मंगलकारी सिद्धियाँ तुम्हें बैठे-बिठाए हाथ लग जायँगी ॥ ५ ॥ राजा जनकने पूजाके योग्य प्रिय अतिथि (विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण) पाकर उनकी बहुत पूजा की। कोशलेश दशरथके इन दोनों पुत्रों (राम-लक्ष्मण)-को देख-देखकर जनकपुरके नागरिक आनन्दमें मग्न हुए जा रहे थे ॥ ६ ॥ राजा जनकने बड़े सम्मानके साथ उन्हें अपने भवनमें लिवा ले जाकर वहाँ बड़े प्रेमसे उनकी पूजा की। तुलसीदास कहते हैं कि यह शकुन बहुत शुभ है। अनेक प्रकारका कल्याण होगा और सौभाग्य बढ़ेगा ॥ ७ ॥ (१८९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—७

कौसिक देखन धनुष-मख, चले संग दोउ भाइ।
कुँवर निरखि, पुर-नारि-नर मुदित नयन - फल पाइ ॥ १ ॥
भूप - सभा भव - चाप दलि, राजत राज - किसोर।
सिद्धि, सुमंगल, सगुन सुभ, जय जय जय सब ओर ॥ २ ॥
जय-मय मंजुल माल उर, मंगल - मूरति देखि।
गान, निसान, प्रसून - झरि, मंगल - मोद बिसेषि ॥ ३ ॥
समाचार सुनि अवध - पति, आए सहित - समाज।
प्रीति परसपर मिलत मुद, सगुन सुमंगल - साज ॥ ४ ॥
गान, निसान, बितान बर बिरचे बिबिध बिधान।
चारि बिबाह उछाह बड़, कुसल, काज - कल्यान ॥ ५ ॥
दाइज पाइ अनेक बिधि, सुत - सुतबधुन - समेत।
अवधनाथ आए अवध, सकल सुमंगल लेत ॥ ६ ॥
चौथ चारु उनचास पुर - घर - घर मंगलचार।
तुलसिहि सब दिन दाहिने, दसरथ - राजकुमार ॥ ७ ॥

सप्तक—७

दोनों भाइयोंको साथ लेकर मुनि विश्वामित्र धनुष-यज्ञ देखने चल दिए। नगरके स्त्री-पुरुष इन दोनों कुमारोंको देखकर नेत्रोंका फल पाकर प्रसन्न हुए जा रहे थे ॥ १ ॥ जनककी राज-सभामें शंकरका धनुष तोड़कर राजकुमार राम बड़े प्यारे लग रहे थे। सब ओर उनकी जय-जयकार होने लगी थी। यह शकुन बहुत शुभ है। कार्यकी सिद्धि होगी और सब मंगल ही मंगल होगा ॥ २ ॥ रामकी उस मंगल मूर्तिको देखकर जिनकी छातीपर (दूबमें गूँथी हुई महुएकी) विजयमाला पड़ी हुई थी चारों ओर अनेक प्रकारके गीत गाए जाने लगे, डंके बजने लगे और फूलोंकी झड़ी लग गई॥३॥ यह समाचार सुनकर अपने पूरे समाजके साथ अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ भी बारात चढ़ाकर (जनकपुर) चले आए। दोनों राजा परस्पर बड़े प्रेमसे मिले। अतः, इस शकुनसे सब मंगल ही मंगल होगा ॥ ४ ॥ चारों ओर गाना-बजाना होने लगा। अनेक प्रकारके मंडप तान दिए गए। चारों राजकुमारोंके विवाहोंका उत्सव बड़ा शुभ-कारक है। कार्यकी सिद्धि कुशल-पूर्वक होगी ॥ ५ ॥ अनेक प्रकारका दहेज पाकर पुत्रों और पुत्रबधुओंके साथ अवधेश दशरथ अयोध्या लौट आए। वे अपने साथ-साथ सारे मंगल भी लेते आए ॥ ६ ॥ यह चौथे सर्गका उनचासवाँ दोहा नगर और प्रत्येक घरमें मंगलाचार होनेका सूचक है। तुलसीदासपर तो दशरथके राजकुमार सदा प्रसन्न रहते ही हैं ॥ ७ ॥ (१९६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पंचम सर्ग

सप्तक—१

रामनाम कलि - कामतरु, राम - भगति सुर - धेनु।
सगुन सुमंगल-मूल जग, गुरु - पद - पंकज - रेनु ॥ १ ॥
जलधि-पार मानस - अगम, रावन - पालित लंक।
सोच-बिकल कपि-भालु सब, दुहुँ दिसि संकट-संक ॥ २ ॥
जामवंत, हनुमंत - बल कहा पचारि पचार।
राम सुमिरि, साहस करिय, मानिय हिये न हार ॥ ३ ॥
राम-काज-लगि जनम जग, सुनि हरषे हनुमान।
होइ पुत्र, फल सगुन सुभ, राम - भगत, बलवान ॥ ४ ॥
कहत उछाह-बड़ाइ, कपि, साथी सकल प्रबोधि।
लागत राम - प्रसाद मोहिं, गोपद - सरिस पयोधि ॥ ५ ॥
राखि, तोषि सब, साथ सुभ, सगुन सुमंगल पाइ।
कूदि कुधर चढ़ि, आनि उर, सीय - सहित दोउ भाइ ॥ ६ ॥
हरषि, सुमन बरसत बिबुध, सगुन सुमंगल होत।
तुलसी - प्रभु लंघेउ जलधि, प्रभु - प्रताप करि पोत ॥ ७ ॥ (२०३)

पंचम सर्ग

सप्तक–१

कलिकालमें रामका नाम कल्पवृक्षके समान, रामकी भक्ति कामधेनुके समान और गुरुके चरण-कमलकी धूल ही संसारमें सब मंगल की जड़ है। यह शकुन बहुत शुभ और मंगल-दायक है ॥ १ ॥ समुद्रके पार रावणके द्वारा सुरक्षित लंका तो ऐसी दुर्गम है कि वहाँ तक मन भी नहीं पहुँच पा सकता। (इधर बिना खिजा खोज किए लौटे तो मृत्यु है) दोनों ओर संकट और भय बना हुआ है। इसी कारण वानर और भालू बड़ी चिन्तामें पड़े हैं ॥२॥ तब जामवंतने हनुमान्‌को पुकारकर उनके बलका बखान करते हुए कहा कि रामका स्मरण करके साहस कीजिए, हृदय न हारिए ॥ ३ ॥ जब हनुमान्‌ने सुना कि मेरा जन्म ही रामके कार्यके लिये हुआ है तो वे बड़े प्रसन्न हो उठे। इस शकुनका फल शुभ है। रामका भक्त और बलवान् पुत्र उत्पन्न होगा ॥४॥ उत्साहको और अपनी बड़ाईकी बात सुनकर हनुमान्‌ने अपने सब साथियोंको समझाकर कहा कि रामकी कृपासे मुझे तो अब यह समुद्र गौके खुरके गड्ढे के बराबर छोटा-सा जान पड़ने लगा है। यह शकुन उत्साह-वर्धक और शुभ है ॥५॥ सब साथियोंको (समुद्रके तटपर) रुके रहनेको कहकर और उन्हें सान्त्वना देकर शुभ और मंगल-कारक शकुन देखकर अपने मनमें जानकी-सहित दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण)-का ध्यान करके हनुमान झट उछलकर पर्वतपर जा चढ़े और वहींसे (छलाँग मारकर) समुद्र पार जा कूदे ॥ ६ ॥ देवता प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। तुलसीदासके प्रभु हनुमान्‌ने प्रभु रामके प्रतापको जहाज बनाकर (रामके प्रतापके सहारे) समुद्र पार कर लिया। यह शकुन सुमंगल-कारक है ॥ ७ ॥ (२०३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—२

राहु - मातु माया - मलिन, मारी मारुत - पूत ।
समय-सगुन मारग मिलहिँ, छल-मलीन, खल, धूत ॥ १ ॥
पूजा पाइ मिनाक - पहँ, सुरसा - कपि - संबाद ।
मारग अगम सहाय सुभ, होइहि राम - प्रसाद ॥ २ ॥
लंका - लोलुप लंकिनी, काली काल कराल ।
काल करालहिँ दीन्हि बलि, काल - रूप कपि - काल ॥ ३ ॥
मसक - रूप दसकंध - पुर, निसि कपि घर-घर देखि ।
सीय बिलोकि असोक-तर, हरष - विषाद बिसेखि ॥ ४ ॥
फरकत मंगल अंग सिय, बाम बिलोचन - बाहु ।
त्रिजटा सुनि, कह सगुन फल, प्रिय सँदेस, बड़ लाहु ॥ ५ ॥
सगुन समुझि त्रिजटा कहति, सुनु सिय ! अबहीं, आज ।
मिलिहि राम-सेवक, कहिहि कुसल लखन - रघुराज ॥ ६ ॥
तुलसी-प्रभु गुन-गन बरनि, आपनि बात जनाइ ।
कुसल - खेम सुग्रीव-पुर, राम - लखन दोउ भाइ ॥ ७ ॥ (२१०)

सप्तक—२

राहुकी माता सिंहिका बड़ी मायाविनी और दुष्टा थी। उसे मारकर हनुमान् आगे बढ़ गए। यह शकुन ठीक नहीं है। मार्गमें छली, दुष्ट और धूर्तोंसे भेंट होगी ॥१॥ फिर मैनाक पर्वत मिला जिसकी हनुमानने पूजा की। फिर सुरसा और हनुमान्‌का संवाद हुआ। रामकी कृपासे अगम मार्गमें भी सहायता प्राप्त होगी। शकुन शुभ है ॥ २ ॥ फिर लंकाकी रक्षा करनेवाली भयंकर काली-रूपिणी चटोरी लंकिनी मिली (जो लंकामें आनेवालेको चट कर जाती थी)। काल-रूप हनुमान्‌ने उसे भी कालको बलि चढ़ा दिया (मार डाला) ॥३॥ मशक (मच्छड़)-का (छोटा-सा) रूप धरकर हनुमान् लंकामें घुस चले। वहाँ उन्होंने रातके समय एक-एक घरमें जा-जाकर सीताको खोज डाला। फिर सीताको अशोकके वृक्षके नीचे बैठा देखकर प्रसन्न हो उठे, किन्तु (तत्काल उनकी दुर्दशा देखकर) बहुत दुखी भी हुए ॥४॥ सीताके (शुभ अंग) बाईं आँख और बाईं भुजा फड़क उठी। यह सुनकर त्रिजटाने कहा कि इस उत्तम शकुनका यही परिणाम है कि आपको कोई प्रिय संदेश मिलनेवला है जिससे (आपके दुखी चित्तको) बड़ा सहारा मिलेगा ॥५॥ शकुनपर विचार करके त्रिजटाने कहा कि 'सीता! सुनो। अभी आज ही आपको कोई रामका सेवक आ मिलेगा जो राम और लक्ष्मणका कुशल समाचार कह सुनावेगा' ॥ ६ ॥ तुलसीदासके प्रभु रामके गुणोंका वर्णन करके हनुमान्‌ने अपना परिचय भी दे दिया। फिर सुग्रीवके नगर और राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंका कुशल-क्षेम कह सुनाया ॥७॥ (२१०)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—३

सुरुख जानकी जानि कपि, कहे सकल संकेत।
दीन्हि मुद्रिका, लीन्हि सिय, प्रीति - प्रतीति - समेत ॥ १ ॥
पाइ नाथ - कर - मुद्रिका, सिय - हिय हरष - बिषाद।
प्राननाथ - प्रिय सेवकहिँ, दीन्ह सुआसिरबाद ॥ २ ॥
नाथ-सपथ, पन रोपि, कपि, कहत चरन सिर नाइ।
नहिँ बिलंब, जगदंब ! अब, आइ गए दोउ भाइ ॥ ३ ॥
समाचार कहि सुनत प्रभु, सानुज सहित - सहाय।
आए अब रघुबंस-मनि, सोच परिहरिय माय ॥ ४ ॥
गये सोच - संकट सकल, भये सुदिन जिय जान।
कौतुक सागर सेतु करि, आये कृपानिधान ॥ ५ ॥
सकुल, सदल जमराज-पुर, चलन चहत दसकंध।
काल न देखत काल-बस, बीस - बिलोचन - अंध ॥ ६ ॥
आसिष-आयसु पाइ कपि, सीय - चरन सिर नाइ।
'तुलसी' रावन - बाग - फल, खात बराइ बराइ ॥ ७ ॥ (२१७)

सप्तक—३

जानकीको प्रसन्न जानकर हनुमान्‌ने संक्षेपमें सब परिचय देकर प्रभुकी दी हुई मुद्रिका (उनके आगे) निकाल गिराई। सीताने बड़े प्रेम और विश्वासके साथ वह अँगूठी उठा ली ॥१॥ अपने स्वामी (राम)-के हाथकी मुद्रिका पाकर सीताको एक साथ हर्ष भी हुआ और दुःख भी (हर्ष इसलिये हुआ कि दुखी जानकीको बड़ा भारी अवलम्ब मिल गया और दुःख इसलिये हुआ कि ऐसे कुसमय और कुस्थलमें प्रभुकी यह मुद्रिका यहाँ आ कैसे गई ?)। फिर जानकीने अपने प्राणनाथ रामके प्रिय सेवक हनुमान्‌को बहुत आशीर्वाद दिया ॥२॥ हनुमान्‌ने प्रभु रामकी सौगन्ध लेकर और सीताके चरणोंमें सिर नवाकर प्रण-पूर्वक कहा—'जगदम्बे ! अब विलम्ब नहीं है। दोनों भाई (लंकापुरी) आए ही समझिए' ॥३॥ फिर कहा—'माता ! आप चिन्ता छोड़िए। आपका समाचार सुनते ही अपने भाई लक्ष्मण तथा सहायकों (वानर-भालुओं)-के साथ अब रघुवंशमणि प्रभुको आया हुआ ही समझिए ॥४॥ अब आप अपने मनमें यही समझिए कि आपके सभी कष्ट और शोक दूर हो गए तथा अच्छे दिन आ गए। कृपानिधान राम बड़ी सरलतासे समुद्रपर पुल बनाकर लंकामें आ पहुँचेंगे ॥५॥ अब रावण अपने परिवार और सेनाके साथ यमलोक पहुँच जाना चाहता है। वह बीस नेत्रोंका अंधा ऐसा कालके हाथमें नाचने लगा है कि सिरपर चढ़ी हुई अपनी मृत्यु नहीं देख पा रहा है' ॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि सीताकी आज्ञा और उनका आशीर्वाद पाकर तथा उनके चरणोंमें सिर नवाकर हनुमान् रावणके बागके फल चुन-चुनकर खाने लगे ॥७॥ (२१७)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—४

सूर - सिरोमनि, साहसी, सुमति समीर-कुमार।
सुमिरत, सब सुख - संपदा - सुद - मंगल - दातार ॥ १ ॥
सत्रु - समन पद - पंकरुह, सुमिरि करहु सब काज।
कुसल - खेम - कल्यान सुभ, सगुन सुमंगल - साज ॥ २ ॥
भरत भलाईकी अवधि, सील - सनेह - निधान।
धरम, भगति, भायप समय, सगुन कहत कल्यान ॥ ३ ॥
सेवक-पाल कृपाल-चित, रवि - कुल - कैरव - चंद।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, पग - पग परमानंद ॥ ४ ॥
सिय-पद सुमिरि सुतीय-हित, सगुन सुमंगल जान।
स्वामि सोहागिल, भाग बड़, पुत्र - काज कल्यान ॥ ५ ॥
लछिमन-पद-पंकज सुमिरि, सगुन सुमंगल पाइ।
जय, विभूति, कीरति, कुसल, अभिमत लाभ अघाइ ॥ ६ ॥
तुलसी - कानन, कमल-बन, सकल सुमंगल - बास।
राम-भगति-हित सगुन सुभ, सुमिरत 'तुलसीदास' ॥ ७ ॥ (२२४)

सप्तक—४

शूरोंके शिरोमणि, साहसी और बुद्धिमान् पवनपुत्र हनुमान्‌को जो स्मरण करे उसे वे सब प्रकारके सुख, सम्पत्ति आनन्द और मंगल सदा देते रहते हैं ॥ १ ॥ शत्रुघ्नके चरण-कमलोंका स्मरण करके सब कार्य आरम्भ कर दो। इस शकुनसे सब मंगल होता है। यह शकुन क्षेम, कुशल और शुभ कल्याण करेगा ॥ २ ॥ शील और स्नेहके निधान भरत तो सबका अत्यन्त भला करते रहते हैं। वे बड़ी निष्ठासे धर्म और भाईकी भक्ति निभाते हैं। इस समयका यह शकुन कल्याणका सूचक है ॥३॥ सेवकों (भक्तों)-के रक्षक, कृपालु-चित्त वाले, सूर्यवंश-रूपी कुमुदिनीको खिलाए रखनेवाले चन्द्रमाके समान रामका स्मरण किया करो। यह शकुन तुम्हारे सभी कार्योंके लिये शुभ होगा तथा पग-पगपर परम आनन्द देगा ॥४॥ सीताके चरणोंका स्मरण करो। स्त्रियोंके लिये यह शकुन बहुत मंगलदायक है। यह शकुन स्वामी, सौभाग्य तथा पुत्रके लिये सौभाग्य देगा और कल्याण करेगा (अत्यन्त शुभ है) ॥५॥ लक्ष्मणके चरण-कमलोंका स्मरण करो। यह शकुन सब मंगल करेगा। यह शकुन विजय, वैभव (ऐश्वर्य), कीर्ति, कुशलता एवं समस्त मनोभिलाषाएँ पूर्ण करेगा ॥६॥ रामकी भक्तिके लिये तुलसीके वनमें और कमल-वनोंमें सर्वत्र मंगल ही मंगल है। यह शकुन बहुत शुभ है जिसका स्मरण तुलसीदास भी किया करते हैं ॥७॥ (२२४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—५

रूख निपातत, खात फल, रच्छक अच्छ निपाति।
काल-रूप बिकराल कपि, सभय निसाचर - जाति ॥ १ ॥
बन उजारि, जारेउ नगर, कूदि - कूदि कपि-नाथ।
हाहाकार पुकार सब, आरत, मारत माथ ॥ २ ॥
पूँछ बुताइ, प्रबोधि सिय, आइ गहे प्रभु पाँय।
खेम - कुसल, जय जानकी, जय जय जय रघुराय ॥ ३ ॥
सुनि प्रमुदित रघुबंस-मनि, सानुज सेन - समेत।
चले, सकल मंगल सगुन, बिजय - सिद्धि कहि देत ॥ ४ ॥
राम-पयान, निसान नभ बाजहिं, गाजहिं बीर।
सगुन सुमंगल समर - जय, कीरति, कुसल सरीर ॥ ५ ॥
कृपासिंधु प्रभु, सिंधु - सन माँगेउ पंथ, न देत।
बिनय न मानहिं जीव जड़, डाँटे नवहिं अचेत ॥ ६ ॥
लाभ लाभ लोवा कहत, छेमकरी कह छेम।
चलत बिभीषन सगुन सुनि, 'तुलसी' पुलकत पेम ॥ ७ ॥ (२३१)

सप्तक—५

राक्षस जातिको भयभीत किए रखनेवाले, भयंकर काल-रूप हनुमान्‌ने अशोक वाटिकाके वृक्ष तोड़ते और वहाँके फल खाते हुए वाटिकाके रक्षक अक्षकुमारको मार डाला ॥ १ ॥ कपिराज हनुमान्‌ने अशोकवन उजाड़कर कूद-कूदकर सारी लंका नगरी ऐसी जला डाली कि वहाँके निवासी दुखी होकर हाहाकार करते हुए पुकारते और अपना सिर पीटते घूमने लगे ॥ २ ॥ फिर हनुमान्‌ने समुद्रमें कूदकर अपनी पूँछ बुझा डाली। तत्पश्चात् सीताको समझा-बुझाकर उन्होंने प्रभु रामके चरण आ पकड़े, उन्हें जानकीका कुशल-क्षेम कह सुनाया तथा राम और जानकीकी जय-जयकार की ॥ ३ ॥ रघुवंशमणि रामको, उनके भाई लक्ष्मणको और सारी वानरी सेनाको जानकीका कुशल-संवाद सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और वे जब लंकापर विजय पानेके लिये चले उस समयके मंगल शकुनोंसे यह जान पड़ने लगा कि विजय होगी और कार्यकी सिद्धि होगी ॥ ४ ॥ रामके प्रस्थान करते समय आकाशमें डंके बज उठे और वीर लोग गरजने लगे। यह शकुन समरमें विजय, कीर्ति तथा मंगल प्रदान करता है। शरीर भी कुशलसे रहेगा ॥ ५ ॥ कृपालु रामने जाकर समुद्रसे जानेका मार्ग माँगा, परन्तु उसने मार्ग दिया नहीं। ठीक ही है, जो जड स्वभाववाले प्राणी होते हैं वे किसीके विनयपर ध्यान नहीं देते। वे ऐसे नासमझ होते हैं कि डाँटे जानेपर ही झुकते (मानते, नम्र होते) हैं ॥ ६ ॥ लोग्रा (लोमड़ी) तो लाभका शकुन बता रही थी और क्षेमकरी (सफेद चील) कुशलका संकेत कर रही थी। रामकी शरणमें विभीषणके जाते समय ऐसा शुभ शकुन होता सुनकर तुलसीदास भी प्रेमसे पुलकित हुए जा रहे हैं ॥ ७ ॥ (२३१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—६

पाहि - पाहि असरन - सरन, प्रनत - पाल रघु - राज।
दियो तिलक, लंकेस कहि, राम गरीब - नेवाज ॥ १ ॥
लंक असुभ चरचा चलति, हाट, बाट, घर घाट।
रावन सहित - समाज अब, जाइहि बारह बाट ॥ २ ॥
ऊकपात, दिग - दाह दिन, फेकरहि स्वान - सियार।
उदित केतु, गत-हेतु महि कंपति बारहिं बार ॥ ३ ॥
राम-कृपा, कपि - भालु करि कौतुक सागर सेतु।
चले पार, बरषत बिबुध सुमन, सुमंगल - हेतु ॥ ४ ॥
नीच निसाचर मीचु - बस, चले साजि चतुरंग।
प्रभु - प्रताप पावक प्रबल, उड़ि उड़ि परत पतंग ॥ ५ ॥
साजि साजि बाहन चलहिं, जातुधान बलवान।
असगुन असुभ न गनहिं गत, आइ काल नियरान ॥ ६ ॥
लरत भालु-कपि सुभट सब, निदरि निसाचर घोर।
सिर - पर समरथ राम - सों साहिब, 'तुलसी' तोर ॥ ७ ॥ (२३८)

सप्तक—६

(ज्यों ही रामके निकट जाकर) विभीषणने कहा—'हे अशरणको शरण देनेवाले, भक्त जनोंके रक्षक राम ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, त्यों ही दीनदयालु रामने विभीषणको 'लंकेश' कहकर तिलक कर दिया (लंकाका राजा बना दिया) ॥ १ ॥ लंकाके हाट, बाट, घर और घाट सभी स्थानोंपर यह अमंगल चरचा चलने लगी कि अब रावण अपने समाज-सहित बारह बाट होने (नष्ट होने)-पर तुला हुआ है (इसे कोई बचा नहीं सकता) ॥२॥ दिनमें ही उल्कापात (तारे टूटते) और दिशाओंमें आग लगती दिखाई देने लगी। कुत्ते और सियार रोने लगे। सर्वनाश करनेके लिये केतु (पुच्छल तारा) भी उदय हो आया और धरती अकारण बार-बार काँपने लगी ॥३॥ रामकी कृपासे वानर और भालुओंने मिलकर खेल ही खेलमें (सरलतासे) समुद्रपर पुल बाँध लिया जिसपर होकर रामकी सेना समुद्रके पार जा उतरी। देवता भी मंगलके लिये पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥ मृत्युके गालमें जानेवाले नीच राक्षस चतुरंगिणी सेना सजाकर (युद्धके लिये) चल पड़े। वे प्रभु रामके प्रतापकी प्रबल अग्निमें फतिंगे बन-बनकर उड़-उड़कर गिरते जाने लगे ॥ ५ ॥ बलवान् राक्षस सवारी साज-साजकर चले आ रहे थे। वे मार्गमें दिखाई देनेवाले अशुभ अपशकुनोंपर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे क्योंकि उनका काल निकट आ पहुँचा था ॥ ६ ॥ भयंकर राक्षसोंको मार भगाते हुए सभी वीर भालू और वानर योद्धा युद्ध कर रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि तुम्हारे सिरपर तो राम-जैसे समर्थ स्वामी हैं (लड़े जाओ तुम्हें किस बातकी चिन्ता है ?) ॥ ७ ॥ (२३८ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—७

मेघनाद, अतिकाय भट, परे महोदर खेत।
रावन, भाइ जगाइ तब, कहा प्रसंग अचेत ॥ १ ॥
उठि, बिसाल बिकराल बड़, कुंभकरन जमुहान।
लखि सुदेस कपि - भालु - दल, जनु दुकाल समुहान ॥ २ ॥
राम स्याम बारिद सघन, बसन सुदामिनि - माल।
बरषत सर, हरषत बिबुध, दलेउ दुकाल दयाल ॥ ३ ॥
राम - रावनहिं परसपर, होति रारि रन घोर।
लरत पचारि पचारि भट, समर - सोर दुहुँ ओर ॥ ४ ॥
बीस बाहु, दस - सीस दलि, खंड खंड तनु कीन्ह।
सुभट - सिरोमनि लंकपति, पाछे पाउँ न दीन्ह ॥ ५ ॥
बिबुध बजावत दुंदुभी, हरषत बरषत फूल।
राम बिराजत जीति रन, सुर सेवक अनुकूल ॥ ६ ॥
लंका थापि बिभीषनहिं, बिबुध बसाइ सुबास।
'तुलसी' जय, मंगल, कुसल, सुभ पंचम उनचास ॥ ७ ॥ (२४५)

सप्तक—७

जब मेघनाद, अतिकाय और महोदर-जैसे योद्धा मार डाले गए तब रावणने अपने भाई कुम्भकर्णको जगा उठाया और उससे उस अज्ञानी रावणने सारी कथा (खर और दूषणके बधसे लेकर अबतककी सारी घटनाएं) कह सुनाई ॥ १ ॥ विशाल-काय और भयंकर कुम्भकर्ण जम्हाता हुआ उठ बैठा। भालू-वानरोंकी विशाल सेनाने उसे ध्यानसे देखा तो उन्हें ऐसा लगा मानो दुष्काल (अकाल) ही सामने आ खड़ा हुआ हो ॥ २ ॥ घने बादलके समान साँवले रामके वस्त्र बिजलीको कौंधके समान चमक रहे थे। वे जब कुम्भकर्णपर बाणोंकी वर्षा किए जा रहे थे तब वह देख-देखकर देवता प्रसन्न हुए जा रहे थे। (वे सब यही सोचते जा रहे थे कि) दयालु प्रभु अब इस दुष्टको मारा ही चाहते हैं ॥३॥ राम और रावणमें परस्पर घोर युद्ध हो रहा था। योद्धागण एक दूसरेको ललकारते हुए लड़ते चले जा रहे थे। दोनों ओर युद्धका कोलाहल मचा हुआ था ॥ ४ ॥ यद्यपि रामने रावणकी बीसों भुजाएं और दसों सिर (कई-कई बार) टुकड़े टुकड़े करके काट गिराए, किन्तु श्रेष्ठ वीरोंमें शिरोमणि रावण पीछे न हटकर दिया ॥ ५ ॥ (रावणके मारे जानेपर) देवता प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजाने और पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। यह समझ लो कि देवता और सेवक सब अनुकूल (प्रसन्न) हैं ॥ ६ ॥ विभीषणको लंकामें स्थापित करके (लंकाका राज्य देकर) देवताओंको पुनः यथास्थान भेज बसाया गया। तुलसीदास कहते हैं कि पंचम सर्गका यह उनचासवाँ शकुन बहुत शुभ है। इससे कुशल-मंगल होगा और विजय मिलेगी ॥ ७ ॥ (२४५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

षष्ठ सर्ग

सप्तक—१

रघुबर - आयसु अमर - पति, अमिय सींचि कपि-भालु।
सकल जिआए, सगुन सुभ, सुमिरहु राम कृपालु ॥ १ ॥
सादर आनी जानकी, हनूमान प्रभु - पास।
प्रीति परसपर, समउ सुभ, सगुन सुमंगल - बास ॥ २ ॥
सीता - सपथ प्रसंग सुभ, सीतल भयउ कृसानु।
नेम, प्रेम, व्रत, धरम - हित, सगुन सुहावन जानु ॥ ३ ॥
सनमाने कपि - भालु सब, सादर साजि बिमानु।
सीय-सहित, सानुज, सदल, चले भानुकुल - भानु ॥ ४ ॥
हरषत सुर बरषत सुमन, सगुन सुमंगल गान।
अवधनाथ गवने अवध, खेम, कुसल, कल्यान ॥ ५ ॥
सिंधु, सरोवर, सरित, गिरि, कानन, भूमि-बिभाग।
राम दिखावत जानकिहिं, उमँगि उमँगि अनुराग ॥ ६ ॥
'तुलसी' मंगल सगुन सुभ, कहत जोरि जुग हाथ।
हंस - बंस - अवतंस जय, जय जय जानकिनाथ ॥ ७ ॥ (२५२)

षष्ठ सर्ग

सप्तक—१

रामकी आज्ञासे देवराज इन्द्रने वानर और भालुओंपर अमृतकी वर्षा करके सबको जीवित कर दिया। यह शकुन शुभ है। कृपालु रामका स्मरण करते रहो ॥ १ ॥ हनुमान् बड़े आदरके साथ जानकीको प्रभु रामके पास लिवा लाए। यह राम-जानकीके परस्पर प्रेमका अत्यन्त शुभ अवसर है। अतः, इस शकुनसे कल्याण ही कल्याण होगा ॥२॥ सीताने अग्निके सामने अपनी पवित्रताकी शपथ ली तो अग्निदेव भी शीतल (शान्त) हो गए। नियम, प्रेम, व्रत और धर्माचरणके लिये इस शकुनको उत्तम समझो ॥३॥ प्रभुने आदरपूर्वक सब वानर और भालुओंका बड़ा सम्मान किया, फिर विमान सजाकर सूर्यवंशके सूर्य रामने सीता, लक्ष्मण और सेनाके साथ अयोध्याके लिये प्रस्थान कर दिया ॥ ४ ॥ जब अयोध्याके स्वामी राम अयोध्याको चले तब देवता प्रसन्न होकर उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे, मार्गमें उन्हें शुभ शकुन मिलने लगे और मंगल गान होने लगे। यह शकुन क्षेम, कुशल और कल्याण करनेवाला है ॥ ५ ॥ राम भी प्रेमकी उमंगमें सीताको मार्गके समुद्र, नदी, तालाब, पर्वत, वन और स्थल दिखाते चले जा रहे थे ॥ ६ ॥ यह शकुन शुभ और मंगल कारक है। तुलसीदास दोनों हाथ जोड़कर कहते हैं—'हे सूर्यकुलमें श्रेष्ठ जानकी-नाथ राम! आपकी जय हो! जय हो!! जय हो !!!' ॥ ७ ॥ (२५२)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—२

अवध अनंदित लोग सब, ब्योम बिलोकि बिमानु।
मनहुँ कोकनद - कोक मन - मुदित उदित लखि भानु ॥ १ ॥
मिले गुरुहिं, जन-परिजनहिं, भेंटत भरत सप्रीति।
लखन-राम-सिय, कुसल पुर आए, रिपु रन जीति ॥ २ ॥
उदबस अवध, अनाथ सब, अंब - दसा दुख देखि।
राम, लखन, सीता सकल, बिकल, बिषाद बिसेखि ॥ ३ ॥
मिलीं मातु, हित, मीत, गुरु, सनमाने सब लोग।
सगुन समय बिसमय - हरष, प्रिय संजोग - बियोग ॥ ४ ॥
अमर अनंदित, मुनि मुदित, मुदित भुवन दस-चारि।
घर घर अवध बधावने, मुदित नगर - नर - नारि ॥ ५ ॥
सुदिन सोधि, गुरु बेद-बिधि, कियो राज - अभिषेक।
सगुन सुमंगल सिद्धि सब - दायक दोहा एक ॥ ६ ॥
भाँति भाँति उपहार लै, मिलत जुहारत भूप।
पहिराए सनमानि सब, 'तुलसी' सगुन अनूप ॥ ७ ॥ (२५९)

सप्तक—२

आकाशमें विमान उड़ा चला आता देखकर अयोध्याके सब लोग आनन्दसे ऐसे नाच उठे मानो सूर्यको उदित होता देखकर कमल और चकवे आनन्दित हो उठे हों ॥ १ ॥ राम और लक्ष्मण अयोध्या पहुँचकर गुरु वशिष्ठसे, नागरिकोंसे एवं कुटुम्बियोंसे जाकर मिले और फिर उन्होंने बड़े प्रेमसे भरतको हृदयसे लगाकर उनसे भेंट की। रणमें शत्रुओंको जीतकर राम, जानकी और लक्ष्मण कुशल-पूर्वक अपने नगर लौट आए ॥ २ ॥ अयोध्याको उजड़ा हुआ, लोगोंको अनाथ तथा माताओंको दुःखित देखकर राम, लक्ष्मण और सीता सभी अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो उठे ॥ ३ ॥ माताएँ, हितू, मित्र और गुरु आदि सब लोग आकर मिले जिनका रामने यथोचित सम्मान किया। इस समयका यह शकुन प्रियजनोंके वियोग और पुनः संयोग होनेके कारण विषाद और हर्षका मिश्रण-सा है ॥ ४ ॥ (रामके अयोध्या लौट आनेपर) देवता और मुनिगण आनन्दित हो उठे। इतना ही नहीं, चोदहों भुवनोंके लोग भी परम प्रसन्न हो उठे। नगरके सभी पुरुष-स्त्री प्रसन्न हुए जा रहे थे। अयोध्यामें घर-घर बधावे बजने लगे ॥ ५ ॥ गुरु वशिष्ठने शुभ मुहुर्त्त शोधकर वेदकी विधिसे रामका राज्याभिषेक कर दिया। इस एक दोहेके शकुनसे सभी सिद्धियाँ मिल जातीं एवं कल्याण हो जाता है ॥ ६ ॥ सब राजा लोग भाँति-भाँतिकी भेंट लेकर रामसे आकर मिल-मिलकर उन्हें प्रणाम करते जा रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि रामने सबको बड़े सम्मानसे वस्त्र और आभूषण मँगा पहनाए। यह शकुन बड़ा ही उत्तम है ॥ ७ ॥ (२५९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—३

जय - धुनि, गान, निसान, सुर बरषत सुरतरु - फूल।
भये राम राजा अवध, सगुन सुमंगल - मूल॥ १॥
भालु, बिभीषन, कीस-पति, पूजे सहित - समाज।
भली भाँति सनमानि सब, बिदा किए रघुराज॥ २॥
राम - राज संतोष, सुख, घर, बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग - बिलास॥ ३॥
राम-राज सब काज - कहँ, नीक एक ही आँक।
सकल सगुन मंगल कुसल, होइहि बार न बाँक॥ ४॥
कुंभकरन - रावन - सरिस, मेघनाद - से बीर।
ढहे समूल बिसाल तरु, काल - नदी - के तीर॥ ५॥
स-कुल-सदन रावन - सरिस, कवलित काल कराल।
सोच, पोच, असगुन असुभ, जाय जीव, जंजाल॥ ६॥
अविचल राज बिभीषनहिं, दीन्ह राज रघुराज।
अजहुँ बिराजत लंक - पर, 'तुलसी' सहित - समाज॥ ७॥ (३१५)

सप्तक—३

जय-ध्वनिके साथ-साथ गीत गाते और डंके बजाते हुए देवता लोग कल्प-वृक्षके फूलोंकी वर्षा करते जा रहे थे। राम, अब अयोध्याके राजा हो गए। इस शकुनसे सबका कल्याण होगा॥ १॥ रामने सभी वानर-भालुओं तथा पूरे समाज (अतिथियों)-की पूजा करके सबका भली प्रकार सम्मान किया और उन्हें बिदा किया॥ २॥ रामके राज्यमें, घरमें, वनमें तथा पास-पड़ोसमें चारों ओर सुख और सन्तोष छाया रहता था। सभी वृक्ष वहाँ कल्पवृक्ष बनकर तथा पृथ्वी भी कामधेनु बनकर मनोवांछित भोग-विलासकी सभी वस्तुएँ देती चली जा रही थी॥३॥ रामका राज्य सभी काम-काजके लिये समान रूपसे अच्छा है। यह शकुन सभी कामोंके लिये मंगलदायक है। सब कुशल होगा, बाल-तक बाँका न हो पावेगा॥ ४॥ रावण, कुम्भकर्ण, और मेघनादके समान बड़े-बड़े वीर काल-नदीके तटपर खड़े हुए विशाल वृक्षोंके समान ढह गए (मारे गए)॥५॥ रावण-जैसे (पराक्रमी)-का घर और उसका सारा परिवार कालका ग्रास हो गया। यह शकुन बहुत बुरा और चिन्ता उत्पन्न करनेवाला, प्राण लेनेवाला और जीका जंजाल है। अतः परम अशुभ है॥ ६॥ रामने विभीषणको लंकाका अटल राज्य दे दिया। तुलसीदास कहते हैं कि वे (विभीषण) अब भी लंकापर अपने समाजके साथ विराजमान हैं[1]॥ ७॥ (२६६)

---

१. [अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाँश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः। मार्कण्डेयश्चाष्टमः॥] अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय ये आठों चिरजीवी माने गए हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—४

मंजुल मंगल मोदमय - मूरति मारुत-पूत।
सकल सिद्धि कर-कमल-तल, सुमिरत रघुबर - दूत ॥ १ ॥
सगुन समय सुमिरत सुखद, भरत - आचरन चारु।
स्वामि-धरम, व्रत, पेम, हित, नेम - निबाह निहारु ॥ २ ॥
ललित लखन-लघु - बंधु - पद, सुखद सगुन सब - काहु।
सुमिरत, सुभ कीरति, बिजय, भूमि - ग्राम - गृह - लाहु ॥ ३ ॥
रामचंद्र - मुख - चंद्रमा, चित चकोर जब होइ।
राम-राज सब काज सुभ, समउ सुहावन सोइ ॥ ४ ॥
भूमि-नंदिनी - पद - पदुम, सुमिरत सुभ सब काज।
बरषा भलि, खेती सुफल, प्रमुदित प्रजा सुराज ॥ ५ ॥
सेवक, सखा, सुबंधु, हित, नाइ लखन-पद माथ।
कीजिय प्रीति - प्रतीति सुभ, सगुन सुमंगल - साथ ॥ ६ ॥
राम - नाम - रति, नाम गति, राम - नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल - कुसल, तुलसी 'तुलसीदास' ॥ ७ ॥ (२७३)

सप्तक—४

मारुतके पुत्र हनुमान् कल्याणकारी आनन्द और मंगलकी मूर्त्ति हैं। रामके उस दूत (हनुमान्)-का स्मरण करनेसे समस्त सिद्धियाँ अपने आप हाथ आ लगती हैं ॥ १ ॥ स्वामीकी सेवाके धर्मका व्रत, प्रेम, सेवा और नियम निभानेवाले भरतका उत्तम आचरण देखो। उनका स्मरण करते रहनेसे समयपर बड़ा सुख मिलता है। अतः यह शकुन शुभ है ॥ २ ॥ लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नके चरणोंका स्मरण करनेसे सबको सुख मिलता है। यह शकुन शुभ है। विजय, कीर्त्ति, भूमि, ग्राम और गृहका लाभ होगा ॥ ३ ॥ रामके मुखचन्द्रकी ओर जिसका चित्त चकोर बन जाता है, उसको यह रामराज्यका शकुन सभी कामोंमें शुभ होता और उसकी सब परिस्थितियाँ ठीक कर देता है ॥४॥ भूमि-सुता जानकीके चरण-कमलोंका स्मरण करनेसे सभी कार्य शुभ होंगे। अच्छी वर्षा होगी, खेतीमें अच्छी उपज होगी और सुराज होनेके कारण प्रजा सुखी होगी ॥ ५ ॥ रामके सेवक, सखा, सुबन्धु और हितैषी लक्ष्मणके चरणोंमें सिर नवाकर प्रेम और विश्वासके साथ कार्य करो। यह शकुन शुभ, मंगल-कारक और उत्तम है ॥ ६ ॥ तुलसी (वृन्दा)-के समान तुलसीदासकी प्रीति भी राम-नाममें, गति (उद्धार) भी राम-नाममें ही तथा विश्वास भी राम-नाममें ही है। उनका स्मरण सदा शुभ, कुशल और मंगल-कारक है ॥ ७ ॥ (२७३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—५

बिप्र एक बालक मृतक, राखेउ राम-दुआर।
दंपति बिलपत सोक अति, आरत करत पुकार॥ १॥
राम सोच - संकोच, सब सचिव बिकल संताप।
बालक-मीचु अकाल भइ, राम-राज केहि पाप॥ २॥
बिबुध बिमल बानी गगन, हेतु प्रजा - अपचार।
राम-राज परिनाम भल, कीजिय बेगि बिचार॥ ३॥
कोसल - पाल कृपाल - चित, बालक दीन्ह जिआइ।
सगुन कुसल, कल्यान सुभ, रोगी उठै नहाइ॥ ४॥
बालक जिया बिलोकि, सब कहत, उठा जनु सोइ।
सोच-बिमोचन सगुन सुभ, राम - कृपा भल होइ॥ ५॥
सिला सुतिय भइ, गिरि तिरे, मृतक जिये जग जान।
राम - अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान॥ ६॥
केवट, निसिचर, बिहँग, मृग, किए साधु सनमानि।
'तुलसी' रघुबर - की कृपा, सगुन सुमंगल - खानि॥ ७॥ (२८०)

सप्तक—५

किसी ब्राह्मणने अपना मरा हुआ बालक रामके द्वारपर ले जा रक्खा। उसके माता-पिता दोनों ही शोकसे अत्यन्त व्याकुल होकर विलाप करने और दुखी होकर पुकारने लगे॥ १॥ राम बड़ी चिन्ता और संकोचमें पड़ गए। मन्त्रिगण भी इस दुःखसे दुखी हो उठे (वे सब इस चिन्तामें पड़ गए) कि रामके राज्यमें किसके पापसे इस बालककी अकाल मृत्यु हो गई ?॥ २॥ देवताओंकी निर्मल आकाशवाणी हुई कि (बालककी) मृत्युका कारण है प्रजाका अमर्यादित कर्म (शूद्रकी तपस्या)। पर राम-राज्यका परिणाम अच्छा ही होता है, यह तत्काल समझ लेना चाहिए॥ ३॥ कृपालु चित्तवाले कोशलेश रामने उस मृत बालकको जीवित कर दिया। यह शकुन शुभ है, इससे कल्याण और सुख होगा। रोगी भी उठकर स्नान करेगा। (रोगी भी पूर्ण रूपसे नीरोग होकर स्नान करने लगेगा)॥ ४॥ सब लोग कहने लगे कि मृत बालक जीवित होकर ऐसे उठ बैठा मानो सोकर जागा हो। अतः यह शकुन शुभ है। रामकी कृपासे सब चिन्ताएँ दूर हो मिटेंगी॥ ५॥ रामकी कृपासे शिला भी सुन्दरी स्त्री (अहल्या) बनकर उठ खड़ी हुई, पर्वत पानीपर तैरने लगे, मृतक भी जीवित हो उठा यह सारा संसार जानता है। अतः, यह शकुन शुभ और यह सबके लिये सुखद और कल्याणकारक है॥ ६॥ रामने केवट (निषादराज गुह), पक्षी (जटायु) और मृग (मारीच राक्षस) तकका सम्मान करके उन्हें साधु बना दिया (सद्गति दे दी)। तुलसीदास कहते हैं कि रामकी कृपासे इस शकुनसे सब कल्याण ही कल्याण होगा॥ ७॥ (२८०)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—६

राम - राज राजत सकल, धरम - निरत नर - नारि।
राग, न रोष, न दोष - दुख, सुलभ पदारथ चारि॥ १॥
बग - उलूक झगरत गए अवध, जहाँ रघुराउ।
नीक सगुन, बिबरिहि झगर, होइहि धरम - निआउ॥ २॥
जती - स्वान संबाद सुनि, सगुन कहब जिय जानि।
हंस - बंस - अवतंस - पुर, बिलग होत पय - पानि॥ ३॥
राम - कुचरचा करहिँ सब, सीतहिँ लाइ कलंक।
सदा अभागी लोग जग, कहत सँकोच न संक॥ ४॥
सती - सिरोमनि सीय तजि, राखि लोक - रुचि राम।
सहे दुसह दुख, सगुन गत, प्रिय - बियोग परिनाम॥ ५॥
बरन - धरम आस्रम - धरम - निरत सुखी सब लोग।
राम - राज मंगल सगुन, सुफल जाग, जप, जोग॥ ६॥
बाजि - मेध अगनित किए, दिए दान बहु भाँति।
'तुलसी' राजा राम जग, सगुन सुमंगल - पाँति॥ ७॥ (२८७)

सप्तक—६

रामके राज्यमें सभी नर-नारी अपने-अपने धर्ममें लगे हुए (धर्मात्मा) थे। किसीमें किसी प्रकारका द्वेष, क्रोध, पाप और दुःख नहीं था। सबके लिये चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) सुलभ हो गए थे॥१॥ एक बार एक बगुला और उल्लू दोनों झगड़ते हुए रामके पास अयोध्या जा पहुँचे। यह शकुन अच्छा है। झगड़ा निपट जायगा। धर्मपूर्वक तुम्हारे प्रति न्याय होगा॥ २॥ यति और कुत्तेका संवाद[1] सुनकर तब इस शकुनपर विचार करो। सूर्यवंशके श्रेष्ठ राजा रामके राज्यमें दूधका दूध और पानीका पानी हो कर रहता है (पाप और पुण्यका ठीक न्याय होता है)॥ ३॥ सीतापर कलंक लगाकर लोग रामको बुरा-भला कहने लगे। इन अभागोंको न तो संकोच ही है न भय ही है॥ ४॥ सती-शिरोमणि सीताको त्यागकर रामने लोककी रुचिकी रक्षा तो कर ली पर उनके वियोगका बड़ा कठोर दुःख झेलते रहे। इस बुरे शकुनका परिणाम है प्रियका वियोग॥ ५॥ रामके राज्यमें सब लोग वर्णाश्रम-धर्मका निर्वाह करते थे, सब सुखी थे तथा यज्ञ, जप, योग आदि सब सफल होते थे। यह शकुन मंगलकारक है॥ ६॥ तुलसीदास कहते हैं कि महाराजा रामने संसारमें अगणित अश्वमेध यज्ञ कर डाले और अनेक प्रकारके बहुतसे दान दे डाले। इस शकुनसे मंगल ही मंगल होते हैं॥ ७॥ (२८७)

१. एक कुत्तेने एक यतीपर यह आरोप लगाया कि इसने मुझे मारा है, इसे महन्त बना दीजिए। महन्त बनकर यह दुष्कर्म करेगा तो कुत्ता हो जायगा। यही इसके पापका दंड होगा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—७

असमंजस बड़, सगुन गत, सीता - राम - बियोग।
गवन बिदेस, कलेस कलि, हानि, पराभव, रोग ॥ १ ॥
मानिय सिय अपराध - बिनु, प्रभु परिहरि पछतात।
रुचै समाज, न राज - सुख, मन मलीन, कृस गात ॥ २ ॥
पुत्र-लाभ, लव-कुस-जनम, सगुन सुहावन होइ।
समाचार मंगल - कुसल, सुखद सुनावइ कोइ ॥ ३ ॥
राम - सभा लव-कुस ललित, किए राम - गुन - गान।
राज - समागम सगुन सुभ, सुजस, लाभ, सनमान ॥ ४ ॥
बालमीकि लव - कुस सहित आनी सिय, सुनि राम।
हृदय हरष जानब प्रथम, सगुन सोक परिनाम ॥ ५ ॥
अनरथ, असगुन, अति असुभ, सीता - अवनि - प्रवेस।
समय सोक, संताप, भय, कलह, कलंक, कलेस ॥ ६ ॥
सुभग सगुन उनचास रस, राम - चरितमय चारु।
राम-भगत हित सफल सब, 'तुलसी' बिमल बिचारु ॥ ७ ॥ (२९४)

सप्तक—७

राम-जानकीका वियोग बड़े कष्टका विषय है। इस शकुनके अनुसार विदेश-यात्रा, कलिकालका क्लेश, काममें हानि, अपनी हार और रोग होनेका भय है ॥ १ ॥ सीताको निरपराध मानकर भी उनका परित्याग करके राम बैठे पछता रहे हैं। उन्हें न समाज अच्छा लगता है न राज-सुख ही भाता है। उनका मन उदास रहता है और शरीर भी सूख गया है ॥ २ ॥ रामको लव और कुश नामके दो पुत्र होनेका लाभ हुआ। अतः, यह शकुन सुन्दर है। कोई आकर कुशल-मंगलका सुखद समाचार सुनानेवाला है ॥ ३ ॥ रामकी राज-सभामें पहुँचकर उनके पुत्र लव और कुशने बड़े ही सुन्दर ढंगसे रामके गुण गा सुनाए। यह शकुन शुभ है। राज-सभामें पहुँच होगी। सुयशकी प्राप्ति, लाभ और सम्मान होगा ॥ ४ ॥ जब रामने सुना कि लव-कुशके साथ सीताको महर्षि वाल्मीकि लिवा लाए हैं तब प्रभुको पहले तो बड़ा हर्ष हुआ, किन्तु अन्तमें इसका परिणाम शोक-कारक हुआ (सीता पृथ्वीमें समा गईं)। इस शकुनसे प्रथम तो हर्ष होगा किन्तु अन्तमें दुःख होगा ॥ ५ ॥ सीताका पृथ्वीमें समा जाना अत्यन्त अनर्थकारी अपशकुन और अशुभ है। अतः, यह शकुन शोक, संताप, भय, कलह, कलंक और क्लेश देगा ॥६॥ रस (छठे) सर्गका यह उनचासवाँ शकुन रामके सुन्दर चरित्रसे पूर्ण है। तुलसीदासका शुद्ध मत है कि रामके भक्तोंके लिये यह सुफलदायक और शुभ है ॥ ७ ॥ (२९४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तम सर्ग

सप्तक—१

राम, लखन सानुज भरत, सुमिरत सुभ सब काज।
सहित - प्रीति, परतीति, हित, सगुन सकल सुभ काज ॥ १ ॥
सुख - मुद - मंगल - कुमुद - बिधु, सगुन - सरोरुह - भानु।
करहु काज सब सिद्धि सुभ, आनि हिये हनुमानु ॥ २ ॥
राज-काज, मनि, हेम, हय, राम-रूप रबिबार।
कहब नीक, जय - लाभ सुभ, सगुन समय अनुहार ॥ ३ ॥
रस, गोरस, खेती सकल, बिप्र - काज सुभ साज।
राम - अनुग्रह सोम दिन, प्रमुदित प्रजा सुराज ॥ ४ ॥
मंगल मंगल भूमि - हित, नृप - हित जय संग्राम।
सगुन बिचारब समय - सम, करि गुरु - चरन प्रनाम ॥ ५ ॥
बिपुल बनिज, विद्या, बसन, बुध बिसेष गृह - काज।
सगुन सुमंगल कहब सुभ, सुमिरि सीय - रघुराज ॥ ६ ॥
गुरु - प्रसाद मंगल सकल, राम - राज सब काज।
यज्ञ, बिवाह, उछाह, व्रत, सुभ 'तुलसी' सब साज ॥ ७ ॥ (३०१)

सप्तम सर्ग

सप्तक—१

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका स्मरण कीजिए। सभी कार्य शुभ होंगे। प्रेम और विश्वासपूर्वक अपने कल्याण और सभी शुभ कार्योंके लिये यह शकुन उत्तम है ॥ १ ॥ हनुमान्‌का स्मरण करके सब कार्य कर डालो। शुभ करनेवाली सिद्धि प्राप्त होगी। यह शकुन सुख और आनन्द-मंगल-रूपी कुमुदके लिये चन्द्रमा तथा कमलके लिये सूर्यके समान सुखदायक है। (यह शकुन सभी सुख, आनन्द और मंगल देनेवाला अत्यन्त शुभ है) ॥ २ ॥ राम-रूपी रविवारके दिन समयके अनुसार यह शकुन राजकार्य, रत्न, सोना और घोड़ा आदिको प्राप्तिके लिये शुभ और उत्तम है। विजय होगी ॥ ३ ॥ रामकी कृपासे सोमवारका दिन रस (रसीले पदार्थ), गोरस (दूध, दही, मक्खन, घी आदि), खेती और ब्राह्मणोंके काम (यज्ञ, विद्यार्जन)-के लिये शुभ है। रामके सुराजमें प्रजा सुखी रहेगी ॥४॥ गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके समयके अनुसार शकुनपर विचार करो। भूमिके लिये मंगलका दिन मंगलकारी होता है। राजाको संग्राममें विजय मिलेगी ॥५॥ राम और जानकीका स्मरण करो। यह बुधवारका शकुन शुभ और मंगल-दायक है। अच्छा वाणिज्य (व्यापार), विद्या, वस्त्र तथा विशेष रूपसे गृह-कार्यमें सफलता मिलेगी ॥ ६ ॥ गुरुकी कृपासे गुरुवारका यह शकुन सब प्रकारके मंगलो करनेवाला और रामराज्यमें सब कार्य, यज्ञ, विवाह, उत्सव तथा व्रत आदिके लिये शुभ और कल्याणप्रद है ॥ ७ ॥ (३०१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—२

सुक्र सुमंगल काज सब, कहब सगुन सुभ देखि।
जंत्र - मंत्र - गनि, औषधी, सहसा सिद्धि बिसेखि ॥ १ ॥
राम - कृपा थिर काज सुभ, निसि - बासर बिस्राम।
लोह, महिष, गज, बनिज भल, सुख - सुपास गृह - ग्राम ॥ २ ॥
राहु - केतु उलटे चलहिँ, असुभ अमंगल - मूल।
रुंड - मुंड पाखंड - प्रिय असुर, अमर प्रतिकूल ॥ ३ ॥
समउ राहु रबि - गहन - मत, राजहिँ प्रजहिँ कलेस।
सगुन सोच, संकट बिकट, कलह, कलुष, दुख देस ॥ ४ ॥
राहु - सोम - संगम बिषम, असगुन उदधि अगाधु।
ईति - भीति, खल - दल प्रबल, सीदहिँ भूसुर - साधु ॥ ५ ॥
सात - पाँच ग्रह एक थल, चलहिँ बाम गति धाम।
राज बिराजिय समउ गत, सुभ - हित सुमिरहु राम ॥ ६ ॥
खेती, बनि, बिद्या, बनिज, सेवा, सिलिप, सुकाज।
'तुलसी' सुरतरु - सरिस सब, सुफल रामके राज ॥ ७ ॥ (३०८)

सप्तक—२

शुक्रवारका यह शकुन सब कार्योंके लिये शुभ और मंगलकारक हैं। यन्त्र, मन्त्र आदिकी सिद्धियों तथा औषधि-निर्माणमें विशेष सफलता मिलेगी ॥१॥ रामकी कृपासे स्थिरवार (शनिवार)-का शकुन दिन-रात विश्राम देनेवाला और शुभ है। लोहा, भस और हाथी मोल लेने तथा व्यापार और गृह-कार्यमें सुख एवं सुविधा मिलेगी ॥ २ ॥ ये उलटी चाल चलनेवाले रुंड-मुंडवाले राहु और केतु बड़ा अशुभ और अमंगल करते हैं। पाखंड-प्रिय दैत्योंका बोलबाला है और देवता विरुद्ध हैं। अतः, यह शकुन अत्यन्त हानिकारक है ॥ ३ ॥ समय पाकर सूर्यको राहु ग्रस लेता है, राजा और प्रजा दोनोंको क्लेश होता है। यह शकुन चिन्ता, भयंकर संकट, कलह, पाप और दुःखका आगार है। अत्यन्त अशुभ है ॥ ४ । राहुका चन्द्रमाके साथ मेल होना (चन्द्र-ग्रहण होना) बहुत बुरा है। यह अशकुनका अगाध समुद्र है। इससे ईति (अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी, पक्षियोंका उत्पात, दूसरे राजाकी चढ़ाई) और दुष्टोंके दलके प्रबल होनेका भय होता है तथा ब्राह्मण और साधुओंको कष्ट होता है ॥ ५ ॥ यदि सात या पाँच ग्रह एक साथ उलटे चल रहे हों, तो समझो राजसिंहासनपर विराजमान होनेका समय गया कल्याणके लिये रामका स्मरण करो ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके राज्यमें खेती, मजदूरी, विद्या व्यापार, नौकरी और शिल्प-कार्य सब कल्पवृक्षके समान मनचाहा फल देते हैं ॥ ७ ॥ (३०८)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—३

सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल, सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति - भगति, सगुन सुमंगल सात ॥ ७ ॥
सिद्ध - समागम, संपदा, सदन, सरीर - सुपास।
सीतानाथ - प्रसाद सुभ, सगुन सुमंगल - बास ॥ २ ॥
कौसल्या कल्यान - मय - मूरति, करत प्रनाम।
सगुन सुमंगल काज सुभ, कृपा करहिं सिय - राम ॥ ३ ॥
सुमिरि सुमित्रा - नाम जग, जे तिय लेहिं सुनेम।
सुवन लखन - रिपु-दवन-से, पावहिं पति - पद प्रेम ॥ ४ ॥
दसरथ - नाम सुकाम - तरु, फलइ सकल कल्यान।
धरनि, धाम, धन, धरम, सुख, सुत गुन - रूप - निधान ॥ ५ ॥
कलह कपट कलि कैकई, सुमिरत काज नसाइ।
हानि, मीचु, दारिद, दुरित, असगुन, असुभ अघाइ ॥ ६ ॥
राम, बाम - दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु 'तुलसी' तोर ॥ ७ ॥ (३१५)

सप्तक–३

तुलसीदास कहते हैं कि सुधा (अमृत), साधु, कल्पवृक्ष, पुष्प, श्रेष्ठ फल (आम, केला, नारियल), सुहावनी (मंगल) बात तथा सीतापति रामकी भक्ति—ये सातों शकुन मंगलदायक हैं ॥१॥ सीताके पति रामकी कृपासे यह शकुन कल्याण-कारक है। सिद्ध पुरुषोंका समागम होगा, सम्पत्ति, घर और शरीरका सुख मिलेगा ॥२॥ कल्याणकी मूर्ति कौशल्याको प्रणाम करो। राम और जानकीकी कृपा होगी तो तुम्हारे सभी कार्य शुभ और सफल होंगे। यह शकुन मंगलदायक और शुभ है ॥३॥ जो स्त्री नियमपूर्वक सुमित्रा माताका नाम लेंगी (स्मरण करेंगी) वे लक्ष्मण और शत्रुघ्नके समान पुत्र और पति-के चरणोंमें प्रीति प्राप्त करेंगी ॥ ४ ॥ दशरथका नाम फलदायक कल्पवृक्षके समान और सब प्रकारसे कल्याण-प्रद है। पृथ्वी, घर, धन, धर्म और सुखके साथ गुण और रूपवाला श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त होगा ॥५॥ कलिके कलह और कपटसे भरी कैकेयीका स्मरण करते ही सारा काम बिगड़ जायगा। यह शकुन हानि, मृत्यु, दरिद्रता, पाप, और पूर्ण रूपसे अशुभ - कारक है ॥६॥ रामका, उनकी बाईं ओर सीताका तथा दाहिनी ओर लक्ष्मणका ध्यान करनेसे सब कल्याण होगा। देखो तुलसीदास! तुम्हारे लिये तो (यह ध्यान) कल्पवृक्षके समान परम कल्याण करनेवाला है ॥७॥ (३१५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—४

मध्यम दिन, मध्यम दसा, मध्यम सकल समाज।
नाइ माथ रघुनाथ-पद, जानब मध्यम काज॥ १॥
हित-पर बढ़इ बिरोध जब, अनहित-पर अनुराग।
राम बिमुख, बिधि बाम-गत, सगुन अघाइ अभाग॥ २॥
कृपन देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजिय सुभ सोइ॥ ३॥
पहिले हित, परिनाम गत, बीच बीच भल-पोच।
सगुन कहब अस राम-गति, कहबि समेत-सँकोच॥ ४॥
रमा, रमापति, गौरि, हर, सीता-राम सनेह।
दंपति-हित, संपति सकल, सगुन सुमंगल गेह॥ ५॥
प्रीति-प्रतीति न राम-पद, बड़ी आस, बड़ लोभ।
नहिं सपनेहु संतोष-सुख, जहाँ-तहाँ मन छोभ॥ ६॥
पय नहाइ, फल खाइ, जपु रामनाम षट मास।
सगुन सुमंगल सिद्धि सब, कर-तल 'तुलसीदास'॥ ७॥ (३२२)

सप्तक—४

(यह शकुन बतलाता है कि तुम्हारे लिये) यह दिन भी मध्यम है और दशा भी मध्यम है। अतः, रामको सिर नवाकर (काम प्रारम्भ कर दो)। यह समझ लो कि तुम्हारा काम मध्यम ही होगा॥१॥ जब प्रिय लोगोंसे विरोध हो और विरोधियोंसे प्रेम बढ़ता हो, तो समझ लो कि राम हमसे विमुख हैं और विधाता (भाग्य) भी हमसे मुँह फेरे बैठा है। अतः, यह शकुन तुम्हारे पूर्ण अभाग्यका सूचक है॥२॥ रामको अपने अनुकूल समझकर जो भी कार्य करोगे उसीमें सफलता मिलेगी। कृपण (कंजूस) भी दान देगा, कहीं कुछ पड़ा मिल जायगा और बिना साधनके ही सफलता मिल जायगी। ॥ ३॥ इस शकुनका फल संकोचके साथ यह बताता हूँ कि कार्यके आरम्भमें तो कुछ भला होगा, अन्तमें बुरा होगा और बीच-बीचमें कभी भला कभी बुरा होता चलेगा। रामकी यही इच्छा है॥४॥ तुमपर लक्ष्मी और लक्ष्मी-पति (विष्णु), पार्वती और शंकर तथा सीता और रामका स्नेह है। अतः, यह शकुन दम्पति (पति-पत्नी)-के लिये हित-कारक, समस्त सम्पत्ति देनेवाला और परम कल्याण-कारक है॥५॥ रामके चरणोंमें न तो तुम्हारा प्रेम है न विश्वास ही है पर आशा और लोभ बहुत बड़ा है। तब तुम्हें स्वप्नमें भी सन्तोष और सुख न मिलेगा। जहाँ भी जाओगे मनमें उथल-पुथल ही बनी रहेगी॥६॥ तुलसीदास कहते हैं कि मन्दाकिनीमें स्नान करके तथा फलका आहार करके छह महीने-तक (चित्रकूट जाकर) रामके नामका जप करते रहो। यह शकुन कल्याण करनेवाला है। सभी सिद्धियाँ तुम्हारे हाथोंमें आ जायँगी बड़ी सरलतासे सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी)॥ ७॥ (३२२)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—५

बड़ कलेस, कारज अलप, बड़ी आस, लहु लाहु।
उदासीन सीता - रमन, समय - सरिस निरबाहु ॥ १ ॥
दस दिसि दुख, दारिद, दुरित, दुसह दसा, दिन दोष।
फेरे लोचन राम अब, सनमुख साज सरोष ॥ २ ॥
खेती, बनिज, न भीख भलि, अफल उपाय - कदंब।
कुसमय जानब, बाम बिधि, राम - नाम अवलंब ॥ ३ ॥
पुरुषारथ, स्वारथ, सकल परमारथ - परिनाम।
सुलभ सिद्धि, सब सगुन सुभ, सुमिरत सीता - राम ॥ ४ ॥
भागु भाग तजि भाल - थल, आलस ग्रसे उपाउ।
असुभ, अमंगल सगुन सुनि, सरन राम - के आउ ॥ ५ ॥
गई बरषा, करषक बिकल, सूखत सालि सुनाज।
कुसमउ, कुसगुन, कलह कलि, प्रजहिं कलेस कुराज ॥ ६ ॥
'तुलसी' तुलसी ! राम-सिय सुमिरहु लखन - समेत।
दिन-दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देत ॥ ७ ॥ (३२९)

सप्तक—५

बहुत कष्ट उठानेपर भी काम थोड़ा ही होगा और बड़ी आशा लगानेपर भी लाभ थोड़ा ही होगा क्योंकि इस समय सीता-रमण राम भी तुम्हारी ओरसे उदासीन हैं। अतः जैसी बीत रही है, उसीके अनुसार जीवन-निर्वाह करते चलो ॥ १ ॥ तुम्हारे लिये दसों दिशाओंमें दुःख, दरिद्रता और पाप छाया हुआ है। तुम्हारी दशा बहुत बुरी है और तुम्हारे दिन भी बुरे हैं। अब रामने तुम्हारी ओरसे दृष्टि फेर ली है। अब तो तुम्हारे सामने सब कुछ क्रोधसे भरा हुआ ही दीख पड़ेगा (तुम्हारे दिन अच्छे नहीं हैं) ॥२॥ खेती, व्यापार अथवा भीख कुछ नहीं मिलेगी। जो भी उद्योग करोगे वह पूर्णतः निष्फल हो जायगा। यह समझ लो कि आजकल तुम्हारे दुर्दिन हैं और विधाता भी रूठे हुए हैं। बस, केवल रामके नामका भरोसा किए रक्खो ॥३॥ तुम्हारे समस्त पुरुषार्थ, स्वार्थ और परमार्थका यही परिणाम है कि सीता और रामका स्मरण करते रहो, सभी सिद्धियाँ तुम्हें सुलभ हो जायँगी। यह शकुन तुम्हारे लिये अच्छा है ॥ ४ ॥ सौभाग्य तुम्हारे माथेसे भाग गया (मिट गया)। आलस्य तुम्हारे सभी उपाय निगले बैठा है (आलस्यके कारण तुमसे कोई उपाय भी करते नहीं बनता)। ऐसा अशुभ और अमंगल शकुन जानकर रामकी शरणमें चले आओ ॥ ५ ॥ वर्षा हुई नहीं। किसान व्याकुल हो रहे हैं। बढ़िया धान सूखा जा रहा है। ऐसे कुसमयके बुरे शकुनमें बहुत कलियुगी (बुरा) लड़ाई-झगड़ा बढ़ेगा और कुराज (राज्यकी कुव्यवस्था)-के कारण प्रजाको भयंकर क्लेश होगा ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'अरे तुलसी ! तू सीता, लक्ष्मण और रामका बैठकर भजन कर। अब प्रति दिन तुझे आनन्द ही आनन्द मिलता रहेगा। यह शकुन बहुत मंगल-कारक है' ॥ ७ ॥ (३२९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—६

उदबस अवध नरेस - बिनु, देस दुखी नर - नारि।
राज - भंग, कुसमाज बड़, गत ग्रह-चालि बिचारि॥ १॥
अवध-प्रवेस अनंद बड़, सगुन सुमंगल - माल।
राम - तिलक - अवसर कहब, सुख, संतोष, सुकाल॥ २॥
राम-राज-बाधक बिबुध, कहब सगुन सति भाउ।
देखि देव - कृत दोष, दुख, कीजिय उचित उपाउ॥ ३॥
मंद मंथरा मोह - बस, कुटिल कैकई कीन्ह।
व्याधि, बिपति सब देव - कृत, समय सगुन कहि दीन्ह॥ ४॥
राम - बिरह दसरथ दुखित, कहति कैकई काकु।
कुसमय जाय उपाय सब, केवल करम - बिपाकु॥ ५॥
लखन-राम-सिय बसत बन, बिरह-बिकल पुर - लोग।
समय सगुन कह, करम-बस, दुख - सुख, जोग-बियोग॥ ६॥
तुलसी लाइ रसाल तरु, निज कर सींचति सीय।
कृषी सफल, भल सगुन, सुभ, समय कहब कमनीय॥ ७॥ (३३६)

सप्तक—६

राजाके बिना अयोध्या उद्वस (उजाड़) हो गई है। देशके सभी स्त्री-पुरुष दुखी हो रहे हैं। ग्रहोंकी गति भी कुछ ऐसी बुरी है कि राज-भंग होगा और समाज बहुत बिगड़ जायगा। (शकुन हानिकारक और दुःखदायी है)॥ १॥ अयोध्यामें (रामका) प्रवेश होना बड़ा आनन्ददायक है। यह शकुन अत्यन्त मंगल-दायक है। रामके राज-तिलकके सुअवसरसे सुख, सन्तोष और सुकाल होगा॥ २॥ इस शकुनका सत्य भाव यह है कि देवता लोग (युवराज-पद मिलनेके अवसरपर) राज मिलनेमें बाधक हुए। दैवयोगसे क्लेश और दुःख होगा यह समझकर उचित उपाय करना चाहिए॥ ३॥ मोहमें पड़कर मूर्खा मंथराने कैकेयीके मनमें भी खोट भर दी। यह सारी व्याधि और विपत्ति देवताओंने उत्पन्न की थी। समयने ही फल बतला दिया (कि शकुन अच्छा नहीं है)॥४॥ एक तो रामके विरहमें राजा दशरथ यों ही बड़े दुखी हैं उसपर कैकेयी व्यंग्य वचन बोले चली जा रही है। कर्मके विपाकसे (पूर्व जन्मके बुरे कर्मके अनुसार) ऐसे दुर्दिन आनेपर सभी उपाय व्यर्थ हो जाते हैं॥ ५॥ राम, लक्ष्मण और जानकी वनमें जा बसे हैं, यह जानकर अयोध्यावासी रामके विरहसे व्याकुल हुए जा रहे हैं। इस समयका शकुन बतलाता है कि दुःख-सुख, संयोग और वियोग सब कर्मके अनुसार ही होते हैं॥ ६॥ तुलसीदास कहते हैं कि आमका पेड़ रोपकर सीता उसे अपने हाथोंसे सींचती रहती हैं। यह शकुन बतलाता है कि खेती और फसल अच्छी होगी। समय अच्छा आवेगा। (सुदिन आनेवाला है)॥ ७॥ (३३६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तक—७

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारु मति, सादर, सत्य, सनेम ॥ १ ॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि।
देस, करम, करता, बचन, सगुन समय - अनुहारि ॥ २ ॥
सगुन सत्य ससि, नयन, गुन - अवधि अधिक नयवान।
होइ सुफल सुभ जासु जस, प्रीति - प्रतीति - प्रमान ॥ ३ ॥
गुरु, गनेस, हर, गौरि, सिय, राम, लखन, हनुमान।
तुलसी सादर सुमिरि सब, सगुन - बिचार - बिधान ॥ ४ ॥
हनूमान, सानुज भरत, राम, सीय उर आनि।
लखन सुमिरि, 'तुलसी' कहत, सगुन बिचार बखानि ॥ ५ ॥
जो जेहि काजहि अनुहरइ, सो दोहा जब होइ।
सगुन समय सब, सत्य सब, कहब राम-गति गोइ ॥ ६ ॥
गुन बिस्वास, बिचित्र मनि-सगुन, मनोहर हार।
'तुलसी' रघुबर - भगत - उर, बिलसत बिमल बिचार ॥ ७ ॥ (३४३)

॥ इति रामाज्ञा-प्रश्न समाप्तः ॥

सप्तक—७

किसी शुभ दिन सायंकाल पुस्तकको निमंत्रण देकर दूसरे दिन प्रातःकाल आदर, प्रेम, सत्य भाव और नियम-पूर्वक अच्छी बुद्धिसे शकुनपर विचार करो ॥१॥ सभी शकुनोंपर देश (स्थान), कर्म, कर्त्ता (प्रश्न करनेवाला), वचन तथा समयके अनुसार मुनि[1] (सात), दिन[2] (सात), धातु[3] (सात)-की गणना (सर्ग, सप्तक, दोहे)-के अनुसार दोहेके फलका विचार करो ॥ २ ॥ राममें जिसकी जैसी प्रीति और जिसका जैसा विश्वास होगा उसके अनुसार शकुनसे निरंतर शशि (एक), नयन (दो), गुन (तीन) गुना अधिक ही अधिक सत्य और अच्छा फल मिलता चला जायगा ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि गुरु, गणेश, शंकर, पार्वती, राम, जानकी, लक्ष्मण और हनुमान्‌का आदरपूर्वक स्मरण करके शकुनपर विचार करना चाहिए ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि हनुमान्, भरत, शत्रुघ्न, राम, जानकी और लक्ष्मणका अपने हृदयमें ध्यान करके शकुनपर विचार करो ॥ ५ ॥ जो (प्रश्नकर्त्ता) जिस कार्यके लिये शकुनपर विचार करे और जब उसी कार्यके मेलका दोहा आवे तभी शकुनको सत्य समझना चाहिए। आगे रामकी जैसी इच्छा होगी वही होगा, रामकी वह इच्छा जानी नहीं जाती ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि विश्वासके गुण (डोरे)-में शकुनके विचित्र मणि गूँथकर हार बनाओ तभी वह रामके भक्तोंके हृदयपर शोभा देता है (विश्वास होनेपर ही शकुनका शुद्ध फल प्रकट होता है) ॥ ७ ॥ (३४३)

॥ श्रीरामाज्ञा-प्रश्न पूर्ण हुआ ॥

१. २. ३. पृष्ठ ११० के नीचे देखो।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्री भागवतदास छत्रीकी पोथीमें इस प्रसंगमें निम्नांकित यन्त्र भी मिला है। इससे शकुनका फल जाननेका यह क्रम है—

रामका ध्यान करके किसी भी अंकपर उँगली धरो। ऊपरकी पंक्तिमें जो अंक हो वह सर्ग और जिस अंकपर उँगली धरी है वह दोहा होगा। मान लो आपने ४४ अंकपर उँगली धरी है तो उसके ऊपर पहली पंक्तिमें ५ अंक सर्गका और ४४ अंक दोहेका सूचक है। तो शकुनके फलके लिये पंचम सर्गका ४४ वाँ दोहा देखिए। इसमें सप्तककी आवश्यकता नहीं है। मान लो यदि पहली पंक्तिमें ही ४ पर उँगली पड़ गई तो इसका अर्थ होगा कि चतुर्थ सर्ग का चौथा दोहा देखिए।

१	२	३	४	५	६	७
२४	२५	२६	२७	२८	२९	८
२३	४०	४१	४२	४३	३०	९
२२	३९	४८	४९	४४	३१	१०
२१	३८	४७	४६	४५	३२	११
२०	३७	३६	३५	३४	३३	१२
१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३

१. मुनि=ऋषि : विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप। महाभारतके अनुसार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, वशिष्ठ। २. दिन=वार : रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनिवार। ३. धातु : रस (पित्त), रक्त, मांस, मेद (वसा), अस्थि, मज्जा, शुक्र।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

७

दोहावली

राम, बाम - दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान - मय, सुर - तरु 'तुलसी' तोर॥ १॥
सीता - लखन - समेत प्रभु, सोहत 'तुलसीदास'।
हरषत सुर, बरषत सुमन, सगुन सुमंगल - बास॥ २॥
पंचवटी - बट - बिटप - तर, सीता - लखन - समेत।
सोहत तुलसीदास - प्रभु, सकल सुमंगल देत॥ ३॥
चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय - लखन - समेत।
राम - नाम - जप जापकहिं, 'तुलसी' अभिमत देत॥ ४॥

रामका, उनकी बाईं ओर जानकीका तथा दाहिनी ओर लक्ष्मणका ध्यान करनेसे कल्याण ही कल्याण होता है। अरे तुलसीदास! तेरे लिये तो यह ध्यान कल्पवृक्षके समान (सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी करनेवाला) है॥ १॥ तुलसीदास कहते हैं कि सीता और लक्ष्मणके साथ प्रभु राम बहुत अच्छे लग रहे हैं। उनपर देवता प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। यह शकुन सब मंगलसे भरा हुआ है॥ २॥ सीता और लक्ष्मणके साथ पंचवटीमें तुलसीदासके प्रभु वट वृक्षके नीचे बैठे बड़े प्यारे लग रहे हैं। उनके दर्शनसे सारे सुमंगल स्वयं मिल जाते हैं॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि सीता और लक्ष्मणके साथ प्रभु राम सदा चित्रकूटमें निवास करते रहते हैं। जो भी रामका नाम जपता है उसे वे सभी मनोवाञ्छित फल देते रहते हैं॥ ४॥ तुलसीदास कहते हैं कि (चित्रकूट जाकर) छह मास-तक

दोहावलीमें आए हुए अधिकांश दोहे रामचरित-मानस, वैराग्य-संदीपिनी और रामाज्ञा-प्रश्नमें आ चुके हैं। यही स्थिति तुलसी-हजारा की भी है। केवल तुलसी सतसईमें उसकी रचनाका संवत् दिया गया है—

अहि[२]-रसना, थन[४]-धेनु, रस[६], गनपति[१]-द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय - जनम - तिथि, सतसैया - अवतार॥

संवत् १६४२ के वैशाख शुक्ल गुरुवारको सीताकी जन्मतिथिपर सतसई लिखी गई। उसमें लगभग १५० दोहे दोहावलीके मिलते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पय अन्हाइ, फल खाइ, जपु राम - नाम षट मास।
सकल सुमंगल, सिद्धि सब, कर - तल 'तुलसीदास' ॥ ५ ॥
राम - नाम - मनि - दीप धरु, जीह - देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर - बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार ॥ ६ ॥
हिय निरगुन, नयनहिँ सगुन, रसना राम - सुनाम।
मनहुँ पुरट - संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥ ७ ॥
सगुन ध्यान-रुचि सरस नहिँ, निर्गुन मन - तेँ दूरि।
'तुलसी' सुमिरहु रामको, नाम सजीवन - मूरि ॥ ८ ॥
एक छत्र, इक मुकुट - मनि, सब बरनन - पर जोउ।
'तुलसी' रघुबर - नामके, बरन बिराजत दोउ ॥ ९ ॥
राम - नाम - को अंक है, सब साधन हैँ सून।
अंक गए कछु हाथ नहिँ, अंक रहे दस - गून ॥ १० ॥
नाम रामको कलप - तरु, कलि कल्यान - निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग-तेँ[1] तुलसी, तुलसीदास ॥ ११ ॥
राम - नाम जपि जीह, जन भए सुकृत, सुख - सालि।
'तुलसी' इहाँ जो आलसी, गयो आज, की कालि ॥ १२ ॥

पयस्विनी (मन्दाकिनी)-में स्नान और फलका आहार करते हुए बैठे राम-नामका जप करो तो सब सुमंगल और सिद्धियाँ अपने आप तुम्हें प्राप्त हो जायँगी ॥५॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि भीतर (मनमें भी) और बाहर भी दिव्य प्रकाश (शान्ति) चाहो तो जिह्वा-रूपी बीचकी देहली (ड्यौढी)-पर राम-नामका मणि-दीप ला रक्खो (जीभसे राम-नामका जप करते रहो) ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि हृदयमें निर्गुण ब्रह्मकी धारणा बनी रहे, नेत्रोंसे प्रभुके सगुण रूपका दर्शन होता रहे और वाणीसे रामके सुन्दर नामकी रट लगी रहे तो ऐसा लगेगा मानो सोनेके डब्बेमें अत्यन्त सुन्दर तुलसीकी पत्ती ला धरी हो ॥ ७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जब रामकी मनोहर और सरस सगुण मूर्तिमें भी ध्यान न लगता हो और निर्गुण ब्रह्म-तक भी मन न पहुँच पाता हो तो रामका नाम जपो क्योंकि ऐसी स्थितिमें वही संजीवनी बूटीके समान काम करेगा ॥ ८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम-नामके दोनों वर्ण (र और म) सब वर्णोंके सिरपर जा चढ़ते हैं। इनमेंसे एक (रा) तो छत्र (ॅ) बना बैठा है और दूसरा (म) मुकुटके मणिके रूपमें (०) बनकर शोभा देता है ॥ ९ ॥ राम-नाम ही एक (१) का अंक है। अन्य साधन सभी शून्य (०) के समान वैसे ही बेकार हैं जैसे १ अंकके न रहनेपर सब शून्य ही शून्य रह जाता है, किन्तु वही १ अंक शून्यके पहले लग जाय तो दस गुना (१०) हो जाता है ॥१०॥ कलियुगमें रामका नाम ही कल्पतरु है (समस्त कामनाएँ पूरी कर सकता) और सब प्रकारका कल्याण कर सकता है क्योंकि उसीका निरन्तर स्मरण करते रहनेसे ही भाँग-जैसा (निषिद्ध) तुलसी भी 'तुलसीदास' (आदरणीय) बन बैठा है ॥ ११ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो व्यक्ति जिह्वासे राम-नामका जप करते हैं वे सुख और पुण्य सब पा गए हैं, और जो राम-नाम लेनेमें आलस्य करते हैं, वे चाहे आज या कल संसारसे हाथ झाड़ते चले

१. भाग-तेँ=सौभाग्यसे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाम गरीब - निवाजको, राज देत, जन जानि।
'तुलसी' मन परिहरत नहिं, घुर - बिनिया - की बानि ॥ १३ ॥
कासी बिधि - बस तनु तजै, हठि तनु तजै प्रयाग।
'तुलसी' जो फल सो सुलभ, राम - नाम - अनुराग ॥ १४ ॥
मीठो अरु कठवत भरो, रौताई अरु खेम।
स्वारथ - परमारथ सुलभ, राम - नामके प्रेम ॥ १५ ॥
राम-नाम सुमिरत, सुजस - भाजन भए कुजाति।
कुतरु-कुसर पुर - राज - मग, लहत भुवन - विख्याति ॥ १६ ॥
स्वारथ-सुख सपनेहुँ अगम, परमारथ न प्रवेस।
राम - नाम सुमिरत मिटहि, 'तुलसी' कठिन कलेस ॥ १७ ॥
'मोर मोर' सब-कहँ कहसि, तू को ? कहु निज नाम।
कै चुप साधहि, सुनि, समुझि, कै 'तुलसी' जपु राम ॥ १८ ॥
हम लखि, लखहि हमार, लखि, हम-हमारके बीच।
'तुलसी' अलखहिं का लखै ? राम - नाम जपु नीच ॥ १९ ॥

जायँगे (मोक्ष नहीं पा सकेंगे) ॥ १२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि दीनोंपर दया करनेवाले रामका 'नाम' भक्तोंको राज-सुख दे डालता है, परन्तु यह मन ऐसा निकम्मा है कि घूरे (कूड़े)-के दाने बीननेको (सांसारिक मायाके लोभमें फँसे रहनेकी) अपनी बान नहीं छोड़ता ॥ १३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो राम-नामसे प्रीति करता है, उसे वही फल सुलभ हो जाता है जो दैव-संयोगसे काशीमें अथवा हठपूर्वक प्रयागराजमें शरीर-त्याग करनेपर प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ राम-नामके प्रेमीको स्वार्थ और परमार्थ दोनों साथ ही साथ इस प्रकार सुलभ हो जाते हैं जैसे किसीको कोई मीठा पदार्थ भी मिल जाय और कठौता-भर (भर-पेट) भी मिल जाय, प्रभुत्व मिलनेके साथ-साथ उसकी कुशलता भी बनी रहे ॥ १५ ॥ रामका नाम स्मरण करनेवाले कुजातिवालों (शबरी, गीध, बन्दर, भालू, गणिका, व्याध आदि)-ने भी वैसे ही सुयश प्राप्त कर लिया जैसे नगरके राज-मार्गपर उगनेवाले कुतरु (रेंड, बेर, बबूल आदि) तथा कुसर (गड़ही, पोखरे आदि छोटे जलाशय) भी प्रसिद्ध हो जाते हैं ॥ १६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसे स्वप्नमें भी न तो अपने स्वार्थ और सुखकी सिद्धि ही हो पाती और न परमार्थमें ही रुचि होती, उसके सारे कष्ट राम-नामके स्मरण मात्रसे नष्ट हो जाते हैं ॥१७॥ जहाँ देखो वहीं तू 'मेरा-मेरा' कहता फिरता है पर यह तो बता कि तू है कौन और तेरा नाम क्या है ? तुलसीदास कहते हैं कि सब कुछ सुन और समझकर या तो चुप मारकर बैठा रह या बैठकर रामका नाम जप ॥१८॥ यह जो तुम 'हम' और 'हमारा' कहते फिरते हो तो पहले हम (अहं) क्या है यह समझो, तब यह समझो कि जिसे हमारा कहते हो वह क्या है (कुछ नहीं है, कुछ भी तुम्हारा नहीं है) और फिर 'हम' और 'हमारे' बीचके संबंधको समझो (जो वास्तवमें कुछ नहीं है)। तुलसीदास कहते हैं कि जब तुम इस हम, हमारा तथा हम और हमाराका संबंध नहीं समझ पाए तो जो अलक्ष्य है (दिखाई ही नहीं देता) उसे समझनेके फेरमें क्या पड़ा है ? अतः नीच (ओछी बात सोचनेवाले ! (इस अलखको देखनेका चक्कर छोड़कर) बैठकर राम-नामका जप कर ॥ १९ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम - नाम अवलंब - बिनु, परमारथ - की आस।
बरसत बारिद-बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास ॥ २० ॥
'तुलसी' हठि हठि कहत नित, चित सुनि, हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरत बड़ो, बड़ी बिसारे हानि ॥ २१ ॥
बिगरी जनम अनेककी, सुधरै अबहीं आज।
होहि रामको, नाम जपु, 'तुलसी' तजि कु-समाज ॥ २२ ॥
प्रीति, प्रतीति, सुरीति - सों, राम-नाम जपु राम।
'तुलसी' तेरो है भलो, आदि, मध्य, परिनाम ॥ २३ ॥
दंपति रस - रसना, दसन परिजन, बदन सुगेह।
'तुलसी' हर-हित-बरन[1] सिसु, संपति सहज सनेह ॥ २४ ॥
बरषा रितु रघुपति - भगति, 'तुलसी' सालि सुदास।
राम-नाम बर बरन जुग, सावन - भादौं मास ॥ २५ ॥
राम - नाम नर - केसरी, कनक-कसिपु कलि-काल।
जापक - जन प्रहलाद जिमि, पालहि दलि सुर-साल[2] ॥ २६ ॥

राम-नामका सहारा लिए बिना जो परमार्थकी आशा लगाए बैठे रहते हैं, वे वैसी ही भूल करते हैं जैसे कोई बरसती हुई वर्षाकी बूंदोंको पकड़कर उन्हींके सहारे आकाशमें चढ़ चलना चाहता हो ॥ २० ॥ तुलसीदास नित्य बार बार बल देकर कहते रहते हैं कि इस बातको मन लगाकर सुनो और इसीमें अपना हित समझो कि 'राम-नाम'-का स्मरण करना ही बहुत बड़ा लाभ है और उसे भुला देना ही बहुत बड़ी हानि है[3] ॥ २१ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अनेकों जन्मोंकी बिगड़ी (विपत्ति, पाप) आज इसी समय सुधर जायँ यदि तू कुसंगति छोड़कर केवल रामकी शरणमें पहुँच जा और राम-नामका ही जप करने लग ॥ २२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि तू प्रेम और विश्वास-पूर्वक भली प्रकार केवल रामका ही नाम जपता रहे, तो तेरे जीवनका आदि, मध्य और अंतस, भी कल्याणमय हो जाय (तेरा सारा जीवन सुखी हो जाय) ॥ २३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि मेरे लिये तो मेरी जीभ और उससे मिलनेवाला स्वाद ही दम्पत्ति है, दाँत ही कुटुम्बी हैं, मुँह ही इनका घर है, शिवके प्यारे अक्षर (राम) ही हमारा बच्चा है तथा भगवान्‌के प्रति हमारा स्वाभाविक प्रेम ही हमारी सम्पत्ति है ॥२४॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामकी भक्ति ही वर्षा ऋतु है, राम-नामके दोनों अक्षर (रा+म) सावन और भादोंके समान हैं और सुदास (अच्छे भक्त) ही धान हैं (जैसे सावन-भादोंमें वर्षा होनेसे खेती फलती-फूलती है और प्रजाके कष्ट दूर हो जाते हैं वैसे ही रामका नाम जपनेसे भक्तोंके सब कष्ट दूर हो जाते हैं ॥ २५ ॥ कलियुग-रूपी हिरण्य-कशिपुको मारनेके लिये राम-नाम ही नृसिंह भगवान् हैं जो सुर-साल (देवताओंके शत्रु हिरण्यकशिपु राक्षस)-को मारकर प्रह्लाद रूपी राम-नाम जपनेवाले भक्तोंका पालन करते रहते हैं ॥ २६ ॥ कलियुगके लिये रामका

१. हर-हित बरन = शिवके प्यारे वर्ण 'राम'। २ सुर-साल = राक्षस।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम-नाम कलि काम-तरु, सकल सुमंगल-कंद।
सुमिरत कर-तल सिद्धि सब, पग पग परमानंद ॥ २७ ॥
राम-नाम कलि काम-तरु, राम-भगति सुर-धेनु।
सकल सुमंगल-मूल जग, गुरुपद-पंकज-रेनु ॥ २८ ॥
जथा भूमि सब बीजमय, नखत-निवास अकास।
राम-नाम सब धरम-मय, जानत 'तुलसीदास' ॥ २९ ॥
सकल कामना-हीन जे, राम-भगति-रस-लीन।
नाम-प्रेम-पीयूष ह्रद, तिनहुँ किए मन मीन ॥ ३० ॥
ब्रह्म राम-तें नाम बड़, बर-दायक बर-दानि।
राम-चरित[1] सत कोटि-महँ, लिय महेस जिय जानि ॥ ३१ ॥
सबरी, गीध, सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद-बिदित गुन-गाथ ॥ ३२ ॥
राम-नाम-पर राम-तें, प्रीति, प्रतीति, भरोस।
सो 'तुलसी' सुमिरत सकल, सगुन-सुमंगल-कोस ॥ ३३ ॥
लंक बिभीषन, राज कपि, पति मारुति, खग मीच।
लही राम-सों, नाम-रति, चाहत 'तुलसी' नीच ॥ ३४ ॥

नाम ही कल्पवृक्षके समान है, जिससे सब मंगल ही मंगल प्राप्त होते हैं, जिसके स्मरण मात्रसे सारी सिद्धियाँ अपने आप हाथ आ जाती हैं और सारा जीवन निरन्तर परम आनन्दसे बीतता है ॥ २७ ॥ कलियुगमें रामका नाम ही कल्पवृक्षके समान है, रामकी भक्ति ही कामधेनुके समान है और गुरुके चरण-कमलोंकी धूल संसारके सारे सुमंगल (सुख)-दे डालती है। (गुरुके चरणोंकी सेवा करने तथा रामके नामका स्मरण करनेसे संसारके सारे दुःख दूर हो जाते हैं) ॥ २८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसे सारी भूमि बीजोंसे भरी है और सारा आकाश नक्षत्रोंसे भरा है, उसी प्रकार रामके नाममें सारे धर्म भरे हुए हैं ॥ २९ ॥ जिसके मनमें कोई सांसारिक कामना नहीं रह गई है और जो राम-नामके रसमें लीन रहते हैं वे ही अपने मनको राम-नाम रूपी अमृतके तालाबमें मछली बनाकर बसाए रहते हैं ॥ ३० ॥ रामका नाम परमात्मा-रूपी रामसे भी बड़ा है क्योंकि यह सभी इच्छाएँ पूरी करनेवाला और वर-दाता है। इसीलिये शंकरने भी अपने मनमें भली प्रकार समझकर अरबों रामायणोंमेंसे यही राम-नाम निकालकर ग्रहण किया है ॥ ३१ ॥ वेदोंमें रामके नामकी यह महत्ता प्रसिद्ध है कि रामने तो केवल शबरी, गीध (जटायु) और बन्दर-भालू आदि सुसेवकोंको सद्गति प्रदान की, किन्तु रामके नामने तो अगणित दुष्टों (पापियों)-तकका उद्धार कर डाला ॥ ३२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि कोई रामसे अधिक रामके नामसे सच्चा प्रेम, उसपर विश्वास और भरोसा कर ले तो रामका नाम स्मरण करके सद्गुणों और सुमंगलोंका भांडार मिल जाय ॥ ३३ ॥ रामके हाथों विभीषणने लंकाका राज्य पा लिया, सुग्रीव भी वानरोंके राजा बन गए तथा हनुमान्‌ने इतनी प्रतिष्ठा पा ली, और जटायुने सुन्दर मृत्यु पा ली पर यह नीच तुलसी तो इतनेमें ही मगन है कि रामके नामसे ही मेरी प्रीति बनी रहे ॥ ३४ ॥

१. रामचरित=रामायण।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हरन अमंगल-अघ अखिल, करन सकल कल्यान।
राम-नाम हित कहत हर, गावत बेद-पुरान॥ ३५॥
'तुलसी' प्रीति-प्रतीति-सों, राम-नाम-जप-जाग।
किए होय बिधि दाहिनो, देइ अभागेहिं भाग॥ ३६॥
जल-थल-नभ गति अमित अति, अग-जग जीव अनेक।
तुलसी! तो-से-दीन-कहँ, राम-नाम गति एक॥ ३७॥
राम भरोसो, राम बल, राम-नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, माँगत तुलसीदास॥ ३८॥
राम-नाम रति, राम गति, राम-नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल-कुसल, दुहुँ दिसि 'तुलसीदास'॥ ३९॥
रसना साँपिनि, बदन बिल, जे न जपहिं हरि-नाम।
'तुलसी' प्रेम न राम-सों, ताहि बिधाता बाम॥ ४०॥
हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकहिं नहीं, 'तुलसी' सुमिरत राम॥ ४१॥
रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाँय।
तुलसी जिनहिं न पुलक तनु, ते जग जीवत जाय॥ ४२॥

जिस राम-नामको शंकर भी नित्य हितकारी बताते हैं और सब वेद-पुराण भी जिसके गुणोंका वर्णन किया करते हैं वह रामका नाम सम्पूर्ण पापोंका नाश कर डाल सकता है तथा सब प्रकारका कल्याण कर सकता है॥ ३५॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो बड़े प्रेम और विश्वासके साथ राम-नाम-रूपी जपका यज्ञ करता है, विधाता भी उसपर प्रसन्न रहता है। नामका (जप) करनेसे भाग्यहीन भी सौभाग्यशाली बन जाते हैं॥ ३६॥ यद्यपि सारे संसारके जड़ और चेतन प्राणियोंको जल, स्थल और आकाशमें रहनेके अनेक ठिकाने हैं, तथापि अरे तुलसीदास! तेरे-जैसे दीनको तो एक मात्र राम-नामका ही सहारा है॥ ३७॥ तुलसीदास तो यही माँगता है कि मुझे केवल रामका ही भरोसा हो, रामका ही बल हो और राम-नामपर ही विश्वास हो जिसका स्मरण मात्र करनेसे सब प्रकारका शुभ, मंगल और कल्याण होता है॥ ३८॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम-नामसे ही जिसका प्रेम है, राम-नाम ही जिसका सहारा है तथा राम-नामपर ही जिसका विश्वास है उसके तो दोनों ओर (स्वार्थ और परमार्थमें) शुभ, मंगल और कुशल ही कुशल है॥ ३९॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग हरि-नामका भजन नहीं करते उनकी जीभ नागिनके समान है और उनका मुँह नागिनके बिलके समान है। जिसका रामसे प्रेम नहीं है उसका भाग्य ही फूटा समझना चाहिए (वह परम अभागा है)॥ ४०॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामका स्मरण करते ही जो हृदय द्रवित नहीं हो उठता उसका फट जाना ही अच्छा है। प्रभुका दर्शन करके जिन नेत्रोंसे आँसू नहीं बह चलते उन नेत्रोंका फूट जाना ही अच्छा है। रामका स्मरण करते ही जो शरीर पुलकित नहीं हो उठता वह शरीर भी किस कामका, वह तो जलकर भस्म ही हो जाय तभी अच्छा है॥ ४१॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस मनुष्यका शरीर रामका स्मरण करते, रणमें युद्ध करते, दान देते और गुरुके चरणोंपर गिरते समय पुलकित न हो उठे वह जीते जी संसारसे उठ जाय तो बहुत

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोरठा

हृदय सो कुलिस - समान, जो न द्रवहि हरि-गुन सुनत।
कर न रामगुन - गान, जीह सो दादुर-जीह-सम ॥ ४३ ॥
स्रवै न सलिल - सनेहु, तुलसी सुनि रघुबीर-जस।
ते नयना जनि देहु, राम ! करहु बरु आँधरो ॥ ४४ ॥
रहै न जल भरि पूरि, राम ! सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन - मैं धूरि, भरि भरि मूठी मेलिए ॥ ४५ ॥
बारक सुमिरत तोहिं, होहिं तिनहिं सनमुख सुखद।
क्यों न सँभारहि मोहिं, दयासिंधु दसरत्थके ? ॥ ४६ ॥
साहिब होत सरोष, सेवकको अपराध सुनि।
अपने देखे दोष, सपनेहु राम न उर धरेउ ॥ ४७ ॥

दोहा

तुलसी रामहिं आपु - तें, सेवककी रुचि मीठि ॥
सीतापतिसे साहिबहिं, कैसे दीजै पीठि ॥ ४८ ॥
तुलसी जाके होयगी, अंतर - बाहिर दीठ।
सो कि कृपालुहिं देइगो, केवट - पालहिं पीठ ॥ ४९ ॥
प्रभु तरु - तर, कपि डार - पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम-सों, साहिब सील - निधान ॥ ५० ॥

अच्छा हो ॥ ४२ ॥ जो हृदय रामका गुण - कीर्तन सुनते ही द्रवित न हो उठे वह वज्रके समान कठोर है और जो जीभ हरिके गुणोंका वर्णन न करे वह मेंढककी (टर्र-टर्र करनेवाली) जिह्वाके समान व्यर्थ है ॥ ४३ ॥ तुलसीदास कहते हैं रघुकुलके वीर राम ! हमें ऐसे नेत्र ही न दो जिनसे आपका यशोगान सुनते ही प्रेमाश्रु न बह चले। इससे तो यही अच्छा है कि हमें अन्धा ही बनाए रक्खो ॥ ४४ ॥ राम ! आपका सुयश सुनकर भी जिन आँखोंसे आँसू नहीं बह चलते उन आँखोंमें मुट्ठीभर धूल झोंक देनी चाहिए ॥ ४५ ॥ दयासिंधु ! दशरथके पुत्र राम ! जो एक बार भी हृदयसे आपका स्मरण कर लेता है, उसे सारे सुखद मंगल मिल जाते हैं फिर मेरी सँभाल आप क्यों नहीं कर रहे हैं ? (मुझे क्यों भूले बैठे हैं ?) ॥ ४६ ॥ ऐसा देखा जाता है कि सेवकका अपराध सुनकर उसका स्वामी क्रुद्ध हो जाता है, परन्तु आप तो ऐसे स्वामी हैं कि अपनी आँखों सेवकके दोष देखनेपर भी आप कभी स्वप्नमें भी उसपर ध्यान नहीं देते (फिर मुझे क्यों भुलाए बैठे हैं) ॥ ४७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जब रामको स्वयं ही अपने सेवकोंकी रुचिके अनुसार चलना अच्छा लगता है, तो फिर ऐसे सीतापतिके समान स्वामीसे कैसे विमुख होकर रहा जा सकता है ॥४८॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसकी भीतरकी और बाहरकी दोनों ही दृष्टियाँ खुली हैं, वह भला कभी केवटके पालक कृपालु रामसे विमुख होगा ? ॥ ४९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम-जैसा शीलवान् स्वामी और कहीं ढूंढे न मिलेगा। देखो ! प्रभु तो पेड़के नीचे बैठे हैं और उनके सेवक बन्दर सब पेड़पर चढ़े बैठे हैं फिर भी प्रभुने उन्हें अपने समान ही

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रे मन ! सब-सों निरस ह्वै, सरस राम - सों होहि ।
भलो सिखावन देत है, निसि-दिन तुलसी तोहि ॥ ५१ ॥
हरो चरहिं, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ ।
'तुलसी' स्वारथ - मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥ ५२ ॥
स्वारथ सीता - राम - सों, परमारथ सिय-राम ।
'तुलसी' तेरो दूसरे द्वार, कहा कहु काम ॥ ५३ ॥
स्वारथ - परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर ।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न 'तुलसी' तोर ॥ ५४ ॥
'तुलसी' स्वारथ राम-हित, परमारथ रघुबीर ।
सेवक जाके लखन-से, पवन - पूत रनधीर ॥ ५५ ॥
ज्यों जग बैरी मीनको, आपु - सहित, बिनु बारि ।
त्यों 'तुलसी' रघुबीर - बिनु, गति आपनी बिचारि ॥ ५६ ॥
राम - प्रेम - बिनु दूबरो, राम - प्रेम ही पीन ।
रघुबर कबहुँक करहुगे, 'तुलसी' ज्यों जल-मीन ॥ ५७ ॥
राम सनेही, राम गति, राम-चरन - रति जाहि ।
'तुलसी' फल जग-जनमको, दियो बिधाता ताहि ॥ ४८ ॥
आपु आपने-तें अधिक, जेहि प्रिय सीता - राम ।
तेहिके पगकी पानही, तुलसी - तनुको चाम ॥ ५९ ॥

माने रक्खा ॥५०॥ अरे मन ! यह तुलसीदास मुझे दिन-रात यही अच्छी सीख देता रहता है कि सबसे मन हटाकर केवल रामसे ही प्रेम किया कर ॥५१॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसे वनस्पतिके हरे रहनेपर लोग उससे खाते हैं, उसके जल जानेपर उससे तापते हैं और उसके फलनेपर (उसे लेनेके लिये) हाथ फैलाते हैं, ऐसे ही संसारके सभी मित्र भी स्वार्थी हैं (जो मित्रकी सुखी अवस्थामें उसे लूटते-खाते और विपत्तिमें उसका आनन्द लेते हैं) । राम ही ऐसे हैं जो परमार्थी हैं (सदा ध्यान रखते हैं) ॥ ५२ ॥ अरे तुलसी ! जब तेरा स्वार्थ भी सीता-रामसे ही सधता है और परमार्थ भी सीता-रामसे ही सधता है तब तुझे दूसरोंका द्वार झाँकनेकी क्या पड़ी है ? ॥५३॥ अरे तुलसी ! जब तेरा स्वार्थ और परमार्थ सब (राम)-से ही होनेवाला है, तब तू दूसरोंके द्वारपर जा-जाकर क्या गिड़गिड़ाता फिरता है ? यह तेरे लिये उचित नहीं है ॥ ५४ ॥ जिस रामके सेवक लक्ष्मण तथा पवनपुत्र हनुमान-जैसे रणधीर हों, उसीसे तेरे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधेंगे ॥ ५५ ॥ जैसे जलके बिना मछली अपनेको और सारे संसारको शत्रु समझती है, वैसे ही तुलसी ! रघुवीरके बिना तू भी अपनी वैसी ही गति समझ ले ॥५६॥ तुलसीकी यह दशा है कि उसे रामका प्रेम मिले तो दुबला हो जाता है और रामका प्रेम मिलते ही तगड़ा हो उठता है । क्या तुलसीको राम जल और मछली-जैसा प्रेम करनेवाला बनावेंगे ? ॥५७॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसे मछली जलसे प्रेम करती है वैसे ही जो प्राणी रामसे स्नेह करता है, राम ही जिसका एक मात्र सहारा है तथा रामके चरणोंसे जिसका प्रेम है उसीका जन्म संसारमें विधाताने सफल किया है ॥ ५८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्राणीको सीता और राम अपनेसे भी अधिक प्रिय हैं उसके पैरोंके जूते मेरे शरीरके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्वारथ - परमारथ - रहित, सीता - राम - सनेह।
'तुलसी' सो फल चारिको, फल हमार मत एह ॥ ६० ॥
जे जन रूखे बिषय - रस, चिकने राम - सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम-के, कानन बसहिं कि गेह ॥ ६१ ॥
जथा - लाभ संतोष सुख, रघुबर - चरन - सनेह।
'तुलसी' जौ मन खूद - सम, कानन बसहु कि गेह ॥ ६२ ॥
'तुलसी' जो पै राम - सों, नाहिंन सहज सनेह।
मूँड़ मुँड़ायो बादि ही, भाँड़ भयो तजि गेह ॥ ६३ ॥
'तुलसी' श्रीरघुबीर तजि, करै भरोसो और।
सुख - संपतिकी का चली, नरकहु नाहीं ठौर ॥ ६४ ॥
'तुलसी' परिहरि हरि-हरहिं, पाँवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहति होहिंगे, गनिकाके - से पूत ॥ ६५ ॥
सेए सीता - राम नहिं, भजे न संकर - गौरि।
जनम गँवायो बादि ही, परत पराई पौरि ॥ ६६ ॥
'तुलसी' हरि - अपमान - तें, होइ अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गए, सदल सकुल कुरुराज ॥ ६७ ॥

चमड़ेसे बनाए जाने चाहिएँ ॥ ५९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि हमारा मत तो यही है कि जो व्यक्ति स्वार्थ और परमार्थ सब छोड़कर सीता और रामसे स्नेह करता है, वह चारों पदार्थोंका फल पानेका अधिकारी है (उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–ये चारों पदार्थ सुलभ हो जाते हैं) ॥६०॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो मनुष्य सांसारिक विषय वासनाओंसे विमुख रहते हुए केवल रामसे प्रेम करता है, वह चाहे घरमें रहे या वनमें, वह रामका प्रिय पात्र हो ही जाता है ॥६१॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके चरणोंसे जिसका स्नेह बना रहता है और थोड़े लाभमें सन्तुष्ट होकर मस्त रहता है वह खुद्दी या पछोरनके समान चाहे घरमें पड़ा रहे या वनमें फेंक दिया जाय उसका कोई क्या करेगा ॥ ६२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसे रामसे स्वाभाविक प्रेम नहीं है वह अपना घर छोड़कर, सिर मुँड़ाकर, भाँड़ों-जैसा पाखण्डी बना क्या घूमता है ? ॥६३॥ जो मनुष्य रामको छोड़कर किसी दूसरेका भरोसा किए बैठा है उसे नरक-तकमें तो स्थान मिलेगा नहीं, फिर वह सम्पत्तिका सुख क्या भोग पावेगा ? ॥६४॥ तुलसीदास कहते हैं, कि जो नीच लोग हरि-(विष्णु) और हर (शिव)-को छोड़कर भूत-प्रेतकी पूजा करते फिरते हैं, उनकी अन्तमें वैसी ही दुर्गति होती है जैसी वेश्याके पुत्रकी होती है (सब उसे चिढ़ाते हैं) ॥६५॥ जिसने सीता और रामकी सेवा नहीं की या शिव और पार्वतीका भजन नहीं किया उसने दूसरोंकी ड्योढ़ीपर पड़े रहकर (दूसरोंका भरोसा करके) अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर डाला ॥ ६६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि समाजमें हरिका अपमान करनेवालेकी वैसी ही दुर्दशा होती है जैसे राज्य भोगते हुए भी (कृष्णका अपमान करनेपर) कुरुराज दुर्योधन अपनी सेना और कुटुम्ब-सहित धूलमें जा मिला

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' रामहिं परिहरे, निपट हानि, सुनु ओझ।
सुरसरि - गत सोई सलिल, सुरा - सरिस गंगोझ ॥ ६८ ॥
राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन - माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि, सिरपर पगतर - छाँह ॥ ६९ ॥
साहिब सीता - नाथ - सों, जब घटि है अनुराग।
'तुलसी' तब हीं भाल - तें, भभरि भागिहै भाग ॥ ७० ॥
करिहौ कोसलनाथ तजि, जबहि दूसरी आस।
जहाँ - तहाँ दुख पाइहौ, तब ही 'तुलसीदास' ॥ ७१ ॥
बिंध न इँधन पाइए, सायर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेर - घर, जो बिपच्छ रघुबीर ॥ ७२ ॥
बरषाको गोबर भयो, को चह, को कर प्रीति ?
'तुलसी' तू अनुभवहि अब, राम - बिमुखकी रीति ॥ ७३ ॥
सबहि समरथहिं सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय, 'तुलसी' कहा बिचारि ॥ ७४ ॥
'तुलसी' उद्यम करम जग, जब जेहिं राम सुडीठि।
होइ सुफल सोइ ताहि सब, सनमुख प्रभु, तन पीठि ॥ ७५ ॥

(नष्ट हो गया) ॥ ६७ ॥ तुलसीदास कहते हैं—अरे ओझा[1] ! सुन ! रामको छोड़ देनेसे मनुष्यकी वैसी ही अप्रतिष्ठा होती है जैसे गंगोझ[2] जल गंगाकी धारासे अलग हो जानेपर मदिराके समान अपवित्र माना जाने लगता है ॥ ६८ ॥ जब रामका ध्यान मनसे हटने लगता है तब मनमें सांसारिक माया बढ़ने लगती है, पर जब मनमें प्रभुका ध्यान बना रहता है तब माया वैसे ही घटती चली जाती है जैसे सूर्यके दूर होनेपर छाया भी दूर-तक पड़ती है पर जब सूर्य सिरपर आ रहता है, तो छाया पैरके तले आ पहुँचती है ॥ ६९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जहाँ प्रभु रामसे प्रीति घटी कि समझ लो उसका सौभाग्य भी उसके माथेसे धुल मिटा ॥ ७० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि कोशलपति रामको छोड़कर जहाँ दूसरेकी आशा लगाई कि जहाँ-तहाँ दुःख ही दुःख हाथ लगेगा ॥ ७१ ॥ यदि राम मुँह फेर बैठे तो विन्ध्य पर्वतपर जानेसे भी इँधन (जलानेका समान) ढूँढ़े न मिलेगा, समुद्रमें भी जल न मिलेगा और कुबेरके घर पहुँचनेपर भी उपवास करना पड़ जायगा ॥ ७२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामसे मुँह फेर बैठनेकी दशा तू यही समझ ले (कि तेरी स्थिति) बरसातके गोबर-जैसी हो जायगी जिसे न कोई लेना चाहेगा और न उससे प्रीति ही करेगा ॥ ७३ ॥ तुलसीदास विचारकर कहते हैं कि राम कब किसको प्रिय नहीं होते। अरे ! वे तो जैसे सामर्थ्यवान्‌को सुखद और प्रिय हैं वैसे ही असमर्थके लिये भी हितकारी और प्रिय हैं ॥७४॥ तुलसीदास कहते हैं जब जिसपर रामकी कृपा हो जाती है और जब वह प्रभुके सन्मुख होकर और शरीर (शारीरिक सुख) से पीठ दिए (विमुख) बैठना है तभी उसके उद्योग और कर्म (भाग्य) दोनों ही सुफल हो जाते और सब सहायक हो जाते हैं।

१. ओझ = ओझा (हरि-हरकी पूजा छोड़कर भूत-प्रेतादिकी पूजा करने और करानेवाले व्यक्ति)।
२ गंगोझ = गंगाकी धाराके हट जानेपर बचा हुआ गड्ढोंका जल ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रेम - काम - तरु परिहरत, सेवत कलि - तरु ठूँठ।
स्वारथ - परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ ॥ ७६ ॥
निज दूषन, गुन रामके, समुझे 'तुलसीदास'।
होय भलो कलिकाल हू, उभय लोक अनयास ॥ ७७ ॥
कै तोहिं लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु - प्रिय होइ।
दुइ-महँ रुचै जो सुगम सो, कीवे 'तुलसी' सोइ ॥ ७८ ॥
तुलसी दुइ - महँ एक ही खेल, छाँड़ि छल, खेलु।
कै करु ममता राम - सों, कै ममता परहेलु ॥ ७९ ॥
निगम अगम, साहेब सुगम राम साँचिली चाह।
अंबु - असन अवलोकियत सुलभ सबै जग - माँह ॥ ८० ॥
सनमुख आवत पथिक ज्यों, दिए दाहिनो - बाम।
तैसोइ होत सु आपको, त्यों ही 'तुलसी' राम ॥ ८१ ॥
राम - प्रेम - पथ पेखिए, दिए विषय - तनु पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरे, होत साँपहूँ डीठि ॥ ८२ ॥
'तलसी' जौलौं बिषयकी, मुधी माधुरी मीठि।
तौ - लों सुधा सहस्र सम, राम - भगति सुठि सीठि ॥ ८३ ॥

॥ ७५ ॥ जो लोग कल्पवृक्षके समान सब प्रकारका सुख दे सकनेवाले रामसे प्रेम करना छोड़कर कलियुग-रूपी ठूंठे वृक्ष (संसारकी माया)-की सेवा करने चलते हैं और उसीसे अपना स्वार्थ और परमार्थ दोनों साध लेना चाहते हैं, उनके सारे मनोरथ निष्फल हो जाते हैं ॥ ७६ ॥ तुलसीदास कहते हैं, कि यदि तू यह समझता रहे कि मुझमें सब दोष ही दोष हैं और राममें सब गुण ही गुण हैं तो इस कलिकालमें भी तेरे दोनों लोकोंके कार्य (स्वार्थ और परमार्थ) अनायास ही सिद्ध हो जायँ। (इस लोकका कार्य 'स्वार्थ' है तथा परलोकका कार्य परमार्थ या मुक्ति है) ॥ ७७ ॥ या तो तू ही रामसे प्यार कर या राम ही तुझे प्रिय समझें। तुलसीदास कहते हैं कि इन दोनोंमें से जो तुझे सुगम जान पड़े, वही कर ॥ ७८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सारा छल छोड़कर तू बस एक ही खेल खेल। यदि ममता ही करनी है तो तू रामसे ही ममता कर या अन्य सांसारिक ममता तू छोड़ हटा ॥ ७९ ॥ वेदका मार्ग (यज्ञ, तप, व्रत, योग आदि) बड़ा कठिन है किन्तु यदि रामसे सच्ची लगन हो तो स्वामी रामको पा लेना वैसे ही सुगम है जैसे संसारमें अन्न-जल सबको सुलभ है ॥८०॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसे सामनेसे आता हुआ पथिक अपने दाएँ-बाएँ देखता चलता है वैसे ही राम भी आपके दाएँ-बाएँ (हित)-का विचार करते रहते हैं ॥ ८१ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसे केंचुल छोड़े देनेपर सर्पकी दृष्टि भी खुल जाती है (उसे अपना हित या अहित स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है), वैसे ही तू भी सांसारिक विषयोंसे मुँह मोड़कर केवल रामके प्रेमपर ही मन लगा ॥८२॥ तुलसीदास कहते हैं कि जबतक तू सांसारिक विषयोंकी झूठी मधुरता छोड़ नहीं देता तब-तक सहस्रों अमृतोंके समान रामकी भक्ति तुझे नीरस और बेकार जान पड़ेगी ॥८३॥ तुलसीदास कहते हैं कि तीनों लोकों और तीनों कालों (भूत,

८३—मुधी = व्यर्थ। सीठि = नीरस।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जैसो तैसो रावरो, केवल कोसल - पाल।
तौ तुलसी - को है भलो, तिहूँ लोक, तिहुँ काल ॥ ८४ ॥
है तुलसीके एक गुन, अवगुन-निधि कह लोग।
भलो भरोसो रावरो, राम रीझिबे जोग ॥ ८५ ॥
प्रीति राम - सों, नीति - पथ चलिय, राग-रिस जीति।
'तुलसी' संतनके मते, इहै भगतिकी रीति ॥ ८६ ॥
सत्य बचन, मानस बिमल, कपट - रहित करतूति।
'तुलसी' रघुबर - सेवकहि, सकै न कलिजुग धूति ॥ ८७ ॥
'तुलसी' सुखी जो राम - सों, दुखी सो निज करतूति।
करम, बचन, मन ठीक जेहि, तेहि न सकै कलि धूति ॥ ८८ ॥
नातो नाते रामके, राम - सनेह सनेह।
तुलसी माँगत जोरि कर, जनम-जनम सिव देहु ॥ ८९ ॥
सब साधनको एक फल, जेहि जान्यो सोइ जान।
ज्यों त्यों मन - मंदिर बसहिं, राम धरे धनु - बान ॥ ९० ॥
जौ जगदीस तौ अति भलो, जो महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम - भरि, राम - चरन - अनुराग ॥ ९१ ॥

वर्त्तमान और भविष्यत्)-में तभीतक तेरा कल्याण होगा जबतक तू जैसे भी हो वैसे केवल कोशलेश रामका ही भरोसा किए रक्खेगा ॥ ८४ ॥ तुलसीमें एक मात्र यही गुण है कि उसे लोग अवगुणोंका भांडार बताते हैं। इसीलिये राम ! ऐसे अवगुणोंके भांडारपर रीझनेवाले (कृपा करनेवाले) एक मात्र आपका ही उसे पूरा भरोसा भी है ॥ ८५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सन्तोंके कथनके अनुसार 'भक्ति' करनेकी यही रीति है कि सब राग, द्वेष, क्रोध जीतकर नीति-मार्गपर चलते हुए रामसे प्रीति करते रहिए ॥ ८६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो सत्यवादी है, जिसका हृदय निर्मल है और जिसके किसी काममें छल-कपट नहीं रहता है ऐसे रामभक्तको कलियुग कभी धोखा नहीं दे सकता ॥८७॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसे अपनी करतूतोंपर दुःख होता हो, रामसे ही सुख मिलता हो तथा जिसका कर्म, वचन और मन सब शुद्ध हो उसे कलियुग कभी धोखा नहीं दे सकता ॥ ८८ ॥ तुलसीदास हाथ जोड़कर भगवान् शंकरसे यही (भिक्षा) माँगते हैं कि उसे प्रत्येक जन्मके लिये यही वरदान दे दें कि इस संसारमें जो भी नाता हो वह रामके नाते हो, जिससे किसीसे स्नेह हो वह स्नेह रामके ही स्नेहके कारण हो ॥ ८९ ॥ जिससे जानना-समझना चाहा, उसने भली प्रकार जान-समझ लिया कि सब साधनोंका एकमात्र यही फल है कि जैसे भी हो वैसे धनुष-बाण धारण किए हुए राम मेरे मन-मन्दिरमें आ बसें ॥ ९० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि राम जगत्के स्वामी हैं, तब भी बहुत अच्छा है और यदि वे केवल 'राजा राम' हैं तब भी मेरा बड़ा भाग्य है क्योंकि तुलसी तो जीवन-भर उनके ही चरणोंसे प्रेम किए रखना चाहता है ॥ ९१ ॥

८७—धूती सकै=धोखा दे सकता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परहुँ नरक, फल-चारि - सिसु मीच - डाकिनी खाउ।
'तुलसी' राम सनेह - को जो फल, सो जरि जाउ ॥ ९२ ॥
हित-सों हित, रति राम-सों, रिपु - सों बैर बिहाउ।
उदासीन, सब सों सरल, 'तुलसी' सहज सुभाउ ॥ ९३ ॥
'तुलसी' ममता राम - सों, समता सब संसार।
राग, न रोष, न दोष - दुख, दास भये भव - पार ॥ ९४ ॥
रामहिं डरु, करु राम - सों ममता, प्रीति, प्रतीति।
'तुलसी' निरुपधि रामको भए - हारहू जीति ॥ ९५ ॥
'तुलसी' राम कृपालु - सों, कहि सुनाउ गुन - दोष।
होय दूबरी दीनता, परम पीन संतोष ॥ ९६ ॥
सुमिरन - सेवा राम - सों, साहब - सों पहिचानि।
ऐसेहु लाभ न ललक जो, 'तुलसी' नित हित-हानि ॥ ९७ ॥
जाने जानत जोइए, बिनु जाने को जान।
'तुलसी' यह सुनि समुझि हिय, आनु धरे धनु - बान ॥ ९८ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि चाहे नरकमें पड़ना पड़ जाय चाहे चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-के फल-रूपी बच्चोंको मृत्यु-रूपिणी डाकिनी खा डाले (चारों पदार्थोंका फल न मिले) और चाहे रामकी भक्तिका फल भी जलकर भस्म हो जाय, पर मेरा प्रेम रामसे बना ही रहे (वह कभी नष्ट न हो) ॥ ९२ ॥ तुलसीदासका तो यही सहज स्वभाव बन गया है कि वह सबसे उदासीन और सरल (सीधा) बना रहकर, शत्रु-तकसे भी वैर छोड़कर रामसे ही प्रेम करता रहता है और हित करनेवालेका हित करता रहता है ॥ ९३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस राम-भक्तमें राग, रोष, दोष और दुःख कुछ भी न हो, जो संसारके सभी प्राणियोंको समान समझता हुआ केवल रामसे ही प्रेम करता रहता हो, उस भक्तको ही संसार-सागरसे पार हुआ समझो ॥ ९४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि डरना हो तो केवल रामसे डरो और ममता, प्रेम तथा विश्वास भी करना हो तो रामसे ही करो। ऐसे रामके सहारे निष्कपट होकर रहने लगोगे तो तुम्हारी हार भी जीतमें बदल जायगी (तुम्हारी बिगड़ी भी सुधर जायगी) ॥ ९५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपने गुण और दोष कह सुनाने हों तो कृपालु रामसे ही कह सुनाओ तभी तुम्हारी दीनता दूर हो पावेगी और तभी मनमें पूर्ण सन्तोष हो पावेगा ॥ ९६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामका ही स्मरण करो, उन्हींकी सेवा करो और उसी प्रभुसे जान-पहिचान भी बनाए रक्खो। यदि ऐसे लाभपर तुम्हारा मन नहीं ललकता, तो समझ लो कि तुम्हारे दिन बुरे ही आ गए हैं ॥ ९७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु रामको भली प्रकार जानकर सदा हृदयमें उनका ध्यान किया कीजिए क्योंकि ज्ञान प्राप्त किए बिना उन्हें कौन जान सका है, यह सुन और समझकर ही अपने हृदयमें धनुष-बाण-धारी रामका हृदयमें ध्यान करते रहा कीजिए ॥ ९८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान - बिहीन।
'तुलसी' त्रिपथ बिहाय गो, राम - दुआरे दीन ॥ ९९ ॥
बाधक सब सबके भए, साधक भए न कोइ।
'तुलसी' राम कृपालु - तें, भलो होय सो होइ ॥१००॥
संकर - प्रिय मम द्रोही, सिव - द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक - महँ बास ॥ १०१ ॥
बिलग बिलग सुख संग दुख, जनम-मरन सोइ रीति।
रहियत राखे रामके, गए ते उचित अनीति ॥ १०२ ॥
जाय कहब करतूति - बिनु, जाय जोग बिनु - छेम।
तुलसी जाय उपाय सब, बिना राम - पद - प्रेम ॥ १०३ ॥
लोग मगन सब जोग ही, जोग जाय बिनु - छेम।
त्यों तुलसीके भावगत, राम - प्रेम बिनु - नेम ॥ १०४ ॥
राम निकाई रावरी, है सब ही को नीक।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसी-क ॥ १०५ ॥
तुलसी राम जो आदर्‌यो, खोटो खरो खरोइ।
दीपक - काजर सिर धर्‌यो, धर्‌यो सु धर्‌यो धरोइ ॥ १०६ ॥

लोग कठमलिया (काठकी माला पहनकर बनावटी वैष्णव साधु बननेवाले)-को ही कर्मनिष्ठ साधु मानते हैं और सच्चे ज्ञानीको ज्ञान-रहित (मूर्ख) समझते हैं, वे तीनों मार्ग (ज्ञान, कर्म और उपासना)-से रहित होकर रामके द्वारपर पहुँचकर भी दीन (दुखी) ही बने रह जाते हैं ॥९९॥ तुलसीदास कहते हैं कि सबके काममें बाधा डालनेवाले तो सभी (बहुत) मिल जाते हैं परन्तु काम बनानेवाला कोई नहीं दिखाई देता। अतः, यदि कोई भला कर पावेगा तो कृपालु राम ही कर पावेंगे (दूसरा कोई नहीं) ॥१००॥ जो लोग शंकरके प्रिय होकर मुझसे (रामसे) द्रोह करते हैं, अथवा मेरे भक्त होकर शिवसे द्वेष करते हैं, वे मनुष्य कल्पपर्यन्त (ब्रह्माके एक दिन अर्थात् १००० युग या महायुग चार अरब बत्तीस करोड़ मानव वर्ष-तक) घोर नरकमें बास करेंगे ॥१०१॥ प्रकृतिकी यही रीति है कि सुख और दुःख, जन्म और मृत्यु तथा उचित और अनुचित अलग-अलग होते हुए भी सदा साथ लगे रहते हैं। ऐसी स्थितिमें राम ही रक्षा करें तभी रक्षा हो सकती है नहीं तो अनीति करनेवालोंको तो मिट ही जाना चाहिए ॥१०२॥ बिना कुछ करनी किए डींग हाँकना और क्षेम (कुशल) या रक्षाके साधनके बिना सुख-साधन पाना वैसे ही व्यर्थ है जैसे रामके चरणोंमें प्रेम किए बिना सारे उपाय व्यर्थ हैं ॥१०३॥ तुलसीदास कहते हैं कि सब लोग योग (सुखके साधन जुटाने)-में ही लगे हुए हैं परन्तु जैसे बिना क्षेम (रक्षकी व्यवस्था)-के बिना साधन जुटाना व्यर्थ होता है उसी प्रकार निष्ठाके बिना रामके प्रति प्रेम भी सफल नहीं हो पाता ॥१०४॥ राम ! आपकी कृपा सबके लिये अच्छी होती है। यदि यह बात सत्य है तो तुलसीके लिये भी अच्छी ही होगी ॥१०५॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसने रामका आदर किया उसका खोटापन भी वैसे ही अत्यन्त खरा हो गया जैसे दीपकका काजल मस्तकपर (डिठौना, रूपमें लगा दिया जाता है तो वह लगा ही रहने दिया जाता है (मिटाया नहीं जाता) ॥ १०६ ॥ मोरका शरीर बड़ा ही रंग-बिरंगा होता है, उसकी बोली भी कायरोंकी-सी होती है, वह आहार भी

१. त्रिपथ=कर्म, ज्ञान और उपासना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार, मन घोर।
तुलसी हरि भे पच्छ - धर, तातें कह सब मोर ॥ १०७ ॥
लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज ?
सो तुलसी महँगो कियो, राम गरीब - निवाज ॥ १०८ ॥
घर - घर माँगे टूक, पुनि भूपति पूजे पाँय।
जे तुलसी तब राम - बिनु, ते अब राम सहाय ॥ १०९ ॥
तुलसी राम सुदीठि - तें, निबल होत बलवान।
बैर बालि - सुग्रीवके, कहा कियो हनुमान ॥ ११० ॥
तुलसी रामहु - तें अधिक, राम - भगत जिय जान।
रिनया राजा राम भे, धनिक भए हनुमान ॥ १११ ॥
कियो सुसेवक-धरम कपि, प्रभु कृतज्ञ जिय जानि।
जोरि हाथ ठाढ़े भए बर - दायक बर - दानि ॥ ११२ ॥
भगत - हेतु, भगवान प्रभु राम, धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत - नर - अनुरूप ॥ ११३ ॥

सर्पका करता है और उसका मनका भी कठोर होता है परन्तु जबसे भगवान् कृष्णने उसके पंख (अपने मुकुटमें) लगा लिए, तभीसे लोग उसे 'मोर' (मेरा) कहने लगे। (इतने दोष होते हुए भी लोग उसे प्रेमसे अपनाने लगे[1]) ॥१०७॥ जिस तुलसीको कभी एक फूटी कौड़ी-तक किसीसे नहीं मिलती थी, न जिसे कोई चाहता था और न जो किसीके कामका ही था, उसको भी दीनोंपर दया करनेवाले रामने बड़ा महँगा कर डाला (उसकी भी प्रतिष्ठा बढ़ा दी) ॥ १०८ ॥ जो तुलसी पहले घर-घर टुकड़े (भिक्षा) माँगता फिरता था, वह इतना बड़ा हो गया है कि अब राजा-तक आ-आकर उसके पैर पूजते हैं क्योंकि उस समय (पहले) तो तुलसीको रामका सहारा नहीं था पर अब राम उसके सहायक हो गए हैं ॥१०९॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसपर रामकी सुदृष्टि (कृपा) हो जाती है वह निर्बल भी बलवान् हो जाता है जैसे बालि और सुग्रीवके झगड़ेमें (महावीर होकर भी) हनुमान् कुछ न कर पाए ? (हनुमान् 'महावीर' होते हुए भी बालिको परास्त नहीं कर पाए, पर रामकी कृपासे निर्बल सुग्रीवने भी बालिको मार डाला।) ॥११०॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके भक्तको रामसे भी श्रेष्ठ समझो। देखो हनुमान् (सेवाका दान देते रहनेसे) दानी बन बैठे और राम (अपने भक्तोंकी भक्ति और सेवाका ऋण लेते लेते) सदा अपने भक्तोंके ऋणिया (कर्जदार) ही बने रह गए ॥ १११ ॥ कपि हनुमानने तो अपना धर्म समझकर श्रेष्ठ सेवकका काम किया था किन्तु अपने जीमें यह समझकर भी राम सब प्रकारसे कृतज्ञ ही बने रहे और वे वरदान देनेवाले प्रभु भी हनुमान्‌के सन्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गए (कि मैं तुम्हारे उपकारका ऋणी हूँ) ॥११२॥ भगवान् रामने भक्तोंके हितके लिये राजाका शरीर धारण करके साधारण मनुष्योंकी भाँति अनेक परम पवित्र लीलाएँ कर दिखाईं ॥११३॥ जिस सच्चिदानंद घन परमात्माको ज्ञान,

---

१. अब तो मोरको भारतका राष्ट्रीय पक्षी मान लिया गया है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ज्ञान - गिरा - गोतीत, अज, माया - गुन - गो - पार।
सोइ सच्चिदानंदघन, करत चरित्र उदार॥ ११४॥
हिरन्याक्ष भ्राता - सहित, मधु - कैटभ बलवान।
जेहि मारे, सोइ अवतरे, कृपासिंधु भगवान॥ ११५॥
सुद्ध सच्चिदानंदमय - कंद, भानु-कुलकेतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति - सागर - सेतु॥ ११६॥
बाल-बिभूषन बसन बर, धूरि - धूसरित अंग।
बाल - केलि रघुबर करत, बाल-बंधु सब संग॥ ११७॥
अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल - मोद।
मुदित मातु-पितु-लोग लखि, रघुबर बाल - बिनोद॥ ११८॥
राज - अजिर राजत रुचिर, कोसल - पालक - बाल।
जानु - पानि - चर चरित बर, सगुन - सुमंगल - माल॥ ११९॥
नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन, भूषन ललित, ललित अनुज-सिसु साथ॥ १२०॥
राम, भरत, लछिमन ललित, सत्रु - समन सुभ नाम।
सुमिरत दसरथ - सुवन सब पूजिहिं सब मन-काम॥ १२१॥
बालक कोसल - पालके, सेवक - पाल कृपाल।
तुलसी - मन - मानस बसत, मंगल मंजु मराल॥ १२२॥

वाणी और इन्द्रियोंसे भी नहीं जाना जा सकता तथा जो अजन्मा है और माया, गुण और इन्द्रियोंसे भी बहुत दूर है, वही ये सब उदार लीलाएँ किए जा रहा है ॥११४॥ जिसने हिरण्याक्षको, उसके भाई (हिरण्यकशिपु)-को तथा बलवान् मधु और कैटभको मार डाला उसी कृपालु भगवान्‌ने ही तो (रामके रूपमें) अवतार धारण किया है ॥११५॥ शुद्ध, सच्चिदानंद, संसार-सागरसे पार करनेके लिये पुल बनकर तारनेवाले, सूर्यकुलकी पताका राम ही मनुष्यके रूपमें अनेक लीलाएँ किए जा रहे हैं ॥११६॥ बच्चोंकेसे वस्त्र और आभूषण धारण करके धूल-भरे शरीरसे राम अपने बाल-सखाओं और भाइयोंके साथ बाल-लीलाएँ किए जा रहे हैं ॥११७॥ रामका बाल-विनोद देख-देखकर माता, पिता और प्रजाको बड़ा आनन्द मिल रहा है। आए दिन नित्य ही अयोध्यामें आनन्द-मंगल होते जा रहे हैं ॥११८॥ कोशलेश राजा दशरथके चारों बालक राजा दशरथके आँगनमें घुटनोंके बल चलते और मनभावनी लीलाएँ करते हुए बड़े प्यारे लग रहे हैं। यह शकुन मंगल-कारक है ॥११९॥ जिन रामका स्वरूप भी मोहक है, उनकी लीलाएँ भी मनोहर हैं, नाम भी रसीला है, तथा उनके वस्त्र और आभूषण भी सुहावने हैं, वे राम अपने छोटे भाइयों और बाल-सखाओंके साथ (खेलते हुए) बड़े प्यारे लग रहे हैं ॥१२०॥ महाराज दशरथके चारों पुत्र राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सुन्दर शुभ नाम स्मरण करते रहनेसे सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥१२१॥ कोशलेश राजा दशरथके पुत्र, कृपालु और भक्तोंके पालक राम तुलसीके हृदय-रूपी मान-सरोवर-में मंगलकारी सुन्दर हंस बनकर तैर रहे हैं ॥१२२॥ कृपालु राम अपने भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर - हित - लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज - तनु, सुनत मिटहिं जग-जाल ॥ १२३ ॥
निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर, महि, गो, द्विज-लागि।
सगुन - उपासक संग तहँ, रहे मोच्छ सब त्यागि ॥ १२४ ॥
परमानंद कृपायतन, मन परिपूरन - काम।
प्रेम - भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम ॥ १२५ ॥
बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता - तें बरु तेल।
बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल ॥ १२६ ॥
हरि - माया - कृत - दोष गुन, बिनु हरि-भजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस बिचारि मन-माहिं ॥ १२७ ॥
जो चेतन - कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव, ते धन्य ॥ १२८ ॥
श्रीरघुबीर - प्रताप तें, सिंधु तरे पाषान।
ते मति - मंद जे राम तजि, भजहिं जाय प्रभु आन ॥ १२९ ॥
लव - निमेष - परमान जुग, बरष, कलप सर चंड।
भजहि न मन तेहि राम-कहँ, काल जासु कोदंड ॥ १३० ॥
तब लगि कुसल न जीव-कहँ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
जब लगि भजत न राम-कहँ, सोक-धाम तजि काम ॥ १३१ ॥

देवताओंके हितके लिये मनुष्यका रूप धारण करके ऐसी अनेक लीलाएँ किए जा रहे हैं, जिन्हें सुनते ही सारी सांसारिक बाधाएँ नष्ट हो मिटती हैं ॥१२३॥ देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये प्रभु राम स्वेच्छासे अवतार लेते हैं और सगुण ब्रह्मके उपासक भक्त भी मोक्षका लोभ छोड़कर उन्हींके साथ साथ लगे रहते हैं ॥१२४॥ सारी मनोकामनाएँ पूर्ण कर डाला परमानंद-स्वरूप कृपानिधान राम! हमें प्रेम-पूर्वक अपनी अचल भक्ति दे डालिए ॥१२५॥ पानी मथनेसे घी और बालू पेरनेसे तेल भले ही निकल आवे पर बिना हरि-भजनके कोई संसारकी झंझटोंसे उद्धार नहीं पा सकता। यह अटल सिद्धान्त है ॥ १२६ ॥ यह निश्चय समझ लो कि हरि-भजनके बिना भगवान्‌की मायासे उत्पन्न गुण (सत्त्व, रज, तम) और दोष नहीं मिट पाते, इसलिये सब काम-धाम छोड़कर रामका भजन किया करो ॥ २७ ॥ जो चेतनको जड और जडको चेतन कर दे सकता है उस समर्थ रामका जो भजन करता है कि वही पुरुष धन्य है ॥१२८॥ जिन रामके प्रतापसे पत्थर भी समुद्रपर तैरने लगे, उन रामको छोड़कर जो लोग किसी अन्य प्रभुका सहारा पकड़ते फिरते हैं, वे सब बड़े ही मूर्ख हैं ॥१२९॥ अरे मन! तू उन रामकी शरणमें क्यों नहीं जा पड़ता जिनके हाथमें काल (मृत्यु)-का धनुष है और एक पलसे लेकर युग-तक और वर्षसे लेकर कल्प-तक क्षणोंके बाण विराजमान हैं (जिनके हाथमें काल स्वयं है) ॥ १३० ॥ जबतक जीव सब शोक उत्पन्न करनेवाले कामको छोड़कर रामकी शरणमें नहीं जा पहुँचता तबतक न तो उसका कल्याण ही हो सकता, न उसे भी स्वप्नमें भी शान्ति मिल पा सकती ॥१३१॥ जबतक सत्संग न किया जाय तबतक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिनु सतसंग न हरि-कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम - पद, होय न दृढ अनुराग ॥ १३२ ॥
बिनु बिस्वास भगति नहिँ, तेहि बिनु द्रवहिँ न राम।
राम - कृपा - बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिस्राम ॥ १३३ ॥

सोरठा

अस बिचारि मन धीर, तजि कुतर्क, संसय सकल।
भजहु राम, रघुबीर, करुनाकर, सुंदर, सुखद ॥ १३४ ॥
भाव - बस्य भगवान, सुख-निधान करुना-भवन।
तजि ममता, मद, मान, भजिय सदा सीता-रमन ॥ १३५ ॥
कहहिँ बिमल - मति संत, बेद-पुरान बिचारि अस।
द्रवैं जानकी - कंत, तब छूटै संसार - दुख ॥ १३६ ॥
बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग-बिनु।
गावहिँ बेद - पुरान, सुख कि लहिय हरि - भगति - बिनु ॥ १३७ ॥

दोहा

रामचंद्र - के भजन - बिनु, जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सोइ नर, पसु बिनु - पूँछ - बिषान ॥ १३८ ॥
जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ।
सनमुख होत जो राम - पद, करइ न सहज सहाइ ॥ १३९ ॥

हरिकी कथा नहीं अच्छी लगती। जबतक हरिकथा न सुनते रहा जाय तबतक मोह नहीं दूर हो पा सकता और जबतक मोह नहीं मिट जाता तबतक रामके चरणोंमें दृढ प्रीति नहीं हो पा सकती ॥ १३२ ॥ बिना विश्वासके भक्ति नहीं होती। जबतक भक्ति नहीं हो जाती तबतक राम प्रसन्न नहीं होते और जबतक रामकी कृपा नहीं हो जाती तबतक जीवको स्वप्नमें भी शान्ति नहीं मिल पा सकती ॥ १३३ ॥ इसलिये धीर मन! तू, सब संदेह और कुतर्क छोड़कर करुणा करनेवाले, सलोने और सबको सुख देनेवाले रामका बैठे भजन किया कर ॥ १३४ ॥ सब सुखोंके भांडार, करुणाकर भगवान् तो भावके भूखे हैं। इसलिये ममता, मद और मान छोड़कर बैठकर सीता-रमण रामका सदा भजन किया कर ॥ १३५ ॥ विमल बुद्धिवाले संत जन और वेद-पुराण सब यही कहते आए हैं कि सांसारिक दुःख तभी दूर हो पाते हैं जब जानकी-नाथ रामकी कृपा हो जाती है ॥ १३६ ॥ वेद और पुराण सभी यही कहते हैं कि क्या गुरुके बिना कभी ज्ञान मिल सकता है? क्या वैराग्यके बिना कभी ज्ञान प्राप्त हो सकता है? क्या हरिकी भक्तिके बिना कभी सुख मिल सकता है? (कभी नहीं) ॥१३७॥ जो मनुष्य रामका भजन किए बिना ही मोक्ष पा लेनेके फेरमें हो, वह ज्ञानी होनेपर भी बिना सींग-पूँछका कोरा पशु ही रह गया ॥ १३८ ॥ जो सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई आदि रामके चरणोंमें पहुँचनेमें स्वभावसे ही सहायता न करें उनका जल मिटना ही अच्छा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सेइ साधु, गुरु, समुझि, सिखि, राम - भगति थिरताइ।
लरिकाईको पैरिबो, 'तुलसी' बिसरि न जाइ ॥ १४० ॥
सबै कहावत रामके, सबहिँ रामकी आस।
राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु 'तुलसीदास' ॥ १४१ ॥
जेहि सरीर रति राम-सों, सोइ आदरहिँ सुजान।
रुद्र - देह तजि नेह - बस, बानर भे हनुमान ॥ १४२ ॥
जानि राम - सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुखा - तें सेवक भए, हर - तें भे हनुमान ॥ १४३ ॥
'तुलसी' रघुबर - सेवकहिँ, खल डाँटत मन माखि।
बाजराज - कै बालकहिँ, लवा दिखावत आँखि ॥ १४४ ॥
रावन - रिपु - के दास - तें, कायर करहिँ कुचालि।
खर, दूषन, मारीच - ज्यों, नीच जाहिंगे कालि ॥ १४५ ॥
पुन्य, पाप, जस, अजसके, भावी भाजन भूरि।
संकट तुलसीदास-को, राम करहिँगे दूरि ॥ १४६ ॥
खेलत बालक ब्याल - सँग, मेलत पावक हाथ।
'तुलसी' सिसु पितु-मातु ज्यों, राखत सिय - रघुनाथ ॥ १४७ ॥

है ॥ १३९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि तुम लोग साधु और गुरुजनोंकी सेवा करके रामकी भक्ति करना स्थिर चित्तसे (मन लगाकर) समझ और सीखलो। जैसे बचपनका सीखा हुआ तैरना जीवन-भर नहीं भूलता, वैसे ही इसका भी प्रारम्भसे संस्कार पड़ जायगा तो यह भक्ति भी जीवन भर भुलाए नहीं भूलेगी ॥ १४० ॥ यों तो सभी रामके ही कहलाते हैं और सबको रामका ही भरोसा भी रहता है, पर तुलसीदास कहते हैं कि रामने जिसे अपना मान लिया, उसी (हनुमान)-की शरणमें चले जाओ (तो तुम्हारा कल्याण हो जायगा) ॥ १४१ ॥ सज्जन लोग उसीका आदर करते हैं जिसे रामसे प्रेम हो। देखो, हनुमानने रामकी भक्तिके ही कारण शिवका शरीर छोड़कर वानरका शरीर धारण कर लिया (रुद्रके अवतार हैं हनुमान) ॥ १४२ ॥ तुम इसी अनुमानसे रामकी सेवाको सरस समझ लो कि देवताओंके पुरखा (बड़े) महादेवने (सेवाका रस लेनेके ही लिये) अपना रुद्र-रूप छोड़कर हनुमानका रूप धारण कर लिया ॥ १४३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि दुष्ट लोग तमतमाकर रामके सेवकको भी डाँट बैठते हैं। देखिए तो सही कि, बाजोंके सरदारके बच्चेको लवा आँखें दिखाने चला है ॥१४४॥ जो नीच प्रकृतिके लोग रावणके शत्रु रामके भक्तोंके साथ भी खर, दूषण और मारीच-जैसे कायरों-का-सा व्यवहार करने लगते हैं, वे बहुत दिनोंतक रह नहीं पावेंगे ॥१४५॥ जिस तुलसीदासको अभी पुण्य और पाप तथा यश और अपयश मिल रहा है या आगे मिलेगा उसके सभी संकट राम अवश्य दूर कर डालेंगे ॥ १४६ ॥ छोटे बच्चे साँपके साथ भी खेलने लगते और आगमें भी हाथ डाल देते हैं (फिर भी बच जाते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि माता-पिताकी भाँति राम-जानकी ही ऐसे अबोध बच्चोंकी रक्षा करते रहते हैं ॥ १४७ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' दिन भल साहु-कहँ, भली चोर - कहँ राति।
निसि - बासर ता-कहँ भलो, मानै राम - इताति[1] ॥ १४८ ॥
'तुलसी' जाने सुनि, समुझि, कृपासिंधु रघुराज।
महँगे मनि - कंचन किए, सौंधे जग जल - नाज ॥ १४९ ॥
सेवा- सील- सनेह- बस करि, परिहरि प्रिय लोग।
'तुलसी' ते सब राम - सों, सुखद सुजोग बियोग ॥ १५० ॥
चारि चहत मानस अगम, चनक चारि - को लाहु।
चारि परिहरै, चारिको दानि, चारि चख चाहु ॥ १५१ ॥
सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
'तुलसी' सूधी सकल बिधि, रघुबर - प्रेम - प्रसूति ॥ १५२ ॥
बेष बिसद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन।
'तुलसी' राम न पाइए, भए बिषय - जल - मीन ॥ १५३ ॥
बचन - बेष - तें जो बनै, सो बिगरै परिनाम।
'तुलसी' मन-तें जो बनै, बनी बनाई राम ॥ १५४ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि सज्जनों (गृहस्थों)-को दिनका समय और चोरोंको रातका समय अच्छा लगता है। परन्तु जो लोग रामके कहनेमें चलते हैं उनके लिये दिन और रात दोनों ही अच्छे हैं ॥ १४८ ॥ तुलसीदास सब सुन और समझकर जान गए हैं कि राम बड़े कृपालु हैं जिन्होंने रत्न और सोना तो महँगा कर दिया, पर संसारके हितके लिये अन्न और जल सस्ता (सुलभ) कर दिया। (अनावश्यक वस्तुएँ महँगी कर डाली और आवश्यक अन्न और जल रामकी कृपासे सस्ता और सुलभ हो गया) ॥ १४९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग अपने सब प्रिय जनोंको त्यागकर अपनी सेवा, शील और स्नेहसे रामको वशमें किए बैठे हैं उन्हें संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियोंमें एक रामसे ही सुख मिलता चला जाता है ॥ १५० ॥ जिसे कुल चार दाने चनेके ही मिल पाते हैं वह भी मनकी पहुँचके बाहर चार फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पानेकी साध लिए बैठा है। काम, क्रोध, लोभ मोह छोड़कर चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) देनेवाले रामको चारों आखों (दो चर्म चक्षु और दो ज्ञान चक्षु)-से देखते रहो (सगुण रामका दर्शन और निर्गुण रामका ध्यान किया करो) ॥१५१॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसके मन, वचन और कर्म सभी शुद्ध हैं, उसका रामके प्रेमके प्रसादसे सब प्रकार कल्याण ही कल्याण है ॥१५२॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिनका मन सांसारिक विषय-वासनामें सदा ऐसे लगा रहता है जैसे जलमें मछलीका मन लगा रहता है, जिनका वेष भी बहुत ठाट-बाटका और बोली भी मधुर है पर जो मनके खोटे और बुरे कर्म करते रहते हैं उन्हें राम नहीं मिल पाते ॥१५३॥ तुलसीदास कहते हैं कि वचन और वेषके बलपर जो काम किया जाता है वह बहुत दिन नहीं टिक पाता परन्तु जो काम हृदयसे किया जाता है उसे यही समझना चाहिए कि यह रामने ही बना दिया है (उसके सब काम राम ही पूरे कर डाल देते हैं) ॥१५४॥ अरे तुलसी ! यदि रामकी

१. इताति=(अरबी शब्द इताअत) आदेश, आज्ञाका पालन।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नीच मीच लै जाइ जो, राम - रजायसु पाइ।
तौ 'तुलसी' तेरो भयो, नतु अनभलो अघाइ ॥ १५५ ॥
जाति-हीन, अघ-जनम महि, मुकुत कीनि असि नारि।
महा-मंद मन ! सुख चहसि, ऐसे प्रभुहिं बिसारि ॥ १५६ ॥
बंधु - बधू - रत कहि कियो, बचन निरुत्तर बालि।
'तुलसी' प्रभु सुग्रीवकी, चितइ न कछू कुचालि ॥ १५७ ॥
बालि बली बल-सालि दलि, सखा कीन्ह कपिराज।
'तुलसी' राम कृपालु-को, बिरुद गरीब - निवाज ॥ १५८ ॥
कहा बिभीषन लै मिलो, कहा बिगाऱ्यो बालि।
'तुलसी' प्रभु सरनागतहिं, सब दिन आए पालि ॥ १५९ ॥
'तुलसी' कोसल-पाल - सों, को सरनागत - पाल।
भज्यो बिभीषन बंधु-भय, भंज्यो दारिद - काल ॥ १६० ॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस ! अस राम-कर, समुझि परै कहु काहि ॥ १६१ ॥
बलकल भूषन, फल असन, तृन सज्या, द्रुम प्रीति।
तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबरकी रीति ॥ १६२ ॥

आज्ञासे नीच मृत्यु भी आकर तुझे उठा ले जाय तो तेरा पूर्ण रूपसे भला ही है, नहीं तो मुझे किसी प्रकार तेरा कल्याण होता नहीं दिखाई देता ॥१५५॥ अरे नीच मन ! जिस प्रभु रामने छोटी जातिकी (शबरी)-को तथा जीवन भर पाप करती रहनेवाली स्त्री (पिंगला वेश्या)-तकको सद्गति दे डाली ऐसे प्रभुको भुलाकर भी तू सुखकी आस लगाए बैठा है ? ॥१५६॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रभु (राम)-ने छोटे भाईकी पत्नीको घरमें रख लेनेवाले बालिको निरुत्तर कर दिया था, उन्हींने सुग्रीवकी कुचालोंपर (कि उसने बालिकी पत्नी तारा घरमें रख ली) तनिक भी ध्यान नहीं दिया ॥१५७॥ महा बलवान् बालिका बल चूर करके उसे मार डालनेवाले रामने सुग्रीवको सखा (मित्र) बना लिया। तुलसीदास कहते हैं कृपालु रामका तो विरुद (नाम) ही है दीनोंपर भी दया करनेवाला ? ॥१५८॥ बताओ, विभीषण कौन (बड़ी भेंट) लेकर रामसे मिलने आया था और बालिने रामका क्या बिगाड़ डाला था। पर प्रभु राम तो सदासे शरणागतोंकी ही रक्षा करते आए हैं (इसी लिये उन्होंने विभीषणको अपना लिया और शरणागत सुग्रीवकी रक्षा करनेके लिये बालिको मार डाला) ॥१५९॥ तुलसीदास कहते हैं कि कोशल-पाल रामके समान और कौन शरणागतका रक्षक है जिन्होंने भाई (रावण)-के भयसे भागे हुए विभीषणकी दरिद्रता और उसके काल(मृत्यु)-का नाश कर डाला (उसे लंकेश और अमर बना दिया) ॥१६०॥ काकभुशुण्डि कहते हैं—देखो पक्षिराज गरुड ! रामका स्वभाव तो कठोरतामें वज्रसे भी अधिक कठोर तथा कोमलतामें फूलसे भी अधिक कोमल है। रामका वह स्वभाव बताओ कौन समझ पा सकता है ? ॥१६१॥ रामकी उदारता तो इसीसे जानी जा सकती है कि उन्होंने विभीषणको लंकाका राज्य उस समय दे डाला जब वे वल्कलों (पेड़की छालों)-के वस्त्र पहनते थे, फल ही खाकर दिन काटते थे, घास की सौंथरीपर सोते थे तथा वृक्षोंके तले उठते-बैठते थे ॥१६२॥ दसों सिर काटकर अर्पण करनेपर शिवने रावणको जो सम्पत्ति दी थी, वह सारी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जो सम्पति सिव रावनहिं दीन्हि, दिए दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥ १६३॥
अबिचल राज बिभीषनहिं, दीन्ह राम रघुराज।
अजहुँ बिराजत लंक - पर, 'तुलसी' सहित - समाज॥ १६४॥
कहा बिभीषन लै मिल्यो, कहा दियो रघुनाथ।
'तुलसी' यह जाने बिना, मूढ़ मींजिहैं हाथ॥ १६५॥
बैरि-बंधु, निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलंक।
भूठे अघ सिय परिहरी, 'तुलसी' साइँ ससंक॥ १६६॥
तेहि समाज किय कठिन पन, जेहि तोल्यो कैलास।
'तुलसी' प्रभु - महिमा कहौं, सेवक - को बिस्वास॥ १६७॥
सभा - सभासद निरखि, पट पकरि, उठायो हाथ।
'तुलसी' कियो इगारहाँ[1], बसन-बेष जदुनाथ॥ १६८॥
त्राहि तीन कह्यौ दौपदी, 'तुलसी' राज - समाज।
प्रथम बढ़े पट, बिय[2] बिकल, चहत चकित निज काज॥ १६९॥
सुख-जीवन सब कोउ चहत, सुख-जीवन हरि - हाथ।
'तुलसी' दाता - माँगनेउ, देखियत अबुध - अनाथ॥ १७०॥

सम्पदा (लंकाका राज्य) रामने बहुत सकुचाते हुए (कि मैंने कुछ नहीं दिया) विभीषणको दे डाली ॥१६३॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामने विभीषणको लंकाका ऐसा अविचल राज्य दे डाला कि वह आजतक भी अपने समाजके साथ लंकापर बैठा राज किए जा रहा है ॥१६४॥ बताओ, विभीषण क्या तो लेकर रामसे मिला था (कुछ नहीं लाया था), पर रामने बदलेमें उसे कितना सारा दे डाला (सब कुछ दे डाला)। तुलसीदास कहते हैं कि इसका रहस्य जो नहीं जानता वह मूढ हाथ मलता रह जाता है ॥१६५॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस अधम, राक्षस, कलंकी और शत्रु (रावण)-के भाई विभीषण-तकको भी रामने (शरणमें आनेपर) अपनालिया, उन्हीं स्वामी रामने भूठा कलंक लगाए जानेपर केवल (बदनामीकी) शंकासे सीताका परित्याग कर डाला ॥१६६॥ तुलसीदास कहते हैं कि दुर्योधनकी राजसभामें सभासदोंकी ओर (सहायताके लिये) देखकर और अपनी साड़ी कसकर पकड़े रहकर जिस द्रौपदीने (कृष्णको पुकारनेके लिये) जब अपना हाथ उठाया तब उसी द्रौपदीके लिये कृष्ण वस्त्रका ग्यारहवाँ अवतार लेकर चले आए ॥१६७॥ तुलसीदास कहते हैं कि दुर्योधनकी राजसभामें (जब द्रौपदीका चीर दुःशासन खींचे ले रहा था) द्रौपदीने तीन बार 'त्राहि' (रक्षा करो) शब्दकी पुकार की तो पहली पुकारपर भगवान्‌ने उसका पट बढ़ाया, दूसरी पुकारपर उसके लिये व्याकुल हुए और (तीसरी पुकारपर) अपने कार्य (वस्त्र बढ़ाने)-को चकित होकर देखने लगे ॥१६९॥ तुलसीदास कहते हैं कि सब लोग जीवनमें सुख तो चाहते हैं किन्तु जीवनका सुख यदि कोई दे सकता है तो भगवान् ही दे सकते हैं। रही संसारकी बात, यहाँ तो दाता मूर्ख हैं (जो अपनेको दाता समझे बैठे हैं)और मँगते लोग अनाथ हैं (जो वास्तविक दानी रामसे माँगते नहीं) ॥१७०॥ सीताके पति भगवान्

१. इगारहाँ = ग्यारहवाँ। दस अवतारों (मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध, कल्कि)-के अतिरिक्त द्रौपदीके वस्त्रके रूपमें ग्यारहवाँ अवतार। २. बिय=दूसरा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कृपिन देइ, पाइय परो, बिनु साधे सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजै सुभ सोइ ॥ १७१ ॥
दंडक बन पावन - करन, चरन - सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिँ, खल तरहिं, होइ रंक - ते राउ ॥ १७२ ॥
बिन ही ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जल जोर।
राम-लखन-सिय करि कृपा, जब चितवत जेहि ओर ॥ १७३ ॥
सिला सु तिय भइ, गिरि तरे, मृतक जिए जग जान।
राम - अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान ॥ १७४ ॥
सिला - साप - मोचन चरन, सुमिरहु 'तुलसीदास'।
तजहु सोच, संकट मिटिहि, पूजिहि मनकी आस ॥ १७५ ॥
मुए जिआए भालु - कपि, अवध बिप्रको पूत।
सुमिरहु 'तुलसी' ताहि तू, जाको मारुति दूत ॥ १७६ ॥
काल, करम, गुन, दोष, जग- जीव तिहारे हाथ।
तुलसी रघुबर! रावरो जान, जानकी - नाथ ॥ १७७ ॥

रामको अपने सम्मुख (अपने साथ) जानकर जो कुछ भी काम किया जायगा वह ऐसा शुभ और सफल होगा कि कृपण भी धन देगा, पड़े हुए धनकी प्राप्ति हो जायगी तथा बिना साधनाके सिद्धि, शुभ और सफलता मिलेगी ॥१७१॥ दण्डक वनको पवित्र करनेवाले भगवान् रामके चरण-कमलोंका ही यह प्रभाव है कि ऊसर भूमिमें भी उपज होने लगेगी, दुष्टोंका उद्धार होने लगेगा और लोग रंकसे राजा हो जायँगे ॥१७२॥ राम, लक्ष्मण और सीता जब जिस ओर देख देते है उस ओर बिना ऋतुके भी वृक्ष फल उठते और पत्थरसे भी जलका प्रचंड वेग फूट पड़ता है। (जिधर उनकी कृपा-दृष्टि हो जाती है उधर ही असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं) ॥१७३॥ संसारमें प्रसिद्ध है कि पत्थर बनी हुई अहल्या पुनः स्त्री हो गई, पर्वत-शिलाएँ पानीपर तैरने लगीं और मृतक (भालू-बन्दर) जी उठे। रामकी कृपा हो जाती है तो सब कुछ सगुण, शुभ, सुलभ और कल्याणकारी हो जाता है ॥१७४॥ तुलसीदास कहते हैं कि शिला (अहल्या)-को शापसे मुक्त करनेवाले रामके चरणोंका स्मरण करो और चिन्ता छोड़ दो। तुम्हारे सभी संकट मिट जायँगे और मनकी सारी कामनाएँ पूरी हो जायँगी ॥१७५॥ तुलसीदास कहते हैं कि तू उन्हीं (राम)-का स्मरण कर जिनके दूत पवनपुत्र हनुमान हैं तथा जिन्होंने मरे हुए भालू-बन्दरोंको भी जिला दिया था और अयोध्यामें ब्राह्मणके पुत्रको भी जीवित कर दिखाया था (रामके राज्यमें शम्बूक नामक शूद्र तपस्या करता था, जिसके कारण एक वृद्ध ब्राह्मणका पुत्र मर गया। उस ब्राह्मणने रामसे जाकर उलाहना दिया। रामने शम्बूकको मारकर ब्राह्मणके पुत्रको जीवित कर दिया) ॥१७६॥ तुलसीदास कहते हैं—'जानकीके नाथ राम ! काल, कर्म, गुण, दोष और संसारके जीव सब आपके ही हाथमें हैं इसलिये आप मुझे (तुलसीको) भी अपना ही समझिए ॥१७७॥ तुलसीदास कहते हैं—'राम ! यह दीन (तुलसी) तो पालनेके ही

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रोग-निकर तनु, जरठपन, 'तुलसी' संग कुलोग।
राम ! कृपा लै पालिए, दीन पालिबे जोग ॥ १७८ ॥
मो सम दीन, न दीन - हित तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि, रघुबंस-मनि ! हरहु बिषम भव-भीर ॥ १७९ ॥
भव भुअंग, 'तुलसी' नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत।
चित्रकूट इक औषधी, चितवत होइ सचेत ॥ १८० ॥
हौंहु कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास।
साहब सीता - नाथ - से, सेवक तुलसीदास ॥ १८१ ॥
राम-राज राजत सकल, धरम-निरत नर-नारि।
राग, न रोष, न दोष-दुख, सुलभ पदारथ चारि ॥ १८२ ॥
राम-राज संतोष - सुख, घर - बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग - बिलास ॥ १८३ ॥
खेती, बनि, बिद्या, बनिज, सेवा, सिलिपि, सुकाज।
'तुलसी' सुरतरु-सरिस सब, सुफल राम-के राज ॥ १८४ ॥
दंड जतिन कर, भेद जहँ नरतक - नृत्य - समाज।
जीतहु स्वमनहिं सुनिय अस, रामचंद्र - के राज ॥ १८५ ॥

योग्य है। इसपर अपनी कृपा करके उसका भी पालन कर लीजिए क्योंकि इसके शरीरमें अनेक रोग लग गए हैं, बुढ़ापा भी आ गया है और बुरे लोग भी पीछे पड़े हैं ॥ १७८ ॥ राम ! न तो मेरे समान कोई दीन (दुखी, कातर) है और न आपके समान कोई दीनोंका हितैषी है। यह समझकर रघुवंशमणि ! मेरी ये कष्टदायक भव-बाधाएँ दूर कर डालिए ॥१७९॥ इस नकुल-रूपी तुलसीको भी संसार-रूपी सर्प डसे डाल रहा है और इसका ज्ञान (चेतना) हरण किए ले रहा है। इससे बचनेके लिये एक मात्र चित्रकूट (-निवास) ही ऐसी औषधि है, जिसकी ओर देखते ही तुलसीदास चेतन हो जाता है। (साँपसे लड़ाईमें जब नेवला थक जाता है तो जाकर बिरई सूँघ आता है और फिर चेतन होकर लड़ता है) ॥१८०॥ यह (निकम्मा) तुलसीदास भी सीताके नाथ राम-जैसे प्रभुका सेवक है, यह बात मैं भी कहता हूँ और दूसरे लोग भी यही कहते हैं और राम भी यह बदनामी सहते चले जा रहे हैं (राम ऐसे महान् प्रभु हैं कि दास कहलानेके योग्य न होनेपर भी तुलसीको मानते हैं) ॥१८१॥ रामके राज्यमें सभी नर-नारी अपने-अपने धर्म-कर्ममें लीन रहते हैं। वहाँ न किसीको किसीसे राग है, न किसीपर क्रोध है, न किसीमें कोई दोष है, न किसीको कोई दुःख ही है। चारों पदार्थ सबको सरलतासे सुलभ हो गए हैं ॥१८२॥ रामके राज्यमें सबको बहुत सन्तोष और बड़ा सुख है। वहाँ सबको, चाहे घरमें रहें या वनमें, सर्वत्र सुविधा ही सुविधा है। वहाँके वृक्ष कल्पवृक्ष बने हुए हैं और पृथ्वी कामधेनु बनी हुई है कि उनसे जो माँगो वही मनोवाञ्छित आनन्द-भोग देते चले जाते हैं ॥१८३॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके राज्यमें खेती, मजूरी, विद्या, वाणिज्य, सेवा (नौकरी) तथा शिल्प आदि कोई भी कार्य करो सबसे कल्पवृक्षके समान श्रेष्ठ फल मिलते रहते हैं ॥१८४॥ सुना जाता है कि रामके राज्यमें दण्ड केवल संन्यासियोंके हाथमें दिखाई पड़ता था, केवल नर्तकोंके नृत्य-समाजमें ही भेद (नाचके टुकड़ोंका वर्णन) पाया जाता था और जीतनेके लिये

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कोपे सोच न पोच - कर, करिय निहोर न काज।
'तुलसी' परमिति प्रीतिकी रीति, राम - के राज ॥ १८६ ॥
मुकुर निरखि मुख राम - भ्रू, गनत गुनहिं, दै दोष।
तुलसी - से सुठि सेवकनि, लखि जनि परहि सरोष ॥ १८७ ॥
सहसनाम मुनि-भनित सुनि, तुलसी - बल्लभ नाम।
सकुचत हिय हँसि, निरखि सिय, धरम - धुरंधर राम ॥ १८८॥
गौतम-तिय-गति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि।
हिय हरषे रघुबंस - मनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥ १८९ ॥
'तुलसी' बिलसत नखत निसि, सरद - सुधाकर - साथ।
मुकुता झालरि झलक जनु, राम - सुजस - सिसु - हाथ ॥ १९० ॥
रघुपति - कीरति - कामिनी, क्यों कह 'तुलसीदासु'।
सरद - अकास - प्रकास ससि, चारु चिबुक - तिल जासु ॥ १९१ ॥
प्रभु - गुन - गन भूषन-बसन, बिसद बिसेष सुदेस।
राम - सुकीरति - कामिनी, 'तुलसी' - करतब केस ॥ १९२ ॥

लोग केवल अपना मन ही जीतते थे। (रामके राज्यमें न कोई अपराधी था जिसे दण्ड देना पड़ता, न परस्पर भेद-भाव था, न कोई किसीपर विजय पानेके लिये चढ़ाई करता था। सब अपने मनको जीतनेमें लगे रहते थे) ॥१८५॥ रामके राज्यमें यहाँतक परस्पर प्रेम था कि न तो किसी तुच्छके क्रोध करनेपर कोई चिन्ता ही करता था और न कोई कार्य करनेके लिये किसीसे कोई प्रार्थना ही करता था (क्योंकि सब परस्पर सहायता करते थे) ॥ १८६ ॥ जब राम दर्पणमें अपना मुँह देखते थे तब उनकी टेढ़ी भौंहें भी अपने गुणोंके साथ-साथ यह दोष समझने लगती हैं कि कहीं तुलसी-जैसे श्रेष्ठ सेवकको ये भौंहें टेढ़ी (क्रोध-भरी) न प्रतीत होने लगें ॥ १८७ ॥ जब रामने मुनि वशिष्ठके मुँहसे अपने एक सहस्र नामोंकी तालिका सुनी, तब उसमें 'तुलसी-वल्लभ' नाम सुनकर धर्म-धुरंधर राम तत्काल सीताकी ओर देखकर मनमें हँसते हुए झेंप गए (कि मैं तो एक पत्नी-व्रतधारी हूँ, मुझे केवल सीता-वल्लभ कहना चाहिए, यह तुलसी-वल्लभ क्यों कह दिया गया) ॥ १८८ ॥ गौतमकी पत्नी अहल्याकी दशाका स्मरण करके सीता अपने हाथसे रामके पैर छूनेमें डर रही हैं। रघुवंश-मणि रामने सीताकी यह अलौकिक प्रीति देखी तो हृदयमें बहुत हर्षित हो उठे ॥ १८९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसे शरत्के चन्द्रमाके साथ तारे ऐसे भले लगते हैं, मानो रामके सुयश-रूपी बच्चेके हाथमें मोती (मुक्ति)-की झालर चमक रही हो (रामका यश कहनेसे मुक्ति मिलती है) ॥ १९० ॥ रामकी कीर्त्ति-रूपी कामिनीका वर्णन भला तुलसीदास किस प्रकार कर पा सकता है जिसकी ठोड़ीपर शरत्के आकाशमें चमकता हुआ चन्द्रमा भी सुन्दर तिल बनकर खिला पड़ रहा हो। (रामकी कीर्त्ति सब प्रकार समुज्ज्वल हो है) ॥ १९१ ॥ रामके अनेक गुण ही रामकी कीर्त्ति-रूपी कामिनीके सुन्दर और स्वच्छ वस्त्र और आभूषण हैं, और तुलसीकी काली करनी ही ऐसे रामकी सुकीर्त्ति-रूपी कामिनीके केशके समान काले (कालिमा-भरे) हैं (रामके सब गुणोंमें यही कालिमा है कि तुलसीदास उनका सेवक बना बैठा है) ॥ १९२ ॥ पूर्णमासीकी चन्द्र-किरणोंके समान (चारों ओर फैले हुए) रामके यशसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रामचरित राकेस - कर - सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन - कुमुद - चकोर-चित, हित बिसेष, बड़ लाहु ॥ १९३ ॥
रघुबर - कीरति सज्जननि सीतल, खलनि सुतापि ।
ज्यों चकोर - चय, चक्कवनि, 'तुलसी' चाँदनि राति ॥ १९४ ॥
राम - कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु ।
'तुलसी' सुभग सनेह बन, सिय - रघुबीर - बिहारु ॥ १९५ ॥
स्याम-सुरभि-पय बिसद अति, गुनद, करहिं तेहि पान ।
गिरा ग्राम्य सिय-राम-जस गावहिं, सुनहिं सुजान ॥ १९६ ॥
हरि-हर-जस सुर-नर-गिरहु, बरनहिं सुकबि-समाज ।
हाँड़ी - हाटक घटित चरु, राँधे स्वाद सुनाज ॥ १९७ ॥
तिल - पर राख्यौ सकल जग, बिदित, बिलोकत लोग ।
'तुलसी' महिमा राम - की, कौन जानिबे जोग ॥ १९८ ॥

सोरठा

राम ! स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर, बुद्धि पर ।
अबिगत, अकथ, अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥ १९९ ॥

सबको सुख मिलता है, विशेष रूपसे सज्जन-रूपी कुमुद और चकोरोंका बहुत हित और लाभ होता है ॥ १९३ ॥ रामकी जो कीर्त्ति सज्जनोंके लिये शीतल है, वही दुष्टोंको वैसे ही संताप देती है जैसे चाँदनी रात चकोरोंको तो अच्छी लगती है पर चकवोंको दुःख देती है। (चाँदनी रातमें चकोर पक्षी तो बड़े चावसे चन्द्रमाकी ओर टकटकी लगाए देखता रहता है, पर चकवा अपनी प्रिया चकवीसे पृथक् होकर वियोगी बनकर दुखी हुआ रहता है) ॥ १९४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि शुद्ध चित्त ही चित्रकूट है, रामकी कथा ही मंदाकिनी है और स्नेह ही वह सुन्दर वनभूमि है जहाँ राम-जानकी विहार करते रहते हैं (शुद्ध मनसे स्नेहसे रामकी कथा कहते रहो) ॥१९५॥ गौ काली भले ही हो पर जैसे बहुत स्वच्छ और गुणकारी होनेके कारण उसका दूध सभी लोग पीते हैं उसी प्रकार, इस 'रामचरित-मानस' की भाषा ग्राम्य (अवधी) होनेपर भी यह राम और जानकीके यशसे पूर्ण है इसीलिये सज्जन लोग इसे गाते और सुनते हैं ॥१९६॥ हरि और हरके सुयशोंका गुण-गान बड़े-बड़े सुकवि देव-वाणी (संस्कृत) और नर-वाणी (देशी भाषा) दोनोंमें करते रहते हैं क्योंकि बढ़िया अन्न चाहे हाँड़ीमें पकाओ चाहे सोनेकी पतीलीमें पकाओ, वह तो स्वादिष्ट होता ही है॥ १९७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामकी महिमा जान सकनेकी योग्यता है ही किसमें ? यह बात सब लोग जानते और देखते भी हैं कि उन्होंने सारा संसार (आँखके) तिलपर उठा रक्खा है (इसी आँखके तिलसे सारा संसार दिखाई देता है) ॥१९८॥ राम ! आपके रूपका वर्णन न तो वचनसे किया जा सकता, न बुद्धिसे ही समझा जा सकता है। वह तो अज्ञात, अकथनीय और अपार है। वेद भी उसे नित्य नेति-नेति (इतना ही नहीं) कहकर चुप हो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा

माया, जीव, सुभाव, गुन, काल, करम, महदादि।
ईस - अंकतें बढ़त सब, ईस - अंक बिनु बादि ॥ २०० ॥
हित उदास रघुबर - बिरह, बिकल सकल नर-नारि।
भरत-लखन-सिय-गति समुझि, प्रभु-चख सदा सुबारि ॥ २०१ ॥
सीय, सुमित्रा - सुवन - गति, भरत - सनेह सुभाउ।
कहिबोको सारद सरस, जनिबेको रघुराउ ॥ २१२ ॥
जानी राम, न कहि सके, भरत - लखन - सिय-प्रीति।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठताकी रीति ॥ २०३ ॥
सब बिधि समरथ सकल कह, सहि साँसति दिन राति।
भलो निबाहेउ सुनि समुझि, स्वामि - धर्म सब भाँति ॥ २०४ ॥
भरतहिं होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँकि काँजी - सीकरनि, छीर - सिंधु बिनसाइ ॥ २०५ ॥
संपति चकई, भरत चक, मुनि - आयसु खिलवार।
तेहि निसि आस्रम-पींजरा, राखे भा भिनुसार ॥ २०६ ॥

रहते हैं ॥१९९॥ माया, जीव, स्वभाव, गुण, काल, कर्म एवं महत् आदि (बुद्धि, अहंकार, शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) वैसे ही ईश्वरके सहारे बढ़ते हैं, जैसे (शून्यसे पहले) एक (१) अंक लगानेसे अंकका मूल्य बढ़ना और उसके बिना सब शून्य हो जाते हैं ॥२००॥ इधर रामके विरहमें सभी संबंधी उदास और नर-नारी व्याकुल हुए जा रहे हैं, उधर भरत, लक्ष्मण और सीताकी दशाका विचार करके रामकी आँखें सदा डबडबाई रहती हैं ॥ २०१ ॥ सीता, लक्ष्मण और भरतके स्नेह और स्वभावका वर्णन सरस्वती बड़े ही सरस शब्दोंमें कर सकती है, परन्तु उनके स्वभावकी वास्तवमें जानकारी यदि किसीको है तो केवल रामको ही है ॥ २०२ ॥ रामसे लक्ष्मण और सीता कितनी प्रीति करते हैं यह केवल राम ही जानते हैं, किन्तु उनसे भी वर्णन करनेको कहा जाय तो वे भी नहीं कर सकते (उनकी प्रीति अकथनीय है)। उसी प्रीतिकी बात सुनकर और विचारकर तुलसी हठ करके बेढंगेपनसे वर्णन करनेपर तुला बैठा है ॥२०३॥ स्वामीके धर्म-का महत्त्व भली-भाँति सुन और समझकर भरत, लक्ष्मण और सीताने दिन-रात कष्ट सहकर भली प्रकार (सेवकका धर्म) निबाहा। सब लोग यही कहते हैं कि यह निर्वाह कोई कर सकता था तो वे ही कर सकते थे ॥ २०४ ॥ भरतको कोई ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके पदपर भी ला बैठावे तब भी उनके मनमें राज-मद नहीं हो सकता। क्या कभी काँजी (खटाई)-के छींटेसे क्षीर-समुद्र फटा करता है ॥२०५॥ (जब रामसे मिलनेके लिये भरत चित्रकूट चले जा रहे थे तब प्रयागराजमें भरद्वाज मुनिने उन्हें बड़े ही सुसज्जित, सब सुविधाओंसे पूर्ण आश्रममें रातभर ठहराए रक्खा। परन्तु सम्पूर्ण सुख-साधनोंसे युक्त वह सुखावास भी भरतको लुभा न सका। उस समय वह सभी सम्पत्ति, सुखोंके साधन, चकवीके समान बन गई थी और भरत चकवेके समान हो रहे थे किन्तु वे सम्पत्ति-रूपी चकवीके साथ रातभर रहनेपर भी बिरक्त ही रहे।) मुनिकी आज्ञाका यह एक खेल ही था कि उन्होंने सम्पत्ति-रूपी चकवीको भरत-रूपी चकवेके साथ एक पिंजड़ेमें ला रक्खा पर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

सधन चोर मग मुदित मन, धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव - बिभीषनहिं, भई भरतकी भेंट ॥ २०७ ॥
राम सराहे, भरत उठि मिले राम - सम जानि।
तदपि बिभीषन, कीसपति, 'तुलसी' गरत गलानि ॥ २०८ ॥
भरत स्याम तन राम - सम, सब गुन-रूप-निधान।
सेवक सुखदायक, सुलभ, सुमिरत सब कल्यान ॥ २०९ ॥
ललित लखन - मूरति मधुर सुमिरत सहित - सनेह।
सुख - संपति - कीरति-बिजय, सगुन सुमंगल - गेह ॥ २१० ॥
नाम सत्रु - सूदन सुभग, सुखमा - सील - निकेत।
सेवत, सुमिरत, सुलभ सुख, सकल सुमंगल देन ॥ २११ ॥
कौसल्या कल्यान - मयि - मूरति करत प्रनाम।
सगुन सुमंगल, काज सुभ, कृपा करहिं सिय - राम ॥ २१२ ॥
सुमिरि सुमित्रा - नाम जग, जे तिय लेहिं सुनेम।
सुवन लखन - रिपुदवन - से, पावहिं पति - पद - प्रेम ॥ २१३ ॥
सीता - चरन प्रनाम करि, सुमिरि सुनाम सनेम।
होहिं तीय पति - देवता, प्रान - नाथ प्रिय प्रेम ॥ २१४ ॥

रात-भर आश्रम-रूपी पिंजड़ेमें साथ रहनेपर भी उन्होंने सम्पत्ति-रूपी चकवीकी ओर देखातक नहीं और सबेरा हो गया ॥ २०६ ॥ जैसे बहुत प्रसन्न होकर जाते हुए चोरका फेंटा मार्गमें कोई धनी पकड़ ले, वैसे ही भरतसे सुग्रीव और विभीषणकी भेंट हुई। (सुग्रीव और विभीषण यह समझे बैठे थे कि रामकी सारी प्रीतिके अधिकारी हमीं लोग हैं। किन्तु भरतके स्वभाव और उनकी भक्ति देखते ही वे समझ गए कि उसके अधिकारी भरत ही हैं) ॥ २०७ ॥ भरतकी सभामें रामने जब विभीषण और सुग्रीवकी सराहना की तो भरत उठकर उनसे वैसे ही मिले मानो रामसे ही मिल रहे हों फिर भी तुलसीदास कहते हैं कि विभीषण और कपिपति सुग्रीव ग्लानि (झेंप)से गले जा रहे थे कि भरतके आगे हम लोग कुछ भी नहीं है ॥ २०८ ॥ श्याम शरीरवाले भरत तो रामके ही समान हैं। वे सब प्रकारसे रूप और गुणोंके भांडार तथा (अपने स्वामी रामको) सुख देनेवाले सेवक हैं। अतः, उन्हें स्मरण करना सबके लिये सुलभ भी है और कल्याणकारी भी है॥२०९॥ लक्ष्मणकी मधुर मूर्तिका स्नेहपूर्वक स्मरण करो। उस (मूर्ति)-का स्मरण करनेसे सुख, सम्पत्ति, कीर्ति, विजय अच्छे शकुन और सुमंगल प्राप्त होते हैं ॥२१०॥ जिनका नाम शत्रुघ्न है वे बड़े सुन्दर हैं, सबको सुख देते हैं और बड़े शीलवान् हैं। उनका स्मरण करने और उनकी सेवा करनेसे सभी सुख सुलभ हो जाते हैं और सब सुमंगल मिल जाते हैं ॥२११॥ कल्याणमयी माता कौशल्याकी मूर्त्तिको जो प्रणाम करता है, उसके सभी कार्य शकुन और मंगलसे पूर्ण होकर शुभदायक होते हैं और राम-जानकी भी उसपर कृपा करते रहते हैं ॥२१२॥ संसारमें जो स्त्री नियमपूर्वक माता सुमित्राका नाम स्मरण करती है, उसे लक्ष्मण और शत्रुघ्न-जैसे पुत्र मिलते और अपने पतिके चरणोंका प्रेम मिलता है ॥२१३॥ जो स्त्री सीताके चरणोंमें प्रणाम करके नियमपूर्वक उनके नामका स्मरण करती है, वह पतिव्रता होती और अपने प्राण-नाथकी प्यारी होती

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' केवल काम - तरु रामचरित - आराम।
कलि-तरु कपि-निसिचर कहत, हमहिं किए बिधि बाम ॥ २१५ ॥
मातु सकल, सानुज भरत, गुरु, पुरलोक सुभाउ।
देखत, देख न कैकइहिं, लंकापति, कपि - राउ ॥ २१६ ॥
सहज सरल रघुबर - बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जल बक्र - गति, जद्यपि सलिल समान ॥ २१७ ॥
दसरथ - नाम सुकाम - तरु, फलइ सकल कल्यान।
धरनि, धाम, धन, धरम, सुत, सदगुन, रूप - निधान ॥ २१८ ॥
'तुलसी' जान्यो दसरथ हि, 'धरम न सत्य - समान'।
राम तजे जेहि लागि, बिनु - राम परिहरे प्रान ॥ २१९ ॥
राम - बिरह दसरथ - मरन, मुनि-मन अगम सु-मीचु।
'तुलसी' मंगल - मरन - तरु, सुचि सनेह - जल सींचु ॥ २२० ॥

सोरठा

जीवन - मरन सुनाम, जैसे दसरथ - रायको।
जियत खेलाये राम, राम - बिरह तनु परिहरेउ ॥ २२१ ॥

दोहा

प्रभुहिं बिलोकत गोद-गत, सिय - हित घायल नीच।
'तुलसी' पाई गीध - पति, मुकुति - मनोहर मीच ॥ २२२ ॥

है ॥२१४॥ बन्दर और राक्षस (विभीषण) तक यही कहते हैं कि हमारे लिये तो रामके चरित्रका बाग ही कल्पवृक्षके समान है। ये कलि-रूपी वृक्ष तो हमारे दुर्भाग्यके ही समान बुरे हैं ॥२१५॥ लंकापति विभीषण और कपिपति सुग्रीवने सभी माताओंको, छोटे भाई शत्रुघ्नके सहित भरतको, गुरु वशिष्ठको तथा अयोध्याके नगरवासियोंको तो बड़ी सद्भावनाके साथ देखा, परन्तु कैकेयीको देखकर भी उसकी ओर आँखतक उठाकर न देखा ॥२१६॥ रामके स्वाभाविक सरल वचनोंको भी मूर्खा कैकेयी वैसे ही कुटिल समझती रही जैसे पानीके सीधे बहावमें भी जोंक टेढ़ी ही चालसे चलती है ॥२१७॥ महाराज दशरथका नाम उस कल्पवृक्षके समान है जिसका स्मरण करनेसे भूमि, घर, धन, धर्म, पुत्र, सद्गुण, सुन्दर रूप और सम्पूर्ण कल्याण सब मिल जाते हैं ॥ २१८ ॥ 'सत्यके समान और कोई दूसरा धर्म नहीं है'—यह सिद्धान्त यदि किसीने भली प्रकार समझा तो दशरथने ही समझा क्योंकि सत्य वचनके निर्वाहके लिये उन्होंने रामको त्याग दिया और रामके वियोगमें उन्होंने अपने प्राण-तक दे डाले ॥२१९॥ रामके विरहमें जैसी (अच्छी) मृत्यु दशरथने पाई वैसी पवित्र मृत्युकी तो मुनि भी कल्पना नहीं कर पा सकते। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी मंगलदायिनी मृत्युके वृक्षको तो पवित्र प्रेमके जलसे ही सींचते रहना चाहिए (पवित्र प्रेम हो तभी ऐसी अच्छी मृत्यु मिल सकती है) ॥२२०॥ राजा दशरथका नाम तो उनके जीवन और मृत्यु दोनों दृष्टियोंसे स्मरणीय है क्योंकि वे जबतक जीते रहे तबतक रामको गोदमें खेलाते रहे और जब उनसे वियोग हुआ तो अपना शरीर ही छोड़ चले (जीते भी रहे तो रामके लिये जीते रहे, मरे भी तो रामके लिये मरे) ॥२२१॥ तुलसीदास कहते हैं कि सीताकी सुरक्षामें घायल पड़े हुए नीच गीध (जटायु)-ने भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिरत, करम-रत, भगत, मुनि, सिद्ध, ऊँच अरु नीच।
'तुलसी' सकल सिहात सुनि, गीधराजकी मीच ॥ २२३ ॥
मुए, मरत, मरिहैं सकल, घरी - पहरके बीच।
लही न काहू आज - लौं, गीधराजकी मीच ॥ २२४ ॥
मुए मुकुत, जीवत मुकुत, मुकुत मुकुतहूँ बीच।
'तुलसी' सबही-तें अधिक, गीधराजकी मीच ॥ २२५ ॥
रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो, बिलोकि दोउ बीर।
सिय-सुधि कहि, सिय-राम कहि, देह तजी मति-धीर ॥ २२६ ॥
दसरथतें दस - गुन भगति - सहित तासु करि काज।
सोचत बंधु - समेत प्रभु, कृपा-सिंधु रघुराज ॥ २२७ ॥
केवट, निसिचर, बिहँग, मृग, किए साधु सनमानि।
'तुलसी' रघुबरकी कृपा, सकल सुमंगल - खानि ॥ २२८ ॥
मंजुल, मंगल, मोदमय - मूरति मारुत - पूत।
सकल सिद्धि कर-कमल-तल, सुमिरत रघुबर - दूत ॥ २२९ ॥
धीर, बीर, रघुबीर - प्रिय, सुमिरि समीर - कुमार।
अगम-सुगम सब काज करु, कर-तल सिद्धि बिचार ॥ २३० ॥

रामकी गोदमें बड़ी सुन्दर मृत्यु और मुक्ति पा ली ॥२२२॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि गृध्रराज (जटायु)-की मृत्युके समान उत्तम मृत्यु पानेकी बात जिस भी विरक्त (विरागी), गृहस्थ, भक्त, मुनि, सिद्ध, ऊँची और नीची श्रेणीके लोगोंने सुनी—वे सभी उसके लिये तरसते रह गए (कि हाय ! हमें भी ऐसी मृत्यु क्यों नहीं मिल जाती !) ॥२२३॥ घड़ी-पहरके बीच न जाने कितने चल बसे, कितने मरते जा रहे हैं और कितने मर मिटेंगे। पर आजतक कोई भी वैसी (उत्तम) मृत्यु नहीं पा सका जैसी गृध्रराज जटायुने पाई ॥२२४॥ कुछ लोग मरकर मुक्ति पाते हैं, कुछ जीते जी मुक्ति पा जाते हैं और कुछ लोग जीवन और मृत्युके बीच भी मुक्ति पा जाते हैं। परन्तु तुलसीदास कहते हैं कि गृध्रराज जटायुकी मृत्यु तो इन सबसे कहीं अधिक श्रेष्ठ है ॥२२५॥ इधर राम (और लक्ष्मण) उस पक्षी जटायुको देखकर व्याकुल हो उठे। उधर धीर मतिवाला जटायु उन दोनों वीर (राम और लक्ष्मण)-को देखकर व्याकुल हो उठा (कि मैं इनकी सहायता न कर सका, सीताको न बचा सका)। इसलिये उसने झट सीताका सारा समाचार कह सुनाया और सीता-राम कहते हुए उस धीर जटायुने अपना शरीर छोड़ दिया ॥२२६॥ कृपालु राम और लक्ष्मणने पिता दशरथसे भी दसगुनी अधिक भक्तिके साथ जटायुकी (अन्त्येष्टि) क्रिया कर डाली और उसकी मृत्युका शोक मनाया ॥२२७॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामकी कृपा ऐसी सुमंगलोंसे भरी है कि उसने केवट, राक्षस (विभीषण), पक्षी (जटायु), मृग (मारीच) इन सबको साधु (सज्जन, वन्दनीय) बना डाला ॥२२८॥ बड़े अच्छे मंगल और आनन्दकी मूर्त्ति रामके दूत पवन-पुत्र हनुमान्‌का स्मरण करते ही सारी सिद्धियाँ अपने आप हाथ आ लगती हैं ॥२२९॥ धीर, वीर और रामके प्रिय हनुमान्‌का स्मरण करो, तो तुम्हारे सभी अगम (कठिन) कार्य सुगम हो जायँगे और सारी सिद्धियाँ तुम्हारे हाथमें आई धरी रहेंगी ॥२३०॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुख-दुख-मंगल - कुमुद-बिधु, सुगुन - सरोरुह - भानु ।
करहु काज सब सिद्धि सुभ, आनि हिये हनुमानु ॥ २३१ ॥
सकल काज सुभ, समउ भल, सगुन सुमंगल जानु ।
कीरति, विजय, बिभूति भलि, हिय हनुमानहिं आनु ॥ २३२ ॥
सूर - सिरोमनि, साहसी, सुमति समीर - कुमार ।
सुमिरत सब सुख - संपदा - मुद - मंगल - दातार ॥ २३३ ॥
'तुलसी' तनु सर, सुख जलज, भुज-रुज गज बरजोर ।
दलत, दयानिधि ! देखिए, कपि केसरी - किसोर ॥ २३४ ॥
भुज-तरु-कोटर रोग - अहि, बरबस कियो प्रवेस ।
बिहँगराज - बाहन ! तुरत काढ़िय, मिटइ कलेस ॥ २३५ ॥
बाहु-बिटप सुख-बिहँग-थल, लगी कुपीर - कुआगि ।
राम ! कृपा - जल सींचिए, बेगि दीन - हित - लागि ॥ २३६ ॥

सोरठा

मुकुति-जनम महि जानि, ज्ञान-खानि, अघ-हानिकर ।
जहँ बस संभु - भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥ २३७ ॥
जरत सकल सुर - बृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मति - मंद ! को कृपालु संकर - सरिस ॥ २३८ ॥

सुख और मंगल-रूपी कुमुदको खिलाए रखनेवाले चन्द्रमा तथा सद्गुण-रूपी कमलको खिलाए रखनेवाले सूर्यके समान हनुमान्‌का हृदयमें ध्यान करके कार्य किया करोगे तो सब काम सिद्ध होते रहेंगे ॥२३१॥ मनमें हनुमान्‌का ध्यान करके सब कार्य करते रहोगे तो समय और शकुन तो सब शुभ और मंगलकारी होंगे ही साथ ही कीर्त्ति, विजय और अच्छा वैभव (धन) भी प्राप्त होगा ॥२३२॥ शूर वीरोंके शिरोमणि, साहसी और बुद्धिमान् पवन-कुमार हनुमान्‌के स्मरण मात्रसे सुख, सम्पत्ति तथा आनन्द-मंगल प्राप्त हो जाते हैं ॥२३३॥ दयानिधान ! केसरी-किशोर कपि हनुमान् ! हमारे शरीर-रूपी तालाबके सुख-रूपी कमलोंको रोग-रूपी हाथी बलपूर्वक रौंदे डाल रहे हैं, इन्हें देखिए, इनसे बचाइए (हमारे शरीरको रोगोंसे बचाइए) ॥२३४॥ पक्षिराज गरुडपर चढ़नेवाले (विष्णु) भगवान् ! हमारे भुजा-रूपी वृक्षके खोखलेमें रोग-रूपी सर्प हठात् घुस बैठा है । आप उसे तुरन्त निकाल बाहर कीजिए (मेरी काँखमें जो फोड़ा उठ आनेके कारण बड़ी पीड़ा हो रही है उसे दूर कर डालिए) जिससे मेरे सारे कष्ट मिट जायँ ॥२३५॥ राम ! मेरे बाहु-रूपी वृक्षके सुख-रूपी घोंसलेमें भयंकर पीडा-रूपी आग सुलगी पड़ रही है । आप इस दीनके लिये अपनी कृपाका जल उसपर शीघ्र छिड़ककर बुझा डालिए । (मेरी भुजामें जो कष्ट हो उठा है उसे कृपा करके दूर कर दीजिए) ॥२३६॥ जिस काशीमें मुक्तिका जन्म हुआ है, जो ज्ञानकी खान है और जहाँ सब पापोंका नाश हो जाता है, उस काशीमें आकर क्यों नहीं आ बसते जहाँ स्वयं शंकर और पार्वती भी सदाके लिये आ बसे हैं ॥२३७॥ अरे मूर्ख ! (समुद्र-मन्थनके समय) जिस भयंकर विषके उठ निकलनेपर सब देवता (उसकी तीव्र झारसे) झुलसे जा रहे थे उस हलाहल विषको भी जो शंकर झट घूंट गए

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा

बासर ढासनिके ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर।
संकर! निज पुर राखिए, चितै सुलोचन - कोर॥ २३९॥
अपनी बीसी आपु ही, पुरिहि लगाए हाथ।
केहि बिधि बिनती बिस्वकी, करौं बिस्वके नाथ॥ २४०॥
और करै अपराध, कोउ और पाव फल-भोग।
अति बिचित्र भगवंत गति, कोउ न जानिबे जोग॥२४१॥
प्रेम - सरीर प्रपंच - रुज, उपजी अधिक उपाधि।
'तुलसी' भली सुबैदई, बेगि बाँधिए ब्याधि॥२४२॥
हम - हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत, जिमि करी, कोस-कृमि, कीस॥२४३॥
केहि मग प्रबिसति, जाति केहि, कहु दर्पनमें छाँह।
तुलसी त्यों जग-जीव-गति, करी जीवके नाँह॥२४४॥

उन शंकरका भजन तू क्यों नहीं करता? भला, शंकरके समान भी क्या कोई दूसरा कृपालु हो सकता है?॥२३८॥ भगवान् शंकर! दिनमें तो ढास (डाकू) घेरे रहते हैं और रातमें चारों ओर चोर ही चोर घूमते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं आपकी काशी पुरीमें शान्तिसे पड़ा रह सकूँ (इनसे बचाए रहिए)॥ २३९॥ विश्वनाथ शंकर! जब आपने अपनी बीसी[1] (रुद्र-बीसी) स्वयं अपने ही हाथसे यहाँ अपनी ही काशी पुरीमें भी ला लगाई है, तब मैं भला विश्वकी रक्षाके लिये आपसे किस मुँहसे प्रार्थना करूँ?॥ २४०॥ (दशरथ कहते हैं) भगवान्‌की लीला इतनी अधिक विचित्र है कि इसकी गति कोई जान नहीं पा सकता। बताइए, अपराध तो किसी औरने (मैंने और कैकेयीने) किया और उसका फल (दंड) किसी दूसरे (राम)-को भोगना पड़ रहा है (निरपराध रामको वन जाना पड़ रहा है)॥ २४१॥ इस प्रेमके शरीरमें झंझटोंके अनेक ऐसे रोग लगे रहते हैं जिससे अनेक प्रकारके कष्ट होते ही रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि आपकी वैद्यगी तो तभी पक्की समझी जायगी जब आप इन्हें (प्रपंचोंको) शीघ्र बाँध डालें (समाप्त कर दें)॥ २४२॥ हम सब अपने सिरपर 'हम और हमारा'-के अहंकारभरे आचरणोंका बोझ ढोते फिर रहे हैं। सुग्गे, रेशमके कीड़े तथा बन्दरकी भाँति यह शठ मन हठात् पराये (अहंकारके) हाथमें पड़ा दुःख भोगे जा रहा है॥२४३॥ भला बताओ तो कि दर्पणमें अपनी छाया (परछाईं) किधरसे आ पैठती और किधरसे होकर निकल जाती है? तुलसीदास कहते हैं, कि जीवोंके स्वामी भगवान्‌ने संसारके जीवोंकी भी ऐसी ही गति बना दी है (कि न जाने कहाँसे आ निकलते हैं और कहाँ विलीन हो जाते हैं)॥ २४४॥ सुखोंके निधान (भगवान्) सुखकी

१. साठ संवत्सरोंको बीस-बीस वर्षोंके क्रमसे तीन भागोंमें विभक्त किया गया है—१. ब्रह्म-बीसी = (सृष्टिकी रचनाका समय) २. विष्णु - बीसी = (सृष्टिके पालन-पोषणका समय) तथा ३. रुद्रबीसी—सृष्टिके नाश (प्रलय, अकाल या महामारी)-का समय। गोस्वामीजीके अन्त समयमें रुद्रबीसी (संवत् १६६५ से १६८५) चल रही थी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुख-सागर सुख-नींद - बस, सपने सब करतार।
माया माया - नाथकी, को जग जाननहार? ॥२४५॥
जीव सीव-सम सुख-सयन - सपने सब करतूति।
जागत, दीन, मलीन सोइ, बिकल बिषाद-बिभूति ॥२४६॥
सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाक - पति होइ।
जाके लाभ, न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥२४७॥
'तुलसी' देखत, अनुभवत, सुनत, न समुझत नीच।
चपरि चपेटे देत नित, केस गहे कर मीच ॥ २४८ ॥
करम - खरी कर, मोह थल, अंक चराचर - जाल।
हनत, गुनत, गुनि गुनि हनत, जगत ज्योतिषी - काल ॥ २४९ ॥
कहिबे - कहँ रसना रची, सुनिबे - कहँ किय कान।
धरिबे-कहँ चित हित-सहित, परमारथहिं सुजान ॥ २५० ॥
ज्ञान कहै अज्ञान - बिनु, तम-बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन-बिनु, सो गुरु, तुलसीदास ॥ २५१ ॥
अंक अगुन, आखर सगुन, समुझि उभय प्रकार।
खोए, राखे, आपु भल, तुलसी चारु बिचार ॥ २५२ ॥

निद्रामें ही पड़े-पड़े ही सारी सृष्टि रच डालते हैं। मायाके स्वामी (ईश्वर)-की इस मायाको भला संसारमें कौन जान पा सकता है ॥ २४५ ॥ यह जीव जब सुखकी नींद लेता है, तब स्वप्नमें शिवके समान बड़े-बड़े कार्य कर डालता है किन्तु जागनेपर वही दीन, मलिन और दुःखमें पड़ा छटपटाया करता है ॥ २४६ ॥ कभी स्वप्नमें कोई राजा तो भिखारी हो जाता है और कोई दरिद्र भी स्वर्गका राजा हो जाता है पर जाग जानेपर न तो राजा ही दरिद्र होता दिखाई देता न भिखारी ही राजा हो पाता। इसी प्रकार सांसारिक प्रपंचको भी समझ लो (कि यह सब स्वप्न है) ॥ २४७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह नीच जीव निरन्तर देखता, सुनता और अनुभव करता रहता है कि मृत्यु नित्य ही केश पकड़कर चपेटकर दबोचे चली जा रही है फिर भी इस नीच (जीव)-की आँखें नहीं खुल पातीं ॥ २४८ ॥ (जैसे ज्योतिषी किसीके भाग्य-फलपर विचार करनेके लिये पटियापर कुछ गणना करता, विचारता और मिटाता चलता है वैसे ही) इस संसारमें काल-रूपी ज्योतिषी हाथमें (सबके) भाग्यकी खड़िया लेकर मोह (अज्ञान)-की पटियापर जगत्के चर और अचरजीवोंको अंक बनाकर लिखता (रचता), मिटाता (मार डालता) और फिर विचार कर-करके मिटाता चलता है ॥२४९॥ ईश्वरने बोलनेके लिये वाणी और सुननेके लिये कान दिए हैं और (सुजान) ज्ञानियोंको परमार्थ तत्त्व ग्रहण करनेके लिये कृपा करके चित्त भी दे दिया है ॥२५०॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो बिना अज्ञानकी व्याख्याके ज्ञानको समझा दे, बिना अन्धकारकी व्याख्याके प्रकाशकी बात कर दे तथा बिना सगुणकी व्याख्याके निर्गुणको समझा दे उसीको हम अपना गुरु मान लेंगे (ज्ञानकी व्याख्यामें अज्ञानका, प्रकाशकी व्याख्यामें अंधकारका और निर्गुणकी व्याख्यामें सगुणका वर्णन अनिवार्य है) ॥ २५१ ॥ यदि अंकको निर्गुण और (उसे व्यक्त करनेवाले) अक्षरको सगुण मान लें तो दोनों एक ही समझे जायँगे (अंकमें लिखा हुआ १ और अक्षरोंमें लिखा हुआ 'एक' दोनोंका अर्थ एक ही होता है, केवल उसके स्वरूपमें भेद है। उसी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परमारथ - पहिचानि मति, लसति विषय लपटानि।
निकसि चिता-तें अध-जरति, मानहुँ सती परानि॥ २५३॥
सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग।
घर ही सती कहावती, जरती नाह - बियोग॥ २५४॥
खरिया, खरी, कपूर लौं, उचित न पिय! तिय-त्याग।
कै खरिया मोहिं मेलि, कै, बिमल विवेक - विराग॥ २५५॥
घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर - बन - बीच ही राम - प्रेम - पुर छाइ॥ २५६॥
दिये पीठि, पाछे लगै, सनमुख होत पराय।
'तुलसी' संपति छाँह - ज्यों, लखि दिन बैठि गँवाय॥ २५७॥
'तुलसी' अदभुत देवता, आसादेवी नाम।
सेए सोक समर्पई, बिमुख भए अभिराम॥ २५८॥

प्रकार सगुण और निर्गुण ब्रह्म दोनों एक ही हैं, केवल उन्हें पहचाननेके मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।) तुलसीदास विचारकर कहते हैं कि आप इसे रखिए (मानिए) या खोइए (छोड़िए) पर हैं दोनों आप (राम) ही ॥२५२॥ अपनी बुद्धिसे परमार्थको भली भाँति जानकर भी जो व्यक्ति विषयोंमें लिपटा पड़ा रहता है वह वैसा ही (निन्दनीय) है जैसे कोई स्त्री (सती होनेके लिये पहले तो चितापर चढ़जाय पर आगसे डरकर) चितासे अधजली उतरकर भाग निकले॥ २५३॥ अरी! जब घरकेलोग रोक रहे थे तब तू निर्लज्ज होकर (सिर उघाड़कर) सती होनेके लिये क्यों चल दी? पतिके वियोगमें घरमें ही रहकर ही अपना मन जलाती रहती (मनको वशमें रखती) तब भी तो तुझे लोग सती ही कहते ॥२५४॥ प्रिय! जैसे आप खरिया (कंधेपर लटकाए जानेवाले दुमुँहे झोले)-में (टीका लगानेके लिये) खड़िया और (पूजाके लिये) कपूर आदि रक्खे हुए हैं, (उन्हें नहीं छोड़ पाए हैं वैसे ही स्त्रीको भी नहीं छोड़ना चाहिए)। इसलिये या तो मुझे भी खरियामें डाल लीजिए (साथ ले लीजिए) या निर्मल विवेक और वैराग्यकी साधना कीजिए[1] ॥२५५॥ यदि घरमें रहते हैं तो ध्यान-रूपी घर नष्ट होता है और यदि ध्यानरूपी घरमें रहते हैं तो यह संसारका घर जाता रहता है, इसलिये तुलसीने तो वनमें ही रामके प्रेम-नगरमें घर बना धरा है॥ २५६॥ तुलसीदास कहते हैं कि तुम इनके लिये बैठे-बैठे चाहे जितना अपना समय गँवाओ परन्तु सम्पत्ति और छाँह (माया और छाया) दोनोंकी गति एक ही समान है। यदि इनसे मुँह फेरकर रहो तो ये पीछे पड़ जाती हैं और यदि इनके सम्मुख होकर चलो तो ये भाग खड़े होते हैं (मायासे मुँह फेर बैठो तो माया पीछे-पीछे फिरती है पर उसके फेरमें पड़ो तो हाथ नहीं आती, मिलती नहीं)॥ २५७॥ तुलसीदास कहते हैं कि आशा नामकी देवी बड़ी विचित्र है। इसकी सेवा करो तो यह दुःख देती है और यदि इससे विमुख रहो तो बड़ा आनन्द मिलता है[2] ॥२५८॥ तुलसीदास कहते हैं कि मोह (अज्ञान)-की महिमा इतनी प्रबल है कि

---

१. कहा जाता है कि वृद्ध हो जानेपर एक बार तुलसीदास अपने घर पहुँचे तो उनकी वृद्धा पत्नीने उनसे यह दोहा (इस दोहेका भाव) कहा था। २. आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोइ सेँवर, तेई सुवा, सेवत सदा बसंत।
'तुलसी' महिमा मोह - की, सुनत, सराहत संत ॥ २५९ ॥
करत न समुझत, झूठ गुन सुनत, होत मति - रंक।
पारद प्रगट प्रपंच - मय, सिद्धिउ नाउँ कलंक[1] ॥ २६० ॥
ज्ञानी, तापस, सूर, कबि, कोबिद, गुन - आगार।
केहि-कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न यहि संसार ॥ २६१ ॥
श्री-मद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगनयनीके नैन - सर, को अस, लाग न जाहि ॥ २६२ ॥
ब्यापि रहेउ संसार - महँ, माया - कपट प्रचंड।
सेनापति कामादि, भट दंभ, कपट, पाखंड ॥ २६३ ॥
तात! तीन अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिज्ञान - धाम - मन, करहिं निमिष-महँ छोभ ॥ २६४ ॥
लोभ-के इच्छा - दंभ बल, कामके केवल नारि।
क्रोधके परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि ॥ २६५ ॥

संत भी उसकी (शक्तिकी) सराहना करते नहीं अघाते। देखो, वही सेमल है और वही सुग्गा है जो वसंत-भर उसकी सेवा करता रहता है। (सेमलके लाल फूल देखकर सुग्गा उससे मधुर फल पानेके मोहमें प्रत्येक वसंतमें उसपर आ बैठता है, पर फल पक जानेपर मीठे फलके बदले केवल रूई हाथ लगती है) ॥ २५९ ॥ नित्य व्यवहार करके देखनेपर भी उसे (संसारके प्रपंचको) लोग समझते नहीं और उसके झूठे गुण सुनकर उनकी बुद्धि रंक हो जाती (चकराई रहती) है। देखो, यह संसारका प्रपंच पारेके समान है जो बड़े कष्ट (झंझट)-से सिद्ध हो जानेपर भी 'कज्जली' (कालिख) ही कहलाता है ॥ २६० ॥ इस संसारमें ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, विद्वान् और गुणीमेंसे किसकी दुर्गति लोभने नहीं कर डाली? (कौन ऐसा है जिसकी लोभमें पड़नेसे दुर्गति न हुई हो?) ॥ २६१ ॥ संसारमें ऐसा कौन है जिसे धनके मदने कुटिल न बना डाला हो? कौन है जिसे प्रभुत्वने बहरा न कर दिया हो? (जो प्रभुता पाकर मदमत्त न हो गया हो?) कौन ऐसा है जिसे मृगनयनी स्त्रीके नयनके बाणने घायल न कर डाला हो? ॥ २६२ ॥ मायाकी प्रचंड सेना संसार-भरमें फैली पड़ी है, जिसके सेनापति हैं काम आदि (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) और वीर हैं दंभ, कपट, पाखंड ॥ २६३ ॥ देखो भाई! काम, क्रोध और लोभ—ये तीन ऐसे प्रचंड बलवान् दुष्ट हैं कि विज्ञानी और मुनियोंका मन भी क्षण भरमें विचलित कर डालते हैं (उनके मनमें भी काम आ बसता है) ॥ २६४ ॥ श्रेष्ठ मुनि विचार करके कहते हैं कि लोभको इच्छा और दंभ (पाखंड)-का बल रहता है, कामको केवल स्त्रीका बल होता है और क्रोधको केवल कठोर वचनोंका बल होता है (लोभ होनेपर मनुष्य इच्छा और पाखंड करता है, काम होनेपर वह स्त्री प्राप्त करनेकी इच्छा करता है और क्रोध आनेपर कठोर वचन बोलता है) ॥२६५॥

१. कलंक = कज्जली, जो पारा सिद्ध होनेपर तलमें बैठ जाता है। अनुपान-भेदसे यह सब रोगोंके लिये महौषधि है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

काम - क्रोध - लोभादि - मद, प्रबल मोह-के धारि।
तिन्ह-मह अति दारुन दुखद, माया - रूपी नारि ॥ २६६ ॥
काह न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ ॥ २६७ ॥
जनम - पत्रिका[1] बरति - कै, देखहु मनहिँ बिचारि।
दारुन बैरी - मीच - के बीच बिराजत नारि ॥ २६८ ॥
दीप-सिखा-सम जुवति-तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम, तजि काम-मद, करहि सदा सतसंग ॥ २६९ ॥
काम - क्रोध - मद - लोभ - रत, गृहासक्त दुख - रूप।
ते किमि जानहिँ रघुपतिहिँ, मूढ़ परे भव - कूप ॥ २७० ॥
ग्रह-गृहीत, पुनि बात-बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाई बारुनी, कहहु कौन उपचार ॥ २७१ ॥
ताहि-कि संपति, सगुन, सुभ, सपनेहु मन बिस्राम ?
भूत - द्रोह - रत, मोह - बस, राम - बिमुख, रत - काम ॥ २७२ ॥
कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर - न्याय[2] जौ, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ २७३ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये सब मोहके ही प्रबल रूप हैं और उनमें भी माया-रूपिणी स्त्री तो और भी अधिक कठिन दुःख देती है ॥ २६६ ॥ ऐसी कौनसी वस्तु है जो आगमें जल न सके और समुद्रमें डूब न सके। ऐसा कौन-सा काम है जो प्रबल स्त्री कर नहीं सकती और इस संसारमें ऐसा कौन है जिसे काल खा नहीं पा सकता ॥ २६७ ॥ कोई भी जन्मपत्री देखकर मनमें भली-भाँति विचार करके समझ लो कि भयंकर शत्रु तथा मृत्युके बीच स्त्री जमी बैठी है (कुण्डलीमें शत्रु स्थान और मृत्यु-स्थानके बीच स्त्री-स्थान होता है) ॥ २६८ ॥ युवती स्त्रियोंके शरीरको दीपकी लौ समझकर, तू उसपर फतिंगा बनकर मत गिर पड़। कामका संग छोड़कर तू रामका भजन किया कर और सदा सत्संग किया कर ॥ २६९ ॥ संसार-रूपी कुएँमें पड़े हुए जो मूढ जन काम, क्रोध, मद और लोभमें डूबे पड़े रहते हैं तथा दुःखरूपी गृहके प्रपंचमें पड़े रहते हैं, भला वे रामको कैसे जान पा सकते हैं ? ॥ २७० ॥ जिसे कोई ग्रह-पीडा भी सता रही हो, उसपर वात-व्याधि भी हो, उसपर उसे बिच्छूने भी डंक मार दिया हो और उसपरसे उसे मदिरा भी पिला दी गई हो तो बताओ वह किसके बचाए बच पा सकता है ॥ २७१ ॥ जो मनुष्य सब प्राणियोंसे द्रोह करनेमें लगा रहता हो, जिसके सिर अज्ञान छाया रहता हो, जो रामकी ओरसे मुँह फेरे बैठा रहता हो और जो कामासक्त भी हो, उसे क्या कभी स्वप्नमें भी शान्ति मिल सकती है ? (कदापि नहीं) ॥ २७२ ॥ विवेक (भले बुरेकी पहचान)-का वर्णन करना, समझना और उसे साधना बहुत कठिन काम है। यदि घुणाक्षर-न्यायसे (संयोगसे) विवेक आ भी गया तो और न जाने कितनी विघ्न-बाधाएँ उसमें आ खड़ी होती हैं ॥२७३॥

१. जन्म-कुण्डलीमें छठा, सातवाँ और आठवाँ स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्युका माना जाता है। इस प्रकार शत्रु और मृत्युके बीच स्त्रीका स्थान आता है। २. घुणाक्षर-न्याय=संयोगसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खल-प्रबोध, जग-सोध, मन - को निरोध, कुल - सोध।
करहिं ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहुँ सुख, न सुबोध ॥ २७४ ॥

सोरठा

कोउ बिस्राम कि पाव, तात ! सहज संतोष - बिनु।
चलै कि जल - बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय ॥ २७५ ॥
सुर - नर - मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन - माहिं, भजिय महा - माया - पतिहिं ॥ २७६ ॥

दोहा

एक भरोसो, एक बल, एक आस, बिस्वास।
एक राम - घनस्याम - हित, चातक तुलसीदास ॥ २७७ ॥
जौ घन बरसै - समय-सिर, जौ भरि - जनम उदास।
'तुलसी' या चित-चातकहिं, तऊ तिहारी आस ॥ २७८ ॥
चातक ! तुलसी-के मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि ॥ २७९ ॥
रटत - रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग।
'तुलसी' चातक - प्रेमको, नित नूतन रुचि - रंग ॥ २८० ॥
चढ़त न चातक-चित कबहुँ, प्रिय पयोदके दोख।
'तुलसी' प्रेम - पयोधि - को, तातें नाप न जोख ॥ २८१ ॥

जो लोग दुष्टोंको शिक्षा देनेका, संसार-भरको शुद्ध करनेका, अपना मन वशमें करनेका तथा अपने कुलके सुधारका प्रयत्न करते हैं उनका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है। क्योंकि ऐसे लोगोंको न तो स्वप्नमें भी सुख मिल पा सकता न ज्ञान ही मिल पा सकता ॥ २७४ ॥ बताओ भाई ! क्या कोई स्वाभाविक सन्तोषके बिना कभी शान्ति पा सकता है ? चाहे जितने भी उपाय करके हार जाओ, पर पानी न हो तो क्या कभी नाव चल पा सकती है ? ॥२७५॥ देवता, मनुष्य और मुनियोंमें ऐसा कोई माईका लाल नहीं दिखाई देता जो मोह-मायाके चक्करमें न जा पड़ा हो। ऐसा मनमें विचारकर महामायाके पति (भगवान् राम)-की शरणमें जा पहुँचो ॥ २७६ ॥ चातक-रूपी तुलसीदासके लिये तो एक मात्र राम ही घनश्याम (काले बादल) हैं। उसे एक उन्हींका भरोसा, उन्हींका बल, उन्हींसे आशा और उन्हींपर विश्वास है ॥ २७७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि बादल चाहे ठीक समयपर बरसे, चाहे जीवनभर उदासीन रहे (न बरसे), फिर भी राम ! इस चित्त-रूपी चातकको तो एक तुम्हारा ही भरोसा लगा है ॥ २७८ ॥ देखो चातक ! तुम तुलसीकी बात मानो तो स्वातीका जल पीना भी छोड़ दो। क्योंकि प्रेमकी प्यास तो जितनी ही बढ़ती चले उतना ही अच्छा है। प्यास घट गई तो प्रेमकी आन (लगन)-ही घट जायगी ॥ २७९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि पिउ-पिउ रटते-रटते चातककी जीभ ऐंठ गई, प्यासके मारे सारा शरीर सूख गया, फिर भी चातकके प्रेमका रंग तो देखिए कि वह नित्य नया ही नया निखरता चला जा रहा है ॥२८०॥ तुलसीदास कहते हैं कि चातकको अपने प्यारे मेघमें कभी कहीं कोई दोष दिखाई ही नहीं दिया सचमुच प्रेमके समुद्रको कहीं कुछ थाह ही नहीं है॥२८१॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बरषि परुष पाहन पयद ! पंख करौ टूक - टूक ।
'तुलसी' परी न चाहिए, चतुर चातकहिं चूक ॥ २८२ ॥
उपल बरषि, गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ॥ २८३ ॥
पबि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि-झकोर खरि खीझि ।
रोष न प्रीतम-दोष लखि, 'तुलसी' रागहि रीझि ॥ २८४ ॥
मान राखिबो, माँगिबो, पिय-सों नित नव नेहु ।
'तुलसी' तीनिउँ तब फबैं, जौ चातक - मत लेहु ॥ २८५ ॥
'तुलसी' चातक ही फबै, मान राखिबो, प्रेम ।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि, निबाहत नेम ॥ २८६ ॥
'तुलसी' चातक माँगनो एक, एक घन दानि ।
देत जो भू-भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ॥ २८७ ॥
तीनि लोक, तिहुँ काल, जस चातक ही - के माथ ।
'तुलसी' जासु न दीनता सुनी, दूसरे नाथ ॥ २८८ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि बादल बहुत कठोर निर्दयी बनकर पत्थर (बड़े-बड़े ओले) बरसाकर चातकके पंख भले ही टूक-टूक कर डाले, परन्तु चतुर चातकके प्रेममें अन्तर नहीं पड़ना चाहिए। (वह इतनेपर भी टससे मस नहीं होता) ॥ २८२ ॥ मेघ चाहे पत्थर बरसाकर तर्जनके साथ गरजकर कठोर वज्रपात भी कर डाले, परन्तु चातक क्या कभी मेघको छोड़कर कभी किसी दूसरेकी ओर देखता है ? ॥ २८३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि मेघ भले ही खीझकर वज्रपात करे, ओले बरसावे, बिजली चमकाकर गर्जन करे तथा आँधीके साथ वर्षाकी झड़ी लगा दे फिर भी चातक अपने प्रियतम मेघके इतने दोष देखकर भी उसके मनमें कभी रोष नहीं करता क्योंकि वह इसे भी प्रियतमका प्रेम समझकर उसपर रीझा रहता है ॥ २८४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपनी प्रतिष्ठा (आत्मसम्मान) भी बनाए रखना, माँगना तथा अपने प्रियसे नित्य प्रति नवीन स्नेह भी बनाए रखना—ये तीनों बातें तभी ठीक जमती हैं जब इनके लिये चातकका व्रत ग्रहण किया जाय ॥ २८५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपने मानकी रक्षा करते हुए भी प्रेमका निर्वाह करते रहना यदि कोई जानता है तो केवल चातक ही जानता है। उसका प्रेमी स्वाती[1] का मेघ भले ही उसपर टेढ़ी बूँद बरसाता रहे तब भी वह उसकी कोई चिन्ता न करके अपना नियम निबाहता ही रहता है ॥ २८६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि संसारमें न तो कोई चातक-जैसा माँगनेवाला है और न मेघ-जैसा दानी (दोनों ही अपने-अपने ढंगके निराले हैं) क्योंकि मेघ तो ऐसा दानी है कि जब बरसता है तो सारी पृथ्वीके पात्र (जलाशय) लबालब भर देता है और चातक ऐसा भिखारी है कि लेता है तो केवल एक ही घूँट जल लेता है ॥ २८७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल) और तीनों कालों (भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान)-में यदि कोई (नियम निबाहनेका) यश पा सका तो एक चातक ही पा सका

१. सूर्य प्रायः कार्तिकके कृष्ण पक्षके आस-पास स्वाती नक्षत्रमें आता है और इस प्रकार लगभग १५ दिनतक स्वाती नक्षत्र रहता है। उन दिनों प्रायः वर्षा नहीं होती, कभी संयोगसे एकाध दिन बूँदा-बाँदी हो जाती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रीति पपीहा - पयदकी प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि॥ २८९॥
नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहिं, को बारिद - बिनु देइ॥ २९०॥
को को न ज्यायो जगतमें, जीवन - दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहिं, पयद, प्रेम पहिचानि॥ २९१॥
साधन-साँसति सब सहत, सबहि सुखद फल-लाहु।
'तुलसी' चातक - जलदकी रीझि, बूझि बुध काहु॥ २९२॥
चातक - जीवन - दायकहिं, जीवन, समय, सुरीति।
'तुलसी' अलख न लखि परै, चातक प्रीति - प्रतीति॥ २९३॥
जीव चराचर जहँ - लगे, है सब-को हित मेह।
'तुलसी' चातक-मन बस्यो, घन-सों सहज सनेह॥ २९४॥
डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोखरिन बारि।
सुजस धवल, चातक नवल! तुही भुवन दस - चारि॥ २९५॥

है जो (स्वातीके मेघको छोड़कर) दूसरे किसी स्वामीसे कभी प्रार्थना करते नहीं सुना गया॥ २८८॥ पपीहे और मेघके प्रेमकी एक बहुत नई विशेषता यह है कि संसार भरके भिखारी तो अपने दाताके ऋणी होते हैं पर पपीहा ऐसा है कि उसने दान देनेवाले मेघको ही ऋणी बना डाला (कि चातक-जैसा आत्माभिमानी मुझसे माँगता है)॥२८९॥ बताओ, मेघको छोड़कर ऐसे आत्माभिमानी भिखारी चातकको (बादलके अतिरिक्त) दूसरा कौन दे सकता है जो न तो किसीसे माँगता, न माँगकर जुटाता, न कभी सिर झुकाकर (दीनता दिखाकर) लेता॥२९०॥ जीवन (जल)-दाता दानी (मेघ)-ने संसारमें (जनका) दान देकर किसको नहीं जिला दिया किन्तु चातकका प्रेम पहचानकर मेघ भी उलटे उसीका ऋणी हो गया॥ २९१॥ अपने नियमकी साधनामें सभी सब प्रकारका कष्ट सहते हैं और सबको उसका फल भी अच्छा मिलता है फिर भी तुलसीदास कहते हैं कि पपीहेकासा प्रेम और मेघकीसी बुद्धि किसी बिरलेको ही मिल पाती है॥ २९२॥ तुलसीदास कहते हैं कि चातकके जीवन-दायक (मेघ)-का प्रेम तो उसके जीवन-कालतक (बादल रहने-तक) रहता है। पर चातककी प्रीति और प्रतीति (विश्वास-भावना) ऐसी अलक्ष्य है कि वह समझमें नहीं आ पाती (मरनेपर भी बनी रहती है, दोहा ३०२, ३०४, ३०५)॥ २९३॥ संसारमें जहाँतक चराचर जीव हैं, सबको वर्षा सदा अच्छी लगती है। किन्तु तुलसीदास कहते हैं कि मेघसे यदि किसीके मनमें स्वाभाविक प्रेम है तो केवल चातकके मनमें ही है॥ २९४॥ यद्यपि वनमें ऐसे अनेक पक्षी डोलते-फिरते हैं जो पोखरे या तालाबोंका पानी पी-पीकर मस्त हुए रहते हैं। परन्तु नवेले चातक! तू ही एक ऐसा बिरला पक्षी है जो अपने उज्ज्वल यशसे चौदहों भुवनोंको चमकाए हुए है (तू अपनी टेक निभाता चला आ रहा है)॥ २९५॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुख मीठे, मानस मलिन, कोकिल, मोर, चकोर।
सुजस धवल, चातक नवल! रह्यो भुवन भरि तोर॥ २९६॥
बास, बेष, बोलनि, चलनि, मानस, मंजु मराल।
'तुलसी' चातक-प्रेमकी, कीरति बिसद बिसाल॥ २९७॥
प्रेम न परखिय परुषपन, पयद-सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह॥ २९८॥
होइ न चातक पातकी, जीवन-दानि न मूढ़।
'तुलसी' गति प्रहलादकी, समुझि प्रेम-पथ गूढ़॥ २९९॥
गरज आपनी सबन-को, गरज करत उर आनि।
'तुलसी' चातक चतुर भो, जाचक जानि सुदानि॥ ३००॥
चरग-चंगु-गत चातकहिं, नेम-प्रेम-की पीर।
'तुलसी' पर-बस हाड़-पर, परिहै पुहुमी-नीर॥ ३०१॥

कोयल, मोर और चकोर मुँहके तो बड़े मीठे होते पर मनके बड़े खोटे होते हैं (कोयल अपने अंडे ले जाकर कौएके घोंसलेमें पलवाती है, चकोर अंगारा खाता है और मोर साँप-तक खा जाता है) पर अरे अलबेले चातक! उज्ज्वल यश तो तेरा ही सभी लोकोंमें जा फैला है (कि तेरी बोली भी प्यारी है और मन भी स्वच्छ है) ॥२९६॥ हंसका निवास-स्थान (मानसरोवर), वेष (रंग), बोलना, चलना और मन (विवेकशील) सभी सुहावना है, किन्तु जहाँतक प्रेमकी बात है उसमें चातककी कीर्त्ति उससे बहुत बढ़ी-चढ़ी और उज्ज्वल है ॥ २९७ ॥ बादलसे यही शिक्षा मिलती है कि प्रेममें किसीकी कठोरता या निर्दयतापर ध्यान नहीं देना चाहिए। संसार पपीहेको भले ही पापी कहता फिरे (कि इतना पानी बरसनेपर भी इसे पीनेको पानी नहीं मिलता) जब कि मेघ ऊसरमें भी पानी ला बरसाता है॥ २३८॥ न तो पपीहा ही पापी है (कि उसे पानीतक नहीं मिल पाता) और न जलदाता मेघ ही मूढ है (कि वह बिना समझे जहाँ-तहाँ बरसता फिरता है)। तुलसीदास कहते हैं कि वास्तवमें प्रेमकी गति ही बड़ी गूढ है। इस प्रेमको तो प्रह्लादके प्रेमके समान समझना चाहिए (जिसने कष्ट सहते हुए भी अपनेको भगवान्‌के भरोसे छोड़ दिया था)[1] ॥२९९॥ अपना स्वार्थ साधनेके लिये सब जिस-तिसके आगे हाथ जा पसारते हैं। पर तुलसीदास कहते हैं कि यदि कोई चतुर याचक है तो केवल चातक ही है जो जानता है कि किस उदार दाता (मेघ)-से माँगना चाहिए ॥ ३००॥ चरग[2] (शिकारी पक्षी, बाज)-के पंजेमें सब संकट सहते हुए भी पड़े हुए पपीहेको (अपनी मृत्युकी नहीं) केवल अपने प्रेम और नियम टूटनेका ही दुःख हो रहा है कि मुझ परवशके मारे जानेपर मेरी हड्डी और पंख पृथ्वीके पानीमें डाल दिए जायँगे (स्वातीके जलमें नहीं

---

१. नदन्तो भैरवान्नादाँश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः। आसीनं चाहनञ्शूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु।
परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि। युक्तात्मन्यफला आसन्न पुण्यस्येव सत्क्रियाः॥
भागवत ७।५।४१-४२

२. चरग = चर्ग (फ़ारसी) बाज़, शिकारी पक्षी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बध्यो बधिक, पन्यो पुन्य-जल , उलटि उठाई चोंच।
'तुलसी' चातक - प्रेम - पट , मरतहु लगी न खोंच ॥ ३०२ ॥
अंड फोरि, कियो चेंटुवा, तुप पन्यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर, डान्यो बाहिर बारि ॥ ३०३ ॥
'तुलसी' चातक देत सिख, सुतहिं बार ही बार।
तात ! न तर्पन कीजियै, बिना बारिधर - धार ॥ ३०४ ॥

सोरठा

जियत न नाई नारि[1], चातक, घन तजि दूसरेहिं।
सुरसरि हू - को बारि, मरत न माँगेउ अरध-जल[2] ॥ ३०५ ॥
सुन रे तुलसीदास ! प्यास पपीहहि प्रेम-की।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति-को ॥ ३०६ ॥
जाँचै बारह मास, पियै पपीहा स्वाति - जल।
जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह - मन ॥ ३०७ ॥

दोहा

तुलसी - के मत चातकहिं, केवल प्रेम - पियास।
पियत स्वाति-जल जान जग, जाँचत बारह मास ॥ ३०८ ॥

॥३०१॥ (गंगाके तटपर खड़े वृक्षपर बैठे चातकको) बधिकने बाण मारा और वह गंगाकी धारामें जा गिरा। पर उसने झट अपनी चोंच ऊपर उठा ली कि कहीं अन्त समयमें मुंहमें (स्वातीके जलके बदले) गंगाका जल न चला जाय। तुलसीदास कहते हैं, कि मरते समय भी चातकके प्रेम-पटमें खोंच नहीं लगी (उसने स्वातीका जल छोड़कर दूसरा जल नहीं पीया) ॥ ३०२ ॥ अंडा फोड़कर पपीहेने जब बच्चा बाहर निकाला तो अंडेका छिलका दूसरे पानीमें जा पड़ा, किन्तु चतुर चातकने उसे उस जलसे अपने पंजेसे बाहर निकाल फेंका (कि कहीं मेरे अंडेके छिलकेको भी दूसरा पानी न छू जाय) ॥३०३॥ तुलसीदास कहते हैं कि चातक अपने पुत्रको बार-बार यही शिक्षा देता रहता है कि देखो बेटा ! मेरे मर जानेपर मेघ(स्वाती)-के जलके अतिरिक्त अन्य किसी भी जलसे मेरा तर्पण न करना ॥३०४॥ पपीहेने जीते जी तो बादलको छोड़कर किसी दूसरेके आगे अपना सिर नहीं झुकाया पर मरते समय भी उसने पीनेके लिये गंगा-तटका अर्ध-जल नहीं माँगा ॥३०५॥ अरे तुलसीदास ! सुन। पपीहेको जलकी नहीं, केवल प्रेमकी प्यास है इसीलिये वह वर्षाके चारों महीने छोड़कर केवल स्वाती नक्षत्रका ही जल पीता है (पानीका प्यासा होता तो वर्षा-भर जल पीता रहता) ॥ ३०६ ॥ तुलसीदासने समझ लिया है कि बारहों महीने याचना करनेपर भी पपीहा स्वाती नक्षत्रका ही जल पीता है। वास्तवमें वह जल-वल नहीं पीता, वह तो अपने प्रेमी मेघका आदर करनेके लिये ही स्वातीका जल पी लेता है ॥ ३०७ ॥ तुलसीके विचारसे तो पपीहेको (पानीकी नहीं), केवल प्रेमकी प्यास रहती है। यद्यपि वह बारहों महीने माँगता तो रहता है पर संसार जानता है कि वह पीता है केवल

१. नारि = नाड़, गरदन। २. मरते हुए मनुष्यको आधा गंगामें आधा बाहर रखते हैं इसे 'अर्धजल' क्रिया कहते हैं। इस अवस्थामें प्राण निकलनेपर मोक्ष मिलता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आलवाल मुकुताहलनि हिय, सनेह - तरु - मूल।
होइ हेत, चित चातकहिं, स्वाति-सलिल अनुकूल ॥ ३०९ ॥
उष्न काल, अरु देह खिन, मग-पंथी, तन ऊख[1]।
चातक बतियाँ ना रुचीं, अन जल सींचे रूख ॥ ३१० ॥
अन जल सींचे रूख-की छाया - तें बरु घाम।
'तुलसी' चातक बहुत हैं, यह प्रबीन - को काम ॥ ३११ ॥
एक अंग जो स्नेहता, निसि - दिन चातक-नेह।
'तुलसी' जासों हित लगै, वहि अहार, वहि देह ॥ ३१२ ॥
बिबि रसना, तनु स्याम है, बंक चलनि, बिष-खानि।
'तुलसी' जस स्रवननि सुन्यो, सीस समरप्यो आनि ॥ ३१३ ॥
आपु व्याधको रूप धरि, कुहौ[2] कुरंगहिं राग।
'तुलसी' जौ मृग-मन मुरै, परै प्रेम - पट दाग ॥ ३१४ ॥
'तुलसी' मनि निज दुति फनिहिं, व्याधहिं देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो, तातें प्रेम न जाइ ॥ ३१५ ॥

स्वातीका जल ॥३०८॥ चातकके हृदयरूपी मोतियोंकी क्यारी (थाँवले)-में प्रेम-रूपी वृक्षकी जड़ लगी है भगवान् करे स्वातीका जल चातकके चित्तके लिये अनुकूल हो जाय (चातकके प्रेमवृक्षको स्वातीका जल मिल जाय) ॥ ३०९ ॥ गरमीके दिन हैं, चातकका शरीर भी थक गया है, वह मार्गमें उड़ा चला जा रहा है, उसका शरीर गरम हो चला है किन्तु इतनेपर भी उसे अन्य जलसे सींचे हुए वृक्ष (-पर विश्राम करने)-की बात अच्छी नहीं लगी ॥ ३१० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि बननेको तो बहुत लोग चातक बन बैठते हैं पर यह बात कोई चतुर चातक ही कह पाता है कि अन्य जलसे सींचे हुए पेड़की छायासे तो मुझे धूपमें ही तपते रहना कहीं अच्छा है ॥ ३११ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसका जिससे स्नेह लगा हो वही उसका भोजन है और वही उसका आधार है। इसीलिये चातक भी दिन-रात एकाङ्गी भावसे केवल स्वातीके जलसे ही प्रेम करता रहता है ॥ ३१२ ॥ दो जीभोंवाला, काले शरीरवाला और टेढ़ी चाल चलनेवाला विषधर सर्प भी अपना यश कानोंसे सुन लेता है तो अपना सिर दे डालता है (आत्म-प्रशंसा सुनकर कौन नहीं प्रसन्न हो उठता) ॥ ३१३ ॥ राग (बीनकी मधुर ध्वनि) चाहे व्याध बनकर भले ही स्वयं मृगको मार डाले परन्तु मृग है कि उसका मन मधुर रागसे कभी हटकर नहीं देता। यदि वह हट जाय तो उसके प्रेमके पटमें कलंक न लग जाय ! (वह तो उसका स्वाभाविक प्रेम है) ॥ ३१४ ॥ तुलसीदास कहते हैं सर्पका मणि अपने प्रकाशसे व्याधको भले ही सर्प दिखा दे किन्तु क्या मणि खो जानेपर सर्प अन्धा नहीं हो जाता (वह तो उसके वियोगमें प्राण दे ही डालता है और मणिके इस व्यवहारसे भी उसका प्रेम मणिसे बना ही रहता है) ॥ ३१५ ॥ कमल-वनको पालेसे जलता हुआ देखकर भी सूर्य उसकी चिन्ता

---

१. ऊख = (उष्ण), तपा हुआ। २. कुहो=चाहे मार डालो।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जरत तुहिन लखि बनज-बन, रबि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ॥ ३१६॥
देउ आपने हाथ जल, मीनहिं माहुर घोरि।
'तुलसी' जियै जो बारि-बिनु, तौं तु देहि कबि खोरि॥ ३१७॥
मकर, उरग, दादुर, कमठ, जल जीवन, जल गेह।
'तुलसी' एकै मीनको, है साँचलो सनेह॥ ३१८॥
'तुलसी' मिटै न मरि मिटेहु, साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा[1] बिनु-मूरि हू, पलुहत गरजत मेह॥ ३१९॥
सुलभ प्रीति प्रीतम, सबै कहत, करत सब कोइ।
'तुलसी' मीन पुनीत-तें, त्रिभुवन बड़ो न कोइ॥ ३२०॥
'तुलसी' जप, तप, नेम, ब्रत, सब, सब ही-तें होइ।
सहै बड़ाई देवता, इष्टदेव जब होइ॥ ३२१॥
कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित-अनहित किन कोइ।
ससि-छबि-हर रबि-सदन[2] तउ, मित्र कहत सब कोइ॥ ३२२॥

न करके भले ही अस्त हो रहे (छिप रहे), पर कमलका यह सहज स्वभाव कभी नहीं मिट सकता कि सूर्यके उदय होते ही वह प्रसन्न हो उठता (खिल जाता) है और अस्त होते ही संकुचित हो जाता (मुँद जाता) है॥ ३१६॥ तुलसीदास कहते हैं, कि चाहे जल स्वयं अपने हाथसे विष घोलकर ही क्यों न मछलीको दे डाले (पर वह मछली उसीमें पड़ा रहना ठीक समझेगी)। यदि वह बिना जलके जीवित रह जाय तब कविको दोष दीजिए। (मछलीका स्वाभाविक प्रेम जलसे है भले ही उसमें विष मिला हो। वह विष-मिले जलमें भी रहना अच्छा समझती है)॥ ३१७॥ तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि रहनेको तो मकर, सर्प, मेंढक और कछुए सभी जलमें ही रहते हैं पर जलसे सच्चा प्रेम यदि किसीको है तो मछलीको ही है (जो जलके बिना जीवित ही नहीं रह सकती)॥ ३१८॥ तुलसीदास कहते हैं कि मर जानेपर भी सच्चा और स्वाभाविक प्रेम कभी मिट नहीं पाता जैसे बिना जड़की मयूर-शिखा नामकी बूटी (-को बादलसे ऐसा प्रेम होता है कि वह बादलकी गरज सुनते ही) वर्षा होनेसे पहले ही पनप उठती है॥ ३१९॥ यद्यपि सभी कहते हैं कि प्रेम और प्रेमी बड़े सुलभ हैं और सभी किसी न किसीसे प्रेम करते भी हैं, परन्तु तुलसीदासके विचारसे तो मछलीसे बड़ा और पवित्र प्रेमी त्रिभुवनमें दूसरा कोई नहीं है॥ ३२०॥ तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि करनेको तो जप, तप, नियम और व्रत आदि सभी करते ही रहते हैं पर मनुष्यका यश तभी होता है जब उसके देवता उस पर प्रसन्न हो जायँ॥ ३२१॥ सुखके दिनोंमें कोई अपना हितैषी या अनहित क्यों न हो परन्तु हितू (हितकारी) वही है जो दुर्दिनमें हित हो (अपने काम आवे) जैसे सूर्यके घरमें पहुँच जानेपर (अमावास्याके दिन)

१. मोरसिखा = मयूरशिखा नामकी घास या बूटी जो बरसात आते ही पनप जाती है। इसमें जड़ नहीं होती। २. दरस = सूर्यके दिखाई पड़ते ही (चन्द्रमाकी चमक मन्द पड़ जाती है)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कै लघु, कै बड़, मीत भल, सम सनेह दुख सोइ।
'तुलसी' ज्यों घृत-मधु सरिस मिले महा - विष होइ ॥ ३२३ ॥
मान्य मीत-सों सुख चहै, सो न छुवै छल-छाँह।
ससि, त्रिसंकु, कैकेइ गति, लखि 'तुलसी' मन-माँह ॥ ३२४ ॥
कहिय कठिन कृत कोमलहु, हित हठि होइ सहाइ।
पलक - पानि-पर ओड़ियत, समुझि कुघाइ - सुघाइ ॥ ३२५ ॥
'तुलसी' बैर - सनेह दोउ, रहित - बिलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरि - बारि ॥ ३२६ ॥
रुचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु।
आलस, अनख, न आचरज, प्रेम - पिहानी[४] जानु ॥ ३२७ ॥

चन्द्रमाकी कान्ति समाप्त हो जाती है, फिर भी सूर्यको सब लोग 'मित्र' ही कहते हैं (क्योंकि सूर्य ही अन्य दिन चन्द्रमाको प्रकाश देता है) ॥३२२॥ मित्र या तो (अपनेसे) छोटा होना चाहिए या अपनेसे बड़ा। बराबरीकी मित्रता बड़ी दुखदायी होती है। जैसे, घी और मधु यदि बराबर मात्रामें मिला लिए जायँ तो वे महा विष हो जाते हैं (दोनोंमेंसे एकको कम और दूसरेको अधिक ले लिया जाय तो बहुत लाभका हो जाता है) ॥३२३॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि अपने मान्य मित्रसे सुख पानेकी आशा करते हो तो मनमें तनिक भी छल (दुराव) न रक्खो। चन्द्रमा[१], त्रिशंकु[२] और कैकेयीके[३] छलका परिणाम प्रत्यक्ष देख लो (जिनका अंतमें बहुत बुरा परिणाम हुआ) ॥३२४॥ कठोर या साधारण कैसी भी विपत्ति पड़नेपर जो बिना कहे-सुने ही सहायता करे उसीको अपना वैसे ही हितैषी समझना चाहिए जैसे शरीरपर चोट लगते देखकर अनायास ही हाथ उठकर शरीरकी रक्षा कर लेता है और आँखपर चोट लगती देखकर अनायास ही पलकें बन्द होकर उसकी रक्षा करती हैं और आघातको अपने ऊपर ओड़ (सह) लेती हैं ॥ ३२५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि वैर और प्रेम दोनों (अन्तः और बाह्य दृष्टि न होनेके कारण) चारों आखोंसे अन्धे हैं (क्योंकि वैरी अपने शत्रुके गुण नहीं देखता और प्रेमी अपने प्रेमीके दोष नहीं देखता) जैसे सेवड़ा (वाममार्गी शाक्त) मदिरका तो आदर करते हैं (क्योंकि वे उससे प्रेम करते हैं) और गंगाजलकी निन्दा करते हैं (क्योंकि वे उससे वैर रखते हैं) ॥३२६॥ मंगनको माँगना प्रिय है, तो दानीको दान देना भी प्रिय है। उसमें न उन्हें आलस्य होता, न झुँझलाहट, न आश्चर्य क्योंकि ये भाव सब (माँगने या दानके) प्रेमसे ढके रहते हैं। अतः इनके लिये (माँगने या देनेमें) संकोच नहीं होता ॥३२७॥ विधाताने अमृत और विष निचोड़कर गाली बनाई है इसलिये इससे प्रेम और वैर दोनों उत्पन्न होते है। पर यह (प्रेमकी

---

१. चन्द्रमाने अपने गुरु वृहस्पतिकी पत्नी तारासे रमण किया इसलिये उसे कलंकीक हते हैं। २. त्रिशंकुको पहले वशिष्ठका अपमान करानेके कारण चांडाल बनना पड़ा। विश्वामित्रने अपने तपोबलसे उसे सदेह स्वर्ग भेजना चाहा तो वह औंधे मुँह गिरकर बीचमें लटक गया। ३. कैकेयीने दशरथसे छल किया तो विधवा भी हुई और बदनाम भी। ४. पिहानी = पिधान, ढक्कन, छिपानेवाली वस्तु।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार।
प्रेम - बैरकी जननि जुग, जानहिं बुध, न गँवार ॥ ३२८ ॥
सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
तेपै तिन्हके जाहिं घर, जिनके हिये न नैन ॥ ३२९ ॥
हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु चाड़।
निज मुख मानिक-सम दसन, भूमि परे ते हाड़ ॥ ३३० ॥
माखी, काक, उलूक, बक, दादुर - से भे लोग।
भले ते सुक, पिक, मोर-से, कोउ न प्रेम-पथ - जोग ॥ ३३१ ॥
हृदय कपट, बर बेष धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि।
अब - के लोग मयूर - ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि ॥ ३३२ ॥
चरन - चोंच - लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल।
छीर - नीर बिबरन - समय, बक उघरत तेहि काल ॥ ३३३ ॥
मिलै जो सरलहिं सरल ह्वै कुटिल, न सहज बिहाइ।
सो सहेतु, ज्यों बक्र गति ब्याल न बिलै समाइ ॥ ३३४ ॥
कृस-धन सखहिं न देत सुख, मुऐहु न माँगत नीच।
'तुलसी' सज्जनकी रहनि, पावक - पानी बीच ॥ ३३५ ॥

गाली और वैरकी गाली) बुद्धिमान् लोग ही समझ पाते हैं, गँवार नहीं समझ सकता ॥३२८॥ जो लोग न तो कभी स्मरण करते न मिलनेपर प्रिय वचन ही बोलते, ऐसोंके घर वे ही (मूखं) जाते हैं जिनके हृदयकी आँख नहीं होती ॥३२९॥ जिससे अपना स्वार्थ सधता हो वही अपना हितू और सच्चा समझा जाता है और बेकाम होनेपर वही अपवित्र और वैरी हो जाता है जैसे दाँत जबतक मुँहमें रहता है तबतक माणिकके समान पवित्र समझा जाता है, पर (टूटकर) धरतीपर गिरते ही वही दाँत हड्डीके समान अशुद्ध हो जाता है ॥३३०॥ संसारमें अधिकांश लोग तो मक्खी, कौए, उल्लू, बगुले और मेंढक-जैसे गंदे स्वभाववाले होते ही हैं पर भले स्वभाववाले लोग भी सुग्गे, कोयल और मोरके समान (आँख बचाकर निकल भागनेवाले, स्वार्थी और कठोर) होते हैं। प्रेम करने-योग्य इनमेंसे कोई नहीं है ॥३३१॥ आजकलके लोग मोरके समान रहते तो हैं बड़े बनठनकर पर हृदयके बड़े कपटी होते हैं। वे बहुत बना-बनाकर बड़े मीठे वचन बोलते हैं। ऐसे लोगोंसे जी खोलकर कैसे मिला जा सकता है ? (अपने मनकी बात कैसे कही जा सकती है ?) ॥ ३३२ ॥ बगुला भले ही हंसके समान चरण, चोंच और आँखें रँग कर हंस-जैसी बढ़िया चालसे भी चलने लगे किन्तु जब दूध और पानी अलग करनेका समय आता है तब बगुलेकी तुरंत पोल खुल जाती है ॥३३३॥ कुटिल मनुष्य अपनी स्वाभाविक कुटिलता कभी नहीं छोड़ता। जब वह किसी सरल पुरुषसे सरल होकर मिलने लगे तो समझ लेना चाहिए कि उसे अपना कुछ स्वार्थ साधना है जैसे सर्प स्वभावसे ही चलता तो है टेढ़ी चालसे, पर जब वह बिलमें प्रवेश करता है तब वह सीधा होकर घुसता है (क्योंकि टेढ़ी चालसे चले तो उसमें घुस ही नहीं पा सकता) ॥३३४॥ तुलसीदास कहते हैं कि सज्जन पुरुषका रहन-सहन तो ऐसा संकटपूर्ण है जैसे कोई आग और पानीके बीचमें बसा हुआ हो (कि तनिक सी चूक होनेपर या तो आगमें जल मरेगा या पानीमें डूब जायगा)। उसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संग सरल - कुटिलहि भए, हरि-हर करहिं निबाहु।
ग्रह-गनती - गति चतुर बिधि, कियो उदर - बिनु राहु ॥ ३३६ ॥
नीच निचाई नहिं तजै, सज्जन - हू - के संग।
'तुलसी' चंदन-बिटप बसि, बिनु - बिष भे न भुअंग ॥ ३३७ ॥
भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥ ३३८ ॥
मिथ्या माहुर सज्जनहिं, खलहिं गरल - सम साँच।
'तुलसी' छुवत पराइ ज्यों, पारद पावक - आँच ॥ ३३९ ॥
संत - संग अपवर्ग - कर, कामी भव - कर पंथ।
कहहिं साधु, कबि, कोबिदहु, स्रुति, पुरान, सद्ग्रन्थ ॥ ३४० ॥
सुकृत न सुकृती परिहरइ, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन दै चले, गीधराज, मारीच ॥ ३४१ ॥
सुजन सुतरु-बन, ऊख-सम, खल टंकिका - रुखान।
पर-हित, अनहित-लागि सब साँसति सहत समान ॥ ३४२ ॥

जब धनकी आवश्यकता पड़ती है तो वह कम धनवालेसे माँगकर उसे दुखी नहीं करना चाहता और नीच व्यक्तिके आगे तो वह मृत्यु आनेपर भी (अत्यन्त कष्ट होनेपर भी) हाथ नहीं फैलाता ॥३३५॥ सीधे सज्जनका कहीं टेढ़े (दुर्जन)-से साथ हो जाय तो विष्णु और शंकर ही निर्वाह कर पावें तो कर पा सकते हैं। राहुकी गणना ग्रहोंमें होनेके कारण चतुर विधाताने उसे बिना पेटका कर दिया (नहीं तो वह सबको डकार जाता)॥ ३३६ ॥ तुलसीदास कहते हैं, कि जो नीच होते हैं, वे सज्जनोंके साथ रहकर भी अपनी नीचता नहीं छोड़ते। जैसे चन्दनके वृक्षपर रहनेवाला सर्प भी अपना विषैलापन नहीं छोड़ पाता ॥३३७॥ जो भले हैं उनकी प्रतिष्ठा भलाई करनेके कारण और जो नीच स्वभावके हैं उनकी प्रशंसा नीचताके लिये ही होती है जैसे अमृतकी सराहना अमरत्व देनेके लिये और विषकी सराहना मृत्यु देनेके लिये प्रसिद्ध ही है ॥ ३३८ ॥ जैसे सज्जन लोग झूठको विषके समान मानते हैं, वैसे ही दुष्टोंको सत्य ही विषके समान जान पड़ता है। तुलसीदास कहते हैं कि असत्यको देखकर सज्जन और सत्यको देखकर दुष्ट वैसे ही भाग जाता है जैसे आँच छूते ही पारा उड़ जाता है ॥ ३३९ ॥ साधु-सन्तोंका संग करनेसे मोक्ष मिलता है और कामी पुरुषोंका संग करनेसे संसारकी झंझट मिलती है। यह बात कवि, विद्वान्, वेद-पुराण आदि सद्ग्रन्थ सभी स्वीकार करते हैं ॥ ३५० ॥ गीधराज (जटायु) और मारीच दोनों मरते-मरते यही शिक्षा दे गए कि जो (जटायु-जैसे-धर्मात्मा हैं वे कभी अपने धर्मका परित्याग नहीं करते और जो मारीच-जैसे कपटी स्वभाववाले नीच हैं वे मरते दमतक कभी कपट नहीं छोड़ते ॥ ३४१ ॥ सज्जन तो अच्छे वृक्षोंके वन और ईखके समान दूसरोंके हितके लिये कष्ट सहते हैं (काटे और पेरे जाते हैं) और दुष्ट लोग छेनी और रुखानीके समान केवल दूसरोंका अनहित करते रहनेमें कष्ट सहते (काटते, पीटते रहते) हैं ॥ ३४२ ॥ एक और भौंरे हैं जो पेड़के फूलोंका रस पीते हैं, दूसरी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पियहिं सुमन-रस अलि, बिटप काटि कोल फल खात।
'तुलसी' तरु - जीवी जुगल, सुमति कुमतिकी बात ॥ ३४३ ॥
अवसर कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिए का लाख ?
दुइज न चंदा देखिए, उदै कहा भरि पाख ॥ ३४४ ॥
ज्ञान अनभले-को सबहि, भले भलेहू काउ।
सींग, सूँड़, रद, लूम, नख, करत जीव जड़ घाउ ॥ ३४५ ॥
'तुलसी' जग-जीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु - कृसानु - महि-पवन, एक घन दानि ॥ ३४६ ॥
सुनिय सुधा, देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ-तहँ काक, उलूक, बक, मानस सकृत मराल ॥ ३४७ ॥
जलचर, थलचर, गगन-चर, देव, दनुज, नर, नाग।
उत्तम, मध्यम, अधम खल, दस गुन बढ़त बिभाग ॥ ३४८ ॥
बलि - मिस देखे देवता, कर - मिस मानव - देव।
मुए मार अविचार - हत, स्वारथ - साधन एव ॥ ३४९ ॥
सुजन कहत भल, पोच पथ पापि, न परखै भेद।
करमनास - सुरसरित - मिस, बिधि - निषेध बद बेद ॥ ३५० ॥

और जंगली कोल हैं जो उसी पेड़को काटकर उसका फल खाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ये दोनों ही तरुजीवी (वृक्षोंपर ही जीवन निर्वाह करनेवाले) हैं किन्तु दोनोंमेंसे एककी बुद्धि अच्छी और दूसरेकी खोटी है ॥ ३४३ ॥ जो अवसर पड़नेपर एक कौड़ी देनेमें चूक जाता है, वह फिर (अवसर बीत जानेपर) लाखों भी लुटा दे तो वैसे ही व्यर्थ है जैसे यदि द्वितीयाके दिन चाँद न देखा तो पाखभर उसे देखकर क्या किया ॥३४४॥ बुराई करना तो सभीको आता है, पर भलाई करनेका ज्ञान किसी बिरलेको ही हो पाता है जैसे मूर्ख पशु (गैंडा, हाथी, सिंह, चँवरी गाय और बन्दर) अपने सींग, सूँड़, दाँत, पूँछ और नखका प्रयोग केवल दूसरोंको चोट पहुँचानेके लिये ही करते हैं ॥ ३४५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि संसारका अहित करनेवाले तो बहुत हैं पर हित करनेवाला कोई कहीं दिखाई पड़ता है। सुखानेवाले तो सूर्य अग्नि, पृथ्वी और वायु—सभी हैं पर पानी देनेवाला दाता यदि कोई है तो केवल एक बादल ही है ॥३४६॥ अमृतका तो केवल नाम-भर सुना जाता है पर विष तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है जैसे कौवे, उल्लू और बगुले तो चारों ओर दिखाई देते हैं, पर हंस तो केवल मानसरोवरमें ही मिल पाते हैं ॥३४७॥ जलके जन्तु, स्थलके जीव, आकाशचारी (पक्षी आदि), देवता, मनुष्य और पातालवासी नाग—इन सबमें उत्तमकी अपेक्षा मध्यम, मध्यमकी अपेक्षा अधम और अधमकी अपेक्षा खल (निकृष्ट) प्राणियोंकी संख्या दसगुनी अधिक होती है ॥३४८॥ पूजा और नैवेद्यके बहाने प्रसाद लेनेवाले देवता और करके बहाने धन लेनेवाले राजा—दोनोंको भली-भाँति परख देखा है। इन दोनोंका ही काम स्वार्थ साधना है। दोनों ही विचार शून्य हैं और मरेको और मारे डालते हैं ॥३४९॥ भले लोग तो अच्छे और बुरे मार्गका भेद बताते हैं, परन्तु पापी भले-बुरेमें कोई भेद नहीं मानते जैसे गंगा और कर्मनाशाके रूपमें वेदने बता दिया है कि पवित्र कौन है और अपवित्र कौन ॥३५०॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मनि - भाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि।
का छाँड़िय, का संग्रहिय, कहहु बिबेक बिचारि ॥ ३५१ ॥
उत्तम, मध्यम, नीच गति, पाहन, सिकता, पानि।
प्रीति - परिच्छा तिहुँन - की, बैर - बितिक्रम जानि ॥ ३५२ ॥
पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ, पथ पाँच।
लहहिं सुजन, परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच ॥ ३५३ ॥
नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद बिसाल।
कदरी - बदरी - बिटप - गति, पेखहु पनस - रसाल ॥ ३५४ ॥
'तुलसी' अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुनहू - को बासु ॥ ३५५ ॥
बुध सो बिबेकी बिमल-मति, जिनके रोष न राग।
सुहृद सराहत साधु जेहि, 'तुलसी' ताको भाग ॥ ३५६ ॥
आप आप - कहँ सब भलो, अपने - कहँ कोइ - कोइ।
'तुलसी' सब-कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥ ३५७ ॥

यदि माणिकके पात्रमें शराब रक्खी हो और परई (मिट्टीके शकोरे)-में अमृत भरा हो तो विवेकपूर्वक विचार करके बताओ कि किसको छोड़ना चाहिए और किसको ग्रहण करना चाहिए ? ॥ ३५१ ॥ पत्थरपरकी, बालूपरकी और पानीपरकी लकीरके समान प्रीति भी क्रमशः उत्तम, मध्यम और नीच तीन प्रकारकी समझनी चाहिए और वैरका क्रम ठीक इसके विपरीत समझना चाहिए (पानीकी लकीरके समान शीघ्र मिटनेवाला वैर उत्तम, बालूपरकी लकीरके समान थोड़ी देर रहनेवाला वैर मध्यम और पत्थरपरकी लकीरके समान स्थायी वैर अधम होता है) ॥३५२॥ हमारी यह पक्की बात गाँठ बाँध लो कि पुण्य, प्रीति, लाज, प्राप्ति (धन-लाभ) और परमार्थ इन पाँचोंको बुद्धिमान् तो ग्रहण कर लेते हैं पर दुष्ट इनका परित्याग कर देते हैं ॥३५३॥ नीच तो निरादर होनेपर ही काम करता है और भले लोग अपना आदर होनेपर ही सुख देते हैं। इसका प्रमाण पानेके लिये केले और बेरकी तथा कटहल और आमकी दशा जा देखो। (केले और बेरके पेड़ तो काटे जानेपर ही फल देते हैं, पर आम और कटहल ऐसे हैं कि उनकी जितनी सेवा की जाय उतने फूलते-फलते हैं।) ॥ ३५४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपनी करनी भला किसे अच्छी नहीं लगती ? जो लोग नित्य लहसुन खाते हैं उन्हें उसकी कोई दुर्गंन्ध नहीं जान पड़ती ॥ ३५५ ॥ वही व्यक्ति बुद्धिमान्, विवेकी, और निर्मल विचारवाला है जिसमें न क्रोध हो और न राग (ममता) हो। पर तुलसीदास कहते हैं कि वही मनुष्य बड़ा भाग्यवान् है जिसे साधु लोग सज्जन मानकर उसकी सराहना करते रहते हों ॥ ३५६ ॥ अपना भाल तो सभी किया करते हैं, परन्तु (अपनी भलाईके साथ-साथ कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपने भाई-बन्धुओंका भी भला करते रहते हैं। पर तुलसीदास कहते हैं कि सराहनाके योग्य तो केवल वही सज्जन है जो सबकी भलाई करता रहता हो ॥ ३५७ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' भलो सुसंग - तें, पोच कुसंगति होइ।
नाव, किन्नरी, तीर, असि, लोह बिलोकहु लोइ ॥ ३५८ ॥
गुरु - संगति गुरु होइ सो, लघु - संगति लघु नाम।
चार पदारथमें गनैं, नरक - द्वार हू काम ॥ ३५९ ॥
'तुलसी' गुरु लघुता लहत, लघु - संगति - परिनाम।
देवी देव पुकारियत, नीच नारि - नर - नाम ॥ ३६० ॥
'तुलसी' किये कुसंग - थिति, होइ दाहिनो बाम।
कहि सुनि सकुचिय सूम-खल, गत हरि - संकर - नाम ॥ ३६१ ॥
बसि कुसंग चह सुजनता, ताकी आस निरास।
तीरथहू-को नाम भो 'गया', मगह - के पास ॥ ३६२ ॥
राम-कृपा 'तुलसी' सुलभ, गंग - सुसंग - समान।
जो जल परै, जो जन मिलै, कीजै आप - समान ॥ ३६३ ॥
ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुबस्तु - सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ३६४ ॥
जनम जोग - तें जानियत, जग बिचित्र - गति देखि।
'तुलसी' आखर, अंक, रस, रंग, बिभेद बिसेखि ॥ ३६५ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि अच्छी संगतिसे मनुष्य भला हो जाता है और बुरी संगतिसे बुरा हो जाता है। यह इसी बातसे समझा जा सकता है जो लोहा नावमें लगनेसे हितकर होता है (लोगोंको पार उतार देता है) और सारंगी (आदि तंत्रियों) में लगकर उसमेंसे सुन्दर ध्वनि निकालता है, वही लोहा जब बाण और तलवारमें लग जाता है तब प्राणघातक हो जाता है ॥ ३५८ ॥ बड़ोंकी संगति पाकर मनुष्य बड़े नामसे पुकारा जाता है, वही जब छोटोंकी संगतिमें पड़ जाता है तो उसका बुरा नाम हो जाता है (वह बदनाम हो जाता है) जैसे चारों पदार्थों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष)-के साथ तो 'काम' भी बड़ा बन गया है, पर 'काम, क्रोध, लोभ और मोह'के साथ तो 'काम' नरकका द्वार बन जाता है ॥ ३५९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि नीचोंकी संगति करनेसे ही बड़ोंके नाम भी नीच हो जाते हैं। जैसे स्त्री-पुरुषोंके नाममें लगे हुए देवी-देवताओंके नाम बड़े भद्दे ढंगसे पुकारे जाते हैं (जैसे गणेश नामवालोंको लोग 'गनेसवा' कहते हैं) ॥३६०॥ तुलसीदास कहते हैं कि कुसंग होनेपर भला भी बुरा कहा जाने लगता है जैसे कृपण और नीच लोगोंके हरि और शंकर नाम लेनेमें भी लोग बड़ा संकोच करते हैं ॥ ३६१ ॥ बुरी संगतिमें रहकर भी यदि कोई अपनी भलाई चाहे तो उसकी आशा केवल निराशा ही होगी जैसे मगध प्रदेशमें होनेके कारण गया-जैसे विष्णुपद तीर्थका नाम भी 'गया' (गया-बीता) हो गया ॥३६२॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसे रामकी कृपा सुलभ होती है उसे गंगा और उत्तम संग मिल जाता है। गंगामें जो पड़े उसे अपने समान पवित्र कर देती है, सत्संग जिसे मिले वह परम पवित्र और सज्जन हो जाता है ॥३६३॥ समझदार लोग बराबर देखते हैं कि ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र—ये सभी वस्तुएँ जैसी बुरी या अच्छी संगति पाती हैं उसीके अनुसार बुरी या अच्छी हो जाती हैं ॥ ३६४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस वस्तुको जन्मसे ही जैसे-जैसे ग्रहोंका संयोग प्राप्त हो जाता है, संसारमें उसकी वैसी ही प्रकृति हो जाती है। जैसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आखर जोरि, बिचार करु, सुमति अंक लिखि लेख।
जोग-कुजोग-सुजोग-मय, जग-गति समुझि बिसेख॥ ३६६॥
करु बिचार, चलु सुपथ भल, आदि-मध्य-परिनाम।
उलटि जपे 'जारा मरा', सूधे 'राजा राम'॥ ३६७॥
होइ भले-के अनभलो, होइ दानि-के सूम।
होइ कुपूत सुपूत-के, ज्यों पावक-में धूम॥ ३६८॥
जड़-चेतन गुन-दोष-मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार॥ ३६९॥

सोरठा

पाट कीट-तें होइ, ता-तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ, परम अपावन प्रान-सम॥ ३७०॥

दोहा

जो जो जहँ जेहि रस मगन, तहँ सो मुदित मन मानि।
रस-गुन-दोष बिचारिबो, रसिक-रीति पहिचानि॥ ३७१॥
सम प्रकास-तम पाख दुहुँ, नाम-भेद बिधि कीन्ह।
ससि-पोषक-सोषक समुझि, जग जस-अपजस दीन्ह॥ ३७२॥

अक्षर, अंक, रस और रंग—जैसे अक्षर, अंक, रस और रंगसे मिलते हैं वैसा ही उन उन (-के अर्थ, गिनती, स्वाद, रंग)-में अन्तर आ जाता है॥ ३६५॥ एक अक्षरके साथ दूसरा अक्षर जोड़ने अथवा एक अंकके साथ दूसरा अंक मिलाकर लिखनेसे वे सुयोग पाकर उत्तम या अधिक तथा कुयोग पाकर अधम या न्यून हो जाते हैं। यही दशा संसारकी सब वस्तुओंकी भी है (जैसे रा के साथ म मिलानेसे 'राम' पर म के साथ रा मिलानेसे 'मरा' बन जाता है। इसी प्रकार ९ और १ साथ लिखनेसे ९१ किन्तु १ के साथ ९ लिखनेसे १९ रह जाता है।)॥३६६॥ किसी भी कामके आदि, मध्य और परिणाम विचार करके ही अच्छे मार्गपर चलो। जैसे—'जारा' और 'मरा' शब्द भी उलटकर बोलनेसे 'राजा' और 'राम' हो जाता है॥ ३६७॥ कभी-कभी भलेके बुरे, दाताके सूम और सुपुत्रके कुपुत्र वैसे ही उत्पन्न हो जाते हैं जैसे आगसे धुआँ उत्पन्न हो जाता है॥ ३६८॥ विधाताने इस संसारमें जितने जड और चेतन बना धरे हैं सबमें गुण और दोष दोनों ही दिखाई पड़ते हैं। जो लोग संत स्वभाववाले हैं वे हंसकी भाँति (पानी मिले हुए दूधसे) गुण (दूध) ले लेते हैं और विकार-रूपी जल छोड़ देते हैं॥३६९॥ रेशम यद्यपि कीड़ेसे उत्पन्न होता है फिर भी उससे उत्तम (पवित्र) रेशमी वस्त्र और पीताम्बर आदि बनते हैं। इसीलिये ऐसे अपवित्र कीड़ेको भी सब लोग प्राणके समान पालते हैं॥ ३७०॥ जो जिस रसमें डूबा हुआ है वह उसीमें प्रसन्न भी रहता है। पर उस रसके गुण और दोषकी पहचान तो रसिक ही कर पाते हैं॥३७१॥ दोनों पक्षों (कृष्ण और शुक्ल पक्ष)-में समान ही प्रकाश और अँधेरा होता है फिर भी विधाताने इनके नाममें अन्तर कर डाला है। शुक्ल पक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है और कृष्ण पक्षमें घटता है, इसी आधारपर संसारने शुक्ल पक्षको यश और कृष्ण पक्षको अपयश दिया है॥३७२॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोक - बेद हूँ लौं दगो, नाम भले - को पोच।
धर्मराज जम, गाज पबि, कहत सकोच न सोच ॥ ३७३ ॥
बिरुचि परखियहि सुजन जन, राखि परखियहि मंद।
बड़वानल सोखत उदधि, हरष बढ़ावत चंद ॥ ३७४ ॥
प्रभु - सनमुख भे नीच नर, निपट होत बिकराल।
रवि-रुख लखि दरपन-फटिक, उगिलत ज्वाला - जाल ॥ ३७५ ॥
प्रभु - समीप - गत सुजन जन, होत सुखद सुबिचारि।
लवन - जलधि - जीवन जलद, बरषत सुधा सुबारि ॥ ३७६ ॥
नीच निरावहिं निरस तरु, 'तुलसी' सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान सब, बिष - पियूष - के रूख ॥ ३७७ ॥
बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप - अघ - प्यास।
'तुलसी' दोष न जलदको, जो जल जरै जवास ॥ ३७८ ॥
अमर दानि, जाचक मरहिं, मरि मरि फिरि फिरि लेहिं।
'तुलसी' जाचक पातकी, दातहिं दूषन देहिं ॥ ३७९ ॥
लखि गयंद, लै चलत भजि, स्वान सुखानो हाड़।
गज - गुन, मोल, अहार, बल, महिमा जान कि राड़ ॥ ३८० ॥

लोक और वेद तकमें भलेको बुरा कह दिया जाता है। जैसे धर्मराजको 'यमराज' (मृत्यु देनेवाला) और बिजलीको वज्र कहनेमें कोई विचार या संकोच नहीं करता ॥ ३७३ ॥ सज्जनकी परीक्षा तो उसकी विरुचि (विशेष रुचि) देखकर तत्काल हो जाती है पर मंद (असज्जन) तो कुछ दिन साथमें रहनेपर ही पहचानमें आता है। देखो ! बडवानल तो समुद्रके साथ रहकर उसे सोखनेपर जाना जाता है पर पूर्ण चन्द्रमाको तो देखते ही सागर तत्काल लहरा उठता है (प्रसन्न हो उठता है) ॥३७४॥ नीच मनुष्य अपने स्वामीका समर्थन पाते ही विकराल हो उठता है जैसे सूर्यकी किरण पड़ते ही दर्पण और स्फटिकमेंसे ज्वाला फूट पड़ती है ॥३७५॥ यह समझ लो कि सज्जन लोग जहाँ अपने प्रभुके पास पहुँचे कि उनके विचार भी अच्छे हो जाते हैं और वे दूसरोंको भी सुख पहुँचाने लगते हैं जैसे खारे समुद्रका पानी भी जब (विष्णु-पद आकाशमें) बादल बनकर पहुँचता है तब वह अमृतके समान उत्तम जल बरसाने लगता है ॥३७६॥ तुलसीदास कहते हैं कि नीच लोग ही नीरस पौधोंको निरा डालते (निकाल फेंकते) और ईख (सरस)-को ही भली भाँति सींचते हैं। परन्तु बादल कभी ऐसा भेद नहीं करता। वह विष और अमृत दोनोंके पौधोंको सींचता चलता है चाहे वे नीरस हों या सरस ॥३७७॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो बादल पानी बरसाकर सारे जगत्‌को आनन्दित कर डालता है, सबकी प्यास बुझाता है और गर्मी मिटाकर सारे विकार दूर कर डालता है, उस वर्षासे यदि जवासा जल जाता हो तो इसमें बादलका क्या दोष है ॥ ३७८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि (बादलके समान) दाता तो अमर बने रहते हैं, परन्तु याचक मरते ही चले जाते हैं (बार बार माँगते हैं) और दान लेकर भी ऐसे पापी याचक सदा दाताको व्यर्थ दोष देते रहते हैं ॥ ३७९ ॥ हाथीको देखकर कुत्ता अपने मुँहमें लिया हुआ सूखा हाड़ लेकर भाग खड़ा होता है (कि कहीं उसका हाड़ हाथी ले न ले) क्योंकि

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कै निदरहु, कै आदरहु, सिंहहिं स्वान - सियार।
हरष - बिषाद न केसरिहिं, कुंजर - गंजनिहार ॥ ३८१ ॥
ठाढ़ो द्वार, न दै सकैं, 'तुलसी' जे नर नीच।
निंदहिं बलि - हरिचंदको, का किय करन - दधीच ॥ ३८२ ॥
ईस - सीस बिलसत बिमल, 'तुलसी' तरल तरंग।
स्वान - सरावग - के कहे, लघुता लहै न गंग ॥ २८३ ॥
'तुलसी' देवल देव - को, लागे लाख करोरि।
काक अभागे हगि भज्यो, महिमा भई कि थोरि ॥ ३८४ ॥
निज गुन घटत न नाग-नग, परखि परिहरत कोल।
'तुलसी' प्रभु भूषन किए, गुंजा बढ़े न मोल ॥ ३८५ ॥
राकापति षोड़स उवहिं, तारागन - समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइए, बिनु - रवि राति न जाइ ॥ ३८६ ॥
भलो कहै बिनु - जानेहु, बिनु - जाने अपवाद।
ते नर गादुर जानि जिय, करिय न हरष - बिषाद ॥ ३८७ ॥
पर - सुख - संपति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु-आगि।
'तुलसी' तिनके भाग - तें, चलै भलाई भागि ॥ ३८८ ॥

वह दुष्ट कुत्ता भला उस हाथीके गुण, मूल्य, भोजन और बलके महत्त्वको क्या जाने ॥३८०॥ कुत्ते और सियार चाहे सिंहका आदर करें या निरादर करें, किन्तु हाथियोंको मारनेवाले सिंहको तो इससे न हर्ष होता है और न विषाद ही ॥३८१॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो नीच लोग अपने द्वारपर खड़े भिक्षुकको भिक्षा-तक नहीं देते वे ही राजा बलि और हरिश्चन्द्रकी निन्दा करते हुए कहते हैं कि 'राजा कर्ण और दधीचिने किया क्या' ? ॥ ३८२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो गंगा अपनी निर्मल और चंचल तरंगोंके साथ शंकरके शीशपर चढ़ी बैठी है, उस गंगाका महत्त्व कुत्तों और नास्तिकोंके कहनेपर कम थोड़े ही हो पावेगा ॥ ३८३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि देवताओंके जो मंदिर लाखों-करोड़ों रुपये लगाकर बनाए जाते हैं उनपर भी अभागे कौवे बींट करके उन्हें गंदा करते रहते हैं। पर इससे क्या उन (मंदिरों)-की कुछ महिमा घटा करती है ? ॥ ३८४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि कोल यदि गजमुक्ता उठाकर फेंक भी दे तो उससे गजमुक्ताका स्वाभाविक गुण नहीं घटता, और श्रीकृष्ण भी यदि गुंजा (घुँघची)-को भूषण बनाकर धारण कर लें तो उससे गुंजाका मूल्य बढ़ नहीं जाता ॥ ३८५ ॥ चन्द्रमा भले ही अपनी सोलहों कलाओंसे उदित हो जाय, आकाशके सारे तारे मिलकर आकाशमें भले ही चमक उठें और सारे पहाड़ोंमें भी आग लगाकर प्रकाश कर दिया जाय, परन्तु (प्रकाशकी इतनी सामग्री होनेपर भी) बिना सूर्यके उदय हुए रातका अँधेरा नहीं मिट पाता ॥ ३८६ ॥ जो मनुष्य बिना समझे-बूझे किसीको भला कहते या दोष लगाते हैं, वे उन्हीं चमगादड़ोंके समान हैं जिनकी बातसे न प्रसन्न होना चाहिए न दुखी ॥ ३८७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो मूर्ख दूसरोंकी सम्पत्ति देख या सुनकर बिना आगके ही जले मरते हैं उनके भाग्यमें भलाई लिखी नहीं होती (उनका कभी भला नहीं होता।) ॥ ३८८ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' जे कीरति चहहिं, पर - की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहै धोइ ॥ ३८९ ॥
तनु, गुन, धन, महिमा, धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान।
'तुलसी' जियत बिडंबना, परिनामहु गत जान ॥ ३९० ॥
सासु-ससुर, गुरु, मातु-पितु, प्रभु भा चह सब कोइ।
होनो दूजी ओर - को, सुजन सराहिय सोइ ॥ ३९१ ॥
सठ सहि साँसति, पति लहत, सुजन कलेस न काय।
गढ़ि - गुढ़ि पाहन पूजियइ, गंडकि - सिला सुभाय ॥ ३९२ ॥
बड़े बिबुध - दरबार - तें, भूमि - भूप - दरबार।
जापक, पूजक पेखियत, सहत निरादर - भार ॥ ३९३ ॥
बिनु-प्रपंच-छल भीख भलि, लहिय न दिए कलेस।
बावन बलि-सों छल कियो, दियो उचित उपदेस ॥ ३९४ ॥
भलो भले-सों छल किए, जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति-सिर तुलसी लसति, बलि - बावन - गति सोइ ॥ ३९५ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि जो मनुष्य दूसरोंकी कीर्त्ति मिटाकर अपनी कीर्त्ति बढ़ाना चाहते हैं, उनके मुँहमें ऐसी कालिख लगेगी कि वह धो-धोकर मरनेपर भी धोए न मिट पावेगी ॥३८९॥ तुलसीदास कहते हैं कि शरीर, गुण, धन, महिमा और धर्ममेंसे कुछ न होनेपर भी जो अभिमानमें फूले फिरते हैं उनका सारा जीवन व्यर्थ है और उनका परिणाम भी गया बीता (नष्ट) ही समझना चाहिए। (उन्हें नष्ट ही समझना चाहिए) ॥ ३९० ॥ सभी लोग सास-ससुर, गुरु, माता-पिता और स्वामी तो होना चाहते हैं परन्तु जो इसके विपरीत (बहू, शिष्य, पुत्र और सेवक) बननेके लिये तैयार हों उन्हीं सज्जनोंकी सराहना होती है ॥ ३९१ ॥ जो छोटे (साधारण या दुष्ट) होते हैं वे अनेक कष्ट सहनेपर ही प्रतिष्ठा पाते हैं जैसे पत्थरकी मूर्त्तियाँ तो बहुत गढ़नेपर ही पूजी जाती हैं, परन्तु गंडकीके शालग्राम तो बिना गढ़े ही पूज्य माने जाते हैं ॥ ३९२ ॥ देवताओंकी सभाकी अपेक्षा राजाओंके दरबार बहुत बड़े हैं क्योंकि वहाँ भगवानके भक्त और पूजक भी बड़ा अपमान सहते रहते हैं ॥ ३९३ ॥ छल-प्रपंचके बिना अथवा किसीको कष्ट दिए बिना जो भिक्षा मिले, वही उत्तम है। वामन रूपमें भगवानने बलिके साथ छल भी किया और क्लेश भी देकर भिक्षा ली (उसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें बलिके यहाँ द्वारपाल बनकर रहना पड़ा)। अपनी इस दशासे उन्होंने यही उपदेश दिया कि किसीको कष्ट देकर भिक्षा नहीं लेनी चाहिए ॥ ३९४ ॥ यदि कोई भला मनुष्य किसी भले मनुष्यके साथ कपट करता है तो उसे जीवन-भर उसका दबैल बनकर रहना पड़ता है। भगवान्‌ने जालन्धरकी स्त्री (वृन्दा[1])-के साथ छल किया तो वह तुलसीके रूपमें उनके सिरपर जा चढ़ी और बलिके साथ छल करके विष्णुने भिक्षा ली तो उन्हें बलिका द्वारपाल होना पड़ा ॥ ३९५ ॥ वामन भगवान्‌ने देवताओंका कार्य

१. कालनेमि और स्वर्णाकी पुत्री वृन्दा अत्याचारी जालंधर (सागर और गंगाके पुत्र) दैत्यकी पतिव्रता पत्नी थी जिसके तेजके कारण शिव भी जालंधरको नहीं मार पाए। विष्णुने जालंधरका रूप बनाकर वृन्दाका सतीत्व हर लिया किन्तु उसे यह वर भी दिया कि तुलसीके रूपमें तुम्हारा आदर होगा और मुझपर चढ़ाई जाओगी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिबुध-काज बावन बलिहिँ छलो, भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बस भे, तदपि, मनकी गइ न गलानि ॥ ३९६ ॥
सरल-बक्र-गति पंच ग्रह, चपरि न चितवत काहु।
'तुलसी' सूधे सूर - ससि, समय बिडंबित राहु ॥ ३९७ ॥
खल - उपकार बिकार - फल, तुलसी जान जहान।
मेँढुक, मर्कट, बनिक, बक, कथा सत्य - उपखान ॥ ३९८ ॥
'तुलसी' खल - बानी मधुर, सुनि समुझिय हिय हेरि।
राम - राज बाधक भई, मूढ़ मंथरा चेरि ॥ ३९९ ॥
जोँक सूधि मन, कुटिल गति, खल बिपरीत बिचार।
अनहित सोनित सोख सो, सो हित - सोखनहार ॥ ४०० ॥

बनानेके लिये अपने मनमेँ ठीक समझकर ही बलिको छला और अपना स्वामित्व छोड़कर उसके अधीन भी हुए (बलिके द्वारपाल हुए) फिर भी उनके मनकी यह ग्लानि (कसक) नहीँ मिटी (कि मैँने बलिके साथ छल किया) ॥ ३९६ ॥ तुलसीदास कहते हैँ कि सीधी और टेढ़ी चालवाले पाँच ग्रहोँ (मंगल, बुध, गुरु शुक्र और शनि)-को तो राहु कभी ग्रसनेको बढ़ता भी नहीँ, पर सीधी चालवाले सूर्य और चन्द्रमाको अवसर पाते ही राहु धर दबोचता है ॥ ३९७ ॥ तुलसीदास कहते हैँ कि इस बातको सारा संसार जानता है कि दुष्टोँके साथ उपकार करनेका फल बुरा होता है। उदाहरणके लिये 'सत्योपाख्यान'[१] मेँ मेँढक[२], बन्दर[३], वणिक्[४] और बगुले[५]की कथाएँ इसके प्रमाण हैँ ? ॥ ३९८ ॥ तुलसीदास कहते हैँ कि दुष्टकी मधुर वाणी सुनकर उसपर भली प्रकार विचार करके उसका गूढ अभिप्राय समझ लेना चाहिए। मूर्खा दासी मंथराने मीठी बातोँमेँ कैकेयीको फँसाकर ही रामके राज्याभिषेकमेँ बाधा डाली थी ॥ ३९९ ॥ जोँक टेढ़ी चालसे भले ही चलती हो पर वह हृदयकी बड़ी स्वच्छ होती है क्योँकि वह मनुष्यके शरीरका दूषित रक्त ही चूसती है।

१. सत्योपाख्यान : यह भी राम-कथा-काव्य है जो कहा जाता है कि वाल्मीकिने रचकर मार्कण्डेयको दिया, उन्होँने व्यासको दिया, व्यासने सूतको दिया और सूतने नैमिषारण्यके ऋषियोँको सुनाया। २. एक मेँढकने अपने कुटम्बियोँका नाश करानेके लिये एक साँपको बुला बैठाया। जब साँप सबको खा चुका तो उसने उस मेँढकपर भी दाँवँ लगाया पर वह किसी-किसी प्रकार बच भागा। ३. एक बन्दरकी मगरसे मित्रता थी। वह मगरको मीठे-मीठे फल खिलाया करता था। मगरीने सुना तो उसने कहा कि जो बन्दर इतने मीठे फल खाता है उसका हृदय भी मीठा होगा। उसने मगरसे कहा कि बन्दरको फुसला लाओ। मगर उस बन्दरको पीठपर लादकर ले चला तो बीच धारमेँ मगरने उससे सब कह दिया। इसपर बन्दरने कहा कि मेरा कलेजा तो पेड़पर है। जब मगर लौटाकर ले गया तो बन्दर उछलकर पेड़पर चढ़ गया और बोला अब जाओ। ४. एक बनिएकी राजासे मित्रता थी। राजाने एक मन्त्रकी सिद्धिके लिये उस बनिएकी पत्नीको बुलवाया। आनेपर राजाके मनमेँ पाप आ गया। यह सुनकर बनिया बड़ा दुखी हुआ। ५. एक बगलेने जिस व्यक्तिको धनका भंडार बतलाया उसने धनका भंडार पाकर बगलेको मार डाला।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नीच गुडी - ज्यों जानिबो, सुनि, लखि, 'तुलसीदास'।
ढीलि दिए गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥ ४०१ ॥
भरदर बरषत कोस - सत, बचैं जे बूँद बराइ।
'तुलसी' तेउ खल-बचन-सर, हये गए न पराइ ॥ ४०२ ॥
पेरत कोल्हू मेलि तिल, तिली सनेही जानि।
देखि प्रीतिकी रीति यह, अब देखिबी रिसानि ॥ ४०३ ॥
सहबासी काचो गिलहिं, पुर - जन पाक-प्रबीन।
काल-छेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग - मृग - मीन ॥ ४०४ ॥
जासु भरोसे सोइए, राखि गोदमें सीस।
'तुलसी' तासु कुचाल - तें, रखवारो जगदीस ॥ ४०५ ॥
मार खोज लै सौंह करि, करि मत लाज, न त्रास।
मुए नीच ते मीच - बिनु, जे इनके बिस्वास ॥ ४०६ ॥
पर - द्रोही, पर - दार - रत, पर - धन, पर - अपबाद।
ते नर पाँवर पाप - मय, देह धरे मनुजाद ॥ ४०७ ॥

परन्तु दुष्टको इसके ठीक विपरीत समझना चाहिए (उसकी चाल तो बड़ी सीधी होती है, पर उसका काम बड़ा टेढ़ा होता है)। वह दूसरोंके हित सोखता चलता है (भलाईमें बाधा डालता है) ॥ ४०० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि नीच आदमियोंको भली प्रकारसे पतंगके समान समझना चाहिए। वे ढील देनेसे (दुतकाराने)-से धरतीपर आ गिरते हैं और खींचनेसे (अपनानेसे सिर) चढ़ जाते हैं ॥ ४०१ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग सैकड़ों कोस-तक बरसनेवाली वर्षाकी बूँदोंसे बचकर भींगनेसे बच निकल पा सकते हैं, वे भी दुष्टोंके वचन-रूपी बाणोंसे बिना बिंधे नहीं बच पाते ॥ ४०२ ॥ तेली जब तिलोंको स्नेही (तेल देनेवाला, प्रेमी) जानकर भी उन्हें कोल्हूमें पेर डालता है तब क्रोधमें तो वह उनकी न जाने क्या गति कर डालता ? ॥ ४०३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि बताइए मछलियाँ, पशु और पक्षी किसके साथ रहकर अपने दिन बितावें ? क्योंकि साथ रहनेवाले बलवान् (मगर, सिंह, बाज) तो निर्बलोंको कच्चा ही चबा जाते हैं और नगरवासी भी पाक-विद्यामें चतुर होनेके कारण पकाकर खा जाते हैं ॥ ४०४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि हम जिसपर विश्वास करके निर्भय होकर उसकी गोदमें सिर रखकर सो जायँ, यदि वही कुचाल करनेपर उतारू हो जाय तब तो जगदीश ही उससे रक्षा कर सकते हैं ॥ ४०५ ॥ जिन पापियोंको न तो अपने कुकृत्योंपर लज्जा ही आती और न जिन्हें परमात्माका ही भय है वे किसी धनीके साथ शपथ लेकर पहले मित्रता कर लेते हैं और पीछे उसका भेद लेकर उसके विरुद्ध जाल रचकर उसे मार डालते हैं। ऐसे नीचोंका जो विश्वास कर बैठते हैं वे बिना मौत मारे जाते हैं (ऐसे विश्वासघातियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए) ॥ ४०६ ॥ जो मनुष्य दूसरोंसे द्रोह करते हैं, दूसरेकी स्त्री और दूसरेके धनपर ललचाए रहते हैं तथा दूसरोंकी निन्दा करते हैं उन नीचोंको पापमय शरीर धारण किए हुए राक्षस ही समझो ॥ ४०७ ॥ कोई स्त्री या पुरुष

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बचन - बेष क्यों जानिए, मन मलीन नर - नारि।
सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि ॥ ४०८ ॥
हँसनि, मिलनि, बोलनि मधुर, कटु करतब मन - माँह।
छुवत जो सकुचै, सुमति सो, तुलसी तिन - की छाँह ॥ ४०९ ॥
कपट - सार सूची सहस, बाँधि बचन - परवास[1]।
किय दुराउ चह चातुरी, सो सठ, 'तुलसीदास' ॥ ४१० ॥
बचन, बिचार, अचार, तन, मन, करतब, छल छूति।
'तुलसी' क्यों सुख पाइए, अंतरजामिहि धूति ॥ ४११ ॥
सारदूलको स्वाँग करि, कूकर - की करतूति।
'तुलसी' तापर चाहिए, कीरति, बिजय, बिभूति ॥ ४१२ ॥
बड़े पाप बाढ़े किए, छोटे किए लजात।
तुलसी ता - पर सुख चहत, बिधि - सों बहुत रिसात ॥ ४१३ ॥
देस - काल - करता - करम - बचन - बिचार - बिहीन।
ते सुरतरु - तर दारिदी, सुरसरि - तीर मलीन ॥ ४१४ ॥
साहस ही, कै कोप - बस, किए कठिन परिपाक।
सठ संकट - भाजन भए, हठि कुजाति कपि, काक ॥ ४१५ ॥

कितना पापी है यह उसके वचन या वेषसे कैसे पहचाना जा सकता है ? इसके प्रमुख प्रमाण हैं शूर्पणखा, मृगके रूपमें मारीच राक्षस, पूतना और रावण ॥ ४०८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिनका हँसना, मिलना और बोलना तो मीठा (प्रिय) होता है, परन्तु मनमें छल-कपट भरा रहता है उनकी छाया-तक छूनेमें भी जो हिचकिचाता है वही बुद्धिमान् है ॥ ४०९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि शठ वही है जो कपटकी लोहेकी हजारों सूइयोंको मधुर वचनके बेठनमें लपेट सकनेमें चतुर हो ॥ ४१० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसके वचन, विचार, आचरण, शरीर, मन और कर्तव्य मलिन (कपट-भरे) हों वह अन्तर्यामी परमात्माको ठगकर भला कैसे सुखी रह सकता है ? ॥ ४११ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो मनुष्य सिंहका-सा स्वाँग रचकर कुत्तोंकेसे काम करते रहनेपर भी यश, विजय और ऐश्वर्य चाहते हों उन्हें भला ये कैसे मिल सकते हैं ? ॥ ४१२ ॥ तुलसीदास कहते कि जिन्होंने बड़े-बड़े पाप कर डाले और छोटे पाप करते लज्जाका ढोंग करते हैं और फिर भी सुखकी आशा लगाए रहते ह वे (सुख न मिलनेपर) विधातापर बिगड़े पड़ते हैं। (ऐसे पापियोंको सुख नहीं मिल सकता) ॥ ४१३ ॥ जो लोग इस बातका विचार नहीं करते कि किस स्थानपर, किस समय, कौन-सा कार्य करना चाहिए और कैसे वचन बोलने चाहिएँ वे कल्पवृक्षके नीचे पहुँच जानेपर भी दरिद्र रह जाते तथा पापनाशिनी गंगाके तट-पर बसकर भी पापी बने रहते हैं ॥ ४१४ ॥ साहस या क्रोधके कारण काम करनेका परिणाम बुरा होता है जैसे कुजातिवाले बन्दर बालिका (जिसने अपने छोटे भाई सुग्रीवकी स्त्रीको हठपूर्वक हरनेके कारण बुरा फल पाया, मारा गया) और नीच कौवे (जयन्त)-का (जिसने सीताके चरणमें

१. वचन-परवास = वचन रूपी जालमें फँसाना, बातोंमें फँसा रखना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राज करत बिनु काज ही, करैं कुचालि कुसाज।
'तुलसी' ते दसकंध - ज्यों, जइहैं सहित - समाज ॥ ४१६ ॥
राज करत बिनु काज ही, ठटहि जु कूर कुठाट।
'तुलसी' ते कुरुराज - ज्यों, जइहैं बारहबाट[1] ॥ ४१७ ॥
सभा सुजोधन - की सकुनि - सुमति सराहन - जोग।
द्रोन, बिदुर, भीषम, हरिहिं, कहैं प्रपंची लोग ॥ ४१८ ॥
पांडु - सुवन कौरव - सदसि, नीको रिपु हित जानि।
हरि-हर-सम सब मानियत, ज्ञान - मोह - की बानि ॥ ४१९ ॥
हित - पर बढ़इ बिरोध, जब अनहित - पर अनुराग।
राम-बिमुख बिधि बाम गति, सगुन, अघाय अभाग ॥ ४२० ॥
सहज सुहृद-गुरु-स्वामी-सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित - हानि ॥ ४२१ ॥

चौंच जा मारी)। फल यह हुआ कि इन दोनों हठी शठोंको बड़ा संकट भोगना पड़ा (बालि मारा गया, जयन्तकी एक आँख जाती रही) ॥ ४१५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो राज भोगते हुए भी बिना कारण किसीसे कुचाल और कपटका व्यवहार कर बैठते हैं, वे रावणके समान परिवार-सहित नष्ट हो मिटते हैं ॥ ४१६ ॥ जो नीच राज भोगते हुए भी अकारण ही बुरा काम कर बैठते हैं वे कुरुराज दुर्योधनके समान सब प्रकारसे मटियामेट हो जाते हैं ॥ ४१७ ॥ (कैसी विचित्र बात है कि) दुर्योधनकी सभामें (उसके मामा) शकुनिकी बुद्धिकी तो लोग सराहना करते थे और द्रोणाचार्य, विदुर, भीष्म और श्रीकृष्णको प्रपंची कहते थे ॥ ४१८ ॥ मोह (अज्ञान) और ज्ञानके लक्षणका परिचय पाण्डवों तथा कौरवकी सभासे ही भली प्रकार हो जाता है। पाण्डव अपने सज्जन विरोधी (भीष्म-द्रोण आदि)-को भी मित्र तथा विष्णु और शिवके समान ही समझते थे और कौरवगण अपने हितैषी कृष्णको भी शत्रु समझते रहे। (पाण्डव लोग भीष्म और द्रोणको पूज्य समझते थे और कौरवगण कृष्णको भी रुद्रके समान भयंकर मानते थे।) पाण्डवोंमें ज्ञानके लक्षण देख लो और कौरवोंमें मोह (अज्ञान)-के लक्षण परख लो ॥४१९॥ जब कोई अपने हितकारी मित्रसे वैर करता है और शत्रुसे प्रेम करता है तो समझ लो कि वह रामसे विमुख है और विधाता भी उससे मुँह फेर बैठा है। इस सगुन (लक्षण)-से समझ लेना चाहिए कि उसका भाग्य ही फूटा है ॥४२०॥ स्वभावसे ही सदा भला मनानेवाले गुरु और स्वामीकी शिक्षाको जो अपने लिये कल्याण-कारी नहीं मानता वह अन्तमें हाथ मलकर पछताता है और उसका अहित भी अवश्य होता है ॥४२१॥

---

१. बारह बाट = सब प्रकारसे नाश।

मोहो दैन्यं भयं ह्रासो हानिर्ग्लानिः क्षुधा तृषा।
मृत्युः क्षोभो व्यथाऽकीर्त्तिर्वाटा ह्येते हि द्वादश ॥
सोरठा—मोह, दैन्य, भय, हास, छुधा, छोभ, पीड़ा, मरण।
हानि, गलानि, पियास, अपजस बारह बाट ये ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भरुहाए नट भाट - के, चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम ॥ ४२२ ॥
लोक - रीति फूटी सहैं, आँजी सहै न कोइ।
'तुलसी' जो आँजी सहै, सो आँधरो न होइ ॥ ४२३ ॥
भागे भल, आड़ेहु मलो, भलो न घाले घाउ।
'तुलसी' सबके सीस - पर, रखवारो रघुराउ ॥ ४२४ ॥
सुमति बिचारहिं, परिहरहिं, दल - सुमनहु संग्राम।
सकुल गए, तनु - बिनु भए, साखी जादौ, काम ॥ ४२५ ॥
कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच-गृह, जरत धनिक - धन-धाम ॥ ४२६ ॥
छमा रोष - के दोष - गुन, सुनि मन ! मानहि सीख।
अबिचल श्री-पति हरि भए, भूसुर लहै न भीख ॥ ४२७ ॥
कौरव - पांडव जानिए, क्रोध छमाके सीम।
पाँचहि मारि न सौ सके, सओ सँहारे भीम ॥ ४२८ ॥

यदि भाटोंके प्रोत्साहन देनेपर नट लोग युद्ध करने चल भी दें तो परिणाम यह होगा कि या तो वे रणभूमिसे भाग खड़े होंगे या बन्दी कर लिए जायँगे (जिसका जो काम नहीं है उसे नहीं करना चाहिए, अन्यथा परिणाम अच्छा नहीं होता) ॥ ४२२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि लोगोंकी रीति ही यही है कि आँख फूटनेका कष्ट भले ही सह लें पर आँजन लगानेका कष्ट कभी नहीं उठा पावेंगे। यदि वे आँजन लगानेका कष्ट उठाते रहें तो कभी अन्धे ही न हों (यदि उपदेश मानकर चलें तो कभी कष्ट नहीं हो पा सकता) ॥ ४२३॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि कोई मारने आ पहुँचे तो या तो वहाँसे भाग खड़े होइए या उसका वार बचा जाइए परन्तु उसपर वार कभी न कीजिए। क्योंकि रक्षा करनेवाले राम तो सबके सिरपर बैठे ही हैं ॥ ४२४ ॥ पत्ते और फूल हाथमें लेकर भी लड़ना ठीक नहीं होता। यह विचारकर बुद्धिमान् लोग लड़ाई-भिड़ाईसे सदा दूर ही रहते हैं। इस सिद्धान्तकी सटीकताके साक्षी हैं यादव (यदुवंशी, जो सरपतके पत्ते लेकर आपसमें कट-मरे) और कामदेव (जो फूलोंके बाण लेकर महादेवपर चढ़ाई करने गया और जल मरा) ॥ ४२५ ॥ कलह (लड़ाईको)-को छोटा कभी नहीं समझना चाहिए। अन्तमें इसका परिणाम वैसे ही बड़ा भयंकर हो जाता है जैसे नीचके घरमें थोड़ीसी आग लग जाय तो उसकी लपटोंसे धनिकोंका धन और घर जलकर राख हो जाते हैं ॥ ४२६ ॥ हे मन ! क्षमा और क्रोधके गुण और दोष सुनकर मेरी यही सीख मान ले कि क्षमा करनेके कारण विष्णु तो अचल लक्ष्मीपति बन गए और (भृगुके क्रोधके कारण) ब्राह्मणको माँगे भीख भी नहीं मिल पाती ॥ ४२७ ॥ क्रोध और क्षमाके परिणामोंकी सीमा देखनी हो तो कौरवों और पाण्डवोंको जा देखिए ! मनमें क्रोध होनेके कारण सौ कौरव भी पाँच पाण्डवोंको न मार पाए परन्तु मनमें क्षमा होनेके कारण अकेले भीमने सौ कौरवोंको मार डाला ॥४२८॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस - सम हारिबो, जीते हार निहारु ॥ ४२९ ॥
जो परि पाँय मनाइए, तासों रूठि बिचारि।
'तुलसी' तहाँ न जीतिए, जहँ जीतेहू हारि ॥ ४३० ॥
जूझे - तें भल बूझिबो, भली जीत - तें हारि।
डहकेसे डहकाइबो, भलो, जो करिय बिचारि ॥ ४३१ ॥
जा रिपु - सों हारेहु हँसी, जिते पाप, परिताप।
तासों रार निवारिए, समय सँभारिय आप ॥ ४३२ ॥
जो मधु मरै, न मारिये माहुर देइ सो काउ।
जग जिति, हारे परसु-धर, हारि, जिते रघुराउ ॥ ४३३ ॥
बैर - मूल - हर हित - बचन, प्रेम - मूल उपकार।
दो'हा' सुभ संदोह - सों, तुलसी किये बिचार ॥ ४३४ ॥
रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि ॥ ४३५ ॥
मधुर बचन, कटु बोलिबो, बिनु स्रम भाग - अभाग।
कुहू - कुहू कलकंठ रव, काँकाँ करत काग ॥ ४३६ ॥

अहंकार-भरे दुर्वचन कहकर किसीका जी न दुखाइए प्रत्युत उसे खिला-पिलाकर (मनाकर) अपने वशमें किए रखिए। ऐसा करनेपर यदि हार भी हो तो अपनी उस हारको भी हज़ारों जीतके समान समझिए, और दुर्व्यवहार करके मिली हुई जीतको अपनी हार ही समझिए ॥४२९॥ जिनके पैरोंमें गिरकर मनाना चाहिए उनसे बहुत समझ-बूझकर ही रूठना चाहिए। तुलसीदास कहते हैं कि जहाँ जीतनेपर भी हार होती हो वहाँ जीतना उचित नहीं है ॥४३०॥ यदि भली प्रकार विचार किया जाय तो लड़ाई करनेकी अपेक्षा आपसमें समझौता कर लेना अच्छा है। जीतसे हार अच्छी है और किसीको ठगनेकी अपेक्षा स्वयं ठगा जाना ही अच्छा है ॥४३१॥ जिस शत्रुसे हारनेमें हँसी हो और जीतनेसे पाप और दुःख हो तो समय रहते स्वयं सँभल जाना चाहिए और झगड़ा निपटा लेना चाहिए ॥४३२॥ जो मधु (शहद) देने (मधुर व्यवहार)-से मारा जा सकता हो (हराया जा सकता हो) उसे बिष देकर नहीं मारना चाहिए। संसारको जीत डालनेवाले परशुरामसे हार माननेपर भी रामने विनयपूर्वक मधुर वचनोंसे उन्हें जीत लिया ॥४३३॥ तुलसीदास कहते हैं कि विचार करनेपर यही ज्ञात होता है कि किसीको अहितकर (कठोर) वचन कहना ही वैरकी जड़ है और उपकार करना ही प्रेमकी जड़ है। 'दो-हा' दो बार 'हा' के उच्चारणसे (दोहाई देने, विनय करनेसे) अनेक शुभ कार्य हो जाते हैं ॥४३४॥ किसीपर क्रोध आ जाय तो तलवार भले ही निकाल लीजिए पर जीभ न खोलिए (कटु वचन न बोलिए)। सोच-समझकर ऐसे ही वचन बोलिए जो सुननेमें मीठे हों और जिनका परिणाम भी हितकर हो ॥४३५॥ मधुर वचन बोलनेसे बिना श्रम ही भाग्य जाग जाते हैं, परन्तु कड़ुए वचन बोलनेसे भाग्यवान् भी अभागा हो जाता है। कोयल मधुर स्वरसे 'कुहू-कुहू' करती है (इसलिये सब लोग उसका आदर करते हैं) और कौवा 'काँव-काँव' करता है (जिससे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिए समुझि कुफेर सुफेर ॥ ४३७ ॥
छिद्यो न तरुनि-कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
'तुलसी' तिनकी देहको, जगत कवच करि लेहु ॥ ४३८ ॥
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
बिद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलाप ॥ ४३९ ॥
बचन कहे अभिमान - के, पारथ पेखत सेतु।
प्रभु - तिय लूटत नीच भर, जय न, मीच तेहि हेतु ॥ ४४० ॥
राम - लखन बिजयी भए, बनहु गरीब - निवाज।
मुखर बालि - रावन गए, घर ही सहित - समाज ॥ ४४१ ॥
खग - मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नय - पाल।
कुमति बालि - दसकंठ घर, सुहृद - बंधु किय काल ॥ ४४२ ॥
लखै अघानो भूख - मैं, लखै जीति - मैं हारि।
'तुलसी' सुमति सराहिए, मग पग धरै बिचारि ॥ ४४३ ॥

उसका सर्वत्र ही अनादर होता है) ॥४३६॥ यदि कोई बात कही न जाय तो उससे पेट नहीं फूल जाता, और यह भी नहीं होता कि तुम्हारे कहनेसे (तुम्हारे सामने) बातोंका ढेर ही लग जाता हो। इसलिये अरे बुद्धिमान् ! समय-कुसमय देखकर और अपनी बुद्धिसे बिचारकर ही कोई बात बोलिए ॥४३७॥ जिसका शरीर युवतियोंके कटाक्ष-रूपी बाणोंसे घायल नहीं हुआ और जिसने परिवारसे बहुत स्नेह नहीं बढ़ा रक्खा है उसकी देहको सांसारिक प्रपंच-रूपी युद्धसे रक्षा पानेके लिये अपना कवच बना लेना चाहिए (उसे आदर्श मानकर सांसारिक प्रापंचोंसे अपनी रक्षा करते रहिए) ॥४३८॥ शूर लोग युद्धमें अपना पराक्रम दिखलाते हैं, वे डींगें मारकर अपनी बड़ाई नहीं करते। रणभूमिमें शत्रुको सामने देखकर कायर ही बहुत बढ़-बढ़कर बोलते हैं ॥४३९॥ रामके सेतुबंधको देखकर अर्जुनने कुछ अभिमानमें कह दिया था (कि मैं तो ऐसा पुल बाणोंसे बना सकता था। पर हनुमान्‌ने ज्योंही उसपर पैर धरा वह धँस गया) फल यह हुआ कि अहीरोंने प्रभु (श्रीकृष्ण)-की रानियोंको लूट लिया। उस समय (उनकी रक्षा करनेमें) अर्जुन जीत नहीं सके और उन्हें लाजके मारे प्राण दे देना पड़ा ॥ ४४० ॥ दीनोंपर दया करनेवाले राम और लक्ष्मण वनमें रहते हुए भी विजयी हुए परन्तु बकवादी बालि और रावण अपने घरमें ही परिवार-सहित नष्ट हो मिटे ॥४४१॥ नीति-पालक रामने वनमें रहकर भी पशु-पक्षियों-तकको अपना सच्चा मित्र बना लिया, परन्तु दुर्बुद्धि बालि और रावणने घरमें ही अपने हितैषी भाई सुग्रीव और विभीषण तकको अपनी मृत्युका कारण बना लिया ॥४४२॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो भूख लगनेपर भी अपनेको छका हुआ समझता हो और जीत जानेपर भी अपनेको हारा हुआ समझता हो और इस प्रकार जो विचारपूर्वक सुमार्गमें पैर रखता हो उसी बुद्धिमान्‌की प्रशंसा करनी चाहिए ॥४४३॥ अवसर मिलनेपर उसका ठीक-ठीक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लाभ समय - को पालिबो, हानि समय - की चूक।
सदा बिचारहिं चारु - मति, सुदिन - कुदिन दिन दूक ॥ ४४४ ॥
सिंधु-तरन कपि गिरि-हरन, काज साइँ - हित दोउ।
'तुलसी' समयहि सब बड़ो, बूझत कहुँ कोउ-कोउ ॥ ४४५ ॥
'तुलसी' मीठी अमिय - तें, माँगी मिलै जु मीच।
सुधा - सुधाकर समय - बिनु, कालकूट - तें नीच ॥ ४४६ ॥
'तुलसी' असमय - के सखा, धीरज, धरम, बिबेक।
साहित, साहस, सत्य व्रत, राम भरोसो एक ॥ ४४७ ॥
समरथ कोउ न राम - सो, तीय - हरन अपराधु।
समयहि साधे काज सब, समय सराहहिं साधु ॥ ४४८ ॥
'तुलसी' तीरहुके चले, समय पाइबी थाह।
धाइ न जाइ थहाइबी, सर - सरिता - अवगाह ॥ ४४९ ॥
'तुलसी' जस भवितब्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥ ४५० ॥
कै जूझिबो, कै बूझिबो, दान, कि काय - कलेस।
चारि चारु परलोक - पथ, जथा - जोग उपदेस ॥ ४५१ ॥

उपयोग करना (समयके अनुकूल काम करना) ही लाभ है और अवसर पाकर भी अपने कर्त्तव्यसे चूक जाना ही हानि है। इसीलिये बुद्धिमान् लोग सदा सुदिन और कुदिनका विचार किया करते हैं (कि किस दिन कौन-सा काम करना चाहिए, किस दिन नहीं) क्योंकि अच्छा और बुरा समय कुल दो ही (थोड़े ही) दिन तो रहता है ॥४४४॥ तुलसीदास कहते हैं कि समयपर काम करनेसे ही सब बड़े होते हैं इस बातको कोई बिरला ही समझ पाता है। हनुमान्‌ने अपने स्वामीके लिये दो काम समयपर कर दिए, एक तो समुद्र लाँघ गए, दूसरे द्रोणाचल उठा लाए (पर इतनेसे ही बड़े हो गए) ॥ ४४५ ॥ तुलसीदास कहते हैं यदि माँगनेसे समयपर मृत्यु भी मिले तो वह भी अमृतसे अधिक मीठी लगती है। परन्तु समय निकल जानेपर तो चन्द्रमा और अमृत भी कालकूट विषसे अधिक भयंकर लगते हैं ॥४४६॥ तुलसीदास कहते हैं कि आपत्ति पड़नेपर धीरज, धर्म, विवेक (भले और बुरेका ज्ञान), सत्साहित्य (ज्ञानका अर्जन), साहस, सत्य-आचरण तथा एकमात्र रामका भरोसा ये ही वास्तविक सखा (मित्र) होते हैं ॥ ४४७ ॥ रामके समान कोई सामर्थ्यवान् नहीं है पर उन्होंने भी स्त्री-हरण-जैसा अपराध करनेवाले रावणके साथ भी समयके अनुसार ही सब व्यवहार किया। इसीसे सज्जन लोग समयपर किए कार्यकी सराहना किया करते हैं ॥ ४४८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि नदी या तालाबके किनारे-किनारे चलनेपर कभी समयपर उसकी थाह मिल ही जाती है। अगाध नदी या तालाबकी थाह जाननेके लिये दौड़कर उसमें घुस पड़ना ठीक नहीं होता ॥ ४४९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसी होनी होती है उसीके अनुसार सहायता भी मिल जाती है। होनहार या तो स्वयं उसके पास आ जाती है या उसीको अपने पास बुला ले जाती है ॥४५०॥ परलोक प्राप्त करनेके चार सुन्दर उपाय हैं— युद्धमें लड़कर मरना (क्षत्रियके लिये), ज्ञानके मार्गपर चलना (ब्राह्मणके लिये), दान करना (वैश्यके लिये) और शारीरिक सेवा करना (शूद्रके लिये)। जो जिस मार्गके योग्य हो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पात - पात - को सींचिबो, न करु सरग - तरु - हेत।
कुटिल कटुक फर फरहिगो, 'तुलसी' करत अचेत ॥ ४५२ ॥
गठिबँध - तें परतीति बड़ि, जेहि सबको सब काज।
कहब थोर समुझब बहुत, गाड़े बवत अनाज ॥ ४५३ ॥
अपनो ऐपन निज हथा, तिय पूजहिं निज भीति।
फलै सकल मन - कामना, तुलसी प्रीति - प्रतीति ॥ ४५४ ॥
बरषत, करषत आप जल, हरषत अरघनि भानु।
'तुलसी' चातक, साधु, सुर, सब सनेह - सनमानु ॥ ४५५ ॥
स्रुति-गुन,कर-गुन,पु-जुग,मृग, हय, रेवती, सखाउ।
देहि, लेहि धन धरकि धरु, गएहु, न जाइहि काउ ॥ ४५६ ॥
ऊगुन, पूगुन, वि, अज, कृ, म, आ, भ, अ, मू गुन साथ।
हरो, धरो, गाड़ो, दियो, धन फिर चढ़ै न हाथ ॥ ४५७ ॥

उसे इनमेंसे वैसा ही करनेके लिये उपदेश देना चाहिए ॥ ४५१ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि कल्पवृक्षसे फल पानेकी आशासे जिस-तिस वृक्षके पत्ते-पत्ते मत सींचो (परम सुख पानेके लिये जिस-तिस देवताकी पूजाके फेरमें मत पड़ो)। इससे मिलनेवाला टेढ़ा और बाँडुवा फल तुम्हें अचेत कर देगा। ऐसा तो मूर्ख लोग ही करते हैं ॥ ४५२ ॥ गँठबन्धन-द्वारा सम्बन्ध दृढ करनेकी अपेक्षा विश्वास द्वारा सम्बन्ध दृढ करना अधिक उत्तम है (विश्वासपर ही तो संसार सबके सब कार्य चलते हैं)। यह बात कहनेमें तो बहुत छोटी है पर समझनेमें बहुत बड़ी है जैसे अनाजका बीज बोया तो थोड़ा ही जाता है, पर पैदा होकर बहुत बढ़ जाता है ॥ ४५३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि प्रीतिकी प्रतीति (विश्वास-भावना) ऐसी होती है कि स्त्रियाँ अपने घरकी दीवारपर अपने ही हाथके ऐपन (पिसी हुई हलदी और चावलका लेप) छापकर पूजती हैं, और उसीसे उनकी सब मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं ॥ ४५४ ॥ सूर्य स्वयं पृथ्वीपर पर्याप्त जल बरसाता है और सोख भी लेता है परन्तु लोगोंके (स्नेह और श्रद्धापूर्वक) दिए हुए अर्घ्यको बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर लेता है। तुलसीदास कहते हैं कि साधुजन तथा देवता केवल स्नेह और सम्मान चाहते हैं (और वे उसीसे प्रसन्न होते हैं) ॥ ४५५ ॥ श्रवण, धनिष्ठा, शतभिक्, हस्त, चित्रा, स्वाति, पुष्य, पुनर्वसु मृगशिरा, अश्विनी, रेवती और अनुराधा—इन बारह नक्षत्रोंमें धन, भूमि और धरोहरका लेन-देन करो, तो जाता हुआ धन भी कहीं जायगा नहीं [श्रुतिगुन=श्रवण नक्षत्रसे तीन नक्षत्र (श्रवण, धनिष्ठा और शतभिक्)। करगुन=हस्तसे तीन नक्षत्र (हस्त, चित्रा और स्वाति)। पु-जुग=पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र। मृग=मृगशिरा। हय=अश्विनी। सखा=अनुराधा] ॥ ४५६ ॥ उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा, रोहिणी, कृत्तिका, मघा, आर्द्रा, भरणी, अश्लेषा और मूल—इन नक्षत्रोंमें यदि धन चोरी हो जाय, धरोहर रक्खा जाय, अथवा पृथ्वीमें गाड़ दिया जाय या किसीको उधार दिया जाय तो वह हाथ नहीं लग सकता (नहीं मिल सकता) [ऊ-गुन=उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ और उत्तराभाद्रपद। पू-गुन=पूर्वाफाल्गुनी,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रबि, हर, दिसि, गुन, रस, नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब - काज - नसावनी, होइ, कुजोग बिचार ॥ ४५८ ॥
ससि, सर, नव, दुइ, छ, दस गुन, मुनि, फल, बसु, हर, भानु।
मेषादिक क्रम - तें गनहिं, घात चंद्र जिय जानु ॥ ४५९ ॥
नकुल, सुदरसन, दरसनी, छेमकरी, चक, चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन - अभिलाष ॥ ४६० ॥
सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल, सुहावनि बात।
'तुलसी' सीतापति - भगति, सगुन सुमंगल सात ॥ ४६१ ॥
भरत, सत्रुसूदन, लखन - सहित सुमिरि रघुनाथ।
करहु काज सुभ साज सब, मिलिहि सुमंगल साथ ॥ ४६२ ॥
राम - लखन कौसिक-सहित, सुमिरहु करहु पयान।
लच्छि भाल, लै जगत जस, मंगल सगुन प्रधान ॥ ४६३ ॥
अतुलित महिमा बेद - की, तुलसी किए बिचार।
जो निंदत निंदित भयो, बिदित बुद्ध अवतार ॥ ४६४ ॥

पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद। वि=विशाखा। अज = रोहिणी। कृ=कृत्तिका। म=मघा। आ=आर्द्रा। भ=भरणी। अ=अश्लेषा। मू=मूल] ॥ ४५७ ॥ द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, षष्ठी, द्वितीया और सप्तमी—ये तिथियाँ यदि क्रमसे रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिवारको पड़ें तो सब कार्य नष्ट हो जाते हैं। ये कुयोग समझे जाते हैं, [रवि = द्वादशी। हर = एकादशी। दिसि=दशमी। गुन = तृतीया। रस=षष्ठी। नयन = द्वितीया। मुनि = सप्तमी। प्रथमादिक = रवि, सोम आदि वारोंके क्रमसे] ॥ ४५८ ॥ मेष राशिसे प्रथम, वृषसे पंचम, मिथुनसे नवम, कर्कसे द्वितीय, सिंहसे षष्ठ, कन्यासे दशम, तुलासे तृतीय, वृश्चिकसे सप्तम, धनुसे चतुर्थ, मकरसे अष्टम, कुंभसे एकादश और मीनसे द्वादश यदि चन्द्रमा पड़ जायँ तो घातक समझना चाहिए [ससि=एक। सर=पाँच। गुन = तीन। मुनि = सात। फल=चार। बसु = आठ। हर = ग्यारह। भानु = बारह। घात = घातक।) ॥ ४५९ ॥ नेवला, मछली, दर्पण, क्षेमकरी (सफेद चील), चकवा और नीलकंठ—इनको दसों दिशाओंमें कहीं भी देखनेसे शुभ शकुन होता है और मनकी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं ॥ ४६० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अमृत (गंगा जल), साधुजन, कल्पवृक्ष, पुष्प, सुन्दर फल, मधुर वचन और रामकी भक्ति—ये सातों सुन्दर मंगलकारी शकुन हैं ॥ ४६१ ॥ भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण-सहित रामका स्मरण करके और सभी शुभ सामग्री तैयार करके कार्य आरम्भ करो तो कार्यकी सिद्धि होगी और साथ ही सब प्रकारका मंगल भी होगा ॥ ४६२ ॥ विश्वामित्रके साथ राम और लक्ष्मणका स्मरण करके कोई भी कार्य करनेके लिये प्रस्थान कर दो। इससे लक्ष्मी (धन)-की प्राप्ति होगी, सुयश मिलेगा और शकुन मंगलमय प्रमाणित होगा ॥४६३॥ तुलसीदास कहते हैं कि वेदोंकी महिमा इतनी अपार है, कि उनकी निन्दा करनेके कारण स्वयं भगवान् बुद्धका अवतार भी निन्दित माना जाने लगा। यह बात संसारमें विख्यात है ॥४६४॥ तुलसीदास

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बुध किसान सर - बेब निज, मते खेत सद सींच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो, उत्तम, मध्यम नीच ॥ ४६५ ॥
सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान।
'तुलसी' धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान ॥ ४६६ ॥
अनहित - भय परहित किए, पर - अनहित हित-हानि।
'तुलसी' चारु बिचार भल, करिय काज सुनि जानि ॥ ४६७ ॥
पुरुषारथ, पूरब करम, परमेस्वर परधान।
'तुलसी' पैरत सहित ज्यों सबहि काज अनुमान ॥ ४६८ ॥
चलब नीति - मग, राम-पग-नेह निबाहब नीक।
'तुलसी' पहिरिय सो बसन, जो न पखारे फीक ॥ ४६९ ॥
दो 'हा' चारु बिचारु चलु, परिहरि बाद - बिबाद।
सुकृत - सीवँ, स्वारथ-अबधि, परमारथ - मरजाद ॥ ४७० ॥
'तुलसी' सो समरथ सुमति, सुकृती साधु, सयान।
जो बिचार व्यवहरइ जग, खरच - लाभ - अनुमान ॥ ४७१ ॥

कहते हैं कि पंडितजन-रूपी कृषक अपने विचार-रूपी खेतोंको पुष्ट करनेके लिये उन्हें वेद-रूपी सरोवरके जलसे सींचते हैं (वेदोंके प्रमाणोंसे अपना मत पुष्ट करते हैं) परन्तु यह बात पैदावार (विचारों)की मान्यतासे ही उत्तम, मध्यम या अधम जानी जाती है ॥४६५॥ तुलसीदास कहते हैं कि कडुए वचन सह लो, धैर्यके साथ सब कष्ट भी सह लो तथा मिथ्या कलंक (अपमान) भी स्वीकार कर लो, परन्तु धर्म कभी मत छोड़ो। चतुर लोग ऐसा कह भी गए हैं और स्वयं कर भी गए हैं ॥ ४६६ ॥ दूसरेका हित करनेमें तो अपना अहित होनेकी केवल शंका मात्र होती है (अहित नहीं होता), परन्तु दूसरेका अहित करनेमें निश्चय ही अपने हितकी हानि हो जाती है। तुलसीदास कहते हैं कि यही विचार अच्छा है कि सुन और जानकर ही कोई काम करो (सदा दूसरेका हित ही करते रहो, अहित कभी न करो) ॥ ४६७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जैसे लोग शक्तिके अनुसार तैरकर नदी पार कर लेते हैं उसी प्रकार कार्यका अनुमान करके अपने पुरुषार्थ-भर परिश्रम करना चाहिए। यह समझ लो कि परिश्रमका फल पानेमें कुछ तो अपने पुरुषार्थकी, कुछ अपने पूर्वकृत (शुभाशुभ) कर्मकी किन्तु मुख्यतः परमेश्वरकी कृपा ही सहायक होती है ॥४६८॥ तुलसीदास कहते हैं कि नीतिके मार्गपर चलना और रामके चरणोंसे स्नेह करते रहना ही उत्तम है क्योंकि वस्त्र वही पहनना चाहिए जिसका रंग पछाड़नेपर भी फीका न पड़े ॥४६९॥ सारे तर्क-कुतर्क छोड़कर सबसे हाहा खाए रहो (विनम्र बने रहो)। यही विचार उत्तम है, यही सबसे अधिक पुण्यका काम है, इसीसे स्वार्थ भी सधता है तथा परमार्थ (मोक्ष) भी मिलता है ॥४७०॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो अपनी आयके अनुसार व्यय करता है और विचारपूर्वक संसारमें लोगोंसे व्यवहार करता है वही समर्थ, बुद्धिमान, पुण्यात्मा, सज्जन और चतुर है ॥४७१॥ संसारमें योग (पाए हुए धन और अधिकार)-का यदि क्षेप (रक्षण, उचित उपयोग)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जाय जोग जग छेम - बिनु, तुलसी - के हित राखि।
बिनुऽपराध, भृगुपति, नहुष, बेनु, बृकासुर साखि॥ ४७२॥
बड़ि प्रतीति गठि - बंध - तें, बड़ो जोग - तें छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ - तें, बड़ो नेम - तें प्रेम॥ ४७३॥
सिष्य, सखा, सेवक, सचिव, सुतिय, सिखावन साँच।
सुनि ससुझिय, पुनि परिहरिय, पर - मन - रंजन पाँच॥ ४७४॥
नगर, नारि, भोजन, सचिव, सेवक, सखा, अगार।
सरस परिहरे रंग - रस, निरस बिषाद बिकार॥ ४७५॥
तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि।
तीय, तनय, सेवक, सखा, मनके कंटक चारि॥ ४७६॥

न किया जाय (अत्याचार किया जाय) तो वह व्यर्थ हो जाता है क्योंकि निरपराधियोंकी रक्षा तो तुलसीके हितैषी (राम) करते ही रहते हैं जिसके परशुराम[1], नहुष[2], वेन[3], और वृकासुर (भस्मासुर)[4] आदि सब साक्षी हैं। (इन सब लोगोंने अपने वैभव और अधिकारोंका ऐसा दुरुपयोग किया कि उन्हें बुरा फल भोगना पड़ा)॥ ४७२॥ गँठबन्धन (बाहरी मेल-जोल)-की अपेक्षा प्रतीति (विश्वास) बड़ी होती है, योग (किसी वस्तुको प्राप्ति करनेकी) अपेक्षा क्षेम (उसकी रक्षा करना) बड़ा होता है, स्वामीकी अपेक्षा उसका उत्तम सेवक बड़ा होता है और (ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिये) व्रत, उपवास आदि नियमोंकी अपेक्षा ईश्वरसे 'प्रेम' बड़ा होता है॥४७३॥ यह सच्ची शिक्षा सुन लो और समझ लो कि शिष्य, मित्र, सेवक, मंत्री और अपनी स्त्री—ये पाँच यदि (अपनेको सुख देनेके बदले) दूसरेको प्रसन्न करनेमें लगे हों तो जाँच कर लेनेपर इन्हें दूर कर देना चाहिए॥४७४॥ नगर, स्त्री, भोजन, मंत्री, सेवक, मित्र और घर, इन सबको इनकी सरसता नष्ट होनेके पहले ही छोड़ देना अच्छा है, नीरस (कष्टदायक) होनेपर तो ये दुःख देने लगेंगे और हानि-कारक हो जायँगे॥ ४७५॥ स्त्री, पुत्र, सेवक और सखा (मित्र) जब अपनी मनमानी करनेपर तुले बैठे हों और मनमानी करनेके कारण काम बिगाड़कर क्रुद्ध भी हो उठते हों तो ये चारों मनके कंटक हो जाते हैं (इन्हें दूर निकाल फेंकना चाहिए)॥ ४७६॥ पुराना रोगी, दरिद्री, कटुवादी (कड़ुआ

१. परशुराम : जिन्होंने क्षत्रियोंका नाश करनेमें अपने बलका दुरुपयोग दिया किन्तु अन्तमें रामने उनका बल हर लिया। २. नहुष : नहुषने अपने पुण्यसे इन्द्रका सिंहासन प्राप्त कर लिया किन्तु इन्द्रकी पत्नी शचीके पास जानेके लिये जब वह सप्तर्षियोंके कन्धेपर पालकीपर बैठकर चला तो उनके शापसे वह सर्प होकर नीचे गिर पड़ा। ३, वेन : अंग और मृयुकी मानस-कन्या सुनीथाके पुत्र अंगराज वेनने अपने अधिकारका दुरुपयोग करके धर्मका नाश करना आरम्भ किया किन्तु ऋषियोंके शापसे वह मारा गया। ४. वृकासुर (भस्मासुर) : शिवसे यह वरदान पाकर कि जिसके सिरपर हाथ रख देगा वह भस्म हो जायगा वह शिवके सिरपर ही हाथ रखने चला पर विष्णुकी चतुराईसे वह स्वयं अपने सिरपर हाथ रखकर जल मरा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दीरघ रोगी, दारिदी, कटु - बच, लोलुप लोग।
'तुलसी' प्रान - समान तउ होहिँ निरादर - जोग ॥ ४७७ ॥
पाही खेती, लगन बट, रिन कुब्याज, मग खेत।
बैर बड़े - सों आपने, किए पाँच दुख - हेत ॥ ४७८ ॥
धाय लगै लोहा ललकि, खैँचि लेइ नइ नीच।
समरथ पापी - सों बयर, जानि बिसाही मीच ॥ ४७९ ॥
सोचिय गृही जो मोहबस, करै कर्मपथ - त्याग।
सोचिय जती प्रपंच - रत, बिगत - बिबेक - बिराग ॥ ४८० ॥
'तुलसी' स्वारथ सामुहो, परमारथ - तन पीठि।
अंध कहे दुख पाइहै, डिठियारो, केहि डीठि ॥ ४८१ ॥
बिनु आँखिन - की पानही, पहिचानत लखि पाँय।
चारि नयनके नारि - नर, सूझत मीच न माय ॥ ४८२ ॥
जुपै मूढ़ उपदेश - के, होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध कै, आए स्याम सुजान ॥ ४८३ ॥

सोरठा

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहि जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहि बिरंचि - सिव ॥ ४८४ ॥

वचन बोलनेवाला) और लालची—ये यदि प्राणके समान भी प्यारे हों, तो भी उनका निरादर ही होने लगता है ॥४७७॥ दूरकी खेती करना, राह चलतेसे प्रेम करना, अधिक ब्याजपर ऋण लेना, रास्तेपरका खेत होना और अपने बड़ोंसे बैर करना—इन पाँचोंसे दुःख ही दुःख मिलता है ॥३७८॥ जैसे लोहा तो बिना बिचारे बड़े चावसे चुम्बककी ओर बढ़ता है पर वह नीच झुककर उसे खींच धरता है वैसे ही समर्थ पापीसे बैर ठन जाय तो समझ लो कि जान बूझकर मृत्यु ही मोल ले ली ॥४७९॥ जो गृहस्थ अज्ञानताके कारण अपना कर्म छोड़ दे (गृहस्थके धर्मका पालन न करे) वह शोचनीय है और जो संन्यासी पाखंडी हो तथा जिसमें ज्ञान-वैराग्य न हो वह भी शोचनीय है ॥ ४८० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग स्वार्थ तो सदा अपने सामने रखते हैं और परमार्थकी ओर पीठ किए रहते हैं (परमार्थसे विमुख रहते हैं) वे अंधे हैं। उन्हें किस दृष्टिसे समाखा (आँखवाला) कहा जाय ॥ ४८१ ॥ पनही (जूती) तो बिना आँखोंके ही पैर देखकर पहचान लेती है, परन्तु चार आँखोंवाले (दो बाहरी आँखों और दो हृदयकी आँखों-ज्ञान दृष्टि-वाले) स्त्री-पुरुष न अपनी मौतको ही देख पाते हैं न मायाको ही पहचान पाते हैं ॥ ४८२ ॥ यदि मूर्ख लोग उपदेशसे मान जाया करते तो दुर्योधनको चतुर भगवान् श्रीकृष्ण अपने उपदेशसे क्यों न समझा आए ? ॥ ४८३ ॥ यदि बादल अमृतकी वर्षा भी कर डाले तो भी बेंत कभी फूल-फल नहीं सकता। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा और शिव भी गुरु होकर क्यों न मिल जायँ, तो भी मूर्खके हृदयमें चेतना (ज्ञान-शक्ति) नहीं आती ॥ ४८४ ॥ जो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा

रीझि आपनी बूझिपर, खीझि बिचार - बिहीन।
ते उपदेस न मानहीं, मोह - महोदधि मीन ॥ ४८५ ॥
अनसमुझे अनुसोचनो, अवसि समुझिए आप।
'तुलसी' आप न समुझिए, पल पलपर परिताप ॥ ४८६ ॥
कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि बबूर[1]–
बवहिं, नवहिं निज काज-सिर, कुमति - सिरोमनि, कूर ॥ ४८७ ॥
निडर ईस - तें बीसकै[2], बीस - बाहु सो होइ।
'गयो-गयो' कह सुमति सब, 'भयो' कुमति कह कोइ ॥ ४८८ ॥
जो सुनि-समुझि अनीति-रत, जागत रहै जु सोइ।
उपदेसिबो, जगाइबो, तुलसी उचित न होइ ॥ ४८९ ॥
बहु स्रुत, बहु रुचि, बहु बचन, बहु अचार - व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥ ४९० ॥
लोगनि भलौ मनाव जो, भलो होन - की आस।
करत गगन - को गेंडुआ[3], सो सठ तुलसीदास ॥ ४९१ ॥

अपनी ही बुद्धिपर प्रसन्न हुए रहते हैं (अपनेको ही बुद्धिमान् समझते हैं) और बिना विचारे ही दूसरोंपर क्रोध किया करते हैं, ऐसे मूर्ख तो मोहके महासागरमें मछली बने डूबे हुए हैं। (वे अज्ञानतामें इतने लिप्त हैं) कि उनपर उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ ४८५ ॥ जो बात समझमें न आवे उसपर बार-बार मनन करनेसे वह अवश्य ही अपने आप समझमें आ जायगी। यदि इस प्रकार भी समझमें न आ पावे तो तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी बिना समझी हुई बातके अनुसार चलनेसे तो क्षण-क्षणपर दुःख ही दुःख मिलेगा ॥ ४८६ ॥ जो घरमें आग लगनेपर कुँआ खोदते हैं, गढ़पर शत्रुके चढ़ आनेपर बबूलकी बाड़ लगाने चलते हैं और स्वार्थ साधनेके लिये सबके आगे सिर झुकाते चलते हैं (नम्रता दिखाते हैं) ऐसे दीर्घसूत्री मनुष्य बड़े मूर्ख और निकम्मे होते हैं ॥ ४८७ ॥ ईश्वरका भय छोड़कर कोई चाहे बीसों बिस्वा (पूर्ण रूपसे) रावणके समान ऐश्वर्यवान् या बलवान् क्यों न हो जाय तो भी बुद्धिमान् लोग उसे गया-गया (नष्ट हुआ) हुआ ही कहेंगे। शायद ही कोई मूर्ख उसे 'भया' (सफल) कहेगा ॥४८८॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो जान-बूझकर अनीति करता हो उसे उपदेश देना और जो जागते हुए भी सोनेका बहाना किए पड़ा हो उसे जगाना व्यर्थ है ॥ ४८९ ॥ जो बहुतोंको सुनते हों, जिनके मनमें अनेक इच्छाएँ उठती रहती हों, जो बहुत बोलते हों, जिनके आचरण और व्यवहार कई प्रकार-के हों उनका भला मनाना महा मूर्खता है ॥ ४९० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो अपनी भलाई करानेकी आशासे (भगवान्‌को छोड़कर) लोगोंको रिझाता फिरता है, वह मूर्ख आकाशको तकिया बनानेके फेरमें है (असंभवकी आशा लगाए बैठा है) ॥ ४९१ ॥ क्या सीताको अपयश लगना चाहिए था ? क्या

१. आए धारि बबूर बवहिं = कहावत है 'जब सेनाने गढ़ घेर लिया तब चारों ओर रोकके लिये चले बबूल बोने'। २. बीसकै = बीस बिस्वे, निश्चय। ३. गेंडुआ = तकिया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपजस - जोग कि जानकी, मनि चोरी की कान्ह ?
'तुलसी' लोग रिझाइबो, करषि कातिबो नान्ह ॥ ४९२ ॥
'तुलसी जुपै गुमान - को, होतो कछू उपाउ ।
तौ कि जानिकिहि जानि जिय, परिहरते रघुराउ ॥ ४९३ ॥
माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि ।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि ॥ ४९४ ॥
'तुलसी' भेड़ीकी धँसनि, जड़ - जनता - सनमान ।
उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ॥ ४९५ ॥
लही आँख कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय ?
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच[1] जाय ॥ ४९६ ॥
'तुलसी' निरभय होत नर, सुनियत सुरपुर जाइ ।
सो गति लखियत अछत तनु, सुख - संपति-गति पाइ ॥ ४९७ ॥

कृष्णने मणिकी चोरीको थी ? 'नहीं' । तुलसीदास कहते हैं कि सब लोगोंको प्रसन्न करना उतना ही कठिन काम है, जितना जोरसे खींचकर महीन सूत कातना ॥ ४९२ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि जनताका संदेह मिटानेका कुछ भी उपाय होता तो क्या राम (निष्कलंक जानते हुए) कभी सीताका परित्याग करते ? ॥ ४९३ ॥ (जबतक हमारी कोई प्रतिष्ठा नहीं करता था तबतक) हम मधुकरी माँगकर खाते थे और (पैर फैलाकर) निश्चिन्त होकर सोते थे । परन्तु जबसे प्रतिष्ठाका दुःख बढ़ गया मूर्ख, तबसे (प्रतिष्ठा पानेकी लालसाकी) झंझटें बढ़ गईं ॥ ४९४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जनतासे सम्मान पाना तो 'भेड़िया-धसान'के समान है । इस प्रकार मूर्ख जनताका सम्मान पानेसे ऐसा अभिमान बढ़ जाता है कि मूर्ख लोग अपनी प्रतिष्ठा गँवा बैठते हैं ॥ ४९५ ॥ बहराइच जानेपर किस अंधेको आँखें मिलीं ? किस वन्ध्याको सन्तति प्राप्त हुई ? तथा किस कोढ़ीको सुन्दर देह मिली ? 'किसीको नहीं' (पर अन्धविश्वास या भेड़िया-धसानके कारण सब वहाँ जाते ही हैं) ॥ ४९६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सुना जाता है स्वर्गमें जाकर लोग निर्भय हो जाते हैं । पर सुख-सम्पत्ति और अच्छी गति पानेपर तो वहाँ भी लोगोंकी वही दशा दिखाई देती है (क्योंकि सुख-संपत्तिवाला मनुष्य अभिमानके कारण यहाँ भी अपनेको निर्भय मानता है) ॥४९७॥

१. बहराइचमें सालार मसऊद ग़ाज़ी (ग़ाज़ी मियाँ) की दरगाहपर हजारों यात्री बराबर जाया करते हैं । यह महमूद गजनवीका भानजा था, जो महमूदके कन्नौजसे आगे न बढ़नेपर भी गाजी बननेके हौसलेसे अवधकी ओर कुछ सेना लेकर बढ़ आया । वहाँ श्रावस्ती (आधुनिक सहेट-महेट जो बलरामपुरके पास है)-के जैन राजा सुहृददेवके हाथसे वह मारा गया । बहराइचमें उसकी दरगाहपर जेठमें मेला लगता है जहाँ लोग आँख ठीक कराने, पुत्र प्राप्त करने और कोढ़ ठीक कराने जाते हैं ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' तोरत तीर - तरु, बक - हित हंस बिडारि।
बिगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरिहू बढ़ियारि ॥ ४९८ ॥
अधिकारी बस औसरा, भलेउ जानिबे मंद।
सुधा - सदन बसु, बारहें, चउथे, चउथिउ चंद ॥ ४९९ ॥
त्रिबिध एक बिधि प्रभु-अनुग, अवसर करहिं कुठाट।
सूधे - टेढ़े, सम - बिषम, सब - महँ बारहबाट ॥ ५०० ॥
प्रभु-तें प्रभु-गन दुखद लखि, प्रजहिं सँभारै राउ।
कर-तें होत कृपान-को, कठिन घोर घन घाउ ॥ ५०१ ॥
ब्यालहु-तें बिकराल बड़, ब्याल - फेन जिय जानु।
वहि-के खाए मरत है, वह खाए, बिनु - प्रानु ॥ ५०२ ॥
कारनतें कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर।
कुलिस अस्थि - तें, उपल-तें लोह कराल कठोर ॥ ५०३ ॥
काल बिलोकत ईस - रुख, भानु काल - अनुहारि।
रबिहिं राउ, राजहिं प्रजा, बुध व्यवहरहिं बिचारि ॥ ५०४ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि (घनमद) बढ़ जानेपर गंगा (सज्जन-मंडली) भी किनारेके पेड़ों (आश्रितों)-को तोड़ बहा देती हैं, बगुलों (मूर्खों)-के लिये हंसों (विवेकियों)-को मार भगाती हैं, कमल तथा भौंरों (अपने गुणों)-से वंचित मटमैले जलवाली हो जाती है (सांसारिक बढ़ती हो जानेपर विवेक नष्ट हो जाता है, दुर्गुणी ही प्रिय लगने लगते हैं) ॥ ४९८ ॥ बुरे दिन आनेपर भले अधिकारी भी बुरे हो जाते हैं। चन्द्रमा यद्यपि अमृतका भंडार ही है, किन्तु वही यदि आठवें, बारहवें और चौथे स्थानपर पड़ जाय तथा भादों सुदी चौथको देख लिया जाय तो हानिकारक हो जाता है ॥४९९॥ कोई विशेष अवसर आनेपर यदि स्वामी एक बुराई करता है तो सेवक तीन बुराइयाँ कर बैठता है। वह सज्जनोंसे टेढ़ा व्यवहार करता है, समको विषम बना देता है (बनेको बिगाड़ देता है) और सब काम उलट-पलट देता है ॥ ५०० ॥ स्वामीकी अपेक्षा स्वामीके सेवक अधिक दुःखदायी होते हैं। यह विचारकर राजाको चाहिए कि स्वयं प्रजाकी देखभाल करे, क्योंकि हाथकी चोटकी अपेक्षा हाथकी तलवारका घाव अधिक भयंकर होता है ॥५०१॥ अहिफेन (अफीम)-को साँपसे भी अधिक भयंकर समझो क्योंकि साँपके तो डसनेपर मनुष्य मरता है परन्तु अफ़ीमके तो खानेसे ही मनुष्य प्राणहीन हो जाता है ॥ ५०२ ॥ (भरत अपनी कठोरता बतलाते हुए कहते हैं कि) कारणसे कार्य (मातासे पुत्र) अधिक कठोर होता ही है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। क्योंकि (दधीचिकी) हड्डीसे बना हुआ वज्र हड्डीसे भयंकर और पत्थरसे उत्पन्न लोहा पत्थरसे भी अधिक भयंकर होता है ॥ ५०३ ॥ समय ईश्वरकी रुचि देखता है (ईश्वरकी इच्छाके अनुसार समय बदलता रहता है), सूर्य समयके अनुसार चलता है (ऋतुके अनुसार सर्दी-गर्मी पहुँचाता है), राजा सूर्यके समान आचरण करता है (जैसे सूर्य जल सोखकर फिर बरसा देता है, वैसे ही राजा भी प्रजासे कर लेकर प्रजाके हितमें ही लगा देता है) और प्रजा सदा राजाके अनुसार चलती है (राजा यदि धर्मात्मा हुआ तो प्रजा भी धर्मशीला होती है) पर बुद्धिमान् लोग सदा विचारकर व्यवहार करते हैं (किसीके पीछे नहीं चलते) ॥५०४॥ जैसे स्वच्छ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जथा अनल पावन पवन, पाइ कुसंग - सुसंग।
कहिय कुबास-सुबास तिमि, काल महीस - प्रसंग ॥ ५०५ ॥
भलेहु चलत पथ पोच भय, नृप - नियोग - नय - नेम।
सुतिय, सुभूपति भूषियत, लोह - सँवारित हेम ॥ ५०६ ॥
माली, भानु, किसान - सम, नीति - निपुन नरपाल।
प्रजा - भागबस होहिंगे, कबहुँ - कबहुँ कलिकाल ॥ ५०७ ॥
बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
'तुलसी' प्रजा - सुभाग - तें, भूप भानु - सो होइ ॥ ५०८ ॥
सुधा, सुनाज, कुनाज, पल, आम, असन, सम जानि।
सुप्रभु प्रजा - हित लेहि कर, सामादिक अनुमानि ॥ ५०९ ॥
पाके, पकये, बिटप - दल, उत्तम, मध्यम, नीच।
फल नर लहै, नरेस - त्यों, करि बिचारि मन बीच ॥ ५१० ॥

और पवित्र वायु भी बुरी वस्तुके संयोगसे दुर्गन्धित और भली वस्तुके संयोगसे सुगंधित हो जाता है वैसे ही समय भी अच्छे राजाके संसर्गसे अच्छा और बुरे राजाके संसर्गसे बुरा हो जाता है ॥५०५॥ जिस प्रकार लोहेसे पीटे जानेपर ही सोना आभूषणके रूपमें ढलकर सुन्दरी और श्रेष्ठ राजाको सँवार देता (सजा देता) है, उसी प्रकार राजाकी आज्ञा, नीति और विधान (-रूपी हथौड़े)-के कारण भलोंको भी नीच मार्गपर चलनेमें भय लगता है। (अथवा बुरे लोग भी भयके कारण सुपंथपर चलने लगते हैं) ॥ ५०६ ॥ माली, सूर्य और किसानके समान इस कलिकालमें प्रजाके सौभाग्यसे कभी-कभी कोई गिने-चुने राजा ही राजनीतिमें चतुर निकलेंगे। (१. माली मुरझाए पौधोंको सींचता, बढ़े पौधोंको काटता-छाँटता, झुके हुएको टेक देता और तब फल-फूल लेता है। २. सूर्य समुद्र और नदीसे जल खींचकर खेतोंपर ला बरसाता है। ३. किसान खेत तैयार करके, खाद देकर, बीज बोकर, सींचकर रखवाली करता है तब फ़सल काटता है) ॥ ५०७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि प्रजाके सौभाग्यसे ही उन्हें सूर्यके समान राजा मिलता है। सूर्यको कोई जल सोखते हुए तो नहीं देखता पर जब वह जल बरसाने लगता है तो सभी प्रसन्न हो उठते हैं। (उसी प्रकार राजा भी प्रजापर अप्रत्यक्ष कर लगाता है जिससे उसपर करका बोझ न जान पड़े, फिर उसी करको वह जब प्रजाके हितमें लगा देता है तब सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं) ॥ ५०८ ॥ अमृतके समान पेय पदार्थ (दूध, दही, रस आदि), अच्छे अन्न, मोटे या साधारण अन्न, आम आदि उत्तम फल सबको समान खाद्य समझकर ही अच्छे राजाको चाहिए कि वह साम-दाम आदि (साम, दाम, दंड, भेद) राजनीतिके अनुसार प्रजाके हितके लिये प्रजासे करके रूपमें जिससे जो कुछ भी मिले ले लेते हैं ॥५०९॥ पके पकाये फल लेना उत्तम लाभ है। कच्चे तोड़कर फल पकाना मध्यम श्रेणीका लाभ है और केवल पेड़के पत्ते ही नोच गिराना निकृष्ट काम है। इसी प्रकार अच्छे राजाका कर्त्तव्य है कि वह तभी कर उगाहे जब फ़सल पक जाय यह उत्तम है। बिना फ़सल पके कर उगाहना मध्यम काम है और अकालमें पीड़ा देकर कर उगाहना अधम कार्य है ॥ ५१० ॥ गुरुजन, मित्र, अच्छे स्वामी और सज्जन लोग प्रसन्न होकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रीझि, खीझि गुरु देत सिख, सखा, सुसाहिब, साधु ।
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु ॥ ५११ ॥
धरनि - धेनु, चारित - चरत, प्रजा - सुबच्छ पेन्हाइ ।
हाथ कछू नहिं लागिहै, किए गोड़ - की गाइ ॥ ५१२ ॥
चढ़े बघूरे चंग - ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक - समाज ।
करम, धरम, सुख - संपदा, त्यों जानिबे कुराज ॥ ५१३ ॥
कंटक करि-करि परत गिरि, साखा सहस खजूरि ।
मरहिं कुनृप करि-करि कुनय, सो कुचालि भव भूरि ॥ ५१४ ॥
काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल ।
पाप पलीता, कठिन गुरु, गोला पुहुमी - पाल ॥ ५१५ ॥
भूरि रुचिर रावन सभा, अंगद - पद महि - पाल ।
धरम राम, नय सीय - बल, अचल होत सुभ काल ॥ ५१६ ॥
प्रीति राम-प्रद, नीति-रति, धरम - प्रतीति सुभाय ।
प्रभुहिं न प्रभुता परिहरै, कबहुँ बचन - मन - काय ॥ ५१७ ॥

अथवा क्रुद्ध होकर यही उपदेश देते हैं कि पका फल तोड़कर खाना अच्छा है और पेड़ काटकर फल लेना अपराध है । (प्रजासे उचित लाभ उठाना अच्छा है और उसे करसे लादकर कष्ट देना अच्छा नहीं है ।) ॥५११॥ पृथ्वी-रूपी गाय जब राजाके सुचरित (धर्म)-की घास चरती है तभी वह प्रजा-रूपी बछड़ेसे पेन्हाई जानेपर दूध उतारती है । यदि इस गायका पैर ही बाँधकर दूहनेके फेरमें पड़ा जायगा तो कुछ भी दूध हाथ न लगेगा (जब पृथ्वीपर धर्म-शासनसे प्रजा सुखी होती है तभी राजाको धन मिलता है, केवल दंड और करके भयसे नहीं) ॥ ५१२ ॥ जैसे बवंडरमें फँसी हुई पतंग तथा अनेक प्रकारके शोकमें डूबे हुए विवेककी दुर्दशा होती है वही दशा बुरे राज्यमें कर्म, धर्म और सुख-सम्पत्तिको भी समझनी चाहिए (इनका अवश्य नाश हो जाता है) ॥ ५१३ ॥ जिस प्रकार खजूरकी हजारों शाखाएँ पेड़में अनेक काँटे बनाकर स्वयं झड़ गिरती हैं, उसी प्रकार दुष्ट राजा भी दुर्नीति करके अन्तमें नष्ट तो हो ही जाते हैं साथ ही उनकी वह अनीति (बदनामी) भी संसारमें भरी रह जाती है ॥ ५१४ ॥ समय ही गोलंदाज (तोपची) है, पृथ्वी ही तोप है, कराल अनीति ही बारूद है, पाप ही पलीता है और राजा ही कठोर और भारी गोला है । (बुरा समय ही राजाके हाथसे प्रजाका नाश करा डालता है) ॥ ५१५ ॥ यह भूमि ही रावणकी सुन्दर सभा है जिसमें राजा ही अंगदका वह पैर है जो धर्म-रूपी राम और नीति-रूपी सीताके बलपर अच्छे समयमें अचल होकर जम बैठता है (धर्म और नीतिके अनुसार राज्य करनेपर ही राजाका राज्य अचल रह सकता है, अन्यथा नहीं) ॥ ५१६ ॥ जिस प्रभु (स्वामी या राजा)-की रामके चरणोंमें प्रीति होती है, जो नीतिपूर्वक राज्य करता है और धर्ममें जिसका स्वाभाविक विश्वास है, उसे मन, वचन और शरीरसे कभी प्रभुता नहीं छोड़ती ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कर - के कर, मन-के मनहि, बचन - बचन गुन जानि।
भूपहिं भूलि न परिहरैं, बिजय, बिभूति, सयानि ॥ ५१८ ॥
गोली, बान, सुमंत्र - सर, समुझि उलटि मन देखु।
उत्तम, मध्यम, नीच प्रभु, बचन बिचारि बिसेखु ॥ ५१९ ॥
सत्रु सयानो सलिल - ज्यों, राख सीस रिपु - नाउ।
बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥ ५२० ॥
रैयत, राज - समाज घर, तन, धन, धरम, सुबाहु।
सांत सु-सचिवन सौंपि सुख, बिलसहि नित नर - नाहु ॥ ५२१ ॥
मुखिया मुख - सों चाहिए, खान - पान - को एक।
पालै, पोषै सकल अँग, 'तुलसी' सहित - बिबेक ॥ ५२२ ॥
सेवक कर - पद - नयन-से, मुख - सों साहिब होइ।
'तुलसी' प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहहि सोइ ॥ ५२३ ॥
मंत्री, गुरु अरु बैद जो, प्रिय बोलहिं भय - आस।
राज, धरम, तन तीनि-कर, होइ बेगि ही नास ॥ ५२४ ॥

(उसका प्रभुत्व सदा बना रहता है) ॥ ५१७ ॥ जिस राजाके हाथमें हाथके गुण (दान, युद्ध, रक्षा आदि) हों, मनमें मनके गुण (दया, उदारता आदि) हों, और वचनमें वचनके गुण (सत्यता, मधुरता आदि) हों, उसे विजय, ऐश्वर्य और ज्ञान कभी भूलकर भी नहीं छोड़कर जाते ॥ ५१८ ॥ विशेष रूपसे विचार करके देखो तो वचन तीन प्रकारके होते हैं, गोलीके समान, बाण (बरछी) के समान और अभिमंत्रित बाणके समान। इनको उलटकर देखो तो उत्तम राजाके वचन सुमंत्रित बाणके समान (अमोघ) होते हैं, मध्यम राजाके वचन बरछीके समान होते हैं (जो कभी सफल और कभी असफल दोनों ही होते हैं) और नीच राजाके वचन गोलीके समान होते हैं (कि यदि निशाना चूक गया तो सब व्यर्थ है) ॥ ५१९ ॥ चतुर शत्रु पानीके समान अपने शत्रु-रूपी नावको अपने ऊपर रखता है (शत्रुका ऊपरसे बहुत आदर करता है) परन्तु उसको डूबते या डगमगाते देखते ही तुरन्त चारों ओरसे उसपर चढ़ बैठता (डुबो देता) है ॥ ५२० ॥ राजा जो अपनी प्रजा, राजकार्य, घर, अपना शरीर, धन, धर्म और सेना सब अपने शान्त और सुयोग्य मंत्रियोंको सौंप देता है वह चैनकी नींद सोता है ॥ ५२१ ॥ राजाको मुखके समान होना चाहिए, जो खाने और पीनेके लिये भले ही एक रहे, परन्तु वह विवेकपूर्वक सभी अंगोंका पालन-पोषण करता रहे। (राजाको चाहिए कि वह प्रजासे कर तो ले पर जहाँ जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, वहाँ वह वस्तु पहुँचाता रहे) ॥ ५२२ ॥ सेवक तो हाथ, पैर और आँखोंके समान हों (स्वामीकी सेवा करनेवाले हों) और स्वामी (राजा) मुखके समान (सबका पोषण करता) हो। तुलसीदास कहते हैं कि सुकवि लोग ऐसी ही प्रीतिकी रीतिकी सराहना करते हैं ॥ ५२३ ॥ मंत्री, गुरु और वैद्य यदि भय या अन्य किसी आशा (लाभ)-से प्रिय वचन बोलने लगें तो मंत्रीसे राज्य, गुरुसे धर्म और वैद्यसे शरीर शीघ्र ही चौपट हो जाता है ॥ ५२४ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज।
प्रभु - कर सेन - पदादिका, बालक राज - समाज ॥ ५२५ ॥
लकड़ी डौआ, करछुली, सरस काज - अनुहारि।
सु - प्रभु संग्रहहिं परिहरहिं, सेवक - सखा बिचारि ॥ ५२६ ॥
प्रभु - समीप छोटे, बड़े, निबल, होत बलवान।
'तुलसी' प्रगट बिलोकिए कर - अँगुली अनुमान ॥ ५२७ ॥
साहब - तें सेवक बड़ो, जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गए हनुमान ॥ ५२८ ॥
'तुलसी' भल बर-तरु बढ़त, निज मूलहि अनुकूल।
सबहि भाँति, सब-कहँ सुखद, दलनि-फलनि बिनु-फूल ॥ ५२९ ॥
सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल, सुसाईं, महीप।
'तुलसी' जे अभिमान-बिनु, ते त्रिभुवन-के दीप ॥ ५३० ॥

(इस दोहेके पहले और दूसरे चरणमें एक रूपसे, तीसरे चरणमें दूसरे रूपसे और चौथे चरणमें तीसरे रूपसे उत्तम राजाके गुण दिखलाए गए हैं।) १. राजा पेटके समान है, मंत्री जीभ है तथा अन्य कर्मचारी दाँतके समान हैं (समस्त भोजन-पदार्थको दाँत चबाकर और जीभ उसका स्वाद चखकर सब कुछ पेट (राजा)को पहुँचा देती हैं। पेट रस तैयार करके सब अंगोंको पुष्ट और संतुष्ट करता है। उसी प्रकार मंत्री तथा अन्य कर्मचारी सब काम राजाके लिये करते रहते हैं)। २. सेना और पैदल सिपाही राजाके हाथ-पैर हैं जो राजाकी तथा सब अंगोंकी रक्षा करते हैं, राजा उसके बदलेमें हाथ-पैरको भी पुष्ट और संतुष्ट करता है। ३. राजा पिताके तुल्य है और सारा राज-समाज बालक-रूप है (जिस प्रकार पिता अपनी सन्तानका पालन-पोषण करता है, वैसे ही राजा (पेट) भी अपने सम्पूर्ण राज-समाज रूपी अंगोंको पाल-पोसकर पुष्ट और सन्तुष्ट करता है) ॥५२५॥ सुविधा और सुन्दरताके अनुसार (खट्टी वस्तु तैयार करने या परोसनेके लिये) काठका चमचा या कलछी तथा (अन्य वस्तुओंके लिये) धातुकी कलछी काममें लाई जाती हैं उसी प्रकार उत्तम स्वामी (राजा) भी विचारकर यथासमय सब प्रकारके सेवकों और मित्रोंका संग्रह करते और त्याग करते रहते हैं॥ ५२६॥ तुलसीदास कहते हैं कि स्वामीके पास रहकर छोटे भी बड़े और निर्बल भी बलवान हो जाते हैं। हाथकी उँगलियोंको देखकर ही अनुमान कर लो (कि हाथके साथ छोटी उँगलियाँ भी बड़ी उँगलियोंके समान काममें आती हैं) ॥ ५२७ ॥ स्वामीसे भी वह सेवक बड़ा होता है जो अपना धर्म (कर्त्तव्य) भली प्रकार जानता-समझता हो। देखिए, राम (स्वामी)-को तो समुद्रपर पुल बाँधकर पार जाना पड़ा, पर हनुमान (सेवक) तो लाँघकर ही समुद्र पार कर गए ॥ ५२८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि बरगदका वृक्ष कितना भला है कि वह अपनी जड़ (शक्ति)-के अनुसार बढ़ता है और बिना फूले ही (अभिमान-रहित होकर) सबको सब प्रकार पत्तों और फलोंसे सुख देता रहता है ॥५२९॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग धनी, गुणी, धर्मात्मा, सेवकोंसे युक्त, बलवान्, योग्य, स्वामी और राजा होते हुए भी अभिमान नहीं करते, वे ही तीनों लोकोंमें दीपकके समान प्रकाशमान् (श्रेष्ठ) होते हैं ॥ ५३० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जब कोई व्यक्ति बिना अपनी करनीके ही (दूसरेकी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' निज करतूति-बिनु, मुकत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोक - हरि, नाम सक्यो नहिं धोइ ॥ ५३१ ॥
बड़ो गहे - तें होत बड़, ज्यों बावन-कर दंड।
श्रीप्रभुके सँग सो बढ़ो, गयो अखिल ब्रह्मंड ॥ ५३२ ॥
'तुलसी' दान जो देत हैं जलमें हाथ उठाय।
प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय ॥ ५३३ ॥
आपन छोड़े साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
'तुलसी' अंबुज अंबु-बिनु, तरनि तासु रिपु होइ ॥ ५३४ ॥
उरबी परि कल - हीन होइ, ऊपर कला प्रधान।
'तुलसी' देखु कलाप - गति, साधन-घन पहिचान ॥ ५३५ ॥
'तुलसी' संगति पोच-की, सुजनहिं होत म-दानि।
ज्यों हरि-रूप सुताहि-तें, कीन्हि गुहारी आनि ॥ ५३६ ॥

कृपाके सहारे) मोक्ष-पद प्राप्त कर लेता है (उच्च पद प्राप्त कर लेता है) तब उसका कोई यश (नाम) नहीं होता। जैसे, अजामिल विष्णु-लोकको गया तो सही पर अपनी बदनामीका कलंक नहीं धो पा सका ॥ ५३१ ॥ जो भी बड़ोंके आश्रयमें जा रहे वही बड़ा हो जाता है। जैसे वामनका रूप बनाए हुए भगवान्‌के हाथका डंडा भी उनकी वृद्धिके साथ ही बढ़ता चला गया और समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो गया ॥५३२॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग (मछली फँसानेके लिये) हाथ उठा-उठाकर जलमें दान (चारा) देते हैं, उस दानको ग्रहण करनेवाली मछली (चारेके लोभमें पड़कर) तो उसे खाकर मर ही जाती है पर दाता (चारा देनेवाला, धोखा देकर मछलीको मारनेका अपराधी) भी नरकमें जाता है ॥ ५३३ ॥ जब अपने सगे ही अपना साथ छोड़ बैठते हैं, उस समय उसका अपना कोई भी साथ नहीं देता। तुलसीदास कहते हैं कि सूर्य है तो कमलका मित्र, पर जब जल नहीं रहता तब वह भी कमलका शत्रु होकर उसे जला डालता है ॥५३४॥ मोरके पंख जब-तक पृथ्वीकी ओर झुके रहते हैं तबतक वे कलाहीन (असुन्दर) बने रहते हैं। पर जब वे ही पंख ऊपर उठ जाते हैं तब वे कला-प्रधान हो जाते हैं (चमक उठते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि मोरके पंखोंकी गति देखकर समझ लो कि इसका आधार मेघ ही है (रामका ठीक आधार या सहारा मिलनेसे मनुष्य ऊपर उठकर चमक जाता है अन्यथा निराश, उदास पड़ा रहता है) ॥५३५॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग स्वयं अच्छे हैं उनके लिये नीचकी संगति भी म-दायिनी (मंगल-दायिनी) हो जाती है, जैसे विष्णु बने हुए बढ़ईसे विवाह करनेवाली कन्याकी पुकारपर साक्षात् विष्णु भगवान्‌ने राजाकी आकर सहायता की[1] ॥ ५३६ ॥ कलियुगकी कुचालोंसे बुद्धि नष्ट हो जाती है इसीलिये राजचक्रमें सीधे-सादे

---

१. भक्तमालमें (पंचतन्त्रमें भी) कथा है कि एक राजकन्याने प्रण किया कि मैं विष्णुसे ही विवाह करूँगी। एक चतुर बढ़ईने काठके दो हाथ अपने शरीरमें जोड़कर यन्त्रचालित गरुडपर आकर विष्णुका रूप धारण कर लिया और राजकन्याके साथ गुप्त विवाह कर लिया। कुछ दिनों बाद कन्याके पितापर कुछ विपत्ति आई। राजाने अपनी कन्याके द्वारा विष्णुसे सहायता दिलवानेको कहा। कन्याने भगवान्‌का रूप बनाए हुए बढ़ईसे विनय की। विष्णु भगवान्‌ने अपने रूपका सम्मान बनाए रखनेके लिये आकर उस राजाकी रक्षा की।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कलि-कुचालि सुभ-मति-हरनि, सरलै दंडै चक्र।
'तुलसी' यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव बक्र॥ ५३७॥
गो खग, खे खग, बारि खग तीनों माहिं बिसेक।
तुलसी पीवैं, फिरि चलैं, रहैं फिरैं सँग एक॥ ५३८॥
साधन, समय, सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल।
'तुलसी' तीनिउ समय-सम, ते महि मंगल-मूल॥ ५३९॥
मातु-पिता-गुरु-स्वामि- सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जनम-कर, नतरु जनम जग जाय॥ ५४०॥
अनुचित-उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु - बैन।
ते भाजन सुख-सुजसके, बसहिं अमरपति-ऐन॥ ५४१॥

सोरठा

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय॥ ५४२॥

दोहा

सरनागत-कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि॥ ५४३॥
'तुलसी' तृन जल-कूलको निरबल, निपट निकाज।
कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहे - की लाज॥ ५४४॥

सज्जनोंको ही दंड देता है। तुलसीदास कहते हैं कि कलियुगमें कुटिलताकी नई-नई रीतियाँ निकलती चली जा रही हैं॥५३७॥ भूमि, आकाश और जलके पक्षियोंमें (प्रकृति-भिन्नता होते हुए भी) विशेष मेल देखा जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि एक जातिवाले सब जीव अपने-अपने झुण्ड बनाकर एक साथ पानी पीते, चलते-फिरते और एक साथ ही रहते हैं॥ ५३८॥ तुलसीदास कहते हैं कि इस पृथ्वीपर वे ही लोग मंगलकारी माने जाते हैं जो साधन, समय और इन दोनोंके मूल उद्देश्य (उचित सिद्धि) प्राप्त करके तीनों कालोंमें एकरस (मस्त) रहते हैं॥ ५३९॥ जो लोग माता, पिता, गुरु एवं स्वामीकी शिक्षा स्वभावतः शिरोधार्य करते हैं, उनका ही जन्म लेना लाभकर हुआ है, नहीं तो संसारमें जन्म लेना व्यर्थ है॥ ५४०॥ जो उचित और अनुचितका विचार न करके आँख मूँदकर पिताकी आज्ञाका पालन करते हैं वे सुख और सुयश पाते हैं और अन्तमें वे स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं॥ ५४१॥ यद्यपि स्त्री जाति स्वभावतः अपवित्र होती है तथापि पतिकी सेवा करनेसे उसे शुभ गति प्राप्त हो जाती है। (जालंधर दैत्यकी स्त्री) वृन्दाका यश चारों वेद गाते हैं कि आज भी वह तुलसीके रूपमें भगवान्‌की प्रिया बनी हुई है॥ ५४१॥ जो शरणमें आए हुएको हित-अहितके विचारसे छोड़ देते हैं, वे मनुष्य परम नीच और पापी हैं। उनका मुँह देखना भी पाप है॥ ५४३॥ तुलसीदास कहते हैं कि नदी किनारेकी घास अत्यन्त निर्बल और निकम्मी होती है। परन्तु वह या तो शरणागतको डूबनेसे बचा लेती है, या उसके बचानेमें उसके साथ ही बह जाती है। इस प्रकार वह भी 'बाँह गहेकी लाज'को निभाती है॥ ५४४॥ तुलसीदास कहते हैं कि कलियुगमें लोगोंकी प्रवृत्ति दुष्कर्म करनेमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रामायन-अनुहरत सिख, जग भयो भारत-रीति।
तुलसी सठ-की को सुनै? कलि-कुचालि-पर प्रीति॥ ५४५॥
पात-पात-कै सींचिबो, बरी बरी-कै लोन।
'तुलसी' खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न॥ ५४६॥
प्रीति, सगाई, सकल गुन, बनिज, उपाय अनेक।
कल बल छल कलिमल-मलिन, डहकत एकहि एक॥ ५४७॥
दंभ-सहित कलि धरम सब, छल-समेत व्यवहार।
स्वारथ-सहित सनेह सब, रुचि-अनुहरत अचार॥ ५४८॥
चोर चतुर, बटमार नट, प्रभु-प्रिय भँडुआ-भंड।
सब-भच्छक परमारथी, कलि सुपंथ पाखंड॥ ५४९॥
असुभ वेष-भूषन धरें, भच्छ-अभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूजित कलिजुग-माहिं॥ ५५०॥

सोरठा

जे अपकारी चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ।
मन-बच-करम लबार, ते बकता कलिकाल-महँ॥ ५५१॥

दोहा

ब्रह्म-ज्ञान-बिनु नारि-नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि, तें मोह-बस, करहिं बिप्र-गुरु-घात॥ ५५२॥

इतनी लगी हुई है कि मेरे जैसे मूर्खोंकी सुनता ही कौन है? लोगोंको शिक्षा तो रामायणके अनुसार दी जाती है (कि राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्नके समान भाईचारा निभाओ) पर वे महाभारतकी रीति-का अनुसरण करते हैं (भाई-भाई युद्ध करके अपना नाश कर लेते हैं)॥५४५॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपनी ओछी चतुरता दिखाकर कलियुगमें उस प्रकार कौन मूर्ख नहीं बना जैसे वे लोग जो पत्ता-पत्ता सींचकर पेड़ सींचना चाहते हैं तथा एक-एक बरीमें नमक मिलाकर सारी बरीको समान नमकीन बनाना चाहते हैं॥ ५४६॥ कलियुगके पापोंसे मलिन लोग प्रीतिके नाते जोड़कर वाणिज्य आदि अनेक उपायोंसे छल-कपटके द्वारा एक दूसरेको ठगा करते हैं॥ ५४७॥ कलियुगके जितने धर्म (संप्रदाय आदि) हैं सब दंभपूर्ण (दिखावटी) हैं, जितने व्यवहार हैं वे सब छलसे पूर्ण है, प्रेममें स्वार्थ-साधन ही मुख्य है और सब (व्यक्तिगत) इच्छाके अनुसार आचरण करते हैं॥५४८॥ कलियुगमें चोर ही चालाक, बटमार (ठग) ही खेलाड़ी (गुणी) समझे जाते हैं, भड़ुवे-भाँड़ ही राजाओंके प्रिय होते हैं, सर्वभक्षी (खाद्य-अखाद्य सब कुछ खानेवाले) ही परमार्थी महात्मा कहलाते और पाखंड करना ही सुमार्गपर चलना समझा जाता है॥ ५४९॥ जो लोग अशुभ वेष धारण करते, अशुभ भूषण पहनते और खाद्य-अखाद्य सब कुछ खाते-पीते रहते हैं—ऐसे ही (औघड़) लोग कलियुगमें योगी और सिद्ध कहलाते तथा पूजे जाते हैं॥ ५५०॥ कलियुगमें ऐसे ही लोगोंकी पूजा होती है जो अपकारी और चुगलखोर होते हैं, और कलियुगमें वे ही लोग वक्ता कहलाते हैं जो मन-वचन और कर्म से झूठे होते हैं॥ ५५१॥ (इस कलियुगमें) जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञानके अतिरिक्त और कोई चरचा ही नहीं करते, वे ही मूर्खतावश एक कौड़ी (अति तुच्छ लाभ)-के लिये ब्राह्मण और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बादहिं सूद्र द्विजन-सन, 'हम तुम - तें कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर', आँख दिखावहिं डाँटि ॥ ५५३ ॥
साखी, सबदी दोहरा, कहि किहनी, उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद - पुरान ॥ ५५४ ॥
स्रुति-संमत हरि-भक्ति पथ, संजुत - बिरति - बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह-बस, कलपहिं पंथ अनेक ॥ ५५५ ॥
सकल धरम-बिपरीत कलि, कलपति कोटि कुपंथ।
पुन्य पराय पहार-बन, दुरे पुन्य[1] सुभ ग्रंथ ॥ ५५६ ॥
धातुबाध[2], निरुपाधि बर, सदगुरु - लाभ, सुमीत।
देव - दरस, कलिकाल - में पोथिन दुरे सभीत ॥ ५५७ ॥
सुर-सदननि, तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे[3] मारि कलि, राजत सहित - समाज ॥ ५५८ ॥
गोंड़, गँवार नृपाल, महि, यमन महा - महिपाल।
साम, न दाम, न भेद कलि, केवल दंड कराल ॥ ५५९ ॥

गुरुजनों (माता, पिता, गुरु आदि)-को मार डालनेमें (धोखा देनेमें) नहीं चूकते ॥ ५५२ ॥ (इस कलियुगमें) शूद्र लोग ब्राह्मणोंकी आँखें दिखाते और डाँटते हुए कहते हैं कि 'क्या हम तुमसे किसी बातमें कम हैं (नीचे हैं)? ब्राह्मण तो वही है जो ब्रह्मको जानता हो' ॥ ५५३ ॥ कलियुगके भक्त (कहलानेवाले) लोग वेद-पुराणोंको तो निन्दा करते हैं और (कबीरके समान) साखी, शब्द, दोहे, कथा-कहानी आदि कह-कहकर भक्तिका निरूपण किया करते हैं ॥ ५५४ ॥ (कलियुगमें) लोग वेद-विहित, वैराग्य और विवेकसे युक्त ईश्वरकी भक्तिके मार्गको तो अज्ञानता-वश छोड़ बैठे हैं और अनेक प्रकारके नये नये पंथ गढ़ते रहते हैं ॥ ५५५ ॥ कलियुगमें सारे कार्य धर्मके विपरीत ही हो रहे हैं। अनेक प्रकारके कुमार्ग (अनेक सम्प्रदाय) गढ़ लिए गए हैं। पुण्य तो पहाड़ोंमें जा लुके हैं और पुराण आदि सद्ग्रन्थ वनोंमें जा छिपे हैं (वनों-पर्वतोंमें कोई कहीं पुण्यात्मा और धर्मज्ञ मिल जाता है) ॥ ५५६ ॥ कलियुगमें धातुवाद (रासायनिक क्रियाएँ), अबाध रूपसे वरदान, अच्छे गुरुकी प्राप्ति, अच्छे मित्रका मिलना एवं देवताओंके दर्शन—ये पाँचों बातें डरके मारे पुस्तकोंमें जा छिपी हैं (इनकी चर्चा पुस्तकोंमें ही लिखी मिलती है, व्यवहारमें नहीं आतीं) ॥५५७॥ देवालयों, तीर्थों और पवित्र नगरोंमें केवल दुष्कर्मोंका ही बोलबाला है मानो इन स्थानोंपर कलियुग मोर्चाबन्दी करके अपने समाज (काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, स्तेय, पाखंड आदि) सहित आ विराजा है ॥५५८॥ कलियुगमें गोंड और गँवार राजा होंगे तथा म्लेच्छ पृथ्वीके सम्राट् होंगे। ये पृथ्वीपति साम, दाम और भेदसे तो नहीं, केवल भयंकर दंडसे ही काम लेंगे ॥ ५५९ ॥ लोग पहाड़की ठोकर लगनेपर (रोषमें आकर) घरके सिल-बट्टे फोड़ डालते

---

१. पुरान। २. धातुबाध=वीर्यरक्षा, ब्रह्मचर्य। ३. मवासे मारि=किला बाँधकर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

फोरहिँ सिल-लोढ़ा सदन, आगे अढुकि पहार।
कायर, कूर, कुपूत कलि, घर - घर सहस डहार[1] ॥ ५६० ॥
प्रगट चारि पद धरम-के, कलि-महँ एक प्रधान।
येन केन बिधि दीन्हे ही, दान करै कल्यान[2] ॥ ५६१ ॥
कलिजुग-सम जुग आन नहिँ, जो नर कर बिस्वास।
गाइ राम - गुन - गन बिमल, भव तर बिनहिँ प्रयास[3] ॥ ५६१ ॥
स्रवन घटहु, पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बल देह।
इते घटे घटिहै कहा, जो न घटै हरि-नेह[4] ॥ ५६३ ॥
'तुलसी' पावस-के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैँ, हमैँ पूछि है कौन ॥ ५६४ ॥
कुपथ, कुतर्क, कुचालि, कलि, कपट, दंभ, पाखंड।
दहन राम-गुन-ग्राम, जिमि इँधन अनल प्रचंड ॥ ५६५ ॥

सोरठा

कलि पाखंड - प्रचार, प्रबल पाप, पाँवर, पतित।
'तुलसी' उभय अधार, राम-नाम,सुरसरि-सलिल ॥ ५६६ ॥

हैँ। कलियुगमेँ ऐसे कायर, क्रूर और कुपुत्र घरके ही लोगोंको डाहनेवाले (तंग करनेवाले) एक दो नहीँ हजारों होंगे ॥ ५६० ॥ यद्यपि धर्मके चार पैर (सत्य, अहिंसा, शौच और दान) प्रसिद्ध हैँ, परन्तु कलियुगमेँ एक (दान) ही मुख्य बताया गया है। जिस किसी भाँतिसे दान देना (परोपकार करना) ही कल्याणकारी है ॥ ५६१ ॥ यदि मनुष्य मेरा विश्वास मानै तो कलियुगके समान दूसरा कोई युग है ही नहीँ क्योंकि इस युगमेँ प्रत्येक मनुष्य रामके निर्मल गुणोंका गान करके बिना प्रयास ही भवसागरसे पार हो जायगा ॥ ५६२ ॥ हमारे कान भले ही बहरे हो जायँ, आँखेँ भले ही अन्धी हो जायँ और शरीरकी सारी शक्ति भले ही घट जाय, परन्तु यदि रामके प्रति हमारा स्नेह बना रहा तो इन सबके घटनेसे कोई हानि नहीँ होगी ॥ ५६३ ॥ तुलसीदास कहते हैँ कि वर्षा ऋतु आनेपर कोयलेँ यह समझकर मौन धारण कर लेती हैँ कि अब तो मेँढकोंके टर्रानेका समय आ गया है, हमेँ कौन पूछेगा ? (जब दुर्जनोंका बल बढ़ जाता है, तब सज्जन लोग स्वयं चुप हो बैठते हैँ, क्योंकि दुर्जनों बीच इनकी कुछ चल नहीँ पाती। अतः चुप रहना ही अच्छा है।) ॥ ५६४ ॥ कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, पाप, कपट, दंभ और पाखंड—इन सबको रामका गुण-गान ऐसे जलाकर भस्म कर डालता है जैसे इँधनको प्रचण्ड अग्नि भस्म कर डालती ॥ ५६५ ॥ कलियुगमेँ पाखंडका प्रचार बहुत है। संसारमेँ सब बड़े पापी, नीच और पतित हो गए हैँ। परन्तु तुलसीदास कहते हैँ कि उनके उद्धारके भी दो उपाय हैँ, एक तो राम नाम जपना और दूसरे गंगामेँ स्नान करना ॥ ५६६ ॥ जब राम-रूपी चन्द्रमाको देखनेके लिये चित्त चकोर हो जाय,

---

१. डहार = तंग करनेवाले।
२. तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥
३. हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
४. विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः। विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा

रामचंद्र - मुख - चंद्रमा, चित चकोर जब होइ।
राम - राज सब काज सुभ, समय सुहावन सोइ ॥ ५६७ ॥
बीज राम-गुन - गन, नयन - जल, अंकुर पुलकालि।
सुकृती - सुतन सुखेत वर, बिलसत तुलसी-सालि ॥ ५६८ ॥
'तुलसी' सहित-सनेह नित, सुमिरहु सीताराम।
सगुन सुमंगल सुभ सदा, आदि, मध्य, परिनाम ॥ ५६९ ॥
पुरुषारथ, स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम।
सुलभ, सिद्धि सब साहिबी, सुमिरत सीताराम ॥ ५७० ॥
मनिमय दोहा दीप जहँ, उर घट प्रकट प्रकास।
तहँ न मोह, भय-तम तमी, कलि कज्जली बिलास ॥ ५७१ ॥
का भाषा, का संसकृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ॥ ५७२ ॥
मनि-मानिक महँगे किए, सहँगे तृन-जल-नाज।
'तुलसी' एतो जानिये, राम गरीब-नेवाज ॥ ५७३ ॥

॥ इति श्री गोसाईं तुलसीदास-कृत दोहावली संपूर्णम् ॥

तभी राम-राज्यका सुहावना समय आ जाता है और सब कार्य शुभ होने लगते हैं ॥५६७॥ तुलसीदास कहते हैं कि पुण्यात्मा पुरुषके शरीर-रूपी सुन्दर और श्रेष्ठ खेतमें जब रामके गुण-गान रूपी बीज बो दिए जायँ और उन्हें नेत्रोंके जल (प्रेमाश्रु)-से सींचा जाय तो पुलकावली-रूपी धानके अंकुर पैदा होंगे और तुलसी जैसे भक्त-रूपी धानकी खेती लहलहा उठेगी ॥५६८॥ तुलसीदास कहते हैं कि प्रेमपूर्वक नित्य ही सीतारामका स्मरण करो। इससे आदि, मध्य और अन्तमें सदा सब गुणोंसे भरा हुआ सुन्दर मंगल और कल्याण होगा ॥५६९॥ सीता और रामका स्मरण करते ही चारों पुरुषार्थ, सब प्रकारके स्वार्थ और अन्तमें परमार्थ (परम पद) प्राप्त हो जायगा और सब प्रकारकी सिद्धियाँ और प्रभुत्व भी सुलभ हो जायँगे ॥ ५७० ॥ जहाँ हृदय-रूपी घरमें इन 'दोहा'-(दो-हा, विनय)-रूपी मणिमय दीपकका प्रकाश होगा, वहाँ मोह-रूपी अन्धकार, भय-रूपी अँधेरी रात्रि एवं पाप-रूपी कालिखका प्रसार नहीं हो सकता ॥५७१॥ रामका गुणगान करनेके लिये तो सच्चा प्रेम चाहिए, वह (गुण-गान) चाहे भाषामें हो या संस्कृतमें। जहाँ कम्बलसे ही काम भली प्रकार काम निकलनेवाला हो वहाँ रेशमी चादर लेकर क्या होगा ? ॥५७२॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम तो दीन-दयालु हैं। यह बात ऐसे समझ लीजिए कि उन्होंने मणि-माणिक आदि (जिनके बिना लोगोंका निर्वाह हो सकता है) महँगे कर दिए और तृण, जल अन्न आदि (अत्यावश्यक पदार्थ) बहुत सस्ते कर दिए हैं ॥ ५७३ ॥

॥ दोहावली पूर्ण हुई ॥

५७२—कुमाच=रेशमी चादर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

८

कवितावली

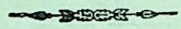

बालकांड

सवैया

अवधेसके द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन-को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक-से।
'तुलसी' मनरंजन, रंजित - अंजन - नयन सु - खंजन-जातक-से।
सजनी ससि-में सम-सील उभै नव नील-सरोरुह-से बिकसे॥ १॥
पग नूपुर औ पहुँची कर-कंजनि, मंजु बनी मनि-माल हिए।
नव नील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिए।
अरबिंद - सो आनन, रूप मरंद, अनंदित लोचन - भृंग पिए।
मन-मों न बस्यौ अस बालक जौ, 'तुलसी' जगमें फल कौन जिए ?॥ २॥

(रामके बाल-रूपकी झाँकी पा आनेवाली एक स्त्री दूसरीसे कहती है—) मैं आज सबेरे-सबेरे जैसे ही अयोध्या नरेश (महाराज दशरथ)-के द्वारपर पहुँची तो देखती क्या हूँ कि महाराज-अपने पुत्र (रामको) गोदमें लिए बाहर निकले चले आ रहे हैं। मैं तो सारा दुःख मिटा डाल सकनेवाले उस बालकको देखकर ठगी सी (चकित) रह गई। सचमुच जो उस बालकको देखकर मुग्ध नहीं हो सका उसे धिक्कार है। तुलसीदास कहते हैं कि उस बालकके आँजन लगे हुए सुन्दर नेत्र तो खंजनके बच्चेकेसे (चंचल) होनेके कारण बड़े मनोहर लग रहे थे। देखो सखी ! (उनके चन्द्रमाके समान मुखपर) वे (नेत्र) ऐसे लग रहे थे, मानो चन्द्रमामें समान रूपवाले दो नवीन नील कमल आ खिले हों॥ १॥ उस बालकके पैरोंमें घुँघरू, करकमलोंमें पहुँची और छातीपर सुन्दर मणियोंकी माला लटकती हुई बड़ी प्यारी लग रही थी। उसका कोमल साँवला शरीर पीली झँगुलिया (ढीली कुर्त्ती)-से झलका पड़ रहा था और महाराज भी उसे गोदमें लेकर पुलकित हुए जा रहे थे। जो भी उस बालकके कमलके समान मुखके सौन्दर्यके मकरन्दका पान कर रहे थे (उसकी सुन्दरता देख रहे थे) उन देखनेवालोंके नेत्ररूपी भौंरे आनन्दित हो-हो जा रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा बालक (राम) जिसके हृदयमें नहीं आ बसा उसका संसारमें जीना न जीना बराबर है ? (उसे संसारमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तनकी दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज-की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि - भरे, छबि भूरि अनंग-की दूरि धरैं।
दमकैं दतियाँ - दुति दामिनि-ज्यों, किलकैं, कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस - के बालक चारि सदा तुलसी - मन - मंदिर - में बिहरैं॥ ३॥
कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ कर-ताल बजाइ-कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस-के बालक चारि सदा तुलसी - मन - मंदिर - में बिहरैं॥ ४॥
बर दंतकी पंगति कुंदकली, अधराधर - पल्लव खोलन - की।
चपला चमकै घन बीच, जगै छबि मोतिन माल अमोलन-की।
घुँघराली लटैं लटकैं मुख - ऊपर, कुंडल लोल, कपोलन - की।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन-की॥ ५॥
पद-कंजनि मंजु बनी पनही, धनुही - सर पंकज - पानि लिए।
लरिका - सँग खेलत डोलत हैं, सरजू - तट, चौहट, हाट, हिए।
'तुलसी' अस बालक-सों नहिं नेह, कहा जप-जोग-समाधि किए?
नर ते खर, सूकर, स्वान - समान, कहौ जग-में फल कौन जिए॥ ६॥

जीनेसे क्या लाभ?)॥ २॥ उनका (रामका) शरीर नीलेकमलके समान सुहावना है और उनके नेत्र तो कमलकी सारी सुन्दरता ही छीने डाल रहे हैं। धूलमें लिपटे हुए भी वे इतने प्यारे लग रहे हैं कि कामदेवकी सारी सुन्दरता भी फीकी किए डाल रहे हैं। उनकी दँतुलियाँ बिजलीके समान दमकी पड़ रही हैं और वे किलकारी मार-मारकर बड़ी प्यारी बाल-लीलाएँ किए जा रहे हैं। तुलसीदास मनाते हैं कि अयोध्यानरेशके चारों ही सुन्दर बालक (राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) मेरे मनके मन्दिरमें सदा विहार करते रहें॥ ३॥ वे (राम) कभी तो चन्द्रमा लेनेकी हठ ठान बैठते हैं, कभी अपनी परछाहीं देखकर डर उठते हैं और कभी हाथसे ताली बजा-बजाकर ऐसे नाचने लगते हैं कि उसे देख-देखकर माताएँ (कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी) फूली नहीं समातीं। कभी-कभी वे रूठकर किसी वस्तुके लिये ऐसे मचल पड़ते हैं कि जिसके लिये अड़ बैठते हैं उसे लेकर ही मानते हैं। तुलसीदास मनाते हैं कि अयोध्या-नरेशके ऐसे चारों बालक मेरे मनके मंदिरमें सदा विहार करते रहें॥४॥ लाल (राम)! कुन्दकलीके समान तुम्हारी सुन्दर नन्हीं-नन्हीं दँतुलियोंपर, अधर-पल्लवों (ओठों)-के खोलनेपर, काले बादलोंके बीच बिजली-सी चमकनेवाली अमूल्य मोतीकी मालाओंकी छबिपर, मुखड़ेपर लटकी हुई घुँघराली लटोंपर, गालोंपर झिलमिलाते हुए कुण्डलोंकी झलकपर और तुम्हारे इन तोतले बैनोंपर यह तुलसीदास अपने प्राण न्योछावर किए डालता है॥ ५॥ (चारों बालक) अपने चरण-कमलोंमें सुन्दर जूतियाँ पहने, कर-कमलोंमें छोटे-छोटेसे धनुष-बाण लिए नगरके बालकोंके साथ सरयूके तटपर, चौराहोंपर, हाटोंमें और मेरे हृदयमें खेलते फिर रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यदि ऐसे मनोहर बालकोंसे प्रेम नहीं हो पाया तो जप, योग और समाधि लगानेसे क्या लाभ हुआ? गधे, सूअर और कुत्तेके समान ये सब लोग ऐसे निकृष्ट हैं कि संसारमें उनका जीना न जीना बराबर है (उनके जीनेसे लाभ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सरजू बर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर, सखा, अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै।
'तुलसी' तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै।
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी, उपमा न पबै॥ ७॥

कवित्त

छोनीमेंके छोनीपति छाजै जिन्हैं छत्रछाया, छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराज-के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु बरिबे-को बोले बैदेही-बर-काज-के।
बोले बंदी बिरुद, बजाइ बर बाजनेऊ, बाजे बाजे[1] बीर बाहु धुनत समाज-के।
'तुलसी' मुदित मन, पुर-नर-नारि जेते बार-बार हेरैं मुख औध-मृगराज-के॥ ८॥

ही क्या है ?)॥ ६॥ राम, उनके सखा और सब भाई सरयूके तटपर घूमते फिर रहे हैं। वे हाथोंमें छोटे-छोटे धनुष-बाण लिए हुए हैं, कमरमें तरकश कसे हुए हैं और शरीरपर नवीन पीताम्बर डाले हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उस समयकी सुन्दरताकी उपमामें माधुर्यके दस गुण, प्रतापके चार गुण, ऐश्वर्य्यके नव गुण, सहज प्रकृतिके तीन गुण, एवं यशके इक्कीस गुणोंको विचारपूर्वक खोजनेपर भी जब सरस्वतीको कोई ठीक-ठीक उपयुक्त उपमा न मिल पाई तब उसकी बुद्धि भी कुण्ठित हो गई (हार मान बैठी)[2]॥ ७॥

पृथ्वीपर जिन राजाओंके सिरपर राजछत्रोंकी छाया बड़ी शोभा देती है, वे सब महाराज जनकके यहाँ झुण्डके झुण्ड आ पहुँचे हैं। वे सभी बड़े बलवान्, प्रतापी और तेजस्वी हैं। उनके शरीर भी बड़े सुन्दर हैं और वेष भी ठाटदार हैं। वे सबके सब सीताके स्वयंवरके मंगल अवसरपर बुलाए गए हैं। भाट लोग अच्छे-अच्छे बाजे बजा-बजाकर उनकी विरुदावली (बड़ाई) गाए चले जा रहे हैं। उस राज-समाजके कुछ वीर तो खड़े भुजदंडपर ताल ठोक रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे-ऐसे राजाओंके होनेपर भी नगरके सभी स्त्री-पुरुष तो प्रसन्न हो होकर बार-बार केवल अवधके सिंह रामका ही मुँह देखे जा रहे हैं (रामके अतिरिक्त उन्हें कोई जँच ही नहीं रहा है)॥८॥

---

१. बाजे बाजे=(क) कोई-कोई (बाज-बाज); (ख) बाजे बजनेपर। बाजे बजनेके साथ सभामें आए हुए वीर भुजदंडपर ताल ठोकने लगे।

२. माधुर्य्यके दस गुण : रूप, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य्य, यौवन, सुगंधि, सुवेष, स्वच्छता एवं उज्ज्वलता। प्रतापके चार गुण : ऐश्वर्य, वीर्य, तेज और बल। ऐश्वर्यके नौ गुण : अदभ्रता, नियतात्मता, वशीकरण, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, वदान्यता, एवं धैर्य्य। सहज प्रकृतिके तीन गुण : सौम्यता, रम्यता एवं व्यापकता। कीर्त्तिके २१ गुण : सुशीलता, वात्सल्य, सौलभ्य (सुलभता), गम्भीरता, क्षमा, दया, करुणा, आर्जव, उदारता, आर्यत्व (सर्वपूज्यत्व), शरण्यता, सौहार्द, चातुर्य, प्रतिपालकत्व, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग एवं निर्वहणता (लोक-विजयी होना)। इस कवित्तके अनेक अर्थ लगाए जाते हैं। एक अर्थ यह भी है—'चौदहों भुवनों, नवों खण्डों और तीनों लोकोंकी सुन्दरतासे जब उनकी सुन्दरता इक्कीस (बढ़कर) निकली तो सरस्वतीकी बुद्धि हार मान बैठी। यह अर्थ अधिक स्पष्ट है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सीयके स्वयंबर समाज जहाँ राजनिको, राजनिके राजा, महाराजा, जानै नाम को ?
पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद-से, गुन-के निधान रूप-धाम सोम-काम को ?
बान बलवान, जातुधानप-सरीखे सूर, जिनके गुमान सदा सालिम संग्राम-को।
तहाँ दसरत्थ-के समर्थ नाथ तुलसी-के, चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा-ललाम-को ॥ ९ ॥
मयन-महन, पुर-दहन गहन जानि, आनि-कै सबै - को सार धनुष गढ़ायो है।
जनक-सदसि जेते भले-भले भूमि-पाल, किए बल-हीन, बल आपनो बढ़ायो है।
कुलिस कठोर, कूर्म-पीठ-तें कठिन अति, हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है।
'तुलसी' सो राम-के सरोज-पानि परसत ही, टूट्यौ मनो बारे-तें पुरारि ही पढ़ायो है ॥ १० ॥

छप्पय

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्ब पब्बै समुद्र - सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल, चराचर।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख-भर।
सुर - बिमान, हिम-भानु, भानु, संघटित परसपर ॥
चौंके बिरंचि संकर - सहित, कोल, कमठ, अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड किय चंड धुनि, जबहिं राम सिव-धनु दल्यौ ॥

सीताके स्वयंवरमें जहाँ इतने राजाओंका समाज आ जुटा है वहाँ इतने अधिक राजाधिराज (सम्राट्) आ पहुँचे हैं कि उनके नामतक गिना पाना संभव नहीं है ? वे पवन, इन्द्र, अग्नि, सूर्य और कुबेरके समान गुणोंके भंडार और ऐसे रूपवान् हैं कि उनके सामने चन्द्रमा और कामदेव-तक नहीं ठहर पा सकते ? उनमें बाणासुर और राक्षसराज रावण-जैसे शूरवीर भी आए बैठे हैं जिन्हें अभिमान है कि संग्राममें कोई हमें पीछे नहीं ठेल सकता। ऐसे वीरोंके समाजमें तुलसीदासके शक्तिशाली प्रभु दाशरथि रामने शिवका धनुष तमककर उठा चढ़ाया ॥ ९ ॥ कामदेवको जला डालनेवाले महादेवने जब समझ लिया कि त्रिपुरासुरको मार डालना बहुत कठिन काम है तब उन्होंने सभी कठोर वस्तुओंको मिलाकर उनसे गढ़कर यह धनुष बनवाया था। उस धनुषने जनककी राजसभामें आए हुए सब राजाओंका बल छीनकर भी अपना बल बढ़ा लिया था। वहाँ कोई राजा ऐसा नहीं निकला जो वज्रसे भी कठोर और कछुएकी पीठसे भी कड़े उस धनुषको बल लगाकर फुर्तीसे उठा चढ़ाता। तुलसीदास कहते हैं कि वही (कठोर) धनुष रामके करकमलोंका स्पर्श पाते ही ऐसे दो टूक हो गया मानो महादेवने उसे बचपनसे ही यह पाठ पढ़ा रक्खा हो (कि जब राम उठावें तो टूट जाना) ॥ १० ॥ जिस समय रामने शिवका धनुष तोड़ा उस समय उसकी भयंकर कड़क ब्रह्माण्ड बेधकर पार जा पहुँची। उसकी प्रचण्ड धमकसे यह अत्यन्त भारी पृथ्वी भी डगमगा उठी और सारे पर्वत, समुद्र एवं सरोवर आदि सभी जलाशयोंमें ज्वार आ गया। उस समय शेषनाग बहरे हो चले, सभी चर, अचर एवं दिक्पाल (इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान) व्याकुल हो उठे, दिग्गज (ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक)ल इकड़ा चले, रावण मुँहके बल औंधा जा गिरा, देवताओंके विमान, चन्द्रमा और सूर्य सब आकाशमें परस्पर टकरा चले। शंकर और ब्रह्मा दोनों चौंक उठे और वराह, कच्छप और शेषनाग भी कलमला (व्याकुल हो)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घनाक्षरी

लोचनाभिराम घनस्याम राम-रूप सिसु, सखी कहै सखी-सौं तू प्रेम-पय पालि री !
बालक नृपालजू-के ख्याल ही पिनाक तोर्‍यो, मंडलीक-मंडली-प्रताप-दाप दालि री।
जनक-को, सिया-को, हमारो, तेरो, तुलसी-को, सबको भावतो ह्वै है, मैं जो कह्यो कालि री।
कौसिला-की कोखि-पर तोषि तन वारिए री, राय दसरत्थ-की बलैया लीजै आलि री ॥१२॥
दूब, दधि, रोचना कनक-थार भरि-भरि, आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल, कर-कंज सोहैं जानकी-के, 'पहिराओ राघोजू-को' सखियाँ सिखावतीं।
'तुलसी' मुदित-मन जनक-नगर-जन, झाँकती झरोखे लागी, सोभा रानी पावतीं।
मनहुँ चकोरी चारु बैठीं निज-निज नीड़ चंद-की किरन पीवैं, पलकैं न लावतीं ॥१३॥
नगर निसान बर, बाजैं ब्योम दुंदुभी, बिमान चढ़ि गान कै कै सुर-नारि नाचहीं।
जय-जय तिहूँ पुर, जय-माल राम-उर, बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं।
जनक-को पन जयौ, सब-को भावतो भयौ, 'तुलसी' मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
साँवरो किसोर, गोरी-सोभा-पर तृन तोरि 'जोरि जियौ जुग-जुग' सखी-जन जाँचहीं ॥१४॥

उठे ॥ ११ ॥ जनकपुरकी एक स्त्री दूसरीसे कहती है—'अरी सखी ! तू नेत्रोंको सुख देनेवाले कजरारे बादलके समान् साँवले राम-रूपी शिशुको प्रेमके दूधसे पालती चल (रामसे प्रेम करती चल)। देख ! मण्डलेश्वरों (राजाधिराजों)-के समाजका सारा अभिमान चूर-चूर करके राजा दशरथके बालक (राम)-ने केवल संकल्प मात्रसे ही (धनुष तोड़नेका विचार करते ही) धनुष दो टूक कर डाला। मैंने तुझसे कल ही कहा था न कि देख लेना सब कुछ वैसा ही होकर रहेगा जैसा महाराज जनक, सीता, हम, तू और तुलसीदास चाहते हैं। देख सखी ! अब तू प्रसन्न होकर कौशल्याकी उस कोखपर अपना तन न्योछावर कर डाल (जिसने रामको जन्म दिया) और जाकर राजा दशरथकी बलैयाँ ले (जो इनके पिता हैं) ॥ १२ ॥ (धनुष टूटते ही) सौभाग्यवती स्त्रियाँ सुवर्णके थालोंमें दूब, दही, और पीला चंदन भर-भरकर आरती सजाकर गाती हुई निकल पड़ीं। जानकीके कर-कमल (दूबमें गुंथी हुई महुएकी) जयमाला लिए बड़े शोभा दे रहे हैं। सखियाँ उन्हें सिखाए जा रही हैं कि रामके गलेमें जयमाला उठाकर डाल पहनाओ। तुलसीदास कहते हैं कि जनकपुरके सभी लोग अलग मगन हुए पड़ रहे हैं और झरोखोंसे झाँकती हुई रानियाँ ऐसी सुन्दर लग रही हैं मानो अपने-अपने घोंसलोंमें बैठी हुई सुन्दर चकोरियाँ टकटकी लगाए चन्द्रमाकी किरण पीए जा रही हों ॥ १३ ॥ नगरमें बड़े-बड़े नगाड़े और आकाशमें दुंदुभियाँ ढमाढम बजे जा रही हैं। अप्सराएँ विमानोंपर चढ़ी हुई गा और नाच रही हैं। तीनों लोकोंमें जय-जयकार मची हुई है। रामके गलेमें जयमाला शोभा दे रही है। सब देवता रामके सुन्दर मुखड़ेपर रीझकर फूल बरसाए जा रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि (धनुष क्या टूटा कि) राजा जनककी प्रतिज्ञा और सबकी अभिलाषाएँ पूरी हो गईं। उन्हें इतना आनन्द आ रहा था कि उनके रोम-रोम खिले पड़ रहे थे। सखियाँ(नारियाँ) इन साँवले राजकुमार (राम) और गोरी राजकुमारी (सीता)-की शोभापर तिनका तोड़ती हुई (सारी बाधाएँ अपने सिरलेती हुई) मनाए जा रही हैं कि (राम-सीताकी) यह जोड़ी युग-युग जीवित रहे ॥ १४ ॥ वहाँ आए हुए सज्जन राजा खोटे राजाओंको भली बात समझा रहे हैं कि

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भले भूप कहत भले भदेस भूपनि-सों 'लोक लखि बोलिए पुनीत रीतिमारखी'।
जगदंबा जानकी, जगत-पितु रामभद्र, जानि जिय जोवो जो न लगै मुँह कारखी।
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान-बेद, बूझे हैं सुजान, साधु, नर-नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज ना बिराजमान, राम-से न बर, दुलही न सिय-सारखी॥ १५॥
बानी, बिधि, गौरी, हर, सेसहू, गनेस कही, सही भरी लोमस-भुसुंडि बहु बारिखो।
चारि-दस भुवन निहारि नर-नारि सब, नारदको परदा, न नारद-सो पारिखो।
तिन कही, जग-में जगमगति जोरी एक, दूजो को कहैया औ सुनैया चख चारिखो।
रमा, रमा-रमन, सुजान हनुमान कही 'साय-सो न तीय, न पुरुष राम-सारिखो'॥ १६॥

सवैया

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर-माही।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरी, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।
राम-को रूप निहारति जानकी, कंगनके नगकी परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही, पल टारति नाहीं॥ १७॥

कवित्त [परशुराम-वचन]

भूप-मंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यौ चंड बाहुदंड जाको, ताही-सों कहतु हौं।
कठिन कुठार धार धारिबेकी धीरताहि, बीरता बिदित ताकी देखिऐ चहतु हौं।

(महापुरुषों के) इस समाजको देखते हुए सज्जनतासे (रीति + आर्षी, सँभलकर) बातें करो। अपने मनमें जानकीको जगत्की माता और रामको जगत्का पिता समझकर मुँह खोलो जिससे तुम लोगोंके मुँहपर कालिख न लगे (सच तुम्हें बुरा न कहें)। हमने अनेक ब्याह देखे भी हैं, वेद-पुराणोंमें भी कथाएँ सुनी हैं तथा स्त्री-पुरुषोंकी पहचान रखनेवाले भले लोगोंसे भी पूछ देखा है पर किसी भी राज-समाजमें न तो ऐसे (रूप-गुण-शील आदिमें) समान समधी, न रामके समान दूल्हा न जानकीके समान दुलहिन ही सुननेको मिल पाई॥ १५॥ सरस्वती ब्रह्मा, पार्वती, महादेव, शेष और गणेशने भी यही कहा है, चिरंजीवी लोमश ऋषि और काकभुशुण्डिने भी यही ठीक बताया है और चौदहों लोकोंके सब स्त्री-पुरुषोंको भली भाँति देख आनेवाले उन मुनि नारदने भी यही कहा है जिनके लिये न तो कहीं परदा है और न जिनके समान स्त्री-पुरुषको परखनेवाला ही कोई है, कि संसारमें कोई एक जोड़ी है तो बस राम और जानकीकी ही एक जगमगाती हुई जोड़ी विराजमान है। इसके अतिरिक्त कौन चार आँखोंवाला है जो कोई ऐसी जोड़ी दिखा बतावे और जो उसकी बात मान ले। स्वयं लक्ष्मीने, लक्ष्मीपति भगवान्ने तथा परम ज्ञानी हनुमान्ने भी यही कहा है कि सीताके समान स्त्री और रामके समान पुरुष संसारमें कोई दूसरा है नहीं॥१६॥ (राजा जनकके) राजभवनमें राम तो दूल्हा और जानकी दुलहिन बनी बैठी हैं। सभी सुन्दरी स्त्रियाँ एक साथ स्वर मिलाकर गीत गाए जा रही हैं और युवक ब्राह्मण स्वर मिलाकर वेदपाठ कर रहे हैं। जानकी अपने कंगनके नगमें रामके रूपकी परछाहीं देखकर ऐसी सुध-बुध भूले हाथ टेके बैठी हैं कि एक क्षणके लिये भी अपना हाथ हटाकर नहीं दे रही हैं॥ १७॥

तुलसीदास कहते हैं कि जनककी राजसभामें पहुँचकर परशुरामने गरजते हुए कहा—'इन राजाओंकी मण्डलीमें जिसने भी शिवका यह प्रचण्ड धनुष तोड़ा हो और जो अपने भुजदण्डोंको बड़ा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' समाज-राज तजि सो बिराजै आज, गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं।
छोनीमें न छाँड्यौ छप्यौ छोनिपको छोना छोटो, छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं॥ १८॥
निपट निदरि बोले बचन कुठार-पानि, मानि त्रास औनिपन मानो मौनता गही।
रोषे माषे लखन अकनि अनखौंहीं बातैं, 'तुलसी' बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही।
'सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ! प्रगट प्रताप, आप कहौ सो सबै सही।
टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन महेसजू-को, रावरी पिनाक-मैं सरीकता कहा रही॥ १९॥

सवैया [परशुराम - वचन]

गर्भके अर्भक काटनको पटु धार कुठार कराल है जाको।
सोइ हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ'? हौं दलिहौं बल ताको।
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै मरिहै, करिहै कछु साको।
गोरो, गरूर-गुमान-भरो, कहौ कौसिक! छोटो-सो ढोटो है काको॥ २०॥

घनाक्षरी [विश्वामित्र-वचन]

'मख राखिबे-के काज राजा मेरे संग दये, जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस-के।
गौतम-की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारी, लोचन-अतिथि भए जनक जनेस-के।

प्रचण्ड समझे बैठा हो, मैं उसीसे कह रहा हूँ कि पैनी धारवाला कुठार धारण करनेवाला मैं देखना चाहता हूँ कि वह कितना धीर और प्रसिद्ध वीर है। उसे अभी यह राजसभा छोड़कर आकर अलग निकल खड़ा हो जाना चाहिए। जैसे गरजता हुआ सिंह हाथीको धर दबोचता है, वैसे ही मैं भी उसे धर दबोचता हूँ, क्योंकि मैंने तो छिपे हुए राजाओंके छोटे बच्चों-तकको भी इस पृथ्वीपर नहीं छोड़ा और मैंने राजाओंको मार डालनेकी उत्कृष्ट कीर्ति भी प्राप्त की है' ॥१८॥ जब परशुरामने ऐसे निरादर-भरे वचन कहे तब सभी राजा डरके मारे मुँह सीकर बैठ रहे। किन्तु ऐसे अपमान-भरे वचन सुनकर लक्ष्मण कुढ़कर लाल हो उठे और हँसकर इस प्रकार नम्रतासे (व्यंग्य वचन) बोले—'भृगुनाथ! आपका सुयश तो यों ही सब लोकोंमें छाया हुआ है। आपने अपने जिस प्रसिद्ध प्रतापका वर्णन किया है वह सब एकदम ठीक है किन्तु शंकरका टूटा हुआ यह धनुष तो अब किसीके जोड़े जुड़ न पावेगा। फिर यह तो बताइए कि इस धनुषमें आपका साझा क्या था (आपसे इस धनुषका क्या सम्बन्ध है। धनुष टूट गया तो शिवका टूटा। आपका क्या बिगड़ा जा रहा है जो इतने लाल-पीले हुए जा रहे हैं?) ॥१९॥ परशुराम बोले—'जिसके कुठारकी तीखी धारने गर्भके बच्चों-तकको काट डालनेमें दया नहीं दिखाई, वही मैं (परशुराम) इस राजसभामें सबसे पूछ रहा हूँ कि यह धनुष तोड़ा किसने है? मैं आज उसका सारा बल समाप्त किए बिना न छोड़ूँगा। यह छोटे मुँह बड़ी बातवाला बालक बहुत बढ़-बढ़कर बोले चला जा रहा है। क्या यह मुझसे लड़कर मरनेपर तुला हुआ है या कुछ पराक्रम दिखाकर ख्याति प्राप्त करना चाहता है (कि मैं परशुराम-जैसे परम पराक्रमीसे भी जा उलझा जिसके सामने कोई टिक नहीं पाता था)। कहिए विश्वामित्र! यह इतने घमण्ड और दर्पमें भरा हुआ छोटा-सा छोकरा है किसका?' ॥ २० ॥ विश्वामित्र बोले—'मेरे यज्ञकी रक्षा करनेके लिये महाराज दशरथने इन्हें मेरे साथ कर दिया था। इन्होंने ऐसे बड़े-बड़े राक्षसोंको पछाड़ मारा है जिन्होंने इन्द्रको भी हरा डाला था। इन्होंने गौतमकी स्त्री अहल्याका बड़ा भारी पाप मिटाकर उसका भी उद्धार कर डाला (उसे पति-लोक भेज दिया)। अब ये राजा जनकके नेत्रोंके अतिथि हुए हैं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चंड बाहुदंड-बल चंडीस-कोदंड खंड्यौ, ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देस-के।
साँवरे-गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ, नाम राम-लखन, कुमार कोसलेस-के' ॥ २१ ॥

सवैया

काल कराल नृपालन - के धनु - भंग सुने, फरसा लिऐ धाए।
लक्खन-राम बिलोकि सप्रेम, महा रिसि-तें फिरि आँखि दिखाए॥
धीर - सिरोमनि बीर बड़े, बिनयी, बिजयी रघुनाथ सुहाए।
लायक हे भृगुनायक, सो धनु - सायक सौंपि सुभाय सिधाए॥ २२॥

अयोध्या-कांड

सवैया

कीर - के कागर ज्यों नृप - चीर - बिभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास-के रूख ज्यौं, पंथके साथी ज्यौं - लोग-लुगाई।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म - क्रिया धरि - देह सुहाई।
राजिव - लोचन राम चले तजि बाप-को राज बटाऊ-की नाईं॥ १॥
कागर - कीर-ज्यौं भूषन-चीर सरीर लस्यौ तजि, नीर ज्यौं काई।
मातु, पिता, प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह - सगाई।

(राजा जनक इनपर लट्टू हुए बैठे हैं)। इन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदण्डके बलसे शंकरका धनुष तोड़ डाला है और देश-देशान्तरसे आए हुए राजाओंको जीतकर जानकीको ब्याह लिया है। ये दोनों साँवले और गोरे बालक बड़े धीर और महान् वीर कोशलनरेश महाराज दशरथके पुत्र हैं, इन्हें राम और इन्हें लक्ष्मण कहते हैं' ॥ २१ ॥ राजाओंके लिये कराल कालके समान परशुराम उस धनुष (पिनाक)-का टूटना सुनकर अपना कुठार उठाकर दौड़ पड़े। पहले तो उन्होंने राम और लक्ष्मणको बड़े प्रेमसे देखा पर फिर बहुत क्रोधमें भरकर उन्हें आँखें दिखाने लगे। राम तो स्वभावसे ही धीर-शिरोमणि, महावीर, परम विनयी और विनयशील हैं। परशुरामने बड़ी बुद्धिमानीका काम किया कि वे रामको अपना धनुष-बाण सौंपकर चुपचाप चलते बने॥ २२॥

अयोध्याकाण्ड

रामने अपने अंगोंपर सुग्गेके पंखोंके समान सुन्दर लगनेवाले राजोचित वस्त्र और अलंकार तथा अयोध्याको निर्मोही होकर ऐसे छोड़ दिया जैसे बटोही मार्गके वृक्षोंको छोड़ चलते हैं और वहाँके निवासी स्त्री-पुरुषोंको भी ऐसे त्याग दिया जैसे लोग राह चलते साथियोंको त्याग चलते हैं। उनके साथ उनके प्यारे भाई (लक्ष्मण) और पतिव्रता प्रिया (जानकी) दोनों ऐसे लग रहे थे मानो धर्म और धार्मिक क्रिया ही सुन्दर देह धारण किए चले जा रहे हों। इस प्रकार कमलके समान नयनवाले राम अपने पिताका राज्य छोड़कर ऐसे चल दिए जैसे बटोही एक पड़ाव छोड़कर आगे चल देता है॥१॥ शरीरपर सुग्गेके पंखके समान सुन्दर वस्त्र और आभूषण त्याग देनेपर रामका शरीर ऐसा प्यारा लगने लगा जैसे काई हट जानेपर (निर्मल) जल। माता-पिता और अपने प्रिय जनोंको उनके स्नेह और सम्बन्धके अनुसार स्वभावसे ही सम्मानित करके कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले राम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संग सुभामिनि, भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिव-लोचन राम चले तजि बाप-को राज बटाऊ-की नाईं॥ २॥

घनाक्षरी

सिथिल-सनेह कहै कौसिला सुमित्रा जू-सों, मैं न लखी सौति, सखी! भगिनी-ज्यों सेई है।
कहैं मोहिं 'मैया', कहौं, 'मैं न, मैया भरतकी, बलैया लैहौं, भैया! तेरी मैया कैकेई है'।
'तुलसी' सरल भाय रघुराय माय मानी, काय-मन-बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
बाम बिधि मेरो सुख सिरिस सुमन-सम ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है॥ ३॥
'कीजै कहा, जीजी जू!' सुमित्रा परि पाँय कहै 'तुलसी' 'सहावै बिधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही-तें जानियत, भरतकी मातु-को कि ऐसो चहियतु है?
जाई राज-घर, ब्याहि आई राज-घर-माहँ, राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है
देह सुधा-गेह, ताहि मृगहू मलीन कियो, ताहू-पर बाहु-बिनु राहु गहियतु है'॥ ४॥

सवैया

नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदी-भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत, अजा-खुर बारिधि बाढ़े॥

अपने साथ मोहिनी स्त्री और भले भाईको लेकर अपने पिताका राज्य इस प्रकार बटोहीकी भाँति छोड़कर (वनको) चल दिए मानो वे अयोध्यामें दो दिनके पाहुने (अतिथि) बनकर आए रहे हों॥२॥ प्रेमसे अत्यन्त विह्वल होकर सुमित्रासे कौशल्या कहने लगीं—'सखी! मैंने कैकेयीको कभी सौत न समझकर सदा बहिनके समान पाला है। जब कभी राम मुझे माता कहते तो मैं उनसे यही कहती कि मैं तुम्हारी नहीं, भरतकी माता हूँ। मैं तेरी बलैया लेती हूँ भैया! तेरी माता तो कैकेयी है। (तुलसीदास कहते हैं कि) राम भी ऐसे सरल स्वभाववाले (भोले-भाले) थे कि वे कैकेयीको ही तन, मन और वचनसे माता मान बैठे थे और उन्होंने कभी यह नहीं समझा कि यह सौतेली माँ है। परन्तु वैरी विधाताने मेरा सिरसके फूलके समान कोमल सुख (काटनेके लिये) छलकी छुरी क्रोधके वज्रपर ला पैनाई (भाग्यने छल करके पहले रामका राज्याभिषेक दिखाकर क्रोध करके मुझपर यह वज्रपात कर डाला है)'॥ ३॥ कौशल्याके पैरों पड़कर सुमित्रा कहने लगीं—'जीजी! अब क्या कीजिएगा? विधाता जो कुछ भोग भोगावै वह तो भोगना ही पड़ेगा। आपका स्वभाव तो वे रामके जन्मके समयसे ही जानती थीं फिर भी भरतकी माता (कैकेयी)-को न क्या जाने हो गया? क्या उन्हें ऐसा करना चाहिए था? उनका जन्म राजाके कुलमें हुआ, राजाके घरमें ब्याह कर आईं और (संयोगसे) पुत्र भी राजा-जैसे ही प्रतापी मिले, फिर भी उसे चैन न मिल पाया। देखिए! चन्द्रमामें अमृत ही अमृत भरा पड़ा है किन्तु उसे भी एक मृग (-के रूपके समान कलंक) मलिन किए बैठा है। ऊपरसे (अवसर पाते ही) बिना हाथवाला राहु भी उसे दबोच बैठता है (यही दशा कैकेयीकी है कि सब गुण होते हुए यह बुरा हठ ठान बैठी)॥ ४॥

तुलसीदास कहते हैं कि जिसके केवल नामने अजामिल-जैसे करोड़ों पापियोंको संसारकी इस अपार नदीमें डूबनेसे उबार निकाला (उद्धार कर दिया), जिनके नामका स्मरण मात्र करनेसे सुमेरु पर्वत भी पत्थरके कण (बालू)-के समान नन्हाँ-सा (तुच्छ) हो जाता है और उमड़ता हुआ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' जेहि-के पद-पंकज-तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु, स्वै सरिता तरिबे-कहँ, माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥ ५॥
ऐहि घाट-तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल, थाह देखाइहौं जू।
परसे पग-धूरि, तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।
'तुलसी' अवलंब न और कछू, लरिका केहि-भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिऐ मोहिं, बिना पग धोऐ, हौं नाथ! न नाव चढ़ाइहौं जू॥ ६॥
रावरे दोष न पाँयन-को, पग-धूरि-को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन-तें, बन-बाहन काठ-को, कोमल है, जल खाइ रहा है।
पावन पाँय पखारिकै, नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
'तुलसी' सुनि केवट-के बर बैन, हँसे प्रभु जानकी-ओर हहा है॥ ७॥

घनाक्षरी

पात-भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे, केवट-की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू! हौं दीन, बित्त-हीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।

समुद्र भी बकरीके खुरके बराबर (अत्यन्द छिछला, छोटा) हो जाता है (कठिनसे कठिन कार्य भी अत्यन्त सरल हो जाते हैं); जिनके चरण-कमलसे वह नदी (गंगा) बह निकली जो बड़े-बड़े पाप मिटा डालती है; वही प्रभु (राम, भाग्यके फेरसे) अपनी ही (अपने ही पैरोंसे निकलनेवाली) नदी पार करनेके लिये तटपर खड़े नाव माँग रहे हैं॥ ५॥ (रामने जब नाव माँगी तो केवट कहता है—) 'इस घाटसे थोड़ा आगे ही कमर-भर पानी है। (विश्वास न हो तो) चलिए मैं आपको थाह दिखाता चलता हूँ। (बात यह है कि जैसे आपके) चरणकी धूलका स्पर्श पाकर (पत्थरकी शिला अहल्या बनकर उड़ गई वैसे ही) यदि कहीं मेरी नाव भी उड़ गई तो अपनी घरवाली (पत्नी)-को मैं कैसे समझा पाऊँगा? (जो पूछेगी कि जान-बूझकर ऐसे उतरैयाको क्यों चढ़ाया कि नाव उड़ गई। और यदि नाव स्त्री बन गई तो पूछेगी कि यह नई सौत कहाँसे मेरे सिर ला बिठाई)। (नाव चलानेके अतिरिक्त) मेरी जीविकाका कोई दूसरा सहारा नहीं है। (फिर बताइए, नाव न रहेगी तो) मैं अपने बच्चोंका पालन-पोषण कैसे कर पाऊँगा? इसलिये नाथ! जबतक आपका पैर नहीं धो लूँगा तबतक नावपर नहीं चढ़ाऊँगा, चाहे इस (ढिठाई)-के लिये आप मुझे मार ही क्यों न डालें॥ ६॥ देखिए महाराज! यह न समझिएगा कि मैं आपके पैरोंका कुछ दोष बता रहा हूँ। (पैरोंका नहीं, केवल) आपके पैरोंमें लगी धूलका ही इतना बड़ा प्रभाव है कि वह पत्थरको सुन्दर स्त्री बना डालती है। यहाँ यह नाव (वन-वाहन = जलयान) तो काठकी होनेके कारण पत्थरसे कहीं अधिक कोमल है, उसपर पानीने इसे और भी पुलपुला बना डाला है। इसलिये मैं जबतक आपके ये पवित्र चरण धो नहीं लेता तबतक नावपर नहीं चढ़ाऊँगा। तो बोलिए क्या कहते हैं?' तुलसीदास कहते हैं कि केवटके ये चतुराई-भरे वचन सुनकर जानकीकी ओर देखकर राम ठठाकर हँस पड़े (कि देखो! तुम लोग इतने दिन साथ रहकर भी मुझे न पहचान पाए और इसने देखते ही पहचान लिया)॥ ७॥ (केवट कहने लगा—) 'मेरे पास धरा ही क्या है? बहुत होगा दोना भर सिघरी मछली होगी। बच्चे भी अभी सब छोटे-छोटे ही हैं (कोई कमाने-योग्य नहीं)। जातिका भी मैं केवट हूँ, इसलिये उन्हें वेद तो पढ़ानेसे रहा! इसीसे राजाजी! समझ लीजिए कि मेरा सारा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गौतम-की घरनी-ज्यों तरनी तरैगी मेरी, प्रभु-सों निषाद ह्वैकै बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी-के ईस राम ! रावरे-सों साँची कहौं, बिना पग धोए नाथ ! नाव न चढ़ाइहौं ॥ ८ ॥
जिनको पुनीत बारि, धारैं सिर पै - पुरारि, त्रिपथ - गामिनि - जस बेद कहैं गाइकै।
जिनको जोगिंद्र मुनि-बृन्द देव देह धरि, करत बिराग, जप, जोग मन लाइ-कै।
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहिल्या तरी, गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लिवाइ-कै।
तेई पाँय पाइकै, चढ़ाइ नाव धोए बिनु, ख्वैहौं न पठावनीके, ह्वैहौं न हँसाइकै ? ॥ ९ ॥
प्रभु रुख पाइ - कै बोलाइ बाल-घरनिहिं, बंदि-कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो-सो कठौता भरि आनि पानि गंगाजी-को धोइ पाँय पीयत पुनीत बारि फेरि-फेरि।
'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर, बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध सनेह-सानी बानी असयानी सुनि, हँसै राघौ जानकी-लखन-तन हेरि हेरि ॥ १० ॥

सवैया

पुर - तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दए मग ज्यौं डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल-की, पुट सूखि गए मधुराधर वै।

परिवार इसी नावके सहारे पल रहा है। मेरे पास इतना पैसा भी नहीं है कि एक नाव गई तो दूसरी गढ़वा मँगवाऊँगा। यदि गौतमकी स्त्रीकी भाँति कहीं मेरी यह नाव भी तर गई तो प्रभो ! मैं जातिका निषाद भला आपसे कहाँ झगड़ा कर सकूँगा। इसलिये नाथ ! तुलसीके प्रभु राम ! आपसे मैं सच कहे देता हूँ कि जबतक मैं पैर नहीं धो लूँगा तबतक मैं आपको नावपर नहीं चढ़ाऊँगा' ॥ ८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि केवट उनसे कहने लगा—'जिनके चरणोंका पवित्र जल (गंगा-जल) त्रिपुरारि शंकर अपने सिरपर चढ़ाए बैठे हैं, जिस त्रिपथगामिनी (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—तीनों लोकोंमें बहनेवाली गंगा)-के यशका वर्णन वेद भी करते आए हैं, जिनके लिये योगीश्वर, मुनि और देवता भी देह धरकर (तपस्या-द्वारा शरीरका दमन करके), मन लगाकर, सब राग छोड़कर जप और योग साधते हैं और जिनके चरणोंकी धूलका स्पर्श होते ही अहल्या तर गई और गौतम ऋषि उसे ऐसे लिवा ले गए जैसे कोई अपनी बहू गौनेपर घर लिवा जाता है, वे चरण सामने पाकर उन्हें बिना धोए नावपर चढ़ाकर न मैं अपनी नाव ही खोऊँगा (न अपना जन्म ही खोऊँगा) और न अपनी हँसी ही उड़वाऊँगा' ॥ ९ ॥ प्रभु रामका संकेत पाकर केवटने अपनी स्त्री और बच्चोंको पुकार बुलाया, जो आ-आकर रामके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गए। फिर वह केवट एक छोटेसे कठौतेमें गंगाका जल भर लाया। उसमें प्रभुके पैर धोकर वह पवित्र जल (चरणोदक) सब बार-बार उठा-उठाकर पीने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि देवता लोग बड़े प्रेमसे उसके भाग्यकी सराहना करने लगे और प्रेमभरी भोली-भाली वाणी सुनकर जय-जय ध्वनि करते हुए उसपर फूल बरसाने लगे और राम भी वह सुनकर जानकी और लक्ष्मणकी ओर देखकर हँस दिए ॥ १० ॥

रामकी प्रिया जानकी अयोध्यासे बाहर निकलकर ज्योंही बड़े धैर्यके साथ दो पग (थोड़ी दूर) चलीं कि उनके पूरे माथेपर पसीनेकी बूँदे झलक आईं और उनके कोमल ओठ भी सूख चले। तब वे रामसे पूछने लगीं कि 'कहिए, अभी और कितना चलना है और कहाँ चलकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

फिरि बूझति हैं 'चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ?'
तिय-की लखि आतुरता, पिय-की अँखियाँ अति चारु, चलीं जल च्वै ॥ ११ ॥

१← जल सूखि गए रतनाधर मंजुल, कंजसे लोचन चारु चुवै ।
'करुनानिधि कंत ! तुरंत कहौ कि दुरंत महावन है इतवै ?'
सरसीरुह - लोचन मोचत नीर चितै रघुनायक सीय - पै ह्वै ।
'अब ही बन, भामिनि ! पूछति हौ, तजि कोसलराज-पुरी दिन द्वै' ॥ ११ क ॥
'जलको गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ, बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े' ।
'तुलसी' रघुबीर, प्रिया-स्रम जानि-कै, बैठि बिलंब-लौं कंटक काढ़े ।
जानकी, नाह - को नेह लख्यो, पुलकीं तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥ १२ ॥
ठाढ़े हैं नौ - द्रुम - डार गहे; धनु काँधे धरे, कर सायक लै ।
बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलनकी छबि है ।
'तुलसी' असि मूरति आनि हिए जड़ डारिहौं प्रान निछावरि - कै ।
स्रम - सीकर साँवरि देह लसैं, मनो रासि[२] महा - तम तारक - मै ॥ १३ ॥

आप पर्णकुटी (झोंपड़ी) बनाइएगा ? पत्नी (सीता)-की ऐसी उतावली (अधीरता) देखकर प्रियतम रामकी अत्यन्त सुन्दर आँखें भर आईं ॥ ११ ॥ (सीताके) सुन्दर लाल ओठ सूख चले और कमलके समान आँखोंसे आँसू टपक चले । इसी समय अपने पति रामसे (सीताने) पूछा—'दयालु पतिदेव ! झट बताइए कि यह घोर महावन क्या पास ही है ?' यह सुनकर अपनी कमलके समान आँखोंसे आँसू ढालते हुए रामने सीतासे कहा—'भामिनी ! अभी कुल दो दिन तो तुम्हें अयोध्या छोड़े हुए, तुम अभीसे पूछ रही हो कि वन कहाँ है' ॥ ११ क ॥ (लक्ष्मण जब पानी लेने गए तब रामसे जानकी कहती हैं—) 'प्रियतम ! लक्ष्मण अभी बच्चे हैं, जल लेने गए हुए हैं, अतः, कहीं छाँहमें खड़े होकर घड़ी भर उनकी प्रतीक्षा कर ली जाय । तबतक मैं आपका पसीना पोंछकर पंखा झले देती हूँ और बालूसे तपे हुए पैर धोए देती हूँ ।' तुलसीदास कहते हैं कि जब रामने देखा कि प्रिया (जानकी) थक चली हैं तो वे बहुत देरतक बैठकर पैरोंसे काँटे निकालते रह गए । जब जानकीने अपने स्वामीका इतना प्रेम देखा तो उनका शरीर पुलकित हो उठा और उनकी आँखें डबडबा आईं ॥१२॥ राम एक नये वृक्षकी डाल पकड़े खड़े हैं । उनके कंधेपर धनुष और हाथमें बाण हैं । उनकी भौंहें बाँकी, आँखें बड़ी-बड़ी और सुन्दर कपोलोंकी शोभा बड़ी अनोखी है । तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी मनोहर मूर्त्ति कहीं मेरे हृदयमें आ समावे तो मैं अपने जड़ प्राण भी उसपर न्योछावर कर डालूँ । उनके साँवले शरीरपर पसीनेकी बूँदें ऐसी झलक रही हैं मानो घने अंधकारमें तारे टिमटिमा रहे हों ॥ १३ ॥

१←लाला छक्कनलाल और भागवतदासकी प्रतिमें इसके आगे सवैया ११ क भी है । २. रासि=राशि (क्रान्ति वृत्तके विशेष तारोंका समूह : मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन) ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घनाक्षरी

जलज - नयन, जलजानन, जटा है सिर, जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे - गोरेके बीच भामिनी सुदामिनी-सी, मुनि-पट धारे, उर फूलनि-के हार हैं।
करनि सरासन, सिलीमुख, निषंग कटि, अति ही अनूप काहू भूप - के कुमार हैं।
'तुलसी' बिलोकि-कै तिलोक-तिलक तीनि, रहे नर-नारि ज्यों चितेरे चित्र-सार हैं॥ १४॥
आगे सोहै साँवरो कुँवर, गोरो पाछे पाछे, आगे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान - बिसिषासन, बसन बन-ही-के कटि, कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं।
साथ निसिनाथ-मुखी पाथनाथ-नंदिनी-सी, 'तुलसी' बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनँद - उमंग मन, जोबन - उमंग तन, रूप - की उमंग उमगत अंग - अंग हैं॥ १५॥

कवित्त

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन, मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनिके।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर, तून कटि मुनिपट लूटक पटनिके॥
नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटिकै, बिधि बिरचे बरूथ बिद्युच्छटनिके।
गोरेको बरन देखे सोनो न सलोनो लागै, साँवरो बिलोके गर्ब घटत घटनि - के॥ १६॥

(राम, लक्ष्मण और जानकीको देख-देखकर वन-मार्गमें पड़नेवाले गाँवोंके नर-नारियोंमें आपसमें इस प्रकार बातें हो रही हैं—) 'इनके नेत्र कमलके समान हैं और मुख भी कमलके समान है पर इनके सिरपर जटाएँ बँधी हैं तथा इनके उदार अंगोंमें भरी जवानीकी उमंग झलकी पड़ रही है। इन साँवले (राम) और गोरे (लक्ष्मण)-के बीचमें बिजलीकी-सी आभावाली एक रमणी (सीता) शोभा दे रही है। ये मुनियोंकेसे वस्त्र धारण किए हुए हैं और इनकी छातीपर फूलोंके हार पड़े हुए हैं। ये हाथोंमें धनुष-बाण लिए और कमरमें तरकश कसे हुए हैं। ये इतने सुन्दर हैं कि किसी राजाके कुमार जान पड़ते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि त्रिलोकके इन तीन तिलकों (सर्वश्रेष्ठ पुरुषों)-को देखकर नर-नारी ऐसे स्तब्ध होकर खड़े रह गए मानो चित्रशालामें चित्र बने हुए हों॥ १४॥ आगे-आगे साँवले और उनके पीछे-पीछे चलते हुए गोरे राजकुमार सुन्दर मुनि वेष बनाए हुए ऐसी शोभा दे रहे हैं कि उन्हें देखकर कामदेव भी लज्जित हुआ जा रहा है। वे धनुष-बाण लिए हुए, वन-वासियोंके-से वस्त्र धारण किए हुए और कमरमें तरकश कसे हुए बड़े सुन्दर लग रहे हैं। उनके साथ लक्ष्मीके समान एक सुन्दरी चन्द्रमुखी स्त्री भी है। ये तीनों ऐसे सुन्दर हैं कि देखने मात्रसे ही देखनेवालेका चित्त अपने आप उनके संग हो लेता है। उनके मनमें आनन्दकी उमंग, तनमें यौवनकी उमंग और अंग-अंगमें रूपकी उमंग लहरें मार रही है॥ १५॥ उनका मुख बड़ा सुन्दर है। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं और सिरपर जटाओंके मुकुटमें सुन्दर पुष्पोंके गुच्छे खिले पड़ रहे हैं। उनके कंधोंपर धनुष, हाथोंमें बाण, कमरमें तरकश और सब प्रकारके वस्त्रोंकी शोभा लूट लेनेवाले मुनियोंकेसे वस्त्र शोभा दे रहे हैं। उनके साथ एक ऐसी सुकुमारी स्त्री भी है जिसके शरीरकी उबटन (मैल) लेकर ब्रह्माने बिजलीकी छटाएँ ले जा रची हैं। गोरे राजकुमारको देख लो तो उनके रूपके आगे सोना भी न जँचे और साँवले कुँवरको देख लो तो कजरारी घटाओंका गर्व भी चूर-चूर हो जाय॥१६॥ वल्कलके वस्त्र

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बलकल बसन, धनु - बान पानि, तून कटि, रूप-के निधान, घन-दामिनी-बरन हैं।
'तुलसी' सुतीय - संग, सहज सुहाए अंग, नवल कँवल हूँ - ते कोमल चरन हैं।
औरै सो बसंत, औरे रति, औरे रति-पति, मूरति बिलोके तन - मन - के हरन हैं।
तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ, चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥ १७॥

सवैया

बनिता बनी स्यामल - गौरके बीच, बिलोकहु री सखी! मोहिं - सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल, क्यों चलिहैं? सकुचात मही पद-पंकज छ्वै।
'तुलसी' मुनि ग्राम - बधू बिथकीं, पुलकीं तन, औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूपके बालक द्वै॥ १८॥
साँवरे - गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान - कमान - निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि - बेष कियो है।
संग लिए बिधु - बैनी बधू, रतिको जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनही न, पयादेहि क्यों चलि हैं? सकुचात हियो है॥ १९॥
रानी मैं जानी अजानी महा, पबि - पाहन - हूँ - ते कठोर हियो है।
राजहु काज - अकाज न जान्यो, कह्यो तिय - को जिन कान कियो है।

धारण किए हाथों में धनुष-बाण लिए और कमरमें तरकश कसे हुए दोनों राजकुमार रूपके भंडार हैं और उन (राम)-का रंग मेघ और (लक्ष्मण)-का रंग बिजलीके समान है। इनके साथ जो सुन्दरी स्त्री है, उसके अंग-अंगमें स्वाभाविक सुन्दरता भरी पड़ी है। इनके चरण तो नये कमलसे भी अधिक कोमल हैं। लक्ष्मण तो मानो दूसरे वसंत, सीता मानो दूसरी रति और राम मानो दूसरे कामदेव ही हैं। इनकी मूर्तियोंके दर्शन करनेसे तो ये तन और मन सब लूट ले जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो ये तीनों, सुन्दर तपस्वियोंका वेष बनाए पथिक (बटोही) बनकर लोगोंके नेत्र सफल करने निकल पड़े हों' ॥१७॥ (एक ग्रामीण स्त्री अन्य स्त्रियोंसे कह रही है—) 'देखती हो सखी! इन साँवले और गोरे कुमारोंके बीच जो स्त्री बड़ी सुन्दर लग रही है, उसे मेरी आँखोंसे देखो। वह इतनी कोमल है कि इसे वनके मार्गमें चलना ही नहीं चाहिए। बताओ वह वनके मार्गपर चल कैसे पावेगी जब इसके कोमल चरणोंका स्पर्श करके पृथ्वी भी सकुचाई पड़ रही है?' तुलसीदास कहते हैं कि ये बातें सुन-सुनकर वे ग्रामकी सभी स्त्रियाँ विह्वल हो उठीं, उनके शरीर रोमाञ्चित हो उठे और नेत्रोंसे झरझर आँसू बह चले। सब कहने लगीं कि—'ये दोनों राजकुमार बहुत ही मनोहर, सबका जी मोह लेनेवाले और अनुपम सुंदर हैं॥१८॥ ये साँवले और गोरे बालक स्वभावसे ही बड़े सुन्दर हैं। मनोहरतामें तो इन्होंने कामदेवको भी जीत धरा है। ये (हाथमें) धनुष-बाण लिए और कमरमें तरकश कसे हुए हैं। इनके सिरपर जटा शोभा दे रही है और ये मुनियोंका-सा बाना बनाए हुए हैं। इनके साथ जो चन्द्रमुखी स्त्री है (वह इतनी सुन्दरी है) कि उसीने मानो रतिको थोड़ा-सा रूप दे डाला हो (जिससे रति सुन्दरी बनी बैठी है)। इनके पैरोंमें जूतियाँ नहीं हैं। (इन्हें देख-देखकर) हमारा हृदय बहुत सकुचाया पड़ रहा है कि ये (वनमें) पैदल चल कैसे पावेंगे?' ॥ १९॥ 'मैंने समझ लिया है कि रानी (कैकेयी) बड़ी मूर्ख है। उसका हृदय तो पत्थर और वज्रसे भी अधिक कठोर है। उधर राजा (दसरथ)-ने भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऐसि मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है!
आँखिन-में सखि! राखिबे जोग, इन्हैं किमि-कै बनबास दियो है॥ २०॥
'सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौंहैं।
तून-सरासन-बान धरे, 'तुलसी' बन-मारग-में सुठि सोहैं।
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम-त्यों, हमरो मन मोहैं।'
पूछति ग्राम बधू सिय सों 'कहौ साँवरे-से, सखि! रावरे को हैं?'॥ २१॥
सुनि सुन्दर बैन सुधा-रस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै, अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग-में भानु उदै, बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥ २२॥
धरि धीर कहैं, 'चलु देखिय जाय, जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहि है जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं।
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस-में कछु पै कहिहैं।
'तुलसी' अति प्रेम लगी पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये-महिं हैं॥ २३॥

कुछ भले-बुरेका विचार नहीं किया और केवल स्त्रीके कहनेपर इन्हें वनमें निकाल भेजा। अरे! हमें तो यही आश्चर्य हो रहा है कि इतनी लुभावनी मूर्त्तिवालोंके वियोगमें इनके घरके लोग जीते कैसे रह गए? देखो सखि! इन्हें तो आँखोंमें बसा रखना चाहिए (इनका सदा दर्शन करते रहना चाहिए), इन्हें वनवास दे कैसे दिया गया?' ॥ २०॥ तुलसीदास कहते हैं कि गाँवकी स्त्रियोंने बढ़कर सीतासे जा पूछा, 'कहो सखी! ये जो साँवलेसे राजकुमार हैं, जिनकी छाती और भुजाएँ विशाल, आँखें लाल, भौंहें तिरछी, जो (कमरमें) तरकश कसे और (हाथमें) धनुष-बाण धारण किए हुए वनके मार्गमें चलते हुए बड़े अच्छे लग रहे हैं और जो स्वभावसे ही बड़े आदरसे बारबार आपकी ओर देखते हुए हमारा मन मोहे ले रहे हैं, वे आपके क्या लगते हैं?' ॥ २१॥ गाँवकी स्त्रियोंकी यह अमृतमयी सुन्दर वाणी सुनकर जानकी समझ गईं कि ये स्त्रियाँ बड़ी चतुर हैं (घुमा-फिराकर प्रभुके साथ मेरा सम्बन्ध जानना चाहती हैं। अतः, उन्होंने मर्यादाके अनुसार शब्दों-द्वारा नहीं, अपितु संकेतके द्वारा उन्हें बता दिया)। अपने नेत्र तिरछे करके सैन चलाकर कुछ समझाकर (कि ये मेरे पति हैं) मुसकराती हुई वे आगे बढ़ गईं। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय वे स्त्रियाँ उनके दर्शनको अपने नेत्रोंका लाभ मानकर रामकी ओर टकटकी लगाए देखती हुई ऐसी शोभा पा रही थीं मानो सूर्योदय होनेपर प्रेमके तालाबमें सुन्दर (नेत्रोंके) कमलोंकी कलियाँ खिल पड़ी हों (राम ही सूर्य हैं, सब स्त्रियोंका प्रेम ही तालाब है और उनके नेत्र ही कमलकी कलियाँ हैं।) ॥२२॥ गाँवोंकी स्त्रियाँ बड़े धैर्यके साथ कहती हैं—'चलो सखी! वहीं चलकर देखा जाय जहाँ ये लोग रात बितानेवाले हैं। लोग हमें लाख बुरा कहें, इसकी हमें चिन्ता नहीं है। कमसे कम हमारे नेत्र तो अपना फल पा लेंगे। वे बैठकर आपसमें कुछ तो बातें करेंगे ही, उन्हें ही सुन-सुनकर हमारे कान सुख पा लेंगे।' तुलसीदास कहते हैं कि वे ऐसा कह-कहकर अपने हृदयमें रामकी छवि बसाए हुए आँखें बन्द कर-करके रोमांचित हुई पड़ रही हैं॥ २३॥ (वे गाँवमें जा-जाकर दूसरी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पद कोमल, स्यामल-गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान-सरासन, सीस जटा, सरसीरुह-लोचन सोन सुहाए।
जिन देखे, सखी ! सत भायहुँ-तें, 'तुलसी' तिन-सों मनफेरि न पाए।
यहि मारग आज किसोर, बधू बिधु-बैनी - समेत सुभाय सिधाए ॥ २४ ॥

मुख-पंकज, कंज-बिलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनि भौंहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल स्यामल - गौर किसोर, जटा सिर सोहैं।
'तुलसी' कटि तून, धरे धनु-बान, अचानक दीठि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी ! तोहि सों, मृदु मूरति द्वै निबसीं मन-मों हैं ॥२५॥
प्रेम-सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै, चले लै चित चोरे।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै 'तुलसी' छबि - सों मन मोरे।
लोचन लोल, चलैं भ्रुकुटी कल, काम-कमानहु सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग-के संग, निषंग कसे, धनु-सों सर जोरे ॥ २६ ॥
सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन - सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै।

स्त्रियोंसे कहने लगीं–) 'देखो सखी ! आज इसी मार्गसे एक चन्द्रमुखी रमणीके साथ दो किशोर कुमार गए हैं जिनके चरण स्वभावसे ही कोमल थे, जिनमेंसे एकका रंग साँवला और दूसरे गोरा था और और जो करोड़ों कामदेवोंको भी लज्जित किए डाल रहे थे। उनके हाथोंमें धनुष-बाण, सिरपर जटा और कमलके समान लाल नेत्र बड़े प्यारे लग रहे थे। देखो सखी ! उन्हें जिन्होंने भी सच्चे भावसे देखा है वे अपना मन उनकी ओरसे हटा नहीं पा सके ॥ २४ ॥ उनके मुख भी कमलके समान और नेत्र भी कमलके ही समान सुन्दर थे। उनकी भौंहें कामदेवके धनुषके समान बाँकी थीं। उनके साँवले और गोरे शरीर अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार थे। उनके सिरपर जटाएँ शोभा दे रही थीं। वे कमरमें तरकश कसे और हाथमें धनुष-बाण लिए हुए थे। जिस समयसे उनकी तिरछी दृष्टि अचानक मुझपर पड़ी उस समयसे, सखी ! मैं तुझसे क्या बताऊँ कि उन दोनों कुमारोंकी मूर्त्तियाँ मेरे हृदयमें डेरा डालकर आ बसी हैं ॥ २५ ॥ राम बड़े प्रेमसे दत्तचित्त होकर पीछे फिर-फिरकर अपनी प्रिया सीताकी ओर देखते हुए, उनका चित्त चुराकर मृगया (आखेट)-को चल दिए। उनके श्याम शरीरपर पसीनेकी बूँदे शोभा दे रही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उस छबिपर मेरा मन मोहित हुआ पड़ रहा है। उनके नेत्र भी चंचल हैं और उनकी सुन्दर भौंहें भी चल रही हैं जिन्हें देखकर कामदेवके धनुषको भी उनपर तृण तोड़ना पड़ रहा है (उनकी तिरछी और चंचल भौंहोंके सामने कामदेवका धनुष भी उनपर न्योछावर हो हो जा रहा है)। इस प्रकार तरकश कसे और धनुषपर बाण चढ़ाए भगवान् राम मृगके पीछे दौड़ते हुए बड़े प्यारे लग रहे हैं ॥ २६ ॥ राम केवल चार बाण ही बड़ी सुघरतासे कमरमें कसे हुए तरकशमें रखे तथा हाथमें धनुष और एक बाण लिए वनमें आखेट करते घूम रहे हैं। तुलसीदास उनकी उस छविका वर्णन करें तो कैसे करें ? प्रभुका अलौकिक रूप देखकर वनके मृग और मृगी भी चौंककर चकित खड़े रह जाते हैं और दत्तचित्त होकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अवलोकि अलौकिक रूप मृगी-मृग चौंकि, चकैं, चितवैं चित दै।
न डगैं, न भगैं, जिय जानि, सिलीमुख पंच धरे रति-नायक है॥ २७॥
बिन्ध्यके बासी उदासी तपोव्रतधारि महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनि-वृंद सुखारे।
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हि भली रघुनायकजू! करुना करि कानन-को पग धारे॥ २८॥ (५०)

अरण्यकांड

सवैया

पंचबटी बर पर्नकुटी-तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बन्धु लसै, 'तुलसी' सब अंग घने छबि छाए॥
देखि मृगा, मृगनैनि कहे प्रिय बैन, ते प्रीतमके मन भाए।
हेम-कुरंगके संग सरासन-सायक लै रघुनायक धाए॥ १॥ (५१)

किष्किंधाकांड

कवित्त

जब अंगदादिनकी मति-गति मंद भई, पवन-के पूत-को न कूदिबे-को पल गो।
साहसी ह्वै सैल-पर सहसा स-केलि आइ, चितवत चहूँ ओर, औरन-को कल गो।

उन्हें एकटक देखने लगते हैं और यह समझकर अपने स्थानसे न हटते हैं और न भागते ही हैं कि ये तो साक्षात् पाँच (अरविन्द, अशोक, आम, नवमल्लिका, नीलोत्पल) बाणोंवाले कामदेव हैं॥ २७॥ तुलसीदास कहते हैं—) 'विन्ध्याचलपर रहनेवाले उदासी तपस्वी लोग बिना स्त्रीके बड़ा दुखी जीवन बिता रहे थे। पर जब उन्होंने गौतमकी स्त्री अहल्याके तर जानेकी कथा सुनी तो उन मुनियोंकी बाछें खिल गईं और वे रामसे कहने लगे—'भगवन्! आपने बड़ी ही कृपा की कि वनमें चले आए। अब आपके सुन्दर चरण-कमलों- का स्पर्श पाकर यहाँकी सब शिलाएँ चन्द्रमुखी (सुन्दर स्त्रियाँ) हो-होकर उठ खड़ी होंगी (और हमारा अकेलापन दूर हो जायगा)'॥ २८॥ (५०)

अरण्यकाण्ड

स्वभावसे ही सुन्दर लगनेवाले राम पंचवटीकी सुन्दर पर्णकुटीमें बैठे हुए हैं। उनके साथ उनकी प्रिया (जानकी) और प्यारे भाई (लक्ष्मण) भी शोभा दे रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनके अंग-अंगमें सुन्दरता भरी पड़ी है। उसी समय एक (स्वर्ण) मृग देखकर मृगनयनी जानकीने (उसे लानेके लिये) जो प्यारे वचन कहे वे प्रियतम रामको ऐसे प्यारे लगे कि राम तत्काल धनुष-बाण लेकर उस स्वर्ण-मृगके पीछे दौड़ चले॥ १॥ (५१)

किष्किन्धाकाण्ड

(समुद्र लाँघनेके लिये)—जब अंगद आदि सभी वानरोंकी न गति काम दे सकी न बुद्धि काम आ सकी (सबके छक्के छूट गए) तब पवनपुत्र हनुमानको समुद्र लाँघनेमें पल मात्रकी भी देर न लगी। साहसी हनुमान अकस्मात् खेल ही खेलमें पर्वतपर जा चढ़े और चारों ओर देखने लगे। इससे सभी घबरा उठे। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय रसातलका पानी ऊपर उछल आया, कोल

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी रसातलको निकसि सलिल आयो, कोल कलमल्यो, अहि-कमठको बल गो।
चारिहू चरनके चपेट चाँपे चिपटि गो, उचके उचकि चारि आँगुल अचल गो॥ १॥(५२

सुन्दरकांड

कवित्त

बासव - बरुन - बिधि - बन-तें सुहावनो, दसानन-को कानन बसंतको सिंगार - सो।
समय पुराने पात परत डरत, बात पालत, ललात, रति-मार-को बिहार हो॥
देखे बर बापिका, तड़ाग, बागको बनाव, राग-बस बिरागी भो पवन-कुमार सो।
सीयकी दसा बिलोकि बिटप असोक-तर, 'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक सोक-सार सो॥१॥
माली मेघ-माल, बन-पाल बिकराल भट, नीके सब काल सींचैं सुधासार नीर-को।
मेघनाद-तें दुलारो प्रान-तें पियारो बाग, अति अनुराग जिय जातुधान धीर-को।
'तुलसी' सो जानि-सुनि, सीयको दरस पाइ, पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर-को।
बिद्यमान देखत दसाननको, कानन सो तहस नहस कियो साहसी समीर-को॥ २॥

(बराह) कलमलाने (व्याकुल होने) लगे, शेष और कच्छपको पसीना छूटने लगा (उनका बल क्षीण होने लगा)। ज्यों ही हनुमान्‌ने अपने चारों चरणोंसे बलपूर्वक पर्वतको चाँपा कि वह पर्वत पहले तो पृथ्वीसे जा चिपटा (चिपटा हो गया) और फिर उनके उछलते ही वह चार अंगुल पृथ्वीसे ऊपर उचक आया॥ १॥ (५२)

सुन्दरकाण्ड

रावणका वह अशोक-वन इन्द्र, वरुण और ब्रह्माके वनसे भी कहीं अधिक सुहावना था मानो वह वसन्त ऋतुका शृंगार ही हो (यद्यपि वसन्त ऋतुमें सभी उपवनोंकी शोभा बढ़ जाती है, परन्तु रावणकी यह अशोक वाटिका तो वसन्त ऋतुको भी सुन्दर बनाए डाल रही थी)। पतझड़के समय भी पुराने पत्ते झड़नेमें डरते थे (अतः वहाँ कभी पतझड़ हो ही नहीं पाता था)। वायु उस वनका लालन-पालन इस प्रकार करता था जैसे वह रति और कामदेवके बिहार-स्थलकी रखवाली करता हो। वहाँकी सुन्दर बावड़ी, तालाब और बागकी बनावट देखकर विरागी हनुमान भी उसपर मोहित हो गए, परन्तु जब उन्होंने अशोक वृक्षके नीचे बैठी हुई सीताकी दशा देखी तो उन्हें वह उद्यान तीनों लोकोंके शोकका सार-सा (शोकसे भरा) जान पड़ने लगा॥ १॥ उस वाटिकामें बादलोंके समूह ही मालीका काम करते और भयंकर योद्धा ही वहाँके रक्षक थे। वे बादल सदा अमृतके तत्त्वके समान मीठे जलसे उस वाटिकाको सींचते रहते थे। धीर वीर रावणको उस वाटिकासे इतना अधिक प्रेम था कि वह उसे मेघनादसे भी अधिक दुलारा और प्राणोंसे भी अधिक प्यारा मानता था। तुलसीदास कहते हैं कि यह सब जान-सुनकर, जानकीके दर्शन और रामके बल-प्रतापके भरोसे हनुमान् निःशंक होकर उस वाटिकामें जा पैठे और रावणके रहते और देखते हुए भी साहसी पवनपुत्र हनुमान्‌ने उस वाटिकाको तहस-नहस कर डाला॥ २॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बसन बटोरि, बोरि-बोरि तेल, तमीचर खोरि खोरि धाइ, आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी, डरात ढीलो गात कै कै, लातके अघात सहै, जी-में कहै 'कूर हैं'।
बाल, किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत पाछे लागे, बाजत निसान-ढोल-तूर हैं।
बालधी बढ़न लागि, ठौर ठौर दीन्हि आगि, बिंधकी दवागि, कैधौं कोटि-सत सूर हैं ॥३॥
लाइ लाइ आगि, भागे बाल-जाल जहाँ-तहाँ, लघु ह्वै निबुकि गिरि-मेरु-तें बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक-कँगूरा चढ़ि, रावन-भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो।
'तुलसी' बिराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारि, देखे हहरात भट काल-तें कराल भो।
तेजको निधान मानो कोटिक कृसानु-भानु, नख बिकराल, मुख तैसो रिस लाल भो ॥४॥
बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानो लंक लीलिबे-को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योम - बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु, बीर-रस बीर तरवारि-सी उघारी है।
'तुलसी' सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी-कलाप, कैधौं चली मेरु-तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहैं 'कानन उजाऱ्यो, अब नगर प्रजारी है' ॥५॥

सब राक्षस गली-गली जाकर बहुतसे कपड़े बटोर-बटोरकर उन्हें तेलमें डुबो-डुबोकर हनुमानकी पूँछमें ला-लाकर बाँधते जाने लगे। खिलाड़ी हनुमान भी डरते काँपते हुए अपना शरीर ढीला करके उनकी लातोंकी चपेट सहते चले जा रहे थे और मनमें कहते जा रहे थे कि 'ये सब बड़े मूर्ख हैं।' लड़के किलकारी मारते हुए तालियाँ बजा-बजाकर पीछे-पीछे गाली देते हुए लगे चले जा रहे थे। नगाड़े, ढोल और तुरही भी बजते जा रहे थे। अब क्या था! हनुमान्‌की पूँछ बढ़ने लगी। राक्षसोंने उसमें चारों ओरसे आग ला लगाई, जिससे वह आग ऐसी जान पड़ने लगी मानो विन्ध्यपर्वत सुलग उठा हो या करोड़ों सूर्य एक साथ उदय हो उठे हों ॥३॥ बालकगण पूँछमें आग लगा-लगाकर इधर-उधर भाग चले। फिर (साक्षात् अग्नि-स्वरूप) हनुमान्[1] तनिक छोटे होकर, राक्षसोंके बन्धनसे निकलकर सुमेरु पर्वतसे भी विशाल बनकर, कूदकर सोनेके कँगूरेपर जा चढ़े और वहाँसे कूदकर वे रावणके भवनपर जा खड़े हुए। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय वे अपनी लंबी पूँछ सारे आकाशमें चारों ओर फैलाकर ऐसे कालसे भी भयंकर हो गए कि उसे देखकर वीर लोग थर्रा उठे। वे ऐसे तेजके पुञ्ज जान पड़ते थे मानो करोड़ों अग्नि और सूर्य आ चमके हों। जैसे उनके नख बड़े विकराल थे, वैसे ही क्रोधके कारण उनका मुख भी तमतमाकर लाल हो उठा था ॥४॥ उस बढ़ी हुई पूँछमें उठती हुई आगकी भयंकर लपटें ऐसी जान पड़ती थीं मानो सारी लंका निगल जानेको कालने जीभ आ फैलाई हो अथवा आकाश-मार्गमें अनेक धूमकेतु आ फैले हों, अथवा वीररस-रूपी वीरने तलवार निकाल ली हो। तुलसीदास कहते हैं कि (उनकी पूँछ देखकर यह संदेह होने लगा कि) यह इन्द्रधनुष है अथवा बिजलीकी चमक है अथवा सुमेरु पर्वतसे अग्निकी कोई भारी नदी बह निकली है। उसे देखकर राक्षस और राक्षसियाँ व्याकुल हो होकर पुकारे जा रही थीं—'पहले इसने आकर वन उजाड़ डाला, अब नगर भी जलानेपर तुला हुआ है' ॥ ५ ॥ जहाँ-तहाँ आग धधकती देखकर लोग चिल्लाते जा रहे

१. शिवं स तनुतां रामो यस्य दूतं महाबलम्। स्तौति वायुसुतं वीरमग्निमील इति श्रुतिः।' वा० रा० [वे राम कल्याण करें जिनके महाबली दूत पवनसुत हनुमान्‌की स्तुति वेदने 'अग्निमीले पुरोहितम्' ऋचाके द्वारा की है।]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जहाँ तहाँ बुबुकि बिलोकि बुबुकारी देत, जरत निकेत, धाओ धाओ, लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी, ढोटे छोटे छोहरा, अभागे भोरे, भागि रे।
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो, छेरी छोरो, सोवै सो जगावो, जागि-जागि रे।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं, 'बार बार कह्यो, पिय! कपि-सों न लागि रे' ॥६॥
देखि ज्वाल-जाल, हाहाकार दसकंध सुनि, कह्यो 'धरो धरो', धाए बीर बलवान हैं।
लिये सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड, भाजन सनीर, धीर धरे धनु-बान हैं।
'तुलसी' समिध सौंज, लंक-जज्ञकुंड लखि, जातुधान पुंगीफल, जव, तिल, धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल[1] हवि, स्वाहा महा हाँकि-हाँकि हुनै हनुमान हैं ॥७॥
गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजाल-जुत, भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाए जातुधान-धारि, बारिधार उलदैं जलद ज्यों न सावनो।
लपट झपट झहराने, हहराने बात, भहराने भट पर्‍यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि, 'नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो' ॥ ८ ॥

थे—"अरे! भागो! भागो! आग लग गई है, घर जल रहा है। अरे अभागो! माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, भौजाई, छोटे-छोटे बच्चे सब कहाँ चले गए, अरे! अभागे मूर्खो! भागो! भागो! हाथी खोलो, घोड़ा खोलो, भैंस और बैल खोलो और बकरियाँ भी खोल लो। जो सोया पड़ा है उसे जगा दो। अरे! जागो! जागो! तुलसीदास कहते हैं कि यह दशा देखकर व्याकुल हो होकर राक्षसियाँ अपने-अपने पतियोंसे कहने लगी—'देखो प्रियतम! हमने कितना समझाया था कि इस बन्दरसे न उलझो (पर किसीने हमारी एक न सुनी)' ॥ ६ ॥ धधकती हुई अग्निकी लपटें देख-देखकर तथा लोगोंका हाहाकार सुन सुनकर रावणने कहा—'अरे! इस बन्दरको पकड़ो! पकड़ो!' यह सुनकर बहुतसे बलवान् योद्धा त्रिशूल, बर्छी, पाश, परिघ(लोहेकी गदा), मजबूत डंडे और जलभरे घड़े ले लेकर दौड़ पड़े। कुछ धीर-वीरोंने धनुषबाण भी ले लिए थे। तुलसीदास कहते है कि लंका अग्निकुण्ड बन गई थी, वहाँकी सामग्री लकड़ी, राक्षसगण सुपारी-जौ-तिल-धान बन गए थे, हनुमान्‌की पूँछ ही स्रुवा थी, बलवान् शत्रु ही हवि (हवन–सामग्री) थे और हनुमान् उच्च स्वरसे जो ललकार रहे थे वे ही स्वाहाके मन्त्र थे (इस प्रकार हनुमान् हवन किए जा रहे थे) ॥७॥ हनुमान् उस धधकती हुई अग्निकी ज्वालाके साथ सुशोभित होकर बादलके समान गरज उठे। सुनते ही बड़े-बड़े धीर-वीर योद्धा भाग खड़े हुए। रावण भी व्याकुल हो उठा और बोला—'दौड़ो! दौड़ो! इसे झट पकड़ बाँधो'। सुनते ही राक्षसोंकी सेना दौड़ी और इतना पानी बरसाने लगी कि सावनका बादल भी न बरसा पा सकता हो। पर वे योद्धा आगकी लपटोंकी झारसे झुलसकर वायुके झोंकोंसे घबरा उठे। उस समय वहाँ ऐसी भगदड़ मच गई कि रावणको भी उसके मंत्रिगण ढकेलकर खींच ले गए और कहने लगे कि—'नाथ! इस भयंकर आगके आगे किसीके कुछ किए-धरे न बनेगा (किसीका बस न चलेगा)' ॥ ८ ॥ हनुमान्‌का बड़ा भयंकर वेष देखकर और सिंहनाद

---

१. प्रतिकूल=शत्रु।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंह-नाद, उठ्यो मेघनाद, सबिषाद कहै रावनो।
'बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि, कालऊ करालता, बड़ाई जीतो बावनो'॥
'तुलसी' सयाने जातुधान पछिताने मन, 'जाको ऐसे दूत सो साहब अबै आवनो।
काहेकी कुसल रोषे राम, बामदेवहूके, बिषम बली-सों बादि बैरको बढ़ावनो'॥ ९॥
'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं, जाति हैं परानी, गति जानि गज-चालि है।
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न, आनन सुखाने कहैं 'क्योंहूँ कोऊ पालि है'।
'तुलसी' मँदोवै, मीं जि हाथ, धुनि माथ कहै 'काहू कान कियो न, मैं कह्यो केतो कालि है।
बापुरो बिभीषन पुकारि बार-बार कह्यो, बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै'॥१०॥
'कानन उजाऱ्यो तौ उजाऱ्यो न बिगाऱ्यो कछू, बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार[1] सों'।
निपट निडर देखि काहू ना लख्यो बिसेषि, दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल-के कुठार-सों।
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब, साँपनि-सों खेलैं, मेलैं गरे छुरा-धार-सों'।
'तुलसी' मँदौवै रोइ रोइ कै बिगोवै आपु, 'बार-बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़िजार-सों'॥११॥

सुनकर मेघनाद उठा पर रावणने चिन्तायुक्त होकर उससे कहा—'इस बन्दरने तो वेगमें वायुको, प्रतापमें करोड़ों सूर्योंको, करालतामें कालको और विशालतामें भगवान् वामनको भी जीत धरा है।' तुलसीदास कहते हैं कि उस समय जो समझदार राक्षस थे वे पछताते हुए कहने लगे—'जिनका दूत ऐसा (भयंकर) है, वह स्वामी तो अभी आने ही वाले हैं। भला जिस रामके क्रुद्ध होनेपर शिव भी कुशलसे कैसे रह सकते हैं, ऐसे प्रचंड शत्रुसे बैर बढ़ाना व्यर्थ है'॥ ९॥ सब रानियाँ व्याकुल हो होकर 'पानी-पानी' चिल्लाए जा रही थीं और भागी जा रही थीं। राजहंसकी-सी मंद गतिसे ही उनकी चाल पहचानी जा रही थी (कि ये रानियाँ भागी जा रही हैं)। (भागते समय) उन्हें अपने कपड़े-तककी सुधि नहीं रह गई थी। वे अपने आभूषण भी नहीं सँभाल पा रही थीं (सब आभूषण खुल-खुलकर गिरते जा रहे थे)। उनके मुँह सूखे जा रहे थे। वे कहती जा रही थीं—'अरे! कोई आकर किसी प्रकार हमारी रक्षा करेगा।' तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी हाथ मल-मलकर सिर पीट-पीटकर कह रही थी—'कल ही मैंने कितना समझाया था, पर किसीने मेरी एक न सुनकर दी। बेचारे विभीषणने भी बारबार पुकारकर कहा कि यह बन्दर बड़ी भारी बला है, यह सारे घर जला डालेगा'॥ १०॥ (वह कहती जा रही थी—) 'उस बन्दरने वनको उजाड़ा तो उजाड़ा, उससे क्या बनता-बिगड़ता था, किन्तु उस बेचारे बन्दरको वाटिकासे हठात् बाँधकर ले आए और उसे निडर देखकर भी किसीने कुछ ध्यान नहीं दिया और न किसीने कुलघाती मेघनादसे कहकर उसे छुड़ाया ही। मेरे तो, क्या छोटे क्या बड़े, सभी पुत्र व्यर्थ ही हैं। ये साँपोंसे खेलवाड़ करते हैं और छुरेकी धारके तले अपनी गर्दन जा रखते हैं।' तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी रो-रोकर बेहाल हुई जा रही थी और कह रही थी कि 'मैंने इस दाढ़ीजार (जिसकी दाढ़ी जला डालनेके योग्य हो उस) मेघनादसे बार-बार चिल्ला-चिल्लाकर कहा (पर इसने मेरी एक न सुनी)'॥ ११॥

---

१. हार = बन।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं, सकैं ना बिलोकि बेष केसरी-कुमारको।
मीँजि-मीँजि हाथ, धुनै माथ दसमाथ-तिय, 'तुलसी' तिलौ न भयो बाहिर अगार-को।
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो, तैं न काढो, जिय-की परी सँभार, सहन भँडार को'।
खीझति मँदोवै, सबिषाद देखि मेघनाद, 'भयो अब लुनियत सब याही दाढ़िजारको' ॥१२॥
रावन-की रानी जातुधानी बिलखानी कहैं 'हा हा! कोऊ कहै बीस-बाहु दसमाथ-सों।
काहे मेघनाद, काहे काहे रे महोदर! तू धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ-सों।
काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन! अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ-सों।
'तुलसी' बढ़ाय बादि साल-तैं बिसाल बाहैं, याही बल, बालिसो[1]! बिरोध रघुनाथ-सों' ॥१३॥
हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टनि, अगार, पौरि, खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्हीं अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू, ब्याकुल जहाँ सों तहाँ लोग चले भागि हैं।
बालधी फिरावै, बार-बार झहरावै, झरै बूँदिया-सी लंक पघिलाइ पाग-पागि है।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं 'चित्रहूके कपि-सों निसाचर न लागिहै' ॥१४॥

घरका सारा सामान जलते देखकर रानियाँ घबराकर भागी चली जा रही हैं। केसरी-कुमार हनुमान्‌का भयंकर बेष उनसे देखा नहीं जा रहा था। तुलसीदास कहते हैं कि रावणकी स्त्रियाँ (अत्यन्त भय और दुःखसे) हाथ मलती और सिर धुनती हुई कहती जा रही थीं कि—'कोई वस्तु तिलभर भी घरसे बाहर नहीं निकाली जा सकी जिससे सारा सामान जलकर भस्म हो गया। न मैं ही निकाल पाई न तू ही निकाल पाई। सबको तो अपने जीकी पड़ी थी, फिर घर और भंडार कौन सँभालता फिरता।' मेघनादको देखकर मन्दोदर बड़ो दुखी होकर क्रुद्ध होकर कहने लगी—'सबको इसी दाढ़ीजार (मेघनाद)-का बोया हुआ काटना पड़ रहा है (सब लोग इसीकी करनीका फल भोग रहे हैं)' ॥ १२ ॥ रावणकी राक्षस रानियाँ बिलख-बिलखकर कहे जा रही थीं—'हाय! हाय! कोई तो जाकर यह सब दशा उस बीस भुजा और दस सिरवाले रावणको जा सुनाता! क्यों रे मेघनाद! क्यों रे महोदर! तुम सब हमें ढाढ़स क्यों नहीं बँधाते और सबको अपने हाथका आश्रय क्यों नहीं देते? क्यों रे अतिकाय! क्यों रे अकम्पन! अरे अभागे गँवारो! स्त्रियोंको असहाय छोड़-छोड़कर भागे क्यों जा रहे हो? (तुलसीदास कहते हैं कि—) तुमने व्यर्थ ही ये सालके समान बड़ी-बड़ी भुजाएँ बढ़ा रक्खी हैं। अरे मूर्खो! इसी बलपर तुम लोग रामसे बैर ठानने चले थे?' ॥१३॥ (इसी बीच हनुमान्‌ने—) हाट, बाट, दुर्ग, परकोटे, अटारियों, घरों, दरवाजों तथा गली-गलीमें पहुँच-पहुँचकर धुआँधार आग जा लगाई। सब लोग आर्त्तनाद कर उठे। कोई किसीको सँभाल नहीं पा रहा था। सब लोग व्याकुल हो होकर इधर-उधर भागे चले जा रहे थे। हनुमान् अपनी पूँछ घुमा-घुमाकर जब बार-बार झाड़ते थे तो उसमेंसे बुँदियाकी भाँति चिनगारियाँ झड़ती चली जा रही थीं मानो लंकाको पिघलाकर उसकी चाशनीमें बुँदिया पाग रहे हों। यह दृश्य देखकर व्याकुल हो होकर राक्षसियाँ कहने लगीं कि 'अब आगेसे ये राक्षस लोग चित्रमें लिखे हुए बन्दरसे भी कभी

१. बालिस=बालिश, मूर्ख।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'लागि-लागि आगि', भागि-भागि चले जहाँ तहाँ, धीयको न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम-धुंध अंध, कहैं बारे-बूढ़े 'बारि बारि' बार-बार हीं।
हय हिहिनात, भागे जात, घहरात गज, भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति 'तात! तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं'॥१५॥
लपट कराल ज्वाल-जाल-माल दहूँ दिसि, धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे।
पानी-को ललात, बिललात, जरे गात जात, परे पाइमाल[1] जात, 'भ्रात! तू निबाहि रे।
प्रिया! तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि, बाप बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे'।
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बिहाल कहैं 'लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे'॥१६॥
बीथिका बजार-प्रति, अटनि अगार-प्रति, पँवरि पगार-प्रति बानर बिलोकिए।
अध-ऊर्द्ध बानर, बिदिसि-दिसि[2] बानर है, मानहु रह्यौ है भरि बानर तिलोकिए।
मूँदे आँखि हीय-मैं, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो, धाइ जाइ जहाँ-तहाँ और कोऊ को किए।
'लेहु अब लेहु, तब कोउ न सिखायो मान्यौ, सोई सतराइ जाइ जाहि-जाहि रोकिए'॥१७॥

नहीं उलझेंगे'॥ १४॥ 'अरे! आग लग गई! आग लग गई!!' यह पुकारते हुए लोग इधर-उधर भागे चले जा रहे थे। न लड़कियोंको माताएँ सँभाल पा रही थी, न लड़कोंको बाप ही। घबराहटके मारे स्त्रियोंकी लटें बिखरी पड़ रही थीं और वस्त्र भी सरके जा रहे थे। धुएँके धुन्धसे लोग अंधेसे हो चले थे और बच्चे-बूढ़े सभी बार-बार 'पानी-पानी' चिल्लाए जा रहे थे। हिनहिनाते हुए घोड़े और चिंघाड़ते हुए हाथी उन (भागनेवालोंकी) भारी भीड़को रौंदते-कुचलते हुए भागे चले जा रहे थे। सब एक दूसरेका नाम ले-लेकर पुकारते और अत्यन्त व्याकुल होकर बिलबिलाते हुए कह रहे थे—'बाप रे बाप! आगकी तौंससे तो हम तपे और झुलसे जा रहे हैं'॥ १५॥ अग्निकी ज्वालाओंकी भयंकर लपटें दसो दिशाओंमें जा फैली थीं। सब लोग धुएँसे घुटे जा रहे थे। उस धुएँका ऐसा अँधेरा छा गया था कि उसमें कौन किसे पहचान पाता था? लोग पानीके लिये तड़पते हुए बिलबिला रहे थे। सबके शरीर झुलसे जा रहे थे, लोग बिना घरबारके हो गए थे और कह रहे थे—'अरे भैया! बचाओ बचाओ। प्रिये! भागो। नाथ! आप भी भागिए। पिताजी! पिताजी! दौड़ो। अरे बेटा! ओ बेटा! भाग जा, भाग जा।' तुलसीदास कहते हैं कि सब लोग व्याकुल और व्यथित होकर कह रहे थे—'अरे रावण! अब बीसों आँखोंसे अपनी करनी आ देख'॥ १६॥ (हनुमान् इतने वेगसे घूम रहे थे कि—) प्रत्येक गली, हाट, अटारी, घर, द्वार और दीवारपर वानर ही वानर (हनुमान् ही हनुमान्) दिखाई पड़ रहे थे। ऊपर-नीचे, दिशा-विदिशाओंमें सर्वत्र वानर (हनुमान्) ही दिखाई पड़ रहे थे मानो वह वानर तीनों लोकोंमें आ फैला हो। आँख मूँदनेपर वही हृदयमें दिखाई देता था और आँख खोलनेपर वही सामने खड़ा दिखाई देता था। जहाँ कहीं भागकर जाते भी हैं और किसीको पुकारते भी हैं वहाँ भी वह आ धमकता है। 'लो, अब भोगो। तब तो किसीने हमारी बात मानी नहीं। जिसे रोकने चलते थे वही ऐंठने लगता था'॥ १७॥ तुलसीदास कहते हैं कि कोई इधर-उधर दौड़-धूप किए जा रहा है,

---

१. पाइमाल (फ़ारसी शब्द पामाल) = नष्ट, बरबाद। २. विदिसि-दिसि: विदिशा = आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, नीचे। दिशा = पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एक करै धौज[1], एक कहै काढ़ौ सौंज, एक औंजि[2] पानी पीके कहै 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त-ही काढ़े, एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो'।
'तुलसी' कहत एक 'नीके हाथ लाए कपि, अजहूँ न छाँड़ै बाल गालको बजावनो।
धाओ रे, बुझाओ रे, कि बावरे हौं रावरे, या औ रै आगि लागी, न बुझाव सिंधु-सावनो'॥१८॥
कोपि दसकंध तब प्रलय-पयोद बोले, रावन-रजाइ धाइ आए जूथ जोरि-कै।
कह्यो लंक-पति 'लंक बरत बुताओ बेगि, बानर बहाइ मारौ महा बारि बोरिकै'।
'भलो नाथ!' नाइ माथ, चले पाथ-प्रद-नाथ, बरषैं मुसलधार बार-बार घोरि-कै[3]।
जीवन-तें[4] जागी आगि, चपरि चौगुनी लागि, 'तुलसी' भभरि मेघ भागे मुख मोरि-कै॥१९॥
इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात, सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
'जुग-षट[5] भानु देखे, प्रलय-कृसानु देखे, सेष-मुख-अनल बिलोके बार-बार हैं।
'तुलसी' सुन्यो न कान, सलिल सर्पी[6] समान, अति अचरज कियो केसरी-कुमार हैं'।
बारिद-बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह, कहैं 'दससीस ईस-बामता बिकार हैं'॥२०॥

कोई सामान बाहर निकालनेको कहता है, कोई घबराकर पानी पी-पीकर कहता है कि 'आते नहीं बन रहा है।' कोई बड़े संकटमें पड़ा है। कोई आगमें जलता हुआ बाहर निकाला जा रहा है। कोई खड़ा-खड़ा देखता है और कहता है—'बड़ी भयंकर आग है।' कोई कहता है—'हनुमान्‌ने अच्छा तमाचा लगाया, किन्तु यह बाल (मूर्ख) रावण अब भी गाल बजाना (डींगें हाँकना) नहीं छोड़ रहा है।' कोई कहता है—'अरे! दौड़ो दौड़ो, आग बुझाओ।' तभी दूसरा कह उठता है—'क्या तुम पागल हुए हो? यह और ही प्रकारकी आग है, जिसे न समुद्र बुझा सकता न सावनके मेघ'॥ १८॥ तब रावणने क्रुद्ध होकर प्रलय कालके मेघोंको बुलवा भेजा। रावणकी आज्ञा पाते ही वे सब अपना दल बटोरकर आ पहुँचे। उनसे लंकापति रावणने कहा—'इस जलती हुई लंकाको झटपट बुझा डालो और उस बंदर (हनुमान्)-को बहाकर गहरे पानीमें डुबोकर मार डालो।' 'बहुत अच्छा महाराज,!' कहकर मेघोंके स्वामी (इन्द्र) प्रणाम करके चल दिए। वे गरज-गरजकर धुआँधार मूसलाधार पानी बरसाने लगे किन्तु आग क्या थी कि पानी पाकर और भी अधिक भड़क उठी और बड़े वेगसे चौगुनी जा फैली। तुलसीदास कहते हैं (कि जब मेघोंके बुझाए आग न बुझ पाई तो) मेघ घबराकर मुँह फेरकर भाग खड़े हुए॥ १९॥ इधर बादलोंका समूह अग्निकी ज्वालासे जला जा रहा था, उधर रावण ग्लानिके मारे गला जा रहा था। सब मेघ सूख-कर सकुचा गए और कहने लगे—'हम लोगोंने बारहों सूर्य देखे, प्रलयकी अग्नि देखी और अनेक बार शेषके मुँहसे निकली ज्वाला भी देखी, पर पानीको घी बनते कभी नहीं देखा। केसरी-कुमार हनुमान्‌ने यह बड़े आश्चर्यका काम कर डाला।' बादलोंके ये वचन सुनकर रावणके सब मन्त्री सिर पीटने लगे और (रावणसे माल्यवान्) कहने लगे—'यह सब ईश्वरके प्रतिकूल होनेका बुरा फल है'॥२०॥

१. धौज=दौड़धूप। २. औंजि=ऊमससे घबराकर। ३. घोरिकै=गरजकर। ४. जीवन=जल। ५. जुग षट भानु=द्वादश आदित्य : विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र, उरुक्रम। ६. सर्पी (सर्पि)=घी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम, काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं।
साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहि, महातप साहस बिरंचि लीन्हे मोल हैं।
'तुलसी' त्रिलोक आज दूजो न बिराजै राजा, बाजे-बाजे राजनिके बेटा-बेटी ओल[1] हैं।
को है ईस नाम ? को जो बाम होत मोहूँ-सो को ? मालवान ! रावरेके बावरेसे बोल हैं ॥२१॥
'भूमि भूमिपाल, व्याल-पालक पताल, नाक-पाल लोकपाल जेते सुभट - समाज हैं।'
कहै मालवान 'जातुधान-पति ! रावरे-को मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है ?
राम-कोह पावक, समीर सीय-स्वाँस, कीस ईस-बामता बिलोकु, बानर-को ब्याज है।
जारत प्रचारि-फेरि-फेरि सो निसंक लंक, जहाँ बाँको बीर तोसों सूर-सिरताज है' ॥२२॥
पान, पकवान बिधि नाना-को, सँधानो, सीधो, बिबिध बिधान धान बरत बखारही।
कनक - किरीट - कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ काढ़त कहार, सब जरे भरे भारही।
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै, झपट लपट भरै भवन - भँडारही।
'तुलसी' अगार, न पगार, न बजार बच्यो, हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारही ॥२३॥
हाट-बाट हाटक पिघलि चल्यो घी-सो घनो, कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब, पागि पागि ढेरी कीन्हीं भली भाँति भाय सों।

तब रावणने माल्यवान् (मन्त्री)-से कहा—'माल्यवान् ! अग्नि, वायु, जल, सूर्य, हिमाचल (पर्वत), यम, काल और लोकपाल—सब मेरे डरसे डरे रहते हैं। महादेव हमारे स्वामी ही ठहरे। लक्ष्मीपति विष्णु भी हमसे सदा शंकित ही रहते हैं। मैंने साहसपूर्वक बहुत कठिन तपस्या करके ब्रह्माको भी मोल ले धरा है। आज तीनों लोकोंमें (मुझे छोड़कर) कोई दूसरा राजा दिखाई नहीं देता। और तो क्या, बहुतसे राजाओंके तो बेटे-बेटीतक मेरे यहाँ ओल (बंधक) पड़े हुए हैं। इसलिये माल्यवान् ! तुम तो पागलोंके समान बातें कर रहे हो। यह 'ईश्वर' नामका व्यक्ति है कौन जो मुझ-जैसे शूरवीरका विरोध करनेका साहस कर सकता है' ॥२१॥ (यह सुनकर माल्यवान् बोला—) 'राक्षसराज ! पृथ्वीपर जितने राजा हैं, पातालमें जितने बड़े-बड़े सर्प हैं, स्वर्गके जितने अधिपति और लोकपाल हैं तथा संसारमें जितने वीर हैं, उनमेंसे आज कोई ऐसा नहीं है जो मनसे भी आपका विरोध करनेकी बात सोच सके ? किन्तु यह जो अग्नि देख रहे हैं यह अग्नि नहीं, यह तो रामका क्रोध है और यह वायु नहीं, जानकीका श्वास है, और देखो, यह ईश्वरका क्रोध ही वानर बनकर आ पहुँचा है, वानर तो एक बहाना मात्र है, इसीलिये जहाँ आपके जैसा शूर-शिरोमणि श्रेष्ठ वीर बैठा है, वहाँ भी यह बार-बार बलपूर्वक निःशंक होकर लंका जलाए डाल रहा है ॥२२॥ अनेक प्रकारके पेय पदार्थ, पकान्न, अचार आदि, सीधा (सूखा चावल, दाल आदि अन्न), अनेक प्रकारके धान बखार (कोठे)-में रक्खे ही रक्खे जल रहे हैं। करोड़ों सोनेके मुकुट, पलँग, पिटारे और सिंहासन निकालनेमें कहार लोग भार (बहँगी) उठाए हुए जले जा रहे हैं। प्रबल अग्नि ऐसी बढ़ी कि जो वस्तु जहाँ निकालकर रक्खी गई वहीं जल गई तथा आगकी लपटें घर और भंडारतकमें जा भरीं। तुलसीदास कहते हैं कि न तो घर ही बचा, न दीवार ही बची, न बाजार ही बचा। हाथी हथसारमें और घोड़े घुड़सालोंमें ही जल मरे ॥ २३ ॥ (लंका जलने लगी तो) हाट-बाटमें बहुत सा सोना घीके समान पिघलकर बह चला। अग्निके तापसे लंका सोनेकी कड़ाही बनी खौल रही है। उस लंकाकी कड़ाहीमें बलवान्

१. ओल=बन्धक रक्खा हुआ मनुष्य वा पदार्थ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाहुने कृपानु पवमान-लौं परोसो हनुमान सनमानि-कै जेँवाये चित चाय-सौं।
'तुलसी' निहारि, अरि-नारि दै दै गारि कहैं, 'बावरे सुरारि बैर कीन्हीं रामराय-सौं' ॥२४॥
रावन सो राज-रोग बाढ़त बिराट-उर, दिन-दिन बिकल सकल सुख-साँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध, मुनि, होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक[1] सो।
राम-की रजाय-तेँ रसायनी समीर-सूनु उतरि पयोधि-पार सोधि सरवाक[2] सो।
जातुधान बुट, पुट-पाक लंक, जातरूप[3]-रतन, जतन जारि कियो है मृगाँक[4] सो ॥२५॥

राक्षस-रूपी अनेक प्रकारके पकान बड़े प्रेमसे पागकर उनके ढेर लगा दिए हैं और अग्निरूपी पाहुनेको पवन-द्वारा परसवाकर हनुमान् बड़े चावसे आदरपूर्वक जिमा रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शत्रु (रावण)-की स्त्रियाँ गाली दे-देकर कह रही हैं—'इस पागल रावणने रामके साथ बैर ठान लिया है (यह सब उसीका फल है)' ॥ २४ ॥ विराट् पुरुष(ब्रह्म)-के हृदयमें रावण-रूपी राजरोग (यक्ष्मा) ऐसा बढ़ चला था कि वह (विराट्) बहुत व्याकुल होकर दिनोंदिन दुखी और दुर्बल होता चला जा रहा था। देवता, सिद्ध और मुनि लोग अनेक उपचार करके हार गए परन्तु न तो उसका कष्ट ही दूर हो पाया और न उसे कुछ चैन ही मिल पाई। तब रामकी आज्ञासे रसवैद्य हनुमान्ने समुद्रके पार जाकर लंका-रूपी सम्पुट (घरिया) ठोक करके (ऊपर-नीचे रखकर, कपड़-मिट्टी करके), राक्षस-रूपी बूटियोंके रसमें (घोटकर) लंकाके सोने और रत्नोंको बड़े यत्नसे फूंककर मृगांक रस

१. मनाक=थोड़ा सा। २. सरवाक=कसोरा, रस औषधि भस्म करनेकी मिट्टीकी घरिया। ३. जातरूप=सोना। ४. मृगाङ्क : पारेकी भस्म १ भाग, सोनेकी भस्म १ भाग, मुक्ताकी भस्म १ भाग, सोधा हुआ गन्धक २ भाग, भूना हुआ सोहागा १ भाग, इन्हें काँजीमें घोटकर मिट्टीकी परईका पुट बनाकर (ऊपर नीचे परई रखकर) कपड़मिट्टीसे मुँह बन्द करके चार पहरतक कंडेकी आँचमें पकावें तो मृगांक तैयार होता है। नित्य काली मिर्च, छोटी पीपल, शहदके साथ दो रत्ती खानेसे राजयक्ष्मा दूर होता है।

महामृगांक रस :—सोनेकी भस्म १ भाग, पारेकी भस्म २ भाग, मुक्ताकी भस्म ३ भाग, सोधा हुआ गन्धक ४ भाग, सोनामक्खी (स्वर्णमक्षिका) ५ भाग, मूँगे (प्रवाल) की भस्म ६ भाग और भुना हुआ सोहागा एक भाग मिलाकर इन्हें जँभीरी नीबूके रसमें ३ दिन घोटकर गोला बनाकर कड़ी धूपमें सुखाकर मिट्टीकी परईके पुटमें रखकर लवण-यन्त्र (मुँहवाले दो बर्त्तनोंका ऊपर-नीचे मुँह मिलाकर और बन्द करके एकमें नमक रखकर) चार पहरतक पकावे। ठंडा होनेपर औषधि निकालकर उसमें एक भाग हीरेकी भस्म मिलाकर काली मिर्च, पीपलके चूर्ण और घृतके साथ चार रत्ती नित्य सेवन करनेसे यक्ष्मा, खाँसी आदि अनेक रोग शान्त होते हैं।

राजमृगाङ्क :—पारेकी भस्म ४ तोला, सोनेकी भस्म १ तोला, ताँबेकी भस्म १ तोला, मैनसिल २ तोला, हरताल २ तोला, सोधा गंधक २ तोला एक साथ पीसकर बड़ी-बड़ी कौड़ियोंमें भरकर भुना सुहागा बकरीके दूधमें पीसकर उससे सब कौड़ियोंका मुँह बन्द कर दे और इन्हें मिट्टीके बर्त्तनमें रखकर ऊपरसे ढककर कपड़मिट्टी करके बन्द कर दें। यह कपड़-मिट्टी सूख जानेपर गजपुट (सवा हाथ लंबे, चौड़े, गहरे गढ़े)-में ५०० बिने हुए कंडे रखकर, उसपर पुट रखकर उसपर ५०० कंडे रखकर उसे ऊपरसे मिट्टीसे लेप करके एक ओर थोड़ा सा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जारि बारि, कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम, नाइ माथो, पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि-कै।
'मातु ! कृपा कीजै, सहिदानि[1] दीजै' सुनि, सीय दीन्हीं है असीस चारु चूड़ामनि छोरिकै।
'कहा कहौं, तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन, बड़ो अवलंब[2] ही, सो चले तुम तोरिकै'।
'तुलसी' सनीर नैन नेह-सों सिथिल बैन, बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि-कै ॥ २६॥
'दिवस छ-सात जात जानिबे न, मातु ! धरु धीर, अरि-अंतकी अवधि रही थोरिकै।
बारिधि बँधाय सेतु, अइहैं भानुकुल-केतु, सानुज कुसल कपि-कटक बटोरिकै'।
बचन बिनीत कहि सीताको प्रबोध करि, 'तुलसी' त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरिकै।
'जै जै जानकीस, दस-सीस-करि-केसरी' कपीस कूद्यो बात-घात बारिधि हलोरिकै ॥ २७ ॥
साहसी समीर-सूनु नीर-निधि लंघि, लखि लंक सिद्धपीठ निसि जागो है मसान सो।
'तुलसी' बिलोकि महा साहस प्रसन्न भई देवी सिय-सारिखी, दियो है बरदान सो।

तैयार कर डाला (जिससे विराट्का रोग दूर किया जा सके) ॥॥ २५ ॥ फिर हनुमान्ने भली-भाँति लंका जलाकर राख करके अपनी पूँछ समुद्रमें जा बुझाई और तब उन्होंने जानकीके चरणोंमें सिर आ नवाया। वे हाथ जोड़कर उनके सामने आ खड़े हुए (और कहने लगे—) 'माता ! कृपा करके मुझे कोई सहदानि (चिह्न, प्रमाण) दे दीजिए।' यह सुनकर सीताने उन्हें आशीर्वाद दिया और चिह्नके रूपमें अपना सुन्दर चूड़ामणि (रत्न जड़ाहुआ सिर-फूल) उतारकर देते हुए कहा—'भैया ! मैं तुमसे कैसे बताऊँ कि मेरे दिन यहाँ कैसे कट रहे हैं। यह तो तुम अपनी आँखोंसे देखे जा रहे हो। तुम्हारे रहनेसे मुझे बड़ा सहारा मिल गया था, वह भी तुम तोड़कर चले जा रहे हो।' तुलसीदास कहते हैं कि यह कहते-कहते सीताकी आखें भर आईं और उनका गला भर्रा उठा। उन्हें व्याकुल देखकर हनुमान्ने उन्हें विनयपूर्वक समझाते हुए कहा—॥२६॥ 'माता ! आप धैर्य धारण किए रहिए। छह-सात दिन जाते कुछ जान न पड़ेंगे। अब शत्रुके नाशकी अवधि थोड़ी ही बच रही है। भाई (लक्ष्मण)-के सहित सूर्यकूलके केतु राम वानरोंकी सेना लेकर समुद्रपर पुल बाँधकर यहाँ शीघ्र ही कुशलपूर्वक पधारनेवाले हैं।' इस प्रकार विनम्र वचन कहकर और जानकीको समझाकर हनुमान् त्रिकूट पर्वतपर जा चढ़े और बड़े ऊँचे स्वरसे चिल्लाकर बोले—'रावण-रूपी गजराजको मारनेके लिये मृगराज (सिंह)-के तुल्य जानकी-वल्लभ रामकी जय हो, जय हो।' ऐसा कहकर कपिराज हनुमान् वायुके झोंकेसे समुद्रमें हिलोरें उठाते हुए समुद्रके पार जा कूदे ॥ २७ ॥ साहसी समीरपुत्र हनुमान्ने समुद्र लाँघकर लंकाको सिद्ध-पीठ जानकर (वहाँ आग लगाकर) मानो रातभर मसान-सा आज गाया था और उनका यह महान् साहस देखकर जानकी-जैसी देवी प्रसन्न हो उठीं और उन्होंने उन्हें वरदान दे दिया। (हनुमानको आया देखते ही) जाम्बवान् कह उठे—'लो, बाटिका उजाड़कर, अक्षकुमारकी सेना पछाड़कर, लंका जलाकर

छोड़कर आग लगा दें। चार पहर पकाकर ठंडा हो जानेपर औषधिका चूर्ण निकाल लें। घृत या मधु या दस पीपल या १९ काली मिर्चके साथ दो रत्ती नित्य खानेसे सब प्रकारका क्षय दूर हो जाता है।

१. सहदानि=पहचानका चिह्न, निशान। २. अवलंब ही=अवलंब थी। ३. डफोरिकै=हाँक देकर, ललकारकर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़, भानुकुल-भानुको प्रताप-भानु भानु-सो।
करत बिसोक लोक-कोकनद, कोक-कपि', कहै जामवंत-'आयो आयो हनुमान सो' ॥ २८ ॥
गगन निहारि, किलकारि अति भारी सुनि, हनुमान पहिचानि भये सानँद सचेत हैं।
बूड़त जहाज बच्यो पथिक-समाज, मनो आजु ज्याये जानि सब अंक-माल देत हैं।
'जै जै जानकीस! जै जै लखन! कपीस! कहि, कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत-रेत हैं।
अंगद, मयंद, नल, नील बलसील महा, बालधी फिरावैं, मुख नाना गति लेत हैं ॥ २९ ॥
आयो हनुमान प्रान-हेतु, अंक-माल देत, लेत पग-धूरि, एक चूमत लँगूल हैं।
एक बूझै बार-बार सीय - समाचार, कहे, पवनकुमार भो बिगत - स्रम - सूल हैं।
एक भूखे जानि, आगे आने कंद-मूल-फल, एक पूजे बाहु-बल तोरि मूल-फूल हैं।
एक कहैं 'तुलसी' 'सकल सिधि ताके, जाके कृपा-पाथ-नाथ सीता-नाथ सानुकूल हैं ॥ ३० ॥

सूर्यवंशके सूर्य रामके प्रतापरूपी सूर्यकी किरणके समान लोक-रूपी कमल और वानर-रूपी चकवोंका शोक मिटाते हुए (जैसे सूर्यके उदय होनेसे कमल और चकवे प्रसन्न हो उठते हैं वैसे ही रामके प्रतापसे लंका जलाकर संसारको और वानरोंको प्रसन्न करते हुए) कपि-राज हनुमान् आ गए! आ गए!' ॥ २८ ॥ हनुमान्‌की प्रचंड किलकारी सुनकर (सब वानर और भालू) आकाशकी ओर देखने लगे। हनुमान्‌को पहचानकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और उनकी जानमें जान आई मानो जहाजके साथ - साथ यात्रियोंका समाज डूबते-डूबते बच गया हो। आज वे सब अपना पुनर्जन्म[1] हुआ जानकर परस्पर एक दूसरेके गले मिलने लगे। वे खेलवाड़ी बानर 'जय जानकीश! जय राम! जय लक्ष्मण! जय सुग्रीव!' कहते हुए उछल-कूद मचाने लगे और समुद्रकी रेतीपर नाचने लगे। महाबली अंगद, मयंद, नल और नील अपनी पूँछे घुमाते हुए अनेक प्रकारसे मुँह बनाने लगे थे ॥ २९ ॥ सबके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले हनुमान्‌को आया देखकर कोई उनसे गले मिल रहा था, कोई उनके चरणोंकी धूल सिर-माथे चढ़ाए ले रहा था, कोई उनकी पूँछ चूम रहा था और कोई बार-बार सीताका समाचार पूछ रहा था जिसका (सीताके कुशल-मंगलका) वर्णन करते ही हनुमानकी सारी थकाबट मिट भागी। कोई हनुमान्‌को भूखा जानकर उनके आगे कंद-मूल-फल ला-लाकर रक्खे दे रहा था। कोई फूल तोड़-तोड़कर हनुमानकी बली भुजाओंकी पूजा कर रहा था। कोई कह रहा था कि 'कृपासागर सीतापति राम जिसपर प्रसन्न हो जायँ उसका कार्य सिद्ध होते क्या देर लगती है' ॥ ३० ॥ फिर रामके लिये सीताके प्रेम और

१. सुग्रीवने हनुमान्‌से कहा था कि 'जहाँ-तहाँ वानर भेजकर सीताका पता लगवाओ। जो पखवाड़ेके भीतर पता लगाकर नहीं लौटेगा वह मेरे हाथों मारा जायगा।' इसी भयके मारे सब वानर-भालू समुद्र-तटपर बैठकर हनुमानके आनेकी बाट देखते रहे। अब हनुमानको प्रसन्न होकर आया हुआ देखकर और भली प्रकार पहचानकर वे समझ गए कि हनुमानने सीताकी खोज लगा ली है। अतः, वे सुग्रीवके भयसे मुक्त होकर आज अपना पुनर्जन्म समझकर नाचने कूदने लगे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सीयको सनेह-सील, कथा तथा लंककी चले कहत चाय-सों, सिरानो पथ छनमें।
कह्यो जुवराज, बोलि बानर-समाज 'आज, खाहु फल' सुनि, पेलि पैठे मधुबनमें।
मारे बागबान, ते पुकारत देवान गे, 'उजारे बाग अंगद', दिखाए घाय तनमें।
कहैं कपिराज 'करि काज आए कीस, तुलसीकी सपथ, महामोद मेरे मनमें' ॥ ३१ ॥
नगर कुबेरको सुमेरुकी बराबरी, बिरंचि बुद्धिको बिलास लंक निरमान भो।
ईसहिं चढ़ाय सीस बीस बाहु बीर तहाँ, रावन-सों राजा रज-तेजको निधान भो।
'तुलसी' त्रिलोककी समृद्धि सौंज-संपदा सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो।
तीसरे उपास बनबास सिंधु-पास सो समाज महाराजजूको एक दिन दान भो ॥३२॥ (८४)

लंका-कांड

कवित्त

बड़े बिकराल भालु, बानर बिसाल बड़े, तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंड, मंडि मेदिनीको मंडलीक-लीक लोपिहैं।

शीलकी तथा लंकाकी कथाएँ बड़े चावसे कहते हुए हनुमान (किष्किन्धाकी ओर) चल पड़े। कथा कहते-सुनते बातकी बातमें मार्ग निकल गया। वहाँ पहुँचकर अंगदने सब वानरोंसे कहा कि 'आज पेट भरकर जा-जाकर फल खाओ।' यह सुनते ही सभी वानर बलपूर्वक मधुबनमें जा घुसे। वहाँ पहुँचकर उन सबने रखवालोंको ऐसा धुना कि वे सब रोते-पुकारते सुग्रीवके दरबारमें जा पहुँचे और वहाँ जाकर (सुग्रीवको) अपनी चोटें दिखाते हुए कहने लगे कि अंगदने हमें मारा भी है और वाटिका भी उजाड़ डाली है। यह सुनकर सुग्रीव (उछल पड़े और) बोले—'तुलसीदासके स्वामी रामकी सौगंध खाकर कह सकता हूँ आज मेरे मनमें आनन्द समा नहीं पा रहा है क्योंकि रामका काम वानर कर आए हैं' ॥ ३१ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि कुबेरकी पुरी[२] लंकाको सुमेरुके समान ही समझो। वह मानो ब्रह्माकी बुद्धिका कौशल ही बनी खड़ी है। वहाँ शंकरपर अपने मस्तक चढ़ाकर अत्यन्त राजसी तेजवाला और बीस भुजाओंवाला रावण ऐसा राजा बना बैठा है मानो तीनों लोकोंका ऐश्वर्य, सम्पत्ति और सामग्री एकत्र करके यहींपर उनकी सीमा बाँधकर रख दी गई हो (कि इससे बढ़कर कहीं कुछ नहीं है) तथा उसके अवशेषसे सारा संसार बनाया गया है। वह सारी (विशाल) सम्पत्ति वनवासी महाराज रामके लिये समुद्र-तटपर तीन दिन उपवास करनेके पश्चात् एक दिनका दान बन गई (उन्होंने उपवासकी समाप्तिपर दानके रूपमें वह सारी संपत्ति ब्राह्मण विभीषणको दे डाली) ॥ ३२ ॥

लंकाकाण्ड

लंका-दहन देखकर किसीके हृदयमें कुछ भी उत्साह बचा नहीं रह गया इसलिये रावणके मन्त्री दृढ़ताके साथ पुकार-पुकारकर कहने लगे कि—'बड़े बड़े भयंकर भालू और बड़े विशालकाय वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर समुद्र पाट देंगे। वे प्रबल वानर पराक्रमी और प्रचण्ड वीरोंके भुजदण्डोंका खंडन करके पृथ्वीको अलंकृत करते हुए इस त्रिभुवन-विजयी रावणकी सारी

---

२. लंकाको कुबेरने ही राजधानी बनाया था पर रावणने उससे लंकाका गढ़ और पुष्पक विमान छीनकर वहाँ अपनी राजधानी बना ली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लंका-दाह देखे, न उछाह रह्यो काहुनको, कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपि हैं।
'बाँचिहै न पाछे त्रिपुरारिहू मुरारिहू-के, को है रन रारिको जौं कोसलेस कोपिहैं ?'॥ १ ॥
त्रिजटा कहत बार-बार तुलसीस्वरी-सों यों, 'राघौ बान एक ही समुद्र सातौ[1] सोखिहैं।
सकुल सँघारि जातुधान-धारि, जंबुकादि जोगिनी-जमाति कालिका-कलाप तोषिहैं।
राज दै, निवाजिहैं बजाइकै बिभीषनै, बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहैं।
कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो, को कुंभकर्न कीट जब राम रन रोषिहैं'॥ २ ॥
बिनय सनेह-सों कहति सीय त्रिजटा-सों 'पाए कछु समाचार आरज-सुवनके ?'।
'आए जू ! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि, आए देखि-देखि दूत[2] दारुन दुवनके।
बदन मलीन, बलहीन दीन देखि मानौ मिटे घटे तमीचर-तिमिर भुवनके।
लोकपति-सोक-कोक, मूँदे कपि-कोकनद, दंड द्वै रहे हैं रघु-आदित उवनके॥ ३ ॥

झूलना

सुभुज, मारीच, खर, त्रिसिर, दूषन, बालि दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि पर-बाम, बिधि बाम तेहि, राम-सों सकत संग्राम दसकंध काँध्यो।

मर्य्यादा लुप्त कर डालेंगे।' यदि राम क्रोध कर बैठे तो शिव और विष्णु भी बचाना चाहें तब भी कोई नहीं बच पावेगा। उनके सामने युद्धमें टिक सकनेवाला भला है कौन ?" ॥ १ ॥

त्रिजटा बार-बार पुकार पुकारकर तुलसीकी स्वामिनी जानकीसे कहने लगीं कि राम तो एक ही बाणसे सातों समुद्र सोख डालेंगे। कुल-समेत राक्षसोंको मारकर सियार, योगिनी और सभी कालिकाओंको तृप्त कर देंगे। वे डंकेकी चोट विभीषणको राज्य देकर उसपर विशेष कृपा दिखावेंगे। उस समय आकाशमें बाजे बजने लगेंगे और देवता लोग प्रेमसे पुष्ट हो जायँगे। जब राम युद्ध-क्षेत्रमें क्रोध करने लगेंगे, तब भला रावण क्या है ? बेचारा मेघनाद किस गिनती में है ? और कीड़ेके समान कुम्भकर्णकी भी क्या बिसात है ? (रामके कुपित हो जानेपर इन सबोंका मरना निश्चित है)' ॥२॥ विनय और प्रेमपूर्वक त्रिजटासे सीता पूछने लगीं—'क्या आर्यपुत्रके कोई समाचार तुम्हें मिले हैं ?' त्रिजटा बोली—'हाँ हाँ ! मिले क्यों नहीं हैं ? वे समुद्रपर पुल बाँधकर सेना-सहित इस पार उतर आए हैं। रावणके दूत यह सब देखे चले आ रहे हैं। (यह देखते ही) राक्षसोंके मुँह धुँधले पड़ गए तथा वे ऐसे बलहीन और दीन हो गए मानो चौदहों भुवनोंका राक्षस-रूपी अन्धकार बस अब मिटना और घटना ही चाहता है। इन्द्र आदि लोकपाल-रूपी चकवोंका शोक दूर करनेवाले और वानर सेना-रूपी मुँदे हुए कमलोंके खिलानेवाले राम-रूपी सूर्यके उदय होनेमें केवल दो ही दण्ड[2] (दो घड़ी)-की देर है (अब बहुत शीघ्र राक्षस-कुलका संहार करके राम सब लोकपालों, देवताओं, सिद्धों, मुनियों और मानवोंको आनन्दित करेंगे) ॥ ३ ॥ सुबाहु, मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि आदिको मारनेमें जिसे दूसरा बाण संधान करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी (सबको एक ही बाणसे मार डाला) उन्हीं रामसे, भाग्य फूटे होनेके कारण पर-स्त्रीको लाकर भी, क्या

---

१. सात समुद्र : लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि (घी), दधि, दुग्ध, जल (= पूरा समुद्र)। २. दूत : शुक और सारण नामके गुप्तचर। २. दंड = ६० पल (२४ मिनट या एक घड़ी)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समुझि तुलसीस कपि-कर्म घर-घर धेरु, बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक, लंकेस नायक अछत, लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो' ॥ ४ ॥

सवैया

बिस्व-जयी भृगु-नायक-से बिनु हाथ भए हनि हाथ-हजारी।
बातुल, मातुल-की न सुनी सिख, का 'तुलसी' कपि लंक न जारी ?
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज, कौन गजारी।
कीर्ति बड़ी, करतूति बड़ी जन, बात बड़ी, सो बड़ोई बजारी ॥ ५ ॥
जब पाहन भे बन-बाहनसे, उतरे बनरा 'जय राम' रढ़े।
'तुलसी' लिये सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बल-बारि बढ़े।
करि कोप करैं रघुबीरको आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े।
चतुरंग चमू पलमें दलि - कै रन रावन राढ़के हाड़ गढ़े ॥ ६ ॥

घनाक्षरी

बिपुल बिसाल बिकराल कपि-भालु मानो काल बहु बेष धरे धाए किए करषा।
लिए सिला-सैल, साल, ताल औ तमाल तोरि, तोपैं तोयनिधि, सुरको समाज हरषा।

रावण कभी युद्ध ठान सकता है ? तुलसीदासके स्वामी राम तथा हनुमान्‌के कार्योंका स्मरण कर-करके घर-घर चर्चा चलती रहती है और समुद्र बाँधनेका समाचार सुनकर तो सभी लोग व्याकुल हो उठे हैं। लंकापति रावणके रहते हुए भी लंका-गढ़के निवासी कभी पका हुआ भात-तक नहीं खा पा रहे हैं (कि कहीं फिर आग न लग जाय)' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं—(लंका-निवासी आपसमें कह रहे हैं—'देखो, रामको कोई ऐसा-वैसा न समझो।) हजार भुजावाले सहस्राबाहुको मार डालनेवाले परशुराम-जैसे विश्व-विजयी भी रामके सामने शस्त्र डालकर चलते बने। इस बकवादी रावणने अपने मामा (मन्त्री माल्यवान्)-तक की भी सीख नहीं मानी। (तुम्हीं बताओ) क्या हनुमान् (सबके देखते-देखते) लंका नहीं फूक गए ? अब भी अच्छा है कि यह (रावण) जाकर रामसे मेल कर ले, नहीं तो थोड़े ही दिनों में यह जान जायगा कि कौन हाथी है और कौन सिंह है ? रावणकी कीर्ति भी बहुत बड़ी है, करनी भी बहुत बड़ी है और जनतामें धाक भी बहुत है, पर है यह बहुत बड़ा लपाड़ी (लबार, व्यर्थ डींगें मारनेवाला)' ॥ ५ ॥ (समुद्रपर पुल बाँधते समय) जब पत्थर भी नाव बनकर समुद्रपर तैरने लगे तब सारी वानरी सेना उसीपर चढ़कर 'रामकी जय' करती हुई पार उतर गई। तुलसीदास कहते हैं कि वे वानर हाथोंमें पर्वतकी शिलाएँ लिए हुए ऐसे लग रहे हैं जैसे ज्वार आनेपर समुद्र शोभा देता है। वे दाँत पीस-पीसकर रामकी आज्ञाका पालन किए जा रहे हैं और खेल-खेलमें ही कूदकर इस प्रकार लंकाके गढ़पर जा चढ़े हैं मानो एक ही पलमें युद्धमें रावणकी चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ, पैदल) नष्ट करके दुष्ट रावणकी हड्डियाँ चूर कर डालेंगे ॥ ६ ॥ बहुतसे बड़े भयंकर वानर और भालू इस प्रकार दौड़ पड़े मानो काल ही अनेक वेष धारण करके कुपित होकर दौड़ा चला आ रहा हो। इनमेंसे कोई तो शिला, कोई पर्वत तथा कोई कोई शाल, ताड़ और तमालके वृक्ष तोड़-तोड़कर ला-लाकर समुद्र पाटने लगे। यह देखकर देवता मगन हो उठे, दिशाओंके हाथी डगमगाने लगे, कच्छप और बराह तड़प उठे, पहाड़ काँप

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

डगे दिग-कुंजर, कमठ-कोल कलमले, डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा।
'तुलसी' तमकि चलैं, राघौकी सपथ करैं, को करै अटक कपि-कटक अमरषा ॥ ७ ॥
आए सुक-सारन[1], बोलाए, ते कहन लागे, पुलक सरीर सेना करत फहम[2] ही।
'महाबली बानर, बिसाल भालु कालसे कराल हैं, रहे कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही'।
हँस्यो दसमाथ रघुनाथ-को प्रताप सुनि, 'तुलसी' दुरावै मुख सूखत सहम-ही।
राम-के बिरोधे बुरो बिधि-हरि-हरहू-को, सबको भलो है राजा राम-के रहम ही ॥ ८ ॥
'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि', भयो सोर चहुँ ओर लंका आए जुवराज-के।
एक काढ़ै सौंज, एक धौज करै 'कहा ह्वै है, पोच भई महा' सोच सुभट समाज-के।
गाज्यो कपिराज रघुराज-की सपथ करि, मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज-के।
सहमि सुखात बात-जात-की सुरति करि, लवा ज्यों लुकात 'तुलसी' झपेटे बाज-के ॥ ९ ॥
तुलसीस-बल रघुबीरजू - के, बालिसुत वाहि न गनत, बात कहत करेरी-सी।
'बखसीस ईसजू - की खीस होत देखियत, रिस काहे लागति कहत हौं तो तेरी-सी।

उठे और शेष चँप गए। तुलसीदास कहते हैं कि सभी वानर रामकी दुहाई देते हुए तमकते चले जा रहे थे। उस समय भला कौन माईका लाल था जो क्रोधमें भरी हुई उस वानरी सेनाको रोकनेका साहस कर सकता ॥ ७ ॥ जब रामकी शरणमें विभीषण गए तब रावणने भेद लेनेके लिये शुक और सारण नामके दो गुप्तचर (दूत) उनके पीछे-पीछे लगा भेजे थे। ये (रावणके भेदिए) शुक और सारण लंका लौट आए। (जब रावणने उन्हें) बुलाकर पूछा तो वानरोंकी सेनाका ध्यान करते ही उनके शरीर पुलकित हो उठे। वे कहने लगे—'वे कालके समान भयंकर महाबलवान् वानर और विशाल शरीरवाले भालू इतने अधिक हैं कि न जाने पृथ्वीपर कहाँ थे और कहाँ जाकर समावेंगे।' रामका यह प्रताप सुनकर रावण ठठाकर हँस पड़ा। तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि डरके मारे उसके मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगी थीं (मुँह सूख चला था) परन्तु वह उसे हँसीमें छिपाए जा रहा था। रामसे वैर करने-पर तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवका भी ठिकाना नहीं लगता क्योंकि रामकी कृपा बनी रहनेपर ही सबका कल्याण होता है ॥ ८ ॥

ज्यों ही युवराज अंगद लंकामें आए त्यों ही चारों ओर हल्ला मच गया कि 'वह वानर (जो लंका जला गया था) फिर आ धमका, वह वानर फिर आ धमका।' (मारे डरके) कोई अपने घरका सामान निकालने लगा और कोई इधर-उधर घबराकर दौड़-दौड़कर कहने लगा—'अरे भाई! यह तो बड़ा बुरा हुआ। न जाने अब क्या होनेवाला है।' इस प्रकार लंकाके वीरों में भी बड़ी खलबली मच गई। जब रामकी दुहाई देकर कपिराज अंगद गरजे तो राक्षसोंने कान बन्द कर लिए, मानो बिजली कड़क उठी हो। वे सब हनुमान्‌का स्मरण कर-करके डरके मारे सिहर उठे (सूख चले) और इधर-उधर जा-जाकर ऐसे छिपने लगे जैसे बाजके झपट्टेके डरसे लवा पक्षी जा छिपता है ॥ ९ ॥ तुलसीदासके प्रभु रामके बलपर बालिके पुत्र अंगद उस रावणको कुछ नहीं समझ रहे थे। वे गरजकर बोले—'जान पड़ता है कि शिवकी दी हुई यह सम्पत्ति (लंका)

---

१. शुक, सारण : रामकी सेनाका भेद लेनेके लिये रावण द्वारा भेजे गए दूत। २. फ़हम=विचार।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चढ़ि गढ़, मढ़, दृढ़ कोटके कँगूरे कोपि, नेकु धका दैहैं, ढैहैं ढेलनकी ढेरी-सी।
सुनु दसमाथ ! नाथ-साथ-के हमारे कपि, हाथ लंका लाइहैं तो रहैगी हथेरी-सी ॥ १० ॥
दूषन, बिराध, खर, त्रिसिर, कबंध बधे, तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि-को।
एक ही बिसिख-बस भयो बीर बाँकुरो जो, तोहू है बिदित बल महाबली बालि-को।
'तुलसी' कहत हित, मानतो न नेकु संक, मेरो कहा जइहै, फल पइहै तू कुचालि-को।
बीर-करि-केसरी कुठार-पानि मानि हारि, तेरी कहा चली, बिड[२] ! तो-सो गनै घालि को ॥११॥

सवैया

तोसों कहौं दसकंधर रे ! रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे।
बालि बली, खर, दूषन और अनेक गिरे जे-जे भीतिमें दौरे।
ऐसिय हाल भई तोहिं धौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे।
रामके रोष न राखि सकैं 'तुलसी' बिधि, स्रीपति, संकर सौ रे ॥ १२ ॥
तू रजनीचर-नाथ महा, रघुनाथके सेवकको जन हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहिं लाज न गाल बजावत सोहौं।

आज नष्ट होनेपर तुली हुई है। यह सुनकर तुम बिगड़े क्यों पड़ रहे हो ? मैं तो तुम्हारे ही हितकी बात कह रहा हूँ। देखो रावण ! सुनो। हमारे प्रभु (राम)-के साथ जो बन्दर आए हुए हैं वे क्रुद्ध होकर तुम्हारे गढ़की मढ़ियों और कंगूरोंपर चढ़कर तनिक भी धक्का देने लगे तो सब भवन ढेलोंकी ढेरीके समान भरभराकर ढह पड़ेंगे ? और यदि कहीं उन्होंने लंकाको हाथ लगा दिया तो वह सारी लंका हाथकी हथेलीके समान चौपट हो रहेगी ॥ १० ॥ देखो, उन्होंने (रामने) खर, दूषण, त्रिशिरा और कबन्धको मार डाला, बड़े-बड़े विशाल ताड़के वृक्षोंको (एक ही बाणसे) छेद डाला। यह सब तो अभी कलकी (थोड़े दिन पहलेकी) ही बात है। जिस महाबली बालिका बल तुम भी जानते हो, वह बाँका वीर भी उनके एक ही बाणमें लोट गया (मारा गया)। मैं तो तेरे भलेकी बात कह रहा हूँ, पर तू है कि टससे मस नहीं हो रहा है। मेरा क्या बिगड़ेगा ? तुझे ही अपनी कुचालोंका फल भोगना पड़ेगा। अरे नीच ! वीर-रूपी गजराजोंके लिये जो सिंहके समान विकराल थे वे कुठार धारण करनेवाले परशुराम भी जिसे हार मान बैठे, उनके सामने भला तेरी क्या बिसात है ? तुझ-जैसोंको वहाँ घलुए[३] बराबर भी कोई नहीं गिनता ? ॥११॥ अरे दशकंधर ! मैं तुझसे ही कह रहा हूँ कि तू भूलकर भी रामसे वैर मत ठान। महाबली बालि और खर-दूषण आदि जो वीर दीवालके सामने दौड़े (उनसे उलझे) वे ही औंधे मुँह जा गिरे। तेरी भी कुछ ऐसी ही दशा होनेवाली है। नहीं तो, यदि तू सुख चाहता हो तो जानकीको लेकर उनसे जा मिल। अरे रावण ! (तुलसीदास कहते हैं कि) राम जब क्रोध कर बैठेंगे तो सैकड़ों ब्रह्मा, बिष्णु और शिव भी तेरी रक्षा नहीं कर पावेंगे ॥ १२ ॥ तू राक्षसोंका महाराज है और मैं रामके सेवक (सुग्रीव)-का भी सेवक हूँ। अपनी गलीमें तो कुत्ता भी बलवान् (शेर) होता है। तुझे मेरे सामने गाल बजाते लाज नहीं आती ? यदि मुझे रामकी आज्ञाका उल्लंघन करनेका डर न होता तो तेरी बीसों भुजाएँ और दसों सिर उखाड़ लेता (काट डालता) और जैसे गजराजको सिंह

१. रावण जब बालिसे लड़ने गया तो बालिने उसे काँखमें दबा रक्खा। एक दिन वह संध्या कर रहा था तो रावण खिसक कर निकल भागा था। २. बिड = विट (नीच)। ३. घलुआ = थोड़ा, तुच्छ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बीस भुजा दससीस हरौं, न डरौं प्रभु आयसु-भंग-तें जौ हौं।
खेत-में केहरि-ज्यों गजराज दलौं दल, बालि-को बालक तौ हौं॥ १३॥
कोसलराजके काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह चपेट-की चोट चटाक दै फोरौं।
आयसु-भंग-तें जौ न डरौं, सब मीजि सभासद सोनित खोरौं[1]।
बालिको बालक जौ 'तुलसी' दसहू मुखके रनमें रद तोरौं'॥ १४॥
अति कोप-सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक ससंकित सोर मचा।
तमके घननादसे बीर पचारि-कै, हारि निसाचर-सैन पचा।
न टरै पग मेरुहुतें गरु भो, सो मनो महि-संग बिरंचि रचा।
'तुलसी' सब सूर सराहत हैं, 'जगमें बलसालि है बालि-बचा'॥ १५॥

घनाक्षरी

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल, लागे भट सिमिटि न नैकु टसकत है।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत, धराधर धीर भार सहि न सकत है।

पछाड़ मारता है वैसे ही जब मैं युद्ध-क्षेत्रमें तुझे और तेरी सेनाको पछाड़ मारूँगा तभी समझना कि मैं बालिका पुत्र हूँ॥ १३॥ कोशलराज रामके कार्यके लिये आज मैं चाहूँ तो त्रिकूट पर्वत उखाड़कर समुद्रमें ले जा डुबो सकता हूँ। मैं अपने दोनों प्रचंड भुजदंडोंकी चपेटसे सारे ब्रह्माण्डको पीसकर चूर-चूर कर सकता हूँ। यदि मुझे रामकी आज्ञा भंग करनेका डर न होता तो तेरे सारे सभासदोंको चुटकीमें मसलकर उनके रक्तमें नहा डालता। (तुलसीदास कहते हैं –) यदि मैं बालिका पुत्र हूँ तो रणभूमिमें तेरे दसो मुँहोंके एक-एक दाँत तोड़े बिना चैन न लूँगा'॥ १४॥ तुलसीदास कहते हैं कि (ऐसा कहकर) अंगदने क्रोधसे लाल होकर रावणकी सभामें अपना पाँव बढ़ा जमाया। यह देखकर तो सारी लंका घबरा उठी और चारों ओर हल्ला मच गया। मेघनाद-जैसे बीर बड़ी तमकके साथ ललकारते हुए उठे तो सही (पर जब अंगदका पाँव किसीके उठाए न उठ पाया तो सब अपना-सा मुँह लेकर हारकर बैठ गए। सारी राक्षसी सेना भी (बल लगाकर) थक मरी, (पर अंगदका पैर किसीके टसकाए न टसक पाया)। वह पाँव सुमेरु पर्वतसे भी इतना भारी हो गया था मानो ब्रह्माने उसे भी पृथ्वीके साथ ही रच धरा हो। सब लोग प्रशंसा कर उठे कि संसारमें यदि कोई एक मात्र बलशाली पुरुष है तो वह बालिका पुत्र अंगद ही है॥ १५॥ तुलसीदास कहते हैं कि अंगदने रामके बलका विचार करके (रावणकी सभामें) यह प्रण करके पैर जमा दिया कि 'यदि कोई मेरा पैर सरका या उठा देगा तो राम लौट जायंगे और मैं सीताको हार जाऊँगा।' बहुतसे वीर जुटकर उसे उठाने तो चले परन्तु वह टसककर न दिया। पृथ्वी भी अपना धीरज खो बैठी, पर्वत भी धँस चले, परम धैर्यवान् शेष भी उनका भार नहीं सह पाए। बालिके पुत्र महाबली अंगदके दबानेसे

---

१. खोरौं=स्नान करूँ, नहाऊँ। २. बिड=विट, नीच, खल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाबली बालिको दबत, दलकति भूमि, तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकत है।
कमठ कठिन पीठ, घट्टा परो मंदर-को, आयो सोइ काम, पै करेजो कसकतु है ॥ १६ ॥

भूलना

कनक-गिरि-सृंग चढ़ि देखि मर्कट-कटक, बदति मंदोदरी परम भीता।
'सहसभुज-मत्त-गजराज-रन-केसरी-परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता।
'दास तुलसी' समर-सूर कोसल धनी, ख्याल ही बालि बलसालि जीता।
कंत! तृन दंत गहि, 'सरन श्रीराम' कहि, अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता ॥ १७ ॥
रे नीच! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का, भंजि सिव-चाप सुख सबहिं दीन्ह्यो।
सहस दस-चारि-खल-सहित खर-दूषनहिं, पठै जम-धाम, तैं तउ न चीन्ह्यो।
मैं जु कहौं कंत! सुनु, संत भगवंत-सों बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो?
बीस भुज, सीस दस, खीस गए तबहिं जब ईसके ईस-सों बैर कीन्ह्यो ॥ १८ ॥
बालि दलि काल्हि, जलजान पाषान किय, कंत! भगवंत तैं तउ न चीन्हें।
बिपुल बिकराल भट भालु-कपि काल-से, संग तरु तुंग, गिरि-सृंग लीन्हें।
आइगे कोसलाधीस तुलसीस जेहि छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें।
ईस-बकसीस जनि खीस करु ईस! सुनु, अजहुँ कुल-कुसल बैदेहि दीन्हें ॥ १९ ॥

पृथ्वी काँप उठी, समुद्रमें ज्वार आ गया और सुमेरु पर्वतमें दरारें पड़ गईं। कच्छपकी कठोर पीठपर मंदराचलका जो घट्ठा पड़ गया था वही इस समय बहुत काम आया (उसीसे सहारा मिला) फिर भी उसका कलेज तो धुकधुक करता ही रहा ॥ १६ ॥

स्वर्णगिरि (त्रिकूट)-के शिखरपर चढ़कर जब मन्दोदरीने वानरोंकी सेना देखी, तब अत्यन्त भयाकुल होकर वह रावणसे कहने लगी—'जिनको देखकर सहस्रबाहु-रूपी मतवाले हाथीको रणमें सिंहके समान पछाड़ डालनेवाले परशुरामका गर्व जाता रहा और तुलसीदासके जिन रणबाँकुरे कोशलेश रामने अत्यन्त बलवान् बालिको खेल-खेलमें ही जीत धरा, हे कन्त! दाँतों तले तिनका दबाकर (गौ बनकर) और 'मैं रामकी शरण हूँ' यह कहते हुए अब भी सीता ले जाकर उनके हाथ सौंप दो ॥ १७ ॥ अरे नीच! जिस रामने मारीचको त्रस्त करके (बिना फलके बाणसे समुद्रके तीरपर उठा फेंककर) ताड़काको मार डाला, शिवका धनुष तोड़कर सबको प्रसन्न कर दिया तथा चौदह सहस्र राक्षसोंकी विशाल सेनाके साथ खर और दूषणको यमलोक भेज पहुँचाया उसे अबतक भी तुम नहीं पहचान पाए! स्वामी! मैं जो बात कहती हूँ उसे ध्यानसे सुन लो। बताओ भगवान् रामसे वैर ठानकर भला बालिके हाथ क्या लग पाया? तुम्हारी बीसों भुजाएँ और दसों सिर तो तभी नष्ट हो चुके जब तुमने शिवके स्वामी (राम)-से वैर मोल लिया ॥ १८ ॥ अभी कल की (थोड़े दिन पहलेकी) ही बात है कि उन्होंने बालिको मारकर समुद्रमें पत्थरोंको नाव बना दिया। इतनेपर भी स्वामी! तुम भगवान्‌को नहीं पहचान पाए? जिनके साथ कालके समान बहुतसे भयंकर भालू और बंदर वीर हाथमें बड़े-बड़े वृक्ष तथा पर्वत-शृङ्ग लिए आ पहुँचे हैं, तथा जो राजछत्र गिराकर[1] तुम्हारे दसों सिर छेद चुके हैं, वे ही तो तुलसीदासके प्रभु कोशलेश राम आए हुए हैं। स्वामी! मेरी बात मान लो। शिवके दिए हुए इस वैभवको नष्ट न होने दो। जानकी दे डालनेसे अब भी तुम्हारे कुलका कल्याण हो सकता है (नहीं तो कुल-सहित

१. छत्र, मुकुट ताटंक सब, हते एक ही बान। —रामचरितमानस

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सैन-के कपिन-को को गनै अर्बुदै, महा बलबीर हनुमान जानी।
भूलिहै दस दिसा, सेस पुनि डोलिहै, कोपि रघुनाथ जब बान तानी।
बालिहू गर्व जिय माहिँ ऐसो कियो, मारि दहपट कियो जम-की घानी।
कहति मंदोदरी, सुनहि, रावन! मतो, बेगि लै देहि बैदेहि रानी॥ २०॥
गहन उज्जारि, पुर जारि, सुत मारि तव, कुसल गो कीस, बर बैरिखा[1] जाको।
दूसरो दूत, पन रोपि, कोप्यो सभा, खर्ब कियो, सर्ब-को गर्ब थाको'।
'दास तुलसी' सभय बदति मयनंदिनी, 'मंदमति कंत! सुनु मंत म्हाको।
तौंलौं मिलु बेगि नहिँ जौंलौं रन रोष भयो, दासरथि बीर बिरुदैत बाँको'॥ २१॥

घनाक्षरी

कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं, नगर प्रजाप्यो सो बिलोक्यो बल कीस-को।
तुम्हैं बिद्यमान जातुधान-मंडली-में, कपि कोपि रोप्यो पाँय, सो प्रभाव तुलसीस-को।
कंत! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि, हातो[2] कीजै हीय-तें भरोसो भुज बीस-को।
तौंलौं मिलु बेगि, जौंलौं चाप न चढ़ायो राम, रोषि बान काढ़्यो न दलैया दससीस-को॥२२॥

तुम्हारा सर्वनाश अब निकट ही है)॥ १९॥ उन (राम)-की सेनाके वानरोंकी गिनती भला कौन कर सकता है? उन सबको अरबों महाबली वीर हनुमान् ही समझो! जब राम क्रोध करके बाण चढ़ाने लगेंगे तब तुम्हें दसों दिशाएँ भूल जायँगी और शेष काँपने लगेंगे। बालिने भी तो अपने मनमें ऐसा ही गर्व किया था किन्तु इन्होंने उसे मारकर उसका मटियामेट करके उसे यमराजकी राजधानीमें भेज पहुँचाया।' मन्दोदरी कहने लगी—'देखो रावण! मेरी बात मान लो। झटपट रानी जानकीको ले जाकर उनके हाथ सौंप दो॥ २०॥ रामके जिस पहले दूत (हनुमान)-के श्रेष्ठ यशकी पताका फहरा रही है (जिसका यश चारों ओर फैला हुआ है) वह तुम्हारा अशोक वन उजाड़ कर, नगर जलाकर और तुम्हारे पुत्र (अक्षकुमार)-को मारकर कुशल-पूर्वक यहाँसे चला गया (उसका कोई कुछ न बिगाड़ सका)। उनके दूत (अंगद)-ने क्रोध करके सभामें प्रण-पूर्वक पैर उठा रोपा और तुम्हारा एवं सब वीरोंका गर्व चूर-चूरकर सबको नीचा दिखाकर चला गया।' तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी भयभीत होकर कहती जा रही थी—'हे मन्दबुद्धि स्वामी! मेरी बात मान लो, जबतक प्रबल वीर और यशस्वी राम युद्धमें क्रुद्ध नहीं होते, उससे पहले ही तुम उनसे जाकर मिल लो॥ २१॥ जिसने अशोक-वन उजाड़कर, अक्षकुमारको मारकर तुम्हारी सारी सेना मसल डाली और नगरको भली प्रकार फूंककर भस्म कर डाला उस वानरका बल तो तुम देख ही चुके हो। फिर तुम्हारे देखते-देखते दूसरे वानर अंगदने उस राक्षस-मंडलीमें क्रोध करके पैर ला रोपा (जमाया, जिसे कोई भी टसका तक न सका), यह सब तुलसीके प्रभु रामका ही प्रभाव था। इसलिये नाथ! मेरी बात मान लो। कुलका नाश हो गया तो सब समाप्त हो जायगा। अतः, अब अपने चित्तसे अपनी बीस भुजाओंका भरोसा छोड़ निकालो और जबतक राम अपना धनुष नहीं चढ़ाते और क्रुद्ध होकर तुम्हारे दसो शिरोंको छेदन करनेवाला बाण नहीं निकालते, उससे पहले

---

१. बर-बैरिखा = वह झंडा जो विजय या जो बस्ती बसानेके चिह्नके रूपमें गाड़ा जाता है। (यह तुर्की शब्द 'बेरक़'से बना है) २. हातो कीजै = दूर कीजिए। त्याग दीजिए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पवन-को पूत देखौ दूत बीर बाँकुरो, जो बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो।
बालि बलसालि-को, सो काल्हि दाप दलि, कोपि रोप्यो पाउँ, चपरि चमू-को चाउ चाहिगो।
सोई रघुनाथ कपि-साथ पाथनाथ-बाँधि, आए नाथ! भागे-तें खिरिरि[1] खेह खाहिगो।
'तुलसी' गरब तजि, मिलिबे को साज सजि, देहि सिय न तौ, प्रिय! पाइमाल[2] जाहिगो॥२३॥
उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार, केसरी-कुमार सो अदंड-कैसो डाँड़िगो।
बाटिका उजारि, अच्छ-रच्छकनि मारि, भट भारी भारी रावरे-के चाउर-से काँड़िगो।
'तुलसी' तिहारे बिद्यमान जुवराज आज, कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो।
कहे-की न लाज, पिय! अजहूँ न आए बाज, सहित-समाज गढ़ राँड-कै-सी भाँड़िगो॥ २४॥
जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हें, पैयत न छत्री खोज खोजत खलक-में।
माहिषमती[3]-को नाथ साहसी सहसबाहु, समर-समर्थ, नाथ! हेरिए हलक-में।
सहित-समाज महाराज सो जहाजराज बूड़ि गयो जाके बल-बारिधि-छलक-में।
टूटत पिनाक-के मनाक बाम राम-से, ते नाक बिनु भये भृगुनायक पलक-में॥ २५॥

शीघ्र ही जाकर उनसे मिल लो (उनकी शरणमें जा पहुँचो)' ॥२२॥ (तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी समझाने लगी–) 'देखो, हनुमान्‌को रामका बड़ा ही बाँका दूत समझो जिसने लंका-जैसे दुर्गम दुर्गको धक्के मारकर ढाह गिराया। महान् बलवान् बालि-पुत्र अंगद, जो अभी कल ही आया है उसने सबका गर्व चुर चूरकर क्रोध करके प्रतिज्ञा करके सभामें पाँव रोप दिया (जिसे कोई भी टसका न सका) और बड़ी फुर्तीसे तुम्हारी सारी सेनाका साहस देख गया। वही राम वानरोंको साथ लिए हुए समुद्र बाँधकर यहाँ पहुँचे हैं। नाथ! अब तो भागनेपर धूल ही खरोंच-खँरोचकर फाँकनी पड़ जायगी। इसलिये अभिमान छोड़कर प्रभुसे मिलनेकी (संधि करनेकी) तैयारी कर डालो और सीता ले जाकर सौंप दो। नहीं तो प्रिय! तुम नष्ट हो जाओगे ॥ २३ ॥ केसरी-कुमार हनुमान्‌को अपार समुद्र लाँघनेमें कुछ भी देर न लगी। वह तुम्हारे जैसे व्यक्तिको, जिसे कोई दंड नहीं दे पा सकता, उसे भी कैसा दण्ड दे गया कि बाटिका उजाड़ डाली, अक्षकुमारको मार डाला और तुम्हारे बड़े-बड़े वीर योद्धाओंको धानके समान कूट गया। आज तुम्हारे देखते-देखते अंगद क्रोधपूर्वक अपना पाँव रोपकर जो सबको जीता छोड़ गया यह उसकी कृपा ही समझो। देखो प्रिय! तुम्हें तो कहने-सुननेकी कुछ लाज है नहीं। तुम अब भी (अपने हठसे) बाज नहीं आते। आज अंगद समाज-सहित सम्पूर्ण गढ़को ऐसे घूम-घूमकर ऐसे देख गया जैसे वह राँड़का घर हो ॥२४॥ जिसका क्रोध ऐसा असह्य था जैसे त्रिदोष (बात पित्त-कफ बिगड़ने)-का दाह होता है और जिसके क्रोधके कारण संसारमें खोजनेपर भी क्षत्रियोंका कहीं नाम नहीं मिलता था, नाथ! तनिक अपने हृदयमें सोच देखिए कि माहिष्मती पुरीका राजा साहसी सहस्राबाहु रणमें कैसा पराक्रमी था। किन्तु महाराज! वही सहस्राबाहु-रूपी महान् जहाज अपने समाज-सहित जिस परशुरामके बलरूपी समुद्रकी हिलोरमें ही डूब गया वही परशुराम धनुष टूटनेपर जब रामसे कुछ टेढ़े हो चले तो क्षण भरमें अपनी नाक कटा बैठे (प्रतिष्ठा, मर्य्यादा और गर्व खो बैठे) उनकी सारी वीरता निष्फल हो गई। जिन्होंने (परशुरामने) राजाओंका संहार कर

---

१. खिरिरि=खरोंचकर। २. पाइमाल = (फ़ारसी शब्द 'पामाल') बरबाद होना। ३. मंडला नगर (मध्य प्रदेश)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कीन्हीं छोनी छत्री-बिनु, छोनिप-छपन-हार कठिन कुठार-पानि बीर-बानि जानि-कै।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन-पै, जब धनुहाई ह्वैहै मन अनुमानि-कै।
नाक-में पिनाक-मिस बामता बिलोकि राम रोक्यो परलोक, लोक भारी भ्रम भानि-कै।
नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय! मिलिए पै नाथ! रघुनाथ पहिचानि-कै॥ २६॥
कह्यो मत मातुल, बिभीषनहू बार बार, आँचर पसारि पिय पाँइ लै-लै हौं परी।
बिदित बिदेहपुर, नाथ! भृगुनाथ-गति, समय सयानी कीन्हीं जैसी आइ गौं परी।
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि, बैर रघुबीर-के न पूरी काहु-की परी।
कंत! बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल, ख्याल लंका लाइ कपि राँड़-की-सी झोंपरी॥ २७॥

सवैया

राम-सों साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे।
आपनि सूझि कहौं, प्रिय! बूझिए जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे।
नाथ! सुनी भृगुनाथ-कथा, बलि बालि गए चलि बात-के साँठे।
भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनि सायर-काँठे[1]॥ २८॥

डाला है और कई बार पृथ्वीसे क्षत्रिय मिटा डाले, उन्हीं कुठार धारण करनेवाले (परशुराम)-का वीर स्वभाव समझकर, राजाओं और लोकपालोंपर परम कृपा करके रामने मनमें अनुमान किया कि जिस समय इनका परशुरामके साथ युद्ध होगा उस समय इन सब राजाओं और लोकपालोंकी क्या दशा होगी? अतः पिनाक (शिवका धनुष) तोड़नेके बहाने इनकी सारी प्रतिष्ठा नष्ट कर डाली तथा रामने उनके परलोक-प्राप्तिका मार्ग भी रोक दिया। इसलिये प्रिय! अपने दसों सिर धरतीपर टेककर तथा बीसों हाथ जोड़कर रामको जगदीश्वर पहचानकर उनसे जा मिलिए (उनकी शरणमें चले जाइए)' ॥ २६॥ 'देखो प्रिय! तुम्हारे मामा (मारीच) और विभीषणने तुम्हें बार-बार समझाया और मैंने भी आँचल पसारकर और पैरों पड़कर कई बार कहा (कि जानकीको लौटाकर रामकी शरण)-में जा पहुँचो। नाथ! जनकपुरमें परशुरामकी जो गति हुई थी वह सब आपको विदित ही है। उन्होंने समयके अनुसार बड़ी चतुराईसे काम लिया (रामसे हार मानकर, अपना शार्ङ्ग धनुष उन्हें सौंपकर और उनकी शरण लेकर अपनी प्रतिष्ठा बचा ली)। देखिए वायस (जयन्त), विराध, खर, दूषण, कबंध और बालि, जिसने भी रामसे बैर ठाना उनमेंसे किसीका भला नहीं हुआ। इसलिये स्वामी! बीसों आँखें खोलकर इन कुविचारोंका परिणाम भली भाँति समझ लो। यह भी देख लो कि कपि हनुमानने खेल-खेलमें ही लंका जलाकर उसे राँड़की झोपड़ीके समान (अनाथ घर) बना दिया॥२७॥ देखो, रामसे मेल करके रहनेमें ही सदा हित (कल्याण) होगा। अतः, जो काम प्रेमसे सध सके उसमें क्रोध न कीजिए। प्यारे! मैं तो अपनी बुद्धिके अनुसार कहती हूँ। आप भी उसपर विचार कर लीजिए। ऐसे अवसरपर युद्ध करना तनिक भी उचित नहीं है, अपितु हट जाना ही श्रेयस्कर है। नाथ! आप परशुरामकी कथा तो सुन ही चुके हैं। अपनी टेकपर अड़े रहनेके कारण ही बलवान् बालि भी खेत आया। देखिए! आपके भाई विभीषणने जब सुना कि राम समुद्रके तटपर आकर पड़ाव डाले बैठे हैं तब वे

---

१. काँठे=किनारे, तटपर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पालिबे-को कपि-भालु-चमू जम काल करालहु को पहरी है।
लंक-से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे-को कहरी[1] है।
तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर-को सूनु बड़ो बहरी[2] है।
नाथ ! भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है ॥ २९ ॥

घनाक्षरी

रोप्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत, जानत जे रीति सब संजुग समाज-की।
चली चतुरंग चमू चपरि हने निसान, सेना सराहन-जोग रातिचर-राज-की।
'तुलसी' बिलोकि कपि-भालु किलकत, ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज-की।
राम-रुख निरखि हरषे हिय हनुमान, मानो खेलवार खोली सीस-ताज बाज-की ॥ ३० ॥
साजिकै सनाह गज-गाह[3] स-उछाह दल, महाबली धाए बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु-बंदर बिसाल मेरु मंदर-से, लिये सैल, साल तोरि नीरनिधि-तीर के।
'तुलसी' तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध, सेनप सराहैं निज निज भट भीर के।
रुंडन-के झुंड झूमि झूमि झुकरे[4]-से नाचैं, समर सुमार सूर मारे रघुबीर-के ॥ ३१ ॥

जाकर उनसे मिल गए और उन्होंने अपना काम बना लिया ॥ २८ ॥ नाथ ! यह पवन-पुत्र हनुमान् वानरों और भालुओं की सेनाका पालन एवं रक्षा करनेके लिये यमराज और कालसे भी अधिक भयंकर रखवाला है। वह इतना उत्पाती है कि लंकाके समान विकट महा दुर्गम गढ़ गिराने और जलानेमें उसे बड़ा आनन्द आता है। मतवाले राक्षसोंकी सेना-रूपी तीतरको मार डालनेके लिये वह बहरी (बाज, शिकारी पक्षी) के समान है। इसलिये नाथ! अब रामसे मेल कर लेनेमें ही आपकी भलाई है, क्योंकि राक्षसोंकी सेना हृदयमें थर्राई बैठी है (वह उनसे लड़ नहीं पावेगी)' ॥ २९ ॥

क्रुद्ध होकर रावणने बड़े-बड़े वीर बानैतों (प्रसिद्ध वीरों)-को बुलवा भेजा जो युद्धकी तैयारीकी सारी रीतियाँ भली-भाँति जानते थे। उनके आ जानेपर बड़े तपाकसे नगाड़े बजाती हुई उसकी चतुरंगिणी सेनाने कूच कर दिया। राक्षसराज रावणकी यह सेना सचमुच सराहने-योग्य थी। तुलसीदास कहते हैं कि उस सेनाको देखते ही वानर-भालू इस प्रकार किलकारी मार उठे, जैसे अच्छे भोजनको पत्तल देखकर कंगाल उसपर टूट पड़ते हैं। उस समय रामका रुख (युद्धके लिये विचार) देखकर हनुमान् अपने हृदयमें ऐसे प्रसन्न हुए मानो शिकारीने बाजके सिरकी टोपी (कुलही) खोल उतारी हो (जैसे टोपी खोल देनेपर बाज निर्दिष्ट शिकारपर टूट पड़ता है, वैसे ही हनुमान् भी राक्षसोंकी सजी सजाई सेना देखकर उसपर जा टूटे) ॥ ३० ॥ रणधीर रावणके महान् बलवान् वीरोंका दल कवच पहन-पहनकर और हाथियोंपर झूल सजा-सजाकर उत्साहपूर्वक रणभूमिकी ओर बढ़ चला। इधर (रामकी ओर) मेरु और मंदराचलके समान बड़े-बड़े विशाल वानर और भालू समुद्र-तटके पर्वत और शाल वृक्ष उखाड़ और तोड़-तोड़कर हाथमें लिए खड़े थे। तुलसीदास कहते हैं कि वे सब तमतमाकर बड़े क्रोधमें भरकर युद्ध करनेके लिए भिड़ पड़े। दोनों दलोंके सेनापति अपने-अपने वीरोंको बढ़ावा दिए जा रहे थे। रामके मारे हुए शत्रु सैनिकोंके धड़ मतवालोंके

---

१. कहरी = [अरबी क़हर] विध्वंसक २. बहरी = एक प्रकार का शिकारी पक्षी। ३. गजगाह = हाथीकी झूल। ४. झुकरे-से = झुँझलाए हुए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सवैया

तीखे तुरंग, कुरंग, सुरंगन साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हैं मन-में, कबहूँ न भए रन-में तनु ढीले।
'तुलसी' गज-से लखि केहरि-लौं झपटे, पटके सब सूर सलीले[३]।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले॥ ३२॥
सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे, बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली, बिजयी सब भाँति भले हैं।
'तुलसी' जिन्हैं धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि-सों मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन दानि-ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥ ३३॥
गहि मंदर बंदर-भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुर-दावन-के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन-के।
रन मारि मची उपरी-उपरा, भले बीर रघुप्पति-रावन-के॥ ३४॥
सर, तोमर, सेल-समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर-के।
इत-तें तरु, ताल, तमाल चले, खर-खंड प्रचंड महीधर-के।

समान झूम-झूमकर झुँझलाते हुए नाचे जा रहे थे॥३१॥ जिन्हें अपनी वीरताका बड़ा गर्व था और रणमें जिन्होंने कभी पैर पीछे नहीं दिया (जो रणमें कभी हारे नहीं), ऐसे चुने हुए छबीले वीर हरिण-के समान तेज दौड़नेवाले तथा सुन्दर रंगवाले घोड़े सजा-सजाकर उनपर जा सवार हुए। तुलसीदास कहते हैं कि हठीले हनुमान् (शत्रु पक्षके) उन वीरोंको हाथीके समान समझकर स्वयं सिंहके समान उन्हें खेल-खेलमें ही झपटकर पटकते चले जा रहे थे। वे (राक्षस) घूम-घूमकर पृथ्वीपर गिर-गिरकर कराहते जा रहे थे। इस प्रकार हठीले हनुमानने ललकार-ललकारकर सब राक्षसोंका कचूमर निकाल डाला॥ ३२॥ बड़े-बड़े सजीले वीर सुन्दर घोड़े सजा-सजाकर और तीखे भाले ले-लेकर घोड़ोंकी चाल मिलाए हुए (एक पंक्ति बाँधकर) चले जा रहे थे। उनकी भुजाएँ भरी हुई तथा शरीर बलसे पूर्ण भारी भरकम था। वे सब प्रकारसे बली, विजयी और भले जान पड़ रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि जिनके दौड़नेसे पृथ्वी काँपने लगती है और जिनके गहरे धक्केसे पर्वत काँप उठता है, ऐसे लाखों तीखे रण-वीरोंको भी लक्ष्मणने युद्धभूमिमें इस प्रकार मारकर ढेर कर डाला जैसे किसी दानीने दरिद्रताको दबाकर दूर कर डाला हो॥ ३३॥ बन्दर और भालू पर्वतोंकी (शिलाएँ) ले-लेकर इस प्रकार युद्ध-भूमिकी ओर चल पड़े जैसे सावनकी घटा घिरी चली आ रही हो। तुलसीदास कहते हैं कि उधर देवताओंका नाश करनेवाले रावणके वीर योद्धा भी झुंडके झुंड झपटे चले आ रहे थे। हठपूर्वक वैर बढ़ानेवाले रावणके बहुतसे यशस्वी वीर जो रणभूमिमें अड़कर आ खड़े हुए थे वे एक दूसरेसे ऐसे भिड़ पड़े कि हटाए नहीं हट पा रहे थे। इस प्रकार राम और रावणके वीरोंमें होड़ लग कर बड़ी भयंकर लड़ाई छिड़ गई॥ ३४॥ रावणके वीर बाण, तोमर और भाले चलाकर मार रहे थे। इधर (वानर भी) ताड़ और तमालके पेड़ उखाड़-उखाड़कर और पर्वतोंकी तीखी तीखी चट्टानें फेंक-फेंककर मार रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि सभी (दोनों

३. सलीले=खेलमें।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' करि केहरि-नाद भिरे, भट खग्ग खगे, खपुवा[1] खरके।
नख-दंतन - सों भुजदंड बिहंडत, मुंड - सों मुंड परे झर - के ॥ ३५ ॥
रजनीचर मत्त गयंद-घटा बिघटै मृगराज-के साज लरै।
झपटै, भट कोटि मही पटकै गरजै रघुबीर-की सौंह करै।
'तुलसी' उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर, को धीर धरै ?
बिरुझो रन मारुत-को बिरुदैत, जो कालहु काल-सों जूझि परै ॥ ३६ ॥
जे रजनीचर बीर, बिसाल, कराल बिलोकत, काल न खाए।
ते रन रार कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए ॥
लूम लपेटि, अकास निहारि-कै हाँक हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात, चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आए ॥ ३७ ॥
जो दससीस महीधर-ईस-को, बीस भुजा खुलि खेलनहारो।
लोकप, दिग्गज, दानव-देव सबै सहमे सुनि साहस भारो।
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हनी मुठिका, गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज-को मारो ॥ ३८ ॥

ओरके) वीर घोर गर्जन करते हुए जा भिड़े। उनमें जो शूरवीर थे वे तो तलवारोंसे युद्ध करने लगे, जो कायर थे वे रणक्षेत्र छोड़कर भाग खड़े हुए। इधर वानर अपने नखों और दाँतोंसे राक्षसोंकी भुजाएँ नोच-काटकर गिराए जा रहे थे और उनके सिर जो कटकर धरतीपर गिरते थे उन्हींको उठा-उठाकर फककर मारते जा रहे थे ॥ ३५ ॥ मतवाले हाथियोंके समान राक्षसोंपर सिंहके समान झपटकर हनुमान् युद्ध कर रहे थे। वे करोड़ों वीरोंको भूमिपर पटकर गरज रहे थे और रामकी दुहाई देते जा रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि उधर रावण प्रचंड स्वरमें ललकार रहा था जिसे सुनकर इधरके वीर अचेत हो-होकर गिरे पड़ रहे थे। ऐसा कौन वीर था (कोई नहीं था) जो (रावणकी ललकार सुनकर भी) धैर्य धारण कर सके। इसी बीच वीर पवनपुत्र हनुमान् युद्धभूमिमें इस प्रकार जा भिड़े मानो उस समय वे कालके भी काल बन आए हों ॥ ३६ ॥ जिन विशाल वीर राक्षसोंको भयंकर समझकर काल भी नहीं खा पाया था (जो किसीसे मारे नहीं मारे जा सके थे) उन्हें बड़े बलवान् केसरी-किशोर हठी हनुमान्ने इस भीषण युद्धमें दाँव लगाकर अपनी पूँछमें लपेटकर और आकाशकी ओर देखकर ललकारकर ऊपर उछाल दिया। आकाशकी ओर जाते हुए उनके शरीर सूख गए और वहाँ वे वायुके बवंडरकी लपेटमें ऐसे जा पड़े कि फिर लौटकर पृथ्वीपर नहीं आ पाए ॥ ३७ ॥ जो रावण शिवके कैलास पर्वतको अपनी बीसों भुजाओंसे उठाकर स्वच्छन्द खेल करता था, जिसका भारी साहस सुनकर लोकपाल, दिक्पाल, दैत्य और देवता भी सभी काँपते थे, जो बड़ा यशस्वी और बलशाली वीर था तथा जिसकी कीर्ति-कथा आज भी जगत्में गाई जाती है, उस रावणको हनुमान्ने ऐसा घूँसा जमाया कि वह पृथ्वीपर इस प्रकार ढनमनी खाता हुआ जा गिरा जैसे वज्रके प्रहारसे भारी पहाड़ ढह पड़ा हो ॥ ३८ ॥ जिन

---

१. खपुवा=भगोड़े, निकम्मे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुर्गम दुर्ग पहार-तेँ भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं।
लक्ख-मेँ पक्खर, तिक्खन तेज, जे सूर समाज-मे गाज गने हैं।
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम दिखावत बंधु-को, घूमत घायल घाय घने हैं॥ ३९॥

घनाक्षरी

हाथिन-सोँ हाथी मारे, घोड़े घोड़े-सोँ सँहारे, रथनि-सोँ रथ बिदरनि बलवान-की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं, हहरानी फौजैं भहरानी जातुधान-की।
बारबार सेवक-सराहना करत राम, 'तुलसी' सराहै रीति साहेब सुजान-की।
'लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट, देखौ देखौ, लखन! लरनि हनुमान-की' ॥४०॥
दबकि दबोरे एक, बारिधि-मेँ बोरे एक, मगन मही - में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे, एक चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं।
'तुलसी' लखत राम, रावन, बिबुध, बिधि, चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े, जातुधान जूथप निपाते बात-जात हैं॥ ४१॥
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर, धाये जातुधान हनुमान लियो घेरि-कै।
महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि-कै।

योद्धाओंके महा प्रचंड भुजदंड दुर्गसे भी दुर्गम और पर्वतसे भी भारी थे, जो कवचके समान लाखों-की रक्षा कर सकते थे, जो बड़े तेजस्वी थे और जो योद्धाओंमें वज्रके समान कठोर गिने जाते थे, उन्हीं रणबाँकुरे बलवान् वीरोंको हठी हनुमान्‌ने ललकार-ललकारकर मार डाला। राम उन सब योद्धाओंके नाम लेकर ले-लेकर भाई लक्ष्मणको दिखाते चल रहे थे जो बहुत घायल होकर चक्कर खाते घूम रहे थे ॥ ३९ ॥ हनुमान्‌ने हाथीसे हाथियोंको दे मारा, घोड़ोंसे घोड़ोंको दे पछाड़ा और रथियोंको रथों से चूर-चूर कर डाला। हनुमानकी चटाचट चपेट, चरणोंकी लात और चुटकी काटना देख-देखकर राक्षस घबरा उठे और धड़ाधड़ धरतीपर गिरने लगे। राम अपने सेवक हनुमानकी बार-बार सराहना किए जा रहे थे और तुलसीदास अपने प्रभु रामकी इस (सेवककी सराहना करनेकी) रीतिकी सराहना कर रहे हैं। योद्धाओंको अपनी लम्बी पूँछसे लपेटकर पटकते हुए हनुमान्‌की पूँछ कैसी शोभा दे रही है इसे लक्ष्मणको दिखाकर राम कह रहे हैं—'देखो लक्ष्मण! हनुमान्‌का लड़ना तो देखो कैसे लड़ रहे हैं' ॥ ४० ॥ हनुमान्‌ने किसीको लपककर घर दबोचा, किसीको समुद्रमें ले जा डुबोया, किसीको धरतीमें खोद गाड़ा, किसीको आकाशमें उछाल उड़ाया, किसीका हाथ पकड़कर पछाड़ मारा, किसीके पैर उखाड़ फेंके, किसीको चीर-फाड़ डाला और किसीको लातसे मसलकर पीस डाला। तुलसीदास कहते हैं कि उन्हें (हनुमान्‌को) देखकर राम, रावण, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और चण्डिका सब मनही मन उनकी वीरताकी प्रशंसा किए जा रहे थे। हनुमान्‌ने बड़े-बड़े बानेतों (प्रसिद्ध वीरों) तथा वीर बलवान् राक्षसोंके सेनापतियोंको ढेर कर डाला ॥ ४१ ॥ तब बड़ी प्रचंड भुजाओंवाले बलवान् वीर राक्षसोंने दौड़कर हनुमान्‌को आ घेरा। महान् बलशाली हनुमान्‌ने भी सिंहके समान गरजकर योद्धाओंको अपनी पूँछमें लपेटकर घुमा-घुमाकर जहाँ-तहाँ दे पटका। उन्होंने लातोंकी मारसे उनके अंग-अंग तोड़ डाले।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात, कहैं 'तुलसीस राखि राम-की सौं' टेरि-कै।
ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं, हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि-कै॥ ४२॥
जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर, जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह-सी।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत, जोहि जातुधान-सेना चलै लेत थाह-सी।
कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय-काय, कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह-सी।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो बीर रघुबीर-को समीर-सूनु साहसी॥ ४३॥

भूलना

मत्त-भट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल-सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठ, सेस संकुचित, संकित पिनाकी।
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल, बिकल बिधि बधिर दिसि-बिदिस झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत सुनत हनुमान-की हाँकी बाँकी॥ ४४॥
कौन-की हाँक-पर चौंक चंडीस, बिधि, चंडकर थकित फिरि तुरंग हाँके।
कौन-के तेज बल-सीम भट भीम-से, भीमता निरखि कर-नयन ढाँके।
दास-तुलसीस-के बिरुद बरनत बिदुष, बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक, नरलोक, पाताल कोउ कहत किन, कहाँ हनुमान-से बीर बाँके॥ ४५॥

फिर क्या था! वे (राक्षस) हाय-हाय करते हुए भाग खड़े हुए और चिल्लाने लगे, 'हे तुलसीके प्रभु राम! हमारी रक्षा कीजिए।' वे ठौर-ठौरपर पड़े ऐसे कराह-कराह उठते थे कि उन्हें देख-देखकर शिव और सिद्धगण भी ठहाका मारकर हँस रहे थे॥ ४२॥ जिसकी बाँकी वीरताकी बात सुनकर वीर लोग भयभीत हो उठते हैं, जिसके प्रतापकी आँचसे अब भी लंका लाह-सी गली हुई जान पड़ती है, वही बाँकी वीरताका बाना धारण करनेवाले बलवान् हनुमान राक्षसोंकी सेनाको देखकर उसकी थाह लेने (उसके बल-पराक्रमका पता लगानेके लिये) चल पड़े। (उन्हें आता देखकर भयके मारे) अकंपन काँपने लगा, अतिकाय (रावणके पुत्र)-का शरीर सूख गया और कुम्भकर्ण भी आह करके रह गया। उसी समय रामके साहसी दूत पवनपुत्र हनुमान् गरजकर उस राक्षसी सेनापर दौड़कर ऐसे टूट पड़े जैसे गजराजोंपर सिंह टूट पड़ता है॥ ४३॥ हनुमान्‌की प्रचंड ललकार उन्मत्त वीरोंके शिरोमणि रावणके साहसके पर्वत-शिखरको फाड़ डालनेके लिये वज्रकी ऐसी टाँकी है जिसे सुनकर दिक्पाल दाँतोंसे पृथ्वीको दबाकर चिग्घाड़ उठते हैं, कच्छप और शेष (भयके मारे) सिकुड़ बैठते हैं, शिव भी सशंकित हो उठते हैं, पृथ्वी तथा सुमेरु विचलित हो जाते हैं, सातों समुद्रोंमें ज्वार आने लगता है, ब्रह्मा भी बहुरे और व्याकुल होकर चारों ओर ताकने लगते हैं और डरके मारे घर-घर निशाचरोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिरने लगते हैं॥ ४४॥ किसकी हाँक (ललकार)-पर ब्रह्मा और शिव चौंके पड़ रहे हैं और सूर्य घबराकर अपने रथके घोड़े पीछे लौटा ले जा रहे हैं? किसके तेजकी भयंकरता देखकर भीमसेन-जैसे बलवान् वीर भी हारोंमें नेत्र मूँद बैठते हैं? बुद्धिमान् लोग तुलसीदासके स्वामी राम-दास हनुमान्‌के यशका वर्णन करते हुए पूछते हैं कि कोई आकर क्यों नहीं बताता कि जिन्होंने बड़े-बड़े यशस्वी वीरोंपर अपनी धाक जमा ली है ऐसे बाँके वीर हनुमान्‌के समान स्वर्गलोक, नरलोक और पातालमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा निरखि मृगराज जनु गिरि - तें टूट्यो।
बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि, निघटि गए सुभट, सत सब-को छूट्यो।
'दास-तुलसी' परत धरनि, धरकत झुकत, हाट-सी उठति जंबुकनि लूट्यो।
धीर रघुबीर-को बीर रन-बाँकुरो, हाँकि हनुमान कुल कटक कूट्यो॥ ४६॥

छप्पय

कतहुँ बिटप भूधर उपारि पर-सेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि - सों बाजि, मर्दि गजराज करक्खत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर-सिर बज्जत।
बिकट कटक बिदरत बीर बारिद - जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल, जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥ ४७॥

घनाक्षरी

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक-से, हने भट लाखन लखन जातुधान-के।
मारि-कै पछारे, कै उपारि भुजदंड चंड, खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान-के।
कूदत कबंध-के कदंब बंब - सी करत, धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ-बान-के।
'तुलसी' महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान-के॥ ४८॥

दूसरा कौन है ? (कोई भी नहीं है)॥ ४५॥ राक्षसोंकी सेना देखकर वीर हनुमान् उसपर ऐसे टूट पड़े जैसे पर्वतपरसे मतवाले हाथियोंके समूहपर सिंह टूट पड़े। भयंकर चपेटोंकी चोटोंसे और पाँव पकड़कर पृथ्वीपर पटकनेसे सब वीर शक्ति-हीन होकर मर मिटे। तुलसीदास कहते हैं कि उन राक्षस-वीरोंके गिरते ही पृथ्वी काँपने लगी और उनके गिरते ही सियार उनपर ऐसे टूट पड़े जैसे बाज़ार उठनेपर लुटेरे (बाजार) लूट लेते हैं। रामके धीर, वीर, रण-बाँकुरे हनुमान्‌ने रावणकी सारी सेना ललकार-ललकारकर कूट डाली॥ ४६॥ वे कहीं तो वृक्ष और पर्वत उखाड़-उखाड़कर शत्रु सेनापर बरसा रहे हैं, कहीं घोड़ेको घोड़ेसे मसले दे रहे हैं और कहीं हाथियोंको घसीट-घसीटकर मारे डाल रहे हैं। उनकी लातों और थप्पड़ोंकी चोटें शत्रुओंकी छाती और सिरपर चटाचट बज रही हैं। वीरवर हनुमान् बादलके समान गरज रहे हैं। वे योद्धाओंको पूँछमें लपेटकर पटकते हुए 'रामकी जय, रामकी जय' पुकारे जा रहे हैं। इस प्रकार तुलसीदासके प्रभु पवनपुत्र हनुमान् क्रुद्ध होकर अविचल युद्धका खेल कर रहे हैं। यह हनुमानका (युद्ध नहीं) 'युद्ध-कौतुक' (युद्धका खेलवाड़) है (युद्ध तो इससे कहीं अधिक भयंकर होगा)॥ ४७॥ लक्ष्मणके मारे हुए लाखों वीर राक्षसोंके अंग-प्रत्यंग घायल हुए (लहूलुहान हुए) ऐसे जान पड़ रहे हैं जैसे वे फूले हुए पलास हों। (जिन वीरोंको) हनुमानने मार-मारकर पछाड़ा, उनमेंसे कुछके उन्होंने प्रचंड भुजदंड उखाड़ लिए और कुछके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। (रामने जिन्हें मारा है उनके) कबन्धों (धड़ों)-के झुंड बं-बं करते हुए कूदते फिर रहे हैं, मानो वे रामके बाणोंके कौशलका परिचय दे रहे हों। तुलसीदास कहते हैं कि महादेव, ब्रह्मा, लोकपाल और देवता सब विमानोंपर चढ़-चढ़कर रणभूमिके इत श्मशानका तमाशा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोथिन - सों लोहू-के प्रवाह चले जहाँ तहाँ, मानहु गिरिन गेरु-झरना झरत हैं।
सोनित - सरित घोर, कुंजर करारे भारे, कूल-तें समूल बाजि-बिटप परत हैं।
सुभट सरीर नीर - चारी भारी-भारी तहाँ, सूरनि उछाह, कूर-कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु[1] फारि-फारि पेट खात, काक-कंक-बालक कोलाहल करत हैं ॥ ४९ ॥
ओझरी-की झोरी काँधे, आँतनि-की सेल्ही बाँधे, मूड़-के कमंडलु, खपर किये कोरि-कै।
जोगिनी झुटुंग[2] झुंड झुंड बनी तापसी-सी तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि-कै।
सोनित-सों सानि-सानि गूदा खात सतुआ-से, प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरिकै।
'तुलसी' बैताल[3] - भूत साथ लिए भूतनाथ हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि-कै ॥ ५० ॥

सवैया

राम-सरासन-तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर, न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी।
सोनित - छींटि-छटानि-जटे 'तुलसी' प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानौ मरकत-सैल बिसाल-मैं फैलि चलीं बर बीरबहूटी ॥ ५१ ॥

देख रहे हैं ॥४८॥ मरे हुए राक्षसोंकी लोथोंसे रक्तकी ऐसी धाराएँ फूट चलीं मानो पर्वतोंसे गेरूके झरने झड़े पड़ रहे हों। रक्तकी जो भयंकर नदी बह चली उसमें हाथी ही नदीके भयानक करारे हैं, कट-कटकर गिरते हुए घोड़े ऐसे जान पड़ते हैं मानो किनारेके वृक्ष जड़सहित उखड़-उखड़कर गिर रहे हों और वीरोंके शरीर ही उस नदीके बड़े-बड़े जलजन्तु हों। वह दृश्य देखकर शूरवीरोंको तो बड़ा उत्साह हो रहा है, किन्तु निकम्मे कायर डरे जा रहे हैं। सियार चिल्ला-चिल्लाकर उनके पेट फाड़-फाड़कर खा रहे हैं और कौवे, गिद्ध आदि वहाँ बालकोंके समान कोलाहल कर रहे हैं ॥ ४९ ॥ झोंटे (घने बालों)-वाली योगिनियाँ आमाशयकी झोली बनाकर कंधेपर लटकाए हुए हैं, आँतोंकी सेल्ही (पगड़ी) बाँधे हुए हैं, खोपड़ीके कमंडलु और उसीको खुरचकर खप्पर बना-बनाकर हाथमें लिए हुए हैं, ऐसी झुंडकी झुंड योगिनियाँ समर रूपी-नदीमें स्नान करके तपस्विनी बनी हुई उसके तीरपर आ बैठी हैं। वे मांसका गुद्दा लहूमें सान-सानकर सत्तूके समान खाए जा रही हैं। कुछ प्रेत (उन्हीं-को खप्परोंमें) घोल-घोलकर पी रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि भूतनाथ (भैरव-रूप रुद्र) अपने साथ बेताल और भूत लेकर परस्पर हाथमें हाथ मिलाकर हँसते हुए यह दृश्य देख रहे हैं ॥ ५० ॥ रामके धनुषसे छूटे हुए बाण रावणके शरीरमें अटके नहीं अपितु हड्डी फोड़ते हुए पार निकल गए पर धीर रावण इस पीड़ाको कुछ पीड़ा नहीं समझता। योगिनियाँ खप्पर ले लेकर (रक्तपानके लिये) आ जुटी हैं। रुधिरके छींटोंकी छटासे सजे हुए तुलसीदासके प्रभु राम बड़े ही सुहावने लग रहे हैं। जान पड़ता है, मानो मरकत (पन्ने)-के विशाल शैलपर सुन्दर बीर-बहूटियाँ आ फैली हों ॥ ५१ ॥ बड़े-बड़े वीर अभिमानी योद्धा मेघनादको ललकारकर उससे जा

---

१. फेरु=सियार, गीदड़। २. झुटुंग=झोंटा खोले हुए, लंबे-लंबे झोंटेवाली। ३. वेताल = प्रेत।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घनाक्षरी

मानी मेघनाद-सों प्रचारि भिरे भारी भट, आपने अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लखनलाल लखि बिलखाने राम, भई आस सिथिल जगन्निवास-दील[1]-की॥
भाई-को न मोह, छोह सीय-को न, तुलसीस कहैं 'मैं बिभीषन-की कछु न सबील[2] की'।
लाज बाँह बोले-की, नेवाजे-की सँभार-सार, साहेब न राम-से, बलैया लेउँ सील-की॥ ५२॥

सवैया

कानन-बास, दसानन-सो रिपु, आनन - श्री ससि जीति लियो है।
बालि महाबलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है॥
तीय हरी, रन बंधु पर्‍यो, पै भर्‍यो सरनागत-सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है?॥ ५३॥
लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुत-नंदन मारुत-को, मन-को, खगराज-को बेग लजायो।
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो, पै हिये उपमा-को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत-की नभ लीक लसी, कपि यों धुकि धायो॥ ५४॥

भिड़े। उन्होंने पराक्रम करनेमें कुछ कमी नहीं छोड़ी (पूरे पराक्रमसे भिड़े और लड़े)। इसी समय लक्ष्मणको घायल देखकर राम बिलख उठे। उस समय जगत्के निवास (जिसमें जगत् बसा है उन) रामके मनकी भी सारी आशाएँ जाती रहीं। तुलसीदासके स्वामी रामको उस समय न तो भाईका मोह सता रहा था न सीताकी ममता ही। वे यही कह रहे थे कि 'मैंने विभीषण (को लंकाका राज्य देनेका जो वचन दिया है उसका पालन करने)-के लिये कुछ भी व्यवस्था नहीं की। उन्हें तो (विभीषणको) अपनी शरणमें लेनेकी लाज सताए डाल रही थी और अपने कृपापात्र (विभीषण)-के ही सार-सँभालका ध्यान था। तुलसीदास कहते हैं कि मैं ऐसे स्वामी रामके शील-स्वभावकी बलैया लेता हूँ॥ ५२॥ यद्यपि राम वनमें रह रहे थे और रावण-जैसा (जगद्विजयी) उनका शत्रु था, फिर भी उनके मुखकी शोभा चन्द्रमाकी कान्तिको जीते ले रही थी। उन्होंने महान् बलशाली बालिको मारकर सुग्रीवकी रक्षा की और विभीषणको राजा बना दिया। उनकी स्त्री (सीता) हरी गई और भाई लक्ष्मण भी युद्धमें घायल होकर गिर गए, तो भी उनके हृदयमें यदि कोई चिन्ता थी तो शरणागत (विभीषण)-की ही चिन्ता थी। अपनी भुजाका आश्रय देनेवाला ऐसा उदार और दयालु वीर रामके समान दूसरा कहाँ मिलेगा?॥ ५३॥ (जब सञ्जीवनी बूटी लेनेके लिये हनुमान् द्रोणाचल पर्वतपर गए तो वे बूटी न पहचान सके और शीघ्रतामें उन्होंने पूरा पहाड़ ही उखाड़ उठाया)। उस विशाल पर्वतको उखाड़कर बिना कुछ विलम्ब किए तत्काल (पहाड़ लेकर) वे चल पड़े। उस समय पवनपुत्र हनुमान् इतने वेगसे चले जा रहे थे कि उन्होंने वायु, गरुड और मन सबकी गति लज्जित कर दी थी। तुलसीदास कहते हैं कि मैं उनके प्रचंड वेगका वर्णन करता तो अवश्य पर मेरे मनमें इस गतिके लिये कोई उपयुक्त उपमा नहीं जँच पा रही है। (तब भी वे कहते हैं कि) हनुमान् ऐसे वेगसे दौड़े मानो आकाशमें प्रत्यक्ष पर्वतकी एक लकीर-सी खिंच गई हो। (उनके चलने और पहुँचने-तक एक पहाड़की लकीर ही खिंची

१. दील = (दिल), मन। २. सबील = व्यवस्था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घनाक्षरी

चल्यो हनुमान सुनि, जातुधान कालनेमि पठयो, सो मुनि भयो पायो फल छलि-कै।
सहसा उखारो है पहार बहु जोजन-को, रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि-कै।
वेग, बल, साहस सराहत कृपानिधान, भरत-की कुसल, अचल ल्यायो चलि-कै।
हाथ हरिनाथ[1]-के बिकाने रघुनाथ जनु, सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि-कै॥ ५५ ॥
बाप दियो कानन, भो आनन सुभानन-सो, बैरी भो दसानन-सो, तीय-को हरन भो।
बालिबलसालि दलि, पालि कपिराज-को, बिभीषन नेवाजि, सेतु सागर तरन भो।
घोर रारि हेरि, त्रिपुरारि-बिधि हारे हिये, घायल लखन, बीर बानर बरन भो।
ऐसे सोक-में त्रिलोक कै बिसोक पलही-में सबही-को तुलसी-को साहिब सरन भो॥ ५६ ॥

सवैया

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।
पूषन - बंस - बिभूषन - पूषन तेज प्रताप गरे अरि - ओरे।
देव निसान बजावत गावत, सावँत[2] गो, मनभावत भो रे!
नाचत बानर-भालु सबै तुलसी कहि 'हा रे! हहा भइ, हो रे!'॥ ५७॥

हुई सी दिखाई पड़ी)॥ ५४ ॥ हनुमान सञ्जीवनी बूटी लेने जा रहे हैं यह सुनकर राक्षसराज रावणने कालनेमिको बुला भेजा। वहाँ वह मुनिका वेष बनाकर जा बैठा और उसे छल करनेका फल भी मिल गया (हनुमानने उसे धर पटका)। हनुमान्‌ने अनेक योजनवाला (विस्तृत और विशाल) पर्वत उखाड़ लिया और अनेक रक्षक राक्षसोंको मारकर बड़े-बड़े वीर मार डाले। यह देखकर कृपालु राम उनके बल, साहस और वेगकी सराहना करते हुए कहने लगे—'देखो! हनुमान् पर्वत-सहित चलकर भरतका कुशल-समाचार लिए चले आ रहे हैं।' उनके इस कृत्यपर राम इतने कृतज्ञ हुए मानो कपिराज हनुमान्‌के हाथ जा बिके हों। तुलसीदासके स्वामी रामने उनका बहुत उपकार माना (अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट की)॥ ५५ ॥

जब पिता दशरथने रामको वनवास दिया तब भी प्रभुकी मुखके शोभा चन्द्रमाके समान शान्त और प्रसन्न ही बनी रही। फिर वनमें त्रैलोक्य-विजयी उस रावणसे उनकी शत्रुता ठनी जिसने सीताका हरण किया (ऐसे शोकमें भी उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा)। बलशाली बालिको मारकर सुग्रीवको वानरोंका राजा बनाकर उन्होंने उसका पालन किया, विभीषणपर कृपा की और सेतु बाँधकर समुद्र पार किया। फिर राक्षसराज रावणसे घोर युद्ध हुआ जिसे देखकर ब्रह्मा और शिव भी हृदयमें हार मान बैठे। उसी संग्राममें लक्ष्मण घायल होकर वानरोंके वर्ण (लाल रंग)-के (लहूलुहान) हो गए। ऐसे-ऐसे शोकोंका सामना करके भी उन्होंने (रावणको मारकर) तीनों लोकोंका शोक पल भरमें दूर कर डाला। इस प्रकार तुलसीदासके प्रभु रामने सभीको शरण दी॥५६॥ रामने युद्धमें कुम्भकर्णको मार डाला और दशानन रावणके दसों सिर काटकर उसे भी मार डाला। सूर्यकुलके भूषण रामके सूर्यके समान तेज और प्रतापसे उनके शत्रु ओलेके समान गलकर नष्ट हो गए। सब देवता नगाड़े बजाते हुए कह उठे कि अब हम सबकी पराधीनता दूर हुई और हमारी मनभाई बात हो गई है। सभी वानर-भालू नाचते हुए कहने लगे—'अहा हा? बड़ा अच्छा

१. हरिनाथ=कपिपति, हनुमान्। २. सावँत=सामंत, अत्याचारी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घनाक्षरी

मारे रन रातिचर, रावन सकुल-दल, अनुकूल देव-मुनि फूल बरखत हैं।
नाग, नर, किन्नर, बिरंचि, हरि, हर हेरि, पुलक सरीर, हिये हेत, हरखत हैं॥
बाम ओर जानकी कृपानिधान-के बिराजै, देखत बिषाद मिटे मोद करखत हैं।
आयसु भो, लोकनि सिधारे लोकपाल सबै, 'तुलसी' निहाल कै कै दियो सरखत[1] हैं॥ ५८॥

उत्तरकांड

सवैया

बालि-से बीर बिदारि, सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।
पल-में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे॥
राम-सुभाव सुने 'तुलसी', हुलसे अलसी हम-से, गल गाजे।
कायर, कूर, कपूतन-की हद, तेउ गरीब-नेवाज नेवाजे॥ १॥
बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावन-सों नित आवैं।
दानव-देव दयावने दीन, दुखी दिन, दूरिहि-तें सिर नावैं॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल-तें जो प्रभुता कबि कोबिद गावैं।
राम-से बाम भए, तेहि बामहि बाम सबै सुख-संपति लावैं॥ २॥

हुआ! सब राक्षस मारे गए!' (ऐसा कह-कहकर वे सब हा-हा-ही-ही करके हँस रहे थे)॥५७॥ रामने परिवार और सेना-सहित राक्षस रावणका रणमें संहार कर डाला। प्रसन्न होकर देवता और मुनि उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। यह देखकर (पातालवासी) नाग, (मर्त्यलोकवासी) मनुष्य, और स्वर्गलोकवासी किन्नर, ब्रह्मा, विष्णु, और महेश भी पुलकित हो उठे। उनके हृदयमें प्रेम आ छाया और वे सबके सब आनन्दित हो उठे। कृपानिधानकी बाँई ओर जानकी विराजमान हैं, जिनका दर्शन करनेसे दुःख दूर होकर आनन्द बढ़ता है। प्रभुकी आज्ञा पाकर सभी लोकपाल अपने-अपने लोक लौट गए। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु रामने उन सबको कृपादृष्टिसे देखकर प्रसन्न करके (आनन्दसे रहनेके लिये) अभयपत्र दे दिया (सबको निर्भय कर दिया)॥ ५८॥

उत्तरकाण्ड

रामने बालि-जैसे वीरको मारकर सुग्रीवको गद्दीपर ला बिठाया। इसपर देवता प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे, दशरथ-नन्दन रामने क्षण-भरमें दस मुखवाले रावणको मारकर लंकाके राजसिंहासनपर विभीषणको ला बैठाया। तुलसीदास कहते हैं कि रामका ऐसा स्वभाव सुनकर, हमारे-जैसे आलसी भी उल्लिसत होकर डींगे मारने लगे हैं क्योंकि दीनदयालु रामने तो अत्यन्त कायर, धूर्त्त और कपूतों-तक-पर भी कृपा की है॥ १॥ जिस रावणके यहाँ स्वयं ब्रह्मा बैठकर वेद-पाठ किया करते थे, महादेव भी डरके मारे नित्य अपनी पूजा करानेके लिये रावणके यहाँ पधारते थे तथा बड़े-बड़े दानव और देवता बड़े दयनीय, दीन और दुखी होकर नित्यप्रति दूरसे ही रावणके आगे माथा टेकते थे उसका यह सौभाग्य भी उसके दसों सिर छोड़कर भाग गया जिसके प्रभुत्वकी कथा कवि और विद्वान् लोग गाया करते थे। रामसे वैर करनेवाले उस दुष्टकी सारी सुख-सम्पत्ति भी उससे रूठकर निकल गई॥ २॥ रावणने वेदके विरुद्ध आचरण किए, पृथ्वी, मुनि और

१. सरखत=(फ़ारसी शब्द सरख़त) हस्ताक्षरके साथ लिखित पत्र।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बेद-बिरुद्ध, मही, मुनि, साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो॥
सेवक-छोह-तें छाँड़ी छमा, 'तुलसी' लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौलौं न दाप दल्यो दसकंधर, जौंलौं बिभीषन लात न मारो॥ ३॥
सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि, कपीस कियो जग जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरि-को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर-कैसो॥
नाम लिए अपनाय लियो, 'तुलसी'-सो कहौ जग कौन अनैसो।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीबनेवाज न दूसर ऐसो॥ ४॥
मीत पुनीत कियो कपि-भालु-को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बंधु-बधू जो॥
कोसलपाल-बिना 'तुलसी' सरनागत-पाल कृपाल न दूजो।
क्रूर, कुजाति, कुपूत, अघी, सब-की सुधरै, जो करै नर पूजो॥ ५॥
तीय-सिरोमनि सीय तजी, जेहि पावक-की कलुषाई दही है।
धर्म-धुरंधर बंधु तज्यो, पुर लोगनि-की बिधि बोलि कही है॥

साधुओंको कष्ट दिया, स्वर्गको उजाड़ डाला और कहाँतक कहें, वह नीच जाकर रामकी पत्नी-तकको हरण कर लाया तब भी कृपालु रामने उसपर कोप नहीं किया। तुलसीदास कहते हैं—'राम! मैं आपका स्वभाव जान गया हूँ। आपने सेवक (विभीषण)-के स्नेहके कारण ही अपनी स्वाभाविक क्षमा छोड़ी। जबतक रावणने विभीषणको लात नहीं मारी तबतक आपने उसके दर्प (अहंकार)-का नाश नहीं किया (राम तो रावणके सभी अपराध क्षमा करते गए परन्तु वे अपने सेवकका अपमान नहीं सहन कर सके। अतः सेवक विभीषणका अपमान करनेपर ही रामने उसे मटियामेट किया)॥ ३॥ रामने शोकके समुद्रमें डूबे हुए सुग्रीवको जिस प्रकार वानरोंका राजा बनाया वह सारा जगत् जानता है। उन्होंने शत्रु रावणके भाई नीच राक्षस विभीषणको इन्द्रके समान (लंकाका) राजा बना बैठाया। केवल नाम लेने भरसे ही उन्होंने उस तुलसीको भी अपनालिया जिसके समान बुरा दूसरा कोई नहीं होगा? राम ही एक ऐसे हैं जो दुखियोंका दुख दूर करते रहते हैं। दीनोंपर दया करनेवाला उनके समान और दूसरा कोई है नहीं॥ ४॥ रामने वानर-भालुओं-तकको अपना प्यारा मित्र बना छोड़ा और उनका ऐसा पालन-पोषण किया जैसा कोई अपने पुत्रका भी न करता होगा। विभीषण भी अत्यन्त सज्जन बने हुए अपने भाईकी स्त्री (मन्दोदरी)-का उपभोग कर रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि कोशलेश रामको छोड़कर शरणागतका रक्षक और दूसरा कोई है नहीं। कोई कैसा भी क्रूर, कुजाति, कुपुत्र और पापी क्यों न हो, प्रभु रामकी पूजा करनेसे उसकी सब प्रकारसे बन आती है (उसका उद्धार हो जाता है)॥ ५॥ जिन स्त्री-शिरोमणि सीताने, अग्निका (जलानेका) दोष भी जला डाला था (जिनके स्पर्श-मात्रसे अग्नि शीतल हो गई थी) उन्हें भी रामने (लोकापवाद सुनकर) त्याग दिया। उन्होंने अपने धर्म-धुरन्धर बन्धु लक्ष्मणको भी (प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये) त्याग दिया[1] और अयोध्यावासियोंको

१. कालसे बात करते समय रामने लक्ष्मणसे कहा था कि तुम द्वारपर बैठे रहो। यदि हमारी बातके बीच कोई आया तो मारा जायगा। इस बीच दुर्वासा आ पहुँचे। उनकी सूचना लक्ष्मणने रामको जा दी। इसी अपराधपर रामने लक्ष्मणको शरीर त्याग करनेका आदेश दे दिया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कीस-निसाचर-की करनी, न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत-की अनखौंही अनैसी सुभाय सही है॥ ६॥

अपराध अगाध भए जन-तें अपने उर आनत नाहिंन जू।
गनिका, गज, गीध, अजामिल-के, गनि पातक-पुंज सिराहिं न जू॥
लिऐ बारक नाम सुधाम दियो, जिहि धाम महामुनि जाहिं न जू।
'तुलसी' भजु दीनदयालुहिं रे, रघुनाथ अनाथहिं दाहिन जू॥ ७॥
प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नर-केहरि खंभ-महाँ।
झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ॥
सुर साखी दै राखी है पांडु-बधू, पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ।
'तुलसी' भजु सोच-बिमोचन को, जन-को पन राम न राख्यो कहाँ॥ ८॥
नर-नारि[1] उघारि सभा-महँ होत, दियो पट, सोच हर्‍यो मन-को।
प्रहलाद - विषाद - निवारन, बानर[2]-तारन, मीत अकारनको?
जो कहावत दीनदयालु सही, जेहि भार सदा अपने पन-को।
'तुलसी' तजि आन भरोस, भजे भगवान, भलो करिहैं जन-को॥ ९॥

बुलाकर कर्त्तव्य-पालनका उपदेश दिया। किन्तु बन्दर (सुग्रीव) और राक्षस (विभीषण)-के कुकृत्योंको न सुना, न देखा और न मनमें इसपर कुछ विचार ही किया क्योंकि राम तो अपने शरणागतोंकी क्रोध उत्पन्न करनेवाली बात और उनके अनुचित बर्त्ताबको भी सदा स्वभावसे ही सहन करते रहे हैं॥ ६॥ भक्तोंसे भारी-भारी अपराध हो जानेपर भी भगवान् उनपर ध्यान नहीं देते। जिन गणिका, गजराज, गृध्रराज और अजामिलके पाप गिनाए नहीं गिने जा सकते उन्हें एक बार नाम लेनेपर ही आपने वह परम धाम दे डाला, जहाँ महामुनियोंकी भी पहुँच नहीं हो सकती। अरे तुलसीदास! तू ऐसे दीनदयालु रामको ही भजे जा जो सदा अनाथोंपर कृपा करते रहते हैं॥ ७॥ भगवान् रामने प्रह्लादकी बात सत्य कर दी और विशाल खंभ फाड़कर नृसिंह रूपमें आ प्रकट हुए। ग्राहने गजेन्द्रको ग्रस लिया था पर (उसकी पुकारपर) उसी समय उसपर ऐसी कृपा की कि तनिक भी विलम्ब नहीं होने दिया। अनेक राजाओंके बीच जब पाण्डुकुलकी वधू द्रौपदीका पट खींचनेपर दुःशासन उतारू था तब भी भगवान्‌ने पहुँचकर उसकी रक्षा की, जिसके साक्षी सब देवता हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शोकसे छुड़ानेवाले रामका बैठकर भजन करो। बताओ, उन्होंने अपने सेवकोंके प्रणकी रक्षा कहाँ नहीं की?॥ ८॥ अर्जुनकी पत्नी द्रौपदी जब दुर्योधनकी सभामें नंगी की जा रही थी, उस समय जिस भगवान्‌ने (उसकी पुकारपर) उसका चीर बढ़ाकर उसकी चिन्ता दूर कर दी, जिन्होंने प्रह्लादका दुःख दूर किया, गजेन्द्रका उद्धार किया, जो बिना कारण ही मित्र और सच्चे दीनदयालु कहलाते हैं तथा जिनको अपने प्रणका सदा ध्यान रहता है; तू दूसरे सब किसीका भरोसा त्यागकर केवल उन भगवान् (राम)-का बैठकर भजन कर तो वे अपने सेवकका भला अवश्य करेंगे॥ ९॥ रामने गौतमकी

१. नर-नारि = (नरके अवतार) अर्जुनकी स्त्री द्रौपदी। २. वानर=बालि।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रिषि-नारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही।
निज लोक दियो सबरी-खग-को, कपि थाप्यो, सो मालुम है सब ही॥
दससीस-बिरोध सभीत बिभीषन भूप कियो, जग लीक रही।
करुनानिधि-को भजु रे 'तुलसी'! रघुनाथ अनाथ-के नाथ सही॥ १०॥
कौसिक, बिप्र-बधू[1], मिथिलाधिप-के सब सोच दले पल-माँहैं।
बालि-दसानन-बंधु-कथा सुनि, सत्रु सुसाहिब-सील सराहैं।
ऐसी अनूप कहैं 'तुलसी' रघुनायक-की अगुनी गुन-गाहैं।
आरत, दीन, अनाथन-को रघुनाथ करैं निज हाथ-की छाहैं॥ ११॥
तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे।
ब्योम-रसातल-भूमि भरे नृप, कूर कुसाहिब, सेंतिहुँ खारे।
'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै? रज-तें लघु को करै, मेरु-तें भारे?।
स्वामी, सुसील, समर्थ, सुजान, सो तो-सों तुही दसरत्थ-दुलारे॥ १२॥

घनाक्षरी

जातुधान, भालु, कपि, केवट, बिहंग जो जो पाल्यो नाथ सद्य सो, सो भयो काम-काज-को।
आरत, अनाथ, दीन, मलिन सरन आए, राखे अपनाइ, सो सुभाव महाराज-को।

पत्नी अहल्याका उद्धार किया, ओछी जातिके केवटको मित्र बनाया जिसकी पवित्र सुकीर्ति चारों ओर फैली हुई है। शबरी और गिद्ध (जटायु)-को अपना लोक दे डाला जो सबको विदित ही है। रावणके विरोधसे भयभीत विभीषणको (लंकाका) राजा बना बैठाया, जिससे उनकी कीर्ति संसारमें जा छाई। अरे तुलसीदास! भजना है तो ऐसे करुणानिधान भगवान् रामको बैठकर भज। अनाथोंके कोई सच्चे स्वामी हैं तो वे ही हैं॥ १०॥ रामने विश्वामित्र, ऋषि-पत्नी अहल्या तथा मिथिलापति जनककी सब चिन्ताएँ क्षणभ रमें दूर कर डालीं। बालिके भाई सुग्रीव तथा रावणके भाई विभीषणकी कथा सुन-सुनकर तो शत्रु भी हमारे श्रेष्ठ स्वामी रामके शील-स्वभावकी सराहना करते नहीं अघाते। तुलसीदास कहते हैं कि रामकी ऐसी-ऐसी न जाने कितनी अनुपम गुण-गाथाएँ हैं। दुखियों, दीनों और अनाथोंको राम सदा अपने हाथोंकी छाया-तले पाले रखते हैं॥ ११॥ आप मोल ले लें (अपनालें) तो जीव औरोंको भी मोल ले सकता है (दूसरोंको भी अपना सेवक बना सकता है)। और सब तो मोल ले-लेकर बेच देनेवाले हैं। यद्यपि आकाश, रसातल और पृथ्वीमें अनेक राजा भरे पड़े हैं, किन्तु वे ऐसे खोटे स्वामी हैं कि सेंतमें (बिना मूल्य भी) मिल जायँ तो भी त्याग देने-योग्य हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसोंकी सेवाके फेरमें कौन प्राण दे? धूलसे भी तुच्छ और सुमेरुसे भी भारी बना देनेवाला (आपको छोड़कर) दूसरा कौन है? दशरथ-नन्दन राम! आपके-जैसे सुशील, समर्थ और सुजान स्वामी कोई हैं तो आप ही हैं॥ १२॥ नाथ! आपने निशाचर, भालू, बन्दर, केवट और पक्षी, जिस-जिसको अपनाया, वही तुरन्त बड़ा हो गया (उसकी बिगड़ी भी बन गई)। दुखी, अनाथ, दीन और मलिन, जो जो भी आपकी शरणमें आए, सबको आपने अपनालिया और उनकी रक्षा की। महाराज! आपका ऐसा स्वभाव ही

---

१. बिप्रबधू=अहल्या।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाम 'तुलसी' पै भोंड़े भाग-तें भयो है दास, किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज-को।
साहेब समर्थ दसरत्थ-के दयालु देव, दूसरो न तोसौं तुही आपने-की लाज-को॥ १३॥
महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि सखा किए, महाराज! हो न काहू काम-को।
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आए, कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बाम-को।
राय दसरत्थ-के समर्थ तेरे नाम लिए तुलसी-से क्रूर-को कहत जग 'राम-को'।
आपने निवाजे-को तौ लाज महाराज-को, सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम-को॥ १४॥
रूप-सील-सिंधु, गुन-सिंधु, बंधु दीन-को, दयानिधान, जान-मनि, बीर बाहु-बोल-को।
स्राध कियो गीध-को, सराहे फल सबरी-के, सिला-साप-समन, निबाह्यो नेह कोल-को।
'तुलसी' उराउ[1] होत राम-को सुभाव सुनि, को न बलि जाइ, न बिकाइ बिन मोल-को?
ऐसेहू सुसाहेब-सौं जाको अनुराग न, सो बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल-को॥ १५॥
सूर-सिरताज, महाराजनि-के महाराज, जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस-सो सुजान, सुमिरे कृपालु-के मराल होत खूसरो।
केवट, पषान, जातुधान, कपि, भालु तारे, अपनायो तुलसी-सो धींग-धमधूसरो।
बोल-को अटल, बाँह-को पगार, दीनबंधु, दूबरे-को दानी, को दयानिधान दूसरो॥ १६॥

है। यद्यपि मेरा नाम तुलसी है पर मैं खोटे भाग्यका होनेपर भी आपका दास हो गया और आपने ऐसे विश्वासघातीको अपना भी लिया। दशरथनन्दन! आपके समान समर्थ स्वामी और दयालु देव कोई दूसरा है नहीं॥ १३॥ महाराज! आप ही (ऐसे दयालु हैं) कि महाबलवान् बालिको मारकर उस कायर निकम्मे कपि सुग्रीवको अपना मित्र बना बैठे। (आप ही हैं जिसने) भाईको धोखा देनेवाले और उसके इतने बड़े विरोधी पापी राक्षस (विभीषण)-को भी शरणमें आनेपर अंगीकार कर लिया। महाराज दशरथके समर्थ पुत्र राम! आप ही हैं जिसका नाम भर लेनेवाले तुलसी-जैसे कपटीको भी लोग 'रामका' (दास) कहने लगे। अपने कृपा-पात्रकी लाज रखना तो आपका स्वभाव ही है, यही समझकर तो सेवक (भक्त)-का मन आनन्दसे नाच-नाच उठता है॥ १४॥ राम तो रूप, शील और गुणसे भरे हुए दीनोंके बन्धु-परम दयालु, ज्ञानियोंमें शिरोमणि, अपनी बातके पक्के और ऐसे वीर हैं जिनकी भुजाओंमें अपार बल भरा पड़ा है। आप ही हैं जिसने गिद्ध (जटायु)-का भी श्राद्ध किया, शबरीके फल खाकर उनकी बड़ी सराहना की, शिला अहल्याको शापसे मुक्त किया और कोल-भीलोंके साथ भी प्रेम निबाहा। तुलसीदास कहते हैं कि रामका ऐसा स्वभाव सुनकर ही (हृदयमें) बड़ा भरोसा होता है। ऐसे स्वभावपर कौन न्यौछावर न होगा और कौन उनके हाथ बिना मोल न बिक जायगा? बताइए, ऐसे श्रेष्ठ स्वामीसे भी जिसे प्रेम न हो उससे बड़ा अभागा और कौन होगा! उस मनुष्यका भाग्य ऐसे लोभसे हटकर दूर भाग गया है (उसके भाग्यमें यह सब है नहीं)॥ १५॥ जो राम वीरोंके शिरोमणि और महाराजोंके भी महाराज हैं, जिनका नाम लेते ही ऊसर भूमि भी हरी-भरी हो उठती है, जानकीके पति उन रामके समान सुजान स्वामी संसारमें और कौन है? जिस कृपालुको स्मरण करनेसे उल्लू भी हंस हो जाता है, जिसने केवट, पाषाण (अहल्या), राक्षस (विभीषण),

१. उराउ=हौसला, उत्साह।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कीबे-को बिसोक लोक लोकपाल हुते सब, कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि-भालु-को।
पवि-को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम, बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु-को।
नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल, चोट-बिनु मोट पाइ[1] भयो न निहाल को?
तुलसी-की बार बड़ी ढीलि होति, सीलसिंधु! बिगरी सुधारिबे-को दूसरो दयालु को॥ १७॥
नाम लिये पूत-को, पुनीत कियो पातकीस, आरति निवारी प्रभु 'पाहि' कहे पील-की।
छलिन[2]-की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति, कीन्ही लीन आपु-में सुनारी भोंड़े भील-की।
तुलसीयौ तारिबो बिसारिबो न अंत, मोहिं नीके है प्रतीति रावरे सुभाव सील-की।
देव तौ दया-निकेत, देत दादि दीनन-की, मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की॥ १८॥
आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी, कपीस, निसिचर अपनाए नाए माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान-की सुजानराय, रिनिया कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू।

तथा बन्दर-भालुओंको तार दिया और तुलसी-जैसे गँवार और धमधूसर (बेढंगे)-तकको भी अपनालिया, उनके समान बातका धनी और सबको अपनी भुजाओंका आश्रय देनेवाला, दीनोंका बन्धु, दुर्बलोंका स्वामी तथा दयालु दूसरा कौन है ? ॥१६॥ सबका कष्ट दूर करनेवाले तो और भी लोकपाल संसारमें थे, पर ऐसा कोई माईका लाल न दिखाई पड़ा जिसने बानर-भालुओं - तकको पाल-पोस डाला हो तथा बालूके घरौंदेके समान निर्बल बेचारे विभीषण तकको खेल ही खेलमें वज्रके पहाड़के समान सशक्त और समर्थ बना दिया हो। कृपालु राम ही हैं कि खोटे और दुष्ट लोग भी उनके नामकी आड़में निर्दोष हो जाते हैं। भला, बिना परिश्रमके धनकी गठरी पाकर कौन नहीं निहाल हो जाता ? शील-सिन्धु राम ! तुलसीदासकी बार क्यों इतनी ढिलाई किए जा रहे हैं। बिगड़ीको बनानेवाला आपको छोड़कर दूसरा है कौन ? ॥ १७ ॥ अपने पुत्रका नाम (नारायण) लेने भरसे पापियोंके सरदार (अजामिल) को आपने पवित्र कर डाला, और 'पाहि' (रक्षा करो) ऐसा कहते ही गजराजको ग्राहसे बचा लिया। छलियोंकी लड़की, अभागी, जाति-पाँतिमें भी गई-बीती गँवार भीलनी (शबरी)-को भी आपने अपनेमें लीन कर लिया (उसे मोक्ष पद दे डाला), ऐसे आपके-शील-स्वभाव को देखकर मुझे पूरा भरोसा हो रहा है कि (ऐसे-ऐसे पापियोंका उद्धार करनेवाले) आप अन्तमें 'तुलसी'-को भी तार ही देंगे, भूलेंगे नहीं। देव ! आप तो दयाके भंडार ही हैं और दीनोंका न्याय भी करते हैं (उनपर कृपा करते हैं) पर मेरे अभाग्यसे ही नाथ ! मेरी बार आप (न जाने क्यों) ढिलाई किए बैठे हैं ॥१८॥ (जनकपुर जाते हुए मार्गमें) आगे पड़ी हुई शिला (अहल्या)- पर आपने कृपा करके उसे तार दिया। किरात और शबरी-तकपर भी आपने कृपा की है तथा वानरराज सुग्रीव और निशाचर विभीषणको केवल सिर नवाने भरसे ही आप अपना बैठे हैं। सुजान-शिरोमणि राम ! आपकी सच्ची सेवा किसीने की तो हनुमान्‌ने की इसीलिये आप उनके ऋणी बन गए और उनके हाथ बिक गए। (इतना ही क्यों ?) आपके नामकी शरण लेनेपर तुलसीदास-जैसे छली भी वैसे ही भले बन बैठे हैं जैसे कस्तूरीके साथ रहनेपर मार्गकी मिट्टी भी महँगी हो जाती है। मैं आपपर बलि जाता हूँ। मैं जो कह रहा हूँ इस बातका आप कुछ बुरा न मान बैठिएगा।

---

१. चोट-बिनु मोट पाइ = बिना परिश्रमके धनकी गठरी पाकर। २. छलिन : शबर लोग जादू-टोने, छलके लिये प्रसिद्ध हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी-से खोटे, खरे होत ओट नाम ही-की, तेजी माटी मगहू-की मृगमद साथ जू।
बात चले बात-को न मानिबो बिलग, बलि, काकी सेवा रीझि-के नेवाजो रघुनाथ जू॥ १९॥
कौसिक-की चलत, पषान-की परस पाँय, टूटत धनुष बनि गई है जनक-की।
कोल, पसु, सेवरी, बिहंग, भालु, रातिचर, रतिन के लालचिन प्रापति मनक-की।
कोटि-कला-कुसल कृपालु नतपाल, बलि, बातहू कितिक तिन 'तुलसी' तनक-की।
राइ दसरत्थ-के समर्थ राम राजमनि, तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक-की॥ २०॥
सिला-साप-पाप, गुह-गीध-को मिलाप, सबरी-के पास आप चलि गये हौ, सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपि-नायक, बिभीषन, भरत-सभा सादर सनेह सुर - धुनी - मैं।
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथ-पाल, साहेब समर्थ एक नीके मन गुनी मैं।
दोष-दुख-दारिद-दलैया दीनबंधु राम, 'तुलसी' न दूसरो दया - निधान दुनी मैं॥ २१॥
मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु सचिव, सराध कियो सबरी-जटाइ-को।
लंक जरी जोहे, जिय सोच सो बिभीषन-को, कहौ ऐसे साहेब-की सेवा न खटाइ को।
बड़े एक एक-तें अनेक लोक लोकपाल, अपने अपने - को तौ कहैगो घटाइ को?
साँकरे-के सेइबे, सराहिबे, सुमिरबे-को राम-सों न साहब, न कुमति-कटाइको॥ २२॥

भला आपने क्या कभी किसीकी सेवासे रीझकर उसपर कृपा की है? (आप तो बिना सेवाके ही केवल अपनी कृपालुतासे ही अपने भक्तोंपर कृपा करते रहते हैं) ॥ १९॥ विश्वामित्रकी बात केवल साथ रहनेके कारण, पाषाण बनी हुई अहल्याकी बात आपके चरण-स्पर्श होनेके कारण तथा राजा जनककी बात धनुष टूटनेके कारण बन गई। कोल, भील, पशु (सुग्रीव आदि वानर), शबरी, गीध (जटायु), भालू (जाम्बवान् आदि रीछ) और राक्षस (विभीषण)—ये सब जो आपसे रत्तीभर पानेके लिये ललचाए बैठे थे, उन्हें आपने मनभर दे दिया। करोड़ों कलाओंमें कुशल और शरणमें आए हुएकी रक्षा करनेवाले दयालु (राम)! आपपर बलि जाता हूँ, तृणके समान तुच्छ इस तुलसी-को (तारनेमें) आपको क्या देर लगती है? महाराज दशरथके समर्थ पुत्र राजशिरोमणि राम! आपकी दृष्टि मात्रसे तो ब्रह्मा-जैसे ज्योतिषी-तकका लेख भी मिट जा सकता है॥ २०॥ पापसे शाप शिला-रूपिणी अहल्याका आपने उद्धार किया, गुह निषाद और गीधसे आप गले मिले और शबरीके पास आप (बिना बुलाए ही) स्वयं चले गए—यह सब मैंने अपने कानों सुना है। आपने भरतके सामने आदर और स्नेहसे सुग्रीव और विभीषणको गंगाके समान पवित्र बताकर उनकी प्रशंसा की है। मैंने अपने मनमें भली भाँति विचार कर देख लिया है कि आलसी, अभागे, पापी, दुखी और अनाथोंका पालन कर सकनेमें समर्थ स्वामी कोई है तो एक आप ही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि राग, दोष, दुःख और दरिद्रताका नाश करनेवाला तथा दीनोंका सहायक आपके समान संसारमें दूसरा कोई है कौन?॥ २१॥ जिसने बालिके भाई सुग्रीवको अपना मित्र बनाया, उसके पुत्र (अंगद) को दूत बनाया, रावणके भाई विभीषणको मन्त्री बनाया, जटायु और शबरीका श्राद्ध किया तथा लंका जली देखकर मनमें विभीषणके लिये चिन्ता की; ऐसे स्वामीकी सेवा भला कौन करेगा? संसारमें एकसे एक बढ़कर अनेक लोकपाल हैं और अपने-अपनेको भला कौन छोटा बताता है, पर संकटके समय काम आनेवाला, सराहना और स्मरण करनेके योग्य तथा मनकी सारी मैल मिटा डालनेवाला स्वामी, रामके समान कोई दूसरा नहीं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल कारन-कृपाल, मैं सबै-के जी-की थाह ली।
कादर-को आदर नाहिं काहु-के देखियत, सबनि सोहात है सेवा सुजानि टाहली।
'तुलसी' सुभाय कहै नाहीं कछु पच्छपात, कौन ईस किये कीस-भालु खास माहली[1] ?।
राम ही-के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत, मोसे दीन, दूबरे, कुपूत, कूर, काहली ॥ २३ ॥
सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप-ज्यों, बिहूने-गुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे-जोखे चोखे चित 'तुलसी' स्वारथ-हित, नीके देखे देवता देवैया घने गथ-के।
गीध मान्यो गुरु, कपि-भालु मान्यो मीत कै, पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ-के।
और भूप परखि, सुलखि, तौलि, ताइ लेत, लसम-के खसम[2] तुही पै दसरत्थ-के ॥ २४ ॥
रीति महाराज-की नेवाजिये, जो माँगनो सो दोप-दुख-दारिद दरिद्र कै कै छोड़िये।
नाम जाको कामतरु, देत फल चारि, ताहि 'तुलसी' बिहाइ-कै बबूर-रेंड़ गोड़िये।
जाँचै को नरेस ? देस-देस को कलेस करै ? दइहै तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई, बोड़िये[3]।
कृपा-पाथ-नाथ लोक-नाथ-नाथ सीता-नाथ, तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये ॥ २५ ॥

है ॥ २२ ॥ मैं सबके मनकी थाह ले चुका हूँ। संसारमें जितने भूमिपति, नागपति, देवलोकोंके स्वामी और लोकपाल हैं—ये सभी कारणवश कृपा करते हैं। इनमें कोई ऐसा नहीं है जो कायरों (दुखियों)-का भी आदर करता हो। ये सब चाहते हैं कि हमारा सेवक जमकर हमारी सेवा करे (तभी हमारी कृपा पा सकता है)। तुलसीदास जो कुछ कह रहे हैं उसमें किसीका पक्षपात नहीं कर रहे हैं। भला बताइए तो सही कि ऐसा कौन स्वामी हुआ है जिसने वानर-भालुओंको अपने अन्तःपुरका सेवक बना डाला हो ? यह तो रामका ही द्वार है जहाँ मेरे जैसे दीन, दुर्बल, कपूत, कायर और आलसी तकको बुलाकर उसका आदर कर दिया जाता है ॥ २३ ॥ कूएँके समान ही राजा लोग भी सेवाके अनुसार ही फल देते हैं जहाँ (कुएँके पास) पहुँचकर भी जिस पथिकके पास गुण (डोर) नहीं होता, वह प्यासा ही चला जाता है (जैसे बिना रस्सीके कुएँसे जल नहीं निकलता वैसे ही राजा लोग भी बिना गुणके किसीको कुछ नहीं देते-लेते)। तुलसीदास कहते हैं कि मैंने ठोक-बजाकर भली भाँति जाँचकर देख लिया है कि जिससे स्वार्थ सधता हो उसे धन देनेवाले देवता तो बहुत मिलते हैं, पर जिस (राम)-ने गिद्धको गुरु (पिता) और वानर-भालुओंको मित्र मान लिया, ऐसे समर्थ स्वामीकी प्रशंसाके जितने गीत गाए जायँ और जितनी प्रशंसा की जाय सभी पवित्र हैं। अन्य जितने राजा हैं वे सब तो (अपने सेवकोंको) भली भाँति जाँचकर, छेदकर, तौलकर और तपाकर देख लेते हैं (जैसे सोनेको परखते हैं), पर दशरथनन्दन राम ! निकम्मोंको भी आश्रय देनेवाले स्वामी कोई हैं तो केवल आप ही हैं ॥ २४ ॥ महाराज राम ! आपकी तो यह रीति ही है कि जिस याचकको आप एक बार अपना लेते हैं उसके दुःख और दारिद्रयको दरिद्र बना छोड़ते हैं (समाप्त कर डालते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि जिनका नाम ही चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) देनेवाले कल्पवृक्षके समान है, भला ऐसा कल्पवृक्ष छोड़कर रेंड़ और बबूल कौन लाकर लगावे ? कौन जाकर राजाओंसे याचना करे और कौन देश-विदेश छाननेका कष्ट भोगे ? और वह भी बहुत प्रसन्न हो कर देगा तो बहुत हुआ दमड़ी (थोड़ा-सा) दे देगा। तब बताओ कृपालु,

१. माहली = अन्तःपुरका सेवक। २. लसमके खसम = निकम्मोंके स्वामी। ३. बोड़िये = बहुत थोड़ा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सवैया

जाके बिलोकत, लोकप होत बिसोक, लहैं सुर लोग सुठौरहि।
सो कमला, तजि चंचलता, करि कोटि कला रिझवै सुर-मौरहि।
ताको कहाय, कहै 'तुलसी', तु लजाहि न माँगत कूकुर-कौरहि ?
जानकि-जीवन-को जन ह्वै, जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहिं ॥ २६ ॥
जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर-की।
जन-की कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचर-की।
'तुलसी' कहु राम-समान को आन है, सेवकि जासु रमा घर-की।
जग-में गति जाहि जगत्पति-की, परवाह है ताहि कहा नर-को ॥ २७ ॥
जग जाँचिऐ कोउ न, जाँचिऐ जौ जिय जाँचिऐ जानकि-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे।
गति देखु बिचारि बिभीषन-की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
'तुलसी' भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे ॥ २८ ॥
सुनु कान दिए, नित नेम लिये, रघुनाथहि-के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर, सुंदर रूप सदा, उर आनि धरे धनु-भाथहि रे ॥

लोकपालोंके भी स्वामी सीतापति रामको छोड़कर और किसके आगे हाथ जाकर फैलाया जाय ॥२५॥ जिसकी कृपा-दृष्टि मात्रसे मनुष्य लोकपाल हो जाते हैं और देवता शोकरहित होकर उत्तम पद प्राप्त कर लेते हैं, वह लक्ष्मी भी अपनी स्वाभाविक चंचलता त्यागकर अनेक उपायोंसे देवताओंके स्वामी विष्णु-रूपी रामकी सेवा करती है। तुलसीदास कहते हैं कि उन (राम)-का सेवक कहलाकर भी तुझे कुत्तेका टुकड़ा माँगते लाज नहीं आती ? जानकीनाथ रामका दास होकर भी जो किसी दूसरेसे माँगने जाय उसकी जीभ जल जानी चाहिए ॥२६॥ धरणीको धारण करनेवाले उस (राम)-को तो देखो, जिसने पाँच जड तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और पवन)-को मिलाकर यह देह बना खड़ी की है और जो समस्त चराचरकी सार-सँभाल किए जा रहा है। भला बताओ, वह (प्रभु) अपने सेवककी सँभाल क्यों न करेगा ? तुलसीदास कहते हैं कि बताओ रामके समान और दूसरा है कौन जिसके घरकी दासी स्वयं लक्ष्मी है। जिसे संसारमें केवल उस जगत्पतिका ही भरोसा है उसे मनुष्योंकी क्या चिन्ता होगी ? ॥ २७ ॥ देखो जीव ! संसारमें किसीसे कुछ भी माँगनेके लिये हाथ न फैलाना। यदि माँगना ही हो तो जानकीनाथ रामसे जाकर माँगो, जिससे याचना करनेसे वह याचकता ही जल मरती (नष्ट हो जाती) है जो (याचकता) संसार-भरको हठ पूर्वक जलाए डाल रही है। विभीषणकी दशाका विचार करके देख लो और हनुमान्‌का मनमें ध्यान कर लो। तुलसीदास कहते हैं कि (उन्हीं रामका भजन करो) जो दरिद्रता-रूपी दोष भस्म करनेके लिये दावानल हैं और कृपाणके समान सब संकट काट डालते हैं ॥ २८ ॥ तुलसीदास कहते हैं—अरे मन ! नित्य नियमपूर्वक कान लगाकर उन रामकी ही गुण-गाथाएँ बैठा सुना कर जो सुखके भंडार हैं और धनुष और तरकश लटकाए रहते हैं। हृदयमें सदा उन्हीं रामके सुन्दर स्वरूपका ध्यान किया कर, जिह्वासे रात-दिन आदरपूर्वक रामका ही नाम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रसना निसि-बासर सादर सो, 'तुलसी' जपु जानकि - नाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन-सों, तजि क्रूर कुपंथ कुसाथहि रे॥ २९॥
सुत, दार, अगार, सखा, परिवार, बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सब - की ममता तजिकै, समता सजि संत सभा न बिराजहि रे।
नर - देह कहा, करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर-ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि रे॥ ३०॥
बिषया पर - नारि निसा-तरुनाइ, सु पाइ पर्‌यो अनुरागहि रे।
जम-के पहरू दुख - रोग - बियोग बिलोकतहू न बिरागहि रे।
ममता - बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर महा भय भागहि रे।
जरठाइ दिसा, रबि-काल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव! न जागहि रे॥ ३१॥
जनम्यो जेहि जोनि, अनेक क्रिया सुख - लागि करी, न परै बरनी।
जननी-जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उर-की जरनी।
'तुलसी' अब राम-को दास कहाइ हिये धरु चातक-की धरनी।
करि हंस-को बेष बड़ो सब-सों तजि दे बक-बायस-की करनी॥ ३२॥
भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज, सरीर भलो लहि-कै।
करषा तजि-कै, परुषा बरषा, हिम, मारुत, घाम सदा सहि-कै।

जपा कर, सुशील और संत पुरुषोंके संग रहा कर और क्रूर तथा कुमार्गियोंकी बुरी संगति छोड़ दे॥ २९॥ पुत्र, स्त्री, घर, मित्र और परिवार, इन सबको महा कुसमाजके रूपमें देखकर सबकी ममता छोड़कर, सबके साथ समान व्यवहार करता हुआ संतोंकी सभामें क्यों नहीं जा बैठता? यह मानव शरीर किसलिये मिला है इसपर तो तनिक विचारकर देख। अरे गँवार तुलसी! तू अपना (असली) जीवन मत बिगाड़। लालची कुत्तेके समान इधर-उधर मत भटक, केवल कोशलराज रामका भजन किया कर॥३०॥ जवानी-रूपी रात्रि पाकर तू विषय-रूपी परस्त्रीके प्रेममें जा फँसा है। जो दुःख, रोग और वियोग तू भोगे जा रहा है क्या उन्हें देखकर भी तुझे वैराग्य नहीं होता? तू ममतामें फँसकर सब कुछ भूले बैठा है। देख! अब सबेरा हो गया है। इस भयंकर संकटको छोड़कर भाग खड़ा हो। देख! बुढ़ापे-रूपी पूर्व दिशामें काल-रूप सूर्यका उदय हो गया है (बुढ़ापेके साथ काल आ गया है)। अरे जड जीव! तू अब भी नहीं जाग रहा है॥३१॥ तूने जिस-जिस योनिमें जन्म लिया उसीमें अपने सुखके लिये इतने अगणित कर्म कर डाले जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। माता, पिता आदि तेरे अनेक हितैषी हुए और फिर उन्हींसे तू हृदयमें जलने लगा। अरे तुलसी! अब तू रामका दास कहलानेपर तो हृदयमें चातकका नियम बना ले (एक 'राम' को छोड़कर तू और किसीसे याचना मत कर)। अब तू हंसका-सा वेष धारण करके बगुलों और कौओं की-सी करनी तो छोड़॥ ३२॥ देख तुलसीदास! भारतवर्षकी उत्तम भूमिपर श्रेष्ठ (ब्राह्मण) कुलमें जन्म, (साधुओंका) समाज और सुन्दर शरीर पाकर जो पुरुष क्रोध और कठोर वचन त्यागकर वर्षा, जाड़ा, बयार और धूप सहन करते हुए चातकके समान हठपूर्वक सर्वदा भगवान्‌को भजता है, वही चतुर है; अन्यथा वह सोनेके हलमें कामधेनु

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जो भजै भगवान सयान सोई, 'तुलसी' हठ चातक-ज्यों गहि-कै।
नतु और सबै विष-बीज बये, हर हाटक कामदुहा नहि-कै[1] ॥ ३३ ॥
सो सुकृती, सुचिमंत, सुसंत, सुजान, सुसील-सिरोमनि स्वै।
सुर, तीरथ तासु मनावत आवन, पावन होत हैं ता तन छ्वै ॥
गुन-गेह, सनेह-को भाजन सो, सब ही-सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सति भाय सदा छल छाँड़ि सबै 'तुलसी' जो रहै रघुबीर-को ह्वै ॥ ३४ ॥
सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब, चेरो ॥
सो तुलसी प्रिय प्रान-समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जौ तजि देह-को नेह, सनेह-सों राम-को सेवक होइ सबेरो ॥ ३५ ॥
राम हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु, औ संगी, सखा, सुत, स्वामि, सनेही।
राम-की सौंह, भरोसो है राम-को, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही ॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि-की गति जेही।
सोइ जियै जगमें 'तुलसी', नतु डोलत और मुये धरि देही ॥ ३६ ॥
सियराम-सरूप, अगाध, अनूप, बिलोचन-मीनन-को जल है।
स्रुति रामकथा, मुख राम-को नाम, हिये पुनि रामहि-को थल है ॥

जोतकर केवल विषके बीज बोए चला जा रहा है (सम्पत्तिसे यागादि धर्म-कार्यके नामपर प्रतिष्ठा पानेकी लोलुपताका पाप कमा रहा है) ॥३३॥ तुलसीदास कहते हैं कि मैं दोनों भुजाएँ उठाकर सबसे पुकारकर कहता हूँ कि जो सब प्रकारके छल छोड़कर सच्चे भावसे रामका ही हो रहता है वही पुण्यात्मा, पवित्र, साधु, सुजान और सुशील-शिरोमणि है। देवता और तीर्थ तो उसका आगमन मनाते रहते हैं, उसका शरीर छूकर स्वयं पवित्र होते हैं और वही समस्त गुणोंका भंडार और सबका स्नेहपात्र हो जाता है ॥ ३४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो पुरुष अपने शरीर और घर (सांसारिक जंजाल)-की ममता त्यागकर समय रहते ही (शीघ्रातिशीघ्र) स्नेहपूर्वक भगवान् रामका हो रहता है, वही मेरी माता है, वही पिता है, वही भाई है, वही स्त्री है, वही पुत्र है, वही हितैषी है, तथा वही मेरा सम्बन्धी, मित्र, सेवक, गुरु, देवता, स्वामी और चेला (शिष्य) सब कुछ है। और अधिक कहाँतक कहूँ, वही मुझे प्राणोंके समान प्रिय है ॥ ३५ ॥ राम ही मेरो माता हैं, वे ही पिता, गुरु, बन्धु, साथी, मित्र, पुत्र, स्वामी और स्नेही सब कुछ हैं। रामकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मुझे भरोसा है तो एक रामका ही है। मैं तो रामके ही रंगमें रँग गया हूँ। अन्य कहीं भी रुचिपूर्वक मेरा मन ही नहीं लगता। तुलसीदास कहते हैं कि जिसे जीते हुए भी रामसे ही स्नेह है और जो मरनेपर भी राममें ही लीन हो जाता है—इस प्रकार जिसे एक मात्र रामका ही भरोसा है, वही संसारमें जीवित है, अन्यथा और सब तो देह धारण किए मुर्दे चल-फिर रहे हैं ॥ ३६ ॥ दूसरोंकी बात तो नहीं जानता पर तुलसीके विचारसे तो संसारमें जीनेका फल कुल इतना ही है कि राम और जानकीका अनुपम सौन्दर्य नेत्ररूपी मछलियोंके लिये अगाध जल बना रहे (नेत्रोंको राम-

१. नहिकै=नाथकर, बाँधकर, जोतकर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मति रामहिं-सों, गति रामहिं-सों, रति राम-सों, रामहिं-को बल है।
सब-की न कहैं, तुलसी-के मते इतनो जग जीवन-को फल है॥ ३७॥
दसरत्थ-के दानि-सिरोमनि राम! पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जस मैं।
नर, नाग, सुरासुर जाचक जो, तुम-सों मनभावत पायो न कै।
'तुलसी' कर जोरि करै बिनती, जो कृपा करि दीनदयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे-सों, अस देह धराइ-कै जाय जियैं॥ ३८॥
'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत, जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।
जानपनी-को गुमान बड़ो, तुलसी-के बिचार गँवार महा है।
जानकि - जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥ ३९॥
तिन्ह-तें खर, सूकर, स्वान भले, जड़ता - बस ते न कहैं कछु वै।
'तुलसी' जेहि राम-सों नेह नहीं, सो सही पसु-पूँछ-बिषान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकिनाथ! जियै जग-में तुम्हरो बिन ह्वै॥ ४०॥
गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता-सुत भौंह तकैं सब कै।
धरनी, धन, धाम, सरीर भलो, सुर - लोकहु चाहि इहै सुख स्वै॥

और जानकीका रूप निहारते रहनेका आनन्द मिलता रहे), कानोंसे रामकी कथा, मुखमें रामका नाम और हृदयमें रामका ही वास हो। बुद्धि भी राममें ही लगी हुई हो, गति (मुक्ति) भी रामके ही हाथों होनेवाली हो, रामसे ही प्रीति जुड़ी हुई हो और बल भी रामका ही हो॥ ३७॥ हे दशरथके पुत्र! दानियोंके शिरोमणि राम! मैंने पुराणोंमें आपका बड़ा नाम सुन रक्खा है। नर, नाग, सुर और असुर जो भी आपके पास याचक होकर आए उनमें से कौन है जिसने आपसे अपना मनोवाञ्छित फल नहीं पा लिया? यदि दीन-दयालु राम कृपा-पूर्वक मेरी सुनें तो तुलसी हाथ जोड़कर यही विनति करता है कि जो अपनी देहसे आपसे स्नेह न करे, उस देहको धारण करके जीवित रहना न रहना बराबर है॥३८॥ अरे जीव! जिन संतोंने इस संसारकी थाह पा ली है, वे कहते जा रहे हैं कि संसार झूठा है, झूठा है, झूठा है, पर तू है कि उसी संसारके लिये अनेक संकट सहता और दाँत निकाले हाय हाय करता चला जा रहा है। तुझे तो अपने ज्ञानीपनका बड़ा अभिमान है पर तुलसी तुझे परम गँवार समझता है। यदि तूने ज्ञानके द्वारा जानकीके प्यारे रामको न जाना तो ज्ञानी कहलाते हुए भी तूने जाना क्या? (कुछ भी नहीं जाना)॥ ३९॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिन्हें रामसे स्नेह नहीं है, वे वास्तवमें बिना पूँछ और सींगोंके पशु ही हैं। उनसे तो कहीं अच्छे गदहे, सूअर और कुत्ते हैं जो बेचारे जडतावश कुछ कहते तो नहीं। उन (रामसे स्नेह न करनेवालों)-की माताओंने दस महीने-तक क्यों अपने उदरमें उनका बोझ ढोया? वे बाँझ क्यों न रह गईं? उनका गर्भ ही क्यों न गिर गया? जानकीनाथ! संसारमें जो पुरुष आपका हुए बिना जीता रह जाय, भगवान् करे उसका जीवन ही जल जाय (वह नष्ट हो जाय तभी अच्छा है)॥ ४०॥ तुलसीदास कहते हैं कि किसीके पास लाख हाथी-घोड़ोंके समूहके समूह हों, बड़े अच्छे-अच्छे बहुतसे योद्धा हों, स्त्री पुत्र आदि सभी भौंहके संकेतपर चलते हों, पृथ्वी, धन, और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सब फोकट साटक है 'तुलसी', अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ! जिये जग-में तुम्हरो बिनु ह्वै॥ ४१॥
सुरराज-सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप-सो धन भो।
पवमान-सो, पावक-सो, जम-सोम-सो, पूषन-सो, भव-भूषन भो।
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो बसहू मन भो।
सब जाय, सुभाय कहै 'तुलसी' जो न जानकि-जीवन-को जन भो॥ ४२॥
काम-से रूप, प्रताप दिनेस-से, सोम-से सील, गनेस-से माने।
हरिचंद्र-से साँचे, बड़े बिधि-से, मघवा-से महीप बिषै-सुख-साने।
सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस-तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जु पै राजिव-लोचन राम न जाने॥ ४३॥
झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग-मनोगति चंचल, पौन-के गौनहुँ-तें बढ़ि जाते।
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जु पै जानकि नाथ-के रंग न राते॥ ४४॥

शरीर सब कुछ अच्छे (सुन्दर और स्वस्थ) हों, यहाँ स्वर्गलोकसे भी बढ़कर सुख मिलता हो, परन्तु (सब कुछ होते हुए भी) यह सब व्यर्थ और निःसार है। (सच पूछिए तो) यहाँ अपना कुछ भी नहीं है। यह सब तो दो दिनका सपना मात्र है। अतः, जानकीनाथ! जो पुरुष संसारमें आपका हुए बिना जीता है, उसका जीवन तो जल ही जाना (नष्ट हो जाना) अच्छा है॥ ४१॥ तुलसीदास सच्चे मनसे कहते हैं कि कोई कितना भी इन्द्रके (समान विशाल) राज-समाजवाला, ब्रह्माके समान समृद्ध, कुबेरके समान धनी, वायुके समान (वेगवान्), अग्निके समान (तेजस्वी), यमराजके समान (शक्तिशाली), चन्द्रमाके समान (शीतल एवं प्रियदर्शन), सूर्यके समान संसारका भूषण (संसारको प्रकाशमान् करनेवाला) भले ही हो जाय और (प्राणायामके द्वारा) वायु साधकर, योगाभ्यास करके, धीर होकर मनको भी अपने वशमें कर बैठा हो तो भी यदि वह जानकीनाथ रामका सेवक न हुआ तो यह सब जितना कुछ है (वह कलका जाता आज ही) भले चला जाय (क्योंकि रामका सेवक हुए बिना यह सब व्यर्थ है)॥ ४२॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि मनुष्यने जीवनमें कमलके समान आँखोंवाले रामको नहीं जाना तो वह कामदेवके समान रूपवान्, सूर्यके समान प्रतापी, चन्द्रमाके समान शीलवान्, गणेशके समान सर्वमान्य, राजा हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी, ब्रह्माके समान महान्, इन्द्रके समान विषय-सुखमें आसक्त, राजा शुकदेवके समान महात्मा, सरस्वतीके समान वक्ता तथा लोमश ऋषिसे भी अधिक चिरजीवी भी हो गया तो क्या हुआ? कुछ नहीं (रामको भली भाँति जाने बिना यह सब व्यर्थ ही है)॥ ४३॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसके द्वारपर साँकलोंसे जकड़े हुए और माथेसे मद चुआते हुए अनेक मतवाले हाथी झूमते हों, मनकी गतिके समान चंचल और वायुकी गतिसे भी अधिक चलनेवाले वेगवान् घोड़े हों, अन्तःपुरमें चन्द्रमुखी स्त्री भी मुँह जोहा करती हो और बाहर इतने अधिक राजा लोग (हाथ बाँधे) आए खड़े रहते हों जो (स्थानाभावके कारण) राजसभाके भीतर न समा पाते हों, तब

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राज सुरेस पचासक-को, बिधि-के कर-को जो पटो लिखि पाए।
पूत सपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति-को मद नाए।
संपति - सिद्धि सबै तुलसी, मन-की मनसा चितवैं चित लाए।
जानकि-जीवन जाने बिना, जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए॥ ४५॥
कृस गात ललात जो रोटिन-को, घरबात घरे खुरपा-खरिया।
तिन सोने के मेरु-से ढेर लहे, मन तौ न भरो, घर पै भरिया।
'तुलसी' दुख दूनो दसा दुहुँ देखि, किया मुख दारिद-को करिया।
तजि आस, भो दास रघुप्पति-को, दसरत्थ-को दानि दया दरिया॥ ४६॥
को भरिहै, हरि-के रितये, रितवै पुनि को, हरि जौ भरिहै।
उथपै तेहि को, जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को, हरि जौ टरिहै?
'तुलसी' यह जानि हिये अपने, सपने नहिं कालहु-तें डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन-की जोपै जानकिनाथ मया करिहै॥ ४७॥
ब्याल कराल, महाबिष, पावक, मत्तगयंदहु-के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे।

भी यदि वह जानकीनाथ रामके प्रेमके रंगमें न रँगा तो यह सब कुछ हुआ भी तो क्या हुआ? (भक्तिपूर्वक भगवान्‌में तल्लीन हुए बिना यह सब होना न होना बराबर है)॥ ४४॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसे ब्रह्माके हाथका पचासों इन्द्रोंके समान राज्यका पट्टा लिखा मिला हुआ हो, जिसके पुत्र अत्यन्त योग्य हों, स्त्री अपनी सुन्दरतासे रतिको भी नीचा दिखानेवाली पतिव्रता हो तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति और सिद्धियाँ जिसकी मनोकामनाएँ (पूर्ण करनेके लिये) आज्ञाकी बाट जोहती खड़ी हों, वह भी यदि जानकीनाथ रामको न जान पाया तो ऐसा जीव वास्तवमें जीव कहलाने-योग्य नहीं है॥४५॥ जिसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो, जो रोटी-रोटीके लिये तरसता रहता हो, जिसके घरमें एक खुरपा और बाँधनेकी जाली ही सारी पूँजी हो उसे यदि सुमेरु पर्वतके बराबर सोनेका ढेर भी मिल जाय तो इससे उसका घर भले ही भर जाय पर मन नहीं भरेगा। तुलसीदास कहते हैं, मैंने इन दोनों (अत्यन्त दरिद्रता और अतुलनीय सम्पत्तिवाली) अवस्थाओंमें दूना दुःख ही दुःख देखकर दरिद्रताका मुँह काला कर दिया और सब आशा छोड़कर दशरथके पुत्र उन रामका दास बन बैठा हूँ जो दान और दयाके समुद्र हैं॥ ४६॥ जिसका भगवान्‌ने सब कुछ ले लिया है, उसे कौन दे सकता है और जिसे भगवान्‌ने दे दिया उसका कौन ले सकता है? जिसे रामने जमा दिया है उसे कौन उखाड़ सकता है और जिसे वे उखाड़ देंगे उसे फिर कौन लाकर जमा सकता है? यह जानकर तुलसीदास अपने हृदयमें कभी स्वप्नमें भी काल-तकसे नहीं डरता। (उसे विश्वास है कि) यदि जानकीनाथ राम कृपा कर देंगे तो औरोंकी कुचालसे उसकी कोई हानि नहीं हो सकती। (सबका सब कुछ बनाने-बिगाड़नेवाले राम ही हैं, औरोंके बनाने-बिगाड़नेसे कुछ नहीं बनता-बिगड़ता)॥ ४७॥ (यद्यपि हिरण्यकशिपुने भक्त प्रह्लादको मार डालनेके लिये उसे) भयंकर सर्पोंसे डसवाया, महा विष लाकर पिलवाया, अग्निमें जलवाया, मतवाले हाथीके पैरों तले डलवाया पर इससे उस हाथीके तो दाँत टूट गए, प्रह्लादका बालतक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नेकु बिषाद नहीं प्रहलादहिं, कारन-के हरि केवल हो रे।
कौन-की त्रास करै तुलसी, जु पै राखिहैं राम तौ मारिहै को रे ? ॥ ४८ ॥

किरपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करै तिनको परिवाहि ते जो बिनु पूँछ-बिषान फिरैं दिन दौरे।
'तुलसी' जेहिके रघुनाथ-से नाथ, समर्थ, सु सेवत रीझत थोरे।
कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन - सौं तिन तोरे[1] ॥ ४९ ॥

कानन, भूधर, बार, बयारि, महाबिष, ब्याधि, दवा, अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ तुलसी, सुत, मातु, पिता, हित, बंधु न नेरे।
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान-से सेवक हैं जेहि-केरे।
नाक, रसातल, भूतल-मैं, रघुनायक एक सहायक मेरे ॥ ५० ॥

जबै जमराज-रजायसु-तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात, न मात, न स्वामि, सखा, सुत, बंधु, बिसाल बिपत्ति - बटैया।
साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।
एक कृपालु तहाँ 'तुलसी' दसरत्थ-को नंदन बंदि - कटैया ॥ ५१ ॥

बाँका न हो पाया। यहाँतक कि कष्ट भी उससे डरकर भाग खड़ा हुआ तथा जो राज-सेवक राजासे डरते थे वे भी राजाज्ञासे मुँह मोड़कर चलते बने। फिर भी प्रह्लादको कुछ भी दुःख नहीं हुआ। कारण यही था कि वे पूर्णतया भगवान्‌पर ही भरोसा किए बैठे थे। तो फिर अब तुलसीदास क्यों किसीसे डरता फिरे ? जब राम उसकी रक्षा करनेवाले बैठे हैं तब उसे मार कौन सकता है ? ॥ ४८ ॥ जिसकी कृपासे कुछ मिलनेवाला नहीं और जिसके वैरसे कुछ बिगड़नेवाला नहीं उस बिना सींग-पूँछके पशुका और नित्य (पेटके लिये) मारे-मारे फिरनेवालेका मैं आसरा नहीं करता। तुलसीदास कहते हैं कि थोड़ी ही सेवासे प्रसन्न हो जानेवाले राम-जैसे जिसके समर्थ स्वामी हों उसे संसारकी कौनसी चिन्ता पड़ी है ? वह तो ऐसे लोगोंसे सम्बन्ध तोड़कर ही पृथ्वीपर मस्तीसे विचरता है ॥ ४९ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि वनमें, पर्वतपर, पानीमें, आँधीमें, महाविष खा लेनेपर, रोगमें, अग्निमें और शत्रुसे घिर जानेपर तथा जहाँ संकट ही संकट हो और जहाँ माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाई-बन्धु कोई भी पास न हो, वहाँ भी वे दयालु भगवान् राम आकर रक्षा करेंगे जिनके हनुमान्-जैसे सेवक हैं क्योंकि आकाश, पाताल और पृथ्वीमें राम ही तो मेरे सहायक हैं ॥ ५० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस समय यमकी आज्ञासे यमदूत तेरा गला फाँसकर तुझे ले चलेंगे तब वहाँ पिता, माता, स्वामी, मित्र, पुत्र और भाई कोई उस भारी विपत्तिसे न बचा पावेंगे। वहाँ घोर साँसत सहते हुए जब तू आर्त्तनाद करने लगेगा उस समय तेरी पुकार भला कौन सुन कर देगा ? चारों ओरसे सब डाँटने ही डाँटनेवाले तो रहेंगे। ऐसे समय, केवल दशरथ-नन्दन कृपालु राम ही ऐसे मिलेंगे जो तेरा बन्धन काट सकेंगे ॥५१॥

---

१. तिन तोरे = नाता तोड़े हुए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जहाँ जम-जातना घोर नदी, भट कोटि जलचर दंत - टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित - नाव, न नीक खेवैया।
'तुलसी' जहँ मातु, पिता, न सखा, नहिं कोऊ कहूँ अवलंब-लेवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया ॥ ५२ ॥
जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, बनिता, सुत, बंधु न, बापु न मैया।
काय-गिरा-मन-के जन-के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया।
'तुलसी तेहि काल कृपालु-बिना दुजो कौन है दारुन दुःख-दमैया।
जहाँ सब संकट, दुर्घट सोच, तहाँ मेरो साहब राखै रमैया ॥ ५३ ॥
तापस-को बर-दायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप, कृपा पुनि थोरेहि, बैठि - कै जोरत - तोरत ठाढ़े।
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ-लौं कहौं, केहि-सों रद काढ़े।
आरत-के हित, नाथ अनाथ-के, राम सहाय सही दिन गाढ़े ॥ ५४ ॥
जप, जोग, बिराग, महा मख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस-से सेवत जन्म अनेक मरै।

तुलसीदास कहते हैं जहाँ यम-यातना देनेवाले यमराजके अनेक दूत डटे खड़े रहते हैं, वह भयंकर वैतरणी नदी बहती है जिसमें दाँतोंकी धार पैनी करके काटनेवाले न जाने कितने जलजन्तु भरे पड़े हैं, जिस नदीकी धारा बड़ी भयंकर है, जिसके आर-पारका कोई ठिकाना नहीं, जहाँ न कोई जहाज है, न नाव है, न कोई अच्छा केवट ही है, जहाँ माता, पिता और सखा भी कोई कहीं सहारा देनेवाला नहीं है, वहाँ बिना कारण कृपा करनेवाले एक राम ही हैं जो अपनी लम्बी भुजाओंसे पकड़कर उबार निकालते (उद्धार कर लेते) हैं ॥ ५२ ॥ जहाँपर न अपना कोई हितैषी, स्वामी, साथी और मित्र ही है; न स्त्री, पुत्र, बन्धु, माता, पिता ही हैं, वहाँ कृपालु रामके बिना अपने भक्तके शरीर, मन और वचन-द्वारा किए हुए समस्त अपराधोंको छल छोड़कर क्षमा करनेवाला तथा उसके दारुण दुःखका नाश करनेवाला दूसरा कौन हो ही सकता है ? जहाँ ऐसे-ऐसे सब प्रकारके संकट और दुर्घट कष्ट भरे पड़े हैं, वहाँ जगत्‌में रमण करनेवाले मेरे स्वामी राम ही मेरी रक्षा किया करते हैं ॥५३॥ देवता लोग पहले तो तपस्वियोंको वर दे बैठते हैं, फिर (वर पाकर) जब वे बढ़ चलते हैं तब उन्हींसे बैर ठान बैठते हैं। वे थोड़े में ही क्रोध कर बैठते और थोड़ेमें ही प्रसन्न होकर कृपा भी कर बैठते हैं। वे बैठकर जिससे प्रीति जोड़ते हैं, खड़े होते ही उसीको तोड़ भी डालते हैं। (क्षणमें रुष्ट, क्षणमें तुष्ट होते हैं)[1] ? तब कहाँतक कहें और किस-किसके आगे गिड़गिड़ाते फिरें ? गजराजने (ग्राहके मुँहमें पड़नेपर) भली प्रकार समझ लिया था (कि मेरा कोई सहायक नहीं। अंतमें उसने निश्चय किया कि) यदि कोई दुखियोंके हितैषी, अनाथोंके नाथ और विपत्तिके सच्चे सहायक हैं तो केवल राम ही हैं ॥ ५४ ॥ भले ही कोई जप, योग, वैराग्य, बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान, दान, दया, इन्द्रिय-निग्रह आदि अनेक उपाय कर डाले और अनेक जन्मों-तक मुनि, सिद्ध, इन्द्र, गणेश और महेश आदिकी सेवा करता रहे, वेद, शास्त्र और पुराण आदिके द्वारा ज्ञान प्राप्त

---

१. क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः रुष्टस्तुष्टः क्षणे-क्षणे। अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निगमागम, ज्ञान पुरान पढ़ै, तपसानल-में जुग-पुंज जरै।
मन-सों पन रोपि कहै 'तुलसी' रघुनाथ-बिना दुख कौन हरै॥ ५५॥
पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी-करवा है।
लोक कहै बिधिहू न लिख्यो, सपनेहुँ नहीं अपने बर बाहै।
राम-को किंकर सो 'तुलसी' समुझेहि भलो कहिबो न रवा[1] है।
ऐसो को ऐसो भयो कबहूँ न, भजे बिन बानर-के चरवाहै॥ ५६॥
मातु-पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकुर टूकन लागि ललाई।
राम-सुभाउ सुन्यौ 'तुलसी', प्रभु-सों कह्यो बारक पेट खलाई॥ ५७॥
पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई।
हंस कियो बक-तें बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई।
काल बिलोकि कहै 'तुलसी' मन-में प्रभु-की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ, तहँ रावरे-सों निबहै भरि देह सनेह-सगाई॥ ५८॥

करके युगोंतक तपस्याकी आगमें जलता रहे, पर तुलसीदास मनसे प्रण करके कहते हैं कि बिना रामके और कौन किसीका दुःख दूर कर डाल सकता है ?॥ ५५॥ (तुलसीदास कहते हैं कि—) लोग मेरे विषयमें यही कहा करते थे कि यह बड़ा भारी पापी है, अत्यन्त दरिद्रताके कारण दीन बना रहता है और यह मैला-कुचैला कंथा और करवा लिए रहता है, विधाताने भी इसके भाग्यमें कुछ (सुख) नहीं लिखा और यह स्वप्नमें भी कभी अपने बलपर नहीं चला (कभी स्वावलम्बी नहीं हुआ) पर आज वही तुलसी, रामका दास बना बैठा है। यह बात समझनेकी है, कहनेकी नहीं। (यह तो निश्चित है कि) ऐसा (दीन और पापी) तुलसी, वानरोंको चरानेवाले (पालनेवाले) रामको भजे-बिना ऐसा (वाल्मीकिके समान महामुनि) कभी न बन पाता॥ ५६॥ जिसे माता-पिताने संसारमें जन्म देकर त्याग दिया, ब्रह्माने भी जिसके भाग्यमें सुख नहीं लिखा, उस नीच, निरादर करने-योग्य, कायर, कुत्तेके समान टुकड़ेके लिये ललचनेवाले तुलसीने जब रामका स्वभाव सुना और एक बार पेट खलाकर प्रार्थना की तो प्रभु रामने उसका स्वार्थ और परमार्थ सुधारनेमें तनिक भी ढिलाई नहीं की॥ ५७॥ तुलसीदास कहते हैं—'राम ! आपने मेरे पाप नष्ट कर डाले, दुःख मिटा डाले, मेरे शरीरको पूज्य बना दिया और मेरे हृदयमें शान्ति ला भरी। मैं आपपर बलिहारी जाता हूँ। आपने मुझे बगुले (दम्भी)-से हंस (विवेकी) बना डाला। मैं आपकी करुणाकी बड़ाई कहाँ-तक करूँ। मेरे मनमें आपका पूरा भरोसा है। अतः, मैं अपना अन्तकाल निकट देखकर आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा जन्म जहाँ कहीं भी हो, वहाँ अपने शरीरसे जीवन-भर आपसे स्नेह-सम्बन्ध निरन्तर बनाए रहूँ॥ ५८॥ लोग भी मेरे लिये यही

---

१. रवा = [फ़ारसी] उचित।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोग कहैं, अरु हौं-हुँ कहौं, 'जन खोटो-खरो रघुनायक ही-को'।
रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को।
कै यह हानि सहौ, बलि जाउँ, कि मोहुँ करौ निज लायक ही को।
आनि हिये हित जानि करौ ज्यों हौं ध्यान धरौं धनु-सायक ही-को ॥ ५९ ॥
आपु हौं आपुको नीके कै जानत, रावरो राम ! भरायो गढ़ायो।
कीर-ज्यों नाम रटै 'तुलसी', सो कहै जग जानकिनाथ पढ़ायो।
सोइ है खेद जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तौ सदा खर-को असवार, तिहारोइ नाम गयंद चढ़ायो ॥ ६० ॥

घनाक्षरी

छार-तें सँवारिकै पहार हू-तें भारी कियो, गारो भयो पंच-में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तौ जैसो तब, तैसो अब, अधमाई कै-कै पेट भरौं राम ! रावरोई गुन गाइकै।
आपने निवाजे-की पै कीजै लाज, महाराज ! मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल न मारिये, औ काटिये न नाथ ! बिषहू-को रूख लाइकै ॥ ६१ ॥
बेद, न पुरान-गान, जानौं न बिज्ञान, ज्ञान, ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रबीनता।
नाहिंन बिराग, जोग, जाग भाग तुलसीके, दया-दान-दूबरो हौं, पाप ही-की पीनता।

कहते हैं और मैं भी यही कहता हूँ कि मैं बुरा-भला जैसा भी हूँ, रामका ही सेवक हूँ। देखिए राम ! यद्यपि इसमें आपकी तो बड़ी लघुता है (कि मेरे - जैसा पापी और नीच आपका सेवक है) परन्तु आपके समान श्रेष्ठ स्वामीका सेवक होनेका जो यश मुझे प्राप्त हुआ है वह मुझे तो बड़ा सुख दे रहा है। मैं आपपर बलिहारी जाता हूँ। अब या तो आप यह बदनामी बैठे सहिए, या मुझे अपनी सेवाके योग्य बना लीजिए। अपने हृदयमें विचारकर और मेरा हित जानकर ऐसा कीजिए जिससे मैं सदा आपके धनुष-धारी रूपका ही ध्यान करता रह सकूँ (आपके रक्षक रूपको छोड़कर मेरा चित्त किसी दूसरी ओर कभी न जाय) ॥ ५९ ॥ राम ! मैं तो आपका ही बनाया और बढ़ाया हुआ हूँ। अतः, मैं अपनेको भली-भाँति जानता हूँ। मुझे इसीका खेद है कि जब यह 'तुलसी' सुग्गेकी भाँति मन लगाकर आपका नाम रटा करता है तब सारा संसार यही कहता है कि यह स्वयं भगवान् रामका पढ़ाया हुआ सुग्गा है। किन्तु वेद कहता है कि जिसे रामने एक बार उठ दिया वह कभी नीचे नहीं गिर सकता। मैं तो सदासे गधेपर चढ़ने-योग्य रहा (अत्यन्त निन्दित पद प्राप्त करनेवाला रहा) पर आपके नामने मुझे हाथीपर उठा चढ़ाया (मेरी प्रतिष्ठा बढ़ा दी) ॥६०॥ आपने मुझ धूलके समान (तुच्छ) प्राणीको सहारा दे कर (सद्गुणोंसे अलंकृत करके) पहाड़से भी भारी (अत्यन्त प्रतिष्ठित) बना डाला और आपका पवित्र आश्रय पाकर लोगोंमें मेरा गौरव भी बढ़ गया। पर राम ! मैं तो जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ। मैं आपका ही गुण गा-गाकर अधमतासे पेट पाले जा रहा हूँ। परन्तु महाराज ! आप तो अपने विरुद (यश)-की लाज रखिए और मेरी ओर देखकर भी मुझपर रूठ न बैठिए। कृपालु ! न तो सर्पके बच्चेको ही पालकर मारा जाता, न विषका पेड़ लगाकर ही उसे काटा जाता ॥ ६१ ॥ राम ! मैं तो न बेद जानता हूँ, न पुराण ही पढ़ा हूँ, न विज्ञान जानता हूँ, न ध्यान, धारणा, समाधि लगाना ही जानता, न 'तुलसी'-के भाग्यमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोभ-मोह-काम-कोह-दोष-कोष मो-सौं कौन, कलि हू सिखि लई है मेरियै मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं, रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता॥ ६२॥
रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई, रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो, मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं।
पाँच-की प्रतीति न भरोसो मोहिं अपनोई, तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं।
गढ़ि-गुढ़ि, छोलि-छालि कुंद-की-सी[1] भाईं बातैं जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं॥६३॥
बचन बिकार, करतबऊ खुआर[2], मन, बिगत-बिचार, कलि-मल-को निधान है।
राम को कहाइ, नाम बेंचि-बेंचि खाइ, सेवा-संगति न जाइ, पाछिले-को उपखान है।
तेहू तुलसी-को लोग भलो-भलो कहै, ताको दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदान है।
लोक-रीति बिदित बिलोकियत जहाँ-तहाँ, स्वामी-के सनेह स्वान हू-को सनमान है॥ ६४॥
स्वारथ-को साज, न समाज परमारथ-को, मोसौं दगाबाज दूसरो न जग-जाल है।
कै न आयौं, करौं, न करौंगो करतूति भली, लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है।

वैराग्य, योग और यज्ञ आदि करना ही लिखा है और न मुझसे दया और दान ही हो पाता। पाप भी मैंने भरपूर किए हैं। मेरे समान लोभ, मोह, काम और क्रोधका भंडार दूसरा है कौन? मैं तो मनका इतना खोटा हूँ कि कलियुगने भी अपनी सारी मलिनता (खोटाई) मुझसे ही सीखी है। मुझे भरोसा है तो एक यही है कि मैं आपका (सेवक) कहलाता हूँ। आप दीनोंके बन्धु और दयालु हैं। मेरी सारी दीनता आपके सामने खुली धरी है (आप जैसा उचित समझें वैसा करें)॥ ६२॥ राम! मैं आपका कहलाता हूँ और आपका ही गुण गाता हूँ। आपकी ही कृपासे मुझे दो रोटियाँ माँगी मिल जाती हैं। सारा संसार जानता है और मेरे मनमें भी इस बातका बड़ा अभिमान है कि मैंने न किसी दूसरेको माना, न मानता हूँ, न मानूँगा। मुझे न पंचोंका विश्वास है न अपना ही भरोसा है! मैं तो गढ़-गढ़ाकर, छील-छालकर खरादपर चढ़ाई हुई-सी चिकनी-चुपड़ी बातें बनाता रहा हूँ। यदि वैसी ही सरल बातें मेरे हृदयमें भी आ समावें तब मैं समझूँ कि आपने मुझे अपना लिया है॥ ६३॥ (तुलसीदास अपने सम्बन्धमें कहते हैं कि—) जिसकी बोली भी खोटी है, करनी भी बुरी है, मन भी खोट और कलिके पापोंसे भरा पड़ा है, जो रामका कहलाकर भी (उन्हींका) नाम बेच-बेचकर बैठा पेट पालता है, जो न भगवान्‌की सेवा करता न सत्संगति ही करता है और पुरानी कहावतके अनुसार चलता है कि 'जिस पत्तलमें खाता है, उसीमें छेद करता है', उस 'तुलसी'को लोग जो भला कहे जा रहे हैं उसका कोई दूसरा कारण मेरी समझमें नहीं आता वरन् भली भाँति यही निश्चित होता है, जैसी कि लोक रीति है और जहाँ-तहाँ देखनेमें भी आता है कि 'यदि स्वामीके साथ स्नेह है तो स्वामीके कुत्तेका भी सम्मान होता है'। (रामके भक्तजन रामके आदरके कारण रामके सेवक तुलसीका भी आदर करते हैं)॥ ६४॥ तुलसीदास कहते हैं—राम! मुझे न तो स्वार्थ (लौकिक सुख-भोग)-ही मिल रहा है न परमार्थ ही बन पा रहा है। इस विशाल संसारमें मेरे समान दूसरा कोई कपटी नहीं है। अच्छी करनी तो न मैं पहले करता रहा, न इस समय करता हूँ, न आगे चलकर ही कर पाऊँगा।

---

१. कुंदकी भाईं = खरादपर चढ़ाई हुई। २. खुआर = (फ़ारसी .ख्वार) बुरे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रावरी सपथ, राम ! नाम ही-की गति मेरे, इहाँ झूठो झूठो-सो तिलोक तिहूँ काल है ।
'तुलसी'को भलो पै तुम्हारे ही किये, कृपालु ! कीजै न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है ॥ ६५ ॥
राग-को न साज, न बिराग जोग जाग जिय, काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट-को ।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि, चाहै चारु चीर, पै लहै न टूक टाट-को ।
भयो करतार बड़े कूर-को कृपालु, पायो नाम-प्रेम-पारस, हौं लालची बराट-को ।
'तुलसी' बनी है राम रावरे बनाए, ना तो, धोबी कैसो कूकुर न घर-को न घाट-को ॥ ६६ ॥
ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही, लोक-रीति-लायक न, लंगर लबार है ।
स्वारथ अगम, परमारथ-की कहा चली, पेट-की कठिन, जग जीव-को जवार[1] है ।
चाकरी, न आकरी[2], न खेती, न बनिज, भीख, जानत न कूर कछु किसब[3] कबार है ।
'तुलसी'-की बाजी राखी राम ही-के नाम, नतु भेंट पितरन-को न मूड़ हू-में बार है ॥ ६७ ॥

यहाँतक कि विधाताने भूलकर भी मेरे ललाटमें भलाईकी रेखा नहीं डाली । मैं तो आपकी शपथ करके कहता हूँ कि मुझे यदि किसीका भरोसा है तो केवल राम-नामका ही भरोसा है । कृपालु राम ! जो आपके समक्ष भी झूठा है तथा तीनों लोकों और तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्यत्)-में भी झूठा है, उस तुलसीका भला तो आपके ही किए होगा तो होगा । अतः, मैं आपपर बलिहारी जाता हूँ, विलम्ब न कीजिये क्योंकि यह शरीर तो पानीसे भरी खाल (बुलबुले)-के समान है (न जाने कब नष्ट हो जाय) ॥६५॥ मेरे पास न तो राग (सांसारिक सुख-भोग)-की ही सामग्री थी, न मेरा मन वैराग्य, योग या यज्ञमें ही लगता था । यह शरीर भी (विषय-वासनाकी पूर्ति करनेमें) किसी प्रकारका अनुचित उपाय करना नहीं छोड़ता था । मनके लड्डू खाते - खाते (हवाई महल खड़े करते) आजतक इसकी हानि ही हानि होती आई थी । यह (शरीर) चाहता तो था अच्छे-अच्छे वस्त्र, पर उसे एक टाटका टुकड़ा-तक न मिल पाता था । पर जगत्कर्त्ता प्रभो ! आपने इतने बड़े कुटिलपर भी यह कृपा कर डाली कि इस कौड़ीके लालची (तुच्छ)-को राम-नामके प्रेमका पारस हाथ लग गया । तुलसीदास कहते हैं—'राम ! इस प्रकार आपके ही बनानेसे मेरी बनी है, नहीं तो मैं तो धोबीके कुत्तेके समान न घरका रह गया था, न घाटका (आपकी कृपा न हुई होती तो मैं लोक या परलोक कुछ भी न सुधार पाता)' ॥ ६६ ॥ इस (तुलसी)-का मन तो बड़ा ऊँचा है (कि मुझे यह भी मिले वह भी मिले) तथा रुचि भी ऊँची है (अच्छी - अच्छी वस्तुओंपर मन जाता है) पर यह भाग्यका अत्यन्त खोटा, नटखट और झूठा है इसलिये लोक-व्यवहारके भी योग्य नहीं है । इसके पास स्वार्थ (भोजन, वस्त्र आदि)-का भी कोई ठिकाना नहीं है, फिर परमार्थकी तो बात ही कहाँ उठती है ? यहाँतक कि पेट भरने - तककी कठिनाईके कारण यह संसार (जीवन) भी जीका जंजाल हो गया है । यह न तो कोई चाकरी करता, न किसी खानकी खुदाई करता, न खेती ही करता, न व्यापार ही करता, न भीख ही माँगता, न कोई धंधा या कारीगरी ही जानता है । ऐसे तुलसीदासकी बाजी (प्रतिष्ठा) तो राम-नामके ही भरोसे बची हुई है, नहीं तो इसके पास तो पितरोंको भेंट चढ़ानेके लिये सिरपर बालतक नहीं बच पाए हैं ॥६७॥ मैं निर्लज्जोंमें भी सबसे गया-

१. जवार (अरबी शब्द ज़वाल)=जंजाल, कष्ट, पतन । २. आकरी = खान खोदनेका काम । ३. किसब = (अरबी शब्द 'कसब')=कारीगरी ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपत, उतार, अपकार-को अगार जग, जाकी छाँह छुए सहमत व्याध-बाधको।
पातक-पुहुमि पालिबे-को सहसानन-सो, कानन कपट-को, पयोधि अपराध-को।
'तुलसी'-से बाम-को भी दाहिनो दयानिधान, सुनत सिहात सब सिद्ध, साधु, साधको।
राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि-को, बड़ो कूर, कायर, कपूत कौड़ी आध-को॥ ६८॥
सब-अंग-हीन, सब-साधन-बिहीन, मन-बचन-मलीन, हीन कुल-करतूति हौं।
बुद्धि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन-गुन, ज्ञान-हीन, हीन-भागहू बिभूति हौं।
'तुलसी' गरीब-की गई बहोर राम नाम, जाहि जपि जीह रामहूको बैठो धूति हौं।
प्रीति राम-नाम-सों, प्रतीति राम-नाम-की, प्रसाद राम-नाम-के पसारि पाँय सूतिहौं॥ ६९॥
मेरे जान जब-तें हौं जीव ह्वै जनम्यौ जग, तब-तें बेसाह्यो दाम लोह-कोह-काम-को।
मन तिनहीं-की सेवा, तिनही-सों भाव नीको, बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलाम राम-को'।
नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै प्रभुहू-तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम-को।
आपनी भलाई भलो कीजै तौ भलाई, न तौ 'तुलसी'-को खुलैगो खजानो खोटे दाम-को॥ ७०॥

बीता हूँ और बुराइयोंका ऐसा भंडार हूँ कि उसकी छायाका स्पर्श करते वधिक व्याध भी डरते हैं। पापकी पृथ्वी पालनेके लिये मैं शेष बना हुआ हूँ। मैं कपटका वन और अपराधोंका समुद्र हूँ। ऐसे कपटी तुलसीपर भी दयालु रामने कृपा कर दी यह सुनकर सारे सिद्ध, साधु और साधक तरसे जा रहे हैं (कि हाय ! हमें क्यों नहीं यह कृपा मिली)। इतने बड़े क्रूर, कायर, कुपुत्र और आधी कौड़ीके तुलसीको भी राम-नामने लाखोंके मोलका सुन्दर रत्न बना डाला ॥ ६८ ॥ मैं (अष्टाङ्ग योगके) सभी अंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि)-मेंसे एक भी नहीं जानता। मेरे पास कोई साधन भी नहीं है। मन और वचनका भी मैं खोटा हूँ तथा कुलके योग्य कर्त्तव्य भी नहीं कर पाता हूँ। मुझमें न व्यावहारिक बुद्धि है, न शारीरिक बल है, न भाव-भक्ति है, न गुण और ज्ञान है, न भाग्य और ऐश्वर्य ही है। ऐसे दीन तुलसीदासकी बिगड़ीको भी सब प्रकारसे बना देनेवाला (यदि कोई है तो)-राम नाम ही है, जिसे जिह्वासे जपकर मैं रामको भी छले बैठा हूँ। उसी राम नामसे मेरी प्रीति है, उसी राम नामका मुझे विश्वास भी है। अतः उसी राम नामके प्रसादसे मैं निश्चिन्त होकर पैर पसारे सोता हूँ ॥ ६९ ॥ मैं समझता हूँ कि जबसे मैं संसारमें जीव होकर जनमा तभीसे मैंने लोभ, क्रोध और काम ही दाम देकर मोल लिए हैं। मेरा मन दिनरात उन्हींकी सेवा और उन्हींके भावमें अच्छी तरह भिना पड़ा रहता है। मैं भी बातें बनाकर ही (झूठे ही) कहता रहा कि 'मैं रामका सेवक हूँ' और यद्यपि स्वामी (राम)-ने भी मुझे अपनाया नहीं पर जगत्में झूठी ख्याति अवश्य फैल गई (कि मैं रामका दास हूँ)। किन्तु प्रभु रामसे भी बढ़कर प्रभुके नामका प्रताप है। अतः, यदि आप अपनी भलाईसे मेरा भला कर दें तो भले ही मेरा भला हो जाय, अन्यथा तुलसीके खोटे कर्मोंका भंडार सबके सामने खुल पड़ेगा ॥ ७० ॥

१. लोह=लोभ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जोग, न बिराग, जप, जाग, तप, त्याग, व्रत, तीरथ, न धर्म जानौं बेद-बिधि किमि है।
'तुलसी' सो पोच न भयो है, नहिं ह्वै है कहूँ, सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै।
मेरे तौ न डर रघुबीर सुनौ साँची कहौं, खल अनखैहैं, तुम्हैं सज्जन न गमिहैं[1]।
भले सुकृती-के संग मोहिं तुला तौलिये तौ, नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै॥ ७१॥

जाति-के, सुजाति-के, कुजाति, पेटागि बस, खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।
मानस-बचन-काय किए पाप सति भाय, राम-को कहात दास दगाबाज पुनी सो।
रामनाम-को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप, तुलसी-सो जग मनियत महामुनी-सो।
अति ही अभागो अनुरागत न राम-पद, मूढ़ ! एतो बड़ो अचरज देखि सुनी सो॥ ७२॥

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि, भयो परिताप पाप जननी-जनक-को।
बारे-तें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन, जानत हो चारि फल चारि ही चनक-को।
'तुलसी' सो साहिब समर्थ-को सुसेवक है, सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक-को।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो, जो करत गिरी-तें गरु, तृन-तें तनक-को॥ ७३॥

मैं न तो योग जानता हूँ न वैराग्य, जप, यज्ञ, तप, त्याग, व्रत, तीर्थ अथवा धर्ममें ही मेरा मन लगता है। मैं यह भी नहीं जानता कि वेदमें क्या कहा गया है ? तुलसीके समान नीच न तो कोई हुआ है, न होगा, इसीलिये सब लोग यही सोचते हैं कि प्रभु इसके पाप कैसे क्षमा करेंगे। किन्तु राम ! सुनिए। मैं आपसे सच कहे देता हूँ कि मुझे कोई भय नहीं है। दुष्ट लोग तो आपपर अवश्य बरस पड़ेंगे (कि आपने ऐसे पापीको केवल नाम लेनेके बलपर कैसे क्षमा कर दिया), परन्तु सज्जनोंको तो (जो आपके नामका प्रभाव जानते हैं) प्रसन्नता ही होगी। यदि आप मुझे किसी अच्छे पुण्यात्माके साथ तराजूपर तौलेंगे तो आपके नामकी कृपासे मेरी ओरका ही पलड़ा भारी होकर झुक जायगा ॥७१॥ यह बात संसारमें सबको विदित है कि भूखमें मैंने ऊँची और नीची सब जातियोंके घर टुकड़े माँगकर खाए हैं। मैं सच्चे भावसे कहे देता हूँ कि मैंने मन, वचन और कर्मसे बहुतसे बुरे पाप भी किए हैं और रामका दास कहलाकर मैं सबको धोखा भी देता रहा। पर अब रामनामका प्रभाव, महिमा और प्रताप तो देखिए कि 'तुलसी' (-जैसे पापीको भी) संसारमें लोग महामुनि[2] (वाल्मीकि)-के समान मानने लगे। अरे मूढ (मन) ! तू बड़ा अभागा है। इतना बड़ा आश्चर्य देख और सुनकर भी तू रामके चरणोंसे अनुराग नहीं कर पाया ॥ ७२॥ मैं भिक्षा माँगनेवाले (ब्राह्मण) कुलमें उत्पन्न हुआ। इसके उपलक्ष्यमें बधावा भी बजाया गया, किन्तु मेरे (पाप = पापग्रहों) कु-लक्षणोंको सुनकर मेरे माता-पिताको मेरे जन्मका बड़ा दुःख हो गया। बचपनसे ही (भूखसे) दीन होकर मैं लोगोंके द्वार-द्वार बिलबिलाता गिड़गिड़ाता फिरता रहा और चनेके चारदाने मिल गए तो उन्हें ही चारों पदार्थ समझता रहा। वही (दरिद्र) तुलसीदास आज समर्थ स्वामी रामका उत्तम सेवक बन बैठा है, यह सुनकर ब्रह्मा-जैसे ज्योतिषी (भाग्य - निर्णायक) को भी चिन्ता और ईर्ष्या होने लगी। अतः राम ! आपके नामको चतुर कहा जाय या पागल जो तिनकेके समान तुच्छ व्यक्तिको भी पर्वतसे भारी बना देता है॥ ७३॥ वेद और पुराण भी यही

---

१. गमिहै=गम न करेंगे, चिन्ता न करेंगे।

२. कलि कुटिल जीव निस्तार-हेतु बालमीकि तुलसी भयो॥—नाभादास

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत, राम-नाम-ही-सों रीझे सकल भलाई है।
कासी-हू मरत उपदेसत महेस सोई, साधना अनेक चितई न चित लाई है॥
छाछी-को ललात जे, ते राम-नाम-के प्रसाद खात खुनसात सोंधे दूध-की मलाई है।
राम-राज सुनियत राज-नीति-की अवधि, नाम राम! रावरो तौ चाम-की चलाई है॥ ७४॥
सोच-संकटनि सोच-संकट परत, जर जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम-को।
बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात, होत देखि दाहिनो सुभाव बिधि बाम-को।
भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग जागत, आलसि तुलसी हू-से निकाम-को।
धाई धारि फिरि-कै गोहारि हितकारी होति, आई मीचु मिटति जपत रामनाम-को॥ ७५॥
आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन, सूकर-के सावक ढका ढकेल्यो मग-मैं।
गिरो हिये हहरि, 'हराम हो, हराम हन्यो' हाय! हाय! करत परीगो काल फँग-मैं[1]।
'तुलसी' बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो नाम-के प्रताप, बात बिदित है जग-मैं।
सोई राम-नाम जो सनेह-सों जपत जन ताकी महिमा क्यों कही है जाति अग-मैं॥ ७६॥

कहते हैं, और लोकमें भी यही देखा गया है कि रामनामसे प्रेम करनेपर सब प्रकारका कल्याण ही कल्याण होता है। शिव भी काशीमें मरनेवालेको इसी राम-नामके मन्त्रका उपदेश दिया करते हैं। उन्होंने अन्य साधनोंकी ओर न ध्यान दिया है और न उनके मनमें कोई दूसरा मुक्तिका साधन ही आता है। जो लोग छाछ (मट्ठे)-के लिये तरसते फिरते थे वे राम-नामका प्रसाद पा लेनेपर अब सुगन्धित दूधकी मलाईतक खानेमें नाक-भौं सिकोड़ते हैं। रामके राज्यमें राजनीतिकी पराकाष्ठा सुनी जाती है, पर आपके नामने तो चमड़ेका सिक्का चला दिया (अधर्मों तकको भी परम-पदपर प्रतिष्ठित कर दिया)॥ ७४॥ अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ रामनामका ऐसा प्रभाव है कि उससे शोक और संकट भी शोक और संकटमें पड़ जाते हैं, ज्वर भी जलने लगता है, डूबी हुई नौका भी तैरने लगती है, बिगड़ी हुई बात भी बन जाती है। ऐसे (रामनाम जपनेवाले) पुरुषको देखकर बैरी विधाता भी पक्षमें हो जाता है, अभाग्य भाग खड़ा होता है, वैराग्य प्रेम करने लगता है (अर्थात् मन सांसारिक प्रेमसे हटकर वैराग्यकी ओर लग जाता है) और तुलसीदास जैसे आलसियों और निकम्मोंका भी भाग्योदय हो जाता है। (लूटनेको आई हुई लुटेरोंकी) सेना भी जापकोंकी पुकारपर उलटे हितकारिणी हो जाती है (यहाँ-तक कि) रामनाम जपनेसे आई हुई मृत्यु भी लौट जाती है (सारे अमंगल मंगलकारी हो जाते हैं)॥ ७५॥ एक सूअरके बच्चेने किसी अंधे, अधम, मूर्ख और बुढ़ापेसे जर्जर यवनको मार्गमें धक्का देकर धकेल गिराया। इससे वह गिर पड़ा और हृदयमें भयभीत होकर—'अरे हराम[1] ने मार डाला, हरामने मार डाला'—इस प्रकार हाय-हाय करते-करते वह कालके फंदेमें जा फँसा (मर गया)। तुलसीदास कहते हैं कि वह यवन (हराम शब्दमें आए हुए) 'राम'-के कारण मुक्त होकर त्रिलोकीनाथ (राम)-के धाम जा पहुँचा, यह बात सारे जगत्‌में प्रसिद्ध है। उसी रामनामको जो प्रेमपूर्वक जपता है, उसकी अगाध महिमाका वर्णन भला कौन कर पा सकता है॥ ७६॥ मैंने न तो जप किया, न तपस्याका ही कष्ट

१. हराम (अरबी शब्द)=निषिद्ध, अपवित्र, वर्जित। २. परीगो काल फँगमें=मृत्युके फंदेमें आ गया, मर गया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जाप को न तप खप[1] कियो, न तमाइ[2] जोग, जाग, न बिराग, त्याग, तीरथ न तनको।
भाई-को भरोसो न खरो सो बैर बैरीहू-सों, बल अपनो न, हितू जननी, न जनको।
लोक-को न डर, परलोक-को न सोच, देव-सेवा न सहाय, गर्व धाम-को न धन-को।
रामही-के नाम-तें जो होइ सोइ नीको लागै, ऐसोई सुभाव कछु तुलसी-के मन-को॥ ७७॥
ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न, सुरेस, सुर, गौरि, गिरापति नहिं जपने।
तुम्हरेई नाम-को भरोसो भव तरिबे-को, बैठे-उठे जागत बागत सोए सपने।
'तुलसी' है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं, रावरेऊ जानि जिय कीजिये जु अपने।
जानकी-रमन मेरे! रावरे बदन फेरे, ठाउँ न समाउँ कहा सकल निरपने[3]॥ ७८॥
जाहिर जहान-में जमानो एक भाँति भयो, बेंचिये त्रिबुध-धेनु, रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल-में कृपालु तेरे नाम-के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए।
'तुलसी' तिहारो मन-बचन-करम, तेहि नाते नेह-नेम निज ओर-तें निबाहिए।
रंक के निवाज, रघुराज राज राजनि-के, उमरि-दराज महाराज तेरी चाहिए॥ ७९॥
स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ, कहायो राम रावरो हौं, जानत जहान है।
नाम-के प्रताप, बाप! आजु-लौं निबाही नीके, आगे-को गोसाईं स्वामी सबल सुजान है।

सहा, न मुझे योग, यज्ञ, वैराग्य, त्याग अथवा तीर्थ करनेकी ही लालसा है, न मुझे भाईका ही भरोसा है और न शत्रुसे ही कुछ शत्रुता है, न मुझे अपना ही बल है और न अपने माता-पिता या हितैषियोंका, न मुझे इस लोकका डर है न परलोककी ही चिन्ता है, न मुझे किसी देव-सेवाका ही बल है, न धन या धामका ही गर्व है। तुलसीके मनका तो कुछ ऐसा स्वभाव बन गया है कि भगवान् रामके नामसे ही जो कुछ हो सब वही अच्छा है॥ ७७॥ मुझे शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, देवताओंके स्वामी इन्द्र, देवता, गौरी, और वाणीपति वृहस्पति, किसीका जप नहीं करना है। संसार-सागरसे पार होनेके लिये उठते, बैठते, जागते, सोते, चलते, फिरते और स्वप्नमें भी मुझे केवल आपके ही नामका भरोसा है। यह तुलसीदास पागल भी हो तो भी आपकी शपथ है कि यह आपका ही है, यह समझकर आप भी कृपा करके उसे अपनालीजिए। जानकीनाथ! आपने यदि मुझे छोड़ दिया तो मेरा कहीं ठौर-ठिकाना न लगेगा। फिर मैं रहूँगा कहाँ? सभी तो पराए हैं, अपना कोई है ही नहीं॥ ७८॥ इस समय (कलिकाल) के संबंधमें संसारमें प्रसिद्ध हो गया है कि आजकल कामधेनु बेचकर गधी मोल ली जाने लगी है। ऐसे भयंकर कलिकालमें भी कृपालु! आपका नाम ही ऐसा प्रतापी है कि त्रिताप भी शरीरको दग्ध नहीं कर पा सकते। तुलसीदास कहते हैं कि मन, वचन और कर्मसे मैं आपका भक्त हूँ, इसी नाते आप अपनी ओरसे भी स्नेहका नियम निभाते चलिए। रंकोंपर कृपा करनेवाले और राजाओंके राजा महाराज राम! मैं चाहता हूँ कि आप सदा बने रहें॥ ७९॥ राम! यद्यपि मैं अपने स्वार्थके कामोंमें चतुराई (धूर्त्तता) और परमार्थके कामोंमें पाखंडसे ही काम लेता हूँ तो भी सारा संसार जानता है कि मैं कहलाता आपका ही हूँ। पिता! आपके नामके प्रतापने आजतक अच्छी तरह निभाया है और स्वामिन्!

---

१. खप = खपकर, पचकर। २. तमाइ (अरबी शब्द तमअ़)=लालच, इच्छा। ३. निरपने = बेगाने, जो अपने न हों।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कलि-की कुचाल देखि दिन-दिन दूनी देव ! पाहरूई चोर हेरि हिय हहरान है।
तुलसी-की, बलि, बार-बार ही सँभार कीबी, जद्यपि कृपानिधान सदा सावधान है ॥ ८० ॥
दिन-दिन दूनो देखि दारिद, दुकाल, दुख, दुरित, दुराज, सुख, सुकृत सकोच है।
माँगे पैंत[1] पावत पचारि पातकी प्रचंड, काल-की करालता भले-को होत पोच है।
आपने तौ एक अवलंब अंब डिंभ[2] ज्यों, समर्थ सीतानाथ सब संकट-विमोच है।
तुलसी-की साहसी सराहिये कृपालु राम ! नाम-के भरोसे परिनामको निसोच है ॥ ८१ ॥
मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति कुनारि-सों, बिसारि बेद लोक-लाज[3], आँकरो अचेत है।
भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत कछु, काहू-की सहत नाहिं, सरकस-हेत है।
'तुलसी' अधिक अधमाई हू अजामिल-तें, ताहू-में सहाय कलि कपट-निकेत है।
जैबे-को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे-को, जो पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेत है ॥ ८२ ॥
जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय, दुख रोग रोइए कलेस कोह काम-को।
राजा, रंक, रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम-को।

आगेके लिये भी आप ही समर्थ और सर्वज्ञ हैं। देव ! कलियुगकी कुचाल दिन-दिन दूनी बढ़ती देखकर और पहरेदारको भी चोरी करते देखकर मेरा हृदय दहल उठा है। कृपानिधान ! यद्यपि आप सदा ही मेरे लिये सावधान रहते हैं, तथापि तुलसी आपपर बलिहारी जाता है, आप इसकी सँभाल करते रहिएगा (जिससे इसके मनमें विकार न आने पावे) और इसका अनिष्ट न होने पावे ॥ ८० ॥ दिन-दिन दरिद्रता, दुष्काल (दुर्भिक्ष), दुःख, पाप और कुराज्य दूना बढ़ता देखकर सुख और पुण्य संकुचित हुए जा रहे हैं। ऐसा भयंकर समय आ गया है कि बड़े-बड़े पापी तो डाँट-डपटसे माँगकर अपना काम निकाल लेते हैं, परन्तु भले मनुष्योंका बुरी दशा हो रही है। जैसे बच्चेको एकमात्र माँका ही सहारा होता है, वैसे ही मुझे तो समस्त संकटोंसे छुड़ानेवाले समर्थ सीतानाथ रामका ही सहारा है। कृपालु राम ! साहसी तुलसीकी सराहना कीजिए कि वह सब परिणामोंसे निश्चिन्त होकर केवल आपसे नामके भरोसे पैर पसारे सोया पड़ा है ॥ ८१ ॥ यह (तुलसी) मोहके मदमें उन्मत्त और कुमति-रूपी कुलटा स्त्रीके फेरमें फँसा पड़ा है, लोक और वेदकी सारी मर्यादा त्यागकर यह दिनरात बेसुध हुआ रहता है। इसे जो अच्छा लगता है, वही कर डालता है, जो कुछ मुँहमें आता है वही बक डालता है और अपनी उद्दण्डताके कारण किसीकी एक बात नहीं सहता। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार मैं तो अजामिलसे भी अधिक अधम हूँ, तिसपर यह कपटका भंडार कलिकाल और भी मेरा सहायक बन बैठा है। बिगड़नेके तो इसके अनेक मार्ग खुले हैं, परन्तु बननेका केवल एक ही अच्छा मार्ग यह है कि पेट-रूपी प्रिय पुत्रके पालनके लिये यह रामनाम लेता रहता है (अधम अजामिलने तो मरते समय मोहवश अपने पुत्र 'नारायण'-को पुकारा था, मैं तो अजामिलसे भी गया-बीता हूँ कि मैं अपने पेटके लिये 'राम' नाम लेता हूँ) ॥८२॥ (इस संसारमें) न तो हम जागते ही हैं न सोते ही हैं, व्यर्थ अपना जीवन खोए डाल रहे हैं। हम दुःख और रोगके कारण रोते हैं और काम-क्रोधका क्लेश सहते हैं। राजा या रंक, रागी या विरागी, भाग्यवान् या

---

१. पैंत = दाँव, घात। २. डिंभ = बच्चा। ३. आँकरा = बहुत गहरा, बड़ा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' कबंध-कैसो धाइबो बिचारु, अंध ! धुंध देखियत जग सोच परिनाम-को।
सोइबो जो राम-के सनेह-की समाधि-सुख, जागिबो जो जीह जपै नीके राम-नाम-को ॥ ८३ ॥
धरन-धरम गयो, आस्रम-निवास तज्यो, त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम, उपासना, कुबासना बिनास्यो ज्ञान, बचन, बिराग, बेष जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग, निगम नियोग-ते सो कलि-ही छरो सो है।
काय-मन-बचन सुभाय 'तुलसी' है जाहि रामनाम-को भरोसो ताहि-को भरोसो है ॥ ८४ ॥

मत्तगयंद सवैया

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल, कृपाल न, राज-समाज बड़ोई छली है ॥
बर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र दली है।
स्वारथ-को, परमारथ-को, कलि राम-को नाम-प्रताप बली है ॥ ८५ ॥

अभागे सभी जीव जले चले जा रहे हैं। यह सब कुटिल कलिकालका ही तो प्रभाव है। अरे अंधे तुलसी ! विचारकर देख ले कि इस जगत्‌में जितने धंधे दिखाई दे रहे हैं सब कबंधकी दौड़ (बिना सिरकी दौड़ अर्थात् बुद्धि-विवेक रहित होकर इधर-उधर भटकने)-के समान हैं, जिनका अन्त है केवल चिन्ता। अतः, सोए रहना वही ठीक है जिसमें रामके प्रेमकी एकाग्रताका सुख मिले और जागना वही ठीक है कि जिह्वासे भली-भाँति रामनाम जपते रह जाय ॥ ८३ ॥ इस कलियुगमें वर्ण-धर्म (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका वेद-विहित आचरण) चला गया। (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास) आश्रमोंमें जीवन व्यतीत करना भी लोगोंने छोड़ दिया। अधर्मके भयसे चकित होकर (वर्णाश्रम-धर्म पालन करनेवालोंमें) भी भगदड़-सी मच गई है। बुरी वासनाओंने कर्म, उपासना और ज्ञान नष्ट कर डाला है। ज्ञान केवल वचनमें और वैराग्य केवल वेषमें रह जानेके कारण सारा जगत् ठग-सा गया है। उधर गोरखनाथने हठयोगका प्रचार करके लोगोंको भक्ति-मार्गसे विमुख कर दिया। योग तो वेदके अनुसार ठीक ही है, पर गोरखनाथके रूपमें कलिने ही जगत्‌को ठग लिया है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी स्थितिमें जिसे शरीर, मन, और वचनसे केवल रामनामका ही भरोसा है, वही वास्तविक सच्चा भरोसा है ॥ ८४ ॥ (कलियुगमें) लोगोंने वेद-पुराणोंमें बताया हुआ सुमार्ग त्याग दिया है। संसारमें अनेक प्रकारके कुचालसे भरे हुए कुपंथ चल पड़े हैं। समय बड़ा कठिन है। राजा निर्दयी हो चले हैं। राज-समाज (मंत्री आदि कर्मचारी) बड़े छली हो गए हैं। वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म रह नहीं गए। सारा संसार दुःख, दोष और दरिद्रतासे पीडित हो चला है। ऐसे घोर कलिकालमें स्वार्थ और परमार्थ साधनेके लिये केवल रामनामका प्रताप ही बलवान् है (कलिकालमें स्वार्थ साधना हो या परमार्थ साधना हो, दोनोंके लिये रामका नाम जपना ही एकमात्र उपाय है) ॥ ८५ ॥ इस

१. सरकस (फ़ा० सरकश)=उद्धत, उद्दंड।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुर्मिल सवैया

न मिटै भय-संकट, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि-में न बिराग, न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँट-जटो।
नट-ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
'तुलसी' जो सदा सुख चाहिय तो रसना निसि-बासर राम रटो॥ ८६॥
दम दुर्गम, दान, दया, मख कर्म, सुधर्म अधीन सबै जन-को।
तप, तीरथ, साधन, जोग, बिराग-सों होइ नहीं दृढ़ता तनको।
कलिकाल कराल-में, राम कृपालु! यहै अवलंब बड़ो मन-को।
'तुलसी' सब संजम-हीन सबै, इक नाम अधार सदा जन-को॥ ८७॥
पाइ सुदेह, बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
राम-कथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद, न ध्रू-की।
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई 'तुलसी', अवलंब बड़ो उर आखर दू की॥ ८८॥
'राम' बिहाय, 'मरा' जपते, बिगरी सुधरी कबि कोकिल[1] हू-की।
नामहि-तें गज-की, गनिका-की, अजामिल-की चलिगै चल-चूकी।

संसारका संकट मिट नहीं सकता क्योंकि तपस्या किसीसे हो नहीं पाती और तीर्थोंमें अनेक जन्मोंतक विचरते रहनेपर भी कलियुगमें न कहीं वैराग्य मिल पाता है न ज्ञान। सब कुछ निस्सार और असत्य प्रतीत होता है। नटके समान अपने पेट-रूपी कुत्सित पिटारेसे अनेक इन्द्रजालके तमाशेका ठाट मत ठाटो (ढोंग मत रचो)। तुलसीदास कहते हैं कि यदि निरन्तर सुख चाहो तो रातदिन बैठे रामनाम रटते रहो॥ ८६॥ इन्द्रियोंका दमन करना कठिन है। दान, दया, यज्ञ, कर्म और उत्तम धर्म सब धनवाले ही कर सकते हैं। तप, तीर्थ और योग-साधन सब वैराग्यसे होते हैं, किन्तु वैराग्यके लिये मेरे मनमें तनिक भी दृढता नहीं आ पाती (मनमें वैराग्य नहीं हो पाता)। तुलसीदास कहते हैं—कृपालु राम! इस कराल कलिकालमें मनके लिये यही एक बड़ा सहारा है कि जब सभी लोग सब प्रकारके संयम खोए बैठे हैं तब इस जनको केवल एक नामका ही सदा (भरोसा) बना हुआ है॥ ८७॥ (मनुष्यकी) सुन्दर देह पाकर भी मोहकी नदी पार करनेके लिये मैं (भक्तिरूपी) नौका नहीं प्राप्त कर पाया, न कोई उत्तम करनी ही कर पाया, न भली भाँति रामकथा ही कह पाया और न प्रह्लाद और ध्रुव-जैसे भक्तोंकी कथा ही सुन पाया। अब तो पूर्ण वृद्धावस्थाके कारण शरीर जर्जर हो चला है, फिर भी मनने ग्लानि मानकर अपनी कुटेव नहीं छोड़ी। इसलिये तुलसीने भली प्रकार विचारकर निश्चय कर लिया है कि मैं 'राम' नामके दो अक्षरोंका ही हृदयमें बड़ा अवलंब लिए बैठा रहूँगा॥ ८८॥ 'राम' नामको छोड़कर उसे उलटकर 'मरा' नाम जपनेसे भी 'कविकोकिल' महर्षि वाल्मीकिकी सारी बिगड़ी बन गई (डाकूसे महर्षि बन गए)। राम-नामसे ही गजेन्द्र, पिंगला वेश्या और अजामिलकी सारी चंचलता और धोखा-धड़ी जाती रही। रामनामके प्रतापसे ही बड़े भारी कुत्सित

१. कूजन्तं राम-रामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥
कवि-कोकिल = वाल्मीकि।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाम-प्रताप, बड़े कुसमाज, बनाइ रही पति पांडु-बधू-की।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति-प्रतीति है आखर दू-की ॥ ८९ ॥
नाम अजामिल-से खल तारन, तारन बारन, बारबधू-को।
नाम हरे प्रहलाद-बिषाद, पिता-भय-साँसति, सागर सूको ॥
नाम-सों प्रीति-प्रतीति-बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम, सो जासु हिये 'तुलसी' हुलसै बल आखर दू-को ॥ ९० ॥
जीव-जहान-में जायो जहाँ, सो तहाँ 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख-लेस लहो है।
राम-के नाम-तें होउ सो होउ, न सोउ हिये, रसना ही कहो है।
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू, मरिबोई रहो है ॥ ९१ ॥
जीजै न ठाँउ, न आपन गाँउ, सुरालयहू-को न संबल मेरे।
नाम रटो, जम-बास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे।
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौं मोको ठाहरु हेरे।
बैरख बाँह बसाइए पै, 'तुलसी' घर, व्याध-अजामिल-खेरे ॥ ९२ ॥

समाज (दुर्योधनकी सभा)-में डंकेकी चोट द्रौपदीकी लाज बची रह गई। तुलसीदास कहते हैं कि जिसको दो अक्षर 'रा-म' पर प्रीति और विश्वास है उसका अब भी भला ही होगा ॥ ८९ ॥ राम-नामने अजामिल-जैसे पापीको भी तार दिया, गज और गणिकाका भी निस्तार कर दिया। राम-नामने ही प्रह्लादके सारे दुःख मिटा डाले और उनके पिता (हिण्यकशिपु)-के दिए हुए भय और साँसतके लहराते समुद्रको जा सुखाया। रामनाममें जिनकी प्रीति और विश्वास नहीं रहा उन्हें निगल जानेमें कराल कलिकाल कभी नहीं चूका। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके हृदयमें 'रा' और 'म' इन दो अक्षरोंका बल लहरें लेता है उसकी रक्षा तो राम करेंगे ही ॥ ९० ॥ तुलसीदास कहते हैं कि संसारमें जहां भी जीव उत्पन्न होता है, वहीं तीनों पापोंसे जलता रहता है। इसमें किसीका भी कोई दोष नहीं है। यह सब तो वह अपने ही किएका फल भोगता है। इसीसे उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र सुख नहीं मिल पाता। रामनामके प्रभावसे जो कुछ होना हो वह भले ही हो, पर मैं तो उस नामको भी हृदयसे नहीं लेता, केवल जिह्वासे ही रटता रहता हूँ। इसके अतिरिक्त मैंने आजतक न तो कुछ किया है, न कुछ करने ही वाला हूँ और न करना ही चाहता हूँ। अब तो केवल मरना ही बचा रह गया है ॥ ९१ ॥ मेरे पास जीविकाका कोई ठिकाना नहीं है। न तो यहीं अपना कोई गाँव है न देवलोकमें ही जानेका कोई सामान है। मैं तो दिनरात केवल रामनाम रटता रहा हूँ, इसलिये यमलोक भी कैसे जा सकता हूँ ? कौन ऐसा यमदूत है जो मेरे पासतक आनेका साहस कर सकता है ? आपकी सौगंध खाकर कहे देता हूँ कि अब तो मैं सब प्रकारसे आपका ही हूँ। मैं आपपर बलि जाता हूँ। मैंने तो केवल आपका ही आश्रय ढूँढ़ा है। इसलिये आप अपनी भुजारूपी पताकाके नीचे व्याध और अजामिलके खेड़ेमें ही इस तुलसीका भी घर बसा दीजिए (अनेक पापियोंके बीच इस पापीको भी शरण दे दीजिए) ॥ ९२ ॥ आप ही बताइए, अजामिलने कौन-सा योग साधा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई।
ब्याध-को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि-मैं ही जगाई।
करुनाकर-की करुना, करुना-हित नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहे-को खीझिय ? रीझिय पै, तुलसीहु-सो है बलि सोइ सगाई॥ ९३॥
जे मद-मार-विकार भरे ते अचार-बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन-में 'जनि भाषिहै दूसरे दीनन-पाहीं।
जौ कछु बात बनाइ कहौं, 'तुलसी' तुममें, तुमहूँ उर-माहीं।
जानकि-जीवन ! जानत हौ, हम हैं तुम्हरे, तुममें, सक नाहीं॥ ९४॥
दानव, देव, अहीस, महीस, महा मुनि, तापस, सिद्ध, समाजी।
जग जाचक-दानि दुतीय नहीं, तुमही सब-की सब राखत बाजी।
एते बडे तुलसीस ! तऊ सबरी-के दिए - बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज ! भये हौ गरीबनेवाज गरीब-नेवाजी॥ ९५॥

घनाक्षरी

किसमी[1], किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट, चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट-को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि, अटत गहन-बन आहन[2] अखेट-की।

था और गणिकाने कब अपना मन भगवान्‌के प्रेममें लगाया था ? बताइए, व्याध (वाल्मीकि) ही कौन बड़े साधु थे जिनका जीवन अपराधों ही अपराधोंसे भरा पड़ा था। पर बात यह है कि करुणानिधान रामकी करुणा तो करुणा करनेके ही लिये होती है (उनकी करुणा तो अकारण ही सबपर होती है) जो नामके बहाने आपके स्वाभाविक करुणाकर-पनको धोखा देती है (कहने भरको होता है कि यह करुणा आपके नामका स्मरण करती है अन्यथा आप तो अकारण सबपर करुणा करते ही चलते हैं), अतः राम ! आप उस (अपनी करुणा)-पर क्यों रूठे जा रहे हैं ? कृपया उसपर प्रसन्न होइए। तुलसीदासके साथ भी तो आपका वही सम्बन्ध है (वह भी तो आपकी करुणाका ही पात्र है), वह आपपर बलि जाता है॥ ९३॥ जो लोग अभिमानी और कामी हैं, उनमें कोई आचार-विचार नहीं होता तथापि इस (तुलसीदास)-के मनमें अभिमान है कि वह आपको छोड़कर किसी और दीन (देवता या मनुष्य)-से याचना नहीं करेगा। तुलसीदास कहते हैं कि यदि कोई बात बनाकर कहता होऊँ तो मैं आपमें हूँ और आप मेरे हृदयमें विराजमान हैं (आपसे कोई दुराव हो ही नहीं सकता)। जानकीजीवन राम ! आप जानते हैं कि मैं आपका ही हूँ और आपमें ही समाया हुआ हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ९४॥ दानव, देवता, सर्पोंके राजा, पृथ्वीपति, महर्षि, तपस्वी और सिद्ध गण—ये सबके सब संसारमें माँगनेवाले ही तो हैं। एक आप ही ऐसे हैं जिन्हें छोड़कर संसारमें कोई दूसरा दानी नहीं है। आप ही सबकी सभी कामनाएँ पूरी करते हैं। तुलसीदास-के प्रभु ! आप इतने बड़े हैं, फिर भी शबरीके दिए हुए फलोंके बिना आपकी भूख नहीं मिट पाई। दीनदयालु राम ! आप दीनोंकी रक्षा करते रहते हैं इसीलिये तो दीनदयालु हुए हैं॥ ९५॥ श्रमजीवी, किसान, व्यापारी, भाट, सेवक, चंचल नट, चोर, दूत और बाजीगर—ये सब पेटके ही लिये पढ़ते, अनेक खेल रचते, पर्वतोंपर चढ़ते और शिकारकी खोजमें दुर्गम वनोंमें विचरण करते

१. किसमी = (अ० कसंबी) श्रमजीवी, मजदूर। २. अहन = (आहू) हरिण।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि, पेट ही-को पचत बेंचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम-ही-तें, आगि बड़वागि-तें बड़ी है आगि पेट-की ॥ ९६ ॥
खेती न किसान-को, भिखारी-को न भीख, बलि, बनिक-को बनिज न चाकर-को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच-बस, कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाइ, का करी ?'
बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत, साँकरे सबै-पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी दीनबंधु ! दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ॥ ९७ ॥
कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन, जोबन जरत जुर, परै न कल कहीं।
राज-काज कुपथ कुसाज, भोग रोगही-के, वेद-बुधि-बिद्या पाइ बिबस बलकहीं।
गति तुलसीस-की लखै न कोउ जो करत, पब्बइ-तें छार, छारै पब्बइ पलक ही।
कासों कीजै रोष ? दोष दीजै काहि ? पाहि राम ! कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही ॥ ९८ ॥
बबुर-बहेरे-को बनाय बाग लाइयत, रूँधिबे-को सोइ सुरतरु काटियत है।
गारी देत नीच हरिचंद हू, दधीचि हू-को, आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है।

रहते हैं। जिसे देखो वही पेटके लिये ऊंचा-नीचा कर्म तथा धर्म-अधर्म करता रहता है। यहाँ-तक कि लोग पेटके लिये अपने बेटे-बेटी-तक बेच डाल रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह पेटकी आग तो बडवाग्निसे भी अधिक प्रचंड है। इस (पेटकी अग्नि)-को यदि कोई बुझा सकता है तो केवल घनश्याम भगवान् राम ही बुझा सकते हैं ॥ ९६ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'राम ! मैं आपपर बलि जाता हूँ। (इस समय ऐसा संकट-काल आ उपस्थित हुआ है कि) किसानकी खेती नहीं फलती, भिखारीको भीख नहीं मिलती, बनियोंका व्यापार नहीं चलता और नौकरी चाहनेवालोंको नौकरी नहीं मिलती। सब लोग जीविका न मिलनेसे दुखी होकर शोकवश एक दूसरेसे यही कहते फिर रहे हैं कि कहाँ जायँ और क्या करें ? वेद और पुराण सब यही कहते हैं तथा लोकमें भी देखा जाता है कि एक आप ही ऐसे हैं जो संकट-कालमें सबके काम आए हैं। दीनबन्धु ! दरिद्रता-रूपी रावण संसारको दबाए बैठा है और इस पाप-रूपी ज्वालाको देख-देखकर तुलसीदास हाय-हाय किए जा रहा है' ॥ ९७ ॥ जिसे देखो वही अपने कुल, करनी, ऐश्वर्य, यश, सुन्दर रूप, गुण और जवानीके ज्वरमें जला जा रहा है। कहीं भी शान्ति नहीं मिलती दिखाई देती। इस रोगमें राजकार्य भी बड़ा भारी कुपथ्य है। अनेक प्रकारके भोग ही इस रोगको बढ़ानेवाली दूषित सामग्री है। वेद जाननेवाले लोग भी बुद्धि और विद्या पाकर विवश होकर प्रलाप करने लगे हैं। इसलिये तुलसीके प्रभु रामकी गति कोई जान ही नहीं पा सकता जो क्षणभरमें पर्वतको राख और राखको पर्वत बनाकर खड़ा कर सकते हैं। (यह स्थिति देखकर) बताइए किसपर क्रोध किया जाय और किसको दोष दिया जाय ? राम ! कलिकालने सारे संसारमें बड़ा उपद्रव मचा रक्खा है, इससे हमारी रक्षा कीजिए ॥ ९८ ॥ (कलिकालके फेरमें पड़कर लोग ऐसे हो गए हैं कि) बबूल और बहेड़ेका बाग लगाकर उसका बाड़ा बनानेके लिये कल्पवृक्ष काटे डाल रहे हैं (अनौचित्यको पुष्ट करनेके लिये औचित्यका उन्मूलन कर रहे हैं)। नीच लोग तो राजा हरिश्चन्द्र और दधीचि-तकको (जिन्होंने परोपकारके लिये अपना शरीर-तक दान कर दिया) गाली देते फिरते हैं। वे स्वयं इतने दरिद्र हैं कि चने चबाकर भी अपना हाथ चाट लेते हैं। स्वयं तो बड़े भारी पापी हैं पर विष्णु

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आप महा-पातकी हँसत हरि-हर-हू-को, आप है अभागी, भरि-भागी डाँटियत है।
कलि-को कलुष मन मलिन किये महत, मसक-की पाँसुरी पयोधि पाटियत है॥ ९९॥
सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम ! जाहि घालो चाहिय कहौ धौं राखै ताहि-को।
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न, मैं हू, तैं हू, ताहि-को सकल जग जाहि-को।
काम-कोह लाइ-कै देखाइयत आँखि मोहिं, एते मान, अकस कीबे-को आप आहि को।
साहिब सुजान जिन स्वानहू-को पच्छ कियो, राम-बोला नाम, हौं गुलाम राम-साहि-को॥१००॥

मत्तगयंद सवैया

साँची कहौं कलिकाल कराल ! मैं ढारो-बिगारो तिहारो कहा है।
काम-को, कोह-को, लोभ-को, मोह-को, मोहि-सों आनि प्रपंच रहा है।
हौं जगनायक लायक आज, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है।
जानकि-नाथ-बिना, तुलसी, जग दूसरे-सों करिहौं न हहा है॥१०१॥

भगवान् और शंकर-तककी हँसी उड़ाते हैं। स्वयं तो बड़े अभागे हैं पर बड़े-बड़े भाग्यवानोंको भी आँखें दिखाते हैं। इस प्रकार कलिके पापोंने मनको बहुत मलिन कर डाला है (फिर भी सर्वश्रेष्ठ बनकर) मच्छड़की पसलियोंसे समुद्र पाट देनेपर उतारू हैं॥ ९९॥ अरे कराल कलिकाल महाराज ! सुनिए। जिसे आप नष्ट करना चाहें उसकी रक्षा भला कौन कर पा सकता है ? मैं तो यों ही बड़ा दीन और दुर्बल हूँ और मैंने आपका कुछ बिगाड़ा या गिराया भी नहीं। मैं और आप दोनों उसी (ईश्वर)-के बनाए हैं जिसने यह सारा संसार बनाया है। आप जो मेरे पीछे काम और क्रोधको लगाकर मुझे आँखें दिखाए जा रहे हैं तो मैं पूछता हूँ कि आप मेरे पीछे इतने क्यों पड़े हुए हैं ? मेरे स्वामी (राम) बड़े ही सुजान हैं (वे सब कुछ जानते हैं)। उन्होंने कुत्तेके साथ भी न्याय किया था।[1] मैं तो सम्राट् रामका सेवक हूँ और मेरा नाम भी रामबोला है (फिर वे मेरा पक्ष क्यों न करेंगे ?) ॥१००॥ (तुलसीदास कलिकालसे कहते हैं—) बताओ कराल कलिकाल ! सच बताओ कि मैंने तुम्हारा क्या ढहाया या बिगाड़ा है ? क्या इस काम, क्रोध, लोभ और मोहके जालमें फँसाए जानेके लिये मैं ही रह गया था ? यद्यपि तुम आज जगत्के स्वामी और समर्थ बने हुए हो, तथापि मेरी भी एक बुरी बान है कि जानकीनाथ रामको छोड़कर यह 'तुलसी' भी किसी दूसरेके आगे सिर नहीं झुकाता (प्रार्थना नहीं करता)॥ १०१॥ मैं गंगाजल पीता हूँ और नित्य दो बार रामका नाम लेता

---

१. रामके दरबारमें एक कुत्ता रोता आया और कहने लगा कि 'तीर्थसिद्धि नामके ब्राह्मणने बिना अपराधके मुझे मारकर मेरा सिर फोड़ डाला है। आप मेरा न्याय कीजिए'। ब्राह्मणने अपराध स्वीकार कर लिया पर ब्राह्मणको अदण्डनीय समझकर जब भगवान् विचार करने लगे तब कुत्तेने कहा—'महाराज ! इसे आप कालिंजरका महंत बना दीजिए। मैं भी पूर्व जन्ममें महंत था। भक्ष्याभक्ष्य खानेसे इस जन्ममें मुझे कुत्ता होना पड़ा।' कुत्तेके कहनेपर भगवान्ने उसे महंत बना दिया। (वाल्मीकि-रामायण : सर्ग १०२)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भागीरथी जल-पान करौं, अरु नाम द्वै राम-के लेत नितै हौं।
मोको न लेनो न देनो कछू, कलि ! भूलि न रावरि ओर चितैहौं।
जानिकै जोर परौ परिनाम, तुम्हैं पछितैहौ पै मैं न भितैहौं।
बाम्हन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं ॥१०२॥

सवैया

राज-मराल-के बालक पेलिकै, पालत लालत खूसर-को।
सुचि सुंदर सालि सकेलि सुबारि-कै बीज बटोरत ऊसर-को।
गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ी, कलपद्रुम काटत मूसर-को।
कलिकाल बिचार-अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर-को ॥१०३॥
कीबे कहा, पढ़िबे-को कहा ? फल बूझि न बेद-को भेद बिचारै।
स्वारथ-को, परमारथ-को कलि कामद राम-को नाम बिसारै।
बाद-बिबाद-बिषाद बढ़ाइ-कै छाती पराइ औ आपनी जारै।
चारिहु-को, छहु को, नव-को, दस-आठ-को पाठ कुकाठ ज्यों फारै ॥१०४॥
आगम, बेद, पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहिं न जाने।
जे मुनि, ते पुनि आपहि आप-को ईस कहावत सिद्ध-सयाने[1]।

हूँ। देखो कलिकाल ! मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर देखूंगा तक नहीं। यदि तुम जान-बूझकर मेरे पीछे पड़े रहोगे तो अन्तमें तुम्हींको पछताना पड़ जायगा। मैं तो तुमसे डरूँगा नहीं। जैसे गरुडने[2] ब्राह्मणको (निगलकर भी) अपचके कारण उगल दिया था, वैसे ही मैं भी तुम्हारे पेटमें नहीं पच पाऊँगा। (तुम्हारे मायाजालमें नहीं फँस पाऊँगा) ॥ १०२ ॥ (आजकल कलियुगमें) लोग राजहंसके बच्चेके बदले उल्लूके बच्चेका लालन-पालन करते हैं। सुन्दर और पवित्र धान बटोरकर जला देते हैं और ऊसर भूमिके लिये बीज बटोरते हैं। उन्हें अपने ज्ञानका बड़ा अभिमान है और उस संबंधमें वे बड़े सतर्क रहते हैं। सच पूछो तो वे मूसल बनानेके लिये कल्पवृक्ष काटे डाल रहे हैं। कलिकालने आचार और विचार सब हर लिया है, इसलिये बुद्धि-हीनोंको कुछ सूझ नहीं पड़ता ॥ १०३ ॥ क्या कर्त्तव्य है और पढ़नेका क्या फल है—यह समझकर भी लोग वेदके सारतत्त्वपर विचार नहीं करते। कलियुगमें जो लोग स्वार्थ और परमार्थके लिये कल्पवृक्षके समान सब कुछ देनेवाले रामनामको भुलाए बैठे हैं, जो व्यर्थके वाद-विवादसे झगड़ा बढ़ाकर अपनी और दूसरोंकी छाती जलाते रहते हैं, वे चारों वेद, छहों शास्त्र, नवों व्याकरण और अठारहों पुराण पढ़कर भी कुकाठ चीरनेके समान व्यर्थ समय गँवाते हैं (यह सब पढ़ना निष्फल हो जाता है) ॥ १०४ ॥ वेद, शास्त्र और पुराणमें (शान्ति प्राप्त करनेके) अनेक मार्गोंका वर्णन तो किया गया है परन्तु वे समझमें नहीं आते।

१. श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

२. एक बार धोखेसे गरुड़ एक ब्राह्मणको निगल गए जिससे उनके पेटमें बड़ी जलन होने लगी। अन्तमें उन्हें उस ब्राह्मणको उगलकर पेटसे निकाल ही देना पड़ा। —(महाभारत आदि पर्व, २८, २९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप-जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै 'तुलसी' हम जानकिनाथ-के हाथ बिकाने ॥१०५॥
धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहु-की बेटी-सों बेटा न ब्याहब, काहु-की जाति बिगार न सोऊ।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम-को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि-कै खैबो, मसीत-को सोइबो, लैबे-को एक न दैबे-को दोऊ ॥१०६॥

घनाक्षरी

मेरे जाति-पाँति, न चहौं काहू-की जाति-पाँति, मेरे कोऊ काम-को, न हौं काहू-के काम-को।
लोक-परलोक रघुनाथ-ही-के-हाथ सब, भारी है भरोसो तुलसी-के एक नाम-को।
अति ही अयाने, उपखानो नहिं बूझै लोग, 'साह ही-को गोत होत है गुलाम-को।'
साधु, कै असाधु, कै भलो, कै पोच, सोच कहा, का काहू-के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम-को।१०७
कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो, कोऊ कहै राम - को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महा साधु, खल जानैं महा खल, बानी झूँठी-साँची कोटि उठत हबूब[1] है।

जितने मुनि लोग हैं वे सब अपनेको ही ईश्वर, सिद्ध और चतुर कहलानेके फेरमें पड़े हैं। जितने धर्म हैं उन सबको कलियुग निगले बैठा है। जप, योग और वैराग्य आदि अपनी-अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इनकी चिन्तामें व्यर्थ कौन मरे। हम तो जानकीनाथ रामके हाथ बिके निश्चिन्त बैठे हैं (वे जो चाहें करें) ॥ १०५ ॥ (तुलसीदास कहते हैं —) यदि कोई मुझे धूर्त्त, अवधूत (परमहंस), राजपूत या जुलाहा कहता है तो कहता रहे। मुझे तो न किसीकी बेटीसे बेटेका ब्याह करना है न किसीके साथ सम्बन्ध करके उसकी जाति ही बिगाड़नी है। तुलसी तो केवल रामका प्रसिद्ध सेवक है। जिसको जो अच्छा लगे वह कहता फिरे। मुझे तो माँगकर खाना और किसी (मसजिद) देवालयमें पड़ रहना भर है। न किसीसे एक लेना न किसीको दो देना है (न ऊधोका लेना न माधोका देना) ॥ १०६ ॥ न तो मेरी कोई जाति-पाँति ही है, न मैं किसीकी जाति-पाँति चाहता ही हूँ। न तो कोई और ही मेरे कामका है, न मैं ही किसीके कामका हूँ। मेरा तो लोक या परलोक जो कुछ है सब रामके हाथ है। तुलसीदासको तो एकमात्र रामनामका ही सबसे बड़ा भरोसा है। लोग अत्यन्त गँवार हैं, जो यह कहावत भी नहीं समझते कि 'जो गोत्र स्वामीका होता है, वही गोत्र सेवकका भी होता है।' मैं जैसा कुछ भी हूँ रामका ही हूँ। क्या मैं किसीके द्वारपर (उसके सिर बोझ बना) पड़ा हूँ ॥ १०७ ॥ (मेरे संबंधमें लोगोंमें बड़ा भ्रम है)। कोई कहता है कि यह (तुलसी) बैठा छल-कपट रचा करता है, कोई कहता है कि यह बड़ा धोखेबाज है और कोई कहता है कि यह रामका बड़ा पक्का सेवक है। साधु मुझे परम साधु समझते हैं और दुष्ट मुझे परम दुष्ट समझते हैं। इस प्रकार अनेक झूठी-सच्ची बातें मेरे सम्बन्धमें पानीके बुलबुलेकी भाँति उठा करती हैं। पर मैं तो न किसीसे कुछ चाहता हूँ न किसीसे किसीके विषयमें कुछ कहता ही हूँ। जो कुछ कोई कहता भी है, सब चुप मारकर सुन लेता हूँ। मुझे

---

१. हबूब = बुलबुले, लहर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चहत न काहू - सों, न कहत काहू-की कछु, सबकी सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी-को भलो-पोच हाथ रघुनाथ-ही-के, राम-की भगति-भूमि, मेरी मति दूब है ॥१०८॥
जागैं जोगी, जंगम, जती, जमाती ध्यान धरैं, डरैं उर भारी लोभ-मोह-कोह-काम-के।
जागैं राज राजकाज, सेवक समाज साज, सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम-के।
जागैं बुध बिद्या-हित पंडित चकित चित, जागैं लोभी लालच धरनि-धन-धाम-के।
जागैं भोगी भोग-ही, बियोगी रोगी सोग-बस, सोवै सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम-के ॥१०९॥

छप्पय

राम मातु, पितु, बंधु, सुजन, गुरु, पूज्य, परम हित।
साहेब, सखा, सहाय, नेह-नाते पुनीत चित।
देस, कोस, कुल, कर्म, धर्म, धन, धाम, धरनि-गति[1]।
जाति - पाँति सब भाँति लागि रामहिं, हमारि पति।
परमारथ स्वारथ सुजस, सुलभ राम - तें सकल फल।
कह 'तुलसिदास' अब जब - कबहुँ, एक राम-तें मोर फल ॥ ११० ॥

किसीके कहने-सुननेकी कुछ चिन्ता भी नहीं है। तुलसीका बुरा-भला तो जो कुछ होना है सब रामके ही हाथ होना है। मेरी बुद्धि तो रामभक्ति-की भूमिमें दूब बन गई है (जो पैरोंकी रगड़ पाकर सूख भले ही जाय पर वर्षाका पहला पानी पाते ही त्योंकी त्यों हरी हो उठती है) ॥ १०८ ॥ योगी, जंगम (चलते फिरते साधु), संन्यासी और मण्डली बनाकर रहनेवाले साधु सब ईश्वरका ध्यान करते हुए जागते रहते हैं क्योंकि वे डरते रहते हैं कि कहीं लोभ, मोह, क्रोध और काम न आ घेरें। राजा अपने राज-काजके लिये सेवक और सामग्री जुटानेके फेरमें जागते रहते हैं और बड़े-बड़े बैरियोंके समाचार सुनकर उन्हें पछाड़नेके उपाय बैठे सोचा करते हैं। बुद्धिमान् पंडित सावधान चित्तसे विद्या प्राप्त करनेके लिये जागते रहते हैं (सजग रहते हैं)। लोभी-जन पृथ्वी, धन और धामके लोभमें पड़कर जागते रहते हैं। भोगी लोग सुख-भोगके लिये, वियोगी विरहमें और रोगी रोगके कारण जागते रहते हैं। पर तुलसीदास तो केवल एक रामके भरोसे पाँव पसारकर सुखकी नींद सोया पड़ा रहता है ॥१०९॥ मेरे माता, पिता, बन्धु, आत्मीय, गुरु, पूज्य और परम हितकारी कोई हैं तो राम ही हैं। राम ही मेरे स्वामी, सखा और सहायक हैं तथा पवित्र चित्तसे जितने प्रेमके नाते हो सकते हैं वे सब रामके ही नाते हैं। मेरे देश, कोष, कुल, धर्म, कर्म, धन, धाम और गति (युक्ति) सब कुछ राम ही हैं। मेरी जाति-पाँति भी राम ही हैं और मेरी प्रतिष्ठा भी सब प्रकारसे रामके ही पीछे चलती है (रामके ही कारण प्रतिष्ठा है)। परमार्थ, स्वार्थ, सुयश और सब प्रकारके जो फल मुझे मिलते हैं तो रामसे ही मिलते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि मेरा भला अभी हो या जब कभी हो वह एक मात्र राम ही करेंगे तो होगा, दूसरी कोई नहीं कर सकता ॥११०॥ सेवकको

१. छक्कनलालकी प्रतिमें इस चरणके स्थानपर यह पाठ है—निसि-दिन रघुपति-चरन, सरन, सपनेहु न आन गति।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महाराज बलि जाउँ, राम सेवक - सुखदायक।
महाराज बलि जाउँ, राम सुंदर सब लायक।
महाराज बलि जाउँ, राम सब संकट - मोचन।
महाराज बलि जाउँ, राम राजीव - बिलोचन।
बलि जाउँ राम करुनायतन, प्रनतपाल, पातकहरन।
बलि जाउँ राम, कलि - भव - बिकल, 'तुलसिदास' राखिय सरन॥ १११॥
जय ताड़का - सुबाहु - मथन, मारीच - मानहर।
मुनिमख - रच्छन - दच्छ, सिला तारन - करुनाकर।
नृपगन - बल - मद - सहित संभु - कोदंड - बिहंडन।
जय कुठार - धर - दर्प-दलन, दिनकर - कुल - मंडन।
जय जनक - नगर - आनंद - प्रद, सुख - सागर, सुषमा - भवन।
कह 'तुलसिदास' सुर - मुकुटमनि, जय जय जय जानकि - रवन॥ ११२॥
जय जयंत - जय - कर, अनंत, सज्जन जन-रंजन।
जय विराध - बध - बिदुष, बिबुध - मुनिगन - भय - भंजन।
जय निसिचरी - बिरूप - करन, रघुबंस - बिभूषन।
सुभट चतुर्दस - सहस - दलन त्रिसिरा, खर, दूषन।
जय दंडकबन - पावन - करन, 'तुलसिदास' संसय-समन।
जग-बिदित जगत - मनि जयति जय, जय जय जय जानकि-रमन॥ ११३॥

सुख देनेवाले महाराज राम ! मैं आपपर बलि जाता हूँ। महाराज राम ! आप ही सब संकटोंसे छुड़ा सकते हैं, मैं आपपर बलि जाता हूँ। कमललोचन महाराज राम ! मैं आपपर बलि जाता हूँ। आप करुणाके भंडार हैं, शरणागतके रक्षक हैं और पाप दूर कर डालते हैं। राम ! आपपर बलि जाता हूँ। कलिकालके भयसे व्याकुल तुलसीदासको आप अपनी शरणमें ले लीजिए॥ १११॥ ताड़का और सुबाहुको ढेर कर डालनेवाले, मारीचका मान हरण कर लेनेवाले, मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाले, शिला बनी हुई अहल्याका उद्धार कर देनेवाले, परम दयालु, राजाओंके बल और मदके साथ-साथ शंभुका धनुष तोड़ डालनेवाले राम ! आपकी जय हो। परशुरामका घमंड चूर करनेवाले और सूर्यकुलको सुशोभित करनेवाले राम ! आपकी जय हो। जनकके नगरवासियोंको आनन्द देनेवाले, सुखके सागर और परम सुन्दर राम ! आपकी जय हो। तुलसीदास पुकारते हैं कि 'देवताओंमें श्रेष्ठ जानकीनाथ ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो'॥ ११२॥ जयन्तको जीतनेवाले अनन्त (अन्तरहित) भगवान् ! सज्जनोंको आनन्द देनेवाले राम ! आपकी जय हो। विराधका वध कर डालनेवाले, देवताओं और मुनियोंका भय दूर कर डालनेवाले प्रभु राम ! आपकी जय हो। राक्षसी (शूर्पणखा)-को कुरूप कर डालनेवाले, रघुकुलके भूषण (राम) ! आपकी जय हो। चौदह सहस्र योद्धाओंके साथ खर, दूषण और त्रिशिराका विनाश कर डालनेवाले राम ! आपकी जय हो। (अपने चरण-कमलोंसे) दण्डक वन पवित्र करनेवाले और तुलसीदासके सारे संशय मिटा डालनेवाले राम ! आपकी जय हो। जगद्विख्यात तथा जगत्में

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जय माया - मृग - मथन, गीध - सबरी - उद्धारन।
जय कबंध - सूदन, बिसाल - तरु - ताल - बिदारन।
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संत-हित।
कपि - कराल - भट - भालु-कटक-पालन, कृपालु - चित।
जय सिय - बियोग - दुख - हेतु कृत, सेतु - बंध बारिधि - दमन।
दससीस बिभीषन - अभयप्रद, जय जय जय जानकि - रमन॥ ११४॥

कनक कुधर - केदार[1], बीज सुंदर सुरमनिवर।
सींचि कामधुक - धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर।
तीरथपति अंकुर - सरूप, जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरि अलच्छ[2] जेहि।
कैवल्य सकल फल कल्पतरु, सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह 'तुलसिदास', रघुबंसमनि!, तौ कि होहि तुव कर-सरिस॥ ११५॥

जाय सो सुभट समर्थ, पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय, बिषय - बासना न छंडै।
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु - धर्महिं।
जाय सो पंडित, पढ़ि पुरान, जो रत न सुकर्महिं।
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति-बिनु, तिय सो जाइ जेहि पति न हित।
सब जाय, 'दास तुलसी' कहैं, जौ न रामपद-नेह नित॥ ११६॥

सर्वश्रेष्ठ जानकी-रमण राम आपकी जय हो! जय हो! जय हो!!! ॥११३॥ मायाके मृग (मारीच)-को मार डालनेवाले तथा जटायु और शबरीका उद्धार करनेवाले भगवान् राम! आपकी जय हो। कबन्धको मार डालनेवाले, विशाल तालवृक्षको बेध देनेवाले प्रभु राम! आपकी जय हो। बलशाली बालिका बध कर डालनेवाले, सुग्रीवको राज्य देनेवाले, सन्तोंका हित करनेवाले, भयंकर भालू और वानर वीरोंकी सेनाका पालन करनेवाले दयालु राम! आपकी जय हो। जानकीके वियोगसे उत्पन्न दुःखके कारण समुद्रका दमन करके उसपर पुल बाँधनेवाले राम! आपकी जय हो। रावणके अत्याचारसे विभीषणकी रक्षा करनेवाले जानकीरमण राम! आपकी जय हो! जय हो!! जय हो!!! ॥ ११४॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि सुमेरु पर्वतका थाला (थाँवला) बनाया जाय, उसमें सुन्दर चिन्तामणि बीज डाला जाय, कामधेनुके अमृतमय विशुद्ध दूधसे उसे सींचा जाय, उससे तीर्थराज प्रयाग अंकुर होकर निकले, उसकी रक्षा स्वयं कुबेर करते हों, उसकी शाखा और पत्ते मरकत मणि (पन्ने)-के हों, स्वयं लक्ष्मी उसकी मञ्जरी बनकर निकली हों, सब प्रकारकी मुक्तियाँ जिसके फल हों और वह कल्पतरु स्वभावसे ही सब प्रकारके सुख बरसाता चलता हो, तब भी राम! वह कल्पवृक्ष क्या कभी आपके (उदार) हाथोंकी बराबरी कर सकता है? (आपके हाथोंसे जो फल प्राप्त होते हैं वे ऊपर बताए हुए कल्पवृक्षसे कभी नहीं प्राप्त हो सकते)॥ ११५॥ संग्रामका सुअवसर पाकर भी जो शक्तिशाली वीर

---

१. केदार=थाँवला, आलवाल। २. सुलच्छि=अच्छे लक्षणवाली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिँ कीन्हों ?
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हों ?
कौन हृदय नहिँ लाग कठिन अति नारि - नयन - सर ?
लोचन - जुत नहिँ अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?
सुर - नाग - लोक महि-मंडलहु, को जु मोह कीन्हों जय न ?
कह 'तुलसिदास' उबरै सोई, जेहि राख राम राजिव - नयन ॥ ११७ ॥

मत्तगयंद सवैया

भौंह-कमान-सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान-तें बाँचे।
कोप - कृसानु - गुमान - अवाँ - घट - ज्यों जिनके मन आँच न आँचे।
लोभ सबै नट-के बस ह्वै, कपि-ज्यों जग-में बहु नाच न नाचे।
नीके हैं साधु सबै 'तुलसी' पै तेई रघुबीर-के सेवक साँचे ॥ ११८ ॥

कवित्त

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ, जाइ तौ न जरनि धरनि-धन-धाम-की।
कोटिक उपाय करि, लालि पालियत देह, मुख कहियत गति राम-ही-के नाम-की।

युद्ध करने नहीं जाता वह व्यर्थ है, जो संन्यासी कहलाकर भी विषय-वासना नहीं छोड़ पाया वह (संन्यासी) व्यर्थ है, जो धनी होकर भी दान नहीं करता तथा जो निर्धन होकर धर्मके अनुसार नहीं चलता वे (दोनों ही) व्यर्थ हैं। जो पण्डित पुराण पढ़कर भी सुकर्म नहीं करता वह भी व्यर्थ है। जो पुत्र अपने माता-पिताकी भक्ति नहीं करता वह व्यर्थ है तथा जिस स्त्रीको अपना पति प्रिय न हो, वह स्त्री भी गई-बीती और व्यर्थ है। तुलसीदास कहते हैं कि जिस व्यक्तिको रामके चरणोंसे निरन्तर प्रेम नहीं है, उसके लिये सब कुछ व्यर्थ है ॥ ११६ ॥ बताइए क्रोधने किसको नहीं जलाया ? कामने किसे नहीं फँसाया ? लोभने किसे दृढ पाशमें बाँधकर त्रस्त नहीं किया ? किसके हृदयमें स्त्रियोंके कठोर नयन बाणोंने घाव नहीं किए ? आँखें होते हुए भी धन पाकर कौन अन्धा नहीं हुआ ? सुरलोक, नरलोक तथा नागलोकमें (आकाश, पृथ्वी और पातालमें) ऐसा कौन है, जिसे मोहने जीत न धरा हो ? तुलसीदास कहते हैं कि इनसे तो वही बच पा सकता है, जिसकी रक्षा कमल-नयन राम स्वयं कर रहे हों ॥११७॥ तुलसीदास कहते हैं कि यों तो सभी साधु अच्छे हैं पर जो लोग भ्रुकुटी-रूपी धनुषपर भली प्रकार चढ़ाए हुए कामिनीके कटाक्षके बाणसे बचे हुए हैं, जिनके मन अभिमानके आँवेमें क्रोधकी अग्निकी ज्वालासे घड़ेकी भाँति न तपे हों तथा जो लोभ-रूपी नटके अधीन होकर संसारमें बंदरके समान अनेक प्रकाके नाच न नाचे हों, वे ही रामके सच्चे दास हैं (जो साधु काम, क्रोध और लोभके पाशमें नहीं फँसे वे ही तो रामके सच्चे दास हैं अन्यथा साधु तो सभी अच्छे हैं) ॥ ११८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग अच्छे वेष बनाकर पवित्र एवं अमृत टपकाने-वाले (अति प्रिय) वचन बोलते हैं, किन्तु उनके मनसे धरणी, धन और धामकी तृष्णा नहीं गई, जो अनेक उपाय करके शरीरका लालन-पालन करते हैं परन्तु मुँहसे यही कहते हैं कि हमें तो केवल रामनामका ही भरोसा है, जो अपनी उपासना तो सबसे कहते फिरते हैं पर अपनी कुवासनाएँ (बुराइयाँ)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनहिं, मानस निवास भूरि लोभ-मोह-काम-की।
राग, द्वेष, इरिषा, कपट, कुटिलाई-भरे तुलसी-से भगत, भगति चाहैं राम-की ॥११९॥
कालिहि तरुन तन, कालिहि धरनि-धन, कालिहि जितैगो रन कहत कुचालि है।
कालिहि सधैगो काज, कालिहि राजा-समाज, मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालिहै'।
तुलसी इहै कुभाँति घने घर घालि आई, घने घर घालति है, घने घर घालिहै।
देखत, सुनत, समुझत हू न सूझै सोई, कबहूँ कह्यो न 'कालहू-को काल कालि है' ॥१२०॥
भयो ना तिकाल तिहुँ लोक तुलसी-सो मंद, निंदैं सब साधु, सुनि मानो न सकोच हौं।
जानत न जोग हिय हानि मानै, जानकीस! काहे-को परेखो पातकी प्रपंची पोच हौं।
पेट भरिबे-के काज महाराज-को कहायो, महाराज हू कह्यो है प्रनत-बिमोच हौं।
निज अघ जाल, कलिकाल-की करालता बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोच हौं॥१२१॥
धरम के सेतु, जगमंगल-को हेतु, भूमि भार हरिबे-को अवतार लियो नर-को।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान, लोक-बेद-राखिबे-को पन रघुबीर-को।

छिपाते फिरते हैं तथा जिनके चित्तमें लोभ, मोह और काम बसे हुए हैं, ऐसे राग (सांसारिक प्रेम), द्वेष, ईर्ष्या, कपट और कुटिलतासे भरे हुए मेरे-जैसे भक्त भी रामकी भक्ति पानेके फेरमें पड़े हैं ॥ ११९ ॥ कुचाली लोग कहा करते हैं कि मुझे कल ही तरुण शरीर भी प्राप्त हो जायगा, कल ही भूमि और धन भी प्राप्त हो जायगा, कल ही मैं युद्धमें विजय भी प्राप्त कर लूँगा, कल ही मैं अपने सभी कार्य सिद्ध कर लूँगा और कल ही मैं राज-समाज (राजसी ठाट-बाट) जोड़ लूँगा। वे मच्छरके समान (हलके, तुच्छ) लोग कहते हैं कि हमारे बोझसे सुमेरु पर्वत भी दहल जायगा। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकारकी डींग मारनेके कारण न जाने कितने घर नष्ट हो गए, अब भी नष्ट होते चले जा रहे हैं तथा आगे भी नष्ट होते रहेंगे परन्तु यह सब देख, सुन और समझकर भी इन डींग हाँकनेवालोंको यह नहीं दीख पड़ता और न किसीने इन्हें यह बताया ही कि काल (मृत्यु) भी कल ही आ पहुँचनेवाला है ॥१२०॥ तीनों कालों (भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्) और तीनों लोकोंमें तुलसी-जैसा नीच कोई दूसरा हुआ नहीं। यद्यपि सभी साधु इसकी (मेरी) निन्दा ही किए जाते हैं परन्तु यह सुनकर भी मुझे कोई संकोच नहीं होता। स्वयं जानकीनाथ भगवान् राम भी इसे (मुझे) योग्य नहीं समझते। इसीसे वे (मुझे अपनानेमें) अपने मनमें झिझकते हैं। मुझे इस बातका दुःख भी क्यों हो जब कि मैं बहुत बड़ा पापी, पाखंडी और नीच हूँ। मैं तो केवल पेट भरनेके लिये ही महाराज रामका कहलाता रहा और महाराज रामने भी कहा है कि मैं अपने शरणागतोंका उद्धार कर देता हूँ पर मैं तो अपने पाप और कलिकालकी कुटिलता देखकर घबराया हुआ उसी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ (कि मेरा उद्धार कैसे होगा) ॥ १२१ ॥ धर्मके रक्षक रामने संसारका कल्याण करने और भूमिका भार उतारनेके लिये ही मनुष्य-रूपमें अवतार लिया है। नीति, प्रीति, और प्रतीतिका पालन करना प्रभुका स्वभाव ही है। लोक और वेदकी मर्यादा बचाना भी रामका प्रण ही है। जब यह दास सुनता है कि आप सुग्रीव और विभीषणके ऋणी हैं तो दासका अंग-अंग जल उठता है (कि मुझपर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बानर-बिभीषन-की ओर को कनावड़ो है, सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर-को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोइ कीजै, बलि, 'तुलसी' तिहारो घरजायउ[1] है घर-को॥१२२॥
नाम महाराज-के निबाही नीकी कीजै उर, सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम! बार यहि मेरी ओर चख-कोर, ताहि लगि रंक-ज्यों सनेह-को ललात हौं।
'तुलसी' बिलोकि कलिकाल-की करालता, कृपालु-को सुभाव समुझत सकुचात हौं।
लोक एक भाँति-को, तिलोकनाथ लोकबस, आपनो न सोच, स्वामी-सोच ही सुखात हौं॥१२३॥
तौलौं लोभ-लोलुप ललात, लालची, लबार, बार-बार लालच धरनि-धन-धाम-को।
तौलौं बियोग, रोग, सोग, भोग, जातना-को, जुग-सम लगत जीवन जाम-जाम-को।
तौलौं दुख-दारिद दहत अति नित तनु, 'तुलसी' है किंकर बिमोह-कोह-काम-को।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख, जौलौं जन भयो न बजाइ राजा राम-को॥ १२४॥
तब-लौं मलीन, हीन, दीन, सुख सपने न, जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस-को।
तब-लौं उबैने[2] पाँयँ फिरत पेटै खलाय, बाये मुँह, सहत पराभौ देस देस-को।

भी ऐसी कृपा क्यों नहीं करते ?) अतः मैं आपपर बलि जाता हूँ, आप अपने प्रणकी रक्षा करते हुए जो कुछ आपसे बन सके वह कर दीजिए। यह तुलसीदास तो आपके घरका चाकर है॥ १२२॥ महाराज रामके नामके साथ भली प्रकार निर्वाह करनेवाला (रामनाम जपनेवाला) सबको प्रिय लगता है, परन्तु मैं किसीको अच्छा नहीं लगता। अतः, राम! इस बार आप मेरी ओर कृपादृष्टि फेर दीजिए। आपके कृपा-कटाक्षके लिये मैं कबसे वैसे ही तरस रहा हूँ जैसे दरिद्र व्यक्ति स्नेहके लिये (स्नेहयुक्त पकवानोंके लिये) तरसता रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि मैं कलिकालकी करालता और कृपालु प्रभुका स्वभाव समझकर बड़ा सकुचाता हूँ। इस समय तो सारा संसार एकसा हुआ पड़ा है (सभी मेरे जैसे पापी हो गए हैं, इतने लोगोंको कहाँतक तारिएगा) और आप त्रिलोकीनाथ होकर भी लोक (भक्तों)-के अधीन हैं। मुझे अपनी चिन्ता नहीं है, मैं तो प्रभुकी चिन्तामें ही घुला जा रहा हूँ॥ १२३॥ तुलसीदास कहते हैं कि जबतक मनुष्य खुल्लम-खुल्ला महाराज रामका भक्त नहीं हो जाता तभीतक वह लाभके कारण (इन्द्रिय-जन्य क्षणिक विषयोंके लिये) लोलुप, लालची और बकवादी बना रहता है, तभीतक वह बार-बार धरती, धन और धामके लिये ललचता रहता रहता है, तभीतक उसे वियोग और रोगका कष्ट लगा रहता है, तभीतक उसे यातना भोगनी पड़ती है, तभीतक उसे पहर-पहरका जीवन युगके समान भारी जान पड़ता है, तभीतक उसका शरीर दुःख और दरिद्रताके कारण सर्वदा जलता रहता है, तभीतक वह मोह, क्रोध और कामका दास बना रहता है और तभीतक सारे दुःख उसके सिरपर और सारे सुख औरोंको मिलते रहते हैं॥ १२४॥ मनुष्य जबतक राजाओंके राजा और शंकरके भी स्वामी रामका अपनी जिह्वासे भजन नहीं करता, तभीतक वह दीन, हीन और मलिन बना रहता है, स्वप्नमें भी सुख नहीं प्राप्त कर पाता और जहाँ-तहाँ क्लेश ही पाता रहता है, तभीतक वह नंगे पाँव, पेट खलाए और

---

१. घरजायउ=घरजाया, गुलाम, सेवक। २. उबैने=नंगे पाँव।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तब-लौं दयावनो, दुसह दुख-दारिद-को, साथरीको सोइबो, ओढ़िबो भूने खेस-को।
जब लौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम, राजन-को राजा सो तौ साहेब महेस-को॥१२५॥
ईसन-के ईस, महाराजन-के महाराज, देवन-के देव, देव! प्रानहुँ-के प्रान हौ।
कालहू-के काल, महाभूतन-के महाभूत, कर्महू-के करम, निदान-के निदान हौ।
निगम-को अगम, सुगम तुलसीहू-से-को, एते मान सील-सिंधु करुना-निधान हौ।
महिमा अपार, काहू बोल-को न वारापार, बड़ी साहिबी-में नाथ बड़े सावधान हौ॥१२६॥

मत्तगयंद सवैया

आरत-पाल कृपाल जो राम, जेही सुमिरै तेहि-को तहँ ठाढ़े।
नाम-प्रताप महा महिमा, अँकरे[1] किय खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।
सेवक एक-तें एक अनेक भए 'तुलसी' तिहुँ तापन डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि-को जिन पाहन-तें परमेस्वर काढ़े॥ १२७॥
काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि, न भागे।
'राम कहाँ', 'सब ठाउँ है,' 'खंभमें?' 'हाँ', सुनि हाँक नृकेहरि जागे।

मुँह बाए सबका तिरस्कार सहन करता फिरता है तथा तभीतक उसे दरिद्रताका दयनीय और दुःसह दुःख सहना, कुशकी चटाईपर सोना और झीने (फटे) ओढ़नेसे तन ढककर रहना पड़ता है॥ १२५॥ देव राम! आप ईश्वरोंके भी ईश्वर, महाराजाओंके भी महाराज, ब्रह्मा आदि देवताओंके भी देव तथा सबके प्राणोंके भी प्राण हैं। आप कालके भी काल, महाभूतोंके भी महाभूत, कर्मके भी कर्म और कारणके भी कारण हैं। आप वेदोंके लिये अगम होनेपर भी तुलसीदास-जैसे तुच्छ पुरुषके लिये सुगम हैं। इतने महान् होनेपर भी आप शीलके समुद्र और करुणाके भंडार (शीलवान् और दयालु) हैं। आपकी महिमा अपार है। आपकी किसी भी वाणी (वेद-पुराण आदि)-का वार-पार नहीं है। इतना बड़ा प्रभुत्व होनेपर भी नाथ! आप बड़े ही सावधान हैं (अपने शरणागत भक्तोंका बड़ी सावधानीसे ध्यान रखते हैं)॥ १२६॥

राम तो सभी दीन दुखियोंके ऐसे रक्षक और कृपालु हैं कि उनका जिसने जहाँ भी स्मरण किया, वे वहीं आ खड़े होते हैं। उनके नामका ऐसा बड़ा प्रभाव है कि उसने न जाने कितने खोटोंको खरा (महँगा) और छोटोंको बड़ा बना दिया। तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि उनके एकसे एक बढ़कर जितने सेवक हुए उनमेंसे कोई भी त्रितापसे दग्ध नहीं हुआ तथापि मैं तो प्रह्लादका ही प्रेम सराहनीय मानता हूँ जिसने पत्थर (खंभे)-से भी परमेश्वरको (नृसिंह रूपमें) निकाल खड़ा किया॥१२७॥ अपने अत्यन्त निर्दय पिता (हिरण्यकशिपु)-को, भयंकर कालके समान कृपाण खींचे हुए देखकर भी प्रह्लाद (भयभीत होकर) नहीं भागे। पिताने पूछा—'बता! 'तेरा राम कहाँ है?' प्रह्लादने कहा 'मेरे राम सर्वत्र हैं'। 'क्या इस खंभमें भी हैं?' 'हाँ, इसमें भी हैं'। फिर क्या था, हिरण्यकशिपुकी ललकार

---

१. अँकरे=महँगे, खरे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बैरी बिदारि भए बिकराल, कहे प्रहलादहि - के अनुरागे।
प्रीति - प्रतीति बढ़ी 'तुलसी', तब-तें सब पाहन पूजन लागे॥ १२८॥
अंतरजामिहुँ-तें बड़ बाहर-जामि हैं राम, जे नाम लिये-तें।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाइ-ज्यों बालक बोलनि कान किये-तें।
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे-की न बावरि बात बिये-तें।
पैंज परे प्रहलादहु-को प्रगटे प्रभु पाहन-तें, न हिये-तें॥ १२९॥
बालक बोलि दियो बलि काल-को, कायर कोटि कुचाल चलाई।
पापी है बाप, बड़े परिताप-तें आपनि ओर-तें खोरि न लाई।
भूरि दई बिष - मूरि, भई प्रहलाद - सुधाइ सुधा-की मलाई।
राम-कृपा 'तुलसी' जन-को जग होत भले-को भलोइ भलाई॥ १३२॥
कंस करी ब्रजबासिन-पै करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडु-के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।
कान्ह कृपाल बड़े नतपाल, गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीति कहै तुलसी, जग होइ भले-को भलोइ भलाई॥ १३१॥

सुनते ही नृसिंह आ प्रकट हुए और विकराल रूप धारण करके उन्होंने शत्रुको नखोंसे चीर फेंका। (उस समय वे इतने क्रोधमें थे कि किसीके कहनेपर भी शान्त नहीं हुए)। बस प्रह्लादने ही जब प्रेमपूर्वक विनय की तब कहीं शान्त हो पाए। तुलसीदास कहते हैं कि भक्त प्रह्लादके प्रेमका विश्वास इतना प्रामाणिक हो गया कि तभीसे लोग पत्थरकी पूजा करने लगे॥ १२८॥ बहिर्गत (संसारमें व्याप्त) राम तो अन्तर्गत (मनमें स्थित) ब्रह्मसे भी बड़े हैं क्यों कि जिस प्रकार तत्काल ब्याई हुई गौ अपने बच्चेकी बोली सुनते ही (स्तनोंमें दूध उतारकर) दौड़ी चली आती है, उसी प्रकार राम भी (अपना नाम सुनते ही) दौड़े चले आते हैं। यह बात तुलसीदास अपने विश्वासपर कहता है। ऐसी पागलपनकी बातें दूसरोंको नहीं बताई जातीं। देख लीजिए कि प्रह्लादकी टेकपर प्रभु राम उसके लिये हृदयसे नहीं, अपितु पत्थर फाड़कर ही (खंभेसे नृसिंह रूपमें) प्रकट हुए थे॥ १२९॥ कायर हिरण्यकशिपुने न जाने कितनी कुचालें चलकर अपने पुत्र प्रह्लादको बुलाकर कालकी बलि बनाना चाहा। उसका पिता (हिरण्यकशिपु) बड़ा ही पापी था। उसने प्रह्लादको कष्ट देनेमें कोई कसर नहीं उठा रक्खी। उसने न जाने कितनी विषकी बूटियाँ पिलाईं, किन्तु प्रह्लादकी साधुतासे वे (विषैली बूटियाँ भी) अमृतकी मलाई बन गईं। तुलसीदास कहते हैं कि रामकी कृपासे संसारमें उनके सच्चे भक्तोंकी भलाई ही भलाई होती है॥ १३०॥

कंसने ब्रजवासियोंके साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया तथापि उसकी एक न चलकर दी (क्योंकि कृपालु श्रीकृष्ण उनके रक्षक थे)। इधर पाण्डुके पुत्र तो सुपुत्र बने रहे पर उधर कुपुत्र दुर्योधन तो छल करनेमें कलियुगका छोटा छली भाई ही था। पर कृपालु कृष्ण तो शरणागतके बड़े रक्षक थे। अतः, अपनी ही दुष्टताके कारण वे दुष्ट राक्षस (पूतना, बकासुर आदि) स्वयं मर मिटे। तुलसीदास अपने विश्वासकी बात कहते हैं कि संसारमें जो भला करता है उसका सदा भला ही होता

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अवनीस अनेक भए अवनी, जिनके डर-तें सुर सोच सुखाहीं।
मानव - दानव - देव - सतावन रावन घाटि रच्यो जग-माहीं।
ते मिलये धरि धूरि सुजोधन, जे चलते बहु छत्र-की छाहीं।
बेद - पुरान कहैं, जग जान, गुमान गोबिंदहिं भावत नाहीं॥ १३२॥
जब नैननि प्रीति ठई ठग स्याम-सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जान्यो बियोग सो रोग है आगे, झुकी तब हौं, तेहिं-सों तरजी।
अब देह भई पट नेह-के घालें-सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु, भृंग! अनंग भयो जिय-को गरजी॥ १३३॥
जोग-कथा पठई ब्रज-को, सब-सों सठ चेरी-की चाल चलाकी।
ऊधो जू! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी[1]।
जाहि लगै पर जानै सोई, तुलसी सो सुहागिनि नंदलला-की।
जानी है जानपनी हरि-की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला-की॥ १३४॥

है॥ १३१॥ इस पृथ्वीपर ऐसे अनेक राजा हो गए हैं, जिनके भयसे देवता लोग चिन्तामें ही सूखे जाते थे। मनुष्य और देवताओंको सतानेके लिये एक रावण ही क्या संसारमें कुछ कम उपद्रव रच गया था? वे सब (रावण आदि राक्षस) और दुर्योधन जो अनेकों छत्रोंकी छायामें (जिनके अधीन अनेक छत्रपति राजा) रहते थे इन सबको भगवान्‌ने रगड़कर धूलमें मिला डाला। वेद और पुराण भी कहते हैं और संसार भी जानता है कि गोविन्द (भगवान्)-को गुमान (अहंकार) अच्छा नहीं लगता॥ १३२॥ (कृष्ण जब मथुरा चले गए तो उनके वियोगमें ब्रजकी गोपियाँ व्यथित हो उठीं। योगकी शिक्षाके द्वारा उनकी विरह-व्यथा दूर करनेके लिये आए हुए कृष्णके सखा उद्धवको एक गोपी 'भ्रमर' बताती हुई अपने हृदयके उद्गार प्रकट करती हुई कहती है—) देखो भ्रमर! जिस समय मेरे इन नेत्रोंने उस ठग श्यामसुन्दरसे प्रीति ठानी थी उस समय मेरी चतुर सखीने मुझे बहुत रोका था। तब मैं नहीं जानती थी कि इस प्रीतिके परिणाममें यह वियोग-जैसा रोग उठ खड़ा होगा। उस समय मैं उस सखीपर बहुत बिगड़ी भी थी और मैंने उसे बहुत डाँटा भी था। पर अब तो स्नेह लगानेसे मेरा शरीर उस वस्त्रके समान हो गया है जिसे विरह-रूपी दरजी काट-छाँट किए डाल रहा हो। देखो भ्रमर! सुनो। अब तो उन ब्रजराज-कुमार श्रीकृष्णके बिना कामदेव मेरे जीका गाहक बन बैठा है॥ १३३॥ देखो उद्धव! ब्रजको जो यह योगका संदेश भेजा गया है वह सब उस कुबड़ीकी चालबाजी है। भला वह हत्यारी कुबड़ी यह सब क्यों न करेगी जिसे कृष्ण खोजकर अपनाए बैठे हैं। बिरहकी आग कैसी होती है, यह तो वही जान सकती है जिसे वह जलाती है। आज वह कुबड़ी नन्दलालकी सुहागिन बनी बैठी है। इससे हमने हरिकी रुचिका पता लगा लिया (कि उन्हें कूबड़ भी अच्छा लगता है)। अब हम भी अपनी पीठपर बनावटी गठरी बाँध-बाँधकर कुबड़ी बनी

१. हलाकी = (फ़ारसी हलाकत=वध करना) हत्यारी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कवित्त

पठयो है छ-पद, छबीले कान्ह कैहू कहूँ, खोजि-कै खवास खासी कूबरी-सी बाल-को।
ज्ञान-को गढ़ैया, बिनु गिरा-को पढ़ैया, बार-खाल-को कढ़ैया, सो बढ़ैया उर-साल-को।
प्रीति-को बधिक, रस-रीति-को अधिक, नीति-निपुन, बिबेक है निदेस देसकाल-को।
'तुलसी' कहे न बनै, सहे ही बनैगी सब, जोग भयो जोग-को बियोग नँदलाल-को ॥१३५॥
हनूमान ! ह्वै कृपाल, लाड़िले लखन लाला, भावते भरत, कीजै सेवक-सहाय जू।
बिनती करत दीन, दूबरो, दयावनो-सो, बिगरे-तें आप ही सुधारि लीजै भाय जू।
मेरी साहिबिनी ! सदा सीस-पर बिलसति, देवि ! क्यों न दास-को देखाइयत पाँय जू।
खीझहू-में रीझिबे-की बानि राम रीझत हैं, रीझे ह्वै हैं, राम-की दुहाई, रघुराय जू ॥१३६॥

मत्तगयंद सवैया

बेष बिराग-को, राग भरो मन, माय ! कहौं सति-भाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथ-को नाम लै बेंचि, हौं पातकी पामर प्राननि पोसों।
एते बड़े अपराधी अघी-कहँ, तैं कहु अंब ! कि 'मेरौ' तु मोसों।
स्वारथ - को परमारथ - को, परिपूरन भो फिरि घाटि न हौंसों ॥ १३७ ॥

घूमैंगी ॥ १३४ ॥ छबीले श्यामसुन्दरने किसी प्रकार कहींसे खोज-खाजकर कुबड़ी-जैसी बालाका यह भ्रमरके रूपमें अच्छा दूत बना भेजा है। यह बड़ी ज्ञानकी बातें बघारता, बिना वाणीके ही बोलता चला जाता, बालकी खाल खींचता और हृदयकी पीड़ा बढ़ाए चला जा रहा है। यह प्रीति मिटा डालनेवाला, विशेषतः रस(प्रेम)-रीति नष्ट कर डालनेवाला, बड़ा नीतिकुशल और चंट है। इसमें इसका कुछ दोष नहीं, यह तो देश (मथुरा) और काल (विरह-दशा)-का ही प्रभाव है। तुलसीदास कहते हैं कि अब कहनेको तो कुछ रह नहीं गया है। अब तो यह सब सहना ही पड़ेगा। ठीक है, जब नन्द-नन्दन कृष्णसे वियोग हो गया तब तो योग करनेका अवसर आ ही गया। (वियोगकी आग तो योगकी शान्तिसे ही बुझ पा सकती है) ॥ १३५ ॥

अजी हनुमान् ! अजी लाड़िले लखनलाल ! अजी मनभावन भरतलाल ! तनिक कृपा करके इस सेवक-की भी थोड़ी सहायता कर दीजिए। यह दीन, दुर्बल और दयाका पात्र दास आपसे प्रार्थना करता है कि यदि इसकी कोई बात बिगड़ जाय तो आप लोग सुधार लीजिएगा। मेरी स्वामिनी (सीता !) आप तो सदा मेरे सिरपर ही विराजमान हैं, तो देवि ! आप इस दासको अपने चरणोंका दर्शन क्यों नहीं करा देतीं ? हमारे प्रभु (राम)-का तो ऐसा स्वभाव है कि जब खीझते हैं तब भी रीझ जाते हैं (कृपा कर देते हैं)। वे सदा प्रसन्न ही रहते हैं; अतः, रामकी दुहाई, इस समय भी राम अवश्य रीझे ही होंगे ॥१३६॥ माता जानकी ! मैं आपसे सत्य भावसे कहता हूँ कि मेरा वेष तो वैरागी-जैसा है, परन्तु मेरा मन सांसारिक रागों (विषयों)-से भरा पड़ा है। आपके स्वामी (राम)-का नाम बेंचकर (रामके नामपर भीख माँगकर) मैं नीच पापी जीए जा रहा हूँ। माता ! इतने बड़े पापी और अपराधीसे आप इतना भर कह दीजिए कि 'तू मेरा है'। बस इतनेसे ही मेरे स्वार्थ और परमार्थ सभी परिपूर्ण हो जायँगे, फिर मुझे किसी प्रकारका कष्ट नहीं रह जायगा ॥ १३७ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घनाक्षरी

जहाँ बालमीकि भए व्याध-तें मुनीन्द्र साधु, 'मरा मरा' जपे सुनि सिख रिषि सात-की।
सीय-को निवास, लव-कुस-को जनम-थल, 'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात-की।
बिटप - महीप सुरसरित - समीप सोहै, सीता-बट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर-दिगपुर बीच बिलसति भूमि, अंकित जो जानकी-चरन-जलजात-की ॥ १३८ ॥
मरकत-बरन परन, फल मानिक-से, लसै जटाजूट जनु रूख बेष हरु है।
सुषमा-को ढेर, कैधौं सुकृत-सुमेर, कैधौं संपदा सकल मुद मंगल-को घरु है।
देत अभिमत जो समेत-प्रीति सेइए, प्रतीति मानि तुलसी बिचारि, काको थरु है ?
सुरसरि-निकट सोहावनी अवनि सोहै, राम-रमनी-को बट कलि-कामतरु है ॥१३९॥
देवधुनि-पास मुनि-बास श्री-निवास जहाँ, प्राकृत-हूँ बट-बूट बसत पुरारि हैं।
जोग-जप-जाग-को, बिराग-को पुनीत पीठ, रागिन-पै सीठि, डीठि बाहरी निहारिहैं।

जहाँपर सप्तर्षियोंकी शिक्षा मानकर वाल्मीकि भी 'मरा-मरा' (राम-रामका उलटा) जपकर व्याधसे मुनिश्रेष्ठ साधु हो गए, जो स्थान जानकीके निवास और लव-कुशका जन्म-स्थल है, तुलसीदास कहते हैं, जहाँकी छायाका स्पर्श होते ही शरीरके तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) नष्ट हो मिटते हैं, जहाँपर वृक्षराज सीतावट गंगाके तटपर सुशोभित है, वह भूमि वारिपुर और दिगपुर इन दोनों ग्रामोंके[1] बीचमें है जहाँपर जानकीके चरण-कमलोंकी छाप पड़ी हुई है। उसके दर्शन मात्रसे पापी पवित्र हो जाते हैं ॥ १३८ ॥ (ऊपर बताए हुए) इस सीतावटके पत्ते मरकत मणि (पन्ने)-के समान हरे और फल माणिक्य (लाल)-के समान लाल रंगके हैं। इसकी जटाएँ ऐसी शोभा देती हैं मानो वट वृक्षके रूपमें साक्षात् जटाधारी शिव ही आ बिराजे हों। इसे सुषमाकी राशि कहा जाय या इसे पुण्यका सुमेरु पर्वत समझा जाय जिसके दर्शनसे सम्पूर्ण सम्पदा और आनन्द-मंगल तत्काल मिल जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि यदि ऐसा विचार करके कि 'यह किसका स्थान है' (जानकीका निवास-स्थान है) इसका प्रेमपूर्वक सेवन करें तो समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह सुन्दर भूमि गंगाके तटपर शोभायमान है। रामवल्लभा सीताका यह वट कलियुगके लिये कल्पवृक्षके समान (इच्छित फल देनेवाला) है ॥ १३९ ॥ जब साधारण वट वृक्षमें भी शिवका निवास माना जाता है, तब यह तो गंगाके पास है, इसके समीप मुनियोंका निवास-स्थान रहा, तथा यहींपर सीताका भी निवास-स्थान था। यह स्थान जप, योग और यज्ञ करनेके लिये एवं वैराग्य साधनके लिये बड़ा पवित्र स्थान है, किन्तु रागी लोगोंके लिये, जो इसे बाहरी दृष्टिसे (अन्यमनस्क होकर) देखते हैं, यह नीरस जान पड़ता है। तुलसीदास कहते हैं कि यहाँके साधु

१. (क) बैजनाथजीके कथनानुसार यह स्थान प्रयाग और काशीके बीचमें 'सीतामढ़ी'-के नामसे प्रसिद्ध है। (ख) लाला भगवानदीनके अनुसार यह स्थान भूँसी स्टेशनसे प्रायः २३ मील दूर (काशीकी ओर) भीटी स्टेशनके पास गंगातटपर है। 'दिगपुर'-को अब दिघउर कहते हैं। 'वारिपुर'-का पता नहीं लगता। (ग) कुछ लोगोंका मत है कि बिठूरके पास गंगातटपर यह स्थान है जहाँ वाल्मीकिका आश्रम है। वाल्मीकीय रामायणके प्रसंगोंसे यही संगत जान पड़ता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'आयसु' 'आदेस' 'बाबा', 'भलो भलो' 'भाव सिद्ध', 'तुलसी' बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं[1]।
राम-भगतन-को तौ काम-तरु-तें अधिक, सिय-बट सेए करतल फल चारि हैं ।।१४०।।
जहाँ बन पावनो, सुहावनो बिहंग-मृग, देखि अति लागत अनंद खेट खूट सो।
सीता-राम-लखन-निवास, बास मुनिन-को, सिद्ध-साधु-साधक सबै बिबेक-बूट-सो।
झरना झरत झरि सीतल पुनीत बारि, मंदाकिनि मंजुल महेस - जटाजूट - सो।
'तुलसी' जौ राम-सों सनेह साँचो चाहिए, तौ सेइए सनेह-सों बिचित्र चित्रकूट सो ।।१४१।।
मोह-बन कलिमल-पल[2]-पीन जानि जिय, साधु-गाय-बिप्रन-के भय-को नेवारिहै।
दीन्हीं है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल लखन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै।
मंदाकिनि मंजुल कमान, असि-बान जेह बारि - धार, धीर धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरी बैठो घात मानो, पातक-के ब्रात घोर सावज सँहारिहै ।।१४२।।

मत्तगयन्द सवैया

लागि दवारि पहार ठही[3], टहकी कपि लंक जथा खिर - खौकी।
चारु चुवा[4] चहुँ ओर चलैं, झपटैं, लपटैं सो तमीचर तौकी।

लोग विचारपूर्वक—आयसु (जो आज्ञा), आदेश (आज्ञा दीजिए), बाबा, भला-भला (कल्याण हो), भाव सिद्ध (आपकी मनोकामना पूरी हो) आदि शिष्ट (मधुर) शब्दोंका प्रयोग करते हैं। यह सीतावट राम-भक्तोंके लिये तो कल्पवृक्षसे भी अधिक पूज्य है क्योंकि इसका सेवन करनेसे चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मुट्ठीमें आए धरे रहते हैं ।। १४० ।।

तुलसीदास कहते हैं कि यदि रामसे सच्चा स्नेह करना चाहते हो तो प्रेम-पूर्वक इस विचित्र चित्रकूटपर आ रहो जहाँके वन पवित्र हैं, पशु-पक्षी ऐसे सुन्दर हैं कि उन्हें देखकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है, जिस क्षेत्रकी भूमि बहुत उर्वरा है, जहाँ राम, जानकी और लक्ष्मणका तथा (अत्रि आदि)-मुनियोंका भी निवास-स्थान है, जहाँके सिद्ध, साधक और साधु सभी विवेकके वृक्षके समान उस क्षेत्रमें निवास करते हैं, जहाँके सभी झरने शीतल और पवित्र जल झरते रहते हैं और जहाँ शिवके जटा-मंडलसे निकली हुई सुन्दर मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती रहती है ।। १४१ ।। मोहरूपी वनमें कलिके दोषोंके मांससे पले हुए हिंसक जीवों (पापों) का संहार करनेके लिये रामने जब आज्ञा दी तो रामकी आज्ञासे समर्थ वीर लक्ष्मणकी सहायतासे अचल शिकारी चित्रकूट पर्वत उन (हिंसक जीवों-काम, क्रोध आदि पापों)-की ताक लगाए बैठा है जो उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर मारकर साधु, गौ और ब्राह्मणोंका भय दूर करेगा। इस कामके लिये मंदाकिनी नदी ही सुन्दर धनुष है और उसकी धारा ही खड्ग और बाण हैं जिन्हें अपने करकमलोंमें धैर्यपूर्वक धारण करके यह (चित्रकूट पर्वत) उन पाप-रूपी हिंसक जीवोंकी घातमें बैठा उनका नाश करेगा ।।१४२।। [गोस्वामीजीके समयमें एक बार चित्रकूट पर्वतपर हनुमानगढ़ीमें आग लग गई थी। यहाँ उसीका वर्णन है—] इस समय चित्रकूटमें भयंकर आग लगी हुई है जो ऐसे वेगसे धधक उठी है जैसे हनुमान्‌ने लंकामें आग जा लगाई थी। इस आगसे तप्त होकर सुन्दर पशु इस

---

१. 'आयसु'···'भाव सिद्ध' = वहाँके रहनेवाले भोगी इसी प्रकारके शिष्ट और मधुर शब्दोंका व्यवहार करते हैं। २. पल=मांस। ३. ठही=जमकर, भली प्रकार। ४. चुवा=चौपाये, पशु।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्यों कहि जात महा सुषमा, उपमा तकि ताकत हैं कवि कौकी।
मानो लसी तुलसी हनुमान हिये जगजीते जराय - की चौकी ॥ १४३ ॥
देव कहैं अपनी - अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटै अपराध अगाध, निमज्जत साधु - समाज भलो रे।
सोहै सितासित - को मिलिबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरौ तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु - के धौल कलोरे ॥ १४४ ॥
देवनदी - कहँ जो जन जानि किये मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले, झगरैं सुर - नारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।
पूजा-को साज बिरंचि रचैं, 'तुलसी' जो महातम जाननिहारे।
ओक - की नेव परी हरि - लोक, बिलोकत गंग तरंग तिहारे ॥ १४५ ॥
ब्रह्म जो ब्यापक बेद कहैं, गम - नाहिं गिरा गुन - ज्ञान - गुनी-को।
जो करता, भरता, हरता, सुर - साहिब, साहिब दीन - दुनी - को।
सोइ भयो द्रव - रूप सही, जु है नाथ बिरंचि - महेस - मुनी - को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी', जल काहे न सेवत देवधुनी - को ॥ १४६ ॥

प्रकार चारों ओर भागे जा रहे हैं जैसे लंकामें आग लगनेपर आँचसे झुलसे हुए राक्षस इधर-उधर भागे फिर रहे थे। उस समयकी महान् शोभाका वर्णन किस प्रकार किया जाय ? उसकी उपमापर विचारता हुआ कवि (तुलसीदास) बहुत देरतक सोचता रह गया (पर उसे कोई ठीक उपमा नहीं जँची तब उसने यह उत्प्रेक्षा की कि) उस अग्निको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो हनुमान्‌के वक्षःस्थलपर संसार जीतने (-के पुरस्कार)-का जड़ाऊ पदक (तमग़ा) ला लगाया गया हो ॥१४३॥

मनुष्य ही नहीं, देवता-तक आपसमें कहते रहते हैं—'अरे ! चलो, तीर्थराज प्रयागका दर्शन कर आया जाय। उसके दर्शनसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो मिटते हैं। वहाँ अच्छे-अच्छे साधु लोग आकर स्नान किया करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ गंगा और यमुनाके श्वेत-श्याम जलका संगम बड़ा ही सुन्दर लगता है। उसकी तरङ्ग देखकर ही हृदय हर्षित हो उठता है मानो इधर-उधर छितरे हुए कामधेनुके सुन्दर श्वेत बछड़े हरी-हरी घास चर रहे हों ॥१४४॥ जिस मनुष्यने अपने मनमें गंगामें स्नान करने जानेका विचार-मात्र भी कर लिया, उसकी करोड़ों पीढ़ियाँ तर गईं। उस स्थान (गंगास्नान)-के लिये जो चलता है उसे देखकर देवांगनाएँ आपसमें झगड़ने लगती हैं (कि इसे मैं पति बनाऊँगी), इन्द्र उसके लिये विमान सजाने लगते हैं और गंगाका माहात्म्य जाननेवाले ब्रह्मा भी उस जीवकी पूजा करनेको सामग्री जुटाने लगते हैं। तुलसीदास कहते हैं—'गंगे ! तुम्हारी तरंगोंके दर्शन होते ही उस जीवके लिये विष्णुलोकमें घर बनानेकी नींव पड़ जाती है' ॥१४५॥ वेदोंने जिस परब्रह्म परमात्माको सर्वव्यापी बताया है, जिसके गुण और ज्ञानकी थाह सरस्वती और गुणीजन भी नहीं पा सकते, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला, देवताओंका स्वामी तथा लोक-परलोकका प्रभु है, जो ब्रह्मा, शिव और मुनियोंका भी स्वामी है, निश्चय ही वही गंगाके रूपमें जल बन गया है।[1] तुलसीदास कहते हैं—'अरे विश्वासके साथ ऐसे गंगाजलका सदा क्यों

---

१. निराकारं भजन्त्येके नराकारं तथाऽपरे। वयं संसार-संतप्ताः नीराकारमुपास्महे ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बारि तिहारो निहारि, मुरारि भए, परसे पद, पाप लहौंगो।
ईस ह्वै, सीस धरौं पै डरौं, प्रभु-की समता बड़ दोष दहौंगो।
बरु बारहि बार सरीर धरौं, रघुबीर - को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी ! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो ॥ १४७ ॥

कवित्त

लालची, ललात, बिललात द्वार द्वार दीन, बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराध, कै बिबाह, कै उछाह कछू, डोलै लोल बूझत सबद - ढोल - तूरना।
प्यासे हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि, चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना।
सोक-को अगार दुख-भार-भरो तौलौं जन, जौलौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥१४८॥

छप्पय

भस्म अंग, मर्दन - अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगबर।
मुंड-माल, बिधु बाल भाल, डमरू - कपाल कर।
बिबुध - बृंद - नव - कुमुद - चंद, सुखकंद, सूलधर।

नहीं सेवन किया करता ॥ १४६ ॥ गंगे ! आपके जलके दर्शन करनेपर यदि मैं विष्णु बन गया तो अपने चरणोंसे आपका स्पर्श होनेसे मुझे पाप लगेगा। यदि मैं शिव हो गया, तो आपको सिरपर धारण करनेमें इसलिये डरता हूँ कि प्रभु शिवकी बराबरी करनेकी बड़े भारी ढिठाई करके मैं भस्म हो जाऊँगा। इसलिये मैं भले ही बार-बार शरीर धारण करूँ तो क्या, रामका होकर आपके तीरपर पड़ा रहूँगा। भागीरथी ! मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि जो करनेसे मुझे दोष न लगे मैं वही करने लगूंगा ॥ १४७ ॥

तभीतक लालची मनुष्य (टुकड़े-टुकड़ेके लिये) तरसता हुआ द्वार-द्वार दीन और मलिन-मुख होकर बिलखाता हुआ मारा-मारा फिरनेपर भी उसके मनकी चिन्ता नहीं मिट पाती; तभीतक वह कहीं श्राद्ध, कहीं विवाह और कहीं और किसी उत्सव आदिकी ताकमें चंचल होकर इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहता है और ढोल एवं तुरहीके शब्द सुनकर पूछता फिरता है (कि यहाँ कुछ खानेको मिल जायगा); तभीतक उस प्यासेको पानी और भूखेको चार दाने चने भी नहीं मिल पाते जो चाहता तो है भोजनका पहाड़, पर जिसे घूरेपर फेंकी हुई दालतक नहीं मिल पाती और तभीतक वह शोक-सागरमें पड़ा कष्ट झेलता रहता है जबतक अन्नपूर्णा कृपा नहीं करतीं ॥ १४८ ॥

शिव अपने अंगोंमें भस्म रमाए रहते हैं। उन्होंने कामदेवका मान मर्दन कर डाला और वे सदा अकेले रहते हैं। उनके सिरपर गंगा लहराती रहती हैं तथा आधे अंकमें गिरिजा (पार्वती) विराजमान हैं। उन्होंने अच्छे-अच्छे सर्प आभूषण बनाकर पहन लिए हैं। उनके गलेमें नर-मुण्डोंकी माला पड़ी है। उनके मस्तकपर बाल चन्द्रमा शोभा दे रहा है और अपने हाथोंमें वे डमरू और खप्पर लिए हुए हैं। देव-समाज-रूपी नवीन कुमुदोंको वे चन्द्रमाके समान खिलाए रखते हैं। वे सब सुख देते रहते और त्रिशूल लिए रहते हैं। वे त्रिपुर दैत्यके शत्रु, तीन नेत्रोंवाले, दिगम्बर (नंगे) और विष खानेवाले शिव संसारका सारा भय दूर कर डालते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जो शिव

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्रिपुरारि, त्रिलोचन, दिग्बसन, बिष भोजन, भव - भय हरन।
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ, सिव सिव सिव संकर सरन ॥१४९॥
गरल असन, निग्बसन, व्यसन - भंजन, जनरंजन।
कुंद - इंदु - कर्पूर - गौर, सच्चिदानंद - घन।
बिकट बेष, उर सेस, सीस सुर - सरित सहज सुचि।
सिव, अकाम, अभिराम धाम, नित राम - नाम रुचि।
कंदर्प - दर्प - दुर्गम - दवन, उमा - रवन, गुन - भवन, हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन - पर, त्रिपुर-मथन जय त्रिदस - बर[1] ॥१५०॥
अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस, जोगपति।
विषम असन, दिग-बसन, नाम बिस्वेस, बिस्व-गति।
कर कपाल, सिर व्याल माल, बिष-भूति-बिभूषन।
नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।
बिकराल भूत - बैताल - प्रिय, भीम नाम, भवभय - दमन।
सब बिधि समर्थ, महिमा अकथ, तुलसिदास संसय - समन ॥१५१॥
भूतनाथ, भय - हरन, भीम, भय - भवन, भूमि - धर।
भानुमंत, भगवंत, भूति - भूषन - भुजंगबर ॥

(महादेव) सेवा करनेपर सबको प्राप्त हो जाते हैं और (शिव) कल्याण कर देते हैं, उन्हीं शिव शंकर (महादेव)-की मैं शरण लेता हूँ ॥१४९॥ जो शिव विषका भोजन करते, दिगम्बर (नग्न) रहते, सबका दुःख मिटा डालते, भक्तोंका मन आनन्दित कर देते हैं, जो कुन्द, चन्द्रमा और कपूरके समान गोरे हैं, जो सत्, चित्, आनन्द-घन-स्वरूप होते हुए भी भयंकर वेष धारण किए रहते हैं, जिनकी छातीपर शेषनाग और मस्तकपर पवित्र गंगा विराजमान हैं; जो कल्याण करते रहते, कामना-रहित और बहुत ही सुन्दर हैं; जो निरन्तर राम-नाम रटते रहते हैं, कामदेवका दुर्गम दर्प जिन्होंने चूरकर डाला है, जो पार्वतीके स्वामी तथा सभी सद्गुणोंके भंडार हैं; उन त्रिपुरारि, त्रिलोचन, त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम)-के प्रभावसे दूर, त्रिपुर-नाशक, देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवकी जय हो ! जय हो !! ॥१५०॥ तुलसीदास कहते हैं कि आधे अंगमें स्त्री (पार्वती) समाई हुई रहनेपर भी जिनका नाम योगीश्वर या योग-पति है; जिनका भोजन भी भाँग-धतूरा आदि विषैले पदार्थ हैं, जो दिग्वसन (सदा नंगे रहते) हैं, जो कभी नष्ट नहीं होते हैं और विश्वको आश्रय देते हैं, जिनके हाथमें खप्पर, सिरपर सर्पोंकी माला, कंठमें विष और सारे शरीर भस्म पुती हुई है, जिनका नाम शुद्ध, अविरुद्ध, अमर, अमल और निर्दोष है, 'भूत-बैतालप्रिय' जैसा भयंकर नाम होते हुए भी जो भव (संसार) का सारा भय मिटा डालते हैं; उन महादेवमें सारी शक्ति विद्यमान है, उनकी महिमा अवर्णनीय है, वे ही मेरे सारे सन्देह (द्वन्द्व, कष्ट) दूर कर पा सकेंगे ॥१५१॥ तुलसीदास कहते हैं कि अरे मन ! ऐसे कल्याण करनेवाले, कामदेवके नाशक शिवका भजन तू क्यों नहीं करता जो भूतोंके स्वामी हैं,

---

१. त्रिदश-वर = देवताओंमें श्रेष्ठ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भव्य - भाव - बल्लभ, भवेस, भव-भार-बिभंजन।
भूरि भोग, भैरव, कुजोग - गंजन, जन - रंजन॥
भारती - बदन, बिष - अदन, सिव, ससि - पतंग - पावक - नयन।
कह 'तुलसिदास' किन भजसि मन, भद्र - सदन, मदन - मयन॥ १५२॥

सवैया

नाँगो फिरै, कहै माँगतो देखि 'न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो'।
राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो।
'नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो'।
ब्रह्म कहै 'गिरिजा ! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो'॥ १५३॥
बिष, पावक, ब्याल कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत - बेताल सखा, भव नाम, दलै पल-में भव-के भय गाढ़े।
तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे, दुख - दारिद होहिं न ठाढ़े।
भौन-में भाँग, धतूरोइ आँगन, नाँगे-के आगे हैं माँगने बाढ़े॥ १५४॥
सीस बसै बर-दा, बर-दानि, चढ़्यो बरदा, घरन्यौ बर-दा है।
धाम धतूरो, बिभूति - को कूरो, निवास तहाँ, सब लै मर दाहै।

सब प्रकारके भय मिटा डालते हैं, जो बड़े भयंकर हैं, भय जिनके आश्रयमें पलता है, जो भूमिको धारण किए हुए हैं, जो तेजोमय और ऐश्वर्यवान् हैं, भस्म और सर्पको जो आभूषण बनाकर पहनते हैं, जो कल्याणस्वरूप, भावके भूखे, संसारके स्वामी और संसारका भार नष्ट करते रहते हैं, जो महान् भोगशाली और भीषण हैं, जो कुयोग (दुर्भाग्य) मिटा डालते हैं, भक्तोंको आनंद देते हैं, सरस्वती जिनके मुखमें है, जो विष-भोजी और कल्याण-स्वरूप हैं तथा सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं॥१५२॥ पार्वतीसे ब्रह्मा कहते हैं—'देखो गिरिजे ! जाकर अपने पतिको समझा दो। वे दानी तो हैं, पर साथ ही बड़े पागल और भोले भी हैं। वे स्वयं तो नंगे होकर इधर-उधर घूमते हैं, पर याचकोंको देखकर कह उठते हैं,—'यहाँ कुछ कमी नहीं है, थोड़ा मत माँगो (यथेच्छ माँगो)'। संसारमें जितने भी याचक इकट्ठे किए जा सकते हैं, उन सबपर प्रसन्न होकर वे उन्हें इन्द्र बना देते हैं। उन (इन्द्रों)-के लिये स्वर्ग बनाते-बनाते मेरी नाकमें दम आ गया। आप पिनाक-पाणि शिवको समझा क्यों नहीं देती (कि हाथ रोककर दान किया करें)॥१५३॥ शिव स्वयं तो गलेमें भयंकर विष (हलाहल), (ललाटके तीसरे नेत्रमें) अग्नि तथा कराल सर्प (सभी नाशक वस्तु) धारण किए हुए हैं; परन्तु शरणागतको तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंकी ज्वालासे बचाए रखते हैं, भूत और बेताल इनके साथ रहते हैं और यद्यपि इनका नाम 'भव' है तथापि ये भव (संसार)-के कठिनसे कठिन भयको क्षण भरमें नष्ट कर डालते हैं। तुलसीदासके प्रभु शिव यद्यपि स्वयं तो दरिद्र-शिरोमणि हैं, परन्तु इनके स्मरण मात्रसे दुःख और दरिद्रता पास नहीं फटकने पाती। यद्यपि इनके घरमें भाँग और आँगनमें धतूरा ही लगा है तथापि इन नंगे शिवके सामने याचकोंकी सदा भीड़ लगी रहती है॥१५४॥ शिवके सिरपर भी वरदायिनी गंगा विराजमान हैं, वे स्वयं भी वर देते रहते हैं और वे सवारी भी वरदा (बैल, वर देनेवाले) की करते हैं। इनकी घरनी (गृहिणी पार्वती) भी वर देनेवाली हैं पर इनके घरमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्यालो, कपालो, है ख्यालो, चहूँ दिसि भाँग-की टाटिन-को परदा है।
राँक-सिरोमनि, काकिनि-भाग बिलोकत लोकप-को करदा है॥ १५५॥
दानि जो चारि पदारथ-को, त्रिपुरारि तिहूँ पुर-में सिर-टीको।
भोरो भलो, भले भाय-को भूखो भलोइ कियो सुमिरे तुलसी-को।
ता बिनु आस-को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जीको।
साधो कहा करि साधन तैं जोपै राधो नहीं पति पारबती-को॥ १५६॥
जात जरे सब लोक बिलोकि, त्रिलोचन सो बिष लोकि लियो है।
पान कियो बिष, भूषन भो, करुना-बरुनालय साँइ हियो है।
मेरोइ फोरिबे जोग कपार, किधौं, कछु काहु लखाइ दियो है।
काहे न कान करौ बिनती, 'तुलसी' कलिकाल बिहाल कियो है॥ १५७॥

कवित्त

खायो कालकूट, भयो अजर अमर तनु, भवन मसान, गथ गाँठरी गरद - की।
डमरू-कपाल कर, भूषन कराल ब्याल, बावरे बड़े-की रीझि बाहन - बरद - की।

धतूरे और भस्मका कूड़ा लगा रहता है और वे रहते वहाँ हैं जहाँ मुर्दे जलाए जाते हैं (श्मशान-भूमिपर)। सर्प और खप्पर धारण करनेवाले शिव बड़े खयाली (मौजी) हैं। इनके घरमें भी चारों ओर भाँगकी टट्टियोंके परदे लगे हुए हैं परन्तु दानी ऐसे हैं कि कौड़ी-कौड़ीके दरिद्रोंके सरदार होते हुए भी एक बार (याचकपर) दृष्टिपात करते ही उसे लोकपाल बना डालते हैं॥१५५॥ जो शंकर चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) दे डालते हैं, त्रिपुरासुरके नाशक हैं, तीनों लोकोंमें सबके सिरमौर हैं, जो बड़े भोले और केवल शुद्ध भावके भूखे हैं, जिन्होंने स्मरण करनेपर तुलसीका भी कल्याण किया है, उन महादेवको छोड़कर (अरे मन !) तू (सांसारिक विषयोंकी) आशाका दास बना फिरता रहा फिर भी तेरे मनकी यह तुच्छ वासना कभी नष्ट नहीं हुई (तेरी विषय-कामना कभी पूरी न हुई)। तुलसीदास कहते हैं कि यदि तूने पार्वतीके पति भगवान् शंकरकी आराधना नहीं की तो अनेक उपाय करके भी तूने किया क्या ? (शंकरकी आराधनाके बिना तेरे सभी साधन व्यर्थ गए)॥ १५६॥ (समुद्र-मन्थनके समय जो हलाहल विष निकला) उस विषसे सम्पूर्ण लोकोंको जलता देखकर त्रिनयन भगवान् शंकरने उसे बीच में ही ले कर पी लिया जो उनके कंठमें जाकर उनका भूषण गया (इसीसे उनका नाम नीलकंठ पड़ गया)। स्वामी ! आपका हृदय तो करुणाका समुद्र है। न जाने मेरा कपाल (भाग्य) ही फोड़नेके योग्य है या किसीने मेरे विरुद्ध आपके कान भर दिए हैं (आपको भड़का दिया है)। भगवन् ! इस तुलसीको कलिकालने बहुत व्याकुल कर डाला है। आप इसकी प्रार्थनापर कान क्यों नहीं देते (प्रार्थना क्यों नहीं सुनते)॥ १५७॥ (शंकर) कालकूट विष चढ़ा गए पर उनका शरीर अजर-अमर हो गया। श्मशान ही उनका निवास-स्थान है और भस्मकी गठरी ही उनकी सम्पत्ति है। उनके हाथोंमें डमरू और नर-कपाल है। भयंकर सर्प ही उनके आभूषण हैं। उस अत्यन्त बावले महादेवको बैलकी सवारी ही अच्छी लगती है। तुलसीदास कहते हैं कि उनके अत्यन्त विशाल गौर शरीरपर भस्म पुती हुई बड़ी अच्छी लगती है जो ऐसी जान पड़ती है मानो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' बिसाल गोरे गात बिलसति भूति, मनो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद-की।
अर्थ, धर्म, काम, मोच्छ बसत बिलोकनि-में, कासी करामाति जोगी जागत मरद-की ॥१५८॥
पिंगल जटा - कलाप, माथे-पै पुनीत आप, पावक नयन, प्रताप भ्रू-पर बरत हैं।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल, कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत हैं।
सुंदर, दिगंबर, बिभूति गात, भाँग खात, रूरे स्रृंगी पूरे काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात, रीझि जात पात आक-ही-के, भोलानाथ जोगी जब औढर[1] ढरत हैं ॥१५९॥
देत संपदा-समेत श्री-निकेत जाचकनि, भवन-बिभूति भाँग, बृषभ-बहन है।
नाम बामदेव[2], दाहिनो सदा, असंग रंग, अर्द्ध अंग अंगना, अनंग-को महन है।
'तुलसी' महेस-को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम-अगम हू-को जानिबो गहन है।
बेष तौ भिखारी-को, भयंकर रूप संकरको, दयालु, दीनबंधु, दानि, दारिद-दहन है ॥१६०॥
चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन-को, देबोइ पै जानिए सुभाव-सिद्ध बानि सो।
बारि-बुंद चारि त्रिपुरारि-पर डारिए तौ, देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो।

हिमालय पर्वतपर शरत् कालकी चाँदनी छिटकी हुई हो। पर अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष तो उनकी दृष्टिमें बसते हैं। ऐसे मर्द (समर्थ) योगीकी करामात देखनी हो तो जाकर काशीमें देखिए (जहाँ वे प्रत्येक पुरुषको खुले हाथों मुक्ति बाँटते रहते हैं) ॥ १५८ ॥ शिवका जटाजूट पिंगल (ललाई लिए भूरा) है, उनके मस्तकपर पवित्र जलवाली गंगाजी लहराती हैं तथा उनके (तीसरे) नेत्रकी अग्निकी ज्योति भौंहोंपर दमकती है। उनके नेत्र विशाल और लाल हैं। उनके ललाटपर बाल चन्द्रमा शोभा दे रहा है। उनके कंठमें कालकूट विष है और वे सर्पोंको आभूषण बनाकर लपेटे हुए हैं, वे नंगे (भी बड़े सुन्दर लगते) हैं और शरीरपर भस्म रमाए रहते हैं। वे भाँग खाते तथा स्रृंगीके मनोहर शब्दसे कालरूपी कंटक (कालका संकट) हर लेते हैं। जिस समय योगी भोलानाथ शिव अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं, उस समय वे इतना लुटाने लगते हैं कि देते-देते अघाते नहीं, पर स्वयं मदारके पत्तेपर ही रीझ जाते हैं (मदारके पत्ते चढ़ानेपर ही प्रसन्न हो जाते हैं) ॥१५९॥ शिव ऐसे दानी हैं कि याचकोंको सम्पत्ति देनेके साथ-साथ वैकुण्ठ लोक-तक दे डालते हैं। भाँग और भस्म ही उनके घरमें (सम्पत्ति) है और बैल ही उनकी सवारी है। उनका नाम तो 'वामदेव' (टेढ़े देवता) है, पर वे बने रहते हैं सदा कृपालु ही। वे अकेले-अकेले रहते हैं। यद्यपि उनके आधे अंगमें सदा उनकी स्त्री पार्वती बसी रहती हैं फिर भी उन्होंने कामदेवको पछाड़ डाला है। तुलसीदास कहते हैं कि शिवका प्रभाव तो तभी जाना जा सकता है जब उनकी भक्ति की जाय अन्यथा उनका प्रभाव तो वेद-शास्त्र भी नहीं जान पा सकते। उनका वेष तो भिखारी-जैसा और भयानक है, परन्तु वे सबका कल्याण करनेवाले दयालु, दीनबन्धु तथा दानी हैं और दरिद्रता मिटा देते हैं ॥१६०॥ कामदेवके शत्रु शिव किसी भी भिक्षुकसे (पूजाका) कोई अंग (किसी प्रकारकी पूजा भी) नहीं चाहते। उनकी तो स्वाभाविक बान है कि वे केवल देना ही देना जानते हैं। यदि कोई त्रिपुरारि शिवपर चार बूँद जल भी चढ़ा दे तो वे मान बैठते हैं कि मेरी सच्ची

---

१. औढर = अपनी मौजमें मस्त रहनेवाले। २. दाहिनो = अनुकूल, प्रसन्न। ३. देवपूजनके सोलह अंग माने गए हैं—आसन, स्वागत, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, परिक्रमा और वन्दना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' भरोसो न भवेस भोलानाथ-को तौ कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि-सो ।
दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल, दुनी न दयालु दूजो दानि सूल-पानि-सो ॥१६१॥
काहे-को अनेक देव सेवत, जागै मसान, खोवत अपान, सठ ! होत हठि प्रेत रे !
काहे-को उपाय कोटि करत मरत धाय, जाचत नरेस देस - देसके, अचेत रे !
'तुलसी' प्रतीति-बिनु त्यागे-तैं प्रयाग तनु, धन ही-के हेतु दान-देत कुरुखेत रे !
पात द्वै धतूरे-के दै, भोरे-कै भवेस-सौं, सुरेस - हू - की संपदा सुभाय-सौं न लेत, रे ॥१६२॥
स्यंदन, गयंद, बाजि-राजि, भले-भले भट, धन-धाम - निकर, करनि हूँ न पूजै कै ।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन औ, बिनय-बिबेक-बिद्या सुभग सरीर ज्वै ।
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक, ताको फल तुलसी-सौं सुनौ सावधान ह्वै ।
जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक, सिवहि चढ़ाये ह्वैहैं बेल-के पतौवा द्वै ॥१६३॥
रति-सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनि-पति, औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि-कै ।
संपदा-समाज देखि लाज सुरराज हू-के, सुख सब बिधि, बिधि दीन्हें हैं सँवारि कै ।

सेवा कर दी गई और उसके बदले वे चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) दे डालते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यदि जगत्पति भोलानाथ शंकरका सहारा न मिले तो कोई करोड़ों क्लेश उठाकर और जहाँ-तहाँकी धूल छानकर भी क्यों न मर जाय, उसके कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि सारे संसारमें शूलपाणि शिवके समान दरिद्रताका नाशक और अग्निके समान दुःख, दोष, आदि तापोंको भस्म करनेवाला दयालु और दानी कोई ढूंढ़े न मिलेगा ॥ १६१ ॥ अरे मूर्ख ! तू अनेक देवोंकी सेवाके फेरमें क्या पड़ा हुआ है। तू बैठा श्मशान क्यों जगाए जा रहा है ? आत्मसम्मान क्यों खोए डाल रहा है ? और हठपूर्वक प्रेत बननेपर क्यों तुला है ? अरे पागल ! तू अनेक प्रपंचमें लगा हुआ इधर-उधर क्यों दौड़ा फिरता है ? तू देश-देशके राजाओंके यहाँ जा-जाकर क्यों हाथ पसारता है ? तुलसीदास कहते हैं कि बिना विश्वासके तू धन पानेकी इच्छासे प्रयागराजमें शरीर त्याग करना चाहता है और धन पानेके लिये ही कुरुक्षेत्रमें दान देता है। अरे ! शिवपर धतूरेके दो पत्ते चढ़ाकर, उन्हें भोला बनाकर भवेश शंकरसे इन्द्रकी भी सम्पदा बैठे बिठाए क्यों नहीं हथिया लेता ? ॥१६२॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसके यहाँ रथ, हाथी और घोड़ोंकी पाँते सजी खड़ी हों, बड़े-बड़े योद्धा हों और धन-धामकी भी कोई कमी न हो, जिसने ऐसे उत्तम कार्य किए हों कि कोई कर न सका हो, जिसकी स्त्री विनयशील, पुत्र सदाचारी और सुन्दर हो, जिसे विनय, विवेक, विद्या और सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ हो, जिसे इस लोकमें यह सुख प्राप्त हो रहा हो और जिस कर्मसे परलोकमें शिवलोक मिलता है उसे सावधान होकर सुन लो कि उसने निश्चय ही जाने या अनजाने या रूठकर या खेलमें ही कभी महादेवपर बेलके दो पत्ते अवश्य चढ़ाए होंगे ॥१६३॥ जिसके यहाँ रतिके समान सुन्दरी स्त्री हो, जो चारों ओर समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वीका स्वामी हो, जिसके सामने अनेक राजा हारकर हाथ जोड़े खड़े रहते हों, जिसकी सम्पत्ति और साज-समाज देखकर देवराज इन्द्र भी लजा जाते हों, जिसे विधाताने इस लोकमें इस प्रकारके सब सुख सजाकर दे रक्खे हों तथा देवलोकमें भी जिसे देवराजका पद मिलनेवाला हो ये सब सुख जिस पुण्यके फलसे मिलते हैं उसपर तुलसीदास

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद, ताको फल तुलसी सो कहैगो बिचारि-कै।
आक-के पतौवा चारि, फूल द्वै धतूरे-के, दीन्हें ह्वैहैं बारक पुरारि-पर डारि-कै ॥१६४॥
देवसरि सेवौं, बामदेव ! गाउँ रावरे ही, नाम राम - ही - के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग 'तुलसी' न लेत काहू-को कछुक, लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं।
एते-हू-पर जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै, ताको जोर देव ! दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो, उराहनो न दीजै मोहिं, काल-कला कासीनाथ ! कहे निबरत हौं ॥१६५॥
चेरो राम राय-को, सुजस सुनि तेरो, हर ! पाइँ - तर आइ रह्यौं सुरसरि-तीर हौं।
बामदेव ! राम-को सुभाव-सील जानि जिय, नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं।
अधिभूत-बेदन बिषम होत भूतनाथ ! 'तुलसी' बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिए, तौ अनायास कासी-बास खास फल, ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं ॥१६६॥
जीबे-की न लालसा, दयालु महादेव ! मोहिं, मालुम है तोहिं, मरिबेई-को रहत हौं।
कामरिपु ! राम-के गुलामनि-को कामतरु, अवलंब जगदंब-सहित चहत हौं।

विचारकर कहता है कि उसने मदारके चार पत्ते अथवा धतूरेके दो फूल त्रिपुरारि शिवपर कभी अवश्य चढ़ा दिए होंगे ॥ १६५ ॥ महादेव ! मैं आपकी ही पुरीमें रहकर गंगाका सेवन करता हूँ और रामके नामपर टुकड़े माँगकर पेट भरता हूँ। यह तुलसी न तो कुछ देने-योग्य ही है न किसीका कुछ लेता ही है। दूसरोंकी भलाई करना तो इसके भाग्यमें ही नहीं लिखा गया है, पर मैं किसीका अहित भी नहीं करता। इतनेपर भी यदि कोई व्यक्ति आपका भक्त कहलाकर मुझपर अत्याचार करता है तो मैं दीन होकर उसका वह अत्याचार आपके ही द्वारपर आकर निवेदन कर देता हूँ। काशीनाथ ! मुझसे ऐसा उलाहना पाकर अब मुझे कभी उलाहना मत दीजिएगा कि तुमने मुझे अपने कष्टकी सूचना क्यों नहीं दी ? इसलिये मैं (कलि-) कालकी सारी करतूत आपसे कहकर अपने कर्त्तव्यसे मुक्त हो जाता हूँ (अब आप जानें, आपका काम जाने) ॥ १६५ ॥ शंकर ! मैं महाराज रामका दास हूँ। आपका सुयश सुनकर आपके चरणोंमें यहाँ गंगाके तटपर आ पड़ा हूँ। बामदेव ! आप रामका शील-स्वभाव और उनसे हमारा स्नेह-सम्बन्ध तो भली भाँति जानते ही हैं। मैं रामपर ही आश्रित हूँ। भूतनाथ ! मेरे इस शरीरमें बड़ी प्रबल भौतिक पीडा हो रही है। इससे तुलसी बहुत व्याकुल हो उठा है। इस कुत्सित पीडासे मैं बहुत घुला जा रहा हूँ, मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकारके कष्टसे अच्छा तो आप मुझे मार डालें तो अनायास मुझे काशीवासका मुख्य फल (मुक्ति) प्राप्त हो जाय। और यदि जिलाना ही हो तो कृपा करके मेरा शरीर निरोग कर दीजिए ॥ १६६ ॥ दयालु महादेव ! मुझे जीनेकी लालसा नहीं है। आप तो जानते ही हैं कि मैं केवल मरनेके ही लिये (काशीपुरीमें) रहता हूँ। कामके शत्रु शिव ! रामके दासोंको आप कल्पवृक्षके समान (सब कुछ दे डालते) हैं। अतः, मैं चाहता हूँ कि जगदम्बा पार्वती और आप मुझे आश्रय दे दें। यह रोग (बाहु-कष्ट) भूत-भैरवकी प्रेरणासे मेरे पीछे भूत बनकर लग गया है और तुलसीको बहुत बड़ा कष्ट दे रहा है। आप भूतनाथ हैं ! इस भूतसे मेरी रक्षा कर लीजिए। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ। यदि आप

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रोग भैरो-भूत-सो, कुसूत भयो तुलसी-कौ, भूतनाथ ! पाहि पदपंकज गहत हौं।
ज्याइए तौ जानकी-रमन-जन जानि जिय, मारिए तौ माँगी मीचु, सूधिये कहत हौं ॥१६७॥
भूतभव ! भवति पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय, आपनो समाज, सिव ! आपुन-को जानिए।
नाना बेष, बाहन, बिभूषन, बसन, बास, खान-पान, बलि-पूजा-बिधि को बखानिए।
राम-के गुलामनि-की रीति-प्रीति सूधी सब, सब-सों सनेह सबही-को सनमानिए।
तुलसी-की सुधरै सुधारे भूतनाथ-ही - के, मेरे माय - बाप - गुरु संकर - भवानिए ॥१६८॥
गौरीनाथ, भोलानाथ, भवत, भवानी-नाथ, बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल-की।
संकर-से नर, गिरिजा-सी नारि कासी-बासी, बेद कही, सही ससिसेखर कृपाल-की।
छ-मुख, गनेस-तें महेस-के पियारे लोग, बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल-की।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि, निठुर निहारिए, उघारि डीठि भाल - की ॥१६९॥
ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा-सी जहाँ, लोक-बेद हू बिदित महिमा ठहर-की।
भट रुद्रगन, भूत गन-पति, सेनापति, कलिकाल-की कुचाल काहू तौ न हरकी।

मुझे जिलाना चाहते हों तो रामका सेवक जानकर जिलाइए और यदि मारना ही चाहते हों तो मैं आपसे दो टूक कहे देता हूँ कि मुझे आप मुँह-माँगी मौत ही दे दीजिए (जो मैं स्वयं चाहता हूँ) ॥ १६७ ॥ हे पंचभूतोंके निर्माता शिव ! पिशाच, भूत, प्रेत सब आपको बड़े प्रिय हैं। अपने इस समाजकी नस-नस आप ही पहचानते हैं। उनके वेष, वाहन, आभूषण, वस्त्र, निवास-स्थान, खान-पान बलि और पूजा आदि इतने अधिक प्रकारकी हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता (वह मुझसे नहीं हो सकती) । इधर रामके दासोंका व्यवहार और प्रेम तो बड़ा सीधा-सादा-सा होता है। वे सभीसे प्रेम करते और सभीका सम्मान करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि मेरी दशा यदि सुधरेगी तो भूतनाथ शिवके सुधारे ही सुधर सकेगी, क्योंकि मेरे माता, पिता और गुरु कोई हैं तो शिव-पार्वती ही हैं ॥१६८॥ गौरीपति ! भोलानाथ ! भवानी-पति ! आपकी इस विश्वनाथपुरी (काशी)-में आज चारों ओर जिधर देखिए उधर कलिकालकी दुहाई फिरी हुई है (कलिकालका बोलबाला है)। वेदोंने कहा है कि काशीके सब पुरुष शंकरके समान और नारियाँ पार्वतीके समान हैं और यह बात शशि-शेखर ! आप भी सही (स्वीकृत) कर चुके हैं। किन्तु महादेव ! आज ये ही लोग बड़े व्याकुल दिखाई पड़ रहे हैं जो आपको गणेश और षडानन (स्वामिकार्तिकेय)-से भी अधिक प्रिय हैं। इस कलिने सारी काशीपुरीको बेहाल कर छोड़ा है। यह कलिरूपी किरात आपकी पुरी-रूपी कल्पलताको खेल ही खेलमें काटे डाल रहा है। इसकी ओर अपने ललाटकी अग्निभरी दृष्टिसे एक बार देख तो दीजिए ॥१६९॥ जिस काशीपुरीके स्वामी महादेव तथा स्वामिनी पार्वती हों और, जिस स्थानकी महिमा लोक और वेद सबमें विख्यात हो, जहाँ स्वयं रुद्रके गण योद्धा हों, जहाँ गणेश और षडानन विराजमान हों, वहाँ भी कलिकी कुचाल किसीके रोके न रुक पाई। इस रुद्रबीसी[1] में वाराणसीमें बड़ा आतंक छाया हुआ है। शंकरपुरीकी ऐसी दुर्दशा कि कुछ पूछिए मत ! पर जिन (शंकर)-ने भस्मासुर जैसेको भी वर दे डाला और अमृत छोड़कर विष लेकर पी डाला,

---

१. रुद्र-बीसी : गोस्वामीजीके समयमें संवत् १६६५ से १६८५ तक रुद्रबीसी चल रही थी। इसमें अकाल, महामारी, रक्तपात आदि नाशक प्रवृत्तियाँ ही अधिक होती हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बीसी[1] बिस्वनाथ-की बिषाद बड़ो बारानसी, बूझिए न, ऐसी गति संकर-सहर-की।
कैसे कहै 'तुलसी', बृषासुर-के बरदानि-बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर-की ॥१७०॥
लोक-बेद-हू बिदित बारानसीकी बड़ाई, बासी नर-नारि ईस-अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि, सभासद गनप-से अमित अनूप हैं।
तहाँऊ कुचालि कलिकाल-की कुरीति, कैधौं जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैं, फूलैं, फैलैं खल, सीदैं साधु पल-पल, खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं ॥१७१॥
पंच कोस पुन्य-कोस स्वारथ परारथ-को, जानि आप आपने सुपास बास दियो है।
नीच नर-नारि न सँभारि सकैं आदर, लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है।
बारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र, मानि हित-हानि सो मुरारि-मन भियो है।
रोष-में भरोसो एक, आसुतोष कहि जात, बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है ॥१७२॥
रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर, तेरे ही प्रसाद जग - अग - जग - पालिके!
तोहि-में बिकास बिस्व, तोहि-में बिलास सब, तोहि-में समात मातु भूमिधर-बालिके!

उनके विषयमें बताइए, तुलसीदास कहे भी तो क्या कह सकता है? (वे तो उलटा ही काम करते रहते हैं, इसलिये यदि अपने नगरकी चिन्ता छोड़कर वे कलियुगको पाले बैठे हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है) ॥ १७० ॥ वाराणसीकी विशेषता लोक और वेदमें प्रसिद्ध है कि यहाँके निवासी शंकर और पार्वतीके रूप हैं। काल भैरव यहाँके कोतवाल, दण्डपाणि भैरव दण्ड देनेवाले (दण्डनायक) तथा गणेश-जैसे अनेक अनुपम उनके सभासद् हैं। किन्तु कुचाली कलि वहाँ भी अपनी कुचेष्टा करनेसे न चूका। वह मूर्ख कलि जानता ही नहीं कि यहाँके राजा साक्षात् भूतनाथ शंकर हैं। (कलिकालमें सभी बातें उलटी देखनेमें आती हैं इसीलिये) दुष्ट लोग फलते, फूलते और फैलते जा रहे हैं, और साधुजन पल-पल कष्ट पा रहे हैं। कहावत चरितार्थ हो रही है कि 'घी खाय दीवाली और ठोका जाय सूप' (दीवालीकी रातको घीके दीपक जलाए जाते हैं। सब घी तो ये दीवे सोख लेते हैं पर दूसरे दिन प्रातः ही घर-घर दरिद्र निकालनेके निमित्त बेचारे सूप पीटे जाते हैं) ॥ १७१ ॥ पाँच कोस (सोलह किलोमीटर, बीस मील)-के बीच बसा हुआ काशी-क्षेत्र पुण्यका भंडार है। यहाँ स्वार्थ भी सिद्ध होता है और परमार्थ भी। यह जानकर ही आपने यहाँके निवासियोंको अपने पास ला बसाया है। परन्तु ये सब ऐसे नीच निकले कि आपके इस आदरको सँभाल न सके। इन्होंने जो विचारकर कर्म नहीं किए उसीका फल ये कायर पड़े भोग रहे हैं। जब कृष्णकी आज्ञाके बिना ही उनके चक्रने सारी काशी फूँक जलाई थी[2] उस समय कृष्ण भी आपसे यह समझ कर डर गए थे कि आप कहीं रुष्ट न हो जायँ (तब क्या यह कलि भी काशीकी हानि करके नहीं डरेगा?)। आपके क्रोधमें भी मुझे यही बड़ा भारी भरोसा है कि आप 'आशुतोष' कहलाते हैं। आप ही थे कि संसारको व्याकुल देखकर आप कालकूट विष पी गए थे (अतः, मेरी प्रार्थना है कि आप शीघ्र ही लोकके कल्याणके लिये यह महामारी-रूपी विष भी पी जायँ) ॥ १७२ ॥ चराचरका पालन करनेवाली माता पार्वती! आपकी ही कृपासे ब्रह्मा इस सृष्टिकी रचना करते हैं, विष्णु इसका पालन करते हैं और शंकर संहार करते हैं। आपमें ही सारे विश्वका विकास होता है, आपमें ही वह स्थित रहता है तथा आपमें

१. बीसी विश्वनाथकी = रुद्रबीसी, जो संवत् १६६५ से १६८५ तक थी। २. भागवत : स्कंध १० (उत्तरार्ध) अ० ६७।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दीजै अवलंब जगदंब ! न बिलंब कीजै, करुना-तरंगिनि कृपा - तरंग - मालिके !
रोष महामारी, परितोष महतारी, दुनी देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥१७३॥
निपट बसेरे - अघ, औगुन घनेरे, नर - नारिऊ अनेरे, जगदंब ! चेरी-चेरे हैं ।
दारिद-दुखारी देवि ! भूसुर भिखारी, भीरु, लोभ-मोह-काम-कोह कलिमल घेरे हैं ।
लोक-रीति राखी राम, साखी बामदेव जानि, जनकी बिनति मानि, मातु ! कहि 'मेरे हैं' ।
महामायि, महेसानि, महिमाकी खानि, मोद-मंगलकी रासि ! दास कासी-बासी तेरे हैं ॥१७४॥
लोगन-के पाप, कैधौं सिद्ध-सुर-साप, कैधौं काल-के प्रताप काली तिहूँ ताप तई है ।
ऊँचे, नीचे, बीच-के, धनिक, रंक, राजा, राय, हठनि बजाय करि डीठि पीठि दई है ।
देवता निहोरे, महामारिन्ह-सों कर जोरे, भोरानाथ जानि भोरे आपनी-सी ठई है ।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान ! जस-रासि जहाँ-तहाँ तैहीं लूटि लई है ॥१७५॥
संकर-सहर सर, नर-नारि बारिचर, बिकल सकल महामारी माँजा भई है ।
उछरत, उतरात, हहरात, मरि जात, भभरि भगात, जल-थल मीचु-मई है ।

ही वह लय भी हो जाता है । कृपाकी तरंग-मालासे विभूषित करुणा-तरंगिणी (दयालु) जगदम्बिके ! अब मुझे भी आकर सहारा दीजिए, विलंब न कीजिए । मुनियोंके मनके मानसकी हंसिनी ! आप ही जब रुष्ट हो उठती हैं तभी महामारी होती है और जब आप प्रसन्न रहती हैं तब तो संसारकी माता आप हैं ही । अतः, प्रार्थना है कि हम दुखियोंकी ओर भी अब कृपाकी दृष्टि फेर दीजिए ॥ १७३ ॥ जगदम्बे ! यद्यपि यहाँके नर-नारी बड़े ही पापी, अवगुणोंके भंडार तथा अनाड़ी हैं फिर भी वे हैं तो आपके ही दास-दासी । देवि ! वे सबके सब दरिद्रताके भारसे बड़े दुखी हैं । ब्राह्मण लोग भिखमंगे और डरपोक हो गए हैं । इसीलिये लोभ, मोह, काम और क्रोध-रूपी कलि-कलुष (कलिके पापों)-ने उन्हें आ घेरा है । देखिए, रामने भी लोक-मर्यादाकी रक्षा की थी, जिसके साक्षी साक्षात् शंकर भगवान् हैं । अतः, माता ! ऐसा जानकर इस दासकी प्रार्थनापर ध्यान देकर एक बार बस इतना ही कह दीजिए कि 'यह मेरा है ।' महामाया ! माहेश्वरी ! आपकी बड़ी महिमा है और आप आनन्द-मंगलका भंडार हैं । ये काशी-वासी सब आपके ही तो दास हैं (उनकी रक्षा कीजिए) ॥१७४॥ न जाने यह यहाँके लोगोंका पाप है, या किन्हीं सिद्ध और देवताओंका शाप है या समय (कलिकाल)-का प्रताप है कि काशी-पुरी आज तीनों तापोंसे तपी जा रही है । इस समय उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणीके लोग तथा धनी, निर्धन, राजा, राव, सभी हठपूर्वक खुल्लम-खुल्ला काशीकी सब कुछ दुर्दशा देखकर भी (धर्म-कर्मकी ओरसे) आँख-मुँह फेरे बैठे हैं । मैंने देवताओंसे भी प्रार्थना की, महामारियोंके भी हाथ जोड़े, परन्तु इन सबने काशीपति भोलानाथको सीधा-सादा, भोलाभाला जानकर (उनके नगरकी कुछ भी रक्षा न करके) मनमानी करनेकी ही ठान ली है । करुणानिधान ! वीर बलवान् हनुमान् ! आपने ही जहाँ-तहाँ यश लूटा है (सर्वत्र सभी कार्योंमें आपने पूर्ण सफलताका यश प्राप्त किया है, अतः, और कोई नहीं तो आप ही यहाँके लोगोंके दुःख दूर करनेका यश लीजिए) ॥१७५॥ विश्वनाथपुरी (काशी)-रूपी सरोवरमें जो नर-नारी-रूपी जलचर हैं वे सब बहुत व्याकुल हुए जा रहे हैं । उन्हें महामारी-रूपी माँजे (पहली बरसातकी फेन)-ने ऐसा व्याकुल कर डाला है कि वे उछलते, कूदते, उतराते और घबराकर इधर-उधर भागते और अन्तमें हाय-हाय करके तड़प-तड़पकर मर जाते हैं । जल

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव न दयालु, महिपाल न कृपालु-चित, वारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत, रामहू-की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥१७६॥
एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल, तामें, कोढ़-में-की खाज-सी सनीचरी है मीन-की[1]।
बेद-धर्म दूरि गए, भूमि-चोर भूप भए, साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन-की।
दूबरे-को दूसरो न द्वार, राम दया-धाम! रावरी ही गति बल-बिभव-बिहीन-की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि, महाराज! आज जो न देत दादि दीन-की ॥१७७॥
राम-नाम मातु, पितु, स्वामि, समरथ हितु, आस राम-नाम-की, भरोसो राम-नाम-को।
प्रेम राम-नाम-ही-सों, नेम राम-नाम-ही-को, जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम-को।
स्वारथ सकल परमारथ-को राम-नाम, राम-नाम-हीन 'तुलसी' न काहू काम-को।
राम-की सपथ, सरबस मेरे राम-नाम, कामधेनु, काम-तरु मो-से छीन-छाम-को ॥१७८॥

सवैया

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर - कोप-सों पाप-को दाम, परीच्छित, जाइगो जारि-कै हीयो।

और स्थल चारों ओर मृत्यु ही मृत्यु नाच रही है। इस समय न तो देवता लोग ही कुछ दया दिखा रहे हैं न राजा ही कृपा कर रहे हैं। वाराणसीमें नित्य नये-नये अत्याचार बढ़ते चले जा रहे हैं। रघुराज राम! रक्षा कीजिए। रामदूत कपिराज हनुमान! रक्षा कीजिए। आपने ही तो रामकी बिगड़ी हुई स्थिति सँभाल ली थी (अब काशीपुरीको भी कृपा करके बचा लीजिए) ॥ १७६ ॥ एक तो सारे दुःखोंकी जड़ यह भयंकर कलिकाल आया बैठा है, उसपर भी कोढ़की खाज बनकर यह मीन राशिपर शनिकी दशा आ चढ़ी है। ऐसे समयमें वैदिक धर्म लुप्त हो गया है और लुटेरे राजा बन बैठे हैं। इस बढ़ते हुए पापकी गति देखकर साधुओंको बड़ा दुःख हो रहा है। दयाके धाम राम! दुर्बलोंके लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं बच रहा है। जिन लोगोंमें न बल है, न जिनके पास वैभव ही है, उन्हें केवल आपका ही एक सहारा है। महाराज! यदि इस समय आपने दीनोंकी पुकार न सुनी तो आपके बढ़े हुए बिरद (प्रतिष्ठा)-को ही (कि ये दीनबन्धु हैं) लज्जित होना पड़ेगा ॥ १७७ ॥ राम-नाम ही मेरे माता-पिता, स्वामी और शक्तिशाली हितैषी है, राम-नामसे ही मुझे सब प्रकारकी आशा और राम-नामका ही भरोसा है। राम-नामसे ही मेरा प्रेम है और राम-नाम जपना ही मेरा नियम है। (इसे छोड़कर) और किसी सीधे (दक्षिण) या उलटे (वाम) मार्गका भेद मैं जानता ही नहीं। मेरे स्वार्थ और परमार्थ सब राम-नामसे ही सिद्ध होनेवाले हैं। राम-नामके बिना तुलसीदास किसी कामका नहीं है। रामकी शपथ, मेरा तो जो कुछ है सब राम-नाम ही है और वही मेरे-जैसे दीन-दुर्बलके लिये कामधेनु और कल्पवृक्षके समान सारी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला है ॥ १७८ ॥ जिन लोगोंने पथिकोंको लूटकर, ब्राह्मणोंको मारकर और करोड़ों हथकंडोंसे धन बटोरा है, उनका वह पाप-कर्मों-द्वारा एकत्र किया हुआ धन, शंकरके कोपसे उनका हृदय जलाकर स्वयं भी नष्ट हो जायगा।

१. मीनकी सनीचरी=मीन राशिपर शनैश्चरकी दशा, जिसका फल राजा-प्रजाका नाश होता है। यह समय संवत् १६६९ के आरंभसे १६७१ के मध्यतक था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कासी-मेँ कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ-कै आपनो कीयो।
आज कि कालि, परौं कि नरौं, जड़ जाहिंगे चाटि दिवारि-को दीयो[1] ॥१७६॥
कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद-सो चंद-सौं होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच - विषाद हरी है।
गौरि कि गंग बिहंगिनि-बेष, कि मंजुल मूरति मोद - भरी है।
पेखि सप्रेम पयान - समै सब सोच - विमोचन - छेमकरी[2] है ॥१८०॥

घनाक्षरी

मंगल-की रासि, परमारथ-की खानि जानि, बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है॥
प्रलय हू काल राखी सूल-पानि सूल-पर, मीचु-बस नीच सोऊ चहत खसाई है॥

यह बात परीक्षा की हुई है। काशीमें जितने भी कंटक (पापी, अत्याचारी) हुए हैं वे अपनी-अपनी करनीका उचित फल पाकर सब नष्ट हो मिटे हैं। ये सब (वर्तमान कालके कंटक) भी आज, कल, परसौं, नरसौं-तक 'दीवालीका दीवा चाटकर चलते बनेंगे ॥ १७६ ॥

जिस क्षेमकरी (केसरिया रंगकी चील)-ने अपने सुन्दर शरीरके रंगके आगे केसरको भी जीत लिया है, जिसके चन्द्रमुखसे (आकाश-स्थित) चन्द्रमाकी भी होड़ लगी हुई है, जिसकी बोली सुननेसे सब प्रकारकी समृद्धि चूने लगती है और जिसके दर्शन-मात्रसे सारी चिन्ताएँ और दुःख नष्ट हो जाते हैं, वह क्या पक्षी (क्षेमकरी, चील)-के रूपमें पार्वती और गंगा ही आ गई है अथवा आनन्दसे भरी कोई सुन्दर मूर्ति है। यात्राके समय उसका प्रेमपूर्वक दर्शन करनेवालेकी सारी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं ॥१८०॥

विधाताने जिस काशीपुरीको आनन्द-मंगल से भरी हुई और परमार्थकी खान जानकर रचा है, विष्णुने जिसे बसाया और प्रलय-कालमें भी भगवान् शंकरने जिसे अपने त्रिशूलपर उठाकर बचाया उसी काशीपुरीको मृत्युके वशीभूत होकर यह नीच कलिकाल मिटानेपर तुला हुआ है। महाराज परीक्षितने तो इस दुष्टके साथ बड़ी भलाई की कि इसे छोड़ दिया (इसका वध नहीं किया) किन्तु उस खल (कलि)-ने उनके प्रति भी कृतघ्नता की (उन्हींका अपकार किया)[3] अतः, हनुमान्

१. चाटि दिवारिको दीयो : कहा जाता है कि वर्षा ऋतुमें गर्मीकी तपनसे घबराए हुए सर्प ऊमस पाकर बाहर निकल आते हैं। फिर वे प्रायः दीवालीके दिन दीपोंमें बचा हुआ घी चाटकर जंगलोंमें चले जाते हैं। २. क्षेमकरी नामकी चील कत्थई या ललाई लिए पीले (केसरिया) रंगकी होती है। इसकी चोंच सफ़ेद होती है। इसका दर्शन शुभ माना जाता है। यह दक्षिणमें समुद्रतटपर कारमंडल समुद्र-तटपर अधिक होती है। तन्त्रसारमें इसे प्रणाम करनेका यह मन्त्र दिया गया है—

कुंकुमारुणसर्वांगि कुन्देन्दुधवलानने ! मत्स्य-मांस-प्रिये देवि ! क्षेमं-करि नमोऽस्तु ते ॥

३. जब राजा परीक्षितने धर्म और पृथ्वीको कलियुगसे पीडित देखा तब उन्होंने खड्ग निकालकर उसका वध करना चाहा। परन्तु शरणागत जानकर राजाने उसे छोड़ दिया। फिर अपने रहनेके लिये स्थान माँगनेपर राजाने उसे जुआ, मदिरा, स्त्री, सुवर्ण और हिंसामें रहनेके लिये स्थान बतला दिया। बस वह झट राजाके स्वर्ण मुकुटमें जा बसा। उस कलिके प्रभावसे राजाने शमीक ऋषिके गलेमें मरा साँप जा लपेटा। यह देखकर ऋषिके पुत्र शृंगीने राजाको शाप दिया कि आजके सातवें दिन तक्षक तुम्हें काटेगा। शुकदेवने इन सात दिनोंमें राजाको श्रीमद्भागवतकी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

छाँड़ि, छितिपाल जो परीछित भये कृपालु, भलो कियो खल-को, निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि ! कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥१८१॥
बिरचि बिरंचि-की बसति बिस्वनाथ-की जो प्रानहू-तें प्यारी पुरी केसव कृपाल-की।
ज्योतिरूप-लिंगमई,[1] अगनित-लिंगमई,[2] मोच्छ-बितरनि, बिदरनि जगजाल-की ॥
देवी, देव, देवसरि, सिद्ध, मुनिवर-बास, लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल-की।
हाहा करै 'तुलसी' दयानिधान राम ! ऐसी कासी-की कदर्थता कराल कलिकाल-को ॥१८२॥
आस्रम बरन कलि बिबस बिकल भये, निज-निज मरजाद मोटरी-सी डार दी।
संकर सरोष महामारी-ही-तें जानियत, साहिब सरोष, दुनी दिन-दिन दारदी ॥
नारि-नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ, काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
'तुलसी' सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम, समय सुकरुना सराहि सनकार दी ॥१८३॥

॥ इति श्री गोसाईं तुलसीदास-विरचित कवित्तरामायण सम्पूर्णम् ॥

रक्षा कीजिए। करुणासागर राम ! रक्षा कीजिए। काशीपुरी-रूपी कामधेनुको यह कसाई कलिकाल बुरी तरहसे मारे डाल रहा है ॥ १८१ ॥ जो काशी, ब्रह्माकी रची हुई और विश्वनाथकी राजधानी है, जो कृपालु केशवको प्राणोंसे अधिक प्रिय है, वह ज्योतिर्लिंगमयी एवं अगणित लिंगमयी पुरी सबको मोक्ष देती और जगत्का संताप नष्ट करती रहती है, जो देवी, देवता, गंगा, सिद्ध और मुनियोंकी निवास-भूमि है, जिसके दर्शन मात्रसे अभागोंके ललाटपर लिखी हुई दुर्भाग्यकी रेखा मिट जाती है ऐसी काशीकी भी इस कलिकालने दुर्दशा कर डाली है। इसे देखकर दयानिधान राम ! यह तुलसीदास भी हाय-हाय कर उठा है। (आप अब इसकी रक्षा कर ही लीजिए) ॥ १८२ ॥ इस कलियुगके प्रभावसे वर्ण और आश्रम-धर्म सब नष्ट हो गए हैं। सबने अपनी-अपनी मर्यादाएँ भार समझकर तोड़ दी हैं। शिवका कोप तो यहाँ फैली हुई महामारीसे ही प्रकट है। स्वामीके कोपके कारण ही संसारकी दरिद्रता और विपत्ति दिनोंदिन बढ़ी चली जा रही है। सभी स्त्री-पुरुष व्याकुल हो-होकर पुकार रहे हैं किन्तु उनकी पुकार कोई सुन नहीं रहा है। ऐसा लगता है कि कुछ देवताओंने मिलकर कोई बड़ा जादू कर डाला है। तुलसीदास कहते हैं कि रामका स्मरण मात्र करनेपर भयभीतोंकी रक्षा करनेवाले कृपालु प्रभुने ठीक समयपर अपनी करुणाकी सराहना करके कलिकालके अत्याचारसे उनकी रक्षाके लिये संकेत कर दिया (जिससे काशीकी महामारी बातकी बातमें मिट गई) ॥ १८३ ॥

॥ गोसाईं-तुलसीदास-द्वारा विरचित कवित्त-रामायण (कवितावली) पूर्ण हुआ ॥

कथा सुनाई थी जिससे उनकी मुक्ति हो गई।

१. ज्योतिर्लिंग : ये बारह हैं—सोमनाथ (सौराष्ट्र), मल्लिकार्जुन (श्रीशैल), महाकाल (उज्जैन), अमलेश्वर (ओंकारेश्वर), केदार (हिमालय), भीमशंकर (डाकिनी), विश्वनाथ (काशी), त्र्यंबकेश्वर (गोदावरी-तट), वैद्यनाथ (चिताभूमि), नागेश (दारुकवन), रामेश्वर (सेतुबन्ध), घुश्मेश (शिवालय)।

२. अगनित लिंगमई : काशीके कंकर-कंकर शंकर हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

९

हनुमान-बाहुक

छप्पय

सिंधु-तरन, सिय-सोच-हरन रवि-बाल-बरन-तनु।
भुज बिसाल, मूरति कराल, कालहु-के काल जनु॥
गहन-दहन-निरदहन लंक, निःसंक, बंक भुव[1]।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवन-सुव॥
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ, सेवक-हित संतत निकट।
गुन गनत, नमत, सुमिरत, जपत, समन सकल संकट विकट॥ १॥

समुद्र लाँघ जानेवाले और जानकीका शोक दूर कर डालनेवाले हनुमान्! आपका शरीर, निकलते हुए सूर्यके समान लाल रंगका है, आपकी भुजाएँ लम्बी हैं और आपकी मूर्ति ऐसी भयंकर है कि आप कालके भी काल[2] जान पड़ते हैं। आपने (रावणकी) अशोक-वाटिका उजाड़ डाली और निःशंक होकर भौंहें टेढ़ी करके (क्रोध करके) न जलाई जा सकनेवाली लंका भी भस्म कर डाली। पवन-पुत्र हनुमान्! आपने बलवान् राक्षसोंका अभिमान और मद चूर कर डाला है। तुलसीदास कहते हैं—'हनुमान्! जो आपकी सेवा करता है उसे आप बड़ी सुगमतासे प्राप्त हो जाते हैं। अपने सेवकोंका हित करनेके लिये आप सदा उनके निकट पहुँचे रहते हैं। आपका गुणगान करनेसे, आपको प्रणाम करनेसे, ध्यान पूर्वक आपका स्मरण करनेसे और आपका नाम जपनेसे सारे कठिन संकटोंका नाश हो जाता है॥१॥

---

१. भुव=भ्रू, भौंह। २. जन्मके समय ही हनुमान् भूखके मारे सूर्यको लाल फल जानकर उनके पास उछलकर जा पहुँचे। तब इन्द्रने इनपर अपना वज्र चला दिया जिससे इनकी ठोड़ी टेढ़ी हो गई। तबसे इनका नाम हनुमान् हो गया। इन्द्रने इन्हें वर दिया कि आजसे मेरा वज्र तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकेगा। सूर्यने अपने तेजका सौवाँ भाग देकर इन्हें कहा कि—

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति। तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति॥

[जब ये शास्त्र पढ़नेके योग्य अवस्थाके होंगे तब मैं इन्हें शास्त्रका ज्ञान करा दूँगा, जिससे ये बड़े वक्ता (विद्वान्) हो जायँगे।]

फिर वरुणने कहा कि मेरे पाश और जलसे लाखों वर्षों-तक इनकी मृत्यु न होगी। यमने कहा कि मेरा दण्ड इन्हें नहीं मार पावेगा और ये सदा निरोग रहेंगे। इसी प्रकार कुबेरने कहा कि न तो मेरी गदा इन्हें मार सकेगी, न युद्धमें इन्हें कभी विषाद होगा। शिव, विश्वकर्मा तथा ब्रह्माने भी इन्हें चिरायु होनेका वर देकर कहा कि हमारे शस्त्रास्त्र इनका कुछ न बिगाड़ सकेंगे। इसीलिये ये कालके भी काल हैं।

—वाल्मीकि-रामायण ७—३५,३६

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्वर्न - सैल - संकास कोटि-रबि - तरुन - तेज - घन।
उर बिसाल, भुजदंड चंड, नख बज्र, बज्र - तन॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल रसना - दसनानन।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल - दल - बल भानन।
कह 'तुलसिदास' बस जासु उर, मारुत-सुत - मूरति बिकट।
संताप - पाप तेहि पुरुष - कहँ, सपनेहुँ नहिं आवहिं निकट॥ २॥

झूलना

पंचमुख[1] भृगुमुख[2] छमुख[3] भट, असुर - सुर - सर्ब - सरि - समर समरत्थ सूरो।
बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली, बेद बंदी बदत पैंज पूरो॥
जासु गुन - गाथ रघुनाथ कह, जासु बल - बिपुल - जल - भरित जग-जलधि झूरो।
दीन - दुख - दमन को? कौन तुलसीस है? पवन-को पूत रजपूत[4] रूरो॥३॥
भानु-सों पढ़न हनुमान[5] गए, भानु मन अनुमानि सिसु-केलि, कियो फेरफार-सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन मन, क्रम-को न भ्रम, कपि-बालक-बिहार सो।

हनुमान्! आपका शरीर स्वर्ण-शैल (सुमेरु पर्वत)-के समान (विशाल सुनहरा) है। आप दोपहरके करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। आपकी छाती विशाल (बहुत चौड़ी) है, आपकी भुजाएँ अत्यन्त बलवती हैं, आपके नख (नाखून) और शरीर वज्रके समान हैं, आपके नेत्र पीले हैं, आपकी भौंहें, जीभ, दाँत और मुँह अत्यन्त भयंकर हैं, आपके केश भूरे हैं और आपकी बड़ी कठोर पूँछ दुष्टोंका बल नष्ट कर डालती है। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके हृदयमें पवनपुत्र हनुमान्‌की यह विकट मूर्त्ति आ बसे, उस पुरुषके पास दुःख और पाप स्वप्नमें भी नहीं फटक पाते॥ २॥ हनुमान् ऐसे समर्थ शूरवीर हैं कि वे शिव, स्वामिकार्त्तिकेय, परशुराम, दैत्य और देव योद्धाओंके साथ भी लोहा ले सकते हैं। वे बड़े बाँके (विकट) और यशस्वी योद्धा हैं। वेद भी भाट बनकर आपके सुयशका वर्णन करते हैं। वे सब प्रकारकी प्रतिज्ञाएँ पूर्ण कर देते हैं। जिनके गुणोंकी कथाएँ स्वयं रामने कही हैं और जिनके शरीरमें इतना अगाध बलका जल भरा है कि संसारके समुद्र उसके आगे सूखे लगते हैं ऐसे तुलसीदासके प्रभु, पवन-पुत्र और वीर योद्धा हनुमान्‌के अतिरिक्त दीनोंका दुःख नाश करनेवाला दूसरा और है कौन?॥३॥ हनुमान् एक बार भगवान् सूर्यके पास विद्या पढ़ने जा पहुँचे। सूर्यने अपने मनमें सोचा कि ये केवल बाल-क्रीड़ा कर रहे हैं, ये क्या पढ़ेंगे और यह सोचकर वे टाल-मटोल करने लगे। पर हनुमान् आकाशमें सूर्यकी ओर मुँह करके और अपने पैर पीछेकी ओर करके प्रसन्न मनसे वानरके बच्चेके खेलके समान पढ़ते चलने लगे। उनके पढ़नेमें कभी किसी प्रकारकी भूल नहीं होती थी। उनका यह आश्चर्यजनक खेल देखकर इन्द्र आदि लोकपाल, विष्णु, ब्रह्मा और शिवके नेत्रोंमें चकाचौंध

१. पंचमुख=महादेव जी। २. भृगुमुख (मुख्य)=परशुराम। ३. छमुख=स्वामिकार्त्तिकेय, महादेवके पुत्र, देवताओंके सेनापति। ४. रजपूत=राजपुत्र=वीर योद्ध। ५. पाछिले गमनि गम=पीछेकी ओर पैरोंसे चलते हुए। जब हनुमान सूर्यके पास पढ़ने गए तब उन्होंने कहा कि मैं तो निरन्तर चलता रहता हूँ, इसलिये यदि पढ़ना हो तो मेरे रथके सामने मुँह करके पीछेकी ओर चलते हुए चले चलो। हनुमान्‌ने ऐसा ही किया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कौतुक बिलोकि लोकपाल, हरि, हर, बिधि, लोचननि चकाचौंध चित्तनि खँभार-सो।
बल कैधौं बीर रस, धीरज कै साहस, कै 'तुलसी' सरीर धरे सबनि-को सार-सो॥ ४॥
भारथ-में पारथ-के रथ-केतु कपिराज, गाज्यो सुनि कुरुराज-दल हलबल भो।
कह्यो द्रोन-भीषम, समीर-सुत महाबीर, बीर-रस-बारि-निधि जाको बल जल भो।
बानर-सुभाय बाल-केलि भूमि भानु लगि, फँलगु[1] फलाँग-हू-तें घाटि नभ-तल भो।
नाइ-नाइ माथ, जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं, हनुमान देखे जग-जीवन-को फल भो॥ ५॥
गोपद पयोधि करि, होलिका-ज्यों लाई लंक, निपट निसंक पर-पुर गलबल भो।
द्रोन-सो पहार लियो ख्याल ही उखारि, कर-कंदुक-ज्यों कपि-खेल बेल-कैसो फल भो।
संकट समाज, असमंजस-में राम-राज, काज जुग - पूगनि-को करतल पल भो।
साहसी, समत्थ, तुलसी-को नाह, जाकी बाँह लोकपालनि-को फिरि थिर थल भो॥ ६॥
कमठ-की पीठि जाके गोड़नि-की गाड़ैं मानौ, नाप-के भाजन भरि जलनिधि-जल भो।
जातुधान-दावन, परावन-को दुर्ग भयो, महामीन-बास तिमि-तोमनि-को थल भो।

तथा मनमें बड़ी घबराहट-सी हो गई कि यह क्या बल ही स्वयं शरीर धारण किए चला आया है, या यह वीररस है, या धैर्य है, या साहस है, या इन सब (बल, वीरता, धैर्य और साहस)-का सार है॥ ४॥ महाभारतके युद्धमें अर्जुनके रथकी पताकापर बैठे कपीश्वर हनुमान् ऐसे गरजे कि उसे सुनते ही दुर्योधनकी सेनामें खलबली मच गई। तब द्रोणाचार्य और भीष्म पितामहने कहा कि 'ये महावीर हनुमान् हैं जिनका बल तो वीर रसके समुद्रका जल है। इनके वानरी स्वभावकी बाल-लीलामें पृथ्वीसे सूर्यतककी कुदान इनकी वास्तविक कुदानसे बहुत स्वल्प (छोटी) ही हुई (ये इससे भी बहुत ऊँचेतक सरलतासे कूद सकते हैं)'। यह सुनकर दुर्योधनकी सेनाके योद्धा इन्हें सिर नवाकर और हाथ जोड़कर देखने लगे। हनुमान्‌के दर्शन पाकर दुर्योधनके योद्धाओंने समझा कि संसारमें हमारा जीवन पाना सफल हो गया॥ ५॥ (भीष्म पितामह कहने लगे—) 'हनुमान्‌ने समुद्रको गौके खुरके समान (बड़ी सुगमतासे) लाँघकर नितान्त निर्भय होकर लंका (—जैसे सुरक्षित और सुदृढ) नगरको होलीके समान ऐसा जलाना प्रारंभ किया कि वहाँ हाय-हाय मच गई। द्रोणाचल-जैसे विशाल पर्वतको आपने बड़ी सुगमतासे उखाड़ लिया, जो इन कपिराज हनुमान्‌के हाथमें बेलसे फलके समान हल्का-सा खेलनेका गेंद-मात्र बना हुआ था। (लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर) जब रामका पूरा समाज (सारी वानरी दल) संकट (शोक)-में पड़ा था और महाराज राम भी बड़े असमंजसमें पड़े हुए थे (कि रात-भरमें लंकासे हिमालय-तक जाकर और सूर्योदय होनेके पूर्व हनुमान् वहाँसे संजीवनी बूटी कैसे ला सकेंगे) उस समय अनेक युगोंमें किया जा सकनेवाला कार्य हनुमान्‌ने पल भरमें (अत्यन्त शीघ्र) कर दिखाया। तुलसीदासके स्वामी हनुमान् बड़े साहसी और समर्थ हैं, जिनकी भुजामें इन्द्र आदि लोकपालोंका पालन करने तथा उन्हें फिरसे स्थायी रूपसे बसानेकी शक्ति है (रावणने इन्द्र आदि लोकपालोंको उनके स्थानसे उजाड़कर बन्दी कर लिया था, जिन्हें हनुमान्‌ने छुड़ाकर फिरसे स्थायी रूपसे स्वर्गमें ले जा बसाया था)'॥ ६॥ (समुद्र लाँघनेके समय कूदनेपर) कच्छपकी पीठमें इनके पैरोंकी चाँपसे जो गड्ढा पड़ गया था, उसीमें समुद्रका सारा जल भरकर

---

१. फलँगु=(संस्कृत फल्गु) स्वल्प, निरर्थक।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुंभकर्न - रावन - पयोद-नाद - ईंधन-को 'तुलसी' प्रताप जाको प्रबल अनल भो।
भीषम कहत, मेरे अनुमान, हनुमान-सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो ॥ ७ ॥
दूत रामराय-को, सपूत पूत पौन-को तू, अंजनी-को नंदन[1] प्रताप भूरि भानु-सो।
सीय-सोच-समन, दुरित - दोष - दमन, सरन आये अवन[2], लखन-प्रिय प्रान-सो।
दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे-को भयो प्रगट तिलोक - ओक 'तुलसी' निधान-सो।
ज्ञान-गुनवान, बलवान, सेवा सावधान, साहेब सुजान उर आन हनुमान सो ॥ ८ ॥
दवन - दुवन - दल, भुवन-बिदित बल, बेद जस गावत, बिबुध - बंदी - छोर को।
पाप - ताप - तिमिर - तुहिन - बिघटन-पटु, सेवक-सरोरुह सुखद भानु भोर-को।

समुद्र नापनेका पात्र (नपना) बन गया, राक्षसोंका नाश करते समय उन्हें (राक्षसोंको) भागनेसे रोकनेके लिये समुद्र (चारों ओरसे घेरेके रूपमें) दुर्ग बन गया और वह दुर्गरूपी समुद्र तिमि (ह्वेल) आदि महामत्स्योंके निवासकी भूमि हो गया (उसमें बड़े-बड़े मगर-मच्छ रहने लगे)। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमान्‌के प्रतापने ही प्रचण्ड अग्नि बनकर रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद-रूपी ईंधनको जला डाला था। भीष्म पितामह कहने लगे कि मेरे अनुमानसे तो ऐसा लगता है कि हनुमान्‌के समान महा बलवान् तीनों लोकोंमें और तीनों कालों (भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्)-में न कोई हुआ, न है और न होगा ॥ ७ ॥ हनुमान् ! आप महाराज रामके दूत और पवन देवके सुयोग्य पुत्र हैं। आप अंजनी देवीको आनन्द देनेवाले (उनके सुपुत्र) हैं। आप अनेक सूर्योंके समान प्रतापी हैं। आपने जानकीका शोक मिटा डाला। आप पाप और दोष नष्ट कर डालते हैं और शरणागतकी रक्षा करते हैं। आप लक्ष्मणको तो प्राणोंको समान प्रिय हैं (क्योंकि आपकी ही बुद्धि, बल और पुरुषार्थसे लक्ष्मणके प्राणोंकी रक्षा हुई)। तुलसीदास कहते हैं कि आप रावण-रूपी दुःसह दरिद्रताका नाश करनेके लिये तीनों लोक-रूपी मंदिरमें धनसे परिपूर्ण भंडारके समान प्रकट हुए हैं (आपने रावणका नाश कर डाला)। अरे मन ! ज्ञानी, गुणवान्, बलवान् तथा अपने प्रभु रामकी सेवामें सजग रहनेवाले प्रवीण इष्टदेव हनुमान्‌का हृदयमें सदा ध्यान किया कर ॥ ८ ॥ शत्रुओंकी सेना नष्ट करनेमें जिनका बल समस्त लोकोंमें विख्यात है। देवताओंको बंदी-घरसे छुड़ानेवाले हनुमान्‌का यश वेदमें भी प्रसिद्ध है। वे पाप और ताप-रूपी अन्धकार और पालेका नाश कर डालनेमें बड़े प्रवीण हैं। वे अपने सेवकोंको वैसा ही सुख देते हैं जैसे कमलको प्रातःकालका सूर्य सुख देता है। तुलसीदास कहते हैं कि मैं लोक और परलोकसे सर्वथा निश्चिन्त हूँ। मुझे स्वप्नमें भी इनका दुःख

---

१. अंजनीनन्दन : पुञ्जिकस्थली नामकी एक बड़ी सुन्दरी अप्सरा थी। वह शापवश कुञ्जर नामक वानरकी कन्या अंजना (अंजनी) नामसे प्रसिद्ध हुई और केसरी नामके वानरकी पत्नी हुई। एक बार वह स्वेच्छासे मानवका रूप धारण करके पर्वतके शिखरपर विचर रही थी। उस समय पवनदेव उसके अंग देखकर उसपर बहुत मोहित हो उठे और उन्होंने मनही मन उसका आलिंगन कर लिया। अंजनाको इसका आभास हुआ तो उसने कहा कि मेरा पातिव्रत धर्म किसने नष्ट किया ? इसपर पवनदेवने उसे समझाकर कहा कि तुम्हारा पातिव्रत नष्ट नहीं हुआ। तुम निर्भय रहो। इससे तुम्हारे बलवान्, बुद्धिमान् और महा तेजस्वी पुत्र होगा। यह सुनकर अंजना बहुत प्रसन्न हुई। उसी अंजनाके गर्भसे हनुमान्‌का जन्म हुआ। २. अवन = रक्षा करनेवाला।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोक-परलोक-तें बिसोक, सपने न सोक, तुलसी-के हिए है भरोसो एक ओर-को ।
राम-को दुलारो दास, बामदेव-को निवास, नाम कलि-काम-तरु केसरी-किसोर-को ॥९॥
महाबल-सीम, महा भीम, महा बानइत, महाबीर बिदित बरायो रघुबीर - को ।
कुलिस-कठोर तन, जोर परे रोर रन, करुना - कलित मन, धारमिक धीर - को ।
दुर्जन-को काल-सो कराल, पाल सज्जन-को, सुमिरे, हरनहार तुलसी-की पीर-को ।
सीय-सुख-दायक, दुलारो रघुनायक - को, सेवक-सहायक है साहसी समीर - को ॥१०॥
रचिबे-को बिधि-जैसो, पालिबे-को हरि-हर, मीच मारिबे-को, ज्याइबे-को सुधा-पान भो ।
धरिबे-को धरनि, तरनि तम दलिबे-को, सोखिबे कृसानु, पोषिबे-को हिमभानु भो ।
खल-दुख दोषिबे-को, जन परतोषिबे-को, माँगिबो मलीनता-को मोदक सुदान भो ।
आरत-की आरति निवारिबे-को तिहूँ पुर, तुलसी-को साहिब हठीलो हनुमान भो ॥११॥
सेवक-स्योकाई जानि जानकीस मानै कानि, सानुकूल सूलपानि, नवै नाथ नाक-को ।
देवी-देव-दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ, बापुरो बराक और राजा - राना - राँक को ?
जागत, सोवत, बैठे, बागत, बिनोद-मोद, ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक को ?
सब दिन रूरो, परै पूरो जहाँ-तहाँ ताहि, जाको है भरोसो हिये हाँक हनुमान-को ॥१२॥

नहीं है क्योंकि मुझे एक हनुमान्‌का पूरा भरोसा है । हनुमान् तो रामके प्रिय सेवक और महादेवके अवतार हैं । केसरी-कुमार हनुमान्‌का नाम इस कलियुगमें कल्पवृक्षके समान (सम्पूर्ण मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला) है ॥ ९ ॥ आप (हनुमान्) महान् बलकी सीमा हैं, आप बड़े ही भयंकर और बड़े शक्तिशाली हैं । रघुवंशियोंमें वीर रामने आपको चुना है और आप 'महावीर' नामसे प्रसिद्ध हैं । जब आप अपना वज्रसे भी कठोर शरीर भिड़ा देते हैं तब रणक्षेत्रमें भगदड़ मच जाती है । आपका धार्मिक और धीर मन सदा करुणा (दया)-से भरा रहता है । आप दुष्टोंके लिये कालके समान भयंकर हैं और सज्जनोंका पालन करते हैं । स्मरण करनेपर आप मुझ तुलसीदासकी पीडा भी दूर कर डालते हैं । आपने सीताको (रामका संदेश देकर) सुख दिया इसलिये रामके आप बड़े प्यारे हैं । साहसी पवनपुत्र ! आप अपने सेवकोंकी सदा सहायता करते हैं ॥ १० ॥ जिस प्रकार जगत्‌की रचना करनेमें ब्रह्मा, पालन करनेमें विष्णु और शिव, मारनेमें मृत्यु, जिलानेमें अमृत, धारण करनेमें पृथ्वी, अन्धकारका नाश करनेमें सूर्य, शोषण करने (सोखने)-में अग्नि, पोषण करनेमें चन्द्रमा, भक्तोंको दुःख देनेमें खल, आश्रितों (भक्तों)-को सन्तुष्ट रखनेमें सन्तजन और याचकता (भिखमंगो)-रूपी मलिनता दूर करनेमें आनंदित करनेवाला दान प्रसिद्ध है उसी प्रकार दुखियोंकी विपत्ति दूर करनेके लिये तीनों लोकोंमें मुझ तुलसीदासके इष्टदेव हठीले हनुमान प्रसिद्ध हैं ॥११॥ जिसके हृदयमें हनुमानके गर्जनका ही भरोसा रहता है उसे राम भी इसलिये बहुत मानते हैं कि यह मेरे सेवक (हनुमान्) की सेवा करता है, शिव भी उसपर प्रसन्न रहते हैं, स्वर्गके राजा इन्द्र भी उसके आगे झुके रहते (आदर करते) हैं, और सभी देवी, देवता और दानव भी जब विनम्रताके साथ उसे हाथ जोड़ते रहते हैं तब बेचारे क्षुद्र, राजा, राणा, रंकोंकी क्या गिनती है ? जागते-सोते, बैठते, घूमते-फिरते, हँसी-विनोदमें भी कोई उसका अहित करनेका साहस कर कौन सकता है, क्योंकि उसका तो सदा कल्याण ही कल्याण होता रहता है और सर्वत्र उसका काम बना रहता है ॥ १२ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि, लोकपाल सकल लखन, राम, जानकी।
लोक, परलोक-सो बिसोक, सो तिलोक ताहि 'तुलसी' तमाइ[1] कहा काहू बीर आन की?
केसरी - किसोर बंदी-छोर - को निवाजे, सब कीरति बिमल कपि करुनानिधान-की।
बालक-ज्यौं पालिहैं कृपालु मुनि-सिद्ध ताको, जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान-की ॥१३॥
करुना-निधान, बलबुद्धि-के निधान, मोद-महिमा-निधान, गुन-गन-के निधान हौ।
बामदेव - रूप, भूप राम - के सनेही, नाम लेत, देत अर्थ - धर्म - काम - निरबान हौ।
आपनो प्रभाव, सीतानाथ - के सुभाव-सील, लोक-बेद-बिधि-हू बिदुष हनुमान हौ।
मन-की, बचन - की, करम-की तिहूँ प्रकार 'तुलसी' तिहारो, तुम साहिब सुजान हौ ॥१४॥
मन-को अगम, तन सुगम किए कपीस काज, महाराज-के समाज साज साजे हैं।
देव बंदी - छोर, रन - रोर केसरी - किसोर, जुग-जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं॥
बीर बरजोर, घटि जोर तुलसी-की ओर, सुनि सकुचाने साधु, खलगन गाजे हैं।
बिगरी सँवारि, अंजनी-कुमार! कीजै मोहिं जैसे होत आये हनुमान-के निवाजे हैं ॥१५॥

(जिसके हृदयमें हनुमान्‌के गर्जन सुनकर आनन्द होता है) उसपर अपने गणों और पार्वतीके साथ शिव, लोकपाल, राम, लक्ष्मण और जानकी आदि सब प्रसन्न रहते हैं। वह लोक और परलोकसे विशोक (निश्चिन्त) रहता है। उसे त्रैलोक्यके किसी अन्य वीरकी आवश्यकता ही क्या है) क्यों कि सबको बंदीघरसे छुड़ानेवाले केसरी-कुमार करुणानिधान हनुमान्‌की कृपाकी यह कीर्ति ऐसी निर्मल है कि मुनि और सिद्धजन भी कृपालु होकर उसका बालकके समान पालन करेंगे जिनके हृदयमें हनुमान्‌की हाँक सुनकर आनन्द होता है॥ १३॥ वीर हनुमान्! आप करुणा-निधान हैं, बल और बुद्धिके निधान हैं, आनन्द, महिमा, गुण और ज्ञानके भांडार हैं। आप शंकरके स्वरूप और महाराज रामके स्नेही (कृपापात्र) हैं। जो आपका नाम लेता है उसे आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दे डालते हैं। हनुमान्! आप अपने प्रभाव, सीतानाथ रामके शील-स्वभाव और लोक रीति तथा वेद-विधानके पंडित बताए गए हैं। यह तुलसीदास मन, वचन और कर्म, तीनों प्रकारसे आपका है। आप मेरे प्रवीण इष्टदेव (स्वामी) हैं॥१४॥ हनुमान्‌ने ऐसे कार्य अपने शरीरसे सुलभ कर डाले जो मनसे भी अगम हैं (जिनके पूरा होनेकी मनमें कल्पना भी न की जा सके)। इस प्रकार आपने महाराज रामके समाज (दरबार)-के सभी साज पूरे कर डाले। केसरी-किशोर हनुमान् आपने देवताओंको बन्दीघरसे छुड़ा निकाला। रण-भूमिमें आप बड़े प्रचंड हो जाते हैं। आपके ऐसे कार्योंकी विरुदावली (प्रशंसा) संसारमें सभी युगों में गाई जाती रही है। आप सब वीरोंमें सबसे प्रचण्ड पराक्रमी वीर हैं, परन्तु न जाने क्यों आपका बल-पराक्रम तुलसीके लिये ही ढीला पड़ चला है। यह सुनकर साधु लोग तो उदास हो चले हैं पर दुष्ट लोग प्रसन्न होकर गरजे जा रहे हैं। अंजनीकुमार! मेरी भी बिगड़ी बनाकर (विपत्ति दूर करके) मुझे भी वैसा ही (प्रसन्न) बना दीजिए जैसे आपके कृपापात्र होते आए हैं॥१५॥ हनुमान्! आप सबसे

---

१. तमाइ=लोभ, चाह, आकांक्षा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मत्तगयंद सवैया

जानि - सिरोमनि हौ, हनुमान ! सदा जन-को मन बास तिहारो ।
ढारो बिगारो मैं काको कहा, केहि कारन खीझत, हौं तो तिहारो ।।
साहिब - सेवक नाते-तें हातो कियौ, तो तहाँ तुलसी-को न चारो ।
दोष सुनाऐ ते आगेहुँ - को हुसियार ह्वैहौं, मन तौ हिय हारो ।।१६।।
तेरे थपे, उथपैं न महेस, थपै थिर को कपि जे घर घाले ?
तेरे निवाजे गरीब-निवाज ! बिराजत बैरिन - के उर साले ।
संकट - सोच सबै 'तुलसी', लिऐ नाम फटैं मकरी-के-से जाले ।
बूढ़ भये, बलि, मेरिहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले ।। १७ ।।
सिंधु तरे, बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक-से बंक मवासे ।
तैं रन-केहरि ! केहरि-के बिदले अरि - कुंजर छैल छवा - से ।
तोसों समत्थ सुसाहिब सेइ, सहै 'तुलसी' दुख - दोष दवा-से ।
बानर-बाज ! बढ़े खल खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा-से ।।१८।।
अच्छ - बिमर्दन, कानन भानि, दसानन - आनन भाननि-हारो ।
बारिद - नाद, अकंपन, कुंभकरन्न - से कुंजर केहरि बारो ।

अधिक प्रवीण हैं और मुझ सेवकके हृदयमें आप सदा बसे रहते हैं । मैंने किसका क्या गिराया या बिगाड़ा है ? आप किस कारण मुझसे रूठे बैठे हैं । मैं तो आपका ही (दास) हूँ । प्रभो ! सेवक होनेपर भी आप यदि मुझे दूर किए हुए हैं तो उसमें तुलसीदासका तो कुछ वश है नहीं । हाँ, मेरा दोष बता दीजिए तो मैं आगेसे सावधान हो जाऊंगा । मेरा मन तो यों ही साहस खोए बैठा है ।। १६ ।। कपि हनुमान ! आप जिसके हुए, आपने जिसे बसा दिया, उसे अत्यन्त शक्तिशाली शिव भी नहीं उजाड़ सकते और जिन घरोंको आपने उजाड़ धरा है, उन्हें भला कौन जमकर बसा सकता है ? दीन-दयालु ! आपने जिनपर भी कृपा की है वे अपने शत्रुओंके हृदयकी पीडा बनकर जमे हुए हैं । तुलसीदास कहते हैं कि आपका नाम लेनेभर-से सारे दुःख और शोक ऐसे झड़ गिरते हैं जैसे मकड़ीके जाले (अनायास ही नष्ट हो जाते हैं) । मैं बलिहारी जाता हूँ । क्या आप मेरी ही बार बूढ़े (अशक्त) हो गए हैं ? या बहुतसे शरणागतोंका पालन करते-करते थक गए हैं ।। १७ ।। हनुमान् ! आप समुद्र लाँघ गए, आपने बड़े-बड़े वीर राक्षसोंका संहार कर डाला और लंका-जैसे विकट दुर्गको जला डाला । केसरीकुमार ! आप रणमें सिंहके समान पराक्रम दिखाते हैं, इसीसे आपने जवान हाथियोंके समान शत्रुओंको साधारण पशुओंके बच्चोंके समान मसल डाला । भला आपके समान समर्थ और श्रेष्ठ स्वामीकी सेवा करता हुआ भी यह तुलसीदास क्या दुःख और दोषकी दावाग्निमें पड़ा यों ही जला करे । अतः, वानर-रूपी बाज ! बहुत प्रकारके दुःखके पक्षी बढ़ चले हैं । आप उन्हें बटेर बनाकर क्यों नहीं लपेट दबोचते ।। १८ ।। जिसने अक्षकुमारका वध कर डाला, जिसने अशोक वन नष्ट करके रावणके मुख तोड़ डाले, जिसने जवान सिंह बनकर मेघनाद, अकम्पन, कुम्भकर्णके समान हाथियोंका मान मर्दन कर डाला, शत्रु-रूपी कच्छ (तूनके पेड़)-के लिये रामका जो प्रताप अग्निके समान

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम-प्रताप हुतासन कच्छ[1] बिपच्छ समीर, समीर-दुलारो।
पाप-तें, साप-तें, ताप तिहूँ-तें, सदा तुलसी-कहँ सो रखवारो ॥१९॥

घनाक्षरी

जानत जहान हनुमान-को निवाज्यो जन, मन अनुमानि, बलि, बोलि न बिसारिए।
सेवा-जोग 'तुलसी' कबहुँ कहूँ चूक परी, साहेब - सुभाय, कपि साहेब सँभारिए।
अपराधी जानि कीजै सासति सहस भाँति, मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए।
साहसी समीर-के, दुलारे रघुबीरजू-के, बाँह-पीर महाबीर बेगि ही निवारिए ॥२०॥
बालक बिलोकि, बलि, बारे-तें आपनो कियो, दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये।
रावरो भरोसो तुलसी-के, रावरोई बल, आस रावरीयै, दास रावरो बिचारिए।
बड़ो बिकराल कलि, काको न बिहाल कियो ? माथे पग बली-को, निहारि सो निवारिए।
केसरी-किसोर ! रन-रोर, बरजोर बीर ! बाहु-पीर राहु-मातु[2]-ज्यौं पछारि मारिए ॥२१॥
उथपे थपन, थिर थपे उथपनहार, केसरी - कुमार ! बल आपनो सँभारिए।
राम-के गुलामनि-को काम-तरु राम-दूत ! मोसे दीन दूबरे-को तकिया[3] तिहारिए।

है उसे धधकाए रखनेके लिये जो पवनके समान हैं, वे हनुमान् ही अब तुलसीदासको भी पाप, शाप और तीनों तापोंसे सदा बचाए रख सकते हैं ॥ १९ ॥ हनुमान् ! संसार जानता है कि यह सेवक तुलसीदास भी हनुमान्‌का कृपा-पात्र है। ऐसा समझकर और इसकी रक्षा करनेका वचन देकर इसे न भूलिए। मैं बलिहारी जाता हूँ। सेवा करते हुए तुलसीसे कभी कुछ भूल हो गई हो तो कपीश्वर ! आप अपने बड़प्पनका स्मरण करके और मुझे अपराधी समझकर अनेक प्रकार-से मेरी जितनी चाहे दुर्दशा कर डालिए परन्तु 'जो लड्डू देनेसे मरता हो उसे विष देकर नहीं मारना चाहिए'—इस लोकोक्तिके अनुसार महान् पराक्रमी ! पवनदेवके दुलारे पुत्र ! रामके प्यारे ! महावीर ! मेरी बाहु-पीडा शीघ्र दूर कर डालिए ॥ २० ॥ दीनबन्धु हनुमान् ! मैं बलिहारी जाता हूँ। आपने मुझे बालक जानकर बचपनसे ही मुझे अपनाया है। आपने मुझपर अन्य धर्मों (देवोंकी पूजा)-से निश्चिन्त करके मुझपर बड़ी कृपा की है। मुझ तुलसीदासको आपका ही भरोसा, आपका ही बल और आपसे ही आशा है। इस प्रकार आप मुझे अपना दास ही समझिए। यह कलिकाल बड़ा भयंकर है। इसने किसे नहीं बेहाल कर डाला है ? यह बलवान् (शत्रु) मेरे सिरपर पैर जमाए बैठा है (यह मुझे बुरी तरह कुचले डाल रहा है)। इसे देखिए और दूर भगाइए। केसरी-किशोर ! आप रणमें बड़े प्रचण्ड और श्रेष्ठ वीर बने रहते हैं, इसलिये मेरी बाहु-पीडाको भी सिंहिका[4] राक्षसीकी भाँति पटककर मार डालिए ॥ २१ ॥ केसरी-कुमार ! आप अपने उस बलका स्मरण तो कीजिए जब आपने भयसे भागे हुए (सुग्रीव, विभीषण आदि)-की रक्षा की थी तथा जमकर बसे हुए (बालि, रावण आदि)-को उजाड़ डाला था। रामके दूत हनुमान् ! आप रामके सेवकोंके लिये कल्पवृक्षके समान हैं। मुझ-जैसे

१. कच्छ=तूनका पेड़ जो जल्दी जलता है। २. राहु-मातु = छायाग्राहिणी सिंहिका। ३. तकिया = भरोसा। ४. सिंहिका = राहुकी माता सिंहिकाने हनुमान्‌को समुद्र लाँघते समय रोका था जिसे मारकर वे लंका पहुँच गए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साहिब समर्थ तोसों तुलसी-के माथे-पर, सोऊ अपराध-बिनु, बीर ! बाँधि मारिए।
पोखरी बिसाल बाहु, बलि, बारिचर पीर, मकरी-ज्यौं पकरि-कै बदन बिदारिए ॥२२॥
राम-को सनेह राम, साहस लखन, सीय राम-की भगति सोच, संकट निवारिए।
मुद-मरकट रोग - बारिनिधि हेरि हारे, जीव जामवंत - को भरोसौ तेरो भारिए।
कूदिए कृपालु ! 'तुलसी' सु प्रेम-पब्बइ-तें, सुथल सुबेल-भाल बैठि-के बिचारिए।
महाबीर बाँकुरे ! बराकी बाहु-पीर क्यों न लंकिनि-ज्यों लात-घात ही मरोरि मारिए ॥२३॥
लोक-परलोक हूँ, तिलोक न बिलोकियत, तो-सों समरत्थ चख चारिहूँ निहारिए।
कर्म, काल, लोकपाल, अग, जग, जीव-जाल, नाथ-हाथ सब, निज महिमा बिचारिए।
खास दास रावरो, निवास तेरो तासु उर, 'तुलसी' सो, देव ! दुखी देखियत भारिए।
बात तरु-मूल, बाहु-सूल कपिकच्छु-बेलि उपजी, सकेलि, कपि, खेल ही उखारिए ॥२४॥
करम-कराल कंस भूमिपालि-के भरोसे, बकी बक-भगिनी काहू-तें कहाँ डरैगी ?
बड़ी बिकराल बालघातिनी, न जात कहि, बाहु-बल बालक छबीले छोटे छरैगी।

दीन और दुर्बलोंको तो आप तकियेकी भाँति सहारा देते हैं। वीर हनुमान् ! तुलसीदासके सिरपर जब आप-जैसे समर्थ स्वामी उपस्थित हैं तब भी वह बिना अपराधके ही बाँधकर पीटा जा रहा (दुःख सह रहा) है। मैं बलिहारी जाता हूँ। मेरी विशाल भुजा-रूपी पोखरीमें पीडा-रूपी मकरी (मगरी) उछल-उछलकर मुझे बहुत कष्ट दे रही है। अतः, पीडा-रूपी इस मकरीका मुँह फाड़कर इसे मार डालिए ॥ २२ ॥ मेरे हृदयमें जो रामका स्नेह है वही राम हैं, जो साहस है वही लक्ष्मण हैं और जो रामकी भक्ति है वही सीता हैं। (आपने राम, लक्ष्मण और सीताकी चिन्ता दूर तो की) इन (मेरे स्नेह, साहस और भक्ति)-की चिन्ता और दुःख दूर कर डालिए। मेरे मानसिक आनन्दरूपी वानर सब इस रोग (बाहु-पीडा)-रूपी भयंकर समुद्रको देखकर पार जानेमें हार बैठे हैं। ऐसी दशामें मेरे जीवात्मा-रूपी जामवन्तको एक आपका ही बड़ा भरोसा है। अतः कृपालु ! आप तुलसीदासके प्रेम-रूपी पर्वतसे कूदकर सुन्दर सुबेल पर्वतके समान मेरे भाग्य-रूपी मस्तकपर बैठकर भली भाँति विचारकर बाँके वीर हनुमान् ! इस तुच्छ बाहुपीडाको लंकिनीकी भाँति वहीं अपने चरणके प्रहारसे क्यों नहीं चपेटकर पछाड़ डालते ॥२३॥ हनुमान् ! आपके समान लौकिक और पारलौकिक सुख देनेवाला त्रैलोक्यमें भी कोई दिखाई नहीं पड़ता। यह सब मैंने भली भाँति अपनी चारों आँखों (दो बाहरी नेत्र और दो अन्तःचक्षु बुद्धि तथा चित्त)-से देखकर निश्चय कर लिया है। नाथ ! संचित प्रारब्ध (पिछले जन्मके कर्म), क्रियमाण कर्म (वर्त्तमान कर्म), लग्न, मुहूर्त, तिथि, वार, नक्षत्र, आदि काल, इन्द्र आदि लोकपाल, स्थावर और जंगम जीवोंका समुदाय, ये सबके सब आपकी ही मुट्ठीमें हैं। अपनी इस महिमापर विचार तो कीजिए। यह तुलसीदास आपका अनन्य सेवक है। इसके हृदयमें आप बसे हुए हैं। फिर भी देव ! यह बहुत दुखी हो रहा है। मेरे बाहुरूपी-वृक्षके मूलमें बाहु-पीडा रूपी केवाँचकी लता उत्पन्न हो गई है। उसे मुठियाकर वानरी खेल करके उखाड़ फेंकिए ॥२४॥ कर्मरूपी कराल राजा कंसके भरोसे जीनेवाली बकासुरकी बहिन (पूतना) क्या किसीसे डरनेवाली है ? यह ऐसी भयंकर बाल-घातिनी (बालकोंको मारनेवाली) है कि इसकी भयंकरताका वर्णन नहीं हो सकता।

---

३. बराकी=बापुरी, तुच्छ, बेचारा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आई है बनाइ बेष, आप तू बिचारि देख, पाप जाय सब-को गुनी-के पाले परैगी ।
पूतना पिसाचिनी-ज्यों कपि कान्ह 'तुलसी'-की बाहु-पीर, महाबीर, तेरे मारे मरैगी ॥२५॥
भाल-की, कि काल-की, कि रोष-की, त्रिदोष-की है, बेदन बिषम पाप-ताप छल-छाँह-की ।
करमन कूट[1]-की कि जंत्र-मंत्र-बूट-की, पराहि जाहि, पापिनी ! मलीन मन-माँह-की ।
पैहहि सजाय, नतु कहत बजाय तोहि, बावरी न होहि बानि जानि कपिनाँह-की ।
आन हनुमान-की, दोहाई बलवान-की, सपथ महाबीर-की जो रहै पीर बाँह - की ॥२६॥
सिंहिका सँघारि बल, सुरसा सुधारि छल, लंकिनी पछारि मारि बाटिका उजारी है ।
लंका परजारि, मकरी बिदारि, बार बार, जातुधान-धारि धूरि-धानी करि डारी है ।
तोरि जम - कातरि मँदोदरि कढ़ोरी आनि, रावन की रानी, मेघनाद - महतारी है ।
भीर बाँह पीर-की निपट राखी महाबीर, कौन-के सँकोच, तुलसी-के सोच भारी है ॥२७॥
तेरी बाल-केलि, बीर ! सुनि सहमत धीर, भूलत सरीर-सुधि सक्र - रबि - राहु-की ।
तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब, तेरो नाम लेत रहै आरति न काहु-की ।

यह मेरे बाहुबल-रूपी सुन्दर छोटे बालकको छलसे मार डालनेपर उतारू हुई है । यह बड़ा सुन्दर वेष बनाकर चली आई है । आप स्वयं विचार करके देख लें कि जब यह आप-जैसे गुणीके पाले पड़ेगी तभी मेरे सब अंगोंकी पीडा दूर हो पावेगी । तुलसीदासकी बाहुकी पीडा पूतना पिशाचिनीके समान है और कपि हनुमान् ! आप (बाल-रूप) कृष्णके समान हैं । अतः महाबीर ! यह (पूतना-रूपिणी) बाहु-पीडा आपके ही मारे मर पावेगी[2] ॥ २५ ॥ यह (बाहुका) भयंकर कष्ट मेरे भाग्यमें लिखे हुए दुर्भाग्यसे हो रहा है या यह कालका, या किसीके कोपका, या त्रिदोष (सन्निपात)-का कोप है, अथवा मेरे पापके फलके रूपमें ही यह दैहिक ताप हो रहा है, या यह किसी भूत आदिकी छायाके कारण हो गया है, या किसीने गुप्त जादू चला दिया है, या किसी यंत्र-मंत्र अथवा जड़ी-बूटीके कारण यह बाधा आ खड़ी हुई है ? अरी ! बैरिन पापिनी (बाहु-पीडा) ! अब तो तू भाग खड़ी हो । नहीं तो मैं ललकारकर कहे देता हूँ कि तू बिना दंड पाए न रहेगी । कपीश्वर हनुमान्‌का स्वभाव जानकर भी तू पगली न बन । अरी बाहु-पीडा ! यदि तू रहे तो तुझे हनुमान्‌की ही आन, उन्हीं बलवान्‌की दोहाई और महावीरकी ही शपथ है ॥ २६ ॥ बलिहारी है हनुमान् ! आपने सिंहिका राक्षसीका संहार किया, सुरसाका छल दूर किया, फिर लंकिनीको पटककर आकाश ले जा पहुँचाया, अशोकवाटिका उजाड़ डाली, लंकापुरीको भली भाँति जलाकर, मकरीको मारकर राक्षसोंकी सेना पछाड़कर धूलकी धानी (ढेर) लगा दी है । आप यमराजकी तलवारके समान शस्त्रास्त्रधारी विकट सेनाका घेरा तोड़कर रावणके घरसे रावणकी पटरानी और मेघनादकी माता मंदोदरीको घसीट लाए । पर महावीर ! तुलसीके हृदयमें इसी बातकी बड़ी चिन्ता है कि आप न जाने किस संकोचमें पड़कर मेरी बाहु-पीडासे इतना मुँह मोड़े बैठे हैं ॥ २७ ॥ वीर (हनुमान्) ! आपकी बाल-लीला सुनकर बड़े-बड़े धीर भी थर्रा उठते हैं, इन्द्र, सूर्य और राहु भी अपने-अपने शरीरोंकी सुधि भूल जाते हैं । आपके बाहुबलके भरोसे ही इन्द्र आदि सब लोकपाल निर्भय होकर निवास कर रहे हैं । आपके नामका

---

१. करमन कूटः (सं० कार्मण) जादूकी माया । २. पूतना : यह कंसकी सेविका थी जो बन-ठनकर अपने स्तनोंमें विष लगाकर कृष्णको मारने आई थी किन्तु बाल कृष्णने इसके ही प्राण पी डालेथे ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साम-दाम-भेद बिधि, वेदहु लबेद-सिद्धि, हाथ कपिनाथ-ही-के चोटी चोर साहु-की।
टूकनि-को घर-घर डोलत कँगाल बलि, बाल-ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है॥२८॥
कीन्हीं है सँभार सार अंजनीकुमार बीर, आपनो बिसारि हैं न मेरे-हू भरोसो है।
इतनो परेखो सब भाँति समरथ आज, कपिनाथ! साँची कहौं को त्रिलोक तोसो है?
साँसति सहत दास, कीजै पेखि परिहास, चीरी-को मरन, खेल बालकनि-को-सो है॥२९॥
आपने ही पाप-तैं, त्रिताप-तैं, कि साप-तैं, बढ़ी है बाहु-बेदन, कही न सहि जाति है।
औषध, अनेक जंत्र - मंत्र - टोटकादि किए, बादि भये देवता, मनाए अधिकाति है।
करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल, को है जग-जाल जो न मानत इताति[1] है।
चेरो तेरो तुलसी, 'तू मेरो' कह्यो राम-दूत, ढील तेरी, बीर! मोहिं पीर-तैं पिराति है॥३०॥
दूत रामराय-को, सपूत पूत बाय-को, समत्थ हाथ-पाँय को, सहाय असहाय-को।
बाँकी बिरुदावली बिदित बेद गाइयत, रावन-सो भट भयो मूठिका-के घाय - को।

स्मरण करने भरसे कोई विपत्ति नहीं रह जाती। कपिराज! साम, दाम और भेद—इन तीनों नीतियोंकी विधियाँ आपके ही हाथमें हैं। वह वेदोंसे तो सिद्ध है ही, लवेद (लोक-नीति)-में भी ऐसी कहावत है कि—'चोरकी चोटी साहुके हाथमें।' तुलसीदासकी बाहु-पीडा जो इतने दिनोंसे होती चली आई है वह आपके आलस्यके कारण है या क्रोधके कारण, या आपका परिहास है या मेरे लिये शिक्षा है॥ २८॥ शरणागतोंका पालन करनेवाले कृपालु (हनुमान्)! मैं दरिद्र घर-घर टुकड़े माँगता फिरा करता था। आपने बुलाकर बालकके समान पालकर मेरा पोषण किया। वीर अंजनी-कुमार! आपने ही सदा मेरी देख-भाल की है। इसलिये इस प्रकार जब आप मुझे अपना चुके तब अब भूलिएगा नहीं (मेरी सार-सँभार करते ही रहिएगा), यही मुझे भरोसा है। कपिराज! आज आप सब प्रकारसे समर्थ हैं। आपके समान इस समय तीनों लोकोंमें है कौन? यह मैं सत्य ही कह रहा हूँ। आपका दास (तुलसीदास) इतनी सब दुर्दशा पड़ा सहे जा रहा है और इसे देखकर भी आप हँसी किए जा रहे हैं। यह तो वैसा ही है कि 'चिड़ियोंकी मौत हो और लड़कोंका खेल'॥ २९॥ मेरे अपने ही पापोंसे या दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीनों तापोंसे, या किसीके शापसे मेरी बाहु-पीडा बढ़ती चली जा रही है। इसका न तो वर्णन ही किया जा सकता है न यह पीडा सही ही जा रही है। यह पीडा दूर करनेके लिये मैंने न जाने कितनी औषधियाँ कीं, कितने यंत्र-मंत्र-टोटके आदि किए, परन्तु कोई उपाय लगकर न दिया। देवताओंको मनानेसे तो यह बाहु-पीडा और भी अधिक बढ़ जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कर्म, काल तथा संसार-चक्रमें ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा टाल सके। राम-दूत! यह तुलसीदास आपका ही सेवक तो है, और आप भी कह चुके हैं कि 'तू मेरा है,' परन्तु वीर! आपकी यह ढिलाई तो मुझे इस बाहु-पीडासे भी अधिक दुःख दे रही है॥३०॥ हनुमान्! आप महाराज रामके दूत और पवनके सुपुत्र हैं। आपके हाथ-पाँव बड़े समर्थ हैं। आप सदा असहायोंकी सहायता करते आए हैं। आपका सुन्दर यश लोकमें भी प्रसिद्ध है और वेद भी उसका वर्णन करते आए हैं। रावणके समान योद्धा भी आपके एक ही घूँसेमें भरभराकर गिर पड़ा। (कितने आश्चर्यकी बात है कि) इतने महान् और शक्तिशाली स्वामीका कृपा-पात्र तथा

---

१. इताति=(अरबी शब्द इताअत) आज्ञा-पालन।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एते बड़े साहेब समर्थ-को निवाजो आज, सीदत सुसेवक बचन - मन - काय - को।
थोरी बाहु-पीर-की, बड़ी गलानि तुलसी-को, कौन पाप-कोप, लोप प्रगट प्रभाय-को॥३१॥
देवी, देव, दनुज, मनुज, मुनि, सिद्ध, नाग, छोटे-बड़े जीव जेते चेतन - अचेत हैं।
पूतना, पिसाची, जातुधानी, जातुधान बाम, रामदूत-को रजाइ माथे मानि लेत हैं।
घोर जंत्र, मंत्र, कूट, कपट, कुजोग, रोग, हनूमान-आन सुनि छाँड़त निकेत हैं।
क्रोध कीजै कर्म-को, प्रबोध कीजै तुलसी-को, सोझ कीजै तिनको जो दोष-दुख देत हैं॥३२॥
तेरे बल बानर जिताए रन रावन-सों, तेरे घाले जातुधान भए घर घर - के।
तेरे बल राम - राज किए सब सुर-काज, सकल समाज साज साजे रघुबर - के।
तेरे गुन-गान सुनि, गीरवान[1] पुलकित, सजल बिलोचन बिरंचि - हरि - हर - के।
तुलसी-के माथेपर हाथ फेरौ कीस-नाथ, देखिए न दास दुखी तो-से कनिगर[2] के॥३३॥
पालो तेरे टूक-को, परे-हू चूक मूकिए न, कूर कौड़ी दू-को हौं, आपनी ओर हेरिए।
भोरानाथ भोरे हौ, सरोष होत थोरे दोष, पोषि, तोषि, थापि आपनो, न अवडेरिए[3]।

मन, वचन और कर्मसे अनन्य सेवक होकर भी यह तुलसीदास (बाहु-पीडाका) कष्ट पाए चला जा रहा है। मुझे अपनी बाहु-पीडाका उतना कष्ट नहीं है, जितनी इस बातकी ग्लानि है कि मेरे किसी पापके कोपसे आपका प्रत्यक्ष प्रभाव भी लुप्त होता-सा दिखाई पड़ रहा है ? (आपका प्रभाव तो बहुत ही प्रत्यक्ष है, परन्तु मेरा ही कोई ऐसा प्रबल पाप है कि मेरी बाहु-पीडाके समय आपका कुछ भी प्रभाव उसके आगे काम नहीं कर रहा है) ॥ ३१ ॥ ये देवी, देवता, दैत्य, मनुष्य, मुनि, सिद्ध, नाग और जितने भी छोटे-बड़े जड या चेतन जीव हैं तथा पूतना पिशाची, राक्षसी, राक्षस तथा और भी जो-जो विरोधी हैं, वे सब भी रामके दूत हनुमानकी आज्ञा सिरमाथे चढ़ा लेते (नहीं टालते) हैं। बड़े-बड़े भयंकर यन्त्र-मंत्र, जादू-टोने, कपटकी चालें तथा कुयोग (दुर्भाग्य) और रोग— ये सब हनुमानकी दुहाई सुनते ही स्थान छोड़कर भाग खड़े होते हैं। हनुमान् ! कृपा करके मेरे कुकर्मोंपर क्रोध करके उन्हें नष्ट कर डालिए। उन सबको आप ठीक कर डालिए जो मुझे दुःख दिए जा रहे हैं और ऐसा करके तुलसीदासको ढाढ़स बँधा दीजिए ॥ ३२ ॥ आपके बलके सहारे ही युद्धमें वानरोंने रावणको जीता। आपकी मारसे घबराए हुए राक्षस इधर-उधर मारे-मारे फिरते रहे। आपके ही बलसे महाराज रामने देवताओंके सब कार्य कर डाले। आपने ही रामके सभी काम सदा ठीक करके पूरे किए। आपके गुणोंका वर्णन सुनकर देवता भी प्रसन्न हो उठते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नेत्र भी प्रेमाश्रुसे भर जाते हैं। कपीश्वर ! अब इस तुलसीदासके सिरपर भी हाथ आ फेरिए क्योंकि आपके समान अपनी प्रतिष्ठाकी लाज रखनेवालेके सेवक (तुलसी)-को दुःख-संकट नहीं झेलना चाहिए ॥ ३३ ॥ हनुमान् ! मैं तो आपके टुकड़ोंपर पला हूँ। अतः, मुझसे यदि कुछ भूल-चूक हो भी गई हो तो भी आप मुझे न छोड़िए। मैं तो बड़ा निकम्मा दो कौड़ीका आदमी हूँ फिर भी आप अपनी ओर तो ध्यान कीजिए (कि आप कितने महान् और यशस्वी हैं)। आप तो बड़े भोले स्वभाववाले भोलानाथ ही हैं इसीसे थोड़ा-सा दोष देखते ही रुष्ट हो बैठते हैं। आपने ही

---

१. गीरवान=गीर्वाण, देवता। २. कनिगर = कनिष्ठा, जिसे अपनी मर्यादाकी लज्जा हो।
३. अवडेरिए=उद्वास करना, बसने न देना या रहने न देना; भगाइए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अंबु तू, हौं अंबुचर, अंब तू, हौं डिंभ - सो, न बूझिए बिलंब, अवलंब मेरे तेरिए।
बालक बिकल जानि, पाहि, प्रेम पहिचानि, तुलसी-की बाँह-पर सु लामी लूम फेरिए ॥३४॥
घेरि लियो रोगनि, कुलोगनि, कुजोगनि-ज्यौं, बासर सजल घनघटा धुकि धाई है।
बरषत बारि पीर, जारिए जवासे - जैसे, रोष बिनु - दोष, धूम-मूल मलिनाई है।
करुना-निधान हनुमान महा बलवान! हेरि, हँसि, हाँकि, फूँकि, फौजैं तैं उड़ाई है।
खायो हुतो 'तुलसी' कुरोग राढ़ राकसनि, केसरी-किसोर राखे बीर बरियाई है ॥ ३५ ॥

मत्तगयंद सवैया

राम-गुलाम तुही हनुमान! गुसाइँ, सुसाइँ सदा अनुकूलो।
पाल्यौ हौं बाल-ज्यों आखर दू, पितु-मातु-ज्यों मंगल-मोद समूलो।
बाँह-की बेदन, बाँह-पगार[1]! पुकारत आरत आनँद भूलो।
श्रीरघुबीर! निवारिए पीर, रहौं दरबार परो लटि लूलो? ॥ ३६ ॥

मुझे पाला-पोसा और सब प्रकारसे सन्तुष्ट करके स्थिर किया है। इस प्रकार मुझे अपनाकर अब न भगाइए। आप जल हैं तो मैं जलचर हूँ, आप माँ हैं तो मैं आपके बच्चेके समान हूँ। (आपके भरोसे पड़े रहनेवाले) मेरे जैसे आश्रितपर (कृपा करनेमें) आपको विलम्ब नहीं करना चाहिए क्योंकि मुझे तो ले-देकर केवल एक आपका ही सहारा है। इस बालक (तुलसी)-को व्याकुल जानकर और इसका प्रेम पहचानकर तुलसीदासकी बाँहपर अपनी लम्बी पूँछ फेर (कर इसे नीरोग कर) दीजिए ॥ ३४ ॥ मुझे रोगोंने, दुर्जनोंने और बुरी ग्रह दशाओंने ऐसा आ घेरा है जैसे दिनमें जलसे भरे बादलकी घटाएँ बड़े वेगसे आकर घिर जाती हैं। पोडाके जलकी ऐसी घनघोर वर्षा हुई चली जा रही है कि मैं जवासेके[2] समान जलता चला जा रहा हूँ। ये सब (रोग, दुर्जन, ग्रह) बिना अपराधके ही मुझपर बिगड़ बैठे हैं। जैसे धुएँसे ही घटावाले मेघ बनते हैं वैसे ही मेरे पापसे मेरे रोग आदि हुए हैं। करुणासागर महाबलवान् हनुमान्! आपकी ऐसी कृपा हो गई कि आपने हँसकर मेरी ओर देखा और ललकारकर फूँकसे रोगकी घटाकी सेनाको उड़ा भगाया। मुझ तुलसीदासको तो ये सब कुरोग-रूपी नीच राक्षस अबतक कबके खा गए होते परन्तु केसरी-किशोर! वीर! आपने ही अपनी शक्तिसे मुझे बचा लिया ॥ ३५ ॥ हनुमान्! आप ही रामके सच्चे सेवक हैं। आप सदा मुझपर कृपा किए रहनेवाले गोस्वामी हैं। आनन्द-मंगल करनेवाले 'राम' शब्दके दो अक्षरोंने माता-पिताके समान सदा मेरा पालन-पोषण किया है। अपनी भुजाओंके बलके सहारे आश्रितोंकी रक्षा करनेवाले हनुमान्! अपनी बाहु-पीडाके कारण मैं अपना सारा आनन्द भूल बैठा हूँ और अत्यन्त आर्त्त (संकटग्रस्त) होकर आपको पुकार रहा हूँ। राम! आप आकर मेरी पीडा दूर कर डालिए। क्या आपके दरबारमें आकर भी मैं दुर्बल और लूला हुआ पड़ा रहूँ ॥३६॥ न जाने

१. बाँह-पगार=दृढ दुर्गके समान बाहुवाले। २. जवासा : एक प्रकारकी कँटीली छोटी झाड़ी जो वर्षामें जल जाती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घनाक्षरी

काल-की करालता-करम-कठिनाई कीधौं, पाप-के प्रभाव, की सुभाव बाव बावरे।
वेदन कुभाँति सो सही न जाति राति-दिन, सोई बाँह गही जो गही समीर-डावरे[1]।
लायो तरु 'तुलसी' तिहारो, सो निहारि बारि सींचिए, मलीन भो, तयो है तिहुँ ताव रे!
भूतनि-की, आपनी, पराई, हे कृपानिधान! जानियत सबही-की रीति राम रावरे॥ ३७॥
पाँय-पीर, पेट-पीर, बाहु-पीर, मुँह-पीर, जरजर सकल सरीर पीर-मई है।
देव, भूत, पितर, करम, खल, काल, ग्रह, मोहिं - पर दवरि दमानक[2] - सी दई है।
हौं तो बिन मोल ही बिकानो, बलि, बारे ही-तें, ओट रामनाम-की ललाट लिखि लई है।
कुंभज-के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि, हाय रामराय! ऐसी हाल कहूँ भई है॥ ३८॥
बाहुक सुबाहु नीच, लीचर मरीच मिलि, मुँह-पीर केतुजा, कुरोग-जातुधान हैं।
राम-नाम जप-जोग कियो चाहौं सानुराग, काल-कैसे दूत-भूत कहा मेरे मान हैं।

यह (रोग) काल या कलिकालके भयानक होनेके कारण उपजा है, या बुरे कर्मोंका कोई बुरा फल है, या मेरे पापोंके प्रभावसे उपजा है, या वायुकी स्वाभाविक गति (वात-व्याधि)-के कारण हुआ है। रात-दिन ऐसी भयकंर पीडा हो रही है कि अब सही नहीं जाती। पवनपुत्र हनुमान्! यह (वात-ग्रस्त) बाँह वही है जिसे पकड़कर आपने मुझे अपनाया है। यह तुलसीके वृक्षके समान तुलसीदास आपका ही रोपा हुआ (लगाया हुआ) है, अब यह बिरवा (तुलसी) तीनों तापोंसे झुलसकर मुरझाया जा रहा है। अतः, इसकी ओर देखकर अपनी कृपाके जलसे इसे सींच दीजिए। कृपानिधान राम! अब आप ही जानें कि यह पीडा भूत-प्रेतोंने उत्पन्न की है या ये अपने कर्मोंके भोग हैं या किसी शत्रुने कोई प्रयोग (मारण, मोहन, उच्चाटन) आदि करके यह सब किया है, क्योंकि सबकी सभी रीतियाँ आप ही जानते हैं॥ ३७॥ पाँव, पेट, बाहु और मुँहकी पीडासे सारा शरीर पीडा ही पीडासे जर्जर हो चला है। देवता, भूत, पितर, कर्म, दुष्ट काल और दुष्ट ग्रह-इन सबने मुझपर धावा बोलकर तोपोंकी बाढ़-सी लगा दी है। आपकी बलिहारी है। मैं तो बचपनसे ही आपके हाथों बिना मोल बिका बैठा हूँ और मैंने अपने ललाटपर भी राम-नामकी ओट लिख ली है। (बताइए! कितने आश्चर्यकी बात है कि) समुद्रसोख डालनेवाले अगस्त्यके सेवक भी गौके खुर-भर जलमें व्याकुल होकर डूब मरें! हाय महाराज राम! भला कहीं ऐसी भी दशा कभी हुई है॥ ३८॥ यह बाहु-पीडा इस समय नीच सुबाहु और पतित मारीच बनी हुई है। ताड़का ही मुखकी पीडा है और अन्य अनेक बुरे-बुरे रोग इनकी सेनाके राक्षस हैं। मैं प्रेमपूर्वक रामनामके जपका यज्ञ करना चाहता हूँ, परन्तु कालदूतके समान ये भूत क्या मेरे मानके हैं? (क्या मेरे मिटाए मिटनेवाले हैं?) जिस रामनामकी कीर्ति सारे जगत्में विख्यात है, वे ही राम-नामके दोनों अक्षर राम और लक्ष्मणके समान मेरे सहायक हुए हैं। इन दोनों अक्षरोंने मुझ तुलसीदासको

---

१. डावरे=बच्चे, पुत्र। २. दमानक=तोपोंकी बाढ़।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुमिरे सहाइ राम-लखन आखर दोउ, जिनके समूह - साके जागत जहान हैं।
'तुलसी' सँभारि, ताड़ुका सँहारि, भारी भट, बेधे बरगद-से बनाइ बान-बान हैं॥ ३९॥
बालपने सूधे मन राम-सनमुख भयो, राम-नाम लेत, माँगि खात टूक-टाक हौं।
पच्यौ लोकरीति-में, पुनीत प्रीत राम-राय, मोह-बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।
खोटे-खोटे आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार ! सोध्यो राम-पानि पाक[2] हौं।
'तुलसी' गुसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो, ताको फल पावत निदान परिपाक हौं॥ ४०॥
असन-बसन हीन, बिषम-बिषाद लीन देखि दीन दूबरो करै न हाय-हाय-को ?
'तुलसी' अनाथ-सों सनाथ रघुनाथ कियो, दियो फल सीलसिंधु आपने सुभाय-को।
नीच यहि बीच पति[3] पाइ भरुआइ गो[4] बिहाइ प्रभु-भजन बचन-मन-काय-को।
तातें तनु पेखियत घोर बरतोर - मिस, फूटि-फूटि निकसत है लोन रामराय-को॥ ४१॥
जीवौं जग जानकी-जीवनको कहाय जन, मरिबे-को बारानसी, बारि सुरसरि-को।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ, जाके जिए-मुए सोच करिहैं न लरिको।

सँभाल लिया। पहले उन्होंने मुँहकी पीडा-रूपी ताड़काको पछाड़ मारा, फिर बाहुके कुरोग-रूपी बड़े-बड़े योद्धाओंको बाणोंसे ऐसा बेध डाला जैसे बरगदके पेड़ बरोहोंसे बेधे जान पड़ते हैं॥ ३९॥ मैं बचपनसे ही सरल स्वभावसे रामके सम्मुख जा पहुँचा और रामका नाम ले-लेकर, मधुकरी माँगकर खाता फिरता रहा। फिर सांसारिक रीति-व्यवहारमें ऐसा फँस पड़ा कि मोह-वश महाराज रामकी पवित्र प्रीति तड़फड़ (झटकेसे) तोड़ बैठा। उस समय खोटे आचरण करनेपर भी मुझे अंजनी-कुमार हनुमानने उठा अपनाया और फिर रामके कर-कमलोंमें लेजाकर मुझे ऐसा शुद्ध करवाया कि यह (मधुकरी माँगकर खानेवाला और संसारके खोटे आचरणोंमें पड़ा हुआ) तुलसी सीधा (गोस्वामी तुलसीदास) बन गया। तब उसे पिछले दिन (टुकड़े माँगकर खाने और गलीगली मारे-मारे फिरनेके दिन) भूल गए। अब यह तुलसीदास उसीका फल बाहु-पीडा और सारे शरीरकी पीडाके रूपमें भोग रहा है॥ ४०॥ जिस तुलसी-को रोटी-कपड़ेका ठिकाना नहीं था, जो सदा ऐसी भयंकर विपत्तिमें पड़ा दीन और दुर्बल हुआ रहता था कि उस समय ऐसा कौन था जो 'हाय, हाय बेचारा !' कहकर उससे अपनी सहानुभूति नहीं प्रकट करता था, उसी अनाथ तुलसीदासको रामने सहारा देकर सनाथ कर दिया और उन शीलके भांडार रामने अपने कोमल (कृपालु) स्वभावके अनुसार इतनी प्रतिष्ठाके रूपमें उत्तम फल दिया। परन्तु मैं ऐसा नीच हूँ कि इसी बीच इतनी प्रतिष्ठा पाकर मैं (अभिमानमें फूलकर) अपनेको बहुत बड़ा मान बैठा। इसी फेरमें पड़कर मैं मन, वचन और कर्मसे प्रभुका भजन छोड़ बैठा। इसीलिये भयंकर बलतोड़के रूपमें महाराज रामका नमक शरीरसे फूट-फूटकर निकला पड़ रहा है॥ ४१॥ मैं तो संसारमें जानकी-जीवन रामका भक्त कहला कर ही जी रहा हूँ (यहाँ सब मुझे रामका भक्त कहते हैं)। मरनेके लिये मैं वाराणसी (काशी)-में गंगाके तटपर आ बसा हूँ, जहाँ पीनेको सदा गंगाजल मिलता रहेगा। अतः, इस उत्तम स्थलमें आ रहनेसे तुलसीदासके दोनों हाथ लड्डू हैं क्योंकि यहाँ न तो जोनेपर ही कोई आँसू बहानेवाला लड़का है, न मरनेपर ही।

---

१. कहा मेरे मान हैं = क्या मेरे मानके हैं ? क्या मेरे वशके हैं ? मेरे सामर्थ्यके बाहर हैं।
२. पाक=[फ़ारसी] पवित्र। ३. पति=प्रतिष्ठा। ४. भरुआइ गो = फूल उठा, इतरा उठा, अपनेको बड़ा समझने लगा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मोको झूठो साँचो लोग राम-को कहत सब, मेरे मन मान है न हर-को, न हरि-को।
भारी पीर दुसह सरीर-तें बिहाल होत, सोऊ रघुबीर-बिनु सकै दूरि करि को॥ ४२॥
सीतापति साहेब, सहाय हनुमान नित, हित उपदेस-को महेस मानो गुरु कै।
मानस-बचन-काय सरन तिहारे पाँय, तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर-कै।
ब्याधि भूत-जनित, उपाधि काहू खल-की, समाधि कीजै[1] तुलसी-को, जानि जन फुर कै।
कपिनाथ! रघुनाथ! भोलानाथ भूतनाथ! रोग-सिंधु क्यों न डारियत गाय-खुर कै॥ ४३॥
कहौं हनुमान-सों, सुजान रामराय-सों, कृपानिधान संकर-सों, सावधान सुनिए।
हरष-विषाद-राग-रोष-गुन-दोष-मई, बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिए।
माया-जीव-कालके, करम-के, सुभाय-के करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए।
तुमतें कहा न होय, हाहा! सो बुझैये मोहि, हौंहूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिए॥ ४४॥

॥ इति श्री गोसाईं तुलसीदास बिरचित हनुमानबाहुक संपूर्णम् ॥

लोग तो मुझे रामका भक्त कहते ही हैं, चाहे मैं सच्चा भक्त होऊँ या झूठा होऊँ। मुझे भी इस बातका गर्व है कि मैं केवल रामका ही दास हूँ, न शिवका, न विष्णुका। तब मैं जो शरीरकी भारी पीडासे बेहाल हुआ जा रहा हूँ, वह पीडा भी रामको छोड़कर और कौन दूर कर सकता है॥४२॥ मेरे स्वामी हैं सीतापति राम, नित्य मेरी सहायता करते हैं हनुमान् और हितका उपदेश करनेवाले शिवको मैं मानता हूँ गुरु। मन, वचन और शरीरसे आप तीनों (राम, हनुमान्, शिव)-की शरण पाकर आपके ही भरोसे मैंने अन्य किसी देवताको देवता करके नहीं माना। यह जो मुझे पीडा हो रही है यह किसी दुष्टके उपद्रवसे मुझे दुःख दे रही है। इस तुलसीदासको अपना सच्चा सेवक जानकर, इसका कष्ट दूर कर डालिए! कपिनाथ हनुमान्! राम! और भूतनाथ शिव! इस रोगके समुद्रको गौके खुरके बराबर (अत्यन्त छोटा) क्यों नहीं कर डालते?॥४३॥ हनुमान्से, सुजान महाराज रामसे, और कृपानिधान शिवसे ही कह रहा हूँ। आप लोग सावधान होकर सुन लीजिए। ऐसा देखा जाता है कि विधाताने इस संसारको हर्ष और विषाद, राग और रोष (प्रेम और क्रोध) तथा गुण और दोषसे भरा बनाया है। वेद (वैदिक साहित्य)-में ऐसा कहा गया है कि माया, जीव, काल, कर्म और स्वभाव सबके कर्त्ता राम हैं। विचार करनेपर भी यही बात सत्य जान पड़ती है। हाय, हाय! मुझे समझाइए तो सही। आप सब कुछ कर सकते हैं क्योंकि आप लोगोंके किए क्या नहीं हो सकता? इसलिये मैं और कुछ न कहकर यही जानकर मौन हो रहता हूँ कि मैंने जो कुछ बोया है, (पाप किया है) वही काट रहा हूँ (उसीका फल भोग रहा हूँ॥ ४४॥

॥ गोसाईं तुलसीदास-द्वारा विरचित हनुमानबाहुक पूर्ण हुआ॥

---

१. समाधि कीजै=समाधान कीजिए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१०

गीतावली

राग आसावरी

आज सुदिन सुभ घरी सुहाई।
रूप-सील-गुन-धाम राम, नृप-भवन प्रगट भे आई॥ १॥
अति पुनीत मधु मास, लगन-ग्रह-बार-जोग-समुदाई।
हरषवंत चर-अचर-भूमिसुर तनुरुह-पुलक जनाई॥ २॥
बरषहिं बिबुध-निकर कुसुमावलि, नभ दुंदुभी बजाई।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई॥ ३॥
सुनि दसरथ, सुत जनम लिए, सब गुरु-जन-बिप्र बुलाई।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई॥ ४॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई।
पुरबासी प्रिय नाथ-हेतु, निज-निज संपदा लुटाई॥ ५॥
मनि-तोरन, बहु केतु-पताकनि, पुरी रुचिर करि छाई।
मागध-सूत द्वार, बंदीजन, जहँ-तहँ करत बड़ाई॥ ६॥

आज बहुत ही शुभ घड़ी और शुभ दिन है कि राजा दशरथके घर रूप, शील और गुणोंके धाम राम आ प्रकट हुए॥ १॥ इस समय चैत्र मासमें लग्न, ग्रह, वार, योग आदि सभी अत्यन्त पवित्र हैं। चर और अचर सभी हर्षित हो रहे हैं और ब्राह्मण भी पुलकित हो-होकर मगन हुए जा रहे हैं॥ २॥ देवता फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं, आकाशमें नगाड़े बजने लगे हैं। कौशल्या आदि सभी माताओंके मन इतने हर्षित हो उठे हैं कि उस सुखका वर्णन नहीं किया जा सकता॥३॥ पुत्र-जन्मका समाचार सुनते ही राजा दशरथने सभी गुरुजनों और ब्राह्मणोंको बुलवा भेजा। वेदके अनुसार (नान्दीमुख श्राद्ध आदि) सब क्रिया करके वे परम पवित्र हो गए। उनके हृदयमें इतना आनन्द उमड़ा पड़ रहा है कि हृदयमें समा नहीं पा रहा है॥ ४॥ सब मुनि (ब्राह्मण) अपने घरमें मधुर स्वरसे वेदध्वनि कर रहे हैं। अनेक प्रकारसे बधाइयाँ बज रही हैं। पुरवासियोंने अपने स्वामीके कल्याणके लिये अपनी-अपनी सारी सम्पदा लुटा डाली॥ ५॥ रत्नोंके तोरण, बहुत-सी झंडियाँ और पताकाएँ बड़ी सुन्दरताके साथ अयोध्या भरमें टाँग दी गई हैं। मागध, सूत और बन्दीजन द्वारपर और इधर-उधर उनकी बड़ाई बखानते फिर रहे हैं॥ ६॥ बहुत-सी मंगल सामग्री सजाकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सहज सिँगार किए बनिता चलिँ मंगल बिपुल बनाई।
गावहिँ, देहिं असीस मुदित, चिर जिवइँ तनय सुखदाई ॥ ७ ॥
बीथिन्ह कुंकुम-कीच, अरगजा, अगर, अबीर उड़ाई।
नाचहिँ पुर-नर नारि प्रेम - भरि, देह-दसा बिसराई ॥ ८ ॥
अमित धेनु, गज, तुरग, बसन, मनि, जात - रूप अधिकाई।
देत भूप, अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥ ९ ॥
सुखी भए सुर, संत, भूमि - सुर, खल-गन-मन मलिनाई।
सबइ सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥१०॥
जो सुख - सिंधु-सुकृत - सीकर-तें सिव - बिरंचि - प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि, कौन जतन करौं गाई ॥११॥
जे रघुबीर - चरन - चिंतक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई।
अविरल, अमल, अनूप भगति दृढ़ 'तुलसिदास' तब पाई ॥१२॥ (१)

राग जैतश्री

सहेली ! सुनु सोहिलो रे !
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज।
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुल - राज ॥ १ ॥
चैत, चारु नौमी तिथि, सित पख, मध्य - गगन - गत भानु।
नखत, जोग, ग्रह, लगन, भले दिन, मंगल-मोद-निधानु ॥ २ ॥

स्वाभाविक शृंगार करके स्त्रियाँ गाती हुई चल दीं और प्रसन्न होकर असीसें देती हैं कि सबको सुख देनेवाले ये बालक चिरंजीवी हों ॥ ७ ॥ गलियोंमें इतना कुंकुम बरसा कि कीच हो चली। सब लोग अबीर उड़ाए जा रहे हैं और अगर-अरगजकी सुगंध चारों ओर गमक रही है। नगरके स्त्री-पुरुष अपनी देहकी सारी सुधबुध खोकर प्रेममें भरे नाचे जा रहे हैं ॥८॥ बहुत सी गायें, हाथी घोड़े, वस्त्र, रत्न, सुवर्ण आदि अपनी योग्यताके अनुसार राजाको ला-लाकर दे रहे हैं। मानो सारी सिद्धियाँ उनके घरमें आई हुई हों ॥ ९ ॥ देवता, संत और ब्राह्मण प्रसन्न हो गए और दुष्टोंके मन वैसे ही बहुत चिन्तित हो उठे जैसे सूर्योदय होनेपर सभी फूल तो खिल जाते हैं, किन्तु कुमुद जंगलोंमें पड़े बिलखा करते हैं ॥१०॥ जिस सुखके समुद्रके एक पुण्यमय छींटेसे शिव और ब्रह्माको प्रभुता मिल जाती है, वही सुख अयोध्यामें दसों दिशाओंमें उमड़ा पड़ रहा है। उसका वर्णन मैं किस प्रकार करूँ ॥११॥ जो लोग रामके चरणोंका चिन्तन करते रहते हैं, उनकी गति (मुक्ति, शान्ति) तो प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ती है। तभी तो तुलसीदासने रामकी ठोस, निर्मल, और अनुपम दृढ भक्ति पाई है ॥ १२ ॥

अरी सहेली ! सुन, आज बड़े उत्सवका दिन है। आज सारे जगतमें उत्सव ही उत्सव हो रहे हैं। कौशल्याके सुपुत्र पैदा हुआ है, जिससे रघुकुलका राज्य अब अचल हो गया ॥१॥ चैतके शुक्ल पक्षकी नवमीको जब सूर्य भगवान् आकाशके मध्यमें विराजमान थे और नक्षत्र, योग, ग्रह, लग्न आदि भी अच्छे थे, तभी मंगल और आनन्दके भांडार भगवान् राम आ प्रकट हुए ॥ २ ॥ दसों दिशाओंमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्योम-पवन-पावक-जल-थल, दिसि दसहु सुमंगल-मूल।
सुर दुंदुभी बजावहिं, गावहिं, हरषहिं, बरषहिं फूल ॥ ३ ॥
भूपति-सदन सोहिलो सुनि, बाजैं गहगहे निसान।
जहँ-तहँ सजहि कलस-धुज-चामर-तोरन-केतु-बितान ॥ ४ ॥
सींचि सुगंध रचैं चौके गृह-आँगन-गली-बजार।
दल-फल-फूल-दूब-दधि-रोचन घर-घर मंगलचार ॥ ५ ॥
सुनि सानंद उठे दस-स्यंदन सकल समाज-समेत।
लिए बोलि गुरु-सचिव-भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत ॥ ६ ॥
जात-कर्म करि, पूजि पितर-सुर, दिऐ महिदेवन दान।
तेहि औसर सुत तीनि प्रगट भे, मंगल, मुद, कल्यान ॥ ७ ॥
आनँद-महँ आनंद अवध, आनंद बधावन होइ।
उपमा कहौं चारि फल-की, मोहिं भल न कहै कवि कोइ ॥ ८ ॥
सजि आरती बिचित्र, थार कर, जूथ-जूथ बर नारि।
गावत चलीं बधावन लै लै, निज - निज कुल-अनुहारि ॥ ९ ॥

आकाश, पवन (वायु), पावक (आग), जल और स्थलमें तथा सर्वत्र मंगल ही मंगल छा गया है (आनन्द-छाया हुआ है)। देवता भी दुन्दुभी बजाकर, गाकर और हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ ३ ॥ राजा दशरथके घरमें उत्सव सुनकर ढमाढम निशान बजने लग रहे हैं। लोग जहाँ-तहाँ कलश, ध्वजा, चँवर, तोरण और झंडियाँ और वितान सजा रहे हैं ॥ ४ ॥ चौक, घर, आँगन, गली और हाट सब सुगंधसे सींच दिए गए। पत्ते, फल, फूल, दूब, दही और रोचनासे घर-घर मंगलाचार मनाया जा रहा है ॥ ५ ॥ सुनते ही आनंदमें भरे राजा दशरथ अपने पूरे समाज-सहित उठ खड़े हुए। उन्होंने गुरु, मंत्री और ब्राह्मणोंको बुलवा लिया और आनन्द-पूर्वक भवनको चल दिए ॥ ६ ॥ जात-कर्म[1] करके, देवता और पितरोंको पूजकर उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत दान दिया। उस समय मंगल, आनन्द और कल्याणकारी तीन और पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ अयोध्यामें आनन्दमें आनन्द बढ़ता चला जा रहा है और आनन्दकी बधाइयाँ बजती जा रही हैं। यदि मैं इन चारों पुत्रोंकी उपमा केवल चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-से ही दे देता हूँ तो मुझे कोई भी कवि भला नहीं कहेगा ॥ ८ ॥ झुंडकी-झुंड बड़े घरोंकी स्त्रियाँ थालोंमें विचित्र आरती सजाकर अपने-अपने कुलकी

१. जातकर्म : पुत्रके जन्मपर पिता सौरीगृहके द्वारपर जाकर कहता है कि अभी नाल न काटना, स्तन न पिलाना। तब वह वस्त्रों-सहित स्नान करके नया वस्त्र पहनकर षष्ठी देवी, मार्कण्डेय और षोडश मातृकाका पूजन करके, वसुधारा और नान्दीमुख श्राद्ध करके किसी ब्रह्मचारी, गर्भवती, कुमारी या वेदाध्यायी ब्राह्मणसे एक शिला धुलवाकर और उसपर धान और जौ पिसवाकर अनामिका और अँगूठेसे लेकर यह मन्त्र पढ़कर बालककी जीभपर छुआता है—'कुमारस्य जिह्वां निर्मार्ष्टि।' (बालककी जीभ स्वच्छ कर दो)। तब स्वर्ण-पत्रपर घी लेकर बालककी जीभसे छुआया जाता और तब आज्ञा दी जाती है कि अब नाल काटो और स्तनका दूध पिलाओ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

असही - दुसही मरहु मनहिँ मन, बैरिन बढ़हु बिषाद।
नृप-सुत चारि चारु, चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद ॥१०॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले, भाँति - भाँति भरि भार।
करहिं गान, करि आन राय - की, नाचहिं राज - दुवार ॥११॥
गज, रथ, बाजि, बाहिनी, बाहन, सबनि सँवारे साज।
जनु रतिपति, रितुपति, कोसलपुर बिहरत सहित-समाज ॥१२॥
घंटा - घंटि - पखाउज - आउज - झाँझ - बेनु - डफ - तार।
नूपुर-धुनि, मंजीर मनोहर, कर - कंकन - झनकार ॥१३॥
नृत्य करहिँ नट-नटी, नारि - नर अपने - अपने रंग।
मनहुँ मदन-रति बिबिध बेष धरि, नटत सुदेस सुढंग ॥१४॥
उघटहिं छंद - प्रबंध - गीत - पद राग - तान - बंधान।
सुनि किन्नर - गंधर्ब सराहत, बिथके बिबुध - बिमान ॥१५॥
कुंकुम - अगर - अरगजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल - अबीर।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मन-भावति भीर ॥१६॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो, सुर-गुरु-आसिरबाद।
दसरथ सुकृत-सुधा-सागर सब, उमगे तजि मरजाद ॥१७॥

रीतिके अनुसार गाती हुई बधावे लेकर (राजाके भवनको) चल दीं ॥ ९ ॥ (राजाके पुत्रोंका जन्म सुनकर) असही-दुसही (न सहन कर सकनेवाली) स्त्रियाँ भले ही मन ही मन कुढ़नके मारे मरी जा रही हों और बैरिनियोंके मनमें भले ही बड़ा विषाद हो रहा हो (परन्तु मैं तो हृदयसे मनाता हूँ कि) शंकर और पार्वतीकी कृपासे राजाके चारों बेटे चिरंजीवी हों ॥ १० ॥ बहँगियोंमें अनेक प्रकारके पदार्थ भर-भरकर प्रजा प्रसन्नतासे ढोए लिए चली जा रही है। राजाकी मर्यादाका ध्यान रखकर सब राजद्वारपर गा और नाच रहे हैं ॥ ११ ॥ सबने अपने-अपने हाथी, घोड़े, रथ और सवारियाँ साजोंसे सजा खड़ी की हैं मानो कामदेव अपने पूरे साज-समाज और ऋतु वसंतके साथ कोशलपुरीमें विहार करने आ पहुँचा हो।१२। घंटे, घंटियाँ, पखावज, तास, झाँझ, वंशी, डफ और तन्त्रीके साथ-साथ पायलों और मधुर मंजीरोंकी ध्वनि तथा हाथके कंगनोंकी भी रुनझुन होती चली जा रही है ॥१३॥ नट और नटी और स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी मौजमें भरे नाचे जा रहे हैं मानो कामदेव और रति ही अनेक वेष धारण करके आकर सुन्दर नृत्य किए जा रहे हों ॥ १४ ॥ वे ऐसे-ऐसे नये-नये गीत, राग और तान अलापे जा रहे हैं कि उन्हें सुनसुनकर किन्नर और गन्धर्व भी उनकी सराहना कर रहे हैं और उन्हें सुननेके लिये आकाशमें देवताओंके विमान भी रुके खड़े हैं ॥१५॥ लोग कुंकुम, अगर, अरगजा, चन्दन, केशर और कपूरके घोल छिड़क रहे हैं, अबीर और गुलाल उड़ा रहे हैं, आकाशसे फूल झड़ रहे हैं, नगर भरमें धूम मची हुई है। अँधाधुन्ध भीड़ होती चली जा रही है ॥१६॥ देवता और गुरुके आशीर्वादसे बुढ़ापेमें विधाताने कृपा की है (बुढ़ापेमें पुत्र दिए हैं)। ऐसा लगता है जैसे राजा दशरथके पुण्य-रूपी अमृतका समुद्र मर्यादा छोड़कर उमड़ पड़ा हो ॥ १७ ॥ ब्राह्मण वेदपाठ कर रहे हैं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्राह्मण बेद, बंदि बिरदावलि, जय धुनि, मंगल गान।
निकसत-पैठत लोग, परसपर बोलत लगि - लगि कान ॥१८॥
वारहिं मुकुता रतन राज-महिषी, पुर-सुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनि-गन, जनु जवारि, जव, धान ॥१९॥
कीन्हि बेद - बिधि, लोक - रीति नृप, मंदिर परम हुलास।
कौसल्या, कैकयी, सुमित्रा, रहस-बिबस रनिवास ॥२०॥
रानिन दिए बसन, मनि, भूषन, राजा सहन भँडार।
मागध, सूत, भाट, नट, जाचक, जहँ - तहँ करहिं कबार ॥२१॥
बिप्र - बधू सनमानि सुआसिन, जन पुरजन पहिराइ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस - रमेस मनाइ ॥ २२ ॥
अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, भूति सब भूपति - भवन कमाहिं।
समउ - समाज राज दसरथ - को, लोकप सकल सिहाहिं ॥२३॥
को कहि सकै अवध - बासिन - को प्रेम - प्रमोद - उछाह।
सारद, सेस, गनेस, गिरीसहिं, अगम, निगम - अवगाह ॥२४॥
सिव - बिरंचि - मुनि - सिद्ध प्रसंसत, बड़े भूपके भाग।
'तुलसिदास' प्रभु सोहिलो गावत, उमगि उमगि अनुराग ॥२५॥ (२)

बंदीजन विरुदावली (प्रशंसाकी कथाएँ) कह रहे हैं और जय-जयकारके साथ मंगल गान कर रहे हैं। आते-जाते लोग आपसमें बतकही कर रहे हैं ॥ १८ ॥ रानियोंके समान ही नगरकी स्त्रियाँ भी मुक्ता और रत्न आदि न्योछावर किए डाल रही हैं। नगर भरमें न्योछावरके रत्न आदि ऐसे फैके पड़े हैं, मानो जौके अंकुर, जौ और धानके ढेर बिखरे पड़े हों ॥१९॥ राजाने सब वैदिक और लौकिक रीतियाँ पूरी कर डालीं। राजभवनमें बड़ा आनन्द छाया हुआ है। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्राके साथ-साथ सारा रनिवास आनन्दमें मग्न हो रहा है ॥ २० ॥ रानियोंने वस्त्र, रत्न और आभूषण लुटा दिए और राजाने बाहरी भंडार ही खोल धरा (आओ और ले जाओ)। मागध, सूत, भाट, नट और मंगन जहाँ-तहाँ छीना-झपटी किए जा रहे हैं ॥ २१ ॥ ब्राह्मणियों और सुहागिनोंका बड़ा सम्मान किया गया। प्रजा और पुरवासियोंको पहनावे बाँट दिए गए। इस प्रकार राजाने वहाँ सबका भली भाँति सम्मान किया। वे सब शंकर और विष्णुको मनाते हुए आशीर्वाद दिए चले जा रहे हैं ॥ २२ ॥ अष्ट सिद्धि[1] और नवों निधियोंका[2] ऐश्वर्य भी राजाके घरमें समा नहीं रहा था। इस समय राजा दशरथका ऐश्वर्य देखकर देवता और लोकपाल सब तरसे पड़ रहे हैं ॥२३॥ अवधवासियोंमें इतना प्रेम आनन्द और उत्साह भरा हुआ था कि उसका वर्णन कौन कर सकता है! सरस्वती शेष, गणेश, महेश तथा वेद-शास्त्र भी थाह न पा सके (इनसे भी वर्णन करते नहीं बना) ॥ २४ ॥ शिव, ब्रह्मा, मुनि और सिद्धजन सभी प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं कि राजा दशरथ बहुत बड़े भाग्यशाली हैं। तुलसीदास भी प्रेमकी उमङ्गमें प्रभुके उत्सवका गान कर रहे हैं ॥२५॥ (२)

१. अष्टसिद्धि : अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, प्राप्ति। २. नव निधि : पद्म, महापद्म, शंख, मकर, मुकुन्द, कच्छप, कुंद, नील, खर्व।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग बिलावल

आज महामंगल कोसलपुर, सुनि नृप - के सुत चारि भए।
सदन - सदन सोहिलो सुहावन, नभ अरु नगर निसान हए॥ १॥
सजि-सजि जान अमर, किन्नर, मुनि, जानि समय सुभ गान ठए।
नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन, पुनि-पुनि बरषहिं सुमन-चए॥ २॥
अति सुख बोलि-बोलि गुरु, भूसुर, भूपति भीतर भवन गए।
जात-करम करि, कनक, बसन, मनि-भूषित सुरभि-समूह दए॥ ३॥
दल, फल, फूल, दूब, दधि, रोचन, जुवतिन्ह भरि-भरि थार लए।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बंदिन्ह बाँके बिरद बए॥ ४॥
कनक-कलस चामर पताक धुज, जहँ - तहँ बंदनवार नए।
भरहिं अबीर, अरगजा छिरकहिं, सकल लोक ऐक रंग रए॥ ५॥
उमँगि चल्यौ आनंद लोक तिहुँ, देत सबनि मंदिर रितए।
'तुलसिदास' पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए॥ ६॥ (३)

गावैं बिबुध बिमल बर बानी।
भुवन कोटि कल्यान-कंद जो, जायो पूत कौसिला रानी॥ १॥
मास, पाख, तिथि, बार, नखत, ग्रह, जोग, लगन सुभ ठानी।
जल-थल-गगन प्रसन्न साधु-मन, दस दिसि हिय हुलसानी॥ २॥

आज राजा दशरथके चार पुत्रोंका जन्म सुनकर सारे कोशल-नगरमें आनन्द-मंगल छाया है। घर-घर सुहावने सोहर गाए जा रहे हैं। आकाश और नगरमें डंके और निशान बज रहे हैं॥१॥ समय जानकर देवता, किन्नर और मुनि अपने-अपने विमानोंपर चढ़े मंगल गान गाए चले जा रहे हैं। आकाशमें अप्सराएँ प्रसन्न हो-होकर नाचतीं और ढेरके ढेर फूल बरसाए चली जा रही हैं॥२॥ बड़े आनन्दमें भरे हुए राजा अपने गुरु और ब्राह्मणोंको बुलाकर घरके भीतर लिवा ले गए। जातकर्म करके उन्होंने सोना, वस्त्र और रत्न आदिसे सजी हुई गौएँ उन्हें लाकर दीं॥३॥ युवतियाँ थालोंमें तुलसीदल, फल, फूल, दूब, दही और रोचना आदि भर-भरकर लिए चली आईं। वे मार्गमें गाती हुई चली जा रही हैं। सड़कोंपर बड़ी भीड़ हो रही है। बाँके वन्दीजन विरुदावली कह रहे हैं॥ ४॥ जहाँ-तहाँ सोनेके कलस, चँवर, पताका, ध्वजा और नये नये बन्दनवार ला लगाए गए हैं। सभी लोग उत्सवके रंगमें ऐसे रँग गए हैं कि कोई अबीर उड़ाता तो कोई अरगजा आदि सुगन्ध ला-लाकर छिड़क रहा है॥ ५॥ तीनों लोकोंमें आनन्द ही आनन्द छा गया है। तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ सभी अपने घर (लुटाकर) रीते किए डाल रहे हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि रामने एक बार भी कृपा-दृष्टिसे देख लिया तो वे फिर भरे हुए दिखाई देने लगेंगे॥ ६॥ (३)

रानी कौशल्याने जो पुत्र जाया है वे सारे भुवनोंका कल्याण करनेवाले साक्षात् भगवान् ही हैं जिनका गुण-गान देवता लोग अपनी सुन्दर निर्मल वाणीसे सदा किया करते हैं॥१॥ महीना, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, ग्रह, योग, लग्न आदि सभी शुभ थे और जल, थल, आकाशके लोग तथा साधु प्रसन्न हो गए थे। दसों दिशाओंमें (चारों ओर) हर्ष ही हर्ष छा गया॥ २॥ पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बरषत सुमन, बधाव नगर नभ, हरष न जात बखानी।
ज्यों हुलास रनिवास - नरेसहिं, त्यौं जनपद-रजधानी ॥ ३ ॥
अमर, नाग, मुनि, मनुज, सपरिजन, बिगत बिषाद-गलानी।
मिलेहिं माँझ[1], रावन रजनीचर, लंक, संक अकुलानी ॥ ४ ॥
देव, पितर, गुरु, बिप्र पूजि, नृप दिए दान रुचि जानी।
मुनि-बनिता, पुर-नारि, सुआसिनि, सहस भाँति सनमानी ॥ ५ ॥
पाइ, अघाइ, असीसत निकसत, जाचक-जन भे दानी।
'यों प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होहु महेस भवानी' ॥ ६ ॥
दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ, भईं सुमंगल-खानी।
भयो सोहिलो सोहिलो मो जनु, सृष्टि सोहिलो-सानी ॥ ७ ॥
गावत, नाचत, मो मन भावत, सुख सो अवध अधिकानी।
देत, लेत, पहिरत, पहिरावत, प्रजा प्रमोद-अघानी ॥ ८ ॥
गान, निसान, कुलाहल, कौतुक, देखत दुनी सिहानी।
हरि-बिरंचि-हरपुर सोभा कुलि, कोसलपुरी लुभानी ॥ ९ ॥

नगर तथा आकाशमें बधावे बजने लगे। यह हर्ष वर्णनके बाहर है। जैसा आनन्द आज राजाके रनिवासमें छाया हुआ है, वैसा ही राजधानीके नगर-भरमें फैल गया है ॥ ३ ॥ देवता, नाग, मुनि, मनुष्योंके साथ उनके परिवारोंकी सब विपत्ति और ग्लानि भी दूर हो गई। इसीके साथ-साथ राक्षस-राज रावण और लंका सशंकित और व्याकुल हो उठी ॥ ४ ॥ राजा दशरथने देवता पितर, गुरु और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उनकी रुचिके अनुसार दान दिए। मुनि-पत्नियों, नगरकी स्त्रियों तथा सोहागिनियोंको राजाने बहुत प्रकारसे सम्मानित किया ॥ ५ ॥ दान पाकर तृप्त हो-होकर वे आशीर्वाद देते हुए चले जा रहे हैं। (राजाने इतना दान दिया कि) मंगन भी दानी हो गए (उन्होंने इतना अधिक दान पाया कि अपने काम-भरको लेकर बचा हुआ सब उन्होंने दान कर डाला)। वे यही मनाते जा रहे थे कि (जैसे कौशल्या रानीको रामकेजन्मसे परमानन्द मिल रहा है) वैसे ही शंकर-पार्वती प्रसन्न होकर कैकेयी और सुमित्राको भी पुत्र देकर आनन्दित करें ॥६॥ फिर तो दूसरे ही दिन दोनों रानियाँ पुत्रोंको जन्म देकर सभी मंगलोंकी खान (मंगल ही मंगल करनेवाली) बन गईं। फिर तो ऐसा सोहिला (आनन्दोत्सव) हुआ कि सारी सृष्टि ही सोहिला-मयी (आनन्दमग्न) हो गई ॥ ७ ॥ उन (सब लोगों)-का गाना और नाचना मेरे मनको बहुत ही अच्छा लग रहा है। सारी अयोध्या आनन्दसे नाच उठी। सारी प्रजा देते-लेते, पहनते-पहनाते हुए आनन्दसे छकी पड़ रही है ॥ ८ ॥ यहाँका गाना-बजाना, धूमधड़ाका और खेल-कूद देखकर सारा संसार तरस उठा। विष्णुलोक, ब्रह्मलोक और विष्णुपुरीकी सारी शोभा कोशलपुरीकी शोभा देखकर ललचाई पड़ रही है ॥ ९ ॥ सभी राजरानियाँ आनन्दमें मग्न हुई जा रही हैं। वे सब पार्वती,

---

१. मिलेहि माँझ=साथ ही।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आनँद - अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी।
आसिष दै दै सराहहिं सादर, उमा, रमा, ब्रह्मानी ॥ १० ॥
बिभव-बिलास बाढ़ि दसरथ-की देखि न जिनहिं सोहानी।
कीरति, कुसल, भूति, जय, रिधि, सिधि, तिनपर सबै कोहानी ॥ ११ ॥
छठी-बारही लोक-बेद-बिधि करि सुबिधान-बिधानी।
राम-लखन-रिपुदवन-भरत धरे नाम, ललित गुरु ज्ञानी ॥ १२ ॥
सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि, बिधि जतन-तंत्र भरि घानी।
सुख-सनेह सब दियो दसरथहिं, खरि खलेल थिर थानी ॥ १३ ॥
अनुदिन उदय उछाह उमग जग, घर - घर अवध कहानी।
'तुलसी' राम-जनम-जस गावत, सो समाज उर आनी ॥ १४ ॥ (४)

राग केदारा

दोहा—घर घर अवध बधावने, मंगल साज समाज।
सगुन सोहावन मुदित मन, कर सब निज - निज काज।

हरिगीतिका छन्द

निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी।
गृह, अजिर, अटनि, बजार, बीथिन्ह; चारु चौकैं बिधि घनी।
चामर, पताक, बितान, तोरन, कलस, दीपावलि बनी।
सुख-सुकृत-सोभामय पुरी बिधि सुमति-जननी जनु जनी ॥ १ ॥

लक्ष्मी और सरस्वतीसे यही वर मागती हैं कि उनकी कोख सदा जुड़ाई रहे (उनकी कोखसे उत्पन्न ये चारों बालक सदा फूलते-फलते रहें)। ये देवियाँ भी रानियोंको आशीर्वाद दे-देकर उनकी सराहना किए जा रही हैं ॥ १० ॥ राजा दशरथका यह बढ़ा हुआ वैभव और आनन्द जिन्हें अच्छा नहीं लगा, उनपर कीर्ति, कुशल, वैभव, विजय और ऋद्धियाँ सभी रूठ गईं ॥११॥ लौकिक और वैदिक विधानके अनुसार छठी और बरही (छठे और बारहवें दिनकी शुद्धि) करके ज्ञानी गुरुने इन बालकोंके सुन्दर नाम राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न रख दिए ॥ १२ ॥ विधाताने आनन्दके तिलको पुण्यके फूलोंमें बसाकर बड़े यत्नके यन्त्र (कोल्हू)-में उनकी घानी भरकर जो सुखका स्नेह (तेल) निकाला वह सब राजा दशरथको ही दे दिया, केवल खली मात्र थिराकर नीचे रह गई (आनन्द और पुण्यका सारा तत्त्व दशरथको दे दिया) ॥ १३ ॥ संसार भरमें आनन्द और उत्साह आ छाया। अयोध्याके आनन्दकी कहानी घर-घर जा फैली। तुलसीदास कहते हैं कि जो समाज रामके यश गाया करता है वही (समाज) मेरे हृदयमें आ बसता (मुझे प्यारा लगता) है ॥ १४ ॥ (४)

अयोध्यामें घर-घर बधावे बज रहे हैं। वहाँका सारा साज-समाज मंगलमय है। सब लोग प्रसन्न चितसे अपना-अपना कार्य कर रहे हैं और उन्हें अच्छे शकुन मिल रहे हैं। नगरके स्त्री-पुरुष अपना-अपना काम बहुत सँभालकर किए चले जा रहे हैं। उनकी रचनाएँ भी अगणित हैं। घर, अटारी, हाट और गलियोंमें अच्छे ढंगसे सुन्दर चौक पूर दिए गए हैं। चँवर, पताका, चँदोवे, तोरण, कलश और दीपावलियाँ सजा दी गई हैं मानो विधाताकी बुद्धि-रूपिणी माताने यह सुख, पुण्य और शोभासे भरी पुरी उत्पन्न कर दी हो ॥ १ ॥ जैसे चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको स्वच्छ चन्द्रमा उदित

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा—चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज।
उडुगन अवलि प्रकासहीं, उमगत आनँद - साज॥

हरिगीतिका छन्द

आनंद उमगत आज, बिबुध बिमान बिपुल बनाइकै।
गावत, बजावत, नटत, हरषत, सुमन बरषत आइकै।
नर निरखि नभ, सुर पेखि पुर-छबि, परसपर सचु पाइकै।
रघुराज - साज सराहि लोचन - लाहु लेत अघाइकै॥ २॥

दोहा—जागिय राम छठी सजनि, रजनी रुचिर निहारि।
मंगल मोद - मढ़ी मुरति, नृप - के बालक चारि॥

हरिगीतिका छन्द

मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथ - मई।
अनुरूप भूपति जानि पूजन - जोग बिधि संकर दई।
तिनकी छठी, मंजुल मठी, जग सरन जिनकी सरसई।
किऐ नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई॥ ३॥

दोहा—सेवक सजग भए समय, साधन सचिव सुजान।
मुनिबर सिखये लौकिकौ, बैदिक बिबिध बिधान॥

हरिगीतिका छंद

बैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।
बलिदान, पूजा - मूल कामिनि साधि राखी आनिकै।
जे देव - देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै।
ते जंत्र - मंत्र सिखाइ राखत सबनि - सों पहिचानिकै॥ ४॥

होते हैं, आकाशमें तारे टिमटिमाते रहते हैं और सब ओर आनन्द ही आनन्द उमड़ा पड़ता है, वैसा ही आनन्द आज राजभवनमें भी उमड़ा पड़ रहा है। देवता लोग अपने-अपने विमान सजाकर गा बजा, नाच और हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं। मनुष्य आकाशकी ओर देख रहे हैं और देवता नगरकी शोभा देख रहे हैं। वे आनन्दपूर्वक आपसमें रामकी छठीके सजधजकी सराहना कर रहे हैं और नेत्र सफल करते हुए तृप्त हो रहे हैं॥२॥ सुहावनी रात देखकर छठीकी रातमें स्त्रियाँ रतजगा कर रही हैं। राजाके चारों बालक आनन्द-मंगलसे भरे हुए हैं। इन चारों मनोहर मूर्तियोंको विधाताने परमार्थसे भरा बनाया है। इन्हें राजाके अनुरूप जानकर शिव और ब्रह्माने पूजने-योग्य बना दिया है। संसार जिनकी शरणमें जाकर शोभा पाता है आज उन्हींकी शोभामयी छठी है। वह रात्रि ऐसी सुहावनी हो गई है कि स्त्रियोंने अपनी नींदको जागरण (रतजगे)-में बदल दिया (वे रातभर जागती रहीं, सोई नहीं)॥३॥ चतुर मंत्रियोंने सब साधन (सामग्री) ला जुटाए हैं। सब सेवक-गण समयपर अपने-अपने काममें सजग हो गए हैं। मुनि वशिष्ठने जो लौकिक और वैदिक दोनों रीतियाँ बतलाईं उन्हें सुनकर और जानकर उन लोगोंने सब वैदिक और लौकिक व्यवहार पूरे कर डाले। बलिदान और पूजाकी मूल सामग्रियाँ भी स्त्रियोंने ला जुटाई हैं। जो लोग बालकोंके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा--सकल सुआसिनि, गुरूजन, पुरजन, पाहुन लोग।
बिबुध - बिलासिनि, सुर - मुनी, जाचक जो जेहि जोग॥

हरिगीतिका छंद

जेहि जोग जे, तेहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किये।
जय कहत, देत असीस, 'तुलसीदास'-ज्यों हुलसत हिये।
ज्यों आज, कालिहु, परहु, जागन होहिंगे नेवते दिए।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख - जीवन जिये॥ ५॥

दोहा--भूप - भाग सुरवर बली नाग सराहि, सिहाहिं।
तिय - बर - बेष अली रमा, सिधि, अनिमादिक आहिं॥

हरिगीतिका छंद

अनिमादि, सारद, सैलनंदिनि बाल लालहिं पालहीं।
भरि जनम जे पाए न ते परितोष उमा, रमा लहीं॥
निज लोक बिसरे लोकपति, घर - की न चरचा चालहीं।
'तुलसी' तपत तिहुँ ताप जग, जनु प्रभु-छठी छाया लहीं॥ ६॥ (५)

राय जयतश्री

बाजत अवध गहागहे आनंद - बधाए।
नामकरन रघुबरनि - के नृप सुदिन सोधाए॥
पाय रजायसु राय - को ऋषिराज बोलाए।
सिष्य, सचिव, सेवक, सखा, सादर सिर नाए।

कल्याणके निमित्त सम्मानपूर्वक देवी-देवताकी पूजा किया करते हैं, वे सबको पहचानकर उनके यन्त्र-मन्त्र भी ठीक किए रखते हैं॥४॥ सभी सुहागिनों, गुरुजनों, पुरवासियों, पाहुनों (मान्य-मेहमानों), देवताओं, स्त्रियों, देवताओं, मुनियों और याचकों (मंगन)-मेंसे जो जिस योग्य था उसे उसी प्रकारका पहनावा (वस्त्र-आभूषण आदि) पहनाकर पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट कर दिया गया। वे जय-जयकार करते और आशीर्वाद देते हुए वैसे ही प्रसन्न हो रहे हैं जैसे तुलसीदासका हृदय आनन्दित हो रहा है। न्योता देनेपर जैसे लोग आज रातभर जागे हैं, वैसे ही कल या परसों भी जागेंगे। जो लोग उस समय सुखका आनन्द ले रहे थे, वे पुण्यके समुद्रके समान लोग धन्य हैं॥ ५॥ राजा दशरथके भाग्यकी सराहना बड़े-बड़े देवता और बली नाग किए जा रहे हैं और उनके भाग्यको तरस रहे हैं। लक्ष्मी और अणिमा आदि सिद्धियाँ स्त्रियोंकी सुन्दर वेष-भूषा बनाए हुए सहेली बनकर काम कर रही हैं। अणिमा आदि सिद्धियाँ, सरस्वती और पार्वती बैठी बालकोंको खेला रही हैं। सब लोकपति अपने लोकोंकी सुधि भूल बैठे हैं। वे अपने घरकी चरचा-तक नहीं करते। तुलसीदास कहते हैं कि संसारके जो प्राणी तीनों पापोंसे तपे जा रहे थे, उन्हें मानो प्रभुकी छठीकी छाया मिल गई (वे छठीकी छाया पाकर शीतल हो गए)॥ ६॥ (५)

अयोध्यामें धूमधामके साथ आनन्द-बधाइयाँ बज रही हैं। राजाने इन (नवजात) रघुवरोंके नामकरणके लिये शुभ मुहूर्त्त पुछवा निकलवाया। राजाकी आज्ञा पाकर ऋषिराज (मुनि वशिष्ठ)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साधु, सुमति, समरथ सबै सानंद सिखाए।
जल, दल, फल, मनि, मूलिका, कुलि काज लिखाए॥ १॥
गनप, गौरि, हर पूजि - कै, गो - बृंद दुहाए।
घर - घर मुद - मंगल महा, गुन - गान सुहाए।
तुरत मुदित जहँ - तहँ चले, मन - के भए भाए।
सुरपति - सासन घन मनौ, मारुत मिलि धाए॥ २॥
गृह आँगन, चौहट, गली, बाजार बनाए।
कलस, चँवर, तोरन, धुजा, सुबितान तनाए।
चित्र चारु चौकैं रचीं, लिखि नाम जनाए।
भरि - भरि सरवर - बापिका, अरगजा सनाए॥ ३॥
नर - नारिन्ह पल चारि - में, सब साज सजाए।
दसरथ - पुर छबि आपनी, सुर - नगर लजाए।
बिबुध बिमान बनाइ - कै आनंदित आए।
हरषि सुमन बरषन लगे, गये धन जनु पाए॥ ४॥
बरे बिप्र चहुँ बेद - के रबिकुल - गुरु ज्ञानी।
आप बसिष्ठ अथर्वणी, महिमा जग जानी।
लोक - रीति, बिधि बेद - की, करि कह्यो सुबानी।
'सिसु - समेत बेगि बोलिए कौसल्या रानी'॥ ५॥

बुलवा लिए गए। शिष्य, मंत्री, सेवक और सखाओं ने आदर पूर्वक सिर आ नवाया। वे सबके सब बड़े सज्जन, बुद्धिमान् और सामर्थ्यवाले थे। उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सब समझा दिया गया और जल, तुलसीदल, फल और रत्नादि सब मूल सामग्रियोंके नाम लिखा दिए गए। गणेश और शंकर-पार्वतीकी पूजा करके गौएँ दुहा ली गईं। घर-घर बड़ा आनन्द-मंगल छा गया और सुन्दर गुण-कीर्तन होने लगे। वे बड़े प्रसन्न होकर तुरन्त ही जहाँ-तहाँ चले गए। उनकी तो मनचाही हो गई मानो इन्द्रके शासनमें रहनेवाले बादल हवा पाकर उड़ चले हों॥ २॥ उन लोगोंने घर, आँगन, चौराहे, गलियाँ और हाट जा सजाए। यथास्थल कलश, तोरण, चँवर, और झंडियाँ टाँग दी गईं और अच्छे अच्छे चँदोवे तान दिए गए। चौकमें सुन्दर चित्रकारी रच दी गई और उनपर (चारों बालकोंके नाम) लिख दिए गए। तालाबों और कुओंमें अरगजा भर-भरकर सान दिए गए॥ ३॥ ये सब सजावट स्त्री-पुरुषोंने चार पलमें कर डाली। दशरथके नगरकी शोभाके आगे स्वर्ग भी लजाया पड़ रहा था। देवता आनन्द-पूर्वक अपने विमान सजाकर (आकाशमें) आ पहुँचे और प्रसन्न होकर फूल बरसाने लगे मानो उन्हें अपना खोया हुआ धन मिल गया हो॥ ४॥ सूर्यवंशके ज्ञानी गुरु वशिष्ठने चारों वेदोंके ब्राह्मणोंको वरण कर बुलाया। स्वयं गुरु वशिष्ठ तो अथर्वण वेदके पंडित थे जिनकी महिमा सारा जगत् जानता है। गुरुने लोक और वेदकी सब रीति-विधि बतलाकर अपनी सुखद सुवाणीसे आदेश दिया कि 'रानी कौशल्याको बालकों-सहित शीघ्र बुलाया जाय'॥ ५॥ समाचार पाते ही

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनत सुआसिनि लै चलीं, गावत बड़भागीं।
उमा, रमा, सारद, सची लखि सुनि अनुरागीं।
निज रुचि बेष बिरचि - कै हिलि-मिलि सँग लागीं।
तेहि अवसर तिहुँ लोक - की सुदसा जनु जागीं॥ ६॥
चारु चौक बैठत भईं भूप - भामिनी सोहैं।
गोद मोद - मूरति लिए, सुकृती जन जोहैं।
सुषमा, कौतुक, कला देखि सुनि मुनि मोहैं।
सो समाज कहँ बरनिकै, ऐसे कबि को हैं॥ ७॥
लगे पढ़न रच्छा - रिचा रिषिराज बिराजे।
गगन सुमन - झरि, जय - जय, बहु बाजन बाजे।
भए अमंगल लंक - में, सब संकट गाजे।
भुवन चारिदस - के बड़े, दुख - दारिद भाजे॥ ८॥

बड़भागिनी कौशल्या गीत गाती हुई सुहागिनोंको अपने साथ लेकर चल दीं। यह देख और सुनकर पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती और इन्द्राणी शचीका भी प्रेम उमड़ चला। वे भी अपनी रुचिके अनुसार वेष बनाकर उन्हीं सबके साथ हिलमिलकर उन्हींके संग लग चलीं। उस समय मानो तीनों लोकोंका भाग्य जाग गया॥ ६॥ सुन्दर सजे-सजाए चौकमें राजरानी कौशल्या अपनी गोदमें आनन्दकी मूर्त्ति चारों बालकोंको लेकर आ बैठीं, जिनके दर्शनोंके लिये पुण्यात्मा जन खड़े बाट जोह रहे थे। उनकी शोभा और बाल-क्रीडाएँ ऐसी थीं कि उन्हें देख-सुनकर मुनियोंका मन भी मोहित हो-हो जाता था। वह दृश्य ऐसा सुन्दर था कि ऐसा कौन कवि जनमा है, जो उस समाजका वर्णन कर सके ?॥ ७॥ ऋषिराज वशिष्ठ वहाँ बैठकर रक्षा-ऋचा[1] पढ़ने लगे। सब देवता जय-जयकार करते हुए आकाशसे पुष्प बरसाने लगे और बहुतसे बाजे बज उठे। उधर लंकामें ऐसे अपशकुन होने लगे मानो शंका और संकट आकर गरजने लगे हों। (रामके जन्मसे) चौदहों भुवनोंके बढ़े हुए दुःख और कंगालपन दूर हो मिटे॥८॥ अथर्वण वेदपाठी वशिष्ठने बालकको देखकर हँसते

१. मांगलिक कार्योंमें सब बाधाओंसे रक्षा पानेके लिये यजमान अपने बाएँ हाथमें पीली (सफेद) सरसों लेकर निम्नलिखित 'रक्षा-ऋचा' पढ़ता चलता है और सब दिशाओंमें फेंकता चलता है—

रक्षोहणं व्वलगहनं व्वैष्णवीमिदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे निष्टयो यमभात्यो निचखानेदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्य्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि॥ १॥ रक्षोहणो वो व्वलगहनं प्रोक्षामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणो वो व्वलगहनोऽवनयामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणो वो व्वलगहनोऽवस्तृणामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणो वां व्वलगहनाऽउपदधामि व्वैष्णवी रक्षोहणौ वां व्वलगहनौ पर्य्यूहामि व्वैष्णवी व्वैष्णवमसि व्वैष्णवाः स्थ॥ २॥ रक्षसां भागोसि निरस्तं रक्षोऽइदमहं रक्षोऽभितिष्ठामीदमहं रक्षोऽवबाध इदमहं रक्षोऽधमं तमो नयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां व्वायो व्वेस्तोकानामग्निराज्यस्य व्वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वंनभसं मारुतं गच्छतम्॥ ३॥ रक्षोहा व्विश्श्वचर्षणिरभियोनिमयोहते। दव्रोणे सधस्थमासदत्॥ ४॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बाल बिलोकि अथर्वणी, हँसि हरहिं जनायो।
सुभ - को सुभ, मोद मोद - को, 'राम' नाम सुनायो।
आलबाल कल कौसिला, दल बरन सोहायो।
कंद सकल आनंद - को, जनु अंकुर आयो॥ ९॥
जोहि, जानि, जपि, जोरि - कै करपुट सिर राखे।
'जय जय जय करुनानिधे!', सादर सुर भाखे।
सत्यसंध, साँचे सदा, जे आखर आखे।
प्रनतपाल पाए सही, जे फल अभिलाखे॥ १०॥
देव देखिकै भूमिदेव, नरदेव सुखारी।
बोलि सचिव, सेवक, सखा, पट - धारि, भँडारी।
देहु जाहि जोइ चाहिए, सनमानि सँभारी।
लगे देन हिय हर्षि - कै, हेरि हेरि हँकारी॥ ११॥
राम - निछावरि लेन - को, हठि होत भिखारी।
बहुरि देत तेहि देखिए मानहुँ धन - धारी।
भरत - लषन - रिपुदवनहूँ, धरे नाम बिचारी।
फलदायक फल चारि - के, दसरथ - सुत चारी॥ १२॥
भए भूप बालकनि - के नाम - निरूपन नीके।
सबै सोच - संकट मिटे तबतें पुर - ती के।

हुए शंकरको बताया कि ये मंगलोंका भी मंगल करनेवाले और आनन्दको भी आनन्द देनेवाले हैं—इनका नाम 'राम' है। कौशल्या ही सुन्दर थाला है, प्रभुका सुन्दर श्याम वर्ण ही मानो पत्ते हैं और सम्पूर्ण आनन्दकंद (स्वयं 'राम') मानो उसके अंकुर हैं॥ ९॥ उन्हें (रामको) देखकर पहचानकर, उनका नाम जपकर, फिर दोनों हाथ जोड़कर देवताओंने उनके आगे सिर झुका लिया। वे आदरपूर्वक बोले—'करुणानिधान आपकी जय हो! जय हो!! जय हो!!!'। जो 'राम' शब्दके दो अक्षय अक्षरोंको सदा सच्चा सत्यसन्ध मानते हैं, वे इनकी शरणमें आनेपर जिस फलकी अभिलाषा करते हैं वही फल पा लेते हैं॥ १०॥ ब्राह्मणों और देवताओंको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्काल अपने मंत्री, सेवक और मित्रोंसे कहा कि भंडारके पट खोल दो और जिसको जो कुछ चाहता हो उसे वह आदरके साथ दे दो! फिर क्या था। वे भी हर्षपूर्वक खोज-खोजकर और पुकार-पुकारकर बाँटने लगे॥ ११॥ रामका न्योछावर लेनेके लिये भिखारी अड़े पड़ रहे हैं और फिर वे उन्हीं न्योछावरोंको दान कर देते हैं, मानो कहींके बड़े भारी धनी हों। मुनि वशिष्ठने विचारकर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके भी नाम रख दिए। राजा दशरथके चारों पुत्रोंमें चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)-का फल देनेकी शक्ति है॥ १२॥ इस प्रकार राजाके बालकोंका नामकरण आनन्दपूर्वक हो गया। तबसे नगरकी स्त्रियोंके सभी शोक और संकट दूर हो गए। विधाताने सब प्रकारसे सबके मनोरथ पूरे कर डाले। अब

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुफल मनोरथ बिधि किए, सब बिधि सबही - के।
अब होइहै गाए, सुने, सब - के तुलसी - के॥ १३॥ (६)

राग बिलावल

सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम - सिसु गोद लिये।
बार - बार बिधु - बदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये॥ १॥
कबहुँ पौढ़ि पय - पान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिये।
बाल - केलि गावति, हलरावति, पुलकित प्रेम - पियूष पिये॥ २॥
बिधि - महेस - मुनि - सुर सिहात सब, देखत अंबुद-ओट दिये।
'तुलसिदास' अस सुख रघुपति-पै, काहू तो पायो न बिये॥ ३॥ (७)

राग सोरठ

ह्वै हौ लाल कबहिँ बड़े (बलि) मैया।
राम - लखन भावते भरत - रिपुदवन चारु चाऱ्यो भैया॥ १॥
बाल - बिभूषन - बसन मनोहर अँग नित बिरचि बनइहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जइहौं॥ २॥
छगन - मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु-ठुमुकु कब धइहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि 'माँ' मोहिँ बुलइहौ॥ ३॥
पुरजन, सचिव, राउ, रानी सब सेवक, सखा, सहेली।
लइहैं लोचन - लाहु सुफल लखि, ललित मनोरथ - बेली॥ ४॥

इस प्रसंगको गाने और सुननेपर तुलसीदासके तथा अन्य सबके मनोरथ भी सफल होकर रहेंगे॥ १३॥ (६)

कौशल्या अपने सुन्दर बालक रामको गोदमें लिए हुए सुन्दर सेजपर बैठी हैं और अपनी आँखोंको चकोर बनाकर बार-बार रामके मुख (चन्द्र)-को टकटकी लगाए देखती चली जा रही हैं॥ १॥ कभी तो वे शय्यापर लेटकर अपना दूध पिलाती हैं, कभी उन्हें छातीसे चिपटाए लेती हैं। वे बाललीलाके गीत (लोरियाँ) गा-गाकर उन्हें हिलाती-झुलाती हैं, मानो प्रेमका अमृत पीकर पुलकित हुई जा रही हों॥ २॥ बादलोंकी ओट देकर (छिपकर) ब्रह्मा, शिव, मुनि और देवता भी (यह दृश्य) देख-देखकर तरसे जा रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि रामके दर्शनोंका ऐसा सुख किसीने बहुत अच्छे कर्म करके भी न पाया होगा॥ ३॥ (७)

(माता कौशल्या कहती हैं) लाल! माता तुमपर बलिहारी जाती है। यह बताओ कि तुम बड़े कब होगे? रामको लक्ष्मण भाते हैं और भरतको शत्रुघ्न। चारों भाइयोंकी ये दोनों जोड़ियाँ बड़ी ही सुन्दर हैं॥ १॥ मैं कब (बचपनके) छोटे-छोटे गहने और कपड़े नित्य सँवार-सँवारकर तुम्हें पहनाऊँगी और तुम्हारी वह शोभा देखकर, उसपर न्योछावर करके, तुम्हें छातीसे लगाकर तुमपर वारी जाऊँगी? ॥ २॥ तुम छगन-मगन कब मिल-जुलकर आँगनमें खेलोगे, ठुमुक-ठुमुककर कब दौड़ोगे और कब अपनी मधुर और तोतली वाणीसे कलबल-कलबल करके (तुतलाते हुए) मुझे 'माँ' कहकर पुकारोगे? ॥ ३॥ पुरवासी, मंत्री, राजा, रानी, सेवक, सखा और सहेलियाँ ये सब मेरी इस सुन्दर मनोरथकी लता (राम)-को सुफल देखकर कब अपने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जा सुख-की लालसा लट्टू सिव, सुक, सनकादि उदासी।
'तुलसी' तेहि सुख - सिंधु कौसिला मगन, पै प्रेम - पियासी ॥ ५ ॥ (८)

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया[1] ?

प्रेम - पुलकि उर लाइ सुवन सब, कहति सुमित्रा मैया ॥ १ ॥
सुंदर तनु सिसु-बसन - बिभूषन, नख-सिख निरखि निकैया।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि-करि लइहैं मातु बलैया ॥ २ ॥
किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि, भजि मिलनि, मनोहरतैया।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब - झलक - छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥ ३ ॥
बाल-बिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया।
भूपति - पुन्य - पयोधि उमँग, घर-घर आनंद - बधैया ॥ ४ ॥
ह्वै हैं सकल सुकृत - सुख - भाजन लोचन - लाहु लुटैया।
अनायास पाइहैं जनम - फल, तोतर बचन सुनैया ॥ ५ ॥
भरत, राम, रिपुदवन, लखन - के चरित-सरित अन्हवैया।
'तुलसी' तव - के - से अजहुँ जानिबे, रघुबर - नगर - बसैया ॥ ६ ॥ (९)

नेत्रोंका लाभ पावेंगे ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस सुखकी लालसापर शिव, शुकदेव, सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) उदासी मुनि भी लट्टू हुए जा रहे हैं, उसी सुखके समुद्रमें माता कौशल्या मग्न हैं, फिर भी उनके प्रेमकी प्यास बनी ही रहती है ॥ ५ ॥ (८)

प्रेममें पुलकित होकर माता सुमित्रा सभी बालकोंको हृदयसे लगाकर कहती हैं, 'तुम चारों भैया अपने पैरोंसे कब चलोगे ? ॥ १ ॥ कब तुम्हारे सुन्दर शरीरपर छोटे-छोटे वस्त्र और आभूषण पहनाकर नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक भली भाँति निहार-निहारकर माताएँ तृण तोड़ती हुई, अपने प्राण निछावर करती हुई तुम्हारी बलैया लेंगी ? ॥ २ ॥ तुम्हारा किलकारी मारना, नाचना, चलना, देखना, भागकर बड़ी सुन्दरताके साथ फिर मिलना, रत्न-जड़े खंभोंपरकी परछाईंकी छबिका आँगन भरमें फैलना (कब देखनेको मिलेगा ?) ॥ ३ ॥ तुम्हारा बाल-विनोद और आनन्दमें भरा हुआ कोमल चन्द्र-मुख, इस लीलामयी चाँदनी रातमें कब देखनेको मिलेगा ? राजा भी अपने पुण्यके समुद्रमें मग्न हुए जा रहे हैं और घर-घर आनन्दकी बधाइयाँ बज रही हैं ॥ ४ ॥ कब (तुम्हारे दर्शनोंका) लाभ लुटानेवाले ये नेत्र समस्त पुण्य और सुखका लाभ पावेंगे ? तुम्हारे तोतले वचन सुननेवाले लोग कब बिना प्रयास ही अपने जन्मका फल पावेंगे ?' ॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके चरित्रकी नदीमें स्नान करनेवाले रामके नगर (अयोध्या)-के निवासियोंको आज भी वैसे ही आनन्दमें मग्न जानिए ॥ ६ ॥ (९)

---

१. भैया=इसका उच्चारण 'भइया' करना चाहिए। इसी प्रकार मैया=मइया आदि।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग केदारा

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे, रचि रुचि तिलक गोरोचन-को कियो है।
भ्रू-पर अनूप मसि-बिंदु, बारे - बारे बार बिलसत सीस - पर, हेरि हरै हियो है॥ १॥
मोद-भरी गोद लिये लालति सुमित्रा पेखि, देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है।
मातु, पितु, प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य, पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है॥ २॥
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु, चाल चाहि सो छबि-सुकबि जिय जियो है।
बाल-केलि, बात-बस, झलकि झलमलत, सोभा-की दीयटि मानो रूप-दीप दियो है॥ ३॥
राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ, सुनि, सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है।
'तुलसी' बिहाइ दसरथ दस-चारि-पुर ऐसे सुख-जोग बिधि बिरच्यो न बियो[1] है॥४॥ (१०)

राम-सिसु गोद - महामोद भरे दसरथ, कौसिलाहु ललकि लखन लाल लए हैं।
भरत सुमित्रा लए, कैकयी सत्रु - समन, तन प्रेम-पुलक, मगन मन भए हैं॥ १॥
मेढ़ी[2] लटकन मनि - कनक - रचित, बाल - भूषन बनाइ आछे अंग-अंग ठए हैं।
चाहि, चुचुकारि, चूमि, लालत, लगावत उर, तैसे फल पावत जैसे सुबीज बए हैं॥ २॥

चारों भाइयोंको तेल और उबटन मलकर, आँखोंमें काजल सारकर, माथेपर सुन्दर गोरोचनका तिलक रचकर लगा दिया गया है। भौंहोंके ऊपर सलोना-सा काजलका टीका (डिठौना) लगा दिया गया है। उनके सिरपर छोटे-छोटे बाल लहरा रहे हैं जो देखते ही हृदय चुरा बैठते हैं॥ १॥ आनन्दमें भरी हुई सुमित्रा अपनी गोदमें रामको लिए बैठी हैं, यह देखकर देवता कहते हैं कि आज हम सबके पुण्य आ प्रकटे हैं। इनके माता-पिता, प्रिय लोग, कुटुम्बी, और नगरवासी धन्य हैं जो ऐसे पुण्य-पुञ्जको देख-देखकर प्रेमका रस पीए चले जा रहे हैं॥२॥ (रामके) लाल-लाल और छोटे-छोटे सुन्दर चरण कमलोंकी चालकी शोभा देख-देखकर ही सुकवि जो रहे हैं। उनकी बाल-क्रीड़ाओंकी झलक पवनके झकोरोंसे ऐसी झलमला रही है मानो शोभाके दीवटपर सुन्दर रूपका दीपक ला धरा गया हो॥ ३॥ छोटे भाई लक्ष्मण और बालक रामकी सुन्दर लीलाएँ जो सज्जन गाते और सुनते हैं उन्होंने ही आदरसे भरे अपने जन्मका लाभ पाया है। तुलसीदास कहते हैं कि चौदहों भुवनोंमें दशरथको छोड़कर ऐसे सुखका मेल विधाताने न तो किसी दूसरेके लिये रचा है, न बनाया ही है॥ ४॥

बालक रामको गोदमें लिए हुए दशरथ बहुत आनन्दमें मग्न हैं। कौशल्याने बड़े चावसे लक्ष्मणको अपनी गोदमें ले रक्खा है, भरतको सुमित्राने और शत्रुघ्नको कैकेयीने गोदमें ले रक्खा है। इनके शरीर प्रेमसे पुलकित हुए पड़ रहे हैं और मन प्रेममें डूबा पड़ा है॥१॥ मणि और सोनेकी बनी हुई लटकनें उनकी मेढ़ी अपने गुंथी हुई बालोंकी पट्टियोंमें लटक रही हैं। अंग अंगमें वे और भी बालोचित गहने पहने हुए हैं। ऐसे बालकोंको (माता-पिता) बड़े चावसे देखते, चुमकारते, चूमते और दुलराते हुए अपने हृदयसे लगाए ले रहे हैं। उन्होंने जैसा (पुण्यका) बीज बोया है, उसका आज वैसा ही फल लूटे ले रहे

१. बियो = दूसरा। २. मेढ़ी = आगेके बाल दोनों ओर गूँथकर तीन लड़ बनाकर बाँधना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घन-ओट बिबुध बिलोकि बरषत फूल, अनुकूल बचन कहत नेह नए हैं।
ऐसे पितु, मातु, पूत, प्रिय, परिजन, बिधि जानियत आयु भरि येई निरमए हैं ॥ ३ ॥
'अजर अमर होहु', 'करौ हरि-हर छोहु' जरठ-जठेरिन्ह आसिरबाद दए हैं।
'तुलसी' सराहैं भाग तिन्ह-के, जिन्ह-के हिये डिभ-राम-रूप-अनुराग-रंग रए हैं ॥४॥ (११)

राग आसावरी

आज अनरसेहैं भोर - के, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावतहू, रोवत राम मेरो, सो सोच सबही-के ॥ १ ॥
देव, पितर, ग्रह पूजिये, तुला तौलिए घी-के।
तदपि कबहुँ-कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती-के ॥ २ ॥
बेगि बोलि कुलगुरु छुओ माथे हाथ अमी-के।
सुनत, आइ रिषि, कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े, जो सुमिरत भय भी-के ॥ ३ ॥
जासु नाम सरबस सदासिव पारबती - के।
ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीति - की हिय हुलसति तुलसी-के ॥ ४ ॥ (१२)

हैं ॥ २ ॥ बादलोंकी आड़से देवता भी रामकी बाल लीलाएँ देख रहे हैं और फूल बरसा रहे हैं। वे स्नेहके मारे झुके हुए प्रेम-भरे वचन कहते हैं (कि) 'जान पड़ता है विधाताने जीवन भर बैठकर ऐसे भाग्यशाली पिता, माता, पुत्र, परिजन और परिवार यहाँ (राजा दशरथके घरके लिये) गढ़े थे ॥ ३ ॥ बूढ़े और बूढ़ियाँ इन बालकोंको आशीर्वाद देते हैं कि 'तुम अजर-अमर होओ। तुमपर भगवान विष्णु और शंकर कृपा करें।' तुलसीदास उन लोगोंके भाग्योंकी सराहना करते हैं जिनके हृदय बालक रामके प्रेमके रंगमें रँगे हुए हैं ॥ ४ ॥ (११)

आज सबेरेसे ही बालक राम ऐसे रूठे पड़े हैं कि न ठीकसे दूध पी रहे हैं न बैठे रहते हैं, न खड़े ही रहते हैं। पालनेपर झुलाओ तो रोने लगते हैं। इसलिये मेरे (तुलसीके) समान सभी लोग बड़ी चिन्तामें पड़ गए हैं ॥ १ ॥ देवता-पितर पूजनेपर, ग्रह-शान्ति करानेपर और घीका तुलादान करानेपर भी सखी ! जब किसी कुडीठी स्त्रीकी डीठ लग जाती है (नजर लग जाती है) तो कभी-कभी अड़ जाते हैं ॥ २ ॥ जाओ, कुलगुरु (वशिष्ठ)-को शीघ्र बुला लाओ कि वे अपने अमृतमय हाथोंसे इन्हें छू दें। सुनते ही मुनि वशिष्ठ आ पहुँचे और हरी-हरी कुशासे उन्होंने वह नृसिंहका मंत्र[१] पढ़कर छींटे दिए जिसके स्मरण मात्रसे भय भी भयभीत होकर भाग खड़ा होता है ॥ ३ ॥ जिनका नाम ही सदाशिव शंकर और पार्वतीका सर्वस्व है, (शिव और पार्वती सदा जिनका नाम जपते रहते हैं) उन्हींकी झाड़-फूंक माता कौशल्या बैठी करा रही हैं। यह केवल हृदयके प्रेमकी रीति है, जिसे देखकर तुलसीदासका हृदय भी आनन्दित हो उठता है ॥ ४ ॥

---

१. उग्रं वीरं महाविष्णं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्यु-मृत्युं नमाम्यहम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

माथे हाथ रिषि जब दियो राम किलकन लागे।
महिमा समुझि, लीला बिलोकि, गुरु सजल-नयन, तनु पुलक रोम-रोम जागे ॥१॥
लिए गोद, धाए गोद-तें, मोद मुनि-मन अनुरागे।
निरखि मातु, हरषी हिये, आली-ओट कहति मृदु बचन प्रेम-के-से पागे ॥ २ ॥
'तुम सुरतरु रघुबंस-के, देत अभिमत माँगे।
मेरे बिसेषि गति रावरी, 'तुलसी' प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे' ॥३॥ (१३)

अमिय-बिलोकनि करि कृपा मुनिवर जब जोए।
तब-तें राम अरु भरत, लखन, रिपुदवन, सुमुखि सखि ! सकल सुवन सुख सोए ॥१॥
सुमित्रा लाय हिये फनि मनि ज्यों गोए।
'तुलसी' नेवछावरि करत मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोए ॥२॥ (१४)

मातु सकल, कुलगुरु-बधू, प्रिय सखी सुहाई।
सादर सब मंगल किए महि - मनि महेस - पर सबनि सुधेनु दुहाई ॥ १ ॥
बोलि भूप भूसुर लिये अति बिनय बड़ाई।
पूजि पाँय, सनमानि, दान दिये, लहि असीस, सुनि बरषैं सुमन सुर-साई ॥ २ ॥
घर - घर, पुर, बाजन लगीं आनंद बधाई।
सुख सनेह तेहि समय-को 'तुलसी' जानै जाको चोन्यो है चित चहुँ भाई ॥३॥ (१५)

(तुलसीदास कहते हैं—) जब मुनि वशिष्ठने रामके मस्तकपर हाथ रक्खा, तब वे (प्रसन्न होकर) किलकने लगे। प्रभुकी महिमा समझकर और उनकी लीला देखकर (कि मुझे आदर देनेके लिये यह नाटक किया गया था) गुरुके नेत्रोंमें आँसू आ छाए, शरीर पुलकित हो उठा और उनका रोम-रोम फरफरा उठा ॥ १ ॥ ज्योंही गुरुने प्रभुको उठाकर अपनी गोदमें लिया कि वे गोदसे उतरकर भाग चले। यह लीला देखकर मुनिका मन प्रभुपर रीझ उठा। माता भी देखकर हर्षित हो उठीं और सखीकी ओट देकर गुरुसे प्रेम-भरे कोमल वचन कहने लगीं—॥ २ ॥ 'आप तो रघुकुलके कल्पवृक्ष हो। माँगनेपर सभी मनोवाञ्छित फल दे डालते हो। मेरी पहुँच तो आप ही तक है, जिनकी कृपासे सारे अमंगल दूर हो भागते हैं' ॥ ३ ॥ (१३)

(सखीसे कौशल्या कहती हैं–) 'अरी सुन्दरी सखी ! जबसे मुनिवर वशिष्ठने अपनी अमृतमयी दृष्टि राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नपर डाली तभीसे मेरे सब बच्चे सुखसे सो रहे हैं' ॥ १ ॥ सुमित्राने रामको अपनी छातीसे इसी प्रकार लगा सुलाया जैसे सर्प अपना मणि उठा छिपाता है। तुलसीदास कहते हैं कि माता (कौशल्या) अत्यन्त प्रेममें मग्न होकर, आँखोंके कोयोंमें (प्रेमके) आँसू-भरे न्योछावर किए डाल रही हैं ॥ २ ॥ (१४)

सभी माताएँ, गुरु-पत्नी, प्रिय सखियाँ सबने आकर आदरपूर्वक सब मंगल कार्य किए और पृथ्वीके रत्न भगवान् शंकरपर सबने गौका दूध दुहकर ला चढ़ाया (दूधका अभिषेक किया) ॥१०॥ राजा दशरथने ब्राह्मणोंको बुलवा भेजा। उन ब्राह्मणोंकी प्रार्थना-प्रशंसा करके, उनके पाँव पूजकर राजाने आदरपूर्वक उन्हें दान दिए। दान पाकर उन्होंने आशीर्वाद दिया और श्रेष्ठ देवताओंने उनपर फूल ला बरसाए ॥ ११ ॥ नगर भरमें घर-घर बधाइयाँ बजने लगीं। उस समयके सुख और स्नेहको केवल तुलसीदास ही जानते हैं, जिनका चित्त चारों भाई चुराए बैठे हैं ॥ १२ ॥ (१५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग धनाश्री

या सिसु-के गुन, नाम, बड़ाई।
को कहि सकै सुनहु नरपति श्रीपति - समान प्रभुताई॥ १॥
जद्यपि बुधि, बय, रूप, सील, गुन, समय चारु चार्‌यो भाई।
तदपि लोक - लोचन - चकोर - ससि राम, भगत - सुखदाई॥ २॥
सुर, नर, मुनि करि अभय, दनुज हति, हरिहि धरनि-गरुआई।
कीरति बिमल बिस्व - अघ - मोचनि रहिहि सकल जग छाई॥ ३॥
याके चरन - सरोज कपट तजि, जे भजिहैं मन लाई।
ते कुल - जुगल - सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई॥ ४॥
सुनि गुरु - बचन पुलक - तन दंपति, हरष न हृदय समाई।
'तुलसिदास' अवलोकि मातु - मुख प्रभु मन-महँ मुसुकाई॥ ५॥ (१६)

राग बिलावल

अवध आज आगमि[1] ऐक आयो।
करतल निरखि कहत सब गुन - गन, बहुत न परिचो पायो॥ १॥
बूढ़ो, बड़ो, प्रमानिक बाम्हन, संकर नाम सुहायो।
संग सु - सिष्य, सुनत कौसल्या, भीतर भवन बुलायो॥ २॥

राजा दशरथसे गुरु वशिष्ठ कहते हैं—) 'इस बालक (राम)-के गुणोंके नाम और उनकी विशेषताएँ भला कौन गिना सकता है ? इनकी प्रभुता (शक्ति) वैसी ही है जैसी भगवान् विष्णुकी है॥ १॥ यद्यपि बुद्धि, अवस्था, रूप, शील और गुण सभी बातें चारों भाइयोंमें समान रूपमें अच्छी हैं, तथापि राम तो संसारके नेत्ररूपी चकोरोंके चन्द्रमा हैं और भक्तोंको सदा सुख देते रहते हैं॥ २॥ ये देवता, मनुष्य और मुनियोंका भय दूर करके दानवों (राक्षसों)-को मारकर इस पृथ्वीका भार दूर करेंगे। संसार भरके पाप मिटा डालनेवाली इनकी निर्मल कीर्त्ति सारे जगत्‌में छा जायगी॥ ३॥ जो लोग कपट-रहित होकर, मन लगाकर, इनके चरण-कमलोंकी सेवा करेंगे, वे दोनों कुलों (पितृकुल और मातृकुल)-सहित संसार-सागरसे पार हो जायँगे। यह कुछ इनकी विशेष बात नहीं है (यह तो इनके लिये साधारण सी बात है)'॥ ४॥ गुरुके ये वचन सुनकर राजा और रानी इतने पुलकित हो उठे कि उनका हर्ष उनके हृदयमें समाए नहीं समा पा रहा था। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय माताका मुख देखते ही राम मुसकरा उठे॥ ५॥ (१६)

आज अयोध्यामें एक ज्योतिषी आए हुए हैं। वे हाथ देखकर सबके गुण (लक्षण, कर्म, भविष्य) बतला देते हैं। उनका ठीक-ठीक परिचय तो अभीतक कोई नहीं पा सका॥ १॥ पर हैं वे बड़े बूढ़े और विश्वसनीय ब्राह्मण। उनका नाम शंकर है। उनके साथ उनका एक शिष्य भी है। कौशल्याने सुना तो उन्हें भीतर बुलवा लिया॥ २॥ उनके पाँव धोकर, पूजा करके,

१. आगमी=दैवज्ञ, ज्योतिषी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाँय पखारि, पूजि, दियो आसन, असन, बसन पहिरायो।
मेले चरन चारु चार्‌यौ सुत, माथे हाथ दिवायो॥ ३॥
नख-सिख बाल बिलोकि, बिप्र-तन पुलक, नयन जल छायो।
लै लै गोद, कमल-कर निरखत, उर प्रमोद अनपायो॥ ४॥
जनम - प्रसंग कह्यो, कौसिक - मिस सीय - स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन, लखन-को जय, सुख, सुजस सुनायो॥ ५॥
'तुलसिदास' रनिवास रहस-बस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यौ महिदेव, असीसत सानँद सदन सिधायो॥ ६॥ (१७)

राग केदारा

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर, पद, मुख, चख-कमल लसत लखि, लोचन-भँवर भुलावौं॥ १॥
बाल - बिनोद - मोद - मंजुल - मनि किलकनि-खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग - ताग गुहिबे - कहँ मति - मृगनयनि बुलावौं॥ २॥
'तुलसी' भनित भली भामिनि - उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चित लावौं॥ ३॥ (१८)

बैठनेको आसन बढ़ा दिया, भोजन कराकर वस्त्र पहनाया, अपने चारों सुन्दर पुत्रोंको उनके चरणोंपर ला पड़ाया और उनके मस्तकपर ब्राह्मणका हाथ रखवाकर आशीर्वाद दिलवाया॥ ३॥ नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक बालक (राम)-को देखकर उस ब्राह्मणका शरीर पुलकित हो उठा और उसके नेत्रोंमें आँसू उमड़ पड़े। एक-एक बालकको गोदमें ले-लेकर और सबका हाथ देख-देखकर ब्राह्मणके हृदयमें आनन्द समा नहीं पा रहा है॥ ४॥ ज्योतिषीने उनके जन्मका सारा पूर्व प्रसङ्ग सुनाकर बताया कि विश्वामित्रके साथ ये सीताके स्वयंवरमें जायँगे (और सीताको ब्याहकर ले आवेंगे)। फिर उसने राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके विजय, सुख और सुयशका वर्णन कर सुनाया॥ ५॥ तुलसीदास कहते हैं कि रनिवासमें यह सब सुनकर बड़ा हर्ष छा गया। ज्योतिषीकी बात सबको बड़ी अच्छी लगी। उस ब्राह्मणका बड़ा आदर-सत्कार हुआ और वे आनन्द-पूर्वक अपने घर लौट गए॥ ६॥ (१७)

(कौशल्या कहती हैं—) 'मेरे लाल! (पालनेमें) लेट जाओ, मैं पालना झुलाए देती हूँ। तुम्हारे कमलके समान हाथ, पैर, मुँह और आँखें देखकर उनमें अपने नेत्ररूपी भौंरे भी भुलवाए डालती हूँ॥ १॥ तुम्हारे बालपनकी हँसी किलकारियोंकी सुन्दर रत्नोंकी खान खुलवाकर उन (रत्नों)-को प्रेम-रूपी तागेमें गुहनेके लिये अपनी बुद्धि-रूपिणी मृग-नयनीको बुलाए लेती हूँ (अपनी बुद्धिसे प्रेमपूर्वक तुम्हारी (रामकी) बाल-लीलाओंका संग्रह किए लेती हूँ)॥२॥ तुलसीदास कहते हैं कि फिर भली कविता-रूपी स्त्रीको वह मणिमाला पहनाकर प्रसन्न कर लेती हूँ (अपनी बुद्धिसे तुम्हारी बाल-लीलाओंकी सुन्दर कविता रच लेती हूँ और) तुम्हारे सुन्दर चरित्र गा-गाकर तुम्हारे चरणोंमें मन लगाए लेती हूँ'॥ ३॥ (१८)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोइये लाल लाड़िले रघुराई !
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा, बार - बार बलि जाई ॥ १ ॥
हँसे हँसत, अनरसे अनरसत, प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई ।
तुम सब - के जीवन - के जीवन, सकल सुमंगल - दाई ॥ २ ॥
मूल मूल सुर - बीथि - बेलि, तम - तोम - सुदल अधिकाई ।
नखत - सुमन, नभ-बिटप बौंड़ि मनो, छपा छिटकि छबि पाई ॥ ३ ॥
हौ जँभात, अलसात, तात ! तेरि बानि जानि मैं पाई ।
गाइ गाइ, हलराइ, बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ॥ ४ ॥
बछरु छबीलो छगन - मगन मेरे, कहति मल्हाइ - मल्हाई ।
सानुज हिय हुलसति तुलसी - के, प्रभु-की ललित लरिकाई ॥ ५ ॥ (१९)

ललन लोने लेरुआ[1] बलि मैया ।
सुख सोइए नींद - बेरिया भइ, चारु - चरित चाऱ्यौ भैया ॥ १ ॥
कहति मल्हाइ, लाइ उर छिन - छिन, छगन छबीले छोटे छैया ।
मोद - कंद कुल - कुमुद - चंद मेरे, रामचंद रघुरैया ॥ २ ॥
रघुबर - बाल - केलि संतन - की, सुभग सुभद सुर-गैया ।
'तुलसी' दुहि पीवत सुख जीवत, पय सप्रेम घनी घैया[2] ॥ ३ ॥ (२०)

रामको गोदमें लिए हुए आनन्दमें मग्न सुमित्रा बार-बार बलैया लेती हुई कहती हैं 'लाड़िले लाल राम ! सो जाओ' ॥ १ ॥ माता हँसती है तो वे भी हँस पड़ते और रूठती तो रूठ जाते हैं । जैसी छाया उनपर पड़ती है वैसा ही करते चलते हैं । माता कहती हैं – 'तुम सबके जीवनके भी जीवन हो और सभी मंगल ही मंगल करते रहते हो ॥ २ ॥ (अब रात हो आई है । यह ऐसी बेल है जिसमें) मूल नक्षत्र ही मूल है, आकाश-गंगा ही लता है, घना अंधकार ही हरी घनी उसकी पत्तियाँ हैं, तारे ही फूल हैं, आकाश ही वृक्ष है जिसपर बौंड़ (फैल)-कर यह रातरूपी लता अपनी छबि छिटकाकर फैली हुई है ॥ ३ ॥ तात ! मैं तुम्हारी बान पहचान गई हूँ । तुम अलसाए हुए जँभा रहे हो । मैं अभी (लोरियाँ) गा-गाकर और तुम्हें झुला-झुलाकर तुम्हारी सुन्दर सुख-भरी नींद बुलाए देती हूँ' ॥ ४ ॥ माता दुलराती हुई कहती हैं—'ये मेरे छबीले बछरू हैं, मेरे छगन-मगन हैं ।' प्रभु राम और उनके भाई लक्ष्मणका सुन्दर बचपन तुलसीदासके हृदयको मस्त बनाए डाल रहा है ॥ ५ ॥ (१९)

'माता तुमपर बलि जाती है । मेरे लाल ! मेरे बच्चो ! नींदकी वेला हो गई है । अब सुन्दर लीलाएँ करनेवाले चारों भैया सुखसे सो रहो' ॥१॥ माता चुमकारती हुई, रामको बार-बार छातीसे लगाती हुई कहती जाती हैं—'मेरे छबीले बच्चे ! आनन्दकंद ! कुमुदोंको लिखाए रखनेवाले चन्द्रमा ! मेरे रघुराज राम !' ॥ २ ॥ रामकी यह बाललीला सन्तोंके लिये शुभ-दायक कामधेनु है । तुलसीदास कहते हैं कि सन्तजन प्रेमपूर्वक इन्हीं (रामकी बाललीलाओं)-की काम धेनुके दूधकी मोटी धार दुहकर पीते रहते

१. लेरुआ=बछवा । २. घैया=थनसे निकलती हुई दूधकी धार ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुख नींद कहति आलि ! अइहौं ।
राम, लखन, रिपुदवन, भरत सिसु, करि सब सुमुख सोवइहौं ॥ १ ॥
रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसइहौं ।
हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि, भूपति - भवन बसइहौं ॥ २ ॥
गोद बिनोद - मोदमय मूरति, हरषि - हरषि हलरइहौं ।
तनु तिल-तिल करि वारि राम - पर, लैहौं रोग - बलइहौं ॥ ३ ॥
रानी - राउ - सहित सुत-परिजन, निरखि नयन-फल पइहौं ।
चारु चरित रघुबंस-तिलक-के, तहँ 'तुलसी' मिलि गइहौं ॥ ४ ॥ (२१)

राग आसावरी

कनक - रतन - मय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार[1] ।
बिबिध खेलौना - किंकिनी लगे मंजुल मुकुता - हार ॥
रघुकुल - मंडन राम लला ॥ १ ॥
जननि उबटि अन्हवाइकै, मनि - भूषन सजि, लिय गोद ।
पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद ॥
दसरथ - नंदन राम लला ॥ २ ॥
मदन - मोर - कै - चंद की, झलकति निदरति तन - जोति ।
नील कमल, मनि जलद - की उपमा कहे लघु मति होति ॥
मातु - सुकृत - फल राम लला ॥ ३ ॥

और सुखसे जीते रहते हैं (सन्त लोग निरन्तर रामकी बाललीलाका वर्णन करते रहते हैं) ॥३॥ (२०)

देखी सखी ! सुखकी नींद कहती है कि मैं आती हूँ और राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन सबको प्रसन्न करके सुलाए देती हूँ ॥ १ ॥ इनका रोना-धोना, चिढ़ना-रूठना और इस निठुर कुडीठ टोनेको मिटाए डालती हूँ । इनके बदले राजाके भवनमें हँसना, खेलना, किलकारी मारना और आनन्दित होना ला बसाती हूँ ॥ २ ॥ मैं आकर इस विनोद और आनन्दमयी मूर्तिको गोदमें लेकर बड़े हर्षसे झुलाऊँगी । रामपर तिल-तिल अपना शरीर वारकर इनको सारी रोग-बला अपने सिर लिए लेती हूँ । मैं आकर रानी, राजा, इन पुत्रों और इनके परिवारवालोंको देख-देखकर अपने नेत्र सफल करूँगी और वहाँ तुलसीदासके साथ मिलकर मनमोहनी लीला करनेवाले रघु-कुलके तिलक रामकी लीलाएँ बैठी गाऊँगी ॥ ४ ॥ (२१)

सोनेका बना और रत्न-जड़ा पालना ऐसा सुन्दर है मानो कामदेव शिल्पी (बढ़ई)-ने स्वयं उसे अपने हाथसे ला गढ़ा हो । उसमें अनेक प्रकारके खिलौने, घुँघरू और मोतियोंके हार ला लटकाए गए हैं । ऐसे रघुकुलकी शोभा रामलला हैं ॥ १ ॥ माताने उबटन लगाकर, नहलाकर, रत्न और भूषण पहनाकर राममलाको गोदमें लेकर सुन्दर पालनेमें उठा लिटाया और वे उस बच्चेको देख-देखकर आनन्दमें मग्न हुई जा रही हैं । ऐसे प्यारे हैं दशरथके नन्दन राममला ॥ २ ॥ इनके शरीरकी दमक कामदेवके मोरकी चन्द्रिकाकी दमकको भी लजाए डालती है। नीले कमल और चन्द्रकान्त-

---

१. सुतार=खाट बीनने वाला

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लघु लघु लोहित ललित हैं, पद, पानि, अधर ऐक रंग।
को कबि, जो छबि कहि सकै, नख-सिख सुंदर सब अंग॥
परिजन - रंजन राम लला॥ ४॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर कंगन पहुँची मंजु।
हिय हरि-नख अदभुत बन्यो मनो, मनसिज मनि-गन-गंजु॥
पुरजन - सिर - मनि राम लला॥ ५॥
लोयन नील सरोज - से, भ्रू - पर मसि - बिंदु बिराज।
जनु बिधु - मुख - छबि - अमिय - को रच्छक राखे रसराज॥
सोभासागर राम लला॥ ६॥
गभुआरी अलकावली, लसै, लटकन ललित ललाट।
जनु उडुगन बिधु मिलन को चले, तम बिदारि करि बाट॥
सहज सोहावन राम लला॥ ७॥
देखि खेलौना किलकहीँ, पद, पानि, बिलोचन लोल।
बिचित बिहँग अलि-जलज-ज्यौँ, सुषमा-सर करत कलोल॥
भगत - कलपतरु राम लला॥ ८॥
बाल - बोल बिनु अरथ - के सुनि, देत पदारथ चारि।
जनु इन्ह बचनन्हि - तेँ भए सुरतरु, तापस त्रिपुरारि[1]॥
नाम - कामधुक राम लला॥ ९॥

मणिसे इनके शरीरकी उपमा देना तो बड़ी मूर्खताकी बात है। रामललाके समान बालक तो माताके पुण्योंके फल हैं॥ ३॥ उनके पैर छोटे और सुन्दर, लाल हैं और उनकी हथेलियाँ और ओठ भी वैसे ही लाल-लाल हैं। नखसे शिखा-तक उनके सब अंग ऐसे सुन्दर हैं कि उनकी शोभाका वर्णन कौन कवि कर पा सकता है। ऐसे हैं परिजनोंको आनन्द देनेवाले हमारे रामलला॥ ४॥ उनके पैरोंमें पैंजनी, कमरमें करधनी, हाथोंमें कंगन और पहुँची बड़ी ही सुन्दर लग रही हैं। उनकी छातीपर बघनखा बड़ा ही विचित्र है, मानो मणियोंसे लदे हुए कामदेव ही आ बिराजे हों। ऐसे हैं नगरवासियोंके शिरोमणि रामलला॥ ५॥ उनके नेत्र नीले कमलके समान हैं, भौंहपर काजलका डिठौना ऐसा लग रहा है मानो चन्द्रमुखकी छविके अमृतकी रक्षाके लिये (श्याम वर्णका) शृंगार रस आ बैठा हो। ऐसे हैं शोभाके समुद्र रामलला॥६॥ उनके सिरपर गभुआरे (गर्भके) घने बाल और मस्तकपर सुन्दर मोतीकी लड़ियाँ लटकी हुई ऐसी लग रही हैं मानो अंधकारको हटाकर और मार्ग बनाकर चन्द्रमासे मिलने तारे चले जा रहे हों। ऐसे हैं स्वभावसे ही सुहावने लगनेवाले रामलला॥ ७॥ खिलौने देखते ही उनके चंचल हाथ, पाँव और नेत्र कलमलाने लगते हैं मानो शोभाके तालाबमें खिले हुए कमलका भौंरा विचित्र पक्षी देख-देखकर कलोलें कर उठा हो। ऐसे हैं भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान (फलदायक) रामलला॥ ८॥ उनकी अटपटी बचपनकी (तोतली) बोली सुनते ही चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं मानो इन्हीं (अटपटे) वचनोंसे ही तपस्वी (औढर दानी) त्रिपुरारि शंकर और कल्पवृक्षका जन्म हुआ हो। ऐसे रामललाका

१. विनाप्यर्थैः समर्थं हि दातुमर्थचतुष्टयम्। मङ्गलायतनं तन्मे बाल्ये यद्रामभाषितम्।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सखी सुमित्रा वारहीं, मनि - भूषन - बसन बिभाग।
मधुर झुलाइ मल्हावहीं, गावैं उमँगि - उमँगि अनुराग॥
हैं जग - मंगल राम लला॥ १०॥
मोती जायो सीप - में, अरु अदिति जन्यो जग - भानु।
रघुपति जायो कौसिला, गुन - मंगल - रूप - निधानु॥
भुवन - बिभूषन राम लला॥ ११॥
राम प्रगट जब - तें भए, गए सकल अमंगल मूल।
मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिन - के चित सूल॥
भव - भय - भंजन राम लला॥ १२॥
अनुज सखा सिसु - संग लै, खेलन जैहैं चौगान।
लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहैं निसान॥
रिपुगन - गंजन राम लला॥ १३॥
राम अहेरे चलहिंगे, जब गज - रथ - बाजि सँवारि।
दसकंधर उर धकधकी, अब जनि धावै धनु - धारि॥
अरि-करि-केहरि राम लला॥ १४॥
गीत सुमित्रा - सखिन - कै, सुनि - सुनि सुर - मुनि अनुकूल।
दै असीस जय - जय कहैं, हरषैं बरषैं फूल॥
सुर - सुखदायक राम लला॥ १५॥

नाम ही कामधेनु बना हुआ है॥९॥ सुमित्राकी सखियाँ मणि, आभूषण और वस्त्र छाँट-छाँटकर न्योछावर किए डाल रही हैं। वे धीरे-धीरे बालक रामको झुलाती और चुमकारती हैं और प्रेमकी उमंगमें भरकर (लोरियाँ) गाती हैं। ऐसे हैं जगका कल्याण करनेवाले रामलला॥१०॥ जैसे सीपसे मोती उपजता और अदितिसे (आदित्य) जगत्‌के सूर्यका जन्म हुआ वैसे ही कौशल्याने मंगलकारी गुणों और रूपके निधान रामको जन्म दिया है। ऐसे हैं लोकके भूषण रामलला॥ ११॥ जबसे राम प्रकट हुए तभीसे सारे अमंगलके आधार नष्ट हो मिटे, मित्र प्रसन्न हो गए, सबका कल्याण उदय हो गया किन्तु शत्रुओंके चित्तमें नित्य ही शूल होने लगा। ऐसे हैं संसारका भय मिटा डालनेवाले रामलला॥ १२॥ जब राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और बाल-सखाओंको साथ लेकर चौगान (गेंद-बल्लेका खेल) खेलने चलेंगे उस समय लंकामें खलबली मच जायगी और देवलोकमें डंके बजने लगेंगे। ऐसे हैं शत्रुओंके नाशक रामलला॥ १३॥ जब हाथी, रथ और घोड़े साजकर राम आखेट करने निकलेंगे तब रावणके हृदयमें धुकधुकी मच जायगी कि कहीं धनुषधारी (राम) इधर न चढ़ाई कर बैठें। ऐसे हैं हाथी-रूपी शत्रुके लिये सिंह रामलला॥ १४॥ सुमित्राकी सखियोंका गाना सुन-सुनकर देवता और मुनि प्रसन्न हुए जा रहे हैं। वे जय-जयकार करते हुए आशीष दे रहे हैं और प्रसन्न हो-होकर फूल

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बालचरित - मय चंद्रमा, यह सोरह - कला - निधान।
चित चकोर 'तुलसी' कियो, कर प्रेम - अमिय - रस पान॥
तुलसि - को जीवन राम लला[1] ॥ १६ ॥ (२२)

राग कान्हरा

पालने रघुपतिहिं झुलावै।
लै - लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै॥ १ ॥
केकि - कंठ - दुति, स्याम बरन बपु, बाल - बिभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए॥ २ ॥
सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि, बदन - निकट पद- पल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि - सों सचु पाए॥ ३ ॥
उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि - पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन-सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत॥ ४ ॥
'तुलसिदास' बहु-बास-बिबस अलि गुंजत सुछबि न जाति बखानी।
मनहुँ सकल स्रुति-रिचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी॥ ५ ॥(२३)

बरसाए जा रहे हैं। ऐसे हैं देवताओंको सुख देनेवाले मेरे रामलला ॥ १५ ॥ सोलहों कलासे पूर्ण इस बालचरित-मय चन्द्रमाको[1] देखकर तुलसीदासके चकोर-रूपी चित्तने प्रेम-रसका अमृत पी लिया है (तुलसीदासके चित्तमें रामके बालचरितका प्रेम आ समाया है)। ऐसे हैं तुलसीदासके जीवन रामलला ॥ १६ ॥ (२२)

माता कौशल्या रामको पालनेमें झुलाए जा रही हैं। कौशल्या प्रेम-पूर्वक प्रत्येक बालकका नाम ले-लेकर बड़े मधुर स्वरसे उनकी मनोहर कीर्ति गा रही हैं॥ १ ॥ मोरके कंठके समान चमकते हुए साँवले शरीरपर छोटे-छोटे आभूषण बहुत सँवारकर पहनाए गए हैं। उनके घुँघराले बालोंमें अटकाई हुई सुन्दर (मोतीकी) लड़ियाँ भौंहोंतक लटकी हुई हैं। दोनों नेत्र नीले कमलके समान शोभा दे रहे हैं॥ २ ॥ बालक (राम) जब अपने हाथोंसे अपने पल्लवके समान चरण पकड़कर अपने मुँहके पास लाते हैं तब ऐसा जान पड़ता है मानो दो सुन्दर सर्प (रामके साँवले हाथ) प्रसन्न होकर कमल (चरण)-के दोनेमें चन्द्रमा (मुख)-से अमृत भरे ले रहे हों ॥ ३ ॥ पालनेके ऊपर लटकते हुए खिलौने देख-देखकर उन्हें (लेनेके लिये) बार-बार हाथ फैला-फैलाकर किलकते हुए ऐसे लगते हैं मानो चन्द्रमाके (मुख) भयसे अत्यन्त दुखी होकर दो लाल कमल (हाथ) बढ़कर सूर्य (खिलौने)-से रक्षाके लिये विनति कर रहे हों॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अत्यन्त सुगन्धसे मस्त भौंरे जो गुंजार कर रहे हैं, उस छबिका बखान नहीं हो सकता मानो वेदकी सारी ऋचाएँ भौंरे बनकर अपनी मधुर वाणीसे रामका विस्तृत सुयश वर्णन किए जा रहे हों॥ ५ ॥ (२३)

१. इन सोलह पदोंमें रामकी रूप-माधुरीका वर्णन किया गया है। एक एक पद चन्द्रमाकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कलाका सूचक है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग बिलावल

भूलत राम पालने सोहैं। भूरि - भाग जननी - जन जोहैं।
तन मृदु मंजुल मेचकताई। झलकति बाल बिभूषन झाँई॥ १॥
अधर, पानि, पद लोहित लोने। सर-सिंगार - भव[1] सारस सोने।
किलकत निरखि बिलोल खेलौना। मनहुँ बिनोद लरत छबि-छौना[2]॥ २॥
रंजित अंजन कंज - बिलोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन[3]।
लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको। चितवत चित-चकोर तुलसी-को॥ ३॥ (२४)

राग कल्याण

राजत सिसु-रूप राम सकल गुन - निकाय धाम, कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानु-पानि-चारी।
नील कंज, जलद-पुंज, मरकत-मनि-सरिस स्याम, काम कोटि सोभा अँग-अंग-उपर वारी॥१॥
हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इंद्र-मंदिराभ, इंदिरा-निवास-सदन बिधि रच्यो सँवारी।
बिहरत नृप-अजिर अनुज-सहित बाल-केलि-कुसल, नील जलज-लोचन हरि मोचन-भय-भारी
अरुन चरन अंकुस, धुज, कंज, कुलिस चिन्ह रुचिर, भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखरकारी।
किंकिनी बिचित्र जाल, कंबुकंठ ललित माल, उर बिसाल केहरि नख, कंकन करधारी॥३॥

पालनेमें भूलते हुए राम बड़े प्यारे लग रहे हैं और भाग्यशालिनी माताएँ उन्हें टकटकी लगाए देखती जा रही हैं। रामके सुन्दर, कोमल, साँवले शरीरपर छोटे-छोटे गहनोंकी छाया चमकी पड़ रही है॥ १॥ रामके सुन्दर लाल-लाल ओठ, हाथ और पाँव ऐसे लग रहे हैं, मानो शृङ्गार-रूपी तालाब (रामके साँवले शरीर)-से उत्पन्न सुन्दर लाल सारस हों। हिलते हुए खिलौने देखकर वे ऐसे किलकते हैं मानो छबिके बच्चे विनोदमें लड़-झगड़ रहे हों॥ २॥ उनके कमलके समान नेत्र आँजनसे आँज दिए गए हैं और उनके मस्तकपर गोरोचनका (पीला) तिलक लगा हुआ है। उनके चन्द्र-मुखपर काजलका टीका (डिठौना) बहुत सुन्दर लग रहा है जिसे तुलसीदासका चित्तरूपी चकोर बैठा देखे जा रहा है॥ ३॥ (२४)

सम्पूर्ण गुणोंके धाम राम शिशु रूपमें बड़े प्यारे लग रहे हैं। हाथों और घुटनोंके बल चलते हुए कृपालु ब्रह्म (राम) बड़े ही खेलवाड़ी लगते हैं। नीले कमल, घने काले बादल और पन्नेके समान साँवले रामके एक-एक अंगपर करोड़ों कामदेवोंकी सुन्दरता न्योछावर किए डालता है॥१॥ इन्द्रपुरी (अमरावती) या विष्णुपुरी (वैकुंठ)-के समान राजा दशरथके सोने और रत्नोंसे जड़े हुए आँगनमें बड़े ही चतुर, नीले कमलके समान नेत्रोंवाले, भारी संकट दूर कर डालनेवाले राम बाल-लीला करते हुए घूम रहे हैं॥ २॥ रामके चरणोंमें अंकुश, ध्वजा, कमल और वज्रकी (परम-ऐश्वर्य सूचक) सुन्दर रेखाएँ शोभा दे रही हैं। उनके पैरोंमें मधुर रुनझुन करनेवाली पैंजनी, कमरमें करधनीका विचित्र जाल, शंखके समान गलेमें सुन्दर माला, चौड़ी छातीपर बघनखा और हाथोंमें कंगन बहुत ही अच्छे लग रहे हैं॥३॥ उनकी ठोड़ी, नाक और गाल बहुत सुन्दर हैं। उनके माथेपर तिलक लगा है।

१. शृंगार रूपी तालबसे उत्पन्न। २. बच्चा। ३. गोरोचन : गौके मूत्र, पित्त या सिरसे उत्पन्न सुगन्धित पदार्थ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चारु चिबुक नासिका कपोल भाल तिलक, भ्रुकुटि, स्रवन अधर सुंदर, द्विज-छबि[1] अनूप न्यारी
मनहुँ अरुन कंज-कोस मंजुल जुग पाँति प्रसव, कुंद-कली जुगल-जुगल परम सुभ्र वारी ॥४॥
चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली[2], बनी, बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी ।
इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि हरषि-हरषि, लै उछंग जननी रस-भंग जिय बिचारी॥५॥
जा-कहँ सनकादि, संभु, नारदादि, सुक, मुनींद्र करत बिबिध जोग, काम-क्रोध-लोभ जारी ।
दसरथ-गृह सो उदार, भंजन संसार-भार, लीला अवतार 'तुलसिदास'-त्रासहारी ॥५॥ (२५)

राग कान्हरा

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए ।
नील-जलज-तनु-स्याम राम-सिसु, जननि निरखि मुख निकट बुलाए ॥ १ ॥
बंधुक[3]-सुमन-अरुन पद-पंकज, अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए ।
नूपुर जनु मुनिवर-कलहंसनि रचे नीड़, दै बाँह बसाए ॥ २ ॥
कटि मेखल, बर हार, ग्रीव दर[4], रुचिर बाँह भूषन पहिराए ।
उर श्रीबत्स, मनोहर हरि-नख, हेम-मध्य मनिगन बहु लाए ॥ ३ ॥
सुभग चिबुक, द्विज अधर, नासिका, स्रवन, कपोल, मोहिं अति भाए ।
भ्रू सुंदर करुनारस-पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जल-जाए ॥ ४ ॥

उनकी भौंहें, कान और उनके ओंठोंके भीतर उनके बड़े अनोखे और निराले दाँत हैं मानो लाल-कमलके कोशमें बहुत सफेद दो-दो कुन्दकी कलियोंकी दुहरी पंक्ति निकल पड़ी हो ॥४॥ उनके चिकने घुँघराले बाल ऐसे लग रहे हैं मानों भौंरोंकी पंगत आ बैठी हो । उन बालकोंका किलकारी मारना ही मानो भौंरोंका विशेष गुञ्जार है । एकटक होकर अपनी परछाईं देखकर भगवान् प्रसन्न हो-होकर पुलकित हुए जा रहे हैं । कुछ रसभंग हो जानेके भयसे (कि परछाईं देखकर कहीं डर न जायँ) माताने उन्हें गोदमें उठा लिया ॥ ५ ॥ जिनको सनक आदि ऋषि, शंकर, नारद, शुकदेव और अनेक बड़े-बड़े मुनि काम, क्रोध और लोभ छोड़कर अनेक प्रकारके योग-साधन करके भी नहीं प्राप्त कर पाते उन्हीं संसारका भार दूर करने और तुलसीदासका भय मिटा डालनेवालेने उदार रामने राजा दशरथके घरमें लीला करनेके लिये अवतार आ लिया है ॥ ६ ॥ (२५)

घुटनोंके बल राम आँगनमें चल-फिर रहे हैं । सुन्दर नीले कमलके समान श्याम शरीरवाले बालक रामका मुँह देखकर माताने उन्हें अपने पास बुला लिया ॥ १ ॥ उनके चरण-कमल गुल-दुपहरियाके समान लाल हैं, जिनमें बना हुआ मुख्य अंकुशका चिह्न बड़ा प्यारा लग रहा है । उनकी पैंजनीके घुँघरू बजते हुए ऐसे लग रहे हैं मानो श्रेष्ठ मुनिरूपी कलहंसोंको रामने अपनी बाँहका सहारा देकर (पालकर) नूपुर (पैंजनी)-के घोंसले बनाकर उनमें ला बसाया हो ॥ २ ॥ उनकी कमरमें तगड़ी, शंखके समान गलेमें सुन्दर हार और सलोनी भुजाओंपर भुजबंद (बिजायट आदि) आभूषण सजे हुए हैं । उनकी छातीपर श्रीवत्सका चिह्न और सुन्दर बघनखा है जो बहुतसे रत्नोंसे जड़े सोनेका बना हुआ है ॥ ३ ॥ उनकी सुन्दर ठोड़ी, दाँत, ओठ, नाक, कान और गाल मुझे बड़े प्यारे लग रहे हैं । उनकी

१. द्विज-छबि=दाँतोंकी शोभा । २. षडंघ्रि-मंडली=भौंरोंकी पंक्ति । ३ बंधूक=गुल दुपहरिया (छोटा लाल फूल जो दोपहरमें खिलता है) । ४. दर=शंख ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल-दसा-के चिबुक सुहाए।
मनु दोउ गुरु, सनि-कुज आगे करि, ससिहि मिलन तमके गन आए ॥ ५ ॥
उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत उढ़ाए।
नील जलद-पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए ॥ ६ ॥
अंग - अंग - पर मार-निकर मिलि, छबि-समूह लै लै जनु छाए।
'तुलसिदास' रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं, जौ बिधि होहिं बनाए ॥ ७ ॥ (२६)

राग केदारा

रघुबर - बाल - छबि कहौं बरनि।
सकल सुख - की सींव, कोटि - मनोज - सोभा - हरनि ॥ १ ॥
बसी मानहुँ चरन - कमलनि, अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर, किंकिनी मन हरति रुनझुन - करनि ॥ २ ॥
मंजु, मेचक, मृदुल तनु, अनुहरति भूषन - भरनि।
जनु सुभग सिंगार - सिसु - तरु, फल्यो अदभुत फरनि ॥ ३ ॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ॥ ४ ॥
लसत कर प्रतिबिंब मनि - आँगन घुटुरुअनि चरनि।
जलज-संपुट सुछबि भरि - भरि, धरनि जनु उर धरनि ॥ ५ ॥

सुन्दर भौंहें करुण रस (दया)-से पूर्ण हैं और नेत्र मानो दो खिले हुए कमल हों ॥ ४ ॥ उनके चौड़े मस्तकपर दोनों ओर (पोखराजकी) लड़ियाँ हैं और बचपनकी लाल-लाल ठोड़ी बड़ी प्यारी लग रही है मानो अंधकारका समूह (केश), दो-दो गुरु (पोखराजकी लड़ियों), शनि (नेत्र) और मंगल (ठोड़ी)-को आगे करके चन्द्रमा (मुख)-से मिलने चला आया हो ॥ ५ ॥ और जब माताने बालकको पीताम्बर उढ़ा दिया तब तो एक विचित्र उपमा प्रकट हो गई कि काले-काले बादल (केशों)-पर स्वभावके विरुद्ध तारे (मोतीकी लड़ियाँ) खिले देखकर बिजलीने उस अस्वाभाविकताको जा छिपाया हो ॥६॥ कामदेवोंके झुंडने एक साथ मिलकर उनके अंग-अंगपर मानो शोभाका समूह ला छाया है। तुलसीदास कहते हैं कि रामके रूप और गुणोंका वर्णन तो मैं तब करूँ जब उन्हें विधाताने बनाया हो (उनके रूप और गुणोंकी रचना विधाताने नहीं की, वरन् वे तो स्वयंभू और शाश्वत हैं, अतः उनके रूप और गुण भी 'स्वयंभू' हैं, विधि-रचित नहीं) ॥ ७ ॥ (२६)

मैं रामकी उस बाल-छबिका वर्णन कर रहा हूँ जिससे बढ़कर कोई सुख हो नहीं सकता और जो करोड़ों कामदेवोंकी शोभा भी हरे ले डाल रही है ॥ १ ॥ (उनके चरण-कमल ऐसे लाल हैं) मानो ललाई, सूर्यको छोड़कर, उनके चरण-कमलोंमें आ बसी हो। सुन्दर पैंजनी और करधनीकी रुनझुन मनको चुराए ले रही है ॥ २ ॥ उनके आभूषण भी उन्हींके कोमल श्याम शरीरके ही अनुरूप लग रहे हैं मानो सुन्दर शृंगार रसके सजे हुए छोटे-से पौधे में अद्भुत फल आ फले हों ॥ ३ ॥ उनकी भुजाओंने सर्पोंकी, नेत्रोंने कमलोंकी और मुखने चन्द्रकी सारी शोभा जीत धरी है, जिसके डरके मारे सर्प तो गुफाओंमें, कमल भी पानीमें और चन्द्रमा भी आकाशमें जा छिपे ॥ ४ ॥ घुटनोंके बल चलनेपर रत्न-जटित आँगनमें उनके हाथोंकी परछाईं ऐसी लगती है मानो पृथ्वी उनकी सुन्दर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुन्य-फल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथ - घरनि।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ॥ ६ ॥ (२७)

नैकु बिलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको, दिये कर नृप - घरनि ॥ १ ॥
बाल - भूषन - बसन, तन सुंदर रुचिर रज-भरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि-गिरि परनि ॥ २ ॥
झुकनि, झाँकनि, छाँह - सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि, मोहिनी मन - हरनि ॥ ३ ॥
सखि - बचन सुनि, कौसिला लखि, सुढर पासे ढरनि।
लेति भरि - भरि अंक, सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि ॥ ४ ॥
चरित निरखत बिबुध 'तुलसी' ओट दै जल - धरनि।
चहत सुर सुरपति भयो, सुरपति भयो चह तरनि ॥ ५ ॥ (२८)

राग जयतश्री

भूमितल भूप - के बड़े भाग।
राम, लखन, रिपु-दमन, भरत सिसु निरखत अति अनुराग ॥ १ ॥
बाल - बिभूषन लसत पाँय मृदु मंजुल अंग - बिभाग।
दसरथ - सुकृत - मनोहर - बिरवनि रूप-करह जनु लाग ॥ २ ॥

छबिको कमलके सम्पुटों में भर-भरकर अपने हृदयमें उँडेले जा रही हो ॥५॥ राजा दशरथकी महारानी (कौशल्या) अपने बेटे (राम)-को देखकर यह समझ रही हैं मानो मुझे अपने पुण्योंका फल मिल गया हो। तुलसीदासके हृदयमें प्रभुकी किलकारी और उनका लड़खड़ाकर चलना ज्यों-का-त्यों आ बसा है ॥ ६ ॥ (२७)

(कोई सखी कौशल्यासे कह रही है—) 'अरी महारानी! टुक इन रघुवीरों (बालकों)-की ओर देखो तो सही! शंकरने (बालकोंके रूपमें) तुम्हें चारों पदार्थ ला दिए हैं ॥१॥ तुम इनके बालोचित वस्त्र, आभूषण, अपने सुन्दर शरीरमें रुचिपूर्वक धूल लपेट लेना, आँगनमें परस्पर खेलना-कूदना, उठ-चलना और फिर गिर-गिर पड़ना, ॥ २ ॥ झुकना, उठकर झाँकना, परछाईं देखकर किलकना, नाचना, हठ करके लड़ना, तोतली बोली बोलना तथा मन हरनेवाली इनकी मोहिनी चितवन तो आकर देखो' ॥ ३ ॥ सखीके ये वचन सुनकर कौशल्याने समझ लिया कि मेरा दाँव अच्छा पड़ा है (मैं भाग्यशालिनी हूँ)। इसलिये वे रामको बार-बार छातीसे लिपटाए लेती हैं मानो अपने जीते हुए दाँवका धन दोनों हाथोंसे समेटे ले रही हों। तुलसीदास कहते हैं कि बादलोंकी ओटमें खड़े देवता यह चरित्र देख रहे हैं और (बराबर देखते रहनेकी इच्छासे) वे देवता तो (अनेक आँखोंवाले) इन्द्र बन जाना चाहते हैं और इन्द्र (अगणित किरणोंवाले) सूर्य बन जाना चाहते हैं ॥ ५ ॥ (२८)

इस पृथ्वीतलपर राजा दशरथ बड़े भाग्यशाली हैं कि वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चारों बच्चोंको बड़े प्रेमसे निहारे जा रहे हैं ॥१॥ उनके पैरों तथा सुन्दर अंग-प्रत्यंगमें जो यथा-स्थान बच्चोंके गहने पहना दिए गए हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महाराज दशरथके पुण्यके पौधोंमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राज - मराल बिराजत, बिहरत, जे हर - हृदय - तड़ाग।
ते नृप - अजिर जानु-कर धावत, धरन चटक चल काग ॥ ३ ॥
सिद्ध सिहात, सराहत मुनिगन, कह सुर, किन्नर, नाग।
'ह्वै बरु बिहँग बिलोकिय बालक, बसि पुर, उपबन, बाग' ॥ ४ ॥
परिजन - सहित राय - रानिन किय मज्जन प्रेम-प्रयाग।
'तुलसी' फल ताके चाख्यो मनि मरकत, पंकज-राग ॥ ५ ॥ (२९)

राग आसावरी

खँगन - मँगन अँगना खेलत चारु चारयो भाई।
सानुज भरत लाल लखन राम लोने लोने,
लरिका लखि मुदित मातु - समुदाई ॥ १ ॥
बाल - बसन - भूषन धरे नखसिख छबि छाई।
नील पीत मनसिज - सरसिज मंजुल,
मालनि मानो है देहनि - तें दुति पाई ॥ २ ॥
ठुमुक - ठुमुक पग धरनि, नटनि, लरखरनि सोहाई।
भजनि, मिलनि, रूठनि, तूठनि, किलकनि,
अवलोकनि, बोलनि बरनि न जाई ॥ ३ ॥

सौन्दर्यके कल्ले फूट निकले हों ॥२॥ जो (राम) राजहंस बनकर शंकरके हृदयके तडागमें विहार करते हैं, वे ही इस समय चुलबुले कौएको पकड़नेके लिये महाराज दशरथके आँगनमें घुटनों और हाथोंके बल झपट रहे हैं ॥३॥ (यह दृश्य देखकर) यह सुख पानेके लिये सिद्ध लोग तरसे पड़ रहे हैं और मुनिगण राजाके भाग्यकी सराहना कर रहे हैं। देवता, किन्नर और नाग कह रहे हैं कि 'कितना अच्छा होता कि हम भी पक्षी होकर महाराजके नगर, उपवन और बगीचोंमें रहकर इन बालकोंको यों ही बैठे निहारा करते' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि महाराज दशरथ और रानियोंने अपने परिवार-सहित मानो प्रेमके प्रयागमें स्नान जा किया है क्योंकि ये पन्नेके रंगवाले (राम, भरत) और पोखराजकी-सी आभावाले (लक्ष्मण-शत्रुघ्न) चारों बालक उसी पुण्यके ही फल हैं ॥ ५ ॥ (२९)

चारों सुन्दर भाई आनन्दमें मग्न होकर आँगनमें खेल रहे हैं। भरत और उनके छोटे भाई शत्रुघ्न तथा राम और लक्ष्मण—इन चारों सुन्दर बालकोंको देखकर माताएँ आनन्दित हुई जा रही हैं ॥ १ ॥ वे बालकोंके योग्य वस्त्र और आभूषण पहने हुए हैं, जिससे वे नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक बड़े अच्छे लग रहे हैं। (ऐसा जान पड़ता है) मानो कामदेवके कोमल नीले और पीले सुन्दर-सुन्दर कमलोंकी मालाओंने इन्हींके शरीरसे ही सुन्दरता पाई हो ॥ २ ॥ उनका ठुमुक-ठुमुककर पैर धरना, नाचना, लड़खड़ाना, भाग जाना और फिर आकर मिलना, रूठना, प्रसन्न होना, किलकना, देखना और बोलना—ऐसा सुहावना लग रहा है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जननि सकल चहुँ ओर आलबाल मनि - अँगनाई।
दसरथ - सुकृत बिबुध - बिरवा बिलसत,
बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई॥ ४॥
हरि बिरंचि हर हेरि राम प्रेम - परबसताई।
सुख - समाज रघुराज - के बरनत,
बिसुद्ध मन सुरनि सुमन झरि लाई॥ ५॥
सुमिरत श्रीरघुबरन - की लीला लरिकाई।
'तुलसिदास' अनुराग अवध आनँद,
अनुभवत तब - को - सो अबहुँ अघाई॥ ६॥ (३०)

राग बिलावल

आँगन खेलत आनँदकंद। रघुकुल - कुमुद चारु सुख चंद।
सानुज - भरत - लखन-सँग सोहैं। सिसु - भूषन - भूषित मन मोहैं।
तन-दुति मोरचंद-जिमि झलकैं। मनहु उमँगि अँग-अँग छबि छलकैं॥ १॥
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं। पंकज - पानि पहुँचियाँ राजैं।
कठुला कंठ, बघनहा नीके। नयन-सरोज मयन-सरसी-के॥ २॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं। दमकति द्वै-द्वै दँतुरियाँ रूरीं।
मुनि - मन हरत मंजु मसि - बुंदा। ललित बदन, बलि, बालमुकुंदा॥ ३॥

राजभवनके मणि-जड़े आँगनके आलवाल (थाले) में दशरथके पुण्यके कल्पतरु (चारों भाइयों)-का बढ़ता देखकर मानो विधाताने सभी माताओंको सुन्दर बाड़ बनाकर घेर दिया है ॥ ४॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवने भी जब देखा कि राम प्रेमके वशमें रहते हैं तो वे विशुद्ध मनसे राजा दशरथके सुखोंका वर्णन करते रहते हैं और देवता उनपर फूलोंकी वर्षा करते हैं॥ ५॥ रघुकुलमें श्रेष्ठ उन चारों बालकोंकी बाल-लीलाओंका स्मरण करके तुलसीदास भी उस समयकी भाँति अब भी अयोध्यामें अघाकर (छककर) प्रेम और आनन्दका रस ले रहे हैं॥ ६॥ (३०)

रघुकुल-रूपी कुमुदको सुख देनेवाले सुन्दर चन्द्रमा-रूपी आनन्दकंद राम आँगनमें खेल रहे हैं। उनके साथ शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण भी शोभा दे रहे हैं। बालोचित आभूषणोंसे सजे हुए वे मनको मोहित किए डाल रहे हैं। उनके शरीरकी दमक मोर-पंखके समान ऐसी झिलमिला रही है मानो उमंगके कारण उनके प्रत्येक अंगकी छबि छलकी पड़ रही हो॥ १॥ उनकी कमरमें करधनी और पाँवोंमें पैंजनी बज रही है। कमलके समान उनके हाथोंमें पहुँचियाँ बहुत शोभा दे रही हैं। उनके कंठमें कठुला और छातीपर व्याघ्रका नख बड़ा अच्छा लग रहा है। उनके कमल-जैसे नेत्रतो ऐसे लगते हैं मानो कामदेवके ही तालसे उत्पन्न हुए हों॥२॥ उनके माथेपर लटोंमें गुंथी लटकी हुई मोतीकी लड़ियाँ शोभा दे रही हैं और (नीचे-ऊपर) बड़ी ही सुन्दर दो-दो दँतुलियाँ चमक रही हैं। सुन्दर काजलका बुन्दा (डिठौना) तो मुनियोंके मन भी हरे ले रहा है। ऐसे बालमुकुन्दके सुन्दर मुखपर बलिहारी जाता हूँ॥ ३॥ उनकी रंग-बिरंगी टोपी और झँगुली (ढीला कुरता)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुलही चित्र - विचित्र झँगूली। निरखत मातु मुदित मन फूली।
गहि मनि - खंभ, डिंभ डगि डोलत। कलबल बचन तोतरे बोलत॥ ४॥
किलकत, झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। देत परम सुख पितु अरु अंबनि।
सुमिरत सुषमा हिय हुलसी है। गावत प्रेम-पुलकि 'तुलसी' है॥ ५॥ (३१)

राग कान्हरा

ललित सुतहि लालति सचु पाए।
कौसल्या कल कनक अजिर-महँ, सिखवति चलन अँगुरिया लाए॥ १॥
कटि किंकिनी पैंजनी पाँयनि, बाजति रुनझुन मधुर रेंगाए।
पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरि-नख मनि-जरित जराए॥ २॥
पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सुहाए।
दँतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुख-छबि, अरुन अधर चित लेत चुराए॥ ३॥
चिबुक, कपोल, नासिका सुंदर, भाल तिलक मसि - बिंदु बनाए।
राजत नयन मंजु अंजन - जुत, खंजन - कंज - मीन - मद नाए॥ ४॥
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी[1] सुभग सुदेस सुभाए।
किलकि-किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाए॥ ५॥

देखकर माता आनन्दके मारे मनमें फूली नहीं समाती। ये बच्चे मणियोंके खंभे पकड़कर डगमगाते चल रहे हैं और तुतलाते हुए तोतले वचन बोल रहे हैं॥ ४॥ जब वे झुककर झाँकते हुए अपनी परछाईं देखकर किलक उठते हैं, तब उनके पिता-माताको बड़ा सुख प्राप्त होता है। उस शोभाका स्मरण करके ही हृदय उल्लाससे भर उठता है। तुलसीदास भी प्रेममें पुलकित होकर उनका गान किए जा रहे हैं॥ ५॥ (३१)

माता कौशल्या अपने लालका लाड़ लड़ा रही हैं। वे पपने सुन्दर सोनेके आँगनमें उँगली पकड़कर उन्हें चलना सिखा रही हैं॥ १॥ उनके रगने (घुटनोंके बल चलने)-पर कमरकी करधनी और पैरोंकी पैंजनी रुनझुन बजती हुई बड़ी प्यारी लग रही है। उनके हाथोंमें पहुँची, कंठमें कठुला और व्याघ्रनखमें जड़े हुए रत्न बड़े अच्छे लग रहे हैं॥२॥ उनके सुन्दर साँवले शरीरपर पीली पवित्र और विचित्र ढंगकी झँगुलिया शोभा दे रही है। दो-दो छोटी-छोटी दँतुलियोंसे उनके मुखड़ेकी छबि और भी बढ़ गई है और लाल-लाल ओठ तो जैसे चित्त चुराए ले रहे हैं॥ ३॥ उनकी ठोड़ी, गाल, नाक, और माथेपर सुन्दर ढंगसे लगा हुआ काजलका डिठौना सब बड़े सुन्दर लग रहे हैं। काजल लगे हुए उनके सुन्दर नेत्र तो खंजन, कमल और मछलीका मद भी झाड़े डाल रहे हैं॥ ४॥ उनके माथेपर मोतीकी लड़ियाँ लटक रही हैं, भौंहे बाँकी हैं और गुँथी हुई सुन्दर चोटी बड़ी प्यारी लग रही है। वे चुटकी सुन-सुनकर किलक-किलककर नाचने लगते हैं और जब वे हाथ छुड़ा लेते हैं तो माता (उनके गिर पड़ने भयसे) डर जाती है॥ ५॥ वे गिर पड़नेपर घुटने टेककर उठ खड़े होते

१. तीन लड़ियोंवाली चोटी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गिरि, घुटुरुवनि टेकि उठि, अनुजनि, तोतरि बोलत, पूप देखाए।
बाल - केलि अवलोकि मातु सब, मुदित, मगन, आनँद न अमाए ॥ ६ ॥
देखत नभ घन - ओट चरित मुनि, जोग-समाधि-बिरति बिसराए।
'तुलसिदास' जे रसिक न ऐहि रस, ते जन जड़ जीवत जग जाए ॥ ७ ॥(३२)

राग ललित

छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख-जोती मोती मानो कमल-दलनि-पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुक - ठुमुक चलैं, झुँझुनु-झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर ॥ १ ॥
किंकिनी कलित कटि हाटक जटिल मुनि, मंजु कर - कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झँगुली झीनी साँवरे सरीर खुली, बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर ॥ २ ॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले केस, सेंड़ी लटकन मसिबिंदु मुनि मन - हर।
अंजन-रंजित नैन, चित चोरे चितवनि, मुख-सोभा-पर वारौं अमित असम - सर ॥ ३ ॥
चुटकी बजावति, नचावति कौसल्या माता, बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम-भर।
किलकि-किलकि हँसैं, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं, 'तुलसी'-के मन बसैं तोतरे बचन बर ॥४॥(३३)

हैं और जब माता पूआ दिखाती हैं तब तोतली बोलीसे अपने छोटे भाइयोंको बुलाने लगते हैं। इस प्रकार-की बाल-लीलाएँ देख देखकर सब माताएँ आनन्दसे ऐसी मग्न हो रही हैं कि उनके हृदयमें आनन्द समा नहीं पा रहा है ॥ ६ ॥ मुनि लोग भी योग, समाधि और वैराग्य भूलकर बादलकी ओटसे यह सब चरित्र देख रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जो इस रसके रसिक नहीं है (इस रसका स्वाद नहीं जानते) वे मूर्ख इस संसारमें व्यर्थ ही जिए जा रहे हैं ॥ ७ ॥ (३२)

नन्हें-नन्हें पाँवोंमें नन्हीं-नन्हीं सुन्दर उँगलियाँ हैं जिनके नखोंकी चमक तो ऐसी है मानो कमलकी पँखड़ियोंपर मोती ला टाँके गए हों। जब वे सुन्दर आँगनमें खेलते और ठुमुक-ठुमुककर चलते तब उनके पाँवोंकी पैंजनीसे झुनझुन-झुनझुन झनकार होने लगती है ॥ १ ॥ उनकी कमरमें रत्न-जटित सोनेकी सुन्दर करधनी पड़ी है। कमलके समान उनके कोमल हाथोंमें बड़ी सुन्दर पहुँचियाँ बँधी हैं। उनके साँवले शरीरपर बहुत झीनी पीली झिंगुली (कुर्त्ती) ऐसी शोभा दे रही है मानो छोटेसे काले बादलपर हलकी-सी बिजली उढ़ा दी गई हो ॥ २ ॥ उनकी छातीपर बघनघा और कंठमें कठुला पड़ा है, सिरके घने बालोंकी चोटियाँ गुँथी हुई हैं और माथेपर मोतीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। उनके माथेपर लगा हुआ काजलका टीका (डिठौना) तो मुनियोंका चित्त भी चुराए डाल रहा है। उनकी आँखोंमें काजल लगा हुआ है। उनकी चितवन चित्त चुराए ले रही है। उनके मुखकी छबिपर मैं अनेक कामदेवोंको न्योछावर किए डालता हूँ ॥ ३ ॥ माता कौशल्या चुटकी बजा-बजाकर रामको नचा रही हैं और प्रेममें भरी हुई बाललीला गा-गाकर दुलरा रही हैं। जब राम किलक-किलककर हँसते हैं तब उनकी दो-दो दँतुलियाँ चमकती हुई बड़ी प्यारी लगती हैं। उनकी सुन्दर तोतली बोली तो तुलसीदासके मनमें ही आ बसी है ॥ ४ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग ललित

सादर सुमुखि बिलोकि राम-सिसु, रूप अनूप भूप लिऐ कनियाँ।
सुंदर स्याम सरोज-बरन तनु, नख - सिख सुभग सकल सुखदनियाँ ॥ १ ॥
अरुन चरन नख-जोति जगमगति, रुनझुन करति पाँय पैंजनियाँ।
कनक-रतन-मनि-जटित रटति कटि किंकिनि, कलित पीतपट-तनियाँ ॥ २ ॥
पहुँची करनि, पदिक, हरि-नख उर, कठुला कंठ, मंजु गज-मनियाँ।
रुचिर चिबुक, रद-अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ ॥ ३ ॥
बिकट भ्रुकुटि, सुषमा-निधि आनन, कल कपोल, काननि नग-फनियाँ।
भाल तिलक, मसि-बिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ ॥ ४ ॥
मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन-हरनि हँसनि किलकनियाँ।
बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ ॥ ५ ॥
सुनि कुल-बधू झरोखनि झाँकति, रामचंद्र - छबि चंद्र-बदनियाँ।
'तुलसिदास' प्रभु देखि मगन भइ, प्रेम-बिबस कछु सुधि न अपनियाँ ॥ ६ ॥(३४)

राग बिलावल

सोहत सहज सुहाए नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तब, जब उपमा चाहत कवि दैन ॥ १ ॥

[कोई सखी कहती है—] 'अरी सुन्दरी ! राजा दशरथ आज रामको गोदमें लिए बैठे हैं, तू चलकर उनके मनोहर बाल-रूपको आदरसे देख तो आ। उनका शरीर सुन्दर नील कमलके समान सांवला है। वे नखसे शिखतक बड़े ही सुन्दर हैं और सब सुख ही सुख दे डाल रहे हैं ॥१॥ उनके लाल-लाल चरणोंके नखोंकी चमक जगमग-जगमग कर रही है और पाँवकी पैंजनियाँ तो रुनझुन-रुनझुन बज ही रही हैं, उनकी कमरकी सोनेकी रत्न-जटित करधनी भी बज रही है। उनके शरीरपर सुन्दर पीताम्बर शोभा दे रहा है ॥ २ ॥ उनके हाथोंमें पहुँची, छातीपर पदिक और बघनखा, कंठमें कठुला और सुन्दर गजमुक्ता शोभा दे रहा है। उनकी ठोड़ी सुन्दर है, ओठ और दाँत बड़े मनोहर हैं और सुन्दर नाकमें नथुनी शोभा दे रही है ॥ ३ ॥ प्रभु रामकी बाँकी भौंहें और उनका मुखड़ा तो शोभाका भांडार है। उनके गाल बड़े सुन्दर हैं और उनके कानोंमें नाग-फणी (एक प्रकारका कुण्डल) शोभा दे रहा है। उनके माथेपर तिलक और काजलका टीका (डिठौना) लगा हुआ है तथा सिरपर लाल चौकोर टोपी शोभा दे रही है ॥ ४ ॥ मनको मोहनेवाली उनकी तोतली बोली, किलककर हँसना तो मुनियोंका मन भी हरे ले डाल रहा है। उनका बाल-सुलभ चंचल नेत्रोंसे देखना तो और भी चित्त चुराए डालता है' ॥ ५ ॥ यह सुनकर चन्द्रमुखी कुलबधुएँ झरोखोंमें बैठी रामकी छबि निहारे जा रही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि वे रामको देखकर ऐसी प्रेममें पागल हो गईं कि उन्हें अपनी कुछ सुधबुध-तक न रह गई ॥ ६ ॥

रामके सुन्दर नेत्र स्वभावसे ही बड़े रसीले हैं। जब-जब कवि उन नेत्रोंकी उपमा देना चाहता है, तब-तब खंजन, मछली और कमल सब लजा बैठते हैं ॥ १ ॥ रामके सब अंगोंपर बालोचित

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुंदर सब अंगनि सिसु - भूषन, राजत जनु सोभा आऐ लैन।
बड़ो लाभ, लालची लोभ-बस, रहि गे लखि सुषमा बहु मैन ॥ २ ॥
भोर भूप लिऐ गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन।
बालक - रूप अनूप राम - छबि, निवसति तुलसिदास-उर-ऐन ॥ ३ ॥(३५)

राग बिभास

भोर भयो, जागहु रघुनंदन ! गत-व्यलीक - भगतनि-उर-चंदन ॥ १ ॥
ससि कर-हीन, छीन-दुति तारे। तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ॥ २ ॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने। लै पराग - रस मधुप उड़ाने ॥ ३ ॥
अनुज-सखा सब बोलनि आए। बंदिन अति पुनीत गुन गाए ॥ ४ ॥
मनभावतो कलेऊ कीजै। तुलसिदास - कहँ जूठनि दीजै ॥ ५ ॥ (३६)

राग बिभास

प्रात भयो तात, बलि, मातु, बिधु बदन - पर मदन वारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे !
सूत - मागध - बंदी बदत बिरुदावली, द्वार सिसु, अनुज, प्रियतम तिहारे ॥१॥
कोक गत - सोक अवलोकि ससि छीन - छबि, अरुनमय गगन राजत रुचिर तारे।
मनहुँ रवि - बाल-मृगराज तम - निकर-करि दलित, अति ललित मनिगन बिथारे ॥२॥

आभूषण ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो उनसे शोभा लेनेके लिये लालची कामदेव वहाँ आ पहुँचा हो और बहुत लाभ देखकर वह अनेक रूप धारण करके लोभवश वहीं आ टिका हो ॥ २ ॥ प्रातःकाल राजा दशरथ रामको गोदमें लिए उनका मुँह देखते रहते हैं और उनके सुन्दर (तोतले) वचन सुनते रहते हैं। वही बाल रामकी अनुपम छबि तुलसीदासके हृदय-मन्दिरमें भी आन बसी है ॥ ३ ॥ (३५)

(कौशल्या कहती हैं—) उठो रघुनन्दन ! सवेरा हो गया। तुम निश्छल भक्तोंके हृदयके चन्दन हो (चन्दनके समान हृदयको शीतल करनेवाले हो) ॥ १ ॥ मेरे लाड़ले ! देखो चन्द्रमाका प्रकाश फीका पड़ने लगा है। तारोंकी चमक धुँधली पड़ने लगी, मुर्गे बोलने लगे ॥ २ ॥ कमल खिलने लगे, कुमुद सकुचाने लगे और भौंरे परागसे रस ले-लेकर उड़ने लगे हैं ॥ ३ ॥ तुम्हारे छोटे भाई और सखा सब बुलाने आ गए हैं और बंदीजन तुम्हारे पवित्र गुण गाए जा रहे हैं ॥ ४ ॥ अब जो तुम्हें भावे वह कलेवा कर लो और अपनी जूठन (प्रसादके रूपमें) तुलसीदासको दे दो ॥ ५ ॥ (३६)

(माता कहने लगी—) 'उठो बेटा ! सवेरा हो गया। माता तुम्हारे चन्द्रमुखपर बलि जाती है। उठो प्राण-प्यारे ! उठो। तुमपर करोड़ों कामदेव निछावर किए डालती हूँ। देखो, सूत, मागध और बन्दीजन तुम्हारी विरुदावली गाए चले जा रहे हैं। तुम्हारे द्वारपर तुम्हारे प्यारे भाई और साथी बालक आए खड़े हैं ॥१॥ चन्द्रमाकी चमक फीकी देखकर चकवे प्रसन्न हो चले हैं और लाल आकाशमें थोड़ेसे सुन्दर तारे छिटके हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो बालसूर्य-रूपी सिंहने घने अन्धकार-रूपी हाथीको पछाड़कर सुन्दर मणियों (गजमुक्ता)-के ढेर ला बिखेरे हों ॥ २ ॥ सुनो रघुवंश-मणि ! मुर्गे, सुग्गे, हंस,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनहु तमचुर मुखर, कीर - कलंहस - पिक - केकि - रव कलित, बोलत बिहंग-बारे।
मनहुँ मुनिवृन्द, रघुबंसमनि! रावरे, गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे ॥३॥
सरनि बिकसित कंज - पुंज मकरंद बर, मंजुतर मधुर मधुकर गुँजारे।
मनहुँ प्रभु - जन्म सुनि चैन अमरावती, इंदिरानंद - मंदिर सँवारे ॥४॥
प्रेम-संमिलित बर बचन-रचना अकनि, राम राजीव लोचन - उघारे।
'दास तुलसी' मुदित, जननि करै आरती, सहज सुंदर अजिर पाँव धारे ॥५॥ (३७)

जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र! जननि कहै बार-बार, भोर भयो प्यारे।
राजिवलोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल, ललित कमल-बदन-उपर मदन कोटि वारे ॥१॥
अरुन उदित, बिगत सर्वरी, ससांक किरन-हीन, दीन दीप जोति, मलिन-दुति समूह-तारे।
मनहुँ ज्ञान-घन प्रकास, बीते सब भव-बिलास आस-त्रास-तिमिर-तोम-तरनि तेज जारे ॥२॥
बोलत खग-निकर मुखर मधुर, करि प्रतीत सुनहु स्रवन, प्रान-जीवन धन मेरे तुम बारे।
मनहुँ बेद बंदी, मुनिवृंद सूत-मागधादि, बिरुद बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥३॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक, गुंजत कल कोमल धुनि, त्यागि कंज न्यारे।
जनु बिराग पाइ सकल-सोक-कूप-गृह बिहाइ, भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥४॥

कोयल और मोर प्यारी-प्यारी बोलियाँ बोल रहे हैं और छोटे-छोटे चिड़ियोंके बच्चे बैठे चहचहा रहे हैं मानो अपने परिवारके साथ मुनि लोग अपने-अपने आश्रमोंमें आपके गुणोंका वर्णन कर रहे हों ॥ ३ ॥ तालाबोंमें कमल खिल उठे हैं, उनका मधुर मकरन्द पीनेके लिये बहुत ही मनोहर भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं, मानो प्रभुका जन्म सुनकर इन्द्रलोकमें उत्सव हो रहा हो और लक्ष्मीने (वैकुण्ठमें) अपना आनन्द-मन्दिर सजा धरा हो' ॥ ४ ॥ माताकी यह प्रेम-भरी मनोहर वाणी सुनकर रामने अपने नयन-कमल खोल दिए। तुलसीदास कहते हैं कि जिस समय स्वभावसे ही सुन्दर रामने आँगनमें पाँव रक्खे उस समय माता प्रसन्न होकर उनकी आरती उतारने लगी ॥ ५ ॥ (३७)

माता बार-बार (रामको जगाती हुई) कहती है—'सुजान राम! कृपानिधान राम! उठो! प्यारे! दिन निकल आया। तुम कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले तथा प्रेमकी बावड़ीके हंस हो। तुम्हारे सुन्दर मुखड़ेपर करोड़ों कामदेव निछावर हैं ॥ १ ॥ देखो, आकाशमें ललाई छा गई, रात ढल गई, चन्द्रमा धुँधला पड़ चला, दीवेका प्रकाश भी मंदा पड़ गया और तारोंकी चमक भी फीकी पड़ चली है मानो घने ज्ञानके प्रकाशसे सभी सांसारिक विलास ठंढे पड़ गए हों और आशा-रूपी भयके अँधेरेको सन्तोषके सूर्यके तेजने भस्म कर डाला हो ॥ २ ॥ मेरे प्राण और जीवनके धन! मेरे बच्चे! कान लगाकर सुनो। देखो, ये जो पक्षी मधुर-मधुर बोल रहे हैं, वे मानो वेद, बन्दीजन, मुनि-वृन्द, सूत, मागध आदि 'हे कैटभारे! तुम्हारी जय हो, जय हो' यह कहते हुए तुम्हारे विरद (यश)-का बखान कर रहे हों ॥ ३ ॥ कमल खिल गए, उनमेंसे भौंरे निकल-निकल मधुर-मधुर गूँजते हुए इस प्रकार इधर-उधर उड़ चले मानो वैराग्य होनेपर तुम्हारे प्रेममें पागल सेवक सब शोकोंसे भरे कुएँके समान अपने घर छोड़-छोड़कर तुम्हारे गुणोंका वर्णन करते फिर रहे हों' ॥ ४ ॥ माताके ये प्रिय और मधुर वचन सुनते ही अत्यंत दयालु राम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल, भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे।
'तुलसिदास' अति अनंद, देखिकै मुखारबिंद, छूटे भ्रमफंद, परम मंद द्वंद भारे ॥५॥ (३८)

बोलत अवनिप-कुमार ठाढ़े नृप-भवन-द्वार, रूप-सील-गुन-उदार, जागहु मेरे प्यारे।
बिलखति कुमुदिनि-चकोर, चक्रबाक हरष भोर, करत सोर तमचुर-खग, गुंजत अलि न्यारे १
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग, संग अनुज बालक सब बिबिधि बिध सँवारे।
कर-तल गहि ललित चाप, भंजन रिपु-निकर-दाप, कटि-तट पट-पीत, तून-सायक अनियारे २
उपवन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल, जननी मुख निरखि पुन्य-पुंज निज बिचारे।
'तुलसिदास' सँग लीजै, जानि दीन अभय कीजै, दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे ॥३॥ ३९

राग नट

खेलत चलिये आनँदकंद।
सखा प्रिय नृप-द्वार ठाढ़े, बिपुल बालक-बृंद ॥ १ ॥
तृषित तुम्हरे दरस - कारन, चतुर चातक - दास।
बपुष - बारिद बरषि छबि - जल, हरहु लोचन - प्यास ॥ २ ॥
बंधु - बचन बिनीत सुनि, उठे मनहुँ केहरि - बाल।
ललित लघु सर - चाप कर, उर - नयन - बाहु बिसाल ॥ ३ ॥

जाग उठे। तभी सारे जंजाल दूर हो मिटे तथा सब प्रकारके दुःख समाप्त हो गए। तुलसीदास कहते हैं कि रामका मुखारविन्द देखकर सभी भक्त-जन अत्यंत आनंदित हो गए। उनके सारे भ्रमसे उत्पन्न बंधन छूट गए और राग-द्वेष आदि सारी झंझटें समाप्त हो गईं ॥ ५ ॥ (३८)

राजा दशरथके राजभवनके द्वारपर खड़े हुए सब राजकुमार पुकार रहे हैं—'उदार रूप और गुणवाले! मेरे प्यारे रघुनन्दन! जागो। देखो, (चंद्रमाके अस्त हो जानेसे) कुमुदिनी और चकोर व्याकुल हुए जा रहे हैं। सवेरा हो जानेसे चकवे प्रसन्न हो उठे हैं, मुर्गे बाँग दे रहे हैं, अन्य पक्षी चहचहा उठे हैं और भौंरे गूँज रहे हैं' ॥ १ ॥ तब रामने अपनी रुचिके अनुसार मधुर कलेवा किया और सब अंगोंपर आभूषण सजा लिए। फिर अनेक प्रकारसे सजे हुए अपने भाइयों तथा अन्य बालकोंको साथ लेकर हाथमें शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाला सुन्दर धनुष लेकर, कमरेमें पीला दुपट्टा और बाणोंसे भरा हुआ तरकश लेकर, ॥२॥ परम कृपालु राम उपवनमें आखेट करने चल दिए। माताने उनका मुख देखकर अपना परम पुण्य माना। तुलसीदास कहते हैं—'नाथ! मुझे भी दीन (दुखी) जानकर अभय कर दीजिए और अपने साथ लगाए रखिए। मुझे ऐसी निर्मल बुद्धि दीजिए कि मैं बैठकर दिनरात आपके पवित्र चरित्र गाता रहा करूँ' ॥ ३ ॥ (३९)

(रामके छोटे भाई कहते हैं—) 'आनंद-कंद! चलिए अब खेलने चला जाय। आपके बहुतसे प्यारे बाल-सखा राजाके द्वारपर आए खड़े हैं ॥ १ ॥ ये चतुर चातक-रूपी भक्त आपके दर्शनोंके प्यासे हैं। आप अपने शरीरके मेघसे छबिका जल बरसाकर इनके नेत्रोंकी प्यास मिटा डालिए' ॥ २ ॥ अपने भाइयोंके ऐसे विनीत वचन सुनकर राम ऐसे उठ खड़े हुए जैसे सिंहका बच्चा ठाठसे उठता है। प्रभुकी छाती, आँखें और भुजाएँ सब बहुत विशाल हैं। वे अपने सुन्दर हाथोंमें छोटे-छोटे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चलत पद प्रतिबिंब राजत, अजिर सुषमा - पुंज।
प्रेम - बस प्रति - चरन महि, मनो देति आसन - कंज ॥ ४ ॥
निरखि परम बिचित्र सोभा, चकित चितवहिं मात।
हरष - बिबस न जात कहि, 'निज भवन बिहरहु, तात' ॥ ५ ॥
देखि 'तुलसीदास' प्रभु - छबि, रहे सब पल रोकि।
थकित निकर - चकोर मानहुँ, सरद - इंदु बिलोकि ॥ ६ ॥ (४०)

राग नट

बिहरत अवध - बीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु नव - नील - नीरद - स्याम ॥ १ ॥
तरुन अरुन - सरोज - पद बनी कनकमय पद - त्रान।
पीत पट, कटि तून बर, कर ललित लघु धनु - बान ॥ २ ॥
लोचननि - को लहत फल, छबि निरखि पुर-नर - नारि।
बसत तुलसीदास - उर अवधेस - के सुत चारि ॥ ३ ॥ (४१)

राग नट

जैसे राम ललित तैसे लोने लखन लाल।
तैसेइ भरत सील - सुषमा - सनेह - निधि तैसेइ सुभग संग सत्रु - साल ॥ १ ॥
धरे धनु-सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चाल।
अंग-अंग भूषन जराय-के जगमगत, हरत जन-के जी-को तिमिर-जाल ॥ २ ॥

धनुष और बाण लिए हुए हैं ॥ ३ ॥ आँगनमें चलते हुए रामके चरणोंकी जो अत्यन्त सुन्दरतासे भरी परछाइयाँ पड़ती हैं वे ऐसी लगती हैं मानो पृथ्वी ही बहुत प्रेमके मारे पग-पगपर कमलके आसन बिछाए दे रही हों ॥ ४ ॥ यह परम विचित्र शोभा देखकर माताएं चकित होकर उन्हें देखती रह जाती हैं। हर्षके मारे उनसे यह भी नहीं कहते बन रहा है कि 'लाल ! तुम यहीं अपने घरमें ही रहकर खेलो' ॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि उस समय प्रभुकी शोभा देखकर सब टकटकी बाँधे रह गए मानो शरत्के चन्द्रमाको देखकर चकोर टकटकी बाँधे आ खड़े हुए हों ॥ ६ ॥ (४०)

राम वहाँ अयोध्याकी गलियोंमें घूम रहे हैं। उनका शरीर नये कजरारे मेघके समान साँवला है। उनके साथ भरत आदि उनके छोटे भाई और अनके बाल सखा भी हैं ॥ १ ॥ नये लाल कमलके समान उनके पैरोंमें सुनहरी जूतियाँ बड़ी अच्छी लग रही हैं। वे अपनी कमरमें पीला दुपट्टा और तरकश कसे हुए हैं। उनके हाथोंमें सुन्दर छोटे-छोटे धनुष और बाण हैं ॥ २ ॥ नगरके स्त्री-पुरुष उनकी शोभा देख-देखकर अपने नेत्र सफल किए ले रहे हैं। अवधेशके ये चारों बालक तुलसीदासके हृदयमें तो सदा बसे ही रहते हैं ॥ ३ ॥ (४१)

जैसे राम सुन्दर हैं, वैसे ही लखन लाल भी सुन्दर हैं, वैसे ही भरत भी शील, स्नेह और शोभाके भांडार हैं और वैसे ही सुन्दर साथमें शत्रुघ्न भी हैं ॥ १ ॥ वे सब हाथोंमें धनुष-बाण लिए, कमरमें तरकश कसे, पीताम्बर ओढ़े मस्तानी चालसे चले जा रहे हैं। उनके अंग-अंगपर रत्नोंसे जड़े आभूषण जगमगा रहे हैं, जो भक्तोंके हृदयका अंधकार हरे ले रहे हैं ॥ २ ॥ शंकरके प्रेमके मानसरोवरमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खेलत चौहट्ट, हाट, बीथी, बाटिकनि प्रभु, सिव सुप्रेम-मानस-मराल।
सोभा - दान दै-दै सनमानत जाचक-जन, करत लोक-लोचन निहाल ॥ ३ ॥
'रावन-दुरित-दुख दलैं,' सुर कहैं 'आज अवध सकल सुख-को सुकाल'।
'तुलसी' सराहैं सिद्ध सुकृत कौसल्या - जूके, भूरि - भाग - भाजन भुवाल ॥ ४ ॥(४२)

राग ललित

ललित ललित लघु-लघु धनु-सर कर, तैसी तरकसी कटि, कसे पट पियरे।
ललित पनही पाँय, पैंजनी - किंकिनि - धुनि, सुनि सुख लहै मन रहै नित नियरे ॥ १ ॥
पहुँची-अंगद चारु, हृदय पदिक-हार, कुंडल - तिलक - छबि गड़ी कवि-जियरे।
सिरसि टिपारो लाल, नीरज - नयन बिसाल, सुंदर बदन ठाढ़े सुरतरु-सियरे ॥ २ ॥
सुभग सकल अंग, अनुज-बालक संग, देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे।
खेलत अवध खोरि, गोली, भौंरा, चक-डोरि, मूरति मधुर बसै तुलसी-के हियरे ॥३॥ (४३)

छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी, छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी।
लसत झँगूली झीनी, दामिनी-की छबि छीनी, सुंदर बदन, सिर पगिया जरकसी ॥ १ ॥

हंस बने रहनेवाले प्रभु राम चौराहे, मार्ग, गलियों और उद्यानोंमें खेलते फिर रहे हैं, याचकोंको अपनी शोभा लुटाकर उनका सम्मान कर रहे हैं और लोगोंके नेत्र निहाल किए डाल रहे हैं ॥ ३ ॥ सब देवता कह रहे हैं—'आज अयोध्यामें तो सब प्रकारका सुखद सुकाल है, पर अब रावण-रूपी पाप और दुःखका भी नाश होना चाहिए।' तुलसीदास कहते हैं कि सिद्ध लोग भी महाभाग्यशाली राजा दशरथ और कौशल्याके पुण्योंकी सराहना किए जा रहे हैं ॥ ४ ॥ (४२)

रामके हाथोंमें जैसे सुन्दर और छोटे धनुष-बाण हैं वैसे ही कमरेमें कसे हुए (छोटे-छोटे) तरकश हैं और पीताम्बर हैं। उनके पैरोंमें सुन्दर जूतियाँ हैं। उनकी पैंजनी और करधनीकी रुनझुन सुनकर मन आनन्दित हो उठता है और सदा उनके पास ही बसा रहता है ॥ १ ॥ उनके हाथोंमें बहुत ही सुन्दर पहुँची, भुजाओंपर सुन्दर अङ्गद (बिजायट), छातीपर सुहावना पदिक (चौका) और कानोंमें कुण्डल है। उनके मायेपर तिलक लगा हुआ है—इन सबकी छबि कविके हृदयमें आकर गड़-सी गई है। उनके सिरपर लाल टोपी है, कमलके समान उनके बड़े-बड़े नयन हैं और मुखड़ा तो बड़ा ही सलोना है। इस रूपमें राम कल्पवृक्षकी शीतल छाया बने खड़े हैं ॥२॥ छोटे भाइयों और अन्य बालकोंके साथ सर्वांग सुन्दर रामको नर-नारी इस प्रकार एकटक देखते रह जाते हैं जैसे मरीचिकाको मृग देखता रह जाता है। तुलसीदास चाहते हैं कि अयोध्याकी गलियोंमें गोली, लट्टू, चकई-डोरा खेलते हुए रामकी यह मधुर मूर्ति मेरे हृदयमें सदा बसी रहे ॥ ३ ॥ (४३)

रामके हाथोंमें छोटी-सी धनुही, पैरोंमें छोटी-छोटी जूतियाँ, कमरमें छोटी-सी कछनी और छोटा-सा तरकश कसा हुआ है। उनके साँवले शरीरपर झीनी झँगुली (कुर्त्ती) ऐसी सुन्दर लगती है कि उसके आगे बिजलीकी चमक भी धुँधली जान पड़ती है। उनका मुखड़ा बड़ा प्यारा है और सिरपर जरीके कामकी पगिया बँधी हुई है ॥ १ ॥ रामकी अवस्थाके अनुसार उनके शरीरपर अनेक प्रकारके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बय - अनुहरत बिभूषन बिचित्र अंग, जोहे जिय आवति सनेह - की सरक - सी।
मूरति-की सूरति कही न परै तुलसी-पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक-सी ॥२॥ (४४)

राग टोड़ी

राम लखन इक ओर, भरत - रिपुदवन लाल इक ओर भये।
सरजु - तीर सम - सुखद भूमि - थल गनि - गनि गुइयाँ बाँटि लये ॥ १ ॥
कंदुक-केलि कुसल हय चढ़ि-चढ़ि, मन कसि-कसि, ठौंकि-ठौंकि खये।
कर - कमलनि बिचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥ २ ॥
ब्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत, खेलक - पेखक छाँह छये।
सहित - समाज सराहि दसरथहिं, बरषत निज तरु - कुसुम चये ॥ ३ ॥
ऐक लै बढ़त, एक फेरत, सब प्रेम - प्रमोद - बिनोद - मये।
एक कहत भइ हार रामजु - की, एक कहत भैया भरत जये ॥ ४ ॥
प्रभु बकसत गज-बाजि-बसन मनि, जय-धुनि गगन निसान हये।
पाइ सखा, सेवक, जाचक, भरि जनम न दुसरे द्वार गए ॥ ५ ॥
नभ - पुर परति निछावरि जहँ - तहँ, सुर-सिद्धनि बरदान दये।
भूरि - भाग, अनुराग उमँगि जे गावत, सुनत चरित नित ये ॥ ६ ॥

विचित्र आभूषण सजे हुए हैं, जिन्हें देखकर हृदयमें प्रेमकी लहर-सी दौड़ पड़ती है। उनकी मूर्त्ति तो इतनी सुन्दर है कि तुलसीदाससे उसका वर्णन करते नहीं बन रहा है। उसे तो वही जान सकता है जिसके हृदयमें वह (मूर्त्ति) पीड़ाके समान दिनरात कसकती रहती हो ॥ २ ॥ (४४)

(गेंदके खेलमें) एक ओर राम और लक्ष्मण तथा दूसरी ओर भरत और शत्रुघ्न हो गए। सरयू नदीके तीरपर सुखदायक और समथल भूमि देखकर उन्होंने गिन-गिनकर अपने दलके गुइयाँ (साथी) बाँट लिए ॥ १ ॥ चौगान (गेंद)-के खेलमें सधे हुए घोड़ोंपर चढ़-चढ़कर, वे कस-कसकर तड़ातड़ गेंदमें टोरे मारने लगे। इस प्रकार कमलके समान हाथोंसे विचित्र चौगान खेलते हुए वे अपने खेलसे (दर्शकोंको) रिझाने लगे ॥२॥ आकाशमें विमानोंपर चढ़कर देवता भी खेल देखने लगे, और इस प्रकार उन्होंने खेलनेवालों और देखनेवालोंपर छाया कर दी। वे राजा दशरथ और उनके समाजकी सराहना करते हुए उनपर कल्पवृक्षके फूलोंकी झड़ी लगाए हुए हैं ॥ ३ ॥ एक खेलाड़ी गेंद लेकर बढ़ जाता है तो दूसरा उसे फेर लाता है। सभी खेलाड़ी प्रेम, प्रमोद और विनोदमें भरे हुए हैं। ज्यों ही एकने कहा कि 'रामकी हार हो गई और भैया भरत जीत गए' ॥ ४ ॥ त्यों ही (प्रसन्नताके मारे रामने) घोड़े, हाथी, वस्त्र और रत्न बाँट डाले। आकाशमें जय-ध्वनिके साथ-साथ नगाड़े बजाए जाने लगे। सखा, सेवक और याचकोंको रामने इतना परितोषिक दिया कि जीवन-भर फिर किसीके द्वारपर वे हाथ पसारने नहीं गए ॥ ५ ॥ आकाशमें और नगरमें जहाँ-तहाँ न्योछावरें बिखरी पड़ी हैं। देवता और सिद्ध लोग आशीर्वाद दे रहे हैं। जिनके हृदयमें बड़े भाग्यसे रामका प्रेम उमड़ पड़ा है, वे नित्य ही यह चरित्र सुनते और गाते हैं ॥ ६ ॥ हार जानेपर भरत

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हारे हरष होत हिय भरतहिं, जिते सकुच सिर नयन नये।
'तुलसी' सुमिरि सुभाव - सील, सुकृती तेइ जे यहि रंग रये ॥ ७ ॥ (४५)

खेलि खेल सुखेलनिहारे।
उतरि - उतरि, चुचुकारि तुरंगनि, सादर जाइ जोहारे ॥ १ ॥
बंधु, सखा, सेवक सराहि, सनमानि, सनेह सँभारे।
दिए बसन - गज - बाजि, साजि सुभ साज, सुभाँति सँवारे ॥ २ ॥
मुदित नयन - फल पाइ, गाइ गुन, सुर सानंद सिधारे।
सहित - समाज राज - मंदिर - कहँ, राम राउ पग धारे ॥ ३ ॥
भूप - भवन घर - घर घमंड, कल्यान, कोलाहल भारे।
निरखि, हरषि, आरती, निछावरि करत, सरीर बिसारे ॥ ४ ॥
नित नव मंगल - मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे।
'तुलसी' तिन्हू - सम ते, जिनके प्रभु - तें प्रभु - चरित पियारे ॥ ५ ॥

राग सारंग

चहत महामुनि जाग जयो।
नीच निसाचर देत दुसह दुख, कृस तनु ताप तयो ॥ १ ॥

प्रसन्न हो उठते हैं पर जीत जानेपर वे सिर और आँखें नीची कर लेते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि रामका ऐसा शील और स्वभाव स्मरण करके जो उनके रंगमें रँगे गए हैं वे सचमुच ही बड़े पुण्यात्मा पुरुष हैं ॥ ७ ॥ (५५)

खेल खेल चुकनेपर, सब खेलनेवालोंने अपने-अपने घोड़ोंसे उतरकर, घोड़ोंको चुमकारकर (थपथपाकर) आदरपूर्वक रामको प्रणाम जा किया ॥ १ ॥ रामने अपने भाइयों, सखाओं और सेवकोंकी बड़े स्नेहसे प्रशंसा को और उन्हें अच्छे साजोंसे सजाकर घोड़े, हाथी और अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्र आदि दे डाले ॥२॥ देवताओंने भी प्रसन्न होकर अपने नेत्रोंका फल पा लिया और रामके गुण गा-गाकर वे आनन्दपूर्वक अपने अपने धाम लौट गए। फिर अपने समाजके साथ राम भी राजभवनमें आ पधारे ॥ ३ ॥ राजभवन तथा घर-घरमें अत्यन्त मंगलमय धूमधाम मची हुई थी। लोग इन्हें देख - देखकर हर्षित हो-होकर, अपनी सारी सुधबुध खोकर आरती उतारते और न्योछावरें दे डाल रहे थे ॥ ४ ॥ सारी अयोध्यापुरीमें नित्य ही नये-नये मंगलमय आमोद - प्रमोद होते रहते हैं। लोग सब प्रकारसे सुखी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिन लोगोंको रामसे भी अधिक रामके चरित्र प्यारे लगते हैं, उनके समान बस वे ही हैं ॥ ५ ॥ (४६)

महामुनि विश्वामित्र बहुत दिनोंसे अपना यज्ञ पूर्ण करनेके फेरमें थे, परन्तु दुष्ट निशाचर उन्हें इतना दुःसह दुःख देते रहते थे कि उससे संतप्त रहनेके कारण उनका शरीर सूख गया

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सापे पाप, नये निदरत खल, तब यह मंत्र ठयो।
बिप्र - साधु - सुर धेनु - धरनि - हित, हरि अवतार लयो ॥ २ ॥
सुमिरत श्रीसारंगपानि छन - में सब सोच गयो।
चले मुदित कौसिक कोसलपुर, सगुननि साथ दयो ॥ ३ ॥
करत मनोरथ जात पुलकि, प्रकटत आनंद नयो।
'तुलसी' प्रभु अनुराग उमगि मग मंगल - मूल भयो ॥ ४ ॥ (४७)

आज सकल सुकृत - फल पाइहौं।
सुख-की सींव, अवधि आनँद-की, अवध बिलोकि हौं पाइहौं ॥ ५ ॥
सुतनि - सहित दसरथहिं देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचंद्र - मुखचंद्र - सुधा - छबि, नयन - चकोरनि प्याइहौं ॥ २ ॥
सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
'तुलसी' ह्वै कृतकृत्य आश्रमहिं, राम - लखन लै आइहौं ॥ ३ ॥ (४८)

राग नट

देखि मुनि ! रावरे पद आज।
भयो प्रथम गनती - में अब - तें हौं, जहँ - लौं साधु - समाज ॥ १ ॥

था ॥ १ ॥ यदि मुनि उन्हें शाप देते हैं तो पाप पड़ता है और यदि उनके आगे झुकते हैं तो वे इनका निरादर करते हैं। इसी उधेड़बुनमें पड़े हुए मुनिने विचार किया कि ब्राह्मण, साधु, देवता, गौ और पृथ्वीके कल्याणके लिये राम अवतार ले चुके हैं ॥ २ ॥ शार्ङ्गपाणि भगवान्‌का स्मरण करते ही क्षण भरमें उनकी सारी चिन्ताएँ दूर हो मिटीं। मुनि विश्वामित्र प्रसन्न होकर अयोध्याको चल दिए। शुभ शकुनोंने भी उनका साथ दिया (उन्हें अच्छे शकुन होने लगे) ॥ ३ ॥ वे पुलकित होकर मार्गमें ज्यों-ज्यों अनेक प्रकारके मनोरथ करते चले जा रहे थे त्यों-त्यों उनके मनमें नया-नया आनन्द होता चला जा रहा था। तुलसीदास कहते हैं कि उनके मनमें रामके प्रति इतना अनुराग उमड़ पड़ा कि उनका मार्ग मंगलमय हो उठा ॥ ४ ॥ (४७)

(मार्गमें जाते हुए मुनि यही कल्पना करते जा रहे थे कि—) आज मैं अपने सारे पुण्योंका फल पा जाऊँगा। मैं अयोध्याको देखते ही सभी सुख और पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लूंगा ॥ १ ॥ आज मैं पुत्रोंके साथ राजा दशरथको देखकर प्रेमसे पुलकित होकर उन्हें हृदयसे उठा लगाऊँगा। रामके मुखचन्द्रके छबिकी सुधा अपने नेत्र-रूपी चकोरोंको पान कराऊँगा ॥ २ ॥ जब आदरपूर्वक राजा समाचार पूछेंगे, तब अपनी सारी कथा उन्हें खोल सुनाऊँगा। तुलसीदास कहते हैं कि—(मुनि सोच रहे हैं कि) मैं सब प्रकारसे कृतार्थ होकर राम-लक्ष्मणको अपने आश्रमपर ले ही आऊँगा ॥ ३ ॥ (४८)

(विश्वामित्रसे दशरथ कहने लगे- –) 'मुनिवर ! आज आपके चरण-कमल देखकर मैं संसारके सब साधुओंके सबसे आगे पहुँच गया हूँ' ॥ १ ॥ मुनिके चरणोंकी वन्दना करके राजा हाथ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चरन बंदि कर जोरि निहोरत, 'कहिय कृपा करि काज।
मेरे कछु न अदेय राम - बिनु, देह गेह सब राज' ॥ २ ॥
भली कही भूपति, त्रिभुवन - में को सुकृती सिरताज ?
'तुलसी' राम - जनमहिं - तें जनियत सकल सुकृत - को साज ॥ ३ ॥ (४९)

राजन् ! राम लखन जौ दीजै।
जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै ॥ १ ॥
डरपत हौं साँचे सनेह - बस, सुत - प्रभाव बिनु जाने।
बूझिय बामदेव अरु कुल - गुरु, तुम पुनि परम सयाने ॥ २ ॥
रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं।
'तुलसिदास' रघुबंस - तिलक - की, कबि - कुल कीरति गैहैं ॥३॥ (५०)

रहे ठगिसे नृपति सुनि मुनिवर - के बयन।
कहि न सकत कछु, राम - प्रेम - बस पुलक गात भरे नीर नयन ॥ १ ॥
गुरु बसिष्ठ समुझाय कह्यो तब हिय हरषान जानि सेस - सयन।
सौंपे सुत गहि पानि, पाँय परि, भूसुर उर चले उमगि चयन ॥ २ ॥

जोड़कर प्रार्थना करने लगे—'मुनिवर ! अब कृपा करके आप अपना कार्य बतला दीजिए। एक रामको छोड़कर देह, गेह तथा सम्पूर्ण राज्यमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो मैं आपको दे न डाल सकूँ' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि (विश्वामित्रने कहा—) 'राजन् ! आपने सचमुच बहुत ठीक ही कहा। त्रैलोक्यमें आपके अतिरिक्त और कौन पुण्यात्माओंका शिरोमणि है ? रामका जन्म आपके यहाँ हुआ है इसीसे जाना जा रहा है कि सारे सुकर्मोंका साज यहाँ आ जुटा है' ॥ ३ ॥ (४९)

(विश्वामित्र कहने लगे—) 'राजन् ! यदि आप राम और लक्ष्मणको मेरे साथ भेज दें तो आपका बड़ा यश तो होगा ही साथ ही इन बालकोंका भी बड़ा लाभ होगा। अतः, आप (इन्हें देकर) सब मुनियोंको सनाथ कर दीजिए। आप अपने पुत्रोंका प्रभाव नहीं जानते इसीलिये स्नेहमें पड़कर आप डरे जा रहे हैं, यह ठीक भी है। किन्तु इनके विषयमें आप वामदेव तथा कुलगुरु वशिष्ठसे पूछ लीजिए और फिर स्वयं आप भी क्या कम चतुर हैं ॥२॥ ये रणमें शत्रुकी सेनाको जीतकर, यज्ञकी रखवाली करके, कुशलपूर्वक थोड़े ही दिनोंमें घर लौट आवेंगे और फिर (तुलसीदास कहते हैं कि) इन्हीं रघुवंशके तिलककी कीर्त्तिका वर्णन कवि लोग किया करेंगे' ॥ ३ ॥ (५०)

मुनिवर विश्वामित्रके ये वचन सुनकर राजा दशरथ ठगे-से रह गए। वे रामके प्रेमके मारे कुछ कह भी नहीं पा सक रहे थे। उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा और उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥१॥ जब मुनि वशिष्ठने (रामकी महिमा) उन्हें समझाकर कही, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने पहचान लिया कि राम ही शेषशायी भगवान् हैं। फिर हाथ पकड़कर उन्होंने अपने दोनों पुत्र मुनिको सौंप दिए और उनके पैरों जा पड़े। विप्रवर विश्वामित्र भी उमंगमें भरे हुए अपने आश्रमकी ओर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन।
मधु-माधव मूरति दोउ सँग मनो, दिनमनि गम किय उतर अयन ॥३॥ (५१)

राग सारंग

रिषि - सँग हरषि चले दोउ भाई।
पितु-पद बंदि, सीस लिय आयसु, सुनि सिख, आसिष पाई ॥ १ ॥
नील - पीत - पाथोज - बरन बपु, बय किसोर बनि आई।
सर-धनु पानि, पीत पट कटि - तट, कसे निषंग बनाई ॥ २ ॥
कलित कंठ मनि - माल, कलेवर चंदन - खौरि सुहाई।
सुंदर बदन, सरोरुह - लोचन, मुख - छबि बरनि न जाई ॥ ३ ॥
पल्लव - पंख - सुमन सिर सोहत, क्यौं कहौं बेष लुनाई ?
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन - सुंदरताई ॥ ४ ॥
पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत, खग - मृग - बन - रुचिराई।
सादर, सभय, सप्रेम पुलकि मुनि, पुनि - पुनि लेत बुलाई ॥ ५ ॥
एक तीर तकि हती ताड़का, विद्या बिप्र पढ़ाई।
राख्यो जज्ञ जीति रचनीचर, भइ जग बिदित बड़ाई ॥ ६ ॥

चल पड़े ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि भगवान् करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर और मनोहर हैं। वे दृष्टि पड़ते ही सबका चित्त अपनेमें गूँथ लेते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सूर्यदेवके उत्तरायण जाते समय उनके साथ चैत्र और वैशाख मासोंकी दोनों मूर्तियाँ चली जा रही हों ॥ ३ ॥ (५१)

ऋषिवर (विश्वामित्र)-के साथ दोनों भाई प्रसन्न होकर चल दिए। पिताके चरणोंमें प्रणाम करके, उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके तथा उनकी शिक्षा सुनकर उन्होंने उनका आशीर्वाद पा लिया ॥ १ ॥ उन दोनोंका रंग नीले और पीले कमलोंके समान है। उनकी किशोर अवस्था बहुत अच्छी लग रही है। उनके हाथोंमें धनुष और बाण है तथा कमरमें पीताम्बर और तरकश सजाकर कसा हुआ है ॥२॥ उनके कंठमें सुन्दर मणियोंकी माला पड़ी है तथा शरीरपर आड़ा पुता हुआ चन्दन शोभा दे रहा है। उनका मुख सुन्दर और नेत्र कमलके समान हैं। उनके मुखकी छबि ऐसी है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३ ॥ उनके सिरपर नई कोंपलें, मोर-पंख और फूल सजे हुए शोभा दे रहे हैं। इस वेषकी सुन्दरताका मैं वर्णन करूँ तो क्या करूँ मानो त्रैलोक्यकी सुन्दरता मूर्तिमान् होकर (राम-लक्ष्मण) दो रूपोंमें आ बँटी हो ॥ ४ ॥ जब दोनों भाई कभी सरोवरोंमें पैठते तथा कभी पहाड़ियोंपर चढ़कर पक्षी, मृग और वनोंकी शोभा देखते चलते तो आदरपूर्वक, (चोट-चपेट खानेके) भय और प्रेमसे पुलकित होकर मुनि बार-बार उन्हें बुला लेते ॥ ५ ॥ रामने एक ही बाणसे ताड़काको ढेर कर डाला। मुनिने भी उन्हें बला और अतिबला विद्याएँ पढ़ा दीं। उन्होंने राक्षसोंको मारकर यज्ञकी रक्षा की जिससे जगत्में उनकी महत्ता विदित हो गई ॥ ६ ॥ रामने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चरन - कमल - रज - परस अहल्या, निज पति - लोक पठाई।
'तुलसिदास' प्रभु - के बूझे, मुनि सुरसरि - कथा सुनाई ॥ ७ ॥ (५२)

राग नट

दोउ राजसुवन राजत मुनि - के संग।
नख - सिख लोने, लोने बदन, लोयन, दामिनि - बारिद - बरबरन अंग ॥ १ ॥
सिरनि सिखा सुहाइ, उपवीत पीत पट, धनु - सर कर, कसे कटि निषंग।
मानो मख - रुज - निसिचर हरिबे - को सुत पावक-के साथ पठए पतंग ॥ २ ॥
करत छाँह घन, बरषैं सुमन सुर, छबि बरनत अतुलित अनंग।
'तुलसी' प्रभु बिलोकि मग - लोग, खग - मृग प्रेम - मगन रँगे रूप-रंग ॥३॥ (५३)

राग कल्याण

मुनि के संग बिराजत बीर।
काकपच्छ - धर, कर कोदंड - सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥ १ ॥
बदन इंदु, अंभोरुह लोचन, स्याम - गौर सोभा - सदन सरीर।
पुलकत रिषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेम-की भीर ॥ २ ॥
खेलत चलत करत मग कौतुक, बिलँबत सरित - सरोवर - तीर।
तोरत लता - सुमन, सरसी-रुह, पियत सुधा - सम सीतल नीर ॥ ३ ॥

अपने चरण-कमलोंसे स्पर्श करके अहल्याको उसके पति-लोक भेज दिया। तुलसीदास कहते हैं कि रामके पूछनेपर विश्वामित्रने गंगा (-के जन्म)-की पूरी कथा उन्हें विस्तारसे कह सुनाई ॥ ७ ॥ (५२)

दोनों राजकुमार मुनि विश्वामित्रके साथ चलते हुए बड़े प्यारे लग रहे हैं। वे नखसे शिखा तक बहुत सुन्दर लग रहे हैं। उनका मुखड़ा बड़ा सलोना है और नेत्र भी सुन्दर हैं। उनके अंगोंकी शोभा बिजली और श्याम घटाके समान है ॥ १ ॥ उनके सिरपर शिखाएँ, जनेऊ, पीले वस्त्र, हाथोंमें धनुष-बाण और कमरमें तरकश है मानो यज्ञके रोग - रूपी राक्षसोंका नाश करनेके लिये सूर्य-देवने अग्नि (विश्वामित्र)-के साथ अश्विनी-कुमार भेज दिए हों ॥ २ ॥ बादल उनके ऊपर छाया किए जा रहे हैं, देवता फूल बरसाए जा रहे हैं और उनकी छबिको कामदेवसे भी बढ़कर बतला रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि रामको देखकर मार्गके सभी लोग तथा पशु-पक्षी भी रामके रूपमें रँगकर मग्न हो गए हैं ॥ ३ ॥ (५३)

मुनिके साथ दोनों वीर (राम-लक्ष्मण) बढ़े चले जा रहे हैं। उनके सिरपर काकपक्ष (दोनों ओर बहाए हुए बाल), हाथोंमें धनुष-बाण तथा कमरमें कसा हुआ सुन्दर पीताम्बर और तरकश है ॥ १ ॥ उनके चन्द्रमाके समान मुख, कमलके समान नेत्र और साँवले-गोरे शरीर बहुत सुन्दर लग रहे हैं। उनकी यह अपार छबि देखकर मुनि पुलकित हो-हो उठते हैं। उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा पड़ रहा है कि समाए नहीं समा पा रहा है ॥ २ ॥ (राम-लक्ष्मण) मार्गमें खेलते-कूदते, विनोद करते चले जा रहे हैं। जब वे नदी और तालाबोंके तीरपर पहुँचते हैं तो देरतक बैठे रह जाते हैं। वे लताओंसे पुष्प और (तालोंसे) कमल तोड़ते हुए तथा अमृतके समान

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बैठत बिमल सिलनि - बिटपनि - तर, पुनि-पुनि बरनत छाँह, समीर ।
देखत नटत केकि, कल गावत मधुप, मराल, कोकिला, कीर ॥ ४ ॥
नयननि - को फल लेत निरखि खग, मृग, सुरभी, ब्रजबधू, अहीर ।
'तुलसी' प्रभुहिं देत सब आसन निज-निज मन-मृदु-कमल-कुटीर ॥५॥ (५४)

राग कान्हरा

सोहत मग मुनि सँग दोउ भाई ।
तरुन तमाल, चारु चंपक - छबि, कबि सुभाय कहि जाई ॥ १ ॥
भूषन - बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुंदरताई ।
बदन मनोज सरोज - लोचननि, रही लुभाइ लुभाई ॥ २ ॥
अंसनि धनु, सर कर - कमलनि, कटि कसे निषंग बनाई ।
सकल - भुवन - सोभा - सरबस, लघु लागति, निरखि निकाई ॥ ३ ॥
महि मृदु पथ, घन छाँह, सुमन सुर बरषि, पवन सुखदाई ।
जल - थल - रुह फल-फूल-सलिल सब, करत प्रेम - पहुनाई ॥ ४ ॥
सकुच, सभीत, बिनीत, साथ गुरु, बोलनि - चलनि सुहाई ।
खग-मृग चित्र बिलोकत बिच - बिच, लसति ललित लरिकाई ॥ ५ ॥

जल पीते चले जा रहे हैं ॥ ३ ॥ वृक्षोंके नीचे स्वच्छ शिलाओंपर बैठकर बार-बार वहाँकी छाया और बयारकी प्रशंसा किए जा रहे हैं। नाचते हुए मोर तथा सुन्दर गान करते हुए भौंरे, हंस, कोयल और सुग्गे वे देखते चले जा रहे हैं ॥ ४ ॥ रामको देख-देखकर मृग, पक्षी, गौएँ, ग्वाल-ग्वालिनें सब अपने नेत्र सफल किए ले रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सब लोग अपने मनके कोमल कमलकी कुटियामें रामके लिये आसन दिए डाल रहे हैं (सब उन्हें अपने हृदयमें बसाए ले रहे हैं, उनका ध्यान कर रहे हैं) ॥ ५ ॥ (५४)

राम और लक्ष्मण दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके साथ मार्गमें चलते हुए बड़े प्यारे लग रहे हैं। कवि स्वभावसे उन (राम और लक्ष्मण) को छविकी उपमा नये तमालसे (रामकी) और सुन्दर चम्पेके फूलसे (लक्ष्मणकी) दे रहा है ॥१॥ सब अंगों के अनुरूप ही आभूषण और वस्त्र धारण कर लेनेपर उनकी सुन्दरता और भी बढ़ चली है। रामके मुखपर कामदेवकी सुन्दरता और नेत्रोंमें कमलकी सुन्दरता लुभाए चली जाती है ॥ २ ॥ वे कंधोंपर धनुष, कर-कमलोंमें बाण तथा कमरमें तरकश सँभालकर कसे हुए हैं। उनकी सुन्दरता देखकर समस्त लोकोंकी शोभा और सर्वस्व तुच्छ जान पड़ता है ॥३॥ उनके लिये पृथ्वीने मार्ग कोमल कर दिया है, बादल छाया कर रहे हैं, देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं और पवन सुखदायक ढंगसे बह रहा है। इस प्रकार जल और स्थलके पौधे, फल-फूल और पानी सभी प्रेमपूर्वक उनकी पहुनाई कर रहे हैं ॥ ४ ॥ गुरुके साथ भय, संकोच और नम्रताके साथ उनका बोलना और चलना बड़ा ही प्यारा लग रहा है। मार्गके बीच-बीचमें जिस ढंगसे विचित्र पक्षी और पशु वे देखते चले जा रहे हैं वह उनकी बाल-चपलता बहुत सुन्दर लग रही है ॥५॥ मुनिने उन्हें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिद्या दई जानि बिद्यानिधि, बिद्यहु लही बड़ाई।
ख्याल दली ताडुका देखि, रिषि देत असीस अघाई॥ ६॥
बूझत प्रभु सुरसरि - प्रसंग, कहि निज कुल - कथा सुनाई।
गाधी-सुवन स्नेह - सुख - संपति, उर - आस्रम न समाई॥ ७॥
बनबासी बटु जती जोगि - जन साधु सिद्ध - समुदाई।
पूजत पेखि प्रीति पुलकित तनु, नयन लाभ लुटि पाई॥ ८॥
मख राख्यौ खल-दल दलि भुज-बल, बाजत बिबुध बधाई।
नित पथ - चरित - सहित तुलसी-चित बसत लखन - रघुराई॥ ९॥ (५५)

राग कान्हरा

मंजुल मंगलमय नृप-ढोटा।
मुनि, मुनि-तिय, मुनि-सिसु बिलोकि कहैं मधुर मनोहर जोटा॥ १॥
नाम - रूप - अनुरूप बेष - बय, राम - लखन लाल लोने।
इन्हतें लहि मनो घन-दामिनि-दुति, मनसिज - मरकत - सोने॥ २॥
चरन सरोज, पीत पट कटि-तट, तून - तीर धनुधारी।
केहरि कंध, काम - करि - करवर, बिपुल बाहु-बल भारी॥ ३॥
दूषन - रहित समय - सम भूषन पाइ सुअंगनि सोहैं।
नव - राजीव - नयन, पूरन - बिधु - बदन मदन - मन मोहैं॥ ४॥

विद्या-निधान जानकर भी विद्या दे डाली जिससे विद्याका गौरव बढ़ गया। उन्होंने खेल-खेलमें ही ताड़काको ढेर कर डाला। यह देखकर मुनि (इतने प्रसन्न हुए कि) आशीर्वाद देते नहीं अघाए॥६॥ जब प्रभु रामने गंगाके आगमनका प्रसंग पूछा तब मुनिने गंगावतरणकी कथाके साथ-साथ उनके सब पुरखों (सगरसे दशरथतक)-का भी सारा इतिहास कह सुनाया। इस समय रामके स्नेह और सुखकी सम्पत्ति विश्वामित्रके हृदय-रूपी आश्रममें समा नहीं पा रही थी (विश्वामित्रके हृदयमें स्नेह और सुख उमड़ा पड़ रहा था)॥ ७॥ वनवासी, ब्रह्मचारी, संन्यासी, योगी, साधु और सिद्ध लोग रामको देखकर उनकी पूजा कर रहे थे और प्रेमके मारे पुलकित हो-होकर अपने नेत्रोंका लाभ लूट रहे थे॥८॥ रामने अपने भुज-बलसे राक्षसोंकी सेनाका नाश करके मुनिके यज्ञकी रक्षा की, यह जानकर देवताओंके यहाँ बधाइयाँ बज उठीं। तुलसीदास कहते हैं कि हमारे चित्तमें मार्गकी लीलाओंके साथ राम-लक्ष्मण सदा निवास करते रहें॥ ९॥ (५५)

मुनि, मुनि-पत्नियाँ और मुनियोंके बच्चे इस मनोहर जोड़ीको देखकर कहते हैं कि ये राज-कुमार बड़े ही सुन्दर और मंगलमय हैं॥ १॥ राम और लक्ष्मण दोनों भाई अपने-अपने नाम और रूपके अनुरूप ही वेष और अवस्थामें भी बड़े सुन्दर हैं मानो इन्हींसे बादल, बिजलीकी चमक कामदेव, पन्ने और सुवर्णने अपनी-अपनी शोभा पाई हो॥२॥ इनके चरण भी कमलके समान हैं, इनकी कमरमें पीताम्बर और तरकश है और हाथोंमें धनुष-बाण हैं। इनके सिंहके समान कंधे हैं और कामदेवके हाथीकी सूँड़के समान दोनों बड़े बलवान हाथ और बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं॥३॥ इनके सुन्दर अंगोंपर निर्दोष और समयके अनुसार सुन्दर सजे हुए भूषण बड़े अच्छे लग रहे हैं। नये कमलोंके समान

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सिरनि सिखंड, सुमन - दल - मंडन बाल - सुभाय बनाए।
केलि - अंक - तनु - रेनु - पंक जनु प्रगटत चरित चुराए ॥ ५ ॥
मख राखिबे लागि दसरथ - सों, माँगि आस्रमहिं आने।
प्रेम पूजि पाहुने प्रान - प्रिय, गाधि - सुवन सनमाने ॥ ६ ॥
साधन - फल साधक सिद्धनि - के, लोचन - फल सबही - के।
सकल सुकृत - फल मातु-पिता - के, जीवन - धन तुलसी - के ॥ ७ ॥ (५६)

राग सूही

राम - पद - पदुम - पराग परी।
रिषि - तिय तुरत त्यागि पाहन - तनु, छबिमय देह धरी ॥ १ ॥
प्रबल पाप पति - साप - दुसह - दव दारुन जरनि जरी।
कृपा-सुधा सिंचि बिबुध-बेलि - ज्यौं फिरि सुख - फरनि फरी ॥ २ ॥
निगम - अगम मूरति महेस - मति - जुवति बराय बरी।
सोइ मूरति भइ जानि नयन - पथ, इकटक - तें न टरी ॥ ३ ॥
बरनति हृदय सरूप - सील गुन, प्रेम - प्रमोद - भरी।
'तुलसिदास' अस केहि आरत - की आरति प्रभु न हरी ॥ ४ ॥ (५७)

परत पद - पंकज - रज रिषि - रवनी।
भई प्रगट अति दिव्य देह धरि, मनु त्रिभुवन - छबि - छवनी ॥ १ ॥

नेत्र और पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख तो कामदेवका मन भी मोहित किए डाल रहा है ॥४॥ अपने सिरोंपर मोरपंख तथा पुष्पकी पंखड़ियोंके आभूषण इन्होंने बाल-स्वभावसे ही बना धरे हैं। शरीरमें लगी हुई धूल और कीचड़से प्रकट होता है कि मुनिसे छिपाकर इन्होंने खेल-कूद और बाल-चरित्र किए हैं ॥ ५ ॥ विश्वामित्रने यज्ञकी रक्षाके लिये दशरथसे माँगकर अपने आश्रमपर लाए हुए अपने प्राणप्रिय पाहुनों (राम-लक्ष्मण)-की प्रेमपूर्वक पूजा करके उनका बड़ा सम्मान किया ॥६॥ ये साधकों और सिद्धोंकी साधनाओंके फल हैं, सबके नेत्रोंके फल हैं, माता-पिताके सभी पुण्योंके फल हैं और तुलसीदासके तो जीवन-धन ही हैं ॥ ७ ॥ (६५)

रामके चरण-कमलोंकी धूल छूते ही गौतम-ऋषिकी पत्नी अहल्या तुरन्त ही अपनी पत्थर-सी देह छोड़कर अत्यन्त सुन्दरी बनकर उठ खड़ी हुई ॥ १ ॥ (ऐसा जान पड़ा मानो) प्रबल पापके कारण पतिके शापकी दुःसह अग्निके कठोर तापसे जलती हुई कल्पलता ही कृपाके अमृतसे सींची जानेपर पुनः सुखके फलोंसे लद उठी हो ॥ २ ॥ सभी अन्य भगवन्मूर्त्तियोंको त्यागकर भगवान् शंकरकी बुद्धि-रूपी युवतीने मन की पहुँचसे भी परे रहनेवाली जिस मूर्त्तिका वरण किया है (सब देवमूर्तियोंको छोड़कर भगवान्‌की बुद्धिने जिस रामको अपना इष्टदेव माना है) उसीको आँखोंके सामने प्रत्यक्ष देखकर वह एकटक होकर खड़ी रही, हिलीतक नहीं ॥ ३ ॥ वह इतने प्रेम और आनन्दमें भर उठी कि रामके रूप, शील और गुणोंका मन ही मन वर्णन करने लगी। तुलसीदास कहते हैं कि बताओ कौन ऐसा दुखी है जिसकी विपत्ति रामने इसी प्रकार दूर न कर डालीहो ? ॥ ४ ॥ (५७)

गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्यापर रामके चरण-कमलोंकी धूलपर पड़ते ही वह ऐसी दिव्य देहमें आ प्रकट हुई मानो वह तीनों लोकोंकी सुन्दरताकी पुत्री ही हो ॥ १ ॥ यह परम आश्चर्य देखकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखि बड़ो आचरज, पुलकि तनु, कहति मुदित मुनि - भवनी।
जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि, सिला न रहिहइँ अवनी ॥ २ ॥
परसि पुनीत पाँय, जो सिव - सिर सोह तीनि-पथ-गवनी।
'तुलसिदास' तेहि चरन - रेनु - की, महिमा कह मति कवनी ॥ ३ ॥ (५८)

भूरि भाग - भाजन भई।
रूप - रासि अवलोकि बंधु दोउ, प्रेम - सुरंग रई ॥ १ ॥
कहा कहैं, केहि भाँति सराहैं, नहिं करतूति नई।
बिनु - कारन करुनाकर रघुबर, केहि - केहि गति न दई ॥ २ ॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूरति, मंगल - मोदमई।
'तुलसी' ह्वै बिसोक, पति - लोकहिं, प्रभु - गुन गनत गई ॥ ३ ॥ (५९)

राग कान्हरा

कौसिक - के मख - के रखवारे।
नाम राम अरु लखन ललित अति, दसरथ - राज - दुलारे ॥ १ ॥
मेचक - पीत कमल कोमल, कल काकपच्छ - धर बारे।
सोभा सकल सकेलि मदन - बिधि सुकर - सरोज सँवारे ॥ २ ॥
सहस समूल सुबाहु - सरिस खल समर - सूर भट भारे।
केलि - तून - धनु - बान - पानि, रन निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥

एक मुनि-पत्नी पुलकित होकर कहने लगी कि यदि राम इसी प्रकार पैदल चलते रहे तो पृथ्वीपर एक भी शिला (ठोकर लगानेवाली या पापिनी) बची न रह जायगी ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिन चरणोंका स्पर्श करके पवित्र गंगा त्रिपथगामिनी होकर शिवके सिरपर लहरा रही हैं उन चरणोंके रजकी महिमाका वर्णन भला किसकी बुद्धि कर पा सकती है ॥ ३ ॥ (५८)

आज अहल्या सचमुच बड़ी भाग्यशालिनी है कि दोनों भाइयोंकी अपार रूप-राशि देखकर वह इनके प्रेमके रंगमें रँग गई है ॥ १ ॥ मैं कहाँ तक कहूँ और दोनों (राम-लक्ष्मण)-की किस प्रकार सराहना करूं ? रामकी यह कोई नई लीला नहीं हैं। करुणाकर रामने बिना कारण ही किसको-किसको सुगति नहीं दी ? तुलसीदास कहते हैं कि बहुत विनति करके, प्रभुकी मंगलमयी तथा आनन्द-मयी मूर्ति अपने हृदयमें धारण करके, शोकरहित होकर वह रामका गुण-गान करती हुई अपने पति-लोक चली गई ॥ ३॥ (५९)

(राम-लक्ष्मणको देखकर मार्गमें जाते हुए पथिक आपसमें कहते हैं—) ये ही वे दोनों कुमार हैं जिन्होंने विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की है। इनके अत्यन्त सुन्दर नाम हैं राम और लक्ष्मण। ये दोनों महाराज दशरथके पुत्र हैं ॥ १ ॥ ये अत्यन्त कोमल और सुन्दर नीले-पीले कमलके रंगवाले काक-पक्ष (सिरपर दोनों ओर बहाए हुए बाल) धारण किए हुए हैं, मानो कामदेव-रूपी बिधाताने सारी सुन्दरता बटोरकर इन्हें अपने ही सुन्दर कर-कमलोंसे गढ़ रचा हो ॥ २ ॥ इन्होंने युद्धमें सुबाहुके समान सहस्रों दुष्ट, समर-शूर और भारी राक्षस योद्धाओंका ललकारकर उन्हें खेलनेवाले तरकश और धनुष-बाणसे पछाड़ मारा है ॥ ३ ॥ ये (गौतम) ऋषिकी पत्नी अहल्याका उद्धार करके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रिषि - तिय तारि, स्वयंबर पेखन, जनक - नगर पग धारे।
मग नर - नारि निहारत सादर, कह, बड़ भाग हमारे ॥ ४ ॥
'तुलसी' सुनत एक एकनि - सों, चलत बिलोकनिहारे।
मूकनि बचन - लाहु, मनो अंधनि लहे बिलोचन - तारे ॥ ५ ॥ (६०)

राग टोड़ी

आए सुनि कौसिक, जनक हरषे हैं।
बोलि गुरु भूसुर समाज-सों मिलन चले, जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं ॥ १ ॥
नाइ सीस पगनि, असीस पाइ, प्रमुदित पाँवड़े अरघ देत आदर-सों आने हैं।
असन-बसन-बास, कै सुपास सब बिधि, पूजि प्रिय पाहुने, सुभाय सनमाने हैं ॥ २ ॥
बिनय - बड़ाई रिषि-राजऊ परसपर करत, पुलकि प्रेम - आनँद अघाते हैं।
देखे राम-लखन, निमेषैं बिथकित भईं, प्रानहुँ-तें प्यारे लागे बिनु पहिचाने हैं ॥ ३ ॥
ब्रह्मानंद हृदय, दरस-सुख लोयननि, अनुभए उभय, सरस राम जाने हैं।
'तुलसी' बिदेह-की सनेह-की दसा सुमिरि, मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं ॥४॥ (६१)

राग मलार

कोसलराय - के कुअँरोटा।
राजत रुचिर जनक - पुर पैठत स्याम - गौर नीके जोटा ॥ १ ॥

स्वयंवर देखनेके लिये जनकपुर चले जा रहे हैं। मार्गके स्त्री-पुरुष इन्हें आदरपूर्वक देख-देखकर कहते हैं कि हम बड़े भाग्यशाली हैं कि इनके दर्शन हो गए ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि एक दूसरेसे यह सुनकर सब उन्हें देखने चल देते हैं (और देखकर ऐसे प्रसन्न होते हैं) मानो गूँगेकी वाणी प्राप्त हो गई हो और अन्धेको आँखोंके तारे मिल गए हों ॥ ५ ॥ (६०)

विश्वामित्रका आगमन सुनकर जनक बहुत हर्षित हो उठे। गुरु और ब्राह्मण-समाजको साथ लेकर वे ऋषिवरकी अगवानीके लिये चल दिए। अपनेको बड़ा भाग्यशाली मानकर वे प्रेमसे विह्वल हो उठे ॥ १ ॥ राजा जनक उनके पैरों पड़कर, आशीर्वाद पाकर प्रसन्नता-पूर्वक अर्घ्यके पाँवड़े देते (आगे-आगे जल गिराते) हुए उन्हें आदरपूर्वक लिवा लाए। भोजन, वस्त्र और वास - स्थानकी सब व्यवस्था करके और अपने प्रिय पाहुनोंकी पूजा करके उन्होंने स्वाभाविक रूपसे उनका सब सम्मान किया ॥ २ ॥ मुनिवर और जनक दोनों परस्पर एक दूसरेकी बड़ाई किए जा रहे थे। इस प्रकार वे दोनों प्रेमसे पुलकित हो-होकर आनन्दमें मग्न हुए जा रहे थे। राम और लक्ष्मणको देखकर वे ऐसे स्तब्ध हो उठे कि पलक मारना-तक भूल गए। बिना पहचाने ही वे (राम-लक्ष्मण) उन्हें ऐसे लगने लगे मानो प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हों ॥३॥ हृदयमें ब्रह्मानन्दके तथा नेत्रोंसे प्रत्यक्ष दर्शनके आनन्दके अनुभवकी तुलना करके महाराज जनकने रामके दोनों रूपोंमेंसे प्रत्यक्ष रूपको ही अधिक सरस माना। तुलसीदास कहते हैं कि, विदेहके स्नेहकी दशाका स्मरण करके मेरे मनमें तो यही जान पड़ता है कि महाराज जनक बड़े ही चतुर हैं (कि निर्गुण और सगुण ब्रह्म दोनोंका आनन्द साथ-साथ लिए जा रहे हैं) ॥४॥ (६१)

जनकपुरमें प्रवेश करते समय कोशल-राज (दशरथ)-के दोनों साँवले और गोरे राजकुमारोंकी जोड़ी बड़ी ही प्यारी लग रही है ॥ १ ॥ दोनों बालकोंके सिरोंपर चौगोशिया टोपी, कानोंमें सोनेकी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चौतनि सिरनि, कनक-कली काननि, कटि पट पीत सुहाए।
उर मनि - माल, बिसाल बिलोचन, सीय - स्वयंबर आए ॥ २ ॥
बरनि न जात, मनहिं मन भावत, सुभग अबहिं बय थोरी।
भईं मगन बिधु-बदन बिलोकत, बनिता चतुर चकोरी ॥ ३ ॥
कहँ सिव - चाप लरिकवनि बूझत बिहँसि चितै तिरछौंहैं।
'तुलसी' गलिन भीर, दरसन - लगि, लोग अटनि आरोहैं ॥ ४ ॥ (६२)

ये अवधेस - के सुत दोऊ।
चढ़ि मंदिरनि बिलोकत सादर, जनक - नगर सब कोऊ ॥ १ ॥
स्याम - गौर सुंदर किसोर - तनु, तून - बान - धनु - धारी।
कटि पट पीत, कंठ मुकुता - मनि, भुज बिसाल, बल भारी ॥ २ ॥
मुख मयंक, सरसीरुह - लोचन, तिलक भाल, टेढ़ि भौंहैं।
कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त - गज - गौं हैं ॥ ३ ॥
बिस्वामित्र - हेतु पठए नृप, इनहिं ताडुका मारी।
मख राख्यो रिपु जीति, जान जग, मग मुनि - बधू उधारी ॥ ४ ॥
प्रिय पाहुने जानि नर - नारिन, नयननि अयन दए।
'तुलसिदास' प्रभु देखि लोग सब, जनक - समान भए ॥ ५ ॥ (६३)

कलियाँ, कमरमें पीताम्बर और छातीपर मणियोंकी माला झिलमिला रही है। उनके नेत्र बहुत बड़े-बड़े हैं। इसी रूपमें वे सीताके स्वयंवरमें आ पधारे ॥ २ ॥ उस जोड़ीका वर्णन कोई कर नहीं सकता। वह मन ही मन सबको बड़ी प्यारी लग रही है। अभी इनकी अवस्था ही कितनी है (बहुत थोड़ी है)। प्रेममें मग्न होकर चतुर स्त्रियाँ चकोरीकी भाँति उन्हें टटकी बाँधे देखे जा रही हैं ॥३॥ राम भी तिरछी चितवनसे देखते हुए (जनकपुरके) बालकोंसे पूछते जाते हैं कि शंकरका धनुष कहाँ धरा है। तुलसीदास कहते हैं कि उन्हे देखनेके लिये गलियोंमें भीड़ बढ़ती देखकर लोग उन्हें भली प्रकार देखनेके लिये अटारियोंपर जा चढ़े हैं ॥ ४ ॥ (६२)

जनकपुरके लोग अपने-अपने घरोंपर चढ़-चढ़कर आदरपूर्वक देख और कह रहे हैं कि ये दोनों अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र हैं ॥ १ ॥ ये किशोर अवस्थावाले सुन्दर, साँवले और गोरे बालक तरकश और धनुष-बाण लिए हुए हैं। इनकी कमरमें पीताम्बर और गलेमें मोतियोंकी माला पड़ी है। ये विशाल भुजावाले दोनों बालक बड़े बलवान् हैं ॥ २ ॥ इनके मुखड़े चन्द्रमाके समान और नेत्र कमलके समान हैं। इनके मस्तकपर तिलक लगा है और इनकी भौंहे बड़ी बाँकी हैं। इनके कानोंमें सुन्दर कुण्डल और सिरपर चौगोशिया टोपी बड़ी सुन्दर लगती है। ये मतवाले हाथीकी चालसे झूमते चले जा रहे हैं ॥३॥ राजा दशरथने इन्हें विश्वामित्रके (यज्ञकी रक्षाके)-लिये भेजा था। सारा जगत् जानता है कि इन्होंने ताड़काको मारकर और शत्रुओंको जीतकर यज्ञकी रक्षा की है। मार्गमें आते समय इन्होंने मुनिकी पत्नी अहल्याका भी उद्धार कर डाला ॥ ४ ॥ वहाँके नर-नारियोंने अपने नगरमें आए हुए प्रिय पाहुने समझकर इन्हें अपने नेत्रोंमें उठा बसाया है (इन्हें एकटक देखे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग टोड़ी

बूझत जनक 'नाथ ! ढोटा दोउ काके हैं'।
तरुन तमाल, चारु चंपक - बरन - तन कौन बड़े भागी-के सुकृत परिपाके हैं ॥ १ ॥
सुख-के निधान पाए, हिय-के पिधान लाए, ठग-के-से लाड़ू खाए, प्रेम-मधु छाके हैं।
स्वारथ-रहित परमारथी कहावत हैं, भे सनेह - बिबस बिदेहता बिबाके हैं ॥ २ ॥
सील-सुधा-के आगार, सुषमा-के पारावार, पावत न पैरि पार, पैरि-पैरि थाके हैं।
लोचन ललकि लागे, मन अति अनुरागे, एक रसरूप चित सकल सभा-के हैं ॥ ३ ॥
जिय जिय जोरत सगाई राम-लखन-सों, आपने-आपने भाय जैसे भाय जाके हैं।
प्रीति-को, प्रतीति-को, सुमिरिबे-को, सेइबे-को, सरन-को समरथ तुलसिहू ताके हैं ॥४॥ (६४)

ए कौन, कहाँ - तें आए ?
नील - पीत - पाथोज - बरन, मन-हरन सुभाय सुहाए ॥ १ ॥
मुनि - सुत ? किधौं भूप-बालक ? किधौं ब्रम्ह-जीव जग जाए।
रूप-जलधि-के रतन सुछबि, तिय - लोचन ललित ललाए ॥ २ ॥

जा रहे हैं)।' तुलसीदास कहते हैं कि रामको देखते ही सभी लोग विदेह होकर अपनी देहकी सारी सुध-बुध खो बैठे ॥ ५ ॥ (६३)

मुनि विश्वामित्रसे जनक पूछने लगे—'नाथ ! ये दोनों बालक किसके हैं ? ये तरुण तमालके समान सुन्दर साँवले और चम्पक-पुष्पके समान गोरे किस भाग्यशालीके पुण्योंके पके हुए (श्रेष्ठ) फल हैं ?' ॥ १ ॥ जनकने इन्हें सुखका भांडार मानकर इन्हें अपने हृदयमें बसाकर किवाड़ लगा लिए। वे ठगके हाथके (विषैले) लड्डू खाए हुएके समान प्रेमके मधुमें मस्त हो गए। वे यद्यपि स्वार्थ-रहित परमार्थी कहलाते हैं तथापि इस समय तो वे प्रेममें मग्न होकर अपनी सारी विदेहता गँवा बैठे ॥ २ ॥ शील और शोभासे भरे हुए राम सुन्दरताके ऐसे समुद्र हैं जिसमें तैरते-तैरते जनक हार गए पर (उनके शील, शोभा और सुन्दरताका) पार न पा सके। सारी सभाके नेत्र उतावले होकर इन्हींकी ओर घूमे जा रहे थे। सबके मन इनके रूपमें इतने अनुरक्त हो गए थे कि सबके चित उसी समुद्रमें डूबे पड़े थे ॥ ३ ॥ अपने-अपने भावके अनुसार सब मन ही मन राम-लक्ष्मणसे वैसा ही सम्बन्ध जोड़ने लगे जैसा जिसका भाव था (बड़े लोग पुत्र मानने लगे। समान अवस्थावाले मित्र मानने लगे। छोटे उन्हें बड़ा भाई मानने लगे)। जो रामसे प्रीति करके, उन्हींका भरोसा करते, उन्हींको स्मरण करते, उन्हींकी सेवा करते और उन्हींको शरण पकड़े बैठे रहते हैं वे ऐसे अच्छे हैं कि उन्हींका आश्रय तुलसीदास भी लिए बैठे हैं ॥ ४ ॥ (६४)

(विश्वामित्रसे जनक पूछने लगे—) 'ये कौन है और कहाँसे आए हैं ? नीले और पीले कमलके समान रंगवाले ये दोनों बालक ऐसे सुन्दर हैं कि स्वभावसे ही मन हरे ले रहे हैं ॥१॥ क्या ये मुनि-पुत्र हैं या किसी राजाके पुत्र हैं या इस संसारमें ब्रह्म और जीव ही इन रूपोंमें आ प्रकट हुए हैं ? इनकी छबि तो सुन्दरताके समुद्रसे निकले हुए रत्नके समान (इतनी आकर्षक है कि उसपर) स्त्रियोंके रसीले नेत्र ललचाए पड़ रहे हैं ॥ २ ॥ क्या ये सूर्यके पुत्र अश्विनीकुमार हैं, अथवा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

किधौं रवि-सुवन ? मदन रितुपति किधौं हरि-हर बेष बनाए।
किधौं आपने सुकृत - सुरतरु-के, सुफल रावरेहि पाए॥ ३॥
भए बिदेह बिदेह नेह - बस, देह - दसा बिसराए।
पुलक गात, हिय हरष समात न, सलिल सुलोचन छाए॥ ४॥
जनक-बचन मृदु, मंजु, मधु, भरे - भगति कौसिकहिं भाए।
'तुलसी' अति आनंद उमँगि उर, राम - लखन गुन - गाए॥ ५॥ (६५)

कौसिक कृपाल हू - को पुलकित तनु भो।
उमँगत अनुराग, सभा - के सराहे भाग, देखि दसा जनक-की कहिबे-को मनु भो॥ १॥
प्रीति - के न, पातकी, दिएहूँ साप पाप बड़ो, मख-मिस मेरो तब अवध गवनु भो।
प्रानहूँ-तें प्यारे सुत, माँगे दिए दसरथ, सत्यसिंधु सोच सहे सूनो-सो भवनु भो॥ २॥
काक-सिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर, बालक-बिनोद जातुधाननि-सो रनु भो।
बूझत बिदेह अनुराग-आचरज-बस, रिषिराज! जाग भयो ? महाराज अनुभो॥ ३॥
भूमिदेव, नरदेव, सचिव, परसपर कहत, हमहिं सुरतरु सिव - धनु भो।
सुनत राजा-की रीति, उपजी प्रतीति प्रीति, भाग तुलसी-के, भले साहेब-को जनु भो॥४॥(६६)

कामदेव और वसंत हैं, अथवा विष्णु और शंकर ही यह वेष बनाए चले आ रहे हैं ? अथवा ये आपके ही पुण्यके कल्पवृक्षके फल हैं जो आप साथ लिए बैठे हैं ?' ॥ ३॥ ऐसा कहकर जनक ऐसे प्रेममें मग्न हुए कि अपनी देहकी सारी सुध-बुध भुलाकर सचमुच विदेह हो गए। उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा, नेत्रोंमें आँसू आ छाए और इतना हर्ष हृदयमें उमड़ पड़ा कि समाए नहीं समा पा रहा था॥ ४॥ जनकके ये कोमल और भक्तिसे भरे मधुमय वचन विश्वामित्रको बहुत अच्छे लगे। तुलसीदास कहते हैं कि तभीसे विश्वामित्र भी अत्यन्त आनन्दकी उमङ्गमें मन ही मन राम-लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन करते जाने लगे॥ ५॥ (६५)

(जनकके ये वचन सुनकर) कृपालु विश्वामित्रका शरीर भी पुलकित हो उठा। उनके हृदयमें भी प्रेम और अनुराग उमड़ आया। जनककी यह दशा देखकर उनका मन भी सारी कथा कहनेके लिये मचल उठा। वे कहने लगे—'ये राक्षस ऐसे पापी थे कि उनपर प्रीति तो की नहीं जा सकती थी। रही शाप देनेकी बात, तो (यज्ञके अनुष्ठानमें लगे रहनेके कारण) शाप देना बड़ा पाप होता। अतः, मैं यज्ञकी रक्षाके प्रयोजनसे अयोध्या गया और उन (दशरथ)-के प्राणोंसे भी प्यारे पुत्र उनसे माँग लाया। सत्यके समुद्र दशरथने सारा शोक सहन करके भी अपने पुत्र मुझे सौंप दिए। (इनके बिना) अब उनका घर जैसे सूना-सा हो गया है॥ २॥ (जब मैं इन्हें लेकर आया) उस समय इनके सिरपर काकपक्ष (बहाए हुए बाल), हाथोंमें खेलनेवाले धनुष-बाण और तरकश थे। तब बच्चोंके समान युद्ध करके ही इन्होंने राक्षसोंको मार डाला।' यह सुनकर जनक बड़े प्रेम और आश्चर्यसे पूछने लगे—'महाराज! तो फिर क्या आपका यज्ञ पूरा हो गया ?' मुनिने कहा—'अब आप स्वयं ही समझ लीजिए'॥ ३॥ तब (जनकके साथ आए हुए) ब्राह्मण लोग, जनक तथा मन्त्रिगण आपसमें कहने लगे—'हमारे लिये तो शिवका धनुष सचमुच कल्पवृक्ष हो गया'। राजा जनककी यह रीति (भावना) सुनकर तो तुलसीदासके मनमें भी प्रतीति और प्रीति जाग उठी है। उस (तुलसीदास)-के बड़े भाग्य हैं कि वह ऐसे स्वामी (राम)-का सेवक बना बैठा है॥ ४॥ (६६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चाऱ्यो भले बेटा देव दसरथ राय - के ।
जैसे राम - लखन, भरत - रिपुहन तैसे, सील-सोभा-सागर प्रभाकर प्रभाय-के ॥ १ ॥
ताडुका सँहारि, मख राखे, नीके पाले व्रत, कोटि कोटि भट किए एक एक घाय-के ।
एक बान-बेग ही उड़ाने जातुधान जात, सूखि गए गात हैं, पतौआ भए बाय - के ॥ २ ॥
सिला-छोर छुवत, अहल्या भई दिव्य देह, गुन पेखे पारस - के पंकरुह-पाँय-के ।
राम - के प्रसाद, गुरु गौतम खसम भए, रावरेहु सतानंद पूत भये माय - के ॥ ३ ॥
प्रेम - परिहास - पोषे बचन परसपर कहत, सुनत सुख सबही सुभाय - के ।
'तुलसी' सराहैं भाग कौसिक जनक जू-के, बिधि-के सुढर होत सुढर सुदाय-के ॥४॥(६७)

ए दोऊ दसरथ - के बारे ।
नाम राम घनस्याम, लखन लघु नख-सिख अँग उजियारे ॥ १ ॥
निज हित लागि माँगि आने मैं, धर्मसेतु - रखवारे ।
धीर, बीर, बिरुदैत, बाँकुरे, महाबाहु, बल - भारे ॥ २ ॥
एक तीर तकि हती ताडुका, किय सुर - साधु सुखारे ।
जग्य राखि, जग साखि, तोषि रिषि, निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥

महाराज दशरथके चारों पुत्र बड़े ही सुन्दर हैं । जैसे राम और लक्ष्मण हैं, वैसे ही भरत और शत्रुघ्न भी । सभी शील और शोभाके समुद्र हैं । उनका प्रभाव (तेज) तपे सूर्यके समान है ॥ १ ॥ इन्होंने ताड़काका संहार करके मेरे यज्ञका रक्षा की और अपनी प्रतिज्ञाका भली-भाँति पालन किया । इन्हों ने एक ही बारमें अगणित शूरोंको मार डाला । इनके एक ही बाणके झटकेसे राक्षस ऐसे उड़ गए, मानो उनके शरीर सूखकर बवंडरके पत्ते बन गए हों ॥२॥ शिलाका छोर छूते ही अहल्याकी देह ऐसी दिव्य हो उठी मानो इनके चरण-कमलोंमें पारसके गुण भरे हों । इस प्रकार रामकी कृपासे गुरु गौतम फिर अहल्याके पति हो गए और आपके शतानंदजी फिर माता (अहल्या)-के पुत्र हो गए ॥ ३ ॥ इस प्रकार प्रेम और परिहास-भरे वचन आपसमें कहते-सुनते सब स्वभावसे ही बड़े प्रसन्न हुए जा रहे थे । तुलसीदास कहते हैं कि महाराज जनकके भाग्यकी सराहना करते हुए विश्वामित्र कहते हैं कि जब विधाता दाहिने हो जाते हैं (भाग्य अच्छा होता है तो) सभी पासोंके दाँव ठीक पड़ने लगते हैं (सब मंगल ही मंगल होता है) ॥ ४ ॥ (६७)

(जनकसे विश्वामित्र कहने लगे—)'ये दोनों कुमार राजा दशरथके पुत्र हैं । मेघके समान साँवले कुमारका नाम 'राम' है और नखसे शिख-तक गोरे कुमार इनके छोटे भाई 'लक्ष्मण' हैं ॥ १ ॥ धर्मकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले इन कुमारोंको मैं अपने कामके लिये (दशरथसे) माँग लाया था । ये बड़े ही धीर, वीर, यशस्वी, रणबाँकुरे, विशाल भुजावाले और बलशाली हैं ॥ २ ॥ सारा संसार जानता है कि इन्होंने एक ही बाणसे ताड़काको मारकर देवता और साधुओंको निश्चिन्त कर डाला । यज्ञकी रक्षा करके इन्होंने ऋषियोंको सन्तुष्ट कर दिया और ललकार-ललकारकर राक्षसोंका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुनि - तिय तारि, स्वयंबर पेखन आए बचन तिहारे।
ऐउ पिनाक देखिहैं नैकु, जेहि नृपति लाज - ज्वर जारे॥ ४॥
सुनि, सानंद सराहि, अपरिजन बारहिं बार निहारे।
पूजि सप्रेम, प्रसंसि कौसिकहिं, भूपति सदन सिधारे॥ ५॥
सोचत सत्य - सनेह - बिबस, निसि नृपहि गनत गइ तारे।
पठए बोलि भोर गुरु - के सँग, रंगभूमि पग धारे॥ ६॥
नगर - लोग सुधि पाइ मुदित सब - ही सब काज बिसारे।
मनहुँ मघा-जल उमँगि उदधि-रुख, चले नदी - नद - नारे॥ ७॥
ए किसोर, धनु घोर बहुत, बिलखात बिलोकनिहारे।
टर्‌यो न चाप तिन्हतें जिन्ह सुभटनि, कौतुक कुधर उखारे॥ ८॥
ए जाने - बिनु, जनक जानियत करि पन, भूप हँकारे।
नतरु सुधा - सागर परिहरि, कत कूप खनावत खारे॥ ९॥
सुषमा - सील - सनेह सानि मनो रूप बिरंचि सँवारे।
रोम-रोमपर सोम - काम सत - कोटि वारि, फिरि डारे॥ १०॥

बध कर डाला॥ ३॥ मुनिकी पत्नीका उद्धार करके ये आपके बुलानेपर स्वयंवर देखने चले आए हैं। ये भी उस पिनाक (शिवके धनुष)-को देखना चाहते हैं जिसने राजाओंको लज्जाके ज्वरसे सन्तप्त कर डाला है (राजाओंको लज्जित कर दिया है)॥४॥ मुनिकी ये बातें सुनकर, जनक बार-बार अपने परिवारके साथ बड़े आनन्दसे उनकी प्रशंसा करके रामकी ओर ही देखते चले जा रहे थे। फिर बड़े प्रेमसे विश्वामित्रकी पूजा करके, उनकी प्रशंसा करते हुए राजा जनक अपने भवन लौट गए॥ ५॥ रामसे उनका इतना सच्चा स्नेह हो गया कि वे रातभर चिन्तामें पड़े-पड़े तारे गिनते रह गए (रातभर नींद नहीं लगी क्योंकि वे इस द्विविधा और चिन्तामें पड़े थे कि कैसे मेरी प्रतिज्ञा भी बची रह जाय और रामसे ही सीताका विवाह भी हो जाय)। भोर होते ही गुरु विश्वामित्रके साथ-साथ उन राजकुमारोंको भी उन्होंने बुलवा भेजा और वे सब रंगभूमिमें आ पधारे॥ ६॥ जब नगरवासियोंको समाचार मिला तो वे भी सब काम-काज छोड़-छाड़कर इन्हें देखने जा पहुँचे मानो मघाकी वर्षासे नदी, नद और नाले उमड़कर समुद्रकी ओर बह चले हों॥ ७॥ धनुष बड़ा ही कठोर है और ये कुमार बहुत किशोर अवस्थाके हैं। बालकोंको देखनेवाले लोग यह जानकर बड़े व्याकुल हुए जा रहे हैं कि जिन (रावण-जैसे) योद्धाओंने खेल-खेलमें ही (कैलास-जैसे) पहाड़ उखाड़ उठाए हों, वे भी इस धनुषको टसका-तक नहीं पाए॥ ८॥ जनक इन्हें जाने बिना ही प्रतिज्ञा कर बैठे और राजाओंको बुला बैठे, नहीं तो अमृतका समुद्र छोड़कर खारा कुआँ क्यों खुदवाते (रामको छोड़कर किसी दूसरे राजासे सीताका विवाह करनेके लिये धनुष-यज्ञ क्यों ठानते)॥ ९॥ शोभा, शील और स्नेह एकमें मिलाकर ही विधाताने इनका रूप गढ़कर इनके रोम-रोमपर अरबों चन्द्रमा और कामदेव न्योछावर करके लुटा फेंके हैं॥ १०॥ कोई कहने लगा कि 'ये ऐसे तेज और चकाचौंधसे भरे हैं कि मारे डरके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कोउ कह तेज - प्रताप - पुंज, चितए नहिं जात, भिया रे।
छुअत सरासन - सलभ जरैगो, दिनकर - बंस - दिया रे॥ ११॥
एक कहै कछु होउ, सुफल भे जीवन - जनम हमारे।
अवलोके भरि नयन, आज तुलसी - के प्रान - पियारे॥ १२॥ (६८)

जनक बिलोकि बार बार रघुबर - को।
मुनिपद सीस नाय, आयसु असीस पाय, येई बातैं कहत गवन कियो घर-को॥ १॥
नींद न परति राति, प्रेम-पन एक भाँति, सोचत, सकोचत बिरंचि - हरि - हर - को।
तुमतें सुगम सब देव! देखिबे-को अब, जस हंस किए जोगवत जुग पर- को॥ २॥
ल्याये संग कौसिक, सुनाए कहि गुन-गन, आए देखि दिनकर-कुल-दिनकर-को।
'तुलसी' तेऊ सनेह-को सुभाउ बाउ मानो, चलदल-को-सो पात करै चित चर-को॥३॥(६९)

राग केदारा

रंग - भूमि भोरेहि जाइकै।
राम लखन लखि लोग लूटिहैं, लोचन - लाभ अघाइकै॥ १॥
भूप - भवन, घर - घर, पुर - बाहर, इहि चरचा रहि छाइकै।
मगन मनोरथ - मोद नारि-नर प्रेम - बिबस उठैं गाइकै॥ २॥

इनकी ओर देखा नहीं जाता। ये तो सूर्यवंशके ऐसे दीपक हैं कि इनके छूते ही धनुष फतिंगेकी भाँति जलकर भस्म हो जायगा' ॥११॥ कुछ लोग यह भी कह रहे थे कि 'कुछ भी हो (धनुष टूटे या न टूटे), हमारे तो जन्म और जीवन सुफल हो गए कि हमने आज तुलसीदासके प्राणोंके प्यारे रामको भर आँखों देख लिया' ॥ १२ ॥ (६८)

जनक बार-बार रामको निहारते हुए मुनिवरके चरणोंमें सिर नवाकर, उनकी आज्ञा और आशीर्वाद पाकर, उन्हींकी बातें करते हुए अपने घर लौट गए ॥ १ ॥ रामके प्रति प्रेम और धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञाकी रक्षा—इन दोनों ही बातोंको वे समान महत्त्वका समझते थे। अतः, इसी बातकी उन्हें इतनी चिन्ता हो उठी थी कि रातमें उन्हें नींद-तक न आई (सारी रात करवटें बदलते बीत गई क्योंकि उन्हें यह पछतावा हो रहा था कि मैंने प्रण क्यों ठान लिया। अब प्रण छोड़ नहीं सकता और राम इस धनुषको तोड़ नहीं पावेंगे)। वे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको भी मनाने लगे और कहने लगे कि 'देव! आपकी कृपा हो जाय तो सब कुछ सुगम हो सकता है'। वे अपने सुयशको हंस बनाकर उसके दोनों (प्रेम और प्रण-रूपी) पंख सहलाए जा रहे हैं (वे अपना यश भी बचाना चाहते हैं तथा रामके प्रति प्रेमका भी निर्वाह करना चाहते हैं) ॥ २ ॥ इसी समय विश्वामित्र भी दोनों भाइयोंको साथ लिए वहाँ आ पहुँचे और उनके गुण सुनाने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि सूर्यकुलके सूर्य रामको आया देखकर महाराज जनकका चित्त स्नेहके वायुके स्वाभाविक झकोरेसे पीपलके पत्तेके समान हिल उठा (वे स्नेहके कारण सोचने लगे कि क्यों न प्रण तोड़कर इनसे सीताका विवाह कर दिया जाय) ॥ ३ ॥ (६९)

राजाके भवनमें, नगरमें और बाहर घर-घरमें चरचा चल रही है कि 'कल प्रातःकाल लोग रंगभूमिमें राम और लक्ष्मणको देखकर, छककर अपने नेत्रोंका लाभ लेंगे' ॥ १ ॥ पुरुष और स्त्रियाँ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोचत बिधि-गति, समुझि परसपर कहत बचन बिलखाइकै।
कुँवर किसोर, कठोर सरासन, असमंजस भयो आइकै॥ ३॥
सुकृत सँभारि, मनाइ पितर-सुर, सीस ईस-पद नाइकै।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब, अपनो हित चित लाइकै॥ ४॥
लेत फिरत कनसुई[1] सगुन सुभ, बूझत गनक बुलाइकै।
सुनि अनुकूल मुदित मन मानहु, धरत धीरजहि धाइकै॥ ५॥
कौसिक - कथा एक - एकनि - सों, कहत प्रभाउ जनाइकै।
सीय - राम - संजोग जानियत, रच्यो बिरंचि बनाइकै॥ ६॥
एक सराहि सुबाहु - मथन बर बाहु, उछाह बढ़ाइकै।
सानुज राज - समाज बिराजिहिं, राम पिनाक चढ़ाइकै॥ ७॥
बड़ी सभा, बड़ लाहु, बड़ो जस, बड़ी बड़ाई पाइकै।
को सोहिहै, और को लायक, रघुनायकहिं बिहाइकै॥ ८॥
गविनिहिं गँवहि[2] गँवाइ गरब गृह, नृप-कुल बलहिं लजाइकै।
भली भाँति साहब तुलसी - के चलिहैं ब्याहि बजाइकै॥ ९॥ (७०)

सभी अपने मनोरथकी सिद्धि हो जाने (राम-लक्ष्मणका दर्शन मिलने)-से आनंदित होकर प्रेमवश यही राग अलापे चले जा रहे हैं॥ २॥ भाग्यका फेर समझकर सब लोग इसी चिन्तामें घुले जा रहे हैं और आपसमें बिलख-बिलखकर यही कह रहे हैं—'भाई! ये राजकुमार अभी किशोर अवस्थाके (छोटे) हैं और यह धनुष बड़ा ही कठोर है, यही बड़ा असमंजस आ पड़ा है'॥ ३॥ वे लोग अपने-अपने पुण्योंका स्मरण करके, चित्तमें अपने ही स्वार्थकी बात सोचकर देवता और पितरोंको मनाते हुए शंकरके चरणोंमें सिर नवाते हुए यही प्रार्थना करते जा रहे हैं कि किसी प्रकार रामके हाथों धनुष टूट जाय॥४॥ स्त्रियाँ कनसुई लेती फिरती हैं और पुरुष ज्योतिषीको बुला-बुलाकर शकुन पूछते फिर रहे हैं। जब उनके मुँहसे शुभ शकुन सुनते हैं तो ऐसे प्रसन्न होते हैं मानो भागते हुए धीरजको वे दौड़कर पकड़े ले रहे हों॥ ५॥ महाराज जनकको एकसे-एक कथा सुनाकर विश्वामित्र उनका प्रभाव बताते जा रहे हैं और ऐसे कहते जा रहे हैं कि जान पड़ता है राम-जानकीका संयोग विधाताने पहलेसे ही रच डाला हो॥ ६॥ कोई-कोई ऐसे भी लोग हैं जो बड़े उत्साहसे सुबाहुका वध करनेवाली रामकी भुजाओंकी सराहना करते हुए कह रहे हैं कि—'भाई! राम निश्चय ही धनुष चढ़ाकर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ राजसभामें जा बैठेंगे॥ ७॥ क्योंकि इस बड़ी सभामें रामको छोड़कर कौन इस योग्य है जिसे सीताको ब्याहनेका इतना बड़ा लाभ, सुयश और बड़ाई प्राप्त हो सके?॥ ८॥ ये जितने राजा यहाँ आए बैठे हैं सब अपना गर्व गँवाकर और अपना बल लजाकर अपना-सा मुँह लिए चुपचाप अपने-अपने घर लौटते दिखाई देंगे। देख लेना तुलसीदासके प्रभु राम ही बाजे-गाजेके साथ धुमधामसे सीताको ब्याहकर ले जायँगे'॥ ९॥ (७०)

१. कनसुई लेना=स्त्रियाँ गोबरकी गौर बनाकर चलनीमें रखकर पृथ्वीपर उलट देती हैं। यदि वह सीधी गिरे तो शुभ और टेढ़ी या तिरछी गिरे तो अशुभ मानती हैं। २. गँवहिं=चुपचाप।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग टोड़ी

भोर फूल बीनबे - को गए फुलवाई हैं।
सीसनि टिपारे, उपबीत, पीत पट कटि, दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं॥ १॥
रूप - के अगार, भूप - के कुमार सुकुमार, गुरु - के प्रान - अधार संग सेवकाई हैं।
नीच - ज्यों टहल करैं, राखैं रुख अनुसरैं, कौसिक-से कोही बस किये दुहूँ भाई हैं॥ २॥
सखिन-सहित तेहि औसर बिधि-के सँजोग, गिरिजा-जू पूजिबे-को जानकी-जू आई हैं।
निरखि लखन-राम, जाने रितुपति-काम, मोहि, मानो मदन मोहनी मूड़ नाई हैं॥ ३॥
राघौजू श्रीजानकी-लोचन मिलिबे-को मोद, कहिबे-को जोग न, मैं बातैं सी बनाई हैं।
स्वामी, सीय, सखिन्ह, लखन, तुलसी-को तैसो-तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई हैं॥४॥(७१)

पूजि पारबती भले भाय पाँय परिकै।
सजल सुलोचन, सिथिल तनु पुलकित, आवै न बचन, मन रह्यो प्रेम भरिकै॥ १॥
अंतरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि-सौं हौं, कही चाहौं बात, मात! अंत तौ हौं लरिकै।
मूरति कृपालु मंजु माल दै बोलत भई, पूजो मन-कामना भावतो बरु बरिकै॥ २॥

सबेरा होते ही राम और लक्ष्मण फूल बीनने जनकको फुलवारीमें जा पहुँचे। उनके सिरों-पर चौकोर टोपियाँ, गलेमें जनेऊ और कमरमें पीताम्बर शोभा दे रहा था। अपने बाएँ हाथोंमें दोने (फूल-डोल) लिए चलनेसे उनकी सुन्दरता सवाई हो उठी थी॥ १॥ राजा दशरथके ये दोनों सुकुमार बालक रूपके भांडार हैं और गुरु (विश्वामित्र)-के तो प्राणोंके आधार और उनके साथ उनकी सेवा कर रहे हैं। वे मुनिके इच्छाके अनुसार ही उनकी छोटेसे छोटी टहल-तक किए जा रहे हैं। इस प्रकार इन दोनों भाइयोंने (अपनी सेवाके बलपर) विश्वामित्र-जैसे क्रोधी ऋषिको भी वशमें कर लिया है॥ २॥ संयोगवश उसी समय जानकी भी (उसी फुलवारीमें) सखियोंके साथ गिरिजा (पार्वती)-का पूजन करनेके लिये आ पहुँची। वहाँ उन्होंने राम-लक्ष्मणको कामदेव और वसंतके रूपमें देखा तो उनपर मोहित हो बैठीं, मानो कामदेवने ही आकर उनपर मोहिनी डाल दी हो॥३॥ उस समय अचानक राम और सीताकी जो चार आँखें हुईं, उसके आनन्दका वर्णन करना उचित नहीं है। मैंने तो यों ही गोलमोल बनाकर कह दिया है। उस समय राम, लक्ष्मण, जानकी, सखियाँ और तुलसीदास—इनमेंसे जिसने जिससे जैसा सम्बन्ध जोड़ा वैसा ही (तन्मय) उसका चित्त हो गया (रामने जानकीको भावी पत्नीके रूपमें, जानकीने रामको भावी पतिके रूपमें, लक्ष्मणने जानकीको माताके रूपमें, सखियोंने रामको अपनी प्यारी जानकीके योग्य वरके रूपमें और तुलसीदासने राम और लक्ष्मणको अपने स्वामीके रूपमें और जानकीको स्वामिनीके रूपमें देखा और सब तन्मय हो गए)॥४॥ (७१)

पार्वतीकी भली-भाँति पूजा करके, उनके पैरों पड़कर, सुधबुध खोकर वे पुलकित हो उठीं। उनके नेत्रोंमें जल भर आया। प्रेमसे वे इतनी विह्वल हो उठीं कि मुँहसे कुछ बोल न सकीं॥ १॥ (फिर सँभलकर बोलीं—) 'सबके घट-घटकी जाननेवाली भवानी! जगत्‌की स्वामिनी! आपसे मैं अपने हृदयकी बात कहना तो चाहती हूँ पर माता! मैं अभी अबोध कन्या ही तो हूँ।' तब कृपामयी भवानीकी मूर्ति अपनी मनोहर माला (प्रसाद रूपमें) देकर बोलीं—'सीता! तुम्हें अपना मनचाहा ही

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम कामतरु पाइ बेलि-ज्यों बौंड़ी बनाइ,माँग-कोखि तोषि, पोषि, फैलि, फूलि, फरिकै।
रहौगी, कहौगी तब, साँची कही अंबा, सिय गहे पाँय द्वै, उठाय माथे हाथ धरिकै ॥ ३ ॥
मुदित असीस सुनि, सीस नाइ पुनि-पुनि, बिदा भई देवी - सों, जननि-डर डरिकै।
हरषीं सहेली, भयो भावतो, गावतीं गीत, गवनि भवन, तुलसीस हियौ हरिकै ॥४॥(७२)

रंगभूमि आये दसरथ - के किसोर हैं।
पेखनो सो पेखन चले हैं पुर - नर - नारि, बारे, बूढ़े, अंध, पंगु करत निहोर हैं ॥ १ ॥
नील - पीत - नीरज - कनक - मरकत -घन - दामिनि - बरन तन रूप-के निचोर हैं।
सहज सलोने राम, लखन ललित नाम, जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं ॥ २ ॥
चरन - सरोज, चारु जंघा, जानु, ऊरू, कटि, कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं।
नीके कै निषंग कसे, कर - कमलनि लसैं बान - बिसिषासन मनोहर कठोर हैं ॥ ३ ॥
काननि कनकफूल, उपबीत अनुकूल, पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं।
राजिव - नयन, बिधु - बदन, टिपारे सिर, नख सिख अंगनि ठगौरी ठौर - ठौर हैं ॥ ४ ॥
सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन, प्रमुदित मन देखि देखि दिनमनि भोर हैं।
अबुध, असैले, मन-मैले महिपाल भए, कछुक उलूक, कछु कुमुद - चकोर हैं ॥ ५ ॥

वर मिलेगा और तुम्हारी सब कामनाएँ पूरी होंगी ॥२॥ तुम राम-रूपी कल्पवृक्ष पाकर उसपर लताके समान समान सहारा लेकर छा जाओ। तुम सोहाग (सौभाग्य) और कोख (पुत्र)-से सन्तुष्ट होकर फैल-फूलकर फलोगी (रामसे विवाह करके तुम अचल सौभाग्यवती और पुत्रवती होगी)। उस समय तुम कहोगी कि अम्बाने ठीक ही कहा था।' तब सीताने झुककर उनके दोनों चरण पकड़ लिए और भवानीने उनके सिरपर हाथ फेरकर उन्हें उठा लिया ॥ ३ ॥ पार्वतीका आशीर्वाद सुनकर सीता परम आनन्दित होकर उन्हें पुनः-पुनः मस्तक नवाकर और (विलम्ब जानकर) माताके भयसे उनसे झट बिदा हो चलीं। अपना मनभाया हुआ देखकर साथकी सहेलियाँ भी प्रसन्न होकर गीत गाती हुइ चलीं और तुलसीदासके प्रभु (राम)-का चित्त चुराकर (सीता) राजभवनकी ओर चल दीं ॥४॥ (७२)

दशरथके दोनों कुमार (राम-लक्ष्मण) जब रंगभूमिमें पधारे तो नगरके सारे नर-नारी उन्हें देखनेके लिये झपट चले। बालक, वृद्ध, अन्धे, लंगड़े भी वहाँ ले चलनेके लिये लोगोंसे गिड़गिड़ाने लगे। ये (राम लक्ष्मण) नीले और पीले कमलके समान, पन्ने और सोनेके समान तथा मेघ और बिजलीके समान सौन्दर्यका सार (तत्त्व) लेकर बनाए हुए हैं। ये स्वभावसे ही बड़े सुन्दर हैं। इनके सुन्दर नाम राम और लक्ष्मण हैं। ये कुमार जैसे सुने गए थे वैसे ही ये सबके सिरमौर हैं (सबसे अच्छे हैं) ॥ २ ॥ कमलके समान इनके चरण, जंघा, घुटने और कमर, सब अंग-अंग बड़े सुन्दर हैं। इनके कंधे बड़े विशाल तथा भुजाएँ बड़ी बलशालिनी हैं। ये अत्यन्त सुन्दर तरकश कसे हुए हैं और अपने कमलके समान हाथोंमें सुन्दर और कठोर धनुष-बाण लिए हुए हैं ॥ ३ ॥ ये कानोंमें सोनेके कर्ण-फूल, गलेमें जनेऊ तथा बढ़िया किनारीके पीले दुपट्टे ओढ़े हुए हैं। कमलके समान आँखोंवाले और चन्द्रमाके समान सुहावने मुखड़ोंवाले इन कुमारोंके सिरोंपर टोपियाँ सजी हैं। इनके नखसे शिख-तक स्थान-स्थानपर प्रत्येक अंगकी शोभा लोगोंका चित्त ठगे ले रही है ॥४॥ जैसे सरोवरके कमल और चकवे सवेरे सूर्यको देखकर खिल उठते हैं वैसे ही रामको देखकर राजसभाके दर्शक आनन्दित हो उठे। अज्ञानी, दुःशीलऔर खोटे राजा कुछ तो उल्लू-जैसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भाई-सों कहत बात, कौसिकहिं सकुचात, बोल घन-घोर-से, बोलत थोर - थोर हैं।
सनमुख सबहि, बिलोकत सबहि नीके, कृपा-सों हेरत हँसि तुलसी-की ओर हैं ॥६॥(७३)

एई राम-लखन जे मुनि-सँग आए हैं।
चौतनी चोलना काछे, सखि! सोहैं आगे-पाछे, आछेहू-तें आछे, आछे आछे भाय भाए हैं ॥१॥
साँवरे - गोरे सरीर, महाबाहु, महाबीर, कटि तून - तीर धरे धनुष सुहाए हैं।
देखत कोमल, कल, अतुल बिपुल बल, कौसिक कोदंड-कला बिपुल सिखाए हैं ॥ २ ॥
इनहीं ताड़ुका मारी, गौतम-की तिय तारी, भारी भारी भूरि भट रन बिचलाए हैं।
रिषि - मख रखवारे, दसरथ - के दुलारे, रंगभूमि पग - धारे, जनक बुलाए हैं ॥ ३ ॥
इनके बिमल गुन गनत पुलकि तन सतानंद कौसिक नरेसहिं सुनाए हैं।
प्रभु-पद मन दिए सो समाज चित्त किए, हुलसि-हुलसि हिये तुलसिहू गाए हैं ॥४॥(७४)

राग कान्हरा

सीय स्वयंबर, माई! दोउ भाई आए देखन।
सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन, प्रेम पुलकि तन, मनहुँ मदन मंजुल पेखन ॥ १ ॥

(द्वेषी) और कुछ कुमुद और चकोर-जैसे (दुखी) जान पड़ते हैं (उनका मुँह उतर गया है) ॥ ५ ॥ मुनि विश्वामित्रसे सकुचाते हुए राम अपने भाई लक्ष्मणसे बातें कर रहे हैं। उनके शब्द बादलके गर्जनके समान गंभीर है और वे बहुत थोड़ा बोलते हैं। राम तो सभीके सम्मुख (सबपर कृपा करते) हैं और सबको कृपाकी दृष्टिसे देख भी रहे हैं। वे तुलसीदासकी ओर भी कृपाकी दृष्टिसे देखकर मुसकराए जा रहे हैं ॥ ६ ॥ (७३)

(एक सखी दूसरी सखीसे कहती है—) 'देखो सखी! ये ही वे राम और लक्ष्मण हैं, जो मुनि (विश्वामित्र)-के साथ यहाँ आए हैं। ये ही वे हैं जो चौकोर टोपी और अँगरखा पहने हुए हैं, अच्छोंसे भी अच्छे लग रहे हैं और जिनके मुखसे भी सज्जनता टपक रही है ॥ १ ॥ इन दोनों साँवले और गोरे भाइयोंकी भुजाएँ कितनी विशाल हैं! ये बड़े ही बलवान् हैं। कमरमें तरकश कसे हुए और धनुष-बाण धारण किए हुए ये कैसे प्यारे लग रहे हैं। ये देखनेमें सुन्दर, कोमल और अतुलनीय बलशाली हैं। इन्हें विश्वामित्रने सारी धनुर्विद्या बता सिखाई है ॥ २ ॥ इन्होंने ही ताड़काको मार डाला, गौतमकी पत्नीका उद्धार किया तथा रणमें बड़े-बड़े अनेक योद्धाओंके छक्के छुड़ा दिए। विश्वामित्रके यज्ञके रक्षक और राजा दशरथके ये कुमार इस समय जनकके बुलावेपर रंग-भूमिमें आ पधारे हैं ॥ ३ ॥ शतानन्द और विश्वामित्रने पुलकित हो-होकर इनके सारे निर्मल गुण गिन-गिनकर जनकको कह सुनाए हैं।' तुलसीदास भी प्रभुके चरणोंमें चित्त लगाकर तथा उस समाजका हृदयमें ध्यान करके, आनन्दकी उमंगमें उनका गुण-गान किए जा रहा है ॥ ४ ॥ (७४)

(अपनी मातासे एक स्त्री कहती है—) 'माई! ये दोनों भाई सीताका स्वयंवर देखने यहाँ आए हुए हैं।' यह सुनते ही सब स्त्रियाँ पुलकित हो-होकर ऐसे प्रसन्न चित्तसे चली जा रही हैं मानो मनोहर कामदेवको देखने चली जा रही हों ॥ १ ॥ उनकी सुन्दरता देख-देखकर वे चित्तमें मगन हो-

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निरखि मनोहरताई सुख पाइ-कहै एक-एक सों, 'भूरि भाग हम धन्य आलि ! ए दिन ए खन।'
'तुलसी' सहज सनेह-सुरंग सब, सो समाज चित - चित्रसार लागी लेखन ॥२॥ (७५)

राग गौरी

राम-लखन जब दृष्टि परे, री !
अवलोकत सब लोग जनकपुर, मनु बिधि बिबिध बिदेह करे, री ॥१॥
धनुप - जज्ञ कमनीय अवनि-तल कौतुक ही भो आय खरे, री।
छबि सुरसभा मनहु मनसिज-के, कलित कलपतरु रूख फरे, री॥ २॥
सकल काम बरषत,मुख निरखत,करषत चित, हित हरष भरे, री।
'तुलसी' सबै सराहत भूपहिं, भले पैंत पासे सुढरे, री॥ ३॥ (७६)

नैकु, सुमुखि ! चित लाइ चितौ, री।
राजकुँवर-मूरति रचिबे-को रुचि बिरंचि स्रम कियो कितौ री॥ १॥
नख-सिख सुंदरता अवलोकत, कहि न परत सुख होत जितौ, री।
साँवर-रूप-सुधा भरिबे-कहँ नयन-कमल-कल कलस रितौ, री॥ २॥
मेरे जान इन बोलिबे कारन, चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री।
'तुलसी' प्रभु भंजिहैं संभु-धनु, भूरि भाग सिय-मात-पितौ, री॥ ३॥ (७७)

होकर एक दूसरीसे कहती हैं—'सखी ! आज इस समय तो हम सब बड़ी भाग्यशालिनी और धन्य हैं'। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार वे सब अपने चित्तकी चित्रशालामें, सहज प्रेमके सुन्दर रंगसे, उस समाजका चित्र खींचने लग गईं (जिसमें राम-लक्ष्मण आए बैठे थे) ॥ २ ॥ (७५)

'अरी सखी ! जबसे जनकपुर-वासियोंने राम-लक्ष्मणको देखा है तबसे वे इन्हें देखते ही ऐसे सुध-बुध भूले बैठे हैं मानो विधाताने अनेक 'विदेह' वहाँ ला बना धरे हों' ॥१॥ इसी समय धनुष-यज्ञकी सुन्दर रंग-भूमिमें दोनों भाई ऐसे आ खड़े हुए मानो छबिकी देव-सभामें कामदेवके दो सुन्दर कल्पवृक्ष सौन्दर्यके फलोंसे लदे खड़े हों॥ २ ॥ इनका दर्शन होते ही सारी कामनाएँ बरसने लगीं तथा सबका चित्त प्रेम और आनन्दमें भरकर, इन्हींकी ओर आकृष्ट हो चला। तुलसीदास कहते हैं कि सब लोग राजा जनककी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस समय महाराज जनकके हाथ अच्छा दाँव लगा है, उनके पासे पौ बारह पड़ रहे हैं (भाग्य साथ दे रहा है)' ॥ ३ ॥ (७६)

'अरी सुमुखि ! टुक मन लगाकर देख तो सही कि इन राजकुमारोंकी मनोहर मूर्त्ति गढ़नेमें विधाताने कितना परिश्रम किया है ॥ १ ॥ नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तककी इनकी सुन्दरता देखकर इतना सुख होता है कि कुछ कहते नहीं बनता। साँवले राजकुमारके सौन्दर्यका अमृत भर रखनेके लिये तू अपने सुन्दर कमल-नयनोंके घड़े रीते कर डाल (अन्य सौन्दर्य निकालकर इन्हींका सौन्दर्य अपनी आँखोंमें भर ले) ॥ २ ॥ मैं तो समझती हूँ कि जनकने इन्हें बुलानेके लिये ही यह सब (धनुषयज्ञका) ठाट-बाट रचा है। तुलसीदास कहते हैं कि सीताके माता-पिता बड़े भाग्यशाली हैं क्योंकि शंभुका धनुष तोड़ेंगे तो ये (राम) ही तोड़ेंगे' ॥ ३ ॥ (७७)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग सारंग

जब - तें राम - लखन चितये, री।
रहे इकटक नर-नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितये, री॥ १॥
प्रेम-बिबस माँगत महेस-सों देखत ही रहिए नित ये, री।
कै ए सदा बसहु इन नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ये, री॥ २॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहिं, बड़े भाग आए इत ये, री।
कुलिस कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदु मूरति किसोर कित ये, री॥ ३॥
बिरचत इनहिं बिरंचि, भुवन सब सुंदरता खोजत रितये, री।
'तुलसिदास' ते धन्य जनम जन, मन-क्रम-बच जिन-के हित ये, री॥ ४॥ (७८)

सुनु सखि! भूपति भलो कियो, री।
जेहि प्रसाद अवधेस-कुँवर दोउ, नगर-लोग अवलोकि जियो, री॥ १॥
मानि प्रतीति कहे मेरे - तैं, कत सँदेह - बस करति हियो, री।
तौलौं है यह संभु - सरासन, श्रीरघुबर जौलौं न लियो, री॥ २॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी, औ रामहिं अस रूप दियो, री।
'तुलसिदास' तेहि चतुर बिधाता, निज कर यह संजोग सियो, री॥ ३॥ (७९)

अनुकूल नृपहिं सूलपानि हैं।
नीलकंठ, कारुन्यसिंधु, हर, दीनबंधु, दिन - दानि हैं॥ १॥

'अरी सखी! जबसे लोगोंने राम-लक्ष्मणको देखा है, तभीसे जनकपुरके सब नर-नारियोंकी पलकें टँग गई हैं। उन्हें पलक मारनेमें मानो कई कल्प लग जाते हों॥ १॥ वे इतने प्रेममें भरे हुए हैं कि शंकरसे यही माँगते हैं कि या तो हम सदा इन्हें ऐसे ही देखते रहें, या ये सदाके लिये इन आँखोंमें आ बसें, या ये नेत्र भी इन्हींके संग-संग लगे चलें॥ २॥ कोई महाराज जनकको क्यों नहीं जा समझाता कि ये बड़े भाग्यसे इधर आ पहुँचे हैं (अतः प्रण त्यागकर सीताको इनसे ही व्याह दें)। कहाँ तो शंकरका यह वज्र-जैसा कठोर धनुष और कहाँ यह किशोर अवस्थावाली कोमल मूर्त्ति॥ ३॥ इन्हें रचते समय विधाताने (चौदहों) भुवनोंकी सारी सुन्दरता खोज मारी (तब कहीं इन्हें रचा है)। तुलसीदास कहते हैं कि ये (राम-लक्ष्मण) जिन्हें मन, वचन और कर्मसे प्यारे लग गए उन्हींका जन्म लेना धन्य है'॥ ४॥ (७८)

'अरी सखी! सुन! महाराज जनकने यह (धनुष-यज्ञ रचाकर) अच्छा ही किया क्योंकि देखो, उन्हींकी कृपासे दोनों अवधेश-कुमारोंको देखकर यहाँके नगरवासी जीए जा रहे हैं॥ १॥ तुम मेरे कहनेसे विश्वास कर लो, संदेह क्या किए जा रही हो (कि ये धनुष नहीं तोड़ पावेंगे)। यह महादेवका धनुष तो तभीतक (समूचा) दिखाई दे रहा है जबतक राम इसे उठाते नहीं॥ २॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस विधाताने सीताको इतना सँवारकर रचा और रामको ऐसा रूप दिया है, उसी चतुर विधाताने अपने हाथसे यह संयोग भी ला मिलाया है॥ ३॥ (७९)

महाराज जनकपर शूलपाणि महादेव बड़े प्रसन्न हैं। वे नीलकंठ शंकर बड़े कृपालु और दीनबन्धु हैं तथा निरन्तर दान करते ही रहते हैं॥१॥ वे पहलेसे ही सब बात जानकर जनकको यह धनुष सौंप गए थे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जो पहिलेहि पिनाक जनक-कहँ, गए सौंपि जिय जानि है।
बहुरि त्रिलोचन लोचन-के फल, सबहि सुलभ किय आनि हैं ॥ २ ॥
सुनियत भव - भावते राम हैं, सिय भावती - भवानि हैं।
परखत प्रीति-प्रतीति पैंज - पन, रहे काज, ठटु ठानि हैं ॥ ३ ॥
भए बिलोकि बिदेह नेह - बस, बालक बिनु पहिचानि हैं।
होत हरे होने बिरवनि - दल, सुमति कहति अनुमानि हैं ॥ ४ ॥
देखियत भूप भोर-के-से उडुगन, गरत गरीब गलानि हैं।
तेज - प्रताप बढ़त कुँवरन - को, जदपि सँकोची बानि हैं ॥ ५ ॥
बय किसोर, बरजोर बाहुबल, मेरु मेलि गुन तानिहैं।
अवसि राम राजीव - बिलोचन संभु - सरासन भानिहैं ॥ ६ ॥
देखिहैं ब्याह - उछाह नारि - नर, सकल सुमंगल - खानि हैं।
भूरि भाग 'तुलसी' तेऊ जे, सुनि, गाइहैं, बखानिहैं ॥ ७ ॥ (८०)

राग केदारा

रामहिं नीके कै निरखि, सुनयनी !
मनसहु अगम समुझि यह अवसर, कत सकुचति पिक-बयनी ॥ १ ॥
बड़े भाग मख - भूमि प्रगट भइ, सीय सुमंगल - अयनी।
जा कारन लोचन - गोचर भइ, मूरति सब - सुख - दयनी ॥ २ ॥

उन्हीं तीन नेत्रोंवाले शिवने इन राजकुमारोंको यहाँ बुलाकर हमारे नेत्र सफल कर डाले हैं ॥२॥ सुना जाता है कि शंकरको राम और पार्वतीको सीता बड़ी प्यारी हैं। इस समय वे (शिव) ही (राम और जानकी)-की प्रीति और प्रतीति तथा (राजा जनककी) टेक और उनके प्रणकी परीक्षा ले रहे हैं, इसीसे इस कामके सब ठाट (संयोग) बन जानेपर भी उसके पूरे होनेमें विलम्ब हो रहा है ॥ ३ ॥ राजा जनक इन बालकोंको बिना पहचाने, देखते ही प्रेममें मग्न हो गए। मैं तो अपनी बुद्धिसे अनुमान करके कहती हूँ कि 'होनहार बिरवानके होत चिकने पात' ॥ ४ ॥ यद्यपि ये राजकुमार स्वभावके बड़े संकोची हैं, तो भी इस समय इनका तेज और प्रताप इतना है कि ये सब बेचारे राजा ग्लानिके मारे प्रातःकालके तारोंके समान गले चले जा रहे हैं ॥ ५ ॥ यद्यपि अभी ये किशोर अवस्थाके हैं, तथापि ये चाहें तो अपने प्रबल बाहुबलसे धनुषपर मेरु चढ़ाकर प्रत्यञ्चा (डोरी) तान दें। राजीव-लोचन राम शंभुका धनुष अवश्य ही तोड़ डालेंगे ॥ ६ ॥ और समस्त मंगलोंसे भरे हुए इनके ब्याहका महोत्सव सभी नर-नारी देख पावेंगे। तुलसीदास कहते हैं कि 'वे लोग बड़े भाग्यशाली हैं जो इस विवाहकी कथा सुनकर वर्णन करेंगे और इसका प्रचार करेंगे' ॥७॥ (८०)

(जनकके कुलगुरु शतानन्दकी पत्नीने सीताकी मातासे कहा—) 'अरी सुनयनी ! तुम रामको भर-आँखों देख तो लो। अरी पिकबैनी ! तुम इन्हें समझ लो कि ये मनसे भी अगम हैं (इन्हें कोई समझ नहीं पा सकता)। ऐसे अवसरपर संकोच क्या किए जा रही हो ॥ १ ॥ इन्हीं (राम)-के कारण तो यह सब सुख देनेवाली और सब सुमंगलोंसे भरी सीता हमारे बड़े भाग्यसे यज्ञ-भूमिपर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुल - गुरु - तियके मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पयनी।
'तुलसी' सिथिल देह सुधि-बुधि करि, सहज - सनेह - बिषयनी ॥३॥ (८१)

मिलो बर सुंदर सुंदरि ! सीतहि लायक, साँवरो सुभग, सोभा-हू-को परम सिंगारु।
मनहू-को मन मोहै, उपमा-को को है ? सोहै सुषमा-सागर-संग अनुज राजकुमारु ॥१॥
ललित सकल अंग, तन धरे कै अनंग ? नैननि-को फल कैधौं ? सिय-को सुकृत-सारु ?
सरद-सुधा-सदन-छबिहिं निंदै बदन, अरुन आयत नव नलिन-लोचन चारु ॥२॥
जनक-मन-की रीति जानि बिरहित प्रीति, ऐसीयौ मूरति देखे रह्यो पहिलो बिचारु।
'तुलसी' नृपहिं ऐसो कहि न बुझावै कोउ, पन औ कुँवर दोऊ प्रेम-की तुला धौं तारु ॥३॥ (८२)

देखि देखि री ! दोउ राजसुवन।
गौर - स्याम सलोने लोने-लोने लोयननि, जिनकी सोभा-तें सोहै सकल भुवन ॥१॥
इनहीं ताडुका मारी, मग मुनि - तिय तारी, रिषि-मख राख्यो, रन दले हैं दुवन।
'तुलसी' प्रभु - को अब जनकनगर - नभ, सुजस - बिमल बिधु चहत उवन ॥२॥ (८३)

(जहाँ जनकने वर्षा-यज्ञके लिये हल चलाया था) प्रकट हुई थीं' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपने कुलगुरुकी पत्नीके ये मधुर वचन सुनकर बड़ी समझदार जनककी प्रिया सुनयना अपने शरीरकी सारी सुध-बुध भूलकर स्वाभाविक स्नेहसे भगवान् रामको एकटक निहारने लगीं ॥ ३ ॥ (८१)

(एक स्त्री दूसरीसे कहने लगी—) 'देख री सखी ! शोभाकी भी शोभा बढ़ानेवाला यह अत्यन्त सुन्दर साँवला वर ही सीताके योग्य है। यह वर बस सुन्दरी सीताको ही मिलना चाहिए। ये तो मनका भी मन मोहे ले डाल रहे हैं। बताओ इनकी उपमा और किससे दी जा सकती है ? इनके साथ जो सुन्दर राजकुमार हैं ये इनके छोटे भाई हैं ॥१॥ इनके अंग-अंगसे सुन्दरता टपकी पड़ रही है। कहीं इस देहमें ये कामदेव ही तो नहीं आ पहुँचे हैं ? कहीं ये हम सबके नेत्रोंके फल ही तो नहीं हैं ? या कहीं ये सीताके पुण्योंके सार ही तो नहीं हैं ? इनका छबीला मुखड़ा शरत्के चन्द्रमाकी छबिको भी लजाए डाल रहा है। इनके लाल-लाल बड़े-बड़े नेत्र नये कमलकी पंखड़ीके समान सुहावने लग रहे हैं ॥२॥ यदि ऐसी मनमोहनी मूर्त्ति देखकर भी जनक अपने पहले प्रणपर अड़े रहे, तो समझना चाहिए कि उन्हें प्रीति करनेका ढंग ही नहीं आता है। (तुलसीदास कहते हैं—) 'जाकर कोई राजाको क्यों नहीं समझा आता कि एक ओर अपना प्रण और दूसरी ओर इन राजकुमारोंके लिये प्रेम, इन दोनोंको तराजूके पलड़ोंपर रखकर तौलें तो सही (तब ज्ञात होगा कि इनके सामने प्रणका कोई मूल्य नहीं। प्रण तोड़कर सीतासे इनका विवाह कर ही डालना चाहिए)' ॥ ३ ॥ (८२)

'अरी सखी ! इन सलोने और सुन्दर नेत्रोंवाले साँवले और गोरे दोनों राजकुमारोंको भर-आँखों देख तो ले। इनकी शोभासे तो सारा लोक जगमगा उठा है ॥ १ ॥ ये ही हैं जिन्होंने ताड़काको मार डाला, मार्गमें पड़ी हुई मुनिकी पत्नी अहल्याका उद्धार कर डाला, मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा कर ली और रणमें (निशाचर) शत्रुओंका संहार कर डाला। (तुलसीदास कहते हैं कि) अब प्रभु रामके यशका चन्द्रमा शीघ्र ही जनकपुर-रूपी आकाशमें भी उदय होना चाहता है (जनकपुरमें भी धनुष तोड़कर सीतासे विवाह करके इनका यश फैलनेवाला है)' ॥ २ ॥ (८३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग टोड़ी

राजा रंगभूमि आज बैठे जाइ-जाइकै।
आपने - आपने थल, आपने - आपने साज, आपनी-आपनी बर बानिक बनाइ कै ॥ १ ॥
कौसिक - सहित राम-लखन ललित नाम, लरिका ललाम लोने, पठए बुलाइकै।
दरस-लालसा-बस लोग चले भाय भले, बिकसत - मुख, निकसत धाइ धाइ-कै ॥ २ ॥
सानुज सानंद हिये आगे ह्वै जनक लिए, रचना रुचिर सब सादर दिखाइ-कै।
दिये दिव्य आसन, सुपास, सावकास अति, आछे-आछे बीछे-बीछे बिछौना बिछाइकै ॥ ३ ॥
भूपति किसोर दुहुँ ओर, बीच मुनिराउ, देखिबे-को दाउँ, देखौ, देखिबो बिहाइ-कै।
उदय - सैल सोहैं, सुंदर कुँवर जोहैं, मानो भानु भोर भूरि किरनि छिपाइ-कै ॥ ४ ॥
कौतुक - कोलाहल निसान - गान पुर, नभ बरषत सुमन बिमान रहे छाइ-कै।
हित-अनहित, रत - बिरत बिलोकि बाल, प्रेम - मोद - मगन जनम - फल पाइ-कै ॥ ५ ॥
राजा-की रजाइ पाइ सचिव - सहेली धाइ, सतानंद ल्याए सिय सिबिका चढ़ाइ-कै।
रूप - दीपिका निहारि मृग - मृगी नर-नारि, बिथके बिलोचन निमेषैं बिसराइ-कै ॥ ६ ॥
हानि, लाहु, अनख, उछाहु, बाहुबल कहि, बंदि बोले बिरद, अकस उपजाइ-कै।
दीप-दीप-के महीप, आए सुनि पैंज, पन कीजै, पुरुषारथ-को अवसर भो आइ-कै ॥ ७ ॥

सभी राजा अपने-अपने साज-समाज और निराले ठाट-बाटके साथ रंगभूमिमें अपने-अपने आसनोंपर जा बैठे ॥ १ ॥ उसी समय राजा जनकने अत्यन्त सलोने राम और लक्ष्मण नामके बालकोंके साथ मुनि विश्वामित्रको भी बुलवा भेजा। पुरवासी लोग भी उनके दर्शनोंकी अभिलाषासे पवित्र मनसे, प्रसन्न होकर, अपने-अपने घरोंसे निकलकर दौड़ पड़े। जनकने और उनके छोटे भाई कुशध्वजने प्रसन्न होकर आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और आदरपूर्वक रंगभूमिकी सुन्दर रचना दिखाकर उन्हें उस दिव्य आसनपर ले जा बैठाया जिसपर सब प्रकारकी सुविधा थी (जहाँसे सब कुछ दिखाई देता था), जो लंबा-चौड़ा भी था और जिसपर चुने हुए अच्छे-अच्छे बिछावन भी पड़े थे ॥३॥ (उन्हें देखकर सब कहने लगे–) 'देखो ये बीचमें मुनिराज विश्वामित्र हैं और उनकी दोनों ओर दोनों राजकुमार (राम और लक्ष्मण) बैठे हैं। इन्हें भर-आँख देख लेनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। इसलिये सब कुछ देखना छोड़कर इन्हींको देखते चलो। ये दोनों सलोने राजकुमार ऐसे जान पड़ते हैं मानो उदयाचलपर प्रातःकालीन सूर्य अपनी सहस्रों किरणें छिपाकर उदित हो उठा हो ॥४॥ जनकपुरमें बड़े खेलकूद, ढोल-ढमाके और गाने-बजानेकी धूमधाम मची हुई है। देवता भी आकाशमें विमानोंपर बैठे फूल बरसा रहे हैं। मित्र और शत्रु, अनुरागी और विरागी सब इन दोनों बालकों (राजकुमारों)-को देखकर अपने जन्मका फल पाकर, प्रेम और आनन्दमें मग्न हुए जा रहे हैं ॥ ५ ॥ इतनेमें ही राजा जनककी आज्ञा पाकर मन्त्री और सहेलियाँ सब दौड़ पड़े और सीताको पालकीपर बैठाकर शतानन्द (रंगभूमिमें) लिवा लाए। सीताकी सुन्दरता देखकर स्त्री और पुरुष अपनी पलकें टाँगकर ऐसे चकितसे खड़े रह गए जैसे मरीचिका (बालूकी चमक) देखकर मृग और मृगी खड़े रह जाते हैं ॥ ६ ॥ इसी समय भाट लोग (धनुष न तोड़ पानेसे) हानि, (धनुष तोड़कर यश और सीताकी प्राप्तिका) लाभ, (धनुष तोड़ डालनेके लिये वहाँ उपस्थित राजाओंकी अनख) कुलबुलाहट, (धनुष

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आनाकानि, कठ-हँसी, मुँहा-चाही होन लगि, देखि दसा, कहत बिदेह बिलखाइ-कै।
'घरनि सिधारिए, सुधारिए आगिलो काज, पूजि-पूजि धनु, कीजै बिजय बजाइ-कै' ॥ ८ ॥
जनक - बचन छुए बिरवा लजारू - के - से, बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ-कै।
'तुलसी' लखन माखे, रोषे, राखे रामरुख, भाषे मृदु - परुष सुभायन रिसाइ-कै ॥९॥(८४)

भूपति बिदेह कही नीकियै जो भई है।
बड़े ही समाज आज राजनि-की लाज-पति, हाँकि, आँक एक ही पिनाक छीनि लई है॥ १ ॥
मेरो अनुचित न, कहत लरिकाई-बस, पन-परमिति और भाँति सुनि गई है।
नतरु प्रभु - प्रताप, ऊतरु चढ़ाए चाप, देतो पै दिखाइ बल, फल पापमई है॥ २ ॥
भूमि - के हरैया, उखरैया भूमि - धरनि के, बिधि बिरचे प्रभाउ जाको जग-जई है।
बिहँसि हिये हरषि, हटके लखन राम, सोहत सकोच-सील-नेह नारि नई है॥ ३ ॥

तोड़नेवालेको सीता और यश प्राप्त करनेके लिये) उत्साह तथा (विश्व-विजयी योद्धाओंके भी दाँत खट्टे करनेवालोंके) बाहुबलका बखान करके सबको उत्तेजित करते हुए विरुदावली कहने लगे। वे बोले—'राजा जनककी दृढ प्रतिज्ञा सुनकर न जाने किन-किन द्वीप-द्वीपान्तरसे बड़े-बड़े राजा यहाँ आ पधारे हैं। अतः, आप लोग राजा जनककी प्रतिज्ञा पूरी कर डालिए। आप लोगोंके पुरुषार्थ दिखानेका समय आ पहुँचा है ॥ ७ ॥ यह सुनकर राजाओंमें परस्पर (तुम पहले जाओ, तुम पहले जाओ)-की टाल-मटोल, धनुष तोड़नेमें असफल राजाओंपर अन्य दर्शकों और भले लोगोंको मन ही मन हँसते और (सबकी असफलतापर) फबती कसते देखकर जनक बिलखकर कहने लगे—'राजाओ ! आप लोग अपने-अपने घरका पैंड़ा पकड़िए और अपना काम देखिए। अब आप धनुषकी पूजा करके (धनुषकी कठोरता स्वीकार करके) अपनी विजय (पराजय)-की घोषणा कर डालिए' ॥ ८ ॥ जनकके ये (व्यंग्य) वचन सुनकर वे सब वीर लाजवंती (छुई-मुई)-के समान लाजसे अपने सिर झुकाकर बैठ रहे। तुलसीदास कहते हैं कि (जनकके व्यंग्यपूर्ण वचन सुनकर) लक्ष्मणको तो जैसे आग लग गई (बहुत बुरा लगा) और वे भड़क उठे। रामकी ओर देखकर अपने स्वभावके अनुसार क्रोधमें भरकर वे कोमल स्वरमें बड़ी कठोर बातें बोल उठे ॥ ९ ॥ (८४)

(लक्ष्मण बोले—) 'महाराज जनकने जो कुछ कहा है वह सब ठीक ही है। इतने बड़े इस समाजमें आज राजाओंकी सारी लाज और प्रतिष्ठा इस अकेले धनुषने चुनौती देकर छीन धरी है ॥ १ ॥ मैं अपने लड़कपनके अनुसार कह रहा हूँ, कुछ बुरा न मान बैठिएगा। इस धनुषके टूटनेका कुछ और ही फल (रामसे ही सीताका विवाह) सुना गया है, नहीं तो प्रभु रामके प्रतापसे इस धनुषको अभी चढ़ाकर ही मैं जनकका (मुँहतोड़) उत्तर दे डालता। मैं अपना बल यहाँ अवश्य दिखला देता, परन्तु क्या करूँ ? इससे प्राप्त होनेवाला फल पानेसे पाप लगता है (क्योंकि सीताका विवाह तो जानकीसे होनेवाला है जो मेरी माताके समान हैं)। इस समय तो विधाताने भूमि हरने (जीतने)-वाले (बाणासुर) और पर्वत उखाड़ उठानेवाले (रावण)-को जगद्-विजयी बना रक्खा है (जिसे मैं नहीं मानता)।' यह सुनकर, मन ही मन हँसकर रामने लक्ष्मणको चुप करा बैठाया। उस समय वे रामके शील और संकोचमें पड़कर नीचा सिर किए

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सहमी सभा सकल, जनक भये बिकल, राम लखि, कौसिक असीस-आज्ञा दई है।
'तुलसी' सुभाय गुरु-पाँय लागि रघुराज, रिषिराज-की रजाइ माथे मानि लई है ॥४॥ (८५)

सोचत जनक, पोच पेंच परि गई है।
जोरि कर-कमल निहोरि कहैं कौसिक-सों, 'आयसु भो राम-को, सो मेरे दुचितई है ॥१॥
बान, जातुधान-पति, भूप दीप सातहूँ-के, लोकप, बिलोकत पिनाक भूमि लई है।
जोतिलिंग-कथा सुनी जाको अंत पाए बिनु, आए बिधि-हरि हारि, सोई हाल भई है ॥२॥
आप ही बिचारिए, निहारिए सभा-की गति, बेद-मरजाद मानौ हेतुबाद हई है।
इनके जितौहैं मन, सोभा अधिकानी तन, मुखन-की सुषमा सुखद सरसई है ॥३॥
रावरो भरोसो-बल, कै है कोऊ कियो छल, कैधौं कुल-को प्रभाव, कैधौं लरिकई है ?
कन्या, कल कीरति, बिजय बिस्व-की बटोरि, कैधौं करतार इन्हीं-को निरमई है ॥ ४ ॥

बड़े प्यारे लग रहे थे ॥ ३ ॥ लक्ष्मणकी यह बात सुनकर तो सारी सभा सहम उठी। जनक प्रेम-बिह्वल हो उठे। यह देखकर विश्वामित्रने रामकी ओर देखकर आशीर्वाद देते हुए आज्ञा दे दी कि जाओ धनुष तोड़ डालो। तुलसीदास कहते हैं कि रामने गुरु विश्वामित्रके चरणोंमें स्वभावसे ही सिर नवाकर, उनकी आज्ञा सिर-माथे उठा चढ़ाई ॥ ४ ॥ (८५)

जनक सोचने लगे कि यह तो बड़ा बुरा पेंच आ पड़ा है। वे हाथ जोड़कर विश्वामित्रसे निवेदन करते हुए कहने लगे—'भगवन् ! आपने जो रामको आज्ञा दी है, उस सम्बन्धमें मुझे कुछ उलझन हो रही है ॥ १ ॥ बाणासुर, राक्षसराज रावण, सातों द्वीपोंके राजा और लोकपालोंको देखते ही मानो यह धनुष आज पृथ्वी पकड़ बैठा है। ज्योतिर्लिंग[1]की कथा सुनी जाती है ब्रह्मा और विष्णु उसका पार न पाकर छूछे लौट आए, वही दशा यहाँ (इस धनुषकी) भी हो रही है ॥ २ ॥ आप ही विचार कर लीजिए और सभामें जो कुछ हुआ है (कि सब राजा असफल हो बैठे हैं) यह भी देख लीजिए। ऐसा जान पड़ता है मानो तर्कने वेदकी सारी मर्यादा मिटा डाली है। इन बालकोंका जैसा उत्साह है, वैसी ही शरीरकी शोभा भी है और वैसी ही इनके मुखड़ोंकी सुन्दरता भी बड़ी प्यारी लगती है ॥ ३ ॥ इनकी यह प्रसन्नता (उत्साह) क्या आपके भरोसेके बलपर है, या ये कोई छल किए हुए हैं, या इनके कुल (सूर्यवंश)-का प्रभाव है, या केवल बालकपन है, या विधाताने मेरी कन्या सीताको विश्व-व्यापिनी कीर्त्ति और विजयके साथ बटोरकर कहीं इन्हींके लिये तो नहीं रख छोड़ी है ॥४॥ मुझे न तो अपने प्रणका ही मोह है (कि पूरा ही हो)

---

१. ज्योतिर्लिंग=शैव पुराणोंमें कथा है कि जब शिवका ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ तब उसका पता लगानेके लिये ब्रह्मा ऊपर गए और विष्णु नीचे, पर किसीको उसका अंत न मिला, तब वे हारकर लौट आए।

२. विभिन्न स्थानोंमें शिवके १२ ज्योतिर्लिंग हैं—
१. सोमनाथ, प्रभास क्षेत्र सौराष्ट्रमें, २. मल्लिकार्जुन (तमिलनाडुके कृष्णा जिलेमें कृष्णा नदीके तटपर श्रीशैल पर्वत या दक्षिण कैलासपर हैं)। ३. महाकाल या महाकालेश्वर (शिप्रा नदीके तटपर उज्जैनमें)। ४. ओंकार या ओंकारेश्वर (मालवामें नर्मदा नदीके तटपर उज्जैनसे खँडवा जानेवाली रेलवेकी छोटी लाइनपर मोरटंका नामक स्टेशनसे ७ मील दूर)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पन-को न मोह, न बिसेष चिंता सीता-हू-की, लुनिहै पै सोई सोई, जोई जेहिं बई है।
रहै रघुनाथ-की निकाई नीकी, नीके नाथ-हाथ सो तिहारे, करतूति जाकी नई है' ॥ ५ ॥
कहि 'साधु साधु' गाधि-सुवन सराहे राउ, 'महाराज ! जानि जिय ठीक भली दई है'।
हरषे लषन, हरषाने बिलखाने लोग, 'तुलसी' मुदित जाको राजाराम जई है ॥ ६ ॥(८६)

राग टोड़ी

सुजन सराहैं जो जनक बात कही है।
रामहिं सुहानी जानि, मुनि-मन-मानी सुनि, नीच महिपावली दहन-बिनु दही है ॥ १ ॥
कहैं गाधि-नंदन मुदित रघुनंदन-सों, 'नृप-गति अगह, गिरा न जाति गही है।
देखे-सुने भूपति अनेक झूँठे झूँठे नाम, साँचे तिरहुति-नाथ साखि देति मही है ॥ २ ॥

न सीताकी ही विशेष चिन्ता है (कि इसका विवाह हो ही जाय) क्योंकि जिसने जो बोया है, वह तो उसे काटना ही पड़ेगा (जो कर्म किया है उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा)। रामकी सुन्दरता सुन्दर ही बनी रहने दीजिए। यह तो आपके हाथमें ही है जिनमें बहुत विचित्र शक्ति है' ॥ ५ ॥ (जनकके ये वचन सुनकर) विश्वामित्रने 'साधु-साधु' कहकर जनककी बड़ी प्रशंसा की और कहा—'राजन् ! आपने अपनी समझसे तो बहुत ठीक ही कहा है।' (जनककी यह बात सुनकर) लक्ष्मण प्रसन्न हो उठे और बिलखते हुए पुरवासी भी आनन्दमें मग्न हो उठे और जिसके राजा रामकी विजय हो रही है, वह तुलसीदास भी प्रसन्न उठा है ॥ ६ ॥ (८६)

इस समय जनकने जो बात कही उसकी सब सज्जनोंने बड़ी सराहना की और यह देखकर कि वह बात रामको भी बड़ी प्रिय लगी और विश्वामित्रके भी अच्छी लगी, अन्य नीच राजा बिना आगके जल-भुनकर, राख हो गए। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर रामसे कहा—'महाराज जनककी बात बड़ी गूढ (समझमें न आ सकनेवाली) है, वह वाणीसे नहीं बताई जा सकती (अवर्णनीय है)। झूठे और नाममात्रके राजा तो बहुत देखे-सुने गए हैं, पर सच्चे राजा तो एक मात्र तिरहुत-नरेश महाराज जनक ही हैं, जिसकी साखी सारी पृथ्वी भर रही है ॥ २ ॥

---

५. केदारनाथ या केदारेश्वर (हिमालयपर मन्दाकिनीके तटपर केदार नामके शिखरपर हैं)। ६. भीमशंकर (बम्बईसे पूर्व और पूनासे उत्तर भीमा नदीके किनारे सह्य पर्वतके डाकिनी शिखर पर हैं)। ७. विश्वनाथ या विश्वेश्वर (काशी, वाराणसीमें)। ८. त्र्यम्बक या त्र्यंबकेश्वर (महाराष्ट्र प्रान्तके नासिक नगरके पास गोदावरी नदीके उद्गम स्थान ब्रह्मगिरिपर है)। ९. वैद्यनाथ (संथाल परगनेमें जसीडीह स्टेशनके पास 'वैद्यनाथ धाम' के नामसे प्रसिद्ध है)। १०. नागेश या नागेश्वर (सौराष्ट्र, बड़ौदा जिलेमें गोमती-द्वारकासे प्रायः १३ मीलकी दूरीपर 'दारुक वन'में है)। ११. रामेश्वर या रामेश्वरम् तीर्थ (यह स्थान तमिलनाडुके रामनद जिलेमें समुद्रके तटपर है)। १२. घृष्णेश्वर, घुसृणेश्वर या घुश्मेश्वर (आन्ध्र राज्यके अन्तर्गत दौलताबाद स्टेशनसे १२ मील दूर बेरुल गाँवके पास है। इस स्थानको 'शिवालय' कहते हैं)। —शिवपुराण कोटिरुद्र-संहिता २१–२४ के अनुसार।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रागऊ बिराग, भोग-जोग जोगवत मन, जोगी जागबलिक-प्रसाद सिद्धि लही है।
ताते न तरनि-तें, न सीरे सुधाकरहू-तें, सहज समाधि निरुपाधि निरबही है॥ ३॥
ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह-बस बिकल बिलोकित सुचिंतई सही है।
कामधेनु-कृपा हुलसानी तुलसीस-उर, पन-सिसु हेरि, मरजाद बाँधी रही है॥ ४॥(८७)

रिषिराज राजा आज जनक समान को?
आप यहि भाँति प्रीति-सहित सराहियत, रागी औ बिरागी बड़भागी ऐसो आन को॥ १॥
भूमि भोग करत, अनुभवत जोग-सुख, मुनि-मन-अगम अलख-गति जान को?
गुरु-हर-पद-नेह, गेह बसि भौ बिदेह, अगुन-सगुन-प्रभु-भजन-सयान को?॥ २॥
कहनि-रहनि एक, बिरति-बिबेक-नीति, बेद-बुध-संमत पर्थी न निरबान को।
गाँठि बिन गुन-की कठिन जड़ चेतन-की, छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को॥ ३॥
सुनि रघुबीर-की, बचन-रचना-की रीति, भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान-को।
मिट्यो महा मोह जी-को, छूट्यो पोच सोच सी-को, जान्यो अवतार भयो पुरुष पुरान-को॥४॥

इनका मन रागी होनेपर भी विरागी, भोगी होनेपर भी योगी है। योगिराज याज्ञवल्क्य-की कृपासे ये सब सिद्धियाँ प्राप्त किए बैठे हैं। इन्हें न तो सूर्यसे ताप होता है न चन्द्रमासे शीत हो पाता है। ये तो उपाधि-रहित, निर्बाध (बेरोक-टोक) सहज समाधि लगा लेते हैं॥ ३॥ ऐसे अगाध ज्ञानवाले होकर भी ये केवल तुम्हारे स्नेहके कारण ऐसे व्याकुल दिखाई दे रहे हैं मानो इन्हें बड़ी भारी चिन्ता सताए डाल रही हो'। (विश्वामित्रकी यह बात सुनकर—) तुलसीदासके प्रभु रामके हृदयमें कृपाकी कामधेनु, महाराज जनकके प्रणके बछड़ेको देखकर, अत्यन्त हुलस तो उठी (वे जनकके प्रणकी रक्षा करनेके लिये कृपा करके धनुष तोड़नेको तैयार तो हुए) किन्तु गुरुकी मर्यादाकी आज्ञाके खूंटेमें बँधी रह गई (वे गुरुकी आज्ञा पाए बिना धनुष-भङ्गके लिये नहीं उठे)॥ ४॥ (८७)

(राम बोले—) 'ऋषिराज! आज जनकके समान संसारमें और कौन राजा है जिनकी आप भी प्रेमके साथ इतनी सराहना किए डाल रहे हैं। इनके समान एक साथ ही रागी और विरागी दूसरा कौन भाग्यवान् होगा॥१॥ ये पृथ्वीका भोग करनेके साथ-साथ योगके सुखका भी भोग करते रहते हैं। इनकी यह स्थिति किसीकी समझमें नहीं आ सकती। यहाँतक कि मुनि भी इन्हें ठीक-ठीक नहीं जान सकते। इसलिये उसे जान कौन सकता है (कोई नहीं)? इनका अपने गुरु और भगवान् शंकरके चरणोंमें अगाध प्रेम है। ये गृहस्थीमें रहते हुए भी पूरे विदेह (शरीरके सब धर्मोंसे परे) हैं। इनके समान दूसरा कौन है जो निर्गुण और सगुण भगवान्का एक साथ भजन कर सकता हो?॥ २॥ इनकी कथनी (वचन) और करनी (रहन-सहन) समान है। विद्वानोंके मतके अनुसार ये वैराग्य, विवेक, नीति और निर्वाण (मोक्ष) सभी पदोंका रहस्य जानते हैं। इन्होंने बिना रस्सीवाली (निर्गुण) जड-चेतनकी कठोर गाँठ अनायास ही खोल धरी है। इनके समान अपने स्वरूप (आत्म-तत्त्व)-का भली-भाँति समझ सकनेवाला दूसरा और कौन है (कोई नहीं)'॥ ३॥ रामके कहनेका यह ढंग सुनकर जनक ऐसे सकुचा गए जैसे प्रातःकालके समय दीपक हत-प्रभ (मन्द) पड़ जाता है। उनके चित्तका सारा महामोह तत्काल मिट गया। सीताके लिये जो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सभा, नृप, गुरु, नर-नारि पुर, नभ सुर, सब चितवत मुख करुनानिधान-को।
एकै एक कहत प्रगट एक प्रेम-बस, 'तुलसीस तोरिए सरासन इसान-को' ॥ ५ ॥(८८)

राग मारू

'सुनो भैया भूप ! सकल दै कान।
बज्ररेख, गज-दसन जनक-पन, बेद-बिदित, जग जान ॥ १ ॥
घोर कठोर पुरारि-सरासन, नाम प्रसिद्ध पिनाक।
जो दसकंठ दियो बाँवौं, जेहि हर-गिरि कियो मनाक ॥ २ ॥
भूमि-भाल भ्राजत, न चलत सो, ज्यों बिरंचि-को आँक।
धनु तोरै सोइ बरै जानकी, राउ होइ की राँक' ॥ ३ ॥
सुनि आमरषि उठे अवनी-पति, लगे बचन जनु तीर।
टरै न चाप, करैं अपनी-सी, महा महा बलधीर ॥ ४ ॥
नमित-सीस सोचहिं, सलज्ज सब, श्रीहत भए सरीर।
बोले जनक, बिलोकि सीय-तन, दुखित, सरोस, अधीर ॥ ५ ॥
'सप्त दीप नव खंड भूमि-के, भूपति-वृंद जुरे।
बड़ो लाभ, कन्या, कीरति-को जहँ, तहँ महिप मुरे ॥ ६ ॥

उनकी क्षुद्र चिन्ता थी वह भी दूर हो गई और उन्हें विश्वास हो गया कि पुराण पुरुष भगवान्का अवतार हो गया है ॥४॥ इस समय सभी राजा, जनक, गुरु विश्वामित्र, नगरके नर-नारी और आकाशमें खड़े देवता सब करुणानिधान रामका मुँह निहारने लगे और प्रेमके मारे उनमेंसे एक-एक पुकार-पुकारकर कहने लगे—'तुलसीके स्वामी राम ! अब आप उठकर भगवान् शंकरका धनुष तोड़ ही डालिए' ॥ ५ ॥ (८८)

(रङ्गभूमिमें आकर बन्दीजन कहने लगे–) 'देखो भैया राजा लोगो ! कान खोलकर सुन लो। राजा जनकका प्रण वज्रकी रेखा और हाथीके दाँतके समान (अमिट और अटल) है। यह बात वेदमें भी प्रसिद्ध है और उसे सारा जगत् भी जानता है ॥ १ ॥ महादेवका यह 'पिनाक' नामका प्रसिद्ध धनुष बड़ा ही कठोर है। यह उस रावणको भी नीचा दिखा चुका है जिसने कैलास पर्वतको भी हाथपर उठाकर उसे तुच्छ कर दिखाया था ॥ २ ॥ यह विधाताके लेखके समान पृथ्वीके मस्तकपर रक्खा हुआ तनिक भी किसीके टसकाए नहीं टसक रहा है। परन्तु राजा हो या रंक, जो भी कोई इस धनुषको तोड़ देगा उसीका जानकीसे विवाह हो जायगा' ॥ ३ ॥ यह सुनकर सभी राजा उत्तेजित हो-होकर उठ खड़े हुए। उन्हें जनकके ये प्रणके वचन बाणके समान जा लगे। ये बड़े-बड़े बलधारी बननेवाले राजा अपनी सब शक्ति लगा चुके, परन्तु धनुष किसीके टसकाए नहीं टसक पाया ॥४॥ तब सब राजा लज्जित होकर बड़े फेरमें पड़ गए। उनकी सारी कान्ति जाती रही। इस समय महाराज जनकने सीताकी ओर देखकर दुखी, रुष्ट और अधीर होकर कहा—॥ ५ ॥ 'सातों द्वीपों (जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाल, पुष्कर) और नवों खण्डों (भारत, किंपुरुष, हरि, रम्यक, हिरण्य, कुरु, इलावृत, भद्राश्व, केतुमाल)-के जो राजा यहाँ आए उन्हें कन्या (सीता -)के साथ-साथ जहाँ कीर्ति मिलनेका भी बड़ा भारी लाभ प्राप्त हो सकता था, वहाँ वे सभी धनुषके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

डग्यौ न धनु, जनु बीर - बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे'।
रोषे लखन बिकट भृकुटी करि, भुज अरु अधर फुरे ॥ ७ ॥
'सुनहु भानुकुल - कमल - भानु ! जौं अब अनुसासन पावौं।
का बापुरो पिनाक, मेलि गुन मंदर, मेरु नवावौं ॥ ८ ॥
देखौ निज किंकर - को कौतुक, क्यौं कोदंड चढ़ावौं।
लै धावौं, भंजौं मृनाल-ज्यौं, तौ प्रभु - अनुग कहावौं' ॥ ९ ॥
हरषे पुर - नर - नारि, सचिव, नृप, 'कुँवर कहे बर बैन'।
मृदु मुसकाइ, राम बरज्यौ प्रिय बंधु, नयन - की सैन ॥ १० ॥
कौसिक कह्यो, 'उठहु रघुनंदन ! जग - बंदन, बल-ऐन।'
'तुलसिदास' प्रभु चले मृगपति-ज्यौं, निज भगतनि सुख-दैन ॥ ११ ॥ (८९)

जबहिं सब नृपति निरास भए।
गुरु - पद - कमल बंदि रघुपति तब, चाप - समीप गए ॥ १ ॥
स्याम - तामरस - दाम - बरन बपु, उर - भुज - नयन बिसाल।
पीत बसन कटि, कलित कंठ सुंदर सिंधुर-मनि-माल ॥ २ ॥

सामनेसे इधर-उधर सरक गए ॥ ६ ॥ वे धनुषको तनिक भी सरका-तक न सके। ऐसा जान पड़ता है कि या तो पृथ्वीपर कोई वीर रह नहीं गया या वीर लोग लाजके मारे कहीं और मुँह छिपाकर जा बैठे हैं'। राजा जनकके ये वचन सुनते ही लक्ष्मणकी भौंहे तन गईं। उनकी आँखोंसे चिनगारियाँ बरसने लगीं। उनकी भुजा और ओठ फड़कने लगे ॥७॥ (वे बोले–) 'रघुकुलके कमलको खिला देनेवाले सूर्य राम ! सुनिए। यदि आज्ञा दें तो इस बेचारे धनुषकी तो बिसात ही क्या है, मैं मन्दराचलको डोरीपर चढ़ाकर सुमेरु पर्वतको भी झुका धरूँ ॥८॥ आप तनिक अपने इस सेवकका करतब तो देखिए कि मैं किस प्रकार इस धनुषको उठा चढ़ाता हूँ। जब मैं इसे उठाए लिए दूरतक दौड़ा चला जाऊँ और कमलकी नालके समान (सरलतासे) इसके टुकड़े-टुकड़े डालूँ, तभी आप कहिएगा कि मैं आपका सेवक कहलानेका अधिकारी हूँ' ॥ ९ ॥ यह सुनना था कि नगरके सब नर-नारी, मन्त्री और सज्जन राजाओंकी बाछें खिल उठीं और वे कह उठे—'वाह ! राजकुमारने क्या बढ़िया बात कह डाली।' किन्तु रामने अपनी मनोहर मुसकान और नेत्रोंके संकेतसे अपने प्यारे भाई लक्ष्मणको चुप कर बिठाया ॥ १० ॥ तब विश्वामित्रने (रामसे) कहा—'जगद्वन्द्य, बलनिधान, राम ! अब उठ खड़े हो।' यह सुनकर तुलसीदासके प्रभु राम अपने भक्तोंको सुख देनेके लिये सिंहकी चालसे (धनुष-की ओर) बढ़ चले ॥ ११ ॥ (८९)

जिस समय सब राजा निराश हो-होकर अपने आसनों-पर जा बैठे थे उसी समय विश्वामित्रके चरण-कमलोंकी वन्दना करके राम उस धनुषके पास जा पहुँचे ॥ १ ॥ नील कमलकी मालाके समान उनका साँवला शरीर है। उनके हृदय, भुजा और नेत्र सब विशाल हैं। कमरमें पीताम्बर लिपटा हुआ है,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कल कुंडल, पल्लव - प्रसून सिर, चारु चौतनी लाल।
कोटि - मदन - छबि - सदन बदन - बिजु, तिलक मनोहर लाल ॥ ३ ॥
रूप अनूप बिलोकत सादर, पुरजन, राज - समाज।
लखन कह्यो, थिर होहु धरनि - धर, धरनि, धरनि-धर आज ॥ ४ ॥
कमठ, कोल, दिग - दंति, सकल अँग, सजग करहु प्रभु-काज।
चहत चपरि सिव - चाप चढ़ावन, दसरथ - को जुवराज ॥ ५ ॥
गहि करतल, मुनि पुलक-सहित, कौतुकहि उठाइ लियो।
नृपगन-मुखनि-समेत नमित करि, सजि, सुख सबहि दियो ॥ ६ ॥
आकरष्यो सिय - मन समेत हरि, हरष्यो जनक - हियो।
भंज्यो भृगुपति - गर्व - सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो ॥ ७ ॥
भयो कठिन कोदंड - कोलाहल, प्रलय - पयोद समान।
चौंके सिव, बिरंचि, दिसि - नायक, रहे मूँदि कर कान ॥ ८ ॥
सावधान ह्वै चढ़े बिमाननि चले बजाइ निसान।
उमँगि चल्यो आनंद नगर, नभ जय - धुनि, मंगल गान ॥ ९ ॥

और सुन्दर गलेमें गजमुक्ताओंकी मनोहर माला पड़ी है ॥ २ ॥ उनके कानोंमें सुन्दर कुण्डल और सिरपर पत्र-पुष्पके साथ लाल रंगकी मनोहर चौतनी टोपी लगी है। करोड़ों कामदेवोंको उनके चन्द्रमा-जैसे सुन्दर मुखड़ेसे ही छबि मिली है और उनके मस्तकपर मनोहर तिलक लगा है ॥ ३ ॥ जनकपुरके निवासी और सब राजा बड़े आदरसे उनका मनोहर रूप निहारे जा रहे हैं। उसी समय लक्ष्मण बोल उठे—'देखो शेष, पृथ्वी और पर्वतो ! अब तुम निश्चल (सँभलकर स्थिर) हो जाओ ॥ ४ ॥ देखो कूर्म ! (कच्छप, जिनकी पीठपर पृथ्वी टिकी हुई मानी गई है) और तुम सब दिग्गज[1] ! भली प्रकार सावधान होकर रामके इस (धनुषके तोड़नेके) काममें सहायता करो। इस समय महाराज दशरथके युवराज राम बस शिवका धनुष चढ़ाया ही चाहते हैं' ॥ ॥ तभी रामने मुनि (विश्वामित्र)-को पुलकित करते हुए उस धनुषको खेल-खेलमें ही (धीरेसे) हाथसे पकड़ उठाया और उसे झुकानेके साथ-साथ राजाओंके मुख भी झुका दिए (लज्जित कर दिए)। यह देखकर सब सुखी हो उठे ॥ ६ ॥ फिर रामने सीताके हृदयके साथ-साथ उसे खींचकर तान लिया। यह देखकर तो जनक बड़े प्रसन्न हो उठे। रामने परशुरामके गर्वके साथ-साथ वह धनुष भी झट तोड़ डाला और तीनों लोकोंका मोह (अज्ञान) दूर कर मिटाया (कि राम धनुष नहीं तोड़ पावेंगे) ॥७॥ धनुष टूटना था कि प्रलयकालके बादलोंके समान गर्जना (धनुषके टूटनेकी बड़ी भारी कड़क) गूँज उठी। उससे शिव, ब्रह्मा और सभी दिक्पाल[2] ऐसे चौंक पड़े कि सबने कान मूँद लिए ॥ ८ ॥ फिर वे सब सावधान होकर, विमानोंपर चढ़-चढ़कर नगाड़े बजाते हुए जनकपुरको चल पड़े। फिर क्या था ! सारे नगरमें आनन्द ही आनन्द छा चला ! आकाशमें जय-जयकार और मंगल गान होने लगा ॥ ९ ॥ इसके पश्चात्

१. दिग्गज : पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान दिशाओंकी रक्षा करनेवाले क्रमशः ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक।
२. दिक्पाल: इन्द्र:, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान (शिव), ब्रह्मा, शेष।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिप्र - बचन सुनि सखी सुआसिनि, चलीं जानकिहिं ल्याइ।
कुँवर निरखि, जयमाल मेलि उर, कुँवरि रही सकुचाइ॥ १०॥
बरषहिं सुमन, असीसहिं सुर - मुनि, प्रेम न हृदय समाइ।
सीय - राम - की सुंदरता - पै, 'तुलसिदास' बलि जाइ॥ ११॥ (९०)

राग मलार

जब दोउ दसरथ - कुँवर बिलोके।
जनक - नगर-नर - नारि मुदित मन, निरखि नयन-पल रोके॥ १॥
बय किसोर, घन-तड़ित-बरन-तन, नख-सिख अंग लुभारे।
दै चित, कै हित, लै सब छबि-बित, बिधि निज हाथ सँवारे॥ २॥
संकट नृपहि, सोच अति सीतहि, भूप सकुचि सिर नाए।
उठे राम रघुकुल - कल - केहरि, गुरु - अनुसासन पाए॥ ३॥
कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु, जय अरु जानकि पाई।
'तुलसिदास' कीरति रघुपति - की, मुनिन तिहूँ पुर गाई॥ ४॥ (९१)

राग टोड़ी

मुनि - पद - रेनु रघुनाथ माथे धरी है।
राम - रुख निरखि, लखन-की रजाइ पाइ, धरा, धरा-धरनि[1] सुसावधान करी है॥ १॥

ब्राह्मणोंकी आज्ञा सुनकर सुहागिनी सखियाँ जानकीको साथ लेकर चल दीं। उस समय दशरथ-नन्दन रामको देखकर राजकुमारी जानकी उनके गलेमें जयमाला पहनाकर सकुचाकर रह गईं॥१०॥ देवता और मुनि उनपर फूलोंकी वर्षा करके आशीर्वाद देने लगे। उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा पड़ रहा था कि समाए नहीं समा पा रहा था। ऐसे प्यारे सीता और रामकी सुन्दरतापर तुलसीदास भी बलि जाता है॥ ११॥ (९०)

जिस समय जनकपुरके नर-नारियोंने उन दोनों कुमारोंको देखा, उस समय उन्हें देखकर वे अपने मनमें इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने नेत्रोंकी पलकें टाँग ली (पलकें नहीं गिरने दीं)॥१॥ वे किशोर अवस्थाके हैं। राम तो मेघके समान साँवले और लक्ष्मण बिजलीके समान गोरे चमकीले हैं। नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक सुन्दर उनके सारे अंग ऐसे लुभावने हैं मानो विधाताने संसारकी छबिका सारा भांडार जुटाकर एकाग्र-चित्त होकर प्रेमसे उन्हें अपने हाथों बना गढ़ा हो॥ २॥ महाराज जनक बड़े संकटमें पड़े हुए हैं (कि अब क्या होगा, सीताका विवाह होगा या नहीं) और सीताको भी बहुत संकोच हुआ जा रहा था (कि मैंने जिन्हें वरण कर लिया है वे धनुष न तोड़ सके तो क्या होगा)। सब राजा भी धनुष न तोड़ सकनेके कारण लाजसे सिर झुकाए बैठे हैं। इसी समय गुरु (विश्वामित्र)-की आज्ञा पाकर रघुकुल-केसरी राम उठ खड़े हुए॥ ३॥ रामने खेल-खेलमें ही (सरलतासे) वह धनुष तोड़कर जयके साथ-साथ जानकी भी प्राप्त कर ली। तुलसीदास कहते हैं कि मुनि भी तीनों लोकोंमें जा-जाकर यह कीर्ति वर्णित करने लगे॥ ४॥ (९१)

रामने गुरु विश्वामित्रके चरणोंकी रज अपने मस्तकपर उठा लगाई। तब रामको उठता देखकर तथा लक्ष्मणकी आज्ञा पाकर पृथ्वीने अपने सब सहारा देनेवालों (शेष, कोल, कच्छप और दिग्गज

१. धरा-धरनि=पृथ्वीको सँभाले रखनेवाले शेष, वराह, कच्छप और दिग्गज।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुमिरि गनेस, गुरु, गौरि, हर, भूमिसुर, सोचत, सकोचत, सकोची बानि धरी है।
दीनबंधु, कृपासिंधु, साहसिक, सीलसिंधु, सभा-को सँकोच, कुलहू-की लाज परी है॥ २॥
पेखि पुरुषारथ, परखि पन, पेम, नेम, सिय - हिय - की बिसेषि बड़ी खरभरी है।
दाहिनो दियो पिनाक, सहमि भयो मनाक, महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है॥ ३॥
सुर हरषत, बरषत फूल बार - बार, सिद्ध - मुनि कहत सगुन सुभ घरी है।
राम-बाहु-बिटप बिसाल बाँड़ी देखियत, जनक-मनोरथ कलप-बेलि फरी है॥ ४॥
लख्यो न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू, घोर धुनि सुनि सिव-की समाधि टरी है।
प्रभु-के चरित चारु 'तुलसी' सुनत सुख, एक ही सुलाभ, सब-ही-की हानि हरी है॥५॥९२

राग सारंग

राम काम - रिपु - चाप चढ़ायो।
मुनिहिँ पुलक, आनंद नगर, नभ निरखि निसान बजायो॥ १॥
जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप, सबहिँ बिषाद बढ़ायो।
सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो, जनु, हुतो पुरारि पढ़ायो॥ २॥

आदि) को सावधान कर दिया॥ १॥ सीता भी गणेश, गुरु, पार्वती, शंकर और ब्राह्मणोंका स्मरण करके मनमें चिन्ता और संकोच करने लगीं (कि कहीं रामके प्रति मेरा प्रेम कोई भाँप न ले), क्योंकि उनका तो स्वभाव ही संकोची है। (वे मन ही मन रामसे कहने लगीं) आप तो दीनबन्धु, कृपाके सागर, साहसी और शीलके भंडार हैं। इस समय (धनुषकी कठोरता और पिताका प्रण देखकर) मुझे सभाका भी बड़ा संकोच हो रहा है और इधर कुलकी लाजका भी ध्यान रखना पड़ रहा है'॥ २॥ उस समय राजाओंके पुरुषार्थ, जनकका प्रण तथा विशेषत: सीताका अपने प्रति प्रेम और नियम (कि रामसे ही विवाह करूँगी) देखकर रामके हृदयमें बड़ी खलबली मच उठी। उन्होंने धनुषको दाहिना दिया (धनुषको दाहिनी ओर करके उसकी प्रदक्षिणा की)। ऐसा करते ही वह धनुष सहमकर वैसे ही बहुत हलका हो गया जैसे (नागदमन) जड़ीको देखते ही भयानक सर्प भी व्याकुल होकर सिमट बैठता है॥ ३॥ (भगवान्का ऐसा प्रभाव देखकर) देवता लोग प्रसन्न हो-होकर बार-बार पुष्प-वर्षा करने लगे। यह देखकर सिद्ध और मुनिगण कहने लगे कि यह घड़ी बड़ी शुभ है और शकुन भी बड़े अच्छे हैं मानो रामकी विशाल भुजाके सुन्दर वृक्षपर चढ़ी हुई जनकके मनोरथकी कल्पलता फल उठी हो (रामकी भुजाओंके बलसे जनकका मनोरथ पूरा होनेवाला हो)॥ ४॥ रामने कब धनुष उठाया, कब चढ़ाया और कब तोड़ डाला, यह कोई देख-तक न पाया। हाँ, धनुष टूटनेकी प्रचंड ध्वनि सुनते ही शिवकी समाधि अवश्य टूट गई। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभुका यह मनोहर चरित्र सुनकर सबको बड़ा सुख मिला। इस एक ही बड़े लाभसे सबकी हानियाँ दूर हो मिटीं॥ ५॥ (९२)

ज्यों ही रामने शिवका धनुष उठाकर चढ़ाया त्यों ही मुनि विश्वामित्र हर्षसे पुलकित हो उठे, नगरमें आनन्द छा गया और देवता आकाशमें बाजे बजाने लगे॥ १॥ जिस पिनाकने सभी राजाओंकी नाक काट धरी थी (सबको अपमानित और लज्जित कर डाला था) और सभीको हतोत्साह कर दिया था वही पिनाक, रामके हाथका स्पर्श पाते ही ऐसा तड़ाकसे टूट गया मानो शंकरने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पहिराई जयमाल जानकी, जुवतिन मंगल गायो।
'तुलसी' सुमन बरषि, हरषे सुर, सुजस तिहूँ पुर छायो ॥ ३ ॥ (९३)

राग टोड़ी

जनक मुदित मन टूटत पिनाक-के।
बाजे हैं बधावने, सुहावने मंगल गान, भयो सुख एकरस रानी, राजा, राँक - के ॥ १ ॥
दुंदुभी बजाइ, गाइ, हरषि, बरषि फूल, सुरगन नाचैं नाच, नायकहू नाक - के।
'तुलसी' महीस देखे दिन रजनीस-जैसे, सूने परे सून-से मनो मिटाए आँक-के ॥२॥(९४)

राग तोड़ी

लाज तोरि, साजि साज राजा राढ़ रोषे हैं।
कहा भौ चढ़ाए चाप, ब्याह ह्वै है बड़े खाए[1], बोलैं, खोलैं सेल-असि चमकत चोखे हैं।
जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लखन हँसे, बल इनको नीके पिनाक नापे-जोखे हैं।
कुलहि लजावैं बाल, बालिस बजावैं गाल, कैधौं कूर काल-बस तमकि त्रिदोषे हैं ॥ २ ॥
कुँवर चढ़ाई भौंहैं, अब को बिलोकै सोहैं, जहँ-तहँ भे अचेत, खेत-के-से धोखे[2] हैं।
देखे नर-नारि कहैं, साग खाइ जाए भाइ, बाहु पीन पाँवरनि पीना[3] खाइ पोखे हैं ॥ ३ ॥

(उसे पहलेसे) सिखा रक्खा हो ॥२॥ जानकीने आकर उन्हें जयमाला (दूबमें गुँथी हुई महुएकी माला) ला पहनाई और नवेलियाँ मंगल गीत गाने लगीं। तुलसीदास कहते हैं कि देवता पुष्प बरसाते हुए हर्षित हो उठे और रामका सुयश तीनों लोकोंमें जा छाया ॥ ३ ॥ (९३)

धनुषके टूटते ही जनकका जी खिल उठा। बधाईके बाजे बजने लगे और सुहावने मंगल गान होने लगे। उस समय क्या राजा, क्या रानी, क्या रंक, सभी समान आनन्दमें झूम उठे ॥ १ ॥ देवता और स्वर्गके अधिपति भी आनन्दके मारे दुन्दुभी बजाते, गाते और फूल बरसाते हुए नाच उठे। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय वहाँ आए हुए सब राजा दिनमें चन्द्रमाके समान ऐसे मुरझाएसे दिखाई दे रहे थे मानो अंक मिटा देनेपर शून्यके समान सब शून्य (नगण्य) हो गए हों ॥ २ ॥ (९४)

जो दुष्ट राजा थे वे सब लाज छोड़कर युद्ध करनेके लिये फेंटा कसने लगे और रोषमें भर-भरकर कहने लगे—'अरे चलो ! धनुष चढ़ा लेनेसे क्या होता जाता है, अभी विवाह बहुत कसालेका काम है (बड़ी कठिनाईसे ही होगा)।' ऐसा कहकर वे भाले और तरवार निकाल-निकालकर चमकाने लगे ॥ १ ॥ यह देखकर तो पुरवासी घबरा उठे। परन्तु लक्ष्मणने उन्हें धीरज बँधाते हुए हँसकर कहा कि 'इनका बल तो पिनाक (शिवके धनुष)-ने ही भली प्रकार नाप धरा है। ये मूर्ख तो अपने कुलको लजा रहे हैं और या तो व्यर्थ गाल बजाए जा रहे हैं (बकवाद कर रहे हैं) या क्रूर कालके मारे हुए तमककर त्रिदोष (सन्निपात) में बड़बड़ा रहे हैं' ॥ २ ॥ ऐसा कहकर राजकुमार (लक्ष्मण)-ने जो भौंहें चढ़ाईं तो भला उनसे कौन आँखें मिला सकता था ? सब जहाँके तहाँ ऐसे (भीगी बिल्ली बने) जड़ बने खड़े रह गए मानो खेतमें गाड़े हुए झूठे पुतले (धोखे) हों। उन्हें (इस

---

१. बड़े खाए=(मुहावरा) बड़ी कठिनतासे। २. धोखे=खेतमें पशु-पक्षियोंको डरानेके खड़ा किया हुआ चीथड़ोंका नकली पुतला। ३. पीना = तिलकी खली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रमुदित - मन लोक - कोकनद - कोकगन, राम के प्रताप-रबि सोच-सर सोखे हैं।
तब के देखैया तोषे तब-के लोगनि भले, अब-के सुनैया साधु तुलसिहु तोषे हैं ॥४॥(९५)

जयमाल जानकी जलज - कर लई है।
सुमन सुमंगल सगुन[1] - की बनाइ मंजु, मानहु मदन माली आप निरमई है।
राज-रुख लखि गुरु, भूसुर, सुआसिनिन समय समाज-की ठवनि भलि ठई है।
चलीं गान करत, निसान बाजे गहगहे, लहलहे लोयन सनेह सरसई है॥ २॥
हनि देव दुंदुभी, हरषि बरषत फूल, सफल मनोरथ भो, सुख सुचितई है।
पुरजन, परिजन, रानी, राउ प्रमुदित, मनसा अनूप राम - रूप - रंग रई है॥ ३॥
सतानंद सिख सुनि, पाँय परि, पहिराई माल सिय, पिय-हिय सोहत सो भई है।
मानस-तें निकसि बिसाल सु - तमाल - पर, मानहु मराल-पाँति बैठी बनि गई है॥ ४॥
हितनि-के लाह-की, उछाह-की, बिनोद मोद सोभा-की अवधि नहिं, अब अधिकई है।
याते बिपरीत अनिहितन-की जानि लीबी, गति, कहे प्रगट खुनिस खासी खई है॥ ५॥

स्थितिमें) देखकर सब नर-नारी कह उठे—'इनकी माताओंने इन्हें साग खाकर जाया है और इन नीचोंकी ये मोटी-मोटी भुजाएँ पीना (तिलकी खली) खानेसे फूली हैं ॥ ३ ॥ रामके प्रतापका सूर्य उदित होते ही कमल और चकवे-चकवीके समान सब लोग प्रसन्न हो उठे और शोकके सारे सरोवर सूख गए। उस समय यह सब घटना देखनेवाले सज्जन बड़े प्रसन्न हो गए और उस समयकी ये सब बातें सुननेवाले साधु और तुलसीदास भी बड़े मगन हो उठे हैं ॥ ४ ॥(९५)

जानकीने अपने करकमलोंमें ऐसी मनोहर जयमाला ले रक्खी है, जिसे स्वयं कामदेव-रूपी मालीने मंगलमय पुष्पोंसे सुन्दर धागेमें गूँथकर बनाया है ॥ १ ॥ राजा जनकका संकेत पाकर गुरु शतानन्द, ब्राह्मण लोग और सुहागिनी स्त्रियाँ सीताको (आगे करके) समय और समाजके अनुरूप (सुन्दर साजोंसे सजाकर) मंगल गान करती हुई मंद गतिसे लिवा ले चलीं। उस समय ढमाढम ढोल-नगाड़े बज उठे। (सीता और रामके दर्शनोंके लिये) उतावले सब नेत्रोंमें स्नेह भर आया ॥ २ ॥ देवता प्रसन्न हो-होकर दुंदुभी बजाते हुए फूल बरसाने लगे। अपना मनोरथ सफल हो जानेसे उन्हें बड़े सुख और शान्तिका अनुभव हो रहा था। पुरवासी, परिजन, राजा और रानी सब अत्यन्त आनन्दित हुए जा रहे थे और मन ही मन रामके अनूप रूपके रंगमें रँग गए थे ॥ ३ ॥ गुरु शतानन्दकी आज्ञा पाकर सीताने अपने प्रियतम रामके चरणोंमें पड़कर उनके गलेमें जयमाला उठा पहनाई। उस समय वह माला ऐसी प्यारी लग रही थी मानो हंसोंकी पाँत (माला) मानसरोवर (सीताके हाथ)-से उठकर किसी विशाल तमाल वृक्ष (राम)-पर जा बैठी हो ॥ ४ ॥ भगवान्‌के प्रेमियोंको इससे बढ़कर लाभ, उत्साह, आनन्द, विनोद और उत्सव और कोई है ही नहीं। किन्तु जो प्रभुसे द्वेष करनेवाले थे उनकी दशा इससे भिन्न थी। यही कहा जा सकता है कि उन्हें तो मानो क्रोध और ईर्ष्या जकड़े बैठी थी ॥ ५ ॥ तब विद्वान्

---

१. स-गुन=धागेमें।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निज निज बेद - की सप्रेम जोग - छेम - मई, मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दई है।
छबि तेहि काल-की कृपालु सीता-दूलह-की, हुलसति हिए तुलसी-के नित नई है ॥६॥(९६)

राग केदारा

लेहु री लोचननि - को लाहु।
कुँवर सुंदर साँवरो, सखि सुमुखि ! सादर चाहु ॥ १ ॥
खंडि हर - कोदंड ठाढ़े, जानु - लंबित बाहु।
रुचिर उर जयमाल राजति, देत सुख सब काहु ॥ २ ॥
चितै चित हित - सहित नख-सिख, अंग - अंग - निबाहु।
सुकृत निज, सिय, - राम - रूप, बिरंचि - मतिहि सराहु ॥ ३ ॥
मुदित मन बर-बदन - सोभा उदित अधिक उछाहु।
मनहु दूरि कलंक करि, ससि समर सूद्यो राहु ॥ ४ ॥
नयन सुषमा - अयन, हरत सरोज - सुंदरताहु।
बसत 'तुलसीदास' - उर-पुर जानकी - को नाहु ॥ ५ ॥ (९७)

राग सारंग

भूप - के भाग - की अधिकाई।
टूट्यौ धनुष, मनोरथ पूज्यौ, बिधि सब बात बनाई ॥ १ ॥
तब - तें दिन - दिन उदय जनक - को जब - तें जानकि जाई।
अब यह ब्याह सफल भो जीवन, त्रिभुवन बिदित बड़ाई ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक अपने-अपने वेदोंके अनुसार योग-क्षेमसे भरा आशीर्वाद दे दिया। दयामय रामकी उस समयकी छबि तुलसीदासके हृदयमें नित्य नई-नई होकर हुलसी पड़ रही है ॥ ६ ॥ (९६)

(एक सखी दूसरी सखीसे कह रही है—) 'अरी सुमुखी, सखी ! तू तनिक अपने नेत्रोंका लाभ तो ले ले। ये साँवले कुँवर बड़े ही सलोने हैं, इन्हें तनिक आदरसे देख तो ले ॥ १ ॥ देख, ये ही महादेवका धनुष तोड़कर अपने घुटनों-तक लंबे बाहु लटकाए खड़े हैं। इनके गलेमें मनोहर जयमाला ऐसी प्यारी लग रही है कि सब इसे देखकर आनन्दित हो उठे हैं ॥ २ ॥ इन्हें हार्दिक प्रेमके साथ देखती चल। नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक इनके अंग-अंग बहुत सुन्दर हैं। इन्हें देखकर अपने पुण्यकी, सीता और रामके रूपकी तथा इन्हें रचने-वाले विधाताकी बुद्धिकी सराहना किए चल ॥ ३ ॥ प्रसन्न मन होनेके कारण इनके सुन्दर मुखड़ेकी शोभापर और भी अधिक उत्साह चढ़ चला है मानो चन्द्रमाने अपना कलंक दूर करके युद्धमें राहुको पछाड़ डाला हो ॥ ४ ॥ इनके नेत्र ऐसे रसीले हैं कि वे कमलकी सुन्दरता भी हरे ले रहे हैं। ऐसे ये जानकीनाथ राम तुलसीदासके हृदयके नगरमें बसे हुए हैं ॥ ५ ॥ (९७)

(एक सखी दूसरीसे कहती है—) 'यह राजा जनकका बड़ा सौभाग्य है कि धनुष टूट गया और उनके मनोरथ पूरे हो गए। विधाताने सारी बात बना धरी है ॥ १ ॥ जबसे जानकीका जन्म हुआ है, तभीसे जनककी दिनों-दिन उन्नति होती चली आ रही है। अब सीताका विवाह

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बारहि बार पहुनई ऐहैं, राम - लखन दोउ भाई।
ऐहि आनंद मगन पुरबासिन देह-दसा बिसराई॥ ३॥
सादर सकल बिलोकत रामहिं, काम - कोटि - छबि छाई।
यह सुख - समउ, समाज, एक मुख क्यों तुलसी कह गाई ?॥ ४॥(९८)

राग सोरठ

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?
भूख, पियास, सीत, स्रम, सकुचनि क्यों कौसिकहिं कहहिंगे॥ १॥
को भोर ही उबटि अन्हवइहै, काढ़ि कलेऊ दइहै ?
को भूषन पहिराइ, निछावरि करि, लोचन - सुख लइहै॥ २॥
नयन निमेषनि-ज्यों जोगवैं नित, पितु - परिजन - महतारी।
ते पठए रिषि - साथ निसाचर - मारन, मख - रखवारी॥ ३॥
सुंदर, सुठि सुकुमार, सुकोमल, काकपच्छ - धर दोऊ।
'तुलसी' निरखि, हरषि उर लैहौं, बिधि ह्वैहै दिन सोऊ ?॥ ४॥(९९)

रिषि नृप - सीस ठगौरी डारी।
कुलगुरु, सचिव, निपुन नेवनि,[1] अवरेब[2] न समुझि सुधारी॥ १॥

करके तो इनका जीवन ही सफल हो गया है। इस समय तीनों लोकोंमें इनका यश छा फैला है॥ २॥ (अब यह विवाह हो जानेसे) ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण बार-बार पाहुने होकर यहाँ आया करेंगे।' इसी बातपर आनन्दमें मग्न होकर सब पुरवासी अपनी देहकी सारी सुध-बुध भूले बैठे हैं॥ ३॥ सब लोग बड़े आदरसे उन रामकी ओर टकटकी लगाए देखे चले जा रहे हैं जिनपर करोड़ों कामदेवोंकी छबि आ छाई है। तुलसीदास भला एक ही मुखसे उस सुख और समाजका कैसे वर्णन कर पा सकता है ?॥ ४॥ (९८)

(इधर अयोध्यामें कौशल्या बैठी चिन्ता कर रही हैं—) मेरे बालक मार्गमें कैसे दिन बिता रहे होंगे (क्या खाते-पीते होंगे, कहाँ रहते-सोते होंगे)। वे इतने संकोची हैं कि अपनी भूख, प्यास, शीत और श्रम (थकावट) आदिके विषयमें विश्वामित्रसे कैसे कह पावेंगे ?॥ १॥ भोर होते ही उन्हें कौन उबटन लगाकर स्नान करावेगा, कौन कलेवा निकालकर देगा और कौन आभूषण पहनाकर न्योछावर करके नेत्रोंका आनन्द लूटेगा ?॥ २॥ जिनके पिता, परिजन और माताएँ सदा ऐसे सँभाल रखती थीं जैसे नेत्रोंकी सँभाल पलकें करती हैं, उन्हें राजाने यज्ञकी रखवाली और निशाचरोंका संहार करनेके लिये विश्वामित्रके साथ भेज दिया॥ ३॥ विधाता ! क्या कभी वह दिन आयगा जब मैं अपने अत्यन्त सुन्दर, सलोने, सुकुमार, सुकोमल और काकपक्ष-धारी (बीचसे दोनों ओर बहाए हुए बालोंवाले) दोनों बालकोंको देख पाऊँगी और हर्षित होकर हृदयसे लगा पाऊँगी ?'॥ ४॥ (९९)

(कौशल्या कहने लगीं—) 'मुनि विश्वामित्रने तो राजाके सिरपर कुछ ऐसा जादू-सा चला दिया कि कुल गुरु, मंत्री और निपुण सरदार कोई भी कुछ विचारकर उस आई हुई विपत्तिको न रोक

---

१. नेवनि=नीतिज्ञोंने। २. अवरेब=उलझन, संकट।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सिरिस सुमन - सुकुमार कुँवर दोउ, सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहिं सहाय पयादेहि, केलि - बान - धनुधारी ॥ २ ॥
अति सनेह कातर, माता कह, 'सुनि सखि !' बचन दुखारी।
'बादि बीर - जननी - जीवन जग, छत्रि - जाति - गति भारी ॥ ३ ॥
जो कहिहै फिरे राम - लखन घर, करि मुनिमख - रखवारी।
सो 'तुलसी' प्रिय मोहिं लागिहै, ज्यों सुभाय सुत चारी' ॥ ४ ॥(१००)

'जब-तें लै मुनि संग सिधाए।
राम - लखन - के समाचार, सखि ! तब - तें कछुक न पाए ॥ १ ॥
बिनु पानही गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरु - छाहीं।
सर - सरिता - जलपान, सिसुन - के संग सुसेवक नाहीं ॥ २ ॥
कौसिक परम कृपालु, परम हित, समरथ, सुखद, सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार, सकोची, समुझि सोच मोहिं, आली !' ॥ ३ ॥
बचन सप्रेम सुमित्रा - के सुनि सब सनेह - बस रानी।
'तुलसी' आइ भरत तेहि औसर, कही सुमंगल - बानी ॥ ४ ॥(१०१)

सानुज भरत भवन उठि धाए।
पितु - समीप सब समाचार सुनि, मुदित मातु - पहँ आए ॥ १ ॥

पाया ॥ १ ॥ देखो, दोनों कुमार तो सिरसके फूलके समान सुकुमार हैं और राक्षस बड़े शूर, और क्रोधी हैं। फिर भी राजाने खेलके धनुष-बाणके साथ उन्हें बिना किसी प्रकारकी सहायताके पैदल ही उनके साथ भेज दिया' ॥ २ ॥ इस प्रकार माता कौशल्या स्नेहसे व्याकुल और दुखी होकर अपनी सखीसे कहने लगीं—'सुन री सखी ! संसारमें वीर पुरुषकी माताका जीवन तो वृथा ही है (क्योंकि वीर पुरुष तो युद्धमें गए बिना मानेगा नहीं) और क्षत्रिय जातिकी रीति भी बड़ी ही विकट है (कि जो युद्धके लिये ललकार दे उसीसे जा भिड़े) ॥३॥ इस समय जो भी कोई मुझसे आकर कह दे कि 'राम और लक्ष्मण मुनिके यज्ञकी रक्षा करके घर लौट आए' उसे मैं वैसा ही प्यारा समझूँगी जैसे अपने चारों पुत्रोंको समझती हूँ' ॥ ४ ॥ (१००)

(सुमित्रा कहती हैं—) 'देख री सखी ! जबसे राम-लक्ष्मणको मुनिवर (विश्वामित्र) अपने साथ ले गए हैं तबसे मुझे उनका कोई समाचार नहीं मिल पाया ॥ १ ॥ उनके साथ तो उन्हें नंगे पाँव चलना, फल खाकर रहना, वृक्षकी छायामें धरतीपर सोना और नदी-तालाबोंका जल पीकर रहना पड़ता होगा। उन बालकोंके साथ कोई अच्छा सेवक भी नहीं गया है ॥२॥ देख सखी ! यों तो विश्वामित्र बड़े कृपालु, परम हितकारी, सामर्थ्यवान्, सुखदायक और विचार-शील हैं, परन्तु ये भोले-भाले बालक भी बड़े ही सुकुमार और संकोची हैं, यही जानकर मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है' ॥ ३ ॥ सुमित्राके ये प्रेम-भरे वचन सुनकर सब रानियाँ स्नेह-विह्वल हो उठीं। तुलसीदास कहते हैं कि बस उसी समय भरतने बड़ा मंगलमय समाचार उन्हें आ सुनाया ॥ ४ ॥ (१०१)

भरत अपने भाई शत्रुघ्नके साथ (समाचार देने) राजभवन दौड़ गए। पिताके पाससे सब समाचार सुनकर प्रसन्न होकर वे माताके पास दौड़े चले आए ॥ १ ॥ उनके नेत्रोंमें जल भर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सजल नयन, तन पुलक, अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई।
कौसल्या लिय लाइ हृदय 'बलि, कहु, कछु है सुधि पाई' ॥ २ ॥
'सतानंद उपरोहित अपने तिरहुति - नाथ पठाए।
खेम - कुसल रघुबीर - लखन - की ललित पत्रिका ल्याए ॥ ३ ॥
दलि ताड़का, मारि निसिचर, मख राखि, बिप्र - तिय तारी।
दै विद्या, लै गए जनकपुर, हैं गुरु - संग सुखारी ॥ ४ ॥
करि पिनाक - पन, सुता - स्वयंबर सजि, नृप कटक बटोऱ्यो।
राज - सभा रघुबर मृनाल - ज्यों संभु सरासन तोऱ्यो' ॥ ५ ॥
यों कहि, सिथिल सनेह, बंधु दोउ, अंब अंक भरि लीन्हें।
बार - बार मुख चूमि, चारु मनि - बसन निछावरि कीन्हें ॥ ६ ॥
सुनत सुहावनि चाह[1], अवध घर - घर आनंद - बधाई।
'तुलसिदास' रनिवास रहस[2] - बस, सखी सुमंगल गाई ॥ ७ ॥ (१०२)

राग कान्हरा

राम-लखन सुधि आई, बाजै अवध बधाई।
ललित लगन लिखि पत्रिका, उपरोहित - के कर जनक - जनेस पठाई ॥ १ ॥

आया था, शरीर रोमाञ्चित हो उठा था और उनके ओठ फड़के पड़ रहे थे। अपने भाई राम-लक्ष्मणसे उनका यह हार्दिक प्रेम देखकर माता कौशल्याने उन्हें हृदयसे उठा लगाया और कहा—'बेटा! बलिहारी जाऊँ, कहो क्या कोई समाचार मिला?' ॥ २ ॥ (भरतने कहा—) 'माता! तिरहुतके राजा जनकने अपने पुरोहित शतानन्दको राम-लक्ष्मणकी पत्रिकाके साथ यहाँ पठा भेजा है ॥ ३ ॥ भाई रामने ताड़काका वध करके सभी राक्षसोंको मार डाला, मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की और ब्राह्मण (गौतम)-की पत्नी अहल्याका उद्धार कर दिया। तब विश्वामित्र उन्हें विद्या पढ़ाकर जनकपुर लिए चले गए। वहाँ वे गुरु विश्वामित्रके साथ आनन्दपूर्वक हैं ॥ ४ ॥ जनकने प्रतिज्ञा की थी (कि जो शिवका धनुष चढ़ा देगा उससे अपनी पुत्री सीताका विवाह करूँगा), उसके लिये उन्होंने स्वयंवरका साज सजाकर बहुतसे राजाओंको एकत्र कर बुलाया था। उस राजसभामें रामने शिवका धनुष कमल-नालके समान तोड़ फेंका' ॥ ५ ॥ यह कहते-कहते दोनों भाई स्नेहसे विह्वल हो उठे। तब माताने उन्हें छाती उठा लगाया और बार-बार उनका मुंह चूमकर बहुतसे मणि और वस्त्र आदि उनपर निछावर कर डाले ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह सुहावना मनचाहा समाचार सुनते ही अयोध्यामें घर-घर आनन्द-भरी बधाइयाँ बज उठीं। रनिवासमें भी सब सखियाँ आनन्दमें भरी मंगल गीत गा उठीं ॥ ७ ॥ (१०२)

(अयोध्यावासी आपसमें कहते जा रहे थे—) 'आज राम-लक्ष्मणका समाचार पाकर अयोध्यामें बधाइयाँ बज रही हैं। राजा जनकने (विवाहकी) शुभ लग्न-पत्रिका अपने पुरोहितके हाथ लिख

१. चाह=खबर, समाचार। २. रहस=आनन्द, हर्ष।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कन्या भूप बिदेहकी रूपकी अधिकाई।
तासु स्वयंबर सुनि सब आए, देस - देस के नृप चतुरंग बनाई ॥ २ ॥
पन पिनाक, पबि मेरु - तें गुरुता कठिनाई।
लोकपाल, महिपाल, बान बानइत, दसानन सके न चाप चढ़ाई ॥ ३ ॥
तेहि समाज रघुराज - के मृगराज जगाई।
भंजि सरासन संभु-को जग-जय, कल कीरति, तिय तियमनि सिय पाई ॥ ४ ॥
पुर घर - घर आनंद महा, सुनि चाह सुहाई।
मातु मुदित मंगल सजैं, कहैं, मुनि - प्रसाद भए सकल सुमंगल, माई ॥ ५ ॥
गुरु-आयसु मंडप रच्यो सब साज सजाई।
'तुलसिदास' दसरथ - बरात सजि, पूजि गनेसहि चले निसान बजाई ॥ ६ ॥ (१०३)

राग केदारा

मन - में मंजु मनोरथ हो, री!
सो हर - गौरि - प्रसाद एक - तें, कौसिक - कृपा चौगुनो भो, री! ॥ १ ॥
पन-परिताप, चाप-चिंता-निसि, सोच - सकोच - तिमिर नहिं थोरी।
रबिकुल-रबि अवलोकि सभा-सर हित-चित-बारिज-बन बिकसो री ॥ २ ॥

भिजवाई है ॥ १ ॥ महाराज जनककी एक बड़ी सुन्दरी कन्या है, जिसके स्वयंवरका समाचार सुनकर देश-देशान्तरके राजा लोग अपनी-अपनी चतुरंगिणी सेना सजा सजाकर वहाँ आ पहुँचे थे ॥२॥ उस स्वयंवरके प्रणका आधार शिवका वह धनुष था जो वज्रसे भी अधिक कठोर और सुमेरुसे भी अधिक भारी था। उस धनुषको लोकपाल, राजा और धनुर्विद्यामें निपुण बाणासुर तथा रावण आदि-तक भी नहीं चढ़ा सके ॥ ३ ॥ उसी राज-समाजमें (महाराज जनकने कुछ कटु वचन कहकर) रघुकुलके सिंह रामको उत्तेजित कर दिया। (बस, फिर क्या था!) उन्होंने शिवका धनुष तोड़कर संसारपर विजय, कमनीय कीर्ति और पत्नी-रूपमें स्त्री-रत्न सीताको प्राप्त कर लिया' ॥ ४ ॥ यह सुहावना समाचार सुनकर नगरमें घर-घर महा आनन्द हो रहा है। माताएँ प्रसन्न हो-होकर मंगल साज सजा रही हैं और कह रही हैं 'माई! ये सारे सुमंगल मुनिवर विश्वामित्रकी कृपासे ही हुए हैं' ॥ ५ ॥ फिर गुरु वशिष्ठकी आज्ञासे सब प्रकारके साज सजाकर मंडप रच दिया गया। तुलसीदास कहते हैं कि राजा दशरथ बारात सजाकर, गणेशकी पूजा करके बाजे-गाजेके साथ (तिरहुतको) चल दिए ॥ ६ ॥ (१०३)

(बारात देखकर जनकपुरकी स्त्रियाँ कहने लगीं—) 'अरी सखी! हमारे मनमें जो एक मनोहर कामना थी वह शिव-पार्वतीके प्रसाद और मुनि विश्वामित्रकी कृपासे चौगुनी पूरी हो गई ॥१॥ प्रण (करने)-का पछतावा और धनुषकी (कठोरता)-की चिन्ताकी रात्रिमें (कठोर धनुष न टूट पावेगा तो प्रण कैसे पूरा होगा इस उलझनमें) चिन्ता और (प्रण छोड़कर रामसे विवाह कर दें तो उसकी बदनामीका) संकोचका बड़ा अंधकार छा गया था किन्तु सूर्यकुलके सूर्य रामको देखते ही इस राज-समाजके सरोवरमें हितचिन्तकोंका कमल-वन खिल उठा (ऐसा कठोर प्रण कर बैठनेका जनकको बड़ा पछतावा हो रहा था और धनुष इतना कठोर था कि किसीके तोड़े न टूट

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुँवर - कुँवरि सब मंगल - मूरति, नृप सोउ धरम - धुरंधर - धोरी।
राज - समाज भूरि भागी, जिन लोचन - लाहु लह्यो एक ठोरी ॥ ३ ॥
ब्याह - उछाह राम - सीता - को, सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यो, री।
'तुलसिदास' जानै सोइ यह सुख, जेहि उर बसति मनोहर जोरी ॥ ४ ॥ (१०४)

राजति राम - जानकी जोरी।
स्याम - सरोज जलद - सुंदर बर दुलहिनि तड़ित - बरन तन गोरी ॥ १ ॥
ब्याह - समय सोहति बितान - तर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।
मनहु मदन - मंजुल - मंगल - महँ, छबि सिंगार - सोभा इक ठोरी ॥ २ ॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर, ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी।
कनक - कलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप, सारद भइ भोरी ॥ ३ ॥
इत बसिष्ठ मुनि, उतहिं सतानँद, बंस - बखान करैं दोउ ओरी।
इत अवधेस, उतहिं मिथिलापति, भरत अंक सुख - सिंधु हिलोरी ॥ ४ ॥
मुदित जनक, रनिवास रहस-बस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।
गान, निसान, बेदधुनि सुनि, सुर बरषत सुमन, हरष कह को री ॥ ५ ॥

पाया। इस असमंजसमें रामने धनुष तोड़कर सब हितैषियोंको आनन्दित कर दिया) ॥ २ ॥ इधर ये राजकुमार और राजकुमारियाँ भी मंगलकी मूर्ति हैं और दोनों राजा (जनक और दशरथ) भी धर्म-रक्षकोंमें अग्रणी हैं। यह राज-समाज भी बड़ा सौभाग्यशाली है, जिसने एक ही स्थानपर अपने नेत्रोंका सारा लाभ लूट लिया ॥ ३ ॥ विधाताने सारे पुण्य एकत्र करके ही राम और जानकीके विवाहका यह उत्सव रचा है। तुलसीदास कहते हैं कि इस सुखका आनन्द तो वही जान पा सकता है जिसके हृदयमें राम-जानकीकी मनोहर जोड़ी बसी रहती हो ॥ ४ ॥ (१०४)

राम और जानकीकी जोड़ी सामने विराजमान है। वर (राम) तो नीले कमल और कजरारे मेघके समान सुन्दर हैं और दुलहिन (सीता) बिजलीके समान गोरी छबीली हैं ॥ १ ॥ विवाहके समय वे मंडपके नीचे बैठे हुए ऐसे अच्छे लगे रहे हैं कि उसकी उपमा मेरी बुद्धिमें आ नहीं रही है मानो कामदेवके मंडपमें छबि और शृङ्गारकी शोभा एक ही स्थानपर आ एकत्र हुई हो ॥ २ ॥ दोनों ही परम मंगलमय और मनोहर अंगोंवाले हैं। चुनरी और पीताम्बरके गँठबन्धनके साथ सोनेके कलशकी भाँवरी देते हुए वे ऐसे शोभा दे रहे हैं कि उनका रूप देखकर सरस्वतीकी बुद्धि भी चकरा उठती है ॥ ३ ॥ इधरसे मुनि वशिष्ठ और उधरसे मुनि शतानन्द, दोनोंके वंशोंका शाखोच्चार कर रहे हैं, (प्रपितामह, पितामह और पिताका तीन-तीन बार नाम ले रहे हैं)। इधर अयोध्यापति दशरथ और उधर मिथिलापति जनक आनन्दके समुद्रको झकझोरकर अपनी गोदमें भरे ले रहे हैं (बहुत आनन्दित हो रहे हैं) ॥ ४ ॥ इस समय जनक तो बहुत ही प्रसन्न हैं, रनिवासमें भी स्नेह उमड़ा पड़ रहा है और चतुर स्त्रियाँ तिनका तोड़कर (अला-बला तिनकेके सिर डालकर) उन्हें निहारे जा रही हैं। उस समय गान, निशान (डंका-नगाड़ा) और वेदोंकी ध्वनि सुनकर देवता फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं। उस समय इतना हर्ष उमड़ा पड़ रहा था कि उसका वर्णन भला कौन कर सकता है ? ॥ ५ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नयनन-को फल पाइ, प्रेम - बस सकल असीसत ईस - निहोरी।
'तुलसी' जेहि आनंद - मगन मन, क्यों रसना बरनै सुख सो, री ॥ ६ ॥ (१०५)

दुलह राम, सिय दुलही री !।
घन-दामिनि-बर बरन, हरन-मन, सुंदरता नखसिख निबही, री ॥ १ ॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि-अवली लखि, ठगि-सि रही, री।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आज सही, री ॥ २ ॥
सुषमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि, मयन अमिय-मय कियो दही, री।
मथि माखन सिय - राम सँवारे, सकल-भुवन-छबि मनहुँ मही, री ॥ ३ ॥
'तुलसिदास' जोरी देखत, सुख, सोभा अतुल, न जाति कही, री।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनु, सिला[1]-लवनि[2] रति-काम लही री ॥ ४ ॥ (१०६)

जैसे ललित लखन हैं लोने।
तैसि ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन - कोने ॥ १ ॥
सुषमा-सार, सिंगार-सार करि, कनक रचे तिहि सोने।
रूप - प्रेम - परमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने ॥ २ ॥

अपने-अपने नेत्रोंका फल पाकर प्रेमके वश सब लोग ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए आशीर्वाद दिए जा रहे हैं। तुलसीदासका मन जिस आनन्दमें डूबा हुआ है, उस सुखका वर्णन जिह्वा कैसे कर सकती है (वह सुख अवर्णनीय है।) ॥ ६ ॥ (१०५)

राम हैं दुलहा और सीता हैं दुलहिन। दोनोंमेंसे रामका रंग मेघ-जैसा और सीताका रंग बिजलीके समान सुन्दर चमकीला है और दोनोंपर नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक मनको हरे लेनेवाली सुन्दरता बरसी पड़ रही है ॥ १ ॥ इन्हें विवाहके वस्त्रों और आभूषणोंसे सजा हुआ देखकर सारा सखी-समाज ठगा सा रह गया। वास्तवमें जीवन और जन्मका लाभ तथा नेत्रोंका फल इतना ही तो है जो आज सबने भरपूर पा लिया है ॥ २ ॥ कामदेव-रूपी ग्वालेने शोभाकी गौका शृङ्गार-रूपी दूध दुहकर (उसे जमाकर) जो अमृतमय दही तैयार किया था, उसे मथकर ही मक्खन जैसे (कोमल और सलोने) राम और सीता रचे गए हैं। अन्य सब लोकोंमें जो शोभा दिखाई देती है वह उससे बचा हुआ मट्ठा-भर है ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि उस जोड़ीको देखते ही जी ऐसा खिल उठता है कि उसकी अनोखी शोभाका वर्णन करते नहीं बनता मानो विधाताने रूपका भांडार तो उन्हें बना धरा हो, और शिला और लवनी (केवल गिरे पड़े, बचे-खुचे) अंशसे रति और कामदेवको बनाया हो ॥ ४ ॥ (१०६)

जैसे सुन्दर और सलोने लखन लाल हैं, वैसी ही सलोनी उर्मिला भी हैं। वे दोनों एक दूसरे-की ओर कनखियोंसे देखे जा रहे हैं ॥ १ ॥ शोभा और शृङ्गारके सारके सुवर्णसे मानो ये मूर्त्तियाँ गढ़ी गई हो। इनका रूप और प्रेम कितना है इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हमारी बुद्धि तो थककर मौन हो गई है ॥ २ ॥ जिस समय वे कुहकगृह (कोहबर)-में गए, उस समय उनकी शोभा,

---

१. सिला=शिल (शिलः शिलम्) खेत काटते समय खेतमें गिरे हुए अन्नके दाने। २. लवनि = लवनी (कटाई), मजदूरीमें दिया हुआ अनाजका बोझ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोभा - सील - सनेह, सुहावन समउ, केलि - गृह गौने।
देखि तियनि - के नयन सफल भे, 'तुलसिदास' - हु - के होने ॥ ३ ॥ (१०७)

राग बिलावल

जानकी - बर सुंदर, माई।
इंद्रनील - मनि स्याम सुभग अंग - अंग मनोजनि बहु छबि छाई ॥ १ ॥
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत, कछुक अरुनाई।
कंज - दलनि-पर मनहुँ भौम दस, बैठे अचल सु-सदसि बनाई ॥ २ ॥
पीन जानु, उरु चारु, जटित मनि नूपुर पद, कल मुखर सुहाई।
पीत पराग-भरे अलिगन जनु, जुगल जलज लखि रहे लुभाई ॥ ३ ॥
किंकिनि कनक-कंज अवली मृदु मरकत - सिखर - मध्य जनु जाई।
उपर न गई सभीत नमित-मुख, बिकसि चहूँ दिसि रही लुनाई ॥ ४ ॥
नाभि गँभीर, उदर रेखा बर, उर भृगु - चरन - चिन्ह सुखदाई।
भुज प्रलंब, भूषन अनेक - जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई ॥ ५ ॥
जग्योपवित बिचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई।
कंद-तड़ित[1]-बिच जनु सुरपति - धनु-निकट, बलाक-पाँति चलि आई ॥ ६ ॥

शील और मनभावना स्नेह देखकर स्त्रियोंके नेत्र सफल हो गए और अब तुलसीदासके भी नेत्र सफल होनेवाले हैं ॥ ३ ॥ (१०७)

देखो भाई ! जानकीके वर (राम तो) बड़े ही लुभावने हैं। इन्द्रनीलमणि (नीलम)-के समान इनका सलोना सांवला शरीर है और इनके अंग-अंगमें अनेक कामदेवोंकी छबि झलकी पड़ रही है ॥ १ ॥ इनके लाल-लाल पैरोंकी दसों उँगलियोंके कुछ-कुछ ललाईकी झलक मारते हुए मनोहर नख ऐसे चमकीले हैं मानो कमलकी पँखड़ियों (पैरों)-पर दस-दस मंगल ग्रह (नख) निश्चल रूपसे अपनी सभा जुटाए बैठे हों ॥ २ ॥ इनके घुटने भरे हुए और, जाँघें चिकनी हैं। पैरोंमें रुनझुन करनेवाले मणिमय नूपुर ऐसे लगते हैं मानो दो पीले परागोंवाले कमलों (पैरों)-को देखकर भौंरे (कमलोंकी रुनझुन) उन्हींमें लुभाकर बसे रह गए हों ॥ ३ ॥ उनकी कमरकी सोनेकी करधनी ऐसे सुनहले कमलोंकी माला-जैसी लगती है जो मानो नीलमके पर्वतके मध्य भागसे उत्पन्न तो हुई हो पर मुखचन्द्रसे भयभीत होकर (कि कहीं चन्द्रको देखकर कुम्हला न जायँ) ऊपर न चढ़कर नीचे मुँह करके ही लटकी रह गई हो। वह सचमुच ऐसी सुन्दर है कि उसकी सुन्दरता दसों दिशाओंमें जा फैली है ॥ ४ ॥ रामकी नाभि गहरी है और पेटपर सुन्दर रेखाएँ पड़ी हैं। उनकी छातीपर बहुत सुहावनी भृगुकी लातका चिह्न है। उनकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ अनेक आभूषणोंसे सजी हुई हैं और उनके शरीरपर पीताम्बर अत्यन्त शोभा दे रहा है ॥५॥ उनके वक्षस्थलपर पड़ा हुआ विचित्र सुनहले रंगका पीला जनेऊ तथा मोतीकी माला मुझे बड़ी प्यारी लग रही है मानो बादल (रामका सांवला शरीर) और बिजली (पीताम्बर)-की सुन्दरताके बीचमें इन्द्र-धनुष (जनेऊ) उदित हो उठा हो और वहीं बगुलोंकी पंक्ति (मोतियोंकी माला) भी आ पहुँची हो ॥ ६ ॥ रामका

---

१. कंद-तड़ित=बादल और बिजली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कंबु कंठ, चिबुकाधर सुंदर, क्यों कहौं दसनन-की रुचिराई ?
पदुम - कोस-महँ बसे बज्र मनो निज सँग तड़ित-अरुन-रुचि लाई ॥ ७ ॥
नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रू कुटिल, कचनि अनुपम छबि पाई ।
रहे घेरि राजीव उभय मनो, चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥ ८ ॥
भाल तिलक, कंचन किरीट सिर, कुंडल लोल कपोलनि झाँई ।
नारि - निकर निरखहिं बिदेहपुर, निमि नृप-की मरजाद मिटाई ॥ ९ ॥
सारद - सेस- संभु निसि - बासर, चिंतत, रूप न हृदय समाई ।
'तुलसिदास' सठ क्यों करि बरनै, यह छबि, निगम नेति कह गाई ॥१०॥ (१०८)

राग कान्हरा

भुजनि-पर जननी वारि फेरि डारी ।
क्यों तोर्‌यौ कोमल कर - कमलनि, संभु - सरासन भारी ॥ १ ॥
क्यों मारीच - सुबाहु महाबल, प्रबल ताडुका मारी ।
मुनि - प्रसाद मेरे राम - लखन-को, बिधि बड़ि करवर[1] टारी ॥ २ ॥
चरन - रेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनि - बधू उधारी ।
कहौ धौं तात ! क्यों जीति सकल नृप, बरी बिदेहकुमारी ॥ ३ ॥

कंठ भी शंखके समान ढला हुआ है (जिसमें रेखाएँ पड़ी हैं) । उनकी ठोडी और उनके ओठ बड़े ही सुहावने हैं । उनकी दाँतोंकी सुन्दरताका वर्णन मैं करना भी चाहूँ तो किस प्रकार करूँ मानो कमल-कोश (रामके मुख)-में अपने साथ बिजली (चमक)-के साथ (ओठोंकी) ललाई लिए हुए हीरे (दाँत) आ टँके हों ॥ ७ ॥ उनकी नासिका सुन्दर, नेत्र सुहावने, भौंहें टेढ़ी तथा बाल तो ऐसी अनुपम शोभासे लहरा रहे हैं मानो दो कमलों (नेत्रों)-पर भौंरे (बाल) कुछ-कुछ डरते हुए मंडरा रहे हों (क्योंकि पलकें पंखेके समान उठ-गिर रही हैं) ॥ ८ ॥ रामके मस्तकपर तिलक, सिरपर सोनेका मुकुट और कानोंमें हिलते हुए कुण्डलोंकी झलक गालोंपर पड़ रही है । इसे देखकर जनकपुरकोकी स्त्रियोंने राजा निमिके कुलकी मर्यादा मिटा डाली (उन्होंने पलक गिराना बन्द कर दिया; एकटक रामकी शोभा निहारने लगीं) ॥ ९ ॥ जिस रामके स्वरूपका दिन-रात चिन्तन करते रहनेपर भी वह स्वरूप सरस्वती, शेष और महेश-तकके हृदयमें नहीं आ पाता, तब भला यह शठ तुलसीदास उस छबिका वर्णन कैसे कर पा सकता है जिसे वेदोंने भी 'नेति-नेति' कह डाला है ? ॥ १० ॥ (१०८)

माता कौशल्या रामकी भुजाओंपर अनेक प्रकारकी न्यौछावरकी वस्तुएँ (वस्त्र आभूषण आदि) घुमा-घुमाकर उठा फेंकती हैं और पूछती हैं कि भला इन कमलके समान कोमल हाथोंसे तुमने महादेवका भारी धनुष किस प्रकार तोड़ा होगा ? ॥१॥ महाबली मारीच और सुबाहु तथा उस प्रचंड ताड़काको तुमने कैसे मारा होगा ? यह तो मुनिकी बड़ी भारी कृपा थी कि विधाताने मेरे लाल राम और लक्ष्मणकी बड़ी भारी विपत्ति टाल दी' ॥ २ ॥ रामके चरणोंकी धूलि अपनी आँखोंमें लगाती हुई माता पूछने लगीं—'क्यों बेटा ! यह बताओ कि तुमने मुनिकी पत्नी अहल्याका कैसे उद्धार किया ? और कैसे सारे राजाओंको हराकर

---

१. करवर = संकट, आपत्ति ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुसह - दोष - मूरति भृगुपति अति, नृपति-निकर-[1]खयकारी।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी बहुत मनुहारी॥ ४॥
उमँगि - उमँगि आनंद बिलोकति, बधुन - सहित सुत चारी।
'तुलसिदास' आरती उतारति, प्रेम - मगन महतारी॥ ५॥ (१०९)

मुदित - मन आरती करै माता।
कनक - बसन - मनि वारि - वारि करि, पुलक प्रफुल्लित गाता॥ १॥
पाँलागनि दुलहियन सिखावति, सरिस सासु सत - साता।
देहिं असीस ते 'बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता'॥ २॥
राम - सीय - छबि देखि जुवतिजन, करहिं परसपर बाता।
अब जान्यो साँचहू सुनहु, सखि! कोबिद बड़ो बिधाता॥ ३॥
मंगल - गान - निसान नगर - नभ, आनँद कह्यो न जाता।
चिरजीवहु अवधेस - सुवन सब, तुलसिदास - सुखदाता॥ ४॥ (११०)

॥ इति श्री रामगीतावल्यां बालकांड-संपूर्णम् ॥

जनककी पुत्री जानकी व्याह ली! ॥ ३॥ परशुराम तो बड़े प्रचंड क्रोधी और राजाओंके बड़े भारी वैरी (नाशक) हैं। उन्हों ने कैसे अपने मनमें हार मानकर तुम्हें शार्ङ्ग धनुष सौंप दिया और कैसे तुम्हारी बहुत अनुनय-विनय की'! ॥ ४॥ तुलसीदास कहते हैं, कि इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर माता कौशल्या रामकी उतारती जाती हैं और आनन्दमें उमंगकर बहुओं और चारों पुत्रोंको निहारती जाती हैं॥ ५॥ (१०९)

माता कौशल्या सुवर्ण, वस्त्र और मणि निछावर करके बहुत प्रेमसे पुलकित और प्रफुल्लित होकर प्रसन्न मनसे आरती उतारे जा रही हैं॥१॥ वे दुलहिनोंको अपने ही समान अन्य सात सो सासोंके पैर पड़ना सिखा रही हैं। वे आशीर्वाद देती हैं कि तुम्हारा सुहाग करोड़ों वर्षोंतक अचल रहे॥२॥ नवेलियाँ राम और जानकीकी छबि देख-देखकर आपसमें कहती हैं—'सुन री सखी। हम तो अब समझ पाई हैं कि विधाता सचमुच बड़ा ही चतुर (कारीगर) है जिसने राम और जानकीका ऐसा सलोना रूप रच डाला है।' गीत गाए जाने लगे तथा डंके-निशान बज उठे। इस आनन्दका वर्णन कोई करना भी चाहे तो नहीं किया जा सकता। (सब लोग सदाके लिये आशीर्वाद दिए जा रहे हैं कि) तुलसीदासको सदा सुख देनेवाले ये अवधेशके चारों पुत्र चिरजीवी हों॥ ४॥ (११०)

॥ रामगीतावलीमें बालकांड पूर्ण हुआ ॥

---

१. खयकारी = क्षय (नाश) करनेवाली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अयोध्या-कांड

राग सोरठ

नृप कर जोरि कह्यो गुरु - पाहीं ।
'तुम्हरी कृपा असीस, नाथ ! मेरि सबै महेस निबाहीं ॥ १ ॥
राम होहिं जुवराज जियत मेरे, यह लालच मन - माहीं ।
बहुरि मोह जियबे मरिबे-की, चित चिंता कछु नाहीं' ॥ २ ॥
'महाराज ! भल काज बिचार्‌यो, बेगि, बिलंब न कीजै ।
बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि, जनम - लाहु लुटि लीजै' ॥ ३ ॥
सुनत नगर आनंद - बधावन, कैकैयी बिलखानी ।
'तुलसीदास' देव - माया - बस, कठिन कुटिलता ठानी ॥ ४ ॥ (१)

राग गौरी

सुनहु राम ! मेरे प्रान-पियारे !
वारौं सत्य-बचन स्रुति-सम्मत, जा-ते हौं बिछुरत चरन तिहारे ॥ १ ॥

महाराज दशरथने हाथ जोड़कर गुरु वशिष्ठसे कहा—'नाथ ! आपकी कृपा और आशीर्वादसे महादेवने मेरी सारी कामनाएँ पूरी कर डालीं ॥ १ ॥ अब मेरे मनमें केवल यही एक लालसा बच रही है कि मेरे जीते जी राम युवराज हो जायँ । फिर मुझे अपने मरने-जीनेकी भी कोई चिन्ता नहीं रह जायगी ॥ २ ॥ (यह सुनकर वशिष्ठ बोले—) 'वाह राजन् ! यह तो आपने बहुत अच्छी बात सोची है । यह काम झटपटकर डालना चाहिए । देर नहीं करनी चाहिए । यदि विधाता साथ दे, तो सबके साथ-साथ जन्मका यह लाभ भी लूट लो' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं, कि उस समय नगरमें (रामके राज्याभिषेककी) आनन्द-भरी बधाई सुनकर कैकेयी तो जल उठी और देवताओंकी मायाके फेरमें पड़कर वह दुष्टता करनेपर उतर आई ॥ ४ ॥ (१)

(रामके मुखसे वन जानेका समाचार सुनकर माता कौशल्या कहने लगीं—) 'सुनो मेरे प्राण-प्यारे राम ! वेदके जिन सत्य वचनोंके कारण (कि राम इस पृथ्वीका भार हरेंगे) तुम्हारे चरणोंसे मेरा वियोग होता हो, (वेदके) वे वचन मैं तुम्हारे ऊपर निछावर किए डालती हूँ ॥ १ ॥ जो राम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिनु प्रयास सब साधन-को फल, प्रभु पायो, सो नाहिं सँभारे।
हरि तजि, धरमसील भे चाहत, नृपति नारि-बस सरबस हारे॥ २॥
रुचिर काँच - मनि देखि मूढ़ ज्यों, करतल - तें चिंतामनि डारे।
मुनि-लोचन-चकोर, ससि-राघव, सिय-जीवनधन सोउ न बिचारे॥ ३॥
जद्यपि नाथ तात ! माया-बस सुख-निधान सुत तुम्हहि बिसारे।
तदपि हमहिं त्यागहु जनि रघुपति, दीनबंधु दयालु मेरे बारे॥ ४॥
अतिसय प्रीति-बिनीत बचन सुनि, प्रभु कोमल-चित चलत न पारे।
'तुलसिदास' जौ रहौं मातु - हित, को सुर - बिप्र - भूमि - भय टारे॥ ५॥ (२)

रहि चलिए सुंदर रघुनायक।
जो सुत तात-बचन-पालन-रत, जननिउ तात ! मानिबे लायक॥ १॥
बेद-बिदित यह बानि तुम्हारी, रघुपति सदा संत - सुखदायक।
राखहु निज मरजाद निगम-की, हौं बलि जाउँ धरहु धनु - सायक॥ २॥
सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक।
यह दूषन बिधि तोहिं होत अब, रामचरन - बियोग - उपजायक॥ ३॥

सारे साधन करनेसे कहीं मिल पाते हैं उस रामको बिना प्रयास राजाने पा तो लिया, पर उसे सँभालकर रखनेके बदले, अब रामको त्यागकर (महाराज) धर्मशील बनने चले हैं ? राजा दशरथने स्त्री (कैकेयी) के कहनेमें वैसे ही अपना सर्वस्व नष्ट कर डाला—॥ २॥ जैसे कोई मूर्ख पुरुष काँचकी गुरिएँ देखकर अपने हाथकी चिन्तामणि उठा फेंके। राजाने यह भी नहीं सोचा कि राम तो मुनिश्वरोंके नेत्र-रूपी चकारोंके लिये चन्द्रमा हैं, और शंकरके तो जीवनके आधार हैं॥ ३॥ बेटा ! यद्यपि स्वामी (दशरथ)-ने अज्ञानवश तुम्हारे-जैसे सुखके निधान पुत्रको त्याग दिया है, तथापि दीनबन्धो ! दयामय ! मेरे लाल रघुनन्दन ! (मेरी प्रार्थना है कि) तुम हमें मत छोड़ो'॥ ४॥ तुलसीदास कहते हैं कि माताके अतिशय प्रेम-भरे नम्र वचन सुनकर, कोमल चित्तवाले प्रभु वहाँसे चल न पाए (खड़े रह गए) और सोचने लगे—'यदि मैं माताको प्रसन्न करनेके लिये यहाँ रह जाता हूँ, तो फिर देवता, ब्राह्मण और भूमिका भय कौन दूर कर पावेगा' ?॥ ५॥ (२)

(कौशल्या कहने लगीं—) सलोने राम ! तुम रह जाओ। देखो बेटा ! यदि तुम पुत्र होकर अपने पिताके वचन माननेको इतनी तत्परता दिखा रहे हो, तो बेटा ! तुम्हारे लिये माता भी तो माननीय है॥ १॥ (माताकी बात भी तो तुम्हें माननी चाहिए) तुम्हारा यह स्वभाव तो वेदोंमें भी बखाना गया है कि तुम सदा सत्पुरुषोंको सुख देते रहते हो। अतः, मैं बलिहारी जाऊँ, तुम वेदमें बताई हुई अपनी मर्यादाकी रक्षा करो और धनुष-बाण कंधेसे उतार धरो॥ २॥ देखो ! रामके वन-जानेका समाचार पाते ही सारा नगर शोकके कुएँमें डूब जायगा (सब शोकाकुल हो जायँगे) और महाराज भी प्राण छोड़ देंगे। अरे रामके चरणोंसे विछोह करानेवाले विधाता ! देख, यह सारा दोष अब तेरे ही सिर पड़ने वाला है॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि माताके ये वचन

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मातु-बचन सुनि, स्रवत नयन जल, कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक।
'तुलसिदास' सुरकाज न साध्यौ, तौ तु दोष हो मोहि महि आयक ॥ ४ ॥ (३)

राग सोरठा [कौशिल्याके वचन]

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
बार - बार भरि अंक गोद लै, ललन कौन - सों कहिहौं ॥ १ ॥
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत ! बहु बिनोद तुम कीन्हें ॥ २ ॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे सुनि - सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि बन-गवन सुनति हौं, मो - तें कौन अभागी ॥ ३ ॥
जुग - सम निमिष जाहिं रघुनंदन ! बदन - कमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ॥ ४ ॥
'तुलसीदास' प्रेम - बस श्रीहरि, देखि बिकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि - फिरि आवन कह्यौ मुरारी ॥ ५ ॥ (४)

राग बिलावल [सीतासे रामके वचन]

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि !
सादर सासु-चरन सेवहु नित जो तुमरे अति हित गृह - स्वामिनि ॥ १ ॥

सुनकर रामके नेत्र डबडबा आए, मानो कुछ तो (ऐसी बात सुनकर आँसू बहाना) नरदेह पानेके स्वभावके कारण हो और कुछ इस विचारसे भी हो कि यदि मैंने देवताओंका कार्य (दुष्टोंको मारना) पूरा नहीं किया तो मुझे यह दोष लगेगा कि (यदि यही करना था तो) पृथ्वीपर आए क्यों ॥ ४ ॥ (३)

(माता कौशल्या कहने लगीं—) 'बताओ राम ! मैं कैसे इस (सूने) घरमें रह सकूँगी ? मैं बार-बार गोदमें लेकर छातीसे लगाकर किसे 'लाल' कहकर बुलाऊँगी ? ॥ १ ॥ मेरे लाल ! बहुतसे बालकोंके साथ जो तुम इस आँगनमें विहार किया करते थे, वे बहुत सी बाल-लीलाएँ जब स्मरण आया करेंगी तब मेरे प्राण कैसे बचे रह पावेंगे ? ॥ २ ॥ जिन कानोंसे तुम्हारे प्यारे बोल सुन-सुनकर मैं स्नेहमें डूबी पड़ती थी, आज उन्हीं कानोंसे तुम्हारे वन-गमनका समाचार सुन रही हूँ। भला बताओ, मुझसे बड़ी अभागिनी और कौन होगी ? ॥ ३ ॥ (तुम जानते हो) राम ! कि तुम्हारा कमल-मुख देखे बिना तो मेरा एक-एक क्षण एक-एक युगके समान बीतता था। तब भला चौदह वर्ष बीतनेपर यदि यह शरीर बचा रह गया तो भला तुम्हारे प्रति इसकी क्या प्रीति समझी जायगी ? (तुमसे मेरी प्रीति तो तभी समझी जा सकती है जब मेरा शरीर भी तुम्हारे वनगमनके साथ ही छूट जाय)' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि माताको इस प्रकार व्याकुल देखकर राम प्रेमसे अधीर हो उठे। उनका गला भर आया, नेत्रोंसे झर-झर आँसू बह चले और वे बार-बार यही कहने लगे कि 'मैं बहुत शीघ्र ही लौटकर आया जाता हूँ' ॥ ५ ॥ (४)

(जानकीसे राम कहने लगे—) 'सुन्दरी ! मेरी बात मान जाओ और तुम घरपर ही रह जाओ। देखो गृह-स्वामिनी ! तुम यहाँ रहकर बड़े आदरसे नित्य अपनी सासके चरणोंकी सेवा किया

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राजकुमारि ! कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पग गजगामिनि !
दुसह बात, बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन-जामिनि ॥ २ ॥
हौं पुनि पितु-अज्ञा प्रमान करि, ऐहौं बेगि सुनहु दुति - दामिनि ।
'तुलसिदास' प्रभु-बिरह-बचन सुनि, सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि ॥३॥ (५)

[सीताका आग्रह]

कृपानिधान सुजान प्रानपति ! संग बिपिन ह्वै आवोंगी ।
गृह - तें कोटि - गुनित सुख, मारग चलत, साथ सचु पावोंगी ॥ १ ॥
थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भे बाउ डुलावोंगी ।
नयन - चकोरनि मुख-मयंक - छबि, सादर पान करावोंगी ॥ २ ॥
जो हठि नाथ ! राखिहौ मो - कहँ, तौ सँग प्रान पठावोंगी ।
'तुलसिदास' प्रभु - बिन जीवन रहि, क्यों फिरि बदन देखावोंगी ॥३॥ (६)

कहौ तुम - बिनु गृह मेरो कौन काज ।
बिपिन, कोटि सुरपुर-समान मोको, जोपै पिय परिहर्‍यो राज ॥ १ ॥
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद - मूल - फल - अमिय - नाज ।
प्रभु-पद-कमल बिलोकिहौं छिन-छिन, इहि-तें अधिक कहँ सुख-समाज ॥ २ ॥

करना । इसीमें तुम्हारे कल्याण है ॥ १ ॥ 'देखो राजकुमारी ! गजगामिनी ! कहाँ तो बहुत ऊबड़-खाबड़ और कँटीला-पथरीला वनका मार्ग और कहाँ तुम्हारे इतने कोमल पैर ! भला तुम उस मार्गपर चल कैसे पाओगी ? वहाँकी हरहराती प्रचंड हवा (लू), वर्षा, पाला और धूप तुम दिन-रात कैसे झेल पाओगी ? ॥ २ ॥ बिजलीके समान चमकवाली सुन्दरी ! मैं अपने पिताकी आज्ञाका पालन करके शीघ्र लौटा आया जाता हूँ ।' तुलसीदास कहते हैं कि रामके ये विरह-भरे वचन सीता सह न सकीं और वे मूर्च्छित हो गिरीं ॥ ३ ॥ (५)

(सीता अपनी सासकी ओर मुँह करके रामसे कहने लगीं) 'कृपानिधान सुजान-शिरोमणि प्राणनाथ ! आपके साथ मैं वनमें भली-भाँति रह लूँगी । आपके साथ-साथ (वनके बीहड़) मार्गमें चलनेपर भी मुझे घरसे करोड़ों गुना अधिक सुख मिलेगा ॥ १ ॥ जब आप थक जाया करेंगे तब मैं बैठकर आपके पाँव पलोटा करूँगी, पंखा झला करूँगी, तथा अपने नेत्र-रूपी चकोरोंको आपके मुखचन्द्रकी छबिका आदरपूर्वक पान कराया करूँगी (आपका मुख एकटक निहारा करूँगी) ॥ २ ॥ और नाथ ! मैं कहे देती हूँ कि कहीं आपने हठपूर्वक मुझे यहीं छोड़ दिया तो मैं विवश होकर अपने प्राण आपके साथ भेज दूँगी, क्योंकि आपके चले जानेपर यदि आपके बिना मैं जीवित रह गई तो मैं किसीको अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी' ? ॥ ३ ॥ (६)

'भला बताइए तो सही कि आपको छोड़कर मैं घरमें रहकर करूँगी क्या ? जब प्रियतम ही अपना राज्य छोड़ बैठे हैं तब मेरे लिये वन ही करोड़ों स्वर्ग लोकोंके समान (सुखदायी) है ॥१॥ मेरे लिये तो पेड़ोंकी छाल ही अत्यन्त मनोहर और निर्मल वस्त्र होगा और कन्द-मूल-फल ही अमृतके समान भोजन होगा । अहा ! मेरे नेत्र निरन्तर प्रभुके चरण-कमलोंके दर्शन करते रहेंगे—

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हौं रहौं भवन भोग - लोलुप ह्वै, पति कानन किय मुनि - को साज।
'तुलसिदास' ऐसे बिरह - बचन सुनि, कठिन हियो बिहरो न आज ॥ ३ ॥ (७)

पिय ! निठुर बचन कहे कारन कवन ?
जानत हौ सबके मन - की गति, मृदु चित, परम कृपालु, रवन ॥ १ ॥
प्राननाथ ! सुंदर ! सुजानमनि, ! दीनबन्धु, ! जग - आर्ति - दवन !
'तुलसिदास' प्रभु-पद-सरोज तजि, रहिहौं कहा करौंगि भवन ॥ २ ॥ (८)

[रामका समर्थन]

मैं तुम सों सति भाव कही है।
बूझति और भाँति भामिनि ! कत, कानन कठिन कलेस सही है ॥ १ ॥
जौ चलिहौ, तो चलौं चलि-कै बन, सुनि, सिय मन अवलंब लही है।
बूड़त बिरह - बारिनिधि मानहु, नाह, बचन - मिस बाँह गही है ॥ २ ॥
प्राननाथ - के साथ चली उठि, अवध सोक - सरि उमँगि बही है।
सुनी न 'तुलसी' कबहुँ काहु कहु, तनु परिहरि परिछाँहि रही है ॥ ३ ॥ (९)

जब रघुपति - सँग सीय चली।
बिकल - बियोग लोग पुरतिय कहैं, अति अन्याउ अली ॥ १ ॥

इससे बढ़कर और कौन-सा सुख होगा ? ॥ २ ॥ हाय ! हाय ! बताइए, मैं तो (राजसी) भोग भोगनेके लिये यहाँ राजभवनमें रह जाऊँ और मेरे पतिदेव मुनिका वेष बनाए वनमें जाकर निवास करें। तुलसीदास कहते हैं—(सीता दुखित होकर कहती हैं) कि ऐसे विरह-भरे वचन सुनकर भी आज मेरा कठोर हृदय फट क्यों नहीं जाता ?' ॥ ३ ॥ (७)

'प्रियतम (राम) ! आज आपने ऐसे निठुर वचन कह क्यों डाले ? परम कृपालु ! आपका चित्त बड़ा कोमल है और आप सबके मनकी दशा जानते हैं ॥१॥ प्राणनाथ ! सुन्दर, सुजान-शिरोमणि। दीनबन्धु ! जगत्का दुःख दूर कर डालनेवाले ! आपके चरण-कमल छोड़कर मैं घरमें रहकर करूँगी क्या ? ॥ २ ॥ (८)

(रामने सीतासे कहा—) 'प्रिये ! मैंने तो बड़े सच्चे मनके भावसे तुमसे कहा है। तुम इसे उलटा क्यों समझे ले रही हो ? सच पूछो तो वनमें क्लेश ही क्लेश तो है ॥ १ ॥ फिर भी यदि तुम चलनेपर ही तुली बैठी हो तो जाओ वन चलनेके लिये तैयार हो आओ।' सीताने यह सुना तो उनके जीमें जी आया मानो विरहके समुद्रमें डूबती हुईको इस वचनके बहाने पतिदेवने उनकी बाँह पकड़कर उबार निकाला हो ॥२॥ वे उठकर प्राणनाथके साथ चल पड़ीं। उस समय (कुछ पूछिए मत,) अयोध्यामें शोककी नदी उमड़ पड़ी। तुलसीदास कहते हैं कि कभी किसीने कहीं नहीं सुना होगा कि शरीरको छोड़कर परछाईं अलग हो (तब भला रामको छोड़कर सीता कैसे घर रह सकती थीं ?) ॥ ३ ॥ (९)

जिस समय रामके साथ सीता वनको चलीं, उस समय नगरके लोग तथा स्त्रियाँ सब वियोगकी व्यथासे व्याकुल हो-होकर कहने लगीं—'अरी आली ! यह तो बड़ा अन्याय हो रहा है' ॥१॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कोउ कह मनिगन तजत काँच - लगि, करत न भूप भली।
कोउ कह कुल - कुबेलि कैकेयी, दुख - बिष - फलनि फली ॥ २ ॥
एक कहैं, बन - जोग जानकी ? बिधि बड़ बिषम बली।
'तुलसी' कुलिसहु - को कठोरता, तेहि दिन दलकि दली ॥३॥ (१०)

ठाढ़े लखन कमल - कर जोरे।
उर धकधकि, न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे ॥ १ ॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधु - तन, प्रान - कृपान बीर - सी छोरे।
तात ! बिदा माँगिए मातु - सों, बनिहै बात उपाइ न औरे ॥ २ ॥
जाइ चरन गहि, आयसु जाँचौ, जननि कहत, बहुभाँति निहोरे।
'सिय - रघुबर - सेवा सुचि ह्वैहौ, तौ जानिहौं सही सुत मोरे ॥ ३ ॥
कीजहु इहै बिचार निरंतर राम - समीप सुकृत नहिं थोरे'।
'तुलसी' सुनि सिख चले चकित-चित, उड़्यो मनो बिहग, बधिक भए भोरे ॥४॥ (११)

राग सोरठा

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै।
राम-लखन मेरि यहैं भेंट, बलि जाउँ, मोहिं मिलि लीजै ॥ १ ॥

कोई कहने लगा—'राजाने यह अच्छा काम नहीं किया'। कोई कहने लगा—'कैकेयी तो (रघुके) कुलके लिये कुबेल (विषैली बेल) उपज उठी है जो इस समय दुःखके विषैले फलोंसे लदी खड़ी है (कैकेयीके कारण सबको दुःख ही दुःख मिल रहा है) ॥ २ ॥ किसीने कहा—'विधाता भी बड़ा बेढंगा और बली है। भला, जानकी क्या वन जानेके योग्य हैं ?' तुलसीदास कहते हैं कि उस दिन तो वज्रकी सारी कठोरता भी तड़ककर चूर-चूर हो गई ॥ ३ ॥ (१०)

लक्ष्मण भी कर-कमल जोड़े आ खड़े हुए। उनके हृदयमें धुक-धुकी मची हुई थी। संकोचके मारे उनके मुँहसे कुछ कहते नहीं बन रहा था। (वे यही सोच रहे हैं कि) इस समय तो राम सभीसे तृण (सम्बन्ध) तोड़कर सबको त्यागे दे रहे हैं ॥ १ ॥ कृपासागर रामने जब देखा कि भाई लक्ष्मण इस प्रकार अपने प्राण हथेलीपर लिए खड़े हैं जैसे वीर लोग म्यानसे कृपाण निकाल लेते हैं तो उन्होंने कहा—'जाओ भैया ! (चलना हो तो) मातासे बिदा माँग आओ। क्योंकि इसके अतिरिक्त साथ ले चलने और कोई उपाय नहीं है' ॥२॥ जब लक्ष्मणने जाकर माता (सुमित्रा)-के चरण पकड़कर उनसे आज्ञा माँगी, तब माताने लक्ष्मणसे बहुत करुण स्वरमें कहा—' मैं तुम्हें तभी अपना पुत्र समझूँगी जब तुम राम और सीताकी सेवा करके पवित्र हो जाओगे ॥ ३ ॥ तुम सदाके लिये यह समझ रक्खो कि रामके साथ रहना कोई कम पुण्यकी बात नहीं है।' तुलसीदास कहते हैं कि माताकी यह शिक्षा सुनकर लक्ष्मण इस प्रकार झपटकर निकल चले जैसे बधिकको असावधान देखकर पक्षी उड़ निकलता है (क्योंकि उन्हें सन्देह था कि कहीं माता सुमित्रा रोक न बैठें) ॥ ४ ॥ (११)

(राम और लक्ष्मणको वन जाते सुनकर महाराज दशरथ उनसे कहने लगे—) 'आओ राम और लक्ष्मण ! आओ। मुझे अपना मुख-चन्द्र तो देख लेने दो। अब मेरी तो यहाँकी यही अंतिम भेंट है। मैं तुमपर बलि जाता हूँ। आओ आकर मुझसे गले तो मिल लो' ॥ १ ॥ पिता

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनि पितु - बचन, चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार - मिस, सो अवसर - सुधि कीन्हें ॥ १ ॥
पुनि सिर नाइ गवन किय प्रभु, मुरछित भो भूप न जाग्यो।
करम - चोर नृप - पथिक मारि मनो, राम - रतन लै भाग्यो ॥ ३ ॥
'तुलसी' रबिकुल - रबि चढ़ि चलए, तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग - नलिन भे मलिन अवध - सर, बिरह - बिषम - हिम पाई ॥४॥ (१२)

राग बिलावल

कहौ, बिपिन धौं केतिक दूरि ?
जहँ किय गवन कुँवर कोसलपति, बूझति सिय, पिय पतिहि बिसूरि ॥ १ ॥
प्राननाथ ! परदेस पयादेहि, चले सकल सुख तजि, तृन तूरि।
करौं बयारि बिलंबि बिटपतर, झारौं चरन - सरोरुह - धूरि ॥ २ ॥
'तुलसिदास' प्रभु प्रिया-बचन सुनि, नीरज - नयन नीर रहे पूरि।
कानन कहाँ अबहिं, सुनु, सुंदरि ! रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥ ३ ॥ (१३)

फिरि फिरि राम, सीय - तनु हेरत।
तृषित जानि, जल लेन लखन गे, भुज उठाइ, ऊँचे चढ़ि टेरत ॥ १ ॥

(दशरथ)-के ये वचन सुनकर रामने झुककर उनके चरण पकड़ लिए। तब राजाने भी उन्हें छातीसे उठा लगाया। आज भी पृथ्वी उसी अवसरका स्मरण करके दरारके बहाने फट-फट जाती है ॥२॥ दशरथको प्रणाम करके राम वनके लिये चल दिए। उनका जाना था कि महाराज दशरथ मूर्च्छित हो गिरे (और ऐसे गिरे कि) उन्हें फिर चेतना न लौटी मानो, भाग्य - रूपी चोर, राजा दशरथ-रूपी पथिकको मारकर उसका रामरूपी रत्न चुराकर भाग खड़ा हुआ हो ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सूर्यवंशके सूर्य राम रथपर चढ़कर सुहावनी दक्षिण दिशाकी ओर चल दिए। उस समय रामके विरहके भयंकर पालेसे अयोध्या-रूपी सरोवरके पुरजन-रूपी सारे कमल जल गए ॥४॥ (१२)

(वनके मार्गमें चलते-चलते थक जानेसे) जानकी घबराकर रामसे पूछने लगीं—'कहिए कोशल-राज-कुमार ! आप जहाँ जानेवाले हैं, वह वन यहाँसे अभी कितनी दूर है ? ॥ १ ॥ प्राणनाथ ! आपने सब (राजसी) सुख तृणके समान तोड़कर छोड़ दिए और अब पैदल परदेशमें चले जा रहे हैं। (अतः, आप थक गए होंगे,) आइए, कुछ देर इस वृक्षके नीचे बैठकर सुस्ता लीजिए। मैं आपको पंखा झले देती हूँ और चरण-कमलोंकी धूल पोंछे डालती हूँ' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि प्रियाके ये वचन सुनकर प्रभुके कमलके समान नेत्रोंमें जल भर आया और वे भी सीताकी ओर बड़े प्रेमके साथ देखकर बोले—'सुन्दरी ! भला अभी यहाँ कहाँ वन धरा है ?' ॥ ३ ॥ (१३)

(वन जाते समय) राम मुड़-मुड़कर सीताजीकी ओर देखते चलते थे। जब सीताको प्यासा समझकर लक्ष्मण उनके लिये पानी लेने बढ़ गए तब राम ऊँचे (टीलेपर) चढ़कर भुजा उठाकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अवनि कुरंग, बिहँग द्रुम - डारन, रूप निहारत, पलक न प्रेरत।
मगन, न डरत, निरखि कर-कमलनि, सुभग सरासन-सायक फेरत ॥ २ ॥
अवलोकत मग - लोग चहूँ दिसि, मनहु चकोर चंद्रमहिं घेरत।
ते जन भूरिभाग भूतल - पर, 'तुलसी' राम - पथिक - पद जे रत ॥ १४ ॥(१४)

नृपति - कुँवर राजत मग जात।
सुंदर बदन, सरोरुह - लोचन, मरकत - कनक - बरन मृदु गात ॥ १ ॥
अंसनि चाप, तून कटि, मुनि - पट, जटा - मुकुट बिच नूतन पात।
फेरत पानि - सरोजनि सायक, चोरत चितहिं सहज मुसुकात ॥ २ ॥
संग नारि सुकुमारि, सुभग, सुठि, राजति बिन भूषन नव - सात।
सुषमा निरखि ग्राम-बनितनि-के, नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात ॥ ३ ॥
अंग-अंग अगनित अनंग-छबि, उपमा कहत सुकबि सकुचात।
सिय-समेत नित 'तुलसिदास'-चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात ॥ ४ ॥(१५)

तू देखि देखि री ! पथिक परम सुँदर दोऊ।
मरकत-कलधौत-बरन, काम-कोटि-कांति-हरन, चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ॥१॥

उन्हें पुकारने लगे ॥ १ ॥ पृथ्वीपर विचरनेवाले मृग और वृक्षोंकी डालियोंपर बैठे पक्षी सब टकटकी लगाए प्रभुका रूप-लावण्य देख - देखकर प्रेममें मगन हुए जा रहे थे और यह देखकर भी भयभीत नहीं हो रहे थे कि राम अपने धनुष-बाणपर कर-कमल फेरे जा रहे हैं॥ २ ॥ मार्गमें लोग चारों ओरसे घेरकर प्रभुको देख रहे हैं मानो चकोरोंने चन्द्रमाको आ घेरा हो। तुलसीदास कहते हैं कि इन बटोही रामके चरणोंसे जो लोग प्रेम करने लगते हैं, वे पृथ्वीपर बड़े ही भाग्यशाली हैं॥ ३ ॥ (१४)

मार्गमें चलते हुए हुए दोनों राजकुमार बड़े अच्छे लग रहे हैं। उनके मुखमण्डल बड़े सुन्दर हैं, कमलके समान उनके नेत्र तथा मरकतमणि (पन्नेके समान रामका) और सुवर्णके समान (सुनहरा लक्ष्मणका) कोमल शरीर है ॥ १ ॥ उनके कंधोंपर धनुष, कमरमें तरकश, (शरीरपर) मुनियों-के-से वस्त्र और सिरपर जटाके मुकुट हैं जिनमें नवीन पत्ते खोंसे हुए हैं। वे धनुषपर अपना कर-कमल फेरे जा रहे हैं और उनकी स्वाभाविक मुसकान सबका चित्त चुराए ले रही है ॥२॥ उनके साथ बिना आभूषणोंवाली और सोलहों शृंगारसे रहित अत्यन्त सुकुमारी स्त्री भी बड़ी भली लग रही है। उनकी सुन्दरता देखकर गाँवोंकी स्त्रियोंके नेत्र-कमल ऐसे खिल उठे जैसे प्रातःकाल कमल खिल उठते हैं॥ ३ ॥ उन (राम-लक्ष्मणके) अंग-अंगमें अगणित कामदेवोंकी शोभा ऐसी झलकी पड़ रही है कि उसकी उपमा देनेमें अच्छे-अच्छे कवि भी सकुचाए जा रहे हैं। तुलसीदासके हृदयमें तो सीताके साथ वनमें चलते हुए किशोर अवस्थावाले वे (राम-लक्ष्मण) दोनों भाई सदा बसे रहते हैं॥ ४ ॥ (१५)

(एक ग्रामीण स्त्री कह रही है—) 'देख री सखी ! देख। ये दोनों बटोही कितने सुन्दर हैं। ये पन्ने और सोनेके समान साँवले और गोरे (सुनहरे) हैं। ये करोड़ों कामदेवोंकी शोभा हरे लिए डाल रहे हैं। इनके कमलके समान चरण भी अत्यन्त कोमल हैं। (जान पड़ता है) ये कोई राजकुमार हैं॥१॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कर सर-धनु, कटि निषंग, मुनि-पट सोहैं सुभग अंग, संग चंद-बदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ।
तापस बर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए, चित-के चोर बय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥२॥
दिनकर-कुलमनि निहारि, प्रेम-मगन ग्राम-नारि, परसपर कहैं, सखि ! अनुराग-ताग पोऊ।
'तुलसी' यह ध्यान-सुधन, जानि मानि लाभ सघन, कृपिन ज्यों सनेह-सों, हिये सुगेह गोऊ ॥३॥१६

कुँवर साँवरो, रि सजनि ! सुंदर सब अंग।
रोम-रोम छबि निहारि, आलि वारि फेरि डारि, कोटि भानु-सुवन - सोम, कोट्यनंग ॥१॥
बाम अंग लसत चाप, मौलि मंजु जटा कलाप, सुचि सर कर, मुनिपट, कटि-तट कसे निषंग।
आयत उर-बाहु-नैन, मुख-सुषमा-को लहै न उपमा, अवलोकि लोक, गिरा-मति-गति भंग ॥२॥
यों कहि भइँ मगन बाल, बिथकीं सुनि जुवति-जाल, चितवत चले जात संग, मधुप-मृग-बिहंग।
बरनौं किमि तिनकि दसहिं, निगम-अगम प्रेम-रसहिं, 'तुलसी' मन-बसन रँगे रुचिर रूप-रंग ३।१७

राग कल्यान

देखु, कोऊ परम सुंदर सखि ! बटोही।
चलत महि, मृदु चरन अरुन-बारिज-बरन, भूप-सुत, रूप-निधि, निरखि हौं मोही ॥ १ ॥

इनके हाथोंमें धनुष-बाण हैं, कमरमें तरकश है और सुन्दर शरीरपर मुनियोंकेसे वस्त्र पड़े शोभा दे रहे हैं। इनके साथ एक बड़ी ही सुन्दरी चन्द्रमुखी स्त्री भी है। तपस्वियोंकेसे इस सुन्दर वेषमें मानो इन्होंने सारी शोभा ही लूट धरी है। आओ, आकर इन किशोर अवस्थावाले चित-चोरोंको तनिक भर-आँखों देख तो लिया जाय' ॥२॥ तब सूर्यकुल-शिरोमणि (राम)-को देखकर सब ग्रामकी स्त्रियाँ प्रेममें मग्न हो उठीं। वे आपसमें कहने लगीं—'ले सखी ! ले, इन्हें प्रेमके तागेमें पिरो ले रख (इनसे प्रेम करने लग)। (तुलसीदास कहते हैं) इनके इस (रूपके) ध्यानको अपना बहुत बड़ा धन जानकर तथा इसे ही बड़ा भारी लाभ समझकर तू कंजूसके समान प्रेमसे अपने हृदयकी कोठरीमें छिपाकर इन्हें सँभाल रख' (हृदयमें सदा इनका ध्यान किया कर) ॥ ३ ॥ (१६)

'अरी सखी ! इस साँवले कुमारके तो सभी अंग सुन्दर हैं। अरी आली ! (जी करता है कि) इनके रोम-रोमकी छबिपर करोड़ों अश्विनीकुमार, शरत्के चन्द्रमा और करोड़ों कामदेव निछावर कर डालूँ ॥ १ ॥ इनके बाएँ कंधेपर धनुष टँगा हुआ बड़ा भला लग रहा है। इनके सिरपर सुन्दर जटाजूट है, हाथमें बढ़िया बाण है तथा कमरमें मुनियोंकेसे वस्त्र और तरकश है। इनके वक्षःस्थल, भुजाएँ और नेत्र बड़े विशाल हैं तथा मुख तो ऐसा सलोना है कि कोई पा नहीं सकता। संसारमें इनकी उपमा खोजते-खोजते सरस्वतीकी बुद्धि भी हार मान बैठी' ॥ २ ॥ ऐसा कहकर ग्रामकी बालाएँ रामका रूप देखनेमें मग्न हो गईं और उनकी बातें सुनकर तो युवतियाँ सुधबुध खो बैठीं। भौंरे, मृग और पक्षी तो रामको देखते हुए उन्हींके साथ लगे चले जा रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनके शरीरकी जिस दशाको तथा प्रेम-रसको वेद भी नहीं समझ पा सकते उसका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ? उनके मनके वस्त्र रामके अति प्यारे रूपके-रंगमें जा रँगे हैं ॥ ३ ॥ १७

'देख री सखी ! देख तो ! लाल कमलके समान कोमल चरणोंवाले कोई सुन्दर बटोही राजकुमार धरतीपर पैदल बढ़े चले जा रहे हैं। उन रूपके भांडारको देखकर तो मैं उनपर मोहित

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अमल मरकत स्याम, सील-सुषमा-धाम, गौर तनु सुभग, सोभा सुमुखि जोही।
जुगल बिच नारि, सुकुमारि सुठि सुंदरी, इंदिरा, इंदु - हरि मध्य जनु सोही ॥ २ ॥
करनि बर धनु-तीर, रुचिर कटि तूनीर, धीर, सुर - सुखद, मर्दन अवनि - द्रोही।
अंबुजायत नयन, बदन-छबि बहु मयन, चारु चितवनि चतुर, लेति चित पोही ॥ ३ ॥
बचन प्रिय सुनि स्रवन, राम करुना-भवन, चितए सब अधिक हित-सहित कछु ओही।
'दास तुलसी' नेह-बिबस बिसरी देह, जान नहिं आपु तेहि काल धौं को ही ॥४॥(१८)

राग केदारा

सखि ! नीके कै निरखि कोऊ सुठि सुंदर बटोही।
मधुर मूरति मदनमोहन जोहन - जोग, बदन सोभा-सदन देखि हौं मोही ॥ १ ॥
साँवरे - गोरे किसोर, सुर-मुनि चित्त-चोर, उभय - अंतर एक नारि सोही।
मनहुँ बारिद - बिधु - बीच ललित अति, राजति तड़ित निज सहज बिछोही ॥ २ ॥
उर धीरजहि धरि, जनम सफल करि, सुनहि सुमुखि ! जनि बिकल होही।
को जानै कौने सुकृत लह्यौ है लोचन-लाहु, ताहि-तें बारहि बार कहति तोही ॥ ३ ॥
सखिहि सुसिख दई, प्रेम - मगन भई, सुरति बिसरि गई आपनी ओही।
'तुलसी' रही है ठाढ़ी, पाहन गढ़ी-सी काढ़ी, न जाने कहाँ-तें आई, कौन की को ही ॥४॥(१९)

हो बैठी हूँ ॥१॥ अरी प्यारे मुखड़ेवाली ! मैं ने उन शील और सुन्दरताके भांडार, स्वच्छ पन्नेके समान साँवले और बहुत छबीले गोरे राजकुमारोंकी शोभा अपनी आँखों देखी है। उन दोनों के बीच एक बड़ी ही सुकुमारी, अत्यन्त सुन्दरी स्त्री चली जा रही थी मानो चन्द्रमा और विष्णुके बीच साक्षात् लक्ष्मी ही चली जा रही हों ॥ २ ॥ उनके कर-कमलों में मनोहर धनुष-बाण और कमरमें सुन्दर तरकश है। वे बड़े ही धीर हैं, देवताओं को सुख देते रहते हैं और पृथ्वीके शत्रुओंका नाश करते रहते हैं। उनके नेत्र तो कमलकी पंखड़ीके समान विशाल हैं और मुखकी कान्ति अनेक कामदेवोंके समान छबीली है। वे अपनी परम मनोहर चितवनसे सबका चित्त लुभाए ले रहे हैं' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि तब तो वे स्त्रियाँ प्रेमसे ऐसी अधीर हो उठीं कि उन्हें अपने शरीर-तककी सुधि जाती रही और उस समय किसीको अपना यह भी ज्ञान न रहा गया कि हम कौन हैं ? ॥ ४ ॥ (१८)

'देख री सखी ! भली प्रकार देख ले। कोई बड़े ही सुन्दर बटोही इधरसे चले जा रहे हैं। देख, कामदेवको भी लुभा डालनेवाली इनकी मधुर मूर्त्ति बस देखते ही बनती है। इनका सलोना मुखड़ा देखकर तो मैं इनपर मोहित हो बैठी हूँ ॥ १ ॥ ये किशोर अवस्थावाले साँवले और गोरे बटोही तो देवता और मुनियोंका चित्त भी चुराए डाल रहे हैं। दोनों कुमारोंके बीच एक सुन्दरी नारी भी ऐसी शोभा दे रही है मानो अपना चञ्चल स्वभाव छोड़कर मेघ और चन्द्रमाके मध्यमें सुन्दर बिजली शोभा दे रही हो ॥ २ ॥ देख री सखी ! मैं जो कुछ कह रही हूँ उसे सुनकर इतनी अकुला मत। धीरज धरकर उन्हें जा देख और अपना जन्म सफल कर ले। न जाने किस पुण्यके प्रतापसे हमें आज यह नेत्रोंका लाभ मिल पाया है ? इसीसे मैं तुझसे बार-बार कह रही हूँ (कि जाकर देख आ)' ॥ ३ ॥ इस प्रकार सखीको अच्छी सीख देकर वह प्रेममें ऐसी मग्न हो गई कि उसे अपनी सारी सुधि जाती रही। तुलसीदास कहते हैं कि वह गढ़ी हुई पत्थरकी मूर्त्तिके समान

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

माई ! मन-के मोहन, जोहन जोग, जोही ।
थोरी ही बयस, गोरे - साँवरे सलोने - लोने, लोयन ललित, बिधु-बदन बटोही ॥ १ ॥
सिरनि जटा - मुकुट मंजुल सुमन - जुत, जैसिये लसति नव पल्लव खोही[1] ।
किए मुनि - बेष बीर, धरे धनु - तून - तीर, सोहैं मग, को हैं लखि परै न मोही ॥ २ ॥
सोभा-को साँचो सँवारि रूप जातरूप, ढारि नारि बिरचि बिरंचि, संग सोही ।
राजत रुचिर तन, सुंदर स्रम - के कन, चाहे चकचौंधी लागै, कहौं का तोही ॥ ३ ॥
सनेह - सिथिल सुनि बचन सकल, सिय चितई अधिक हित-सहित ओही ।
'तुलसी' मनहु प्रभु कृपा-की मूरति फिरि, हेरि - कै हरषि हिए लियो है पोही ॥४॥(२०)

सखि ! सरद - बिमल - बिधुबदनि बधूटी ।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी, रत्यौ रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ॥ १ ॥
साँवरे - गोरे पथिक - बीच सोहति अधिक, तिहुँ त्रिभुवन - सोभा मनहु लूटी ।
'तुलसी' निरखि सिय प्रेम - बस कहैं तिय, लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥२॥(२१)

ज्योंकी त्यों खड़ीकी खड़ी रह गई । फिर भला यह कौन बतावे कि वह कहाँसे आई थी और किसकी कौन थी ? ॥ ४ ॥ (१९)

'अरी माई ! वे मनमोहन (राम-लक्ष्मण), जो बस देखते ही बनते हैं, उन्हें आज मैं देख आई हूँ । वे थोड़ी ही अवस्थावाले साँवले और गोरे कुमार बड़े ही मनोहर हैं । उनके नेत्र बड़े रसीले हैं । वे चन्द्रके समान मुखवाले बटोही आँखोंको बड़े प्यारे लगते हैं ॥ १ ॥ उनके सिरपर सुन्दर पुष्पोंसे सजा हुआ जटा-मुकुट है और वे वैसी ही हरे पत्तोंकी खोही (छतरी) लगाए हुए हैं । मुनियोंका-सा वेष बनाए हुए वे श्रेष्ठ वीर, धनुष-बाण और तरकश लिए हुए मार्गमें चलते बड़े प्यारे लग रहे हैं । वे कौन हैं यह तो मैं नहीं जानती ॥२॥ उनके साथ जो स्त्री है वह तो ऐसी लगती है मानो विधाताने शोभाके साँचेमें सोनेकी कोई स्त्रीकी मूर्त्ति ढाल निकाली हो । उनके छबीले शरीरोंपर छाई हुई पसीनेकी सुहावनी बूँदे बड़ी भली लग रही हैं । तुमसे मैं क्या बताऊँ ? उन्हें देख लें तो आँखें चौंधिया जाती हैं' ॥ ३ ॥ उनके ये वचन सुनकर तो सीताके मनमें स्नेह उमड़ पड़ा और उसकी ओर वे बड़े प्रेमसे देखने लगीं । तुलसीदास कहते हैं कि उस समय ऐसा जान पड़ा मानो प्रभुकी कृपाकी मूर्ति (सीता)-ने उसकी ओर घूमकर और प्रसन्नतापूर्वक देखकर उसका हृदय अपनेमें लगा अटकाया हो (उसका चित्त अपनी ओर आकृष्ट कर लिया हो) ॥ ४ ॥ (२०)

'अरी सखी ! इस बहुरिया (सीता)-का सलोना मुखड़ा क्या है जैसे शरत्का स्वच्छ चन्द्रमा ही उतर आया हो । ऐसी सुन्दरी स्त्री न तो पहले कोई हुई, न है और न आगे कभी होगी । विधाताने इसे रच लेनेके पश्चात् बची-बचाई छबिसे कहीं रतिको रचा होगा ॥ १ ॥ इन साँवले और गोरे पथिकोंके बीच यह और भी अच्छी लग रही है मानो इन तीनोंने मिलकर तीनों लोकोंकी सारी शोभा लूट धरी हो ।' तुलसीदास कहते हैं कि सीताको देखकर स्त्रियाँ प्रेममें मग्न होकर एक दूसरीसे कहती हैं—'अरी ! अपने नेत्र-रूपी बालकोंको यह अमृतकी घूटी तो पिला दें (अपनी आँखोंसे इनका रूप तो देख ले)' ॥ २ ॥ (२१)

---

१. खोही = पत्तोंका बना हुआ छाता ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोहैं साँवरे पथिक, पाछे ललना लोनी।
दामिनि-बरन गोरी, लखि सखि तृन तोरी, बीती हैं बय किसोरी, जोबन होनी ॥ १ ॥
नीके-कै निकाई देखि, जनम सुफल लेखि, हम-सी भूरि-भागिनी नभ न छोनी।
तुलसी-स्वामी-स्वामिनि जोहे मोही हैं भामिनि, सोभा-सुधा पिए करि अँखियाँ दोनी ॥२॥(२२)

पथिक गोरे - साँवरे सुठि लोने।
संग सुतिय, जिहिं तनु-तें लही दुति, सोन-सरोरुह, सोने ॥ १ ॥
बय किसोर - सरि - पार, मनोहर बयस - सिरोमनि होने।
सोभा - सुधा, आलि ! अँचवहु, करि नयन मंजु मृदु दोने ॥ २ ॥
हेरत हृदय हरत, नहिं फेरत चारु बिलोचन कोने।
'तुलसी' प्रभु, किधौं प्रभु-को प्रेम, पढ़े प्रगट कपट-बिनु टोने ॥ ३ ॥(२३)

मनोहरता - के मानो ऐन।
स्यामल - गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥ १ ॥
बीच बधू, बिधु - बदनि बिराजति, उपमा कहुँ कोउ है न।
मानहु रति - रितुनाथ - सहित, मुनि - बेष बनाए मैन ॥ २ ॥

साँवले पथिकके पीछे-पीछे जो सुन्दरी (सुनहरे) चमकीले रंगवाली बिजलीके समान गोरी ललना चली जाती हुई शोभा दे रही थी, उसे देखकर सखियाँ तृण तोड़ती हुई कहती हैं—'इसकी किशोर अवस्था तो निकल गई है, अब यौवन अवस्था (जवानी) चढ़नेवाली है ॥ १ ॥ इसकी यह (किशोर और यौवनकी सन्धिकी) सुन्दरता देखकर अपना जन्म सफल कर लो। हमारे समान बड़-भागिनी स्त्रियाँ न तो स्वर्गमें ही हैं न पृथ्वीपर ही कहीं हैं।' तुलसीदास कहते हैं कि स्वामी (राम) और उनकी स्वामिनी (जानकी)-को देखकर ग्रामकी स्त्रियाँ उनके सौन्दर्यके अमृतको नेत्रोंके दोनोंमें पी-पीकर मोहित हुई जा रही थीं ॥ २ ॥ (२२)

'ये साँवले (राम) और गोरे (लक्ष्मण) बटोही बड़े ही छबीले और सुहावने हैं। इनके साथ एक सुन्दरी स्त्री भी है जिसके शरीरकी आभा पाकर ही लाल कमल भी लाल कमल हो पाया है और सुवर्ण भी सुवर्ण हो पाया है। अब ये सर्वश्रेष्ठ अवस्था (युवा अवस्था)-में प्रवेश कर रहे हैं। देख आली ! अपने नेत्रके मनोहर और कोमल दोनेमें इनकी छबिका अमृत भरकर पी ले (भर-आँख इनकी सुन्दरता निहार ले) ॥ २ ॥ ये देखते ही हृदय हर लेते हैं और मनोहर चितवन नहीं फेरते।' तुलसीदास कहते हैं कि राम अथवा रामका प्रेम तो किसी प्रकारका दुराव न रखकर प्रत्यक्ष ही टोना पढ़े जा रहा है (राम या रामका प्रेम तो प्रत्यक्ष ही जादू डाल रहा है) ॥ ३ ॥ (२३)

'अरी सलोने मुखड़ेवाली सखी ! तनिक भर-आँख उन्हें देख तो ले। ये दोनों किशोर अवस्था-वाले साँवले (राम) और गोरे (लक्ष्मण) पथिक तो ऐसे लगते हैं मानो मनोहरता इन्हींपर आ टिकी हो ॥ १ ॥ इनके बीच ऐसी चन्द्रमुखी स्त्री चली जा रही है जिसकी कहीं कोई उपमा नहीं है मानो रति (सीता) और ऋतुराज वसन्त (लक्ष्मण)-के साथ साक्षात् कामदेव (राम) ही मुनियोंका-सा वेष धारण किए चले जा रहे हों ॥२॥ या कहीं शृंगार, सुन्दरता और सुप्रेम ही मिलकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

किधौं सिँगार-सुषमा-सुप्रेम मिलि, चले जग-चित-बित लैन।
अदभुत त्रयी किधौं पठई बिधि, मग-लोगन्हि सुख दैन॥ ३॥
सुनि सुचि, सरल, सनेह-सुहावन, ग्रामबधुन-के बैन।
'तुलसी' प्रभु तरु-तर बिलँबे, किय प्रेम-कनौड़े कै न॥ ४॥(२४)

बय किसोर गोरे-साँवरे धनु-बान धरे हैं।
सब अँग सहज सुहावने, राजीव जिते नैननि, बदननि बिधु निदरे हैं॥ १॥
तून, सुमुनिपट कटि कसे, जटा मुकुट करे हैं।
मंजु, मधुर, मृदु मूरति, पानह्यौं न पायनि, कैसे धौं पथ बिचरे हैं॥ २॥
उभय बीच बनिता बनी लखि मोहि परे हैं।
मदन सप्रिया, सप्रिय सखा हैं मुनि-बेष बनाए, लिए मन जात हरे॥ ३॥
सुनि जहँ-तहँ देखन चले अनुराग-भरे हैं।
राम-पथिक छबि निरखि कै, 'तुलसी', मग-लोगनि धाम-काम बिसरे हैं॥ ४॥(२५)

कैसे पितु-मातु, कैसे ते प्रिय परिजन हैं?
जग-जलधि ललाम, लोने-लोने गोरे-स्याम, जिन पठए हैं ऐसे बालकनि बन हैं॥१॥
रूप-के न पारावार, भूपके कुमार, मुनि-बेष, देखत लुनाई लघु लागत मदन हैं।
सुषमा-की मूरति-सी, साथ निसिनाथ-मुखी, नखसिख अंग सब सोभा-के सदन हैं॥२॥

संसारका चित्तरूपी धन हरण करनेके लिये तो नहीं निकल पड़े हैं? या विधाताने मार्गके लोगोंको सुख देनेके लिये अद्भुत त्रयी (वशीकरण, आकर्षण और मोहनको) ही तो नहीं भेज दिया है'॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि ग्राम-बधुओंके ये पवित्र, सरल और स्नेहके कारण सुहावने वचन सुनकर राम एक वृक्षके नीचे जा बैठे क्योंकि वे किस प्रेम करनेवालेके कृतज्ञ (अहसानमंद) नहीं होते? ॥४॥ (२४)

'किशोर अवस्थावाले साँवले और गोरे (राजकुमार) धनुष-बाण लिए हुए हैं। उनके अंग-अंगसे स्वाभाविक शोभा टपकी पड़ रही है। उनके नेत्रोंने कमलोंको जीत धरा है और उनका मुख भी चन्द्रमाको लजाए डाल रहा है॥ १॥ वे कमरमें मुनियोंकेसे वस्त्र और तरकश कसे हुए हैं और सिरपर जटाओंके मुकुट बनाए हुए हैं। उनकी मूर्त्ति अत्यन्त सुहावनी, मधुर और कोमल है, उनके पैरोंमें जूते-तक नहीं हैं और न जाने वे (वनके बीहड़) मार्गमें कैसे पैदल चले आए हैं?॥ २॥ दोनों कुमारोंके बीचमें जो सुन्दरी चली जा रही है उसे देखकर तो हमें ऐसा जान पड़ रहा है मानो कामदेव ही अपनी प्रिया रति और प्रिय सखा वसन्तके साथ मुनियोंका-सा वेष बनाकर हमारे चित्त हरे लिए चला जा रहा हो'॥ ३॥ यह सुनना था कि लोग प्रेमपूर्वक उन्हें देखनेके लिये जहाँ-तहाँ झपट चले। तुलसीदास कहते हैं कि बटोही रामकी छबि देख-देखकर मार्गके लोग अपने घरके काम-धन्धे भी भूल बैठे हैं॥ ४॥ (२५)

'बताओ सखी! वे माता-पिता कैसे हैं और इनके प्रिय परिवारके लोग कैसे हैं जिन्होंने संसारके समुद्रके इन सुन्दर रत्नके समान सलोने साँवले और गोरे कुमारोंको वनमें ठेल भेजा है॥ १॥ इनके रूपका कोई पार नहीं है। इन मुनि-वेषधारी राजकुमारोंकी सुन्दरता देखकर तो कामदेव भी ओछा जान पड़ने लगता है। इनके साथ बहुत ही सुन्दर चन्द्रमुखी स्त्री भी है जिसके नखसे शिख

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पंकज करनि चाप - तीर, तरकस कटी, सरद-सरोजहू - तें सुंदर चरन हैं।
सीता-राम-लखन निहारि ग्राम-नारि हैं, हेरि, हेरि, हेरि, हेली ! हिय-के हरन हैं ॥३॥
प्रानहू-के प्रान-से, सुजीवन-के जीवन-से, प्रेमहू-के प्रेम, रंक-कृपिन-के धन हैं।
तुलसी-के लोचन-चकोर-के चन्द्रमा-से, आछे मन-मोर, चित-चातक-के घन हैं ॥४॥(२६)

राग भैरव

देखि ! द्वै पथिक गोरे साँवरे सुभग हैं। सुतिय सलोनी संग सोहत सुभग हैं ॥१॥
सोभा-सिंधु-संभव-से नीके-नीके नग हैं। मातु-पितु-भाग-बस गए परि फँग हैं ॥२॥
पाइँ पनह्यौं न, मृदु पंकज-से पग हैं। रूप-की मोहनी मेलि मोहे अग-जग हैं ॥३॥
मुनि-बेष, धरे धनु-सायक सुभग हैं। 'तुलसी' हिये लसत लोने-लोने डग हैं ॥४॥(२७)

पथिक पयादे जात, पंकज-से पाँय हैं। मारग कठिन, कुस-कंटक-निकाय हैं ॥१॥
सखी ! भूखे-प्यासे पै चलत चित चाय हैं। इनके सुकृत, सुर, संकर सहाय हैं ॥२॥
रूप-सोभा-प्रेम-के-से कमनीय-काय हैं। मुनि-बेष किए किधौं ब्रम्ह-जीव-माय हैं ॥३॥
बीर, बरियार, धीर, धनुधर-राय हैं। दस-चारि-पुर-पाल आली ! उरगाय[1] हैं ॥४॥

(नीचेसे ऊपर)-तक सभी अंग शोभासे भरे हुए हैं ॥ २ ॥ इनके कर-कमलोंमें धनुष, बाण और करमें तरकश हैं। इनके चरण तो शरत्के कमलसे भी बढ़कर सुन्दर हैं।' इस प्रकार सीता, राम और लक्ष्मणको देख-देखकर गाँवोंकी स्त्रियाँ एक दूसरीसे कहने लगीं—'अरी सखी ! देख, देख, देख ! ये तो सचमुच बड़े चित-चोर हैं ॥ ३ ॥ ये तो प्राणोंके भी प्राण, जीवनके भी जीवन, प्रेमके भी प्रेम, दरिद्रों और कृपणोंके धन, तुलसीदासके नेत्र-रूपी चकोरके लिये चन्द्रमा तथा मन-रूपी मोर और चित्त-रूपी पपीहेके लिये मेघके समान प्यारे हैं" ॥ ४ ॥ (२६)

'अरी सखी ! देख, ये जो सुन्दर गोरे (लक्ष्मण) और साँवले (राम) दो पथिक मार्गमें चले जा रहे हैं, इनके साथ एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री भी बड़ी प्यारी लग रही है ॥ १ ॥ ये तो शोभाके समुद्रसे निकले हुए सुन्दर रत्नके समान हैं। इस समय ये माता-पिताके दुर्भाग्यवश संकटमें जा फँसे हैं ॥ २ ॥ देख, इनके पैर कैसे कमलके समान कोमल हैं पर पैरोंमें जूते-तक नहीं हैं। ये अपने रूपकी मोहिनी डालकर सारे स्थावर और जङ्गम जगत्को मोहे बैठे हैं ॥ ३ ॥ ये हाथमें धनुष-बाण लिए और मुनियोंका-सा बाना बनाए हुए हैं। इनके सुन्दर-पुन्दर चरण तो तुलसीदासके हृदयमें भी बसे हुए हैं" ॥ ४ ॥ (२७)

'हाय हाय ! ये बेचारे पथिक अपने कमलके समान चरणोंसे पैदल ही चले जा रहे हैं। वनके मार्ग कितने बीहड़ (ऊबड़-खाबड़) और कुश-काँटोंसे भरे हैं ॥ १ ॥ देख सखी ! यद्यपि ये बहुत भूखे-प्यासे (लग रहे) हैं, फिर भी बड़े चावसे बढ़े चले जा रहे हैं। जान पड़ता है, इनके पुण्य, देवता और महादेव इनकी सहायता किए चले जा रहे हैं ॥ २ ॥ ये मानो रूप, शोभा और प्रेमकी सदेह सुन्दर मूर्तियाँ हैं या ये मुनियोंका-सा वेष बनाए हुए ब्रह्म, जीव और माया ही आ पहुँचे हैं ॥ ३ ॥ या ये वीर, बली, धीर और बहुत बड़े धनुर्धर हैं या चौदहों भुवनोंके पालक साक्षात्

१. उरगाय = उरुगाय, (उत्तम लोग जिसका गुण-गान करते हों), विष्णु।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मग-लोग देखत करत हाय-हाय हैं। बन इनको तो बाम बिधि कै बनाय हैं ॥५॥
धन्य ते जे मीन-से अवधि-अंबु-आय[1] हैं। 'तुलसी' प्रभु-सों जिन्हहूँ-के भले भाय हैं ॥६॥(२८)

राग आसावरी

सजनी ! हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद-कमलनि दोउ, सील रूप-आगार ॥ १ ॥
आगे राजिव-नैन स्याम-तनु, सोभा अमित अपार।
डारौं वारि अंग-अंगनि-पर, कोटि-कोटि सत मार ॥ २ ॥
पाछे गोर किसोर मनोहर, लोचन - बदन उदार।
कटि तूनीर कसे, कर सर-धनु, चले हरन छिति-भार ॥ ३ ॥
जुगुल बीच, सुकुमारि नारि इक, राजति बिनहि सिंगार।
इंद्रनील, हाटक, मुकुता - मनि जनु पहिरे महि हार ॥ ४ ॥
अवलोकहु भरि नैन, बिकल जनि होहु, करहु सुबिचार।
पुनि कहँ यह सोभा, कहँ लोचन, देह, गेह, संसार ॥ ५ ॥
सुनि प्रिय बचन चितै हित-कै, रघुनाथ कृपा-सुखसार।
'तुलसिदास' प्रभु हरे सबनि-के मन, तन रहि न सँभार ॥ ६ ॥ (२९)

विष्णु ही हैं" ॥४॥ इन्हें मार्गके लोग देखकर हाय-हाय किए जा रहे हैं और कहे जा रहे हैं कि इनका भाग्य ही ऐसा पलट गया है कि इन्हें वनवास हुआ है ॥ ५ ॥ जिन लोगोंकी आयु इनके लौटनेकी अवधि-रूपी जलमें मछली बनी हुई है (जैसे जलके रहने-तक मछली जीवित रहती है वैसे ही जो लोग इनके लौटनेकी अवधि-तक अपने प्राण रोके बैठे हैं) वे धन्य हैं। तुलसीदास कहते हैं, कि राममें जिनका सद्भाव-भरा प्रेम है, वे भी धन्य हैं ॥ ६ ॥ (२८)

'अरी सजनी ! ये तो कोई राजकुमार जान पड़ते हैं। ये दोनों ही शील और रूपके भांडार हैं। कोमल चरण-कमल होते हुए भी ये मार्गमें पैदल ही चले जा रहे हैं ॥ १ ॥ आगे-आगे कमलके समान नयनवाले कुमार साँवले हैं, जिनकी शोभाकी तुलना नहीं है (अवर्णनीय) है। उनके एक-एक अङ्गपर मैं अरबों कामदेव निछावर कर डाल सकती हूँ ॥२॥ सबसे पीछे किशोर अवस्थावाले गोरे कुँवर हैं। उनके नेत्र और मुख भी बड़े ही सुन्दर हैं। वे कमरमें तरकश कसे और हाथोंमें धनुष-बाण लिए ऐसे लग रहे हैं मानो पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही चले जा रहे हों ॥३॥ इन दोनों कुमारोंके बीच एक सुकुमारी नारी चली जा रही है जो बिना शृङ्गार किए भी बड़ी सुन्दर लग रही है। ये तीनों मिलकर ऐसे जान पड़ते हैं मानो पृथ्वीने इन्द्रमणि या नीलम (राम), सुवर्ण (लक्ष्मण) और मुक्तामणि (सीता)-का हार पहन लिया हो ॥ ४ ॥ इन्हें आकर तनिक भर-आँख देख तो ले, व्याकुल मत हो, तनिक सोच तो सही कि कहाँ यह शोभा फिर देखनेको मिल पावेगी, कहाँ हमारे ये नेत्र होंगे और कहाँ संसारमें यह शरीर और घर ही होगा ?' ॥५॥ उनके ये प्यारे वचन सुनकर कृपा और सुखके सार रामने उनकी ओर बड़े प्रेमसे दृष्टि घुमा दी। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा करके

१. अवधि-अंबु-आय =जिनकी आयु अवधि-रूपी जल ही तक है (जो १४ वर्षकी अवधि पूरी होने तकके लिये जी रहे हैं)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग टोड़ी

देखु री सखी ! पथिक नख-सिख नीके हैं ।
नीले-पीले कमल-से कोमल कलेवरनि, तापस हू बेष किये काम कोटि फीके हैं ॥ १ ॥
सुकृत, सनेह, सील, सुषमा, सुख सकेलि, बिरचे बिरंचि किधौं अमिय अमी-के हैं ।
रूप-की-सी दामिनी सुभामिनी सोहति संग, उमहु रमा-तें आछे अंग-अंग ती-के हैं ॥ २ ॥
बन-पट कसे, कटि तून, तीर-धनु धरे, धीर, बीर, पालक, कृपाल सबही-के हैं ।
पानही न, चरन-सरोजनि चलत मग, कानन पठाए पितु-मातु कैसे ही-के हैं ॥ ३ ॥
आली अवलोकि लेहु, नयननि-के फल एहु, लाभ-के सुलाभ, सुखजीवन-से जी-के हैं ।
धन्य नर-नारि, जे निहारि बिनु-ग्राहक-हू, आपने-आपने मन मोल-बिनु बीके हैं ॥ ४ ॥
बिबुध बरषि फूल, हरषि हिये कहत, ग्राम-लोग मगन सनेह सिय-पी-के हैं ।
जोगी-जन-अगम दरस पायो पाँवरनि, प्रमुदित मन सुनि सुरप-सची-के हैं ॥ ५ ॥
प्रीति-के सुबालक-से लालत सुजन मुनि, मग चारु चरित लखन-राम-सी-के हैं ।
जोग, न बिराग, जाग, तप, न तीरथ, त्याग, एही अनुराग भाग खुले 'तुलसी'-के हैं ॥६॥(३०)

रामने उन सबके चित्त चुरा धरे और कि उन्हें अपने शरीर-तककी भी सुधि नहीं रह गई ॥६॥ (२९)

'अरी सखी ! आकर देख तो सही, ये पथिक नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक कितने छबीले हैं । ये (राम और लक्ष्मण) अपने नीले और पीले कमलके समान कोमल शरीरोंपर तपस्वियोंका-सा वेष धारण किए रहनेपर भी करोड़ों कामदेवोंकी शोभा फीकी किए डाल रहे हैं ॥१॥ कहीं विधाताने पुण्य, स्नेह, शील, परम शोभा और सुखको तो एकत्र करके इन्हें नहीं गढ़ रचा है ? ये तो अमृत-के भी अमृत लगते हैं । इनके साथ बिजलीकेसे रूपवाली एक स्त्री भी शोभा दे रही है । उसका अङ्ग-अङ्ग उमा और रमाके अंगोंसे भी कहीं बढ़कर है ॥२॥ ये वनवासियोंकेसे वस्त्र पहने हुए हैं तथा कमरमें तरकश, और (हाथमें) धनुष-बाण लिए हुए हैं । ये बड़े ही धीर, वीर, कृपालु, सबका पालन करने-वाले लग रहे हैं । इनके पैरोंमें जूते-तक नहीं हैं । (वनके बीहड़) मार्गमें ये अपने कोमल चरण-कमलोंसे पैदल ही चले जा रहे हैं । इनके माता-पिता कैसे कठोर हृदयके हैं जिन्होंने इन्हें वनमें निकाल भेजा है ॥ ३ ॥ अरी सखी ! आकर भर-आँख इन्हें देख तो ले । यही तो नेत्रोंका फल है । ऐसा लगता है कि यह लाभका भी लाभ हो और चित्तको सुखमय जीवन मिल गया हो । वे स्त्री-पुरुष धन्य हैं जो इन्हें देखकर बिना मोल लिए ही इनके हाथ अपने आप बिक गए हैं" ॥ ४ ॥ देवता फूल बरसाकर हर्षित हो-होकर कह रहे हैं—'देखो, ये गाँवके लोग सीता-पति रामके प्रेममें कितने मग्न हुए जा रहे हैं । जिसका दर्शन मिलना योगियोंको भी कठिन है, उस प्रभुका दर्शन इन बेचारे पामरोंने यों ही पा लिया है ।' रामका वन-गमन सुनकर इन्द्र और शचीका चित्त भी परम आनन्दित हुआ जा रहा है (कि रावणके मारे जानेपर हम निश्चिन्त हो जायँगे) ॥ ५ ॥ मार्गमें राम, लक्ष्मण और सीताके जो परम पवित्र व्यवहार हैं, वे प्रेमके उन बालकोंके समान हैं जिनका लालन सदा सज्जन और मुनिजन (पिताके समान) किया करते हैं (सज्जन और मुनि उनके व्यवहारका आनन्द लेते रहते हैं) । योग, वैराग्य, यज्ञ, तप, तीर्थ और त्याग आदि न करनेपर भी केवल इसी अनुरागके कारण तो तुलसीदासके भी भाग्य खुल गए हैं (कि रामसे वह प्रेम करने लगा है)' ॥ ६ ॥ (३०)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रीति चलिबे-की चाहि, प्रीति पहिचानि-कै।
आपनी-आपनी कहैं, प्रेम-परबस अहैं, मंजु मृदु बचन सनेह-सुधा सानि-कै॥ १॥
साँवरे कुँवर-के बराइ-कै चरन-के चिन्ह, बधू पग धरति, कहा धौं जिय जानि-कै?
जुगुल कमल पद-अंक जोगवत जात गोरे गात कुँवर, महिमा महा मानि-कै॥ २॥
उनकी कहनि नीकी, रहनि लखन-सी-की, तिनकी गहनि, जे पथिक उर आनि-कै।
लोचन सजल, तन पुलक, मगन मन, होत भूरिभागी, जस 'तुलसी' बखानि-कै॥ ३॥ (३१)

राग केदारा

जेहि-जेहि मग सिय-राम-लखन गे, तहँ-तहँ नर-नारि बिनु छर छरिगे[1]।
निरखि निकाई-अधिकाई बिथकित भए बच, बिय-नैन-सर सोभा-सुधा भरिगे॥ १॥
जोते-बिनु, बए-बिनु, निफन[2] निराए-बिनु, सुकृत-सुखेत सुख-सालि फूलि फरिगे।
मुनिहु मनोरथ-को अगम अलभ्य लाभ, सुगम सो राम, लघु लोगनि-को करिगे॥ २॥
लालची कौड़ी-के कूर, पारस परे हैं पाले, जानत न को हैं, कहा कीबो सो बिसरिगे।
बुधि न बिचार, न बिगार, न सुधार, सुधि देह, गेह, नेह, नाते मन-से निसरिगे॥ ३॥

ग्रामके नर-नारी राम, लक्ष्मण और सीताके (पैदल वनमें) चलनेकी रीति देखकर और उनकी आपसकी प्रीति पहचानकर प्रेममें मग्न होकर स्नेहकी सुधामें डूबकर अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सुन्दर और मृदु वचन कहते चले जा रहे हैं—॥ १॥ 'देखो, यह बहू (सीता) न जाने क्यों साँवले कुँवरके चरण-चिह्नोंको बचाकर पाँव रखती चल रही है, और ये गोरे कुँवर (लक्ष्मण) भी मनमें (राम और सीताकी) अत्यन्त महिमा मानकर ही दोनोंके चरण-कमलोंके चिह्न बचाते हुए चल रहे हैं'॥ २॥ उन (ग्रामके लोगों)-का कहना भी ठीक है, सीता और लक्ष्मणका यह व्यवहार भी ठीक है तथा जो लोग उन पथिकों (राम, लक्ष्मण, सीता) को अपने हृदयमें धारण करके सजल नयन, पुलकित शरीर और मनमें मग्न हुए जा रहे हैं, उनका यह भाव भी अच्छा है। तुलसीदास भी उन (राम, लक्ष्मण, सीताके पारस्परिक व्यवहार)-के सुयशका वर्णन करके बड़भागी हो रहा है॥ ३॥ (३१)

राम, लक्ष्मण और सीता जिस-जिस मार्गसे होकर निकले, उधर-उधरके स्त्री-पुरुष बिना धोए ही धुलकर शुद्ध हो गए (पापसे मुक्त होकर शुद्ध हो गए)। उनकी अत्यधिक सुन्दरता देखकर उन लोगोंकी वाणी हार बैठी तथा उनके दोनों नेत्र-रूपी सरोवर शोभाके अमृतसे भर गए॥ १॥ उनके पुण्यके खेतमें सुखके धान बिना भली प्रकार जोते, बोए और निराए ही फूल-फल गए (पुण्य उदय हो गए)। मुनि भी जिस मनोरथकी कल्पना नहीं कर पा सकते वह रामने इन छोटे-छोटे लोगोंके लिये सुलभ कर दिया॥ २॥ जो बेचारे कौड़ियोंके लिये तरस रहे थे उन्हें (रामके दर्शनका) पारस हाथ आ लगा। वे तो यह-तक नहीं जानते कि ये कौन हैं और यह भी वे भूल गए कि इनकी क्या सेवा करनी चाहिए? उनकी न बुद्धि काम कर रही थी और न विचार ही काम कर रहा था और न यही सुधि रही कि क्या बिगड़-सुधर रहा है। उनके मनसे देह, घर और स्नेह (घरबार) के

१. बिनु छर छरिगे=चावलके समान बिना छाँटे ही छँटकर साफ हो गए। २. निफन=अच्छी तरह।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बरषि सुमन सुर, हरषि-हरषि कहैं, 'अनायास भव-निधि नीच नीके तरिगे'।
सो सनेह-समउ सुमिरि, तुलसीहू-के-से, भली भाँति, भले पैंत, भले पाँसे परिगे॥ ४ ॥(३२)

बोले राज देन-को, रजायसु भो कानन-को, आनन प्रसन्न, मन मोद, बड़ो काज भो।
मातु-पिता-बंधु-हित, आपनो परम हित, मोको बीसहूँ-के ईस अनुकूल आज भो॥ १ ॥
असन अजीरन-को समुझि तिलक तज्यौ, बिपिन-गवन भले भूखे-को सुनाज भो।
धरम-धुरीन, धीर, बीर रघुबीरजू-को, कोटि राज-सरिस भरतजू-को राज भो॥ २ ॥
ऐसी बातैं कहत सुनत मग-लोगन-की, चले जात बंधु दोउ मुनि-को-सो साज भो।
ध्याइबे-को, गाइबे-को, सेइबे-सुमिरिबे-को, 'तुलसी'-को सब भाँति सुखद समाज भो॥३॥(३३)

सिरिस-सुमन-सुकुमारि सुषमा-की सींवँ सीय, राम बड़े ही सकोच संग लई है।
भाई-के प्रान-समान, प्रिया-के प्रान-के प्रान, जानि बानि, प्रीति, रीति कृपासील-मई है॥ १ ॥

सारे नाते निकल मिटे ॥ ३ ॥ देवता फूल बरसाकर और प्रसन्न हो-होकर कहने लगे—'आहा! ये छोटे-मोटे लोग भी बिना प्रयास ही भली प्रकार संसार-सागर पार कर गए।' उस समयके उन लोगोंके स्नेहका स्मरण करके तुलसीदास-जैसोंके भी पासे ठीक पड़ गए (पौ बारह हो गए, भाग्य खुल गए) ॥ ४ ॥ (२३)

(मार्गमें आते-जाते लोग आपसमें कहते जा रहे हैं—) 'राजा (दशरथ)-को तो देखो कि उन्होंने कहा राज्य देनेको, परन्तु आज्ञा दे दी वन जानेकी। पर रामको देखो कि यह सुनकर भी उनका मुँह खिल उठा और मन प्रसन्न हो उठा। वे सोचने लगे—चलो यह बड़ा भारी काम बन गया। इसमें माता, पिता और भाईका हित तो है ही (कि माता कैकेयीकी इच्छा पूरी हो रही है, पिताके वचनकी रक्षा हो रही है और भरतको राज्य मिल रहा है) पर मेरा भी परम कल्याण है (कि मुनियोंसे भेंट होगी और दुष्ट राक्षसोंका संहार होगा)। आज ईश्वर मुझपर बीसों बिस्वा (पूर्ण रूपसे) प्रसन्न हैं ॥ १ ॥ रामने राज-तिलकको अनिष्टकारी समझकर ऐसे त्याग दिया जैसे अपच होनेपर भोजन त्याग दिया जाता है और वनगमनको हितकारी समझकर ऐसे स्वीकार कर लिया जैसे भूखेको भोजन प्रिय होता है। इस प्रकार धीर, वीर और धर्म-रक्षक भरतका राजतिलक उन्हें करोड़ों राज्याभिषेकोंके समान (सुखकर) लगा'—॥२॥ मार्गके लोगों-की ये बातें सुनते हुए, मुनियोंका-सा साज सजाए दोनों भाई (मार्गमें) चले जा रहे हैं। तुलसीदासको तो इस समाजका ध्यान करने, वर्णन करने, सेवन करने और स्मरण करनेमें ही बड़ा सुख मिल रहा है ॥ ३ ॥ (३३)

'जो कृपालु राम, अपने भाई लक्ष्मणके प्राणोंके समान हैं तथा प्रियतमा सीताके प्राणोंके भी प्राण हैं, उन्होंने सीताके स्वभाव और उनकी प्रीतिकी रीति जानकर ही बड़े संकोचसे सिरसके फूलके समान सुकुमारी तथा परम सुन्दरी सीताको अपने साथ ले लिया है ॥ १ ॥ कैकेयीने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आलबाल-अवध, सुकाम-तरु, काम-बेलि दूरि करि, केकइ बिपति बेलि बई है।
आप, पति, पूत, गुरु-जन, प्रिय परिजन, प्रजाहू-को कुटिल दुसह दसा दई है॥ २॥
पंकज-से पगनि पानह्यौं न, परुष पंथ, कैसे निबहे हैं, निबहैंगे गति नई है?
एही सोच-संकट-मगन मग नर-नारि, सबकी सुमति राम-राग-रंग-रई है॥ ३॥
एक कहैं बाम बिधि दाहिनो हम-को भयो, उत कीन्हीं पीठि, इतको सुडीठि भई है।
'तुलसी'-सहित बनबासी मुनि हमरियौ, अनायास अधिक अघाइ बनि गई है॥ ४॥(३४)

राग गौरी

नीके-कै मैं न बिलोकन पाए।
सखि! यह मग जुग पथिक मनोहर, बधु बिधु-बदनि-समेत सिधाए॥ १॥
नयन सरोज, किसोर बयस बर, सीस जटा रचि मुकुट बनाए।
कटि मुनि-बसन, तून, धनु-सर कर, स्यामल-गौर सुभाय सुहाए॥ २॥
सुंदर बदन, बिसाल बाहु-उर, तनु-छबि कोटि मनोज लजाए।
चितवत मोहिं लगी चौंधी-सी, जानौं न कौन कहाँ-तें धौं आए॥ ३॥

अयोध्याके थालेसे राम-जैसे कल्पवृक्ष और सीता-जैसी कल्पलता उखाड़ फेंककर उसमें विपत्तिकी बेल ला रोपी है। इस प्रकार उसने अपने लिये तथा पति, पुत्र, गुरुजन, प्रिय कुटुम्बी और प्रजाके लिये सब बड़ी कष्टदायक और भयंकर विपत्ति ला खड़ी की है॥ २॥ यह तो बड़ी नई बात दिखाई पड़ रही है कि वनके बीहड़ मार्गमें बिना जूतोंके ये अपने कमलके समान कोमल चरणोंसे न जाने कैसे अबतक इतनी दूरतक चलकर आए हैं और कैसे आगे चल पावेंगे?' मार्गके सभी नर-नारी इसी चिन्ता और दुविधामें पड़े झींक रहे हैं। उन सबकी बुद्धि भगवान् रामके प्रेमके रंगमें जा रँगी है॥ ३॥ एक बोल उठा—'इस खोटे विधाताने हमारे लिये तो अच्छा ही किया। इसने उधर (अयोध्यावालोंकी ओर भले ही) पीठ कर ली हो (मुँह फेर लिया हो) पर हमपर तो इसकी सुदृष्टि (कृपा) ही जान पड़ती है। तुलसीदासके साथ-साथ वनवासी मुनियोंकी और हमारी बात तो अनायास ही बड़ी अच्छी बन गई है (कि घर-बैठे इनके दर्शन मिल रहे हैं)'॥ ४॥ (३४)

'अरी सखी! इधरसे जो दो मनोहर पथिक एक चन्द्रमुखी स्त्रीके साथ गए हैं, उन्हें तो मैं भर-आँख देख भी न पाई॥ १॥ उनके नेत्र कमलके समान थे, उनकी सुन्दर किशोर अवस्था थी, सिरपर जटाओंसे रचकर मुकुट बनाया हुआ था, कमरमें मुनियोंकेसे वस्त्र और तरकश तथा हाथोंमें धनुष-बाण था। वे साँवले और गोरे कुमार स्वभावसे ही बड़े प्यारे लग रहे थे॥ २॥ उनका मुखड़ा बड़ा सलोना था, उनका वक्षःस्थल और उनकी भुजाएँ विशाल थीं तथा उनके शरीरकी झलक तो करोड़ों कामदेवोंको भी लज्जित किए डाल रही थी। उन्हें देखकर तो मेरी आँखें चौंधिया गईं। मैं यह भी न जान सकी कि वे कौन थे और कहाँसे चले आ रहे थे? ॥ ३॥ मेरा मन

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मन गयो संग, सोच-बस लोचन मोचत बारि, कितौ समुझाए।
'तुलसिदास' लालसा दरस-की सोइ पुरवै जिहि आनि देखाए ॥ ४ ॥ (३५)

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ।
स्यामल-गौर सहज सुन्दर, सखि ! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ ॥ १ ॥
कर-कमलनि सर, सुभग सरासन, कटि मुनि-बसन, निषंग सुहाए।
भुज प्रलंब, सब अंग मनोहर, धन्य सो जनक - जननि जेहि जाए ॥ २ ॥
सरद-बिमल-बिधु-बदन, जटा सिर, मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन।
'तुलसिदास' मन-मय मारग - में, राजत कोटि - मदन - मद-मोचन ॥ ३ ॥ (३६)

राग केदारा

आली ! काहू तौ बूझौ न, पथिक कहाँ धौं सिधइहैं ?
कहाँ-तें आए हैं, को हैं, कहा नाम स्याम-गोरे, काज-कै कुसल फिरि एही मग अइहैं ॥ १ ॥
उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि, सोभा - देखवैया बिनु बित्त ही बिकइहैं।
हिये हेरि हरि लेत, लोनी ललना - समेत, लोयननि लाहु देत जहाँ - जहाँ जइहैं ॥ २ ॥
राम - लखन - सिय - पंथि - की कथा प्रथुल, प्रेम बिथकीं कहति सुमुखि सबइ हैं।
'तुलसी' तिन्ह - सरिस तेऊ भूरि भाग, जेऊ सुनि - कै सुचित तेहि समै समइहैं ॥ ३ ॥

तो उन्हींके साथ लगा चला गया। अब नेत्र शोकके मारे आँसू बरसाए चले जा रहे हैं। मैंने अपने मनको बहुत समझाया, फिर भी यह उनके दर्शनोंके लिये तरसा पड़ रहा है।' तुलसीदास कहते हैं कि यह लालसा तो वही (विधाता) पूरी करेगा जिसने एक बार यहाँ लाकर उनकी झलक दिखा दी थी' ॥ ४ ॥ (३५)

'क्यों री सखी ! वे वीर बटोही क्या इस मार्गसे फिर नहीं लौटे जो सांवले और गोरे कुमार स्वभावसे ही सुन्दर थे ? क्या कभी वे एक बार फिर देखनेको मिल सकेंगे ? ॥ १ ॥ उनके कर-कमलोंमें सुन्दर धनुष और बाण थे तथा कमरमें मुनियोंके से वस्त्र और तरकश शोभा दे रहे थे। उनकी भुजाएँ बड़ी लम्बी-लम्बी तथा सब अंग मनोहर थे। उन्हें जन्म देनेवाले माता-पिता सचमुच धन्य हैं ॥ २ ॥ (तुलसीदास कहते हैं) कि उनका मुखड़ा शरत्के समान सुहावना था, सिरपर जटाएँ थीं और नेत्र लाल कमलके समान अति सुन्दर थे। वे करोड़ों कामदेवोंका मद मथ डालनेवाले राम हमारे मनके मार्गमें विचर रहे हैं (मनमें समाए हुए हैं)' ॥ ३ ॥ (३६)

'अरी सखी ! किसीसे पूछकर तो देख कि ये पथिक जानेवाले कहाँ है ? कहाँसे आए हैं ? कौन हैं ? इन सांवले और गोरे कुमारोंके नाम क्या हैं ? और क्या अपना काम पूरा करके ये फिर कुशलपूर्वक इधरसे ही होकर लौटेंगे ? ॥ १ ॥ इनकी उठती हुई जवानी है। मसें भीग चली हैं। ये देखनेमें इतने सुन्दर और सरल स्वभावके जान पड़ते हैं कि इनकी शोभा देखनेवाले लोग बिना मोल ही इनके हाथ बिके चले जा रहे हैं। ये जो सुन्दर स्त्रीके साथ चले जा रहे हैं ये तो देखते ही लोगोंके चित्त हरे लेते हैं। ये जिधर-जिधर जायँगे उधर-उधरके लोगोंको इसी प्रकार नेत्रोंका लाभ देते रहेंगे (दर्शन देकर उनके नेत्र सुफल करते रहेंगे)।' इस प्रकार सभी (ग्रामीण) सुन्दरियाँ प्रेममें विह्वल होकर बटोही राम, लक्ष्मण और सीताकी कथा विस्तारसे कहती चली जा रही हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही।
गए जो पथिक गोरे - साँवरे सलोने, सखि! संग नारि सुकुमारि रही॥ १॥
जानि - पहचानि - बिनु आप-तें, आपनेहु-तें, प्रानहु-तें प्यारे प्रियतम उपही।
सुधा के, सनेह-हू-के सार लै सँवारे बिधि, जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही॥ २॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुँक, कहत तन पुलक, नयन जलधार बही।
'तुलसी' प्रभु सुमिरि ग्राम-जुवती सिथिल, बिनु प्रयास परीं प्रेम सही॥३॥(३८)

राग भैरव

आली री! पथिक जे ऐहि पथ परौं सिधाए। ते तौ राम लखन अवध-तें आए॥ १॥
संग सिय, सब अंग सजत सुहाए। रति, काम, रितुपति कोटिक लजाए॥ २॥
राजा दसरथ, रानी कौसिला जाए। कैकेयी कुचालि करि, कानन पठाए॥ ३॥
बचन कुभागिनि - के भूपहिं क्यों भाए? हाय हाय! राय बाम बिधि भरमाए॥ ४॥
कुल - गुरु, सचिव, काहू न समुझाए। काँच-मनि लै, अमोल मानिक गँवाए॥ ५॥
भाग मग-लोगहि-के देखन जे पाए। तुलसी-सहित जिन गुन-गन गाए॥६॥ (३९)

तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग प्रेमपूर्वक वे कथाएँ सुनकर उन्हींमें रम जायँगे वे भी उन्हीं ग्राम नारियोंकी भाँति बड़े भाग्यवान् हैं॥ ३॥ (३७)

(एक ग्रामीण स्त्री दूसरीसे पूछती है—) 'क्यों री सखी! इतने दिन बीत गए, पर जो साँवले-गोरे पथिक इधरसे गए थे और जिनके साथ एक सुकुमारी स्त्री भी थी उनकी अभी-तक कुछ भी सुधि नहीं मिल पाई॥ १॥ जान-पहिचान न होनेपर भी वे परदेसी अपनेसे, अपने प्रियजनोंसे तथा अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारे लगते थे। जान पड़ता है विधाताने अमृत और स्नेहका सार लेकर उन्हें रचा है। वे कितने प्यारे लगते थे यह मैं कह नहीं पा सक रही हूँ॥२॥ क्या वे पथिक फिर कभी हमें दिखाई दे सकेंगे?' ऐसा कहते-कहते उनके शरीर पुलकित हो जाते हैं और नेत्रोंसे टप-टप आँसू गिरने लगते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु रामका स्मरण करके ग्रामकी स्त्रियाँ सुधबुध भूलकर बिना परिश्रम ही प्रेममें सिद्ध हो गईं॥ ३॥ (३८)

(दूसरी स्त्री उत्तर देती है—) 'अरी सखी! जो बटोही परसों इस मार्गसे गए थे, वे तो अयोध्यासे आए थे और उनका नाम राम और लक्ष्मण था॥ १॥ उनके साथ (जो स्त्री थीं) वे जानकी थीं। उन सबके अंग-अंग बड़े सुन्दर थे। वे करोड़ों रति, कामदेव और ऋतुराज वसंतको भी लज्जित किए डाल रहे थे॥ २॥ वे (साँवले राम) तो राजा दशरथ और रानी कौशल्याके पुत्र हैं। रानी कैकेयीने कुचाल चलकर उन्हें वनमें ठेल भिजवाया है॥ ३॥ (भला बताओ तो कि) उस दुष्टा स्त्रीकी बात राजाने मान क्यों ली? हाय! हाय! जान पड़ता है खोटे विधाताने राजाकी बुद्धि ही हर ली॥ ४॥ (देखो तो कि) कुलगुरु या मंत्रियोंमेंसे भी किसीने उन्हें नहीं समझाया। उन्होंने काँचकी गुरिएँ लेकर अनमोल रत्न उठा फेंके (कैकेयीकी बात मान ली और इन्हें वन भेज दिया)॥ ५॥ मार्गके लोग बड़े भाग्यवान् हैं जिन्होंने उन्हें देखा है और तुलसीदासके साथ-साथ वे सब भी भाग्यवान् हैं जिन्होंने सचमुच उनके गुणोंका कीर्तन किया है॥ ६॥ (३९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सखि ! जबतें सीता-समेत देखे दोउ भाई। तब-तें परै न कल, कछु न सुहाई ॥ १ ॥
नख - सिख नीके, नीके निरखि निकाई। तन सुधि गई, मन अनत न जाई ॥ २ ॥
हेरनि, हँसनि, हिय लिये हौं चुराई। पावन - प्रेम - बिबस भई हौं पराई ॥ ३ ॥
कैसे पितु - मातु, प्रिय, परिजन, भाई। जीवत, जीव- के जीवन बनहिं पठाई ॥ ४ ॥
समउ सो चित करि, हित - अधिकाई। प्रीति ग्रामबधुन-की तुलसिहु गाई ॥४॥ (४०)

राग केदारा

जब-तें सिधारे यहि मारग लखन - राम, जानकी - सहित तब-तें न सुधि लही है।
अवध गए धौं फिरि, कैधौं चढ़े बिंध्य-गिरि, कैधौं कहुँ रहे सो कछू न काहू कही है ॥ १ ॥
एक कहै चित्रकूट निकट नदी-के तीर, परन - कुटीर करि बसे, बात सही है।
सुनियत, भरत मनाइबे-को आवत हैं, होयगी पै सोई जो बिधाता चित चही है ॥ २ ॥
सत्य-संध धरम-धुरीन रघुनाथजू - को आपनी निबाहिबे, नृप-की निरबही है।
दस-चारि बरिस बिहार बन पदचार, करिबे पुनीत सैल - सर - सरि - मही है ॥ ३ ॥
मुनि, सुर, सुजन-समाज-के सुधारि काज, बिगरि-बिगरि जहाँ-जहाँ जाकी रही है।
पुर पाउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी-हू-से जन, जिन जानि-कै गरीबी गाढ़ी गही है ॥ ४ ॥ (४१)

(एक ग्राम-वधू कहती है—) 'अरी सखी ! जबसे मैंने सीताके साथ उन दोनों भाइयोंको इधरसे जाते देखा है, तबसे न तो मुझे चैन ही पड़ती, न कुछ सुहाता ही है ॥ १ ॥ वे नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक इतने सुन्दर थे कि उनकी सुन्दरता भली प्रकार देखकर मैं अपने शरीरकी सारी सुधि ऐसी खो बैठी हूँ कि अब मेरा मन किसी दूसरी ओर जाकर ही नहीं देता ॥ २ ॥ उनकी चितवन और हँसी तो मेरा चित्त ही चुरा बैठी है। मैं तो उनके प्रेममें पड़कर बिरानी (पराई) होकर उन्हींकी हुई जा रही हूँ ॥ ३ ॥ वे माता, पिता, परिवारके लोग और भाई-बन्धु न जाने कैसे हैं, जो सब जीवोंको जीवन देनेवाले रामको वनमें भेजकर भी अभीतक जीए चले जा रहे हैं।' ॥ ४ ॥ ग्रामबधुओंकी जिस प्रीतिका तुलसीदासने अभी वर्णन किया है उस प्रीतिके दृश्यकी कल्पना करनेसे भी (रामके चरणोंमें) प्रेम बढ़ता है ॥ ५ ॥ (४०)

(एक ग्रामीण स्त्री कह रही है—) 'जबसे जानकीके साथ राम और लक्ष्मण इधरसे होकर गए हैं तबसे उनकी कोई सुधि नहीं मिली। कोई भी बता नहीं पा रहा है कि वे अयोध्या लौट गए या विंध्य पर्वतपर जा चढ़े या कहीं और जा ठहरे ॥ १ ॥ कोई कहता है कि मैं ठीक बताए दे रहा हूँ कि वे चित्रकूट के पास पयोष्णीके तटपर पर्णकुटी बनाकर जा बसे हैं। सुना जाता है कि भरत उन्हें मनानेके लिये चले आ रहे हैं, पर होगा तो वही जो विधाता निश्चय किए बैठा है ॥ २ ॥ महाराज दशरथने तो अपना प्रण निभा दिया (वचनकी रक्षाके लिये रामको वनवास दे दिया और रामके प्रेमके कारण उनके वियोगमें प्राण दे दिए)। अब तो धर्मके रक्षक, सत्य संकल्पवाले राम भी अपनी प्रतिज्ञा निभावेंगे ही और वे चौदह वर्षोंतक वनोंमें पैदल विचरण करते हुए वनके पर्वत, सरोवर, नदी और भूमि पवित्र किए चलेंगे ॥ ३ ॥ जहाँ-जहाँ, जिन-जिनको कष्ट हुआ है, उन सभी मुनि, देवता और साधुजनोंके सारे कष्ट दूर करके ही वे अपनी राजधानी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग सारंग

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
स्याम-गौर, धनु - बान - तूनधर, चित्रकूट अब आइ रहे, री ॥ १ ॥
इनहिं बहुत आदरत महामुनि, समाचार मेरे नाह कहे, री।
बनिता बंधु - समेत बसे बन, पितु-हित कठिन कलेस सहे, री ॥ २ ॥
बचन परसपर कहति किरातिनि, पुलक गात, जल नयन बहे, री।
'तुलसी' प्रभुहिं बिलोकत ऐकटक, लोचन जनु बिन-पलक लहे, री ॥ ३ ॥ (४२)

राग चंचरी [चित्रकूट-वर्णन]

चित्रकूट अति बिचित्र, सुंदर बन, महि पवित्र, पावनि पय सरित सकल मल-निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक लोचनाभिराम, बाम अंग बामा बर बिस्ववंदिनी ॥ १ ॥
रिषिवर तहँ छन्द-बास, गावत कलकंठ हास, कीर्तन उनमाय काय, क्रोध-कंदिनी।
बर बिधान करत गान, वारत धन-मान-प्रान, झरना झर झिंग झिंग झिंग जल-तरंगिनी[1] ॥२॥
बर बिहार चरन चार, पाँडर, चंपक, चनार, करनहार वार - पार पुर - पुरंगिनी।
जोबन नव ढरत ढाल, दुत्त मत्त मृग मराल, मंद-मंद गुंजत हैं अलि - अलिगिनी[1] ॥३॥

लौटेंगे और तुलसीदास-जैसे सेवकोंका भी उद्धार करेंगे, जो जानबूझकर दृढतासे दीनता पकड़े बैठे हैं (दीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं)' ॥ ४ ॥ (४१)

(एक किरातकी स्त्री बताने लगी—) 'अरी सखी ! ये धनुष, बाण और तरकश लिए हुए साँवले और गोरे कुमार कोई परदेसी अहेरी राजकुमार जान पड़ते हैं जो इस समय चित्रकूटमें आकर डेरा डाले हुए हैं ॥ १ ॥ मेरे पतिने आकर बताया है कि बड़े-बड़े मुनीश्वरतक उनका बहुत आदर करते हैं। इस समय वे अपनी स्त्री और भाईके साथ यहाँ वनमें आ बसे हैं। इन्होंने अपने पिताका वचन पालनेके कारण बड़े-बड़े कष्ट झेले हैं" ॥ २ ॥ इस प्रकार किरातिनियाँ आपसमें बातचीत किए जा रही हैं, उनके अंग पुलकित हुए पड़ रहे हैं और नेत्रोंसे झरझर आँसू बहे चले जा रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सबको देखकर उनके नेत्र तो ऐसे हो गए हैं जैसे उनकी आँखोंपर पलकें ही न हों (वे रामको एकटक निहारे चली जा रही हैं) ॥ ३ ॥ (४२)

चित्रकूट बड़ा ही विचित्र पर्वत है। वहाँका वन बड़ा सुंदर और वहाँकी भूमि अत्यंत पवित्र है। वहीं संपूर्ण मल नाश कर डालनेवाली परम पावन पयस्विनी (पयोष्णी) नदी बहती है। वहीं समस्त लोकोंके नेत्रोंको प्यारे लगनेवाले राम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ आ बसे हैं। उनकी बाईं ओर विश्ववंदिता रमणी-रत्न जानकी विराज रही हैं ॥ १ ॥ अनेक श्रेष्ठ मुनि वहाँ स्वच्छन्द निवास कर रहे हैं। वे क्रोध छोड़कर (प्रसन्न होकर) सुरीले गलेसे प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌के कीर्त्तनकी रचना करके गाते हैं और प्रभुपर धन, मान और प्राण सब निछावर किए डालते हैं। वहाँकी नदियाँ झरझर करती हुई जलके झरने झरे चली जा रही हैं ॥२॥ उन ग्रामोंकी स्त्रियाँ पाँडर (कुंद), चम्पा और कचनार आदिकी झाड़ियोंके तले बैठी हुई जंगलोंमें नंगे पैर चलनेवाले रामपर अपनेको निछावर किए डाल रही हैं। (रामके आ जानेपर) वहाँ चित्रकूटके (वनका) यौवन नये साँचेमें ढल चला है। मस्त होकर मृग और हंस इधर-उधर कुलाँचें

---

१. पद ॥ २ ॥ और ॥ ३ ॥ भागवतदासकी प्रतिमें नहीं हैं, अन्य कुछ प्रतियोंमें हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर - ठौर, अच्छय अकलंक सरद - चंद - चंदिनी।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत 'तुलसिदास', जय जय रघुनंदन, जय जनकनंदिनी॥४॥४३

फटिक सिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु तमाल, ललित-लता-जाल हरति छबि बितान-की।
मंदाकिनि तटिनि, तीर, मंजुल मृग-बिहँग भीर, धोर मुनि-गिरा गभीर सामगान-की॥ १॥
मधुकर, पिक-बरहि मुखर, सुंदर गिरि-निर्झरे-झर, जल-कन घन-छाँह, छन प्रभा न भान-की।
सब रितु रितुपति-प्रभाउ, संतत बह त्रिबिध बाउ, जनु बिहार-बाटिका नृप पंचबान-की॥२॥
बिरचित तहँ पर्नसाल, अति बिचित्र लखन लाल, निवसत जहँ नित कृपाल राम-जानकी।
निज कर राजीव - नयन, पल्लव-दल रचित सयन, प्यास परसपर पियूष प्रेम-पान-की॥३॥
सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग, तिलक करनि का कहौं कलानिधान-की।
माधुरी बिलास-हास, गावत जस 'तुलसिदास', बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान-की॥१॥ ४४

भर रहे हैं। भौंरे-भौंरी मंद-मंद गुञ्जार कर रहे हैं॥ ३॥ अपने-अपने स्थानोंपर बैठे हुए मुनिजन-रूपी चकोर आकाशरूपी वनमें उदित अक्षय और अकलंक चन्द्र (राम) और चन्द्रिका (सीता)-को निहारे जा रहे हैं। तुलसीदास भी प्रसन्न चित्तसे चिल्ला उठते हैं—'रघुनाथ राम और जनकनन्दिनी सीताकी जय हो, जय हो'॥ ४॥ (४३)

(प्रभुको सुख देनेके लिये) स्फटिकशिला भी बड़ी कोमल हो गई है। कल्पवृक्षके समान वहाँके ऊँचे-ऊँचे तमालके वृक्ष तथा मनोहर लताएँ बड़े-बड़े चँदोवोंकी छवि छीने ले रही हैं। मंदाकिनीके तटपर सुन्दर मृगों और पक्षियोंकी भीड़ जुटी रहती है तथा धीर मुनियोंके साम-गानका गम्भीर शब्द सुनाई देता रहता है॥ १॥ भौंरे, कोकिल और मोर निरन्तर कलरव करते रहते हैं। पर्वतसे सुन्दर झरने झरते रहते हैं। छाए हुए पनियल बादल सदा छाँह किए रहते हैं, क्षण-भरके लिये भी धूपकी चिलक कहीं दिखाई नहीं पड़ती। सभी ऋतुओंमें वसंत ही वसंत छाया रहता है और निरन्तर त्रिविध (शीतल, मंद सुगंध) समीर बहता रहता है। ऐसा जान पड़ता है कि यह वन महाराज ऋतुराजकी विहार-वाटिका ही हो॥ २॥ लखन लालने वहाँ विचित्र पर्णकुटी बना खड़ी की है जिसमें कृपालु राम और जानकी नित्य निवास किया करते हैं। कमल-नयन रामने अपने ही हाथों नये पत्तोंकी शय्या रच बिछाई है। प्रिया (सीता) और प्रियतम (राम) दोनोंको ही परस्पर प्रेम-रस पानकी प्यास बनी ही रहती है॥ ३॥ सीताके अंगोंपर राम धातुओंके रंग (हिंगुल, गेरू, हरताल आदि)-से सुन्दर रचना (चित्रकारी) कर देते हैं और अनेक फूलोंके आभूषण बना पहनाते हैं। कलानिधान रामकी तिलक-रचनाका मैं वर्णन करूँ भी तो कैसे करूँ ? तुलसीदासके हृदयमें यह (राम और जानकीकी) परम प्राण-प्रिय जोड़ी सर्वदा ऐसे निवास करती है कि वह उनके मधुर हास-विलास और सुयशका गान निरन्तर करता ही रहता है॥ ४॥ (४४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग केदारा

लोने लाल लखन, सलोने राम, लोनी सिय, चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु-तर हैं।
गोरे - साँवरे सरीर पीत - नील नीरज-से, प्रेमरूप सुषमा-के मनसिज-सर हैं ॥ १ ॥
लोने नख - सिख, निरुपम निरखन जोग, बड़े उर-कंधर, बिसाल भुज-बर हैं।
लोने - लोने लोचन, जटनि - के मुकुट लोने, लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने - लोने धनुष - बिसिख - कर - कमलनि, लोने मुनिपट, कटि लोने सर - धर हैं।
प्रिया - प्रिय बंधु-को दिखावत बिटप, बेलि, मंजु कंज, सिलातल, दल, फूल, फर हैं ॥ ३ ॥
रिषिन - के आस्रम सराहैं, मृग-नाम कहैं, लागि मधु, सरित, झरत निरझर हैं।
नाचत बरहि नीक, गावत मधुप पिक, बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर हैं ॥ ४ ॥
प्रभुहिं बिलोकि मुनिगन पुलके कहत, भूरि भाग भये सब नीच नारि-नर हैं।
'तुलसी' सो सुख-लाहु लूटत किरात-कोल, जाको सिसकत सुर-बिधि-हरि-हर हैं ॥५॥(४५)

राग सारंग

आइ रहे जब-तें दोउ भाई।
तब-तें चित्रकूट-कानन-छबि, दिन-दिन अधिक-अधिक अधिकाई ॥ १ ॥
सीता-राम-लखन-पद-अंकित अवनि सुहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत, अवलोकत, त्रिबिध पाप, त्रय ताप नसाई ॥ २ ॥

लखन लाल (लक्ष्मण) और राम दोनों बड़े ही सुन्दर हैं और सीता भी परम सुन्दरी हैं। ये सब अत्यन्त मनोहर चित्रकूट पर्वतपर कल्पवृक्षके तले बैठे हुए हैं। इन (लक्ष्मण और राम)-के शरीर पीले और नीले कमलके समान गोरे और साँवले हैं, जो ऐसे लगते हैं मानो उस चित्रकूटरूपी काम-सरोवरमें प्रेम और शोभा-रूपी दो कमल ही खिल निकले हों ॥१॥ ये नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक सुन्दर, अनुपम और दर्शनीय हैं। इनके वक्षःस्थल, कंधे और भुजाएँ विशाल और अत्यन्त सुन्दर हैं तथा इनके नेत्र और जटा-मुकुट भी बड़े ही मनोहर हैं। इनके मनोहर मुखड़ेने करोड़ों चन्द्रमाओंको जीत धरा है ॥२॥ ये अपने कर-कमलोंमें सुन्दर-सुन्दर धनुष-बाण लिए तथा कटिमें सुन्दर मुनि-वस्त्र और तरकश कसे हुए हैं। राम अपनी प्राणप्रिया सीता और प्यारे भाई लक्ष्मणको अनेक प्रकारके वृक्ष, लता, मनोहर कुंज, शिला-तल, पत्र, पुष्प और फलोंका परिचय देते जा रहे हैं। सब ओर मधुके छत्ते, (मीठे जलवाली) नदी और झरने झरते चले जा रहे हैं। मोर बड़ा सुन्दर नृत्य कर रहे हैं, भौंरे और कोकिल गाना गा रहे हैं तथा अन्य पक्षी और जल, स्थल, आकाशमें विहार करनेवाले प्राणी मीठी-मीठी बोलियाँ बोल रहे हैं ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामको देखकर मुनीश्वर लोग पुलकित हो-होकर कह रहे हैं—'देखो ! ये सब छोटी जातिके स्त्री-पुरुष आज कैसे भाग्यशाली बन गए हैं। जिस सुखके लिये देवता, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी तरसते रह जाते हैं, वह सुख और लाभ आज कोल और किरात-तक लूटे ले रहे हैं' ॥४॥ (४५)

जबसे दोनों भाई यहाँ आकर बसे हैं, तबसे चित्रकूटकी शोभा दिनोंदिन बढ़ती ही चली जा रही है ॥ १ ॥ राम, जानकी और लक्ष्मणके पद-चिह्नोंसे अंकित यह (चित्रकूटकी) भूमि ऐसी सुहावनी है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मंदाकिनीमें स्नान या उसका दर्शन करते ही

सरधर = शर + धर = तरकश, तूणीर त्रोण, निषंग।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उकठेउ हरित भए जल - थल - रुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत, फलत, पल्लवत, पलुहत, बिटप - बेलि अभिमत - सुखदाई॥ ३॥
सरित - सरनि सरसीरुह - संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई॥ ४॥
त्रिबिध समीर, नीर झर झरननि, जहँ - तहँ रहे रिषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि-पर तापस, करत जोग, जप, तप, मन लाई॥ ५॥
भे सब साधु किरात - किरातिनि, राम - दरस, मिटि गइ कलुषाई।
खग-मृग मुदित, एक सँग बिहरत, सहज बिषम बड़ बैर बिहाई॥ ६॥
काम-केलि - बाटिका, बिबुध-बन, लघु उपमा, कबि कहत लजाई।
सकल भुवन सोभा सकेलि मनो, राम - बिपिन, बिधि आनि बसाई॥ ७॥
बन-मिस मुनि, मुनि - तिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई।
पुलक-सिथिल तन, सजल सुलोचन, प्रमुदित मन, जीवन-फल पाई॥ ८॥
क्यों कहौं चित्रकूट - गिरि - संपति, महिमा, मोद, मनोहरताई।
'तुलसी' जहँ बसि लखन - राम - सिय, आनँद-अवधि अवध बिसराई॥९॥(४६)

तीनों प्रकारके (शरीरके, मनके और कर्मोंके) पाप और (दैहिक, दैविक, भौतिक) ताप नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥ जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले जो पौधे सूख चले थे, वे फिर हरे हो उठे हैं। कमल भी नित्य नवीन शोभा धारण किए चले जा रहे हैं। सब प्रकारकी इच्छा पूरी करनेवाले, सुख देनेवाले वृक्ष और लता सभी फूल, फल और घने पत्तोंसे लद चले हैं ॥ ३ ॥ नदी और तालाबोंमें कमल खिले हुए हैं मानो लक्ष्मी वहाँ अपना घर बनाकर आकर निवास करने लगी हो । पक्षी कूजते जा रहे हैं, भौंरे गूँजते जा रहे हैं, मानो वे उधरसे जानेवाले पथिकोंको पुकार-पुकारकर अपने पास बुला रहे हों ॥ ४ ॥ शीतल, मंद, सुगंध पवन बह रहा है। झरनोंसे जल झर रहा है। ऋषि लोग जहाँ-तहाँ कुटियाँ बनाकर रहने लगे हैं तथा तपस्वी लोग दत्तचित्त होकर सुन्दर और शीतल शिलाओंपर जप, तप तथा योग साध रहे हैं ॥ ५ ॥ वहाँके सभी किरात और किरातिनियाँ साधु हो गई हैं। रामके दर्शनसे उनके सारे पाप धुल मिटे हैं। पशु और पक्षी प्रसन्न मनसे अपने स्वाभाविक वैर भूलकर एक संग विहार कर रहे हैं ॥ ६ ॥ उस वनकी उपमा कामदेवके क्षुद्र क्रीडा-उद्यान अथवा नन्दन वनसे देनेमें भी कविको बड़ी लज्जा लग रही है मानो विधाताने सारे भुवनोंकी शोभा एकत्र करके रामके इस (चित्रकूट) वनमें ही ला बसाई हो ॥ ७ ॥ उस वनके बहानेसे मुनि लोग, मुनियोंकी पत्नियाँ और मुनियोंके बालक रामके विमल सुयशका वर्णन करने लगते हैं और अपने जीवनका फल पाकर पुलकित, प्रेम-विह्वल, सजल नेत्र और प्रसन्न हो- हो उठते हैं ॥ ८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जहाँ परम आनन्द-रूप राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या छोड़कर आ बसे हों उस चित्रकूट पर्वतकी हरियाली, महिमा, प्रसन्नता और मनोहरताका वर्णन भला मैं कैसे कर पा सकता हूँ ॥ ९ ॥ (४६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग गौरी

देखत चित्रकूट-बन, मन अति होत हुलास। सीता-राम-लखन-प्रिय, तापस-बृंद-निवास॥१॥
सरित सुहावनि पावनि, पापहरनि पय नाम। सिद्ध-साधु-सुर-सेवित, देति सकल मन-काम॥२॥
बिटप, बेलि, नव किसलय, कुसुमित सघन सुजाति। कंद-मूल, जल-थल रुह अगनित अनबन भाँति
बंजुल मंजु, बकुल-कुल, सुरतरु, ताल, तमाल। कदलि, कदंब, सुचंपक, पाटल पनस रसाल।४।
भूरुह भूरि भरे जनु छबि, अनुराग, सुभाग। बन बिलोकि लघु लागहिं, बिपुल बिबुध-बन-बाग ५।
जाइ न बरनि राम-बन चितवत चित हरि लेत। ललित-लता-द्रुम-संकुल, मनहु मनोज-निकेत।६।
सरित-सरनि सरसीरुह फूले नाना रंग। गुंजत मंजु मधुप-गन कूजत बिबिध बिहंग॥७॥
लखन कहेउ, रघुनंदन! देखिय बिपिन-समाज। मानहु चयन मयन-पुर, आयल प्रिय रितुराज।८॥
चित्रकूट-पर राउर जानि अधिक अनुराग। सखा-सहित जनु रतिपति, आयउ खेलन फाग॥९॥
झिल्लि झाँझ, झरना डफ, पनव मिरदंग, निसान। भेरि उपंग, भृंग-रव ताल, कीर कल गान १०
हंस, कपोत, कबूतर, बोलत चक्क, चकोर। गावत मनहुँ नारि-नर मुदित नगर चहुँ ओर॥११॥
चित्र-बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोगर डाँग। जनु पुर-बीथिन बिहरत, छैल सँवारे स्वाँग॥१२॥

राम, जानकी और लक्ष्मणको जो अत्यन्त प्रिय है और जहाँ तपस्वी आकर रहने लगे हैं, उस चित्रकूटको देखकर मन प्रसन्न हो उठता है॥ १॥ वहाँ बहनेवाली जिस सुहावनी और पवित्र नदीमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट हो मिटते हैं उसका नाम पयोष्णी है। सिद्ध, साधु और देवता उसकी सेवा करते (उसमें नहाते, उसका जल पीते) रहते हैं और वह सारी मनोकामनाएँ पूर्ण कर डालती है॥ २॥ वहाँ बड़े घने और अच्छी जातिके (बड़े विशाल) वृक्ष तथा लताएँ नवीन पत्तों और फूलोंसे लदी हुई हैं तथा अनेक प्रकारके अगणित जल और स्थलके पौधे और कंद-मूल उगे हुए हैं॥ ३॥ मनोहर बेंत, मौलसिरी, कल्पवृक्ष, ताल, तमाल, केले, कदम्ब, चम्पा, पाटल, कटहल और आमके वृक्ष मानो छवि, अनुराग और सौभाग्यसे लबालब भरे हुए हों। उस वनको देख लेनेपर देवताओंके बहुतसे सब वन और उद्यान तुच्छ जान पड़ने लगते हैं॥ ४–५॥ रामके इस (चित्रकूटके) वनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह देखते ही ऐसा चित्त चुरा बैठता है मानो सुन्दर लताओं और वृक्षोंसे पूर्ण कामदेवकी कोठी ही हो॥ ६॥ वहाँकी नदी और तालाबोंमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं, जिनपर मनोहर भौंरे गूँज रहे हैं तथा अनेक प्रकारके पक्षी बैठे चहक रहे हैं॥ ७॥ रामसे लक्ष्मण कहने लगे—'भाई राम! तनिक इस वनका ठाट-बाट तो देखिए। ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवके नगरमें उसका प्यारा मित्र वसंत आनन्द मनाने आ गया हो॥ ८॥ या चित्रकूटपर आपका अधिक प्रेम देखकर मानो सखा (वसन्त) के साथ कामदेव ही फाग खेलने आ पहुँचा हो॥ ९॥ यहाँ जो भीगुँरकी झनकार सुनाई दे रही है वही झाँझ है, झरने ही डफ, नये मृदंग और नगाड़ेके समान हैं। भौंरोंकी गूँज ही भेरी और उपंग (नसतरंग) है तथा सुग्गोंका कलरव ही सुन्दर गाने हैं॥ १०॥ हंस, पंडुक, कबूतर, चकवा और चकोर आदि पक्षी जो बोल रहे हैं, वे ही इस कानन-नगरमें मानो प्रसन्न होकर चारों ओर नर-नारी गा रहे हैं॥ ११॥ इस वनकी ऊँची भूमिमें जो चित्र-विचित्र मृग कुलाँचे भर रहे हैं, वे ही मानो उस नगरकी गलियोंमें अनेकों छैले स्वाँग बनाए विचर रहे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर, बर राग बँधान। निलज तरुन-तरुनी जनु खेलहिं समय-समान १३
भरि-भरि सुंड करिनि-करि जहँ-तहँ डारहिं बारि। भरत परसपर पिचकनि मनहु मुदित नर नारि १४
पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिं डार। जनु मुँह लाइ गेरु-मसि भए खरनि असवार १५
लिए पराग सुमन-रस डोलत मलय समीर। मनहु अरगजा छिरकत, भरत गुलाल अबीर १६
काम कौतुकी यहि बिधि प्रभु-हित कौतुक कीन्ह। रीझि राम रतिनाथहिं जग-बिजयी बर दीन्ह १७
दुखवहु मोरे दास जनि, मानेहु मोरि रजाइ। 'भलेहि नाथ' माथे धरि आयसु चलेउ बजाइ १८
मुदित किरात-किरातिनि रघुबर-रूप निहारि। प्रभु-गुन गावत, नाचत, चले जोहारि-जोहारि १९
देहिं असीस प्रसंसहि मुनि, सुर बरषहिं फूल। गवने भवन राखि उर मूरति मंगल-मूल २०
चित्रकूट कानन-छबि को कबि बरनै पार। जहँ सिय-लखन-सहित नित रघुबर करहिं बिहार २१
'तुलसिदास' चाँचरि मिस कहे राम गुन-ग्राम। गावहिं, सुनहिं, नारि-नर, पावहिं सब अभिराम २२

राग बसंत (४७)

आज बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर। मनो खेलत फाग मुद मदन बीर ॥ १ ॥
बट, बकुल, कदंब, पनस, रसाल। कुसुमित तरु - निकर, कुरव, तमाल।

हों ॥ १२ ॥ मोर नाचे जा रहे हैं, कोयले सुरीले राँगोंमें गाए जा रही हैं मानो निर्लज्ज युवक और युवतियाँ समयानुसार खेल रहे हों ॥ १३ ॥ हथिनियाँ और हाथी अपनी सूड़ोंमें पानी भर-भरकर जहाँ-तहाँ उँडेले जा रहे हैं मानो पुरुष और स्त्री प्रसन्न होकर एक दूसरेपर पिचकारियाँ चला रहे हों ॥ १४ ॥ बंदर अपनी पीठपर अपने बच्चोंको लाद-लादकर एक डालीसे दूसरी डालीपर ऐसे कूदते हैं मानो (स्वाँग रचनेवाले) अपने मुखोंपर गेरू या स्याही लगाकर गधोंपर चढ़ चले हों ॥ १५ ॥ सुगंधित पवन भी पराग और फूलोंके रस लेकर ऐसे विचर रहा है मानो वह चारों ओर अरगजा (चंदन, केसर, कपूरका घोल) छिड़के दे रहा हो अथवा सबके मुँहपर गुलाल या अबीर मले डाल रहा हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार रामको प्रसन्न करनेके लिये कौतुकी कामदेव मानो खेल कर रहा हो और रामने प्रसन्न होकर उसे विश्व-विजयी होनेका वर दे दिया हो ॥ १७ ॥ (और उसे समझा दिया हो कि—) 'देखो ! मेरे भक्तको मत छेड़ना और सदा मेरी इस आज्ञाका पालन करना।' और तब कामदेव भी—'प्रभो ! बहुत अच्छा,' कहकर वहाँसे चला गया हो ॥ १८ ॥ किरात और किरातिनियाँ भी रामका रूप देखकर बहुत प्रसन्न हो उठी हैं और उनके गुण गाकर, नाचकर और जुहार करके वहाँसे चली जा रही हैं ॥ १९ ॥ वहाँके मुनि भी रामको आशीर्वाद देकर और उनकी प्रशंसा करके तथा देवता लोग फूलोंकी वर्षा करके और हृदयमें रामकी मंगलमयी मूर्ति धारण करके अपने घर लौट गए ॥ २० ॥ जहाँ लक्ष्मण और सीताके साथ राम नित्य विहार करते हैं, उस चित्रकूटके वनकी छविका वर्णन भला कौन कवि कर सकता है ? ॥ २१ ॥ तुलसीदासने भी चाँचर (होलीका गीत लिखने)-के बहाने रामके कुछ गुण कह सुनाए हैं। जो स्त्री-पुरुष इसे गावें या सुनेंगे वे भी सब प्रकारके शुभ फल प्राप्त करेंगे ॥ २२ ॥ (४७)

धीर राम ! देखिए, आज यह वन ऐसा सुन्दर बन उठा है मानो वीरवर कामदेव प्रसन्न होकर यहाँ फाग खेलने चला आया हो ॥ १ ॥ बरगद, मौलसिरी, कदम्ब, कटहल, आम, कुरव (लाल

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मनो बिबिध बेस धरे छैल - जूथ। बिच - बीच लता ललना - बरूथ ॥ २ ॥
पनवानक निर्झर, अलि उपंग। बोलत पारावत मनो डफ - मृदंग।
गायक सुक-कोकिल, झिल्लि ताल। नाचत बहु बिधि बरही - मराल ॥ ३ ॥
मलयानिल सीतल सुरभि मंद। बह सहित सुमन - रस रेनु - वृंद।
मनो छिरकत फिरत सबनि सुरंग। भ्राजत उदार - लीला अनंग ॥ ४ ॥
क्रीड़त जीते सुर, असुर, नाग। हठि सिद्ध मुनिन - के पंथ लाग।
कह 'तुलसिदास' तेहि छाँड़ मैन। जेहि राख राम राजीव - नैन ॥५॥ (४८)

रितु-पति आए बन्यो बन-समाज। मनो भए मदन महाराज आज ॥ १ ॥
मन प्रथम फाग - मिस करि अनीति। होरी - मिस अरिपुर जारि, जीति।
मारुत - मिस पत - परजा उजारि। नय नगर बसाए, बिपिन झारि ॥ २ ॥
सिंहासन सैल, सिला सुरंग। कानन- छबि रति, परिजन कुरंग।
सित छत्र सुमन, बल्ली बितान। चामर समीर, निर्झर निसान ॥ ३ ॥
मनो मधु - माधव दोउ अनिप धीर। बर बिपुल बिटप बानैत बीर।
मधुकर - सुक - कोकिल बंदि - वृंद। बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छंद ॥ ४ ॥

फूलवाली कटसरैया) और तमाल आदि वृक्ष फूले खड़े हैं, मानो भाँति-भाँतिके वेष बनाए हुए अनेक छैले आ पहुँचे हों और उनके बीच-बीच लताके रूपमें स्त्रियाँ आ पहुँची हों ॥ १ ॥ झरने ऐसे झर रहे हैं मानो नगाड़े और ढोल बज रहे हों, भौंरोंकी गूँज ऐसी लगती है मानो उपंग (नस-तरंग)-बज रहा हो। कबूतर ऐसे बोल रहे हैं मानो डफ और मृदंग बज रहे हों, सुग्गे और कोयल मानो गा रही हों, झींगुर मानो ताल दे रहे हों तथा मोर और हंस मानो अनेक प्रकारके नृत्य कर रहे हों ॥ ३ ॥ शीतल, मंद और सुगंध मलय-पवन भी फूलोंका रस और पराग लेकर बहता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो उदार लीला-विहारी कामदेव सबपर सुंदर रंग छिड़के दे रहा हो ॥ ४ ॥ इसने खेल-खेलमें ही देवता, असुर और नाग सबको जीत धरा है। यह कामदेव हठ करके सिद्धों और मुनिवरोंकी सिद्धिके मार्गमें रोड़ा अटकाए दे रहा है। तुलसीदास कहते हैं कि यह कामदेव उसीको नहीं छेड़ पाता, जिसकी रक्षा कमल-नयन राम कर रहे हों ॥ ५ ॥ (४८)

ऋतुराज वसंतके आनेपर (चित्रकूटके) वनकी शोभा ऐसी अच्छी बन गई है मानो कामदेवको आज महाराज-पद प्राप्त हो गया हो ॥१॥ उन्होंने फागके बहाने मर्यादा तोड़कर, वनरूपी शत्रुके नगरपर विजय प्राप्त करके, उसे होलीके बहाने जला डाला हो। फिर वायुके रूपमें पत्ते-रूपी प्रजाको लूटकर पतझड़ करके समूचे वनमें (नये नये पत्ते उत्पन्न करके) कोई नया नगर ला बसाया हो ॥२॥ पर्वतकी सुन्दर शिला ही उस मदन महाराजका राजसिंहासन है, वनकी शोभा ही रति है, मृग ही कुटुम्बी हैं, पुष्प ही श्वेत छत्र है, लताएँ ही वितान हैं, वायु ही चँवर है और झरने ही नौबतके रूपमें बज रहे हैं ॥ ३ ॥ चैत्र और वैशाख ही दोनों वीर और धीर सेनापति हैं। अनेक सुन्दर वृक्ष ही दृढप्रतिज्ञ वीर हैं, भौंरे, शुक और कोकिल ही बन्दीजन हैं जो अनेक प्रकारके छंदोंमें रामके विशुद्ध यशका वर्णन कर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महि परत सुमन - रस, फल, पराग। जनु देत इतर नृप कर - विभाग।
कलि सचिव - सहित नय-निपुन मार। किय बिस्व बिबस चारिहु प्रकार॥ ५॥
बिरहिन - पर नित नइ परै मारि। डाँड़ियत सिद्ध - साधक प्रचारि।
तिनकी न काम सक चापि छाँह। 'तुलसी' जे बसहिं रघुबीर - बाँह॥ ६॥ (४९)

राग मलार

सब दिन चित्रकूट निक लागत।
बरषा रितु प्रवेस गिरि देखत, मन बिसेष अनुरागत॥ १॥
चहुँ दिसि बन संपन्न, बिहँग - मृग, बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस - देस - पुर प्रमुदित, प्रजा सकल सुख छावत॥ २।
सोहत स्याम जलद मृदु घोरन, धातु रँग-मगे सृंगनि।
मनहु आदि अंभोज बिराजत, सेवित सुर - मुनि - भृंगनि॥ ३॥
सिखर परसि घन-घटहिं, मिलति बग-पाँति, सु छबि कबि बरनी।
आदि बराह, बिहरि बारिधि, मनो उठ्यो दसन धरि धरनी॥ ४॥
जल - जुत बिमल सिलनि झलकत नभ, बन - प्रतिबिंब तरंग।
मानहु जग - रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग - अंग॥ ५॥

रहे हैं॥ ४॥ पृथ्वीपर जो फूलोंके रस, पराग या फल गिर रहे हैं वे मानो अन्य सामन्तगण उन्हें कर दे रहे हैं। इस प्रकार नीति-निपुण कामदेवने अपने मंत्री कलियुगकी सम्मतिसे चारों प्रकार (साम, दान, दण्ड और भेद)-से सारे विश्वको अपने अधीन कर डाला है॥ ५॥ इसके राज्यमें विरही पुरुषोंपर नित्य नई मार पड़ती रही है तथा सिद्ध और साधकोंको ललकार-ललकारकर दण्ड दिया जाता रहा है। (पर तुलसीदास कहते हैं कि) इतना होनेपर भी यह कामदेव उन लोगोंकी छायातक नहीं छू पा सकता जो रामकी बाहोंके नीचे आ बसे हैं (जिनपर रामकी कृपा है)॥ ६॥ (४९)

चित्रकूट पर्वत सदा ही बड़ा सुहावना लगता है। वर्षा ऋतु आनेपर तो इसे देखनेके लिये विशेष रूपसे मन ललच उठता है॥ १॥ इसके चारों ओर फल-फूलसे सम्पन्न वन है; वहाँ बोलते हुए पक्षी और मृग ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो किसी अच्छे राजाके देश और नगरमें प्रजा आनन्दपूर्वक सब प्रकारके सुख भोगे जा रही हो॥ २॥ (गेरू आदि) धातुओंसे रँगी हुई पहाड़की चोटियोंपर काले-काले बादल गड़गड़ाते हुए ऐसे अच्छे लग रहे हैं मानो देवता और मुनिरूपी भ्रमरोंसे घिरा हुआ आदि कमल (जिसमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे) विराजमान हो॥ ३॥ जब बगुलोंकी पंक्ति (चित्रकूटका) शिखर छूनेवाली काली घटासे जा मिलती है तो उसकी छविका वर्णन कवि इस प्रकार करता है मानो आदि-वराह (चित्रकूट) समुद्र ढूँढोरकर दाँतों (बगुलोंकी पंक्तियों)-पर पृथ्वी (घटा) उठाए हुए समुद्रसे बाहर निकले चले आ रहे हों॥ ४॥ जलसे भीगी हुई निर्मल शिलाओंमें आकाशकी परछाईं ऐसी झलकती है जैसे विराट् भगवान्‌के अंग-प्रत्यंगमें संसारकी विचित्र

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मंदाकिनिहिँ मिलत झरना झरि - झरि भरि - भरि जल आछे।
'तुलसी' सकल सुकृत - सुख मानहु, राम - भगति - के पाछे ॥ ६ ॥ (५०)

राग सोरठ (कौशल्याका संताप)

आज - को भोर और सो, माई !
सुनौं न द्वार बेद - बंदी - धुनि, गुनिगन - गिरा सोहाई ॥ १ ॥
निज - निज सुंदर पति सदननि - तें, रूप - सील - छबि छाईं।
लेन असीस सीय आगे करि, मोपै बधू न आईं ॥ २ ॥
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर, 'कहाँ ! सुमित्रा माता'।
'तुलसी' मनहु महासुख मेरो, देखि न सकेउ बिधाता ॥ ३ ॥ (५१)

जननी निरखति बान-धनुहियाँ।
बार-बार उर नैननि लावति, प्रभु - की ललित पनहियाँ।
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति, कहि प्रिय बचन सबारे।
'उठहु तात! बलि मातु बदन - पर, अनुज-सखा सब द्वारे' ॥ २ ॥
कबहुँ कहति यों—'बड़ी बार भइ, जाहु भूप-पहँ, भैया !
बंधु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरि मैया' ॥ ३ ॥

रचना प्रतिबिम्बित हो रही हो ॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि स्वच्छ जलसे भरे हुए झरने झर-झर करते हुए मंदाकिनीमें मिले जा रहे हैं, जैसे सारे सुकृत और सुख एक मात्र राम-भक्तिके ही पीछे लगे चले जा रहे हों ॥ ६ ॥ (५०)

(रामके विरहमें व्याकुल माता कौशल्या कहती हैं—) 'अरी माई ! आजका भोर तो मुझे कुछ और ही प्रकारका (कष्टदायक) जान पड़ रहा है। आज द्वारपर न तो वेद-पाठकी और वंदीजनकी ही ध्वनि सुनाई दे रही है न गुणियोंकी मनोहर वाणीका ही शब्द सुनाई दे रहा है ॥१॥ अपने-अपने पतियोंके सुन्दर भवनोंसे, रूप और छविसे सम्पन्न मेरी पुत्रवधुएँ भी सीताको आगे करके आज मेरे पास आशीर्वाद लेने नहीं आईं ॥ २ ॥ आज मुझसे रामने भी हँसकर यह नहीं पूछा कि—'अरी माँ ! सुमित्रा माता कहाँ हैं ? आह ! मेरा यह महासुख भी विधातासे देखा नहीं जा सका' ॥३॥ (५१)

रामके बचपनके खेलके धनुष-बाण कौशल्या देखती हैं और बार-बार रामकी सुन्दर जूतियाँ हृदयसे और अपने नेत्रोंसे उठा लगाती हैं ॥ १ ॥ कभी पहलेकी भाँति सबेरे ही इस प्रकार प्रिय वचन कहती हुई जगाने लगती हैं—'उठो बेटा! तुम्हारे चन्द्रमा-जैसे मुखड़ेपर माता बलिहारी जाती है। देखो, तुम्हारे भाई और सखा द्वारपर आए खड़े हैं।' और कभी कहने लगती हैं—'भैया ! बहुत देर हो गई है। जाओ, महाराजके पास चले जाओ और अपने साथियोंको बुलाकर जो भावे वह जीमो। माता तुमपर निछावर होती है' ॥३॥ फिर तत्काल ज्यों ही रामके वन-गमनका स्मरण होता है

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कबहुँ समुझि बन-गवन राम-को, रहि चकि चित्र-लिखी सी।
'तुलसिदास' वह समय कहे-तें, लागति प्रीति सिखी-सी ॥ ४ ॥ (५२)

'माइ री ! मोहिं, कोउ न समुझावै।
राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥ १ ॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे, राम, लखन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर-को, बिधि जो भे बिपरीता ॥ २ ॥
दुख न रहै रघुपतिहिं बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान, सुनहु सखि ! अरुझि परी यहि लेखे' ॥ ३ ॥
कौसल्या-के बिरह-बचन सुनि, रोइ उठीं सब रानी।
'तुलसिदास' रघुबीर-बिरह-की, पीर न जात बखानी ॥ ४ ॥ (५३)

जब-जब भवन बिलोकति सूनो।
तब-तब बिकल होति कौसल्या, दिन-दिन-प्रति दुख दूनो ॥ १ ॥
सुमिरत बाल-बिनोद राम-के, सुन्दर मुनि-मन-हारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पद-पंकज अजिर-बिहारी ॥ २ ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत, रूठि चलैगो, माई !
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल, काहि लेउँ उर लाई ॥ ३ ॥

त्यों ही चकित होकर चित्रमें बनी हुई-सी स्तब्ध रह जाती हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उस समयकी (उनकी प्रीति)-का वर्णन करनेसे तो वह प्रीति ऐसी कसक उत्पन्न करती है जैसे किसीने (हृदयमें) बाण खींच मारा हो ॥ ४ ॥ (५२)

'अरी माई ! मुझे कोई आकर ढाढ़स क्यों नहीं बँधाता ? मुझे तो अबतक यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि राम सचमुच वन चले गए हैं या मैं कोई स्वप्न देख रही हूँ ? ॥ १ ॥ राम, लक्ष्मण और सीता मेरी आँखोंसे ओझल नहीं हो पाते तो भी विधाता ऐसा वैरी हो गया है कि इस हृदयकी जलन नहीं मिट पाती ॥ २ ॥ रामको देख लेनेपर तो दुःख नहीं रह पाता और न देखूँ तो शरीर बचा रहना असम्भव है, फिर भी मेरे ये प्राण अभीतक निकल नहीं पाए और इसीलिये सखी ! ये प्राण बीचमें ही अटके पड़े हैं (क्योंकि वे तो मेरी आँखोंके आगे सदा बने रहते हैं)' ॥ ३ ॥ कौशल्याके ये विरह-भरे वचन सुनकर सभी रानियाँ बिलख उठीं। तुलसीदास कहते हैं कि उनके हृदयमें रामके विरहकी जो व्यथा थी उसका वर्णन हो नहीं पा सकता ॥ ४ ॥ (५३)

माता कौशल्या जब-जब अपना घर सूना देखती हैं, तब-तब व्याकुल हो उठती हैं। उनका दुःख दिनपर दिन दूना बढ़ता चला जाता है ॥ १ ॥ वे मुनियोंका भी मन हर लेनेवाला रामका बालविनोद स्मरण करने लगती हैं। आँगनमें ही चलनेके योग्य उनके चरण-कमलोंका स्मरण करके उनका जी कसक उठता है (जो वनमें नंगे पैर चले जा रहे होंगे)। (वे कहती हैं—) 'अरी मैया ! अब प्रातःकाल होते ही कौन कलेवा माँगकर, रूठकर भागेगा ? और उनके नीले कमलके समान नेत्रोंसे आँसू बहते देखकर मैं किसे हृदयसे उठा लगाऊँगी ॥ ३ ॥ यदि अब भी मैं जीती बची रह गई

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जीवौं तौ बिपति सहौं निसि-बासर, मरौं तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन राम - को, बदन न देखन पायो ॥ ४ ॥
'तुलसिदास' यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा - बिनु, सोक - जनित रुज मेरो ॥ ५ ॥ (५४)

मेरो यह अभिलाष बिधाता।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै हरि, सेवक - सुख - दाता ॥ १ ॥
सीता - सहित कुसल कोसलपुर, आवत हैं सुत दोऊ।
स्रवन - सुधा - सम बचन सखी अब, आइ कहैगो कोऊ ॥ २ ॥
सुनि संदेस प्रेम - परिपूरन, संभ्रम उठि धावौंगी।
बदन बिलोकि, रोकि लोचन - जल, हरषि हिये लावौंगी ॥ ३ ॥
जनक - सुता कब सासु कहै मोहिं, राम - लखन कह मैया।
बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे, स्याम - गौर दोउ भैया ॥ ४ ॥
'तुलसिदास' यहि भाँति मनोरथ करत, प्रीति अति बाढ़ी।
थकित भई उर आनि राम - छबि, मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ॥ ५ ॥ (५५)

सुन्यो जब, फिरि सुमंत पुर आयो।
कहिहै कहा प्रानपति - की गति, नृपति बिकल उठि धायो ॥ १ ॥

तो रात-दिन दुःख सहना पड़ेगा और यदि मर गई तो यही पछतावा रह जायगा कि वन जाते समय मैं भर-आँखों रामका मुखड़ा न देख पाई ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह दशा बड़ी ही दुःसह है और यह विरह बड़ा ही कठोर है। ऐसा कौन है जो रामकी अत्यन्त कृपाके बिना मेरी यह शोक-जनित पीडा दूर कर सके ? (५४)

'अरी सखी ! भक्तोंको सुख देनेवाले भगवान्‌के प्रसन्न होनेपर विधाता मेरी यह अभिलाषा कब पूरी करेंगे—॥ १ ॥ कि सखी ! कोई मेरे कानोंमें अमृतके समान ये वचन आ कहे कि आपके दोनों पुत्र सीताके साथ कुशलपूर्वक कोशलपुरी लौटे आ रहे हैं ! ॥ २ ॥ और यह संदेश सुनते ही मैं प्रेमकी उमंगमें अचानक उठकर दौड़ पड़ूँ और उनके मुखड़े देखकर, नेत्रोंके प्रेमाश्रु रोककर, हर्षपूर्वक उन्हें हृदयसे उठा लगाऊँ ? ॥ ३ ॥ जनकनंदिनी सीता मुझे कब 'सासूजी' कहकर पुकारेंगी ? और कब राम और लक्ष्मण 'मैया' कहकर पुकारेंगे ? कब दोनों साँवले (राम) और गोरे (लक्ष्मण) भाई हाथमें हाथ डालकर आँगनमें चलेंगे' ? ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे मनोरथ करती हुई कौशल्याका स्नेह इतना अधिक उमड़ पड़ा कि वे हृदयमें रामकी छबि धारण करके ऐसी स्तब्ध हो बैठीं मानो चित्रमें बनी हुई हों ॥ ५ ॥ (५५)

महाराज दशरथने जब सुना कि सुमंत्र अयोध्या लौट आए हैं तो इस उत्कंठासे वे व्याकुल होकर उठ दौड़े कि देखें वे प्राण-प्यारे रामका क्या समाचार ला सुनाते हैं। किन्तु मंत्रीको

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाँय परत मंत्री अति ब्याकुल, नृप उठाइ उर लायो।
देखि दसा - दसरथ, न कह्यो कछु, हरि जो सँदेस पठायो॥ २॥
बूझि न सकत कुसल प्रीतम - की, हृदय यहै पछितायो।
साँचेउ सुत - बियोग सुनिबे - कहँ, धिग बिधि मोहिं जियायो॥ ३॥
'तुलसिदास' प्रभु जानि निठुर हौं, न्याय नाथ बिसरायो।
हा रघुपति ! कहि पर्‍यौ अवनि जनु, जल-तें मीन बिलगायो॥ ४॥ (५६)

मिटैगो न मुएहु मेरो, मानसिक पछिताउ।
नारि - बस न बिचारि कीन्हों काज, सोचत राउ॥ १॥
तिलक - को बोल्यो, दियो बन, चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्‍यो, समुझि सील - सुभाउ॥ २॥
सीय - रघुबर - लखन - बिनु, भय भगी भभरि न आउ।
मोहिं बूझि न परत, यातें, कौन कठिन कुघाउ॥ ३॥
सुनि सुमंत ! कि आनि सुन्दर सुवन - सहित जिआउ।
'दास तुलसी' नतरु मोको, मरन - अमिय पिआउ॥ ४॥ (५७)

अवध जीवत हौं बिलोकिहैं रामभद्र-बिहीन। कहा करिहैं आइ सानुज भरत धरम-धुरीन॥१॥

अत्यंत व्याकुल होकर अपने चरणोंमें गिरते देखकर राजा दशरथने उन्हें हृदयसे उठा लगाया और मन्त्रीने भी जब दशरथकी यह दीन (दुखी) दशा देखी तो जो कुछ संदेश रामने कहला भेजा था वह भी कुछ नहीं कहा—॥२॥ महाराज भी अपने प्यारे पुत्रकी कुशल नहीं पूछ रहे थे। उनके हृदयमें यही पछतावा हो रहा था कि धिक्कारके योग्य विधाताने मुझे पुत्रके वियोगका समाचार सुननेके लिये जीवित किए रक्खा' ॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं, (कि महाराज दशरथ कहने लगे—) 'रामने मुझे निष्ठुर पिता समझकर जो मेरा परित्याग किया वह ठीक ही किया।' ऐसा कहकर वे ऐसे व्याकुल होकर पछाड़ खाकर धरतीपर जा गिरे मानो कोई मछली जलसे बाहर निकाल फेंकी गई हो॥ ४॥ (५६)

दशरथ अपने मनमें सोच रहे हैं कि 'मेरे मनका यह पछतावा मरनेपर भी नहीं मिट पावेगा कि मैंने स्त्री (कैकेयी)-के फेरमें पड़कर ठीक विचारकर काम नहीं किया। मैंने रामको कहा तो तिलक (युवराजपद) देनेको और फिर वनवासका आदेश दे डाला। रामने भी बड़े चौगुने उत्साहके साथ उसे सिर-माथे चढ़ा लिया। उनका यह शील और स्वभाव समझकर भी मेरा यह हृदय अनारके समान फट नहीं बिखरा॥२॥ सीता, राम और लक्ष्मणके न होनेपर भी मेरी आयु भयसे घबराकर अभीतक भाग नहीं खड़ी हुई (समाप्त नहीं हो पाई)। मेरी समझमें नहीं आता कि अब इससे बड़ी और कौनसी विपत्ति आ सकती है (जिसकी यह प्रतीक्षा कर रही है)॥ ३॥ सुनो सुमन्त्र ! या तो तुम मेरे सुन्दर पुत्रोंको यहाँ लाकर मुझे दिखा दो नहीं तो मुझे मृत्युका अमृत (विष) ला पिलाओ' (यह तुलसीदास वर्णन करते हैं)॥ ४॥ (५७)

धर्मकी रक्षा करनेवाले भरत मुझे यहाँ अयोध्यामें रामके बिना जीवित देखेंगे तो यहाँ आकर करेंगे क्या ?॥ १॥ रामके शोक और स्नेहसे पूर्ण शरीरसे व्याकुल और राममें ही तल्लीन होकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम-सोक-सनेह-संकुल,तन बिकल,मन लीन। टूटि तारो गगन-मग ज्यों होत छिन-छिन छीन २
हृदय समुझि सनेह सादर प्रेम-पावन-मीन। करी 'तुलसीदास' दसरथ प्रीति-परमिति पीन ॥३॥

राग गौरी (५८)

करत राउ मन - मों अनुमान।
सोक - बिकल, मुख बचन न आवै, बिछुरें कृपानिधान ॥ १ ॥
राज देन कहि बोलि, नारि-बस मैं जो कह्यौ बन जान।
आयसु सिर धरि, चले हरषि हिय, कानन भवन - समान ॥ २ ॥
ऐसे सुत - के बिरह, अवधि - लौं, जौ राखौं यह प्रान।
तौ मिटि जाइ प्रीति - की परमिति, अजस सुनौं निज कान ॥ ३ ॥
राम गए, अजहूँ हौं जीवत, समुझत हिय अकुलान।
'तुलसिदास' तनु तजि रघुपति - हित, कियो प्रेम - परवान ॥ ४ ॥ (५९)

(कैकेयीसे भरतका वचन)

ऐसे क्यों कटु बचन कह्यो, री ?
'राम ! जाहु कानन' कठोर तेरो, कैसे धौं हृदय रह्यो री ॥ १ ॥
दिनकर - बंस, पिता दसरथ - से, राम लखन - से भाई।
जननी ! तू जननी ? तौ कहा कहौं, बिधि केहि खोरि न लाई ॥ २ ॥

मैं ऐसा क्षीण हुआ जा रहा हूँ जैसे आकाशमें तारा टूटकर क्षीण होता हुआ बिखर जाता है। (तुलसीदास कहते हैं कि) दशरथने अपने हृदयके स्नेहको भली प्रकार समझकर रामके प्रति अपने पवित्र प्रेमको आदरके साथ बना मछली दिया (रामके बिना जीवित रहनेका विचार छोड़ दिया) और इस प्रकार उन्होंने प्रेमकी पराकाष्ठा पूरी कर दिखाई (कि प्रेम हो तो ऐसा हो) ॥ ३ ॥ (५८)

कृपानिधान रामके चले जानेसे महाराज (दशरथ) शोकसे इतने अधिक व्याकुल हुए चले जा रहे हैं कि उनके मुखसे वचन भी नहीं निकल रहा है। वे मनमें अनुमान करने लगे—॥ १ ॥ 'ओहो ! मैंने रामको राज्य देनेको कहा किन्तु नारी (कैकेयी)-के फेरमें पड़कर उन्हें बुलवाकर वन जानेकी आज्ञा दे दी और वे भी उसी समय मेरी आज्ञा सिर-माथे चढ़ाकर प्रसन्न होकर वनको घरके ही समान सुखदायक समझकर चल दिए ॥ २ ॥ ऐसे पुत्रके वियोगकी अवधि-तक यदि अपने प्राण बचा रक्खूँ तो प्रेमकी सारी मर्यादा टूट गिरेगी और अपने ही कानों मुझे अपना अपयश भी सुनना पड़ेगा ॥ ३ ॥ हाय ! (दुःख तो यह है कि) रामके चले जानेपर भी मैं आज तक जीए चला जा रहा हूँ'—यह सोच-सोचकर उनका हृदय व्याकुल हो उठा। तुलसीदास कहते हैं कि यह सोचकर उन्होंने रामके वियोगमें अपना शरीर छोड़कर अपना सच्चा प्रेम प्रमाणित कर दिया ॥ ४ ॥ (५९)

(अयोध्या आनेपर भरतने रामके वन-गमनका समाचार सुनकर अपनी माता कैकेयीसे कहा—) 'अरी ! तूने ऐसी कड़वी बात मुँहसे निकाली क्यों ? 'राम ! तुम वनको चले जाओ' कहते समय तेरा हृदय इतना कठोर कैसे हो गया था ? ॥१॥ हाय ! मुझे सूर्यवंश-जैसा (उच्च) कुल, महाराज दशरथ-जैसे (तेजस्वी) पिता और राम-लक्ष्मण-जैसे (शीलवान्) भाई मिले और माता मिलनेको

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो।
कुल - कलंक मल - मूल मनोरथ, तव - बिनु कौन करैगो॥ ३॥
अइहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरिहैं।
'तुलसिदास' मोको बड़ो सोच, तू जनम कौन बिधि भरिहै॥ ४॥ (६०)

ताते हौं देत न दूषन तोहूँ।
राम - बिरोधी उर कठोर - तें, प्रगट कियो बिधि मोहूँ॥ १॥
सुंदर, सुखद, सुसील, सुधानिधि, जरनि जाइ जिहिं जोए।
बिष - बारुनी - बंधु कहियत बिधु, नातो मिटत न धोए॥ २॥
होते जौ न सुजान - सिरोमनि, राम सबहि मन - माँही।
तौ तोरी करतूति, मातु! सुनि, प्रीति - प्रतीति कहाँ ही॥ ३॥
मृदु मंजुल सींची - सनेह सुचि, सुनत भरत - बर - बानी।
'तुलसी' साधु - साधु सुर - नर - मुनि कहत, प्रेम पहिचानी॥ ४॥ (६१)

[कौशल्यासे भरतका वचन]

जौ पै मातु मते-महँ ह्वै हौं।
तौ जननी! जग-में या मुख - की, कहाँ कालिमा ध्वैहौं॥ १॥

मिली तो तू मिली! अब मैं रोऊँ तो क्या रोऊँ? विधाताने किसका मुँह काला नहीं कर डाला? यह कुलको कलंकके लागनेवाली पापमय भावना तुझे छोड़कर और किसके मनमें आ सकती है (जो यह सोचे बैठी थी कि) 'मैं राजमाता होकर सुख भोगूँगी और मेरा पुत्र अपने सिरपर छत्र धारण करेगा (राज करेगा)?॥ ३॥ (पर यह समझ ले कि) राम भी फिर लौटकर आवेंगे ही और सब लोग भी फिर सुखी होवेंगे ही और विधाता मेरा सारा अपयश भी दूर करेगा ही पर मुझे तो बड़ी भारी चिन्ता अब इसी बातकी है कि तू अपना जीवन कैसे काटेगी?'॥ ४॥ (६०)

(कैकेयीसे भरत कहने लगे—) 'विधाताने मुझे तो तेरी इस रामके विरोधी कठोर कोखसे ही उत्पन्न किया है इसलिये मैं तुझे तो कोई दोष नहीं दे सकता॥ १॥ जिस चन्द्रमाको देखनेसे ही सब प्रकारका ताप शान्त हो जाता है वह चन्द्रमा इतना सुन्दर, सुखदायक, शीतल और अमृतका भांडार होनेपर भी विष (हलाहल) और वारुणी (मदिरा)-का बंधु कहा जाता है। उसका यह नाता धोनेसे भी नहीं मिट पा सकता॥ २॥ यदि सुजान-शिरोमणि राम सबके मनमें न बसे हुए होते, तो माता! तेरी करतूत सुनकर प्रभुको मेरी प्रीति और प्रतीति भला कैसे हो पा सकती थी?'॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि भरतकी यह अत्यन्त मधुर, मनोहर, स्नेहसे भरी हुई पवित्र वाणी जिसने भी सुनी वे सब देवता, मनुष्य और मुनि उनका प्रेम पहचानकर 'साधु-साधु' कहने लगे॥ ४॥ (६१)

(माता कौशल्याके पास जाकर) भरत कहने लगे—'माता! यदि अपनी माताके इस कुचक्रमें मेरा तनिक-सा भी हाथ रहा हो तो संसारमें इस मुखकी कलंक-कालिमा कहाँ जाकर धो पाऊँगा?॥१॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्यों हौं आज होत सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची ?
महिमा-मृगी कौन सुकृती-की खल - बच - बिसिखन बाँची ॥ २ ॥
गहि न जाति रसना काहू - की, कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबंधु कारुण्य - सिंधु - बिनु, कौन हिये-की बूझै ॥ ३ ॥
'तुलसी' राम-बियोग - बिषम - बिष - बिकल नारि-नर भारी।
भरत - सनेह - सुधा सींचे सब, भे तेहि समय सुखारी ॥ ४ ॥ (६२)

[भरतसे कौशल्याका वचन]

काहे को खोरि कैकइहि लावौं ?
धरहु धीर, बलि जाउँ, तात ! मोको आज बिधाता बावौं ॥ १ ॥
सुनिबे जोग बियोग राम - को, हौं न होउँ मेरे प्यारे।
सो मेरे नयननि आगे - तें, रघुपति बनहिं सिधारे ॥ २ ॥
'तुलसिदास' समुझाइ भरत - कहँ, आँसु पोंछि, उर लाए।
उपजी प्रीति जानि प्रभु - के हित, मनहु राम फिरि आए ॥ ३ ॥ (६३)

मेरो अवध धौं कहहु कहा है ?
करहु राज रघुराज - चरन तजि, लै लटि लोग रहा है ॥ १ ॥
धन्य मातु, हौं धन्य, लागि जेहि, राज - समाज ढहा है।
तापर मोकों प्रभु करि चाहत, सब बिनु - दहन दहा है ॥ २ ॥

आज मैं लाख सौगन्ध खाता फिरूँ फिर भी मेरे सिरका यह कलंक कैसे मिटाया जा सकता है ? मेरी बात कौन सत्य मानेगा ? भला बताओ, संसारमें कौन ऐसा पुण्यात्मा है जिसकी महिमाकी मृगी दुष्टोंके वचनके बाणोंसे बची रह पाई है (किस पुण्यात्माको दुष्टोंने बदनाम नहीं किया है ?) ॥ २ ॥ किसीका मुँह तो बाँध जा नहीं सकता । अतः, जिसके जो जीमें आवे कहे। करुणा-सागर दीनबन्धु रामके बिना मेरे हृदयकी बात कौन समझ पावेगा ? ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके वियोगके कठिन विषकी झारसे जब सभी नर-नारी बहुत व्याकुल हुए जा रहे थे उस समय भरतके इस स्नेहके अमृतसे सींच दिए जानेपर सबको बड़ी शान्ति मिली ॥ ४ ॥ (६२)

(भरतसे कौशल्या कहने लगीं—) 'बेटा ! इसमें कैकेयीको क्यों दोष देते हो ? मैं बलिहारी जाती हूँ । तुम धीरज रक्खो । आज विधाता ही मुझसे रूठ बैठा है ॥ १ ॥ प्यारे बेटे ! मैं तो कल्पना ही नहीं करती थी कि मुझे रामके वियोगकी बात भी सुननी पड़ेगी, पर इस समय तो वे मेरे देखते-देखते मेरी आँखोंके आगे ही वन चले गए' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि माता कौशल्याने भरतको समझाकर और उनके आँसू पोंछकर उन्हें अपने हृदयसे उठा लगाया। उन्हें रामका सच्चा प्रेमी समझकर माताको वे ऐसे प्यारे लगे मानो राम ही लौट आए हों ॥ ३ ॥ (६३)

(भरत कहने लगे—) 'बताओ तो अयोध्यामें मेरा है क्या कि मैं यहाँ रहूँ ? जिसे देखो वह यही रट लगाए हुए है कि रामके चरण (रामकी सेवा) छोड़कर यहाँ रहकर राज्य करो ॥ १ ॥ मेरी माता (कैकेयी) भी धन्य है और मैं भी धन्य हूँ जिसके लिये यह सारा राज-समाज मटियामेट कर डाला गया है । फिर भी मुझे अपना राजा बनाकर आप लोग बिना अग्निके ही जल मिटनेपर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम-सपथ कोउ कछू कहै जनि, मैं दुख दुसह सहा है।
चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहिं, हहा है॥ ३॥
यों कहि भोर भरत गिरिवर - को, मारग बूझि, गहा है।
सकल सराहत, एक भरत, जग जनमि, सुलाहु लहा है॥ ४॥
जानहिं सिय-रघुनाथ भरत - को, सील - सनेह महा है।
कै 'तुलसी', जिहिं राम - नाम - सों, प्रेम - नेम निबहा है॥ ५॥ (६४)

माइ ! हौं अवध कहा रहि लैहौं ?
राम - लखन-सिय-चरन बिलोकन, काल्हि काननहिं जैहौं॥ १॥
जद्यपि मोतें, कै कुमातु - तें, ह्वै आई अति पोची।
सन्मुख गए सरन राखहिंगे, रघुपति परम सँकोची॥ २॥
तुलसी यों कहि चले भोर ही, लोग बिकल सँग लागे।
जनु बन जरत देखि दारुन दव, निकसि बिहँग-मृग भागे॥ ३॥ (६५)

सुक - सों, गहवर - हिय कह सारो।
बीर कीर ! सिय - राम - लखन-बिनु, लागत जग अँधियारो॥ १॥
पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप, हित - अनहित न बिचारो।
कुलगुरु, सचिव, साधु सोचत, बिधि को न बसाइ उजारो॥ २॥

तुले बैठे हैं॥ २॥ आप सबको रामकी सौगन्ध है कि इस विषयमें अब मुझसे कभी कोई चरचा न की जाय। मैं यह सब सुनकर बड़ा असह्य दुःख भोग चुका हूँ। मैं बलिहारी जाता हूँ। आइए, सबके साथ चित्रकूट चला जाय। दुहाई है आप लोगोंकी। आप लोग मुझे क्षमा करें'॥ ३॥ यह कहकर सबेरा होते ही भरतने पूछकर चित्रकूटका पैंड़ा जा पकड़ा। उस समय जिसे देखो वही उनकी प्रशंसा करने लगा कि संसारमें जन्म लेनेका यदि किसीने सच्चा लाभ उठाया तो एक भरतने ही उठाया है॥ ४॥ भरतके महान् शील और स्नेहको या तो राम और सीता जानते हैं या तुलसीदास जानते हैं जो नियमपूर्वक राम-नामसे प्रेम करते रहते हैं॥ ५॥ (६४)

(भरत कहने लगे—) 'देखो भाई ! अयोध्यामें रहकर मुझे क्या लेना-देना है ! मैं तो कल भोरमें ही राम, लक्ष्मण और जानकीके चरणोंका दर्शन करने वनको चल दूँगा॥ १॥ यद्यपि मैं या मेरी कुटिला माता बड़ा बुरा काम कर बैठी है, फिर भी राम तो इतने अधिक संकोची हैं कि मुझे अपने सामने देखते ही वे अवश्य अपनी शरणमें ले लेंगे'॥ २॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह कहकर भरत बड़े तड़के ही वनकी ओर चल पड़े तथा और लोग (परिजन तथा प्रमुख पुरवासी) भी व्याकुल होकर उनके साथ ऐसे हो लिए जैसे भयंकर दावानलसे वन जलता देखकर वहाँके पशु-पक्षी निकल भागने लगते हैं॥ ६५॥

(राजभवनकी एक मैना बड़े व्यथित हृदयसे सुग्गेसे कहने लगी—) 'देखो भैया सुग्गे ! राम, लक्ष्मण और जानकीके बिना तो सारा संसार अंधकारमय जान पड़ रहा है॥ १॥ पापिनी दासी (मन्थरा), मूर्खा रानी (कैकेयी) और महाराज, किसीने भी भले-बुरेका कुछ विचार नहीं किया

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो।
सुने न बच करुनाकर - के जब, पुर - परिवार सँभारो॥ ३॥
भैया भरत भावते - के सँग, बन सब लोग सिधारो।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो॥ ४॥
सुनि, खग कहत, अंब ! मौंगी रहि, समुझि प्रेम-पथ न्यारो।
गए ते प्रभु पहुँचाइ फिरे पुनि, करत करम - गुन - गारो॥ ५॥
जीवन जग जानकी - लखन - को, मरन महीप सँवारो।
'तुलसी' और प्रीति - की चरचा करत, कहा कछु चारो॥ ६॥ (६६)

कह सुक, सुनहि सिखावन, सारो !
बिधि करतब बिपरीत, बाम गति, राम - प्रेम - पथ न्यारो॥ १॥
को नर - नारि अवध खग-मृग जेहिं, जिवन राम-तें प्यारो।
विद्यमान सब - के, गवने बन, बदन करम - को कारो॥ २॥
अंब, अनुज, प्रिय सखा, सुसेवक, देखि, बिषाद बिसारो।
पंछी बरबस परे पींजरनि, लेखो कौन हमारो॥ ३॥

और कुलगुरु वशिष्ठ, मन्त्री और साधुजन भी इसी सोचमें पड़े रह गए कि विधाताने किसे बसाकर नहीं उजाड़ डाला ? ॥ २ ॥ मैंने तो उन्हें जाते समय नेत्र भर देखा भी नहीं और जिस समय वे नगर और परिवारकी सँभाल करा रहे थे, उस समय नगरमें इतना भारी कोलाहल मचा हुआ था कि हम यह भी नहीं सुन पा सके कि करुणा-धाम रामने (किसके लिये) क्या कहा ॥ ३ ॥ अब प्यारे भैया भरतके साथ सब लोग वन चले जा रहे हैं। हमारा बड़ा दुर्भाग्य है कि हम पंख होते हुए भी पिंजड़ेमें पड़े-पड़े तड़प रहे हैं (उनके साथ उड़कर नहीं चले गए)।' मैनाके ये वचन सुनकर सुग्गा बोला—'अरी मैया ! प्रेमका पंथ बड़ा निराला होता है, यह समझकर तू चुप बैठी रह। देख, जो लोग उनके साथ गए थे वे भी रामको कुछ दूर पहुँचाकर अपने करम ठोंकते हुए लौट आए ॥ ५ ॥ संसारमें जीवन किसीका है तो सीता और लक्ष्मणका ही है (जो साथ चले गए), और अपना मरण किसीने बनाया तो केवल महाराज दशरथने बनाया जिसने रामके विरहमें प्राण दे दिए। और सब तो केवल प्रेमकी चर्चा ही चर्चा करते हैं। इसके अतिरिक्त उनके पास दूसरा चारा ही क्या है' ॥ ६ ॥ (६६)

(शुक कहने लगा—) 'अरी मैना ! देख, तू मेरी बात सुन। जब विधाता मुँह फेर बैठता है तब जिस भी काममें हाथ डालो वही उलटा हो चलता है। किन्तु रामके प्रेमका मार्ग तो इस सबसे निराला (सुखमय) ही है ॥१॥ भला अयोध्यामें कौन ऐसा नर-नारी अथवा पशु-पक्षी है जिसे अपना जीवन रामसे अधिक प्यारा हो ? किन्तु सबके रहते हुए ही राम वन चले गए, इससे तो भाग्यका मुँह भी काला हो गया ॥ २ ॥ यह सब देखकर भी जब उनके माता, भाई, प्रिय मित्र, और अच्छे-अच्छे सेवक-तक वह (रामके चले जानेका) दुःख भूल बैठे तब पिंजड़ोंमें परतन्त्र पड़े हुए हम पक्षियोंकी तो गिनती

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रहि नृप - की, बिगरी है सबकी, एक सँवार निहारो।
'तुलसी' प्रभु निज चरन - पीठ - मिस, भरत-प्रान रखवारो ॥ ४ ॥ (६७)

ता दिन सृंगबेरपुर आए।
राम - सखा - तें समाचार सुनि, बारि बिलोचन छाए ॥ १ ॥
कुस - साथरी देखि रघुपति - की, हेतु अपनपौ जानी।
कहत कथा सिय - राम - लखन-की, बैठेहि रैनि बिहानी ॥ २ ॥
भोरहि भरद्वाज - आश्रम ह्वै, करि निषाद - पति आगे।
चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज, घोर घाम - के लागे ॥ ३ ॥
बूझत 'चित्रकूट कहँ', जेहि तेहि मुनि - बालकनि बतायो।
'तुलसी' मनहुँ फनिक मनि ढूँढत, निरखि, हरषि हिय धायो ॥ ४ ॥ (६८)

राग केदारा

बिलोके दूरि - तें दोउ बीर।
उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल - गौर सरीर ॥ १ ॥
सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनि चीर।
निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु - तीर ॥ २ ॥

ही क्या है ? ॥ ३ ॥ बात यदि किसीकी बनी तो केवल राजा दशरथकी बनी (जिन्होंने रामके प्रेममें प्राण दे डाले) और सबकी तो बिगड़ी ही समझो। (तुलसीदास कहते हैं—) फिर भी देखो, अब एक बात अवश्य बन गई है कि प्रभु रामने (बड़ी कृपा करके) अपनी चरण-पादुकाके बहाने भरतके प्राणोंका रखवाला नियुक्त कर भेजा है' ॥ ४ ॥ (६७)

भरत उसी दिन श्रृंगवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ रामके सखा गुहसे रामका समाचार पाकर उनकी आँखें डबडबा आईं ॥ १ ॥ जब वहाँ भरतने कुशकी वह शय्या जाकर देखी जिसपर राम सोए थे तब अपनेको ही उस कष्टका मूल कारण समझकर उन्होंने वह सारी रात सीता, राम और लक्ष्मणकी बातें करते-करते बैठे ही बैठे बिता दी ॥ २ ॥ सबेरा होते ही वे निषादराज (गुह)-को आगे करके भरद्वाज ऋषिके आश्रमकी ओर ऐसे बढ़ चले मानो किसी प्यासे हाथीने बहुत गर्मी लगनेपर कोई तालाब ढूँढ पा लिया हो ॥३॥ फिर जहाँ-जहाँ वे पूछते चलते कि 'चित्रकूट कहाँ है ?—तो मुनियोंके बालक उन्हें चित्रकूटका मार्ग बतला देते ! तुलसीदास कहते हैं कि उसे (चित्रकूटको) देखकर उन्हें इतना आनन्द हुआ जितना उस सर्पको होता है जो अपना (खोया हुआ) मणि देख पा लेनेपर मारे हर्षके उसकी ओर लपक बढ़ता है ॥ ४ ॥ (६८)

भरतने दूरसे ही उन विशाल वक्षःस्थलवाले, घुटनोंतक सुन्दर लम्बी भुजाओंवाले तथा श्याम और गौर शरीरवाले दोनों भाइयोंको देख लिया ॥१॥ उनके सिरपर जटाएँ हैं, कमलके समान नेत्र हैं और वे मुनियोंकेसे वस्त्र धारण किए हुए हैं। उनके पास ही तरकश रक्खे हुए हैं, साथमें सीता बैठी शोभा दे रही हैं तथा वे हाथसे धनुष-बाण घुमा रहे हैं ॥ २ ॥ रामको देखते ही भरतका मन

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मन अगहुँड़, तन पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मनो सकुच - पंक - महँ, कढ़त प्रेम - बल धीर ॥ ३ ॥
'तुलसिदास' दसा, देखि भरत-की, धाए अतिहि अधीर।
लिय उठाइ, उर लाइ कृपानिधि, बिरह - जनित हरि पीर ॥ ४ ॥ (६९)

भरत भए ठाढ़े कर जोरि।
ह्वै न सकत सामुहें सकुच - बस, समुझि मातु - कृत खोरि ॥ १ ॥
फिरिहैं, किधौं फिरन कहिहैं प्रभु, कलपि कुटिलता मोरि।
हृदय सोच, जल भरे बिलोचन, नेह देह भइ भोरि ॥ २ ॥
बन - बासी, पुर - लोग, महामुनि, किये काठ - से कोरि।
दिए स्रवन सुनिबे - को जहँ - तहँ, रहे प्रेम मन बोरि ॥ ३ ॥
'तुलसी' राम - सुभाव सुमिरि, उर धरि धीरजहि बहोरि।
बोले बचन बिनीत, उचित, हित, करुना - रसहिं निचोरि ॥ ४ ॥ (७०)

जानत हौं सबही - के मन - की।
तदपि कृपालु ! करौं बिनती सोइ, सादर सुनहु दीन हित जन - की ॥ १ ॥
ये सेवक संतत अनन्य अति, ज्यों चातकहि एक गति घन - की।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजन - की ॥ २ ॥

आगे बढ़नेको उतावला हो उठा, परन्तु शरीर रोमाञ्चित होकर सुस्त पड़ गया और उनके कमल-जैसे नेत्रोंमें आँसू छलछला आए। उनके पैर मानो संकोचके दलदलमें धँसे जा रहे थे जिन्हें वे प्रेमके बलपर बड़े धैर्यसे बाहर निकाल पा रहे थे ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि भरतकी यह दशा देखकर राम प्रेमसे अधीर होकर उनकी ओर उठ दौड़े और उनकी विरह-व्यथा दूर करके कृपानिधान रामने उन्हें हृदयसे उठा लगाया ॥ ४ ॥ (६९)

(रामके सामने) भरत हाथ जोड़कर खड़े हो गए। माताकी कुचाल स्मरण करके उन्हें इतना संकोच हुआ जा रहा था कि वे रामके सामने खड़े नहीं हो पा रहे थे। उनकी आँखें डबडबा चली थीं और स्नेहके कारण शरीर सुस्त पड़ गया था। उन्हें यही चिन्ता सताए जा रही थी कि न जाने राम अयोध्या लौटेंगे भी या मेरी कुटिलता समझकर मुझे ही लौट जानेको कह देंगे ॥ २ ॥ वनवासी, पुरजन तथा बड़े-बड़े मुनिगण सब काठकी-सी गढ़ी मूर्ति बने बैठे रहे या जहाँ-तहाँ प्रेम-रसमें डूबे हुए अपने कान लगाए सुननेको खड़े रहे ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि भरत इसी समय रामके स्वभावका स्मरण करके, हृदयमें धैर्य धारण करके दीनतासे भरे हुए अत्यन्त विनीत, हितकारी और उचित वचन बोल उठे ॥ ४ ॥ (७०)

(भरत कहने लगे —) 'कृपालु ! यद्यपि आप सबके मनकी बात जानते हैं तो भी मैं आदरपूर्वक कुछ विनय किए डालता हूँ। आप सदा दीनोंके हितकी बात सोचते रहते हैं, अतः इस सेवककी भी वही विनय सुन लीजिए (मेरा भी हित कर दीजिए) ॥ १ ॥ ये अयोध्यावासी सदा-से आपके वैसे ही अनन्य दास हैं जैसे पपीहेको एक मात्र मेघका ही अवलम्ब रहता है। यह सोचकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जस, अहि जसु गइ मनि फन - की।
मेटहु कुल - कलंक कोसलपति ! अज्ञा देहु नाथ मोहि बन - की ॥ ३ ॥
मोकौं जोइ लाइय लागै सोइ, उतपति है कुमातु - तेंतन - की।
'तुलसिदास' सब दोष दूरि करि, प्रभु अब लाज करहु निज पन-की ॥४॥ (७१)

तात ! बिचारो धौं हौं क्यौं आवौं ?
तुम सुचि, सुहृद, सुजान सकल बिधि, बहुत कहा कहि-कहि समुझावौं ॥ १ ॥
निज - कर खाल खैंचि या तनु - तें, जौ पितु पग पानहीं करावौं।
होउँ न उरिन पिता दसरथ-तें, कस तेहि बचन मेटि पति पावौं ॥ २ ॥
'तुलसी' जाको सुजस तिहूँ पुर, क्यों तेहि कुलहिं कालिमा लावौं।
प्रभु-रुख निरखि, निरास भरत भे, जान्यो सबहि भाँति बिधि बावौं ॥३॥ (७२)

राग सोरठा

बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं।
सकुच - सिंधु, बोहित बिबेक करि, बुधि - बल बचन निबाहैं ॥ १ ॥
छोटेहुतें छोह करि आए, मैं सामुहैं न हेरो।
एकहि बार आज बिधि मेरो, सील - सनेह निबेरो ॥ २ ॥

आप पवित्र अयोध्यापुरीमें चले चलिए और अपने आत्मीय जनों-का दुःसह दुःख दूर कर डालिए ॥ २ ॥ मेरा भी जीवन आप वैसा ही (व्याकुलतापूर्ण) समझिए जैसे कोई सर्प अपने फणका मणि खो जानेपर भी जिए चला जा रहा हो। कोशलपति ! आप चलकर यह कुलका कलङ्क मिटा डालिए और अपने बदले मुझे वन चले जानेकी आज्ञा दे दीजिए ॥३॥ मेरा जन्म ही ऐसी कुमाता-से हुआ है कि मुझे जो भी दोष लगाया जाय वही ठीक है।' तुलसीदास कहते हैं कि अन्तमें भरतने कहा—'प्रभो ! अब आप मेरे सब अपराध क्षमा करके अपने विरद (यश)-की रक्षा कर लीजिए (कि आप भक्तोंकी बात अवश्य रखते हैं)' ॥ ४ ॥ (७१)

(इसपर राम कहने लगे—) 'भैया ! यह तो सोचो कि मैं लौट कैसे सकता हूँ ? तुम सब प्रकारसे पवित्र (निर्दोष), सुहृद और समझदार हो, तुम्हें बहुत कहकर क्या समझाऊँ ॥ १ ॥ यदि मैं अपने हाथोंसे अपने शरीरकी खाल खींचकर पिताके पैरोंके जूते भी बनवा डालूँ, तो भी पिता दशरथके ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। फिर मैं उनके वचन मेटकर उनका विश्वासपात्र कैसे बना रह सकता हूँ ॥ २ ॥ भैया ! जिस कुलका (वचन पालनेका) सुयश तीनों लोकोंमें छाया हुआ है उसे मैं कैसे कलङ्कित कर सकता हूँ !' तुलसीदास कहते हैं कि भरतने रामका ऐसा भाव देखा तो वे निराश हो बैठे और समझ गए कि हमारा भाग्य ही फूट गया है ॥ ३ ॥ (७२)

तुलसीदास कहते हैं कि भरत फिर भी कुछ कहना चाह रहे थे इसलिये संकोचके समुद्रमें विवेककी नौका बनाकर उसपर वचनरूपी पथिकोंको चढ़ाकर बुद्धि-रूपी केवटके सहारे पार करनेकी तैयारी करने लगे (संकोच दूर करके बुद्धिमानीके साथ विवेक-भर वचन कहने लगे) ॥ १ ॥ (वे कहने लगे—) 'मेरे बचपनसे ही आप मुझपर सदा स्नेह करते चले आ रहे हैं और मैंने भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' जो फिरिबो न बनै प्रभु ! तौ हौं आयसु पावौं ।
घर फेरिए लखन, लरिका हैं, नाथ - साथ हौं आवौं ॥ ३ ॥

रघुपति ! मोहिं सँग किन लीजै ।
बार-बार 'पुर जाहु' नाथ ! केहि कारन आयसु दीजै ॥ १ ॥
जद्यपि हौं अति अधम, कुटिल-मति, अपराधिनि - को जायो ।
प्रनतपाल, कोमल - सुभाव, जिय जानि, सरन तकि आयो ॥ २ ॥
जो मेरे तजि चरन आन गति, कहौं हृदय कछु राखी ।
तौ परिहरहु दयालु दीन - हित प्रभु अभिअंतर - साखी ॥ ३ ॥
तातें, नाथ ! कहौं मैं पुनि - पुनि, प्रभु पितु, मातु, गोसाईं ।
भजन - हीन नर-देह बृथा खर - स्वान - फेरु - की नाईं ॥ ४ ॥
बंधु - बचन सुनि स्रवन, नयन-राजीव नीर भरि आए ।
'तुलसिदास' प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए ॥ ५ ॥ (७४)

काहे मानत हानि हिये हौ ?
प्रीति, नीति, गुन, सील, धरम - कहँ, तुम अवलंब दिये हौ ॥ १ ॥

कभी आपके सम्मुख मुँह नहीं खोला । पर आज विधाताने एक ही झटकेमें मेरा सारा शील और स्नेह झकझोर डाला है ॥२॥ यदि आपका घर लौटना संभव न हो तो मुझे इतनी ही आज्ञा मिल जाय कि मुझसे अवस्थामें छोटे लक्ष्मण घर लौटा दिए जायँ और मैं आपके साथ चला चलूँ' ॥ ३ ॥ (७३)

'भाई राम ! आप मुझे ही साथ क्यों नहीं लिए चलते ? नाथ ! आप बार-बार मुझे आज्ञा क्यों दिए जा रहे हैं कि 'तुम अयोध्यापुरी लौट जाओ'—॥ १ ॥ यद्यपि मैं बड़ी ही अधम, कुटिल बुद्धिवाली और अपराधिनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, तो भी आपका स्वभाव तो बड़ा कोमल है, आप शरणागत-वत्सल हैं, यही मनमें समझकर मैं आपकी शरणमें चला आया हूँ ॥ २ ॥ यदि मुझे आपके चरण छोड़कर किसीका भरोसा हो या मैं मनमें कोई कपट रखकर आया होऊँ तो दीन-हित-कारी ! दयामय देव ! आप मुझे त्याग दें क्योंकि आप तो सबके अन्तःकरणोंके साक्षी हैं ॥ ३ ॥ नाथ ! आप ही हमारे पिता, माता और स्वामी हैं। इसीसे मैं बार-बार कह रहा हूँ क्योंकि यह मनुष्य-शरीर तो आपका भजन किए बिना गधे, कुत्ते और गीदड़के समान व्यर्थ ही है' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि भाई भरतके ये वचन कानोंसे सुनकर रामके कमलके समान नेत्रोंमें आँसू छलक आए और उन्होंने अत्यन्त कृपाके साथ भरतकी बाँह पकड़कर उन्हें हृदयसे खींच लगाया ॥५॥ (७४)

(राम कहने लगे—) 'देखो भैया ! तुम अपना जी इतना छोटा क्यों किए डाल रहे हो ? तुम्हींने तो प्रीति, नीति, गुण, शील और धर्म सबको सहारा दे रक्खा है (तुम्हारे कारण ये सब टिके हुए हैं) ॥ १ ॥ देखो भाई ! तुम्हें तो ये दिन (चौदह वर्ष) जाते जान भी न पड़ेंगे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तात ! जात जानिबे न ये दिन, करि प्रमान पितु - बानी।
अइहौं बेगि, धरहु जीरज उर, कठिन काल-गति जानी ॥ २ ॥
'तुलसिदास' अनुजहिं प्रबोधि प्रभु, चरन-पीठ निज दीन्हें।
मनहु सबनि-के प्रान - पाहरू, भरत सीस धरि लीन्हें ॥ ३ ॥ (७५)

बिनती भरत करत कर जोरे।
दीनबंधु ! दीनता दीन - की कबहुँ परै जिनि भोरे ॥ १ ॥
तुम - सम तुमहिं नाथ ! मोको, मोसे तुमको बहुतेरे।
इहै जानि, पहिचानि प्रीति, छमिए अब औगुन मेरे ॥ २ ॥
यों कहि, सीय - राम - पाँयनि परि, लखन लाइ उर लीन्हें।
पुलक सरीर, नीर भरि लोचन, कहत प्रेम - पन कीन्हें ॥ ३ ॥
'तुलसी' बीते अवधि प्रथम दिन, जौ रघुबीर न अइहौं।
तौ प्रभु - चरन - सरोज - सपथ, जीवत परिजनहिं न पइहौं ॥ ४ ॥ (७६)

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो।
जनमि कैकयी - कोखि कृपानिधि ! क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥ १ ॥
'भरत भूप, सिय-राम - लखन बन', सुनि सानंद सहौंगो।
पुर, परिजन, अवलोकि मातु सब, सुख - संतोष लहौंगो ॥ २ ॥

और मैं इतने समयमें ही पिताके वचन पूरे करके शीघ्र ही लौटा आता हूँ। तुम यह समझकर अपने हृदयमें धैर्य रक्खे रहो कि कालका यह कठिन भोग तो भोगना ही है' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि भाई (भरत)-को इस प्रकार समझाकर रामने उन्हें अपनी चरणपादुका उठा थमाई और भरतने वे पादुकाएँ अपने सिरपर ऐसे उठा धरीं मानो वे सबके प्राणोंके पहरेदार बनाकर भेजी जा रही हों ॥३॥ (७५)

भरत हाथ जोड़कर रामसे विनति करने लगे—'दीनबन्धु ! इस दीन (दुखी)-की दीनता कभी न भुलवाइएगा ॥ १ ॥ नाथ ! मेरे लिये आप-जैसे प्रभु केवल आप ही हैं, किन्तु आपके लिये तो मेरे जैसे न जाने कितने सेवक हैं। यह जानकर और मेरे मनकी प्रीति पहचानकर, आप मेरे अपराध और अवगुण क्षमा कर दीजिए' ॥२॥ ऐसा कहकर, राम-जानकीके पैरों पड़कर भरतने लक्ष्मणको अपने हृदयसे उठा लगाया। फिर पुलकित होकर डबडबाई आँखोंसे प्रेमभरी प्रतिज्ञा करके कहने लगे—॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं (वह प्रतिज्ञा यह थी—) 'राम ! वनवासकी अवधि समाप्त होते ही यदि आप पहले ही दिन अयोध्या नहीं लौट आए तो आपके चरणोंकी सौगन्ध है, आप अपने इस दासको जीवित न पायेंगे' ॥ ४ ॥ (७६)

'कृपानिधि राम ! आपकी आज्ञासे मैं अयोध्यामें अवश्य जा रहूँगा। कैकेयीकी कोखसे जन्म लेकर भला मैं चपलतासे बातें करनेका अधिकारी ही कहाँ रह गया हूँ ॥ १ ॥ 'भरत राजा हैं और राम, लक्ष्मण, जानकी वनमें हैं'—ये सब बातें अब मैं बैठा सुना करूँगा, बड़े आनन्दसे सहन करता रहूँगा तथा नगर, कुटुम्बी जन और माताओं को (दुखी) देखकर सुख और सन्तोष भी पाता रहूँगा (दुःख और कष्ट पाऊँगा) ॥ २ ॥ आपकी आज्ञा मानकर यह वनवासकी अवधि-तकके दिन

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रभु जानत जेहि भाँति अवधि - लौं, बचन पालि निबाहौंगो।
आगे-की बिनती 'तुलसी' तब, जब फिरि चरन गहौंगो॥ ३॥ (७७)

प्रभु-सों ढीठो बहुत दई है।
कीबी छमा नाथ आरति - तें, कुजुगुति कही नई है॥ १॥
यों कहि, बार - बार पाँयनि परि, पाँवरि पुलकि लई है।
अपनो अदिन देखि हौं डरपत, जेहि विष - बेलि बई है॥ २॥
आए सदा सुधारि गोसाईं, जन-तें बिगरि गई है।
थके बचन पैरत सनेह - सरि, पच्यो मनो घोर घई है॥ ३॥
चित्रकूट तेहि समय सबनि - की, बुद्धि, बिषाद हई है।
'तुलसी' राम - भरत-के बिछुरत, सिला सप्रेम भई है॥ ४॥ (७८)

जब-तें चित्रकूट - तें आए।
नंदिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परन-कुटी करि छाए॥ १॥
अजिन बसन, फल असन,जटा धरि, रहत अवधि चित दीन्हें।
प्रभु-पद - प्रेम - नेम - व्रत निरखत, मुनिन नमित मुख कीन्हें॥ २॥
सिंहासन - पर - पूजि पादुका, बारहिं बार जोहारे।
प्रभु - अनुराग- माँगि आयसु, पुरजन सब काज सँवारे॥ ३॥

मुझे जैसे काटने पड़ेंगे वह तो आप जानते ही हैं। अब आगेकी विनति उसी समय करूँगा जब ये चरण फिर (वनवास लौटनेपर) स्पर्श करूँगा॥ ३॥ (७७)

'इस समय मैंने आपके सामने बहुत ढिठाई की है। किन्तु नाथ! अपने मनकी व्यथाके कारण यदि मेरे मुँहसे कोई अनुचित बात निकल गई हो उसे आप क्षमा कीजिएगा'॥ १॥ यह कहकर भरतने बार-बार रामके चरणोंमें पड़-पड़कर पुलकित होकर पादुका उठा ली और कहा—'मैं तो अपना दुर्दिन (दुर्भाग्य) देखकर डरा जा रहा हूँ, जिसने इस समय यह सारी विषकी बेल ला बोई है॥ २॥ प्रभो! जब-जब इस दास (मुझ)-से कुछ दोष हुआ है तब-तब सदा आप ही उसे सुधारते रहे हैं।' यह कहकर भरतकी वाणी ऐसे रुक गई मानो स्नेहकी सरितामें तैरते-तैरते वे किसी भयानक भँवरमें जा फँसे हों॥ ३॥ उस समय चित्रकूटमें सभीका मन दुखी हो चला। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय राम और भरतका वियोग होते देखकर वहाँकी शिलाएँ भी प्रेममें मग्न हो उठीं (रो उठीं)॥ ४॥ (७८)

भरत जबसे चित्रकूटसे लौटकर अयोध्या आए हैं तबसे नन्दिग्राममें धरती खोदकर, उसपर कुश बिछाकर और पत्तोंकी कुटी बनाकर वहीं रहने लगे हैं॥ १॥ वहाँ वे मृगचर्म ओढ़े हुए, फलपर दिन काटते हुए, सिरपर जटा बाँधे, अवधि (रामके लौटनेके दिन)-में चित्त लगाए हुए हैं। रामके चरणोंमें भरतका प्रेम, नियम और व्रत देखकर मुनियोंने भी लज्जावश अपना मस्तक नीचा कर लिया है (कि हम भी इतना प्रेम, नियम और व्रत नहीं निभा पा सके हैं)॥ २॥ राज-सिंहासनपर रामकी चरण-पादुका रखकर भरत उनकी पूजा करते और बार-बार उनकी वन्दना करते हैं और रामके प्रेममें भर-कर, उनकी आज्ञा लेकर पुरजनोंके सब काम देखते चलते हैं॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' ज्यौं-ज्यौं घटत तेज तनु, त्यौं-त्यौं प्रीति अधिकाई।
भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ, भुवन भरत-से भाई ॥ ४ ॥ (७९)

राग रामकली

राखी भगति-भलाई भली भाँति भरत। स्वारथ-परमारथ-पथी जय-जय जग करत ॥१॥
जो व्रत मुनिवरनि कठिन मानस आचरत। सो व्रत लिए चातक-ज्यों, सुनत पाप हरत ॥२॥
सिंहासन सुभग राम-चरन-पीठ धरत। चालत सब राज-काज, आयसु अनुसरत ॥३॥
आपु अबध, बिपिन बंधु, सोच जरनि जरत। 'तुलसी' सम-विषम, सुगम-अगम-लखि न परत ४।८०

मोहिं भावति, कहि आवति नहिं, भरतजू-की रहनि।
सजल नयन, सिथिल बयन, प्रभु-गुन-गन कहनि ॥ १ ॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम-गरुअ गहनि। दिन-दिन पन-प्रेम-नेम निरुपधि निरबहनि ॥२॥
सीता-रघुनाथ-लखन-बिरह-पीर सहनि। 'तुलसी' तजि उभय लोक राम-चरन-चहनि ॥३॥ (८१)

जानी है संकर-हनुमान-लखन-भरत राम-भगति। कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति १
लहत सकृत चहत सकल, जुग-जुग जगमगति। राम-प्रेम-पथ-तें कबहुँ डोलति, नहिं डगति ॥२॥

ज्यों-ज्यों उनके शरीरका तेज घटता जाता है त्यों-त्यों राममें उनकी प्रीति बढ़ती जाती है। संसारमें भरत-जैसा भाई न कभी कोई हुआ है, न है और न भविष्यमें ही कभी होगा ॥ ४ ॥ (७९)

भरत ही एक ऐसे हैं जिन्होंने भक्ति और लोक-कल्याण दोनोंका भली-भाँति एक-साथ पालन किया है। वे स्वार्थ और परमार्थ दोनों-का साथ-साथ पालन करते रहते हैं इसीलिये सारा संसार उनकी जय-जयकार करता रहता है ॥ १ ॥ जिस व्रतका पालन मुनि भी नहीं कर पा सकते हैं, उसका निर्वाह उन्होंने चातकके समान कर दिखाया। उनके उस आचरणके तो श्रवण मात्रसे सब पाप दूर हो भागते हैं ॥ २ ॥ उन्होंने रामकी चरण-पादुका सुन्दर सिंहासनपर ला पधराई और उनकी ही आज्ञा मान करके वे सारा राज-काज चलाने लगे ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि वे निरन्तर इसी शोकमें जले जा रहे थे कि 'मैं स्वयं तो अयोध्यामें डटा बैठा हूँ और भाई वनमें हैं।' इस प्रकार न तो भरतको (अयोध्याकी) समता (सुख-संपत्ति) सुगम (हितकर) लगती है न रामको (वनकी) विषमता (व्यथा) ही अगम (कष्टकर) लगती है ॥ ४ ॥ (८०)

भरतका रहन-सहन मुझे बड़ा अच्छा तो लगता है पर कहते नहीं बनता। उनका वह सजल नेत्र और गद्‌गद वाणीसे प्रभुके गुण-गान करना, ॥ १ ॥ भोजन, वस्त्र, निवास और शयनके सम्बन्धमें कठोर नियम पालन करना, दिनों दिन निश्चल रूपसे प्रतिज्ञा, प्रेम और नियम निभाना, ॥२॥ सीता, राम और लक्ष्मणके वियोगकी व्यथा सहते जाना तथा लोक और परलोक दोनोंको त्यागकर केवल रामके चरणोंमें पड़े रहनेकी इच्छा करना, ये सभी बातें अवर्णनीय हैं ॥ ३ ॥ (८१)

रामकी भक्ति यदि कोई जान पाया है तो शंकर, हनुमान्, भरत और लक्ष्मण ही जान पाए हैं। यह भक्ति कहनेमें भी बहुत सुगम है और सुननेमें भी बड़ी मीठी जान पड़ती है किन्तु करनेमें बड़ी कठिन है ॥ १ ॥ ऐसी भक्ति चाहते तो सब हैं, पर प्राप्त कोई बिरले ही कर पाते हैं, फिर भी यह (भक्ति) युग-युगमें जगमगाती ही रहती है। यह न तो कभी रामके प्रेमके मार्गसे विलग ही होती

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रिधि, सिधि, बिधि चारि सुगति, जा बिनु गति अगति।
'तुलसी' तेहि सनमुख - बिनु बिषय - ठगिनि ठगति ॥ ३ ॥ (८२)

राग गौरी

कैकयी करी धौं चतुराई कौन ?
राम-लखन-सिय बनहि पठाए, पति पठए सुरभौन ॥ १ ॥
कहा भलो धौं भयो भरत - को, लगे तरुन - तन दौन।
पुरबासिन - के नयन नीर - बिनु, कबहुँ - त देखति हौं न ॥ २ ॥
कौसल्या दिन - राति बिसूरति, बैठि मनहिं मन मौन।
'तुलसी' उचित न होइ रोइबो, प्रान गए सँग जौ न ॥ ३ ॥ (८३)

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहु - तें, ह्याँ कह जात बह्यो ॥ १ ॥
पति सुरपुर, सिय - राम - लखन बन, मुनि-ब्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर, मसान - पावक - ज्यों, मरिबोइ मृतक दह्यो ॥ २ ॥
मेरो हिय कठोर करिबे - कहँ, बिधि कहुँ कुलिस लह्यो।
'तुलसी' बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो ॥ ३ ॥ (८४)

न कभी डगमगाती ही है ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस भक्तिके बिना ऋद्धि, सिद्धि और चारों प्रकारकी (सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य और सामीप्य) मुक्ति प्राप्त हो जानेपर भी निरर्थक ही हैं, उस भक्तिको साधे बिना माया ठगिनी ठगती ही चली जाती है ॥ ३ ॥ (८२)

(कौशल्या कहती हैं—) 'भला कैकेयीने यह कौन-सी बुद्धिमानीका काम किया कि राम, लक्ष्मण और सीताको वन भेज दिया और पतिको सुरलोक भेज पहुँचाया ॥ १ ॥ बताओ, भरत बेचारेको भी इससे क्या लाभ हुआ ? इस चढ़ती जवानीमें ही उसके शरीरमें (रामके विरहकी चिन्ताकी) आग आ लगी। इसके अतिरिक्त, पुरवासियोंके नेत्र भी हमें कभी ऐसे नहीं दिखाई दिए कि उनमें आँसू न भरे हों' ॥ २ ॥ इस प्रकार कौशल्या दिनरात चुपचाप बैठी मन ही मन बिलखती रहती हैं कि जब हमारे प्राण रामके साथ चले नहीं गए तो व्यर्थ रोने-धोनेमें क्या धरा है ॥ ३ ॥ (८३)

(कौशल्या बैठी सोच रही हैं—) 'मेरे हाथ तो हाथ मलना ही लगा है। मेरे बिना यहाँ क्या बिगड़ा जा रहा था कि मैं चित्रकूटमें ही रामके साथ नहीं रह गई ॥१॥ पति सुरलोक (स्वर्ग) चले गए, राम, लक्ष्मण और सीता वनमें जा बसे और भरत भी मुनियोंका-सा व्रत धारण किए बैठे हैं, किन्तु मैं श्मशानकी अशुभ अग्निके समान (विधवा होकर) घरमें पड़ी रहकर मृत्यु-रूपी मृतकको ही जला बैठी हूँ (अब मुझे मृत्यु भी नहीं आती) ॥ २ ॥ क्या विधाताको मेरा ही हृदय कठोर बनानेके लिये वज्र मिल गया था (मेरा हृदय वज्रसे भी अधिक कठोर है) कि मैं अपने पुत्रको वनमें छोड़कर (स्वयं घर) लौट आई। इससे बढ़कर कठोर कोई क्या बात कही जा सकती है ? ॥ ३ ॥ (८४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग सोरठ

हौं तो समुझि रही अपनो सो।
राम-लखन सिय-को सुख मो-कहँ, भयो, सखी ! सपनो-सो ॥ १ ॥
जिनके बिरह - बिषाद बँटावन, खग - मृग जीव दुखारी।
मोहिं कहा सजनी समुझावति, हौं तिनकी महतारी ॥ २ ॥
भरत-दसा सुनि, सुमिरि भूप - गति, देखि दीन पुर - बासी।
'तुलसी', 'राम' कहति हौं सकुचति, ह्वै है जग उपहाँसी ॥ ३ ॥ (८५)

आली ! हौं इनहिं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि - भरि पति - को हित, मातु - हेतु सुत जैसे ॥ १ ॥
बार-बार हिहिनात हेरि उत, जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाइ लिए बारे - तें, करुनामय सुत प्यारे ॥ २ ॥
लोचन सजल, सदा सोवत - से, खान - पान बिसराए।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत, राम - सुरति - उर आए ॥ ३ ॥
'तुलसी' प्रभुके बिरह बधिक, हठि राजहंस - से जोरे।
ऐसे दुखित देखि हौं जीवति, राम - लखन - के घोरे ॥ ४ ॥ (८६)

(कौशल्या कहती हैं—) 'देखो सखी ! मैं तो अपनी बात बताती हूँ कि मेरे लिये तो राम, लक्ष्मण और सीताका सुख स्वप्नके समान हो गया है ॥ १ ॥ सखी ! जिनके विरहका दुःख बँटानेके लिये ये पशु-पक्षी आदि जीव-तक दुखी हुए जा रहे हैं, उनके संबंधमें मुझे क्या समझाती हो ? मैं तो उनकी माता ही हूँ ॥ २ ॥ भरतकी दशा सुनकर, महाराजकी गतिका स्मरण करके और पुरवासियोंकी दीन दशा देखकर मैं तो 'राम' कहनेमें भी सकुचाती हूँ क्योंकि इससे संसार मेरी हँसी ही उड़ावेगा (कि 'राम'के विरहमें भरत घरबार छोड़कर नन्दिग्राममें कुटिया छाए पड़े हैं, दशरथने प्राण-तक दे डाले, पुरवासी दिनरात रोते रहते हैं और यह राजभवनमें बैठी बातें बना रही है। रामसे स्नेह होता तो अबतक प्राण न दे डालती ?) ॥ ३ ॥' (८५)

'बता सखी ! इन घोड़ोंको मैं कैसे समझाऊँ ? जैसे माताके लिये पुत्र व्याकुल रहता है वैसे ही इन घोड़ोंके हृदयमें बार-बार अपने स्वामी रामके लिये प्रीति उमड़ी पड़ती है। जहाँ कोई द्वारपर बोला कि ये उसी ओर देखकर बार-बार हिनहिनाने लगते हैं क्योंकि इन्हें मेरे दयालु प्यारे पुत्रोंने बचपनसे ही बहुत हिला-मिला रक्खा था ॥२॥ इनकी आँखोंसे आँसू बहते रहते हैं। ये खाना-पीना भुलाकर सदा सोते हुएसे जान पड़ते हैं। ये रामका नाम सुनते ही चौंक उठते हैं और हृदयमें उनका स्मरण आते ही शोक-मग्न हो उठते हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'हाय ! राम-लक्ष्मणके इन राजहंसके जोड़ेके समान घोड़ोंको प्रभुके विरह-रूपी बधिकके हाथों हठपूर्वक पीड़ा दिए जाते देखकर भी मैं जीए चली जा रही हूँ (इन घोड़ोंको राम-लक्ष्मणके विरहमें पीड़ित देखकर भी मैं जी रही हूँ) ॥ ४ ॥ (८६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राघौ ! एक बार फिरि आवौ ।
ये बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहिं सिधावौ ॥ १ ॥
जे पय प्याइ, पोषि कर - पंकज, बार - बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाडिले ! ते अब निपट बिसारे ॥ २ ॥
भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहुँ कमल हिम - मारे ॥ ३ ॥
सुनहु पथिक ! जौ राम मिलहिं बन, कहियो मातु-सँदेसो ।
'तुलसी' मोहिं और सबहिन - तें, इनको बड़ो अँदेसो ॥ ४ ॥ (८७)

राग केदारा

काहु सों समाचार अस पाए ।
चित्रकूट-तें राम - लखन - सिय, सुनियत अनत सिधाए ॥ १ ॥
सैल, सरित, निर्झर, बन, मुनि - थल, देखि-देखि सब आए ।
कहत, सुनत, सुमिरत सुखदायक, मानस सुगम, सुहाए ॥ २ ॥
बढ़ि अवलंब, बाम - बिधि बिघटित, विषम बिषाद बढ़ाए ।
सिरिस - सुमन - सुकुमार मनोहर, बालक बिंध्य चढ़ाए ॥ ३ ॥
अवध सकल नर-नारि बिकल अति, अकनि बचन अनभाए ।
'तुलसी' राम - बियोग - सोग - बस, समुझत नहिं समुझाए ॥ ४ ॥ (८८)

'राम ! तुम केवल एक बार यहाँ लौट आओ और अपने इन प्यारे घोड़ोंको देखकर फिर चाहो तो वन चले जाना ॥ १ ॥ मेरे लाड़ले राम ! जिन घोड़ोंको दूध पिलाकर और अपने कर-कमलोंसे थप-थपाकर तुम बार-बार चुमकारते रहे, उन्हें ऐसे एकाएक भूल बैठोगे तो ये कैसे जीवित रह पावेंगे ? ॥ २ ॥ यद्यपि भरत भी इन्हें तुम्हारे अत्यन्त प्रिय जानकर इनकी सौगुनी सँभाल रखते हैं फिर भी पाला मारे हुए कमलके समान ये दिनों-दिन दुबले हुए चले जा रहे हैं ॥ ३ ॥ देखो पथिक ! सुनो यदि तुम्हें वनमें कहीं राम मिल जायँ तो तुम उनसे माताका यही सँदेसा कह देना कि मुझे सबसे बढ़कर (अपनी नहीं) इन घोड़ोंकी बड़ी चिन्ता हो रही है' ॥ ४ ॥ (८७)

किसीसे यह समाचार मिला है कि सुनते हैं राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूटसे कहीं अन्यत्र चल दिए ॥ १ ॥ वे कहते थे कि वहाँके पर्वत, नदी, झरने, वन और मुनियोंके निवास-स्थान, ये सब हम देख आए हैं । उन सब (स्थलों)-का वर्णन करने, उनका वर्णन सुनने और उन्हें स्मरण करनेमें भी बड़ा सुख मिलता है और मनको भी वे बड़े सुगम (सरलतासे समझमें आ सकनेवाले) और अच्छे जान पड़ते हैं ॥ २ ॥ कोई दूसरा नागरिक कहने लगा कि वैरी विधाताने 'युवराजपद'-जैसा बड़ा सहारा छीनकर यह बड़ी विपत्ति ला खड़ी कर दी कि जो मनोहर बालक (राम, लक्ष्मण, सीता) सिरिसके फूलके समान अत्यन्त सुकुमार थे, उन्हें अब विन्ध्याचलपर जाकर चढ़ना पड़ रहा है ॥ ३ ॥ उसके ऐसे कष्टकारी वचन सुनकर अयोध्याके सब नर-नारी अत्यन्त विकल हो उठे । तुलसीदास कहते हैं कि उस समय वे रामके विरहकी व्यथासे ऐसे व्याकुल थे कि लाख समझानेपर भी समझकर नहीं दे रहे थे ॥ ४ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनी मैं, सखि ! मंगल चाह सुहाई ।
सुभ पत्रिका निषादराज - की, आज भरत - पहँ आई ॥ १ ॥
कुँवर सो कुसल-छेम, अलि ! तेहि पल, कुलगुरु-कहँ पहुँचाई ।
गुरु कृपालु संभ्रम पुर घर-घर, सादर सबहिं सुनाई ॥ २ ॥
बधि बिराध, सुर-साधु सुखी करि, रिषि - सिख - आसिष पाई ।
कुंभज - सिष्य - समेत, संग सिय, मुदित चले दोउ भाई ॥ ३ ॥
बीच बिंध्य - रेवा सुपास थल, बसे परन - गृह छाई ।
पंथ - कथा रघुनाथ पथिक-की, 'तुलसिदास' सुनि गाई ॥ ४ ॥(८९) [१९९]

॥ इति श्रीरामगीतावल्यां अयोध्याकांडः समाप्तः ॥

'अरी सखी ! मैंने आज एक बड़ा मंगलमय समाचार सुना है । आज भरतके पास निषाद-राजकी एक शुभ पत्रिका आई है ॥ १ ॥ आली ! वह कुशल-क्षेमकी पत्रिका कुँवर भरतने तुरन्त कुलगुरुके पास ले जा पहुँचाई । कृपालु गुरुने वह पत्रिका बड़े हर्ष और आदरसे नगरमें सबको घर-घर जा पढ़ सुनाई ॥ २ ॥ (उसमें लिखा है कि—) 'दोनों भाई (राम-लक्ष्मण), विराधका वध करके, देवता और साधु पुरुषोंको आनन्दित करते हुए, ऋषियोंसे उपदेश और आशीर्वाद पाकर अगस्त्य ऋषिके शिष्य सुतीक्ष्णके साथ सीताके सहित आनन्दपूर्वक आगे चले गए हैं ॥ ३ ॥ और इस समय विन्ध्याचल और रेवा (नर्मदा) नदीके बीच एक सुखद स्थानपर पर्णकुटी बनाकर बसे हुए हैं ।' तुलसीदासने भी बटोही रामकी यह पंथ-कथा सुनकर (गीत बनाकर) गा सुनाई है ॥ ४ ॥ (८९) [१९९]

॥ श्रीरामगीतावलीमें अयोध्याकांड पूरा हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अरण्यकांड

राम मलार

देखे राम पथिक, नाचत मुदित मोर।
मानत, सतड़ित मनहु ललित घन, धनु सुर - धनु, गरजनि टंकोर ॥ १ ॥
कँपि कलाप बर बरहि फिरावत, गावत कल कोकिल - किसोर।
जहँ - जहँ प्रभु बिचरत तहँ - तहँ सुख, दंडकबन कौतुक न थोर ॥ २ ॥
सघन छाँह - तम, रुचिर - रजनि भ्रम, बदन - चंद चितवत चकोर।
'तुलसी' मुनि खग-मृगनि सराहत, भए सुकृत सब इनकी ओर ॥ ३ ॥ (१)

राग कल्याण

सुभग सरासन - सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥ १ ॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत, कोटि नट, सो तृन तोरे।
स्यामल तन स्रम - कन राजत ज्यों, नव घन सुधा - सरोवर खोरे ॥ २ ॥

मार्गमें चलते हुए रामको देखकर मोर आनन्दसे नाच उठते हैं। वे सीता और रामको देखकर समझते हैं मानो बिजलीके साथ सुन्दर मेघ हो। उनके धनुषको इन्द्रधनुष और उसके टंकारको वे मेघका गर्जन समझे जा रहे हैं ॥ १ ॥ सुन्दर मोर अपनी पूँछ हिलाते हुए नाच रहे हैं और जवान कोयल सुरीले स्वरमें गा रहे हैं। राम जिधर भी निकल जाते हैं, उधर ही आनन्द बरस पड़ता है। इस प्रकार इस दण्डक वनमें भी कुछ कम कुतूहल नहीं है (यहाँ राम-जानकीके आगमनसे सारे वनमें आनन्द छा गया है) ॥ २ ॥ घने वृक्षोंकी छायाके अन्धकारमें भी (रामके मुखके प्रकाशसे) चाँदनी रातका भ्रम हो जानेसे चकोर भी रामके मुखचन्द्रकी ओर देखने लगते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस समय वहाँके मुनि भी इन पशु-पक्षियोंकी सराहना करते हुए कहते हैं कि सारे सुकृत (पुण्य) इन्हींके साथ हैं (सब पुण्योंका फल ये ही लूटे ले रहे हैं) ॥३॥ (१)

राम अपने सुन्दर धनुषपर बाण चढ़ाकर वनमें आखेट करते फिर रहे हैं। उनकी वह मधुर मूर्त्ति मेरे मनमें आ बसी है ॥ १ ॥ उनकी कमरमें पीताम्बर और उसमें सुन्दर चार बाण खुँसे हुए हैं। उनकी चाल देख-देखकर करोड़ों नृत्यकार मुग्ध हो-होकर तृण तोड़ते हैं (कि कहीं उन्हें कुडीठ न लग जाय)। रामके साँवले शरीरपर पसीनेकी बूँदें ऐसी शोभा दे रही हैं मानो कोई नया बादल अमृतके सरोवरमें डुबकी लगाकर आ निकला हो ॥ २ ॥ रामके (ऊँचे)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहिं कंठ - रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख, देत परम सुख, लेत सरद-ससिकी छबि छोरे॥ ३॥
जटा-मुकुट सिर सारस - नयननि, गौं हैं तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चलो चहुँ दिसि मिति फोरे॥ ४॥
चितवत चकित कुरंग - कुरंगिनि, सब भे मगन मदन - के भोरे।
'तुलसिदास' प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेम - बस थोरे॥ ५॥ (२)

राग सोरठ

बैठे राम - लखन अरु सीता।
पंचबटी बर परन - कुटी - तर, कह कछु कथा पुनीता॥ १॥
कपट-कुरंग कनक-मनि-मय लखि, प्रिय-सों कह हँसि बाला।
पाय पालिबे - जोग मंजु मृग, मारेहु मंजुल छाला॥ २॥
प्रिया - बचन सुनि बिहँसि प्रेम-बस, गँवहिं चाप-सर लीन्हें।
चल्यो भाजि फिरि-फिरि चितवत, मुनि-मख-रखवारे चीन्हें॥ ३॥
सोहत मधुर मनोहर मूरति, हेम - हरिन - के पाछे।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि, बसै तुलसि - उर आछे॥ ४॥ (३)

कंधे बड़े सुन्दर हैं, भुजाएँ बड़ी मनोहर हैं। उनकी चौड़ी छाती और कंठकी रेखाएँ तो चित्त चुराए ले रही हैं। उनका मुख देखते ही ऐसा सुख मिलता है मानो (वह मुख) शरत्के चन्द्रकी छबि छीने ले रहा हो॥३॥ रामके सिरपर जटाओंका मुकुट बँधा है और जिस समय वे अपनी भौं हें सिकोड़कर कमल-नेत्रों से अपने निशाने (लक्ष्य)-की ओर देखते हैं, उस समयकी उनकी अपार शोभा इतनी बढ़ जाती है कि सारे वनमें भी नहीं समा पाती। वह मर्यादा छोड़कर मानो चारों दिशाओं में उमड़कर जा फैलती है॥ ४॥ उस समय मृग और मृगी भी चकित होकर उन्हींकी ओर ऐसे देखते रह जाते हैं मानो सबके सब उन्हें कामदेव समझकर उनपर मोहित हो चले हों। तुलसीदास कहते हैं कि राम उनपर बाण नहीं छोड़ते क्यों कि वे स्वभावसे ही थोड़ा-सा प्रेम करनेपर भी उनके अपने हो रहते हैं॥ ५॥ (२)

पंचवटीकी सुन्दर पर्णकुटीमें राम, लक्ष्मण और सीता बैठे हुए हैं और आपसमें कुछ पवित्र कथाएँ कह-सुन रहे हैं॥ १॥ इसी समय सीताने एक मणिमय सुवर्णका मृग देखा और हँसकर अपने प्यारे स्वामी रामसे कहा कि—'यह सुन्दर मृग यदि पकड़ सका जाय तो पाला जा सकता है और यदि मारा भी गया तो इसकी खाल बहुत सुन्दर होगी॥ २॥ अपनी प्रिया सीताके ये वचन सुनकर, उसके प्रेमके कारण रामने धीरेसे धनुष-बाण उठा लिया। उन्हें पीछा करते देखकर वह मृग बार-बार पीछेको मुड़-मुड़कर देखता हुआ भाग चला। उसने (विश्वामित्र) मुनिके यज्ञकी रक्षा करनेवाले रामको तत्काल पहचान लिया (कि ये वे ही राम हैं जिन्होंने विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेके समय मुझे बिना फलका ऐसा बाण मारा था कि मैं ढुलमुली खाता यहाँ आ पड़ा था)॥ ३॥ उस सुवर्ण-मय मृगका पीछा करते हुए रामकी वह मधुर मनोहर मूर्त्ति

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग कल्याण

कर सर - धनु, कटि रुचिर निषंग ।
प्रिया - प्रीति - प्रेरित बन-बीथिन्ह, बिचरत कपट - कनक - मृग संग ॥ १ ॥
भुज बिसाल, कमनीय कंध - उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग ।
मनु मुकुता-मनि मरकत-गिरि-पर, लसत ललित रबि - किरनि प्रसंग ॥ २ ॥
नलिन नयन, सिर जटा-मुकुट-बिच, सुमन-माल, मनु सिव-सिर गंग ।
'तुलसिदास' ऐसी मूरति बलि, छबि बिलोकि लजे अमित अनंग ॥ ३ ॥ (४)

राग केदारा

राघव ! भावति मोहिं बिपिन - की बीथिन्ह धवनि ।
अरुन-कंज-बरन चरन सोक-हरन, अंकुस-कुलिस-केतु - अंकित अवनि ॥ १ ॥
सुंदर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेरवनि ।
कनक-कुरंग संग साजे कर सर - चाप, राजिव-नयन इत-उत चितवनि ॥ २ ॥
सोहत सिर मुकुट-जटा-पटल, निकर-सुमन, लता - सहित, रची बनवनि ।
तैसेइ स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख, तैसिए ललित भृकुटिन-की नवनि ॥ ३ ॥

बड़ी सुहावनी और प्यारी लगती है। उस समय रामका दौड़ना, झुकना, देखना और थककर खड़ा हो रहना सब तुलसीदासके हृदयमें भली भाँति अंकित हो गया है ॥ ४ ॥ (३)

रामके हाथोंमें धनुष-बाण है और कमरमें मनोहर तरकश है। अपनी प्रिया सीताके प्रेमसे प्रेरित होकर वे वनके मार्गमें कपटी सुवर्ण-मृग (मारीच)-के पीछे-पीछे दौड़े चले जा रहे हैं ॥ १ ॥ उनकी भुजाएँ विशाल हैं, कन्धे और वक्षःस्थल सुन्दर हैं तथा साँवले शरीरपर पसीनेकी बूँदें ऐसी शोभा दे रही हैं मानो नीलमके पर्वतपर सुन्दर सूर्य-किरणोंका संग पाकर मोती चमक उठे हों ॥ २ ॥ प्रभुके नेत्र कमलके समान हैं, सिरपर जटाओंका मुकुट है और उसपर बीचमें फूलोंकी माला ऐसी लिपटी हुई है जैसे शिवजीके मस्तकपर गंगा विराजमान हों । उनकी उस मूर्त्तिपर तुलसीदास बलिहारी जाता है जिसकी छबि देखकर अगणित कामदेव भी लज्जित हो बैठते हैं ॥ ३ ॥ (४)

राम ! वनकी पगडंडियोंमें आपका दौड़ना मुझे बड़ा प्यारा लगता है, जिससे वहाँकी भूमि आपके शोकहारी लाल कमलोंके समान चरणोंके अंकुश, वज्र और ध्वजा आदि चिह्नोंकी छापसे अंकित होती चली जा रही है ॥ १ ॥ अत्यन्त सुन्दर साँवले शरीरपर रंगीन पीताम्बर कस लेना, कमरमें तरकश और पटुका लपेट लेना, सुवर्ण मृगके पीछे-पीछे हाथोंमें धनुष-बाण लिए दौड़ना, कमलके समान नयनोंसे इधर-उधर देखना, ॥२॥ सिरपर पुष्प और लताओंसे सजे हुए जटा-मुकुटकी रचना करना, ये सब काम बड़े ही मनोहर लगते हैं । इसी प्रकार आपके मनोहर मुखारविन्दपर पसीनेकी बूँदें शोभा दे रही हैं और वैसा ही सुन्दर मनोहर भृकुटियोंका झुकाव भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखत खग-निकर, मृग रवनिन-जुत, थकित बिसारि जहाँ-तहाँ-की भँवनि।
हरि-दरसन-फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि ॥ ४ ॥
जिनके मन मगन भए हैं रस सगुन, तिनके लेखे अगुन मुकुति कवनि।
स्रवन सुख करनि, भव-सरिता तरनि, गावत 'तुलसिदास' कीरति पवनि ॥ ५ ॥ (५)

राग सोरठ

रघुबर दूरि जाइ मृग मार्‍यो।
लखन पुकारि, राम हरुए कहि, मरतहु बैर सँभार्‍यो ॥ १ ॥
सुनहु तात! कोउ तुमहिं पुकारत, प्राननाथ-की नाईं।
कह्यो लखन, हत्यो हरिन, कोपि सिय, हठि पठयो बरियाईं ॥ २ ॥
बंधु बिलोकि कहत तुलसी-प्रभु, 'भाई! भली न कीन्हीं।
मेरे जान जानकी काहू, खल छल करि हरि लीन्हीं' ॥ ३ ॥ (६)

आरत बचन कहति बैदेही।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गे, मृग-सँग परम सनेही' ॥ १ ॥
कहि कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात! छमा सो कीजै।
देखि बधिक-बस राज-मरालिनि, लखनलाल! छिनि लीजै ॥ २ ॥

है ॥ ३ ॥ उस समय वहाँके पक्षी, हरिणियाँ और हरिण सब प्रभुकी सुन्दरता देख-देखकर खड़ेके खड़े रह जाते हैं और जहाँ-तहाँ घूमना छोड़ देते हैं। इन्हें प्रभुके दर्शनोंके कारण ज्ञान तो मिल ही गया है। अब ये उस (निष्काम) भक्तिकी याचना कर रहे हैं जो मुनिजन चाहते रहते हैं ॥४॥ जिनके चित्त रामके सगुण-स्वरूपके रसमें डूबे हुए हैं, उनके लिये निर्गुण मुक्तिका महत्त्व ही क्या रह जाता है। तुलसीदास तो प्रभुकी उस पवित्र कीर्त्तिका ही गान किया करता है जो कानोंको सुख देती और भव-सरितासे तार उबारती है ॥ ५ ॥ (५)

रामने दूर जाकर उस मृगकी मार ही डाला। (मरते समय) वह मृग पहले 'लक्ष्मण' कहकर चिल्लाया, फिर धीरेसे 'राम' कहकर मरते समय भी वह मृग (मारीच) अपनी पुरानी शत्रुता नहीं भुला पाया ॥ १ ॥ (तब सीताने लक्ष्मणसे कहा—) 'देखो तात! तुम्हें कोई प्राणनाथ रामके स्वरमें पुकार रहा है।' लक्ष्मणने कहा—'(चिन्ता न कीजिए) वह मृग मारा गया है।' तब सीता बिगड़ खड़ी हुईं और उन्होंने हठ करके लक्ष्मणको भेज ही दिया। भाई लक्ष्मणको आते देखकर तुलसीदासके प्रभु राम कहने लगे—'भैया! यह तो तुमने अच्छा काम नहीं किया। मुझे तो ऐसा लगता है कि कोई दुष्ट छल करके सीताको हर ले भागा है' ॥ ३ ॥ (६)

(रावण जब सीताको छलसे हरे ले जा रहा था उस समय) विलाप करती हुई सीता बिखल उठीं—'हाय! मेरे परम प्रिय राम हरिणके पीछे न जाने कितनी दूर निकल गए ॥१॥ हा लक्ष्मण! मैंने तुम्हें कितने कठोर वचन कह डाले और मैं तुम्हारी खींची हुई रेखा भी लाँघकर निकल गई। तात! तुम मुझे क्षमा कर दो और इस समय इस बधिकके हाथसे इस राजहंसिनीको

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बन-देवनि सिय कहन कहति यों, छल करि नीच हरी हौं।
गोमर-कर सुर-धेनु, नाथ ! ज्यौं, त्यौं पर - हाथ परी हौं ॥ ३ ॥
'तुलसिदास' रघुनाथ - नाम - धुनि, अकनि गीध धुकि धायो।
'पुत्रि-पुत्रि ! जनि डरहि, न जइहै नीच, मीच हौं आयो' ॥ ४ ॥ (७)

फिरत न, बारहिं बार पचाऱ्यो।
चपरि चोंच - चंगुल हय हति, रथ खंड - खंड करि डाऱ्यो ॥ १ ॥
बिरथ बिकल किय, छीनि लीन्हि सिय, घन घायनि अकुलाऱ्यौ।
तब असि काढ़ि, काटि पर पाँवर, लै प्रभु-प्रिया पराऱ्यौ ॥ २ ॥
राम - काज खगराज आज लऱ्यो, जियत न जानकि त्यागी।
'तुलसिदास' सुर - सिद्ध सराहत, धन्य बिहँग बड़भागी ॥ ३ ॥ (८)

राग गौरी

हेम - को हरिन हनि फिरे रघुकुल - मनि, लखन ललित कर लिए मृगछाल।
आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले, फरके बाम बाहु, लोचन बिसाल ॥ १ ॥
सरित-जल मलिन, सरनि सूखे नलिन, अलि न गुंजत, कल कूजैं न मराल।
कोलिनि-कोल-किरात, जहाँ तहाँ बिलखात, बन न बिलोकि जात, खग-मृग-माल ॥ २ ॥

छीन छुड़ाओ ॥२॥ फिर वन-देवताओंसे वे इस प्रकार संदेश कहने लगीं—(तुम रामसे कहना कि) 'मुझे नीच रावण छल करके हरे ले जा रहा है। नाथ ! जैसे कसाईके हाथ कामधेनु पड़ जाय, वैसे ही इस समय मैं शत्रुके हाथ जा पड़ी हूँ' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके नामकी पुकार सुनकर गृध्रराज जटायु क्रोध करके झपट पड़ा और बोला—'डरो मत पुत्री ! मैं इसका काल बनकर आ पहुँचा हूँ। अब यह नीच (मेरे हाथसे बचकर) नहीं जा सकता' ॥ ४ ॥ (७)

जटायु बार-बार रावणको ललकारे जा रहा था पर रावण था कि पीछे मुड़कर नहीं देख रहा था। तब जटायुने अपनी चोंचसे मार ठूँग मार ठूँग और पंजोंसे मार-मारकर घोड़ोंका कचूमर निकाल डाला और रथ चूर-चूर कर डाला ॥ १ ॥ फिर उसने रावणको भी रथहीन करके व्याकुल कर दिया और सीताको उतार लिया। जब रावण अपने घावोंके मारे बहुत तड़प उठा तब उसने तलवार निकालकर जटायुके पंख ही काट गिराए और रामकी प्रिया सीताको उठाकर फिर भाग चला ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि उस समय देवता और सिद्ध सब जटायुकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि 'बड़भागी जटायु धन्य है जो रामके कार्य (सीताकी रक्षा)-के लिये रावणसे जा भिड़ा और जिसने जीते जी उसके हाथ जानकी नहीं पड़ने दी' ॥ ३ ॥ (८)

इसी बीच रघुकुल-मणि राम भी सोनेका हरिण मारकर लौट पड़े। उनके साथ लक्ष्मण भी अपने हाथमें सुन्दर मृगछाला लिए चले आ रहे थे। ये लोग जब आश्रमकी ओर चले तो इन्हें अच्छे शकुन नहीं मिले। उनकी बाईं भुजा और विशाल बायाँ नेत्र दोनों फड़क उठे, ॥ १ ॥ नदियोंके जल मटमैले हो चले और तालाबोंके कमल कुम्हला चले। न तो उनपर भौंरोंकी गूँज सुनाई पड़ रही थी न हंसोंकी ही मधुर वाणी सुनाई पड़ रही थी। किरात, कोल और कोलनी जहाँ-तहाँ बैठे बिलख रहे थे। वनके पक्षी और मृग ऐसे दुखी हो गए थे कि उनकी ओर देखा-तक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तरु जे जानकी लाए, ज्याये हरि, करि, कपि, हेरैं न हुँकारि, झरैं फल न रसाल।
जे सुक - सारिका पाले, मातु-ज्यों ललकि लाले, तेऊ न पढ़त, न पढ़ावैं मुनि-बाल ॥ ३ ॥
समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि, 'तुलसी' बिबरन परन - तृन - साल।
औरै सो सब समाज, कुसल न देखौं आज, गहबर हिय कहैं कोसलपाल ॥४॥ (९)

आस्रम निरखि भूले, द्रुम न फले - फूले, अलि-खग-मृग मानो कबहुँ न हे।
मुनि न मुनि - बधूटी, उजरी परन - कुटी, पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ॥ १ ॥
उठी न सलिल लिये, प्रेम - प्रमुदित हिये प्रिया, न पुलकि प्रिय बचन कहे।
पल्लव-साला न हेरी, प्रानबल्लभा न टेरी, बिरह बिथकि लखि, लखन गहे ॥ २ ॥
देखे रघुपति - गति, बिबुध बिकल अति, 'तुलसी' गहन बिनु - दहन दहे।
अनुज दियो भरोसो, तौलौं है सोच खरो सो, सिय-समाचार प्रभु जौलौं न लहे ॥३॥ (१०)

राग सोरठ

जबहिं सिय-सुधि सब सुरनि सुनाई।
भे सुनि सजग बिरह - सरि पैरत, थके थाह - सी पाई ॥ १ ॥

नहीं जा रहा था ॥ २ ॥ जानकीने जो वृक्ष रोप लगाए थे उनके फल मीठे नहीं रह गए थे और जो सिंह, हाथी और वानर उन्होंने पाल रक्खे वे भी (स्नेह-भरी) हुँकारी भरकर देख नहीं रहे थे। सीताने जो शुक (सुग्गे) और सारिकाएँ (मैना) पाल रक्खी थीं और जिनको उन्होंने माताके समान लालन किया था वे भी इस समय बोल नहीं रहे थे और न मुनि-बालिकाएँ उन्हें पढ़ा ही रही थीं ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि ये सब अशुभ दृश्य देखकर कोशलपाल राम विचारने लगे कि (क्या बात है कि) प्रिया जानकी भी न तो पर्णकुटीकी झझरियोंसे आकर झाँकीं न स्वागतके लिये ही आईं। तब वे सारा रहस्य समझकर सहम उठे और विह्वल होकर कहने लगे—'आज सारा समाज न जाने कैसा (कुछ और ही) हो चला है। मुझे कुशल नहीं जान पड़ता' (कुछ विपत्ति आ गई है) ॥ ४ ॥ (९)

राम अपना आश्रम देखकर भी पहचान न पाए क्योंकि वहांके वृक्ष न तो फूले ही हैं, न फले ही हैं। ऐसा जान पड़ता था मानो भौंरे, पक्षी तथा मृग वहाँ कभी रहे ही न हों। मुनि तथा मुनिपत्नियाँ भी वहाँ नहीं थीं। पर्णकुटी भी उजड़ी पड़ी थी। पंचवटीको पहचान कर तो राम सन्न रह गए ॥ १ ॥ वे कहने लगे—'(क्या बात है कि) आज प्राणप्रिया न तो (नित्यके नियमानुसार) प्रसन्न-चित्तसे जल ही लेकर उठकर आईं, न उन्होंने आकर प्यार-भरे वचन ही कहे, न पत्तोंकी झुरमुटसे देखकर उन्होंने पुकारा ही। उन्हें इस प्रकार बिरह-व्यथासे व्याकुल देखकर लक्ष्मणने उन्हें थाम सँभाला ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामकी ऐसी दशा देखकर देवता ऐसे व्याकुल हो गए जैसे वे अग्निके बिना ही जले जा रहे हों। तब भाई लक्ष्मणने उन्हें ढाढ़स बँधाया कि यह शोक तभीतक है जबतक प्रभुको सीताका समाचार नहीं मिल जाता ॥ ३ ॥ (१०)

जब (वन-) देवताओंने सीताका सारा समाचार रामको कह सुनाया तब वे सुनकर ऐसे स्वस्थ हो गए मानो बिरह-रूपी नदीमें तैरते-तैरते थकनेपर थाह पा गए हों ॥ १ ॥ तब धनुर्धरों में

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कसि तूनीर, तीर, धनु - धर - धुर, धीर बीर दोउ भाई।
पंचबटी - गोदहि प्रनाम करि, कुटी दाहिनी लाई॥ २॥
चले बूझत बन बेलि-बिटप, खग - मृग-अलि अवलि सुहाई।
प्रभु-की दसा सो समौ कहिबे - को, कबि उर आह न आई॥ ३॥
रटनि, अकनि, पहिचानि गीध, फिरे करुनामय रघुराई।
'तुलसी' रामहिं प्रिया बिसरि गइ, सुमिरि सनेह - सगाई॥४॥ (११)

मेरे एकौ हाथ न लागी।
गयो बपु बीति बादि कानन-ज्यों, कलपलता दव-दागी॥ १॥
दसरथ-सों न प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो जो सकल जग साखी।
बरबस हरत निसाचर - पति - सों, हठि न जानकी राखी॥ २॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके, तापस बेष बनाए।
चाहत चलन प्रान पाँवर, बिनु - सिय - सुधि प्रभुहिं सुनाए॥ ३॥
बारबार कर मींजि, सीस धुनि, गीधराज पछिताई।
'तुलसी' प्रभु कृपालु तेहि औसर, आइ गए दोउ भाई॥ ४॥

राघौ गीध गोद करि लीन्हों।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि, मनहुँ अरघ - जल दीन्हों॥ १॥

धुरन्धर दोनों धीर और वीर भाई बाण और तरकश कसकर, पंचवटी और गोदावरीको प्रणाम करके तथा कुटीकी प्रदक्षिणा करके वनकी लता, वृक्ष, पक्षी, मृग और भौंरोंसे (सीताका समाचार) पूछते हुए आगे बढ़ चले। उस समय रामकी जो दशा थी उसका वर्णन करनेका साहस कवि तुलसीमें है ही नहीं॥ २-३॥ इतनेमें ही उन्होंने सुना कि कोई पड़ा राम-नाम रट रहा है। गृध्रराज जटायु (-के स्वर)-को पहचानकर करुणामय राम लौट पड़े। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय जटायुका प्रेम-सम्बन्ध उन्हें ऐसा स्मरण हो आने लगा कि राम उस समय अपनी प्रियाको भी भूल गए॥ ४॥ (११)

(जटायु मन ही मन पछताए जा रहा है—) 'हाय! मेरा कोई भी काम न बन पाया। जैसे वनमें उगी हुई कल्पलता किसीके भी काम न आकर दावानलसे जल-झुलसकर राख हो जाती है, उसी प्रकार मेरा शरीर भी यों ही निरर्थक गया॥ १॥ सारा जगत् जानता है कि महाराज दशरथसे मेरा कितना प्रेम-संबंध था किन्तु उसे भी मैं निभा न पाया क्योंकि जिस समय राक्षस-राज रावण सीताको हरकर लिए जा रहा था, उस समय न तो मैं सीताको ही बलपूर्वक बचा पाया,॥२॥ न मरनेके समय मुनि-वेष-धारी रामको ही देख पाया। अब रामको सीताका समाचार सुनाए बिना ही ये अधम प्राण निकल जाना चाहते हैं'॥ ३॥ इस प्रकार गृध्रराज बारबार हाथ मलते और सिर धुनते हुए पछता ही रहे थे कि तुलसीदासके प्रभु कृपालु दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) वहाँ आ ही तो पहुँचे॥ ४॥ (१२)

आते ही रामने जटायुको अपनी गोदमें उठा लिया और अपने कमलके समान नेत्रोंसे ऐसे स्नेहभरे आँसू उसपर गिराने लगे मानो पवित्र जलसे उसे अर्घ्यदान दे रहे हों॥१॥ फिर वे (स्नेह-भरी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनहु लखन ! खगपतिहि मिले बन, मैं पितु-मरन न जान्यौ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता, बड़ पछ आजहि भान्यौ ॥ २ ॥
बहु बिधि राम कह्यो तनु राखन, परम धीर नहिं डोल्यौ।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदन-बिधु, बचन मनोहर बोल्यौ ॥ ३ ॥
'तुलसी' प्रभु झूठे जीवन - लगि, समय न धोखा लैहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ, तुमहिं कहाँ पुनि पैहौं ॥ ४ ॥ (१३)

नीके जानत राम - हियो हौं।
प्रनतपाल, सेवक - कृपालु - चित, पितु पटतरहि दियो हौं ॥ १ ॥
त्रिजग-जोनि-गत गीध जनम भरि, खाइ कुजंतु जियो हौं।
महाराज ! सुकृती - समाज सब - ऊपर आजु कियो हौं ॥ २ ॥
स्रवन बचन, मुख नाम, रूप चख, राम उछंग लियो हौं।
'तुलसी' मो समान बड़भागी, को कहि सकै बियो हौं ॥ ३ ॥ (१४)

मेरे जान, तात ! कछू दिन जीजै।
देखियत आप सुवन - सेवा - सुख, मोहिं पितु-को सुख दीजै ॥ १ ॥
दिव्य देह, इच्छा - जीवन जग, बिधि मनाइ, मँगि लीजै।
हरि - हर - सुजस सुनाइ, दरस दै लोग कृतारथ कीजै ॥ २ ॥

दृष्टिसे जटायुको देखकर) लक्ष्मणसे कहने लगे—'देखो लक्ष्मण ! वनमें पक्षिराज जटायु जबसे मुझे मिले तबसे मैंने समझा ही नहीं कि मेरे पिता नहीं रहे (मैंने समझा कि मुझे जटायुके रूपमें पिता ही मिल गए)। परंतु दुष्ट विधाता मेरा यह सुख भी नहीं सहन कर सका, इसीलिये उसने यह बड़ा प्रबल सहारा भी नष्ट कर डाला' ॥ २ ॥ फिर रामने जटायुसे बहुत कहा कि तुम जीवित रहो पर वह परम धीर जटायु अपने निश्चयसे डिगकर न दिया। तुलसीदास कहते हैं कि उसने अपना प्रेम रोककर रामका मुख-चंद्र देखकर ये मनोहर वचन कहे—॥ ३ ॥ 'प्रभो ! ऐसा सुन्दर अवसर पाकर (आपको सामने पाकर) मैं धोखा नहीं खा सकता। भला, मरते समय मुनि भी जिसे नहीं देख पाते उन रामको मैं फिर (अपने सामने) कहाँ देख पाऊँगा ?' ॥ ४ ॥ (१३)

'राम ! मैं आपके हृदयको भली भाँति जानता हूँ। आप शरणागतोंकी रक्षा करते और सेवकोंपर कृपा करते रहते हैं। इसीलिये मुझे आपने पिताके समान माना है ॥ १ ॥ मैं तिर्यक् (पक्षी) योनिके अन्तर्गत गीध जातिमें उत्पन्न हुआ और बहुतसे निकृष्ट जंतु खा-खाकर जगत्में जीवित रहा। ऐसे अधमको भी महाराज ! आज आपने पुण्यात्माओंके समाजमें सबसे ऊपर ले जा बिठाया ॥ २ ॥ मैं अपने कानसे आपके वचन सुन रहा हूँ, अपने मुखसे आपका नाम ले रहा हूँ, नेत्रोंसे आपका दर्शन कर रहा हूँ और मुझे आप स्वयं अपनी गोदमें लिए बैठे हैं। फिर बताइए, दूसरा ऐसा कौन है जो अपनेको मेरे समान बड़भागी बतला सके ?' ॥ ३ ॥ (१४)

(राम कहने लगे)—'तात ! मेरा विचार है कि कुछ दिन आप और जीवित रहिए। आप अपने इस पुत्र रामकी सेवाका सुख लीजिए और मुझे पिताके समान आनंद दीजिए ॥ १ ॥ आप विधाताको प्रसन्न करके उनसे दिव्य शरीर और इच्छानुसार जीवन माँग लीजिए और लोगोंको

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन राम - नयन-जल भीजै।
बोल्यो बिहग बिहँसि, 'रघुबर ! बलि कहौं सुभाय पतीजै ॥ ३ ॥
मेरे मरन - समान चारि फल होहिं, तौ क्यों न कहीजै ॥
'तुलसी' प्रभु दियो उतर मौन ही, परि मनो प्रेम सहीजै ॥ ४ ॥ (१५)

मेरो सुनियो, तात ! सँदेसो।
सीय-हरन जनि कहेहु पिता - सों, ह्वैहैं अधिक अँदेसो ॥ १ ॥
रावरे पुन्य-प्रताप - अनल - महँ, अलप दिननि रिपु दहिहैं।
कुल - समेत सुर - सभा दसानन, समाचार सब कहिहैं ॥ २ ॥
सुनि प्रभु-बचन, राखि उर मूरति, चरन-कमल सिर नाई।
चल्यो नभ, सुनत राम-कल-कीरति, अरु निज भाग बड़ाई ॥ ३ ॥
पितु-ज्यों गीध - क्रिया करि रघुपति, अपने धाम पठायो।
ऐसो प्रभु बिसारि 'तुलसी' सठ तू चाहत सुख पायो ॥ ४ ॥ (१६)

राग सूही

सबरी सोइ उठी फरकत बाम बिलोचन - बाहु।
सगुन सुहावने सूचत, मुनि - मन - अगम उछाहु।

विष्णु और शंकरका सुयश सुनाकर और अपना दर्शन देते हुए लोगोंको कृतार्थ कीजिए' ॥ २ ॥ तब रामके मुखकी ओर देखकर, उनके अमृतमय वचन सुनकर तथा अपने शरीरपर रामके नयनोंके आँसू पड़ते देखकर पक्षिराज जटायु हँसकर बोला—'राम ! मैं बलिहारी जाता हूँ। आप विश्वास कीजिए, मैं यह स्वभावसे ही कह रहा हूँ (इसमें तनिक भी बनावट नहीं) ॥ ३ ॥ मेरी (इस मंगल-मय) मृत्युकी बराबरी यदि चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) भी कर सकें तो आप बतला दीजिए'। तुलसीदास कहते हैं कि इसके उत्तरमें राम मौन हो गए मानो गृधराजके प्रश्नपर उनकी सही पड़ गई हो (स्वीकृति मिल गई हो) ॥ ४ ॥ (१५)

(राम बोले—) 'तात ! (यदि शरीर छोड़ना ही है तो) एक बात मेरी मान लीजिएगा। सीताके हरणकी बात पितासे जाकर न छेड़िएगा क्योंकि इससे उनकी चिन्ता बढ़ जायगी ॥ १ ॥ उनसे इतना ही कह दीजिएगा कि आपके पुण्य-प्रतापकी अग्निमें सब शत्रु थोड़े ही दिनोंमें जल मरेंगे और तब रावण अपने कुटुंबके साथ स्वर्गकी देवसभामें जाकर यह सब समाचार उन्हें स्वयं सुना देगा' ॥ २ ॥ रामके ये वचन सुनकर, मनमें उनकी मधुर मूर्ति बसाकर तथा उनके चरणोंमें सिर नवाकर रामकी पवित्र कीर्त्ति तथा अपने भाग्यकी बड़ाई सुनता हुआ गृध्रराज (शरीर छोड़कर) आकाश-मार्गसे उड़ चला ॥ ३ ॥ रामने गृध्रराज जटायुका संस्कार पिताके संस्कारके समान करके उसे अपने धाम भेज दिया। तुलसीदास अपनेसे कहते हैं—'अरे शठ ! तू ऐसे रामको भूलकर भी सुख पानेकी आस लगाए बैठा है ?' (१६)

आज शबरी ज्योंही सोकर उठी तो देखती क्या है कि उसका बायाँ नेत्र और बाईं भुजा फड़की पड़ रही है। ये शुभ शकुन ऐसे उत्साह (उल्लासपूर्ण समाचार)-की सूचना दे रहे हैं जिसकी कल्पना मुनि भी नहीं कर पा सकते। उसके हृदयमें ऐसा आनंद आ छाया जो मुनियोंको भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुनि - अगम उर आनंद, लोचन सजल, तन पुलकावली।
तृन - पर्नसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली।
मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्र - वर - बानी भली।
ज्यों कलप - बेलि सकेलि सुकृत - सुफूल - फूली सुख - फली ॥ १ ॥

प्रान - प्रिय पाहुने अइहैं राम लषन मेरे आज।
जानत जन - जिय-की मृदु चित, राम गरीबनिबाज।
मृदु चित गरीब-निवाज आज बिराजिहैं गृह आइकै।
ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै।
लहि नाथ हौं रघुनाथ - बानो पतित - पावन पाइकै।
दुहुँ ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइकै ॥ २ ॥

दोना रुचिर रचे पूरन कंद - मूल - फल - फूल।
अनुपम अमियहु - तें, अंबक अवलोकत अनुकूल।
अनुकूल अंबक अंब - ज्यों निज डिंभ - हित सब आनिकै।
सुंदर सनेह सुधा सहस जनु, सरस राखे सानिकै।

नहीं मिल पा सकता। उसकी आँखें डबडबा आईं और शरीर पुलकित हो उठा। वह फूसकी पर्णकुटी बनाकर, कलशमें जल भरकर अपने शकुनका फल देखनेके लिये चल दी। वह मनमें मंगलमय मनोरथ किए चली जा रही है और बार-बार विप्रवर (मतंग ऋषि)-की वाणीका स्मरण किए जा रही है मानो सुंदर फूलोंसे फूली हुई कल्पलता सारे पुण्य एकत्र करके आज सुखके फलोंसे लद उठी हो (सारे पुण्योंका सुख आज मिल रहा हो) ॥ १ ॥ (वह सोचने लगी) 'अहा ! आज मेरे प्राणप्रिय पाहुने राम-लक्ष्मण आवेंगे। दीनोपर दया करनेवाले और कोमल चित्तवाले राम भक्तोंके मनकी बात जानते हैं। आज वे दीनदयालु और कोमल चित्तवाले राम मेरे घर आ पहुँचनेवाले होंगे। आज मैं जाकर उन रामकी पूजा करूँगी जिनकी पूजा ब्रह्मा, शंकर और पार्वती आदि भी किया करते हैं। रामके पतित-पावन स्वरूपका वरदान पाकर अब मैं उन्हें अपने रामके रूपमें देखकर लोक और परलोक दोनों ओरका (इस लोक और परलोकका) लाभ अघाकर लूटूँगी और उनका गुण गाकर तुलसीदास भी लाभ उठावेंगे ॥ २ ॥ फिर शबरीने कंद, मूल, फल और फूलोंसे भरे हुए सुन्दर दोने ला सजाए, जो अमृतसे भी बढ़कर अनुपम और स्वादिष्ट थे तथा देखनेमें भी सुहावने लगते थे। जिस प्रकार माता अपने बालक-के लिये अच्छी-अच्छी वस्तुएँ जुटा छोड़ती है, उसी प्रकार उस (शबरी)-ने भी मीने-मीठे सुन्दर फल आदि रामके लिये ला रक्खे मानो उन्हें अमृतसे भी सहस्रों गुने अधिक स्नेहके रसमें डुबोकर उन्हें मधुर बना डाला हो। वह क्षणमें भीतर जाती है, दूसरे ही क्षण बाहर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ, भ्रू-पर पानि-कै।
दोउ भाइ आये सबरिका-के प्रेम-पन पहचानिकै॥ ३॥

स्रवन सुनत चली आवत, देखि लखन रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना बिधि, कैधौं सति भाउ'।
सति भाउ कै सपनो? निहारि कुमार कोसलराय-के।
गहे चरन, जे अघ-हरन नत-जन-बचन-मानस-काय-के।
लघु-भाग-भाजन उदधि उमग्यो लाभ-सुख चित चाय-के।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय-के॥ ४॥

प्रेम-पट पाँवड़े देत, सुअरघ बिलोचन-बारि।
आश्रम लै, दिए आसन, पंकज-पाँय पखारि।
पद-पंकजात पखारि, पूजे, पंथ-स्रम-बिरहित भये।
फल-फूल-अंकुर-मूल भरि दोना सुधारि धरे नये।
प्रभु खात, पुलकित गात, स्वाद सराहि, आदर जनु जये।
फल चारिहू, फल चारि दहि, पर चारि फल सबरी दये॥ ५॥

निकलकर भौहोंपर हाथकी ओट देकर मार्गकी ओर देखने लगती है। उस समय शबरीका ऐसा प्रेम और व्रत पहचानकर दोनों भाई (राम और लक्ष्मण) उसके यहाँ आ ही तो पहुँचे॥ ३॥ प्रभुका आगमन सुनते ही वह आगे बढ़ आई और फिर राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको आते देखकर स्नेहसे विह्वल होकर कहने लगी—'विधाता! मैं स्वप्न देख रही हूँ या सचमुच राम आ गए हैं?' कोशलराज महाराज दशरथके पुत्रोंको देखकर उसने यह कहते हुए रामके चरण जा पकड़े कि—'यह स्वप्न देख रही हूँ या सचमुच वे राम आ गए है जो विनीत भक्तोंके मन, वचन और शरीरके सारे पाप दूर कर डालते हैं। शबरीने हृदयमें तो सोचा कि 'मैं तो छोटे ही सौभाग्यकी पात्री हूँ' पर फिर यह परम लाभ और सुख पाकर उसके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। राम तो केवल भावके ही भूखे हैं। इसलिये उन्होंने भाई लक्ष्मणके साथ वैसा ही आदर किया जैसा आदर माताका किया जाता है॥ ४॥ शबरी अपने प्रेमरूपी वस्त्रके पाँवड़े बिछाती और नेत्रके जलसे अर्घ्य देती रामको अपने आश्रमपर लिवा ले आई। वहाँ लाकर उसने उनके चरण-कमल धोए और आसनपर ले जा बैठाया। रामके चरण-कमल धोकर उसने उनका पूजन किया जिससे उनकी सारी थकावट जाती रही। फिर उसने फल, फूल, अंकुर और मूल आदि नये-नये दोनोंमें सजाकर रामके आगे ला रक्खे। राम भी उनके स्वादकी सराहना करते हुए पुलकित हो-होकर ऐसे जीमने लगे, मानो उनका आदर कर रहे हों। रामने शबरीके इन चार फलों (फल, फूल, अंकुर, मूल)-से चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) जलाकर उसे इनसे बढ़कर चार फल (भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सन्तोष) दे डाले॥ ५॥ उस समय सब देवता पुष्प-वर्षा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुमन बरषि, हरषे सुर, मुनि मुदित सराहिं सिहात।
केहि रुचि, केहि छुधा, सानुज, माँगि-माँगि प्रभु खात।
प्रभु खात माँगत देति सबरी, राम भोगी जाग - के।
पुलकत, प्रसंसत, सिद्ध - सिव - सनकादि भाजन - भाग - के।
बालक सुमित्रा - कौसिला - के, पाहुने फल - साग - के।
सुनु, समुझि 'तुलसी', जानु रामहिं, बस अमल अनुराग - के ॥ ६ ॥

रघुबर अँचइ उठे, सबरी करि प्रनाम, कर जोरि।
हौं बलि गई, पुरई, मंजु मनोरथ मोरि।
पुरई मनोरथ स्वारथहु, परमारथहु पूरन करी।
अघ अवगुनन - की कोठरी करि कृपा मुद - मंगल - भरी।
तापस किरातिनि - कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।
सिर नाइ आयसु पाइ आयसु पाइ गवनी परम निधि पाले परी ॥ ७ ॥

सिय-सुधि सब कही, नख-सिख निरखि-निरखि, दोउ भाइ।
दै - दै प्रदच्छिना, करति प्रनाम, प्रेम अघाइ।

करते हुए प्रसन्न हुए जा रहे थे और मुनि भी प्रसन्न होकर प्रशंसा करते हुए आनन्दित हो रहे थे कि 'आज कैसी रुचि और चावसे लक्ष्मण और राम माँग-माँगकर फल जीमते चले जा रहे हैं। जो राम सम्पूर्ण यज्ञोंके भोक्ता हैं, वे शबरीसे माँग-माँगकर फल जीमे चले जा रहे हैं और शबरी भी बराबर दिए चली जा रही है।' इस प्रकार बड़े भाग्यशाली शिव और सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) सिद्ध भी पुलकित हो-होकर शबरीकी प्रशंसा किए जा रहे हैं—'आहा ! कौशल्या और सुमित्रा (जैसी महारानियों)-के पुत्र भी आज फल और शाकका भोग लगा रहे हैं !' तुलसीदास कहते हैं कि यह सुन और समझकर निश्चय जान लो कि राम तो एक मात्र निर्मल प्रेमके अधीन हैं ॥ ६ ॥ (जीम चुकनेपर) जब राम आचमन करके उठे तब शबरीने प्रणाम करके, हाथ जोड़कर कहा—'मैं बलि-बलि जाती हूँ। आज आपने मेरी प्यारी कामना (कि आपके दर्शन कर पाऊँ) पूरी कर दी। आपने मेरा मनोरथ तो पूरा कर ही दिया साथ ही स्वार्थ (आपके दर्शन) और परमार्थ (भक्तिकी प्राप्ति) भी पूर्ण कर दिया। मैं तो पाप और बुराइयोंकी गठरी थी, जिसे आपने कृपा करके आनन्द और मंगलसे भर दिया।' उस समय तपस्वी, किरातिनी और कोल आदि वनवासियोंने रामकी वह मृदुल, मनोहर मूर्त्ति हृदयमें बसा ली तथा रामको सिर नवा-नवाकर उनसे आज्ञा ले-लेकर भक्तिका परम धन प्राप्त करके अपने-अपने घर लौट गए ॥ ७ ॥ शबरीने दोनो भाइयोंको नखसे शिख-तक (नीचेसे ऊपरतक) देखते हुए उन्हें सीताका सारा समाचार कह सुनाया। जब राम चलने लगे उस समय उसने जब बार-बार रामकी प्रदक्षिणा करके उन्हें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अति प्रीति मानस राखि रामहिँ राम - धामहिँ सो गई।
तेहि मातु - ज्यों, रघुनाथ अपने हाथ, जल - अंजलि दई।
'तुलसी' भनति, सबरी - प्रनति, रघुबर - प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभु-पद नित नई ॥ ८ ॥ (१७) [२१६]

॥ इति श्रीरामगीतावल्यां अरण्यकांडः समाप्तः ॥

प्रणाम किए जा रही थी तब उसका हृदय प्रेमसे अघा नहीं पा रहा था। इस प्रकार अत्यन्त प्रेम-पूर्वक अपने हृदयमें रामको बसाए हुए वह रामके धाम (साकेत) चली गई। तब रामने उसे माता मानकर उसे अपने हाथों जलांजलि दी। तुलसीदास कहते हैं कि शबरीका यह विनय और रामका करुणामय स्वभाव जो गावे, सुने और समझेगा, उसके हृदयमें रामके चरणोंमें नित्य नई भक्ति उपजती चलेगी ॥ ८ ॥ (१७) [२१६]

॥ श्रीरामगीतावलीमें अरण्यकाण्ड समाप्त हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

किष्किंधा-कांड

राग केदारा

भूषन बसन बिलोकत सिय - के।
प्रेम - बिबस मन, कंप पुलक तन, नीरज - नयन नीर भरे पिय - के ॥ १ ॥
सकुचत कहत, समुझि उर उमगत, सील-सनेह-सुगुन-गन तिय - के।
स्वामि-दसा लखि, लखन, सखा, कपि, पिघले आँच, माठ मनो घिय-के ॥ २ ॥
सोचत हानि, मानि मन, गुनि-गुनि, गये निघटि फल सकल सुकिय-के।
बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिबेक - बीररस बिय - के ॥ ३ ॥
धीर, बीर, सुनि-समुझि परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय - के।
'तुलसिदास', कबि समउ कहे-तें, लागत निपट निठुर-जड़ जिय-के ॥४॥ (१)

(ऋष्यमूक पर्वत पहुँचनेपर सुग्रीवने रामसे मित्रता करके सीताके गिराए हुए वस्त्र और आभूषण रामको ला दिखाए)। सीताके वस्त्र और आभूषण देखते ही रामका हृदय प्रेमसे अधीर हो उठा। उनका शरीर काँपने लगा, वे रोमांचित हो उठे और उनकी कमल-जैसी आँखें डबडबा आईं ॥ १ ॥ सीताका शील, स्नेह और उनके शुभ गुण कहनेमें तो राम सकुचाए जा रहे थे परन्तु उनका स्मरण हो आनेसे उनका हृदय उमड़ा पड़ रहा था। स्वामी रामकी यह दशा देखकर लक्ष्मण, सखा सुग्रीव तथा वानर इस प्रकार द्रवित हो उठे (बिलख उठे) जैसे आँच लगनेपर घीके मटके पिघल जाते हैं ॥ २ ॥ सीताके गुण मन ही मन स्मरण करके और उनके वियोगको बड़ी विपत्ति मानकर, वे सब इस प्रकार बिलखने लगे मानो उनके सभी पुण्योंके फल समाप्त हो गए हों। उस समय जाम्बवान्‌ने विवेक और वीरता दोनोंसे भरे हुए जो वचन कहे, ॥ ३ ॥ उन्हें सुन और समझकर उन धीर वीरोंने आपसमें अपने बल और मनमें सोचे हुए अनेक उपाय कह सुनाए। तुलसीदास कहते हैं कि उस समयका जो कवि वर्णन करने लगे उस कविका हृदय सर्वथा निष्ठुर और जड़ समझना चाहिए ॥ ४ ॥ (१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रभु कपि-नायक बोलि कह्यो है।
बरषा गई, सरद आई, अब लगि नहिँ सिय - सोध लह्यो है ॥ १ ॥
जा कारन तजि लोक - लाज, तन राखि, बियोग सह्यो है।
ताको तौ कपिराज आज लगि, कछु न काज निबह्यो है ॥ २ ॥
सुनि सुग्रीव, सभीत, नमित - मुख, उतर न देन चह्यो है।
आइ गए हरि- जूथ देखि, उर पूरि प्रमोद रह्यो है ॥ ३ ॥
पठये बदि-बदि अवधि, दसहुँ दिसि, चले बल सबनि गह्यो है।
'तुलसी' सिय-लगि भव-दधि-निधि मनु,फिरि हरि चहत मह्यो है ॥४॥(२)[२१८]

॥ इति श्रीरामगीतावल्यां किष्किधाकांडः समाप्तः ॥

रामने वानरराज सुग्रीवको बुलाकर कहा—'देखो भाई! वर्षा ऋतु बीत गई, शरद् ऋतु भी आ गई, किन्तु अभी तक तुमने सीताकी खोजके लिये कोई उपाय नहीँ किया ॥ १ ॥ जिसके लिये मैँने लोक-लज्जा त्यागकर और जीवित रहकर यह वियोग सहन किया है, उस (-की खोज)-का तुमने आज-तक कोई भी उपाय नहीँ किया ॥ २ ॥ यह सुनकर भयके मारे सुग्रीव अपना मुँह नीचा किए बैठ रहा। उसे कुछ उत्तर देनेका साहस नहीँ हो पा रहा था। इतनेमेँ ही (सब देखते क्या हैँ कि) किष्किन्धामेँ वानरोँके झुंडके झुंड आए चले जा रहे हैँ, जिन्हेँ देखते ही सब प्रसन्न हो उठे ॥ ३ ॥ उन सबको लौटनेकी अवधि बताकर दसोँ दिशाओँमेँ भेज दिया गया और वे सब भी इस कार्यमेँ जी जानसे जुट गए। तुलसीदास कहते हैँ कि उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो सीताजीके लिये राम एक बार फिर संसार-रूपी क्षीर-सागरको मथ डालनेपर तुल गए होँ ॥ ४ ॥ (२) [२१८]

॥ श्रीरामगीतावलीमेँ किष्किंधाकाण्ड पूरा हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुंदर-कांड

राग केदारा

रजायसु राम - को जब पायो।
गाल मेलि मुद्रिका मुदित मन, पवनपूत सिर नायो॥ १॥
भालुनाथ, नल, नील साथ चले, बली बलि - को जायो।
फरकि सुअँग भे सगुन, कहत मनो, मग मुद - मंगल छायो॥ २॥
देखि बिबर, सुधि पाइ गीध-सों, अपने बल अनुमायो।
सुमिरि राम, तकि, तरकि तोयनिधि, लंक लूक - सो आयो॥ ३॥
खोजत घर-घर जनु दरिद्र-मन, फिरत लागि धन धायो।
'तुलसी' सिय बिलोकि, पुलक्यो तनु, भूरि भाग भयो भायो॥ ४॥ (१)

जिस समय (सीताकी खोजके लिये हनुमान्‌को) रामकी आज्ञा मिली, उस समय उन्होंने प्रभुकी दी हुई मुद्रिका (अँगूठी) अपने मुँहमें रखकर, प्रसन्न होकर प्रभुके आगे सिर जा नवाया ॥१॥ उनके साथ-साथ रीछोंके सरदार जाम्बवान्, नल नील, और बलवान् बालिके वीरवर पुत्र अंगद भी चल दिए। चलते समय उनके दाहिने अंग फड़ककर शुभ शकुनकी सूचना देने लगे मानो मार्गमें आनन्द और मंगल ही छाए हुए हों ॥ २॥ मार्गमें उन्हें एक गुफा दिखाई पड़ी, जहाँ गृध्रराज संपातीसे सीताका ठिकाना पाकर सब (समुद्र पार करनेके लिये) अपने-अपने बलका अनुमान लगाने लगे। (जाम्बवान्‌ने जब उत्साहित किया तो) हनुमान्‌ने रामका स्मरण करके समुद्रकी ओर देखा और उसे लाँघकर (आकाशमें चलती हुई) उल्काके समान लंका जा पहुँचे॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार धनके लिये दरिद्रका मन भटकता फिरता है उसी प्रकार घर-घरमें ढूँढ़ फिरनेपर अन्तमें सीताका दर्शन होनेपर हनुमान्‌का शरीर पुलकित हो उठा। इस प्रकार अभीष्ट सिद्ध हो जानेपर उन्होंने समझ लिया कि मैं बहुत भाग्यशाली हूँ॥ ४॥ (१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखी जानकी जब जाइ ।
परम धीर समीर-सुत - के, प्रेम उर न समाइ ॥ १ ॥
कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि - उड़ि धूल ।
मनहु मनसिज मोहनी मनि, गयो भोरे भूलि ॥ २ ॥
रटति निसि - बासर निरंतर, राम राजिव - नैन ।
जात निकट न बिरहिनी - अरि, अकनि ताते बैन ॥ ३ ॥
नाथ - के गुन - गाथ कहि, कपि दई मुँदरी डारि ।
कथा सुनि, उठि लई कर, बर रुचिर नाम निहारि ॥ ४ ॥
हृदय हरष - विषाद अति, पति - मुद्रिका पहिचानि ।
'दास तुलसी' दसा सो, केहि भाँति कहै बखानि ॥ ५ ॥ (२)

राग सोरठ [अँगूठीसे सीताका वचन]

बोलि, बलि मूँदरी ! सानुज, कुसल कोसलपाल ।
अमिय बचन सुनाइ मेटहि, बिरह - ज्वाला - जाल ॥ १ ॥
कहत हित, अपमान मैं किय, होत हिय सोइ साल ।
रोष छमि, सुधि करत कबहूँ, ललित लछिमन लाल ॥ २ ॥

जिस समय परम धीर पवनपुत्र हनुमान्‌ने लंकामें जाकर जानकीको देखा उस समय उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा कि हृदयमें समा नहीं पा रहा था ॥ १ ॥ उन्होंने देखा कि सीता सूखकर काँटा हो चली हैं पर उनकी स्वाभाविक शोभा ज्योंकी त्यों बनी हुई है। उनके शरीरपर उड़-उड़कर धूल जम गई है और वे ऐसी लगती हैं मानो कामदेव भूलसे अपना मोहन मणि वहाँ धरकर भूल गया हो ॥ २ ॥ वे रात-दिन निरन्तर कमल-नयन रामका नाम ही रटे जा रही हैं। उनके गरम (शोकभरे) वचन सुन-सुनकर तो विरहिणी स्त्रियोंका शत्रु (शीतल-मंद-सुगंध पवन) उनके पास-तक नहीं आ पाता ॥ ३ ॥ यह देखकर हनुमान्‌ने रामकी गुण-गाथा छेड़ते हुए उनकी अँगूठी सीताके आगे ऊपरसे डाल गिराई। सीताने भीर ामकी कथा सुनकर और अँगूठीपर रामका मनोहर नाम देखकर वह मुद्रिका हाथमें बढ़ उठाई ॥ ४ ॥ पतिकी मुद्रिका पहिचानकर उनके हृदयमें जो हर्ष और विषाद एक साथ हो उठा (प्रियतमके समान ही प्यारी वह प्रियतमकी अँगूठी पाकर हर्ष हुआ और यह सोचकर दुःख हुआ कि यह अँगूठी यहाँ आ कैसे गई ? कहीं रामपर कोई विपत्ति तो नहीं आ पड़ी ?)। उस दशाका वर्णन भला तुलसीदास किस प्रकार कर सकता है ? ॥ ५ ॥ (२)

(अँगूठी देखकर सीता विह्वल होकर उसीसे पूछती हैं—) 'अरी मुँदरी ! मैं बलि जाती हूँ, बता तो सही कि भाई लक्ष्मणके साथ कोशल-पाल राम कुशलसे तो हैं न ? तू झटपट अमृतके समान (उनकी कुशलताका) समाचार सुनाकर मेरी विरहकी अग्नि शान्त कर दे ॥१॥ हाय ! जिस लक्ष्मणने मेरे भलेकी बात कही थी उसका भी मैंने तिरस्कार कर डाला था। मेरे हृदयमें अभी-तक इसकी कसक बनी हुई है। क्या मेरे उस क्रोध (-भरे व्यवहार)-को क्षमा करके कभी लक्ष्मण मुझे स्मरण

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परसपर पति - देवरहि, का होति चरचा चालु।
देवि ! कहु केहि हेतु बोले, बिपुल बानर - भालु ॥ ३ ॥
सीलनिधि, समरथ, सुसाहिब, दीनबंधु, दयाल।
'दास तुलसी' प्रभुहि काहु न, कह्यो मेरो हाल ॥ ४ ॥ (३)

सदल सलखन हैं कुसल, किरपालु कोसल - राउ ?
सील - सदन, सनेह - सागर, सहज सरल सुभाउ ॥ १ ॥
नींद - भूख न देवरहिं, परिहरे - को पछिताउ।
धीर - धुर रघुबीर - को, नहिं सपनहूँ चित चाउ ॥ २ ॥
सोध - बिनु, अनुरोध रितु - के, बोध बिहित उपाउ।
करत हैं सोइ समय साधन, फलति बनत बनाउ ॥ ३ ॥
पठइ कपि दिसि दसहुँ, जे प्रभु - काज, कुटिल न काउ।
बोलि लिय हनुमान, करि सनमान जानि समाउ ॥ ४ ॥
दई हौं संकेत, कहि कुसलात, सियहिं सुनाउ।
देखि दुर्ग बिसेषि, जानकि, जानि रिपु - गति आउ ॥ ५ ॥
कियो सीय - प्रबोध मुँदरी, दियो कपिहिं लखाउ।
पाइ अवसर, नाइ सिर, तुलसीस गुन - गन गाउ ॥ ६ ॥ (४)

करते हैं ? ॥ २ ॥ आजकल पतिदेव राम और देवर लक्ष्मणमें परस्पर किस बातकी चरचा चला करती है ? देवि (मुद्रिका) ! यह तो बता कि उन्होंने बहुतसे रीछ-वानर किसलिये जुटा बुलाए हैं ? ॥ ३ ॥ अरी मुद्रिका ! राम तो शीलके भांडार, सब प्रकारसे समर्थ, सच्चे स्वामी, दीनबन्धु और परम दयालु हैं । (तब वे अभीतक क्यों मुझे भूले बैठे हैं ?) जान पड़ता है, अभी-तक उन्हें किसीने मेरा समाचार नहीं दिया है ॥ ४ ॥ (३)

(यह सुनकर मुद्रिका कहने लगी—) 'कृपालु कोशलराज राम अपने भाई लक्ष्मण तथा अपने दल-बलके साथ कुशलसे हैं । वे तो स्वभावसे ही बड़े शीलवान्, स्नेहशील और सरल हैं ॥ १ ॥ तुम्हारे देवर लक्ष्मणको भी न नींद आती न भूख लगती । उन्हें तो इस बातका बड़ा भारी पछतावा हुआ जा रहा है कि वे तुम्हें छोड़कर चले क्यों गए । धीर धुरन्धर रामके चित्तमें तो स्वप्नमें भी प्रसन्नता नहीं रह गई है ॥ २ ॥ वर्षा ऋतुके कारण आपकी खोजके लिये उचित उपाय नहीं किए जा सके । अब समय पाकर उन सब उपायोंका प्रयोग किया जा रहा है जिनसे काम बन सके ॥ ३ ॥ इसी विचारसे उन्होंने दसों दिशाओंमें ऐसे (विश्वस्त) वानर भेज दिए हैं जो रामके काममें कभी ढिलाई (धोखेबाज़ी) नहीं कर सकते ।' फिर भी इस कार्यके लिये सबसे योग्य समझकर उन्होंने बड़े आदरसे हनुमान्‌को अपने पास बुलाकर, ॥ ४ ॥ उन्हें कुछ संकेत बतलाए और फिर उन्होंने मुझ (अँगूठी)-को हनुमान्‌के हाथमें देकर कहा कि सीताको हमारा कुशल समाचार जा सुनाना, और शत्रुका दुर्ग देखकर, उसका सारा भेद जानकर और जानकीसे मिलकर लौट आना' ॥ ५ ॥ इस प्रकार मुद्रिकाने सीताको ढाढ़स भी बँधाया और उन्हें हनुमान् भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुवन धीर समीर - कोऽति धुरीन, बीर बड़ोइ।
देखि गति सिय - मुद्रिका - की, बाल - ज्यों दियो रोइ ॥ १ ॥
अकनि कटु बानी कुटिल - की, क्रोध - बिंध्य बढ़ोइ।
सकुचि सम भो ईस - आयसु - कलस-भव जिय जोइ ॥ २ ॥
बुद्धि - बल - साहस - पराक्रम अछत, राखे गोइ।
सकल साज - समाज - साधक समउ, कह सब कोइ ॥ ३ ॥
उतरि तरु-तें नमत पद, सकुचात सोचत सोइ।
चुके अवसर मनहु सुजनहिं, सुजन सनमुख होइ ॥ ४ ॥
कहे बचन बिनीत, प्रीति - प्रतीति - नीति निचोइ।
सीय सुनि, हनुमान जान्यौ, भली भाँति भलोई ॥ ५ ॥
देवि ! बिन - करतूति कहिबो, जानिहैं लघु लोइ।
कहौंगो मुख - की समर - सरि, कालि कारिख धोइ ॥ ६ ॥

(ऊपर बैठे) दिखा बताए। तब अवसर पाकर सीताको सिर नवाकर हनुमान् भी तुलसीदासके स्वामी रामका गुणगान करने लगे ॥ ६ ॥ (४)

यद्यपि हनुमान् बड़े धीर और धुरन्धर वीर थे, पर सीता और मुद्रिकाकी दशा देखकर वे भी बालककी भाँति रो पड़े। दुष्ट रावणकी कड़वी बातें सुन-सुनकर हनुमान्का क्रोध तो विन्ध्याचलके[1] समान बढ़ने लगा था, पर हृदयमें रामके आदेश-रूपी अगस्त्यके कारण संकोचके मारे (वह क्रोध) जहाँका तहाँ रुका रह गया ॥२॥ उन्होंने बुद्धि, बल, साहस और पराक्रम आदि सब गुण रहते हुए भी उस (क्रोध)-को दबा धरा; क्योंकि सब कहते हैं कि जितने साज-समाज (उपाय) हैं वे समयपर ही सफल हो पाते हैं ॥ ३ ॥ हनुमान्ने वृक्षसे उतरकर सीताके चरणोंमें आ प्रणाम किया और सकुचाकर इस प्रकार सोचमें पड़ गए जैसे कोई सत्पुरुष किसी सज्जनके प्रति कोई अपराध करनेपर उसके सामने आ पहुँचे ॥ ४ ॥ फिर उन्होंने प्रीति, प्रतीति और नीतिसे भरे हुए ऐसे विनीत वचन कहे जिन्हें सुनकर सीताने समझ लिया कि हनुमान् सचमुच सत्पुरुष हैं ॥ ५ ॥ वे बोले—'देवि ! कुछ करतब कर दिखाए बिना केवल अपने मुखसे कहनेपर मुझे लोग ओछा समझेंगे। अब तो मैं कल युद्धकी सरितामें अपने मुखकी कालिमा धोकर ही आपसे कुछ कहूँगा' ॥ ६ ॥

१. एक बार विन्ध्याचलने सूर्यको अपनी प्रदक्षिणा करनेको कहा। परन्तु सूर्यने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। तब वह सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये बढ़ने लगा। इससे अनिष्टकी आशंका करके देवताओंने उसके गुरु अगस्त्यसे उसकी प्रगति रोकनेको कहा। तब अगस्त्य उसके पास गए। उन्हें देखकर विन्ध्यने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। तब अगस्त्यने कहा कि—'जबतक मैं लौट न आऊँ तबतक इसी तरह पड़े रहना, उठना मत'। ऐसा कहकर वे चले गए और फिर कभी नहीं लौटे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कछू करत न बनत हरि - हिय, हरष - सोक समोइ।
कहत मन तुलसीस, लंका करहुँ सघन घमोइ[1] ॥ ७ ॥ (५)

राग केदारा

हौं रघुबंस - मनि - को दूत।
मातु ! मानु प्रतीति, जानकि ! जानि मारुत - पूत ॥ १ ॥
मैं सुनी बातैं असैली, कही निसिचर नीच।
क्यों न मारै गाल, बैठो काल - डाढ़नि बीच ॥ २ ॥
निदरि अरि, रघुबीर - बल, लै जाउँ जौ हठि आज।
डरौं आयसु - भंग-तें, अरु बिगरि है सुर - काज ॥ ३ ॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु, दिन चारि - में दोउ बीर।
मिलहिंगे कपि - भालु - दल - सँग, जननि ! उर धरु धीर ॥ ४ ॥
चित्रकूट - कथा,[2] कुसल कहि, सीस नायो कीस।
सुहृद सेवक नाथ - को लखि, दई अचल असीस ॥ ५ ॥
भये सीतल स्रवन - तन - मन, सुने बचन - पियूष।
'दास तुलसी' रही नयननि, दरस ही - की भूख ॥ ६ ॥ (६)

हृदयमें हर्ष और शोकका उद्वेग उठ खड़े होनेके कारण हनुमान् कोई कर्तव्य स्थिर नहीं कर पा रहे थे। अन्तमें तुलसीदासके प्रभु पवनपुत्रने अपने मनमें निश्चय किया कि 'इस लंकाको मैं घनी घमोई (भँड़भाड़का जंगल) बना छोड़ूँ (लंकाको पूर्णतः उजाड़कर खँडहर कर डालूँ) ॥ ७ ॥ (५)

'माता जानकी ! मुझपर विश्वास कीजिए। मैं रघुवंश-मणि रामका दूत हूँ और यह भी जान लीजिए कि मैं पवनका पुत्र हूँ ॥ १ ॥ नीच निशाचर रावण जो अभद्र बातें अभी कह गया है, वे सब मैं सुन चुका हूँ। अब तो वह कालके डाढ़ोंमें जा पड़ा है (वह तो मर-मिटनेवाला है) फिर भला वह बैठा-बैठा इस प्रकार गाल क्यों न बजावेगा ? ॥ २ ॥ मैं रामकी कृपासे आज ही शत्रुका तिरस्कार करके यदि हठपूर्वक आपको ले जाता तो यही डर है कि इससे स्वामीकी आज्ञा भी भंग होगी और देवताओंका काम भी न बन पावेगा (रावण नहीं मारा जा सकेगा) ॥ ३ ॥ माता ! आप हृदयमें धैर्य धारण किए रहिए। दोनों भाई चार ही दिनमें (शीघ्र ही) समुद्रपर पुल बाँधकर शत्रुको परास्त करके, रीछ और वानरोंकी सेनाके साथ यहाँ आए जाते हैं' ॥ ४ ॥ फिर हनुमान्‌ने (प्रमाणके लिये) चित्रकूटपर (जयन्त)-की कथा और रामका कुशल कहकर उन्हें सिर झुका नवाया, इससे सीताने भी समझ लिया कि यह मेरे स्वामीका प्रिय दास है और इसलिये अटल आशीर्वाद दे डाला ॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि हनुमान्‌के अमृतके समान वचन सुनकर सीताके कान, शरीर और हृदय तो शीतल हो गए, बस एक नेत्र ही ऐसे रह गए जिन्हें रामके दर्शनोंकी भूख बची रह गई ॥ ६ ॥ (६)

१. सघन घमोई = भँड़भाड़का जंगल। २. जयन्तने कौवा बनकर चित्रकूटपर जब सीताको चोंच मारी तो रामने सींकके बाणसे उसकी एक आँख ले ली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तात ! तोहुँ सों कहत होति हिये गलानि ।
मन-को प्रथम पन, समुझि अछत तन, लखि नइ गति, भइ मति मलानि ॥ १ ॥
पिय - को बचन परिहर्‌यो जिय - के भरोसे, सँग चली बन बड़ो लाभ जानि ।
पीतम - बिरह तौ सनेह-सरबस, सुत ! औसर - को चूकिबो - सरिस न हानि ॥ २ ॥
आरज - सुवन - के तो दया दुवनहुँ-पर, मोहिं सोच मोतें सब बिधि नसानि ।
आपनि भलाई भलो कियो नाथ सबही - को, मेरे ही अदिन बस बिसरी बानि ॥ ३ ॥
नेम तौ पपिहा ही-के, प्रेम प्यारो मीन-ही-के, 'तुलसी' कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी कही सो कही सीय, ज्योंही त्योंही, रही, प्रीति परी सही, बिधि-सों न बसानि ॥४॥(७)

मातु ! काहे-को कहति अति बचन दीन ?
तब - की तुहीं जानति, अब - की हौं ही कहत, सबके जिय-की जानत प्रभु प्रबीन ॥ १ ॥
ऐसो तो सोचहिं न्याय - निठुर - नायक - रत सलभ, खग, कुरंग, कमल, मीन ।
करुनानिधान - को तो ज्यों-ज्यों तन छीन भयो, त्यों त्यों मन भयो तेरे प्रेम पीन ॥ २॥

तात ! इस समय तुमसे कुछ कहते हुए भी मनमें बड़ा संकोच हो रहा है । मेरे मनमें जो पहला प्रेम था (कि पतिके बिना जीवित नही रहूँगी) उसे स्मरण करके और शरीरको जीवित देखकर इस दशामें मेरी बुद्धि हतप्रभ हुई जा रही है ॥ १ ॥ अपने मनपर विश्वास करके ही (कि मैं सदा साथ रहूँगी) मैंने पतिके उस वचनका उल्लंघन किया था (कि तुम घरपर रहकर सास-ससुरकी सेवा करना) और बड़ा लाभ समझकर उनके साथ वन चली आई थी। बेटा ! प्रियका विछोह तो स्नेहका सर्वस्व माना जाता है किन्तु अवसर चूक जानेके समान और कोई बड़ी हानि भी तो नहीं होती (बिछोहमें मुझे प्राण त्याग देना था पर वह अवसर भी मैं चूक गई जिसके कारण यह दुःख सह रही हूँ) ॥ २ ॥ आर्यपुत्र राम तो शत्रुओंपर भी दया करते हैं। मुझे तो इसी बातकी चिन्ता है कि सारी भूल मुझसे ही हो गई है । प्रभु तो अपनी भलमनसाहतसे सबकी भलाई करते ही रहते है, पर मेरा ही भाग्य ऐसा फूटा है कि मेरे लिये वे भी अपना स्वभाव भूल बैठे हैं ॥ ३ ॥ भैया ! लोगोंने भली-भाँति विचारकर कहा है कि नियमका पक्का कोई है तो पपीहा है (जो स्वातीका जल छोड़कर दूसरा जल नहीं पीता) और सच्चा प्रेम भी किसीका है तो मछलीका है (जो जलके बिना जीवित नहीं रहती) ।' तुलसीदास कहते हैं, कि इतना कहकर सीता ज्योंकी त्यों बैठी रह गईं । उनकी प्रीति सच्ची सिद्ध हो गई (वे रामके वियोगसे व्यथित होकर बेसुध हो गईं) । सचमुच विधाता (भाग्य)-पर किसीका कोई वश नहीं चलता ॥ ४ ॥ (७)

(हनुमान् कहने लगे—) 'माता ! आप क्यों अपना जी इतना छोटा किए डाल रहे हैं? रामका प्रेम पहले आपसे कैसा था वह तो आप ही जानती होंगी, पर अब आपके लिये उनकी प्रीति कैसी है यह तो मैं भी बता सकता हूँ । राम तो बड़े चतुर हैं, वे सबके घट-घटकी बात जानते हैं ॥ १ ॥ (रामके लिये जैसी बात आप कह रही हैं) वैसी बात तो निष्ठुर स्वामीके प्रति प्रीति करनेवाले शलभ (फतिंगे), पपीहे, मृग, कमल और मछली यदि करें तो ठीक है । परन्तु करुणानिधान रामका तो ज्यों-ज्यों शरीर दुर्बल होता जाता है त्यों-त्यों उनका मन आपके प्रेमसे पुष्ट होता चला जा रहा है । (निष्ठुर-स्वामीके प्रति प्रीति करनेवालोंमें : शलभ, दीपकसे प्रेम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सिय - को सनेह, रघुबर - की दसा सुमिरि, पवनपूत देखि भयो प्रीति - लीन।
'तुलसी' जन - को जननी प्रबोध कियो, समुझि तात ! जग बिधि - अधीन ॥३॥(८)

राग जयतश्री

कहु कपि ! कब रघुनाथ कृपा करि, हरिहैं निज बियोग - संभव दुख।
राजिव-नयन, मयन - अनेक - छबि, रबिकुल-कुमुद-सुखद मयंक - मुख ॥ १ ॥
बिरह - अनल, स्वासा - समीर, निज तन जरिबे - कहँ रही न कछू सक।
अति बल जल बरषत दोउ लोचन, दिन अरु रैन रहत एकहिं तक ॥ २ ॥
सुदृढ़ ज्ञान अवलंबि सुनहु सुत ! राखति प्रान बिचारि, दहन मत।
सगुन रूप, लीला - बिलास - सुख सुमिरन करति, रहति अंतरगत ॥ ३ ॥
सुनु हनुमंत ! अनंत - बंधु[1], करुना सुभाव - सीतल कोमल अति।
'तुलसिदास' यहि त्रास, जानि जिय, बरु दुख सहौं, प्रगट कहि न सकति ॥४॥(९)

राग केदारा

कबहूँ, कपि ! राघव आवहिंगे ?।
मेरे नयन चकोर प्रीति - बस, राका - ससि - मुख दिखरावहिंगे ॥ १ ॥

करता है जो उसे जला डालता है; पपीहा भी मेघसे प्रेम करता है, जो उसकी पुकारकर पानी नहीं देता; मृग भी नाद (बाजे)-से प्रेम करता है और उसीके कारण मारा जाता है; कमल भी सूर्यसे प्रेम करता है पर सूर्य उसके प्रेमकी चिन्ता न करके अस्त हो जाता है; तथा मछली भी जलसे प्रेम करती है पर जल उसकी चिन्ता नहीं करता। अतः राम 'निष्ठुर नायक' नहीं हैं) ॥ २ ॥ सीताका स्नेह देखकर तथा रामकी दशाका स्मरण करके पवनपुत्र हनुमान् प्रेम-मग्न हो गए। तुलसीदास कहते हैं कि तब भक्त हनुमान्‌को माता जानकीने यह कहकर समझाया कि 'तात ! इस संसारकी गति विधाताके हाथ समझो (जैसा चाहे वैसा रक्खे)' ॥ ३ ॥ (८)

(फिर वे कहने लगीं—) 'बताओ कपि ! जिन रामका मुखचन्द्र देखकर सूर्यवंश-रूपी कुमुद खिल उठता है, वे अनेक कामदेवोंके समान कान्तिवाले कमल-नयन राम अपने वियोगसे होनेवाला मेरा दुःख कब कृपा करके दूर करेंगे ? ॥ १ ॥ विरहकी आगसे झुलसे हुए मेरे प्राण-वायु अब-तक निश्चय ही मेरा शरीर जला डालते, पर मेरे ये दोनों नेत्र दिनरात निरन्तर बड़े वेगसे आँसू बरसाकर उसे ठंडा किए रहते हैं (जिससे शरीर भस्म नहीं हो पाता) ॥ २ ॥ सुनो ! मैं तो सुदृढ ज्ञानके सहारे ही अपने प्राण बचाए हुए हूँ और इस शरीरको जलने नहीं देती क्योंकि मैं तो मन ही मन प्रभुके सगुण स्वरूप और दिव्य लीला-विलास (लीलाओं)-का स्मरण करती हुई उन्हें अपने हृदयमें बसाए हुए हूँ ॥ ३ ॥ सुनो हनुमान् ! लक्ष्मणके भाई राम बड़े ही दयालु, शान्त और कोमल हैं। इसी डरसे (कि कहीं मेरे हृदयमें बैठे हुए वे मेरी बातें सुनकर दुखी न होने लगें) मैं सारा कष्ट सहन कर लेती हूँ, प्रकट नहीं कहती ॥ ४ ॥ (९)

कहो कपि ! क्या राम कभी दिखाई दे पावेंगे ? मेरे प्रेमके कारण क्या मेरे नयन-चकोरोंको उनका मुखचन्द्र दिखलाई पड़ पावेगा ? ॥ १ ॥ मेरे नेत्र भौंरे (बनकर उनके मुख-कमलमें),

---

१ अनंतबंधु=लक्ष्मणके भाई राम।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मधुप, मराल, मोर, चातक ह्वै, लोचन बहु प्रकार धावहिंगे।
अंग - अंग छबि भिन्न - भिन्न सुख, निरखि-निरखि तहँ-तहँ छावहिंगे ॥ २ ॥
बिरह - अगिनि जरि रही लता-ज्यौं, कृपा - दृष्टि - जल पलुहावहिंगे।
निज - बियोग - दुख जानि दयानिधि, मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥ ३ ॥
लोकपाल - सुर - नाग - मनुज सब, परे बंदि कब मुकुतावहिंगे।
रावन - बध रघुनाथ - बिमल - जस, नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥ ४ ॥
यह अभिलाष रैन - दिन मेरे, राज बिभीषन कब पावहिंगे।
'तुलसिदास' प्रभु मोह - जनित भ्रम, भेद - बुद्धि कब बिसरावहिंगे ॥५॥(१०)

सत्य बचन सुनु मातु जानकी !,
जग - के दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधान की ॥ १ ॥
तुव बियोग - संभव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुबान - की।
नतु कहु कहँ रघुपति - सायक - रबि, तम - अनीक कहँ जातुधान - की ॥ २ ॥
कहँ हम पसु साखामृग चंचल, बात कहौं मैं बिद्यमान-की।
कहँ हरि सिव-अज-पूज्य ज्ञानघन, नहिं बिसरति वह लगनि कान-की ॥३॥

हंस (बनकर उनके कर-कमल और चरण-कमलोंमें), मोर (बनकर उनके मेघके समान गंभीर वाणीमें) और पपीहे बनकर (उनके बादलके समान शरीरकी ओर) अनेक प्रकारसे दौड़कर उनके अंग-अंगकी छविमें कभी भिन्न-भिन्न प्रकारका सुख देखकर वहीं छा पावेंगे ? ॥२॥ मैं इस विरहकी अग्निमें लताके समान जली जा रही हूँ, क्या कभी वे अपनी कृपा-दृष्टिके जलसे मुझे हरा-भरा बना पावेंगे ? वे दयालु मुझे अपने वियोगमें दुखियारी जानकर मुझे मधुर वचन कहकर क्या कभी आकर ढाढ़स बँधा पावेंगे ? ॥ ३ ॥ जो लोकपाल, देवता, नाग और मनुष्य, सब यहाँ रावणके बन्दीगृहमें पड़े सड़ रहे हैं, इन्हें वे कब मुक्त कर पावेंगे ? और नारद आदि मुनिगण कब रावणके वधपर रामका सुयश गा-सुना पावेंगे ? ॥ ४ ॥ मुझे दिनरात यही चिन्ता सताए डालती है कि विभीषण कब राजा बन पावेंगे ? और अज्ञानके कारण मुझे जो (मारीचमें कनक-मृग होनेका) भ्रम हो गया था तथा (लक्ष्मणके सम्बन्धमें) जो मेरे मनमें शंका हो गई थी, उसे भगवान् कब भूल पावेंगे ? ॥ ५ ॥ (१०)

(हनुमान बोले—) 'माता जानकी ! आप मेरी सच्ची-सच्ची बात सुन लीजिए। देखिए, दयालु रामकी तो यह स्वभाव ही है कि वे अपने सेवक (भक्त)-का दुःख देखते ही दुखी हो उठते हैं ॥ १ ॥ आपके वियोगके दुःखके कारण ही वे अपने तीखे बाणोंकी महिमा भूल बैठे हैं, नहीं तो बताइए, कहाँ रामके बाण-रूपी सूर्य और कहाँ राक्षसोंके दलका अन्धकार ? (अबतक राक्षस मिट जाते) ॥२॥ अबकी बात बताता हूँ कि कहाँ तो हम चंचल स्वभावके पशु वानर और कहाँ ज्ञानके निधान उन रामका हमारे कानोंसे लगकर बातें किया करना जिनकी पूजा ब्रह्मा और शिव भी करते हैं। यह बात मुझे अभीतक नहीं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुव दरसन, सँदेस - सुनि हरि - को, बहुत भई अवलंब प्रान-की।
'तुलसिदास' गुन सुमिरि राम-के, प्रेम-मगन, नहिं सुधि अपान-की ॥४॥(११)

राग कान्हरा

रावन ! जुपै राम रन रोषे।
को कहि सकै सुरासुर समरथ बिसिख काल-दसननि-तें चोखे ॥ १ ॥
तपबल, भुजबल, कै सनेह-बल, सिव-बिरंचि नीकी बिधि तोषे।
सो फल राज-समाज, सुवन-जन, आपुन नास, आपने पोषे ॥ २ ॥
तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोखे।
परसुराम-से सूर-सिरोमनि, पल-में भए खेत-के धोखे[1] ॥ ३ ॥
कालि-कि बात, बालि-की सुधि करि, समुझिहि ता हित खोलि झरोखे।
कह्यो कुमंत्रिन-को न मानिए, बड़ी हानि, जिय जानि त्रिदोषे ॥ ४ ॥
जासु प्रसाद जनमि जग, पुरषनि, सागर सृजे, खने, अरु सोखे।
'तुलसिदास' सो स्वामि न सूझ्यो नयन बीस मंदिर-के मोखे ॥ ५ ॥ (१२)

भूलती ॥ ३ ॥ उन्होंने तो जब सुग्रीवके मुखसे सुना कि उन्होंने आपको देखा था तभी उनके प्राणोंको बड़ा भारी अवलंब (ढाढ़स) मिल गया था'। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार भगवान् रामके गुणोंका स्मरण करके हनुमान् इतना प्रेममें मग्न हो चले कि उन्हें अपनेपनतक कीसुधि न रह गई ॥ ४ ॥ (११)

[रावणकी सभामें पहुँचकर हनुमान्ने रावणसे कहा—] 'देखो रावण ! (मैं तुम्हें बताए देता हूँ कि) यदि राम कहीं युद्धमें कुपित हो बैठे, तो ऐसी शक्ति किस देवता या असुरमें है कि कालके दाँतोंसे भी अधिक पैने उनके बाणोंकी मार सह सके ? ॥ १ ॥ तुमने अपने तपोबल, बाहुबल और स्नेहबलसे शिव और ब्रह्माको भली प्रकार सन्तुष्ट कर धरा है। अब उस सेवाके फलके रूपमें पाए हुए तथा अपने ही पोषित किए हुए राज-समाज, पुत्र-पौत्र तथा सेवकोंको स्वयं ही क्यों मिटानेपर तुले बैठे हो ॥ २ ॥ महाजन-रूपी राजा-जनकने तीनों लोकोंके शूरवीरोंको एकत्र करके पिनाकके तराजूपर उनका सारा बल भली-भाँति तौल लिया था, परन्तु रामके सामने पहुँचते ही परशुरामके समान वीर-शिरोमणि भी एक क्षणमें खेतमें खड़े किए हुए झूठे पुतले (धोखे)-के समान हाथपर हाथ धरे खड़े रह गए ॥३॥ अभी कलकी ही बात ले लो। बालिकी क्या दशा हुई, यह बुद्धिके द्वारा खोलकर समझ लो। देखो, अपने इन कुमंत्रियोंके फेरमें न पड़ो। इनकी बात मानी तो बड़ी विपत्तिमें पड़ जाओगे। इन्हें तुम त्रिदोषग्रस्त (वात, पित्त, कफके त्रिदोषसे पीडित सन्निपातमें पड़ा हुआ) समझो ॥४॥अरे ! जिनकी कृपासे उनके पूर्व-पुरुषोंने जगत्में जन्म लेकर समुद्र बनाए, खोदे और उन्हें सुखा भी डाला उन प्रभुको भी यदि तुम न पहचान पाए तो तुम्हारे ये बीसों नेत्र, नेत्र नहीं वरन् घरके झरोखे-भर हैं ॥ ५ ॥ (१८)

---

१. खेतके धोखे=पशुपक्षियोंसे रक्षा पानेके लिये खेतोंमें खड़ा किया जानेवाला नकली आदमीका पुतला। २. रसराज=पारा। ३. पुटपाक=नीचे ऊपर दो मिट्टीकी परईके बीच पारा (या स्वर्ण आदि) रखकर कपड़मिट्टी करके भस्म करना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग मारू

जो हौं प्रभु - आयसु लै चलतो।
तौ यहि रिस तोहिं-सहित दसानन, जातुधान - दल दलतो॥ १॥
रावन-सो रसराज[२], सुभट - रस - सहित, लंक खल खलतो।
करि पुटपाक[३], नाक - नायक - हित, घने - घने घर घलतो॥ २॥
बड़े समाज लाज - भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छलतो।
लंकनाथ! रघुनाथ - बैर - तरु, आज फैलि, फुलि, फलतो॥ ३॥
काल - करम - दिगपाल सकल जग - जाल जासु करतल तो।
ता रिपु-सों पर - भूमि रारि रन, जीवन - मरन सुथल तो॥ ४॥
देखी मैं दसकंठ - सभा सब, मोतें कोउ न सबल तो।
'तुलसी' अरि-उर आनि एक अब, एति गलानि न गलतो॥ ५॥ (१३)

तौलौं, मातु! आप निक रहिबो।
जौलौं हौं ल्यावौं रघुबीरहिं, दिन दस और दुसह दुख दहिबो॥ १॥
सोखि-कै, खेत-कै, बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो।
प्रबल दनुज-दल दलि पल आध-में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो॥ २॥

'रावण! यदि मैं प्रभुकी आज्ञा लेकर आया होता तो इसी झोंकमें तुम्हें और तुम्हारी सारी राक्षसी सेना पछाड़ डालता॥ १॥ रावण-रूपी पारेको अन्य योद्धारूपी रसों के साथ फूँककर, लंकाकी खरलमें ले घोटता। इस प्रकार देवराज इन्द्र (-का राजरोग दूर करने)-के लिये पुटपाक (की विधिसे औषध तैयार करने)-के निमित्त ये सब बड़े-बड़े भवन नष्ट कर डालता॥ २॥ आज इतने बड़े समाजमें मैं लज्जाका पात्र बना जा रहा हूँ। मैं तो यह बड़ा कार्य बिना पूरा किए ही चला जा रहा हूँ (इतना बड़ा कार्य करनेकी शक्ति और सामर्थ्य रहते हुए भी प्रभुकी आज्ञा न मिलनेके कारण ही मैं कुछ नहीं कर पा रहा हूँ), नहीं तो लंकेश्वर! आज रामके वैरका वृक्ष भली-भाँति फैल-फूलकर फल गया होता (तेरा राज्य नष्ट हो गया होता)॥ ३॥ काल, कर्म और दिक्पाल आदिका सारा संसार जिस प्रभुकी मुट्ठीमें है, उसीके शत्रुसे, उसीके देशमें यदि मेरा युद्ध छिड़ जाता तो मेरा जीवन और मरण दोनों ही सफल हो जाते॥ ४॥ देखो रावण! मैंने तुम्हारी सभाके सब वीर परख लिए हैं। इनमें कोई ऐसा नहीं दिखाई देता जो मुझसे अधिक बलवान् हो। यदि मुझे प्रभुने आज्ञा दे दी होती तो मैं शत्रुकी शक्तिका अनुमान करके भी इतनी ग्लानि सहन न करता (शत्रुको शक्तिहीन जानकर भी उसे बिना पछाड़े, चले जानेकी कसक मेरे मनमें न रह गई होती)'॥ ५॥ (१३)

(सीतासे बिदा होते समय हनुमान् उनसे कहने लगे—) 'माता! जबतक मैं रामको यहाँ लाऊँ तबतक आप शान्तिसे चुप मारे बैठे रहिए। जहाँ इतने दिन यह (रामके विरहका) दुःसह दुःख सहा है वहाँ दस दिन और सह लीजिए॥ १॥ हम तो समुद्र सोखकर, पाटकर या उसपर पुल बाँधकर इस पार आवेंगे, जहाज आदिकी हमें आवश्यकता नहीं होगी। (इस पार उतर आने भरकी देर है) फिर तो हमारा प्रबल दल आधे पलमें ही शत्रुकी सारी सेनाका संहार करके, पापी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बैरि-वृंद-बिधवा-बनितनि-को, देखिबो बारि-बिलोचन बहिबो।
सानुज सेन-समेत स्वामि-पद निरखि परम मुद-मंगल लहिबो॥ ३॥
लंक-दाह उर आनि मानिबो, साँच राम सेवक-को कहिबो।
'तुलसी' प्रभु सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहैं सबको सोच-दव दहिबो॥ ४॥ (१४)

कपि-के चलत सिय-को मन गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयननि्ह छायो॥ १॥
कहन चह्यो सँदेस, नहिं कह्यो, पियके जियकी जानि, हृदय दुसह दुख दुरायो।
देखि दसा ब्याकुल हरीस[1], ग्रीषम-के पथिक-ज्यों धरनि तरनि-तायो॥ २॥
मीच-तें नीच लगी अमरता, छल-को, न बल-को निरखि थल, परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मातु प्रीति-सों असीस दीन्ही, ह्वै है तिहारोई मन भायो॥ ३॥
करुना, कोप, लाज, भय भरो कियो गौन, मौन ही चरन-कमल सीस नायो।
यह सनेह-सरबस समो, 'तुलसी' रसना रूखी, ताही-तें परत गायो॥ ४॥१५

रावणको जीता ही धर दबोचेगा॥ २॥ तब आप देखिएगा कि शत्रुओंकी विधवा नारियाँ कैसे आँसू बहाती हैं और तब लक्ष्मण तथा सेनाके साथ प्रभुके चरण-कमल देखकर आपको परम आनन्द और मंगल होगा॥ ३॥ मैंने जो लंका जलाई है वह आप देख ही चुकी हैं। इसीसे आप इस रामदूतकी सब बातें सत्य समझ सकती हैं।' तुलसीदास कहते हैं कि अब शीघ्र ही देवता लोग रामका सुयश गानेवाले हैं और तब जो लोग शोककी अग्निमें जले जा रहे हैं उनकी सारी जलन दूर हो मिटेगी॥ ४॥ (१४)

हनुमान्‌के चलते समय सीताका जी भर आया। उनका शरीर रोमांचित और विह्वल हो उठा तथा उनकी आँखें डबडबा आईं। वे प्रभुको कुछ संदेश कहलानेवाली थीं, परन्तु पतिके चित्तकी (व्याकुल) अवस्थाका विचार करके उन्होंने कुछ नहीं कहा, अपना दुःसह दुःख अपने हृदयमें ही छिपाए रह गईं। उनकी वह दशा देखकर हनुमान् वैसे ही व्याकुल हो उठे जैसे गर्मीके दिनोंमें सूर्यके तापसे तपी हुई भूमिपर चलनेवाला पथिक तिलमिला उठता है॥ २॥ उन्हें अपना अमर होना मृत्युसे भी बुरा लगने लगा। वहाँ छल या बलका कोई अवसर न देखकर उन्हें अपना प्रेम बड़ा कठोर प्रतीत होने लगा (कि मैं किसी भी प्रकार सीताकी कोई सेवा नहीं कर पा रहा हूँ)। तब जानकीने उन्हें मातृ-प्रेमसे समझाकर आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारे ही मनकी इच्छा पूर्ण होगी'॥ ३॥ तब हनुमान्‌ने (सीताकी दशापर) करुणा, (रावणके व्यवहारपर) क्रोध, (सीताको इस विवश दशामें छोड़ जानेकी) लज्जा और (मेरे पीछे सीतापर कोई विपत्ति न आ जाय इस) भयसे वहाँसे प्रस्थान किया और चुपचाप सीताके चरणोंमें शीश नवा दिया। तुलसीदासकी वाणी बड़ी कठोर है, इसीसे वह उस स्नेहसे भरे हुए अवसरका वर्णन कर पाई है (अन्यथा सरस हृदयवाला कवि तो उस अवसरका वर्णन कर ही नहीं सकता था)॥ ४॥ (१५)

१. हरीस=हरि (वानर)+ईश=कपिपति, हनुमान।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग बसंत [रामसे लक्ष्मणका कथन]

रघुपति ! देखो आयो हनूमंत । लंकेस - नगर खेल्यो बसंत ॥ १ ॥
श्रीराम - काज - हित सुदिन सोधि । साथी प्रबोधि लाँघ्यो पयोधि ॥ २ ॥
सिय - पाँय पूजि आसिषा पाइ । फल अमिय - सरिस खायो अघाइ ॥ ३ ॥
कानन दलि, होरी रचि बनाइ । हठि तेल - बसन बालधि बँधाइ ॥ ४ ॥
लिय ढोल चले सँग लोग लागि । बरजोर दई चहुँ ओर आगि ॥ ५ ॥
आखत - आहुति किय जातुधान । लखि लपटि भभरि भागे बिमान ॥ ६ ॥
नभ - तल कौतुक, लंका बिलाप । परिनाम पचहिं पातकी पाप ॥ ७ ॥
हनुमान - हाँक सुनि बरषि फूल । सुर बार - बार बरनहिं लँगूर ॥ ८ ॥
भरि भुवन सकल कल्यान - धूम । पुर जारि, बारिनिधि बोरि लूम ॥ ९ ॥
जानकी तोषि, पोषेउ प्रताप । जय पवन - सुवन, दलि दुवन - दाप ॥ १० ॥
नाचहिं - कूदहिं कपि, करि बिनोद । पीवत मधु मधुबन मगन - मोद ॥ ११ ॥
यों कहत लखन, गहे पाँय आइ । मनि - सहित मुदित भेंट्यो उठाइ ॥ १२ ॥
लगे सजन सेन भयो हिय हुलास । जय-जय जस गावत 'तुलसिदास' ॥१३॥(१६)

(हनुमान्‌के लौटनेका समाचार पाकर रामसे लक्ष्मण कहने लगे—) 'वह देखिए, राम ! सामने हनुमान् चले आ रहे हैं । इन्होंने रावणके नगरमें अच्छा फाग जा खेला है । ये रामके कार्य (सीताकी खोज)-के लिये शुभ दिन शोधकर अपने साथियोंको समझाकर समुद्र लाँघ गए थे ॥ २ ॥ वहाँ इन्होंने सीताके चरणोंकी वन्दना करके उनसे आशीर्वाद पाया और अशोक-वाटिकाके अमृतके समान फल भर-पेट खाए ॥ ३ ॥ फिर वाटिका उजाड़कर इन्होंने होलीकी तैयारी की और जान-बूझकर तेल और वस्त्रसे अपनी पूँछ जा बँधवाई ॥४॥ उस समय जब ढोल बजाते हुए राक्षस इनके पीछे लग चले, तब इन्होंने चारों ओरसे बड़ी भयंकर आग धधका दी ॥५॥ और उस अग्निकी लपटोंमें इन्होंने राक्षस-रूपी चावलोंका हवन कर डाला । धू-धू करके उठती हुई वे लपटें देख-देखकर देवताओंके विमान भी भर-भराकर भाग खड़े हुए ॥ ६ ॥ उस समय आकाशमें बड़ा आनन्द और लङ्कामें रोना-पीटना मच गया, क्योंकि पापियोंके पाप, अन्तमें तो उन्हें जलाते ही हैं ॥७॥ हनुमान्‌का गर्जन सुनकर देवता फूल बरसाने लगे और उनकी पूँछकी बार-बार प्रशंसा करने लगे ॥८॥ इस प्रकार हनुमान्‌ने सब लोकोंमें आनन्दकी धूम मचाकर, नगर भस्म करके, समुद्रमें कूदकर अपनी पूँछ जा बुझाई ॥ ९ ॥ फिर जानकीको धैर्य बँधाकर आपका प्रताप पुष्ट कर दिखाया । शत्रुओंका दर्प नष्ट कर डालनेवाले पवनपुत्र हनुमान्‌की जय हो ॥ १० ॥ इस समय इनके साथी वानर विनोद-पूर्वक नाच-कूद रहे हैं और आनंदमें मग्न होकर मधुवनमें मधुपान कर रहे हैं' ॥११॥ लक्ष्मण इतना ही कह पाए थे कि हनुमान्‌ने रामके पैर आ पकड़े । रामने उन्हें (सीताकी दी हुई) चूड़ामणिके साथ आनन्दपूर्वक हृदयसे उठा लगाया ॥१२॥ हनुमान्‌के आ-जानेसे सब बड़े आनन्दित हो उठे और सब सेनाएँ सजाने लगे । तुलसीदास भी जय-जयकार करते हुए उन्हीं (हनुमान्)-का यश गाए जा रहे हैं ॥ १३ ॥ (१६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग जयतश्री

सुनहु राम ! बिस्राम-धाम हरि ! जनकसुता अति बिपति जैसे सहति ।
'हे सौमित्रि - बंधु ! करुनानिधि !' मन - महँ रटति, प्रकट नहिं कहति ॥ १ ॥
निजपद - जलज बिलोकि सोक - रत, नयननि बारि न रहत एक छन ।
मनहु नील नीरज ससि - संभव, रबि - बियोग दोउ स्रवत सुधा - कन ॥ २ ॥
बहु राक्षसी - सहित तरु - के तर, तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति ।
मनहु दुष्ट इंद्रिय - संकट - महँ बुद्धि, बिबेक - उदय - मग जोवति ॥ ३ ॥
सुनि कपि - बचन, बिचारि हृदय हरि अनपायिनि सो सदा एक मन ।
'तुलसिदास'-दुख-सुखातीत हरि, सोच करत मानहु प्राकृत जन ॥५॥(१७)

राग केदारा

रघुकुल - तिलक ! बियोग तिहारे ।
मैं देखी जब जाइ जानकी, मनहु बिरह - मूरति मन मारे ॥ १ ॥
चित्र-से नयन, अरु गढ़े-से चरन - कर, मढ़े-से स्रवन, नहिं सुनति पुकारे ।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रह, नित निज पद - कमल निहारे ॥ २ ॥

(रामसे हनुमान् कहने लगे—) 'शान्तिके भांडार राम ! सीता वहाँ जो घोर विपत्ति सह रही हैं वह मैं सुनाए देता हूँ । वे (वियोगकी व्यथा) प्रकट तो कुछ नहीं कहतीं, पर मन ही मन दिन-रात यही रटती रहती हैं—'लक्ष्मणके भाई राम ! हे दयालु राम' ! ॥१॥ उनकी आँखें दिन-रात चरण-कमलोंकी ओर बँधी रहती हैं और उनके शोक-भरे नेत्रोंके आँसू क्षण-भरके लिये भी रुक नहीं पाते मानो चन्द्रमा (मुख)-में खिले हुए दो नीले कमल (नेत्र), सूर्य (राम)-से वियोग होनेके कारण अमृतकी बूँदे (आँसू) टपकाए जा रहे हों ॥२॥ आपके वियोगमें वे अनेक राक्षसियोंसे घिरी हुई एक वृक्षके नीचे बैठी किसी-किसी प्रकार अपना जीवन इस प्रकार बिताए जा रही हैं मानो दुष्ट इन्द्रियोंके बीचमें पड़ी हुई बुद्धि, विवेककी बाट जोह रही हो' ॥ ३ ॥ हनुमान्के ये वचन सुनकर रामने हृदयमें विचार कर लिया कि सीताके मनमें मेरी अनपायिनी (अटल) भक्ति जमी हुई है । तुलसीदास कहते हैं कि यह सोचकर सुख-दुःखसे परे रहनेवाले राम भी इस प्रकार व्याकुल हो उठे जैसे कोई साधारण पुरुष शोक करता हो ॥ ४ ॥ (१७)

'रघुकुलके तिलक राम ! जिस समय मैंने जानकीको देखा उस समय वे ऐसी जान पड़ीं मानो अपना मन दबाए हुए विरहकी मूर्त्ति ही वहाँ बैठी हुई हो ॥ १ ॥ उनके नेत्र चित्रमें बनी मूर्त्तिके समान निश्चल थे, हाथ-पाँव जैसे गढ़े हुए-से जान पड़ते थे और कान (किसी वस्तुसे) ऐसे मढ़े हुए-से लगते थे कि लाख पुकारनेपर भी वे सुन नहीं पा सक रही थीं । वे जिह्वासे दिनरात आपका नाम रटती रहती हैं, अपना हाथ सदा मस्तक-पर ही टेके रहती हैं और अपने नेत्र सदा अपने चरण-कमलों-पर ही टिकाए रहती हैं ॥ २ ॥ उनके मनमें आपके दर्शनोंकी बड़ी आशा और लालसा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दरसन - आस - लालसा मन - महँ, राखे ध्यान प्रान - रखवारे।
'तुलसिदास' पूजति त्रिजटा निक, रावरे गुन - गन - सुमन सँवारे ॥३॥ (१८)

अतिहि अधिक दरसन-की आरति।
राम ! बियोग असोक - बिटप तर, सीय निमेष कलप - सम टारति ॥ १ ॥
बार - बार बर बारिज - लोचन, भरि - भरि बरत बारि उर ढारति।
मनहु बिरह-के सद्य घाय हिय लखि, तकि-तकि धरि धीरज तारति ॥ २ ॥
'तुलसिदास' जद्यपि निसि - बासर, छिन-छिन प्रभु मूरतिहि निहारति।
मिटत न दुसह ताप तउ तन - को, यह बिचारि अंतरगति हारति ॥३॥ (१९)

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु राम करुनानिधि ! जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न ॥ १ ॥
लोचन - नीर कृपिन-के धन-ज्यों, रहत निरंतर लोचन - कोन।
'हा धुनि'—खगी लाज-पिंजरी-महँ, राखी हिये बधिक हठि मौन ॥ २ ॥
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग-मृग, तजि - तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास - समीर भेंट भइ भोरेहुं, तेहि मग पग न धर्‍यो तिहुँ पौन ॥ ३ ॥

लगी हुई है। अतः, उन्होंने अपने प्राणोंकी रखवालीके लिये आपका ध्यान ही पहरेदार बना रख छोड़ा है। तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ त्रिजटा नामकी एक राक्षसी है जो बेचारी आपके गुणोंके पुष्पोंसे भली प्रकार उनकी पूजा किया करती है (सीताको दिन-रात आपके गुण सुनाती रहती है) ॥ ३ ॥ (१८)'

'राम ! जानकी तो आपके दर्शनोंके लिये तरसी पड़ रही हैं। वे अशोक वृक्षके तले बैठी हुई आपके वियोगमें एक-एक क्षण एक-एक कल्प (चार करोड़ बत्तीस लाख वर्ष)-के समान बिताए दे रही हैं ॥ १ ॥ वे अपने कमलके समान नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू भर-भरकर बार-बार अपने हृदयपर उँडेले जा रही हैं मानो हृदयमें विरहके नये-नये घाव देखकर वे धैर्यपूर्वक ताक-ताककर उनपर गरम जलकी धाराके तरारे दिए जा रही हों ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि वे रात-दिन प्रति-क्षण आपकी ही मूर्ति देखा करती हैं, फिर भी उनके शरीरका ताप इतना दुःसह है कि वह दूर नहीं हो पाता। बस, यही सोचकर उनका जी हार मान बैठता है' ॥ ३ ॥ (१९)

'करुणानिधान (दयालु) राम ! आपके वियोगमें जानकीकी जो दशा हुई है वह ध्यानसे सुन लीजिए। मैं उसे कुछ-कुछ तो जान पाया हूँ पर कह नहीं सकता ॥ १ ॥ उनके नेत्रोंका जल कृपणके धनके समान (जो तिजोरी या मुट्ठीसे बाहर नहीं निकलता) सदा नेत्रोंके कोनेमें ही फँसा रह जाता है। मौन-रूपी बधिकने 'हा !' ध्वनिके पक्षीको बलपूर्वक लज्जाके पिंजड़ेमें बन्द करके हृदयमें ही डाल रक्खा है (वे लज्जाके मारे मुँहसे 'हाय-हाय' भी नहीं करतीं, चुप ही रहती हैं) ॥ २ ॥ जिस वाटिकामें वे रहती हैं, वहाँके पशु-पक्षी भी (उनके विरहकी अग्निसे झुलसकर) अपने पुराने खोह और घोंसले छोड़-छोड़कर उड़ भागे हैं। उनके श्वासके वायुसे कहीं धोखेसे भी भेंट हो जाती है तो शीतल-मंद-सुगंध पवन फिर उस ओर पैर नहीं रखता ॥३॥ तुलसीदासके प्रभु राम !

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसिदास' प्रभु ! दसा सीय-की, मुख - करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख, हौ तुम आरत - आरति - दौन ॥४॥ (२०)

कपि - के सुनि कल कोमल बैन।
प्रेम पुलकि, सब गात सिथिल भे, भरे सलिल सरसीरुह - नैन ॥ १ ॥
सिय - बियोग - सागर नागर मन, बूड़न लग्यो सहित चित चैन।
लही नाव पवन-ज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन[1] मैन ॥ २ ॥
सकत न बूझि कुसल, बूझे बिन, गिरा बिपुल ब्याकुल उर - ऐन।
ज्यों कुलीन, सुचि, सुमति, बियोगिनि, सनमुख सहै बिरह - सर पैन ॥ ३ ॥
धरि - धरि धीर बीर कोसलपति, किए जतन सके उत्तर दै न।
'तुलसिदास' प्रभु सखा - अनुज - सों, सैनहिं कह्यौ, चलहु सजि सैन ॥४॥ (२१)

राग मारू

जब रघुबीर पयानो कीन्ह।
छुभित सिंधु, डगमगत महीधर, सजि सारँग कर लीन्ह ॥ १ ॥

इस मुखसे सीताकी दशाका वर्णन करूँ तो वह दशा अत्यंत गौण (साधारण)-सी जान पड़ेगी है (मुखसे वर्णन करनेपर वास्तविक दशाका अनुमान नहीं हो सकता)। अतः, अब आप चलकर उन्हें दर्शन दे ही डालिए और उनका दुःख दूर कर ही डालिए, क्योंकि आप तो दुखियोंका दुःख दूर करनेके लिये प्रसिद्ध ही हैं' ॥ ४ ॥ (२०)

हनुमान्‌के ये मधुर और कोमल वचन सुनकर रामके अंग-अंग प्रेमसे पुलकित और विह्वल हो उठे तथा उनकी कमल-जैसी आँखें डबडबा चलीं ॥ १ ॥ सीताके वियोगके समुद्रमें जब रामका मन-रूपी चतुर तैराक चित्तके आनंदके साथ-साथ डूबा जा रहा था उसी समय हनुमान्‌से सीताका समाचार पाकर उन्हें प्रसन्नताकी नौका मिल गई और प्रेमने झपटकर उस नावकी गोनिया (रस्सी) पकड़ ली (सीताका समाचार सुनकर सीताके प्रति रामके अगाध प्रेमने उन्हें वियोगकी दशामें बड़ी शान्ति दी) ॥ २ ॥ (प्रेमसे विह्वल हो जानेके कारण) वे सीताकी कुशल भी नहीं पूछ पा रहे थे और बिना पूछे उनकी वाणी हृदयके गृहमें पड़ी वैसे ही छटपटाई जा रही थी जैसे कोई कुलीन और पवित्र बुद्धिवाली वियोगिनी स्त्री घरमें बैठी दृढतापूर्वक वियोगके तीखे बाण सहन किए चली जा रही हो ॥ ३ ॥ वीर कोशलपति रामने धैर्य धारण करके बोलनेका प्रयत्न तो बहुत किया, परंतु वे बोल न पाए। तब तुलसीदासके प्रभु रामने सखा (सुग्रीव) और भाई (लक्ष्मण)-को संकेत-द्वारा ही समझ दिया कि 'सेना तैयार करके चल दो' ॥ ४ ॥ (२१)

जिस समय (वानरी सेनाके साथ) रामने लंकाको प्रस्थान किया उस समय समुद्र क्षुब्ध हो उठा और पर्वत डगमगाने लगे। तभी रामने अपना धनुष हाथमें उठाकर चढ़ा लिया ॥ १ ॥

---

१. गुन (गुण)=रस्सी, जिसे मल्लाह गोन या गोनियाँ कहते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनि कठोर टंकोर घोर अति, चौंके बिधि - त्रिपुरारि।
जटा - पटल - तें चली सुरसरी, सकत न संभु सँभारि॥ २॥
भए बिकल दिगपाल सकल, भय भरे भुवन दस - चारि।
खरभर लंक, ससंक दसानन, गर्भ स्रवहिं अरि - नारि॥ ३॥
कटकटात भट भालु, बिकट मरकट, करि केहरि - नाद।
कूदत करि रघुनाथ - सपथ, उपरो - उपरा बदि बाद॥ ४॥
गिरि - तरु - धर नख, मुख कराल रद, कालहु करत बिषाद।
चले दस दिसि रिस भरि, 'धरु' धरु' कहि, 'को बराक मनुजाद'॥ ५॥
पवन पंगु, पावक - पतंग - ससि दुरि गे, थके बिमान।
जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन - भार अकुलान॥ ६॥
गए पूरि सर धूरि, भूरि भय अग - थल - जलधि समान।
नभ निसान, हनुमान - हाँक सुनि, समुझत कोउ न अपान॥ ७॥
दिग्गज, कमठ, कोल, सहसानन, धरत धरनि धरि धीर।
बारहिं बार अमरषत, करषत, करकैं परीं सरीर॥ ८॥
चली चमू, चहुँ ओर सोर, कछु बनै न बरने भीर।
किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि - तीर॥ ९॥

उसकी अत्यंत कठोर और भयंकर टंकार सुनकर ब्रह्मा और महादेव भी चौंक पड़े। गंगा भी शंकरके जटाजूटसे ऐसी खिसक चली कि शंकर उन्हें सँभाल न पाए॥ २॥ सभी दिक्पाल व्याकुल हो उठे, चौदहों भुवन थर्रा उठे, लंकामें खलबली मच गई, रावण भी चौकन्ना हो उठा तथा शत्रुकी स्त्रियोंके गर्भपात होने लगे॥ ३॥ वीर भालू और विकट वानर सिंहनाद कर-करके दाँत पीसने लगे। वे दाँवँ लगा-लगाकर रामकी सौगंध खाकर होड़ा-होड़ी करते हुए कूद-फाँद मचाने लगे॥ ४॥ वे पर्वत और वृक्ष उठाए चले जा रहे थे। उनके तीखे नख, मुख और पैने दाँत देख-देखकर काल भी भय खा रहा था। वे दसों दिशाओंमें यह कहते हुए चले जा रहे थे—'पकड़ो पकड़ो, ये बेचारे राक्षस हैं ही क्या'॥ ५॥ पवन भी पंगु (गतिहीन) हो गया, अग्नि, सूर्य और चंद्रमा (बादलोंमें) जा छिपे, देवताओंके विमान जहाँके तहाँ रुक गए, देवता लोग पलक मारनेके लिये प्रार्थना करने लगे (क्योंकि देवताओंकी पलकें नहीं गिरतीं) तथा इंद्र अपने सहस्र नेत्रोंके बोझसे व्याकुल हो उठे (उन्हें अपना सहस्र-नेत्र होना अखर गया क्योंकि सभी आँख मूँद लेना चाहते थे)॥ ६॥ सरोवर धूलसे पट गए और ऐसा भय आ छाया कि पहाड़ी प्रदेशों-तकमें समुद्रका जल उछल पहुँचा। आकाशमें देवताओंके ढोल आदिकी ढमाढम और हनुमान्‌की गर्जना सुनकर अपनी ही बात न तो कोई सुन पा रहा था न समझ पा रहा था॥ ७॥ दिग्गज, कमठ (कच्छप), वराह और शेषनाग बड़े धैर्यके साथ किसी-किसी प्रकार धरती थामे हुए थे। धरतीका बोझ सँभालते-सँभालते उनके शरीरकी हड्डियाँ कड़कड़ा उठी थीं इसलिये बार-बार झुँझला-झुँझलाकर वे उसे ताने जा रहे थे॥८॥ इस प्रकार जब वानरोंकी सेनाने कूच की तब चारों ओर कोलाहल मच उठा। उस भीड़का कुछ वर्णन करते नहीं बनता। वानर किलकिलाते और आपसमें कसमसाते (रगड़ खाते) चल रहे थे,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जातुधान-पति जानि काल - बस, मिले बिभीषन आइ।
सरनागत - पालक कृपालु किय तिलक, लियो अपनाइ ॥ १० ॥
कौतुक-हीं बारिजि बँधाइ, उतरे सुबेल - तट जाइ।
'तुलसिदास' गढ़ देखि फिरे कपि, प्रभु - आगमन सुनाइ ॥११॥ (२२)

राग आसावरी

आए देखि दूत सुनि, सोच सठ मन - मैं।
बाहर बजावै गाल, भालु - कपि काल-बस, मोसे बीर-सों चहत जीत्यो रारि रन-मैं ॥ १ ॥
राम छाम, लरिका लखन, बालि-बालकहि घालि, को गनत ? रीछ जल ज्यौं न घन-मैं।
काज-को न कपिराज, कायर कपि - समाज, मेरे अनुमान हनुमान हरि-गन-मैं ॥ २ ॥
समय-सयानी, मृदु बानी रानी कहै 'पिय ! पावक न होहु जातुधान - बेनु - बन - मैं।
'तुलसी' जानकी दिए स्वामी-सों सनेह किए कुसल, नतरु सब ह्वैहै छार छन-मैं' ॥३॥ (२३)

आपनी - आपनी भाँति सब काहू कही है।
मंदोदरी, महोदर, मालवान महामति, राजनीति-पहुँच जहाँ - लौं जाकी रही है ॥ १ ॥

जिससे समुद्र तटपर ही बड़ा कोलाहल मच गया था ॥ ९ ॥ इसी समय जब विभीषणने देखा कि राक्षस सब कालके गालमें पहुँचनेवाले हैं तो वे रामसे आ मिले। तब शरणागत-वत्सल (शरणमें आए हुएको प्यार करनेवाले) रामने उन्हें वहींपर राजतिलक करके उन्हें अपनालिया ॥ १० ॥ फिर तो खेल-खेलमें ही समुद्रपर पुल बाँधकर उन्होंने सुबेल पर्वतपर जा डेरा जमाया। तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ पहुँचकर वानर लंकमें जाकर, वहाँका दुर्ग देखकर और वहाँ रामके आगमनकी सूचना देकर लौट आए ॥ ११ ॥ (२२)

रावणके दूत (शुक और सारण) पहले ही रामकी सेना देख आए थे। उनसे समाचार सुनकर उस शठ (रावण) के मनमें धुकधुकी तो मची हुई थी पर ऊपरसे वह गाल बजाए जा रहा था कि 'वाह ! ये कालके हाँके हुए वानर-भालू युद्धमें मुझ-जैसे वीरसे लड़कर विजय प्राप्त करने अच्छे आ पहुँचे हैं ! ॥१॥ अरे ! राम तो (सीताके वियोगमें) दुर्बल हुए पड़े हैं, लक्ष्मण अभी लड़के ही हैं, बालिका पुत्र अंगद अपना कुल ही मिटाए बैठा है, अतः उसकी तो गिनता ही क्या है ? रहा जाम्बवान्, वह बिना पानी-वाले मेघके समान व्यर्थ है। सुग्रीव महा निकम्मा है और वानर-समाज तो सारा कायर ही है। हाँ, मेरी समझमें इन वानरोंमें एक हनुमान् अवश्य शूर वीर है' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि इसी समय परम चतुर रानी मन्दोदरीने बड़े प्रेमसे उसे समझाया—'प्रियतम ! आप इस राक्षस-कुल - रूपी बाँसोंके वनके लिये (उसे जला डालनेवाली) अग्नि न बनिए (राक्षस-कुलका नाश मत कराइए। इस समय तो उन्हें जानकी देकर रामसे सन्धि कर लेनेमें ही कुशल है, नहीं तो एक ही क्षणमें सब नष्ट हुआ समझिए' ॥ ३ ॥ (२३)

इस प्रकार मन्दोदरी महोदर, और परम बुद्धिमान् माल्यवान आदि सभीने, जिसकी जहाँतक राजनीतिमें पहुँच थी, अपने-अपने ढंगसे रावणको बहुत समझाया-बुझाया ॥१॥ पर वह इतना अधिक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महामद-अंध दसकंध न करत कान, मीच-बस नीच हठि कुगहनि गही है।
हँसि कहै, 'सचिव सयाने मोसों यों कहत, चहै मेरु उड़न बड़ी बयारि बही है' ॥ २ ॥
भालु, नर, बानर अहार निसिचरनि-को, सोऊ नृप-बालकनि माँगी धारि लही है।
देखो काल-कौतुक, पिपीलिकनि पंख लागे, भाग मेरे लोगनि-के भई चित-चही है ॥ ३ ॥
तोसों न तिलोक आज साहस समाज-साज, महाराज-आयस भो जोई सोइ सही है।
'तुलसी' प्रनाम कै, बिभीषन बिनती करै 'ख्याल बेधे ताल, कपि केलि लंका दही है' ॥४॥ (२४)

दूसरो न देखत साहिब सब रामै।

बेदऊ, पुरान, कबि, कोबिद बिरद-रत, जाको जस सुनत, गावत गुन-ग्रामै ॥ १ ॥
माया, जीव, जग-जाल, सुभाउ, करम, काल, सबको सासक, सबमैं, सब जा-मैं।
बिधि-से करनिहार, हरि-से पालनिहार, हर-से हरनिहार जपैं जाके नामैं ॥ २ ॥
सोइ नर-बेष जानि, जन-की बिनति मानि, मतो नाथ सोई जा-तें भलो परिनामै।
सुभट-सिरोमनि कुठार-पानि सारिखेहु, लखी औ लखाई इहाँ किए सुभ सामैं ॥ ३ ॥

मदान्ध हो चला था कि उसने किसीकी एक सुनकर न दी। वह नीच मृत्युके हाथका खिलौना बनकर हठ करके कुमार्ग ही पकड़े हुए हँसकर कहने लगा—'वाह ! हमारे चतुर मंत्री भी मानो ऐसी बात कहते हैं कि 'भाई ! अन्धड़ चल रहा है, इसलिये सुमेरु पर्वत उड़ जाना चाहता है' ॥ २ ॥ अरे ! मनुष्य, वानर और भालू तो स्वभावसे ही राक्षसोंके भोजन हैं और फिर इन राजकुमारोंको तो यह सेना माँगी हुई मिली है। कालका खेल तो देखो कि आज चींटियोंके भी पंख जम आए हैं। यह तो समझो कि मेरे भाग्यसे ही यहाँके लोगोंकी मनचाही हो गई है (मेरे भाग्यसे ही लंकाके राक्षसोंको बैठे-बिठाए आहार मिल गया है)' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह सुनकर विभीषणने प्रणाम करके कहा—'महाराज ! आपकी जैसी आज्ञा होगी, वही होगा। सचमुच आज त्रैलोक्यमें कोई नहीं है जो साहस और सैन्य-बलमें आपके सामने टिक सके। परन्तु ये राम वे ही हैं जिन्होंने संकल्प मात्रसे तालके सात वृक्षोंको वेध डाला था और उनका वानर हनुमान् खेल-खेलमें ही लंका भस्म कर गया था' ॥ ४ ॥ (२४)

(रावणसे विभीषण कहने लगे —) 'रामके समान तो कोई और ऐसा स्वामी दिखाई नहीं देता जिसकी प्रशंसा तथा जिनके सुयश और गुणोंका वर्णन वेद, पुराण, कवि और विद्वज्जन सभी निरंतर करते रहते हैं, ॥ १ ॥ जो माया, जीव, सांसारिक प्रपंच, स्वभाव, कर्म और काल, सबपर शासन करते हैं, जो सबमें समाए हुए हैं, जिसमें सारा संसार बसा हुआ है और ब्रह्मा-जैसे रचयिता, विष्णु-जैसे पालक और शंकर-जैसे संहारक भी जिनका नाम जपा करते हैं ॥२॥ वे ही राम, मनुष्यके रूपमें अवतार ले उतरे हैं, यही समझकर मुझ दासीकी प्रार्थना मान लीजिए क्योंकि सम्मति वही ठीक होती है जिसका परिणाम अच्छा हो। देखिए, कुठार-धारी परशुराम-जैसे शूर-शिरोमणिने भी ठोक-बजाकर समझ लिया था कि इनसे साम (सन्धि) ही कर लेनेमें कल्याण है'

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बचन - बिभूषन बिभीषन - बचन सुनि, लागे दुख दूषन - से दाहिनेउ बामैं।
'तुलसी' हुमुकि, हिये हन्यो लात, 'भले तात', चल्यो सुरतरु ताकि,तजि घोर घामैं॥४॥(२५)

जाय, माय पाँय परि, कथा-सो सुनाई है।
समाधान करति बिभीषन-को बार बार, 'कहा भयो तात ! लात मारे, बड़ो भाई' है॥ १ ॥
साहिब पितु-समान, जातुधान-को तिलक, ताके अपमान तेरी बड़िए बड़ाई है।
गरत गलानि जानि, सनमानि सिख देति, रोष किए दोष, सहे, समुझे भलाई है॥ २ ॥
इहाँ-तें बिमुख भये, राम-की सरन गए भलो, नेकु लोक - राखे निपट निकाई है।
मातु-पग सीस नाइ, 'तुलसी' असीस पाइ, चले, भले सगुन कहत, मन भाई है॥३॥(२६)

भाई - को - सो करौं, डरौं कठिन कुफेरै।
सुकृत-संकट पर्‍यो, जात गलानिन्ह गर्‍यो, 'कृपानिधि-को मिलौं, पै मिलि-कै कुबेरै' ॥ १ ॥
जाइ गहे पाँय, धाइ धनद उठाइ भेंट्यो, समाचार पाइ, पोच सोचत सुमेरै।
तहँई मिले महेस, दियो हित - उपदेस, 'राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै॥ २ ॥

॥ ३ ॥ विभीषणके ये हितकारी वचन (जो रावणके लिये बड़े हितकर थे) उसे अत्यन्त घातक, दुःखकर और बुरे लगे। अतः, उसने हुमचकर विभीषणकी छातीपर एक लात उठा जमाई। लात लगते ही 'अच्छा भैया' कहकर (रावण-रूपी) प्रचंड चिलचिलाती धूप छोड़कर वह (राम-रूपी) कल्पवृक्षकी छायाकी ओर चल पड़े (रावणको छोड़कर रामके पास चल दिए) ॥ ४ ॥ (२५)

विभीषणने अपनी माता (कैकसी)-के पास जाकर उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर सारा वृतान्त कह सुनाया। माता बारबार उन्हें समझाने लगी—'भैया ! उसके लात मारनेसे क्या हुआ ? (लात मानेका बुरा नहीं मानना चाहिए)। आखिर वह तेरा बड़ा भाई ही है न ! ॥ १ ॥ पहले तो वह तेरा स्वामी, फिर पिताके समान बड़ा भाई, तिसपर भी राक्षस-कुलका तिलक है। वह यदि अपमान कर भी बैठे तो भी तेरा बड़ा सम्मान ही है।' विभीषणको अत्यन्त खिन्न (अपमानित, दुखी) देखकर वह इसी प्रकार समझाने लगी और बोली—'देखो भैया ! इस समय क्रोध करनेसे बड़ी हानि होगी और सहने-समझ लेनेमें भलाई ही भलाई है ॥ २ ॥ हाँ, यहाँसे हटकर रामकी शरणमें चले जानेसे थोड़ी भलाई अवश्य है, फिर भी यदि लोककी रक्षा कर सके (लोक-व्यवहारके अनुरूप बड़े भाईके व्यवहारका बुरा न माना) तो भलाई ही भलाई है।' तुलसीदास कहते हैं कि माताके लाख समझानेपर भी विभीषण उनके चरणोंमें सिर नवाकर और उनसे आशीर्वाद पाकर वहाँसे चल पड़े। मार्गमें अच्छे-अच्छे शकुन मिलते देखकर वे मनमें कहने लगे—'मेरे तो मनकी बात हो गई' ॥ ३ ॥ (२६)

[विभीषण मनमें सोचते चले जा रहे थे—] 'मुझे भाई-जैसा ही व्यवहार करना चाहिए था (बड़े भाईका आदर करना चाहिए था) परन्तु मैं आनेवाली भारी विपत्तियों से घबराया जा रहा हूँ।' विभीषण इस प्रकारके धर्म-संकटमें पड़े मानसिक ग्लानिसे गले चले जा रहे थे। फिर उन्होंने निश्चय किया कि चलकर पहले भाई कुबेरसे मिल लिया जाय, फिर कृपानिधान रामसे मिला जायगा ॥ १ ॥ यह सोचकर उन्होंने कुबेरके पास जाकर उनके चरण जा पकड़े। कुबेरने उन्हें गलेसे उठा लगाया। विभीषणसे रावणके दुर्व्यवहारका खोटा समाचार सुनकर वे सुमेरु

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जाको नाम कुंभज-कलेस-सिंधु सोखिबे-को, मेरो कह्यो मानि, तात ! बाँधै जिनि बेरै ।'
'तुलसी' मुदित चले, पाए हैं सगुन भले, रंक लूटिबे-को मानो मनिगन ढेरै ॥ ३ ॥ (२७)

राग केदारा

संकर सिख - आसिष पाइकै ।
चले मनहिं मन कहत बिभीषन, सीस महेसहिं नाइकै ॥ १ ॥
गए सोच, भऐ सगुन, सुमंगल दस दिसि देति देखाइकै ।
सजल नयन, सानंद हृदय, तन प्रेम पुलक अधिकाइकै ॥ २ ॥
अंतहु भाव भलो भाई-को, किय अनभलो मनाइकै ।
भइ कूबर - की लात बिधाता, राखी बात बनाइकै ॥ ३ ॥
नाहि-त क्यों कुबेर-घर मिलि हर, हित कहते चित लाइकै ।
जो सुनि सरन राम ताके मैं, निज बामता बिहाइकै ॥ ४ ॥
अनायास अनुकूल सूलधर, मग मुद - मूल जनाइकै ।
कृपासिंधु सनमानि जानि जन, दीन लियो अपनाइकै ॥ ५ ॥
स्वारथ - परमारथ करतल - गत, स्रम - पथ गयो सिराइकै ।
सपने, कै सौतुक ? सुख-सस सुर, सोंचत, देत निराइकै ॥ ६ ॥

पर्वतपर ही खड़े-खड़े सोच-विचार करने लगे । वहीं उन्हें शिव मिल गए । उन्होंने विभीषणको यह हितकर उपदेश देते हुए कहा—'देखो विभीषण ! तुम चुपचाप रामकी शरणमें चले जाओ, इसके लिये कोई शुभ दिन ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २ ॥ देखो तात ! जिनका नाम ही अगस्त्यके समान क्लेशका समुद्र सोख लेता है, उनके पास पहुँचनेके लिये मेरा उपदेश मानकर, तुम किसी प्रकार की तैयारी मत करो (बहुत लोगोंकी सम्मति मत लो) । तुलसीदास कहते हैं कि यह सुनते ही विभीषण ऐसे प्रसन्न होकर चले मानो मणियोंका ढेर लूटनेके लिये कोई दरिद्र चला जा रहा हो । मार्गमें उन्हें अनेक शुभ शकुन भी मिलते चले जा रहे थे ॥ ३ ॥ (२७)

शंकरका उपदेश और आशीर्वाद पाकर विभीषण उन्हें सिर नवाकर मन ही मन यह कहते हुए चल दिए—॥१॥ 'वाह ! दसों दिशाओंमें मंगलमय शकुन दिखाई दे रहे हैं ।' इससे उनकी सारी चिन्ता मिट गई, उनकी आँखें डबडबा आईं, हृदय आनंदसे भर उठा और शरीर प्रेमसे अत्यंत पुलकित हो उठा ॥ २ ॥ (वे कहने लगे—) 'आखिर भाईका यह दुर्व्यवहार मेरे लिये अच्छा ही हुआ । यद्यपि उसने मेरा अपमान करनेके लिये ही यह कार्य किया था (लात मारी थी) तथापि विधाताने मेरा कल्याण कर दिया । रावणकी लात मेरे लिये कूबड़की लात हो गई । (कूबड़पर लात लगनेसे जैसे कूबड़ दूर हो जाता है वैसे ही मेरा भी कल्याण हो गया) ॥३॥ यदि ऐसा न होता तो कुबेरके घरपर महादेव मिलकर, मेरा हित विचारकर, यह (रामके पास चले जानेका) परामर्श क्यों देते जिसे सुनकर मैं अपनी सारी कुटिलता छोड़कर रामकी शरण लेनेपर उतारू हो गया हूँ ॥४॥ उन कृपालु त्रिशूलधर (शंकर) ने अनायास ही कृपा करके मुझे यह आनंददायक मार्ग आ दिखाया और अपना दीन जन जानकर इस दासको आदरपूर्वक अपनालिया ॥ ५ ॥ उनकी कृपासे मुझे स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही हाथ लग गए और सारा क्लेश ही मिट गया । यह सब मैं स्वप्न देख रहा हूँ या सब सत्य

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गुरु गौरीस, साइँ सीतापति, हित हनुमानहिं जाइकै।
मिलिहौं, मोहिं कहा कीबे अब, अभिमत - अवधि अघाइकै ॥ ७ ॥
मरतो कहाँ जाइ, को जानै, लटि लालचो ललाइकै।
'तुलसिदास' भजिहौं रघुबीरहिं, अभय - निसान बजाइकै ॥ ८ ॥ (२८)

पद - पदुम गरीबनिवाज़ - के।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन - फल, हित सुर - साधु - समाज-के ॥ १ ॥
गई - बहोर, ओर निरबाहक, साजक बिगरे साज-के।
सबरी सुखद, गीध गति - दायक, समन - सोक कपिराज-के ॥ २ ॥
नाहिंन मोहिं और कतहूँ कछु, जैसे काग जहाज-के।
आयो सरन, सुखद पद-पंकज, चौंथे रावन - बाज - के ॥ ३ ॥
आरति - हरन, सरन-समरथ, सब दिन अपने-की लाज-के।
'तुलसी' पाहि कहत नत-पालक, मोहुँ-से निपट निकाज-के ॥ ४ ॥ (२९)

महराज राम - पहँ जाउँगो।
सुख-स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ, ज्यों साहिबहिं सुहाउँगो ॥ १ ॥

हो रहा है कि आज मेरे सुखके शस्य (धान)-को देवता लोग स्वयं सींचें और निरा रहे हैं (मुझे अत्यंत सुख मिल रहा है) ॥ ६ ॥ आज कितना अच्छा दिन है कि मैं अपने गुरु शंकर, स्वामी राम और हितकारी हनुमान्‌से जाकर भेंट कर पाऊँगा। अब मुझे क्या पाना रह गया है ? अब तो मुझे छककर अपनी मनचाही वस्तु मिल गई ॥ ७ ॥ कौन जाने मैं विषय-लोलुप व्यक्ति, विषयोंकी लालसामें पड़ा दुखी होता हुआ न जाने कहाँ जाकर प्राण देता ?' तुलसीदास कहते हैं, (वह आगे सोचने लगा कि—) 'अब तो मैं अभयका डंका बजाकर केवल रामका ही बैठा भजन किया करूँगा' ॥ ७८ ॥ (२८)

'वाह ! अब तो मैं गरीब-नेवाज (दीन-दयालु) रामके चरण-कमल जा देखूँगा और नेत्रों-का वह फल जा पाऊँगा जिससे देवता और साधु-समाजका भी अत्यंत कल्याण होता है ॥ १ ॥ राम तो बीते हुए सुख भी फिर ला देते हैं, अन्ततक रक्षा करते रहते हैं और बिगड़ी दशा सुधार देते हैं। उन्होंने शबरीको सुख दिया, गृध्रराजको मुक्ति दी और कपिराज सुग्रीवका चिन्ता दूर कर डाली ॥ २ ॥ जहाजपर बैठे हुए कौवेके समान मुझे तो रामको छोड़कर कोई दूसरा आश्रय है नहीं। अतः, मैं रावण-रूपी बाज़से पीडित होकर उन्हींके सुख देनेवाले चरण-कमलोंकी शरणमें आ पहुँचा हूँ। ॥ ३ ॥ वे सदा अपने भक्तोंकी लज्जा (सम्मान) बचा सकते और शरणागतोंके दुःख दूर कर सकते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि 'रक्षा करो' कहनेपर तो वे शरणमें आए हुए मुझ - जैसे निकम्मे पुरुषोंकी भी अवश्य रक्षा कर लेते हैं' ॥ ४ ॥ (२९)

'अब मैं महाराज रामके पास जाऊँगा और सब प्रकारका सुख और स्वार्थ छोड़कर वही करूँगा जिससे मैं स्वामी (राम)-को प्रिय लगूँ ॥१॥ वे तो शरणागत जानकर शीघ्र ही मुझे अपने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं हौं निपटहिं सकुचाउँगो।
राम गरीब - निवाज निवाजिहिं जानिहिं ठाकुर ठाउँगो॥ २॥
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि-तें केहि लाभ अघाउँगो?
सपनो सो अपनो न कछू लखि, लघु लालच न लोभाउँगो॥ ३॥
कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो, बिनु मोल ही बिकाउँगो।
'तुलसी' पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो॥ ४॥ (३०)

आइ सचिव बिभीषन-के कही।
कृपासिंधु! दसकंध - बंधु लघु, चरन - सरन आयो सही॥ १॥
बिषम - बिषाद - बारिनिधि बूड़त, थाह कपीस - कथा लही।
गये दुख - दोष, देखि पद - पंकज, अब न साध एकौ रही॥ २॥
बिथिल सनेह सराहत नख - सिख, नीक निकाई निरबही।
'तुलसी' मुदित दूत भयो मन-में, अमिय-लाहु माँगत मही॥ ३॥ (३१)

पास बुलाने लगेंगे किन्तु मैं झेंपके मारे आगे न बढ़ सकूँगा। तब दीनदयालु प्रभु मुझे अनाथ और निराश्रित जानकर मेरी रक्षा करेंगे ही॥ २॥ राम बस मेरे मस्तकपर हाथ भर रख दें तो उससे बढ़कर और कौन लाभ होगा जो मुझे तृप्त कर सकेगा? इस संसारको स्वप्नवत् समझकर और यहाँ अपना कुछ न समझकर मैं तुच्छ प्रलोभनोंपर अब नहीं ललचाऊँगा॥३॥ मैं कहूँगा—'नाथ! बलिहारी जाता हूँ। मैं तो आपके दिए टुकड़े खाकर पड़ा रहूँगा और बिना मोल ही आपके हाथ बिक रहूँगा। मैं रामके तो उतरे हुए वस्त्र ही पहन लिया करूँगा और बचा-खुचा जूठन खाकर ही पड़ रहूँगा'॥ ४॥ (३०)

विभीषणके मंत्रीने आकर रामसे कहा—'कृपासिन्धु! रावणका छोटा भाई शुद्ध भावसे आपके चरणोंकी शरणमें आया हुआ है॥१॥ वह अत्यंत दुःखके समुद्रमें डूबा ही जा रहा था कि उसे सुग्रीव (-से आपकी मित्रता)-की कथाके[1] रूपमें थाह मिल गई। अब आपके चरण-कमलों का दर्शन करके उसके सारे दुःख-दोष दूर हो गए। उसके मनमें अब किसी प्रकारकी कोई कामना नहीं बच रही है'॥२॥ रामके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें छाई सुई अपार सुन्दरता देखकर वह मंत्री स्नेहमें विह्वल होकर उसकी सराहना करने लगा। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय वह दूत (विभीषणका मंत्री) इतना प्रसन्न हुआ मानो कोई मठ्ठा माँगने जाय और उसे मिल जाय अमृत॥ ३॥ (३१)

१—सुग्रीवकी कथा : बालिसे अत्यंत त्रस्त होकर उसका भाई सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर जा बसा था क्योंकि वहाँ शापके भयसे बालि नहीं जा सकता था। राम-लक्ष्मणको आते देखकर उसे संदेह हुआ कि कहीं बालिने ही मेरा भेद लेनेको इन्हें न भेज दिया हो। उसने हनुमानको विप्र-वेषमें रामके पास भेजा। रामका परिचय पाकर वह शरणमें आ गया और रामने उसे अपनाकर उसे वानरोंका राजा बना दिया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिनती सुनि, प्रभु प्रमुदित भए।
रीछराज, कपिराज, नील, नल, बोलि बालिनंदन लए॥ १॥
बूझिय कहा! रजाइ पाइ, नय - धरम - सहित ऊतर दए।
बली बंधु ताको जु मोह - बस, बैर - बीज बरबस बए॥ २॥
बाँह-पगार[1]! द्वार तेरे - तैं सभय, न कबहूँ फिरि गए।
'तुलसी' असरन-सरन स्वामि-के, बिरद बिराजत नित नए॥ ३॥ (३२)

हिय बिहँसि कहत हनुमान - सों।
सुमति, साधु, सुचि, सुहृद बिभीषन, बूझि परत अनुमान-सों॥ १॥
'हौं बलि जाउँ, और को जानै?', कह कपि कृपानिधान-सों।
'छली न होइ स्वामि-सनमुख, ज्यों तिमिर सातहय-जान[2] सों॥ २॥
खोटो, खरो, सभीत पालिए, सो सनेह सनमान - सों।
'तुलसी' प्रभु कीबो जो भलो सोइ, बूझि सरासन - बान सों'॥ ३॥ (३३)

साँचेहु बिभीषन आइ है?
बूझत बिहँसि कृपालु, लखन सुनि कहत सकुचि सिर नाइहै॥ १॥

दूतका निवेदन सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ऋक्षराज जाम्बवान्, कपिपति सुग्रीव, नल, नील और बालि-कुमार अंगदको बुला भेजा॥ १॥ और (उनसे पूछा कि) इस संबंधमें आप लोगोंकी क्या सम्मति है? रामकी आज्ञा पाकर वे सभी धर्म और नीतिके अनुसार उत्तर देने लगे। वे बोले—'प्रभो! यह उरवी महाबली रावणका भाई है जिसने मोहवश बरबस ही आपसे शत्रुता मोल ली है॥ २॥ परन्तु बाँह-पगार (बाँह फैलाकर दीनोंकी रक्षा करनेवाले), आपके द्वारपर आकर कोई भी डरा हुआ व्यक्ति रीते हाथ नहीं लौटा। तुलसीदास कहते हैं कि अशरणको शरण देनेवाली आपकी कीर्त्ति तो नित्य नये-नये रूपमें मिलती रहती है'॥ ३॥ (३२)

तब राम अपने मनमें हँसकर हनुमान्‌से कहने लगे—'देखनेमें तो मुझे विभीषण बड़ी अच्छी बुद्धिवाले, सज्जन, निष्कपट और भले ही जान पड़ते हैं'॥ १॥ तब हनुमान्‌ने कृपालु रामसे कहा—'मैं बलिहारी जाता हूँ, आपसे बढ़कर इस विषयमें और कौन जान सकता है? जिस प्रकार सूर्यके सम्मुख अन्धकार नहीं टिक पा सकता, उसी प्रकार छली पुरुष तो आपके सामने आ भी नहीं सकता॥ २॥ यह (भाईसे) डरा हुआ आया है, अतः अच्छा हो या बुरा, अब तो स्नेह और आदर-पूर्वक इसे शरणमें ले ही लीजिए। या जैसा उचित हो वह अपने धनुष-बाणसे ही पूछ देखिए (क्योंकि ये धनुष-बाण दुष्टोंके घातक और साधुजनोंके प्रतिपालक हैं)'॥ ३॥ (३३)

कृपालु रामने हँसकर पूछा—'क्या सचमुच विभीषण यहाँ आवेगा?' यह सुनकर लक्ष्मणने सिर नवाकर सकुचाते हुए कहा—॥ १॥ 'प्रभो! आवेगा क्या? वह तो यहाँ आया बैठा है। आपके

---

१. बाँहपगार = बाँह फैलाकर दीनोंकी रक्षा करनेवाले। २. सातहय-जान = सूर्य, जिसके यानमें सात घोड़े जुते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अइहै कहा, नाथ ! आयो ह्याँ, क्यों कहि जाति बनाइ है।
रावन - रिपुहिँ राखि रघुबर - बिनु, को त्रिभुवन पति पाइ है ॥ २ ॥
प्रभु प्रसन्न, सब सभा सराहति, दूत बचन मन भाइ है।
'तुलसी' 'बोलिय बेगि', लखन-सौं, भइ महराज - रजाइ है ॥३॥(३४)

चले लेन लखन - हनुमान हैं।
मिले मुदित, बुझि कुसल परसपर, सकुचत करि सनमान हैं ॥ १ ॥
भयो रजायसु, पाँउ धारिए, बोलत कृपानिधान हैं।
दूरि - तेँ दीनबंधु देखे जनु, देत अभय बरदान हैं ॥ २ ॥
सील, सहस हिमभानु, तेज सत कोटि भानुहुँ - के भान हैं।
भगतनि-को हित कोटि मातु-पितु, अरिन-को कोटि कृसान हैं ॥ ३ ॥
जन गुन-रज, गिरि गनि सकुचत, निज गुन-गिरि रज-परमान हैं।
बाँह - पगार, बोल - को अबिचल, बेद करत गुन - गान हैं ॥ ४ ॥
चारु चाप - तूनीर, तामरस - करनि सुधारत बान हैं।
चरचा चलति बिभीषन - की, सोइ सुनत सुचित, दै कान हैं ॥ ५ ॥
हरषत सुर, बरषत प्रसून, सुभ सगुन कहत, कल्यान हैं।
'तुलसी' ते कृतकृत्य, जे सुमिरत, समय सुहावनो ध्यान हैं ॥ ६ ॥(३५)

सामने कोई बात बनाकर कैसे कही जा सकती है ? भला आपको छोड़कर तीनों लोकोंमें ऐसा कौन है, जो रावणके शत्रुको भी शरण देकर अपनी प्रतिष्ठा बनाए रख सके ?' ॥ २ ॥ यह सुनकर राम प्रसन्न हो उठे। सारी सभा भी प्रशंसा कर उठी और दूतको भी ये वचन बड़े अच्छे लगे। तुलसीदास कहते हैं कि उसी समय लक्ष्मणको महाराज रामने आज्ञा दी कि उसे (विभीषणको) शीघ्र ही लिवाते लाओ ॥ ३ ॥ (३४)

विभीषणको लिवा लानेके लिये लक्ष्मण और हनुमान् चल पड़े। वे प्रसन्नता-पूर्वक विभीषणसे कुशल पूछकर परस्पर सम्मान करते हुए बहुत सकुचाए जा रहे थे (कि रावण-जैसे प्रतापी राजाके भाईसे हमारा व्यवहार अशिष्ट तो नहीं है) ॥ १ ॥ उन्होंने कहा—'आइए पधारिए ! भगवान्‌की आज्ञा हो गई है। कृपालु राम आपको बुला रहे हैं।' विभीषणने दूरसे ही दीनबन्धु रामको देखा (तो ऐसा जान पड़ा) मानो वे अभयका वर दिए डाल रहे हों ॥ २ ॥ वे सहस्रों चन्द्रमाओंके समान शान्त, अरबों सूर्योंके भी सूर्यके समान तेजस्वी, करोड़ों माता-पिताके समान भक्तोंके लिये हितकारी और करोड़ों अग्नियोंके समान शत्रुओंके लिये भयंकर हैं ॥३॥ अपने भक्तके तो धूलके बराबर (तुच्छ) गुणको भी वे पर्वतके समान मानकर सकुचाए रहते हैं (कि भक्तके गुणको मैं बहुत छोटा तो नहीं समझ बैठा हूँ) तथा अपने पर्वतके समान गुणको भी धूलके समान तुच्छ समझते हैं। उनके सम्बन्धमें वेद भी कहते हैं कि राम अपनी भुजाओंसे शरणागतोंकी रक्षा करते हैं और अपनी प्रतिज्ञाके पक्के हैं ॥ ४ ॥ वे अपने कमलके समान हाथोंसे बैठे सुन्दर धनुष, बाण और तरकश सुधारते चल रहे हैं और जब कभी विभीषणकी चरचा चलने लगती है तब वे बड़े चावसे कान लगाकर सुनते हैं ॥ ५ ॥ देवता प्रसन्न होकर उसपर फूलोंकी वर्षा करते हैं। ये शुभ शकुन सूचना देते हैं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रामहिं करत प्रणाम निहारिकै।
उठे उमँगि आनंद - प्रेम - परिपूरन बिरद बिचारिकै ॥ १ ॥
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपनपौ बिसारिकै।
भली भाँति भावते भरत - ज्यों, भेंट्यौ भुजा पसारिकै ॥ २ ॥
सादर सबहिं मिलाइ समाजहिं, निपट निकट बैठारिकै।
बूझत छेम सप्रेम कुसल, अपनाइ भरोसे भारिकै ॥ ३ ॥
नाथ ! कुसल, कल्यान, सुमंगल, बिधि सुख सकल सुधारिकै।
देत, लेत जे नाम रावरो, बिनय करत मुख चारि कै ॥ ४ ॥
जो मूरति सपने न बिलोकत, मुनि, महेस मन मारिकै।
'तुलसी' तेहि हौं लियो अंक भरि, कहत न कछू सँवारिकै ॥ ५ ॥(३६)

करुनाकर - की करुना भई।
मिटी मीच, लहि लंक, संक गइ, काहू - सों न खुनिस खई ॥ १ ॥
दसमुख तज्यो दूध - माखी - ज्यों, आपु काढ़ि साढ़ी लई।
भव - भूषन सोइ कियो बिभीषन, मुद - मंगल - महिमामई ॥ २ ॥

कि भविष्यमें उसका कल्याण ही होगा। तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग उस सुहावने समयका ध्यान और स्मरण करते हैं वे कृत-कृत्य (पुण्यात्मा) हैं ॥ ६ ॥ (३५)

रामको देखकर विभीषणने आ प्रणाम किया। तब रामने अपने विरद (शरणागत-पालन)-का स्मरण करके आनन्द और प्रेमके साथ बड़ी उमंगके साथ उठकर उनका स्वागत किया ॥ १ ॥ उधर (रामको देखते ही) विभीषण अपनी सुधबुध भूल गए और इधर राम भी अपनेको भूलकर बाँह फैलाकर उनसे बड़े प्रेमसे वैसे ही मिले मानो प्यारे भाई भरतसे मिल रहे हों ॥ २ ॥ फिर बड़े आदरके साथ सारे समाजसे उनका परिचय कराकर उन्होंने उन्हें अपने अत्यन्त समीप पकड़ बैठाया। उन्हें प्रेमके साथ अपनाकर और पूरा भरोसा देकर वे उनसे कुशल-क्षेम पूछने लगे ॥३॥ विभीषण बोले—'नाथ ! जो लोग आपका नाम जपते रहते हैं, उन्हें भी ब्रह्मा भली भाँति आनन्द कल्याण, मंगल और सुख देते रहते हैं और अपने चारों मुखोंसे उसकी प्रार्थना करते रहते हैं ॥ ४ ॥ जिस मूर्तिको बड़े-बड़े मुनि और महेश भी अपना मन जीतकर स्वप्नमें भी नहीं देख पाते, उसीने आज मुझे अपने गले लगा लिया। मैं कोई बात बनाकर (चापलूसीसे) यह सब नहीं कह रहा हूँ' (सत्य कह रहा हूँ) ॥ ५ ॥ (३६)

इस प्रकार जब करुणाकर रामने उसपर कृपा कर दी (उसे अपनालिया) तब विभीषणका मृत्युका भय भी दूर हो मिटा। लंकाका राज्य पाकर उसे रावणका सारा डर जाता रहा और मनमें किसीसे कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं बचा रह गया ॥१॥ जिस विभीषणको रावणने दूधकी मक्खी बनाकर निकाल फेंका था और स्वयं सार-रूप मलाई (लङ्काकी सारी विभूति) हड़प ली थी, उसीको रामने संसारका भूषण (पूजनीय पुरुष) और आनंद-मंगलसे भरी महिमासे सम्पन्न बना

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिधि - हरि - हर - मुनि - सिद्ध सराहत, मुदित देव दुंदुभी दई ।
बारहिं बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई ॥ ३ ॥
कौसिक, सिला, जनक - संकट हरि, भृगुपतिकी टारी टई ।
खग - मृग - सबरि-निसाचर सबकी, पूँजी-बिनु, बाढ़ी सई ॥ ४ ॥
जुग - जुग कोटि - कोटि करतब - करनी न कछू बरनी नई ।
राम - भजन - महिमा हुलसी हिय, तुलसीहू - की बनि गई ॥ ५ ॥(३७)

मंजुल मूरति मंगल - मई ।
भयो बिसोक बिलोकि बिभीषन, नेह - देह - सुधि-सींव गई ॥ १ ॥
उठि दाहिनी ओर - तें सनमुख, सुखद माँगि बैठक लई ।
नख-सिख निरखि-निरखि सुख पावत, भावत कछु, कछु और भई ॥ २ ॥
बार कोटि सिर काटि - साटि - लटि, रावन संकर - पै लई ।
सोइ लंका, लखि अतिथि अनवसर, राम तृनासन-ज्यों दई ॥ ३ ॥
प्रीति - प्रतीति - रीति - सोभा-सरि, थाहत जहँ-जहँ तहँ घई ।
बाहु - बली, बानैत बोल - को, बीर बिस्व - बिजयी जई ॥ ४ ॥

डाला ॥ २ ॥ उस समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, मुनि और सिद्ध सब उसके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे और देवताओंने भी प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजाना और हृदयसे प्रसन्न होकर जय-जयकार करते हुए बार-बार पुष्प बरसाना आरम्भ कर दिया ॥३॥ रामने तो विश्वामित्र, जनक और पत्थर बनी हुई अहल्याका संकट दूर करके परशुरामका आतंक नष्ट कर डाला था तथा पक्षी (जटायु), मृग (मारीच) शंबरी, निशाचर (विभीषण) इन सबको बिना किसी पूँजी (करनी)-के ही ऊपर उठा बैठाया ॥४॥ इस प्रकार रामने युग-युगमें करोड़ों दिव्य कर्म कर डाले हैं । यह उनके लिये कुछ नया कार्य तो है नहीं । अपने हृदयमें रामके भजनकी महिमाका उल्लास उमड़ पड़नेसे इस समय तुलसीदासकी भी बन आई है ॥ ५ ॥ (३७)

रामकी अत्यन्त मनोहर और मंगलमय मूर्ति देखकर विभीषणका सारा शोक जाता रहा और उस प्रेममें वे अपनी देहकी सारी सुध-बुध भूल गए ॥ १ ॥ फिर उन्होंने रामकी दाहिनी ओरसे उठकर रामके सामने सुखसे बैठनेकी आज्ञा माँग ली (जिससे रामका मुख दिखाई पड़ता रहे) । वहाँ वे प्रभुको नखसे शिख (नीचेसे ऊपर)-तक देख-देखकर आनन्दित हुए जा रहे थे । वे चाहते कुछ थे (केवल रामकी शरणमें आना चाहते थे) और हो कुछ और ही गया (लङ्केश बना दिए गए) ॥ २ ॥ रावणने करोड़ों (अनेक) बार अपने सिर काट-काटकर अत्यन्त कष्ट उठाकर शिवसे जो लंकाका वैभव प्राप्त किया था, वह सब, रामने विभीषणको कष्टमें पड़ा हुआ अतिथि जानकर ऐसे (सरल रूपसे) दे दिया जैसे किसी आए हुए अतिथिके आगे तृणका आसन बढ़ा दिया गया हो ॥ ३ ॥ राम तो प्रीति, प्रतीति, रीति और शोभाकी ऐसी नदीके समान हैं जिसमें जहाँ (जिस गुणकी) भी थाह लेने चलो, वहाँ वे अथाह दिखाई देते हैं । उनकी भुजा बड़ी पराक्रमशील, वे प्रतिज्ञाके बड़े पक्के और उन्होंने न जाने कितने विश्व-विजयी वीरोंको चुटकियोंमें जीत धरा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

को दयालु दूसरो दुनी, जेहि जरनि दीन - हिय - की हई ?
'तुलसी' काको नाम जपत जग, जगती जामति बिनु बई ॥ ५ ॥ (३८)

सब भाँति बिभीषन - की बनी ।
कियो कृपाल अभय कालहु - तें, गइ संसृति - साँसति घनी ॥ १ ॥
सखा लखन - हनुमान संभु, गुरु, धनी राम कोसलधनी ।
हिय ही और, और कीन्हीं बिधि, राम कृपा औरै ठनी ॥ २ ॥
कलुष, कलंक, कलेस - कोस भयो जो पद पाय रावन रनी ।
सोइ पद पाय बिभीषन भो भव-भूषन, दलि दूषन - अनी ॥ ३ ॥
बाँह - पगार, उदार - सिरोमनि, नत - पालक, पावन पनी ।
सुमन बरषि, रघुबर - गुन बरनत, हरषि देव दुंदुभी हनी ॥ ४ ॥
रंक - निवाज, रंक राजा किय, गए गरब गरि - गरि गनी ।
राम-प्रनाम महा महिमा - खनि सकल सुमंगल-मनि जनी ॥ ५ ॥
होय भलो ऐसे हि, अजहुँ गएँ राम - सरन, परिहरि मनी ।
भुजा उठाइ, साखि संकर करि, कसम खाइ 'तुलसी' भनी ॥ ६ ॥ (३९)

है ॥ ४ ॥ संसारमें ऐसा दयालु दूसरा कौन है जिसने दीन जनोंके हृदयकी सारी जलन मिटा डाली हो ? तुलसीदास कहते हैं कि संसारमें ऐसा कौन है जिसका नाम जपनेसे पृथ्वी बिना बोए ही लहलहा उठती हो (कोई पुण्यका काम किए बिना ही पुण्यका फल मिल जाता हो ॥ ५ ॥ (३८)

विभीषणका सारा काम बढ़िया बन गया । कृपालु रामने उसे कालसे भी निर्भय कर डाला (उसे अमर बना दिया) और उसे अब संसारका भी घोर त्रास नहीं रह गया ॥ १ ॥ वहाँ आनेसे उसे लक्ष्मण और हनुमान्-जैसे सखा, शंकर-जैसे गुरु और कोशलेश राम-जैसे स्वामी मिल गए । उसके मनमें तो कुछ और (रामकी शरणमें आना भर) था किन्तु विधाताने कुछ और (लंकेश) बना दिया, यह रामकी कुछ और ही कृपा हो गई ॥२॥ वीर रावण जो (लंकेश्वर)पद पाकर भी पाप,कलङ्क और क्लेशोंका भांडार बना हुआ था, वही पद पाकर विभीषण सम्पूर्ण दोष नष्ट करके संसारके भूषण (पूज्य) बन गए ॥३॥ जिनकी भुजाएँ दीनों के लिये पगार (प्राकार, परकोटा) बनी हुई हैं, जो उदारों के सरदार हैं, जो भक्तोंका पालन करते और पवित्र प्रण करते हैं, उन रामके गुणोंका वर्णन करते हुए सब देवता प्रसन्न होकर पुष्प बरसाने और दुन्दुभी बजाने लगे ॥ ४ ॥ दीनबन्धु रामने दीन विभीषणको राजा बनाकर बड़े-बड़े धनियोंका अभिमान चूर कर डाला (कि जिस धनपर तुम अभिमान किए बैठे हो उससे करोड़ गुना धन तो रामकी चुटकियों में भरा पड़ा है) । रामको प्रणाम-भर करनेसे महिमाकी ऐसी बड़ी खान मिल जाती है जिससे सब प्रकारके मंगलमय मणि निकल आते हैं (रामकी वन्दना करनेसे सब मंगल ही मंगल होता है) ॥५॥ आज भी अभिमान छोड़कर रामकी शरणमें चले जाओ तो तुम्हारा भी इसी प्रकार भला हो सकता है । यह बात तुलसीदासने शंकरको साक्षी देकर भुजा उठाकर सौगन्ध खाकर कही है ॥६॥ (३९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कहो क्यों न बिभीषन - की बनै ?
गयो छाँड़ि छल सरन राम - की, जो फल चारि चारियो जनै ॥ १ ॥
मंगल-मूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगल - के खनै ।
तेहि रघुनाथ, हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै ॥ २ ॥
नाम - प्रताप पतित - पावन किऐ, जे न अघाने अघ - अनै ।
कोउ उलटो, कोउ सूधो जपि भे, राजहंस बायस - तनै ॥ ३ ॥
हुतो ललात, कृसगात, खात खरि, मोद पाइ कोदो - कनै ।
सो 'तुलसी' चातक भयौ जाँचत, राम स्याम - सुंदर घनै ॥ ४ ॥ (४०)

अति भाग बिभीषन - के भले ।
एक प्रनाम प्रसन्न राम भे, दुरित - दोष - दारिद दले ॥ १ ॥
रावन - कुंभकरन बर माँगत, सिव - बिरंचि बाचा छले ।
राम - दरस पायो अबिचल पद, सुदिन सगुन नीके चले ॥ २ ॥
मिलनि बिलोकि स्वामि - सेवक-की, उकठे तरु फूले - फले ।
'तुलसी' सुनि सनमानि बंधु - को, दसकंधर हँसि हिये, जले ॥ ३ ॥ (४१)

भला बताओ कि उन विभीषणका काम क्यों न बन जाय जाय जो छल छोड़कर उन रामकी शरणमें पहुँच गए थे जो चार प्रकारके भक्तों (आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी)-को चारों प्रकारके फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) बाँटते रहते हैं, ॥१॥ जिनको एक बार प्रणाम कर लिया जाय तो वह ऐसा मंगलमय होता है कि संसारके सभी अमंगलोंको उखाड़ फेंकता है, उन्हीं रामने जिसके सिरपर अपना हाथ उठा रक्खा, उस विभीषणकी महिमा भला कौन कह सकता है ? ॥२॥—वाल्मीकि जैसे जो लोग पाप और अनीति करते कभी नहीं थकते थे, उन्हें भी रामके नामके प्रतापने पवित्र कर दिया। (वाल्मीकि)-के समान कोई उलटा और कोई सीधा नाम जपकर कौवे-जैसे पतित आचरण करनेवाले भी राजहंसके समान शुद्ध हो गए (पतितसे पावन हो गए) ॥ ३ ॥ और तो और, यह दुर्बल शरीर-वाला, खली (निःसार वस्तु) और कोदोंका अन्न खाकर भी प्रसन्न रहनेवाला, एक-एक टुकड़ेके लिये लालायित रहनेवाला (महादरिद्र) तुलसीदास भी (प्रभुकी कृपासे) अब ऐसा पपीहा बन गया है कि उसे कुछ कभी माँगना होता है तो रामरूपी श्याम-सुन्दर मेघ (राम)-से ही याचना करता है ॥४॥ (४०)

विभीषणके भाग्य सचमुच बड़े ही अच्छे हैं कि एक ही बार प्रणाम करनेसे राम उनपर इतने अधिक प्रसन्न हो गए कि उनके सारे पाप, दोष और दरिद्रता उन्होंने मिटा डाली ॥१ ॥ जिस समय (शिवसे) रावण और (ब्रह्मासे) कुंभकर्ण वर माँगने चले थे उस समय शिव और ब्रह्माने उनकी बुद्धि ऐसी फेर दी कि वाणीके फेर-फारसे दोनोंके दोनों छले गए (रावणने मनुष्यके हाथसे मृत्यु और कुंभकर्णने छह-मास-तक निद्रा और बीचमें जगा दिए जानेपर मृत्यु माँग ली), किन्तु विभीषणने तो रामका दर्शन करके ही अविचल पद पा लिया क्योंकि वे बड़े शुभ दिन और शकुनसे घरसे चले थे ॥२॥ स्वामी और सेवक (राम और विभीषण)-का मिलन देखकर ठूँठ भी फलने-फूलने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि रामके यहाँ विभीषणके सम्मानका समाचार सुनकर रावण हँसा तो अवश्य, पर हृदयमें बहुत कुढ़ भी गया ॥ ३ ॥ (४१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गये राम-सरन सबकौ भलौ।
गनी - गरीब, बड़ो - छोटो, बुध - मूढ़, हीनबल - अतिबलौ ॥ १ ॥
पंगु, अंध, निरगुनी, निसंबल जो न लहै जाँचे जलौ।
सो निबह्यो नीके जो जनमि जग, राम - राजमारग चलौ ॥ २ ॥
नाम - प्रताप - दिवाकर-कर खर, गरत तुहिन-ज्यों कलिमलौ।
सुत-हित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल-सो खलौ ॥ ३ ॥
प्रभु - पद - प्रेम प्रनाम काम - तरु, सद्य बिभीषन - को फलौ।
'तुलसी' सुमिरत नाम, सबनि-को मंगलमय नभ-जल-थलौ ॥ ४ ॥

सुजस सुनि स्रवन हौं नाथ ! आयउँ सरन।
उपल-केवट-गीध - सबरि-संसृति - समन, सोक - स्रम - सींव सुग्रीव आरति - हरन ॥ १ ॥
राम राजीव - लोचन बिमोचन - बिपति, स्याम नव तामरस - दाम बारिद - बरन।
लसत जट - जूट सिर, चारु मुनि - चीर कटि, धीर रघुबीर तूनीर - सर - धनु - धरन ॥ २ ॥
जातुधानेस - भ्राता, बिभीषन नाम, बंधु - अपमान, गुरु ग्लानि चाहत गरन।
पतितपावन ! प्रनतपाल ! करुनासिंधु ! राखिए मोहिं सौमित्रि - सेवित - चरन ॥ ३ ॥

रामकी शरणमें चले जानेसे सब भला ही भला होता है। कोई धनी हो या निर्धन, बड़ा हो या छोटा, विद्वान् हो या मूर्ख, दुर्बल हो या बलवान्, लँगड़ा, अन्धा, गुणहीन और ऐसा अकिञ्चन भी क्यों न हो जिसे माँगनेपर पानी तक न मिलता हो, ॥१॥ पर उनमेंसे जिसने भी संसारमें जन्म लेकर रामका सहारा जा पकड़ा उसीको रामने भली-भाँति अपनालिया ॥ २ ॥ राम - नामके प्रतापके सूर्यकी प्रखर किरणोंमें कलि-कालका पाप तो तुषार (बर्फ)-के समान गल बहता है। देखो, पुत्रके बहाने भगवान्‌का नाम (नारायण) लेनेवाला अजामिल-जैसा पापी भी भवसागरसे पार हो गया। विभीषणने जो प्रेमसे प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया तो उसने कल्पवृक्षके समान तत्काल फल दे दिया (विभीषण लंकेश हो गए)। तुलसीदास कहते हैं कि इसी प्रकार जो भी रामका नाम स्मरण करता है उसके लिये जल, स्थल और आकाश सर्वत्र मंगल ही मंगल होता है ॥ ४ ॥ (४२)

(रामसे विभीषण कहने लगे—) 'नाथ ! मैं अपने कानोंसे आपका सुयश सुनकर आपकी शरणमें आ पहुँचा हूँ। आपने पत्थर बनी हुई अहल्या, केवट, गीध और शबरीका आवागमन-संसार समाप्त कर डाला है (उन्हें मुक्ति दे डाली है) तथा चिन्ता और कष्टसे व्यथित सुग्रीवका भी दुःख दूर कर डाला है ॥ ११ ॥ राम ! आपके नेत्र-कमलके समान हैं, आप सब प्रकारकी विपत्तियाँ नाश कर डाल सकते हैं, आपका शरीर नवीन नीले कमलकी-सी कान्तिवाले मेघके समान साँवला है। आपके सिरपर जटाजूट तथा कमरमें मनोहर मुनि-वस्त्र फब रहे हैं। आप धनुष, बाण और तरकश लिए हुए परम धीर रघुवंशी वीर हैं ॥ २ ॥ मैं राक्षस-राज रावणका भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मेरे भाईने मेरा जो अपमान किया है उसकी कसकसे मैं बहुत गला जा रहा हूँ। पतित-पावन ! प्रणत-पाल ! करुणा-सिन्धु ! आप मुझे अपने उन श्रीचरणोंमें आश्रय दे दीजिए जिसकी सेवा लक्ष्मण किया करते हैं' ॥ ३ ॥ विभीषणके ये दीनता और प्रीतिसे भरे मधुर वचन सुनकर रामका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दीनता - प्रीति - संकलित मृदु बचन सुनि, पुलकि तन प्रेम, जल नयन लागे भरन।
बोलि, लंकेस कहि, अंक भरि भेंटि प्रभु, तिलक दियो दीन-दुख-दोष-दारिद-दरन ॥ ४ ॥
रातिचर-जाति, आराति, सब भाँति गत, कियो सो कल्यान-भाजन सुमंगल-करन।
'दास तुलसी' सदय हृदय रघुबंसमनि, 'पाहि' कहे काहि कीन्हों न तारन - तरन ॥५॥ (४३)

'दीन-हित' बिरद पुराननि गायो।
आरत-बंधु, कृपालु, मृदुल - चित जानि, सरन हौं आयो ॥ १ ॥
तुम्हरे रिपु - को अनुज बिभीषन, बंस निसाचर - जायो।
सुनि गुन - सील - सुभाउ नाथ - को, मैं चरननि चित लायो ॥ २ ॥
जानत प्रभु दुख - सुख दासनि - को, तातें कहि न सुनायो।
करि करुना, भरि नयन बिलोकहु, तब जानौं अपनायो ॥ ३ ॥
बचन बिनीत सुनत रघुनायक, हँसि करि, निकट बुलायो।
भेंट्यो हरि, भरि अंक भरत-ज्यों, लंकापति मन भायो ॥ ४ ॥
कर-पंकज सिर परसि, अभय किय, जन-पर हेत दिखायो।
'तुलसिदास' रघुबीर - भजन करि, को न परम पद पायो ॥ ५ ॥ (४४)

शरीर पुलकित हो उठा और उनकी आँखें डबडबा आईं। तब दीनोंका दुःख, दोष और दरिद्रता दूर कर डालनेवाले रामने उन्हें बुलाकर, 'लंकेश' कहकर अपनी भुजाओंमें लिपटाकर, गलेसे लगाकर उनका राजतिलक कर दिया ॥ ४ ॥ राक्षस जातिका होने तथा अपना शत्रु होनेके कारण विभीषण सब प्रकार त्याज्य था (इस आदरके योग्य नहीं था) फिर भी मंगल-कर्त्ता रामने उसका कल्याण कर दिया। तुलसीदास कहते हैं कि रघुवंशमणि राम बड़े ही दयालु हैं। 'रक्षा करो' कहते ही उन्होंने किसे ऐसी शक्ति नहीं दे डाली कि वह दूसरोंका उद्धार कर सके ॥ ५ ॥ (४३)

'प्रभो ! पुराणोंने आपको 'दीन-हितकारी' कहकर आपके सुयशका वर्णन किया है। मैं भी आपको दीनबन्धु, कृपालु और कोमल चित्तवाला (दयालु) जानकर ही आपकी शरणमें आया हूँ ॥ १ ॥ मैं राक्षस-वंशमें उत्पन्न हुआ और आपके शत्रु रावणका छोटा भाई विभीषण हूँ। आपका गुण, शील और स्वभाव सुनकर ही मैं आपके चरणोंमें चित्त लगाए चला आया हूँ ॥ २ ॥ आप तो अपने दासों (भक्तों)-का सुख-दुःख जानते ही हैं, इसीलिये मैंने कुछ बताना उचित नहीं समझा। अब आप जब दया करके मुझे भर-आँख देख लेंगे, तभी मैं समझूँगा कि आपने मुझे अपनालिया है' ॥ ३ ॥ विभीषणके ये विनीत वचन सुनकर रामने हँसकर उन्हें अपने पास बुला बैठाया और उसे भरतके ही समान (प्रिय) जानकर, अपनी भुजाओंमें भरकर गले लगा लिया और मन ही मन उसे लंकापति मान लिया ॥४॥ फिर अपना कर-कमल उसके सिरपर रखकर उन्होंने उसे अभय कर दिया। इस प्रकार रामने अपने भक्तपर अपना पूरा प्रेम प्रकट कर दिखाया। तुलसीदास कहते हैं कि रामका भजन करके किसने परम पद नहीं पा लिया ? (सबने पा लिया) ॥ ५ ॥ (४४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग धनाश्री

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति ! लंकापति ! तुम - सन कौन दुराउ ॥ १ ॥
सब बिधि हीन, दीन, अति जड़मति, जाको कतहुँ न ठाँउ।
आयो सरन भजौं, न तजौं तिहिं, यह जानत रिषिराउ ॥ २ ॥
जिनके हौं हित सब प्रकार, चित नाहिंन और उपाउ।
तिनहिं लागि धरि देह, करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ ॥ ३ ॥
पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हौं, सकल सभा पतिआउ।
नहिं कोऊ प्रिय मोहिं दास - सम, कपट प्रीति बहि जाउ ॥ ४ ॥
सुनि रघुपति - के बचन, बिभीषन प्रेम - मगन मन चाउ।
'तुलसिदास' तजि आस - त्रास सब, ऐसे प्रभु-कहँ गाउ ॥ ५ ॥ (४५)

नाहिंन भजिबे जोग बियो।
श्रीरघुबीर - समान आन को, पूरन कृपा - हियो ॥ १ ॥
कहहु कौन सुर सिला तारि, पुनि केवट मीत कियो ?
कौने गीध अधम-को पितु - ज्यों, निज कर पिंड दियो ॥ २ ॥
कौन देव सबरी-के फल, करि भोजन, सलिल पियो ?
बालि - त्रास - बारिधि बूड़त कपि, केहि गहि बाँह लियो ? ॥ ३ ॥

(रामने विभीषणसे कहा—) मैं तुम्हें अपना प्राकृतिक स्वभाव सच-सच और ठीक-ठीक बतलाए देता हूँ। मित्र सुग्रीव ! और लंकापति विभीषण ! सुनो, तुमसे क्या छिपाना है ? ॥ १ ॥ (वाल्मीकि आदि) ऋषिवर जानते हैं कि कोई चाहे सब प्रकारसे पतित, दीन और अत्यन्त जड़ बुद्धिवाला भी क्यों न हो और जिसका कहीं कोई ठिकाना भी न हो, वह भी जब मेरी शरणमें आ जाता है तो मैं उसकी सब प्रकार सेवा (सहायता) करने लगता हूँ और उसे कभी अपनेसे अलग नहीं करता ॥२॥ जो अपने मनमें केवल मुझे ही हितकारी मानते हैं तथा जिन्हें मुझे छोड़कर और कोई दूसरा सहारा नहीं सूझता, उन्हींके लिये मैं यह देह धारण करके यह सब काम करता चलता हूँ। मैं इस बातसे कभी नहीं डरता कि (भक्तोंकी सहायता करनेसे) मेरा सुयश नष्ट हो जायगा ॥३॥ मैं बारबार भुजा उठाकर सारी सभाको विश्वास दिलाकर कह रहा हूँ कि—'मुझे अपने दास (भक्त)-के समान कोई प्रिय नहीं है। मुझे कपट-भरी प्रीति कभी अच्छी नहीं लगती' ॥ ४ ॥ रामके ये वचन सुनकर विभीषण प्रेममें मग्न हो गए और उनके मनमें बड़ा चाव (उत्साह, विश्वास) हो आया। तुलसीदास कहते हैं कि यदि गुणगान करना है तो सब प्रकारकी आशा और सबका भय छोड़कर ऐसे ही प्रभुका गुणगान किया करो ॥ ५ ॥

(रामसे विभीषण कहने लगे—) 'कृपासे पूर्ण हृदयवाले रामको छोड़कर और कोई नहीं है जिसका भजन किया जाय ॥ १ ॥ बताइए, और कौन देवता है जिसने शिला (अहल्या)-का उद्धार किया हो, केवटको मित्र बनाया हो और महापतित गिद्ध तकको पिताके समान मानकर अपने हाथसे पिण्ड दिया हो ? ॥२॥ ऐसा कौन देवता है जिसने शबरीके हाथ फल खाया और जल पिया हो और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भजन - प्रभाउ बिभीषन भाख्यौ, सुनि कपि - कटक जियो।
'तुलसिदास' - को प्रभु कोसलपति, सब प्रकार बरियो ॥ ४ ॥ (४६)

राग जयतश्री

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?
राजिव-दल-नयन, कोमल-कृपा-अयन, मयननि बहु छबि अंगनि दूरति ॥ १ ॥
सिरसि जटा-कलाप, पानि सायक-चाप, उरसि रुचिर बनमाल लूरति।
'तुलसिदास' रघुबीर-की सोभा सुमिरि, भई है मगन, नहिं तन-की सूरति॥२॥(४७)

राग केदारा

कहु कबहुँ देखिहौं आली ! आरज-सुवन।
सानुज सुभग-तन, जब-तें बिछुरे बन, तब-तें दव-सी लगी तीनिहूँ भुवन ॥ १ ॥
मूरति सुरति किये, प्रगट प्रीतम हिये, मन-के करन चाहैं चरन छुवन।
चित चढ़िगो बियोग, दसा न कहिबे जोग, पुलक गात, लागे लोचन चुवन ॥ २ ॥
'तुलसी' त्रिजटा जानी, सिय अति अकुलानी, मृदु बानी कह्यौ अइहैं दवन-दुवन।
तमीचर-तमहारी, सुरकंज सुख-कारी, रबिकुल-रबि अब चाहत उवन ॥३॥ (४८)

जिसने बालिके भयके समुद्रमें डूबते हुए सुग्रीवको भी बाँह पकड़कर उबार निकाला हो ? (बालिके आतंकसे सुग्रीवको बचाया हो)' ॥३॥ इस प्रकार जब विभीषणने रामके भजनका प्रभाव कह सुनाया तो सारी वानर-सेना सुनकर प्रसन्न हो उठी। (इसीलिये) तुलसीदास भी कहते हैं कि सचमुच (यदि कोई बली है) तो एक राम ही सर्वशक्तिमान् बली हैं ॥ ४ ॥ (४५)

(त्रिजटासे जानकी पूछने लगीं—) 'बताओ सखी ! मैं इन नेत्रोंसे रामकी वह मधुर मूर्त्ति कब देख पाऊँगी जिनके नेत्र कमलकी पंखड़ीके समान हैं, जो अत्यन्त सुकुमार और कृपालु हैं और जिन्होंने (अपनी छबिसे) अनेक कामदेवोंके अंगोंकी छबि लजा डाली है, ॥१॥ जिनके सिरपर जटाजूट, हाथोंमें धनुष-बाण और वक्षःस्थलपर सुन्दर बनमाला लटकी रहती है ?' तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार रामकी शोभाका स्मरण करके सीता प्रेममें ऐसी मगन हुई जा रही हैं कि उन्हें अपने तनकी भी सुध नहीं रह गई है ॥ २ ॥ (४७)

(त्रिजटासे सीता कहने लगीं—) 'भला बतलाओ तो सखी ! क्या लक्ष्मणके साथ मनोहर मूर्तिवाले आर्यपुत्र (राम)-का मैं कभी दर्शन कर पाऊँगी ? जबसे वनमें उनका वियोग हुआ है तभीसे मुझे ऐसा जान पड़ रहा है कि तीनों लोकोंमें आग फैली हुई है ॥१॥ उस मूर्तिका स्मरण होते ही जब मेरे प्रियतम मेरे हृदयमें आ प्रकट होते हैं तब मैं मनके हाथोंसे उनके चरण स्पर्श करने तो चलती हूँ, पर जब मनमें उनके वियोगकी बात आ चढ़ती है तब मेरी दशा इस योग्य नहीं रह जाती कि उस दशाका वर्णन किया जा सके। उस समय तो शरीर पुलकित हो उठता है और नेत्रोंसे झरझर आँसू बहने लगते हैं' ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जब त्रिजटाने सीताको बहुत व्याकुल देखा तो उसने मधुर वाणीसे कहा—'(देखो ! अपना जी मत छोटा करो) शत्रुओंका नाश करनेवाले राम शीघ्र ही आए जाते हैं। राक्षस-रूपी अन्धकारका नाश करनेवाले और देवता-रूपी कमलवनको खिला देनेवाले सूर्यकुलके सूर्य राम अब आने ही वाले हैं' ॥ ३ ॥ (४८)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'अब-लौं मैं तो-सों न कहे री।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ-बिनु, बासर-निसि दुख दुसह सहे री ॥ १ ॥
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री
सोइ सींचिबे लागि, मनसिज-के रहँट, नयन नित रहत नहे री ॥ २ ॥
सूख सरिर-सर प्रान - बारिचर, जिवन - आस तजि चलन चहे री।
तैं प्रभु - सुजस - सुधा सीतल करि राखे, तदपि न तृप्ति लहे री ॥ ३ ॥
नदी घोर रिपु-रिस, बिबेक - बल, धीर - सहित हुते जात बहे री।
दै मुद्रिका - टेक तेहि औसर, सुचि समीर - सुत पैरि गहे री ॥ ४ ॥
'तुलसिदास' अब सोच-पोच-मृग, मन-कानन भरि पूरि रहे री'।
'अब सखि सिय ! संदेह परिहरिय, आइ गए दोउ बीर अहेरी' ॥ ५ ॥ (४९)

राग बिलावल

सो दिन सोने - को कहु अब अइहै ?
जा दिन 'बँध्यौ सिंधु', त्रिजटा ! सुनि, तू संभ्रम मोहिं आनि सुनइहै ॥ १ ॥
बिस्व-दवन, सुर - साधु - सतावन, रावन कियो आपनो पइहै।
कनक-पुरी भयो भूप बिभीषन, बिबुध - समाज बिलोकन धइहै ॥ २ ॥

(त्रिजटासे सीता कहने लगीं—) 'अरी त्रिजटा ! सुन ! यद्यपि प्राणनाथके बिना मैं दिन-रात यह दुःसह दुःख सहे चली जा रही हूँ फिर भी मैंने अबतक तुझे वह दुःख बताया नहीं ॥१॥ मेरे हृदयमें विरहकी भयंकर विषकी बेल ऐसी बढ़ी चली जा रही है कि उसने स्वभावसे ही मेरे सारे सुख जला डाले हैं मानो उस (विषकी बेलको) सींचनेके लिये ही कामदेवके रहँटमें मेरे नेत्र (बैल होकर सर्वदा) जुते रहते हों ॥ २ ॥ मेरा शरीर-रूपी सरोवर ऐसा सूख गया है कि उसमें रहनेवाले प्राणरूपी जलचर अब जीवनकी आशा छोड़कर उससे कूच करनेपर तुले बैठे हों। इस समय रामके सुयशकी कथाके अमृतसे सींचकर (रामके यशकी कथाएँ सुनाकर) यद्यपि तू उन्हें (प्राणोंको) रोके बैठी है, तो भी उन्हें संतोष नहीं हो पा रहा है ॥ ३ ॥ शत्रुके क्रोधकी नदीमें विवेक और बल धीरजके साथ बहे चले जा रहे थे, परन्तु पवित्र चित्तवाले पवनपुत्रने मुद्रिकाका आधार देकर उन्हें तैरकर जा पकड़ा (शत्रु रावणके क्रोधके कारण मैं अपना विवेक, बल और धैर्य सब खो चुकी थी पर हनुमान्‌ने रामकी अँगूठी लाकर बड़ा ढाढ़स बँधाया)। अरी त्रिजटा ! मेरे मनके वनमें तो सब प्रकारके शोकके तुच्छ मृग भरे पड़े हैं (मेरे मनमें शोक ही शोक भरा है)।' तुलसीदास कहते हैं (इसपर त्रिजटाने कहा—) 'सखी सीता ! अब तुम अपने हृदयका सारा सन्देह मिटा डालो। देखो, दोनों वीर अहेरी आ ही पहुँचे हैं (जो इन सब शोकके मृगोंको मार डालेंगे और तुम्हारा शोक दूर कर डालेंगे) ॥ ५ ॥ (४९)

(सीताने कहा—) बताओ त्रिजटा ! वह सुनहरा दिन कब आवेगा जब तू समुद्रपर पुल बँधनेका समाचार झटपट मुझे आ सुनावेगी, ॥ १ ॥ जब संसारको पीड़ित कर डालनेवाला तथा देवता और साधुओंको कष्ट दे करनेवाला रावण अपनी करनीका फल पावेगा, जब स्वर्णपुरी लंकाका राजा विभीषण हुआ है, यह देखनेके लिये देवता लोग दौड़े आवेंगे, ॥ २ ॥ जब आकाशमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दिव दुंदुभी, प्रसंसिहिं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छइहै।
बरषिहिं कुसुम भानुकुल - मनि-पर, तब मोहिं पवनपूत लै जइहै॥ ३॥
अनुज-सहित सोभिहैं कपिन-महँ, तनु-छबि कोटि मनोज लजइहै।
इन नयननि यहि भाँति प्रान - पति, निरखि हृदय आनँद न समइहै॥ ४॥
बहुरो सदल, सनाथ, सलछिमन, कुसल कुसल-बिधि अवध देखइहै।
गुरु, पुर-लोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतइहै॥ ५॥
मंगल - कलस, बधावन घर-घर, पइहिं माँगने जो जेहि भइहै।
बिजय राम राजाधिराज - की, 'तुलसिदास' पावन जस गइहै॥ ६॥

सिय! धीरज धरिये, राघौ अब अइहैं।
पवन-पूत - पै पा तिहारि सुधि, सहज कृपालु बिलंब न लइहैं॥ १॥
सेन साजि कपि भालु काल-सम, कौतुक ही पायोधि बँधइहैं।
घेरोइ पै देखिबो लंकगढ़, बिकल जातुधानी पछितइहैं॥ २॥
निसिचर, सलभ कृसानु राम-सर, उड़ि उड़ि परत जरत खल जइहैं।
रावन, करि परिवार अगमनो, जमपुर जात बहुत सकुचइहैं॥ ३॥
तिलक सारि, अपनाय बिभीषन, अभय-बाँह दै अमर बसइहैं।
जय-धुनि मुनि, बरषिहैं सुमन सुर, व्योम बिमान निसान बजइहैं॥ ४॥

दिव्य दुंदुभी बज उठेगी, मुनिगण प्रशंसा करेंगे, निर्मल आकाशमें विमान ही विमान छा जायँगे, सूर्य-कुल-भूषण रामपर देवता फूलोंकी वर्षा करेंगे और पवनपुत्र हनुमान् आकर मुझे लिवा ले जायँगे॥३॥ जब भगवान् राम अपने भाई लक्ष्मणके साथ वानरोंके बीच विराजमान होंगे, अपने शरीरकी कान्तिसे करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करेंगे और मैं इन नेत्रोंसे प्राणपतिको देखकर आनन्दसे फूली न समाऊँगी? ॥४॥ क्या कुशल विधाता कभी ऐसा समय लावेगा कि मैं अपने समाज, स्वामी तथा लक्ष्मणके साथ फिरसे सकुशल अयोध्या देख पाऊँगी और गुरु, नगरके लोग, सास और दोनों देवरों (भरत शत्रुघ्न)-से मिलकर अपने हृदयकी तपन शान्त कर पाऊँगी? ॥५॥ उस समय घर-घरमें मंगल कलश सजाए जायँगे और बधाइयाँ बजेंगी, सब मंगनोंको उनकी मनचाही वस्तुएँ मिलेंगी और तुलसीदास भी महाराजाधिराज रामकी विजयका पवित्र यशोगान करेगा'॥ ६॥

(त्रिजटाने सीताको उत्तर दिया—) 'देखो सीता! धीरज धरो। पवनपुत्र हनुमानसे तुम्हारा समाचार पाकर सहज कृपालु राम यहाँ आनेमें तनिक भी विलम्ब न करेंगे॥ १॥ कालके समान वानर-भालुओंकी सेना सजाकर, वे खेल-खेलमें ही समुद्रपर पुल बाँध लेंगे। अब तुम देखोगी कि सारी लंका घिरी हुई है और राक्षसिनियाँ व्याकुल हो-होकर पछताए जा रही हैं॥ २॥ रामके बाणकी अग्निमें सब राक्षस पतिंगे बन-बनकर उड़-उड़कर आ गिरेंगे और जलकर भस्म हो जायँगे। रावण अपने परिवारको साथ लेकर यमलोक जाते हुए बहुत झेंपेगा (कि एक दिन था जब यम मेरे यहाँ बन्दी था, आज मैं यमके फन्देमें पड़ा चला जा रहा हूँ)॥ ३॥ विभीषणको अपनाकर राम उसे राजतिलक करेंगे और देवताओंको अभय-दान देकर देवलोकमें पहुँचा बसायँगे। उस समय मुनि जय-जयकार करेंगे, देवता फूलोंकी वर्षा करेंगे और आकाशमें विमानोंपर चढ़कर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बंधु - समेत प्रान - बल्लभ - पद परसि, सकल परिताप नसइहैं ।
राम बाम - दिसि देखि तुमहिं सब, नयनवंत लोचन फल पइहैं ॥ ५ ॥
तुम अति हित चितइहौ नाथ - तनु, बार - बार प्रभु तुमहिं चितइहैं ।
यह सोभा - सुख - समय बिलोकत, काहू तो पलकैं नहिं लइहैं ॥ ६ ॥
कपिकुल, लखन, सुजस, जय, जानकि-सहित कुसल निज नगर सिधइहैं ।
प्रेम पुलकि, आनंद मुदित मन, 'तुलसिदास' कल कीरति गइहैं ॥७॥(५१)[२६९]

॥ इति श्रीरामगीतावल्यां सुन्दरकांडः समाप्तः ॥

बाजे बजायँगे, ॥ ४ ॥ भाइयोंके साथ अपने प्राणप्रिय रामके चरण छूकर अपने सारे सन्ताप मिटा डालेंगे । भगवान् रामकी बाईं ओर तुम्हें विराजमान देखकर सभी नेत्रवाले जीव अपने नेत्रोंका फल प्राप्त कर लेंगे ॥५॥ तुम अत्यन्त प्रेमपूर्वक रामकी ओर देखती रहोगी और वे बार-बार तुम्हारी ओर निहारते रहेंगे । यह शोभा और सुखमय उत्सव देखकर किसीके भी नेत्रोंके पलक नहीं लग पावेंगे ॥६॥ फिर राम अपनी वानरोंकी सेना, लक्ष्मण, (लंका जीतनेका) सुयश, (लंकाकी) विजय और सीताके साथ कुशल-पूर्वक अपने नगर (अयोध्या) लौट जायँगे और तुलसीदास भी प्रेमसे पुलकित तथा आनन्दमें मग्न होकर रामकी सुन्दर कीर्ति गा-गाकर सुनावेगा' ॥ ७ ॥ (५१) [२६९]

॥ श्रीरामगीतावलीमें सुंदरकाण्ड पूरा हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लंका-कांड

राग मारू

मानु अजहुँ सिख, परिहरि क्रोध।
पिय पूरो आयोऽब काहि कहु, करि रघुबीर - बिरोध ॥ १ ॥
तेहि ताडुका - सुबाहु मारि, मख राखि, जनायो आप।
कौतुक ही मारीच - नीच - मिस, प्रगट्यौ बिसिख - प्रताप ॥ २ ॥
सकल भूप - बल - गरब - सहित, तोर्‌यौ कठोर सिव-चाप।
ब्याही जेहि जानकी जीति जग, हर्‌यौ परसुधर - दाप ॥ ३ ॥
कपट काक - साँसति, प्रसाद करि, बिनु स्रम बध्यो बिराध।
खर - दूषन - त्रिसिरा - कबंध हति, कियो सुखी सुर - साध ॥ ४ ॥
एकहि बान बालि माऱ्यौ जेहि, जो बल - उदधि अगाध।
कहु धौं कंत कुसल बीती केहि, किये राम - अपराध ॥ ५ ॥

(रावणसे मन्दोदरी कहने लगी—) 'प्रियतम ! आप अब मेरी सीख मान लीजिए और क्रोध दूर कर डालिए। आप ही बताइए कि रामसे विरोध करके कब किसका भला हुआ है ? ॥ १ ॥ जिन्होंने बालक अवस्थामें ही ताड़का और सुबाहुको मारकर तथा यज्ञकी रक्षा करके अपना प्रभाव (बल) प्रकट कर दिखाया और खेल-खेलमें ही पापी मारीचपर बाण चलाकर उसे अपने बाणका प्रताप दिखा बताया (उसे समुद्रपर ला पटका), ॥ २ ॥ जिसने सब राजाओंका बल और अभिमान तोड़नेके साथ-साथ शिवका कठोर धनुष तोड़कर सारे संसारको जीतकर जानकीसे विवाह कर लिया तथा परशुरामका घमंड भी चूर-चूर कर डाला, ॥ ३ ॥ जिन्होंने कपटी कौए जयन्तको दण्ड भी दिया और उसपर कृपा भी की, जिन्होंने बातकी-बातमें विराधका वधकर डाला तथा खर, दूषण, त्रिशिरा और कबन्धको मारकर देवता और साधुओंकी चिन्ता दूर कर डाली, ॥४॥ जिन्होंने अगाध बलवाले बालिको एक ही बाणसे मार डाला, ऐसे रामसे बैर छेड़नेपर, बताओ, कौन कुशलसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लाँघि न सके लोक - विजयी तुम, जासु अनुज - कृत - रेख।
उतरि सिंधु जाऱ्यौ प्रचारि पुन, जाको दूत बिसेख॥ ६॥
कृपासिंधु खल - बन - कृसानु - सम, जस गावत स्रुति सेख[1]।
सोइ बिरुदैत, बीर, कोसलपति, नाथ! समुझि जिय देख॥ ७॥
मुनि पुलस्त्य - के जस - मयंक - महँ, कत कलंक हठि होहि।
और प्रकार उबार नहीं कहुँ, मैं देख्यौ जग टोहि॥ ८॥
चलु, मिलु बेगि कुसल, सादर, सिय-सहित अग्र करि मोहिं।
'तुलसिदास'-प्रभु 'सरन' सबद सुनि, अभय करैंगे तोहिं॥ ९॥ (१)

राग कान्हरा

तू दसकंठ भले कुल जायो।
ता-महँ सिव-सेवा, बिरंचि-बर, भुजबल बिपुल जगत जस पायो॥ १॥
खर, दूषन, त्रिसिरा, कबंध रिपु, जेहि बाली जमलोक पठायो।
ताको दूत, पुनीत-चरित हरि, सुभ संदेस कहन हौं आयो॥ २॥
श्रीमद, नृप-अभिमान, मोह-बस, जानत-अनजानत हरि लायो।
तजि ब्यलीक, भजु कारुनीक प्रभु, दै जानकिहि सुनहि समझायो॥ ३॥

बच सका है ?॥ ५॥ जिनके छोटे भाईकी खींची हुई रेखा तुम विश्व-विजयी होकर भी नहीं लाँघ पाए, जिनके दूतने समुद्र पार करके सारा (लंका) नगर उलट-पलटकर पूरा जला डाला॥ ६॥ वेद और शेष भी जिनको कृपासिन्धु तथा दुष्टोंके वनके लिये अग्निके समान बताकर उनका सुयश गाते हैं, उन्हें नाथ! मनमें समझकर देख लीजिए कि ये यशस्वी वीर वही कोशलाधिपति भगवान् राम ही हैं॥ ७॥ आप इस प्रकार हठ ठानकर पुलस्त्य मुनिके यशके चन्द्रमामें क्यों कलंक बननेपर उतारू हैं ? (पुलस्त्य मुनिका नाम क्यों डुबाए दे रहे हैं ?)॥८॥ अतः, मुझे आगे करके कुशल और आदरके साथ सीताको साथ लेकर शीघ्र ही चलकर रामसे मिल लीजिए। (मैं विश्वास दिलाती हूँ कि) आपके मुखसे 'शरण दीजिए' सुनते ही वे आपको अभय कर देंगे॥ ९॥ (१)

रावणकी सभामें जाकर (अंगदने रावणसे कहा—) 'देखो रावण! तुम अच्छे (पुलस्त्यके) कुलमें उत्पन्न हुए हो। शिवकी पूजा, ब्रह्माके वरदान और अपने प्रचण्ड बाहु-बलसे तुम संसारमें यश भी प्राप्त कर चुके हो॥ १॥ मैं तुम्हें उन पवित्र चरित्रवाले रामका संदेश सुनाने आया हूँ जिनका मैं दूत हूँ और जो खर, दूषण, त्रिशिरा, कबन्ध और बालि आदि प्रबल शत्रुओंको यमलोक भेज चुके हैं॥ २॥ अपने ऐश्वर्यके अभिमानमें, राजमदमें अथवा मोह (अज्ञान) कारण जाने-अनजाने जो तुम जानकीको हर लाए हो तो अब (तुम्हारा भला इसीमें है कि) उन्हें (सीताको) ले जाकर रामके पास पहुँचा आओ और कपट छोड़कर (शुद्ध मनसे) बैठकर उन करुणामय रामका भजन करो। बस मेरी इतनी सीख तुम मान लो॥ ३॥ जिससे तुम्हारा हित

---

१. सेख = शेष।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जातें तव हित होइ, कुसल कुल, अचल राज चलिहै न चलायो।
नाहिंत रामप्रताप - अनल - महँ, ह्वै पतंग परिहै सठ धायो ॥ ४ ॥
जद्यपि अंगद नीति, परम हित कह्यौ, तथापि न कछु मन भायो।
'तुलसिदास' सुनि बचन क्रोध अति, पावक जरत, मनहु घृत नायो ॥५॥ (२)
तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो।
रे कपि ! कुटिल, ढीठ, पसु, पाँवर ! मोहिं दास-ज्यों डाँटन आयो ॥ १ ॥
भ्राता - कुंभकरन रिपु-घातक, सुत सुरपतिहिं बंदि करि ल्यायो।
निज भुज-बल अति अतुल कहौं क्यों, कंदुक-लौं कैलास उठायो ॥ २ ॥
सुर, नर, असुर, नाग, खग, किन्नर, सकल करत मेरो मन-भायो।
निसिचर रुचिर अहार मनुज-तन, ताको जस, खल मोहिं सुनायो ॥ ३ ॥
कहा भयो बानर सहाय मिलि, करि उपाय जो सिंधु बँधायो।
जो तरिहै भुज बीस घोर निधि, ऐसो को त्रिभुवन-में जायो ॥ ४ ॥
सुनि दससीस - बचन कपि - कुंजर, बिहँसि ईस-मायहिं सिर नायो।
'तुलसिदास' लंकेस काल-बस, गनत न कोटि जतन समझायो ॥ ३ ॥ (५)

भी हो, तुम्हारा कुल भी बचा रहे और तुम्हारा राज्य भी अविचल रहकर किसीके टाले न टले, नहीं तो तुम रामके प्रतापकी अग्निमें पतिंगे बनकर दौड़-दौड़कर गिरकर भस्म होते ही दिखाई दोगे' ॥ ४ ॥ यद्यपि अंगदने बहुत हितकी बात कही थी पर रावणको वह तनिक न भाई। तुलसीदास कहते हैं कि (अंगदके) ये वचन सुनकर उसे ऐसा प्रचंड क्रोध हुआ मानो जलती आगमें घी डाल दिया गया हो ॥ ५ ॥ (२)

(अङ्गदसे रावण बोला—) 'अरे कुटिल और ढीठ वानर ! तू मेरा प्रभाव कुछ भी नहीं जानता (इसीलिये) नीच पशु ! तू मुझे ऐसे डाँटने चला आया है जैसे दासोंको डाँटा जाता है ॥ १ ॥ तूने मेरे भाई कुंभकर्णका नाम कभी सुना है जो राजाओंको चुटकियोंमें मसल डाल सकता है ? और पुत्र (मेघनाद)-का नाम सुना है जो देवराज इन्द्रको भी बाँधे लिए चला आया था ? मैं अपने अतुलित प्रचंड बाहुबलका क्या वर्णन करूँ जिसने कैलासको भी गेंदके समान उखाड़ उठाया था ॥ २ ॥ देवता, मनुष्य, राक्षस, नाग, पक्षी तथा किन्नर आदि जितने भी हैं सभी मेरे कहनेमें चलते हैं। अरे दुष्ट ! तू मुझे मनुष्यका यश क्या सुनाने चला आया है ? मनुष्य तो राक्षसोंका प्रिय भोजन है ॥ ३ ॥ यदि वानरोंकी सहायतासे वह किसी प्रकार समुद्र बाँधकर आ भी गया है तो क्या हुआ (कौन बड़ी बात हो गई ?) यहाँ मेरी बीस भुजाके घोर समुद्रको पार कर ले (तो मैं समझूँ, पर) ऐसा (माईका लाल) कौन त्रैलोक्यमें जनमा है ? (जो मेरी भुजाओंसे पार पा सके) ॥ ४ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनकर अंगदने ईश्वरकी मायाको सिर नवा लिया। तुलसीदास कहते हैं कि लंकापति रावणके सिरपर तो काल नाच रहा था। उसे करोड़ों (अनेक) प्रकारसे समझाया गया, पर उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥ ५ ॥ (३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'सुनु खल ! मैं तोहिं बहुत बुझायो ।
एतो मान सठ ! भयो मोहबस, जानतहूँ चाहत विष खायो ॥ १ ॥
जगत-बिदित अति बीर बालि-बल, जानत हौ, किधौं अब बिसरायो ।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर, सरनागत-पर प्रेम दिखायो ॥ २ ॥
पावहुगे निज करम - जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो ।
बानर - भालु चपेट - चपेटनि मारत, तब ह्वै है पछितायो ॥ ३ ॥
हौं ही दसन तोरिबे लायक, कहा करौं, नहिं आयसु पायो ।
अब रघुबीर - बान - बिदलित उर, सोवहुगो रन-भूमि सुहायो ॥ ४ ॥
अबिचल राज बिभीषन-को सब, जेहि रघुनाथ चरन चित लायो ।'
'तुलसिदास' यहि भाँति बचन कहि, गरजत चल्यो बालि-नृप-जायो ॥ ५ ॥ (४)

राग केदारा

राम, लखन उर लाय लये हैं ।
भरे नीर राजीव - नयन, सब अँग परिताप तये हैं ॥ १ ॥
कहत ससोक बिलोकि बंधु - मुख, बचन प्रीति गुथये हैं ।
सेवक, सखा, भगति, भायप - गुन, चाहत अब अथये हैं ॥ २ ॥
निज कीरति - करतूति तात ! तुम, सुकृती सकल जये हैं ।
मैं तुम - बिन तन राखि लोक, अपने अपलोक लये हैं ॥ ३ ॥

(अंगदने कहा—) 'अरे दुष्ट ! सुन, मैंने तुझे इतना समझाया, पर तुझे अज्ञानके कारण इतनी ऐंठ है कि तू जान-बूझकर विष खानेपर तुला हुआ है ॥ १ ॥ जगत् प्रसिद्ध, परम वीर बालि-का बल तो तू जानता है न, या भूल गया ? देख, उस (बालि)-को भी रामने बिना परिश्रमके एक ही बाणसे ढेर कर डाला और अपनी शरणमें आए हुए सुग्रीवकी रक्षा कर ली ॥ २ ॥ (जान पड़ता है) अब तू भी अपने कर्मोंका फल भोगनेपर उतारू है । तूने हठ ठानकर अच्छेसे वैर मोल ले लिया है ! तू उस समय हाथ मल-मलकर पछतायगा जब वानर और भालू तड़ातड़ तुझे चपेटें गे ॥३॥ यों तो मैं ही तेरे दाँत तोड़ डालता, पर क्या करूँ, रामसे इसके लिये आज्ञा ही मैंने नहीं पाई है । अब तो थोड़े ही दिनोंमें रामके बाणोंसे बिंधकर तू विस्तृत रणभूमिमें लोटता दिखाई देगा ॥ ४ ॥ और तेरा यह सारा अविचल राज्य उस विभीषणको मिल जायगा जिसने रामके चरणोंमें मन जा लगाया है ।' तुलसीदास कहते हैं कि रावणसे इतना कहकर बालिके पुत्र वानर-राज अंगद गरजते हुए वहाँसे निकल चले ॥ ५ ॥ (४)

(जब मेघनादकी शक्ति लगनेपर लक्ष्मण मूर्च्छित हो गिरे और हनुमान् उन्हें उठाकर रामके पास ले आए उस समय—) रामने लक्ष्मणको झट हृदयसे उठा लगाया । उनकी कमलके समान आँखें डबडबा आईं और सारा शरीर पछतावेसे संतप्त हो उठा ॥ १ ॥ लक्ष्मणका मुँह देख-देखकर उनके हृदयमें ऐसा शोक उमड़ उठा कि वे प्रेमके मारे कह उठे—'अब सेवक, सखा, भक्ति और भ्रातृत्वके सारे गुण अस्त होनेवाले हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मण ! अपनी कीर्ति और कृत्योंसे तुमने सारे पुण्य जीत धरे हैं । अब तुम्हारे बिना यह शरीर धारण करके मुझे इस लोकमें बदनामी ही बदनामी कमानी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मेरे पन - की लाज इहाँ लौं, हठि प्रिय प्रान दये हैं।
लागति साँगि बिभीषन - ही पर, सीपर[1] आप भये हैं॥ ४॥
सुनि प्रभु-बचन, भालु, कपि-गन, सुर, सोच सुखाइ गये हैं।
'तुलसी' आइ पवनसुत-बिधि मनो, फिरि निरमये नये हैं॥ ५॥ (५)

राग सोरठ

मोपै तौ न कछू ह्वै आई।
ओर निबाहि भली बिधि भायप, चल्यौ लखन - सो भाई॥ १॥
पुर-पितु-मातु सकल सुख परिहरि, जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता-सँग, हौं सुरलोक, सोक तजि, सक्यौं न प्रान पठाई॥ २॥
जानत हौं या उर कठोर - तें, कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा - सुत-कौ, दरकि दरार न जाई॥ ३॥
तात - मरन, तिय - हरन, गीध - बध, भुज दाहिनी गँवाई।
'तुलसी' मैं सब भाँति आपने, कुलहिं कालिमा लाई॥ ४॥ (६)

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति - बँटावन बंधु - बाहु - बिनु करौं भरोसो काको॥ १॥

है॥ ३॥ आह! मेरी प्रतिज्ञा की (कि विभीषणको लंकाका राजा बनाऊँगा), तुम्हें इतनी लाज हुई कि उसके लिये तुमने अपने प्रिय प्राण-तक दे डाले। विभीषणकी छातीपर चलाई हुई शक्तिसे उसकी रक्षा करनेके लिये तुम उसकी ढाल बन गए (तुमने वह शक्ति अपनी छातीपर झेल ली)'॥ ४॥ रामके ये वचन सुनकर वानर, भालू और देवता सब शोकके मारे सूख चले। तुलसीदास कहते हैं कि उसी समय औषधि लाकर हनुमान्‌ने मानो ब्रह्मा बनकर उन्हें (वानर, भालू और देवताओंको) फिरसे नया बना खड़ा किया हो॥ ५॥ (५)

(मूर्च्छित लक्ष्मणको गोदमें लिए राम विलाप कर रहे हैं—) 'हाय! मुझसे तो कुछ भी करते-धरते नहीं बना और आज लक्ष्मण-जैसा वह भाई भी भाईके धर्मका पूरा निर्वाह करके चला जा रहा है,॥ १॥ जिसने नगर, पिता, माता और सबसुख छोड़कर मेरी वनकी विपत्तिमें हाथ आ बँटाया था। उसके साथ मैं शोक त्यागकर अपने प्राण भी सुरलोक नहीं भेज सका॥२॥ जान पड़ता है वज्र भी मेरे इस कठोर हृदयसे ही कठोरता लेकर वज्र बना है, इसीलिये सुमित्रानंदन (लक्ष्मण)-का स्मरण करनेपर इसमें फटकर कोई दरार नहीं पड़ पाई॥ ३॥ हाय! मेरे कारण ही पिताकी मृत्यु हुई, स्त्रीका हरण हुआ, गृध्रराज जटायुके प्राण गए और अब मुझे यह दाहिना बाहु (लक्ष्मण) भी गँवाना पड़ा। इस प्रकार मैंने अपने कुलको कलंक ही कलंक लगाया है॥ ४॥ (६)

'अब तो मेरा सारा पुरुषार्थ थककर बैठा जा रहा है। अपनी विपत्ति बँटानेवाले भाई-रूपी बाहुके बिना अब मैं भरोसा करूँ तो किसका करूँ?॥१॥ सुनो सुग्रीव! अब सचमुच विधाता मुझसे

---

१. सीपर=(फा० सिपर) ढाल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनु सुग्रीव ! साँचहू मो - पर, फेर्‌यौ बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर - संकट हौं, तज्यौ लखन - सों भ्राता ॥ २ ॥
गिरि - कानन जइहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज - सँघाती ।
ह्वैहै कहा बिभीषन - की गति, रही सोच भरि छाती ॥ ३ ॥
'तुलसी' सुनि प्रभु-बचन, भालु-कपि सकल बिकल, हिय हारे ।
जामवंत, हनुमंत बोलि तब, औसर जानि प्रचारे ॥ ४ ॥ (७)

राग मारू

जो हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चंद्रमहिं निचोरि चैल - ज्यों, आनि सुधा, सिर नावौं ॥ १ ॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि, अमृत - कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो, तुरत राहु दै तावौं ॥ २ ॥
बिबुध - बैद्य बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक - ज्यों, सब - को पाप बहावौं ॥ ३ ॥
तुम्हरिहि कृपा, प्रताप तिहारे, नैकु बिलंब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु 'तुलसी' प्रभु ! जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥ ४ ॥ (८)

सुनि हनुमंत - बचन रघुबीर ।
सत्य, समीर - सुवन ! सब लायक, कह्यौ राम धरि धीर ॥ १ ॥

रूठ बैठा है, इसीलिये ऐसे समय युद्धका संकट उपस्थित होनेपर मुझे लक्ष्मण-जैसा भाई भी छोड़कर चल दिया ॥ २ ॥ जहाँ-तक वानरोंकी बात है, वे तो पर्वतोंपर और वनोंमें चले जायँगे और मैं भी अपने भाई लक्ष्मणका साथ जा पकड़ूँगा (प्राण दे दूँगा) पर मुझे यही बहुत बड़ी चिन्ता सताए डाल रही है कि (बेचारे) विभीषणकी क्या गति होगी (जिसे मैंने लंकाका राज्य देनेको कहा था)' ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामके ये वचन सुनकर वानर और भालू सब व्याकुल हो उठे । तब जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌को बुलाया और उन्हें उत्साहित किया ॥ ४ ॥ (७)

(तब रामसे हनुमान् कहने लगे—) 'प्रभो ! यदि अभी आपकी आज्ञा मिल जाय तो जाकर चन्द्रमाको वस्त्रके समान निचोड़कर उससे अमृत निकालकर आपके आगे ला धरूँ और तब आपको सिर नवाऊँ ॥१॥ कहिए तो पातालके सब सर्पोंको मारकर वहाँका अमृत-कुंड यहाँ पृथ्वीपर उठाता लाऊँ, या चौदहों लोक भेदकर सूर्यको बाहर निकालकर तुरन्त वहाँ राहुको ला बिठाकर सूर्यका आना ही बंद कर दूँ (कि न सूर्य निकले न सबेरा हो) ॥२॥ मुझे तभी प्रभुका दास समझिएगा जब मैं देवताओंके वैद्य अश्विनी-कुमारोंको बलपूर्वक पकड़े लिए चला लाऊँ, नीच मृत्युको चूहेकी भाँति पटक मारूँ और इस प्रकार सबके पाप ही नष्ट कर डालूँ (कि फिर किसीको मरनेका भय ही न रहे) ॥ ३ ॥ प्रभो ! आपकी कृपा और आपके प्रतापसे ऐसा करनेमें मुझे तनिक भी विलम्ब न लगेगा । अतः, तुलसीदासके स्वामी ! जो कुछ करनेसे मैं आपको प्रिय लग सकूँ वही करनेकी मुझे आज्ञा दीजिए' ॥ ४ ॥ (८)

हनुमान्‌के वचन सुनकर रघुकुलके वीर रामने धैर्य धारण करके कहा—'देखो पवनकुमार !

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चहिए बैद, ईस - आयसु धरि सीस, कीस बल - ऐन।
आन्यौ सदन - सहित सोवत ही, जौलौं पलक परै न ॥ २ ॥
जियै कुँवर, निसि मिलै मूलिका, कीन्हीं बिनय सुषेन।
उठ्यो कपीस सुमिरि सीतापति, चल्यौ सँजीवनि लेन ॥ ३ ॥
कालनेमि - दलि, बेगि बिलोक्यौ द्रोनाचल जिय जानि।
देखी दिब्य औषधी जहँ - तहँ, जरी न परि पहिचानि ॥ ४ ॥
लियौ उठाय कुधर कंदुक - ज्यों, बेग न जाइ बखानी।
ज्यों धाए गजराज उधारन, सपदि सुदरसन - पानी ॥ ५ ॥
आनि पहार, जोहारे प्रभु, किय बैदराज उपचार।
करुनासिंधु बंधु भेंट्यो, मिटि गयो सकल दुख-भार ॥ ६ ॥
मुदित भालु - कपि - कटक, लह्यो जनु, समर-पयोनिधि पार।
बहुरि ठौर ही, राखि महीधर आयो पवनकुमार ॥ ७ ॥
सेन - सहित सेवकहिं सराहत, पुनि - पुनि राम सुजान।
बरषि सुमन, हिय हरषि प्रसंसत, बिबुध बजाइ निसान ॥ ८ ॥

तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य है और तुम यह सब कर भी सकते हो ॥१॥ पर इस समय तो केवल एक वैद्यकी आवश्यकता है।' तब रामकी आज्ञा शिरोधार्य करके बलशाली कपीश (हनुमान्)-ने पलक भरमें वैद्य सुषेणको सोते हुए उसके घरके साथ वहाँ उठा ला धरा ॥ २ ॥ तब उस वैद्य सुषेणने विनय-पूर्वक कहा कि 'यदि रात्रिके भीतर ही भीतर सञ्जीवनी बूटी मिल सके तो राजकुमार (लक्ष्मण) जीवित हो सकते हैं।' तब रामका स्मरण करते हुए हनुमान् कपिराज उठे और सञ्जीवनी बूटी लेने चल पड़े ॥ ३ ॥ मार्गमें कालनेमि नामके कपट-मुनिको मारकर उन्होंने झपटकर द्रोणाचल जा देखा और देखते ही उसे पहचान लिया। वहाँ उन्होंने जहाँ-तहाँ बहुतसी दिव्य औषधियाँ तो देखीं पर वे उस (सञ्जीवनी) बूटीको न पहचान पाए ॥ ४ ॥ तब उन्होंने वह पूरा पहाड़ ही गेंदके समान हाथपर उठा लिया। उस समय वे इतने वेगसे चले कि उनके वेगका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा जान पड़ता था मानो गजराजकी रक्षा करनेके लिये बड़ी झोंकमें सुदर्शन चक्रपाणि भगवान् विष्णु ही दौड़े चले जा रहे हों ॥५॥ इस प्रकार हनुमान्‌ने पहाड़ लाकर प्रभुको प्रणाम किया और वैद्यराजने लक्ष्मणकी चिकित्सा भी कर दी (और लक्ष्मण उठ बैठे)। करुणासिंधु रामने भाईको गलेसे लिपटा लिया और उनका सारा दुःख जाता रहा ॥ ६ ॥ वानर-भालुओंकी सेना ऐसी प्रसन्न हो उठी मानो उसे संग्राम-रूपी समुद्रका पार मिल गया हो (मानो उन्होंने युद्ध जीत लिया हो)। फिर पवन-पुत्र हनुमान् उस पर्वतको जहाँका-तहाँ रख आए ॥७॥ उस समय सारी सेनाके साथ परम चतुर राम बार-बार अपने सेवक (हनुमान्)-की प्रशंसा किए जा रहे थे और देवता लोग भी प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए दुन्दुभी बजा रहे थे ॥ ८ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसिदास' सुधि पाइ, निसाचर भए मनहु बिनु प्रान।
परी भोर ही रोर लंक गढ़, दई हाँक हनुमान ॥ ९ ॥ (९)

राग केदारा

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ, नाइ माथ रघुनाथहिं, सरिस न बेग बियो है ॥ १ ॥
देख्यो जात, जानि निसिचर, बिनु - फर सर ह्यो हियो है।
पर्‌यो कहि 'राम', पवन राख्यो गिरि, पुर तेहि तेज पियो है ॥ २ ॥
जाइ, भरत भरि अंक भेंटि निज, जीवन - दान दियो है।
दुख लघु लखन मरम-घायल सुनि, सुख बड़ो, कीस जियो है ॥ ३ ॥
आयसु इतहि, स्वामी - संकट उत, परत न कछू कियो है।
'तुलसिदास' बिहर्‌यौ अकास सो, कैसे जात सियो है ॥ ४ ॥(१०)

भरत - सत्रुसूदन बिलोकि कपि चकित भयो है।
राम-लखन रन जीति अवध आए, कैधों मोहिं भ्रम, कैधों काहू कपट ठयो है ॥१॥
प्रेम पुलकि पहिचानि कै पद-पदुम नयो है।
कहि न परत, जेहि भाँति दुहुँ भाइन, सनेह - सों उर लाय लयो है ॥२॥

तुलसीदास कहते हैं कि राक्षसों ने यह समाचार तो मानो उनके प्राण निकल गए। प्रातःकाल होते ही हनुमान्‌ने जब लंकामें हाँक जा लगाई (गर्जन किया) तो लंकापुरीमें हाहाकर मच गया ॥९॥ (९)

हनुमान्‌ने खेल-खेलमें ही पर्वत (द्रोणाचल) उठा लिया और तब मन ही मन रामको प्रणाम करके आकाशमें उड़ चले। उस समय वे जिस वेगसे चले जा रहे थे वैसा वेग कभी किसीका सुना नहीं गया ॥ १ ॥ उन्हें (अयोध्याके ऊपरसे होकर) जाते देखकर भरतने उन्हें राक्षस जानकर उनके हृदयमें बिना फलका ऐसा बाण मारा कि वे 'राम राम' कहते हुए नीचे आ गिरे। पवनने (अयोध्याकी रक्षाके विचारसे) पर्वतको नीचे गिरनेसे रोक लिया मानो(अयोध्या) नगरने (राम और भरतके-प्रतापसे) उस (पर्वत)-का तेज (वेग) पी लिया हो ॥ २ ॥ भरतने जाकर उन्हें अपनी गोदमें भरकर छातीसे उठा लगाया और उनकी मूर्च्छा दूर की। (हनुमान्‌से) लक्ष्मणका रणमें मूर्च्छित होना सुनकर भरतको उतना दुःख नहीं हुआ जितना हनुमान्‌को जीवित (चेतन) देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई ॥ ३ ॥ इधर भरतको रामकी आज्ञा थी कि 'अयोध्यामें ही रहो' उधर रामपर युद्ध-संकट पड़ा है, ऐसी दुबिधापर भरतने बहुत कुछ विचार किया, पर वे कुछ भी निश्चय न कर पाए। तुलसीदास कहते हैं, (उस समय भरत ऐसी असंभव चिन्ता और असमंजसमें पड़ गए थे जैसे कोई यह सोचने लगे कि) फटे हुए आकाशको कैसे सिया जाय ? ॥ ४ ॥ (१०)

(अपने सम्मुख) भरत और शत्रुघ्नको देखकर हनुमान् बहुत चकित हुए। (वे सोचने लगे कि) क्या रणमें विजय पाकर राम और लक्ष्मण अयोध्या लौट आए हैं या मुझे ही भ्रम हो रहा है ? या कहीं कोई छल तो नहीं किया जा रहा है ॥१ ॥ फिर जब उन्होंने पहचान लिया, तब पुलकित होकर उनके चरण-कमलोंपर सिर झुका दिया। दोनों भाइयों (भरत और शत्रुघ्न)-ने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समाचार कहि गहरु भो, तेहि ताप तयो है।
कुधर - सहित चढु बिसिख, बेगि पठवौं, सुनि, हरि-हिय गरब गूढ़ उपयो है ॥३॥
तीर-तें उतरि, जस कह्यो चहै, गुन-गननि जयो है।
'धनि भरत ! धनि भरत !' करत भयो मगन, मौन रह्यो मन, अनुराग रयो है ॥४॥
यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, अँचयो है।
'तुलसिदास' रघुबीर - बंधु-महिमा-को सिंधु तरि, को कबि पार गयो है ॥५॥(११)

होत न जौ जग जनम भरत - को।
तौ, कपि कहत, कृपान - धार - मग चलि, आचरत बरत को ॥ १ ॥
धीरज - धरम - धरनि - धर - धुर - तें गुरु धुर - धरनि धरत को ?
सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को ॥ २ ॥
सिवहु न सुगम सनेह राम - पद, सुजननि सुलभ करत को ?
सृजि निज जस-सुरतरु 'तुलसी'-कहँ, अभिमत फरनि फरत को ॥ ३ ॥ (१२)

सुनि, रन घायल लखन परे हैं।
स्वामि - काज, संग्राम सुभट-सों, लहि ललकारि लरे हैं ॥ १ ॥

उन्हें किस प्रकार छातीसे उठा लगाया; यह कहते नहीं बन रहा है ॥ २ ॥ फिर हनुमान्‌ने उन्हें सारे समाचार सुनाकर कहा कि 'मुझे विलंब हो रहा है।' हनुमान्‌से सब समाचार सुनकर भरत बड़े दुखी हुए और बोले—'तुम पर्वत लेकर मेरे बाणपर चढ़ जाओ, मैं तुम्हें अभी रामके पास पहुँचाए देता हूँ।' यह सुनकर हनुमान्‌के मनमें गुप्त रूपसे कुछ गर्व हो उठा (कि भला मेरा भार भरतका बाण क्या सँभालेगा) ॥३॥ (हनुमान् बाणपर चढ़ तो गए पर न जाने क्या सोचकर) बाणपरसे उतर पड़े और उनके सुयशका वर्णन करने लगे, (भरतके) गुणोंने उन्हें जीत लिया। वे 'धन्य भरत ! धन्य भरत !' कहकर चुप हो गए और उनके प्रेममें मग्न हो गए ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं (हनुमान् सोचने लगे कि—) यह समुद्र तो (सगरके पुत्रोंने) खोदा, (देवता और दैत्योंने) मथा, (मैंने) लाँघा और (अगस्त्यने) पी डाला पर रामके भाई इस भरतकी महिमाका समुद्र तैरकर भला कौन कवि पार जा पाया है (भरतकी महिमाका वर्णन कोई कर नहीं पाया) ? ॥ ५ ॥ (११)

हनुमान् कहने लगे—'यदि संसारमें भरतका जन्म न हुआ होता, तो कृपाणकी धाराके समान इस मार्गपर चलकर प्रेमका व्रत कौन पूरा कर दिखाता ? ॥१॥ इस पृथ्वीपर पर्वतोंसे भी भारी धैर्य और धर्मका बोझ कौन उठाता ? सम्मानपूर्वक सब सद्गुण हृदयमें धारण करके पाप और अवगुणोंका निरादर कौन करता ? ॥ २ ॥ रामके चरणोंका जो प्रेम शिवको भी सुलभ नहीं है, उसे सत्पुरुषोंके लिये कौन सुलभ कर डालता तथा अपने सुयशका कल्पवृक्ष खड़ा करके कौन तुलसीदासके लिये इच्छित फल उत्पन्न कर देता ? ॥ ३ ॥ (१२)

जब माता सुमित्राने सुना कि लक्ष्मण रणमें घायल हुए पड़े हैं और उन्होंने रामके लिये संग्राममें शत्रुकी ललकारपर (मेघनादसे) युद्ध किया है ॥ १ ॥ तो उन्हें पुत्रकी दशापर शोक तो हुआ,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुवन - सोक, संतोष - सुमित्रहिं, रघुपति - भगत बरे हैं।
छिन - छिन गात सुखात, छिनहि छिन, हुलसत होत हरे हैं॥ २॥
कपि - सों कहति सुभाय, अंब - के अंबक अंबु भरे हैं।
'रघुनंदन बिनु - बंधु, कुअवसर, जद्यपि धनु - दुसरे हैं॥ ३॥
तात ! जाहु कपि - सँग', रिपुसूदन उठि, कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु, बिधिबस सुढर ढरे हैं॥ ४॥
अंब - अनुज - गति लखि पवनज, भरतादि गलानि गरे हैं।
'तुलसी' सब समुझाइ मातु, तेहि समय सचेत करे हैं॥ ५॥(१३)

बिनय सुनाइबी परि पाँय।
कहौं कहा कपीस ! तुम सुचि, सुमति, सुहृद सुभाय॥ १॥
स्वामि - संकट - हेतु हौं, जड़ जननि जनम्यो जाय।
समौ पाइ, कहाइ सेवक, घटयौ तौ न सहाय॥ २॥
कहत सिथिल सनेह भो, जनु धीर घायल घाय।
भरत-गति लखि मातु सब, रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय॥ ३॥
भेंट कहि कहिबो, कह्यो यों, कठिन - मानस माय।
'लाल ! लोने लखन - सहित सु ललित लागत नाँय'॥ ४॥

पर साथ ही इस बातसे सन्तोष भी हुआ कि वे रामकी भक्ति निबाह रहे हैं। इस प्रकार विचार करते हुए उनके अंग एक क्षण तो (लक्ष्मणकी) मूर्च्छाके शोकसे सूख जाते हैं, तो दूसरे ही क्षण (लक्ष्मणकी भक्तिके) आनन्दसे हरे हो उठते हैं॥ २॥ तब माता सुमित्राने नेत्रोंमें जल भरकर स्वभावसे ही हनुमान्‌से कहा—'बड़ा कुअवसर आ पड़ा है कि भाई (लक्ष्मण)से- राम बिछुड़ गए हैं और यद्यपि उनका दूसरा साथी धनुष उनके साथ है॥ ३॥ फिर भी बेटा (शत्रुघ्न) ! तुम हनुमान्‌के साथ चले जाओ।' (यह सुनना था कि) शत्रुघ्न उठकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वे पुलकित होकर ऐसे प्रसन्न हो उठे मानो दैवयोगसे ही उनका पासा (दाँव) सीधा पड़ गया हो॥४॥ माता और छोटे भाई शत्रुघ्नकी यह दशा देखकर हनुमान् और भरत दोनोंको बड़ी ग्लानि हुई (कि हम भी इतना त्याग नहीं कर पाए)। तुलसीदास कहते हैं कि तब सबने माता सुमित्राको समझाकर बहुत ढाढ़स बँधाया॥५॥ (१३)

हनुमान्‌से भरत कहने लगे— 'तुम रामके पैरों पड़कर मेरी एक विनति कह सुनाना। भाई हनुमान् ! मैं तुमसे और अधिक क्या कहूँ ? तुम तो स्वभावसे ही बड़े पवित्र, बुद्धिमान् और हितैषी हो॥ १॥ मेरे जैसे मूढ़को मेरी माताने इसीलिये जन्म दिया है कि मैं रामको कष्ट ही कष्ट पहुँचाता रहूँ क्योंकि मैं उनका सेवक कहलाकर भी समय (विपत्ति) पड़नेपर उनकी सहायता नहीं कर पा रहा हूँ' ॥२॥ इस प्रकार कहते-कहते वे प्रेमसे ऐसे विह्वल हो उठे जैसे कोई धीर पुरुष भी घावसे घायल हो जानेपर (व्याकुल) हो उठता है। भरतकी यह दशा देखकर सब माताएँ इस प्रकार स्तब्ध रह गईं जैसे वायु न रहनेपर गुड्डी (पतंग) स्थिर हो जाती है॥३॥ कौशल्या माताने कहा— 'भैया ! रामसे भेंट करके कहना कि तुम्हारी कठोर-हृदया माताने इतना ही कहा है कि—'लाल ! तुम्हारा नाम तो लक्ष्मणके साथ ही अच्छा लगता है' (तुम लक्ष्मणके साथ ही जीना-मरना)॥ ४॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखि बंधु - सनेह, अंब - सुभाउ, लखन कुठाय।
तपत 'तुलसी' तरनि - त्रासक, सहि नये तिहुँ ताय ॥ ५ ॥(१४)

हृदय - घाउ मेरे, पीर रघुबीरै।
पाइ सँजीवन, जागि कहत यों, प्रेम - पुलकि बिसराय सरीरै ॥ १ ॥
मोहिं कहा बूझत हौ पुनि-पुनि, पाठ-अरथ चरचा जस कीरै।
सोभा, सुख, छति, लाहु भूप - कहँ, कांति-मोल केवल हीरै ॥ २ ॥
'तुलसी' सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै।
राम - लखन-की प्रीति - कि उपमा क्यौं दै खीरै - नीरै ॥ ३ ॥ (१५)

राग कान्हरा

राजत राम काम - सत - सुंदर।
रिपु रन जीति, अनुज-सँग सोभित, फेरत चाप-बिसिख बनरुह - कर ॥ १ ॥
स्याम सरीर, रुचिर स्रम - सीकर, सोनित - कन बिच - बीच मनोहर।
जनु खद्योत - निकर हरिहित[1] - गन भ्राजत मरकत - सैल - सिखर - पर ॥ २ ॥
घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि, हरषित सकल रिच्छ अरु बनचर।
कुसुमित किंसुक - तरु - समूह - महँ, तरुन तमाल बिसाल बिटप - बर ॥ ३ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि सूर्यको भी त्रस्त कर डालनेवाले हनुमान् इस प्रकार भाई (भरत)-के स्नेह, माताके (स्नेहपूर्ण) स्वभाव और लक्ष्मणकी मूर्च्छाके इन तीन नये तापोंसे तप उठे ॥५॥ (१४)

सञ्जीवनी बूटी खाकर और चेतन होकर लक्ष्मण प्रेमसे पुलकित होकर शरीरका सारा कष्ट भूल गए और कहने लगे 'घाव तो मेरे हृदयमें है, पर उसकी पीडा रामको हो रही है ॥ १ ॥ जैसे कोई तोतेको पाठ पढ़ाकर उससे उसका अर्थ पूछे, वैसे ही आप लोग बार-बार मुझसे क्या पूछे जा रहे हैं? हीरेसे शोभा, सुख, हानि या लाभ तो केवल राजाको ही होता है, हीरेमें तो केवल कान्ति और उसका मूल्य मात्र होता है' ॥२॥ तुलसीदास कहते हैं कि लक्ष्मणके ये वचन सुनकर जब बड़े-बड़े धीर भी धैर्य खो बैठते हैं तब उन राम और लक्ष्मणके प्रेमकी उपमा दूध और पानीके सामान्य प्रेमसे कैसे दी जा सकती है (जो खटाई पड़नेसे, गरम करनेसे या हंसके द्वारा अलग-अलग हो जाते हैं) ? ॥ ४ ॥ (१५)

अपने शत्रु रावणको रणमें जीतकर राम अपने भाई लक्ष्मणके साथ विराजमान हैं। वे अपना कर-कमल धनुष और बाणपर फेरते हुए इस समय सैकड़ों कामदेवोंसे भी अधिक सुन्दर जान पड़ रहे हैं॥ १ ॥ उनके सुन्दर श्याम शरीरपर पसीनेकी बूँदे और बीच-बीचमें मनोहर रुधिरके छींटे ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो किसी पन्नेके शैल-शिखरपर जुगुनुओंके बीच-बीचमें बीरबहूटियाँ शोभा पा रही हों॥ २ ॥ उनके चारों ओर बैठे हुए वीर वानर और भालू घायल होनेपर भी बड़े ही प्रसन्न हैं। उस समय उनके बीच बैठे हुए राम ऐसे जान पड़ते हैं जैसे फूले हुए पलाशके वृक्षोंके बीच अत्यन्त विशाल नया तमालका वृक्ष खड़ा हो ॥ ३ ॥ उस समय कमलके समान नेत्रोंवाले रामने

१. हरि-हित = इंद्रबधूटी, बीरबहूटी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राजिव - नयन बिलोकि कृपा करि, किए अभय मुनि, नाग, बिबुध, नर।
'तुलसिदास' यह रूप अनूपम, हिय - सरोज बसि दुसह बिपति-हर ॥ ४ ॥(१६)

राग आसावरी

अवधि आज, किधौं औरौ ह्वै हैं ?
चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि, बूझ धौं पथिक कहाँ - तें वै हैं ॥ १ ॥
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलिक गात लगे लोचन च्वै हैं।
निज बासरनि बरष पुरवै बिधि, मेरे करम कठिन कृत कै हैं ॥ २ ॥
बन रघुबीर, मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनि - सुनि सुख स्वैहैं।
'तुलसिदास' मो-सों कठोर - चित, कुलिस - साल-भंजनि को ह्वैहैं ॥३॥ (१७)

आली ! राम - लखन कित ह्वै हैं।
चित्रकूट, तब - तें न लही सुधि, बधू-समेत कुसल सुत द्वै हैं ॥ १ ॥
बारि, बयारि, बिषम हिम, आतप, सहि बिनु-बसन, भूमि-तल स्वैहैं।
कंद-मूल-फल-फूल असन बन, भोजन समय मिलत कस वैहैं ॥ २ ॥
जिनहिं बिलोकि लता-द्रुम सोचहिं, मृग-खग-मुनि लोचन जल च्वैहैं।
'तुलसिदास' तिन्हकी जननी हौं, मो-सों निठुर और कहुँ ह्वैहैं ॥३॥ (१८)

अपनी कृपा-दृष्टिसे देखकर सभी मुनि, नाग, देवता और मनुष्योंको निर्भय कर डाला। तुलसीदास कहते हैं कि सबका यह दुःसह दुःख दूर कर डालनेवाले रामका अनुपम रूप हमारे हृदय-कमलमें सदा विराजमान रहे ॥ ४ ॥ (१६)

(जब अवधिके दिन प्रायः बीतनेको हुए तो माता कौशल्या रामके मिलनेकी उत्कंठासे कह उठीं—) 'क्यों जी ! अवधि आज ही पूरी होनेवाली है या अभी कुछ और दिन शेष हैं ?' फिर अपने राजभवनकी अटारीपर चढ़कर दक्षिणकी ओर देखकर वे कहने लगीं—'देखो ! उधर पूछो तो कि वे पथिक कहाँसे चले आ रहे हैं ?' ॥१॥ (अवधिमें कुछ विलम्ब जानकर) अपने हृदयमें हार मानकर वे चिन्तामें पड़ जाती हैं। उनका शरीर पुलकित हो उठता है और नेत्रोंसे आँसू बहने लगते हैं। (वे मनही मन कहती हैं कि) ऐसा जान पड़ता है कि मैंने जो पाप-कर्म किए हैं उनके कारण विधाता इन चौदह वर्षोंको अपने दिनोंके हिसाबसे पूरा करेगा ॥ २ ॥ राम वनमें हैं और मैं (उनकी माता) घरमें रहकर जीए जा रही हूँ ! अब ये निर्लज्ज प्राण (इसीलिये बच रहे हैं कि) लोकापवाद (बदनामी) सुन-सुनकर सुखकी नींद सोया करें (कि रामके विरहमें कौशल्याने प्राण भी नहीं दिए)। भला मुझ-जैसी कठोर-हृदया वज्रकी गढ़ी हुई पुतली दूसरी कौन होगी ?' ॥ ३ ॥ (१७)

'क्यों री सखी ! इस समय राम और लक्ष्मण किधर होंगे ? जबसे उन्होंने चित्रकूट छोड़ा तबसे उनका कोई समाचार नहीं मिला। सीताके साथ मेरे दोनों बालक कुशलसे तो होंगे न ? ॥१॥ वे वर्षा, आँधी, भीषण शीत और धूप सहते हुए बिना किसी बिछावनके ही भूमिपर सो रहते होंगे। वनमें तो कन्द, मूल, फल और फूल ही खानेको मिलते होंगे और वे भी समयपर कैसे मिल पाते होंगे ? ॥ २ ॥ जिन्हें (वनमें इस दशामें) देखकर लता और वृक्ष भी दुखी हो उठते हैं तथा पक्षी,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग सोरठ

बैठी सगुन मनावति माता।
कब अइहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग! फुरि बाता॥ १॥
दूध भात - की दोनी दइहौं, सोने चोंच मढ़इहौं।
जब सिय-सहित बिलोकि नयन - भरि, राम-लखन उर लइहौं॥ २॥
अवधि समीप जानि जननी जिय, अति आतुर अकुलानी।
गनक बुलाइ पाँय परि पूछति, प्रेम - मगन मृदु बानी॥ ३॥
तेहि अवसर कोउ भरत - निकट - तें, समाचार लै आयो।
प्रभु - आगमन सुनत 'तुलसी' मनो, मरत मीन जल पायो॥१९॥ (१९)

राग गौरी

छेमकरी[1]! बलि बोलि, सुबानी।
कुसल - छेम सिय-राम-लखन कब अइहैं, अंब! अवध रजधानी॥ १॥
ससिमुख, कुंकुम - बरनि, सुलोचनि, सोचनि-मोचनि बेद बखानी।
देवि! दया करि देहि दरस-फल, जोरि पानि बिनवहिं सब रानी॥ २॥

मृग और मुनियोंके नेत्रोंसे भी आँसू बह चलते हैं, उन्हीं रामकी माता मैं हूँ! भला मुझ-जैसी निष्ठुर-हृदया माता कहीं कोई दूसरी संसारमें होगी?'॥ ३॥ (१८)

माता (कौशल्या) बैठी-बैठी शकुन मना रही हैं। (गचपर कौआ बैठा देखकर वे उससे कहती हैं—) 'अरे कौए! सच-सच बता। मेरे बालक कबतक कुशलपूर्वक घर लौटेंगे?॥१॥ देख! जब मैं सीताके साथ राम और लक्ष्मणको भर-आँखों देखकर छातीसे लगाऊँगी उस समय मैं तुझे दूध-भात-भरा दोना दूँगी और तेरी चोंच सोनेसे मढ़वा दूँगी'॥ २॥ फिर वनवासकी अवधि बीतनेका समय समीप ही जानकर, माता अत्यन्त आतुर होकर व्याकुल हो उठीं और ज्योतिषीको बुलाकर उसके पैरों पड़कर प्रेममें मग्न होकर मधुर वाणीसे पूछने लगीं॥ ३॥ (यह सब चल ही रहा था कि) इसी समय भरतके पाससे कोई रामके आनेका समाचार लेकर वहाँ आ पहुँचा। तुलसीदास कहते हैं कि उसके मुखसे रामके आनेका समाचार सुनते ही माता कौशल्याको ऐसी शान्ति मिली मानो मरती हुई मछलीको जल मिल गया हो॥ ४॥ (१९)

क्षेमकरी (केसरिया रंगकी चील)-को देखकर माता कौशल्या उससे विनयपूर्वक कहने लगीं—'देखो मैया! मैं बलिहारी जाती हूँ। तुम अपनी सुन्दर वाणीसे सच-सच बतला दो कि सीता, राम और लक्ष्मण कुशलपूर्वक अपनी राजधानी अयोध्या कब लौटेंगे?॥ १॥ देखो देवि! वेद बताते हैं कि तुम चन्द्रमुखी, कुंकुमके समान रंगवाली, सुन्दर नेत्रोंवाली तथा शोक मिटानेवाली हो। हम सब रानियाँ हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि तुम दया करके हमें अपने दर्शनोंका फल दे दो'॥२॥

---

१. छेमकरी (क्षेमकरी) = केसरिया रंगकी चील।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनि सनेह - मय बचन, निकट ह्वै, मंजुल मंडल-कै मँड़रानी।
सुभ, मंगल, आनंद गगन-धुनि, अकनि अकनि उर-जरनि जुड़ानी ॥ ३ ॥
फरकन लगे सुअंग बिदिसि-दिसि, मन प्रसन्न, दुख - दसा सिरानी।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु, मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥ ४ ॥
तेहि अवसर हनुमान भरत - सों, कही सकल कल्यान - कहानी।
'तुलसिदास' सोइ चाह-सँजीवनि, बिषम-बियोग ब्यथा बड़ि भानी ॥५॥ (२०)

राग धनाश्री

'सुनियत सागर - सेतु बँधायो।
कोसलपति-की कुसल सकल सुधि, कोउ इक दूत भरत-पहँ ल्यायो ॥ १ ॥
बध्यो बिराध, त्रिसिर, खर, दूषन, सूर्पनखा - कौ रूप नसायो।
हति कबंध, बल - अंध बालि दलि, कृपासिंधु सुग्रीव बसायो ॥ २ ॥
सरनागत अपनाइ बिभीषन, रावन सकुल समूल बहायो।
बिबुध - समाज निवाजि बाँह दै, 'बंदिछोर' बर बिरद कहायो' ॥ ३ ॥
एक-एक-सों समाचार सुनि, नगर - लोग जहँ - तहँ सब धायो।
घन-धुनि अकनि मयूर मुदित ज्यों, बूड़त जलधि - पार सो पायो ॥ ४ ॥

रानीके ऐसे स्नेहमय वचन सुनकर चील उनके निकट आकर मण्डल बाँधकर मँडराने लगी। उस समय आकाशमें उसकी शुभ, मंगल और आनंदमयी ध्वनि सुन-सुनकर रानियोंके हृदयकी तपन शान्त हो गई ॥ ३ ॥ दिशा-विदिशाओंमें सबके शुभ अंग फड़क उठे, मन प्रसन्न हो उठा, दुःखका अन्त हो गया तथा कौशल्या आदि चतुर स्त्रियाँ भाँति-भाँतिके शकुन और बलि मनाती हुई प्रेमसे पुलकित हो-होकर अपने इष्टदेवोंको प्रणाम करने लगीं ॥ ४ ॥ इसी समय हनुमान्‌ने भरतको सारा मंगल समाचार आ सुनाया। तुलसीदास कहते हैं कि उस मंगल समाचारने संजीवनी बूटीके समान उनकी सारी व्यथा नष्ट कर डाली ॥ ५ ॥ (२०)

(वनमें रामने जो लीलाएँ की थीं उन्हें सुनकर अयोध्याके नागरिक आपसमें कहने लगे—) 'सुना जाता है कि रामने समुद्रपर पुल बँधवा दिया। कोशलपति रामका सारा कुशल-समाचार कोई दूत भरतके पास लाया था ॥ १ ॥ (उसी दूतने बताया है कि—) रामने विराध, खर, दूषण, त्रिशिरा आदि न जाने कितने राक्षसोंको मार डाला तथा शूर्पणखाके नाक-कान काट धरे। कहते हैं कि कृपासिन्धु रामने कबन्धको मार डाला और बलके अभिमानमें अंधे बालिका दमन करके सुग्रीवको बसा बिठाया ॥ २ ॥ शरणमें आए हुए विभीषणको अपनाकर कुल-सहित रावणको समूल समाप्त कर डाला। इस प्रकार अपनी भुजाओंका आश्रय देकर, देवताओंकी रक्षा करके अपना 'बंदि-छोर' (वन्दियोंको छुड़ानेवाले) यह श्रेष्ठ सुयश प्रसिद्ध कर दिया' ॥३॥ इसी प्रकार एक-एकसे नये समाचार पाकर सब नागरिक जहाँ-तहाँ ऐसे प्रसन्न होकर दौड़ चले जैसे मेघकी ध्वनि सुनकर मोर प्रसन्न हो उठे हों अथवा समुद्रमें डूबते हुओंको किनारा मिल गया हो ॥४॥ 'आज ही तक अवधि है (आज ही राम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'अवधि आज', यों कहत परसपर, बेगि बिमान निकट पुर आयो।
उतरि अनुज अनुगनि-समेत प्रभु, गुरु-द्विजगन चरननि सिर नायो ॥ ५ ॥
जो जेहि जोग, राम तेहि बिधि मिलि, सबके मन अति मोद बढ़ायो।
भेंटी मातु, भरत, भरतानुज, क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो[1] ॥ ६ ॥
तेही दिन मुनि-बृंद अनंदित, तुरत तिलक - को साज सजायो।
महाराज रघुबंस - नाथ - को, सादर 'तुलसिदास' गुन गायो ॥७॥ (२१)

राग जयतश्री

रन जीति राम राउ आए।

सानुज, सदल, ससीय कुसल अजु, अवध अनंद - बधाए ॥ १ ॥
अरिपुर जारि, उजारि, मारि रिपु, बिबुध सुबास बनाए।
धरनि, धेनु, महिदेव, साधु सबके सब सोच नसाए ॥ २ ॥
दई लंक, थिर थपे बिभीषन, बचन पियूष पिआए।
सुधा सींचि कपि, कृपा नगर - नर - नारि निहारि जिआए ॥ ३ ॥
मिलि गुरु, बंधु, मातु, जन, परिजन, भए सकल मन भाए।
दरस-हरष, दस - चारि बरष - के दुख, पल में बिसराए ॥ ४ ॥

आनेवाले हैं)'—ऐसा आपसमें लोग कह ही रहे थे कि इतनेमें ही विमान उड़ता हुआ नगरके निकट आ पहुँचा। भाई लक्ष्मण तथा अन्य सभी अनुगामियों (वानर आदि)-के साथ राम विमानसे उतर पड़े और उतरकर उन्होंने गुरु तथा ब्राह्मणोंको आ प्रणाम किया ॥५॥ जो जिस योग्य था उससे उसी प्रकार मिलकर रामने सबको आनन्दित कर दिया। तत्पश्चात् (तीनों) माताओं, भरत एवं शत्रुघ्नसे भी वे भी जाकर मिले। उस समय वहाँ जो अपरिमित प्रेम उमड़ा पड़ रहा था उसका वर्णन मैं किस प्रकार कर पा सकता हूँ ॥६॥ उसी दिन आनन्दमें भरे हुए मुनियोंने तुरन्त राज्याभिषेकका साज ला सजाया और रघुकुलके स्वामी महाराजके गुणका गान तुलसीदासने भी आदरपूर्वक कर सुनाया ॥ ७ ॥ (२१)

महाराज राम युद्धमें जीतकर भाई लक्ष्मण, सीता और सेनाके साथ सकुशल लौट आए, इसलिये अयोध्यामें चारों ओर आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है ॥ १ ॥ उन्होंने शत्रुका नगर (लंका) उजाड़ और जलाकर तथा शत्रुको मारकर देवताओंको उनके घर पहुँचा बसाया। पृथ्वी, गौ, ब्राह्मण और साधु, इन सबका सारा दुःख नष्ट हो गया ॥२॥ विभीषणको लंकाका राज्य देकर तथा स्थिरताके साथ उनका राज्याभिषेक करके उसे वचनका अमृत पिला दिया है और (युद्धमें मरे हुए) वानरोंको अमृतसे सींचकर (जीवित करके) अब अयोध्याके नर-नारियोंको कृपा-दृष्टिसे निहारकर जीवन-दान दिया है ॥ ३ ॥ गुरु, भाई, माता, सेवक, और कुटुम्बी लोग सभी रामसे जाकर मिले और सबकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गईं। वे रामके दर्शनोंके आनन्दमें चौदह वर्षोंका दुःख क्षण

१. अनमायो = जिसकी माप नहीं हो सकती।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बोलि सचिव सुचि, सोधि सुदिन, मुनि मंगल साज सजाए।
महाराज-अभिषेक, बरषि सुर - सुमन, निसान बजाए॥ ५॥
लै - लैं भेंट नृप, अहिप, लोकपति, अति सनेह सिर नाए।
पूजि, प्रीति पहिचानि राम, आदरे अधिक अपनाए॥ ६॥
दान - मान - सनमानि, जानि रुचि, जाचक जन पहिराए।
गए सोक - सर सूखि, मोद - सरिता - समुद्र गहिराए॥ ७॥
प्रभु - प्रताप - रवि अहित - अमंगल - अघ - उलूक - तम ताए।
किय बिसोक हित - कोक - कोकनद, लोक सुजस सुभ छाए॥ ८॥
राम - राज कुल काज सुमंगल, सबनि सबै सुख पाए।
देहिं असीस भूमि - सुर प्रमुदित, प्रजा प्रमोद बढ़ाए॥ ९॥
आस्रम - धरम - बिभाग बेद - पथ पावन, लोग चढ़ाए।
धर्म - निरत, सिय - राम - चरन - रत, मनहु राम - सिय - जाए॥ १०॥
कामधेनु महि, बिटप कामतरु, कोउ बिधि बाम न लाए।
ते तब, अब 'तुलसी' तेउ जिन्ह हित - सहित राम - गुन गाए॥ ११॥ (२२)

भरमें भूल गए ॥ ४॥ गुरुवर वशिष्ठने सुमन्त आदि पवित्र चित्तवाले मन्त्रियोंको बुलाकर (रामके राज्याभिषेकके लिये) शुभ दिन शोधकर, मंगल सामग्रियाँ मँगा एकत्र कराईं। रामके राज्याभिषेकके समय देवताओंने फूल बरसाकर दुन्दुभी आदि बाजे बजा दिए ॥ ५॥ भूपति, अहिपति और लोक-पतियोंने तरह-तरहकी भेंटें लेकर रामको अत्यन्त प्रेमसे सिर नवाया। रामने उनका प्रेम पहचानकर उनका भली प्रकार पूजन और आदर करके उन्हें अपनालिया ॥ ६॥ याचकोंको उनकी इच्छाके अनुसार दान और मानसे सम्मानित करके वस्त्र आदि मँगा पहनाए गए। इससे उनके शोकके सरोवर सूख गए और उनके स्थानपर आनन्दकी नदी और समुद्र गहरे हो गए ॥७॥ रामके प्रतापके सूर्यके सामने अहित, अमंगल और पापरूपी उल्लू और अन्धकार तो लुप्त हो गए और मित्र-रूपी कोक (चकवा, चकई) तथा कमलका शोक दूर हो मिटा। सब लोकोंमें उनका सुयश जा छाया ॥ ८॥ रामके राज्यमें सारे लौकिक कार्य मंगलमय ही हो चले। सबको सब प्रकारके सुख प्राप्त हो गए तथा ब्राह्मण लोग प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देकर प्रजाको आनन्दित करते रहे ॥ ९॥ रामने आश्रम-धर्मके अनुसार लोगोंको पवित्र वेद-मार्गपर ला लगाया। वहाँ सब लोग बड़े धर्म-परायण थे तथा राम-जानकीके चरणोंमें ऐसा प्रेम करते थे मानो साक्षात् राम और सीताकी ही सन्तान हों ॥१०॥ पृथ्वी भी कामधेनु बन गई तथा वृक्ष भी कल्पवृक्ष बन गए। बिधाता किसीका वैरी नहीं रहा। तुलसीदास कहते हैं कि यह बात तो उस समयके लोगोंकी है, किन्तु इस समय भी जो लोग प्रेमपूर्वक रामके गुण गाते हैं उन्हें भी वही आनन्द मिल रहा है ॥ ११॥ (२२)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग टोड़ी

आज अवध आनंद बधावन, रिपु रन जीति राम आए।
सजि सुबिमान, निसान बजावत, मुदित देव देखन धाए ॥ १ ॥
घर - घर चारु चौक चंदन-मनि, मंगल - कलस सबनि साजे।
ध्वज, पताक, तोरन, बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥ २ ॥
राम - तिलक सुनि, दीप दीप - के नृप आए, उपहार लिये।
सीय - सहित आसीन सिंहासन, निरखि जोहारत हरष हिये ॥ ३ ॥
मंगल गान, बेद-धुनि, जय-धुनि, मुनि-असीस-धुनि भुवन भरे।
बरषि सुमन सुर-सिद्ध प्रसंसत, सबके सब संताप हरे ॥ ४ ॥
राम-राज भइ कामधेनु महि, सुख - संपदा लोक छाए।
जनम-जनम जानकीनाथ-के, गुन-गन 'तुलसिदास' गाए ॥५॥ (२३) [२९२]

॥ इति श्रीरामगीतावल्यां लंकाकांडः समाप्तः ॥

शत्रुको युद्धमें जीतकर महाराज राम लौट आए हैं। इसीलिये अयोध्यामें आनन्दमय बधावे बज रहे हैं। देवता लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने सुन्दर विसान सजा-सजाकर डंके बजाते हुए उन्हें देखनेके लिये उड़े चले आ रहे हैं ॥ १ ॥ घर-घरमें चन्दन और मणियोंसे चौक पूर दिए गए हैं। सब लोगोंने घर-घर मंगल-कलश, ध्वजा, पताका, तोरण और बढ़िया चँदोवे टाँग सजाए हैं तथा स्थान-स्थानपर भाँति-भाँतिके बाजे बज रहे हैं ॥ २ ॥ रामके राज्याभिषेकका समाचार सुनकर द्वीप-द्वीपान्तरोंके राजा लोग उपहार ले-लेकर आ पहुंचे हैं और सीताके साथ रामको सिंहासनपर बैठे देखकर हृदयमें हर्षित होकर जुहार (प्रणाम) कर रहे हैं ॥ ३ ॥ सारे भुवन मंगल गान, वेद-ध्वनि, जयघोष और मुनियोंके आशीर्वादात्मक वचनोंसे गूँज उठे हैं। देवता और सिद्ध लोग फूलोंकी वर्षा करते हुए रामकी प्रशंसा किए जा रहे हैं और रामने भी सबके सब दुःख दूर कर डाले हैं ॥ ४ ॥ रामके राज्यमें पृथ्वी कामधेनु बन गई है तथा सम्पूर्ण लोकोंमें सुख और सम्पत्ति आ छाई है। इसीलिये तुलसीदास भी जन्म-जन्ममें सीतापति रामका ही गुणगान करता रहता है ॥ ५ ॥ (२३) [२९२]

॥ श्रीरामगीतावलीमें लंकाकाण्ड पूरा हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उत्तरकांड

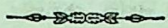

राग सोरठ

बन - तें आइकै राजा राम भए भुवाल ।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब, सब काल ॥ १ ॥
मिटे कलुष, कलेस, कुलछन, कपट, कुपथ, कुचाल ।
गए दारिद - दोष दारुन, दंभ, दुरित, दुकाल ॥ २ ॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनिगन - लाल ।
नारि - नर तेहि समय सुकृती, भरे भाग सुभाल ॥ ३ ॥
बरन - आस्रम - धरम - रत मन - बचन, बेष मराल ।
राम - सिय - सेवक, सनेही, साधु, सुमुख, रसाल ॥ ४ ॥
राम - राज - समाज बरनत, सिद्ध, सुर, दिगपाल ।
सुमिरि सो 'तुलसी' अजहुँ, हिय हरष होत बिसाल ॥ ५ ॥(१)

वनसे आकर महाराज राम राजा हो गए। राज्यमें चौदहों भुवन (सभी) आनन्दित हो उठे और सब लोग सदा सब प्रकारसे सुखी रहने लगे ॥ १ ॥ कहीं भी पाप, क्लेश, कुलक्षण, कपट, कुमार्ग और कुचालका नाम-तक नहीं रह गया और दरिद्रता, भयंकर दोष, दम्भ और दुष्काल आदिका नाम-तक मिट गया ॥ २ ॥ पृथ्वी भी कामधेनु बन गई, वृक्ष सब कल्पवृक्ष बन गए और पत्थर भी मणि-माणिक (लाल) आदि बन गए। उस समय जितने भी स्त्री-पुरुष थे सभी पुण्यात्मा और भाग्यशाली थे ॥३॥ वे मन और वचनसे अपने-अपने वर्ण और आश्रमके धर्मोंमें लीन थे और वेषमें भी हंसके समान स्वच्छ और पवित्र थता राम और सीताके सेवक, प्रेमी, साधु चरित्र-वाले, प्रसन्न वदन और मधुर-भाषी थे ॥ ४ ॥ रामके राज-समाजका बखान तो देवता और दिक्पाल-तक भी किया करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उस समयका स्मरण करके तो मेरा आज भी जी खिल उठता है ॥ ५ ॥ (१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग केदारा

भोर जानकी - जीवन जागे।
सूत, मागध प्रबीन, वेनु - बीना - धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे ॥ १ ॥
स्यामल सलोने गात, आलस - बस जँभात, प्रिया - प्रेम - रस पागे।
उनींदे लोचन चारु, मुख - सुषमा - सिंगारु हेरि, हारे मार, भूरि भागे ॥ २ ॥
सहज सुहाई छबि, उपमा न लहैं कबि, मुदित बिलोकन लागे।
'तुलसिदास' निसि - बासर, अनूप रूप नारी-नर रहत प्रेम - अनुरागे ॥ ३ ॥(२)

राग कल्याण

रघुपति राजीव-नयन, सोभा-तन कोटि मयन, करुनारस - अयन, चयन - रूप - भूप, माई।
देखो सखि अतुलित छबि,संत-कंज-कानन-रबि, गावत कल कीरति कबि-कोबिद समुदाई ॥१॥
मज्जन करि सरजु-तीर, ठाढ़े रघुबंस-बीर, सेवत पद-कमल धीर निरमल चित लाई।
ब्रह्ममंडली - मुनींद्र-बृंद - मध्य इंदु-बदन राजत, सुख- सदन लोक-लोचन - सुखदाई ॥२॥
बिथुरित सिररुह-बरूथ,कुंचित बिच सुमन-जूथ,मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि-समीप आई
जनु सभीत दै अँकोर, राखे जुग रुचिर मोर, कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥३॥

प्रातःकाल होते ही जानकीके जीवन राम जाग उठे। उस समय चतुर सूत और मागधोंने विरदावली कहना (पराक्रमका वर्णन करना) आरम्भ कर दिया। द्वारपर बाँसुरी और वीणा बजने लगी। गायकोंने सुरीले राग छेड़ दिए ॥ १ ॥ रामका अत्यन्त सुन्दर साँवला शरीर प्रिया (जानकी)-के प्रेम-रसमें पड़नेके कारण आलस्यसे अँगड़ाए जा रहा था, उनके उनींदे-से मनोहर नेत्र तथा मुखकी छटा और शृंगार देखकर अनेक कामदेव भी लजाकर भाग खड़े हुए ॥ २ ॥ उनकी छवि स्वभावसे ही इतनी शोभामयी है कि कोई कवि उसकी उपमा दे ही नहीं पा सकता इसलिये वे प्रसन्न होकर उनकी ओर टुकुर-टुकुर ताकते ही रह जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार वहाँके स्त्री-पुरुष रात-दिन रामके अनुपम रूपमें प्रेम-मग्न हुए पड़े रहते हैं ॥ ३ ॥ (२)

अरी माई ! कमलके समान खिले हुए नेत्रोंवाले रामका शरीर तो करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर है। वे बड़े दयालु हैं और जान पड़ता है वे चुने हुए रूपके राजा ही हैं। देखो सखि ! देखो, जैसे सूर्यको देखकर कमल खिल उठते हैं वैसे ही उनकी यह अतुलित छबि देखकर साधु (सज्जन लोग) भी प्रसन्न हो उठते हैं और कवि तथा विद्वान् लोग भी उनकी पवित्र कीर्त्तिका वर्णन करने लगते हैं ॥ १ ॥ आहा ! (वह देखो,) रघुवंशके वीर राम स्नान करके सरयूके तटपर आ खड़े हुए हैं। मनस्वी भक्त लोग अपना निर्मल चित्त लगाकर उनके चरण-कमलोंकी सेवा कर रहे हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले आनन्दके धाम, चन्द्रमाके समान मुखवाले राम ब्राह्मणों और मुनियोंके बीच विराजमान हैं ॥ २ ॥ उनके घुँघराले बिखरे हुए बालोंके बीच-बीचमें फूलोंके गुच्छे गुँथे हुए ऐसे लगते हैं मानो मणियों (फूलों)-के साथ बाल-सर्पों (घुँघराले बालों)-का समूह चन्द्रमा (रामके मुख)-के पास (अमृत चुराने) चला आया हो और उन्हें (सर्पोंको) देखकर चन्द्रमासे भयभीत होकर उनसे बचनेके लिये उसने दो सुन्दर मोर (कुंडल) फुसलाकर ला पाले हों, जिन कुण्डलों (मोरों)-की छबि देखकर वे सर्प-रूपी चोर (आगे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ललित भ्रुकुटि, तिलक भाल, चिबुक अधर द्विज रसाल, हास चारुतर, कपोल-नासिका सुहाई ।
मधुकर-जुग पंकज-बिच, सुक बिलोकि नीरज-पर, लरत मधुप-अवलि मनो बीच कियो जाई।४।
सुंदर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि, तुलसिका-प्रसून-रचित बिबिध बिधि बनाई ।
तरु तमाल अधबिच जनु, त्रिबिध कीर-पाँति रुचिर, हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई ॥५॥
संकर-हृदि-पुंडरीक, निसि बस हरि-चंचरीक, निर्व्यलीक[1] मानस-गृह संतत रहे छाई ।
अतिसय आनंदमूल, 'तुलसिदास' सानुकूल, हरन सकल सूल, अवध-मंडन रघुराई ॥६॥(३)

राजत रघुबीर धीर, भंजन भव-भीर, पीर हरन सकल, सरजु-तीर निरखहु सखि ! सोहैं ।
संग अनुज मनुज-निकर, दनुज-बल-बिभंग करन, अंग-अंग छबि अनंग अगनित मन मोहैं ।१।
सुषमा-सुख-सील-अयन नयन निरखि, निरखि नील कुंचित कच, कुंडल कल नासिक चित पोहैं ।
मनहु इंदु-बिंब मध्य, कंज-मीन-खंजन लखि, मधुप-मकर-कीर आए तकि-तकि निज गोहैं ॥२॥
ललित गंड मंडल, सुबिसाल भाल तिलक झलक, मंजुतर मयंक-अंक, रुचिर बक भौंहैं ।
अरुन अधर, मधुर बोल, दसन दमक दामिनि दुति, हुलसति हिय हँसनि चारु, चितवन तिरछौंहैं

बढ़नेसे) हिचके पड़ रहे हों ॥ ३ ॥ उनकी भ्रुकुटी बड़ी बाँकी (मनोहर) है । उनके माथेपर तिलक चमक रहा है तथा उनकी ठोड़ी, ओठ और उनके दाँत बड़े ही रसीले हैं । उनकी हँसी तो इन सबसे भी कहीं अधिक मनोहर है तथा उनके गाल और उनकी नाक भी बड़ी ही सुडौल है । ऐसा जान पड़ता है मानो कमलों (नेत्रों)-पर दो भौंरे (भौंहें)आ बैठे हों तथा कमल (मुख)-पर अलक (लट)-रूपी भौंरोंको झगड़ते देखकर नासिका-रूपी शुकने उनका बीच-बचाव आ किया हो ॥ ४ ॥ रामके शरीरपर बहुत ही सुन्दर और स्वच्छ पीताम्बर तथा छातीपर तुलसी और अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वनमाला ऐसी शोभा दे रही है मानो तमालके वृक्षपर बीच-बीचमें (वनमाला-रूपी) तिरंगे सुग्गोंकी मनोहर पंक्ति आ बैठी हो और वह (पीताम्बर-रूपी) सुवर्णके जालमें आ फँसनेके कारण उड़ न पा सक रही हो ॥ ५ ॥ जो राम भ्रमर बनकर शंकरके हृदयके कमलमें और निश्छल पुरुषोंके मन-मन्दिरमें निरन्तर बसे रहते हैं वे सम्पूर्ण ताप मिटा डालनेवाले अवधके विभूषण परमानन्द देनेवाले राम इस तुलसीदासपर भी सदा प्रसन्न रहें ॥ ६ ॥ (३)

'अरी सखी ! देख तो सही, संसारका दुःख दूर कर डालनेवाले, सम्पूर्ण ताप मिटा डालनेवाले, धीर, वीर राम यहाँ सरयूके तटपर आए खड़े बड़े प्यारे लग रहे हैं । उनके साथ उनके (तीनों) छोटे भाई तथा और भी अनेक लोग आए बैठे हैं । वे शत्रुओंकी सेना छिन्न-भिन्न कर डाल सकते हैं, उनके अंग-अंगकी शोभा अनगिनत कामदेवोंका मन मोहे डाल रही है ॥ १ ॥ सुषमा (सुन्दरता)-शील और आनन्दसे भरे हुए उनके नेत्र और उनकी काली घुँघराली लटें तो देखो । उनके (कानों में झूलते हुए) मनोहर कुण्डल और नासिका तो बरबस हमारे चित्त मोहे ले रही है मानो चन्द्रबिम्ब (मुख)-के बीचमें कमल, मछली और खंजन (नेत्रों)-को देखकर अच्छा अवसर पाकर भ्रमर (लटें), मकर (कुंडल) और शुक (नासिका) भी आ पहुँचे हों ॥ २ ॥ रामके कपोल बड़े ही मनोहर हैं उनके विशाल भालपर तिलक झलक रहा है तथा मुख-मंडलपर अर्द्धचन्द्रके समान सुन्दर बाँकी भौंहें हैं । रामके लाल ओठ देखकर उनकी मधुर बातें सुनकर, बिजलीके

१. निर्व्यलीक = कपट-रहित ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कंबु कंठ, भुज बिसाल, उरसि तरुन तुलसि-माल, मंजुल मुकतावलि-जुत जागति जिय जोहैं ।
जनु कलिंद-नंदिनि मनि इंद्रनील-सिखर परसि, धँसति लसति हंस-स्रेनि संकुल अधिकौहैं ॥४॥
दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चंपक-चय, चंचला-कलाप कनक-निकर अलि ! किधौं हैं ।
सज्जन-चख-झख-निकेत, भूषन मनिगन समेत, रूप-जलधि बपुष लेत मन-गयंद बौहैं[1] ॥५॥
अकनि बचन-चातुरी, तुरीय[2] पेखि प्रेम-मगन, पग न परत इत-उत सब चकित तेहि समौ हैं ।
'तुलसिदास' यह सुधि नहिं, कौन की, कहाँ तें आई, कौन काज, काके ढिग, कौन ठाईं, को हैं ।६।४

देखु सखि ! आज रघुनाथ सोभा बनी ।
नील-नीरद-बरन - बपुष, भुवनाभरन, पीत - अंबर - धरन, हरन दुति - दामिनी ॥१॥
सरजु मज्जन किए, संग सज्जन लिए, हेत जन-पर हिये, कृपा कोमल घनी ।
सजनि ! आवत भवन, मत्त-गजबर-गवन, लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी ॥२॥

समान उनके दाँतोंकी दमक, मनोहर मुसकान तथा तिरछी चितवन देखकर चित्त खिल उठता है ॥ ३ ॥ रामका कण्ठ शंखके समान है, भुजाएँ लम्बी हैं, छातीपर मोतीकी मनोहर मालाके साथ हरी तुलसीकी माला ऐसी शोभा दे रही है और योगियोंको ऐसी प्रतीत हो रही है मानो हंसोंकी पंक्ति (मोतियोंकी माला)-के साथ कलिन्द पर्वतसे निकलनेवाली यमुना (तुलसीकी माला) इन्द्रनीलमणि-शिखर (रामके कंधे)-को स्पर्श करती हुई, नीचेको गिरती हुई बड़ी प्यारी लग रही हो ॥४॥ अरी सखी ! प्रभुका जो यह अत्यन्त मनोहर पीतांबर है वह कहीं चम्पेके सुन्दर फूलोंका समूह ही तो नहीं है ? या बिजली या सुवर्णका ढेर ही तो नहीं है ? सुन्दरताके सागरके समान रामके जिस शरीरमें सत्पुरुषोंके नेत्र मकर (मच्छ) बनकर रहते हैं और जिसमें आभूषणोंके रूपमें रत्नोंके ढेर भरे हुए हैं वह (रामकी सुन्दरताका सागर) हमारे मनरूपी मतंग (हाथी)-को अपने भीतर डुबाए ले रहा है (रामकी सुन्दरताने हमारा मन हर लिया है)' ॥ ५ ॥ उस सखीकी ऐसी वचनकी चातुरी सुनकर और तुरीय[1] रूपी (परम सुन्दर) रामको निहारकर सब सखियाँ प्रेममें ऐसी मग्न हो चलीं कि न तो उनके पैर आगे पड़ पा रहे थे न पीछे ही हट पा रहे थे । तुलसीदास कहते हैं कि उस समय वे सबकी सब ऐसी चकित हुई खड़ी थीं कि उन्हें यह-तक सुध न रह गई कि कौन किसकी (पुत्री या पत्नी) है ? कहाँसे आई है ? क्यों आई है ? किसके पास खड़ी है ? और कौन कहाँ है ? ॥ ६ ॥ (४)

'अरी सखी ! देख, आज राम कितने प्यारे लग रहे हैं ! उनका शरीर नीले मेघके समान ऐसा चमकीला है कि सम्पूर्ण लोकोंका आभूषण बनकर सबको सजाए डाल रहा है। उनके शरीरपर बिजलीकी दमकको भी घटा देनेवाला सुन्दर पीताम्बर पड़ा है ॥ १ ॥ अरी सजनी ! देख, कोशल-राज-कुमार राम सरयूमें स्नान करके बहुतसे सज्जनोंके साथ मस्त हाथीकी चालसे राज-भवनकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं । उनका हृदय बड़ा कोमल है । वे दीनोंसे प्रेम और उनपर बड़ी कृपा करते रहते हैं । उनकी (पतली) कटि और चाल भी सिंहके समान है ॥ २ ॥ अपने मुख-मण्डलपर छितराए हुए घने,

१. बौहैं लेन = डुबकी लेता है । २. जीवकी चार अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय)-में से वह चौथी सर्वश्रेष्ठ अवस्था जब ब्रह्ममें आत्मा लीन हो जाता है ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल, करनि बिवरत चतुर सुषमा जनी ।
ललित अहि-सिसु-निकर मनहु ससि-सन समर लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ॥३॥
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन पलक, चारु भ्रू , नासिका सुभग सुक-आननी ।
चिबुक सुंदर, अधर अरुन, द्विज-दुति सुघर, बचन गंभीर, मृदु हास भव-भाननी ॥४॥
स्रवन कुंडल बिमल, गंड मंडित चपल, कलित कल कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी ।
जुगल कंचन-मकर मनहु बिधु-कर मधुर, पियत पहिचानि करि सिंधु-कीरति भनी ॥५॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक, माल सुबिसाल चहुँ पास बनि गज-मनी ।
स्याम नव जलद - पर निरखि दिनकर-कला, कौतुकी मनहु रही घेरि उडुगन-अनी ॥६॥
मंदिरनि-पर खरी, नारि आनँद-भरी, निरखि बरषहिं बिपुल कुसुम, कुंकुम-कनी ।
'दास तुलसी' राम, परम करुना-धाम, काम सत कोटि मद हरत छबि आपनी ॥७॥ (५)

आज रघुबीर-छबि जाति नहिं कछु कही ।
सुभग सिंहासनासीन सीता-रमन, भुवन अभिराम, बहु काम सोभा सही ॥१॥
चारु चामर, ब्यजन, छत्र, मनिगन बिपुल, दाम मुकुतावली जोति जगमगि रही ।
मनहु राकेस-सँग हंस, उडुगन, बरहि, मिलन आए हृदय जानि निज नाथही ॥२॥

चिकने, घुँघराले और मुलायम बालोंको परम चतुर राम अपने हाथोंसे सुलझाते-सुधारते हुए ऐसे अच्छे लग रहे हैं मानो सुहावने सर्प-के बच्चोंका समूह (बाल), चन्द्रमा (मुख)-से अमृत पानेके लिये झगड़ रहा हो और उन्हें दो बड़े सर्प (हाथ) समझा रहे हों ॥ ३ ॥ रामके मस्तकपर तिलक शोभा दे रहा है, उनके नेत्र भी कमलके समान हैं, उनकी पलकें तथा भौंहें बड़ी मनोहर हैं, उनकी सुन्दर नासिका भी शुकके समान है । उनकी ठोड़ी बड़ी सुन्दर है, ओठ लाल हैं, दाँतोंकी दमक बड़ी प्यारी है । उनकी वाणी गम्भीर है और उनकी मृदुल मुसकान संसारके सारे ताप ठंडे कर डाल सकती है ॥ ४ ॥ रामके कानोंमें झिलमिलाते हुए कुंडलोंने उनके निर्मल कपोलोंपर कुछ और ही ऐसी नई चञ्चल और मनोहर कान्ति चढ़ा दी है मानो दो सुनहरे मच्छ (कुण्डल), समुद्र (-से उत्पन्न होने)-का अपना भी संबंध बताकर चन्द्रमा (कपोल)-की मधुर किरणें पीए जा रहे हों (कि चन्द्रमा भी समुद्रसे उत्पन्न हुआ है और हम भी समुद्रमें रहते हैं तो दोनों भाई हैं)॥ ५ ॥ देखो, इनके वक्षःस्थलपर सुशोभित पदिक (मणियोंके चौकोर आभूषण)-की जो ज्योति फैली हुई है उसकी चारों ओर गजमुक्ताओंकी माला ऐसी शोभा दे रही है मानो नवीन श्याम मेघ (रामकी छाती)-पर सूर्यकी कला (पदिक) देखकर उसे कौतुक-वश नक्षत्रों (गजमुक्ताओंकी माला)-ने आ घेरा हो' ॥ ६ ॥ इस समय अपने-अपने घरोंकी छतोंपर खड़ी हुई नगरकी नारियाँ रामको देख-देखकर आनन्द-मग्न हो-होकर उनपर पुष्प और केसरका चूरा बरसाए जा रही हैं । तुलसीदास कहते हैं कि इस समय परम कल्याणके धाम राम अपनी शोभासे अरबों कामदेवोंका मान मर्दन किए डाल रहे हैं ॥ ७ ॥ (५)

आज रामकी छबि (ऐसी अनोखी बनी है कि उस)-का वर्णन नहीं किया जा सकता । त्रिभुवनमें सबसे सुन्दर और सीताके पति राम सिंहासनपर बैठे हुए सचमुच अनेक कामदेवोंकी शोभासे भरे हुए हैं ॥१॥ उनपर सुन्दर चँवर, व्यजन (पंखा), छत्र, अनेक मणि तथा मोतियोंकी मालाओंकी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुकुट सुंदर सिरसि, भाल बर तिलक, भ्रू , कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही ।
मनहु हर-डर जुगल मार-ध्वज-के मकर, लागि स्रवननि करत मेल-की बतकही ॥३॥
अरुन - राजीव - दल - नयन करुना-अयन, बदन सुषमा-सदन, हास त्रय-ताप-ही ।
बिबिध कंकन-हार, उरसि गजमनि-माल, मनहु बग-पाँति जुग मिलि चली जलद ही ॥४॥
पीत निरमल चैल, मनहु मरकत-सैल पृथुल दामिनि रही छाइ, तजि सहज ही ।
ललित सायक-चाप, पीन भुज बल अतुल, मनुज-तनु दनुज-बन-दहन, मंडन-मही ॥५॥
जासु गुन-रूप नहिं कलित, निर्गुन सगुन, संभु, सनकादि, सुक भक्ति दृढ करि गही ।
'दास तुलसी' राम - चरन - पंकज सदा, बचन-मन-कर्म चहै प्रीति नित निर्बही ॥६॥ (६)

राम-राज राज-मौलि, मुनिबर-मन-हरन, सरन-लायक, सुखदायक, रघुनायक देखौ, री ।
लोक लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल स्याम, रूप-सील-धाम, अंग छबि अनंग को री ॥ १॥

लड़ियोंकी चमक ऐसी जगमगा रही है मानो अपने प्रभुको हृदयमें पहचानकर चंद्रमा (छत्र)-के साथ हंस (चँवर), तारे (मणि) और मोर (पंखा) भी रामसे मिलने चले आए हों ॥ २ ॥ रामके सिरपर सुन्दर मुकुट, चौड़े माथेपर तिलक, (बाँकी) सुन्दर भौंहें तथा घुँघराली अलकोंके पास झिलमलाते हुए कुण्डल ऐसे लग रहे हैं मानो कामदेवके झंडोंकी दो मछलियाँ (कुण्डल), शंकरके भयसे कामदेवको भस्म कर डालनेवाले शंकरसे अपनी रक्षा करानेके लिये रामके कानोंसे लगकर संधिकी बातचीत चला रहे हों ॥ ३ ॥ करुणा (कृपा)-से भरे हुए उनके नेत्र भी लाल कमलकी पंखड़ीके समान हैं । उनका मुख शोभासे भरा है और हँसी तो ऐसी है कि तीनों ताप हों तो उन्हें भी मिटा डाले । वे हाथोंमें रंग-बिरंगे कंकण, गलेमें हार और गजमुक्ताओंकी माला पहने हुए हैं मानो दो बगुलोंकी पंक्तियाँ (हार और गजमुक्ताओंकी माला) एक साथ मिलकर बादल (रामके वक्षस्थल)-की ओर उड़ी चली जा रही हों ॥ ४ ॥ उनके शरीरपर पड़ा हुआ अत्यंत स्वच्छ पीताम्बर ऐसा लगता है मानो मरकतमणि (पन्ने)-के पर्वत (रामके शरीर)-पर बहुत सी बिजलियाँ अपना स्वभाव (चंचलता) छोड़कर स्थिर होकर आ छाई हों । वे अपने हाथोंमें सुन्दर धनुष-बाण लिए हुए हैं तथा उनकी पुष्ट भुजाओंमें अतुलित बल भरा हुआ है । उनके इस मानव-शरीरने दैत्य-वनको जला डाला है और वह पृथ्वीका आभूषण (सबसे अधिक सुन्दर) बना हुआ है ॥५॥ जिन रामके रूप और गुणको कोई गिन नहीं पा सकता, जो निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं, शंकर, सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) तथा शुकदेवकी भी जिनमें दृढ भक्ति है, उन रामके चरण-कमलोंमें तुलसीदास सदा मन, वचन और कर्मसे अपनी प्रीतिका निर्वाह किए रखना चाहता है ॥ ६ ॥ (६)

'अरी सखियो ! मुनियोंके मन हर लेनेवाले, सबको सदा शरण दे सकनेवाले, सबको सुख देने-वाले, राजाधिराजोंके शिरोमणि रामको आकर देखो तो सही । उन्हें देखकर सभी लोकोंके नेत्र आनंदित हो उठते हैं । उनका रंग नीलम और तमालके समान साँवला है तथा संसारका सारा रूप और शील उन्हींके सहारे टिका हुआ है (वे रूप और शीलके भंडार है), उनके अंग-प्रत्यङ्गकी छविके आगे कामदेव क्या है (कुछ नहीं) ॥ १ ॥ उनके सिरपर अत्यन्त सुन्दर रत्नजटित

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भ्राजत सिर मुकुट पुरट[1]-निर्मित मनि-रचित चारु, कुंचित कच रुचिर, परम सोभा नहि थोरी।
मनहु चंचरीक-पुंज कंज-वृंद प्रीति लागि, गुंजत कल गान-तान दिनमनि रिझयो री ॥ २ ॥
अरुन-कंज-दल-बिसाल, लोचन-भ्रू-तिलक भाल, मंडित स्रुति कुंडल बर सुंदरतर जोरी।
मनहु संबरारि[2] मारि, ललित मकर-जुग बिचारि, दीन्हें ससि-कहँ पुरारि, भ्राजत दुहुँ ओरी।३।
सुंदर नासा कपोल, चिबुक, अधर अरुन, बोल मधुर, दसन राजत जब चितवत मुख मोरी।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराज[3]-सिखर निकर, रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग बोरी॥४॥
कंबु कंठ, उर बिसाल तुलसिका नवीन माल, मधुकर बर बास बिबस, उपमा सुनु सो री!
जनु कलिंदजा सुनील सैल-तें धँसी समीप, कंद-बृंद[4] बरषत छबि मधुर घोरि घोरी ॥५॥
निर्मल अति पीत सैल-दामिनि जनु जलद नील, राखी निज सोभा-हित बिपुल बिधि निहोरी।
नयननि-को फल बिसेष, ब्रह्म अगुन सगुन बेष, निरखहु तजि पलक, सफल जीवन लेखौ री ६
सुंदर सीता - समेत सोभित करुना - निकेत, सेवक सुख देत, लेत चितवत चित चोरी।
बरनत यह अमित रूप, थकित निगम, नाग-भूप, 'तुलसिदास' छबि बिलोकि सारद भइ भोरी(७)

सोनेका मुकुट चमचमा रहा है, जिसके नीचे उठ निकले हुए अत्यन्त मनोहर घुँघराले बालोंकी शोभा भी कुछ कम नहीं है मानो गूँजते हुए भौंरे अपनी मनोहर गुंजारकी तानसे सूर्य (मुकुट)-को रिझाए जा रहे हों कि कमलोंको खिलाए रक्खें ॥२॥ उनके नेत्र लाल कमलकी पंखड़ीके समान लाल और बड़े-बड़े हैं, मस्तकपर बाँकी भौंहें और तिलक लगा हुआ है तथा कानोंमें अत्यंत सुन्दर कुण्डलोंकी जोड़ी झिलमिला रही है मानो महादेवने कामदेवको मारकर उनकी ध्वजाके दो मकर (कुण्डल) जो उनके दोनों ओर शोभायमान हैं सुन्दर जानकर (मुख-रूपी) चन्द्रमाको ला थमाए हों ॥ ३ ॥ प्रभुकी नासिका, कपोल, ठोड़ी और लाल ओठ बड़े ही सुन्दर हैं तथा उनके बोल अत्यन्त मीठे हैं। जिस समय वे मुँह मोड़कर देखते हैं उस समय उनके दाँत ऐसे शोभा देते हैं जैसे किसी कमल (मुख)-के भीतर विधाताने बिजलीके रङ्गमें डुबोकर अत्यन्त सुन्दर पोखराजके दाँते ला जमाए हों ॥ ४ ॥ अरी सखी ! रामका कण्ठ शंखके समान है और उनके विशाल वक्षस्थलपर नवीन तुलसीकी माला लटकी है जिसकी मनभावनी सुगंधसे आकृष्ट होकर जो भौंरे गूँज रहे हैं उनकी उपमा तो सुन। (वे ऐसे जान पड़ते हैं) मानो किसी नील शिखर (रामके कण्ठ)-से गिरी हुई कालिन्दी (तुलसीकी माला)-के पास बादल (भौंरे) गरज-गरज (गूँज)-कर मधुर छवि बरसाए दे रहे हों ॥ ५ ॥ रामके साँवले शरीरपर अत्यंत निर्मल पीताम्बर शोभा दे रहा है मानो किसी नीले मेघने अपनी शोभा बढ़ानेके लिये बहुत प्रार्थना करके बिजलीको बुला बैठाया हो। अरी सखी ! इस सगुण वेषमें दिखाई देनेवाले ये निर्गुण ब्रह्म आँखोंको बहुत प्यारे लगते हैं। तुम पलक मारना छोड़कर (एकटक होकर) इन्हें देखती रहो और समझ लो कि तुम्हारा जीवन सफल हो गया ॥६॥ देखो, सुन्दरी सीताके साथ बैठे हुए कृपालु रामको देखकर उनके सेवकों (भक्तों)-को बड़ा सुख मिल रहा है और उनकी ओर देखते ही वे उनके चित्त चुरा लेते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस अपार रूपका वर्णन करते-करते वेद और शेष भी चकित हो बैठे हैं तथा इनकी छवि देख-देखकर

१. पुरट=सोना। २. संवरारि=कामदेव (प्रद्युम्न, कामदेवके अवतार थे), जिन्हें शंबर हर ले गया था और जिन्होंने शंबरको मार डाला था। ३. कंजराज=पद्मरागमणि। ४. कंद=बादल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग केदारा

सखि ! रघुनाथ-रूप निहार।
सरद-बिधु, रबि - सुवन[1], मनसिज - मान - भंजनिहार ॥ १ ॥
स्याम सुभग सरीर जन - मन - काम - पूरनिहार।
चारु चंदन मनहु मरकत - सिखर लसत निहार[2] ॥ २ ॥
रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक - गजमनि - हार।
मनहु सुरधनु - नखतगन बिच, तिमिर - गंजनिहार ॥ ३ ॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि - दुति - बिनिंदनिहार।
बदन सुषमा - सदन सोभित मदन - मोहनिहार ॥ ५ ॥
सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकबि बरननिहार।
'दास तुलसी' निरखतहि सुख लहत, निरखि, निहार ॥ ५ ॥ (८)

सखि ! रघुबीर - मुख-छबि देख।
चित्त - मीति सुप्रीति - रंग, सुरूपता अवरेख ॥ १ ॥
नयन - सुषमा निरखि नागरि ! सफल जीवन लेख।
मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि[3] सुपूरन मेख ॥ २ ॥

शारदाकी बुद्धि भी चकित हो बैठी है (क्योंकि उनकी शोभा पल-पलपर नई-नई होती चलती है) ॥ ७ ॥ (७)

'अरी सखी ! रामका वह रूप तो देखो, जो शरत्के चन्द्रमा, अश्विनीकुमार और कामदेव-का सारा मान मर्दन किए डाल रहा है ॥ १ ॥ भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण करनेवाले रामके सुन्दर साँवले शरीरपर पुता हुआ चन्दनका लेप ऐसा जान पड़ता है मानो मरकत मणि (पन्ने)-के शिखर (रामके शरीर)-पर कुहरा (चन्दन) शोभा दे रहा हो ॥ २ ॥ रामके मनोहर वक्षःस्थलपर यज्ञोपवीत, पदिक (चौकोर मणि) और गजमुक्ताओंका हार ऐसा सुन्दर लग रहा है मानो इन्द्रधनुष (जनेऊ) और नक्षत्रों (गजमुक्ताके हार)-के बीचमें अन्धकार मिटा डालनेवाला सूर्य (पदिक) विराजमान हो ॥ ३ ॥ रामका निर्मल पीला उपरना (पीतांबर) बिजलीकी चमकको भी फीका किए डाल रही है और उनका सौन्दर्यपूर्ण मुखमण्डल कामदेवको भी मोहित किए डाल रहा है ॥ ४ ॥ इस प्रकार उनके सारे अङ्ग ऐसे अनुपम हैं कि ऐसा कोई सुकवि नहीं है जो उसका वर्णन कर सके। तुलसीदास कहते हैं कि रामका रूप ऐसा सलोना है कि उसका जो दर्शन करे वह देखते ही प्रसन्न हो उठे' ॥ ५ ॥ (८)

'अरी सखी ! आ, रामके मुखकी छबि तो देख। तू उनकी यह सुन्दरता अपने चित्तकी भीत-पर बढ़िया (सच्चे) प्रीतिके रंगसे खींच उतार ॥ १ ॥ अरी आली ! रामके नेत्रोंकी सुन्दरता देख-कर समझ ले कि तेरा जीवन सफल हो गया। उनके नेत्र तो ऐसे जान पड़ते हैं मानो मेष राशिकी पूर्णिमाके चन्द्रमामें विधाताने दो कमल ला बनाए हों ॥ २ ॥ रामकी बाँकी भौंहोंवाले

---

१. रवि-सुवन = अश्विनीकुमार। २. निहार = नीहार, कुहरा। ३. शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा, जो मेष राशिपर होता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भ्रुकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम - रेख।
भ्रमर द्वै, रबि - किरनि ल्याए, करन जनु उनमेख ॥ ३ ॥
सुमुखि! केस सुदेस सुंदर सुमन - संजुत पेख।
मनहुँ उडुगन - निबह आए मिलन तम, तजि द्वेख ॥ ४ ॥
स्रवन कुंडल मनहुँ गुरु - कबि करत बाद बिसेष।
नासिका, द्विज, अधर जनु, रह्यो मदन करि बहु बेष ॥ ५ ॥
रूप बरनि न सकत नारद, संभु, सारद, सेस।
कहै तुलसीदास' क्यों मतिमंद - सकल - नरेस ॥ ६ ॥

राग जयतश्री

देखो राघव - बदन बिराजत चारु।
जात न बरनि बिलोकत ही सुख, मुख किधौं छबि बर नारि सिंगारु ॥ १ ॥
रुचिर चिबुक, रद-जोति अनूपम, अधर अरुन, सित हास निहारु।
मनो ससि-कर बसि चहत कमल-महँ, प्रगटत-दुरत न बनत बिचारु ॥ २ ॥
नासिक सुभग मनहुँ सुक सुंदर, चितवत चकि आचरज अपारु।
कल कपोल, मृदु बोल मनोहर, रीझि चतुर चित! अपनप वारु ॥ ३ ॥

विशाल मस्तकपर सुन्दर कुंकुमका तिलक ऐसा शोभा दे रहा है मानो नेत्र-रूपी कमलोंको खिलानेके लिये दो भौंरे (भौंहें) कहींसे सूर्यकी दो किरणें (तिलक) ले आए हों ॥३॥ अरी सुन्दर मुखड़ेवाली! रामके मनोहर मस्तकपर सुन्दर फूलोंसे सजी हुई उनकी लटें तो देख, मानो तारे (फूल) भी अन्धकार (लटों)-से द्वेष छोड़कर मिलने आ पहुँचे हों ॥ ४ ॥ उनके कानोंमें हिलते हुए कुण्डल ऐसे जान पड़ते हैं मानो वृहस्पति और शुक्र आपसमें बैठे विशेष शास्त्रार्थ कर रहे हों। उनकी नासिका, दाँत और अधर तो ऐसे अच्छे लग रहे हैं मानो कामदेव ही कई प्रकारके वेष बनाकर (नाक, दाँत और ओठके रूपमें) आ बसा हो ॥ ५ ॥ जब रामके रूपका वर्णन शंकर, शेष, शारदा और नारद-तक नहीं कर पा सकते तब भला सारे मूर्खोंका सरदार तुलसीदास उसका क्या वर्णन कर पा सकता है?' ॥ ६ ॥(९)

'देख, रामका मुखमण्डल ऐसा बढ़िया लग रहा है कि इसे तो देखते ही रहनेमें आनन्द मिलता है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यही नहीं समझमें आता कि यह मुख है या छवि-रूपी सुन्दरीका शृंगार ही आ बैठा है ॥ १ ॥ रामकी ठोड़ी भी सुन्दर है और उनके दाँतोंकी चमक भी अनुपम है। उनके लाल-लाल ओठोंमें झलकती हुई उनकी मुसकानकी आभा तो देख, मानो चन्द्रमाकी किरणें कमलमें आ बसना तो चाहती हों किन्तु कुछ निश्चय न कर पा सकनेके कारण वे बा-रबार दिखती-छिपती चली जा रही हों ॥ २ ॥ रामकी सुघर नाक मानो तोतेकी सुन्दर ठोर है, जिसे देखते ही चित्त अपार आश्चर्यसे चकित हो उठता है। अरे चतुर चित्त! (यदि तुझमें तनिक भी चतुरता हो तो) उनके अनमोल कपोल तथा अत्यन्त मधुर और मनोहर बोलोंपर रीझकर तू अपनेको निछावर कर डाल ॥ ३ ॥ देख, इनके कमलके समान नेत्र, घुँघराली लटें, बाँकी भौंहें और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नयन-सरोज, कुटिल कच, कुंडल, भ्रुकुटि सुभाल तिलक सुख-सारु।
मनहु केतु-के मकर, चाप, सर, गयो बिसारि मै मोहित मारु ॥ ४ ॥
निगम, सेष, सारद, सुक, संकर, बरनत रूप न पावत पारु।
'तुलसिदास' कहु, कहै कौन बिधि, अति लघुमति, जड़, कूर, गँवारु ॥५॥ (१०)

राग ललित

आज रघुपति-मुख देखत लागत सुख, सेवक सुरूप सोभा सरद - ससि सिहाई।
दसन-बसन[1] लाल, बिसद हास रसाल, मानो हिमकर-कर राखे राजीव मनाई ॥२॥
अरुन नैन बिसाल, ललित भ्रुकुटि, भाल तिलक, चारु कपोल, चिबुक नासा सुहाई।
बिथरे कुटिल कच, मानहु मधु लालच अलि, नलिन-जुगल उपर रहे लुभाई ॥२॥
स्रवन सुंदर सम कुंडल कल जुगल, 'तुलसिदास' अनूप उपमा कही न जाई।
मानो मरकत सीप, सुंदर ससि समीप, कनक मकर - जुत बिधि बिरची बनाई ॥३॥(११)

राग भैरव

प्रातकाल रघुबीर - बदन - छबि चितै चतुर चित ! मेरे।
होहिं बिबेक - बिलोचन निर्मल, सुफल, सुसीतल तेरे ॥ १ ॥

चौड़े माथेपर तिलक ऐसे सुन्दर लग रहे हैं मानो प्रभुके रूपपर मोहित होकर, सुध-बुध भूल जानेके कारण, कामदेव अपनी ध्वजाके मकर (नेत्र), धनुष (भौंहें) और बाण (तिलक) भूलकर छोड़ गया हो ॥ ४ ॥ जब वेद, शेष, सरस्वती, शुकदेव तथा शंकर भी रामके रूपका वर्णन करते-करते पार नहीं पा सके तब भला यह अत्यंत मन्दमति, मूर्ख, कठोर हृदय और गँवार तुलसीदास किस प्रकार उसका वर्णन कर सकता है' ॥ ५ ॥ (१०)

आज रामका मुख देखते ही जी खिल उटता है क्योंकि वह सेवकोंपर बड़ी कृपा-दृष्टि बनाए रहता तथा प्रसन्न रहता है। शरत्का चन्द्रमा भी उस शोभाके लिये तरसता रहता है। रामके ओठ लाल हैं तथा उनकी मनोहर मुसकान बड़ी ही प्यारी है मानो हास-रूपी चन्द्र-किरणोंको ओठ-रूपी कमलोंने मनाकर वहीं रोक लिया हो ॥ १ ॥ रामके लाल-लाल बड़े-बड़े नेत्र, सुन्दर भौंहें माथेपर तिलक, मनोहर कपोल, ठोड़ी और नाक सब बड़े ही सुन्दर हैं। उनके घुँघराले बाल उनकी आँखोंपर ऐसे आ छाए हैं मानो मधुके लोभसे दो कमलों (नेत्रों)-पर भौंरे (बाल) लुभाकर आ बैठे हों ॥ २ ॥ उनके सुन्दर कानोंमें एक-ही जैसे कुण्डलोंकी जोड़ी है। तुलसीदास कहते हैं कि वे कुंडल ऐसे अनुपम हैं कि उनकी उपमा (इसके अतिरिक्त) दूसरी कोई दी नहीं जा सकती मानो विधाताने सुन्दर चन्द्रमा (मुख) के पास सोनेकी मछलियों (कुंडल) के साथ पन्नेकी सीपियाँ (कान) बना धरी हों ॥ ३ ॥ (११)

'अरे मेरे चतुर चित्त। तू तड़के उठते ही उठकर रामके मुखकी छबि जा देख आ। इससे तेरे ज्ञानके नेत्र निर्मल और सुफल होनेके साथ-साथ भली प्रकार तृप्त भी हो जायँगे ॥ १ ॥ इनके

१. दसन-बसन = ओठ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भाल बिसाल बिकट भ्रुकुटी - बिच, तिलक-रेख - रुख रुचि राजै।
मनहु मदन, तम तकि मरकत - धनु, जुगल कनक - सर साजै॥ २॥
रुचिर पलक - लोचन जुग, तारक स्याम, अरुन - सित कोए।
जनु अलि नलिन - कोस - महँ बंधुक - सुमन सेज सजि सोए॥ ३॥
बिलुलित ललित कपोलनि-पर कच, मेचक, कुटिल, सुहाए।
मनो बिधु - महँ बनरुह बिलोकि अलि, बिपुल सकौतुक आए॥ ४॥
सोभित स्रवन कनक - कुंडल कल, लंबित बिधि भुजमूले।
मनहु केकि, तकि गहन चहत, जुग उरग, इंदु प्रतिकूले॥ ५॥
अधर अरुन - तर, दसन - पाँति बर, मधुर मनोहर हासा।
मनहु सोन - सरसिज-महँ कुलिसनि, तड़ित - सहित कृत बासा॥ ६॥
चारु चिबुक, सुक - तुंड - बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
'तुलसिदास' छबिधाम राम - मुख, सुखद समन भव-त्रासा॥ ७॥(१२)

राग केदारा

सुमिरत श्रीरघुबर - की बाहैं।
होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं॥ १॥
सुंदर स्याम - सरीर - सैल तें, धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।
अमित अमल जल - बल परिपूरन, जनमि सिंगार - सविता हैं॥ २॥

चौड़े माथे और टेढ़ी भौंहोंके बीचमें खिंचा हुआ तिलक ऐसा सुहावना लग रहा है मानो कामदेव (मुख)-ने अंधकार (केश)-को देखकर पन्नेके धनुष (भौंहों)-पर दो सोनेके बाण (तिलक) उठा चढ़ाए हों॥ २॥ दोनों पलकोंवाले नेत्रोंमें दो काली पुतलियाँ और लाल डोरे पड़े हुए आँखके श्वेत कोए ऐसे लगते हैं मानो दो कमलोंके कोषमें बन्द दो भौंरे गुलदुपहरियाकी सेज बनाकर उसपर लेट लगा रहे हों॥ ३॥ उनके मनोहर गालोंपर काली-काली घुँघरालो लहराती लटें ऐसी प्यारी लग रही हैं मानो चन्द्रमा (मुख)-में कमल (नेत्र) देखकर कुतूहलवश बहुतसे भौंरे आ जुटे हों॥ ४॥ उनके कानोंमें कंधोंतक लटकते हुए सोनेके दो कुंडल ऐसे अच्छे लग रहे हैं मानो चन्द्रमा (मुख)-के विरोधी दो सर्पों (भुजाओं)-को पकड़नेके लिये दो मोर (कुंडल) लपक चले हों॥ ५॥ उनके लाल-लाल ओठ, सुहावने दाँतोंकी पंक्ति और मधुर हँसी ऐसी मनभावनी है मानो सोनेके कमलके कोष (ओठ)-में बिजली (हँसी)-के साथ हीरे (दाँत) आ बसे हों॥ ६॥ उनकी ठोडी बड़ी सुन्दर है और सुग्गेकी ठोरको भी लजा देनेवाली उठी हुई नाक तो और भी रसीली है। तुलसीदास कहते हैं कि रामका वह शोभासे भरा हुआ और सदा सुख देनेवाला मुख (जो मैं तुझे देख आनेको कह रहा हूँ) जन्म-मरणकी सारी झंझटें मिटा डालता है॥ ७॥ (१२)

रामकी भुजाओंका स्मरण करते ही अत्यन्त दुर्गम संसार-सागर भी ऐसा सुगम हो जाता है कि कोई तो उसे लाँघ जाते हैं और कोई थहाकर ही उसे पार कर जाते हैं॥ १॥ (वे भुजाएँ भगवान्‌के शरीरमें ऐसी शोभा दे रही हैं) मानो अत्यन्त सुन्दर साँवले पर्वतसे दो यमुनाएँ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं।
बिलसति बीचि बिजय - बिरदावलि, कर - सरोज सोहत सुषमा हैं ॥ ३ ॥
सकल - भुवन - मंगल - मंदिर - के द्वार बिसाल सुहाई साहैं[1]।
जे पूजीं कोसिक - मख रिषियनि, जनक, गनप, संकर, गिरिजा हैं ॥ ४ ॥
भव - धनु दलि जानकी बिब्याही, भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं।
परसु - पानि जिन्ह किए महामुनि, जे चितए कबहूँ न कृपा हैं ॥ ५ ॥
जातुधान - तिय जानि बियोगिनि, दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।
जिन्ह रिपु मारि सुरारि - नारि तेइ, सीस उघारि दिवाई धाहैं[2] ॥ ६ ॥
दसमुख - बिबस बिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं।
सुबस बसे गावत जिनके जस, अमर - नाग - नर-सुमुखि सनाहैं ॥ ७ ॥
जे भुज बेद, पुरान, सेष, सुक, सारद - सहित सनेह सराहैं।
कल्पलताहु-कि कल्पलता बर, कामदुहहु - की कामदुहा हैं ॥ ८ ॥
सरनागत, आरत, प्रनतनि - को, दिए अभय पद, ओर निबाहैं।
करि आईं, करिहैं, करती हैं, 'तुलसिदास' दासन-पर छाँहैं ॥ ९ ॥(१३)

निकल पड़ी हों जो बलके अथाह और निर्मल जलसे भरी हुई हों और शृंगार-रूपी सूर्यसे उत्पन्न हुई हों (उनकी भुजाएँ बलिष्ठ और सुन्दर हैं) ॥ २ ॥ बाण ही उनकी धाराएँ हैं, धनुष ही तट है, आभूषण ही जल-जन्तु हैं और घाइयाँ (उँगलियों के बीचके पोरका सन्धि-स्थान) ही भँवर हैं, विजयकी विरुदावली ही उसमें तरंगें बनकर शोभा दे रही हैं तथा उसमें उनके हाथ ही खिले हुए कमल हैं ॥ ३ ॥ वे (बाँहें) मानो सम्पूर्ण लोकों के कल्याण-रूपी भवनके द्वारकी दो विशाल और सुन्दर अर्गलाएँ हैं, जिनकी पूजा विश्वामित्रके यज्ञमें ऋषियों ने तथा जनक, गणेश, शिव, और पार्वतीने की और जिन्हों ने सबकी कामनाएँ पूरी कीं ॥ ४ ॥ इन्हीं (बाँहों)-ने शिवका धनुष तोड़कर जानकीसे विवाह किया, जिससे सब राजा लोग लज्जासे गड़ गए तथा जिन्हों ने उन परशुरामको भी मुनीश्वरों के समान (क्षमाशील) बना दिया जिन्हों ने कृपाकी ओर कभी भूलकर ताकातक नहीं था (किसीपर कभी कृपा नहीं की थी) ॥ ५ ॥ जब राक्षसीने सीताको वियोगिनी समझकर बहुत-सी ऊल-जलूल बातें कहकर उनका जी दुखाया था तब उन्हीं भुजाओं ने शत्रुओं का संहार करके उन राक्षसिनियों के सिर उघाड़कर उन्हें धाड़ मार-मारकर रोनेको विवश किया था ॥ ६ ॥ रावणने तीनों लोकों को त्रस्त करके, लोकपालों को व्याकुल करके उन्हें नाकों चने चबवा दिए थे, (उसी रावणके मारे जानेपर) देवता, नाग और मनुष्य अपने-अपने घरों में सुखपूर्वक बसकर अपनी पत्नियों सहित जिन भुजाओं के सुयशका वर्णन करते हैं, ॥ ७ ॥ जिन भुजाओं की सराहना वेद, पुराण, शेष, शारदा और शुकदेव भी स्नेहपूर्वक करत रहते हैं, जो कल्पलताकी भी कल्पलता और कामधेनुकी भी कामधेनु है ॥ ८ ॥ तथा जो शरणागत, दीनों और भक्तों को अभयपद देकर अन्ततक उनका निर्वाह करती हैं, रामकी

---

१. साहैं = द्वारके चौखटकी दोनों खड़ी लकड़ियाँ। धाहैं दिवाई = धाड़ मारकर रुलाया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग भैरव

रामचंद्र-करकंज कामतरु बामदेव-हितकारी।
सिय-सनेह - बर - बेलि - वलित बर, प्रेम - बंधु बर बारी ॥ १ ॥
मंजुल - मंगल - मूल मूलतरु, करज मनोहर साखा।
रोम परन, नख सुमन, सुफल सब काल सुजन - अभिलाषा ॥ २ ॥
अबिचल, अमल, अनामय, अबिरल, ललित रहित-छल छाया।
समन सकल संताप - पाप - रुज - मोह - मान - मद - माया ॥ ३ ॥
सेवहिं सुचि मुनि - भृंग - बिहग, मन - मुदित मनोरथ पाए।
सुमिरत, हिय हुलसत 'तुलसी' अनुराग उमँगि गुन गाए ॥ ४ ॥ (१४)

राम-चरन अभिराम कामप्रद, तीरथ-राज बिराजै।
संकर - हृदय भगति भूतल - पर, प्रेम - अछयबट भ्राजै ॥ १ ॥
स्याम-बरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नख-स्रेनी।
जनु रबिसुता, सारदा, सुरसरि, मिलि चलिं ललित त्रिबेनी ॥ २ ॥
अंकुस, कुलिस, कमल, धुज सुंदर भँवर - तरंग - बिलासा।
मज्जहिं सुर - सज्जन-मुनि - जन - मन मुदित, मनोहर बासा ॥ ३ ॥

वे ही भुजाएँ अपने दासोंपर सदासे छाया करती आई हैं, अब भी करती हैं और भविष्यमें भी करती रहेंगी, यह तुलसीदासका मत है। ॥ ६ ॥ (१३)

रामके कर-कमल शंकरको प्रिय लगनेवाले कल्पवृक्ष ही हैं। सीताके स्नेहकी ललित लता उनके लिपटी हुई हैं और लक्ष्मणके पुनीत प्रेमकी श्रेष्ठ बाड़ उन्हें घेरे हुए हैं ॥ १ ॥ रामका महा-मनोहर मंगलमय शरीर ही उस (कर-कमल-रूपी कल्पवृक्ष)-की जड़ है, उँगलियाँ ही मनोहर शाखाएँ हैं, रोमावली ही उसके पत्ते हैं, नख ही पुष्प हैं तथा सत्पुरुषोंकी इच्छापूर्ति ही उसके सदा फलनेवाले श्रेष्ठ फल हैं ॥ २ ॥ उसकी छाया सदा स्थिर, निर्मल, दुःखरहित, सघन, निश्छल और सुन्दर है। वह सारे दुःख, पाप, रोग, मोह, मान, मद और माया शान्त कर डालती है ॥ ३ ॥ पवित्र चित्तवाले मुनिजन ही भौंरे और पक्षी बनकर, प्रसन्न होकर, अपने मनोरथ सिद्ध करते हुए उस (कारक)-का सेवन करते हैं। उसका स्मरण करते ही तुलसीदास आनन्दित होकर प्रेमकी उमंगमें उसके गुण गा उठा है ॥ ४ ॥ (१४)

सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर डालनेवाले रामके मनोहर चरण-कमल मानो तीर्थराज (प्रयाग) बने हुए हैं। शंकरकी भक्ति ही (तीर्थराजकी) भूमि है जिस-पर प्रेमसे भरा अक्षय वट खड़ा है ॥ १ ॥ रामके (इस तीर्थराज-रूपी) चरणका पृष्ठ भाग श्याम है, उनके तलवे लाल हैं तथा नखोंकी चमक श्वेत है मानो यमुना, सरस्वती और गंगा—ये तीनों मिलकर त्रिवेणी बनकर बह चली हैं ॥ २ ॥ उनके चरण-तलमें जो सुन्दर अंकुश, वज्र, कमल और ध्वजाके चिह्न हैं, वे ही भँवर और तरंगें हैं जिनमें देवता और सज्जन आ-आकर स्नान करते हैं और जिनमें मुनियोंके प्रसन्न चित्त बसे हुए हैं (देवता, सज्जन और मुनि रामके चरणोंमें ध्यान लगाए

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिनु बिराग-जप-जाग-जोग - व्रत, बिनु तप, बिनु तन त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य 'तुलसी' प्रभु - पद - प्रयाग अनुरागे ॥ ४ ॥ (१५)

राग बिलावल

रघुबर-रूप बिलोकु नैकु मन।
सकल- लोक -लोचन-सुखदायक, नख - सिख सुभग स्यामसुंदर तन ॥ १ ॥
चारु चरन-तल-चिन्ह चारि, फल चारि देत, परचारि जानि जन!
राजत नख जनु कमल-दलनि-तर, अरुन-प्रभा-रंजित तुषार-कन ॥ २ ॥
जंघा, जानु, आनु कदली उर, कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन।
रुचिर निषंग, नाभि रोमावलि, त्रिवलि-वलित उपमा कछु आब न ॥ ३ ॥
भृगुपद - चिन्ह, पदिक, उर सोभित, मुकुत-माल, कुंकुम अनुलेपन।
मनहु परसपर मिलि पंकज रबि, प्रगट्यौ निज अनुराग-सुजस घन ॥ ४ ॥
बाहु बिसाल, ललित सायक - धनु, कर कंकन - केयूर महाधन।
बिमल दुकूल, दलन दामिनि-दुति, जग्युपबीत लसत अति पावन ॥ ५ ॥
कंबु ग्रीव, छबि-सींव चिबुक-द्विज, अधर, कपोल, बोल भय-मोचन।
नासिक सुभग, कृपा - परिपूरन, तरुन अरुन राजीव - बिलोचन ॥ ६ ॥

रहते हैं) ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि प्रभुके इस चरण-रूपी प्रयागमें प्रेम करनेसे वैराग्य, जप, यज्ञ, योग, व्रत, तप और शरीर-त्याग किए बिना ही सब सुख तत्काल मिल जाते हैं ॥ ४ ॥ (१५)

अरे मन ! तू तनिक रामका रूप तो आकर देख। उगका यह नखसे शिखतक श्याम सुन्दर शरीर तो सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको सुख देता है ॥ १ ॥ इनमें चरण-तलके चारों चिह्न (ध्वजा, अंकुश, वज्र और कमल)- अपने भक्तोंको पहचान-पहचानकर उन्हें आग्रहपूर्वक चारों फल (धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष) देते रहते हैं। प्रभुके नख ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो कमलकी पंखड़ियोंपर बाल-सूर्यके प्रकाशसे रँगे हुए हिमकण हों ॥ २ ॥ इनकी जाँघें और घुटने कदलीके समान (ढलावदार) हैं, कमरमें किंकिणी, सुहावना पीताम्बर और सुन्दर तरकश बँधा है। इनके उदरपर नाभि, रोमावली और त्रिवली तो ऐसी सुन्दर है कि उसकी कोई उपमा ही नहीं बन पाती ॥ ३ ॥ इनके वक्षःस्थलपर भृगुका चरण-चिह्न, पदिक (हीरेका चौक)- मोतियोंकी माला और केशरका लेप ऐसा सुहावना लगता है मानो सूर्य और कमलने आपसमें मिलकर अपना प्रेम और महान् सुयश प्रकट कर डाला हो ॥ ४ ॥ ये अपने हाथोंमें मनोहर धनुष-बाण लिए हुए हैं, इनकी भुजाओंपर अत्यन्त मूल्यवान कंकण और केयूर (बिजायट) बँधे हैं तथा इनके शरीरपर बिजलीकी चमकको भी हरा डालनेवाला निर्मल दुकूल तथा पवित्र यज्ञोवीत शोभा दे रहा है ॥ ५ ॥ इनकी ग्रीवा शंखके समान है। ठोडी, दाँत और कपोल तो बहुत ही छबीले हैं। उनकी बोली सब प्रकारका भय दूर कर डालती है। उनकी नासिका बड़ी सुघर है तथा नवीन लाल कमलके समान नेत्र कृपासे परिपूर्ण हैं ॥ ६ ॥ इनकी सुन्दर भौंहें बड़ी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुटिल भ्रुकुटि बर, भाल तिलक रुचि, सुचि सुंदरता स्रवन-विभूषन।
मनहु मारि मनसिज, पुरारि दिय ससिहिं, चाप-सर-मकर अदूषन ॥ ७ ॥
कुंचित कच, कंचन-किरीट सिर, जटित ज्योतिमय बहु बिधि मनिगन।
'तुलसिदास' रबिकुल-रबि-छबि कबि, कहि न सकत सुक, संभु, सहसफन ॥ ८ ॥ (१६)

राग कान्हरा

देखो रघुपति-छबि अतुलित अति।
जनु तिलोक सुखमा सकेलि बिधि, राखी रुचिर अंग - अंगनि प्रति ॥ १ ॥
पदुमराग रुचि मृदु पद - तल, धुज, अंकुस, कुलिस, कमल यहि सूरति।
रही आनि चहुँ बिधि भगतनि-की जनु अनुराग-भरी अंतरगति ॥ २ ॥
सकल सुचिन्ह सुजन सुखदायक, ऊरधरेख बिसेष बिराजति।
मनहु भानु - मंडलहि सँवारत, धर्‌यो सूत बिधि-सुत बिचित्र मति ॥ ३ ॥
सुभग अँगुष्ठ, अंगुली अबिरल, कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति।
चरन पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ गुलुफ,[1] जंघा[2] कदली जति ॥ ४ ॥

बाँकी हैं। इनके मस्तकपर मनोहर तिलक है तथा कर्णके आभूषण (कुण्डल) तो ऐसे मोहक हैं मानो शिवने कामको भस्म करके उसके निर्दोष धनुष (भौंहें), बाण (तिलक) और मकर (कुण्डल) सब चन्द्रमा (मुख)-को ला थमाए हों। (रामका मुख ही चन्द्रमा, भौंहें ही धनुष, तिलक ही बाण और कुण्डल ही मकर है) ॥ ७ ॥ रामके गुँथे हुए केश हैं, सिरपर सोनेका मुकुट है जिसमें अनेक प्रकारके चमकदार मणि जड़े हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सूर्यकुलके सूर्य रामकी छविका वर्णन कवि तो क्या, शुकदेव, महादेव तथा सहस्र फणवाले शेष भी नहीं कर पा सकते ॥ ८ ॥ (१६)

रामकी अत्यंत अतुलित छवि तो आकर देखो, मानो विधाताने इनके एक-एक मनोहर अंग-में तीनों लोकोंकी सारी सुन्दरता इकठ्ठी करके ला भरी हो ॥ १ ॥ पोखराजके समान रामके मनोहर और मृदुल तलवों में जो ध्वजा, अंकुश, वज्र और कमलके चिह्न हैं, वे मानो चारों प्रकारके भक्तों (आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी)-के प्रेम और मनके भाव ही आ बसे हों ॥ २ ॥ यों तो वे सभी चिह्न सत्पुरुषोंको सुख देते रहते हैं, परन्तु इनमें भी तीन ऊर्ध्व रेखाएँ और भी मनोहर हैं मानो तीव्र बुद्धिवाले विश्वकर्माने सूर्यमण्डल रचते समय उसे नापनेके लिये दोनों ओर सूत बना लगा धरे हों ॥ ३ ॥ रामका अँगूठा बड़ा सुन्दर है, अँगुलियाँ सघन (मिली हुई) हैं, उनमें कुछ-कुछ लाली लिए हुए नख चमचमाते रहते हैं। चरणोंका ऊपरी भाग कुछ उठा हुआ है जो दीनोंकी रक्षा करता है, टखने (घुट्टे) छिपे हुए (मांसल) हैं तथा उनकी जाँघें केलेके खंभे (के चिकनेपन और ढलवेपन)-को भी लजाए डालती हैं ॥ ४ ॥ दोनों घुटने कामदेवके तरकशके निचले भागके समान (मोहक) हैं। उनकी

---

१. गुलुफ (गुल्फ)=टखने (घुट्टी)। २. जंघा = कमरके नीचेसे घुटने तकका चौड़ा भाग।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

काम - तून - तल सरिस जानु जुग, उरु[1] करि - कर करभहि बिलखावति।
रसना[2] रचित रतन - चामीकर,[3] पीत बसन कटि कसि सरसावति॥ ५॥
नाभी सर, त्रिबली निसेनिका, रोम - राजि सैवल छबि पावति।
उर मुकुतामनि - माल मनोहर, मनहु हंस - अवली उड़ि आवति॥ ६॥
हृदय पदिक भृगु - चरन - चिन्ह बर, बाहु बिसाल जानु लागि पहुँचति।
कल केयूर पूर - कंचन - मनि, पहुँची मंजु कंज-कर सोहति॥ ७॥
सुजव सुरेख सुनख अंगुलिजुत, सुंदर पानि मुद्रिका राजति।
अंगुलित्रान[4]-कमान - बान-छबि, सुरनि सुखद, असुरनि - उर सालति॥ ८॥
स्याम सरीर सुचंदन - चर्चित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति।
नील जलद-पर निरखि चंद्रिका, दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति॥ ९॥
जग्युपबीत पुनीत बिराजत, गूढ[5] जत्रु बनि पीन अंस तति।
सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका[6], कंबु कंठ सोभा मन मानति॥ १०॥

जाँघें हाथीकी सूँड़ तथा हाथीके बच्चेका मान मर्दन करती (बहुत चिकनी) हैं। कमरमें सोने और मणियोंसे बनी करधनी और उसके ऊपर कसा हुआ पीताम्बर शोभा दे रहा है॥ ५॥ उनकी नाभि मानो सरोवर है, त्रिवली (नाभिके ऊपर पड़ी हुई तीन सिकुड़नकी रेखाएँ) सीढ़ियाँ हैं और रोमावली ही मानो सेवार है। वक्षःस्थलपर पड़ी हुई मोतियोंकी मनोहर माला ऐसी लगती है मानो हंसोंकी पंक्तियाँ उड़-उड़कर चली आ रही हों॥ ६॥ उनके हृदयपर पदिक (मणि जड़ा हुआ चौका) तथा भृगुके चरणोंके चिह्न हैं, उनकी सुन्दर लम्बी-लम्बी भुजाएँ घुटनों-तक लटकी हुई हैं जिनपर सोने और मणियोंके सुन्दर बिजायट बँधे हैं तथा कर-कमलोंमें सुन्दर पहुँचियाँ शोभा दे रही हैं॥ ७॥ हाथमें जौकी रेखा तथा अन्य शुभ रेखाएँ पड़ी हैं, सुन्दर नख हैं तथा सुन्दर हाथोंकी उँगलियोंमें अँगूठियाँ शोभा दे रही हैं। अंगुलि-त्राण (बाण चलाते समय उँगली-पर पहन ली जानेवाली सींगसे बनी टोपी), धनुष और बाणोंकी छवि देवताओंको तो सुख देती है पर असुरोंके हृदयमें शूल उत्पन्न कर देती है॥ ८॥ चन्दन पुते हुए उनके साँवले शरीरपर पीला रेशमी दुपट्टा ऐसा अच्छा लग रहा है मानो नीले मेघ (रामके शरीर)-पर चन्द्रमाकी चाँदनी देखकर बिजली (दुपट्टेकी चमक) छिपना छोड़कर (स्थिर होकर) दमकी पड़ रही हो॥ ९॥ उनके गलेमें पवित्र यज्ञोपवीत शोभा दे रहा है। उनके गलेकी हड्डी (हँसली, जत्रु) छिपी हुई (मांसल) है, उनके कंधे स्थूल और चौड़े हैं, गलेकी घाँटी (कृकाटिका) सुन्दर, पुष्ट और उन्नत है तथा शंखके समान उनके गलेकी शोभा बड़ी प्यारी लगती है॥ १०॥ शरत्के कमलोंको

१. उरु=कमरसे नीचेका भाग जो क्रमशः उतारपर होता है। २. रसना=(रशना) करधनी। ३. चामीकर=सोना। ४. अंगुलित्राण=गोहके चमड़ेका बना हुआ अंगुस्ताना, जो बाण चलाते समय उँगलियोंकी रक्षा करता है। ५. जत्रु=गलेकी हड्डी। ६. कृकाटिका=गलेकी घाँटी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सरद - समय - सरसीरुह - निंदक मुख - सुषमा कछु कहत न बानति।
निरखति ही नयननि निरुपम सुख, रबिसुत, मदन, सोम - दुति निदरति ॥ ११ ॥
अरुन अधर द्विज - पाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति।
बिद्रुम - रचित बिमान मध्य जनु, सुरमंडली सुमन - चय बरषति ॥ १२ ॥
मंजुल चिबुक मनोरम हनु - थल, कल कपोल नासा मन मोहति।
पंकज - मान - बिमोचन लोचन, चितवनि चारु अमृत - जल सींचति ॥ १३ ॥
केस सुदेस गँभीर बचन बर, स्रु ति कुंडल - डोलनि जिय जागति।
लखि नव नील पयोद - रसित सुनि, रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ॥ १४ ॥
भौंहैं बंक मयंक - अंक रुचि, कुंकुम - रेख भाल भलि भ्राजति।
सिरसि हेम - हीरक - मानिकमय मुकुट - प्रभा सब भुवन प्रकासित ॥ १५ ॥
बरनत रूप, पार नहिं पावत निगम, सेष, सुक, संकर, भारति।
'तुलसिदास' केहि बिधि बखानि कह, यह मन-बचन-अगोचर मूरति ॥ १६ ॥ (१७)

राग मलार

आली री ! राघो - के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए।
फटिक भीति सुचारु चहुँ दिसि, मंजु मनिमय पौरि।
गच काँच लखि मन नाच सिखि, जनु पाँचसर सु फँसौ रि ॥

भी लजा देनेवाले उनके मुखकी शोभा कुछ कहते नहीं बनती। उसे देखते ही नेत्र खिल उठते हैं। वह छवि तो अश्विनीकुमार, कामदेव और चन्द्रमाकी कान्तिको भी लजाए डालती है ॥ ११ ॥ उनके लाल-लाल ओठोंके बीच अनुपम दाँत बहुत शोभा दे रहे हैं। उनकी मनोहर मुसकान मानो मन-को खींचे लेती है। ऐसा लगता है जैसे मूँगेके बने हुए विमान (ओठों)-में चढ़ी हुई देवताओंकी मण्डली (दाँत) पुष्पोंकी वर्षा किए जा रही (हँसी बिखेर रही) हो ॥ १२ ॥ उनकी सुन्दर ठोड़ी, मनोरम हनुस्थल (ठोडीके नीचेका भाग) सुन्दर कपोल और नासिका ये सब मनको मोहे ले रहे हैं। रामके नेत्र तो कमलको भी नीचा दिखाए डाल रहे हैं और उनकी चितवन अत्यंत मनोहर अमृतमय जलकी वर्षा करती जा रही है ॥१३॥ उनके केश (लटें) बड़े ही सुन्दर हैं और बोलते समय वचन बड़े गम्भीर और मनोहर लगते हैं। उस समय उनके कानोंके कुण्डल हिलते देखकर हृदय ऐसा प्रफुल्लित हो उठता है मानो किसी नवीन नीले मेघ (राम)-को देखकर और उसका शब्द सुनकर मोरोंकी मनोहर जोड़ी (कुंडल) नाचने लगी हो ॥१४॥ नवीन (द्वितीयाके) चन्द्रमाके समान उनकी बाँकी भौंहैं तथा माथेपर सुन्दर केशरका तिलक बड़ा प्यारा लग रहा है। रामके सिरपर हीरे और मणियोंसे जड़े हुए सोनेके मुकुटकी चमक तो सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित किए डाल रही है ॥ १५ ॥ रामके जिस रूपका वर्णन करते-करते वेद, शेष, शुकदेव, शंकर तथा सरस्वती आदि भी पार नहीं पा सकते, उस मूर्तिका वर्णन भला तुलसीदास किस प्रकार कर सकता है जहाँतक न मन पहुँच पा सकता न वचन ॥ १६ ॥

'अरी आली ! चलो, रामके सुन्दर हिंडोलेपर झूलने चला जाय। उसके चारों ओर सुन्दर स्फटिक मणिकी भीतें है तथा मणियोंके ही सुन्दर द्वार हैं, उसकी काँचकी गच (नीचेका फर्श) देखकर मन मोरके समान ऐसे नाच उठता है मानो वह कामदेवका फंदा ही हो। उस हिंडोलेमें जो बंदनवार, वितान,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तोरन, बितान, पताक, चामर, धुज, सुमन, फल - धौरि।
प्रतिछाँह - छबि कबि साखि दै, प्रति - सों कहै, गुरु हौं रि॥ १॥
मदन जय - के खंभ - से रचे सरल खंभ बिसाल।
पाटीर - पाटि बिचित्र, भँवरा, वलित बेलन लाल॥
डाँड़ो कनक, कुंकुम - तिलक - रेखैं - सि मनसिज - भाल॥
पटुली पदिक रति - हृदय जनु, कलधौत - कोमल - माल॥ २॥
उनये सघन घन घोर, मृदु झरि, सुखद सावन लाग।
बग - पाँति, सुरधनु, दमक दामिनि, हरित भूमि - बिभाग॥
दादुर मुदित, भरे सरित - सर, महि उमँग जनु अनुराग।
पिक, मोर, मधुप, चकोर, चातक - सोर - उपवन बाग॥ ३॥
सो समौ देखि सुहावनो नव - सत सँवारि - सँवारि।
गुन - रूप - जोबन - सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि॥
हिंडोल - साल बिलोकि सब अंचल पसारि - पसारि।
लागीं असीसन राम - सीतहिं सुख - समाज निहारि॥ ४॥

पताका, चँवर, ध्वजा, पुष्प और फलोंकी आकृतियाँ बनाई गई हैं, उसकी छायाकी छबि ही कविकी साक्षी देकर कहती है कि मैं तो मूल वस्तुसे भी बहुत बड़ी हूँ॥ १॥ उस हिंडोलेके लिये कामदेवके विजय-स्तम्भके समान सीधे और बड़े-बड़े खंभे बनाए गए हैं। उस हिंडोलेके पाटरी (धूलेमें नीचे लगी हुई पाटियाँ) और पाटी (ऊपरकी पाटियाँ बहुत ही रंगबिरंगी हैं। भोंरों (वे घूमनेवाली अँकड़ियाँ जिनमें झूलेकी डोरी बँधी रहती है)-से लिपटा हुआ लाल-लाल बेलन (जिसमें झूलेकी डाँड़ी लगाई जाती है और जिसके सहारे झूला चलता है) लगा है। उसमें लगी हुई सोनेकी डाड़ियाँ ऐसी लगती हैं मानो वे कामदेवके माथेपर लगे हुए केशरके तिलककी रेखाएँ हों। पटरा ऐसा लगता है मानो कावदेवकी पत्नी रतिके वक्षस्थलपर सोनेकी कोमल मालामें लटका हुआ पदिक (मणिका चौकँा) हो॥ २॥ सुखदायक श्रावण मासका आरम्भ हो गया है, घनघोर घटाएँ उमड़ चली हैं।, रिमझिम - रिमझिम फुहारें पड़ रही हैं, बगुलोंकी पंक्ति उड़ रही है, इन्द्रधनुष निकल आया है, बिजली चमक रही है, सारी धरतीपर हरियाली आ छाई है, मेंढक बड़े प्रसन्न हैं और नदी तथा तालाबों में जल भर गया है मानो सारी पृथ्वीपर प्रेमकी बाढ़ हो गई हो। उपवनों और उद्यानोंमें सब ओर कोयल, मोर, भौंरे, चकोर और पपीहोंका कोलाहल हो रहा है॥ ३॥ ऐसा सुहावना समय देखकर अत्यन्त रूप, गुण और यौवनसे भरी बहुत सी सुन्दरियाँ सोलहों शृंगार[1] करके दल बाँध-बाँधकर चल पड़ीं और उस हिंडोलेके भवनकी शोभा देखकर अपने आँचल फैला-फैलाकर राम-जानकीका सुख-विलास देखकर आशीर्वाद देने लगीं॥ ४॥ फिर वे सूहो और गौड़-मलार आदि रागोंमें गाती हुई बारी-बारीसे

---

१. षोडश शृंगार : उबटन, स्नान, वस्त्र, केश-संस्कार, आँजन, सिंदूर, महावर, तिलक, ठोड़ीपर तिल बनाना, मेंहदी, सुगन्ध, अलंकार, पुष्पहार, पान खाना, ओठ रँगना, मिस्सी लगाना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह गा सुहो - गौड - मलार।
मंजीर - नूपुर - वलय - धुनि, जनु काम - करतल तार॥
अति मचत, स्रमकन मुखनि बिथुरे चिकुर, बिलुलित हार।
तम, तड़ित, उडुगन, अरुन, बिधु, जनु करत ब्योम बिहार॥ ५॥
हिय हरषि, बरषि प्रसून, निरखहिं बिबुध - तिय, तृन तूरि।
आनंद जल लोचन, मुदित मन, पुलक तनु भरिपूरि॥
सब कहहिं, अबिचल राज नित, कल्यान - मंगल भूरि।
चिर जियौ जानकिनाथ जग, 'तुलसी' सँजीवनि मूरि॥ ६॥(१८)

राग सूहो : दोहा

कोसलपुरी सुहावनी, सरि सरजू - के तीर।
भूपावली - मुकुटमनि, नृपति जहाँ रघुबीर॥
पुर नर - नारि चतुर अति, धरम - निपुन, रत - नीति।
सहज सुभाय सकल उर, श्रीरघुबर - पद - प्रीति॥
श्रीरामपद - जलजात सबके - प्रीति अबिरल पावनी।
जो चहत सुख, सनकादि, संभु, बिरंचि, मुनिमन- भावनी।
सबही - के सुंदर मंदिराजिर, राउ - रंक न लखि परै।
नाकेस-दुरलभ भोग लोग करहिं, न मन बिषयनि हरै॥ १॥

भूलने और झुलाने लगीं। उस समय जो मंजीर, नूपुरों (घुँघरुओं) और कंकणोंकी झनझन हो रही थी वह ऐसी थी मानो कामदेव खड़ा हाथोंसे ताल दे रहा हो। अत्यन्त श्रमके कारण उनके मुखड़ोंपर छाई हुई पसीनेकी बूँदें, बिखरेहुए बाल और उलझे हुए हार ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्धकार (बाल), बिजली (शरीरकी चमक), तारे (पसीनेकी बूँदे), बालसूर्य (हार) और चन्द्रमा (मुख) आकाशमें एक साथ विहार करने आ निकले हों॥५॥ इस प्रकार देवांगनाएँ हृदयमें प्रसन्न हो-होकर फूलोंकी वर्षा करती हुई तिनके तोड़ती हुई (कि इनकी अला-बला तिनकेपर बीते) यह सब लीला देख रही हैं। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू आ छाए हैं, मन खिला पड़ रहा है तथा सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो उठा है। वे सब यही मनाए जा रही हैं कि यह अत्यन्त कल्याण और मंगलमय राज्य सदा अविचल रहे तथा तुलसीदासके जीवनके आधार जानकीनाथ राम संसारमें दीर्घजीवी हों॥ ६॥ (१८)

सरयूके तटपर वह सुहावनी अयोध्यापुरी बसी हुई है जहाँ भूपालोंके मुकुट-मणि महाराज राम राज कर रहे हैं। उस नगरके सभी स्त्री-पुरुष बड़े ही चतुर, धर्मात्मा तथा नीति-परायण हैं। वे सब स्वभावसे ही रामके चरणोंसे प्रीति करते हैं। रामके चरण-कमलोंमें सबका ऐसा पवित्र, अविरल प्रेम है कि शुक, सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार), शिव और ब्रह्मा भी उस प्रेमकी कामना करते रहते हैं और मुनियोंको भी वह बड़ा प्यारा लगता है। वहाँ सभीके घर और आँगन ऐसे सुन्दर हैं कि कौन राजा है कौन रंक इसकी पहचान ही नहीं हो पाती। यद्यपि वहाँके लोग ऐसे-ऐसे सुख भोगते हैं जो इन्द्रको भी दुर्लभ हैं, फिर भी उनका मन विषयों-में नहीं फँस पाता॥ १॥ वह नगरी यद्यपि सभी ऋतुओंमें सुहावनी लगती है, तथापि

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा

सब रितु सुखप्रद सो पुरी, पावस अति कमनीय।
निरखत मनहिं हरत हठि, हरित अवनि रमनीय।
बीर-बहूटि बिराजहिं, दादुर-धुनि चहुँ ओर।
मधुर गरजि, घन बरषहीं, सुनि सुनि बोलत मोर॥
बोलत जो चातक, मोर, कोकिल, कीर, पारावत घने।
खग बिपुल पाले बालकनि, कूजत उड़ात सुहावने।
बक-राजि राजति गगन, हरि-धनु, तड़ित, दिसि-दिसि सोहहीं।
नभ-नगर-की सोभा अतुल अवलोकि, मुनि-मन मोहहीं॥ २॥

दोहा

गृह-गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढार।
चित्र-बिचित्र चहूँ दिसि, परदा फटिक पगार।
सरल बिसाल बिराजहीं, बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि, पटि पुरट-की, झरकत मरकत भौंर॥
मरकत भँवर, डाँड़ी कनक, मनि-जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहु बिधि-निपुनता निज प्रगट करि राखी सही॥
बहुरंग लसत बितान, मुकुता-दाम-सहित मनोहरा।
नव सुमन-माल-सुगंध लोभे, मंजु गुंजत मधुकरा॥ ३॥

वर्षा ऋतुमें तो वह और भी सुहावनी जान पड़ने लगती है। उस समय वहाँकी हरी-भरी रमणीक भूमि देखते ही चित्त हर लेती है। वहाँ चारों ओर बीरबहूटियाँ फैली हुई हैं तथा मेढकोंकी टर्र-टर्र ध्वनि सुनाई दे रही है। मंद-मंद गर्जन करते हुए मेघ जब जल बरसाते हैं तो उनका गर्जन सुनकर मोर भी बोलने लगते हैं। उस समय वहाँ चातक, मोर, कोकिल, शुक और कबूतर आदि बहुतसे पक्षी बोलने लगते हैं तथा बालकोंके पाले हुए अनेक पक्षी बोलते और सुहावनी उड़ानें भरने लगते हैं। आकाशमें बगुलोंकी उड़ती हुई पंक्ति और इन्द्रधनुष दिखाई देने लगते तथा दसों दिशाओंमें (चारों ओर) बिजली चमकने लगती है। उस समय आकाश और नगर ऐसे सुन्दर हो जाते हैं कि उनकी शोभा देखकर मुनियों-तकके मन मोहित हो उठते हैं॥ २॥ वहाँ घर-घरमें हिंडोले टँगे हैं, धरतीपर चिकने काँचकी सुढाल गच (फ़र्श) बनी हुई है, चारों ओर स्फटिककी भीतोंपर रंग-बिरंगे परदे पड़े हुए हैं, मूँगेके सीधे, बड़े-बड़े और मोटे खंभे लगे हैं, सोनेसे मढ़ी हुई सुन्दर पटरियोंपर पन्नेकी भौंरियाँ (झूलेकी डोरी घूमनेके लिये गड़ारीदार अँकड़ियाँ) झिलमिला रही हैं। इस प्रकार हिंडोलेमें पन्नेकी भौंरी और सोनेकी मणि-जड़ी डंडियोंकी चमक जगमगा रही है और पटरी तो ऐसी सुन्दर है मानो विधाताने सचमुच ही सारी रचना-चातुरी उसे बनानेमें खोल लगाई हो। उन हिंडोलोंमें मोतियोंकी लड़ियोंके साथ-साथ अनेक रंग-बिरंगे सुन्दर चँदोवे शोभा दे रहे हैं जिनमें लटकी हुई नवीन पुष्पोंकी मालाओंकी सुगन्धपर लुभाकर भौंरे मधुर गुंजार कर रहे हैं॥ ३॥ झुण्डकी झुण्ड

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा

झुंड झुंड झूलन चलीं, गजगामिनि बर नारि।
कुसुँभि चीर तन सोहहीं, भूषन बिबिध सँवारि।
पिक बयनी - मृग - लोचनी, सारद ससि - सम तुंड।
राम - सुजस सब गावहीं, सु - सुर सु - सारँग, गुंड॥
सारंग, गुंड, मलार, सोरठ, सुहव सुघरनि बाजहीं।
बहु भाँति तान - तरंग सुनि, गंधर्व - किन्नर लाजहीं।
अति मचत, छूटत कुटिल कच, छबि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त, भूषन खसत, हँसि - हँसि, अपर सखी झुलावहीं॥ ४॥

दोहा

फिरि - फिरि झूलहिं भामिनी, अपनी - अपनी बार।
बिबुध - बिमान थकित भये, देखत चरित अपार।
बरषि सुमन हरषाहिं उर, बरनहिं हरि - गुन - गाथ।
पुनि - पुनि प्रभुहिं प्रसंसही, 'जय जय जानकि - नाथ'॥
जय जानकी - पति, बिसद कीरति, सकल - लोक - मलापहा।
सुर - बधू देहिं असीस, चिरजिव राम, सुख - संपति महा।
पावस - समय कछु अवध बरनत सुनि अघोघ नसावहीं।
रघुबीर - के गुन - गन नवल नित 'दास तुलसी' गावहीं॥ ५॥(१९)

गजगामिनी सुन्दरियाँ उन हिंडोलोंपर झूलने चली जा रही हैं। उनके तनपर कुसुंभी (लाल) साड़ियाँ और भाँति-भाँतिके आभूषण सजे हुए हैं। उनके मुख शरत्के चन्द्रमाके समान (मनोहर) हैं। वे कोकिल-बैनी और मृग-नैनी नवेलियाँ मधुर स्वरसे सारंग और गौड़ रागोंमें रामका सुयश गाए जा रही हैं। इसी प्रकार अयोध्याके सुन्दर घरोंसे सारंग, गौड़-मलार, सोरठ और सूहो रागोंमें मनोहर बाजे भी बज रहे हैं। उनकी अनेक प्रकारकी तानें सुन-सुनकर गन्धर्व और किन्नर भी लजाए जा रहे हैं। इस प्रकार चारों ओर झूलेकी धूम मची हुई है। वेगसे झूलते (पेंगें भरते) समय उन नवेलियोंकी घुँघराली अलकें ऐसी बिखर जाती हैं कि वे रमणियाँ और भी सलोनी लगने लगती हैं। पवन (-के झोंके)-से उनके वस्त्र उड़ने लगते हैं और आभूषण खिसके पड़ते हैं। इसपर उनकी सखियाँ उन्हें हँस-हँसकर और भी वेगसे झुलाने लगती हैं॥४॥ सब सखियाँ अपनी-अपनी बारीसे बार-बार झूल रही हैं। यह मनोहर दृश्य देखकर देवताओंके विमान भी खड़ेके खड़े रह जाते हैं। वे पुष्प बरसाते हुए हृदयमें हर्षित हो-होकर रामकी गुण-गाथाका वर्णन करने लगते हैं और 'जानकीनाथकी जय हो, जय हो' कहते हुए बार-बार रामकी प्रशंसा किए जा रहे हैं। इसी प्रकार देवाङ्गनाएँ भी 'जय हो उन रामकी जिनकी विमल कीर्ति कलिके सारे पाप नष्ट कर डालती है' यह कहती हुई उन्हें आशीर्वाद देती हैं कि 'राम चिरजीवी हों और उनका सुख-वैभव बढ़ता रहे'। वर्षा-कालकी अयोध्याका यह वर्णन सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जितने रामके दास हैं वे नित्य नये-नये होनेवाले रामके गुण सदा गाते ही रहते हैं॥ ५॥ (१९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग आसावरी

साँझ समै रघुबीर पुरी - की, सोभा आज बनी।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवध - धनी ॥ १ ॥
फटिक भीत सिखरन - पर राजति, कंचन - दीप - अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो, मनि-सोभित सहसफनी ॥ २ ॥
प्रति मंदिर कलसनि-पर भ्राजहिं, मनिगन दुति अपनी।
मानहु प्रगटि बिपुल लोहितपुर, पठइ दिए अवनी ॥ ३ ॥
घर - घर मंगलचार एक-रस, हरषित रंक - गनी।
'तुलसिदास' कल कीरति गावहिं, जो कलिमल-समनी ॥ ४ ॥ (२०)

राग गौरी

अवध नगर अति सुंदर, बर सरिता के - तीर।
नीति - निपुन नर - तिय सबहि, धरम-धुरंधर, धीर ॥ १ ॥
सकल रितुन्ह सुखदायक, ता - महँ अधिक बसंत।
भूप - मौलि - मनि जहँ बस, नृपति जानकी - कंत ॥ २ ॥
बन - उपवन नव किसलय, कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग - पिक - बर, गुंजत भृंग ॥ ३ ॥
समय बिचारि कृपानिधि, देखि द्वार अति भीर।
खेलहु मुदित नारि - नर, बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥ ४ ॥

आज सायंकालके समय रामकीपुरी अयोध्या बड़ी जगमगा उठी है। अयोध्याके स्वामी राम बड़े प्रेमसे दीवालीकी मनोहर सजावट देख रहे हैं ॥ १ ॥ स्फटिक मणिकी भीतोंपर सोनेके दीपकोंकी पंक्तियाँ ऐसी अच्छी लग रही हैं मानो फणोंपर मणियोंसे सजे हुए सहस्रों फनवाले शेषनाग रामसे मिलने आ पधारे हों ॥२॥ प्रत्येक भवनके कलशोंके ऊपर टँके हुए मणि अपनी चमकसे ऐसे सुहावने लग रहे हैं मानो कहींसे बहुतसे लोहितपुर (मंगल लोक) उत्पन्न करके पृथ्वीपर भेज दिए गए हों ॥३॥ घर-घरमें मंगलाचार (लक्ष्मी-पूजन) हो रहा है तथा धनी और निर्धन सभी समान रूपसे आनन्दित हो रहे हैं। तुलसीदास बैठकर रामकी उस पवित्र कीर्तिका गान कर रहे हैं जो कलियुगके पापोंका नाश कर डालती है ॥ ४ ॥ (२०)

सुन्दर सरयूके तटपर बसा हुआ अयोध्या नगर बड़ा ही सुन्दर है। वहाँके सभी पुरुष और स्त्री नीतिमें कुशल, धर्म-धुरन्धर और धैर्यशाली हैं ॥ १ ॥ यों तो जहाँ राजाओंके शिरोमणि जानकीनाथ महाराज राम निवास करते हैं, वहाँ सभी ऋतुएँ सुखदायक हैं, किन्तु उनमें भी वसंत-ऋतु तो सबसे अधिक आनन्ददायक है ॥ २ ॥ वहाँके वनों और उपवनोंमें नये-नये पत्ते तथा अनेक प्रकारके रंग-बिरंगे फूल खिल चले हैं। पक्षी और मोर मधुर स्वरसे बोल रहे हैं तथा भौंरे गूँज रहे हैं ॥ ३ ॥ वसन्त (फाग)-के समय द्वारपर बड़ी भीड़ उमड़ी देखकर कृपालु रामने हँसते हुए कहा कि 'सब स्त्री-पुरुष आनन्दके साथ फाग खेलो' ॥४॥ सुनते ही नगरके सब

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नगर नारि - नर हरषित, सब चले खेलन फाग।
देखि राम - छबि अतुलित, उमगत उर अनुराग ॥ ५ ॥
स्याम - तमाल - जलद - तनु, निर्मल पीत दुकूल।
अरुन - कंज - दल - लोचन, सदा दास - अनुकूल ॥ ६ ॥
सिर किरीट, स्रुति कुंडल, तिलक मनोहर भाल।
कुंचित केस, कुटिल भ्रू, चितवनि भगत - कृपाल ॥ ७ ॥
कल कपोल सुक नासिका, ललित अधर द्विज-जोति।
अरुन कंज - महँ जनु, जुग पाँति रुचिर गज - मोति ॥ ८ ॥
बर दर - ग्रीव, अमित बल बाहु, सुपीन, बिसाल।
कंकन - हार मनोहर, उरसि लसति बनमाल ॥ ९ ॥
उर भृगु - चरन बिराजत, द्विज - प्रिय, चरित पुनीत।
भगत - हेतु नर - बिग्रह, सुरवर, गुन - गोतीत ॥ १० ॥
उदर त्रिरेख मनोहर, सुंदर नाभि गँभीर।
हाटक - घटित, जटित मनि, कटितट रट मंजीर ॥ ११ ॥
उरु अरु जानु पीन, मृदु, मरकत - खंभ समान।
नूपुर मुनि - मन मोहित, करत सुकोमल गान ॥ १२ ॥
अरुन बरन पद-पंकज, नख - दुति इंदु - प्रकास।
जनक - सुता - करपल्लव - लालित बिपुल बिलास ॥ १३ ॥

स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर फाग खेलने चल पड़े। उस समय रामकी अनुपम छबि देखकर उनके मनमें अपार प्रेम उमड़ा पड़ रहा था ॥ ५ ॥ रामका शरीर तमाल तथा मेघके समान शोभा दे रहा है जिसपर अत्यन्त निर्मल पीताम्बर पड़ा हुआ है। उनके नेत्र लाल कमलकी पंखड़ीके समान हैं और वे सदा अपने सेवकों (भक्तों)-पर कृपादृष्टि बनाए रखते हैं ॥ ६ ॥ रामके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और मनोहर माथेपर तिलक सुशोभित है। उनके घुँघराले बाल, तिरछी भौंहें और चितवन भक्तोंपर कृपा करती रहती है ॥ ७ ॥ उनके कपोल बड़े सुन्दर हैं, नासिका सुग्गेकी चोंचके समान (नुकीली) तथा मनोहर ओठोंके बीच दाँतोंकी चमक ऐसी जगमगा रही है मानो लाल-कमलके बीच गजमुक्ताओंकी दो मनोहर पाँतें जड़ी हुई हों ॥८॥ रामकी ग्रीवा शंखके समान सुन्दर है तथा उनकी भरी हुई लम्बी भुजाओंमें अपार बल भरा हुआ है। वे हाथोंमें मनोहर कंकण और गलेमें हार पहने हुए हैं तथा उनके वक्षःस्थलपर वनमाला विराज रही है ॥९॥ राम तो ब्राह्मणोंसे प्रेम करनेवाले और पवित्र चरित्रवाले हैं। उनके वक्षःस्थलपर भृगुके चरणका चिह्न शोभा दे रहा है। गुण (सत्त्व, रज और तम) और इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे वे देव-श्रेष्ठ राम अपने भक्तोंके लिये ही मनुष्यका शरीर धारण करते हैं ॥ १० ॥ रामके उदरपर मनोहर त्रिवली और उनकी नाभि अत्यन्त सुन्दर और गम्भीर है। उनकी कमरमें मणिसे जड़ी सोनेकी करधनी छमछम कर रही है ॥ ११ ॥ उनकी जाँघ और घुटने पन्नेके खंभोंके समान मोटे और चिकने हैं तथा रुनझुन करते हुए नूपुर मुनियोंका मन भी मोहे डाल रहे हैं ॥१२॥ रामके चरण-कमल लाल हैं, उनके नखोंकी चमक चन्द्रमाकी चाँदनीके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कंज, कुलिस, धुज, अंकुस - रेख, चरन सुभ चारि।
जन - मन - मीन हरन - कहँ, बंसी रची सँवारि॥ १४॥
अंग - अंग प्रति अतुलित, सुषमा बरनि न जाइ।
इहि सुख मगन होइ मन, फिरि नहिं अनत लुभाइ॥ १५॥
खेलत फाग अवधपति, अनुज - सखा सब संग।
बरषि सुमन सुर निरखहिं, सोभा अमित अनंग॥ १६॥
ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, बाजहिं पनव - निसान।
सुघर सरस सहनाइन्ह, गावहिं समय - समान॥ १७॥
बीना - बेनु मधुर धुनि, सुनि किन्नर - गंधर्व।
निज गुन गरुअ हरुअ अति, मानहिं मन, तजि गर्व॥ १८॥
निज - निज अटनि मनोहर गान करहिं पिक - बैनि।
मनहुँ हिमालय - सिखरनि, लसहिं अमर - मृग - नैनि॥ १९॥
धवल धाम - तें निकसहिं, जहँ - तहँ नारि - बरूथ।
मानहुँ मथत पयोनिधि बिपुल अपसरा - जूथ॥ २०॥
किंसुक बरन सु - अंसुक, सुषमा - सुखनि - समेत।
जनु बिधु - निबह रहे करि, दामिनि - निकर निकेत॥ २१॥

समान हैं तथा उन चरणोंको जनक-नन्दिनी अपने कोमल हाथोंसे बड़े प्रेमसे पलोटती रहती हैं ॥ १३ ॥ उन चरणोंमें जो कमल, वज्र, ध्वजा और अंकुशके चार चिह्न हैं वे मानो भक्तोंके मन-रूपी मछलियोंको पकड़नेके लिये सुधारकर बनाई हुई बनसी ही है ॥ १४ ॥ इस प्रकार रामके अंग-प्रत्यङ्गकी शोभा ऐसी अतुलित है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस सुखमें मग्न हो जानेपर मन फिर और कहीं नहीं फँस पाता ॥ १५ ॥ जिस समय अयोध्यापति राम अपने छोटे भाई और सखाओंके साथ फाग खेलते हैं, उस समय देवता फूलोंकी वर्षा करते हुए अनन्त कामदेवोंके समान उनकी शोभा देखा करते हैं ॥१६॥ उस समय अयोध्याके नागरिक करताल, मृदंग, झाँझ, डफ, ढोल और दुन्दुभी आदि बाजे बजाते हुए सरस शहनाइयोंपर समयके अनुकूल गीत गाते चलते हैं ॥१७॥ वीणा और बाँसुरीकी मधुर ध्वनि सुनकर किन्नर और गन्धर्व अपना अभिमान छोड़कर अपने बड़े-बड़े गुण भी मन ही मन तुच्छ मानने लगते हैं ॥१८॥ कोकिल-बैनी कामिनियाँ अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़ी हुई मनोहर गीत गाती हुई ऐसी लग रही हैं मानो हिमालयके शिखरपर सुर-सुन्दरियाँ बैठी गा रही हों ॥१९॥ जहाँ-तहाँ अपने उज्वल भवनोंसे निकलती हुई सुन्दरियाँ ऐसी लग रही हैं मानो बहुत-सी अप्सराएँ मिलकर समुद्र मथे डाल रही हों। वे सुख और सुन्दरताके साथ वसन्ती साड़ियाँ पहनकर ऐसी जान पड़ती हैं मानो बहुतसे चन्द्रमा बिजलियोंके घरोंमें जा बसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुंकुम सुरस अबीरनि, भरहिं चतुर बर नारि।
रितु-सुभाय सुठि सोभित, देहिं बिबिध बिधि गारि॥ २२॥
जो सुख जोग, जाग, जप, तप, तीरथ - तें दूरि।
राम - कृपा - तें सोइ सुख, अवध - गलिन्ह रह्यो पूरि॥ २३॥
खेलि बसंत कियो प्रभु, मज्जन सरजू - नीर।
बिबिध भाँति जाचक - जन, पाए भूषन - चीर॥ २४॥
'तुलसिदास' तेहि अवसर, माँगी भगति अनूप।
मृदु मुसुकाइ दीन्हि तब, कृपादृष्टि रघु - भूप॥ २५॥ (२१)

राग वसंत

खेलत बसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक - सुर - समाज॥ १॥
सोह सखा अनुज रघुनाथ-साथ। झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ॥ २॥
बाजहिं मृदंग, डफ, ताल, बेनु। छिरकैं सुगंध - भरि मलय-रेनु॥ ३॥
उत जुबति - जूथ जानकी-संग। पहिरे पट-भूषन सरस रंग॥ ४॥
लिय छरी-बेंत सोधैं बिभाग। चाँचरि-झूमक कह सरस राग॥ ५॥
नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सुहाइ। ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ॥ ६॥
लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। छाँड़हिं नचाइ, हा - हा कराइ॥ ७॥

हों ॥२१॥ वे चतुर सुन्दरी स्त्रियाँ अबीर घोलकर कुमकुमों (लाखके पोले गोलों)-में भरती हैं तथा ऋतुके अनुसार अनेक प्रकारकी पवित्र और सुन्दर गालियाँ गाती हैं ॥ २२ ॥ जो सुख योग, यज्ञ, जप, तप और तीर्थसे भी नहीं मिल पा सकता वही सुख रामकी कृपासे अयोध्याकी गलियोंमें बिखरा पड़ रहा है ॥ २६ ॥ इस प्रकार फाग खेलकर रामने सरयूमें स्नान जा किया। तत्पश्चात् मंगनोंको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण दे डाले गए ॥ २४ ॥ उसी समय जब तुलसीदासने रामकी अनुपम भक्ति माँगी, तो रामने मधुर मुसकान-भरी कृपा-दृष्टिके साथ उसे वह (भक्ति) दे डाली ॥ २५ ॥

राजाधिराज राम होली खेल रहे हैं। देवता लोग आकाशमें चढ़े यह कौतुक देख रहे हैं ॥ १ ॥ रामके संग उनके छोटे भाई और सखा शोभा दे रहे हैं। वे झोलियोंमें अबीर और हाथोंमें पिचकारियाँ लिए हुए हैं ॥ २ ॥ इस समय चारों ओर मृदंग, डफ, करताल और बाँसुरी आदि बाजे बज रहे हैं तथा चन्दनके चूरेसे मिला हुआ सुगन्धित जल सबपर डाला जा रहा है ॥३॥ उधर दूसरी ओर जानकीके साथ रङ्ग-बिरंगे वस्त्रों और आभूषणोंसे सजी युवतियोंका झुंड हाथमें बेंतकी छड़ी लिए लोगोंको ढूंढता चला जा रहा है और अत्यन्त सुरीले रागसे चाँचर और झूमक गा रहा है ॥ ५ ॥ जब वे स्त्रियाँ किसीको दौड़कर पकड़ने चलती हैं तब उनके नूपुर और करधनीकी रुनझुन बड़ी प्यारी लगती है ॥ ६ ॥ वे जिसे पकड़ती हैं उसकी आँखोंमें आँजन लगा देती हैं, तथा उससे फगुआ खेलकर, उसे नचा-नचाकर बहुत प्रार्थना करनेपर उसे छोड़ती हैं ॥७॥ बहुतसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चढ़े खरनि बिदूषक, स्वाँग साजि। करैं कूटि, निपट गइ लाज भाजि॥ ८॥
नर - नारि परसपर गारि देत। सुनि हँसत राम भाइन - समेत॥ ९॥
बरषत प्रसून बर-बिबुध-बृंद। जय-जय दिनकर-कुल-कुमुद-चंद॥ १०॥
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध-बास। गावत कल कीरति 'तुलसिदास'॥ ११॥ (२२)

राग केदारा

देखत अवध - को आनंद।
हरषि बरषत सुमन दिन - दिन देवतनि - को बृंद॥ १॥
नगर - रचना सिखन - को बिधि, तकत बहु बिधि-बंद।
निपट लागत अगम - ज्यों, जलचरहिं गमन सुछंद॥ २॥
मुदित पुर - लोगनि सराहत, निरखि सुषमा - कंद।
जिनके सुअलि - चख पियत राम - मुखारबिंद - मरंद॥ ३॥
मध्य व्योम बिलंबि चलत दिनेस, उडुगन, चंद।
रामपुरी बिलोकि 'तुलसी' मिटत सब दुख - द्वंद॥ ४॥ (२३)

राग सोरठ

पालत राज यों राजाराम धरम - धुरीन।
सावधान सुजान सब दिन, रहत नय - लयलीन॥ १॥

लोग हँसोड़का स्वाँग रचकर गधेपर चढ़े हुए अनेक प्रकारकी फूहड़ बोलियाँ बोल रहे हैं जैसे इस समय उन्होंने अपनी सारी लाज-हया धो बहाई हो॥८॥ स्त्री और पुरुष आपसमें एक दूसरेको गालियाँ देते हुए आनन्द लेते हैं और उसे सुन-सुनकर राम भी भाइयोंके साथ हँसते हुए रस लेते हैं॥ ९॥ 'सूर्य-कुलके कुमुदको खिलानेवाले कलाधर (चन्द्र) रामकी जय हो, जय हो' ऐसा कहते हुए देवता लोग फूलोंकी वर्षा करते हैं॥ १०॥ ब्रह्मा आदि देवता भी अयोध्याके निवासियोंकी प्रशंसा करते हैं और तुलसीदास भी रामकी पवित्र कीर्ति गाए चला जा रहे हैं॥ ११॥

देवता लोग अयोध्याका आनन्द देखकर हृदयमें प्रसन्न होकर नित्यप्रति फूलोंकी वर्षा किया करते हैं॥ १॥ नगरकी रचना किस प्रकार की जाती है यह सीखनेके लिये ब्रह्मा उसके भाँति-भाँतिके भेद आकर देखते तो हैं किन्तु वह (रचना) उन्हें इतनी अधिक दुर्गम जान पड़ती है जैसे जलचरोंका (पृथ्वीपर) स्वच्छन्द चलना॥ २॥ वे (ब्रह्मा आदि देवता) प्रसन्न हो-होकर उन अयोध्यावासियोंकी सराहना करते रहते हैं जिनके नेत्र, भौंरे बनकर रामको निहारकर सुन्दरतासे भरे उनके मुख-कमलका मकरन्द पिया करते हैं॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि रामकी पुरी देखनेसे सारे दुःख और द्वन्द्व नष्ट हो मिटते हैं। अतः, सूर्य, तारे और चन्द्रमा सब (अपने-अपने समयपर ही उस पुरीको देखनेके लिये) मध्य आकाशमें कुछ देर-तक ठहरकर तब आगे बढ़ते हैं॥ ४॥ (२३)

परम सुजान धर्म-रक्षक महाराज राम सदा नीतिके साथ बड़ी सावधानीसे राज्यका पालन

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्वान, खग, जति - न्याउ देख्यो, आपु बैठि प्रवीन।
नीच हति, महिदेव - बालक कियो मीच-बिहीन ॥ २ ॥
भरत - ज्यों अनुकूल जग, निरुपाधि नेह नवीन।
सकल चाहत राम ही, ज्यों जल अगाधहि मीन ॥ ३ ॥
गाइ राज - समाज जाँचत, 'दास तुलसी' दीन।
लेहु निज करि, देहु निज पद - प्रेम, पावन, पीन ॥ ४ ॥ (२४)

संकट सुकृत - को सोचत जानि जिय रघुराउ।
सहस द्वादस पंच - सत - में कछुक है अब आउ ॥ १ ॥

करते हैं ॥ १ ॥ परम प्रवीण रामने श्वान और यति[1] तथा पक्षी[2]-तकका न्याय स्वयं बैठकर किया तथा शूद्र (शंबूक)[3] को मारकर ब्राह्मणके बालकको जीवित किया ॥ २ ॥ भरतके समान सारा संसार ही रामसे अकारण नित्य नया प्रेम बनाए रखता था। जिस प्रकार मछली अगाध जलमें ही रहना चाहती है उसी प्रकार सभी लोग रामके ही राज्यमें रहना चाहते थे ॥ ३ ॥ रामके राज-समाजका वर्णन करके यह दीन तुलसीदास भी उनसे यही माँगता है कि मुझे अपनाकर मुझे भी अपने चरणोंका परम पवित्र और सुदृढ प्रेम दे डालिए ॥ ४ ॥ (२४)

एक समय बड़ा धर्म-संकट उपस्थित होनेपर राम मन ही मन सोचने लगे कि 'अब मेरी बारह हजार पाँच सौ वर्षकी आयु पूर्ण होनेमें कुछ ही वर्ष और रह गए हैं ॥ १ ॥ उसके पश्चात्

१. श्वान और यती : रामके राज्यमें एक कुत्तेने जाकर रामसे निवेदन किया कि सर्वार्थसिद्धि नामके यती ब्राह्मण भिखारीने मुझे डंडेसे मारा है। उस ब्राह्मणसे पूछा गया तो उसने अपराध स्वीकार कर लिया और कहा कि दंड दीजिए। रामने कुत्तेसे पूछा कि इसे क्या दंड दिया जाय तो उसने कहा इसे कालिंजरके मठ (शिवालय)-का महन्त बना दिया जाय क्योंकि जैसे मैं पिछले जन्ममें महन्त होनेके कारण कुत्ता हुआ वैसे ही यह भी शिवका निर्माल्य खाकर और अनाचार करके कुत्ता होगा। रामने उस ब्राह्मणको हाथीपर चढ़ाकर कालिंजर भेज दिया। २. पक्षी (उल्लू और गिद्ध) : एक बार एक उल्लू और गिद्ध घोंसलेके लिये झगड़ते हुए रामके पास आए। गिद्धने कहा कि जबसे मनुष्य इस पृथ्वीपर रहने लगे तबसे मैं इस घोंसलेमें रहता आया हूँ। उल्लूने कहा कि जबसे वृक्ष उत्पन्न हुए तबसे मेरा यह घोंसला है। रामने कहा कि पहले वृक्ष हुए इसलिये घोंसला उल्लूका ही है। जब राम उस गिद्धको दंड देने चले तो आकाशवाणी हुई कि इसे मारिए मत, इसे स्पर्श कर दीजिए तो यह शापसे मुक्त हो जाय। ३. शंबूक : रामके राज्यमें एक वृद्ध ब्राह्मणका पुत्र मर गया। वह पुत्रको लेकर रामके पास आया और रोने लगा। रामने कारणकी खोज की तो ज्ञात हुआ कि शंबूक नामका व्यक्ति शूद्र होते हुए भी तपस्या कर रहा है। रामने उसे मार डाला और ब्राह्मणका पुत्र जी उठा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भोग पुनि पितु - आयु - को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे - बिनु जानकी, नहिं और अनघ उपाउ॥ २॥
पालिबे असि - धार - व्रत, प्रिय प्रेम - पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भाँति, नित सुबिचार, नहिं चित चाउ॥ ३॥
निपट असमंजसहु बिलसति, मुख मनोहरताउ।
परम धीर - धुरीन, हृदय कि हरष - बिसमय काउ॥ ४॥
अनुज, सेवक, सचिव हैं सब सुमति, साधु सखाउ।
जान कोउ न जानकी - बिनु, अगम अलख लखाउ॥ ५॥
राम जोगवत सीय - मन, प्रिय मनहिं प्रान - प्रियाउ।
परम पावन प्रेम - परमिति, समुझि तुलसी गाउ॥ ६॥ (२५)

राम राखी है, बिचारि - कै ठीक दै मन - माँहि।
लोक - बेद - सनेह पालत, पल कृपालहिं जाहि॥ १॥

पिताकी (बची हुई) आयु[1] भोगनी है, उसे भोगनेसे ही काम चलेगा। किन्तु उसे भोगनेके लिये सीताका परित्याग किए बिना और कोई दूसरा निर्दोष उपाय नहीं है। अब तो खाँड़ेकी धारपर चलनेके समान कठोर व्रत पालना और साथ ही प्रेमको निभाते चलते रहना है'। यही उनका प्रिय स्वभाव भी रहा। ऐसी उलझनमें उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या करना चाहिए॥ ३॥ पर ऐसे असमंजसमें भी उनके मुखकी मनोहरता कम नहीं हुई। परम धीर-धुरन्धर रामके मनमें भी क्या कभी हर्ष या विषाद (दुःख) आ सकता था ? (पर आ ही गया)॥ ४॥ यद्यपि रामके छोटे भाई, मन्त्री, सेवक सभी बड़े बुद्धिमान् तथा मित्रगण सब सज्जन थे, परन्तु रामकी यह कठिन और गूढ समस्या जानकीके अतिरिक्त और कोई जान नहीं सका क्योंकि जैसे राम अपनी प्रियाका मन समझते रहते हैं, वैसे ही उनकी प्राण-प्रिया सीता भी अपने प्रियतमका मन समझती रहती हैं। तुलसीदास भी इसे परम पुनीत प्रेमकी पराकाष्ठा समझकर ही उसका गान करता रहता है॥ ६॥ (२५)

अन्तमें बहुत सोच-विचार कर रामने उनका परित्याग करना ही मनमें निश्चित कर लिया। अब परम कृपालु रामका सारा समय लौकिक (राजाका धर्म) और वैदिक (पत्नीसे) स्नेहका पालन

---

१. भोग पुनि पितु-आयु को : राजा दशरथ अपनी आयु पूरी करनेके पहले ही रामको अपनी शेष आयु देकर दिवंगत हो गए थे। उनकी शेष आयु रामचंद्रने भोगी। अपनी आयु-भर तो रामने जानकी-को साथ रक्खा, पर जब अपने पिताकी आयु भोगने चले तब जानकीका परित्याग करना उन्होंने उचित समझा क्योंकि दशरथकी आयु भोगनेके समय सीताको पत्नी मानकर रखनेसे दोष लगता था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रियतमा, पति - देवता, जिहिं उमा - रमा सिहाहिं।
गुरुविनी, सुकुमारि, सिय तिय-मनि, समुझि सकुचाहिं ॥ २ ॥
मेरे ही सुख सुखी, सुख सपनेहुँ अपनो नाहिं।
गेहिनी, गुन - गेहिनी, गुन सुमिरि सोच समाहिं ॥ ३ ॥
राम - सीय - सनेह, बरनत अगम, सुकबि सकाहिं।
राम - सीय - रहस्य, 'तुलसी' कहत राम - कृपाहिं ॥ ४ ॥ (२६)

चरनि - सों चरचा चरचिकै जान-मनि रघुराइ।
दूत - मुख सुनि लोक - धुनि, घर घरनि बूझी आइ ॥ १ ॥
प्रिया ! निज अभिलाष-रुचि कहु, कहति सिय सकुचाइ।
तीय - तनय - समेत तापस पूजिहौं बन जाइ ॥ २ ॥
जानि करुनासिंधु भावी - बिबस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुबीर, भोरहि लिए लखन बोलाइ ॥ ३ ॥
'तात ! तुरतहि साजि स्यंदन, सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस - आस्रम आइयहु पहुँचाइ ॥ ४ ॥
'भले हि नाथ' ! सु-हाथ माथे राखि राम - रजाइ।
चले 'तुलसी', पालि सेवक - धरम - अवधि अघाइ ॥ ५ ॥ (२७)

करनेमें ही बीतने लगा ॥१॥ 'सीता मुझे बड़ी प्रिय हैं। उनके अलौकिक पातिव्रत्यको देखकर पार्वती और लक्ष्मी भी उनसे ईर्ष्या करती हैं। इस समय वे गर्भवती हैं, तथा परम सुकुमारी हैं' यह विचारकर राम (उन्हें छोड़ते) सकुचा भी रहे हैं ॥२॥ वे फिर विचार करने लगे कि 'सीता मेरे ही सुखमें सुखी रहती हैं, इन्हें अपने सुखका तो स्वप्नमें भी ध्यान नहीं रहता।' इस प्रकार गुणकी खान अपनी गृहिणीके गुणोंका स्मरण कर-करके राम चिन्तामें डूबे जाते हैं ॥ ३ ॥ राम और सीताके अगम स्नेहका वर्णन करनेमें तो बड़े-बड़े कवि लड़खड़ा जाते हैं। तुलसीदास तो रामकी कृपासे ही राम और सीताके गूढ रहस्यका वर्णन कर पाया है ॥ ४ ॥ (२२)

ज्ञान-शिरोमणि रामने जब अपने गुप्तचरोंसे (प्रजाके) सब गुप्त समाचार सुन लिए तब उन्होंने दूतोंके मुखसे लोगोंका मत जानकर अपने भवनमें आकर जानकीसे पूछा—॥ १ ॥ 'प्राणप्रिये ! तुम्हें जो भी कुछ अच्छा लगता हो, बतलाओ'। तब जानकीने सकुचाकर कहा—'मैं वनमें जाकर तपस्वियोंका तथा उनकी स्त्री और बालकोंका पूजन करना चाहती हूँ' ॥ २ ॥ रामने देखा कि जैसी भावी होनेवाली है उसके अनुसार सारी परिस्थिति उपस्थित है। उन्होंने धैर्य धारण करके सबेरा होते ही लक्ष्मणको बुलवा भेजा ॥ ३ ॥ और कहा—'भैया ! तुम इसी समय रथ सजाकर उसपर सीताको बिठाकर वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर पहुंचा आओ' ॥ ४ ॥ तब—'प्रभो ! बहुत अच्छा' कहकर, लक्ष्मणने माथेपर हाथ रखकर रामकी आज्ञा सिरमाथे चढ़ाई। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवकके धर्मका पूर्णतया निर्वाह करते हुए वे वहाँसे चले गए ॥ ५ ॥ (२७)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आइ लछिमन, लाइ सौंपी सिय, मुनीसहिं आनि।
नाइ सिर, रहे पाइ आसिष जोरि पंकज - पानि ॥ १ ॥
बालमीकि बिलोकि, ब्याकुल लखन, गरत गलानि।
सर्वबिद बूझत न, बिधि - की बामता पहिचानि ॥ २ ॥
जानि जिय अनुमान ही, सिय सहस बिधि सनमानि।
राम सद्गुन - धाम - परमिति भई कछुक मलानि ॥ ३ ॥
दीनबंधु, दयालु, देवर देखि अति अकुलानि।
कहति बचन उदास, 'तुलसीदास' त्रिभुवन - रानि ॥ ४ ॥ (२८)

तौलौं बलि आप ही कीबी, बिनय समुझि, सुधारि।
जौलौं हौं सिखि लेउँ बन रिषि-रीति, बसि दिन चारि ॥ १ ॥
तापसी कहि कहा पठवति, नृपनि - को मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु, कोउ हितकारि ॥ २ ॥
लखन लाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि।
पालिबी सब तापसनि - ज्यों, राज - धरम बिचारि ॥ ३ ॥
सुनत सीता - बचन मोचत सकल लोचन - बारि।
बालमीकि न सके 'तुलसी' सो सनेह सँभारि ॥ ४ ॥ (२९)

तब लक्ष्मणने सीताको लाकर मुनिवर वाल्मीकिको सौंप दिया और वे सिर नवाकर तथा उनका आशीर्वाद पाकर कर-कमल जोड़े खड़े रहे ॥१॥ लक्ष्मणको व्याकुल और ग्लानिसे गलते देखकर सर्वज्ञ वाल्मीकिने भाग्यका फेर समझकर उनसे कुछ नहीं पूछा ॥ २ ॥ उन्होंने मन ही मन अनुमानसे सारी बातें समझकर सीताका बहुत सम्मान किया, किन्तु यह विचारकर उनका चित्त कुछ क्षुब्ध हो चला कि राम तो सद्गुणोंके धाम हैं, फिर उन्होंने ऐसा क्यों किया ? ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं की त्रिलोकीकी रानी सीता अपने दीनबन्धु और दयालु देवरको देखकर अत्यन्त व्याकुल हो उठीं और उदास होकर कहने लगीं—॥ ४ ॥ (२८)

(जानकी बोलीं)—'जबतक मैं चार दिन रहकर तपस्वियोंकी रीति न सीख लूँ (कि तपस्वियोंको राजाके पास किस प्रकार संदेश कहलाना चाहिए) तबतक तुम्हीं भली भाँति समझ-बूझकर रामसे विनय कर देना ॥ १ ॥ भला मैं अब तपस्विनी होकर राजाओंको कहलानेके योग्य क्या संदेश बतलाऊँ। मुझे विश्वास है कि (जिस प्रकार अयोध्यामें मेरे विरुद्ध बातें कही गई हैं, उसी प्रकार) कोई सज्जन आकर मेरे अनुकूल बातें भी उनसे कहेगा ॥२॥ कृपालु लक्ष्मण ! (रामसे कहना कि) मुझे भुला द दें और राजधर्म ही समझकर अन्य तपस्विनियोंकी भाँति मेरा भी पालन करते रहें' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि सीताके ये वचन सुनकर सब लोगोंके नेत्रोंसे झर-झर आँसू बरस चले, यहाँतक कि महर्षि वाल्मीकि भी यह स्नेह न सँभाल पाए (वे भी रो पड़े) ॥ ४ ॥ (२९)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनत ब्याकुल भए, ऊतरु, कछु कह्यो नहिँ जाइ।
जानि जिय बिधि बाम, दीन्हों मोहिं सरुष सजाइ॥ १॥
कहत, हिय मेरी कठिनई, गई प्रीति लजाइ।
आज ऐसे - हू न अवसर, चले प्रान बजाइ॥ २॥
इतहिं सीय - सनेह - संकट, उतहिं राम - रजाइ।
मौन ही गहि चरन गवने, सिख - सुआसिष पाइ॥ ३॥
प्रेम - निधि पितु - को कहे मैं, परुष - बचन अघाइ।
पाप तेहि परिताप 'तुलसी', उचित सहे सिराइ॥ ४॥ (३०)

गौने मौन, बारहि बार परि - परि पाँय।
जात जनु रथ चोर-कर, लछिमन मगन पछिताय॥ १॥
असन - बिनु बन, बरम - बिनु रन, बच्यो कठिन कुघाय।
दुसह साँसति सहन-को, हनुमान ज्यायो जाय॥ २॥
हेतु हौं सिय - हरन - को तब, अबहुँ भयो सहाय।
होत हठि मोहिं दाहिनो दिन दैव दारुन - दाय॥ ३॥
तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि, गीध जसी जटाय।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन, चलेउँ अवध सुभाय॥ ४॥

सीताके वचन सुनकर लक्ष्मण बड़े व्याकुल हो उठे। उनसे कुछ भी उत्तर देते नहीं बन पड़ा। उन्होंने समझ लिया कि दुर्भाग्यने ही रुष्ट होकर मुझे यह दंड दिया है॥ १॥ वे मन ही मन कहने लगे—'आह! मेरी कठोरता देखकर प्रीति भी लज्जित हो बैठी है कि आज ऐसे अवसरपर भी मेरे प्राण कूच नहीं कर पा रहे हैं'॥ २॥ इधर तो उन्हें सीताके स्नेहका दुःख सता रहा था, उधर उन्हें रामकी आज्ञाका भी पालन करना था। इसलिये उन्होंने मौन रहकर ही सीताके चरण पकड़ लिए और उनसे आशीर्वाद और शिक्षा (संदेश) पाकर वहाँसे प्रस्थान कर दिया॥३॥ (वे अपने मनमें सोचने लगे कि कि—) 'मैंने (रामके वनवासके समय सुमंत्रसे) अपने प्रेमके भांडार पिताके लिये जो भरपेट कठोर वचन कहे थे उसी पापके कारण आज यह दुःख मुझे ठीक ही सहना पड़ रहा है, जिसका प्रायश्चित्त दुःख सहकर ही करना होगा'॥ ४॥ (३०)

लक्ष्मण बार-बार सीताके पैरों पड़-पड़कर चुपचाप चल दिए। वे पश्चात्तापमें ऐसे डूबे हुए थे मानो (सीताको वनमें छोड़कर) रथ चुराकर भागे जा रहे हों॥ १॥ (वे सोचते चले जा रहे थे—) 'हाय! मैं वनमें बिना भोजनके भी जीवित रह गया, रणभूमिमें कवच न रहनेपर भी मेरा कुछ न बिगड़ा। मैं भारी चोट खाकर (शक्ति लगनेपर) भी बचा रह गया। उस समय हनुमान्‌ने व्यर्थ ही औषधि लाकर मुझे यह दुस:ह दुःख सहनेके लिये जीवित किया॥ २॥ उस समय भी सीताके हरणका कारण मैं ही हुआ और इस समय (सीताका परित्याग करनेमें) भी मैं ही सहायक हो रहा हूँ। अरे विधाता! मेरे अच्छे दिनमें भी तुम हठपूर्वक अपने कठोर दाँव चलाने (बुरे दिन दिखाने)-में नहीं चूक रहे हो॥ ३॥ आह! जिन सीताके लिये जटायुने संग्राम-भूमिमें अपना शरीर त्याग दिया, उन्हीं सीताको मैं वनमें पहुँचाकर बड़ी निश्चिन्ततासे अयोध्या लौटा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

घोर हृदय, कठोर करतब, सृज्यो हौं बिधि बाँय।
'दास तुलसी' जानि राख्यो, कृपानिधि रघुराय ॥ ५ ॥ (३१)

पुत्रि ! न सोचिए, आई हौं जनक-गृह, जिय जानि।
कालि ही कल्यान कौतुक, कुसल तव, कल्यानि ॥ १ ॥
राजरिषि पितु - ससुर, प्रभु पति, तू सुमंगल - खानि।
ऐसेहूँ थल बामता, बड़ि बाम बिधि - की बानि ॥ २ ॥
बोलि मुनि - कन्या, सिखाई, 'प्रीति - गति पहिचानि।
आलसिन्ह - की देवसरि सिय सेइयहु मन मानि' ॥ ३ ॥
न्हाइ प्रातहि पूजिबो बट - बिटप अभिमत - दानि।
सुवन - लाहु, उछाहु दिन - दिन देबि, अनहित - हानि ॥ ४ ॥
पाप - ताप - बिमोचनी कहि कथा, सरस, पुरानि।
बालमीकि प्रबोधि 'तुलसी', गई गरुइ गलानि ॥ ५ ॥ (३२)

जानकी जब-तें रही सुचि रुचिर आस्रम आइ।
गगन, जल, थल, बिमल, तब-तें सकल मंगदाइ ॥ १ ॥
निरस भूरुह सरस, फूलत - फलत अति अधिकाइ।
कंद, मूल, अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ ॥ २ ॥

जा रहा हूँ ॥ ४ ॥ जान पड़ता है क्रूर विधाताने मुझे कठोर कर्त्तव्य करनेके लिये ही ऐसा कुटिल हृदयवाला बनाया है और यही जानकर कृपानिधि राम भी मुझे अपने साथ रक्खे हुए हैं ॥ ५ ॥ (३१)

(सीतासे वाल्मीकिने कहा—) देखो पुत्री ! तुम अपने मनमें समझ लो कि तुम पिताके घर आ गई हो, इसलिये किसी बातकी चिन्ता मत करना। देखो कल्याणी ! कल ही (शीघ्र ही) आनन्द मङ्गल प्राप्त होगा ॥१॥ तुम्हारे पिता और श्वसुर दोनों ही राजर्षि हैं, साक्षात् भगवान् तुम्हारे पति हैं, और तुम भी सम्पूर्ण मङ्गलोंकी खान है। पर ऐसे लोगोंपर भी विपत्ति आ ही पड़ती है। इसीसे जान पड़ता है कि विधाताका स्वभाव बड़ा खोटा है ॥ २ ॥ फिर वाल्मीकिने आश्रमकी मुनि-कन्याओंको बुलाकर कहा कि सीताकी इच्छा और इनकी दशाके अनुसार तुम मन लगाकर सेवा करना जो तुम्हारे भाग्यसे यहाँ ऐसी आ गई हैं जैसे आलसियोंके पास स्वयं गंगा आ पहुँची हों ॥ ३ ॥ फिर उन्होंने सीतासे कहा—'देखो देवि ! प्रातःकाल स्नान करके इच्छित फल देनेवाले वटवृक्षका पूजन नित्य किया करना। इससे तुम्हें पुत्र प्राप्त होंगे, दिन प्रति दिन चित्तमें उत्साह बढ़ेगा और सारे अहित (बुरे फल) दूर हो जायँगे' ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि फिर वाल्मीकिने पाप और ताप दूर करनेवाली सरस और पुरानी कथाएँ सुनाकर सीताको बहुत सान्त्वना दी जिससे उनके मनकी भारी ग्लानि (मनकी कसक) दूर हो गई ॥ ५ ॥ (३२)

'जबसे जानकी जाकर उस सुन्दर आश्रममें निवास करने लगी हैं तबसे आकाश, जल और पृथ्वी सभी निर्मल होकर सब प्रकारके मङ्गल देने लगी ॥ १ ॥ नीरस वृक्षोंमें भी बहुत अधिक सरस फूल और फल लद चले तथा अनेक प्रकारके कंद, मूल और अंकुर अपने स्वादसे अमृतको

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मलय मरुत, मराल - मधुकर - मोर - पिक - समुदाइ।
मुदित - मन मृग - बिहग बिहरत, बिषम बैर बिहाइ॥ ३॥
रहत रबि अनुकूल दिन, ससि रजनि सजनि सुहाइ।
सीय सुनि सादर सराहति सखिन्ह भलो बनाइ॥ ४॥
मोद - बिपिन - बिनोद चितवत, लेत चितहिं चुराइ।
राम - बिनु सिय सुखद बन, 'तुलसी' कहै किमि गाइ॥ ५॥ (३३)

सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगन सुहाइ।
पूत जाये जानकी द्वै मुनि - बधू उठिं गाइ॥ १॥
हरषि बरषत सुमन सुर, गहगह बधाव बजाइ।
भुवन - कानन - आस्रमनि रह मोद - मंगल छाइ॥ २॥
तेहि निसा, तहँ सत्रु - सूदन रहे बिधि - बस आइ।
माँगि मुनि - सों बिदा, गवने भोर, सो सुख पाइ॥ ३॥
मातु, मौसी, बहिनहूँ - तें, सासु - तें अधिकाइ।
करहिं तापस - तीय - तनया, सीय - हित चित लाइ॥ ४॥
किए बिधि - ब्यवहार मुनिवर, बिप्रवृंद बोलाइ।
कहत सब रिषि - कृपा - को फल, भयो आज अघाइ॥ ५॥
सुरुख रिषि, सुख सुतनि - को, सिय सुखद सकल सहाइ।
सूल राम - सनेह - को, 'तुलसी' न जिय - तें जाइ॥ ६॥ (३४)

भी लज्जित करने लगे ॥ सुगन्धित हवा बहने लगी, हँस, भौंरे, मोर कोयल और पशु-पक्षी आनन्दपूर्वक अपना वैर भुलाकर स्वच्छन्द विहार करने लगे ॥ ३ ॥ दिनमें सूर्य बहुत नहीं तपता और रात्रिमें चन्द्रमा स्त्रियोंको प्रिय जान पड़ता है।' सखियोंसे ऐसी बातें सुन-सुनकर सीता बड़े आदरसे उनका कल्याण मनाती हुई उनकी सराहना करती रहती हैं ॥४॥ वनमें तो ऐसा आनन्द-मङ्गल छाया हुआ है कि देखते ही चित्त चुरा लेता है, परन्तु तुलसीदास किस प्रकार कह सकता है कि रामके बिना सीताको वन सुखदायक लगता है ॥ ५ ॥ (३३)

जब शुभ दिन, शुभ घड़ी, अच्छे नक्षत्र और सुन्दर लग्नमें जानकीके दो पुत्रों (लव, कुश)-का जन्म हुआ उस समय मुनि-पत्नियाँ (बधावा) गाने लगीं ॥१॥ देवता भी ढमाढम बाजे बजाते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार समस्त लोकों, वनों और आश्रमोंमें आनन्द-मङ्गल छा गया ॥ २ ॥ संयोगवश उसी रात वहाँ शत्रुघ्न भी आकर टिके हुए थे। यह सुख-संवाद पाकर वे प्रातःकाल ही मुनिसे बिदा माँगकर अयोध्या चले गए ॥ ३ ॥ वहाँ आश्रममें मुनियोंकी स्त्रियाँ और कन्याएँ भी माता, मौसी, सास और बहनोंसे बढ़कर और मन लगाकर सीताकी सेवा कर रही थीं ॥ ४ ॥ मुनिवर वाल्मीकिने ब्राह्मणोंको बुलाकर सब प्रकारके संस्कार विधिपूर्वक करा डाले। सब लोग यही कहने लगे कि ऋषिकी कृपाका पूरा-पूरा फल आज प्राप्त हुआ है ॥ ५ ॥ तुलसीदासी कहते हैं कि सीताको यद्यपि ऋषिकी कृपा और पुत्र-सुख आदि सभी सुख मिल रहे हैं, परन्तु रामका स्नेह न पानेका शूल उनके हृदयसे नहीं मिट पा रहा है ॥ ६ ॥ (३४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुनिवर करि छठी, कीन्हीं बारहें - की रीति।
बन - बसन पहिराइ तापस, तोषि पोषे प्रीति॥ १॥
नाम - करन, सुअन्न - प्रासन, बेद - बाँधी नीति।
समय सब रिषिराज करत समाज साज, समीति॥ २॥
बाल लालहिं, कहहिं 'करिहैं राज सब जग जीति'।
राम - सिय - सुत गुरु - अनुग्रह उचित अचल प्रतीति॥ ३॥
निरखि बाल - बिनोद 'तुलसी', जात बासर बीति।
पिय - चरित, सिय - चित चितेरो, लिखत नित हित - भीति॥ ४॥ (३५)

बालक सीय - के बिहरत, मुदित मन दोउ भाइ।
नाम लव - कुस राम - सिय - अनुहरति सुन्दरताइ॥ १॥
देत मुनि मुनि - सिसु खेलौना, लेत धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप - सिसुन - के, बाल - वृंद बुलाइ॥ १॥
भूप - भूषन - बसन - बाहन राज - साज सजाइ।
बरम - चरम - कृपान - सर - धनु - तून लेत बनाइ॥ ३॥
दुखी सिय पिय - बिरह 'तुलसी', सुखी सुत - सुख पाइ।
आँच पय उफनात, सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ॥ ४॥ (३६)

मुनिवर वाल्मीकिने उन बालकोंकी छठी करके बरही (बारहवें दिनकी रीति) भी पूरी कर डाली। उस दिन उन्होंने तपस्वियोंको वनके वस्त्र पहनाकर प्रीति-पूर्वक सन्तुष्ट किया ॥१॥ तत्पश्चात् वेदमें बताए हुए सारे साज-समाजके साथ समय-समयपर (दसवें दिन) नामकरण और (छह महीनेपर) अन्न-प्राशनकी रीतियाँ पूरी कीं ॥ २ ॥ बालकोंको खेलाते समय आश्रमके लोग कहा करते थे कि 'ये बालक सारे जगत्को जीतकर राज्य करेंगे क्योंकि एक तो ये राम - जानकीके पुत्र हैं, दूसरे उनपर गुरुकी भी बड़ी कृपा है। अतः, उन्हें ऐसा होना ही चाहिए और सबका ऐसा ही विश्वास भी है' ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार बालकोंकी लीलाएँ देखनेमें तो सीताके दिन कट जाते थे, परन्तु उनका चित्तरूप चित्रकार तो प्रेमकी भीतपर प्रियतमके ही चरित्र बराबर चित्रित करता रहता था ॥ ४ ॥ (२५)

सीताके दोनों पुत्र प्रसन्न चित्तसे खेला करते हैं। उनके नाम हैं लव और कुश। वे वैसे ही सुन्दर हैं जैसे राम और सीता हैं ॥ १ ॥ जब वाल्मीकि उन्हें मुनि-बालकोंके खेलौने खेलनेको देते हैं तब वे उन्हें तो छिपाकर रख देते हैं और बहुतसे बालकोंको बुलाकर राजकुमारोंकेसे खेल खेलने लगते हैं ॥ २ ॥ वे राजाओंकेसे वस्त्र, आभूषण वाहन और राज-सामग्री सजाने लगते तथा कवच, ढाल, तलवार, धनुष-बाण और तरकश भी बना लेते हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपने पतिके वियोगसे दुखी होनेपर भी अब पुत्र-सुख पाकर सीता वैसे ही प्रसन्न भी हैं जिस प्रकार अग्निपर रक्खा हुआ दूध उफनने तो लगता है परन्तु जलका छींटा पाकर बैठ भी जाता है ॥ ४ ॥ (३६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कैकेयी जौलौं जियति रही।
तौलौं बात मातु - सों मुँह - भरि, भरत न भूलि कही ॥ १ ॥
मानी राम अधिक जननी - तें, जननिहु गँस न गही।
सीय - लखन - रिपुदवन राम - रुख, लखि सब - की निबही ॥ २ ॥
लोक - बेद - मरजाद दोष - गुन, गति चित चखन चही।
'तुलसी' भरत समुझि सुनि राखी, राम - सनेह सही ॥ ३ ॥ (३७)

राग रामकली

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर गावहिं सकल अवधबासी।
अति उदार अवतार मनुज - बपु धरे ब्रह्म, अज, अबिनासी ॥ १ ॥
प्रथम ताड़ुका हति, सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी।
देखि दुखी अति सिला साप - बस, रघुपति बिप्र - नारि तारी ॥ २ ॥
सब भूपन - को गरब हर्‍यौ हरि, भंज्यौ संभु - चाप भारी।
जनकसुताहि - सहित आवत गृह, परसुराम अति मद - हारी ॥ ३ ॥
तात-बचन तजि राज, काज सुर, चित्रकूट मुनिबेष धर्‍यौ।
एक नयन कीन्हों सुरपति-सुत, बधि बिराध, रिषि - सोक हर्‍यौ ॥ ४ ॥

कैकेयी जबतक जीवित रही तबतक भरतने कभी भूलकर भी अपनी मातासे मुँह खोलकर बातें नहीं कीं ॥ १ ॥ किन्तु रामने उन्हें सदा अपनी मातासे भी बढ़कर माना और माता कौशल्याने भी उससे किसी प्रकारका मनमुटाव नहीं रक्खा। रामका स्वभाव देखकर सीता, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नने भी सदा उसका निर्वाह किया ॥२॥ तुलसीदास कहते हैं कि भरत तो केवल रामके प्रेमको ही सुन और समझकर उसकी रक्षा करते रहे। उन्होंने लोक अथवा वेदकी मर्यादा (कि माताका आदर करना चाहिए) और उसके गुण-दोषोंकी ओर न तो कभी ध्यान दिया और न उधर देखा ही (उन्होंने धर्मशास्त्रकी मर्यादाके कारण कैकेयीका आदर नहीं किया वरन् राम उनका आदर करते हैं इसलिये आदर किया।) ॥ ३ ॥ (३७)

राम ! आप परम उदार और मनुष्यका अवतार लेकर भी अजन्मा और अविनाशी परब्रह्म ही हैं। आपके चरित्रोंको अयोध्या-निवासी इस प्रकार गाते हैं—॥ १ ॥'ब्राह्मणोंका हित करनेवाले रामने पहले ताड़काको मारा और सुबाहुका वध करके विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की। फिर शापके कारण शिला बनी हुई अहल्याको बहुत दुखी देखकर उसका उद्धार किया ॥ २ ॥ जनकपुरमें शिवका भारी धनुष तोड़कर सब राजाओंका गर्व चूर किया। जानकीके साथ घर आते समय परशुरामका मद चूर्ण किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर पिताके वचन मानकर राज्यका परित्याग करके देवताओंका हित करनेके लिये मुनिका वेष बनाकर चित्रकूट पर्वतपर जा रहे। वहाँ इन्द्रके पुत्र जयन्तको काना करके छोड़ दिया तथा विराधका वध करके ऋषियोंका कष्ट दूर किया ॥ ४ ॥

---

१. गँस = गाँस, वैर - भाव।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पंचबटी पावन राघव करि, सूपनखा कुरूप कीन्हीं।
खर - दूषन संहारि, कपट मृग, गीधराज-कहँ गति दीन्हीं ॥ ५ ॥
हति कबंध, सुग्रीव सखा करि, बेधे ताल, बालि मान्यो।
बानर - रीछ सहाय अनुज-सँग, सिंधु बाँधि जस बिस्तान्यो ॥ ६ ॥
सकुल, पुत्र-दल-सहित दसानन मारि, अखिल सुर-दुख टान्यो।
परम साधु जिय जानि बिभीषन, लंकापुरी तिलक सान्यो ॥ ७ ॥
सीता अरु लछिमन - सँग लीन्हें, औरहु जिते दास आए।
नगर बिमान निकट आए सब, नर - नारी देखन धाए ॥ ८ ॥
सिव-बिरंचि-सुख नारदादि मुनि, अस्तुति करत बिमल बानी।
चौदह भुवन चराचर हरषित, आए राम राजधानी ॥ ९ ॥
मिले भरत, जननी, गुरु, परिजन, चाहत परम अनंद भरे।
दुसह - बियोग - जनित दारुन दुख राम - चरन देखत बिसरे ॥१०॥
बेद - पुरान बिचारि लगन सुभ, महाराज अभिषेक कियो।
'तुलसिदास' जिय जानि सुअवसर, भगति-दान तब माँगि लियो ॥११॥

॥ इति श्रीरामगीतावल्यां उत्तरकांडः समाप्तः ॥

फिर रामने पञ्चवटीको पवित्र करके शूर्पणखाको कुरूप किया (उसके नाक-कान कटवा लिए) तथा खर और दूषणको मारकर मारीच तथा जटायुको शुभ गति दी ॥ ५ ॥ वहाँसे चलकर कबन्धका वध किया तथा सुग्रीवसे मित्रता करके ताल-वृक्षोंको वेधकर बालिका वध किया। फिर रीछ और वानरोंकी सहायतासे भाई लक्ष्मणके साथ समुद्रपर पुल बाँधकर अपना सुयश फैलाया ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् रावणको, उसके कुटुम्बियों और पुत्रोंके साथ मारकर देवताओंका सारा दुःख दूर कर डाला। विभीषणको अत्यन्त साधु जानकर लंकामें उसका राज्याभिषेक किया ॥ ७ ॥ फिर सीता, लक्ष्मण तथा आए हुए समस्त सेवकों (भक्तों, वानरों)-के साथ विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरी आ पहुँचे। उस समय सब स्त्री-पुरुष रामका दर्शन करनेके लिये दौड़ पड़े ॥ ८ ॥ तब चौदहों लोकोंके सम्पूर्ण चराचर प्राणी आनन्दित हो उठे तथा शिव, ब्रह्मा, शुकदेव और नारद आदि मुनि विमल वाणीसे स्तुति करते हुए रामकी राजधानी अयोध्यापुरी चले आए ॥ ९ ॥ उस समय रामके दर्शनोंके लिये लालायित भरत, सब माताएँ, गुरु और परिवारके लोग सब अत्यन्त आनन्दके साथ उनसे मिले। रामके चरण देखते ही वे उनके दुःसह वियोगसे उत्पन्न सब दारुण दुःख भूल गए ॥ १० ॥ तब गुरु वशिष्ठने वेद और पुराणके अनुसार विचारकर शुभ लग्नमें रामका राज्याभिषेक कर दिया। उसी समय तुलसीदासने अच्छा अवसर देखकर रामसे भक्तिका दान माँग लिया' ॥ ११ ॥ (३८)

॥ श्रीरामगीतावलीमें उत्तरकांड समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीरामगीतावली पूर्ण हुई ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

११

श्रीकृष्णगीतावली

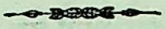

राग बिलावल

'माता' लै उछंग, गोबिंद-मुख, बार-बार निरखै।
पुलकित तन आनँदघन, छन - छन मन हरषै॥ १॥
पूछत तुतरात बात, मातहिं जदुराई।
अतिसय सुख जाते तोहिं, मोहिं कहु समुझाई॥ २॥
देखत तब बदन - कमल, मन अनंद होई।
कहै कौन, रसन मौन, जानै कोइ कोई॥ ३॥
सुंदर मुख मोहि देखाउ, इच्छा अति मोरे।
मम समान पुन्य - पुंज, बालक नहिं तोरे॥ ४॥
'तुलसी' प्रभु प्रेम - बस्य, मनुज - रूप धारी।
बाल - केलि लीला - रस, ब्रजजन - हितकारी॥ ५॥ (१)

माता यशोदा बार-बार आनन्दघन गोविन्दको गोदमें लिए उनका मुखड़ा निहारे जा रही हैं, क्षण-क्षणपर उनका शरीर पुलकित हुआ पड़ रहा है और मन हर्षसे फूला नहीं समा रहा है। यदुराय श्रीकृष्ण अपनी माता (यशोदा)-से तुतलाते हुए कुछ पूछ रहे हैं, माता यशोदा मगन होकर कहती हैं—(तुम्हारी बातें समझमें नहीं आती इसलिये) 'अपनी बात समझाकर कहो जो समझमें आ सके॥ २॥ तुम्हारा कमलके समान सुन्दर मुखड़ा देखते ही जी मगन हो उठता है। इस आनन्दका वर्णन क्या कोई वाणीसे कर पा सकता है ? यह रहस्य तो कोई-कोई ही जान पाता है॥ ३॥ मैं तो यही चाहती हूँ कि तू अपना सलोना मुखड़ा दिखलाता ही रहा कर क्योंकि न तो तेरे समान और कोई बालक ही सुन्दर है और न मेरे समान कोई पुण्यात्मा ही है'॥ ४॥ तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्यके चोलेमें बालकोंकोसे खेल करते हुए वे अपनी लीलाओंसे सबका जी हुलसाए डाल रहे हैं॥ (१)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग ललित

'छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै।
तू दे री मैया' 'लै कन्हैया' 'सो कब ?' 'अबहिं तात' ॥१॥
'सिगरियै हौं हीं खैहौं, बलदाऊ-को न देहौं', 'सो क्यौं भट्टू ?' 'तेरो कहा ?' कहि इत-उत जात।२।
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि, गोपीगन - महरि मुदित पुलकित गात ॥३॥
नूपुर - की धुनि किंकिनि कलरव सुनि, कूदि - कूदि किलकि - किलकि ठाढ़े-ठाढ़े खात ॥४॥
तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारी सीस, मुनि - मन हरत बचन कहैं तुतरात ॥ ५ ॥
'तुलसी' निरखि हरषत, बरषत फूल, भूरिभागी ब्रज-बासी, बिबुध-सिद्ध सिहात ॥६॥ (२)

राग आसावरी

तोहिं स्याम-की सपथ जसोदा ! आइ देखु गृह मेरें।
जैसी हाल करी यहि ढोटा, छोटे निपट अनेरे ॥ १ ॥
गोरस - हानि सहौं, न कहौं कछु, ऐहि ब्रज - बास बसेरे।
दिन - प्रति भाजन कौन बेसाहै ? घर निधि काहूके रे ॥ २ ॥

(कृष्ण अपनी माता यशोदासे कहते हैं—) 'अरी मैया ! तू मुझे मिस्सी (गेहूँ चना मिली हुई)-की छोटी-सी मोटी रोटी दे दे'। माताने कहा 'अच्छा ले, कन्हैया, (वैसी ही) रोटी ले'। कृष्ण कहने लगे—'तो कब देगी ?' माता बोली—'ले बेटा ! अभी दिए देती हूँ।' (यह कहकर माता उन्हें रोटी थमा देती है)। (रोटी लेकर) वे कहते हैं—'यह सब मैं अकेले-अकेले ही खाऊँगा, बलदाऊ भैयाको नहीं दूँगा।' (माताने पूछा—) 'ऐसा क्यों भैया !' (वे बोले—) 'इससे तुझे क्या लेना-देना ? (मेरा मन)'—यह कहते हुए वे इधर-उधर भाग खड़े होते हैं॥ २ ॥ वे चकमा देकर बालकोंको बुलाकर (रोटी दिखा-दिखाकर) ललचाने लगते हैं। यह चरित्र देख-देखकर गोपियाँ और यशोदा रानी पुलकित होती हुई मगन हुई जा रही हैं ॥ ३ ॥ जब कृष्ण कूद-कूदकर किलकारी मारते हुए खाते फिरते हैं उस समय उनके नूपुर (पैंजनी) और (घुंघरूदार) करधनीकी मधुर रुनझुन होती चलती है ॥ ४ ॥ वे कमर-तकका सुहावना झिंगुला (कुरता) पहने और सिरपर विचित्र ढंगकी मुकुट-जैसी टोपी लगाए हुए हैं। वे जब तोतले वचन बोलने लगते हैं तो मुनियोंका मन भी हर ले डालते हैं॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि उनकी लीलाएँ देख-देखकर भाग्यशाली ब्रजवासी, सिद्ध पुरुष और देवता सभी हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा करते हुए उस सुखके लिये तरस रहे हैं॥ ६ ॥ (२)

(कोई गोपी यशोदाके पास आकर उलाहना देती है—) 'अजी यशोदा ! तुम्हें श्यामकी सौगन्ध है। तनिक मेरे घर चलकर देखो तो सही कि इस निपट नटखट छोकरे (कृष्ण)-ने क्या उपद्रव मचा डाला है ॥१॥ गोरस (दूध, दही, मक्खन)-की ही हानि होती तो मैं चुपचाप सह लेती, किसीसे कुछ कहती नहीं क्योंकि मुझे भी रहना तो इसी ब्रजमें है, पर यह नित्य बर्तन-भाँड़े कौन मोल लाता फिरेगा (जो कृष्ण जा-जाकर फोड़ आते हैं) ? क्या किसीके घर धनका भंडार गड़ा धरा है ? ॥२॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

किए निहोरो हँसत, खिझे-तें डाँटत नयन तरेरे।
अबहीं-तें ये सिखे कहा धौं, चरित ललित सुत तेरे॥ ३॥
बैठे सकुचि साधु भयो चाहत, मातु-बदन तन हेरे।
'तुलसिदास' प्रभु, कहौं ते बातैं, जे कहि भजे सबेरे॥ ४॥ (३)

मो-कहँ भूठेहु दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहिं बानि परगृह-की, नाना जुगुति बनावहिं॥ १॥
इनके लिये खेलिबो छाँड़्यौ, तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस, देन उरहनो आवहिं॥ २॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि, मिस करि उठि-उठि धावहिं।
करहिं आप, सिर धरहिं आन-के, बचन बिरंचि हरावहिं॥ ३॥
मेरी टेव बूझि हलधर-को, संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहू-को, ते सिसु मोहिं न भावहिं॥ ४॥
सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि, हँसि-हँसि बदन दुरावहिं।
बाल-गोपाल केलि-कल-कीरति 'तुलसिदास' मुनि गावहिं॥ ५॥ (४)

देखो, यह तुम्हारा लाड़ला इतनी हानि करके भी ही-ही करता खड़ा हँस रहा है। यदि खीझकर कुछ कह बैठती हूँ तो यह आँखें तरेरकर डाँटने लगता है। न जाने कहाँसे तुम्हारा लाड़ल अभीसे ही यह अच्छी (बुरी) चाल सीख बैठा है ? ॥३॥ देखो, इस समय यह कैसा भोला-भाला बना बैठा है और माताकी ही ओर देखे जा रहा है (जैसे कुछ जानता ही न हो)। तुलसीदास कहते हैं (कि फिर वह गोपी कृष्णकी ओर मुड़कर कहने लगी—) 'कहो, कल सबेरे जो बातें कहकर भाग आए थे, वे कह दूँ तुम्हारी माँसे ?' ॥ ४ ॥ (३)

(कृष्ण अपनेको निर्दोष बताते हुए मातासे कहते हैं—) 'मैया ! इन गोपियोंको स्वयं पराया घर झाँकनेकी बान पड़ी हुई है, इसीलिये ये बहुत-से बहाने बना-बनाकर मुझे झूठा दोष लगाने यहाँ आ धमकती हैं ॥ १ ॥ इन्हीं सबके कारण तो मैंने खेलने-तक जाना छोड़ दिया फिर भी ये मेरा पिंड नहीं छोड़ रही हैं। ये स्वयं अपने बर्तन फोड़ आती हैं, गोरसमें मेरे हाथ डुबो लाती हैं और उलाहना देने तुम्हारे पास आ धमकती हैं ॥ २ ॥ कभी-कभी ये अपने बच्चोंके हाथ झटककर उन्हें रुला देती हैं और मेरे सिर दोष मढ़कर तुम्हारे पास दौड़ी चली आती हैं। इस प्रकार ये छेड़छाड़ तो अपने आप करती हैं और दोष दूसरोंके सिर मढ़ती हैं। ये ऐसी-ऐसी बातें बनाती हैं कि इनके आगे विधाता भी झक मारे। मेरे संबंधमें पूछना हो तो बुलाकर बलदाऊ भैयासे पूछ देखो जो मुझे सदा अपने ही साथ खेलाते हैं। मुझे तो स्वयं ऐसे लड़के अच्छे नहीं लगते जो दूसरोंको तंग करते हों' ॥४॥ ग्वालिनने इन (कृष्ण)-की जो यह वचन-चातुरी सुनी तो उसने हँसकर मुँह मोड़ लिया। तुलसीदास कहते हैं कि बालक गोपालकी इस क्रीडाकी कीर्त्तिका वर्णन मुनि लोग सदा करते रहते हैं॥ ४ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कबहुँ न जात पराये धामहिं।
खेलत ही देखौं निज आँगन, सदा सहित बलरामहिं॥ १॥
मेरे कहा, थाकु गोरस - को, नवनिधि मंदिर यामहिं।
ठाली ग्वालि ओरहने - के मिस, आइ बकहि बेकामहिं॥ २॥
हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जिनि, मातु सिखावति स्यामहिं।
बिनु कारन हठि दोष लगावति, तात! गए गृह तामहिं॥ ३॥
हरि-मुख निरखि, परुष बानी सुनि, अधिक-अधिक अभिरामहिं।
'तुलसिदास'-प्रभु देख्योइ चाहति, श्रीउर-ललित-ललामहिं॥ ४॥ (५)

अब सब साँची कान्ह तिहारी।
जौ हम तजे पाइ गौं मोहन! गृह आए दै गारी॥ १॥
सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख, बातैं सकल सँवारी।
साधु जानि, हँसि हृदय लगाए, परम प्रीति महतारी॥ २॥
कोटि जतन करि सपथ कहैं हम, मानै कौन हमारी?
तुमहिं बिलोकि आन - की ऐसी, क्यों कहिहै बर नारी॥ ३॥

(यशोदा उस ग्वालिनको उत्तर देती हुई कहती हैं—) 'मेरा बेटा तो कभी किसी परायेके घर जाता ही नहीं। मैं तो उसे सदा बलदाऊके संग अपने ही आँगनमें खेलते देखती हूँ॥ १॥ मेरे घरमें तो यों ही आठों पहर नवों निधियाँ भरी पड़ी रहती हैं और फिर गोरस तो मेरे ही यहाँ मटकों भरा पड़ा है' (यह भला तेरे घर क्या करने जायगा?)। इस प्रकार उलाहना देनेके बहाने तुम ग्वालिनें आकर व्यर्थ बकवाद किया करती हो'॥२॥ कृष्णसे माता यशोदा कहने लगीं—'मैं तुझपर बलिहारी जाती हूँ, बेटा! जब उनके घर जानेपर ये बिना बातके ही दोष लगाया करती हैं तो तू कहीं जाया ही मत कर'॥ ३॥ फिर कृष्णका मुख देखकर तथा (यशोदा)-की कठोर डाँट सुनकर भी ग्वालिन बड़े ही प्रेमसे लक्ष्मीके हृदयमें भली प्रकार निवास करनेवाले कृष्णको सदा आँखोंमें बसाए ही रखना चाहती है॥ ४॥ (५)

(यशोदाके आगे कृष्णसे ग्वालिन आकर कहने लगी—) 'कन्हैया! हाँ, सचमुच अब तो तुम्हारी ही सब बातें सच्ची समझी जायँगी। तभी तो अवसर पाकर भी मैंने उस समय तुम्हें छोड़ दिया जब तुम गाली देकर मेरे घरसे भाग आए थे॥१॥ इस समय संकोच और डरका नाट्य करके सिसक-सिसककर, उदास मुँह बनाकर तुमने अपना काम बना लिया और माताने भी तुम्हें (कृष्णको) भोला-भाला जानकर बड़े प्रेमसे हँसकर अब गले उठा लगाया॥ २॥ हम लाख सौगंध खाकर कहें पर हमारी बात भला कोई मानने क्यों लगा। (यशोदासे कहती है) तुम ही समझ देखो कि कोई भी भली स्त्री किसी दूसरेके लिये ऐसी बात झूठे ही क्यों आकर कहेगी'॥ ३॥ (फिर माता यशोदा बोलीं—) 'देखो व्रजनायक! तुमपर बलिहारी जाती हूँ। तुम जैसे हो, वैसे ही हमें सुख देते रहो।' तुलसीदास

५. थाकु = सीमा बहुत।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जैसे हौ तैसे सुखदायक, ब्रजनायक ! बलिहारी।
'तुलसिदास' प्रभु मुख-छबि निरखत, मन सब जुगुति बिसारी॥ ४॥ (६)

राग केदारा

महरि ! तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै।
सहि देख्यों, तुम्ह-सों कह्यौ, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै॥ १॥
ग्वालिनि तौ गोरस सुखी, ता - बिनु क्यों जीजै ?
सुत-समेत पाउँ धारिये, आपुहि भवन मेरे, देखिय जो न पतीजै॥ २॥
अति अनीति नीकी नहीं, अजहूँ सिख दीजै।
'तुलसिदास' प्रभु-सों कहै उर लाइ जसोमति, ऐसी, बलि, कबहूँ नहिं कीजै॥ ३॥ (७)

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरी फिरि आई।
सुनु मैया ! तेरी सौं करौं, याकी टेव लरन-की, सकुच बेंचि सो खाई॥ १॥
या ब्रज - में लरिका घने, हौंही अन्याई ?
मुँह लाए मूड़हि चढ़ी, अंतहु अहिरिनि, तू सूधी करि पाई॥ २॥
सुनि सुत - की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई।
'तुलसिदास' ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई॥ ३॥ (८)

कहते हैं कि वह ग्वालिन भी अपनी सारी चतुराई भूलकर प्रभुकी मुख-छवि देखती रह जाती है॥ ४॥ (६)

(एक ग्वालिन बहुत खीझकर यशोदासे आकर कहती है—) 'देखो यशोदा रानी ! मैं आपके पाँवों पड़ती हूँ। आप अपना ब्रज अपने पास रक्खे रहिए। मैंने बहुत सहकर भी देखा और तुमसे भी कहा, पर अब तो नाकों दम आ गया है। कौन दिनपर दिन बैठा इतनी हानि सहा करे ?॥ १॥ अरी ! ग्वालिनका सारा धन तो गोरसमें ही है, उसके बिना वह जी कैसे सकती है ? विश्वास न हो तो अपने लाड़लेको साथ लेकर मेरे घर चली चलिए और अपनी आँखोंसे इनकी करनी चलकर देख लीजिए॥ १॥ अजी ! इतनी अनीति अच्छी नहीं होती। भला अब भी तो उसे अच्छी सीख दीजिए।' तुलसीदास कहते हैं कि कृष्णको हृदयसे लगाकर यशोदा उनसे कहने लगीं—'मैं तुमपर बलि जाती हूँ, कन्हैया ! अबसे कभी यह सब (उत्पात) मत करना'॥ ३॥ (७)

(यशोदासे कन्हैया कहते हैं—) 'देखो माँ ! यह गोपी जो अभी उलाहना देकर गई थी अब फिर आ धमकी है। सुन मैया ! मैं तेरी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि इसकी तो लड़नेकी टेव (बान) ही बनी हुई है। लाज-संकोच (शील) तो जैसे इसने सारा बेंच खाया है॥१॥ अरे ! इस ब्रजमें इतने लड़के भरे पड़े हैं, क्या उनमें मैं ही अकेला एक नटखट हूँ। आखिर है तो यह अहीरिन ही न ! तुझे इसने सीधा पा लिया है इसीसे बहुत मुँह-लगी होकर सिरपर चढ़ी चली जा रही है'॥ २॥ बेटेकी यह चतुराई-भरी बातें यशोदा बैठी सुने जा रही थीं और मुसकराए जा रही थीं। तुलसीदास कहते हैं कि ग्वालिन तो आई थी कन्हैयाको ठगने, पर कृष्णने उसपर ऐसा जादू कर दिया कि उससे कुछ कहते न बन पाया॥ ३॥ (८)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग गौरी

अब ब्रज-बास महरि ! किमि कीबो ?
दूध-दह्यो-माखन ढारत हैं, हुतो पोसात[1] दान दिन दीबो ॥ १ ॥
अब तौ कठिन कान्ह-के करतब, तुम्ह हौ हँसति, कहा कहि लीबो ?
लीजै गाँउ, नाउँ लै रावरो, है जग ठाउँ, कहूँ ह्वै जीबो ॥ २ ॥
ग्वालि-बचन सुनि कहति जसोमति, 'भल न भूमि-पर बादर छीबो ।
दैवहिं लागि कहौं, 'तुलसी' प्रभु, अजहुँ न तजत पयोधर पीबो' ॥ ३ ॥ (९)

जानी ग्वालि परी फिरि फीके ।
मातु काज-लागी लखि, डाँटत 'दियो बायनो है घर नीके' ॥ १ ॥
'अब कहि देउँ ?' 'कहति किन' यों कहि, माँगत दहिउ धर्‍यो जो छींके ।
'तुलसी' प्रभु-मुख निरखि रही चकि, रह्यो न सयानप तन-मन ती-के ॥२॥ (१०)

जौलौं हौं कान्ह ! रहौं गुन गोए ।
तौलौं तुम्हहिं पत्यात लोग सब, सुसुकि सभीत साँचु सो रोए ॥ १ ॥

(ग्वालिन आकर यशोदासे कहने लगी—) 'महरि (सरदारनी) ! बताओ अब ब्रजमें कैसे रहा जायगा ? तुम्हारा यह लाड़ला नित्य दूध, दही, मक्खन गिराता-पड़ाता रहता है। यदि पोसाता (हममें सामर्थ्य होता) तो हम नित्य दान दे दिया करते ॥ १ ॥ अब तो इस कन्हैयाकी करतूत बड़ी दुखदायी हो चली है। मैं तुमसे कहने भी लगूँ तो कहकर ही क्या कर लूँगी क्योंकि तुम तो सुनती हो और हँस देती हो। तो लो, तुम अपना गाँव सँभालो। हम तो तुम्हारा नाम लेकर जगत्‌में कहीं भी रहकर जी लेंगी' ॥ २ ॥ ग्वालिनकी बात सुनकर यशोदा कहने लगी—'देखो, धरतीपर बादल उतारना (झूठी बातें बताना) अच्छा नहीं होता। मैं भगवान्‌को साक्षी देकर कहती हूँ कि अभी तो तुलसीके प्रभु (कृष्ण)-ने स्तनका दूध पीना-तक नहीं छोड़ा है' ॥ ३ ॥ (९)

कृष्णने जब जान लिया कि (यशोदाकी डाँट खाकर) ग्वालिन झेंपकर लौटी जा रही है तो माताको काममें लगी देखकर ग्वालिनके घर जाकर डाँटते हुए कहने लगे—'तुमने अच्छे घर बायना दे दिया है' (मैं तुम्हें ठीक कर दूँगा) ॥ १ ॥ (ग्वालिन बोली—) 'तो अब चलकर कहे देती हूँ।' (कृष्ण बोले—) 'जा जा, जाकर कहती क्यों नहीं ?' यह कहकर ग्वालिनसे कहा कि 'अच्छा अपना छींकेपर रक्खा हुआ दही तो उतार कर दे।' तुलसीदास कहते हैं कि वह ग्वालिन प्रभुका मुख देखकर ऐसी चकित हो रही कि उस स्त्री (ग्वालन)-की तन-मनकी सारी चतुराई हवा हो गई (वह बिलकुल ठगी-सी रह गई कि अभी मुझे डाँट रहे थे, अभी दही उतारकर देनेको कह रहे हैं) ॥ २ ॥ (१०)

(कृष्णसे गोपी कहती है—) 'देखो कन्हैया ! मैं ही हूँ कि तुम्हारी करतूतों (चालाकियों)-को छिपाए रखती हूँ। तुम जब डरते हुए सिसक-सिसककर रोने लगते हो तो लोग समझते हैं कि तुम सच कह रहे हो और वे तुम्हारा विश्वास कर बैठते हैं ॥ १ ॥ बातें बनाने और रूपक गाँठनेमें

१. पोसात हुतो=पोसाता, यदि संभव होता ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हौं भले नग - फँग परे गढ़ीबै, अब ए गढ़त महरि - मुख जोए।
चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, ह्वैहै कीच कोठिलो धोए॥ २॥
गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति, बरजति सैन नयन - के कोए।
'तुलसी' मातु मुदित, सुत-गति लखि, बिथकी ग्वालि, मैन-मन-मोए॥३॥ (११)

भूलि न जात हौं काहुके काऊ।
साखि सखा सब सुबल, सुदामा, देखि धौं बूझि बोलि बलदाऊ॥ १॥
यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि, उलटि बिबाद न आइ अगाऊ।
याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति - कि एक लँगरि झगराऊ॥ २॥
कहपि परसपर बचन जसोमति, लखि नहिं सकति कपट, सति भाऊ।
'तुलसिदास' ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर-मनि नंद-ललाऊ॥३॥ (१२)

छाँड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहैं सुत! देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह - की बात चलाई॥ १॥
डरिहैं सासु - ससुर चोरी सुनी, हँसिहै नई दुलहिया, सुहाई।
उबटौ न्हाहु, गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई॥ २॥

तो तुम बड़े ही चंट हो कि अब माताके मुखपर ऐसी बातें बना रहे हो।' कृष्ण बोले—'चुप क्यों नहीं रहती?' ग्वालिनने कहा—'क्या फिर कुछ कहनेपर तुले हुए हो? देखो, दहीका कोठला धोया तो कीच ही कीच हाथ लगेगा (कुछ बोले तो तुम्हारी ही बदनामी होगी, सारा भेद खोल धरूँगी)' ॥ २॥ इसपर कृष्ण बोले—'इतना गरजे क्या जा रही है? उँगली चमका-चमकाकर डाँट क्या रही है और आँखोंके संकेतसे (बोलनेको) मना क्या कर रही है?' तुलसीदास कहते हैं कि बेटेकी चालाकी देख-देखकर माता प्रसन्न हुई जा रही हैं और कामदेवकी मारी ग्वालिन तो भौचक्की-सी खड़ी रह गई॥ ३॥ (११)

(कृष्ण कहने लगे—) 'मैं तो भूले भी किसीके घर कभी नहीं जाता। पूछना हो तो मेरे सखा सुबल और सुदामा आदिसे पूछ देखो और चाहो तो बलदाऊ भैयाको भी बुलाकर पूछ लो॥१॥ यह (ग्वालिन) स्वयं मुझे अनेक प्रकारसे चिढ़ाती रहती है और उलटे यहाँ पहले पहुँचकर झगड़ा आ लगाती है। मैया! इसे इतना मुँह क्यों लगाती हो? यह तो गिनतीकी एक ही (सबसे बड़ी) एकमात्र झगड़ालू और दुष्ट स्त्री है?'॥ २॥ यशोदा माता कन्हैयासे बातें तो करती हैं पर यह समझ नहीं पा रही हैं कि इसमें चालाकी कितनी है और सच्ची कितनी। तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि वह ग्वालिन भी कम चालाक नहीं है पर नन्दलाल तो चतुरोंके भी शिरोमणि (उसके भी गुरु) निकल आए॥ ३॥ (१२)

(कृष्णसे यशोदा कहती हैं—) 'प्यारे लाल! अब यह सब लड़कपन छोड़। देख बेटा! तेरे बाबाने तेरे ब्याहकी चरचा चला दी है। देख, कल तुझे देखारू (देखनेवाले) आनेवाले हैं। तेरे सास-ससुर सुनेंगे कि तू चोरी करता है तो वे भड़क जायँगे और तेरी सुन्दर नई दुलहिन तो सुनकर तेरी हँसी उड़ाने लगेगी। मैं तुझपर बलि जाती हूँ। ला, तुझे उबटन लगाकर नहला दूँ और तेरी चोटी गूँथ दूँ तभी तो वे (देखनेवाले) सुन्दर वर देखकर तुझे पसन्द करेंगे'॥२॥ माताका कहना मानकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मातु कह्यो करि कहत बोलि दै, भइ बड़ि बार, कालि तौ न आई।
जब सोइबो, तात यों हाँकहिं, नयन मींचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥ ३॥
उठि कह्यो, भोर भयो, झँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई।
बिहँसि ग्वालि, जानी 'तुलसी' प्रभु, सकुचि लगे जननी उर धाई॥ ४॥(१३)

राग केदारा

हरि - को ललित बदन निहारु।
निपट - ही डाँटत निठुर ज्यों, लकुट कर - तें डारु॥ १॥
मंजु अंजन - सहित जल - कन, चुवत लोचन चारु।
स्याम सारस[1] - मग मनो ससि, स्रवत सुधा - सिंगारु॥ २॥
सुभग उर दधिबुंद सुंदर, लखि अपनपौ वारु।
मनहु मरकत - मृदु - सिखर - पर, लसत बिसद तुषारु॥ ३॥
कान्हहू - पर सतर भौंहैं, महरि! मनहिं बिचारु।
'दास तुलसी' रहति क्यों रिस, निरखि नंदकुमार॥ ४॥ (१४)

लेत भरि - भरि नीर कान्ह कमल - नैन।
फरक अधर डर, निरखि लकुट कर, कहि न सकत कछु बैन॥ १॥

कन्हैया कहने लगे—'ला, बुला उन लोगोंको। इतनी देर तो हो गई, अभीतक तेरा कल नहीं आया। जब मैं सो जाऊँगा तब बाबा मुझे पुकारने लगेंगे।' यह कहकर आँखें मीचकर कृष्ण सो रहे॥३॥ फिर तत्काल उठकर बोले—'अरे! सवेरा हो गया। ला, मेरी झँगुली तो उठाकर दे।' कन्हैयाकी यह आतुरता (ब्याह करनेकी हड़बड़ी) देखकर यशोदा माता प्रसन्न हुई जा रही हैं। यह देखकर ग्वालिन हँस पड़ी। कृष्णने जब देखा कि ग्वालिन भी यह जान गई है तब कृष्ण (झेंपकर) दौड़कर माताकी छातीसे जा लगे॥ ४॥ (१३)

(कृष्णको डाँटनेवाली यशोदासे कुलगुरु ऋषि गर्गकी पत्नी कहने लगी—) 'अरी रानी! कन्हैयाका सुन्दर मुखड़ा तो देख। तू इतनी निष्ठुर होकर इन्हें डाँटे क्या चली जा रही है? अपने हाथकी यह छड़ी दूर उठा फेंक॥१॥ देख तो इनकी सुन्दर और कोमल कजरारी आँखोंसे आँसू ऐसे टपके पड़ रहे हैं मानो नील-कमल (नेत्र)-के द्वारा चन्द्रमा, शृंगारका अमृत बहाए डाल रहा हो॥ २॥ इनके उस सुन्दर वक्षःस्थलपर दहीकी बूँदें देखकर ही तू अपने आपको इनपर निछावर किए डाल जो (वक्षःस्थल) ऐसा लगता है मानो मरकत (पन्ने)-के कोमल शिखरपर स्वच्छ हिमकी बूँदें झलकी पड़ रही हों॥ २॥ अरी रानी! अपने मनमें कुछ विचार तो कर। भला कन्हैयापर क्या ऐसे भौंहें तरेरी जाती हैं? (तुलसीदास कहते हैं,) क्या नन्दलालकोको देखकर भी तेरे मनमें क्रोध टिका रह जाता है?'॥ ४॥ (१४)

माताके हाथमें छड़ी देखकर डरके मारे कन्हैयाके कमलके समान नेत्रोंमें जल भर-भर आता है। वे (डरके मारे) कुछ बोल नहीं पा रहे हैं॥ १॥ ऋषि-पत्नी (गर्गकी पत्नी) पुनः कहने

---

१. श्याम सारस = नील कमल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुसह दाँवरी छोरि, थोरि खोरि कहा कीन्हों, चीन्हों री सुभाय तेरो आज लगे माई ! मैं न।
'तुलसिदास' नंदललन ललित लखि, रिस क्यों रहति उर - ऐन ॥ २ ॥
हाहा री महरि ! बारो, कहा रिस-बस भई, कोखि-के जाए-सों रोष केतो बड़ो कियो है ?
ढीली करि दाँवरी, बावरी साँवरेहि देखि, सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है ॥३॥(१५)

दूध - दधि - माखन, भो लाखन गोधन धन, जब-तें जनम हलधर - हरि लियो है।
खायो, कै खवायो, कै बिगाऱ्यो-ढाऱ्यौ, लरिका री, ऐसे सुत-पर कोह, कैसो तेरो हियो है ? ॥ १ ।
मुनि कहैं सुकृती न नंद - जसुमति-सम, न भयो, न भावी, नहिं बिद्यमान बियो है।
कौन जानै कौने तप, कौने जोग-जाग-जप, कान्ह-सो सुवन तोकों महादेव दियो है ॥
इनहीं-के आए - तें बधाए ब्रज नित नए, नादत, बाढ़त सब, सब सुभ जियो है।
नंदलाल-बाल-जस, संत - सुर - सरबस, गाइ सो अमिय-रस 'तुलसिहु' पियो है ॥ २ ॥(१६)

ललित लालन निहारि, महरि ! मन बिचारि, डारि दे घर-बसी[1] लकुटि बेगि कर-तें।
कछु न कहि सकत, सुसुकत सकुचत, डरहूँ - को डर, कान्ह डरै तेरे डर - तें ॥
कह्यो मेरो मानि, हित जानि तू सयानी बड़ी, बड़े भाग पायो पूत बिधि हरि-हर-तें।
ताहि बाँधिबे-को धाई, ग्वालिनी गोरसहाँई, लै-लै आई बावरी, दाँवरी घर-घर-तें ॥ १ ॥

लगीं—'इस थोड़ेसे अपराधपर यह क्या किए डाल रही हो ? खोल दो रस्सीका यह कठोर बन्धन। अरी माई ! मैं आजतक जानती नहीं थी कि तेरा स्वभाव इतना कठोर है। (तुलसीदास कहते हैं) भला ऐसे सलोने नन्दलालाको देखकर भी तेरे हृदयमें क्रोध टिका कैसे रह पाता है ? ॥ २ ॥ वे पुनः कहने लगीं—हाय, हाय ! री महरि ! इस नन्हें से बालकपर तू इतनी क्यों लाल-पीली हुई जा रही है। अपनी कोखके जनमे पुत्रपर तू कितना क्रोध किए जा रही है ? अरी बावली साँवलियाकी ओर तनिक देख तो ले ! चल, उसकी रस्सी ढीली कर दे। देख, यह बालक डरके मारे सहमकर सिकुड़ा पड़ रहा है' ॥ ३ ॥ (१५)

'अरी ! जबसे कृष्ण और बलरामने जन्म लिया है तभीसे तेरे घरमें लाखों गौएँ हो गई हैं और दूध, दही, मक्खन भी कुंडोंमें भरा रहता है। अभी बच्चा ही है न। खाया, खिलाया और खिंडाया (गिराया) तो क्या हुआ ? भला ऐसे पुत्रपर भी तू इतना क्रोध किए डाल रही है ? तेरा कलेजा कैसा (कठोर) है ? ॥ १ ॥ मुनि लोग कहते हैं कि नन्द-यशोदा-जैसे पुण्यात्मा न हुए न हैं, न होने ही वाले हैं। न जाने किस तपस्यासे किस योग, यज्ञ और जपके प्रभावसे महादेवने कन्हैया-जैसा पुत्र तुझे दे डाला है। इन्हींके आनेसे तो ब्रजमें नित्य नये-नये बधावे बजते चले जा रहे हैं और सभी लोग सुखसे जीवन बिता रहे हैं।' ऐसे सन्तों और देवताओंके सर्वस्व नन्दलालका यशोगान करके तो तुलसीदास भी अमृत-रसका पान किए बैठा है ॥ २ ॥ (१६)

(यशोदासे गर्गकी पत्नी कहती हैं—) अरी रानी ! 'तनिक इस प्यारे लालको तो देख और कुछ तो अपने हृदयमें विचार कर। अरी घरबसी ! झटपट अपने हाथकी लकुटिया दूर उठा फेंक। देख तो सही, डरको भी डरानेवाला यह कन्हैया बेचारा तेरे डरसे इतना डरा जा रहा है कि इसके

---

१. घरबसी = घर बसानेवाली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुल - गुरु - तिय - के बचन कमनीय सुनि, सुधि भये बचन जे सुने मुनिवर - तें।
छोरि, लियो लाइ उर, बरषैं सुमन सुर, मंगल है तिहूँ पुर हरि - हलधर - तें॥
आनंद - बधावनो, मुदित गोप - गोपीजन, आज परी कुसल, कठिन करवर - तें।
'तुलसी' जे तोरे तरु, किइ देव, दिए बरु, कै न लह्यौ कौन फरु, देव दामोदर - तें॥२॥(१७)

राग मलार

ब्रज - पर घन घमंड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो, कोपि सुरेस पठाए॥ १॥
दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो तम गगन गँभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत, प्रेरित प्रबल समीर॥ २॥
बार - बार पवि - पात, उपल, घन बरषत बूँद बिसाल।
सीत - सभीत पुकारत आवत, गो - गोपी - गोपाल॥ ३॥
राखहु राम! कान्ह! यहि अवसर, दुसह दसा भइ आइ।
नंद बिरोध कियो सुरपति - सों, सो तुम्हरो बल पाइ॥ ४॥

मुँहसे कुछ बोल नहीं निकल रहा है। यह सुबकता हुआ मारे डरके सिकुड़ा जा रहा है। तू तो स्वयं बड़ी समझदार है। अपना भला चाहे तो मेरी बात मान ले। बड़े भाग्यसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवकी कृपासे तो तूने ऐसा पुत्र पाया है और इसे तू केवल गोरसके लिये बाँधने दौड़ पड़ी और घर-घरसे रस्सी माँग लाई?' गुरु-पत्नीकी ऐसी प्यारी बातें सुनकर यशोदाको ऋषिकी कही हुई बात स्मरण हो आई (कि ये तो भगवान् हैं)। उन्होंने तुरंत कन्हैयाके बन्धन खोलकर उन्हें हृदयसे उठा लगाया। उस समय, देवता फूल बरसाने लगे। कृष्ण और बलरामके कारण तीनों लोकोंमें आनन्द-मंगल जा छाया। गोप और गोपियाँ प्रसन्न होकर आनन्दके बधावे बजाने लगीं कि आज (यशोदाके) कठोर हाथोंसे (कृष्णका) संकट दूर हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि जिन्होंने अर्जुनके जुड़वाँ वृक्ष (यमलार्जुनके पेड़) तोड़कर उन्हें देवता (कुबेरके पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव) बना दिया और भक्ति-भाव भी दे डाला ऐसे दामोदर देवसे किसने कौन सा फल नहीं पा लिया?॥ २॥ (१७)

(जब कृष्णने इन्द्रके बदले गोवर्धनकी पूजा करानी आरम्भ करा दी तब इसे) इन्द्रने अपना बहुत बड़ा अपमान समझकर क्रोध करके ब्रजके ऊपर बादल ही बादल बुला भेजे और देखते-देखते उमड़ते-घुमड़ते हुए बादलोंके झुंडके झुंड ब्रजपर आ घिरे॥ १॥ आकाशमें बड़ा अँधेरा आ छाया। दसों दिशाओंमें (पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊपर, नीचे) सब ओर बड़े वेगसे बिजलियाँ चमकने लगीं। गड़गड़ाहटके साथ गरजते हुए बादल प्रचंड पवनके वेगसे दौड़े चले आए॥ २॥ बार-बार बिजलियाँ तड़पकर गिरने लगीं, ओले बरसने लगे और मूसलाधार वर्षा होने लगी। ठंढके मारे काँपती-थरथराती गौएँ, गोपियाँ और ग्वाल हाय-हाय करके पुकार उठे—॥३॥ 'अजी बलदाऊ! अजी कृष्ण! इस समय तो बड़ा संकट उठ खड़ा हुआ है, हम सबकी रक्षा करो। तुम्हारे ही भरोसे तो नन्दने इन्द्रसे वैर मोल लिया है॥ ४॥ यह सुनकर नन्दके (सिंहके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनि हँसि उठ्यो नंद - को नाहर लिय कर कुधर उठाई।
'तुलसिदास' मघवा अपने - सों करि, गयो गरब गँवाई ॥ ५ ॥(१८)

राग गौरी

टेरि कान्ह गोबर्धन चढ़ि गैया।
मथि - मथि पियो बारि चारिकमें - भूख न जाति, अघाति न धैया[1] ॥ १ ॥
सैल - सिखर चढ़ि चितै चकित चित, अति हित बचन कह्यौ बलभैया।
बाँधि लकुट - पट, फेरि बोलाई, सुनि कल बेनु, धेनु धुकि धैया ॥ २ ॥
बलदाऊ देखियत दूरि - तें, आवति छाक पठाई मैया।
किलकि सखा सब नचत मोर - ज्यों, कूदत कपि कुरंग - की नैंया ॥ ३ ॥
खेलत - खात परसपर डहकत, छीनत कहत, करत रोगदैया[2]।
'तुलसी' बालकेलि - सुख निरखत, बरषत सुमन सहित - सुरसैया ॥ ४ ॥(१९)

राग नट

गावत गोपाल - लाल नीके राग नट हैं।
चलि री आली देखन लोयन-लाहु, पेखन ठाढ़े सुरतरु-तर तटिनि-के तट हैं ॥ १ ॥
मोरचंदा चारु, सिर मंजु गुंजा-पुंज धरे, बनि नव धातु, तन ओढ़े पीत पट हैं।
मुरली तान - तरंग मोहे कुरंग बिहंग, जोहैं मूरति त्रिभंग निपट निकट हैं ॥ २ ॥

समान पुत्र) नाहर कृष्ण हँसकर उठ चले और उन्होंने अपने हाथपर गोवर्धन पर्वत उठा धरा। तुलसीदास कहते हैं कि इन्द्रने जितना अपना गर्व दिखाया था वह सब चूर-चूर हो गया ॥ ५ ॥ (१८)

गोवर्धन पर्वतपर चढ़कर कृष्ण अपनी गौवोंको पुकारने लगे। चरवाहोंकी भूख न तो चार-बार दूध दूहकर पीनेसे मिट पा रही थी न वे दूधका फेन पीकर ही अघा पा रहे थे ॥ १ ॥ पर्वतके शिखरपर चढ़कर कृष्ण चकपकाते हुए इधर-उधर देखते हैं, फिर बड़े प्रेमसे बलदाऊ भैयासे कुछ कहते हैं। फिर लकुटीमें वस्त्र लपेटकर (झंडी बनाकर हिलाते हुए बुलानेका संकेत करके) वंशी बजाते हुए गौवोंको बुलाते हैं। वे वंशीकी ध्वनि सुनते ही दौड़ पड़ती हैं ॥ २ ॥ बलदाऊने दूरसे ही देखा और बोले—'लो मेरी माँने जो भोजन भेजा है वह आ रहा है।' फिर तो सब सखा लोग किलकारी मारते हुए मोर बनकर नाचने लगे और बन्दर तथा हरिन बन-बनकर उछलने-कूदने लगे ॥ ३ ॥ वे आपसमें खेलते, खाते और चकमा देकर एक दूसरेसे छीना-झपटी करते और कहते हैं कि तुम बेईमानी करते हो। तुलसीदास भी यह बाल-क्रीड़ा देख-देखकर उसका आनंद ले रहे हैं और इन्द्र-सहित सब देवता भी फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ ४ ॥ (१९)

'अरी सखी ! देख, गोपाल लाल बड़े आनन्दसे नट राग गाए चले जा रहे हैं। चल ! उन्हें चलकर देखा जाय और देखकर अपने नेत्रोंका लाभ प्राप्त किया जाय। वे यमुनाके तीरपर कदम्ब वृक्षके तले आए खड़े हैं ॥ १ ॥ उनके सिरपर सलोनी मोरकी चन्द्रिका शोभा दे रही है तथा गलेमें कोमल गुञ्जाओंकी माला पड़ी हुई है। इस प्रकार अपने शरीरको नये-नये रङ्गोंसे रँगकर पीताम्बर ओढ़े हुए प्रभु बने-ठने खड़े हैं। उनकी मुरलीकी तानकी तरङ्गोंसे मोहित होकर पशु-पक्षी

---

१. धैया = दूध का फेन। २. रोगदैया = रोंहटी बेईमानी।'

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अंबर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह - सिथिल गोप - गाइन - के ठट हैं।
'तुलसी' प्रभु निहारि, जहाँ-तहाँ ब्रज नारि, ठगी ठाढ़ी मग, लिये रीते-भरे घट हैं ॥३॥

राग बिलावल

देखु सखी ! हरि - बदन इंदु - पर।
चिक्कन, कुटिल अलक - अवली - छबि, कहि न जाइ सोभा अनूप बर ॥ १ ॥
बाल - भुअंगिनि - निकर मनहुँ मिलि, रहीं घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं, नहिं करहिं पान, कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर ॥ २ ॥
अरुन बनज - लोचन, कपोल सुभ, स्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर।
मनहु सिंधु निज सुतहिं मनावन, पठये जुगुल बसीठ बारिचर ॥ ३ ॥
नँदनंदन मुख - की सुंदरता, कहि न सकत स्रुति सेष उमा - बर।
'तुलसिदास' त्रैलोक्य - बिमोहन - रूप कपट नर त्रिबिध - सूल - हर ॥ ४ ॥(२१)

आज उनींदे आए मुरारी।
आलस-वंत सुभग लोचन सखि ! छिन मूँदत, छिन देत उघारी ॥ १ ॥
मनहु इंदु - पर खंजरीट दोउ, कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी।
कुटिल अलक जनु मार - फंद कर गहे, सजग ह्वै रह्यो सँभारी ॥ २ ॥

भी निकट आ-आकर गोपाल-लालकी त्रिभंगी मूर्तिका दर्शन किए जा रहे हैं ॥ २ ॥ उन्हें देखकर आकाशमें देवता भी प्रसन्न हो-होकर (उनपर) फूलोंकी वर्षा किए जा रहे हैं। प्रभुके पास खड़े गोपों और गौओंका झुंड स्नेहसे शिथिल हुआ जा रहा है (सुध-बुध खो बैठा है)।' तुलसीदास कहते हैं कि इस ठाठसे प्रभुको खड़े देखकर ब्रज-नारियाँ जहाँ-तहाँ मार्गमें जलसे भरे या छूछे घड़े लिए टकटकी लगाए (मूर्ति बनी) खड़ी हैं ॥ ३ ॥

'अरी सखी ! देख। कृष्णके चन्द्र-जैसे सलोने मुखड़ेपर लटकी हुई चिकनी और घुँघराली लटोंकी अनुपम शोभा कुछ कहते नहीं बनती ॥ १ ॥ मानो सर्पोंके बच्चे इकट्ठे होकर चन्द्रमामें अमृत भरा जानकर उसे ऐसे घेरे हुए हों कि उसे न तो वे छोड़ पा रहे हों और न (अमृत) ही पी सक रहे हों। भला बताओ तो वे क्या समझकर डरे जा रहे हैं ? ॥ २ ॥ उनके नेत्र लाल कमलके समान लाल-लाल हैं, गाल शोभनीय हैं तथा कानोंमें अत्यन्त सुन्दर कुण्डल झलकते हुए ऐसे लग रहे हैं मानो समुद्रने अपने पुत्र चन्द्रमा (मुख)-को मनानेके लिये दो मछलियाँ (कुंडल) दूतके रूपमें भेज रक्खी हों ॥३॥ नंद-नंदन कृष्णके मुखड़ेकी सुन्दरताका वर्णन तो (चारों) वेद, शेष और शंकर भी नहीं कर पा सकते। तुलसीदास कहते हैं कि भगवान् कृष्णका यह त्रैलोक्य-विमोहक नर-रूप तीनों प्रकारके शूल (ताप) दूर कर डालता है' ॥ ४ ॥ (२१)

'अरी सखी ! देख, आज मुरारी उनींदे (नींदमें) ही उठे चले आए हैं। वे अपनी अलसाई आँखें क्षणमें मूँदते और क्षणमें खोलते हुए ऐसे लग रहे हैं मानो चन्द्रमापर कुछ-कुछ लाली लिए हुए विधाताके रचे हुए दो खंजन आ बैठे हों। कामदेवके फंदेके समान अवनी घुँघराली लटें वे बड़ी सजगतासे हाथसे थामकर सुलझाए जा रहे हैं ॥ २ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मनहु उड़न चाहत अति चंचल, पलक पंख छिन देत पसारी।
नासिक कीर, बचन पिक सुनि करि, संगति मन गुनि रहति बिचारी॥ ३॥
रुचिर कपोल, चारु कुंडल बर, भ्रुकुटि सरासन - की अनुहारी।
परम चपल तेहि त्रास मनहु खग, प्रगटत - दुरत न मानत हारी॥ ४॥
जदुपति मुख-छबि कलप कोटि लगि, कहि न जाइ जाके मुख चारी।
'तुलसिदास' जेहि निरखि ग्वालिनी, भजीं तात-पति-तनय-बिसारी॥ ५। (२२)

राग गौरी

गोपाल गोकुल - बल्लभी - प्रिय-गोप - गोसुत - बल्लभं।
चरनाबिंदमहं भजे, भजनीय सुर - मुनि - दुर्ल्लभं॥ १॥
घनस्याम काम अनेक छबि, लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क - बसन, किसोर - मूरति, भूरि गुन करुनाकरं॥ २॥
सिर केकि-पच्छ, बिलोल कुंडल, अरुन बनरुह-लोचनं।
गुंजावतंस बिचित्र, सब अँग धातु, भव - भय - मोचनं॥ ३॥
कच कुटिल, सुंदर तिलक-भ्रू, राका - मयंक - समाननं।
अपहरन 'तुलसीदास' त्रास, बिहार बृंदा-काननं॥ ४॥ (२३)

वे (नेत्र) क्षण-भरमें अपनी-अपनी चञ्चल पलकें ऐसे फैला देते हैं मानो उड़ना ही चाहते हों, पर सुग्गेके समान उनकी नाक और कोयलकी-सी उनकी वाणी सुननेके लोभसे उन्हींके साथ रहनेके विचारसे वे रुके रह जाते हों॥ ३॥ उन (मुरारी)-के सुन्दर गालोंपर झिलमिलाते कुंडलों तथा धनुषके समान भौंहोंको देखकर उनके डरके मारे वे परम चपल पक्षी कभी प्रकट हो जाते हैं और कभी छिप जाते हैं, पर हार नहीं मानते॥४॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिन्हें देखनेके लिये ग्वालिनें अपने पिता, पति और पुत्रको भी छोड़कर दौड़ पड़ती हैं उन यदुपतिके मुखड़ेकी शोभाका वर्णन तो चार मुखवाले ब्रह्मा भी करना चाहें तो करोड़ों कल्पों-तक नहीं कर पा सकते॥ ५॥ (२२)

राधाके प्यारे तथा गोप और बछड़ोंके स्वामी गोपाल-लालके उन वन्दनीय चरण-कमलोंको मैं स्मरण करता हूँ जो देवता और मुनियोंके लिये भी दुर्लभ हैं॥१॥ अनेक कामदेवोंके समान छबिवाले और सब लोकोंको सुख देनेवाले घनश्याम बड़े ही मनोहर लगते हैं। वे कमलके केशरके से पीले वस्त्र पहने, किशोर अवस्थावाले, गुणके भांडार और करुणासे भरे हैं॥२॥ वे सिरपर मोरपंख, लगाए हुए हैं, उनके कानोंमें कुण्डल झिलमिला रहे हैं, उनके नेत्र लाल-कमलके समान हैं, वे विचित्र गुञ्जाओंकी माला पहने हुए हैं, उनके सम्पूर्ण अंग सुवर्णके समान दमक रहे हैं और वे संसारका सारा भय दूर कर डालते हैं॥३॥ उनके पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान मुख-मण्डलपर घुँघराले बालोंकी लटें, सुन्दर तिलक और भौंहें शोभा दे रही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सब त्रास दूर कर डालनेवाले ऐसे वृन्दावन-बिहारीका मैं भजन करता हूँ॥ ४॥ (२३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग बिलावल

बिछुरत श्रीब्रजराज आज इन नयनन - की परतीति गई।
उड़ि न लगे हरि - संग सहज तजि, ह्वै न गए सखि स्याम - मई ॥ १ ॥
रूप - रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई।
साँचेहु क्रूर, कुटिल, सित - मेचक, बृथा मीन - छबि छीनि लई ॥ २ ॥
अब काहे सोचत मोचत जल, समय गए चित सूल नई।
'तुलसिदास' तब अपहूँ - से भऐ, जड़ पलकनि हठि दगा दई ॥३॥ (२४)

राग कान्हरा

नहिं कछु दोष स्याम - को माई!
जो दुख मै पायउँ सुनि सजनी! सो तो सबै मन - की चतुराई ॥ १ ॥
निज हित - लागि तबहिं ए बंचक, सब अंगनि बसि प्रीति बढ़ाई।
लियो सकल सुख हरि-अँग-सँग-को, जहँ जिहि बिधि, तहँ सोइ बनाई ॥ २ ॥
अब नँदलाल-गवन सुनि मधुबन, तनहिं तजत नहिं बार लगाई।
रुचिर रूप - जल-मों रसेस[1] ह्वै, मिलि, न फिरन - की बात चलाई ॥ ३ ॥
ऐहि सरीर बसि सखि! वा सठ-कहँ, कहि न जाइ जो निधि फबि आई।
तदपि कछू उपकार न कीन्हों, निज मिलन्यौ नहिं मोहिं सिखाई ॥ ४ ॥

आज ब्रजराज (कृष्ण)-के बिछुड़ते ही इन आँखोंका सारा विश्वास जाता रहा। उड़नेका सहज स्वभाव होते हुए भी न तो ये आँखें उड़कर कृष्णके साथ ही लगी जा सकीं, न ये उनके रंगमें रँगकर श्याममयी ही हो सकीं ॥ १ ॥ यद्यपि ये आँखें बहुत रूप-रसिक और लालची कहलाने-का ढोंग करती हैं तथापि वह काम भी इनसे किए न बन पड़ा। सचमुच ये बड़ी क्रूर, कुटिल और श्वेत और काली होकर व्यर्थ ही उपमानमें मछलीकी छबि छीने बैठी हैं ॥२॥ अब ये क्या चिन्ता किए जा रही हैं और बार-बार क्या आँसू बहाए जा रही हैं? अवसर हाथसे निकल जानेपर तो चित्तमें नई कसक पैदा होती ही है। तुलसीदास कहते हैं कि जब पलकोंने भी हठ करके धोखा दे ही डाला (अर्थात् आँखें नहीं लगतीं) तब तो ये स्वयं ही जड कही जाने-योग्य बन गई हैं ॥ ३ ॥ (२४)

(श्यामके वियोगमें अपनेको कोसती हुई कोई गोपी अपनी माँसे कहती है—) 'देखो माई! श्यामका कोई दोष नहीं है! मैंने जो कुछ भी दुःख पाया है वह सब इस मनका भ्रम था ॥१॥ इस मनने स्वयं सुख पानेके फेरमें उनके सब अंगोंसे प्रीति बढ़ाकर पहले ही धोखा दे दिया था। हरिके अङ्गोंसे मिलकर जहाँ जैसा सुख पाते बना वहाँ वैसा ही सब प्रकारका सुख प्राप्त करता रहा ॥२॥ और अब (इसकी निर्लज्जता तो देखो कि) नंदलालका जाना सुनकर भी यह वृन्दावनमें शरीर-तक छोड़नेको तैयार नहीं हो रहा है, न जाने क्यों इतनी देर लगा रहा है। जैसे पानीमें नमक घुल जानेपर फिर हाथ नहीं आता, वैसे ही श्यामने भी बिछुड़कर फिर मिलनेकी बात-तक न चलाई ॥ ३ ॥ देख तो सखी! इस शरीरमें बसकर उस शठ (मन)-को न जाने कौन सी बड़ी गठरी मिली जा रही है तब भी यह मेरा कुछ उपकार नहीं कर रहा है। यह स्वयं तो श्यामसे जा मिला पर मुझे उनसे मिलनेका ढंग नहीं

१. रसेस = (रसेश, रसों में श्रेष्ठ) नमक।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आपु मिल्यो यहि भाँति, जाति तजि, तन मिलयो जल-पय-की नाँई।
ह्वै मराल आयो सुफलक - सुत, लै गयो छीर, नीर बिलगाई ॥ ५ ॥
मन हौं तजी, कान्ह हौं त्यागी, प्रानौ चलिहैं परिमिति पाई।
'तुलसिदास' रीतेहु तनु ऊपर, नयननि - की ममता अधिकाई ॥ ६ ॥(२५)

राग धनाश्री

करी है हरि, बालक - की - सी केलि।
हरष न रचत, बिषाद न बिगरत, डगरि चले हँसि खेलि ॥ १ ॥
बई, बनाइ बारि बृंदाबन, प्रीति सँजीवनि - बेलि।
सींचि सनेह - सुधा, खनि काढ़ी, लोक - बेद परहेलि ॥ २ ॥
तृन ज्यों तजी, पालि तनु-ज्यों हम, बिधि - बासव-बल पेलि।
एतेहुँ - पर भावत 'तुलसी' प्रभु, गए मोहनी मेलि ॥ ३ ॥(२६)

आली ! अब कहौ निज नेह निहारि।
समुझे, सहे, हमारो है हित, बिधि - बामता बिचारि ॥ १ ॥
सत्य, सनेह, सील, सोभा, सुख, सब गुन उदधि अपारि।
देख्यौ, सुन्यौ न कबहुँ, काहु, कहुँ, मीन बियोगी - बारि ॥ २ ॥

सिखाया ॥४॥ आप तो अपना स्वभाव छोड़कर शरीरसे वैसे ही मिला रहा जैसे दूधसे पानी मिलता है (मनसे मन नहीं मिलाया अपितु शरीरसे ही मिला) और उधर सुफलकका पुत्र अक्रूर हंस होकर ऐसा आया कि पानी छोड़कर दूध (कृष्ण)-को ले उड़ा ॥ ५ ॥ मनने भी मुझे छोड़ दिया और कृष्णने भी छोड़ दिया है। अब प्राण ही रह गए हैं जो अवसर पाकर चल देंगे।' तुलसीदास कहते हैं कि खाली शरीरपर भी नेत्रोंकी ममता बहुत अधिक हो रही है (कि शरीर रहेगा तो नेत्रोंको दर्शन अवश्य प्राप्त हो जायगा) ॥ ६ ॥ (२५)

कृष्णने तो वैसा ही बालकोंका-सा खेलवाड़ कर डाला जैसे बच्चों को (घरौंदे) बनानेमें न कुछ हर्ष होता है न बिगाड़नेमें दुःख होता है और वे हँस-खेलकर चल देते हैं। वैसे ही हँसते-खेलते वे भी (मथुराको) चल दिए। उन्होंने वृन्दावनमें बाग-बगीचे लगाकर उसमें प्रेमकी सञ्जीवनी (बूटी) रोपकर उसे स्नेहके अमृतसे सींचकर पाला और फिर सारी लोक और वेदकी मर्यादा तोड़कर उसे खोद फेंका[1] ॥ २ ॥ कहाँ तो उन्होंने ब्रह्मा और इन्द्रकी शक्तिकी भी चिन्ता न करके हमारी रक्षा की, और कहाँ हमें तृणके समान छोड़कर चल दिए। तुलसीदास कहते हैं कि उन्होंने व्रजकी नारियोंपर ऐसी मोहनी डाल दी है कि इतना होनेपर भी वे (कृष्णको) प्यार किए चली जा रही हैं ॥ ३ ॥ (२६)

'अरी सखी ! हमें अपने स्नेह (की सत्यता)-पर विचारकर ही कुछ मुँह खोलना चाहिए। अब तो विधाता हमसे मुँह फेरे बैठा है, यह समझकर ही सब कुछ सहते जानेमें हमारा हित होगा ॥१॥ देखो, सब प्रकारसे सत्य, स्नेह, शील, सुख और गुणोंके अपार भंडार कोई है तो केवल मछली है जिसके संबंधमें किसीने न तो कहीं और कभी किसीके मुँहसे सुना न कहीं देखा ही कि जलसे

---

१. विष वृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्। (विषका पेड़ लगाकर भी उसे काट फेंकना बड़ा बुरा काम है।)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कहियत काकु कूबरी - हूँ - को, सो कुबानि - बस नारि।
बिष - तें बिषम बिनय अनहित - की, सुधा सनेही गारि ॥ ३ ॥
मन फेरियत कुतर्क कोटि करि, कुबल भरोसे भारि।
'तुलसी' जग दूजो न देखियत, कान्ह - कुँवर अनुहारि ॥ ४ ॥ (२७)

लागियै रहति, नयननि आगे - तें न टरति मोहन मूरति।
नील नलिन स्याम, सोभा अगनित काम, पावन हृदय जेहि उर फूरति।
सारद, अमित सेष नहिं कहि सकत अँग - अँग सूरति।
'तुलसिदास' बड़े भाग, मन लागेहु - तें सब सुख पूरति ॥ १ ॥(२८)

जब - तें ब्रज तजि गए कन्हाई।
तब-तें बिरह - रबि उदित एकरस, सखि बिछुरनि-बृष पाई ॥ १ ॥
घटत न तेज, चलत नाहिंन रथ, रह्यो उर - नभ - पर छाई।
इंद्रिय रूप - रासि सोचहिं सुठि, सुधि सब - की बिसराई ॥ २ ॥
भयो सोक - भय - कोक - कोकनद, भ्रम - भ्रमरनि सुखदाई।
चित - चकोर, मन-मोर, कुमुद-मुद, सकल बिकल अधिकाई ॥ ३ ॥

बिछुड़कर भी कोई मछली जीवित रह गई हो ॥ २ ॥ उस कूबरीको भी जो हम खरी-खोटी कहे जा रही है वह स्त्रियोंकी दोष निकालनेकी बानके कारण ही कहे जा रही हैं क्योंकि शत्रुकी तो प्रार्थना भी विष-सी लगती है और स्नेहीकी गाली भी अमृत-जैसी प्यारी लगती है। हम करोड़ों कुतर्कोंका खोटा सहारा लेकर भी कृष्णकी ओरसे अपना मन हटाना चाहें तब भी (तुलसीदास कहते हैं) कि कुँवर कन्हैया-जैसा कोई दूसरा संसारमें दिखाई भी तो नहीं देता (जिससे प्यार किया जा सके) ॥ ४ ॥ (२७)

मोहनकी मूर्ति नेत्रोंमें ऐसी आ बसी है कि वह आँखोंके सामनेसे हटाए नहीं हटती। अनेक कामदेवोंके समान शोभावाले और नीले कमलके समान साँवले श्याम-सुन्दरका ध्यान भी जिसके हृदयमें आ जाता है, उसीका हृदय पवित्र हो जाता है। उनके अंग-प्रत्यंगकी शोभाका वर्णन अनेक सरस्वतियाँ और शेष भी करना चाहें तो भी नहीं कर पा सकते। तुलसीदास कहते हैं कि जब बड़ा भाग्य होता है तभी उनमें मन लग पाता है और मन लगाते (ध्यान करते) ही सभी सुख आ बरसते हैं ॥ १ ॥ (२८)

'अरी सखी ! जबसे कुँवर कन्हैया ब्रज छोड़कर (मथुरा) गए, तभीसे वियोगका वृष-मास पाकर विरहका सूर्य समान रूपसे तप चला है ॥ १ ॥ और हृदय-रूपी आकाशमें ऐसा आ डटा है कि उसका रथ हटाए नहीं हटता। इसीसे उस (विरहके सूर्यका) तेज भी नहीं घट रहा है। हमारी सभी इन्द्रियाँ सबकी सुध भुलाकर केवल उन (कृष्ण)-के सुन्दर रूपका ही चिंतन करती रहती हैं ॥ २ ॥ (यह विरहका सूर्य) हमारे हृदयके शोक और भय-रूपी चकवे और कमलके लिये तथा भ्रम-रूपी भौंरोंके लिये तो सुखदायी हो गया है (विरहमें हमारा शोक, भय और भ्रम बढ़ गया है) पर यह हमारे चित्त-रूपी चकोर, मन-रूपी मोर तथा आनन्द-रूपी कुमुदको बहुत व्याकुल किए डाल रहा है (न चित्त शान्त है, न मन स्थिर है, न आनन्द ही बच रहा गया

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तनु - तड़ाग बल - बारि सुखन लग्यो, परी कुरुपता - काई।
प्रान - मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई॥ ४॥
'तुलसीदास' मनोरथ - मन - मृग, मरत जहाँ - तहँ धाई।
राम - स्याम सावन - भादों - बिनु, जिय - की जरनि न जाई॥ ५॥ (२९)

ससि - तें सीतल मोको लागै माई री! तरनि।
याके उए बरति अधिक अँग-अँग दव, वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि।
सब बिपरीत भए माधव - बिनु, हित जो करत, अनहित - की करनि।
'तुलसिदास' स्यामसुंदर-बिरह-की दुसह दसा, सो मोपै परति नहीं बरनि॥१॥(३०)

संतत दुखद सखी! रजनीकर।
स्वारथ - रत तब, अबहुँ एकरस, मोको कबहुँ न भयो - ताप - हर॥ २॥
निज अंसिक सुख लागि चतुर अति, कीन्हीं प्रथम निसा सुभ सुंदर।
अब बिनु मन, तन दहत दया तजि, राखत रबि ह्वै नयन बारिधर॥ २॥
जद्यपि है दारुन बड़वानल, राख्यो जलधि गँभीर धीरतर।
ताहु-तें परम कठिन जान्यो ससि, तज्यो पिता तब भयो व्योम-चर॥ ३॥

है)॥३॥ इस विरह-रूपी सूर्यके कारण शरीर-रूपी तड़ाग और बल-रूपी जल सूख चला है और (मुखपर) कुरूपता-रूपी काई आ छाई है। मछलीके समान हमारे प्राण दिन-दिन दुर्बल हुए जा रहे हैं। अब तो हमारे दुःख इतने बढ़ चले हैं कि सहे नहीं जा रहे हैं॥ ४॥ तुलसीदास कहते हैं कि मनके मनोरथ-रूपी मृग जहाँ-तहाँ दौड़ते हुए छटपटा-छटपटाकर मरे जा रहे हैं (मनकी कोई इच्छा पूरी नहीं हो पा रही है)। सावन और भादों-रूपी बलराम और श्यामके आए बिना कोई हमारे जीकी जलन नहीं दूर कर पा सकता'॥ ५॥ (२९)

'अरी माई! मुझको तो यह सूर्य आज चन्द्रमासे भी अधिक शीतल लग रहा है। इस (चन्द्रमा) के उदय होते ही अंग-प्रत्यंगमें और भी अधिक आग भड़की पड़ रही है और उस (सूर्य) के उदय होते ही रात्रि-की सारी ज्वाला दूर हो मिटती है। हाय! कृष्णके बिना सब बैरी हो बैठे हैं। जो भलाई करते थे, वे भी अब बुराई करनेपर उतारू हैं। तुलसीदास कहते हैं कि श्यामसुन्दरके विरहकी दशा इतनी दुःसह हो चली है कि मुझसे कहते नहीं बन पा रही है'॥१॥(३०)

'अरी सखी! यह चन्द्रमा तो सदासे दुःखदायी रहा है। यह पहले (कृष्णके रहते समय) भी स्वार्थी था, अपने अंश मनको उनमें रमाए रखता था और अब भी वैसा ही है (अपने अंशभूत मनको कृष्णमें लगाए बैठा है)। मेरे लिये तो यह कभी भी ताप हरने वाला हुआ नहीं॥ १॥ यह इतना धूर्त है कि अपने अंशभूत मनके सुखके लिये इसने पहलेसे ही सुन्दर (रासकी) रात्रिकी रचना कर धरी थी और अब निर्दयी होकर मेरे इस बिना मनवाले शरीरको निरन्तर जलाए जा रहा है। वह तो कहो कि, सूर्य मेरी आँखोंमें बादल बसाकर (आँसू बरसाकर) मुझे बचाए हुए है (नहीं तो न जाने कबकी जलकर भस्म हो चुकी रहती)॥ २॥ बडवानल (समुद्रकी अग्नि) भी बहुत भयंकर है तब भी गंभीर समुद्र बड़े धैर्यके साथ उसे रोके रहता है (जलाने नहीं देता)। पर इस चन्द्रमाको तो मैं उससे भी कहीं अधिक कठोर समझती हूँ। इसीलिये जबसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सकल बिकार-कोस बिरहिनि-रिपु, काहे याहि सराहत सुर - नर।
'तुलसिदास' त्रैलोक्य - मान्य भयो, कारन इहै, गह्यौ गिरिजा-बर ॥ ४ ॥(३१)

राग मलार

कोउ सखि नई चाह सुनि आई।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति - सों मदन मिलिक करि पाई ॥ १ ॥
घन - धावन, बग-पाँति पटोसिर[1], बैरख[2] - तड़ित सोहाई।
बोलत पिक नकीब, गरजनि - मिस मानहु फिरति दोहाई ॥ २ ॥
चातक, मोर, चकोर, मधुप, सुक, सुमन, समीर सहाई।
चाहत कियो बास बृंदाबन, बिधि - सों कछु न बसाई ॥ ३ ॥
सींव न चाँपि सको कोऊ तब, जब हुते राम - कन्हाई।
अब 'तुलसी' गिरिधर-बिनु गोकुल, कौन करिहि ठकुराई ॥ ४ ॥(३२)

राग सोरठ

ऊधो ! ब्रज - की दसा बिचारो।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी, जोगकथा बिस्तारो ॥ १ ॥
जा कारन पठए तुम माधव, सो सोचहु मन - माहीं।
केतिक बीच बिरह - परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं ॥ २ ॥

उस (चन्द्रमा)-के पिता (समुद्र)-ने उसे घरसे निकाल बाहर किया तबसे वह आकाशचारी (आवारा) हो गया है ॥३॥ इस (चन्द्रमा)-में सभी विकार ही विकार तो हैं और विरहिणियोंका तो यह शत्रु ही है, फिर भी न जाने क्यों देवता और मनुष्य इसकी सराहना करते रहते हैं ? तुलसीदास कहते हैं कि मेरी समझमें तो त्रैलोक्यमें इसके मान्य होनेका एक मात्र यही कारण जान पड़ता है कि गिरिजापति शंकर इसे अपनाए बैठे हैं (मस्तकपर धारण किए हुए हैं) ॥ ४ ॥ (३१)

कोई सखी एक यह नई बात सुनकर आई कि यह सारी ब्रज भूमि कामदेवने इन्द्रसे मिलकियतमें पा ली है ॥ १ ॥ घन (बादल) ही उसके धावन (दूत) हैं, बगुलोंकी पंक्ति ही पट्टश्री है, बिजली ही उसकी सुन्दर पताका है, कूकती हुई कोयलें ही बंदीजन हैं तथा बादलोंका गर्जन ही मानो उसकी दुहाई फिर रही है ॥ २ ॥ पपीहा, मोर, चकोर, भौंरे, शुक, पुष्प और पवन सब उसके सहायक (मंत्री) हैं। ये सबके सब अब वृन्दावनमें निवास करने आ डटे हैं। (किया क्या जाय ?) विधातापर हमारा कुछ बस भी तो नहीं है ॥३॥ उस समय जब कृष्ण-बलराम यहाँ थे, तब तो ब्रजकी सीमामें कोई प्रवेश न कर पाया। तुलसीदास कहते हैं कि अब बताओ गिरिधर गोपालके न रहनेपर ब्रजका नेतृत्व करनेवाला रह कौन गया है ॥ ४ ॥ (३२)

(उद्धवसे योगकी बातें सुनकर एक गोपी कहने लगी—) 'उद्धव ! पहले ब्रजकी वर्त्तमान दशापर तनिक विचार करलो, तब अपनी यह योग-सिद्धिकी कथा (-का आडम्बर) फैलाना ॥ १ ॥ तुम्हें माधवने जिस कामसे यहाँ भेजा है उसपर अपने मनमें सोच तो लो। विरह और परमार्थकी दशामें कितना अंतर है, इसे तुम जानते हो या नहीं ? ॥ २ ॥ तुम तो परम चतुर हो, अपनेको

१. पटोसिर=पट्टश्री (राजाओं के सिहासनके आगे टँगा वंशविरदावलीका पट) । २. बैरख=पताका।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परम चतुर, निज दास स्याम - के, संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त, अवलंब फेन - को, फिरि-फिरि कहा कहत हौ॥ ३॥
वह अति ललित मनोहर आनन, कौने जतन बिसारौं।
जोग-जुगुति, अरु मुकुति बिबिध बिधि, वा मुरली-पर वारौं॥ ४॥
जेहि उर बसत स्यामसुंदर-घन, तेहि निरगुन कस आवै।
'तुलसिदास' सो भजन बहाओ, जाहि दूसरो भावै[1]॥ ५॥(३३)

मधुकर[2]! कहहु, कहन जो पारो।
नाहिंन, बलि, अपराध रावरो, सकुचि, साध जनि मारो॥ १॥
नहिं तुम ब्रज बसि नंदलाल - का बाल - विनोद निहारो।
नाहिंन रास-रसिक रस चाख्यो, तातें डेल सो डारो[3]॥ २॥
'तुलसी' जौ न गए प्रीतम - सँग प्रान, त्यागि तनु न्यारो।
तौ सुनिबो, देखिबो, बहुत अब, कहा करस-सों चारो?॥ ३॥(३४)

श्यामका अनन्य दास (दूत) कहते हो और सदा उन्हींके निकट रहते भी हो, फिर (कृष्णके प्रेमके) जलमें डूबी रहनेवाली (गोपियों)-को फेन (योग)-का सहारा लेनेके लिये क्यों बार-बार कहे जा रहे हो ?॥ ३॥ भला बताओ तो सही कि श्याम सुन्दरका वह अत्यन्त सुन्दर और मनको हरनेवाला मुखड़ा मैं भुला कैसे दूँ ? मैं तो योगकी अनेक प्रकारकी युक्ति तथा मुक्ति सबको उनकी मुरलीपर निछावर कर डालती हूँ॥ ४॥ जिस हृदयमें सुन्दर घन-श्याम बसे हुए हैं उसमें, बताइए, आपका निर्गुण ब्रह्म समा कैसे सकता है ? तुलसीदास कहते हैं कि जिसको श्यामसुन्दरके अतिरिक्त दूसरेका भजन प्रिय लगता हो उस भजनको बहा दो (वह भजन भाड़में जाय)॥ ५॥ (३३)

'अच्छा भौंरे ! जो कहना हो (जो मनमें हो), कह डालो। बलिहारी जाती हूँ तुमपर। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। तुम संकोचमें पड़कर अपनी साध कम न करो। (जो कुछ कहना हो कह डालो जिससे तुम्हारी कहनेकी साध पूरी हो जाय)॥ १॥ तुमने ब्रजमें रहकर न तो नन्दलालका बालविनोद ही देखा और न रासके रसिककी रासलीलाका ही रस लिया। इसीलिये तो (हमारे प्रेमके मार्गमें) रोड़े अटकाए जा रहे हो'॥ २॥ तुलसीदास कहते हैं (कि पुनः गोपी कहने लगी—) 'अभी क्या है, हमारे ये (निर्लज्ज) प्राण शरीर छोड़कर प्रियतम (कृष्ण)-के

---

१. यह पद (३३) अक्षरशः सूरसागर (४२३९ ना. प्र. सभा, काशी)-का है। सूरदासके बदले 'तुलसीदास' नाम किसी राम-भक्तने डाल दिया है।

२. मधुकर : भौंरा, उद्धव। [जब उद्धव ब्रजमें गोपियोंको योगका उपदेश दे रहे थे उसी समय कहींसे एक भौंरा उड़ा चला आया। बस गोपियाँ उद्धवको लक्ष्य करके 'मधुकर' (भ्रमर)-से उनकी समानता बताकर उपालंभ देने लगीं।]

३. डेल सो डारो = पत्थर या रोड़े डाले दे रहे हो।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऊधोजू ! कह्यो तिहारोइ कीबो।
नीके जिय - की जानि, अपनपौ समुझि, सिखावन दीबो ॥ १ ॥
स्याम - बियोगी ब्रज - के लोगनि जोग - जोग जौ जानो।
तौ सकोच परिहरि, पाँलागौं, परमारथहिं बखानो ॥ २ ॥
गोपी, गाय, ग्वाल, गोसुत सब, रहत रूप - अनुरागे।
दीन, मलीन, छीन - तनु डोलत, मीन मजा-सों[1] लागे ॥ ३ ॥
'तुलसी' है सनेह दुखदायक, नहिं जानत अस को है ?
तऊ न होत कान्ह - को - सो मन, सबै साहिबहिं सोहै ॥ ४ ॥(३५)

राग बिलावल

सो कहौ मधुप जो मोहन कहि पठई।
तुम सकुचत कत ? हौं ही नीके जानति, नँदनंदन हो निपट करी सठई ॥ १ ॥
हुतो न साँचो सनेह, मिट्यो मन-को संदेह, हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई।
'तुलसिदास' कौन आस मिलन-की, कहि गए सो तौ, कछु एकौ न चित ठई ॥२॥(३६)

साथ जब नहीं चले गए, तो अभी इन्हें बहुत कुछ सुनना और देखना बदा है। भाग्यके आगे हमारा चारा ही क्या है ?' ॥ ३ ॥ (३४)

'देखिए ऊधो ! हमारा हृदय भली-भाँति समझकर और हमें अपना समझकर तब अपनी सीख दीजिए ॥ १ ॥ यदि श्यामसे बिछुड़कर भी ये ब्रजके लोग आपकी योग-विद्या ठीक समझते हों तो नमस्कार है आपको, आप सारा संकोच छोड़कर परमार्थ (योग)-का पूरा बखान अवश्य कर डालिए ॥ २ ॥ यहाँ तो गोपी, गाय, ग्वाल और बछड़े सभी श्यामसुन्दरके रूपके पीछे पागल हैं और वे बड़े दुखी, उदास और दुबले हो-होकर ऐसे तड़प रहे हैं जैसे मजा[2] (माँजा)-के नशेमें मछली तड़पने लगती है ॥ ३ ॥ (तुलसीदास कहते हैं—) यहाँ (ब्रजमें) भला ऐसा कौन है, जो यह न जानता हो कि प्रेम करनेमें दुःख ही दुःख है, फिर भी कन्हैया-जैसा यहाँ किसीका मन नहीं (कि नाता तोड़कर चल दिए)। वे स्वामी हैं, स्वामी (समर्थ) तो जो कुछ करें सब ठीक है' (समरथको नहिं दोस गुसाईं) ॥ ४ ॥ (३५)

'देखो भौंरे ! वही बात कह डालो जो मोहनने कहला भेजी हो। तुम संकोच क्यों किए जा रहे हो ? मैं तो भली-भाँति जानती हूँ कि कृष्णने सरासर धूर्त्तता की है ॥ १ ॥ वे सच्चा स्नेह नहीं करते थे यह मेरा सन्देह अब मिट गया। जब कृष्णने देखा कि अब तो (हमारे प्रेमकी) पोल खुल गई तब उन्होंने सँदेसा भेजनेका यह रूपक ठान दिया। (तुलसीदास कहते हैं) उनके मिलनेकी अब आशा ही कहाँ है ? वे जो कुछ कह गए थे उसमेंसे एक भी बात तो उन्होंने पूरी नहीं की' ॥ २ ॥ (३६)

१. माँजा: पहली वर्षासे जलपर छाई हुई फेन, जिसे खानेसे मछली तड़पकर प्राण दे डालती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मेरे जान, और कछु न मन गुनिए।
कूबरी-रवन कान्ह, कही जो मधुप-सों, सोई सिख सजनी ! सुचित दै सुनिए ॥ १ ॥
काहे - को करति रोष, देहि धौं कौने-को दोष, निज नयननि-को बयो सब लुनिए।
दारु - सो सरीर, कीट पहिले सुख, सुमिरि - सुमिरि वासर - निसि घुनिए ॥ २ ॥
ये सनेह सुचि, अधिक - अधिक रुचि, बरज्यो न करत कितो सिर धुनिए।
'तुलसिदास' अब नंदसुवन - हित, विषम बियोग - अनल तनु हुनिए ॥३॥(३७)

भली कही आली ! हमहुँ पहिचाने।
हरि निर्गुन, निर्लेप, निरपने, निपट निठुर, निज काज सयाने ॥ १ ॥
ब्रज-को बिरह, अरु संग महर-को, कुबरिहि बरत न नेकु लजाने।
समुझि प्रीति-की रीति स्याम-की, सो बावरि जो परेखो आने ॥ २ ॥
सुनत न सिख लालची बिलोचन, एतेहु - पर रुचि लोभ लुभाने।
'तुलसिदास' इहि अधिक कान्ह-पहँ, नीके-ई मन रहत समाने ॥ ३ ॥(३८)

राग मलार

जौ पै अलि ! अंत इहै करिबे हो।
तौ अतुलित अहीर अबलनि - को, हठि न हियो हरिबे हो ॥ १ ॥

(एक गोपी दूसरीसे कहती है—) 'अरी सखी ! मेरी समझसे तो अब तू अपने मनमें और कोई दूसरी बात सोच ही मत। कुबड़ीसे प्यार करनेवाले कन्हैयाने जैसा कुछ मधुप (उद्धव)-से कहलाया है, वही सीख सावधान होकर सुनती जा ॥ १ ॥ बिगड़ी क्यों पड़ रही है और किसीको दोष ही क्यों दे रही है ? अपनी आँखोंने जो (विष) बोया है, वही सब काटे (पाए) जाओ। इस शरीर-रूपी काठमें पहले (कृष्णके साथके) सुखका ऐसा कीड़ा लगा है कि उसी सुखको स्मरण कर-करके दिन-रात शरीर घुना चला जा रहा है ॥ २ ॥ इस पवित्र प्रेममें तो अब इतना अधिक मन रम गया है कि अब तो यह (उद्धव) चाहे जितना भी बैठा सिर धुना करे पर यह हटाए नहीं हट सकता। तुलसीदास कहते हैं कि अब तो कृष्णके प्रेमके बिछोहकी धधकती अग्निमें शरीर झोंकना ही है' ॥ ३ ॥ (३७)

'अरी सखी ! यह तो तूने बड़ी बढ़िया बात कही। हम भी अब पहचान गए। यद्यपि हरि निर्गुण, निर्लेप और पराये हो गए हैं, पर हैं वे बड़े ही निष्ठुर और अपना स्वार्थ गाँठनेमें तो बड़े ही पक्के हैं ॥१॥ देखो ! नन्द महरको छोड़कर और सारे ब्रजको बिरह (की भट्टी)-में झोंककर उस कुबड़ीको अपनानेमें उन्हें तनिक भी लाज न आई। श्यामके ऐसे प्रेमका रंग-ढंग समझकर भी जो अब उनसे प्रेम पानेकी आस लगावे वह सचमुच ही बावली है ॥ २ ॥ अरी सखी ! ये (कृष्णके) रूपके लोभी नेत्र उद्धवकी शिक्षा सुन कहाँ रहे हैं ? इतना सब हो चुकनेपर भी इनका मन नन्दलालके रूपमें उलझा पड़ा है। (तुलसीदास कहते हैं) कन्हैयाकी इतनी ही बहुत बड़ी कृपा है और यही अच्छा भी है कि वे हमारे मनमें तो बसे हुए हैं' ॥ ३ ॥ (३८)

'अरी सखी ! जब कन्हैयाको यही सब करना था तो उन्हें इन बेचारी ग्वालिनोंका हृदय हठ-पूर्वक हर नहीं लेना चाहिए था ॥ १ ॥ यदि प्रेम करके अन्तमें यही सब झंझट खड़ी करनी थी,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जौ प्रपंच परिनाम प्रेम फिरि, अनुचित आचरिबे हो।
तौ मथुराहि महा - महिमा लहि, सकल ढरनि ढरिबे हो॥ २॥
दै कूबरिहि रूप, ब्रज - सुधि भे, लौकिक डर डरिबे हो।
ज्ञान, बिराग, काल - कृत करतब, हमरेहि सिर धरिबे हो॥ ३॥
उनहिं राग रबि नीरद-जल ज्यों, प्रभु - परमिति परिबे हो।
हमहुँ निठुर, निरुपाधि, नेह - निधि, निज भुजबल तरिबे हो॥ ४॥
भलो भयो सब भाँति हमारो, एक बार मरिबे हो।
तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर, जरि, जीवन भरिबे हो॥ ५॥(४०)

ऊधो! यह ह्याँ न कछू कहिबे ही।
ज्ञान - गिरा कूबरी - रमन - की, सुनि, बिचारि गहिबे ही॥ १॥
पाइ रजाइ नाइ सिर गृह ह्वै, गति-परमिति लहिबे ही।
मति - मटुकी, मृगजल भरि घृत-हित, मनही मन महिबे ही॥ २॥
गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही।
'तुलसी' प्रभुहिं, तुम्हहिं, हमहूँ हिय, साँसति-सी सहिबे ही॥ ३॥(४०)

मधुकर! कान्ह कही, ते न होहीं।
कै ये नई सिखी सिखई हरि, निज - अनुराग - बिछोहीं॥ १॥

तो प्रेम करना ही नहीं चाहिए था और तब मथुराका अपार वैभव लेकर उसी रंगमें रंग जाना चाहिए था॥ २॥ कुबड़ीको रूप देकर, ब्रजकी सुधि आनेपर अब लोक-लाजसे डरने चले हैं। पर यह तो समयका फेर है, नहीं तो क्या ज्ञान-वैराग्य हमारे ही सिर मढ़नेके लिये था॥ ३॥ सूर्य जैसे मेघ बनकर जल खींच तो लेता है पर उससे कोई राग (प्रेम) नहीं करता वैसे ही ब्रजराज भी राज-मर्य्यादाका पालन कर रहे हैं (हमें आकृष्ट करके भी हमसे प्रेम नहीं करते)। हमको तो अब निष्ठुर, निरुपाधि (सब उपाधियोंसे अलग) प्रेमके समुद्रको अपने ही बलपर पार करना है॥ ४॥ हमारा तो सब प्रकारसे भला ही हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि जब एक दिन मरना ही है तो क्यों न कान्हाके विरहमें नित्य नई-नई जलनसे जलते हुए अपना जीवन खपा डाला जाय'॥ ५॥ (३९)

'देखो उद्धव! अब ये बातें यहाँ कहनेसे क्या लाभ। अब तो कुबड़ी-रमन (कृष्ण)-की भेजी हुई ज्ञानकी बातें सुन और समझकर मान ही लेनी पड़ेंगी॥ १॥ अब तो घरको सिर नवाकर (घरसे नाता तोड़कर) और घरवालोंसे आज्ञा लेकर (योग साधकर) परम गति प्राप्त करनी ही है। अतः, घी निकालनेके लिये बुद्धिकी मटकीमें मृगजल (कल्पित जल) भरकर उसे बैठकर मथना ही होगा॥ २॥ जिस प्रेमका बिरवा हमने लगाया उसे उखाड़ना ठीक नहीं है। अब उसे निबाहनेमें ही हमारी बनेगी (हमारा कल्याण होगा)। तुलसीदास कहते हैं कि नहीं तो प्रभुको, तुम्हें और हमें, सबको यह योग (का अभ्यास करने)-की साँसत (व्यथा) सहनी पड़ जायगी॥ ३॥ (४०)

'देखो मधुकर (भौंरे)! 'तुम जो कुछ कह रहे हो वह कन्हैयाका संदेश नहीं है। यह तो कृष्णने अपना प्रेम समाप्त करके सीखी-सिखाई बात कही है॥ १॥ सच तो यह है कि (उस

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राखी सचि कूबरी - पीठ - पर, ये बातैं बकुचौहीं।
स्याम - सो गाहक पाइ सयानी, खोलि देखाइहै गौं हीं॥ २॥
नागर - मनि सोभा - सागर जेहि, जग जुवती हँसि मोहीं।
लियो रूप, दै ज्ञान - गाँठ री! भलो ठग्यो ठग ओहीं॥ ३॥
है निर्गुन सारी बारिक, बलि, घरी करौ[1], हम जोहीं।
'तुलसी', ये नागरिन्ह - जोग पट, जिन्हहिं आज सब सोहीं॥ ४॥ (४१)

मधुप! तुम कान्ह - ही - की कही क्यों न कही है?
यह बतकही चपल चेरी-की, निपट चरेरीऐ[2] रही है॥ १॥
कब ब्रज तज्यौ? ज्ञान कब उपज्यौ? कब बिदेहता लही है।
गए बिसारि रीति गोकुल - की, अब निर्गुन गति गही है॥ २॥
आयसु देहु, करहिं सोइ सिर धरि, प्रीति-परमिति निरबही है।
'तुलसी' परमेस्वर न सहैगो, हम अबलनि सब सही है॥ ३॥ (४२)

दीन्हीं है मधुप सबहिं सिख नीकी।
सोइ आदरौ आस जाके जिय, बारि बिलोवत घी - की॥ १॥

रुई) कुबड़ीने इन सब बातोंकी गठरी बाँधकर उनकी पीठपर लाद दी है और उस चालाक कुबड़ीने श्यामसुन्दरको सीधा-सादा गाहक पाकर अपना उल्लू सीधा कर लिया है (स्वार्थ साध लिया है)॥ २॥ चतुरोंके सरदार और परम सुन्दर जिन कृष्णको संसारकी युवतियाँ हँसकर मोहित कर लेती हैं, उन्होंने अपने सौन्दर्यसे उस कुबरीको इतना मुग्ध कर लिया है कि उस ठगनीने ज्ञानकी गठरी देकर उन्हें भली-भाँति ठग धरा॥ ३॥ बलिहारी है तुमपर, हमने भली-भाँति समझ लिया है कि यह जो बहुत महीन निर्गुणका योग-पट (योगका कपड़ा) आप लिए चले आए हैं, इसे तह लगाकर अपने पास सँभाल रखिए। यह नगर-नारियोंको ही फबेगा (यहाँ कोई इसके फेरमें पड़ने-वाला नहीं है)॥ ४॥ (४१)

'अरे मधुप (भौंरे)! तुम्हें चाहिए था कि कन्हैयाकी ही कही हुई बातें हमसे आकर बताते। वे तुमने क्यों नहीं बतलाईं? ये सब जो रूखी-रूखी बातें तुम कहे जा रहे हो, ये (उसी) नटखट चेरी (कुबड़ी)-की हैं॥ १॥ भला कन्हैयाने कब तो गोकुल छोड़ा और कब उन्हें इतना ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने कब विदेहता (शरीरका मोह छोड़नेकी क्रिया) प्राप्त कर ली? अब वे गोकुलकी रीति भूलकर निर्गुण पंथ ग्रहण करने चले हैं॥ २॥ (हमने तो उनसे प्रेम किया है, इसलिये) अब तो उनसे प्रेम करनेके परिणामका निर्वाह हमें करना ही है, इसलिये जो आज्ञा दें वही शिरोधार्य किए लेती हैं। हम अबलाओंने (उनके विरहमें) जैसा कष्ट सहा है वैसा तो परमेश्वर भी न सहेगा'॥ ३॥ (४२)

'आहा! इस मधुप (भौंरे, उद्धव)-ने हम सबको अच्छी सीख दी है। अब तो इसी शिक्षाका आदर करो और घी निकालनेके लिये चुपचाप बैठकर जल मथो॥ १॥ कन्हैया तो

---

१. घरी करौ = तह लगाकर धर रक्खो। २. चरेरी = रूखी, कर्कश।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बूझी बात कान्ह - कुबरी - की, मधुकर कछु जनि पूछौ।
ठाली ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो पछोरन छूछो ॥ २ ॥
हमहूँ कछुक लखी ही, तब - की औरेबैं[1] नंदलला - की।
ये अब लही चतुर चेरी - पै, चोखी चालि चलाकी ॥ ३ ॥
गऐ कर - तें, घर - तें, आँगन - तें, ब्रजहू - तें ब्रजनाथ।
'तुलसी' प्रभु गयो चहत मनहुँ - तें, सो तौ हमारे हाथ ॥ ४ ॥ (४३)

ताकी सिख, ब्रज न सुनैगो कोउ भोरे।
जाकी कहनि रहनि अनमिल, अलि ! सुनत समुझयित थोरे ॥ १ ॥
आपु कंज - मकरंद सुधा - ह्रद, हृदय रहत नित बोरे।
हम - सों कहत बिरह - स्रम जइहै, गगन - कूप खनि खोरे ॥ २ ॥
धान-को गाँव पयार-ते जानिय, ज्ञान बिषय मन मोरे।
'तुलसी' अधिक कहे, रहै न रस, गूलरि - सो फल फोरे ॥ ३ ॥ (४४)

आली ! अति अनुचित, उतर न दीजै।
सेवक, सखा, सनेही हरि-के, जो कछु कहैं सो कीजै ॥ १ ॥

कुबड़ीकी बात माने ही बैठे हैं, अब मधुकर (उद्धव)-से उस विषयमें कुछ न पूछो। हम ग्वालिनोंको बेकार समझकर हमें छूछा (भूसी) फटकने (व्यर्थकी बातोंमें भुलवानेको) हमारे पास इस भौंरेको ठेल भेजा है ॥२॥ यों तो हमने उस समय भी नन्दलालकी कुछ टेढ़ी चालें देखी थीं पर अब चालाकीसे भरी हुई चोखी चाल इस चतुर चेरीके सिखानेसे ही देखनेको मिल रही है ॥ ३ ॥ हमारे ब्रजनाथ (कृष्ण) तो हमारे हाथोंसे भी गए, घरसे भी गए, आँगनसे भी गए और अब पूरे ब्रजसे भी चले गए। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु चाहते हैं कि अब मनसे भी चले जायँ पर वह (मन) तो हमारे हाथमें है (वहाँसे कैसे जाने पावेंगे ?)' ॥ ४ ॥ (४३)

'सखी ! जिस (उद्धव)-का कहना और (उसके कथनानुसार) रहना सब कुछ बेढंगा है, उसकी सीख कोई ब्रजमें भूलकर भी न सुनेगा। बस हमारी बात थोड़ेमें ही समझ लो ॥ १ ॥ यह उद्धव स्वयं तो नित्य कमलके मकरंदके समान अमृतके तड़ागमें अपना हृदय डुबोए रहता है (कृष्णके प्रेममें मग्न रहता है) और हमसे कहता है कि आकाशमें कुआँ खोदकर स्नान करनेसे (निर्गुणकी साधनासे) विरहका कष्ट मिटेगा ॥२॥ मेरी तो यही समझमें आता है कि जैसे पुआल देखकर गाँवके धानका अनुमान होता है वैसे ही हम समझ गईं कि इनका यह सारा ज्ञान कितना है (कुछ नहीं)। तुलसीदास कहते हैं कि गूलरको फोड़ देनेसे जैसे उसमें कोई रस नहीं रह जाता वैसे ही इनके इस (थोथे) ज्ञानके संबंधमें बहुत कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है' ॥ ३ ॥ (४४)

'अरी सखी ! कृष्णके सेवक, सखा या प्रेमी उद्धव जो कहते हैं वही करो। उन्हें कोई उत्तर मत दो (उनसे तर्क-वितर्क मत करो)। यह बहुत अनुचित है ॥ १ ॥ देश और कालके

---

१. औरेबैं=टेढ़ी चालें।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देस - काल उपदेस, सँदेसो, सादर सब सुनि लीजै।
कै समुझिबो, कै ये समुझैहैं, हारेहु मानि सहीजै ॥ २ ॥
सखि ! सरोष प्रिय - दोष बिचारत, प्रेम - पीन - पन छीजै।
खग - मृग - मीन - सलभ - सरसिज - गति सुनि पाहनौ पसीजै ॥ ३ ॥
ऊधो परम हितू, हित सिखवत, परमिति पहुँचि पतीजै।
'तुलसिदास' अपराध आपनो, नंदलाल - बिनु जीजै ॥ ४ ॥ (४५)

ऊधो हैं बड़े, कहैं सोइ कीजै।
अलि ! पहिचानि प्रेम-की परमिति, उतर फेरि नहिं दीजै ॥ १ ॥
जननी-जनक जरठ, जाने जन, परिजन लोग न छीजै।
दै पठयो पहिलो बिढ़तो[1] ब्रज, सादर सिर धरि लीजै ॥ २ ॥
कंस मारि, जदुबंस सुखी किय, स्रवन सुजस सुनि जीजै।
'तुलसी' त्यों - त्यों गरुइ होइगी, ज्यों - ज्यों कामरि भीजै ॥ ३ ॥ (४६)

अनुसार उनके सँदेसेके रूपमें यह उपदेश आदरके साथ सब सुन लो। इसे या तो स्वयं समझ लो, या ये ही समझा देंगे। अब अपनी हार मानकर यह (साँसत) भी सह लो ॥२॥ देखो सखी ! क्रोध करके अपने प्यारेके दोषोंपर विचार करनेसे प्रेमका सच्चा प्रण नष्ट हो जाता है। पक्षी (चुग्गेसे), मृग (संगीतसे), मछली (चारेसे), फतिंगा (आगकी चमक)-से और कमल (सूर्य)-से जो प्रेम करते हैं (और प्राण दे देते हैं) उनकी कथा सुनकर तो पत्थर भी पसीज उठता है (किन्तु हम विरहिणियोंकी दशा देख और समझकर भी उद्धवका हृदय नहीं पसीज रहा है और ये योगका उपदेश दिए चले जा रहे है) ॥ ३ ॥ उद्धव हमारे बड़े हितैषी हैं। ये हमें बड़े हितकी बात सिखाए डाल रहे हैं। इसके परिणामपर विश्वास किए रहो। तुलसीदास कहते हैं कि हमारा तो यही (क्या कम) अपराध है कि हम कृष्णके बिना जीए जा रही हैं' ॥ ४ ॥ (४५)

'देखो सखी ! उद्धव बड़े हैं। ये जो कुछ कहें वह आँख मूँदकर मान लो। प्रेम करनेका जो परिणाम हुआ करता है वह समझकर इन्हें कुछ उत्तर देकर लौटाओ मत ॥ १ ॥ कृष्णके माता-पिता, बड़े बूढ़े, भक्त और कुटुम्बी जन यहाँ दुखी न हों इसलिये यह जो सँदेसा उन्होंने पहली कमाई (भेंट)-के रूपमें भेजा है जिसे आदरके साथ सिरमाथे चढ़ा लो ॥ २ ॥ कृष्णने कंसको मारकर यदुवंशको बहुत सुखी कर दिया। उनका यह सुयश ही कानोंसे सुन-सुनकर जीती रहो। तुलसीदास कहते हैं कि ज्यों ज्यों कम्बल भीगता है त्यों त्यों वह भारी होता चलता है (जैसे-जैसे हम कष्ट झेलती चलेंगी वैसे-वैसे हमारा प्रेम भी बढ़ता चलेगा)' ॥ ३ ॥ (४६)

'देखो भौंरे (उद्धव) ! जान पड़ता है कन्हैया कुछ नये ज्ञानी-गुरु हो गए हैं। कुछ तुम्हारी कही बात ठीक मानकर और कुछ अपने आप भी हम समझ गई हैं ॥१॥ हमने कुछ ऐसी कड़वी बात सुनी है

१. बिढ़तो=बृद्धि, कमाई, उपहार।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कान्ह, अलि ! भए नये गुरु ज्ञानी।
तुमरे कहत आपने समुझत, बात सही उर आनी ॥ १ ॥
लिये अपनाइ लाइ चन्दन तन, कछु कटु चाह उड़ानी।
जरी सुँघाई कूबरी कौतुक, जोगी बघा - जुड़ानी ॥ २ ॥
ब्रज बसि रास - बिलास, मधुपुरी चेरी - सों रति मानी।
जोग - जोग ग्वालिनि बियोगिनी, जान - सिरोमनि जानी ॥ २ ॥
कहिबे कछू, कछू कहि जैहौ, रहौ आलि अरगानी।
'तुलसी' हाथ पराए प्रीतम, तुम प्रिय - हाथ बिकानी ॥ ४ ॥ (४७)

सब मिलि साहस करिय सयानी।
ब्रज आनियहि मनाइ पाँय परि, कान्ह, कूबरी रानी ॥ १ ॥
बसैं सुबास, सुपास होहि सब, फिरि गोकुल रजधानी।
महरि-महर जीवहिं सुख-जीवन, खुलहि मोद-मनि-खानी ॥ २ ॥
तजि अभिमान-अनख, अपनो हित कीजिय, मुनिबर-बानी।
देखिबो दरस, दूसरेहु - चौथेहु, बड़ो लाभ, लघु हानी ॥ ३ ॥
पावक परत निषिद्ध लाकरी, होति अनल जग जानी।
'तुलसी' सो तिहुँ भुवन गाइबी नंद-सुवन सनमानी ॥ ४ ॥ (४८)

कि कुबड़ीने कंसके लिये ले जाया जानेवाला चंदन कन्हैयाके शरीरमें पोतकर उन्हें अपनालिया है। जैसे योगी जड़ी सुँघाकर बाघको वशमें कर लेते हैं वैसे ही उसने कृष्णको जड़ी सुँघाकर उनपर जादू कर डाला है ॥२॥ वे ब्रजमें रहे तो यहाँ रासविलास करते रहे और अब मथुरा पहुँचे तो वहाँ दासीके फेरमें जा फँसे। ज्ञानके शिरोमणि कृष्ण समझ बैठे हैं कि वियोगिनी ग्वालिन ही अब योगके योग्य बची रह गई हैं ॥ ३ ॥ हम कहना कुछ चाहती हों और मुँहसे न जाने क्या निकल जाय, इसलिये सखी ! अब चुप मारे बैठी रहो। तुम जिस प्रीतमके हाथ बिकी बैठी हो वे तो अब स्वयं पराई (कुबड़ी)-के हाथ बिके बैठे हैं' ॥ ४ ॥ (४७)

'अरी सयानी ! हम सब मिलकर कुछ ऐसा साहस करें कि रानी कुबड़ीके साथ कन्हैयाको मनाकर उनके पैरों पड़कर उन्हें ब्रजमें लिवा लावें ॥ १ ॥ तब गोकुलकी राजधानी भी भली प्रकार बस जायगी और सबको बड़ी सुविधा भी हो जायगी। महर नंद और महरि यशोदा भी सुखी जीवन व्यतीत करने लगेंगे और फिर आनंदके रत्नोंकी खान खुल जायगी (गोकुलमें आनन्द ही आनन्द छा जायगा) ॥ २ ॥ अब अपना अभिमान और चिढ़ छोड़कर और अपना कल्याण समझकर मुनिवर उद्धवकी बात मान लो। इस प्रकार उनका दूसरे-चौथे दर्शन तो हो जाया करेगा। यही क्या कम लाभ है। इसके लिये थोड़ी सी हानि भी हो जाय तो क्या (यहाँ हम सबके बीच न रहकर कूबरीके साथ रहने लगेंगे यह तो थोड़ी हानि अवश्य होगी पर कभी-कभी उनके दर्शन तो होते रहेंगे, यह कितना बड़ा लाभ है) ॥ ३ ॥ सारा संसार जानता है कि आगमें (गंदी) लकड़ी भी पड़कर जलकर आग ही हो जाती है (कुबड़ी भी कृष्णकी संगतिसे पवित्र हो गई है) इसलिये (तुलसीदास कहते हैं) अब तो तीनों लोकोंमें उस कुड़ड़ीका यश गाया जाने लगेगा ॥ ४ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कही है भली बात सब-के मनमानी।
प्रिय-सम प्रिय-सनेह-भाजन, सखि! प्रीति-रीति जग जानी॥ १॥
भूषन भूति गरल परिहरि, कै हर-मूरति उर आनी?
मज्जन-पान कियो कै सुरसरि, कर्मनास-जल छानी॥ २॥
पूँछ-सों प्रेम, बिरोध सींग-सों, यहि बिचार हित-हानी।
कीजै कान्ह-कूबरी-सों नित नेह, करम-मन-बानी॥ ३॥
'तुलसी' तजिय कुचालि आलि! अब, सुधरै सबइ नसानी।
आगे करि मधुकर मथुरा-कहँ, सोधिय सुदिन सयानी॥ ४॥ (४९)

राग कान्हरा

हे! हम समाचार सब पाए।
अब बिसेष देखे तुम देखे, हैं कूबरी हाँक-से लाए॥ १॥
मथुरा बड़ो नगर जन, जिन्ह जातहिं जदुनाथ पढ़ाए।
समुझि रहनि, सुनि कहनि, बिरह-व्रन, अनख अमिय ओषधि सरुहाए॥ २॥
मधुकर! रसिक-सिरोमनि कहियत, कौने यह रस-रीति सिखाए।
बिनु आखर-को गीत गाइ-कै, चाहत ग्वालिनि-ग्वाल रिझाए॥ ३॥

'(इस सखीने) बड़ी अच्छी बात कही है जो हम सबके मनको भा गई है। देखो सखी! प्यारे (कृष्ण)-के समान ही उनका प्रेम-पात्र (उद्धव) भी उतना ही प्यारा है। यह प्रेमकी रीति संसारमें प्रसिद्ध है॥ १॥ बताओ, कभी किसीने शिवका ऐसा भी ध्यान किया है कि न उनके तनपर साँपके भूषण हों, न शरीरपर श्मशानकी राख पुती हुई हो और न गलेमें नीला विष ही झलक रहा हो (शिवका रूप बिना इन सबके ध्यानमें आ ही नहीं सकता)। इसी प्रकार जहाँ कर्मनाशाका जल गंगाजीसे मिलता है वहाँके लोग क्या गंगासे कर्मनाशाका जल छानकर पीते और उसमें स्नान करते हैं (कभी नहीं)॥ २॥ बताओ, (अपने किसी पशुकी) पूँछसे प्रेम करे और सींगसे चिढ़े तो इससे क्या प्रेम टिका रह पा सकता है। इसलिये हमें मन, वचन और कर्मसे कृष्ण और कुबड़ी दोनोंसे निरंतर स्नेह करते ही रहना चाहिए॥ ३॥ (तुलसीदास कहते हैं) सखी! अब कुबड़ीसे ईर्ष्या करनेकी कुचाल छोड़ दो तो हमारी सब बिगड़ी बन जायगी (कृष्ण भी हमें मानने लगेंगे)। इसलिये सयानी! कोई अच्छा दिन देखकर इस भौंरे (उद्धव)-को आगे-आगे करके चलो मथुराके लिये चल दिया जाय'॥ ४॥ (४९)

'देखो उद्धव! हम सब राई-रत्ती जाने बैठी हैं। आपको देकर तो हम और भी अधिक समझ गई हैं कि आप कुबड़ीको ललकार (आज्ञा) लिए आए हैं॥ १॥ मथुरा बहुत बड़ा नगर है जहाँके चंट लोगोंने जाते ही यदुनाथको पढ़ा-सिखा दिया है। हम उनका रहन-सहन भी समझती हैं (कि कुबड़ीके साथ गुलछर्रे उड़ा रहे हैं) और तुम्हारा कहना (यह योगका लटका) भी सुन रही हैं। तुम तो जैसे बिरहके घावको कष्टका अमृत पिलाकर भरना चाह रहे हो॥२॥ अरे मधुकर! वे तो रसिक-शिरोमणि कहलाते हैं। उन्हें किसने प्रेमकी यह नई रीति पढ़ा सिखाई है कि तुम बिना अक्षर-वाले (निर्गुण ब्रह्मके) गीत गा-गाकर ग्वाल और ग्वालिनोंको रिझाने यहाँ चले आए हो॥ ३॥ हम

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

फल पहिले हि लह्यो ब्रजबासिन्ह, अब साधन उपदेसन आए।
'तुलसी' अलि, अजहूँ नहिं बूझत, कौन हेतु नँदलाल पठाए ॥ ४ ॥ (५०)

कौन सुनै अलि-की चतुराई।
मति-बिलास अपनिहि अकास - महँ, चाहत सियनि चलाई ॥ १ ॥
सरल सुलभ हरिभगति - सुधाकर, निगम - पुराननि गाई।
तजि सोइ सुधा मनोरथ करि - करि, को मरिहै, री माई ॥ २ ॥
जद्यपि ताको सोइ मारग प्रिय, जाहि जहाँ बनि आई।
मैन[1]-के दसन, कुलिस - के मोदक, कहत - सुनत बौराई ॥ ३ ॥
सगुन छीरनिधि - तीर बसत ब्रज, तिहुँ-पुर बिदित बड़ाई।
आक दुहन तुम कह्यौ सो परिहरि, हम यह मति नहिं पाई ॥ ४ ॥
जानत हैं जदुनाथ सबन - की बुधि - बिबेक - जड़ताई।
'तुलसिदास' जनि बकहि, मधुप सठ ! हठ निसि-दिन अँबराई ॥५॥ (५१)

राग केदारा

गोकुल प्रीति नित नइ जानि।
जाइ अनत, सुनाइ मधुकर ! ज्ञान-गिरा पुरानि ॥ १ ॥

ब्रजवासी तो पहले (उनके मथुरा जानेके समय)-से ही (विरहका) फल पाए बैठे हैं, उसपर अब तुम योगका उपदेश देने आ धमके हो !' (तुलसीदास कहते हैं) 'अरी सखी ! हम तो अब भी नहीं समझ पाई हैं कि नंदलालने इन्हें यहाँ भेजा किसलिये है ?' ॥ ४ ॥ (५०)

'इस मधुकर (भौंरे, उद्धव)-की चतुराई-भरी बातें कौन बैठकर सुने ? यह तो अपनी बुद्धिकी चतुराईसे आकाशमें टाँके लगानेपर उतारू है ॥ १ ॥ भगवान्‌की भक्ति तो ऐसा अमृतका कुंड है जो सबके लिये बहुत सीधा और सुलभ है तथा वेद और पुराणोंने भी उसकी यही विशेषता बताई है। कहो भाई ! उस अमृतको छोड़कर और सब मनोरथ लेकर कौन अपने प्राण दे ? ॥ २ ॥ जिसका जहाँ कल्याण होता हो उसे तो सब प्रकार वही मार्ग अच्छा लगता है। पर इनकी बात तो देखो कि ये मोम-जैसे कोमल दाँतवालेको वज्रके समान कठोर लड्डू खानेकी कह रहे हैं जिसे कहने और सुननेसे भी मनुष्य पागल हो जाता है ॥ ३ ॥ सगुण ब्रह्म भले ही क्षीर-सागरके तीरपर रहता हो पर ब्रजवासी तो उसीका सारा महत्त्व जानते हैं। तब उस ब्रह्मको छोड़कर तुमने मदार दुहनेकी (असंभव) बात क्यों छेड़ दी यह बात हमारी समझमें नहीं आई ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदुनाथ कृष्ण तो सबकी बुद्धि, सबके विचार और सबकी जडता जानते हैं। अतः, अरे दुष्ट भौंरे ! इस अमराईमें आकर दिन-रात बैठे हठपूर्वक बकबक मत कर (निर्गुणकी गाथा मत अलाप) ॥ ५ ॥ (५१)

देखो मधुकर (भौंरे, उद्धव) ! कृष्णसे गोकुलका प्रेम नित्य नया-नया बढ़ता समझकर तुम अपनी यह पुरानी ज्ञान-गाथा कहीं दूसरी ठौरपर ले जा सुनाओ ॥ १ ॥ यह अपनी निर्गुणकी खान

---

१. मैन-दसन = मोम-जैसे कोमल दाँतों से।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मिलहिं जोगी जरठ, तिन्हहिं दिखाउ निरगुन - खानि।
नवल नंदकुमार - के व्रज सगुन - सुजस बखानि॥ २॥
तू जो हम आदर्‍यौ, सो तो नव कमल - की कानि।
तजहि 'तुलसी' समुझि यह, उपदेसिबे - की बानि॥ ३॥ (५२)

काहे - को कहत बचन सँवारि।
ज्ञान - गाहक नाहिंनै व्रज, मधुप! अनत सिधारि॥ १॥
जुगुति धूम बघारिबे - की समुझिहैं न गँवारि।
जोगि - जन - मुनिमंडली - मों, जाइ रीती ढारि॥ २॥
सुनै तिन - की कौन 'तुलसी', जिनहिं जीति न हारि।
सकति खारो कियो चाहत, मेघहू - को बारि॥ ३॥ (५३)

ऐसे हौं हुँ जानति भृंग!
नाहिंनै काहू लह्यौ सुख, प्रीति करि इक अंग॥ १॥
कौन भीर जो नीरदहिं, जेहि लागि रटत बिहंग?
मीन जल - बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग॥ २॥

किसी बूढ़े योगीको जा दिखलाओ। यहाँ व्रजमें वर्णन करना हो तो सगुण नन्दकुमारके ही नये-नये सुयशोंका बैठकर वर्णन करो॥ २॥ हमने जो तुम्हारा आदर किया है वह तो नये कमल (कृष्ण)-से तुम्हारा सम्बन्ध होनेके कारण किया है कि तुम कृष्णका गुणगान करोगे। अतः (तुलसीदास कहते हैं कि) यह (निरर्थक) उपदेश देनेकी बान अब छोड़ो'॥ ३॥ (५२)

'देखो मधुप (भौंरे)! ये सब बनावटी बातें क्यों किए जा रहे हो? इस व्रजमें तुम्हारे ज्ञानका ग्राहक कोई नहीं बैठा है, इसलिये तुम कोई और ठिकाना देखो॥ १॥ यहाँकी गँवार ग्वालिनें तुम्हारी ये धुएँसे बघार देनेवाली बड़ी-बड़ी (निरर्थक लच्छेदार) बातें नहीं समझ पावेंगी। इसलिये अपनी यह गाथाकी रीती गगरी कहीं योगियों या मुनियोंकी मण्डलीमें जाकर उठा उँडेलो॥ २॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसे अपनी हार-जीत-तकका ज्ञान न हो, उसकी बात भला कौन बैठकर सुनेगा? अरे, तुम तो अपनी सारी शक्ति लगाकर मेघके जलको भी खारा बनानेपर उतारू हुए बैठे हो। (प्रेम तो मेघके जल-जैसा मीठा होता है, उसे तुम अपनी शक्ति-भर निर्गुणके ज्ञानकी गाथासे खारा बनाने चले हो)॥ ३॥ (५३)

'अरे भृंग (उद्धव)! यह तो मैं भी जानती हूँ कि एकांगी प्रीति करके किसीने आजतक सुख नहीं पाया॥ १॥ भला बादलको चातकसे कौन-सी बड़ी सहानुभूति है कि उसके लिये पक्षी (पपीहा) दिनरात (पिउ-पिउकी) रट लगाए रहता है। जल तो स्वभावसे ही मछलीके प्रति उदासनी बना रहता है पर मछली है कि बिना जलके तड़प-तड़पकर अपना शरीर त्याग देती है॥ २॥ जिस मणिका वियोग हो जानेपर सर्प उसके विरहमें व्याकुल हो जाता है, उस मणिको

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पीर मनिहिं न कछू, जाके बिरह, बिकल भुअंग।
व्याध - बिसिख बिलोक नहिं, कल गान - लुबुध कुरंग ॥ ३ ॥
स्याम घन, गुन बारि, छबि मनि, मुरलि - तान - तरंग।
लग्यो मन बहु भाँति 'तुलसी' होइ क्यों रस - भंग ॥ ४ ॥ (५४)

ऊधो ! प्रीत करि निरमोहियन-सों, को न भो दुख दीन ?
सुनत, समुझत, कहत हम सब, भईं अति अप्रवीन ॥ १ ॥
अहि, कुरंग, पतंग, पंकज, चारु चातक, मीन।
बैठि इनकी पाँति, अब सुख चहत मन मति - हीन ॥ २ ॥
निठुरता अरु नेह - की गति कठिन, परति कही न।
'दास तुलसी' सोच नित, निज प्रेम जानि मलीन ॥ ३ ॥ (५५)

राग गौरी

सुनत कुलिस - सम बचन तिहारे।
चित दै मधुप ! सुनहु सोउ कारन, जातें जान न प्रान हमारे ॥ १ ॥
ज्ञान कृपान - समान लगत उर, बिहरत छिन - छिन होत निनारे।
अवधि-जरा जोरति हठि पुनि - पुनि, यों तनु रहत सहत दुख भारे ॥ २ ॥

(सर्पके बिछोहका) कभी कोई दुःख नहीं होता। व्याधका बाण कभी नहीं देखता कि मृग मधुर गानोंका लोभी है (व्याध उस संगीत-प्रेमी मृगको मार ही डालता है) ॥ ३ ॥ परम मनोहर श्याम (कृष्ण-रूप) घनमें (चातक बनकर), उनके गुण-रूपी जलमें (मछली बनकर), उनकी छबि-रूपी मणिमें (सर्प बनकर) उनकी मुरलीकी तानकी तरंगमें (मृग बनकर) हमारा मन बहुत प्रकारसे जा लगा है, तब उस (बहुमुखी) आनन्दमें हम भला रसभंग क्यों होने दें" ॥ ४ ॥ (५४)

'बताओ उद्धव ! निर्मोहियोंसे प्रेम करके कौन ऐसा है जो व्याकुल और दुखी नहीं हुआ ? फिर भी यह सब सुन, समझ और कहकर भी हम सब बड़ी मूर्खा बनी बैठी हैं ॥ १ ॥ हमारा यह मूर्ख मन इन सर्प, मृग, पतंग, कमल, पपीहा और मछलीकी श्रेणीमें बैठकर भी चाहता है कि हमें सुख मिले ? (मणिके वियोगसे सर्प, मधुर संगीत-वाद्यके वियोगसे मृग, अग्निके वियोगसे फतिंगा, सूर्यके वियोगसे कमल, स्वाती जलके वियोगसे पपीहा और जलके वियोगसे मछली बहुत व्याकुल हो जाती है) ॥ २ ॥ निष्ठुरता और प्रेमकी गति कुछ इतनी कठिन है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकना। तुलसीदास कहते हैं कि ये सभी ऐसे हैं कि अपने प्रेममें तनिक भी कमी आते देखकर व्याकुल हो उठते हैं' ॥ ३ ॥

'देखो मधुप ! तुम्हारे वज्रके समान कठोर वचन सुनकर हमारे प्राण जाते-जाते भी न जा सके। इसका कारण ध्यानसे सुन लो ॥ १ ॥ तुम्हारा यह ज्ञान तो हमारे हृदयपर ऐसा कृपाणके समान वार करता है कि हमारा हृदय प्रत्येक क्षण कट-कटकर गिरने लगता है किन्तु (श्यामसुन्दरसे मिलनेकी) अवधि (कि हम शीघ्र ही आवेंगे यह विश्वास)-रूपी जरा[1] राक्षसी

१. जरा नामक राक्षसीने जरासंधके शरीरके दो टुकड़े जोड़कर उसे जीवित कर दिया था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पावक बिरह, समीर स्वास, तनु तूल, मिले तुम जारनिहारे।
तिन्हहिं निदरि अपने हित - कारन, राखत नयन निपुन रखवारे॥ ३॥
जीवन कठिन, मरन-की यह गति, दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे।
'तुलसिदास' यह दसा जानि जिय, उचित होइ, सो कहु अलि! प्यारे॥४॥ (५६)

छपद! सुनहु बर बचन हमारे।
बिनु ब्रजनाथ ताप नयनन - को, कौन हरै, हरि अंतर कारे॥ १॥
कनक-कुंभ भरि - भरि पियूष-जल, बरसत सक्र कलपसत हारे।
कदलि, सीप, चातक-को कारज, स्वाति-बारि-बिनु कोउ न सँवारे॥ २॥
सब अँग रुचिर किसोर स्याम-घन, जेहि हृदि-जलज बसत हरि प्यारे।
क्यों समात तेहि उर बिराट बपु, स्यों[1]-महि - सरित-सिंधु - गिरि भारे॥ ३॥
बढ़्यो अति प्रेम-प्रलय-के बट-ज्यों, बिपुल जोग-जल बोरि न पारे।
'तुलसिदास' ब्रज-बनितन-को ब्रत, समरथ, को करि जतन निवारे॥४॥ (५७)

मधुप! समुझि देखहु मन - माहीं।
प्रेम पियूष - रूप, उडुपति - बिनु, कैसे अलि! पैयत रबि - पाहीं॥ १॥

उसे बार-बार हठपूर्वक जोड़ देती है, इसीसे शरीर जीवित रहकर भारी दुःख सहे जा रहा है॥ २॥ इस रुई-रूपी शरीरमें विरह-रूपी अग्निके साथ श्वास रूपी पवन तो था ही, तुम उसे जलानेवाले भी आ पहुँचे। परन्तु हमारे नेत्र इन सबको दूर करके अपने हित (प्रभुके दर्शन)-के लिये चतुर पहरेदारके रूपमें इस शरीरकी रक्षा किए जा रहे हैं॥ ३॥ अतः, अब तो हमारे लिये मरना भी कठिन हो गया है और जीते रहनेपर यह दुर्दशा है कि दुःसह विपत्ति सहनी पड़ रही है। यह दुःख तो ब्रजनाथ कृष्ण ही चाहें तो दूर कर पा सकते हैं। (तुलसीदास कहते हैं) प्यारे मधुप! हमारी यह दशा अपने मनमें विचारकर फिर जैसा ठीक समझो वैसे सम्मति दो'॥ ४॥ (५६)

'अजी षट्पद (भ्रमर-रूपी उद्धव)! हमारी बात तो सुन लो। हमारे इन नेत्रोंका ताप ब्रजनाथके बिना दूसरा कौन दूर कर पा सकता है, पर वे, वे मनके बड़े काले निकल गए॥ १॥ सौ कल्पों-तक सोनेके घड़ोंमें भर-भरकर इन्द्र अमृतके समान जल बरसाया करें, तब भी कदली, सीप और पपीहेका काम बिना स्वातीके जलके वह पूरा नहीं कर पा सकता (कदलीमें कपूर, सीपमें मोती और पपीहेको संतोष नहीं हो सकता)॥ २॥ जिस हृदय-कमलमें सर्वाङ्ग-सुन्दर किशोर श्यामघन कृष्ण बसे हुए हैं, उस हृदयमें पृथ्वी, नदियाँ, समुद्र तथा बड़े भारी-भारी पर्वतोंसे भरा तुम्हारा विराट् रूपवाला ब्रह्म समा कैसे सकता है॥ ३॥ प्रलय-कालमें भी बने रहनेवाले अक्षय वटके समान (अचल) हमारे हृदयको तुम अपके योगके जलमें डुबा नहीं सकोगे।' तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा कौन समर्थ है जो गोपियोंका दृढ व्रत उनके हृदयसे किसी भी उपायसे डिगा सके?'॥ ४॥ (५७)

'अरे मधुप (भौंरे, उद्धव)! अपने मनमें विचार करके देखो कि चन्द्रमाके बिना सूर्यमें

१. स्यों = सहित, साथ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जद्यपि तुम हित-लागि कहत, सुनि स्रवन, बचन नहिं हृदय-समाहीं।
मिलहिं न पावक-महँ तुषार-कन, जो खोजत सत कलप सिराहीं॥ २॥
तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारी, लोचन हठी, तजत हठ नाहीं।
'तुलसिदास' सोइ जतन करहु कछु, बारक स्याम इहाँ फिरि जाहीं॥३॥ (५८)

मोको नयन भए रिपु माई!
हरि - बियोग तनु तजेहि परम सुख, ए राखहिं सोइ है बरियाई॥ १॥
बरु मन कियो बहुत हित मेरो, बारहिं बार काम दव लाई।
बरषि नीर ये तबहिं बुझावहिं, स्वारथ निपुन अधिक चतुराई॥ २॥
ज्ञान - परसु दै मधुप पठायो बिरह - बेलि कैसेहु कठिनाई।
सो थाक्यो बरह्यो[1] एकहि तक[2], देखत इनकी सहज सिंचाई॥ ३॥
हारत हू न हारि मानत, सखि! सठ सुभाव कंदुक - की नाँई।
चातक, जलज, मीनहुँ - ते भोरे, समुझत नहिं उनकी निठुराई॥ ४॥
ए हठ-निरत दरस लालच - बस, परे जहाँ बुधि - बल न बसाई।
'तुलसिदास' इन-पर जो द्रवहिं हरि, तौ पुनि मिलौं बैर बिसराई॥५॥ (५९)

अमृतरूपी प्रेम कहाँ मिल सकता है॥ १॥ यद्यपि तुम ये सब बातें हमारे हितके लिये ही कह रहे हो, पर कानों से सुन लेनेपर भी ये बातें हृदयमें वैसे ही नहीं उतर पा रही हैं जैसे सौ कल्पों-तक खोजते रहनेपर भी अग्निमें हिमके कण नहीं मिल पा सकते॥२॥ तुम भी कहते-कहते थक गए और हम भी सुनती-सुनती हार गईं, परन्तु ये हठीली आँखें अपना हठ छोड़ नहीं पा रही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि अब तुम कुछ ऐसा उपाय करो कि कुछ दिनों के लिये श्यामसुन्दर यहाँ लौटकर आ जायँ'॥ ३॥

'देखो माई! अब तो ये नेत्र ही हमारे बैरी बन बैठे हैं। कृष्णके वियोगमें शरीर छोड़ देनेपर ही परम सुख मिलता, किंतु इनकी जबरदस्ती तो देखिए कि ये उसे रोके खड़े हैं (श्यामसुन्दरका दर्शन पानेके लोभमें पड़कर शरीर नहीं छूटने देते)॥ १॥ मेरे मनने हृदयमें बार-बार कामाग्नि धधकाकर मेरा बहुत बड़ा हित किया (जिससे मैं विरहमें प्राण दे दूँ) किन्तु ये नेत्र इतने बड़े स्वार्थी हैं कि उसी समय जल (आँसू) बरसाकर उसे बुझा डालते हैं॥ २॥ कृष्णने मधुप (उद्धव)-को ज्ञानका कुल्हाड़ा देकर विरहकी बेलको बड़ा कठोर समझकर यहाँ काटने तो भेज दिया किन्तु बरही (पानीकी गूल या नाली)-द्वारा लगातार इनकी स्वाभाविक सिंचाई देखकर वह भी हार मान बैठा॥ ३॥ देखो सखी! (पटकनेपर फिर ऊपर उछल आनेवाले) गेंदकी भाँति इसका स्वभाव इतना दुष्ट है कि ये नेत्र तो हारकर भी अपनी हार नहीं मानता। ये नेत्र तो चातक, कमल और मछलीसे भी अधिक भोले हैं कि उनकी (कृष्णकी) निठुराई नहीं समझ पाए॥ ४॥ ये हठी नेत्र दर्शनों के लालचमें ऐसे पड़े हुए हैं कि इनके आगे बुद्धि भी कुछ काम नहीं देती। (तुलसीदास कहते हैं) कृष्ण, इनपर दया करें तो पिछला बैर (उनकी निष्ठुरता) भुलाकर (ये नेत्र) फिर उनसे जा मिलें'॥ ५॥

१. बरह्यो=बरहे (पानीकी गूल या नाली)-में। २. एकहि तक = एक ही तार, लगातार।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग आसावरी

कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी ?
महा - बीर रन - धीर पाँच पति, क्यों दइहैं मोहिं होन उघारी ॥ १ ॥
राज - समाज सभासद समरथ, भीषम, द्रोन धर्म - धुरधारी ।
अबला, अनघ, अनवसर, अनुचित होति हेरि, करिहैं रखवारी ॥ २ ॥
यों मन गुनति, दुसासन दुरजन तमक्यो, तकि गहि दुहुँ कर सारी ।
सकुचि गात गोवति कमठी-ज्यों, हहरी हृदय, बिकल भइ भारी ॥ ३ ॥
अपनेनि - को, अपनो बिलोकि बल, सकल आस-बिस्वास बिसारी ।
हाथ उठाइ अनाथ-नाथ - सों 'पाहि, पाहि, प्रभु ! पाहि !' पुकारी ॥ ४ ॥
'तुलसी' परखि प्रतीति, प्रीति, गति, आरत - पाल, कृपाल मुरारी ।
बसन - बेष राखी बिसेषि, लखि, बिरदावलि-मूरति नर - नारी ॥ ५ ॥(६०)

गहगह गगन दुंदुभी बाजी ।
बरषि सुमन सुरगन गावत जस, हरष - मगन मुनि, सुजन, समाजी ॥ १ ॥
सानुज, सगन, स-सचिव सुजोधन, भे मुख मलिन खाइ खल खाजी[1] ।
लाज, गाज, उनवनि, कुचाल कलि, परी बजाइ कहूँ - कहुँ गाजी ॥ २ ॥

(द्रौपदी अपने मनमें सोच रही है—) 'क्या हुआ जो मैं कपटपूर्ण जुएमें हार दी गई । मेरे पाँच पति समर-धीर और बड़े वीर हैं, मुझे उघाड़ी (नग्न) न होने देंगे ॥ १ ॥ दुर्योधनकी राजसभामें भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य आदि बड़े-बड़े धर्मात्मा और सामर्थ्यवान् राज-सभासद् हैं, वे किसी निष्पाप अबलाके प्रति इस अनवसरपर अनुचित काम होते देखकर अवश्य रक्षा करेंगे' ॥ २ ॥ वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि दुष्ट दुःशासनने तमककर दोनों हाथोंसे उसकी साड़ी जा ही तो पकड़ी । वह कछुईकी भाँति सिकुड़ती हुई अपना शरीर छिपाने लगी और हृदयमें काँपकर बहुत व्याकुल हो उठी ॥३॥ जब उसने अपना और अपने ही कुटुम्बियोंका बल समझ लिया (कि कोई सहायता नहीं करेगा) तब द्रौपदीने उन सबकी आशा और उनका विश्वास छोड़ दिया और (विवश होकर) उसने हाथ उठाकर अनाथोंके नाथ कृष्णको पुकारा—'प्रभो ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए'—॥४॥ तुलसीदास कहते हैं कि दुखियोंके रक्षक, कृपालु मुरारी कृष्णने उसका सच्चा प्रेम और विश्वास परखकर वस्त्रके ही रूपमें उस नर (अर्जुन)-की पत्नीको अपनी कीर्तिकी मूर्ति मानकर (द्रौपदीकी रक्षासे मेरी कीर्ति बढ़ेगी यह समझकर) आकर उसकी रक्षा कर ली ॥ ५ ॥

उस समय आकाशमें ढमाढम नगाड़े बज उठे । देवता, मुनि और सज्जन सब हर्षमें मग्न होकर फूलोंकी वर्षा करते हुए प्रभुका वर्णन करने लगे ॥१॥ कलिरूपी दुर्योधन अपने भाइयों, दरबारियों और मंत्रियों-सहित अपने मुँहकी खाकर मुँह लटकाकर बैठ रहा । उसकी प्रतिष्ठा और उसका गर्जन (अभिमान) सब नष्ट हो गए और उसकी सारी कुचालें, टंटे और इधर-उधरकी डींगें, सब कुछ समाप्त

६१. खाजी खाना=अपने मुँहकी खाना, हार जाना ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रीति-प्रतीति द्रुपद-तनया - की, भली भूरि भय भभरि न भाजी।
कहि पारथ - सारथिहि सराहत, गई बहोरि, गरीब - निवाजी ॥ ३ ॥
सिथिल-सनेह, मुदित मन ही मन, बसन-बीचि - बिच बधू बिराजी।
सभा-सिंधु जदुपति जय-मय जनु, रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी ॥ ४ ॥
जुग - जुग जग साके केसव-के, समन - कलेस, कुसाज - सुसाजी।
'तुलसी', को न होइ सुनि कीरति, कृष्ण कृपाल - भगतिपथ राजी ॥ ५ ॥ (६१)

॥ इति श्रीगोसाईं तुलसीदास-विरचित श्रीकृष्णगीतावली संपूर्णम् ॥

हो गईं ॥ २ ॥ उधर अत्यन्त भयसे घबरानेपर भी कृष्णपर द्रौपदीका प्रेम तथा विश्वास कम नहीं हुआ। वह अर्जुनके सारथि कृष्णकी स्तुति करने लगी कि आप ही दीनोंपर दया करनेवाले और बिगड़ीको बनानेवाले हैं ॥ ३ ॥ पांडवोंकी वधू द्रौपदी अत्यंत स्नेहसे शिथिल होकर, प्रसन्न होकर, अपनी (बढ़ी हुई) साड़ीकी लहरोंमें ही विराजमान है मानो सभा-रूपी समुद्रमें त्रिभुवनको शोभित करनेवाली लक्ष्मी ही लहरोंमें खड़ी यदुनाथ कृष्णकी जय-जयकार तीनों लोकोंमें भरे डाल रही हों ॥ ४ ॥ समस्त क्लेशोंका शमन करनेवाले तथा बिगड़ी बनानेवाले केशवकी धाक युग-युगान्तरके लिये जम गई। (तुलसीदास कहते हैं) कृपालु कृष्णकी भक्तिकी कीर्त्ति सुनकर कौन ऐसा है जो प्रसन्न न हो उठे ॥ ५ ॥ (६१)

॥ श्री गोसाईं तुलसीदास-विरचित श्रीकृष्ण गीतावली पूरी हुई ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१२

विनयपत्रिका

[गणेश-स्तुति] राग बिलावल

गाइए गनपति जग - बंदन। संकर - सुवन भवानी - नंदन ॥ १ ॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, बिनायक। कृपासिंधु, सुंदर, सब लायक ॥ २ ॥
मोदक - प्रिय, मुद - मंगल - दाता। बिद्या-बारिधि, बुद्धि - बिधाता ॥ ३ ॥
माँगत 'तुलसिदास' कर जोरे। बसहिं राम - सिय मानस मोरे ॥ ४ ॥ (१)

[सूर्य-स्तुति]

दीन - दयालु दिवाकर देवा। कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा ॥ १ ॥
हिम-तम - करि-केहरि[1] कर-माली। दहन दोष - दुख - दुरित - रुजाली ॥ २ ॥
कोक - कोकनद - लोक - प्रकासी। तेज - प्रताप - रूप - रस - रासी ॥ ३ ॥

गणेश स्तुति : गणों के स्वामी उन गणेशका गुण गान कीजिए जिनकी वन्दना सारा जगत् करता है। आप शंकरके पुत्र और पार्वतीको आनंद देनेवाले (पुत्र) हैं ॥ १ ॥ सम्पूर्ण सिद्धियाँ उनकी मुट्ठीमें हैं, उनका हाथीका-सा मुख है, वे सम्पूर्ण विघ्नोंके स्वामी (विघ्न दूर करनेवाले) हैं। वे बड़े ही कृपालु हैं, सुन्दर हैं और संसारमें कोई ऐसा कार्य नहीं जो वे कर न सकते हों ॥२॥ उन्हें मोदक (लड्डू) बड़ा भाता है। वे सदा आनंद और कल्याण किया करते हैं। वे विद्याके सागर और बुद्धिके विधाता हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदास उन्हीं गणेशसे हाथ जोड़कर यही माँगता है कि राम-जानकी मेरे मन-मंदिरमें आन बसें ॥ ४ ॥ (१)

सूर्य-स्तुति : दीन दयालु भगवान् सूर्यदेव ! मुनि, मनुष्य, देवता और राक्षस सभी आपकी सेवा करते हैं ॥ १ ॥ पाले तथा अन्धकाररूपी हाथीको मार भगानेवाले आप सिंह हैं। आप किरणोंकी माला पहने रहते हैं। आप दोष, दुःख, पाप और रोग सब भस्म कर डालते हैं ॥ २ ॥ आप चकवे, कमल और समस्त लोकोंको प्रकाशित (आनंदित) कर देते हैं। आप तेज, प्रताप, रूप और रसोंके भंडार हैं (आप ही तेज, प्रताप, रूप और समस्त पदार्थोंमें रस

---

१. कर-माली = किरणोंकी माला धारण करनेवाले सूर्य। २. रुजाली = रोग-समूह।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सारथि पंगु, दिब्य रथ - गामी। हरि - संकर - बिधि - मूरति स्वामी ॥ ४ ॥
बेद - पुरान प्रगट जस जागै। 'तुलसी' राम - भगति बर माँगै ॥ ५ ॥(२)

[शिव-स्तुति]

को जाँचिए संभु तजि आन ?
दीन-दयालु, भगत-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥ १ ॥
कालकूट - जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि कियो विष-पान।
दारुन दनुज जगत-दुखदायक, जाज्यो त्रिपुर एक ही बान ॥ २ ॥
जो गति अगम, महामुनि-दुर्लभ, कहत संत, स्रुति, सकल पुरान।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥ ३ ॥
सेवत, सुलभ उदार कलपतरु, पारबती - पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु ! राम-चरन-रति, 'तुलसिदास'-कहँ कृपा-निधान ॥ ४ ॥ (३)

राग धनाश्री

दानी कहुँ संकर - सम नाहीं।
दीनदयाल दिबोई भावै, जाचक सदा सुहाहीं ॥ १ ॥

उत्पन्न करते हैं) ॥३॥ यद्यपि आपका सारथि (अरुण) भी पंगु (लंगड़ा) है फिर भी आप दिव्य रथपर चढ़कर चलते हैं। स्वामी ! आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी मूर्त्ति हैं ॥ ४ ॥ वेदों और पुराणोंमें आपका सुयश प्रत्यक्ष रूपसे जगमगा रहा है (वर्णन किया गया है) तुलसीदास आपसे यही माँगते हैं कि उसे आप रामकी भक्ति दिलवा दें ॥ ५ ॥ (२)

शिव-स्तुति : माँगा भी जाय तो शंकरको छोड़कर और किसके आगे हाथ फैलाया जाय ? क्योंकि शिव तो दीनदयालु हैं, भक्तोंके कष्ट हरते रहते और सब प्रकारसे समर्थ हैं (जो चाहें कर सकते हैं) ॥ १ ॥ जिस समय (समुद्र-मंथनसे उत्पन्न) कालकूटके विषकी ज्वालासे देवता और दैत्य झुलसे जा रहे थे उस समय आपने ही अपनी (दीनोंपर दया और उनकी रक्षा करनेकी) प्रतिज्ञाके कारण उस हलाहल विषका घूँट पी लिया। जब भयंकर त्रिपुरासुर दानव संसारको पीडित करने लगा था, तब आप ही थे कि एक ही बाणसे आपने उसे बिछा डाला ॥२॥ जो सद्गति महामुनियोंको भी मिलनी कठिन और दुर्लभ है वही गति सदाशिव (सदा कल्याण करनेवाले शंकर) ! आप अपनी पुरी (काशी)-के सभी निवासियोंको मृत्युके समय समान रूपसे दे डालते हैं ॥ ३ ॥ यह बात संत-जन, वेद और सभी पुराण कहते आए हैं। पार्वतीके पति परम सुजान शंकर ! आपकी जो सेवा करे उसपर आप सहजमें ही रीझ जाते हैं क्योंकि आप तो कल्पवृक्षके समान उदार हैं (कि जो आ जाय उसीको तृप्त कर दें)। इसलिये तुलसीदास कहते हैं—'कृपानिधान ! कामदेवके शत्रु ! मुझे भी रामके चरणोंमें प्रीति दे डालिए' ॥ ४ ॥ (३)

शंकरके समान दूसरा कोई दानी है नहीं। वे ऐसे दीनदयालु हैं कि उन्हें सदा कुछ न कुछ देते रहना ही अच्छा लगता है, इसीलिये भिखारी उन्हें सदा बड़े अच्छे लगते हैं ॥ १ ॥ जिन शंकरने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मारि - कै, मार थप्यो जग - में, जिकि प्रथम रेख भट - माहीं।
ता ठाकुर-को रीझि-निवाजिबो, कह्यो क्यों परत मो-पाहीं ?॥ २॥
जोग कोटि करि, जो गति हरि - सों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेद - बिदित, तेहि पद पुरारि - पुर, कीट - पतंग समाहीं॥ ३॥
ईस, उदार, उमापति परिहरि, अनत जे जाँचन जाहीं।
'तुलसिदास' ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं॥ ४॥ (४)

बावरो, रावरो नाह, भवानी !
दानि बड़ो, दिन देत दए बिनु, बेद - बड़ाई भानी॥ १॥
निज घर - की घरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिव - की दई संपदा देखत, श्री - सारदा सिहानी॥ २॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख - की नहीं निसानी।
तिन रंकन - को नाक सँवारत, हौं आयों नकवानी॥ ३॥
दुख - दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिए औरहिं, भीख भली मैं जानी॥ ४॥

वीरोंके सरदार कामदेवको मारकर भी उसे संसारमें (अनंग रूपसे) फिर जमा बैठाया, उस प्रभुसे मैं भला कैसे कहूँ कि आप प्रसन्न होकर मुझपर भी कृपा कर दीजिए (वे तो स्वयं ही कृपा कर देंगे)॥ २॥ वेदोंमें कहा गया है कि करोड़ों प्रकारसे योग साधनेपर भी मुनिजन जो परम गति हरिसे माँगनेमें संकोच करते हैं, वह परम गति तो शंकरकी पुरी (काशी)-में कीट-पतंग-तक बैठे बैठे पा जाते हैं (फिर मनुष्योंका तो कहना ही क्या ?)॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे उदार प्रभु (महादेव)-को छोड़कर जो लोग दूसरों (अन्य देवताओं)-के यहाँ गिड़गिड़ाते फिरते हैं, उन मूर्खोंको (औरोंके यहाँ) माँगनेपर भी कहीं पेट-भर नहीं मिल पाता (वे कभी पूर्ण रूपसे तृप्त नहीं हो पाते)॥ ४॥ (४)

(लोगोंका भाग्य बदलते-बदलते ब्रह्मा त्रस्त होकर पार्वतीसे उलाहना देते हुए व्याजस्तुति करते हुए कहते हैं—) 'भवानी ! आपके स्वामी (शंकर) सचमुच बड़े बौड़म हैं। वे इतने बड़े दानी बन बैठे हैं कि नित्य प्रति ऐसे-ऐसोंको भी दिए चले जाते हैं जो उन्हें कुछ भी (फूल-पत्तीतक) नहीं देता (टकेको नहीं पूछता) यह बात वेदों-तकने भी कही है (शंकर कुछ पानेके लोभसे दान नहीं करते)॥१॥ पार्वती ! आप तो स्वयं बड़ी चतुर हैं। अपने घरकी जमा-पूँजीकी दशाका ध्यान तो आपको रखना ही चाहिए। वे जो सम्पदा लुटाए डाल रहे हैं उसे देख-देखकर लक्ष्मी और सरस्वती-तक अचरज कर उठी हैं॥ २॥ जिनके भाग्यमें मैंने कोई सुख नहीं लिखा, उन दरिद्रोंके लिये स्वर्गमें स्थान बनाते-बनाते मेरी तो नाकमें दम आ गया है॥३॥ दरिद्रता और दुःख तो (कहीं रहनेकी ठौर न पाकर) इनसे दुखी हो ही चले थे, याचकता भी व्याकुल हो चली है (कोई भिखमंगा भी नहीं रह गया

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रेम - प्रसंसा - बिनय - व्यंग - जुत, सुनि बिधि-की बर बानी ।
'तुलसी' मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी ॥ ५ ॥(५)

राग रामकली

माँगिए गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥ १ ॥
औढर - दानि द्रवत पुनि थोरे । सकत न देखि दीन कर जोरे ॥ २ ॥
सुख, संपति, मति, सुगति सुहाई । सकल सुलभ संकर-सेवकाई ॥ ३ ॥
गए सरन आरति - के लीन्हें । निरखि निहाल निमिष-महँ कीन्हें ॥४॥
'तुलसिदास' जाचक, जस गावै । बिमल भगति रघुपति-की पावै ॥ ५ ॥ (६)

कस न दीन-पर द्रवहु, उमाबर । दारुन-बिपति-हरन - करुनाकर ॥ १ ॥
बेद - पुरान उदार कहत हर । हमरि बार का भयउ कृपिनतर ॥ २ ॥
कवनि भगति कीन्हीं गुननिधि[1] द्विज । ह्वै प्रसन्न दीन्हेउ सिव - पद निज ॥ ३ ॥

है) । इसलिये भवानी ! यह (भाग्य लिखनेका) अधिकार आप किसी दूसरेको बुला सौंपिए । मैं भीख माँगकर खा लेना इससे अच्छा समझूँगा ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं कि इस व्यंग्यात्मक ढंगसे ब्रह्माके मुखसे प्रेम, प्रशंसा और विनय-भरे वचन सुनकर शिव भी मनही मन प्रसन्न हो उठे और पार्वती भी मुसकरा उठीं ॥ ५ ॥ (५)

माँगनेके लिये हाथ फैलाना ही हो तो काशीवासी उन महादेवके आगे ही हाथ फैलाया जाय, जिनकी अणिमादिक सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, प्राप्ति) दासी बनकर सेवा किया करती हैं ॥ १ ॥ शंकर तो ऐसे औढर (अकारण) दानी हैं कि थोड़ी-सी सेवासे पिघल उठते हैं। वे अपने सामने किसी दीनको हाथ जोड़े खड़े देख ही नहीं सकते ॥२॥ शंकरकी सेवा करनेसे सुख, सम्पत्ति, बुद्धि और सद्गति सभी कुछ सुगमतासे प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ जो भी कोई अपना दुखड़ा लेकर उनकी शरणमें पहुँचा कि उसे देखते ही उन्होंने क्षण-भरमें उसे निहाल किया ॥ ४ ॥ याचक तुलसीदास भी (इसी भरोसे) उनका यश गाता है कि इसे भी रामकी विमल भक्तिकी भिक्षा मिल ही जायगी ॥ ५ ॥ (६)

पार्वती-रमण (शिव) ! आप (सबपर तो कृपा करते रहते हैं पर) इस दीनपर क्यों नहीं कृपा कर डालते ? आप तो न जाने कितनी बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ मिटा डाल चुके हैं और दयालु हैं ॥१॥ वेद और पुराण तो कहते हैं कि आप बड़े उदार हैं, फिर मेरे लिये आप ऐसे कृपण क्यों बन बैठे हैं ? ॥२॥ गुणनिधि ब्राह्मण[1]ने आपकी कौन-सी बड़ी भक्ति की थी कि उसपर प्रसन्न होकर आपने उसे अपना कल्याणमय शिव-पद दे डाला ? ॥३॥ महामुनि लोग (बहुत तपस्या करके) जो गति

१. (क) गुणनिधि नामक ब्राह्मणने शिवकी मूर्तिपर चढ़कर मंदिरका घंटा चुराया था । शिवने समझा कि और लोग तो पत्र-पुष्प आदि चढ़ाते हैं पर इसने तो अपने आपको हमारे अर्पण कर दिया । बस झट प्रसन्न होकर उन्होंने उसे मुक्ति दे डाली। (ख) श्रोत्रिय यज्ञदत्तका पुत्र गुणनिधि बड़ा दुर्गुणी और व्यसनी था किन्तु शिव-पूजा देखने और शिवदीपकी बत्ती जलानेके कारण ही मुक्त हो गया ।
—शिव० रुद्र ०सं० १८

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जो गति अगम महामुनि गावहिं । तव पुर कीट - पतंगहु पावहिं ॥ ४ ॥
देहु कामरिपु ! रामचरन - रति । 'तुलसिदास' प्रभु हरहु भेद - मति ॥ ५ ॥ (७)

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे । किए दूर दुख सबनि-के, जिन-जिन कर जोरे ॥१॥
सेवा सुमिरन पूजिबो, पाताखत थोरे । दइ जग जहँ लगि संपदा सुख, गज-रथ-घोरे ॥२॥
गाँवँ बसत मैं, बामदेव ! कबहूँ न निहोरे । अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥३॥
बेगि बोलि, बलि, बरजिए, करतूति कठोरे । 'तुलसी' दलि, रूँध्यो चहैं सठ साक सिहोरे[1] ॥४॥(८)

सिव, सिव ! होइ प्रसन्न करि दाया ।
करुनामय, उदार - कीरति, बलि जाउँ ! हरहु निज माया ॥ १ ॥
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई ।
बिनु तव कृपा राम - पद - पंकज, सपनेहुँ भगति न होई ॥ २ ॥
रिषय, सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज सुर, अपर जीव जग-माहीं ।
तव-पद - बिमुख न पार पाव कोउ, कलप कोटि चलि जाहीं ॥ ३ ॥

कहीं प्राप्त कर पाते हैं, वह गति तो आपकी काशीपुरीके कीट - पतंग तक पा जाते हैं ॥ ४ ॥ कामको जला डालनेवाले प्रभु ! तुलसीदासकी भी भेद-बुद्धि (दूसरोंको छोटा-बड़ा समझनेकी बुद्धि) दूर करके उसे रामके चरणोंमें भक्ति दे दीजिए ॥ ५ ॥ (७)

शंकर ! आप बड़े देवता (महादेव), बड़े दानी और बड़े भोले हैं । जहाँ किसीने आकर आपको हाथ जोड़े कि आप बिना किसी भेदभावके उसके सब दुःख दूर कर डालते हैं ॥ १ ॥ आपकी सेवा, स्मरण और पूजन करनेके लिये बस थोड़ेसे बेल-पत्र और अक्षत ही बहुत हैं क्योंकि आप उतनेके ही बदलेमें हाथी, घोड़े, रथ और जगत्‌के सारे सुखके पदार्थ लुटा डालते हैं ॥ २ ॥ वामदेव ! मैं (बहुत दिनोंसे) आपके गाँव (काशी)-में रहता आया हूँ । (इतने दिनोंमें) मैंने आपसे कभी कुछ माँगा नहीं । अब आपके बहुतसे सेवक (काशीके शैव और पंडित लोग) मुझे बहुत आधिभौतिक कष्ट देकर सताने लगे हैं ॥ ३ ॥ इसलिये आप इन कष्ट देनेवालोंको झटपट बुलाकर डाँट बैठाइए । मैं आपपर बलि जाता हूँ । ये दुष्ट तो तुलसीदास-रूपी तुलसीके बिरवेको कुचलकर उसके बदले (काँटेदार) सिहोर (सेहुँड़, स्नुही)-की झाड़ी लगानेपर तुले हुए हैं ॥ ४ ॥ (८)

कल्याण-रूप शिव ! आप प्रसन्न होकर दया कर दीजिए । आप बड़े दयालु हैं । आपकी कीर्ति दूर-दूरतक फैली हुई है । मैं बलि जाता हूँ । आप कृपा करके अपनी माया हटा लीजिए । ॥ १ ॥ आपके नेत्र कमलके समान हैं, आपमें गुण ही गुण भरे हुए हैं और आप कामदेवके शत्रु हैं । आपकी महिमा कोई जान नहीं पा सकता । जबतक आपकी कृपा नहीं हो जाती तबतक रामके चरण-कमलोंमें स्वप्नमें भी किसीकी भक्ति नहीं हो पा सकती ॥२॥ ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दानव, देवता तथा और जो संसारके अन्य जीव हैं, उनमेंसे जो भी आपके चरणोंसे विमुख रहता है वह करोड़ों कल्पों-तक भी संसार-सागर पार नहीं कर पा सकता ॥३॥ आप सर्पके आभूषण पहने हुए हैं । दूषणको

---

१. सिहोर = थूहर, सेंहुड़ ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अहि - भूषन, दूषन - रिपु - सेवक, देव - देव, त्रिपुरारी।
मोह - निहार - दिवाकर संकर ! सरन - सोक - भय - हारी ॥ ४ ॥
गिरिजा - मन - मानस - मराल, कासीस, मसान - निवासी।
'तुलसिदास' हरिचरन-कमल, हर ! देहु भगति अबिनासी ॥ ५ ॥ (९)

राग घनाश्री

देव ! मोहतम - तरणि, हर, रुद्र, शंकर-शरण, हरण-भय-शोक, लोकाभिरामं।
बालशशि - भाल, सुविशाल लोचन - कमल, काम-शतकोटि-लावण्यधामं ॥१॥
कंबु, कुंदेंदु - कर्पूर - विग्रह रुचिर, तरुण - रवि - कोटि तनु तेज भ्राजै।
भस्म सर्वांग, अर्द्धांग शैलात्मजा, व्याल नृ-कपाल - माला बिराजै[1] ॥२॥
मौलि संकुल-जटा - मुकुट - विद्युच्छटा, तटिनि - बर - बारि - हरिचरण - पूतं।
श्रवण कुंडल, गरल - कंठ, करुणा - कंद, सच्चिदानंद वंदेऽवधूतं ॥३॥

मारनेवाले रामके आप सेवक हैं। आप देवाधिदेव हैं और आपने ही त्रिपुरासुरका संहार कर डाला था। शंकर ! मोह-रूपी कुहरा मिटा डालनेके लिये आप साक्षात् सूर्यके समान हैं। आपकी शरणमें जो आ जाय उसके शोक और भय आप तत्काल दूर कर डालते हैं॥ ४ ॥ पार्वतीके मन-रूपी मानसमें निवास करनेवाले राजहंस ! काशीपति ! महा-श्मशान-वासी शिव ! ऐसा बढ़िया वर दे डालिए कि तुलसीदासको रामके चरण-कमलों में अनपायिनी (अटल) भक्ति मिल जाय ॥ ५ ॥ (९)

देव ! आप अज्ञानको वैसे ही नष्ट कर डालते हैं जैसे अंधकारको सूर्य नष्ट कर डालता है। हर ! रुद्र ! शंकर ! मैं आपकी शरण में हूँ। आप सबका भय और शोक मिटा डालते और सब लोकोंको आनन्द देते रहते हैं। आपके ललाटपर बाल चन्द्रमा बड़ा प्यारा लगता है। आपके नेत्र कमलके समान बड़े-बड़े हैं। सौ करोड़ कामदेवोंके समान आप सुन्दरताके भंडार हैं॥ १ ॥ आपका शरीर शंख, कुंद, चन्द्रमा और कपूरके समान उजला है। आपके शरीरसे दोपहरके करोड़ों प्रचंड सूर्योंके समान तेज फूटा पड़ता है। आपके सारे शरीरमें भस्म पुती हुई है और आपके आधे अंगमें पार्वती समाई बैठी हैं। आपके गलेमें लिपटे हुए सर्प और मनुष्योंकी खोपड़ियोंकी माला बड़ी भली लग रही है ॥ २ ॥ आपके सिरपर बिजलीके समान चमकता हुआ जटाजूटका मुकुट है जिसमें विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गंगाका पवित्र जल लहरा रहा है। आपके कानोंमें कुण्डल और कंठमें कालकूट विष झलक रहा है। ऐसे दयालु, सच्चिदानन्द-स्वरूप, अवधूत देव शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥ आप अपने कर-कमलोंमें शूल, बाण, धनुष (पिनाक) और तलवार लिए हुए हैं। जैसे वनको अग्नि भस्म कर डालती है वैसे ही आप शत्रुओंको भस्म कर डालते हैं। बैल ही आपकी सवारी है। बाघ और हाथीकी खाल आप अपने शरीरपर लपेटे रहते हैं। आप विज्ञान (आत्मज्ञान)-के भंडार हैं तथा सिद्ध, देवता, मुनि और मनुष्य आपकी सेवा करते रहते

१. श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराश्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः।
२. अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि ॥—महिम्नस्तोत्र।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शूल - सायक - पिनाकासि कर, सत्रु - बन - दहन इव धूमध्वज, बृषभ - यानं ।
व्याघ्र - गज - चर्म्म परिधान, विज्ञान-घन, सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमानं ॥४॥
तांडवित-नृत्य-पर, डमरु-डिमडिम - प्रवर, अशुभ इव भाति, कल्याणराशी[२] ।
महाकल्पांत ब्रह्मांड - मंडल - दवन, भवन कैलास, आसीन काशी ॥ ५ ॥
तज्ञ, सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत, विभो, विश्व भवदंश - संभव, पुरारी ।
ब्रह्म इन्द्र चंद्रार्क - वरुणाग्नि - मरुत - यम, अर्चि भवदंघ्रि सर्व्वोधिकारी ॥ ६ ॥
अकल, निरुपाधि, निर्गुण, निरंजन, ब्रह्म, कर्मपथमेकमज-निर्विकारं ।
अखिल विग्रह, उग्र-रूप शिव, भूप-सुर, सर्वगत, शर्व, सर्वोपकारं ॥ ७ ॥
ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, कैवल्य सुख, सुभग सौभाग्य, शिव सानुकूलं ।
तदपि नर मूढ़, आरूढ़ संसार-पथ, भ्रमत भव, बिमुख-तव-पादमूलं ॥ ८ ॥
नष्ट-मति, दुष्ट अति, कष्ट-रत, खेद-गत, 'दास तुलसी' शंभु ! शरण आया ।
देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे, भक्तिमनवरत गत-भेद-माया ॥ ९ ॥ (१०)

हैं ॥४॥ आप तांडव नृत्य करते समय अपना सुन्दर डमरू डिम-डिम-डिम बजाने लगते हैं। आप देखनेमें अशुभ लगते हुए भी कल्याणके भंडार हैं महाप्रलयके समय आप ही सारे ब्रह्माण्डको भस्म कर डालते हैं। यद्यपि कैलास (पर्वत)-पर आपका निवास है पर आप आ बसे हैं काशीमें ही ॥५॥ आप (अध्यात्म) तत्त्व जाननेवाले, सर्वज्ञ और यज्ञोंके स्वामी हैं। आप अच्युत (कभी नष्ट न होनेवाले) हैं। विभो ! पुरारि ! यह सारा जगत् आपका ही अंश है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, अग्नि, अष्टावसु[१] (उनचास) पवन[२] और यम सब आपके चरणोंके पूजा करनेसे ही सर्वाधिकारी बने बैठे हैं ॥ ६ ॥ आप कला-रहित (पूर्ण, अखंड), उपाधि-रहित (जाति, गुण, क्रिया और संज्ञासे रहित), निर्गुण (सत्त्व, रज, तमसे परे), निर्लेप (सबसे अलग) और परब्रह्म हैं। कर्म-योगी भी आप ही अकेले हैं। आप अजन्मा और निर्विकार हैं। यह सारा विश्व आपकी ही मूर्ति है। आपका स्वरूप बड़ा उग्र होनेपर भी आप मंगलमय हैं। आप देवताओंके स्वामी और सर्वव्यापक हैं, शर्व (संहारकर्त्ता) हैं फिर भी सबका उपकार करते रहते हैं ॥७॥ शिव ! आप जिसपर प्रसन्न होते हैं, उसे ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, मोक्ष, सुन्दर सौभाग्य सब कुछ दे डालते हैं, फिर भी खेद है कि मूर्ख मनुष्य आपके चरणोंकी सेवा न करके संसारकी विकट झंझटोंमें फँसे इधर-उधर भटकते फिरते हैं ॥ ८ ॥ शम्भो ! कामारि ! यह परम मूर्ख, अत्यन्त दुष्ट, कष्टोंमें पड़ा हुआ दुखी तुलसीदास भी आपकी शरण आ पहुँचा है। भेद-भाव और मायासे रहित रामके चरणकमलोंमें आप इसे (मुझे) भी अटल भक्ति दे डालिए ॥ ९ ॥ (१०)

---

१. आठ वसु : द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु, विभास। दक्ष प्रजापतिकी जो कन्याएँ धर्मको दान की गई थीं उनमेंसे वसु नामकी कन्यासे इन आठ पुत्रोंका जन्म हुआ था।

महाभारतमें अष्ट वसुओंके नाम ये दिए गए हैं—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्युष, प्रभाष। अग्निपुराणमें इनके नाम हैं—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्युष, प्रभाष।

२. उनचास पवन : वेदोंमें इन्हें रुद्र और वृष्निका पुत्र माना गया है और इनकी संख्या एक सौ अस्सी बताई गई है। पुराणोंमें इन्हें कश्यप और दितिका पुत्र बताते हुए कहा गया है कि इनके सौतेले भाई इन्द्रने दितिका गर्भ काटकर एकके उनचास टुकड़े कर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भीषणाकार, भैरव, भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति, बिपतिहर्त्ता।
मोह - मूषक - मार्जार, संसार - भय - हरन, तारन - तरन, करन, कर्त्ता ॥ १ ॥
अतुल बल, बिपुल बिस्तार, बिग्रह गौर, अमल, अति धवल धरनी-धराभं।
शिरसि संकुलित कल जूट पिंगल जटा-पटल शतकोटिविद्युच्छटाभं ॥ २ ॥
भ्राज बिबुधापगा-आप पावन परम, मौलि-मालेव शोभा बिचित्रं।
ललित लिलाट-पर राज रजनीस कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं ॥ ३ ॥
इंदु-पावक-भानु-नयन, मर्दन-मयन, ज्ञान-गुन-अयन, विज्ञानरूपं।
रवन-गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा, श्रवण कुंडल, बदन छबि अनूपं ॥ ४ ॥

देव ! भीषण मूर्तिवाले भैरव ! आप बड़े भयंकर हैं। आप भूत, प्रेत और प्रमथ आदि गणों के स्वामी हैं। आप सबकी विपत्तियाँ हर लेते हैं। जैसे चूहेको बिलाव मार डालता है वैसे ही आप भी मोहको नष्ट कर डालते हैं। आप संसारका भय दूर कर डालते हैं। आप सबको तारते हैं और स्वयं मुक्त हैं। आप इन्द्रिय भी हैं, कर्त्ता भी हैं ॥१॥ आपका बल अतुलनीय है। आपका शरीर अत्यन्त विशाल और शेषनागकी कांतिके समान गोरा, उज्वल और निर्मल है। आपके सिरपर बिजलियोंकी चमकके समान आखोंका चौंधियाता हुआ सुन्दर पीले रंगका जटाजूट शोभा दे रहा है ॥ २ ॥ आपके मस्तकपर परम पवित्र जलमयी देवनदी गंगा भी मालाकी भाँति विचित्र शोभा दे रही है। आपके सुन्दर ललाटपर चन्द्रमाकी कमनीय कला शोभा दे रही है। ऐसे कुवेरके मित्र शिवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥ आपके (तीनों) नेत्र चन्द्र, सूर्य और अग्नि-रूप हैं[1]। आपने कामदेवको भस्म कर डाला है। आप ज्ञान और गुणोंके भंडार तथा विज्ञान-रूप हैं। आप पार्वतीके साथ विहार करते हैं। पर्वतराज कैलास ही आपका निश्चित निवास-स्थान है ॥ ४ ॥ आपके कानोंमें कुंडल है तथा आपके मुखकी छबि बड़ी

डाले थे। उसके अनन्तर इन्द्रने दितिको यह कहकर आश्वासन दिया—मा रोदीः (मत रोओ), इसीलिये बालकका नाम 'मरुत्' पड़ा। ये ही उनचास मरुत् या पवन हुए—१ श्वसन, २. स्पर्शन। ३. मातारिश्वा। ४. सदागति। ५. पृषदश्व। ६. गन्धवह। ७. अनिल। ८. आशुग। ९. समीर। १०.मारुत। ११. मरुत्। १२.जगत्प्राण। १३. समीरण। १४. नभस्वान्। १५. वात। १६. पवन। १७. पवमान। १८. प्रभंजन। १९. अजगत्प्राण। २०. खश्वास। २१. वाह। २२. धूलिध्वज। २३. फलिप्रिय। २४. वाति। २५. नभप्राण।२६. भोगिकान्त। २७.स्वकम्पन। २८. अक्षति। २९. कम्पलक्ष्मा। ३०. शसीनि। ३१. आवक। ३२. हरि। ३३. वास। ३४. सुखाश। ३५. मृगवाहन। ३६. सार। ३७. चञ्चल। ३८. विहग। ३९. प्रकम्पन। ४०. नभस्वर। ४१. निःश्वासक। ४२. स्तनून। ४३. पृषतांपति। ४४. प्राण। ४५. अपान। ४६. समान। ४७. व्यान। ४८. उदान। ४९. सूक।

१. अपने चन्द्र-रूपी बाएँ नेत्रसे वे आह्लाद देते और पालन करते हैं, सूर्य-रूपी दाहिने नेत्रसे मोहका अन्धकार दूर करके ज्ञानका प्रकाश देते हैं और ललाटके तीसरे नेत्रसे कामादि दोषोंका नाश करते और प्रलयके अंतमें सृष्टिका संहार करते हैं। इस प्रकार शिवका दाहिना नेत्र ब्रह्मा-रूप, बायाँ नेत्र विष्णु-रूप और ललाट-स्थित तीसरा नेत्र रुद्र-रूप है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चर्म-असि-शूल-धर, डमरू-सर-चाप कर, यान वृषभेश, करुनानिधानं।
जरत सुर-असुर-नरलोक-शोकाकुलं, मृदुल-चित, अजित, कृत गरलपानं ॥ ५ ॥
भस्मतनु भूषनं, व्याघ्रचर्म्माम्बरं, उरग - नर - मौलि - उर - मालधारी।
डाकिनी - शाकिनी - खेचर - भूचर जंत्र-मंत्र[1] - भंजन, प्रबल कल्मषारी ॥ ६ ॥
काल - अतिकाल, कलिकाल-व्यालारि-खग, त्रिपुर-मर्दन[2] भीम-कर्म भारी।
सकल - लोकांत - कल्पांत - शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्तगुण - नृत्यकारी ॥ ७ ॥
पाप - संताप घनघोर संसृति दीन, भ्रमत जगयोनि, नहिं कोपि त्राता।
पाहि भैरव - रूप राम - रूपी रुद्र, बंधु, गुरु, जनक, जननी, बिधाता ॥ ८ ॥
यस्य गुणगण गनति बिमल - मति शारदा, निगम, नारद - प्रमुख ब्रह्मचारी।
शेष, सर्वेश आसीन आनंदबन, प्रणत 'तुलसीदास' त्रास - हारी ॥ ९ ॥(११)

अनोखी है ॥४॥ आप ढाल, तलवार और शूल धारण किए हुए हैं। आपके हाथोंमें डमरू, बाण और धनुष है। सर्वश्रेष्ठ नन्दी बैलपर आप सवारी करते हैं और आप बड़े दयालु हैं और अजेय हैं (आपकी दयालुताका परिचय तो इसी बातसे मिल जाता है कि—) जब आपने देखा कि समुद्रसे निकलते हुए भयानक कालकूट विषसे देव, दानव और नरलोक सबके सब जले जा रहे तथा व्याकुल हुए जा रहे हैं तब आपने कोमल चित्त (दयालु) होनेके कारण वह हलाहल विष स्वयं उठाकर पी लिया ॥ ५ ॥ भस्म ही आपके शरीरका भूषण तथा व्याघ्रचर्म ही आपका वस्त्र है। आपकी छातीपर साँपों और नरमुण्डोंकी माला पड़ी हुई है। आप डाकिनी, शाकिनी, खेचर, भूचर तथा यन्त्र-मंत्रोंका नाश कर डालते हैं (आप इन सब उपद्रवोंको समाप्त कर डालते हैं)। आपके पास आते ही बड़े-बड़े पाप (क्षण भरमें) नष्ट हो हो मिटते हैं॥ ६ ॥ आप कालके भी महाकाल हैं। कलिकाल (-के कुचाल)-रूपी सर्पोंके लिये आप गरुड हैं। आपने त्रिपुरासुरका नाश किया तथा और भी बड़े-बड़े प्रचंड कर्म कर डाले हैं। महाप्रलयके समय जब समस्त लोक नष्ट हो जाते हैं तब आप दिग्गजोंको अपने शूलकी नोकपर नाँधकर गुणातीत होकर नृत्य करने लगते हैं ॥ ७ ॥ पाप और संतापसे पूर्ण इस भयानक संसारमें निराश्रित होकर मैं अनेक योनियोंमें भटकता फिरा हूँ। मुझे कोई भी बचानेवाला नहीं दिखाई दिया। भैरवके रूपमें राम-रूपी रुद्र ! आप ही मेरे बन्धु, गुरु, पिता, माता और विधाता सब कुछ हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए ॥ ८ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि विमल बुद्धिवाली सरस्वती, वेद, नारद आदि ऋषि, ब्रह्मा तथा शेष सदा जिसके गुण गाते रहते हैं, वे भक्तोंको अभय किए रखनेवाले सर्वेश्वर शिव आनन्दवन काशीमें विराजमान हैं ॥ ९ ॥ (११)

---

१. डाकिनी=पूतना आदि दुष्ट शक्तियाँ। शाकिनी=डाइन, चुड़ैल आदि। खेचर=आकाशमें विचरनेवाले तुच्छ देवी-देवता आदि। भूचर=पृथ्वीपर विचरनेवाले भूत-प्रेत आदि। यन्त्र-मन्त्र=जादू-टोना, अथवा मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तंभन, वशीकरण आदिके काममें आनेवाले यन्त्र-मन्त्र आदि। २. त्रिपुर : द्युलोक (स्वर्ग), अन्तरिक्ष और भूलोकमें मय दानवने सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर (त्रिपुर) बना बसाए थे जिन्हें शिवने जला डाला था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सदा शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैलकन्यावरं, परम रम्यं।
काम - मद - मोचनं, तामरस - लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं ॥ १ ॥
कंबु - कुंदेदु - कर्पूरगौरं, शिवं, सुंदरं, सच्चिदानंदकंदं।
सिद्ध - सनकादि - योगींद्र - वृंदारका - विष्णु - विधि - वंद्य चरणारबिंदं ॥ २ ॥
ब्रह्मकुलबल्लभं, सुलभमति - दुर्ल्लभं, विकट - वेषं, विभुं, वेदपारं।
नौमि करुणाकरं, गरल - गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं निर्विकारं ॥ ३ ॥
लोकनाथं, शोक - शूल - निर्मूलिनं, शूलिनं, मोहतम - भूरि - भानुं।
काल-कालं, कलातीतमजरं, हरं, कठिन - कलिकाल - कानन - कृसानुं ॥ ४ ॥
तज्ञमज्ञान - पाथोधि - घटसंभवं, सर्वगं, सर्व - सौभाग्य - मूलं।
प्रचुर-भव-भंजनं, प्रणत - जन - रंजनं, 'दास तुलसी' शरण सानुकूलं ॥ ५ ॥(१२)

राग वसंत

सेवहु सरोज सिव-चरन - रेनु। कल्यान - अखिलप्रद कामधेनु ॥ १ ॥
कर्पूरगौर, करुना - उदार। संसार - सार, भुजगेंद्रहार[1] ॥ २ ॥
सुख - जनम - भूमि, महिमा अपार। निर्गुन, गुन-नायक, निराकार ॥ ३ ॥

मैं उन शंकरका भजन करता हूँ जो सदा सबका कल्याण करते रहते हैं, कल्याण ही कल्याण लुटाते रहते हैं, सन्तोंको आनन्द देते रहते हैं, पार्वतीके पति हैं, परम सुन्दर हैं, जिन्होंने कामदेवका घमंड चूर-चूर कर डाला, जिनके नेत्र कमलके समान है, जो भक्ति-भावसे मिल भी जाते हैं, ॥ १ ॥ जिनका शरीर शंख, कुन्द, चन्द्र और कपूरके समान गोरा-चिट्टा है, जो कल्याणमय रूपवाले, सुन्दर और सच्चिदानन्दके घन हैं, जिनके चरण-कमलोंकी वन्दना सिद्ध, सनकादि (सनन, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) ऋषि, योगिराज, देवता, विष्णु, और ब्रह्मा सदा करते रहते हैं, ॥ २ ॥ जो ब्राह्मणोंसे बहुत प्रेम करते हैं, जो (संतोंको) सरलतासे मिल जाते और (असंतोंको) कभी नहीं मिल पाते, जिनका वेष बड़ा भयंकर है, जो सर्वव्यापी है, वेद भी जिनका पार नहीं पा सके हैं, जो कल्याणके भंडार हैं। और जो विष तथा गंगाको एक साथ धारण किए हुए हैं, ऐसे निर्मल और निर्विकार शिवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥ जो सब लोकोंके स्वामी, सबके शोक और कष्ट निर्मूल कर डालनेवाले, त्रिशूलधारी, महामोहका अन्धकार नष्ट कर डालवाले सूर्य, कालके भी काल, कलातीत (पूर्ण, अखंड), अजर, भवभय हरनेवाले (हर) और भयंकर कलिकाल-रूपी वनको जला डालनेके लिये अग्निके समान हैं ॥४॥ उन्हीं तत्त्ववेत्ता, अज्ञान-रूपी समुद्रको सोखनेके लिये अगस्त्य-रूप, अपार संसारका भय नाश करनेवाले और शरणगतोंको आनन्द देनेवाले सदा कृपा करनेवाले शिवकी शरणमें ही यह तुलसीदास आ पहुँचा है ॥ ५ ॥ (१२)

सम्पूर्ण कल्याण देनेवाली कामधेनुके समान शिवके चरण-कमलोंकी रजकी सेवा करो ॥१॥ वे कर्पूरके समान गोरे-चिट्टे, बड़े दयालु और इस (अनात्म-रूपी) असार संसारमें (आत्म-रूपमें) सार तत्त्व हैं। वे सर्पोंके राजा वासुकिको गलेमें डाले हुए हैं ॥२॥ वे सबको सुख ही सुख देते रहते हैं। उनकी महिमा बड़ी अपार है। तीनों गुण (सत्त्व, रज और तम)-से परे होते हुए भी सब प्रकारके दिव्य

१. कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारं। सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी-सहितं नमामि।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्रय-नयन, मयन-मर्दन, महेस। अहँकार-निहारोदित-दिनेस ॥ ४ ॥
बर बाल-निसाकर मौलि भ्राज। त्रैलोक्य-सोकहर, प्रमथ-राज ॥ ५ ॥
जिन-कहँ बिधि सुगति न लिखी भाल। तिनकी गति काशीपति कृपाल ॥ ६ ॥
उपकारी कोऽपर हर समान? सुर असुर जरत कृत गरल-पान ॥ ७ ॥
बहु कल्प उपाय करिय अनेक। बिनु-संभु-कृपा नहि भव-बिबेक ॥ ८ ॥
विज्ञान-भवन, गिरिसुता-रमन। कह 'तुलसिदास' मम त्रास-समन ॥ ९ ॥ (१३)

देखो देखो, बन बन्यो आज उमाकंत। मनो देखन तुमहिँ आइ रितु बसंत ॥ १ ॥
जनु तनु-दुति चंपक-कुसुममाल। बर बसन नील नूतन तमाल ॥ २ ॥
कल कदलि जंघ, पद कमल लाल। सूचत कटि केहरि, गति मराल ॥ ३ ॥
भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग। नूपुर-किंकिनि कलरव-बिहंग ॥ ४ ॥
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल। श्रीफल कुच, कंचुकि लता-जाल ॥ ५ ॥
आनन सरोज, कच मधुप-पुंज। लोचन बिसाल नव नीलकंज ॥ ६ ॥
पिक बचन, चरित बर बरहि[1]-कीर। सित सुमन हास, लीला समीर ॥ ७ ॥

गुण उनमें विद्यमान हैं। वस्तुतः उनका कोई आकार नहीं है ॥ ३ ॥ उन्हीं तीन नेत्रवाले महेश्वरने कामदेवका मर्दन किया है। वे अहंकार-रूपी कोहरेके लिये उदय हुए सूर्यके समान हैं ॥४॥ उनके मस्तकपर सुन्दर बाल-चन्द्रमा शोभा दे रहा है। वे तीनों लोकोंका शोक दूर कर डालते हैं। वे प्रमथ आदि गणोंके राजा हैं ॥५॥ विधाताने जिनके मस्तकपर सौभाग्यका कोई भी योग नहीं लिखा उन्हें काशीनाथ कृपालु शिव सुगति दे डालते हैं ॥६॥ शंकरके समान उपकारी संसारमें दूसरा और कौन है? विषकी ज्वालासे जलते हुए देव-दानवोंको बचानेके लिये उन्होंने सारा विष स्वयं पी लिया ॥७॥ अनेक कल्पोंतक चाहे जितने भी उपाय क्यों न किए जायँ, शिवकी कृपाके बिना संसारके असली स्वरूपका ज्ञान कभी हो नहीं पा सकता ॥ ८ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'विज्ञानके धाम! पार्वती-रमण शंकर! बस आप ही (चाहें तो) मेरा भय दूर कर सकते हैं' ॥ ९ ॥ (१३)

उमापति! देखिए, देखिए, आज आप पूरे ठाठदार बन ही बने चले आए हैं और (आपके अर्द्धाङ्गमें पार्वती) मानो वसंत-ऋतु (बनकर) आपको देखने चली आई हैं ॥१॥ उनके शरीरकी कान्ति ही मानो चम्पेके फूलोंकी माला हो, उनके सुन्दर नीले वस्त्र ही नवीन तमाल-पत्र हों, ॥२॥ सुन्दर जाँघें ही केलेके वृक्ष हों और चरण ही लाल कमल हों। उनकी पतली कमर ही सिंह हो तथा सुन्दर चाल ही हंस हो, ॥३॥ (विविध प्रकारके) उनके गहने ही रंगबिरंगे फूल हों, उनके नूपुर और करधनीकी (-रुनझुन ही) पक्षियोंका कलरव हो ॥४॥ उनके स्तन ही बेलके फल और चोली ही लताओंका जाल हो, ॥५॥ उनका मुख ही कमल तथा बाल ही भौंरे हों, उनके विशाल नेत्र ही नये नीले कमल हों, ॥६॥ उनके मधुर-वचन ही कोयलकी बोली तथा उनके चरित ही सुन्दर मोर और तोते हों, उनका हास ही सफेद फूल हों और उनकी लीला ही (शीतल, मंद, सुगंध) समीर हो ॥७॥ तुलसीदास कहते हैं—

---

१. बरहि (बार्हि) मोर। २. पंचबान=कामदेव।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कह 'तुलसिदास' सुनु सिव सुजान। उर बसि प्रपंच रचै पंच - बान ॥ ८ ॥
करि कृपा हरिय भ्रम-फंद - काम। जेहि हृदय बसहिं सुख-रासि राम[१] ॥९॥(१४)

[देवी-स्तुति] राग मारू

दुसह - दोष - दुख - दलनि करु देवि ! दाया।
बिस्वमूलाऽसि, जन - सानुकूलाऽसि, कर सूल - धारिनि, महामूल माया ॥ १ ॥
तड़ित - गर्भांग सर्वांग सुंदर लसत, दिब्य पट, भव्य भूषन बिराजै।
बाल-मृग-मंजु-खंजन-बिलोचनि, चंद्र-बदनि, लखि कोटि रति - मार लाजै ॥ २ ॥
रूप-सुख-सील-सीमाऽसि, भीमाऽसि, रामाऽसि, बामाऽसि बर बुद्धि-बानी।
छमुख-हेरंब - अम्बाऽसि जगदम्बिके ! संभु-जायाऽसि, जय जय भवानी ॥ ३ ॥
चंड - भुज-दंड-खंडनि, बिहंडनि महिष, मुंड-मद - भंग करि, अंग तोरे ॥
सुम्भ - निःसुम्भ - कुम्भीस रनकेसरिनि, क्रोध - बारिधि बैरि - वृंद बोरे ॥ ४ ॥
निगम-आगम-अगम, गुर्बि तव गुन-कथन, उर्बिधर करत जेहि सहस जीहा।
देहि मा ! मोहिं पन, प्रेम, यह नेम, निज राम घनस्याम, 'तुलसी' पपीहा ॥५॥(१५)

'श्रेष्ठ ज्ञानी शिव ! सुनिए। यह कामदेव मेरे हृदयमें बसकर बड़ा प्रपंच रचे जा रहा है (मेरा चित्त डाँवाँडोल किए डाल रहा है) ॥ ८ ॥ इस कामदेवका भ्रम-पाश (माया-जाल) आप काट डालिए, जिससे सुखके भंडार राम सदाके लिये मेरे हृदयमें आ बसें ॥९॥ (१४)

देवीकी स्तुति : देवी ! आप सभी भयंकर दोष और दुःख दमन कर डालती हैं। आप मुझपर भी दया कर दीजिए। आपने ही यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड (संसार) उत्पन्न किया है। आप भक्तोंपर सदा प्रसन्न रहती हैं। दुष्टोंका नाश करनेके लिये आप हाथमें शूल लिए रहती हैं और आप ही सृष्टि करनेवाली मूल प्रकृति माया हैं ॥ १ ॥ आपके जिन सुन्दर अंगोंसे बिजलीकी-सी कौंध फूटी पड़ रही है, उनपर दिव्य वस्त्र और सुन्दर आभूषण बहुत शोभा दे रहे हैं। आपके नेत्र मृग-छौनेके नेत्र और खंजनके समान सुन्दर हैं। आपका चन्द्र-मुख देखकर करोड़ों कामदेव और रति सब लज्जित हो बैठते हैं ॥२॥ आपके समान रूप, सुख और शील कहीं दिखाई नहीं देता। आप दुष्टों (-को मारने)-के लिये भयानक रूप धारण कर लेती हैं। आप ही लक्ष्मी, पार्वती और श्रेष्ठ बुद्धिवाली सरस्वती हैं। संसारकी माता ! आप स्वामिकार्तिकेय और गणेशकी माता और शिवकी गृहिणी हैं। भवानी ! आपकी जय हो ! जय हो ॥ ३ ॥ आपने ही चण्ड दैत्यके भुजदण्ड खंडित कर डाले थे, उसके अंग-प्रत्यंग तोड़ डाले थे। शुभ-निशुम्भ-रूपी मतवाले हाथियोंको रणमें (मार डालनेके लिये) आप सिंहिनी बन गई थीं। आपने अपने क्रोधके सद्रमुमें शत्रुदलको डुबो मारा था ॥४॥ यद्यपि वेद, शास्त्र और सहस्र जिह्वावाले शेषनाग निरन्तर आपका गुण गाते रहते हैं फिर भी वे आपके गुणोंका पार नहीं पा सके। माता ! मुझ तुलसीदासके हृदयमें रामकी भक्तिके लिये वैसा ही प्रण, प्रेम और लगन उत्पन्न कर डालिए जैसा श्याम मेघके लिये पपीहेका होता है ॥५॥ (१५)

१. इस पदमें शिवके अर्धाङ्ग-रूप पार्वतीपर वसंत ऋतुका रूपक बैठाया गया है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग रामकली

जय जय जग-जननि देवि ! सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि, भगत-भूति-दायिनि, भय-हरनि, कालिका।
मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्व-सर्बरीस-बदनि, ताप-तिमिर-तरुन-तरनि-किरन-मालिका ॥ १ ॥
बर्म - चर्म-कर-कृपान, सूल - सेल - धनुष - बान - धरनि, दलनि दानव - दल रन - करालिका।
पूतना-पिसाच-प्रेत-डाकिनि-साकिनि-समेत, भूत-ग्रह-बेताल-खग-मृगालि-जालिका ॥ २ ॥
जय महेस-भामिनी, अनेक-रूप-नामिनी, समस्त-लोक स्वामिनी, हिम-सैल-बालिका।
रघुपति-पद परम प्रेम 'तुलसी' चह अचल नेम, देहि ह्वै प्रसन्न, पाहि प्रनत-पालिका ॥३॥(१६)

[गंगा-स्तुति]

जय जय भगीरथ-नंदिनि, मुनिचय-चकोरि चंदिनि, नर-नाग-बिबुध-बंदिनि, जय जह्नु-बालिका ॥
बिष्नु-पद-सरोजजाऽसि, ईस-सीस-पर बिभासि, त्रिपथगाऽसि, पुन्य-रासि, पाप-छालिका ॥१॥

जगत्की माता ! देवि ! आपकी जय हो, जय हो। देवता, मनुष्य, मुनि और असुर सभी आपकी सेवा करते रहते हैं। आप भक्तोंको ऐश्वर्य देती हैं और कालिकाके समान उनका भय दूर कर डालती हैं। सब कल्याण, सुख और सिद्धियाँ आपकी मुट्ठीमें हैं। आपका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुन्दर है। जैसे दोपहरके तरुण सूर्यकी किरणें अँधेरा मिटा डालती हैं वैसे ही आप तीनों (दैविक, दैहिक और भौतिक) ताप मिटा डालती हैं ॥ १ ॥ आप अपने हाथोंमें कवच, ढाल, तलवार, त्रिशूल, साँगी और धनुष-बाण लिए रहती हैं। आप रणमें विकराल रूप धारण करके दानवोंके दलका संहार कर डालती हैं। जैसे जालमें पक्षी और हरिण फँसा लिए जाते हैं वैसे ही आप भी डाकिनी, शाकिनी, पूतना, पिशाच, प्रेत, भूत, ग्रह और वेतालको पकड़ फँसाती हैं ॥ २ ॥ अनेक रूपों और नामोंवाली महेश्वरकी प्रिये ! आपकी जय हो ! आप सारे लोकोंकी स्वामिनी और हिमाचलकी पुत्री हैं। शरणागतकी रक्षा करनेवाली देवि ! यह तुलसीदास चाहता है कि रामके चरणों में मेरा प्रेम और अचल भक्ति बनी रहे। आप प्रसन्न होकर उसे यह वर देकर उसकी रक्षा कर लीजिए ॥ ३ ॥ (१६)

गंगाकी स्तुति : भगीरथ-नंदिनी[1] गंगे ! आपकी जय हो ! जैसे चकोर निरन्तर चाँदनीको एकटक देखते रहते हैं वैसे ही मुनि लोग भी आपकी ओर देखते रहते हैं। मनुष्य, नाग और देवता आपकी वन्दना करते रहते हैं। जह्नु-बालिके[2] ! आपकी जय हो। आप विष्णुके चरण-कमलसे उत्पन्न होकर शिवके मस्तकपर लहराती हैं। आप स्वर्ग, भूमि और पाताल, इन तीन लोकोंमें

१. भगीरथ ही तपस्या करके गंगाको लाए थे। ब्रह्माने विष्णुके विराट् रूपके समय उनके पैर धोकर अपने कमण्डलुमें ब्रह्मद्रव बनाकर रख लिया था। भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होंने वह जल ऊपरसे गिराया तो शिवने अपनी जटाओंमें रोक लिया और भगीरथकी प्रार्थनापर उसे छोड़ा तो वे गंगा भगीरथ-नन्दिनी (भगीरथको प्रसन्न करनेवाली) कहलाने लगीं। २. अजमीढ और केशिनीके पुत्र जन्हु ऋषिने अपने यज्ञमें बाधक देखकर गंगाकी धारा पी डाली थी। पर भगीरथकी प्रार्थनापर अपने कानसे उसे मुक्त कर दिया था। इसलिये गंगाको जन्हु-नन्दिनी कहते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रय-ताप-हारि, भँवर बर, बिसंगतर, तरंग-मालिका।
पुरजन-पूजोपहार-सोभित ससि-धवल धार, भंजनि - भव-भार, भक्ति-कल्प-थालिका ॥२॥
निज-तट-वासी बिहंग, जल-थलचर-पसु-पतंग, कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका।
'तुलसी' तव तीर-तीर, सुमिरत रघुबंस-बीर बिचरत, मति देहि, मोह-महिष-कालिका।३।(१७)

राग धनाश्री

जयति जय सुरसरी जगदखिल - पावनी।
बिष्नु - पदकंज - मकरंद - इव अंबुबर बहसि, दुख दहसि - अघवृंद - बिद्रावनी ॥ १ ॥
मिलित जलपात्र-अज-युक्त-हरि-चरन-रज, बिरज-बर-बारि-त्रिपुरारि-सिर-धामिनी।
जह्नु - कन्या धन्य, पुन्यकृत सगरसुत, भूधर - द्रोनि - बिदरनि, बहु - नामिनी ॥२॥
जच्छ - गंधर्ब - मुनि - किन्नरोरग - दनुज - मनुज मज्जहिं सुकृत-पुंज जुत - कामिनी।
स्वर्ग-सोपान, बिज्ञान - ज्ञानप्रदे! मोह - मद - मदन - पाथोज - हिम - जामिनी ॥३॥

तीन धाराओंमें (विष्णुपदी, भागीरथी और पातालगंगा) होकर बहती हैं। आप पुण्योंका भंडार हैं तथा सारे पाप धो डालती हैं ॥ १ ॥ आपमें ऐसा अगाध निर्मल जल भरा रहता है जो इतना शीतल है कि तीनों ताप मिटा डालता है। आपमें बड़े सुन्दर भँवर पड़े हुए हैं और लहराती हुई लहरें लहराती रहती हैं। नगर-निवासी आपको जो कुछ पूजाकी सामग्री भेंट करते हैं उससे आपकी धारा चन्द्रमाके समान उज्वल (जगमग) हो चलती है। वह धारा संसारके जन्म-मृत्युका सारा कष्ट नाश कर डालती है (मुक्ति दे डालती है)। भक्तिके कल्पवृक्षका आप थाँवला हैं (आप भक्ति उत्पन्न करती हैं) ॥ २ ॥ आप अपने तटपर रहनेवाले पक्षी, जल और स्थलके जीव, पशु, पतंग, कीट और जटाधारी तपस्वी सबका समान रूपसे पालन करती रहती हैं। जैसे कालिकाने महिषासुरका नाश किया था वैसे ही मोह (अज्ञान) मिटा डालनेवाली गंगे! इस तुलसीदासको ऐसी बुद्धि दीजिए कि यह रामका स्मरण करता हुआ आपके तीरपर विचरा करे ॥ ३ ॥ (१७)

सारे संसारको पवित्र करनेवाली गंगे! आपकी जय हो, जय हो। आपमें विष्णुके चरण-कमलके मकरंद-(रस)-के समान पवित्र जल भरा हुआ है। आप सभी दुःख भस्म कर डालती और पाप नष्ट कर डालती हैं ॥ १ ॥ विष्णुके चरण-रजसे मिला हुआ आपका निर्मल और पवित्र जल ब्रह्माके कमंडलुमें और शंकरके सिरपर (जटाओंमें) लहराया करता है। जाह्नवी! आप धन्य हैं। आपने राजा सगरके पुत्रोंको[1] पवित्र कर डाला। आप पहाड़ोंको फोड़ती हुई निकली चली आई हैं। आपके नाम भी अनेक हैं ॥ २ ॥ जो भी यक्ष, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दानव और मनुष्य अपनी पत्नियोंके साथ आपके जलमें स्नान करते हैं, उन्हें अनन्त पुण्य मिल जाते हैं। जैसे शिशिरकी रातके पालेसे कमल जल जाते हैं वैसे ही आप भी मोह, मद और कामको

१. राजा सगरके अश्वमेधका घोड़ा ढूँढते हुए उनके साठ हजार पुत्र कपिलके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ घोड़ा बँधा देखकर वे कपिलको गाली देने लगे और वहाँ उनके शापसे भस्म हो गए। भगीरथ तपस्या करके गंगा लाए और उनके जलके स्पर्शसे सगरके पुत्र मुक्त हुए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर, मध्य धारा बिसद, बिस्व - अभिरामिनी।
नील पर्यंक कृत-शयन सर्वेश जनु सहस - सीसावली स्रोत सुर - स्वामिनी ॥४॥
अमित महिमा, अमित रूप, भूपावली - मुकुटमनि - वंदिते ! लोक-त्रय-गामिनी।
देहि रघुबीर पद-प्रीति निर्भर मातु ! 'दास तुलसी' त्रास-हरनि, भव भामिनी ॥५॥ (१८)

राग रामकली

हरति पाप, त्रिबिध ताप, सुमिरत सुर - सरित।
बिलसति महि कल्प - बेलि मुद - मनोरथ - फरित ॥ १ ॥
सोहति ससि - धवल - धार, सुधा - सलिल - भरित।
बिमलतर तरंग लसत, रघुबर - के - से चरित ॥ २ ॥
तो बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित ?
घोर भव - अपार - सिंधु, 'तुलसी' कैसे तरित ॥ ३ ॥ (१९)

ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि, नभ-पताल-धरनि।
मुनि, सुर, नर, नाग, सिद्ध, सुजन - मंगल - करनि ॥ १ ॥
देखत दुख - दोष - दुरित - दाह - दारिद - दरनि।
सगर - सुवन - साँसति - समनि, जलनिधि जल भरनि ॥ २ ॥

जला डालती हैं ॥ ३ ॥ देवताओंकी स्वामिनी ! आपके दोनों सुन्दर तटोंपर हरे और घने बेंतोंकी झाड़ियाँ उगी हुई हैं। उन्हींमेंको होती हुई संसारको सुख पहुँचानेवाली आपकी विशाल निर्मल धारा बहती चली आती हुई ऐसी शोभा देती है मानो नीले पलँगपर सर्पराज शेष सोए पड़े हों और आपकी सहस्रों धाराएँ ऐसी लग रही हैं जैसे वे शेषनागके सहस्र फन हों ॥ ४ ॥ आपकी महिमा भी अपार है और आपके रूप भी अनगिनत है। बड़े-बड़े राजाधिराज आपकी वन्दना करते रहते हैं। आप तीनों लोकोंमें बहती हैं। शिवकी प्यारी और संसारका भय मिटा देनेवाली माता ! ऐसा वर दीजिए कि तुलसीदासको रामके चरणोंमें अनन्य प्रेम हो जाय ॥ ५ ॥ (१८)

गंगे ! स्मरण करते ही आप सब पाप और तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) दूर कर डालती हैं। आप पृथ्वीपर ऐसी शोभा दे रही हैं जैसे आनन्द और मनोकामनाओंके फलोंसे लदी हुई कल्पलता हो ॥ १ ॥ आपकी धारा अमृतके समान (तुष्टि, पुष्टि और अमरत्वके) जलसे भरी हुई और चन्द्रमाके समान बड़ी उज्वल लग रही है। उसमें रामके निर्मल चरित्रके समान अत्यन्त निर्मल तरंगें उठ रही हैं ॥ २ ॥ जगज्जननी गंगे ! आप न होतीं तो यह (दुष्ट) कलि-काल न जाने क्या-क्या अनर्थ कर डालता और तब बताइए यह तुलसीदास इस अपार घोर संसार-सागरको कैसे पार कर पाता ? ॥ ३ ॥ (१९)

गंगे ! आप शिवके मस्तकपर लहरें ले रही हैं। आकाश, पृथ्वी और पाताल—तीनों मार्गोंसे होकर बहती हुई आप देवता, मनुष्य, मुनि, नाग, सिद्ध और सज्जन सबका कल्याण करती रहती हैं ॥१॥ आपका वर्णन होते ही दुःख, दोष, पाप, कष्ट और दरिद्रता सब मिट भागते हैं। आप ही थीं जिन्होंने सगरके (साठ हज़ार) पुत्रोंको यम-यातनासे मुक्त कर दिया। आप सदा समुद्रमें अपना जल ला-लाकर भरा करती हैं ॥ २ ॥ आपने ब्रह्मा (-के कमण्डलुमें रहकर), विष्णु

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महिमा - की अवधि करसि बहु बिधि - हरि - हरनि ।
'तुलसी' करु बानि बिमल, बिमल - बारि - बरनि[1] ॥ ३ ॥ (२०)

[यमुना-स्तुति] राग बिलावल

जमुना ज्यों - ज्यों लागी बाढ़न ।
त्यों-त्यों सुकृत सुभट, कलि - भूपहिं निदरि लगे बाँह काढ़न ॥ १ ॥
ज्यों-ज्यों जल मलिन त्यों-त्यों जम-गन मुख मलीन लहै आढ़[2] न ।
'तुलसिदास' जगदघ जवास-ज्यों अनघ आनि लागे डाढ़न ॥ २ ॥ (२१)

[काशी-स्तुति] राग भैरव

सेइय सहित - सनेह देह - भरि, कामधेनु कलि कासी ।
समनि - सोक-संताप - पाप - रुज, सकल - सुमंगल - रासी ॥ १ ॥
मरजादा चहुँ ओर, चरन - बर सेवत सुरपुर - बासी ।
तीरथ सब सुभ अंग, रोम सिव - लिंग अमित अबिनासी ॥ २ ॥
अंतर - अयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद - बिस्वासी ।
गल कंबल बरना बिभाति, जनु लूम लसति सरिताऽसी[3] ॥ ३ ॥

(-के चरणोंसे निकलकर) और शंकर (-के मस्तकपर विराजमान होकर)—इन तीनोंकी महिमा बढ़ा रक्खी है । तुलसीदास कहते हैं—'निर्मल जलवाली गंगे ! आप (अपने जलके समान) मेरी वाणी भी निर्मल कर दीजिए (जिससे मैं निर्मल रामचरितका गान कर सकूँ) ॥ ३ ॥ (२०)

यमुनाकी स्तुति : यमुना ज्यों-ज्यों बढ़ने लगीं त्यों-त्यों पुण्य-रूपी राजाके योद्धाओं (सत्य, शौच, अहिंसा, दया, दान आदि)-ने कलि-काल-रूपी राजाको निरादरपूर्वक बाँह पकड़कर निकाल बाहर करना आरंभ किया ॥१॥ (वर्षा ऋतुके कारण) ज्यो-ज्यों यमुनाका पानी मटमैला होने लगा त्यों-त्यों यम-दूतोंका मुँह भी मलिन पड़ने लगा और उनकी कहीं पूछ न रह गई । तुलसीदास कहते हैं कि (यमुनाके बढ़ते ही) पुण्यकी आगने संसारके पाप-रूपी जवासेको जलाकर भस्म कर डाला ॥ २ ॥ (२१)

काशीकी स्तुति : इस कलियुगमें यही उचित है कि जीवन-भर स्नेह-पूर्वक काशी-रूपी कामधेनुका सेवन किया जाय (काशीमें रहा जाय) । काशीमें रहनेसे शोक, सन्ताप, पाप और रोग सब नष्ट हो जाते हैं और सब कल्याण ही कल्याण होता है ॥ १ ॥ काशीके चारों ओरकी सीमा ही इस काशी-रूपी कामधेनुके ऐसे चारों सुन्दर चरण हैं जिनकी सेवा स्वर्गके देवता भी करते हैं । यहाँके

---

१. निराकारं भजन्त्यन्ये नराकारं तथापरे । वयं संसार-संतप्ताः नीराकारमुपास्महे ।
२ आढ़ न=बिना ओट या सहारेके । ३. सरितासी = सरिता + असी । असि (तलवार) के रूपमें बहती हुई गंगा । जाबालोपनिषद्के अनुसार वरणा और नाशी (गंगा) के मध्य बसी हुई काशीका नाम वाराणसी है । कुछ लोग असि (अस्सी नदी या नाला) और वरणाके मध्यके क्षेत्रको वाराणसी कहते हैं—

वरणासी च नद्यौ द्वे पुण्ये पापहरे उभे । तयोरन्तर्गता या तु सैव वाराणसी स्मृता ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दंडपानि भैरव बिषान, मल - रुचि खल - गन - भयदा - सी।
लोल दिनेस, त्रिलोचन लोचन, करन - घंट घंटा - सी ॥ ४ ॥
मनिकर्निका - बदन - ससि - सुंदर, सुरसरि मुख - सुषमा - सी।
स्वारथ - परमारथ - परिपूरन, पंचकोस - महिमा - सी ॥ ५ ॥
बिस्वनाथ पालक कृपालु चित, लालति नित गिरिजा - सी।
सिद्धि, सची, सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा - सी ॥ ६ ॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा - सी।
ब्रह्म - जीव - सम राम - नाम, दोउ आखर बिस्व - बिकासी ॥ ७ ॥
चारित चरति करम कुकरम करि, मरत जीव - गन घासी।
लहत परम पद पय पावन, जेहि चहत प्रपंच - उदासी ॥ ८ ॥
कहत पुरान, रची केसव निज कर - करतूति - कला - सी।
'तुलसी' बसि हर - पुरी, राम जपु, जौ भयो चहै सुपासी ॥ ९ ॥(२२)

सब तीर्थ ही इसके शुभ अंग हैं और सदा विद्यमान रहनेवाले अगणित शिवलिंग ही इसके रोम हैं॥२॥ अन्तर्गृही (काशीके मध्यभागके तीर्थ) इस कामधेनुके सुन्दर अयन (बाँक, दुग्धकोश) हैं। चारों फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) ही इसके चारों थन हैं। वेदशास्त्रोंपर विश्वास रखनेवाले (आस्तिक जन) ही इसके बछड़े हैं। सुन्दर वरणा नदी इसके गल-कंबलके समान शोभा बढ़ा रही है। असी नामक नदी पूँछके रूपमें शोभा दे रही है ॥ ३ ॥ दंडपाणि और काल-भैरव इसकी सींगें हैं। पापमें रुचि रखनेवालोंको यह कामधेनु इन्हीं सींगोंसे सदा डराती रहती है। लोलार्क कुंड और त्रिलोचन ही इसके नेत्र हैं,। कर्णघंटा नामक तीर्थ इसके गलेका घंटा है ॥ ४ ॥ मणि-कर्णिका इसका चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है। पापोंका नाश करनेवाली गंगा इसके मुखकी शोभा हैं। स्वार्थ और परमार्थके सुख देनेवाली पंच-कोशीकी परिक्रमा ही इसकी महिमा है ॥ ५ ॥ दयालु विश्वनाथ ही इस कामधेनुका पालन-पोषण करते हैं और स्नेहमयी जगज्जननी पार्वती सदा इसे प्यार करती रहती हैं। आठों सिद्धियाँ[1], सरस्वती और इन्द्राणी (शची) इसका पूजन करती रहती हैं। (जगत्का पालन करनेवाली) लक्ष्मी इसका मनचाहा करती रहती हैं ॥ ६ ॥ 'नमः शिवायः'—यह पञ्चाक्षरी मंत्र ही इसके पंच प्राण (प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान) हैं। भगवान् विन्दु-माधव ही इसके आनन्द हैं। पंचनदी (पंचगंगा : गङ्गा, यमुना, सरस्वती, कीर्णा, धूतपापा) इसके पंचगव्य (गोबर, गोमूत्र, दूध, दही और घृत) हैं। संसारका विकास करनेवाले 'राम' नामके दोनों अक्षर ही इसके अधिष्ठाता ब्रह्म और जीव हैं ॥७॥ यह काशी वहाँ मरनेवाले सभी जीवोंके सुकर्म और कुकर्म-रूपी घास चर जाती है, जिससे उनको वही परमपद-रूपी दूध मिलता है जो संसारके विरक्त महात्मा गण चाहा करते हैं ॥८॥ पुराण कहते हैं कि विष्णुने सारी कला लगाकर अपने हाथों इसकी रचना की है। अरे तुलसीदास ! यदि तू सुखी रहना चाहता है तो काशीमें रहकर बैठा रामनामका जप किया कर ॥ ९ ॥ (२२)

१. सिद्धियाँ : अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, प्राप्ति।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

[चित्रकूट-महिमा] राग वसंत

सब सोच - बिमोचन चित्रकूट । कलि - हरन, करन कल्यान बूट ॥ १ ॥
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल । कानन बिचित्र बारी बिसाल ॥ २ ॥
मंदाकिनि - मालिनि सदा सींच । बर - बारि, बिषम नर - नारि नीच ॥ ३ ॥
साखा मुसृंग, भूरुह सुपात । निरझर मधु, बर मृदु मलय - बात ॥ ४ ॥
सुक - पिक - मधुकर - मुनिवर - बिहारु । साधन-प्रसून, फल-चारि चारु ॥ ५ ॥
भव - घोर - घाम - हर, सुखद छाँह । थप्यो थिर प्रभाउ जानकी - नाह ॥ ६ ॥
साधक सुपथिक बड़ भाग्य पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥ ७ ॥
रस एक, रहित - गुन-करम-काल । सिय - राम - लखन पालक कृपाल ॥ ८ ॥
'तुलसी' जो राम - पद चहिय प्रेम । सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥ ९ ॥(२३)

राग कान्हरा

अब चित चेत चित्रकूटहि चल ।
कोपित कलि, लोपित मंगल - मग, बिलसत बढ़त मोह - माया - मल ॥ १ ॥
भूमि बिलोकु राम - पद - अंकित , बन बिलोकु रघुबर - बिहार - थल ।
सैल - सृंग भव - भंग - हेतु लखु, दलन कपट - पाखंड - दंभ - दल ॥ २ ॥

चित्रकूट-स्तुति : सब प्रकारके शोक मिटाकर और कलियुगके दुःख दूर करके यह चित्रकूट-रूपी वृक्ष सबका सदा कल्याण करता रहता है । यहाँकी भूमि ही इस वृक्षका सुन्दर थाँवला है और विचित्र वन ही इसकी विशाल बारी (बाड़) है ॥ १ ॥ मंदाकिनी ही वह मालिन है जो इसे अपने उत्तम जलसे सदा सींचा करती है । यहाँके नीच (कोल-भील आदि छोटी जातिके) स्त्री-पुरुष ही यहाँकी विषम (ऊबड़-खाबड़) भूमि हैं । यहाँके (पर्वतके) शिखर ही इसकी शाखाएँ हैं और वृक्ष ही सुन्दर पत्ते हैं, झरने ही मकरंद हैं और बड़का पेड़ ही यहाँका सुगंधित पवन है ॥२॥ यहाँके बड़े-बड़े मुनि ही यहाँके वृक्षोंपर फुदकनेवाले सुग्गे, कोयल और भौंरे हैं । उन मुनियोंके अनेक प्रकारके साधन ही इसके फूल हैं और चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) ही इसके सुन्दर फल हैं ॥३॥ इसकी छाया जन्म-मृत्यु-रूपी संसारकी कड़ी धूप मिटाकर बड़ा सुख देती है । जानकीनाथ रामने (वहाँ रहकर) सदाके लिये इसका प्रभाव स्थिर कर दिया है ॥४॥ वहाँके साधक ही श्रेष्ठ पथिक हैं जो बड़े सौभाग्यसे इससे अनेक प्रकारके मनोवांछित सुख प्राप्त करके तृप्त हुए रहते हैं । इस चित्रकूट-रूपी वृक्षपर गुण, कर्म और कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसलिये यह सदा एक-रस बना रहता है । कृपालु राम, लक्ष्मण और जानकी इसका पालन करते रहते हैं। देख तुलसीदास ! यदि तू रामके चरणोंमें प्रेम चाहता हो तो निश्छल रूपसे नियम-पूर्वक चित्रकूटपर जा बस ॥ ५ ॥ (२३)

अरे चित्त ! अब तो सँभल जा और चित्रकूट चला चल । कलियुगने कोप करके धर्म और भक्तिके कल्याणकर मार्ग लुप्त कर डाले हैं ॥ १ ॥ माया, मोह और पाप नित्य-प्रति बढ़ते चले जा रहे हैं। चित्रकूटमें रामके चरणोंसे चिह्नित भूमिका और उनके विहार-स्थल वनका चलकर दर्शन कर ले। वहाँ सब कपट, पाखंड और दम्भका नाश कर डालनेवाले उन पर्वत-शिखरोंको चलकर देख जो

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जहँ जनमे जग-जनक, जगत-पति, बिधि-हरि-हर[1] परिहरि प्रपंच-छल।
सकृत प्रबेस करत जेहि आस्रम, बिगत-बिषाद भए पारथ-नल॥ ३॥
न करु बिलंब, बिचारु चारु मति, बरष पाछिले सम अगिलो पल।
मंत्र सो जाइ जपहि, जो जपत भे अजर अमर हर, अँचइ हलाहल॥ ४॥
राम-नाम-जप-जाग करत नित, मज्जत पय[2] पावन, पीवत जल।
करिहैं राम भावतो मन-को, सुख-साधन अनयास महा फल॥ ५॥
कामद-मनि कामता-कल्पतरु, सो जुग-जुग जागत जगतीतल।
'तुलसी' तोहिं बिसेष बूझिए, एक प्रतीति, प्रीति, एकै बल॥ ६॥(२४)

राग धनाश्री

जयति अंजना-गर्भ-अंभोधि-संभूत-बिधु बिबुध-कुल-कैरवानंद-कारी।
केसरी-चारु लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगन-सोक-संताप-हारी॥ १॥

जन्म-मरणके संसार-बंधनसे छुटकारा दिला देते हैं॥ २॥ यही वह स्थान है जहाँ जगत् पिता जगदीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिवने प्रपञ्च और छल छोड़कर (सती अनुसूयाके पुत्रके रूपमें) जन्म लिया था। यही वह चित्रकूट है जिसके आश्रममें एक बार प्रवेश करते ही जुएमें हारकर वन-वन भटकते हुए युधिष्ठिर आदि पाण्डव और राजा नलका सारा दुःख मिट गया॥ ३॥ अब वहाँ पहुँचनेमें विलम्ब न कर। अपनी सुबुद्धिसे यह सोच ले कि जितने वर्ष बीत सो तो बीते पर अब आयुके जो शेष क्षण भी बीते हुए वर्षोंके ही समान लंबे हैं। (अपना एक-एक पल एक-एक वर्षके समान बहूमूल्य समझकर और मृत्युको सिरपर जानकर) झटपट चित्रकूट जाकर राम मंत्रका जप कर, जिसे जपनेसे कालकूट विष पीकर भी शंकर अजर-अमर हो गए॥ ४॥ जब तू वहाँ निरन्तर रामनामका सर्वश्रेष्ठ यज्ञ करेगा, पयोष्णी (मन्दाकिनी) नदीके पवित्र जलमें स्नान करेगा तथा उसका जल पीवेगा, तब राम तेरी सारी मनो-कामनाएँ पूरी कर डालेंगे और इस सुखमय साधनसे तुझे सहजमें ही चारों महा फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) दे डालेंगे॥ ५॥ चित्रकूटमें कामद-गिरि कल्पवृक्ष तो मनोरथ पूर्ण करनेवालोंमें चिन्तामणि (सर्वश्रेष्ठ) है और वह युग-युगमें पृथ्वीपर जगमगाता रहता है। यों तो चित्रकूट सभीके लिये सुखदायक है, परन्तु अरे तुलसीदास! तुझे तो विशेष रूपसे उसीके विश्वास, प्रेम और बलपर अवलम्बित रहना चाहिए॥ ६॥ (२४)

हनुमान्-स्तुति : जैसे समुद्रसे चन्द्रमा उत्पन्न होकर कुमुदोंको खिला देता है वैसे ही अञ्जनाके गर्भसे उत्पन्न होकर देवताओंको प्रसन्न कर देनेवाले हनुमान्! आपकी जय हो। आप (अपने पिता) केसरीके सुन्दर नेत्र-रूपी चकोरोंको सुख देते हैं तथा समस्त लोकोंका शोक और संताप नष्ट कर डालते हैं॥ १॥ आपकी जय हो। आपने अपनी आश्चर्यजनक

१. ब्रह्माने जब अत्रिको सृष्टि करनेको कहा तो वे अपनी पत्नी अनसूयाके साथ जगदीश्वरके समान पुत्र प्राप्त करनेके लिए तप करने लगे। इनके तपसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों आ पहुँचे और इस प्रकार ब्रह्माके अंशसे सोम मुनि, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और शिवके अंशसे दुर्वासा हुए और इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंका जन्म चित्रकूटमें अत्रिके यहाँ हुआ।

२. पयोष्णी (पयस्विनी) : वर्तमान पायसनी नदी (मंदाकिनी)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति बालार्क - कपि - केलि - कौतुक उदित - चंडकर - मंडल - ग्रासकर्त्ता।
राहु - रबि - सक्र - पबि - गर्व - खर्वीकरन, सरन भय - हरन, जय भुवन - भर्त्ता ॥ २ ॥
जयति रन - बीर - रघुबीर - हित देव - मनि रुद्र - अवतार संसार - पाता।
बिप्र - सुर - सिद्ध - मुनि - आसिषाकार - बपु, बिमल - गुन - बुद्धि - बारिधि बिधाता ॥ ३ ॥
जयति सुग्रीव - रिच्छादि - रच्छन - निपुन, बालि - बल - सालि - बध मुख्य हेतू।
जलधि - लंघन - सिंह, सिंहिका - मद - मथन, रजनिचर - नगर - उत्पात - केतू ॥ ४ ॥
जयति भू - नंदिनि - सोच - मोचन, बिपिन - दलन, घननाद - बस - बिगत - संका।
लूम - लीलाऽनल - ज्वाल - मालाऽऽकुलित, होलिका करन, लंकेस - लंका ॥ ५ ॥
जयति सौमित्रि - रघुनंदनानंद - कर, रिच्छ - कपि - कटक - संघट बिधाई[1]।
बद्ध सागर - सेतु, अमर मंगल - हेतु, भानुकुल - केतु रन - बिजय - दाई ॥ ६ ॥
जयति जय बज्र - तनु, दसन, नख, मुख बिकट, चंड भुजदंड, तरु-सैल-पानी।
समर तैलिक जंत्र, तिल तमीचर - निकर, पेरि डारे सुभट घानी ॥ ७ ॥

वानरी बाल-क्रीडासे, उदय होते हुए प्रचंड किरणोंवाले सूर्यको निगल लिया था, (उस समय) राहु, सूर्य, चन्द्र और वज्रका गर्व चूर-चूर कर देनेवाले ! शरणागतका भय मिटा डालनेवाले ! संसारका भरण-पोषण करनेवाले ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ आप सबसे अधिक धैर्यवान्, वीर, रामकी सेवाके लिये महादेवके रुद्रावतार और संसारके रक्षक हैं। आपका शरीर मानो ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वादसे बना हो। आप निर्मल गुण और बुद्धिके भंडार एवं दाता हैं, आपकी जय हो ॥ ३ ॥ आपने वानरेश सुग्रीव आदि वानर तथा जामवंत आदि भालुओंकी बड़ी कुशलतासे रक्षा की। आपने ही बालिका वध किया। आपने ही समुद्र लाँघनेके समय सिंहिका नामक राक्षसीको सिंहके समान मसल डाला था तथा राक्षसोंके नगर (लंकापुरी)-को धूमकेतु बनकर नष्ट कर डाला था, आपकी जय हो ॥ ४ ॥ आपने ही जानकीका सन्देश रामको सुनाकर उनकी चिन्ता दूर की थी और रावणकी अशोक-वाटिका उजाड़ डाली थी। आपने ही निःशंक होकर अपनेको मेघनादके ब्रह्मपाशमें बँधवा लिया था। आपने अपनी पूँछकी लीलाके द्वारा धधकती हुई आगकी लपटोंसे रावणकी लंकापुरीके चारों ओर होली जला दी थी (सारी लंका भस्म कर डाली थी)। आपकी जय हो ॥ ५ ॥ आपने (संजीवनी बूटी लाकर) रामको आनन्द और लक्ष्मणको नया जीवन दिया, वानर और भालुओंकी सेना एकत्र करके समुद्रपर पुल बाँधनेमें सहायता की, देवताओंका कल्याण किया और सूर्यकुल-केतु रामको संग्राममें विजय प्राप्त कराई। आपकी जय हो ॥ ६ ॥ आपका शरीर, दाँत, नख और विकराल मुख सब वज्रके समान हैं। आपके भुजदंड तो बड़े ही प्रचण्ड हैं। आप अपने हाथोंपर वृक्ष और पर्वत उठा लेते हैं। आपने संग्रामके कोल्हूमें बड़े-बड़े योद्धा राक्षसोंके समूहको तिलकी घानी बनाकर पेर डाला। आपकी जय हो ॥ ७ ॥ आपने ही रावण,

---

१. संघट-बिधाई = एकत्र करनेवाला।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति दसकंठ, घट - कर्न, - बारिदनाद - कदन कारन, कालनेमि - हंता।
अघट-घटना-सुघट, सुघट-बिघटन-बिकट, भूमि - पाताल - जल - गगन - गंता ॥ ८ ॥
जयति बिस्व - बिख्यात बानैत, बिरुदावली बिदुष बरनत बेद बिमल - बानी।
'दास तुलसी' त्रास - समन, सीता - रमन - संग सोहत राम - राजधानी ॥ ९ ॥(२५)

जयति मर्कटाधीस, मृगराज - बिक्रम, महादेव, मुद - मंगलालय कपाली।
मोह - दम - कोह - कामादि - खल - संकुल - घोर - संसार - निसि किरन - माली ॥ १ ॥
जयति लसदंजना - दितिज कपि केसरी - कस्यप - प्रभव - जगदार्ति - हारी।
लोक - लोकप - कोक - कोकनद - सोकहर - हंस, हनुमान ! कल्यान - कारी ॥ २ ॥
जयति सुबिसाल बिकराल - बिग्रह - बज्र - सार सर्वांग भुजदंड भारी।
कुलिस - नख - दसन, बल बसति बालधि बृहद्, बैरि - सस्त्रास्त्र-धर-कुधर-धारी ॥ ३ ॥
जयति जानकी - सोच - संताप - मोचन, राम-लछिमनानंद - बारिज - बिकासी।
कीस - कौतुक - केलि - लूम - लंका - दहन, दलन - कानन, तरुन - तेज - रासी ॥ ४ ॥

कुम्भकर्ण और मेघनादका नाश करा डाला। कपटी कालनेमिको (जो द्रोणागिरि जाते समय हनुमान्‌को बातोंमें उलझाना चाहता था) आपने ही पछाड़ मारा था। आप ऐसे विकट वीर हैं कि असम्भवको सम्भव तथा सम्भवको असम्भव कर दिखाते हैं। भूमि, पाताल, जल (समुद्र) और आकाश सभी स्थानोंपर आप बेरोक-टोक आ-जा सकते हैं। आपकी जय हो ॥ ८ ॥ आपकी जगद् विख्यात वीरताकी प्रशंसा विद्वान् लोग तथा वेद भी विशुद्ध वाणीसे किया करते हैं। आप ही तुलसीदासका भय मिटा सकते हैं। आप सदा रामके साथ अयोध्यामें शोभयमान रहते हैं। आपकी जय हो ॥ ९ ॥ (२५)

वानरोंके राजा हनुमान् ! आपकी जय हो। आप सिंहके समान पराक्रमी, देवताओंमें श्रेष्ठ, आनन्द और कल्याणके भंडार और हाथमें कपाल लिए रहनेवाले शिवके अवतार हैं। मोह, मद, क्रोध, काम आदि दुष्टोंसे भरी हुई इस संसार-रूपी अँधियारी रातका अँधेरा मिटा डालनेके लिये आप साक्षात् सूर्य हैं। आपकी जय हो ॥१॥ जैसे देवोंका जन्म अदिति और कश्यपसे हुआ वैसे ही आपका जन्म अंजना-रूपी अदिति (देवमाता) और वानरोंमें सिंहके समान केसरी-रूपी कश्यपसे हुआ है। आप जगत्‌के कष्ट हर डालते हैं। आप लोक और लोकपाल-रूपी चकवे-चकवी और कमलोंका शोक मिटा डालनेवाले साक्षात् कल्याणमूर्त्ति सूर्य हैं ॥ २ ॥ आपकी जय हो। आपका शरीर बड़ा विशाल और भयंकर है। आपका अंग-अंग वज्रके समान (कठोर) और भुजदंड बड़े भारी हैं। आपके सुंदर दाँत और नख वज्रके समान हैं। आपकी पूँछ तो बड़ी ही लंबी और बली है। अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र-धारी शत्रुओंका संहार करनेके लिये आप पर्वत हाथमें लिए रहते हैं ॥ ३ ॥ आपकी जय हो। आपने सीताका शोक और संताप मिटा डाला था और राम-लक्ष्मणके आनन्द-रूपी कमल खिला दिए थे। आपने बन्दरके समान खेल-खेलमें ही अपनी पूँछसे लंका जला डाली थी और अशोक-वन उजाड़ डाला था। आप नवीन तेजसे भरे हुए मध्याह्न कालके सूर्यके समान हैं ॥४॥ आपकी जय हो।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति पाथोधि - पाषान - जलजान - कर, जातुधान - प्रचुर - हरष - हाता।
दुष्ट - रावन - कुंभकरन - पाकारिजित्[1] - मर्मभित्[2]- कर्म - परिपाक - दाता ॥ ५ ॥
जयति भुवनैक - भूषन, बिभीषन - बरद - बिहित - कृत, राम - संग्राम-साका।
पुष्पकारूढ़ - सौमित्रि - सीता - सहित - भानुकुल - भानु - कीरति - पताका ॥ ६ ॥
जयति पर - जंत्र - मंत्राभिचार - ग्रसन, कार्मन[3] - कूट - कृत्यादि हंता।
साकिनी - डाकिनी - पूतना - प्रेत - बैताल - भूत - प्रमथ - जूथ - जंता ॥ ७ ॥
जयति बेदांतबिद, बुद्धि - बिद्या - बिसद, बेद - बेदांग - विद्, ब्रह्मवादी।
ज्ञान - बैराग्य - बिज्ञान - भाजन बिभो ! बिमल गुन गनत सुक - नारदादी ॥ ८ ॥
जयति काल - गुन-कर्म-माया[4] - मथन, निश्चल - ज्ञान-व्रत, सत्यरत, धर्म्मचारी।
सिद्ध - सुर-वृंद - जोगींद्र - सेवित सदा, 'दास तुलसी' प्रनत - भय - तमारी ॥ ९ ॥(२६)

जयति मंगलागार, संसार - भारापहर, बानराकार, बिग्रह - पुरारी।
राम - रोषानल - ज्वाल - माला - मिस, ध्वांतचर[4] - सलभ - संहारकारी ॥ १ ॥

आपने समुद्रपर पत्थरका पुल बाँध दिया, राक्षसोंका सारा आनन्द मिटा डाला तथा रावण, कुंभकर्ण और मेघनादके मर्म स्थान भेदकर उन्हें उनके कर्मोंका फल चखा दिया ॥ ५ ॥ आपकी जय हो। आप त्रिभुवनके भूषण हैं। आपने विभीषणको रामकी भक्तिका वर दिया और रणमें रामके साथ बड़े-बड़े कार्य कर डाले। सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक विमानपर विराजमान सूर्यकुलके सूर्य रामकी कीर्तिकी पताका (कीर्ति बढ़ानेवाले) आप ही हैं ॥ ६ ॥ आपकी जय हो। शत्रु जो यन्त्र, मन्त्र और अभिचार (जादूटोने) चलाते हैं उन्हें आप ग्रस लेते हैं तथा गुप्त रूपसे मारणके प्रयोगोंको तथा प्राणनाशिनी कृत्या आदि क्रूर शक्तियोंको मिटा डालते हैं। शाकिनी, डाकिनी, पूतना, प्रेत, वैताल, भूत और प्रमथ आदि भयंकर तत्त्वोंको आप अपने वशमें किए रखते हैं ॥ ७ ॥ आपकी जय हो। आप वेदान्तके ज्ञाता, अनेक प्रकारकी विद्याओंके पंडित, वेद-वेदांगके ज्ञाता और ब्रह्मके निरूपक हैं। आपमें ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य भरा है इसीलिये नारद और शुक आदि देवर्षि सदा आपकी निर्मल गुणावली गाते रहते हैं ॥ ८ ॥ आपकी जय हो। आप काल, गुण, कर्म और मायाका नाश कर डालते हैं। आपका ज्ञानका व्रत सदा निश्चल है। आप सत्य-परायण और सदा धर्मका आचरण करते हैं। सिद्ध, देवता और योगिराज सदा आपकी सेवा किया करते हैं। सांसारिक अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्य ! यह तुलसीदास आपकी शरणमें आ पहुँचा है ॥ ९ ॥ (२६)

हनुमान् ! आपकी जय हो। आप कल्याणके धाम, संसारका भार हरनेवाले और वानर रूपमें साक्षात् शिव हैं। आप राक्षस-रूपी पतंगोंको भस्म करनेवाली रामकी क्रोधाग्निकी ज्वालाके मूर्त्तिमान् स्वरूप हैं ॥ १ ॥ आपकी जय हो। आपको देखकर पवन और अंजनाको आनन्द मिलता

१. पाकारिजित् = इन्द्रजित्, मेघनाद २. मर्मभित्=मर्म स्थानोंको छेदनेवाला। ३. कारमन (कार्मण)=जादू-टोना। काल=दिन, घड़ी, पल आदि। गुण=सत्त्व, रज और तम। कर्म= सञ्चित (पुराने), प्रारब्ध (वर्त्तमान) और क्रियमाण (भावी कर्म)। ४. ध्वांतचर = राक्षस।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति मरुदंजनामोद - मंदिर, नतग्रीव - सुग्रीव - दुःखैक - बंधो।
जातुधानोद्धत क्रुद्ध - कालाग्निहर, सिद्ध - सुर - सज्जनानंदसिंधो ॥ २ ॥
जयति रुद्राग्रणी[1], बिस्व - बिद्याग्रणी, बिस्व - बिख्यात भट - चक्रवर्ती।
सामगाताग्रणी, कामजेताग्रणी, राम - हित, राम - भक्तानुवर्ती ॥ ३ ॥
जयति संग्राम - जय, राम - संदेस - हर, कोसला - कुसल - कल्यान - भाखी।
राम - बिरहार्क - संतप्त - भरतादि - नर - नारि - सीतल - करन कल्प - साखी ॥ ४ ॥
जयति सिंहासनासीन - सीता - रमन निरखि, निर्भर - हरष - नृत्य - कारी।
राम - सम्राज - सोभा - सहित सर्वदा तुलसि - मानस - रामपुर - बिहारी ॥ ५ ॥(२७)

जयति बात-संजात, बिख्यात-बिक्रम, बृहद्बाहु, बल बिपुल, बालधि-बिसाला।
जातरूपाचलाकार - बिग्रह, लसत - लोम बिद्युल्लता - ज्वालमाला ॥ १ ॥
जयति बालार्क - बर - बदन, पिंगल नयन, कपिस - कर्कस - जटा - जूट - धारी।
बिकट भ्रुकुटी, बज्र दसन - नख, बैरि-मदमत्त - कुंजर - पुंज - कुंजरारी ॥ २ ॥

है। आप ही उदास और दुखी सुग्रीवके दुःखमें सच्चे बन्धुके समान सहायक हुए थे। आपने ही राक्षसोंके भयंकर क्रोधकी प्रलयाग्निका नाश कर डाला था। सिद्ध, देवता और सज्जनोंके लिये आप आनन्दके समुद्र हैं (उन्हें आनन्द देते रहते हैं) ॥२॥ आपकी जय हो। आप एकादश रुद्रोंमें और जगत्पूज्य ज्ञानियोंमें सबसे बढ़कर हैं। आप संसारके समस्त शूरवीरोंके प्रसिद्ध सम्राट् (शिरोमणि) हैं। सामवेदका पाठ करनेवालोंमें तथा कामको वशमें किए रखनेवालोंमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। आप रामका हित करते रहते और राम-भक्तोंके साथ रहते हैं ॥३॥ आपकी जय हो। आप सदा संग्राममें विजय पाते हैं। आपने ही (वनवाससे लौटनेपर) रामका सन्देश (अयोध्यामें) ले जा पहुँचाया था और (अयोध्याका) कुशल-मंगल (रामको) आ सुनाया था। रामके वियोगकी धूपसे जलते हुए भरत आदि अयोध्यावासी नर-नारियोंको आपने कल्पवृक्षकी छाँहके समान शीतल किया था (रामके वियोगमें दुखी भरत और अयोध्यावासियोंको रामके आगमनका समाचार देकर सान्त्वना दी थी) ॥४॥ आपकी जय हो! आप रामको राजसिंहासनपर विराजमान देखकर आनन्दसे विभोर होकर नाच उठे थे। (हनुमान्!) जिस प्रकार अयोध्यामें सिंहासनपर विराजित होकर राम शोभा पा रहे थे, वैसे ही आप भी इस तुलसीदासके मनकी अयोध्यामें आकर सदा विहार करते रहा कीजिए ॥५॥ (२७)

हनुमान्! आपकी जय हो। पवनसे आपका जन्म हुआ है। आपका पराक्रम संसारमें प्रसिद्ध है। आपकी भुजाएँ बड़ी विशाल हैं। आपमें अगाध बल है। आपकी पूँछ तो बड़ी ही लंबी है और आपका शरीर स्वर्णाचल (सुमेरु-पर्वत)-के समान विशाल और सुनहरा है। आपका रोम-रोम बिजलीकी लताओंकी चमकके समान जगमगाता रहता है ॥१॥ आपकी जय हो! आपका मुख उदयकालीन सूर्यके समान सुन्दर है और आपके नेत्र पीले हैं। आप सिरपर भूरे रंगकी कसी हुई जटाओंका जूट

१. एकादश रुद्र=अज, अहिर्बुध्न, त्वष्टा, विश्वरूप-हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी और रैवत।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति भीमार्जुन - ब्याल - सूदन - गर्व - हर[1], धनंजय - रथ - त्रान - केतू।
भीषम - द्रोन - करनादि - पालित काल - दृक, सुजोधन - चमू - निधन - हेतू॥ ३॥
जयति गत-राज्य - दातार[2], हंतार - संसार - संकट, दनुज - दर्प - हारी।
ईति[3], अति भीति - ग्रह - प्रेत - चौरानल - व्याधि - बाधा - समन घोर मारी॥ ४॥
जयति निगमागम - व्याकरन-करन, लिपि-काव्य - कौतुक - कला-कोटि-सिंधो।
साम - गायक, भक्त - काम - दायक, बामदेव - श्रीराम - प्रिय - प्रेम - बंधो॥ ५॥
जयति घर्मांसु - संदग्ध - संपाति - नव - पच्छ - लोचन - दिव्य - देह - दाता।
काल - कलि - पाप - संताप - संकुल - सदा - प्रनत - 'तुलसीदास' - तात - माता॥ ६॥(२८)

बाँधे रहते हैं। आपकी भौंहें बाँकी तथा दाँत और नख वज्रके समान कठोर हैं। आप शत्रु-रूपी मतवाले हाथियोंके झुंडको सिंहके समान पछाड़ मारते हैं॥ २॥ आपकी जय हो। आपने भीम, अर्जुन और गरुड (-की वीरता)-का गर्व चूर कर डाला और अर्जुनके रथकी पताकापर बैठकर उनकी रक्षा की। आपने कालकी दृष्टिके समान भयंकर दुर्योधनकी उस सेनाका नाश करा डाला जिसकी रक्षा भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण आदि कर रहे थे॥ ३॥ आपकी जय हो! आपने (सुग्रीव और पांडवोंका) गया हुआ राज्य लौटा दिलाया। आप संसारके समस्त संकट नाश कर डालते और दानवोंका गर्व चूर कर डालते हैं। आप छहों प्रकारकी ईतियों, सब प्रकारके भय तथा ग्रह, प्रेत, चोर, अग्नि और रोगकी बाधाएँ दूर कर डालते और महामारी शान्त कर डालते हैं॥ ४॥ आपकी जय हो! आपने वेद, शास्त्र और व्याकरणपर भाष्य लिखे हैं। आप काव्यके अंगों तथा अनेक अन्य कलाओंके भंडार हैं। आप सामवेदका गान करते रहते और अपने भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करते रहते हैं। आप शिव-रूप हैं और रामके बड़े प्रिय बन्धु हैं॥ ५॥ आपकी जय हो! आपने ही सूर्यके तापसे जले हुए संपातीको नये पंख, नेत्र और दिव्य शरीर दे डाले थे

१. (क) पांडवोंके वनवासके समय एक दिन द्रौपदीके लिये कमल लानेके लिये भीम जब गन्धमादन पर्वतके लिये चले तो मार्गमें एक वानर (हनुमान)-को लेटा देखकर इन्होंने उसे हटनेको कहा तो हनुमानने कहा—मैं अस्वस्थ हूँ, मेरी पूँछ उठाकर चले जाओ। पर भीम उनकी पूँछ तक न सरका सके। और हनुमान्‌ने जब लंकावाला रूप दिखाया तो भीम डर गए। (ख) अर्जुनने हनुमान्‌से कहा कि जैसे आप लोगोंने समुद्रपर पुल बनाया था वैसा तो मैं बाणोंसे बना सकता हूँ। अर्जुनने जो बाणोंका पुल बनाया वह हनुमानके पैर रखते ही चरमराकर टूट गया। (ग) एक बार विष्णुने हनुमानको बुलवानेके लिये गरुडको भेजा। हनुमान्‌ने कहा—चलो, मैं आता हूँ। लौटकर गरुड देखते क्या हैं कि हनुमान पहलेसे आए बैठे हैं। २. गतराज्य दातार : (क) सुग्रीवका जो राज्य बालिने छीन लिया था, वह सुग्रीवको दिलाया। (ख) अर्जुनके रथकी ध्वजापर बैठकर पांडवोंको विजय दिलाकर उनका राज्य दिलाया। ३. छह ईतियाँ : अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभाः मूषिकाः खगाः। प्रत्यासन्नश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥

[अधिक वर्षा, वर्षा न होना, टिड्डीका खेत चर जाना, चूहे लगना, पक्षियोंद्वारा फसल नष्ट होना तथा राजाओंकी चढ़ाई—ये छह ईतियाँ कहलाती हैं]।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति निर्भरानंद - संदोह, कपि - केसरी, केसरी - सुवन, भुवनैक - भर्त्ता।
दिव्य - भूम्यंजना - मंजुलाकर - मणे[1], भगत - संताप - चितापहर्ता ॥ १ ॥
जयति धर्मार्थ - कामापवर्गद बिभो ! ब्रह्मलोकादि - बैभव - बिरागी।
बचन - मानस - कर्म सत्य - धर्म - व्रती, जानकी - नाथ - चरनानुरागी ॥ २ ॥
जयति बिहगेस - बल - बुद्धि - बेगाति - मद-मथन, मन्मथ - मथन, ऊर्ध्वरेता।
महानाटक - निपुन, कोटि - कबिकुल - तिलक, गान - गुन - गर्ब - गंधर्ब - जेता ॥ ३ ॥
जयति मंदोदरी - केस - कर्षन - बिद्यमान - दसकंठ - भट - मुकुट - मानी।
भूमिजा - दुःख - संजात - रोषांतकृत - जातना - जंतु - कृत - जातुधानी ॥ ४ ॥
जयति रामायन - श्रवन - संजात - रोमांच - लोचन - सजल - सिथिल - बानी।
राम - पद - पद्म - मकरंद - मधुकर पाहि ! 'दास तुलसी' सरन सूल-पानी ॥ ५ ॥(२९)

और कलिकालके पाप तथा सन्तापसे भरे रहनेवाले इस शरणागत तुलसीदासके पिता-माता भी आप ही हैं॥ ६ ॥ (२८)

हनुमान् ! आपकी जय हो ! आप पूर्ण आनन्दके भंडार और वानरोंमें सिंह कपि केसरीके आप पुत्र हैं। एक मात्र आप ही जगत्का भरण-पोषण करते हैं। आप अञ्जना-रूपी दिव्य भूमिकी सुन्दर खानसे निकले हुए मणि हैं (अञ्जनाके पुत्र हैं) ! आप अपने भक्तोंके दुःख और उनकी चिन्ताएँ मिटा डालते हैं॥ १ ॥ विभो ! आपकी जय हो ! आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दे सकते हैं। ब्रह्मलोक आदि-तकके ऐश्वर्यकी ओर भी आप आँख-तक उठाकर नहीं देखते। आप मन, वचन और कर्मसे सत्यके ही धर्मके व्रतका पालन करते हुए सीतापति रामके चरणोंमें (अनन्य) अनुराग करते रहते हैं॥ २ ॥ आपकी जय हो ! (जब आप संजीवनी बूटी ला रहे थे उस समय) आपने गरुडके बल, बुद्धि और वेगका गर्व चूर कर डाला था। आप कामको दबा रखनेवाले ऊर्ध्वरेता (अखंड ब्रह्मचारी) हैं। आप महानाटकके निर्माण और अभिनय-कलामें बड़े निपुण हैं। आप करोड़ों कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और अपने संगीतसे उन गन्धर्वोंको आपने जीत धरा है जिन्हें अपनी गान-विद्याका बड़ा अभिमान है ॥ ३ ॥ आपकी जय हो ! आप योद्धाओंके मुकुटमणि हैं। अभिमानी रावणकी उपस्थितिमें आप मन्दोदरीके केश पकड़कर खींच लाए थे। जानकीके दुःखसे अत्यन्त कुपित होकर आपने राक्षसियोंको ऐसा रगेदा जैसा पापियोंको यमराज यातना देते हैं॥ ४ ॥ आपकी जय हो ! रामकी कथा (रामायण) सुनते ही आपका शरीर पुलकित हो उठता है, नेत्र भर आते हैं और गला भर (गद्गद हो) उठता है। रामके चरण-के परागमें लोटनेवाले भ्रमर ! हनुमान्के रूपमें त्रिशूलधारी शिव ! यह तुलसीदास आपकी शरण आ पहुँचा है ॥ ५ ॥ (२९)

---

१. भूम्यंजनामंजुलाकरमणे (भूमि + अंजना + मंजुल + आकर + मणि) = अंजना-रूपी भूमिकी सुंदर खानके रत्न, अंजनाके पुत्र। २. ऊर्ध्वरेता = जिसका वीर्य कभी न गिरा हो।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग सारंग

जाके गति है हनुमान - की ।
ताकी पैंज पूजि आइ, यह रेखा कुलिस - पषान - की ।। १ ।।
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, अस बिरुदावलि नहिं आन-की ।
सुमिरत संकट - सोच बिमोचनि, मूरति मोदनिधान - की ।। २ ।।
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लखन, राम अरु जानकी ।
'तुलसी' कपि - की कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यान-की ।। ३ ।।(३०)

राग गौरी

ताकिहै तमकि ताकी ओर को ?
जाके है सब भाँति भरोसो, कपि केसरी-किसोर - को ।। १ ।।
जन-रंजन, अरि - गन - गंजन, मुख-भंजन-खल, बरजोर को ?
बेद - पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल सुभट - सिरमौर को ।। २ ।।
उथपै - थपन, थपै - उथपन - पन, बिबुध - बृंद - बँदि-छोर को ?
जलधि लंघि, दहि लंक, प्रबल - दल - दलन निसाचर घोर-को ।। ३ ।।
जाको बाल - बिनोद समुझि, दिन डरत दिवाकर भोर - को ।
जाकी चिबुक - चोट चूरन किय, रद-मद कुलिस कठोर-को ।। ४ ।।

(तुलसीदासका विश्वास है कि) जिसके हृदयमें एकमात्र हनुमान्‌का ही भरोसा है, उसकी प्रतिज्ञा तो पूरी हुई समझो । यह बात वज्रकी रेखाके समान पक्की है ।। १ ।। हनुमान् तो असम्भवको भी संभव और सम्भवको भी असम्भव कर डालते हैं। ऐसी कीर्ति-गाथा किसी भी दूसरेकी नहीं सुनी गई ।। २ ।। वे ऐसे आनन्दके भंडार है कि उनकी मूर्तिका स्मरण करते ही सब संकट और शोक दूर भाग खड़े होते हैं । उनपर पार्वती, शिव, लक्ष्मण, राम और जानकी भी सब सदा प्रसन्न रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनकी कृपा-दृष्टि हो जाय तो बस कल्याण ही कल्याण है ।। ३ ।। (३०) ।

जिसे केवल कपि केसरी-कुमार हनुमान्‌का भरोसा है, उसकी ओर कौन आँखें तरेरकर देख सकता है ? ।। १ ।। हनुमान्‌के समान बलवान् दूसरा है कौन जो भक्तोंको आनन्द दे, जो शत्रुओंका नाश कर डाले और दुष्टोंका मुँह तोड़ धरे ? वेद और पुराणोंमें इनके पुरुषार्थका वर्णन करते हुए कहा गया है कि समस्त शूरवीरोंमें इनके समान वीर-शिरोमणि और दूसरा कौन है ? ।। २ ।। प्रण करके उजड़े हुओंको बसानेवाला, बसे हुओंको उजाड़नेवाला तथा देवताओंको बंदीगृहसे छुड़ा लानेवाला (इन्हें छोड़कर) दूसरा है कौन ? समुद्र लाँघकर और लंका जलाकर भयंकर राक्षसोंकी प्रबल सेनाका संहार करनेवाला दूसरा कौन है—।। ३ ।। जिसकी बालक्रीडाका (कि जन्म लेते ही सूर्यको निगल गए थे) स्मरण करके (अब भी) प्रातःकालके समय सूर्य डरते हुए निकलते हैं और जिसकी ठोड़ीपर लगी चोटने कठोर वज्रके दाँतोंका घमंड भी चूर-चूर कर डाला था (इनके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोकपाल[1] अनुकूल बिलोक्यौ चहत बिलोचन - कोर - को।
सदा सो अभय, मोद - मंगलमय, जो सेवक रन - रोर - को ॥ ५ ॥
भगत - कामतरु नाम, राम - परिपूरन - चंद - चकोर - को ?
'तुलसी' फल चारिउ करतल, जस गावत, गई बहोर को ॥ ६ ॥(३१)

राग बिलावल

ऐसी तोहिं न बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम - से, तुम - से न उसीले[2] ॥ १ ॥
तेरे देखत सिंह - के सिसु, मेंढक लीले ?
जानत हौं, कलि तेरेऊ मनो गुनगन कीले ॥ २ ॥
हाँक सुनत दसकंध - के भए बंधन ढीले।
सो बल गयो, किधौं भयो अब गर्ब - गहीले ॥ ३ ॥

मुँहसे सूर्यको निकालनेके लिये इन्द्रने इनकी ठोड़ीपर वज्र चला दिया था पर वज्र भी उनकी ठोड़ी नहीं तोड़ सका) ॥ ४ ॥ सभी लोकपाल उनके कृपा-कटाक्षके लिये तरसते रहते हैं। युद्धमें जो प्रचण्ड वीर हनुमान्‌का सेवक बनकर पहुँचता है वह सर्वदा निर्भय और विजयी होता है तथा उसके यहाँ सदा उत्सव आदि मंगल कार्य होते रहते हैं ॥ ५ ॥ पूर्ण चन्द्रमा-रूपी रामसे प्रेम करनेवाले चकोर हनुमान्‌का नाम तो भक्तोंके लिये (ऐसा) कल्पवृक्ष है कि उसे जपनेसे उन्हें सब सिद्धियाँ मिल जाती हैं। तुलसीदास कहते हैं कि बिगड़ी हुईको बना देनेवाले हनुमान्‌के समान दूसरा कौन है जिसका गुणगान करनेवालेके लिये चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) उसकी हथेलीपर आ धरे रहते हैं (हनुमान्‌का गुणगान करनेवालेको सब कुछ सुगमतासे प्राप्त हो जाता है) ॥ ६ ॥ (३१)

हठीले (हठ करके प्रतिज्ञा पूरी करनेवाले) हनुमान् ! आपको ऐसा नहीं करना चाहिए (कि मेरी प्रार्थना सुनी-अनसुनी रह जाय)। रामके समान कोई स्वामी नहीं है और आपको छोड़कर उनके पास-तक पहुँचनेका कोई दूसरा उपाय भी नहीं है (आपके ही द्वारा राम-तक पहुँच हो सकती है) ॥ १ ॥ हनुमान् ! (भला बताइए) आपकी आँखोंके सामने (मुझ) सिंहके बालकको यह कलिरूपी मेंढक निगल ले ? मुझे तो ऐसा जान पड़ने लगा है मानो कलिकालने आपके (भक्तकी रक्षाके) गुण भी कील डाले हैं (कुंठित कर डाले हैं) ॥ २ ॥ आप वही हैं न, जिसकी हाँक (ललकार) सुनते ही रावणकी ऐंठ ढीली पड़ गई थी। बताइए हनुमान् ! क्या आपका वह बल कहीं चला गया या आप भी अब (दयालु होनेके बदले) अधिक गर्वीले (घमंडी) हो गए हैं ? ॥३॥ समर्थ

---

१. लोकपाल = (दिक्पाल); इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान (शिव), ब्रह्मा, अनन्त (शेष)। २. उसीले (वसीले) = आश्रय, उपाय।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सेवक - को परदा फटै, तू समरथ ! सीले।
अधिक आपु - तें आपनो, सुनि, मान सही ले॥ ४॥
साँसति तुलसीदास - की देखि, सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो, जे राम - रँगीले॥ ५॥ (३२)

समरथ सुवन समीर - के, रघुबीर - पियारे।
मो - पर कीबी तोहिं जो करि लेहि, भिया रे॥ १॥
तेरी महिमा - तें चलै चिंचिनी - चियाँ रे।
अँधियारो मेरी बार क्यों ? त्रिभुवन - उजियारे॥ २॥
केहि करनी जन जानि - कै, सनमान किया रे।
केहि अघ अवगुन आपनो करि, डारि दिया रे॥ ३॥
खायो खोंची[1] माँगि, तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल, बलि, आज - लौं, जग जागि जिया रे॥ ४॥
जौ तोसों होतौ फिरौ, मेरो हेत - हिया रे।
तौ क्यों बदन देखावतो, कहि बचन इया[2] रे॥ ५॥
तो - सों ज्ञान - निधान - को सर्वज्ञ बिया रे।
हौं समुझत साईं - द्रोहि - की गति छार - छिया[3] रे॥ ६॥

हनुमान् ! आपके इस सेवकका जो पर्दा फटा जा रहा है (इसकी प्रतिष्ठा मिटी जा रही है) वह आप ही सीएँ तो बचे (उसकी प्रतिष्ठा आप ही बचा लें तो बचे)। अपने भक्तोंको अपनेसे भी अधिक मानना चाहिए, यह बात आप ठीक मान लीजिए॥ ४॥ तुलसीदासकी ऐसी साँसत देखकर आप ही (इसका उद्धार करनेका) सुयश लेना चाहें तो ले लीजिए क्योंकि तीनों कालोंमें जो भी रामके रँगमें रंग जाता है उसका भला ही होता है॥ ५॥ (३२)

सर्वशक्तिमान् पवनकुमार ! रामके प्यारे ! भैया ! आप मुझे जो कुछ भी बनाना चाहें बना लीजिए॥ १॥ क्योंकि आपके प्रतापसे तो चिंचिनीके चीयाँ (इमलीके बीज) भी (सिक्के बनकर) चल निकलते हैं (आप चाहें तो मेरे जैसे तुच्छकी भी भक्तोंमें गणना हो सकती है)। त्रिभुवनमें उजाला करनेवाले ! मेरी ही बेर क्यों इतना अँधेरा किए बैठे हैं ? ॥ २॥ बताइए ! पहले आपने मेरी किस करनीपर रीझकर मुझे अपना दास बनाकर मेरा सम्मान किया था और अब मेरे किस पाप और अवगुणपर अप्रसन्न होकर मुझे अपनाकर भी आप छोड़े बैठे हैं॥ ३॥ मैं तो भीख माँगकर बैठा खाता था और आपका नाम लेता (भजन करता) रहता था। मैं बलिहारी जाता हूँ। मैं तो आजतक आपके ही बलपर संसारमें (प्रसिद्ध होकर) जी रहा था॥ ४॥ यदि मेरे हृदयका प्रेम आपसे मुँह फेरे बैठा होता (हृदयमें प्रेम न होता) तो आपके सामने ऐसी अपनेपनकी बात कहते हुए आपको अपना मुँह कैसे दिखाता (कहनेका साहस कैसे करता ?) ॥५॥ आपके समान ज्ञानका भंडार और

१. खोंची = भिक्षा। २. इया = यह। ३. गति छार छिया = धूल और विष्ठाकी गति।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तेरे स्वामी राम - से, स्वामिनी सिया रे।
तहँ 'तुलसी' - कहँ, कौन - की, काको तकिया रे॥ ७॥ (३३)

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी।
इनको बिलग न मानिए, बोलहिं न बिचारी॥ १॥
लोक - रीति देखी, सुनी, व्याकुल नर - नारी।
अति बरषे, अनबरषेऊ, देहिं दैवहिं गारी॥ २॥
नाकहिं आये नाथ - सों, भये साँसति भारी।
कहि आयो, कीबी छमा निज ओर निहारी॥ ३॥
समय साँकरे सुमिरिए समरथ, हितकारी।
सो सब बिधि ऊपर करै, अपराध बिसारी॥ ४॥
बिगरी सेवक - की सदा साहबहि सुधारी।
'तुलसी' - पर तेरी कृपा, निरुपाधि, निनारी॥ ५॥ (३४)

कटु कहिए गाढ़े परे, सुनि, समुझि, सुसाँई।
करहिं अनभलेउ - को भलो, आपनी भलाई॥ १॥
समरथ सुभ जो पावई, बीर, पीर पराई।
ताहि तकै सब, ज्यों नदी बारिधि न बुलाई॥ २॥

सर्वज्ञ दूसरा है कौन ? मैं स्वयं समझता हूँ कि स्वामि-द्रोही सेवक तो अन्तमें धूल और विष्ठा ही बनते हैं॥६॥ जहाँ परम समर्थ रामके समान आपके स्वामी और सीताके समान स्वामिनी हैं वहाँ तुलसीदासका दूसरा कौन है, जिसका वह सहारा ले॥ ७॥ ३३॥

हनुमान् ! जो अत्यंत पीडित, अत्यंत स्वार्थी, अत्यंत दीन और दुखी हो उसके कहनेका बुरा नहीं मानना चाहिए क्योंकि ये लोग (उद्विग्न चित्तके कारण) विचारकर नहीं बोलते॥ १॥ संसारमें देखा और सुना जाता है कि व्याकुल स्त्री-पुरुष अधिक वर्षा होनेपर भी दैवको गाली देते हैं और वर्षा न होनेपर भी॥ २॥ इसीलिये भारी कष्टसे नाकों-दम हो जानेके कारण नाथ ! मैंने आपको बहुत कुछ भला-बुरा कह डाला है। आप अपनी (भक्त-वत्सलताकी) ओर देखकर इसे क्षमा कर दीजिएगा॥ ३॥ संसारकी यही रीति है कि संकटके समय सब अपने समर्थ हितैषीको ही स्मरण करते हैं और वह हितैषी भी उसके सब पिछले अपराध भुलाकर उस आश्रितका सब प्रकारसे कल्याण करता ही है॥ ४॥ सेवककी विपत्तियोंको स्वामी ही सदा दूर करते आए हैं। फिर इस तुलसीदासपर तो आपकी कृपा निश्छल और निराली है॥ ५॥ (३४)

संकट पड़नेपर ही अपने कृपालु स्वामीके लिये भी मुँहसे कठोर वचन निकल जाते हैं॥ १॥ और अच्छे स्वामी सब कुछ सुन-समझकर भी अपनी कृपासे उस बुरे सेवकका भी भला कर देते हैं। वीर ! जो समर्थ और कल्याण करनेवाला होता है, जो दूसरेकी पीडा समझता है और दूसरेके दुःखसे दुखी होता है उसीकी ओर सब लोग इस प्रकारसे देखा (सहायताकी आशा) करते हैं और दौड़ते हैं जिस प्रकार नदियाँ बिना बुलाए ही समुद्रके पास दौड़ी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपनो, अपने - को, भलो चहैं लोग - लुगाई।
भावै जो जेहिं, तेहिं भजै, सुभ - असुभ - सगाई ॥ ३ ॥
बाँह बोल दै थापिए जो निज बरियाई।
बिन सेवा सो पालिए, सेवक - की नाँई ॥ ४ ॥
चूक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ, हौं अति नीच निचाई ॥ ५ ॥
बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।
नीको 'तुलसीदास' - को, तेरियै निकाई ॥ ६ ॥ (३५)

राग गौरी

मंगल - मूरति मारुत - नंदन। सकल - अमंगल - मूल - निकंदन ॥ १ ॥
पवन - तनय संतन - हितकारी। हृदय बिराजत अवध - बिहारी ॥ २ ॥
मातु - पिता-गुरु, गनपति, सारद। सिवा- समेत संभु, सुक, नारद ॥ ३ ॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु राम-पद - नेह - निबाहू ॥ ४ ॥
बंदौं राम, लखन, बैदेही। जे तुलसी - के सहज सनेही ॥ ५ ॥ (३६)

चली जाती हैं ॥ २ ॥ (संसारकी ऐसी रीति है कि) सब स्त्री-पुरुष अपना और अपने संबंधीका सदा भला चाहते ही हैं। जैसा जिसका अच्छा या बुरा मनोरथ होता है उसीके अनुसार जो देवता जिसे अच्छा लगता है वह उसी देवताका भजन करता है और वह (देवता) अपने भक्तके सब अच्छे-बुरे मनोरथ पूरे भी करता चलता है। उसी प्रकार मैं भी कलि-कालकी बाधासे डरकर रक्षाके लिये आपकी आराधना कर रहा हूँ। आप मेरा यह मनोरथ पूरा कर डालिए। मैं आपका ही हूँ। अतः, आपको मेरा हित करना ही चाहिए ॥ ३ ॥ जिसे हठ करके रक्षा और सहायताका वचन देकर स्थापित किया जाता है, वह यदि सेवा न भी करे तो भी सेवा करनेवाले भृत्यकी तरह उसका पालन किया जाता है ॥४॥ हाँ, मैं मानता हूँ कि सारी भूल और चंचलता मेरी ही है। आप बड़े हैं। मुझ-जैसे अपराधियोंको क्षमा करनेमें ही आपकी बड़ाई है। मैं तो नीच हूँ, इसलिये आदर करनेपर भी ढीठ होता चला जाता हूँ (यही मेरी नीचता है)। आप सबको बंधनोंसे मुक्त करा देते हैं, यह आपकी विरुदावली वेदों और शास्त्रोंमें भी वर्णित की गई है। अतः, आप ही कृपा करेंगे तभी इस तुलसीदासका भला होगा ॥ ५ ॥ (३५)

पवनकुमार हनुमान तो कल्याणकी मूर्त्ति (सदा कल्याण करते रहते) हैं। ये सारी बुराइयोंकी जड़ नष्ट कर डालते हैं ॥१॥ हनुमान् तो सदा सन्तोंका हित करते ही रहते हैं। उनके हृदयमें राम सदा बसे रहते हैं ॥ २ ॥ माता, पिता गुरु, गणेश, सरस्वती, पार्वती, शिव, शुकदेव और नारद, इन-॥ ३ ॥ सबके चरणोंकी वन्दना करके मैं उनसे यही प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग यह वरदान दीजिए कि रामके चरणोंमें मेरा स्नेह सदा एक-सा बना रहे ॥४॥ मैं राम, लक्ष्मण और सीताकी वन्दना करता हूँ जो तुलसीदासपर सहज (स्वभावतः) कृपा करते रहते हैं ॥ ५ ॥ (३६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

[लक्ष्मण-स्तुति दंडक] राग केदारा

लाड़िले लखन लाल ! हित हौ जन - के ।
सुमिरे संकट - हारी, सकल-सुमंगल-कारी, पालक कृपाल आपने पन-के ॥ १ ॥
धरनी - धरनहार, भंजन - भुवन - भार, अवतार साहसी सहस - फन - के ।
सत्य-संध, सत्यव्रत, परम-धरम-रत, निरमल करम, बचन, अरु मन - के ॥ २ ॥
रूप-के निधान, धनु-बान-पानि, तून कटि, महाबीर बिदित, जितैया बड़े रन-के ।
सेवक - सुखदायक, सबल, सब लायक, गायक जानकी-नाथ-गुन-गन-के ॥ ३ ॥
भावते भरत-के, सुमित्रा - सीताके दुलारे, चातक चतुर राम - स्याम - घन-के ।
बल्लभ उर्मिला-के, सुलभ सनेह - बस, धनी, धन तुलसी - से निरधन-के ॥ ४ ॥ (३७)

राग धनाश्री

जयति लक्ष्मनानंत, भगवंत भूधर, भुजगराज, भुवनेस, भू - भार-हारी ।
प्रलय - पावक - महाज्वाल - माला - वमन, समन - संताप, लीलावतारी ॥ १ ॥
जयति दासरथि, समर-समरथ, सुमित्रा-सुवन, सत्रु-सूदन-राम-भरत-बंधो ।
चारु चंपक-बरन, बसन-भूषन-धरन, दिव्यतर, भव्य, लावण्य - सिंधो ॥ २ ॥

लक्ष्मणकी स्तुति : प्यारे लखनलाल (लक्ष्मण) ! आप सदा भक्तोंका हित करते रहते हैं। स्मरण करते ही आप संकट मिटा डालते हैं, सब प्रकार सबका कल्याण करते रहते हैं, जो प्रतिज्ञा कर लेते हैं उसे पूरा कर दिखाते हैं और सबपर कृपा करते रहते हैं ॥१॥ आप (शेषके रूपमें) पृथ्वी धारण किए रहते हैं, संसारका भार हर लेते हैं और आप पराक्रमी शेषनागके अवतार हैं। सत्य ही आपका लक्ष्य और व्रत है। आप परम धर्म-परायण हैं तथा आप कर्म, वचन और मनसे बड़े निर्मल हैं ॥ २ ॥ आप बहुत ही सुन्दर हैं, आप हाथोंमें धनुष-बाण लिए और कमरमें तरकस कसे रहते हैं। आप बड़े प्रसिद्ध वीर हैं। आपने बहुत बड़े-बड़े संग्राम जीत डाले हैं। आप अपने सेवकों (भक्तों)-को सुख देते हैं, बड़े सबल हैं, सब कुछ कर सकने योग्य हैं तथा सदा जानकीनाथ रामके गुण गाते रहते हैं ॥ ३ ॥ आप भरतके प्यारे, सुमित्रा और सीताके दुलारे तथा राम-रूपी श्याम मेघके चतुर चातक हैं (सदा रामसे लौ लगाए रहते हैं)। आप उर्मिलाके स्वामी हैं, आपसे जो स्नेह करे उसे सहजमें ही आप प्राप्त हो जाते हैं और तुलसीके समान निर्धनके तो धनी (महाजन, सहायक) और धन सब कुछ आप ही हैं ॥ ४ ॥ (३७)

लक्ष्मण ! आपकी जय हो। आप अनंत हैं। आपमें छहों प्रकारके ऐश्वर्य (ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज) भरे हैं। आप पृथ्वी धारण किए हुए हैं। आप शेषनागके रूपमें संसारके स्वामी हैं और पृथ्वीका भार उतारते रहते हैं। प्रलयके समय आप आगकी भयंकर लपटें मुँहसे उगलने लगते हैं। आप जगत्का संताप नष्ट कर डालते हैं और अपनी लीलासे ही अवतार धारण कर लेते हैं ॥ १ ॥ दशरथके पुत्र लक्ष्मणकी जय हो ! आप युद्धमें बड़े शक्तिशाली दिखाई पड़ते हैं। आप सुमित्राके पुत्र तथा शत्रुघ्न, राम और भरतके भाई हैं। आपका शरीर सुन्दर चम्पेके फूलके समान गौर (सुनहरा) है। आप बड़े दिव्य और भव्य वस्त्र तथा आभूषण धारण किए हुए हैं। आप

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति गाधेय-गौतम-जनक - सुख - जनक, बिस्व-कंटक-कुटिल-कोटि - हंता ।
बचन - चय - चातुरी - परसुधर - गर्ब - हर, सर्बदा रामभद्रानुगंता ॥ ३ ॥
जयति सीतेस - सेवा - सरस, बिषय-रस-निरस, निरुपाधि, धुर-धर्म-धारी ।
बिपुल बल-मूल, सार्दूल - बिक्रम, जलद - नाद - मर्दन, महा - बीर भारी ॥ ४ ॥
जयति संग्राम - सागर - भयंकर - तरन, राम - हित - करन - बरबाहु - सेतू ।
उर्मिला-रवन, कल्यान - मंगल - भवन, 'दास तुलसी' - दोष - दवन - हेतू ॥ ५ ॥(३८)

[भरत-स्तुति]

जयति भूमिजा-रमन-पद-कंज-मकरंद-रस-रसिक-मधुकर भरत, भूरि-भागी ।
भुवन - भूषन, भानुबंस - भूषन, भूमिपाल - मनि - रामचंद्रानुरागी ॥ १ ॥
जयति बिबुधेस-धनदादि दुर्लभ महाराज - सम्राट - संपद - सुख - बिरागी ।
खड्ग - धारा - ब्रती - प्रथम - रेखा - प्रगट, सुद्ध-मति-जुवति-पति-प्रेम-पागी ॥ २ ॥
जयति निरुपाधि-भक्ति-भाव-जंत्रित - हृदय, बंधु - हित चित्रकूटाद्रिचारी ।
पादुका - नृप - सचिव, पुहुमि - पालक, परम धरम - धुर - धीर-बर बीर भारी ॥ ३ ॥

शोभाके भंडार हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मणकी जय हो ! आपने विश्वामित्र, गौतम और जनकको सुखी कर दिया, संसारके करोड़ों काँटोंके समान कष्ट देनेवाले कुटिल राक्षसोंको आपने मार डाला, चतुराईसे भरी अनेक बातोंसे परशुरामका गर्व चूर कर डाला और सदा रामका अनुगमन किया ॥ ३ ॥ लक्ष्मणकी जय हो ! आप सदा सीतापति रामकी सेवामें लगे रहते और सांसारिक विषयोंसे अलिप्त रहते हैं । आप निष्कपट होकर रामकी सेवाकी धर्म-धुरी धारण किए रहते (अपना धर्म मानकर रामकी सेवा करते रहते) हैं । आप ही अगाध बलके स्रोत हैं । आप सिंहके समान पराक्रमी हैं । आपने ही मेघनादका वध कर डाला था । आप अत्यंत महावीर हैं ॥ ४ ॥ लक्ष्मणकी जय हो ! भयानक संग्राम-रूपी समुद्र आप अनायास ही पार कर जाते हैं । रामके हितके लिये आप अपनी श्रेष्ठ भुजाओंका पुल बना खड़ा करते हैं । आप उर्मिलाके पति हैं । आप सदा कल्याण तथा मंगल करते रहते हैं और आप ही तुलसीदासके पाप भी नष्ट कर सकते हैं ॥ ५ ॥ (३८) ।

भरतकी स्तुति : परम भाग्यशाली भरतकी जय हो जो रसिक भ्रमर बनकर सीतापति रामके चरण-कमलके प्रेमका मकरंद पीते रहते हैं (रामके चरणोंसे स्नेह करते रहते हैं) और जो संसारके भूषण, सूर्यवंशके विभूषण और राजाओंके शिरोमणि रामके परम अनुरागी हैं ॥१॥ भरतकी जय हो ! महान् राज्यके सम्राट् पदका जो वैभव और सुख इन्द्र, कुबेर आदिके लिये भी दुर्लभ है उसे भी जो लात मार बैठे हैं और तलवारकी धार (-पर चलने)-के समान जो सेवा कठोर व्रत लिए हुए हैं, ऐसे आप सब सत्पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि आपकी शुद्ध बुद्धि-रूपी तरुणी सदा रामरूपी स्वामीके प्रेममें लवलीन रहती है (राममें शुद्ध भक्ति करनेवालोंमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं) ॥ २ ॥ भरतकी जय हो, जो निष्कपट भक्तिसे भरे हृदयसे भाई रामसे मिलने पैदल ही चित्रकूट चल दिए थे, जो रामकी पादुकाको राजा बनाकर उसके मंत्री बनकर काम करते रहे, जो पृथ्वी-भरका पालन करते हैं तथा जो धीरता और वीरताके साथ परम धर्मकी धुरी धारण किए हुए हैं ॥ ३ ॥ भरतकी जय हो ! जिनके धनुष-बाणके प्रतापका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति संजीवनी - समय - संकट, हनूमान धनु - बान - महिमा बखानी।
बाहुबल-बिपुल, परमिति पराक्रम अतुल, गूढ़ - गति जानकी-जानि जानी ॥ ४ ॥
जयति रन - अजिर - गंधर्व - गन-गर्व-हर फेरि, किय राम-गुन-गाथ-गाता।
मांडवी-चित्त-चातक-नवांबुद-बरन, सरन - 'तुलसीदास' अभय - दाता ॥ ५ ॥(३९)

[शत्रुघ्न-स्तुति]

जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रु-तम-तुहिन-हर-किरन-केतू।
देव - महिदेव - महि - धेनु - सेवक - सुजन - सिद्ध - मुनि सकल - कल्यान - हेतू ॥ १ ॥
जयति सर्वांगसुंदर, सुमित्रा - सुवन, भुवन - बिख्यात भरतानुगामी।
बर्म - चर्मासि - धनु - बान - तूनीरधर, सत्रु - संकट - समन यत्प्रनामी[१] ॥ २ ॥
जयति लवनांबु - निधि - कुम्भ-सम्भव, महादनुज-दुर्जन-दलन, दुरित-हारी।
लक्ष्मनानुज, भरत - राम - सीता - चरनरेनु - भूषित - भाल, तिलकधारी ॥ ३ ॥

वर्णन हनुमान्‌ने संजीवनी बूटी लानेके समय संकट पड़नेपर किया था। आपकी भुजाओंमें अगाध बल है। आपके पराक्रमकी कोई तुलना नहीं है। आपकी गूढ गति (मनके सच्चे भाव)-को जानकीके पति राम ही जानते हैं॥ ४ ॥ भरतकी जय हो। जब आप (भरत)-के मामा युद्धजित्‌को गन्धर्वों ने त्रस्त कर डाला था तब आपने ही रणमें गन्धर्वोंका गर्व चूर्ण करके रामकी ओरसे पलटी हुई उनकी बुद्धिको उलटकर उन्हें रामके गुणोंका गायक बनाया था। आप माण्डवीके चित्त-रूपी चातकके नवीन मेघके समान हैं (आपकी पत्नी माण्डवीका चित्त आपमें लगा रहता है)। यह तुलसीदास ऐसे ही अभयदाताकी शरणमें आ पहुँचा है ॥ ५ ॥ (३९)

शत्रुघ्नकी स्तुति : शत्रु-रूपी हाथियोंका नाश करनेके लिये सिंह-रूपी उन शत्रुघ्नकी जय हो, जय हो, जो शत्रु-रूपी अन्धकार और कुहरा दूर करनेके लिये साक्षात् सूर्यके समान हैं, देवता, ब्राह्मण, पृथ्वी और गौके सेवक हैं तथा सज्जन, सिद्ध और मुनियोंका सदा कल्याण करते रहते हैं, ॥ १ ॥ जिनके अंग-अंग सुन्दर हैं, जो सुमित्राके पुत्र और विश्व-विख्यात भरतकी आज्ञाके अनुसार चलते रहते हैं, जो कवच, ढाल, तलवार, धनुष-बाण और तरकश धारण किए रहते हैं और शत्रु-रूपी संकट मिटा डालते हैं, उन शत्रुघ्नको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २ ॥ लवणासुर-रूपी समुद्रको पी जानेके लिये जो अगस्त्य हैं (जिन्होंने लवणासुरको मार डाला), जो बड़े-बड़े दुष्ट दानवोंका संहार करते रहते हैं और पापोंका नाश करते रहते हैं, उन शत्रुघ्नकी जय हो। आप लक्ष्मणके छोटे भाई और भरत, राम तथा सीताके चरण कमलोंकी रजका सुन्दर तिलक लगाते हैं (सदा राम, भरत, सीताकी सेवा करते हैं) ॥ ३ ॥ आप श्रुतिकीर्तिके पति, दुष्टोंकी

---

१. गन्धर्व-गर्वहर = भरतके मामा युधाजितको जब गंधर्वोंने बहुत तंग किया था तब भरतने गंधर्वोंको हराकर उसकी सहायता की थी। २. यत्प्रनामी = जो प्रणाम करते हैं। ३. नर्मद = सुखदाता।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति स्रुतिकीर्ति - बल्लभ, सुदुर्लभ सुलभ, नमत नर्मद - भक्त-भक्ति-दाता।
'दास तुलसी' चरन सरन, सीदत, बिभो ! पाहि ! दीनार्त्त - संताप - हाता ॥ ४ ॥ (४०)

[सीता-स्तुति]

जयति श्रीजानकी भानुकुल - भानु-की प्राणप्रिय - वल्लभे तरणि भूपे।
राम - आनंद - चैतन्य - घन - विग्रहा - शक्ति - आह्लादनी, सार - रूपे ॥ १ ॥
जयति चित चरण चिंतनि जेहि धरति, हृत-काम-भय-कोह - मद-मोह - माया।
रुद्र - बिधि - विष्णु - सुर - सिद्ध - बंदित - पदे, जयति सर्वेश्वरी राम - जाया ॥ २ ॥
कर्म - जप - जोग - बिज्ञान - बैराग्य लहि मोक्ष - हित योगि जे प्रभु मनावैं।
जयति बैदेहि सब - शक्ति - शिरभूषणे, ते न तव दृष्टि - बिनु कबहुँ पावैं ॥ ३ ॥
कोटि ब्रह्मांड जगदीस - को ईस, जेहि निगम, मुनि बुद्धि - तें अगम गावैं।
बिदित यह गाथ, अह-दानि, कुल-माथ, सो नाथ, तव दान लै, हाथ आवैं ॥ ४ ॥
दिव्य सत बर्ष जप - ध्यान जब सिव धर्‌यो, राम गुरु - रूप - मिलि पथ बतायो।
चितै हित लीन लखि, कृपा कीनी तबै, देवि ! दुर्लभ देव - दरस पायो ॥ ५ ॥
जयति श्री स्वामिनी, सीय शुभनामिनी, दामिनी कोटि निज देह दरसैं।
इंदिरा आदि जे मत्त - गजगामिनी देव - भामिनी, सबै पाँव परसैं ॥ ६ ॥

पहुँचसे बाहर और सेवकोंके लिये सुलभ हैं। (आपको) जो प्रणाम करे उसे तत्काल सुख, भोग और मुक्ति मिल जाती है। ऐसे शत्रुघ्नकी जय हो। विभो ! यह तुलसीदास आपके चरणोंकी शरण आकर भी दुःख भोगे जा रहा है। दीन और दुखियोंके संताप मिटा डालनेवाले शत्रुघ्न ! इस (तुलसी)-की भी रक्षा कर लीजिए ॥ ४ ॥ (४०)

सीताकी स्तुति : सूर्य-कुलके सूर्य रामकी प्रिया जानकी ! आपकी जय हो। आप उद्धार करनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। आप आनन्द-घन चैतन्य रामकी आह्लादिनी शक्तिकी मूर्ति हैं तथा सब प्रकारके परमार्थ तत्त्वका सार हैं ॥ १ ॥ जो कोई अपना चित्त आपके चरणोंके चिंतनमें लगाता है उसके काम, भय, क्रोध, मद, मोह और माया आप हरण कर लेती हैं, आपकी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवता और सिद्ध सब आपके चरण-कमलोंकी वंदना करते रहते हैं। सर्वेश्वरी ! रामकी पत्नी सीते ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ वैदेही ! सर्व-शक्ति-शिरोमणे ! जो योगी-जन कर्म, जप, योग, साधन, विज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान) और वैराग्यके द्वारा मोक्ष पद पानेके लिये प्रभुको मनाते रहते हैं, वे भी आपकी कृपा-दृष्टिके बिना कभी वह पद नहीं प्राप्त कर पाते ॥३॥ करोड़ों ब्रह्मांडोंके जिस जगदीश्वर-तक शिव, वेद तथा मुनियोंकी बुद्धि नहीं पहुँच पाती, वे कुल-श्रेष्ठ प्रभु राम नित्य दान करनेवाले दानियोंके शिरोमणि हैं, पर वे भी तभी हाथमें आते हैं जब आप कृपा कर दें ॥ ४ ॥ जब शिवने सौ वर्षोंतक निरन्तर राम-नाम जपकर आपका दिव्य ध्यान किया, तब कहीं रामने ही गुरु होकर उन्हें यह मार्ग बताया था। तब उन्हें लोक-कल्याणमें लीन देखकर देवि ! आपने ही जब कृपा की तब आपका देव-दुर्लभ दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ सीता जैसे शुभ नामवाली स्वामिनी ! आपकी जय हो। आपकी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुखित लखि भक्त बिन-दरस निज रूप तप-यजन-जप-जतन-से सुलभ नाहीं।
कृपा करि, पूर्ण नवकंज-दल-लोचना, प्रगट भइ जनक नृप-अजिर-माहीं॥ ७॥
रमित तव बिपिन प्रिय-प्रेम प्रगटन करन, लंकपति ब्याज कछु खेल ठान्यो।
गोपिका-कृष्ण तव तुल्य बहु जतन करि, तोहिं मिलि ईस आनंद मान्यो॥ ८॥
हो न तव सुमुख-के संग रहि रंक सो, विमुख जो, देव नहिं नाह तेरो।
अधम-उद्धरणि! यह जानि गहि शरण तव, 'दास तुलसी' भयो चेरो॥९॥(४० क)

राग केदारा

कबहुँक अंब! अवसर पाइ।
मेरियौ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ॥ १॥
दीन, सब अँगहीन, खीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासि-दास कहाइ॥ २॥
बूझिहैं 'सो है कौन'? कहिबी नाम-दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु-के मेरि बिगरियौ बनि जाइ॥ ३॥

देह करोड़ों बिजलियोंकी चमकके समान दिखाई पड़ रही है। मत्तगज-गामिनी लक्ष्मी आदि सभी देवियाँ आपके पाँव पड़ती रहती हैं। आपकी जय हो॥ ६॥ यज्ञ, जप तथा अनेकों यत्नोंके द्वारा आपका जो दर्शन सुलभ नहीं है वह दिव्य दर्शन आप अपने भक्तोंको दुःखित देखकर तत्काल दे डालती हैं। नवीन कमल-दलके समान नेत्रोंवाली! आपने पूर्ण कृपा करके ही राजा जनकके आँगनमें जन्म लिया॥ ७॥ वनमें विचरण करते समय आपका पति-प्रेम प्रकट करनेके लिये ही लंकेश रावणने आपकी लीला दिखानेका एक बहाना निकाला था (मारीचको स्वर्ण-मृग बनाकर, मृग-चर्म लानेके बहाने रामको उसके पीछे लगाकर और धोखेसे सीताको हर ले जाकर रामके प्रति सीताका पति-प्रेम प्रकट करनेके लिये ही रावणने यह सब किया था)। गोपी और कृष्णके अनन्य प्रेमकी तुलनामें आपको लाकर, फिर बड़े यत्नके पश्चात् आपको प्रभु रामसे मिलाकर आनन्दका अनुभव किया था॥८॥ जो आपके सुन्दर मुखके सामने रहता है (आपकी कृपा पाता है) वह कभी दरिद्र नहीं रह पा सकता और जो आपसे मुँह फेर बैठे तो कोई देवता उसका सहायक बनकर पास नहीं आ सकता। अधम-उद्धारिणी! यही जानकर यह तुलसीदासका भी आपकी शरणमें आकर आपका अपना सेवक (भक्त) बन बैठा है॥ ९॥ (४० क)

माता! कभी अवसर मिलनेपर, कुछ करुणा (संसारके दुःख)-की बात छेड़कर रामको मेरा भी स्मरण दिला दीजिएगा॥१॥ कहिएगा कि एक अत्यन्त दीन, सब साधनोंसे हीन, दुखी और पूरा पापी, आपकी दासी (तुलसी)-का दास कहलाकर और आपका नाम ले-लेकर पड़ा पेट पाले जा रहा है॥ २॥ जब कृपा करके प्रभु पूछें कि 'वह कौन है'? तो झट मेरा नाम और मेरी दशा उन्हें बता समझाइएगा। कृपालु राम इतना सुन लेंगे तो मेरी सारी बिगड़ी बन जायगी॥ ३॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations.

जानकी ! जग - जननि ! जन - की किए बचन - सहाइ ।
तरै 'तुलसीदास' भव, तव नाथ - गुन - गन गाइ ॥ ४ ॥ (४१)

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी ।
जन कहाइ, नाम लेत हौं, किए पन चातक - ज्यों, प्यास सुप्रेम - पान-की ॥ १ ॥
सरल प्रकृति आपु जानिए करुना - निधानकी ।
निज गुन अरि-कृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहति न दिए दान-की ॥ २ ॥
बानि बिसमरन - सील है मानद अमान-की ।
'तुलसिदास' न बिसारिए मन-क्रम-बचन जाके सपनेहुँ गति न आन-की ॥ ३ ॥ (४२)

[राम-स्तुति]

जयति सच्चिद्व्यापकानंद यद्ब्रह्म - विग्रहाव्यक्त लीलावतारी ।
बिकल-ब्रह्मादि-सुर-सिद्ध-संकोचबस - बिमल - गुन - गेह - नरदेह - धारी ॥ १ ॥
जयति कोसलाधीस-कल्यान, कोसलसुता-कुसल, कैवल्य-फल-चारु चारी ।
बेद - बोधित - कर्म - धर्म - धरनी - धेनु - बिप्र - सेवक - साधु-मोद-कारी ॥ २ ॥

जगज्जननी जानकी ! यदि इस प्रकार वचनोंसे आपने इस दासकी सहायता (सिफ़ारिश) कर दी तो यह तुलसीदास आपके गुण गाता हुआ भवसागरसे पार हो जायगा ॥ ४ ॥ (४१)

मेरी माता जानकी ! कभी सुअवसर मिले तो मेरी भी सुध रामको दिला दीजिएगा कि मैं उनका दास कहलाकर उन्हींका नाम जपता हूँ और चातककी भाँति प्रण ठाने बैठा हूँ कि रामके प्रेमके अतिरिक्त और किसीके प्रेमका पान न करूँगा क्योंकि मुझे यदि किसी वस्तुकी प्यास है तो केवल उन्हींके प्रेमकी प्यास है ॥ १ ॥ (आप तो जानती ही हैं कि) करुणानिधान राम बड़े ही सीधे हैं । उन्हें तो न अपने गुण स्मरण रहते, न शत्रुकी बुराई स्मरण रहती, न दासोंके दोष स्मरण रहते और न दिए हुए दानका स्मरण रहता (जिसका कहीं सम्मान न होता हो उसे भी सम्मान दे बैठते हैं) ॥ २ ॥ वे तो बड़े भुलक्कड़ हैं । (अतः, आप स्मरण दिला दीजिएगा कि) तुलसीदासको भी न भूल जायँ क्योंकि उसे तो मन, वचन और कर्मसे एक मात्र उन्हींका भरोसा है, दूसरेका तो उसे स्वप्नमें भी कोई आसरा नहीं है ॥ ३ ॥ (४२)

रामकी स्तुति : सत्-चित्-आनन्द-रूपी व्यापक परब्रह्म राम ! आपने लीला करनेके लिये ही अव्यक्त (निर्गुण)से व्यक्त (सगुण) मूर्ति धारण की है, आपकी जय हो । ब्रह्मा आदि देवता और सिद्धोंको व्याकुल देखकर, उनके संकोचके कारण, आपने निर्मल, गुण-सम्पन्न नर-शरीर धारण किया है ॥ १ ॥ आप कल्याण-रूप कोशल-नरेश दशरथ और कल्याण-स्वरूपा महारानी कौशल्याके यहाँ चार भाइयों (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न)-के रूपमें मोक्षके चार सुन्दर फल (सालोक्य, सामीप्य सारूप्य और सायुज्य)[१] बनकर उत्पन्न हुए हैं । आप वेदमें बताए हुए यज्ञ आदि कर्म, धर्म, पृथ्वी, गौ, ब्राह्मण, भक्त और साधुओंको आनंद देते रहते हैं, आपकी जय हो ॥ २ ॥ आपने ऋषि विश्वामित्रके

१. सालोक्य : इष्टदेवके लोकमें जाना । सामीप्य: अपने इष्टदेवके पास सदा रहना । सारूप्य : अपने इष्टदेवके समान रूप प्राप्त करना । सायुज्य : अपने इष्टदेवमें लीन हो जाना ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति रिषि-मख-पाल, समन सज्जन-साल, पाप-बस - मुनि-बधू-साप-हारी ।
भंजि भव - चाप, दलि दाप भूपावली - सहित, भृगुनाथ नत-माथ भारी ॥ ३ ॥
जयति धुर-धीर, रघुबीर, धार्मिक! गुरु - मातु - पितु - बंधु - बचनानुसारी ।
चित्रकूटाद्रि - विंध्याद्रि - दंडक - बिपिन - धन्य - कृत, पुन्य - कानन-बिहारी ॥ ४ ॥
जयति पाकारि - सुत[1]-काक-करतूति-फल-दानि, खनि गर्त्त गोपित बिराधा ।
दिव्य - देबी - बेष देखि लखि निसिचरी जनु बिडंबित करी बिस्व - बाधा ॥ ५ ॥
जयति खर - त्रिसिर - दूषन - चतुर्दस - सहस - सुभट - मारीच- संहार-कर्त्ता ।
गीध-सबरी-भक्ति - बिबस करुनासिंधु, चरित - निरुपाधि, त्रिबिधार्ति-हर्त्ता ॥ ६ ॥
जयति मद-अंध कु-कबंध बधि, बालि-बलसालि बधि, करन - सुग्रीव-राजा ।
सुभट-मर्कट - भालु - कटक - संघट सजत, नमित पद रावनानुज नेवाजा ॥ ७ ॥
जयति पाथोधि-कृत-सेतु-कौतुक-हेतु, काल-मन-अगम लइ ललकि लंका ।
सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रन, लोक - लोकप किए रहित-संका ॥ ८ ॥
जयति सौमित्रि - सीता - सचिव - सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी ।
'दास-तुलसी' मुदित अवध - बासी सकल, राम भे भूप, बैदेहि रानी ॥ ९ ॥ (४३)

यज्ञकी रक्षा की, सज्जनोंके कष्ट दूर किए, शाप पाई हुई मुनि गौतमकी स्त्री अहल्याके पाप दूर किए, शिवका धनुष तोड़कर राजाओंका दर्प चूर किया और बल-वीर्य-विजयके मदसे ऊँचा उठा हुआ परशुरामका मस्तक झुका दिया । आपकी जय हो ॥ ३ ॥ आप बड़ी धीरता (दृढता)-से धर्मकी धुरी धारण किए हुए हैं, रघुवंशमें वीर हैं और आपने गुरु, माता, पिता और भाईके वचन मानकर, चित्रकूट, विंध्याचल और दण्डक वनोंमें विहार करके सबको कृतार्थ किया है । आपकी जय हो ॥४॥ जिन्होंने इन्द्रके छली पुत्र कौवे जयन्तको उसकी करनीका अच्छा फल चखाया (उसका एक नेत्र फोड़ दिया), जिन्होंने गड्ढा खोदकर विराध राक्षसको उसमें गाड़ दिया, जिन्होंने दिव्य देवीका रूप-धारण करके आनेवाली शूर्पणखाको राक्षसी जानकर (उसके नाक-कान कटवाकर) कुरूप करके मानो संसार-भरको कष्ट देनेवाले (रावण)-का अपमान कर दिखाया, उन रामकी जय हो ॥ ५ ॥ जिन्होंने प्रबल योद्धाओंका संहार कर डाला, (कपटी स्वर्ण-मृग) मारीचको मार डाला, वे दयालु राम गिद्ध (जटायु) और शबरीकी भक्तिके वशमें हुये पड़े रहे । जिनके चरित्र अत्यन्त निष्कलंक हैं, जो तीनों प्रकारके दुःख (दैहिक, दैविक और भौतिक) दूर कर डालते हैं, ऐसे रामकी जय हो ॥ ६ ॥ जिन्होंने मदान्ध दुष्ट कबंधको मार डाला, अत्यन्त बलशाली बालिको पछाड़ डाला, सुग्रीवको राजा बना दिया, बड़े-बड़े योद्धा वानर और भालुओंकी सेना बना खड़ी की, अपनी शरणमें आए हुए रावण-के भाई विभीषणकी रक्षा की, उन रामकी जय हो ॥ ७ ॥ जिन्होंने केवल लीलाके लिये ही समुद्रपर पुल बना डाला, जिस लंकामें कालकी भी पहुँच नहीं थी उस लंकाको जिन्होंने उमंगमें आकर जीत लिया और रावणको उसके वंश और सेना-सहित मारकर तीनों लोकों और लोकपालोंको अभय कर दिया, उन रामकी जय हो ॥८॥ तुलसीदास कहते हैं कि (लंका विजय करके) जो अपने साथ लक्ष्मण, सीता और सुग्रीव आदि मंत्रियोंको लेकर पुष्पक विमानपर चढ़कर अपनी राजधानी

१. पाकारि-सुत=इन्द्रका पुत्र जयन्त ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति राज - राजेंद्र राजीव-लोचन राम-नाम-कलि-कामतरु, सामसाली[1] ।
अनय-अंभोधि-कुंभज, निसाचर - निकर - तिमिर - घनघोर - खर - किरनमाली ॥ १ ॥
जयति मुनिदेव नरदेव दसरत्थके, देव - मुनि - बंद्य किए अवध - बासी ।
लोकनायक - कोक-सोक-संकट - समन, भानुकुल - कमल - कानन - विकासी ॥ २ ॥
जयति सिंगार - सर - तामरस - दाम - द्युति - देह, गुन - गेह, विस्वोपकारी ।
सकल - सौभाग्य - सौंदर्य - सुषमा - रूप मनोभव कोटि गर्वापहारी ॥ ३ ॥
जयति सुभग सारंग - सु निषंग - सायक - सक्ति - चारु - चर्मासि बर-बर्म-धारी ।
धर्म - धुर, धीर, रघुबीर भुज - बल - अतुल, हेलया दलित भू - भार भारी ॥ ४ ॥
जयति कलधौत - मनि-मुकुट-कुंडल स्रवन, तिलक भलि-भाल-बिधु-बदन-सोभा ।
दिव्य - भूषन - बसन, पीत उपबीत, किए ध्यान कल्यान - भाजन न को भा ॥ ५ ॥
जयति भरत - सौमित्रि-सत्रुहन-सेवित सुमुख, सचिव - सेवक-सुखद-सवदाता ।
अधम, आरत, दीन, पतित पातक - पीन, सकृत नत - मात्र कह पाहि पाता ॥ ६ ॥

अयोध्या लौट गए और वहाँ पहुँचनेपर जिन रामके राजा होने तथा सीताके महारानी होनेपर समस्त अयोध्यावासी अत्यन्त प्रसन्न हुए, उन रामकी जय हो ॥ ९ ॥ (४३)

आप राज-राजेश्वरोंमें इन्द्रके समान हैं। आपके नेत्र कमलके समान हैं । आपका नाम राम है । आप कलियुगमें कल्पवृक्ष हैं। आप केवल साम नीतिका व्यवहार करते हैं (दाम, दंड और भेद-नीतिका नहीं) । आप अन्यायके समुद्रको महर्षि अगस्त्यके समान सोख लेते हैं तथा दैत्य-समुदाय-रूपी भयंकर अन्धकारको प्रचंड सूर्यके समान मिटा डालते हैं। रामकी जय हो ॥ १ ॥ दशरथके पुत्र राम ! आप मुनियों, देवताओं और ब्राह्मणोंके राजा हैं । आपने अयोध्या-वासियोंको ऐसा पूज्य बना दिया कि मुनि और देवता भी उनकी वन्दना करते हैं। आप लोकपाल-रूपी चकवोंके शोक और दुःख दूर कर डालते हैं। आप सूर्यवंश-रूपी कमल-वनको खिलानेवाले सूर्य हैं । शृंगार-सरोवरके नील-कमल राम ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ आपका शरीर नीले कमलकी मालाके समान झलक देता है । आपमें सारे गुण भरे हुए हैं । आप सारे विश्वका उपकार करते हैं । आपका सौभाग्य, सौन्दर्य तथा परम शोभनीय रूप करोड़ों कामदेवोंका गर्व चूर किए डालता है । आपकी जय हो ॥३॥ आप अपने हाथमें सुन्दर शार्ङ्ग धनुष, बाण, तरकश, शक्ति, ढाल, तलवार और कवच लिए रहते हैं, धीरता-पूर्वक धर्मकी रक्षा करते हैं, रघुवंशमें सर्वश्रेष्ठ वीर हैं, आपकी प्रचण्ड भुजाओंमें अतुलनीय बल भरा हुआ है और आपने सहजमें राक्षसोंका नाश करके पृथ्वीका भारी भार दूर कर डाला है । रामकी जय हो ॥ ४ ॥ जिनके सिरपर मणि-जटित सुवर्णका मुकुट, कानोंमें कुण्डल, ललाटपर सुन्दर तिलक, जिनका चन्द्रमाके समान चमचमाता हुआ मुख-मण्डल है और जो देहपर पीताम्बर, दिव्य आभूषण और यज्ञोपवीत धारण किए हुए हैं, ऐसे नयनाभिराम रामका ध्यान करके भी ऐसा कौन है जिसका कल्याण न हुआ हो ? ऐसे रामकी जय हो ॥ ५ ॥ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जिसकी सेवा करते रहते हैं, जो सुग्रीव, सुमन्त आदि मंत्रियों और भक्तोंको सुख और समस्त इच्छित पदार्थ

---

१. सामशाली = साम नीतिवाले ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति जय भुवन दस-चारि जस जगमगत पुन्य-भव, धन्य जय राम - राजा।
चरित-सुरसरित-कबि-मुख्य-गिरि-निःसरित, पिबत, मज्जत, मुदित संत-समाजा ॥ ७ ॥
जयति बर्नाश्रमाचार - पर - नारि-नर, सत्य - सम - दम - दया - दान - सीला।
बिगत - दुख-दोष, संतोष सुख सर्बदा, सुनत गावत राम - राज - लीला ॥ ८ ॥
जयति बैराग्य - बिज्ञान - वारांनिधे[1], नमत नर्मद, पाप - ताप - हर्त्ता।
'दास तुलसी' चरन सरन संसय-हरन, देहि अवलंब बैदेहि - भर्त्ता ॥ ९ ॥ (४४)

राग गौरी

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन ! हरन - भव - भय - दारुनं।
नवकंज - लोचन, कंज - मुख, कर - कंज, पद - कंजारुनं ॥ १ ॥
कंदर्प अगनित - अमित - छबि, नवनील - नीरद - सुंदरं।
पट पीत मानहु तड़ित-रुचि, सुचि, नौमि जनकसुता - वरं ॥ २ ॥
भजु दीनबंधु, दिनेस, दानव - दैत्य - बंस - निकंदनं।
रघुनंद, आनँदकन्द, कोसलचंद, दसरथ - नंदनं[2] ॥ ३ ॥

दे डालते हैं, जो अधम, आर्त, दीन, पतित और महापापियोंको केवल एक बार प्रणाम करनेपर और 'मेरी रक्षा करो' कहनेपर ही उनकी रक्षा करने लगते हैं, उन रामकी जय हो ॥ ६ ॥ जिनका पवित्र यश चौदहों भुवनोंमें जगमगा रहा है, जो सर्वथा पुण्यमय और धन्य हैं, ऐसे रामकी जय हो। जिनकी कथाकी वह गंगा आदि कवि महर्षि वाल्मीकिके हिमालय पर्वतसे निकली है, जिसमें स्नान करके और जिसका जल पीकर संत-समाज सदा प्रसन्न रहता है, उन राजा रामकी जय हो ॥७॥ जिनके प्रसिद्ध राम-राज्यमें वे सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मके अनुसार आचरण करते तथा सत्य, शम, दम, दया और दानके व्रतोंका पालन करते थे जिन्हें न कोई दुःख था, न जिनमें दोष था और जो सदा सन्तोषी, सब प्रकारसे सुखी और निश्चिन्त होकर रामके राज्यकी लीला सदा गाते-सुनते रहते थे, उन रामकी जय हो ॥ ८ ॥ वैराग्य और ज्ञान-विज्ञानके (ज्ञाता), प्रणाम करनेवालोंको सुख देनेवाले और उनके सारे पाप नष्ट कर डालनेवाले राम ! यह तुलसीदास आपकी शरणमें आ पहुँचा है, कृपा करके इसे अपने चरणोंका सहारा दे डालिए ॥ ९ ॥ (४४)

अरे मन ! संसारके जन्म-मरणका दारुण भय दूर कर डालनेवाले कृपालु रामका भजन कर ! उनके नेत्र नवीन विकसित कमलके समान हैं। उनके मुख, हाथ और चरण भी लाल कमलके समान हैं ॥ १ ॥ उनके सौन्दर्यकी छटा अगणित कामदेवों से बढ़कर है। उनका शरीर नवीन नील सजल मेघ जैसा सुन्दर है। उनके (श्याम शरीरपर) बिजलीके समान पीताम्बर चमक रहा है। ऐसे पावन जानकी-पति रामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ अरे मन ! दीनोंके बन्धु, सूर्यके समान तेजस्वी दैत्य और दानवोंके वंशका समूल नाश करनेवाले, आनन्दके निधान, कोशल देशके चन्द्रमाके समान दशरथ-कुमार रामका तू भजन किया कर ॥ ३ ॥ जिनके माथेपर सुन्दर तिलक तथा अङ्ग-अङ्गमें

१. वारांनिधि = समुद्र। २. कुछ प्रतियों में यह पद ३ नहीं है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सिर मुकुट, कुंडल तिलक चारु, उदार अंग बिभूषनं।
आजानु - भुज, सर - चाप - धर, संग्रामजित - खर-दूषनं ॥ ४ ॥
इति बदत 'तुलसीदास' संकर - सेष - मुनि - मनरंजनं।
मम हृदै - कंज निवास करि, कामादि - खल - दल - गंजनं ॥ ५ ॥ (४५)

राग रामकली

सदा राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु मूढ़ मन ! बार - बारं।
सकल - सौभाग्य - सुख-खानि जिय जानि, सठ ! मानि बिस्वास वद बेदसारं ॥ १ ॥
कोसलेंद्र नव - नील कंजाभ - तनु मदन-रिपु - कंज-हृदि चंचरीकं।
जानकी-रवन, सुख-भवन, भुवनैक प्रभु, समर - भंजन, परम कारुनीकं ॥ २ ॥
दनुज - बन - धूमध्वज[1], पीन - आजानु, भुजदंड - कोदंडबर - चंड - बानं।
अरुन कर-चरन-मुख-नयन राजीव, गुन - अयन, बहु-मयन सोभानिधानं ॥ ३ ॥
बासना - बृंद - कैरव - दिवाकर, काम - क्रोध - मद - कंज - कानन - तुषारं।
लोभ अति - मत्त-नागेंद्र - पंचाननं, भक्त - हित - हरन - संसार - भारं ॥ ४ ॥

सुन्दर आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, जिनकी भुजाएँ घुटनों-तक लम्बी हैं, जो धनुष-बाण लिए हुए हैं, जिन्होंने संग्राममें खर और दूषणको जीत धरा था ॥ ४ ॥ जो शिव, शेष और मुनियोंका मन प्रसन्न करते रहते हैं तथा काम, क्रोध, लोभ आदि (मोह, मद, मत्सर) दुष्टोंका नाश कर डालते हैं, वे राम मेरे हृदय-कमलमें सदा निवास करें। यही तुलसीदासकी प्रार्थना है ॥ ५ ॥

अरे मूढ़ मन ! सदा, निरन्तर, बारबार राम-नामका जप किया कर। इस (राम-नामके जप)-से तुझे सम्पूर्ण सौभाग्य और सुख मिल जायगा क्योंकि यह (रामनाम) ही वेदका सार है। अरे शठ ! ऐसा मनमें समझकर और पूर्ण विश्वास करके रामका नाम जपा कर ॥ १ ॥ कोशलराजके शरीरकी कांति नवीन नील कमलके समान है। कामदेवको भस्म कर डालनेवाले शिवके हृदयके कमलमें रमते रहनेवाले वे भ्रमर हैं (सदा शिवके हृदयमें बसे रहते हैं)। वे जानकी-रमण, सुखके धाम, अखिल विश्वके एक-मात्र प्रभु, समरमें दुष्टोंका नाश करनेवाले और परम दयालु हैं ॥ २ ॥ वे दानव-रूपी वन-को अग्निके समान जला डालते हैं। अपने पुष्ट और घुटनों-तक लम्बे भुज-दंडोंमें वे सुन्दर धनुष और प्रचण्ड बाण लिए रहते हैं। उनके हाथ, चरण, मुख और नेत्र सब लाल कमलके समान सुन्दर हैं। उनमें सभी सद्गुण भरे हुए हैं और अनेक कामदेवोंकी सुन्दरता भी उनमें विद्यमान है। जैसे सूर्यके उदय होते ही कुमुदिनी संकुचित हो जाती है वैसे ही आपके आगे (आपका नाम लेते ही) अनेक प्रकारकी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। जैसे कमलोंके वनको पाला जला देता है वैसे ही काम, क्रोध मद आदिको आप जला डालते हैं। लोभ-रूपी अत्यन्त मतवाले हाथीके लिये आप वनराज सिंह हैं (आप लोभ मिटा डालते हैं) और भक्तोंका हित करनेके लिये आप राक्षसोंको मारकर संसारका भार उतारते रहते हैं ॥४॥

---

१. धूमध्वज = अग्नि।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

केसवं, क्लेसहं, केस - वंद्यं - पदः - द्वंद्व - मंदाकिनी - मूलभूतं।
सर्वदानंद - संदोह, मोहापहं, घोर - संसार - पाथोधि - पोतं ॥ ५ ॥
सोक - संदेह - पाथोद - पटलानिलं, पाप - पर्वत - कठिन - कुलिस - रूपं।
संतजन - कामधुक - धेनु, विश्रामप्रद नाम, कलि - कलुष - भंजन अनूपं ॥ ६ ॥
धर्म - कल्पद्रुमं, नाम, हरिधाम - पथि - संबलं, मूलमिदमेवमेकं।
भक्ति - वैराग्य - बिज्ञान - सम - दान - दम नाम - आधीन साधनमनेकं ॥ ७ ॥
तेन तप्तं तेन दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीराम - नामामृतं पानकृतमनिसमनवद्यमवलोक्य कालं ॥ ८ ॥
स्वपच-खल-भिल्ल-जवनादि हरिलोक-गत नामबल, बिपुलमति मल न परसी।
त्यागि सब आस, संत्रास-भव-पास-असि-निहित-हरिनाम जपु 'दास तुलसी'[1] ॥ ९ ॥(४६)

राग धनाश्री

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन। हरन दुख-द्वंद्व गोविंद आनंदघन।
अचर - चर - रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै।
दीप निज-बोध[2], गत क्रोध-मद-मोह तम, प्रौढ़ अभिमान चितवृत्ति छीजै ॥ १ ॥

जिनका नाम केशव (सुन्दर केशोंवाला) है, वे सारे क्लेश मिटा डालते हैं। उनके युगल चरणोंकी वन्दना केश (शिव) स्वयं करते हैं। उनके चरणोंसे गंगा निकली हैं। वे सदा आनन्दसे भरे रहते और मोह नष्ट कर डालते हैं और भयानक भव-सागरसे पार उतारनेके लिये जहाज (आधार) हैं ॥५॥ राम तो शोक और संशय-रूपी मेघ-समूहको वायुके समान छिन्न-भिन्न कर डालते हैं और वज्र बनकर पापका कठोर पर्वत तोड़ डालते हैं, उनका अनुपम नाम सन्तोंको कामधेनुके समान इच्छित फल देता है और कलिके पाप नष्ट कर डालता है ॥ ६ ॥ यह रामनाम तो धर्म-रूपी कल्पवृक्षकी वाटिका, भगवान्‌के धाममें जानेवाले पथिकोंके लिये पाथेय (संबल) तथा समस्त साधन और सिद्धियोंका मूल आधार है।[3] भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, शम, दान, दम आदि मोक्षके अनेक साधन सभी इस राम-नामसे मिल जाते हैं ॥ ७ ॥ जिसने भी इस कराल कलिकालको देखकर नित्य निरंतर रामनाम-रूपी पवित्र अमृतका पान कर लिया उसने सारे तप कर लिए, सभी यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया. सर्वस्व दान दे दिया और विधिपूर्वक सभी वैदिक कर्म कर डाले ॥ ८ ॥ अनेक चाण्डाल, दुष्कर्मी, भील और यवन आदि केवल रामनामके प्रचण्ड प्रतापसे भगवान्‌के परम धाम जा पहुँचे। उनकी बुद्धिमें कोई विकार आया-तक नहीं। अरे तुलसीदास ! तू भी सारी आशा और भय छोड़कर उस राम-नामका सदा जप किया कर जो तीखी तलवारके समान संसार-रूपी बन्धनको काट डालता है ॥ ९ ॥ (४६)

अरे मन! रघुकुलके वीर राम तो द्वेष आदि द्वन्द्वोंका सारा दुःख दूर कर डालते हैं, वे गोविन्द (इन्द्रियोंके स्वामी) और आनन्दके भंडार हैं। तू उनकी आरती[4] इस प्रकार कर—

१. यह पद (संख्या) ४६ भागवतदास छत्रीकी प्रतिमें ४८ संख्या पदके अनन्तर आया है।
२. निजबोध = आत्मज्ञान।
३. कल्याणानां निधानं कलिमल-मथनं पावनं पावनानम्। पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां। बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥
—हनुमन्नाटक
४. आरतीके छह अंग (षडङ्ग) माने गए हैं—१. धूप, २. दीप, ३. नैवेद्य, ४. ताम्बूल, ५. नीराजन-(आरती) और ६. शयन।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भाव अतिसय बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्रीरमन परमं - संतोषकारी।
प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल, बिपुल - भव - बासना - बीज - हारी ॥ २ ॥
असुभ-सुभ कर्म - घृत-पूर्ण दस वर्तिका, त्याग पावक, सतोगुन प्रकासं।
भगति - बैराग्य - बिज्ञान - दीपावली अर्पि नीराजनं जगनिवासं ॥ ३ ॥
बिमल हृदि भवन कृत सांति - पर्यंक सुभ सयन बिश्राम श्रीराम राया।
क्षमा - करुना - प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि, तत्र नहिं भेद-माया ॥ ४ ॥
एहि आरती निरत सनकादि-श्रुति-सेष-सिव-देवरिषि अखिल मुनि तत्त्वदरसी।
जोइ करै, सोइ तरै, परिहरै कामादि मल, बदति इति अमल-मति 'दास-तुलसी'॥५॥(४७)

हरति सब आरति, आरती राम-की। दहति दुख - दोष, निर्मल निकाम की ॥१॥
सुभग सौरभ धूप, दीप - बर - मालिका। उड़त अघ-बिहँग, सुनि ताल करतालिका ॥२॥

यह सारा-जड़ और चेतन जगत् हरिका ही रूप है। वे (जड और चेतन सभीमें एक रूपसे सर्वदा स्थित रहनेवाले) सर्वव्यापी और नित्य (सदा रहनेवाले) हैं। इसी भावनाकी वासना (सुगन्ध, इच्छा)-से तू उनको धूप दे। इससे तेरी भेद-भावनाकी दुर्गन्ध दूर हो जायगी। फिर आत्मज्ञानका दीपक जलाकर उससे क्रोध, मद और मोहका अन्धकार मिटा दे। ज्ञानके इस प्रकाशसे अभिमान-भरी सारी चित्त-वृत्तियाँ[1] स्वयं ही मिट जायँगी ॥ १ ॥ इसके पश्चात् अत्यन्त निर्मल और श्रेष्ठ भावना-रूपी 'नैवेद्य' भगवान्‌को अर्पण कर। विशुद्ध श्रेष्ठ भावके नैवेद्यसे ही भगवान् लक्ष्मी-पतिको परम सन्तोष होगा। तब सन्देह और सांसारिक विषय वासनाएं नष्ट कर डालनेवाले विशुद्ध (छल, कपट और स्वार्थ-रहित) 'प्रेम'का ताम्बूल भगवान्‌को अर्पण कर ॥ २ ॥ तदनन्तर शुभ-अशुभ-कर्मके घीमें डुबोई हुई दसों इंद्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों)-की बत्तियोंको 'त्याग'की अग्निसे जलाकर सत्त्व गुणके प्रकाशसे भक्ति, वैराग्य और विज्ञानके दीपोंसे जगन्निवास भगवान्‌का नीराजन (आरती) कर ॥ ३ ॥ आरतीके पश्चात् 'निर्मल हृदय'-रूपी मन्दिरमें 'शान्ति'-रूपी सुन्दर पलँग बिछाकर उसपर महाराज रामको शयन कराकर (विश्राम कराकर) वहाँ महाराजकी सेवाके लिये क्षमा, करुणा-रूपी प्रमुख दासियाँ नियुक्त कर दे क्योंकि जहाँ भगवान् रहते हैं वहाँ भेद-भाव और माया नहीं रहती (आती नहीं) ॥ ४ ॥ सनक आदि ऋषि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार), वेद, शुकदेव, शेष, शिव, नारद और सभी तत्त्वदर्शी मुनि सदा ऐसी आरती उतारते रहते हैं। निर्मल मतिवाला यह तुलसीदास कहता है कि जो कोई ऐसी आरती उतारता है वह काम आदि (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) विकारोंसे छूटकर इस भवसागरसे पार हो जाता है (संसारकी झंझटोंसे मुक्त हो जाता है) ॥ ५ ॥ (४७)

अत्यन्त निर्मल रामकी आरती सब प्रकारके क्लेश दूर कर डालती तथा दुःख और पाप भस्म कर डालती है ॥१॥ यह (आरती) सुगन्ध-युक्त धूप और श्रेष्ठ दीपकोंकी माला (-जैसी) है। (आरतीके समय) हाथसे ताली बजानेकी ध्वनि सुनकर पापरूपी पक्षी उड़ भागते हैं ॥ २ ॥

१. चित्त-वृत्तियाँ—चित्तकी सहस्रों वृत्तियाँ हैं, जो जीवको जन्म-मरणके बन्धनमें डालती रहती हैं। योगियोंने इन चित्तवृत्तियोंके निरोध (रोकने)-को ही 'योग बताया है—'योगश्चित्तवृतिनिरोधः।'

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भक्त - हृदि-भवन अज्ञान-तम - हारिनी । बिमल - बिज्ञानमय, तेज - बिस्तारिनी ॥३॥
मोह-मद-कोह-कलि-कंज-हिम-जामिनी । मुक्ति-की दूतिका, देह - दुति दामिनी ॥४॥
प्रनत-जन-कुमुद-बन-इंदुकर-जालिका । 'तुलसि' अभिमान-महिषेस बहु कालिका॥५॥ (४८)

[हरिशंकरी पद]

देव ! दनुज - बन-दहन, गुन - गहन, गोविंद, नंदादि - आनंददाताऽबिनासी ।
संभु, सिव, रुद्र, संकर भयंकर, भीम, घोर, तेजायतन, क्रोध - रासी ॥ १ ॥
देव ! अनंत भगवंत जगदंत अंतक - त्रास - समन, श्री-रमन, भुवनाभिरामं ।
भूधराधीस, जगदीस, ईसान, बिज्ञान - घन, ज्ञानकल्यान - धामं ॥ २ ॥
देव ! वामनाव्यक्त, पावन, परावर, बिभो, प्रगट परमातमा, प्रकृति - स्वामी ।
चंद्र-सेखर, सूल-पानि, हर, अनघ, अज, अमित, अविछिन्न, बृषभेस-गामी ॥३॥
देव ! नील-जलदाभ-तनु स्याम, बहु - काम - छबि, राम, राजीवलोचन कृपाला ।
कंबू-कर्पूर-बपु-धवल, निर्मल मौलि जटा, सुरतटिनि सित सुमन-माला ॥ ४ ॥

(यह आरती) भक्तोंके हृदयके भवनमें भरे हुए अज्ञानका सारा अन्धकार मिटा डालती है और निर्मल विज्ञानका प्रकाश फैला देती है ॥ ३ ॥ (यह आरती) मोह, मद, क्रोध और कलिकाल (-के दोष)-रूपी कमलोंको जाड़ेकी रात (-के पाले)-के समान जला डालती है और दूती बनकर मुक्ति-रूपी नायिकासे भक्तको ला मिलाती है । इसके शरीरकी चमक बिजलीके समान है ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं कि (यह आरती) चन्द्रमाकी किरणके समान शरणागत-भक्त-रूपी कुमुदका वन खिला देती है और अनेक कालिकाओंके समान अभिमान-रूपी महिषासुरका मर्दन कर डालती है ॥४॥ (४८)

हरि-शंकरी[1] स्तुति : (विष्णु !) आप दानवोंका वन भस्म कर डालते हैं, आप सद्गुणोंके वन (सद्गुणोंसे सम्पन्न), गोविन्द और नन्द[2] उपनन्द[2] आदिको आनन्द देनेवाले, अविनाशी हैं। (शिव !) आप शंभु, शिव, रुद्र और शंकर रूपोंमें कल्याणकारी भी हैं और भयंकर, महान् तेजस्वी और क्रोधी भी हैं ॥ १ ॥ (विष्णु !) आप अनन्त हैं, आपके पास सब ऐश्वर्य हैं, आप जगत्का अंत कर सकते हैं, सबका भय दूर कर सकते हैं, आप लक्ष्मीके पति हैं और समस्त ब्रह्माण्डको आनन्द देते हैं। (शिव !) आप कैलासपति, जगत्-पति और ईशान (शासक, स्वामी) हैं। आप ज्ञान, विज्ञान तथा मोक्ष दे सकते हैं ॥२॥ (विष्णु !) मन और इन्द्रियोंसे आपको नहीं जाना जा सकता, आप परम पवित्र, जड-चेतन और लोक-परलोकके स्वामी, साक्षात् परमात्मा और प्रकृतिके स्वामी हैं। (शिव !) आप मस्तकपर चन्द्रमा और हाथमें त्रिशूल लिए रहते हैं । आप सृष्टिके संहार-कर्त्ता, पाप-शून्य, अजन्मा, अनन्त, अखण्ड और नन्दी बैलपर चढ़ते हैं ॥३॥ (विष्णु !) आप नीले बादलके समान साँवले, अनेक कामदेवोंके समान सुन्दर, कमलके समान नयनवाले और कृपालु राम हैं। (शिव !) आप शंख और कपूरके समान उजले हैं। आपने अपने स्वच्छ सिरपर जटाजूट तथा सफेद पुष्पोंकी माला गंगाके समान धारण कर रक्खी है ॥४॥ (विष्णु !) आप कमलके केशरके समान पीले वस्त्र (पीताम्बर)

१. नन्द : द्रोण नामक वसुके अंशसे उत्पन्न, गोकुल और नन्दगांवमें रहनेवाला गोप-सरदार, जो वसुदेवका मित्र था और जिसने बचपनमें कृष्णको पाला-पोसा था । २. नन्दका मित्र ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! बसन-किंजल्क - धर चक्र-सारंग - दर - कंज - कौमोदकी अति बिसाला ।
मार - करि - मत्त-मृगराज, त्रय-नयन, हर, नौमि अपहरन-संसार-ज्वाला ॥ ५ ॥
देव ! कृष्ण करुना-भवन, दवन-कालीय - खल, बिपुल - कंसादि-निर्बंसकारी ।
त्रिपुर - मद - भंगकर, मत्त - गज - चर्म - धर, अंधकोरग - ग्रसन - पन्नगारी ॥ ६ ॥
देव ! ब्रह्म, व्यापक, अकल, सकल-पर, परम हित, ज्ञान-गोतीत, गुन-वृत्तिहर्त्ता ।
सिंधुसुत - गर्व-गिरि-बज्र, गौरीस, भव, दक्ष-मख-अखिल-विध्वंसकर्त्ता ॥ ७ ॥
देव ! भक्ति-प्रिय, भक्त-जन-कामधुक-धेनु, हरि, हरन दुर्घट-बिकट-बिपति भारी ।
सुखद, नर्मद, बरद, बिरज, अवनद्यऽखिल, बिपिन-आनंद-बीथिन-बिहारी ॥ ८ ॥
देव ! रुचिर हरि - संकरी नाम - मंत्रावली, द्वंद्व - दुख - हरनि आनंद - खानी ।
विष्नु-सिव-लोक-सोपान-सम सर्वदा, 'दास तुलसी' बदत बिमल बानी[1] ॥९॥ (४९)

ओढ़े रहते, अपने चारों हाथोंमें शंख, चक्र, कमल और अत्यन्त विशाल कौमोदकी गदा तथा कंधेपर शार्ङ्ग धनुष लटकाए रहते हैं। (शिव !) आप कामदेव-रूपी मतवाले हाथीको मारनेके लिये सिंहके समान हैं। आपके तीन नेत्र हैं और आप आवागमनके जगत्-जालको नष्ट कर डालते हैं (मुक्ति दे डालते हैं), ऐसे शिवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥ (विष्णु !) आप बड़े दयालु हैं। श्रीकृष्णके रूपमें आपने नीच कालिय नागका दमन किया और कंस आदि अनेक दैत्योंको निर्वंश कर डाला। (शिव !) आपने त्रिपुरासुरका मद मर्दन कर डाला। आप मतवाले गजका चर्म ओढ़े रहते हैं तथा जैसे गरुड किसी सर्पको पकड़ निगलता है वैसे ही आपने अन्धकासुरको[2] ग्रस लिया (मार डाला) ॥ ६ ॥ (विष्णु !) आप ही सर्वव्यापक ब्रह्म हैं, आप कला-रहित (अखंड, पूर्ण), सबसे श्रेष्ठ, परम हितैषी, ज्ञान स्वरूप, बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे और तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-की वृत्तियाँ हर लेते हैं। (शिव !) गौरीके पति भगवान् शंकर ! आपने वज्र बनकर जलन्धरके गर्वके पर्वतको तोड़ डाला। आप ही जगत्की उत्पत्ति करते हैं तथा आपने ही दक्ष प्रजापतिका सम्पूर्ण यज्ञ विध्वस्त कर डाला था ॥ ७ ॥ (विष्णु !) भक्ति ही आपको बड़ी प्रिय है, इसलिये आप कामधेनुके समान अपने भक्तजनोंकी इच्छा पूरी करते रहते हैं (उनके सभी मनोरथ पूरे करते हैं) तथा उनकी सारी बड़ी-बड़ी भयंकर विपत्तियाँ दूर कर डालते हैं। (शिव !) आप सबको सुख[3] आनन्द[4] और मनचाहा वर देते तथा आनन्द-वन (काशी)-की गलियोंमें विहार करते रहते हैं। आप सबसे विरक्त हैं और आपमें कोई विकार नहीं है ॥ ८ ॥ यह हरि और शंकरके नाम-मन्त्रोंकी सुन्दर पंक्तियाँ जो पढ़ेगा उसके हृदयसे राग-द्वेष आदि द्वन्द्व दूर हो जायँगे, उसे आनन्द मिलेगा और उसके लिये यह विष्णुलोक तथा शिवलोक जानेके लिये सीढ़ीका काम देगा। यह बात तुलसीदास शुद्ध वाणीसे कह रहा है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ (४९)

१. यह पद हरि-शंकरी कहलाता है क्योंकि इसके प्रत्येक पदके प्रथम चरणमें विष्णुकी और द्वितीय चरणमें शिवकी स्तुति की गई है। २. अन्धकासुर : पार्वतीके धर्म-बिन्दुओंसे उत्पन्न इस असुरको कृपा करके शिवने हिरण्याक्षको पुत्र रूपमें दे दिया था, पर उसने गद्दीपर बैठते ही पार्वतीको ही हर ले जानेका प्रयत्न किया, तब शिवने उसका वध कर डाला। ३. सुख=सांसारिक सुख। ४. आनन्द=परम शान्ति, परमानन्द।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम-स्तुति

देव ! भानुकुल - कमल - रबि, कोटि - कंदर्प - छबि, काल - कलि - व्यालमिव बैनतेयं ।
प्रबल भुजदंड परचंड कोदंड - धर, तून - बर बिसिख, बलमप्रमेयं ॥ १ ॥
देव ! अरुन राजीवदल - नयन, सुषमा - अयन, स्याम - तनु - कांति बर बारिदाभं ।
तप्त कांचन - वस्त्र, सस्त्र - बिद्या - निपुन, सिद्ध - सुर - सेव्य पाथोज - नाभं ॥ २ ॥
देव ! अखिल लावन्य - गृह, बिस्व - विग्रह, परम प्रौढ़, गुन - गूढ़, महिमा उदारं ।
दुर्द्धर्ष, दुस्तर, दुर्ग, स्वर्ग - अपवर्ग - पति, भग्न - संसार - पादप - कुठारं ॥ ३ ॥
देव ! साप - बस - मुनिबधू - मुक्तकृत, विप्रहित - यज्ञरच्छन - दच्छ, पच्छ-कर्त्ता ।
जनक - नृप - सदसि - सिव - चाप - भंजन, उग्र - भार्गव - गर्ब - गरिमापहर्त्ता ॥ ४ ॥
देव ! गुरु गिरा - गौरवामरसुदुस्त्यज - राज्य - त्यक्त - श्री - सकल सौमित्रि भ्राता ।
संग जनकात्मजा, मनुजमनुसृत्य, अज, दुष्ट - बध - निरत, त्रैलोक्य - त्राता ॥ ५ ॥
देव ! दंडकारन्य - कृत - पुन्य - पावन - चरन, हरन - मारीच - माया - कुरंगं ।
बालि - बल - मत्त - गजराज - इव - केसरी, सुहृद - सुग्रीव - दुख-रासि-भंगं ॥ ६ ॥

रामकी स्तुति : जिन्होंने सूर्यवंश-रूपी कमलको खिलाए रक्खा, जो करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं, जो गरुड बनकर कलिकाल-रूपी सर्पको ग्रस लेते हैं, जो अपने प्रबल भुजदण्डोंमें प्रचण्ड धनुष और बाण लिए हुए हैं, कमरमें तरकश बाँधे हुए हैं और जिनका बल निःसीम है ॥ १ ॥ बड़े शोभावान लाल कमलकी पंखुड़ियोंके समान जिनके सुन्दर नेत्र हैं, जिनका शरीर मेघके समान साँवला है, जो तपे हुए सोनेके समान सुनहरा पीताम्बर ओढ़े हुए हैं, जो शस्त्र-विद्यामें बड़े निपुण हैं, जिनकी उपासना सब सिद्ध और देवता किया करते हैं, जिनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है (जिसमें से ब्रह्मा उत्पन्न हुए) ॥ २ ॥ जो बहुत ही सुन्दर हैं, यह सारा विश्व ही जिनका स्वरूप है, जो बड़े बुद्धिमान हैं और जिनके गुण बड़े रहस्यमय हैं, जिनकी महिमाका कोई पार नहीं है, जिन्हें कोई जीत नहीं सकता, जिनकी लीलाका पार कोई नहीं पा सकता, जिन्हें ठीक-ठीक पहचान सकना बहुत कठिन है, जो स्वर्ग और मोक्षके स्वामी तथा कुठारके समान आवागमन-रूपी संसार (सांसारिक झंझटों)-के वृक्षको जड़से काट डालते हैं, ॥३॥ जिन्होंने गौतम मुनिकी पत्नी अहल्याको शापसे छुड़ा दिया, जिन्होंने बड़े कौशलसे विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की, जो सदा अपने भक्तोंका पक्ष करते रहते हैं, जिन्होंने राजा जनककी सभामें शिवका धनुष तोड़कर महान् तेजस्वी एवं क्रोधी परशुरामका गर्व और महत्त्व नष्ट कर डाला, ॥ ४ ॥ जिन्होंने पिताके वचनका आदर करनेके लिये देव-दुर्लभ राज्य और सारा वैभव सहजमें ही त्याग दिया, जिन्होंने अजन्मा होकर भी अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताको साथ लेकर नर-लीला करके तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये रावण आदि दुष्ट राक्षसोंका संहार कर डाला, ॥ ५ ॥ जिन्होंने अपने पावन चरण-कमलोंसे दण्डकवन पवित्र कर दिया, कपट मृग-रूपी मारीचका वध किया, जिन्होंने सिंह बनकर बालि-रूपी महान् बल-मत्त हाथीका संहार कर डाला और परम मित्र बनकर सुग्रीवका समस्त

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! रिच्छ - मर्कट बिकट सुभट उद्भट समर, सैल - संकास - रिपु - त्रासकारी ।
बद्ध पाथोधि, सुर - निकर - मोचन, सकुल लंकेस दससीस - भुज-बीस-हारी ॥ ७ ॥
देव ! दुष्ट बिबुधारि संघार, अपहरन - महिभार, अवतार कारन अनूपं ।
अमल, अनवद्य, अद्वैत, निर्गुन, सगुन, ब्रह्म, सुमिरामि नर - भूप - रूपं ॥ ८ ॥
देव ! सेष, श्रुति, सारदा, संभु, नारद, सनक, गनत गुन, अंत नहिँ तव चरित्रं ।
सोइ राम, कामारि-प्रिय, अवधपति, सर्वदा दासतुलसी-त्रास-निधि-वहित्रं[1] ॥९॥ (५०)

देव ! जानकीनाथ रघुनाथ रागादि-तम - तरनि, तारुन्य - तनु, तेज - धामं ।
सच्चिदानंद, आनंदकंदाकरं, बिस्व - बिस्राम, रामाभिरामं ॥ १ ॥
देव ! नील - नव - बारिधर, सुभग - सुभ - कांतिकर, पीत कौसेय - बर - बसन - धारी ।
रत्न - हाटक - जटित - मुकुट - मंडित - मौलि, भानुसत - सद्दस-उद्योतकारी ॥ २ ॥
देव ! श्रवन कुंडल, भाल तिलक, भ्रू रुचिर अति, अरुन - अंभोज - लोचन - बिसालं ।
बक्र अवलोकि त्रैलोक्य - सोकापहं, मार-हर - हृदय - मानस - मरालं ॥ ३ ॥

दुःख नष्ट कर डाला, ॥६॥ जिन्होंने बड़े-बड़े भयंकर और वीर वानर-भालुओंको साथ लेकर संग्राममें पर्वतके समान डील-डौलवाले कुम्भकर्णको परास्त कर दिया, समुद्र बाँध लिया, देवताओंको रावण-के बन्धनसे मुक्त किया और दस सिर तथा विशाल बीस भुजाओंवाले रावणका कुल-सहित नाश कर डाला ॥ ७ ॥ और जिन्होंने अनुपम कारणसे पृथ्वीका भार बने हुए और देवताओंके शत्रु दुष्ट राक्षसोंका संहार कर डाला, उन निर्मल, निर्दोष, अद्वैत, वस्तुतः निर्गुण किन्तु मायाको साथ लेकर सगुण बने हुए परब्रह्म नरके रूपमें राज-राजेश्वर रामको मैं स्मरण करता हूँ ॥ ८ ॥ शेष, वेद, सरस्वती, शिव, नारद और सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोढु) सदा जिनके गुण गाते रहनेपर भी जिनकी लीलाका पार नहीं पा सकते, उन्हीं शिवके प्यारे अयोध्याके नाथ रामको ही यह तुलसीदास इस दुःखके समुद्रसे पार उतारनेके लिये सदा सर्वदा जहाज समझता है ॥ ९ ॥ (५०)

जानकीनाथ ! रघुनाथ ! आप सूर्यके समान राग-द्वेष आदि विकारोंके अन्धकारका नाश कर डालते हैं । आपका शरीर सदा तरुण (किशोर) बना रहता है । आपमें तेज ही तेज भरा है । आप सच्चिदानन्द (आनन्दसे भरे हुए), संसारको शान्ति देनेवाले और परम सुन्दर हैं ॥ १ ॥ आपके शरीरकी कान्ति (झलक) नवीन, नीले, सजल मेघके समान सुन्दर और शुभ-दायक है । आप पीले रंगका उत्तम वस्त्र (पीताम्बर) ओढ़े हुए हैं । आपके मस्तकपर सैकड़ों सूर्योंके समान चमकनेवाला रत्नजटित सोनेका मुकुट है, ॥ २ ॥ आपके कानोंमें कुंडल और ललाटपर तिलक है, आपकी भौंहें अत्यन्त सुन्दर तथा नेत्र लाल कमल-दलके समान बड़े-बड़े हैं । आपने जहाँ अपनी तिरछी चितवनसे निहारा कि तीनों लोकोंका शोक दूर हुआ । आप ही कामदेवके शत्रु शिवके हृदयके मानसरोवरमें हंस बनकर विहार करते रहते हैं (आप सदा शिवके हृदयमें बसे रहते हैं) ॥ ३ ॥ आपकी नासिका बड़ी

---

१. विष्णु और शिवमें अभेद दिखानेके लिये गोस्वामीजीने यह 'हरि-शंकरी' दण्डक लिखा है ।
बहित्र = जहाज ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्र[1] - दुति, अधर बिंबोपमा, मधुर हासं।
कंठ दर, चिबुक बर, बचन गंभीरतर, सत्य - संकल्प, सुर - त्रास - नासं ॥ ४ ॥
देव ! सुमन - सुबिचित्र - नव - तुलसिका-दल-जुतं मृदुल बनमाल उर भ्राजमानं।
भ्रमत आमोद-बस मत्त मधुकर - निकर, मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं ॥ ५ ॥
देव ! सुभग श्रीवत्स[2], केयूर, कंकन, हार, किंकिनी - रटनि - कटि-तट रसालं।
बाम दिसि जनकजासीन - सिंहासनं कनक - मृदु-वल्लिमिव तरु तमालं ॥ ६ ॥
देव ! आजानु - भुजदंड, कोदंड - मंडित बाम बाहु, दच्छिन पानि बानमेकं।
अखिल मुनि - निकर, सुर, सिद्ध, गंधर्ब वर नमत नर, नाग, अवनिप अनेकं ॥ ७ ॥
देव ! अनघ, अविछिन्न, सर्वज्ञ सर्वेस, खलु सर्वतोभद्र, दाताऽसमाकं।
प्रनत-जन - खेद-बिच्छेद - बिद्या - निपुन नौमि श्रीराम सौमित्रि - साकं ॥ ८ ॥
देव ! जुगल पदपद्म सुख - सद्म पद्मालयं, चिन्ह कुलिसादि सोभातिभारी।
हनुमंत-हृदि-बिमल-कृत परम-मंदिर सदा 'दास तुलसी' सरन-सोक-हारी ॥ ९ ॥ (५१)

सुन्दर है, कपोल मनोहर हैं, दाँत हीरे-जैसे चमक रहे हैं, ओठ बिम्बाफलके समान लाल हैं, मुसकान बड़ी प्यारी है, कंठ भी शंखके समान और ठोड़ी भी अत्यन्त सुन्दर है। आपकी वाणी बड़ी ही गम्भीर है। आप जो संकल्प करते हैं उसे पूरा कर दिखाते हैं और आप देवताओंका भय दूर कर डालते हैं ॥ ४ ॥ रंगबिरंगे पुष्पों और तुलसीके नये पत्तोंकी वह कोमल वनमाला आपकी छातीपर लटकी हुई बड़ी भली लग रही है जिसकी सुगन्धसे आकृष्ट होकर मतवाले भौंरोंका झुंड मधुर गुंजार करता हुआ उनपर मँडराता रहता है ॥ ५ ॥ आपके वक्षपर श्रीवत्सका चिह्न, भुजाओंपर विजायट (भुजबन्ध), हाथोंमें कंकण और छातीपर हार शोभा दे रहा है। कमरमें बँधी हुई करधनीकी रुनझुन तो निराली ही है। आपकी बाईं ओर सिंहासनपर बैठी हुई जानकीको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो तमाल वृक्षके साथ स्वर्णलता आ लिपटी हो ॥ ६ ॥ आपकी भुजाएँ घुटनों-तक लम्बी हैं। आपके बाएँ हाथमें धनुष और दाहिने हाथमें एक बाण है। सभी मुनि, देवता, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और अनेक राजा-महाराजा आपको नित्य प्रणाम करते रहते हैं ॥७॥ ऐसे जो पाप-रहित, अखण्ड, सर्वज्ञ, सबके स्वामी और निश्चयपूर्वक हमारा कल्याण करते रहते हैं और शरणागत भक्तोंका कष्ट दूर करनेकी सारी कला (विधि) जानते हैं, उन लक्ष्मण-सहित रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ रामके जो दोनों चरण-कमल आनन्दसे भरे हैं (जो उन चरण कमलोंकी सेवा करे उसे आनन्द मिलता है), जिन (चरणोंमें) कमला (लक्ष्मी) बसी रहती हैं (जिन चरणोंकी सेवा करनेसे लक्ष्मी मिलती हैं), वज्र आदि चिह्नोंसे जो (चरण) बहुत सुन्दर लगते हैं और जो (चरण) भक्तवर हनुमान्‌के निर्मल हृदयके उत्तम मंदिरमें बसे रहते हैं, उन शोक-हर्त्ता चरणोंकी शरणमें यह तुलसीदास भी आ पहुँचा है ॥ ९ ॥ (५१)

---

१. वज्र = हीरा। २. श्रीवत्स : विष्णुके वक्षस्थलपर अँगूठेके बराबर लंबा-चौड़ा श्वेत बालोंका दक्षिणावर्त्त (दाहिनी ओरको घूमा हुआ) चिह्न है जो भृगुके चरणके प्रहारका प्रतीक माना जाता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दशावतार-रूप-राम-वन्दना

देव ! कोसलाधीस ! जगदीस ! जगदेकहित अमित गुन, बिपुल बिस्तार लीला ।
गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति, सेस, सुक, संभु, सनकादि मुनि मनन-सीला ॥ १ ॥
देव ! बारिचर - बपुष[1]-धर, भक्त - निस्तार-प्रद, धरनि कृत नाव, महिमातिगुर्वी ।
सकल जज्ञांगमय उग्र - बिग्रह कोड[2], मर्दि दनुजेस उद्धरनि उर्वी ॥ २ ॥
देव ! कमठ अति बिकट-तनु, कठिन पृष्ठोपरि भ्रमत मंदर कंडु-सुख[3] मुरारी ।
प्रगट - कृत अमृत, गौ, इंदिरा, इंदु, वृंदारका - वृंद - आनंदकारी ॥ ३ ॥
देव ! मनुज - मुनि - सिद्ध-सुर-नाग-त्रासक दुष्ट दनुज, द्विज-धर्म - मर्य्याद-हर्त्ता ।
अतुल मृगराज-बपु धरित, विदरित अरि, भक्त - प्रहलाद-अहलाद-कर्त्ता ॥ ४ ॥
देव ! छलन बलि कपट बटु - रूप पावन ब्रह्म, भुवन-परजंत पद तीनि-करनं ।
चरन - नख-नीर[4] त्रैलोक-पावन परम, बिबुध - जननी दुसह सोक हरनं ॥ ५ ॥

दसों अवतारोंके रूपमें राम वन्दना : कोशलपति ! जगदीश्वर ! आप ही जगत्के एक मात्र हितकारी हैं। आपने अपने अपार गुणोंकी बड़ी लीला फैला रक्खी है। चारों वेद, शेष, शुकदेव, शिव, सनक आदि मननशील मुनि आपके परम पवित्र चरित्र गाते रहते हैं ॥ १ ॥ आपने मत्स्यका रूप धारण करके (महाप्रलयके समय) भक्तोंका उद्धार किया। उस रूपसे आपने पृथ्वीको नौका बना लिया। आपकी महिमा अपार है। आपने ही सब यज्ञोंका अंश लेकर अपने भयंकर वराह (शूकर) शरीरसे (हिरण्याक्षका वध करके) पृथ्वीका उद्धार किया था ॥ २ ॥ आपने समुद्र-मन्थनके समय अत्यन्त प्रचंड कछुएका रूप धारण करके अपनी पीठपर मन्दराचल पर्वत खड़ा कर लिया था। उस समय जब वह पर्वत घूमता था तब उसकी रगड़से आपको खुजलाहटका-सा सुख मिल रहा था। समुद्र मथकर आपने उसमेंसे अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी और चन्द्रमा उत्पन्न करके देवताओंको आनन्द दिया था ॥ ३ ॥। अपने अतुलित बलशाली नृसिंहका रूप धारण करके, मनुष्य, मुनि, सिद्ध, देवता और नागोंको दुःख देनेवाले तथा ब्राह्मण और धर्मकी मर्यादा नष्ट कर डालनेवाले दुष्ट दैत्य शत्रु हिरण्यकशिपुको मारकर अपने भक्त प्रह्लादको आनन्द दिया था ॥ ४ ॥ आपने वामन (बौने) ब्रह्मचारीका कपट रूप बनाकर राजा बलिको छलनेके लिये पहले उनसे तीन पैर भूमि माँगी परन्तु (नापते समय)-सारा ब्रह्माण्ड नाप लिया। उसी समय आपके चरणके नखसे तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली गंगाका जल बह निकला। आपने बलिको पाताल भेज दिया और (वह राज्य इन्द्रको देकर) देव-माता अदितिका दुःसह शोक दूर किया ॥ ५ ॥ आपने बड़े भारी सिंहके समान (परशुराम

१. पृथ्वीके सब बीज नौकापर रखकर मनु नावपर चढ़कर और वह नाव उस मत्स्यके सींगमें बाँधकर प्रलय-सागरमें बढ़ चले थे। २. कोड (कोल)=वराह। हिरण्याक्ष जब पृथ्वीको समुद्रमें ले गया तब वराह रूपमें भगवान्ने पृथ्वीको अपने दाँतोंपर उठा निकाला था। ३. कंडुसुख = खुजलानेका सुख। ४. जब भगवान्ने विराट् रूप बनाया तभी ब्रह्माने उनके चरण धोकर वह जल अपने कमंडलुमें रख लिया था। वही गंगा हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! छत्रियाधीस - करि - निकर - बर - केसरी परसु - धर, बिप्र - ससि[1] - जलद-रूपं ।
बीस - भुजदंड - दससीस - खंडन, चंड - बेग - सायक, नौमि राम भूपं ॥ ६ ॥
देव ! भूमि - भर - भार - हर, प्रगट परमातमा, ब्रह्म नर - रूप धरि भक्त - हेतू ।
वृष्णि - कुल - कुमुद - राकेस, राधा - रमन, कंस - बंसाटवी - धूम - केतू ॥ ७ ॥
देव ! प्रबल - पाखंड - महि - मंडलाकुल देखि, निंद्य - कृत - अखिल - मख - कर्म जालं ।
शुद्ध - बोधैक, घन - ज्ञान, गुन - धाम, अज, बुद्ध अवतार वंदे कृपालं ॥ ८ ॥
देव ! कालकलि-जनित-मल-मलिन-मन सर्व नर, मोह-निसि - निबिड़ - यवनांधकारं ।
विष्णुयश-पुत्र[2] कल्की-दिवाकर उदित, 'दास तुलसी' हरन बिपति - भारं ॥९॥ (५२)

राम-वन्दना

देव ! सर्व - सौभाग्यप्रद, सर्वतोभद्र - निधि, सर्व - सर्वेस, सर्वाभिरामं ।
शर्व - हृदि - कंज - मकरंद - मधुकर - रुचिर - रूप, भूपाल - मनि, नौमि रामं ॥ १ ॥

रूपमें सहस्राबाहु आदि) क्षत्रिय राजा-रूपी हाथियोंको फाड़ खाया। आपने ब्राह्मण-रूपी धान्यको हरा-भरा करनेके लिये मेघ बनकर परशुरामका अवतार धारण किया (राजाओंसे पृथ्वी छीनकर ब्राह्मणोंको इस प्रकार दान कर डाली जैसे मेघ यथेष्ट जल बरसाकर धान्यको हरा-भरा कर देता है)। फिर बीस भुजाओं और दस सिरवाले (रावण) को अपने प्रचण्ड बाणोंसे मार गिरानेवाले राजाधिराज रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ पृथ्वीका भारी भार हरनेके लिये आप परब्रह्म परमात्मा होकर भी भक्तोंका उद्धार करनेके निमित्त मनुष्य-रूपमें ही अवतरित हुए। वृष्णिवंश-रूपी कुमुदको खिलाए रखनेवाले चन्द्रके समान कृष्ण ! आपने अग्निके समान कंस आदि दैत्य-रूपी वन जला डाला (कंस आदिको मार डाला)[3] ॥ ७ ॥ बड़े-बड़े पाखंड और दम्भ बढ़ जानेके कारण संसारको व्याकुल देखकर यज्ञ आदि कर्मकाण्डोंका खंडन करके उनका तिरस्कार करनेवाले निर्मल, बोधस्वरूप, ज्ञानघन, सर्वगुण-सम्पन्न, जन्म-रहित कृपालु बुद्ध भगवान्‌की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ८ ॥ इस कलिकालके पापोंसे सभी मनुष्योंके मन मलिन हो रहे हैं। आप मोह (अज्ञान)-रूपी रात्रिमें म्लेच्छ-रूपी घने अन्धकारका नाश करनेके लिये सूर्योदयकी भाँति (जैसे सूर्य निकलनेपर रात्रि दूर हो जाती और अँधेरा मिट जाता है वैसे ही जब अज्ञान बढ़ जानेके कारण चारों ओर म्लेच्छ ही म्लेच्छ हो जायँगे उस समय उन म्लेच्छोंका और अज्ञानका नाश करनेके लिए आप संभल, जिला मुरादाबाद, उत्तर प्रदेशमें) विष्णुयश नामक ब्राह्मणके पुत्र होकर कल्कि अवतार लेंगे। नाथ ! तुलसीदासकी प्रार्थना है कि आप मेरी भी विपत्तियाँ दूर कर डालिए ॥९॥ (५२)

---

१. ससि = (शस्य, सस्य) धान, अन्न, खेती। २. विष्णुयश = एक ब्राह्मण जिसका पुत्र-कल्कि अवतार होगा। ३. कुछ लोग दस अवतारोंमें कृष्णके बदले बलरामको आठवाँ अवतार मानते हैं और कृष्णको 'कृष्णास्तु भगवान्स्वयम्' कहकर कृष्णको पूर्ण ब्रह्म मानते हैं।' सर्वे चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।' (सब अवतार तो ब्रह्मके अंशावतार हैं। कृष्ण तो स्वयं सोलह कलाओंसे पूर्ण साक्षात् भगवान् हैं।)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! सर्व - सुख - धाम, गुन - ग्राम, विश्राम - पद नाम सर्वास्पदमतिपुनीतं।
निर्मलं, सांत, सुबिसुद्ध, बोधायतन, क्रोध - मद - हरन, करुना - निकेतं ॥ २ ॥
देव ! अजित, निरुपाधि, गोतीतमव्यक्त, विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।
प्राकृतं, प्रगट परमातमा, परम हित - प्रेरकानंद वंदे तुरीयं[1] ॥ ३ ॥
देव ! भूधरं, सुंदरं, श्रीवरं, मदन - मद - मथन, सौंदर्य - सीमातिरम्यं।
दुष्प्राप्य, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर्क्य, दुष्पार, संसार - हर, सुलभ, मृदुभावगम्यं ॥ ४ ॥
देव ! सत्य - कृत, सत्य - रत, सत्य - व्रत, सर्वदा, पुष्ट, संतुष्ट, संकष्टहारी।
धर्म - वर्मणि ब्रह्मकर्मबोधैक, बिप्र - पूज्य, ब्रह्मण्य, जन - प्रिय मुरारी ॥ ५ ॥

जो समस्त सौभाग्य दे डाल सकते हैं और सब प्रकारसे कल्याण करते हैं। सारा विश्व ही जिनका रूप है, जो स्वामी हैं, सबको सुख देते हैं, शिवके हृदय-कमलके मकरंदको पान करनेवाले भ्रमर हैं (शिवके हृदयमें बसे रहते हैं), जिनका बड़ा ही मनोहर रूप है, ऐसे राजराजेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ सब सुखोंके धाम राम ! आप सब गुणोंके भंडार हैं और सबको शान्ति देते हैं। आपका नाम जपनेपर समस्त पदार्थ मिल जाते हैं। आपका नाम अत्यंत पवित्र, स्वच्छ, शान्त, अत्यन्त शुद्ध और ज्ञानसे भरा है। आप क्रोध और अहंकार नाश कर डालते तथा बड़े ही दयालु हैं॥ २ ॥ आपको कोई जीत नहीं सकता, आपकी कोई उपाधि नहीं है, आप मन और इन्द्रियोंसे परे, अव्यक्त (निर्गुण), व्यापक, अकेले एक, निर्विकार, अजन्मा और अद्वितीय हैं। परमात्मा होनेपर भी आप प्रकृत (नर) रूप धारण कर लेते हैं। आप परम कल्याणके कर्त्ता और अनंत हैं। ऐसे निर्गुण ब्रह्म-रूप रामकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥ आप ही पृथ्वी धारण किए हुए हैं। आप सुन्दर हैं, लक्ष्मीके पति हैं, आपने सुन्दरतामें कामदेवका गर्व भी मथ डाला है। आप असीम सुन्दर और मनोहर हैं। आपको प्राप्त करना बड़ा कठिन है, आपका दर्शन पाना बड़ा कठिन है, आपको कोई तर्कसे भी नहीं जान सकता। आपकी लीलाओंका पार पाना बड़ा कठिन है। आप संसारका आवागमन दूर कर डालते हैं। जो (भक्त) प्रेम और दीनतासे आपके पास पहुँचे, उसे सहजमें ही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥ आप सत्यको उत्पन्न करनेवाले, सत्यमें रहनेवाले, सत्य-संकल्प, सदा ही पुष्ट, सामर्थ्यवान्, सन्तोषी और सब कष्ट हरते रहते हैं। धर्म ही आपका कवच है। परा[2] और अपरा दोनों प्रकारकी विद्याएँ जाननेवालोंमें आपके समान कोई

१. तुरीय=मोक्षरूप। २. परा अपरा विद्या। यया ब्रह्मावगमः सा परा। ययाक्षरमधिगम्यते साऽपरा। जिस विद्यासे ब्रह्मका ज्ञान होता है वह परा विद्या, जिससे अक्षर ज्ञान होता हो वह अपरा कहलाती है। प्रश्नोपनिषद्में कहा गया है—तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष ही अपरा विद्याके अन्तर्गत आते हैं)। १८ विद्याओंके अन्तर्गत छह वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त), चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद), मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, अर्थशास्त्र) आते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! नित्य, निर्मम, नित्य मुक्त, निर्मान हरि, ज्ञान - घन, सच्चिदानंद - मूलं।
सर्वरक्षके, सर्वभक्तकाध्यक्ष, कूटस्थ, गूढ़ार्चि[1], भक्तानुकूलं ॥ ६ ॥
देव ! सिद्धि - साधक - साध्य, वाच्य - वाचक - रूप, मंत्र - जापक - जाप्य, सृष्टि - स्रष्टा।
परम - कारन, कंज - नाभ, जलदाभ - तनु, सगुन - निर्गुन, सकल दृश्य-द्रष्टा ॥ ७ ॥
देव ! व्योम - व्यापक, बिरज, ब्रह्म, बरदेस, बैकुंठ, बामन, बिमल, ब्रह्मचारी।
सिद्ध - बृन्दारकाबृन्द - बंदित सदा, खंडि पाखंड निर्मूलकारी ॥ ८ ॥
देव ! पूरनानंद - संदोह, अपहरन - संमोह - अज्ञान - गुन - सन्निपातं।
बचन-मन-कर्म-गत सरन 'तुलसीदास', त्रास-पाथोधि-इव कुंभ - जातं ॥ ९ ॥(५३)

देव ! बिस्व - बिख्यात, बिस्वेस, बिस्वायतन, बिस्व - मर्याद, व्यालारि - गामी।
ब्रह्म, बरदेस, बागीस, व्यापक, बिमल, बिपुल, बलवान, निर्वान - स्वामी ॥ १ ॥

नहीं है। आप ब्राह्मणोंके रक्षक और पूजक तथा भक्तोंके प्रिय हैं। आपने मुर[2] नामक दैत्यको मार डाला था ॥ ५ ॥ आप अविनाशी, मोह-ममतासे दूर, सदा मुक्त, मान-रहित, ज्ञानके निधान और सच्चिदानंद हैं। यह जगत् आपने ही उत्पन्न किया है। आप सबकी रक्षा और सबका लय करते हैं। आप यमराजके स्वामी, निर्विकार, अत्यन्त तेजोमय और भक्तोंके रक्षक हैं ॥६॥ आप ही सिद्ध भी हैं, साधक भी हैं और साध्य भी हैं। आप ही वाच्य भी हैं वाचक भी हैं। आप ही मंत्र हैं। आप ही सब कुछ जापक (जपनेवाले) हैं और आप ही जाप्य (जिसका जप किया जाय) भी हैं। आप ही सृष्टि भी हैं और आप ही स्रष्टा भी हैं। आप कारणके भी कारण हैं। आपकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई है। आपका शरीर मेघके समान (साँवला) है। आप सगुण और निर्गुण दोनों ही हैं। आप दृश्य भी हैं और द्रष्टा भी हैं ॥ ७ ॥ आकाश-भरमें एक आप ही तो रम रहे हैं। आप रजोगुण आदिसे निर्लिप्त हैं। ब्रह्मा आदि वर देनेवाले देवताओंके आप स्वामी हैं। आपका नाम वैकुण्ठ, वामन, विशुद्ध और ब्रह्मचारी है। सब सिद्ध और देवता सदा आपकी वंदना किया करते हैं। आप पाखंडका खंडन करके उसे निर्मूल कर डालनेवाले (बुद्ध अवतार) हैं ॥ ८ ॥ आप अखंड आनन्द हैं और अविद्यासे उत्पन्न तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-के त्रिदोष (कायिक, वाचिक मानसिक विकार) दूर कर डालते हैं। यह तुलसीदास मन, वचन और कर्मसे आपकी शरणमें आया है आप अगस्त्यके समान उसके भय-रूपी समुद्रको सोख डालिए ॥ ९ ॥ (५३)।

नाथ ! आप जगत्में प्रसिद्ध और अखिल ब्रह्मांडके स्वामी हैं। यह सारा विश्व ही आपका रूप है। आप ही विश्वकी मर्यादा (सारे विश्वमें व्याप्त) हैं और गरुड-पर सवारी करते हैं। आप परब्रह्म हैं। वर देनेवाले ब्रह्मा आदि देवताओंके और वाणीके आप स्वामी हैं। आप सर्व-

---

१. गूढार्चि = गुप्त तेजवाला। २. मुर : ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न तालजंघ नामके दैत्यका पुत्र मुर था। चंद्रावती इसकी राजधानी थी। इसने सब देवताओंको यहाँतक कि विष्णुको भी इतना त्रस्त किया कि वे रणभूमिसे भागकर बदरिकाश्रमकी सिंहावती नामकी गुफामें जा सोए। पर मुर वहाँ भी जा पहुँचा। तब विष्णुने अपनी योगमायासे एक देवी उत्पन्न कराकर उसके हाथसे मुरका वध कराया और तबसे उनका नाम मुरारि पड़ गया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! प्रकृति, महत्तत्त्व, सब्दादि, गुन, देवता, ब्योम, मरुदग्नि, अमलांबु, उर्वी।
बुद्धि, मन, इंद्रिय, प्रान, चित्तातमा, काल - परमानु - चिच्छक्ति गुर्वी ॥ २ ॥
देव ! सर्वमेवात्र त्वद्रूप, भूपाल - मनि ! ब्यक्तमब्यक्त, गत - भेद, विष्णो !
भुवन भवदंस, कामारि - वंदित - पदद्वंद्व - मंदाकिनी - जनक जिष्णो[1] ॥ ३ ॥
देव ! आदिमध्यांत भगवंत त्वं, सर्वगतमीस पश्यंति ये ब्रह्मवादी।
यथा पट तंतु, घट मृत्तिका, सर्प स्रग्, दारु करि, कनक कटकांगदादी ॥ ४ ॥
देव ! गूढ़, गंभीर, गर्वघ्न, गूढ़ार्थवित, गुप्त, गोतीत, गुरु - ज्ञान - ज्ञाता।
ज्ञेय, ज्ञानप्रिय, प्रचुर गरिमागार, घोर - संसार - परपार - दाता ॥ ५ ॥
देव ! सत्य - संकल्प, अतिकल्प, कल्पांत - कृत, कल्पनातीत, अहि - तल्पवासी[2]।
बनज-लोचन, बनज-नाभ, बनदाभ-वपु, बनचर - ध्वज - कोटि - लावन्य - रासी ॥ ६ ॥
देव ! सुकर, दुष्कर, दुराराध्य, दुर्ब्यसनहर, दुर्ग, दुर्द्धर्ष, दुर्गार्त्ति-हर्त्ता।
वेद - गर्भार्भकादभ्रगुण - गर्व - अर्वाकपर - गर्व - निर्वापकर्त्ता ॥ ७ ॥

व्यापक, निर्मल, अत्यन्त बलशाली और मोक्ष-पदके अधीश्वर हैं ॥ १ ॥ मूल प्रकृति (माया), महत्तत्व (बुद्धि तत्त्व), गुण, (सत्त्व, रज और तम), समस्त देवता, आकाश, वायु, अग्नि (तेज), निर्मल जल, पृथ्वी, बुद्धि, मन, दसों इन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ, पाँव, मुख, गुदा, उपस्थ नामक पाँच कर्मेन्द्रिय), पाँच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान), चित्त आत्मा, काल, परमाणु और महान् चैतन्य शक्ति आदि सब आपके ही रूप हैं ॥ २ ॥ हे राजराजेश्वर ! जो कुछ भी प्रकट और अप्रकट है, सब आपही हैं। आप अभेद (व्यापक) रूपसे समस्त विश्वमें रमे हुए हैं। यह सारा जगत् आपके ही अंशमें स्थित है। सबको जीत रखनेवाले शिव भी सदा आपके उन दोनों चरण-कमलोंकी वन्दना करते रहते हैं जिनसे गङ्गाजी निकली हैं। ३ ॥ भगवन् ! आप ही आदि, मध्य और अन्त हैं। ईश ! ब्रह्मवादी ज्ञानी लोग आपको उसी प्रकार व्याप्त समझते हैं जैसे वस्त्रमें तंतु (डोरा), घड़ेमें मिट्टी, साँपमें माला (रस्सी), काठके बने हुए हाथीमें काठ और कड़े, अंगद (बिजायट, भुजबन्ध) आदि गहनोंमें सोना ही ओत-प्रोत रहता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार आप अत्यन्त गूढ (रहस्य-भरे), गंभीर, (सब दुष्टोंका) दर्प दूर करनेवाले, गुप्त रहस्य जाननेवाले, गुप्त रहनेवाले, मन और इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे, सबके गुरु, ज्ञान, ज्ञाता (जाननेवाला) और ज्ञेय (जिसे जानना चाहिए), ज्ञानप्रिय, महान् गौरव-शाली हैं और (भक्तोंको) इस घोर भवसागरसे पार उतारते चलते हैं ॥ ५ ॥ आप सत्य-संकल्प हैं (जो निश्चय कर लेते हैं उसे पूरा करते हैं)। आप ही कल्प और महाकल्प रचते हैं। आप कल्पनासे परे हैं (आपकी कोई कल्पना नहीं कर सकता)। आप शेष-शय्यापर लेटे रहते हैं। आपके नेत्र कमलके समान हैं, आपकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है। आपका शरीर मेघके समान साँवली झलक मारता है। आप करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं ॥ ६ ॥ आप भक्तोंको सुलभ (सरलतासे मिलनेवाले) और दुष्टोंको दुर्लभ (प्राप्त नहीं होते) हैं। आपकी आराधनामें बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। आप भक्तोंके सारे दुर्गुण मिटा डालते

१. जिष्णो = सर्वविजेता। २. अहितल्प-वासी = शेषशय्यापर शयन करनेवाले (विष्णु)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! भक्त - अनुकूल, भवसूल - निर्मूलकर, तूल - अघ - नाम - पावक - समानं ।
तरल - तृष्णा - तमी - तरणि, धरनी - धरन, सरन - भय - हरन, करुना - निधानं ॥ ८ ॥
देव ! बहुल वृंदारकावृंद - वंदारु - पद - द्वंद्व, मंदारमालोरधारी ।
पाहि मामीस ! संताप - संकुल सदा, 'दास तुलसी' प्रनत रावनारी ॥ ९ ॥ (५४)

देव ! संत - संताप - हर, बिस्व-बिस्रामकर, राम ! कामारि - अभिराम - कारी ।
सुद्ध - बोधायतन, सच्चिदानंदघन, सज्जनानंद - बर्द्धन, खरारी ॥ १ ॥
देव ! सील - समता - भवन, विषमता - मति - समन, राम ! रामा - रमन, रावनारी ।
खड्ग - कर, चर्मवर - बर्म धर, रुचिर कटि - तून, सर - सक्ति - सारंगधारी ॥ २ ॥
देव ! सत्य - संधान, निर्वानप्रद, सर्व - हित, सर्वगुन - ज्ञान - बिज्ञान - साली ।
सघन - तम - घोर - संसार - भर - सर्वरी, नाम - दिवसेस - खर - किरनमाली ॥ ३ ॥
देव ! तपन तीछ्न, तरुन तीव्र - तापघ्न, तप - रूप, तनु-भूप, तमपर, तपस्वी ।
मान - मद - मदन - मत्सर - मनोरथ - मथन, मोह - अंभोधि - मंदर मनस्वी ॥ ४ ॥

हैं । आप दुर्गम (कठिनतासे मिलते) हैं, कठिनतासे वशमें आते और कठिन दुःख दूर कर डालते हैं । आपने (ब्रह्माको निरुत्तर कर डालनेवाले) ब्रह्माके पुत्र सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार)-का गुण और (परा और अपरा विद्याका) गर्व चूर कर डाला है ॥ ७ ॥ आप भक्तोंपर प्रसन्न रहते हैं और (जन्म-मरण आदि) सांसारिक कष्ट निर्मूल कर डालते हैं । आपका 'राम' नाम पापकी रुईको भस्म करनेवाली अग्नि है । चंचल तृष्णाकी रात्रि मिटानेके लिये आप सूर्यके समान हैं। आप पृथ्वीको धारण किए हुए हैं। आप शरणागतोंका भय दूर करते और बड़े ही दयालु हैं ॥ ८ ॥ बहुतसे देवता आपके दोनों चरणोंकी वन्दना किया करते हैं । आपकी छातीपर मंदारकी माला शोभा देती है । रावणके शत्रु राम ! सदा सन्तापसे व्याकुल मैं तुलसीदास आपकी शरण आ पहुँचा हूँ । नाथ ! मेरी रक्षा कर लीजिए ॥ ९ ॥ (५४)

राम ! आप सन्तोंका संताप मिटा डालते, संसारमें शान्ति स्थापित करते तथा शिवको आनंद देते हैं । आप शुद्ध ज्ञानके भांडार और सच्चिदानंद-घन हैं । आप सज्जनोंको आनन्द देनेवाले और खरके शत्रु हैं ॥ १ ॥ राम ! आप शील और समतासे भरे हुए, भेद-बुद्धि (आत्मा-परमात्मा, ऊँच-नीच, छोटा बड़ा, मैं-तू आदि)-के सब प्रपंच दूर कर डालनेवाले, लक्ष्मीके पति और रावणके शत्रु हैं । आप धनुष, बाण और शक्ति लिए रहते, शरीरपर कवच धारण किए रहते और कमरमें तरकश कसे रहते हैं ॥ २ ॥ आप सत्य-संकल्प (जो निश्चय कर लेते हैं वह पूरा कर डालते) हैं, आप (भक्तों के) मुक्ति देते हैं, सबका कल्याण करते हैं, सब दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हैं और ज्ञान-विज्ञानसे पूर्ण हैं । आपका 'राम' नाम ऐसे प्रचंड किरणोंवाले सूर्यके समान है—॥ ३ ॥ कि वह प्रगाढ अंधकारसे भरी संसार-रूपी रात्रिका नाश कर डालता है । आपका तेज अत्यन्त तीक्ष्ण है । संसारके नित्य नये और प्रचंड ताप-संताप आप नाश कर डालते हैं । राजाका शरीर होनेपर भी आपका रूप तपोमय है । आप अज्ञानसे परे और तपस्वी हैं । मान, मद, काम, मत्सर, कामना और मोहके समुद्रको आप मंदराचलके समान मथ डालते (नष्ट कर डालते) हैं । आप

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! बेद - बिख्यात, बरदेस, बामन, बिरज, बिमल, बागीस, बैकुंठ - स्वामी ।
काम - क्रोधादि - मर्दन, बिबर्धन - क्षमा, सांत - बिग्रह, बिहँगराजगामी ॥ ५ ॥
देव ! परम पावन, पापपुंज - मुंजाटवी - अनल - इव - निमिष - निर्मूलकर्ता ।
भुवन - भूषन, दूषनारि, भुवनेस, भू - नाथ, श्रुति - माथ, जय भुवन - भर्त्ता ॥ ६ ॥
देव ! अमल, अविचल, अकल, सकल, संतप्त - कलि - विकलता - भंजनानंद - रासी ।
उरग - नायक - सयन, तरुन - पंकज - नयन, क्षीरसागर - अयन, सर्ब - बासी ॥ ७ ॥
देव ! सिद्ध - कबि - कोबिदानंद - दायक - पदद्वंद्व, मंदात्ममनुजैर्दुरापं ।
यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी, दर्सनादेव अपहरति पापं ॥ ८ ॥
देव ! नित्य, निर्मुक्त, संयुक्तगुन, निर्गुनानंत, भगवंत, नियामक, नियंता ।
बिस्व - पोषन - भरन, बिस्व - कारन - करन, सरन - तुलसीदास-त्रास-हंता ॥९ ॥(५५)

बड़े विचारशील हैं ॥ ४ ॥ आप वेदोंमें प्रसिद्ध हैं, भक्तोंको वर देते रहते हैं, देवताओंके स्वामी हैं । आप ही वामन (अवतार), विरक्त, विमल वाणीके अधीश्वर और वैकुण्ठके स्वामी हैं । आप काम, क्रोध, लोभ आदि नष्ट कर डालते हैं, (भक्तके मनमें) क्षमा बढ़ाते हैं, शान्तिके स्वरूप हैं और गरुडपर सवारी करते हैं ॥ ५ ॥ आप परम पवित्र हैं और जैसे मूँजके वनको अग्नि क्षण भरमें भस्म कर डालती है वैसे ही आप भी पाप भस्म कर डालते हैं । आप विश्वके शिरोमणि हैं । आपने दूषण राक्षसको मार डाला था । आप लोकोंके स्वामी, पृथ्वी-पति, वेदोंके मस्तक (वेदोंके पूज्य) हैं, और समस्त लोकोंका पालन करते हैं । आपकी जय हो ॥ ६ ॥ आप विकार-रहित, सदा एक-रस (एक जैसे ही बने रहनेवाले), कला-रहित (पूर्ण) तथा समस्त कलाओंमें व्याप्त हैं । आप कलिके तापसे तपे हुए जीवोंकी व्याकुलता दूर कर सकते और आप आनन्द ही आनन्द हैं । आप शेष नागपर लेटे रहते हैं, आपके नेत्र कमलके समान हैं, आप क्षीर-सागर[1] में रहते हुए भी प्रत्येक प्राणीके घट-घटमें अव्यक्त रूपसे रमण करते रहते हैं ॥ ७ ॥ आप सिद्धों, कवियों और विद्वानोंको सुख देते रहते हैं, आपके उन दोनों चरणोंके दर्शन पापियोंको कभी नहीं मिल पाते (आपके चरणों-तक पापी कभी नहीं पहुँच पाते) जिनसे अत्यन्त पवित्र जलवाली वे गंगा निकली हैं, जो दर्शन मात्रसे सब पाप नष्ट कर डालती हैं (ऐसे चरणोंके सम्बन्धमें कहना ही क्या है !) ॥ ८ ॥ आप नित्य (सदा बने रहते) हैं, मायाके फन्देमें कभी नहीं पड़ते, दिव्य गुणसे सम्पन्न हैं, तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-से रहित हैं, आनन्दकी मूर्त्ति हैं, ऐश्वर्यसे पूर्ण हैं, नियम बनाते और सबपर शासन करते हैं । आप समस्त विश्वका पालन-पोषण करते हैं । आपने

---

१. क्षीर-सागर : दूधके समान श्वेत जलवाला वह समुद्र जिसमें शेषनागपर विष्णु लेटे रहते हैं । इसी क्षीरसागरको मथकर देवों और दानवोंने १४ रत्न निकाले थे—श्री, मणि, रंभा, वारुणी, अमृत, शंख, गजराज । धन्वंतरि, धनु, धेनु, शशि, कल्पवृक्ष, विष, बाज (बाजि) । [लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, रंभा अप्सरा, वारुणी (मदिरा), अमृत, शंख, ऐरावत हाथी, धन्वंतरि (वैद्य), शार्ङ्ग धनुष, कामधेनु, चन्द्रमा, कल्पवृक्ष, विष (हलाहल, जो शिव पी गए) तथा उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा] ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! दनुज - सूदन, दया - सिंधु, दंभापहन, दहन - दुर्दोष, दुष्पाप - हर्त्ता।
दुष्टता - दमन, दम - भवन, दुःखौघ - हर, दुर्ग - दुर्वासना - नासकर्त्ता ॥ १ ॥
देव ! भूरिभूषन, भानुमंत, भगवंत, भवभंजनाभयद, भुवनेस भारी।
भावनातीत, भव - बंद्य, भव - भक्तहित, भूमि - उद्धरन, भूधरन - धारी ॥ २ ॥
देव ! बरद, बनदाभ, बागीस, बिस्वातमा, बिरज, बैकुंठ - मंदिर - बिहारी।
व्यापक व्योम, बंद्यांघ्रि, बामन, बिभो ! ब्रह्मविद्, ब्रह्म, चिंतापहारी ॥ ३ ॥
देव ! सहज सुंदर, सुमुख, सुमन, सुभ सर्वदा, सुद्ध सर्बज्ञ, स्वच्छंदचारी।
सर्वकृत, सर्वभृत, सर्वजित, सर्वहित, सत्यसंकल्प, कल्पांतकारी ॥ ४ ॥
देव ! नित्य, निर्मोह निर्गुन, निरंजन, निजानंद - निर्मान, निर्वानदाता।
निर्भरानंद, निःकंप, निःसीम, निर्मुक्त, निरुपाधि, निर्मम बिधाता ॥ ५ ॥

ही जगत् उत्पन्न किया है और आप ही हैं जो शरणमें आए हुए इस तुलसीदासका संकट दूर कर सकते हैं ॥ ९ ॥ (५५)

राम ! आप दानवोंका नाश कर डालते हैं, दयाके समुद्र हैं, पाखंड दूर कर डालते हैं, सभी भयंकर पाप भस्म कर डालते और मिटा डालते हैं । आप सभी बुरे भाव दमन कर डालते हैं, आपकी कृपासे ही भक्त लोग इन्द्रियोंका दमन कर पाते हैं । आप (भक्तोंके) दुःख और पाप हरण कर लेते हैं तथा कठिन और बुरी वासनाएँ नष्ट कर डालते हैं ॥१॥ आप अनेक आभूषण धारण किए रहते हैं । आप सूर्यके समान प्रकाशमान, ऐश्वर्य आदि दिव्य गुणोंसे युक्त और संसारके कारण उत्पन्न होनेवाले जन्म-मरणके भयसे (भक्तोंको) छुड़ा देते हैं । आप (भक्तोंको) अभय वर देते और ब्रह्माण्डके स्वामी हैं । आप भावनाओंसे परे हैं (निर्लिप्त हैं) । शिव भी आपकी वंदना किया करते हैं और आप शिव-भक्तोंका सदा हित करते रहते हैं । आपने ही वराह रूपमें भूमिका उद्धार किया और कृष्ण रूपमें (गोवर्द्धन) पर्वत उठाया था ॥ २ ॥ (भक्तोंको) वर देनेवाले राम ! आपका शरीर मेघके समान (साँवला) है । आप वाणीके अधिष्ठाता, विराट् रूपवाले तथा रजो-गुण आदिसे रहित होकर वैकुण्ठ[1]में निवास करते हैं । आप आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त हुए रहते हैं । आपकी सब वन्दना करते हैं । आपने ही वामन अवतार धारण किया था । आप सर्व-शक्तिमान्, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मरूप हैं और सबकी चिन्ताएँ दूर करते रहते हैं ॥३॥ आप स्वभावसे ही सुन्दर हैं । आपका मुख भी सुन्दर और मन भी शुद्ध है । आप सदा मंगल-रूप (जिसका रूप देखनेसे मंगल होता है), निर्मल, सर्वज्ञ और स्वतंत्र विहार करते हैं । कोई ऐसा कार्य नहीं जो आप कर न पा सकते हों । आप सबका भरण-पोषण करते हैं, सबको जीते बैठे हैं, सबका हित करते हैं, सत्य प्रतिज्ञा करते हैं और प्रलय करते हैं ॥ ४ ॥ आप नित्य (सदा बने रहनेवाले) मोह-रहित, निर्गुण और अव्यय (पूर्ण) हैं । आप अपने आपमें ही आनन्द लेनेवाले, साक्षात्

१. वैकुण्ठ : पृथ्वीके ऊपर ८ करोड़ योजनपर सत्य लोक और उसके ऊपर वैकुंठ लोक पृथ्वीसे १८ करोड़ गुना बड़ा है । इसमें विष्णु रहते हैं । इसके उत्तरमें शिवलोक है । [पद्म पु० स्वर्ग० अ० ६] इस वैकुंठमें अयोध्या नामकी दिव्य नगरी है [प० पु० अं० २९, ब्रह्म वै० पु० श्रीकृष्ण जन्म० अ० ४]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! महामंगलमूल - मोद - महिमायतन, मुग्ध मधु - मथन, मानद, अमानी।
मदन - मर्दन, मदातीत, माया - रहित, मंजु, मा-नाथ[1], पाथोज - पानी ॥ ६ ॥
देव ! कमल - लोचन, कला - कोस, कोदंड - धर, कोसलाधीस, कल्यान-रासी।
जातुधान - प्रचुर - मत्त - करि - केसरी, भक्त - मन - पुन्य - आरन्य - वासी ॥ ७ ॥
देव ! अनघ, अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनंद - सिंधो !
अचल, अनिकेत, अविरल, अनामय, अनारंभ, अंभोद-नादघ्न[2] - बंधो ॥ ८ ॥
देव ! 'दासतुलसी' खेद-खिन्न, आपन्न इह - सोक - संपन्न, अतिसय सभीतं।
प्रनत - पालक राम ! परम करुना-धाम, पाहि मामुर्वि - पति ! दुर्विनीतं ॥९॥ (५६)

श्रीरंग-स्तुति

देव ! देहि सत - संग, निज - अंग, श्रीरंग[3] भवभंग - कारन, सरन - सोक-हारी।
ये तु भवदंघ्रि - पल्लव - समाश्रित सदा, भक्तिरत, विगत - संसय, मुरारी ॥ १ ॥

मुक्तिके स्वरूप हैं और मुक्ति देते रहते हैं। आप पूर्ण आनंद-रूप, अटल, सीमा-रहित, मायासे निर्लिप्त, उपाधि-रहित, मोह-ममतासे रहित और सबके विधाता (रचनेवाले) हैं ॥ ५ ॥ आप बड़े-बड़े मंगल (सुख) उत्पन्न कर सकते हैं, आनन्द और महिमाके भंडार हैं। आपने मूर्ख मधु[4] दानवको मार डाला। आप औरोंको मान देते रहे पर स्वयं अमानी (मान-रहित) बने रहते हैं। आपने कामका दमन कर डाला, मद आपके पास नहीं फटकता, आप मायासे दूर और कमल-धारिणी सुन्दर लक्ष्मीके स्वामी हैं ॥ ६ ॥ आपके नेत्र कमलके समान हैं। आप सम्पूर्ण कलाओंके भंडार हैं। आप धनुष लिए रहते हैं, अयोध्याके स्वामी हैं और समस्त कल्याणके भंडार हैं। आपने अनेक राक्षस-रूपी मतवाले हाथियोंका सिंहके समान संहार कर डाला। आप अपने भक्तोंके मन-रूपी वनमें सदा बसे रहते हैं ॥ ७ ॥ आप निष्पाप, अद्वितीय, निर्दोष, अप्रकट, अजन्मा, सीमा-रहित, निर्विकार और आनन्द ही आनन्द हैं। आप सदा एक-रस बने रहते हैं। आपका कोई निश्चित स्थान नहीं है फिर भी आप सर्वत्र व्याप्त हैं। आपमें अविद्या आदि कोई रोग नहीं आते। आप अनुष्ठान-पूर्वक (योजना बनाकर) कोई काम प्रारम्भ नहीं करते, फिर भी आपके जगद्-व्यापार आदि कर्म आपकी लीलाके रूपमें स्वाभाविक रूपसे होते चले जाते हैं। आप लक्ष्मणके भाई हैं ॥ ८ ॥ यह तुलसीदास सांसारिक दुःखोंसे बहुत दुखी, विपद्ग्रस्त, सांसारिक क्लेशोंका मारा हुआ और अत्यन्त भयभीत है। शरणागत-पालक ! परम करुणाके निधान (दयालु !) पृथ्वी-पति राम ! मुझ दुर्विनीतकी भी रक्षा कर लीजिए ॥ ९ ॥ (५६)

श्रीरंगके रूपमें रामकी स्तुति : श्रीरंग ! ऐसा कीजिए कि मुझे सत्संग मिल जाय (क्योंकि आप तो सत्संगसे ही प्राप्त हो पाते हैं)। वह (सत्संग) संसारके जन्म-मरण-रूपी चक्रका नाश कर देता और आपकी शरणमें आए हुए जीवोंके दुःख हर लेता है। जो लोग सदा आपके चरण-पल्लवके

१. मानाथ = (मा=लक्ष्मी + नाथ) लक्ष्मीपति। २. अंभोद-नादघ्न = मेघनादको मारनेवाले लक्ष्मण। ३. श्रीरंग = लक्ष्मी पति। ४. मधु : जब विष्णु योग-निद्रामें सोए पड़े थे उस समय मधु और कैटभ नामके दो दैत्य विष्णुके कानकी मैलसे उत्पन्न हुए और ब्रह्माको मारने चले। तब योगमायाने विष्णुको जगाया और विष्णुने उन दोनों दैत्योंको मार डाला।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! असुर - सुर - नाग - नर - जच्छ - गंधर्ब - खग - रजनिचर - सिद्ध ये चाऽपि अन्ये।
संत - संसर्ग त्रय वर्ग - पर, परम पद, प्राप निःप्राप गति त्वयि प्रसन्ने ॥ २ ॥
देव ! बृत्र - बलि - बान - प्रहलाद - मय - ब्याध - गज - गृध्र - द्विजबंधु निज धर्म - त्यागी।
साधुपद - सलिल - निर्धूत - कल्मष सकल, स्वपच-जवनादि कैवल्य - भागी ॥ ३ ॥
देव ! सांत, निरपेक्ष, निर्मम, निरामय, अगुन, सब्द - ब्रह्मैक, पर - ब्रह्म - ज्ञानी।
दच्छ, समदृक, स्वदृक-बिगत-अति-स्वपरमति, परम-रति बिरति, तव चक्र-पानी ॥ ४ ॥
देव ! बिस्व उपकार - हित व्यग्र - चित सर्वदा, त्यक्त - मद - मन्यु, कृत पुन्य - रासी।
यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज सर्व हरि - सहित गच्छंति क्षीराब्धि - वासी ॥ ५ ॥
देव ! वेद पय - सिंधु, सुविचार मंदर महा, अखिल - मुनिवृंद निर्मथन - कर्त्ता।
सार - सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं बदति श्रीकृष्न[1] बैदर्भि - भर्त्ता ॥ ६ ॥
देव ! सोक - संदेह - भय - हर्ष - तम - तर्ष - गन साधु - सद्युक्ति बिच्छेदकारी।
जथा रघुनाथ - सायक निसाचर - चमू - निचय - निर्दलन - पटु - बेग भारी ॥ ७ ॥

भरोसे डटे रहते हैं और आपकी ही भक्तिमें जिनकी लौ लगी रहती है, मुरारि ! उनके (अविद्यासे उत्पन्न) सारे सन्देह दूर हो मिटते हैं ॥ १ ॥ दैत्य, देव, नाग, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध तथा और भी सब जीव केवल संतों के संगके प्रभावसे अर्थ, धर्म और कामसे ऊँचा वह परम पद (मोक्ष) अनायास पा जाते हैं जो अन्य साधनोंसे प्राप्त नहीं हो सकता, केवल आपके प्रसन्न होनेसे ही मिल पाता है ॥ २ ॥ वृत्रासुर, बालि, बाणासुर, प्रह्लाद, मय (दानव), व्याध (वाल्मीकि आदि), गजेन्द्र, गीध, अपने ब्राह्मणोचित कर्म छोड़ देनेवाला ब्रह्मबंधु (पतित) अजामिल, चाण्डाल, यवन आदि केवल सन्तोंके चरणोदकसे अपने समस्त पाप धोकर मोक्षपदके अधिकारी बन बैठे ॥ २ ॥ चक्रपाणि ! जो लोग शान्त, निरीह (इच्छा-रहित), मोह-ममतासे रहित, निरुपाधि (सब झंझटोंसे दूर), रज और तमोगुणसे रहित, शब्द-ब्रह्म (नाद-ब्रह्म)-के ज्ञाताओं में मुख्य और ब्रह्मवेत्ता हैं, जो कुशल, समद्रष्टा, आत्मदर्शी और अपने-पराएकी भेद-बुद्धिसे मुक्त, संसारसे विरक्त और आपके परम भक्त हैं, ॥ ४ ॥ जगत्के कल्याणके निमित्त जिनका चित्त सदा व्याकुल रहता है, जिन्होंने अहंकार और क्रोधका त्याग करके पुण्य ही पुण्य अर्जित किए हैं, ऐसे सन्त-महात्मा जहाँ रहते हैं उनके पास ब्रह्मा और शिवको साथ लेकर क्षीर-सागर-वासी भगवान् हरि स्वयं दौड़े चले आते हैं ॥ ५ ॥ वेद ही क्षीरसमुद्र है और विवेक ही मंदराचल है जिसे लेकर समस्त मुनियोंका समाज ही मथता है और उसमेंसे सत्संग-रूपी सार (अमृत) निकाल लेता है। यह बात रुक्मिणी-वल्लभ कृष्णने निश्चयपूर्वक कही है ॥६॥ संत-महात्मा बड़े अच्छे ढंगसे समझाते हैं कि सत्संगसे शोक, सन्देह, भय, हर्ष, अज्ञान और वासनाएँ (तृष्णाएँ) इस प्रकार नष्ट हो जाती हैं जैसे रामके बाणोंसे राक्षसोंकी सेना

---

१. श्रीमद्भागवतमें कहा है—

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव। नोपायो विद्यते सध्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥

[उद्धव ! भक्तियोग और सत्सङ्गके बिना (संसारसे पार होनेका) कोई उपाय नहीं है क्योंकि मैं तो सदा सत्पुरुषोंके पास ही रहा करता हूँ।]—११।११।४८

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! यत्र - कुत्रापि मम जन्म निज - कर्म - बस, भ्रमत जग - जोनि संकटमनेकम् ।
तत्र त्वद्भक्ति, सज्जन - समागम, सदा भवतु मे राम ! बिस्राममेकम् ॥ ८ ॥
देव ! प्रबल भवजनित - त्रयव्याधि - भेषज भक्ति, भक्त भैषज्यमद्वैत - दरसी ।
संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि, मति - बिमल कह 'दास तुलसी' ॥९॥ (५७)

देव ! देहि अवलंब कर - कमल कमला - रमन ! दमन-दुख, समन - संताप - भारी ।
अज्ञान - राकेस - ग्रासन - बिधुंतुद, राम काम - करिमत्त - हरि, दूषनारी ॥ १ ॥
देव ! बपुष ब्रह्मांड - सो, प्रवृत्ति - लंका - दुर्ग, रचित मन - दनुज - मय - रूप-धारी ।
बिबिध कोसौघ अति रुचिर मंदिर-निकर, सत्त्वगुन - प्रमुख त्रय - कटककारी ॥ २ ॥
देव ! कुनप[1] - अभिमान - सागर भयंकर घोर, बिपुल अवगाह दुस्तर अपारं ।
नक्र - रागादि - संकुल मनोरथ सकल, संग - संकल्प - बीची - बिकारं ॥ ३ ॥
देव ! मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित् काम विश्रामहारी ।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ठ बिबुधांतकारी ॥ ४ ॥

बड़े वेगसे नष्ट हो गई ॥७॥ राम ! (मेरी यही प्रार्थना है कि) अपने कर्मोंके अनुसार जहाँ कहीं भी मेरा जन्म हो, जिस-जिस योनिमें अनेक संकट भोगता हुआ मैं भटकूँ, वहाँ-वहाँ मुझे आपकी भक्ति और सन्तोंका संग सदा मिलता रहे । राम ! मेरा एक मात्र यही (सत्संग ही) सदा आश्रय हो ॥८॥ संसारसे उत्पन्न तीन प्रकारकी प्रबल पीडाओं (दैहिक, दैविक और भौतिक)-के नाशके लिये आपकी भक्ति ही एक मात्र औषधि है और किसी प्रकारका भेद न माननेवाले आपके भक्त ही वैद्य हैं। मलिन बुद्धिवाला यह तुलसीदास तो यही मानता है कि वास्तवमें सन्त और भगवान्‌में कभी लेश-मात्रका भी अन्तर नहीं होता ॥ ९ ॥ (५७)

लक्ष्मीके पति ! संसार-सागरमें डूबते हुए मुझको अपने कर-कमलोंका सहारा दे दीजिए । आप तो सबका दुःख हरते और बड़े-बड़े सन्तापोंका नाश कर डालते हैं। दूषणके शत्रु ! रामके समान आप अविद्या-रूपी चन्द्रमाको ग्रस लेते हैं तथा सिंहके समान काम-रूपी मतवाले हाथीको मार डालते हैं ॥ १ ॥ इस शरीर-रूपी ब्रह्माण्डमें प्रवृत्ति (संसारमें लिपटे रहने)-रूपी लंकाका वह गढ़ है जिसका निर्माण मन-रूपी मायावी मय दैत्यने किया है । इस शरीरके पाँच (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) कोष ही इस लंकागढ़के सुन्दर महल हैं, सत्त्व, रज और तम (तीनों गुण) ही वहाँके प्रचण्ड सेनापति हैं ॥ २ ॥ देहाभिमान ही महा भयंकर, अथाह, अपार और दुस्तर समुद्र है, जिसमें राग-द्वेष-रूपी घड़ियाल भरे पड़े हैं । सारी मनोकामनाएँ तथा विषयासक्तिके संकल्प-विकल्प ही उस समुद्रकी तीव्र लहरें हैं ॥ ३ ॥ (ऐसे भीषण समुद्र तटपर बसी हुई लंकामें) अहंकार-रूपी कुम्भकर्ण और अशान्त किए रखनेवाले कामरूपी मेघनादके साथ मोह-रूपी रावण बैठा अटल राज्य कर रहा है । वहाँ लोभ-रूपी अतिकाय, मत्सर-रूपी दुष्ट महोदर, क्रोध-रूपी महापापी देवान्तक, ॥ ४ ॥ द्वेषरूपी दुर्मुख, दंभ-

---

१. कुनप = दुर्गंधभरा शरीर ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट, दर्प मनुजाद, मद सूल - पानी।
अमित बल परम दुर्जय निसाचर - निकर, सहित षड्वर्ग गो-जातुधानी ॥ ५ ॥
देव ! जीव भवदंघ्रि - सेवक बिभीषन, बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित - चिंता।
नियम - यम[1] सकल - सुरलोक - लोकेस लंकेस - बस नाथ ! अत्यंत भीता ॥ ६ ॥
देव ! ज्ञान अवधेस - गृह, गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भू - भार - हर्त्ता।
भक्त संकष्टमवलोक्य पितुवाक्य - कृत गमन किय गहन, वैदेहि - भर्त्ता ॥ ७ ॥
देव ! कैवल्य - साधन अखिल भालु - मर्कट बिपुल, ज्ञान सुग्रीव - कृत जलधि-सेतू।
प्रबल बैराग्य दारुन प्रभंजन - तनय, बिषय बन - दहनमिव धूमकेतू ॥ ८ ॥
देव ! दुष्ट दनुजेस निर्बंस - कृत दास - हित, बिस्व - दुख - हरन - बोधैकरासी।
अनुज निज जानकी-सहित हरि सर्वदा, 'दास तुलसी'-हृदय-कमल-बासी ॥९॥ (५८)

देव ! दीन - उद्धरन, रघुवर्य, करुना - भवन, समन - संताप, पापौघ - हारी।
बिमल - बिज्ञान - बिग्रह, अनुग्रह - रूप, भूप - बर, बिबुध - नर्मद, खरारी ॥ १ ॥

रूपी खर, कपट-रूपी अकंपन, दर्परूपी मनुजाद (नरान्तक) और मद-रूपी शूलपाणि नामके बड़े ही पराक्रमी दैत्य हैं जो बड़ी कठिनाईसे जीते जा पा सकते हैं। इतना ही नहीं, इन मोह आदि छह राक्षसों के साथ इन्द्रिय-रूपी राक्षसिनियाँ भी हैं ॥ ५ ॥ नाथ ! आपके चरण-कमलोंका सेवक विभीषण-रूपी जीव इन दुष्टों के वन (समूह)-में चिन्ता-ग्रस्त होकर निवास कर रहा है। यम-नियम-रूपी समस्त देवलोकोंके दसों लोकपाल रावणके हाथमें अत्यन्त भयभीत हुए पड़े हैं ॥ ६ ॥ (इसलिये) नाथ ! जैसे आपने महाराज दशरथ और महारानी कौशल्याके यहाँ पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया था, वैसे ही, जानकीनाथ ! आप ज्ञान-रूपी दशरथके घर शुभ भक्ति-रूपी कौशल्याके द्वारा (मोह आदि राक्षसोंका नाश करनेके लिये) प्रकट हो जाइए और जैसे भक्तोंका कष्ट देखकर पिताकी आज्ञासे उस समय आप वनमें जा पधारे थे, वैसे ही आप मेरे हृदय-रूपी वनमें आ पधारिए ॥ ७ ॥ जैसे उस समय सुग्रीवके साथ वानर-भालू आपके सहायक हुए थे और उन्होंने समुद्रपर पुल बाँध लिया था, वैसे ही मोक्षके साधन (षट् सम्पत्ति : शम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान)-रूपी वानर और विवेक-रूपी सुग्रीवके द्वारा सेतु बँधवाकर प्रबल वैराग्य-रूपी महान् बलवान् हनुमान्‌के द्वारा विषय-रूपी वाटिका और भवनोंको अग्निके समान भस्म करा डालिए ॥ ८ ॥ (तत्पश्चात्) ज्ञानघन ! समस्त विश्वके दुःखहर्त्ता राम ! इस जीव-रूपी दासकी रक्षाके लिये आप मोह-रूपी दानवका वंश-सहित नाश कर डालिए और तुलसीदासके हृदय-कमलमें सदा-सर्वदा भाई लक्ष्मण और जानकीके साथ आ बसिए ॥ ९ ॥ (५८)

रघुवंशमें श्रेष्ठ राम ! आप दीनोंका उद्धार करते रहते हैं। आप बड़े दयालु हैं। आप (भक्तोंके) सन्ताप दूर करते और उनके पाप हर लेते हैं। आप निर्विकार, विज्ञान-स्वरूप, कृपाकी

---

१. यम-नियम :—'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और संग-त्याग—ये पाँच यम हैं (योगदर्शन–२/३०)—'शौचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः' (शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय (वेदाध्ययन) और ईश्वर-भक्ति, ये पाँच नियम हैं)। (योगदर्शन २/३२)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! संसार - कांतार[1] अति घोर गंभीर, घन गहन तरु - कर्म - संकुल, मुरारी।
वासना - बल्लि - खर - कंटकाकुल बिपुल निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी ॥ २ ॥
देव ! बिबिध चितवृत्ति खग - निकर सेनोलूक - काक - बक - गृध्र आमिष - अहारी।
अखिल खल निपुन - छल, छिद्र निरखत सदा, जीव-जन-पथिक-मन-खेदकारी ॥ ३ ॥
देव ! क्रोध करि मत्त, मृगराज कंदर्प, मद - दर्प बृक - भालु, अति उग्रकर्म्मा।
महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर - रूप, फेरु छल, दंभ मार्जार - धर्म्मा ॥ ४ ॥
देव ! कपट मर्कट, बिकट ब्याघ्र पाखंड मुख, दुखद - मृग - व्रात, उतपात - कर्त्ता।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं, पाहि मां पाहि, भो बिश्वभर्त्ता ॥ ५ ॥
देव ! प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर, महामोह गिरि - गुहा निबिड़ांधकारं।
चित्त बेताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगौघ बृश्चिक - बिकारं ॥ ६ ॥
देव ! बिषय-सुख-लालसा डंस - मसकादि, खल झिल्लि, रूपादि सब सर्प, स्वामी !
तत्र आक्षिप्त तव बिषम माया, नाथ ! अंध मैं मंद ब्यालाद - गामी ॥ ७ ॥

मूर्ति, राजाओं में शिरोमणि, देवताओंको सुख देनेवाले तथा खर नामक दैत्यके नाशक हैं ॥ १ ॥ मुरारि ! यह संसार-रूपी वन बड़ा ही भयानक और घना है। इसमें कर्म-रूपी बड़े सघन वृक्ष उगे हैं। वासना-रूपी लताओं और अनेक व्याकुलता - रूपी तीखे काँटोंसे भरा हुआ यह घना वन बड़ा दुर्लंघ्य है ॥ २ ॥ इस वनमें भाँति-भाँतिकी चित्त-वृत्तियाँ ही मांसाहारी बाज, उल्लू, कौवे, बगुले और गिद्ध आदि पक्षी हैं। ये सभी बड़े दुष्ट और छली हैं। कोई भी छिद्र (अवसर, दाँव) पाते ही ये जीव-रूपी यात्रियोंको घर दबोचते हैं ॥ ३ ॥ इस संसार-रूपी वनमें क्रोध-रूपी मतवाले हाथी, काम-रूपी सिंह, मद-रूपी भेड़िये और गर्व-रूपी रीछ भरे पड़े हैं। ये सभी बड़े निर्दयी हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ मत्सर-रूपी क्रूर भैंसे, लोभ-रूपी जंगली सूअर, छल-रूपी गीदड़, दम्भ-रूपी बन-बिलाव, ॥ ४ ॥ कपट-रूपी विकट बंदर और पाखंड-रूपी बाघ भी भरे पड़े हैं, जो संत-रूपी मृगोंको सदा सताते रहते और बहुत उपद्रव मचाते रहते हैं। विश्वम्भर ! अपने हृदयमें यह कष्ट देखकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। नाथ ! मेरी रक्षा कर लीजिए ॥ ५ ॥ इस संसार-रूपी वनमें अहंकार-रूपी बड़ा विशाल पर्वत है जिसे सहजमें नहीं पार किया जा सकता। इस पर्वतमें महामोह-रूपी बड़ी अँधेरी गुफा है जहाँ चित्त-रूपी वेताल, मन-रूपी मनुष्य-भक्षक राक्षस, रोग-रूपी भूत-प्रेत और भोग-विलास-रूपी बिच्छू भरे पड़े हैं ॥ ६ ॥ इस वनमें विषय-सुखकी इच्छाएँ ही डाँस और मच्छड़ हैं, (वचनसे दुःख देनेवाले) दुष्ट लोग ही झींगुर (झिल्ली) हैं, स्वामिन् ! रूप आदि (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध नामक पाँच विषय) सभी सर्प हैं। नाथ ! आपकी त्रिगुणात्मिका मायाने ही मुझे यहाँ ला पटका है। गरुडपर चलनेवाले राम ! मैं तो मूर्ख और अंधा (ज्ञानके नेत्रोंसे रहित)

---

१. कांतार = जंगल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! घोर अवगाह भव - आपगा, पाप - जल - पूर, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर, अपारा।
मकर षड्वर्ग[1], गो नक्र, चक्राकुलं, कूल सुभ - असुभ, दुख तीव्र धारा ॥ ८ ॥
देव ! सकल संघट पोच, सोच - बस सर्वदा, 'दासतुलसी' बिषम - गहन - ग्रस्तम्।
त्राहि रघुबंस - भूषन ! कृपा कर कठिन काल-बिकराल-कलि-त्रास-त्रस्तम् ॥९॥(५९)

[नर-नारायण[2]-स्तुति]

देव ! नौमि नारायनं, नरं, करुनायनं, ध्यान - पारायनं, ज्ञान - मूलं।
अखिल - संसार - उपकार - कारन, सदय हृदय, तप-निरत, प्रनतानुकूलं ॥ १ ॥

हूँ ॥ ७ ॥ इतना ही नहीं, इस वनमें बहनेवाली वासनाकी अत्यन्त भयंकर और अथाह भव नदी है, जिसमें इतना पापरूपी जल भरा हुआ है कि इसकी ओर ताका-तक नहीं जाता। इसका पार पाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि इसके ओर-छोरका ही पता नहीं लगता। इसमें षड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मत्सर) ही छह मगर तथा दसों इन्द्रियाँ ही घड़ियाल हैं। यह नदी जलावर्त्त (भँवरों)-से भरी है (इसके वासनारूपी जलके भँवरमें पड़कर जीव व्याकुल हो जाता है), शुभ और अशुभ कर्म ही इसके दोनों किनारे हैं और असह्य दुःख ही इसकी वेगवती धारा है ॥ ८ ॥ यह साराका सारा ऐसा निकृष्ट समाज आ जुटा है कि इस घने जंगलमें फँसकर यह तुलसीदास सदा चिन्तामें घुलता हुआ कठिन और भयंकर कलिकालके डरसे डरा पड़ा रहता है। कृपालु ! रघुवंशको सुशोभित करनेवाले राम ! इस कष्टसे मेरी रक्षा कर लीजिए ॥ ९ ॥ (५९)

नर-नारायण-की स्तुति : अत्यन्त दयालु, ध्यानमें लीन और ज्ञान उत्पन्न करनेवाले नर-नारायण को[2] मैं नमस्कार करता हूँ। वे सारे संसारका कल्याण करते रहते हैं, बड़े दयालु हैं,

१. अपना बड़प्पन सिद्ध करनेके लिये लोगोंके सामने अपनेको अत्यन्त धर्मात्मा प्रसिद्ध करना ही दम्भ कहलाता है। धन, विद्या, कुल, स्वजन, रूप, कर्म, इत्यादिके बलपर किसी श्रेष्ठ पुरुषका अपमान करनेके कार्यको ही दर्प कहते हैं। अपनेको अत्यन्त पूज्य समझ बैठना ही अतिमान (अभिमान) है जिसके कारण आसुरी पुरुषोंका पराभव होता है। अपने तथा दूसरेका अनिष्ट करनेकी प्रवृत्ति करानेवाले अन्तःकरणके क्षोभको क्रोध कहते हैं। किसी भी प्रकार दूसरेकी वस्तु या धन प्राप्त करनेकी वृत्तिको लोभ कहते हैं। अपने धन, यौवन, पद, बलपर ऐंठकर दूसरोंपर आतंक जमानेको मद कहते हैं। किसी भी सुन्दर वस्तुको प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छाको काम कहते हैं। किसीकी उन्नति या समृद्धि देखकर उसे नीचे गिराने और हानि पहुँचानेकी वृत्तिको मत्सर कहते हैं। किसी व्यक्ति या वस्तुके प्रति उस ममताको मोह कहते हैं जिसके बिना रहनेमें कष्ट होता हो।

२. नर-नारायण : नर और नारायण दोनों देवता भाई थे। ये भगवान् वासुदेवके अवतार और धर्मके पुत्र थे। इनमेंसे नरके अवतार ही अर्जुन थे। अमृतके लिये जो देवासुर संग्राम हुआ था उसमें नरने बड़ा पराक्रम दिखाया था और दोनों (देवों और असुरों)-ने वह अमृत नरके पास ही ला रक्खा था। दक्षका यज्ञ विध्वंस करते समय शिवका त्रिशूल नरके भाई नारायणकी छातीमें आ लगा। बस, शिव और नर-नारायणमें लड़ाई छिड़ गई। नरने शिवपर सींकें चला दी जो फरसा बनकर शिवको लगी किन्तु शिवने उसे तोड़ डाला और इस कारण वे खंड-परशु कहलाए। नर-नारायणने बदरिकाश्रमपर जाकर तपस्या की थी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! स्याम-नव-तामरस-दाम-द्युति - बपुष, छबि कोटि - मदनार्क - अगनित प्रकासं ।
तरुन रमनीय राजीव - लोचन, ललित बदन राकेस, कर - निकर हासं ॥ २ ॥
देव ! सकल-सौंदर्य-निधि, बिपुल-गुन-धाम, बिधि-बेद-बुध - संभु - सेवित, अमानं ।
अरुन - पद - कंज - मकरंद - मंदाकिनी, मधुप - मुनिबृन्द कुर्वन्ति पानम् ॥ ३ ॥
देव ! सक्र - प्रेरित - घोर - मार - मद - भंगकृत, क्रोध - गत, बोध - रत, ब्रह्मचारी ।
मारकंडेय मुनिवर्ज - हित कौतुकी[1], बिनहि कल्पांत प्रभु प्रलय - कारी ॥ ४ ॥
देव ! पुन्य बन - सैल - सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीनपद्मासनं एकरूपं ।
सिद्ध - जोगीन्द्र - वृंदारकानंद - प्रद, भद्र - दायक दरस अति अनूपं ॥ ५ ॥
देव ! मान मन - भंग, चित - भंग मद, क्रोध - लोभादि पर्वत दुर्ग, भुवन - भर्त्ता ।
द्वेष - मत्सर - राग - प्रबल प्रत्यूह प्रति भूरि निर्दय, क्रूर - कर्म - कर्त्ता ॥ ६ ॥
देव ! बिकटतर बक्र छुर - धार प्रमदा, तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्गधारा ।
धीर - गंभीर - मन - पीर - कारक, तत्र के बराका वयं बिगत - सारा ॥ ७ ॥

तपस्यामें लीन हैं और शरणागतोंपर कृपा करते हैं ॥ १ ॥ उनका शरीर नवीन नील कमलोंकी मालाके समान साँवला है । वे करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर और अनन्त सूर्योंके समान तेजस्वी हैं । उनके नेत्र नवीन विकसित कमल-दलोंके समान हैं । उनका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर और उनकी मंद मुसकान चन्द्र किरणोंके समान सुहावनी है ॥ २ ॥ वे समस्त सौन्दर्यके भंडार हैं । उनमें मान तो नामको भी नहीं है । ब्रह्मा, वेद, पंडित और शिव ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न नर-नारायणकी सदा सेवा करते रहते हैं । लाल कमलके समान उनके चरणोंसे निकले हुए गंगा-रूपी मकरंदका पान मुनि-रूपी भ्रमर सदा करते रहते हैं ॥३॥ उन्होंने इन्द्र-द्वारा भेजे हुए भीषण कामदेवका मद मर्दन कर डाला[2] । वे क्रोध-रहित, शुद्ध, ज्ञान-स्वरूप और ब्रह्मचारी हैं । उन्होंने अपने सामर्थ्यसे, बिना कल्पान्त हुए ही मार्कण्डेय मुनिको प्रलय-कालकी लीला कर दिखाई थी, ॥ ४ ॥ वे पवित्र वन, पर्वत और नदियोंसे पूर्ण उस बदरिकाश्रममें सदा पद्मासन लगाए अटल रूपसे विराजमान रहते हैं जिस (आश्रम)-के अत्यन्त अनुपम दर्शनसे सिद्ध, योगीन्द्र और देवताओंको भी आनन्द और कल्याण मिलता रहता है ॥ ५ ॥ विश्वम्भर ! वहाँ आपके बदरिकाश्रमके मार्गमें मनभंग नामका पर्वत है (जिसके आगे जानेसे लोग हिचकते हैं) और यहाँ मेरे हृदयमें अभिमान-रूपी 'मनभंग' पर्वत और मद-रूपी 'चित्तभंग' पर्वत है । वहाँ जैसे कठिन पर्वत हैं वैसे ही यहाँ काम-लोभ आदि विशाल पर्वत हैं । वहाँ जैसे हिंसक पशु आदि बड़े-बड़े विघ्न हैं, वैसे ही यहाँ राग, द्वेष, मत्सर आदि अनेक बड़े-बड़े विघ्न हैं जिनमेंसे प्रत्येक बड़ा निर्दय और कुटिल है ॥ ६ ॥ यहाँ कामिनीके कटाक्षके छुरेकी भयंकर धार और कामके विषयकी तलवारकी पैनी धार जब बड़े-बड़े धीर और गंभीर पुरुषोंतकका मन भी चीर धरती है तब हम जैसे निर्बलोंकी तो गिनती ही क्या है ॥ ७ ॥ नाथ ! प्रथम तो आपके दर्शनका मार्ग

---

१. मार्कण्डेयके आग्रहपर भगवानने उन्हें प्रलयका दृश्य दिखाया था । २. जब नर-नारायण बदरिकाश्रममें तप कर रहे थे तब इन्द्रने उनका तप डिगानेके लिये कामदेवको अप्सराओंके साथ भेजा था पर वे विचलित नहीं हुए ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! परम दुर्घट पंथ, खल असंगत साथ, नाथ ! नहिं हाथ वर बिरति - यष्टो ।
दरसनारत दास, त्रसित - माया - पास, त्राहि हरि ! त्राहि हरि ! जानि कष्टो ॥ ८ ॥
देव ! 'दास तुलसी' दीन, धर्म - संबल - हीन, श्रमित अति खेद, मति मोह - ग्रासी ।
देहि अवलंब, न बिलंब अंभोजकर, चक्रधर ! तेज - बल - शर्म - रासी ॥९॥ (६०)

[बिन्दुमाधव-स्तुति]

देव ! सकल सुख - कंद, आनंद - बन - पुण्यकृत, बिंदुमाधव[1], द्वंद्व-बिपति - हारी ।
यस्यांघ्रिपाथोज अज-संभु-सनकादि-सुक-सेस - मुनिवृंद - अलि निलय - कारी ॥ १ ॥
देव ! अमल मरकत स्याम, काम-सतकोटि-छबि, पीतपट तड़ित इव जलद नीलं ।
अरुण सत-पत्र-लोचन, बिलोकनि चारु, प्रनत-जन - सुखद, करुनार्द्र - सीलं ॥ २ ॥
देव ! काल - गजराज - मृगराज, दनुजेस - बन - दहन - पावक, मोह - निसि - दिनेसं ।
चारि भुज चक्र - कौमोदकी - जलज - दर, सरसिजोपरि यथा राजहंसं ॥ ३ ॥

ही बड़ा बीहड़ है, फिर मेरा संग भी दुष्ट और नीचोंका हो गया है और सहारेके लिये हाथमें वैराग्यकी छड़ी भी नहीं है । यह दास आपके दर्शनोंके लिये घबराया जा रहा है, परन्तु मायाके फंदेमें फँसकर बड़ा दुखी हो रहा है । नाथ ! इस दासके कष्ट दूर करके इसकी रक्षा कर लीजिए, रक्षा कर लीजिए ॥ ८ ॥ मुझ दीन तुलसीदासके पास (अच्छे) कर्मका संबल (मार्गका कलेवा, सहारा) भी नहीं है और मैं थककर चूर भी हो चला हूँ । मोह (अज्ञान)-ने मेरी बुद्धि भी हर ली है । अतएव चक्रधारी ! आप तो तेज, बल और सुखके भंडार हैं, अविलम्ब आकर मुझे अपने कर-कमलका सहारा देकर उबार निकालिए ॥ ९ ॥ (६०)

बिन्दुमाधवकी स्तुति : बिन्दुमाधव ! आप मेघके समान सब प्रकारके सुखोंकी वर्षा करते रहते हैं । आपने आनन्दवन (काशी)-को पवित्र किया है (आप काशीमें रहते हैं) । आप राग-द्वेष आदि सब द्वन्द्व हर लेते हैं । आपके चरणारविन्दोंमें ब्रह्मा, शिव, सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार), शुकदेव, शेष और मुनि-रूपी भौंरे सदा वास किया करते हैं ॥ १ ॥ आप स्वच्छ मरकत (पन्ने)-के समान साँवले हैं । आप सौ करोड़ कामदेवोंके समान सुन्दर हैं । आप पीताम्बर ओढ़े-पहने रहते हैं, जो ऐसा लगता है जैसे नीले आकाशमें बिजली चमकी पड़ रही हो । आपके नेत्र लाल कमलके समान और चितवन बड़ी लुभावनी है । आप भक्तोंको सुख देते और स्वभावसे ही करुणासे भीगे (दया करते) रहते हैं ॥ २ ॥ आप सिंहके समान काम-रूपी वनको जला डालते तथा सूर्यके समान अज्ञानरूपी रात्रि मिटा डालते हैं । आप अपने चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म लिए रहते हैं । आपके कमलके समान हाथोंमें वे ऐसे शोभित हो रहे हैं जैसे कमलके ऊपर राजहंस आए बैठे हों ॥ ३ ॥ आपके

१. तुलसीदासके समयमें बिन्दुमाधव (विष्णु)-की मूर्त्तिके साथ लक्ष्मीकी छोटी-सी मूर्त्ति उसी पत्थरमें गढ़ी हुई दाहिनी ओर थी । जब औरंगजेबने बिन्दुमाधवका मंदिर तुड़वाकर वहाँ मसजिद बनवाई तब पुजारी लोगोंने मूर्त्ति गंगाजीमें डाल दी । वहाँसे एक गुजराती ब्राह्मण उसे अपने घर उठा ले गए । यह मूर्त्ति अब भाटों (भट्टों, गुजराती ब्राह्मणों)-की गलीमें ब्राह्मण गृहस्थ विट्ठलदासके घर रक्खी है और वहाँ भी लक्ष्मीकी छोटी मूर्त्ति दाएँ ही है । उस एक ही काले पत्थरकी मूर्तिके परिवेशमें और भी छोटी-छोटी मूर्तियाँ भी हैं ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! मुकुट, कुंडल, तिलक, अलक अलि-व्रात इव, भृकुटि-द्विज-अधर-बर, चारु नासा ।
रुचिर सु-कपोल, दर ग्रीव सुख-सींव, हरि ! इंदुकर - कुंदमिव मधुर हासा ॥ ४ ॥
देव ! उरसि बनमाल सुबिसाल, नव मंजरी, भ्राज श्रीबत्स[1] - लांछनमुदारं ।
परम ब्रह्मन्य, अति धन्य, गतमन्यु, अज, अमित बल, बिपुल महिमा अपारं ॥ ५ ॥
देव ! हार केयूर, कर कनक - कंकन रतन - जटित, मनि - मेखला कटि - प्रदेसं ।
जुगल पद नूपुरामुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग, सौंदर्य - बेसं ॥ ६ ॥
देव ! सकल - सौभाग्य - संयुक्त त्रैलोक्य-श्री, दक्ष - दिसि रुचिर बारीस - कन्या ।
बसत बिबुधापगा निकट तट सदन बर, नयन निरखंति नर तेऽतिधन्या ॥ ७ ॥
देव ! अखिल - मंगल - भवन, निबिड़ - संसय - समन, दवन बृजिनाटवी कष्टहर्त्ता ।
बिस्वधृत, बिस्वहित, अजित, गोतीत, सिव, बिस्व-पालन-हरन, बिस्व-कर्त्ता ॥ ८ ॥

मस्तकपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल, ललाटपर तिलक, भौंरोंके झुंडके समान अलकें, टेढ़ी भौंहें, सुन्दर दाँत, सुन्दर ओठ और नासिका हैं । आपका सुन्दर गोल कपोल और शंखके समान गर्दन मानो सुखकी सीमा है (इससे बढ़कर सुख कहीं नहीं) । हरे ! आपकी मधुर मुसकान तो चन्द्रमाकी किरणों और खिले हुए कुन्दके पुष्पोंके समान उजली है ॥ ४ ॥ आपके वक्षस्थलपर नवीन मंजरियोंसे गुँथी हुई विशाल वनमाला और सुन्दर श्रीवत्सका चिह्न शोभा देता है । आप परम ब्रह्मण्य (ब्राह्मणोंका आदर करनेवाले), क्रोध-रहित, अजन्मा, अमित बलशाली, अनन्त और महिमावान् हैं । आप अत्यन्त धन्य हैं ॥ ५ ॥ आप अपनी छातीपर हार, भुजाओंपर बिजायट (भुजबंध), हाथोंमें रत्नजटित कंकण और कमरमें मणिमय तगड़ी पहने हुए हैं और अपने दोनों चरणोंमें कलहंसके समान निरंतर मधुर रुनझुन बजनेवाले नूपुर पहने हुए हैं । आपके अंग-प्रत्यंग सुन्दर हैं और सारा वेष ही लावण्यमय है ॥ ६ ॥ सकल सौभाग्यकी मूर्ति तथा तीनों लोकोंकी शोभा लक्ष्मी आपकी दाहिनी ओर हैं[2] । आप गंगाके समीप (मणिकर्णिका घाटपर) सुन्दर मंदिरमें विराजते हैं । बड़े भाग्यशाली लोग ही आपके दर्शन कर पाते हैं ॥ ७ ॥ आप सम्पूर्ण मंगलके भंडार हैं और अत्यन्त गूढ सन्देह नष्ट कर डालते हैं । आप दावाग्निके समान पापोंका वन भस्म कर डालते हैं । आप (भक्तोंके) कष्ट दूर कर डालते हैं । आप सारे ब्रह्माण्डको धारण किए हुए हैं और विश्वका कल्याण करते हैं । आप अजेय, इन्द्रियोंसे रहित, कल्याणरूप और सारे जगत्के उत्पादक, पालक और संहारक

---

१. छातीपर अँगूठेके बराबर श्वेत बालोंकी घुँघराली दाहिनी ओरको घूमी हुई भौंरी जो भृगुके लातका चिह्न मानी जाती है । २. बिन्दुमाधवकी वर्त्तमान मूर्ति, जो पंचगंगा घाटपर बिन्दुमाधवके मंदिरमें स्थापित है, इसकी स्थापना औंध (महाराष्ट्र)-के राजाने अट्ठारहवीं शताब्दीके अंतिम चरणमें पंचगंगा घाट (बिन्दु तीर्थ)-पर की थी । उन्हें मूर्तिने स्वप्न दिया कि मैं गंडक नदीमें हूँ । औंधके राजाने गंडक नदीसे निकालकर यह मूर्ति यहाँ स्थापित करके घाट और मन्दिर बनवा दिया । इस मूर्त्तिकी बाईं ओर लक्ष्मी विराजमान हैं । काशीखंडके अनुसार जब शिवके कहनेसे विष्णु यहाँ काशीमें आए तब अग्निबिन्दु नामके ऋषिने उन्हें स्तोत्रसे प्रसन्न करके उनसे वर ले लिया कि वे (विष्णु) अपने माधव नामके पहले बिन्दु लगाकर काशीमें रहेंगे । इन्हें वेणीमाधव भी कहते हैं ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! ज्ञान - बिज्ञान - बैराग्य - ऐश्वर्य - निधि, सिद्धि - अनिमादि दे भूरि दानम् ।
ग्रसित-भव ब्याल, अति त्रास 'तुलसीदास', त्राहि श्रीराम-उरगारि-यानम् ॥९॥ (६१)

राग आसावरी

यहै परम फल, परम बड़ाई ।
नख - सिख रुचिर बिंदुमाधव - छबि निरखहिं नयन अघाई ॥ १ ॥
बिसद, किसोर, पीन, सुंदर बपु, स्याम, सुरुचि अधिकाई ।
नीलकंज, बारिद, तमाल, मनि, इन्ह तनु - तें दुति पाई ॥ २ ॥
मृदुल चरन सुभ चिन्ह पदज नख, अति अदभुत उपमाई ।
अरुन - नील पाथोज - प्रसव जनु, मनिजुत दल - समुदाई ॥ ३ ॥
जातरूप मनि - जटित मनोहर, नूपुर जन - सुखदाई ।
जनु हर - उर हरि[1] बिबिध बेष धरि, रहे बर भवन बनाई ॥ ४ ॥
कटि - तट रटति चारु किंकिनि - रव, अनुपम बरनि न जाई ।
हेम - जलज - कल - कलिन मध्य जनु मधुकर मुखर सुहाई ॥ ५ ॥
उर बिसाल, भृगु चरन चारु अति, सूचत कोमलताई ।
कंकन चारु, बिबिध भूषन, बिधि रचि निज कर मन लाई ॥ ६ ॥

हैं । ॥ ८ ॥ आप ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यके निधान हैं । आप अणिमादिक सिद्धियाँ[2] देनेवाले महान् दानी हैं। मुझ तुलदीदासको संसार-रूपी सर्प निगले डाल रहा है जिससे मैं बहुत डरा बैठा हूँ । गरुडपर चढ़नेवाले (बिन्दुमाधव-रूपी) राम ! इससे मेरी रक्षा कर लीजिए ॥९॥ (६१)

अरे मन ! इस शरीरका परम फल और महिमा इतनी ही है कि तू अपना सहज स्वभाव (चंचलता) छोड़कर नखसे शिखतक बिन्दुमाधवकी सुन्दर शोभा नेत्र-भर देखता चल ॥१॥ उनका शरीर निर्मल, किशोर, पुष्ट और सुन्दर है । उनका बहुत ही सुन्दर श्याम शरीर ऐसा जान पड़ता है मानो नील कमल, काले बादल, तमाल और नीलमणि (नीलम)-ने इन्हींके शरीरसे साँवली-नीली आभा पाई हो ॥ २ ॥ इनके कोमल चरणारविन्दोंमें (वज्र, अंकुश, ध्वज, कमल आदि) शुभ चिह्न बने हुए हैं, उँगलियाँ और नख तो ऐसे विचित्र लगते हैं मानो नीले और लाल कमलों (हाथ-पैरों)-से रत्न (नख)-जटित पत्ते (उँगलियाँ) उत्पन्न हुए हों ॥ ३ ॥ रत्न-जटित सोनेके नूपुरोंकी रुनझुन मनको मोहित करती और भक्तोंको सुख देती हुई ऐसी जान पड़ती है मानो शिवके हृदयमें अनेक रूप धारण करके कादेमव ही सुन्दर मंदिर बनाकर आ बसा हो ॥ ४ ॥ कमरमें बँधी हुई तगड़ीकी छनन-छनन ही ऐसी अनुपम है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह ऐसा लग रहा है मानो स्वर्ण कमलोंकी कलियोंमें फँसे भौंरे गूँज रहे हों ॥ ५ ॥ उनकी चौड़ी छातीपर बना हुआ भृगुके चरणका चिह्न इस बातका द्योतक है कि उनका हृदय कितना कोमल है । कंकण आदि अनेक प्रकारके आभूषण उनके शरीरपर ऐसे लगते हैं मानो स्वयं ब्रह्माने

---

१. हरि = कामदेव २. सिद्धियाँ : अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गज - मनि - माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक - निकाई।
जनु उडुगन - मंडल बारिद - पर नवग्रह[1] रची अथाई[2] ॥ ७ ॥
भुजँग - भोग[3] भुजदंड, कंज - दर - चक्र - गदा बनि आई।
सोभा - सींव ग्रीव, चिबुकाधर - बदन अमित छबि छाई ॥ ८ ॥
कुलिस - कुंद - कुडमल[4] - दामिनि - दुति दसननि देखि लजाई।
नासा, नयन, कपोल ललित, स्रुति कुंडल, भ्रू मोहिँ भाई ॥ ९ ॥
कुंचित कच सिर, मुकुट भाल - पर, तिलक कहौं समुझाई।
अलप तड़ित जुग - रेख इंदु - महँ रहि तजि चंचलताई ॥१०॥
निरमल पाँत दुकूल अनूपम, उपमा हिय न समाई।
बहु मनि - जुत गिरि - नील - सिखर-पर कनक-बसन रुचिराई ॥११॥
दच्छ भाग अनुराग - सहित इंदिरा अधिक ललिताई।
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग, नील निचोल ओढ़ाई ॥१२॥
सत सारदा, सेस, स्रुति मिलि करि, सोभा कहि न सिराई।
'तुलसिदास' मतिमंद द्वंद्व - रत, कहै कोन बिधि गाई ? ॥१३॥ (६२)

उन्हें अपने हाथों रच धरा हो ॥ ६ ॥ गजमुक्ताओंकी मालाके बीचमें पदिक (रत्नोंका चौका) ऐसा अच्छा लग रहा है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता, (फिर भी ऐसा मान सकते हैं) मानो काले बादलोंपर तारोंके बीच नवग्रहोंने अपने बैठनेका स्थान आ बनाया हो। (भगवान्‌का श्याम शरीर ही श्याम घन है, गजमुक्ताओंकी माला ही तारे हैं और बीचमें पदिक या चौकेके रत्न ही नवग्रह हैं) ॥ ७ ॥ उनके सर्पके समान (चिकने, सुडौल, साँवले) हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म (कमल) शोभायमान है। गर्दन तो बहुत ही सुन्दर है। ठोडी, ओठ और मुख भी बहुत ही सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ उनके दाँतोंकी चमक देखकर हीरे, कुन्दकी कलियों और बिजलीकी चमक भी लजा जाती है। उनकी नासिका, नेत्र, कपोल, सुन्दर कानोंमें कुण्डल और भौंहें मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं ॥९॥ उनके घुँघराले बालोंवाले सिरपर मुकुट बँधा हुआ है। उनके ललाटपर तिलककी शोभा इस प्रकार समझा कर कही जा सकती है मानो बिजलीकी दो छोटी-छोटी रेखाएँ चन्द्रमाके मण्डलमें अपनी सहज चंचलता छोड़कर जा बसी हों ॥ १० ॥ वे अपने शरीरपर जो स्वच्छ अनुपम पीताम्बर ओढ़े हुए हैं उसके लिए कोई उपमा मनमें समाती ही नहीं। (फिर भी ऐसा माना जा सकता है) मानो अनेक मणियोंसे पूर्ण नीले पर्वतके शिखरपर सुनहरा वस्त्र उढ़ा दिया गया हो। उनकी दाहिनी ओर बड़े प्रेमसे विराजमान लक्ष्मी ऐसी लगती हैं मानो तमाल वृक्षके समीप नीला वस्त्र ओढ़े हुए स्वर्णलता आ बैठी हो ॥ १२ ॥ जब सैकड़ों सरस्वतियाँ, शेष और वेद मिलकर भी इस शोभाका वर्णन नहीं कर पा सकते, तब भला राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंमें फँसा हुआ यह मूढ तुलसीदास किस प्रकार इस शोभाका वर्णन कर पा सकता है ? ॥ १३ ॥ (६२)

---

१. नवग्रह : सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु। २. अथाई = बैठकर। ३. भुजंग-भोग = भुजंग (नाग = हाथी) + भोग (सूँड़) हाथीकी सूँड़। ४. कुड्मल = कली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग जयतिश्री

मन ! इतनो या तनु - को परम फल ।
नख-सिख सुभग बिंदुमाधव-छबि, तजि सुभाउ, अवलोकु एक पल ॥ १ ॥
तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु, नख-दुति हृदय - तिमिरहारी ।
कुलिस - केतु - जव - जलज - रेख बर, अंकुस मन-गज-बसकारी ॥ २ ॥
जटित - कनक - मनि नूपुर, मेखल कटि - तट, रटति मधुर बानी ।
त्रिबली उदर, गँभीर नाभि - सर, उपजे जहँ बिरंचि ज्ञानी ॥ ३ ॥
उर बन - माल पदिक अति सोभित, बिप्र-चरन चित - कहँ करषै ।
स्याम - तामरस - दाम - बरन बपु, पीत बसन सोभा बरषै ॥ ४ ॥
कर कंकन, केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी ।
गदा - कंज - दर - चारु - चक्रधर, नाग - सुंड - सम भुज चारी ॥ ५ ॥
कंबु - ग्रीव, छबि-सींव चिबुक, द्विज, अधर अरुन, उन्नत नासा ।
नव - राजीव नयन, ससि आनन, सेवक - सुखद बिसद हासा ॥ ६ ॥
रुचिर कपोल, स्रवन कुंडल, सिर मुकुट, सुतिलक भाल भ्राजै ।
ललित भ्रुकुटि, सुंदर चितवनि, कच निरखि मधुप-अवली लाजै ॥ ७ ॥

अरे मन ! इस शरीरका सबसे बड़ा लाभ इतना ही है कि अपना चंचल स्वभाव छोड़कर (एकाग्र चित्तसे) नखसे शिखतक बिन्दुमाधवकी सुन्दर छबिका दर्शन करता चल ॥ १ ॥ उनके कोमल चरण नवीन विकसित लाल कमलके समान हैं और नखोंकी चमक हृदयके अज्ञानका अन्धकार नष्ट कर डालती है । उनके तलवोंमें वज्र, ध्वजा और कमल आदिकी रेखाएँ हैं और अंकुशका चिह्न तो मनरूपी हाथीको सदा वशमें किए रखता है ॥ २ ॥ वे अपने पैरोंमें रत्नजटित सोनेके नूपुर पहने हुए हैं और उनकी कमरकी तगड़ी भी रुनझुन करती हुई बजा करती है । उनके उदरपर तीन रेखाएँ पड़ी हैं । उनकी वह नाभि गहरे सरोवरके समान लगती है जिसमेंसे प्रसिद्ध ज्ञानी ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे ॥ ३ ॥ उनकी छातीपर वनमाला और उसके बीच रत्नजटित पदिक (चौका) चमचमा रहा है और वहीं भृगुके चरणका चिह्न मनको बरबस खींचे ले रहा है । नीले कमलकी मालाके समान उनके साँवले शरीरपर पीताम्बर तो ऐसा लगता है मानो सुन्दरताकी वर्षा किए डाल रहा हो ॥ ४ ॥ उनके हाथोंमें कंकण, बाहुओंमें सुन्दर बिजायट (भुजबंद) और उँगलियोंमें अँगूठियाँ निराला आनंद लुटाए दे रही हैं । हाथीकी सूँड़के समान अपनी विशाल चारों भुजाओंमें वे शंख, चक्र, गदा और पद्म (कमल) लिए हुए हैं ॥ ५ ॥ उनकी शंखके समान गर्दन तो बहुत ही सुन्दर है । उनकी सुन्दर ठोड़ी, दाँत, लाल ओठ, उठी हुई नाक, नवीन कमलके समान नेत्र, चन्द्रमाके समान मुख-मण्डल और मधुर मुसकान भक्तोंको सदा सुख देती रहती है ॥ ६ ॥ उनके कपोल बड़े सुन्दर हैं, उनके कानोंमें कुण्डल झिलमिला रहा है, मस्तकपर मुकुट और ललाटपर सुन्दर तिलक शोभा दे रहा है । उनकी भौंहें बड़ी बाँकी और चितवन बड़ी मनोहर है । उनके काले केश देखकर भौंरोंकी पंक्ति भी लज्जित हो उठती है ॥ ७ ॥ उनकी दाहिनी ओर रूप, शील और गुणसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रूप - सील - गुन - खानि दच्छ-दिसि, सिंधु - सुता रत-पद-सेवा ।
जाकी कृपा-कटाच्छ चहत सिव, बिधि, मुनि, मनुज, दनुज, देवा ॥ ८ ॥
'तुलसिदास' भव - त्रास मिटै तब, जब मति यहि सरूप अटकै ।
नाहिं त दीन, मलीन, हीन-सुख, कोटि जनम भ्रमि - भ्रमि भटकै ॥ ९ ॥ (६३)

[राम-वन्दना] राग वसंत

बंदौं रघुपति करुनानिधान । जाते छूटै भव - भेद - ज्ञान ॥ १ ॥
रघुबंस - कुमुद सुख-प्रद निसेस । सेवित पद-पंकज अज-महेस ॥ २ ॥
निज-भगत-हृदय - पाथोज - भृंग । लावन्य बपुष अगनित अनंग ॥ ३ ॥
अति प्रबल मोह - तम मारतंड । अज्ञान - गहन पावक प्रचंड ॥ ४ ॥
अभिमान - सिंधु कुंभज उदार । सुर-रंजन, भंजन-भूमि-भार ॥ ५ ॥
रागादि - सर्पगन पन्नगारि । कंदर्प - नाग मृगपति मुरारि ॥ ६ ॥
भव - जलधि - पोत चरनारबिंद । जानकी-रमन, आनंद - कंद ॥ ७ ॥
हनुमंत - प्रेम - बापी - मराल । निष्काम-कामधुक गो, दयाल ॥ ८ ॥
त्रैलोक्य-तिलक, गुन-गहन राम । कह 'तुलसिदास' बिस्राम-धाम ॥ ९ ॥ (६४)

भरी वे लक्ष्मी उनकी चरण-सेवा कर रही हैं, जिनकी कृपा-दृष्टिके लिये शिव, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, देव और दानव सभी तरसते रहते हैं ॥ ८ ॥ तुलसीदासका भी यह संसारसे उत्पन्न भय तभी मिट सकता है जब उसकी बुद्धि बिन्दुमाधवकी इस सुन्दर छविमें जा अटके, नहीं तो वह दीन, मलीन और सब सुखोंसे हीन होकर करोड़ों जन्मोंतक यों ही व्यर्थ भटकता फिरेगा ॥ ९ ॥ (६३)

रामकी वन्दना : मैं परम दयालु रामकी वन्दना करता हूँ जिससे मेरा सांसारिक भेद (यह अपना है, यह पराया है)-का अज्ञान दूर हो जाय ॥१॥ राम तो रघुवंश-रूपी कुमुदको चन्द्रमाके समान खिलाए रखते हैं । जिन रामके चरण-कमलोंकी सेवा ब्रह्मा और शिव किया करते हैं, ॥ २ ॥ जो अपने भक्तोंके हृदय-कमलमें भौंरेकी भाँति निवास करते हैं, जिनके शरीरका सौन्दर्य अगणित कामदेवोंके समान है, ॥ ३ ॥ जो सूर्यके समान मोह-रूपी बड़े प्रबल अन्धकारका नाश कर डालते और प्रचण्ड अग्निके समान अज्ञान-रूपी वन भस्म कर डालते हैं, ॥ ४ ॥ जो उदार अगस्त्यके समान अभिमान-रूपी समुद्रको सोख डालते, देवताओंको सुख देते तथा (दैत्योंका दलन करके) पृथ्वीका भार उतारते रहते हैं ॥ ५ ॥ जो गरुडके समान राग-द्वेष आदि सर्पोंको खा जाते हैं (राग-द्वेष आदिका नाश कर डालते हैं), सिंहके समान काम-रूपी हाथीको मार डालते हैं तथा जिन्होंने मुर नामक दैत्यको मार डाला (इसीसे उनका नाम 'मुरारि' पड़ा है) ॥ ६ ॥ जिनके चरण-कमल जहाज बनकर संसार-सागरसे पार उतार देते हैं ऐसे जानकी-रमण राम आनंदकी वर्षा करते रहते हैं ॥ ७ ॥ जो हनुमानके प्रेमकी बावलीमें हंसके समान सदा विहार करते रहते और निष्काम भक्तोंपर कामधेनुके समान सदा दया करते रहते हैं, ॥ ८ ॥ (तुलसीदास कहते हैं कि) वे ही राम, तीनों लोकोंके शिरोमणि, गुणोंके गहन वन (सब गुणोंसे सम्पन्न) और सम्पूर्ण शान्तिके केन्द्र हैं (उन्हींकी सेवा करनेसे पूर्ण शान्ति प्राप्त हो सकती है ॥ ९ ॥ (६४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग भैरव

राम - राम रमु, राम - राम रटु, राम - राम जपु जीहा !
राम - नाम - नव - नेह - मेह - को, मन ! हठि होहि पपीहा[1] ॥ १ ॥
सब साधन - फल कूप - सरित - सर - सागर - सलिल निरासा ।
राम - नाम - रति स्वाति-सुधा, सुभ - सीकर प्रेम - पियासा[2] ॥ २ ॥
गरजि, तरजि, पाषान बरषि, पबि, प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक - अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै[3] ॥ ३ ॥
राम - नाम गति, राम - नाम मति, राम - नाम - अनुरागी ।
ह्वै गे, हैं, जे होहिंगे तेइ, त्रिभुवन गनियत बड़भागी ॥ ४ ॥
एक अंग, मग अगम गवन करि, बिलमु न छिन-छिन छाहैं ।
'तुलसी' हित अपनो, अपनी दिसि, निरुपधि नेम निबाहैं ॥ ५ ॥(६५)

आत्म-प्रबोध : अरी जीभ ! तू 'राम-राम' नाममें ही रमी रह, राम-राम ही रटाकर और राम-राम ही जपा कर । अरे मन ! जैसे पपीहा सदा मेघसे प्रेम करता है वैसे ही तू भी हठ करके राम-नामसे नित्य नवीन प्रेम करता चल ॥ १ ॥ जैसे कुआँ, नदी, तालाब और समुद्र-तकके पानीकी आशा न रखकर पपीहा केवल स्वाती नक्षत्रमें बरसे हुए जलकी केवल एक बूँदके लिये लालायित रहता है (और यदि वह भी न मिले, तो प्यासा ही मर जाता है), उसी प्रकार तू भी मुक्तिके सारे साधनों और फलोंकी आशा न करके केवल राम-नामकी भक्तिकी पवित्र और मधुर बूँदके लिये लौ लगाए रह ॥ २ ॥ पपीहेकी कठिनसे कठिन परीक्षा लेनेके लिये मेघ उसपर गरजता है, उसे डाँटता है, ओले बरसाता है और वज्रपात भी करता है और तब पूर्ण रूपसे परखकर उसके हृदयका अनन्य प्रेम पहचान लेता है (तब कहीं उसे स्वातिकी बूँद मिल पाती है) ॥ ३ ॥ इसी प्रकार तू भी राम-नामकी शरण ग्रहण कर, राम-नाममें ही बुद्धि लगा और राम-नामका ही प्रेमी बन । राम-नामके ऐसे जितने भी अनन्य भक्त हो गए हैं और जो आगे होंगे, वे ही बड़भागी हैं और तीनों लोकोंमें उन्हींका नाम अमर रहेगा ॥ ४ ॥ देख, राम-नामका यह एकांगी मार्ग है तो बड़ा कठिन, पर तू जमकर इसी मार्गपर चलता चला चल । (क्षणिक सुखकी आशासे) क्षण-क्षणपर कहीं विश्राम करनेकी मत सोच । देख तुलसीदास ! तेरा हित तो तभी होगा जब तू अपनी ओरसे राम-नामसे निष्कपट प्रेमका निर्वाह करता चलेगा ॥ ५ ॥ (६५)

---

१. अन्येऽपि सन्ति बत तामरसावतंसा हंसावलीवलयिनो जलसंनिवेशाः ।
कोऽप्याग्रहो गुरुरयं बत चातकस्य पौरंदरीं यदभिवाञ्छति वारिधाराम् ॥
२. एक एव खगो मानी वने वसति चातकः । पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरंदरम् ॥—सुभाषित
३. उपल बरषि, गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥ —दोहावली

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम जपु, राम जपु, बावरे ! घोर भव-नीरनिधि नाम निज नाव, रे ! ॥१॥
एकहि साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि, रे ! ग्रसे कलि - रोग जोग, संजम, समाधि, रे ! ॥२॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो, जो बाम रे ! राम-नाम-ही-सों अंत सबही-को काम, रे ! ॥३॥
जग-नभ-बाटिका रही है फलि फूलि, रे ! धुवाँ-के-से- धौरहर देखि, तू न भूलि, रे ! ॥४॥
राम-नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और, रे ! 'तुलसी' परोसो त्यागी माँगै कूर कौर रे ! ॥५॥ (६६)

राम-नाम जपु जिय सदा सानुराग, रे ! कलि न बिराग, जोग, जाग, जप, त्याग, रे ! ॥१॥
राम-सुमिरन सब बिधि ही-को राज रे ! राम-को बिसारिबो निषेध - सिरताज, रे ! ॥२॥
राम-नाम महा-मनि, फनि जग-जाल, रे ! मनि लिये फनि जियै ब्याकुल बिहाल, रे ! ॥३॥
राम - नाम कामतरु देत फल चारि, रे ! कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि, रे ! ॥४॥
रामनाम प्रेम परमारथ-को सार, रे ! रामनाम तुलसी-को जीवन-अधार, रे ! ॥५॥(६७)

अरे पगले ! राम जप ! राम जप ! राम जप ! इस भयंकर संसार-रूपी समुद्रसे एक मात्र रामका नाम ही (नौका बनकर) पार उतारेगा । इसी एक साधनके बलसे सब ऋद्धि-सिद्धियाँ साध ले, क्योंकि योग, संयम और समाधि आदि साधनोंको कलिकालका रोग ग्रस्त किए बैठा है । (कलियुगमें योग, संयम और समाधि ठीक हो नहीं पाती) ॥ १ ॥ (हम बता देते हैं कि चाहे कोई) भला हो या बुरा, अनुकूल (हरि-भक्त) हो या प्रतिकूल (हरि-विमुख), अंतमें सबका काम बनेगा तो एक मात्र राम-नामसे ही बनेगा । यह संसार तो फूली-फली आकाश-वाटिकाके समान है (वास्तवमें कुछ नहीं हैं, इस संसारके भी सारे सुख भ्रममात्र हैं), ये सब तो धुएँके धौरहर (खंभे)-के समान झूठे हैं । इसलिये तू इनमें न भूल (इनकी भूलभुलैयामें मत पड़) ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं कि जो राम-नामका भरोसा छोड़कर किसी औरका (संसारके जनका) भरोसा कर बैठता है वह उसी मूर्खके समान है जो आगे परोसी हुई थाली छोड़कर घर-घर टुकड़े माँगता फिरे ॥ ४ ॥ (६६)

अरे जीव ! तू सदा प्रेमसे रामका नाम जपा कर । इस कलिकालमें राम-नामके अतिरिक्त वैराग्य, योग, यज्ञ, तप और दान (त्याग) किसी भी साधनसे कोई फल नहीं निकल सकता ॥ १ ॥ राम-नामका स्मरण करते रहना ही विधाताके विधान (करने-योग्य काममें) सर्वश्रेष्ठ है और राम-नामको भुला देना ही सबसे बड़ा निषिद्ध कर्म है ॥ २ ॥ राम-नाम ही महामणि है और यह जगत् जाल (ममता-मोहमें फँसानेवाला सांसारिक प्रपंच) सर्पके समान है । जैसे सर्पसे मणि ले-लेनेपर सर्प छटपटाकर प्राण दे डालता है, वैसे ही रामनाम-रूपी मणि ले लोगे तो सांसारिक बन्धन-रूपी सर्प अपने आप ही छूट गिरेंगे) ॥ ३ ॥ वेद, पुराण, पंडित और शिव सभी कहते हैं कि यह रामनाम उस कल्पवृक्षके समान है जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ मिल जाते हैं ॥ ४ ॥ यह रामनाम तो प्रेम और परमार्थ (मुक्ति) दोनोंका सार है (इससे दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं) और इसीलिये तुलसीदासने राम-नामको ही अपने जीवनका एक मात्र आधार बना लिया है ॥ ५ ॥ (६७)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम, राम, राम, जीव ! जौलौं तू न जपिहै। तौ लौं तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै ॥१॥
सुरसरि - के तीर बिनु - नीर दुख पाइहै। सुरतरु-के तरे तोहिं दारिद सताइहै ॥२॥
छूटिबे-की जतन बिसेष बाँध्यो जाइगो। ह्वैहै बिष भोजन, जो सुधा सानि खाइगो ॥३॥
जागत-बागत[1] सुख सपने न सोइहै। जनमि - जनमि जुग - जुग जग रोइहै ॥४॥
'तुलसी' तिलोक तिहूँ काल तोसे दीन-को। रामनाम ही-की गति जैसे जल मीन को ॥५॥(६८)

सुमिरु सनेह-सों तू नाम रामराय-को। संबल निसंबल-को, सखा असहाय-को ॥१॥
भाग है अभागे हू-को, गुन गुनहीन-को। गाहक गरीब-को, दयालु दानि दीन-को ॥२॥
कुल-अकुलीन-को, सुन्यो है बेद साखि है। पाँगुरे-के हाथ-पाँय, आँधरे-को आँख है ॥३॥
माय-बाप भूखे-को, अधार निराधार-को। सेतु भवसागर - को, हेतु सुखसार-को ॥४॥
पतित-पावन राम-नाम - सों न दूसरो। सुमिरे सुभूमि भयो, तुलसी - सो ऊसरो ॥५॥(६९)

अरे जीव ! जब-तक तू बैठकर 'राम-राम-राम'—नहीं जपेगा, तबतक तू जहाँ कहीं भी जायगा वहीं तीनों तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक)-से जलता ही रहेगा ॥ १ ॥ तू गंगाके तटपर जाकर भी पानीके बिना तरसता मर जायगा और कल्पवृक्षके नीचे रहकर भी तुझे दरिद्रता सताती रहेगी ॥ २ ॥ तू जागते, चलते, फिरते या स्वप्नमें भी सुखकी नींद न सो सकेगा और प्रत्येक युगमें संसारमें जन्म ले-लेकर रोता ही मर जायगा ॥ ३ ॥ संसार-बंधनसे छूटनेके लिये तू राम-नामके अतिरिक्त अन्य जितना भी उपाय करता चलेगा उतना ही तू बन्धनमें उलझता चला जायगा। फिर तो चाहे तू अमृतका भी भोजन क्यों न करने लगे, वह भी तेरे लिये विष ही बन जायगा ॥ ४ ॥ अरे तुलसी ! देख ! तेरे जैसे दीनको तो तीनों लोकों और तीनों कालोंमें यदि किसीकी शरण है तो केवल राम-नामकी ही शरण है। जैसे मछलीको केवल एक जलका ही भरोसा रहता है (जल ही उसके जीवनका एक मात्र अवलम्ब है) वैसे ही तेरा भी अवलम्ब राम-नाम ही है ॥ ५ ॥ (६८)

अरे जीव ! तू प्रेम-पूर्वक राम-नामका स्मरण किया कर। जिनके पास कोइ संबल नहीं है, उनके लिये रामका नाम ही संबल है और वही निराश्रितोंका मित्र भी है ॥१॥ वह (रामनाम) भाग्य-हीनोंका भाग्य (अभागोंको सौभाग्य देता) और गुणहीनोंको गुणवान् बना देता है। वह धन-हीनोंको धनी बनानेके लिये उन्हें ढूँढता फिरता है और दीनोंके लिये दयालु दानी है ॥ २ ॥ मैंने सुना है और वेद भी इसके साक्षी हैं कि वह (रामनाम) कुल-हीनोंको उच्च कुलका बना देता, लँगड़े-लूलोंको हाथ-पाँव दे देता और अन्धोंको भी समाखा (आँखवाला) कर देता है ॥३॥ वह माता-पिताके समान भूखोंको भोजन देता है और जिनका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं होता उन्हें सहारा देता है। संसार-सागरको पार करनेके लिये वह पुल है और सब सुखोंका सार जो ब्रह्मानन्द है उसे प्राप्त करनेका एक मात्र आधार है ॥ ४ ॥ रामनामके जपके समान दूसरा कोई मार्ग पतितोंका उद्धार करनेवाला नहीं है। (देखता नहीं ?) उसी नामका स्मरण करके तुलसी-जैसा ऊसर भी उपजाऊ गया है (निरर्थक प्राणी भी पूज्य हो गया है) ॥ ५ ॥ (६९)

---

१. बागत = चलते-फिरते (बुन्देलखंडी भाषा)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै। मन रामनाम-सों सुभाय अनुरागि है ॥१॥
राग राम-नाम-सों, बिराग जोग जागिहै। सहित-सहाय कलिकाल भीरु भागि है ॥२॥
राग राम-नाम-सों, बिराग, जोग जागिहै। बाम बिधि, भाल हू न कर्म-दाग दागिहै ॥३॥
राम-नाम - मोदक सनेह - सुधा पागिहै। पाइ परितोस तू न द्वार - द्वार बागिहै ॥ ४॥
काम-तरु राम-नाम, जोइ जोइ माँगिहै। 'तुलसिदास' स्वारथ-परमारथौ न खाँगिहै ॥५॥(७०

ऐसेहु साहब-की सेवा-सो होत चोर, रे! आपनी न बूझि, ना कहे-को राढ़-रोर, रे॥१॥
मुनि-मन-अगम, सुगम माइ-बाप-सो। कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आप सो ॥२॥
लोक - बेद[1] - बिदित बड़ो न रघुनाथ-सो। सब दिन, सब देस, सबही-के साथ सो ॥३॥
स्वामी, सर्बज्ञ-सों चलै न चोरी चार-की। प्रीति-पहिचानि, यह रीति दरबार-की ॥४॥
काय न कलेस लेस, लेत मानि मन-की। सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन-की ॥५॥

अरे मन ! यदि तू मेरे कहने-पर चलकर स्वभावसे (शुद्ध भावसे) राम-नामसे प्रेम करेगा तो तेरा सब प्रकारसे भला ही होगा ॥ १ ॥ राम-नामके प्रभावसे कलिकाल भी अपनी सेना (काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मात्सर्य, दंभ, पाखंड आदि) लेकर डरकर इस प्रकार भाग खड़ा होगा जैसे आगसे जाड़ा भाग खड़ा होता है ॥ २ ॥ राम-नामके प्रभावसे वैराग्य, योग, जप, तप आदि अपने आप ही जाग्रत (चेतन) हो जायँगे और तेरा खोटा भाग्य भी तुझे कर्म-बन्धनमें न बाँध पावेगा (तुझे तेरे पापोंसे मुक्त कर देगा) ॥३॥ यदि तू रामनामके लड्डूको (भगवत्-) प्रेमके अमृतमें पागकर जीमेगा तो तू इतना तृप्त (संतुष्ट) हो जायगा कि तुझे फिर द्वार-द्वार नहीं भटकना पड़ेगा ॥ ४ ॥ अरे तुलसीदास ! यह रामनाम तो ऐसा कल्पवृक्ष है कि तू इससे जो कुछ भी माँगेगा वह सब तुझे मिल जायगा। फिर तुझे स्वार्थ (सांसारिक सुख) या परमार्थ (मोक्ष) किसीकी भी कोई चिन्ता न रहेगी ॥ ५ ॥ (७०)

अरे मन ! तू ऐसे (राम-जैसे) प्रभुकी सेवासे भी जी चुराता है ? एक तो तू स्वयं कुछ समझता नहीं, दूसरे किसीका कहना भी नहीं मानता। तू दिन-रात व्यर्थके झगड़े (सांसारिक प्रपंच)-में पड़ा रहता है ॥१॥ मुनियोंके मनकी भी जिस-तक पहुँच नहीं हो पाती वह परब्रह्म परमात्मा राम अपने भक्तोंको ऐसी सरलतासे प्राप्त हो जाते हैं जैसे माता-पिता। वे स्वभावसे इतने बड़े कृपालु हैं कि वे सबके मित्र होकर अपने आप सबसे स्नेह करते रहते हैं॥२॥ लोक और वेद सबमें यह प्रसिद्ध है कि रामसे बड़ा कोई नहीं है। वे सदा और सर्वत्र सबके साथ रहते हैं। ॥ ३ ॥ जो स्वामी सर्वज्ञ (सबके घटघटकी बात जानते), हैं उनसे सेवककी चोरी नहीं छिप पाती। उनके दरबारमें तो केवल प्रेम ही देखा जाता है (यदि सेवकके हृदयमें रामके प्रति शुद्ध प्रेम है तो सेवामें कमी होनेपर भी सेवककी कोई हानि नहीं होती)। उनकी सेवामें शरीरको लेश - मात्र भी कष्ट नहीं होता। वे तो केवल सेवकके मनकी प्रीति देखते हैं। उनका सेवक किसी भी कारणसे जब उन्हें स्मरण करता है तो वे बड़े संकोचके साथ उसकी इच्छा पूरी करनेके लिये आ पहुँचते हैं (उन्हें यही संकोच

१. ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यः ब्रह्मा विष्णुरीश्वरः।
यः सर्ववेदात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥—अथर्ववेद

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम, रे ! फलत सकल फल कामतरु-नाम, रे ! ॥६॥
बेंचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम, रे ! सोऊ 'तुलसी' निवाज्यो, ऐसो राजा राम रे !॥७॥ ७१

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई । हौं तो साईं - द्रोही, पै सेवक - हित साँई ॥१॥
राम-सों बड़ो है कौन ? मो-सों कौन छोटो ? राम-सों खरो खसम ? मो-सों खल खोटो ॥२॥
लोक कहै राम - को गुलाम, हौं कहावौं । एतो बड़ो अपराध, मन भौ न बाँवौं ॥३॥
पाथ-माथे चढ़े तृन 'तुलसी' जो नीचो । बोरत न बारि ताहि, जानि आपु सींचो ॥४॥(७२)

जागु-जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी । देह, गेह, नेह जानु जैसे घन-दामिनी ॥१॥
सोवत सपने सहै संसृति - संताप, रे । बूड़ो मृग-बारि, खायो जेंवरी-के साँप, रे ॥२॥

होता है कि मैंने अपने भक्तके लिये कुछ भी नहीं किया । मेरे विलंब करनेके कारण इसे कितना कष्ट हुआ) । वे स्वामी ऐसे हैं कि जिसपर प्रसन्न हो जाते हैं, उसके वशमें हुए रहते हैं और जिसपर बिगड़ बैठते हैं उसे अपना परम धाम (साकेत, वैकुण्ठ) दे डालते हैं। उनका तो नाम ही 'कल्पतरु' है, जिससे सारी कामनाओंकी सिद्धिके फल सदा फलते रहते हैं (सारी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं) । जिसे बेचा जाय तो एक खोटा पैसा नहीं मिल सकता और पास रखनेपर जिससे कुछ काम नहीं निकल सकता । ऐसे तुलसीदासपर भी जिन्होंने कृपा करके उसे सम्मान दे डाला, ऐसे कृपालु तो बस राजा राम ही हैं॥ ७१ ॥

राम स्वयं बहुत भले हैं इसीलिये उन्होंने मेरा भी भला कर दिया । एक ओर तो मैं हूँ कि निरन्तर स्वामीके साथ बुराई करता रहता हूँ और दूसरी ओर स्वामी हैं कि सेवकका हित ही हित करते रहते हैं । बस फिर क्या है ? मेरी तो बनी बनाई धरी है ॥४॥ रामसे बड़ा दूसरा कौन है और मुझसे छोटा दूसरा कौन है ? रामके समान खरा (भला) कौन है और मेरे जैसा खोटा कौन है ? ॥ ५ ॥ संसार कहता है कि मैं (तुलसीदास) उन्हीं रामका सेवक हूँ और मैं भी यही (रामका सेवक) कहलाता हूँ । इससे बड़ा और कौन-सा अपराध मैं कर सकता हूँ ? पर वाह रे मेरे प्रभु राम ! आपका मन मेरी ओरसे तनिक भी वाम (टेढ़ा) न हुआ (बिगड़ा नहीं) ॥ ६ ॥ (जानता है क्यों ?) तुलसी ! देख; जलके ऊपर जब तिनके-जैसा नीच भी आ चढ़ता है, तो वह (जल) यह जानकर उसे नहीं डूबने देता कि इस तिनकेको पाला-पोसा तो मैंने ही है (इसी प्रकार जीव ईश्वरका कितना भी अपराध क्यों न करे, पर वह (ईश्वर) तो अपनी भक्त-वत्सलताके कारण उसका कल्याण ही करता है ।) ॥ ७ ॥ (७२)

अरे जड जीव ! उठ जाग, जाग और इस संसार-रूपी रात्रिको देख (संसारकी मोह-मायाके जालमें पड़कर तू अपनेको भुला बैठा है । अब तो चेतन होकर देख ले) । अपने शरीर और घरके मोहको तू ऐसा ही समझ जैसे बादलोंमें छिपी हुई बिजली, जो क्षण-भरके लिये कौंधकर तुझे अंधकारपूर्ण संसारका प्रकाश दिखाकर चमक जाती है और फिर कौंधकर छिप जाती है ॥ १ ॥ (यदि तू यह समझे कि जागनेपर सांसारिक कष्टोंका अनुभव होगा तो) तू सोते समय स्वप्नमें भी तो संसारके कष्ट सहता चला जा रहा है, वहाँ भी तो तुझे चैन नहीं है । मायाकी मृगतृष्णाके जलमें तू डूबा जा रहा है और रस्सीका साँप तुझे डसे ले रहा है (किन्तु ये दोनों ही

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कहैं बेद-बुध, तू तौ बूझि मन-माहिं रे। दोष-दुख सपने-के जागे ही पै जाहिं, रे! ॥३॥
'तुलसी' जागे[1]-तें जाइ ताप तिहुँ ताइ, रे! राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाइ, रे ॥४॥(७३)

राग बिभास

जानकीस-की कृपा जगावती, सुजान जीव! जागि, त्यागु मूढ़तानुरागु श्रीहरे।
करि बिचार, तजु बिकार, भजु उदार रामचंद्र, भद्रसिंधु, दीनबंधु, बेद बदत[2], रे! ॥१॥
मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो, खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जू परे।
अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु-के प्रकास, बासना सराग - मोह - द्वेष - निबिड़ - तम टरे ॥२॥
भागे मद-मान चोर, भोर जानि, जातुधान, काम-क्रोध-लोभ-छोभ-निकर अपडरे।
देखत रघुबर-प्रताप, बीते संताप - पाप, ताप त्रिबिध, प्रेम - आप, दूर ही करे ॥३॥

बातें असम्भव भ्रम-मात्र हैं) फिर भी तू उन्हें सत्य मानकर कष्ट भोगे चला जा रहा है ॥ २ ॥ वेद और बुद्धिमान् लोग यही कहते हैं कि तू यह निश्चय समझ ले कि तेरे सारे दोष और दुःख तो स्वप्नसे जागनेपर ही मिट पायँगे (ज्ञान प्राप्त करनेपर ही दूर होंगे)। अरे तुलसी! संसारके तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) अज्ञान रूपी निद्रासे जागनेपर ही दूर हो सकेंगे और तभी राम-नामसे विशुद्ध प्रेम उत्पन्न होगा ॥ ३ ॥ (७३)

(जो लोग राम-नामपर आश्रित रहते हैं उन) चतुर जनोंको रामकी कृपा ही (मोह-रात्रिसे) जगा देती है। इसलिये मोहरूपी जडता त्यागकर जाग जा और हरि (राम)-के साथ प्रीति जोड़ ले। (सत् और असत्का) विचार करके और सारे विकार छोड़कर उन परम उदार रामका भजन कर जो सबका कल्याण करते हैं और दीनोंके बंधु हैं। ऐसा वेद भी कहते हैं ॥ १ ॥ मोहमयी अमावास्याकी लम्बी रातमें तू बहुत समय-तक पड़ा सोता रहा। इससे मायाके स्वप्नमें पड़कर तू अपने अनुपम आत्म-स्वरूपको भूल गया। देख, अब सवेरा हो गया है और ज्ञान-रूपी सूर्यका प्रकाश होते ही वासना, राग, मोह और द्वेष-रूपी घोर अन्धकार दूर हो गया है ॥ २ ॥ सवेरा हुआ जानकर मद और मान-रूपी चोर भाग गए तथा काम, क्रोध, लोभ, क्षोभ आदि राक्षसोंका समूह भी डरकर दुबक गया। रामका प्रताप देखते ही पाप-सन्ताप सब नष्ट हो मिटे और रामके प्रेम-रूपी जलने तीनों ताप

---

१. माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति बन्धुः सहोदरः। अर्थन्नास्ति गृहन्नास्ति तस्माद् जाग्रत जाग्रत ॥१॥
आशया वृद्धते लोको कर्मणा बहु चिन्तया। आयुः क्षीणं न जानासि तस्माद् जाग्रत जाग्रत ॥२॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः। ज्ञान-रत्नापहराय तस्माद् जाग्रत जाग्रत ॥३॥
जन्म-दुःखं, जरा-दुःखं, जाया दुःखं पुनः पुनः। संसार-सागरं दुःखं तस्माद् जाग्रत जाग्रत ॥४॥
—शंकराचार्य

२. 'वेद वदत रे'—तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविको ज्ञान-बल-क्रिया च।' —(श्वेता० ६/७-८)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्रवन सुनि गिरा गँभीर, जागे अति धीर वीर, बर बिराग-तोष, सकल संत आदरे।
'तुलसिदास' प्रभु कृपाल, निरखि जीव-जन बिहाल, भंज्यो भवजाल परम मंगलाचरे ।४।७४

राग ललित

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरे-सों झूठ क्यों कहौंगो ? जानौ सबही-के मन-की
करम-बचन-हिये, कहौं न कपट किये, ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन-की ।।१।।
दूसरो भरोसो नाहिं, बासना उपासना-की बासव, बिरंचि, सुर, नर, मुनिगन-की।
स्वारथ-के साथी, मेरे हाथसों न लेवा-देई, काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन-की ।।२।।
साँप-सभा साबर लबार भए देव दिव्य, दुसह साँसति कीजै आगे दैया ! तन-की।
साँचे परे, पावौं पान, पंचन-में परै प्रमान, तुलसी-चातक-आस राम-स्याम-घन की ।३। ७५

राम-को गुलाम, नाम 'राम-बोला' राख्यो राम, काम यहै नाम द्वै, हौं कबहुँ कहत हौं।
रोटी-लूगा नीके राखैं, आगे हू-को बेद भाषैं, भलो ह्वैहै तेरो, ताते आनँद लहत हौं ।।१।।

शान्त कर डाले हैं ।। ३ ।। यह गंभीर वाणी सुनकर धीर और वीर संत सब मोह-निद्रासे जाग उठे और उन्होंने वैराग्य, संतोष आदिको आदर-पूर्वक अपना लिया। देख तुलसीदास ! कृपामय रामने भक्त जीवोंको व्याकुल देखकर संसार-रूपी जाल तोड़ डाला और उन्हें परमानन्द प्रदान कर डाला ।। ४ ।। (७४)

(राम !) मैं बुरा या भला जैसा कुछ हूँ, आपका ही हूँ। आपकी सौगंध, भला मैं आपसे झूठ क्यों बोलूँगा (क्योंकि मैं जानता हूँ कि) आप सबके मनकी बात जानते हैं। मैं कपट करके नहीं वरन् कर्म, वचन और मनसे कहता हूँ कि मैं आपका ही अनन्य दास हूँ। आपकी सेवा करनेका यह मेरा हठ इतना पक्का हो गया है जितनी पानीसे भींगनेपर सनकी गाँठ (पक्की हो जाती है) ।।१।। (राम !) मुझे न तो किसी दूसरे उपाय (कर्म, योग आदि)-का भरोसा है, न मुझे इन्द्र, ब्रह्मा आदि किसी अन्य देवता, मनुष्य और मुनिकी उपासना करनेकी इच्छा है, क्योंकि (मैं इन्हें भली भाँति देख-परख चुका हूँ कि) ये सब स्वार्थके साथी हैं अतः मेरा इनसे क्या लेना-देना (इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है)। राम ! इन सबमेंसे किसीको भी तो दीनोंके साथ वैसी सहानुभूति नहीं है जैसी आपकी है ।। २ ।। दिव्य देव ! यदि मैं झूठ बोलता होऊँ (कि मैं आपका सेवक हूँ) तो आप मुझे वैसा ही दंड दीजिए जैसा साँपोंकी सभामें झूटे सँपेरेको मिलता है (मन्त्र न जाननेवाले झूठ सँपेरा साँपोंके बीच पहुँच जाय तो नहीं बचेगा), और यदि मैं सच्चा होऊँ (सचमुच रामका गुलाम हूँ) तो मुझे पंचोंमें अपना प्रण निभानेके प्रमाणके रूपमें एक बीड़ा[1] (प्रमाण-पत्र) मिल जाय, क्योंकि तुलसीको तो पपीहेके समान एक रामरूपी घनश्यामका ही भरोसा है ।।४।।(७५)

मैं तो रामका गुलाम (मोल लिया हुआ दास) हूँ। रामने ही मेरा नाम 'रामबोला' रख दिया है।[2] मेरा काम यही है कि मैं दिनमें दो-एक बार रामका नाम ले लेता हूँ। बस इतनी-सी सेवापर रीझकर राम मुझे रोटी-कपड़ा देकर बड़े सुखसे रखते हैं (यह तो हुई इस लोककी

---

१. राजा जिसकी निष्ठासे प्रसन्न होते थे उसे पानका बीड़ा अपने हाथसे देते थे। पंडितराज जगन्नाथको इसी बातका अभिमान था कि 'ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यत्कान्यकुब्जेश्वरात्।'

२. कहा जाता है कि उत्पन्न होते ही तुलसीके मुँहसे 'राम' निकला था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बाँधे हौं करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़, सुनत दुसह हौं तो साँसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-नाथ, कोसल-पाल कृपाल, लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥२॥
बूझ्यो ज्योंही, कह्यो 'मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरो जू, मेरो कोऊ कहूँ नाहीं चरन गहत हौं'।
मींज्यौ गुरु पीठ, अपनाइ, गहि बाँह बोलि, सेवक-सुखद सदा बिरद बहत हौं ॥३॥
लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे, ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।
'तुलसी' अकाज काज राम-ही-के रीझे-खीझे, प्रीति-की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥४॥७६

जानकी-जीवन, जगजीवन, जगत-हित, जगदीस, रघुनाथ, राजीव-लोचन राम।
सरद-बिधु-बदन, सुख-सील, श्रीसदन, सहज सुंदर तनु, सोभा अगनित काम ॥१॥
जगत सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित, मीत, सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू-को न बाम।
आरति-हरन, सरन-द, अतुलित दानि, प्रनत-पाल, कृपाल, पतित-पावन नाम ॥२॥

बात)। जहाँतक आगे (परलोक)-की बात है, उसके लिये तो वेद पुकारकर कहते ही हैं कि 'तेरा भला होगा', इसीलिये मैं सदा मगन (निश्चिन्त) हुआ रहता हूँ ॥ १ ॥ पहले मुझे जड कर्मोंने अहंकार-रूपी बेड़ीसे इतना जकड़ बाँधा था कि उसका भयानक कष्ट तो सुननेमें भी असह्य था। (फिर जब मैंने पुकारकर कहा—) 'दुखियों और अनाथोंके नाथ! कोशलेश कृपालु राम! मैं बड़ा कष्ट भोग रहा हूँ।' तब यह सुनते ही रामने जब देखा कि यह दीन पापोंसे जला जा रहा है तो झट मुझे कर्म-बन्धनसे छुड़ा-धरा (जन्म-मरणके दुःखसे मुक्त कर दिया) ॥ २ ॥ उन्होंने पूछा—'तू कौन है?' मैंने कहा—'नाथ! मैं भी आपका गुलाम होना चाहता हूँ। मैं अनाथ हूँ, मेरा कहीं कोई नहीं है। इसीसे आपके चरण पकड़े बैठा हूँ।' इसपर मेरे गुरु रामने उठकर मेरी पीठ ठोंकी और बाँह पकड़कर मुझे अपना लिया। बस तभीसे मैं उनका विरुद (कि भगवान् अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं यह रामका यश) गाता फिरता घूम रहा हूँ ॥ ३ ॥ रामका गुलाम (सेवक) बना देखकर लोग मुझे नीच (पाखंडी) कहते हैं पर इसकी न मुझे कुछ चिन्ता है न संकोच है क्योंकि न तो मुझे किसीके साथ ब्याह-सगाईका संबंध जोड़ना है, न मुझे किसीकी जाति-पाँतिसे ही कुछ लेना-देना है। तुलसीका बनना-बिगड़ना तो अब रामके ही रीझने और खीझनेपर निर्भर है। मुझे तो रामके प्रेमका पूरा विश्वास है, इसीसे मैं सदा मगन हुआ घूमता हूँ ॥ ४ ॥ (७६)

राम! आप जानकीके जीवन और संसारके जीवन हैं। आप जगत्का कल्याण करते रहते हैं, जगत्के स्वामी और रघुवंशके नाथ हैं। आपके नेत्र कमलके समान और आपका मुख शरत्के चन्द्रमाके समान है। आप सुख, शील और लक्ष्मीके भंडार हैं। आपका शरीर स्वभावसे ही इतना सुन्दर है कि अगणित कामदेवोंके समान उसकी शोभा है ॥ १ ॥ आप जगत्के पिता, माता, गुरु, हितकारी, सन्मित्र हैं और सबपर कृपा करते हैं। आप दोनोंके सहायक हैं। आप किसीका अहित नहीं करते। आप सबके दुःख दूर करके सबको शरण देते, अत्यन्त दानी, भक्तजनोंके पालक और कृपालु हैं। आपका नाम ही पापियोंका उद्धार कर देता है ॥ २ ॥ सारा विश्व आपकी वन्दना करता

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सकल-बिस्व-बंदित, सकल-सुर-सेवित, अगम-निगम कहैं रावरेई गुन - ग्राम।
एही जानिकै तौ 'तुलसी' तिहारो जन भयो, न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ३(७७)

राग टोड़ी

देव ! दीन-को दयालु, दानि, दूसरो न कोई। जासों दीनता कहौं मैं देखौं दीन सोई ॥१॥
देव ! सुर, नर, मुनि, असुर, नाग, साहिब तौ घनेरे। तौलौं जौलौं रावरे न नैकु नयन फेरे ॥२॥
देव ! त्रिभुवन तिहुँ काल बिदित बदत बेद चारी। आदि-अन्त-मध्य राम ! साहिबी तिहारी ॥३॥
देव ! पाहन, कपि, पसु, बिहंग, अपने करि लीन्हें। महाराज दसरथ-के ! रंक राय कीन्हें ॥४॥
देव ! तुमहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो। सुनि सुभाव, सील, सुजस, जाचक जन आयो ॥५
देव ! तू गरीब-को निवाज, हौं गरीब तेरो। बारक कहिये कृपाल ! तुलसिदास मेरो ६(७८)

देव ! तू दयालु दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥१॥
देव ! नाथ ! तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों ? मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों ॥२॥

है, सब देवता आपकी सेवा करते हैं। वेद-शास्त्र भी आपका ही गुण-गान करते हैं। यही समझकर तुलसीदास भी आपका गुलाम (सेवक) आ बना है। अब इस (तुलसी) को भी अलग करके (विशेष रूपसे) अपने दीन सेवकोंमें सम्मिलित कर लीजिए ॥ ३ ॥ (७७)

राम ! दीनोंपर दया करनेवाला और उन्हें सब कुछ दे डालनेवाला आपको छोड़कर दूसरा कोई है नहीं क्योंकि मैं जिससे अपनी दीनताकी बात कहने चलता हूँ तो देखता हूँ कि वह तो स्वयं दीन है ॥१॥ देवता, मनुष्य, मुनि, राक्षस, नाग आदि बहुतेरे स्वामी बने दिखाई पड़ते हैं, पर वे सब तभीतकके स्वामी बने हुए हैं जबतक आपकी कृपादृष्टि उनकी ओरसे फिर नहीं जाती (जबतक उनपर आपकी कृपा बनी हुई है) ॥ २ ॥ राम ! तीनों लोकों और तीनों कालोंमें यही प्रसिद्ध है और यही बात चारों वेद भी कहते हैं कि आपकी ही प्रभुता ऐसी है जो आदि, मध्य और अन्त सदा बनी रहती है ॥ ३ ॥ आपने पाषाण (अहल्या), पशु (वानर, भालू), वृक्ष (यमलार्जुन) और पक्षी (जटायु, काकभुशुण्डि) तकको अपना लिया। महाराजके पुत्र राम ! आपने न जाने कितने नीच दरिद्रों-तकको भी राजगद्दीपर चढ़ा बिठाया है ॥ ४ ॥ जिस भिखमंगेने एक बार आपसे माँग लिया वह फिर कभी भिखारी नहीं रह पाया (क्योंकि वह तो परम और नित्य सुख प्राप्त करके सदाके लिये तृप्त हो गया)। आपका यही शील, स्वभाव और सुयश सुनकर यह दास (तुलसीदास) भी आपके यहाँ भीख माँगने आ पहुँचा है ॥ ५ ॥ आप सदा दीनोंको निहाल करते रहे हैं और मैं आपका दीन दास हूँ ! कृपालु ! बस आपसे यही प्रार्थना है कि एक बार यही कह दीजिए कि 'तुलसीदास मेरा है' ॥ ६ ॥ (७८)

नाथ ! आप दीनोंपर दया किया करते हैं और मैं दीन हूँ ? आप दानी हैं और मैं भिखारी हूँ। मैं प्रसिद्ध पापी हूँ और आप सारे पाप नष्ट कर डालते हैं ॥१॥ आप अनाथोंके नाथ हैं तो मेरे जैसा अनाथ भी कोई नहीं है। न तो मेरे समान कोई दुखी है और न आपके समान कोई दुःख दूर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! ब्रह्म तू , हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो। तात, मात, गुरु, सखा तू सब बिधि हित मेरो ॥३॥
देव ! तोहिं-मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै। ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ४(७९)

देव ! और काहि माँगिए, को माँगिबो निवारै ? अभिमत-दातार कौन दुख-दरिद्र दारै ॥१॥
देव ! धरम धाम राम काम-कोटि-रूप रूरो। साहिब सब बिधि सुजान, दान-खड्ग-सूरो ॥२॥
देव ! सुसमय दिन द्वै निसान सब-के द्वार बाजै।कुसमय दसरथ-के दानि ! तैं गरीब-निवाजै ॥३॥
देव ! सेवा-बिनु, गुन-बिहीन दीनता सुनाए। जे - जे तैं निहाल किए, फूले फिरत पाए ॥४॥
देव ! 'तुलसिदास' जाचक-रुचि जानि दान दीजै। रामचंद्र चंद्र तू ! चकोर मोहिं कीजै ५(८०)

राग भैरव (आसावरी)

दीनबंधु, सुखसिंधु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध ज्वर, करत फिरत बौराई ॥ १ ॥

करनेवाला ही है ॥ २ ॥ आप ब्रह्म हैं मैं जीव हूँ, आप स्वामी हैं मैं सेवक हूँ, आप मेरे पिता, माता, गुरु, मित्र तथा सब प्रकारसे मेरे हितैषी हैं ॥ ३ ॥ मुझसे और आपसे तो इतने प्रकारके नाते हैं कि आपको जो नाता अच्छा लगे वही मान लें । पर कृपालु ! इतना अवश्य करें कि जैसे भी हो यह तुलसीदास आपके चरणोंकी शरणमें पहुँचकर पड़ा रहे ॥ ४ ॥ (७९)

नाथ ! (आपको छोड़कर) माँगूँ भी तो किससे जाकर माँगूँ जो सदाके लिये मेरा माँगना मिटा दे ? ऐसा और कौन है जो मेरी मनोकामनाएँ पूरी करके मेरे दुःख और मेरा दारिद्र्य मिटा डाले ? ॥ १ ॥ राम आप सम्पूर्ण धर्मो के आश्रय हैं (आपके सहारे सब धर्म जीवित हैं)। आप करोड़ोंकामदेवोंके रूपसे भी अधिक सुन्दर हैं। आप सब प्रकारसे मेरे चतुर स्वामी हैं और दान करने तथा तलवार चलानेमें तो बड़े ही शूर हैं (दानवीर और युद्ध-वीर हैं) ॥ २ ॥ अच्छे दिन आनेपर तो दो दिनोंके लिये सभीके द्वारपर नगाड़े बजाते हैं (सभी आनन्द मनाते हैं), परन्तु दशरथनन्दन (राम) ! आप ही ऐसे दानी हैं कि बुरे समयमें भी दीनोंको निहाल किए रहते हैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे जिनको भी आपने (अपनी कृपासे) निहाल कर दिया उन्होंने न तो कभी आपकी कुछ सेवा की न अपने गुणोंसे ही आपको प्रसन्न किया (न उनमें सेवा-भाव था न कोई गुण ही था) पर आज वे सबके सब केवल आपको अपनी दीनता सुना देने भरसे ही इतने मगन हुए घूम रहे हैं कि फूले नहीं समाते ॥ ४ ॥ अब इस भिखारी तुलसीदासकी इच्छा जानकर उसे भी निहाल कर दीजिए। वह तो केवल यही चाहता है कि 'रामचन्द्र ! आप चन्द्रमा तो हैं ही, बस मुझे उस चन्द्रमाका चकोर बना लीजिए' (मैं सदा आपके मुखचंद्रकी ओर चकोरकी भाँति टकटकी लगाए देखा करूँ) ॥ ५ ॥ (८०)

राम ! आप दीनोंके बन्धु, सुखसे पूर्ण, बड़े कृपालु और दयालु हैं। नाथ ! सुनिए, मेरा मन या तो संसारके त्रिविध तापोंसे जला जा रहा है या उसे (काम, क्रोध और लोभ-रूपी) त्रिदोष-ज्वर (वात, कफ, पित्तके बिगड़नेसे उत्पन्न सन्निपात) हो गया है इसीसे वह पागलोंकी भाँति सब अंडबंड काम किए जा रहा है ॥ १ ॥ कभी तो वह दुष्ट जाकर योगका अभ्यास करने लगता है,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कबहुँ जोग-रत, भोग-निरत सठ, हठ बियोग-बस होई।
कबहुँ मोह-बस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई॥ २॥
कबहुँ दीन, मति-हीन, रंक-तर, कबहुँ भूप अभिमानी।
कबहुँ मूढ़, पंडित, बिडंब - रत, कबहुँ धरम-रत, ज्ञानी॥ ३॥
कबहुँ देख जग धनमय, रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै।
संसृति - संनिपात दारुन-दुख, बिनु - हरि - कृपा न नासै॥ ४॥
संजम-जप-तप-नेम-धरम-ब्रत, बहु भेषज - समुदाई।
'तुलसिदास' भव - रोग राम - पद - प्रेम - हीन नहिं जाई॥ ५॥ (८१)

मोह-जनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई।
जनम-जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई॥ १॥
नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय-सँग लागे।
हृदय मलिन बासना-मान-मद, जीव सहस सुख त्यागे॥ २॥
पर-निंदा सुनि स्रवन मलिन भे, बचन दोष पर गाए।
सब प्रकार मल-भार लाग, निज नाथ - चरन बिसराए॥ ३॥

कभी भोगमें ही आसक्त होकर मगन हुआ रहता है, कभी (स्त्री-पुत्र आदिके) विरहके दुःखसे दुखी हुआ रहता है, कभी मोहमें पड़कर सबसे लड़ाई-झगड़ा करता फिरता है, कभी वही परम दयालु बन जाता है॥ २॥ और कभी दीन, कभी बुद्धिहीन, कभी दरिद्र, कभी अभिमानी राजा, कभी मूर्ख, कभी पण्डित, कभी पाखंडी, कभी धर्मपरायण, कभी ज्ञानी बन जाता है और कभी जगत्‌को धनमय, कभी शत्रुमय तो कभी स्त्रीमय देखने लगता है (लोभ, क्रोध और काममें आसक्त हुआ रहता है)। देव! यह संसार-रूपी त्रिदोष (काम, क्रोध और लोभमय) ज्वरका दारुण दुःख आपकी कृपाके बिना नष्ट नहीं हो पा सकता॥ ३॥ यद्यपि संयम, जप, तप, नियम, धर्म, व्रत आदि इसकी बहुत-सी औषधियाँ (उपाय) हैं, परन्तु तुलसीदास कहते हैं कि यह संसार-रूपी रोग तबतक दूर नहीं हो पा सकता जबतक रामके चरणोंमें प्रेम न हो॥ ४॥ (८१)।

माया-मोहसे उत्पन्न जो अनेक प्रकारके पाप लगे हैं वे करोड़ों उपाय करनेपर भी नहीं छूट पा सकते। यह चित्त अनेक जन्मोंसे पाप करते-करते अभ्यासी हो गया है। इसलिये वह (पापका) मल उसपर अधिकसे अधिक जमता ही चलता है, छूटता नहीं॥ १॥ दूसरोंकी स्त्रियोंको (कामकी दृष्टिसे) देखनेसे नेत्र मलिन हो गए हैं, विषय-वासनाके साथ रहनेसे मनमें विकार उत्पन्न हो गया है, अहंकार और मान (प्रतिष्ठा) बनाए रखनेकी कामनाओंके कारण हृदयकी चिन्ता भी मलिन हो गई है और सहज सुख (आत्मानंद)-का त्याग करने कारण जीव भी मलिन (विकारपूर्ण) हो गया है॥ २॥ दूसरोंकी निन्दा सुनते-सुनते कान मैले हो गए हैं, (पराई निन्दा) करते-करते वाणी भी मलिन हो गई है और अपने स्वामी (राम) के चरण-कमलों को भुला देनेसे तो सब प्रकारके पापोंका बोझ भी सिरपर आ लदा है॥ ३॥ तुलसीदास कहते

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसिदास' व्रत-दान-ज्ञान-तप, सुद्धि - हेतु स्रुति गावै।
राम-चरन-अनुराग-नीर-बिनु, अति मल नास न पावै ॥ ४ ॥ (८२)।

राग जयतश्री

कछु ह्वै न आइ, गयो जनम जाय।
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि, भजे न राम वचन-मन-काय ॥ १ ॥
लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता, चौगुनी चाय।
जोबन-जर जुवती-कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥ २ ॥
मध्य बयस धन - हेतु गँवाई, कृषी-बनिज नाना उपाय।
राम-बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि-बासर तयो तिहूँ ताय ॥ ३ ॥
सेये नहिं सीतापति-सेवक, साधु-सुमति भले भगति भाय।
सुने न पुलकि तन, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुबंसराय ॥ ४ ॥
अब सोचत मनि-बिनु भुजंग-ज्यों, बिकल अंग दले जरा धाय।
सिर धुनि-धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय ॥ ५ ॥
जिन लगि निज परलोक बिगाऱ्यो, ते लजात होत ठाढ़े ठायँ।
'तुलसी' सुमिरु अजहुँ रघुनाथहिं, तज्यौ गयन्द जाके अरध नायँ ॥ ६॥(८३)

हैं कि यद्यपि इस मल (पाप)-की शुद्धिके लिये व्रत, दान, ज्ञान और तप आदि अनेक उपाय वेदों में बताए गए हैं पर यह पापका मल तबतक पूर्ण रूपसे नहीं छूट सकता जबतक रामके चरणों के प्रेमके जलसे इसे धो न डाला जाय ॥ ४ ॥ (८२)।

हाय ! जन्म यों ही (व्यर्थ ही) बीतता चला जा रहा है। आजतक मुझसे कुछ भी करते-धरते नहीं बना। यह मनुष्यका अति दुर्लभ चोला पाकर भी मैंने निष्कपट भाव (शुद्ध चित्त) और तन, मन और वचनसे रामके नामका स्मरण नहीं किया ॥ १ ॥ लड़कपन तो अज्ञानमें ही निकल गया। उस समय तो चित्तमें आजसे चौगुनी चपलता और प्रसन्नता भरी हुई थी। जवानीके ज्वरमें स्त्री-सेवनका कुपथ्य करता रहा जिसके कारण ऐसा सन्निपात हो गया कि सारे शरीरमें कामरूपी वायु भर गया (कामोन्माद हो गया) ॥ २ ॥ (जवानी बीतनेपर) प्रौढ अवस्थामें मैंने खेती, वाणिज्य (व्यापार) आदि अनेक उपायोंसे धन कमानेमें समय खो दिया किन्तु रामसे विमुख रहनेके कारण स्वप्नमें भी सुख नहीं मिला और दिन-रात मैं तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से निरन्तर जलता रहा ॥ ३ ॥ मैंने न तो रामके भक्तों और ज्ञानी सन्तोंकी भक्ति-भावसे भली भाँति सेवा ही की, न रामकी कथा सुनकर ही मेरा शरीर रोमांचित हुआ और न कीर्त्तन करके ही मन प्रसन्न हो पाया ॥ ४ ॥ अब तो बुढ़ापेने आकर मेरे अंग-प्रत्यंग शिथिल कर डाले हैं जिससे मैं मणिहीन सर्पकी भाँति चिन्तामें घुला करता हूँ, सिर पटकता रहता हूँ और हाथ मल-मलकर पछताता रहता हूँ, पर इस दुःसह दावाग्निको बुझानेके लिये कोई भी मित्र या हितेषी मेरे पास नहीं आकर फटकता ॥५॥ जिनके लिये मैंने अपना परलोक बिगाड़ा (अनेक प्रकारके पाप किए) वे भी आज मेरे पास खड़े होनेमें लजाते हैं। इसलिये तुलसी ! तू अब भी उन रामका स्मरण कर, जिनका आधा ही नाम (रा) पुकारनेपर ग्राहके चंगुलसे गजेन्द्र मुक्त हो गया था ॥ ६ ॥ (८३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

(तौ) तू पछितैहै मन मींजि हाथ ।
भयो सुगम तोहिं अमर-अगम तन, समुझि धौं कत खोवत अकाथ ॥ १ ॥
सुख-साधन हरि बिमुख बृथा, ज्यों स्रम - फल घृत - हित मथे पाथ ।
यह बिचारि, तजि कुपथ, सुसंगति चलु, सुपंथ मिलि भले साथ ॥ २ ॥
देखु राम - सेवक, सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ ।
हृदय - आनु धनु - बान पानि प्रभु, लसे मुनिपट, कटि कसे भाथ ॥ ३ ॥
'तुलसिदास' परिहरि प्रपंच सब, नाउ राम - पद - कमल माथ ।
जनि डरपहि तो - से अनेक खल, अपनाये जानकी - नाथ ॥४॥ (८४)

राग धनाश्री

मन ! माधव - को नेकु निहारहि ।
सुनु सठ, सदा रंक - के धन - ज्यों, छिन - छिन प्रभुहिं सँभारहि ॥ १ ॥
सोभा - सील, ज्ञान - गुन - मंदिर, सुंदर, परम उदारहि ।
रंजन - संत, अखिल - अघ - गंजन, भंजन - बिषय - बिकारहि ॥ २ ॥

अरे मन ! (देख मैं तुझे बतलाए देता हूँ कि एक दिन) तू हाथ मल-मलकर पछतायगा । देख ! तुझे यह मानव-शरीर बड़ी सरलतासे हाथ आ लगा है जो देवताओंको भी नहीं मिल पाता । थोड़ा विचार तो कर कि ऐसा दुर्लभ मानव-शरीर तू व्यर्थ क्यों खोए डाल रहा है ? ॥१॥ तू भगवान्‌को भुलाकर सुख प्राप्त करनेके लिये जितने भी साधन करेगा, वे 'पानी मथकर घी निकालने'के समान व्यर्थ होंगे । यह सोच-समझकर बुरा मार्ग और बुरोंका संग छोड़ दे और अच्छे मार्गपर चलकर सज्जनोंका साथ कर ॥ २ ॥ (इसके लिये) भगवद्भक्तोंका दर्शन कर, हरिकी कथा और कीर्तन सुन, भगवान्‌का नाम स्मरण कर और बैठकर रामकी कथा गाया कर । तू अपने हृदयमें उन रामका ध्यान किया कर जो हाथोंमें धनुष-बाण लिए मुनियोंका-सा बाना बनाए और (कमरमें) तरकश कसे हुए हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदास ! संसारकी सभी झंझटें छोड़कर रामके चरण - कमलोंमें जाकर मस्तक झुका आ । तू मनमें किसी प्रकारका भय न कर । जानकीनाथ राम तेरे जैसे न जाने कितने खल अपनी शरणमें लिए बैठे हैं (निर्भय करके वे तुझे अवश्य अपना लेंगे) ॥४॥ (८४)

अरे मन ! तू माधव (मा = लक्ष्मी, धव = पति, विष्णु, राम)-की ओर थोड़ा देख तो ले । अरे शठ ! सुन, जिस प्रकार दरिद्र मनुष्य प्रति क्षण अपना धन सहेजा करता है, वैसे ही तू भी प्रतिक्षण भगवान्‌का स्मरण करता रह ॥ १ ॥ वे (भगवान्) शोभा, शील, ज्ञान और गुणोंके भंडार, सुन्दर और परम उदार हैं । वे सन्तोंको सुख देते रहते हैं और सम्पूर्ण पाप तथा सांसारिक विषयों (काम, क्रोध, लोभ आदि)-के विकार नष्ट कर डालते हैं ॥ २ ॥ अरे तुलसीदास ! यदि तू

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जौ बिनु - जोग - जग्य - व्रत - संजम, गयो चहहि भव पारहि ।
तौ जनि 'तुलसिदास' निसि-बासर हरिपद-कमल बिसारहि ॥ ३ ॥(८५)

इहै कह्यो सुत ! बेद चहूँ ।
श्री - रघुबीर - चरन - चिंतन तजि, नाहिंन ठौर कहूँ ॥ १ ॥
जाके चरन बिरंचि सेइ, सिधि पाई संकर - हूँ ।
सुक - सनकादि मुक्त बिचरत, तेउ भजन करत अजहूँ ॥ २ ॥
जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ ।
हरिपद - पंकज पाइ अचल भइ, करम - बचन - मनहूँ ॥ ३ ॥
करुना - सिंधु, भगत - चिंतामनि, सोभा सेवत हूँ ।
और सकल सुर - असुर - ईस सब, खाए उरग छहूँ ॥ ४ ॥
सुरुचि कह्यो सोइ सत्य, तात ! अति परुष बचन जबहूँ ।
'तुलसिदास' रघुनाथ - बिमुख, नहि मिटै बिपति कबहूँ[1] ॥ ५ ॥(८६)

सुनु मन मूढ़ ! सिखावन मेरो ।
हरिपद - बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझि सबेरो ॥ १ ॥

योग, यज्ञ, व्रत, संयम आदिके बिना ही भवसागरसे पार होना चाहता हो तो दिन-रात भगवान्‌के चरण-कमलोंका ध्यान करता रह ॥ ३ ॥ (८५)

(ध्रुवसे उसकी माता सुनीति कहती हैं–) 'देखो पुत्र ! चारों वेदोंने सदा यही कहा है कि रामके चरणोंका ध्यान किए बिना इस जीवको कहीं भी चैन नहीं मिल सकता ॥ १ ॥ उन चरणोंकी सेवा करके ही ब्रह्मा और शिवने सिद्धियाँ प्राप्त कीं, शुक, सनकादि जीवन्मुक्त होकर निश्चिन्त विचर रहे हैं और वे अब भी उनका भजन किए जा रहे हैं ॥ २ ॥ यद्यपि लक्ष्मी सदासे चंचला कही गई हैं और वे कभी और कहीं स्थिर नहीं रहतीं पर वे भी भगवान्‌के चरण-कमल पाकर, मन वचन और कर्मसे शान्त (स्थिर) हुई बैठी हैं (फिर भला जीव क्यों न शान्त होगा ?) ॥ ३ ॥ परम दयालु और भक्तोंके लिये चिंतामणिके समान (सब चिन्ताएँ मिटा डालनेवाले) रामकी सेवा करते रहनेमें ही तो शोभा है । जितने देवता, दैत्य और ऐश्वर्यशाली प्रभु हैं उन सबको छहों प्रकारके (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य) सर्प डसे जा रहे हैं । (केवल हरिभक्त ही अछूते बच गए हैं) ॥ ४ ॥ इसलिये बेटा ध्रुव ! तुम्हारी विमाता सुरुचिने जो तुमसे कहा है, वह सत्य ही है, चाहे सुननेमें वह तुम्हें भले ही कठोर (बुरा) लगा हो ।' अतः, (तुलसीदास कहते हैं कि) जबतक रामसे विमुख रहोगे तबतक यह विपत्ति कभी दूर नहीं हो सकती ॥५॥ (८६)

अरे मूढ मन ! मेरी सिखावन मान ले । भगवान्‌के चरणोंसे विमुख (दूर) रहकर कोई सुख नहीं पा सकता । अरे शठ ! यह बात भली भाँति समझ ले । अभी तो सवेरा है । (अभी तो जीवनका आरम्भ-काल है, अभीसे सँभल जा) ॥ १ ॥ जबसे भगवान्‌के मनसे चन्द्रमा और

१. ध्रुवकी माता सुनीतिने ध्रुवको समझा-बुझाकर जो तप करनेका उपदेश दिया उसीके आधार-पर यह पद लिखा गया है ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिछुरे ससि - रबि, मन नयननि - तें, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस - गगन सो, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥ २ ॥
जद्यपि अति पुनीत सुर - सरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत निज, बहिबो ताहू - केरो ॥ ३ ॥
मिटै न बिपति, भजे - बिनु रघुपति, स्रुति संदेह निबेरो।
'तुलसिदास' सब आस छाँड़ि - करि, होहि राम-कर चेरो ॥ ४ ॥ (८७)

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसि-दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ-तहँ इंद्रिय तान्यो ॥ १ ॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममता - बस, जानत-हू नहिं जान्यो ॥ २ ॥
जनम अनेक किए नाना बिधि, करम - कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल, बिबेक - नीर - बिनु, बेद - पुरान बखान्यो ॥ ३ ॥
निज हित नाथ, पिता, गुरु, हरि-सों, हरषि हृदय नहिं आन्यो।
'तुलसिदास' कब तृषा जाइ ? सर खनतहिं जनम सिरान्यो ॥ ४ ॥(८८)

और नेत्रों से सूर्य अलग हुए तभीसे वे बहुत दुःख उठा रहे हैं (चक्कर लगाए जा रहे हैं)। एक तो वे यों ही आकाशमें दिन-रात घूमते-घूमते थककर चूर हुए रहते हैं उसपर उनका बड़ा भारी शत्रु राहु उनके पीछे पड़ा रहता है ॥ २ ॥ यद्यपि गंगा अत्यन्त पवित्र मानी गई हैं, उनका सुयश भी तीनों लोकोंमें बहुत बड़ा है, किन्तु जबसे वे भगवान्‌के चरणोंसे अलग हुईं, तभीसे उनका (बहते रहनेका) कष्ट नहीं मिट पाता (वे बराबर बहती ही रहती हैं) ॥ ३ ॥ वेदों ने भी संदेह दूर करके (निश्चित) कह दिया है कि रामका भजन किए बिना किसीकी विपत्ति नहीं मिट सकती। इसलिये तुलसीदास ! तू भी सबकी आशा छोड़कर जाकर रामका सेवक बन बैठ ॥ ४ ॥ (८७)

अरे मन ! (तुझे इतना समझाया कि चुप होकर बैठ, पर) तूने कभी भी शान्त होकर बैठनेकी बात नहीं मानी। तू अपने ही सुखमें भूलकर दिन-रात चक्कर लगाया करता है और इन्द्रियोंकी खींचा-तानीमें पड़ा रहता है (जिधर तेरी इन्द्रियाँ तुझे ले जाती हैं, उसी ओर चल देता है) ॥१॥ यद्यपि विषयोंके साथ रहकर तूने बहुत ही दारुण दुःख सहे हैं और कठिन जालमें भी तू फँसा पड़ा रहा फिर भी अरे मूर्ख ! तेरी उनसे इतनी ममता हो गई है कि तू उन्हें छोड़ना नहीं चाहता। तू उन्हें (विषयोंके दुःख) जानकर भी अनजान ही बना रहा ॥ २ ॥ अनेक जन्मोंसे तू जो अनेक प्रकारके कर्म करता चला आ रहा है उसी कीचमें तेरा चित्त अब भी फँसा पड़ा है। पर तेरा यह मल तबतक नहीं छूटेगा जबतक विवेक-रूपी जलसे तू इसे धो नहीं लेता। यह बात वेद-पुराणने स्पष्ट रूपसे कह दी है ॥ ३ ॥ अपने मित्र, स्वामी, पिता और गुरुके साथ जैसा प्रेम किया जाता है वैसा प्रेम तूने कभी प्रसन्न चित्तसे भगवान्‌से नहीं किया। बता तुलसीदास ! उस तालाबसे कैसे कब प्यास बुझ सकती है जिसे खोदनेमें ही सारा जीवन लग जाय ? ॥४॥ (८८)

१. 'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत'— पुरुषसूक्त, १२।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मेरो मन हरि जू ! हठ न तजै ।
निसि-दिन नाथ ! देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाव निजै ।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव, अति दारुन दुख उपजै ।
ह्वै अनुकूल, बिसारि सूल सठ, फिरि खल पतिहिं भजै ॥ २ ॥
लोलुप भ्रमत गृहप[1] ज्यों जहँ - तहँ, सिर पद - त्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग, कबहुँ न मूढ़ लजै ॥ ३ ॥
हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि, अतिसय प्रबल अजै ।
'तुलसिदास' बस होइ तबहिं जब, प्रेरक प्रभु बरजै ॥ ४ ॥(८९)

ऐसी मूढ़ता या मन - की ।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओस-कन - की ॥ १ ॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों तृषित, जानि मति घन - की ।
नहिं तहँ सीतलता, न बारि, पुनि हानि होति लोचन - की ॥ २ ॥
ज्यों गच - काँच बिलोकि सेन जड़, छाँह आपने तन - की ।
टूटत अति आतुर अहार-बस, छति बिसारि आनन - की ॥ ३ ॥

हरि जी ! (क्या करूँ) मेरा मन (ऐसा हठ पकड़े बैठा है कि) यह हठ ही नहीं छोड़ रहा है । नाथ ! यद्यपि इसे मैं दिन-रात बहुत समझाता रहता हूँ फिर भी यह करता वही है जो इसे अच्छा लगता है । जैसे युवती प्रसव-कालके समय तो असह्य पीडाका अनुभव करती है, पर वह ऐसी मूर्खा है कि (प्रसवके कष्टोंसे) स्वस्थ होनेपर उस असह्य कष्टको भूल जाती है और फिर पतिका संग करने लगती है ॥ १ ॥ जैसे लालची कुत्ता द्वार-द्वार दौड़ता फिरता है और जहाँ-तहाँ उसके सिरपर जूते भी पड़ते रहते हैं फिर भी उस मूर्खको उसी मार्गपर चलते हुए कभी लज्जा नहीं आती ॥ २ ॥ मैं तो अनेक प्रकारके उपाय करके हार गया, किन्तु मेरा यह (मन) मुझसे कहीं अधिक बलवान् और अजेय बना बैठा है । तुलसीदास कहते हैं कि यह मन तभी वशमें आ सकता है जब संसारके प्रेरक प्रभु राम ही इसे रोकें (बाँधकर रक्खें) ॥ ३ ॥ (८९)

इस मनकी मूढता ऐसी है कि रामकी भक्तिकी गंगा छोड़कर, (सांसारिक सुख-रूपी) ओसकी बूँदों (-से प्यास बुझाने)-की आशा लिए बैठा है ॥ १ ॥ प्यासा पपीहा बहुत धुँआ देखकर उसे मेघ समझ बैठता है, किन्तु (वहाँ जानेपर) उसे न तो शीतलता मिलती और न पानी ही । उलटे, धुएँके कारण उसकी आँखें कड़वाने लगती हैं (वैसी ही दशा इस मनकी भी है) ॥ २ ॥ जैसे मूर्ख बाज (पक्षी) काँचकी गच (छतके ऊपरी भाग)-पर अपनी छाया पड़ती देखकर (उसे पक्षी जानकर) भूखके मारे बड़े झपट्टेसे उसपर टूट तो पड़ता है पर यह भूल जाता है कि इससे मेरा मुँह टूट जायगा ॥ ३ ॥ कृपानिधान राम ! मैं इस मनकी कुचालका

१. गृहप = घरकी रखवाली करनेवाला, कुत्ता ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कहँ - लौं कहौं कुचाल कृपानिधि ! जानत हौ गति मन - की ।
'तुलसिदास' प्रभु ! हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन-की ॥ ४ ॥(९०)

नाचत ही निसि - दिवस मन्यो ।
तब ही - तें न भयो हरि ! थिर, जब - तें जिव नाम धन्यो ॥ १ ॥
बहु बासना, बिबिध कंचुक - भूषन लोभादि भन्यो ।
चर अरु अचर, गगन - जल - थल - में, स्वाँग न कौन कन्यो ॥ २ ॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, नहिं जाँचत कोउ उबन्यो ।
मेरो दुसह दरिद्र - दोष - दुख, काहू तो न हन्यो ॥ ३ ॥
थके नयन - पद - पानि - सुमति - बल, संग सकल बिछुन्यो ।
अब रघुनाथ - सरन आयो जन, भव - भय - बिकल डन्यो ॥ ४ ॥
जेहि गुन - तें बस होहु रीझि करि, सो मोहिं सब बिसन्यो ।
'तुलसिदास' निज भवन - द्वार, प्रभु ! दीजै रहन पन्यो ॥ ५ ॥(९१)

माधव जू ! मो - सम मंद न कोऊ ।
जद्यपि मीन - पतंग हीन - मति, मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ ॥ १ ॥

कहाँ-तक वर्णन करूँ ? आप तो सबके मनकी दशा जानते ही हैं । प्रभो ! तुलसीदासका यह दुःसह दुःख दूर करके अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा कर लीजिए ॥ ९० ॥

हरि ! यहाँ तो रात-दिन नाचते-नाचते दम निकल गया है । हरि ! जबसे आपने मेरा 'जीव' नाम रक्खा तबसे यह कभी स्थिर नहीं हो पाया (अनेक योनियोंमें भटकता फिरा) ॥ १ ॥ (इस नाचमें) अनेक प्रकारके इच्छा-रूपी वस्त्र तथा लोभ-रूपी अलंकार पहन-पहनकर चर और अचर रूपसे आकाश, जल और स्थलमें सर्वत्र ऐसा कोई स्वाँग न बचा जो इसने न रचा हो (कोई योनि नहीं बची जिसमें जन्म न लिया हो और उसका भोग न भोगा हो) ॥ २ ॥ देवता, दैत्य, मुनि, सर्प, मनुष्य आदि ऐसा कोई न बचा जिसके आगे मैंने कुछ न कुछ माँगनेके लिये हाथ न पसारा हो, पर कोई भी मेरा यह दारुण दुःसह दुःख दूर न कर पाया ॥ ३ ॥ अब तो आँख, पैर, हाथ, बुद्धि तथा बल सब थक चले हैं और इन सबने साथ भी छोड़ दिया है (सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं) । अब तो राम ! संसारके भयसे डरकर मैं आपकी ही शरणमें आ पहुँचा हूँ ॥ ४ ॥ नाथ ! जिन गुणोंपर रीझकर आप प्रसन्न हुआ करते थे, वे सब भी मुझे स्मरण नहीं रहे । आपको मैं किस प्रकार प्रसन्न करूँ, यह भी मैं नहीं जानता । प्रभो ! अब तो बस जैसे भी हो इस तुलसीदासको आप अपने द्वारपर ही पड़ा रहने दीजिए । (इससे अधिक वह आपसे और कुछ नहीं चाहता) ॥ ५ ॥ (९१)

माधव ! मेरे समान मूर्ख और कोई है नहीं । यद्यपि मछली और फतिंगे दोनों मूर्ख ही कहे जाते हैं, पर वे भी कोई मेरी बराबरी नहीं कर सकते ॥ १ ॥ इन दोनों (फतिंगे और मछली)-ने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रुचिर रूप - आहार - बस्य उन, पावक - लोह न जान्यो।
देखत बिपति, न बिषय तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो ॥ २ ॥
महामोह - सरिता अपार - महँ संतत फिरत बह्यो।
श्रीहरिचरन - कमल नौका तजि, फिरि - फिरि फेन गह्यो ॥ ३ ॥
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति, ज्यों भरि मुख पकर्‌यो।
निज तालू-गत रुधिर पान करि, मन संतोष धर्‌यो ॥ ४ ॥
परम - कठिन - भव - ब्याल - ग्रसित हौं, त्रसित भयो अति भारी।
चाहत अभय भेक - सरनागत, खगपति - नाथ बिसारी ॥ ५ ॥
जलचर - वृंद जाल अंतरगत, होत सिमिटि इक पासा।
एकहि एक खात लालच - बस, नहिं देखत निज नासा ॥ ६ ॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग, गनत, पार नहिं पावै।
'तुलसीदास' पतित - पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै ॥ ७ ॥ (९२)

कृपा सो (धौं) कहाँ बिसारी राम ?
जेहि करुना सुनि स्रवन दीन - दुख, धावत हौ तजि धाम ॥ १ ॥

(दीपके) सुन्दर रूप और चारे (आहार)-के फेरमें पड़कर (दीपकी) आग और (बनसीके) लोहेको नहीं पहचाना और धोखेमें पड़कर प्राण गँवा दिए। इधर मैं हूँ कि भी इतना सब कष्ट देखकर और जानकर भी सांसारिक विषय (मोह-माया)-का साथ नहीं छोड़ पा रहा हूँ। इसलिये मैं उन दोनोंसे अधिक मूर्ख हूँ ही ॥ २ ॥ मैं महामोह (अज्ञान)-की नदीमें निरन्तर बहा-बहा फिर रहा हूँ और भगवान्‌के चरणाविन्दकी नौका छोड़कर बार-बार फेन पकड़ने लपकता हूँ ॥ ३ ॥ जैसे भूखा कुत्ता पुरानी सूखी हड्डी मुँहमें लेकर उस हड्डीकी रगड़से तालूमें निकला हुआ रक्त चाटकर ही सन्तुष्ट हुआ रहता है उसी प्रकार मैं भी विषय-सुखके फेरमें पड़कर अपनी ही शक्ति कम किए डाल रहा हूँ और उसे ही परम सुख माने बैठा हूँ (यही मेरी सबसे बड़ी मूर्खता है) ॥ ४ ॥ मैं संसार-रूपी साँपसे डसे जानेके कारण बहुत ही डरा बैठा हूँ, फिर भी (सर्पको खा जानेवाले) गरुडकी सवारी करनेवाले भगवान्‌की शरणमें न जाकर मैं मेंढककी शरण ढूँढ रहा हूँ (जिसे सर्प निगल जाता है) (जो स्वयं नश्वर है उसकी सहायता लेना चाहता हूँ और उसीसे अपनी रक्षाकी आशा लगाए बैठा हूँ) ॥५॥ जैसे जलके जीव जालमें सिमिट-सिमिटकर इकट्ठा होनेपर भी लोभवश एक दूसरेको खाने लगते हैं और अपने नाशकी चिन्ता नहीं करते (वैसी ही दशा मेरी हो रही है) ॥६॥ यदि अनेक युगोंतक सरस्वती बैठी मेरे पापोंकी ही गणना करती रह जायँ तो भी उनका अन्त न पा सकेंगी। पर तुलसीदासके मनमें तो पूरा विश्वास है कि उसके जो प्रभु राम, पतितोंका उद्धार कर डालते हैं, वे मेरा उद्धार भी अवश्य कर ही देंगे ॥ ७ ॥ (९२)

राम ! आपने अपनी वह कृपा कहाँ भुला दी जिसके कारण दीनोंके दुःखोंकी करुण पुकार कानोंमें पड़ते ही आप अपना काम-धाम छोड़कर दौड़ पड़ते थे ॥ १ ॥ जब गजेन्द्रने अपना बल

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाग - राज निज बल बिचारि हिय, हारि, चरन चित दीन्ह ।
आरत गिरा सुनत, खगपति तजि, चलत बिलंब न कीन्ह ॥ २ ॥
दितिसुत - त्रास - त्रसित निसि-दिन, प्रहलाद-प्रतिग्या राखी ।
अतुलित बल मृगराज - मनुज - तनु, दनुज हत्यो श्रुति साखी ॥ ३ ॥
भूप-सदसि सब नृप बिलोकि, 'प्रभु ! राखु' कह्यो नर-नारी ।
बसन पूरि, अरि - दरप दूरि करि, भूरि कृपा दनुजारी ॥ ४ ॥
एक एक रिपु - तें त्रासित जन, तुम राखे रघुबीर ।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु, कस न हरहु भव - पीर ॥ ५ ॥
लोभ - ग्राह, दनुजेस क्रोध, कुरुराज - बंधु खल मार ।
'तुलसिदास' प्रभु यह दारुन दुख, भंजहु राम ! उदार ॥ ६ ॥(९३)

काहे-तें हरि मोहिं बिसारो ।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो ॥ १ ॥
पतित - पुनीत, दीन - हित, असरन-सरन, कहत श्रुति चारो ।
हौं नहिं अधम, सभीत, दीन ? किधौं बेदन वृथा पुकारो ॥ २ ॥

(नष्ट हुआ) समझकर और हृदयमें हार मानकर आपके चरणोंमें चित्त जा लगाया उस समय उसकी आर्त्त वाणी सुनते ही आप गरुड छोड़कर (नंगे पाँव) वहाँ दौड़े जा पहुँचे, तनिक भी देर न लगाई ॥२॥ हिरण्यकशिपुसे रात-दिन भयभीत रहनेवाले प्रह्लादकी प्रतिज्ञा आपने पूरी कर दिखाई । महान् बलवान् नृसिंहका रूप बनाकर आपने उस दैत्य (हिरण्यकशिपु)-को ढेर कर डाला । वेद इसका साक्षी है ॥ २ ॥ नरके अवतार अर्जुनकी पत्नी द्रौपदीने जब राज-सभामें (अपनी लाज जाते देखकर) सब राजाओंके सामने आपको पुकारा—'नाथ ! मेरी रक्षा कीजिए', तब दैत्य-शत्रु ! आपने वहाँ वस्त्रोंका अम्बार लगाकर शत्रुओंका घमंड चूर-चूर करके उस (द्रौपदी)-पर बड़ी कृपा कर दी (उसकी रक्षा कर ली) ॥ ३ ॥ राम ! आपके इन भक्तोंको तो एक ही एक शत्रु सताए जा रहा था जिससे आपने उनकी रक्षा की पर यहाँ तो मुझे बहुतसे शत्रु (काम, क्रोध आदि) असह्य कष्ट दिए जा रहे हैं, तब आप मेरी यह भव-पीडा दूर करने क्यों नहीं दौड़े चले आते ? ॥ ४ ॥ लोभ-रूपी ग्राह (मगर), क्रोध-रूपी दैत्यराज (हिरण्यकशिपु), दुष्ट कामदेव-रूपी (दुर्योधनका भाई) दुःशासन—ये सभी मुझे (तुलसीदासको) दारुण दुःख दिए चले जा रहे हैं । उदार राम ! अब आप झटपट आकर मेरा यह दारुण दुःख दूर कर डालिए ॥ ५ ॥ (९३)

क्यों हरि ! बताइए, आप मुझे भुला क्यों बैठे हैं ? नाथ ! आप अपनी महिमा (कि आप पापियोंका उद्धार करते हैं) और मेरे पाप, इन दोनोंको जानते हुए भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं ॥ १ ॥ चारों वेद यही कहते हैं कि आप पतितोंका उद्धार करते हैं, दीनोंका हित करते हैं और जिन्हें कहीं शरण नहीं मिलती उन्हें शरण देते हैं; तो बताइए क्या मैं पतित या दीन या भयभीत नहीं हूँ ? या वेदों ने क्या व्यर्थ ही यह सब कह डाला है ॥२॥ आपने मुझे पक्षी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खग - गनिका - गज - ब्याध - पाँति जहँ, तहँ हौं हूँ बैठारो।
अब केहि लाज निधान - कृपा, परसत पनवारो फारो॥ ३॥
जौं कलिकाल प्रबल अति होतो, तव निदेस - तें न्यारो।
तौ हरि! रोस - भरोस- दोस- गुन, तेहि भजतो तजि गारो॥ ४॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक - सम, करहु प्रभाव तुम्हारो।
यह समरथ आछत मोहिं त्यागहु, नाथ! तहाँ को चारो॥ ५॥
नाहिंन नरक परत मो - कहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास 'दास तुलसी' प्रभु - नामहु पाप न जारो॥ ६॥(९४)

तऊ न मेरे (अघ-) अवगुन गनिहैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि, इहै ख्याल उर अनिहैं॥ १॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिन - के, असमंजस जिय जनिहैं।
देखि खलल अधिकार, प्रभू-सों (मेरी) भूरि भलाई भनिहैं॥ २॥
हँसि करिहैं परतीत भगत - की, भगत - सिरोमनि मनिहैं।
ज्यों त्यों 'तुलसिदास' कोसलपति, अपनायेहि - पर बनिहैं॥ ३॥(९५)

(जटायु), गणिका (पिंगला वेश्या), गज और व्याध (वाल्मीकि) आदिकी श्रेणीमें तो ला बैठाया, पर कृपानिधान! अब आप किस बातसे लजाकर परसी-परसाई पत्तल आगेसे उठाकर फाड़े डाल रहे हैं॥ ३॥ यदि मैं समझता होता कि कलिकाल इतना प्रबल है कि आपकी आज्ञा भी नहीं मानता तो हरि! मैं अपना गौरव भूलकर (कि मैं रामका सेवक हूँ) तथा आपका भरोसा छोड़कर कलियुगके प्रति रोष और उसके गुण-दोषोंका विचार न करके बैठा उसीके गुण गाया करता॥ ४॥ परन्तु आपका प्रभाव तो मैं जानता हूँ कि आप मच्छड़को ब्रह्माके समान महान् और ब्रह्माको मच्छड़के समान तुच्छ बना सकते हैं। जब इतना सामर्थ्य होते हुए भी आप मुझे त्यागे दे रहे हैं, तब बताइए मैं क्या कर सकता हूँ॥ ५॥ तुलसीदास कहते हैं—'यद्यपि मैं सब प्रकारसे थका बैठा हूँ, तो भी मुझे नरक जानेका भय नहीं है। प्रभो! मुझे तो केवल इसी बातका डर है कि आप-तकका नाम भी मेरे पाप नहीं जला पाया (यदि मेरा उद्धार न हुआ तो आपकी बदनामी होगी)॥ ६॥ (९४)

यदि यमराज अपना सब काम-धाम छोड़कर केवल मेरे पाप ही गिननेमें लग जाय तो भी वह मेरे पाप और अवगुण नहीं गिन पा सकता॥१॥ हाँ, इससे मेरा यह लाभ अवश्य होगा कि जब यमराज मेरे पापोंकी गिनती करने बैठेंगे तब पापियोंके झुंडके झुंड अवसर पाते ही यमपुरीसे भाग निकलेंगे। तब तो यमराज बड़े असमंजसमें पड़ जायँगे और अपने अधिकारमें बाधा पड़ते और उपद्रव होते देखकर (मेरे पाप गिनना छोड़कर) भगवान्‌से मेरी प्रशंसा कर बैठेंगे (कि तुलसीदास साधु है)॥२॥ तब भगवान् भी हँसकर अपने भक्त यमराजपर विश्वास कर लेंगे और मुझे भक्त-शिरोमणि मान लेंगे। तुलसीदास कहते हैं—'कोशलपति राम! अब तो जैसे भी हो, आपको, मुझे अपनाना ही पड़ेगा'॥ ३॥ (९५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जौ (पै) जिय धरिहौ अवगुन जन - के।
तौ क्यों कटत सुकृत - नख मोपै, बिपुलबृंद अघ - बन के ॥ १ ॥
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत, करम - बचन अरु मन - के।
हरिहैं अमित सेस, सारद, स्रुति, गिनत एक-ऐक छन - के ॥ २ ॥
जौ चित चढ़ै नाम - महिमा निज गुन - गन पावन पन-के।
तौ 'तुलसी' तारिहौ बिप्र - ज्यों, दसन तोरि जमगन - के ॥ ३ ॥(९६)

जौ हरि ! जन - के अवगुन गहते।
तौ सुरपति, कुरुराज, बालि - सों, कत हठि बैर बिसहते ? ॥ १ ॥
जौ जप - जाप - जोग - ब्रत - बरजित, केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर - मुनिवर बिहाय ब्रज, गोप - गेह बसि रहते ॥ २ ॥
जौ जहँ - तहँ पन राखि भगत - को, भजन - प्रभाव न कहते।
तौ कलि कठिन करम-मारग जड़, हम केहि भाँति निबहते ॥ ३ ॥

राम ! यदि आप इस दास (तुलसी)-के अवगुणोंपर विचार करने लगेंगे तब मैं अपने पुण्य-रूपी नखों (थोड़ेसे पुण्यों)-से पापरूपी बड़े-बड़े वनसमूह कैसे काट पाऊँगा ? (मेरे पुण्य तो शरीरमें नखके समान बहुत थोड़े हैं और पाप हैं वन-जैसे। जैसे नखोंसे वन नहीं काटा जा सकता वैसे ही अपने पुण्योंके सहारे मैं पाप नहीं काट पाऊँगा) ॥ १ ॥ मैंने मन, वचन और कर्मसे जो पाप किए हैं उनका वर्णन भला कौन कर सकता है ? मैंने एक-एक क्षणमें जो-जो पाप कर डाले हैं उनकी गणना यदि अनेक शेष, सरस्वती और वेद भी मिलकर करने बैठ जायँ तो थककर बैठ रहें ॥ २ ॥ हाँ, यदि (मेरे पापोंकी ओर ध्यान न देकर) आपके मनमें अपने नामकी महिमा और भक्तोंके उद्धार करनेके गुणोंके पवित्र प्रणका ध्यान आ जाय, तो आप यमदूतोंके दाँत तोड़कर तुलसीदासको भी वैसे ही भवसागरसे पार कर देंगे जैसे आपने ब्राह्मण (अजामिल)-को पार किया था ॥ ३ ॥ (९६)

हरि ! यदि आप अपने भक्तोंके दोषपर ही ध्यान दिया करते तो इन्द्र[१], दुर्योधन[२] और बालिसे[३] क्यों बरबस शत्रुता मोल लेते ? ॥ १ ॥ यदि आप जप, यज्ञ, व्रत आदिके बदले केवल प्रेमके ही भूखे न होते तो इतने देवता और मुनियोंको छोड़कर ब्रजमें (नन्द) गोपके घर क्यों आकर रहते ? ॥२॥ यदि आप भक्तोंके प्रणकी रक्षा करके अपने भजनका प्रभाव न बताते तो मेरे जैसे मूर्ख प्राणी इस कलिकालके कर्म-मार्गपर चलकर किस प्रकार मुक्त हो पाते ? (इस कराल कलिकालमें भजनके अतिरिक्त और किस कर्मके द्वारा हमारा उद्धार हो सकता था ? एक मात्र अपने नामस्मरणका

१. जब सत्यभामाके साथ कृष्ण अमरावती गए तो सत्यभामाके कहनेसे कृष्ण वहाँसे परिजातका वृक्ष उखाड़ ले चले। इसपर कृष्ण और इन्द्रमें युद्ध ठन गया। अन्तमें इन्द्र हार गए और परिजात लेकर कृष्ण चले आए। २. जब कृष्ण पांडवोंके दूत बनकर हस्तिनापुरमें दुर्योधनके यहाँ गए तो दुर्योधनने उनका अपमान किया और उन्हें बन्दी करना चाहा। कृष्णने पांडवोंका पक्ष लिया और महाभारतके युद्धमें दुर्योधनको हराया। ३. सुग्रीवसे मित्रता करनेपर उसकी रक्षा करनेके लिये रामने बालिको मार डाला।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जौ सुत - हित लिय नाम अजामिल-के अघ अमित न दहते ।
तौ जम - भट साँसति-हर हम-से बृषभ खोजि-खोजि नहते ॥ ४ ॥
जौ जग - बिदित पतित - पावन, अति बाँकुर बिरद न बहते ।
तौ बहु कल्प कुटिल 'तुलसी' - से, सपनेहुँ सुगति न लहते ॥ ५ ॥(९७)

अस हरि करत दास - पर प्रीति ।
निज प्रभुता बिसारि जन - के बस होत सदा यह रीति ॥ १ ॥
जेहि बाँधे सुर - असुर - नाग - नर प्रबल करम - की डोरी ।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो, सकत न छोरी ॥ २ ॥
जाकी माया - बस बिरंचि - सिव, नाचत पार न पायो ।
करतल ताल बजाइ ग्वाल - जुवतिन सोइ नाच नचायो ॥ ३ ॥
बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवन - पति, बेद - बिदित यह लीख ।
बलि - सों कछु न चली प्रभुता, बरु ह्वै द्विज माँगी भीख ॥ ४ ॥
जाको नाम लेत छूटत बहु - जनम - मरन - दुख - भार ।
अंबरीष - हित - लागि कृपानिधि, सोइ जनम्यो दस बार ॥ ५ ॥
जोग - बिराग - ध्यान-जप-तप करि, जेहि खोजत मुनि ज्ञानी ।
बानर - भालु चपल पसु पाँवर, नाथ तहाँ रति मानी ॥ ६ ॥

ही तो आधार था) ॥३॥ यदि आपने उस अजामिलके अनन्त पापों भस्म न कर डाला किया होता, जिसने पुत्र-भावनासे ही आपका नाम (नारायण) लिया था, तो अबतक यमके दूत हम-जैसे बैलोंको न जाने कबके खोज-खोजकर यातनाके हलमें पकड़ जोतते ॥ ४ ॥ यदि आपने जगत्-प्रसिद्ध 'पापियोंके उद्धार करनेवाले' यह बाँका बाना न लिया होता, तो यह दुष्ट तुलसीदास तो अनेक कल्पों-तक स्वप्नमें भी सद्गति न प्राप्त कर पाता ॥ ५ ॥ (९७)

भगवान् अपने सेवकपर सदासे ऐसी प्रीति करते हैं कि वे अपनी महिमा भूलकर भक्तके वशमें हुए रहते हैं । उनकी यह रीति सदासे चली आई है ॥ १ ॥ जिसने देवता, दैत्य, नाग और मनुष्योंको कर्मकी दृढ डोरीसे बाँध रक्खा है (कर्मोमें फाँस रक्खा है) उसी अखंड ब्रह्मको यशोदाने हठपूर्वक ऐसा बाँध दिया कि उस बन्धनको आप भी न खोल सके ॥ २ ॥ जिसकी मायाके फेरमें पड़कर ब्रह्मा और शिव-तक भी नाच-नाचकर पार न पा सके, उसी (प्रभु)-को गोपियोंने ताली बजा-बजाकर पकड़ नचाया ॥ ३ ॥ वेदोंमें यह बात दृढता-पूर्वक कही गई है कि परमात्माका नाम विश्वम्भर, लक्ष्मीपति, त्रिलोकीनाथ आदि होते हुए भी राजा बलिके आगे पहुँचनेपर उनकी सारी प्रभुता धरी रह गई । उलटे उन्हें ब्राह्मण बनकर भीख माँगनी पड़ी ॥४॥ जिनका नाम स्मरण करनेसे संसारके जन्म-मरण-रूपी भारसे छुटकारा मिल जाता है वही कृपासिन्धु (राजा नाभागके पुत्र) अम्बरीष-जैसे भक्तोंके लिये दस (अनेक) बार इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए ॥ ५ ॥ बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि जिसे योग, वैराग्य, ध्यान, जप और तपस्या करके प्राप्त करनेके फेरमें पड़े रहते हैं, उसी प्रभुने बन्दर, भालू आदि चंचल और नीच पशुओंको अपनालिया ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि लोकपाल, यम, काल,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब आज्ञाकारी।
'तुलसिदास' प्रभु उग्रसेन-के द्वार बेंत-कर-धारी॥ ७॥(९८)

बिरद गरीब-निवाज राम-को।
गावत बेद-पुरान-संभु-सुक, प्रगट प्रभाव नाम-को॥ १॥
ध्रुव, प्रहलाद, बिभीषन, कपि, जदुपति, पांडव, सुदाम-को।
लोक सुजस, परलोक सुगति, इनमें को हो राम! काम-को॥ २॥
गनिका, कोल, किरात, आदि-कबि, इनतें अधिक बाम को?
बाजिमेध कब कियो अजामिल? गज गायक कब साम-को॥ ३॥
छली, मलीन, हीन सबही अँग, तुलसि-सों छीन छाम को?
नाम-नरेस-प्रताप प्रबल जग, जुग-जुग चालत चाम-को॥ ४॥(९९)

सुनि सीतापति सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ॥ १॥
सिसुपन-तें पितु-मातु-बंधु-गुरु-सेवक-सचिव-सखाउ।
कहत, राम-बिधु-बदन रिसौंहैं सपनेहुँ लख्यौ न काउ॥ २॥

पवन, सूर्य, चन्द्रमा आदि सब जिसकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं, वही प्रभु, केवल प्रेमके कारण राजा उग्रसेनके द्वारपर हाथमें छड़ी लिए खड़े रहे हैं (उनकी सेवा करते रहे हैं)॥ ७॥ (९८)

वेद, पुराण, शिव और शुकदेवने रामकी यही प्रसिद्धि बताई है कि वे दीनोंको निहाल (संतुष्ट) कर डालते हैं। उनके नामका प्रभाव तो सब जानते ही हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, अहल्या, जटायु, पाण्डव और सुदामाको भगवान्‌ने इस लोकमें सुयश और परलोकमें परम गति (मोक्ष) दी; परन्तु राम! क्या इनमेंसे कोई भी किसी कामका था? (सब निकम्मे थे)॥ १॥ गणिका (जीवन्ती, पिंगला), कोल, किरात, आदिकवि (वाल्मीकि)-से बढ़कर कुमार्ग-गामी (पतित) कौन हो सकता है? अजामिलने कौन-सा अश्वमेध यज्ञ किया था और गजेन्द्र कब सामवेदका पाठ करता रहा? (पर आपने इन सबका उद्धार कर डाला)॥ २॥ तुलसीदास-जैसा छली, खोटा, पतित और पापी दूसरा कौन होगा? (कोई भी नहीं)। पर (राम-) नाम-रूपी राजाका तो ऐसा प्रबल प्रताप है कि युग-युगसे उनका चमड़ेका सिक्का भी चलता आ रहा है[1] (राम-नाम लेनेसे क्षुद्र पुरुष भी बड़ा बन जाता है)॥ ४॥ (९९)

सीतापति रामका शील-स्वभाव सुनते ही जिसका मन हरा नहीं हो उठता, शरीरमें फुरफुरी नहीं हो उठती तथा नेत्रोंमें प्रेमाश्रु नहीं भर आते, उस मनुष्यको जाकर धूल फाँकनी चाहिए॥ १॥ रामके पिता, माता, भाई, गुरु, सेवक, मंत्री और मित्र, सबने यही कहा है कि कभी स्वप्नमें भी किसीने रामके मुखपर क्रोध नहीं देखा (वे सदा प्रसन्न-वदन ही दिखाई पड़े)॥ २॥ उनके

---

१. जब शेरशाहने हुमायूँको (सन् १५४५में) पराजित कर दिया तब हुमायूँ भागा। बीचमें गंगा पार करनेके लिये एक भिश्तीने सहायता की। राज्य मिलनेपर हुमायूँने उस भिश्तीको दो घंटेके लिये बादशाह बना दिया। उसने उतने ही समयमें चमड़ेका सिक्का चला दिया जो राजमुद्राके रूपमें मान्य हो गया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खेलत संग अनुज - बालक नित, जोगवत अनट अपाउ।
जिते हारि चुचुकारि दुलारत, देत, दिवावत दाउ ॥ ३ ॥
सिला साप - संताप - बिगत भइ, परसत पावन पाँउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए पछिताउ ॥ ३ ॥
भव - धनु भंजि, निदरि भूपति, भृगु - नाथ खाइ गे ताउ।
छमि अपराध, छमाइ, पाँइ परि, इतो न अनत समाउ ॥ ५ ॥
कह्यो राज, बन दियो नारि - बस, गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु - को मन जोगवत ज्यों, निज तनु मरम कुघाउ ॥ ६ ॥
कपि - सेवा - बस भए कनौड़े, कह्यो, पवन - सुत ! आउ।
देबे - को न कछू, रिनियाँ हौं, धनिक ! तु पत्र लिखाउ ॥ ७ ॥
अपनाए सुग्रीव - बिभीषन, तिन न तज्यो छल - छाउ।
भरत - सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ॥ ८ ॥
निज करुना - करतूति भगत - पर चपत, चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम - प्रनत - जस बरनत, सुनत, कहत, फिरि गाउ ॥ ९ ॥

साथ जो उनके भाई तथा दूसरे लड़के खेलते थे, उनकी सब खटपट (दाँवपेंच) देखते रहते थे और अपनी जीत हो जानेपर भी वे उन्हें प्रसन्न करनेके लिये स्वयं हार मानकर प्रेमसे पुचकारकर उन्हें दाँव देते और दूसरोंसे भी दिलाते रहते थे ॥ ३ ॥ शिला बनी हुई अहल्या रामका चरण छू जानेसे जब ऋषिके शापसे मुक्त होकर अपने रूपमें आ गई और रामने उसे परम धाम भी दे दिया, तब भी उन्हें उसे मोक्ष देनेका इतना हर्ष नहीं हुआ जितना इस बातका दुःख और पछतावा होता रहा कि उस (ऋषि-पत्नी)-को मेरा पैर लग गया ॥ ४ ॥ रामने शिवका धनुष तोड़कर राजाओंका मान-मर्दन तो कर दिया पर जब धनुष-भंगका समाचार सुनकर परशुराम आकर बिगड़ने लगे, तब उनका अपराध क्षमा करके, (लक्ष्मणसे भी) क्षमा मँगवाई और उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा माँगी। इतनी सहनशीलता किसमें हो सकती है ? ॥ ५ ॥ पिता (दशरथ)-ने राज्य देनेको कहकर भी स्त्री (कैकेयी)-के कहनेपर वनवास दे दिया और इसी ग्लानिके मारे उन्होंने प्राण भी दे डाले। पर आप हैं कि उस कुमाताकी भी इस प्रकार सँभाल करते रहे जैसा कोई मर्म-स्थानके घावको (चोट-चपेटसे) बचाए रखता है (कैकेयीके मनमें कभी लज्जा, ग्लानि और दुःख होनेका आपने अवसर ही न आने दिया) ॥ ६ ॥ हनुमान्‌की सेवासे उपकृत होकर आपने उनसे यहाँतक कह दिया कि 'पवनपुत्र ! तुम्हें देनेके लिये तो मेरे पास कुछ है नहीं। मैं तुम्हारा (तुम्हारे उपकारोंका) ऋणी हूँ। चाहो तो मुझसे पत्र (पट्टा) लिखवा लो' ॥ ७ ॥ यद्यपि सुग्रीव और विभीषण दोनोंने अपनी कुचाल नहीं छोड़ी (सुग्रीवने बालिकी पत्नी ताराको और विभीषणने रावणकी पत्नी मन्दोदरीको रख लिया) फिर भी आपने उन्हें अपनाए रक्खा और भरतकी सभामें आपने उनकी सम्मानपूर्वक बहुत प्रशंसा भी की, फिर भी आपको सन्तोष न हुआ ॥८॥ आपने अपने भक्तोंपर जो-जो अनुग्रह और उपकार किए हैं, उनकी प्रसंगवश जब-जब आपके सामने चर्चा चली तब-तब आपने उसे वहीं टोक दिया पर जिसने एक बार भी आपको प्रणाम कर लिया उसकी महिमाका बखान करते आप स्वयं भी नहीं थके, औरोंसे भी उसका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समुझि - समुझि गुन - ग्राम राम - के, उर अनुराग बढ़ाउ ।
'तुलसिदास' अनयास राम - पद, पइहै प्रेम - पसाउ ॥ १० ॥(१००)

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतित-पावन जग ? केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥
कौन देव बरिआइ बिरद - हित, हठि - हठि अधम उधारे ?
खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप, जड़, जवन, कवन सुर तारे ॥ २ ॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया - बिबस बिचारे ।
तिनके हाथ 'दास तुलसी' प्रभु ! कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥(१०१)

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन - धाम बिबुध - दुर्लभ तनु, मोहिं कृपा करि दीन्हों ॥ १ ॥
कोटिहुँ मुख कहि जाइ न प्रभु - के, एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥ २ ॥
बिषय - बारि मन - मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
तेहि-तें सहौं बिपति अति दारुन, जनमि कुजोनि अनेक ॥ ३ ॥

सुयश सुनते रहे और दूसरोंको कहते भी रहे कि और सुनाओ ॥ ९ ॥ रामके ऐसे-ऐसे गुण सुन और समझकर ही मेरे हृदयमें भी प्रेमकी बाढ़ आ गई है । तुलसीदास ! इस प्रेमानन्दके कारण तो तू भी अनायास ही रामके चरणोंकी शरण प्राप्त कर लेगा ॥ १० ॥ (१०९)

नाथ ! बताइए आपके चरणोंको छोड़कर मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ ? बताइए, संसारमें आपको छोड़कर और किसका नाम पतित-पावन (पतितोंको पवित्र करनेवाला) है और आपको छोड़कर और कौन है जिसे दीन अत्यन्त प्यारे लगते हैं ? ॥ १ ॥ कौन देवता है जिसने अपने यशकी लाज रखनेके लिये हठपूर्वक चुन-चुनकर नीचोंको तारा है ? बताइए, कौन देवता है जिसने पक्षी (जटायु), पशु (वानर-भालू), वधिक (वाल्मीकि), पत्थर (अहल्या), जड (यमलार्जुन वृक्ष) और (सूअरको 'हराम' कहनेवाले) यवनको मुक्त कर डाला हो ? ॥२॥ तुलसीदास कहते हैं कि जितने देवता, दानव, मुनि, नाग, और मनुष्य हैं—ये सब बेचारे तो स्वयं मायाके बन्धनमें फँसे पड़े हैं । तब प्रभो ! उन सबसे मुक्तिकी याचना करके मैं व्यर्थ अपनी प्रतिष्ठा क्यों गवाऊँ ? ॥३॥ (१०१)

हरि ! आपने मुझपर बड़ी कृपा की कि मुझे सब साधनोंका धाम (मुक्ति प्राप्त करनेके सब प्रकारके उपाय कर सकनेका आधार) और देवताओं भी कठिनाईसे मिल पानेवाला यह मनुष्य-शरीर मुझे दे दिया ॥ १ ॥ प्रभो ! आपके एक-एक उपकारका वर्णन करोड़-करोड़ मुखोंसे भी नहीं किया जा सकता । फिर भी नाथ ! मैं आपसे कुछ याचना किए बिना न रहूँगा । परम उदार प्रभो ! आप कृपा करके वह मुझे दे ही दीजिए ॥ २ ॥ मेरा यह मछली-रूपी मन संसारके विषय-रूपी जलसे क्षण - भरके लिये भी अलग नहीं हो पाता । इसी कारण मैं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कृपा - डोरि, बनसी - पद - अंकुस, परम - प्रेम - मृदु - चारो।
ऐहि बिधि बेधि हरौ मेरो दुख, कौतुक राम ! तिहारो ॥ ४ ॥
हौं श्रुति - बिदित उपाय सकल, सुर केहि - केहि दीन निहोरै ?
'तुलसिदास' यहि जीव मोह - रजु, जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ॥ ५ ॥(१०२)

राग धनाश्री

यह बिनती रघुबीर गुसाईं !
और आस - बिस्वास - भरोसो हरु जिय - की जड़ताई ॥ १ ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति, कछु रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु - रहित अनुराग नाथ - पद, बढ़ु अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥
कुटिल करम लै जाय मोहिं जहँ - जहँ अपनी बरिआँई।
तहँ - तहँ जनि छिन छोह छाँड़िए, कमठ अंड - की नाँई ॥ ३ ॥
है जग - में जहँ - लगि या तन - की, प्रीति - प्रतीति - सगाई।
ते सब 'तुलसिदास' प्रभु - ही - सौं, होहु सिमिटि इक ठाँई ॥ ४ ॥(१०३)

अनेक बुरी-बुरी योनियोंमें जन्म लेकर भटकता हुआ अत्यन्त भयंकर दुःख भोगे जा रहा हूँ ॥ ३ ॥ (प्रभो ! इस दुःखसे मुझे मुक्त करनेके लिये) आप अपनी कृपाकी डोरी बनाइए और उसमें अपने पैरके अंकुशके चिह्नकी बंसी (कँटिया) बनाकर उसपर परम प्रेमका चारा लगा दीजिए। इस प्रकार मेरे मनकी मछलीको बेधकर मेरा सारा कष्ट मिटा डालिए (आप ऐसी कृपा कीजिए कि आपके चरणोंमें मेरा मन प्रेम-पूर्वक लग जाय)। राम ! यह तो आपके बाएँ हाथका खेल है ॥ ४ ॥ यद्यपि वेदोंमें और भी अनेक उपाय बतलाए गए हैं, और देवता भी बहुतसे हैं (जिनकी पूजा-उपासना करनेको कहा जाता है), परन्तु बताइए कि यह दीन (तुलसीदास) किस-किसके आगे गिड़गिड़ाता फिरे ! तुलसीदास कहते हैं कि अब तो इस जीवको केवल वे ही (आप ही) बन्धनसे छुड़ा सकते हैं जिसने इसे मोहकी रस्सीसे पकड़ बाँधा है ॥ ५ ॥ (१०२)

प्रभु राम ! आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि यह जीव जो दूसरोंसे आशा, विश्वास और भरोसा करनेकी मूर्खता किए बैठा है वह मूर्खता आप दूर कर डालिए ॥१॥ मैं सुगति (मोक्ष), सुबुद्धि, सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धि (ऐश्वर्य) एवं लोक-प्रशंसा कुछ नहीं चाहता। (मेरी तो एक मात्र यही कामना है कि) प्रभुके चरण-कमलोंमें मेरा निष्काम प्रेम प्रतिदिन बढ़ता रहे ॥ २ ॥ मेरे दुष्कर्म मुझे बलपूर्वक जहाँ-जहाँ भी ले जायँ, वहाँ-वहाँ आप मुझपर वैसा ही प्रेम बनाए रक्खें जैसा अपने अंडोंपर कछुएका[1] प्रेम होता है ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं—'नाथ ! इस संसारमें इस शरीरका जहाँतक प्रेम, विश्वास और सम्बन्ध है, वह सब एक ही स्थानपर सिमिटकर केवल आपसे ही बना रहे' (यही कामना है) ॥ ४ ॥ (१०३)

१. कछुआ कहीं बालूमें अपने अंडे गाड़ आता है और बराबर उनकी देखभाल करता रहता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जानकि-जीवन - की बलि जइहौं।
चित कह, राम - सीय - पद परिहरि, अब न कहूँ चलि जइहौं॥ १॥
उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभु - पद - बिमुख न पइहौं।
मन-समेत या तन-के बासिन, इहै सिखावन दइहौं॥ २॥
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गइहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही नइहौं॥ ३॥
नातो - नेह नाथ-सों करि, सब नाते - नेह बहइहौं।
है छरभार[1] ताहि 'तुलसी' जग, जाको दास कहइहौं॥ ४॥

अब लौं नसानी, अब न नसइहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिर न डसइहौं॥ १॥
पायौ नाम चारु चिंतामनि, उर - कर - तें न खसइहौं।
स्याम-रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित - कंचनहिं कसइहौं॥ २॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसइहौं।
मन-मधुपहिं, पन कै 'तुलसी', रघुपति-पद - कमल बसइहौं॥ ३॥ (१०५)

मैं रामपर अपनेको न्योछावर कर दूँगा। अब तो मैं मनमें यही ठान बैठा हूँ कि राम-जानकीके चरणों छोड़कर अन्यत्र कहीं जाऊँगा नहीं॥ १॥ मेरे हृदयमें ऐसा विश्वास उत्पन्न हो गया है कि प्रभुके चरणोंसे दूर होनेपर मुझे स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलेगा। मनके साथ-साथ शरीरके अन्य निवासियों (इन्द्रियों)-को भी मैं ऐसी ही शिक्षा दूँगा॥२॥ मैं न तो अपने कानोंसे ही (रामकी कथा छोड़कर) किसी औरकी कथा सुनूँगा, न जीभसे ही किसी दूसरेका गुण-गान करूँगा और न अपने नेत्रोंसे ही किसी दूसरेको देखूँगा। यहाँतक कि अपना सिर भी झुकाऊँगा तो भगवान् (राम)-के ही चरणोंमें झुकाऊँगा॥३॥ मैं तो केवल अपने प्रभु (राम)-से सारा सम्बन्ध और प्रेम जोड़कर वन्य सभीसे प्रेम-सम्बन्ध तोड़ फेंकूँगा। तुलसीदास कहते हैं कि सब प्रकारके उत्तर-दायित्वका बोझ भी उन्हींके सिर डाल दूँगा जिसका मैं संसारमें दास कहलाता हूँ॥ ४॥ (१०४)

अबतक तो मेरा जीवन (व्यर्थ ही) नष्ट हुआ। परन्तु अब (भविष्यमें)-मैं किसी प्रकार भी इसे नष्ट न होने दूँगा। रामकी कृपासे संसार-रूपी रात्रि ढल चुकी है (सांसारिक प्रवृत्ति दूर हो चुकी है), अब जागनेपर (विरक्त होनेपर) फिर सोनेके लिये बिछौना न बिछाऊँगा (सांसारिक मायाके फेरमें न फँसूँगा)॥१॥ अब तो मैंने राम-नामका ऐसा चिन्तामणि पा लिया है कि उसे अपने हृदय और हाथ (माला)-से खिसकने न दूँगा (सदा मन लगाकर जपता रहूँगा)। अब तो मैं रामके सुन्दर और पवित्र साँवले रूपकी कसौटीपर ही अपने चित्तके सोनेको बैठा कसा करूँगा (रामके ही रूपमें अपना मन लगाए रहूँगा)॥२॥ मुझे पराधीन (मनका सेवक) जानकर इन इन्द्रियोंने मेरी बड़ी हँसी उड़ाई (मुझे बहुत छकाया) है परन्तु अब इनसे स्वतंत्र होकर मैं इन्हें हँसनेका अवसर ही न दूँगा। तुलसीदास कहते हैं कि अब मैं अपने मन-रूपी भौंरेको निश्चय-पूर्वक रामके चरण-कमलमें ही ला बसाऊँगा (इधर-उधर भटकनेवाले मनको रामके चरणोंमें ही लगा दूँगा)॥ ३॥ (१०५)

---

१. छरभार=देखरेखका बोझा, कामोंकी सँभाल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग रामकली

महाराज रामादज्यौ धन्य सोई।
गरुअ, गुन - रासि, सर्वज्ञ, सुकृती, सूर, सीलनिधि, साधु तेहि-सम न कोई ॥ १ ॥
कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीध सम-दम-दया-दान-हीने।
नाम लिए, राम किए परम पावन सकल, तरत नर तिनके गुन-गान कीने ॥ २ ॥
ब्याध अपराध-की साध राखी कौन? पिंगला कौन मति भगति भेई?
कौन धौं सोम-जाजी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेई ॥ ३ ॥
पंडुसुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी सबहिं, सोध किए सुद्धता लेस कैसो।
प्रेम लखि, कृष्ण किए आपने तिनहुँ-को, सुजस संसार हरि-हर-को जैसो ॥ ४ ॥
कोल, खस, भिल्ल, जवनादि खल, राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद, कै न पायो?
दीन-दुख-दमन, श्रीरमन, करुना - भवन, पतित-पावन बिरद बेद गायो ॥ ५ ॥
मंद-मति, कुटिल, खल-तिलक 'तुलसी'-सरिस, भो न तिहुँ लोक तिहुँ काल कोऊ।
नाम-की कानि, पहिचानि पन आपनो, ग्रसत कलि-ब्याल राख्यौ सरन सोऊ ॥६॥(१०६)

महाराज रामने जिसका आदर कर दिया, वही ऐसा धन्य हो गया कि उसके समान गुणी, सर्वज्ञ, पुण्यात्मा, शूर, सुशील और साधु दूसरा कोई रहा नहीं ॥ १ ॥ अहल्या, गुह (निषाद), भालू-बंदर, राक्षस, शबरी[१] और जटायुमेंसे किसीमें भी शम, दम, दया, दान आदि कोई सद्गुण नहीं था, फिर भी राम-नामका स्मरण करनेसे भगवान्‌ने इन्हें ऐसा पवित्र कर दिया कि उनके चरित्रोंका गान करनेसे मनुष्य भवसागरसे पार हो जाते हैं ॥२॥ व्याध (वाल्मीकि[२])-ने पाप करनेमें कौन कसर छोड़ी थी? गणिका[३] (जीवन्ती)-ने कब भक्ति की थी? अजामिलने[४] कब सोम-यज्ञ किया था? और गजेन्द्रने कौन-सा अश्वमेध यज्ञ किया था? ॥३॥ पाण्डव[५], गोपी[६], विदुर[७] और कुबरी[८], इनमेंसे कोई नामको भी तो पवित्र नहीं था। किन्तु आपने इन सबको पवित्र बना दिया। केवल इनका प्रेम देखकर ही कृष्णने उन्हें ऐसा अपनालिया कि आज भी उनका यश विष्णु और शिवके समान संसारमें जा छाया है ॥४॥ कोल, खस, भील, यवन आदि न जाने कितने दुष्ट केवल रामका नाम उच्चारण करके ही ऊँचा पद पा गए। दीनोंका दुःख दूर करनेवाले लक्ष्मीपति, करुणानिधान, पापियोंका उद्धार करनेवाले रामका यश तो वेदों-तकमें बताया गया है ॥ ५ ॥ तीनों लोकों और तीनों कालोंमें तुलसी-जैसा मूर्ख, पापी और दुष्टोंका सरदार दूसरा कोई नहीं हुआ। किंतु अपने नामकी लाज रखकर, अपना प्रण पहचानकर और कलिकाल-रूपी सर्पसे डसा हुआ देखकर उसे भी रामने अपनी शरणमें ले लिया ॥ ६ ॥ (१०६)

१. रामने शबरीके जूठे बेर प्रशंसा कर-करके खाए। २. वाल्मीकि पहले रत्नाकर नामके व्याध थे और लोगोंको लूटते मारते थे। ३. जीवन्ती नामकी वेश्या अपने सुग्गेको राम-नाम पढ़ानेके कारण मुक्त हो गई। ४. अजामिल मरते समय अपने पुत्र नारायणको पुकारनेके कारण मुक्त हो गया। ५. पांडव : पांडुके औरस (सगे) पुत्र नहीं थे, देवताओंके अंश थे। ६. गोपियाँ : अपने पतियोंको छोड़कर कृष्णसे प्रेम करती थीं। ७. विदुर : दासी-पुत्र थे। ८. कुबरी : कंसकी कुबड़ी दासी थी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग बिलावल

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम। सुभग सरोरुह-लोचन तन सुन्दर स्याम ॥ १ ॥
सिय-समेत सोभित सदा, छबि अमित अनंग। भुज बिसाल सर-धनु धरे, कटि सोह निषंग॥२॥
बलि-पूजा चाहत नहीं, चाहत ऐक प्रीति। सुमिरन ही मानै भलो, यह पावनि रीति ॥३॥
देइ सकल सुख, दुख दहै, आरतजन-बंधु। गुन गहि, अघ-औगुन हरै, प्रभु करुनासिंधु॥४॥
देस-काल-पूरन सदा, बद बेद-पुरान। सब-को प्रभु, सब-में बसै, सब-की गति जान ॥५॥
को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव ? 'तुलसिदास' तेहि सेइये जेहि संकर सेव ॥६॥ (१०७)
बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय। सकल काम पूरन करै जानै सब कोय ॥१॥
बेगि, बिलंब न कीजिए, लीजै उपदेस। बीज-मंत्र जपिए, सोई, जो जपत महेस ॥२॥
प्रेम-बारि तरपन भलो, घृत सहज सनेहु। संसय [1]समिधि, अगिनि छमा, ममता बलि देहु ॥३॥

कोशलपति राम ही मेरे सबसे बड़े देवता हैं। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं और उनका शरीर बड़ा ही सलोना है ॥ १ ॥ वे सदा जानकीके साथ शोभा देते हैं। वे अनेकों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं। वे अपने विशाल हाथोंमें धनुष-बाण लिए रहते हैं तथा उनकी कमरमें तरकश कसा रहता है ॥ २ ॥ वे न तो बलि चाहते हैं न पूजा। वे चाहते हैं केवल एक 'प्रेम'! वे केवल नाम स्मरण करते ही प्रसन्न हो उठते हैं। इस प्रकार उनके सब रंग-ढंग बड़े पवित्र हैं॥ ३ ॥ वे दीन-दुखियोंके ऐसे बन्धु (हितू) हैं कि उन (दीनों)-को सब प्रकारके सुख देकर उनके दुःख मिटा देते हैं। प्रभु राम ऐसे दयालु हैं कि (अपने सेवकके) गुण तो ग्रहण कर लेते हैं और पाप तथा बुराइयाँ नष्ट कर डालते हैं ॥ ४ ॥ वेद-पुराण सदासे कहते आए हैं कि वे सबके स्वामी हैं और सबमें रमण करते हैं। वे सबके मनकी गति (इच्छा) जानते हैं॥ ५ ॥ (ऐसे प्रभुको छोड़कर) अनेक प्रकारकी कामनाएँ करके, दूसरे अनेक देवताओंको कौन पूजता फिरे ? अतः, तुलसीदास ! चलो, चलकर उसी प्रभुकी सेवा-अर्चा चलकर की जाय जिस प्रभुकी सेवा भगवान् शंकर भी करते हैं ॥ ६ ॥ (१०७)

आराधना करनी हो तो वीर-शिरोमणि रामकी ही आराधना करनी चाहिए क्योंकि उनकी आराधना ही करनेसे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। यह बात सब लोग जानते भी हैं ॥१॥ इसके लिये तुरन्त ही (किसी सद्गुरुसे) जाकर उपदेश ले लेना चाहिए और बैठकर वही बीज मन्त्र (राम) जपना चाहिए जो शिव जपा करते हैं ॥ २ ॥ (मन्त्र जपनेके अनन्तर) प्रेम-रूपी जलसे तर्पण करना चाहिए, सहज स्वाभाविक स्नेहका घी बनाना चाहिए और सन्देह-रूपी समिधा (हवन करनेकी लकड़ी)-से क्षमा-रूपी अग्नि प्रज्वलित करके उसमें ममताका बलिदान कर देना चाहिए (संदेह और सांसारिक ममता छोड़कर सच्चा स्नेह करके रामसे प्रेम करना चाहिए) ॥ ३ ॥ (ऐसा करनेसे) पाप दूर हो भागेंगे, मन वशमें होगा, अहंकार और कामका नाश होगा और सुख, संपत्ति, संतोष

१. समिधि=सं० समिधा, यज्ञमें जलाई जानेवाली पलाशकी लकड़ी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अघ उचाटि, मन बस करै, मारै मद मार। आकरषै सुख, संपदा, संतोष, बिचार ॥४॥
जिन्ह यहि भाँति भजन कियो, मिले रघुपति ताहि। 'तुलसिदास' प्रभु-पथ चढ़्यो,
जो लेहु निबाहि ॥ ५ ॥ (१०८)

कस न करहु करुना, हरे! दुख-समन मुरारी!
त्रिबिध-ताप-संदेह-सोक-संसय-भय-हारी ॥ १ ॥
ऐक कलिकाल-जनित मल, यह मतिमंद मलिन-मन।
तेहि-पर प्रभु नहिं कर सँभार, केहि भाँति जियै जन ॥ २ ॥
सब प्रकार समरथ, प्रभो! मैं सब बिधि दीन।
यह जिय जानि द्रवहु नही, मैं करम-बिहीन ॥ ३ ॥
भ्रमत अनेक जोनि रघुपति! पति आन न मोरे।
दुख-सुख सहौं रहौं सदा, सरनागत तोरे ॥ ४ ॥
तो सम देव न कोउ कृपालु, समुझौं मन-माहीं।
'तुलसिदास' हरि तोषिये, सो साधन नाहीं ॥ ५ ॥ (१०९)

कहु केहि कहिय कृपानिधे! भव-जनित बिपति अति।
इंद्रिय सकल बिकल सदा, निज-निज सुभाउ रति ॥ १ ॥

और विवेक खिंचे चले आवेंगे ॥ ४ ॥ जिसने भी इस विधिसे भजन किया, उसे ही राम मिल गए। तुलसीदास भी अब इसी राजमार्गपर बढ़ चला है। प्रभो! अब उसका भी आप निर्वाह कर दीजिएगा ॥ ५ ॥ (१०८)

हरि! जब आप सबके दुःख हरते फिरते ही हैं तो मुरारि! मुझपर भी कृपा क्यों नहीं कर डालते? आप तीनों प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक), तथा सन्देह (अज्ञान), शोक, संशय (आत्मा और अनात्माका ज्ञान न होना) और भय मिटा सकते हैं ॥ १ ॥ एक तो कलिकाल-के कारण यों ही मेरी बुद्धि मंद और मन पापसे मलिन हुआ पड़ा है, दूसरे, नाथ! आप भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं, फिर भला इस जीवका निर्वाह हो तो कैसे हो? ॥२॥ प्रभो! आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं और मैं सब तरहसे दीन हूँ। क्या यह जानकर भी आप मुझपर कृपा नहीं करते कि मैं बड़ा अभागा हूँ? (आपकी कृपाका प्रभाव क्या मुझ अभागेपर न पड़ेगा?) ॥३॥ राम! मैं अनेक योनियों में चक्कर खाता रहा हूँ पर अबतक मुझे आपके अतिरिक्त कोई दूसरा स्वामी नहीं मिला। इसीलिये मैं सदा दुःख-सुख सहता हुआ भी आपकी ही शरणमें पड़ा रहना चाहता हूँ ॥४॥ मैंने अपने मनमें भली भाँति समझ लिया है कि आपके समान कृपा करनेवाला कोई दूसरा देवता नहीं है। हरि! जिस साधनसे आप प्रसन्न होते हैं, वह साधन भी तो तुलसीदासके पास नहीं है ॥ ५ ॥ (१०९)

कृपानिधि! बताइए मैं अपनी सांसारिक विपत्ति रोऊ तो किसके आगे रोऊँ? मेरी सारी इन्द्रियाँ तो अपना स्वाभाविक सुख-भोग प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हुई रहती हैं ॥१॥ हरि! मेरा मन ऐसा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जो सुख - संपति, सरग - नरक संतत सँग - लागी।
हरि परिहरि, सोइ जतन करत, मन मोर अभागी॥ २॥
मैं अति दीन, दयालु देव, सुनि मन अनुरागे।
जब न द्रवहु, रघुबीर धीर! काहे न दुख लागे॥ ३॥
जद्यपि मैं अपराध - भवन, दुख - समन मुरारे!
'तुलसिदास' - कहँ आस इहै, बहु पतित उधारे॥ ४॥ (११०)

केसव! कहि न जाइ, का कहिए?
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिए॥ १॥
सून्य भीति - पर चित्र, रंग नहिं, तनु - बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटइ न मरै भीति, दुख पाइय यह तन हेरे॥ २॥

अभागा है कि स्वर्ग और नरकमें भी जो सुख-सम्पत्ति मेरे पीछे लगी रही, उन्हींकी प्राप्तिके लिये अब भी मेरा मन आपको त्यागकर यत्न किए जा रहा है॥ २॥ देव! जब मुझ अत्यन्त दीनने सुना कि आप बड़े दयालु हैं, तब मैंने आपसे ही प्रीति जोड़ ली (आपमें ही अपना मन लगा लिया)। फिर भी धीर राम! जब आप मुझपर दया नहीं कर रहे हैं तब बताइए मुझे दुःख क्यों न होगा?॥३॥ मुरारि! यद्यपि मैं सारे अपराधोंका भंडार हूँ (मुझमें सारे अपराध भरे हुए हैं), पर आप तो सबका दुःख मिटा सकते हैं। मैं तुलसीदास तो आपसे यही आशा लगाए बैठा हूँ कि जब आप इतने बहुतसे पापियोंका उद्धार किए ही बैठे हैं, तब मेरा भी उद्धार कर ही देंगे॥ ४॥ (११०)

अव्यक्त विष्णु-रूप ब्रह्म! हम कहें भी तो क्या कहें? आपकी सर्वथा रंग-बिरंगी सृष्टिकी रचना देखकर (हम ऐसे चकित रह जाते हैं कि मुँहसे) कुछ कहते नहीं बनता, मन ही मन समझकर मूक रह जाना पड़ता है॥१॥ (ऐसी रचना न तो कहीं देखी गई न सुनी गई, इसीलिये समझमें ही नहीं आता कि यह बनी कैसे)। यह अनोखा (नाम और रूपोंसे भरा, रंग-बिरंगा) संसार-रूपी चित्र आपने (किसी आधार-फलक या सहारेके बिना ही) सूनी भीतपर (आकाशमें) बना खड़ा किया है। (अनेक प्रकारकी फूल-पत्तियों, जीवों और तितलियोंके पंखोंमें जो तरह-तरहके लाल-पीले, हरे-नीले, बैंगनी-गुलाबी, आसमानी-उन्नाबी, भूरे-काले रंग दिखाई पड़ते हैं, वे कहाँसे आए? इसका कोई आधार समझमें नहीं आता)। आपने बिना रंगके ही यह रंग-बिरंगा संसार बना डाला। फिर, इस संसारको बनानेवाले आप भी तो बिना शरीरके (अव्यक्त) हैं। (आपने बिना शरीर और बिना रूपके ही यह संसार बना खड़ा किया। संसारमें जो चित्र बनते हैं उनका बनानेवाला कोई शरीरधारी मनुष्य होता है। किन्तु इस संसाररूपी चित्रको बनानेवाले आप तो त्रिगुणातीत, नाम-रूपसे परे, अलख, निरंजन ब्रह्म हैं)। (संसारके अन्य चित्रोंपर पानी डाल दिया जाय तो वे मिट जायँ और जिस फलक (लकड़ी, कागज, कपड़े या भीत)-पर वे बने हों, वे भी नष्ट हो सकते हैं, पर) आपकी यह रंग-बिरंगी सृष्टिका चित्र तो ऐसा निराला है कि न

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रबिकर - नीर बसै अति दारुन, मकर - रूप तेहि - माहीं।
बदन - हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं॥ ३॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
'तुलसिदास' परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै॥ ४॥ (१११)

तो यही धोनेसे भी मिट पाता न इसका आधार-फलक (भीत, दीवारका पट्ट) ही मर पाता (नष्ट हो पाता)। (संसारमें जो चित्र बनते हैं उन्हें देखनेसे सुख मिलता है, किन्तु) आपके इस चित्रकी ओर देखनेसे सुखके बदले दुःख ही होता है (संसारमें सभी दुखी ही दुखी दिखाई पड़ते हैं) ॥२॥ (और भी एक विचित्र बात है)। यह आपकी सारी सृष्टि झूठी, मृग-मरीचिका है जिसमें रूप ही अत्यन्त भयंकर मगर बना बैठा है (आपकी इस सृष्टिमें इतने प्रकारके आकर्षक रूप हैं कि जो उसकी ओर दौड़े, समाप्त ही हो जाय)। (इस संसाररूपी मृग-मरीचिकामें रूपका) यह मगर भी ऐसा विचित्र है कि मुख न होते हुए भी वहाँ जल पीने जानेवालोंको एकदम निगल जाता है (जो लोग संसारके विभिन्न रूपोंकी ओर आकृष्ट होते हैं, वे उसीकी भूल-भुलैयामें पड़कर अपने आप (आत्म)-को खो बैठते हैं) ॥३॥ आपके इस संसार-रूपी चित्रकी विचित्रताके कारण ही बड़े-बड़े (आचार्योंकी बुद्धि ऐसी चकरा गई कि) किसी (द्वैतवादी मध्वाचार्य और शुद्धाद्वैतवादी वल्लभाचार्य)-ने कहा—यह संसार 'सत्य' है। किसी (केवलाद्वैतवादी शंकराचार्य)-ने कहा—'यह झूठ है', तो किसी (विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजाचार्य)-ने कहा ! 'यह सत्य भी है और झूठ भी है।' तुलसीदासका मत है कि मनुष्य अपनेको (आत्मको) तभी पहचान पा सकता है जब वह इन तीनों भ्रमोंको छोड़ बैठे (वह संसारको न तो सत्य समझे, न झूठ और न यही समझे कि 'यह सत्य भी है और झूठ भी। उनका कथन है कि यह संसार 'सदसद्-विलक्षण' है अर्थात् यह सत्य और झूठ दोनोंसे निराला है) ॥ ४ ॥ (१११)

[गोस्वामीजीने बताया है कि यह संसार वास्तवमें वह है नहीं जो हमें दिखाई पड़ता है। जैसे रस्सीको देखकर साँपका भ्रम हो जाता है और हम उसे सत्य साँप मानकर डर उठते हैं, वैसे ही संसारका ठीक स्वरूप न समझनेके कारण ही हम इसे देखकर दुःख पाते हैं। यह दुःख भ्रमके कारण है और वह भ्रम तभी दूर हो सकता है जब हम समझ लें कि यह संसार 'है' और 'नहीं' से विलक्षण (सत्-असत्-विलक्षण) या निराला है (यह न 'है', न 'नहीं है' न 'है-नहीं' है)। जिसे यह भान हो जाय वही आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है, क्योंकि जबतक बुद्धिमें भ्रान्ति रहेगी, तबतक आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। यह आत्मज्ञान भगवत्कृपाके बिना सम्भव नहीं। यह बुद्धिका भ्रम केवल भगवद्भक्तिसे दूर हो सकता है, क्योंकि वही इस मायामय जगत्में आत्म-साक्षात्कार करा सकती है।]

१. गोस्वामीजीने इस पदमें संसारको निराधार चित्रके रूपमें जो वर्णित किया है, वही भाव निम्नांकित श्लोकमें व्यक्त किया गया है—
निरुपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते। जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने॥
[निर्माणकी किसी सामग्रीके बिना और भीत-रूपी किसी आधारफलकके बिना संसार-रूपी चित्र बना देनेवाले अद्भुत कलाकार त्रिशूलधारी भगवान् त्रिशूली (शंकर)-को हमारा प्रणाम है।]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

केसव ! कारन कवन गुसाईं ?
जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं, तजेहु अज्ञ-की नाईं ॥ १ ॥
परम पुनीत संत कोमल - चित, तिनहिं तुमहिं बनि आई ।
तौ कत बिप्र, ब्याध, गनिकहिं तारेउ ? कछु रही सगाई ॥ २ ॥
काल, करम, गति - अगति जोव-की, सब हरि ! हाथ तुम्हारे ।
सो कछु करहु, हरहु ममता मम, फिरहुँ न तुमहिं बिसारे ॥ ३ ॥
जौ तुम तजहु, भजौं न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे ।
मन - क्रम - बचन नरक - सुरपुर जहँ - तहँ रघुबीर निहोरे ॥ ४ ॥
जद्यपि नाथ न उचित होत अस, प्रभु - सन करौं ढिठाई ।
'तुलसिदास' सीदत निसि - दिन, देखत तुम्हारि निठुराई ॥ ५ ॥ (११२)

माधव ! अब न द्रवहु केहि लेखे ?
प्रनतपाल पन तोर, मोर पन जियउँ कमल - पद देखे ॥ १ ॥
जब - लगि, दीन न मैं, दयालु तैं, मैं न दास, तैं स्वामी ।
तब - लगि जे दुख सहेउँ, कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरजामी ॥ २ ॥

केशव ! (राम !) ऐसा मुझसे क्या अपराध बन पड़ा कि आप मुझे दुष्ट समझकर अनजान और अपरिचितकी भाँति छोड़ बैठे ? ॥ १ ॥ यदि आप परम पवित्र संत और कोमल हृदय वालोंको ही अपनाते हैं, तो अजामिल, वाल्मीकि और गणिकाका आपने क्यों उद्धार किया ? क्या वे आपके कोई सम्बन्धी लगते थे ? ॥ २ ॥ हरि ! इस जीवका काल, कर्म, सुदशा, दुर्दशा, सब कुछ आपके ही हाथमें है । इसलिये नाथ ! मेरी ममता मिटाकर कुछ ऐसा उपाय कीजिए कि मैं आपको भुलाकर इधर-उधर न भटकता फिरूँ ॥ ३ ॥ मेरी अटल प्रतिज्ञा है कि यदि आप मुझे त्याग भी देंगे, तब भी मैं आपको नहीं छोड़ूँगा । अन्य किसीको भी मैं अपना प्रभु मानकर नहीं दूँगा । राम ! मन, कर्म और वचनसे जहाँ कहीं भी आप मुझे नरक या स्वर्गमें भेजेंगे, वहीं मैं आपसे ही प्रार्थना करता रहूँगा ॥ ४ ॥ नाथ ! यद्यपि यह उचित तो नहीं है कि मैं आपके साथ ऐसी ढिठाई करूँ, पर क्या करूँ ? यह तुलसीदास आपकी निष्ठुरता देख-देखकर दिन-रात कष्ट भोगे जा रहा है ॥ ५ ॥ (११२)

माधव ! अब आप किस लिये मुझपर कृपा नहीं करते ? आपका प्रण तो भक्तोंपर कृपा करनेका है और मेरा प्रण केवल आपके चरण-कमल देख-देखकर ही जीवन व्यतीत करनेका है (मुझे तो एकमात्र आपके चरणकमलोंका ही भरोसा है) ॥ १ ॥ नाथ ! जबतक मैं दीन और आप दयालु तथा मैं सेवक और आपस्वा मी नहीं हुए थे तबतक तो मैंने जो-जो कष्ट भोगे वे सब तो आपको मैंने बताए नहीं यद्यपि आप सबके अन्तर्यामी होनेके नाते बिना कहे ही सबके मनकी गति

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तैं उदार, मैं कृपिन, पतित मैं, तैं पुनीत, श्रुति गावै।
बहुत नात रघुनाथ तोहिं - मोहिं, अब न तजे बनि आवै॥ ३॥
जनक, जननि, गुरु, बंधु, सुहृद, पति, सब प्रकार हितकारी।
द्वैतरूप तम - कूप परौं नहिं, सो कछु जतन बिचारी॥ ४॥
सुनु, अदभ्र करुना, बारिज - लोचन, मोचन - भय - भारी।
'तुलसिदास' प्रभु तव प्रकास - बिनु, संसय टरै न टारी॥ ५॥ (११३)

माधव! मो समान जग - माहीं।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन मति, लीन - बिषय कोउ नाहीं॥ १॥
हेतु - रहित तुम - सम कृपालु, आरत - हित ईस न त्यागी।
मैं कृपालु! दुख - सोक - बिकल, केहि कारन दया न लागी॥ २॥
नाहिंन कछु अवगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
ज्ञान - भवन तनु दियो, नाथ! सोउ पाय, न मैं प्रभु जाना॥ ३॥
बेनु - करिल, श्रीखंड - बसंतहिं, दूषन मृषा लगावैं।
सार - रहित, हतभाग्य, सुरभि - पल्लव सो कह किमि पावैं॥ ४॥

जानते थे॥२॥ किन्तु राम! वेद भी कहते हैं कि अब तो हमारे और आपके अनेक सम्बन्ध बन चुके हैं। आप उदार (दानी) हैं, तो मैं कृपण हूँ, और आप पवित्र हैं, तो मैं पतित हूँ। (मेरे जैसे पतितों, नीचोंका उद्धार करनेवाले आप ही हैं)। अब तो यह सम्बन्ध तोड़ना उचित नहीं है॥ १॥ आप ही मेरे पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र, स्वामी और सब प्रकारसे हितैषी हैं। अतएव कुछ ऐसा उपाय सोचकर बतलाइए कि मैं (जीव और ब्रह्मके भेद)-के अँधेरे कुएँमें न गिरूँ (आपको पहचानकर इस भव-बन्धनसे मुक्त हो जाऊँ)॥ २॥ कमल-लोचन! आपकी दया अदभ्र (बहुत बड़ी) है, वह भव-बन्धन (जन्म-मरण) से मुक्त कर डालती है। नाथ! तुलसीदासको जो यह अविद्याके कारण संशय हो रहा है, वह तबतक किसी प्रकार नहीं टल सकता जबतक आप प्रकाश न दे दें॥ ३॥ (११३)

माधव! इस संसारमें न तो मेरे समान सब प्रकारसे असहाय, पापी, अत्यन्त दीन और विषयासक्त दूसरा कोई है,॥ १॥ न आपके समान निष्काम कृपा करनेवाला, दीन-दुखियोंका हितू, स्वामी और दानी ही दूसरा कोई है। मैं दुःख और शोक-सन्तापसे बहुत व्याकुल हुआ जा रहा हूँ। क्या कारण है कि आपने अभी-तक मुझपर कृपा नहीं की?॥ २॥ मैं मानता हूँ कि इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं है, सब अपराध मेरा ही है, क्योंकि नाथ! आपने मुझे जो ज्ञानसे भरा हुआ यह मानव-शरीर दिया है उसे पाकर भी मैं अपने स्वामीका वास्तविक रूप न पहचान पाया॥३॥ चन्दनको बाँस और वसंत ऋतुको करील व्यर्थ ही दोष देते हैं (क्योंकि बाँसमें चंदनकी गन्ध नहीं आ पाती तथा करीलमें वसन्तमें भी पत्ते ही नहीं निकल पाते फिर चन्दनको बाँस और बसन्त ऋतुको करील क्यों दोष देता है?)॥ ४॥ हरि! यह मैं भली प्रकार जानता

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
'तुलसिदास' प्रभु मोह - शृंखला, छूटिहि तुम्हरे छोरे॥ ४॥ (११४)

माधव ! मोह - फाँस क्यों टूटै ?
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै॥ १॥
घृत - पूरन कराह अंतरगत, ससि प्रतिबिंब दिखावै।
ईंधन अनल लगाइ, कलप सत औटत, नास न पावै॥ २॥
तरु - कोटर - महँ बस बिहंग, तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचार - हीन मन, सुद्ध होइ नहिं तैसे॥ ३॥
अंतर मलिन बिषय मन अतित, न पावन करिय पखारे।
मरै न उरग, अनेक जतन बलमीक बिबिध बिधि मारे॥ ४॥
'तुलसिदास' हरि - गुरु - करुना - बिनु, बिमल बिबेक न होई।
बिनु - बिबेक संसार घोर - निधि, पार न पावै कोई॥ ५॥ (११५)

माधव ! असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया॥ १॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा, हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव - बिनु मोह - जनित, दारुन भव - बिपति सतावै॥ २॥

हूँ कि मेरा हृदय बड़ा कठोर है और आपका हृदय अत्यन्त कोमल है। प्रभो ! इस तुलसीदासकी मोहकी बेड़ी आपके ही काटे कटेगी, नहीं तो और कोई इसे इस मोहकी शृंखलासे मुक्त नहीं कर पा सकता॥ ४॥ (११४)

माधव ! मेरी यह मोहकी फाँसी कटे तो कैसे कटे ? छूटनेके अनेक बाहरी उपाय—तप, यज्ञ, जप—करनेपर भी मनकी अज्ञानकी गाँठ नहीं छूट पा रही है॥ १॥ जैसे घीसे भरे हुए कड़ाहमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी परछाहीं सौ कल्पोंतक भी ईंधन और आग लगानेपर नहीं पिघल पा सकती (वैसे ही मेरे मनसे मोह नहीं मिट पा रहा है)॥२॥ किसी पेड़के खोखलेमें रहनेवाला पक्षी जैसे पेड़ काट डालनेपर भी नहीं मर सकता, वैसे ही अनेक साधन करते रहनेपर भी यह विवेक-शून्य मन शुद्ध नहीं हो पाता॥ ३॥ जैसे साँपके बिलपर धमाधम डंडे बजानेपर भी (उसके भीतरका) साँप नहीं मर पाता, वैसे ही विषयोंमें अतीत (पराकाष्ठाको पहुँचा हुआ) यह भीतरसे मलिन मन केवल (बाहरसे शरीर) धोनेसे नहीं पवित्र हो पा सकता॥ ४॥ अरे तुलसीदास ! भगवान् और गुरुकी दयाके बिना विवेक कभी निर्मल नहीं हो पाता, और जबतक विवेक नहीं शुद्ध हो जाता तबतक संसार-सागरसे भी कोई पार नहीं हो पा सकता॥ ५॥ (११५)॥

माधव ! यह आपकी माया ऐसी है कि चाहे जितना भी उपाय करके मर मिटो, पर आपकी कृपाके बिना इससे पार पाना असम्भव है॥ १॥ यद्यपि इसके विषयमें मैं सुनता हूँ, विचारता हूँ, स्वयं समझता भी हूँ तथा दूसरोंको समझाता भी हूँ, तथापि मेरे हृदयमें वह (आत्मज्ञानकी) स्थिति उदय ही नहीं हो पाती जिसके अनुभवके बिना अविद्यासे उत्पन्न होनेवाली संसारकी बड़ी-बड़ी घोर विपत्तियाँ सदा दारुण दुःख देती रहेंगी॥ २॥ यदि इस (जीव)-को अत्यन्त मधुर और

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्म - पियूष मधुर - सीतल जो, पै मन सो रस पावै ?
तौ कत मृगजल - रूप - विषय - कारन, निसि - बासर धावै ॥ ३ ॥
जेहि - के भवन बिमल चिंतामनि, सो कत काँच बटोरै ।
सपने परबस पर्‍यौ जागि, देखत केहि जाइ निहोरै ? ॥ ४ ॥
ज्ञान, भगति, साधन अनेक, सब सत्य, झूठ कछु नाहीं ।
'तुलसिदास' हरि - कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन - माहीं ॥ ५ ॥ (११६)

हे हरि ! कवन दोष तोहिं दीजै ?
जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति, सोइ निसि - बासर कीजै ॥ १ ॥
जानत अर्थ - अनर्थ - रूप, तम - कूप परब यहि लागे ।
तदपि न तजत स्वान-अज-खर -ज्यों, फिरत बिषय - अनुरागे ॥ २ ॥
भूत - द्रोह-कृत मोह - बस्य, हित आपन मैं न बिचारा ।
मद, मत्सर, अभिमान, ज्ञान - रिपु, इन - महँ रहनि अपारा ॥ ३ ॥
बेद - पुरान सुनत - समुझत रघुनाथ सकल जगव्यापी ।
बेधत नहिं श्रीखंड बेनु - इव, सारहीन मन पापी ॥ ४ ॥

शीतल ब्रह्मानन्द-रूपी अमृत रसका अनुभव हो जाय और चसका लग जाय तो फिर यह मृगतृष्णा-रूपी झूठे विषय-रसके लिये दिन-रात क्यों दौड़ता फिरे ॥ ३ ॥ जिसके घरमें दिव्य चिन्तामणि विद्यमान हो, वह भला काँच क्यों बटोरता फिरेगा ? स्वप्नमें किसीके पंजेमें पड़कर उससे छूटनेके लिये उससे विनय करनेवाला व्यक्ति जागकर किससे और क्यों निहोरा (प्रार्थना) करेगा ? ॥ ४ ॥ यद्यपि ज्ञान, भक्ति आदि अनेक साधन हैं और वे सब सत्य भी हैं, एक भी झूठा नहीं है, तथापि अरे तुलसीदास ! यह निश्चय समझ ले कि अविद्याका नाश यदि होगा तो केवल हरिकी कृपासे ही हो सकेगा, दूसरे किसी उपायसे नहीं ॥ ५ ॥ (११६)

हरि ! भला मैं आपको कैसे दोष दे सकता हूँ ? जिन उपायोंसे स्वप्नमें भी मोक्ष मिलना दुर्लभ है, वे ही उपाय मैं दिन-रात करता रहता हूँ ॥ १ ॥ यद्यपि मैं जानता हूँ कि विषयोंके सुखमें अनर्थ ही अनर्थ भरे पड़े हैं और उनके कारण मुझे अंधकूपमें[1] भी गिरना पड़ेगा, तथापि मैं विषयोंमें ही लवलीन होकर कुत्तों, बकरों और गधोंके समान उन्हें छोड़ नहीं रहा हूँ ॥ २ ॥ मैंने अज्ञानता-वश प्राणि-मात्रके साथ द्रोह करके कभी यह नहीं सोचा कि मेरा हित किसमें है । मैं मद, ईर्ष्या और अभिमान आदि ज्ञानके शत्रुओंमें ही सदा लिप्त रहा ॥ ३ ॥ यद्यपि मैं वेद और पुराणोंमें सुनता हूँ और स्वयं समझता भी हूँ कि राम ही सारे संसारमें व्याप्त हैं, तथापि इस निस्सार और पापी मनमें यह बात वैसे ही नहीं समा पाती जैसे चन्दनकी सुगन्ध सार-हीन बाँसमें नहीं

---

१. अन्धकूप : नरक (वह कुआँ जिसमें ऊपर बहुत झाड़-झंखाड़ उग आनेके कारण उसका मुँह ढक गया हो) ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मैं अपराध - सिंधु करुनाकर ! जानत अंतरजामी ।
'तुलसिदास' भव - ब्याल-ग्रसित तव सरन उरग - रिपु - गामी ॥ ५ ॥ (११७)

हे हरि ! कवन जतन सुख मानहु ?
जिमि गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम जानहु ॥ १ ॥
जो कछु कहिय, करिय, भवसागर तरिय बत्स - पद जैसे ।
रहनि आन बिधि, करिय आन, हरि - पद - सुख पाइय कैसे ॥ २ ॥
देखत चारु मयूर नयन सुभ, बोलि सुधा इव सानी ।
सबिष उरग आहार, निठुर अस, यह करनी, वह बानी ॥ ३ ॥
अखिल - जीव - बत्सल, निर्मत्सर, चरन - कमल - अनुरागी ।
ते तव प्रिय रघुबीर ! धीर-मति, अतिसय निज - पर - त्यागी ॥ ४ ॥
जद्यपि मम अवगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया ।
'तुलसिदास' निज गुन बिचारि, करुना - निधान करु दाया ॥ ५ ॥ (११८)

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ?
देखत, सुनत, विचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥ १ ॥

समा पाती ॥ ४ ॥ करुणानिधि ! मैं तो आजतक अपराध ही अपराध करता चला आ रहा हूँ । आप तो अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते ही हैं । अतएव गरुडपर चलनेवाले भगवान् ! संसार-रूपी सर्पसे डसा हुआ यह तुलसीदास आपकी शरणमें आ पहुँचा है (इसे बचा लीजिए) ॥ ५ ॥ (११७)

हरि ! बताइए आपको प्रसन्न किया जाय तो कैसे किया जाय ? मेरे जितने भी व्यवहार (करतब) हैं वे सब तो आप जानते ही हैं कि हाथीके दाँत हैं, दिखानेके दूसरे, खानेके दूसरे ॥ १ ॥ इसलिये आप ही जो कुछ बताइए वही मैं करूँ, जिससे मैं इस संसार-सागरको ऐसी सरलतासे पार कर जाऊँ मानो वह वत्स-पद (बछड़ेके खुरके बराबर) छोटा, छिछला हो, क्योंकि मेरा रहन-सहन कुछ और ही प्रकराका है, पर बात मैं कुछ दूसरे ही प्रकारकी (बनावटी) करता हूँ । तब भला मैं भगवान्‌के चरणोंका सुख पा कैसे सकता हूँ ? (मैं तो) सुन्दर मोरके समान हूँ जो देखनेमें भी बड़ा अच्छा लगता है तथा उसकी बोली भी अमृत-जैसी प्यारी होती है पर निष्ठुर और कठोर वह ऐसा होता है कि भयंकर विषैले सर्पको भी खा डालता है । उसकी करनी ऐसी भयानक है किन्तु वाणी बड़ी ही मधुर है ॥ २ ॥ राम ! आपको तो वे ही लोग प्यारे लगते हैं जो सारे संसारसे वात्सल्य प्रेम (स्नेह) करते हैं, जिनके मनमें ईर्ष्या नहीं है, जो आपके चरण-कमलोंसे प्रेम करते हैं, जिनकी बुद्धि स्थिर है तथा जिनके मनमें अपने और पराएका भेद-भाव नहीं है ॥ ३ ॥ राम ! यद्यपि, मुझमें बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं और मैं इसी योग्य हूँ कि इसी संसार-चक्रमें पड़ा रहूँ तथापि करुणानिधान ! आप तो अपने वात्सल्य वादी गुणोंका विचार करके मुझपर दया कर ही दीजिए ॥ ४ ॥ (११८)

हरि ! बताइए, मेरे मनका भ्रम दूर हो तो कैसे हो ? यह मन संसारकी अच्छाइयों और बुराइयोंको देख-सुनकर तथा उनपर विचार करके भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ रहा है (उसका-

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भगति, ज्ञान, बैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई।
कोउ भल कहौ, देउ कछु, असि बासना न उर - तें जाई ॥ २ ॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं, तव कृपापात्र जन जागै[1]।
निज करनी बिपरीत देखि, मोहिं समुझि महा भय लागै ॥ ३ ॥
जद्यपि भगन-मनोरथ बिधि - बस, सुख इच्छत दुख पावै।
चित्रकार कर - हीन जथा स्वारथ - बिनु चित्र बनावै ॥ ४ ॥
हृषीकेस[2] सुनि नाउँ, जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
'तुलसिदास' इंद्रिय-संभव दुख, हरे बनिहि प्रभु तोरें ॥ ५ ॥ (११९)

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ?
जद्यपि मृषा, सत्य भासै, जब-लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥ १ ॥
अर्थ अविद्यमान जानिय, संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
बिनु बाँधे, निज हठ, सठ परबस, पर्‍यो कीर - की नाईं ॥ २ ॥

जैसा सहज स्वभाव पड़ गया है, वैसा ही करता है) ॥ १ ॥ यद्यपि मनसे सांसारिक भ्रम दूर करनेके लिये भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि अनेक साधन विद्यमान हैं तथापि मनकी यह वासना दूर नहीं हो पाती कि 'कोई हमें भला कहे, या कोई हमें कुछ दे दे' ॥ २ ॥ जिस अज्ञानके अन्धकार-से भरी इस संसार-रूपी रात्रिमें प्राणिमात्र सोए पड़े रहते हैं (आपको भूले रहते हैं), उसमें आपका कृपा-पात्र भक्त जागता रहता है (भगवद्भजनमें लीन और ज्ञान-पूर्ण रहता है)। परन्तु मैं जब अपनी करनी देखने लगता हूँ तब उसका परिणाम समझकर बहुत भयभीत हो उठता हूँ ॥३॥ यद्यपि दैववशात् मेरे कोई भी मनोरथ पूरे नहीं हो पा रहे हैं तथापि मैं सुखोंकी इच्छा कर-करके उसी प्रकार दुःख पाए चला जा रहा हूँ जैसे कोई चित्रकार अपने हाथसे चित्र न बनाकर केवल काल्पनिक चित्रोंसे ही अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहे (वह उससे लाभके बदले दुःख ही पायेगा) ॥ ४ ॥ आपका हृषीकेश (हृषीक+ईश=इन्द्रियोंका स्वामी) नाम सुनकर मैं आपकी बलैया लेता हूँ। मेरे मनमें यह पूर्ण रूपसे विश्वास हो गया है कि इन्द्रियोंकी वासनाके कारण तुलसीदासको जो दुःख उत्पन्न हो गया है वह आप अवश्य दूर कर डालेंगे ॥ ५ ॥ (११९)

हरि ! आप मेरा यह भारी भ्रम क्यों नहीं दूर कर डालते ? यद्यपि यह संसार असत् और मिथ्या है, तथापि जबतक आपकी कृपा नहीं हो जाती तब-तक तो यह सत्य-सा ही जान पड़ता रहेगा। ॥ ६ ॥ यह मैं जानता हूँ कि अर्थ नाशवान् है (विषय-सुख क्षणिक हैं) तथापि मेरा सांसारिक संस्कार (संसारके विषयोंमें लिप्त रहनेका अभ्यास) दूर नहीं हो पाता ॥ १ ॥ मैं तो ऐसा हो गया हूँ कि बिना किसीके बाँधे ही स्वयं हठवश अपनेको बन्धनमें डालकर सुग्गेकी भाँति परवश

---

१. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥—गीता
२. हृषीकेश=(हृषीक+ईश) इंद्रियोंके स्वामी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सपने ब्याधि बिबिध बाधा जनु, मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करइ, जागे-बिनु पीर न जाई॥ ३॥
श्रुति - गुरु - साधु - सुमृति - संमत, यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे-बिनु रघुपति, बिपत सकै को टारी ?॥ ४॥
बहु उपाय संसार-तरन-कहँ, बिमल गिरा श्रुति गावै।
'तुलसिदास' 'मैं-मोर' गए-बिनु, जिय सुख कबहुँ न पावै॥ ५॥ (१२०)

हे हरि ! यह भ्रम-की अधिकाई।
देखत, सुनत, कहत, समुझत संसय-संदेह न जाई॥ १॥
जौ जग मृषा, ताप - त्रय - अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ?
कहि न जाइ मृगबारि सत्य, भ्रम-तें दुख होइ बिसेखे॥ २॥
सुभग सयन सोवत, सपने बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहु नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै॥ ३॥

हुआ पड़ा हूँ[1] ॥ २ ॥ जैसे स्वप्नमें कोई अनेक रोगोंसे पीडित हो जाय और वैद्य भी अनेक प्रकारके उपाय करके ऐसा हार बैठे कि मरनेकी दशा उपस्थित हो जाय पर उसके कष्टका छुटकारा तबतक नहीं हो पा सकता जबतक वह जाग न जाय (वैसे ही जीव भी इस भ्रमात्मक संसारमें पड़कर अनेक प्रकारके कष्ट तबतक भोगता रहता है जबतक उसे आत्मबोध नहीं हो जाता) ॥३॥ वेद, गुरु, साधु और स्मृतियाँ, सभीका मत है कि यह संसार बड़ा दुःखप्रद है। ऐसी दशामें बताइए कौन ऐसा समर्थ है जो इसका त्याग किए बिना तथा रामका भजन किए बिना इस विपत्तिको दूर कर सके ? ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि संसारसे मुक्त होनेके लिये वेद निर्मल वाणीसे गाए चले जा रहे हैं तथापि 'मैं' और 'मेरा'का भाव जबतक दूर नहीं हो जाता तबतक यह जीव कदापि सुख नहीं पा सकता ॥ ५ ॥ (१२०)

हे हरि ! मनमें इतना अधिक भ्रम छाया पड़ा है कि देखने, सुनने, कहने और समझने-पर भी संशय और संदेह दूर नहीं हो पाते ॥ १ ॥ यदि यह संसार असत्य है तो फिर तीनों तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक)-का अनुभव क्यों होता है ? यद्यपि मृग-जल सत्य नहीं होता, फिर भी जबतक भ्रम बना रहता है तबतकके लिये तो वह सत्य ही कहा जा सकता है, और इसी कारण बहुत कष्ट भी होता है ॥ २ ॥ सुन्दर सेजपर सोया हुआ जो मनुष्य स्वप्नमें देखता है कि मैं समुद्रमें डूबने लगा हूँ और अनेक नावोंसे भी पार नहीं जा पा रहा हूँ, वह तबतक भयभीत हुआ पड़ा रहता है, जबतक वह जाग नहीं जाता ॥ ३ ॥ जबतक

१. (सुग्गे पकड़नेवाले चिड़ीमार दो लकड़ी खड़ी करके उनके ऊपर एक पतली लकड़ी रख देते हैं जिसपर एक पोली चुँगुली (बाँसकी नली) पहनाई हुई रहती है। जब सुग्गा उसपर आकर बैठता है तो उसके भारसे चुँगुली घूम जाती है और सुग्गा लटक जाता है वह समझता है कि यह चुँगुली ही मुझे पकड़े हुए है। बस चिड़ीमार आकर पकड़ लेता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम - संतोष - बिबेक - दया - तैं ब्यवहारौ सुखकारी ॥ ४ ॥
'तुलसिदास' सब बिधि प्रपंच जद्यपि झूठै, श्रुति गावै।
रघुपति-भगति, संत-संगति - बिनु, को भव-त्रास नसावै ॥ ५ ॥ (१२१)

मैं हरि ! साधन करइ न जानी।
जस आमय, भेषज न कीन्ह तस, दोष कहा दिरमानी[1] ॥ १ ॥
सपने नृप कहँ घटइ बिप्र - बध, बिकल फिरै अघ लागे।
बाजि - मेध सत कोटि करै, नहिं सुद्ध होइ बिनु जागे ॥ २ ॥
स्रग - महँ सर्प बिपुल भयदायक, प्रगट होइ अबिचारे।
बहु आयुध धरि, बल अनेक करि हारहिं, मरै न मारै ॥ ३ ॥
निज भ्रम - तें रबिकर - संभव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित - नौका चढ़ि, कबहूँ पार न पावै ॥ ४ ॥
'तुलसिदास' जग आप - सहित जब - लगि निरमूल न जाई।
तब - लगि कोटि उपाय कलप करि मरिय, तरिय नहिं भाई ॥ ५ ॥ (१२२)

ज्ञान नहीं उदय हो जाता तभीतक यह संसार रमणीक दिखाई देता है, परन्तु वस्तुतः यह है बड़ा ही भयंकर। यह संसार यदि सुखमय है तो केवल उनके ही लिये जो सम, सन्तोष, दया और विवेकसे सबके प्रति सद्व्यवहार करते रहते हैं ॥ ४ ॥ देखो तुलसीदास ! वेद भी कहते हैं कि सांसारिक प्रपंच सर्वथा असत्य है। रामकी भक्ति और सन्तोंकी संगतिके बिना और किसमें सामर्थ्य है कि इस सांसारिक भयसे मुक्त कर सके (किसीमें नहीं) ॥ ५ ॥ (१२१)

हरि ! मुझे तो कुछ साधना-वाधना करनी आती नहीं। मैंने जब रोगके अनुसार औषधि नहीं की तब उसके लिये पैसा लगानेवाले (या वैद्य)-का क्या दोष है ? ॥१॥ यदि किसी राजाको स्वप्नमें ब्रह्महत्याका दोष लग जाय और इस पापके कारण वह स्वप्नमें इधर-उधर व्याकुल होकर भटकता फिरे तो सौ करोड़ अश्वमेध यज्ञ करनेपर भी वह उस पापसे तबतक मुक्त होकर शुद्ध नहीं हो पा सकता जबतक वह जाग न जाय। यदि अज्ञानताके कारण कोई मालाको सर्प समझ बैठे और उससे अत्यन्त भयभीत होकर वह उसे बलपूर्वक अनेक प्रकारसे अनेक शस्त्रोंसे मारते-मारते हार जाय, तब भी वह (माला-रूपी सर्प) लाख मारे नहीं मर सकता ॥ ३ ॥ जिसे अपने ही भ्रमके कारण मृग-मरीचिकासे उत्पन्न समुद्र अत्यन्त भयानक जान पड़ता हो, वह नाव या जहाजपर चढ़कर तबतक सागरके पार नहीं जा सकता जबतक भ्रम न दूर हो जाय ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जबतक अहं भावके साथ ही संसार (भ्रम)-का नाश नहीं होगा (जबतक संसार असत्य न जान पड़ेगा) तबतक भाई ! चाहे अनेक कल्पोंतक, करोड़ों उपाय करते-करते क्यों न मर जाओ, इस संसार-सागरसे पार न जा पाओगे ॥ ५ ॥ (१२२)

१. दिरमानी = (दिरम फ़ारसी : चाँदीका सिक्का,) धन लगानेवाला। दिरमानीका अर्थ वैद्य नहीं है जैसे कुछ विद्वानोंने दिया है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अस कछु समुझि परत, रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु! दास-हित मोह न छूटै माया॥ १॥
वाक्य-ज्ञान अत्यंत निपुन, भव-पार न पावै कोइ।
निसि गृह-मध्य दीप-की बातन, तम निवृत्त नहिँ होई॥ २॥
जैसे कोउ इक दीन-दुखी अति असन-हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु-कामधेनु गृह लिखे, न बिपति नसावै॥ ३॥
षट रस बहु प्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैनि बखाने।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख, खाइ, सोइ पै जानै॥ ४॥
जब-लगि नहिँ निज हृदि प्रकास, अरु बिषय-आस मन-माहीँ।
'तुलसिदास' जग-जोनि भ्रमत, तब-लगि सपनेहुँ सुख नाहीँ॥ ५॥(१२३)

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा॥ १॥
सत्रु-मित्र-मध्यस्थ तीनि पै मन कीन्हें बरियाई।
त्यागब, गहब, उपेच्छनीय, अहि, हाटक, तृन-की नाँई॥ २॥
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि-महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर, अचर, लोक बहु, बसत मध्य-मन तैसे॥ ३॥

राम! मुझे तो कुछ ऐसा जान पड़ता है कि आप-जैसे दयालु और भक्तका हित करनेवालेकी कृपाके बिना न तो मोह ही छूट पा सकता है, न माया ही॥१॥ जैसे शास्त्र-ज्ञानकी चर्चा करनेमें बहुत निपुण होनेपर भी आत्मानुभूति न होनेके कारण कोई संसार-सागरको पार नहीं कर पा सकता, जैसे रातके समय घरके भीतर दीपक बन्द कर रखनेसे रात्रिका अन्धकार नहीं मिट पा सकता,॥ २॥ जैसे कोई भूखसे तड़फड़ाता हुआ अत्यन्त दीन दुखिया भोजन न पानेसे व्याकुल हो रहा हो तो उसकी भूख मिटानेके लिये घरमें कोई कल्पवृक्ष और कामधेनुके चित्र बना-बनाकर उसकी भूख मिटाना चाहे तो वह कभी नहीं मिट सकती॥ ३॥ वैसे ही यदि कोई अनेक प्रकारके षड्रस व्यञ्जनोंका दिनरात वर्णन करता रहे, तो उससे क्या होता-जाता है? उसका सुख तो उसे तभी मिल सकता है जब वह भोजनके पदार्थोंका नाम लिए बिना सन्तोषपूर्वक भर-पेट भोजन कर ले॥ ४॥ तुलसीदास कहते हैं कि जबतक अपने हृदयमें आत्मबोध-द्वारा ज्ञान नहीं होता और मन विषय-सुखकी आशामें डाँवाँडोल हुआ रहता है, तबतक वह संसारकी अनेक योनियोंमें यों ही भटकता रहेगा, उसे स्वप्नमें भी वास्तविक सुख (ब्रह्मानन्द) प्राप्त न हो पावेगा॥५॥ (१२३)॥

यदि यह मन अपने सारे विकार छोड़ दे, तो फिर भेद-भावसे उत्पन्न ये सांसारिक दुःख, भ्रम और अपार शोक उसे हों ही क्यों॥१॥ हमारा मन बलपूर्वक शत्रु, मित्र और मध्यस्थ (उदासीन) ये तीन भेद मान बैठा है (वास्तवमें न कोई किसीका शत्रु है न मित्र)॥२॥ शत्रुको साँपके समान त्याग देना चाहिए, मित्रको सुवर्णके समान ग्रहण कर लेना चाहिए और उदासीनकी तिनकेके समान उपेक्षा करनी चाहिए॥ ३॥ जिस प्रकार मनुष्यके मनमें भोजन, वस्त्र, धन और अनेक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिटप - मध्य पुत्रिका, सूत्र - महँ कंचुकि बिनहिं बनाए।
मन - महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए ॥ ४ ॥
रघुपति - भगति - बारि - छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
'तुलसिदास' कह चिद - बिलास जग, बूझत बूझत बूझै ॥ ५ ॥(१२४)

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी ॥ १ ॥
मम हृदय - भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥ २ ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय-निहोरा ॥ ३ ॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा ॥ ४ ॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहिं जानि अनाथा ॥ ५ ॥
मैं एक, अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥ ६ ॥
भागेहु नहिं नाथ उबारा। रघुनायक ! करहु सँभारा ॥ ७ ॥
कह 'तुलसिदास' सुनु रामा। लूटहिं तस्कर तव धामा ॥ ८ ॥
चिंता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होय तुम्हारा ॥ ९ ॥(१२५)

प्रकारकी वस्तुओंकी वासना बसी रहती है, उसी प्रकार स्वर्ग, नरक, चर (जंगम), अचर (स्थावर) और बहुतसे लोक भी इसी मनमें बसे हुए हैं ॥ ४ ॥ जैसे पेड़के भीतर काठकी पुतली और सूतके धागेके भीतर वस्त्र बिना बताए ही सदा (सूक्ष्म रूपमें) विद्यमान रहते हैं, वैसे ही इस मनमें भी अनेक प्रकारके शरीर लीन रहते हैं, जो समय-समय प्रकट होते रहते हैं ॥ ५ ॥ जब यह मन रामकी भक्तिके जलसे धुलकर निर्मल हो जायगा, तब उसे बिना प्रयास ही सत्य रूप दिखाई पड़ जायगा। तुलसीदास कहते हैं कि इस चैतन्यके विलास (माया)-वाले जगत्का सत्य तत्त्व (सच्चिदानंद-रूप) स्वयं परमात्मा तो समझते-समझते ही समझमें आ पावेगा ॥ ६ ॥ (१२४)

धीर और भक्तजनोंके हितकारी राम ! मैं अपना बड़ा भारी संकट (आपको छोड़कर और) कहूँ तो किससे कहूँ ? ॥ १ ॥ हरि ! मेरा हृदय आपका मन्दिर (घर) है, जिसमें बहुतसे ऐसे चोर आकर बस गए हैं जो इतने क्रूर हैं कि बराबर तंग किया करते हैं। मेरी विनति-प्रार्थना कुछ नहीं सुनते ॥ २ ॥ नाथ ! (इन चोरोंमें मुखिया सात हैं—) अविद्या, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और ज्ञानका शत्रु काम, ये बड़ा उपद्रव मचाए रहते हैं और मुझे अनाथ जानकर कुचले डाल रहे हैं ॥ ३ ॥ मैं तो अकेला हूँ और ये लुटेरे बहुत-से हैं। मेरी पुकार कोई सुनकर नहीं देता। नाथ ! यदि कहीं भागकर भी चला जाऊँ तब भी इनसे छुटकारा नहीं मिल पा सकता। अतः, रघुकुलके स्वामी राम ! अब तो यदि आप ही मेरी रक्षा कर सकें तो रक्षा हो ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं—'राम ! सुनिए (मेरा कुछ नहीं), ये चोर आपका ही घर लूटे ले रहे हैं। मुझे तो इसी बातकी अपार चिन्ता हो रही है कि इससे आप-जैसे परम यशस्वीका कहीं अपयश न होने लगे (कि आप जैसे-शक्तिशाली भी उन लुटेरोंका कुछ नहीं कर पा रहे हैं) ॥५॥ (१२५)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निज भगति चहै हरि - केरी ॥ १ ॥
उर आनहिं प्रभु - कृत हित जेते। सेवहि ते जे अपनपौ चेते ॥ २ ॥
दुख - सुख अरु अपमान - बड़ाई। सब सम लेखहि, बिपति बिहाई ॥ ३ ॥
सुनु सठ! काल - ग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥ ४ ॥
'तुलसिदास' बिनु असि मति आये। मिलहिं न राम कपट-लय लाये ॥ ५ ॥(१२६)

मैं जानी हरिपद - रति नाहीं। सपनेहु नहिं बिराग मन - माहीं ॥ १ ॥
जे रघुबीर - चरन अनुरागी। ते सब भोग, रोग - सम त्यागी ॥ २ ॥
काम - भुअंग डसत जब जाही। बिषय - निंब कटु लगै न ताही ॥ ३ ॥
असमंजस अस हृदय बिचारी। बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥ ४ ॥
जब कब राम - कृपा दुख जाई। 'तुलसिदास' नहिं आन उपाई ॥ ५ ॥ (१२७)

सुमिरु सनेह - सहित सीतापति। राम-चरन तजि, नहिंन आन गति ॥ १ ॥
जप, तप, तीरथ, जोग, समाधी। कलि-मति-बिकल,न कछु निरुपाधी॥ २ ॥

अरे मेरे मन ! देख, तू यदि रामकी अनन्य भक्ति चाहता हो तो मेरा कहा मान ले ॥ १ ॥ रामने तेरे साथ जो असंख्य उपकार किए हैं उन्हें तू स्मरण कर ले और जाकर उन सन्तोंकी सेवा कर जिन्हें आत्मबोध हो गया है ॥ २ ॥ तू सब विपत्तियोंकी चिन्ता छोड़कर दुःख, सुख, अपमान और प्रशंसा इन सब द्वन्द्वोंका झमेला दूर करके सबको एक समान मानने लग ॥ ३ ॥ अरे शठ ! सुन, इस शरीरको तो काल यों ही ग्रसे बैठा है। इसके लिये तू दूसरोंकी निन्दा मत कर, दूसरोंसे वैर मत कर ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि जबतक ऐसी बुद्धि नहीं आती तबतक केवल कपट समाधि (दिखावटी ध्यान)-से राम कदापि नहीं मिल सकते। वे जब मिलते हैं तो सच्चे प्रेमसे ही मिल पाते हैं ॥ ५ ॥ (१२६)

मैंने समझ लिया है कि रामके चरणोंमें मेरा मन नहीं लग पाता क्योंकि मेरे मनमें कभी स्वप्नमें भी वैराग्य नहीं उदय हो पाया ॥ १ ॥ जिन्होंने रामके चरणोंसे प्रीति जोड़ी है, उन्होंने सारे भोग-विलास रोगके समान समझकर छोड़ दिए हैं ॥ २ ॥ जब किसीको काम-रूपी सर्प डस बैठता है, तब उसे विषय-रूपी नीम कड़वी नहीं जान पड़ती[1] (कामी पुरुषको विषयसे अरुचि नहीं होती) ॥ ३ ॥ ऐसा विचार करके मनमें सदा दुबिधा बनी रहती है (कि क्या करूँ और क्या न करूँ) और यह चिन्ता नित्य नई-नई होकर बढ़ती चली जाती है ॥ ४ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह दुःख तभी दूर हो पावेगा, जब रामकी कृपा होगी। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ ६ ॥ (१२७)

अरे मन ! तू स्नेहपूर्वक जानकी-वल्लभ रामका स्मरण किए चल। रामके चरणोंको छोड़कर तेरी दूसरी कोई गति (उद्धारका उपाय) नहीं है ॥ १ ॥ जप, तप, तीर्थ, योग, समाधि आदि सब कलिकालके मारे व्याकुल हुआ जा रहे हैं (काम नहीं आ रहे हैं)। कोई भी उपाय ऐसा नहीं है जिसमें

१. जिसे साँप काट लेता है उसे नीमकी पत्ती खिलाई जाती है। यदि साँपका विष प्रभाव कर गया होता है तो उसे नीम कड़वी नहीं लगती। यदि नीमकी कड़वाहट कुछ भी जान पड़े तो वह मृत्युसे बचा लिया जा सकता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रक्तबीज - जिमि बाढ़त जाहीं ॥ ३ ॥
हरनि एक अघ - असुर - जालिका। तुलसिदास प्रभु - कृपा - कालिका ॥ ४ ॥(१२८)

रुचिर रसनाहु राम राम राम राम रटत। सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अनमंगल घटत॥१॥
बिनु श्रम कलि-कलुष-जाल, कटु कराल कटत। दिनकर-के उदय जैस तिमिर-तोम फटत॥२॥
जाग, जोग, जप, बिराग, तप, सुतीर्थ अटत। बाँधिबे-को भवगयंद, रेनु-कि रजु बटत॥३॥
परिहरि सुर-मनि सुनाम, गुंजा लखि लटत। लालच लघु तेरो लखि, तुलसी तोहिं हटत॥४॥१२९

राम, राम, राम, राम, राम राम जपत। मंगल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत ॥१॥
कहु के लहे फल रसाल, बबुर-बीज बपत। हारहि जनि जनम जाय, गाल गूल गपत[1] ॥२॥
काल, करम, गुन, सुभाव, सबके सीस तपत। रामनाम-महिमा-की, चरचा चले चँपत ॥३॥

कोई न कोई विघ्न-बाधा न हो ॥ २ ॥ पुण्य करते रहनेपर भी पापका नाश नहीं हो पाता। रक्त-बीज[2] दैत्यके समान ये पाप बढ़ते ही चले जा रहे हैं ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि इस पाप-रूपी दैत्य-समूहका नाश करनेवाली कोई महाकाली है तो एक मात्र प्रभु रामचन्द्रकी कृपा ही है ॥ ४ ॥ (१२८)

अरी सुंदर जीभ ! तू राम, राम, राम, राम क्यों नहीं रटा करती, जिसे स्मरण करने मात्रसे सुख मिलता है, पुण्य बढ़ते हैं तथा पाप और अमंगल घटते चले जाते हैं ॥ १ ॥ (राम-नामके स्मरणसे) बिना परिश्रमके ही कलियुगके भयानक और बुरे पापोंका जाल वैसे ही कट जाता है, जैसे सूर्यके उदय होते ही रात्रिका घना अन्धकार फट जाता है ॥ २ ॥ (राम-नामको छोड़कर) योग, यज्ञ, जप, तप, वैराग्य और तीर्थाटन करना वैसा ही है, जैसे संसार-रूपी गजराजको बाँधनेके लिये धूलकी रस्सी बँटना ॥ ३ ॥ तू कैसी मूर्खा है कि रामनाम-रूपी चिन्तामणिको छोड़कर घुँघची (गुञ्जा)-के लिये ललचाई पड़ रही है। तेरा यह तुच्छ लालच देखकर ही तुलसी तुझसे दूर हटा जा रहा है ॥ ४ ॥ (१२९)

राम-राम, राम-राम, राम-राम, जपनेसे सदा कल्याण ही कल्याण होता है, आनन्द मिलता है और कलियुगके पाप तथा छल-छिद्र (कपट) दूर जा छिपते हैं ॥ १ ॥ भला बताओ तो सही कि बबूलका बीज बोकर आजतक कौन आमका फल पा सका है ? इसलिये व्यर्थकी बकवादमें तू अपना जीवन नष्ट मत कर ॥ २ ॥ काल, कर्म, गुण और स्वभाव तो सभीके सिरपर सवार होकर तपते हैं (अवसर आनेपर सभीको सताते हैं) किन्तु ये सब भी राम-नामकी चर्चा चलते ही दबकर बैठ रहते

---

१. गाल गूल गपत = व्यर्थ बकवाद करना, अनाप-शनाप बकना।

२. रक्तबीज नामका दैत्य शुंभ-निशुंभका सेनापति था। उसे शंकरका वरदान प्राप्त था कि उसके शरीरसे गिरी हुई एक बूँदसे एक-एक रक्तबीज पैदा होता चला जायगा। महाकाली अपनी जिह्वा बढ़ाकर उस महादैत्यको मारकर उसके शरीरसे गिरे हुए रक्तकी प्रत्येक बूँदको अपनी फैली हुई जीभसे चाटती गई। इस प्रकार रक्तहीन हो जानेपर उसकी मृत्यु हो गई।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साधन-बिनु सिद्धि सकल, बिकल लोग लपत। कलिजुग बर बिपुल बनिज, नाम-नगर खपत॥४॥
नाम-सों प्रतीति-प्रीति, हृदय सुथिर थपत। पावन किय रावन-रिपु तुलसिहु-से अपत॥५॥(१३०)

पाव प्रेम राम - चरन जनम लाहु परम। राम-नाम लेत, होत सुलभ सकल धरम॥१॥
जोग, मख, बिबेक, बिरति, बेद-बिदित करम। करिबे-कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम॥२॥
'तुलसी' सुनि जानि-बूझि भूलहि जनि भरम। तेहि प्रभुकी सरन होहि, जेहि सबकी सरम३(१३१)

प्रीतम-की प्रीति-रहित जीउ जाय जियत। जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझि, कियत॥१॥
जहँ-जहँ जेहि जोनि जनम, महि-पताल-बियत[1]। तहँ-तहँ तू बिषय-सुखहि चहत, लहत नियत२
कित बिमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत। 'तुलसी' प्रभु-सुजस गाइ क्यों न सुधा पियत३ १३२

तो-सों हौं प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत[2]। सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत॥१॥

हैं ॥ ३ ॥ सब लोग बिना कोई साधन किए ही सिद्धियोंके लिये लपकते (दौड़ते) हैं पर कलियुगके बलसे जितना कुछ सौदा (जीवका मनोरथ) है, वह सब केवल रामनाम-रूपी नगरमें खप जाता है (रामनामके द्वारा कलिके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं)[3] ॥ ४ ॥ हृदयमें राम-नामका विश्वास और प्रेम स्थापित कर लिया जाय तो सारे दुःख दूर हो भागते हैं। तुलसीदास कहते हैं—'देखो, रावणके शत्रु रामने राम-नाम जपनेके कारण और तो और, मेरे जैसे नीचको भी पवित्र कर डाला है' ॥ ५ ॥ (१३०)

रामके चरणोंमें निष्काम प्रेम होना ही इस जीवनका सबसे बड़ा लाभ है ॥ १ ॥ रामका नाम लेते ही सब पुण्य सरलतासे प्राप्त होने लगते हैं ॥ २ ॥ यद्यपि वेदोंमें योग, यज्ञ, विवेक, वैराग्य आदि बहुतसे मुक्तिके साधना बताए गए हैं, परन्तु वे सब केवल सुननेमें ही मधुर और साध्य जान पड़ते हैं, उनके अनुसार चलना बड़ा ही कठिन और दुस्साध्य है ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि इनके सम्बन्धमें सुनकर, जानकर और समझकर भी इनके धोखेमें कभी न पड़ना। तू उसी प्रभुकी शरणमें पहुँच जा, जिसे सबकी लाज है (जो सबकी रक्षा करता है) ॥ ४ ॥ (१३१)

यह जीव रामके समान प्रियतमसे प्रेम न करके संसारमें व्यर्थ ही जीए चला जा रहा है। (अरे विचार तो कर कि) जिस सुखको तू सुख माने बैठा है, वह है ही कितना ? (क्षणिक है) ॥ १ ॥ तू जहाँ-जहाँ जिस-जिस योनिमें पृथ्वी, पाताल या आकाश कहीं भी जन्म लेता है, वहाँ-वहाँ तू केवल विषय-भोगके ही सुखके लिये ललचता है, परन्तु पाता है केवल थोड़ा ही ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि तू मोहमें पड़कर क्यों फटे आकाशको सीनेपर उतारू हो रहा है (क्यों असंभव काम करने बैठा है)। तू रामका सुयश गाकर क्यों नहीं अमृत-पान कर लेता ? ॥ ३ ॥ (१३२)

अरे जीव ! देख मैं तुझसे बार-बार प्रिय, पवित्र और सत्य वचन कहे जा रहा हूँ कि तू इसे सुन ले, मनमें विचार कर ले और समझ ले, फिर भी न जाने क्यों तू यह सरल और सुमार्ग नहीं

---

१. वियत=आकाश। २. तोसौं हौं फिरि-फिरि हित प्रिय पुनीन सत्य सुबचन कहत।
३. हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

छोट बड़ो, खोट खरो, जग जो जहँ रहत। अपनो अपने-को भलो, कहहु को न चहत ॥ २ ॥
बिधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखि, दुख दहत। पसु-लौं पसुपाल ईस, बाँधि, छोरि, नहत॥३॥
बिषय सुखद भार सीस, काँधे ज्यों बहत। योंही जिय जानि मानि सठ! तु सँसति सहत ॥४॥
पायो किन घृत, बिचारु, हरिन-बारि[1] महत। 'तुलसी' तकु ताहि सरन, जातें सब लहत ५(१३३)

बार-बार देव! द्वार परि पुकार करत। आरति, नति, दीनता कहे, सु सँकट हरत ॥१॥
लोकपाल सोक - बिकल रावन-डर डरत। का सुनि सकुचनि कृपालु! नर-सरीर धरत ॥२॥
कौसिक, मुनि-तीय, जनक, सोच-अनल जरत। साधन केहि सीतल भे, सो न समुझि परत॥३॥
केवट, खग, सबरि सहज चरन-कमल न रत। सनमुख तोहि होत नाथ! कुतरु सुफल फरत॥४॥
बंधु-बैर कपि-बिभिषन, गुरु गलानि गरत। सेवा केहि रीझि, राम! किए सरिस भरत ॥५॥

पकड़ चलता ? ॥१॥ छोटा या बड़ा, बुरा या भला, जो भी संसारमें जहाँ रहता हो उनमेंसे कौन ऐसा होगा जो अपना ही अपना भला न चाहता हो ? ॥२॥ ब्रह्मासे लेकर छोटे-छोटे कीड़े-तक भी सुखसे सुखी और दुःखसे दुखी होते हैं। ग्वालेके समान परमात्मा भी जीव-रूपी पशुको बाँधता, खोलता और उन्हें जोतता है ॥३॥ जैसे लोग सांसारिक विषयोंको, जो (दुःख देनेवाले) सिरके बोझ हैं, उन्हें सुख देनेवाले समझकर कंधेपर उठाए चलते चले जाते हैं, वैसे ही अरे शठ! तू भी अपने हृदयमें सब-कुछ समझ बूझकर भी साँसत सहे चला जा रहा है ॥ ४ ॥ भला तू विचार तो सही कि मृगजलको मथकर कौन घी निकाल सका है ? इसलिये तुलसीदास! तू भी उन्हीं रामकी शरणमें चला जा जिनसे तुझे सब कुछ प्राप्त हो सकता है ॥ ५ ॥ (१३३)

देव! मैं इसीलिये आपके द्वारपर पड़ा-पड़ा पुकार रहा हूँ कि प्रभो! आप दुःख, निवेदन और दीनता सुनते ही संकट हर लेते हैं ॥ १ ॥ जब रावणके डरसे भयभीत होकर (इन्द्र, कुबेर यम आदि) सब लोकपाल शोकसे व्याकुल हो चले थे, तब कृपालु! आपने क्या सुनकर संकोचसे मनुष्यका शरीर धारण किया था ? ॥२॥ यह समझमें नहीं आता कि जो विश्वामित्र (यज्ञमें राक्षसोंके उपद्रवसे), अहल्या (शापसे), और जनक (सीताका विवाह न हो पानेसे) चिन्ताकी आगसे जले जा रहे थे, वे किस उपायसे शीतल हो गए ? ॥ ३ ॥ निषाद, जटायु, शबरी आदि अपने स्वभाव (अपनी इच्छा)-से आपके चरण-कमलोंके सेवक नहीं थे (क्योंकि निषाद तो रामके वन जाते समय ही साथ गया था, जटायु भी पंचवटीपर रामसे परिचित हुआ था और शबरीको मतंग ऋषिने रामके आनेकी बात कही थी, स्वयं उनकी राममें कोई स्वाभाविक प्रीति नहीं थी), किन्तु नाथ! आपके सामने आते ही इन बुरे-बुरे वृक्षोंमें भी अच्छे फल लग गए (सब पवित्र होकर तर गए) ॥ ४ ॥ सुग्रीव और विभीषण अपने-अपने भाइयोंसे शत्रुता होनेके कारण ही तो दुखी थे। बताइए, इनकी किस सेवापर रीझकर आप इन्हें भरतके समान प्यारा मान बैठे ? ॥ ५ ॥ हाँ, हनुमान् अवश्य ऐसे थे जो

---

१. हरिन-बारि = मृगतृष्णाका जल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। ताको लिय नाम, राम सबहिं सुढर ढरत ॥६॥
जाने-बिनु राम-रीति, पचि-पचि जग मरत। परिहरि छल, सरन गए तुलसिहु-से तरत ॥७॥(१३४)

राग सूहो बिलावल

राम सनेही - सों तैं, न सनेह कियो।
अगम जो अमरनि-हूँ, सो तनु तोहिं दियो ॥
दियो सुकुल जनम, सरीर सुंदर, हेतु जो फल चारि - को।
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि - मुरारि - को ॥
यह भरत - खंड, समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली।
तेरी कुमति कायर ! कलपबल्ली चहति बिष-फल फली ॥ १ ॥

अजहुँ समुझु चित दै, सुनु परमारथ।
है हित सो जगहूँ, जाहि - तें स्वारथ ॥
स्वारथहि प्रिय, स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई।
देखइ खेल, अहि - खेल परिहरि, सो प्रभुहिं पहिचानई।
पितु, मातु, गुरु, स्वामी, अपनपौ, तिय, तनय, सेवक, सखा।
प्रिय लगत जाके प्रेम-तें, बिनु - हेतु हित, नहिं तैं लखा[1] ॥ २ ॥

आपकी सेवा करते-करते आपके ही समान (पूज्य) हो गए, क्योंकि राम ! (मैं देखता हूँ कि) जो उन (हनुमान्)-का नाम लेता है उसपर आप बहुत प्रसन्न हो उठते हैं ॥६॥ राम ! आपकी (यह रीझनेकी) रीति न जाननेके कारण ही सारा जगत् दूसरों-दूसरोंके फेरमें पड़ा मरा जा रहा है, इसीलिये कपट छोड़कर आपकी शरणमें पहुँच जानेसे यह 'तुलसी'-जैसा (पतित) जीव भी संसार-सागरसे पार हो गया ॥ ७ ॥ (१३४)

अरे जीव ! देवताओंको भी कठिनाईसे मिलनेवाला यह मनुष्य-शरीर जिन रामने तुझे दे डाला है, उन परम प्रेमी रामसे भी तू प्रेम न कर पाया जिन्होंने तुझे ऐसे अच्छे कुलमें जन्म और ऐसा सुन्दर शरीर दिया जिससे तू (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) चारों पदार्थ प्राप्त कर सकता है तथा जिस शरीरसे ज्ञानी लोग शंकर और मुरारि (विष्णु)-तकका परम पद प्राप्त कर लेते हैं। फिर यह भारतवर्ष देश, गंगाजीके निकटका उत्तम स्थान और सत्संग भी तुझे कितना उत्तम मिला है। इतनेपर भी अरे कायर ! तेरी कुबुद्धिके कारण ही इन सब साधनोंकी कल्पलता भी (जन्म-मरण रूपी) विषैले फल फला चाहती है (इतने उत्तम साधन पाकर भी तू इनका सदुपयोग न करके दुःख भोग रहा है) ॥ १ ॥ अब भी सँभल जा और मन लगाकर परमार्थ (आत्म-कल्याण)-की बात सुन ले। यही शिक्षा तेरा कल्याण भी करनेवाली है और उसीसे इस संसारमें तेरा स्वार्थ भी सिद्ध होगा। यदि तुझे स्वार्थ ही प्रिय है, तो यह बता कि यह स्वार्थ तुझे प्राप्त किससे हुआ है ? और वेद भी किसकी प्रशंसा कर रहे हैं ? देख, जो साँपका खेल छोड़कर (सांसारिक विषयोंमें मन न लगाकर) ईश्वरका खेल देखता है (उनकी माया पहचान लेता है) वही

१. आत्मनस्तु कामाय पतिः जाया पुत्राः वित्तं ब्रह्म क्षत्रं लोकाः देवाः भूतानि सर्वं प्रियं भवति ॥
—बृहदारण्यकोपनिषद्, १०।४।५।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दूरि न सो हितू, हेरि हिये ही है।
छलहिं छाँड़ि सुमिरे, छोह किये ही है॥
किय छोह छाया कमल कर - की भगत - पर भजतहिं भजै।
जगदीस जीवन जीव - को, जो साज सब, सबके सजै।
हरिहिं हरिता, बिधिहिं बिधिता, सिवहिं सिवता जो दई।
सोइ जानकी - पति मधुर मूरति, मोदमय, मंगलमई॥ ३॥

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि।
ध्यान - अगम सिव हू, भेंट्यो केवट उठि॥
भरि अंक भेंट्यो सजल नयन, सनेह सिथिल सरीर - सों।
सुर - सिद्ध - मुनि - कबि कहत कोउ न प्रेम-प्रिय रघुबीर -सों।
खग - सबरि - निसिचर - भालु - कपि किय आप - तें बंदित बड़े।
तापर तिन-कि सेवा सुमिरि, जिय जात जनु सकुचनि गड़े॥ ४॥

स्वामी - को सुभाव कह्यो, सो जब उर आनिहै।
सोच सकल मिटिहै, राम भलो मानिहै॥

उस प्रभुको पहचान पाता है। पिता, माता, गुरु, स्वामी, स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र सब जिसके प्रेमके कारण प्रिय लगते हैं उस अपने निष्कारण हितैषीको तूने नहीं पहचाना? ॥ २॥ तेरा वह हितैषी (राम) तुझसे दूर नहीं है। तू खोजकर तो देख! वह राम तेरे हृदयमें बैठा मिलेगा। निश्छल भावसे स्मरण करते ही वह तुझसे प्रेम करने लगेगा। वह अपने भक्तों-पर सदा अपने कर-कमलोंकी छाया किए रहता है। जो उस (राम)-को भजता है उसे वह (राम) भी भजता है और सबके लिये जो उचित होता है वह देता रहता है। वे जानकीपति राम ही हैं जिन्होंने विष्णुको विष्णु बनाया, ब्रह्माको ब्रह्मा बनाया और शिवको शिव बनाया, जिनकी मूर्त्ति ऐसी प्यारी है कि देखते ही आनंद-मंगल होने लगता है॥ ३॥ वे (राम) बहुत बड़े स्वामी तो हैं ही, साथ ही बड़े सुशील, सरल और सुन्दर भी हैं। यद्यपि शिव (-जैसे योगेश्वर) भी उन्हें ध्यान लगाकर (सहजमें ही) नहीं देख पा सकते तथापि (भक्तोंके लिये तो वे इतने सुगम हैं कि) उन्होंने गुह निषादको अपनी छातीसे उठा लगाया। इतना ही नहीं, निषादको आलिंगन करते समय स्नेहवश उनके नेत्र सजल हो उठे और (प्रेमके कारण) उनका सारा शरीर शिथिल हो चला। यह देखकर देवता, सिद्ध, मुनि और कवि सब कहने लगे थे कि रामके समान प्रेमी दूसरा कोई है ही नहीं। उन्होंने पक्षी (जटायु), शबरी, राक्षस (विभीषण), रीछ (जामवंत) और बन्दर (सुग्रीव-हनुमान् आदि)-तकको भी अपनेसे अधिक वंदनीय बना दिया। इतने-पर भी जब वे (राम) उनकी सेवाका स्मरण करते हैं तो मारे संकोचके गड़-से जाते हैं (कि मैंने तो इनके लिये कुछ भी नहीं किया। यह उनके शील-स्वभावकी पराकाष्ठा है) ॥ ४॥ प्रभु रामका जो शील-स्वभाव मैं बता रहा हूँ उसे जब तू समझेगा तभी तेरी सारी चिन्ताएँ मिट पावेंगी और प्रभु राम भी तुझपर तभी प्रसन्न होंगे। अरे! राम तो तभी प्रसन्न हो जायँगे, जब तू हाथ जोड़कर उनके आगे मस्तक नवा देगा और तुलसीदास! तू उसी क्षण जन्म और जीवनका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै।
ततकाल 'तुलसीदास' जीवन जनम - को फल पाइहै।
जपु नाम, करहि प्रनाम, कहि गुन - ग्राम, रामहिं धरि हिए।
बिचरहि अवनि अवनीस - चरन - सरोज मन मधुकर किए॥ ५ ॥(१३५)

राग रामकली

जिव जब - तें हरि - तें बिलगान्यो। तब - तें देह, गेह निज जान्यो॥
माया - बस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम - तें दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख, सुख - लेस नहिं सपनेहु मिल्यो।
भे सूल सोक अनेक जेहि - तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो।
बहु जोनि जनम जरा बिपति, मति-मंद हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम - बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारि, लखि पायो कहीं॥ १ ॥

सारा फल भी पा जायगा। तू बैठकर राम-नामका जप किया कर, रामको प्रणाम किया कर, उनके गुणोंका कीर्तन किया कर और हृदयमें रामको विराजमान कराकर अपने मनको जगदीश रामके चरण-कमलोंमें नित्य निवास करनेवाला भ्रमर बनाकर पृथ्वीपर निर्भय विचरण किया कर॥ ५॥ (१३५)

अरे जीव! जबसे तू (शरीर[1] पाकर) भगवान्‌से अलग हुआ, तभीसे तू अपने शरीर-को ही अपना घर माने बैठा है। मायाके फेरमें पड़कर तूने अपना स्वरूप (शुद्ध सच्चिदानंद रूप) भुला दिया। इसी भूलके कारण तू जो भयंकर और असह्य दुःख पाता रहा इसके कारण तुझे स्वप्नमें भी कभी तनिक-सा भी सुख नहीं प्राप्त हुआ। जिस मार्गमें अनेक प्रकारके सांसारिक कष्ट और शोक भरे पड़े हैं, तू हठपूर्वक उसी मार्गपर बार-बार चलता चला जाता रहा। तू अनेक योनियोंमें जन्म ले लेकर बूढ़ा हुआ, तूने विपत्तियाँ सहीं, फिर भी अरे मूर्ख! तू हरिको पहचान नहीं पाया। अरे मूढ! विचार करके तो देख कि रामसे विमुख रहकर कभी किसीने कहीं शान्ति पाई है?॥ १॥ अरे जीव! तू तो आनंद-सागरमें ही बसा हुआ है

---

१. शरीर=रोग, शोक जरा आदिके द्वारा शीर्ण (जर्जर) होने वाली देह। शरीर तीन प्रकारका माना गया है—क. स्थूल शरीर : जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है। ख. सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर : (बुद्धि, मन, पाँचों ज्ञानेन्द्रिय, पाँचों कर्मेन्द्रिय, पाँचों तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) इन १८ से मिलकर बना हुआ यह सूक्ष्म शरीर सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन (समाप्त) हो जाता है। ग. (विज्ञान भिक्षुके अनुसार) अधिष्ठान शरीर : लोकान्तरमें पहुँचकर सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर इस अधिष्ठान या अतिवाहित शरीरमें स्थित रहता है। वेदान्तके अनुसार कारण शरीर : कारण (अविद्या)-रूपी शरीर : सोते समय जीवके जो अज्ञान और अहंकार आदि शरीरके उत्पादक पदार्थ संस्कारके रूपमें बने रहते हैं उसे वेदान्तके मतानुसार कारण शरीर कहते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आनँद-सिंधु - मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृग-भ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥
तहँ मगन मज्जसि, पान करि, त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव, खल! भूलि चलि आयो तहाँ।
निर्मल, निरंजन, निर्विकार, उदार सुख, तैं परिहर्‍यो।
निःकाज राज बिहाय नृप - इव, स्वप्न कारागृह पर्‍यो॥ २॥

तैं निज कर्म-डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने-हि करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
तातें परबस पर्‍यो अभागे। ता फल गरभ - बास दुख आगे॥
आगे अनेक समूह संसृति, उदर - गति जान्यो सोऊ।
सिर हेठ[1], ऊपर चरन, संकट, बात नहिं पूछै कोऊ।
सोनित, पुरीष जो मूत्र, मल, कृमि, कर्दमावृत सोवही।
कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि - धुनि रोवही॥ ३॥

तैं निज कर्मजाल जहँ घेरो। श्रीहरि, संग तज्यो नहिं तेरो॥
बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों। परम कृपालु ज्ञान तोहिं दीन्हों॥

(तू तो स्वयं आनन्द-स्वरूप ब्रह्म है), फिर तू अपनेको जाने बिना (आत्मबोध प्राप्त किए बिना) क्यों प्यासा मरा जा रहा है? तू अपने मनमें मृग-जलको ही सच्चा जल समझता रहा और उसीमें सुख-पूर्वक मग्न हुआ पड़ा रहा। उसी भ्रम-जलमें डूबा हुआ तू उसी मिथ्या जलको ही पीता रहा जहाँ तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य)-में कभी जल रहा ही नहीं। और दुष्ट! तू अपना सहज अनुभूत रूप भी वहीं छोड़कर चला आया। तू उस आनन्दका परित्याग किए बैठा है जो निर्मल है, मायासे सर्वथा परे है तथा जो स्वयं ही पूर्ण है। तू तो उस राजाके समान हो गया है जो स्वप्नमें अपना राज्य त्यागकर व्यर्थ ही कारागारमें बंदी बना पड़ा हो (ब्रह्मानंद त्यागकर मिथ्या विषयानन्दमें फँस गया हो)॥ २॥ तूने स्वयं अपनेको अपनी कर्मरूपी रस्सीको कसकर अपनी ही करनीसे उसमें गाँठ भी लगा दी (तू कर्म-बन्धनमें जकड़ा चला जा रहा है)। अरे अभागे! इसीसे तू परवश हो गया है। इसीके कारण तुझे भविष्यमें फिर गर्भवासका दुःख भोगना पड़ेगा। अपनी माताके गर्भमें रहनेके समय तुझे भविष्यमें होनेवाले अनेक जन्मोंकी परम्पराका भी बोध हो गया था (कि मैं पहले क्या था)। उस समय तेरा सिर नीचे था और पैर ऊपर थे। ऐसे संकटके समय तेरी कोई बात-तक नहीं पूछता था। रक्त, विष्ठा, मल-मूत्र, कीड़ों और कीचड़ (मांस-पेशियों)-में लिपटा हुआ तू सोया पड़ा था। सुकुमार शरीर होनेके कारण तुझे इतना दुःसह कष्ट होता था कि तू सिर धुनधुनकर रोता-पछताता था॥ ३॥ पर जहाँ-जहाँ भी तू अपने कर्मजालमें फँसकर पड़ा रहा वहाँ-वहाँ भी हरिने तेरा साथ कभी नहीं छोड़ा। वहाँ भी प्रभु अनेक प्रकारसे तेरा पालन-पोषण करते रहे और परम दयालु प्रभु तुझे ज्ञान भी देते रहे। जब प्रभुने ज्ञान दिया तब तुझे अपने अनेक जन्मोंका

---

१. हेठ=नीचे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तोहिं दियो ज्ञान - बिबेक जन्म अनेक - की तब सुधि भई।
तेहि ईस - की हौं सरन, जाकी बिषम माया गुनमई।
जेहि किए जीव-निकाय बस रस-हीन, दिन - दिन अति नई।
सो करौ बेगि सँभार श्रीपति, बिपति - महँ जेहि मति दई ॥ ४ ॥

पुनि बहु बिधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक-पानी[1] ॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी। प्रसव - पवन प्रेरेउ, अपराधी ! ॥
प्रेर्‍यो जो परम प्रचंड मारुत, कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ज्ञान - ध्यान - बिराग - अनुभव, जातना - पावक दह्यो।
अति खेद - ब्याकुल, अल्प बल, छिन एक बोलि न आवई।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ, सब लोग हर्षित गावई ॥ ५ ॥

बाल - दसा जेते दुख पाए। अति अनयस[2], नहिं जाहिं गनाए ॥
छुधा ब्याधि बाधा भइ भारी। बेदन नहिं जानइ महतारी ॥
जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै बिबिध उपाय, जातें अधिक तुव छाती जरै।
कौमार, सैसव अरु किसोर, अपार अघ को कहि सकै।
व्यतिरेक[3] तोहिं निर्दय महा खल ! आन कहु को सहि सकै ॥ ६ ॥

स्मरण होने लगा और तू पुकारकर कहने लगा—'मैं उसी ईश्वरकी शरणमें हूँ जिसकी त्रिगुणात्मिका माया ऐसी प्रचंड है कि वह जीवोंको तो अपने वशमें करके उन्हें नीरस बना डालती है परन्तु स्वयं दिनों दिन नवीन होती चलती है। लक्ष्मीपते ! अब आप शीघ्र ही उस मायासे मेरी रक्षा कर लीजिए। आपने ही मुझे इस विपत्तिके समय सद्‌बुद्धि दी है' ॥ ४ ॥ फिर (गर्भ में) तू अपने मनमें अनेक प्रकारसे ग्लानिका अनुभव करके यह सोचता रहा कि 'अब संसारमें जाकर मैं चक्रपाणि भगवान्‌का भजन अवश्य करूँगा'[4] ऐसा विचार कर तू मौन हुआ ही था कि अपराधी ! उधरसे उस दयालु प्रभुने प्रसवके वायुको प्रेरित किया। उस अति प्रचंड पवनकी प्रेरणाके कारण तुझे अनेक कष्ट झेलने पड़े और पूर्व कालका जितना कुछ ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और अनुभव था वह सभी उस कष्ट-रूपी अग्निमें जल मिटा। तब अत्यन्त पश्चात्तापके कारण तू व्याकुल हो गया और दुर्बल होनेके कारण तुझे क्षणमात्रके लिये भी बोलना असम्भव हो गया। परन्तु तेरे इस दुस्सह कष्टका ज्ञान किसीको नहीं हुआ। उलटे सभी आनंद-पूर्वक तेरे जन्मकी बधाईके गीत गाने लगे ॥ ५ ॥ बचपनमें तूने जितने अधिक कष्ट पाए, उन्हें गिनानेमें मैं असमर्थ हूँ। भूख और रोगके कारण तुझे अनेक संकट झेलने पड़े परन्तु तेरी माताको तो यही नहीं जान पड़ा कि मेरा बच्चा रो किसलिये रहा है। फिर भी वह बेचारी अनेक उपाय करती रही, परन्तु तेरे कष्टोंका निवारण न हो पाया और दुःखके मारे तेरी छाती अधिक ही अधिक जलती रही। बाल्यावस्था, किशोरावस्था और कुमारावस्था (नौजवानीकी अवस्था)-में जो तूने अनंत कष्ट उठाए उनका वर्णन कौन कर सकता है ? अरे कठोर ! महादुष्ट !! बता

---

१. चकपानी=चक्रपाणि, विष्णु। २. अनयस=अनैसे=अनिष्टकारी, बुरे। ३. व्यतिरेक=अतिरिक्त। ४. गर्भोपनिषद्।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जौबन जुवति - संग रँग रात्यो। तब तू महा मोह - मद - मात्यो॥
तातें तजी धरम - मरजादा। बिसरे तव सब प्रथम बिषादा॥
बिसरे - बिषाद, निकाय संकट समुझि, नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगत - आवर्त्त संसृति - चक्र जेहि सोइ सोइ कियो।
कृमि - भस्म - बिट[1] परिनाम तनु तेहि लागि जग बैरी भयो।
पर-दार, पर - धन, द्रोह - पर, संसार बाढ़ै नित नयो॥ ७॥

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तन - माहीं॥
सो प्रगट तन जर्जर जरा - बस, ब्याधि - सूल सतावहीं।
सिर कंप, इंद्रिय - सक्ति - प्रतिहत, बचन काहु न भावहीं।
गृहपाल[2]-हू-तें अति निरादर, खान-पान न पावई।
ऐसेहु दसा न बिराग, तहँ तृस्ना - तरंग बढ़ावई॥ ८॥

कहि को सकै महा भव तेरे। जनम एक - के कछुक कहे रे॥
चारि खानि संतत अवगाही। अजहुँ न करि बिचार मन - माहीं?

तो तुझे छोड़कर ऐसा कष्ट कौन सह सकता था? ॥६॥ जवानी आनेपर तू स्त्रीके प्रेममें ऐसा जा फँसा और बड़े भारी अज्ञान और मदमें इतना मतवाला हो गया कि तू सारा विवेक ही खो बैठा। इसलिये तू धर्मकी मर्यादाका उल्लंघन करता रहा और पूर्व कालके सारे कष्ट भूल गया। पहलेके सारे कष्ट तो जो तू भूला सो तो भूला ही, पर भविष्यके कष्ट समझकर भी तेरी छाती नहीं फटी। तू फिर भी वही कर्म करता रहा जिनके कारण तुझे फिर गर्भके चक्रमें पड़कर संसारमें भटकना पड़े। जो शरीर अन्तमें (गाड़नेपर) कीड़े, (जलानेपर) राख और (जीवोंद्वारा खाए जानेपर) विष्ठा आदि बननेवाला है उसी शरीरके लिये तू ऐसे उपाय करता रहा कि तूने संसारको ही अपना शत्रु बना डाला। तू संसारमें पराई स्त्री, पराया धन और दूसरोंसे झगड़ा ही नित्य बढ़ाता रहा॥ ७॥ देखते-देखते वह बुढ़ापा भी आ पहुँचा जिसे तूने कभी स्वप्नमें भी नहीं बुलाया था। उस बुढ़ापेके दोषों-का वर्णन करना असम्भव है। उन्हें तो तू अपने शरीरमें ही प्रत्यक्ष देख ले। उसने आते ही शरीर अत्यंत शिथिल कर डाला, अनेक रोग और कष्ट आ-आकर सताने लगे, सिर काँपने लगा, इन्द्रियों-की सारी शक्ति नष्ट हो गई, तेरा (अस्पष्ट) बोलना भी किसीको अच्छा नहीं लगने लगा। कुत्तेसे भी अधिक तेरा निरादर होने लगा और उचित भोजन-तक भी नहीं मिलने लगा। ऐसी दुर्दशा होनेपर भी तुझे (संसारसे) विराग नहीं हुआ वरन् तेरी तृष्णाकी लहर बढ़ती ही चली गई॥ ८॥ अरे! तेरे अनेक जन्मोंकी कथा भला कौन बता सकता है? यह तो मैंने केवल एक ही जन्मके कुछ कष्ट गिनाए हैं। देख, तुझे सदासे चार प्रकारकी योनियों (पिंडज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज)-में चक्कर खाना पड़ा है। अब भी तो इसपर सोच-विचार ले। अबसे भी तो सोच-समझकर भक्तोंको सुख देनेवाले उन रामका भजन कर, जो दुस्तर संसार-सागरसे पार करनेके

---

१. बिट=विष्ठा, बींट, मल। २. गृहपाल=कुत्ता।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अजहूँ बिचारि, बिकार तजि, भजु राम, जन - सुखदायकं।
भव - सिंधु - दुस्तर जल-रथं, भजु चक्र - धर सुर - नायकं।
बिनु - हेतु करुनाकर, उदार, अपार - माया - तारनं।
कैवल्य - पति, जगपति, रमापति, प्रानपति, गति - कारनं ॥ ९ ॥

रघुपति - भगति सुलभ, सुखकारी। सो त्रय - ताप - सोक - भय - हारी ॥
बिनु - सतसंग भगति नहिं होई। ते तब मिलैं, द्रवहि जब सोई ॥
जब द्रवहि दीनदयाल राघव, साधु - संगति पाइए।
जेहि दरस - परस - समागमादिक, पाप - रासि नसाइए।
जिनके मिले दुख - सुख समान, अमानतादिक गुन भए।
मद - मोह - लोभ - बिषाद - क्रोध, सुबोध - तें सहजहिं गए ॥ १० ॥

सेवत साधु द्वैत - भय भागै। श्रीरघुबीर - चरन लय - लागै ॥
देह - जनित बिकार सब त्यागै। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ॥
अनुराग सो निज रूप जो जग - में बिलच्छन देखिए।
संतोष, सम, सीतल सदा, दम देहवंत न लेखिए।
निर्मल, निरामय, एक - रस, तेहि हर्ष - सोक न ब्यापई।
त्रैलोक्य - पावन सो सदा, जा-कहँ दसा ऐसी भई ॥ ११ ॥

लिये जहाज बने खड़े हैं, जो सुदर्शन चक्र लिए रहते हैं, जो देवताओंके नायक हैं, अकारण कृपा करते रहते हैं, उदार हृदयवाले हैं, अपार मायासे मुक्त कर सकते हैं, मोक्ष दे सकते हैं, संसारके स्वामी हैं, लक्ष्मीके पति हैं, सबके प्राणोंके स्वामी हैं और जिन्होंने मुक्तिको जन्म दिया है, उन्हीं भगवान्‌का तू भजन कर ॥ ९ ॥ रामकी भक्ति (सबको) सुलभ भी है और सुख भी देती है। वह तीनों सांसारिक तापोंके साथ-साथ शोक और भय भी दूर कर डालती है। परन्तु वह (भक्ति) भी सत्संगतिके बिना नहीं मिल पाती और सत्संगति भी तभी प्राप्त होती है जब रामकी कृपा होती है। जब दीनदयालु रामकी कृपा होगी तभी ऐसे संतजन मिल पावेंगे जिनके दर्शन, स्पर्श और जिनसे मिलने-जुलनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं, जिनसे मिलनेपर सुख और दुःख तथा मान और अपमान सबको मनुष्य समान समझने लगता है एवं आत्मबोध हो जानेपर अहंकार, अज्ञान, लोभ, शोक, क्रोध आदि स्वभावतः दूर हो भागते हैं। सन्तोंकी सेवा करनेसे द्वैत (भेद-भाव) दूर हो जाता है और रामके चरणोंमें प्रेम हो जाता है, जिससे सांसारिक (दैहिक) विकारोंका परित्याग करके मनुष्य आत्मस्वरूप (सोऽहं ब्रह्म)-में लीन हो जाता है। 'आत्मस्वरूप'में जिस प्राणीका अनुराग बढ़ जाता है उसकी दशा संसारमें विलक्षण हो जाती है। उसे अलौकिक (दिव्य) आनन्द प्राप्त होने लगता है तथा उसके हृदयमें सन्तोष, समता और शान्ति आ बसती है। जितेन्द्रिय होनेके कारण वह प्राणी (देह रहते हुए भी) विदेह हो जाता है (उसके शरीरको सुख-दुःख कुछ नहीं सताता)। वह विशुद्ध, निरोग तथा एकरस हो जाता है। फिर उसे हर्ष-विषाद कुछ नहीं सताते।

---

१. खानि चारि=स्वेदज, अंडज, पिंडज, उद्भिज, ये चार प्रकारके जीव होते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जौ तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई॥
जो मारग श्रुति - साधु बतावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥
पावै सदा सुख हरि - कृपा, संसार - आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं सुख, द्वैत - दरसन, बात कोटिक को कहै।
द्विज, देव, गुरु, हरि, संत - बिनु, संसार पार न पाइये।
यह जानि 'तुलसीदास' त्रास - हरन रमा - पति गाइये॥ १२॥(१३६)

राग बिलावल

जो पै कृपा रघुपति कृपालु - की बैर और-के कहा सरै ?
होइ न बाँको बार भगत - को, जो कोउ कोटि उपाय करै॥ १॥
तकै नीच जो मीच साधु - की, सोइ पामर तेहि मीच मरै।
बेद-बिदित प्रहलाद-कथा सुनि, को न भगति-पथ पाँउ धरै॥ २॥
गज उधारि, हरि थप्यौ बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै।
अंबरीष-की साप सुरति करि, अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥ ३॥

जिसकी ऐसा दशा हो जाती है, वह (स्वयं तो पवित्र होता ही है) तीनों लोकोंको भी पवित्र कर देता है॥ ११॥ जो प्राणी इस मार्गपर मन लगाकर चलता है (सन्त-जनोंकी सेवा करता हुआ रामके चरणोंमें भक्ति करता है), उसकी सहायता भला भगवान् क्यों न करेंगे ? वेदों और सन्तोंने जो मार्ग दिखा दिया है उसपर चलनेसे सभी प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं। उस मार्गपर चलकर प्राणी भगवत्कृपासे सदा सभी सुख प्राप्त करता है और फिर संसारकी समस्त आशाएँ छोड़ देता है। द्वैत भाव (ब्रह्म और जीवमें भेद समझने)-से जो भगवान्‌के दर्शन करता है उस प्राणीको स्वप्नमें भी सुख प्राप्त नहीं होता। ऐसी तो करोड़ों बातें हैं जिनके चक्करमें कौन पड़ने जाय ? ब्राह्मण, देवता, गुरु, हरि और सन्तोंके बिना कोई भी संसार-सागरका पार नहीं पा सकता। यही समझकर तो तुलसीदास भी सांसारिक भय दूर कर डालनेवाले लक्ष्मी-पति (राम)-का गुण-कीर्त्तन करने लगा है॥ १२॥ (१३६)

[विनय-पत्रिकाका पूर्वार्द्ध समाप्त]

यदि कृपालु रामकी कृपा बनी है तो फिर औरोंके बैर करनेसे बनता-बिगड़ता क्या है ? कोई चाहे कितने भी उपाय क्यों न कर डाले, परन्तु भगवद्भक्तका एक बाल भी बाँका नहीं हो सकता (कुछ भी नहीं बिगड़ सकता)॥ १॥ साधु-सन्तको मारनेकी ताकमें जो नीच लगा रहता है वह पापी उसी मौतसे स्वयं मर जाता है। प्रह्लादकी जो कथा वेदों-तकमें प्रसिद्ध है, उने सुनकर भी ऐसा कौन है जो भक्ति-मार्गपर न चलना चाहे ?॥ २॥ भगवान्‌ने गजेन्द्रका उद्धार किया, विभीषणको लंकाका राजा बना दिया और ध्रुवको अटल पद दे दिया। महामुनि दुर्वासाने अम्बरीषको जो शाप दे दिया था उसे स्मरण करके वे अब भी ग्लानिके मारे गले जाते हैं (कि मैंने भगवान्‌की भक्ति

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सो न कहा जो कियो सुजोधन, अबुध आपने मान जरै।
प्रभु - प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस, पांडु-तनय बरियाइँ बरै ॥ ४ ॥
जो - जो कूप खनैगो पर - कहँ, सो सठ फिरि तिहि कूप परै।
सपनेहुँ सुख न संतद्रोही- कहँ, सुरतरु सोउ विष-फरनि फरै ॥ ५ ॥
हैं काके द्वै सीस, ईस - के जन - की जो हठि सींव चरै।
'तुलसिदास' रघुबीर - बाहुबल, सदा अभय, काहू न डरै ॥ ६ ॥(१३७)

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक ! धरिहौ नाथ ! सीस मेरे।
जेहि कर अभय किए जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे ॥ १ ॥
जेहि कर-कमल कठोर संभु - धनु भंजि, जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु - ज्यों, परम प्रीति केवट भेंट्यो ॥ २ ॥
जेहि कर - कमल कृपालु गीध-कहँ, पिंडोदक दै धाम दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपि-कुल-पति सुग्रीव कियो ॥ ३ ॥
आयो सरन सभीत बिभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर-चाप, असुर हति, अभय-दान देवन दीन्हों ॥ ४ ॥

करनेवालेको क्यों शाप दे डाला था) ॥३॥ दुर्योधनने पाण्डवोंको क्या-क्या कष्ट नहीं दिए[1] ? वह मूर्ख अपने ही अभिमानमें जलता रहा, परन्तु प्रभुकी कृपासे सौभाग्य, विजय और कीर्त्तिने हठपूर्वक पाण्डवोंको ही अपनाया (पाण्डव ही सौभाग्यशाली, विजयी और यशस्वी हुए) ॥ ४ ॥ जो दूसरोंके लिये कुआँ खोदता है वह दुष्ट स्वयं उसमें जा पड़ता है, क्योंकि सन्तोंसे द्रोह करनेवालेको स्वप्नमें भी कभी सुख नहीं मिलता। उसके लिये तो कल्पवृक्ष भी विषैला ही फल देने लगता है ॥५॥ किसके दो सिर हुए कि भगवद्भक्तको कष्ट दे। अतः, तुलसीदास ! रामके भुज-बलका जिसे भरोसा रहता है वह सदा निर्भय रहता है, उसे किसीका कोई डर नहीं होता ॥ ६ ॥ (१३७)

नाथ राम ! क्या आप कभी अपना वह कर-कमल मेरे सिरपर भी ला रक्खेंगे, जिससे आपने भक्तके वशमें होनेके कारण उन आर्त्त भक्तोंको अभय कर दिया था जिन्होंने एक बार भी आपका नाम पुकार लिया। ॥ १ ॥ जिस कर-कमलसे आपने शिवका कठोर धनुष तोड़कर राजा जनकका सन्देह दूर कर दिया था, जिस कर-कमलसे गुह निषादको भाईके समान बड़े प्रेमसे हृदयसे उठा लगाया था, ॥ २ ॥ जिस कर-कमलसे आपने जटायु गीधको (पिताके समान) पिण्ड-दान देकर अपना परम-धाम दिया था, जिस कर-कमलसे अपने दास (सुग्रीवकी रक्षा)-के लिये बालिको मारकर सुग्रीवको वानरोंका राजा बना दिया था, ॥ ३ ॥ जिस करकमलसे आपने भयभीत, शरणागत विभीषणका राज-तिलक किया था, जिस कर-कमलसे धनुष चढ़ाकर, राक्षसोंका विनाश करके देवताओंको

---

१. दुर्योधनने भीमको विष दिया, उन्हें गंगामें ढकेल दिया, काले नागसे उन्हें डसवाया। पांडवोंको लाक्ष्य-गृहमें जलानेका षड्यन्त्र किया, जुएमें धोखेसे हराकर द्रौपदीको अपमानित किया, पांडवोंको दूसरी बार जुएमें हराकर वनमें भेज दिया। पाँच गाँव माँगनेपर भी नहीं दिए।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सीतल, सुखद, छाँह जेहि कर - की, मेटति पाप, ताप, माया ।
निसि-बासर तिहि कर-सरोज-की, चाहत 'तुलसिदास' छाया ॥ ५ ॥ (१३८)

दीनदयाल ! दुरित - दारिद - दुख दुनी दुसह त्रै-ताप तई है ।
देव - दुआर पुकारत आरत, सब - की सब सुख - हानि भई है ॥ १ ॥
प्रभु - के बचन बेद - बुध - सम्मत, मम मूरति महिदेव - मई है ।
तिनकी मति रिस, राग, मोह, मद, लोभ, लालची लीलि लई है ॥ २ ॥
राज - समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है ।
नीति - प्रतीति - प्रीति - परमिति - पति, हेतु-बाद हठि हेरि हई है ॥ ३ ॥
आस्रम - बरन - धरम - बिरहित जग, लोक - बेद - मरजाद गई है ।
प्रजा पतित, पाखंड - पापरत, अपने - अपने रंग रई है ॥ ४ ॥
साहित, सत्य, सुरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति - कपट - कलई है ।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥ ५ ॥
परमारथ - स्वारथ - साधन, भे अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है ।
कामधेनु - धरनी कलि - गोमर-[1] बिबस बिकल, जामति न बई है ॥ ६ ॥

अभय-दान दिया था ॥ ४ ॥ तथा जिस कर-कमलकी शीतल और सुखदायिनी छायासे सब पाप, सन्ताप और माया मिट जाते हैं, प्रभो ! आपके उसी कर-कमलकी छाया पानेके लिये यह तुलसीदास भी रात दिन-उत्पुक रहता है ॥ ५ ॥ (१३८)

दीनदयालु राम ! पाप, दरिद्रता, दुःख और तीन प्रकारके (दैहिक, दैविक और भौतिक) दुःसह तापोंसे यह संसार जला चल जा रहा है । देव ! यह दुखिया आपके द्वारपर खड़ा पुकार रहा हे, क्योंकि अब तो सभीके सारे सुख जाते रहे हैं ॥१॥ प्रभुने भी कहा है तथा वेद और विद्वान् भी यही मानते हैं कि ब्राह्मण साक्षात् मेरी ही मूर्त्ति हैं, किन्तु आज उन ब्राह्मणोंकी सारी बुद्धिको भारी क्रोध, आसक्ति, मोह, मद (अहंकार), लालची लोभ निगले बैठा है ॥ २ ॥ इसी प्रकार राज-समाज (क्षत्रिय जाति)-में भी अनेक कुचालें आ भरी हैं । वे मनमाने रूपसे नित्य नई कुचालें (लूटपाट, अन्याय, अत्याचार, व्यभिचार आदि) किए जा रहे हैं । नास्तिकताने राजनीति, धर्मशास्त्र, श्रद्धा-भक्ति, और कुल-मर्यादाकी प्रतिष्ठा सब ढूँढ़-ढूँढ़कर नष्ट कर डाली है ॥ ३ ॥ संसारमें वर्णाश्रम-धर्मका कहीं नाम नहीं रह गया है तथा लोक और वेदकी मर्यादा भी नष्ट हो गई है । प्रजाका पतन हो रहा है, वह (प्रजा) प्राखंड और पाप-कर्ममें लिप्त होती चली जा रही है और सभी अपने-अपने रंगमें मस्त हैं ॥ ४ ॥ साहिति (परस्पर नेल-मिलाप), सत्य और सुरीति तो घट गई हैं, उनके स्थानपर कपट-पूर्ण कुरीतिका मुलम्मा दिनों दिन चढ़ता चला जा रहा है । सज्जन कष्ट पाते जा रहे हैं, सज्जनता चिन्तामें पड़ी है। दुष्टजन आनन्द कर रहे हैं, दुष्टता बड़े चैनमें है ॥५॥ परमार्थके कार्य भी स्वार्थमें परिणत हो गए हैं। उनके सभी साधन निष्फल होते चले जा रहे हैं। कोई सिद्धि सचवी नहीं उतरती। 'कामधेनु-रूपी पृथ्वी' कलियुग-रूपी कसाईके हाथमें जा पड़ी है । जो पृथ्वीमें बोया जाता है वह व्याकुलताके मारे जम

---

१. गोमर = गाय मारनेवाला कसाई ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कलि - करनी बरनिए कहाँ लौं, करत फिरत बिनु टहल टई[२] है।
तापर दाँत पीसि, कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है॥ ७॥
त्यों-त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यों-ज्यों सील - बस ढील दई है।
सरुष बरजि, तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े - कि जई है॥ ८॥
दीजै दादि, देखि नातो, बलि, मही - मोद - मंगल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहि, राम अवधि चितवनि चितई है॥ ९॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि, करुना - बारि भूमि भिजई है।
रामराज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत - बिजई है॥ १०॥
समरथ बड़ो, सुजान, सुसाहिब, सुकृत - सेन हारी जितई है।
सुजन सुभाउ सराहत सादर, अनायास साँसति बितई है॥ ११॥
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोर, बिरद सदई है।
'तुलसी' प्रभु आरत - आरतिहर, अभय - बाँह केहि-केहि न दई है॥ १२॥(१३९)

ते नर नरक-रूप जीवत जग, भव - भंजन - पद - बिमुख अभागी।
निसि-बासर रुचि पाप, असुचि मन, खल मति-मलिन निगम-पथ-त्यागी॥ १॥

नहीं पाता॥६॥ कलियुगकी करनी कहें तो कहाँतक कही जाय ? एक तो वह यों ही बेकामका काम किए डाल रहा है, उसपर भी वह दाँत पीसकर हाथ मले जा रहा है कि और क्या कष्ट दे डालें। न जाने यह क्या करनेपर तुला हुआ है॥७॥ ज्यों-ज्यों आप शीलके कारण इसे ढील देते जा रहे हैं (इसकी उपेक्षा करते जा रहे हैं) त्यों-त्यों यह नीच सिर चढ़ता चला जा रहा है। आप तनिक क्रोध करके इसे डाँट देंगे तो यह तर्जनी दिखाते ही कुम्हड़ेकी बतियाकी भाँति मुरझा गिरेगा॥ ८॥ मैं आपकी बलैया लेता हूँ। यह सब देख-सुनकर अब आप ही इसका न्याय कीजिए (कि इसे कैसे दूर किया जाय) नहीं तो अब पृथ्वीसे आनन्द-मंगल बस मिटने ही वाला है। अब आप ऐसा कीजिए कि लोग फिर सौभाग्यशाली होकर प्रेमपूर्वक यह कहें कि रामने हमपर कृपा-दृष्टि की है॥ ९॥ मेरी यह विनति सुनकर भगवान् हरिने आनन्दसे देखा और मुसकराकर करुणाके जलसे पृथ्वीको भिगो दिया (दया कर दी)। बस रामराज्य होनेसे सभी कार्य सफल हो गए, अच्छे शकुन होने लगे, क्योंकि राजा राम तो जगद्-विजयी हैं न॥ १०॥ सर्व-शक्तिमान् चतुर स्वामीने पुण्यकी सेनाको हारनेसे बचा लिया। उनके सद्भक्त लोग स्वभावसे ही आदरपूर्वक उनकी प्रशंसा किए जा रहे हैं कि आप धन्य हैं, आपने सहजमें ही सारी यातनाएँ दूर कर डालीं॥११॥ आपका यह बाना तो सदासे चला आ रहा है कि आपने बिना ठौर-ठिकानेवालेको स्थापित कर दिया, उजड़ेहुओंको फिरसे ला बसाया और गई हुई वस्तु फिरसे लौटा दिलाई। देख रे तुलसी ! दुखियोंके दुःख दूर करके भगवान्ने किस-किसको अभय-बाँह (शरण) नहीं दी ? (सबको शरण दी)॥ १२॥ (१३९)

जन्म-मरणसे मुक्त कर देनेवाले भगवान्से जो अभागे मुँह फेरे बैठे हैं, वे संसारमें नरक बनकर जी रहे हैं। उनकी रुचि रात-दिन पापमें ही लगी रहती है, उनका मन बिगड़ा रहता है, उन

---

२. बिनु टहल टई=बिना कामका काम। ३. ढील दई है=उपेक्षा की है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नहिं सतसंग, भजन नहिं हरि - को, स्रवन न राम - कथा अनुरागी ।
सुत - बित - दार - भवन - ममता-निसि, सोवत अति, न कबहुँ मति जागी ॥ २ ॥
'तुलसिदास' हरि-नाम-सुधा तजि, सठ हठि पियत बिषय - बिष माँगी ।
सूकर, स्वान, सृगाल - सरिस जन, जनमत जगत जननि-दुख-लागी ॥ ३ ॥(१४०)

रामचंद्र रघुनायक ! तुम-सों हौं बिनती केहि भाँति करौं ?
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥ १ ॥
पर - दुख दुखी, सुखी पर सुख - तें, संत - सील नहिं हृदय धरौं ।
देखि आन - की बिपति परम सुख, सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥ २ ॥
भक्ति, बिराग, ज्ञान साधन कहि, बहु बिधि डहकत लोग फिरौं ।
सिव - सरबस सुख - धाम नाम तव बेंचि, नरक - प्रद उदर भरौं ॥ ३ ॥
जानत-हूँ निज पाप - जलधि जिय, जल - सीकर - सम सुनत लरौं ।
रज - सम पर - अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम, रज - तें निदरौं ॥ ४ ॥
नाना बेष बनाइ दिवस - निसि, पर - बित जेहि तेहि जुगुति हरौं ।
एकौ पल न अलोल कबहुँ चित, हित दै पद - सरोज सुमिरौं ॥ ५ ॥

दुष्टोंकी बुद्धि इतनी मलिन हुई रहती है कि वे वेद-तकका बताया मार्ग छोड़ बैठे हैं ॥ १ ॥ वे न तो संतोंका संग ही करते, न भगवद्भजन ही करते और न कानोंसे रामकथा ही प्रेम-पूर्वक सुनते हैं। वे सदा पुत्र, स्त्री और धन-धामकी मोह-रात्रिमें सोए पड़े रहते हैं । उनकी बुद्धि कभी जागती ही नहीं (उनके हृदयमें क्षणभरके लिये भी वैराग्य नहीं उदय होता) ॥ २ ॥ तुलसीदास ! जो दुष्ट यह रामनाम-रूपी अमृत छोड़कर हठपूर्वक विषयका विष ही माँग-माँगकर पिए जा रहे हैं, वे सूअर, कुत्ते और गीदड़के समान इस संसारमें केवल अपनी माँको दुःख देनेके लिये ही जनमे हैं ॥ ३ ॥ (१४०)

रघुकुलके नायक राम ! मैं आपसे विनय करूँ भी तो कैसे करूँ ? अपने अनेक पाप देखकर तथा आपका अनघ (पाप-रहित) नाम सुनकर मैं बहुत झिझका जा रहा हूँ (कि मैं पापी भला उस पाप-रहितके पास कैसे पहुँच पाऊँगा ?) ॥ १ ॥ दूसरोंके दुःखसे दुखी होना तथा दूसरोंके सुखसे सुखी होना यह सन्तोंका स्वाभाविक शील है जो मुझमें कभी आ ही नहीं पा सकता । उलटे, मैं तो दूसरोंकी विपत्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता रहता हूँ और दूसरोंकी सम्पत्ति (बढ़ती) सुनते ही बिना आगके ही जल उठता हूँ ॥ २ ॥ दूसरोंको भक्ति, वैराग्य और ज्ञानके साधनोंका उपदेश देकर मैं लोगोंको ठगता फिरता हूँ । शिवका सर्वस्व और सब सुखोंका धाम आपका नाम बेंच-बेंचकर मैं अपना यह पापी पेट भरे जा रहा हूँ ॥ ३ ॥ अपने पाप-समुद्र (अपार पाप) जानते हुए भी यदि दूसरा कोई मेरे उस पापको पानीकी बूँदके बराबर (थोड़ा भी) बताने लगता है तो मैं सुनते ही उससे झगड़ बैठता हूँ) और दूसरोंकी बुराई यदि धूलके बराबर भी हो तो उसे सुमेरु पर्वतके समान (बहुत बड़ी) बना खड़ा करता हूँ और पर्वतके समान उनके अमोघ गुणोंको धूलके समान तुच्छ बताए डालता हूँ ॥ ४ ॥ मैं दिन-रात अनेक प्रकारके ढोंग करके दूसरोंकी सम्पत्ति हड़पनेकी युक्ति निकाला करता हूँ । मेरा चित्त क्षण भरके लिये भी स्थिर नहीं रहता कि मैं प्रेम-पूर्वक प्रभुके चरण-कमलोंका ध्यान कर सकूँ ॥ ५ ॥ यदि आप मेरे आचरणोंपर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जो आचरन बिचारहु मेरो, कलप कोटि लगि अवटि मरौं।
'तुलसिदास' प्रभु - कृपा - बिलोकनि गोपद - ज्यों भवसिंधु तरौं॥ ६॥(१४१)

सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि! क्यों करि बिनय सुनावौं?
सकल धरम-बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ - मन भावौं!॥ १॥
जानत हूँ हरि - रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावौं।
अंजन - केस - सिखा जुवती तहँ, लोचन सलभ पठावौं॥ २॥
स्रवनन - को फल कथा तिहारी, यह समुझौं, समुझावौं।
तिन स्रवनन पर-दोष निरंतर, सुनि - सुनि भरि - भरि तावौं॥ ३॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं।
तेहि मुख, पर - अपवाद भेक - ज्यों, रटि-रटि जनम नसावौं॥ ४॥
'करहु हृदय अति बिमल, बसहिं हरि' कहि-कहि सबहिं सिखावौं।
हौं निज उर अभिमान - मोह - मद - खल - मंडली बसावौं॥ ५॥
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन, सो बिनु - काज गँवावौं।
हाटक घट भरि धर्‌यौ सुधा गृह तजि, नभ - कूप खनावौं॥ ६॥

विचार करने लगेंगे तब तो मैं करोड़ों कल्पों-तक उबल-उबलकर मरता रहूँगा। तुलसीदास कहते हैं—'प्रभो! आपकी कृपा-दृष्टि होते ही मैं इस भवसागरको ऐसे पार कर जाऊँगा जैसे गौके खुरके गड्ढेमें भरा हुआ (आचमन-भर) जल हो॥ ६॥ (१४१)

कृपानिधान राम! मुझे यही बड़ा संकोच हो रहा है कि मैं आपसे विनय करूँ तो कैसे करूँ? क्योंकि मैंने तो आजतक जो कुछ किया है सब धर्मके विपरीत ही किया है। फिर भला मैं आपको कैसे प्रिय लग पाऊँगा?॥ १॥ यद्यपि मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण चर-अचर (जड और चेतन) सब भगवान् हरि (राम)-का ही रूप है, पर मैं भूलकर भी उस स्वरूपको देखनेको तैयार नहीं हुआ। मैं तो अपने नेत्र-रूपी पतंगोंको कामिनी-रूपी अग्नि-शिखामें ही (जलनेके लिये) भेजता रहा हूँ (नेत्रोंसे कामिनियोंको देखा किया और कष्ट पाता रहा)॥ २॥ मैं स्वयं भी समझता हूँ और दूसरोंको समझाता भी रहता हूँ कि कान होना तभी सार्थक है जब कानोंसे आपकी कथा सुनते रहा जाय परन्तु मैं क्या करता हूँ कि उन कानोंसे सदा दूसरोंके दोष सुन-सुनकर उन्हें ही हृदयमें भरता और यत्नसे तहाता चला जा रहा हूँ॥ ३॥ जिस वाणीसे आपके गुणोंका कीर्त्तन करके मैं प्रयासके बिना ही परम सुख प्राप्त कर सकता हूँ उसी (वाणी)-से मेढकके समान दूसरोंकी निन्दा कर-करकर अपना जन्म खोए डाल रहा हूँ॥ ४॥ मैं दूसरोंको तो यही शिक्षा देता फिरता हूँ कि 'अपना हृदय सदा निर्मल (शुद्ध) रक्खो तभी भगवान् उसमें बास करेंगे', किन्तु मैं स्वयं अपने हृदयमें अहंकार, मोह, मद आदि खलोंकी मंडली बसाए चला जा रहा हूँ॥५॥ जिस (दुर्लभ मानव-) शरीरसे भक्त लोग भगवान्‌का परम पद पानेकी साधना करते रहते हैं, उसे मैं व्यर्थ ही खोए जा रहा हूँ। घरमें सोनेके घड़ेमें अमृत भरा रक्खा होनेपर भी मैं उसे छोड़कर आकाशमें कुआँ खुदवानेके फेरमें पड़ा रहा हूँ॥६॥ मन, वचन और कर्मसे मैंने जो-जो पाप किए हैं उन्हें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मन - क्रम - बचन लाइ कीन्हें अघ, ते करि जतन दुरावौं।
पर - प्रेरित इरिषा-बस कबहुँक किय कछु सुभ, सो जनावौं ॥ ७ ॥
बिप्र - द्रोह जनु बाँट पर्‌यौ, हठि, सब - सों बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति - बिलास, सब संतन - माँझ गनावौं ॥ ८ ॥
निगम, सेस, सारद निहोरि जौ अपने दोष कहावौं।
तौ न सिराहिं कलप सत - लगि, प्रभु ! कहा एक मुख गावौं ॥ ९ ॥
जौ करनी आपनी बिचारौं, तौ कि सरन हौं आवौं।
मृदुल सुभाउ सील रघुपति - को, सो बल मनहिं दिखावौं ॥ १० ॥
'तुलसिदास' प्रभु-सो गुन नहिं, जेहि सपनेहु तुमहिं रिझावौं।
नाथ - कृपा भवसिंधु धेनु - पद - सम सुजानि सिर नावौं ॥ ११ ॥(१४२)

सुनहु राम रघुबीर गुसाईं ! मन अनीति - रत मेरो।
चरन - सरोज बिसारि तुम्हारे, निसि दिन फिरत अनेरो ॥ १ ॥
मानत नाहिं निगम - अनुसासन, त्रास न काहू केरो।
भूली सूल करम - कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥ २ ॥
जहँ सतसंग - भक्ति माधव - की, सपनेहुँ करत न फेरो।
लोभ - मोह - मद - काम - क्रोध - रत, तिन - सों नेह घनेरो ॥ ३ ॥

तो मैं बड़े यत्नसे छिपाए रखता हूँ पर यदि दूसरोंकी प्रेरणासे अथवा ईर्ष्या-वश कोई शुभ कर्म कभी बन ही पड़ा तो उसका ढिंढोरा पीटता फिरता हूँ ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंसे द्रोह करना तो जैसे मेरे ही भागमें पड़ा है। इधर तो मैं हठपूर्वक सबसे वैर बढ़ाता रहता हूँ, उधर अपनी बुद्धि लगाकर अपनेको सन्तोंकी श्रेणीमें गिनने लगता हूँ ॥ ८ ॥ वेद, शेषनाग और सरस्वती आदिके हाथ-पैर जोड़कर यदि मैं उनसे अपने दोषोंका बखान कराने लगूँ तब भी प्रभो ! जब सौ कल्पों-तक वे समाप्त नहीं हो पा सकते, तब भला मैं अपने एक मुखसे अपने उन दोषोंका वर्णन कैसे कर पा सकता हूँ ? ॥९॥ यदि मैं अपनी करनीपर विचार करने लगूँ तो क्या मैं आपकी शरणमें आनेके योग्य रह पाऊँगा ? रामका स्वभाव बहुत कोमल और उनका शील बहुत असीम है। बस यही अपने मनको बड़ा बल (ढाढ़स) देता रहता हूँ ॥१०॥ प्रभो ! इस तुलसीदासमें ऐसा एक भी गुण नहीं है जिसके बल-भरोसेपर यह आपको कभी स्वप्नमें भी प्रसन्न कर सके। नाथ ! आपकी कृपा हो जायगी तो यह संसार-सागर गौके खुरके बराबर नन्हाँ-सा हो जायगा, ब यही समझकर मैं आपके आगे (चरणोंमें) सिर नवा रहा हूँ ॥ ११ ॥ (१४२)

राम ! रघुबीर ! गोस्वामी ! सुनिए। मेरा मन दिन-रात अनीतिमें ही लगा रहता है। आपके चरण-कमलोंको भूलकर मैं दिनरात इधर-उधर भटकता फिरता हूँ ॥ १ ॥ न तो मेरा मन वेदोंकी ही आज्ञा मानता है न वह किसीसे डरता ही है। यह कई बार कामके कोल्हूमें तिलकी भाँति पेरा जा चुका है पर वह सारा कष्ट भी यह अब भूल गया है ॥ २ ॥ जहाँ सत्संग होता हो और भगवान्‌की भक्ति की जाती हो वहाँ तो यह स्वप्नमें भी जाकर नहीं फटकता पर लोभ, मोह, अहंकार, काम और क्रोधमें यह निरन्तर लीन रहता है और इन्हींसे अधिक प्रीति जोड़े रखता है ॥३॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पर - गुन सुनत दाह, पर - दूषन सुनत हर्ष बहुतेरो।
आप पाप - को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो[1] ॥ ४ ॥
साधन - फल, स्रुति - सार नाम तव, भव-सरिता-कहँ बेरो।
सो पर - कर काकिनी[2] लागि सठ, बेंचि होत हठि चेरो ॥ ५ ॥
कबहुँक हौं संगति - स्वभाव - तें, जाउँ सुमारग - नेरो।
तब करि क्रोध, संग कु-मनोरथ, देत कठिन भट - भेरो ॥ ६ ॥
इक हौं दीन, मलीन, हीन-मति, बिपति - जाल अति घेरो।
ता - पर सहि न सकत करुनानिधि, मन - को दुसह दरेरो ॥ ७ ॥
हारि पर्‍यो करि जतन बहुत बिधि, तातें कहत सबेरो।
तुलसिदास - की त्रास मिटै, जब करहु हृदय - महँ डेरो ॥ ८ ॥(१४३)

सो धौं को जो नाम - लाज - तें, नहिं राख्यो रघुबीर ?
कारुनीक बिनु - कारन ही हरि, हरहि सकल भव - भीर ॥ १ ॥
बेद - बिदित जग - बिदित अजामिल, बिप्र-बंधु[3], अघ - धाम।
घोर जमालय जात निवार्‍यौ सुत - हित सुमिरत नाम ॥ २ ॥

दूसरोंके गुण सुनकर वह (डाहके मारे) जल उठता है और दूसरोंके दोष सुनकर मगन हो उठता है। वह स्वयं तो पापोंका नगर बसाए जा रहा है, पर दूसरोंके खेड़े (छोटे गाँव, थोड़े पाप) भी नहीं देख सकता ॥४॥ आपका नाम, जो समस्त साधन करनेपर मिल पाता है, जो वेदोंका सार है और संसार-रूपी नदीको पार करनेके लिये नौका है, उस रामनामको दूसरेके हाथमें यह दुष्ट (तुलसीदास) कौड़ी-कौड़ीके लिये बेंचता हुआ भी रामका गुलाम (दास) बननेका दम भरता है ॥ ५ ॥ यदि कभी सत्संगके कारण अथवा स्वभावसे सन्मार्गकी ओर जाता भी है तो विषयोंकी आसक्ति तुरन्त तमककर मनको बुरे मनोरथोंकी ओर धकेलकर मोड़ देती है ॥ ६ ॥ एक तो मैं स्वयं ही दीन, मलिन, बुद्धिहीन तथा विपत्तियोंके फंदेमें फँसा पड़ा हूँ, उसपर करुणानिधान ! मनका यह असह्य धक्का मैं कैसे सह सकता हूँ ? ॥ ७ ॥ मैं तो अनेक यत्न करके हार गया हूँ, इसलिये मैं पहले ही कहे देता हुँ कि तुलसीदासके कष्ट तभी दूर होंगे जब आप उसके हृदयमें आकर निवास करने लगेंगे ॥ ८ ॥ (१४३)

राम ! बताइए ऐसा कौन है जिसे आपने अपने नामकी लाज रखते हुए अपनी शरणमें न ले लिया हो ? हरि ! (आप) ऐसे दयालु हैं कि बिना कारण ही सबके सांसारिक (जन्म-मरणके) भय दूर करते रहते हैं ॥ १ ॥ यह बात वेदमें भी कही गई है और संसारमें भी प्रसिद्ध है कि जिस नीच-कर्मा अत्यन्त पापी ब्राह्मण अजामिलने (मरते समय) अपने पुत्रका (मोहवश नारायण) नाम लेकर पुकारा उसे आपने भयंकर यमलोक जानेसे रोक लिया (और अपना परम धाम दे

---

१. खेरो = खेड़ा, गाँव। २. काकिनी = काकिणी (बीस कौड़ीके मूल्यका सिक्का 'वराटकानां दशकद्वयं यत्सा काकिणी') ३. बिप्रबंधु = नीच ब्राह्मण (अजामिल)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पसु पाँवर, अभिमान - सिंधु गज, ग्रस्यो आइ जब ग्राह ।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु, हर्‍यो दुसह उर - दाह ॥ ३ ॥
ब्याध, निषाद, गीध, गनिकादिक, अगनित अवगुन - मूल ।
नाम ओट - तें राम, सबनि - की, दूरि करी सब सूल ॥ ४ ॥
केहि आचरन घाटि हौं तिन - तें, रघुकुल - भूषन भूप ।
सीदत 'तुलसिदास' निसि - बासर, पर्‍यो भीम तम - कूप ॥ ५ ॥(१४४)

कृपासिंधु ! जन दीन दुआरे दादि न पावत काहे ।
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत, तब तिनके दुख दाहे ॥ १ ॥
गज, प्रहलाद, पांडु - सुत, कपि, सब - को रिपु-संकट मेट्यो ।
प्रनत बंधु - भय - बिकल बिभीषन, उठि सो भरत-ज्यों भेंट्यो ॥ २ ॥
मैं तुम्हरो लै नाउँ, गाउँ इक, उर आपने बसायो ।
भजन, बिबेक, बिराग लोग भल, करम - करम-करि[1] ल्यायो ॥ ३ ॥

डाला) ॥ २ ॥ प्रभो ! जब ग्राहने[2] उस नीच और अत्यन्त अभिमानी पशु हाथीको[3] ग्रस लिया था तब एक ही बार आपका नाम स्मरण करनेपर आपने झट पहुँचकर उसका हार्दिक दुःख दूर कर डाल ॥३॥ राम ! व्याध (वाल्मीकि), निषाद (गुह), गीध (जटायु), गणिका (पिंगला और जीवन्ती वेश्या) आदि जो एकसे एक बढ़कर पापी थे, इन सबके सारे दुःख आपने अपने नामकी ओटसे (नाम स्मरण करने भरसे) दूर कर डाले ॥ ४ ॥ रघुकुल-भूषण महाराज राम ! बताइए, मैं उन सबसे किस बातमें कम हूँ ? फिर भी यह तुलसीदास दिन-रात भीषण अंधकार-रूपी कुएँमें पड़ा-पड़ा दुःख भोगे जा रहा है (और आप उसका उद्धार नहीं कर रहे हैं) ? ॥ ५ ॥ (१४४)

कृपासिन्धु ! यह दीन दास आपके द्वारपर आकर भी आपसे न्याय क्यों नहीं पा रहा है ? (मेरा उद्धार क्यों नहीं हो रहा है ?) आपका तो ऐसा स्वभाव है कि जब कहीं कोई भी दुखी होकर आपका स्मरण करता है तब आप उसी स्थानपर पहुँचकर उसके सारे दुःख भस्म कर डालते हैं ॥१॥ गजराज, प्रह्लाद, पाण्डव और वानर सुग्रीवके शत्रुओंने उन्हें जो-जो कष्ट दे रक्खे थे वे आपने क्षण भरमें दूर कर डाले और अपने भाई रावणके भयसे व्याकुल विभीषणको शरणमें आते ही आपने उसे भरतके समान छातीसे उठा लगाया ॥ २ ॥ मैं आपका नाम ले-लेकर अपने हृदयमें एक गाँव बसाना चाहता था जिसमें मैं धीरे-धीरे क्रम-क्रमसे भजन, विवेक, वैराग्य आदि सज्जनोंको

---

१. करम करम करि = क्रम क्रम से, धीरे-धीरे । २. ग्राह : यह पूर्व जन्ममें हूहू नामका गंधर्व था । देवल ऋषिके शापसे ग्राह हो गया था । ३. गज : द्रविड देशका पांड्यवंशी इन्द्रद्युम्न नामका राजा था । वह जब सारा राजपाट छोड़कर मलय पर्वतपर तप करने लगा, तब अगस्त्य ऋषिके आनेपर भी उसने उठकर उनका अतिथि-सत्कार नहीं किया । उनके शापसे वह गज हुआ और क्षीरसागरके त्रिकूट पर्वतके ऋतुमान् नामके उद्यान रहने लगा । वहाँके सरोवरमें क्रीडा करते हुए उसे ग्राहने पकड़ लिया था ।—भागवत ८ : ४

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक, करहिं जोर बरियाईं।
तिन्हहिं उजारि, नारि, अरि, धन, पुर, राखहिं राम! गुसाईं ॥ ४ ॥
सम, सेवा, छल, दान, दंड हौं, रचि उपाय पचि हान्यो।
बिनु - कारन-को कलह, बड़े दुख, प्रभु - सों प्रगट पुकान्यो ॥ ५ ॥
सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ ? को बिपति-निवारक ? भव-तारक जग - माहीं ॥ ६ ॥
'तुलसी' जदपि पोच, तउ तुम्हरो, और न काहू - केरो।
दीजै भगति बाँह बैरक[1] - ज्यों, सुबस बसै अब खेरो ॥ ७ ॥(१४५)

हौं सब बिधि राउरोहि चाहत भयो चेरो। ठौर - ठौर साहिबी है कलिकाल-केरो॥ १ ॥
काल-कर्म-इंद्रिय-बिषय, गाहक-गन घेरो। हौं न कबूलत, कै-बाँधि, मोल करि करेरो ॥ २ ॥
बंदि-छोर नाम तेरो, बिरुद है बड़ेरो। मैं जब कह्यो, छल अति कै, माँग्यो उर डेरो ॥ ३ ॥

ला बसाता ॥ ३ ॥ पर यह बात सुनकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि क्रोधमें आकर मुझपर अत्याचार किए जा रहे हैं और वे उन्हें (भजन, विवेक, वैराग्य आदिको) उजाड़कर उनके बदले स्त्री, धन और नगर आदि मेरे शत्रु प्रपंचोंको ला बसानेपर उतारू हैं ॥४॥ मैं साम, दाम, दंड, भेद और सेवा आदि अनेक उपाय कर-करके हार गया, परन्तु ये दुष्ट बिना कारण ही लड़ते-झगड़ते हुए बड़ा दुःख दिए जा रहे हैं। इसीलिये मैं प्रभुके सामने आकर दुहाई दे रहा हूँ ॥ ५ ॥ अन्य जितने देवता हैं, सब स्वार्थी, असमर्थ, अयोग्य और बड़े ही निष्ठुर हैं। ऐसी दशामें बताइए मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ ? इस संसारमें मेरी विपत्तियाँ दूर करनेवाला और संसार (-की झंझटों)-से उद्धार करनेवाला आपको छोड़कर और दूसरा है कौन ? ॥ ६ ॥ नाथ ! यद्यपि यह तुलसीदास बड़ा ही नीच है, फिर भी दास तो आपका ही है, उसे और किसीका भरोसा नहीं है। अतः, उसे एक बार अपने भुजा-रूपी झंडेके नीचे आश्रय दे दीजिए जिससे वह भी भली प्रकार अपना खेड़ा बसा सके ॥ ७ ॥ (१४५)

राम ! मैं तो पूर्ण रूपसे आपका दास बननेको तैयार हूँ पर यहाँ तो जहाँ देखता हूँ वहाँ साहबी हो रही है (मेरी इन्द्रियाँ और मन सभी मेरे स्वामी बने बैठे हैं)। यह सब कलिकालका ही खेल तो है ॥१॥ काल, कर्म और इन्द्रिय-रूपी गाहक मुझे घेरे बैठे हैं और जब मैं उनके हाथ बिकता स्वीकार नहीं करता तब वे मुझे बाँधकर मुझपर कड़ा दाम चढ़ाने लगते हैं (लालच दिखाकर अपने वशमें करना चाहते हैं) ॥ ३ ॥ आपका नाम तो सबका बंधन छुड़ा देता है और आपका नाम भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। जब मैंने उन्हें यह बताया (कि मैं तो रामके हाथ बिका बैठा हूँ) तब वे बहुत कपट करके मेरे हृदयमें बसनेके लिये स्थान माँगने लगते हैं (दीनता दिखाकर स्थान तो माँगते हैं, पर स्थान पाकर धीरे-धीरे वे उसपर अपना पूर्ण अधिकार जमा बैठेंगे) ॥ ३ ॥ अब-तक तो

१. बैरक़ = (तुर्की) वह झंडी, जो बस्ती बसानेके चिह्नके रूप गाड़ी जाती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाम-ओट अजु लगि बच्यो, कलिमल जग जेरो। अब गरीब जमोगिये[1] न, पायबो न हेरो॥४॥
जेहि कौतुक खग-स्वान[2]-न्याव प्रभु निबेरो। तेहि कौतुक कहि कृपालु! तुलसी है मेरो॥५॥१४६
कृपा-सिंधु तातें रहौं, निसि-दिन मन मारे। महाराज! लाज आप ही निज जाँघ उघारे॥१॥
मिले रहैं, माग्यो चहैं, कामादि सँघाती। मो बिनु रहैं न, मेरियै जारैं छल छाती॥ २॥
बसत हिये, हित जानि, मैं सबकी रुचि पाली। कियो कथिक-को दंड हौं जड़, कर्म-कुचाली॥३॥

मैं आपके नामके सहारे बचा रहा पर अब तो इस कलियुगने सारे संसारको जेर (परास्त) कर डाला है। अब इस दीनको आप इस (कलियुग)-के पंजेसे छुड़ा लीजिए न! नहीं तो यह कहीं खोजे भी न मिल पावेगा॥ ४॥ कृपालु! आपने जिस कौशलसे पक्षी और कुत्तेका न्याय कर दिया था उसी कौशलसे इस कलियुगसे भी कह दीजिए कि 'तुलसी भी मेरा है'॥ ५॥ (१४६)

कृपासिंधु! मैं इसी कारण दिन-रात मन मारे बैठा रहता हूँ कि महाराज! अपनी जाँघ खोलनेसे (अपने दोष कहनेसे) अपनेको ही लज्जित होना पड़ता है॥ १॥ ये काम, क्रोध आदि (लोभ, मोह, मद, मत्सर) मेरे ऐसे साथी हैं जो एक ओर तो मुझसे घुले-मिले रहते हैं और दूसरी ओर मुझे मार डालनेकी ताकमें भी लगे रहते हैं। मेरे बिना उनसे रहा भी नहीं जाता और छलपूर्वक वे मेरी ही छाती जलानेको तैयार रहते हैं॥ २॥ अपने हृदयमें रहनेके कारण इन्हें अपना हितैषी समझकर मैं सदा इन सबकी इच्छा पूरी करता रहा फिर भी इन दुष्ट कुचालियोंने मुझे कत्थककी लकड़ी बना छोड़ा है (कत्थक जैसे लकड़ी घुमाता है वैसे ही गायक गाता है, वैसे ही मैं भी इनके हाथमें नाचता रहता हूँ)॥ ३॥ मैंने आजतक ऐसी पराधीनता

१. जमोगिये = अधिकारमें ले रखिए। २. क. खग=पक्षी : किसी वनमें उल्लू और गीध एक ही वृक्षपर रहते थे। एक दिन गीधने उस वृक्षपर अपना पूर्ण अधिकार जमानेके विचारसे उल्लूको निकाल दिया। दोनों रामके दरबारमें न्याय कराने आए। रामने उल्लूसे पूछा कि तू इस घरमें कबसे रहता है? उल्लूने उत्तर दिया—महाराज! जबसे वृक्षोंकी सृष्टि हुई तभीसे मैं इसपर रहता हूँ। फिर रामने गीधसे पूछा कि तू इस घरमें कबसे रहता है? गीधने उत्तर दिया—महाराज! तबसे जबसे, मनुष्यकी सृष्टि हुई। रामने कहा कि वृक्षोंकी सृष्टि मनुष्योंसे पहले हुई है, अतः, वृक्षपर उल्लूका ही अधिकार है। ख. श्वान=कुत्ता : एक दिन रामके दरबारमें एक कुत्तेने आकर कहा कि तीर्थसिद्धि नामके ब्राह्मणने बिना अपराध ही लाठीसे मेरा सिर फोड़ दिया है। भगवान्‌ने जब ब्राह्मणको बुलाकर पूछा तो उसने कहा—'महाराज! मैं भिक्षा माँगने जा रहा था। मैंने इस कुत्तेकी बीच मार्गसे हट जानेको कहा पर यह न माना। मैंने इसे ठीक दिया।' भगवान्‌ने मंत्रियोंसे पूछा तो उन्होंने कहा कि महाराज ब्राह्मण तो अदण्डनीय है। तब कुत्तेने कहा—'महाराज इसे कालिंजरका मठाधीश (महंत) बना दीजिए। मैं भी पूर्व जन्ममें महन्त था। भक्ष्याभक्ष्य खानेसे मुझे कुत्ता होना पड़ा।' कुत्तेके कहनेपर रामने उसे हाथीपर चढ़ाकर कालिंजरका मठाधीश बना भेजा। [पद्मपुराण, सृष्टिखंड अ० ३५-३७]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखी-सुनी न आजु-लौं अपनाइत ऐसी। करहिं सबै, सिर मेरे ही, गिरि परै अनैसी ॥ ४ ॥
बड़े अलेखी लखि परैं, परिहरे न जाहीं। असमंजस-मों मगन हौं, लीजै गहि बाहीं ॥ ५ ॥
बारक बलि अवलोकिए, कौतुक जन जी-को। अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी-को ॥६॥१४७

कहौं कौन मुँह लाइ-कै रघुबीर गुसाईं! सकुचत समुझत आपनी सब साईं दोहाई ॥ १ ॥
सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत-सों हौं। गुन-गन सीतानाथ-के चित करत न हौं हौं ॥२॥
कृपासिंधु बंधु दीन-के आरत-हितकारी। प्रनतपाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी ॥ ३ ॥
सेइ न, धेइ न, सुमिरि-कै पद-प्रीति सुधारी। पाइ सुसाहिब राम-सों, भरि पेट बिगारी ॥ ४॥
नाथ गरीब-निवाज हैं, मैं गही न गरीबी। 'तुलसी' प्रभु निज ओर-तें, बनि परै सो कीबी॥५॥१४८

कहाँ जाउँ, कासों कहौं और ठौर न मेरे? जनम गँवायो तेरेहि द्वारे, किंकर तेरे ॥१॥
मैं तो बिगारी राम-सो स्वारथ-के लीन्हें। तोहिं कृपानिधि! क्यों बनै मेरी-सी कीन्हें ॥२॥

न तो कभी देखी न सुनी ही। कर्म तो ये काम, क्रोध आदि करते हैं और सारा दोष मढ़ा जाता है मेरे सिर ॥ ४ ॥ ये सबके सब बड़े अन्यायी हैं। (ये दिखाई तो देते नहीं और) यदि दिखाई पड़ें भी तो इन्हें छोड़नेको जी नहीं चाहता। बस प्रभो! मैं इसी द्विविधामें पड़ा सड़ा जा रहा हूँ। अब आप ही कृपा करके बाँह पकड़कर (इनके फंदेसे) मुझे छुड़ा निकालिए ॥ ५ ॥ मैं आपपर बलिहारी जाता हूँ। एक बार अपने भक्तके हृदयका कौतुक (तमाशा) तो आकर देख लीजिए। आपने जहाँ ऐसी कृपा आकर की कि तुलसीके सब संकट अनायास ही दूर हो जायँगे ॥ ६ ॥ (१४७)

प्रभु राम! मैं किस मुँहसे आपके सामने अपनी विनय सुनाऊँ? स्वामीकी सौगन्ध है, जब मैं अपनी करनीपर विचार करता हूँ तो संकोचके मारे कुछ कह नहीं पाता ॥ १ ॥ आप सेवा करनेसे वशमें हो जाते हैं, स्मरण करनेसे मित्र बन जाते हैं और शरणमें आनेसे प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं पर मैं तो सीतापति रामके गुणोंपर ध्यान-तक नहीं देता ॥ २ ॥ आप बड़े कृपालु हैं, दीनोंके सहायक हैं, दुखियोंके प्रेमी हैं और शरणमें आएहुओंका पालन करते हैं। आपकी ऐसी प्रशंसा सुनकर और जानकर भी मैं आपको भुलाए बैठा हूँ ॥३॥ मैंने तो न आपकी सेवा की, न आपका ध्यान किया, न आपका स्मरण किया, न आपके चरणोंसे प्रेम किया। राम-जैसा श्रेष्ठ स्वामी पाकर भी मैंने अपनेको भरपूर बिगाड़ धरा (आप-जैसे प्रभुसे मुझे सब कुछ मिल सकता था पर मैंने प्राप्त करनेका कुछ भी उपाय नहीं किया) ॥ ४ ॥ नाथ! आप दीनोंपर दया करते रहते हैं, परन्तु मैंने तो कभी दीनता भी नहीं दिखाई (इसलिये आप मेरी ओर भला क्यों ध्यान देने लगे?), अतः प्रभो! आप अपनी ओर देखकर (अपनी दयालुताका विचार करके ही) जो कुछ आपसे करते बन पड़े, वही कर डालिए ॥ ५ ॥ (१४८)

मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ और (अपनी विपत्ति) कहूँ तो किससे कहूँ? मेरा तो और कहीं कोई ठौर-ठिकाना भी नहीं है। आपके इस सेवकने तो आपके ही द्वारपर अपना सारा जीवन बिताया है ॥१॥ राम! मैंने तो अपने स्वार्थके कारण अपना जीवन बिगाड़ डाला, परन्तु कृपानिधान! यदि आप भी मेरे ही समान बर्ताव करने लगेंगे तब आपके लिये यह कैसे उचित कहा जा सकता है ॥२॥ रघुवंशके भूषण राम!

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन। जौ-लौं तू न बिलोकिहै रघुबंस-बिभूषन ॥३॥
दई पीठ, बिनु डीठ हौं, तू बिस्व-बिलोचन। तोसों तुही, न दूसरो, नत-सोच-बिमोचन ॥ ४ ॥
पराधीन देव, दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं। बोलनहारे[1] सों करै, बलि, बिनय कि झाँईं[2] ॥ ५ ॥
आप देखि मोहिं देखिये, जन जानिये साँचो। बड़ी ओट राम-नाम की, जेहि लई सो बाँचो ॥६॥
रहनि रीति राम! रावरी नित हिय हुलसी है। ज्यों भावै त्यों करु कृपा, तेरो तुलसी है ॥ ४ ॥(१४९

रामभद्र! मोहि आपनो सोच है अरु नाहीं। जीव सकल संताप-के भाजन जग-माहीं ॥१॥
नातो बड़े समर्थ-सों एक ओर किधौं हूँ। तोकों मोसे अति घने, मोकों एकै तू ॥ २ ॥
बड़ी गलानि हानि हिये है, सर्वज्ञ सुसाईं। क्रूर कुसेवक कहत हैं सेवक-की नाईं ॥ ३ ॥
भलो पोच राम-को कहैं मोहिं सब नर-नारी। बिगरे सेवक स्वान-सों, साहिब-सिर गारी ॥४॥

जबतक आप मेरी ओर कृपाकी दृष्टिसे नहीं देखेंगे, तबतक नित्य ही मेरे दिन खोटे होते चले जायँगे, नित्य ही मेरी दुर्दशा होती रहेगी, नित्य ही मुझपर दुःख पड़ते रहेंगे और नित्य ही मुझपर दोष लगते रहेंगे ॥३॥ मैं तो दृष्टिहीन (अन्धा) होनेके कारण आपसे विमुख हुआ पड़ा रहा, परन्तु आप तो विश्वके द्रष्टा हैं (मेरी दशा भी देख रहे हैं)। आपके समान कोई है तो आप ही हैं। आपको छोड़कर दीन-दुखियोंके दुःख और चिन्ताएँ दूर करनेवाला दूसरा कोई है नहीं ॥ ४ ॥ देव! मैं परतन्त्र और दीन हूँ, पर आप तो स्वतन्त्र और स्वामी हैं। आपकी बलिहारी है। क्या चैतन्य रूप ब्रह्मसे यह जीव कभी कुछ विनय कर सकता है? ॥ ५ ॥ अतएव आप पहले अपनी ओर देखकर (अपनी शक्ति और अपने प्रतापका ध्यान करके) जब मेरी ओर देखिएगा तभी समझिएगा कि यह दास आपका सच्चा सेवक है। राम-नामका आश्रय बड़ा भारी है। जिसने यह आश्रय ग्रहण कर लिया वह उजड़ता-उजड़ता बच गया ॥ ६ ॥ राम! आपका रहन-सहन और रीति-व्यवहार देखकर मेरा चित्त नित्य ही खिला पड़ता है। अब आप जैसे चाहिए वैसे ही मुझपर कृपा कीजिए क्योंकि यह तुलसी भी है तो आपका ही है ॥ ७ ॥ (१४९)

कल्याण-स्वरूप राम! मुझे अपने लिये चिन्ता है भी और नहीं भी है। (चिन्ता यह है कि मैं मुक्त न हो पाया और निश्चिन्त इसलिये हूँ कि संसारके सभी जीव मेरे ही समान दुखी हैं) ॥१॥ क्या आप-जैसे बड़े समर्थसे केवल एक ही ओरका प्रेम करना पड़ेगा? (मैं ही प्रेम करता रहूँ, आप न करें?)। (यह संभव भी है क्योंकि) आपके लिये तो मेरे-जैसे अनेक हैं पर मेरे लिये तो केवल आप ही हैं ॥ २ ॥ स्वामी! मेरे हृदयमें इस बातकी बड़ी ग्लानि और बहुत बड़ी झिझक है कि मैं बड़ा क्रूर और निकम्मा सेवक होकर भी आपका सच्चा सेवक कहलानेके फेरमें पड़ा हुआ हूँ। आप तो सर्वज्ञ हैं, सबके हृदयकी बात जानते हैं, आपसे तो कुछ छिपा है नहीं ॥ ३ ॥ मैं भला हूँ या बुरा, पर जितने स्त्री-पुरुष हैं सब मुझे रामका ही सेवक समझते हैं। जैसे सेवक और कुत्तेके बुरा काम करनेपर सारा दोष उनके स्वामीके सिर ही मढ़ा जाता है वैसे ही (यदि मैं कोई बुरा कर्म भी कर बैठूँगा तो) लोग आपको ही दोष देंगे ॥ ४ ॥ बताइए, मनकी यह द्विविधा दूर हो तो कैसे

१. बोलनहारा=बोलता हुआ शुद्ध आत्मा, चैतन्य। २. झाँईं=प्रतिबिंब-स्वरूप जीव।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

असमंजस मन-को मिटै सो उपाय न सूझै। दीनबंधु ! कीजै सोइ बनि परै जो बूझै ॥ ५ ॥
बिरुदावली बिलोकिए तिन-में कोउ हौं हूँ। 'तुलसी' प्रभु-क्यों परिहन्यो सरनागत-सो हूँ ॥६।१५०

जो पै चेराई[1] राम-की करतो न लजातो। तौ तू दाम-कुदाम ज्यों कर-कर न बिकातो ॥१॥
जपत जीह रघुनाथ-को नाम नहिं अलसातो। बाजीगर-के सूम[2] ज्यों, खल ! खेह न खातो ॥२॥
जौ तू मन ! मेरे कहे राम-नाम कमातो। सीतापति - सनमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥३॥
राम सोहाते तोहिं जौ तू सबहिं सोहातो। काल, करम, कुल, कारनी कोऊ न कोहातो[3] ॥४॥
राम-नाम-अनुराग ही जिय जो रतियातो[4]। स्वारथ - परमारथ - पथी तोहिं सब पतियातो ॥५॥
सेइ साधु सुनि समुझि-कै, पर-पीर पिरातो। जनम कोटि-को कँदैलो[5], हृद-हृदय थिरातो ॥६॥
भव-मग अगम अनंत है बिनु स्रमहि सिरातो। महिमा उलटे नाम-की, मुनि कियो किरातो[6] ॥७॥

दूर हो ? इसका कोई उपाय मेरी समझमें तो आता नहीं। इसलिये दीनबन्धु ! आप वही कीजिए जो आपसे बन पड़े और जो आपको उचित जान पड़े ॥ ५ ॥ आप अपनी विरुदावली (कीर्ति) तो देखिए कि उसमें मैं कोई स्थान पा सकता हूँ या नहीं ? तुलसीदास कहते हैं कि यदि प्रभु मेरा परित्याग भी कर देंगे; तब भी मैं रहूँगा तो उन्हींकी शरणमें ही ॥ ६ ॥ (१५०)

अरे जीव ! यदि तू रामकी गुलामी करनेमें न लजाता तो तू खोटे दामके समान ऐसे हाथों-हाथ न बिकता फिरता (ईश्वरका अंशभूत होकर भी भव-बन्धनमें फँसकर इधर-उधर मारा-मारा न भटकता फिरता) ॥ १ ॥ यदि तू जीभसे रामका नाम जपनेमें आलस्य न करता तो दुष्ट ! आज तुझे बाजीगरके सूम (कंजूस)-के समान धूल न फाँकनी पड़ती ॥२॥ अरे मन ! यदि तू मेरे कहनेसे रामनाम कमाता (रामका नाम जपा करता) तो सीतापति रामकी शरणमें पहुँचकर तू सुखी हो जाता और तेरा सर्वत्र आदर होता ॥ ३ ॥ यदि तुझे राम अच्छे लगे होते तो तू भी सबको अच्छा लगता। काल-कर्म आदि (जो इस जीवके प्रेरक हैं) तुझपर कभी क्रोध न करते, सभी तुझपर प्रसन्न रहते ॥ ४ ॥ यदि तू राम-नामसे ही अपनी लगन लगाए रहता तो स्वार्थ और परमार्थ दोनोंके पथिक तुझपर विश्वास करते (तेरे लोक और परलोक दोनों ही बन जाते) ॥ ५ ॥ यदि तू सन्तोंकी सेवा किया करता और दूसरोंकी पीडा सुनकर दुखी होता रहता तो तेरे हृदयके तालाबमें जो अनेक जन्मोंका जमा हुआ मैल (पाप) है वह नीचे बैठ जाता और तेरा अन्तःकरण निर्मल हो जाता ॥ ६ ॥ संसारका मार्ग बड़ा ही अगम्य और अपार है, किन्तु (संतोंकी सेवा और दूसरोंसे सहानुभूति करके) तू बिना श्रमके उसे पार कर जाता क्योंकि रामका उलटा नाम ('मरा') जपनेका भी यह प्रभाव है कि भील भी वाल्मीकि मुनि हो गए (तब सीधा नाम जपनेका तो निश्चय ही अच्छा प्रभाव होगा) ॥ ७ ॥ अरे जड ! तेरा यह देव-दुर्लभ मानव शरीर यों ही न नष्ट हो

१. चेराई=सेवा, गुलामी। २. बाजीगर अपने खेलके अन्तमें एक सूम (कंजूस)-का पुतला बनाकर उसके मुँहपर धूल फेंकता है और इस प्रकार खेल देखकर पैसा न देनेवालोंकी खिल्ली उड़ाता है, उन्हें लज्जित करता है। ३. कोहातो = रुष्ट होता। ४. रतियातो=प्रेम करता। ५. कँदैलो = कीचड़-भरा। ६. किरातो=भील (वाल्मीकि)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अमर-अगम-तनु पाइ, सो जड़ जाय न जातो। होतो मंगलमूल तू, अनुकूल बिधातो ॥८॥
जो जन प्रीति-प्रतीति-सों राम-नामहिं रातो। 'तुलसी' राम-प्रसाद-सों तिहुँ ताप न तातो ९(१५१

राम भलाई आपनी, भल कियो न काको। गुग-जुग जानकी-नाथ-को जग जागत साको ॥१॥
ब्रह्मादिक बिनती करी, कहि दुख बसुधा-को। रघुकुल-कैरव-चंद-भो आनंद सुधा-को ॥२॥
कौसिक गरत तुषार-ज्यों तकि तेज तिया-को। प्रभु अनिहित-हित-को दियो फल कोप-कृपा-को॥३
हन्यो पाप आप जाइकै संताप सिला-को। सोच-मगन काढ़्यो सही साहिब मिथिला-को ॥४॥
रोष-रासि भृगुपति धनी अहमिति ममता-को। चितवत भाजन करि लिय उपसम-समता-को ॥५
मुदित मानि आयसु चले बन मातु-पिता-को। धरम-धुरंधर धीर-धुर गुन-सील-जिता को ॥६॥
गुह गरीब गत-ज्ञातिहूँ जेहि जिउ न भखा को? पायो पावन प्रेम-तें सनमान सखा-को ॥७॥
सदगति सबरी-गिद्ध-की सादर करता को। सोच-सींव सुग्रीव-को संकट-हरता को ॥८॥
राखि बिभीषन को सकै, अस काल-गहा को? आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ-को ॥९॥

जाता। तू बड़ा कल्याणकारी हो जाता और भाग्य भी तेरा साथ देता ॥ ८ ॥ तुलसीदास कहते हैं—अरे मन! यदि तू प्रेम और विश्वासके साथ राम-नामसे लौ लगा लेता तो रामकी कृपासे तीनों तापोंसे न जलता होता ॥ ९ ॥ (१५१)

रामने अपने भले (कृपालु) स्वभावसे किसका कल्याण नहीं किया? (सबका किया)। जानकीनाथ रामका यह यश युग-युगसे संसारमें प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ ब्रह्मा आदि देवताओंने जब पृथ्वीका दुःख भगवान्‌को कह सुनाया तब सूर्यवंश-रूपी कुमुदिनीको खिलानेवाले तथा अमृतके समान आनन्द देनेवाले राम आ प्रकट हुए ॥ २ ॥ ताड़काका तेज देखकर महर्षि विश्वामित्र ओलेकी भाँति गले जा रहे थे। पर रामने ताड़काको मारकर उस शत्रुको भी मित्रके समान फल दे दिया (उसे परम पद दे दिया) ॥ ३ ॥ आपने स्वयं जाकर शिला-रूपी अहल्याको पाप-सन्तापसे मुक्त कर दिया (और उसे उसके पतिके पास भेज दिया)। फिर (सीताका विवाह न हो सकनेके कारण) शोक-सागरमें डूबते हुए मिथिला-नरेश महाराज जनकको आपने उबार निकाला (शिवका धनुष तोड़कर जनककी प्रतिज्ञा पूरी कर दी) ॥ ४ ॥ परशुराम भी बड़े क्रोधी, अहंकारी और ममताके धनी थे (अपनेको बहुत वीर समझते थे)। उन्हें भी आपने शान्ति और समताका पात्र (शान्त, सौम्य और समदृष्टा) बना दिया ॥५॥ आप माता कैकेयी और पिताकी आज्ञा मानकर प्रसन्नता-पूर्वक वन चले गए। ऐसा धर्म-धुरन्धर, धीर, सद्‌गुणी और शील जीतनेवाला दूसरा कौन है? रामको छोड़कर कोई भी नहीं ॥६॥ गुह तो निषाद जातिका अत्यन्त नीच और निर्धन पुरुष था। उसने किस जीवका भक्षण नहीं किया था? फिर भी पवित्र प्रेमके कारण रामने उसके साथ मित्र-जैसा व्यवहार किया ॥ ७ ॥ बताइए, दूसरा कौन है जो शबरी और जटायु गीधको मोक्ष दे दे? कौन है जो अत्यन्त दुखिया सुग्रीवका संकट दूर कर डाले? वही राम ही न! ॥ ८ ॥ ऐसा कालका ग्रास (रावणसे बैर मोल लेकर) उसका क्रोध-पात्र बननेवाला कौन था जो विभीषणको अपनी शरणमें ले रखता? पर आज उसी रावणके राज्यमें विभीषण राजा बना बैठा है। यह सब रामकी ही कृपाका परिणाम तो है

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बालिस[1] बासी अवध-के बूझिए न खाको। ते पाँवर पहुँचे तहाँ, जहँ मुनि-मन थाको ॥१०॥
गति न लहै राम-नाम-सों अस बिधि सिरजा को? सुमिरत कहत प्रचारि-कै बल्लभ गिरिजा को ॥११
अकनि अजामिल-की कथा सानंद न भा को? नाम लेत कलिकाल-हूँ हरि-पुरहिं न गा को ॥१२॥
रामनाम-महिमा करै, काम-भूरुह आको[2]। साखी बेद-पुरान है, 'तुलसी' तन ताको ॥१३॥(१५२

मेरे रावरियै गति है रघुपति ! बलि जाउँ।
निडर, नीच, निरगुन, निरधन-कहँ, जग दूसरो न ठाकुर-ठाउँ ॥ १ ॥
हैं घर - घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाउँ।
बानर - भालु - बिभीषन - हित, बिनु-कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥ २ ॥
प्रनतारनि - भंजन, जन - रंजन, सरनागत - पबि - पंजर[4] नाउँ।
कीजै दास 'दास - तुलसी' अब कृपासिंधु ! बिनु मोल बिकाउँ ॥ ३ ॥(१५३)

न ! ॥९॥ अयोध्याका वह मूर्ख और नीच धोबी भी (जिसने सीताको कलंक लगाया था) वहाँ (परम धाम) जा पहुँचा जहाँ मुनियोंका मन भी तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करते-करते थककर भी नहीं पहुँच पाता ॥ १० ॥ विधाताकी सृष्टिमें ऐसा कौन है जिसे राम-नामने मुक्त न कर दिया हो ? पार्वतीके पति शिव स्वयं राम-नाम जपते रहते हैं और दूसरोंको भी उसी नामका उपदेश देकर उसका प्रचार करते रहते हैं ॥ ११ ॥ अजामिलकी (मुक्तिकी) कथा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं हुआ ? इस कलिकालमें भी रामका नाम लेकर कौन भगवान्‌के परम धाम नहीं पहुँच गया ? ॥ १२ ॥ वेद और पुराण इस बातके साक्षी हैं कि राम-नामकी महिमासे आक (मदार)-का पेड़ भी कल्पवृक्ष बन सकता है। विश्वास न हो तो तुलसीको देख लो। (वह अत्यन्त तुच्छ व्यक्ति होता हुआ भी राम-नामके प्रतापसे परम भक्त बना बैठा है) ॥ १३ ॥ (१५२)

राम ! बलिहारी है। मेरी तो केवल आप ही-तक पहुँच है क्योंकि मेरे जैसे निडर, नीच, मूर्ख और दरिद्रके लिये संसारमें (आपको छोड़कर) न तो कोई स्वामी है और न कहीं ठौर-ठिकाना ही ॥ १ ॥ यों तो घर-घरमें बहुतेरे अच्छे-अच्छे स्वामी डटे बैठे हैं, किन्तु वे सब अपने ही अपने दाँवमें लगे हुए हैं। मुझे तो वानर, भालू और विभीषणके हितू कोशलपालके अतिरिक्त और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं दिखाई देता ॥२॥ आपका नाम भक्तोंके दुःख दूर कर डालता, सेवकोंको सुख देता और शरणमें आए हुओंके लिये वज्र-निर्मित पिंजड़ेके समान रक्षक है। बस अब तुलसीदासको भी अपना दास बना लीजिए, नहीं तो कृपासिंधु ! अब मैं बिना मोलके ही बिका जानेवाला हूँ ॥ ३ ॥ (१५३)

१. बालिस = (संस्कृत बालिश) मूर्ख। २. अकनि (आकर्ण्य) = सुनकर। ३. आको = मदार, अकौआ। ४. पवि-पंजर = वज्रका पिंजड़ा, अमोघ-कवच। महर्षि विश्वामित्रने 'वज्र-पंजर' नामका एक कवच बनाया है जिसे 'रामरक्षा-स्तोत्र' भी कहते हैं। उसका फल इस प्रकार बताया गया है—

'वज्रपंजरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्। अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जय-मंगलम्।'

[वज्रपंजर नागके इस रामकवचका जो पाठ करता है वह सर्वत्र जय प्राप्त करता है और उसकी आज्ञा कोई टाल नहीं सकता।]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव ! दूसरो कौन दीन - को दयाल ?
सील - निधान, सुजान-सिरोमनि, सरनागत - प्रिय, प्रनत-पाल ॥ १ ॥
को सर्बज्ञ, समर्थ, सकल प्रभु, सिव - सनेह - मानस - मराल ?
को साहिब किय मीत प्रीति-बस खग, निसिचर, कपि, भील, भालु ॥ २ ॥
नाथ - हाथ माया - प्रपंच सब, जीव दोष - गुन - करम - काल ।
'तुलसिदास' भल - पोच रावरो, नैकु निरखि कीजै निहाल ॥ ३ ॥(१५४)

राग सारंग

बिस्वास एक राम नाम - को ।
मानत नहिं परतीति अनत, ऐसो सुभाव मन बाम - को ॥ १ ॥
पञ्यो न पढ़िबो छठी, छ मत, रिग, जजुर, अथर्वन, साम-को ।
ब्रत, तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तन छाम को ॥ २ ॥
करम - जाल कलि - काल कठिन, आधीन सुसाधित दाम - को ।
ज्ञान, बिराग, जोग, जप को भय लोभ, मोह, मद, काम को ॥ ३ ॥
सब दिन सब लायक भो गायक, रघुनायक - गुन - ग्राम - को ।
बैठे नाम - कामतरु - तर, डर कौन घोर घन घाम - को ॥ ४ ॥

देव ! (आपको छोड़कर) दीनोंपर दया करनेवाला दूसरा और है कौन ? आप अत्यन्त शीलवान्, बड़े ज्ञानी, श्रेष्ठ, शरणमें आए हुओंके प्रिय हैं और भक्तोंका पालन करते हैं ॥ १ ॥ आपके समान समर्थ दूसरा कौन है ? आप सब कुछ जानते हैं । आप सब (चराचर)-के स्वामी हैं और आप शिवके प्रेम-रूपी मानसरोवरके हंस हैं (शिवके हृदयमें सदा प्रेमपूर्वक निवास करते हैं) । कौन ऐसा प्रभु है जिसने प्रेम करनेके कारण पक्षी, राक्षस, बंदर, भील और भालुओंको भी अपना मित्र बना छोड़ा हो ? ॥ २ ॥ नाथ ! मायाका सारा प्रपंच, दोष, गुण, कर्म और काल, सब आपके ही हाथमें हैं । यह तुलसीदास भला हो या बुरा, आपहीका तो है । इसकी ओर भी कृपादृष्टि घुमा दीजिए तो यह निहाल हो जाय ॥ ३ ॥ (१५४)

मुझे तो बस एक राम-नामका ही भरोसा है । मेरे कुटिल मनका कुछ ऐसा स्वभाव हो गया है कि वह और किसीका विश्वास ही नहीं करता ॥ १ ॥ छहों शास्त्रों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त)-के सिद्धान्त तथा ऋक्, यजुः, साम और अथर्वण वेदोंका पढ़ना तो मेरी छठी (जन्म-पत्रिका)-में ही नहीं पड़ा (मेरे भाग्यमें ही नहीं लिखा) । व्रत, तीर्थ, तप आदिका तो नाम ही सुनकर मन डरा जा रहा है । कौन इन साधनोंके फेरमें शरीर गलावे ॥२॥ कर्मकाण्ड भी तो कलियुगमें बहुत कठिन है और वह भी धन हो तो हो पाता है । ज्ञान, वैराग्य, योग, जप, तप आदि साधनोंमें भी लोभ, मोह, मद और काम आदि उत्पन्न होनेका भय बना रहता है ॥३॥ ऐसी दशामें इस संसारमें केवल रामके गुण-समूह गानेवाले ही सदा प्रसन्न रहते दिखाई देते हैं । रामनामके कल्पवृक्षकी छायामें जो जा बैठे हैं उन्हें घनघोर घटा (अज्ञानके अन्धकार) और कड़ी धूप (विषय आदिकी व्यथा)-काक्या

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

को जानै को जइहै जमपुर, को सुरपुर पर - धाम - को ?
'तुलसी' बहुत भलो लागत जग, जीवन राम - गुलाम - को ॥ ५ ॥(१५५)

कलि नाम कामतरु राम - को ।
दलनिहार दारिद - दुकाल - दुख - दोष घोर घन घाम - को ॥ १ ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, बाम बिधाता बाम - को ।
कहत मुनीस - महेस महातम, उलटे - सीधे नाम - को ॥ २ ॥
भलो लोक - परलोक तासु, जाके बल ललित - ललाम - को ।
'तुलसी' जग जानियत नाम - तें, सोच न कूच मुकाम - को ॥ ३ ॥(१५६)

सेइए सुसाहिब राम-सों ।
सुखद, सुजान, सुसील, सूर, सुचि, सुंदर कोटिक काम-सों ॥ १ ॥
सारद, सेस, साधु महिमा कहि, गुनगन - गायक साम - सों ।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति, चाहत चंद्र - ललाम-सों ॥ २ ॥
गवन बिदेस न लेस क्लेस - को, सकुचत सकृत प्रनाम-सों ।
साखी ताको बिदित बिभीषन, बैठो अबिचल धाम सो ॥ ३ ॥
टहल सहल जन - महल - महल[1], जागत चारौं जुग जाम सो ।
देखत दोष न खीझत, रीझत सुनि सेवक गुन - ग्राम सो ॥ ४ ॥

भय हो सकता है ? ॥ ४ ॥ कौन जानता है कि कौन नरक जायगा, कौन स्वर्ग जायगा और कौन परम धाम (मोक्ष) प्रात करेगा ? इस तुलसीको तो इस संसारमें बस रामका दास होकर ही जीना अच्छा लगता है ॥ ५ ॥ (१५५)

कलियुगमें एक रामका नाम ही तो कल्पवृक्ष है जो दरिद्रता, दुर्भिक्ष (अकाल), दुःख, दोष और सांसारिक घनघटा (विपत्ति) तथा कड़ी धूप (विषय-विलास) सबका नाश कर डालता है ॥ १ ॥ रामका नाम लेते ही दुर्भाग्य भी सौभाग्य बन जाता है। महर्षि वाल्मीकिने उलटा नाम (मरा-मरा) जपनेका और शिवने सीधा नाम (राम-राम) जपनेका माहात्म्य स्वयं बता दिया है। जिसे इस परम सुन्दर राम-नामका बल है उसके लोक और परलोक दोनों ही बन जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि नामके प्रभावसे संसारके आवागमनकी चिन्ता ही नहीं रह जाती ॥ ३ ॥ (१५६)

सेवा करनी हो तो राम-जैसे उत्तम स्वामीकी ही सेवा करनी चाहिए। वे सबको सुख देते हैं, चतुर हैं, शूरवीर हैं, पवित्र हैं और करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं ॥१॥ उनकी महिमाका वर्णन सरस्वती, शेष और साधुजन भी सदा करते रहते हैं तथा सामवेद भी उनके गुण गाता रहता है। चन्द्रचूड शंकर-जैसे देव भी उनके नामका प्रेमपूर्वक स्मरण करते हुए उनसे लगन लगाए रहते हैं ॥२॥ (पिताकी आज्ञासे) वन जानेमें उन्हें तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। उन्हें कोई एक बार भी प्रणाम कर दे तो वे संकोच-से दब जाते हैं। इस बातका साक्षी विभीषण है जो आज भी (लंकामें) बैठा अटल राज्य कर रहा है ॥ ३ ॥ उनकी सेवा करना बड़ा सरल है। वे अपने भक्तोंके घट-घटमें चारों युगोंसे, (अविद्या-रूपी रात्रिके) चारों पहर जागते रहते हैं (अविद्या दूर करते रहते हैं)। वे अपने

---

१. महल-महल=घट-घटमें ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जाके भजे तिलोक - तिलक भे, त्रिजग - जोनि, तनु तामसो[1] ।
'तुलसी' ऐसे प्रभुहिं भजै जु न, ताहि बिधाता बाम सो ॥ ५ ॥(१५७)

राग नट

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ?
काम - लोलुप भ्रमत मन, हरि ! भगति परिहरि तोरि ॥ १ ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे-पर, पूजिबे पर थोरि । देउँ सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता मति मोरि ॥२
किए सहित सनेह जे अघ, हृदय राखे चोरि । संग-बस किय सुभ, सुनाए सकल लोक निहोरि।३
करौं जो कछु धरौं सचि पचि,सुकृत-सिला बटोरि । पैठि उर बरबस दयानिधि!दंभ लेत अँजोरि[2] ४
लोभ मनहिं नचाव कपि-ज्यों, गरे आसा-डोरि । कहौं बात बनाइ बुध-ज्यों, बर बिराग निचोरि ।५
इतहुँ-पर तुम्हरो कहावत,लाज अँचई घोरि । निलजता-पर रीझि रघुबर ! देहु तुलसिहिं छोरि॥६॥
(१५८)

सेवकके अपराध देखकर भी उसपर क्रोध नहीं करते और सेवकके गुण सुनकर तो उसपर निहाल हो उठते हैं ॥ ४ ॥ उनका भजन करनेसे ही पशु (वानर सुग्रीव-हनुमान्), पक्षी (जटायु) एवं तामसी शरीर-वाले राक्षस (विभीषण) भी तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे । इसीलिये तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग ऐसे प्रभुको भी नहीं भजते वे सचमुच बड़े अभागे हैं ॥ ५ ॥ (१५७)

हरि ! जब मेरा यह कामी मन ही आपकी भक्ति छोड़कर इधर-उधर भटकता फिरता है तब नाथ ! मैं आपको दोष कैसे दे सकता हूँ ॥१॥ अपनी पूजा करानेको तो मेरा मन बड़ा उत्सुक रहता है, किन्तु आपकी पूजा करनेमें मेरी बहुत ही कम श्रद्धा होती है । दूसरोंको तो मैं बहुत उपदेश देता फिरता हूँ पर स्वयं किसीकी सीख नहीं मानता, यही मेरी बड़ी भारी मूर्खता है ॥२॥ मैंने बड़े प्रेमसे जो-जो पाप किए हैं उन्हें तो मैं मनमें छिपाए रहता हूँ, पर कभी किसी सत्संगमें पड़कर जो मैंने एक-आध अच्छे काम कर दिए उन्हें मैं सारे संसारको प्रार्थना कर-करके (ढिंढोरा पीटकर) सुनाता रहता हूँ, ॥ ३ ॥ जो कुछ पुण्य कर्म मैं करता भी हूँ उन्हें खेतमें पड़े दानों के समान बटोरकर यद्यपि बहुत सँभालकर रखता हूँ, फिर भी दयानिधि ! उसे भी पाखंड मेरे हृदयमें पैठकर मुझसे बलपूर्वक छीन ले जाता है (जो पुण्य करता हूँ उसमें भी पाखंड भरा रहता है) ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त लोभ मेरे मनको आशाकी रस्सीसे बाँधकर इस प्रकार नचाता रहता हैं जैसे बाजीगर बंदरके गलेमें रस्सी बाँधकर नचाता है । पर मैं हूँ कि बड़े दम्भसे पंडितके समान वैराग्य-तत्त्वकी बातें बना-बनाकर सुनाता फिरता हूँ ॥५॥ (मेरी ढिठाई तो देखिए कि) इतनेपर भी मैं आपका दास कहलाता हूँ । लाज तो मानो मैं घोलकर पी गया हूँ । राम ! मेरे पास गुणके नामपर तो कुछ है नहीं इसलिये अब आप मेरी निर्लज्जतापर ही रीझकर इस तुलसीके बन्धन खोल दीजिए (मुझे मुक्त कर दीजिए) ॥६॥ (१५८)

१. त्रिजग जोनि, तनु तामसो=तिर्यक् योनि (पशु वानर भालू पक्षी जटायु), तामसी शरीरवाले विभीषण । २. अँजोरि लेत=समेट लेता है (अंजलिमें ले लेता है)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

है प्रभु मेरोई सब दोस।
सीलसिंधु, कृपाल, नाथ, अनाथ - आरत - पोस ॥ १ ॥
बेष, बचन, बिराग, मन, अघ - अवगुननि - को कोस। राम - प्रीति - प्रतीति पोलो, कपट करतब ठोस ॥२॥
राग-रंग-कुसंग ही-सों, साधु-संगति रोस। चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल-ज्यों खरगोस ॥३॥
संभु-सिखवन रसन-हूँ नित राम-नामहिं घोस। दंभ-हूँ कलि नाम-कुंभज सोच-सागर सोस ॥४॥
मोद - मंगल - मूल अति अनुकल निज निरजोस[1]। रामनाम - प्रभाव सुनि, तुलसिहु परम संतोस ॥ ५ ॥ (१५९)

मैं हरि पतिपावन सुने।
हौं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने ॥ १ ॥
व्याध, गनिका, गज अजामिल, साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ॥ २ ॥
जानि नाम, अजानि लीन्हें, नरक जमपुर मने[2]।
'दास तुलसी' सरन आयो, राखि ले आपने ॥ ३ ॥(१६०)

प्रभो ! जितना कुछ दोष है सब मेरा ही तो है। आप तो शील-सौजन्यके समुद्र (भंडार) हैं, कृपालु हैं, अनाथों के नाथ हैं और दीन-दुखियोंको पालते-पोसते रहते हैं ॥ १ ॥ मेरे वेष और वचनोंसे तो ऐसा लगता है कि मेरे मनमें बड़ा वैराग्य है, परन्तु मेरा मन पापों और अवगुणोंसे भरा पड़ा है। राम ! आपकी भक्ति और श्रद्धाके लिये तो मेरे मनमें तनिक भी स्थान नहीं है, किन्तु छल-कपटके कामों के लिये स्थान ही स्थान पड़ा है ॥२॥ जैसे कोई खरगोश किसी सियारकी सेवा करके सिंहकी कीर्ति प्राप्त करना चाहे, वैसे ही मैं भी कुसंगतिसे प्रेम करता हूँ और साधुओंकी संगतिसे भागा फिरता हूँ (तिसपर भी चाहता यही हूँ कि मुझे लोग महात्मा कहें) ॥ ३ ॥ शंकरकी यही शिक्षा है कि अपनी जिह्वासे नित्य राम-नामका ही उच्चारण किया करो। कलियुगमें तो जो पाखंडसे भी राम-नाम ले ले, वह दुःखोंको वैसे ही सोख लेता है जैसे अगस्त्यने समुद्र सोख लिया था ॥ ४ ॥ इस राम-नामसे आनन्द और कल्याण तो मिलता ही है पर साथ ही अपने लिये भी यह बहुत ही सहायक है। इसीलिये तुलसीको भी राम-नामका प्रभाव सुनकर बड़ा सन्तोष मिला है ॥ ५ ॥ (१५९)

हरि ! मैंने सुना है कि आप पतितोंको भी पवित्र कर देते हैं। मैं पापी हूँ और आप पापियोंका उद्धार करते हैं, इस प्रकार दोनोंका व्यापार-संबंध ठीक बन गया है ॥ १ ॥ वेद साक्षी हैं कि आपने व्याध, गणिका, गज और अजामिल सबका उद्धार कर डाला। इनके अतिरिक्त आपने और भी जिन बहुत-से अधमोंका उद्धार कर डाला उन्हें भला कौन गिन पा सकता है ॥ २ ॥ जिन्होंने जाने-अनजाने जिस प्रकार भी आपका नाम स्मरण कर लिया उन्हें ही नरक या यमलोक जानेकी मनाही हो गई (वे वैकुण्ठ चले गए)। यही जानकर तो तुलसी भी आपकी शरणमें आ पहुँचा है। अब इसे भी आप अपना ही लीजिए ॥ ३ ॥ (१६०)

१. निरजोस = (निः + जोष = आनन्दरहित) कष्ट, दोष। २. मने = वर्जित हुआ, ले जाना मना किया गया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग मलार

तोसों प्रभु, जौ पै कहुँ होतो।
तौ सहि निपट निरादर निसि-दिन, रटि, लटि, अस घटि को तो ॥ १ ॥
कृपा-सुधा जल-दान माँगिबो, कहौं सो साँच निसोतो[1]।
स्वाति - सनेह - सलिल सुख चाहत, चित - चातक - को पोतो[2] ॥ २ ॥
काल - करम - बस मनो मनोरथ, कबहुँ - कबहुँ कछु भो तो।
ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि, उछरि भभरि ले गोतो ॥ ३ ॥
जितो दुराउ 'दास तुलसी' - उर, क्यों कहि आवत ओतो।
तेरे राज राय दसरथ - के, लयो, बयो बिनु जोतो ॥ ४ ॥(१६१)

राग सोरठ

ऐसो को उदार जग - माहीं।
बिनु - सेवा जो द्रवै दीन-पर, राम-सरिस कोउ नाहीं ॥ १ ॥
जो गति जोग - बिराग - जतन करि, नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति दई गीध - सबरी - कहँ, प्रभु न अधिक करि मानी ॥ २ ॥
जो संपति दससीस अरपि करि, रावन सिव-पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन - कहँ, अति सकुच - सहित प्रभु दीन्हीं ॥ ३ ॥

यदि आपके समान कहीं कोई दूसरा स्वामी होता तो भला कौन क्षुद्र व्यक्ति सर्वथा अपमान सहकर और दिन-रात आपका नाम रट-रटकर दुबला हुआ रहता (उसका काम कभीका हो गया रहता)। मैं जो आपसे कृपाका जल माँग रहा हूँ, वह सचमुच निराले ही ढंगका है। मेरा चित्त रूपी चातकका पोतक (बच्चा) प्रेम-रूपी स्वाती नक्षत्रका आनन्द-रूपी जल चाहता है (मेरा मन आपसे प्रेम करनेका आनन्द चाहता है) ॥ २ ॥ काल और कर्मके वशमें सदा रहकर आनन्द माननेवाले मेरे मनमें भी वह (रामसे प्रेमका आनन्द पानेका) जो कभी-कभी मनोरथ उठता है वह उसी प्रकारका (क्षणिक) है जैसे जलमें सुखपूर्वक रहनेवाली मछली कभी-कभी उस जलको छोड़कर डरके मारे ऊपर तो उछल आती है पर फिर उसीमें डुबकी जा लगाती है ॥१३॥ इस तुलसीदासके हृदयमें अपना पाप छिपानेकी कितनी वृत्ति है वह बताई नहीं जा सकती। दशरथके पुत्र राम! आपके राज्यमें तो न जाने कितनोंने बिना जोते-बोए ही खेत काट लिए हैं (बिना कुछ किए-धरे मुक्ति पा ली है, तो अब मुझे भी उबार लीजिए) ॥ ४ ॥ (१६१)

(रामको छोड़कर) संसारमें ऐसा कौन उदार है, जो बिना किसी सेवाके ही दीनोंपर कृपा कर बैठता हो ? ऐसे तो केवल एक राम ही हैं। उनके समान (कृपालु) दूसरा कोई है ही नहीं ॥१॥ राम तो ऐसे हैं कि योग और वैराग्य साधकर बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि भी जो परम गति नहीं प्राप्त कर पाते, वह गति (मोक्ष पद) गीध और शबरी-तकको देकर भी अपने मनमें यही समझते रहे कि मैंने इन्हें कुछ नहीं दिया ॥ २ ॥ जो सम्पत्ति रावणने शिवको अपने दसों सिर चढ़ाकर प्राप्त की थी, वह सम्पत्ति रामने विभीषणको बड़े संकोचके साथ दी थी (कि मैंने इसे कुछ नहीं

---

१. निसोतो = खरा। २. पोतो = पोतक, बच्चा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसिदास' सब भाँति, सकल सुख, जौ चाहसि मन ! मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो ॥ ४ ॥ (१६२)

एकै दानि - सिरोमनि साँचो।
जिहि जाँच्यो सोइ जाचकता - बस, फिरि बहु नाच न नाचो ॥ १ ॥
सब स्वारथी असुर, सुर, नर, मुनि, कोउ न देत बिनु पाए।
कोसलपाल कृपाल कलप - तरु, द्रवत सकृत सिर नाए ॥ २ ॥
हरिहु और अवतार आपने, राखी बेद - बड़ाई।
लै चिउरा, निधि दई सुदामहिं, जद्यपि बाल - मिताई ॥ ३ ॥
कपि, सबरी, सुग्रीव, बिभीषन, को नहिं कियो अजाची।
अब तुलसिहिं दुख देत दयानिधि ! दारुन आस - पिसाची[1] ॥ ४ ॥ (१६३)

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि, राखत राम सनेह - सगाई ॥ १ ॥
नेह निबाहि, देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु - तें अधिक गीध - पर, ममता - गुन गरुआई ॥ २ ॥

दिया) ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'अरे मेरे मन ! यदि तू सब प्रकारका सब सुख चाहता ही हो तो बैठकर रामका भजन कर। कृपानिधान राम स्वयं तेरी सारी मनो-कामनाएँ पूरी कर डालेंगे ॥४॥ (१६२)

सच्चे दानियोंमें सबसे बढ़कर कोई हैं तो राम ही हैं। जिस किसीने एक बार भी उनसे माँग लिया उसे फिर और नाच नहीं नाचने पड़े (औरोंके आगे हाथ नहीं पसारना पड़ा) ॥ १ ॥ असुर, देवता, मनुष्य और मुनि, ये जितने हैं सब बड़े स्वार्थी हैं। बदलेमें कुछ लिए बिना (भेंट-पूजा चढ़वाए बिना) इनमेंसे कोई कुछ नहीं देता। किन्तु अयोध्यापति राम ही ऐसे कृपालु कल्पवृक्ष हैं कि एक बार प्रणाम भर करते ही पसीज उठते हैं ॥ २ ॥ विष्णु भगवान्‌ने भी अपने अन्य अवतारों (मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, परशुराम, कृष्ण-बलराम)-में वेदोंकी मर्यादाका पालन तो किया पर सुदामासे बचपनकी मित्रता होनेपर भी कृष्णने उसे सम्पत्ति तभी दी जब उससे चिउड़ा ले लिया ॥३॥ उधर रामको लीजिए तो उन्होंने (बिना किसीसे कुछ लिए) हनुमान्, शबरी, सुग्रीव और विभीषण, किस-किसको अयाचक (समृद्ध) नहीं बना दिया ? दयानिधान राम ! भयंकर आशा-रूपी पिशाचिनी अब इस तुलसीदासको बहुत दुःख दिए डाल रही है। (मुझे भी आपकी कृपा पानेकी आशा लगी है, मुझपर भी कृपा कर दीजिए) ॥ ४ ॥ (१६३)

प्रेम निबाहनेका ढंग यदि कोई जानता है तो एक राम ही जानते हैं। प्रेमके सम्बन्धके सामने राम सब सम्बन्ध त्याग बैठते हैं ॥ १ ॥ देखो, दशरथने स्नेह निभाते हुए अपना शरीर-तक छोड़कर अमर कीर्त्ति पा ली। किन्तु गीधके प्रेमके आगे रामने ऐसे पिताको भी कुछ अधिक महत्त्व नहीं दिया (क्योंकि उसने ममता-वश नहीं, निःस्वार्थ भावसे प्रेम किया था) ॥ २ ॥ रामने अपने मित्र सुग्रीवको

१. यह पद भागवतदासकी पोथीमें १६४ के अनन्तर आया है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तिय - बिरही सुग्रीव सखा लखि, प्रान - प्रिया बिसराई।
रन - पर्‍यो बंधु, बिभीषन - ही - को सोच हृदय अधिकाई ॥ ३ ॥
घर, गुरु - गृह, प्रिय सदन, सासुरे, भइ जब -जब पहुनाई।
तब-तब कहि, सबरी - के फलनि - की रुचि माधुरी न पाई ॥ ४ ॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत, रहत सकुचि सिर नाई।
केवट - मीत कहे सुख मानत, बानर - बंधु बड़ाई ॥ ५ ॥
प्रेम - कनौड़ो राम - सों प्रभु, त्रिभुवन, तिहुँ काल, न भाई।
कपि - सों कह्यो 'रिनी तेरो' हौं, को मानिहि सेवकाई ॥ ६ ॥
'तुलसी' राम - सनेह - सील सुनि, जो न भगति उर आई।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ ! तनु - तरुनता गँवाई ॥ ७ ॥(१६४)

रघुबर ! रावरि इहै बड़ाई।
निदरि गनी[1], आदर गरीब - पर, करत कृपा अधिकाई ॥ १ ॥
थके देव साधन करि सब, सपनेहुँ नहिं दिये दिखाई।
केवट कुटिल, भालु - कपि - कौनप[2], किये सकल सँग भाई ॥ २ ॥

जब स्त्रीके विरहमें (दुखी) देखा तो वे अपनी प्राणप्रिया सीताको भी भुला बैठे। इसी प्रकार रणमें मूर्च्छित पड़े हुए भाई लक्ष्मणकी चिन्ता उन्हें उतनी नहीं हुई जितनी विभीषणकी चिन्ता होती रही (कि विभीषणको जो लंकेश बनानेका मैंने वचन दिया है वह कैसे पूरा होगा) ॥३॥ अपने घर, गुरु वशिष्ठके आश्रममें, प्रेमियोंके यहाँ अथवा अपनी ससुरालमें, जब-जब जहाँ-जहाँ भी रामकी पहुनाई हुई, वहाँ-वहाँ (शबरीके निःस्वार्थ तीव्र प्रेमके कारण) आप यही कहते रहे कि 'शबरीके बेरमें मुझे जैसा स्वाद सिला वैसा कहीं नहीं मिला' ॥ ४ ॥ जब मुनि लोग आपके सहज स्वरूप (सर्वव्यापक रूप)-की प्रशंसा करने लगते हैं तब आप संकोचसे सिर झुका लेते हैं, किन्तु जब आपको कोई केवटका मित्र कहता और बन्दरोंका बन्धु कहता है तब आप प्रसन्न हो उठते हैं और उसे ही अपनी बड़ाई समझते हैं (आप अपनी नहीं, मित्रोंकी प्रशंसा सुनना चाहते हैं) ॥ ५ ॥ देखो भाई ! प्रेमका आदर करनेवाला तीनों लोकों और तीनों कालोंमें रामके समान दूसरा कोई हुआ नहीं, जिसने कृतज्ञ होकर हनुमान्‌से यहाँतक कह डाला कि 'मैं तेरा ऋणी हूँ।' इस प्रकार सेवाके लिये कृतज्ञ होनेवाला उनके समान दूसरा है कौन ? ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'रामका ऐसा स्नेह और शील-स्वभाव सुनकर भी यदि तेरे मनमें भक्तिका उदय न हुआ तो तेरी माताने तुझे जन्म देकर व्यर्थ ही अपनी युवावस्था गँवाई (नष्ट की)' ॥ ७ ॥ (१६४)

राम ! आपकी यही बड़ाई सुनी जाती है कि आप धनियोंका निरादर और दीनोंका आदर करते चले आए हैं और उन्हींपर विशेष कृपा भी करते हैं ॥१॥ देवता लोग सब प्रकारके साधन कर-करके हार गए, पर उन्हें स्वप्नमें भी आपने कभी दर्शन नहीं दिया, किन्तु निषाद (गुह), कपटी भालू-बन्दर और राक्षस (विभीषण)-को देखिए तो उन्हें आप सदा भाई मानते रहे ॥२॥ जिन मुनियोंके साथ

१. गनी (अरबी ग़नी) = धनी। २. केवट : गुह निषाद। भालू : जामवन्त। कपि = सुग्रीव, कौणप (राक्षस) : विभीषण।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मिलि मुनि - वृंद फिरत दंडक - बन, सो चरचौ न चलाई।
बारहिं बार गीध सेवरा - की बरनत प्रीति सुहाई ॥ ३ ॥
स्वान कहे - तें किय पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई।
तिय - निंदक मतिमंद प्रजा रज, निज नय नगर बसाई ॥ ४ ॥
यहि दरबार दीन - को आदर, रीति सदा चलि आई।
दीनदयाल दीन तुलसी - की, काहु न सुरति कराई ॥ १६५ ॥(१६५)

ऐसे राम दीन-हितकारी।

अति कोमल, करुना - निधान, बिनु कारन पर - उपकारी ॥ १ ॥
साधन - हीन, दीन, निज अघ - बस, सिला भई मुनि-नारी।
गृह-तें गवनि, परसि पद पावन, घोर साप - तैं तारी ॥ २ ॥
हिंसा - रत निषाद, तामस - बपु, नर - समान बन - चारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम - बस, नहिं कुल जाति-बिचारी ॥ ३ ॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति - सुत, कहि न जाइ अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोक - हत सरन गए भय टारी ॥ ४ ॥

हिल-मिलकर आप दंडक वनमें घूमते रहे उनकी तो आपने कहीं चरचा-तक नहीं छेड़ी किन्तु गीध और शबरीकी सच्ची भक्तिकी आप बार-बार प्रशंसा करते रहे ॥३॥ कुत्तेके कहनेपर आपने (तीर्थसिद्धि नामके) संन्यासीको हाथीपर चढ़ाकर (कालिंजरके मठका महंत बनाकर) नगरके बाहर निकाल दिया था, किन्तु सती सीताको झूठा दोष लगानेवाले मूर्ख धोबीको अपनी दीन प्रजा समझकर नीतिकी रक्षा करते हुए (कि प्रत्येक व्यक्तिको अपना विचार प्रकट करनेकी स्वतंत्रता है) आपने अपने नगर (अयोध्या)-में बसाए रक्खा ॥ ४ ॥ (इससे सिद्ध होता है कि) इस दरबारमें (राम-राज्यमें) दीनोंका ही आदर करनेकी नीति सदासे चली आ रही है। किन्तु दीनदयालु ! क्या किसीने आपको यह ध्यान नहीं दिलाया कि तुलसी नामका भी एक दीन आपकी शरणमें पड़ा हुआ है ॥ ५ ॥ (१६५)

राम तो दीनोंका ही बहुत हित करते हैं क्योंकि उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल और बहुत दयालु है। वे सदा निःस्वार्थ भावसे दूसरोंका उपकार ही करते रहते हैं ॥१॥ गौतम ऋषिकी पत्नी जो अहल्या अपने पापोंके कारण दीन और साधनोंसे रहित होकर शिला बनी पड़ी थी उसे आपने घरसे चलकर (उसके पास पहुँचकर) अपने पवित्र चरणसे स्पर्श करके भयंकर शापसे मुक्त कर डाला ॥ २ ॥ (मछली आदि जीवोंकी) हिंसामें लगा हुआ गुह निषाद, तामसी मनुष्य (विभीषण) और पशुके समान वनमें विचरनेवाले (वानरोंको) आपने प्रेमके ही कारण हृदयसे लिपटा लगाया, उनके कुल और जातिका कुछ भी विचार नहीं किया ॥३॥ यद्यपि इन्द्रके पुत्र जयन्तने इतना बड़ा पाप कर डाला था जो कहने योग्य नहीं है (कि सीताके स्तनपर चोंच जा मारी) तथापि जब वह सब लोकोंमें घूम-फिरकर विपत्तिका मारा आपकी शरणमें आ गया तब आपने (उसकी केवल एक आँख लेकर ही) उसे क्षमा कर दिया ॥ ४ ॥ मांसाहारी पक्षी गीध (जटायु)-ने कौनसा व्रत किया था, जिसे आपने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिहग - जोनि, आमिष - अहार ? सो गीध कौन ब्रत - धारी ।
जनक - समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥ ५ ॥
अधम जाति सबरी जोषित, जड़, लोक - बेद - तें न्यारी ।
जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी ॥ ६ ॥
कपि सुग्रीव बंधुभय - व्याकुल, आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके जन को दारुन दुख हत्यो बालि सहि गारी ॥ ७ ॥
रिपु-को अनुज बिभीषन निसिचर, कौन भजन - अधिकारी ।
सरन गए आगे, ह्वै लीन्हों, भेंट्यो भुजा पसारी ॥ ८ ॥
असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर - रीछ बिकारी ।
बेद - बिदित पावन भोर ते सब, महिमा नाथ बिहारी ॥ ९ ॥
कहँ-लगि कौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपपि निवारी ।
कलिमल - ग्रसित 'दास तुलसी' - पर काहे कृपा बिसारी ॥ १० ॥(१६६)

रघुपति ! भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सो जेहि बनि आई ॥ १ ॥
जा जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल - प्रबाह, सुरसरी बहै गज भारी ॥ २ ॥

पिताके समान मानकर अपने हाथोंसे उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करके उसका उद्धार कर दिया ॥५॥ अधम जातिकी मूर्खा स्त्री शबरी, जो लोक और वेद दोनों दृष्टियोंसे गई बीती थी, उसकी शुद्ध प्रीति देखकर कृपानिधान ! आपने उसे दर्शन देकर उसका भी उद्धार कर दिया ॥६॥ जब वानर सुग्रीव अपने भाई बालिके डरसे व्याकुल होकर आपकी शरणमें आया और उसने पुकार की, तब आप उस आश्रित भक्तका दुःख नहीं सह सके । आपने बदनामी सहकर भी (कि पेड़की ओटसे छिपकर मारा), बालिका वध कर ही डाला ॥७॥ शत्रु रावणका भाई विभीषण कौनसा भजन करनेका अधिकारी था ? किन्तु ज्यों ही वह आपकी शरणमें आया त्यों ही आपने आगे बढ़कर भुजा पसारकर उसे गले लगा लिया ॥ ८ ॥ नाथ ! यह आपकी ही महिमा है कि जिन पापी वानर-भालुओंका स्मरण करना भी अशुभ होता है, वे सब भी पवित्र हो गए । यह बात वेदों-तकमें प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ कहाँतक गिनाऊँ ? ऐसे दीनोंकी संख्या अनगनित है जिनकी विपत्तियाँ आपने दूर कर डालीं । फिर बताइए, कलिके पापोंसे ग्रस्त इस तुलसीपर ही आप कृपा करना क्यों भूल बैठे हैं ? ॥ १० ॥ (१६६)

रामकी भक्ति करना बड़ा कठिन है । कहनेमें तो यह बहुत सरल है, परन्तु इसे पाना (निबाह ले जाना) बहुत ही कठिन है । यह (कठिनाई) तो वही जानता है जो यह भक्ति करने बैठता है ॥ १ ॥ जो जिस कलामें निपुण होता है उसे वह वैसे ही सदा सुगम लगती और सुख देती है जैसे मछली ही गंगाके प्रवाहमें धाराके विरुद्ध चला करती है (क्योंकि वह तैरनेकी कलामें निपुण होती है), परन्तु बड़ा भारी हाथी उसी प्रवाहमें बह चलता है (क्योंकि वह तैर नहीं पाता) ॥२॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ज्यों सर्करा मिलै सिकता - महँ बल, न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै॥ ३॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि, जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत - बियोगी॥ ४॥
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस-निसि, देस-काल तहँ नाहीं।
'तुलसिदास' यहि दसा - हीन, संसय निर्मूल न जाहीं॥ ५॥ (१६७)

जौ पै रामचरन रति होती।
तौ कत त्रिबिध सूल[1] निसि-बासर,सहते बिपति निसोती[2] ॥१॥
जौ संतोष - सुधा निसि - बासर स्रपनेहु कबहुँक पावै।
तौ कत बिषय बिलोकि झूठ जल, मन कुरंग-ज्यों धावै॥ २॥
जौ श्रीपति-महिमा बिचारि, उर भजते, भाव बढ़ाए।
तौ कत द्वार - द्वार कूकर - ज्यों, फिरते पेट खलाए॥ ३॥
जे लोलुप भे दास आस-के, ते सबही-के चेरे।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि-केरे॥ ४॥

जैसे बालूमें शक्कर मिल जाय तो उसे सारी शक्ति लगाकर भी कोई अलग नहीं कर सकता, परन्तु उसका रस (स्वाद) जाननेवाली छोटी-सी चींटी बिना परिश्रमके ही उसे चुन-चुनकर निकाल लेती है॥३॥ इस सारे दृश्यमान जगत्‌को अपनेमें समेटकर अज्ञान-रूपी निद्रा त्यागकर जो सोता है, वह द्वैत (भेदभाव)-से मुक्त पुरुष ही भगवान्‌के परम पदके परमानन्दकी अनुभूति कर सकता है॥ ४॥ उस स्थिति (निर्विकल्प समाधि)-में शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन, रात, देश और काल—यह सब कुछ नहीं रह जाते (एक मात्र सच्चिदानन्द प्रभु ही रह जाते हैं)। तुलसीदास! (यह समझ ले कि) जबतक यह दशा नहीं हो जाती तबतक संशयका भी समूल नाश नहीं हो पा सकता॥५॥ (१६७)

यदि रामके चरणोंमें मेरी प्रीति हुई होती, तो रात-दिन तीनों प्रकारके ताप, कष्ट और शुद्ध विपत्ति (जिसमें तनिक भी सुख नहीं बचा रहता) क्यों सहनी पड़ती?॥ १॥ यदि यह मन दिन-रातमें कभी स्वप्नमें भी सन्तोषका अमृत पा जाता, तो सांसारिक विषयोंके झूठे मृगजलको देखकर मृगकी भाँति उसके पीछे-पीछे क्यों दौड़ता-फिरता॥ २॥ यदि हम रामकी महिमा समझकर, उनसे प्रेम बढ़ाकर उनका भजन करते होते तो आज कुत्तेके समान द्वार-द्वार पेट खलाकर क्यों घूमते फिरते॥३॥ जो लोभी पुरुष आशाका दास बना बैठा रहता है वह तो सभीका दास होता है, परन्तु भगवान्‌के सच्चे सेवक वे ही हैं जो भगवान्‌में विश्वास करके आशाको ही जीत बैठे

---

१. तीन प्रकारके ताप : आध्यात्मिक (शारीरिक और मानसिक कष्ट), आधिदैविक (धूप, वर्षा, अग्नि आदिसे कष्ट) तथा आधिभौतिक (पशु-पक्षी आदि जीवोंसे कष्ट)। २. निसोती = शुद्ध।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नहिँ एकौ आचरन भजन-को, बिनय करत हौं ताते।
कीजै कृपा 'दास तुलसी'-पर नाथ! नाम-के नाते॥ ५॥ (१६८)

जौं मोहिँ राम लागते मीठे।
तौ नवरस[1], षटरस[2]-रस अनरस, ह्वै जाते सब सीठे॥ १॥
बंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे।
यह जानतहु हृदय अपने, सपने न अघाइ उबीठे[3]॥ २॥
'तुलसिदास' प्रभु-सों एकहि बल, बचन कहत अति ढीठे।
नाम-कि लाज राम! करुनाकर! केहि न दिये करि चीठे॥ ३॥ (१६९)

यौं मन कबहुँ तुमहि न लाग्यो।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर, रहत बिषय अनुराग्यो॥ १॥
ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपंच घर-घर-के।
त्यों न साधु, सुरसरी-तरंगनि बिमल गुननि रघुबर-के॥ २॥
ज्यों नासा सुगंधरस-बस, रसना षटरस-रति मानी।
राम प्रसाद-माल, जूठनि लगि, त्यों न ललकि ललचानी॥ ३॥

हैं॥ ४॥ तुलसीदास कहते हैं कि मुझमें भजन करनेकी तो योग्यता तनिक भी नहीं है (मैं तो केवल आपका नाम ही जानता हूँ और वही बैठा रटा करता हूँ), इसीलिये नाथ! मैं आपसे विनय करता हूँ कि आप अपने नामके नाते ही इस तुलसीदासपर कृपा कर दीजिए॥ ५॥ (१६८)

यदि मुझे राम ही मीठे (प्रिय) लगे होते, तो सब साहित्यके नौ रस, एवं (भोजनके) छह रस सब नीरस और फीके जान पड़ते (ये सभी अप्रिय लगते)॥ १॥ मैं अनेक प्रकारके शरीर धारण करके यह अनुभव कर चुका हूँ, सुन और देख भी चुका हूँ कि ये इन्द्रियोंके विषय केवल ठग हैं (संसारकी मायामें फँसाकर परमार्थ-रूपी धन ठग लेते हैं)। अपने हृदयमें यह जानते हुए भी मेरा मन इनसे तृप्त होकर स्वप्नमें भी इनसे उचटा नहीं (इनमें ही लगा हुआ है)॥ २॥ परन्तु तुलसीदास तो अपने प्रभु रामसे केवल एक ही बलके भरोसे ढिठाईके साथ कह रहा है कि नाथ! आपने अपने नामकी लाजसे किस-किसको कृपा करके (भव-बन्धनसे छूटनेके) पट्टे नहीं लिख डाले? (सबको मुक्त कर दिया, तो मुझे भी मुक्त कर दीजिए)॥ ३॥ (१६९)

मेरा मन आपमें ऐसा कभी नहीं लगा जैसा निष्कपट और स्वाभाविक रूपसे इन सांसारिक विषयोंमें लगा रहता है॥१॥ जैसे मैं पराई स्त्रीको (बुरी भावनासे) देखता फिरता हूँ, घर-घरके पाप-भरे प्रपंच सुनता रहता हूँ, वैसे न तो मैं कभी साधु-सन्तोंके दर्शन करता हूँ, न गंगाकी निर्मल लहरोंमें स्नान करता हूँ, न आपके (परम पवित्र) गुण ही सुनता हूँ॥२॥ जैसे मेरी यह नाक अच्छी-अच्छी सुगन्धका आनन्द लेनेके लिये और जीभ षड्रस भोजन पानेके लिये ललचाई पड़ती है, वैसे मेरी नाक भगवान्‌पर चढ़ी हुई मालाकी गंधके लिये और जीभ भगवान्‌का प्रसाद पानेके लिये कभी लालायित नहीं

---

१. साहित्यके नौ रस :—शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, भयानक, रौद्र, अद्‌भुत, बीभत्स और शान्त। (कुछके मतानुसार वात्सल्य, माया और भक्ति (दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य, शान्त)।
२. भोजनके छह रस :—कटु, तिक्त, कषाय, अम्ल, लवण, मधुर। ३. उबीठे = ऊबे।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चंदन, चंद्र-बदनि, भूषन, पट, ज्यों चह पाँवर परस्यो।
त्यों रघुपति-पद-पदुम परस-को, तनु पातकी न तरस्यो ॥ ४ ॥
ज्यों सब भाँति कुदेव, कुठाकुर सेइ बपु-बचन-हिए हू।
त्यों न राम सुकृतज्ञ, जे सकुचत सकृत प्रनाम किए हू ॥ ५ ॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप, द्वार-द्वार जग बागे।
राम-सीय-आस्रमनि चलत त्यों भए न स्रमित अभागे ॥ ६ ॥
सकल अंग पद-बिमुख नाथ! मुख नाम-कि ओट लई है।
है तुलसिहि परतीति एक, प्रभु-मूरति कृपामई है ॥ ७ ॥ (१७०)

कीजै मोको जम जातनामई।
राम! तुम-से सुचि सुहृद साहिबहि, मैं सठ पीठि दई ॥ १ ॥
गरभ-बास दस मास पालि पितु-मातु रूप हित कीन्हों।
जड़हि बिबेक, सुसील खलहि, अपराधिहि आदर दीन्हों ॥ २ ॥
कपट करौं अंतरजामिहु-सों, अघ ब्यापकहि दुरावौं।
ऐसे कुमति कुसेवक-पर, रघुपति न कियो मन बावौं ॥ ३ ॥

होती ॥ ३ ॥ जैसे यह अधम शरीर चन्दन, चन्द्रमुखी युवती, सुन्दर आभूषण और कोमल वस्त्र स्पर्श करनेके लिये उत्सुक रहता है, वैसे यह रामके चरण-कमलका स्पर्श करनेके लिये कभी नहीं तरसता ॥ ४ ॥ जिस प्रकार मैं शरीर, वचन और हृदयसे बुरे-बुरे देवों और दुष्ट स्वामियोंकी सेवा करता रहा, वैसे उन रामकी सेवा मैंने कभी नहीं की, जो (थोड़ी-सी सेवासे) अपनेको बहुत ही कृतज्ञ मानते हैं और एक बार भी प्रणाम करनेपर पसीजकर सकुचा उठते हैं (कि मैंने इसके लिये कुछ नहीं किया) ॥५॥ जैसे मेरे चंचल पैर लालची बनकर द्वार-द्वारकी ठोकरें खाते फिरे हैं, वैसे इन अभागोंने सीता-रामके पुण्य आश्रमोंमें जानेका कभी कष्ट नहीं उठाया ॥ ६ ॥ प्रभो! इस प्रकार मेरे सभी अंग आपके चरणोंसे विमुख हुए बैठे हैं, केवल मुँहसे मैं आपके नामकी ओट अवश्य लिए बैठा हूँ। फिर भी तुलसीको यही विश्वास है कि आप तो बड़े कृपालु हैं। आप मुझे अवश्य अपनालेंगे ॥ ७ ॥ (१७०)

नाथ! मुझे तो आप ऐसा कर दीजिए कि मैं जीवनभर नरककी यातना भोगता रहूँ, क्योंकि, राम! मैं इतना बड़ा शठ हूँ कि आप-जैसा पवित्र और अच्छा स्वामी पाकर भी मैं आपसे सदा विमुख ही हुआ रहा ॥ १ ॥ (आप ऐसे स्वामी हैं कि) जब मैं माताके गर्भमें था तब आपने दस महीने-तक मुझे पाला-पोसा, आपने ही माता-पिताके रूपमें मेरा हित (पालन) किया, मुझ मूर्खको बुरा-भला पहचाननेकी बुद्धि दी, मेरे-जैसे दुष्टको सुशील बनाया तथा मेरे-जैसे अपराधीको भी इतना आदर दिया (मेरे अपराध क्षमा कर दिए)। (किन्तु मैं ऐसा मूर्ख और कृतघ्न हूँ कि) आप-जैसे सर्वव्यापक और अन्तर्यामी प्रभुसे भी छल करके आपसे भी अपने पाप छिपाए रहता हूँ। परन्तु (आप ऐसे दयालु हैं कि) ऐसे मूर्ख और दुष्ट सेवकपर भी आप रुष्ट नहीं होते ॥३॥ इधर तो मैं आपका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

उदर भरौं किंकर कहाइ, विषयनि बेचियो हियो है।
मोहिं-से बंचक-को कृपालु, छल छाँड़ि-कै छोह कियो है ॥ ४ ॥
पल-पल - के उपकार रावरे, जानि-बूझि-सुनि नीके।
भिद्यो न कुलिसहु-तें कठोर चित, कबहुँ नेह सिय-पी-के ॥ ५ ॥
स्वामी-की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ-दोहाई।
मैं मति-तुला तौलि देखी, भइ मेरिहि दिसि गरुआई ॥ ६ ॥
एतेहुँ-पर हित करत नाथ हौं, करि आये अरु करिहौं।
'तुलसी' अपनी ओर जानियत, प्रभुहि कनौड़ो भरिहौं ॥ ७ ॥ (१७१)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ?
श्रीरघुनाथ - कृपालु - कृपा - तें संत - सुभाव गहौंगो ॥ १ ॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू - सौं कछु न चहौंगो।
परहित - निरत निरंतर मन - क्रम - बचन नेम निबहौंगो ॥ २ ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर - गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥ ३ ॥

दास कहलाकर अपना पेट भरता हूँ और उधर अपना हृदय विषयोंके हाथ बेंचे बैठा हूँ। इतनेपर भी मेरे जैसे ठगपर कृपालु प्रभु सदा निष्कपट भावसे कृपा करते रहे हैं[1] ॥ ४ ॥ आप क्षण-क्षणपर जो मुझपर उपकार करते रहे हैं उन्हें जानकर, भली प्रकार समझ-बूझकर और सुनकर भी मेरे वज्रसे भी कठोर हृदयमें राम-जानकीका प्रेम कभी भिदकर न जम पाया ॥ ५ ॥ मैंने जब अपनी बुद्धिकी तुलापर एक ओर स्वामीकी सारी भक्त-वत्सलता तथा दूसरी ओर अपनी कुछ करनी (थोड़ी-सी कुटिलता) रखकर तौली, तो मेरी ही ओरका पलड़ा भारी पड़ा (रामकी भक्त-वत्सलतासे मेरी थोड़ी-सी कुटिलता भी बहुत भारी निकली), यह बात मैं स्वामीकी दोहाई (सौगन्ध) देकर कह रहा हूँ ॥६॥ मेरी इतनी बड़ी कुटिलता जानकर भी प्रभु राम सदा मेरा हित ही करते रहे, करते हैं और आगे भी करते रहेंगे। तुलसी अपनी ओरसे जानता है कि (यद्यपि मैं इतने उपकारसे दबा हुआ हूँ फिर भी प्रभु स्वयं कृतज्ञताका भार ढोवेंगे (मुझपर अवश्य कृपा करेंगे ही) ॥ ७ ॥ (१७१)

क्या कभी मैं इस ढंगसे रह पाऊँगा कि मैं कृपालु रामकी कृपासे सन्तोंका-सा स्वभाव ग्रहण करके (सन्तोंके समान) जीवन-यापन करने लगूँ ?, ॥ १ ॥ जो कुछ मुझे मिल जाय उसीमें सदा सन्तुष्ट रहा करूँ, कभी किसीसे कुछ भी लेनेकी इच्छा न करूँ, निरन्तर परोपकारमें ही लगा रहूँ, मन, वचन, कर्मसे यही नियम मैं निबाहे चला जाऊँ, ॥ २ ॥ कोई मुझे कितने भी कठोर वचन क्यों न कहे पर मैं उन्हें सुनकर भी (उससे उत्पन्न) क्रोधकी आगमें कभी न जलूँ (क्रोध न करूँ), अभिमान छोड़कर सबको समान समझते हुए अपना मन शान्त रक्खूँ, न किसीके गुण कहूँ, न दोष कहूँ, ॥ ३ ॥ अपने शरीरकी सारा चिन्ताएँ छोड़कर दुःख और सुखको समान मानते

---

१. तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे। कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।
—देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परिहरि देह - जनित चिंता, दुख - सुख सम - बुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि, पथ रहि, अबिचल हरि-भक्ति लहौंगो ॥ ४ ॥ (१७२)

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन - तरु, हैं स्रम - फलनि फरो-सो ॥ १ ॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख, जेहि जो रुचै करो सो।
पाऐहि पै जानिबो करम - फल, भरि - भरि बेद परोसो ॥ २ ॥
आगम - बिधि, जप, जाग करत नर, सरत न काज खरो-सो।
सुख - सपनेहु न जोग - सिधि - साधन, रोग-बियोग धरो सो ॥ ३ ॥
काम, क्रोध, मद लोभ, मोह मिलि ज्ञान - बिराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत, जल नावत आम घरो[1] सो ॥ ४ ॥
बहु मत[2] मुनि बहु पंथ[3] - पुराननि जहाँ - तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम - भजन नीको मोहि लगत राज - डगरो सो ॥ ५ ॥

हुए सब सहन करता रहूँ और (तुलसीदास कहते हैं) इस प्रकार रहकर भगवान्‌की अटल भक्ति प्राप्त कर लूँ ? (क्या कभी ऐसा हो सकेगा ?) ॥ ४ ॥ (१७२)

(रामके नामके आराधनके अतिरिक्त) मुझे दूसरे किसी साधनका भरोसा नहीं है क्योंकि इस कलियुगमें समस्त साधन-रूपी वृक्षोंमें केवल परिश्रम-रूपी फल हाथ लगता है (केवल परिश्रम ही परिश्रम करना हाथ लगता है, फल नहीं मिलता) ॥ १ ॥ तपस्या, तीर्थयात्रा, उपवास, दान, यज्ञ जिसे जो अच्छा लगे वह भले ही करे, पर उनका फल तो उन कर्मोंके करनेपर ही जान पड़ेंगे, यद्यपि वेदोंने वे फल भर-भरकर परोसे हैं (वेदोंने बड़ा उनका गुण गाया है, पर उनका फल कुछ नहीं निकलेगा) ॥ २ ॥ (कलिकालमें) बहुतसे लोग शास्त्रकी विधिसे जप और यज्ञ करते हैं, पर उनके साधारण कार्य भी पूरे नहीं हो पाते। योगकी सिद्धियोंके साधनसे स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता, वरन् उलटे रोग और वियोग हाथ लगते हैं ॥ ३ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ और मोहने मिलकर सारा ज्ञान और वैराग्य हर लिया है। संन्यास लेते हुए तो यह मन ऐसा बिगड़ जाता है जैसे पानी पड़नेसे मिट्टीका कच्चा घड़ा गल जाता है ॥ ४ ॥ आजकल न जाने कितने मत चलानेवाले मुनि निकल आए हैं, सैकड़ों पंथ चल पड़े हैं, पुराणोंमें भी जिन बहुतसे भिन्न-भिन्न मार्गोंका उल्लेख मिलता

---

१. आम घरो=कच्चा घड़ा।
२. श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्ना, नैको मुनिर्यस्य वचोऽप्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥
अनेक मत-वाले मुनि=छह मत-वाले। छह मुनियोंके छह शास्त्र हैं—१. कणादका वैशेषिक, २. गौतमका न्याय, ३. कपिलका सांख्य, ४. पतञ्जलिका योग, ५. जैमिनिका पूर्वमीमांसा और ६. व्यासका उत्तर मीमांसा (वेदान्त)। इनके मत क्रमशः इस प्रकार हैं—१. परमाणुप्रधान, २. द्रव्यप्रधान, ३. प्रकृति-पुरुष-प्रधान, ४. ईश्वर-प्रधान, ५. कर्मप्रधान और ६. ब्रह्मप्रधान। अन्य मुनियोंके अन्य मत भी प्रचलित हैं—शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य और वैष्णव। ३. बहुतसे पंथ भी प्रचलित हैं,—जैन, बौद्ध, सिक्ख, नाथ-पंथ, दादू, कबीर, निरंजनी, रामसनेही, अकाली, राधास्वामी, एकनामी आदि।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' बिनु परतीति-प्रीति फिरि फिरि पचि मरै, मरो सो।
राम - नाम बोहित भव - सागर, चाहै तरन तरो सो॥ ६॥ (१७३)

जाके प्रिय न राम - बैदेही[1]।
सो त्यागिये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥ १॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
हरि-हित गुरु बलि, पति ब्रज - बनितनि, भे मुद-मंगल-कारी॥ २॥
नातो नेह राम - को मनियत, सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतै कहौं कहाँ - लौं॥ ३॥
'तुलसी' सो आपनो सकल बिधि, पूज्य, प्रान - तें प्यारो।
जातें होइ सनेह राम - सों, एतो मतो हमारो॥ ४॥ (१७४)

जौ पै रहनि राम - सों नाहीं।
तौ नर खर - कूकर - सूकर - से, जाय जियत जग - माहीं॥ १॥

हैं उनमें भी जहाँ-तहाँ मत-भेदके झगड़े देखनेमें आते हैं, (इसलिये) मेरे गुरुने तो मुझे केवल राम-नामका ही भजन करना बता दिया है, जो मुझे भी रामके राजमार्गके समान बड़ा अच्छा लगता है॥ ५॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिसे इस (रामनाम)-में विश्वास और प्रेम नहीं है वह बार-बार (अन्य साधन करनेमें) प्राण देना चाहे तो देता रहे, परन्तु (मेरा तो यही विश्वास है कि) इस संसार-सागरसे पार होनेके लिये एक मात्र रामके नामका ही जहाज लगा खड़ा है, जिसे पार उतरना हो (उसपर चढ़कर) पार उतर जाय॥ ६॥ (१७३)

जिसे राम-जानकी प्रिय न लगते हों, ऐसे शठको करोड़ों शत्रुओंके समान समझकर छोड़ देना चाहिए, चाहे वह अपना कितना भी परम प्रिय क्यों न हो॥१॥ प्रह्लादने अपने पिता (हिरण्यकशिपु)-को, विभीषणने अपने भाई (रावण)-को, भरतने अपनी माता (कैकेयी)-को, बलिने अपने गुरु (शुक्राचार्य)-को, तथा ब्रजकी गोपियोंने अपने-अपने पतियोंको भगवान्‌के प्रेमके कारण छोड़ दिया फिर भी सब आनन्द और कल्याण प्राप्त करते रहे॥२॥ अपने जितने भी मित्र और पूज्य लोग हैं उन सबको रामके ही सम्बन्ध और प्रेम (रामके भक्त और प्रेमी होने)-के कारण ही अपना मानना चाहिए क्योंकि जिस आँजनके लगानेसे आँख ही फूट जाय वह आँजन किस कामका ? इससे अधिक मैं और क्या कह सकता हूँ ? ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपना सगा, पूज्य और प्राणोंसे भी अधिक प्यारा उसीको समझना चाहिए जो रामसे स्नेह करनेमें सहायक हो। बस, हमारा तो इतना ही सिद्धान्त (कहना) है॥ ४॥ (१७४)

जो मनुष्य रामसे प्रेम नहीं करता वह इस संसारमें गदहे, कुत्ते और सूअरके समान व्यर्थ ही जीए चला रहा है॥ १॥ काम, क्रोध, मद, मोह, नींद, भय, भूख और प्यासका अनुभव तो सभी

---

१. कहा जाता है कि यह पद तुलसीदासजीने मीराबाईको लिख भेजा था। परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही - के।
मनुज - देह, सुर - साधु सराहत, सो सनेह सिय - पी - के॥ २॥
सूर, सुजान, सपूत, सुलच्छन, गनियत गुन - गरुआई।
बिनु हरि - भजन इँदारुन[1] के फल, तजत नहीं करुआई॥ ३॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने।
'तुलसी' प्रभु - अनुराग - रहित, जस सालन साग अलोने॥ ४॥ (१७५)

राख्यो राम-से स्वामी-सों नीच ! नेह न नातो। एते अनादर हू, तोहिं, ते न हातो॥१॥
जोरे नए नाते नेह फोकट फीके। देह - के दाहक सब, गाहक जी - के॥ २॥
अपने आपने - को सब चाहत नीको। मूल दुहूँ - को दयाल दूलह सी - को॥ ३॥
जीव-को जीवन, प्रान - को प्यारो। सुखहू - को सुख राम, सो बिसारो॥ ४॥
कियो, करैगो, तोसे खल-को भलो। ऐसे सुसाहिब - सों, तू कुचाल क्यों चलो॥ ५॥
'तुलसी' तेरी भलाई अजहूँ बूझै। राढ़उ राउत होत, फिरि कै जूझै॥ ६॥ (१७६)

समान रूपसे करते हैं, परन्तु देवता और साधु लोग केवल उसी मनुष्य-शरीरकी प्रशंसा करते हैं जो सीताके नाथ रामसे प्रेम करता हो॥२॥ कोई मनुष्य कितना भी बड़ा वीर, चतुर, माता-पिताका आज्ञाकारी योग्य पुत्र, सुलक्षणवाला और बड़े-बड़े श्रेष्ठ गुणवाला क्यों न हो, परन्तु यदि वह रामका भजन नहीं करता तो वह इँदारुन (इन्द्रायण)-के कड़वे फलके ही समान है जो अपनी कड़वाहट कभी नहीं छोड़ता॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि कोई कितना भी कीर्त्तिशाली, अच्छे कुलवाला, अच्छी करनीवाला, अच्छा वैभवशाली तथा शील और स्वरूपवाला क्यों न हो परन्तु यदि वह रामसे प्रेम न करता हो तो वह वैसा ही नीरस है जैसे बिना नमकका रसदार सालन (साग) हो॥ ४॥ (१७५)

अरे नीच ! तूने न तो राम-जैसे उत्तम स्वामीसे प्रेम ही किया और न उनसे कुछ सम्बन्ध ही रक्खा, पर इतना अनादर करनेपर भी उन्होंने तुझे अपनेसे कभी दूर नहीं किया॥ १॥ तूने जो नये-नये स्नेह और सम्बन्ध जोड़े हैं, वे सब बेकार और नीरस हैं। वे तेरा शरीर जलानेवाले और तेरे प्राणोंके गाहक हैं॥ २॥ अपना और अपने इष्टजनोंका भला तो सभी चाहते हैं, परन्तु दोनोंका कल्याण करनेवाले यदि कोई हैं तो केवल दयालु सीतापति राम ही हैं॥ ३॥ उन्हीं रामको तू भुलाए बैठा है जो सभी जीवोंके जीवन, प्राणोंके प्यारे और सुखके भी सुख हैं॥ ४॥ जिस रामने तेरे जैसे दुष्टका भी सदा भला किया और आगे भी भला करते रहेंगे ऐसे श्रेष्ठ प्रभुके साथ भी तूने बुरा बर्त्ताव क्यों किया ? (उन्हें क्यों भूल बैठा ?)॥५॥ अरे तुलसी ! यदि तुझे अब भी समझ आ सके तो तेरी भलाई हो सकती है, क्योंकि कभी-कभी लड़ाईसे (भाग)-कर लौट आनेवाला कायर भी शूरवीर बनकर युद्ध करने लौट पड़ता है॥ ६॥ (१७६)

---

१. इनारुनके फल = (सं० इन्द्रायण) एक लताका लाल फल जो अत्यन्त कड़वा होता है।
२. राढ़उ = कायर भी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जौ तुम त्यागो, हौं नहिं त्यागौं। परिहरि पाँय, काहि अनुरागौं॥ १॥
सुखद सुप्रभु तुमसों जग - माहीं। स्रवन - नयन - मन - गोचर नाहीं॥ २॥
हौं जड़ जीव, ईस रघुराया। तुम मायापति, हौं बस माया॥ ३॥
हौं तो कु - जाचक, स्वामि सुदाता। हौं कुपूत, तुम हितु पितु माता॥ ४॥
जौ पै कहुँ कोउ बूझत बातो। तौ 'तुलसी' बिनु - मोल बिकातो॥ ५॥ (१७७)

भए हू उदास राम! मेरे आस रावरी। आरत स्वारथी सब, कहैं बात बावरी॥ १॥
जीवन[1]-को दानी घन, कहा ताहि चाहिए। प्रेम-नेमके निबाहे, चातक सराहिए॥ २॥
मीन-तें न लाभ-लेस, पानी पुन्य-पीन-को? जल-बिनु थल कहा, मीच-बिनु मीन-को? ३॥
बड़े ही-को ओट, बलि, बाँचि आए छोटे हैं। चलत खरे-के संग, जहाँ-तहाँ खोटे हैं॥ ४॥
येही दरबार भलो दाहिनोइ बाम-को। मोको सुभ-दायक भरोसो रामनाम-को॥ ५॥
कहत नसानी ह्वै है हिये माहिं नीकी है। जानत कृपानिधान 'तुलसी'-के जी-की है।६॥१७८

राम! यदि आप मुझे छोड़ भी दें, तब भी मैं तो आपको छोड़नेवाला हूँ नहीं। बताइए, मैं आपके चरण छोड़कर प्रेम करूँ भी तो किससे करूँ? ॥१॥ प्रभो! आपके समान सुख देनेवाला उदार स्वामी आजतक इस संसारमें न तो कहीं सुननेमें आया, न देखनेमें आया और न कल्पनामें ही आ पाया ॥ २ ॥ राम! मैं केवल मूर्ख जीव हूँ और आप ईश्वर हैं। आप मायापति हैं और मैं उसी मायाके फेरमें पड़ा हूँ ॥ ३ ॥ मैं अत्यन्त निकम्मा भिक्षुक हूँ और आप बड़े उदार दाता स्वामी हैं। मैं आपका कुपुत्र हूँ और आप मेरे कल्याणकारी माता-पिता हैं ॥४॥ यदि संसारमें कोई इसकी (मेरी) बात भी पूछता तो यह तुलसीदास (उसके हाथ) बिना मोल बिक जाता। (पर आपको छोड़कर इसे कोई पूछने वाला भी तो नहीं है, फिर आपको छोड़कर यह जाय भी तो कहाँ जाय?) ॥ ५ ॥ (१७७)

राम! यदि आप मेरी उपेक्षा भी करते रहेंगे तो भी मेरे हृदयमें केवल आपकी ही आशा बनी रहेगी क्योंकि (मेरे जैसे) जो दुखी और स्वार्थी लोग होते हैं वे तो पागलोंकी-सी बातें किया ही करते हैं ॥ १ ॥ मेघ यदि जल बरसाता है तो इसमें उसकी क्या प्रशंसा है। वास्तवमें प्रेम और नियमके पालनके लिये तो चातककी ही प्रशंसा की जानी चाहिए ॥ २ ॥ यद्यपि सबको पवित्र और पुष्ट करनेवाले जलको तो मछलीकी चाह नहीं होती, परन्तु मछलीको तो जलके बिना स्थलमें मृत्युके अतिरिक्त और कोई फल ही नहीं मिलनेवाला है ॥३॥ आपकी बलिहारी है। बड़ोंकी ओटमें छोटे लोगोंका काम भी वैसे ही चल जाता है जैसे खरे सिक्कोंके साथ-साथ (दो-एक) खोटे सिक्के भी चल जाते हैं ॥४॥ इस (आपके) दरबारमें तो चाहे कोई भला आवे या बुरा, सभीका कल्याण हो जाता है। (यही देखकर) मुझे भी सबका कल्याण करनेवाले राम-नामका ही भरोसा हो चला है ॥५॥ कहनेमें चाहे मैं ठीक प्रकार बात न कह पाया होऊँ पर मेरे हृदयकी भावना तो अच्छी ही है, क्योंकि कृपानिधान राम तो तुलसीके हृदयका भाव भली भाँति जानते ही हैं। वे मेरी बिगड़ी बात (भी बना ही लेंगे) ॥ ६ ॥ (१७८)

---

१. जीवन = जल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग बिलावल

कहाँ जाउँ ? कासों कहौं ? कौन सुनै दीन-की ? त्रिभुवन तुही गति सब अँगहीन-की ॥१॥
जग जगदीस घर - घरनि घनेरे हैं। निराधार-को अधार गुन-गन तेरे हैं॥ २॥
गजराज-काज खग-राज तजि धायो को ? मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय-जायो को ॥३॥
मोसे कूर, कायर, कुपूत, कौड़ी आध - को। किए बहुमोल तू , करैया गीध-स्राध को ॥४॥
तुलसी-की तेरे ही बनाए, बलि, बनैगी। प्रभु की बिलंब-अंब दोष-दुख जनैगी ॥५॥ (१७९)

बारक बिलोकि, बलि, कीजै मोहिं आपनो। राय दसरथ-के तू उथपन - थापनो ॥१॥
साहिब सरन - पाल सबल न दूसरो। तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो॥ २॥
बचन-करम तेरे, मेरे मन गड़े हैं। देखे, सुने, जाने मैं, जहान जेते बड़े हैं॥ ३॥
कैसे कियो समाधान सनमान सीला-को[२] ? भृगुनाथ - सारिखो जितैया कौन लीला-को ॥४॥
मातु-पितु-बंधु-हित, लोक-बेद-पाल को ? बोल-को अचल, नत करत निहाल को ? ॥५॥

(राम !) मैं जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ ? कहूँ भी तो किससे कहूँ ? मुझ दीनकी सुननेवाला है कौन ? तीनों लोकोंमें एक आप ही तो हैं जो सारे निःसहायोंको आश्रय देते रहते हैं ॥१॥ इस संसारमें जगदीश (संसारके स्वामी) बननेवाले तो घर-घरमें बहुतेरे मिलेंगे, परन्तु निराधार (आश्रयहीन)-के लिये तो आपके (शरणागत-पालन और दीनदयालुताके) गुण ही सबसे बड़े आश्रय हैं॥ २॥ गजेन्द्रको (ग्राहके मुखसे) छुड़ानेके लिये गरुड छोड़कर कौन दौड़ पड़ा था ? ऐसा कौन माईका लाल है जो मेरे-जैसे महा पापीका भी पालन-पोषण करता रहा हो ? ॥ ३ ॥ राम ! जटायु गीधका श्राद्ध करनेवाले एक आप ही हैं जिसने मेरे समान निडुर, कायर, कुपुत्र और आधी कौड़ीके मनुष्यको भी मूल्यवान् (प्रतिष्ठित) बना दिया ॥४॥ बलिहारी है आपकी। इस तुलसीकी बिगड़ी यदि बनेगी तो बस आपके ही बनाए बनेगी। यदि प्रभु बिलंब करेंगे तो बिलम्ब-रूपी मातासे दुःख और दोष-रूपी संतान ही उत्पन्न होगी (बिलम्ब करनेसे मेरे दुःख और दोष बढ़ेंगे)॥ ५॥ (१७९)

आपकी बलिहारी है ! राजा दशरथके सुपुत्र राम ! आप तो उजड़ेहुओंको बसा देते हैं इसलिये आप एक बार मेरी ओर देखकर मुझे भी अपनालीजिए॥ १॥ शरणमें आए हुएकी रक्षा करनेवाला आपके समान और कोई दूसरा समर्थ स्वामी है नहीं। आपका नाम लेते ही ऊसर भी उपजाऊ खेत बन जाता है॥ २॥ इस संसारमें मैंने जितने बड़े-बड़े लोग देखे, सुने और जाने हैं उनमें एक आप ही ऐसे मिले, जिनके वचन और कर्म मेरे मनमें भली प्रकार जम बैठे हैं॥ ३॥ बताइए, किस प्रभुने इतने सम्मानके साथ शिला बनी हुई अहल्याका शोक (शाप-पापका कष्ट) दूर किया ? किसने परशुरामके समान क्रोधी मुनिको बातकी बातमें जीत धरा॥ ४॥ माता, पिता और भाईके लिये किसने (वनवास लेकर) लोक और वेदकी मर्यादाका पालन किया ? आपको छोड़कर और दूसरा है कौन जो अपने वचनपर अडिग रहे तथा केवल प्रणाम करनेवालेको सर्वथा सन्तुष्ट कर दे ? (कोई भी नहीं)॥ ५॥ कौन ऐसा है जिसने स्नेह करके दुष्टों और पापियों-तकको

१. सीला = शिला-रूपिणी अहल्या। २. लीला = सहज में ही।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

संग्रहे सनेह-बस अधम असाध-को ? गीध-सबरी को, कहो, करिहै सराध को ? ॥ ६ ॥
निराधार-को अधार, दीन-को दयालु को । मीत कपि, केवट, रजनिचर, भालु-को ॥ ७ ॥
रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं । महाराज ! सुजन-समाज ते बिराजे हैं ॥ ८ ॥
साँची बिरुदावली, न बढ़ि कहि गई है । सील-सिंधु ! ढील तुलसी-की बार भई है ॥९॥१८०

केहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिए । मोकों और ठौर न, सुटेक एक तेरिए ॥ १ ॥
सहस सिला-तें अति जड़ मति भई है । कासों कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है ॥ २ ॥
पद-राग-जाग[1] चहौं कौसिक-ज्यों कियो है । कलिमल खल-दल देखि, भारी भियो है ॥ ३ ॥
करम-कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौं । चाहत अनाथ-नाथ ! तेरी बाँह बस्यौ हौं ॥ ४ ॥
महामोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं । त्राहि तुलसीस ! त्राहि, तिहूँ ताप तयो हौं ॥५॥१८१

भली भाँति अपनालिया हो । बताइए दूसरा और कौन है जिसने (पिता-माता मानकर) गीध (जटायु) और शबरी (नीच भीलनी)-तकका श्राद्ध जा किया हो ॥६॥ जिसका कोई सहारा नहीं उसे सहारा देनेवाला और दीनोंपर दया करनेवाला (आपको छोड़कर और) दूसरा है कौन ? कपि (सुग्रीव आदि), केवट (गुह निषाद), रजनीचर (राक्षस विभीषण) और भालू (जामवंत)-तकको अपना मित्र बना लेनेवाला दूसरा कौन है ? (कोई नहीं है) ॥७॥ महाराज राम ! आपने जिन-जिन दरिद्र, गुणहीन और नीचोंपर कृपा कर दी, वे सबके सब आज बड़े सज्जन बने घूम रहे हैं ॥८॥ तुलसीदास कहते हैं कि यह जो कुछ मैंने कहा है यह आपकी सच्ची कथा है, इसमें कोई बात बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कही गई है । फिर भी शीलके-भंडार राम ! (मेरी समझमें नहीं आता कि) मेरी ही बार आप इतनी ढिलाई क्यों किए जा रहे हैं ? ॥ ९ ॥ (१८०)

कृपासिंधु ! जैसे भी हो आप एक बार मेरी ओर देख लीजिए । मुझे और कहीं ठिकाना नहीं है, केवल एक आपका ही भरोसा है ॥१॥ मेरी बुद्धि तो सहस्रों शिलाओंसे भी कहीं अधिक कठोर और अत्यन्त जड हो चली है । तब बताइए मैं कहूँ तो किससे कहूँ ? क्योंकि (दूसरा कौन है) जिसने पत्थर (अहल्या) तकको सद्गति दे डाली हो ? ॥ २ ॥ मैं विश्वामित्रके समान आपके चरणोंमें अनुराग (प्रीति)-रूपी यज्ञ करना चाहता हूँ क्योंकि कलियुगके पाप-रूपी खलोंको देखकर मुझे बड़ा भय लगने लगा है (जैसे आपने विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की थी वैसे ही आप मेरी भी रक्षा कर लीजिए ।) ॥ ३ ॥ मैं कुटिल कर्म-रूपी बन्दरोंके बलवान् राजा बालिसे बहुत डरा बैठा हूँ (जैसे बालिने सुग्रीवको मार-पीटकर उसे घरसे निकाल बाहर किया था, वैसे ही दुष्कर्म भी मुझे मारे डाल रहे हैं) इसलिये अनाथोंके नाथ ! मैं भी (सुग्रीवके समान) आपकी भुजाओंकी छायामें आ बसना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ मुझे भी विभीषणके समान महामोह-रूपी रावणने लात उठा मारी है । अतः, तुलसीके प्रभु राम ! मैं तीनों तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक)-से संतप्त हुआ जा रहा हूँ । मेरी रक्षा कीजिए ! रक्षा कीजिए ॥ ५ ॥ (१८१)

---

१. पद-राग-जाग = चरणोंमें स्नेहरूपी यज्ञ ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नाथ-गुन-गाथ सुनि होत चित चाउ सो। राम ! रीझिबे-को जानौं भगति, न भाउ सो ॥ १ ॥
करम-सुभाउ-काल-ठाकुर न ठाउँ-सो। सु-धन न, सु-तन न, सु-मन, सु-आउ[२] सो ॥२ ॥
जाँचौं जल जाहि, कहै अमिय पिआउ, सो। कहा कहौं, काहू-सों न बढ़त हिआउ सो ॥ ३ ॥
बाप ! बलि जाउँ आप करिए उपाउ सो। तेरे हि निहारे, परै हारेहू सुदाउँ सो ॥ ४ ॥
तेरे हि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो। तेरे हि बुझाए बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥ ५ ॥
नाम-अवलंब-अंबु मीन-दीन-राउ सो। प्रभु-सों बनाइ कहौं, जीह जरि जाउ सो ॥ ६ ॥
सब भाँति बिगरी है, एक सु-बनाउ सो। 'तुलसी' सुसाहिबहिं, दियो है जनाउ सो ॥७॥(१८२)

राग आसावरी

राम ! प्रीति-की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े-की बड़ाई, छोटे-की छुटाई दूरि करै, ऐसी बिरुदावलि बलि बेद मनियत है ॥ १ ॥
गीध-को कियो सराध, भीलनि-के खाये फल, सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक-बेद हूँ आदरियत, जोग - ज्ञान हू-तें गरुआई गनियत है ॥ २ ॥

नाथ ! आपके गुणोंकी कथा सुन-सुनकर तो मेरे हृदयमें बड़ी उमंग-सी हो उठती है, पर राम ! मुझमें वह भक्ति-भाव है ही नहीं जिससे आप प्रसन्न हुआ करते हैं ॥१॥ न तो मेरे कर्म ही अच्छे हैं, न स्वभाव ही अच्छा है, न (कलियुगका) समय ही अच्छा है, न मेरा कहीं ठौर-ठिकाना ही है, न कोई ऐसा ठोस धनी (स्वामी) ही है जो समय पड़नेपर उचित सहायता कर दे, न मेरे पास धन है, न सुन्दर और स्वस्थ शरीर ही है, न मेरा मन ही अच्छा (शुद्ध) है और न आयु ही लंबी है। (मैं तो सभी साधनोंसे वंचित हूँ) ॥ २ ॥ मेरी तो यह स्थिति है कि यदि मैं (प्यासके मारे) किसीसे जलकी याचना करने चलूँ तो वह चाहता है कि पहले मैं ही उसे अमृत दे डालूँ (मैं किसीसे कुछ पानेकी याचना करता हूँ तो वह पहले मुझसे ही धन आदि बहुत कुछ पाना चाहता है)। ऐसी स्थितिमें मैं क्या कहूँ और किससे कहूँ ? किसीसे भी कुछ कहनेका साहस नहीं होता ॥३॥ पिता ! मैं बलिहारी जाता हूँ। आप ही कोई उपाय निकाल सुझाइए क्योंकि आपकी कृपा-दृष्टि होनेसे मनुष्य हारा हुआ दाँवँ भी जीत जाता है ॥ ४ ॥ आपके ही दिखानेसे मुझे अदृष्ट वस्तु भी दिखाई देने लगती है और आपके ही समझानेसे मुझे न समझमें आनेवाली बात भी समझमें आने लगती है ॥ ५ ॥ आपके नामका अवलंब ही जल है और मैं उस जलमें रहनेवाला दीन मच्छ हूँ। यदि मैं प्रभुसे कुछ भी बना-चुनाकर (झूठ) कहता होऊँ तो मेरी जीभ जल जाय ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि मेरी तो सब बातें बिगड़ी ही पड़ी हैं, केवल एक यही बात बननेको रह गई है कि मैंने अपने उदार स्वामीको अपनी बिगड़ी हुई सारी दशा खोल बताई है ॥ ७ ॥ (१८२)

राम ! आप प्रीतिकी रीति तो भली-भाँति जानते ही हैं। आपकी बलिहारी है। वेद तो मानते हैं कि आप बड़ेकी बड़ाई और छोटेकी छोटाई सब दूर कर डालते हैं ॥१॥ आपने गीध (जटायु)-का श्राद्ध किया और भीलनी (शबरी)-के यहाँ फल जा खाए। ये बातें साधु-समाजमें बड़ी सराहनाके

---

२. सुआउ=दीर्घायु।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रभु-की कृपा कृपाल ! कठिन कलिहू काल, महिमा समुझि उर - माहिँ अनियत है।
'तुलसी' पराये - बस भये, रस अनरस, दीनबंधु-द्वारे हरि ! हठ ठनियत है ॥३॥ (१८३)

राम-नाम-के जपे पै जाइ जिय-की जरनि।
कलिकाल अपर उपाय-तें अपाय भए, जैसे तम नासिबे - को चित्र - के तरनि ॥ १ ॥
करम - कलाप, परिताप - पाप - साने सब, ज्यों सुफूल फूलै रूख फोटक फरनि।
दंभ, लोभ, लालच, उपासना बिनासि नीके, सुगति साधन भई उदर भरनि ॥ २ ॥
जोग न समाधि निरुपाधि, न बिराग - ज्ञान, बचन बिसेष बेष, कहूँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि, कहनि - रहनि खोटि, सकल सराहैं निज - निज आचरनि ॥ ३ ॥
मरत महेस उपदेस हैं कहा करत सुरसरि - तीर, कासी धरम - धरनि।
राम - नाम - को प्रताप हर कहैं, जपैं आप, जुग - जुग जानै जग, बेदहू बरनि ॥ ४ ॥
मति रामनाम ही - सों, रति रामनाम ही-सों, गति रामनाम ही-की बिपति-हरनि।
राम-नाम-सों प्रतीति-प्रीति राखे कबहुँक, 'तुलसी' ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥ ५ ॥(१८४)

साथ कही जाती हैं ॥ २ ॥ कृपालु ! इस कठिन कलिकालमें भी आपकी कृपा प्रत्यक्ष है। आपकी यह महिमा समझकर ही तुलसीदास भी उसे हृदयमें ठीक माने बैठा है। दूसरों (अन्य देवताओं)-के फेरमें पड़ जानेके कारण आपके प्रेममें अनरस (बाधा) पड़ जाती है इसीलिये दीनबन्धु ! यह तुलसीदास तो अब आपके ही द्वारपर आ डटा है ॥ ३ ॥ (१८३)

हृदयकी जलन तो रामका नाम जपनेसे ही मिट पा सकती है। अन्य सब उपाय कलियुगमें ऐसे व्यर्थ हो गए हैं जैसे अंधकार नष्ट करनेके लिये सूर्यका चित्र बना दिखाना (व्यर्थ हो जाता है) ॥ १ ॥ यद्यपि कर्मका भंडार भरा हुआ है (शास्त्रोंमें कर्म-कांडके अनेक विधान भरे पड़े हैं) परन्तु उन सबसे वैसे ही केवल दुःख और पाप हाथ लगता है जैसे किसी वृक्षमें फूल तो बड़े ही सुन्दर फूलते हों पर फल एक न लगता हो। लालचने उपासनाका मार्ग भी नितान्त भ्रष्ट कर डाला है और मोक्षके साधन भी केवल पेट भरनेके साधन बने रह गए हैं ॥२॥ आजकल योग और समाधि भी निर्विघ्न नहीं हो पाती, विराग और ज्ञानका भी कहीं नाम नहीं रह गया है। इन सबमें लम्बी-चौड़ी बातें और बनाव-सिंगारका बाहरी आडम्बर ही बहुत रह गया है, वास्तविक करनी कहीं किसीकी दिखाई नहीं पड़ती। कपटसे भरे हुए ऐसे करोड़ों कुमार्ग चल पड़े हैं जिनकी कथनी और करनी सभी खोटी है परन्तु उनमेंसे जिससे भी पूछो वही अपने-अपने आचरणोंकी प्रशंसा किए जा रहा है ॥ ३ ॥ (जानते हैं ?) गंगाके तटपर बसी हुई पुण्यभूमि काशीमें मरते समय शंकर क्या उपदेश देते हैं ? वे रामनामका ही उपदेश देते हैं और वे स्वयं भी यही महामन्त्र (रामनाम) बैठे जपा करते हैं। यह बात वेद भी कहते हैं और युगोंसे संसारमें भी यह बात प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥ इसलिये राम-नाममें ही मन लगाने, रामनामसे ही प्रेम करने और रामनामकी ही शरण लेनेसे सब विपत्तियोंका नाश होगा। तुलसीदास कहते हैं कि विश्वासके साथ जो राम-नामसे प्रेम करेगा उसपर कभी तो राम अपनी भक्त-वत्सलताके ढंगसे दया करेंगे ही ॥ ५ ॥ (१८४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लाज न लागत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि, सोच तजि, जो हरि ! तुम - कहँ भावत ॥ १ ॥
सकल संग तजि, भजत जाहि मुनि, जप - तप - जोग बनावत ।
मो - सम मंद, महा खल पाँवर, कौन जतन - तें पावत ॥ २ ॥
हरि निर्मल, मल - ग्रसित हृदय, असमंजस मोहिं जनावत ।
जेहि सर काक - कंक - बक - सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥ ३ ॥
जाकी सरन जाइ कोबिद, दारुन त्रय-ताप बुझावत ।
तहूँ गए मद - मोह - लोभ अति, सरगहुँ मिटत न सावत[1] ॥ ४ ॥
भव - सरिता - कहँ नाव संत, यह कहि औरनि समुझावत ।
हौं तिन - सों हरि ! परम बैर करि, तुम - सों भलो मनावत ॥ ५ ॥
नाहिंन और ठौर मो - कहँ, तातें हठि नातो लावत ।
राखु उदार ! सरन - चूड़ामनि ! तुलसिदास गुन गावत ॥ ६ ॥(१८५)

कौन जतन बिनती करिए ।
निज आचरन बिचारि, हारि हिय, मानि जानि डरिए ॥ १ ॥
जेहि साधन हरि ! द्रवहु जानि, जन सो हठि परिहरिए ।
जातें बिपति - जाल निसि - दिन दुख, तेहि पथ अनुसरिए ॥ २ ॥

राम ! (देखिए तो सही कि) आपका दास कहलानेमें भी मुझे तनिक भी लज्जा नहीं आती ? जो आचरण आपको अच्छे लगते हैं वे मैंने निश्चिन्त होकर छोड़ दिए हैं ॥ १ ॥ जिस प्रभुको मुनि लोग संसारके सब लगाव छोड़कर भजते हैं, जप, तप और यज्ञ करते हैं, उस प्रभुको भला मेरे-जैसा मूर्ख, परम दुष्ट और पापी कैसे पा सकता है ? ॥ २ ॥ मुझे यही बड़ा असमंजस हो रहा है कि भगवान् तो विशुद्ध हैं और मेरा हृदय पापोंसे ठसाठस भरा हुआ अत्यन्त खोटा है (तब उसमें भगवान् कैसे आकर बस सकते हैं ?) । जिस तालाबमें कौए, गिद्ध, बगुले और सूअर रहते हों वहाँ भला हंस क्यों जाने लगा ॥ ३ ॥ जिस परमात्माकी शरणमें पहुँचकर (तत्त्वज्ञानी) पण्डित लोग अपने असह्य दुःख और तीनों प्रकारके ताप शान्त कर आते हैं, वहाँ जाकर भी यदि मेरे हृदयसे मद, मोह, लोभ आदि विकार दूर न हुए, तो यही कहावत सत्य होती है कि 'स्वर्गमें भी सौतिया डाह नहीं मिटता' ॥ ४ ॥ मैं सब लोगोंको तो समझाता फिरता हूँ कि 'सन्त लोग संसार-रूप नदीसे पार उतारनेकी नौका हैं', पर मैं स्वयं उन्हीं सन्तोंसे शत्रुता करके आपसे अपना कल्याण करानेकी बात सोचता हूँ ॥ ५ ॥ मेरा और कहीं ठौर-ठिकाना भी नहीं लग रहा है । इसलिये शरण देनेवाले उदारोंके शिरोमणि राम ! बस आप अब मुझे अपनी शरणमें रख लीजिए । तुलसीदास आपका यही (उदारताका) गुण प्रसन्न होकर गाए चला जा रहा है ॥ ६ ॥ (१८५)

प्रभो ! मैं आपसे विनति भी करूँ तो किस मुँहसे करूँ ? जब मैं अपनी करनीपर विचार करने और समझने लगता हूँ तब मैं स्वयं हार मानकर डर बैठता हूँ ॥१॥ हरि ! जो व्यवहार देखकर लोगोंको अपना भक्त जानकर आप उनपर कृपा करते हैं वे व्यवहार, मैं हठपूर्वक करता ही नहीं हूँ और जिस

१. सावत = (सौतका भाव) डाह, ईर्ष्या।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जानत हौं मन - बचन - करम, पर - हित कीन्हें तरिए।
सोइ बिपरीत, देखि पर-सुख, बिनु - कारन ही जरिए॥ ३॥
श्रुति - पुरान सब - को मत यह, सतसंग सुदृढ़ धरिए।
निज अभिमान मोह इरिषा - बस, तिनहिं न आदरिए॥ ४॥
संतत सो प्रिय मोहिं सदा, जातें भव - निधि परिए।
कहु अब नाथ! कौन बल - तें, संसार - सोक हरिए॥ ५॥
जब - कब निज करुना सुभाउ - तें, द्रवहु तो निस्तरिए।
'तुलसिदास' बिस्वास आन नहिं, कत पचि - पचि मरिए॥ ६॥(१८६)

ताहि - ते आयो सरन सबेरे।
ज्ञान - बिराग - भगति साधन कछु, सपनेहु नाथ! न मेरे॥ १॥
लोभ, मोह, मद, काम, बोध - रिपु, फिरत रैनि - दिन घेरे।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ - रत, फिरै तिहारे फेरे॥ २॥
दोष - निलय यह बिषय सोक - प्रद, कहत संत-श्रुति टेरे।
जानत - हू अनुराग तहाँ अति, सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे॥ ३॥

व्यवहारसे दिन-रात विपत्तिके जालमें फँसकर दुःख भोगना पड़े, मैं उसी मार्गपर चला चलता हूँ॥२॥ मैं जानता हूँ कि मन, वचन और कर्मसे परोपकार करके भवसागरसे पार हो जाऊँगा पर मैं उसके विपरीत (अपकारके) मार्गपर चलता रहता हूँ और दूसरोंको सुखी देखकर बिना कारण (द्वेषवश) उनसे जलता रहता हूँ॥ ३॥ वेद और पुराण सबका यही मत है कि मन लगाकर सत्संग करना चाहिए परन्तु मैं अपने अभिमान, मोह और द्वेषके कारण उनका (सज्जनोंका) आदर ही नहीं करता॥ ४॥ मुझे तो सदा वही आचरण अच्छा लगता रहा है जो करनेसे इसी संसार-सागरमें पड़ा रहना पड़ता हो। तब बताइए नाथ! मैं किस बलपर आपसे निवेदन करूँ कि मेरे सांसारिक दुःख मिटा डालिए॥ ५॥ अब जब कभी आप ही अपने दयालु स्वभावसे मुझपर कृपा कर दें तभी मेरा निस्तार हो पावेगा। इसके अतिरिक्त तुलसीदासको जब किसी दूसरे उपायपर विश्वास ही नहीं है, तब वह क्यों (अन्य साधनोंके फेरमें व्यर्थ) प्राण दे॥ ६॥ (१८६)

नाथ! मेरे पास स्वप्नमें भी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका कोई साधन नहीं है, इसीलिये मैं (सब कुछ छोड़-छाड़कर) झटपट आपकी ही शरणमें दौड़ा चला आया हूँ॥ १॥ लोभ, मोह, अहंकार और काम—ये ज्ञानके शत्रु मुझे दिन-रात घेरे रहते हैं। इनके रहते मेरा मन सदा कुमार्ग (बुरे कर्मों)-में ही लगा रहता है। अब यह लौटेगा भी तो आपके लौटाए ही लौट पावेगा॥ २॥ संत लोग और वेद सब पुकार-पुकारकर कहे जा रहे हैं कि इन इन्द्रियोंके विषय (रूप, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध)-में दोष ही दोष भरे पड़े हैं और ये सब शोक ही देते हैं पर यह सब जानकर भी मेरा मन इन्हींमें रमा रहता है। पर राम! यह सब भी तो आपकी ही प्रेरणासे होता है[1]॥३॥ आप चाहें तो

---

१. जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिष पियूष - सम करहु, अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे।
तुम - सम ईस कृपालु ! परम हित, पुनि न पाइहौं हेरे ॥ ४ ॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि, रघुबीर भरोसे तेरे।
'तुलसिदास' यह बिपति - बागुरा[1] तुम - सों बनै निबेरे ॥ ५ ॥(१८७)

मैं तैं अब जान्यो, संसार !
बाँधि न सकहि मोहिं, हरि-के बल, प्रगट कपट - आगार ॥ १ ॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन, पुनि किए बिचार।
ज्यों कदली - तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निसरै सार ॥ २ ॥
तेरे लिये अनेक जनम मैं, फिरत न पायौं पार।
महाघोर - मृगजल - सरिता - महँ, बोऱ्यो बारहिं बार ॥ ३ ॥
सुनु खल ! छल - बल कोटि किए, बस होहिं न भगत उदार।
सहित - सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंद-कुमार ॥ ४ ॥
तासों करहु चातुरी, जो नहिं जानै मरम तुम्हार।
सो परि डरै, मरै, रजु - अहि - तें, बूझै नहिं ब्यवहार ॥ ५ ॥

विषको अमृत (जैसे शिवके लिये कर दिया था) और अग्निको हिमके समान शीतल (जैसा प्रह्लादके[2] लिये कर दिया था) बना सकते हैं तथा नाव-बेड़ेके बिना भी इस संसार-सागरसे पार कर सकते हैं। आपके समान कृपालु और अपना परम हितैषी स्वामी फिर मुझे ढूँढनेपर भी नहीं मिल पावेगा ॥ ४ ॥ इसलिये राम ! मनमें यह सब जानकर भी मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर केवल आपके ही भरोसे आ पड़ा हूँ। तुलसीदास कहते हैं कि यह विपत्तिका जाल यदि कभी कटेगा भी तो केवल आपके ही काटे कट पावेगा ॥ ५ ॥ (१८७)

अरे संसार ! अब मैं तुझे भली-भाँति पहचान गया हूँ। अरे ! तू तो साक्षात् कपटका ही केन्द्र है। पर (मैं तुझे बताए देता हूँ कि अब मैं तेरे झूठे फंदोंसे) फँसाए नहीं फँस पाऊँगा क्योंकि अब तो मुझे भगवान्‌का बल (आश्रय) मिल गया है ॥ १ ॥ तू देखनेमें ही बड़ा प्यारा लगता है, पर विचार करनेपर तो कुछ भी नहीं रह जाता जैसे केलेका खंभा छीलते चले जानेपर भी उसमें कभी ठोस सार (गूदा) नहीं निकलता ॥२॥ तेरे फेरमें पड़कर मैं अनेक योनियोंमें भटकता फिरनेपर भी अभीतक तेरा पार नहीं पा सका। तू सदा मुझे महा भयंकर मृगतृष्णाके जलकी नदीमें (मिथ्या भ्रममें) बार-बार पकड़ डुबोता रहा ॥३॥ अरे खल ! सुन, तू चाहे जितने करोड़ों प्रकारके छल-बल क्यों न करे, भगवान्‌के उदार भक्त तेरे चंगुलमें पड़नेवाले हैं नहीं। अतः, तू अपने सहायकोंको लेकर वहाँ (उस हृदयमें) डेरा जा डाल जिस हृदयमें नन्दलाल कृष्ण न हों ॥ ४ ॥ तू उसीके साथ अपनी धूर्तता कर, जो तेरा मर्म (भेद) न जानता हो क्योंकि तुझे देखकर तो वही डरेगा और तुझ रस्सीको साँप समझकर वही मरेगा जो तेरा व्यवहार (भेद) न समझता हो ॥ ५ ॥

१. बागुरा=जाला ।
२. रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात ! मम गात्र-सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निज हित सुनु सठ ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल - परिवार ।
'तुलसिदास' प्रभु-के दासन तजि, भजहि जहाँ मद - मार ॥ ६ ॥ (१८८)

राग गौरी

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिं - त भब - बेगारि परिबेहु, पुनि छूटत अति कठिनाई रे ॥ १ ॥
बाँस पुरान, साज सब अटखट, सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहिं दिहल, करि कुटिल करमचँद मंद, मोल - बिनु डोला रे ॥ २ ॥
बिषम कहार मार - मद - माते, चलहिं न पाउँ बटोरे रे !
मंद, बिलंद[1], अभेरा[2], दलकन पाइय दुख झकझोरे रे ॥ ३ ॥
काँट - कुराय लपेटन, लोटन[3], ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे !
जस-जस चलिय दूरि तस-तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥ ४ ॥
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ - कर भूला रे !
'तुलसिदास' भव - त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥ ५ ॥ (१८९)

अरे मूर्ख संसार ! सुन, मैं तेरे हितकी बात बताए दे रहा हूँ। अब तू हठ मत ठान । यदि तू अपने परिवार (काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ, मत्सर)-के साथ-साथ अपनी कुशल चाहता हो तो तुलसीके प्रभु रामके दासोंको छोड़कर भाग जा और जहाँ मद (अहंकार) और काम रहते हों वहीं जाकर डेरा डाल ॥ ६ ॥ (१८८)

अरे भाई ! तू राम-राम कहता चल, राम-राम कहता चल, राम-राम कहता चल, नहीं तो संसार (राजा)-की बेगारीमें ऐसा जा फँसेगा कि छुड़ाए नहीं छूट पावेगा ॥ १ ॥ कुटिल करमचंदने (हमारे खोटे कर्मोंने) हमें बिना मोलका ऐसा बुरा डोला (शरीर) ला थमाया है जिसका बाँस भी पुराना है और जिसकी आटी-पाटी भी बेढंगी लगी है। उसीमें सड़ा हुआ तीन कोनेका (तीन गुण : सत्त्व, रजस्, तमस्का) खटोला बँधा हुआ है ॥ २ ॥ विषम (ठिगने-लंबे, नीचे-ऊँचे) पाँच कहार (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) जो इसे ढो रहे हैं, वे कामके मदसे मतवाले हैं, इसीसे वे पाँव मिलाकर नहीं चलते। उनके नीचे-ऊँचे चलनेसे निरन्तर जो हचके, धक्के और झटके लगते ही हैं उससे जो पीडा होती है वह झकझोर डालती है ॥ ३ ॥ मार्गमें स्थान-स्थानपर काँटे और गड्ढे भरे हैं जहाँ पैरोंमें लिपटनेवाली विषैली बेलें फैली पड़ी हैं। कहीं-कहीं पत्थर और रोड़े भी पड़े हैं जिनके कारण रुकते हुए चलना पड़ता है। (विचित्र बात यह है कि) हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते चलते हैं त्यों-त्यों अपना डेरा दूर होता चलता है। (सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि) इस मार्गमें अपने किसी सम्बन्धीसे भी भेंट नहीं हो पाती ॥ ४ ॥ एक तो यह मार्ग ही बड़ा अगम है दूसरे, पास एक कौड़ी-तक नहीं है। इतना ही नहीं, जिस गाँव जाना है उसका भी नाम भूल बैठा हूँ। तुलसीदास कहते हैं—'राम ! अब आप ही मुझपर कृपा कर दीजिए और इस संसारके कारण होनेवाला मेरा सारा भय दूर कर डालिए [यह त्रिगुणात्मक मानव शरीर कर्मके अनुसार संसारमें जन्म लेता है जिसे पाँच कहार (पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और अग्नि) ढोते हैं । (पाँच तत्त्वोंसे शरीर बना है)

१. बिलंद=(फारसी बुलन्द) ऊँचा। २. अभेरा=धचका । ३. लोटन=सरीसृप, साँप ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राग आसावरी

सहज सनेही राम - सों, तैं कियो न सहज सनेह।
तातैं भव - भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥ १ ॥
ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहुँ निरापने ये, मातु, पिता, सुत, नारि ॥ २ ॥
दै दै सुमन बासि - कै तिल अरु, खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ - हित भूतल भरे, मन मेचक, तन सेत ॥ ३ ॥
करि बीत्यो, अब करतु है, करिबे हित मीत अपार।
कहूँ न कोउ रघुबीर - सों, नेह - निबाहनिहार ॥ ४ ॥
जासों सब नातो फुरै, तासों न करी पहिचानि।
तातें कछु समझ्यो नहीं, कहा लाभ कह हानि ॥ ५ ॥
साँचो जान्यो झूठ कै, झूठे - कहँ साँचो जानि।
को न गयो, को न जात है, को न जैहै करि हित - हानि ॥ ६ ॥
बेद कह्यो, बुध कहत हैं, अरु हौंहुँ कहत हौं टेरि।
'तुलसी' प्रभु साँचो हितू, तू हिय-की आँखिन हेरि ॥ ७ ॥ (१९०)

संसारके दुःख-सुखकी ठोकरें लगती चलती हैं। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता चलता है (जीवन व्यतीत होता चलता है) त्यों त्यों वह ईश्वरसे दूर होता जाता है। उसे यह भी ज्ञान नहीं रह जाता कि ईश्वर कहाँ रहता है।] ॥ ५ ॥ (१८९)

अरे मन ! तू अब भी मेरी बात समझ ले कि तूने सबसे स्वाभाविक स्नेह करनेवाले रामसे आजतक स्नेह नहीं किया इसीसे तू संसार (जन्म-मरण)-के फेरमें जा पड़ा है (तुझे बार-बार जन्म लेना और मरना पड़ रहा है) ॥ १ ॥ जैसे दर्पणमें जो मुख दिखाई देता है वह आकृति सच्ची नहीं होती, वैसे ही माता, पिता, पुत्र और स्त्री चाहे जितनी सेवा क्यों न करें वे अपने नहीं हैं ॥ २ ॥ जैसे फूल डाल-डालकर तिलको सुगन्धित करके (पेरनेके बाद) उसकी खली फेंककर केवल रस (पेरा हुआ सुगंधित तेल) ले-लेते हैं इसी प्रकार पृथ्वीपर केवल स्वार्थके सम्बन्धी भरे पड़े हैं जिनका शरीर तो उजला है पर मन बड़ा काला है ॥ ३ ॥ तू संसारमें न जाने कितने मित्र बना चुका, न जाने कितने बना रहा है और अभी न जाने कितने मित्र बनानेको तैयार भी है, परन्तु क्या उनमेंसे कभी भी कोई रामके समान स्नेह निबाह सकता है ? ॥ ४ ॥ अरे मन ! जिन (राम)-के कारण ही सब नाते सच्चे प्रतीत होते हैं उनसे तो तूने पहचान (परिचय) ही नहीं की इसीलिये तू अभी-तक नहीं समझ पाया कि तेरा किससे लाभ है और किससे हानि है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य सच्चे (ईश्वर)-को झूठा और झूठे (संसार)-को सच्चा समझे बैठा हो उनमेंसे ऐसा कौन है जिसने अपनेको चौपट नहीं कर लिया (जो नष्ट न हो गया हो), कौन नष्ट नहीं हो रहा है और कौन नहीं नष्ट होगा ? ॥ ६ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि वेदों ने भी कहा है, विद्वान् लोग भी कहते हैं और मैं भी पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ कि प्रभु राम ही सच्चे हितैषी हैं। इस बातको तू अपने अन्तश्चक्षु (भीतरी नेत्रों)-से देख और समझ ॥ ७ ॥ (१९०)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपाल । प्रेम-कनौड़ो रामसों नहिं दूसरो दयाल ॥१॥
तन साथी सब स्वारथी, सुर व्यवहार-सुजान । आरत-अधम-अनाथ-हित, को रघुबीर समान।२
नाद निठुर, समचर सिखी, सलिल सनेह न सूर । ससि सरोग, दिनकर बड़े-पयद प्रेम-पथ कूर३
जाको मन जासों बँध्यो ताको सुखदायक सोइ।सरल, सील, साहिब सदा सीतापति-सरिस न कोइ
सुनि सेवा सही को करै,परिहरै को दूषन देखि।केहि दिवान दिन दीन को,आदर-अनुराग बिसेखि।५
खग-सबरी पितु-मातु ज्यों माने,कपि को किए मीत।केवट भेंट्यो भरत-ज्यों ऐसो को पतित-पुनीत।६
देइ अभागहिं भाग को?को राखै सरन सभीत ? बेद-बिदित बिरुदावली, कबि-कोबिद गावत गीत।७

यदि संसारमें कोई सच्चा स्नेही है तो केवल कोशलेश राम ही सच्चे स्नेही हैं। रामके समान प्रेम-प्रीति (निर्वाह करने)-वाला दयालु दूसरा कोई है नहीं ॥ १ ॥ इस शरीरसे सम्बन्ध रखने-वाले जितने लोग हैं सब बड़े स्वार्थी हैं। देवता लोग भी व्यवहारके बड़े चतुर हैं (जितनी उनकी सेवा-पूजा की जाय उतना ही फल देते हैं)। रामके समान दूसरा और कौन है जो दुखी, नीच और अनाथोंका भी हित करता हो (कोई नहीं है) ॥ २ ॥ (अब अन्य प्रेमियोंकी दशा देखिए—) संगीतका स्वर भी बड़ा निठुर होता है (बीनकी ध्वनिपर मुग्ध होकर मृग पास आ जाता है और पकड़ लिया जाया है), शिखी (आग) सबके साथ समान व्यवहार करती है (सबको जलाती है किसीको छोड़ती नहीं, बेचारे फतिंगे दीपकके रूपपर मुग्ध होकर उसके निकट आते हैं और वह उसे भस्म कर डालता है)। जल भी ठीक प्रेम नहीं निभाता (अपनेसे प्रेम करनेवाली मछलीकी चिन्ता न करके वह अपनी तरंगमें बहा चला जाता) है। चन्द्रमा (ऐसा) रोगी है (कि वह सदा घटता-बढ़ता रहता है, पर चकोर उसकी ओर एकटक देखते रहनेमें ही अपनेको कृतार्थ समझता है)। सूर्य और मेघ भी दोनों निर्दयी हैं। (सूर्यके उदय होनेपर हर्षके मारे कमल खिल उठता है और अस्त होते ही संकुचित होने लगता है, पर सूर्य उसकी कब चिन्ता करता है ? उसी प्रकार चातक भी मेघपर मुग्ध हुआ रहता है। वह स्वातीके मेघके जलपर ही जीवित रहता है और सब प्रकारके जल त्यागे बैठा रहता है, परन्तु मेघको उसकी कोई चिन्ता नहीं होती, उलटे ओले और बिजली गिराकर वह उसके पंख टुकड़े-टुकड़े कर डालता है और गरजकर उसे डाँटता रहता है। (इस प्रकार इन नाद-स्वर, अग्नि, जल, चन्द्रमा, सूर्य और मेघ-मेंसे कोई भी प्रेमका निर्वाह नहीं करता) ॥ ३ ॥ इतना होनेपर भी (मृग, पतंग, मछली, चकोर, कमल और चातक क्यों प्रेमका निर्वाह करते हुए कष्ट झेलते हैं ? क्यों कि) जिसका मन जिसके प्रेममें बँध जाता है उसे वही अच्छा लगता है। किन्तु सदा सरल स्वभाववाले सीतापति रामके समान सदा समान रूपसे सच्चे स्नेहका निबाहनेवाला स्वामी दूसरा कोई नहीं है ॥४॥ दूसरा कौन ऐसा स्वामी है जो परोक्षमें की हुई सेवा सुनकर भी उसे ठीक मान लेता हो ? ऐसा कौन है जो अपनी आँखोंसे अपने सेवकोंके दोष देखकर भी अनदेखा कर देता हो ? और किसका दरबार ऐसा है जिसमें सदा दीनोंका प्रेम-पूर्वक विशेष रूपसे आदर किया जाता हो ? ॥ ५ ॥ रामने पक्षी जटायुको पिताके समान और शबरीको माताके समान माना, वानर सुग्रीवको मित्र बनाया और केवट (गुह निषाद)-से भरतके समान हृदयसे लगाकर भेंट की। भला बताइए तो ऐसा दूसरा कौन है जो इस प्रकार पतितोंका उद्धार कर सका हो ? ॥६॥ रामके अतिरिक्त दूसरा और कौन है जो अभागोंको भाग्यशाली बना देता हो तथा डरे हुएको अपनी शरणमें ले रखता हो ?

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कैसेउ पाँवर, पातकी, जेहि लई नाम-की ओट। गाँठी बाँध्यो राम, सो परिखो न फिरि खर-खोट ८
मन-मलीन, कलि-किलविषी होती सुनत जासु कृत काज। सो 'तुलसी' किय आपनो, रघुबीर
गरीब-निवाज ॥ ९ ॥ (१९१)

जो पै जानकिनाथ - सों नातो नेह न नीच।
स्वारथ परमारथ कहा ? कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥ १ ॥
धरम बरन - आस्रमनि - के, पैयत पोथिही पुरान।
करतब-बिनु बेष देखिए, ज्यों सरीर बिनु - प्रान ॥ २ ॥
बेद-बिदित साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि।
राम-प्रेम बिनु जानिए, जैसे सर-सरिता बिनु-बारि ॥ ३ ॥
नाना पथ निरबान-के नाना बिधान बहु भाँति।
'तुलसी' तू मेरे कहे जपु, राम-नाम दिन-राति ॥ ४ ॥ (१९२)

अजहूँ अपने राम-के करतब समुझत हित होइ।
कहँ तू, कहँ कोसलधनी, तोकों कहा कहत सब कोइ ॥ १ ॥

(कोई भी नहीं)। वेदोंमें इनकी बड़ी बड़ाई बताई गई है तथा कवि एवं विद्वान् भी इन्हींके गुणोंका वर्णन किया करते हैं ॥ ७ ॥ कोई कितना भी नीच और पापी क्यों न हो, पर जिसने एक बार भी राम-नामकी ओट ले धरी उसे रामने पड़े हुए द्रव्यके समान गाँठमें उठा बाँधा और उसके खोटे-खरेपन तककी (भले-बुरे होनेकी) भी जाँच नहीं की ॥ ८ ॥ जिसका मन खोटा है (जो बुरा है) और जिसकी करनी सुनकर कलियुग भी अत्यधिक पापी हो जाता है, ऐसे तुलसीदासको भी दीनोंपर कृपा करनेवाले रामने अपनी शरणमें बुला बिठाया ॥ ९ ॥ (१९१)

अरे नीच प्राणी ! यदि जानकीनाथ रामसे तेरा सम्बन्ध और प्रेम नहीं है तो बता तेरा स्वार्थ और परमार्थ सिद्ध हो तो कैसे हो ? तुझे तो कुटिल कलियुग बीचमें ही ठगे बैठा है (कलियुगने तेरा लोक-परलोक दोनों बिगाड़ डाला है) ॥ १ ॥ इस कलिकालमें वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास)-के धर्म तो केवल ग्रन्थों और पुराणोंमें ही लिखे पाए जाते हैं। वर्ण और आश्रमके कर्त्तव्यके बिना जो उन वर्णों और आश्रमों के अनुरूप (बाहरी) वेष बनाए हुए लोग दिखाई देते हैं, वे ऐसे लगते हैं जैसे बिना प्राणोंके शरीर हो ॥२॥ सुना जाता है कि वेदोंमें जो प्रसिद्ध साधन बताए गए हैं उन्हें करनेसे चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) मिल जाते हैं परन्तु उन्हें रामके प्रेमके बिना वैसा ही जानना चाहिए जैसे बिना जलवाले तालाब नदी आदि (जलाशय) ॥ ३ ॥ मुक्ति पानेके भी अनेक मार्ग बताए गए हैं तथा उनकी सिद्धिके अनेक प्रकारके विधान भी बताए गए हैं, परन्तु तुलसी ! तू मेरे कहनेसे ही दिनरात केवल राम-नाम ही बैठा जपा कर (इसीसे तेरा काम बन जायगा) ॥ ४ ॥ (१९२)

अब भी तू अपने स्वामी रामके (उपकारों)-पर ध्यान देने लग तो तेरा कल्याण हो जाय। कहाँ तो तू (एक तुच्छ प्राणी) और कहाँ कोशलपति भगवान् राम ! फिर भी तुझे लोग क्या कहते हैं (रामका दास ही न, फिर तू दास कहलाकर भी अपने प्रभुके उपकारोंपर ध्यान नहीं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रीझि निवाज्यो कबहिँ तू, कब खीझि दई तोहिँ गारि।
दरपन बदन निहारिकै सुबिचार मान हिय हारि॥ २॥
बिगरी जनम अनेक-की, सुधरत पल लगै न आधु।
'पाहि कृपानिधि! प्रेम-सों कहे, को न राम कियो साधु॥ ३॥
बालमीकि-केवट-कथा, कपि-भील-भालु-सनमान।
सुनि सनमुख जो न राम-सों, तेहि को उपदेसै ज्ञान॥ ४॥
का सेवा सुग्रीव-की, कह प्रीति-रीति-निरबाहु।
जासु बंधु बध्यो ब्याध-ज्यों, सो सुनत सोहात न काहु॥ ५॥
भजन बिभीषन-को कहा, फल कहा दियो रघुराज।
राम गरीबनिवाज-के, बड़ी बाँह-बोल-की लाज॥ ६॥
जपहि नाम रघुनाथ-को, चरचा दूसरी न चाल।
सुमुख, सुखद, साहिब सुभी, समरथ, कृपाल, नतपाल॥ ७॥
सजल नयन, गदगद गिरा, गहबर मन, पुलक सरीर।
गावत गुनगन राम-के, केहि-की न मिटी भव-भीर॥ ८॥

देता!)॥ १॥ यह बता कि उन्हींने प्रसन्न होकर कब तो तुझपर कृपा की और अप्रसन्न होकर कब तुझे गालियाँ दीं? तनिक हृदयके दर्पणमें अपना मुँह देखकर फिर इसपर भली प्रकार विचार तो कर (तब तेरी समझमें आवेगा) और तब तू अपनी हार मान बैठेगा॥२॥ यद्यपि तेरी करनी अनेक जन्मोंसे बिगड़ी पड़ी है, फिर भी उसे सुधरनेमें तुझे आधा पल भी न लगेगा, क्योंकि जिसने भी प्रेमपूर्वक आकर कह दिया—'कृपानिधान! मेरी रक्षा कीजिए,' ऐसे किसको रामने साधु (निष्पाप, शुद्ध) नहीं बना डाला?॥ ३॥ वाल्मीकि (व्याध) और गुह (केवट)-की कथाएँ तथा सुग्रीव आदि वानरों, शबरी आदि भीलों और जामवन्त आदि भालुओंका आदर-सत्कार सुनकर भी जो रामकी शरणमें नहीं गया उस मूढको कौन ज्ञानका उपदेश देने जाय?॥४॥ सुग्रीवने उनकी कौन सेवा की थी और कौन-सी प्रीति-की रीति निबाही थी जिसके भाई बालिको उन्होंने व्याधकी भाँति ऐसी निर्दयतासे मार डाला था कि वह बात सुनकर किसीको अच्छी नहीं लगती॥ ५॥ विभीषणने कौनसे भजन किए थे पर रामने उसे क्या फल दे डाला? (रावणको मारकर लंकाका सम्राट् बना दिया)। वास्तवमें रामको तो बाँह गहेकी (अपने शरणागतकी रक्षा करनेकी) और अपने वचन (प्रतिज्ञा)-की लाज रहती है (वे अपने शरणागतको दिए हुए वचनकी रक्षा अवश्य ही करते हैं चाहे वह कितना ही दुष्कर्मी, कृतघ्न और पापी क्यों न हो)॥६॥ अतः, तू भी बैठकर रामका नाम जपाकर, इसके अतिरिक्त दूसरी चरचा ही मत चला। वे (राम) सदा प्रसन्न रहते हैं, सबको सुख देते हैं, अच्छे स्वभावके, समर्थ, कृपालु और शरणागतके पालक हैं॥ ७॥ ऐसा कौन है जिसने प्रेमाश्रु-भरे नेत्रोंसे, गद्गद वाणीसे, प्रेमाकुल मनसे और पुलकायमान शरीरसे रामका गुण गाया हो और वह सांसारिक बन्धनों (जन्म-मरणकी झंझटों)-से मुक्त न हो गया हो?॥८॥ राम सबके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रभु कृतज्ञ सरबज्ञ हैं, परिहरु पाछिली गलानि।
'तुलसी' तोसों राम-सों, कछु नई न जान-पहिचानि ॥ ९ ॥ (१९३)

जौ अनुराग न राम सनेही-सों। तो लह्यो लाहु कहा नर देही-सों ॥ १ ॥
जो तनु धरि परिहरि सब सुख भए सुमति राम अनुरागी।
सो तनु पाइ अघाइ किए अघ, औगुन अधम अभागी ॥ २ ॥
ज्ञान, बिराग, जोग, जप, तप, मख, जग मुद-मग नहिं थोरे।
राम-प्रेम बिनु नेम जाय, जस मृग-जल-जलधि हिलोरे ॥ ३ ॥
लोक बिलोकि, पुरान-बेद सुनि, समुझि-बूझि गुरु ज्ञानी।
प्रीति-प्रतीति रामपद-पंकज, सकल सुमंगल-खानी ॥ ४ ॥
अजहुँ जानि जिय, मानि हारि हिय, होइ पलक-महँ नीको।
सुमिरु सनेह-सहित सीतापति, मानु मतो तुलसी-को ॥ ५ ॥ (१९४)

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं। कीजै कृपा आपनी नाईं ॥ १ ॥
परमारथ सुरपुर-साधन सब, स्वारथ सुखद भलाई।
कलि सकोप लोपी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई ॥ २ ॥
जहँ-जहँ चित चितवत हित, तहँ नित नव बिषाद अधिकाई।
रुचि-भावती भभरि भागहिं, समुहाइ असित अनभाई ॥ ३ ॥

घट-घटकी बात जानते हैं। वे सबके किए हुएको जानतेहैं। इसलिये पश्चात्ताप करना छोड़ दे। अरे तुलसीदास! रामसे तेरी कुछ नई जान-पहचान तो है नहीं (जन्म-जन्मकी जान-पहचान है) ॥ ९ ॥ (१९३)

यदि परम स्नेही रामसे तेरा अनुराग नहीं हुआ तो मानव-शरीर धारण करनेसे लाभ ही क्या हुआ ? ॥१॥ जो (मानव)-शरीर पाकर ज्ञानी लोग सांसारिक सुख छोड़कर रामके अनुरागी हो गए, वही देव-दुर्लभ शरीर पाकर, अरे अभागे पापी! तू भर-पेट पाप कमाता रहा ॥ २ ॥ संसारमें आनन्द पानेके लिये ज्ञान, वैराग्य, योग, तप, जप, यज्ञ आदि अनेक मार्ग हैं, परन्तु रामके प्रेमके बिना ये सब साधन उसी प्रकार व्यर्थ हैं जैसे मृगजलके समुद्रकी लहरें ॥ ३ ॥ संसारको देखकर, वेद और पुराण सुनकर तथा ज्ञानी गुरुजनोंसे समझकर रामके उन चरण-कमलोंमें बैठकर लौ लगा, जहाँसे समस्त कल्याण उत्पन्न होते हैं ॥४॥ यदि तूने अब भी मन लगाकर समझ लिया और अपना दोष स्वीकार कर लिया तो एक क्षणमें तेरा कल्याण हो जायगा। प्रेमसे रामका नाम स्मरण कर (क्योंकि वे ही तेरे सच्चे हितू हैं)। तुलसीदासका यह सिद्धान्त मान ले, इसीमें तेरा कल्याण है ॥ ५ ॥ (१९४)

गोस्वामी राम! बलिहारी है। आपसे निवेदन है कि आप अपने (कृपालु) स्वभावके अनुसार मुझपर कृपा करें ॥ १ ॥ परमार्थ, स्वर्ग और स्वार्थ प्राप्त करनेके जितने सुखदायक और कल्याणकारी साधन थे, वे सब कलियुगने क्रोध करके लुप्त कर डाले हैं और उनके स्थानपर अपनी कुत्सित चालें ला चलाई हैं ॥२॥ जहाँ-जहाँ मन अपने हितकी बात देखता है वहाँ-वहाँ नित्य नया-नया दुःख बढ़ता दिखाई देता है। रुचिको अच्छी लगनेवाली बातें दूरसे ही डरकर भाग जाती हैं (मनचाही तो एक भी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आधि - मगन मन, ब्याधि - बिकल तन, बचन मलीन झुठाई।
एतेहुँ - पर तुम - सों तुलसी - की, सकल सनेह - सगाई ॥ ४ ॥ (१९५)

काहे-को फिरत मन करत बहु जतन, मिटै न दुख, बिमुख रघुकुल - बीर।
कीजै जो कोटि उपाइ, त्रिबिध ताप न जाइ, कह्यो जो भुज उठाइ मुनिवर कीर[1] ॥ १ ॥
सहज टेव बिसारि, तुही धौं देखु बिचारि, मिलै न मथत बारि घृत, बिनु - छीर।
समुझि तजहि भ्रम, भजहि पद जुगम्, सेवत सुगम गुन गहन[2] गँभीर ॥ २ ॥
आगम - निगम ग्रंथ, रिषि-मुनि-सुर-संत, सबही - को एक मत, सुनु, मति - धीर।
'तुलसिदास' प्रभु - बिनु, पियास मरै पसु, जद्यपि है निकट सुरसरि - तीर ॥ ३ ॥ (१९६)

नाहिंन चरन-रति ताही - से सहौं बिपति, कहत श्रुति सकल, मुनि मति - धीर !
बसै जो ससि - उछंग, सुधा - स्वादित कुरंग, ताहि क्यों भ्रम निरखि रबिकर नीर ॥ १ ॥

बात पूरी नहीं हो पाती) पर सामने बहुतसी अप्रिय (अनिष्टकारी) बातें आ खड़ी होती हैं ॥३॥ हमारा मन अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्पोंमें लीन हो रहा है, शरीर रोगोंसे व्याकुल है और झूठके कारण वाणी भी मलिन हो गई है। तन, मन और वचन तीनों बिगड़ गए हैं किन्तु यह सब होते हुए भी, नाथ ! (सबसे बड़ी बात यह है कि) आपके साथ इस तुलसीदासका सम्बन्ध और प्रेम पूरा-पूरा बना हुआ है (उसमें अन्तर नहीं पड़ पाया है) ॥ ४ ॥ (१९५)

अरे मन ! तू क्यों बहुतसे उपाय करता हुआ इधर-उधर भटकता फिर रहा है ? (यह समझ ले कि) रामसे जो मुँह फेर बैठता है उसके दुःखोंका नाश कदापि नहीं हो सकता। भगवान्‌के विरुद्ध रहनेवाला करोड़ों उपाय क्यों न कर डाले, पर उसके तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) कभी नहीं मिट पा सकते। यह बात मुनिश्रेष्ठ शुकदेवने हाथ उठाकर कही है ॥ १ ॥ अपना सहज (चंचल) स्वभाव छोड़कर एकाग्र चित्तसे तू ही विचारकर देख कि कहीं दूधके बिना केवल पानी मथनेसे कभी घी निकला करता है ? (कदापि नहीं)। सांसारिक विषयोंमें लीन रहनेवालेको क्या कभी ब्रह्मानन्दका सुख मिल सकता है ? यह सब सोच-समझकर भ्रम छोड़ दे। रामके उन युगल चरणोंका भजन कर जो सेवा करनेसे ही सुलभ हो सकते हैं और जो सद्‌गुणके गम्भीर वन हैं (जिनमें सब सद्‌गुण भरे हुए हैं) ॥ २ ॥ शास्त्रों, वेदों, अन्य ग्रन्थों, ऋषि-मुनियों, देवताओं और सन्तोंने एक मतसे जो सिद्धान्त निश्चित किया है, उसे बुद्धि स्थिर करके सुन। देख तुलसीदास ! गंगाका तट निकट होनेपर भी वह पशु प्यासा ही मर जाता है जिसका स्वामी नहीं होता (उस पशुको पानी पिलानेके लिये स्वामीके अतिरिक्त दूसरा कौन उसे गंगातट ले जाय ? भगवत्कृपाके बिना मुक्ति कैसे मिल सकती है ?) ॥ ३ ॥ (१९६)

मैं इसीलिये दुःख भोगे जा रहा हूँ कि रामके चरणोंमें मेरी प्रीति नहीं है। यह बात वेदों तथा समस्त बुद्धिमान् मुनियोंने भी कही है, क्योंकि जो मृग, ऊपर चन्द्रमाकी गोदमें बैठकर अमृतका आस्वादन करता रहता है, उसे भला मृगतृष्णाके जलका भ्रम क्यों होगा ? (जिसने ब्रह्मानन्दका रसास्वादन कर लिया है, उसे संसारी विषय कभी धोखेमें नहीं डाल सकते) ॥ १ ॥ जिस प्रकार

---

१. मुनिवर कीर = शुकदेव मुनि। २. गहन = घने वन।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुने नाना पुरान, मिटत नहिं अज्ञान, पढ़ै न समुझै जिमि खग कीर।
बिकृत बिनहि पास, सेमर - सुमन - आस, करत चरत तेई फल बिनु हीर[1] ॥ २ ॥
कछु न साधन सिधि, जानौं न निगम-बिधि, नहिं जप - तप, बस मन न समीर[2]।
'तुलसीदास' भरोस, परम करुना - कोस, प्रभु हरिहैं बिषम भव - भीर ॥ ३ ॥ (१९७)

भैरवी

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरि - पद भजु, करम, बचन अरु ही ते ॥ १ ॥
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली - ते।
हम - हम करि धन - धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥ २ ॥
सुत - बनितादि जानि स्वारथ - रत, न करु नेह सबही - तें।
अंतहु तोहि तजैंगे, पामर! तू न तजै अबही - तें ॥ ३ ॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़! त्यागि दुरासा जी - तें।
बुझै न काम - अगिनि 'तुलसी' कहुँ, विषय-भोग बहु घी - तें ॥४॥ (१९८)

सुग्गा सब कुछ पढ़ तो लेता है पर समझता कुछ भी नहीं, वैसे ही मैंने भी अनेक पुराण सुने तो अवश्य हैं पर मेरा सांसारिक मोह (अज्ञान) अभी-तक दूर नहीं हो पाया। सुग्गा बिना फंदा डाले स्वयं ही फँस जाता है। वह (इतना मूर्ख है कि) सेमरके फूलमें रस पानेकी आशा करता है (पर ज्योंही वह उसपर चोंच मारता है त्योंही वह निराश होकर उसे छोड़ देता है) ॥ २ ॥ मेरे पास न कोई साधन है, न मैं कोई सिद्धि ही जानता हूँ, न मुझे वैदिक विधियाँ ही आती हैं, न मैंने जप और तप ही किया है और न प्राणवायु रोककर (प्राणायाम करके) मैं मनको ही वशमें कर पाया हूँ। इस तुलसीदासको तो केवल करुणाके सागर रामका ही एक मात्र आसरा है। (मुझे विश्वास है कि) वही प्रभु मेरे असह्य सांसारिक दुःख दूर कर डालेंगे ॥ ३ ॥ (१९७)

अरे मन! (मानव-शरीर प्राप्त करनेका) ऐसा सुअवसर हाथसे निकल जानेपर तू (हाथ मलमलकर) पछतायगा। इसलिये बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हो सकनेवाला मानव-शरीर पाकर मन, कर्म और वचनसे भजन कर ॥ १ ॥ सहस्रबाहु और रावण आदि (बड़े-बड़े शक्तिशाली) राजा भी बलवान् काल (के गाल)-से नहीं बच पाए। जिन्होंने 'हम-हम' करते हुए (अहंकारके साथ) बड़े मनसे धन और धाम सँभालकर रक्खा था वे भी अंत समयमें यहाँसे हाथ हिलाते हुए चले गए ॥ २ ॥ पुत्र और स्त्री आदिको स्वार्थी समझकर इन सबसे कोई स्नेह न कर। अरे नीच! जब तू जानता है कि अंतमें ये सब तुझे छोड़ ही देंगे, तब तू इन्हें अभीसे क्यों नहीं छोड़ देता? ॥ ३ ॥ अरे मूर्ख! मोह (अज्ञान)-की निद्रासे जाग उठ, अपने प्रभु रामसे अनुराग कर तथा हृदयसे दुराशा निकाल फेंक (विषयसे तृप्ति पानेकी आशा त्याग दे)। तुलसीदास कहते हैं कि जैसे बहुत घी डालनेसे

---

१. हीर= गूदा। २. समीर= प्राणवायु, जिसे योगी वशमें कर लेते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

काहे फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरि-चरन-सरोज-सुधा-रस, रबिकर-जल लय लायो॥ १॥
त्रिजग[1], देव, नर, असुर, अपर जग, जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह, बनिता, सुत, बंधु भए बहु, मातु-पिता जिन जायो॥ २॥
जातें निरय-निकाय निरंतर, सो इन तोहिं सिखायो।
तुव हित होइ, कटै भव-बंधन, सो मग तौ न बतायो॥ ३॥
अजहुँ बिषय-कहँ जतन करत, जद्यपि बहु बिधि डहकायो।
पावक-काम, भोग-घृत-तें सठ! कैसे परत बुझायो॥ ४॥
विषय-हीन दुख मिले बिपति अति, सुख सपनेहु नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत-पावक-ज्यों, धन दुख-प्रद श्रुति गायो॥ ५॥
छिन-छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तन बृथा गँवायो।
'तुलसिदास' हरि भजहि आस तजि, काल-उरग जग खायो॥ ६॥ (१९९)

अग्नि नहीं बुझती (उलटे और भी प्रज्वलित हो उठती है), वैसे ही बहुत विषयोंके भोगसे कामकी अग्निकी तृप्त नहीं होती (वह बढ़ती ही चली जाती है)[2] ॥ ४॥ (१९८)

अरे मूर्ख मन! तू क्यों इधर-उधर भटकता फिर रहा है? भगवान्‌के चरण-कमलका अमृत-रस छोड़कर तू मृगतृष्णाके झूठे जलसे क्या प्रेम किए बैठा है (भगवद्भजन छोड़कर सांसारिक विषयोंमें क्यों मन लगाए हुए है) ॥१॥ तू तिर्यक् (पशु-पक्षी), देव, नर, असुर तथा संसारकी अन्य सभी योनियोंमें चक्कर लगा आया। (इन सब योनियोंमें) तेरे न जाने कितने घर, स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु तथा तुझे उत्पन्न करनेवाले माता-पिता भी हुए॥ २॥ इन सबने तुझे ऐसे ही कर्म सिखाए जिनसे तू सदा अनेक प्रकारके नरकोंमें पड़ता रहे। इन्होंने तुझे वह मार्ग कभी नहीं बताया जिससे तेरा हित हो और संसारके बन्धनसे तेरा छुटकारा हो जाय॥३॥ पर तू है कि अब भी उन्हीं विषयोंमें लिपटा रहनेका उपाय किए जा रहा है जो तुझे आजतक अनेक प्रकारसे ठगते चले आए। अरे मूर्ख! (तनिक सोच तो सही) कि काम-रूपि अग्नि क्या कभी भोगके घीसे बुझाए बुझ पा सकती है? ॥४॥ जब ये विषय नहीं मिलते तब तुझे दुःख होता है और मिल जाते हैं तब अत्यन्त विपत्ति भोगनी पड़ती है, सुख तो इनसे स्वप्नमें भी कभी नहीं मिला। वेद तो ऐसा कहते हैं कि विषयरूपी धन तो प्रेताग्निके[3] समान दोनों प्रकारसे (मिलने और न मिलनेपर) धोखा ही देता है॥ ५॥ इस प्रकार तेरा जीवन क्षण-क्षणपर क्षीण होता चला जा रहा है। यह दुर्लभ शरीर तू व्यर्थमें ही नष्ट किए डाल रहा है। तुलसीदास कहते हैं कि काल-रूपी सर्प सारे संसारको ग्रसता चल जा रहा है, इसलिये तू सब आशाएँ छोड़कर बैठकर केवल भगवान्‌का भजन किया कर॥ ६॥ (१९९)

१. त्रिजग = तिर्यक् योनि (पशु-पक्षी)।

२. एवं गृहेष्वभिरतो विषयान् विविधैः सुखैः। सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः॥
—भागवत महापुराण, ९।६।४८ [जैसे घीकी बूँदसे आग नहीं बुझती, बढ़ती ही जाती है, वैसे ही विषय-भोगसे भोगेच्छा दिनों दिन बढ़ती ही जाती है।] ३. प्रेताग्नि = दलदलों और मैदानोंमें रातको दिखाई देनेवाली लूक (दौड़ती हुई आगकी लपट) जिसे धोखेसे लोग आग समझ बैठते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ताँबे-सो पीठि मनहु तन पायो।
नीच ! मीचु जानत न सीस - पर, ईस निपट बिसरायो ॥ १ ॥
अवनि, रवनि, धन, धाम, सुहृद, सुत, को न इनहिँ अपनायो।
काके भए, गए सँग काके, सब सनेह छल - छायो ॥ २ ॥
जिन भूपनि जग जीति, बाँधि जम, अपनी बाँह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हें, तू गिनती कब आयो ॥ ३ ॥
देखु बिचारि सार का साँचो, कहा निगम निज गायो।
भजहि न अजहुँ, समुझि 'तुलसी' तेहि, जेहि मेहेस मन लायो ॥ ४ ॥ (२००)

लाभ कहा मानुष-तन पाए ?
काय, बचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए ॥ १ ॥
जो सुख सुरपुर - नरक गेह - बन, आवत बिनहिं बुलाए।
तेहि सुख - कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाए ॥ २ ॥
पर - दारा, पर - द्रोह, मोह - बस, किए मूढ़ मन भाए।
गर्भ - बास दुख - रासि जातना, तीव्र बिपति बिसराए ॥ ३ ॥
भय - निद्रा - मैथुन - अहार, सबके समान जग जाए।
सुर - दुरलभ तन धरि न भजे हरि, मद - अभिमान गँवाए ॥ ४ ॥

अरे जीव ! (जान पड़ता है) मानो तूने ताँबेसे मढ़ा हुआ सुदृढ शरीर पाया हो (जो कभी नष्ट नहीं होगा)। अरे नीच ! तू नहीं जानता कि तेरे सिरपर मृत्यु चढ़ी बैठी है इसीलिये तू परमात्माको भुलाए बैठा है ॥ १ ॥ पृथ्वी, स्त्री, धन, धाम, मित्र और पुत्रको किसने अपना नहीं समझा ? पर यह तो बता कि इनमेंसे कौन किसका साथी हुआ और कौन (मरने पर) साथ गया ? इन सभीका प्रेम कपट (स्वार्थ)-भरा है ॥ २ ॥ जिन (रावण-जैसे) राजाओंने संसारको जीतकर और यमराज (काल)-को भी बाँधकर अपने अधीन कर रक्खा था, जब वे भी कालके ग्रास हो गए तब तू किस गिनतीमें है। ॥ ३ ॥ तनिक विचारकर तो देख कि सच्चा तत्त्व क्या है और वेदोंने क्या कहा है ? अरे तुलसी ! यह समझकर भी तू उन (राम) - को नहीं भजता जिनमें शंकर-जैसे समर्थ देवता भी लौ लगाए रहते हैं ॥ ४ ॥ (२००)

मनुष्य-शरीर पानेका लाभ ही क्या हुआ जब तू मन, वचन और शरीरसे दूसरोंके काम (दुःख-सुखमें सहायक होकर) न आ पाया ॥ १ ॥ अरे मन ! जो (विषय)- सुख, स्वर्ग, नरक, घर और वनमें बिना बुलाए ही चला आता है, तू उसी सुखकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके यत्न करता रहता है और समझानेपर भी समझता नहीं ॥ २ ॥ अरे मूर्ख ! तू मोहवश मनमाने ढंगसे पर-स्त्री ग्रहण करने तथा दूसरोंसे द्रोह करनेमें लगा रहा। तू गर्भ-वासका भयंकर क्लेश तथा जन्मका तीव्र दुःख भुला बैठा है ॥ ३ ॥ इस संसारमें उत्पन्न होनेवाले प्राणी मात्रके लिये भय, निद्रा, स्त्री-प्रसंग और भोजन एक समान ही होते हैं, पर देव-दुर्लभ (मानव) शरीर पाकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गई न निज - पर - बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाए।
'तुलसिदास' यह अवसर बीते, का पुनि - के पछिताए ॥ ५ ॥ (२०१)

काज कहा नर-तन धरि साध्यौ।
पर - उपकार सार श्रुति - को जो, सो धोखेहु मैं न बिचाऱ्यौ ॥ १ ॥
द्वैत मूल, भय सूल, सोक फल, भवतरु टरै न टाऱ्यौ।
राम - भजन तीछन कुठार लै, सो नहिं काटि निवाऱ्यौ ॥ २ ॥
संसय - सिंधु नाम - बोहित भजि, निज आतमा न ताऱ्यौ।
जनम अनेक बिबेक - हीन, बहु जोनि भ्रमत नहिं हाऱ्यौ ॥ ३ ॥
देखि आन - की सहज संपदा, द्वेष - अनल मन जाऱ्यौ।
सम, दम, दया, दीन - पालन, सीतल हिय हरि न सँभाऱ्यौ ॥ ४ ॥
प्रभु, गुरु, पिता, सखा, रघुपति, मैं मन-क्रम-बचन बिसाऱ्यौ।
'तुलसिदास' यहि त्रास राखिहैं सरन, जे गीध उधाऱ्यौ। २ ॥ (२०२)

भी तूने भगवान्‌का भजन नहीं किया और अहंकारके मदमें आकर यह (शरीर) खो दिया[1] ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं कि जिनकी बुद्धिसे 'अपने-पराये'का भेद-भाव नष्ट नहीं हुआ तथा शुद्ध हृदयसे जिन्होंने राममें अपनेको लवलीन नहीं कर लिया उन्हें ऐसा सुअवसर (मानव-शरीर पानेका) निकल जानेपर पछतानेसे लाभ क्या होगा ॥ ५ ॥ (२०१)

मैंने मनुष्यका शरीर धारण करके क्या कार्य सिद्ध कर लिया ? वेदोंने परोपकार करनेका जो मुख्य उपदेश दिया है उसपर तो मैंने कभी धोखेसे भी विचार नहीं किया (परोपकार करना तो दूर रहा) ॥१॥ यह संसार मानो एक वृक्ष है जिसकी जड़ें द्वैत भाव (अपने-परायेका भेद) हैं, भय ही काँटे हैं और शोक-दुःख ही इसके फल हैं। वह वृक्ष उखाड़े भी नहीं उखड़ता (क्योंकि जबतक 'अपने-पराये'का द्वैत-भाव बना रहेगा, जड़ पक्की रहेगी तब तक शोक आदि कष्ट बने ही रहेंगे)। यह वृक्ष (संसार) तो केवल राम-भजनके पैने कुठारसे ही कट पाता है जिसे तू (भजन न करके) नहीं काट पाया ॥ २ ॥ तूने रामनामके जहाजपर चढ़कर अपने आत्माको संशय (अज्ञान)-रूपी समुद्रसे पार नहीं किया (अपने आत्माका उद्धार नहीं किया) और अनेक जन्मोंतक विवेक-हीन होकर अनेक योनियोंमें जन्म ले-लेकर भटकता हुआ भी तू अभी-तक नहीं थका (तू अभी भी संसार नहीं छोड़ना चाहता) ॥ ३ ॥ दूसरोंकी बढ़ती हुई सम्पत्ति देखकर तू द्वेषकी अग्निमें अपना मन जलाता रहा। तूने शम (शान्ति), दम (इन्द्रियोंको वशमें करना), दया, दीनोंके प्रतिपालन, आदिके द्वारा अपना हृदय शीतल करके (शान्त चित्तसे) भगवान्‌का भजन नहीं किया ॥ ४ ॥ उन रामको तू मन, वचन और कर्मसे भुलाए बैठा है जो तेरे प्रभु, गुरु, पिता और मित्र सब कुछ हैं। तुलसीदास ! यह समझ ले कि जिसने जटायुका उद्धार किया था वे ही मुझे भी निर्भय करके शरणमें ले लेंगे ॥ ५ ॥ (२०२)

---

१. आहार-निद्रा-भयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिः समानाः ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रीहरि-गुरु-पद-कमल भजहु मन तजि अभिमान। जेहि सेवत पाइय हरि, सुख-निधान भगवान। परिवा प्रथम प्रेम-बिनु राम-मिलन अति दूरि। जद्यपि निकट हृदय निज, रहे सकल भरि पूरि।१। दुइज द्वैज-मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर। बिगत-मोह-माया-मद, हृदय बसत रघुबीर॥२। तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्री-रमन मुकुंद। गुन स्वभाव त्यागे-बिनु, दुरलभ परमानंद॥४॥ चौथि चारि परिहरै बुद्धि, मन, चित, अहँकार। बिमल बिचार परम-पद निज सुख सहज उदार५ पाँचैं पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप। इन-कर कहा न कीजिय, बहुरि परब भव-कूप॥६। छठि षड्वर्ग करिय जय, जनकसुता-पति लागि। रघुपति कृपा-बारि-बिनु, नहिं बुताइ लोभागि ७ सातैं सप्तधातु-निर्मित तन करिय बिचार। तेहि तन-कर अब यहि फल, कीजिय पर-उपकार।८। आठैं आठ-प्रकृति पर निर्बिकार श्रीराम। केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिं बहु काम॥९।

अरे मन! तू अभिमान छोड़कर जाकर भगवत्स्वरूप गुरुके चरण-कमलोंका भजन कर, जिनकी सेवा करनेसे तू सुखके निधान भगवान्‌के दर्शन कर सकेगा॥ १॥ जैसे पक्षका पहला दिन पड़िवा (प्रतिपदा) होता है वैसे ही सबसे पहले तू भगवान्‌के प्रति शुद्ध प्रेम कर क्योंकि यद्यपि वे (भगवान्) सर्वव्यापक हैं और तेरे पास ही हृदयमें बसे हुए हैं, पर जबतक तू उनसे प्रेम नहीं करेगा तबतक उनका मिलना बहुत कठिन है॥ २॥ द्वितीयाकी भाँति दूसरा साधन है उन धीर बुद्धिवाले लोगोंका सत्संग, जो द्वैत भाव (अपने-परायेका भेद) छोड़कर, मोह, माया और मद (अहंकार)-से अलग रहकर, निश्चिन्त होकर अपने हृदयमें रामको बसा जानकर सारे भूमण्डलमें विचरते रहते हैं॥ ३॥ तीज (तृतीया)-के समान तीसरा साधन यह है कि परम पुरुष लक्ष्मी-पति मुकुन्द तो त्रिगुण (सत्त्व, रज और तम)-से परे हैं, अतः त्रिगुणात्मक वृत्तिका परित्याग कर दे क्योंकि उसके बिना (सत्त्व, रज और तम छोड़कर स्वच्छ शुद्ध प्रेमके बिना) परमानन्द प्राप्त कर सकना बहुत दुर्लभ है॥ ४॥ चौथ (चतुर्थी)के समान भगवत्प्राप्तिका चौथा साधन यह है कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार (जो 'अन्तःकरण चतुष्टय' कहे जाते हैं)-का परित्याग करके (उन्हें अपने अधीन करके), निर्मल विचार (शुद्ध विवेक) ग्रहण कर, क्योंकि उससे ही स्वाभाविक एक-रस ब्रह्मानन्द प्राप्त हो सकेगा॥ ५॥ पञ्चमीके समान पाँचवाँ साधन यह है कि स्पर्श, रस, शब्द, गंध और रूपका (जो क्रमशः त्वचा, जिह्वा, कान, नाक और आँखके विकार हैं) कहा मत मान, नहीं तो पुनः संसार-रूपी कुएँमें जा पड़ेगा (जन्म-मरणके झंझटमें जा फँसेगा)॥ ६॥ षष्ठीके समान छठा साधन यह है कि सीतापति रामको प्राप्त करनेके लिये षड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर) पर विजय प्राप्त कर ले क्योंकि रामकी कृपाके जलके बिना लोभ आदिकी अग्नि नहीं बुझ सकती॥ ७॥ सप्तमीके समान सातवाँ साधन यह है कि सप्त धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र)-से बने हुए इस (अपवित्र, किन्तु दुर्लभ) शरीरपर विचार कर कि इस शरीरका केवल एक यही फल है कि इससे परोपकार किया जाय (तभी यह अपवित्र और नश्वर शरीर पवित्र होगा)॥ ८॥ अष्टमीके समान आठवाँ साधन यह है कि निर्विकार स्वरूप राम तो आठ प्रकारकी जड प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार)-से परे है। अतः, जबतक हृदयमें अनेक प्रकारकी कामनाएँ बनी हुई हैं तबतक वे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नवमी नवद्वार-पुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह। ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख लीन्ह१०
दसइँ दसहु कर संयम, जो न करिय जिय जानि। साधन बृथा होइँ सब, मिलहिं न सारँगपानि ११
एकादसी एक मन बस कैसेहु करि जाइ। सोइ ब्रत - कर फल पावै, आवागमन नसाइ ॥१२॥
द्वादसि दान देहु अस,अभय होइ त्रैलोक। परहित - निरत सो पारन, बहुरि न ब्यापइ सोक॥१३॥
तेरसि तीन अवस्था तजहु,भजहु भगवंत। मन-क्रम बचन अगोचर, ब्यापक, ब्याप्य अनंत।१४।
चौदसि चौदह भुवन अचर-चर रूप गोपाल। भेद गए बिनु, रघुपति अति न हरहिं जग-जाल १५
पूनो प्रेम-भगति रस हरि-रस जानहिं दास। सम, सीतल, गत-मान,ज्ञान-रत विषय-उदास ॥१६
त्रिबिध सूल होलिय जारिय खेलिय अस फाग। जौ जिय चहसि परम सुख,तौ यहि मारग लाग।१७

(राम) कैसे मिल सकते हैं ? ॥ ९ ॥ नवमीके समान नवाँ साधन यह है कि जिसने इस नव द्वार (२ कान, २ आँखें, २ नाक, १ मुँह, १ लिंग और १ गुदा = ९ छिद्र)-वाले नगर (शरीर)-में रहकर अपने आत्माका कल्याण नहीं किया, वह अनेक योनियोंमें भटकता हुआ अनेक प्रकारके दारुण दुःख भोगता रहेगा। इसलिये आत्मकल्याण करनेका प्रयत्न करना चाहिए (क्योंकि यह शरीर तो क्षणभंगुर है)॥ १०। दशमीके समान दसवाँ साधन यह है कि जिसने दसों इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, मुँह, हाथ, पैर, लिंग, गुदा)-का संयम नहीं किया उसके सारे साधन व्यर्थ हो जाते हैं और उसे शार्ङ्गपाणि भगवान् नहीं मिलते (इसलिये इन्द्रियोंको अपने वशमें कर) ॥ ११ ॥ एकादशीके समान ग्यारहवाँ साधन यही है कि दस इन्द्रियाँ और एक मन, इन ग्यारहोंको वशमें करके भगवान्‌की सेवा किया कर। इसीसे परमार्थ-रूपा एकादशी व्रतका यह परम फल मिलता है कि मनुष्य जन्म-मरणसे मुक्त होकर भगवद्रूप हो जाता है ॥ १२ ॥ द्वादशीके समान बारहवाँ साधन यह है कि द्वादशीके दिन दान देनेपर ही एकादशीका पारण होता है। अतः भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये निष्काम बुद्धिसे ऐसा दान देते रहना चाहिए जिससे तीनों लोकोंमें भय न रहे और द्वादशीका पारण यही है कि सदा परोपकारमें लगा रहे ॥ १३ ॥ त्रयोदशीके समान तेरहवाँ साधन यह है कि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंको त्यागकर भगवान्‌का भजन किया जाय। भगवान् तो मन, कर्म और वाणीसे परे हैं, वे सबमें व्याप्त भी हैं और स्वयं व्याप्य भी हैं (उनमें ही सारा ब्रह्माण्ड बसा हुआ है) अतः वे अनन्त और अपरिमित हैं ॥ १४ ॥ चतुर्दशीके समान चौदहवाँ साधन यह है कि चौदहों भुवनोंमें जितने जड और चेतन हैं, वे सब गोपाल (इन्द्रियोंके नियन्ता) भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। अतः, जबतक इनमें भेद-भाव (किसीको जड, किसीको चेतन समझना) दूर नहीं होता तबतक राम यह जगज्जाल दूर नहीं कर सकते ॥ १५ ॥ पूर्णमासीके समान पन्द्रहवाँ पूर्ण और सबसे श्रेष्ठ साधन है 'प्रेमभक्ति-रस'। स्वयं भगवान् रस-रूप हैं। इसे वे ही भक्त जानते हैं जो सम, शीतल और अहंकार-रहित होकर ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा सांसारिक विषयोंके रससे सदा उदासीन रहते हैं। ऐसे ही भक्त उस रस-रूपा भक्तिका आस्वादन करते हैं ॥ १६ ॥ (पूर्णमासीको) त्रिविध शूल (दैहिक, दैविक और भौतिक तापों)-को होली जला दो। उस रात्रिकी होलिकामें तीनों प्रकारके शूल भस्म करके तब (चैत्रकी प्रतिपदाको) चेतनता प्राप्त करके भगवान्‌का भजन करो। यदि परम सुख (परमानन्दमें लीन होना) चाहते हो तो यही मार्ग ग्रहण करो ॥ १७ ॥ वेदों, पुराणों

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रुति-पुरान-बुध-संमत चाँचरि चरित मुरारि। करि बिचार भव तरिय, परिय न कहुँ जम-धारि१८ संसय समन दमन-दुख सुख-निधान हरि एक। साधु-कृपा-बिनु मिलहिं नहि, करिय उपाइ अनेक भव-सागर-कहँ नाव सुद्ध संतन-के चरन। 'तुलसिदास' प्रयास-बिनु मिलहिं राम दुख-हरन।२०३

राग कान्हरा

जौ मन लागै रामचरन अस।
देह, गेह, सुत, बित, कलत्र - महँ, मगन होत बिनु जतन किए जस ॥ १ ॥
द्वंद - रहित, गत-मान, ज्ञान-रत, बिषय - बिरक्त, खटइ नाना कस।
सुख-निधान, कोसल सुजान पति, ह्वै प्रसन्न कहु, क्यों न होहिं बस ? २ ॥
सर्ब - भूत - हित, निर्ब्यलीक[1] चित, भगति - प्रेम दृढ़, नेम एक-रस।
'तुलसिदास' यह होइ तबहिं, जब द्रवै ईस, जेहि हत्यो सीस - दस ॥ ३ ॥(२०४)

जौ मन भज्यौ चहै हरि - सुरतरु।
तौ तजि बिषय - बिकार, सार भजु, अजहू-तें, मैं कहौं सोइ करु ॥ १ ॥

और पंडितोंकी सम्मतिसे भगवान्‌के चरित्रोंका गान करना ही चाँचर (होलीका नाच) है। जिनके मनमें ऐसा विचार दृढ हो जाय वे संसार-सागरसे पार हो सकते हैं और फिर यम-यातनाके जालमें कभी पड़ ही नहीं सकते ॥१८॥ केवल भगवान् ही संशय (अविद्या)-का नाश कर सकते, दुःख दूर कर सकते और सब सुखोंसे भरे हुए हैं। संत-महात्माओंकी कृपाके बिना किसी भी अन्य उपायसे वे प्राप्त नहीं हो सकते ॥ १९ ॥ भवसागरसे पार होनेके लिये केवल संतोंके चरण ही सबसे शुद्ध जहाज हैं। तुलसीदास कहते हैं कि (सन्तोंकी चरण-सेवा करनेपर) सब दुःख हर लेनेवाले राम बिना प्रयास ही मिल सकेंगे ॥ २० ॥ (२०३)

हमारा यह मन जिस प्रकार शरीर, गृह, पुत्र, धन और स्त्रीमें ही स्वभावसे मग्न रहता है उसी प्रकार यदि यह रामके चरणोंमें लग जाता ॥ १ ॥ तो यह मन सुख-दुःख और मान-अपमान आदि द्वन्द्वोंसे रहित हो जाता, अभिमान-रहित शुद्ध ज्ञानमें लग रहता और विषयोंसे तो ऐसा विरक्त हो जाता कि उनकी अनेक प्रकारकी परीक्षाओंमें भी सदा खरा उतरता (कभी विषयोंमें न फँस पाता)। ऐसा हो जाय तब फिर भला सुखके भंडार सुजान राम प्रसन्न होकर भला क्यों न उसके वशमें हो जायँगे ? ॥ २ ॥ (ऐसा हो जानेपर) वह सदा सब प्राणियोंका हित करने लगता। उसका चित्त निर्मल हो जाता, भक्ति और प्रेम दृढ हो जाते और वह सदा एक नियमसे रहने लगता। तुलसीदास कहते हैं कि यह दशा तभी प्राप्त होगी जब रावणको मार डालनेवाले समर्थ स्वामी राम कृपा कर देंगे (अन्यथा नहीं) ॥ ३ ॥ २०४

अरे मन ! यदि तू कल्पवृक्षकेसे स्वभाववाले (सब कुछ मन चाहा दे डाल सकनेवाले) भगवान् हरिका भजन करना चाहता है तो काम, क्रोध आदि निस्सार विषयोंकी-लिप्सा छोड़कर साररूप राम-नामका भजन किया कर। मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह कमसे कम अबसे तो करने लग (अभी-तक तो तूने मेरी एक न सुनकर दी पर अभी भी सदय है, तू सजग होकर मेरा कहना मान ले) ॥ १ ॥

१. निर्ब्यलीक = निर्मल।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति हि, चारि दृढ़ करि धरु।
काम, क्रोध, अरु लोभ, मोह, मद, राग, द्वेष करि निसेष परिहरु ॥ २ ॥
स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा करु, अनुसरु।
नयननि निरखि कृपा - समुद्र हरि अगजग - रूप भूप सीताबरु ॥ ३ ॥
इहै भगति - बैराग्य - ज्ञान, यह हरि - तोषन, यह सुभ ब्रत आचरु।
'तुलसिदास' सिव-मत मारग यह, चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु ॥४॥(२०५)

नाहिंन कोउ सरन लायक है, श्रीरघुपति-सम बिपति निवारन।
काको सहज सुभाउ सेव - बस, काहि प्रनत - पर प्रीति अकारन ॥ १ ॥
जन-गुन अलप सुमेरु गनत करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपाल, भगत - चिंतामनि, बिरद पुनीत पतित जन - तारन ॥ २ ॥
सुमिरत सुलभ, दास-दुख सुनि, हरि चलत तुरत पट पीत सँभार न।
साखि पुरान - निगम - आगम सब, जानत द्रपदसुता अरु बारन[1] ॥ ३ ॥

समता, सन्तोष, निर्मल विचार और सत्संग, इन चारोंका दृढतापूर्वक निर्वाह करने लगा तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार एवं राग-द्वेष आदि विकारोंको विशेष रूपसे छोड़ दे। क्योंकि जबतक तेरे हृदयमें इन दुर्गुणोंका वास रहेगा तबतक सद्गुण किसी भी प्रकार न आ सकेंगे ॥२॥ अपने कानोंसे भगवान्‌की कथा-वार्ता सुना कर, मुखसे हरिका ध्यान किया कर, मस्तकसे भगवान्‌को प्रणाम और हाथोंसे भगवान्‌की सेवा किया कर तभी तेरा शरीर सार्थक होगा अन्यथा विषयोंमें मग्न रहकर तो तू नष्ट ही हो जायगा ॥ ३ ॥ यही भक्ति है, यही वैराग्य है, यही ज्ञान है और इसीसे भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। अतः, तू इसी कल्याण-कारी व्रतका आचरण कर। देख तुलसीदास ! यह मैं तुझे भगवान् शंकरका बताया हुआ मार्ग बता रहा हूँ। इस कल्याणकारी मार्गपर चलनेसे तुझे कभी स्वप्नमें भी भय नहीं रहेगा ॥ ४ ॥ (२०५)

रामके समान दूसरा और कोई नहीं है जो तेरा संकट दूर करके तुझे अपनी शरणमें ले ले। (उन्हें छोड़कर) और कौन है जो सहज स्वभावसे ही सेवकोंके वशमें हुआ रहता हो तथा कौन है जिसके हृदयमें शरणमें आए हुओंके प्रति निःस्वार्थ प्रेम रहा करता हो ? ॥१॥ अपने भक्तोंके साधारण गुण भी वे सुमेरु पर्वतके समान बहुत बड़ा मानते हैं और उसकी करोड़ों (अनेक) बुराइयाँ (दोष) देखकर भी वे भुला देते हैं। वे अत्यन्त दयालु हैं और चिन्तामणिके समान अपने भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करते रहते हैं। उनकी प्रशंसामें जो कुछ कहा जाता है सब पवित्र है। वे तो पतित (अधम) भक्तोंका भी उद्धार कर डालते हैं ॥ १ ॥ वे स्मरण करते ही बड़ी सरलतासे आ पहुँचते हैं (और दयालु तो ऐसे हैं कि) वे अपने भक्तोंपर दुःख पड़ता सुनते ही तुरन्त (सहायताको) ऐसे दौड़ पड़ते हैं कि अपना पीताम्बर-तक नहीं सँभाल पाते। (पुराण, वेद और शास्त्र सब इस बातके साक्षी हैं तथा द्रौपदी और गजेन्द्र तो भली प्रकार जानते ही हैं कि आप कितने भक्तवत्सल हैं (कि उनकी सहायताको दौड़ गए) ॥ ३ ॥ अरे तुलसीदास ! जिन कवियों और विद्वज्जनोंने लोभ, मोह, मद

---

१. बारन = वारण (हाथी)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जाको जस गावत कबि - कोबिद, जिनके लोभ - मोह - मद - मार न ।
'तुलसिदास' तजि आस सकल, भजु कोसलपति मुनिबधू-उधारन ॥ ४ ॥(२०६)

भजिबे लायक, सुखदायक, रघुनायक-सरिस सरन-प्रद दूजो नाहिंन ।
आनँदभवन, दुख-दवन, सोक-समन, रमा-रमन गुन-गनत सिराहिं न ॥ १ ॥
आरत, अधम, कुजाति, कुटिल, खल, पतित, सभीत कहूँ जे समाहिं न ।
सुमिरत नाम बिबस हू बारक, पावत सो पद जहँ सुर जाहिं न ॥ २ ॥
जेहि पद-कमल लुबुध मुनि-मधुकर, बिरत जे सुगतिहु परम लुभाहिं न ।
'तुलसिदास' सठ तेहिंन भजसि कस, कारुनीक जु अनाथहिं दाहिन ॥ ३ ॥(२०७)

राग कल्याण

नाथ - सों कौन बिनती कहि सुनावौं !
त्रिबिध अनगनित अवलोकि अघ आपने, सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥१॥
बिरचि हरि - भक्ति - को बेष बर टाटिका, कपट दल हरित पल्लवनि छावौं ।
नाम - लागि लाइ, लासा ललित - बचन कहि, व्याध ज्यों विषय - बिहँगनि बझावौं ॥२॥

और कामका त्याग कर दिया है वे जिनका यशोगान किया करते हैं तू सारी आशाएँ त्यागकर उन अहल्याका उद्धार करनेवाले कोशलेन्द्र रामका बैठकर भजन कर ॥ ४ ॥ (२०६)

रामके समान दूसरा कोई ऐसा स्वामी नहीं है जिसका भजन किया जाय, जो सबको आनन्द देता रहता है और शरणमें आएहुएकी रक्षा करता है। उन आनन्दके धाम, दुःख मिटा डालनेवाले, शोक हरनेवाले और लक्ष्मीके पति भगवान्‌में इतने गुण हैं कि गिनते-गिनते भी समाप्त नहीं हो कर देते ॥१॥ जिस दुखी, नीच, कुजाति, कपटी, दुष्ट, पापी और भयभीतकी कहीं रक्षा नहीं हो पाती, वे भी केवल एक बार राम-नाम स्मरण करके उस पदपर जा पहुँचते हैं जहाँ देवता भी नहीं जा पाते और वे निर्वाण प्राप्त करके सदाके लिये जन्म-मरणसे मुक्त हो रहते हैं ॥ २ ॥ अरे तुलसीदास ! जिनके चरण-कमलोंमें ऐसे-ऐसे विरक्त मुनि भौंरोंकी भाँति लिपटे पड़े रहते हैं जिन्हें मोक्ष-तकका भी लोभ नहीं है और जो अनाथोंपर भी कृपा करते रहते हैं, तू भी अनाथोंपर सदा कृपा करनेवाले उन दयालु प्रभुका जाकर भजन क्यों नहीं करता ? ॥ ३ ॥ (२०७)

नाथ ! मैं आपसे कौन-सी विनति कहकर सुनाऊँ ? जब मैं अपने तीनों प्रकारके (कायिक, वाचिक और मानसिक) अगणित पाप देखता हूँ, तो आपकी शरणमें सम्मुख आते हुए संकुचित होकर स्वयं सिर नीचा कर लेता हूँ ॥ १ ॥ मैं श्रेष्ठ हरिभक्तोंका-सा सुन्दर वेष बनाकर उसे अनेक प्रकारके छल-कपटके हरे-हरे पल्लवोंसे छाए रखता हूँ। उसमें आपके नामका चारा फैंककर, सुन्दर वचनोंसे उसमें कीर्त्तन और महत्त्वका लासा लगाकर बहेलियोंकी भाँति विषय-रूपी पक्षी फँसाता रहता हूँ (जैसे बहेलिया पक्षियोंको फँसानेके लिये जाल फैलाकर उसे पत्तोंसे ढक कर उसपर चारा डालता और लासा लगाकर पक्षी फँसाता है वैसे ही मैं भी भक्तका कपटी वेष बनाकर आपका नाम और कीर्त्तनका ढोंग करके सांसारिक भोग एकत्र करता हूँ) ॥ २ ॥ मैं तो इतना बड़ा पापी हूँ कि मेरे एक-एक रोमपर सौ-सौ करोड़ पापी निछावर किए जा सकते हैं फिर भी मैं हूँ कि साधुओंकी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुटिल सत कोटि मेरे रोम - पर वारियहि, साधु - गनती - में पहिलेहिं गनावौं।
परम बर्बर, खर्ब - गर्ब - पर्बत चढ़्यो, अज्ञ सर्बज्ञ जन - मनि जनावौं ॥ ३ ॥
साँच कैधौं झूठ मोको कहत कोउ, कोउ, राम ! रावरो हौंहुँ तुम्हरो जन कहावौं।
बिरुद - की लाज करि दास तुलसिहिं, देव ! लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ॥४॥(२०८)

नाहिनै नाथ अवलंब मोहिं आन - की।
करम - मन - बचन पन सत्य, करुनानिधे ! एक गति राम भवदीय पदत्रान - की ॥ १ ॥
कोह - मद - मोह - ममतायतन जानि मन, बात नहिं जाति कहि ज्ञान-बिज्ञान - की।
काम - संकल्प उर निरखि बहु बासनहिं, आस नहिं एक हू आँक निरवान - की ॥ २ ॥
बेद - बोधित करम - धरम-बिनु, अगम अति, जदपि जिय लालसा अमरपुर जान-की।
सिद्ध, सुर, मनुज, दनुजादि सेवत कठिन, द्रवहिं हठ - जोग, दिए भोग बलि प्रान-की ॥ ३ ॥
भगति दुरलभ परम, संभु-सुक - मुनि-मधुप, प्यास पदकंज - मकरंद - मधु-पान - की।
पतित-पावन सुनत नाम बिस्रामकृत, भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान - की ॥ ४ ॥

गिनतीमें अपनेको सबसे प्रथम गिनवानेकी साध रखता हूँ। मैं हूँ तो बड़ा ही उद्दण्ड और तुच्छ परन्तु चढ़ा बैठा हूँ गर्वके पहाड़पर। यद्यपि मैं हूँ तो मूर्ख, परन्तु अपनेको सर्वज्ञ हरिभक्तोंमें श्रेष्ठ कहलाता फिरता हूँ ॥ ३ ॥ श्रीराम ! झूठ या सच, पर कोई-कोई मुझे आपका भक्त कहते हैं और मैं भी अपनेको आपका ही दास कहलाता हूँ। देव ! अपने विरुद (पतितपावन, दीनबन्धु एवं प्रणतपाल आदि नामों)-की लज्जा करके इस तुलसीको भी अपना लीजिए, अब इसकी और उपेक्षा न कीजिए ॥ ४ ॥ (२०८)

नाथ ! मुझे और किसीका कोई सहारा नहीं है। करुणानिधि राम ! मन, वचन और कर्मसे मेरी यही सच्ची प्रतिज्ञा है कि यदि मुझे किसीका सहारा मिले तो केवल आपके पदत्राण (जूतों)-का ही सहारा मिले (आपके ही चरणोंमें पड़ा रहूँ) ॥ १ ॥ अपने मनको क्रोध, मद (अहंकार), मोह (अज्ञान), और ममताका भंडार जानकर भी उससे ज्ञान-विज्ञानकी चरचा कैसे की जा सकती है ? हृदयमें अनेक प्रकारकी कामनाओंके संकल्प तथा अनेक विषयोंकी वासनाएँ उठती देखकर तो मुझे मोक्षके अंश-तककी प्राप्तिकी आशा नहीं बची रह गई है ॥२॥ यद्यपि मेरे मनमें स्वर्गलोक जानेकी लालसा तो बहुत है, तथापि वह (स्वर्ग) तबतक सर्वथा अगम है, जबतक मैं यज्ञ आदि न कर लूँ (पर वह भी मुझसे नहीं हो सकता)। रही सिद्धों, देवताओं, मनुष्यों, और दैत्यों आदिकी सेवाकी बात, वह तो बहुत ही कठिन है, क्योंकि वे सब या तो हठयोग[1] करनेसे या प्राणों (प्राणियों, जीवों)-की बलि देनेसे प्रसन्न होते हैं ॥३॥ रही आपकी भक्तिकी बात, वह तो मेरे लिये और भी दुर्लभ है, क्योंकि शिव, शुकदेव और व्यास आदि मुनि ही आपके चरण-कमलके मकरंदके प्यासे बने रहते हैं (वे ही सदा पीते रहनेपर भी तृप्त नहीं हो पाते)। हाँ, आपका पतित-पावन नाम सुनकर चित्तमें अवश्य शान्ति मिलती है (कि मैं पतित हूँ, मेरा भी उद्धार हो जायगा)। फिर भी यही समझकर चित्तमें

१. हठयोग : आसन सिद्ध करके रेचक, पूरक और कुंभकके द्वारा प्राण-वायुको साधना, धौती आदि षट्कर्म करना तथा शरीरके सब वायु साध लेना। इससे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, रोग, शोक, ताप और सुख-दुःख समाप्त होकर परमानन्द मिलता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूप कहि, भूप ! मैं सक्ति आपान - की ।
'दासतुलसी' सोउ त्रास नहिं गनत मन, सुमिरि गुह, गीध, गज, ज्ञाति हनुमान-की ॥५॥(२०९)

और कहँ ठौर, रघुबंसमनि मेरे ?
पतित - पावन प्रनत - प्रान असरन सरन बाँकुरे बिरुद बिरुदैत केहि - केरे ॥ १ ॥
समुझि जिय दोष अति रोष करि राम - कै करत नहिं कान बिनती बदन फेरे ।
तदपि ह्वै निडर हौं कहौं, करुनासिंधु ! क्योंऽब रहि जात सुनि बात बिनु हेरे ॥ २ ॥
मुख्य रुचि होति बसिबे - को पुर रावरे, राम तेहिं रुचिहिं कामादि गन घेरे ।
अगम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम - बल क्यों बसौं जम-नगर नेरे ॥ १ ॥
कतहुँ नहिं ठाउँ, कहँ जाउँ, कोसलनाथ ! दीन, बित - हीन, हौं बिकल बिनु डेरे ।
दास तुलसिहिं बास देहु अब करि कृपा, बसत गज-गीध-ब्याधादि जेहि खेरे ॥४॥(२१०)

कबहुँ रघुबंस - मनि सोउ कृपा करहुगे ?
जेहि कृपा ब्याध, गज, बिप्र, खस, तरु तरे, तिन्हहिं सम मानि मोहिं नाथ उद्धरहुगे ? ॥ १ ॥

संदेह होने लगता है कि मनमें तो अभी अभिमानकी गाँठ लगी ही है। मेरे कर्म तो इतने घोर हैं कि मुझे तो वही नरक मिलना चाहिए जहाँ मैं संसार-रूपी अंधकूपमें पड़ा सड़ता रहूँ, किन्तु महाराज ! मुझे फिर भी आपकी शक्तिका बड़ा भरोसा है। इसीसे गुह (निषाद-राज), जटायु गजेन्द्र और हनुमान्‌की जाति (वानरों)-का स्मरण करके यह तुलसीदास संसारके भयको कुछ भी नहीं समझता ॥ ५ ॥ (२०९)

रघुवंशमणि ! (आपको छोड़कर) मेरा और कहाँ ठौर-ठिकाना लग सकता है ? आपने पतितोंको पवित्र किया, शरणागतोंकी रक्षा की और अशरणको शरण दी है। आपके जैसा निराले बाने-वाला और दूसरा है कौन ? ॥ १ ॥ राम ! अपने मनमें मेरे अपराध समझकर भी यदि क्रोधपूर्वक आप मेरी विनतिपर ध्यान न दें और मेरी ओरसे आप अपना मुँह फेरे ही बैठे रहें, तो भी कृपानिधे ! मैं तो निर्भय होकर कहता ही रहूँगा (कि एकमात्र आप ही मेरे सब कुछ हैं)। फिर देखता हूँ कि मेरी ओर देखे बिना और मेरी विनति सुने बिना आप रहते कैसे हैं ? ॥२॥ मेरी तो बड़ी कामना यही है कि मैं आपके धाम (साकेत लोक)-में जा रहूँ। किन्तु नाथ ! मेरी उस रुचिको भी काम, क्रोध आदि (मानसिक विकार) घेरे बैठे हैं। मोक्ष मुझे मिलनेवाला नहीं है, (क्योंकि कामनाओंका नाश नहीं हुआ) और स्वर्ग मिलना भी कठिन है क्योंकि वह तो केवल पुण्यसे ही प्राप्त होता है। अब रह गई यमपुरी, पर वहाँ भी आपका नाम जपनेके कारण नहीं जा सकता ॥३॥ कोशलनाथ ! मैं बड़ा निर्धन और दीन हूँ (धनी होता तो कहीं रहनेका ठौर-ठिकाना बनवा लेता)। कहीं निवासका स्थान न होनेके कारण मैं व्याकुल हुआ भटक रहा हूँ। इसलिये नाथ ! (मेरी प्रार्थना है कि) इस तुलसीदासको भी उसी गाँवमें ले जा बसाइए जहाँ गजेन्द्र, जटायु, और (व्याध) वाल्मीकि आदि रहते हैं (इन्हींके समान मुझे भी अपना-लीजिए) ॥ ४ ॥ (२१०)

रघुवंशमणि राम ! क्या आप कभी मुझपर भी वह कृपा करेंगे जिस कृपासे आपने व्याध (वाल्मीकि), गजेन्द्र, अजामिल, खस एवं वृक्ष (यमलार्जुन)-को तार दिया था। नाथ ! मुझे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जोनि बहु जनमि, किय करम खल बिबिध बिधि, अधम आचरन कछु हृदय नहिँ धरहुगे।
दीन-हित, अजित, सर्बज्ञ, समरथ, प्रनतपाल, चित मृदुल, निज गुननि अनुसरहुगे ॥ २ ॥
मोह - मद - मान - कामादि खल - मंडली, सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे।
जोग-जप-ज्ञान-बिज्ञान-तें अधिक अति, अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥ ३ ॥
मंद-जन-मौलि-मनि, सकल साधनहीन, कुटिल मन, मलिन जिय, जानि जो डरहुगे।
'दास तुलसी' बेद-बिदित बिरुदावली, बिमल जस नाथ ! केहि भाँति बिस्तरहुगे ? ॥४–२११

राग केदारा

रघुपति बिपति - दवन। परम कृपालु प्रनत - प्रतिपालक पतित - पवन ॥ १ ॥
क्रूर, कुटिल, कुल-हीन, दीन, अति मलिन जवन। सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन २
गज, पिंगला, अजामिल-से खल गनै धौं कवन ? 'तुलसिदास' प्रभु केहि न दीनी गति
जानकी - रवन ॥ ३ ॥ (२१२)

हरि सम आपदाहरन। नहिँ कोउ सहज कृपालु दुसह - दुख - सागर - तरन ॥ १ ॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन। दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ[1]-धरन

भी उन्हींके समान मानकर क्या आप मेरा भी उद्धार करेंगे ? ॥ १ ॥ अनेक योनियोंमें जन्म ले-लेकर मैंने न जाने कितने प्रकारके दुष्कर्म किए हैं। क्या मेरे उन नीच आचरणोंको आप भुला सकेंगे ? क्या आप अपने कोमल चित्तसे दीनोंके हितैषी, अजेय, सर्वज्ञ, समर्थ और शरणागत-पालक आदि गुणोंका प्रदर्शन करेंगे ? (इन गुणोंके द्वारा मेरा भी हित करेंगे ?) ॥ २ ॥ मेरे हृदयमें बसे हुए मोह, मद (अभिमान), काम आदि दुष्टोंके समूहको उनके कुल-सहित निर्मूल करके क्या मेरा दुःसह दुःख दूर करेंगे ? क्या आप योग, जप, ज्ञान, विज्ञानसे भी अधिक अपनी निर्मूल, दृढ भक्ति मुझे देकर मुझे परम सुख देंगे ? ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं कि नाथ ! यदि आप भी कहीं मुझे नीचोंका सरदार, सारे साधनोंसे हीन, कुटिल और मलिन मनवाला मानकर डर बैठेंगे तो बताइए आप अपनी वेद-विख्यात निर्मल कीर्तिका प्रसार फिर कैसे करेंगे ? ॥ ४ ॥ (२११)

राम तो सबकी विपत्तियाँ मिटा डालते हैं। वे बड़े ही कृपालु हैं, शरणमें आए हुएका पालन करते हैं और पतितोंको पवित्र कर देते हैं ॥ १ ॥ क्रूर, कुटिल, नीच कुलमें उत्पन्न, दीन और अत्यन्त मलिन म्लेच्छ (यवन)-तकको भी रामने अपना (राम) नाम स्मरण करते ही अपने परम धाम (वैकुण्ठ) भेज पहुँचाया ॥ २ ॥ गजेन्द्र, पिंगला (गणिका) और अजामिल आदिके समान इतने दुष्टोंको आपने सद्गति दे डाली है कि उन्हें गिन कौन सकता है ? बता तुलसीदास ! ऐसा कौन है जिसे जानकीनाथ रामने सद्गति न दे डाली हो ॥ ३ ॥ (२१२)

रामको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है जो सब प्रकारकी आपदाएँ नाश कर डाले, जो स्वभावसे ही कृपालु हो और भयंकर दुःखके सागरसे पार उतार दे (दुःख दूर कर दे) ॥ १ ॥ (ग्राहके द्वारा पकड़े जानेपर) जब गजेन्द्र अपना सारा बल लगाकर हार चुका तब कमलका पुष्प लेकर प्रभुकी शरणमें गया। भगवान् उसके दीन वचन सुनकर, गरुडका भी परित्याग करके सुदर्शन चक्र लेकर

---

१. सुनाभ=सुदर्शन चक्र।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

द्रुपदसुता-को लग्यौ दुसासन नगन करन। 'हा हरि! पाहि' कहत पूरे पट बिबिध बरन ३
इहै जानि सुर-नर मुनि-कोबिद सेवत चरन। 'तुलसिदास' प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ४

राग कल्याण (२१३)

ऐसी कौन प्रभुकी रीति? बिरुद-हेतु पुनीत परिहरि, पाँवरनि - पर प्रीति ॥ १ ॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ। मातु-की गति दई ताहि कृपाल जादवराइ ॥ २ ॥
काम-मोहित गोपिकनि-पर कृपा अतुलित कीन्ह। जगत-जनक बिरंचि जिनके चरन-की रज लीन्ह ३
नेम-सों सिसुपाल दिन प्रति देत गनि-गनि गारि। कियो लीन सु आपु-में हरि राजसभा-मँझारि ४
ब्याध चित दै चरन माऱ्यो मूढ़-मति मृग जानि। सो सदेह सुलोक पठयो, प्रगट करि निज बानि ५
कौन तिनकी कहै जिनके सुकृत अरु अघ दोउ। प्रगट पातक रूप 'तुलसी' सरन राख्यो सोउ ६ (२१४

चले आए ॥२॥ जब द्रौपदीको नीच दुःशासन (भरी सभामें नंगी किए डाल रहा था, तब द्रौपदीके इतना कहते ही 'हा हरि! मेरी रक्षा कीजिए', भगवान्‌ने विविध प्रकारके वस्त्रोंसे उसे पूर्ण कर दिया। (पता ही न चला कि—'सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि नारी ही की सारी है कि सारी ही की नारी है) ॥ ३ ॥ आपके इन्हीं गुणोंको जानकर देवता, मनुष्य, मुनि और पंडित सब आपके चरणोंकी सेवामें लगे रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि राजा नृग[1]का उद्धार करनेवाले प्रभुने किसका-किसका उद्धार नहीं कर डाला ॥ ४ ॥ (२१३)

रामकी कैसी विचित्र रीति है कि वे अपना विरुद (यश) बनाए रखनेके लिये पवित्र प्राणियोंको छोड़कर केवल नीचोंसे ही प्रीति रखते हैं ॥ १ ॥ देखिए! राक्षसी पूतना कृष्णको मारनेके विचारसे अपने स्तनपर विष पोतकर गई थी, किन्तु कृष्णने उसे माताकी-सी सद्गति दे डाली ॥ २ ॥ काम-वासनासे मोहित गोपिकाओंपर आपने इतनी बड़ी कृपा की कि ब्रह्माने भी उनके चरणोंकी धूल अपने सिरपर उठा चढ़ाई ॥ ३ ॥ जो शिशुपाल प्रतिदिन गिन-गिनकर कृष्णको गालियाँ दिया करता था, उसे आपने पाण्डवोंकी राजसभामें (युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें) सबके सामने अपनेमें लीन कर लिया ॥ ४ ॥ (जरा नामके) मूर्ख बहेलियेने भगवान् कृष्णको मृग जानकर उनके चरणमें ध्यान लगाकर बाण मारा था। उसको भी आपने अपनी स्वाभाविक दयालुतासे सदेह स्वर्ग भेज दिया ॥ ५ ॥ जिन्होंने पुण्य और पाप दोनों किए हैं, उनकी तो बात ही अलग है (उन्हें तो उनके पुण्योंके लिये सद्गति मिलनी ही चाहिए), परन्तु (आश्चर्य तो इस बातका है कि) जो तुलसीदास प्रत्यक्ष रूपसे पापकी मूर्त्ति है उसे-तकको भी आपने अपनी शरणमें ले डाला ॥ ६ ॥ (२१४)

१. नृग : राजा नृग बड़े प्रसिद्ध दानी थे। एक बार उन्होंने भूलसे अपनी गौओंमें आई हुई किसी ब्राह्मणकी गौ अपनी ही गौ समझकर दानमें दे डाली। इस भूलपर ब्राह्मणके शापसे राजाको एक सहस्र वर्ष-तक गिरगिट होकर कुएँमें पड़ा रहना पड़ा। श्रीकृष्णने उसका उद्धार करके उसे परम धाम भेज दिया।—महाभारत अनुशासन पर्व अ० ७०

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रीरघुबीर - की यह बानि। नीचहू - सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥ १ ॥ परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि ? लियो सो उर लाइ सुत-ज्यों प्रेमकी पहिचानि ।२। गीध कौन दयालु, जो बिधि रच्यो हिंसा सानि। जनक-ज्यों रघुनाथ ता-को दियो जल, निज पानि प्रकृति मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुन-खानि।खात ताके दिए फल अति रुचि बखानि-बखानि रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि।भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि ५ कौन सुभग सुसील बानर?जिनहि सुमिरत हानि। किये ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥६॥ राम सहज कृपालु कोमल दीन - हित दिन दानि। भजहि ऐसे प्रभुहिं 'तुलसी' कुटिल कपट न ठानि ॥ ७ ॥ (२१५)

हरि तजि और भजिए काहि ?

नाहिंनै कोउ राम - सों, ममता प्रनत-पर जाहि ॥ १ ॥
कनक - कसिपु बिरंचि - को जन, करम, मन अरु बात।
सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो, काल-के घर जात ॥ २ ॥
संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिय दस-सीस।
करत राम बिरोध सो, सपनेहु न हटक्यो ईस ॥ ३ ॥

यह तो रामकी ही प्रकृति है कि वे जिनकी अच्छी प्रीति देखते हैं उन नीचोंसे भी स्नेह करने लगते हैं ॥ १ ॥ निषादराज (गुह) परम नीच और मूर्ख था, उसे पूछता ही कौन था ? परन्तु रामने उसके हृदयका प्रेम पहचानकर उसे पुत्रके समान अपने हृदयसे उठा लगाया ॥ २ ॥ गीध (जटायु) कौन बड़ा दयालु था, जिसे विधाताने ही हिंसाके लिये ही बना रक्खा था। उसे भी रामने पिताके तुल्य मानकर अपने हाथों उसे जल दिया (उसका तर्पण किया)। जो शबरी स्वभावसे ही मलिन और नीच जातिकी थी और सारे अवगुणोंसे भरी थी उसके दिए हुए फल रामने बड़ी रुचिके साथ बार-बार सराहते हुए खाए ॥ ४ ॥ राक्षस विभीषण, जो शत्रु था, उसे भी अपनी शरणमें आया हुआ देखकर रामने अपनी देहकी सुध भुलाकर भरतके समान हृदयसे उठा लगाया ॥ ५ ॥ बताइए वानर कौन बड़े अच्छे और सुशील स्वभावके थे जिनका प्रातः स्मरण करनेसे हानि ही होती है (भोजन-तक नहीं मिलता), उन्हें भी रामने अपना मित्र बना छोड़ा और वनसे घर (अयोध्या) लौट आनेपर उनकी भली प्रकारसे (वस्त्र-अलंकार देकर) सम्मानके साथ पूजा की ॥ ६ ॥ (इन सबसे सिद्ध है कि) राम स्वभावसे ही बड़े कृपालु और कोमल चित्तवाले हैं। वे दीनोंका हित करते रहते और नित्य दान देते रहते हैं। अतः, अरे तुलसीदास ! कपटका बर्ताव छोड़कर ऐसे प्रभु रामका बैठकर भजन किया कर ॥ ७ ॥ (२१५)

बताइए, रामको छोड़कर और किसका भजन किया जाय ? रामको छोड़कर ऐसा कोई नहीं है जो शरणमें आएहुओंसे इतनी ममता करता हो ॥ १ ॥ (प्रह्लादका पिता) हिरण्यकशिपु मन, वचन और कर्मसे ब्रह्माका बड़ा भक्त था, परन्तु जब वह अपने पुत्र प्रह्लादको कष्ट देने लगा था तब ब्रह्माने भी आकर उसे कालके घर जानेसे नहीं रोका ॥२॥ संसार जानता है कि रावणने कई बार अपने दसों सिर काट-काट शिवपर चढ़ा दिए थे। पर जब उसने रामसे वैर ठान लिया तब शिवने स्वप्नमें भी उसकी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

और देवन - की कहौं का, स्वारथहि - के मीत।
कबहुँ काहु न राखि लिय, कोउ सरन गये सभीत ॥ ४ ॥
को न सेवत देत संपति ? लोक - हू यह रीति।
'दास तुलसी' दीन पर, इक राम - ही - की प्रीति ॥ ५ ॥ (२१६)

जौ पै दूसरो कोउ होइ।
तौ हौं बारहिं बार प्रभु कत, दुख सुनावौं रोइ ॥ १ ॥
काहि ममता दीन - पर, को पतित - पावन नाम ?
पाप - मूल अजामिलहि, केहि दियो अपनो धाम ॥ २ ॥
रहे संभु - बिरंचि - सुरपति लोकपाल अनेक।
सोक - सरि बूड़त करीसहिं[1], दई काहु न टेक ॥ ३ ॥
बिपुल भूपति-सदसि महँ, नर-नारि[2] कह्यो 'प्रभु पाहि !'
सकल समरथ रहे, काहु न बसन दीन्हों ताहि ॥ ४ ॥
एक मुख क्यों कहौं करुना - सिंधु - के गुनगाथ ?
भगत - हित धरि देह, काह न कियो कोसलनाथ ॥ ५ ॥
आपु - से कहुँ सौंपिए मोहिं, जौ - पै अतिहि घिनात।
'दास तुलसी' और बिधि क्यों, चरन परिहरि जात ? ॥ ६ ॥ (११७)

रक्षा नहीं की ॥३॥ रही और देवताओंकी बात ! वे सब तो यों ही स्वार्थके साथी हैं। उनमेंसे किसीने कभी किसी भयभीत होकर शरणमें आनेवालेकी रक्षा नहीं की ॥ ४ ॥ सेवा करनेपर भला कौन ऐसा है जो सम्पत्ति (धन) नहीं देता (सभी देते हैं)। यह तो संसारकी साधारण रीति है। परन्तु आप ही केवल एक ऐसे हैं जो तुलसीदास-जैसे दीनपर भी प्रीति करते रहते हैं ॥ ५ ॥ (२१६)

प्रभो ! यदि (आपके अतिरिक्त वैसा ही समर्थ) दूसरा कोई होता तो मैं बार-बार अपना दुखड़ा आपको ही रो-रोकर क्यों सुनाता ? ॥ १ ॥ भला (आपके अतिरिक्त) और कौन है जिसके हृदयमें दीनोंके प्रति ममता हो और जिसका नाम 'पतित-पावन' हो ? (आपको छोड़कर) पापी अजामिलको किसने अपने धाम (वैकुण्ठ) भेज दिया ? (किसीने भी नहीं) ॥ २ ॥ यद्यपि शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि अनेक लोकपाल थे, परन्तु कष्टमें पड़े हुए गजराजको कोई भी सहारा नहीं दे पाया ॥ ३ ॥ जब अनेक राजाओंके बीच (दुर्योधनकी राजसभामें) अर्जुनकी पत्नी द्रौपदीने आर्त्त स्वरमें पुकारा—'प्रभु रक्षा कीजिए', तब वहाँ सभी समर्थ पुरुषों (भीष्म, द्रोण, विदुर)-के होते हुए, किसीने भी उस (उघाड़ी की जाती हुई द्रौपदी)-को वस्त्र नहीं दिया ॥ ४ ॥ करुणाके सागर परम दयालु ! मैं एक मुखसे आपके गुणोंका किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ ? कोशलनाथ राम ! आपने अपने भक्तोंके लिये देह धारण करके क्या-क्या उपकार नहीं किए ? ॥ ५ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि आप मुझसे अत्यन्त घृणा ही करते हों तो मुझे किसी अपने ही समान हाथ सौंप दीजिए, अन्यथा और किसी प्रकार तो मैं आपके चरण छोड़नेवाला हूँ नहीं ॥६॥ (२१७)

१. करीसहिं = (करि + ईश) गजराजको। २. नर-नारि = नर-नारायणमेंसे नरके अवतार अर्जुनकी स्त्री द्रौपदी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कबहुँ देखाइहौ हरि चरन ?
समन सकल कलेस कलिमल, सकल - मंगल - करन ॥ १ ॥
सरद - भव सुन्दर तरुनतर अरुन बारिज - बरन ।
लच्छि - लालित ललित करतल, छबि अनूपम धरन ॥ २ ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट बटु, बलि-छरन ।
बिप्र - तिय, नृग, बधिक - के दुख - दोष दारुन दरन ॥ ३ ॥
सिद्ध - सुर - मुनि - वृंद - बंदित सुखद सब - कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं, जन होत तारन-तरन ॥ ४ ॥
कृपासिंधु, सुजान, रघुबर, प्रनत - आरति - हरन ।
दरस - आस - पियास 'तुलसीदास' चाहत मरन ॥ ५ ॥ (२१८)

द्वार हौं भोर - ही - को आज ।
रटत ररिहा, आरि और न, कौर ही - तें काज ॥ १ ॥
कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाज ।
नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ - में - की खाज ॥ २ ॥
हहरि हिय मैं सदय बूझ्यो जाइ साधु - समाज ।
मोहुँ-से कहुँ कतहुँ कोउ, तिन्ह कह्यो कोसलराज ॥ ३ ॥

राम ! क्या आप कभी अपने उन चरणोंके दर्शन करावेंगे, जो सारे क्लेश और कलिकालके सब पाप नष्ट कर सकते हैं तथा सब प्रकारका कल्याण कर सकते हैं ? ॥ १ ॥ आपके जो (चरण) शरद् ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले, सुन्दर और नये कमलके समान लाल हैं, जिन्हें लक्ष्मी भी अपनी सुन्दर हथेलियोंसे पलोटा करती हैं, जो (चरण) बहुत ही सुन्दर हैं, ॥ २ ॥ जिन चरणोंसे गंगा उत्पन्न हुई हैं, जो चरण कामदेवके शत्रु शिवको बहुत प्रिय हैं, जिन चरणोंने कपट बटुका रूप बनाकर राजा बलिको छलसे जीत लिया और अहल्या, राजा नृग, व्याध (वाल्मीकि)-के सब कष्ट तथा पाप नष्ट कर डाले, ॥ ३ ॥ जिन चरणोंकी वन्दना सिद्ध, देवता तथा मुनि किया करते हैं, जो सबको सुख और शरण देते हैं, जिन (चरणों)-का एक बार भी हृदयमें ध्यान करके भक्त भवसागर पार कर जाते हैं, ॥ ४ ॥ कृपाके सागर, सुजान राम ! आप शरणमें आए हुए लोगोंके रक्षक हैं । उन्हीं चरणोंके दर्शनकी आशाकी प्यासमें यह तुलसीदास मरा जा रहा है । अतः, आप उन्हीं चरणोंका दर्शन कराकर उसकी रक्षा कर लीजिए ॥ ५ ॥ (२१८)

राम ! आज मैं सबेरेसे ही आपके द्वारपर डटा बैठा हूँ और बराबर रट लगाए गिड़गिड़ाए जा रहा हूँ । मुझे और कुछ नहीं, केवल एक कौर (टुकड़ा) मिल जाय वही बहुत है (आपकी तनिक सी कृपा चाहता हूँ) ॥१॥ (कारण यही है कि) यह कलिकाल ऐसा भयंकर दुर्भिक्ष है कि इसमें सब दुर्व्यवस्था ही दुर्व्यवस्था है (कहीं भी ऐसी व्यवस्था नहीं है जहाँ थोड़ी भी शांति मिल सके) । मेरे जैसे नीचके लिये (आपकी कृपाकी) ऊँची चाह वैसा ही दुःख दे रही है जैसे कोढ़में खाज होती है ॥ २ ॥ इसलिये बहुत डरते-डरते मैंने दयालु साधुओंसे पूछा कि मेरे-जैसे गये-बीतोंके लिये भी कहीं कोई ठौर ठिकाना है ? तो उन्होंने कहा—'है क्यों नहीं, कोशलराज राम तो हैं ही ।' अतः

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations -

दीनता दारिद - दलन, को कृपा - बारिधि - बाज[1] ?
दानि दसरथ राय - के, तुम बानइत - सिरताज ॥ ४ ॥
जनमको भूखो, गरीब हौं, तू गरीबनेवाज।
पेट भरि तुलसिहिं जेंवाइय, भगति - सुधा - सुनाज ॥ ५ ॥ (२१९)

करिय सँभार कोसलराय !
और ठौर, न और गति, अवलंब नाम बिहाय ॥ १ ॥
बूझि अपनी आपनो हित आप बाप न माय।
राम राउर नाम गुरु, सुर, स्वामि, सखा, सहाय ॥ २ ॥
राम - राज न चलहि मानस - मलिन - के छल - छाय।
कोप तेहि कलिकाल कायर, मुएहि घालत घाय ॥ ३ ॥
लेत केहरि - को बयर ज्यों, भेक हनि गोमाय[2]।
त्योंहि राम - गुलाम जानि, निकाम देत कुदाय ॥ ४ ॥
अकनि याके कपट - करतब, अमित अनय अपाय।
सुखी हरिपुर बसत, होत परीछितहिं पछिताय ॥ ५ ॥
कृपासिंधु बिलोकिए, जन-मन-कि साँसति साय[3]।
सरन आयो देव, दीनदयाल ! देखन पाँय ॥ ६ ॥

परम कृपालु ! आपको छोड़कर मेरी दीनता और दरिद्रता मिटानेवाला और दूसरा कोई नहीं है। दशरथके सुपुत्र राम ! आप तो दानियोंके सिरताज हैं ॥ ४ ॥ इधर मैं तो जन्मका ही भूखा और दरिद्र हूँ और आप गरीब-नेवाज (दरिद्रोंपर कृपा करनेवाले) हैं। अतः, इस तुलसीदासको आप अपनी अमृत-भरी भक्तिके उत्तम अन्नका भर-पेट भोजन करा दीजिए (अमृतके तुल्य अपनी भक्ति दे दीजिए) ॥ ५ ॥ (२१९)

कोशलेन्द्र राम ! मेरी रक्षा कर लीजिए। आपके नामका सहारा छोड़कर न तो मेरा कहीं ठौर-ठिकाना है और न किसी दूसरे-तक पहुँच ही है ॥ १ ॥ आप स्वयं समझ-बूझकर अपने सेवकोंका ऐसा उपकार कर देते हैं जैसा माता-पिता भी नहीं कर पाते। राम ! आपका नाम ही मेरा गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और सहायक सब कुछ है ॥ २ ॥ नाथ ! आपका रामराज्य ही ऐसा राज्य है जिसपर मलिन मनवाले कलिकालके कपटकी परछाईं-तक नहीं पड़ पाती, किन्तु यह कायर कलिकाल, क्रोध करके मुझ मरेको ही मारे डाल रहा है ॥ ३ ॥ यह कलिकाल मेरे साथ वैसा ही बर्त्ताव किए जा रहा है जैसे कोई गीदड़ किसी मेंढकको मारकर शेरके बैरका बदला लेना चाहता हो (आपपर बस न चला तो मुझपर टूट पड़ा) ॥ ४ ॥ यद्यपि महाराज परीक्षित वैकुण्ठमें वास कर रहे हैं, पर इस कलिकालके कपट-पूर्ण कार्य, अन्याय और अनेक विघ्न-बाधाएँ सुनकर उन्हें भी पश्चात्ताप हो रहा है (कि मैंने उसे बिना मारे क्यों छोड़ दिया था) ॥५॥ परम कृपालु राम ! कुछ उधर (मेरी ओर) भी कृपा-दृष्टि फेर दें तो इस सेवककी भी मानसिक पीडा दूर हो जाय। दीनदयालु ! देव ! मैं आपके चरणोंका ही दर्शन करनेके लिये आपकी शरणमें आया हुआ हूँ ॥ ६ ॥

१. बाज = (सं० वर्ज्य) बिना। २. गोमाय = गोमायु, गीदड़। ३. साय = दूर हो।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निकट बोलि न बरजिए, बलि जाउँ, हनिय न हाय !
देखिहैं हनुमान गोमुख - नाहरनि - के न्याय[1] ॥ ७ ॥
अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष कषाय।
बीर सुमिरि समीर-को, घटिहै चपल चित चाय ॥ ८ ॥
बिनय सुनि बिहँसे, अनुज - सों बचन - के कहि भाय।
'भलि कही' कह्यो लखन हू हँसि, बने सकल बनाय ॥ ९ ॥
दई दीनहिं दादि, सो सुनि, सुजन - सदन बधाय।
मिटे संकट - सोच - पोच - प्रपंच - पाप - निकाय ॥ १० ॥
पेखि प्रीति-प्रतीति जन-पर, अगुन, अनघ, अमाय।
'दास तुलसी' कहत मुनिगन, जयति जय उरगाय[2] ॥ ११ ॥ (२२०)

कृपा ही - को पंथ चितवत दीन हौं दिन - राति।
होइ धौं केहि काल दीनदयाल जानि न जाति ॥ १ ॥
सगुन, ज्ञान, बिराग, भगति, सुसाधननि - की पाँति।
भजे बिकल बिलोकि कलि अघ - अवगुननि - की थाति ॥ २ ॥

मैं आपपर बलिहारी जाता हूँ। हाय हाय ! आप स्वयं मुझे अपने पास बुलाकर मत दुरदुराइए और मेरी (कलिके हाथ) हत्या न होने दीजिए। आप तनिक हनुमान्‌को ही संकेत कर देंगे तो आपका संकेत पाकर इस (कलिकाल)-की ओर वैसे ही कठोरतासे देखेंगे जैसे गायके मुखकी ओर सिंह देखता है ॥ ७ ॥ (कलिपर) जब हनुमान् अपना मुँह लाल करके भौंहें तरेरकर और अपनी आँखें क्रोधसे लाल कर बैठेंगे, तब वीरवर हनुमान्‌का नाम सुनते ही इस चंचल कलिकालका सारा पराक्रम समाप्त हो जायगा ॥ ८ ॥ मेरी यह विनति सुनकर राम मुसकरा दिए और उन्होंने अपने छोटे भाई लक्ष्मणको मेरे कहनेका तात्पर्य खोल समझाया। तब लक्ष्मणने भी हँसकर कह दिया—'जी हाँ, यह तुलसी ठीक कह रहा है।' बस, इस प्रकार (लक्ष्मणके समर्थनपर) मेरी सारी बात बन गई (मेरी प्रार्थना सफल हो गई) ॥ ९ ॥ भगवान् रामने जब इस दीन तुलसीका न्याय कर दिया (कलिकालसे उसकी रक्षा कर ली) तो यह सुनते ही सन्तोंके घर बधाइयाँ बजने लगीं और मनका दुःख, चिन्ता, छल, कपट और पाप सब नष्ट हो मिटे ॥१०॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपने सेवकपर रामका ऐसा निर्गुण, अलौकिक, पवित्र और निश्छल प्रेम देखकर सब मुनि लोग चिल्ला उठे—'भगवान्‌की जय हो ! जय हो !!' ॥ ११ ॥ २२०

दीनदयालु ! नाथ ! मैं दीनकी भाँति दिन-रात आपकी कृपाकी ही बाट देख रहा हूँ कि कभी तो मुझपर आपकी कृपा-दृष्टि पड़ेगी ही ॥ १ ॥ सद्गुण, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तथा सब अच्छे-अच्छे साधन इस कलिकालको देखते ही व्याकुल होकर भाग खड़े हुए और केवल पाप तथा दुर्गुण ही बचे पड़े रह गए ॥२॥ अत्यन्त अनीति (अन्याय) और कुरीतियों के कारण यह पृथ्वी तो सूर्यसे भी

१. गोमुख-नाहर न्याय=जैसे गौकी ओर सिंह देखे। २. उरुगाय=उरु=श्रेष्ठ+गाय=गायन, श्रेष्ठजन जिसका यश गाते हैं, विष्णु।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अति अनीति, कुरीति भइ भुइँ, तरनि हूँ - तें ताति।
जाउँ कहँ, बलि जाउँ, ठाउँ न कहूँ, मति अकुलाति ॥ ३ ॥
आप - सहित न आपनो कोउ, बाप! कठिन कुभाँति।
सींचिए घन - स्याम 'तुलसी', सालि सफल सुखाति ॥ ४ ॥ (२२१)

बलि जाउँ, और कासों कहौं ?
सदगुन-सिंधु, स्वामि, सेवक-हितु, कहुँ न कृपानिधि-सों लहौं ॥ १ ॥
जहँ-जहँ लोभ-लोल लालच-बस, निज हित चित चाहनि चहौं।
तहँ-तहँ तकत उलूक तरनि ज्यों, भटकि कुतरु-कोटर गहौं ॥ २ ॥
काल - सुभाव - करम फल-दायक सुनि बिचित्र, सिर धुनि रहौं।
मोकों सकल सदा एकहि रस, दुसह दाह दारुन दहौं ॥ ३ ॥
उचित अनाथ होइ दुख-भाजन, भयो, नाथ! किंकर, न हौं।
अब कहाय रावरो न बूझिय, सरनपाल! साँसति सहौं ॥ ४ ॥
महाराज! राजीव - बिलोचन, मगन पाप - संताप रहौं।
'तुलसी'-प्रभु! जब-तब जेहि-तेहि बिधि, राम-निबाहे निरबहौं ॥ ५ ॥ (२२२)

आपनो कबहुँ करि जानिहौ ?
राम! गरीब-निवाज! राज - मनि! बिरुद-लाज उर आनिहौ ॥ १ ॥

अधिक तप गई है। मैं आपकी बलैया लेता हूँ। बताइए, अब मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ ? मेरा कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं है।' मेरी बुद्धि घबराई पड़ रही है ॥ ३ ॥ पिता! जब अपनी ही देह अपनी नहीं है, तब दूसरे कहाँसे अपने होने लगे ? घनश्याम राम! यह तुलसी-रूपी फूली-फली धानकी खेती बस सूखने ही वाली है, अबसे भी उसे मेघ बनकर (भक्तिके जलसे) सींच डालिए ॥ ४ ॥ (२२१)

कृपानिधान राम! मैं बलिहारी जाता हूँ। आपको छोड़कर अपना दुखड़ा रोऊँ तो किसके आगे रोऊँ ? क्योंकि, आपके समान सद्गुणी, सेवकोंका हितैषी स्वामी और कहीं ढूँढे नहीं मिल पा सकता ॥१॥ मैं जहाँ-जहाँ लोभ और लालचमें पड़कर चंचल चित्तसे अपने कल्याणकी कामना करता हूँ, वहाँ-वहाँसे उसी प्रकार निराश लौट आता हूँ जैसे सूर्यको देखकर उल्लू भटकता हुआ किसी भी पेड़के खोखलेमें जा घुसता है ॥२॥ जब मैं सुनता हूँ कि काल, स्वभाव और कर्मका विचित्र फल मिलता ही है, तब मैं सिर पटक-पटककर रह जाता हूँ। मुझे तो सदा एक जैसी असहनीय कठिन जलन निरन्तर जलाती रहती है ॥३॥ ऐसा होना तो ठीक ही था क्योंकि नाथ! मैं अनाथ सब प्रकारके दुःख भी झेलता रहा और आपका सेवक भी न बन सका। किन्तु शरणागत-पालक! मेरी समझमें नहीं आता कि अब आपका दास कहलाकर भी मुझे ऐसी साँसत क्यों भोगनी पड़ रही है ॥४॥ महाराज! कमल-नयन! तुलसीदासका निर्वाह तो तभी होता दिखाई देता है जब आप ही जैसे-तैसे उसका उद्धार कर दें ॥ ५ ॥ २२२

नाथ! क्या कभी वह दिन भी आवेगा जब आप मुझे अपना समझेंगे ? राम! आप गरीब-निवाज (दीनदयालु) और राजाओंके शिरोमणि हैं, क्या कभी आप अपने विरदकी लाज रक्खेंगे ?

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सील-सिंधु, सुन्दर, सब लायक, समरथ, सदगुन-खानि हौ।
पाले, पालत, पुनि पालहुगे, प्रीति - रीति पहिचानिहौ ॥ २ ॥
बेद-पुरान कहत, जग जानत, दिन दयाल, दिन दानि हौ।
कहि आवत, बलि जाउँ, मेरि ही बार बिसारे बानि हौ ॥ ३ ॥
आरत - दीन - अनाथनि - के हित, मानत लौकिक कानि हौ।
है परिनाम भलो तुलसी - को, सरनागत - भय भानिहौ ॥ ४ ॥ (२२३)

रघुबरहिं कबहुँ मन लागिहै ?

कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल ! कपट कब त्यागि है ॥ १ ॥
गरल अमिय जानत बिमोह-बस, अमिय गनत करि आगि है।
उलटी रीति - प्रीति अपनी - की तजि, प्रभु-पद अनुरागि है ॥ २ ॥
आखर, अरथ, मंजु, मृदु, मोदक, रामप्रेम - पगि पागिहै।
अस गुन गाइ रिझाइ स्वामि - सों, पइहै जो मुँह माँगिहै ॥ ३ ॥
तू यहि बिधि सुख - सयन सोइहै, भूरि जरनि जिय भागिहै।
राम-प्रसाद 'दास तुलसी' - उर, राम - भगति जो जागिहै ॥ ४ ॥ (२२४)

॥ १ ॥ आप बड़े शीलवान्, सुन्दर, सब प्रकारसे योग्य, समर्थ और सद्गुणोंके भंडार हैं। आपने अपने आश्रितों (भक्तों)-की प्रीतिकी रीति पहचानकर उनका पालन किया है, करते हैं, और आगे भी करते रहेंगे ॥ २ ॥ वेद भी कहता है और संसार भी जानता है कि आप नित्य प्रति दीनोंपर दया करते और उन्हें नित्य प्रति दान देते चलते हैं। मैं बलिहारी जाता हूँ, मुझे विवश होकर कहना ही पड़ता है कि आपने मेरी बार अपना विरद भुला दिया है ॥ ३ ॥ आप दुखियों, दीनों, और अनाथोंका कल्याण करते रहते हैं तथा अपनी लौकिक मर्यादा भी मानते हैं। इससे परिणाममें तुलसीदासका कल्याण ही होगा क्योंकि आप शरणागतोंके सारे सांसारिक भय नष्ट कर ही डालते हैं ॥ ४ ॥ (२२३)

अरे मन ! क्या तू कभी रामसे लगन लगा पावेगा ? अरे कुटिल ! तू कुमार्ग, कुत्सित आचरण, दुर्बुद्धि, कुत्सित कामनाएँ और कपट कब छोड़ेगा ? ॥ १ ॥ अरे ! तू (अज्ञानके वशमें पड़कर) विषयरूपी विषको तो अमृतके समान और (भगवद्-भजन और रामनाम-कीर्तनरूपी) अमृतको अग्निके समान (दुःखद और दाहक) समझता है। अपने हृदयकी इस उलटी रीति-रूपी (विषयकी) प्रीति छोड़कर क्या कभी तू रामके चरणोंसे अनुराग करेगा ? ॥ २ ॥ (राम-नामके) सुन्दर अक्षर और उनके कोमल अर्थ-रूपी मोदक (लड्डू)-को जब तू प्रेम-रूपी चाशनीमें पाग लेगा (प्रेमपूर्वक अमृत तुल्य राम-नामका भजन करेगा)। जब तू प्रभु रामके गुण गाकर उन्हें प्रसन्न कर लेगा तब तू मुँह-माँगा फल (वरदान) पा लेगा ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि यदि रामकी कृपासे तेरे हृदयमें रामकी भक्तिका उदय हो गया तो तू सुखकी नींद भी सो सकेगा और तेरे हृदयकी सारी जलन भी शीघ्र ही मिट जायगी ॥ ४ ॥ (२२४)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भरोसो और अइहै उर ताके।
कै कहु लहै राम - सों साहिब, कै अपनो बल जाके॥ १॥
कै कलिकाल कराल न सूझत, मोह - मार - मद - छाके।
कै सुनि स्वामि - सुभाउ रहि न चित, जो हित सब अँग थाके॥ २॥
हौं जानत भलि भाँति अपनपौ, प्रभु - सों सुन्यो न साके।
उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर, भल भे करतब काके॥ ३॥
मोकों राम - नाम भो सुरतरु, राम - प्रसाद कृपा - के।
'तुलसी' सुखी, निसोच, राज ज्यों, बालक माय - बबा - के॥ ४॥ (२१५)

भरोसो जाहि दूसरो, सो करो।
मोहिं राम - को नाम कामतरु, कलि कल्यान फरो॥ १॥
करम, उपासन, ज्ञान, बेद - मत, सो सब भाँति खरो।
मोकों सावन - के अंधहि - ज्यों, सूझत रंग हरो॥ २॥
चाटत हौं पातरी स्वान - ज्यों, कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम, सुधा - रस पेखत परुसि धरो॥ ३॥

किसी दूसरे स्वामीका भरोसा उसीके हृदयमें होगा जिसे रामके समान ही कहीं कोई दूसरा स्वामी मिल गया हो या जिसे अपने बल-पुरुषार्थका भरोसा हो (यहाँ न तो कोई ऐसा स्वामी ही मिला और न अपने बलका ही भरोसा है), ॥ १ ॥ या फिर जो मोह, काम और मदके नशेमें चूर होनेके कारण भयंकर कलिकाल (के जाल)-को न देख पाता हो या जिसके चित्तपर सब प्रकारसे हारे हुए लोगोंका कल्याण करनेवाले रामका दीन-वत्सल और भक्तवत्सल स्वभाव सुनकर भी कुछ प्रभाव न पड़ा हो ॥ २ ॥ मैं अपना पुरुषार्थ तो भली भाँति जानता ही हूँ और रामको छोड़कर मैंने किसी स्वामीकी ऐसी कीर्त्ति भी नहीं सुनी है। पत्थर बनी हुई अहल्या, भीलनी (शबरी), जटायु, मृग (मारीच) तथा राक्षस (विभीषण)-इनमेंसे किसने बड़े अच्छे काम किए थे ॥ ३ ॥ मुझे तो कृपालु रामकी कृपासे कल्पवृक्षके समान राम-नाम ही मिल गया है। अब तो तुलसीदास इस कृपाके कारण ऐसा सुखी और निश्चिन्त हो गया है जैसा कोई बालक अपने माता-पिताके राज्यमें सुखी रहता है ॥ ४ ॥ (२२५)

जिसे किसी दूसरेका भरोसा हो तो हुआ करे। मुझे तो रामका नाम ही बड़ा कल्पवृक्ष मिला हुआ है जो इस कलिकालमें भी कल्याणके फल फलता है ॥ १ ॥ यद्यपि कर्म, उपासना और ज्ञान (ये तीनों मार्ग) भी वेद-सम्मत ही हैं, तथापि मुझे तो 'सावनके अंधेके समान सब हरा ही हरा दिखाई देता है' (मुझे तो रामनामके अतिरिक्त दूसरा कोई साधन सूझ ही नहीं रहा है) ॥ २ ॥ कभी वे भी दिन थे कि मैं कुत्तेकी भाँति पत्तलें चाटते फिरनेपर भी मेरा पेट नहीं भर पाता था पर अब वही मैं जबसे राम-नामका स्मरण करने लगा तो देखता हूँ कि मेरे आगे अमृत-रस परोसा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

स्वारथ औ परमारथ - हू - को, नहिँ कुंजरो - नरो[1]।
सुनियत, सेतु पयोधि पखाननि करि, कपि - कटक तरो ॥ ४ ॥
प्रीति - प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे माय - बाप दोउ आखर, हौं सिसु - अरनि अरो ॥ ५ ॥
संकर साखि जु राखि कहौं कछु, तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम - नामहिं - तें, तुलसिहिं समुझि परो ॥ ६ ॥ (२२६)

नाम (राम !) रावरोई हित मेरे।
स्वारथ - परमारथ साथिन्ह - सों, भुज उठाइ कहौं टेरे ॥ १ ॥
जननि-जनक तज्यो जनमि, करम-बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे[2]।
मोकों कोउ कोउ कहत राम - को, सो प्रसंग केहि - केरे ॥ २ ॥
फिर्‌यो ललात बिनु-नाम उदर-लगि, दुखउ दुखित मोहिं हेरे।
नाम - प्रसाद रसाल लहत फल, अब हौं बबुर - बहेरे ॥ ३ ॥

रक्खा रहता है ॥ ३ ॥ इस (रामनाम)-से स्वार्थ भी सधता है और परमार्थ भी। इसमें 'नरो वा कुंजरो वा' के समान अनिश्चयवाला भ्रम नहीं है। सुनता हूँ कि (इसी रामनामके बलपर) बन्दरोंकी सेना समुद्रपर पत्थरोंका पुल बनाकर समुद्र पार कर गई थी ॥ ४ ॥ जहाँ जिसका सच्चा प्रेम और विश्वास होता है वहीं उसका काम सिद्ध होता है। मेरे तो 'राम-नाम'के दोनों (रा, म) अक्षर माता-पिताके समान हैं और मैं बच्चेकी भाँति इन्हींसे मचला पड़ रहा हूँ ॥ ५ ॥ भगवान् शंकरकी दुहाई देकर कहता हूँ कि यदि मैं कुछ भी बना - चुनाकर (झूठ) कहता होऊँ तो मेरी जीभ गल गिरे। मुझ तुलसीदासको तो अपनी सारी भलाई राम-नाममें ही समझ पड़ रही है ॥ ६ ॥ [२२६]

राम ! मैं हाथ उठाकर स्वार्थ और परमार्थ प्राप्त करनेवाले साथियोंसे पुकार पुकारकर कह सकता हूँ कि मेरा जो कुछ कल्याण हुआ है, केवल रामनामसे ही हुआ है ॥ १ ॥ माता-पिताने तो मुझे उत्पन्न करके ही त्याग दिया था और ब्रह्माने भी पूर्व जन्मके सत्कर्मोंके बिना कुछ बेढंगा ही (दीन, दुखी, दरिद्र) बना दिया था, फिर भी कोई-कोई मुझे रामका दास कहते ही हैं। वे ऐसा क्यों कहते हैं (क्योंकि मैं राम-नाम जपता हूँ) ? ॥२॥ जबतक मैं आपके नामका स्मरण नहीं करता था तबतक मैं पेटके लिये गिड़गिड़ाता फिरता था। मेरी ऐसी बुरी दशा हो गई थी कि उसे देखकर दुःख भी दुखी हो उठता था। पर वही मैं, जो बबूल और बहेड़ेके समान नगण्य था (जिसे कोई टकेको नहीं

---

१. कुंजरो नरो : अनिश्चयता। द्रोणाचार्यने कहा था कि जब मुझे कोई दुःखका समाचार सुना देगा तब मैं अस्त्र डाल दूँगा। कृष्णने एक हाथीका नाम अश्वत्थामा (द्रोणाचार्यके पुत्रका नाम) रखकर उसे मरवा दिया और युधिष्ठिरको भेज कहलाया कि 'अश्वत्थामा मृतः, नरो वा कुंजरो वा' (अश्वत्थामा मारा गया, वह मनुष्य था या हाथी, यहनहीं कहा जा सकता)। उसी समय ऐसे ढमाढम नगाड़े बजा दिए गए कि द्रोणाचार्यने 'नरो वा कुंजरो वा' नहीं सुना। उन्होंने अस्त्र डाल दिए और पौष कृष्ण द्वादशीको दोपहरमें महाभारत युद्धके पन्द्रहवें दिन धृष्टद्युम्नने उनका सिर काट लिया। २. अवडेरे = बेढंगा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

साधत साधु लोक - परलोकहि, सुनि - गुनि जतन घनेरे।
तुलसी - के अवलंब नाम - को, एक गाँठि, बहु फेरे ॥ ४ ॥ (२२७)

प्रिय नहिं रामनाम - तें (जेहि) रामौ।
ताको भलो कठिन कलि - कालहु, आदि, मध्य, परिनामौ ॥ १ ॥
सकुचत समुझि नाम - महिमा, मद - लोभ - मोह-कोह-कामौ।
रामनाम - जप - निरत सुजन - पर, करत छाँह घोर घामौ ॥ २ ॥
नाम - प्रभाउ सही, जु कहै कोउ, सिला सरोरुह जामौ।
जो सुनि, सुमिरि, भाग-भाजन भइ, सुकृत - सील भिल-भामौ ॥ ३ ॥
बालमीकि अरु अजामील - के, हुतो न साधन - सामो।
उलटे - पलटे नाम - महातम, गुंजनि जितो ललामौ ॥ ४ ॥
राम - तें अधिक नाम - करतब, जेहि किए नगर - गत गामौ।
भयउ बजाइ दाहिने जो जपि, 'तुलसिदास'-से बामौ ॥ ५ ॥(२२८)

पूछता था) वही अब रामनामके प्रसादसे आम-जैसा मीठा फल पा रहा है ॥ ३ ॥ संतजन तो (अनेक शास्त्र) सुनकर और मनन करके अनेक साधनोंसे अपना लोक और परलोक बना लेते हैं, पर तुलसीदासको तो एक रामनामका ही सहारा है। जैसे अनेक लपेटे होनेपर भी गाँठ तो एक ही होती है वैसे ही तुलसीको तो अनेक साधनोंके होनेपर भी केवल रामनामका ही अवलंब रह गया है ॥ ४ ॥ (२२७)

जो रामनाम[1]से अधिक स्वयं रामको भी प्रिय नहीं मानता उसका इस कराल कलिकालमें आदि, मध्य और अंतमें भला ही होगा ॥ १ ॥ राम-नामकी महिमा समझकर अहंकार, लोभ, अज्ञान, क्रोध और काम भी लज्जित हो उठते हैं। जो सज्जन सदा रामनामका स्मरण करते रहते हैं, उनपर कड़ी धूप भी छाया करती रहती है (उनके कठिनसे कठिन कार्य सुगम और सुलभ हो जाते हैं) ॥ २ ॥ यदि कोई आकर कह दे कि नामके प्रभावसे पत्थरपर कमल उग आया है तो यह मिथ्या नहीं है, सच ही है। वही नाम सुनकर जपते-जपते भीलनी (शबरी) भी बड़ी भाग्यशालिनी और पुण्यात्मा हो गई ॥ ३ ॥ वाल्मीकि और अजामिलके पास न तो कोई साधन था और न कोई सामग्री ही। परन्तु उन्होंने उलटे-सुलटे नामके प्रभावसे ही घुंघुचियोंके बदले जवाहरात जीत धरे (केवल नाम जपकर परम पद पा लिया) ॥ ४ ॥ (रामके)-नामका प्रभाव तो रामसे भी अधिक है, क्योंकि उसने बड़े-बड़े ग्रामीणोंको चतुर नागरिक बना दिया (अयोग्यको योग्य और अशिष्टको शिष्ट बना दिया), यहाँतक कि तुलसीदास-जैसे बुरे व्यक्ति भी डंकेकी चोट भले बन गए ॥५॥ (२२८)

---

१. रामनाम : हनुमान्‌ने भी यही बात कही है कि—
राम त्वत्तोऽधिको नाम इति मे निश्चला मतिः। त्वया तु तारिताऽयोध्या, नाम्ना तु भुवनत्रयम् ॥
निर्गुन ते इहि भाँति बड़, नाम-प्रभाव अपार। कहउँ नाम बड़ रामतें निज बिचार अनुसार॥
—रामचरितमानस

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गरैगी जीह जो कहौं और - को हौं।
जानकि-जीवन ! जनम-जनम जग, ज्यायो तिहारेहि कौर-को हौं ॥ १ ॥
तीनि लोक तिहुँ काल न देखत, सुहृद रावरे जोर - को हौं।
तुम-सों कपट करि कलप - कलप, कृमि ह्वै हौं नरक घोर-को हौं ॥ २ ॥
कहा भयो मन मिलि कलि-कालहिं, कियो भौंतुवा[1] भौंर-को हौं।
'तुलसिदास' सीतल नित यहि बल, बड़े ठिकाने ठौर-को हौं ॥ ३ ॥(२२९)

हितू अकारन-को कहु को है ?
बिरद गरीब - निवाज कौन - को, भौंह जासु जन जोहै ॥ १ ॥
छोटो - बड़ो चहत सब स्वारथ, जो बिरंचि बिरचो है।
कोल कुटिल, कपि - भालु पालिबो, कौन कृपालुहिं सोहै ॥ २ ॥
काको नाम अनख - आलस कहि, अघ - अवगुननि बिछोहै ?
को तुलसी - से गह्यो कुसेवक, सब दिन साईं - द्रोहै ॥ ३ ॥(२३०)

यदि मेरे मुँहसे कभी भी यह निकल जाय कि मैं आपके अतिरिक्त किसी औरका हूँ तो मेरी यह जीभ गल जाय। जानकीके जीवन राम ! इस संसारमें जबसे मेरा जन्म हुआ है तबसे आपके ही टुकड़ोंपर तो पलता रहा हूँ ॥ १ ॥ तीनों लोकों और तीनों कालोंमें आपकी जोड़का और कोई मेरा हितैषी मित्र नहीं है। यदि मैं आपसे भी कपट करूँ तो अनेक कल्पोंतक घोर नरकका कीड़ा बनूँ ॥ २ ॥ क्या हुआ जो मेरे मनने कलिकालसे साँठ-गाँठ करके मुझे भँवरका भौंतुआ बना डाला (जो सांसारिक विषयोंके पानीमें कभी डूबते नहीं, प्रत्युत ऊपर ही ऊपर तैरते रहते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि मैं तो इसी (राम-नाम)-के बलपर निश्चिन्त होकर अपना ठौर-ठिकाना पा गया हूँ ॥ ३ ॥ (२२९)

बिना कारण (निःस्वार्थ) हित करनेवाला (रामको छोड़कर) बताओ दूसरा है कौन ? (कोई नहीं है)। 'गरीब-निवाज' (दीनदयालु) नाम और किसका है ? भक्त लोग सदा किसकी भ्रुकुटी जोहा करते हैं (किसकी कृपा-दृष्टि चाहते रहते हैं) ? (आपकी)। विधाताने जिसे भी रचा है, वह चाहे छोटा हो या बड़ा, सब अपने-अपने स्वार्थमें लीन हैं। भला (रामके अतिरिक्त) और कौन ऐसा कृपालु है जिसे कुटिल भील, वानर, भालू आदि पालना अच्छा लगता हो ? ॥ २ ॥ (आपको छोड़कर दूसरा कौन है) जिसका नाम ईर्ष्या या आलस्यसे भी लेनेपर पाप और अवगुण नष्ट हो जाते हों ? कौन है जिसने सदा स्वामीसे द्रोह करनेवाले तुलसी-जैसे बुरे सेवको भी अपना लिया हो ? ॥ ३ ॥ (२३०)

१. भौंतुवा = जौके बराबर काला कीड़ा जो वर्षा ऋतुमें नदियोंमें तैरा करता है। ये कीड़े नावोंके निकट झुंडके झुंड दिखाई देते हैं। जल-प्रवाहके वेग या भँवर पड़नेपर भी ये ऊपर ही ऊपर वेगसे चलते रहते हैं, डूबते नहीं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

(और मेरे) को है कासों कहिहौं ?
रंक, राज - ज्यों मन - को मनोरथ, जेहि सुनाइ सुख लहिहौं ॥ १ ॥
जम - जातना जोनि - संकट सब, सहे दुसह, अरु सहिहौं ।
मोको अगम, सुगम तुमको प्रभु ! तउ फल चारि न चहिहौं ॥ २ ॥
खेलिबे - को खग - मृग - तरु - किंकर, (राम !) रावरो हौं ह्वै रहिहौं ।
यहि नाते नरकहु सचु पैहौं, परम - पदहुँ दुख दहिहौं ॥ ३ ॥
इतनी जिय लालसा दास - के, कहत पानही गहिहौं ।
दीजै बचन कि हृदय आनिए, 'तुलसि - क पन निर्बहिहौं' ॥ ४ ॥(२३१)

दीनबंधु दुसरो कहँ पावौं !
को तुम बिनु पर - पीर पाइहै ? केहि दीनता सुनावौं ॥ १ ॥
प्रभु अकृपाल, कृपाल अलायक, जहँ - जहँ चितहिं डुलावौं ।
इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही, कहि भ्रम कहा गँवावौं ॥ २ ॥
गोपद बुड़िबे जोग करम करि, बातनि जलधि थहावौं ।
अति लालची काम - किंकर मन, मुख रावरो कहावौं ॥ ३ ॥

राम ! (आपके अतिरिक्त) मेरा और कौन है, जिसके आगे मैं अपना दुखड़ा रोऊँ ? हूँ तो मैं अति दरिद्र, पर मेरा मनोरथ राजाओंका-सा बड़ा ऊँचा है, इसलिये आपको सुनाकर सुख प्राप्त कर लेना चाहता हूँ ॥१॥ यम-यातनाएँ (नरकके दुःख) और संसारमें अनेक योनियोंमें जन्म लेनेके कारण सब प्रकारके संकट मैं बहुत सह भी चुका हूँ और आगे भी असह्य संकट सहता रहूँगा । यद्यपि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चारों पदार्थ प्राप्त करना अगम (अति कठिन) है और प्रभो ! आप सुगमतासे दे भी सकते हैं, तथापि मैं उन्हें नहीं लेना चाहता ॥२॥ राम ! मैं तो यही चाहता हूँ कि मैं आपके खेलनेके लिये पक्षी, मृग, वृक्ष और सेवक बना पड़ा रहूँ । यह संबंध बना रहे तो मुझे नरकमें भी सुख मिलेगा, और यह न मिले तो मैं मोक्ष-पद पाकर भी दुःखसे गला करूँगा ॥ ३ ॥ मैं आपकी जूतियोंकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि इस दासके मनमें बस केवल इतनी ही लालसा है कि आप मुझे या तो मुँहसे कह दीजिए (कि मैं तेरा मनोरथ पूरा करूँगा) या अपने मनमें ही यह स्थिर कर लीजिए कि तुलसीदासकी प्रतिज्ञाका निर्वाह कर दूँगा ॥ ४ ॥ (२३१)

(राम ! आपके समान) दीनोंका हितू मैं दूसरा कहाँ ढूँढने जाऊँ ? मैं किसके आगे जाकर गिड़गिड़ाता फिरूँ ? क्योंकि आपके अतिरिक्त पराई पीर समझनेवाला दूसरा है कौन ॥ १ ॥ मैं जिधर-जिधर अपना मन दौड़ाता हूँ, उधर-उधर यही देखता और सुनता हूँ कि जहाँ कहीं कोई समर्थ स्वामी दिखाई भी पड़ते हैं तो वे निष्ठुर हैं, और जहाँ कृपालु स्वामी मिलते हैं तो उनमें कुछ दम नहीं हैं । यही देख-सुनकर मैं चुप रह जाता हूँ । सबसे अपना रोना रोकर क्यों अपनी प्रतिष्ठा नष्ट करूँ ? ॥ २ ॥ मेरी करनी तो (इतनी तुच्छ है कि मैं) गौके खुरके गड्ढेके बराबर जलमें डूब जाऊँ पर बातोंका मैं समुद्र बहाया करता हूँ (बहुत बढ़-बढ़कर बातें करता हूँ ।)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

'तुलसी' - प्रभु जिय - की जानत सब, अपनौ कछुक जनावौं ।
सोइ कीजै जेहि भाँति छाँड़ि छल, द्वार परो गुन गावौं ॥ ४ ॥(२३२)

मनोरथ मन - को एकै भाँति ।
चाहत मुनि - मन - अगम सुकृत-फल, मनसा अघ न अघाति ॥ १ ॥
करम - भूमि-कलि जनम, कुसंघट, मति बिमोह - मद - माति ।
करत कुजोग कोटि, क्यों पैयत, परमारथ - पद - साँति ॥ २ ॥
सेइ साधु - गुरु, सुनि पुरान - श्रुति, बूझ्यो राग बजि ताँति ।
'तुलसी' प्रभु सुभाउ सुरतरु - सों, ज्यों दरपन मुख - काँति ॥ ३ ॥(२३३)

जनम गयो बादिहि बर बीति ।
परमारथ पाले न पर्‍यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥ १ ॥
खेलत खात लरिकपन गो, जौबन जुवतिन लिय जीति ।
रोग - बियोग - सोक - श्रम - संकुल, बड़ि बय बृथहिं अतीति ॥ २ ॥
राग - रोग - इरषा - बिमोह - बस, रुची न साधु - समीति[1] ।
कहे न सुने गुनगन रघुबर - के, भइ न रामपद - प्रीति ॥ ३ ॥

मैं यद्यपि हूँ तो अत्यन्त लालची और मेरा मन भी कामदेवका दास बना हुआ है, फिर भी मैं कहलाता तो आपका ही (सेवक) हूँ न ! ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं—प्रभो ! आप मेरे मनकी सारी बातें जानते हैं, फिर भी अपनी ओरसे आपको कुछ जनाए भी देता हूँ कि बस आप वही कीजिए जिससे मैं निश्छल भावसे आपके द्वारपर पड़ा आपके गुण गाया करूँ ॥ ४ ॥ (२३२)

मेरे मनमें तो यही मनोरथ रहता है कि मुझे ऐसा पुण्य-फल मिल जाय जो मुनियोंको भी नहीं मिल पाता परन्तु पाप करनेसे मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ इस कर्मभूमि (भारतवर्ष)-में, कलिकालमें इस (तुलसीदास)-का जन्म हुआ, संगति भी अच्छी नहीं है, इसकी बुद्धि भी मोहकी मदिरासे मतवाली हुई पड़ी है, करोड़ों बुरे-बुरे काम करता हुआ भी यह यही समझे बैठा है कि इसीसे इसे मोक्ष और चिर शान्ति प्राप्त हो जायगी ॥ २ ॥ मैंने साधु और गुरुकी सेवा करके तथा वेद और पुराण सुनकर उसका अभिप्राय उसी प्रकार समझा है, जैसे सारंगीकी ताँत अपने बजनेके साथ राग समझती जाती है (जैसे ताँत कोई राग नहीं समझती वैसे ही मैं भी सत्संग और अध्ययनसे कुछ नहीं समझा) । तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु रामका स्वभाव तो ऐसे (स्पष्ट) कल्पवृक्षके समान है जैसे दर्पणमें मुखकी छवि दिखलाई पड़ती है (रामको जो जिस भावसे देखता है उसे वैसा फल प्रतिबिम्ब रूपमें मिलता है) ॥ ३ ॥ (२३३)

यह श्रेष्ठ (मानव) जीवन व्यर्थ ही निकल गया । इसके पल्ले कुछ भी परमार्थ-कार्य (दया, धर्म, परोपकार आदि) तो पड़ा नहीं, उलटे दिन प्रति दिन अनीति ही अधिक करता रहा ॥१॥ लड़कपन तो खेलने-खानेमें ही निकल गया, जवानी भी स्त्रियोंके फेरमें चली गई और वृद्धावस्था भी रोग, वियोग, शोक तथा अधिक परिश्रमके कारण वृथा ही बीत गई ॥२॥ राग, रोष, ईर्ष्या, और मोहके कारण संतोंकी संगति अच्छी नहीं लगी । न तो मैंने रामके गुणकी गाथाएँ ही कहीं सुनीं और न

१. समीति = संगति ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हृदय दहत पछिताय अनल अब, सुनत दुसह भव-भीति।
'तुलसी' प्रभु - सों होइ सो कीजिय, समुझि बिरुद - की रीति॥ ४॥(२३४)

ऐसेहि जनम - समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ स्वामि तजि, सेवत चरन बिराने'॥ १॥
जे जड़ जीव कुटिल, कायर, खल, केवल कलिमल - साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन - कहँ, हरि - तें अधिक करि माने॥ २॥
सुख - हित कोटि उपाय निरंतर, करत न पाँय पिराने।
सदा मलीन पंथ - के जल - ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने॥ ३॥
यह दीनता दूरि करिबे - कहँ, अमित जतन उर आने।
'तुलसी' चित चिंता न मिटै, बिनु - चिंतामनि पहिचाने॥ ४॥ (२३५)

जौ जिय जानकि - नाथ न जाने।
तौ सब करम - धरम श्रम - दायक, ऐसे कहत सयाने॥ १॥
जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बेद - पुरान बखाने।
पूजा लेत, देत पलटे सुख, हानि - लाभ अनुमाने॥ २॥
काको नाम धोखहू सुमिरत, पातक - पुंज सिराने।
बिप्र, बधिक, गज, गीध, कोटि खल, केहि के पेट समाने॥ ३॥

रामके चरणोंमें प्रीति ही हो सकी॥ ३॥ अब संसारके (जन्म-मरण)-का भय सुन-सुनकर हृदय पश्चात्तापके कारण अग्निके समान जला जा रहा है। तुलसीदास कहते हैं—'प्रभो! अपनी विरुदावली (पतितको पावन करनेकी कीर्तिकी) रीति समझकर जो बन पड़े वह कीजिए॥ ४॥ (२३४)

मेरे अनेक जन्म इसी प्रकार व्यर्थ बीत गए। प्राणनाथ रामके समान प्रभुको छोड़कर मैं रात-दिन दूसरोंकी चरण-सेवा (चाकरी)-में लगा रहा॥ १॥ केवल कलियुगके पाप-कर्मों में सने हुए कुटिल और दुष्ट लोगोंको भगवान्‌से भी अधिक मानकर उनकी प्रशंसा करते-करते मेरा मुँह सूखा जाता है॥ २॥ अपने सुखके लिये अनेक उपाय करते रहनेपर भी मेरे पाँव नहीं दुखे। मार्गके (गंदे) जलके समान हृदय सदा मलिन ही बना रहा, कभी शुद्ध नहीं हो पाया॥ ३॥ तुलसीदास कहते हैं कि अपनी दीनता दूर करनेके लिये मैंने अनेक उपाय किए किन्तु जबतक भगवान्-रूपी चिन्तामणिको पहचाना न जाय तबतक चित्तकी चिन्ता मिट नहीं पाती॥ ४॥ (२३५)

अरे जीव! यदि तूने जानकी-नाथ रामको नहीं जाना तो सारे कर्म और धर्मसे तुझे केवल परिश्रम ही परिश्रम तो हाथ लगा। वेद और पुराण कहते हैं कि इन्द्र आदि देवता, कपिल आदि सिद्ध, व्यास आदि मुनीश्वर और याज्ञवल्क्य आदि योगशास्त्रके ज्ञाता सब पूजा लेकर ही बदलेमें लौकिक (सांसारिक) सुख देते हैं और वह भी हानि-लाभका विचार करके ही देते हैं॥ १-२॥ आपके अतिरिक्त और कौन है जिसका नाम भर लेनेसे लोगों के सारे पाप नष्ट हो मिटते हैं। ब्राह्मण (अजामिल), व्याध (वाल्मीकि), गजेन्द्र, गीध (जटायु) आदि करोड़ों खल किसकी शरणमें

---

१. बिराने = दूसरोंके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मेरु - से दोष दूरि करि जन - के, रेनु - से गुन उर आने।
'तुलसिदास' तेहि सकल आस तजि, भजहि न अजहुँ अयाने ॥ ४ ॥(२३६)

काहे न रसना ! रामहिं गावहि ?
निसि दिन पर - अपवाद कथा कत, रटि - रटि राग बढ़ावहि।
नर - मुख सुंदर, मंदिर पावन, बसि जनि ताहि लजावहि।
ससि - समीप रहि त्यागि सुधा, कत रबिकर - जल-कहँ धावहि ॥ २ ॥
काम - कथा कलि - कैरव - चंदिनि, सुनत स्रवन दै भावहि।
तिनहिं हटकि, कहिं हरि - कल - कीरति, करन-कलंक नसावहि ॥ ३ ॥
जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि, रचि - रचि हार बनावहि।
सरन - सुखद, रबिकुल - सरोज - रबि, राम नृपहिं पहिरावहि ॥ ४ ॥
बाद-बिबाद स्वाद तजि भजि हरि, सरल चरित चित लावहि।
'तुलसिदास' भव तरइ, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥ ५ ॥(२३७)

राउर - सों जो पै हित सूझै।
तौ जनु तनु - पर अछत सीस सुधि, क्यों कबंध ज्यों जूझै ॥ १ ॥

जाकर समा गए ? (आपने ही तो इन सबको शरण दी है) ॥ ३ ॥ आप अपने भक्तोंके सुमेरु पर्वतके समान अपार दोष धुलाकर उनके धूलके समान अत्यन्त नगण्य गुणको ही अपने मनमें बहुत समझ बैठते हैं। तुलसीदास अपने मनसे कहते हैं—'अरे मूर्ख ! सारी आशाएँ छोड़कर तू अब भी उन्हीं (राम)को क्यों नहीं जाकर भजता' ॥ ४ ॥ (१३६)

अरी जीभ ! तू बैठकर रामके नाम और गुण क्यों नहीं गाती ? रात-दिन दूसरोंकी बुराई कर-करके क्यों बैठे बिठाए राग (झगड़े) बढ़ाया करती है ? ॥१॥ देख ! तू मनुष्यके मुखके सुन्दर और पवित्र मंदिरमें निवास करती है। तू इसे लज्जित मत कर। चन्द्रमाके पास रहकर तू अमृत छोड़कर सूर्यके किरण-जल (मृगतृष्णाके जल)-के पीछे क्यों दौड़ा करती है ? ॥२॥ तुझे काम-प्रवृत्तिकी ऐसी कथाएँ प्रेमसे सुननेमें बड़ा आनन्द आता है जो कलियुग-रूपी कुमुदिनीके लिये चाँदनीके समान हितकर हैं (जो पाप बढ़ाती हैं)। तू वे काम-कथाएँ बन्द करके भगवान्‌की सुन्दर कीर्तिका वर्णन करके कानोंका कलंक मिटा डाल ॥ ३ ॥ बुद्धि-रूपी स्वर्ण और युक्ति-रूपी सुन्दर मणियोंका हार बनाकर, ले जाकर शरणागतोंको सुख देनेवाले, सूर्यकुल-रूपी-कमलोंको खिलानेवाले सूर्यके समान महाराज रामको पहना दे ॥ ४ ॥ तू वाद-विवादका आनन्द लेना छोड़कर बैठकर भगवान्‌का भजन कर और उनके सरल चरित्र चित्त लगाकर सुन। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा करनेसे तू संसार-सागरसे पार हो जायगा और तीनों लोकोंमें तेरा पवित्र यश जा फैलेगा ॥ ५ ॥ (२३७)

(राम !) यदि यह ज्ञान हो जाय कि मेरा कल्याण आपके ही द्वारा होगा, तो यह जीव यह स्मरण रहनेपर भी कबन्धके समान क्यों लड़ता फिरे कि धड़पर सिर है ॥ १ ॥ राम !

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निज अवगुन, गुन राम ! रावरे, लखि, सुनि, मति - मन रूझै।
रहनि, कहनि, समुझनि तुलसी - की, को कृपाल - बिनु बूझै ॥ २ ॥(२३८)

जाको (हरि) दृढ़ करि अंग कर्‌यो।
सोइ सुसील पुनीत बेद - बिद, बिद्या - गुननि भर्‌यो।
उतपति, पंडु सुतन - की करनी, सुनि सतपंथ डर्‌यो।
ते त्रैलोक्य - पूज्य, पावन - जस, सुनि - सुनि लोक तर्‌यो[1] ॥ २ ॥
जो निज धर्म बेद - बोधित, सो करत, न कछु बिसर्‌यो।
बिनु - अवगुन कृकलास[2] कूप - मज्जत, कर गहि उधर्‌यो ॥ ३ ॥
ब्रह्म - बिसिख ब्रह्मांड - दहन - छम, गर्भ न नृपति जर्‌यो।
अजर - अमर कुलिसहुँ नाहिंन बध, सो पुनि फेन मर्‌यो[3] ॥ ४ ॥
बिप्र अजामिल अरु सुरपति - तें, कहा जु नहिं बिगर्‌यो।
उनको कियो सहाय बहुत, उर - को संताप हर्‌यो ॥ ५ ॥

अपने अवगुण प्रत्यक्ष देखकर (कि मैं पतित हूँ) और आपके गुण सुनकर (कि आप पतित-पावन हैं) मेरी बुद्धि और मन दोनों आपमें लीन हो गए हैं। कृपालु ! तुलसीदास कैसे रहता है, क्या कहता है और क्या समझता है, यह आपको छोड़कर और कौन जान सकता है ? ॥२॥ २३८

जिसे भगवान् हरिने ठीकसे अपनालिया है, वही सुशील, पवित्र, वेदोंका ज्ञाता, विद्यावान् तथा गुणोंसे परिपूर्ण है ॥ १ ॥ (देवताओंके अंशसे) पाण्डुपुत्रोंकी उत्पत्ति और उनकी करनी (कि एक स्त्रीके चार पाँचपति थे) सुनकर सन्मार्ग-तक डर गया था, परन्तु कृष्णकी कृपासे वे तीनों लोकोंमें पूज्य माने जाने लगे और उनका पवित्र यश सुन-सुनकर लोग मुक्त हो गए ॥२॥ जो (राजा नृग) वेदविहित वर्णाश्रम धर्मसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ था (धर्मका पालन करता था) और किसी दोषके बिना ही गिरगिट होकर कुएँमें पड़ा था उसे आपने (कृष्ण रूपमें) हाथ पकड़कर बाहर निकाल लिया (मुक्त कर दिया) ॥३॥ ब्रह्माण्ड-तकको भी भस्म कर डाल सकनेवाला (अश्वत्थामाका) ब्रह्मास्त्र भी राजा (परीक्षित्)-को गर्भमें न जला सका, और जो अजर-अमर (नमुचि दैत्य) वज्रसे भी नहीं मारा जा सकता था, वह समुद्रकी फेनसे मार डाला गया ॥४॥ ब्राह्मण अजामिलने और इन्द्रने क्या पाप नहीं किए थे किन्तु आपने उनकी भी बड़ी सहायता की और उनके कष्ट दूर कर डाले

१. धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्त्तनेन पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्त्तनेन। शत्रुर्विनश्यति धनंजयकीर्त्तनेन माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः। २. कृकलास = गिरगिट। ३. फेन मर्‌यो : जब इन्द्रने बलिपर आक्रमण किया तो उसकी ओरसे नमुचि नामका दैत्य लड़ने आया जिसे वर मिला हुआ था कि वह किसी गीली या सूखी वस्तुसे नहीं मारा जा सकेगा। इसलिये इन्द्रने उसे समुद्रकी फेनसे मारा जो न सूखी होती है न गीली।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गनिका अरु कदर्ज[1]-तें जग - महँ, अघ न करत उबर्‌यो।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि, निज हृदि - भवन धर्‌यो ॥ ६ ॥
केहि आचरन भलो मानै प्रभु, सो नहिं समुझि पर्‌यो।
'तुलसिदास' रघुनाथ - कृपा - को, जोवत पंथ खर्‌यो ॥ ६ ॥(२३९)

सोइ सुकृती, सोई सुचि साँचो, जाहि राम ! तुम रीझे।
गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गे, लै करसी[2] प्रयाग कब सीझे ॥ १ ॥
कबहुँ न डग्यो निगम-मग-तें पग, नृग जग जान जिते दुख पाये।
गज धौं कौन दिछित जो सुमिरत, लै सुनाभ, बाहन तजि धाए ॥ २ ॥
सुर, मुनि, बिप्र बिहाय बड़े कुल, गोकुल जनम गोप-गृह लीन्हों।
बावों दियो बिभव कुरुपति - को, भोजन जाइ बिदुर-घर कीन्हों ॥ ३ ॥
मानत भले भाव भगतन - को, कछुक रीति पारथहिं जनाइ[3]।
'तुलसी' राम सनेह सहज - बस, और सबै जल - की चिकनाई ॥ ४ ॥(२४०)

॥५॥ निकम्मी गणिका (जीवन्ती और पिंगला) और कदर्य (कंजूस)-ने संसारमें कौनसे पाप नहीं किए थे, किन्तु आपने उनका चरित्र पवित्र जानकर उन्हें अपने हृदयमें ला बिठाया ॥६॥ प्रभु राम किस प्रकारके व्यवहारसे प्रसन्न होते हैं, यह समझमें ही नहीं आता। तुलसीदास तो बस खड़ा-खड़ा केवल रामकी कृपाकी ही बाट जोहे जा रहा है ॥ ७ ॥ (२३९)

राम ! जिसपर आप प्रसन्न हो जायँ वही पुण्यात्मा, पवित्र और सच्चा है। गणिका (पिंगला और जीवन्ती), गीध (जटायु), बधिक (वाल्मीकि) आदि सभी तो साकेत धाम चले गए। इनमेंसे कौन कब प्रयागराजमें कंडोंकी आगमें जलकर मरा था ? ॥ १ ॥ राजा नृग कभी वेदके बताए हुए धर्मसे एक पग नहीं हटा था (धर्मका पालन करता था) किन्तु संसार जानता है कि उसे कितने दुःख भोगने पड़े (गिरगिट बनकर सहस्रों वर्ष कूएँमें पड़ा रहना पड़ा)। और वह गजेन्द्र कहाँसे दीक्षा पाकर आया था जिसने एक ही बार राम-नाम लिया और आप गरुड छोड़कर सुदर्शन चक्र लेकर दौड़े चले आए ॥ २ ॥ आपने देवता, मुनि और ब्राह्मण आदिके उच्च कुल छोड़कर जन्म भी लिया तो गोकुलमें अहीरके घर जन्म लिया। कुरुराज दुर्योधनके वैभव (-पूर्ण भोजन) छोड़कर विदुरके घर जाकर (सागका) भोजन किया ॥ ३ ॥ भगवान् तो अपने भक्तों के साथ केवल प्रेमका नाता मानते हैं (जो प्रेम करता है उसके हो रहते हैं)। यह भक्त-वत्सलताकी रीति आपने कुछ-कुछ अर्जुनको बताई है।[3] अरे तुलसीदास ! राम तो निष्कपट प्रेमके अधीन रहते हैं और जितने अन्य साधन हैं वे सब पानी परकी चिकनाईके समान क्षणिक हैं ॥ ४ ॥ (२४०)

१. कदर्ज (कंजूस) : मालव देशमें एक धनी कंजूस ब्राह्मण था जो कोई पुण्य कार्य नहीं करता था। अन्तमें उसका धन नष्ट हो गया, उसे वैराग्य हो गया और वह मुक्त हो गया। यह कथा कृष्णने उद्धवको सुनाई थी। —भागवत ११।३२। २. करसी = उपले (कंडे)। प्रयागमें कंडोंकी आग जलाकर जल मरना भी पुण्य समझा जाता था।
३. कौन्तेय ! प्रतिजानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ तेषां मद्भक्तियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।—गीता

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

(तब तुम) मोहुँ - से सठ - को हठि गति देते ।
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर, सुनि सादर आगे ह्वै लेते ॥ १ ॥
पाप-खानि जिय जानि अजामिल, जमगन तमकि तये तेहि भेते ।
लियो छुड़ाइ, चले कर मींजत, पीसत दाँत गए रिस - रेते ॥ २ ॥
गौतम-तिय, गज, गीध, बिटप, कपि, मालुम नाथहिं नीके जेते ।
जिन-जिन काज समाज-साधु तजि, कृपासिंधु तब-तब उठि गे ते ॥ ३ ॥
अजहुँ अधिक आदर यहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते ?
मेरे पासँग हू न पूजिहैं, ह्वै गे, हैं, होने खल जेते ॥ ४ ॥
हौं अब - लौं करतूति तिहारिय, चितवत हुतो, न राउर चेते ।
अब 'तुलसी' पूतरो बाँधि है, सहि न जात है परिहस एते ॥ ५ ॥(२४१)

तुम-सम दीनबंधु, कोउ मो-सम दीन न सुनहु नृपति रघुराई।
मो-सम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि ! न हरन कुटिलाई ॥ १ ॥
हौं मन - बचन - करम पातक - रत, तुम कृपाल पतितनि - गति-दाई ।
हौं अनाथ, प्रभु ! तुम अनाथ-हित, चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥ २ ॥

(जब आपने बड़े बड़े दुष्टों और पापियोंको मोक्ष दे डाला है) तो आप मुझ-जैसे शठको भी हठपूर्वक मोक्ष दे डाल सकते थे। कोई कितना भी नीच और पापी क्यों न हो, पर जहाँ किसी भी प्रकार उससे आपका नाम लिया कि आप आगे बढ़कर आदरके साथ उसका भी स्वागत करने लगते हैं ॥१॥ यम-दूतोंने अजामिलको बहुत बड़ा पापी समझकर उसे कष्ट देते हुए जा पकड़ा था पर उसे भी आपने उस भयसे छुड़ा दिया और वे (यमके दूत) क्रोधसे हाथ मलते और दाँत पीसते लौट गए ॥२॥ गौतमकी पत्नी अहल्या, गजेन्द्र, गीध, वृक्ष (यमलार्जुन) और वानर (सुग्रीव), ये जितने अच्छे थे यह आप जानते हैं पर जब-जब इनपर संकट पड़ा तब-तब आप संतोंका समाज छोड़कर वहाँ दौड़े जा पहुँचे। आप ऐसे कृपालु हैं ॥ ३ ॥ आज भी उसीका अधिक आदर होता है जो आपकी शरणमें पहुँचा रहता है। ऐसे न जाने कितने पापी अबतक पवित्र हो चुके होंगे। संसारमें ऐसे-ऐसे जितने भी पापी हुए हैं, अभी हैं और आगे होंगे, वे सबके सब मेरे पापोंके तो पासँग-भर भी न होंगे (फिर मुझे ही क्यों छोड़े बैठे हैं ?) ॥ ४ ॥ मैं अबतक आपकी करतूत बैठा देखता आया हूँ (कि आप मुझे शरणमें लेते हैं या नहीं) पर इतना होनेपर भी आपके कानपर जूंतक न रेंगी, इसलिये अब तुलसीदासने निश्चय किया है (कि जैसे खेल दिखानेवाले पैसा न देनेवाले कंजूसका पुतला बनाकर उसे कंजूस कहते फिरते हैं वैसे ही मैं भी) आपका पुतला बनाकर बदनामी करता फिरूँगा क्योंकि मुझसे लोगोंका यह उपहास नहीं सहा जाता (कि चला था बड़ा 'रामका दास' बनने पर राम इसकी ओर ताकते-तक नहीं) ॥ ५ ॥ (२४१)

सुनिए महाराज राम ! न तो आपके समान दीनोंका हितैषी कोई है और न मेरे समान कोई दीन ही है। और हरि ! संसारमें न तो मेरे समान दुष्टोंका सरदार ही कोई मिलेगा और न आपके समान दुष्टता मिटानेवाला कोई मिलेगा ॥ १ ॥ कृपालु ! इधर मैं तो मन, वचन और कर्मसे पाप ही पापमें डूबा पड़ा हूँ और उधर आप हैं जो पतितोंको सद्गति देते रहते हैं। प्रभो ! इधर मैं बड़ा अनाथ हूँ उधर आप अनाथोंके ही हितू हैं। यह बात मेरे मनमें जमी बैठी है ॥ २ ॥ मैं

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हौं आरत, आरति - नासन तुम, कीरति निगम - पुराननि गाई।
हौं सभीत, तुम हरन सकल भय, कारन कौन कृपा बिसराई ॥ ३ ॥
तुम सुख-धाम राम! श्रम-भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध श्रम पाई।
यह जिय जानि 'दास तुलसी' - कहँ, राखहु सरन, समुझि प्रभुताई ॥ ४ ॥(२४२)

इहै जानि चरननि चित लायो।
नाहिंन नाथ! अकारन - को हितु, तुम - सम श्रुति - पुरान है गायो ॥ १ ॥
जननि, जनक, सुत, दार, बंधुजन, भए बहुत जहँ-जहँ हौं जायो।
सब स्वारथ - हित, प्रीति कपट चित, काहू नहिं हरि - भजन सिखायो ॥ २ ॥
सुर, मुनि, मनुज, दनुज, अहि, किन्नर, मैं तनु धरि, सिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रयताप - पाप - बस, काहु न हरि! करि कृपा जुड़ायो ॥ ३ ॥
जतन अनेक किए सुख - कारन, हरिपद - बिमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जल - हीन नाव ज्यों, देखत बिपति - जाल जग छायो ॥ ४ ॥
मो - कहँ नाथ! बूझिए यह गति, सुख - निधान निज पति बिसरायो।
अब तजि दोष, करहु करुना, हरि! 'तुलसिदास' सरनागत आयो ॥ ५ ॥(२४३)

दुखी हूँ और आपका यह यश वेदों और पुराणों में बताया गया है कि आप दुःख मिटाया करते हैं। इधर मैं तो (संसारके विषयों से) डरा बैठा हूँ और उधर आप हैं कि सारे भय मिटा डालते हैं। फिर बताइए आप मुझपर कृपा करना क्यों भूल बैठे हैं ? ॥ ३ ॥ राम! आप सब सुखों के भंडार हैं और सबका सारा कष्ट मिटा डालते हैं परन्तु यहाँ तो मैं तीनों प्रकारके (दैहिक, दैविक और भौतिक) कष्ट पाकर बड़ा दुखी हुआ जा रहा हूँ। यह बात अपने हृदयमें विचारकर और अपनी प्रभुता (शक्ति) समझकर इस तुलसीदासको भी अपनी शरणमें ले लीजिए ॥४॥ (२४२)

नाथ! मैं तो यही जानकर आपके चरणों में चित्त लगाए बैठा हूँ कि आपके समान निष्काम हितैषी संसारमें दूसरा कोई है नहीं। यह बात पुराणों और वेदों में भी कही गई है ॥ १ ॥ मैंने जहाँ-जहाँ भी जन्म लिया वहाँ-वहाँ बहुतसे माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदि हुए परन्तु वे सबके सब स्वार्थके साथी निकले। उनमेंसे किसीने भी मुझे भगवान्‌का भजन करनेका उपदेश नहीं दिया ॥ २ ॥ भगवन्! मैंने मनुष्यका शरीर धारण करके देवता, मुनि, मनुष्य, दैत्य, सर्प और किन्नर किस-किसके आगे सिर नहीं नवाया (अपने स्वार्थके लिये मैं सबके आगे गिड़गिड़ाया) परन्तु अपने पापों के कारण मैं तीनों तापों (दैहिक, दैविक, एवं भौतिक)-से जलता हुआ मारा-मारा फिरता रहा। कोई भी कृपा करके मुझे शान्ति नहीं दे पाया ॥ ३ ॥ मैंने अपने सुखके लिये न जाने कितने प्रकारके उपाय किए, परन्तु भगवान्‌के चरणों से विमुख रहनेके कारण मैं सदा दुःख ही दुःख पाता रहा। परन्तु अब यह जानकर मैं बिना जलकी नावकी भाँति थककर बेकाम हुआ पड़ा हूँ कि सारे संसारमें विपत्ति ही विपत्तिका जाल तो फैला पड़ा है ॥४॥ नाथ! मैं सुख ही सुख लुटाते रहनेवाले अपने प्रभुको भूल बैठा था, इसलिये मेरी यह दशा होनी ही चाहिए थी, परन्तु हरि! अब तो मेरे दोष भूलकर मुझपर दया कीजिए क्यों कि यह तुलसीदास अब आपकी शरणमें आ ही पहुँचा है ॥ ५ ॥ (२४३)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

याही तें मैं (हरि !) ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय - कमल - रघुनाथहिं, बाहर फिरत बिकल भै धायो ॥ १ ॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मति-हीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल, परम सुगंध कहाँ-तें आयो ॥ २ ॥
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन, ऊपर कछु सिवार - तृन छायो।
जारत हियो, ताहि तजि, हौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो ॥ ३ ॥
व्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम - सुरतरु तजि, बिषय - बबूर - बाग मन लायो ॥ ४ ॥
तुम सम ज्ञान - निधान, मोहिं सम मूढ़ न आन, पुरानन्हि गायो।
'तुलसिदास' प्रभु यह बिचारि जिय, कीजै नाथ ! उचित मन-भायो ॥ ५ ॥(२४४)

मोहिं मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय ! मैं जग जनम - जनम दुख रोयो ॥ १ ॥
सीतल, मधुर, पियूष सहज सुख, निकटहि रहत, दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन श्रम करत मोह - बस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥ २ ॥

हरि ! राम ! मेरा सारा ज्ञान इसीलिये नष्ट हो गया कि मैं अपने हृदय-कमलमें बैठे हुए रामको छोड़कर बाहर ही बाहर व्याकुल होकर उसी प्रकार दौड़ता फिरा—॥ १ ॥ जिस प्रकार मृग अपने ही शरीर (नाभि)-में सुगंधित कस्तूरी होते हुए भी अज्ञानके कारण उसका मर्म नहीं जान पाता और उसकी परम सुगन्धिपर मुग्ध होकर वह पर्वत, वृक्ष, लता, भूमि और बिलों (खोहों)-में उसे खोजता फिरता है कि यह सुगन्धि आ कहाँसे रही है ॥ २ ॥ या जिस प्रकार स्वच्छ जलसे भरे हुए किसी तालाबके ऊपर सेवार आदि छाई रहनेके कारण कोई उसके नीचेका स्वच्छ जल नहीं जान पाता वैसे ही मैं मूर्ख उसे छोड़कर दुखी होकर इधर-उधर अपनी प्यास बुझानेके फेरमें पड़ा रहा ॥ ३ ॥ मेरा शरीर तीनों तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक)-से तो तपा जा रहा था, उसपर दुःसह दरिद्रता और भी सताए डाल रही है। इसपर भी मैं अपने ही घर (हृदय)-में रामनाम-रूपी कल्पवृक्ष छोड़कर विषय-रूपी बबूलके बाग (विषयों)-में मन लगाए बैठा हूँ ॥४॥ नाथ (राम) ! आपके समान परम ज्ञानी और मेरे समान मूढ संसारमें दूसरा कोई नहीं है। यह बात पुराणोंने भी कही है। प्रभु ! यह विचारकर तुलसीदासके लिये भी आप वही कीजिए जो उचित हो (जिससे उसका उद्धार हो जाय), अथवा जैसा आपको अच्छा लगे ॥ ५ ॥ (२४४)

मुझे तो इस मूढ मनने चौपट कर डाला। दयालु ! सुनिए। इसी (मन)-के कारण मैं संसारमें बार-बार जन्म ले-लेकर दुःखका ही रोना रोता रहा ॥ १ ॥ शीतल, अमृतके समान मधुर तथा बहुत ही समीप रहनेवाले सहज सुख (आत्मानन्द)-को मैं ऐसे भुला बैठा मानो वह बहुत दूर हो। अज्ञानवश मैं अनेक प्रकारका श्रम करता फिरा। मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि मैं व्यर्थ पानी मथता रहा (कि इसमेंसे घी निकलेगा)। सांसारिक मोह-मायामें लिप्त रहकर मैं सुख पानेकी आशा करता

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

करम - कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत, सुरसरि बिहाय सठ, फिरि - फिरि बिकल अकास निचोयो ॥ ३ ॥
'तुलसिदास' प्रभु ! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नींद-भरि सोयो ॥ ४ ॥(२४५)

लोक-बेदहूँ बिदित बाति सुनि समुझिये। मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति।
छोटे - बड़े, खोटे - खरे, मोटेऊ दूबरे राम। रावरे निबाहे सबही - की निबहति ॥ १ ॥
होती जो आपने बस, रहती एक ही रस, दुनी न हरष - सोक - साँसति सहति।
चहतो जो जोइ-जोइ, लहतो सो सोइ-सोइ, केहूँ भाँति काहू-की न लालसा रहति ॥ २ ॥
करम - काल - सुभाउ - गुन - दोष जीव जग, माया-तें सो सभय भौंह चकित चहति।
ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनिहूँ, छोड़ति छोड़ाए - तें, गहाए - तें गहति ॥ ३ ॥
सतरंज-को-सो राज, काठ - को सबै समाज, महाराज ! बाजी रची प्रथम न हति।
'तुलसी' प्रभुके हाथ, हारिबो-जीतिबो नाथ ! बहु बेष, बहु मुख सारदा कहति ॥४॥(२४६)

रहा ॥ २ ॥ कर्मको कीचड़ जानकर भी मैं उसीमें चित्त लगाए रहा ॥ ३ ॥ नाथ ! मैंने आपसे अपना कुछ भी अपराध छिपाया नहीं। अतः, अब इस तुलसीदासपर कृपा कर दीजिए। इसे तो सारी रात बिस्तर बिछाते-बिछाते ही बीत गई (सारा जीवन विषयोंका संग्रह करनेमें बीत गया), सुखकी नींद (आत्मानन्दकी सिद्धि) तो इसे मिली ही नहीं ॥ ४ ॥ (२४५)

राम ! लोक और वेदमें भी प्रसिद्ध है कि छोटे हों या बड़े, बुरे हों या भले, मोटे हों या दुबले—सबकी आपके ही निभानेसे निभती है। मैं यह सब सुनता और सुनकर समझता भी हूँ परन्तु अज्ञानके कारण मेरी बुद्धि ऐसी चुल-बुली हुई रहती है कि स्थिर नहीं हो पाती ॥ १ ॥ यह संसार यदि स्वतन्त्र होता तो सदा एक ही रस (एक ही दशामें) रहा करता। न इसमें हर्ष होता न शोक होता। जो कोई कुछ भी चाहता, वह वही पा जाता। किसीके मनमें किसी प्रकारकी लालसा ही न रह जाती ॥ २ ॥ ये जो कर्म, काल, स्वभाव, गुण, दोष, जीव और जगत् हैं, ये सब तो आपकी ही मायाके खेल हैं और यह माया आपसे भयभीत होकर आपकी ही आँखें (इच्छा) देखा करती है। वह माया (ऐसी प्रबल है कि) शिव, ब्रह्मा आदि ईशों, दिक्पालों, योगीश्वरों और मुनीश्वरोंको भी तभी छोड़ पाती है जब आप छुड़ा दें, और तभी पकड़ती है जब आपकी इच्छा होती है ॥ ३ ॥ इस मायाका सारा समाज शतरंजके राज्यके समान सब काठका बना (झूठा) है (इसमें न तो कोई राजा है, न हाथी, न घोड़ा, न ऊँट, न पैदल, न वज़ीर)। महाराज ! शतरंजकी यह बाज़ी पहले नहीं थी। यह सब आपने ही बना खड़ी की है। तुलसीदास कहते हैं—'प्रभो ! सरस्वतीने अनेक वेष धारण करके अनेक मुखोंसे कहा है कि इस बाज़ीकी सारी हार-जीत करना आपके ही हाथमें है (जिसे चाहे जिता दें, सुखी कर दें, जिसे चाहे हरा दें, दुखी कर दें) ॥ ४ ॥ (२४६)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम जपु जीह ! जानि प्रीति-सों प्रतीति मानि, राम नाम जपे जइहै जिय-की जरनि ।
रामनाम - सों रहनि, रामनाम - की कहनि, कुटिल-कलिमल-सोक-संकट - हरनि ॥ १ ॥
रामनाम - को प्रभाउ, पूजियत गनराउ[1] कियो न दुराउ, कही आपनी करनि ।
भवसागर - को सेतु, कासिहुँ सुगति - हेतु, जपत सादर संभु - सहित घरनि ॥ २ ॥
बालमीकि ब्याध हे अगाध अपराध-निधि, 'मरा मरा' जपे, पूजे मुनि अमरनि ।
रोक्यो बिंध, सोख्यो सिंधु, घटजहूँ नाम-बल, हारो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि॥ ३ ॥
नाम - महिमा अपार, सेस - सुक बार-बार, मति - अनुसार बुध - बेदहू बरनि ।
नामरति - कामधेनु तुलसी-को कामतरु, रामनाम है बिमोह - तिमिर - तरनि ॥४॥(२४७)

पाहि, पाहि राम ! पाहि रामभद्र ! रामचंद्र ! सुजस श्रवन सुनि आयो हौं सरन ।
दीनबंधु ! दीनता - दरिद्र - दाह - दोष - दुख, दारुन - दुसह - दर[2]- दरप - हरन ॥ १ ॥

अरी जीभ ! तू राम-नामका प्रभाव समझ ले और उसपर विश्वास करके प्रेम-पूर्वक राम-नामका जप किया कर । राम-नामका जप करनेसे तेरे हृदयकी सारी जलन मिट जायगी । राम-नामके जपमें लगे रहनेसे और रामनामका कीर्त्तन करते रहनेसे कुटिल कलिकालके समस्त पाप, शोक और दुःख मिट जाते हैं ॥ १ ॥ यह राम-नामका ही प्रभाव है कि गणेश सभी देवोंमें सर्वप्रथम पूजे जाते हैं । उन्होंने अपनी यह करनी सब सच-सच कह दी थी, कुछ छिपाया नहीं । यह रामनाम भवसागरसे पार उतारनेवाला पुल है और काशीमें भी इसी (रामनाम)-के बलपर मुक्ति मिलती है । महादेव और उनकी गृहिणी पार्वती दोनों इसी (राम-नाम)-का जप किया करते हैं ॥ २ ॥ वाल्मीकि पहले व्याध थे और उन्होंने अनगिनत अपराध किए थे । उन्होंने सीधा भी नहीं, उलटा नाम 'मरा-मरा' ही जपा, पर उसीसे देवता और मुनि सबने उनकी पूजा की । महर्षि कुम्भज (अगस्त्य)-ने इसी रामनामके बलपर विन्ध्य पर्वतको (ऊपर बढ़नेसे) रोक दिया था, समुद्र भी सोख लिया था और वह समुद्र उन्हींके भयसे खारा भी हो गया था ॥ ३ ॥ राम-नामकी महिमा अपार है । शेष, शुक, वेद तथा विद्वानोंने भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार बार-बार (रामनामकी) वर्णन महिमाका किया है । तुलसीदासको तो यह राम-नाम कामधेनु और कल्पवृक्षके समान (सारे मनोरथ पूरे करनेवाला) है । यह राम-नाम अज्ञानका अन्धकार दूर करनेके लिये सूर्यके समान है ॥ ४ ॥ (२४७)

राम ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, राम-भद्र, राम ! रक्षा कीजिए । मैं आपका बहुत सुयश सुनकर ही आपकी शरणमें चला आया हूँ । दीनबन्धु ! आप (अपने आश्रितोंकी) दीनता, दरिद्रता सन्ताप, दोष, दारुण दुःख, दुःसह भय और अभिमान सब मिटा डालते हैं ॥ १ ॥ जब-जब यह

१. देवताओंमें होड़ लगी कि जो सबसे पहले ब्रह्मांडकी परिक्रमा लगा आवेगा वही सबसे बड़ा और प्रथम पूज्य माना जायगा । सब देवता अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर चल दिए । पर गणेशने 'राम' का नाम लिखा और उसका चक्कर लगाकर बैठ रहे । इसी बातपर वे प्रथम पूज्य हो गए । २. दर = डर ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जब-जब जग - जाल - व्याकुल करम - काल, सब खल भूप भए भूतल - भरन[1] ।
तब - तब तनु धरि, भूमि - भार दूरि करि, थापे मुनि - सुर-साधु - आस्रम-बरन ॥ २ ॥
बेद-लोक सब साखी, काहू-की रती[2] न राखी, रावन-की बंदि लागे अमर मरन ।
ओक दै, बिसोक किए लोकपति लोकनाथ, रामराज भयो धरम चारिहू चरन ॥ ३ ॥
सिला, गुह, गीध, कपि, भील,भालु, रातिचर, ख्याल ही कृपाल कीन्हें तारन-तरन ।
पील-उद्धरन, सील-सिंधु ! ढील देखियत, 'तुलसी' पै चाहत गलानि ही गरन ॥४॥(२४८)

भली भाँति पहिचाने, जाने साहिब जहाँ-लौं जग, जूड़े होत थोरे, होत थोरे ही गरम ।
प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीति - के मलीन, मायाधीन सब किए कालहू करम ॥ १ ॥
दानव - दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े, जीते लोकनाथ, नाथ - बल निभरम[3] ।
रीझि-रीझि दिए बर, खीझि-खीझि घाले घर, आपने निवाजे-की न काहू-को सरम ॥ २ ॥
सेवा - सावधान तू सुजान, समरथ साँचो, सदगुन - धाम, राम पावन ! परम ।
सुरुख, सुमुख, एकरस, एकरूप, तोहिं, बिदित बिसेषि घटघट - के मरम ॥ ३ ॥

जगत्, काल और कर्मकी विषमतासे व्याकुल हुआ और सब दुष्ट राजा पृथ्वीके भार बन चले, तब-तब आपने शरीर धारण करके पृथ्वीका भार दूर करके मुनियों, देवताओं, सन्तों तथा वर्णाश्रम-धर्मकी पुनः स्थापना की ॥ २ ॥ लोक और वेद इस बातके साक्षी हैं कि जब रावणने किसीकी तनिक भी प्रतिष्ठा नहीं बचने दी, देवता लोग उसके बन्दीघरमें पड़े-पड़े सड़ने लगे, तब लोकनाथ राम ! आपने ही (इन्द्र आदि) लोकपतियोंकी आकर रक्षा की । आपके राम-राज्यमें धर्म अपने चारो चरणों (तप, ज्ञान, यज्ञ, दान)-से (पूर्ण रूपसे) विद्यमान था ॥ ३ ॥ कृपालु ! आपने शिला (अहल्या), निषादराज गुह, जटायु गिद्ध, सुग्रीव आदि वानर, भील (वाल्मीकि), भालू (जाम्बवान्) और राक्षस (विभीषण) आदिको बातकी बातमें तार दिया, (इतना ही नहीं) उन्हें 'तारन-तरन' (औरोंको तारनेवाला) बना दिया । गजेन्द्रका उद्धार करनेवाले परम शीलवान् राम ! इस तुलसीदासके लिये जो आपकी ढिलाई हो रही है उससे यह ग्लानिके मारे गला जा रहा है । अब शीघ्र इसपर कृपा कर दीजिए ॥ ४ ॥ (२४८)

इस संसारमें जितने भी और स्वामी हैं उन सबको मैं भली-भाँति पहचान चुका हूँ और उनकी रीति-नीति भी जान चुका हूँ । वे सब थोड़ेमें ही प्रसन्न उठते हैं और थोड़ेमें ही बिगड़ भी खड़े होते हैं । वे न तो प्रीति ही निबाह पाते हैं न नीतिका ही पालन कर पाते हैं । उनके व्यवहार बहुत ही खोटे हैं, क्योंकि उन सबको काल और कर्मने मिलकर मायाके अधीन कर छोड़ा है ॥ १ ॥ बड़े-बड़े महामूर्ख घमंडी दानवों और राक्षसों ने अपने स्वामियों के बलपर निःशंक होकर लोकपालोंको जीत लिया था । उनके स्वामियों ने पहले तो प्रसन्न हो-होकर उन्हें वरदान दे डाले, फिर अप्रसन्न हो-होकर उनका सर्वनाश भी कर डाला । उन्हें अपने कृपापात्रों के साथ यह व्यवहार करनेमें तनिक लज्जा भी नहीं आई ॥ २ ॥ परन्तु राम ! आप बड़ी सावधानीसे देखते रहते हैं कि किसने क्या सेवा की है । आप बड़े सुजान और सचमुच समर्थ हैं । आपमें सद्गुण ही सद्गुण हैं और आप परम पवित्र हैं । आप सबपर कृपा करते, सदा प्रसन्न रहते तथा सदा एकरस (एक-जैसे) बने रहते हैं । आपका

१. भूतल-भरन = पृथ्वीके भार । २. रती = तनिक भी, रत्ती भर भी । ३. निभरम = निःशंक ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तो - सों नतपाल, न कृपाल, न कँगाल मो - सों, दया-में बसत देव सकल धरम।
राम कामतरु - छाँह चाहै रुचि मन-माहँ, 'तुलसी' बिकल, बलि, कलि कुधरम ॥४॥(२४९)

तौ हौं बारबार प्रभुहिं पुकारिकै खिझावतो न, जौपै मोकों होतो कहूँ ठाकुर-ठहरु।
आलसी-अभागे मोसें, तैं कृपाल पाले - पोसे, राजा मेरे राजा राम, अवध सहरु ॥ १ ॥
सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस, गौरी, हित कै न माने बिधि, हरिऊ, न हरु।
रामनाम - ही - सों जोग-छेम, नेम-प्रेम-पन, सुधा-से भरोसो यह, दूसरो जहरु ॥ २ ॥
समाचार साथ-के अनाथ-नाथ ! कासों कहौं ? नाथ-ही-के हाथ सब चोरऊ-पहरु।
निज काज, सुर-काज, आरत-के काज राज ! बूझिए बिलंब कत करत गहरु ॥ ३ ॥
रीति सुनि रावरी, प्रतीति - प्रीति रावरे - सों, डरत हौं देखि कलिकाल-को कहरु।
कहे ही बनेगी, कै कहाए,बलि,जाउँ राम! 'तुलसी ! तू मेरो, हारि हिए न हहरु' ॥४॥(२५०)

रूप सदा एक-सा बना रहता है, इसीसे आप घट-घटकी बात जान लेते हैं ॥३॥ जैसे आप शरणागतके रक्षक और कृपालु हैं वैसा न तो दूसरा कोई स्वामी है और न मेरे जैसा कोई कंगाल ही है। देव ! दयामें सारे धर्म बसे रहते हैं। मैं तुमपर बलिहारी जाता हूँ। यह तुलसीदास कलियुगके कुधर्मोंसे व्याकुल हुआ जा रहा है। अतः, इसकी एक यही अभिलाषा है कि आप इसे भी अपने कल्पवृक्ष-जैसी कृपाकी छायामें रख लें ॥ ४ ॥ (२४९)

नाथ ! यदि मेरा कोई दूसरा स्वामी या ठौर-ठिकाना होता, तो मैं बार-बार आपको पुकारकर न खिझाता। अयोध्यापति राजा राम ! मैं तो आपको ही अपना राजा मानता हूँ क्योंकि आप ही हैं जिसने मेरे-जैसे अभागे और आलसीको भी पाला-पोसा है ॥ १ ॥ मैंने न तो दिक्पाल (इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, शेष), सूर्य, गणेश और गौरीकी ही सेवा की न ब्रह्मा, विष्णु और शिवको ही अपना हितैषी माना। मेरा तो रामनाममें ही विश्वास और प्रेम है और मेरी प्रतिज्ञा है कि इसी राम-नामसे मेरा योग-क्षेम भी होगा। मुझे तो इसी (रामनाम)-का ही अमृतके समान (संजीवनी देनेवाला) भरोसा है। और दूसरे सबोंको मैं विष-तुल्य समझता हूँ (राम-नामके अतिरिक्त न मेरा किसीपर विश्वास है, न मैं किसीको अपना हितैषी समझता हूँ)॥२॥ अनाथोंके नाथ राम ! मैं अपने साथियों (काम, क्रोध-लोभ आदि)-के उपद्रवकी कथा और किससे कहूँ ? नाथ ! चोर (काम-क्रोधादि) तथा पहरेदार (विवेक, बुद्धि और विराग आदि) सब आपके ही हाथमें तो हैं। नाथ ! अपने कामों में, देवताओं के कामोंमें और दुखियोंके कामोंमें इस प्रकार क्या विलम्ब करना उचित है ? (यदि नहीं तो) फिर मुझ आर्त्त (दुखी)-के लिये आप क्यों देर किए जा रहे हैं ? ॥ ३ ॥ आपकी रीति (शरणागत-वत्सलता) सुनकर मेरा प्रेम और विश्वास आप ही पर रह गया है। कलियुगकी अत्यन्त अनीति देखकर मैं बहुत डरता हूँ (कि यह कलिकाल कहीं मुझे आपसे विमुख करके विषयोंमें न ला फँसावे)। राम ! मैं आपकी बलैया लेता हूँ। आपको कहना पड़ेगा या मैं ही आपसे यह कहलाकर छोड़ूँगा कि 'तुलसी तू मेरा है, तू निराश होकर मत घबरा' ॥ ४ ॥ (२५०)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम! रावरो सुभाउ, गुन, सील, महिमा, प्रभाउ, जान्यो हरि, हनुमान, लखन, भरत।
जिनके हिए - सुथल राम - प्रेम - सुरतरु, लसत सरस सुख फूलत फरत ॥ १ ॥
आप माने स्वामी-कै सखा सुभाय भाय, पति, ते सनेह - सावधान रहत, डरत।
साहिब - सेवक - रीति - प्रीति - परमिति - नीति - नेम - को निबाह एक, टेक न टरत ॥ २ ॥
सुक - सनकादि, प्रहलाद, नारदादि कहैं, राम - की भगति बड़ी बिरति - निरत।
जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ, समुझि सयाने नाथ! पगनि परत ॥ ३ ॥
छ[1]-मत बिमत[2], न पुरान मत, एक पथ नेति - नेति - नेति नित निगम करत।
औरनि-की कहा चली? एकै बात भले भली, रामनाम लिए तुलसी-हू-से तरत ॥४॥ (२५१)

बाप! आपने करत मेरी घनी घटि गई।
लालची लबार - की सुधारिए बारक, बलि, रावरी भलाई सबही-की भली भई ॥ १ ॥
रोग - बस तन, कुमनोरथ मलीन मन, पर - अपबाद मिथ्या - बाद बानी हई।
साधन-की ऐसी बिधि, साधन बिना न सिधि, बिगरी बनावै कृपानिधि-की कृपा नई ॥ २ ॥

राम! आपके स्वभाव, गुण, शील और महिमाका प्रभाव किसीने जाना है तो शिव, हनुमान्, लक्ष्मण और भरतने ही भली-भाँति जाना है, जिनके हृदयके सुन्दर स्थल और थालेमें रामके प्रेमका वह कल्पवृक्ष शोभा दे रहा है, जिसमें सरस फूल फूलते और सुखके मीठे फल फलते हैं (जिनके हृदयमें रामका प्रेम होनेसे आनन्द ही आनन्द भरा पड़ा है) ॥ १ ॥ आपने तो अपने सुशील स्वभावके कारण शिवको स्वामी, हनुमान्‌को सखा तथा लक्ष्मण और भरतको अपना भाई माना परन्तु वे सब आपको अपना स्वामी ही मानते हैं। वे अपने प्रेममें बड़े सावधान रहते हैं और आपसे बराबर डरा करते हैं। यदि स्वामी और सेवक इस रीतिसे निर्वाह करते रहें, सदा नीति और प्रेमका नियमित पालन करते रहें और अपनी टेकसे न टलें तो उनकी प्रीति परम सीमा-तक पहुँच जाती है ॥२॥ शुकदेव, सनक आदि मुनि, प्रह्लाद, नारद आदि सभी कहते हैं कि रामकी परम भक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब कोई परम विरक्त हो जाय। परन्तु नाथ! वह ज्ञान देना भी तो आपके ही हाथमें है। यही समझ-बूझकर तो चतुर लोग आपके चरणोंपर आकर गिरते हैं ॥ ३ ॥ जब षड् दर्शनों (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त)-के छहों मत, एक दूसरेके विरोधी हैं, पुराणोंका मत भी आपसमें नहीं मिलता और वेद भी नित्य 'नेति-नेति' (इतना ही नहीं, इतना ही नहीं) कहते रहते हैं तब औरोंके सम्बन्धमें तो कहा ही क्या जाय। मुझे तो यही राम-नाम जपनेका मार्ग ठीक लगता है क्योंकि रामका नाम स्मरण करनेसे तो तुलसी-जैसे व्यक्ति भी तर जाते हैं ॥ ४ ॥ (२५१)

पिता! मैंने अपने हाथसे अपनी करनी बहुत कुछ नष्ट कर डाली। बलिहारी है। एक बार इस लालची और झूठेकी बिगड़ी सुधार लीजिए क्योंकि आपने जिस-जिसके साथ भलाई की उस-उसकी बात बन गई (उसका कल्याण हो गया) ॥ १ ॥ मेरा शरीर भी रोगसे जर्जर है, मन भी बुरी कामनाओंके कारण मलिन हुआ पड़ा है और वाणी भी दूसरोंकी निंदा और झूठ बोलनेके कारण बिगड़ी पड़ी है। अतः, मेरे सारे साधन बेकार हो गए हैं। यह तो साधनोंकी दशा है, और बिना

१. छ-मत=छह आस्तिक दर्शन (सांख्य,योग,न्याय,वैशेषिक,मीमांसा,वेदान्त)। २. बिमत=विरुद्ध।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पतित - पावन, हित आरत अनाथनि-को, निराधार - को अधार दीनबन्धु दई।
इनमें एकौ न भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो, ताहि-तें त्रिताप तयो, लुनियत बई ॥ ३ ॥
स्वाँग सूधो साधु-को, कुचालि कलि-तें अधिक, परलोक-फीकी, मति लोक-रंग-रई।
बड़े कुसमाज-राज आज-लौं जो पाए दिन, महराज केहू भाँति नाम - ओट लई ॥ ४ ॥
राम ! नाम-को प्रताप जानियत नीके आप, मोकों गति दूसरी न बिधि निरमई।
खीझिबे लायक करतब कोटि - कोटि कटु, रीझिबे लायक तुलसी-की निलजई ॥५॥ (२५२)

राम ! राखिए सरन, राखि आए सब दिन।
बिदित त्रिलोक, तिहुँ काल, न दयाल दूजो, आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु-बिनु ॥ १ ॥
लाले, पाले, पोषे, तोषे आलसी, अभागी, अघी, नाथ ! पै अनाथनि-सों भए न उरिन।
स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो-तैसो, काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥ २ ॥

साधनके सिद्धि प्राप्त होती नहीं। ऐसी दशामें आपकी कृपा ही ऐसी है जो मेरी बिगड़ी बात बना सकेगी (मेरा कष्ट दूर कर सकेगी) ॥ २ ॥ आप पापियोंका उद्धार करते हैं, दुखी और अनाथोंके हितैषी हैं, निराधारोंके आधार हैं, दीनोंके बंधु हैं और सबपर दया करते रहते हैं। किन्तु मैं तो इनमेंसे एक भी नहीं हूँ। न तो ज्ञान प्राप्त करके अपने शत्रुओं (काम-क्रोध आदि)-से मैं युद्ध ही कर पाया और न उन्हें जीत ही पाया। इसीलिये मैं तीनों तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक)-से तप्त हुआ जा रहा हूँ। ठीक भी है, जैसा मैंने बोया है वैसा ही काट भी रहा हूँ (जैसे कर्म किए हैं, वैसे ही फल भोग रहा हूँ) ॥ ३ ॥ मैंने अपना स्वाँग तो साधुओं-जैसा सीधा-सादा बना रक्खा है पर कुकर्म ऐसे-ऐसे करता हूँ कि कलियुग भी मेरे सामने कुछ नहीं है। मेरी बुद्धिको परमार्थका कार्य करना बुरा जान पड़ता है, क्यों कि वह तो सांसारिक विषयोंमें लीन है। महाराज राम ! इस समाजके साथ जितने दिन बीते वे सब व्यर्थ ही गए। मैंने तो किसी प्रकार आपके नामका अवलम्ब पा लिया है (इससे विश्वास है कि मेरा कल्याण होगा) ॥ ४ ॥ राम ! आप तो अपने नामका प्रताप जानते ही हैं। फिर, मेरे लिये तो विधाताने दूसरा कोई मार्ग बनाया ही नहीं (केवल रामनाम ही मेरे जीवनका आधार और मेरे लिये सन्मार्ग है)। मेरे सभी कर्त्तव्य ऐसे निकम्मे हैं कि आप सुनेंगे तो रुष्ट हुए बिना न रहेंगे। आपको सन्तुष्ट करने-योग्य तो केवल तुलसीकी निर्लज्जता ही बच रही है। आप मेरी उस निर्लज्जतापर ही प्रसन्न होकर कृपा कर दीजिए (क्यों कि यह तुलसीदास तो निर्लज्ज होकर अब आपके द्वारपर आ पड़ा है) ॥ ५ ॥ (२५२)

राम ! अब मुझे आप अपनी शरणमें रख ही लीजिए क्यों कि आप सदासे (मेरे-जैसे दीनोंको) अपनी शरणमें रखते चले आए हैं। यह बात तो त्रिलोक और तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्यत्)-में विदित है कि आपके समान दयालु दूसरा और कोई नहीं है। प्रभु ! आप ही बताइए कि आपके बिना दुखियों और शरणागतोंका पालन दूसरा और कौन कर पा सकता है ? (कोई भी नहीं) ॥ १ ॥ आपने न जाने कितने बड़े-बड़े आलसी, अभागे और पापियोंको पाला-पोसा और उन्हें सुखी कर दिया, फिर भी नाथ ! अनाथोंसे आप उऋण नहीं हुए। स्वामी ! उधर आप तो ऐसे समर्थ हैं, इधर मैं जैसा कुछ भी हूँ, हूँ तो आपका ही। कलिकालकी चाल देखकर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

खीझि, रीझि, बिहँसि, अनख क्यों-हूँ एक बार, 'तुलसो तू मेरो', बलि, कहियत किन ?
जाहिं सूल निरमूल, होहिं सुख अनुकूल, महाराज राम ! रावरी-सौं तेहि छिन ॥३॥ (२५३)

राम ! रावरो नाम मेरो मातु - पितु है ।
सुजन, सनेही, गुरु, साहब, सखा, सुहृद, रामनाम - प्रेम - पन अबिचल बित है ॥ १ ॥
सत कोटि चरित अपार दधि - निधि मथि, लियो काढ़ि बामदेव नाम - घृत है ।
नाम-को भरोसो बल, चारिहू फल-को फल, सुमिरिए छाँड़ि छल, भलो कृत है ॥ २ ॥
स्वारथ-साधक, परमारथ - दायक नाम, रामनाम - सारिखो न और हित है ।
'तुलसी' सुभाय कही, साँचियै परैगी सही, सीतानाथ-नाम चित-हू-को चित है ॥३॥ (२५४)

राम ! रावरो नाम साधु - सुरतरु है ।
सुमिरे त्रिबिध घाम हरत, पूरत काम, सकल - सुकृत - सरसिज - को सर है ॥ १ ॥
लाभहू-को लाभ, सुखहू - को सुख, सरबस, पतित - पावन, डरहू - को डर है ।
नीचे-हू-को, ऊँचे-हू-को, रंक-हू-को, राय-हू-को, सुलभ, सुखद, आपनो-सो घर है ॥ २ ॥

मेरे हृदयमें बड़ी ग्लानि हो रही है (कि मेरा क्या होगा) ॥ २ ॥ मैं बलिहारी जाता हूँ । महाराज ! मैं आपकी शपथ लेकर कहता हूँ कि एक बार अप्रसन्नतासे, प्रसन्नतासे, हँसकर या क्रोध करके किसी भी प्रकार यदि आप कह देते कि 'तुलसीदास ! तू मेरा ही है' तो बस आपके इतना कह देने भरसे ही उसी क्षण मेरे सारे दुःख जड़से नष्ट हो जाते और मुझे सारे सुख मिल जाते ॥ ३ ॥ (२५३)

राम ! आपका नाम ही मेरे लिये माता, पिता, सम्बन्धी, स्नेही, गुरु, स्वामी, मित्र और सहृदय सखा सब कुछ है । राम-नामके साथ प्रेम किए रखनेका जो मेरा प्रण है वही मेरा अविचल धन है ॥१॥ शिवने आपके सौ करोड़ (असंख्य) चरित्रोंका अगाध दधि-सागर मथकर उसमेंसे यह नाम-रूपी घी निकाला है (आपके समस्त चरित्रोंका सार 'रामनाम' माना है) । चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-का फल भी आपके नामका भरोसा और बल ही है । अतः, निष्कपट भावसे इसी (राम-नाम)-का स्मरण करते रहना चाहिए । यही सबसे उत्तम यज्ञ है ॥ २ ॥ आपका नाम ही स्वार्थ (सांसारिक सुख)-का भी साधक है और परमार्थ (मोक्ष)-का भी । रामनामके समान हितकारी और दूसरा कोई नहीं है । यह बात तुलसीने स्वभावसे (निष्कपट भावसे) कही है । अतः, (मुझे विश्वास है कि) इस (विनय-पत्रिका) पर सचमुच आपकी सही (स्वीकृति) हो ही जायगी । जानकीनाथ ! आपका नाम चित्तका भी चित्त (चित्तको भी चैतन्य करनेवाला), परमार्थका बोधक और जीवका उद्धारक है ॥ ३ ॥ (२५४)

राम ! आपका नाम सज्जनोंके लिये ऐसा कल्पवृक्ष है कि इसके स्मरण मात्रसे तीनों प्रकारके (दैहिक, दैविक और भौतिक) घाम (ताप) नष्ट हो जाते हैं और सारी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं । यह (राम-नाम) सब प्रकारके पुण्यों के कमलोंका सरोवर है ॥ १ ॥ यह (राम-नाम) लाभका भी लाभ, सुखका भी सुख, (भक्तोंका) सर्वस्व, पापियोंको पवित्र करनेवाला तथा डरका भी डर है । यह (रामनाम) नीच, ऊँच, रंक और राजा, सबके लिये सुलभ है और अपने घरके समान

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो, राम - नाम - प्रेम चारि फलहू - को फर है।
ऐसे रामनाम-सों न प्रीति, न प्रतीति मन, मेरे जान, जानिबो सोइ नर खर है ॥ ३ ॥
नाम-सों न मातु - पितु - मीत - हित - बंधु - गुरु - साहिब - सुधी सुसील सुधाकर है।
नाम-सों निबाह नेह दीन-को दयाल ! देहु दास तुलसी-को, बलि, बड़ो बर है ॥४॥(२५५)

कहे - बिनु रह्यो न परत, कहे राम ! रस न रहत।
तुम-से सुसाहिब - की ओट जन खोटो-खरो, काल-की, करम-की कुसाँसति सहत ॥ १ ॥
करत बिचार, सार पैयत न कहूँ कछु, सकल बड़ाई सब कहाँ-ते लहत ?
नाथ-की महिमा सुनि-समुझि, आपनी ओर हेरि, हारि-कै हहरि हृदय दहत ॥ २ ॥
सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु ! आप माय-बाप तुही साँचो, तुलसी कहत।
मेरी तो थोरी है, सुधरैगी बिगरियो, बलि, राम ! रावरी-सौं, रही रावरी चहत ॥३॥(२५६)

दीनबंधु ! दूरि किए दीन - को न दूसरी सरन।
आपको भले हैं सब, आपने-को कोऊ कहूँ, सब-को भलो है, राम ! रावरो चरन ॥ १ ॥

सबको सुख देता है ॥ २ ॥ वेद, पुराण और शिवने भी पुकार-पुकारकर कहा है कि राम-नामका प्रेम तो चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-का भी फल है (इन चारों पदार्थोंका सारतत्त्व है)। ऐसे राम-नामसे भी जो मनसे प्रेम और विश्वास नहीं करता, उस मनुष्यको मेरे विचारसे तो निरा गदहा (मूर्ख) समझना चाहिए ॥ ३ ॥ राम-नामके समान माता, पिता, मित्र, हितैषी, भाई, गुरु और स्वामी कोई दूसरा है ही नहीं। यह तो सुशील और बुद्धिमान् चन्द्रमाके समान (शीतल) स्वामी है। दीनदयालु राम ! मैं बलिहारी जाता हूँ। तुलसीदासको आप यही बड़ा वरदान दे दीजिए कि इस रामनामके प्रति स्नेहका मैं पूरा निर्वाह करता चल सकूँ ॥ ४ ॥ (२५५)

राम ! बिना कहे तो रहा नहीं जाता और कह देनेपर फिर उसका रस (आनन्द) नहीं रह जाता (क्योंकि खरी बात सदा कटु होती ही है, इसीसे सुननेमें रसहीन होती है)। आप-जैसे श्रेष्ठ स्वामीका आश्रय लेनेवाला यह सेवक चाहे भला हो या बुरा, अब (कलि)-काल और (अपने) कर्मकी दुर्दशा सहे जा रहा है ॥१॥ विचार करनेपर कुछ ठीक-ठीक ज्ञात ही नहीं हो पाता कि इतने सब लोगोंने बड़प्पन पाया तो कहाँसे पाया ? आपकी महिमा सुन और समझकर और फिर अपनी ओर देखकर निराश हो बैठता हूँ और घबराहटसे मेरा हृदय जलने लगता है ॥ २ ॥ तुलसीदास कहते हैं—'प्रभो ! सुनिए, न तो मेरा कोई मित्र ही है, न सच्चा सेवक ही है, न सुन्दर स्त्री ही है। मेरे तो सच्चे माई-बाप आप ही हैं। नाथ ! मेरी तो थोड़ी-सी ही बात है, जो बिगड़नेपर भी सुधर ही जायगी, किन्तु, बलिहारी आपकी, मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं तो आपकी लाज बचानेके फेरमें पड़ा हूँ (कि कहीं कोई यह न कह बैठे कि भगवान् कैसे भक्तवत्सल और पतित-पावन हैं कि तुलसीको अबतक न तार पाए) ॥ ३ ॥ (२५६)

दीनबन्धु ! यदि आपने मुझे अपने सामनेसे हटा भगाया तो फिर मेरा कहीं कोई दूसरा ठौर-ठिकाना नहीं है। अपने लिये तो सभी भले हैं, और अपने आश्रितोंके लिये भी कहीं कोई-कोई भला निकल आता है, पर राम ! सबकी भलाई चाहनेवाले यदि कोई हैं तो केवल आपके चरण ही हैं ॥ १ ॥ पत्थर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाहन, पतंग, पसु, कोल, भील, निसिचर, काँच - तें कृपानिधान किए सुबरन।
दंडक[1] - पुहुमि, पाँय - परस पुनीत भई, उकठे बिटप लागे फूलन - फरन ॥ २ ॥
पतित - पावन नाम, बाम हू दाहिनो, देव ! दुनी न दुसह - दुख - दूषन - दरन।
सीलसिंधु ! तोसों ऊँची-नीचियौ कहत सोभा, तोसों तुही तुलसी-को आरति-हरन ॥३॥(२५७)

जानि-पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान ! एतो मान ढीठ हौं, उलटो देत खोरि हौं।
करत जतन जासों जोरिबे-को जोगीजन, तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं ॥१॥
मोसों दोस-कोस-को भुवन-कोस दूसरो न, आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं।
गाड़ी-के स्वान-की नाईं, माया-मोह-की बड़ाई, छिनहि तजत, छिन भजत बहोरि हौं ॥ २ ॥
बड़ो साँई-द्रोही, न बराबरी मेरी-को कोऊ, नाथ-की सपथ किए कहत करोरि हौं।
दूरि कीजै द्वार-तें लबार, लालची, प्रपंची, सुधा-सो सलिल सूकरी-ज्यों गहडोरिहौं ॥ ३ ॥

(अहल्या), पक्षी (जटायु), वानर-भालू आदि पशु, कोल-भील (वाल्मीकि) तथा राक्षस (विभीषण) आदि जो काँचके समान तुच्छ थे, उन्हें भी आपने कृपानिधान ! सुवर्णके समान श्रेष्ठ बना धरा। दंडक वनकी भूमि आपके चरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो गई, उकठे (सूखे) हुए वृक्ष भी फूलने और फलने लगे ॥ २ ॥ देव ! आपका पतितपावन नाम ऐसा है कि जो जीव आपसे विमुख भी हैं वे भी आपके अनुकूल (भक्त) हो जाते हैं। इस (नाम) जपनेके समान दूसरा कोई उपाय नहीं है जो संसारके दुःसह दुःख और दोष नष्ट कर डाले। परम शीलवान् राम ! आपसे अपनी नीची-ऊँची (भली-बुरी) सब बातें कह देना ही ठीक है (आपसे कुछ भी छिपाना उचित नहीं है)। मुझ तुलसीदासकी विपत्ति यदि कोई दूर कर सकता है तो केवल आप ही कर सकते हैं (दूसरा कोई नहीं) ॥ ३ ॥ (२५७)

कृपानिधान ! आपको जान-पहचानकर भी, आपको भूला तो मैं बैठा हूँ, पर ढीठ इतना हूँ कि उलटे आपके ही सिर दोष मढ़े जा रहा हूँ। जिस (राम)-से प्रीति जोड़नेके लिये बड़े-बड़े योगी निरन्तर यत्न करते रहते हैं, उससे किसी प्रकार मेरी कुछ प्रीति जुड़ भी गई थी, परन्तु मैं ऐसा अभागा हूँ कि उसे भी तोड़ बैठा ॥ १ ॥ मैं अपनी समझसे सर्वत्र खोज फिरा पर मेरे जैसे महापापीके लिये चौदहों भुवनोंमें (आपके अतिरिक्त) दूसरा कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिला। जैसे गाड़ीके पीछे लगा हुआ कुत्ता कभी गाड़ी छोड़कर आगे बढ़ जाता है और कभी फिर उसके साथ हो लेता है, उसी प्रकार मैं भी माया-मोहका प्रभाव क्षण भरके लिये छोड़ देता हूँ पर फिर दूसरे ही क्षण उसीसे जा लगता हूँ ॥ २ ॥ मैं आपकी करोड़ों सौगंध खाकर कह सकतासकता हूँ कि मैं जितना बड़ा स्वामि-द्रोही हूँ उतना बड़ा स्वामि-द्रोही दूसरा कोई हो नहीं सकता। अतः, मेरे जैसे प्रपंची, झूठे और लालचीको आप अपने द्वारसे हटाकर दूर कीजिए, नहीं तो मैं अमृतके समान जलको भी वैसे ही गँदला कर डालूँगा जैसे सूअरी पानी घँघोल डालती है। या तो मुझे ठीकसे शरणमें रख लीजिए या मुझ नीचको मार ही डालिए। बस, अब आप इन दोनोंपर विचार कर लीजिए।

१. दंडक-वन : (दंडक (लाठी)-के बाँसका जंगल) विन्ध्य पर्वत और गोदावरीके बीचका वन्य प्रदेश।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राखिए नीके सुधारि, नीच कै डारिए मारि, दुहूँ ओर-की बिचारि, अब न निहोरिहौं।
'तुलसी' कही है साँची, रेख बार-बार खाँची, ढील किए नाम-महिमा-की नाव बोरिहौं॥४॥(२५८)

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी, कहौं, बलि, बेद-की न, लोक कहा कहैगो ?
प्रभु-को उदास-भाव, जन-को पाप - प्रभाव, दुहूँ भाँति दीनबंधु ! दीन दुख दहैगो ॥ १ ॥
मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि, साँसति सहत, परबस को न सहैगो ?
बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपाल ! अंत मेरो हाल हेरि, यौं न मन रहैगो ॥ २ ॥
करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत, आपनी भलाई थल कहाँ, को न लहैगो ?
तेरे मुँह फेरे, मोसे कायर, कपूत, कूर, लटे लटपटनि-को कौन परिगहैगो ॥ ३ ॥
काल पाय फिरत दसा दयाल ! सब ही-की, तोहिं-बिनु मोहिं कबहूँ न कोउ चहैगो।
बचन-करम-हिए, कहौं राम सौंह किए, 'तुलसी' पै नाथ-के निबाहे निबहैगो ॥४॥ (२५९)

साहिब उदास भए, दास खास खीस होत[1], मेरी कहा चली ? हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं[2] ।
लोकमें न ठाउँ, परलोक-को भरोसो कौन ? हौं तो बलि जाउँ, राम-नाम ही-तें लह्यो हौं ॥ १ ॥

अब मैं आपसे अधिक निहोरा (प्रार्थना) नहीं करूँगा। तुलसीदास बार-बार लकीर खींचकर (प्रण करके) कह रहा है कि यदि आपने मेरे लिये ढिलाई की तो मैं आपके नामकी महिमाकी नौका ही डुबो धरूँगा ॥ ४ ॥ (२५८)

यदि मेरी बिगड़ी बात आपके सुधारनेपर भी बिगड़ी ही रह गई तो, मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, वेदकी तो मैं नहीं कह सकता, पर, हाँ, संसार क्या कहेगा ? (कि परम समर्थ राम एक तुलसीका कल्याण भी न कर सके) । प्रभु ! दीनबन्धु ! आपकी उदासीनता और अपने पापका प्रभाव दोनोंके कारण यह दीन निरन्तर दुःखकी आगमें जला चला जा रहा है ॥ १ ॥ मुझे तो कलिकाल दबाए बैठा है, इसलिये मैं तो छातीपर वज्र रखकर (छाती कड़ी करके) उस कलिकालके हाथों दुर्दशा सहन किए ही जा रहा हूँ क्योंकि परवश होकर कौन दुर्दशा नहीं सहता ? (सहनी ही पड़ती है)। पर कृपालु ! (आप भी समझ रखिए कि) मेरी रक्षा करलेनेपर ही आपकी सुकीर्त्ति भी बनी रह सकेगी। अन्तमें मेरी यह दुर्दशा देखकर आपका आसन भी डाँवाडोल हुए बिना न रह पावेगा ॥ २ ॥ कर्म (यज्ञ आदि) करनेवाले लोग, धर्मात्मा, साधु, सेवक, वैरागी और संसारी (संसारमें आसक्त), ये सब अपने-अपने भले कर्मोंके अनुसार कहाँपर कौन-सा स्थान नहीं पा लेंगे (जो-जो जैसा कर्म कर रहे हैं उसीके अनुसार वैसा स्थान या फल पा ही लेंगे) पर आप यदि मुझसे मुँह फेर बैठे तो मुझ जैसे कायर, कुपुत्र, क्रूर, अशक्त और अव्यवस्थित लोगोंको कौन अपनावेगा (कौन उनकी रक्षा करेगा) ? (कोई भी नहीं) ॥३॥ दयालु ! समय आनेपर सबके दिन फिरते हैं, परन्तु मुझे तो आपके अतिरिक्त कोई भी पास न फटकने देगा। राम ! मैं मन, वचन और कर्मसे आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि इस तुलसीदासका निर्वाह होगा तो केवल आपकी ही कृपासे हो पावेगा, अन्य किसी उपायसे नहीं ॥ ४ ॥ (२५९)

स्वामीके उदासीन हो बैठनेपर तो जब मुख्य सेवक-तक नष्ट हो जा सकता है तब मेरी कहाँतक चल सकती है। मैं तो डंकेकी चोट कह रहा हूँ कि मैं नष्ट होता जा रहा हूँ। मेरे लिये तो जब

१. खीस होत=नष्ट होते हैं। २. जाइ रह्यो हौं = नष्ट हो रहा हूँ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

करम-सुभाव-काल-काम-कोह-लोभ-मोह ग्राह[1]-अनि, गहनि गरीब गाढ़े गह्यौ हौं।
छोरिबेको महाराज, बाँधिबेको कोटि भट, पाहि ! प्रभु पाहि ! तिहुँ ताप-पाप दह्यौ हौं ॥२॥
रीझि-बूझि सबकी, प्रतीति-प्रीति एही द्वार, दूध-को जर्‌यो पियत फूँकि-फूँकि मह्यौ[2] हौं।
रटत-रटत लट्यो, जाति-पाँति-भाँति[3] घट्यो, जूठनि-को लालची चहौं न दुह्यौ नह्यौ[4] हौं ॥३॥
अनत चह्यौ न भलो, सुपथ सुचाल चल्यौ, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यौ हौं।
'तुलसी' समुझि, समुझायो मन बार-बार, अपनो-सों नाथ हू-सों कहि निरबह्यौ हौं ॥४॥(२६०)

मेरी न बनै बनाए मेरे कोटि कलप-लौं, राम ! रावरे बनाए बनै पल पाउ-मैं।
निपट सयाने हौ कृपानिधान ! कहा कहौं ? लिये बेर बदलि अमोल-मनि-आउ मैं ॥ १ ॥
मानस मलीन, करतब कलिमल-पीन, जीह-हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ-बाउ[5] मैं।
कुपथ कुचाल चलो, भयो न भूलि हू भलो, बाल-दसा-हूँ न खेल्यो खेलत सुदाँउ मैं ॥२॥

लोक-तकमें स्थान नहीं है, तब परलोकका तो भरोसा ही क्या ? बलिहारी है आपकी। मेरा तो रामनामके बलपर ही कल्याण हुआ है ॥ १ ॥ काल, कर्म, स्वभाव, काम, क्रोध, लोभ और मोह-रूपी ग्राहोंने इस दीनको बड़ी दृढता-पूर्वक पकड़ लिया है। ऐसे-ऐसे मुझे बाँधनेवाले योद्धा तो करोड़ों हैं, पर महाराज राम ! मुझे छुड़ानेवाले कोई हैं तो केवल आप ही हैं। प्रभु ! मेरी रक्षा कर लीजिए, रक्षा कर लीजिए। मैं तीनों तापोंसे जला जा रहा हूँ ॥२॥ मैंने प्रसन्न करनेके लिये सबको भली प्रकार टटोलकर देख-सुन लिया है (पर मेरा कहीं भी ठिकाना नहीं लग पाया)। बस, मेरा तो विश्वास और प्रेम एक मात्र इसी द्वारपर है क्योंकि जैसे दूधका जला छाछ भी फूँक फूँककर पीता है, वैसे ही मैं भी जैसे अबतक इधर-उधर भटकनेपर किसीने ध्यान नहीं दिया वैसे ही आपके द्वारपर भी चिल्लाते-चिल्लाते थककर डरने लगा हूँ कि कहीं यहाँ भी मेरी जाति-पाँति और उच्च कुलकी सारी प्रतिष्ठा न जाती रहे। अब तो मैं केवल आपके जूठनका ही लालची रह गया हूँ। इसके अतिरिक्त मैं 'दूधमें नहाना' (ऐश्वर्य प्राप्त करना) नहीं चाहता ॥ ३ ॥ मैं (आपके अतिरिक्त) दूसरे किसी देवतासे अथवा सुमार्गपर चलकर या सदाचरणसे अपना कल्याण नहीं चाहता। भली प्रकार समझ बूझकर तथा यहाँ तिरस्कृत होनेपर भी तुलसीदासने समझ लिया और मनको भली-भाँति समझा दिया है (कि मुझे यहीं रहना है)। नाथ ! अपनी ओरसे तो मैं आपसे यही कहकर छुट्टी पा रहा हूँ ॥४॥ (२६०)

मेरे बनानेसे तो मेरी करनी करोड़ों कल्पतक भी नहीं बन पाई, परन्तु राम ! आप चाहें तो उसे पाव पलमें ही बना सकते हैं। कृपानिधान ! मैं क्या कहूँ ? आप तो स्वयं परम चतुर हैं। मैंने तो अनमोल मणिके समान अपनी आयुके बदलेमें बेर ही लिया (अमूल्य आयु बिता दी और केवल तुच्छ विषय-वासनाओंमें लिपटा रहा) ॥ १ ॥ मेरा मन तो मलिन है ही, मेरे कर्म भी कलियुगके कारण बहुत पुष्ट हो गए हैं। मेरी जीभने भी आपका भजन नहीं किया, प्रत्युत वह आँय-बाँय-साँय (निरर्थक बकवाद) करती रही। बुरे-बुरे मार्गोंपर मैं बुरी चालें चलता रहा। भूलकर भी मैंने कभी कोई अच्छा काम नहीं किया। बचपनमें खेलते समय भी कभी अच्छा दाँव

१. ग्राह (मगर, घड़ियाल, नक्र), घोड़ा, कछुआ और ऊँट जब एक बार दाँतसे पकड़ लेते हैं तो छोड़ते नहीं। २. मह्यो = मट्ठा। ३. भाँति = मर्यादा, चाल। ४. नह्यो न चहौं = नहाना नहीं चाहता। ५. आउ-बाउ = आयँ बायँ-शायँ, ऊलजलूल बकना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देखो-देखा, दंभ-तें, कि संग-तें भई भलाई, प्रगटि जनाई, कियो दुरित दुराउ मैं।
राग-रोष-दोष पोषे, गो-गन-समेत मन, इनकी भगति कीन्हीं इनहीं-को भाउ मैं॥ ३॥
आगिली, पाछिली, अबहूँ-की अनुमान-ही-तें, बूझियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ मैं।
जग कहै राम-को, प्रतीति-प्रीति तुलसी-हूँ, झूठे-साँचे आसरो साहिब रघुराउ-मैं॥४॥ (२६१)

कह्यौ न परत, बिनु कहे रह्यौ न परत, बड़ो सुख कहत बड़े-सों, बलि, दीनता।
प्रभु-की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी, प्रभु-की पुनीतता, आपनी पाप-पीनता॥ १॥
दुहुँ ओर समुझि, सकुचि सहमत मन, सनमुख होत सुनि स्वामी - समीचीनता[1]।
नाथ-गुन-गाथ गाए, हाथ जोरि माथ नाए, नीचऊ निवाजे प्रीति-रीति-की प्रबीनता॥ २॥
एहि दरबार है गरब - तें सरब-हानि, लाभ जोग-छेम - को गरीबी - मिसकीनता[2]।
मोटो दसकंध-सो न, दूबरो बिभीषन-सो, बूझि परी रावरे-की प्रेम-पराधीनता॥ ३॥

(भगवान्‌के गुणगान आदिका खेल) नहीं खेला (उपकार नहीं किया)॥ २॥ मुझमें जो कुछ भी थोड़ी-बहुत भलाई दंभके कारण या लोगोंकी देखा-देखी या कभी-कभी सत्संगके कारण बन पड़ी है उसका मैं डंका पीटता रहा और अपनी बुराइयाँ छिपाता रहा। सभी इन्द्रियों के साथ अपने मनको राग (विषयादिक), क्रोध और पापोंमें लगाए रहा। इन्हींके फेरमें पड़कर मैंने इन्हींकी भक्ति की (सांसारिक विषयोंमें पड़ा रहा)॥ ३॥ मैं अपना भूत, वर्त्तमान और भविष्य देखकर अनुमान कर सकता हूँ कि मैंने कोई भला काम तो कभी किया नहीं, फिर भी इतना अवश्य है कि लोग मुझे रामका सेवक कहते हैं। तुलसीको भी इसपर विश्वास है और यह चाहता भी है (कि लोग मुझे राम-भक्त कहें)। आप झूठ मानिए या सच, मुझे तो केवल स्वामी रामका ही भरोसा है॥ ४॥ (२६१)

राम ! मुझसे कुछ कहा नहीं जाता और कहे बिना रहा भी नहीं जाता। बलिहारी है। बड़ोंको अपनी दीन दशा सुनानेमें भी बड़ा सुख मिलता है। प्रभुकी बड़ी बड़ाई और अपनी छोटी छोटाई, प्रभुकी पवित्रता और अपने पापोंकी अधिकता,॥ १॥ इन दोनों ओरकी परिस्थितियों (-का अन्तर) समझकर डरके मारे मन सकुचाया जा रहा है। किन्तु फिर स्वामीके सनातन स्वभाव (पतित-पावनता और दीन-दयालुता)-की बात सुनकर मेरा मन प्रभुकी ओर घूम ही जाता है। नाथ ! आपके गुणोंकी कथा कहनेसे और हाथ जोड़कर आपको मस्तक नवानेसे नीचोंपर भी आपकी कृपा होने लगती है। यही आपकी प्रीतिकी रीतिकी विशेषता है॥२॥ इस दरबारमें आकर जो गर्व करता है उसका सर्वनाश हो जाता है। जिन्हें अपना लाभ और कल्याण करना हो उन्हें दीन (नम्र) होना ही चाहिए। देखिए, न तो रावणके समान कोई समर्थ (शक्तिशाली)-ही था और न विभीषणके समान कोई असमर्थ ही था। पर इन दोनोंके प्रति आपने जो बर्त्ताव किया उसमें (विभीषणसे) प्रेम और (उसकी) भक्तिके अधीन होना ही मुख्य था। (गर्वके कारण रावणका नाश किया और भक्तिके कारण विभीषणको लंकाका राजा बना दिया।)॥ ३॥ यहाँ (आपके दरबारमें) चतुरता

---

१. समीचीनता = सज्जनता। २. मिसकीनता = [फ़ारसी मिस्कीन = दीन (कीन)] दीनता।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इहाँ - की सयानप, अयानप सहस - सम, प्रभु ! सति भाय कहे मिटति मलीनता।
गीध, सिला, सबरी-की सुधि सबै दिन किए, हाइगी न साईं-सों सनेह-हित-हीनता ॥ ४ ॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु, सुमिरत होति कलिमल - छल - छीनता।
करुनानिधान ! बरदान तुलसी चहत, सीतापति-भगति-सुरसरि-मन-मीनता ॥५॥ (२६२)

नाथ ! नीके कै जानिबी ठीक जन - जिय-की।
रावरो भरोसो नाह - कै सुप्रेम-नेम लिये, रुचिर रहनि, रुचि गति - मति तिय-की ॥ १ ॥
दुःकृत सुकृत बस सबही-सों संग पर्‍यौ, परखी पराई गति, आपने हूँ किय-की।
मेरे भले - को गोसाँयों, पोचको हौं हूँ सकल, किए कहौं सौंह साँची सिय पिय-की ॥ २ ॥
ज्ञानहू गिरा-के स्वामी, बाहर-अंतर-जामी, इहाँ क्यों दुरैगी बात मुख-की औ हिय-की।
'तुलसी' तिहारो, तुमही पै तुलसी-के हित, राखि-कै कहे-तें कछू ह्वैहै माखी घिय-की ॥३॥(२६३)

मेरो कह्यौ सुनि, पुनि भावै तोहिं, करि सो।
चारिहूँ बिलोचन बिलोक तू तिलोक-महँ, तेरो तिहुँ काल, कहु, को है हितु हरि-सो ॥ १ ॥

दिखाना तो बड़ी भारी मूर्खता है। प्रभु ! आपसे सच्चे भावसे अपनी दीनता कह देनेपर सारी मलिनता (शारीरिक और मानसिक व्याधि) दूर हो जाती है। गीध, अहल्या और शबरीके प्रति आपने जो उपकार किए उन्हें यदि कोई स्मरण करे तो स्वामी रामसे अपना हित होने और प्रेम होनेमें कोई कमी न होगी ॥ ४ ॥ नाथ ! आपका नाम तो ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसे स्मरण करने भरसे कलियुगके पाप और छल समाप्त हो जाते हैं। करुणानिधान ! यह तुलसीदास आपसे यही वरदान चाहता है कि सीतापति रामकी भक्ति कि गंगामें मेरा मन मछली होकर पड़ा रहे। (मैं सदा आपकी भक्ति करता रहूँ) ॥ ५ ॥ (२६२)

नाथ ! आप अपने इस दासके हृदयकी गति (मनकी बात) भली-भाँति समझ लीजिए। इस दासकी बुद्धि-रूपी स्त्री आपके भरोसेको ही अपना स्वामी मान बैठी है और उसीके साथ विशुद्ध प्रेम करनेका नियम बना बैठी है। इसका रहन-सहन, अभिलाषा और मनोवृत्ति भी वैसी ही है ॥ १ ॥ अपने पाप और पुण्यके कारण इसे सबके साथ रहना पड़ा है। इसमें रहते-रहते इसने अपने कर्म और दूसरोंकी चालें भली प्रकार परख ली हैं। गोस्वामी ! सीतानाथ रामकी शपथ खाकर मैं सत्य कहता हूँ कि मुझमें जो भलाई है वह आपके कारण है और जितनी बुराइयाँ है उनका कारण मैं स्वयं हूँ ॥ २ ॥ (इसके अतिरिक्त) आप तो ज्ञान और वाणीके भी स्वामी हैं। आप भीतर और बाहरकी सारी बातें जानते ही हैं। तब फिर आपके आगे मुँहकी (प्रत्यक्ष) और हृदयकी (परोक्ष) कोई बात कैसे छिपी रह सकेगी ? यह तुलसीदास आपका है और आपके ही हाथ इसका कल्याण भी होनेवाला है। इसमें यह (तुलसीदास) यदि कुछ (कपट) रखकर कहता हो तो वह घीमें पड़ी मक्खीके समान नष्ट हो जाय (उसका सर्वनाश हो जाय) ॥ ३ ॥ (२६३)

अरे जीव ! पहले तू मेरा कहना सुन ले, फिर जो कुछ तुझे अच्छा लगे वह कर। तू अपने चारों नेत्रों (दो बाहरी नेत्र और दो हृदयके नेत्र)-से देखकर बता कि भगवान् हरिके समान तीनों लोकों तथा तीनों कालोंमें तेरा हितैषी दूसरा और कौन है ? (कोई नहीं है) ॥ १ ॥ तूने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नए-नए नेह अनुभए देह - गेह बसि, परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो।
सुहृद-समाज दगाबाजी ही-को सौदा सूत, जब जाको काज, तब मिलै पाँय परि सो ॥ २ ॥
बिबुध सयाने, पहिचाने कैधौं नाहीं नीके, देत एक गुन, लेत कोटि गुन भरि सो।
करम - धरम - श्रम - फल रघुबर-बिनु, राख-को-सो होम है, ऊसर-को-सो बरिसो ॥ ३ ॥
आदि-अंत-बीच भलो, भलो करै सबही-को, जाको जस लोक-बेद रह्यो है बगरि सो।
सीतापति-सारिखो सु साहिब निधान-सील, कैसे कल परै सठ ! बैठो सो बिसरि सो ॥४॥
जीव-के जीवन, प्रान प्रान-को, परम हित, प्रीतम पुनीत कृत नीचन, निदरि सो।
तुलसी ! तोकौं कृपाल जो कियो कोसलपाल, चित्रकूट-को चरित्र चेत चित करि सो॥५॥(२६४)

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं जन हौं सिय-पी-को।
केहि अभाग जान्यो नहिं जो न होइ नाथ - सों नातो नेह न नीको ॥ १ ॥

शरीर-रूपी घरमें रहकर नये-नये सब स्नेहोंका भरपूर अनुभव कर लिया है। परीक्षा करनेपर सांसारिक प्रेमकी सारी पोल खुल जाती है। संसारमें जितने भी मित्र मिले उन सबका लेन-देन तो धोखे-धड़ीका ही रहता है। जब जिसका प्रयोजन होता है तब वह पैरों पड़कर आ मिलता है (फिर काम निकल जानेपर बात भी नहीं पूछता) ॥ २ ॥ देवता लोग भी बड़े चतुर हैं। उन्हें तू भली प्रकार पहचाना पाया है या नहीं ? वे पहले दे तो देते हैं एक गुना, पर फिर भरवा लेते हैं करोड़ गुना। रहे अपने कर्म-धर्म, वे भी रामके निमित्त न किए जायँ तो केवल श्रम ही श्रम करना हाथ लगता है। (फल कुछ नहीं) इनका करना वैसे ही निष्फल है जैसे राखमें हवन करना अथवा ऊसर भूमिमें पानी बरसना ॥ ३ ॥ अरे शठ ! जो आदि, अंत और मध्य सबमें सदा सबका भला करते हैं, जिनका सुयश भी लोक और वेदोंमें फैला हुआ है, ऐसे सीतापति रामके समान शीलवान् अच्छे स्वामीको भी तू भुला बैठा है ? ऐसी दशामें तुझे चैन कैसे पड़ता है ? ॥ ४ ॥ जो राम सब जीवोंके जीवन, प्राणोंके भी प्राण, परम हितैषी और सबके प्रिय हैं तथा जिन्होंने नीचोंको भी पवित्र कर दिया है, तू उन्हींका निरादर किए बैठा है ? अरे तुलसीदास ! कृपालु कोशलपालने तेरे लिये चित्रकूटमें[1] जो चरित्र कर दिखलाया था उसे चित्तमें लाकर तो तू उन्हें स्मरण कर ले ॥ ५ ॥ (२६४)

मैं स्वच्छ शरीरसे, सच्चे मनसे तथा मुँहसे भी कहता तो यही हूँ कि मैं सीतानाथ रामका सेवक हूँ परन्तु न जाने किस दुर्भाग्यके कारण प्रभुके साथ मेरा सम्बन्ध और प्रेम हो ही नहीं

---

१. हनुमान्‌ने तुलसीदासको बताया था कि चित्रकूटमें मंदाकिनीके तटपर जा बैठो, वहाँ श्री राम-लक्ष्मण नित्य प्रातःकाल आया करते हैं। गोसाईंजी मंदाकिनीके तटपर बैठकर चन्दन घिस ही रहे थे कि इतनेमें दो सुन्दर कुमार आकर बोले—'बाबा ! हमें भी चन्दन लगा दो।' गोसाईंजीने बड़े प्रेमसे उन्हें अपने हाथसे चन्दन तो लगा दिया पर उन्हें पहचाना नहीं।
'चित्रकूटके घाटपर भइ संतन-की भीर। तुलसिदास चन्दन घिसै, तिलक देत रघुबीर' ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जल चाहत, पावक लहौं, विष होत अमी-को।
कलि कुचालि संतनि कही सोइ सही, मोहिं कछु फहम न तरनि तमी-को ॥ २ ॥
जानि अंध, अंजन कहै बन - बाघिनि - घी को।
सुनि उपचार बिकार-को, सुबिचार करौं, जब-तब बुधि - बल हरै ही-को ॥ ३ ॥
प्रभु-सों कहत सकुचात हौं, परौं जिनि फिरि फीको।
निकट बोलि, बलि, बरजिये, परिहरै ख्याल अब 'तुलसिदास' जड़ जी-को ॥४॥(२६५)

ज्यौं-ज्यौं निकट भयो चहौं कृपाल ! त्यौं-त्यौं दूरि पर्‌यौ हौं।
तुम चहुँ जुग रस एक राम ! हौंहु रावरो, जदपि अघ-अवगुननि भर्‌यौ हौं ॥ १ ॥
बीच पाइ, नीच बीच ही नल - छरनि छर्‌यौ हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृप-तें भिखारि करि, सुमति-तें कुमति कर्‌यौ हौं ॥ २ ॥
अगनित गिरि-कानन फिर्‌यौ, बिनु आगि जर्‌यौ हौं।
चित्रकूट गए मैं लखी कलि-की कुचालि सब, अब अपडरनि डर्‌यौ हौं ॥ ३ ॥
माथ नाइ, नाथ-सों कहौं हाथ जोरि, खर्‌यौ हौं।
चीन्हों चोर जिय मारिहै 'तुलसी' सो कथा सुनि, प्रभु-सों गुदरि निबर्‌यौ हौं ॥४॥ (२६६)

पाता ॥ १ ॥ (मेरा दुर्भाग्य देखिए कि) मैं माँगता हूँ पानी, पर मिलती है आग (भगवद्भक्तिके बदले विषयासक्ति मिलती है)। इसी प्रकार मेरे लिये अमृत भी विष हो जाता है (सत्संग भी दंभ आदिके कारण विषाक्त हो जाता है)। सन्तोंने कलिकी जितनी कुटिलताएँ और कुचालें बताई हैं, वे सब ठीक ही हैं। मैं समझ नहीं पाता कि सूर्य क्या है और रात्रि क्या है (फ़ा० फ़हम=विवेक, ज्ञान और अज्ञानका मुझे पता ही नहीं है) ॥२॥ कलियुग मुझे मोहसे अंधा समझकर कहता है कि वनकी बाघिनके घीका अंजन लगाओ (असंभव कार्य करनेको कहता है)। यह टेढ़ा (असंभव) उपचार सुनकर जब मैं कुछ विचार करने लगता हूँ तो वह मेरी बुद्धि ही हरण कर लेता है ॥३॥ प्रभु ! मैं आपसे कुछ कहना तो चाहता हूँ, पर कहनेमें यही बड़ा संकोच होता है कि कहीं मेरी बात झूठी न पड़ जाय। मैं आपकी बलैया लेता हूँ। आप इसे (कलिकालको) अपने पास बुलाकर हटक (डाँट) दीजिए कि वह दुष्ट तुलसीदास-का पीछा छोड़ दे ॥ ४ ॥ (२६५)

कृपालु राम ! मैं ज्यों-ज्यों आपके पास आनेका प्रयत्न करता हूँ त्यों-त्यों और भी दूर पड़ता जाता हूँ। राम ! आप भी चारों युगों में सदा एकसे रहते हैं और मैं भी पापों और अवगुणोंसे पूर्ण होनेपर भी आपका ही रहता चला आया हूँ ॥ १ ॥ (आपसे दूर रहनेपर) घात पाकर इस नीच कलियुगने बीचमें ही उन छलोंसे मुझे छल लिया जिनसे उसने राजा नलको छला (कर्कोट नागसे डसवाकर नलका रंग काला कर दिया) था। मैं बहुत सुवर्ण था पर इसने मुझे कु-वर्ण कर दिया। मैं राजा था, इसने मुझे भिक्षुक बना दिया; मैं सुबुद्धि था पर इसने मुझे कुबुद्धि कर दिया ॥ २ ॥ मैं अगणित पहाड़ों और वनोंमें भटकता फिरता रहा परन्तु बिना आगके ही जलता रहा। जब मैंने चित्रकूट जाकर राम-नाम जपा तब मुझे कलिकी कुचालें समझमें आईं कि अबतक मैं झूठे ही डरसे डरा बैठा था ॥ ३ ॥ नाथ ! मैं हाथ जोड़कर खड़ा हूँ और सिर झुकाकर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि तुलसीदासने वह कथा सुनी है कि पहचाना हुआ चोर प्राणोंका घातक हो जाता है। इसीसे मुझे बड़ा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पन करि, हौं हठि आज-तें, राम ! द्वार पर्‍यौ हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे, उठिहौं न जनम भरि, प्रभु-की सौंह करि, निबर्‍यौ हौं ॥ १ ॥
दै - दै धका जम-भट थके, टार्‍यौ न टर्‍यौ हौं।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि जग, नरक निदरि निकर्‍यौ हौं ॥ २ ॥
हौं माचल[1], लै छूटिहौं, जेहि लागि अर्‍यौ हौं।
तुम दयालु, बनिहै दिए, बलि, बिलँब न कीजै, जात गलानि गर्‍यौ हौं ॥ ३ ॥
प्रगट कहत जो सकुचिए, अपराध भर्‍यौ हौं।
तौ मन-में अपनाइए तुलसिहिं कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्‍यौ हौं ॥ ४ ॥ (२६७)

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाय बिषयनि लग्यौ, तेहि सहज नाथ-सों नेह, छाँड़ि छल, करिहै ॥ १ ॥
सुत-की प्रीति, प्रतीति मीत-की, नृप-ज्यों डर डरि है।
अपनो-सो स्वारथ स्वामी-सौं, चहुँ बिधि चातक-ज्यों एक टेक-तें नहिं टरिहै ॥ २ ॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि-लाभ, दुख-सुख, सबै सम चित, हित-अनहित, कलि-कुचालि परिहरिहै ॥३॥

डर हो गया है कि यह पहचाना हुआ चोर (कलियुग) कहीं मेरे प्राण न ले बैठे। इसलिये प्रभो ! मैंने आपसे यह सब निवेदन कर दिया है और अब मैं निश्चिन्त हो बैठा हूँ ॥ ४ ॥ (२६६)

राम ! आज प्रतिज्ञा करके मैं हठपूर्वक आपके द्वारपर आ पड़ा हूँ कि जबतक आप यह नहीं कह देंगे कि 'तू मेरा है', तबतक मैं जीवन-भर यहाँसे हटकर न दूँगा। मैं आपकी शपथ खाकर छुट्टी पा गया हूँ ॥१॥ यमराजके बड़े-बड़े योद्धा दूत मुझे धक्का दे-देकर हार गए, पर मैं उनके हटाए भी टससे मस न हो पाया। संसारमें अनेक बार जन्म ले-लेकर मैंने गर्भवासकी बड़ी-बड़ी असह्य दुर्दशाएँ सही हैं और अंतमें नरक-तकका भी निरादर करके वहाँसे निकल भागा हूँ ॥२॥ मैं ऐसा हठी हूँ कि जिसके लिये अड़ जाता हूँ, उसे बिना पाए हठ नहीं छोड़ता। बलिहारी है आपकी ! आप दयालु हैं, अतः, आपको देना ही पड़ेगा (मेरा हठ पूरा करना ही पड़ेगा)। बस अब विलंब न कीजिए। मैं ग्लानिके मारे गला जा रहा हूँ ॥ ३ ॥ यदि मुझे अपराधोंसे भरा जानकर आपको प्रकट कहनेमें (कि तू मेरा है) संकोच हो रहा हो, तो कृपा करके मुझे (तुलसीको) (अपने मनमें ही अपनालीजिए क्यों कि इस (कलिकाल)-को देखकर तो मैं बहुत भयभीत हो उठा हूँ ॥ ४ ॥ (२६७)

आपने मुझे अपनालिया है, यह मैं तभी समझूँगा जब मेरा मन बदल जायगा (मेरे मनसे सांसारिक वासनाएँ दूर हो जायँगी) और जिस स्वभावसे मैं विषयोंसे लिपटा पड़ा हूँ, उसी स्वभावसे छल छोड़कर प्रभुसे प्रेम करने लगूँगा, ॥ १ ॥ जब पुत्रका-सा प्रेम, मित्रका-सा विश्वास, राजभय-सा डर आपसे लगने लगेगा और जैसा अपने स्वार्थ-पर ध्यान रहता है वैसा ही अपने स्वामीके स्वार्थपर ध्यान रखने लगूँगा और इन चारों प्रकारोंसे चातककी भाँति अपनी टेकसे कभी न टलूँगा, ॥ २ ॥ अत्यन्त आदर पाकर मनमें प्रसन्नता नहीं होगी और निरादर पाकर (क्रोधके मारे) जल नहीं मरूँगा, वरन् हानि-लाभ, दुःख-सुख, शत्रु-मित्र सबको समान समझने लगूँगा तथा कलियुगकी कुचालों

---

१. माचल=हठ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रभु - गुन - सुनि तन हरषिहै, नीर नयननि ढरि है।
'तुलसिदास' भयो राम-को, बिस्वास-प्रेम लखि, आनँद उमगि उर भरिहै ॥४॥(२६८)

राम ! कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन - को ?
सुख जीवन ज्यों जीव-को, मनि ज्यों फनि-को, हित ज्यों धन, लोभ-लीन-को ॥ १ ॥
ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी, नागर नवीन-को।
त्यों मेरे मन लालसा करिए, करुनाकर ! पावन प्रेम पीन-को ॥ २ ॥
मनसा-को दाता कहै श्रुति, प्रभु प्रवीन - को।
'तुलसिदास'-को भावतो, बलि जाउँ, दयानिधि ! दीजै दान दीन-को ॥ ३ ॥(२६९)

कबहुँ कृपा करि रघुबीर ! मोहूँ चितैहौ।
भलो-बुरो जन आपनो, जिय जानि, दयानिधि ! अवगुन अमित बितैहौ ॥ १ ॥
जनम - जनम हौं मन जित्यो, अब मोहिं जितैहो।
हौं सनाथ ह्वैहौं सही, तुमहू अनाथ-पति, जो लघुतहि न भितैहौ[1] ॥ २ ॥
बिनय करौं अपभयहु[2] - तें, तुम परम हितै हौ।
'तुलसिदास' कासों कहै ? तुमही सब मेरे, प्रभु, गुरु, मातु, पितै हौ ॥ ३ ॥ (२७०)

(काम, क्रोध, लोभ आदि वृत्तियों)-को भी छोड़ दूँगा, ॥ ३ ॥ प्रभुके गुण सुन-सुनकर पुलकित हुआ करूँगा और नेत्रोंसे प्रेमके आँसू ढारने लगूँगा। तब आपसे ऐसा प्रेम देखकर मुझे विश्वास हो जायगा कि अब मैं रामका हो गया हूँ और तब मेरा हृदय आनन्दकी उमंगोंसे लहरा उठेगा ॥ ४ ॥ (२६८)

राम ! क्या आप मुझे कभी ऐसे प्रिय लग सकेंगे जैसे मछलीको पानी प्यारा लगता है, जैसे जीवको सुखमय जीवन प्यारा लगता है, जैसे सर्पको अपना मणि प्यारा लगता है, जैसे अत्यन्त लोभीको धन प्यारा लगता है, ॥१॥ और जैसे सुन्दर और चतुर छैलेको स्वभावसे ही नायिका प्रिय लगती है। करुणानिधान ! मेरे मनमें भी उसी प्रकारके पवित्र और पुष्ट प्रेमकी लालसा (चाव)-ला भरिए ॥२॥ वेद कहते हैं कि प्रभु राम स्वयं ऐसे प्रवीण हैं कि सबको मनोवाञ्छित फल देते रहते हैं। (यदि यह बात सत्य है तो) दयानिधि ! बलिहारी है, इस दीन तुलसीदासको भी मनचाहा दान दे डालिए ॥ ३ ॥ (२६९)

राम ! क्या कभी आप मेरी ओर भी कृपाकी दृष्टिसे देख देंगे ? दयानिधि ! क्या आप मुझे अपना भला या बुरा दास जानकर मेरे असंख्य अवगुण नष्ट कर देंगे ? ॥ १ ॥ अनेक जन्मोंसे तो यह मेरा मन मुझे हराता चला आया है (मैं सदा मनका ही दास बना रहा), क्या अब मुझे इससे जिता देंगे (क्या अब मैं मनकी वासनाओं-पर विजय प्राप्त कर सकूँगा) ? (यदि ऐसा हो जाय तो) मैं अवश्य सनाथ हो जाऊँगा और आप मुझ अनाथके रक्षक हो जायँगे। यह तो तभी होगा जब आपको ऐसा करनेमें छोटा हो जानेका डर न होगा ॥ २ ॥ मैं निडर होकर ही आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ क्योंकि आप ही मेरे परम हितैषी हैं। जब मैं आपको ही अपना स्वामी,

१. भितैहो = डरोगे। २. अपभयहुँ = निर्भय होकर।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जैसो हौं तैसो हौं, राम ! रावरो जन, जानि परिहरिए।
कृपासिंधु ! कोसल - धनी ! सरनागत - पालक ! डरनि आपनी डरिए॥ १॥
हौं तौ बिगरायल ओर-को, बिगरो न बिगरिए।
तुम सुधारि आए सदा सबकी, सब ही बिधि, अब मेरियौ सुधरिए॥ २॥
जग हँसिहै रे रे संग्रहे, कत यहि डर डरिए ?
कपि - केवट कीन्हें सखा जेहि सील, सरल - चित ! तेहि सुभाव अनुसरिए।
अपराधी, तउ आपनो, तुलसी न बिसरिए।
टूटियौ बाँह गरे परै, फूटेहु बिलोचन पीर होत, हित करिए॥३॥ (२७१)

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम ! बिनु - रावरे लोकहुँ परलोकहुँ, कोउ न कहूँ हितु मेरो॥ १॥
अगुन, अलायक, आलसी, जानि अधन, अनेरो।
स्वारथ - के साथिन तज्यो, तिजरा - को - सो टोटक[1], औचट उलटि न हेरो॥ २॥

गुरु, माता, पिता और सब कुछ मान बैठा हूँ तब बताइए यह तुलसीदास कहे तो किससे कहे॥३॥(२७०)

राम ! मैं (भला या बुरा) जैसा भी हूँ वैसा ही सही, पर हूँ तो आपका दास ही न ! अतः मुझे छोड़िए मत (अपनी शरणमें ही रक्खे रहिए)। कृपालु कोशलपति राम ! आप शरणमें आए हुए प्राणियोंका पालन करते हैं। अतः, आप अपनी सनातन प्रकृति (दीनोंपर दया करना, शरणागतों-की रक्षा और भक्तवत्सलता आदि) बनाए रहिए॥ १॥ मैं तो पहलेसे ही औरोंका बिगाड़ा हुआ हूँ (सांसारिक माया-मोहने मुझे पहलेसे ही नष्ट कर रक्खा है) अब आप इस बिगड़ेको और न बिगाड़िए। आप तो सदा सबकी बिगड़ी सब प्रकारसे सुधारते ही आए हैं, आज मेरी भी सुधार दीजिए॥ २॥ आप इस बातसे क्यों डरे जाते हैं कि मुझे अंगीकार करनेपर संसार आपका उपहास करेगा (कि तुलसी जैसे पापीको भी इन्होंने अपनालिया) ? आपने जिस सरल स्वभावसे कपि (सुग्रीव) और केवट (निषाद गुह)-को अपना मित्र बनाया, तो सरल स्वभाववाले राम ! वही बाना अब भी बना रखिए। तुलसीदास यदि अपराधी है भी तो क्या हुआ, वह है तो आपका ही न ! उसे (कृपा करके) मत भुलाइए। देखिए, अपना हाथ टूट जाता है तो लोग अपने ही गलेमें लटकाए रहते है, और फूटी आँखमें भी जब पीडा होती है तो उसका भी (वैसे ही) उपचार किया जाता है (जैसे भली-चंगी आँखका)। यही सब समझकर आप मेरा भी कल्याण कर दीजिए (मुझे भी अपनालीजिए)॥ ३॥ (२७१)

राम ! सुनिए। आप न तो मेरी उपेक्षा ही कीजिए न मेरी ओरसे अपनी दृष्टि ही फेरिए। लोक और परलोकमें आपके अतिरिक्त मेरा कोई दूसरा हितैषी है नहीं॥ १॥ मुझे मूर्ख, अयोग्य, आलसी, दरिद्र और निकम्मा जानकर मेरे स्वार्थी साथियोंने तिजराके टोटकेके समान मुझे

---

१. तिजराका टोटका=जिसे तिजरिया ज्वर (तीसरे दिन आनेवाला मलेरिया ज्वर) होता है, उसका रोग दूर करनेके लिये आटेके दियेमें घीकी बत्तीका दीपक जलाकर उसे मिट्टीकी कच्ची हाँड़ीमें सफेद धतूरेके फूलके साथ रखकर रविवारकी आधी रातको रोगी-परसे सात बार उतार (घुमा)-कर किसी चौराहेपर ले जाकर रख देते हैं और बिना उसकी ओर देखे, लौट आते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भगति - हीन, बेद - बाहिरो लखि, कलिमल घेरो।
देवनि - हूँ, देव ! परिहर्‍यो, अन्याउ न तिनको, हौं अपराधी सब - केरो ॥ ३ ॥
नाम - की ओट लै, पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो।
जगत-बिदित बात ह्वै परी, समुझिये धौं अपने, लोक कि बेद बड़ेरो ॥ ४ ॥
ह्वै है जब - तब तुम्हहिं - तें तुलसी - को भलेरो।
दीन दिनहूँ दिन बिगरि है, बलि जाउँ, बिलँब किए, अपनाइए सबेरो ॥५॥ (२७२)

तुम तजि, हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे ?
दीनबंधु ! सेवक, सखा, आरत, अनाथ - पर, सहज छोह केहि केरे ? ॥ १ ॥
बहुत पतित भव-निधि तरे, बिनु - तरि, बिनु - बेरे।
कृपा, कोप, सति भाय - हू, धोखेहु, तिरछेहु, राम ! तिहारेहि हेरे ॥ २ ॥
जो चितवनि सौंधी लगै, चितइए सबेरे।
'तुलसिदास' अपनाइए, कीजै न ढील, अब जीवन - अवधि अति नेरे ॥३॥ (२७३)

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित दीन - को ?
को कृपालु स्वामी - सारिखो, राखै सरनागत, सब अंग बलबिहीन - को ॥ १ ॥

ऐसा त्याग दिया कि भूलसे भी फिरकर मेरी ओर नहीं देखा ॥ २ ॥ देव ! जब देवताओंने देखा कि मुझमें न तो आपकी भक्ति है न मैं वेदोक्त मर्यादाका पालन करता हूँ और दिनरात कलियुगके पापोंसे घिरा रहता हूँ तो उन्होंने भी मेरा परित्याग कर दिया। इसमें उनका कोई दोष नहीं है, सारा अपराध तो मेरा ही है ॥ ३ ॥ मैं आपके नामकी ओट लेकर अपना पेट भरता हूँ और आपका सेवक कहलाता हूँ, यह बात सारे संसारमें प्रसिद्ध हो गई है। अब आप स्वयं विचार कर लें कि लोक बड़ा है या वेद ? ॥ ४ ॥ तुलसीका जब कभी भला होगा, तब आपके ही हाथों होगा। विलम्ब होनेपर तो इस दीनकी दशा दिनपर दिन बिगड़ती ही चली जायगी। इसलिये मैं बलिहारी जाता हूँ, आप इसे (तुलसीको) शीघ्र ही अपनालीजिए ॥ ५ ॥ (२७२)

आपको छोड़कर मैं कहूँ भी तो किससे कहूँ ? दूसरा मेरा हितैषी है ही कौन ? दीनबन्धु ! (आपके अतिरिक्त) अपने सेवकों, मित्रों, दुखियों और अनाथोंपर स्वाभाविक (निःस्वार्थ) प्रेम करनेवाला दूसरा है कौन ? ॥ १ ॥ बहुतसे पापी (आपकी कृपासे) बिना नाव और बिना बेड़ेके भवसागरसे पार हो गए। राम ! वे सबके सब आपकी ही कृपा, क्रोध, सहज स्वभाव, धोखे एवं तिरछी दृष्टिसे ही तो तरे हैं ॥ २ ॥ इन्हीं दृष्टियोंमेंसे जो दृष्टि आपको अच्छी लगे वही दृष्टि मुझपर भी अविलम्ब डाल दीजिए और तुलसीदासको भी बस अब अपना ही लीजिए। इसमें शिथिलता न कीजिए क्योंकि अब जीवनका अंत आ पहुँचा है ॥ ३ ॥ (२७३)

देव ! मैं (आपको छोड़कर) जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ ? मुझ दुखी और दीनके लिये और ठिकाना ही कहाँ है ? आपके समान दयालु स्वामी और मिलेगा कहाँ, जो सब प्रकारके साधनोंसे हीन सेवकको भी अपना शरणमें बुला रक्खे ? ॥ १ ॥ संसारमें जितने भी स्वामी हैं वे सब उसी

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गनिहिं[1], गुनिहिं, साहिब चहै सेवा - समीचीन - को।
अधन, अगुन, आलसिन-को पालिबो, फबि आयो रघुनायक नबीन - को ॥ २ ॥
मुख-कै कहा कहौं ? बिदित है जी-की प्रभु प्रबीन-को।
तिहूँ काल, तिहुँ लोक - में, एक टेक रावरी, तुलसी-से मन - मलीन-को ॥३॥ (२७४)

द्वार - द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाँहूँ।
हैं दयाल दुनी, दस दिसा, दुख - दोष - दलन - छम, कियो न सँभाषन काहूँ ॥ १ ॥
तनु-जन्यो कुटिल कीट[2]-ज्यों, तज्यो मातु - पिता-हूँ।
काहे-को रोस-दोस काहि धौं, मेरे ही अभाग, मोसों सकुचत सब छुइ छाहूँ ॥ २ ॥
दुखित देखि संतन कह्यौ, सोचे जनि मन - माहूँ।
तोसे पसु - पाँवर - पातकी, परिहरे न सरन गए, रघुबर ओर-निबाहूँ ॥ ३ ॥
'तुलसी' तिहारो भए, भयो सुखी, प्रीति-प्रतीति बिना हूँ।
नाम-की महिमा, सील नाथ-को, मेरो भलो बिलोकि अब-तें सकुचाहुँ, सिहाहूँ ॥४॥(२७५)

सेवकको अपनाते हैं, जो धनी हो, गुणी हो और भली-भाँति सेवा कर सकता हो (भेंट-पूजा चढ़ा सकता हो)। परन्तु मैं तो दरिद्र भी हूँ, गुणोंसे हीन भी हूँ और आलसी भी हूँ। मेरे जैसोंका पालन करना तो नित्य किशोर रामके ही बसका काम है ॥ २ ॥ प्रभु ! मैं अपने मुँहसे क्या कहूँ ? आप तो स्वयं चतुर हैं (आपसे क्या छिपा है), मेरी सारी करनी तो आप जानते ही हैं। तुलसी-जैसे मलिन मनवालेके लिये तीनों लोकों और तीनों कालोंमें बस एकमात्र आपका ही तो सहारा बच रहा है ॥ ३ ॥ (२७४)

मैंने द्वार-द्वार जाकर, दाँत निकालकर (गिड़गिड़ाकर, दीनता दिखाकर) और पाँव पड़कर सबसे अपनी दीनताका रोना रोया। इस संसारमें दसों दिशाओंमें (सब ओर) दुःख और दोष मिटा सकनेवाले बहुतसे समर्थ लोग हैं, पर किसीने फूटे मुँह भी मुझसे बात-तक नहीं की ॥ १ ॥ जिन माता-पिताका मैं पुत्र था जब उन्होंने मुझे कुटिल कीट (जूँ, केंचुआ आदि कष्टकर जीव)-के समान छोड़ दिया तब भला मैं दूसरे किसीपर क्यों क्रोध करूँ, या किसीको दोष देता फिरूँ ? यह सब तो मेरे ही दुर्भाग्यसे हुआ है जिसके कारण लोग मेरी छाया-तक छूनेमें डरते हैं ॥ २ ॥ मुझे दुखी देखकर सन्तोंने कहा कि तू मनमें चिन्ता न कर। तेरे-जैसे पशु, नीच और पापी-तकको रामने शरणमें जानेपर नहीं छोड़ा, उनका भी कल्याण ही किया ॥ ३ ॥ फिर क्या था ? तुलसी आपका हो गया और आपका होते ही अब वह चैनकी वंशी बजा रहा है। यद्यपि अब भी वह न तो आप-पर विश्वास ही करता है न आपसे प्रेम ही करता है। नाथ ! आपके शील और आपकी महिमाने मेरा कल्याण कर दिया। यह देखकर मैं बहुत सकुचाता और तरसता हूँ (कि मैं कृपाका पात्र तो नहीं था फिर भी प्रभुने मुझपर बड़ी कृपा कर दी) ॥ ४ ॥ (२७५)

१. ग़नी (अरबी शब्द) = धनी। २. कुटिल कीट = जूँ, पेटके केंचुए आदि जीव। (कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं केंकड़ी, जो बच्चा देते ही मर जाती है क्योंकि केंकड़ीके बच्चे पेट फाड़कर निकलते हैं। तुलसीदासको तो उनके माता-पिता दोनोंने छोड़ दिया था। यदि केवल माता छोड़ती तब तो केंकड़ी अर्थ लग सकता था पर मातु-पिताके साथ केंकड़ी अर्थ कैसे लग सकता है)।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम ! रावरे बिनु भए जन जनमि - जनमि जग, दुख दसहूँ दिसि पायो ॥ १ ॥
आस - बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो ।
हाहा करि, दीनता कही, द्वार - द्वार, बार - बार, परी न छार मुँह बायो ॥ २ ॥
असन - बसन - बिनु, बावरो जहँ - तहँ उठि धायो ।
महा मान प्रिय प्रान - तें, तजि, खोलि खलनि आगे, खिन - खिन पेट खलायो ॥ ३ ॥
नाथ ! हाथ कछु नहिं लग्यो, लालच ललचायो ।
साँच कहौं, नाच कौन - सो, जो न मोहिं लोभ लघु निलज नचायो ॥ ५ ॥
स्रवन, नयन, मन अगम लगैं, सब थल पतियायो ।
मूड़ मारि, हिय हारि-कै, हित हेरि, हहरि, अब चरन - सरन तकि आयो ॥ ५ ॥
दसरथ - के समरथ तुही, त्रिभुवन जस गायो ।
'तुलसी' नमत अवलोकिए, बलि, बाँह - बोल दै बिरुदावली बुलायो ॥६॥ (२७६)

रामराय ! बिनु - रावरे मेरे को हितु साँचो ?
स्वामी - सहित सब - सों कहौं, सुनि गुनि बिसेषि, कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥ १ ॥

मैंने क्या नहीं किया, मैं कहाँ नहीं गया और किसके-किसके आगे जाकर मैंने सिर नहीं झुकाया ? परन्तु राम ! जबतक मैं आपका सेवक नहीं बन गया तबतक मैं संसारमें जन्म ले-लेकर चारों ओर दुःख ही दुःख भोगता रहा ॥१॥ आपका अनन्य भक्त होकर भी मैं आशाओं के फेरमें पड़कर नीच स्वामियों-के आगे हाथ पसारता रहा, उनकी चाटुकारी करता रहा, द्वार-द्वार जा-जाकर अपनी दीनता कहता रहा, पर मेरे बाए हुए मुँहमें (भोजनकी बात तो दूर रही,) किसीने राखतक न डालकर दी ॥ २ ॥ भोजन और वस्त्रके बिना मैं पागलकी भाँति इधर-उधर भटकता फिरता रहा। इस पृथ्वीपर आत्म-सम्मान तो प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है पर उसे भी छोड़कर मैं दुष्टों के सामने अपना पेट खलाता रहा (कि मैं बहुत भूखा हूँ, कुछ खानेको दे दीजिए) ॥ ३ ॥ परन्तु नाथ ! मैं केवल लालचमें ही पड़कर ललचता रहा, मेरे हाथ कुछ नहीं लगा। मैं सत्य बताता हूँ कि ऐसा कोई नाच नहीं बचा जो इस तुच्छ और निर्लज्ज लोभने मुझे न नचाया हो ॥ ४ ॥ कान, आँख और मनकी भी जहाँतक पहुँच नहीं है उन सब स्थलोंको भी मैं जाकर परख आया। पर सर्वत्र सिर मारकर, हृदयमें हारकर और आपको ही अपना पक्का हितैषी मानकर, चारों ओरसे घबराकर आपके चरणोंकी शरण ताककर यहाँ चला आया हूँ ॥ ५ ॥ दशरथके पुत्र राम ! सचमुच यदि कोई समर्थ हैं तो आप ही हैं। आपके सुयशका वर्णन तीनों लोकोंमें होता रहता है। देखिए, तुलसी आपके आगे सिर झुकाए खड़ा है। बलिहारी ! आपके ही यशने मुझे बाँह (सहारा) और वचन देकर यहाँ बुलवा मँगाया है (आपका यश-सुनकर ही मैं आपकी शरणमें चला आया हूँ)। यदि आप भी नहीं अपनाते हैं तो मुझे क्या, आपके ही सुयशको कलंक लगेगा ॥ ६ ॥ (२७६)

महाराज राम ! आपके अतिरिक्त मेरा सच्चा हितैषी दूसरा है कौन ? मैं आपसे तो यह बात कहता ही हूँ, साथ ही दूसरोंसे भी यही कहता हूँ। यह सुनकर कोई बड़ा गुणी आकर भला दूसरी लकीर खींच तो दे (दूसरे किसी हितैषीका नाम बता तो दे) ॥१॥ शरीर और जीवके जितने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देह - जीव - जोग - के सखा, मृषा टाँचन टाँचो।
किए बिचार, सार कदली-ज्यों, मनि - कनक - संग लघु लसत बीच-बिच काँचो ॥२॥
बिनयपत्रिका दीन - की, बाप ! आप ही बाँचो।
हिये हेरि 'तुलसी' लिखी, सो सुभाय सही करि, बहुरि पूछियहि पाँचो ॥३॥ (२७७)

पवन-सुवन ! रिपुदवन ! भरत लाल ! लखन ! दीन-की।
निज-निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ, दास आस पूजिहै खास खीन-की ॥१॥
राजद्वार भली सब कहैं साधु समीचीन -की।
सुकृत, सुजस, साहिब - कृपा, स्वारथ, परमारथ, गति भए गति-बिहीन - की ॥२॥
समय सँभारि सुधारिबी, तुलसी मलीन - की।
प्रीति - रीति समुझाइबी नत · पाल कृपालुहि, परमिति पराधीन - की ॥२॥ (२७८)

मारुति - मन, रुचि भरत - की लखि, लखन कही है।
कलि - कालहुँ नाथ ! नाम-सों प्रतीति - प्रीति एक किंकर - की निबही है ॥ १ ॥
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज - की, देखत गरीब - को साहस, बाँह गही है ॥ २ ॥

मित्र हैं सब झूठे टाँकेसे टँके हुए हैं (जब चाहें तब उधड़ जायँ)। विचार करनेपर वे केलेके खंभेके समान निःस्सार (गूदेसे रहित) लगते हैं (उनमें कुछ तत्त्व पदार्थ नहीं है)। वे तो ऐसे जान पड़ते हैं जैसे कंचन और मणिके बीच-बीच तुच्छ काँच ला जड़े गए हों ॥ २ ॥ पिता ! आपसे निवेदन है कि मुझ दीनकी यह 'विनय-पत्रिका' आप ही बाँचिएगा। तुलसीने अपने हृदयमें विचारकर जो कुछ लिखा है उसपर अपने स्वभावके अनुसार पहले सही करके (स्वीकार करके) फिर पंचोंसे या पाँचों जनों (सीता, हनुमान, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न)-से पूछिएगा (कि तुलसीकी बात कहाँ-तक ठीक है ?) ॥३॥ (२७७)

हनुमान ! शत्रुघ्न ! भरत ! लक्ष्मण ! आप अवसरपर मुझ दीनका ध्यान रखिएगा। मैं बलिहारी जाता हूँ। इतना कर देंगे तो इस तुच्छ दासका सारा काम बन जायगा (इसका कल्याण हो जायगा) ॥ १ ॥ राजदरबारमें अच्छे लोगोंका समर्थन तो सभी करते हैं किन्तु यदि आप लोग इस निराश्रितका (मेरा) समर्थन कर देंगे तो मुझे रामकी शरण मिल जायगी, आपका पुण्य बढ़ेगा, सुयश फैलेगा, आपके स्वामी आपपर प्रसन्न रहेंगे और उनके इस (दीन-दयालुताके) कार्यमें जो सहायक बनेगा उसपर वे और भी प्रसन्न होंगे ॥२॥ समय आनेपर स्मरण करके इस मलिन तुलसीदासकी स्थिति भी सुधार दीजिएगा (इसका समर्थन कर दीजिएगा)। शरणागत-पालक और कृपालु रामको मुझ पराधीनकी सारी प्रीति-रीति भली भाँति समझा दीजिएगा (कि कलिकालसे पीडित होनेपर भी तुलसीने आपमें किस प्रकारकी प्रीति निबाही है) ॥ ३ ॥ (२७८)

हनुमान् और भरतके मनकी रुचि देखकर लक्ष्मणने (विनयपत्रिकाकी) बात रामसे इस प्रकार छेड़ दी—'नाथ ! इस कलिकालमें भी एक सेवकने आपके नामके साथ विश्वास और प्रेम भरपूर निबाहा है।' (उसकी 'विनय-पत्रिका' भी आई है) ॥१॥ यह सुनते ही सारी सभा एक स्वरसे ले उठी—'जी हाँ, यह सत्य है। हम लोग भी उसकी प्रीति-रीति जानते हैं। आपकी कृपाने उस दीनका

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिहँसि राम कह्यो, सत्य है, सुधि मैंहूँ लही है।
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ-की, परी रघुनाथ सही है॥ ३॥ (२७९)

॥ इति श्रीरामगीतावल्यां विज्ञप्ति-विष्णुपदानि[1] समाप्तेयं ॥

यदि रघुपतिभक्तिर्मुक्तिदाऽपेक्ष्यते सा सकल कलुष-हन्त्री सेवनीया प्रयासात्।
शृणुत सुमति पुंसो निर्मिता रामभक्तैर्ज्जगति तुलसिदासै रामगीतावलीयम्॥[2]

॥ इति गोसाईं तुलसीदास-विरचित विनयपत्रिका संपूर्णा ॥

साहस देखकर उसकी बाँह ले थामी है (आपकी कृपाने उसे अपनी शरणमें ले लिया है)' ॥२॥ सबकी सम्मति सुनकर रामने भी मुसकराकर कहा—'हाँ, यह सत्य है। मुझे भी उसका समाचार मिला है।' यह कहकर रामने तुलसीकी विनयपत्रिका पर सही (अपने हस्ताक्षरसे स्वीकृति) कर दी। बस, इस अनाथ तुलसीदासकी सारी बात बन गई। अब वह (अपनी सफलतापर) प्रसन्न होकर रामके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम कर रहा है॥ ३॥ (२७९)

॥ रामगीतावलीमें विज्ञप्ति-विष्णुपद समाप्त हुए ॥

यदि आप भी चाहते हों कि आपके हृदयमें रामकी वह भक्ति उत्पन्न हो जिससे मोक्ष भी मिल जाता है तो संपूर्ण पाप नाश करनेवाली भक्तिका परिश्रमपूर्वक अभ्यास कीजिए। अच्छी बुद्धि वाले लोगो! आप लोग वह भक्ति प्राप्त करनेके लिये रामभक्त तुलसीदासकी रची हुई यह रामगीतावली (विनयपत्रिका) श्रद्धाके साथ सुनें।

॥ गोसाईं तुलसिदासजी-कृत विनयपत्रिका पूर्ण हुई ॥

१. विनयपत्रिकाके पदोंको रामगीतावलीके विज्ञप्ति-विष्णु-पद (विष्णुके चरणोंमें निवेदन) कहा गया है। इसी प्रकारकी विज्ञप्तियाँ श्री विट्ठलनाथजीने (१५१६-१५८६ ई०) छह मास-तक श्रीनाथजी महाराज (श्रीकृष्ण)-के लिये लिख-लिखकर भेजी थीं जब कृष्णदासने उन्हें श्रीनाथजी की सेवासे वंचित कर दिया था।

२. यह श्लोक भागवतदासकी विनयपत्रिकाके अन्तमें दिया हुआ है, किन्तु विनयपत्रिकाका अंश नहीं है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

फुटकर पद

जागिए रघुनाथ कुँवर। पंछी बन बोले ॥ टेक ॥
चन्द्रकिरन सीतल भइ, चकई पिय मिलन गई, त्रिबिध मंद चलत पवन, पल्लव द्रुम डोले ॥
प्रात भानु प्रगट भयो, रजनीको तिमिर गयो, भृंग करत गुंज-गान, कमलनि दल खोले ॥
ब्रह्मादिक धरत ध्यान, सुर नर मुनि करत गान, जागन-की बेर भई, नयन पलक खोले ॥
'तुलसिदास' अति अनंद, निरखि कै मुखारबिंद, दीननको देत दान, भूषन बहु मोले ॥ १ ॥

लोचन रहे बैरी होय । जानि बूझि अकाज कीन्हों, गए भूमें गोय।
तेरि गति अवगति न जान्यौं रह्यौं जागत सोय । सबै छबि-की अवधिमें है निकसिगे ढिग होय।
करमहीन जु पाय हीरा, दयो पल-मैं खोय। 'दास तुलसी' राम बिछुरे, कहौ कैसी होय ॥ २ ॥

रामनाम-की लूट है, लूटी जाय सो लूट। अंतकाल पछतायगो, प्राण जायँगे छूट ॥ ३ ॥
रामनाम कहिबो करौ, जब-लगि घट-मैं प्रान। कबहुँक दीन-दयालुके भनक परैगी कान ॥ ४ ॥
कहा कहौं छबि आपकी, भले बने हौ नाथ। तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बान लो हाथ ॥ ५ ॥
कीट मुकुट माथे धर्‍यो, धनुष-बान लिय हाथ। तुलसी निज जन कारने, नाथ भये रघुनाथ ॥ ६ ॥
राम-नाम जस बरनिकै, भयो चहत अब मौन। तुलसीके मुख दीजिए, अबही तुलसी सोन ॥ ७ ॥

[श्री रघुनाथ बाबाकी सम्मतिमें संवत् १९२६ में प्रकाशित रामायणके अन्तमें निम्नांकित पद प्रथम आरतीके रूपमें दिया गया है।]

अथ आरती

निरखि स्वरूप सिया रघुबरको, छबि नहिं जात बखानी।
श्री आरति करत कौशिला रानी ॥
कनक - थार गज - मानिक - मुक्ता, भरे प्रेम लिय ठाड़ी।
मान्यौ मान सकल भूपनकौ, महिमा वेद बखानी।
श्री आरती करत कौशिला रानी ॥
तोर्‍यौ धनुष, जनक - पन पूरन, तीन लोक भय मानी।
राम, जनककी लज्जा राखी, परशुराम हित मानी।
श्री आरति करत कौशिला रानी ॥
सुरपुर-नारि मोद - मंगल - भर, प्रेम उमगि हरखानी।
नाचत नभ अपसरा मुदित मन, बरषि सुमन हरषानी।
श्री आरति करत कौशिला रानी।
कनक - रतन - मनिजटित सिंहासन, बैठे सारँगपानी।
मातु कौशिला करत आरती, निरखि रूप हरषानी।
श्री आरति करत कौशिला रानी ॥
दसरथ-सहित अवध-पुरबासी उचरत जय जय बानी।
तुलसिदास अबिचल यह जोरी, भक्ति अभय वरदानी ॥
श्री आरति करत कौशिला रानी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

श्रीरामशलाका-प्रश्नावली

सु	प्र	उ	बि	हो	मु	ग	व	सु	नु	बि	घ	धि	इ	द
र	ह	फ	सि	सि	रैं	बस	है	मं	ल	न	ल	य	न	अं
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	ल	धा	वे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	❀ म	सं	क	रे	हो	स	स	नि
त	र	त	र	स	इ	ह	ब	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	हीँ	ा	जू
ता	रा	रे	री	हू	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	म	स	रि	ग	द	न	ख	म	खि	जि	मनि	त	जं
सिं	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	ा	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	ब	थ
सि	ह	सु	म्ह	रा	र	स	हिँ	र	त	न	ख	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	ज	हू	हीँ	खा	जू	ई	रा	रे

इस रामशलाका-प्रश्नावलीके द्वारा जिस किसीको जब कभी अपने अभीष्ट प्रश्नका उत्तर प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो सर्वप्रथम उस व्यक्तिको भगवान् श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर श्रद्धा और विश्वासके साथ मनसे अभीष्ट प्रश्नका चिन्तन करते हुए प्रश्नावलीके मनचाहे कोष्ठकमें उँगली या शलाका (सलाई) रख ली जाय और उस कोष्ठकमें जो अक्षर हो उसे अलग किसी कोरे कागज या स्लेटपर लिख लिया जाय। अब जिस कोष्ठकका जो अक्षर लिख लिया गया है उसे छोड़कर उसके आगे बढ़कर नवें कोष्ठकमें जो अक्षर पड़े उसे भी लिख लिया जाय। इसी प्रकार प्रति नवें अक्षरको क्रमसे तबतक लिखते जाना चाहिए, जबतक उसी पहले कोष्ठकके अक्षरतक उँगली या शलाका न पहुँच जाय। इस प्रकार एक चौपाई पूरी जायगी, जिससे प्रश्नकर्ताके अभीष्ट प्रश्नका उत्तर मिल जायगा। किसी-किसी कोष्ठकमें केवल 'आ' की मात्रा (ा) और किसी-किसी कोष्ठकमें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दो-दो अक्षर हैं। अतः, गिनते समय न तो मात्रावाले कोष्ठकको छोड़ना चाहिए और न दो अक्षरोंवाले कोष्ठकको दो बार गिनना चाहिए। जहाँ मात्राका कोष्ठक आवे वहाँ पूर्वलिखित अक्षरके आगे मात्रा लिख लेनी चाहिए और जहाँ दो अक्षरोंवाला कोष्ठक आवे वहाँ दोनों अक्षर एक साथ लिख लेने चाहिएँ।

मान लीजिए प्रश्नावलीके इस * चिह्नवाले 'म' के कोष्ठकमें किसीने उँगली या शलाका रक्खी और वह ऊपर बताए हुए क्रमके अनुसार नवाँ-नवाँ अक्षर गिन-गिनकर लिखता चले तो यह चौपाई बन जायगी—

१–होइहै सोइ जो राम* रचि राखा। को करि तरक बढ़ावहि साखा॥

स्थान : यह चौपाई बालकाण्ड शिव और पार्वतीके संवादमेंकी है। इस चौपाईका अर्थ समझना चाहिए कि कार्य होनेमें सन्देह है, अतः उसे भगवान्‌पर छोड़ देना चाहिए।

२–सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मनकामना तुम्हारी॥

स्थान : यह चौपाई बालकाण्डमें सीताजीके गौरीपूजनके प्रसंगमें आई है। गौरीजीने सीताजीको आशीर्वाद दिया है।

फल : कार्य सिद्ध होगा।

३–प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर-राजा॥

स्थान : यह चौपाई सुन्दरकाण्डमें हनुमान्‌जीके लंकामें प्रवेश करनेके समयकी है।

फल : भगवान्‌का स्मरण करके कार्य आरम्भ कर दो, अवश्य सफलता मिलेगी।

४–उघरे अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

स्थान : यह चौपाई बालकाण्डके आरम्भमें सत्संग-वर्णनके प्रसंगमें है।

फल : कार्यकी सफलतामें सन्देह है।

५–बिधि-बस सुजन कुसंगति परहीं। फनि-मनि-सम निज गुन अनुसरहीं॥

स्थान : यह चौपाई भी बालकाण्डके आरम्भमें ही सत्संग-वर्णनके प्रसंगमें आई है।

फल : खोटे मनुष्योंका संग छोड़ दो। कार्य पूर्ण होनेमें सन्देह है।

६–मुद-मंगलमय संत-समाजू। जिमि जग जंगम तीरथराजू॥

स्थान : यह चौपाई बालकाण्डमें संत-समाजरूपी तीर्थके वर्णनमें है।

फल : कार्य सिद्ध होगा।

७–गरल सुधा, रिपु करइ मिताई। गोपद सिंधु, अनल सितलाई॥

स्थान : यह चौपाई श्रीहनुमान्‌जीके लंकामें प्रवेश करनेके समयकी है।

फल : कार्य सफल होगा।

८–बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन-सनमुख धरि काह न धीरा॥

स्थान : यह चौपाई लंकाकाण्डमें रावणकी मृत्युके पश्चात् मन्दोदरीके विलापके प्रसंगमें है।

फल : कार्य पूर्ण होनेमें संदेह है।

९–सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। राम लखन सुनि भए सुखारे॥

स्थान : यह चौपाई बालकाण्डमें पुष्प-वाटिकासे पुष्प लानेपर विश्वामित्रजीका आशीर्वाद है।

फल : कार्य सिद्ध होगा।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

५३

श्रीहनुमान्-चालीसा

दोहा—

श्रीगुरु-चरन-सरोजरज, निज मन मुकुर सुधार । बरनौं रघुबर बिमल जस, जो दायक फल चार ।
बुद्धिहीन तनु जानिकै, सुमिरौं पवनकुमार । बल-बुधि-बिद्या देहु मोहिं, हरहु कलेस - बिकार ॥

चौपाई—

जय हनुमान ज्ञान - गुन - सागर । जय कपीस तिहुँ लोक उजागर ॥ १ ॥
रामदूत अतुलित बल - धामा । अञ्जनिपुत्र पवनसुत नामा ॥ २ ॥
महाबीर बिक्रम बजरंगी । कुमति निवार सुमतिके संगी ॥ ३ ॥
कंचन बरन बिराज सुबेसा । कानन कुण्डल कुञ्चित केसा ॥ ४ ॥
हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै । काँधे मूँज जनेऊ छाजै ॥ ५ ॥
संकर - सुवन केसरी-नन्दन । तेज प्रताप महा जग-बन्दन ॥ ६ ॥
विद्यावान गुनी अति चातुर । राम-काज करिबेको आतुर ॥ ७ ॥
प्रभु-चरित्र सुनिबे-को रसिया । राम-लखन-सीता मन-बसिया ॥ ८ ॥
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा । बिकट रूप धरि लंक जरावा ॥ ९ ॥
भीम रूप धरि असुर सँहारे । रामचन्द्रके काज सँवारे ॥ १० ॥
लाय सजीवन लखन जियाए । श्रीरघुबीर हृदय भर लाए ॥ ११ ॥
रघुपति कीनी बहुत बड़ाई । कहा भरत - सम तुम मम भाई ॥ १२ ॥
सहसबदन तुम्हरो जस गावै । अस कहि श्रीपति कण्ठ लगावै ॥ १३ ॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा । नारद - सारद सहस अहीसा ॥ १४ ॥
जम, कुबेर, दिगपाल जहाँते । कबि-कोबिद कहि सकै कहाँते ॥ १५ ॥
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हाँ । राम मिलाय राजपद दीन्हाँ ॥ १६ ॥
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना । लंकेश्वर भे सब जग जाना[1] ॥ १७ ॥
जुग सहस्र - योजन जो भानू । लीला ताहि, मधुर फल जानू ॥ १८ ॥
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख - माहीं । जलधि लाँघि गे अचरज नाहीं ॥ १९ ॥
दुर्गम काज जगतके जेते । सुगम, अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥ २० ॥
राम - दुवारे तुम रखवारे । होत न आज्ञा - बिन पैसारे ॥ २१ ॥

---

१. पाठान्तर : लंकेश्वर भे सब जग जाना । बीर पराक्रम कीर्ति बखाना ॥ १७ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सब सुख लहै तुम्हारी सरना । तुम रक्षक काहूको डर ना ॥ २२ ॥
आपन तेज सम्हारो आपै । तीनहुँ लोक हाँकतै काँपै ॥ २३ ॥
भूत-पिशाच निकट नहिँ आवै । महाबीर जब नाम सुनावै ॥ २४ ॥
नासै रोग हरै सब पीरा । जपत निरंतर हनुमत बीरा ॥ २५ ॥
संकटसे हनुमान छुड़ावै । मन-क्रम-वचन ध्यान जो लावै ॥ २६ ॥
सबपर राम तपस्वी राजा । तिनके काज सकल तुम साजा ॥ २७ ॥
और मनोरथ जो कोइ लावै । तासु अमित जीवन-फल पावै ॥ २८ ॥
चारों युग परताप तुम्हारा । है परसिद्ध जगत उजियारा ॥ २९ ॥
साधु-संतके तुम रखवारे । असुर-निकंदन राम-दुलारे ॥ ३० ॥
अष्ट सिद्धि नवनिधिके दाता । अस वर दीन जानकी माता ॥ ३१ ॥
राम-रसायन तुम्हरे पासा । सादर तुम रघुपतिके दासा ॥ ३२ ॥
तुम्हरो भजन रामको भावै । जन्म-जन्मको दुख बिसरावै ॥ ३३ ॥
अंतकाल रघुवरपुर जाई । जहाँ जन्म हरिभक्त कहाई ॥ ३४ ॥
और देवता चित्त न धरई । हनुमत सेइ, सर्वसुख करई ॥ ३५ ॥
संकट हरै, मिटै सब पीरा । जो सुमिरै हनुमत बलवीरा ॥ ३६ ॥
जै जै जै हनुमान गुसाईं । कृपा करहु गुरुदेव-कि नाँई ॥ ३७ ॥
यह सत बार पाठ कर जोई । छूटै बंदि, महासुख होई ॥ ३८ ॥
जो यह पढ़ हनुमान-चलीसा । होइ सिद्ध, साखी गौरीसा ॥ ३९ ॥
तुलसीदास सदा हरि-चेरा । कीजै दास हृदय-महँ डेरा ॥ ४० ॥

दोहा

पवनतनय संकटहरन, मंगल-मूरति-रूप ।
राम-लखन-सीता-सहित, हृदय बसहु सुरभूप ॥

॥ इति श्रीहनुमानचालीसा सम्पूर्णम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१४

श्री संकटमोचन।

मत्तगयन्द छन्द

बाल-समै रवि भच्छ कियो तब तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।
ताहि-सों त्रास भई जगको, यह संकट काहुसों जात न टारो।
देवनि आनि करी बिनती, तब छाँड़ि दियो रवि, कष्ट निवारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ प्रभु संकट-मोचन नाम तुम्हारो॥ १॥

बालि-कि त्रास कपीस बसे गिरि, जात महा प्रभु पन्थ निहारो।
चौँकि महामुनि साप दियो, तब चाहिय कौन बिचार बिचारो।
कै द्विज-रूप लियाय महा प्रभु, सो तुम दासके सोक निवारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ प्रभु संकटमोचन नाम तुम्हारो॥ २॥

अंगदके सँग लेन गए सिय-खोज कपीस ये बैन उचारो।
जीवत ना बचिहौँ हमसौँ, जु बिना सुधि लीय इहाँ पग धारो।
हेरि थके तटसिन्धु सबै, तब लै सियकी सुधि, प्राण उबारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ, प्रभु संकटमोचन नाम तुम्हारो॥ ३॥

रावन त्रास दई सियको, तब राच्छसिको कहि सोक निवारो।
ताहि समै हनुमान महाप्रभु, जाय महा रजनीचर मारो।
चाहति सीय असोकसौँ आगि, सु दै प्रभु मुद्रि बिषाद निवारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ, प्रभु संकटमोचन नाम तुम्हारो॥ ४॥

बाण लग्यौ उर लक्ष्मणके, तब प्राण तजे सुत रावण मारो।
ले गृह वैद्य सुषेन-समेत तबै गिरि द्रोण सुधीर उपारो।
आनि सजीवनि हाथ दई, तब लक्ष्मणके तुम प्राण उबारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ, प्रभु संकटमोचन नाम तुम्हारो॥ ५॥

रावन युद्ध अजान कियो तब नागके पास सबै सिर डारो।
श्रीरघुनाथ-समेत सबै दल मोह भयो, तब संकट भारो।
आनि खगेस तबै हनुमान, जु बन्धन काटि सुत्रास निवारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ प्रभु संकटमोचन नाम तुम्हारो॥ ६॥

ब्रन्धु-समेत जबै अहिरावन लै रघुनाथ पताल सिधारो।
देविहि पूजि भली विधिसौँ. बलि देहु सबै, मिलि मन्त्र विचारो।
जाय सहाय भये तबही अहि-रावन सैन्य-समेत सँहारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ प्रभु संकटमोचन नाम तुम्हारो॥ ७॥

काज किये बड़ देवनके तुम, वीर महाप्रभु देखि विचारो।
कौन सु संकट मोर गरीब-को, जो तुमसौँ नहिँ जात है टारो।
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु! जो कछु संकट होय हमारो।
को नहिँ जानत है जगमेँ प्रभु, संकटमोचन नाम तुम्हारो॥ ८॥

दोहा

लाल देह लाली लसै, अरु धरि लाल लँगूर। बज्र देह दानव दलन, जय जय जय कपिसूर॥

॥ इति श्रीसंकटमोचन समाप्तम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१५

श्रीहनुमान-साठिका

दोहा

बीर बखानौं पवनसुत, जानत सकल जहान।
धन्य धन्य अंजनि-तनय, संकर, हर, हनुमान्॥

चौपाई

जय जय जय हनुमान् अखंडी। जय जय महाबीर बजरंगी॥
जय कपीस जय पवन-कुमारा। जय जग-बन्दन सील-अगारा॥
जय उद्योत अमर अविकारी। अरि-मरदन जय जय गिरिधारी॥
अंजनि-उदर जन्म तुम लीना। जय-जयकार देवतन कीना॥
बाजी दुंदुभि गगन गँभीरा। सुर-मन हरष, असुर-मन पीरा॥
कपि-के डर, गढ़ लंक सकाने। छूटे बंदि देव, सब जाने॥
रिषय-समूह निकट चलि आये। पवन-तनय-के पद सिर नाये॥
बार-बार अस्तुति करि नाना। निरमल नाम धरा हनुमाना॥
सकल रिषय मिलि अस मत ठाना। दीन बताय लाल फल खाना॥
सुनत बचन कपि अति हरषाने। रबि-रथ गहे लाल फल जाने॥
रथ-समेत रबि कीन अहारा। सोर भयउ तहँ अति भयकारा॥
बिनु तमारि सुर-मुनि अकुलाने। तब कपीस-कै अस्तुति ठाने॥
सकल लोक वृत्तांत सुनावा। चतुरानन तब रबि ढँगिलावा॥
कहा बहोरि, सुनहु बल-सीला। रामचन्द्र करिहैं बहु लीला॥
तब तुम तिनकर करब सहाई। अबहिं रहहु कानन-महँ जाई॥
अस कहि बिधि निज लोक सिधारा। मिले सखा-सँग पवन-कुमारा॥
खेलहिं खेल महातरु तोरी। गली करत परबत-मैं फोरी॥
जेहि गिरि चरन देत कपिराई। बल सो चमकि रसातल जाई॥
कपि सुग्रीव बालि-की त्रासा। निरभय रहेउ राम मग-आसा॥
मिले राम लै पवन-कुमारा। अति आनन्द समीर-दुलारा॥
मनि मुँदरी रघुपति-सौं पाई। सीता खोज चले कपिराई॥
सत योजन जलनिधि बिस्तारा। अगम अपार देव-मुनि हारा॥
बिन श्रम गोखुर सरिस कपीसा। नाँघि गयो कपि कहि जगदीसा॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोता - चरन सीस तिन नायौ । अजर अमर की आसिष पायौ ।।
रहे दनुज उपवन - रखवारी । एक - तें एक महा भट भारी ।।
तिन्हैं मारि, उपवन करि खीसा । दह्यो लंक काँप्यौ दससीसा ।।
सिया बोध दै पुनि फिरि आयो । रामचन्द्र - के पद सिर नायो ।।
मेरु बिसाल आनि पल माँही । बाँध्यौ सिंधु निमिष इक माँही ।।
भये फनीस सक्ति - बस जबहीं । राम बिलाप कीन बहु तबहीं ।।
भवन समेत सुखेनहिं लाये । भूरि सजीवनि - कहँ तब धाये ।।
मग - महँ कालनेमि - कहँ मारा । अमित सुभट निसिचर संहारा ।।
आनि सजीवन सैल - समेता । धरि दीन्ह्यौ जहँ कृपानिकेता ।।
फनपति-केर सोक हरि लीन्ह्यौ । बरषि सुमन, सुर जय-जय कीन्ह्यौ ।।
महिरावन हरि अनुज - समेता । लै गो जहाँ पताल - निकेता ।।
तहाँ रहै देवी अस्थाना । दीन्ह चहै बलि काढ़ि कृपाना ।।
पवन-तनय तहँ कीन्ह गोहारी । कटक - समेत निसाचर मारी ।।
रिच्छ कीसपति जहाँ बहोरी । राम - लखन कीन्हेउ यक ठौरी ।।
सब देवन - कै बंदि छोड़ाई । सोइ कीरति नारद मुनि गाई ।।
अच्छ कुमार दनुज बलवाना । स्वामि केतु कहँ सब जग जाना ।।
कुम्भकर्न रावन - कै भाई । ताहि निपात कीन्ह कपिराई ।।
मेघनाद संग्रामहिं मारा । पवन - तनय सम को बरियारा ।।
मुरहा - तनय नरांतक नामा । पल-महं ताहि हता हनुमाना ।।
जहँ लगि नाम दनुज-कर पावा । संभु - तनय तहँ मारि खसावा ।।
जय मारुत - सुत जन अनुकूला । नाम कृसान सोक सम - तूला ।।
जेहि जीवन - कहँ संकट होई । रवि-समान तम-संकट खोई ।।
बंदि परे सुमिरैं हनुमाना । गदा - चक्र लै चलु बलवाना ।।
जम-कहँ मारि बाम दिसि दीन्हा । मृत्युहिं बाँधि हाल बहु कीन्हाँ ।।
सो भुजबल का कीन कृपाला । अछत तुम्हार मोरि यह हाला ।।
आरति - हरन नाम हनुमाना । सारद - सुरपति कीन्ह बखाना ।।
रहै न संकट एक रती - को । ध्यान धरै हनुमान जती को ।।
धावहु देखि दीनता मोरी । काटहु बंदि, कहहुँ कर जोरी ।।
कपिपति बेगि अनुग्रह करहू । आतुर आइ दास - दुख हरहू ।।
राम - सपथ मैं तुमहिं धरावा । जो न गुहार लागि सिव-जावा ।।
बिरद तुम्हारि सकल जग जाना । भव-भय-भंजन तुम हनुमाना ।।
यहि बंधन - करि केतिक बाता । नाम तुम्हार जगत-सुख-दाता ।।
करहु कृपा जय जय जग-स्वामी । बार अनेक नमामि नमामी ।।
भौम बार करि होम बिधाना । धूप-दीप - नैवेद्य सजाना ।।
मंगल - दायक - कौ लौ लावै । सुर नर मुनि तुरतहिं फल पावै ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जयति जयति जय जय जग-स्वामी। समरथ पूरुष अन्तर-जामी॥
अंजनि-तनय नाम हनुमाना। सो तुलसी-कहँ कृपानिधाना॥

दोहा

जय कपीस सुग्रीव तुम, जय अंगद हनुमान।
राम-लखन-सीता-सहित, सदा करो कल्यान॥
जो यह साठिक पढ़िइ नित, तुलसी कहैं बिचारि।
पड़ै न संकट ताहि-कौ, साखी हैं त्रिपुरारि॥

सवैया

आरत बैन पुकारत हौं कपिनाथ सुनो बिनती मम भारी।
अंगद औ नल-नील महाबलि देव सदा बल-की बलिहारी॥
जाम्बवान् सुग्रीव पवन-सुत दिबिद मयंद महाभटभारी।
दुख-दोष हरो तुलसी जन-को श्री द्वादश बीरन-की बलिहारी।

॥ साठिका सम्पूर्णम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१६

श्रीबजरंग - बाण

दोहा

निश्चय प्रेम प्रतीत ते विनय करैं सनमान।
तेहि-के कारज सकल शुभ सिद्धि करैं हनुमान॥

चौपाई

जय हनुमंत सन्त हितकारी। सुनि लीजै प्रभु अरज हमारी॥
जनके काज बिलम्ब न कीजै। आतुर दौरि महासुख दीजै॥
जैसे कूदि सिंधु वहि पारा। सुरसा बदन पैठि विस्तारा॥
आगे जाइ लंकिनी रोका। मारेहु लात गई सुरलोका॥
जाइ विभीषण को सुख दीना। सीता निरखि परम पद लीना॥
बाग उजारि सिंधु महँ बोरा। अति आतुर यम कातर तोरा॥
अक्ष कुमार मारि संहारा। लूम लपेटि लंक को जारा॥
लाह समान लंक जरि गई। जय जय ध्वनि सुरपुर मैं भई॥
अब बिलम्ब केहि कारण स्वामी। कृपा करहु उर अन्तर्यामी॥
जय जय लक्ष्मण प्राण के दाता। आतुर होइ दुख करहु निपाता॥
जय जय गिरिधर जय सुख सागर। सुरसमूह समरथ भटनागर॥
ओं हनु हनु हनुमन्त हठीले। बैरिहिं मारु बज्र की कीलैं॥
गदा बज्र लै बैरिहिं मारौ। महाराज प्रभु दास उबारौ॥
ओंकार हुंकार प्रभु धावौ। बज्र गदा हन बिलंब न लावौ॥
ओं ह्रीं ह्रीं हनुमन्त कपीशा। ओं हुं हुं हनु अरि उर शीशा॥
सत्य होहु हरि सत्य पायके। रामदूत धरु मारु धाय के॥
जय जय जय हनुमन्त अगाधा। दुख पावत जन केहि अपराधा॥
पूजा जप तप नेम अचारा। नहिं जानत है दास तुम्हारा॥
बन उपवन मग गिरि गृह माँही। तुम्हरे बल हम डरपत नाहीं॥
पाँय परौं कर जोरि मनावौं। यहि अवसर अब केहि गोहरावौं॥
जय अंजनि - कुमार बलवन्ता। शंकर - सुवन बीर हनुमन्ता॥
बदन कराल काल कुल घालक। राम सहाय सदा प्रतिपालक॥
भूत पिशाच प्रेत रजनीचर। अगि बैताल काल मारी मर॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इन्हैं मारु तोहिं शपथ राम की। राखु नाथ मर्याद नाम की॥
जनक - सुता - हरि - दास कहावौ। ताकी शपथ विलम्ब न लावौ॥
जय जय जय धुनि होत अकाशा। सुमिरत होत दुसह दुख नाशा॥
शरण-शरण कर जोरि मनावौं। यहि औसर अब केहि गोहरावौं॥
उठु उठु चलु तोहिं राम दोहाई। पाँय परौं कर जोरि मनाई॥
ओं चं चं चं चपल चलन्ता। ओं हनु हनु हनु हनुमंता॥
ओं हं हाँक देत कपि चंचल। ओं सं सहमि पराने खल-दल॥
अपने जन - को तुरत उबारो। सुमिरत होय अनन्द हमारो॥
यह बजरंग बाण जेहि मारै। ताहि कहौ फिरि कौन उबारै॥
पाठ करै बजरंग बाण - की। हनुमत रक्षा करै प्राण - की॥
यह बजरंग बाण जो जापै। ताते भूत - प्रेत सब काँपै॥
धूप देय अरु जपै हमेशा। ताके तन नहिं रहै कलेशा॥

दोहा

प्रेम प्रतीतिहिं कपि भजै, सदा धरै उर ध्यान।
तेहि - के कारज सकल शुभ, सिद्ध करै हनुमान॥

॥ श्रीतुलसीदास - विरचित बजरंग बाण स्तोत्र सम्पूर्णम् ॥

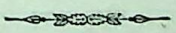

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१७

श्रीछप्पय-रामायण

छप्पय

श्रीगुरुचरणसरोज बन्दि गणनाथ मनावौं। जेहि प्रसाद शुभ होय राम सोइ बिनय सुनावौं।
आरति-भञ्जन राम नाम मुनि साधुन गाई। सुमिरत गाढ़े नाथ होत सब ठौर सहाई।
श्रीपति रघुपति अवधपति करहुँ नाम सो जापना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥ १ ॥
रहि कपोत-शिशु-मति-समेत इक बट-तरु-पासा। गगन उड़े शंचान भूमितल अग्नि प्रकासा।
व्याधा गहि कर बाण, देखि लोचन जल मोचित। पक्षी सो मनमहँ सभीत दम्पति उर शोचित।
दुष्टदवन करुणायतन राखि लेहु शरणापना। कृपा करिय श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥२॥
उठे ततक्षण मेघ वृष्टिजल अनल बुताने। निकसि भुअंगम डसे सघी व्याधा बिकलाने।
निसरेउ करते तीर जाय संचानहिं मारी। अस्तुति करत कपोत नाथ प्रणतारतिहारी।
सो प्रभु होहु दयालु मम, जिमि कपोत-रिपु दापना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु कोकसन्तापना ॥ ३ ॥
जै जै मीन - बराह - कमठ - नरहरि - श्रीवामन। परशुराम - श्रीराम - कृष्ण-जनहित खलदामन।
जगन्नाथ कल्की नमामि दशविधि वपु-धारन। अमित रूप अगणित चरित्रकृत नाम-उधारन।
सुर-रञ्जन सज्जन-सुखद सियानाथ करि जापना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥ ४ ॥
बधि ताड़का-सुबाहु बिप्र-मख - रक्षक रघुपति। मोचित पाहन-शाप भक्त-वरदायक शुभगति।
प्रण विदेहको राखि राम खण्ड्यो धनु शंकर। दीन्ह शरासन बाण जानि रामहिं सु परशुधर।
सिय विवाहि गवने अवध, छूटे जनक कलापना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥५॥
राज त्यागि वन चले असुर मारन सुर-कारज। केवट धौवत चरण त्रिलोचन-अज पद जो रज।
चित्रकूट बसि अमित कोल भिल्लन करि पावन। भरत तोषि कृत चरण-पीठ दै सोक-नसावन।
चले भरत अस्तुति करत, राखि लियो वरदापना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥६॥
पाहि कहत बचि प्राण चक्षु इक हते जयन्ता। वधि विराध खर-दूषणादि मुनि सुयश कहन्ता।
हेम-कपट मृग प्राण दीन्ह, प्रभु सरके लागत। गति गृध्रहि दै हति कबन्ध शबरी-शरणागत।
बालि-त्रास सुग्रीव रहि गिरिपर करत कलापना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥७॥
हनुमत चीन्हेउँ राम, नाथ निज दासहि जानी। भक्ति बिमल बर देइ मित्रकृत सारँगपानी।
बालि बध्यो, कपिराज साजि, ऋतु मेह गँवाये। कर मुद्रिक दै सिय-उदेश हनुमान पठाये।
उहाँ सिया निसिदिन जपत, रामनाम मन आपना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना॥८॥
हरषि चले हनुमान भाग्य निज करत बड़ाई। खोजत सर-गिरि-खोह रिच्छ-कपि संग सगाई।
गये सिन्धुतट सकल शोकवश सुनि सम्पाती। सुनि सपक्ष होइ, जोह सिया यह सुर-आराती।
निरखि सिन्धु ठहरे सबै, करहिं विलाप-कलापना। कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥९॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पुलकि उठे हनुमान कान सुनि बयन रिछेसा । चलत महाधुनि गरजि डोलु गिरि-दिग्गज-सेसा ।
सुरसा-बदन समाय सिंहिका बधत सिधाये । प्रभु-प्रताप जलयान पार सागर होइ आये ।
मुष्टिक हनि तहं लंकिनी, सुमिरि चले हरि आपना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥१०॥
गृह गृह शोधत चले जोह कतहूँ नहिँ पाये । लगे उचारन राम नाम सुनि विभिषण आये ।
सन्तत मिलि दुहुँ करत मुदित जिमि वासर कोका । युक्ति विभीषण बूझि गये जहँ बिटप अशोका ।
मौन लई कपि छपि गुनत, युक्ति होय प्रकटापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक संतापना ॥११॥
तेहि अवसर दशकन्ध नारि-सँग आय डरावा । प्रभु-प्रताप रवि, आपु नखत, सुनि गृहहि सिधावा ।
विरहवन्त होइ अनल तबहिँ माँगेहु वैदेही । शोकहरन मुद्रिका दीन्ह कपि औसर तेही ।
चीन्हि हरष विस्मय तेही, दुखभञ्जन प्रभु आपना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥१२॥
बरनि राम-गुण करि प्रणाम बोले हनुमाना । हौँ अनुचर तव नाथ मातु मैँ मुँदरी आना ।
निकट बोलि सुनि अमिय बयन पूछी कुशलाता । कहेउ, कुशल दोउ बन्धु, सोच कीजै जनि माता ।
कपि मुख राम-सँदेश सुनि, कह सीता विरहापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥१३॥
सिय प्रबोधि, लै तब निदेश सुसमीर-कुमारा । गये बाग फल खाय तोरि तरु रक्षक मारा ।
सुवन वधे सुनि बीस-बाहु घननाद पठाये । लंकदहन हित कीश तासु कर आप बँधाये ।
दनुज बाँधि पट लाय दिय, लूम देखि कीशापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक-सन्तापना ॥१४॥
ज्वालावन्त कराल कीश चढ़ि कनक अटारी । नगर शोर चहुँ ओर जरन लागे नरनारी ।
बात-जात बलपुञ्ज हाँक सुनि दनुज सकाने । बाल बृद्ध सम्पति विहाय सब जरत पराने ।
जरा लंक, बचु एक घर विभिषणके हरि-जापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥१५॥
श्रम विहाय पुर जारि सिंधु - महँ लूम बुताई । आय मातु-पद - पद्म बन्दि कपि माँग रजाई ।
सहिदानी कछु देहु मातु सुधि प्रभुहिँ जनावौँ । चूड़ामणि दै कह्यो मातु बहु बिनय सुनावौँ ।
कहेउ मोरि हुँति नाथजू, शरण लाज रखु आपना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥१६॥
बिबिध भाँति दै धीर मातुपद बन्दि कपीशा । चले शुभाशिष पाय आय भेँटे सब कीशा ।
चरण चूमि करि, कीश सकल पूछहिँ कुशलाई । कहत कथा सब भाँति आय मधुवन फल खाई ।
बन्दि राम-पद-कंज कहि, सीता सुधि इतिहापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥१७॥
विरह अनल तनु तप्त आपु हित राखौ नैना । अब बिलम्ब जनि करसु सिया है राजिवनैना ।
शक्र-सुवन, मृग हेम जानु तव बाण - प्रतापा । जान कबन्ध अरु बालि, कहा भै सो सर-चापा ?
सिया बिनय चरणन पड़ी चूड़ामणि दिहि आपना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥१८॥
सिया विनय सुनि सियानाथ कर गहि धनु तीरा । उतरे कटक समूह संग लै सागर-तीरा ।
मिले विभीषण आय, पाहि कहि जय अवधेशा । प्रणतपाल करि अभै तासु पुनि कहि लंकेशा ।
तारन-सिन्धु उपल पुनि, कृत शंकर अस्थापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥१९॥
रामेश्वर सुखधाम राम कहि श्रीमुख-बानी । जासु नाम उच्चरत प्रेम गति पावत प्रानी ।
गिरिजा-रमन-दयालु दीनहित दानी अवढर । जनपर होहु दयालु दीन-हित सो गौरीश्वर ।
उमारमन मम दुखदमन, हरहु शोक सन्तापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥२०॥
जलनिधि उतरे पार भालु-कपि कटक-समेता । पठै बसीठी, बूझि मरम गढ़, उठे सचेता ।
चारिउ पथ होइ लगे वीर सब सुभट जुझारे । प्रभु-प्रताप करि दाप ऋक्ष कपि कटक सँहारे ।
कपि अकंप आदिक हते, कहि-कहि जै नाथापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना ॥२१॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

महो-उदर अतिकाय आदि कहँ हति हनुमन्ता । हाँकि समर - महँ मेघनाद-कहँ हत्यो अनन्ता ।
अहिरावण वध कियउ राम सेवक - सुखदाई । दल पाछे, करि सौंह, त्रोण कटि कसि दोउ भाई ।
कृपादृष्टि करि विपुल बल, नाथ दियो दल आपना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।२२।।
कुम्भकर्ण अति विकट रूप आवा दल माहीं । दपटि पटकि भट भालु कीश मर्दे महि माहीं ।
उठि बहोरि तेहि अस्त्र शस्त्र छाँड़े कपि दलपर । दल पाछे, करि सौंह, लीन्ह निज शर सीतावर ।
बध्यो ताहि निज पाणि प्रभु, देव जयति करुनापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।२३।।
रावण आयो सौंह बन्धुपर सैल चलावत । दल पाछे, करि सौंह, ताहि प्रभु आपु खेलावत ।
कहत देव अब जनि विलम्ब करु, दुष्टहि मारो । त्रिभुवन विजय समेत नाथ निज पुर पग धारो ।
सुनि पुकार, रावण हते, राज विभीषण थापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।२४।।
प्रभु-सिख लै हनु अंगदादि गे सिया लेवाई । निसरि दियातैं सिया सुपथ-मिस प्रभु-पहँ आई ।
शोभित जानकि राम-संग कपिदल हर्षाने । जै जै जैति उचार देव-मुनि साधुन गाने ।
ब्रह्मादिक अस्तुति करत, छबि निहारि नाथापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।२५।।
चढ़ि पुष्पक आरूढ़ राम, सिय-लखन-समेता । चले अवध लै सखा संग प्रभु कृपानिकेता ।।
आये तीरथराज भेजि हनुमान भरत-पहँ । वातजात सानन्द जात प्रभु भरत दरश-कहँ ।
भरत विरह-वारिधि मगन, राम देहु दर्शापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।२६।।
हनूमान जलयान भेंट करि जलनिधि-पारा । कहेउ कुशल लै समाचार चले पवनकुमारा ।
भरत आय गुरु निकट मातु पुर लोग जनाई । पुलकि उठे सब स्वाति-वारि जनु चातक पाई ।
गंग पूजि सिय, राम चलेउ, पाय कुशल अनुजापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।२७।।
उतरि यानतैं पुर - समीप भेंटे मुनि गुरु जन । भरत चरण हिय लाय पुलकि भेंटे रिपुसूदन ।
लखन भरत सानन्द मिले सानुज दोउ भाई । हुँकरि गाय दिन अन्त धाय जनु बच्छ पिआई ।
मिलि परिजन सानन्द सिय-राम चले भवनापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।२८।।
गुरु-अनुशासन सचिव, साजि अभिषेक बनाई । राम सिंहासन राज्य दीन गुरु-मुनि-समुदाई ।
भरत गहे कर छत्र - चँवर सिय-राम निहारे । मुदित जन्मफल पाय मातु आरती उतारे ।
वेद-स्तुति करि जयति भनि भक्ति देहु रामापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र मम हरहु शोक सन्तापना ।।२९।।
छुटे वन्दि सब बिबुध कोटि तैंतीस हरषिकै । अस्तुति करत बनाय पुष्प जयमाल बरषिकै ।
शम्भु आय कृत विविध भाँति अस्तुति श्रीरामा । पाय रजायसु चले देव सब निज-निज धामा ।
बिदा कियो सब सखहि प्रभु, देव जयति करु जापना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।३०।।
रामचरित अवगाहि सिन्धु कोउ पार न पावा । शेष शारदा निगम नेति कहि निज मुख गावा ।
शम्भु उमा-सन, भरद्वाज सौं याज्ञवल्क्यमुनि । कहि भुशुण्डि सौं गरुड़, मानसिक कहि तुलसी गुनि ।
कहै सुनै रति रामपद एक राम-मति आपना । कृपा करहु श्रीरामचन्द्र, मम हरहु शोक सन्तापना।।३१।।

।। इति श्रीछप्पयरामायण समाप्तः ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१८

कलिधर्म्माधर्म्मनिरूपण

रेवातीर सुदेश सुग्रामा । बसहि विप्र इक शंकर नामा ।
धर्म्मशील शुचि साधु स्वभाऊ । भूलि कुमारग धरै न पाऊ ॥
सुत विनीत, पतिपूजक नारी । गृह-समाज सब भाँति सुखारी ।
रेवा मज्जन, सज्जन सेवा । प्रिय गुरु अतिथि प्रीति महिदेवा ॥
सुजन-शिरोमणि गुण-गण-गेहू । शिव-सेवक हरि चरण सनेहू ।
सुनै नियम आगम बिधि नाना । रामायण इतिहास पुराना ॥
लोक चतुर परलोक सयाना । जीवन धन हरि-हर-गुण-गाना ।
आश्रम वरण धर्म्म युग धर्म्मा । कर्म्म विकर्म्म कुकर्म्म सुकर्मा ॥
ज्ञान विराग उपासना, कर्म अनेक प्रकार ।
शंकर सादर धर्म्म सब, समुझे बारहि बार ॥
मुनि प्रणीत नृप गण मनु-बानी । नरक स्वर्ग अपवर्ग कहानी ।
सबहित धर्म्म रहस्य घनेरे । पुण्य प्रबन्ध विमल बहुतेरे ॥
सुकवि सुभाषित सरल सुहाये । सुने सकल जहं जहँ जग पाये ।
युग प्रसङ्ग कलिकाल स्वभाऊ । सुनि मन सोच भूमि सुरराऊ ॥
मति अनुहार कहै कवि सोई । कलि कुचालि जग प्रगट न होई ।
कलिमल मलिन सकल नर नारी । वरण-धर्म नहिँ आश्रम चारी ॥
नीच निरंकुश निठुर नृपाला । सचिव स्वारथी क्रूर कराला ।
राज सरिस सब प्रजा अभागी । दुसह दुरित दुख दारिद दागी ॥
दम्भ सहित सब धर्म्म कलि, छल समेत व्यवहार ॥
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहर आचार ॥
विप्र सुमारग पाउँ न देहीँ । बेचहिँ वेद धर्म्म दुहि लेहीँ ।
हरि हर परिहरि पूजहिँ प्रेता । सभा सुबेष, कुचैल निकेता ॥
बोलत कोकिल, करतब कागा । वित-हित होम नेम जप जागा ।
कहत करत षट कर्म सुजाना । सेवा करि करि लेहिँ कुदाना ॥
पूजन पठन नहात प्रवीना । छल मजीन मन धन आधीना ।
बासर सो नहिँ होहिँ सुरापी । पर-अपकार-परायण पापी ॥
इहि बिधि सब बुध विप्र बिगोये । मूढ़ बिशेष झुठाहिँहि खोये ।
परहिँ कूप जहँ दिनहि उजारे । किहि अवलम्बहि अन्ध विचारे ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धर्म सुतीरथ मन्त्र सुर, महि महिदेव विचार।
ते छलि कलिमल किय प्रथम, योगी हरि सो धार॥

क्षत्री छलमय कलिमल मूला। वंचक विप्र वेद-प्रतिकूला॥
अपने धर्म न सुपनेहु बरहीं। समर परसपर करि लर मरहीं।
नीच विचार नीच व्यवहारू। नीच जीविका नीच अचारू॥
क्षत्रिजात अभिमान न देही। कर्म मलेच्छ जीति यश लेही॥
शूर सहाय सवल बल जेई। क्षत्री जाति कहावत तेई॥
तीसर वर्ण विशेष विबाकी। सेवा करि जगजीवन जाकी॥
भूल न सुधनहिं सोइ सुजाती। सकल वरणशंकर उतपाती॥
आश्रम मध्य मुख्य संन्यासी। तिहि कीन्हें कलिकाल निवासी॥

वरण विवेक विरागमय, मानस कलिमल-खानि।
मुण्डित मुंड कषाय पट, दण्ड कमण्डल पानि॥

सूद्र कलहप्रिय पातक पीना। संयम नेम दया दमहीना॥
ब्रह्म कहावहिं ब्रह्म निरूपन। जग-वञ्चक वितहित बहुरूपन॥
बासर साधहिं योग समाधी। भोग - परायण शांति उपाधी॥
बोलनि वेष हंस, बक करणी। पण्डित विहित यती गति वरणी॥
परम मूढ़ परमारथवादी। परमहंस बहुवेष विषादी॥
पढ़े विप्र ढिग रहि यति होता। परमहंस पथ पाप निसोता॥
आश्रम नहिं कलि कानन - बासी। कुटिल कुटीचर कलिमलरासी॥
बटु-व्रत रहित सकल गुण खाली। पढ़ि सुनि कुल-गुरु करहिं कुचाली॥

निलज निरंकुश निठुर सब, पढ़े थोर बहु गाल॥
आश्रम बरण विगोइ सब, गल गाजत कलिकाल॥

गृही गृहाश्रम धर्म-विहीना। धरणि धाम धन सोच मलीना॥
सुर-गुरु-पितर-अतिथि अपवादी। स्वारथरत परमारथवादी॥
कपटी कोल कुमारग-गामी। कुधन कुधाम कुमामिनि स्वामी॥
कुमति कुशील कुजीवनि जीवहिं। सुरसरि-तीर कूप-जल पीवहिं॥
करहिं अधर्म कर्म मन बानी। चलहिं बामपथ ज्ञान गुमानी॥
अवगुण अघ न अघाहिं अमापी। चहहिं सुकृत-फल पामर पापी॥
आश्रम बरण सधर्म मलिनसे। जग सर कलि हिम हए नलिनसे॥
थोर बहुत कहुँ-कहुँ कोइ कोई। आश्रम दुखित वरण पहिलोई॥

सकल धर्म-विपरीति कलि, कलपित कोटि कुपन्थ।
पुण्य पराइ पहार वन, दुरे पुराण सुग्रन्थ॥

निज निज धर्म विमुख सब लोगा। भोगहीन रति रोग वियोगा॥
क्षमा क्षीन, पटु पीन प्रकोपू। दिनदिन अशुभ, उदय शुभ लोपू॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सत्य सनेह शील सुख बीते । शम दम दान दया जन रीते ॥
धर्म पञ्च विधि कलिमल भाँड़े । सबहि बजाइ वेद पथ छाँड़े ॥
कर्म कराल उपासन ज्ञाना । तप जप तीरथ व्रत बहु दाना ॥
वित - हित सकल सदम्भ सहेतू । छल मल निधि कलि कपट-निकेतू ॥
कलि उतपात होहिँ बहुतेरे । भूमिरु कम्प विघात घनेरे ॥
लूकपात दिगदाह विशाला । निशि सुरेश - धनु केतु कराला ॥

काई सुरसरि विमल जल, भूमी मलिन सुथान ।
कुसमय फूलहिँ फलहिँ तरु, सूचक अशुभ निदान ॥

तिनकर फल दुख दुरित दुकाला । विविध व्याधिवश प्रजा बिहाला ॥
ईति-भीति महि कृषी - मलीना । कुबिटप फरहिँ, सुतरु फलहीना ॥
घटहि सुवस्तु सुनाज सुयोगा । बढ़हिँ कुवस्तु कुधान कुयोगा ॥
विद्या वणिज कृषी सेवकाई । निपट थोर फल, श्रम अधिकाई ॥
अन्न पान फल रस लघु स्वादा । पाठ थोर बड़ वाद विवादा ॥
धेनु थोर पय, पय-घृत थोरा । अबल साधु जन, खल बरजोरा ॥
सुमति मन्त्र औषधि सब लोपे । कपट मन्त्र विष, कलिमल रोपे ॥
बरसहिँ ऊसर सालि सुखाहीँ । उलटी रीति सकल कलिमाहीँ ॥

गौँड गुआर गँवार भूप, यवन महा महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल ॥

चोर चारु लघु लम्पट लोभी । सचिव सभासद मद महि छोभी ॥
राज सरिस सब राज समाजी । प्रजा बिकल बड़ राज बिराजी ॥
देश उजारि नरेश प्रतापा । जरहिँ जीव जग तीनहुँ तापा ॥
भूपति वञ्चक प्रजा अभागी । प्रजा जरहिँ अवनिप अघभागी ॥
प्रजा रोझ मृग बिहँग समाजा । राजा विषधर अहि बृक बाजा ॥
महिप मुदित सुनि प्रजा अकाजू । प्रजा कहहिँ कब जाइहि राजू ॥
राजउ प्रजा परस्पर खोटे । जग जन्महिँ करि कलिमल मोटे ॥
सुखहित करहिँ कुचाल कलेसू । सहहिँ दुसह दुख देसविदेसू ॥

प्रीति सगाई सकल गुण, बणिज उपाय अनेक ।
कल बल छल कलिमल मलिन, डहकत एकहि एक ॥

बणिज महाजन साहु सुनामा । बोलनि दाहिन, करनी बामा ॥
उभय बरद हर करहिँ किसाना । जोतहि गोमग सर शुभ थाना ॥
बाँधि बरद मुँह दाँवरि देहीँ । तिहि अघ सब निशिचर हरि लेहीँ ॥
धरणि धाम धन धरम विहीना । प्रिय परिजन अपमान-मलीना ॥
असन-बसन बिनु-बन्धु वियोगी । कुमति कुसाज कुरूप कुरोगी ॥
कलही कुटिल कठिन कटु वादी । फिरहिँ विकल बिललात विषादी ॥
नींद भूख आलस - वश कीन्हें । सुख सदगुण कलिमल हरि लीन्हें ॥
आरत अधी अनाथ अभागी । सब नरनारि जरहिँ जठरागी ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ठाकुर कुसचिव क्रूर सब, पुरुष नारि - आधीन।
गुरु वित-हित सब शिष्यवश, मूरख - विवश प्रवीन॥
धनी कुलीन धनी गुणसागर। धनी साधु सब भाँति उजागर॥
बिबुध वेद गुरु विप्र विरोधी। धनी पूजिहहिं पाप पयोधी॥
बिन धन मुनिगन गरहिं गलानी। सहहिं निरादर घर - घर मानी॥
धनहित कहहिं दिवस-कर राती। नीचहिं नवहिं बड़े सब भाँती॥
साधु सुजाति सुशील सुजाना। बिन धन जन दुख-दोष-निधाना॥
कलि केवल धन मूल भलाई। बुधि विवेक बल विनय बड़ाई॥
प्रीति सहेतु अकारण कोही। सब पितु मातु बन्धु गुरु-द्रोही॥
पिसुन पञ्च पण्डित छलवादी। बकत लबार सुकवि अपबादी॥
चोर चतुर बटपार भट, प्रभु प्रिय भँडुवा भण्ड।
सब भक्षक परमारथी, कलि कुपन्थ पाखण्ड॥
सब कबि कोविद कला-निकेता। साधक सिद्ध सधर्म सचेता॥
हम सब भाँति बड़े, सब छोटे। हम बिन खोर खरे, सब खोटे॥
सकल कहहिं हम-सरिस न दूजा। को केहि मानइ, को केहि पूजा॥
लोक बेद मरजाद बिसारी। सब नरनारि यथा - रुचिकारी॥
बकता सब कोउ सुनै न बानी। सब याचक जग, कोउ न दानी॥
सब सिखवँ जन सुनै न कोऊ। गुरु-सिष अन्ध-बधिर-सम दोऊ॥
सुत पितु-मात-हाथ, बिन ब्याहे। पुनि रिपु होहिं नारि-मुख चाहे॥
तिय - वश तनय बसै ससुरारी। परिहरि लोक-लाज कुलगारी॥
कामचारिनी करकसा, घरमँ नारि प्रधान।
तियगुण सीख - बिहीन सब, दूषण - दुरित - निधान॥
बिधवा बहु, सौभागिन थोरी। कठिन करम मन, बोलत भोरी॥
बिधवा भूषण वसन विशेखी। सौभागिनि सिहाहिं सुनि देखी॥
हिन्दू तुरक उभय कलि जीते। निज-निज करम-धरम विपरीते॥
गृही दरिद्र यती धनवाना। नागर क्रूर, गँवार सुजाना॥
शूद्र पुराणिक, विप्र किसाना। युवा जरठ गुण, जरठ जुवाना॥
विप्र वर्म असि शर धनुधारी। पुस्तक पाणि नीच नर नारी॥
विप्र कछौटी पहिरि अन्हाहीं। शूद्र सदर्भ निमज्जन जाहीं॥
जाति पाँति बहु भेद अचारा। एक वरण सब किए विचारा॥

छन्द

सब वरण एक विचार कीन्हें कोल कुलि कलिमल भई।
बहु वेष बहु मत शैव शक्तिक सौर सुर-सेवा मई।
सब जाति पाँति जमाति जोरहिं जटिल भूत भयावने।
अति रोष - दोष - निधान मानी खान पान अपावने॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सोरठा

कलि पाखण्ड प्रचार, प्रवल पाप पामर पतित।
तुलसी उभय अधार, रामनाम सुरसरित-जल॥

सभा सराहिय सोर बिसेखी। श्रवण अगम कहँ आँखिन्हि देखी॥
करि प्रपञ्च वञ्चक परघाती। सोइ बड़ धीर तासु बड़ छाती॥
कौड़ी-कारण कहहिँ कुसाखी। ऋण अवनीक मरण अभिलाखी॥
शठहि सुमति साहसी जुवारी। जीवन थोर, दुरास अपारी॥
साँचि बात जिहि सभा बखानी। हँसहिँ लोग बड़ कुबक-ज्ञानी॥
जहाँ होहिँ जप यज्ञ पुराना। विरति विवेक विचारन नाना॥
कथा कीर्तन साधु समाजा। तहँ विशेष कलिकाल विराजा॥

शूर समर रथ तीर्थ पुनि, कपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासो मारि कलि, राजत सहित समाज॥

वेचहिँ गाय बिसाहहिँ छेरी। दुहगा सुतिय, सुहागिनि चेरी॥
पर पर परघर सुरसरि सेतू। दूर करहिँ निज कीरति हेतू॥
हरि-पर ग्रन्थ करहिँ निज ग्रन्था। चहहिँ सुयश सुख चलहिँ कुपन्था॥
काटहिँ सुरतरु बवहिँ बबूरे। निज घर वरहिँ बुतावहिँ घूरे॥
भल क्रमनास कहहिँ गत गंगा। तुलसिहिँ हँसहिँ सराहहिँ भंगा॥
गुरु-पितु-मातु-साधु सिख पेली। तीरथ चलहिँ समाज सकेली॥
सुथल सुतीरथ वन सुरथाना। तहाँ तुरक कलि करहिँ मसाना॥
प्रीति प्रतीति न काहुकि काहू। सब ठग चोर महाजन साहू॥

मन्दिर मूरति मलिन कलि, थान प्रधान विचारि।
ते सव सादर पूजिहहिँ, फलहिँ भगति अनुहारि॥

विष्णुभक्ति महिमा अधिकाई। चहुँ युग बड़ चहुँ वेद बड़ाई॥
काल कर्म गुण प्रकृति प्रभाऊ। भक्ति समीप जाहिँ नहिँ काऊ॥
कर्मक देव ज्ञान विज्ञाना। जप तप योग उपासन नाना॥
भक्ति अनुग्रह जापर होई। सो बड़ सबल सबनपर सोई॥
पक्षपात नहिँ कहहुँ सुभाऊ। लोक वेद बड़ भक्ति प्रभाऊ॥
आप विमल कलिकाल मलीना। अस विचारि हरिभक्ति-प्रवीना॥
अलख अनूप निरूपन जाई। भक्ति सुथल लघु रूप समाई॥
सब भगवन्त सुग्रन्थ सयानी। जिमि माधुरी रसाल समानी॥

तुलसी कानन साधु मन, गुरु - पद प्रेम प्रमान॥
भरत-चरित सुरसरित जल, रामभक्ति विश्राम॥

अमल भक्तिपथ अमल अनेका। लखहिँ विमल जन विमल विवेका॥
भक्ति विशेष भक्ति विश्रामा। ते थोरे जन जलधि ललामा॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भक्ति - निवास मनुज - मन देखी । कलिहि सकुच सन्ताप बिसेखी ॥
भक्ति भानु कलि - कलुष उलूका । सोच बिलोकत लोचन टूका ॥
भक्ति बास सब शूक समाना । बाम देत कलि कपट सयाना ॥
राम - भक्त कहुँ - कहुँ द्वै चारी । अनघ अमान अमल अविकारी ॥
ते महिमण्डल मण्डन रूपा । प्रीति रामपद अचल अनूपा ।
तिन-कहँ कलि कृत-युगसम साजू । सुकृतिन सुखद यथा युवराजू ॥

जो हरि - भक्त कहाय जग, वित - हित करत कुफेर ।
दण्ड कपट पाखण्ड भट, पठइ किये कलि जेर ॥

ते कलिवश बहु नाचहिँ नाचा । भूलि न बोलहिँ सपनेहु साँचा ॥
तिलक विचित्र मनोहर माला । वसन विभूषण, बचन रसाला ॥
मिलत मधुर गावत मृदु बानी । करम कठिन नहिँ जाइ बखानी ॥
गूढ़ गर्व अध अवगुण गरुये । राम - प्रेम परमारथ हरुये ॥
देव पितर महिदेव विरोधी । मोह - लोभवश लम्पट क्रोधी ॥
ज्ञान बिराग सुनत जरि मरहीँ । आश्रम - वर्ण - धर्म परिहरहीँ ॥
तजि सुकर्म कुल - रीति सुहाई । कलपि कुपन्थ कुचालि चलाई ॥
खान - पानकर थोर विचारू । एकादशी विशेष अचारू ॥

बड़े भाग तजि जगतगुरु, उपदेशहिँ सब काहु ॥
सरबस गुरुहिँ समर्पिए, लेहु जन्म कर लाहु ॥

हिन्दू तुरक नारि - नर हीजा । सब कहँ देहिँ सुमन्त्र सबीजा ॥
बेचहिँ निज हरिनाम नगीना । लोलुप लोभ विषय बड़ पीना ॥
वेद पुराण भागवत गीता । पढ़ि गुण अर्थ कहहिँ विपरीता ॥
सुधन सुनारि धनीवश होई । पुरुषारथ परमारथ सोई ॥
वेष वरण हरिभक्ति विराजा । जिय हुलसत कलि-सहित समाजा ॥
शंकर नाम सुनत मरि जाई । सेवत यवन सजन्म सिराई ॥
बित - हित अंग बंग मग-बासी । बित-बिन बाद लगावहिँ कासी ॥

उपदेशक आचरण अस, पढ़हिँ सुनहिँ सब ग्रन्थ ।
ये उपदेशे नारि नर, कहे न, चले कुपन्थ ॥

ये गुरु बढ़े नीच उपदेसे । काल पाय पछिताहिँ ठगेसे ॥
गुरु नग दिये न अवगथ गाँठी । खाई बेचत महुआ लाठी ॥
बिन - बित भक्ति न भक्त सुहाहीँ । दुख - सन्ताप - शोच मन - माहीँ ॥
बहुत उपाय किये धन लागी । दिन-दिन दुनी दुरासा दागी ॥
सुमति न सुनियत स्वामि सखाई । बिन-बित सब हित मीत बड़ाई ॥
होइ न कृषी वणिज नहिँ सेवा । गये कुदेश भये गुरु देवा ॥
अँचई उभय लोक गति घोरी । विष्णु सुधर्म तजे तृण तोरी ॥
शिष्य कहाय बड़े गुरु केरे । करि छल दम्भ कपट बहुतेरे ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जिहि विधि उरके आप गुरु, सहस भाँति सोइ रीति ।
करि प्रपञ्च वञ्चित सबहिँ, डरत न करत अनीति ॥
सधन सुधर्म नारि नर भोरी । लोक वेद गति सामुझि थोरी ॥
ते करि शिष्य सकल अपनाये । कल्पि भक्ति भय बचन सुनाये ॥
गुरु विमूढ़ शिष निपट कुमेधा । जुरा समाज वाम भे वेधा ॥
सो विधि कहहिँ जोइ मनभावा । सो निषेध जो नहिँ ह्वै आवा ॥
आपु गये गुरु गये बिगारे । बातल बावर बीछी मारे ॥
सो बरनिय कुचालि केहि भाँती । एक पात्र जेँवँहिँ सब जाती ॥
कोरि चमार गौँड़ गुरु देवा । तिनकर करहिँ महीसुर सेवा ॥
भजहिँ जबहिँ तजि ज्ञात जनेई । तब सराहि शिष करिअहिँ तेई ॥
साखी सबदी दोहरा, कहि कहिनी उपखान ।
भक्ति निरूपण भक्त कलि, निन्दित वेद पुरान ॥
नाम सुनाम वाम पथगामी । कायर कूर कुतरकी कामी ॥
सकल सुभाय कुनिन्दक मन्दा । कुल कुठार तिय - नर - कुलवृन्दा ॥
कलि पाखण्ड प्रचण्ड प्रचारा । सण्ड भण्ड सब बिधि व्यवहारा ॥
भगत कहाय अघाय अभेरे । देखत कोमल, करम करेरे ॥
भगत नारि नर भक्ति - विहीना । दम्भ निधान प्रपञ्च प्रवीना ॥
लोकहु वेद भगति पथ मोटा । जिनके लिये लागि सोइ तोटा ॥
तिनके करतब किमि कहि जाहीँ । एकहु आँक भलाई नाहीँ ॥
कहत सकल कलिकाल - कुचाली । बाढ़ै कथा वृथा सिर खाली ॥
तिहितेँ कही सहेतु कलि - कथा समास - समेत ॥
सुनि सदम्भ सठ सकुचिहहिँ, ह्वैहैँ सुजन सचेत ॥
कलि गुण कहउँ सुमति अनुहारी । सुनउ, न भय उपजे द्वै चारी ॥
कलियुग मानस पातक नाहीँ । पुण्य पुनीत मनोरथ - माहीँ ॥
वाचिक पाप जाहिँ पछिताने । शिव सुमिरत सुरसरित अन्हाने ॥
कायिक कलुष कठिन कलिकाला । सबै फलहिँ परिणाम कराला ॥
पुनि संसार दोष कलि थोरे । करतहिँ कहँ अति घोर कठोरे ॥
करै जो संग समान सलोना । जान बढ़त करता सम सोना ॥
हरि शंकरहि भाय भजि भोरे । पावहिँ सुजन सफल श्रम थोरे ॥
जो छल छाँड़ि धर्म रति होई । फलै सुसाधन सिर धरि सोई ॥
अन्नदान सब यज्ञमय, निरुपधि धर्मनिधान ।
तप तीरथ सुरसरित-जल, दरसन मज्जन पान ॥
कलि केवल परमारथ हेतू । राम नाम भवसागर सेतू ॥
साधन नाम सिद्धि फलधामा । जेहि न प्रतीति ताहि बिधि बामा ॥
कृतयुग जोरत योग समाधी । त्रेता कर्म परम निरुपाधी ॥
द्वापर हरिपद पूज सप्रीती । पाव परम गति नर जग जीती ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कलि जपि नाम सरुचि विश्वासा । सो फल सुलभ सबै अनियासा ॥
ते सुकृती सुचि साधु सुजाना । सद्गुणशील सुशील - निधाना ॥
जे हरि - नाम जपत दिन राती । प्रीति प्रतीति सप्रेम सुभाँती ॥
राम महातम चहुँ युग भारी । कलि विशेष दायक फल चारी ॥

यथा भूमि सब बीजमय, नखत - निवास अकास ।
रामनाम सब धर्ममय, जानत तुलसीदास ॥

यह विश्वास जासु जिय नाहीँ । जोवन जारि जाय जग माहीँ ॥
धरमछीन कलिपातक पीना । यथा ढोल धुनि सुनिय नवीना ।
होइ अमंगल मंगलरासी । यथा केतु ग्रह जगत उमासी ॥
नृप आधीन काल गुण दोखा । लोक वेद मति नाहिँन धोखा ॥
भये वेनु महिषादिक राजा । पुण्यकाल कलिकाल विराजा ॥
विक्रमादि अवनिप कलि जाये । कृत त्रेता सब धर्म चलाये ॥
काल कर्म महिपाल अधीना । कहत पुरान विनीत प्रवीना ॥

यथा अमल पावक पवन, पाय सुसंग कुसंग ।
कहिय कुवास सुवास तिमि, काल महीस - प्रसंग ॥

शंकर काल - चालि सुनि देखी । दिन-दिन बढ़त विषाद बिसेखी ॥
विप्र जन्म गृह भाउ बिशाला । करम भूमिवश काल कराला ॥
कृश तन, नींद - भूख भइ थोरी । गृह कृत प्रीति होत मति भोरी ।
जागत बागत सोवत सपने । सुमिरे सबै सोच मन अपने ॥
बिना अमर अमृत तनु साधा । गये जाय परलोक न साधा ॥
बिलसत खात बालपन बीता । भये तरुण तरुणी मनजीता ॥
बढ़त वयस अधि बढ़त दुरासा । बुधि विवेक बल तेज हरासा ॥

हम हमार अविचार बड़, भूमिभार धरि शीश ।
शट हठ परवश इमि भये, कीर कोस - कृमि कीश ॥

सोरठा

कह शंकर मतिमन्द, वेद पुराण विचार सब ॥
द्रवैं जानकी - कन्त, तब छूटै संसार - भय ॥
अब बिनवौं मन तोहिँ, होहि राम-पद-कमल-रति ।
अपथ न प्रेरहु मोहिँ, सुनहु सिखावन परम हित ॥
करुणासिन्धु दयाल, तुम बिन और न दूसरो ।
पतितनको प्रतिपाल, करै कौन तुम बिन प्रभो ॥
कह यह तुलसीदास, भवबारिध - बन्धन हनौ ।
तब छूटै भवफाँस, जब रघुवीर ! कृपा करो ॥
नर तन धरि करि काज, साज त्यागि मद मानको ।
गाइ नाथ रघुराज, माँजि माँजि मन विमल करु ॥

॥ इति श्रीकलिधर्माधर्मनिरूपणं सम्पूर्णम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

१९

बरवै-रामायण

(बालकांड)

गननायक बरदायक देव मनाय । बिघ्न बिनास प्रकासक होउ सहाय ॥ १ ॥
श्री गुरु पद अंबुज रज हृदय सँभारि । बरनन करौं राम जस कृपा सुधारि ॥ २ ॥
श्री रघुबर अँग सोभित अतुलित काम । जनु चकोर पूरन विधु करौं प्रनाम ॥ ३ ॥
भरत भारती नायक छंद विधान । वालमीक हू घटि रहि कर गुन गान ॥ ४ ॥
लखन मधुर मृदु मूरति सुमिरन कीन्ह । जिन्ह की कृपा राम जस बरनै लीन्ह ॥ ५ ॥
लवन अंबु - निधि - कुंभज विकट प्रहार । भरत चरन अनुगामी सहित विचार ॥ ६ ॥
केसरि - सुवन वीरवर रघुपति - दास । जासु कृपा मति निर्मल छन्द प्रकास ॥ ७ ॥
अवधपुरी दसरथ नृप सुकृत सरूप । कौसिल्यादिक रानिउ अमित अनूप ॥ ८ ॥
राम भक्त मन क्रम बच सब रनिवास । गुरु पद कमल हृदय जेहि सब सुख पास ॥ ९ ॥
राउ हृदय महँ चिन्ता, सुत मोहिँ नाहिँ । गुरु सन कहेउ पूजि पद जो मन माहिँ ॥ १० ॥
गुरु कृपाल अति कोमल रिषिन्ह बोलाय । कीन्ह जज्ञ सुभ सुत-हित अति सुख पाय ॥ ११ ॥
दीन्हौं अगिनि सुचरु कर कहि संवाद । बाँटि देहु नृप रानिन्ह जस मरजाद ॥ १२ ॥
राजा दीन्ह जथा बिधि लायक जान । गर्भ सहित सब सोभित तेज-निधान ॥ १३ ॥
राम प्रगट कर औसर बिधि जब जान । सुर समूह सब आये चढ़े विमान ॥ १४ ॥
सुमन वरषि जस गावत हरषित होत । भव सागर सो आवत जेहि पद पोत ॥ १५ ॥
अस्तुति करि सुर गवने निज निज लोक । प्रगटेउ प्रभु, हरि लीन्हें द्विज सुर सोक ॥ १६ ॥
कौसिल्या के आगे सब सुख दानि । चकित भई लखि माता रूप-निधानि ॥ १७ ॥
अस्तुति करि न सकत भय करहि विचार । अखिल भुवन-पति व्यापक मम अवतार ॥ १८ ॥
प्रभु समुझावा लखि मति भूलै माय । पूरब पुन्य बिचारहु सो वर पाय ॥ १९ ॥
बालक लीला अति सुख कीजै लाल । कीन्हेउ ज्ञान निधानहि सुत कर ख्याल ॥ २० ॥
उत्सव भयउ बधाई कोटि विधान । सेस सारदा आगम करहिँ बखान ॥ २१ ॥
दीन्ह भूप मन हरषित रथ गज बाजि । दीन्हेउ धेनु अलंकृत बहु बिधि साजि ॥ २२ ॥
हीरा मनि मानिक बहु जनु जव धान । समै समै सुर बरसत सुमन सुजान ॥ २३ ॥
जोइ जोइ जाचन आयो सो तेहि दीन्ह । जोइ अभिलाषा माँगेउ पूरन कीन्ह ॥ २४ ॥
नन्दीमुख अरु जातक कीन्ह महीस । द्विजन दान पाए बहु देहिँ असीस ॥ २५ ॥
समय सोहावन पावत सुख नर नारि । घर घर पूरन देखिय जो फल चारि ॥ २६ ॥
राम निछावर कारन होत भिखारि । बहुरि देत तेहि देखिय जनु घनघारि ॥ २७ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

यहि बिधि राम जनम मुख को कहि गाय । सेस सारदा गावहिँ पार न पाय ॥ २८ ॥
कंचन मनिमय पलना रचेउ सुढार । बिबिध खिलौना किंकिनि लटकत हार ॥ २९ ॥
मातु उबटि अन्हवाए करि सिङ्गार । तेहि पलना पौढ़ाए साजि कुमार ॥ ३० ॥
मदन मोरौना चन्दक निदरत जोति । कहे नील मनि जलदहि लघु मति होति ॥ ३१ ॥
छोट ललित अरु लोहित कर पद सुष्ट । को कवि कह छबि सब अँग सुन्दर पुष्ट ॥ ३२ ॥
पग नूपुर कटि किंकिनि पहुँची मंजु । हिए बघौना नख बनि मनिमय-गंजु ॥ ३३ ॥
नील कमल सम लोचन भ्रुव ससि बुन्द । ससि मुख सोभाके निधि बाल मुकुंद ॥ ३४ ॥
अलकावलि महँ लटकनि ललित ललाट । जनु उडुगन बिधु सनमुख तम करि बाट ॥ ३५ ॥
देखि खिलौना डोलहिँ कर पद नैन । मनहु अरुन रवि अंबुज - मैं रत मैन ॥ ३६ ॥
बोलत अर्थ न निकसहिँ, दैं फल चारि । मनहु जनक रिषि सुरतरु अरु त्रिपुरारि ॥ ३७ ॥
कबहुँक पलन झुलावहिँ कबहुँक गोद । रोम रोम सुख पावहिँ छिन चित मोद ॥ ३८ ॥
चारिउ भाइ घुट्टुरवन अँगना खेल । आलबाल सब माता सुरतरु बेल ॥ ३९ ॥
नृप रानी मज्जहिँ नित प्रेम प्रयाग । तुलसी मनि फल चारिउ मरकत राग ॥ ४० ॥
पकरि चलावत अँगुरिन्ह सिखवत चाल । छुटकत डरत कँपत अति भगत कृपाल ॥ ४१ ॥
गिरत उठत गहि अनुजन्हि डिगत बिसेष । पकरि लेत तब जननी लखि वर वेष ॥ ४२ ॥
निरगुन ब्रह्म निरंजन अविगत पार । भगत - बस्य कर लीला परम उदार ॥ ४३ ॥
ऐसे प्रभु कहँ जानत भजै न जोय । जग बिधि वंचक कीन्हेउ मूरख सोय ॥ ४४ ॥
प्रभु समरथ कोसलपति दरस अनूप । सरन भये तेहि लागिहि लघु सुर भूप ॥ ४५ ॥
करनवेध गुरु कीन्हेउ अति सुख पाय । बिप्रन्ह बहु दछिना पुनि लह्यौ अघाय ॥ ४६ ॥
भये कुमार जबहिँ सब दए उपनैन । बिद्या पढ़न चले प्रभु बिद्या ऐन ॥ ४७ ॥
जो सुख ध्यान न आवहि प्रभु कर बेद । शिव श्रुति सेस सकहि नहिँ बूझत भेद ॥ ४८ ॥
सो सुख अवध गलिन्ह रह्यो घर घर पूरि । कवन जतन कवि गावहि गोचर दूरि ॥ ४९ ॥
एहि बिधि बाल चरित हरि बहु बिधि कीन्ह । अति आनन्द नगर-बासिन कहँ दीन्ह ॥ ५० ॥
गाधि - सुवन मख साजहिँ डर खल नीच । कीन्ह बिचार राम बिन नाहिन मीच ॥ ५१ ॥
श्रापत पाप घटै तप रचेउ उपाय । हरन भार महि कारन नृप घर आय ॥ ५२ ॥
यह कारज ले देखौं रघुपति जाय । जज्ञ सुफल मिस करि के दृग फल पाय ॥ ५३ ॥
बहु बिधि करत मनोरथ मग महँ जात । धन्य जनम निज मानत हिय न अघात ॥ ५४ ॥
मज्जन करि सरजू जल, गे जहँ भूप । देखी मंगल मूरति मधुर अनूप ॥ ५५ ॥
राजा पूजन कीन्हेउ सोरह भाँत । पुनि निज भाग सराहेउ गदगद गात ॥ ५६ ॥
मुनि अस कृपा न कीन्हेउ कबहूँ मोहिँ । कारज बेगि सुनावहु ततपर होहिँ ॥ ५७ ॥
कह मुनि मोहिँ सतावहिँ निसिचर भीर । मख-हित दीजै राम लखन दोउ बीर ॥ ५८ ॥
निसिचर बध करि करिहैं मोहिँ सनाथ । सुत प्रभाउ नहिँ जानहु तुम रघुनाथ ॥ ५९ ॥
बूझिय बामदेव गुरु तुम पुनि दक्ष । अखिल भुवनपति तव सुत भगतन रक्ष ॥ ६० ॥
गदगद कंठ भयउ नृप सुनि मुनि बैन । तब बशिष्ठ समझाएउ आनंद ऐन ॥ ६१ ॥
चले भवन जननी पहँ आयसु लीन्ह । राम लखन मुनि काजहिँ मन तब दीन्ह ॥ ६२ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मारग जात तपोधन मन आनंद। प्रभु ब्रह्मण्य देव लखि ब्रह्मानंद ॥ ६३ ॥
करत केलि मग कौतुक धावत राम। मुनि लखि पाछे विलँवत मन अभिराम ॥ ६४ ॥
तोरत सुमन लता द्रुम रघुकुल वीर। पुनि पुनि बरनत पावन छाँह समीर ॥ ६५ ॥
बैठत सिलन बिटप तर बंधु समेत। पैठत सरनि सोहावनि सीतल सेत ॥ ६६ ॥
देखत मग नर-नारी तन बिसराय। जो सुख होत अगम मन कह्यो न जाय ॥ ६७ ॥
मुनि मुनितिय मुनि-बालक बरनत रूप। कोटि काम लघु सोभा लखि सुत भूप ॥ ६८ ॥
मारग देखि ताडका कहेउ लखाय। एकहि बान प्रान हरि सुरपुर पाय ॥ ६९ ॥
तब मुनि आश्रम आनेउ आयुध देइ। पूजेउ बिविध विधानन मति गति भेइ ॥ ७० ॥
प्रात कहेउ प्रभु रिषि सन कीजै जग्य। करन लगे लखि धूम, धाए जड़ अग्य ॥ ७१ ॥
सुभुज मारि मारीचहि बिनु फर बान। पटकि दीन्ह सत जोजन राखेउ प्रान ॥ ७२ ॥
सकल कटक रिपु लछिमन छन महँ मारि। सकल मुनिन्ह मन हरषित जानि खरारि ॥ ७३ ॥
तब मुनि कहेउ राम सन कौतुक एक। देखिय जज्ञ जनकपुर राजन टेक ॥ ७४ ॥
धनुष-जज्ञ सुनि रघुवर मन हरषाय। विश्वामित्र महा मुनि सँग दोउ भाय ॥ ७५ ॥
चले जात आश्रम इक देखि अनूप। फल फूलन भर लतनन्ह वापी कूप ॥ ७६ ॥
सिला देखि पूछेउ मुनि कारन तासु। गौतम तिय गति कीन्हीं स्वामी जासु ॥ ७७ ॥
चरन कमल रज परसत भइ सुकुमारि। देखि काम रति लाजै रूप सुढारि ॥ ७८ ॥
अस्तुति कीन्ह बहुत बिधि गइ पति लोक। अंतरहित लहि आसिष भई बिसोक ॥ ७९ ॥
पुनि प्रभु गए सुरसरी-तीर सुजान। गंग सु महिमा अति मुनि कीन्ह बखान ॥ ८० ॥
कीन्ह अन्हान मुनिन्ह सँग दीन्हेउ दान। चले जनकपुर प्रमुदित तब नियरान ॥ ८१ ॥
हरखे देखि नगर प्रभु सहित अनंत। बाग तड़ाग वापिका सरस वसंत ॥ ८२ ॥
पुर बाहर अति सोभा कहिय न जाय। दृष्टि जाइ जहँ जहँ मन तहाँ लोभाय ॥ ८३ ॥
सुभग एक आरामहिं लखि मुनि धीर। इहाँ रहिय रघुनायक सुभग समीर ॥ ८४ ॥
मनि अनुसासन रघुबर कीन्ह निवास। तिरहुत-नाथ सुनत ही दिय सुख वास ॥ ८५ ॥
राम देखि दृग थाके धरत न धीर। ब्रह्म जीव सम भासैं मोहिं दोउ वीर ॥ ८६ ॥
कीन्हीं बहुत बड़ाई चले लेवाय। भीतर भवन दीन्ह बर बास बनाय ॥ ८७ ॥
गए भवन नृप सोचन पन परिताप। दोऊ बनै संभु वर दीजै आप ॥ ८८ ॥
देखि स्याम मृदु मूरति मन अनुराग। भए बिदेह बिदेह बिराग बिराग ॥ ८९ ॥
प्रमुदित हृदय सराहत यह भव सिंधु। जहँ प्रगटे अस मानिक ए दोउ बंधु ॥ ९० ॥
पुन्य पयोधि मातु पितु जिन सुत एह। रूप सुधा रस नैनन्ह पियत सनेह ॥ ९१ ॥
रूप सील वय बंसहिं यह सुख पूर्न। सुमिरि कठिन प्रन आपन लगे बिसूर्न ॥ ९२ ॥
भोर भये नृप कुँवरन्ह लीन्ह बोलाय। देखि तेज वर सोभा सब नृपराय ॥ ९३ ॥
मारतंड सम रामहिं लखि नृप सर्व। उडगन सम सब लगहिं तेज बल गर्व ॥ ९४ ॥
राजत राज समाजहिं रघुबर दोय। सोभा अमित न आवहि बरनत सोय ॥ ९५ ॥
काक-पच्छ सिर सोहत स्यामल गौर। हरन मार मद मूरति थक मन दौर ॥ ९६ ॥
तिलक भृकुटिया टेढ़ी काम कमान। श्रवन बिभूषन सुंदर लखि मन मान ॥ ९७ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नासिक सुभग कपोलन अधर सुलाल। बदन सरद बिधु निंदक उन्नत भाल ॥ ९८ ॥
उर बिसाल वृष कंधर भुज बल भूरि। पीत बसन अरु पदिकन्हि मुकतन्ह पूरि ॥ ९९ ॥
कटि निषंग कर - कमलन्ह धनु अरु बान। सकल अंग मनमोहन जोहन जान ॥ १०० ॥
राम लखन छबि देखत जो जेहि जोग ! उर आनँद जल लोचन सब पुर लोग ॥ १०१ ॥
नारि परस्पर कह लखि दोउन भाय। लह्यो जनम फल आजुहिँ यहि जग आय ॥ १०२ ॥
यह वर जानकि जोगहि मिलि सुख होय। हम सब मंगल गावहिँ बिधि बस सोय ॥ १०३ ॥
एहि बिधि करत मनोरथ जस जेहि भाव। हियरा भरि भरि आवहि रुकहि न चाव ॥ १०४ ॥
अनुज समेत जनक तब बहु सुख पाय। मुनि दोउ बीरन्ह सब मख भूमि देखाय ॥ १०५ ॥
दिए दिव्यतर आसन सब ते ऊँच। उज्ज्वल परम बिसालहि सील समूच ॥ १०६ ॥
भूप किसोर ओर दोउ बीच मुनीस। पुर नर नारि अनंदित लजित महीस ॥ १०७ ॥
जनक कहेउ, उपरोहित ! सियहि बुलाय। सखिन मध्य सजि ल्याए मद रति जाय ॥ १०८ ॥
रूप दीपिका सोहत भवन सखीन। मृगा मृगी सम पुरजन मन बुधि लीन ॥ १०९ ॥
सीतहिँ देखि सराहत पुरजन भाग। वर साँवरो बिलोकहि अति अनुराग ॥ ११० ॥
प्रथम जनक जो देखे - बिनु पन कीन। अब छोड़त अति लाजहिँ भा अति खीन ॥ १११ ॥
कहहि एक भलि बातहि हम कह सूझ। तेज प्रताप जहाँ है तहँ बल बूझ ॥ ११२ ॥
तब बोले बंदीजन कहि पुरुषार्थ। दीप दीप के भूपति जुरे सुआर्थ ॥ ११३ ॥
कीजै सब अपनो बल जस जेहि होइ। सुनत उठे आमरषन मूरख सोइ ॥ ११४ ॥
धरहिँ धनुष बल करि - करि, डगै न चाप। वानर हाथ नारियर लखि तजि आप ॥ ११५ ॥
तब नृप दुखित अधीरज बोले बात। देस देस के नृप सब सुनि समुहात ॥ ११६ ॥
कोऊ सक न चढाउब धनु अति भार। वीर बिहीन भई महि छपित उदार ॥ ११७ ॥
घर घर जाहु सकल नृप आसा छोरि। बिजै समागम पूजब धनुष बहोरि ॥ ११८ ॥
जो पन तजउँ लाज बड़ि, बिधि अस कीन। कुँअरि कुआँरि रहउ बरु, जस नहिँ छीन ॥ ११९ ॥
कहेउ तपोधन रामहिँ, भंजहु चाप। राजा दुखित अधीरज मेटहु ताप ॥ १२० ॥
तब उठि राम ठाढ़ भे आयसु मान। सब मुनि हरषि असीसहिँ परम सुजान ॥ १२१ ॥
आपन सुकृत मनावहिँ सब पुर लोग। तोरहु राम धनुष जिमि छत्रक जोग ॥ १२२ ॥
तब रघुवर आनँद भरि गे धनु पास। सीता सहित बिलोकेउ सब रनिवास ॥ १२३ ॥
जानि जानकी भीरहि परम कृपाल। लखेउ न कोउ सब देखत तोरेउ ख्याल ॥ १२४ ॥
आकरषेउ सिय मन सह जनकहि सोच। भंजेउ भृगुपति मद सह, दुरि गे पोच ॥ १२५ ॥
बाजन लगे पंच धुनि हनत निसान। सजहिँ आरती गावहिँ मंगल गान ॥ १२६ ॥
तब जयमाल जानकी प्रभु गर दीन्ह। सुमन बरषि सब देवन अस्तुति कीन्ह ॥ १२७ ॥
रचन लगे पुर मंगल माँडव छाय। गयो बसीठी अवधहि राय बुलाय ॥ १२८ ॥
सजि बरात नृप आए लगन समेत। नगर लोग आनंदित धरम निकेत ॥ १२९ ॥
सखि सब कहहिँ परस्पर मिलि दस पाँच। चारिउ जोरि सोहावन साँचहुँ साँच ॥ १३० ॥
गाधि-सुवन के तपतें सखि अब आज। संभु - कृपातें चौगुन भा सब काज ॥ १३१ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नहिँ अस समधी दूसर जग महँ कोय । भये, न हैं, नहिँ होइहिँ, इन सम दोय ॥ १३२ ॥
नहिँ अस दूलह दुलहिन ब्याह उछाह । हम सब पुन्य-पयोनिधि सुख अवगाह ॥ १३३ ॥
ब्याह सु चारिउ सुत तब कोसल नाथ । आए मुदित अवध सुख पूरण पाथ ॥ १३४ ॥
एहि बिधि राम ब्याह जस बरनत लोग । पार न पावहिँ श्रुति सब गावन जोग ॥ १३५ ॥
नहिँ भारति नहि सेसहु नाहिँ गनेस । ब्रह्मादिक नहिँ कहि सक, जान महेस ॥ १३६ ॥
अति मतिमंद कहेउ कछु तुलसीदास । जिमि निज कल बल मसकहु उड़हि अकास ॥ १३७ ॥

अयोध्याकांड

नृप कर जोरि कहेउ गुरु सुनिये नाथ । राउर चरन पूजि प्रभु भयउँ सनाथ ॥ १३८ ॥
रामहिँ देहु राजपद यह अभिलाष । पुनि प्रभु मरन-जियन कर रहै न माष ॥ १३९ ॥
महाराज! सुभ कारज करिय न देर । जो बिधि पुरब मनोरथ सब सुख हेर ॥ १४० ॥
मुदित राउ गे मंदिर, सचिव बोलाइ । लीन्ह सकल मति सुंदर साज सजाइ ॥ १४१ ॥
सुनतहि नगर बधावन, कैकइ दीन । लगी देव-माया-बस कटु प्रन कीन ॥ १४२ ॥
रहि चलिए जननी कह आनँदकंद । कवन समय बन दीन्हेउ बिधि बड़ मंद ॥ १४३ ॥
दस-स्यंदन - मन - चंदन करन प्रकास । केहि कारन बन दीन्हेँ भएउ बिनास ॥ १४४ ॥
कहेउ सचिव - सुत कारन, रहि गहि मौन । एकहु आँक न चल सक राखहि कौन ॥ १४५ ॥
राजा धरम बिचारत तुम्ह कहँ त्यागि । मानिक कर ते डारत का चहि लागि ॥ १४६ ॥
तुम तजि धरमसील भा चाहत राउ । नारि-बिबस न बिचारेउ, रहेउ न भाउ ॥ १४७ ॥
जो सुत पिता बचन रत अति हित जान । सो सुत जननिहु आरत राखहि मान ॥ १४८ ॥
सुनत कौसिला बानी राजिव - नैन । भरि आए जल, रहि गे आनंद ऐन ॥ १४९ ॥
जो मैं रहउँ मातु हित काज नसाय । दोष होइ महि आए, सुर बिलखाय ॥ १५० ॥
कीन्ह मातु परितोष सियहि समुझाय । चले जननि पद बहु बिधि सीस नवाय ॥ १५१ ॥
लखन लखेउ प्रभु गवनब धीरज त्याग । राम चरन सिर नायउ अति अनुराग ॥ १५२ ॥
रघुपति कहेउ लषन सन चलहु सु भाय । नहिँ बिषाद कर अवसर समय नसाय ॥ १५३ ॥
बिदा मातु सन ह्वै करि चले अनंत । नृप मंदिर महँ आए सिय भगवंत ॥ १५४ ॥
भूप उठे अति ब्याकुल लखि सुत दोय । जनक-सुता कहँ देखत धीर न होय ॥ १५५ ॥
पितु पद बंदि चले प्रभु, मुरछित राउ । नगर लोग सब ब्याकुल सूझ न दाउ ॥ १५६ ॥
गुरु-कहँ सबहिँ सौंपि प्रभु तमसा तीर । सचिव सीय सह बंधु बसे रघुबीर ॥ १५७ ॥
अवध भयानक लागहि घर बन बाग । एकहि एक डरत लखि निकसे भाग ॥ १५८ ॥
सुरपति सम सब घर - घर पूरन काम । अब मसान सम लागहि बिनु सिय राम ॥ १५९ ॥
दिन तहँ जहाँ दिवाकर, निसि सुख चंद । अवधहु तहाँ सकल सुख जहँ रघुचंद ॥ १६० ॥
अस बिचारि सब त्यागेउ अवध निवास । प्रभु बहु बिधि समझायेउ तजहिँ न पास ॥ १६१ ॥
अर्ध राति सब त्यागेउ हाँकेउ जान । लखन सीय सह मंत्रिहि चढ़ि भगवान ॥ १६२ ॥
सृंगवेरपुर पहुँचे सुरसरि देखि । लखन सीय रघुवर मन हरष बिसेखि ॥ १६३ ॥
कीन्ह निषाद पहुनई सकल सुपास । बसे राम कुस-किसलय साथरि डास ॥ १६४ ॥
प्रात भए रघुपति बट क्षीर मँगाय । अनुज सहित सिर सुंदर जटा बनाय ॥ १६५ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मंत्रिहिँ बिदा कीन्ह प्रभु, करि परितोष । रथ हाँकेउ हय आकुल चलहि न जोष ।। १६६ ।।
तब जलजानहि माँगेउ हरषि निषाद । केवट चरन धोइ निज हरेउ विषाद ।। १६७ ।।
गंगहि पूजि जानकी कहेउ मनाय । बहुरि करब हम पूजा पिय सँग आय ।। १६८ ।।
लखन जानकी गुह सँग चलि रघुवीर । तेहि दिन बसे विटपतर सब सुख सीर ।। १६९ ।।
प्रात जाइ देखेउ प्रभु तीरथराज । करि असनान गए जहँ मुनि भरद्वाज ।। १७० ।।
तहँ सँग शिष्य लीन्ह प्रभु पंथहि काज । विनय कीन बटु फेरेउ तब रघुराज ।। १७१ ।।
जमुना उतरि नहाए पारथि सेइ । बिदा कीन्ह गुह अति मति भगितिहि भेइ ।।१७२।।
लखन राम सिय सोभित मुनि कर वेष । गाँव निकट जब देखहिँ सोच असेष ।। १७३ ।।
अति सुकुमार चलहिँ किमि हिय पछितात । मारग कठिन विधाता रैन सिरात ।। १७४ ।।
तब प्रभु लखेउ जानकी अति श्रम पाइ । वट विश्राम कीन्ह प्रभु लखि रघुराइ ।। १७५ ।।
ग्राम वधू सब आवहिँ सिया समीप । प्रेम भरी सब सोहहिँ छवि महँ दीप ।। १७६ ।।
अनजानत कर विलग न करब हमार । गौर स्याम ये सखि को अहहिँ तुम्हार ।। १७७ ।।
सकुचि सीय मुसकानि सुनत मृदु बैन । तिनहि बताये नाह नैन की सैन ।। १७८ ।।
गौर बरन ते देवर, साँवर नाहु । सब प्रमुदित भइ पाइ विलोचन लाहु ।। १७९ ।।
अति सनेह तन पुलकि परम सचु पाइ । आँचर ओट असीसहिँ ईस मनाइ ।। १८० ।।
जब लगि गंग जमुन महि, सागर पानि । तब लगि माँग कोखि सुख रहहु जुड़ानि ।।१८१।।
बारहिँ बार पाँय परि बिदा कराहिँ । फिरइँ बहोरि न फिर मन, पछु मनु जाहिँ ।।१८२।।
सील सनेह सराहि रूप उर राखि । सिय पग लागि फिरीं सविनय बहु भाखि ।।१८३।।
कोउ जानकी सराहहिँ रामहिँ कोउ । कोउ कह कुँवर गौर सुठि सुंदर दोउ ।।१८४।।
अनमन बदन मलिन मन कछु न सोहाय । लै गे मनहिँ चोराय पथिक दोउ भाय ।। १८५।।
फिरि फिरि पंथ निहारहिँ कहहिँ सप्रीत । फिरे न बहुरि बटाऊ गे दिन बीत ।। १८६ ।।
मग लोगन्ह यहि भाँति नयन फल देत । प्रभु गे चित्रकूट सिय लखन समेत ।। १८७ ।।
सुनत चले मुनि जहँ तहँ अति अनुराग । होइहि आज सुफल सब जप तप जाग ।। १८८ ।।
जो पै राम न जानेउ समुझि सुभाय । सत सुरेस सम राजत जीवन जाय ।। १८९ ।।
देखि राम छबि गए विबुध सब सोक । रचे परन तृन साल गये निज लोक ।। १९० ।।
सोहत परन कुटी तर सीता राम । लखन समेत बसहु तुलसी उर धाम ।। १९१ ।।
पय अन्हाहु फल पाहु परिहरी आस । सीय राम पद सुमिरहु तुलसीदास ।। १९२ ।।
काल कराल विलोकहु होउ सचेत । राम नाम जपु तुलसी प्रेम - समेत ।। १९३ ।।
तप साधन मख दान नेम उपवास । सब तेँ अधिक राम पद तुलसीदास ।। १९४ ।।
कलि नहिँ ज्ञान विराग न जोग समाधि । राम नाम जपु तुलसी नित निरुपाधि ।। १९५ ।।
राम नाम दोउ आखर हिय हित आनु । राम लखन सम, तुलसी सिखवन मानु ।। १९६ ।।
माइ बाप, गुरु स्वामि राम को नाम । तुलसी जेहि न सुहाइ ताहि बिधि बाम।। १९७ ।।
राम जपहु तुलसी तुम होउ बिसोक । लोक सकल कल्यान नीक परलोक ।। १९८ ।।
सगरइ सोच विमोचन मंगल गेह । राम नाम पर तुलसी करिय सनेह ।। १९९ ।।
महिमा राम नाम कर जान महेस । देत परम पद कासी करि उपदेस ।। २०० ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कलस-जोनि निज जानेउ नाम प्रताप। कौतुक सागर सोखेउ करि सोइ जाप ॥ २०१ ॥
जान आदि कवि तुलसी नाम प्रभाव। उलटा जपत सूध भा, भे रिषि - राव ॥ २०२ ॥
एकहि एक सिखावहिँ जपहिँ न आप। तुलसी राम नाम कर बाधक पाप ॥ २०३ ॥
एकहिँ एक कहत सब समुझ न कोय। बड़े भाग अनुराग राम पद होय ॥ २०४ ॥
राम नाम सम तुलसी मीत न आन। जो पहुँचाव परम पद तन अवसान ॥ २०५ ॥
चित्रकूट महँ तुलसी नाम प्रताप। प्रगट पुकारत सब मुख रघुपति आप ॥ २०६ ॥
चित्रकूट महि देखत आवत हीय। तुलसी सुमिरन कीजिय रघुबर सीय ॥ २०७ ॥
चित्रकूट गिरि देखत रघुबर रूप। तुलसी मिलहि राम - सिय - भगति अनूप ॥ २०८ ॥
तुलसी निरखि राम बन बड़ सुख होय। पद अंकित महि रेखा पूरण सोय ॥ २०९ ॥
मन्दाकिनि मज्जन करि पाप नसाइ। तुलसी बसहिँ हृदय - महँ सिय रघुराइ ॥ २१० ॥
पैसरनी अरनी समं पावक प्रेम। राम कृपा - तेँ तुलसी पावहि क्षेम ॥ २११ ॥
नीच ऊँच नर नारिन्ह बन महि ग्राम। तुलसी राम कृपा - तेँ सब अभिराम ॥ २१२ ॥
नाम महातम भाषहिँ मुनि सुर सिद्ध। तुलसी ताप निवारन मंगल रिद्ध ॥ २१३ ॥
मुनि तिय-सुतन्ह सिखावहिँ, जेहि अस नाम। सोइ प्रभु प्रगट बिराजहि पूरन काम ॥ २१४ ॥
एहि बिधि मुनि अनुरागिहि सकल समेत। बसहिँ लखन सिय रघुवर परन-निकेत ॥ २१५ ॥
तुलसी कहेउँ राम बन गवन पुनीत। अपर कथा अब भाषउँ परम विनीत ॥ २१६ ॥
प्रभु पहुँचाइ बनहिँ जब फिरेउ निषाद। सचिव सहित रथ देखेउ विकल विषाद ॥ २१७ ॥
तब निषाद परितोषेउ मंत्रिहिँ सोय। चाहत करन राम बिनु धीर न होय ॥ २१८ ॥
चारि सारथी आपन दीन्हेउ संग। चले सुमंत्र नगर सब व्याकुल अंग ॥ २१९ ॥
तमसा निकट जान जब लहेउ निषाद। फेरे फिरे सूत सब सहित विषाद ॥ १२० ॥
दिवस गवाँएउ बाहर, अवसर पाय। साँझ प्रवेस कीन्ह तब सहर मँझाय ॥ २२१ ॥
राजा सुनि रथ लाएउ प्रभु बिनु सूत। पूछत कछु न सँदेसा विकल बहूत ॥ २२२ ॥
सुनत सचिव मुख बानी त्यागेउ प्रान। जियन मरन लगि कीन्हेउ प्रेम प्रमान ॥ २२३ ॥
रोवहिँ विकल राज गृह सब रनिवास। मानहु कीन अवध महँ सोक निबास ॥ २२४ ॥
तब वसिष्ठ समझाएउ भरत बोलाय। मृतक कर्म सब कीन्हेउ वेद विधाय ॥ २२५ ॥
भरत, सौँपि पुर सचिवन्ह चले बहोरि। पुरजन परिजन गुरुजन लिए निहोरि ॥ २२६ ॥
मिलि निषादपति भरतहिँ प्राग नहाय। भरद्वाज के आश्रम रैन गँवाय ॥ २२७ ॥
बूझत चित्रकूट कहँ चले तुरंत। तुलसी कहत राम सिय सहित अनंत ॥ २२८ ॥
मिलिहि पथिक तेहि पूछहिँ प्रभु गुन ग्राम। बास निरखि सुख पावहिँ मन अभिराम ॥ २२९ ॥
जमुना उतरि पार भे सहित समाज। गुहहि अनुज सह पाछे आगे साज ॥ २३० ॥
तब निषाद देखराएउ सैल अनूप। मंदाकिनि तट जहाँ रहत सुर भूप ॥ २३१ ॥
करत दंडवत भरतहि प्रेम अपार। पद रज नैनन्हि लावहिँ बारहिँ बार ॥ १३२ ॥
रघुबर मिलन सरिस सुख हिय महँ होत। सखहि बिसरि गो मारग प्रेम निसोत ॥ २३३ ॥
भरत लखे प्रभु सोभित मुनि के वेष। पुलक अंग जल लोचन हरख विशेष ॥ २३४ ॥
पाहि पाहि कहि स्वामी महि महँ लेट। आरत वचन सुनत प्रभु बरबस भेँट ॥ २३५ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अनुज मातु गुरु मुनि गन अरु पुर लोग । तुलसी मिले सकल प्रभु जो जेहि जोग ॥ २३६ ॥
तब मुनि कहेउ जगत गति माया रूप । ब्रह्म शक्ति सँग सोहत परम अनूप ॥ २३७ ॥
पुनि नृप कर तन त्यागन कह मुनि नाथ । सुनत बिकल भे लखनहु सिय रघुनाथ ॥ २३८ ॥
रोवहिं सकल बिकल अति राज समाज । मानहु कीन्ह गवन नृप सुरपुर आज ॥ २३९ ॥
तब गुरु सबहिं बुझाएउ, सरित नहाय । व्रत निरंबु प्रभु कीन्हेउ आयसु पाय ॥ २४० ॥
बीते तीन दिवस प्रभु सुद्धिहि होत । जासु नाम भवसागर श्रुति कह पोत ॥ २४१ ॥
सुद्ध सच्चिदानन्द भानु - कुल - केतु । करत चरित नर संसृति - सागर हेतु ॥ २४२ ॥
एहि विधि सुद्ध भये दिन बीते दोय । राम कहेउ, मुनि ! बूझिय कीजिय सोय ॥ २४३ ॥
मुनि रुख लखि प्रभु भरतहिं पाँवरि दीन्ह ! भरत प्रेम परिपूरन सिर धरि लीन्ह ॥ २४४ ॥
कीन्ह बहुत विधि बिनती मन हरषात । सुमन बरषि जस गावत सुर समुदाय ॥ २४५ ॥
बिदा कीन्ह सब रघुबर प्रेम बढ़ाय । गुरुजन पुरजन जननी सुख दुख पाय ॥ २४६ ॥
परबस चले जाहिं सब बिकल अचेत । सुमिरहिं लखन राम सिय प्रेम समेत ॥ २४७ ॥
आए परन कुटी प्रभु सिया अनंत । देवन्ह दीन्ह भरोसो बसे सुतंत ॥ २४८ ॥
पहुँचे भरत अपर जन सकल निधान । अवधि आस सब राखहिं आपन प्रान ॥ २४९ ॥
चरन पीठ सिंहासन धरि दिन सोधि । बंदि मातु पद सेवा कहेउ प्रबोधि ॥ २५० ॥
गुरु अनुसासन लीन्हेउ विनय सुनाय । नंदिग्राम बसे महि खनि दर्भ डसाय ॥ २५१ ॥
अजिन बसन फल असनहि जटा बनाय । रहत अवधि चित दीन्हे अस प्रभु पाय ॥ २५२ ॥
प्रेम नेम व्रत निरखत मुनिहु लजात । सिंहासन प्रभु पाँवरि पूजत प्रात ॥ २५३ ॥
प्रभु अनुराग अमी के सब पुर लोग । निज निज काज सँवारत जो जेहि जोग ॥ २५४ ॥
ज्यों ज्यों घटत तेज तन प्रीति बढ़ाय । तुलसी मुख छवि अतुलित कही न जाय ॥ २५५ ॥
तुलसी भाइ भरत सम भुवन न कोय । भए, न अहहिं जगत महँ, अब नहिं होय ॥ २५६ ॥
भरत चरित जे गावहिं नित करि नेम । राम चरन दृढ़ पावहिं तुलसी प्रेम ॥ २५७ ॥

(अरण्यकांड)

भरत प्रीति कछु गाएउँ जस बुधि मोरि । बहुरि राम-जस भाखउँ सिवहिं निहोरि ॥ २५८ ॥
सुनासीर के सुत पर दाया कीन्ह । अत्री-प्रिया जानकिहिं चैलहि दीन्ह ॥ २५९ ॥
बधि विराध सरभंगहिं गति प्रभु देइ । मिलेउ सिष्य घट-संभव भगतिहि भेइ ॥ २६० ॥
तब प्रभु संग सुतीक्षण चले कृपाल । देखि अगस्त आश्रमहिं भए निहाल ॥ २६१ ॥
तबहिं सुतीक्षण गुरु सन कहेउ जनाय । नाथ अवधपति आए मुनिन्ह सहाय ॥ २६२ ॥
सहित अनुज वैदेही सुभग सरूप । निसि दिन जाहि जपत हो त्रिभुवन भूप ॥ २६३ ॥
सुनत घटज मुनि आतुर गे प्रभु पास । चरन परत उर लाए अधिक हुलास ॥ २६४ ॥
पुनि निज आश्रम आनेउ पूजा कीन । कंद मूल फल अंकुर भोजन दीन ॥ २६५ ॥
मुनिन्ह मध्य प्रभु सोभित सबकी ओर । एकटक सकल निहारहिं इंदु चकोर ॥ २६६ ॥
तब रघुपति मुनि सन कह कहिय निधान । जहँ बसि काज होइ, तुम परम सुजान ॥ २६७ ॥
तब मुनि कहेउ राम सन सुनिए देव । तुम्हरी कृपा द्वैत कछु जानउँ भेव ॥ २६८ ॥
पंचवटी वर आश्रम गोदहि पास । मुनि कर श्राप निवारिय कीजिय वास ॥ २६९ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुनि सन बिदा माँगि सिय लखन समेत । गोदावरी निकट करि परन निकेत ॥ २७० ॥
चरन परसि कानन गा अघ सब दूर । फल फूलन द्रुम लागे भे भरपूर ॥ २७१ ॥
गिद्धराज सन मिलि प्रभु बसे सुखेन । मुनि भय बिगत भए सब आनंद ऐन ॥ २७२ ॥
जासु चरन रज परसत गौतम नारि । तुलसी भई सुभग तन अधिक सँवारि ॥ २७३ ॥
कौसिक संकट भानेउ चरन प्रताप । जनक राइ सुख दीन्हेउ मिस करि चाप ॥ २७४ ॥
चरन पाँवरी राखेउ भरतहि प्रान । तुलसी पावन बल सब बसे निधान ॥ २७५ ॥
गिरि वन द्रुम तृन खग मृग चरन प्रसाद । तुलसी मिटेउ सकल कर परम विषाद ॥ २७६ ॥
चरन रेनु महिमा कहि बरसत फूल । राम लखन सिय निरखहिँ सुर अनुकूल ॥ २७७ ॥
एहि बिधि बसहिँ राम छबि अमित अनंग । कहत लखन सब बहु बिधि कथा प्रसंग ॥ २७८ ॥
ज्ञान बिराग जोग कछु माया भेद । भगति निरूपहिँ तुलसी सोधित वेद ॥ २७९ ॥
कहत कछुक दिन बीते भगति प्रभाव । रावन बहिन देखि प्रभु उपजेउ चाव ॥ २८० ॥
वेद नाम गनि अँगुरिन्ह खंडि अकास । सूपनखा कहँ प्रेरेउ लछिमन पास ॥ २८१ ॥
लखन भंजि श्रुति नासा दिए पठाय । खर, दूषन, तिसिरा ले चली सहाय ॥ २८२ ॥
चौदह सहस सुभट सब छन महँ मारि । तुलसी राम देव-मुनि किये सुखारि ॥ २८३ ॥
निसिचर देखि राम बल परम उदार । रावन सभा जाइ तब कियेउ पुकार ॥ २८४ ॥
दसकंधर निज भगनिहि कहि बहु भाँति । गयउ भवन, निद्रा न परी तेहि राति ॥ २८५ ॥
खर, दूषन, तिसिरा मिस प्रभुहिँ विचारि । मरन अवसि मन आनेउ जानि खरारि ॥ २८६ ॥
भोर भये रथ चढ़ि करि सिधुहि पार । नाइ माथ मारीचहिँ कहेउ विचार ॥ २८७ ॥
होउ कनक मृग सुंदर तुम छल भूरि । एहि बिधि नृप ले जाएहु कानन दूरि ॥ २८८ ॥
हरि आनउँ नृप नारी कारज होय । तब मारीच कहेउ सब जगपति सोय ॥ २८९ ॥
आपन कथा कहेउ, सुनि रावन क्रोध । सहज काज नहिँ चीन्हेउ कीन्हे बोध ॥ २९० ॥
तब मारीच दुहूँ दिसि मृत्युहि जान । हृदय बिचारेउ, प्रभु-सर-सरिस न आन ॥ २९१ ॥
रावन संग चलेउ बन निकटहिँ जाय । कंचन मनिमय सुन्दर अंग बनाय ॥ २९२ ॥
सिय लखि कहत नाथ सन सुनिय कृपाल । जियत पालिबे लायक, मारेहु छाल ॥ २९३ ॥
प्रिया प्रीति बन बिहरत मृग संग राम । वेद अंत नहिँ पावहि कहि गुन ग्राम ॥ २९४ ॥
गयउ दूरि वन गहवर मारेउ बान । लखन पुकारेउ, मन महँ कृपानिधान ॥ २९५ ॥
तात पुकारै कोउ तुम जिमि रघुनाथ । बरबस सिया पठाएउ तब अहिनाथ ॥ २९६ ॥
अनुज देखि प्रभु बाहिज चिंता कीन्ह । कोउ खल छल करि सीतहिँ निज हरि लीन्ह ॥२९७॥
कुटी निहारि सिया - बिन बिकल विसेखि । देवन्ह भयेउ अँदेसा प्रभु दुख देखि ॥ २९८ ॥
राम कहे—भैया लछमन का विधि कीन्ह । दुख बिसरावनि सीता केहि हरि लीन्ह ॥ २९९ ॥
खोजत चले अनुज सह गीधहिँ देखि । प्रिया बिसरि गइ तेहि लेखि, प्रीति बिसेखि॥ ३००॥
गीधहिँ देइ परम गति पिंडहि दीन्ह । धरि वपु सुन्दर, नभ चढ़ि अस्तुति कीन्ह ॥ ३०१ ॥
बधि कबंध, सेवरी गति दीन्हीँ राम । बिरह बिकल नर इव प्रभु सुखके धाम ॥ ३०२ ॥
पंपासरहि निकट प्रभु बैठे जाय । अस्तुति कीन्ह सकल तहँ सुर मुनि आय ॥ ३०३ ॥
तबहि देव - रिषि आए बिनय सुनाय । संतन लच्छन भाषेउ तब रघुराय ॥ ३०४ ॥
संतन के गुन भाषे निज मुख राम । अस प्रभु सुमिरहु तुलसी तजि सब काम ॥ ३०५ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

(किष्किंधाकांड)

बहुरि चले प्रभु आगे लखि कपिराय । तब हनुमन्तहिँ सादर कहेउ बुझाय ॥ ३०६ ॥
धरि बटु रूप देखु तैँ ए दोउ बीर । लखि मलीन, कहि सैनहि सुवन-समीर ॥ ३०७ ॥
पठवा बालि होहि जो त्यागउँ सैल । बिप्र रूप धरि गे आवत तेहि गैल ॥ ३०८ ॥
लागि चरन अस्तुति करि प्रीति बढ़ाय । प्रगटि सरीर, बीर दोउ पीठ चढ़ाय ॥ ३०९ ॥
रिष्यमूक परबत पर गे हनुमान । लखि सुग्रीव जन्म निज सुफलहि जान ॥ ३१० ॥
तब हनुमंत दुहूँ दिसि कहि समुझाय । पावक साखी दै करि प्रीति दृढ़ाय ॥ ३११ ॥
सुनि कपि कथा सकल, फरकेउ भुज दंड । बालि हनन प्रन कीन्हेउ, बान प्रचंड ॥ ३१२ ॥
बालि मारि सुग्रीव राज प्रभु दीन्ह । राम प्रवरषन गिरि पर आसन कीन्ह ॥ ३१३ ॥
फटिक सिला प्रभु सोहहिँ लछिमन संग । कहत भगति पथ बहु बिधि कथा प्रसंग ॥ ३१४ ॥
वर्षागत निर्मल रितु सोचत राम । जेहि हित कीन्ह निवास न निबह्यो काम ॥ ३१५ ॥
क्रोध भाव सुग्रीवहिँ तब प्रभु सोधि । भगत - बछल प्रभु तुलसी कृपा पयोधि ॥ ३१६ ॥
तब कपीस सब बोले जूथप जूथ । बदि बदि अवधि सकल दिसि पठै बरूथ ॥ ३१७ ॥
रतनाकर मंथन करि रमा निकारि । जनक-सुता हित भवनिधि मथत खरारि ॥ ३१८ ॥
पैठि बिवर, संपातिहिँ कथा सुनाइ । नव तन पाइ सीय सुधि कहेउ बनाइ ॥ ३१९ ॥
देखि पयोनिधि दुस्तर कपि बल बूझ । जामवंत हनुमंतहिँ मंत्रहि सूझ ॥ ३२० ॥
भयउ कनक-गिरि - सम कपि राम प्रताप । तुलसी चढ़ि गिरि ऊपर कीन्हेउ दाप ॥ ३२१ ॥

(सुन्दरकांड)

सिंधु पार सिंहिक हति गयउ कपीस । लंकहि घर घर निसि लखि निसिचर-ईस ॥ ३२२ ॥
बन असोक महँ सीतहिँ देखेउ जाइ । तुलसी बरनि राम - जस कहेउ सुनाइ ॥ ३२३ ॥
दै मुँदरी प्रबोध करि आयसु लेइ । बन बिधंसि पुर जारेउ आरत भेइ ॥ ३२४ ॥
जनकसुतहि समुझायउ कपि कर जोरि । लै चूरामनि हरषित चलेउ बहोरि ॥ ३२५ ॥
लंकहिँ थापि राम बल कुलिस समान । गरजेउ सुनि कपि आवत कह जमुवान ॥ ३२६ ॥
मिले सकल कपि हरषित जीवन पाय । मधुवन मिस सुग्रीवहिँ खबरि पठाय ॥ ३२७ ॥
सुनि सुग्रीव मगन मन भएउ बिसेख । राम काज निसचै भा अचगरि देख ॥ ३२८ ॥
सकल कपिन्ह मिलि राजहि चले तुरंत । फटिक सिला जहँ सोहत सहित अनंत ॥ ३२९ ॥
परे सकल कपि चरनन्ह कह जमुवान । राम कृपा सब कारज किय हनुमान ॥ ३३० ॥
जेहि सुमिरन ते मसक काल सम होत । कारज सिंधु पार भा प्रभु बल पोत ॥ ३३१ ॥
सिय सुधि सकल बूझि, प्रभु कह कपिराज । अब बिलंब केहि कारन सजहु समाज ॥ ३३२ ॥
चली सैन रघुपति - की मारि सुमार । डोलत मही अहीसहु करत बिचार ॥ ३३३ ॥
कुरुम कोल अकुलाने धरत न धीर । सुमन बरषि सुर गावत जस रघुबीर ॥ ३३४ ॥
सिंधु तीर प्रभु डेरा कीन्हेउ जाय । रावन सचिव बुलाएउ सब सुधि पाय ॥ ३३५ ॥
कहत सचिव सब नीतिहि जस बुधि जाहि । काल बिबस जिमि भेषज लगत न ताहि ॥ ३३६ ॥
कहेउ बिभीषन रावण राम समान । साहिब एहि जग देखिय अपर न आन ॥ ३३७ ॥
रावन भयउ काल बस सुमति न बूझ । हुमुकि लात हिय मारेउ कुमती सूझ ॥ ३३८ ॥
पुनि बहु बिधि समझाएउ, लखि बस काल । तब प्रभु सरन बिचारेउ समुझि कृपाल ॥ ३३९ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मिलि धनेस मति बूझेउ सिव वर पाय। चलेउ गगन पथ आतुर सगुन जनाय ॥ ३४० ॥
विपुल मनोरथ मन महँ करत सप्रीत। जा कह ठाँव न जग महँ तेहि प्रभु रीत ॥ ३४१ ॥
धन्य भाग मम पूरन उदधि अपार। सपने को सो दुख सुख लहेउ विचार ॥ ३४२ ॥
देखउँ जाइ चरन सिव - मानस - हंस। हनूमान हिय धारेउ वेद प्रसंस ॥ ३४३ ॥
तरी अहल्या परसत जेहि पग धूरि। पाहन ते पंकज भइ तजि अघ भूरि ॥ ३४४ ॥
दंडक वन पावन भा परसत पाँय। सोइ पद कमल बिलोकब नैनन जाय ॥ ३४५ ॥
जेहि पद पाँवरि पाए भरत मनाय। अवध प्रजा निज सबके प्रान बचाय ॥ ६४६ ॥
मुनिगन सुरगन सब कहँ चरनहि आस। आरत बस सुमिरन करि मेटत त्रास ॥ ३४७ ॥
मगन बिभीषन तुलसी करि पद ध्यान। सिंधु पार एहि आएउ, जहँ भगवान ॥ ३४८ ॥
देखि दरस ततकालहि भएउ विसोक। सुधरेउ एकहि आँक लोक परलोक ॥ ३४९ ॥
पाहि पाहि कहि मेदिनि परेउ अधीर। श्रवन सुजस सुनि आयउँ भरि भव भीर ॥ ३५० ॥
निशिचर वंश जनम मम सुनहु कृपाल। सुरन्ह सुखद, असुरन्ह उर दायक साल ॥ ३५१ ॥
आरत वचन सुनत प्रभु प्रेम अधीर। कहुँ पट, कतहुँ निषंग, कतहुँ धनु तीर ॥ ३५२ ॥
रिपु को अनुज उठायेउ हृदय लगाय। तिलक देइ, आसन दै सबहिं मिलाय ॥ ३५३ ॥
कपि सुग्रीव बंधु भय राखेउ राम। तुलसी घर बिगरन्ह-के प्रभु सुखधाम ॥ ३५४ ॥
भजन प्रभाउ विभीषन भाषेउ आप। तुलसी प्रगट विराजत राम प्रताप ॥ ३५५ ॥

लंकाकांड

पिय ! अजहूँ सिख मानहु परिहरि क्रोध। कहु पूरौ केहि पायो राम विरोध ॥ ३५६ ॥
बधि ताडिका सुबाहुहि प्रगट्यो आप। मिस मारीच मीच किय विसिख प्रताप ॥ ३५७ ॥
सकल भूप बल तोरेउ खंडेउ चाप। सीतहि ब्याहि परसुधर खैंचेउ दाप ॥ ३५८ ॥
कपट काक साँसति करि, बधेउ विराध। खर दूषन तिसिरा हति, सुख दिय साध ॥ ३५९ ॥
एकहि बान बालि हति जो बल - सिन्धु। कहु केहि कुसल बैर जन आरत बंधु ॥ ३६० ॥
नाँधि न सक जगजई ! सेस-कृत रेख। उतरि सिन्धु जारेउ पुर दूत बिसेख ॥ ३६१ ॥
चलहु बेगि लै सिया अग्र करि मोहिं। सरन सबद सुनि राखिहिं रघुबर तोहिं ॥ ३६२ ॥
तू दसकंठ भले कुल उतपति लीन्ह। ता महँ सिव कर सेवक,बिधि वर दीन्ह ॥ ३६३ ॥
खर दूषन अरु तिसिरहिं बालिहिं मारि। उपल किये जलजानहिं नाम खरारि ॥ ३६४ ॥
ताकर दूत सँदेस कहन सुभ आय। श्री मद नृप मद त्यागहु कुल वर पाय ॥ ३६५ ॥
अंगद कहेउ परम हित नीति समेत। कल्प कोटि विधि लागहि बुधि न अचेत ॥ ३६६ ॥
रिपु बल मथि प्रभु जस कहि चलेउ बहोरि। काल बात बस जानेउ भइ बुधि तोरि ॥ ३६७ ॥
बाजत आवै डुगडुगि सागर तीर। लंका परेउ कोलाहल लखि रघुवीर ॥ ३६८ ॥
मदन कोटि सत सुन्दर राजत राम। रिपु रन जीति विभीषन पूरन काम ॥ ३६९ ॥
कपि महँ अनुज सहित कर फेरत चाप। स्याम अंग श्रम कन सँग सोनित छाप ॥ ३७० ॥
धायल वीर चहूँ दिसि कपि अरु रीछ। निकट तमाल फूल जनु टेसु बिरीछ ॥ ३७१ ॥
कृपा बिलोक बिलोकेउ सुर मुनि नाग। तुलसी बसेउ हृदय जेहि, तेहि बड़ भाग ॥ ३७२ ॥
सीता बोलि पठाएउ अनलहि डाहि। सुर मुनि कपि सब देखेउ, कहत सकाहि ॥ ३७३ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम बाम दिसि सोभित सिय गुन खानि। सुमन बरषि सुर गावत अस्तुति ठानि ॥ ३७४ ॥
नील कमल के पास करुह जनु सोन। तुलसी ध्यान परम पद पाएउ को न ॥ ३७५ ॥

उत्तरकांड

अवध अनन्द बधाई घर घर बाज। अनुज सीय सह गृह आए रघुराज ॥ ३७६ ॥
रिपु रन जीति कुसल प्रभु साजि विमान। देव लोक सब हरषित बजत निसान ॥ ३७७ ॥
गृह गृह चारु चौक मनि मंगल साज। ध्वज पताक तोरन बहु बाजन बाज ॥ ३७८ ॥
दीप दीप के भूपति सुनि प्रभु राज। आए ले उपहारहिँ सहित समाज ॥ ३७९ ॥
सीय समेत सिँघासन निरखि जोहारि। श्रुति जय ध्वनि मुनि आसिष भुवन मँझारि ॥ ३८० ॥
निरखि मातु सब जनम सुफल करि मान। भरत लखन रिपु-घातक सुख अधिकान ॥ ३८१ ॥
सुरतरु - सुमन बरषि सुर देहिँ असीस। पुरजन सकल अनन्दित लखि जगदीस ॥ ३८२ ॥
राम राज कर संपति सुखद विभूति। सेस महेस गनेसहु नहिँ करतूति ॥ ३८३ ॥
संकर सुख रस पूरन सहित भुसंड। गाइ राम जस तुलसी भये अखंड ॥ ३८४ ॥
निज निज गृह पुर - लोगन्ह सह परिवार। राति दिवस रघुपति जस कहत प्रचार ॥ ३८५ ॥
सिखवन करहिँ परस्पर मिलि नर नारि। कस न भजहु रघुनायक जन हितकारि ॥ ३८६ ॥
राम राम रघुनायक रघुवर राम। बारहि बार सहज नित कहु निःकाम ॥ ३८७ ॥
सब सुभाग सुख आकर जिय महँ जानि। भजहु वेद जस गावत प्रभु दिन दानि ॥ ३८८ ॥
कोसलेन्द्र पद - कंजहिँ भजहु सचेत। राम काम-अरि हिय महँ दिएउ निकेत ॥ ३८९ ॥
सिय जीवन, जग जीवन - जीवन राम। सकल भुवनपति रघुपति सब सुख धाम ॥ ३९० ॥
कानन दनुज - धूमध्वज भुज आजान। अरुन कमल कर सोभित बान कमान ॥ ३९१ ॥
सकल वासना कैरव रघुपति भान। तुलसी उपल पयोनिधि किय जलजान ॥ ३९२ ॥
काम क्रोध मद कंजहिँ प्रबल तुसार। तुलसी सकृत प्रनामहिँ द्रवत उदार ॥ ३९३ ॥
लोभ मत्त नागेन्द्रहिँ केहरि राम। तुलसी धोखेहु सुमिरत दै सुरधाम ॥ ३९४ ॥
द्विज हित हरन भार महि दासन साथ। तुलसी कुटिल अनाथहि हित रघुनाथ ॥ ३९५ ॥
संकर बिधि पद सेवत सुरसरि आप। आनँद सिंधु - मोह - हर तुलसी ताप ॥ ३९६ ॥
सोक सँदेह मेघ कहँ अनिल खरारि। पाप पहार कुलिस सम अवध बिहारि ॥ ३९७ ॥
भगत कामधुक धेनुहिँ भजु करि नेम। तुलसी राम कृपालहिँ पोषित प्रेम ॥ ३९८ ॥
धर्म कल्पतरु रघुबर आरत बंधु। तुलसी द्रवत दीन लखि करुनासिन्धु ॥ ३९९ ॥
राम धाम कर खरची केवल नाम। तुलसी लिखेउ न भालहि तेहि बिधि बाम ॥ ४०० ॥
साधन सकल नाम बिनु लागहि सून। तुलसी नाम बीज करु, बढ़ दस गून ॥ ४०१ ॥
एहि बिधि अवध नारि नर प्रभु गुनगान। करहिँ दिवस निसि तुलसी जात न जान ॥ ४०२ ॥
भजन प्रभाव भाँति बहु बरनेउ वेद। तुलसी गायउ हरि जस मिटि भव खेद ॥ ४०३ ॥
करन पुनीत हेतु निज बचन बिबेक। तुलसी ऐसेहु सेवत राखत टेक ॥ ४०४ ॥
सीता राम लखन संग मुनि के साज। तुलसी चित्रकूट चित बस रघुराज ॥ ४०५ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२०

रामायण छन्दावली

दोहा

दशकन्धर घटकर्ण अघ भार, धरा दुख होइ। गई गगन गो-देह धरि कहि सुरपतिसौं रोइ ॥१॥

छन्द चौपय्या

सुरपतिगुरु बूझा सुरमति सूझा गे विधिलोक तुरन्ता। विधि सुर समुझाये संग सिधाये जहँ सोवत श्रीकंता॥
दशमुखकी करणी बहुविधि बरणी धरणी जेहि बिधि रोई। सुनि सारँगपाणी भइ नभबाणी बिधि जाना नहिं कोई।
बिधि बचन सुनाये सुर समुझाये तजहु सोच मन देवा। जो जनहितकारी प्रभु असुरारी करहि पार सोइ खेवा॥
वानरगो पूछा तन धरि रीछा बसहु जाय वनमाहीं। अवधेश निकेता व्यूहसमेता प्रभु आवत तुमपाहीं॥२॥

दोहा

यहि विधि बिबुध बिबोधिके, गे सुर निज निज धाम। कछुक काल बीते अवध प्रकट भये श्रीराम ॥३॥

शशिवदन छन्द

जन हितकारी प्रकट सुरारी। नरतनुधारी छबिसुखकारी॥
मृदु मुसुकारी अरिदलहारी। सुमुख निहारी बलि महतारी॥
अवधबिहारी भवभयहारी। जयति पुरारी सब अघहारी॥
अवध उधारी यह प्रण भारी। तुलसिहि तारी शरण सम्हारी ॥४॥

हरिगीतिका छन्द

सम्हारि शरण बिचारि तुलसी रामयश गावत लियो। त्रयताप शमन कलेशहर को और, नहिं जग महँ बियो॥
जेहि गाइ यमन किरात खस हरिपुर गये करि सुधि हियो। रघुबीरयश सुनि हिय न हरख्यो बुरो तिन अपनो कियो५

सुन्दरी छन्द

राजत मेचक अंग महाछवि। बोल मनोहर कहहिं महाकवि॥
जो सुनिकै जरि जाय महामल। सादर गावहिं पावहिं सम्बल॥
तूण कसे कटि चाप शिलीमुख। मातु बिलोकि अपार लहे सुख॥
बालचरित्र करे रघुनन्दन। लोग निहारि हरे दुखबन्धन॥
इग्यारह के राम भये जब। गुरु वशिष्ठ उपनयन दये तब॥
आइ तपोधन जाँचि लये सुत। बोलि वशिष्ठहि राउ दये युत॥
ताड़क मारि सुरारि दई गति। बालबिनोदक देव किये मति॥
रामहिं मन्त्र दये तब श्रीमति। राम लखन मुनि काज किये अति॥
मारि सुबाहु, करी मखकी जब। देत मुनीश अशीश महा तब॥
गौतम तापस-तीय तरी मग। राम धरे मिथिलापुरको पग॥
आइ बिलोकि विदेह महाछबि। देखि नरेश समाज गयो दबि॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आयसु दीन्ह विदेह नरेशनु । चाप चढ़ावत पूज महेशनु ॥
डिगै न, खण्डेउ राम प्रयास न । सुमके बीज समान शरासन ॥
मेलि सिया जयमाल मनोहर । बाजि बधाव धरा अरु अम्बर ॥
ब्याहि चले नृप चारि सहोदर । मारग बीच मिले फरसाधर ॥
चापहि सौंपि भये तपसीवर । राउ विवाहि आइ अपने घर ॥
बालचरित्र विवाह यथामति । जो सुनिकै नरनारि लहैं गति ॥ ६ ॥

दोहा

चरित चारु रघुबीरके सुनि मन कीन्ह विचार । निज मनसौं तुलसी कहै कस न होइ भव पार ॥७॥

॥ इति श्रीबालकाण्डसमाप्तम् ॥

चामर छन्द

आय कौशलेशने सुहाथ आरसी गही । कानके समीप केश देखि श्वेत है सही ॥
राय-कानमैं मनो जराहि आइ यौं कही । राज देउ रामको, बनै सिधाव तो सही ॥
कैकयी सुनी सुबात शोकमाल ते गही । राज माँग पूतको श्रिरामको बने कही ॥
रामने सुनी सो बात तात ताप यौं तये । राम सीय संग लै सुबन्धु काननै गये ॥
राय रामचन्द्र साथ प्राण काढ़िके दये । गंग-प्राग होइकै सुचित्रकूटमैं गये ॥
राजकाज कै भरत्थ शोकसिन्धु - मैं भये । साथ लै वशिष्ठ बन्धु पाँय प्यादही चले ॥
केवटै सबन्धु भेंटि राम प्राग जाइकै । राम दीन पाँवरी हिये सु लीन लाइकै ॥ १ ॥

दोहा

राम पाँवरी पाइकै गवन गेहको कीन । गणक बोलि तब भरतने नेम धरम व्रत लीन ॥ २ ॥

॥ इति श्रीअयोध्याकाण्ड समाप्तम् ॥

सुन्दरी छन्द

विदेहजा तनीक ही सुरेश - तातने छुवो । श्रिरामबाण लागते विहीन-नैन सो हुवो ॥
त्रिदेव-दत्त-तातको श्रीराम बन्दना कियो । तिन्हौंकि तीय सीयको सचैल भूषणो दियो ॥
विराध बद्धि रामचन्द्र सारभंगके गयो । तहाँ सुरेश देखिकै सबन्धु सुःखसौं भयो ॥
बहोरि सीय - बन्धु संग पञ्चवाटिका गये । तहाँ लखान कान - नाक सूपनेखके हये ॥
त्रिशीश आदि जे सुरारि एक बाणसौं हये । सुनी सो बात रावणा मरीच-पास सो गये ॥
कही कथा सुनीति जो कुरंग सोन सो भयो । लखो श्रिराम मारि ताहि धाम आपनो दयो ॥
सुन्यो सो शब्द सीय, शेष राम पास पाठयो । कच्यो विरूप रावणा लै सीय जात यौं भयो ॥
सबन्धु शाल देखिकै कृपाल दुःखमैं पगे । तहाँ ललाम शालते तिन्हौं तो बूझने लगे ॥
कही सुसुद्धि गीधने कबन्ध बन्ध कै चले । करी सनाथ शेवरी सबन्धु बेर लै भले ॥
बहोरि पम्पताल श्रीकृपाल राम जायकै । तहाँ मुनीश नारदौ कियो प्रणाम आइकै ॥

दोहा

लखि सुग्रीव श्रीराम कहँ मनमहँ कीन्ह विचार । पुरुषसिंह ये कवन हैं देखहु पवनकुमार ॥२॥

॥ इति श्रीआरण्यकाण्डसमाप्तम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

चञ्चरी छन्द

रामको लेवाइकै तव शैल ऊपर जाइकै । जातवेदहि बीच दै करि कीन्ह प्रीति दृढ़ाइकै ।
क्यों रही तुम शैल ऊपर राम बूझ कपीशसों । त्यों कह्यो व्यौहार सगरो बालिको डर ईशसों ।।
बालिको बधि बाणसों कपिनाथ तोहिं करौं सही । जानकी तुमको मिलावौं बिहँसिकै कपिनै कही ।।
बालि मारि कृपाल राम सुराज दीन्ह सुकण्ठको । मास चारि सुवासकै तहँ शासना करि कण्ठको ।।
जानकी सुधि लेनको कपि-ईश कीश पठाइकै । मासमैं सुधि वेगि ल्यावहु खोजि देखहु जाइकै ।।१।।

दोहा

कीन्ह्यो विवर प्रवेश तिन अशन कियो फलफूल । पूछि तियहि मूँदे नयन ठाढ़े जलनिधि कूल ।।२।।

।। इति श्रीकिष्कन्धाकाण्ड समाप्तम् ।।

तोटक छन्द

हनुमान गयो तरि सागरको । उलँघ्यो जनु कोउ अजाखुरको ।।
गिरि ऊपर पै चढ़ि लंक लखी । हनि लंकिनिको, विधि-बात भखी ।।
लघु रूप धर्‌यो हनुमान बली । निशि लंक विलोकि न आइ भली ।।
रघुबीर प्रिया कितहूँ न मिली । तहँ देखि बिभीषण-केरि थली ।।
रघुबीर सुअस्तुति चित्त कर्‌यो । लखिकै हुलसान हियो सुभर्‌यो ।।
तेहिको मिलि सुद्धि लई सगरी । हरषे हरिको मिलि ज्यौं नगरी ।।
तहँ जाय लखी रघुबीर-प्रिया । कृश अंग मलिन मुख दीन सिया ।।
पुनि रावण आनि कलेश कियो । सुनि क्रोध भयो हनुमान हियो ।।
मुँदरी दइ डारि निहारि सिया । सुख दुःख भयो हनुमन्त हिया ।।
रघुबीरको दूत प्रसन्न किया । फल-खानको आयसु माँगि लिया ।।
लखि बाग लग्यो फल खान हनू । उतपात महा अतिबाग धनू ।।
मनुजादनि जाय पुकार करी । हनुमान हनी सेना सगरी ।।
घननाद गह्यो पवनातमजा । दशकन्ध सभामहँ जाइ गजा ।।
चलिगो रिपु सौं न डर्‌यो मनमैं । मदमत्त गयन्दनके घनमैं ।।
घन तेल लँगूर लपेट सही । जल-सी निजपै करि, लंक दही ।।
हनुमानके हाँकत गर्भ गिर्‌यो । मनुजाद त्रिया नहिं धीर धर्‌यो ।।
सिय आयसु लैकरि सिन्धु तर्‌यो । हनुमान सँदेस कह्यो सिगर्‌यो ।।
सुनिकै हिय-सिन्धु अनन्द भर्‌यो । सजि सेन समूह पयान कर्‌यो ।।
बल देखि, पयोनिधि पाँय पर्‌यो । नल देखिके सेतु समुद्र तर्‌यो ।।
सुनि मै-तनया पिय-पाँय परी । प्रभु व्यापक-बिश्व बिराट हरी ।।
तब जाय सभाह विचार करी । तपसीन धरी हमरी नगरी ।।
तिन मन्त्रिन मन्त्र कुमन्त्र कियो । लघु बन्धुहि मारेसि लात हियो ।।
रघुबीरके तीर गयो भजिकै । नृपको अबिबेक कह्यो सजिकै ।।
प्रभु लंकहि अंगदको पठयो । पद रोपि सभा प्रण जाइ ठयो ।।
दशकन्ध सभा-महँ बीर-बचा । न टर्‌यो पद, ज्यौं महि-संग रचा ।।
बर बीर सभा मद मारि फिर्‌यो । रघुबीर पदाम्बुज जाइ पर्‌यो ।। १ ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा

सुनि कृपालु अंगद-वचन बूझे मन्त्री थूह। अनी चारि करि द्वार चहुँ लागे कीश-समूह ॥ २ ॥

॥ इति श्रीसुन्दरकाण्ड समाप्तम् ॥

भुजंगप्रयात छन्द

लगी सेन सम्मूह चाऱ्यौ दुआरे। भयो शोर देवारि नादे पुकारे ॥
तबै वीर बाँके दशानन बुलाये। सबै जाय खहु रीछ बानर जु आये ॥
महारोष मातेहिँ देवारि गाजैँ। महामत्त मातंगराजी विराजैँ ॥
बनी बाहनी व्यूहकै बाजि साजै। ध्वजा बाण नीशान घनघोर गाजै ॥
करै युद्ध नानादि योधा प्रचारै। लरै वीर कपि भालु चाऱ्यो दुआरै ॥
फिरैँ रुण्ड वेमुण्ड जै जै पुकारे। तहाँ राम सौमित्र रणमध्य मारे ॥
तबै वीर रणधीर बन्धू जगाये। कही जो कथा सीय जेहि भाँति लाये ॥
लऱ्यो जाइ रघुबीर जो युद्ध मद्धे। गयो त्यागि तन, जाहि योगी न लद्धे ॥
सुनौ रैनिचर ईसने बन्धु माऱ्यो। तबै तातसौँ बौद्ध घननाद काऱ्यो ॥
लखौ प्रात पौरुष पिता जो हमाऱ्यो। कऱ्यो क्रोध शक्रारि सेना बिडाऱ्यो ॥
तबै ताहि रिक्षेश गहिकै प्रभायो। गयो मूर्च्छिकै तुरत लंका पठायो ॥
हत्यो ताहि सौमित्रने युद्ध मध्ये। करैँ देव जै जै सआनन्द वध्ये ॥
सुन्यो तीयने पीयको वीर साँचो। भई सो सती सच्य तिहुँलोक माँचो ॥
सुन्यो तातको बद्ध दशकन्ध शोचा। मरै बाण नहिँ हाथ भे पूच पोचा ॥
हनौँ आज रणमध्य रामै प्रचारी। कहा बापुरो बानरा बीर चारी ॥
चलै साजि सेना सबै बीर गाजैँ। करैँ राग मारू पणव भेरि बाजैँ ॥
तबै रामके सामुहे रथ जो आयो। हिये दृष्टि श्रीराम सौमित्र लायो ॥
तबै राम शरको सकटि खैँचि बाँध्यो। लियो चाप कर साधि वर ताहि साध्यो ॥
छुटे बाण दशशीशके शीश छीने। लसै शीश अतिशय भये ते नवीने ॥
तबै राम लंकेशको मन्त्र बूझो। हमारे शरीसौँ न दशकन्ध जूझो ॥
सुनौ नाथ यहि ईशको शीश दीन्हे। मही होहि भोगे जिन्हैँ पुण्य कीन्हे ॥
हिये मध्य याके सुधा, शीश पोखै। छुटे बाण यकतीस हियमैँ सो सोखै ॥
मरै नाथ दशशीश सुर साधु तोखै। हत्यो घूमि रघुवीर लंकेश बीखै ॥
बजै दुन्दुभी व्योमचर साधु गावैँ। नचैँ सुर बधू वृष्टि सुमनौँ कि लावैँ ॥
दियो तासु के बन्धुको राम टीका। तिसै हेतु कपि भालु ल्यायो असीका ॥
तबै राम श्रीजानकी बोलि लीन्ही। धरै देह द्विजकी अनल आगि दीन्ही ॥
लिये संग कपि भालु सीता समेता। चले राम चढ़ि यान उत्तर निकेता ॥
चल्यो यान उत्ताल तिरथै सो आयो। तहाँ राम हनुमान अवधै पठायो ॥

दोहा

कीश-भालु सिय संग लै तिरवेणी को न्हाय। भरद्वाजको बन्दि प्रभु केवट भेंट्यो आय ॥

॥ इति लंकाकाण्ड समाप्तम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

छन्द

शुभ सगुन अवध जनाइ तेहि क्षण होत मुद मंगल महा। शीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत अमल जल सुरसरि बहा॥
शुभ अंग फरकत भरतके हिय हुलसि अति आनँद लहा। तेहि समय श्रोहनुमान प्रभुको आइ सन्देशो कहा॥
मन हरष भरत सुनाइ गुरुकहँ मातु सकल बुलाइकै। कहि खबरि श्रीरघुबीरकी तिन सजै मंगल जाइके॥
गुरु बन्धु संयुत चले प्रभुपद निरखि पदपंकज गहे। धरि भरत भुज उर ल्याइ प्रभु राजीवलोचन जल बहे॥
पुनि प्रेमयुत सब मातु भेटीं निरखि प्रभु हुलस्यो हियो। तिन कनक मणिगण बसन भूषण आनि महिदेवन दियो॥
शुभ समय जानि वशिष्ठ वेगि लिवाइ लियो सुमन्तको। सब राजसाज सम्हारि तेहि क्षण राज दिय भगवन्तको॥
सिय सहित रघुकुलमणि बिराजत सुभग सिंहासन परैं। सुर सुमन वरषहिं हिये हरषि ब्रह्मादि सब जै जै करैं॥
गहि छत्र चामर चमर असि धनु वीर तरकसके लये। भरतादि अनुज विभीषणांगद हनूमान चित चरणन दये॥
सुनु सिया श्रीरघुबीरको अभिषेक सुनि उरमैं धरे। कह दास तुलसी जन्मसुख लहि जलधि भव बिन श्रम तरे॥

दोहा

नित नव मंगल अवधपुर करहिं सकल नरनारि॥
लहहिं चारि फल अछत तनु रघुबररूप निहारि॥

छन्द

नित प्रीति सरित अन्हाइ बन्धुन सहित प्रभु भोजन करैं। गज बाजि राजसमाज लखि सब देखि बन उपबन फिरैं॥
बैठे सभामहँ जाइ श्रीरघुबीर दुख सबके हरे। हरि-न्याव श्वान उलूकको लखि लोग सब बिस्मय करे॥
माण्डवी श्रुतिकिरति उरमिल सबनि सुत द्वै द्वै जने। जानकी सुत युगल जाये सब निगम आनँद घने॥
सनकादि नारद आदि मुनिवर सकल अवधहि आवहीं। लखि जाहिं रघुबरके चरित सब विधिहि जाय सुनावहीं॥
यक बारको महिदेवको सुत सभामहँ आयो मर्‍यो। गुरु बूझि तपते मारि शूद्रहिं तबहिंसे उठि जिय पर्‍यो॥
यहि भाँति रामचरित्र परम पवित्र नित नूतन करैं। कहि दासतुलसी सुनत सबके बचन मन पातक टरैं॥३॥

दोहा

सुनि सीताके युगल सुत राम कीन्ह अनुमान॥
लोक सिखावन दीन्ह हित बोले श्रीभगवान॥ ४॥

॥ इति श्रीउत्तरकाण्ड समाप्तम्॥

॥ इति छन्दावली रामायण संपूर्णम्॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२१

कुण्डलिया रामायण

दहन अमंगल सकल दुख गजमुख सब सुखदानि। मतिगतिरति रघुपतिचरन विघ्नहरनकी बानि ॥
विघ्नहरनकी बानि जानि सज्जन सब गावत। भक्ति मुक्ति वर देव शेष शंकर सुर ध्यावत ॥
शंकर ध्यावत शेष सुर रिपुगन खलजन तेज घन। कह तुलसिदास संकरसुवन - भजन भक्त भवभयदहन १
दीनदयाल दया करौ दीन जानि शिव मोहिँ। सीताराम सनेह उर सहज सन्त गुण होहिँ ॥
सहज सन्त गुण होहिँ यथाप्रद लाभ दुःखसुख। कर्मविवश जहँ जाउँ तहाँ सिय-राम कृपारुख ॥
रामकृपारुख नित रहौं जगतजनित संशय हरौ। कह तुलसिदास शंकर उमा दीनदयाल दया करो २ ॥
रामचरित शतकोटि शेष शारद शिव भाखे। नारद सुक सनकादि वेद कहि बीचहि राखे ॥
बीचहि राखे चरित पार कहि पावत नाहिँन। कहि कहि हारे सकल रामयश कहत सिराहिँन ॥
नहिँ सिराहिँ रघुवीरगुण सो तुलसी मनमेँ डरत। भजन भाव वेदन कहा कहे चरित भवनिधि तरत ३॥
पुत्रयज्ञ नृप कीन जोरि मुनिगण द्विजकुलवर। कह वशिष्ठ मैं सिद्ध दीन हवि लै प्रसाद कर ॥
लै प्रसाद कर दीन देहु भामिनि नृप जाई। सुनि दशरथ-मन हरष सकल प्रियनारि बुलाई ॥
नारि बुलाई कौशला कैकेयी युग भाग कर। मन अनन्द रानी नृपति दीन्ह सुमित्रहि हाथ धर ४॥
मंगलमयी विचित्र द्युति प्रकट भई गृह आनि। ब्रह्म सच्चिदानन्द उर प्रकट भये सुखखानि ॥
प्रकट भये सुखखानि हानि दारिद दुख नाश्यो। देवन लह्यो अनन्द मही मन मोद प्रकाश्यो ॥
मही मोद द्विज सकल सन्त सज्जन यश गावत। ब्रह्मादिक सब देव अवध नृप-घर चलि आवत ॥
आवत वर्षत सुमन घन तुलसी कहि जय जय जई। नाक नगर अहिपुर भुवन प्रकट भई मंगलमई ।५।
मास भयो शुभवार योगवर नखत विराजत। तिथि नभ जल महि विमल दिशा विदिशा सब भ्राजत ॥
भ्राजत सरयू अवध देवगण जय उच्चारत। वर्षत सुमन प्रशंस हंस निजबंस निहारत ॥
हारत खलगन मनमलिन प्रकट भये सुख दुख गयो। तुलसी रघुबर प्रकट भे मास एकको दिन भयो ।६।
सुनि भूपति सतजन्म मगन नहिँ देह सँभारत। उठे भवन कहँ दौरि बोलि तब गुरुहि प्रचारत।
गुरुहि प्रचारत चले बिप्र सँग लै मुनिनायक। भूत भविष्यत वर्तमान सब जानन-लायक ॥
लायक सुनि मुनि समुझि कै जातकर्म सब बिधि कियो। हेम हीरनीरज सुपट महि हय गय भूपति दियो७॥
याचक जो जेहि काज ताहि नृप पूछि दिवावत। वृन्द वृन्द बर नारि विमल स्वर सोहिल गावत ॥
गावत सोहिल सुनत भूप हँसि हेरि बुलावत। पट भूषण मणिमाल लाल सुख तेहि पहिरावत ॥
पहिरावत गज तुरग रथ सर्वस दै दै छाँड़ि छल। पुनि तुलसी जहँ तहँ भरो रामकृपा सब वाहि थल।८।
पुरी मगन नर नारि वर्ण चारिउ प्रसन्न सबि। प्रति गृह गावत गीत कलस मणि चौक भरी छबि ॥
भरी चौक गजमुक्त अगर कुमकुम मृगमद घन। कुसुम-सुगन्ध अबीर रहेउ भरि दिशा विदिशि तन ॥
दिशा विदिशि सुख भरि रह्यो भामिनि बहु प्रकटी दुरी।अहि-नाक-भूमितल सुख भर्‍यो जिमि सुख भो रघुपतिपुरी९

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भूप भामिनी दोउ सुखद सुन्दर सुत जाये। कर्म क्रिया सो करे तोषि याचक पहिराये॥
पहिराये मन मोद चारि सुत लखि सुख राजा। रानी परम हुलास दास दासी सब साजा॥
साजा शहर अनन्द बड़ बाजे बहु बाजन लगे। सब कोउ कहत सराहिकै भाग भाल सबके जगे१०॥
भूसुर सुर गो धरनि सन्त सज्जनके काजे। प्रभु धाऱ्यो तन मनुज, दनुज सुनि विकल सुलाजे॥
लाजे खलगण मलिन नलिन द्विज उदय भानुकर। अघ उलूक छपि गये तेज अहिपुर सुरपुर घर॥
सुरपुरधुनि कुसुमावली जयति राम रघुवंश जय। जय दशरथकुलकलश जय अवध नारिनर कहत भय ११॥
गृह गृह बजत बधाव नारि नर अवध अनन्दित। चौक कलश प्रतिद्वार लसत सुरतियगण वन्दित॥
बन्दत सुरगण सुमुख बन्दिगण बिप्रवेदधुनि। भरि भरि मुक्ताथार देखि सुत, भाग अधिक गुनि॥
अधिक गान सोहत भवन रामजन्म मंगल सजत। नरनारि वारि तन धन सबै सुरपुर जयदुन्दुभि बजत१२
नाम धऱ्यो मुनि हेरि राम पुनि भरत लखनवर। शत्रुशमन शुभ नाम दीन मुनि लिखि भूपति कर॥
भूपति रानिन्ह दीन मगन तनु लहेउ सकल सुख। गान निशान समान धरणि आकाश एक रुख॥
इकटक निरखत सुमनगण मन मलीन खलगण भये। चारि चारु सुन्दर सुवन सुकृत भूप तरुफल नये १३॥
सुन्दर सुतवर गोद मोद भरि मातु दुलारत। निरखि बदन छबिसिन्धु सकल तन मन धन वारत॥
वारैं तनमन देव भूपके भाग सराहत। शिव सनकादिक ब्रह्म क्षणहि क्षण मन सुख चाहत॥
चाहत नित आवत अवध मंगलमय मूरति लखत। रामजन्म-सुखरस-रसिक तुलसिदास नयननि चखत१४
माई! बालक अनरस्यो दूध पियत नहिँ आज। रोवत, सोवत नैकु नहिँ दुष्ट नजरिकी साज॥
दुष्ट नजरिकी साज रहैं नहिँ बैठे ठाढ़े। बड़ो शोच उर भयो नीर नयननमैं बाढ़े॥
बाढ़े करुणा कौशलहि हाथ दिवावत धायकै। पालन गोद पिआय पय राम सोवावत आयकै १५॥
शम्भू धाऱ्यो अवध पग अंगहि भस्म लगाय। रामचन्द्र - मुख - चन्द्रपर चित - चकोर ललचाय॥
चित - चकोर ललचाय नाद शृंगीकी कीन्हैं। घर घर आगम कहत बोलि कौशल्या लीन्हैं॥
कौशल्या गृह बोलिकै दै आसन, आदर कऱ्यो। सुत पायनतर लायकै, मात, हाथ शम्भू धऱ्यो १६॥
साँई आछे गुण कहौ जो कछु यामैं होय। सब गति जानत सबहिकी तुमहिँ कहत सब कोय॥
सब कोई परचौ कहत बड़े योगनिधि योग। जो मँगिहौ दैहौं सोई करौ सुधाको भोग॥
करौ सुधाको भोग तुम सुतननि पाछे जन्म मुनि। सुनि-सुनि शंकर मन हँसत आछे माता बचन सुनि॥१७
माई बालक तोर यह बड़ो भागको मूल। याके दर्शन जात है सब अन्तरको शूल॥
सब अन्तरको शूल हरी याते सुख पैहौ। कछु दिन बीते सुनौ एक मुनि सँग करि दैहो॥
दैहो मुनि संग लाय, ब्याह पुनि पाती आई। दशरथ - सुवन बिबाहि सहित घर ऐहैं भाई १८॥
अद्भुत कर्मन करी सकल खलगण संहारन। महि द्विज पालिहि सन्त शोच सुर करिहि निवारन॥
करिहि निवारन दोष मातु-पितु-आज्ञाकारी। तोरहि शिवको धनुष सुयश तिहुँपुर बिस्तारी॥
विस्तारी सुख सम्पदा सुनु कौशल्या तोर सुत। बचन मृषा बोलब नहीं मानु प्रतीति सनेहयुत १९॥
कह्यो कैकयी सुवनको लक्षण सबकर देखि। कौशल्या - सुत - भक्त यह मन क्रम बचन बिशेखि॥
मन क्रम बचन बिशेखि रामपद प्रीति सुहावन। सोवत जागत ध्यान नाम रसना रसपावन॥
पावन तिरहुति ब्याहिहैं याते सुख-सम्पति लहौ। सुयशसिन्धु साँचो सुवन समुझि रेख आगम कहौ२०॥
सुनहु लखनकी मातु सुलक्षण सुवन तुम्हारे। निज भाइनसौं प्रीति प्रबल रणके जितवारे॥
जितवारे बल बाहु गुणनि पूरे सब भाई। राम संग शुभपुरी तहाँ सब होहिँ सगाई॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

होहिँ सगाई जनकपुर जनककन्यका आनिकै । सत्य जानु रानी बचन झूठ न कहौं बखानिकै २१॥
सुनतेहि मन रानी मगन मुक्ता थार भराय । लेन कह्यो हँसि कौशिला रामहिँ दीन छुवाय ॥
रामहिँ दीन छुवाय हाथ धरि देउ असीसा । बालक रहु कल्याण डीठि मुठि डारहु खीसा ॥
खीस करहु प्रभु रोग सकल मन्त्रन पढ़ि बानी । बोलीं डारे सुवन हाथ जोरे सब रानी ॥ २२ ॥
बोल्यो योगी योगनिधि सुनहु कौशलामाय । डीठि मूठि अनखानि अब देहौं सकल बहाय ॥
दैहौं सकल बहाय बाल कबहूँ नहिँ रोई । पलका गोद हिँडोर सुमुख सब थल शिशु सोई ॥
सब थल शिशु सुख-सौं रही होय न कबहूँ रोगि । शृंगी शब्द सुनाय मन हँसि करि चाल्यो योगि ॥२३॥
भूपति रानी मन मगन शिशु सब अतुल निहारि । गोद मोद मन गावती राम दुलारि दुलारि ॥
राम दुलारि दुलारि वारि तन-मन-सब डारैं । क्षौरकर्मके सुदिन बैठि कुलगुरुहिँ हँकारैं ॥
गुरुहिँ हँकारि बिबेक सुफल करि मंगल बानी । गावहिँ गीत विचित्र मोदमय भूपति रानी ॥ २४ ॥
सन्तोषे माँगन सकल गुरु तिय द्विज पहिराय । बालक कोसलपालके चिरंजीव सब भाय ॥
चिरञ्जीव सब भाय देत आशिष अनुकूले । नृप रानी के सुकृत - सुतरु गाहे अरु फूले ॥
फूले अवधहि नारिनर ते अति आनँद पोष । नाक नगर अहि नारिनर मनवांछित सब तोष ॥२५॥
रानी चलन सिखावती चाऱ्यो सुत कर लाय । गिरत परत उठि चलत हँसि रोवत रहत रिसाय ॥
रोवत रहत रिसाय झाँगुली टोपी डारैं । मुक्तनमाल बिदारि नयन भरि नीर निहारैं ॥
नीर निहारैं, हँसत, सुनत अति तोतरि बानी । भजत भवनको पैठि धरत लै आँगन रानी ॥ २६ ॥
भूप हर्षि रुचिसौं कर्‌यो करणबेध उपवीत । छोटे धनुही बान कर लागे समुझन नीत ॥
समुझन लागे नीति वेद विद्या गुरु दीन्हीं । धर्म कर्म गति अगति सुगति श्रुतिमग जेहि कीन्हीं ॥
जेहि कीन्ही श्रुतिमग जगत जाहि सिखायो सब सिस्यो । धर्म प्रकट जगको करन परब्रह्म नृप घर बस्यो ॥२७॥
जाके नाम प्रभावतैं जनम-मरन-दुख जाय । वेद शेष शारद शिवा शिवको अगम दिखाय ॥
शिवको अगम दिखाय भेद ब्रह्महु नहिँ पायो । भक्तनके हित सोय कौशला उर महँ आयो ॥
कौशल्याके उर बसे दशरथ - सुत कहि गावते । काम क्रोध मद लोभ दुख नाशै नाम-प्रभावते ॥ २८ ॥
बिश्वामित्र महाऋषय विपिन बसैं मुनि संग । योग-यज्ञ-होमादि व्रत करत दनुज खल भंग ॥
करत दनुज खल भंग हृदय मुनि मन्त्र विचाऱ्यो । हरि अवतरे सुओध हरन महिभारन भाऱ्यो ॥
भाऱ्यो सुख उपजायकै हरि होई नयननि बिषय । सरयू सरि अस्नान करि गे दरबार महाऋषय ॥२९॥
सुनि राजा सहसा उठे मिले धाय परि पाँय । लै आये भीतर भवन शुभ आसन बैठाय ॥
शुभ आसन बैठाय नारि - युत मुनिवर पूजे । उदय भयो निज भाग मोहिँ सम सुकृत न दूजे ॥
दूजे आपुन जानिये पदरजको सेवक सदा । कहिय कृपा करि काज निज करहु तुरत मंगलप्रदा ॥३०
सुनु भूपति ! द्विज मित्र गाय महि-शोच निवारण । मम आश्रम खल दनुज करत उतपात अपारन ॥
पार न पावहिँ मुनि बिकल रैन-दिवस संकट परै । धर्म कर्म श्रुतिसेतु सब योग यज्ञ बल खल हरे ॥
हरैं बिपति दारुण जबै राम लखन जो देहु मति । तुम कहँ यश इनको सुफल गुनहु न मन सुनि भूमिपति ॥
सुनते राजा सूखि गो कमलबदन कुम्हिलान । नाहक मुनि दाह्यो हृदय माँगहिँ जीवन प्रान ॥
माँगहिँ जीवन प्रान राम लक्ष्मण मिलि देऊ । जाहि निरखि रह नयन, पलक निरखत नहिँ लेऊ ॥
लेउँ अयश पातक सबै सुनि मुनि मनमैं गुनि कहै । माँगहु तन धन धेनु महि, राम दिये किमि तनु रहै ॥
कह बशिष्ठ राजा सुनहु सुत मुनिपति-कहँ देहु । इनकी कृपा कृपालकी कुशल आय हैं गेहु ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कुशल आय हैं गेह दनुज सब करहिं सँहारन । सिद्ध सुद्ध करि होम, सुयश जगमैं विस्तारन ॥
विस्तारन मंगल सुवन आन भाँति नहिं मन गुनहु । सौंपहु विश्वामित्रको कह बशिष्ठ भूपति सुनहु ॥३३॥
गुरु बशिष्ठके बचनको कैसे तजैं नृपाल । राम लखनको बोलिकै सौंपे मुनिहिं कृपाल ॥
सौंपे मुनिहिं कृपाल शीश सब सभा नवायो । कौशिक दियो अशीष मनहुँ जप तप-फल पायो ॥
पय बहाय बारिज-नयन उठे मौन धरि भवनको । उत्तर कछू न मुख कढ्यो गुरु बशिष्ठके बचनको ॥३४॥
वेदमन्त्र दै सकल अंग शत्रुनके मारण । नींद भूख अरु प्यास त्रास सब अशुभनिवारण ॥
अशुभनिवारण पन्थ सुपथ मंगलमय सुन्दर । बड़ो भाग निज समुझि करत आयसु प्रभु सादर ॥
सादर पूछत वेद-गति मृग तरु भूधर भूमितल । पाठ करावत गुन कहत वेदमन्त्र दै दै सकल ॥३५॥
मार्‍यो बीचहि ताड़का एक बाण श्रीराम । मुनि चितवत चकृत खड़े, गई हर्षि सुरधाम ॥
गई हर्षि सुरधाम रामको मुनि मन चीन्हैं । आश्रम निज प्रभु पूछि यज्ञ आरम्भित कीन्हैं ॥
कीन्ह यज्ञ आरम्भ प्रभु धनु धरि बाण सुधारिकै । खल सुबाहु मारीच सँग, धायो धूम निहारिकै ।३६।
दल मारे सब लखन अनल-सर जारि सुबाहै । प्रभु मारीचहिं उदधि पार करि बाण चलाहै ॥
बाण चलाहै अफल सुफल करि होम-बिधानै । वर्षत सुर शुभ कुसुम असीसत कृपानिधानै ॥
कृपानिधानहि जानिकै यज्ञभाग दै अमियफल । धनुषयज्ञ फल जानिकै चले राम ऋषि त्यागि थल ।३७
गौतम ऋषिकी भामिनी, तन पषाण जेहि ठौर । गये लखन रघुबंशमणि मुनि कौशिक सिरमौर ॥
मुनि कौशिक सिरमौर पूछि बुझौ सब कारण । दारुण दाह बिचारि पाँव धरि कीन्ह निवारण ॥
कीन निवारण पापकौ जय कहि उठि द्युति दामिनी । तुलसी बिनती मृदु करत गौतम ऋषिकी भामिनी ३८
जय जय जगदातार प्रभु हरण घोर महिभार । दीनबन्धु दानव दहन सब गुण रूप उदार ॥
सब गुण रूप उदार भजत शिव शुक सनकादी । पावत थाह न चरित मध्य अन्तहु नहिं आदी ॥
आदि जन्म जड़ कुकृत करि भई शाप पापनमई । आज परसि पदपद्मरज राम सुकृत-मन्दिर भई ॥३९
शाप पापको दुर्ग कठिन रचि कर्म्मन राख्यो । मन बुधि चित हम श्वासभरे अघ-बस्तुनि चाख्यो ॥
बस्तु सकल मलराशि काम मद दम्भ सुभट घन । सुकृत सत्य रण जीति कर्म्मको अमल सबै तन ॥
तव पग सुरगुण गाय प्रभु रज अघ-तरुवर अनल महि । रिपुहि सहित मम कर्म नृप साप पापको दुर्ग दहि४०
अभिमत फलदातार देवतरुवर सबकारन । कर्म कुमति मल लाग कृपा करि कीन निवारन ॥
कीन निवारन पाप, भई मुनि-घरकी भामिनि । अब वर दीजिय मोहिं चरणरति दिन अरु यामिनि ॥
दिन अरु यामिनि रत रहौं चरण हरण महिभार हौ । तुलसिदास बर पाय कहि जय रघुपति दातार हौ४१
लखि गति सुर मुनि हर्षि वर्षि शुभ सुमन सराहत । अशरणशरण समर्थ घोर भवसिन्धु निबाहत ॥
सिन्धु निबाहत अगम सुगम बरदायक लायक । कुमति कुकर्म कुरेख कपट कलि-कलुष-नशायक ॥
कलुष-नशायक राम प्रभु तुलसिदास भजि तजि करषामन धरि उर कर्मनि भजहु लखि गति सुर मुनि मन हरष४२
चले हर्षि मुनि संग रामलछमन मन-माहीं । बन उपवन मृग बिहंग बिटप लखि पूछत जाहीं ॥
पूछत मुनि सब कहत न्हाय सुरसरि रघुराई । कहत कथा इतिहास जनकपुर पहुँचे जाई ॥
पहुँचे प्रभु पुर निकट लखि बाग तड़ागनि अति भले । खग मृग मधुप समाजयुत जनकनगर देखन चले ॥४३
बापी सुभग सरोजयुत सरवर विविध मराल । मानौ अगणित मानसर शोभा देत विशाल ॥
शोभा देत बिशाल बिमल जलसुधा सपूरे । मणिगण पुरट बँधान नारिनर मज्जत भूरे ॥
मज्जत सुर मुनि आय जनु पर्व मानसर पाय जग । लहत चारि फल राशि जलजापी बापी सर सुभग ४४

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुन्दर चहुँ दिशि बाग बन कुसुमित फलित अपार । जनु सुरवरकी बाटिका बसी सहित परिवार ॥
बसी सहित परिवार कीर-कोकिल-धुनि राजै । पथिकन लेत बुलाय त्रिविध बिधि पवन समाजै ॥
पवन समाजै सुरभि सुख जनु बसन्त ऋतु गृह सघन । कह तुलसिदास प्रभु-पुर निरखि सुन्दर चहुँ दिसि बाग बन
परे नृपति सजि सैन मत्त गज रथ हय राजत । नृत्य गान सुख थान सुभग दुन्दुभि बर बाजत ॥
बाजत बन्दी सूत यूथ - यूथनि भट गाजैं । बनितादिक शुभ गान करहिं सुरतिय लखि लाजैं ॥
लाजै लखि अमरावती सुरपुरको शोभा हरे । बिबिध वृन्द इन्द्रादि सुर सैन साजि जनपुर परे ॥४६
धवल धाम चित्रनि खचित कलश मनहुँ रवि-ज्योति । जगमगात खम्भानि पर प्रकट दामिनी होति ॥
प्रकट दामिनी होति मोति मणि झलक झरोखनि । भामिनि भूषण सजत मनहुँ सुरतिय-तन धोखनि ॥
धोखनि तन सुरबाम सब धाम धाम सब थल नचति ।जनकनगर छबिमय चकृत हाट बाट मणिमय खचति४७
सुनि श्रवनन नरपाल ऋषय आगमन अनन्दित । भूसुरबर गुरु ज्ञाति साथ मुनिपद सिर वन्दित ॥
बन्दित नृपहि बिलोकि मिले कौशिक मुनिनायक । भये बिदेह बिदेह निरखि दोउ सुत सब लायक ॥
सब लायक रघुनाथ कहि नरपति निरखि बिशालको । देखि भानुकुल-भूषणहि तन-मन-वश नरपालको॥४८
बिबश राव भे प्रेम-थके निरखत तन-शोभा । लोचन भये चकोर राम-मुख-शशि-रस लोभा ॥
लोभा सकल समाज परस्पर चाहत रामै । धीरज धरि नृप कहत, बूझि मुनि सब गुणधामै ॥
सब गुण तेज प्रतापमय काके सुरतरु-फल नये । कहिय कृपा करि कृपानिधि! ये बालक काके भये ४९
कै मुनिमणि नृपमणि किधौं, योग यज्ञफल आहिं । गणपति पशुपति लोकपति मम संशय मन-माहिं ॥
मम संशय मनमाहिं ज्ञानगति गिरा विनाशी । बरबस इन वश होत तजत सुखरस अविनाशी ॥
अविनाशी अवलोकिये युगल रूप निज सँग रँधौ । कहिय प्रकट सन्देह मन कै मुनिमणि नृपमणि किधौं५०
जप-तप व्रत-रत धर्म जगत जहँलगि शुभ-कर्मनि । दया-क्षमादिक नेम क्रिया आचार चार गनि ॥
चार वेद सब भेद योग सिधि साधत योगी । आतम अनुभवरूप ब्रह्मसुख पावत भोगी ॥
पावत भोगी योगबश सो प्रकटत कबहुँक हिये । सो फल मुनिनायक किधौं जप तप-बल परगट किये ५१
अलख अगोचर रूप हरि, जो बरनत श्रुति शेष । जाके हित बिधि देव मुनि, ध्यावत गणप महेश ॥
ध्यावत गणप महेश योग यत्नन नहिं पावत । जप तप व्रत कृत कर्म्म धर्म धन हृदय बसावत ॥
हृदय बसत बहुरूप जब सकल सिद्धि सब सुखन भरि ।प्रकट कीन सोइ रूप मुनि अलख अगोचर भूप हरि ।५२
कीधौं मदन बिशेष सँग, मुनिनायक वश कीन । ऋषि तप-तेज-प्रतापते, सेवत पद लवलीन ॥
सेवत पदलवलीन शम्भुको बैर सँभारचो । चाहत आपु सहाय मन्त्र मन माँग बिचारचो ॥
चारचो बिधि सेवा सजै युगुल रूप छबि देखिये । बार बार भूपति कहैं, सुनि मुनि मदन बिशेखिये।५३
सदा ज्ञान बैराग्यसौं रत्यो रहत मन मोर । ब्रह्म सच्चिदानन्दघन चितवत चन्द्र चकोर ॥
चितवत चन्द्र चकोर रूप हरि सुथल थिरानो । निरखत बालक नयन तौन सुख जात न जानो ॥
जात न जानो ब्रह्मसुख छक्यो प्रेम अनुरागसौं । सो मन इनके बश रह्यो,लह्यो न ज्ञान-बिरागसौं ।५४।
सुनत भूपके प्रिय बचन, पुलकि कहैं मुनिराज । जो कछु कहो सुसत्य सब,तुमहिं विदित सब काज ॥
तुमहिं विदित सब काज राज दशरथके जाये । मखहित आने माँगि आपके नगर सिधाये ॥
नगर सिधाये आपके राम लखन धनु-शर धरे । महि-रक्षक भक्षक असुर सुनत भूप आनँद भरे ॥५५॥
भाग जानि अनुराग नृप, चले लिवाय निकेत । सादर आश्रम आनिकै, पूजे प्रेम - समेत ॥
पूजे प्रेम-समेत निरखि नर - नारि सुखारी । रघुकुल-भूषण देखि सराहत सुकृत सँभारी ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुकृत पुञ्ज राजा जनक कहि पुर-नर पद लागही । को जानै काके सुकृत-याग भाग अनुरागही ॥५६॥
कमलनयन श्रीरामछबि मरकतमणि घनश्याम । सुभग गौर लक्ष्मण परम दामिनि वरण ललाम ॥
दामिनि वरण ललाम अंग अगणित छबि सोहैं । जनकनगर नर-नारि चकित अद्भुत छबि जोहैं ॥
जोहैं मन मोहैं सकल को है पावै पार कवि । तुलसिदास बैननि कहै, कमलनयन श्रीरामछबि॥५७॥
देखे मुनिसँग आज री बालक युगल अनूप । श्याम-गौर सुन्दर बदन मनहु मदन युगरूप ॥
मनहु मदन युगरूप विरचि विधि स्वकर बनाये । निज सुकृतके पुञ्ज जनकपुर देखन आये ॥
देखन आये कुँवर दोउ विधि रचि राख्यो काज री ।सियवर-योग्य संयोग यह समुझि देखु सखि!आज री।५८
अपर कहत सखि ! सत्य है, एक कठिन हठि कर्म्म । प्रण विदेहको धनुष यह, उठे न गिरिसम धर्म्म ॥
उठै न गिरिते गरू बाल मृदु अति सुकुमारे । सो असमञ्जस कठिन मेटि को योग सँवारे ॥
साँवर कुँवर प्रताप-बल मुनिगण कहत सुसत्य हैं । शम्भु-प्रताप विदेहको पुण्य भञ्जि धनु सत्य हैं ॥५९॥
आयसु पाय मुनीशको, भोर लखन रघुराय । सुमन-हेत उपवन गये, श्याम-गौर दोउ भाय ॥
श्याम-गौर दोउ भाय जानकी जाय निहारे । गिरिजा-पूजन हेत मध्य उपवन पग धारे ॥
पग धारे नयननि लखे राजकुमार निहारिकै ।सो सुख तुलसी किमि कहै कहि न जाय मुख चारिकै॥६०
रामसियाको मिलन सुख, वेद न पावहिं पार । प्रीति प्रेम-परमिति सुमति, प्रीतम-गति रतिसार ॥
गति रतिसार विचार कहत थकि रहत बिचारी । सो मैं कहौं बिबेक कवन मति गति संसारी ॥
मतिगति शंकर शारदा कहि न सकत सुख सरसको । तुलसिदास केहि विधि कहै रामसिया-मुखदरसको॥६१
पूजि बिबिध बिधि पाँय परि, बिनती सीय सुनाय । आदि अन्त त्रयलोक तू स्वबश-बिहारिणि माय ॥
स्वबश-बिहारिणि माय मनोरथ जानति हीके । प्रकट प्रभाव प्रताप अगम बरदान शचीके ॥
शची शारदा हरि-तिया सेय सेय सब सुखन भरि ।जय जय जय गिरिपतिसुता बिबिध बिनय किय पायँ परि।६२
बचन प्रसाद सुपाय सिय, हर्षि चली निज धाम । सो छवि हृदय निरूप करि, गुरुपहँ गवने राम ॥
गुरुपहँ गवने राम जानकी भवन सिधाई । सुमन दिये मुनि हाथ राम कहि कथा सुनाई ॥
कथा सुहाई सुनत मुनि सतानन्द आवत भये ।जनक-विनय कहि मोद लहि राम-लखन आशिष दये।६३
आज भूप बनि बनि चले रंगभूमि शिरमौर । पावक पानी पवन महि सुर नर मुनि इक ठौर ॥
सुरनर मुनि इक ठौर आपुको जनक बुलायो । कौतुक देखन चलिय सतानँद बचन सुनायो ॥
बचन कहे मुनि रामसौं, चलहु तात अवसर भले । काको यश दशदिशि बिदित,आजु भूप बनि बनि चले६४
राम लखन कौशिक सहित, सतानन्द अगवान । चले रंगभूमिहि सकल, मंगल-मोद-निधान ॥
मंगल-मोद-निधान नारि-नर गृह तजि धाये । नगर - नगरमैं बात भूपसुत देखन आये ॥
देखि जनक, परि पगनि पर पूरि प्रेम आनँद-लहित ।आसन सादर देय करि राम-लखन कौशिक-सहित ।६५
राम-रूप नृप देखिकै, द्युति मुखकी भइ छीन । रवि-प्रताप निरखत मनौ, उडुगन-ज्योति मलीन ॥
उडुगन-ज्योति मलीन दीन बलहीन बिराजत । जड़ खल-दल दलमलेउ साधु सुर सज्जन गाजत ॥
गाजत दुन्दुभि सुमन सुर मगन नारि-नर पेखिके ।थकित चकित पल नहिं लगत राम-रूप नृप देखिके॥६६
जो जाके उर भावना देख्यो राम-शरीर । कोउ शिशु कोउ प्रभु मित्र अरि स्वामि सखा बलबीर॥
स्वामि सखा बलबीर धीर धरि प्रभुहिं निहारैं । वर्षत सुर शुभ कुसुम देव मुनि जयति उचारैं ॥
जयति उचारि समाज लखि जनक बुलाई जानकी । सतानन्द ! आनौ तुरत खानि सकल कल्यानकी॥६७॥
मिथिलापुरके नारि-नर सिय - रघुबीर निहारि । बिनती करहिं विरञ्चिसन अञ्चल अञ्जलि धारि ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अञ्चल अञ्जलि धारि देहु बरदान बिधाता। राम-जानकी योग्य जोरि मिलवहु यह नाता॥
नात जुरै, नृप प्रण टरै, भूपति जायँ लजाय घर। यह संयोग बिचारि कहि मिथिलापुरके नारि-नर॥६८
माल जलज युग हाथ अतुल छबि सिय पग धारी। जगत-जननि सुख-खानि निरखि मोहे नरनारी॥
नारि मध्य बर जानकी, रघुबर पद अनुराग। देखत सुर नर मुनि मगन, नयन-निमेखहिँ त्याग॥
त्यागि सकुच रामहिँ लखे नयन मूँदि छबि हृदय भरि। रंगभूमि सिय पग धरे जलज माल युग हाथ धरि॥६९
जनक बोलि बन्दी सकल कहा, कहौ प्रण जाय। देव दनुज महिपति मनुज सबको देहु सुनाय॥
सबको देहु सुनाय, भाट दस सहस सिधाये। चहुँ दिशि हाथ पसारि, सुनहु भूपति चित लाये॥
चित लायो प्रण जनकको धनुष धरचो यह रंगथल। कर उठाय भञ्जै नृपति बरै जानकी वाहि पल ७०॥
हर-गिरितैं गरु जानिये, कमठ पृष्ठतैं घोर। महिसँग रच्यो विरञ्चि जनु, सकल बज्र तन तोर॥
सकल बज्र तन तोरि मोरि मुरि गये दशानन। बाणासुरके सुभट भये लज्जित कोउ जानन॥
जान न कोउ याको मरम शिवहि छाँड़ि को तानियै। निज बल हृदय बिचारिकै हरगिरितैं गरु जानिये७१॥
नृप-समाज प्रण कहतहौं रेखा वचन खँचाय। रंक राज सिरताज सोइ लै है धनुष उठाय॥
लैहै धनुष उठाय जगतमहँ कीरति होई। जयमाला उर डारि जानकी ब्याहै सोई॥
सोइ धनु धरि बल समुझि निज मुखमैं कारिख नहिँ लहौं। बीर धीर धनु सो गहै नृपसमाजमैं प्रण कहौं७२॥
नहिँ छीवै कर धनुष ये, सबको कहौं बुझाय। जिन भूपन रण मण्डिकै, रिपुबल देखि भगाय॥
रिपु बल देखि भगाय गाय द्विज सन्त न मानहिँ। परतिय परधन हेत देत शठ हठ-बश प्राणहिँ॥
प्राणहिँ देत समर्पिकै ममतावश पातक बये। कारिख लागहि मुखनमैं नहिँ छीवै कर धनुष ये॥७३॥
ऐसे नृप धनु का धरैं सुनहु सकल महिपाल। प्रजादण्ड परचण्ड अघ दान न कवनेहुँ काल॥
दान न कवनेहुँ काल देव गुरु पितृ न मानहिँ। श्री-मद-तैं मदअन्ध वेदको पन्थ न जानहिँ॥
जानहिँ मातु न पितु-धरम करम बचन पातक करैं। कारिख कुलहिँ लगावहीं ऐसे नृप धनु का धरैं ७४॥
ऐसे नृप धनु ना गहौ मानहु बचन प्रतीति। पुर घेरहिँ, लावहिँ अनल, राखहिँ नहीं समीति॥
राखहिँ नहीं समीत मीत मन्त्री हित तोरै। पातक बाँधे सेतु, पुण्य-सरि - सर वृति - भोरे।
मान मर्दि द्विज धन हरैं, तिय बालक बध कुल दहौ। कहौं पुकारि पसारि कर, ऐसे नृप धनु ना गहौ ७५॥
समुझि भूप धनुषहि धरौ, निज कुल बल-दल देखि। मातु और पितुको सकल धर्महि तजे बिशेखि॥
धर्महि तजे बिशेखि शूरकी लीक न जाकी। शत्रु समर बलवन्त तेग तीक्षण नहिँ बाँकी॥
बाँकी कीरति चन्द्रसी जगत उजेरो नहिँ करौ। भाट कहत प्रण खाँचिकै समुझि भूप धनुषहि धरौ॥७६॥
धनुष आँगुरी जनि छुयो बल कुल आपु निहारि। सत्य सुकृत त्यागे हृदय, कहत असत्य बिचारि॥
कहत असत्य बिचारि नारि-बध ब्राह्मण कीन्हौ। आगतको संकल्पि ऐंचि द्विज - मुखतैं लीन्हौ॥
द्विजमुख दरशन करि भरचो दानिशिरोमणि यश लियो। बदन रदन मसि लागि है धनुष आँगुरी जनि छुयो७७
शेष समान नरेश सो धरै भूमिको भार। जाको भानु - समान है, तेज प्रताप अपार॥
तेज प्रताप अपार चन्द सम कीरति भारी। पावक सम द्युतिवन्त पवनतैं बल अधिकारी॥
बल अधिकारी पवनसौं बुद्धि प्रकाश गणेशसो। सो धनु छुवै महेशको शेष समान नरेश सो॥७८॥
यहि प्रकारके नृप धरैं शिव-पिनाक परचण्ड। जाके सत्य प्रतापकौं ध्वजा दीप नव खण्ड॥
ध्वजा दीप नव खण्ड भूप हरिचन्दसौं होई। पृथु रघुवान दिलीप सगर अँशुमान सो कोई॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

छुवइ ययाति सुगाधिसे शिवि-दधीचि नृप उच्चरै । बार बार प्रण उच्चरौं,यहि प्रकारके धनु धरै ॥७६॥
की नारायण धनु धरैं जाको प्रबल प्रताप । धरचो मेरु मन्दर मही मथेउ सिन्धु करि दाप ॥
मथेउ सिन्धु करि दाप प्रबल-हिरण्याछहि मारचो । मुर-मधुकैटभ - बधन सुयश जगमैं बिस्तारचो ॥
बिविध भाँति वसुधा सकल तुलसी प्रतिपालन करैं । दुरचौ होय नृप-रूप धरि सो नारायण धनु धरैं ८०॥
बिधि समान परचण्ड सो, आयो होय समाज । ज्यहि जगकी रचना करी, सरि सर गिरि गिरिराज ॥
सरि सर गिरि गिरिराज समुद सातहुं जिन बाँधे । ऊँच नीच जग सृष्टि प्रबल बलतैं ज्यहि साधे ॥
साधि वेद चारौ मुखनि रचो सकल ब्रह्माण्डसो । यह कोदण्ड सोइ धरै विधि समान परचण्ड सो ॥८१॥
की पुनि शंकर धनु धरै, ज्यहि विष कीनो पान । त्रिपुर दनुज दाहन जगत, हतो एक ही बान ॥
हतो एक ही बान मदन - तन रिसमैं जारचो । चन्द गगन शिर धरै शूल सूरज ज्यहि मारचो ॥
मारचो दुख सब जगतको जगत सबै पलमैं हरैं । आयो जो नृप रूप धरि की पुनि शंकर धनु धरैं ॥८२॥
गणनायक सो होय जो सो धनु धरै प्रमान । जाको पूजै प्रथम सुर विघ्न - हरणकी बान ॥
विघ्नहरणकी बान ध्यान हरि-हर-विधि साधैं । ज्यहि सुमिरनते सिद्ध सिद्धि-योगहि अवराधैं ॥
अवराधैं गिरिजा-सुवन फल पावहिं सुख जोहि जो । सो पिनाक यह कर धरै, गणनायक-सो होयजो ॥
शशि सूरज दिगपाल सब, सुर सुरपति महिपाल । यक्ष सर्प गन्धर्व मनु मनुज दनुज यम काल ॥
मनुज दनुज यम काल पितृ मुनि सिद्ध समाजै । गिरि समुद्र बहु मरुत जहाँ लगि सकल बिराजै ॥
सकल बिराजैं सब सुनत ज्यहि बल होय सो उठहुअब । धरि धनु प्रण पूरो करौ शशि सूरज दिगपाल सब ॥
बैठकतैं उठि उठि सजे सुनत भाटके बैन । अभिमानी मानी महिप कियो हिये अति चैन ॥
कियो हिये अतिचैन देवबल इष्ट सँभारचो । कटिपट दृढ़ करि दण्ड भुजनि को जोर प्रचारचो ॥
जोर प्रचारि निहारि भट अरुण नयन आसन तजे । कहा धनुष-तृण, प्रण कहा बैठकतैं उठि उठि सजे॥८५॥
धनु न नयो, बरु कटि नयो तमकि छुये धनु आनि । पाँव नवै शीशहु नवै, भई प्रबल बलहानि ॥
भई प्रबल बल हानि मान मुख सबको सूख्यो । तनमैं चल्यो प्रस्वेद अधर दल विद्रुम रूख्यो ॥
रूख्यो विद्रुम वदन भो, देह दशा विह्वल भयो । लोचन मन दूनो नये, धनु न नयो, कर कटि नयो ॥८६॥
एक तजैं एकै धरैं करैं अनेक उपाय । बैठे ठाढ़े मध्य धरि, धनुष हुँचाउ न खाय ॥
धनुष हुँचाउ न खाय बिरद बन्दीगण बोलैं । बैठहिं शीश नवाय नयन पलकैं नहिं खोलैं ॥
बयन करेरे भाट कहि, मातु जने कहुं तरु-तरे । कोदौ कणौ अहारकै, एक तजै एकै धरे ॥८६॥
धनु धन सबको हरि लयो मति गति नाम सदाप । यश कीरति बल बीरता धीरज तेज प्रताप ॥
धीरज तेज प्रताप नियम व्रत धर्म सुकर्मनि । अस्त्र शस्त्रकी हारि रूप द्युति लाज काज गनि ॥
लाज काज पर गाज धरि राजनि धनु कर-सौं छियो । रीते बीते सब भये धनु धन सबको हरि लियो ॥८८॥
गाजि गाजि धनु कर धरचो लाजि,लाजि गे भाजि । साजि साजि बल दल सबै राजा राज-समाजि ॥
राजा राज समाज भये मुख गोवन - लायक । सम्पति सबै गँवाय करचो शंकर धनु-धायक ॥
धायक आसन पर गये जनु तन बल धनु छलि हरचो । लाजि लाजि बैठे सकल गाजि गाजि कर धनु धरचो॥
धनु सुमेरतैं गरु भयो उठै न कोटि उपाय । तिल न टरै भूपति लरैं धरैं अरैं लपटायँ ॥
धरैं अरैं लपटायँ जायँ गड़ि अधिक धरामैं । जम्यो शेषके शीश ईश जनु चढ़चो कलामैं ॥
कला-रूप कैलासको धरणि रूप धनुको लयो । उदय अस्तगिरि भार धर धनु सुमेरुतैं गरु भयो ॥९०॥
क्रोध बचन बोले जनक, नृप बल पौरुष देखि । प्रण प्रमाण देखन सबै, आये भूप बिशेखि ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आये भूप बिशेखि मनुज सुर असुर सभामैं। तिल भरि सके न टारि शंभु-धनु धरचो धरामैं ॥
धरा न छूटी धनुषतैं बल न करचो भूपति तनक। बीर धीर धरणी नहीं क्रोध बचन बोले जनक ॥९१॥
प्रण हमार मिथ्या भयो, जाहु सकल नृप धाम। बिधि न रच्यो बैदेहि-बर, पुरुष न कोऊ बाम ॥
पुरुष न कोऊ रह्यो न प्रण धरतो कहा। कन्या रही कुमारि हास्य जगमैं महा ॥
हास्य भई बसुधा सकल शूर हीन सब जग ठयो। जनक सभामैं कह वचन प्रण हमार मिथ्या भयो ॥९२॥
लखनलालको लाल मुख, सुने जनककै बैन। फरके अधर प्रलापको, अरुण भये दोउ नैन ॥
अरुण भये दोउ नैन जोरि कर भे उठि ठाढ़े। करुणानिधिकी ओर बचन बोले रिस बाढ़े ॥
बाढ़े रिस कह सुनु जनक ! बचन कहौं रघुवंश रुख। राम कृपालु समाज-महँ लखनलाल कह लाल मुख ॥
कहा धनुष जीरण धरो, यह पुरुषारथ कौन। प्रभु आयुसु पावौं तनक धरौं चौदहों भौन ॥
धरौं चौदहों भौन मही घट चट-पट फोरौं। मन्दर-मेरु उपारि समुद्र बसुधा सब बोरौं ॥
बसुधा बोरौं समुदमैं समुद रसातलमैं भरौं। शेष केश धरि महि करषि कहा धनुष जीरण धरौं ॥९४॥
महि-स उठाऊँ धनुष यह, जो प्रभु आयसु होय। दिग्गज चारि यकत्र करि, महीधरन पुनि सोय ॥
महीधरन पुनि खैंचि लोक चौदह धरि आनौं। हिमगिरि अरु कैलास धनुष ऊपर धरि तानौं ॥
तानौं सकल समाज नृप चढ़ि चढ़ि डारहुँ भार कह। धाय सहस योजन मही-सहित उठावौं धनुष यह ॥९५॥
जनक हिये सकुचे सहमि, डरे सकल महिपाल। दिग्गज धरथर छूटिगो भयतें दिशि यमकाल ॥
भयतें दिशि यम-काल, जानकी हिय हर्षानी। गुरु रघुपति मन तोष कही सुन्दर मृदु बानी ॥
महि कंपति प्रण लखनके सूरजके मन सुख भयो। सभा सशंक प्रमाण सुनि जनक शीश सकुच्यो नयो ९६
कौशिक मुनि आयसु दयो, सुनहु राम रघुबीर। धनुष उठावहु बाम कर, हरहु जनककी पीर ॥
हरहु जनककी पीर सभाको शोच निवारो। सुर सज्जन सुख लहहिं दुष्ट-मुख कीजिय कारो ॥
कारो मुख महिपाल सब ज्यहि धनु निज करसौं छियो।सो धनु करौ मृणाल इव कौशिक मुनि आयसु दियो९७
करि प्रणाम रघुवंशमणि उठे यथा मृगराज। आयसु माँगेउ जोरि कर सुषमा छबि सिरताज ॥
सुषमा छबि सिरताज मंचतें चले गोसाँई। पुर जन पुण्य सँभारि देव दुन्दुभी बजाई ॥
दुन्दुभि बाजीं अति घनी,बन्दीजन धन धन्य भनि। मध्य बेदिका पर गये करि प्रणाम रघुवंशमनि ।९८।
पटकत धनु लक्ष्मण लख्यो, जान्यो प्रभु मन बात। कह्यो धरणि धारौ सबै, सजग हूजिये गात ॥
सजग हूजिये गात धनुषको धका दरेरो। जो महि चलती सृष्टि बिकलता सबको हेरो ॥
हेरौं मैं रघुवंशमणि लेत धनुष मनमैं सख्यो। लटकत मही सँभारियो पटकत धनु लक्ष्मण लख्यो ९८
बाम अँगूठा पाँय दबि, बाम हाथ गहिलीन। दमक दामिनी ज्यों करै, सबके नयन मलीन ॥
सबके नयन मलीन खैंचि कीनो नभनाईं। शब्द भरचो ब्रह्मांड खण्ड द्वै धरचो गोसाईं ॥
धरचो गोसाँई शंभु धनु शब्द सुने योगी जगे। खण्ड खण्ड धनु तन भयो बाम अँगूठाके लगे ॥१०९॥
शिव शिव वृषभ पुकारई, धनुष शब्द सुनि घोर। दिग्गज दिगपालन भयो, हृदय कम्प अति जोर ॥
हृदय कम्प अति जोर कम्प कैलास ईस-थल। शिव शिर सुरसरि-धार उछलि आकाश गयो जल ॥
गयो सुजल आकास-थल उमा गणेश विचारई। कहा भयो कैसो भयो, शिव शिव वृषभ पुकारई १०१
जय जय जय रघुवंश-मणि सुर फूलन वर्षाय। वेद विप्र वन्दी विरद नारी मंगल गाय ॥
नारी मंगल गायँ सिया जयमाल उठाई। शोभित प्रभु उर मध्य बिश्व कीरति जनु छाई ॥
कीरति गावहिं सिद्ध मुनि बल प्रताप छबि रूप भनि। सतानन्द आनन्द कह जय जय जय रघुबंसमनि १०२

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नृपगण भये मलीन सब सन्त भये आनन्द। जनक सोच संकट गयो सिया मातु सुख छन्द ॥
सिया मातु सुख छन्द निछावरि मणिगण देहीं। राम-सिया-छबि देखि प्रेमबश कीन न केहीं ॥
कीन न केहीं दान सब, समय शंभु धनु टूट जब। तुलसिदास संकट गये नृप मन भये मलीन सब १०३
महा मोद मिथिला पुरी राम कियो धनुभंग। खल मलीन सज्जन सुखद सुरस सुमन शुभ रंग ॥
सुरस सुमन शुभ रंग कपट भूपति मन माखे। लक्ष्मण उठे सक्रोध राम मारत बचि राखे ॥
बचि राखे रघुबीर नृप तिय प्रकटीं जहँ तहँ दुरी। राम सिया जोरी निरखि महा मोद मिथिलापुरी १०४
कर कुठार प्रशुराम तब आये सुनि धनु भंग। गौर रूप अनुरूप शिव जटा भस्म सर्वंग ॥
जटा भस्म सर्वंग देखि सकुचे सब राजा। लागे करन प्रणाम काल निज समुझि समाजा ॥
समुझि समाज पिनाक लखि कहे वचन अरि कामके। क्यहिं तोरचो बोलो तुरत कर कुठार प्रशुरामके १०५
तोरचो धनु रघुवंशमणि जाको प्रबल प्रताप। हानि कहा भइ रावरी कहिय प्रकट करि आप ॥
कहिय प्रकट करि आप देव द्विजवरकी नाँई। पूजिय मानिय तुम्हें, आपनी वृद्ध बड़ाई ॥
वृद्ध बड़ाई तबहिं जग गाय बिप्र पद पूजि भणि। देहु आशिषा प्रेमसों धनु तोरचो रघुबंसमणि १०६॥
काल वश्य बोलत कहा गुरुको धनुष विहंड। बिप्र न ऐसो, बाल ! सुनु नृप-कुल शिरको खंड ॥
नृप कुल शिरको खंड परशु कर तीक्षण धारा। धनु ज्यहिं तोरचो आज तासु भुज काटनवारा ॥
काटनवारा परशु यह ज्यहि काटे भूपति महा। त्यहि समेत रामहिं हतौं काल-वश्य बोलत कहा १०७
भूपति मिले न खेतमें तुम्हें बिप्र कुल देव। हते तुम्हारे हति गये ते द्विज पद बिन सेव ॥
ते द्विजपद बिन सेव क्षत्र धर्म्मनतें हीने। ते तुम काटे परशु क्रूर कपटी जड़ दीने ॥
जड़ दीने नृप तुम हते पाप-राशि नहिं चेतमें। ताते बाढ़े भवनमें भूपति मिले न खेतमें ॥१०८॥
क्षत्र - विहीनी महि करी परशु बार इकबीस। सो न विदित तोहिं बाल जड़ ! तुरत जाइहै खीस॥
तुरत जाइहै खीस बचन मुख बोलु सँभारे। गुरु गुनहीं भो मौन ताहि तू पीछे डारे ॥
पाछे बचहु न कालके बालक लखि करिवर टरी। परशु धार ज्यहि काटिहौं क्षत्रविहीनी महि करी॥१०९।
द्विज कुलके नाते डरौं सुनहु बिप्र ! सत भाव। नत क्षत्री कुलको सकल लेहुं तुरत अब दाव ॥
लेहुं तुरत अब दाव परशु धनु भूमि गिराऊं। धर्म बड़ो रखवार मारि द्विज पातक पाऊं ॥
पातक पाऊं शीशपर दूजे रघुपति कर डरौं। यमघर तुमहिं बसावतो द्विजकुलके नाते डरौं ॥११०॥
लै कुठार सनमुख धन्यो राम लखनकी ओर। कौशिक बरजो बालकहि मोहिं नहीं अब खोर ॥
मोहि नहीं अब खोरि करौं अब काल हवाले। परशु बन्यो सोइ हाथ बिपुल भूपति घर घाले ॥
घर घाले शिर-मालिका शंकरको पूजन कन्यो। अब चाहत तव शिरहुको लै कुठार सनमुख धन्यो १११
राम कही कर जोरिकै, भृगु-कुल-कमल-दिनेश। बालक दीन बिचारि उर, क्रोध न कीजिय लेश ॥
क्रोध न कीजिय लेश बाल अपराध - बिहीनो। धनु मम करतें टूट चूकसों महीं अधीनो ॥
महीं अधीनो कर्म बस बाँधिय दीजिय छोरि कै। दास बिचारि प्रभाव मोहिं,राम कही कर जोरिकै ११२
शंभु - दण्ड खण्डित कन्यो सो भुज खण्डहुं आज। जो कर परशु प्रचण्ड लखि कटे अवनिके राज ॥
कटे अवनिके राज बचहुं नहिं दीन उपायन। क्षत्रबंश तन पाय बचन मुख मृदुल सुभायन ॥
मृदुल सुभायन क्यों बचौ धनु तोरत नहिं तब डन्यो। अनुज सहित भुज काटिहौं शंभु-दण्ड खण्डित कन्यो ११३
क्षत्रबंश द्विज मानिये लखन कही हँसि बात। हमपै पाप न होय द्विज ! जननी कीन्हीं घात ॥
जननी कीन्हीं घात ताहितें मन अति बाढ़ो। बड़ बैरी रण हत्यो बिरद पायो शिर गाढ़ो ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गाढ़ो पायो पाप शिर तासौं रिस नहिं ठानिये । तुम्हें मारि को अघ लहै क्षत्र बंश द्विज मानिये ।११४।
रे ! कुठार कुण्ठित भयो गयो स्वभाव सक्रोध । अरि प्रचण्ड दहि अवनि नृप कीन्हौं हृदय प्रबोध ।।
कीन्हौं हृदय प्रबोध अछत अरि देखत ठाढ़े । उत्तर सुनत सरोष मोर हृदि ज्वालन बाढ़े ।।
ज्वालन बाढ़े जरत उर घोर धार को लै गयो । काटि काटि कण्ठनि कुतरु रे कुठार कुण्ठित भयो।११५
जो रघुपति आयसु करैं तौ द्विज देहुँ देखाय । रणमण्डनकी कठिनता तुमको देउँ बताय ।।
तुमको देउँ बताय परशु धन लख्यो तुम्हारो । भूमि शेषमैं पारि, मारि बारन उर फारौं ।।
बारन उर फारों समुझि बिप्रघात पातक परैं । सभा समेत विचारिये जो रघुपति आयसु करैं ।।११६।।
लखन वचन कहि धनु लियो नैन सैन करि राम । बरजे, तुम बालक निपट, भृगुपति सब गुणधाम ।।
भृगुपति सब गुण धाम ताहिसों समसरि कीजे ? जाकी पदरज सेव्य आपने शिर धरि लीजै ।।
शिर धरि लीजे रिस कृपा, अनुज सिखावन प्रभु दयो । मुखरुख राम निहारि नत लखन बचन कहि धनु लियो११७
अस समर्थ भृगुबंशमणि सुर-रक्षक द्विजपाल । महिमण्डल इकईस गनि करी निक्षत्र बिशाल ।।
करी निक्षत्र मही सकल दई बिप्रके हाथ । रुधिरकुण्ड तर्पन कियो तेई भृगुकुलनाथ ।।
तेई भृगुकुलनाथके चरण शरण सेवहु सुमति । अभय होय तिहुँ लोकमहँ अस समर्थ भृगुबंशपति ११८
जाके पदरजके धरे मुद मंगल कल्याण । अभयकरन संकटदरन गावत बेद पुराण ।।
गावत वेद पुराण कल्पतरु - सम सुखदाता । हरिहर पूजत जाहि परम सुखदानि बिधाता ।।
दानि बिधाता जानिके निशि दिन सेवन जे करैं । अर्थ कर्म कामादिकी पद रज सुख जाके धरैं ११९
काल व्यालता सो डरत जाके इन पद प्रेम । यहै क्रिया यह योग है यहै योग जप नेम ।।
यहै योग जप नेम कपट तजि मन बच कायक । सोइ सुकृती सोइ शूर जाहि द्विज भक्ति अमायक ।।
मायक छल तजि पूजि पद तन मन धन सेवा करत । जीव-जाल दुखमाल सब काल-व्याल कासौं डरत१२०
सो त्रिलोक पावन परम जिनके द्विज पद प्रीति । बिभ्रम श्रम ताको नहीं दिशा बिदिशि सब जीति ।।
दिशा बिदिशि सब जीति मोह रिपु कटक भगावै । यशदायक गुण - ग्राम, राम अनुजहिं समुझावै ।।
राम बुझावै अनुजको क्षत्रबंश याही धरम । पदरज नित हित शिर धरैं,सो त्रिलोक पावन परम१२१
राम सिखावन दुहुँ सुन्यो लखन और भृगुबंश । मति गति सुरति सँभारि उर ब्रह्म सच्चिदानन्द ।।
ब्रह्म सच्चिदानन्द भयो नृप सुत अवतारी । शारँग करमैं दियो बिबिध बिनती अनुसारी ।।
बिबिध भाँति पातक लगै कटुक बचन मनमैं गुन्यो । परशुधरन पुनि लखन हू राम-सिखावन दुहुँ सुन्यो१२२
नृप सभीत उठि उठि चले परशुराम गति देखि । आशिष भृगुपति देय करि आनँद लह्यो बिशेखि ।।
आनँद लह्यो बिशेखि जनकपुर-जन सब रानी । बंदी मागध सूत उच्चरहिं मंगल बानी ।।
मंगल बानी पुर भई बाजि उठे दुन्दुभि भले । सन्त सुधा सुरगण मुदित नृप सभीत उठि-उठि चले१२३
समय पाय कौशिक कहेउ जनक महीप बुलाय । सजहु सकल मंगल सुभग दशरथ नृपति बुलाय ।।
दशरथ नृपति बुलाय ब्याह कुलरीति सँभारो । माँड़व रचहु बिचित्र नगर गृह गली सँवारो ।।
गली सँवारहु अगरमय सब कुतर्क संशय दहेउ । चार पठाइय अवधपुर समय पाय कौशिक कहेउ १२४
सतानन्द अवधहि चले लग्नपत्रिका हाथ । हीर नीरयुत मणि पदिक सकल सुमंगल साथ ।।
सकल सुमंगल साथ देखि रघुपति पुर पावन । भूपति लियो हँकारि दीन्ह पत्रिका सुहावन ।।
दीन्ह पत्रिका नृप लखी राम ब्याह मंगल भले । गृह गृह बजे बधाव पुर सतानन्द अवधहि चले १२५
राम-जानकी ब्याह सुनि साजी भूप बरात । रथ तुरंग मातंग घन गज-घण्टा घहरात ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

गज घण्टा घहरात दुन्दुभी धुनि चहुँ-ओरन। मंगल भरि भरि थार भामिनी गान झकोरन॥
गान झकोर प्रमोद पुर सुरतिय जय-जय सुमन धुनि। दशरथ धौं सुरपति सज्यो राम-जानकी ब्याह सुनि १२६
कुल बिचार व्यवहार करि गुरु-आयसु नृप पाय। मिथिलापुरको मग लियो भूप निशान बजाय॥
भूप निशान बजाय सगुण सुन्दर शुभ पाये। बीच बास करि बिविध जनकपुर भूपति आये॥
भूपति आये जनकपुर अति उछाह आनन्द भरि। दुहुँ समाज संगम सुभग कुल बिचार व्योहार करि १२७
उमा रमा ब्रह्मायणी, पतिन सहित पुर आय। राम जानकी रूप-छबि, देखनको ललचाय॥
देखनको ललचाय निरखि दशरथके बारे। मन बच क्रम बश प्रेम भये सब देखनहारे॥
देखनहारे भे मगन रिधि-सिधि मंगलदायनी। सिय बिबाह-हित कर्म सब उमा रमा ब्रह्मायनी १२८
सुथल भूप डेरा दियो कौशिक लक्ष्मण राम। पाय खबरि पितु आगमन चले हर्षि गुणधाम॥
चले हर्षि गुणधाम मुदित भेंटे रघुराई। मुनि-पदरज धरि भूप भरत भेंटे दोउ भाई॥
भेंटे पुरजन गुरु-द्विजन राम देखि पूरण हियो। रिधि-सिधि सब मंगल लिये सुथल भूप डेरा दियो १२९
सखि! नृप-सँग द्वै और सुत, गौर सुभग सुठि श्याम। लखन अनुहरे एक हैं एक सत्य जनु राम॥
एक सत्य जनु राम कहैं जे नयन निहारे। वैसहि बदन मयंक, नयन वैसहि रतनारे॥
वैसहि लक्ष्मण-राम छबि तैसे बल छबि! देह दुत। नाम भरत रिपुहन कहत सखि नृपसँग द्वैऔर सुत १३०
सखि! बिदेह समुझै हिये तौनि रूपमैं कीन। चारहु कुँवर बिबाहिये यहि पुर नृप परवीन॥
यहि पुर नृप परवीन दीन बिधि चारि सगाई। जस कन्या तस कुँवर योग शिव दीन मिलाई॥
दीन मिलाय महेश बिधि बड़ो योग जपतप किये। तौ सब पुर सुकृती समुझि सखि! बिदेह समुझै हिये १३१
चारि कुँवर तिरहुति चलैं पाय सुभग ससुरारि। कहुँ दिन दस कहुँ मास भरि देखि तृप्त नरनारि॥
देखि तृप्त नरनारि जाहिं पुनि दुलहिनि चारी। कछु दिन वै उत रहैं जनक बोलिहैं कुमारी॥
जनककुमारी आय हैं अवध छाँड़ि अपने थलैं। बनि बनि दिन दस बीसमैं चारि कुँवर तिरहुति चलैं १३२
ये बातैं बड़ि पुण्यतैं सखि! पुरवैं त्रिपुरारि। तौ बिरञ्चि हमहित रच्यो सुकृत बूट दिन चारि॥
सुकृत बूट दिन चारि चारि नृप कुँवर बिवाहौ। माड़व तरे निहारि लेहु जग जीवन लाहौ॥
जीवन-लाहौकी अवधि यह सुख देखहिं धन्य ते। बिधि रुख नृप उर जो बसैं ये बातैं बड़ि पुण्यतैं १३३
सखि! सुकृती ताही गनैं राम लखन छबि देखि। तातैं पुर सुकृती बड़ो आये कुँवर बिशेखि॥
आये कुँवर विशेखि नारि-नर भे सुख भारे। दर्शनफल तत्काल भूप दशरथहिं निहारे॥
दशरथ राम निहारि कै दूलह दुलहिनि पुनि बनै। यह विवाह देखहिं सुनहिं सखि! सुकृती ताही गनै १३४
ब्याह घरी बिधि लिखि दई वर्षि सुमन सुर गाय। राम विवाह उछाह बड़ देखन चले बजाय॥
देखन चले बजाय सतानँद जनक बुलाये। दशरथ-सहित बरात जनक-मन्दिर चलि आये॥
मन्दिर चलि आये सबै पाँउड़ परि जय जय भई। करि उत्साह समाज शुभ ब्याह-घरी बिधि लिखि दई १३५
को बितान सुखमा कहै जिहि थल सुषमा आहि। नटत किंकरी लक्षमी रुख जुगवत पल जाहि॥
रुख जुगवत पल जाहि जहाँ दुलहिनि वैदेही। बिधि-हरि-हर यम इन्द्र होत चितवैं हित तेही॥
चितवैं हित तेही कृपा दूलह श्रीरघुपति रहैं। समधी दशरथ जनक-सम, को बितान सुषमा कहैं १३६
इन्द्र ब्रह्म दूनो मिले, बन्दी वर्णत भाय। सब समाज सब साज सो हमैं प्रतक्ष दिखाय॥
हमैं प्रतक्ष दिखाय यहै उपमा जिय आवै। नारि सहित सुकुमारि राम ब्याहन सुख गावै॥
राम ब्याह सुख देखही अमरावति संयुत चले। निज निज पुर सुरगण सहित इन्द्र ब्रह्म दूनो मिले १३७

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम सुभूषित जगमगे माड़व मध्य समाज। माथे मुक्ता मौर छवि नखत सहित निशिराज ॥
नखत सहित निशिराज नारिनर देखत शोभा। रघुपतिमुख शशि शरद निरखि छवि तृप्त न को भा ॥
रघुपति मुखछबि शरदशशि नयन चकोरनि लखि लगे। मदन कोटि शत वारिये राम सुभूषित जगमगे ॥१३८
मुनि वशिष्ठ अरु सतानँद भरद्वाज जाबालि। अत्रि अगस्ति सुगर्ग ऋषि, कश्यप मुनि तपशालि ॥
कश्यपमुनि तपशालि देव ऋषि सनक - समेते। लोमश अरु चिरजीव व्यास पाराशर जेते ॥
पाराशर कौशिक सहित गौतम शुक उच्चरत पद। वेदमन्त्र करणी करैं मुनि वशिष्ठ ऋषि सतानँद ॥१३९
सूरज कुलगति सब कहैं पावक आहुति लेय। गणपति कर पूजा करैं, विधि विवाह कहि देय ॥
विधि विवाह कहि देय पवन पुनि शेष महेशा। सुरपति सुरगण सहित मगन ढिग लखत रमेशा ॥
लखत रमेश सुदेश छवि राम सबहि जानत रहैं। विप्रवेष वेदन पढ़ैं सूरज कुलगति सब कहैं ॥१४०
जनक मगन रानी सबै मुनि वशिष्ठ कहि दीन। सतानंद आनी सिया भूषण सजत नवीन ॥
भूषण सजत नवीन राम ढिग अस्थित कीन्हीं। मुनिवर अवसर समुझि शान्ति श्रुति मग कहि दीन्हीं ॥
दीन्हीं दुन्दुभि अति घनी सिय मण्डप आई जबै। दसरथ सभा समेत सुभ जनक मगन रानी सबै ॥१४१
जनक पायँ पूजन लगे शाखोच्चार उचारि। रानी नृप मन मोद भरि लै कोपर शुचि वारि ॥
लै कोपर शुचि वारि नारि वर मंगल गाई। कन्यादान-विचारि देव फूलन झरि लाई ॥
फूले तरु नृप सुकृतके चरण प्रछालत सुख जगे। निरखि बदन दम्पति मगन जनक पायँ पूजन लगे १४२
जे पदपंकज नृप धरे, शिवमानस जे हंस। जे पदपंकज मृदुल रस मुनि संकुल अलि बंस ॥
मुनि संकुल अलि बंस प्रगट कीन्हीं जिन गंगा। वरणत वेद पुराण प्रणत-हित विरद अभंगा ॥
विरद अभंग प्रसंग श्रुति मुनि-तियके पातक हरे। अज सनकादिक ते भजे जे पद-पंकज नृप धरे १४३
जनकराय-सम को सुकृत कहत देव मन-माहिं। निरखि मगन कौतुक परम जय जय कहहिं सिहाहिं ॥
जय जय कहहिं सिहाहिं बचन कहि चार सँवारे। नरनारिन लखि रूप नेहवश देह बिसारे ॥
देह बिसारे रूपको ब्याह लाह लोयन चकृत। कोशलेश मिथिलानगर जनकराय-सम को सुकृत १४४
होन लगीं वर भाँवरी दुलहिनि ललित ललाम। दूलह सुन्दर साँवरो शशिमुख पंकज राम ॥
शशिमुख पंकज राम बाम लखि मंगल गावहिं। मुनिगण भाँवरि-कृत्य करहिं गनि जियनि बतावहिं ॥
मगन मोद भाँवरि परै रानी तन मन बावरी। सब कुलचार विचार करि होन लगीं वर भाँवरी १४५
राम निछावरि को गनै मुक्ता मणि गण खान। मण्डप धन पूरो भयो जनु जवारि जव धान ॥
जनु जवारि जव धान जनक-मन्दिरतें आवैं। मुनि वशिष्ठके बचन नेग कहि ताहि दिवावैं ॥
नेग साधि आहुति दई ब्याह भयो सब कोउ भनै। देव भूप रानी जनक राम निछावरि को गनै १४६
जेहि बिधि राम बिबाह भो सो कहि सकहिं न शेष। सम्पति शोभा सुख सुभग मंगल मोद सुवेष ॥
मंगल मोद सुवेष साज सुभ सकल समाजैं। कहि कहि थके गणेश व्यास जिन श्रुति पथ साजैं ॥
श्रुतिपथ साजैं ते चकित मोद बिनोद उछाह भो। तुलसिदास सो किमि कहै जेहि बिधि राम विवाह भो १४७
जनक कीन जो मुनि कहेउ सब कन्यका बिवाह। भरत शत्रुसूदन लखन दूलह करे उछाह ॥१४७
दूलह करे उछाह नृपति दशरथ सुख पायो। रामब्याह विधि शोधि मुनिन देवनि करवायो ॥
देवनि करवायो सुकृति दूलह दुलही सुख लह्यो। जोरी चारि निहारि मुख जनक कीन जो मुनि कह्यो १४८
मघा मेघ दशरथ भये याचक दादुर मोर। सर सरिता द्विजगण भये बाढ़ि चले चहुँ ओर ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बाढ़ि चले चहुँ ओर शालि जनकादिक रानी। पुर परिजन भे कृषी सुखी सुख सुन्दर पानी॥
सुन्दर पानी बुन्द मणि भूषण पट वर्षत नये। राम सिया पावस सुखद मघा मेघ दशरथ भये॥१४६॥
वर कन्या राउल चले मुनि आयसु अस दीन। भूप समाज समेत सब जनवासे पग दीन॥
जनवासे पग दीन बजे दुन्दुभि अति भारी। दुलहिन दूलह ल्याय भवन आसन दै नारी॥
दूलह दुलहिनि सम निरखि रानी सुख सानी भले। रहस-विवश लहकौर कृत बरकन्या राउल चले॥१५०॥
रमा उमा गावन लगीं ले मातृनको नाम। धरि कपोल लहकौर-कृत करनि खवावत राम॥
करनि खवावत राम कुलाहल मंगल होई। नेह अनेक प्रकार सकुच-कहँ प्रकटत दोई॥
प्रकटत तिय बचननि कहैं रामसीय प्रेमनि पगीं। कहत कैकयी कौशिला रमा उमा गावन लगीं॥१५१॥
सिय सूधी तुम चतुर हौ रमा कह्यो मुसुकाय। मुनि-तियकी नाँई कहूँ कीजिय नहिँ रघुराय॥
कीजिय नहिँ रघुराय,सीय! सिख सुनहु हमारी। पद कबहूँ जनि छुयौ पगनिकी सुगति निनारी॥
नारी चारि बिवाहिये एक धनुष दलि गथ लहौ। रमा कहत रघुनाथसौं सिय सूधी तुम चतुर हौ॥१५२॥
हास-विलास-विनोदमय नेग-जोग करवाय। राम उठाये भवनतें शिविका रुचिर चढ़ाय॥
शिविका रुचिर चढ़ाय दुलहिनिन सहित सुहाये। दुन्दुभि देवन पुहुप राम जनवासे आये॥
जनवासे देखत मगन भूप दीन्ह लखि द्विरद हय। पोखे याचक विविध सुख हास-विलास-विनोदमय१५३
षटरस चारि प्रकारके भोजन विविध बनाय। सतानन्द आपुहि जनक दशरथ चले लिवाय॥
दशरथ चले लिवाय पाँवड़े अर्घ सुहाये। मणिसिंहासन रुचिर छ-रस भोजन परुसाये॥
भोजन परुसाये मुदित तियगण गान विहारके। मुनि दशरथ भोजन कियो षटरस चारि प्रकारके१५४॥
पान मान प्रमुदित दये भये विदा जनवास। गहगह बाजी दुन्दुभी मंगल मोद विलास॥
मंगल मोद विलास बरातिन मन्दिर भूले। जनक प्रीति रज सुदृढ़ रामछबि पावस भूले॥
भूले गज याचकन गृह पहिरि पाय मन्दिर गये। जान राय रघुपति सबहि पान मान प्रमुदित दये१५५
तीनि मास दशरथ रहे नित नव आदर होय। विदा-साज साजी जनक सबको मुख-रुख जोय॥
सबको मुख रुख जोय सहस दस स्यंदन साजे। मुक्तामणिगण सुपट भांड कञ्चनके राजे॥
मणिगण लागे अत्र जे ते ते रथपूरे लहे। जनकराज दायज सजे तीनि मास दशरथ रहे॥१५६॥
दिग्गज सहस पचासलौं सजे जरकसी साज। मणिमुक्ताकी झालरी झँपे सोह गजराज॥
झँपे सोह गजराज जरी जरकसी अमारी। तिमिर अरुण इक ठौर मनौ पावस अँधियारी॥
पावस अँधियारी सघन घण्ट शब्द सुरबासलौं। जनक राय दायज सजो दिग्गज सहस पचासलौं१५७
तुरी लाख दस बर सजे बरन बरनके जीन। रथ-तुरंग ते अति भले चञ्चल सुभग नवीन॥
चञ्चल सुभग नवीन अलंकृत भूषण राजे। बरन, निदरि मनवेग, रंग रंगनि बनि साजे॥
बनि बनि साजे बाजि वर जिहिँ देखे सुरहय लजे। जनकराय दायज सज्यो तुरी लाख दस बर सजे१५८
वृषभवृन्द दस लाखलौं सुन्दर सब गुणग्राम। शृंग अंग मण्डित पुरट सोहत ललित ललाम॥
सोहत ललित ललाम भये भोजन पकवाने। सौरभ मृगमद मलय अगर कुमकुमके थाने॥
अगर कुमकुमा रस भये झपे जरकसी आँखलौं। जनकराय दायज सज्यो वृषभवृंद दस लाखलौं॥१५९॥
महिषी लाख सतानने देश देशकी खानि। मनौ श्यामघनके सुवन मही चरैं सब आनि॥
मही चरैं सब आनि दूध धरनी धँसि धारै। शृंग कण्ठ मणिहार शिशुन प्यावत सुकुमारे॥
प्यावत सुकुमारै थननि दूध सुधार विधान वे। जनकराय दायज सज्यो महिषी लाख सतानवे॥१६०॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

धेनु लाख युग बानवे कामधेनुसी रूप । अलंकार मणिगण वसन सोहत परम अनूप ॥
सोहत परम अनूप दूध सूधी मुठि रूरी । संग शिशुनके वृन्द सकल शुभ लक्षण पूरी ॥
पूरी छविको को कहै जेहि देख्यो सोई जानवे । जनकराय दायज सज्यो धेनु लाखयुग बानवे ॥१६१॥
शिविका लाख बहत्तरी सिय-दासी असवार । मनहुँ कामतिय रति चढ़ीं करि षोड़श शृंगार ॥
करि षोड़श शृंगार जानकी पिय अधिकारी । मन गति-रति परवीन चतुर विद्या छबि भारी ॥
विद्या छबि सतभाव उर सिय सेवा उनमत्त री । दासी दायज नृप सज्यो शिविका लाख बहत्तरी१६२
सवा लाख पिञ्जर सज्यो कञ्चन-खचित विचित्र । शुक शारिका मराल बहु कुही बाज शुचि मित्र ॥
कुही बाज शुचिमित्र सिया रुचिकै प्रतिपाले । ते सेवक सब लिये जानकी सेवनवाले ॥
सेवनवाले भाग बड़ जगत-जननि जेहि जग सृज्यो । तासु संग यह कौन बड़ सवा लाख पिञ्जर सज्यो१६३
ऊँट अजा अरु श्वान-को लेखा गनो सिराय । जे प्रिय सियके नृप लख्यो नगर बाहरे जाय ॥
नगर बाहरे जाय मनहुँ अमरावति घेरी । दुन्दुभि दये सहस्र छत्र अरु चमर घनेरी ॥
चमर घनेरी भवन पट आसन विविध विधानको । दायज दियो नये गने ऊँट अजा अरु श्वानको ॥१६४॥
रानिन सुता सँवारिकै करुणा सीख सुनाय । पतिव्रत-धर्महिं दृढ़ धरेहु सेयहु सहज सुभाय ॥
सेयहु सहज सुभाय होहु नित स्वामिहि प्यारी । सदा सुहागिनि होहु यहै आशीश हमारी ॥
यहै अशीशा देहिं हम सुता अंग उर धारिके । मेंटि भेंटि पाँयन परैं रानी सुता सँवारिकै ॥१६५॥
जनक-नयन धारा बहै सुता लिये उर लाय । सिय कण्ठा छोड़त नहीं जनक न त्यागी जाय ॥
जनक न त्यागी जाय सचिव समुझावत राजै । धीरज धर्मपरान ज्ञान गुण ध्यान समाजै ॥
ध्यान-समाज न लाज रह छुटत लगत रोवत गहै । मातु गरे पुनि पितु गरे जनक नयन धारा बहै ॥१६६॥
बिदा हेत रघुबर गये जनकरायके धाम । रानिन लखि आसन दियो कीन्हें राम प्रणाम ॥
कीन्हें राम प्रणाम कहत मृदु वचन सुहाये । बिदा दीजिये मातु नृपति चह अवध सिधाये ॥
अवध सिधाये सुनत नृप रानी मुख सूखत भये । बचन न मुखपंकज कढ्यो बिदा हेतु रघुवर गये१६७
रानी रघुवर पाँय धरि कहत बचन भरि नैन । तुम्हें कहत मुनि योगि जन घटघट तुम्हरो ऐन ॥
घटघट तुम्हरो ऐन सकल गति जाननवारे । दीजिय प्रभु वर युगल प्यास यह हृदय हमारे ॥
हृदय हमारे तुम बसौ कहौं दूसरो विनय करि । सुता किंकरी राखिये रानी रघुवर पाँय धरि ॥१६८॥
करि प्रणाम रघुपति चले रामं-सहित सब भाय । सुता चढ़ाई पालकी सुन्दर सीख सिखाय ॥
सुन्दर सीख सिखाय भूप पहुँचावन आये । दुन्दुभि दीन बजाय मुनिन देवन गुण गाये ॥
गुण गाये पाये सबनि सगुन सुहावन अति भले । समधी भेंटि प्रणाम करि करि प्रणाम रघुपति चले१६९
अवध पाँचयें दिन गये बसि बसि सकल सुवास । पुर प्रमोद आवत सुने रहस-विवश रनिवास ॥
रहस विवश रनिवास पहिरि शृंगारन रानी । आरति मंगल साजि गीत गावहिं मृदु बानी ॥
बानी मंगल सजि सबै कलश चौक चामर नये । अवधनाथ सुखकी अवधि अवध पाँचयें दिन गये१७०
परिछन करि भीतर गई पुत्रबधू सुत साथ । मंगल मोद समाजयुत आये कोशलनाथ ॥
आये कोशलनाथ पुरी हर्षित नरनारी । पुत्रबधू सुत देखि मगन तन-मन महतारी ॥
महतारी वारहिं सुभग भूषण पट मणिगणमई । सुभग सिंहासन चारि धरि परिछन करि भीतर गई१७१
मुनिनायक जो जो कहेउ सो सो करि व्यवहार । दान दोन विप्रन मुदित भरि भरि कञ्चन थार ॥
भरि भरि कञ्चन थार भामिनी मंगल गावैं । रानी भूषण देहिं सकल आशिषा सुनावैं ॥
अशिष देहि सनेह भरि शम्भु उमा परसन रहेउ । राम भाय दशरथ सुखद रहैं सदा मुनि जो कहेउ१७२

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रामबिवाह बखानई मोदसमुद्र उछाह। नारद शारद शेष शुक गणपतिको अवगाह ॥
गणपतिको अवगाह व्यास बिधि कहि कहि हारे। मति अनुरूप बखानि भजनको भाव बिचारे ॥
मति अनुरूप बखानिकै गिरा सफल निज मानई। तुलसिदासके कौन मति राम-बिवाह बखानई ॥१७३॥

॥ इति बालकाण्डः समाप्तः ॥

अयोध्याकांड

अवध अनन्द प्रबन्ध सुख दिन अति अधिकाय। जबतें राम बिवाह करि आये कोशलराय ॥
आये कोशलराय भुवन सब आनँद रूरे। ऋधि-सिधि-सम्पति-नदी अवध-सागर भरिपूरे ॥
सागर सप्त समानलौं गयो शोक अरु दोष दुख। अमरपुरी अहिपुर धरणि अवध अनन्द प्रबन्ध सुख १
दशरथ-भाग सराहई सुर मुनिवर नरनारि। धर्मधुरीण प्रतापनिधि जिन पाये सुत चारि ॥
जिन पाये सुत चारि जासु जस वरणि न जाई। श्रीरघुपति मुख देखि हर्ष अति लोग लुगाई ॥
लोग लुगाई गुण गनत सारद सो सुख चाहई। पुरी भाग अनुराग सुर दशरथ भाग सराहई ॥२॥
नृपसों विनय सुनायके केकय-सुवन सप्रीति। भरत-हेतु विनती करी कहि मृदु वचन विनीत ॥
कहि मृदु बचन विनीत दिवस दस रहैं गुसाँई। मुनिहु कहे नृप पाहिं भूप पठये दोउ भाई ॥
मुनि रुखतें आयसु दियो भरत उठे सिर नायकै। केकयसुत ले भरत सँग नृपसों विनय सुनायकै ॥३॥
बिदा रामके चरण धरि भरत शत्रुहन भाय। माता गुरु भ्राता नृपहि, चले सबहिं शिर नाय ॥
चले सबहिं शिर नाय सुभट सेना सँग लीन्हे। श्रीरघुपति-पदकमल हृदय मन मधुकर कीन्हे ॥
मन मधुकर पद-कमल-रति सुमिरत नाम सनेह भरि। धन्य भरत भूतल भयउ बिदा रामके चरण धरि॥४॥
नारद आये अवधपुर रामचरित हित चाहि। प्रेम नेम जाके अवधि राम-रूप उरमाँहि ॥
रामरूप उरमाहिं राम देखत उठि धाये। पूजत विविध प्रकार जोरि कर प्रभु शिर नाये ॥
प्रभु शिर नाये बूझियो मुनि प्रकटी विधि हृदय जुर। कहन बिरञ्चि-संदेश सब नारद आये अवधपुर ॥५॥
रामबचन सुनि मुनि गये पाय बचन विश्वास। राम प्रकट माया करी सबके हृदय प्रकाश ॥
सबके हृदय प्रकाश गुरुहि नृप जाय सुनायो। राम-तिलक करि देहु नाथ सबके मन भायो ॥
सबके मन भायो सुखद सुनि वशिष्ठ आनँद भये। तिलक-साज साजो मुदित राम-बचन सुनि मुनि गये६
नृप बातें प्रकटीं सबै मुनि रघुवर समुझाय। नेम क्रिया ब्रत धर्म नृप तिलक वेद विधि गाय ॥
तिलक वेद विधि गाय कहेउ भूपतिहिं बुलाई। मंगल वस्तु मँगाय तिलककी धरी सुहाई ॥
धरी सुहाई कालि है रामराज्य बैठहिं जबै। बाजैं विपुल बधाव पुर नृप बातें प्रकटीं सबै ॥७॥
राम हेतु मंगल रची आनौ तीरथ नीर। पान फूल फल मूल तृण हय गय मणि धन चीर ॥
हय गय मणि धन चीर पुरी सुन्दरि रखि राखौ। बन्दनवार पताक कलश चौके अभिलाखौ ॥
अभिलाषौ कुमकुम अगर बीथी केरनिसौं सचौ। मणिमय दीप प्रकाशिये रामहेतु मंगल रचौ ॥८॥
देखि देव शोचत भये अवध रामको राज। दुष्ट-कष्ट को नाशि है निश्चय भयो अकाज ॥
निश्चय भयो अकाज सुमिरि शारदा बुलाई। राम विपिन-कहँ जायँ, मातु ! सो करहु उपाई ॥
राम विपिन कहँ जायँ जब करु उपाय बुधि बल भये। चरण गहैं, पालन करी, देखि देव शोचत भये ।९।
धिक धिक देवन कहि चली, आगे हेतु विचारि। अवध गई रानी जहाँ देखी सुमति सँभारि ॥
देखी सुमति सँभारि तहाँ परवेश न पायो। कण्ठ मन्थरा बैठि तासु चित हित भरमायो ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हित भरमायो तेहि सबै प्रिया कैकयीकी अली ।पुर-दुखदायिनि सी भई धिक् धिक् देवन कह चली१०
नगर देखि बातैं कही हित तोरनकी घात । मोहिं शोच इक उर भयो जो फुर मानहु बात ।।
जो फुर मानहु बात हितू हेतौ दुख जानै । काज नशात विचारि बिना पूछेहु बखाने ।।
बिन पूछे प्रभुके वचन इन बातैं पातक नहीं । उतर देत नहिं दोष है नगर देखि बातैं कहीं ११
इन ठौरनि, पूछे बिना कहै स्वामिसौं दास । सर्प अस्त्र अरि विष अनल अनिल कण्ट दुर्वास ।।
अनिल कण्ट दुर्वास अशन पथ अपथ जनावै । लाभ-हानि दुखदानि कहत पातक नहिं आवै ।।
लाभ हानि नहिं बोलई प्रभु आयसु रुख निशि दिना । स्वामि सुहागिलि देहि सिख इन ठौरन पूछे बिना १२
मोहिं भामिनी दुख भयो समुझि एक उतपात । सब पुरको नीको लगै तुम्हैं भरतको घात ।।
तुम्हैं भरतको घात बात नृपरानि विचारी । कालि राम नृप होहिं भई शोभा पुर भारी ।।
भारी विपति विचारिकै हृदय मोर दुखयुत तयो । भरत विदेश,नरेश पर मोहिं भामिनी दुख भयो १३
बिपति बीज अंकुर भयो बयो कौसिला रानि । पावस नृप उर देखि शुभ आयसु सुन्दर पानि ।।
आयसु सुन्दर पानि अवध थल सुत बल पाई । गुरु पुरजन भे वारि तुम्हैं नित कीन्ह उपाई ।।
कीन्ह उपाय सहाय सब भरत तेज तप सो गयो । चारि दिवस गत देखियो बिपति बीज अंकुर भयो १४
सत्य मानि रानी कहै कहु सखि मोहिं उपाव । भरत गये, असगुन भये, सो सब यहै प्रभाव ।।
सो सब यहै प्रभाव सुहृदसम मैं सब जानौं । सवति ईरषा छाँड़ि पुत्र पति आपन मानौं ।।
आपन मानि न कछु कहिय नृप मलीन उघरन चहै । हितू जगत मेरी तुहीं सत्य मानि रानी कहै ।।१५।
कहि सुखाय रानी बदन जनि मन करसि मलीन । द्वै वर तेरे नृप चहैं लेहि माँगि परवीन ।।
लेहि माँगि परवीन देखि दृढ़ बचन न डोलै । राम विपिन, सुत राज्य, सत्य करि नृपसन बोलै ।।
राम विपिन जब जाय हैं भरत भूप होई सदन । सवति हृदय यहि भाँति दहि कहि सुखाय रानी बदन१६
मन प्रतीति रानी भई लई सीख उर मानि । जो कछु मन रघुपति चहैं सोइ सत्य उर आनि ।।
सोइ सत्य उर आनि कोपके भवन सिधाई । दुर्गति करि तन दशा मनहुँ यमपुरतैं आई ।।
दशा मनहुँ नृप मरणकी धरणि कुलक्षणकी भई । देवि कुरीति सुप्रीति सिख मन प्रतीति रानी भई१७
का न करहि यह कर्मबल केहि जग यम नहिं लीन । पवन उगायो काहि नहिं को दुख दुखी न दीन ।।
को दुख दुखी न दीन मोह-मद केहि नहिं बाँध्यो । तृष्णा-ज्वर नहिं जरचो कामशर काहि न साध्यो ।।
काहि न साध्यो क्रोधबल केहि न छल्यो तरुणी तरल । चित चिन्ता-व्यालिनि यथा का न करहि यह कर्मबल१८
अवधपुरी अमरावली बाजैं विपुल बधाव । सबके उर आनन्द अति रामतिलक सतिभाव ।।
रामतिलक सतिभाव साँझ समया नृप पायो । सरल सुहृद नृप हृदय कैकयी गृह चलि आयो ।।
आयो सुनि रिसके सदन वदन पीत भय छावती । अवधनाथ सुरपति सरिस अवधपुरी अमरावती १९
सो दसरथ कम्पहि हिये काम प्रताप बलीन । जाके बश त्रयलोकमहँ केहि अनर्थ नहिं कीन ।
केहि अनर्थ नहिं कीन चन्द्र सुरपति गति देखो । नृप दिलीप मुनि शम्भु ययातिहि चित अवरेखो ।।
चित अवरेखहु कामबल तीनलोक भेदित किये । ताको शर नृप उर गड़्यो सो दशरथ कम्पत हिये २०
देखि जाय रानी बिकल भूमि शयन तन दीन । पट पुरान सूखे अधर नयन अरुणरँग पीन ।।
नयन अरुणरँग पीन मनहुँ दुर्दशा अनैसो । विपति नारिके रूप कुमति जसि प्रकटति तैसो ।।
प्रकटति वचनन बदन-महँ कुमति साज धरि छल कुथल । भूप समय पैठे भवन देखि जाय रानी विकल २१
क्रोध कौन कारण कियो गजगामिनि वरनारि । जोइ माँगहि सोइ देउँ तोहिं कामादिक फल चारि।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कामादिक फल चारि तोहिँ परतीति सदाई। तेरे सुखके हेतु तिलककी धरी शोधाई॥
धरी शोधाई तिलककी अवध लोग सुनि मुनि जियो। करि प्रबोध नृप, रानि ! कहु क्रोध कौन कारण कियो२२
उठि बैठी बोलत भई करि कटाक्ष मुसुकाय। भूप न जानै सुहृद हृदि नारि-चरितके भाय॥
नारि चरितके भाय बिधिहु नहिँ जाननहारे। द्वै बर थाती देहु और हम तजे तुम्हारे॥
तजे तुम्हारे दानिता कहौ शपथ खाँचौ नई। फिरि न टरै कहि उच्चरौं, उठि बैठी बोलत भई २३
शपथ सत्य लखि कहि चली बचन अमंगलमूल। देहु एक बर प्रथम यह भरत राज्य अनुकूल॥
भरत राज्य अनुकूल दूसरो माँगहुँ साँई। चौदह वर्ष बिशेषि राम बन मुनिकी नाँई॥
मुनिकी नाँई जाहिँ बन कालहि राम तौ अति भली। मोर मरन अपनो अयस सपथ सत्य लखि कहि चली २४
सुनि भूपति उर अति दल्यो वज्र हृदय जनु लाग। मुख सुखान लोचन सजल प्राण बिकल भय भाग॥
प्राण बिकल भय भाग मूँदि राखे दोउ लोचन। शोक दाह उर दहत कहत कछु बनत न शोचन॥
बनत न शोचन मुख बचन मनहु प्रेत कर्मनि छल्यो। धुनत शीश व्याकुल सिथिल सुनि भूपति उर अति दल्यो२५
भये बिकल सुनि नृप ! कहा बचन लगे जिमि बान। सत्यसंधता मन किये कह्यो देन बरदान॥
कह्यो देन बरदान बचन किन कह्यो सँभारे। कौशल्या-सुत सुवन, भरत नहिँ सुवन तुम्हारे॥
भरत सुजन पठये कुथल राम-तिलक आनँद महा। साधेउ छल तस फल लहौ भये बिकल सुनि नृप कहा २६
नयन उथारे नृप कहत समुझि प्रिया बर माँगु। भरत भूपको तिलक पुर तामेँ लगै न दागु॥
तामेँ लगै न दाग राम बन पठवति काहे। कौन लाग अपराध राम सब साधु सराहे॥
साधु सराहे नारि-नर अब अचर्य छाती दहत। तातै समुझि बिचारि करु नयन उघारे नृप कहत २७
ये न बचन टरिहैँ नृपति ! मरहु उजरि पुर जाय। अयश अवध बिधना करहि अघ रविबंश नशाय॥
अघ रविबंश नशाय होय पुर काल हवाले। कलह कपटकी आगि अवनि मकु जाय पताले॥
मकु पताल अवनी धँसै रवि शशि रँगहिँ उलटि गति। बिधि हरि हर आपुहि कहैँ ये न बचन टरिहैँ नृपति २८
अनल चन्द वरषै कबहुँ, शीतल सूरज होय। शेष तजे धरनी धरन, समुद बिना जल जोय॥
समुद बिना जल जोय शम्भु शिर चन्द्र प्रजारे। तिमिर दहै रबि रूप बृद्ध कर दण्डहि डारै॥
दण्डहि बिधि जग सृष्टि सब नारायण मिटि जाहिँ कहुँ। ये न बचन नरपति टरैँ अनल चन्द बर्षैँ कबहुँ २९
राज्य न चाहैँ भरत पुर लागो तोहिँ पिशाच। मोरि मृत्यु बोलत बचन तब मुख चढ़ि शिर साँच॥
तव शिर चढ़ि करि साँच राम नृप होवहिँ भारी। तुहि कलंक दुख मोर मिटहि कबहुँक नहिँ नारी॥
नारी करि चित चाहिकै बचन मोर जिय जानि फुर। राम भूप सेवक अनुज राज्य न चाहैँ भरत पुर ३०
बसी अवध नृप राम हैँ यह जानत सब कोय। मोर मरन भो भामिनी यह सुख लख्यौ न सोय॥
यह सुख लख्यौ न सोय सत्य जिय जानेसु भामिनि। मीन जिये बिनु बारि राम-बिनु जियौं न यामिनी॥
जियौं न यामिनि दिन वृथा जानि मरण परिणाम है। तू अभागिनी तनु लियो बसी अवध नृप राम है ३१
राम राम कहि नृप गिरचो कुमति न मानी बात। अवध बधाव अनन्द बड़ नींद न लागी रात॥
नींद न लागी रात कलहि शुभ घरी सुहाई। देख्यो जाय सुमन्त भूप गति मति बिकलाई॥
मति बिकलाई देखिकै लखि कुचाल आतुर फिरचौ। आये राम लिवायकै राम-राम कहि नृप गिरचो ३२
पितु उठाय बोले बचन नृपति लीन उर लाय। नयन नीर धारा झरै बचन बोलि नहिँ जाय॥
बचन बोलि नहिँ जाय राम पूछी महतारी। कहति कठोर कुबैन कथा करणी कटु भारी॥
कटु भारी सो हेतु सुनि तन प्रसन्न कह मृदु बचन। लघु उपदेशत दुख महा पितु उठाय बोले बचन ३३

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राउर चरण प्रतापतें बन मुद मंगल मोहिँ। मुनि तीरथ देवन दरश मोर परम हित होहिं ॥
मोर परम हित होहिँ जात दिन बिलम न लागै। आतुर ऐहौं अवध धरन पुनि चरन सभागै ॥
धरन चरन पुनि आयहौं आयसु देइय आपते। कुशल क्षेम घर आयहौं राउर चरण प्रतापते ३४
उत्तर कढ़ेउ न भूप मुख राम धरे नृप-पाँय। कुबचन कुमति कठोर कटु मातु कहत मुसक्याय ॥
मातु कहत मुसक्याय हृदय छोड़त नहिँ राजा। करि प्रबोध शिर नाय बिपिनको साजि समाजा ॥
साजि समाज प्रसन्नमुख गहे मातुपद प्रेम सुख। राम चलत व्याकुल गिरचो उत्तर कढ्यो न भूप मुख ३५
मातु गोद मोदति भरे कहति बचन आनन्द। कलहि तिलक नृप सुख सज्यो कितिक बार सुखवृन्द।
कितिक बार सुख-वृन्द लाभ लोचन सब लूटी। सिंहासन सिय सहित निरखि रवि-शत-द्युति छूटी ॥
रवि-शत द्युति छूटी अवध मधुर लाल! भोजन धरे। न्हाय खाउ बड़ बार भो मातु गोद मोदति भरे ३६
राज बिपिनको मोहिं दयो जहाँ मोर बड़ काज। राउर चरण-प्रतापतें कुशल आइहौं साज ॥
कुशल आइहौं साज मातु! आशिष मोहिँ दीजै। जात दिवस नहिँ बार हर्षि मन आयसु कीजै ॥
आयसु कीजै हर्षिकै मातु-चरण प्रभु शिर नयो। कह मृदु दुहुँ कर जोरिके राज बिपिनको मोहिँ दयो ३७
सहमि सुखानी सुनि बचन सिया धरे पग आय। राम बुझाई जानकी बिपिन बिपति सब गाय ॥
बिपिन बिपति सब गाय सुनत लक्ष्मण उठि धाये। कहि-कहि बिबिध प्रकार लखन-सिय प्रभु समुझाये ॥
समुझाये प्रथमहिँ सिया करि बिबेक बन प्रिय सदन। उत्तर कछुक न सिय दयो सहमि सुखानी सुनि वचन ३८
धरि धीरज कह जानकी मन समुझिय रघुराय। कण्टक बन दावा अनल अनिल ब्याल दुख-दाय ॥
अनिल ब्याल दुख-दाय व्याघ्र वृक अहि गज घेरे। सूकर भालु पिशाच बिषम बन भय बहुतेरे ॥
बहुतेरे उतपात जे उर न दहै भय आनकी। प्रभु-बियोग छाती दहै, धरि धीरज कह जानकी ३९
बिपिन आपु सँग अति सुखी डारि पात तरु छाँह। गिरिगन सरि सरवर मुदित क्षुधा तृषित नहिँ दाह।
क्षुधा तृषित नहिँ दाह निरखि पदकमल तुम्हारे। श्रम-पथ तनिक न लेश सकल बिधि प्रभु रखवारे ॥
प्रभु रखवार बिचारिये तजे जीव जानिय दुखी। त्यागिय नाहिँ विवेक करि बिपिन आपु सँग अति सुखी४०
प्रभु मुखपर नहिँ प्रण करौं उत्तर दीन्हे पाप। तजौ तौ कहा बसाय पिय समुझि बिचारिय आप॥
समुझि बिचारिय आप प्राण तन त्यागि निवारौं। प्रभु सँग जाइय धाय देह घर राखिय डारौं ॥
राखिय डारौं देह घर बहुत कहत पातक डरौं। सत्य मन्त्र मन दृढ़ धरचो प्रभु मुखपर नहिँ प्रण करौं ४१
तुम लक्ष्मण मानौ कही, राम सिखावन देत। मात पिता पुर शोच सब नाशहु, बसौ निकेत ॥
नाशहु बिघ्न अनेक, अवधपुर भरतहु नाहीं। भूप वृद्ध, नर-नारि दुखित मम दुख मनमाहीं ॥
दुख मनको दूषण तजौ, मानि मन्त्र राख्यो सही। दूषण देइहिं मोहिँ नर, तुम लक्ष्मण! मानौ कही ४२
प्रभु बनमैं हौं घर रहौं आयसु तज्यो न जाय। प्राण बायु मम बश नहीं देह कहौ तहँ जाय ॥
देह कहौ तहँ जाय भार यह कापर डारौ। मैं सेवक शिशु कुमति चरण-रज-सेवनवारौ ॥
सेवनवारौ रज चरण धर्म नीति मग किमि लहौं। अवध काज मेरो कहा? प्रभु बनमैं, हौं घर रहौं ४३
मातु-चरण रघुबर नये, बिदा माँगि कर जोरि। अश्रु-धार धाई धरणि माता कहति बहोरि ॥
माता कहति बहोरि कठिन उर फाटत नाहीं। ठाढ़ी देखत नयन राम सुत कानन जाहीं ॥
कानन जाहिँ विशेखिकै सबके सुख सुकृत गये। भेंटि लाय उर यह कह्यो मातु-चरण रघुबर नये ४४
गुरु-पाँयन पुर सौंपिके लीन लखन - सिय साथ। चले भूप-मंदिर जहाँ, विदा-हेतु रघुनाथ ॥
विदा-हेतु रघुनाथ राय उठि हृदय लगाये। नयन-धार अन्हवाय राम बहु बिधि समुझाये ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

समुझाये नृप राम बहु सिया प्रेम उर तोपिकै । लखन भेंटि भूपति गिर्‍यो राम चले गुरु सौं पिकै४५
करि प्रणाम रघुपति चले त्यागि अवध सुखमूल । सबको सार सँभार करि मेटि मोहमय शूल ॥
मेटि मोहमय शूल लोग सब व्याकुल भागे । राम विरहको आगि नारि-नर उठि सँग लागे ॥
सँग उठि लागे नारि-नर काल कर्म गुण दल दले ।शिर धुनि रानि बखानि कटु,करि प्रणाम रघुपति चले४६
भूप बुलाय सुमन्तको सिख दै दयो पठाय । सुनत सचिव आतुर चल्यो स्यन्दन तुरत बनाय ॥
स्यन्दन तुरत बनाय विनय करि राम चढ़ाये । तमसा-तीर निवास प्रथम दिन रघुपति आये ॥
प्रथम लोग तजि प्रभु उठे सचिव साधि रथ तन्तको । गए राम जिय जानि सब संग बुलाय सुमन्तको४७
राम विरह दावा अनल भयो अवध बन घोर । पुरवासी खग मृग भये रहैं सुखी सब ठौर ॥
रहैं सुखी सब ठौर कैकयी भई किराती । ज्वाल बई चहुँ ओर जरति निशि दिन तन छाती ॥
अवधि मेघकी आश उर रहि न सकत तप कठिन थल । सो उपाय व्रत जप सुहृद रामविरह दावा-अनल४८
राम गये सुरसरि निकट केवट परम हुलास । बचन सुमन्त बुलायकै बोले राम प्रकाश ॥
बोले राम प्रकाश तात ! अब अवध सिधावैं । पितुपद गहि मम ओर कुशल सब बिधि समझावैं ॥
समझाये कहि कोटि बिधि तदपि परयो संकट बिकट । चले कर्मबश सचिव पुर राम गये सुरसरि निकट४९
माँगी नाव निहारिकै राम कहे मृदु बैन । सुनत बात केवट कहै सुनिये राजिवनैन ॥
सुनिये राजिवनैन रावरी पदरज खोटी । मानुष बनि उड़ि जात काठकी गति है छोटी ॥
गति है छोटी मोरि प्रभु बात कहौं डर डारिकै । रज मानुष-कर मूरि कछु माँगहु नाव निहारिकै५०
तरनि होत मुनिकी घरनि मरै सकल परिवार । कोटि करौ बातन छरौ कहौ बचन शत बार ॥
कहौ बचन शत बार नाव नहिं तुम्हैं छुआऊँ । अपने कुलकी हानि होय जो तुम्हैं चढ़ाऊँ ॥
तुम्हैं चढ़ाऊँ नाथ ! जब चरण प्रछालौं निज करनि । बिन धोये न चढ़ायहौं तरनि होय मुनिकी घरनि५१
चरण प्रछाल बिलम्ब कह राम कह्यो मुसक्याय । पानी आन्यो दुहुँ करनि धरचो कठौता लाय ॥
धरचो कठौता लाय पाँय पुनि धोवन लाग्यो । देवन वर्षैं फूल कहत, यहि सम को भाग्यो ॥
यहि सम बड़भागी कहा शिव-विरञ्चि पद-कमल चह । धन्य धन्य कहि सकल सुर चरण प्रछाल कुटुम्ब सह५२
कीन पार परिवारको चरण-सुधा-जल प्याय । पीछे पार उतारियउ निज कर कोशलराय ॥
निज कर कोशलराय उतरि सिय सहित बहोरी । केवट लीन बुलाय लेहु उतराई थोरी ॥
उतराई थोरी लहो तोहिं भयो श्रम पारको । दीन देखि मोहिं दीन बहु पार कीन परिवारको ५३
ते पद धोये आजु मैं शिव विधि योग कमाहि । जिन चरणनको शेष श्रुति बरणत निशिदिन जाहि ॥
बरणत निशिदिन जाहि प्रकट कीन्हीं जिन गंगा । अशरण शरण पुनीत पगनिको बिरद अभंगा ॥
बिरद अभंग प्रमाणको धोये जनक समाजमैं । सकल सिद्धि सिद्धन दई ते पद धोये आज मैं ५४
बिमल भक्ति बर दै चले राम लखन सिय संग । वन गिरि सरि सर ग्राम पुर देखत मिरिग बिहंग ॥
देखत मिरिग बिहंग ग्राम पुर निकसहिं जाई । देखि कहहिं नरनारि राम-सिय सुन्दरताई ॥
राम-सिया सह अनुज युत देखि भाग तिनके भले । प्रेम नेम जप योग-फल बिमल भक्ति बर दे चलै ५५
एक कहत मुख चन्दसौं भामिनि भावत मोहिं । कला कोश शशि शीतकर सीता कलित सजोहि ॥
सीता कलित सजोहि श्याम रेखा शशिमाहीं । सिय मुखपर लट श्याम सुभग वरणत कवि ताहीं ॥
वरणत कवि मृग अंक कहि यह मृगनयन अनन्दसौं । ताप हरत यह शशिमुखी एक कहत मुख चन्दसौं५६
एक कहति मुख कमल-सौं और न पटतर ताहि । अरुण सुबासित अति मृदुल सो सियसुख अवगाहि ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सो सियमुख अवगाहि शीत युत वह यह सीता। कवि वरणत हैं वाहि याहि मुख सुयश पुनीता ॥
सुयश पुनीता दुहुनको भ्रमर मित्र युग सुथलसो। और कहाँ उपमा लगै, एक कहति मुख कमलसो ५७
सीतामुख सो मुख कहौ कमल चन्द्र सो नाहिं। कमल मन्द है रजनि द्युति चन्द मन्द दिनमाहिं ॥
चन्द मन्द दिनमाहिं राहु हिम शत्रु सदाई। सीतामुख - सरि नाहिं लोक तिहुँ खोजहु जाई ॥
लोक तिहूँ-महँ विदित है घटै बढ़ै निशिदिन लहौ। कमल चन्द पटतर कहाँ सीता मुख-सौं मुख कहौ५८
एक कहैं पुर धन्य है मातु पिता पुनि धन्य। जिन देखे ते धन्य हैं जहाँ जात धन-धन्य ॥
जहाँ जात धन धन्य विटप गिरि सरि सर जेते। खग मृग निरखत धन्य बसत थल बैठत तेते ॥
बैठत तेते संग हँसि बोलत चितवत धन्य हैं। धन्य पन्थ वन धन्य हैं हम देखत अति धन्य हैं ५९
राम लखन सीता सहित देखि प्रभाव प्रयाग। न्हाय, दान दीन्हें द्विजन प्रीति सहित अनुराग ॥
प्रीति सहित अनुराग दरश-सुख सबहिन पाये। दुख सुख सबको देत आपु ऋषि आश्रम आये ॥
आश्रम आये सुनत ऋषि भरद्वाज आनँद लहित। आसन आदर मुनि करचो राम लखन सीता-सहित६०
राम तुम्हारे दरसतें यह फल प्रकट दिखात। नेम प्रेम जप योग तप तीरथ व्रत दुख-गात ॥
तीरथ व्रत दुख - गात आज सब सुफल हमारे। राउर आगम लहत नयन मुख सुखद निहारे ॥
सुखद निहारे सुख भयो तीरथ राउर परसतें। भयो मोद मंगल परम राम तुम्हारे दरसतें ॥६१॥
भोर प्रयाग नहायकै राम लखन सिय साथ। चले मनोहर मनहरन वन्दि चरण मुनिनाथ ॥
वन्दि चरण मुनिनाथ मदन रति ऋतुपति मानौ। ब्रह्म जीवके मध्य लसत माया छवि जानौ ॥
माया छवि लय देखि धौं उमा शंभु गणनायकै। चले किधौं सुरपति शची भोर जयन्त लिवायकै।६२
पन्थ चरित सिय रामको सब सुख मंगलदाय। राम लखन सिय दरसतें खग मृग सुखी सुभाय ॥
खग मृग सुखी सुभाय परम पदके अधिकारी। को न लहै सुख सकल सुखद वर वदन निहारी ॥
वदन निहारि सुप्रेममय भरचो परम सुख धामको। गिरि तरु खग मृग नारिनर देखि चरित सिय रामको६३
वालमीकि आश्रम गये सिया लखन रघुराय। आये मुनिवर मिलनको भेंटे हृदय लगाय ॥
भेंटे हृदय लगाय पूजि परिपूरण कीन्हें। आसन आदर देय फूल फल अंकुर दीन्हें ॥
अंकुर दीन्हें अमिय सम अस्तुति आनँद मन भये। सकल सिद्ध साधन सुफल बालमीकि आश्रम गये ६४
जाके हित मन - गो-त्रसित साधत साधन धाम। मोह-मदादिक गुण तजै अहनिशि जागत याम ॥
अहनिशि जागत याम जाप तप योग विरागै। मानस ब्रह्मणि रूप रहत निशिदिन अनुरागे ॥
निशिदिन अनुरागे रहै ज्ञान ध्यान मन्दिर लहित। सो प्रत्यक्ष मूरति लखी जाके हित मन-गो-त्रसित६५
राम कह्यो कर जोरिकै मुनिनायक सुनि बैन। आश्रम पावन दीजिए जहाँ करौं शुचि ऐन ॥
जहाँ करौं शुचि ऐन दिवस कछु तहाँ बिताऊँ। जानत कारण सकल कहा कहि प्रकट जनाऊँ ॥
प्रकटि जनावौ आश्रमन देहु मुनीश निहोरिकै। चलिय कृपा करि देहु मुनि!राम कहेउ कर जोरिकै६६
सुन्दर गिरिगण सरित बन देखि जाय मुनि संग। कहत महातम परम थल देखि होय दुख भंग ॥
देखि होय दुख भंग सुखी खग-मृग-बनचारी। तरुवर फलित विभाग सुधासम सुन्दर वारी ॥
सुन्दर जल थल निरखि यह चित्रकूट मंगल भरित। पावन करिय बिहारथल सुन्दर वन गिरिगण सरित६७
राम लखन आश्रम करचो चित्रकूट सिय संग। मनहु विपिन बसि तप करत रति ऋतुराज अनंग ॥
रति ऋतुराज अनंग राम लखि सुख बनचारी। भरि भरि दोना सफल भेंट धरि बदन निहारी ॥
बदन निहारि निहारि सब मगन सदन मंगल भरचो। विपिन भयो कामद सुखद राम-लखन आश्रम करचो६८

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अब सुमन्त अवधहि चले राम बिदा जब कीन। रथ न चलहि रघुबर-विरह सचिव भयो दुख दीन ॥
सचिव भयो दुख दीन शिथिल रथ हाँकि न पायो। विकल विषाद निहारि अवध केवट पहुँचायो ॥
केवट गृह आयो बहुरि साँझ पाय अवसर भले। हानि गलानि बिहाल उर अब सुमन्त अवधहि चले ६९
कहु सुमन्त ! कहँ राम-सिय ? उठे विकल नरनाह। सचिव हृदय भेंटेउ नृपति नयनन नीर-प्रवाह ॥
नयनन नीर-प्रवाह सचिव-सन बोलि न आयो। राम-सिया सन्देश सकल मुख कहन न पायो ॥
कहन न पायो मुख वचन ब्रह्मरन्ध्र-पथ कढ्यो जिय। लखन राम-सिय राम-सिय कहु सुमन्त कहँ राम-सिय७०
भूप-भवन रोदन परयो रानी पुर नर-नारि। अवधनाथ अथयो मनहुँ रवि निशि अवध निहारि ॥
निशि सम अवध निहारि गारि सब कुमतिहिँ देई। बिपति बियोग कुयोग कलह दृढ़ दीन्हेंसि तेई ॥
दीन्हेसि सबकहँ दुसह दुख जेहिके करतब नृप मरयो। हाय हाय लायो नगर भूपभवन रोदन परयो ॥७१॥
राखि भूप तन करि यतन कह वशिष्ठ समुझाय। दूत पठाये भरतपहँ आतुर चार बुलाय ॥
आतुर चार बुलाय भूप गति प्रकटेहु नाहीं। गुरू बुलाये भरत बेगि लै गवनहु ताहीं ॥
गवन कीन शिर नाय तब हय-गति मारग सुनि वचन। मुनि बुझाय रानी सकल राखि भूप-तन करि यतन ७२
गुरु सँदेश आये भरत अशकुन नगर नगीच। श्वान शृगाल उलूक खर बोलत असुभ कुनीच ॥
बोलत अशुभ कुनीच भरत मति गति थिति नाहीं। भरत देखि, नर-नारि बाम दाहिन चलि जाहीं ॥
बाम अवधपुर देखिकै दुख-ज्वरसौं छाती जरति। धरत पाँव डगमग परत गुरु-सँदेश आये भरत ॥७३॥
भूषण भाजन साजिकै सुत आगमन विचारि। लै आई कैकेयसुता सुत आरती उतारि ॥
सुत आरती उतारि भाय दोउ भ्रमतैं भूले। पियो न जल, थल बैठि शूलके अंकुर शूले ॥
अंकुर शूल विचारिकै कुशल पूछि निज राजिकै। बोलो सुत-दाहक वचन भूषण भाजन साजिकै ॥७४॥
कुशल राज्य सब काज मैं राख्यो पुत्र सुधारि। भई मन्थरा परम हित, दुख दूषण सब जारि ॥
दुख दूषण सब जारि राज सब तुमतैं जाग्यो। कण्टक भे सब दूरि अगम वर नृपसन माँग्यो ॥
अगम सुधारी बात मैं नृप सुरपुर सुख-साजमैं। कछुक बिगारयो बिधि यहै कुशल राज सब काजमैं ७५
राम-लखन-सिय बन गये, भरे भूप तेहि सोच। तुम-कहँ राज्य विलास अब कीजै छाँड़ि सँकोच ॥
कीजे छाँड़ि सँकोच होत सब बिधिको कीनो। मरन-जियन जग-रीति लेहु पुर राज्य नवीनो ॥
राज्य सुनत व्याकुल गिरयो रोदन करि मूर्च्छित भये। तात तात हा तात कहि राम-लखन-सिय बन गये ।७६
परे न कीरा मुँह जरयो वर माँगत जड़ तोहिँ। कुमति कठोर न नृप लखौ मिथ्या जन्मे मोहिँ ॥
मिथ्या जन्मे मोहिँ बाँझ तू भई न काहे। ऐसी कुमति कठोर कर्म करि मो उर दाहे ॥
दाहे उर खल वचन मुख राम विपिन-कहँ मन धरयो। को तू, काके रूप धर, परे न कीरा मुख जरयो ॥७७॥
पीतम मारत नहिँ डरी, बन पठये सिय-राम। प्रेत पिशाचिनि रूप तू भई कहाँकी बाम ॥
भई कहाँकी बाम राम तोहिँ अनहित लागे। जो हसि सो उठि बैठु ओट तजि आँखिनि आगे ॥
आँखिन आगे ते टरे धिक मैं जन्म्यौं जेहि घरी। राम सुवन पठये बनहि पीतम मारत नहिँ डरी ॥७८॥
आई दुखदायिनि तिया नाम मन्थरा जाहि। भूषण-भार सिँगारि तन रिपुहन लखि चख चाहि ॥
रिपुहन लखि चख चाहि दौरि पग कूबर मारयो। परी धरणि धरि केश घसीटत तनिक न हारयो ॥
तनिक न हारयो बीर तब भरत जाय रक्षण किया। उठे त्यागि कुल-दाहिनी आई दुखदायिनि तिया ७९
उठत कोशला गिरि परीं भरत देखि उठि दौरि। लीन्हें हृदय उठायकै आँगन गिरीं बहोरि ॥
आँगन गिरीं बहोरि रोय दीन्हें दुहुँ भाई। मातु लगाई कंठ अश्रुधारा नहवाई ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नहवाये चख-नीरतें बीर भरत धीरज धरी । विकल भरत समुझावती उठत कौशला गिरि परी॥८०
अञ्चल नयन लगायके आँसू पोंछति मात । तोहिं बिना सुत यह दशा उठन न पैयत गात ॥
उठत न पैयत गात राम-सिय बनहिं सिधाये । पुर परिजन भे विकल लखन-सिय बहु समुझाये ॥
बहु समुझाये नहिं रहे राम चले सँग लायकै । सुनत भरत जलसौं भरे अञ्चल पोंछति धायकै ॥८१॥
मातु जगत जन्म्यौं वृथा भई न केकयि बाँझ । राम सिया अप्रिय भयो, अयश-मूल जगमाँझ ॥
अयश-मूल जग-माँझ जासु हित यह गति तोरी । जन्मत हत्यो न मोहिं देइ विष माहुर घोरी ॥
माहुर दै मारचो जगत कुल कुठारि उपज्यो यथा । नृपगति यह,रघुपति विपिन मातु जगत जन्म्यो वृथा८२
सुर गुरु द्विज पातक परैं जो जानत यह बात । बाल-बालवध अघ अयश गाय-गोठ पुर घात ॥
गाय गोठ पुर घात मीत नृप माहुर दीन्हें । परधन परतिय-हानि परै अघ गोवध कीन्हें ॥
गोवध निंदा वेदकी पर अपकारी अघ करै । जो जननी जानहुँ तनक सुर गुरु द्विज पातक परै ।८३॥
परघर अग्नि लगावहीं कुपथ पन्थ पग देयँ । बल करि तिय परधन हरैं रण भगि अपयश लेयँ ॥
रण भगि अपयश लेयँ मातु पितु विप्र न मानैं । हरिहर पदतें विमुख भूत-प्रेतन उर आनैं ॥
उर आनैं तीरथ कुकृत निज कुटुम्ब तृण लावहीं । जो जानौं सो अघ परै परघर अग्नि लगावहीं ॥८४॥
लोभ मोह फाँसे रहैं, साधु संग नहिं लेयँ । मीत बिप्र कुल कष्ट लखि अशन नीर नहिं देयँ ॥
अशन नीर नहिं देयँ कूप सर बाग विध्वंसैं । तन पोषक बिन तोष ग्रहत विष धन पर अंसैं ॥
पर अंसैं जे नित धरैं बचन बोलि छाती दहैं । तिनकी गति बिधि देहु जग लोभ मोह फाँसे रहैं ॥८५॥
ते नर जग होतइ मरैं करैं जन्म भरि पाप । रणमण्डल अपयश लहैं देहिं बिप्र गुरु ताप ॥
देहिं बिप्र गुरु ताप बसत घर जाय उजारैं । सन्तसभा नहिं बैठि मृषा मुख बचन उचारैं ॥
मृषा साखि जग उच्चरैं नित्य रारि उठि गृह करैं । राम-सिया जेहि प्रिय नहीं ते नर जग होतै मरैं ॥८६॥
तुम सुत शपथ न खाँचियो राम प्राण प्रिय तोहि । तुम रामहिं अति प्रिय सदा बिधि गति बाँकी होहि ॥
बिधि गति बाँकी होहि देहु दूषण जनि काहू । कर्म प्रधान किसान बवै लुनियत सोइ लाहू ॥
बयो लूनियत जगतमें भूप मरे हम बाँचिये । राम चले प्राण न चले तुम सुत शपथ न खाँचिये ॥८७॥
बड़े भोर मुनि आयके बैठेहि रैनि बिहानि । भरत बुझाय .बशिष्ठ मुनि भूप-क्रिया बिधि-आनि ॥
भूप-क्रिया-बिधि आनि दाह सरयू-तट दोन्हौं । रानिन केर प्रबोध भरत पाँयन परि कीन्हौं ॥
पाँयन परि करि कर्म सब तिल अञ्जलि कृत रायके । भरत सिखाये मृत करम बड़े भोर मुनि आयके ॥८८॥
हय गय मणि भूषण दये सिंहासन महिसाज । धेनु बसन आयुध चँवर छत्र पात्र सिरताज ॥
छत्र पात्र सिरताज स्वमति गति मुनि जस भाखी । शत शत कीन बिधान भरत करणी अभिलाखी ॥
करि करतूति प्रमाण जस सब प्रकार बिधिवत भये । शुद्ध सिद्ध करि काज सब हय गय मणि भूषण दये ।८९।
शुद्ध भये मुनिवर गये जहाँ राज-दरबार । नगर महाजन बिप्रजन सचिव सुभट सरदार ॥
सचिव सुभट सरदार बोलि पठई सब रानी । भरत शत्रुहन साथ बोलि लीन्हें मुनि ज्ञानी ॥
मुनि ज्ञानी बैठारि ढिग मधुर बचन बोलत भये । राजसभा दरबार सब शुद्ध भये मुनिवर गये ॥९०॥
नृपति प्रेम पूरण कियो तेहिको शोचिय नाहिं । जाको यश शशि शरदको को नहिं देखि सिहाहिं ॥
को नहिं देखि सिहाहिं भोग सुरपति-सम कीन्हें । राम बियोग कृशानु प्राण तेहि तृण धरि दीन्हें ॥
राम, लखन तुम शत्रुहन चारि सुवन लखि जग जियो । बिछुरि गयो सुरलोक बर नृपति प्रेम पूरण कियो॥९१
राम स्वभाव सनेहको कहिय कौन बिधि गाय । पितु आयसु तुरतहि उठे सब पुरजन समुझाय ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सब पुरजन समुझाय सिया लखनहिँ समुझायो। प्राण तजौँ यह जानि संग करि शोच न आयो ॥
शोच न आयो भूपको भूपति बचन अछेहको। धर्मशील गुण को कहै राम-स्वभाव सनेहको ॥९२॥
कठिन केकयी का कहौँ कहतहु कही न जाय। कुमति कुआगि बरायकै दीन्हौँ अवध लगाय ॥
दीन्हौँ अवध लगाय राम सिय बनहिँ सिधाये। पुर परिजन मन शोच भूप हठि प्राण पठाये ॥
प्राण गँवाये भूपबर भावी-गति को नहिँ दहौँ। विधि बिधिता अति कठिन है कठिन केकयी का कहौँ ९३
भूप-बचन प्रिय, प्राण नहिँ, भरत ! सुनौ सतिभाव। सो फुर कीजिय शिर धरिय धर्म स्मृति श्रुति गाव ॥
धर्म स्मृति श्रुति गाव तजे रघुवर जेहि लागी। मातु सचिव पुर लोग जरत ज्वर नाशहु आगी ॥
नाशहु आगी अवधकी अवधि लगे नृप राज्य लहि। दोष न कछु मानस करौ,भूप-बचन प्रिय, प्राण नहिँ ९४
कहत कौशला पाँय परि पूत ! सुनहु यह बात। भूप मरे रघुपति गये तुम यहि बिधि कदरात ॥
तुम यहि बिधि कदरात अबध उतपात विचारौ। काल कर्म गति बाम कुदिन मुख कीजिय कारौ ॥
कीजिय गुरु आयसु मुदित पुर परिजन सिर भार धरि। पालि, शोच सबको हरौ कहत कौशला पाँय परि॥९५॥
भरत नयन धारा चली सुनि गुरु-जननी बैन। हाथ जोरि बोले मधुर, जल उमड़े दोउ नैन ॥
जल उमड़े दोउ नैन सीख भलि दीन्ह गोसाँई। मातु कहेउ उपदेश मोहिँपर दया सदाई ॥
दया सदाईते कहत सचिव मातु गुरु हित भले। उतर देत पातक लहौँ भरत नयन धारा चले ॥९६॥
पाँयन पनहीँ नहिँ धरी राम बिपिन किय गौन। भूप मरे प्रण भूप करि ताको सोचब कौन ॥
ताको सोचब कौन घाव यह तीक्षण लाग्यो। यहै पीर नित दहत रैन भरि सोचन जाग्यो ॥
सोचन जाग्यौँ निशि सबै जाति सबै छाती जरी। राम लखन कटिपट तजे पाँयन पनहीँ नहिँ धरी ॥९७॥
प्रातकाल करिहौँ यहै सुनहु सत्य सब बात। धर्म जाय जग अयश लहि नरकहु दुख सहि गात।
नरकहु दुख सहि गात जन्म भरि संकट होई। सब दुख दावा दहौँ अनल बरु डारहु कोई।
डारहु कोय जुवाल ज्वर सकल दोष दुख भरि रहै। जाहुँ अनुजयुत बिपिन-कहँ प्रातकाल करिहौँ यहै ९८
शरण सामुहे देखिकै रघुपति करिहैँ छोह। शील स्वभाव सुस्वामिको समुहे जनपर मोह ॥
समुहे जनपर मोह रामसिय बाम न काहू। मैँ शिशु सेवक नीच कुमति उर प्रकटेउँ ताहू ॥
प्रकटेउ बिधि अघ अयश लै नीच दास शिशु लेखिकै। राम-सिया करिहैँ कृपा शरण सामुहे देखिकै ॥९९॥
भरत बचन लखि रबि जगे राम बिरह-निसि पाय। भूप-मरण केकयि कुमति तिमिर रहेउ पुर छाय ॥
तिमिर रहेउ पुर छाय मुर्छि सोवत नरनारी। लखन-सियाको बिरह व्याघ्र बृक गर्जत भारी ॥
गर्जत भारी भय बिकल तारागण मुनि द्विज लगे। दुखद सेज सोवत बिकल भरत बचन लखि रबि जगे१००
सबके मन सब सुख भयो, भरत भलो मत कीन। दुख-समुद्र बूड़त सकल जेहि अवलम्बन दीन ॥
जेहि अवलम्बन दीन सभा सब उठि भे ठाढ़े। रामचन्द्र सिय दरश मन्त्र नर बारिधि बाढ़े ॥
बारिधि बाढ़े लोग सब भरत मन्त्र सबही लयो। साजि-साजि बाहन चले सबके मन सब सुख भयो१०१
भरत साज साजत भये मातु सकल पुर-लोग। चले चित्रकूटहिँ भरत कृश तन राम-बियोग ॥
कृश तन राम-बियोग चले सजि साज समाजे। पाँयन पनही त्यागि शीश नहिँ भूषण राजे ॥
भूषण साजे त्यागिके भाय मातु सँग सब लये। राम-प्रेम पूरण भरे भरत साज साजत भये ॥१०२॥
तमसा-तीर निवास करि प्रात समाज-समेत। सुरसरि देखो जाय तब केवट कहत सचेत ॥
केवट कहत सचेत भरत सेना सँग लीन्हैँ। समुझि निषाद बिचारि कपट अन्तरमहँ दीन्हे ॥
अन्तर कपट बिचारिकै सजग होउ सब घाट धरि। राम जानि जन भरत सजि तमसातीर निवास करि१०३

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

राम-काज जूझहु सुभट भरत रामके भाय। मैं सेवक रघुबीरको लोहे देहुँ अघाय ॥
लोहे देहुँ अघाय सुभट - बिन कटक निहारौ। हय गय रथ जल बोरि पाउँ पीछे जनि धारौ ॥
पाउँ न पीछे कोउ धरहु राम काज अरु गंगतट। मोर निहोर बिचारिकै स्वामि काज जूझहु सुभट१०४
पहिरत अँगरी धनु धरत भई छींक गति बाम। सगुन सगुनिया कहि चल्यो सगुन सुमंगल-धाम ॥
सगुन सुमंगल-धाम भरत नहिँ कपट कुचाली। राम मनावन जाहिँ सँग लै मातु सुचाली ॥
संग मातु गुरु सचिव सब लोग राम शोचनि जरत। सहसा कर्म न कीजिये पहिरत अँगरी धनु धरत१०५
समुझि भेंट नृप लै चले खग मृग घनपट मीन। मिलन साज सब संग लिय पुरजन परम प्रवीन ॥
पुरजन परम प्रवीन मिल्यो मुनिबर-कहँ आगे। रामसखा सुनि भरत चले मिलिबे रथ त्यागे ॥
रथ त्यागे केवट कह्यो नाम जाति पुर जन भले। भरत चल्यो उमँगत नयन समुझि भेंटि नृप लै चले१०६
भरत कुशल पूँछी सबै केवट बिनती कीन्ह। अब पद-रज लखि कुशल सब प्रभु दर्शन जब दीन्ह ॥
प्रभु-दर्शनके लहत सकल दुख दूरि पराने। चलिये अपने पुरहि राम जस सेवक जाने ॥
सेवक कहेउ पुकारि मैं, मातुनि लखि सादर जबै। दै अशीष जनु लखन-सम हेतु कुशल पूछी सबै १०७
सब सुपास सबको भयो सुरसरि भरत अन्हाय। राम-सखा सेवा करी सबको बास दिवाय ॥
सबको बास दिवाय रैन सब तहाँ गँवाई। एकहि खेवा पार किये केवट उतराई ॥
उतराई सब सेनयुत चले प्राग मारग लियो। रामदरस लालच हृदय सब सुपास सबको भयो १०८
न्हाय प्रयाग प्रणाम करि, दान दीन सुख पाय। भरद्वाज आश्रम गये मिले पूजि बैठाय ॥
मिले पूजि बैठाय कह्यौ हम सब सुधि पाई। कस न करहु यह भरत प्रान सम प्रिय रघुराई ॥
प्रान समान सनेह पद,तजि गलानि जनि हृदय धरि। निशि ऋषि कीन सुपास सब प्रात नहाय प्रणाम करि
रामनाम रसना ललित ध्यान राम-सियरूप। श्रवण कथा रघुपति सगुण हृदय चरित्र अनूप ॥
हृदय चरित्र अनूप परत पग डगमग डोलैं। शिथिल सनेह गँभीर राम - सिय मुख भरि बोलैं ॥
मुख भरि बोलैं राम-सिय पन्थ अपन्थहु निश्चलित। वर्षत सुर जय जय कहत राम नाम रसना ललित११०
सुन्दर बन गिरि गण मुदित मृग विहंग कपि भाल। प्रमुदित प्रजा समाज सब राजा सुखद सुकाल ॥
राजा सुखद सुकाल सकल तरु फल सुखदायक। सुधा-सरिस सरि-बारि कर्म-अघ-औगुण-खायक ॥
औगुण छल दल दपट दुरि कपट द्विरद केहरि विदित। केवट भरत बताइयो सुन्दर बन गिरिगण मुदित१११
नाथ विटप बट तरु तरे कीन छावनी राम। सिया बनाई वेदिका निज कर ललित ललाम ॥
निज कर ललित ललाम राम शुभ आश्रम नीको। मुनिगण कहत पुराण, सुनत दिनकर-कुल-टीको ॥
दिनकर-कुल-मण्डन मही-दुख-खंडन कहि जय हरे। राम सिया लक्ष्मण लखौ नाथ!विटप बट तरु तरे११२
जाय भरत पाँयन परे त्राहि त्राहि भगवन्त। अशरण-शरण प्रताप जस आदि मध्य नहिँ अंत ॥
आदि मध्य नहिँ अन्त प्रणत जनरक्षक स्वामी। शील स्वभाव बिचारि शरण पद रज अनुगामी ॥
अनुगामी शिशु औगुणी धाय आनि प्रभु-पद धरे। त्राहि त्राहि रक्षक प्रभो जाय भरत पाँयन परे ११३
भरत प्रेम रघुवर शिथिल उठे शरीर बिसारि। धनुष तीर पट शिर मुकुट जटा दिये छिटकारि ॥
जटा मुकुट छिटकारि नयन उमँगे जलधारा। दुहुँ कर लियो उठाय मगन नहिँ देह सँभारा ॥
देह सँभार विचार तजि भाय लाय उरमैं विकल। देखि दशा सुरगण त्रसित भरत प्रेम रघुबर शिथिल११४
छोड़ि न भावत शिथिल दोउ भाय प्रेम परिपूरि। मन बुधि चित हित लायकै करि कुतर्क सब दूरि ॥
करि कुतर्क सब दूरि राम मुनि केवट भेंटे। लखन भरत पुनि मिले शत्रुहन उर दुख मेटे ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मेटि दुसह उर दाह दुख भरत शीश पद धरे दोउ । सकल सभा मुनिगण मगन छोड़ि न भावत मगन दोउ११५

केवट गुरु आगमन कहि राम उठे सब संग । धरे जाय मुनि-पद-कमल भेंटे मुनि धरि अंग ॥
भेंटे मुनि धरि अंग चले आश्रमहिँ लिवाई । मातन भेंटे आय मनहु शिशु - धेनु तुराई ॥
धेनु तुराई गति मिलीँ सिय सासुनके चरण गहि । रोदन करत विलाप करि केवट गुरु नृप-मरण कहि ११६
भये शुद्ध मुनि वचन कहि भरत राम सब भाय । सब समाज करुणा हरष मातु सचिव ऋषिराय ॥
मातु सचिव ऋषिराय भरत विनती उठि कीन्हीँ । श्रीरघुवर सर्वज्ञ सकल गति मति रति चीन्हीँ ॥
मति गति चीन्हि सनेह बस अवश करिय सोइ आजु लहि।चलिय अवध नृपता करिय भये शुद्ध मुनि वचन कहि११७

आयसु नृप वनको दयो, सोई धरि शिर आज । तुमको पितु पुरको दयो पूरण राज-समाज ॥
पूरण राज - समाज हमहुँ तुम आयसु कीजै । पालिय पितुको बैन जनम अभिमत फल लीजै ॥
अभिमत फल तिन जग लह्यो पितु-आयसु जिन शिर लयो।बचन न खण्डित सो करो आयसु नृप बनको दयो११८

जो श्रुति कहत सुसत्य है भरत कहत कर जोरि । पितु आयसु सिर राखिये परम धर्म शत कोरि ॥
परम धर्म शत कोरि तदपि पितु तिय-वश होई । सन्निपात अतिवात वारुणी सेवत सोई ॥
सेवत सोई रोगवश वचन कुयोग अपत्य है । समुझि नाथ कीजै उचित जो श्रुति कह सो सत्य है ११९
प्रभु-रुख लखि मन प्रण कियो गये गंगके तीर । जल उठाय संकल्प किय, जो न चलैँ रघुवीर ॥
जो न चलैँ रघुबीर, देह तृणसम तजि डारौँ । तन मन अर्पित देखि, गंग तिय-वेष सुधारौ ॥
वेष सुधारी एक मुख ढिग उपदेश सुधारियो । सुनु विवेक रामानुजे!प्रभुरुख लखि प्रणमन कियो१२०

सत्य सच्चिदानन्द हरि राम सकल सुर ईश । ताहि न सुत भ्राता गनौ सर्वोपरि जगदीश ॥
सर्वोपरि जगदीश शम्भु विधि हरि कारण-कर । पद पताल, शिर गगन,लोक कर,उर गिरि सरवर ॥
गिरि सरवर धर अंग सब भरण हरण थिति पूरि भरि। हठ न करौ आयसु धरौ ब्रह्म सच्चिदानंदहरि १२१

जन-पालन खलगन-दहन चले बिपिन सुरकाज । मही देव श्रुति द्विज बिकल मुनिपालन तप-साज ॥
मुनिपालन तप-साज जात दशकण्ठहिँ मारैँ । करि प्रमाण निज कर्म अवधपुर तिलक सुधारैँ ॥
तिलक राज लीला करहिँ मही मोद सुख निर्बहन ।उठहु राम आयसु करौ सुरपालन खलगन दहन १२२

शुभ आनन सुनिकै भरत मगन भये सुख-कन्द । भई अदृष्टि अशीश दै श्रवण सुधा सुभ छन्द ॥
श्रवण सुधा शुभ छन्द भरत आनन्द सिधाये । श्रीरघुबर पद-कमल प्रेम धरि शीश नवाये ॥
शीश नाय बिनती करी देहु पादुका शिर धरत । करत अटन तीरथ बिपिन शुभ आनन सुनि सिख भरत१२३

मगन समाज-समेत सो चित्रकूट बन देखि । सुखद राम वर बदन लखि जीवन सफल विशेखि॥
जीवन सफल विशेखि भरत श्रीराम बुलाये । बिदा-हेतु गुरु बचन कहे सब-कहँ समुझाये ॥
सब प्रबोधि भेंटे मिले चले समाज सनेहसौँ । अवधि आस पुर बास करि मगन समाज सनेहसौँ १२४

राम भरतके प्रेमको को कविवरणत पार । नेम क्रिया दृढ़ धर्म-व्रत कर्म परम आचार ॥
कर्म परम आचार वरणि सहसानन हारे । मति जड़ वरणहि काह, मसक नभ अन्त विचारे ॥
मशक अन्त किमि पावई गगन उड़े करि नेमको । तुलसिदास शठ क्यौँ कहे राम-भरतके प्रेमको १२५

बसे अवधपुर लोग सब, भरत बसे पुर त्यागि । नन्दिग्राम खनि अवनि थल व्रत मुनि निशिदिन जागि
निशि दिन मुनि व्रत साधि पादुका नृप करि सेवै । राजकाज शुभ साज करत, पूजत द्विज देवै ॥
देव मनावत अवधि-हित राम समागम होय कब । तुलसिदास मुनि व्रत धरे बसे अवधपुर लोग सब१२६

॥ इति अयोध्याकाण्डं समाप्तम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अरण्यकाण्ड

फटिक-शिला सुन्दर सुखद बैठे सिय रघुबीर । सुमन लखन आनहिँ सुभग, सुरभित सुमुख समीर ।।
सुरभित सुमुख समीर राम-सिय भूषण साजे । अंग अंग प्रति रुचिर कामरति लखि छबि लाजे ।।
लखि लाजे रति काम तन इन्द्रसुवन भरमे दुखद । परब्रह्म श्रीराम सिय फटिकशिला सुन्दर सुखद ।।१।।
समुझि मनुज अवगुण करचो हत्यो चौंच तन काग । रुधिर देखि, शर सुमनको कीन्ह क्रोध करि त्याग ।।
कीन्ह क्रोध कर त्याग लोक लोकन भ्रमि आयो । मति गति बिह्वल विकल मोह माया भरमायो ।।
मोह-अन्ध नारद लख्यो पाय सीख पाँयन परचो । त्राहि त्राहि रक्षा करो समुझि मनुज अवगुण करचो ।२।
एक आँखि करि प्रभु तज्यो कर्म कीन बड़ घोर । कृपानिधान समान को प्रणतपाल बरजोर ।।
प्रणतपाल बरजोर चरित सुर नर मुनि गावैं । चित्रकूट बस सुखन जानि सब आश्रम आवैं ।।
आश्रम विदित विचारिकै विपिन साज सब तन सज्यो । अत्रि जहाँ, आश्रम गये चित्रकूट-थल प्रभु तज्यो ।३।
ऋषि अनन्द भेंटत भये देखि लखन सिय राम । आसन बैठारे मुदित पूजे अभिमत-काम ।।
पूजे अभिमत-काम जानकी लै तन लाई । अनसूया पट दीन नित्य नूतन सुखदाई ।।
सुखदायक उपदेश दै पतिव्रत धर्मनि सब दये । आदर अस्तुति मुनि करी ऋषि अनन्द भेंटत भये ।४।
बिदा अत्रिसौं प्रभु भये सिया लखन रघुराय । चले बिपिन आगे सुखद महामुदित मन पाय ।।
महामुदित मन पाय सकल मुनि भये सुखारी । निर्भय जप तप करहिँ योग मख होम बिचारी ।।
होम बिचारि सँभारि हरि आशिष आदरसौं दयो । मंगलमय कानन भयो बिदा अत्रिसौं प्रभु भयो ।।५
बधि विराध मग सुख भये देखि जाय सरभंग । परिपूरण लखि रामछबि प्रेम प्रफुल्लित अंग ।।
प्रेम प्रफुल्लित अंग जोरि हर विनय बड़ाई । करि निहोर रचि चिता अग्नि चढ़ि दीन लगाई ।।
दीन अग्नि तन अर्पिकै राम लखन सिय उर लये । गयो धाम श्रीराम लखि बधि विराध मग सुख भये ।।६।।
मिले सुतीक्षण धायके पुलकि, नयन जलधार । जेहि बिधि शिव योगीश मुनि ध्यावत हृदय अगार ।।
ध्यावत हृदय अगार आज आये ते बन हैं । देखौं नयन सनेह पूरि मूरति सुख घन हैं ।।
अन्तर्यामी धारि मन मूरति नेह लगायकै । राम जगाये प्रेम परि मिले सुतीक्षण धायकै ।।७।।
संग गयो मगमैं चल्यो जात लखत प्रभु रूप । ऋषि अगस्ति आश्रम गये हर्षि सकल सुर भूप
हर्षि देखि सुर भूप मिले मुनि भाग बखान्यो । आसन आदर पूजि वेद प्रति मति प्रभु जान्यो ।।
जानि ठानि सुख मानि प्रभु मधुर बचन बोल्यो भल्यो । शुभ अस्थान बताइये संग गयो मगमैं चल्यो ।।८।।
शुभ गोदावरि सरितवर सुन्दर वट सुखधाम । पञ्चवटी आश्रम करिय अति पावन श्रीराम ।।
अति पावन श्रीराम हर्षि मुनिराज बताई । शुभ थल तरु मग देखि कुटी मंगलमय छाई ।।
मंगलमय कल्याण-थल राम लखन सिय शुभ चरित । कहत ज्ञान वैराग्य जनु शुभ गोदावरि वर सरित ।९।।
ज्ञान भक्ति वैराग्य जनु की विधि तिय सुत आप । महादेव गिरिजा गणप लीन्हैं कर शर चाप ।।
लीन्हैं कर शर चाप मदन रति ऋतुपति तीनौं । परमारथ अरु योग प्रीति जनु नर तन कीनो ।।
नर-तन कीनो बीररस शान्ति और शृंगार मनु । कमठ शेष सुरधेनु की, ज्ञान भक्ति वैराग्य जनु ।।१०।
मन मोह्यो मुख कहि वचन शूर्पनखा लखि राम । मदन-बाण उरमैं लगो सुनहु कुँवर घनश्याम ।।
सुनहु कुँवर घनश्याम मोहिँ दासी अब कीजै । हौं कुमारि छबिधाम भगिनि रावण गनि लीजै ।।
रावण-भगिनी जानिकै रमौ संग करिकै सदन । सुख सम्पति सिधि पाइहौ मन मोह्यो मुख कहि वचन११
सत्य कहौ बाणी मृदुल गजगामिनी विचारि । लखन कुँवारे बिन तिया, मेरे सँग यह नारि ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मेरे सँग सुनि नारि, लखनकी ओर सिधाई। लक्ष्मण कह्यो सक्रोध लाज तोहिँ तनक न आई ॥
तन मन लाज न तोहिँ कछु करति निलज ओरेहि सकुल। गई रामपहँ क्रोध करि सत्य कही वाणी मृदुल ।१२
हास्य समुझि धावत भई राम-बचन चित चाहि। धरे रूप व्यंकट बिकट, सभय सिया मनमाँहि ॥
सभय सिया मनमाँहि राम कहि लखन निहारे। लक्ष्मण लाघव कान नासिका काटि निवारे ॥
काटि निवारे अंग शुभ अशुभ अमंगल मुख भई। खर दूषण पहँ गइ विकल हास समुझि धावत भई १३
करि प्रबोध सेना सजी खर दूषण मन क्रोध। राम बुझाये लखनको, सिय गिरि राखिय शोध ॥
सिय गिरि राखिय शोधि, दनुजसेना यह आई। भानुयान छपि गये धूरि नभमण्डल छाई ॥
छाय धूरि नभमैं रही दुन्दुभि दीरघ अति बजी। सीतहि राखौ कन्दरा करि प्रबोध सेना सजी ॥१४॥
धरहु धाय बोले बचन लखि छबि दूत पठाय। नारि अग्र करि मिलहु नृप ! कहे दूत यह आय ॥
कहे दूत यह आय राम तेहि उत्तर दीन्हों। सुनि खर दूषण क्रोध सुभट लै दर्पित कीन्हों ॥
दर्पित डारहिँ अत्र बहु धरि सशूल असि शक्ति घन। मनहु मेघ बर्षत अचल धरहु धाय बोले वचन ।१५॥
राम साजि सारंग शर चले विशिख जनु व्याल। कटे विकट खल उर चरण भुज महि गिरहिँ कपाल॥
भुज महि गिरहिँ कपाल बिकल भाजहिँ लखि शायक। खलदल सभय सशोक निरखि खरदूषण धायक ॥
धाय क्रोधि शायक तजे रहे पूरि दिशि गगन धर। सजि पावक-शर जारि तम राम साजि शारंग सर१६।
खलदल - वृन्द निहारिकै प्रभु मन कीन विचार। रामरूप कीनो कटक सब लरि मरचो अपार ॥
सब लरि मरचो अपार एक एकन धरि मारैं। कौतुक लखि सुर मगन रामको चरित निहारैं ॥
चरित निहारि पुकारि सुर वर्षि प्रसून सुधारिकै। जय जय जय महिभारहर खलदल-मरन निहारिकै १७
खर दूषण त्रिशिरा परे शूर्पणखा लखि नैन। रोवत रावणकी सभा कहि कहि आरत बैन ॥
कहि कहि आरत बैन देशकी सुरति बिसारी। शिर अरि डेरा करचो खबर नहिँ तोहिँ सुरारी ॥
खबरि न तोहिँ निहारु मोहिँ,अंग सकल शोणित भरे। जुरे जाय भ्राता समर खर दूषण त्रिशिरा परे॥१८॥
ताहि संग बर भामिनी रति रम्भा छबि छीन। रमा भारती शिव-प्रिया लागहिँ सकल मलीन ॥
लागहिँ सकल मलीन कोटि शशि-सम द्युति शोभा। खग मृग पशु जड़ जीव वाहि लखि विकल न को भा॥
विकल नारि नर मुनि मगन तजत योग जप यामिनी। दामिनि बरणत द्युति कहाँ ताहि संग बर भामिनी१९
अवनि असुर खण्डित करैं प्रबल शत्रु बरिवण्ड। देखत बालक काल सम अति विशाल भुजदण्ड ॥
अति विशाल भुजदण्ड मदन जनु वेष सँवारे। मुनि मन भये अनन्द बिपिन बिचरत भय डारे ॥
भय डारे मुनि जय करहिँ खलदल दलि सुर दुख हरैं। भूप-कुमार अपार छबि अवनि असुर खण्डित करैं ।२०।
करि प्रबोध रथ चढ़ि चल्यो रावण मन अनुमानि। जहँ मारीच-स्थान शुभ मंत्र तंत्र मन ठानि ॥
मंत्र तंत्र मन ठानि गयो उठि आदर कीन्हीं। मारीचहु मन लख्यो कछू स्वारथ मन दीन्हीं ॥
स्वारथ घात बिचारि जिमि अंकुश धनु अहि छल छल्यो।नवै बिलारि बिचारि छल करि प्रबोध रथ चढ़ि चल्यो
तात हेतु स्वारथ करौ कथा समस्त सुनाय। हरहुँ बाम नृप-तनयकी बैर सकल बुझि जाय ॥
बैर सकल बुझि जाय होउ मृग कपट बनाई। भगिनी लखि दुख मोहिँ करहु बन मोरि सहाई ॥
मोरि सहाय बिचारिकै निज कुल मंगल मन धरौ। बात जात घातक भयो तात हेतु स्वारथ करो ॥२२॥
सुनु सुत याहि न नर गनौ मैं जानत बल ताहि। बिन-फर शर मोहिँ मारियो गयउँ समुद निरवाहि ॥
गयउँ समुद निरवाहि मारि ताड़का सुबाहौ। भंजौ शिव - कोदण्ड जनक - कन्यका बिबाहौ ॥
जनक-समाज नृपाल बहु मान मर्दि भृगुपति हनौ। ताहि बिरोध न कुशल है सुनु सुत ताहि न नर गनौ॥२३

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ज्ञान सिखावत मोहिं-कहँ मैं सुर-नर वश कीन। उत्तर देहि न उठि चलै डर डरात पुर तीन॥
डर डरात पुर तीन समुझि मन देखि विचारी। यहि मारे थल नरक, राम कर सुरपद भारी॥
सुर-पद भारी पाय हौं चल्यो नाय शिर राम तहँ। रावण आतुर चढ़ि चल्यो ज्ञान सिखावत मोहिं-कहँ२४
मायामय छाया करी सिय आयसु उर मानि। मृग देख्यो शुचि हेममय खचित रतन मणिखानि॥
खचित रतन मणिखानि लखत जानकी सुखारी। यहि हति सुन्दर छाल करिय प्रभु धनुशरधारी॥
धनुशरधारी मन समुझि जानत आगमको धरी। चले लखन सिय सौंपिकै मायामय छाया करी॥२५
मृग मारचो दूरी निकरि राम कठिन शर तानि। हा लक्ष्मण! प्रथमै कह्यो, पीछे राम बखानि॥
पीछे राम बखानि कहत जानकी बिचारी। कही लखनसौं बात भाय तव संकट भारी॥
संकटवश सुमिरत तुम्हैं, जाहु तुरत धनुबाण धरि। असुर-सैन्य अरिदल ग्रसे, मृग मारचो दूरी निकरि२६
राम न संकट कहुँ परै काल जुरै रणमाहिं। सकल सुरासुर लरि मरैं समर जीतिहैं नाहिं॥
समर जीतिहैं नाहिं शोच मनमाँझ निवारौ। राम दीनता बचन बदन कबहूँ न उचारौ॥
कबहुँ न संशय आनिये सत्य बचन मेरे धरौ। छली वेष निशिचर बिपिन राम न कहुँ संकट परौ२७
कह्यो बचन सहि नहिं गयो उठ्यो रेख धनु खाँचि। यती-वेष दशकंठ शठ आयो सिय ढिग याँचि॥
आयो सिय ढिग याँचि जानकी ताहि बुलायो। देन लागि फल मूल दुष्ट तब बचन सुनायो॥
बचन सुनाये सुखद कहि बँधी भीख नहिं कहुँ लयो। भावीवश सिय रेख लँघि, बचन कह्यो नहिं सहि गयो २८
रेख त्यागि सिय जब गई रथपर लई चढ़ाय। चल्यो गगन भयतें मगन इत उत देखत जाय॥
इत उत देखत जाय सिया रावण जब जान्यो। कहत पुकारि कृपाल नाथ! कहुँ दूरि परान्यो॥
दूरि परान्यो लखन कहँ मोहिं दशानन हरि लई। परी बिबश दशकण्ठके रेख त्यागि जब सिय गई २९
राम राम सुनि खग चल्यो गृध्र जटायू, देखि। रोक्यो रथ, रघुवर-तिया! दशशिर हरौं विशेखि॥
दशशिर हरौ बिशेखि मारि रथ भूतल डारचो। सीतहि लई छुड़ाय बिकल दशशिर महि पारचो॥
दशशिर पारचो भूमितल छत्र चूर उर थलहल्यो। मुकुट अस्त्र शस्त्रहि दपट राम राम सुनि खग चल्यो३०
अति रिस रावण रण रच्यो तीक्षण काढ़ि कृपान। दल्यो पक्ष महि खग गिरचो कहि मुख कृपानिधान॥
कहि मुख कृपानिधान साजि स्यन्दन सिय लीन्हीं। लै नभपथ फिरि चल्यो गीध विह्वल गति कीन्हीं॥
बिह्वल गति कपि सिय लखे नूपुर दै कपि कर सच्यो। तरु अशोकतर राखिकै अति रिस रावण फिरि रच्यो३१
लखन बात नीकी नहीं बन सिय आये त्यागि। असगुन मम मन होत अति सिय बिन उर बिरहागि॥
सिय बिन उर बिरहागि लखन पद गहि समुझाये। शोचत आश्रम देखि नयन उमड़े जल छाये॥
उमड़े जल छाये बिकल खोजत गिरि वन सर मही। रुधिर धनुष आगे परचो लखन बात नीकी नहीं३२
राम राम रसना रटै लख्यो गीधपति जाय। कही कथा सिय हेतु गति राम नयन जल छाय॥
राम नयन जल छाय गोद धरि बचन उचारे। परमारथ तुम तात! प्राणधन तृण करि डारे॥
तृण समान प्राणनि दयो, को पर-हित रणमहँ कटै। जियो भोग भोगौ जगत राम राम रसना रटै॥३३
दरस-लागि जीवन रहेउ भाग उदय रघुराय। जेहि बिरञ्चि शिव सेवहीं लियो गोद मोहिं आय॥
लियो गोद मोहिं आय, राम कहि प्राण गँवाये। भयो तुरत हरिरूप चारि भुज अस्त्र सुहाये॥
अस्त्र सबै सिर मुकुट वर पीताम्बर भूषण गहेउ। जोरि पाणि अस्तुति करत दरस लागि जीवन रहेउ।३४
परम धाम गो गीधपति क्रिया कीन्ह श्रीराम। चले बिरह-अंकुर भये विपिन शाबरी-धाम॥
बिपिन शाबरी-धाम अर्घ आसन सब साजे। धूप दीप फल सुजल धरे रघुपतिके काजै॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सब सप्रेम पाँयन परी दरस पाय पावे न गति । राम तुम्हारे रूप लखि परम धाम गो गीधपति ।३५।
काठ साजि रचिकै चिता सिय सुधि कही बहोरि । शबरी जरि सुरगति गई क्रिया करी प्रभु कोरि ॥
क्रिया करी प्रभु कोरि चले बन दूनौ भाई । मुनिगण मिलत अनेक दरस अभिमत फल पाई ॥
पावहिँ अभिमत जीव जड़ करहिँ योग जेहि प्रभु निता । साजि साजि सुरगति लही काठ शाबरी रचि चिता ३६
रामसिया खोजत गये पम्पा सुभग तड़ाग । सुन्दर जल तरु बिहँग मृग मुनिगण सदन सुबाग ॥
मुनिगण सदन सुबाग करत जप तप मन लाई । देखि सरोवर मुदित कीन मज्जन रघुराई ॥
रघुराई मज्जन करचो नारद मुनि आवत भये । तुलसिदास सुर सुभग सर रामसिया खोजत गये ३७

॥ इति अरण्यकाण्डः समाप्तः ॥

किष्किन्धाकाण्ड

चले बिपिन लक्ष्मण-सहित मिले पवनसुत आय । विप्र रूप पूछत भयो को तुम कहौ बुझाय ॥
को तुम कहौ बुझाय विपिन सुकुमार सलोने । नृप दशरथके सुवन तासु आयसु तजि भौने ॥
तजेउ भवन आये विपिन नारि गई शोध न लहत । खोजत हम द्विज ! कवन तुम चले विपिन लक्ष्मण-सहित१
लै सुग्रीव मिलाइयो प्रभु गुण मन अनुमानि । कही कथा सब परसपर नूपुर दये बखानि ॥
नूपुर दये बखानि राम लोचन भरि आये । विरह बिकल प्रभु देखि कीश बहु बिधि समुझाये ॥
समुझाये सुग्रीव अति राम लखन सुख पाइयो । प्रभु भेंटे हनुमन्त उर लै सुग्रीव मिलाइयो ॥२॥
प्रभु बोले कारण कवन बसत विपिन कपिराज । कथा कही सब बालिकी, कोपि कहा रघुराज ॥
कोपि कहा रघुराज बालि एकहि शर मारौं । सम्पति ऋधि तिय सहित तोहिं कपि तिलक सँवारौं ॥
तिलक सँवारौं कालिही नहिं किष्किन्धा, नृप भवन । तौ न धनुष शर कर धरौं मित्र करिय कारण कवन ॥३॥
तब सुग्रीव दिखाइयो बालि महा बल बीर । गर्जि नगर जान्यो सबहि चल्यो क्रोधि रणधीर ॥
चल्यो क्रोधि रणधीर लरे पुनि दूनौ भाई । शरणागत प्रण समुझि बाण मार्‍यो रघुराई ॥
मार्‍यो बाण प्रमाण करि गिर्‍यो अवनि मुरझाइयो । रामरूप लोचन पुलकि तब सुग्रीव दिखाइयो ॥४॥
श्याम राम-छबि उर धरी बाणी कहत कठोर । नर गति हरि गति तजि दई समश प्रकाश सब ठौर ॥
सम प्रकाश सब ठौर जगत अप्रिय कछु नाहीं । जो अप्रिय तव होय सकल इक संग बिलाहीं ॥
संग रंग नहिं चाहिये बिधि पिपील रचना करी । जयति हरे श्रीराम कहि श्याम राम-छबि उर धरी ॥५॥
प्राण गये श्रीराम कहि नारि बिकल पुरलोग । सुग्रीवहिं आयसु दयो करहु मृतक-कर योग ॥
करहु मृतक-कर योग लखन सबको समुझायो । राज-हेतु सुग्रीव अनुज सँग नगर पठायो ॥
नगर बुलाये द्विज सकल अंगदादि कपि बोध लहि । बालि-शोच दूषण हरौ प्राण गये श्रीराम कहि ॥६॥
रामनाम कहि नृप करौ तिलक सारि शिरताज । राम कृपानिधि जगतमें बिरद गरीबनिवाज ॥
बिरद गरीबनिवाज कियो सुग्रीव सुखारी । गिरि बन बिकल बिहाल बालि डर कंपित भारी ॥
कंपित डर निरभय नहीं जात दुसह ज्वर उर जर्‍यो । धाम बाम नृप ग्रामको रामनाम कहि नृप कर्‍यो ॥७॥
राजनीति कहि प्रभु रहे शैल प्रवर्षण आय । अनुज सहित सुन्दर सदन राखे देव बनाय ॥
राखे देव बनाय निरखि वर्षाऋतु आई । घन घमण्ड नभ घोर मनहु रबिपर निशि धाई ॥
निशि धाई रवि भजि गये नीर-बुन्द बाणन गहे । तड़ित कृपाण सुइन्द्रधनु राजनीति कहि प्रभु रहे ॥८॥
करि मनोज डेरा जगत सजि आयो करि सैन । असित पीत सित घन अरुण तनि बितान सुख-चैन ॥
तनि बितान सुख चैन तड़ित ध्वज सुन्दर राजै । निशि दिन घन घहरात मनहु बर दुन्दुभि बाजै ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुन्दुभि बाजै मोर पिक बक दादुर बन्दी लगत । बिरहवन्त कारण सज्यो करि मनोज डेरा जगत ॥९॥
सुरपतिके गिरिगण ग्रसे बुन्दबाण झरि लाय । कहुँ कहुँ मारत बज्र-शर घनगज शीश चढ़ाय ॥
घनगज शीश चढ़ाय मोर हर बल पुर आये । बाजे नौबति जीति कोकिला सुयश सुनाये ॥।
सुयस जनाव बितान तनि बेलि बिटप गृह गिरि बसे । मुद्रित करि पाषाण जड़ सुरपतिके गिरिगण ग्रसे ।१०॥
कै समुद्र महिपर चढ्यो महि मुद्रत करि दीन । सर सरिता जलदल परे शरपञ्जर महि कीन ॥
शरपञ्जर महि कीन तड़ित बड़वागिनि मानो । वर्षत नभ चढ़ि बारि त्रसित गिरि दिग्गज जानो ॥
दिग्गज कंपहिँ घन सदल नाद बाद दशदिशि बढ्यो । कंपमान महि गहि धरी कै समुद्र महिपर चढ्यो ।११।
शरद भूप आयो मिलन धवल रूप द्युति साजि । कमल कोक खञ्जन चतुर दूत उठे जग बाजि ॥
दूत उठे जग बाजि चन्द्र जनु छत्र सुहायो । सरि सर निर्मल वारि पाँवड़े पावस नायो ॥
पावस दीन्हों तिलक जग शरदराज राजत थलन । पावस गयो प्रणाम करि शरद भूप आयो मिलन ॥१२॥
सीय शोध अब लीजिये जाहु जहाँ कपिराज । खबरि बिसारी सुख सुपुर पाय नारि धन राज ॥
पाय नारि धन राज बालि-थल तुम्हैं पठाऊँ । कर धरि कीनो सखा ज्ञान दै मन समुझाऊँ ॥
मन समुझाय समेत कपि आप गमन पुर कीजिये । बानर भालु पठाय करि सिया-शोध अब लीजिये ॥१३
लक्ष्मण चले लिवायकै प्रीति प्रबोध रिसाय । बानर भालु बुलायकै गये जहाँ रघुराय ॥
गये जहाँ रघुराय मिले पाँयन कपि नाये । रघुपति हँसि मृदु प्रकृति पुलकि गहि कण्ठ लगाये ॥
कण्ठ लगाय बुझाय कपि विनय करी चित लायकै । बानर भालु बिशाल भट लक्ष्मण चले लिवायकै ॥१४।
कपि लक्ष्मण सबसों कहेउ सिय सुधि खोजहु जाय । पाख दिवस बिन सुधि लिये हमहिँ मिल्यो जनि आय ॥
हमहिँ मिल्यौ जनि आय बहुरि अंगदहिँ बुलाये । तुम मारुतसुत साथ जाहु दक्षिण शिरनाये ॥
दक्षिण सिय शोधहु सुभट भालु नील नल सुख लह्यो । मुँदरी दै हनुमन्तको प्रभु कपि लक्ष्मण सन कह्यो१५
चले सुभट व्यंकट बिकट खोजत गिरि सर खोह । रामकाज लवलीन मन बिसर्‌यो तनकर छोह ॥
बिसर्‌यो तनकर छोह सघन बन जाय भुलाने । तृषावन्त भे बिकल बिना जल सब अकुलाने ॥
अकुलाने हनुमन्त लखि चल्यो विवर पैठ्यो सुभट । कथा सुनाई शशि-प्रभा चले सुभट व्यंकट बिकट ।१६।
जल फल खाय प्रणाम करि तेहि पठये जलतीर । सीख प्रेम पहुँची तहाँ लक्ष्मण श्रीरघुबीर ॥
श्रीरघुकुलमणि बीर पठै बदरीबन दीन्हीं । कपि सब सागरतीर सीय हित चिन्ता कीन्हीं ॥
चिन्ता कीन्हीं कपिन सब सम्पाती लखि कहत डरि । धन्य जटायू सुभटको, जल फल खाय प्रणाम करि ॥१७॥
सुनि सब कथा प्रणाम करि गये मुदित सम्पाति । भये पक्ष, जल दीन शुचि, कही पक्ष गति भाँति ॥
कही पक्ष गति भाँति धरहु धीरज सब भाई । पइहौ सीतहि तबहिँ पार सागर जो जाई ॥
सागर शत योजन उलँघि प्रबल बीर जाइहि जो परि। सो सिय पावहि सत्य सुनि कपि सब कथा प्रणाम करि१८
गयो कहत यह गीधपति कपि सब करत बिचार । बहुरत जिय संशय कहैं अंगद जातो पार ॥
अंगद जातो पार कहत ऋक्षेश बुढ़ाई । नल अरु नील सकोच जानकी कौन दिखाई ॥
कौन दिखाई जानकी पुनि प्रचारि कह ऋक्षपति । कहा समुद हनुमन्त तोहिँ, गयो कहत यह गीधपति ।१९

॥ इति श्रीकिष्किन्धाकाण्डः समाप्तः ॥

सुन्दरकाण्ड

भयो हेमगिरिको शिखर सुनत ऋक्षपति बैन । चढ्यो तमकि भूधर अधर फरकि अरुण करि नैन ॥
अरुण नैन भुजदण्ड मसकि भूधर जब चंप्यो । जल पतालको कढ्यो शेष कच्छप पर कंप्यो ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कंपि शेष शिर नमि गयो कूदि चल्यो बलवन्त फिरि। मारि दुष्ट गिरि परसि पग भयो हेमगिरिको शिखरि ।१।
पटकि लंकिनी बामको पैठ्यो सिय हित बीर। लखी न पुर सिय घर-घरन खोजि श्रमित रणधीर॥
खोजि श्रमित रणधीर बिभीषण भेद बतायो। गयो बाटिका, सीय तहाँ पुनि रावण आयो॥
रावण आयो देखि कपि तरु बैठो विश्रामको। कहे वचन रावण सुने पटकि लंकिनी बामको ॥२॥
सिय उत्तर ताको दयो गयो सदन मतिमन्द। सिय दुख लखि दै मुद्रिका देखी मारुतनन्द॥
देखी मारुतनन्द जानकी कथा सुनाई। मातु ! धरिय मन धीर कह्यो निज मुख रघुराई॥
रघुराई आवन चहत कीश-कटक दल बल भयो। सुत समान तेरी कटक, सिय उत्तर ताको दयो ॥३॥
राम - प्रताप सँभारिकै भयो हेमगिरि रूप। रघुवर कृपा विचारु तृण होय बज्र अनुरूप॥
होय बज्र अनुरूप सर्पशिशु गरुड़हि मारै। तिमिर खाय शशि-रविहि, मशक गिरि हेम उखारै॥
मशक सुमेरु उखारिहै, समुद पिपील निवारिकै। जारै जग खद्योत तव राम-प्रताप सँभारिकै ॥४॥
बूड़ि जाय खुर कुम्भजौ शेष डारि महिभार। बारि खाय बड़वाअनल शम्भु चन्द्र शिर डार॥
शम्भु चन्द्र शिर डारि चारिमुख सृष्टि नशावै। गिरि सर सागर डारि धरणि तजि धीरज धावै॥
धीरज धरणी उर तजै जलहि मिलै मिलि ह्वै रजौ। रामबाण खल ना बचै बूड़ि जाय खुद कुम्भजौ ॥५॥
मातु ! देहु आयसु मुदित लखौं बाटिका जाय। सुन्दर फल लागे बिटप भोजन करौं अघाय॥
भोजन करौं अघाय जानकी उत्तर दीन्हौं। सुत ! रखवारे प्रबल पवन परवेश न कीन्हौं॥
पवन सूर परवेश नहिँ लखि न सकहिँ रवि शशि उदित। कह कपि, यह भय तनक नहिँ मातु देहु आयसु मुदित॥६॥
करि प्रणाम कूद्यो सुभट लग्यो फूल फल खाय। मूल चलावै समुद-महँ रक्षक पहुँचे जाय॥
रक्षक पहुँचे जाय मर्दि महि गर्द मिलाये। पुरी परयो अति शोर अक्ष रावण पठवाये॥
अक्ष वृक्ष लै कपि हन्यो, मेघनाद आयो बिकट। भिरे प्रबल रघुपति सुमिरि करि प्रणाम कूद्यो सुभट॥७॥
ब्रह्मबाण कपि साधिकै धरि लै गयो बहोरि। रावण आगे करि दियो कहि कटु बचन करोरि॥
कहि कटु बचन करोरि कही रावण तब बानी। को मर्कट इत कहाँ काहि बल फलकर हानी॥
फल दल मूल विध्वंसि करि रण कीन्हौं अपराधिकै। कहि कपि तव सुत छल करयो ब्रह्मबाण कर साधिकै॥८॥
विधि हरि हर दिगपाल सब व्याल यक्ष गन्धर्व। पितृ प्रेत पशु मनुज जग सचराचर सुर सर्व॥
सचराचर सुर सर्व गगन धरणी गिरि घेरे। मैं तैं पुर परिवार धाम धन तिय सुत तेरे॥
तिय सुत तेरे लोक सब भये रहे पुनि होहिँ अब। तासु दूत जेहि जग सृज्यो विधि हरि हर दिगपाल सब॥९॥
अति रिस पावक बारिकै तैल बस्त्र घृत बोरि। चढ्यो अटारी कनककी विधि शर करते तोरि॥
बिधि शर करते तोरि सकल पुर दीन्हौं आगी। क्षण महँ सब पुर जारि बिभीषण भवन न लागी॥
भवन भस्म भूषण भये समुद सुदर्प निवारिकै। सिय मणि लै कूदत भयो अति रिस पावक बारिकै॥१०
करि प्रबोध साथी सकल मधुबनके फल खाय। हर्षि गहे प्रभुपद-कमल उर भेंटे रघुराय॥
उर भेंटे रघुराय दीन्ह मणि प्रभु हँसि लीन्हौं। सिय-दुर्दशा निहारि पवनसुत प्रगटित कीन्हौं॥
प्रगटित कीन्हौं सिय-दशा सुनत हाल रघुपति बिकल। बिजय करिय सिय आनिकै करि प्रबोध साथी सकल॥११
राम-बचन कपिदल चल्यो दिग्गज अहि सकुचन्त। भालु बली मर्कट सुभट यूथ यूथ बलवन्त॥
यूथ यूथ बलवन्त अन्त को पावहिँ लेखा। राम कटकको विभव रूप जानहिं जिन देखा॥
जिन देखा ते जानहीं नभ अहि पुर भूतल हल्यो। समुद तीर डेरा परे रामबचन सुनि दल चल्यो॥१२॥
बचन सुनत रावण कह्यो मन्त्री मित्र बुलाय। मन्त्र कहौ पूछत सबहि कह्यो विभीषण आय॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कह्यो विभीषण आय मन्त्र - मणि मानिय मेरो। सीतहि सौंपहु जाय मिलहु रघुनाथ सबेरो ॥
सुनि गुनि उठि लातन हत्यो मिलहि शत्रुको उर दह्यो। चल्यो हृदय अनुमान करि बचन सुनत रावण कह्यो १३
मन गलानि हरि, है कवन चल्यो ताकि प्रभु पाँय। दीन बन्धु दाया हृदय लीन्हें तुरत बुलाय ॥
लीन्हें तुरत बुलाय तिलक पुनि निज कर सारचो। रावण पुर सब दियो मिल्यो जब शीश उतारचो ॥
शीश उतारे शिव दयो तब पाये लंका भवन। सो पुर धन पाँयन परत मन गलानि हरि, है कवन।१४
सखा निकट बैठारिकै पूछी सागर पाय। जेहि बिधि उतरै कपि-कटक तेहि बिधि करिय उपाय ॥
तेहि बिधि करिय उपाय मन्त्र करि व्रत तट कीन्हौं। क्षुद्र न द्रवहिं विशेषि तबहिं प्रभु धनु शर लीन्हौं ॥
धनु शर उर मारचो बिकल मिल्यो रत्न लै आयकै। पन्थ देहि कपि-कटक-कहँ सखा निकट बैठायके ॥१५॥
नाथ सुगम मारग रचौ जल महि पावक पौन। बिटप शैल सर जड़ रचे इनको सिखवत कौन ॥
इनको सिखवत कौन करहु प्रभु एक उपाई। गिरिगण बाँधहिं सेतु नील नल दूनहुँ भाई ॥
दूनहूँ भाई बाँधि हैं शैल सकल मर्कट सँचौ। आपु प्रताप सहाय मम नाथ सुगम मारग रचौ ।१६
सुनि साँचे सागर बचन कपिपति कीश बुलाय। धावहु गिरि तरु आनिकै नलहिं देहु सुख पाय ॥
नलहिं देहु सुख पाय धरहिं गिरि सागर-माहीं। सुनि आयसु कपिवृन्द चले चहुँ दिशि भ्रम नाहीं ॥
भ्रम नहिं शिर बंगुल करहिं कोटि कोटि गिरि धरि रचन। देहिं आनि नल-नील-कहँ सुनि साँचे सागर बचन१७

॥ इति सुन्दरकाण्डः समाप्तः ॥

लंकाकाण्ड

बँधे सेतु मारग भयो चली बिपुल कपि-सैन। गर्जहिं मर्कट भालु सब आये राजिवनैन ॥
आये राजिवनैन मँदोदरि बहु समझायो। मृतक न रावण सुनै काल केहि मति न भ्रमायो ॥
मति लै अंगद पुर चल्यो शुभ उपदेशनको गयो। चेतु चेतु करि हेतु निज बाँधि सेतु मारग भयो ॥१॥
रुण्ड मुण्ड सागर परै रामबाण परचण्ड। मधु मुर बालि बिध्वंसि जेहि खर दूषण बरिवण्ड ॥
खर दूषण बरिवण्ड खण्डि ताड़िका सुबाहै। सागर खंडित भयो देखु मारीच कहाँ है ॥
कहाँ कहाँ तर्कस पर्‍यो बारबार उठि उचरै। मिलौ जाय सिय लाय सँग रुण्ड मुण्ड सागर परै ॥२॥
मैं रघुबरको दूत हौं, तू निशिचरकुलराय। सेन - सहित लागौ सुभट सकल उठावो पाँय ॥
सकल उठावो पाँय बचन हारे प्रण रोप्यो। शेष शीशमैं चोट भई अंगद जब कोप्यो ॥
अंगद पाँव उखारियो कह रावण भट यूथ हौं। हारे भट रावण उठ्यौ, मैं रघुबरको दूत हौं ॥३॥
मेरु हल्यो, पग नहिं हल्यो, अस्त हल्यो गिरि-शृंग। उदयशैल कम्पित भयो मन्दिर हरगिरि भंग ॥
मन्दिर हरगिरि भंग सप्त पाताल बिहाले। सप्त समुद उच्छलत कमठ दिग्गज दिशि चाले ॥
चाले दशकन्धर बदन लंकसदन ढहि ढहि चल्यो। थके तहाँ सब दनुज भट मेरु हल्यो पग नहिं हल्यो ॥४॥
हारि गये दल बल असुर चल्यो बालिसुत बीर। मुकुट धरे प्रभु पाँयतर मिले हर्षि रघुबीर ॥
मिले हर्षि रघुबीर बालिसुत कारण भाख्यो। गढ़ घेरचो करि मन्त्र जहाँ लायक तेहि राख्यो ॥
राखि बीर निज पुर भरचो दयो लंक अति प्रबल जुर। भयो युद्ध क्रुद्धित समर हारि गये दल बल असुर ॥५॥
मेघनाद योधा सुभट लक्ष्मण हन्यो विचारि। भई मूरछा प्रभु लखे हनुमत लीन प्रचारि ॥
हनुमत लीन प्रचारि औषधी लेन पठायो। दुष्ट हन्यो कपि बीच शैल शिर राखि सिधायो ॥
शैल शीश देखत भरत तानि मारि शायक विकट। राम कहत भेंटत कह्यो लखन घाय पीड़ा सुभट ॥६॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अति सनेह भैंट्यो भरत कह्यो कीश चढ़ु वाण । बिलम होहि मारग अगम पठवौं तोहिं प्रमाण ।।
पठवौं तोहिं प्रमाण समुझि पुनि कहत कपीशा । तव प्रतापतें नाथ ! जाउँ जहँ प्रभु जगदीशा ।।
प्रभु जगदीश बिचारिकै दोउ पग धरि पाँयन परत । धन्य धन्य हनुमन्त जग अति सनेह भैंट्यो भरत ।।७।।
लक्ष्मण उठि ठाढ़े भयो कीन्हौं वैद्य उपाय । सुनि रावण संशय भयो, भ्राता जाय जगाय ।।
भ्राता जाय जगाय कहे कारण सब जेते । तेहिं तव कह्यो, न मनुज, ब्रह्म प्रभु, कपि सुर तेते ।।
कपि सुर, रघुबर ब्रह्म हैं, तेहि विरोध को नहिं गयो । यह कहि रण मण्डल गयो लक्ष्मण उठि ठाढ़े भयो ।।८।।
मारि दुष्ट रण दलि मले सुर दुन्दुभी बजाय । लक्ष्मणको आयसु दियो तात ! लंकपुर जाय ।।
तात ! लंकपुर माहिं हतहु रावण सुत जाई । आयसु सिर धरि लखन हत्यो देवन दुखदाई ।।
दुखदाई मारे सकल रावण मन शोचत चले । जय जय जय रघुवंशमणि मारि दुष्ट रण दलमले ।।
रण रावण आतुर चल्यो असुर-सेन-दल साथ । करत युद्ध देवन डरत धरत शरासन हाथ ।।
धरत शरासन हाथ चलत महि दिग्गज डोलैं । क्षुभित उदधि जल, शृंग शैल सरि महिधर बोलैं ।।
महिधर बोलैं अति सभय रबि मुद्रित सब थल हल्यो । भुज प्रचण्ड रण मण्डियो रावण रण आतुर चल्यो १०।
राम-रावणहि युद्धको को कबि पावहि पार । शेष शारदा निगम बिधि शंकर मुनि अवतार ।।
शंकर मुनि अवतार कल्प कोटिन कहि हारैं । बल दल समर प्रचण्ड मन्द जे कहन बिचारैं ।।
कहन बिचारैं मति कवन सब कहि हारे, बुद्ध को । तुलसिदास सो किमि कहै राम-रावणहिं युद्धको ११।।
प्रभु मारचो, प्रभु ह्वै गयो ताको बरणै कौन । बल पौरुष अरु बीरता जानत रवि शशि पौन ।।
जानत रबि शशि पौन बड़ो रण रावण कीन्हौं । निज दल सम गति ताहि परम पावन पद दीन्हौं ।।
पावन पद लखि देव सब पुष्प वृष्टि दुन्दुभि दयो । करहिं विनय सादर सकल प्रभु मारचो, प्रभु ह्वै गयो ।।
सिय-संकट दूरी करचो राज विभीषण दीन । सत्य सुयश कपिको कह्यो शपथ सीय शुचि कीन ।।
शपथ सीय शुचि कीन चढ़े पुष्पक रघुराई । कपि सिय लखन समेत चले सुर जयति सुनाई ।।
जय जय प्रभु खल-दल दल्यो सुर मुनि द्विज महि दुख हरचो । अमर नाग भूतल सुखी सियसंकट दूरी करचो १३
पूजा शंकरकी करी सेतु सिया दरशाय । पञ्चवटी मिलि कुम्भजहि अत्रि आदि ऋषिराय ।।
अत्रि आदि ऋषिराय मिले अनसूयहि जाई । आशिष आयसु पाय चले आगे रघुराई ।।
रघुराई आये तहाँ चित्रकूट मंगल थरी । पय अन्हाय मुनिगण मिले पूजा शंकरकी करी १४।।
आयसु पायो मुनि दयो चले हर्षि श्रीराम । यमुनहि पूजि सप्रेमभय प्रमुदित कीन्ह प्रणाम ।।
कीन्ह प्रयाग प्रणाम मिले मुनिगण प्रभु जाई । करि मज्जन सिय सहित बिप्र मान्यता बड़ाई ।।
मान बड़ाई पूजिकै पुनि बिमान आतुर गयो । मिले निषादहि गंगतट आयसु पायो मुनि दयो ।१५।
कपि हनुमन्त पठाइयो भरत कुशलता देखि । आवत सिय लक्ष्मण सहित यह तुम कहौ विशेषि ।।
यह तुम कहौ विशेषि प्रात उठि भरत निहारौं । पुरवासिन पुनि मिलौं मातुको शोक निवारौं ।।
शोच निवारौं अवधको सब प्रकार समुझाइयो । भरत प्रबोधन हेतु प्रभु कपि हनुमन्त पठाइयो ।।१६।।
पुनि निषाद उर लाइयो रघुपति करुणापुञ्ज । लै आयो मन्दिर परम सुजल धोय पदकञ्ज ।।
सुजल धोय पदकञ्ज रुचिर आसन बैठारचो । धूप दीप नैवेद्य फूल फल अंकुर धारचो ।।
अंकुर खाये प्रेम-युत राम बहुत सुख पाइयो । प्रात समाज बिमान चढ़ि पुनि निषाद उर लाइयो १७
भरत देखि हनुमन्त जब कृश शरीर दुख दीन । जटा शीश मुनि-व्रत धरम प्रेम पाँवरी लीन ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

प्रेम पाँवरी लीन राम-सिय बदन उचारौ। कुश आसन आसीन बसन भूषण तजि डारौ॥
भूषण तजि भजि नाम प्रभु अवधि अन्त दिन आहि रव। अहह मोहिँ धिक धिक कहत भरत देखि हनुमन्त जब१८
सुनहु भरत! हनुमत कह्यो आय लखन सिय राम। सुख-समेत मंगल कुशल जीति असुर संग्राम॥
जीति असुर संग्राम देव सब स्वथल बसाये। राम विभीषन दीन्ह सुयश नारद शिव गाये॥
नारद शारद शम्भु शुक प्रभु कीरति पावन लह्यौ। सो प्रभु आवत अवधपुर सुनहु भरत हनुमत कह्यो।१९।
सुनत भरत आनँद लह्यो परम भावती बात। चकित थकित सुख सपन धौँ कहत कोइ साक्षात॥
कहत कोइ साक्षात भरत पुनि नैन उघारे। पुनि हनुमत कह राम अवध आये सुख-भारे॥
सुख-भारे उठि भरत कर हिये भेँटि आनँद गह्यो। अश्रुपात भा तन पुलकि सुनत भरत आनँद लह्यो॥२०॥
आये यह संदेश लै कहा देहुँ तोहिँ तात। यहि पटतर त्रयलोक्य नहिँ कही अमृत सम बात॥
कही अमृत सम बात राम-सिय कुशल विशेखी। लक्ष्मण-सहित सुक्षेम अवध आवत तुम देखी॥
आवत देखि विशेषि तुम कह हनुमन्त प्रदेश लै। मिले बहुरि कपि कण्ठ-लगि आये यह सन्देश लै॥२१॥
अवध आय प्रकटी सबै गुरु पुरजन समुझाय। मातु! कुशल आये लखन-सीय-सहित रघुराय॥
सीय-सहित रघुराय सजहु मंगल पुर-नारी। बन्दनवार पताक चर्म चामर गज भारी॥
गज भारी रथ तुरग सँग साजि भरत मंगल तबै। चले नगर बाहर मिलन पुर-शोभा प्रगटी सबै॥२२॥
भरत संग हनुमन्त लै देखत गगन बिमान। नगर नारि-नर देखिकै उतरे कृपानिधान॥
उतरे कृपानिधान मिले गुरु प्रथम गोसाँई। आशिष देय सनेह कुशल पूछी मुनिराई॥
मुनिराई प्रभु भेँटिकै भरत हृदय भगवन्त लै। अति सनेह पूरे मगन भरत संग हनुमन्त लै॥२३॥
मिले सकल पुर जन मुदित राम चरित यह कीन। सब जानत प्रथमहिँ मिले हम-कहँ राम प्रवीन॥
हम-कहँ राम प्रवीन ऊँच मध्यम नर-नारी। यथायोग्य मिलि सबहिँ बहुरि भेँटी महतारी॥
भेँटी महतारी सबै प्रथम कैकयी परम हित। बिरह-बिथा नासी सकल मिले सकल पुरजन मुदित२४

॥ इति लंकाकाण्डः समाप्तः ॥

उत्तरकाण्ड

राम अवध आये कुशल घर घर मंगल साज। पुरी भई अमरावती रामराज्यके काज॥
रामराज्यके काज भरत सब साज सजाई। सुर गन्धर्व मुनीश सकल आये सुरसाँई॥
सुरसाँई मंगल सजे, बजे अवध दुन्दुभि विमल। बर्षि सुमन जय जय कहत राम अवध आये कुशल १॥
शुभ सिंहासन शुचि बन्यो रघुपति बैठे आप। भूषण मणिगण जगमगत कोटिन भानु-प्रताप॥
कोटिन भानु-प्रताप वेदध्वनि विप्र उचारैँ। छत्र चँवर धनु-बाण दण्ड भरतादिक धारैँ॥
भरतादिक सुखमय मगन सिय आई भूषण धन्यो। राम-सिया शोभित भये शुभ सिंहासन शुचि बन्यो२॥
प्रथम तिलक गुरु उच्चर्‍यो विप्रन आयसु दीन। देव मुनिन जय उच्चरी दुन्दुभि हने नवीन॥
दुन्दुभि हने नवीन सबहि बर अस्तुति ठानी। मातन आरति साजि गीत गावहिँ मृदु बानी॥
मृदु बानी सुर मुनि सबै जयति राम जय जय कर्‍यो। बन्दि वेद बिरदावली प्रथम तिलक गुरु उच्चर्‍यो ३॥
कहि वशिष्ठ प्रथमै बचन सब प्रकार सामर्थ। सुर पाले खलदल दले द्विज - महि - सज्जन - अर्थ॥
द्विज - महि - सज्जन - अर्थ भये दशरथके बारे। नियम सेतु प्रतिपालि सुयश जग - महँ बिस्तारे॥
बिस्तारे अद्भुत चरित पालय लय कृत पुनि चरन। जय जय नर अवधेश-सुत कह वशिष्ठ प्रथमै वचन४॥
कहि विधि सबहिँ सुनायकै रामचरित्र अपार। निगम शेष शंकर सकल को जग जाननहार॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

को जग जाननहार अमित अवतार विहारी। सुर सज्जनके हेत करत लीला - वपुधारी ॥
लीला तन मंगल भवन खल दलि भुवन बसायकै। जगमंगल-कारण-करण कह बिधि सबहिँ सुनायकै५॥
उठि शंकर जय जय कहत राम स्वरूप तुम्हार। मंगलमय मूरति मधुर सुमिरत सब दातार ॥
सुमिरत सब दातार लहत सुख सुन्दर ध्याये। गुणगण पावन गाय तरत भवनिधि सुख पाये ॥
सुख पाये मुनि गण मनहिँ ज्ञान ध्यान सौँ ज्यहि चहत। रविकुल-कमल-दिनेश प्रभु उठि शंकर जय जय कहत ६
सुरपति कहत प्रणाम करि सुनहु राम सुरभूप। प्रति अवतार अपार गुण वर्णत वेद अनूप ॥
वर्णत वेद अनूप दुष्टजन - खण्डनहारे। मन - गो - तनको त्रसित राम तुम ताहि पियारे ॥
ताहि पियारे तुम लगत बचे मोह मद मानकै। हम निश-दिन विषयनि-विवश सुरपति कहत प्रणाम कै७
रवि अञ्जलि जोरे कहत राम ! सुनहु मम बैन। कृपा करिय निज चरण रति निश-दिन राजिवनैन ॥
दीजिय राजिवनैन तोष बड़ हृदय हमारे। जबतैं मम कुल जन्म रावरे नरतन धारे ॥
नरतन धरि यश विस्तर्‌यो चिरञ्जीव जोरी रहत। जय जय रविकुलरवि विमल रवि अञ्जलि जोरे कहत ८
अनिल अनल धर विनय करि खलखण्डन तुम राम। राज आज त्रयपुर विशद राजहिँ जग अभिराम ॥
राजहिँ जग अभिराम सन्त सज्जन सुखकारी। नरतनु धनु धरि हाथ हर्‌यौ धरणी अघ भारी ॥
धरणी-मण्डन खण्डि खल, राज विराजत भुवन भरि। जय जय श्रीसीतारमन अनिल अनल धर विनय करि९
निगम विप्र-तन करि कहत राम सुनहु सुर-ईश। कोटि कोटि यत्नन करत नहिँ पावत योगीश ॥
नहिँ पावत योगीश हृदय शंकर पचि हारे। विधि सनकादिक नेम धर्म करि तुम्हें निहारे ॥
तुम्हें निहारत सुख लहैं ते कपि भालुहि कर गहैं। जयति रामलीला अगम निगम विप्रतन करि कहैं१०
अस्तुति करि मुनि सुर गये राम भरत बुलवाय। कपिपति ऋक्ष बिभीषणै नल नीलहिँ अन्हवाय ॥
नल नीलहिँ अन्हवाय भरत भूषण पहिराये। अंगद - सहित समाज राम सब निकट बुलाषे ॥
राम निकट बैठारिकै मधुर वचन बोलत भये। कपि-कीरति प्रभु उच्चरत अस्तुति करि मुनि सुर गये ११
शारद नारद जोरि कर विनय करत चित लाय। अद्‌भुत चरित तुम्हार प्रभु सुनिये श्रीरघुराय ॥
सुनिये श्रीरघुराय पिता दशरथ - सम नाहीँ। तृण-सम तन तजि दीन सुयश जाको जग-माहीँ ॥
सुयश कियो जेहि जन्म भरि गयो बिरह लै अमर-घर। गीधक्रिया निजकर कहैं शारद नारद जोरि कर१२
मुनिनायक ! ये नील नल कीन्हें अद्‌भुत कर्म। शत योजन सागर बँध्यो सेतु उपल गुरु धर्म ॥
सेतु उपल गुरु धर्म शीश रावणके फारे। मन्दिर सुवरण खम्भ कलश महिधर बहु डारे ॥
महिधर डारि सँघारि अरि रण मण्डल हति असुरदल। महावीर बानैत बल मुनिनायक ! ये नील नल ॥१३॥
मुनिनायक ! कपिराज ये करे हमारे काज। बानर कोटि पठाइयो सिय शोधन शिरताज ॥
सिय शोधन शिरताज कर्‌यो रणमण्डल भारी। मन्त्र तन्त्र सब सुदृढ़ सैन बल अबल बिचारी ॥
अबल बिचारी ठौर जहँ तहँ बल दिये समाज ये। महाबली बुधिवन्त अति मुनिनायक ! कपिराज ये१४॥
सुनहु बिभीषण बहु कियो मिल्यो मोहिँ तजि भाय। रावण अरु घननादकी दई मीचु दर्शाय ॥
दई मीचु दर्शाय गदा पुनि रावण मार्‌यो। लक्ष्मण घायल भये बैद्यको नाम उचार्‌यो ॥
नाम उचार्‌यो शत्रु-दल करि उपाय लक्ष्मण जियो। राम कहत मुनिराजसौँ सुनहु बिभीषण बहु कियो ॥१५॥
ऋक्षनाथ बल दल महा रावण हत्यो प्रचारि। मेघनादको पाँउ धरि लंक गयो फटकारि ॥
लंक गयो फटकारि असुर दल दले समाजन। सेतु बाँधि धरि यूथ हाथ शिर धरि गिरिराजन ॥
शिर धरि गिरि रावण दले सभय शत्रु,रण नहिँ रहा। मुनिनायक!लायक सबै ऋक्षनाथ बल दल महा ।१६।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ये अंगद, मुनि ! अतिबली जिन रावणपर जाय । मान ज्ञान अरिदल दल्यो रोपि सभा धरि पाँय ॥
रोपि सभा धरि पाँय केश धरि रावण रानी । महि कठोरि पुनि हत्यो बीस दस चरण डरानी ॥
चरण धरे कम्पत असुर सैन समर अति दलमली । रणविजयी शुभ सुयशदा ये अंगद, मुनि!अति बली १७
ये हनुमन्त विचारि मुनि ! प्रथम मिलाये मोहि । कपिपति पुनि दल जोरिकै लै मुद्रिक कर जोहि ॥
लै मुद्रिक कर जोहि वीर लै सुभट सिधायो । तृषित लगे जब मरन जाय तेहि सुजल पिआयो ॥
सुजल पिआयो सबहिको समुद-तीर रचि मन्त्र पुनि। पक्ष तक्ष सम्पाति-तैं ये हनुमन्त विचारि मुनि ॥१८॥
गयो उदधि पारै सुभट साथी तट बैठाय । देखि सीय, मणि हाथ लै, बन उजारि, फल खाय ॥
बन उजारि, फल खाय, असुर मारे भट भारी । करि उपाय पुर लंक कूदि घर - घर पुर जारी ॥
जारि बारि पुनि वारिनिधि कूदि चल्यो व्यंकट विकट। गर्जत घोर कठोर अति गयो उदधि पारै सुभट १९
सिय मणि दै दल लै चल्यो दिग्गज दरकत अंग । पार जाय घेऱ्यो अरिहि दुर्ग कियो पुर भंग ॥
मारग धावत शर लग्यो भरत कोपि उर थल दल्यो । लखन शोच उर मानिकै सिय-हित गिरि सिर लै चल्यो२०
कहँ लौं गुण मुनि ! मैं कहौं कपि-समाजके काज । भरत - लखनतैं प्रिय सदा कपिनायक सिरताज ॥
कपिनायक सिरताज मिले उठि सबहिं बहोरी । विदा किये सन्मानि परस्पर प्रीति न थोरी ॥
प्रीति न थोरी प्रभु करी सब प्रणाम करि सुख लहौ । बार बार यश प्रभु कहैं कहँलौं गुण मुनि ! मैं कहौं।२१
राम राज राजत भयो गयो सकल दुख भागि । रोग शोक अपगति मरण काल कर्म गुण त्यागि ॥
काल कर्म गुण त्यागि भई सतयुगकी करणी । वारिद मन - गति वारि, भई सुर - सुरभी धरणी ॥
सुर-सुरभी धरणी भई कपट दम्भ पाखँड गयो । धर्म विवेक विचार नर राम राज राजत भयो २२॥
काम क्रोध अघ रोग सब मान मोह मद गर्व । दोष दुःख ज्वर पीर खल दारिद दाहन सर्व ॥
दारिद दाहन सर्व बैर परधन परनारी । ये सुभाय सब छूटि गई मति पर उपकारी ॥
पर उपकारी लोग सुख भोग योग महि प्रकट अब । गये अमंगल कृत जगत काम क्रोध अघ रोग सब २३
नेम प्रेम प्रकटे जगत दया क्षमा सन्तोष । योग यज्ञ जप तप सुपथ वेद सुमंगल पोष ॥
वेद सुमंगल पोष रहा परमारथ पूरी । पर अघ निज कृत दुकृत कुकृत दुस्तर भय दूरी ॥
दुस्तर भय दूरी करे राम तेज रवि जगमगत । कमल कोक सब धर्म वर नेम प्रेम प्रकटे जगत ॥२४॥
एक राम गुण गायबो यह कलि - कर्म न और । ताते तुलसीदासके मन्त्र यहै शिरमौर ॥
मन्त्र यहै शिरमौर राम शुचि कीरति गाऊँ । साधन उत्तम जानि सुमति निज मनहि दृढ़ाऊँ ॥
मनहि दृढ़ाऊँ मन्त्र यह जिहि प्रसाद सुख पायबो । शुक नारदकी सीख यह एक राम गुण गायबो २५
एक राम मुख नाम धृत, ध्यान रामको रूप । राम चरित गावत परम धर्म पवित्र अनूप ॥
धर्म पवित्र अनूप करिय जब लौं जग कीजै । रसना रस करि चरित-सरित निशि-बासर पीजै ॥
निशि-बासर श्रम तजि भजै तुलसिदास यह शुभ सुकृत । कामधेनु कलि कल्पतरु एक राम सुख नाम धृत २६

॥ इति उत्तरकाण्डः समाप्तः ॥

॥ इति कुंडलिया रायायण सम्पूर्णम् ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२२

तुलसी-सतसई[1]

प्रथम सर्ग

नमो नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम । जेहि सुमिरत सिध होत हैं तुलसी जन मन काम ॥१॥
परम पुरुष परधाम वर जापर अपर न आन । तुलसी सो समुझत सुनत राम सोइ निर्वान ॥३॥
सकल सुखद गुन जासु सो राम कामनाहीन । सकल कामप्रद सर्वहित तुलसी कहहि प्रवीन ॥४॥
जाके रोमै रोम प्रति अमित अमित ब्रह्मण्ड । सो देखत तुलसी प्रकट अमल सुअचल प्रचण्ड ॥५॥
जगत-जननि श्रीजानकी जनक राम सुभ रूप । जासु कृपा अति अघहरनि करनि विवेक अनूप ॥६॥
तात-मातु-पर जासुके तासु न लेस कलेस । ते तुलसी तजि जात किमि निज घर तर परदेस ॥७॥
पिता बिबेकनिधान वर मातु दया-जुत नेह । तासु सुवन किमि पाइहैं अनत अटन तजि गेह ॥८॥
बुद्धि विनय गतिहीन सिसु, सुपथ-कुपथ गत-ग्यान । जननि-जनक तेहि किमि तजहिं तुलसी-सरिस अजान।९।
मात तात सिय-रामरुख बुधि बिबेक परमान । हरत अखिल अघ तरुन तर तब तुलसी कछु जान१०
जिन्हतैं उदभव बर बिभव ब्रह्मादिक संसार । सुगति तासु तिनकी कृपा तुलसी बदहि विचार॥११॥
ससि-रवि सीताराम नभ तुलसी उरसि प्रमान । उदित सदा अथवत न सो कुतसित तमकर हान १२
तुलसी कहत बिचारि गुरु राम सरिस नहिं आन । जासु कृपा सुचि होति रुचि बिसद विबेक अमान १३
रेफ-रमित परमातमा सह अकार सिय रूप । दीरघ मिलि बिधि जीव-इव तुलसी अमल अनूप १५
अनुस्वार कारन जगत श्रीकर करन अकार । मिलित अकार मकार भौ तुलसी हर दातार ॥१६॥
ज्ञान बिरागरु भगति सह मूरति तुलसी पेखि । बरनत गति मति अनुहरत महिमा बिसद बिसेखि१७
नाम मनोहर जानि जिय तुलसी करि परमान । बरन-बिपर्जय भेदतैं कहाँ सकल सुभ ज्ञान ॥१८॥
तुलसी सुभ कारन समुझि गहत रामरस नाम । असुभ-हरन सुचि सुभ-करन भगति-ज्ञान गुन-धाम ॥१९
अहि-रसना, थन-धेनु, रस, गनपति-द्विज[2], गुरुवार । माधव शित सिय-जनम तिथि सतसैया अवतार २१
भरन हरन अति अमित बिधि तत्व अरथ कबिरीति । संकेतिक सिद्धान्त मत तुलसी बदत बिनीत ॥२२॥
बिमल बोध कारन सुमति सतसैया सुखधाम । गुरुमुख पढ़ि गति पाइहैं बिरति भगति अभिराम ॥
म-न-भ-य-ज-र-स-त-लाग[3] जुत प्रकट छन्द जुत होइ । सो घटना सुखदा सदा कहत सुकबि सब कोइ ॥

---

१. सतसईके जो दोहे दोहावलीमैं आ चुके हैं वे छोड़ दिए गए हैं । उनका विवरण 'तुलसी-सतसई'के अन्तमैं देखिए । २. अहि-रसना (साँपकी जीभ)=२। थन-धेनु (गायके थन) = ४। रस = ६। गनपति-द्विज (गणेशका दाँत) = १। माधव सित=सीताकी जन्मतिथि (वैशाख कृष्ण नवमी)-को संवत् १६४२ मैं सतसई लिखी गई । ३. म-न-भ-य-ज-र-स-त-लाग=मगण (sss), नगण (।।।), भगण (s।।), यगण (।ss), जगण (।s।), रगण (s।s), सगण (।।s), तगण (ss।), ला=लघु और ग=गुरु ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जत समान तत जान लघु, अपर वेद गुरु मान । संजोगादि बिकल्प पुनि पद न अन्त कहुँ जान ।।
दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब जहँ मुख लह विश्राम । प्राकृत प्रगट प्रभाव यह जनित बुधाऽबुध बाम ।।
दुइ गुरु सीता सार गनि राम सो गुरु लघु होइ । लघु गुरु रमा प्रतच्छ गन जुग लघु हर गम सोइ ।।
सहस नाम मुनि भनित सुनि तुलसी-बल्लभ नाम । सकुचति हिय हँसि निरखि सिय, धरम-धुरन्धर राम ।।
दम्पति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह । तुलसी हर हित बरन सिसु सम्पति सहज सनेह ।।
तुलसी सोहत नखत-गन सरद-सुधाकर साथ । मुकुता झालर झलक जनु राम-सुयश-सिसु हाथ ।।
आतम बोध बिवेक बिनु राम भजत अलसात । लोक-सहित परलोककी अवसि बिनासी बात ।।
बरु मराल मानस तजै, चन्द्र सीत, रवि घाम । मार मदादिक कै तजै, तुलसी तजै न राम ।।३५।।
आसन दृढ़, आहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होय । तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहेकी जोय ।।३६।।
रामचरण अवलम्ब - बिनु परमारथकी आस । चाहत बारिद-बूँद गहि तुलसी चढ़न आकास ।३७।।
रामनाम तरुमूल रस, आठ पात, फल एक । जुग लसंत सुभ चारि जग बरनत निगम अनेक३८
हितसन हित, रति रामसन, रिपुसन बैर बिहाय । उदासीन संसार-सन तुलसी सहज सुभाय ।।४२।।
तिलपर राखेउ सकल जग बिदित बिलोकत लोग । तुलसी महिमा रामकी को जग जानन जोग ।४३।
जहाँ राम तहँ काम नहिँ, जहाँ काम नहिँ राम । तुलसी कबहूँ होत नहिँ रबि-रजनी इक ठाम ।४४।
सम्पत्ति सकल जगत्रकी स्वासा सम नहिँ होय । सो स्वासा तजि रामपद तुलसी अलग न खोय ३६
तुलसी सो अति चतुरता रामचरन लवलीन । परमन परधन हरनको गनिका परम प्रबीन ।४७।
चतुराई चूल्हे परै जम गहि ज्ञानहिँ खाय । तुलसी प्रेम न रामपद सब जड़ मूल नसाय ।।४८।।
प्रेम सरीर प्रपञ्च रुज उपजी अधिक उपाधि । तुलसी भली सो बैदई बेगि बाँधई ब्याधि ।।४९।।
राम बिटप तरु बिसद बर महिमा अगम अपार । जाकहँ जहँलगि पहुँच है ताकहँ तहँलगि डार ५०
तुलसी कोसलराज भजु जनि चितवै केहुँ ओर । पूरन राम मयंक मुख करु निज नयन चकोर ।५१।
ऊँचे नीचे कहुँ मिलै हरिपद परम - पियूष । तुलसी काम-मयूखते लागै कवनिहुँ रूप ।।५२।।
स्वामी होनो सहज है दुर्लभ होनो दास । गाडर लाये ऊनको लाग्यौ चरन कपास ।।५३।।
सब संगी बाधक भये, साधक भये न कोय । तुलसी राम कृपालुते भली होय सो होय ।।५७।।
तुलसी रामहिँ परिहरे निपट हानि सुनु मोद । जिमि सुरसरिगत सलिल बर सुरा-सरिस गंगोद ६१
तुलसी खोटे दासकर रघुपति राखत मान । ज्यों मूरख उपरोहितहिँ देत दान जजमान ।।६३।।
ज्यौं जग बैरी मीनको आपु सहित परिवार । त्यौं तुलसी रघुनाथ बिन आपनि दशा बिचार ६४
तुलसी राम भरोस सिर लिये पाप धरि मोट । ज्यौं व्यभिचारिनि नारि-कहँ बड़ी खसमकी ओट ६५
तुलसी सब छल छाँड़िकै कीजै राम - सनेह । अन्तर पतिसौं है कहा जिन देखी सब देह ।।६७।।
सबही को परखे लखे बहुत कहे का होय । तुलसी तेरो राम तजि हित जग और न कोय ६८
तुलसी हमसौं रामसौं भलो मिलो है सूत । छाँड़े बनै न सँग रहे ज्यौं घर-माहिँ कपूत ।।६९।।
कोटि बिघन संकट बिकट कोटि सत्रु जौं साथ । तुलसी बल नहिँ करि सकैं जौ सुदृष्टि रघुनाथ ।७०।
लगन मुहूरत जोग-बल तुलसी गनत न काहि । राम भये जेहि दाहिने सबै दाहिनै ताहि ।। ७१ ।।
प्रभु - प्रभुता जाकहँ दई बोल सहित गहि बाँह । तुलसी ते गाजत फिरहिँ रामछत्रकी छाँह ।।७२।।
चातक जीवन जलद - कहँ जानत समय सुरीति । लखत लखत लखि परत है तुलसी प्रेम-प्रतीति ७४
माँगत डोलत है नहीं तजि घर अनत न जात । तुलसी चातक भगतकी उपमा देत लजात ।।७८।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी तीनौं लोकमहँ चातक - हीको माथ । सुनियत जासु न दीनता किये दूसरो नाथ ॥७६॥
ऊँची जाति पपीहरा पियत न नीचो नीर । कै जाँचै घनस्यामसौं, कै दुख सहै सरीर ॥८१॥
पवि पाहन दामिनि गरज अति झकोर खर खीझि । दोष न प्रीतम-रोष लखि तुलसी रागहि रीझ ८६
को न जियाये जगतमहँ जीवनदायक पानि । भयो कनौड़ो चातकहिँ पयद प्रेम पहिचानि ।८७।
गंगा यमुना सुरसती सात सिन्धु भरिपूर । तुलसी चातकके मते बिना स्वाति सब धूर ॥६३॥
सर सरिता चातक तजेउ स्वाती सुधि नहिँ लेइ । तुलसी सेवक बस कहा जो साहब नहिँ देइ ॥६५॥
आस पपीहा पयदकी सुनु हो तुलसीदास । जो अँचवै जल स्वातिको परिहरि बारह मास ६६
चातक घन तजि दूसरे जियत न नाई नारि । मरत न माँगे अर्घजल सुरसरिहूको वारि ॥६७॥
व्याधा बधेउ पपीहरा परेउ गंग-जल जाइ । चौंच मूँदि, पीवै नहीं, धिग पीवन-पन जाइ ६८॥
चातक सुतहि सिखाव नित, आन नीर जनि लेहु । यह हमरे कुलको धरम, एक स्वातिसौं नेहु ।१००।
दरस परस नहिँ आन जल बिनु स्वाती सुनु तात । सुनत चेटुवा चित चुभेउ समुझि नीति वर बात१०१
होय न चातक पातकी जीवनदानि न मूढ़ । तुलसी गति प्रह्लादकी समुझि प्रेमपथ गूढ़ ।१०५।

॥ इति प्रेमभक्ति-निर्देशः प्रथमः सर्गः ॥

द्वितीय सर्ग

तुलसी केवल रामपद लागै सरल सनेह । तौ घर घट बन बाटमहँ कतहुँ रहै किन देह ११२
कै ममता करु रामपद कै ममता करु हेल । तुलसी दुइमहँ एक अब खेल छाँड़ि छल-खेल ११३
रावणारिके दास-सँग कायर चलहिँ कुचाल । खरदूषण-मारीच-सम मूढ़ भये बस काल ॥११५॥
तुलसीपति दरबार - महँ कमी वस्तु कछु नाहिँ । करमहीन कलपत फिरत चूक चाकरी माहिँ ११६
राम गरीबनेवाज हैं राज देत जन जानि । तुलसी मन परिहरत नहिँ घुरबिनियाँकी बानि११७
राम राम रटिबो भलो तुलसी खता न खाय । लरिकाईको पौरिबो धोखेहु बूड़ि न जाय ॥११६॥
तुलसी बिलँब न कीजिये भजि लीजै रघुबीर । तन तरकसतें जात हैं स्वास सरीखे तीर ॥१२०॥
नाम-महातम साखि सुनु नरकी केतिक बात । सरवरपर गिरिवर तरे ज्यौं तरुवरके पात ।१२२।
ज्ञान गरीबी गुरु धरम नरम बचन निरमोष । तुलसी कबहुँ न छाँड़िये सील सत्य सन्तोष ।१२३।
असन बसन सुत नारि सुख पापिहुके घर होइ । सन्त-समागम रामधन तुलसी दुर्लभ दोइ ॥१२४॥
डग अन्तर मग अगम जल जलनिधि जल-संचार । तुलसी करिया करम-बस बूड़त तरत न बार १२६
तुलसी हरि अपमानतें होत अकाज समाज । राज करत रज मिलि गयो सदल सकुल कुरुराज१२७
तुलसी मीठे बचनतें सुख उपजत चहुँ ओर । बशीकरन यह मन्त्र है परिहरु बचन कठोर ।१२८।
रामकृपातें होत सुख रामकृपा बिन जात । जानत, रघुबर भजनतें तुलसी सठ अलसात ।१२६।
सनमुख ह्वै रघुनाथके देहु सकल जग पीठि । तजे कँचुरी उरग-कहँ होत अधिक अति डीठि १३०
मरजादा दूरहि रहे तुलसी किये बिचारि । निकट निरादर होत है जिमि सुरसरि-बर-बारि १३१
राम कृपानिधि स्वामि मम सब बिधि पूरनकाम । परमारथ परधाम-पर सन्त सुखद बलधाम ॥१३२।
रामहिँ जानहि, राम रटु, भजु रामहिँ तजु काम । तुलसी राम अजान नर किमि पावहिँ परधाम १३३
तुलसी-पति रति अंक सम सकल साधना सून । अंक रहित कछु हाथ नहिँ अंक सहित दस गून १३४
तुलसी अपने रामकहँ भजन करहु निरसंक । आदि अन्त निरबाहिबो जैसे नवको अंक ॥१३५॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दुगुने तिगुने चौगुने पंच षष्ठ औ सात । आठहुतें पुनि नव गुने नवके नव रहि जात ।।१३६।।
नवके नव रहि जात हैं तुलसी किये विचार । रमेउ राम इमि जगतमें नहीं द्वैत बिस्तार ।।१३७।।
तुलसी राम सनेह करु त्यागु सकल उपचार । जैसे घटत न अंक नव नवके लिखत पहार ।१३८।
यहि बिधितें सब राममय समुझहु सुमति-निधान । यातें सकल बिरोध तजु, भजु सब समुझ न आन १४०
राम कामनाहीन पुनि सकल काम दातार । याहीतें परमातमा अव्यय अमल उदार ।।१४१।।
जो कछु चाहत सो करत हरत भरत गत भेद । काहु सुखद काहू दुखद जानत हैं बुध बेद ।।१४२।।
सन्त कमल मधुमास कर तुलसी बरन बिचार । जग सरवर तर भरनकर जानहु जल-दातार १४३
एक सृष्टिमहँ जाहिं बिधि प्रकट तीनि करि भेद । सात्त्विक राजस तामसिहि जानत हैं बुध वेद १४४
ता बिधि रघुबर नाम महँ वर्तमान गुन तीन । चन्द्र भानु अपि अनल, बिधि हरि हर कहहिं प्रबीन १४५
अनल रकार, अकार रबि, जानु मकार मयंक । हरी अकार, रकार बिधि, महँ महेस निःसंक।१४६।
बन अज्ञान-कहँ दहन कर अनल प्रचण्ड रकार । हरि अकार हर मोह तम तुलसी कहहिं बिचार १४७
त्रिबिध ताप हर ससि सतर जानहु परम मकार । बिधि हरि हर गुन तीनिको तुलसी नाम अधार १४८
भानु कृसानु मयंकको कारन रघुबर नाम । बिधि-हर-सम्भु सिरोमनी प्रनत सदा सुखधाम १४९
अगुन अनूपम सगुन-निधि तुलसी जानत राम । करता सकल जगत्तको भरता सब मन काम ।१५०।
छत्र मुकुट सम बिधि अचल तुलसी जुगल हलन्त । सकल बरन सिरपर रहत महिमा अमल अनन्त १५१
रामानुज सदगुन बिमल स्याम राम अनुहार । भरता भरत सो जगतको तुलसी लसत अकार ।१५२।
राजत राजस ता अनुज बरद धरनि धर धीर । बिधि बिदरत अति आसु करि तुलसी जनगन पीर १४३
हरन करन संकट सतर समर धीर बलधाम । महँ महेस अरि-दवन-बर लखन अनुज अरि काम ।१५४
राम सदा सम सील धर सुखसागर परधाम । अज कारण अद्वैत नित समतर पद अभिराम १५५
होनहार सह जान सब बिभव बीच नहिं होत । गगन गिरह करिबो कबै तुलसी पढ़त कपोत १५६
तुलसी होत सिखै नहीं तन गुन दूषनधाम । भखन सिखिन कौने कहेउ प्रगट बिलोकहु काम १५७
गिरत अण्ड सम्पुट अरुण जलज पच्छ अनयास । अलल-सुवन[1] उपदेस केहि जात सुउलटि अकास १५८
बिबिध चित्र जल पात्र बिच अधिक नूर सम सूर । कब कौने तुलसी रचेउ केहि बिधि पच्छ मयूर १५९
कोकिलसुत गृह ना करे यह अचरज बड़ बाय । तुलसी केहि उपदेस सुनि जनित पिता घर जाय १६०
सुपथ कुपथ लीन्हें जनित स्व-स्वभाव अनुसार । तुलसी सिखवत नाहिं सिसु मूषक हनत मजार १६१
तुलसी जानत है सकल चेतन मिलत अचेत । कीर जात उड़ि तिय निकट बिनहिं पढ़े रति देत १६२
होनहार सब आपुतें वृथा सोच कर जौन । कंज शृंग तुलसी मृगन कहहु उमेठत कौन ।।१६३।।
सुख चाहत सुखमें बसत है सुखरूप बिसाल । सन्तत जा बिधि मानसर कबहुँ न तजत मराल १६४
नीति प्रीति जस अजस गति सबकहँ सुभ पहिचानि । बस्ती हस्ती हस्तिनी देति न पति रति दानि १६५
तुलसी अपने दुखदतें को कहु रहत अजान । कीस कुन्त अंकुर बनहिं उपजत करत निदान १६६
जथा धरनि सब बीजमें नखत अकास निवास । तथा राम सब धरममय जानत तुलसीदास ।।१६७।।
पृथ्वी पानी पावकहु पवनहु - माहँ समाइ । ता कहँ जानत राम अपि बिनु गुरु किमि लखिजाइ १६८
अगुन ब्रह्म तुलसी सोई, सगुन बिलोकत सोइ । दुख सुख नाना भाँतिको तेहि बिरोधतें होइ ।।१६९।।

---

१. अलल-सुवन = टिटिहरीका बच्चा ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सूर यथा रण जीतिकै पलटि आव चलि गेह । तिमि गति जानहु रामकी तुलसी सन्त सनेह १७०
परमातमपद, राम पुनि तीजे सन्त सुजान । जे जगमहँ बिचरहिं धरे देह विगत अभिमान ।१७१।
चौथी संज्ञा जीवकी सदा रहत रत काम । ब्रह्म न संत न रामरत निसि-वासर बसि बाम१७२
सुख पाये हरषत हँसत खीझत लहे विषाद । प्रगटत दुरत निरय परत केवल रत विष-स्वाद१७३
नाना विधिकी कल्पना नाना विधिको सोग । सूक्षम औ अस्थूल तन कबहुँ तजत नहिं रोग।१७४।
जैसे कुष्ठीकी सदा गलित रहत दोउ देह । बिन्दुहुकी गति तैसई अन्तरहू गति एह ॥१७५॥
त्रिधा देह गति एक विधि कबहूँ माँगति आन । विविध कष्ट पावत सदा निरखहिं संत सुजान।१७६।
रामहिं जाने सन्तवर संतहिं राम प्रमान । सन्तहिं केवल राम प्रभु रामहिं संत न आन ।१७७।
ताते सन्त दयाल वर देत राम धन रीति । तुलसी यह जिय जानिकै करियत हठि अति प्रीति१७८
तुलसी संत सुअम्ब तरु फूलि फरहिं पर हेत । इतते ये पाहन हनैं उतते वे फल देत ॥ १७९ ॥
सुख दुख दोनौं एकसम सन्तनके मनमाहिं । मेरु उदधि गति मुकुर जिमि भार भीजिबो नाहिं१८०
तुलसी राम सुजानको राम जनावै सोइ । रामहिं जानै राम-जन आन कबहुँ नहिं होइ ।१८१॥
सो गुरु राम सुजान-सम नहीं विषमता लेस । ताकी कृपा कटाच्छतें रहै न कठिन कलेस ॥१८२॥
गुरु कहँ तब समझै सुनै निज करतब-कर भोग । कह तब गुरु करतब करै मिटै सकल भव-सोग १८३
सरनागत तेहि रामके जिन्ह दिय धी सियरूप । जा पद निज घर उदय भे नासै भ्रम-तम कूप ।१८४।
जा पद पाये पाइये आनँदप्रद उपदेश । संशय रोग नसाय सब पावै पुनि न कलेस ॥१८५॥
मेधा सीता-सम समुझि गुरु विवेक-सम राम । तुलसी सिय-सम सो सदा भये विगत मग बाम १८६
आदि मध्य अवसान गति तुलसी एक समान । तेई संत सरूप सुभ जे अनित्य गति आन ॥१८७॥
एई सुद्ध उपासना परा भगतिकी रीति । तुलसी यहि मग पग धरे रहै रामपद प्रीत ॥१८८॥
जहँते जो आयउ सो है जाय जहाँ है सोय । तुलसी बिन गुरुदेव के किमि जानै कहु कोय ।१८९।
अपगत खे, सोइ अवनि, सो पुनि प्रगट पताल । कहाँ जनम कहँ मरन अपि समुझहिं सुमति रसाल १९०
संग-दोष-तें भेद अस मधु मदिरा मकरन्द । गुरु गमते देखहिं प्रकट पूरन परमानन्द ॥१९१
डाबर सागर कूपगत भेद दिखाई देत । है एकै दूजो नहीं द्वैत आनके हेत ॥१९२॥
गुनगन नाना भाँति तेहि प्रकटत कालहिं पाइ । जानि जाय गुरु ज्ञानते बिन जाने भरमाइ ॥१९३॥
तुलसी तरु फूलत फलत जा बिधि कालहिं पाय । तैसेही गुन-दोषगत प्रगटत समय सुभाय ॥१९४॥
दोषहु गुनकी रीति यह जानु अनल गति देखि । तुलसी जानत सो सदा जेहि विवेक सुबिसेखि १९५
गुरुतें आवत ज्ञान उर नासत सकल बिकार । यथा निलय गति दीपके मिटत सकल अँधियार१९६
जद्यपि अवनि अनेक सुख तोय तामरस ताल । सन्तत तुलसी मानसर तदपि न तजहिं मराल१९७
जो जल जीवन जगतको परसत पावन जौन । तुलसी सो नीचे ढरत ताहि निवारत कौन ।१९९।
जो करता है करमको सो भोगत नहिं आन । बोअनहार लुनि है सोई देनी लहइ निदान ॥२००॥
रावन रावनको हनेउ दोष रामकौ नाहिं । निज हित अनहित देखु किन तुलसी आपुहि माँहि २०१
सुमिरु राम, भजु रामपद, देखु राम, सुनु राम । तुलसी समुझहु राम-कहँ अहनिसि यह तुव काम २०२
अनल अनिल रज अप नभहिं जड़ जानत सब कोइ । यह चैतन्य सदा समुझ कारजरत दुख होइ ॥२०३॥
निजकृत बिलसत सो सदा बिनु पाये उपदेश । गुरु पग पाय सुमग धरै तुलसी हरइ कलेस ॥२०४॥
सलिल सुक्र सोनित समुझ मल अरु अस्थि समेत । बाल, कुमार, युवा, जरा है सु समुझ कर चेत २०५

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऐसिहि गति अवसानकी तुलसी जानत हेत । तातैं यह गति जानि जिय अविरल हरि चित चेत२०६
जानै रामसरूप जब तब पावै पद सन्त । जनम मरन पदतैं रहित सुषमा अमल अनन्त २०७
दुखदायक जाने भले दुखदायक भजि राम । अब हमको संसारको सब विधि पूरनकाम ।२०८।
आपुहि मदको पान करि आपुहि होत अचेत । तुलसी बिबिध प्रकारको दुख उतपति यहि हेत २०९
जासौं करत बिरोध हठि कहु तुलसो को आन । सो तैं सब नहिं आन तव नाहक होसि मलान २१०
चाहसि सुख जेहि मारिकै सो तौ मारि न जाय । कौन लाभ बिषतैं बदलि तैं तुलसी बिष खाय २११
कोह द्रोह अघमूल है जानत को कहु नाहिं । दया धरम कारन समुझि को दुख पावत नाहिं २१२
बनो बनायो है सदा समुझ रहित हो शूल । अरुन बरन केहि कामको बिना बासको फूल २१३

॥ इति द्वितीयः सर्गः ॥

जनकसुता दशजान-सुत उरग-ईस अ-मजौर । तुलसिदास दस-पद परसि भवसागर गो पौर २१४
तुलसी तेरो राग-धर तात मात गुरुदेव । ता तजि तोहिं न उचित अब रुचित आन पद सेव२१५
तरक बिशेषि निषेध पति उर मानस सुपुनीत । बसत मराल ल-रहित करि तेहि भजु पलटि बिनीत२१६
सुकलाऽदिहिं कल देहु इक अन्त सहित सुखधाम । दै कमला कल मध्यको अन्त सकल सुख-धाम ॥२१७॥
बीज धनंजय रबि-सहित तुलसी तथा मयंक । प्रगट तहाँ नहिं तम तमी सम चित रहत असंक२१८
रंजन कानन कोकनद बंस बिमल अवतंस । गंजन पुरहित अरि सदल जगहित मानस हंस २१९
जगतैं रहु छत्तीस ह्वै रामचरन छत्तीन । तुलसी देखु बिचारि हिय है यह मतो प्रवीन २२०
कंदिग दून नछत्र हनि गुनी अनुज तेहि कीन्ह । जेहि हरि कर मनि मान हनि, तुलसी तेहि पद लीन्ह२२१
मरन-बिपति-हर, धुर करम, धराधरन, बलधाम । सरन तासु तुलसी चहत, बरन सकल अभिराम २२३
बिहग बीच रैयत त्रितिय पति पति तुलसी तोर । तासु बिमुख सुख अति विषम सपनेहुँ होति न भोर२२४
द्वितिय कोल राजिव प्रथम बाहन निहचय माहिं । आदि एक कल दै भजहु बेद बिदित गुन जाहि २२५
बसत जहाँ राघव जलज तेहि मिति गो जेहि संग । भजु तुलसी तेहि अरि-सुपद, करि उर प्रेम अभंग२२६
भजहु तरनि-अरि आदि कहुँ तुलसी आत्मज अन्त । पंचानन लहि पंदुम मथि गहे बिमल मन सन्त २२७
बनिता सैल - सुता सकी तासु जनमको ठाम । तेहि भजु तुलसीदास हित प्रनत सकल सुखधाम२२८
भजु पतंगसुत आदिकहँ मृत्युञ्जय करि अन्त । तुलसी पुष्कर यज्ञ कर चरन-पांसुमिच्छन्त ॥२२९॥
उलटे तासी तासु पति सौ हजार मन सत्य । एक-सून-रथ-तनय-कहँ भजसि न मन समरत्थ २३०
दुतीय तृतिय हर कास नहिं तेहि भजु तुलसीदास । काकासन आसन किये सासन लहै उपास ॥२३१॥
आदि दुतिय अवतार कहँ भजु तुलसी नृप अन्त । कमल प्रथम अरु मध्य सह वेद विदित मत संत२३२
जेहि न गनेउ कछु मानसहु सुरपति अरि भव त्रास । जेहि पद सुचिता-अवधि भव तेहि भजु तुलसीदास२३३
नैन करन गुन धरन बर ता वर धरन विचार । चरन सतर तुलसी चहसि उबरन सरन अधार २३४
भजु हरि आदिहि बाटिका भरिता राजिव अन्त । करिता पद विश्वास भव-सरिता तरसि तुरन्त २३५
जड़ मोहन बरनादिकहँ सह चंचल चित चेत । भजु तुलसी संसार अहि नहिं गहि करत अचेत२३६
अमर अधिप बारन बरण, दूसर अन्त अगार । तुलसी इखु सह रागधर तारन तरन अधार ।२३७।
ज्यों उरबिज चाहसि झटित तौ करि घटित उपाय । सुमनस-अरि-अरि वर चरन सेवत सरल सुभाय२३८
दुतिय पयोधर परम धन बाग अन्त जुत सोय । भजु तुलसी संसार-हित यातैं अधिक न कोय २३९

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पति पयोधि पावन पवन तुलसी करहु विचार । आदि दुतिय अरु अन्त जुत ता मत तव निस्तार२४०
हंस कपट रस सहित गुन अन्त आदि प्रथमन्त । भजु तुलसी तजि बाम गति जेहि पद रत भगवन्त२४१
कना समुझि कवरन हरहु अन्त आदि जुत तार । श्रीकर तमहर बरन-वर तुलसी सरन उबार २४२
अंक-दसा-रस आदि जुत पाण्डुसूनु सह अन्त । जानि सुवन सेवक सतर करिहैं कृपा तुरन्त ॥२४३॥
झटिति सुखाहि विचारि हिय आदि बरन हरि एक । अन्त प्रथम स्वर दै भजहु जा उर तत्त्व विवेक २४४।
आदि चन्द्र चंचल सहित भजु तुलसी तजु काम । अघगंजन रंजन सुजन भवभंजन सुखधाम ॥२४५॥
विगत देह तनु जासु पति पद रति सहित सनेम । जौ अति मति चाहसि सुगति तौ तुलसी करु पेम २४६
करता सुचि सुरसरि-सुता ससि सारँग महि जान । आदि अन्त सह प्रथम जुत तुलसी समुझु न आन २४७
गिरिजापति कल आदि इक हरि नछत्र जुध जान । आदि अन्त भजु अन्त पुनि तुलसी सुचि मन मान२४८
ऋतुपतिपद पुनि पदिक युत प्रथम आदि पुनि लेहु । अन्त हरन पद दुतियमहँ मध्य वरन सह नेहु ।२४९।
बाहन सेष सुमधुप रव भरत नगर जुन जान । हरि भरि सहित विपर्ज करि आदि मध्य अवसान२५०
तुलसी उडुगणको वरन बनज-सहित दोउ अन्त । ताकहँ भजु संसय-समन रहित एक कल अन्त ।२५१॥
बारिज बारिज बरन-वर बरनत तुलसीदास । आदि आदि भजु आदि पद पाये परम प्रकास ।२५२
भजु तुलसी कुलिसान्त कहँ सह अगार तजि काम । सुखसागर नागर ललित बली अली परधाम ॥२५३।
चंचल सहितरु चंचला अन्त अन्त जुत जान । सन्त शास्त्र सम्मत समुझि, तुलसी करु परमान २५४
आदि बसन्त इकार दै आसय तासु बिचार । तुलसी तसु सरना परे कासु न भयो उबार ॥२५५॥
धरा धराधर बरन जुग सरन हरन भवभार । करन सतर तर परम पद तुलसी धरमाधार ॥२५६॥
बरन धनंजय-सूनुपति चरन सरन रति नाहिं । तुलसी जगवंचक विहठि किये बिधाता ताहि ।२५७॥
तुलसी रजनी पूर्निमा हार-सहित लखि लेहु । आदि अन्त जुत जानि करु तासौं सरल सनेहु ॥२५८
भानु गोत्र तमि तासु पति कारन अति हित जाहि। ज्ञान सुगति जुत सुखसदन तुलसी मानत ताहि।२५९।
भजु तुलसी ओघादिकहँ सहित तत्त्व जुत अन्त । भव आयुर्जय जासु बल मन चल अचल करन्त २६०
देत कहाँ नृप काजपर लेत कहाँ इत राज । अन्त आदि जुत सहित भजु जो चाहसि सुभ काज२६१
चन्द्र-रवनि भजु गुन सहित समुझि अन्त अनुराग । तुलमी जो यह बन परै तौ तव पूरन भाग ॥२६२॥
जिनके हरि बाहन नहीं दधिसुत-सुत जेहि नाहिं । तुलसी ते नर तुच्छ हैं बिना समीर उड़ाहिं ॥२६३।
रबि चंचल अरु ब्रह्म-द्रव बीच सुबास बिचारि । तुलसिदास आसन करे अविनासुता उर धारि ।२६४।
बन बनिता-दृगकोपमा जुत करु सहित विवेक । अन्त आदि तुलसी भजहु परिहरि मन कर टेक २६५
उर्वी अन्तहु आदि जुत कुल सोभा कमलादि । करि विपर्ज ऐसेहिं भजहु तुलसी समन विषाद २६६
तौ तोहिं कहँ सब कोउ सुखद करहिं कहा तव पाँच । हरब तृतिय बारिज बरन तजब लीन सुनु साँच२६७
तजहु सदा सुभ आसु अरि भजु सुमनस अरि काल । सजु मत ईस अवन्तिका तुलसी बिमल बिसाल२६८
एत बंस बर बरनजुग सेतु जगत सब जान । चेत-सहित सुमिरन करत हरत सकल अघखान२६९
मैत्रीबरन यकारको सहस्वर आदि बिचारि । पञ्च पवर्गहि-जुत सहित तुलसी ताहि सँभारि २७०
हल अम-मध्य समानजुत यातैं अधिक न आन । तुलसी ताहि बिसारि सठ भरमत फिरत भुलान२७१
कौन जाति सीता ? सती, को दुखदा ? कटु बाम । को कहिये ससिकर ? दुखद, सुखदायक को ? राम२७२
को संकर ? गुरु-वागवर, सिवहर को ? अभिमान । करता को अग-जगतको ? भरताको ? हरि जान२७३
स्वर स्रेयस राजीवगुन करु तेहि दृढ पहिचान । पंचहि सहित पवर्ग जुत तुलसी ता हित मान २७४

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

होत हरष का पाय ? बन, विपति तजे का ? धाम । दुखदा कुमति कुनारि तर, अति सुखदायक राम२७५
बीर कवन सह मदनसर, धीर कवन रन राम । कवन क्रूर हरिपद-विमुख, को कामी बस-बाम २७६
कारन को कंजीव को खंगुन कह सब कोय । जानत को तुलसी कहत सो पुनि आन न होय २७७
जासु आस सरदेवको अरु आसन हरि नाम । सकल दुखद तुलसी तजहु मध्य तासु सुखधाम २७८
तुलसी बरण विकल्पको औ चप-त्रितिय समेत । अन-समुझे जड़ सरिस नर समुझे साधु सचेत २७९
चंचल तिय भजु प्रथम हरि जो चाहसि परधाम । तुलसी कहहि सुजन सुनहु यही सयानप काम ।।२८०।।
कुलिस-धरम जुग अन्तयुत भजु तुलसी तजु काम । असुभहरण संसयसमन सकल कला गुनधाम ।।२८१।।
श्रीकरको रघुनाथ हर अनय कहत सब कोय । सुखदाको जानति सुमति तुलसी समता दोय ।।२८२।।
बैर मूल हित हर-वचन प्रेममूल उपकार । दोहा सरल सनेहमैं तुलसी किए विचार ।।२८३।।
प्रान कवन गुरु लघु जगत तुलसी अवर न आन । श्रेष्ठ कवन हरि भगतिसम, को लघु लोभ समान।२८४।
बरण दुतिय नासक निरय, तुलसी अन्त रसाल । भजहु सकल श्रीकरसदन जनपालक खलसाल ।।२८५।।
चप श्रेयस स्वर-सहित गुनि यमयुत दुखद न आन । तुलसी हलजुतते कुशल अन्तिकार सह जान ।।२८६।।
तुलसी यमगुन बोध-बिनु कहु किमि मिटइ कलेस । ताते सदगुरु चरण गहि, जाते पद उपदेस ।।२८७।।
भगन जगन कासौं करसि, राम अपर नहिँ कोय । तुलसी पति पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय।२८८
तुलसी तगन-बिहीन नर सदा नगनके बीच । तिनहिँ यगन कैसे लहै परे सगनकी कीच ।।२८९।।
इन्द्ररवणि सुरदेव ऋषि रुक्मिनिपति सुभ जान । भोजन दुहिता काक अलि आनंद अशुभ समान।।२९०।।
को हित सन्त अहित कुटिल, नासकको हित लोभ । पोषक तोषक दुखद अरि सोषक तुलसी छोभ ।।२९१।।
सदा नगन पद प्रीति यहि जानु नगन-सम ताहि । जगन ताहि जययुत रहत तुलसी संसय नाहिँ ।।२९२।।
भगन भगति करु भरम तजि तगन सगन बिधि होय । सगन सुभाव समुझि तजो भजे न दूषन कोय ।।२९३।।
शृंगज असन सजुक्त जू विहरत तीर सुधीर । यज्ञ पाय मैत्रानपद राजत श्रीरघुबीर ।।२९४।।
बानजुक्त सरजू निकट बिहरत राम सुजान । तुलसी करकमलन ललित लखत सरासन बान।।२९५।।
मृदुमेचक सिररुह रुचिर सीस तिलक भ्रू बंक । धनु-सर गहि जनु तड़ित-जुत तुलसी लसत मयंक। २९६।
हंस कमल बिच करन युग तुलसी अति प्रिय जाहि । तीन लोकमहँ जो भजै लहै तासु फल ताहि ।।२९७।।
आदि म है अन्तहु म है, मध्य रहै तेहि जान । अनजाने जड़ जीव सब समुझै सन्त सुजान ।।२९८।।
आदि द है मध्ये र है अन्त द है सो बात । राम-बिमुखके होत है, रामभजन-तें जात ।।२९९।।
ललित चरन कटि कंर ललित लसत ललित बनमाल । ललित चिबुक द्विज अधरसह लोचन ललित बिसाल३००
भरन हरन अव्यय अमल सहित बिकल्प बिचार । कह तुलसी मति अनुहरत दोहा अर्थ अपार ।।३०१।।
विशिष्टादिलंकार महँ संकेतादि सुरीति । कहे बहुरि आगे कहब समुझब सुमति विनीति।।३०२।।
कोष अलंकृत, सन्धि-गति मैत्रीबरन विचार । हरन भरन सुचि भगति भल कविहि अर्थ निरधार।३०३
देश काल करता करम बुधि बिद्या गतिहीन । ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन ।।३०४।।
नरवर नभ सर वर सलिल बनज बिनय विज्ञान । सुमति सुक्तिका सारदा स्वाती कहहिँ सुजान ।।३०७।।
सम दम समता दीनता दानदयादिक रीति । दोष दुरित-हर-दरददर उरवर विमल विनीति ।३०८।
धरमधुरीण सुधीरधर धारनवर परपीर । धरा धरा-धर-सम अचल बचन न बिचल सुधीर।।३०९।
चौंतिस के प्रस्तारमैं अर्थभेद परमान । कहहु सुजन तुलसी कहहिँ या बिधितें पहिचान।३१०।
बेद बिषम कबरन सुतर सतर रामकी रीति । तुलसी भरत न भरि हरत भूलि हूरहु जनि प्रीति ।३११

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बनते गुनकहँ जानिये ताते दिग दिग तीन । तुलसी यह जिय समुझि करि जगजित संत प्रबीन ३१२
चन्द्र अनल नहिँ है कहूँ झूठो बिना बिवेक । तुलसी ते नर समुझिहैँ जिनहिँ ज्ञानरस एक ॥३१३॥
सतसैया तुलसी सतर तमहरि परपद देत । तुरित अविद्या-जन दुरित बर तुल-सम करि लेत ३१४

॥ इति तृतीयः सर्गः ॥

चौदह चारि अठारहो पढ़े सुने का होइ । तुलसी अपने राम कहैँ जौ लगि लखइ न कोइ ३१५
तन सुखाइ पंजर करै धरै रैन दिन ध्यान । तुलसी मिटे न वासना बिना बिचारे ज्ञान ॥३१६॥
कलप बिरिछको चित्र लिखि कीन्हैँ बिनय हजार । बित्त न पावै ताहि सो तुलसी देखु विचार॥३१७॥
बैठि निसागम निलय महँ करै दीपकी बात । तुलसी देखु बिचारि उर नहिँ तम नैक नसात।३१८
गृह सुन्दर पुनि निकट कवि आँगन अमृत भूरि । ते अति लघुते लघु रहहिँ बिनु समुझे अति दूरि॥३१९।
यह तन अनुपम अयन बर उपमारहित सुचैन । समुझ-रहित रटि पचि मरै करत सकल अध्यैन ३२०
रसना-सुत पहिचान बिनु कहहु न कवन भुलान । जानै कोउ हरि गुरु कृपा उदित भये रविज्ञान ॥३२१
त्रिबिध भाँतिको सबद बर बिघट न लट परमान । कारन अविरल अल अपितु तुलसी अबिध भुलान ३२२
दिगभ्रम जा बिध होत है कौन भुलावत ताहि । जानि परत गुरु-ज्ञानतैँ सब जग संसय माहिँ ॥३२३॥
कारन चारि बिचारु बर बरनन अपर न आन । सदा सोउ गुण-दोषमैँ लखि न परत बिनु ज्ञान ।३२४॥
इह करतब सब ताहिको यहिते वह परमान । तुलसी मरम न पाइहैँ बिन सद्गुरु बरदान ॥३२५॥
दिगभ्रम कारण चारि तैँ जानहिँ सन्त सुजान । ते कैसे लखि पाइहैँ जे उहि बिषय भुलान ॥३२६॥
सुख दुख कारणसौँ भयउ रसनाको सुत वीर । तुलसी सो सब लखि परै करै कृपा बरधीर ॥३२७॥
अपने खोदे कूप-महँ गिरे जथा दुख होइ । तुलसी सुखप्रद समुझि हिय रचत जगत सब कोय ३२८
ता बिधितैँ अपनो विभव दुखद सुखद करतार । तुलसी कोउ कोउ सन्त-बर कीन्हैँ बिरचि बिचार ३२९
रसनाहीके सुत उपर करत निरन्तर प्रीति । तेहि पाछे सब जग लगेउ समुझ न रीति अरीति ।३३०
माया मन तैँ ईस भनि ब्रह्मा विष्णु महेश । सुर देवी औ ब्रह्मलौँ रसना-सुख उपदेश ॥३३१॥
करनधार वारिधि अगम को गम करै अपार । जन तुलसी सतसंग बल पाये बिसद बिचार ३३२
गहि सुबेल बिरलै समुझि बहिगे अपर हजार । कोटिन बूड़े खबर नहिँ तुलसी कहहिँ बिचार ३३३
श्रवन सुनत देखत नयन तुलत नं बिबिध बिरोध । करहु केहि केहि मानिये केहि बिधि करिय प्रबोध३३४
श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक बरनात्मक बिधि तीन । त्रिबिध शब्द अनुभव अगम तुलसी कहहिँ प्रबीन३३५
कहत सुनत आदिहि बरन देखत बरन - विहीन । दृश्यमान चर अचरगण एकहि एक न लीन ॥३३६
पंच भेद चर-गन बिपुल तुलसी कहहि विचारि । नर, पशु, स्वेदज, खग, कृमी, बुध जन मत निरधारि३३७
अति विरोध तिनमहँ प्रबल प्रकट परत पहिचान । अस्थावर गति अपर नहिँ तुलसी कहहि प्रमान३३८
रोम रोम ब्रह्माण्ड बहु देखत तुलसीदास । बिन देखे कैसे कोऊ सुनि मानै बिस्वास ॥३३९॥
वेद कहत जहँ लगि जगत तेहितैँ अलग न आन । तेहि अधार व्यवहरत लखु तुलसी परम प्रमान ३४०
सरषप सूझत जाहि कहँ ताहि सुमेरु असूझ । कहेउ न सो समुझत अबुध तुलसी बिगत बिबूझ३४१
कहत अउर समुझत अउर गहत तजत कछु और । कहे सुने समुझत नहीँ तुलसी अति मति बौर ३४२
देखेउ करै अदेख इव अनदेखेउ बिस्वास । कठिन प्रबलता मोहकी जलकहँ परम पियास ३४३
सुनत श्रवन देखत नयन संशय समन समान । तुलसी समता असम-भव कहत आन-कहँ आन॥३४५

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बसहा भव अरि हित अहित सोपि न समुझत हीन । तुलसी दीन मलीन मति मानस परम प्रवीन ।।३४६
भटकत पद अद्वैतता अटकत ज्ञान गुमान । सटकत बितरनतें बिहटि, फटकत तुष अभिमान ३४७
जो चाहत तेहि बिनु दुखित सुखित रहित तेहि होई । तुलसी सो अतिसय अगम सुगम रामतें सोइ ।।३४८।
मात पिता निज बालकहिँ करहिँ इष्ट उपदेस । सुनि मानै बिधि आपु जेहि निज-सिर सहै कलेस३४९
सबसौं भलो मनाइबो भलो होनकी आस । करत गगनको गँड़ुआ सो सठ तुलसीदास ।।३५०।।
बलि मिस देखत देवता कर मिस मानब देव । मुये मारि अविचार-रत स्वारथ साधक एव ३५१
बिना बीज तरु एक भव साखा दल फल फूल । को बरनै अतिसय अमित सब बिधि अकल अतूल ३५२
सुक पिक मुनिगन बुध बिबुध फल आश्रिन अति दीन । तुलसी ते सब बिधि रहित सो तरु तासु अधीन३५३
को नहिँ सेवत आय भव, को न सेइ पछताय । तुलसी बादहि पचत है आपुहि आप नसाय ३५४
कहत बिबिध फल बिमल तेहि लहत न एक प्रमान । भरम प्रतिष्ठा मानि मन तुलसी कथत भुलान ३५५
मृगजल घट भरि बिबिध बिधि सींचत नभतरु मूल । तुलसी मन हरषित रहत बिनहिँ लहे फल फूल३५६
सोऽपि कहहिँ हमकहँ लहेउ नभतरुको फल फूल । ते तुलसी तिनतें बिमल सुनि मानहिँ मुद मूल ३५७
तेऽपि तिन्हँइ जाँचहिँ बिनय करि करि बार हजार । तुलसी गाडरके ढरनि जानौ जगत बिचार ।।३५८।।
ससि कर सृँग रचना किये कत सोभा सरसात । स्वर्ग सुमन अवतंस खल चाहत अचरज बात ३५९
तुलसी बोल न बूझई देखत देख न जोइ । तिन सठको उपदेस का करब सयाने लोइ ।।३६०।।
जो न सुनै तेहि का कहिय कहा सुनाइय ताहि । तुलसी तेहि उपदेसही तासु सरिस मति जाहि ३६१
कहत सकल घट राममय तौ खोजत केहि काज । तुलसी कह इह कुमति सुनि,उर आवत अति लाज३६२
अलख कहहिँ, देखन चहहिँ, ऐसे परम प्रबीन । तुलसी जग उपदेसही बनि बुध अबुध मलीन ३६३
हहरत हारत रहित-बिद धरे रहत अभिमान । ते तुलसी गुरु आव नहिँ कहि इतिहास पुरान ३६४
निज नैनन देखत नहीँ गही आँधरे बाँह । कहत मोहबस तेहि अधम परम हमारे नाह ३६५
गगन-ब्राटिका सींचहीँ भरि भरि सिन्धु-तरंग । तुलसी मानहिँ मोद मन ऐसे अधम अभंग ।।३६६।।
हषद करत रचना बिहरि रंग रूप समतूल । बिहग बदन बिष्ठा करै ताते भयो न तूल ।।३६७।।
चाह तिहारी आपतें मान न आनन आनन । तुलसी करु पहिचान पति याते अधिक न मान३६८
आतमबोध बिचार यह तुलसी करु उपकार । कोउ कोउ रामप्रसादतें पावत परमितिपार ।३६९।
जहाँ तोष तहँ राम हैं राम तोष नहिँ भेद । तुलसी देखत, गहत नहिँ सहत बिबिध बिधि खेद ३७०
गोधन गजधन बाजिधन और रतन-धन-खानि । जब आवै सन्तोष-धन सब धन धूरि समान ।।३७१।
कुथि रटि अटत बिमूढ़ पट घट उदघटत न ज्ञान । तुलसी रटत हटत नहीँ अतिसय गत अभिमान ३७२
भू-भुजंग-गत दाम भ्रम काम न बिबिध बिधान । तो तन बरतत मान जत तत तुलसी परमान ३७३
भोडर सुक्ती बीच पड़ि मनिगन प्रगट लखात । मनि भोडर अरु सुक्तिते बिलग बिजानत तात।३७४।
रामचरन पहिचान बिनु मिटी न मनकी दौर । जनम गँवाये बादही रटत पराये पौर ।।३७५।।
सुनै बरन मानै बरन बरन बिलग नहिँ ज्ञान । तुलसी सुगुरु-प्रसाद बल परै वरन-पहिचान ।३७६।।
बिटप - बेलिगन बागके मालाकार न जान । तुलसी ता बिधि-बिद-बिना करता राम भुलान ३७७
करतब ही सौं कर्म है कह तुलसी परमान । करनहार करता सोई भोगै कर्म निदान ।।३७८।।
तुलसी घट पटतें भटक अटक अपितु नहिँ ज्ञान । जातें गुरु उपदेस-बिनु भरमत फिरत भुलान ३७९
ज्यौं बरषा बनिजारके फिरत घनेरे देस । खाँड़ भरे भुस खात हैं बिन गुरुके उपदेस ।।३८०।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बुद्धिहि बारत अनय पद स्वपन पदारथ लीन । तुलसी ते रासभ-सरिस निज मन गनहिं प्रवीन ३८१
कहत बिबिध, देखे बिना, गहत अनेक, न एक । ते तुलसी सोनहा-सरिस बानी बदहिं अनेक ।३८२
बिन पाये परतीत अति करत जथारथ हेत । तुलसी अबुध अकास इव भरि-भरि मूठी लेत ३८३
बसन बारि बाँधत बिहठि तुलसी कौन बिचार । हानि लाभ बिधि बोध बिनु होत नहीं निरधार३८४
उत कुलकी करनी तजे इत न भजे भगवान । तुलसी अधवरके भये ज्यों बघूरके पान ॥३८६॥
कीर सरिस बानी पढ़त चाखन चाहत खाँड़ । मन राखत बैरागमहँ घरमहँ राखत राँड़ ।३८७।
रामचरन परचै नहीं बिन साधुन - पद नेह । मूड़ मुड़ाये बादही, भाँड़ भये तजि गेह ॥३८८॥
काह भयो बन बन फिरे जो बनि आयो नाहिं । बनते बनते बनि गयो तुलसी घरही माहिं ।३८९।
जो गति जानै बरनकी तन गति सो अनुमान । बरन-बिन्दु कारण जथा तथा जानु नहिं आन ३९०
बरन जोग भव नाम जग जानु भरमको मूल । तुलसी करता है तुही जानु मानु जनि भूल ३९१
नाम जगत सम समुझि जग बस्तु न करि चित चैन । बिन्दु गये जिमि गनते रहत ऐनको ऐन ॥३९२॥
आपुहि ऐन बिचारु बिधि सिद्धि बिमल मति मान । आन बासना बिंदुसम तुलसी परम प्रमान ।३९३।
धन धन कहे न होत कोउ समुझि देखु धनवान । होत धनिक तुलसी कहत दुखित न रहत जहान३९४
हिमकी मूरतिके हिये लगी नीरकी प्यास । लगत सबद गुरु तर निकर सो मैं रही न आस३९५
जाके उरवर बासना भई मास कछु आन । तुलसी ताहि बिडम्बना केहि बिधि कथहि प्रमान३९६
रुज तन-भव परचै बिना भेषज कर किमि कोय । जानि परै भेषज करै सहज नास रुज होय ।३९७।
मानस ब्याधि कुचाह तब सद्गुरु बैद समान । जासु बचन अलबल अवसि होत सकल रुज हान३९८
रुचि बाढ़े सतसंग-महँ नीति क्षुधा अधिकाय । होत ज्ञानबल पीन अल बृजिन बिपति मिटि जाय३९९
सुकुल पच्छ ससि स्वच्छ जिमि कृष्णपक्ष द्युतिहीन । बढ़त घटत बिधि भाँति-बिद तुलसी कहहिं प्रबीन४००
सतसंगति सितपच्छ सम असित असन्त प्रसंग । जानु आपकहँ चन्द्र सम तुलसी बदत अभंग ४०१
तीरथपति सतसंग सम भगति देवसरि जान । बिधि उलटी गति रामकी तरनिसुता अनुमान४०२
बर मेधा मानहु गिरा धीर धर्म न्यग्रोध । मिलन त्रिबेनी मनहरनि तुलसी तजहु बिरोध ४०३
समुझब सम मज्जन बिसद मल अनीति गइ धोइ । अवसि मिलन संसय नहीं सहज रामपद होइ ४०४
छमा बिमल बारानसी सुरअपगा सम भक्ति । ज्ञान बिसेस्वर अति बिसद लसत दया सह सक्ति४०५
बसत छमा गृह जासु मन बारानसी न दूरि । बिलसित सुरसरि भक्ति जहँ तुलसी नय कृत भूरि४०६
सित कासी मगहर अमित लोभ मोह मद काम । हानि लाभ तुलसी समुझि बास करहु बसु जाम४०७
गये पलटि आवै नहीं है सो करु पहिचान । आजु जोइ सोइ काल है तुलसी भरम न मान ४०८
वर्तमान आधीन दोउ भावी भूत बिचार । तुलसी संसय मन न करु जो है सो निरुवार ४०९
मानसरोवर मन मधुर राम-सुजस सुचि नीर । हरइ बृजिन-बुधि बिसद अति बुधमन अगम अधीर४१०
अलंकार कबि - रीति - जुत भूषन दूषन रीति । बारिजात बरनत बिबिध तुलसी बिमल बिनीत४११
बिनय बिचार सुहृद्यता सोइ पराग रस गन्ध । कामादिक तेहि सर लसत तुलसी घाट प्रबन्ध ४१२
प्रेम उमगि कवितावली चली सरित सुचि-सार । राम बरा पुरि मिलन हित तुलसी हरष अपार४१३
तरल तरंग सुछन्द बर हरत द्वैत तरु मूल । वैदिक लौकिक बिधि बिमल लसत बिसदबर कूल४१४
सन्तसभा बिमला नगरि सकल सुमंगल-खानि । तुलसी उर सुरसर सुता लसत सुथल अनुमानि ४१५

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मुक्त मुमुच्छू अरु बिषयि स्रोता त्रिबिध प्रकार । ग्राम नगर पुर जुग सुतट तुलसी कहहिं बिचार४१६
बारानसी बिराग नहिं सैलसुता - मन होय । तिमि अवधहि सरजू न तज कहत सुकवि सब कोय४१७
कहब सुनब समुझब सु पुनि सुनि समुझाइब आन । स्रमहर घाट प्रबन्धबर तुलसी परम प्रमान ।४१८।

॥ इति चतुर्थः सर्गः ॥

जतन अनूपम जानु बर सकल कला गुनधाम । अविनासी अव्यय अमल भो यह तनु धरि राम४१९
सदा प्रकाशक रूपबर अस्त न अपर न आन । अप्रमेय अद्वैत अज याते दुरत न ज्ञान ॥४२०॥
जानहिं हंस रसाल कहँ तुलसी सन्त न आन । जाकी कृपा-कटाच्छतें पाये पद निर्बान ॥४२१॥
तजत सलिल अपि पुनि गहत घटत बढ़त नहिं रीति । तुलसी यह गति उर निरखि करिय रामपद प्रीति४२२
चुम्बन आहन रीति जिमि सन्तन हरि सुखधाम । जान तिरीछर-सम-सफरि तुलसी जानत राम॥४२३
भरत हरत दरसत सबहिं पुनि अदरस सब-काहु । तुलसी सुगुरु-प्रसाद-बल होत परमपद लाहु ।४२४।
जथा प्रतच्छ सरूप बहु जानत है सब कोय । तथा अलख-गतिको लखब असमंजस अति सोय४२५
यथा सकल अप जात अपि रबिमण्डलके माहिं । मिलत तथा जिव रामपद होत तहाँ लय नाहिं४२६
कर्मकोष सँग लै गयो तुलसी अपनी बानि । जहाँ जाय बिलसै तहाँ परै कहां पहिचानि ।४२७
ज्यों धरणीमहँ हेतु सब रहत जथा धरि देह । त्यों तुलसी लै राममहँ मिलन कबहुँ नहिं एह४२८
सोषक पोषक समुझ सुचि राम प्रकास-सरूप । जथा तथा बिभु देखिये जिमि आदर्स अनूप ॥४२९॥
करम मिटाये मिटत नहिं तुलसी किये बिचार । करतब हीको फेर है या बिधि सार असार ४३०
एक किये हैं दूसरे बहुरि तीसरो अंग । तुलसी कैसेहु ना मिटै अतिसय करम तरंग ४३१
इन दोउनतें रहित भो कोउ न राम तजि आन । तुलसी यह गति जानिहै कोउ कोउ सन्त सुजान४३२
सन्तनको लै अभिसदन समुझहि सुगति प्रवीन । करम-विपर्जय कबहुँ नहिं सदा रामरस-लीन।४३३॥
सदा एकरस सन्त सिय निश्चय निसिकर जान । राम दिवाकर दुखहरन तुलसी सीलनिधान ॥४३४॥
सन्तनकी गति उरविजा जानहु ससि परमान । रमित रहत रसमय सदा तुलसी रति नहिं आन४३५
जातरूप जिमि अनल मिलि ललित होत तन ताय । सन्त सीत कर सीय तिमि लसहिं रामपद पाय४३६
आपुहिं बाँधत आपु हठि कौन छुड़ावत ताहि । सुखदायक देखत सुनत तदपि सो मानत नाहिं ४३७
जौन तारतें अधम गति उरध तौन गति जात । तुलसी मकरी तन्त इव करम न कबहुँ नसात ४३८
जहाँ रहत तहँ सह सदा तुलसी तेरी बानि । सुधरै बिधि बस होय जब सतसंगति पहिचानि४३९
रबि रजनीस धरा तथा यह असथिर अस्थूल । सूछम गुनको जीवकर तुलसी सो तनमूल ॥४४०॥
आवत अप रविते यथा जात तथा रवि - माँहि । जहँते प्रकट तहीं दुरत तुलसी जानत ताहि ४४१
प्रकट भये देखत सकल दुरत लखत कोइ कोइ । तुलसी यह अतिसय अगम बिन गुरु सुगम न होइ४४२
या जग जे नयहीन नर बरबस दुख मग जाहि । प्रगटत दुरत महादुखी कहँ-लगि कहियत ताहि४४३
सुख-दुख मग अपने गहे मग केहु लगत न धाय । तुलसी रामप्रसाद बिनु सो किमि जानो जाय४४४
महितें रवि,रवितें अवनि,सपनेहु 'सुख कहुँ नाहिं । तुलसी तब लगि दुखित अति ससि-मग लहतन ताहि४४५
सन्तनकी गति सीतकर लेस कलेस न होय । जो सियपद दुखदा सदा जानु परमपद सोय ४४६
तजत अमिय ससि जानि जग तुलसी देखत रूप । गहत नहीं सब कहँ बिदित अतिसय अमल अनूप ४४७
ससिकर सुखद सकल जगत, को तेहि जानत नाहिं । कोक कमल-कहँ दुखद कर तदपि दुखद नहिं ताहि४४८
बिन देखे समुझे सुने सोउ भव मिथ्यावाद । तुलसी गुरु-गम कै लखै सहजहि मिटै विषाद ४४९

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बरषि बिस्व हरषित करत हरत ताप अथ प्यास । तुलसी दोष न जलदकर जौ जल जरै जवास ।४५०
चन्द्र देत अमि, लेत विष देखहु मनहिँ विचार । तुलसी तिमि सिय सन्तवर महिमा बिसद अपार४५१
रश्मि बिदित रबि रूप लखु सीत सीतकर जान । लसत जोग जसकार भव तुलसी समुझु समान ।।४५२
लेत अवनि रवि-अंसकहँ देति अभिय अपसार । तुलसी सूछमको सदा रबि रजनीस अधार ।।४५३।।
भूमि भानु अस्थूल अप सकल चराचर रूप । तुलसी बिनु गुरु ना लहै यह मत अमल अनूप ।४५४
तुलसी जे नयलीन नर ते निसिकर तन-लीन । अपर सकल रबिगत भये महाकष्ट अतिदीन ।।४५५।।
तुलसी कवनेहु जोगते सतसंगति जब होय । राम मिलन संसय नहीँ कहहिँ सुमति सब कोय ४५६
सेवक पद सुखकर सदा दुखद सेव्यपद जान । जथा विभीषन रावनहि तुलसी समुझु प्रमान ।।४५७।।
सीत उष्णकर रूपसम निसिदिन कर करतार । तुलसी तिनकहँ एक नहिँ निरखहु करि निरधार ४५८
नहिँ नैनन काहू लख्यो धरत नाम सब कोय । ताते साँचो है समुझु झूठ कबहुँ नहिँ होय ।। ४५९
बेद कहत सब को विदित तुलसी अमिय सुभाव । करत पान अरु रुज हरत अविरल अमल प्रभाव४६०
गन्ध सीत अपि उष्णता सबहि बिदित जग जान । महि बन अनल सु अनिल गत बिन देखे परमान४६१
इनमहँ चेतन अमल अल बिलसत तुलसीदास । सो पद गुरु-उपदेस सुनि सहज होत परकास ४६२
यहि बिधितैं बर बोध इह गुरु प्रसाद कोउ पाव । हैं ते अल तिहुँ कालमहँ तुलसी सहज प्रभाव।।४६३।।
काकसुता-सुत वा-सुता मिलति जननि पितु धाय । आदि मध्य अवसान गत चेतन सहज सुभाय ।४६४।।
समता स्वारथ-हीनते होत सु-विसद विवेक । तुलसी यह नितही फबै जिनहिँ अनेक न, एक ।४६५।
सब स्वारथ स्वारथ रटत तुलसी घटत न एक । ज्ञानरहित अज्ञानरत कठिन कुमन कर टेक ।।४६६।।
स्वारथ सो जानहु सदा जासौँ विपति नसाय । तुलसी गुरु-उपदेस बिन सो किमि जान्यो जाय ४६७
कारज स्वारथ हित करै कारन करै न होय । मनवाँ ऊख विशेषतैं तुलसी समझहु सोय ।।४६८।।
कारन कारज जान तैं सब काहू परमान । तुलसी कारन कारजो सो तैं अपर न आन ।।४६९।।
बिन करता कारज नहीँ जानत हैं सब कोय । गुरुमुख स्रवन सुनत नहिँ प्राप्ति कवन विधि होय४७०
करता कारन कारजहु तुलसी गुरु परमान । लोपत करता मोहबस ऐसेउ अबुध मलान ।।४७१।।
अनिल-सलिल-विधि योगते यथा बीचि बहु होय । करत करावत नहिँ कछुक करता कारन सोय ।।४७२।।
छेम धरन करतार कर तुलसी पति परधाम । सो बरतर ता सम न कोउ सब बिधि पूरनकाम ४७३
करता कारन सारपद अव्यय अमल अभेद । करम घटत अपि बढ़त हैं तुलसी जानत वेद ।।४७४।।
स्वेदज जौन प्रकारतैं आपु करै कोउ नाहिँ । भयउ प्रकट तेहिके सुनौ कौन बिलोकत ताहि।४७५।।
भई विषमता करम-महँ समता किये न होइ । तुलसी समता समुझ कर सकल मान मद धोइ।।४७६।।
समहित सहित समस्त जन सुहृद जानु सब काहु । तुलसी यह मत धारु उर दिन प्रति अति सुख लाहु४७७
यह मनमहँ निश्चय धरहु है कोउ अपर न आन । का सन करत विरोध हठि तुलसी समुझ प्रमान४७८
महि जल अनल सुअनिल नभ तहाँ प्रकट तव रूप । जानि जाइ बर बोधतैं अति सुभ अमल अनूप ।४७९
जोपै आकसमाततैं उपजे बुद्धि बिसाल । नातौ अति छलहीन है गुरुसेवन कछु काल ।।४८०।।
कारज जुग जानहुँ हिये नित्य अनित्य समान । गुरु-गमते देखहिँ सुजन कह तुलसी परमान ।।४८१।।
महि मयंक अहनाथको आदिज्ञान भी भेद । ता बिधि तेई जीवकहँ होत समुझु बिन खेद ।४८२।
परौ फेर निज करम-महँ भ्रम भवको यह हेत । तुलसी कहत सुजन सुनहु चेत न समुझु अचेत ।।४८३।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नामकार दूषन नहीँ तुलसी किये विचार। कर्मनकी घटना समुझि ऐसे बरन उचार ॥४८४॥
सुजन कुजन महि-गत जथा तथा भानु ससिमाहिँ। तुलसी जानत ही सुखी होत समुझ बिन नाहिँ।४८५
मातु तात भवरीति जिमि तिमि तुलसी गति तोरि। मात न तात न जानु तब है तेहि समुझु बहोरि ४८६
सर्व सकल तैं है सदा विश्लेषित सब ठौर। तुलसी जानहिँ सुहृद जे ते अति मति सिरमौर।४८७।
अलंकार घटना कनक रूप नाम गुन तीन। तुलसी रामप्रसादतैं परखहिँ परम प्रवीन ॥४८८॥
एक पदारथ त्रिविध गुन संज्ञा अगम अपार। तुलसी सुगुरु-प्रसादतैं पाये पद निरधार ॥४८९॥
जैसो जहाँ उपाधि तहँ घटित पदारथ रूप। तैसो तहाँ प्रभास मन गुनगन सुमति अनूप ॥४९०॥
गन्ध न मूल उपाधि बहु भूषन तन गन जान। सोभा गुन तुलसी कहहिँ समुझहिँ सुमति निधान४९१
जानु वस्तु अस्थिर सदा मिटत मिटाये नाहिँ। रूप नाम प्रगटत दुरत समुझि बिलोकहु ताहि।४९२
पेखि रूप संज्ञा कहव गुन सुबिवेक विचार। इतनोई उपदेश बर तुलसी किये बिचार ॥४९३॥
सदा सगुन सीता-रमन सुखसागर बलधाम। जन तुलसी परखे परम पाये पद विश्राम ॥४९४॥
सगुन पदारथ एक नित निर्गुन अमित उपाधि। तुलसी कहहिँ विशेषतैं समुझ सुगति सुठि साधि।४९५
जथा एककहँ वेद गुन तामहँ को कहु नाहिँ। तुलसी बरतत सकल हैं समुझत कोउ कोउ ताहि४९६
तुलसी जानत साधुजन उदय-अस्तगत भेद। बिन जाने कैसे मिटै बिबिध जनन मन खेद ॥४९७॥
संसय सोक समूल रुज देत अमित दुख ताहि। अहि अनुगत सपने बिबिध जाइ पराय न जाहि ४९८
तुलसी साँचो साँप है जब लगि खुलै न नैन। सो तबलगि जबलगि नहीँ सुनै सुगुरुवर बैन ॥४९९॥
पूरन परमारथ दरस परस न जौँ लगि आस। तौ लगि खन न अघात नर जौ लगि जल न प्रगास५००
तौ लगि हमतैं सब बड़ो जौ लगि है कछु चाह। चाह रहित कह को अधिक पाय परम पद थाह५९१
कारन करता है अचल अपि अनादि अज-रूप। तातैं कारज विपुलतर तुलसी अमल अनूप ॥५०२॥
करता जानि न परत है बिन गुरुवर परसाद। तुलसी निज सुख बिधि रहित केहि बिधि मिटै बिषाद५०३
मृणमय घट जानत जगत बिन कुलाल नहिँ होइ। तिमि तुलसी करता-रहित करम करै कहु कोइ५०४
तातैं करता ज्ञान करु जातैं करम प्रधान। तुलसी ना लखि पाइहौ किये अमित अनुमान ५०५
अनुमान साछी - रहित होत नहीँ परमान। कह तुलसी परतच्छ जो सो कहु अपर को आन५०६
मृद कारन करता सहित कारज किये अनेक। जौ करता जानै नहीँ तौ कहु कवन बिवेक ।५०७।
स्वरनकार करता कनक कारन प्रकट लखाय। अलंकार कारज सुखद गुन शोभा सरसाय ॥५०८।
चामीकर - भूषन अमित करता करतब भेद। तुलसी जे गुरु गम-रहित ताहि रमित अति खेद५०९
तन निमित्त जहँ जो भयो तहँ सोइ परमान। जिन जाने माने तहाँ तुलसी कहहिँ सुजान ।५१०।
मृणमय भाजन बिबिध बिधि करता मन भव रूप। तुलसी जानेतैं सुखद गुरु गम ज्ञान अनूप ॥५११॥
सब देखत मृद्-भाजनहिँ कोइ कोइ लखत कुलाल। जाके मनके रूप बहु भाजन बिलखु बिसाल ५१२
एकै रूप कुलालको माटी एक अनूप। भाजन अमित बिसाल-लघु तौ करता मन रूप५१३
जहाँ रहत बरनत तहाँ तुलसी नित्य स्वरूप। भूत न भावी ताहि कहँ अतिसय अमल अनूप ५१४
स्वास समीर प्रतच्छ अप स्वच्छादरस लखात। तुलसी रामप्रसाद बिन अबिगति जानि न जात५१५
तुलसी तुल रहि जात है जुग तन अचल उपाधि। यह गति तेहि लखि परत जेहि भई सुमति सुठि साधि५१६
करता कारन कालके जोग करम मत जान। पुनः काल करता दुरत कारन रहत प्रमान ५१७॥

॥ इति पंचमः सर्गः ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जल थल तन गत है सदा तैं तुलसी तिहुँ काल । जनम मरन समुझे बिना भाषत समन बिसाल५१८
तैं तुलसी करता सदा कारन सबद न आन । कारज संज्ञा सुख-दुखद बिनु गुरु तेहि किमि जान५१९
कारज-रत करता समुझु दुख-सुख भोगत सोइ । तुलसी श्री-गुरुदेव बिन दुखप्रद दूर न होइ ।५२०।
कारन सबद स्वरूप है संज्ञा गुन भव जान । करता सुरुगुरुतें सुखद तुलसी अपर न आन ।५२१।
गन्ध बिभावरि नीर रस सलिल अनल गत ज्ञान । वायु वेगकहँ बिनु लखे बुध जन कहहिँ प्रमान५२२
अनुस्वार अक्षर - रहित जानत हैं सब कोय । कह तुलसी जहँ लगि बरन तासु रहित नहिँ होय५२३
आदिहु अन्तहु है सोई तुलसी और न आन । बिनु देखे समुझे बिना किमि कोउ करै प्रमान ५२४
रहित बिन्दु सब बरन तें रेफ - सहित सब जान । तुससी स्वर-संयोग तें होत बरन पद मान।।५२५।।
अनुस्वार सूछम जथा तथा बरन अस्थूल । जो सूछम अस्थूल सो तुलसी कबहुँ न भूल ।५२६।
अनिल अनल पुनि सलिल रज तनगत तन तब होय । बहुरि सो रजगत जल अनल मरुत सहित रबि सोय५२७
और भेद सिद्धान्त यह निरखु सुमति करि सोइ । तुलसी सुत भव जोग बिन पितुसंज्ञा नहिँ होय ५२८
संज्ञा कह तब गुण समुझ सुनब सबद परमान । देखब रूप बिशेष है तुलसी वेद बखान ।।५२९।।
होत पितातें पुत्र जिमि जानत को कछु नाहिँ । जौँ लगि सुत परसो नहीँ पितु पद लहइ न ताहि५३०
तिमि बरनहिँ-तें बरन कर संज्ञा बरन - संजोग । तुलसी होय न बरन कर जौ लगि बरन-बियोग५३१
तुलसी देखहु सकल-कहँ यहि बिधि सुत आधीन । पितु पद परखि सुदृढ़ भयउ कोउ कोउ परम प्रवीन५३२
जहँ देखो सुत पद सकल भयउ पिता पद लोप । तुलसी सो जानै सोई जासु अमोलिक चोप ।५३३।
ख्यात सुवन तिहुँ लोकमहँ महाप्रबल अति सोइ । जो कोउ तेहि पाछे करै सो पुनि आगे होइ ५३४
तुलसी होत नहीँ कछुक सुबन रहित व्यवहार । ताहीसें अग्रज भयो सब बिधि तेहि परचार ५३५
सुवन देखि भूले सकल भे अति परम अधीन । तुलसी जेहि समुझाइये सो मन करत मलीन ५३६
मानव सो साँचो हिये सुनत सुनावत बादि । तुलसी ते समुझत नहीँ को पद अमल अनादि५३७
जाहि कहत हैं सकल सो जेहि कह तब सो ऐन । तुलसी ताही समुझि हिय अजहु करहुँ चित चैन५३८
तुलसी जो है सो नहीँ कहत आन सब कोइ । यहि बिधि परम बिडम्बना कहहु न काकौ होइ ५३९
गुरु करिबो सिद्धान्त यह होय यथारथ बोध । अनुचित उचित लखाय उर तुलसी मिटत बिरोध५४०
सतसंगतिको फल यही संसय रहइ न लेस । ह्वै अस्थिर सुचि सरल चित पावै पुनि न कलेस५४१
जो भावो पद सबन को जहँ लगि साधु असाधु । कवन हेतु उपदेस गुरु सतसंगति भव बाधु ।५४२
जौ भावो कछु है नहीँ झूठो गुरु सतसंग । ऐसे कुमति तें छूट गुरु सन्तनको परसंग ।।५४३।।
जौलौँ लखि नाहीँ परत तुलसि परमपद आप । तौ लगि मोह बिबस सकल कहत पूत कहँ बाप५४२
जहँ-लगि संज्ञा बरन भव जासु कहेतें होइ । ते तुलसी सो है सबल आन कहाँ कहु कोइ ५४५
अपने नैननि देखि जे चलहिँ सुमतिवर लोग । तिनहिँ न बिपति बिषाद रुज तुलसी सुमति सुजोग५४६
मृगा गगनचर ज्ञान बिनु करत नहीँ पहिचान । परबस सठ हठि तजत सुख तुलसी फिरत भुलान५४७
कहा कहौँ तेहिँ तोहिके जेहि उपदेसेउ तात । तुलसी कहत सो दुख सहत समुझ-रहित हित बात५४८
बिन काटे तरुवर जथा मिटै कौन बिधि छाँहि । त्यौं तुलसी उपदेस बिन निःसंशय कोउ नाहिँ५४९
अपनो करतब आप लखि सुनि गुनि आप बिचार । तौ तोहिको दुखदा कहा सुखदा सुमति अधार५५०
ब्राह्मण बर बिद्या बिनय सुरति बिबेकनिधान । पथ रति अनय अतीत मति सहित दया श्रुति मान५५१
बिनय छत्र सिर जासुके प्रतिपद परउपकार । तुलसी सो छत्री सही रहित सकल व्यभिचार ५५२

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बैश्य बिनय मग पग धरै हरै कटुक बर बैन । सदय सदा सुचि-रुचि सरल ताहि अचल सुख ऐन५५३
सूद्र छुद्र पथ परिहरै हृदय बिप्रपद मान । तुलसी मन समता सुमति सकल जीव सम जान५५४
हेतु बरन बर सुचि रहति रस निरास सुखसार । चाह न काम सुरा न रम तुलसी सुदृढ़ बिचार५५५
जथालाभ सन्तोषरत गृह-मग-बन समरीति । ते तुलसी सुखमयसदा जिन तनुबिभव बिनीति५५६
रहै जहाँ बिचरैं तहाँ कमी कहु काछु नाहिँ । तुलसी तहँ आनन्द सँग जात जथा सँग छाँहिँ५५७
करत तरक जेहिकी सदा सो मन दुख-दातार । तुलसी जो समुझै नहीँ तो तेहि तजै बिचार ५५८
कहत सुनत समुझत लखत तेहितैं बिपति न जाय । तुलसी सबतैं बिलग ह्वै जौ लगि नहिँ ठहराय ५५९
सुनत कोटि कोटिन कहत कौड़ी हाथ न एक । देखत सबल पुरान श्रुति तापर रहित बिबेक५६०
समुझत है सन्तोष धन यातैं अधिक न आन । गहत नहीँ तातैं कहत तुलसी अबुध मलान ५६१
कहत होत देखे सुने अरु समुझे सब रीति । तुलसी जौ लगि होत नहिँ सुखद रामपद प्रीति५६२
कोटिन साधनके किये अन्तरमल नहिँ जाइ । तुलसी जौ लगि सकल गुन सहित न करम नसाइ ५६३
चाह बनी जौ लगि सकल तौ लगि साधन सार । ता महँ अमित कलेसकर तुलसी देखु बिचार ५६४
चाह किये दुखिया सकल ब्रह्मादिक सब कोय । निश्चलता तुलसी कठिन राम कृपाबस होय ५६४
अपनो करम न आपुकहँ भलो मन्द जेहि काल । तब जानब तुलसी भई अतिसय बुद्धि बिसाल५६६
तुलसी जौँ लौँ लखि परत देह प्रान-कै भेद । तौँ लगि कैसेकै मिटै करम जनित बहु खेद ।।५६७।
जोइ प्रान सोइ देह है प्रान देह नहिँ दोय । तुलसी जो लखि पाइ है सो निरदय नहिँ होय५६८
तुलसी तैं झूठो भयो करि झूठे सँग प्रीति । है साँचो है साँच जब कहै रामकी रीति ।।५६९।।
झूठी रचना साँच है रचत नहीँ अलसात । बरजेहू झगरत बिहठि नेक न बूझत जात ।५७०।।
कहन काल किल सकल बुध ताकर यह व्यवहार । उतपति थिति लय होत है सकल तासु अनुहार५७१
अंकुर किसलय दल बिपुल शाखाजुत वर मूल । फूलि फरत ऋतु अनुहरत तुलसी सकल सतूल५७२
कहतब करतब सकल तेहि जाहि रहत नहिँ आन । जान न मान न आन बिधि अनूमान अभिमान५७३
हानि लाभ जय बिजय बिधि ज्ञान दान सनमान । खान पान सुचि रुचि असुचि तुलसी बिदित बिधान५७४
सालक पालक सम बिषम भरम मगन गति ज्ञान । अट घट पट नट नादि जट तुलसी रहित न जान ५७५
कठिन करम करनी कथन करता कारक काम । काय-कष्ट कारन करम होत काल सह साम ।५७६
चित रत बित व्यवहार बिधि अगम सुगम जय नीच । धीर धरम धारन हरन तुलसी परत न बीच ५७७
खरब आतमा बोध-बर खर-बिनु कबहुँ न होइ । तुलसी खसम बिहीन जे ते खरतर नहिँ सोइ ५७८
सबै रूप बिबरन बिसद तासु योग भव नाम । करता नर बहु जाति तेहि संज्ञा सब गुनधाम५७९
नाम जाति गुन देखि कै भयो प्रबल उर भर्म । तुलसी गुरु-उपदेस बिन जानि सकै को मर्म ५८०
अपन करम वर मानिकै आप बँधेउ सब कोय । कारजरत करता भयउ आप न समुझत सोय ५८१
करता कारन को लखै कारज अगम प्रभाव । जो जहँ सो तहँ-तहँ हरष तुलसी सहज सुभाव ।५८२
तुलसी बिनु गुरु को लखै वर्तमान बिपरीत । कहु केहि कारनतैं भयउ सूर उष्ण ससि सीत ५८३
करता कारन करमतैं पर परमातम ज्ञान । होत न बिन उपदेस गुरु जो पढ़ बेद पुरान ।५८४।
प्रथम ज्ञान समुझै हिये बिधि निषेध व्यवहार । उचितानुचितहीँ हेरि हिय करतब करइ सँभार५८५
जब मनमहँ ठहराय बिधि श्रीगुरुवर परसाद । इहि बिधि परमातम लखै तुलसी मिटै बिषाद ५८६

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बरबस करत बिरोध हठि होन चहत अकहीन । गहि गति बक वृक स्वान इव तुलसी परम प्रवीन५८७
आक करम भेषज बिदित लखत नहीं मतिहीन । तुलसी सठ अकबस बिहठि दिन-दिन दीन मलीन५८८
करताहीते करम जुग सो गुन दोष सरूप । करत भोग करतब जथा होय रंक किन भूप ५८९
बेद पुरानरु सास्त्र जत तत बुधिबल अनुमान । निज करि करि करिहै बहुरि कह तुलसी परमान५९०
बिबिध प्रकार कथन करै जाहि यथा भव भान । तुलसी सुगुरु-प्रसाद-बल कोउ-कोउ कहइ प्रमान५९१
उर डर अतिलघु होनकी भव लघु सुरति भुलान । स्वर्गलाहु लखि परत नहिं लखत लोहकी हान ५९२
नैन-दोष निज कहत नहिं बिबिध बनावत बात । सहत जानि तुलसी बिपति तदपि न नेक लजात५९३
करत चातुरी मोहबस लखत न निज हित हान । सुक मरकट इव गहत हठ तुलसी परम सुजान५९४
दुखिया सकल प्रकार सठ समुझि परत तेहि नाहिं । लखत न कंटक मीन जिमि असनभ खत भ्रम माहिं५९५
बातहि बातहि बनि परै बातहि बात नसाय । बातहि आदिहि दीप भव बातहि अन्त बुताय ५९७
बातहिते बनि आवई बातहिते बनि जात । बातहिते बर बर मिलत बातहिते बौरात ५९८
बात बिना अतिसय बिकल बातहि तें हरषात । बनत बात बर बातते करत बात बर घात ॥५९९॥
तुलसी जाने बात बिन बिगरत हर इक बात । अनजाने दुख बातके जानि परे कुसलात ॥६००॥
प्रेम बैर औ पुण्य अघ जस अपजस जय हान । बात बीज इन सबनको तुलसी कहहिं सुजान ॥६०१॥
बंचक बिधिरत नयरहित विधि हिंसा अतिलीन । तुलसी जगमहँ बिहित बर नरक निसैनी तीन ६०२
सदा भजन गुरु साधु द्विज जीव दया सम जान । सुखद सुनै रत सत्यब्रत सरग सप्त सोपान ॥६०३॥
जे नर जग गुन दोषयुत तुलसी बदत बिचार । कबहुँ सुखी कबहूँ दुखी उदय अस्त ब्यवहार ६०४
कारन जुगते जुगलतम काल अचल बलवान । त्रिविध बिकल तें ते हठहिं तुलसी कहहिं प्रमान ६०५
अनुभव अमल अनूप गुरु कछुक सास्त्र-गति होई । बचै काल भ्रम दोषते कहहिं सुबुध सब कोइ॥६०५॥
सब बिधि पूरन धामबर राम अपर नहिं आन । जाके कृपाकटाक्षतें होत हिए दृढ़ ज्ञान ॥६०७॥
सो स्वामी सो तर सखा सखो सो वर सुख-दातार । तात मात आपद-हरण सो असमय आधार ॥५०८॥
सुखद दुखद कारन कठिन जानत को तेहि नाहिं । जानेहु पर बिनु गुरुकृपा करतब बनत न काहिं ६०९
तुलसी सकल प्रधान है बेद बिदित सुखधाम । तामहँ समुझब कठिन अति जुगल भेद गुन नाम ६१०
नाम कहत सुख होत है नाम कहत दुख जात । नाम कहत दुख जात दुरि नाम कहत सुख खात ६११
नाम कहत बैकुण्ठ-सुख नाम कहत अघ-खान । तुलसी तातें उर समुझि करहु नाम पहिचान ६१२
चारौं चौदह अष्टदश रस समुझै भरपूरि । नामभेद समुझे बिना सकल समुझमहँ धूरि॥६१३॥
बार दिवस निसि मास सित असित बरष परमान । उत्तर दक्खिन अास रवि भेद सकलमहँ जान ६१४
करम सुभासुभ मित्र अरि रोदन हँसन बखान । और भेद अति अमित हैं कहँ लगि कहिय प्रमान ६१५
जहँलगि जन देखब सुनब समुझब कहब सुरीत । भेद-रहित कछु है नहीं तुलसी बदहिं बिनीत ६१६
भेद याहि बिधि नाममहँ बिनु गुरु जान न कोय । तुलसी कहहि बिनीत बर जौ बिरंचि सिव होय ६१७

॥ इति षष्ठः सर्गः ॥६॥

तिनहिं पढ़े तिनहीं सुने तिनहिं सुमति-परगास । जिन आसा पाछे करी गहि अवलंब निरास ॥६१८॥
देइ कुसुम करि बास तिल परिहरि खरि रस लेत । स्वारथहित भूतल भरे मनमें चक तन सेत॥६२२॥
अँसुवन पथिक निरासते तट भुँइ सजल सरूप । तुलसी किन बंचे नहीं इन मरुथल के कूप ॥६२३॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी मित्र महा सुखद सबहि मित्रकी चाड़ । निकट भये बिलसत सकल एक छपाकर छाड़ ६२४
मित्र कोप बरतर सुखद अनहित मृदुल कराल । द्रुमदल सिसिर सुखात सब सह निदाघ अति लाल६२५
खल नर गुन मानै नहीं मेटहि दाता ओप । जिमि जल तुलसी देत रवि जलद करत तेहि लोप६२६
समयपरे सुपुरुष नरहिँ लघु करि गनिय न कोय । नायक पीपर बीजसम बचै तो तरुवर होय।।६२८।।
बड़े राम रत जगतमैं कै परहित चित जाहि । प्रेम-पैंज निवही जिन्हैं बड़े-सो सब ही चाहि ।।६२९
तुलसी सन्तनतैं सुनै सन्तन इहै विचार । तन धन चंचल, अचल जग जुगजुग परउपकार ६३१
ऊँचहि आपद विभव वर नीचहि दत्त न होइ । हानि-वृद्धि द्विजराजकहँ नहिँ तारागन कोइ ।।६३२
बड़े रतहिँ लघुके गुनहिँ तुलसी लघुहिँ न हेत । गुंजाते मुक्ता अरुन गुञ्जा होत न स्वेत ।।६३३।।
होहिँ बड़े लघु समय सह तो लघु सकहिँ न काढ़ि । चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखततैं बाढ़ि ।।६३४।।
उरग तुरग नारी नृपति नर नीचो हथियार । तुलसी परखत रहब नित इनहिँ न पलटत बार६३५
दुरजन आप समान करि को राखै हित लागि । तपत तोय सह जाहि पुनि पलटि बुतावत आगि६३६
मन्त्र तन्त्र तन्त्री त्रिया पुरुष अश्व धन पाठ । प्रति गुन जोग-बियोगतैं तुरत जाहिँ ये आठ ।।६३७
दुरजन दरपन-सम सदा करि देखो हिय दौर । सनमुखकी गति और है बिमुख भये कछु और ६३९
मित्रक अवगुन मित्रकौ परपहँ भाषत नाहिँ । कूप छाँह जिमि आपनी राखत आपहि माहिँ ६४०
निडर अनय करि अनकुसल बीसबाहुसम होय । गयो गयो कह सुमति सब भयो कुमति कह कोय६५०
या जगकी बिपरीत गति काहि कहौं समुझाय । जल जलगो झख बाँधिगौ जन तुलसी मुसुकाइ ६५५
सहि कुबोल साँसति सकल पाय अनट अपमान । तुलसी धरम न परिहरिय कहि करि गए सुजान ६५८
अनहित ज्यौं परहित किये आपन हित तमजान । तुलसी चारु बिचार मति करिय काज सम मान६५९
दान दयादिक युद्धके बीर धीर नहिँ आन । तुलसी कहहिँ बिनीति इति ते नरवर परमान ६६२
तुलसी साथी बिपतिके बिद्या बिनय बिवेक । साहस सुकृतरु सत्यब्रत राम-भरोसो एक ।।६६३।।
विद्या विनय विवेकरति रीति जासु उर होइ । राम-परायन सो सदा आपद ताहि न कोय।।६६५।।
बड़े बड़ेतैं छल करी जनम कनौड़े होहिँ । तुलसी श्रीपति सिर लसै बलि-बामन गति सोहि ६६८
जौं मूरख उपदेसके होते जोग जहान । दुरजोधन कहँ बोधि किन आये स्याम सुजान ।।६७०
मारि साँह करि खोजलै करि मत सब बिन त्रास । मुये नीच बिनु मीचतैं जे इनके बिस्वास ।।६७३।।
समुझि सुनीत कुनीतिरत जागतहीं रह सोय । उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होय ।६७०।।
परमारथ पथमत समुझि लसत बिषय लपटानि । उतरि चितातैं अधजरी मानहुँ सती परान ।६७६।।
तजत अमिय उपदेस गुरु भजत विषय विषपान । चन्द्रकिरण धोखे पयस चाटत जिमि सठ स्वान ६७७
राग रोष गुन दोषको साखी हृदय सरोज । तुलसी बिगसत मित्र लखि सकुचत देखि मनोज ६८२
बैर सनेह सयानपहि तुलसी जे नहिँ जान । ते कि प्रेममग पग धरत पशु बिन पूँछ बिषान ५८३
रामदास पहँ जायके जो नर कथहिँ सयान । तुलसी अपनी खाँड़महँ खाक मिलावहिँ स्वान ६८५
प्रीति रामप्रद नीतिरत धरम प्रतीति सुभाय । प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन काय ६९४
करके कर मनके मनहिँ बचन बचन गुन जानि । भूपहिँ भूलि न परिहरहिँ विजय बिभूति सयानि६९५
सहित सुखद गुनयुत सदा काल जोग दुख होय । धर धन जारत अनल जिमि त्यागे सुख नहिँ कोय ६९६
तुलसी सरवर खम्भ जिमि तिमि चेतन घट माहिँ । सूख न तपनहु तनक-सौं समुझु सुबुध जन ताहि ६९७
तुलसी झगड़ा बड़नके बीच परहु जनि धाय । लड़ैं लोह पाहन दोऊ बीच रुई जरि जाय ।।७०८।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अर्थ आदि हन परिहरहु तुलसी सहित विचार। अन्त गहन सबकहँ सुने सन्तन मत सुखसार ७०६॥
गहु उपकार बिचार पद मा फल हानि बिमूल। अहो जानु तुलसी जतन बिन जाने इव सूल॥७१०
तन धन महिमा धरम जेहि जाकहँ सह अभिमान। तुलसी जियत बिडम्बना परिनामहु गति जान७१५
तुलसी निज कीरति चहहिँ परकीरति कहँ खोय। तिनके मुँह मसि लागि है मिटिहि न मरिए धोय॥
नीच चंग सम जानिबो सुनि लखि तुलसोदास। ढील देत महि गिरि परत, खैंचत चढ़ अकास ७२१
तुलसी तीन प्रकारतैं हित अनहित पहिचान। परवस परे, परोस बस, परे मामला जान॥७२७॥
दुरजन बदन कमान सब बचन विमुंचत तीर। सज्जन उर बेधत नहीँ छमा सनाह सरीर॥७२८॥
जौ जगदीस तो अति भलो जौ महीस तो भाग। जनम जनम तुलसी चहत रामचरन अनुराग ७४०॥
बरन बिसद मुक्तासरिस अर्थ सूत्र सम तूल। सतसैया जग बर-बिसद गुन शोभा सुखमूल॥७४३
भूप कहहिँ लघु गुननिकहँ गुनी कहहिँ लघु भूप। महि गिरि पर गत लखत जिमि तुलसी खरब स्वरूप७४४

॥ इति सप्तमः सर्गः ॥

॥ इति तुलसी-सतसई संपूर्ण ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

निम्नांकित संख्यक दोहे छोड़ दिए गए हैं क्योंकि वे दोहावलीमें आ चुके हैं।

सतसई	दोहावली	सतसई	दोहावली	सतसई	दोहावली	सतसई	दोहावली
२	१	१०२	३०४	६४७	४८१	७००	५२५
१४	१९९	१०३	३०१	६४८	४८६	७०१	५२७
२०	११०	१०४	३०३	६४९	४८७	७०३	५३०
३०	७	१०६	३०८	६५१	४९०	७०४	५३९
३१	१९२	१०७	२७७	६५२	४९२	७०५	५४३
३२	१९४	१०८	३०९	६५३	४९४	७११	३७७
३९	७६	१०९	५७	६५४	४९६	७१२	३७३
४०	२१५	११०	३१४	६५६	४५१	७१३	३८४
४१	५४	१११	१४७	६५७	४६५	७१४	३८७
४५	६९	११४	७८	६६०	३३९	७१६	३९३
५४	४६९	११८	२५६	६६१	३९९	७१७	४४२
५५	९६	१२१	१६	६६४	४४७	७१८	४४१
५६	९७	१२५	४४९	६६६	३९४	७२०	३८२
५८	३१९	१३९	२५२	६६७	३९६	७२२	४०४
५९	१०२	१९८	४९८	६६९	३९८	७२३	४१३
६०	१०३	२२२	१७५	६७१	४२०	७२४	४२५
६२	५२	३०५	४१४	६७२	७१५	७२५	४२६
६६	७०	३०६	४९९	६७५	४८५	७२६	४३१
७३	२९२	३४४	२५९	६७९	५४९	७२९	५२८
७५	२९४	३८५	२७०	६८०	५५९	७३०	४३३
७६	२९५	५७०	२४९	६८१	५१५	७३१	४३५
७७	२९६	५९६	५३१	६८५	५००	७३२	४४६
८०	२८९	६१९	१३१	६८६	५०४	७३३	४७८
८२	२७८	६२०	३३०	६८७	५०५	७३४	५११
८३	२८१	६२१	३८५	६८८	६९३	७३५	५१३
८४	२८७	६२७	५०८	६८९	५०९	७३६	४३७
८५	२९०	६२८	५०७	६९०	५१०	७३७	५४७
८८	२८५	६३८	३३७	६९१	५१२	७३८	५४८
८९	२८६	६४१	४७१	६९२	५१४	७३९	५५७
९०	२८३	६४२	४७४	६९३	५१६	७४०	५६०
९१	२८२	६४३	४७६	६९६	५१९	७४२	५७२
९२	२८०	६४४	४७५	६९७	५२०	७४६	४७०
९४	२७९	६४५	४७७	६९८	५२१		
९९	३०२	६४६	४७९	६९९	५२५	•	•

[सतसईमें बहुतसे दोहे रामाज्ञा प्रश्न, रामचरितमानस तथा वैराग्य-सन्दीपनीके भी हैं। उन्हें ज्योंका त्यों रहने दिया गया है]

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२३

श्रीरामनामकला-कोश-मणिमयूख

बन्दौं श्री दोऊ बरन, तुलसी जीवन मूर। लसे रसे एक एकमैं तार तार दोउ पूर ॥ १ ॥
अमिय मूरि बसु रस परे, तुलसी नामी रूप। नाम-कलाको कोष-मणि, प्रगटे स्वयं अनूप ॥ २ ॥
रसमौं सर गोचर लसै, रेफ रमैं सरसात। राम ब्रह्म उरमैं यथा, तुलती जानत जात ॥ ३ ॥
रबि आसा जोवत लसे, सो त्रय तारक राजु। तुलसी दक्षिण दंड है, बाएं कुंडल भ्राजु ॥ ४ ॥
अर्धचंद्र ताके परे, अमियकुण्ड पर पार। सप्त सूत्र शरब्रह्म ए, तुलसी जीवन-सार ॥ ५ ॥
तुलसी बिधि औ हरि रचे, रचे रुद्र हू बीच। ईश्वर शशि आधो रचे, रचे सदा हर नीच ॥ ६ ॥
परको त्रिकुटी एक रस, तुलसी रसी अकार। अन्तर तालू ताहिके, तापर कंठ उदार ॥ ७ ॥
बसुको विधु हिरदै बसे, राम चंचला रूप। तुलसी राजै सो शिवा, ताते भ्राज अनूप ॥ ८ ॥
आदि अकार उकार पर, तापर लसे मकार। आधो चन्द्र रकार है, तुलसि परे एकार ॥ ९ ॥
क्रम ते वाणी पंच है, लखो वैखरी माँझ। तुलसी पश्यन्ती परा, परापरा पर बाँझ ॥१०॥
अर्ध उर्ध तुलसी लसे, दोऊ आदि प्रकार। मध्य मध्य आधो छपा, बिंदु निरा संसार ॥११॥
पहिलो जाग्रत, दूसरो स्वप्न, सुषुप्ती तीन। ब्रह्म तुरीया सी लसी, तुलसी उन्मुन झीन ॥१२॥
अस्थूलो सूक्षम उभय, कारण तुलती जान। महा हेतु कैवल्य ए, रेफ पंच के खान ॥१३॥
ह्रस्व दीर्घ प्लुतसे लसे, तुलसी आधो मात। अनुच्चार्यके जानते, बड़ी बुद्धि ठहरात ॥१४॥
तत्त्व ब्रह्म पावक रिगू, गुरू यजुर्हर साम। अर्ध अथर्वण सिर लसे, तुलसी सूक्षम नाम ॥१५॥
तुलसी रज सत तम तहाँ, शुद्धि हीन गुणवान। अउम चंद वैंदी लखै, कहु क्यौं रहे अयान ॥१६॥
पीत स्वेत आरक्त ए, नील कृष्ण लखि बूझ। तुलसी शर रंजित धरे, नेह नाह को सूझ ॥१७॥
भू, रस, तेजिरु नभ,पवन, क्रमतैं पाँचौं भूत। तुलसी इनहीतैं भयो, तेरो रूप अकूत ॥१८॥
पूर्व पूर्व अंतहि रचे, उत पाले मत नास। तुलसी शशि रवि बनि रहे, बिंदु इंदु घर वास ॥१९॥
पूर्व पूर्व दक्षिण वरुण, ताको दक्षिण जाम। तुलसी विधु उत्तर दिशा, इन्दु बिंदु को धाम ॥२०॥
इंद्र बरुण धनईश ए, यम ब्रह्मा सुर सेव। तुलसी ये जप यज्ञ मौं, पंच पंच दिगदेव ॥२१॥
तुलसी अत नैऋत्य है, उत ईशान समान। अग्नि कोण हर चंदवा, बिंदु कोण अघजान ॥२२॥
कौन देव नैऋत्य शर, अरु इशान प्रति धाय। लखि पावक तुलसी तुरत, वासुदेव सुधि पाय ॥२३॥
सनमुख सद्योजात अस, बामदेव उत जोर। हर तत्पूरूष चंद्रहर, तुलसी बिंदु अघोर ॥२४॥
तुलसी ए शर मान ह्वै, साढे तीन अकार। है उकार अंगुष्ठ भरि, ताको अर्ध मकार ॥२५॥
लसे इंदुमत् सूरसम, बिंदु हीन परमान। तुलसी इन्हतैं रेफ पर, जानत जाने जान ॥२६॥
शुद्ध शुद्ध तुलसी कहै, शुद्ध शुद्ध ह्वै शुद्ध। पीत श्वेत आरक्त ह्वै, नील श्याम ऋत दुद्ध ॥२७॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कला सर्व क्रमतैं लसे, दाम खेचरी आदि। तुलसी अंतर रेफ है, जानु जानि करि बादि ॥२८॥
रे मन फिर देखै किनऽ, सर नालो है गूढ़। जो तारक सो सन्मुखी, तुलसी जाने मूढ ॥२९॥
कला प्राण तुलसी भई, कला प्राण की वेश। बिधि उर्मी को आदि ह्वै, बूझै सूझै देश ॥३०॥
पंथ पंथ झीने हरे, हरे हरे ठहरात। तार बीच चौंटी पर्‍यो, तुलसी देखे जात ॥३१॥
झीनो अति झीनो मनो, झीनो पंकज तार। परहूके आधार पर, तुलसी करै बिहार ॥३२॥
तुलसी पीरो पट घटा. स्वेत अटा ठहरात। उत्तर तारक देखिकै, लघु झीनो फहरात ॥३३॥
पंच अंगमौं बसि रहे, तुलसी पाँचो पूर। तार आदि तारादिमौं, रेफ जानिबो दूर ॥३४॥
कला पंच तुलसी लखे, पंच लोक सुख मूल। सत्य आदि लखि रेफको, लखि पर सुख ते फूल ॥३५॥
अभीमान सर सर कला, विश्वादिकको देखु। रेफ निरंजन ते परे, तुलसी चित अवरेखु ॥३६॥
हरि महले तूतू रवै, हरि महलै रव बेन। तुलसी शब्द मृदंगको, हर महलै चित देन ॥३७॥
स्वर बाजै आश्रम विषै, होत निराश्रय धुत्र। पंच कला ए नाद सर, तुलसी पर मन दुत्र ॥३८॥
तुलसी जो द्विज को करे, ए ताके पद पंच। रेफ पंचको सार है, बिन जाने द्विज बंच ॥३९॥
कला एक एकदंत है, तुलसी दूजो भानु। हरि तीजो हर ब्रह्म है, बिंदु शक्ति सम जानु ॥४०॥
शक्ति पंच पहिली क्रिया, ब्रह्म बह्म उर ठीक। तुलसी बिनु रेफे लखे, जनिबो जान अलीक ॥४१॥
भरे अमर तुलसी लखे, खेत जान को जान। अबिचल आतम ताहिको, आदि आदि ते मान ॥४२॥
तुलसी पावक पंच ए, जेठ जेठ को रूप। ब्रह्म अनलहूतैं परे, रेफै लखौ अनूप ॥४३॥
रेफ दीप दीपै सदा, ब्रह्मानलके बीच। तुलसी चित चिन्तै जबै, तब छूटे सर कीच ॥४४॥
तुलसी सर आनन्द ए, क्रमही ते उद्योत। रेफ ब्रह्म आनन्द पर, पर पर परतर होत ॥४५॥

॥ इति श्रीरामनामकला-कोश-मणिमयूख, प्रथम संपुट सम्पूर्ण ॥

तुलसी फिर संपुट करै, हगसर मणिमय रंग। खोलि देखिहैं संत ते, जे चाहैं पर संग ॥ १ ॥
रेफे रहै अकार जो, सो तारक को रूप। तुलसी सो ब्रह्मा बने, त्रिकुटी लसे अनूप ॥ २ ॥
अक्षर-मौं सोई रहे, भए बैखरी बात। अर्द्ध शून्य जागत रहै, तुलसि मोटो गात ॥ ३ ॥
छोटो ही गुरु जपित भू, रचिबो पूर्व सुदेश। तुलसी सौ नैऋत्य है, पति नैऋत्तौ बेश ॥ ४ ॥
तुलसी सद्योजात है, हाथ तीनि अरु आध। शुद्ध पीत लखि आदि तै, लखो अकार अगाध ॥ ५ ॥
पूर्व खेचरी सन्मुखी, उर्म्मी चीटी पंथ। तुलसी तारेकी कला, डारे जाने मंथ ॥ ६ ॥
कुंभ शून्य रबि बास है, सत्य बिश्व ए गाढ़। तुलसी फिर चिन्ते चिते, रेफ हीन दुख बाढ़ ॥ ७ ॥
तन्त तन्त ते जातिके, वेद अम्बको जानु। तुलसी लखु हेरम्बको, क्रिया चित्त मैं आनु ॥ ८ ॥
रेचित क्षरको चिन्तिके, पावक चिन्तै मूढ़। तुलसी बिषयानन्द लखि, रेफ जानि ले गूढ़ ॥ ९ ॥
तुलसी रस पर तीनि दे, ले अकार सब हाउ। रेफ ताहुके अन्त लस, सोउ सोउ परको नाँउ ॥१०॥
तुलसी संपुट दूसरो, कला आदिही पूर। कहिहौं तीजे सम्पुटे, कला चारिहूं जूर ॥११॥
॥इति श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासविरचितायां श्रीरामनामकलाकोशमणिमयूखा द्वितीय सम्पुट समाप्त ॥

तुलसी दंडक बिष्णु भे, श्रीहर सोभा कीन। पुनि चौथे प्रस्थान मौं, अपनो तन धरि लीन ॥ १ ॥
मध्य ऊर्द्ध सोऊ लसै, कोऊ देखे पूर। तुलसी सपनो ह्वै रहै, झीनो जनिबो दूर ॥ २ ॥
राजै दीरघ यजुर सो, सत्य बिराजै स्वेत। तुलसी जो जानै कोई, तौ अतिसै सुख देत ॥ ३ ॥
तुलसी पानी पालिबो, ताहीके कर होइ। है पश्चिम जलपति भए, फिरिकै देखे सोइ ॥ ४ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी ह्वै ईशान सो, पुनि सोइ ईशान। जनिए कोने कोन-पति, बामदेबहू जान ॥ ५ ॥
मूठी कसिके देखिए, ऊसर उवरे जेत। तुलसी सो अंगुष्ठ है, शुद्ध स्वेत सुख देत ॥ ६ ॥
जानि भूचरी उर्मिली, घुर्मी लखिए फेरु। खगहीको लखिए मगै, तुलसीहू सुख ढेरु ॥ ७ ॥
महल कंठ वैकुंठ है, तुलसी देखे ताहि। तरे तेज वेणू बजै, सावित्री तर माँहि ॥ ८ ॥
रबि इच्छा अक्षर लसे, पावक लसे तुरंग। सेवा नंदै लखि लखो, ए उकार के संग ॥ ९ ॥
तुलसी अंत अकार जो, सो मकार निस्तूक। ज्यौं परतम नररूप धरि, त्यौं ये गोल अचूक ॥१०॥
तुलसी सो कुंडल्य ह्वै, धरे रुद्र को रूप। गोल फाट लख रे हठी ,चउथे स्वयं अनूप ॥११॥
तुलसी पश्यंती सती, मध्य सुषुम्नी हेतु। कला तीनि निर्बैर है, तम आरक्ते चेतु ॥१२॥
तेज प्रलय दक्षिण भए, तुलसी पीरो तार। पावक देखि प्रतच्छ लखु, तब तत्पुरुष निहार ॥१३॥
प्राची आधो ह्वै गए, शुद्ध रक्त - को रूप। देखि चाँचरी शांभवी, तुलसी ज्योति अनूप ॥१४॥
लखि मर्कट महदैतको, हिए हेरु कैलास। प्राज्ञ देखि तुलसी गए, मीरदंगके पास ॥१५॥
सरस्वती बिष्णू भए, ज्ञान क्षेत्र को रूप। दावानल द्वैता हरखु, तुलसी गोल अनूप ॥१६॥
शशि आधो ईश्वर भये, अद्री पुण्य हकार। तुलसी ताके तर परा, महा तुरीया सार ॥१७॥
महाहेतु माया अरध, ब्रह्म अथर्बण सोह। तहाँ घुर्मि तुलसी लखे, महा शुद्ध मत जोह ॥१८॥
शुद्ध नील नीचे मरुत, ता तर रबि रुचिराज। तुलसी उत्तर यम बसे, तरे कोनको साज ॥१९॥
पावक ईशाने लसे, ह्वै मत्सूर समान। शुद्ध नील तुलसी लखे, तरे अगोचर जान ॥२०॥
आत्मभाषिनी देखिकै, ज्वाला देखै सीत। शेष देखि तुलसी गए, चिदाकासना मीत ॥२१॥
पूर ध्वनि आश्रम तहाँ, प्रतिभिज्ञातम सार। तुलसी स्वर ॐ कार तर, रुद्र पार तर आर ॥२२॥
तुलसी देखै कूट चिर, शोकानल भय पार। हर्ष अद्वैते देखिके, तहाँ भए सुख सार ॥२३॥
अर्द्ध इंदुके रूप ए, छत्तिस बीच अनंत। लखि तुलसी बिंदू गए, जहाँ बिराजे संत ॥२४॥
तुलसी बिंदू शिव सदा, भइ भ्रामरी एकार। तेहि तर राजै अतिपरा, निरा निराली सार ॥२५॥
तुलसी देखै उन्मनी, तर कैवल्य समूह। अनुच्चार्य सूक्षम तरे, निर्गुण श्यामल दूह ॥२६॥
नाम इंदु ऊरध रहे, ब्रह्मा अध लपटाव। बासुदेव तुलसी लसे, बिन अधार को जाव ॥२७॥
तुलसी हीन प्रमान ह्वै, शुद्ध श्याम ह्वै राजु। लसि उन्मनि तेही तरे, पूर्ण बोध निर्भ्राजु ॥२८॥
कला सीत देखे बवै, कला अनंत अपार। मीन पंथ चलिबो बनै, तुलसी ब्याहे बार ॥२९॥
तुलसी निर आकाशमौं, शिवा बिराजै देखु। देख निराश्रम तेहि तरे, तरे निरंजन पेखु ॥३०॥
अमिय-कुण्डमौं होत धुनि, परमारथ तर एक। ताके तर शक्ती लसी, सो तुलसी-की टेक ॥३१॥
आये लखे अनादिको, आतमलतिका सोह। तुलसी ब्रह्मानल तरे, ब्रह्मानंदै जोह ॥३२॥
बिन्दु कलाके रूप ए, तुलली जनि है पूर। रेफ भिन्न इन्हतै परे, बिन्दु जानिबो धूर ॥३३॥
तुलसी संपुट प्रति सरो, बिन्दु रेफके माँह। बूझत बूझत सूझिहैं, बड़े संतकी छाँह ॥३४॥
॥ इति श्रीमद्गोस्वामी-तुलसिदास-विरचितायां श्रीरामनाम-कला-कोशमणिमयूखा तृतीय संपुट समाप्त॥
राम इहै अक्षर दोऊ, एक एक के बीच। तीनि तीनि सम्पुट भए, तुलसी पर ते सींच ॥ १ ॥
बिन्दु रेफ दोऊ कला, इन्दुकलाके पार। तुलसी दोऊ देखिके, कहिहौं दोऊ सार ॥ २ ॥
पंचभूत पंचीकरण, तहाँ देह अस्थूल। इन्द्रिय सब कै कर्म सब, तुलसी ह्वै अनुकूल ॥ ३ ॥
तहाँ भोग अस्थूल है, विश्वरूप है जीव। है तुलसी गुण अतिहि जो, तहाँ ज्ञानगत सीव ॥ ४ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जानिय वाणी वैखरी, तुलसी महिको भाग। पीत रङ्ग राजै जहाँ, तनगुण आगो लाग ॥ ५ ॥
बंद विराजै ऋग जहाँ, अक्षर तहाँ अकार। तुलसी जाग्रत संग ह्वै, अभय कभौ न विहार ॥ ६ ॥
नख-शिख लोम रती लखो, रूप तहाँ अतिसार। महाभूत पाँचौं तहाँ, तुलसी मूरति भार ॥ ७ ॥
तत्त्व पंच नख है तहाँ, नव द्वार तहँ राज। चर्म्मचक्षु तुलसी तहाँ, सर्व अंग तन साज ॥ ८ ॥
तारक को सो रूप है, कला चारि है तासु। कला एक उत्पत्ति ह्वै, तुलसी उत्पति कासु ॥ ९ ॥
कला दूसरी आप्त है, कला तीसरी बोध। पुनि चौथी व्यावृत्ति है, तुलसी देखै सोध ॥१०॥
पंचविंश ए अङ्ग हैं, अङ्गी एक अकार। तुलसि जागृत रूप ह्वै, आतम सङ्ग विहार ॥११॥
तुलसी नभ-को भागए, लोभ काम हू क्रोध। मोह शङ्क ए पाँचहू, हेरि हेरि करु सोध ॥१२॥
तुलसी मारुत अंश ए, धइबो चलै बटोर। कंपि पसारै पंच ए, देखु काह ए तोर ॥१३॥
लखु पावकके अंशको, छुधा नींद हू प्यास। तुलसी अनसै वो रती, लखु ए पाँचौं बयास ॥१४॥
नीर अंशको देखु तैं, फेन रेत कफ ढेर। रक्त मूत्र ए पंच हैं, तुलसी नीके हेर ॥१५॥
भूमि अंश नीकी लखो, अस्थि चर्म्म अरु मांस। नाडि रोम ही लख भले, तुलसी छाँड़े आस ॥१६॥
पंचभूत पंचीकरण, कहा दूसरी देह। तुलसी नीके जानिए, चित - मौं धरिए एह ॥१७॥
लिङ्ग देह को हेरिए, तुलसी करि निर्वेह। व्याहारो में बासना, नीके लखिए एह ॥१८॥
कंठे वासा स्वप्न है, सात्त्विक गुण विस्तार। अमर होइ तुलसी लसै, यजुर्वेद निस्तार ॥१९॥
गिरा मध्य तुलसी तहाँ, जनिवौ झूठौ होत। तैजस तैं अभिमान मो, जीव तहाँ उद्योत ॥२०॥
भोग देह ते भिन्न है, नीर तत्त्व तहँ होइ। तुलसी सेतो रंग है, तन अद्भुत सम सोइ ॥२१॥
तहाँ तत्त्व सत्रह लसैं, दण्डक कैसो रूप। तुलसी दृष्टि विकार है, लखे, मिटै तम कूप ॥२२॥
तुलसी एही एह है, फिरै लोक परलोक। हानि लाभ दुख सुख सहै, लहै रोग बहु शोक ॥२३॥
बासी देह अस्थूल मौं, लिंग देह इह नेम। कला चारि एहिको कहौं, तुलसि जाने खेम ॥२४॥
कला एक सादृश्य है, अनादृश्य एक जानु। तुलसी पूरी वासना, मनोविकारी मानु ॥२५॥
एकवीस ए अंग है, अंगी तहाँ उकार। तुलसी स्वपने जीव सँग, संतत करै विहार ॥२६॥
तुलसी अंश अकाश को, अन्तःकरण विचारु। मनो बुद्धि चित जानिकैं, अहंकार की डारु ॥२७॥
तुलसी माहत ते भए, व्यान - समानोदान। लखिकै फूणै देखिए, अंत भाग आपान ॥२८॥
अगिनि अंश ते होत हैं, कान चर्म्म अरु नैन। जिह्वाज्ञान विचारि कै, अब तुलसी भूलै न ॥२९॥
तुलसी जीवन अंश ए, वाणी भुज पद तीन। शिश्न गुदाको हेरिकै, जनि इन मौ हो लीन ॥३०॥
भूकौ अंश विचारिए, शब्द परसिवो गात। रूप रस्य गंधे लखै, तुलसी क्यौं अकुलात ॥३१॥
तुलसी संपुट पूरिगे, चौथो अंत उकार। देखे अंश उकारको, बुझै मिटै वीकार ॥३२॥

॥ इति श्रीरामनामकलाकोषमणिमयूखा चतुर्थ सम्पुट सम्पूर्ण ॥

हेतु अविद्या जाहि को, सोई कारण देह। संसकार व्यापार सब, तुलसी देखे एह ॥ १ ॥
हिए अन्त अस्थान है, वैस सुषुप्ती जोइ। तहाँ विराजै गुण तमो, तुलसी तह मत होइ ॥ २ ॥
साम लसे तुलसी तहाँ, पश्यन्ती हैं बाग। ज्ञान अभावै जानिए, तहँ सुख मानै आग ॥ ३ ॥
लसे भोग आनन्द तहँ, अगिनि तत्त्वको बास। रक्त वर्ण है रंग सो, तुलसी अतिसै कास ॥ ४ ॥
पूर्व अर्द्धके देह को, अर्द्ध अँगूठै सोध। संसकार तामस तहाँ, तुलसी सज्जन बोध ॥ ५ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लसौ रूप कुण्डल्यसे, हृदय दृष्टि अज्ञान। अब तुलसी इन्हकी कला, मरण आदि हू मानु॥ ६॥
विसरि जाइ वो दूसरी, तुलसी मूर्छा तीन। निद्रा चौथी जानिए, ए मकार मौं लीन॥ ७॥
एकविंश ये अङ्ग हैं, अंगी तहाँ मकार। तुलसी रूप सुषुप्ति है, आतम संग बिहार॥ ८॥
खे अंती के अंस ए, तुलसी है अवकाश। भूलि जाइबो आवरण, निरावरण परमास॥ ९॥
मरुत अंस ते आन्ति है, शंका शोखण ढीलु। पुनि तुलसी धीरत्व है, लखि कै पाँचौ कीलु॥१०॥
राजै पावक की कला, तुलसि गूढोरूढ। करिबो बिना बिचारिबो, आलस जो करु मूढ॥११॥
नीरभाग तुलसी लसै, मृदु पाषण ए दोउ। हलाहले क्लेद न बनै, धारण करिबो सोउ॥१२॥
धरा अंस लखु मूढता, अरु बल लज्जा एहु। पौंडी करिबो कठिन है, तुलसी तर्जन देहु॥१३॥
जो गुण लइ जगको रचै, सोई कारण जासु। मल हेतू है देह सो, तुलसी विधुवत कासु॥१४॥
उत्पति पालन नाश ए, ताहीको व्यापार। तुलसी पूरन जे कहे, हहैं तीन की सार॥१५॥
मूर ध्वनिमौं सो बसै, वेद अर्द्ध बिधु देखु। तुलसी गुण अति शुद्ध है, ई-अक्षर अवरेखु॥१६॥
वेद पूर्व गुणकी शिवा, वेद अथर्वण राजु। रिचा जासु सर पूर्व पर, तुलसी भूपति आजु॥१७॥
जो नामी सरतै उठै, सो बाणी वहि ठौर। तहाँ ज्ञान सरबज्ञ है, जो तुलसी नित कौर॥१८॥
तुलसी प्रत्यग्आत्मा, आनँद मानी तासु। निजानंद निज भोग है, पौन तत्त्व तहँ कासु॥१९॥
नील बरण है रङ्ग सो, तन मत्सूर समान। अर्द्धचन्द्र को रूप सो, तुलसी कहि पहिचान॥२०॥
तहाँ ज्ञानकी दृष्टि है, फलाचारि हू सोह। वीतराग पहिली कला, तुलसी पहिले जोह॥२१॥
लखु ममत्व दूजी कला, आत्मतत्त्व है तीन। तत्त्व दरस चौथी कला, तुलसी हो तहँ लीन॥२२॥
रूपवंत विधु अर्द्ध है, रूप विंश हू एक। रूप तुरी को चुप्प है, तुलसी करो विवेक॥२३॥
नारिकेलके पेड़ मौं, तुलसी ज्यौं फल सोहु। चर्म्म चर्म्म संपुट हिए, अंबु बिराजे जोहु॥२४॥
तुलसी त्यौंही जीव मौं, फले फलाफल आदि। कला दूसरी चर्म्म है, सुभै नाहिं अनादि॥२५॥
है खर्पर तीजी कला, अर्द्ध इंदु है नीर। बिंदु स्वाद तुलसी तहाँ, रेफ तोष हरु पीर॥२६॥
तुलसी बिंदू बीज है, बीच सत्त है रेफ। अर्ध इंदु है जीव तरु, कहे पूर्व ही जेफ॥२७॥
मोटो झीनो झीनतर, कहे तजे लखि खोट। भिन ततमैं तुलसी कहे, जहाँ संतकी चोट॥२८॥
तुलसी अंश अकाश को, पूरणत्व संग हीन। व्यापकत्व अरु बीज सब, खण्डन हीन नवीन॥२९॥
तुलसी मारुत अंस ए, ना जनु नित्य अछेद। परते पर निर्मल सदा, जनै न रहै असेद॥३०॥
तुलसी पावक अंशको, दाह हीनता देखु। ऊरध गौन प्रकाश निधि, चेतन घर्षन लेखु॥३१॥
आप अंश तुलसी लखे, क्लेद - हीन जग जीव। ज्योति रूप मृत्युहि हरै, पुनि करुणाको सींवँ॥३२॥
तुलसी जगती अंश ए, शोकहीन अरु बीज। पावनत्व समधत्व है, धारण कर सब चीज॥३३॥
शुद्ध रूप यह जीवको, अर्द्ध इंदु रस एक। मिले तुरीया रूप है, तुलसी किए बिबेक॥३४॥
तुलसी मेटै रूप निज, बिंदु सीय को रूप। देखि लखै सीता हिए, राधो रेफ अनूप॥३५॥
तुलसी जौं तजि सींवको, बिंदु रेफ भे चाहु। तौ कुम्भीमो कल्पशत, जाहु जाहु परि जाहु॥३६॥
तुलसी कहे समष्टि यह, सुनो व्यष्टिको रूप। सपनो सब साँचो लखे, जागेंगे भ्रम कूप॥३७॥
तुलसी तब जो सुख भए, सोइ सुषुप्ती साँच। तुरिया तौ तुरिये रहे, रहे सिद्धि रस पाँच॥३८॥
पचम संपुट पूरिगे, तुलसी प्राण अधार। यहि बिन जाने नामको, जनिबो खरको भार॥३९॥
तुलसी पर प्रस्थानमौं, मारुति दीन्हैं मोहिं। परको नाहीं दीजिए, आन हमारी जोहि॥४०॥
रामनामके रसिक जे, तिन्ह कह जीवन मूर। अर्द्ध इंदु अरु बिंदुभौं, तुलसी रेफे पूर॥४१॥

॥ इति श्रीरामनामकलाकोषमणिमयूषा श्रीमद्गोस्वामिगुसाँइ तुलसिदासजीकृत सम्पूर्णं ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२४

ज्ञानदीपिका

दोहा—सुमिरत चरन गनेसके प्रथमहि सीस नवाइ । बुधि, सिद्धि जातै लहौ भाखौ ग्रंथ बनाइ ।। १ ।।

चौपाई— नहि उपजै नहिं होइ विनासा । तिहूँ लोक जाकर परगासा ।।
जाकी लीला जगत भुलाना । नमो नमो सो प्रभु भगवाना ।। २ ।।

दोहा—सारद सुक नारद सुमिरि, व्यास-जनक के पाइ । ग्यान-दीपिका रचत हौं, राम-चरन चित लाइ ।३।

चौपाई— सुनि सुनि बिबिध संसकृत बानी । भाषा कीन चहौं रुचि मानी ।।
हरिहिं मिलन के मारग पाँचा ! देउँ बताइ प्रगट बुध साँचा ।।

ज्ञानदीपिका

दोहा—ज्ञानदीपिका बरनिहौं, भाषत जोतिहि पाँच । उक्ति जुक्ति सौं ग्रंथ करि, कथा पुरातन साँच ।३।

अथ दीपक

दोहा—बुद्धि पात्र, बाती उकति, तत्त्व तेलकी धार । ब्रह्म अग्नि करि लेसिये, ज्ञान-दीप उजियार ।४।
संबत सोरहसै गये, इकतिस अधिक बिचार । सुक्ल पच्छ आषाढ-की, दुइज पुष्य गुरुवार ।।५।।
ता दिन उपजी दीपिका, पंच जोति परमान । धर्म ज्ञान अरु ब्रह्म पुनि, प्रभुसरूप बिज्ञान ।।६।।
ज्ञानी, सात्त्विक, बैष्नवा, गृह-बासिन्ह सुख जोग । हित बैरागिन, ग्रंथ एह, दुखिहहिं दंभी लोग ।।७।

अथ धर्म मारग

दोहा—ज्ञान गुरू-कौ सिष्य इक, ताको नाम सुबुद्ध । धरम कथा पूछन लग्यौ, जो मारग सुचि सुद्ध।।८।।

सुबुद्ध उवाच

दोहा—कै पद कहिए धर्मके, उतपति कित बिस्तार । कितइ स्थिति कित नास गुरु ! कहिए सकल बिचार।९।

ज्ञान उवाच

चौपाई— चारि चरन सुभ धरम-क जाना । बिद्या, सांति, तपस्या, दाना ।। ५ ।।
उतपति सत्य दया बिस्तारा । इस्थिति छमा, लोभ छयकारा ।। ६ ।।

सुबुद्ध उवाच

दोहा—को बिद्या, को सत्य पुनि, को तपस्य, को दान । तुम हौ गुरु सर्वज्ञ अति, कहिये सकल बिधान ।।९।।

ज्ञान गुरु उवाच

सवैया— ब्रह्म निरूपन, बेद-क मारग, राम कथा सब बिध इहि माँही ।
बर्न-अधार, बिचार सु द्रव्यको, संकट हूँ रहै साँति सराही ।।
देह दहै, दमकै मुख यौं सुख साधु, सदा तप है सच ताही ।
देइ कछू हरि-हेतु-सौं दान, भलो 'तुलसी' जग और वृथा ही ।। १ ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुबुद्ध उवाच

दोहा—को हित कही बिदेस मो, को हित कहिये भौन । को हित अपनी देह को, मरन काल हित कौन१०

ज्ञान उवाच

बिद्या हितू बिदेस महँ, तिया भवन हित होइ । द्रव्य हितू है देह को, धर्म मरन हित होइ ११

सुबुद्ध उवाच

जो नर है धर्मज्ञ जग, तथा अधर्म-समेत । द्विबिध भेद क्यौं जानिये, केहि लच्छन केहि हेत१२

ज्ञान उवाच : धर्म मारग

सवैया— गात निरोग, सँजोग कुटुंब, सु साधु सुनारि न आयसु टारे ।
कोमल बात कहै हँसिकै गुरु सेवक पुत्र सपुत्र सुधारे ॥
साँच कहै, सो दयाहि गहै, 'तुलसी' नर वै जग-जालतें न्यारे ।
आये हुते सुरलोकहि तें नर, अंत समै सुरलोक सिधारे ॥ २ ॥

अधर्म

सवैया— रोगित गात बिजोगित सुष्यहि, बेद के मारग जात नसावत ।
सद्धन दुस्य बिदूषन साथहि मूढ हिये-मो दया बिसरावत ॥
बात कहै रिस सौं बिष-सी, पर-नारिन सौं पचि प्रीति बढ़ावत ।
जे जग-मैं नर ऐसे सुभाव ते, नर्क ते आइकै नर्कहि पावत ॥ ३ ॥

सुबुद्ध उवाच

दोहा—हरि हर रूप कहौ कछू, जात पाँत सम लाय । पढ़त सुनत सुख होत जेहि, दारिद दोष नसाय ॥१३॥

छन्द भुजंगप्रयात

पखे मोर के जू, जटा सीस सोहै । लसै फूल के, मुंडमाला बिमोहै ॥
भलो कुंकुमा, भस्म को लेप कीन्हैं । करै संख को नाद, सृंगीहि लीन्हैं ॥
लसै उर्बसी, नीलकंठै बिराजै । दिये अर्नु[1], सेती सुधा-धाम छाजै ॥
बनी भाल बेंदी, लगी खाक ताजी । चली पाँय ते जू, जटा गंग भाजी ॥
लसै बस्त्र पीरे, तुचा ब्याघ्र की है । मनो दामिनी जोति, जो बाल सोहै ॥
लिये चक्र को, हाथ त्रैसूल खासी । करै लोक रच्छा, महा दुक्ख नासी ॥
रमा साथ सोहै, उमा अर्द्ध अंगै । सदा देव साथी, भ्रमै भूत संगै ॥
चढ़ै जान नागारि[2], नंदी सु नीको । रच्यौ बास बैकुण्ठ, कैलास ही को ॥
दह्यौ काल-जमनै, अनंगै जरायो । धरा पर्वतादिग्, गरे ब्याल नायो ॥
दवा ज्वालमाला, पिये कालकूट्यै । लिए नाम के पाय दारिद्र छूटै ॥
बिघंसी भले जज्ञ के देव दोऊ । तरै पाप ते जो धरै ध्यान कोऊ ॥
कहै बिष्नु-संभू सबै लोक जाके । दोऊ एक ही हैं नहीं भेद ताके ॥
करौ बन्दना जो सुनौ बोल मेरो । कृपा कै लखीहौं, सदा सत्त नेरो ॥
दुनी-पाल, संहार के अंसधारी । सदा जै, सदा जै, सदा जै तुम्हारी ॥

दोहा—येहि बिधि हरि-हर-रूप गुन, सुमिरि परम गति होइ । निश्चै पावै निरयपद दुबिधा करै जु कोइ॥१४॥

---

१. अर्नु (अरुण)=लाल । २. जान (यान) नागारि (नाग+अरि)=गरुड ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुबुद्ध उवाच

दोहा—भूत पिसाचन संग लै, कितहिँ बसैँ जमदूत । हरि हर के गुण कित बसैँ, कहौ गुरू गृह सूत ।।१५

ज्ञान उवाच

जमदूतन सौँ प्रथम ही, कहेउ जाहु मृत लोक । हरि-हर के जन छाँड़ि कै, लै आवहु एहि ओक ।१६

चौपाई— तब दूतन यह बिनती कीन्हा । हरि-हर-के जन केहि विधि चीन्हा ।।
केहि घरमैँ बसिहैँ उत जाई । सब लच्छन प्रभु देहु बताई ।। ६ ।।

जमराज उवाच

दोहा— पूजि सिला, लै चरन-जल, पीछे करहिँ अहार । 'तुलसी' गोसाला जिते, जानिन्ह चीन्ह तुम्हार ।।१७

चौपाई— जित हरि-हर पूजा नहिँ होई । जेठे दुजहि न मानत कोई ।।
जेहि घर चलहि न हरि हर गाथा । तितहिँ बसेउ लै भूतन्ह साथा ।। ११ ।।

दोहा—गुरुजन सेवा लघु करहिँ, ब्रह्म भोज जित होइ । लीपि लिखहिँ तिय चित्र गृह तित नजिकाव न कोइ १८

चौपाई— पुत्र न मानै पितु कै सीखा । जेहि घर लहै न भिच्छुक भीखा ।।
बासी अन्न जो दिन प्रति खाई । तित पिसाच लै बसियौ जाई ।। २० ।।

दोहा—जेठो मानहि लघु सदा जितहि वेद की लीक । जेहि घर नावहिँ राम गुन तित नहिँ जाहु नजीक २१

चौपाई— कलह होइ नित साँझ सकारे । पर्व न दया न दान बिचारे ।।
कंटक वृच्छ जासु गृह लीना । सखा संग लै बसहु प्रबीना ।। २२ ।।

दोहा—पुत्र अवज्ञा ना करै अतिथि फिरै नहिँ जासु । दीपदान साँझहि करहि, जाहु नहीँ घर तासु ।।२३

चौपाई— बहू सासु सौँ लरै प्रचारी । पुत्र मातुकी तजै गोहारी ।।
घर कुच्चोल, जाल लपटानी । तितहि बसेहु लै भूत मसानी ।। २४ ।।

दोहा—कार्तिक माघ बैसाख नर, जित उठि प्रात नहाहिँ । जेहि घर संग्रथ बंधु जौ, तित जमदूत न जाहिँ२३

चौपाई— परत्रिय-द्रव्य रमै सुख पाई । बिन दीपक निसि नाजहि खाई ।।
रहै जूठ जेहि घर छिटकाई । नितहि करब जमदूत मिलाई ।। २६ ।।

ज्ञान उवाच

एहि बिधि आयसु जम कै पाई । दूत चले सब सीस नवाई ।।
भूत पिसाचन-कै सँग भीरा । बसहि हरिहि तिमि चीन्हबि पीरा ।। २८ ।।

दोहा—जमदूतन को नाद यह, पढ़ै सुनै जो कोइ । भूत पिसाच न छुइ सकहि, जम-पीरा नहिँ होइ ।२७।

सुबुद्ध उवाच

धर्म अधर्म के चिन्ह यह, कह गुरु ह्वै बिस्तार । अब सूक्षम सो हेतु गुरु, कहिये तत्व निकार ।।२८

ज्ञान उवाच

दोहा—पर पीड़ा सम पाप नहिँ, पर उपकार सु धर्म । तुलसिदास निश्चै कहत, समुझि लेहु यह मर्म ।।२९
तुलसिदास पर पीर को, जानि मरम जिय लेहु । जोग जज्ञ तप दान को, तत्व समुझिये येहु ।।३०
दोहा ३७ ।। चौपाई २८ ।। सवैया ४ ।। छंद भुजंगप्रयात १ ।।

।। इति श्रीतुलसीकृते ज्ञानदीपकायां रामबसिष्ठसंबादे धर्ममार्गबर्ननो नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

सुबुद्ध उवाच : अथ ज्ञान मार्ग

दोहा—को नासै दुख देह को, को सुख मो होइ जाइ । क्यौँ करि हरि पुर जाइये, सो मग देहु बताइ ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ज्ञान उवाच

दोहा–हरि-पुर को मारग कठिन, घने उठत बटपार। ताके हित रिपु आपने, लेइ निबाहै पार ॥ २ ॥

सुबुद्धि उवाच

दोहा–को हरिको मारग हनै, कौन निबाहनहार। कौन हितू गुरु आपनो, कहिये नाम प्रकार ॥ ३ ॥

ज्ञान उवाच : बटमार

दोहा–काम क्रोध अरु लोभ गन, मोह जु हिंसा, दंभ। औरौ सखा अनेक सँग ए बटिहा जम खंभ ॥

अथ हितू

दोहा–प्रथम बिचार, छमा तथा, पुनि संतोष बखानि। धर्म, दया, सति भाय पुनि, ए हित, उत रिपु मानि॥

सुबुद्धि उवाच

दोहा–मारग पापी साथ लै, आगे गवनै कौन। केहि बल रोकि बटाउनहिं, को हति निबहति तौन ॥

ज्ञान उवाच

चौपाई— सुक - नारद - सनकादि सिधारे। औरौ बिबिध साधु सँग धारे ॥
जेहि बल रोकेउ बाट प्रचारी। सुनु सुबुद्धि जिमि चलहि बिदारी ॥
प्रथमहिं आइ काम दरसायो। निज सेना लै संग सोहाये ॥
बलक्यो बल आयुध लै हाथा। जुरी बिचार लाज कै साथा ॥ ४ ॥

दोहा–सोक, सँताप, उचाट लै, मोहन, बसिकर बान। फूलन को धनु हाथ लै मदन आइ नजिकान ॥६

काम उवाच

सवैया— नीके बसंत रहे नित कोकिल कानन फूलन बान बनाये ॥
इंदुमुखी के मृगाच्छ कटाच्छन क्यौं न भिदै तप नेम नसाये ॥
गाधि के नंद मिलै गनिकाहि लै इन्दु गुरु-स्त्रिहि संग सिधाये ॥
को चलिहै यह ज्ञान के मारग हौं तौ अनेक विचार भगाये ॥ १ ॥

निलज्ज उवाच

दोहा–कहा कहै कोतवाल धरि कहा करै हँसि लोग। काह सकुच कुल-तातकी तजौं न बिटप सुजोग ॥७

बिचार उवाच

सवैया— वा मृगनैनी के गुंह्य थली सो सरी सुक् है चली शोणित धारी ॥
क्यौं चित मोहत, क्यौं सुख लागत, मूत्र कुगंध कुगैल कुनारी ॥
ता पर तो परलोक नसै, छुए नर्क मैं नर्क फजीहति भारी ॥
भागि चलौ तुम तात गलानिन ऐसे मनोज सहाइ तिहारी ॥ २ ॥

लज्जा उवाच

दोहा–लोग हँसै सुनि मातु पितु धरि मारै कोतवाल। धिग जीवन जग कामबस ऐसी बिपति बिसाल ॥

ज्ञान उवाच

दोहा–सुनेउ बिचार बिचार को मदन चलेउ सतराइ। क्रोधहिं, हिंसहिं साथ लै मारग रोक्यो आइ ॥
छमा दया द्वै अनुसरी क्रोध निवारन काज। सन्मुख होइ भाखो दुहुन बल अपनै की साज ॥१०

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

क्रोध उवाच

सवैया— को चलिहै यहि ज्ञान के मारग मोहि जिये कोउ जान न पायो ।।
प्रसराम हनी जननी अपनी जनमेजय को हय मेध नसायो ।।
मोहिँ बिना जग जीव नहीँ हर के कर ब्रह्म कपाल लगायो ।।
मारि छमाहि, दया करि निर्धन हौँ तप धर्म घनो बिगरायो ।। ३ ।।

हिंसा उवाच

दोहा–पसु को मारौँ जीव भरि पंछिन परको फेरि । मानुष मारचो द्रव्य हित छमा-दया केहि बेरि ।।

छमा उवाच

सवैया— मारो चहै लकुटी लै हनो बलि मूक न क्योँ तुझ हाथ पिरैहौ ।।
दूरि करौ तौ न जाउ तुम्हैँ तजि मान बिना पग ही परि रैहौ ।।
खोज भरे हम हैँ ही सदा, प्रभु आजुहि हौ पग रे परि रैहौ ।।
घोर तुम्हारि नहीँ सम कै, दुख हू सुख हू इत द्वैत सिरैहौ ।।

दया उवाच

दोहा–देखि दुखी सेवा करौ जथा सक्ति अनुमान । जो कछु जीव जगत्र मैँ ते सब ब्रह्म समान ।।१२।।

ज्ञान उवाच

सोरठा— ऊँच हाथ, भरि गात, सुख राते फरकत अधर । सुनत छमाकी बात, क्रोध नयन नीचे करचौ ।।
दोहा—लोभौ बोले लालसा तृष्नाको मग लाइ । सत्य साथ संतोष लै, तब हनि मारचौ आइ ।।२।।

लोभ उवाच

सवैया— मीन बिहंग गइंद घने पसु नाहर हौँ ही लै फाँसी मरावौँ ।।
एक जुरै नर बीसको धावत, बीस जुरै सतके जिउ लावौँ ।।
क्योँ करि पाव पराव धरौ, धन साधन होइ निछोभ बढावौँ ।।
जोगी, जपी, तप-सील-सँतोषिहिँ तोहिँ निरादर भीख मँगावौँ ।। ५ ।।

चौपाई– कौड़ी माँगन पैसा पावै । तौ रुपया पर चित्त लगावै ।।
रुपया ते मोहर मन ध्यावै । क्योँ संतोष सत्य ढिग आवै ।। ६ ।।

संतोष उवाच

सवैया— देत है राम सो पावत है जग और नहीँ कोउ दूजो देवैया ।।
उद्दिम तौ यह औढर है लिखि राख्यौ लिलार सो कौन मेटैया ।।
जौ कछु हौँ तौ सोई बहुतै हम नाहिंन और को द्वार सेवैया ।।
है तुलसी प्रभु ताहि प्रसन्न तौ लोभ करैगो कहा अरु भैया ।।

सत्य उवाच

सवैया— प्रीति सौँ देइ बुलाइ भली बिधि, लेइ सो दान रहै घर बैसी ।।
जो निज लच्छ घटै कि बढ़ै सब भूलेहु बोलै न झूठ अनैसी ।।
हौँ हरिचंदके साथे रही 'तुलसी' बहु भाखै कहाँ-लगि तैसी ।।
आइ बिपत्ति परै कि रहै सुख मारि करौँ हठि लोभ न दैसी ।। ७ ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ज्ञान उवाच

चौपाई— सुनि सँतोष भाषाके बैना। लोभ गयो नीचे करि नैना॥
तृषना गई ताहिके साथा। तहाँ जाइ देखी निज नाथा॥ ८॥
दोहा—मोहौ बोलेउ लालसा, मेरो मेरो भाखि। धीरज हटकेउ आइ तब कर ताके सिर राखि॥१३॥

मोह उवाच

दंडक— तात, मातु, मेरो सुत, सोदर, कलत्र जन, भूमि, धर मेरो सब ऊँचे कै उँचाइहौं॥
हाथी, घोरो, गोधन, रुपैया, पट, नाज साज मेरे एक भाई सब नीके कै सोचाइहौं॥
सदा सावधान हौं रहत चोर मीच डर भूखे सूखे माँगने सो फेरिहू बचाइहौं॥
करौ ना तुलसिदास औरको भरोसो कछु मेरो है सो मेरौ लै न आन को न चाइहौं॥ १॥

लालसा उवाच

दोहा— सुत कलित्र परिवार जस, तन धन सुख सब मोर।
कैसे कै नीके रहौ, क्यौं मन राखौ ठोर॥ १४॥
सवैया— सूरन संग रहौ जो सदा तिनकी तनुकी कछु कानि न राखौ॥
कोटि कुटुंब घटै कि बढ़ै तन ताको सदा सुख मानि न झाखौ॥
होइ वहै जो करै करता तुलसी प्रभु हौं मुख झूठ न भाखौ॥
मेरोइ मेरौ करै जब मोह महारिसि मारि हिए अभिलाखौ॥ ८॥

ज्ञान उवाच

सोरठा—सुनि धीरज के बैन, मोह भग्यो सतराइ कै। ज्यौं अहिकुलके सैन, मोर-सोर सुनिकै छपै॥२॥
दोहा— दंभ झुठाई साथ लै, रोकि रहे मग आनि॥
आगे ह्वै सतिभाव तब, हटकि कह्यौ तब कानि॥ १५॥

दंभ को सरूप

चौपाई— दै ऊँची कुलही सिर काला। हरि मंदिर कर तिलक बिसाला॥
छापा दै दोउ नयननि थोरा। भुज छाती ठोके तेहि ओरा॥
काठ की मनिया तेल सिझाई। हरद रँग्यौ तेहि सूत गुधाई॥
ठिहुनिन पहुँची दुइ दुइ बाँधी। कानन पहिरि गरे सिर साधी॥
धोती लाल उपरना लाला। जलहि सिझाइकै कीन्ह मृनाला॥
चूनि पहिरि पुनि कुसहिं बिछाई। बैठे मौन साधि टक लाई॥
चेला पँच सत तापस बाना। उठहिं तिनहिं दै टहल सनाना॥
जब आवत देखहिं सति भाऊ। बलकौ बल अपनो करि चाऊ॥ १६॥

दंभ उवाच

छप्पै–है मन भावन नर न मोहिं, बिन कर्मन धरता। प्रथम सम्हारत आपु देव पीछे बिस्तरता॥
देत दान जस हेत लेत पर धन सुख मानत। जज्ञ जाय अस्नान करत सब लोग बखानत॥
जोग चारु अनु बरत गन मैं अपनाये धर्म सब। करहि को आदर जगत तुअ कित रहिहौ सति भाव अब१

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

झुठाई उवाच

एक समै चतुरानन के पुर स्वामी जू द्वै खन हेत सिधारे ॥
आगे ह्वै आइ मिले सगरे उठि पाइँ परे इनके बिधि वारे ॥
कीन्हीं कृपा तिन आसिष दै उनके कछु पूरब पाप बिडारे ॥
जाइ लिआई दई कमलासन आसन भौत असुद्ध बिचारे ॥ ९ ॥

सत्यभाष उवाच

छप्पै–कहूँ भूमि पर सेज, कहूँ परजंक जुरै फल । कबहुँ साग रहि खाय, कबहुँ पंचामृत सो फल ॥
कबहुँ फाट तन बस्त्र, कबहुँ दिब्यांबर साजत । कबहूँ सुखको लहत, कबहुँ दुख निकट बिराजत ॥
यह होइ अवस्था तबहि जब, तुलसिदास गुन कहत तस।यह जिवन बिचारत जोगि जन, पराधीन परदेस बस२

पुनः

सवैया— इच्छितु मानत जाइ घनी सुनु रे सठ स्वाँगन को धरता है ॥
देह सँवारि मुराइ के बेल बिसाह भरे मन के छरता है ॥
चाहत लोग ठग्यौ यहि भाँतिन्ह सो न भलो भख को भरता है ॥
जौ पै नहीं 'तुलसी' हिय मैं इन बातन्ह रीझत क्यौं करता है ॥ १० ॥

दंभ उवाच

दान दिए नहुषै बलि जू हरिचंद दसा दुख दीरघ है ये ॥
ब्याध अजामिल गिद्ध करी गनिका गति को सुनतै सुखये ये ॥
बेद पुरानन मैं झगरो बहु भाँतिन पंथन एक न पैये ॥
है न बिबेक कछू तुलसी जग क्यौं करि कै करतार रिझैये ॥ ११ ॥

सतिभाव उवाच

राम कहौ तुम छाँड़ि मनोरथ मान गुमान के संगहिं जैये ॥
जानि भयो जग हौ छल सो दुख सुक्ख दोऊ सम ही बिलसैये ॥
दान दया बिन मान करै निज और के लच्छ न देखि सिहैये ॥
है तुलसी यह सीख सुधा-सम यौं करिकै करतार रिझैये ॥ १२ ॥

ज्ञान उवाच

दोहा— सुनि इच्छा सतिभाव की, दंभ नवारी साज ॥
या मारग या बिधि गए, संत सबै सिरताज ॥ १६ ॥

सुबुद्धि उवाच

चौपाई— हरि पुर मग जेहि बिधि चलि आई । सो मग गुरु सब मोहिं बताई ।
काम बिबेक आदि जो भाखा । उतपति पै न कही गुरु साखा ॥१८॥

ज्ञान उवाच

दोहा—ये तो बंधु कुटुंब मम, सुनिये सकल बिवान । एक पिता जुग मातु ते, उपजे सब बलवान ।१३

तथा बंसावरी (वंशावली)

चौपाई— देह दुस्समन राजा भयऊ । द्वै भामिनि ताके सँग रहेऊ।
जेठि सोहागि प्रसूति कहावै । नाम निर्बृतिक निष्टै पावै ॥२०॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दोहा— प्रबल अबिद्या कामजुत, जाई कन्या एक। तेहि अबिवेकै आदि दै, जनमे पुत्र अनेक ॥१७॥

चौपाई— चौथ निर्बातिक कन्या जाई। नाम सुविद्या परम सुहाई।
ताके हिय उपजे सुत एका। आदि बिबेक, कलत्र अनेका ॥२२॥

दोहा—भयेउ कुटुंब बिमंत्र इमि, सुनु सुबुद्ध अभिराम। प्रकृत बिरोध हमैं उन्हैं, बैर बढ़ो तेहि ठाम ॥१८॥

चौपाई— चंचल लखि माता मन बाधिक। ताते बैर अधिक गुरु साधिक।
जीव घने ढिग बाइ लगावै। जित हम तित वै निकट न आवै ॥२६॥

इति वंसावरी (वंशावली)

दोहा—अर्थ तत्व सब समुझिकै, या बिधि करहि जो कोइ। 'तुलसिदास' निश्चै कहै, हरि-पुर गवनै सोइ१९

॥ इति श्रीज्ञानदीपिकायां तुलसीकृते प्रबोधिनीचंद्रोदयानुमतो ज्ञानमार्ग-बरननो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

दोहा १९ ॥ चौपाई २६ ॥ छप्पै २ ॥ सवैया १२ ॥ सोरठा २ ॥

अथ ब्रह्ममारग

सुबुद्धि उवाच

दोहा—घट घट ब्रह्म जो श्रुति कहै, घट माया मो लीन। करि निरधार सुनाइये, गुरु सर्बज्ञ प्रबीन ।१।

ज्ञान उवाच

अथ ब्रह्म मायाको निरधार

दोहा—ब्रह्म सुधा चैतन्य है, सदा एक तेहि जानु। माया जड़ हिय चेत पुनि, दूसर ताहि बखानु ॥२॥
माया अरु ता ब्रह्म कौ, या सँजोग है जानु। बाक्य अर्थ छाया बिटप, उदाहरण अनुमानु ॥३॥
वाक्य अर्थ जिमि भिन्न नहिं, छाया बिटप न होइ। माया ऊपर ब्रह्म है, ब्रह्म उपर नहिं कोइ ॥४॥
एक एक में रमि रहेउ, परमानंद न सोक। ब्रह्म ब्रह्म साखा मिलै, इच्छा रचिये लोक ॥५॥

सामग्री यथा

चौपाई— ब्रह्म कि सक्ति तीनि उनमानू। इच्छा क्रिया ज्ञान इति जानू।
माया सक्ति तीनि यह रीती। संसय मिथ्या अरु बिपरीती ॥ २ ॥

दोहा—पंच नाम पुनि ब्रह्म के, ब्रह्म काल अरु कर्म। जीव सुभाव बृषान पुनि, नाम अर्थ को मर्म ॥६॥

चौपाई— आखंडित अबिनासी होई। ताते ब्रह्म कहै सब कोई ॥
आपु से आपुहि लेइ उठाई। काल सो कहिये ते रिषिराई ॥
करता कर्म है सबल सरीरा। ताते कर्म कहत मतिधीरा ॥
दुख सुख षट रस स्वादहि लेता। कहब सुभाव नाम यहि हेता ॥
मिलि माया को छाँड़त नाहीं। तातैं जीव कहत जग माहीं ॥
ब्रह्म नाम इति अर्थहि जानी। अब माया कै कहौं बखानी ॥ ६ ॥

दोहा—पंच नाम मायाहि के, माया सुन्य अकास। सक्ति प्रकृति बखानि इति, भाषत अर्थ प्रकास ॥७॥

चौपाई— सदा रहै जो ब्रह्म समेता। माया नाम कहत यहि हेता ॥
जड़ है जाको सदा सुभाऊ। ता कहँ सुन्य कहत रिषिराऊ ॥
मिथ्या मिलि भ्रम करहि प्रकासा। ताते मुनिवर कहइ अकासा ॥
जीतत है सगरो संसारा। सक्ति कहावत इहै बिचारा ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्म के अंग अर्थ सो जानी । प्रकृति कहत यह नाम बखानी ॥
प्रथमहिँ पारब्रह्म अनुमानू । पारब्रह्म ते प्रकृतिहु जानू ॥
प्रकृति महातत्व अनुसारा । महातत्व सो भो हंकारा ॥
अहंकार सौं भयउ अकासा । तेहि अकास तैं बायु प्रकासा ॥
बायू ते पुनि तेज उधाना । तेज तैं तोय भयउ परवाना ॥
तोय तैं उपजी मीह बिसेखी । महि को अंस सरीरहि लेखी ॥१६॥

दोहा—महि को अंस सरीर है, ताको जड़ करि जानु । अंस ब्रह्म को जीव पुनि, सो चैतन्य बखानि ८
पारब्रह्म माया सहित, सदा रहै एक ठौर । कबहूँ न्यारो होत नहिँ, कहत बुद्धि सिरमौर ॥ ९ ॥

पंच तत्त्व विभाग

पीत बरन छिति जानिए, सेत तोय अनुमानु । लाल तेज, हरियर पवन, स्याम अकासहि जानु१०

इति बरण सरूप

चौपाई— चित सरूप बायू को जानी । अहंकार पुनि तेज बखानी ॥
बुद्धि मही को रूप निहारी । मान पान को कहत बिचारी ॥
(ए) चारौ अंतहकरन कहावै । या बिधि जपी तपी सब गावै ॥
सबद अकास सरूप बिसेखी । रूप अग्नि को लीजिय लेखी ॥
परस सरूप बाय को जानी । रसना अप को लीजिय मानी ॥
गंध मही को रूप निहारी । इति तन्मत्रा पंच बिचारी ॥ २२ ॥

ज्ञान इंद्री

दोहा—श्रोत्र सरूप अकास है, त्वचा बाय को जान । चक्षु तेज, नासा मही, जीभ नीर के मान ।११।

अज्ञान इंद्री पंच

दोहा—वाक्य सरूप अकास को, पान बाइ भग नीर । गुण होवै पद तेज को, रूप कहत मतिधीर ११ -

ए कर्म इंद्री जानिय पाँच

चौपाई— माया जानु अंस चौबीसा । जो जड़ है भाखत मुनि ईसा ।
ब्रह्म को अंस एक परमाना । सो चैतन्य जीव जेहि जाना ॥ २४ ॥

तारिका छंद— आदि अंत संसार को जानै । आयु मरनहू की पहिचानै ॥
बिद्या जानु अविद्या जोई । महाविष्न छब्बिस को सोई ॥
है सरीर देही परमाना । पंद्रह तत्व के बेद बखाना ॥
नाम तीनि ताके सुनु मूला । कही बिराट दीर्घ अस्थूला ॥
नव तत्वन के दोउ सरीरा । तीनि नाम भाखत मुनि धीरा ॥
सूच्छम कही लिंग अरु जोती । दुहूँ सरीर नाम यहि होती ॥ १ ॥

अवस्था

दोहा—चारि अवस्था होत तन, जाग्रत, स्वप्न, सुषुक्ति[1]। चौथी कहत तुरीय को, 'तुलसिदास' सुभ जुक्ति१२

१. सुषुप्ति ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अवस्था बरन

चौपाई— जागत रहै तत्व मिलि पाँचा। जाग्रित कहता ते बुध साँचा।
जो नव तत्व क कहिय सरीरा। जाके भ्रमे सप्न मतिधीरा ॥२६॥

दोहा—पंच तत्व प्रकृती मिली, कहत जो सुख निरधार। जाको कहत सुषुप्ति सब, तुलसिदास मतिसार१३
लघु दीरघ जग जीव सब, ब्रह्म बराबरि जानु। कहत अवस्था होय तब, प्रगट तुरिय सो मानु १३

ब्रह्म जीवको उदाहरन

दोहा—ऐसे जीवहि ब्रह्म को, अंतर नाहिन नेक। ज्यौं सूरुज अरु घाम को, को है करै बिवेक ॥१४॥

पुनः

दोहा–जलतें होइ तरंग ज्यौं, जल तरंग नहिं दोइ। ऐसे ब्रह्महि जीव को, अंतर नेकु न होइ ॥१५॥
अग्नि तेज जो उष्नता, क्यौं कहिए है ताहि। तैसेहिं ब्रह्महिं जीव को, अंतर नेकु न आहि ।१६

चौपाई— पद है तिहूँ लोक बिस्रामा। माया ब्रह्म तासु निज नामा ॥
लच्छन तीनि तासु के जानिय। नाम कुलाल ब्रह्म उनमानिय ॥
माया माटी सम कै लेखी। जीव नाम पुनि ब्रह्म बिसेखी ॥
ब्रह्म क अंस ज्ञान अनुमानू। माया अंस कहब अज्ञानू ॥
ता अज्ञान ते बिंध्यो सरीरा। तुलसिदास भाषत मतिधीरा ॥३१॥

अथ अंतर षट उर्मि

चौपाई— काम क्रोध अरु लोभ बखानू। मोह मान अपमानहिं जानू ॥
ए षट उर्मि जीतिहै जोई। जीवनमुक्त कहावै सोई ॥३३॥

अथ सरीर द्वै

दोहा—बिनसै पंद्रह तत्व को, एक सरीर सो जानु। लिए बासना औतरै, नव तत्वनको आनु ॥१६॥
इक सरीर दोऊ जबै, बिनसै कवने भाइ। तब पावै निर्बान पद, आवागमन नसाइ ॥१७॥

सुबुद्धि उवाच

दोहा—नव तत्वन को अवतरै, लिए बासना आन। सो बिनसै केहि भाँति गुरु, कहौ जगत हित जानि१८

ज्ञान उबाच

चौपाई— नव तत्वन कर अति दिढ होई। दोउ पाप ते बिनसै सोई ॥
प्रथमहिं षट उर्मी जिति लेई। दूजे अजपा जप चित देई ॥
षट उर्मी जीतन की बानी। जोति दूसरी लीन्हेउ जानी ॥
अब सुनिए अजया की रीती। जो भाषत मुनिबर करि प्रीती ॥३७॥

दोहा—कंचन ते भूषन भए, भूषन कनक न दोइ। त्यौं हि ब्रह्म अरु जीव को, अंतर नेक न होइ ॥१९॥
अजपा जपिए मौन ही, जाते सुनै न कोइ। गुरू सिखावै सिष्य-कौ, जो सेवा दिढ होइ ॥१९॥

अथ अजपा

दोहा—दूरि न दीजै जान मन, घट घट ब्रह्म बिचार। ऐंचत छाँड़त स्वास-मैं, सोहं करत प्रकार २०
स्वासहिं खैंचत रा सुमिरि, छाँड़त अनि मा चित्त। येहि बिधि अजपा जाप करि, जारु बासना मित्त२१
जागत सोवत सपनहू, स्वासन जपिये राम। सुरति राखु अभ्यास करि, आठ पहर निसि-याम २२

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुबुद्धि उवाच

दोहा—जागत करिए सहज ही, सपनेहु मैं करि प्रीति । सोवत मैं क्यौं राखिये, अजपा जप की रीति२३

ज्ञान उवाच

दोहा–सुमिरत जैसे सोइये, जागत फिरि तेहि बानि । सुमिरत कहिय सु सुप्न को, तुलसिदास बुधिवान२४
या बिधि अजपा जाप को, चित दै करै जो कोइ । जरै बासना तत्व नव, फिरि जग जन्म न होइ२५

अथ ब्रह्म मायाको उदाहरन

दोहा–जैसे लोहे को परस, चुंबक गुन दरसाय । त्यौं ही माया ब्रह्म को, समुझै न्याव प्रभाव ॥२६॥
माया ब्रह्म के अंस गुन, मैं भाखेउ मतिमान । समुझनवारे समुझिहैं, जथा बेद परमान ॥२७॥
निरनय माया ब्रह्म को, पढ़ै सुनै जो कोइ । समुझै आतम ज्ञान को, तुलसिदास फल सोइ ।२८।

सुबुद्धि उवाच

दोहा—तिहूँ लोकमैं रमि रहेउ, घट घट ब्रह्म समान । ताको कहिये ध्यान क्यौं, प्रभु निरीह निर्बान २९

गुरु ज्ञान उवाच

चौपाई— प्रथमहिं हाथ करैगो राजू । देखै सुनै जगत को साजू ।
दुख सुख तन के देत बिडारी । श्रुतिन्ह ध्यान यह कहेउ बिचारी ॥३९॥

दोहा—छनक एक सो ध्यान करि, रहिये ब्रह्म समाइ । संकर कहेउ बसिष्ठ सौं, यहै भेद समुझाइ ।४०।
माया को परपंच यह, बिबिध भाँति तन वेखु । तिहूँ लोक मैं रमि रह्यौ, हिय कै नैननि देखु ४१

॥ इति श्रीज्ञानदीपिकायां तुलसीदासकृते संकराचार्यानुमते ब्रह्ममायाको निर्नय ब्रह्ममार्गबर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा ४१ ॥ चौपाई ३९ ॥ छंद १ ॥

अथ सरूप मार्ग बरनन

सुबुद्धि उवाच

दोहा—ब्रह्म कहायो जीव है, घट घट बिध्यौ सोइ । आपु न जानै आप को, क्यौं करि न्यारो होइ ॥१॥

ज्ञान उवाच

सवैया— ज्यौं तिल तेल रहै सब मैं धृत, काठ मैं अग्नि त्यौं भेद बिचारयौ ॥
कै उपचारन से निकसै तिल पेरि, मथे अरनी षरगारयौ ॥
यौं ही बसै घट ही प्रतिमा प्रभु दै दुख देह को सोधु निकारयौ ॥
लै पुर नेम त फेरि हिये तुलसी तन देखहु ब्रह्म निनारयौ ॥ १ ॥

सुबुद्धि उवाच

दोहा—मुनि सम बुद्धि बिसाल अति, सो इमि ब्रह्महि जानु । भूरि जगत नर न्यून बुधि, क्यौं पावै भगवान २

गुरु ज्ञान उवाच

दोहा—जिनहिं न आतम ज्ञान कछु, चाहत प्रभु को पास । ते अवतारी ध्यान करि, श्रवन सुनै गुन तास ३
पूरन ब्रह्म बिराट जो, सो दस रूप बनाइ । दुष्ट सँघारन भक्त हित, जग मैं जन्मे आइ ॥४॥

जथा अवतार दसौ

तारक छंद— प्रथमै कच्छप रूप बनाये । धरनी ऊपर लोक बसाये ॥
दूसरे मच्छ सरूप सँभारयौ । तब बूड़त ते बेद उबारयौ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तिसरे प्रभु रूप बराह सुधारचौ। छिति छीनि लई हरिनाच्छ सँघारचौ ॥
चौथे प्रभु गात नृसिंह बनायो। हने दुष्टनको प्रह्लाद बचायो ॥
पँचमे प्रभु बावन बेष बनायो। बलिको छलि बाँधि पताल पठायो ॥
छठये प्रभु राम भयो द्विज कोपी। सब छत्रिनकी जिन कीरति लोपी ॥
सतये प्रभु राम सरूप सुधारचौ। दच्छिन धर्म चलाइ दसानन मारचौ ॥
अठये प्रभु कृष्न भए नर देही। बहु दुष्ट हत्यो निज साथ सनेही ॥
नवए प्रभु बुद्ध सरूप सँवारचौ। श्रुति रच्छि दया छितिमौं अवधारचौ ॥
दसये प्रभु रूप कलंकि बनैहै। हरिकै जगको भव - भार मिटैहै ॥ १ ॥

दोहा—यह बिधि दस अवतार प्रभु, धरे लोक बिस्तार। अष्टादस पूरान श्रुति, ब्यास कहे मुख चारि ५
या दसहू अवतार मैं, जाको धरिए ध्यान। सोइ मुक्ति दातार है, तुलसिदास परवाँन ॥६॥
जद्दपि सो अवतार को, ध्यान कथा अरु मोष। तदपि राम अरु कृष्न को, होत सुनत संतोष७
राम रूप ही लै कहौ, पुनि कृष्नहि चित लाय। सिसुताई ते आदि वै, बरनहुँ ध्यान सुभाय ८

राम रस लीला ध्यान

दोहा—चैत मास नौमी सुकुल, ग्रह नछत्र सुभ पाइ। दसरथ नृप के धाम प्रभु, लीन्ह जन्म रघुराइ ९

सवैया— दसरथ राय के पूत भये तब बाजि उठी तिहुँ लोक बधाई ॥
दान दियो द्विज लोगन को पहिरावरि और भुआलन पाई ॥
बैरिन को भए साल बिसाल निहाल भए कबि कीरति गाई ॥
या मन को बिसराम भयो तुलसी प्रभु साधु समूह सोहाई ॥ १ ॥

अथ प्रथम बर्ष लीला ध्यान

विष्णुपद — खेलत चारिउ अनुज घुटुरुवन। राम लच्छिमन भरत सत्रुहन।
हेरि हसत महतरिअन। मुख मयंक सोभाकी सीवाँ द्वै द्वै कढ़त दँतुरिअन ॥
बचन सुधा निकसन चाहत जब कछु दिन माँहि दुधरियन ॥
मनिमय अजिर देखि प्रतिबिंबनि उझकत खनत अँगुरियन ॥
छोड़ि चलत जब नजरि न आवत मन मलीन करि भरियन ॥
लटकि रह्यौ लटकन ललाट पर गज मुकुतन इक लरियन ॥
तुलसिदास जनु जस कोटिन्ह को महूँ दियो सुभ धरियन ॥ १ ॥

अथ द्वितीय वर्ष लीला ध्यान

दोहा—डगमग धरत सु डगमगे, गहे मातुको हाथ। तुलसिदास हियमैं बसत, चलत अजिर रघुनाथ १०

सवैया— गहिकै अँगुरी निज गेह चले लुरकी उर कंचन बाघ-नही ॥
घुघुआरि लटैं लर मोतिन की मिलि चूमि रही सुभ आनन ही ॥
सुनि कै धुनि नेपुरकी बिहँसै पग दाबि दुरे सो बिना पनही ॥
तुलसी तन देखत रामको भाय सकै सुख गात समात नही ॥

अथ चतुर्थ वर्ष लीला ध्यान

सवैया— नैन बड़े सुभ साँवर गात बनी पगिया सिर केसरि बोरी ॥
लाल झँगा पहिराय कै मातु बनाइ भली बिधि पीत पिछोरी ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

छोटिय सी पनही पद पंकज दीन्ह चढ़ाइ पोछाइ हथोरी ॥
लै धनुही जुग बान चले कर राम जू खेलत ग्रामकी खोरी ॥ २ ॥

अथ अष्ट वर्ष लीला ध्यान

सवैया— झीन झगा झलकै तन साँवरे पाग बनी सिर लाल रँगाई ॥
फेट पितंबर बाँधि भली तुलसी तब जूति लै झारि चढ़ाई ॥
मोतिन माल बिसाल हिए कर कंकन कुंडल जोति सोहाई ॥
बान कमान गहे सरजू तट खेलत राम लिए सँग भाई ॥ ३ ॥

अथ जुलफै बरनन

दंडक—घनी घुघुवारिक दुवारि मनि खंभनि की कैधौं ए तुलसिदास चँवर चारु काम के ॥
कैधौं मुख चंद अहि सिसु चढ़े सुधा हेत कैधौं अरि ताडिवे को साजन है ताम के ॥
कैधौं तमहर बंस जानि सेव मानि उर बयर बगसाइबेको सावक हैं साम के ॥
चिकने चिकुर कारे सोखै सौ कली है कैधौं सोहै जुग जुलफ लटुरिया सिर राम के ॥ १ ॥

अथ द्वादस वर्ष लीला ध्यान सिकार समय

सवैया— नैन सरोज मराल मोती सिर भौंह सु मोतिन माल सुहाई ॥
साजि हरे कपरा सब गात सो पंकज पातन की समुदाई ॥
साँवरे सो तन नीर भरो चल कुण्डल मीनन की गति पाई ॥
तून सरासर सो कर मैं लिए राम किधौं सुर की छबि छाई ॥ ४ ॥

अथ षोडस वर्ष लीला ध्यान अब स्थान समय

सवैया— सुमवारि भुजानि पै डारि हियो मस वारि सुजंघ भली सुषमा जै ॥
चूनि पितंबर की पहिरै लखि देह दसा घन दामिनि लाजै ॥
सिर दै हरि मंदिर केसरि को तुलसी सुभ छाप सु गातन छाजै ॥
सरजू तट राम नहाइ खड़े मनि मंदिरमैं जनु चंद बिराजै ॥ ५ ॥

दोहा—ऐसे ध्यानहि जो धरै, रसना रटिकै नाम । अधम तरै अरु साधु सब, पूजै मनके काम ॥ १० ॥

राम जुगुल बरनन

सवैया— मोच्छ तियाके लसैं श्रुतिभूषण की मुनि पच्छी (के) पच्छ उड़ोहैं ॥
है भवसागर तीर किधौं तम पायन को ससि सूरज सोहैं ॥
बेदन के द्रिग कैधौं उचो द्रुम (ग) पुण्यके राजत पात लसोहैं ॥
राम हौ बर्न किधौं तुलसी प्रभु साधुन की रसना महनो हैं ॥ ११ ॥

सुबुद्धि उवाच

दोहा—कहा पराक्रम कीन्ह प्रभु, सोहै राम सरूप । सो कहिए संक्षेप ही, गुरु सर्वज्ञ अनूप ॥ ११ ॥

ज्ञान-गुरु उवाच

मोतीदाम छंद—गए बन राम मुनीस के लारी ॥ हनो उन ताहि मरीच बिडारी ॥
सुबाहु सँघारि सु जज्ञ कराई ॥ चले मिथिलेस मुनीस लिवाई ॥
लखि वा बन पाहन गौतम नारी ॥ छुई पग पावन दीन्ह उधारी ॥
स्वयंबर भूप रचे दरबारी ॥ बरो सिय संभु सरासन टारी ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

झुके भृगुनंद चले मग जात ॥ लिए फरसा धनु केवल हाथ ॥
कछू दिन आइ बसे घर राम ॥ दिये बन तात त्रिया निज काम ॥
चले चित्रकूट घनो बन चाहि ॥ बिरूप करी जड़ सूपनखाहि ॥
हन्यो खर दूषण से बलवान ॥ मृगा हति कंचन को निज पान ॥
हरी जब सीय दसानन आनि ॥ करौ बन सोध परो नहिं जानि ॥
गिरो लखि गीध जटायू जूझि ॥ दई गति ताहि लई सुधि बूझि ॥
चले प्रभु आगे सोच बिचारि ॥ दई गति अंध कबंधहि मारि ॥
मिले पुनि बांदर पंच समान ॥ सुग्रीवको भेद कहे हनुमान ॥
बिधै सर एकहि सातउँ ताल ॥ हतो तेहि काज महाबल बालि ॥
टिके बनरा सब खोजत बाम ॥ भए पर गीध सुना गुन राम ॥
गए हनुमान जराय सो लंक ॥ सिया लखि अच्छहि मारि निसंक ॥
पयोनिधि तीर परो दल जाइ ॥ विभीषन आइ मिला तजि भाइ ॥
दई तेहि लंक समुद्र बँधाइ ॥ तरे प्रभु पार बसिष्ठ पठाइ ॥
हत्यो सुत भ्रातन सो गनि जाइ ॥ हत्यौ मघवा-रिपु बंधु जगाइ ॥
हन्यो बलि रावन जज्ञ बिधंसि ॥ लई मुभ सीय सु देव प्रसंसि ॥
चढ़े प्रभु पुष्पक सखा समेति ॥ चले मुनि देवत प्राग सहेति ॥
मिले भरता हित सौं नँदिग्राम ॥ बसे पुनि आइ अजोध्यहि राम ॥ १ ॥

दोहा—राज करी हयमेध प्रभु, श्रुति को धर्म चलाइ ॥ तुलसिदास संछेप यह, कहि रामायन गाइ १२

अथ ब्रह्म अस्तुति

भुजंगप्रयात छंद—नमो राम तुभ्यं सदानन्दकारी ॥ स्वयं ब्रह्म संसार लीला विहारी ॥
निरंकार देही घनस्याम सोहै ॥ रच्यौ रूप ऐसो सबै लोग मोहै ॥
महाबाहु राजीव नैना बिराजै ॥ प्रभा पुंज देखै दिवानाथ लाजै ॥
गहै बान कोदंड दुष्टानिहंता ॥ लिए आनि औतार पाले सुसंता ॥
भयो चित्त हौ सौ सुनै देवबानी ॥ पुरा नाथ जो बेद ब्रह्मा बखानी ॥
निरीहं निराकार रूपो न रेखा ॥ नहीं आदि औसान मध्या न बेखा ॥
दुखी ना सुखी सोच इच्छा तुम्हारे ॥ रहे पूरि ब्रह्मांड बूढ़े न बारे ॥
न माता पिता बंधु यौं बेद गावै ॥ अयोध्या कुटुम्बी ह्वै छत्री कहावै ॥
करे भौंह टेढ़ी प्रलै होइ जाके ॥ दशग्रीव मारचौ कहायो जु ताके ॥
करी जोग माया सु तीजी न ताही ॥ गहै बाँस बोरै दुनी सिंधु माँही ॥
घनो दुक्ख देहीं बिषै जंतु सारे ॥ बचैं, जो चढ़ैं नाम नौका तिहारे ॥
सरूपं त्रिधा राम देही तुम्हारी ॥ बिराटं, निराकार लोके बिहारी ॥
त्रई ह्वै रचौ लोक रच्छौ संघारौ ॥ विधाता रमानाथ संभू अकारौ ॥
तिहूँ लोक मैं तौ तुम्हारी निभौहैं ॥ बिना ज्ञान जानै न माया जिन्हौ हैं ॥
सकेले बिभो सेष सक्षा अतीतौ ॥ सु तौ लै रहै सर्ब ब्रह्मांड रीतौ ॥
अनंतौ भयौ नाम ये ही ते तेरो ॥ बिना ज्ञान सो दूरि ज्ञानी सु नेरो ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नमो राम आत्मा मिलै जीव सारो ।। करै कर्म देही रहै तासु न्यारो ।।
नमो राम तारा सुखी सूर्य कर्ता ।। चराचर सबै जीव के भूरि भर्ता ।।
नमो राम जाको दयासिंधु बानौ ।। कहौं टेरिकै सो सुनौ ताहि मानौ ।।
नमो भक्त जाके सदा संत प्यारो ।। बिना दंभ जो पाइँ सेवै तिहारो ।।
नमो राम बानौ सो गर्ब प्रहारी ।। हन्यौ रावना, सेवरी छुद्र तारी ।।
नमो राम जाको लिए नाम आध्यो ।। बसो धाम तेरो मिटै काल बाध्यो ।।१।।

दोहा—परब्रह्म श्रीराम जू, क्यौं करि बरने जाहिँ ।। तुलसिदास प्रभु जगत मैं सब जग है प्रभु माहिँ ।।१३।।

अथ कृष्न अवतार

दोहा—भाद्र मास आठै असित नखत रोहिनी जानि । साधन पालन दुष्टहन जदुबंसी भो आनि ।।
दोहा—देवकि अरु बसुदेव के जन्म लियो परमान । नंद जसोदा के भवन प्रगट भये भगवान ।।१५।।

सवैया— भीर भई सब गोकुल मै सुनिकै सुत आजु जसोमति जायौ ।
गोप बधू बन गोकुल साथ गुनीजन बिप्र धनौ घर आयौ ।।
नंद जू दीनै अनंद सौं दान लियौ जिहि जाइ जथा रुच भायौ ।
कीनी बधाई भली बिधि सौं तुलसी सुर साधुन हूँ सुख पायौ ।। ५५ ।।

अथ प्रथम बर्ष लीला ध्यान

लील झगा पहुँची पट पाइन कंठ लसै कठुला कर छोहै ।
द्वै दँतियाँ झलकैं मुख उज्जल कज्जल रेख बनी बिच मोहै ।।
गोद जसोमति लीने खरी तुलसी प्रभु आनन पंकज सोहै ।
ओठ बजावत सो सुन नंद सु नंदलला किलकै मन मोहै ।। ५६ ।।

अथ दुतिय वर्ष लीला ध्यान

झाझनि दै कहि खेल लला दधिकौ मथिबौ जु जसोमति ठानौ ।
ता छिन मैं छुट अंगन सौ चढि ठाढ़े भये गहि हाथ मथानौ ।
ताहि छुड़ावन माइ झुकी कछु कान कै ऐस तियै दरसानौ ।
नैन सरोज के सौज भये तब मंदिर भै सो समुद्र समानौ ।। ५७ ।।

दोहा—हनी पूतना थन पियत धरि केसी द्रुम खंड । ताकी बय क्यौं बरनियै तुलसिदास गुन मंड ।।५८।।
साधुन रच्छक से लगे, दुष्टन काल सरूप । मातहिँ बालक से लगे गोपिन काम सरूप ।।५९।।
यातै बय बरनत नहीँ सहज ध्यान कहि देत । दोष धरै जनि कवि कोऊ तुलसिदास करि हेत ।।६०।।

सहज ध्यान लीला

सवैया— पद-पंकज लौं बनमाल बनी कछनी पट पीत पिछौरी लसै ।
मकराकृत कुण्डल मोर पखा सिर सोहत रंग अनेक रसै ।
घन से तन केसर खौर करै द्रग राजत श्रौननि लौं परसै ।
मुरली धुनि काज त्रिभंगि भये तुलसी प्रभु मोहन मौ दरसै ।। ६१ ।।

वन ध्यान लीला

दंडक— ग्वाल बाल संग राजै मुरली मधुर बाजै, मोर पच्छ मुकुट दै कै बन आवै वन तै ।
फूलन की माला मृग मद कौ तिलक भाल, लकुटी फिरावै फेर ल्यावै गायै गन तै ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कछनी सुहाई पीत पट की लुनाई घन दामिन सुहाई उसरत न नैक मन ते।
गोरज लगाये दास तुलसी हिये मै आये, प्यारे मथुरेस नहीं न्यारे होत मन तै ॥६२॥

सवैया— वृषभान लली नँदनंदन जू बनिकै बन मंडिप रास रचौ।
भुज सौं भुज दै गहि पानि सौं पानि सखी गन मै चित चौक नचौ ॥
मिलि ताल मृदंग सुनै मुरली धुन ताथेइ थेइ मुख माँह मचे।
तुलसी प्रभु देखत देव सबै पल पाँवड़े दै अजहूँ न सचे ॥ ६३ ॥

पुनः जुवती गन लै बन रास रच्यौ हरि एक समै रस रंग रवा।
सब देव लखैं गुन मोहन के मुरली सुर साध सुधा - सर वा ॥
उखटे तरु पल्लव फूलि फरे बिथके पसु पाहन पै दर वा।
तुलसी उर चैन भयौ सुनिकै हरके गरके फरके हरवा ॥ ६४ ॥

सिच्छा

सुन रे मन भौंर भ्रमै बिष - बेल, रमै किन पंकज पाइन मैं।
तुलसी मन जौन सुभाइ तजौ फिरबौ करतो इन ठाइन मैं ॥
मकराकृत कुण्डल मोर पखा मुरली पट पीत के भाइन मैं।
बनमाल बड़े दृग देखि बसौ घनस्याम सौ गात बताइन मैं ॥ ६५ ॥

लगन मन की बिस्नुपद

संकराभरन— हमारौ मोहन मान हरौ। प्रीत घर घर पाल कीनी भेद तिहि मिल करौ।
खोलि नैन कपाट बैठौ रूप संकट जरौ। लाज की सब साज लै तन गेह सूनो करौ ॥६६॥
लोक कौ उपहास परिहरि रहत निस दिन खरौ। देखि प्रेम परोषिया सोउ तास के उर डरौ।
हतौ चंचल आदि कौ निज नहिन सुमिरन करौ। हरिहि तुलसी मिल रहौ खग बन कै बन बीसरौ ॥६॥

दोहा—अरि मारे पाले हितू जे हे कृस्नवतार। सो वर्नत या ग्रंथ कौ बाढ़ै बहु बिस्तार ॥६८॥
जो यह दस अवतार कौ पढ़ै सुनै रुचि मानि। राम भक्ति उपजै सही लहै सकल फल खानि ॥६९॥

॥ इति श्री ज्ञानदीपिकायां श्रीगुसाईं तुलसीदासकृते श्रीभागवत रामाइन अनुमते सरूपमार्ग बरननो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ सिच्छा मार्ग : सुबुद्धि उवाच

दोहा—वेद पुराननिकौ मतौ कहिये तत्तु निकारि। तुलसिदास हरि हेत की सो सिच्छा हितकारि ॥ १ ॥

गुरु ज्ञान उवाच

जदपि सकल तीरथ बड़े मुक्ति भुक्ति दातार। तदपि जथा फल होइ जब इंद्री तजै बिकार ॥ २ ॥

सवैया— कति बाद करौ तप संजम गूढ़ बिकाजहि तीरथ पंथ बहौ।
तन मैं मन पाँच ये बाँके बसैं तिनसौं कछू नैम नहीं निबहौ ॥
तुलसी सठ राखु बिचार यहै चित जो भव सागर पार चहौ।
तजि और उपाउ सबै हित सौं कर ध्यान हियै हरिनाम कहौ ॥ ३ ॥

हरिनाम निश्चल

सवैया— धाम चलै जो धरा कौ धरै धनु धेनु चलै गरि केस सजाई।
हाथ चलै हय हेम हथ्यार चलै सुत सोदर सैन सुचाई ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कीरतिऊ अपकीरतिऊ चलि है जग मै जिहि जैसि उपाई।
एक रहै हरिनाम हियै तुलसी प्रभु है जो सदा कौ सहाई ॥ ४ ॥

दोहा—लख चौरासी जीव जे अर्ध उर्ध छिति माँहि। तुलसिदास हरि नाम ही और दूसरो नाहिँ ॥५॥

सवैया— भै-हरता, करता सबके हरि हेरि हियै तुलसी सठ गाई।
फैलि रहौ जल ब्यौम मही वर जीउ अजीव सरूप नसाई॥
खोजत ताहि मकानन हेरिकै ढूँढत आपु ज्यौं आपु न पाई।
दूसरी और नहीँ दृग अंतहू है प्रभु पूरन राम दुहाई ॥ ६ ॥

दोहा—देव दइत नर नाग दल दर्व कुटुम बलवान। तुलसिदास तिहुँ लोक मैं हरि सौं हितू न आन ॥६॥

सवैया— भीषम द्रोन हतौ रबि कौ सुत ग्यारह छोहनी सैन सुचाई।
हाथी हजारन कौ करि कोट दुरे तिहिँ बीच जयद्रथ जाई॥
एकही पारथ आइ हनौ न गयौ कछू काहू सौं नैक बचाई।
और सहाइ न आवत काम चहूँ जुग मैं जगदीस सहाई ॥ ८ ॥

पुनः प्रहलाद की बात सुनी सबही प्रगटौ प्रभु पाहन खंभ फटौ।
गजराज गराज के साज भरौ प्रभु ता छिन ग्राह कौ फाद कटौ॥
कर जोर दुसासन थाक परौ द्रुपदी तन कौ नहिँ बास घटौ।
सकुचै जिय चाहै अगाध कछू पुरई तिनकौ करतार नटौ ॥ ९ ॥

दंडक—जीत जरजोधन अनीत ही की रीत कीनी द्रोपदी नँग्याइबेकी बात अनुसारी है।
पतिन सहित पति जात है अनाथबन्धु बिरद बिचारि प्रभु कीनी रखवारी है।
दौरिकै दुसासन जौ गुस्सा सौं वसन गहौ ऐँचि - ऐँचि हारौ देह होत ना उघारी है।
सभाके सयाने ते अजानसे न जानैं कछू नारी मध्य चीर है कै चीर मध्य नारी है ॥१०॥

दोहा—मन मै करिय न छोभ कछु केतौ परै खवार। बलि बाँधौ उपचार तें सब पुरवत करतार ॥१९॥

सवैया— सोचत है सब ब्यौंत बेकामहि तेरै कहै कहूँ का न बरैगो।
जानत है तू भला औ बुरा पथ जाइ कुमारग ही सँचरैगो।
काहे कौ कोटि उपाधि उठावत तावत है तन तूल जरैगो।
होइ वहै जो करै करता मन राज करे तैं अकाज करैगो ॥ १२ ॥

पुनः— या जग मैं न कछू अपनौ सपनौ सम है निज हेर सही को।
नाम पियूष बिसारि बिसंभर स्वाद बिषै मन मूढ़ मही को।
बाल बहिक्रम जोबन गौ अजहूँ करु रे सुन सीख कही को।
है तुलसी सिख सो हिय हेत गई सु गई अब राखु रही को ॥ १३ ॥

दोहा—जो विधना भावी करी सोई होइ सुभाइ। घर बसवौ कै बन बसौ कै परदेसै जाइ ॥ १४ ॥

उदाहरन

छप्पय—धर्म करत गत ऊँच गये पाताल बाँध बलि। परम भक्त प्रसराम लियौ जसु कौन मात दलि ॥
कौन पाप हरचंद, भरेउ जल जाइ डोम घर। अर्जुन तजि धनु बान धरेउ त्रिय रूप छंडि नर॥
जिहि दोषहि दसरथ - सुवन यह जानि रावनहि जुध्ध किय।
नर देवनि साँचउ नाग पसु भावी कहु किहि उत्थपिय ॥ १५ ॥

दोहा—जतन करै किहि काज कौ जतनै करै विकार। तुलसिदास निज जानिये जे विपच्छ करतार ॥१४॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

छप्पय–करेउ जतन जदुबंस रेत लुहडीहि डार बन । करेउ जतन हठि कंस मारि निर्दया बालकन ।।
करेउ जतन हित गरुड गयउ लै भाग उलूकहि । जतन जयद्रथ करौ घेरि करि कटक के जुत्थहि ।
करि जतन परीछित गंगतट अछै महल रचि मानि सुख ।
वह घरि पहुँची आइं कै सो को न गयौ परि कालमुख ।। १७ ।।
दोहा–जितहि चलहि कछु दाउ नहिँ सुख समूह नजक्याइ। सकल बिघ्न मिटि जात हैं जो हरि होइ सहाइ।।१८

उदाहरन

छप्पय– कहा करिय प्रहलाद चढ़े जब अग्नि कुंड पर । कहा करी द्रोपदी बढ़िय जब बसन भुंड भर।।
कहा करिय गजराज छुटउ ग्रह ग्राम चलौ जब । कहा करौ भारही बचे सुत घंट हेठ सब ।।
कहु कहा परीछित वल कियौ बचे गर्भ द्विज बान करि ।
यह जानि राखि जिय आपु सिर करता हरता आपु हरि ।। १८ ।।
कुंडलिया–तुलसिदास की सीख यह समझहु सकल जहान । जानि भले थल दीजिए बिन्दु प्रीति धन दान ।।
विन्दु प्रीति धन दान देउ जहँ लाभहि पावहु । मतौ कुमत को भूलि वृथा जिन मूर गमावहु ।।
निज तिय, हरिपद, सुपुत द्विज इन सौ यह ब्यौपार करि ।
अर्थ धर्म गति काम फल मिलहि चार अरु भजिय हरि ।। २० ।।
दोहा–दम दुर्गम अरु जोग तप दान दर्ब आधीन। मुक्ति चहौ अनआस तौ भजहु गुपाल प्रवीन ।।२१।।
भजन कहौ नव भाँति कौ नवधा भक्ति विचार । मानु कहौ जिन जिन करी तुलसिदास विस्तार।२२।।

नवधा भक्तिके नाम

दोहा–सुमिरन पूजा वंदना सखा स्रवन होइ दास । चरन कीरतन आत्मन नवधा भक्ति प्रकास ।।२३।।

भक्तिके करता

छप्पय–श्रवन परीछित करी, कीरतन कर सुकदेवहि । सुमरन कर प्रहलाद, चरन मन लछिमी सेवहि ।।
पूजा पृथु जू करे, सखा अर्जुन करि जानत । वंदन करि अक्रूर, दास हनुमान बखानत ।।
आत्मनिवेदन बलि करी, मन बच क्रम करि मानि हित ।
तुलसिदास नवधा भगति-करता बरनै राखु चित ।। २४ ।।
दोहा–द्वौ मारग हरि मिलन के ज्ञान भक्ति अभिराम । इन पंथन मैं लहत फल अर्थ धर्म अरु काम २५।।
चौपाई— श्रुतिन ग्यान भाख्यौ द्वौ भागा । इक गृहस्थ दूजौ बैरागा ।।
गृह अस्थित कौ. कहौं बखानी । प्रथम जोति मैं लीनि उजानी ।।२६।।

अथ वैराग्य

तारिका छंद— जबहि जगत सब झूठौ जानै । तब बैराग गेह तजि ठानै ।।
प्रभु परमानँद सौ मन ल्यावै । देह दसा सुख दुख बिसरावै ।।२७।।
है जग मैं थावर-चर जोई । निहचै जानै रहै न कोई ।।
बैरी हितू दुवौ सम लेखै । हिय के नैननि प्रभु पद देखै ।।२८।।
अरिल्ल—लघु दीरघ जग जीव सबै मन मानियै । होइ अवस्था प्रगट तुरीय सु जानियै ।।
इन्द्रिन कौ तजि स्वाद मगन मन होइ रहै । तुलसिदास बैराग के लच्छन यौं तुमसौं कहै २९
दोहा—झूठौ यह संसार है त्रिगुन कहत मुनि भूप । हिय के नैननि देखि निज जरी जेवरी रूप ३०।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बिस्नुपद

जौ लौं या जग मैं कछु जीजै ।
तौ लौं रघुबर नाम सुधा भरि प्रेम कटोरन पीजै ।।
या देही घटिका को जल ज्यौं छिनु-छिन छहुँ रितु छीजै ।।
पंच भूत .माया के बाँधे ताहि न नैक पतीजै ।।
काम क्रोध मद लोभ सतावै आपु आपु रस भीजै ।।
फाटौ सर गथि गरिमा दै दै कहौ कहाँ लौं खीजै ।।
वेद पुरान बिबिध बिधि भाखे कहो कौन कौ कीजै ।।
तुलसिदास प्रभु राम कलपद्रुम जन्म सुफल करि लीजै ।।३१।।

बैस्नव

दोहा—बरन धरम दाता दया सत्रु मित्र सम मान । लौ न रहै कछु और थिर मनै बैस्नवा जान ।।३२

अथ गृहस्थपन वैराग्य

दोहा—कहा भयौ बन मैं बसै कंदमूल फल खाइ । हित अनहित सुख दुक्ख कौ जु पै बिबेक न आइ ३३
मायाको मानहु करी भेल उचावत कीच । हियौ सरोरुह हंस हरि तेहि सन पारत बीच ३४
नाम ध्यान रसना हियै दया हियै व्रत मान । बरनाश्रम पथ चल मिलै मिलहि तासु भगवान ३५
ग्यानदीपका कंठ धर देखहु साधनिहार । भली बुरी लखि लै चलहु हरि मारग उजियार ३६
मुख उसारि, हिय कोठरी, कंठ देहरी द्वार । ग्यानदीप धर साधु लखि दुहूँ ओर उजियार ३७
मूरख आगै जिन कहौ, सुनि हँसिहै मुँह बाइ । अवगुन गाहक चालनी ता सम तासु सुभाइ ३८
पढ़ि यह ग्रंथ बिचारि चित साधु चतुर ढिग आनि । गुन गाहक के हंस से दूध पियत तजि पानि ३९
अति बिस्तर सब सास्त्र मत लघु करि भाखेउ पंथ । तुलसिदास टीका करत कोटन बाढ़त ग्रंथ ३०
जथा बुद्धि मति हौं कही ज्ञान दीप अनुहार । चूक परी जित होइ कछु छिमियहु कबिहि बिचार४१

सवैया— भूमि हँसै जब भूप जुरै जुग, मीच हँसै तन लोह छिपावैं ।
काम हँसै जब ज्वानी तजै अरु नारि हँसै निज नाह लुकावैं ।।
लच्छि हँसै खनि दूर धरै धन, कर्म हँसै अभिमान बढ़ावैं ।
राखे रहै न चलै पठयै तुलसी जग ये नर नाच नचावैं ।।४३।।

दोहा— मन मै करिय न सोच कछु केतौ परै खभार । यह विचार जिय राखि सिर देत हाथ करतार४३
सुमत भूमि अरु कुमति धनु सर करनी सब मोट । भोग्य निसाना ताक कर करत काम तकि चोट ४४
यह विचार नहिं आपु सिर राखिय सकल अभार । कर्म ओट दुख सुख जगत सब भुगवै करतार ४५
बुद्धिहीन जड़ता अधिक कही पाप की मोट । राम साधु कौ बिरद यह समिट दुहूँ की कोट ४६
यह बिचार नहि मानियै अवगुनता मत हीन । बिरद समुझ अरु सरन लखि छिमा करहु सु प्रवीन४७

सोरठा—मीत बंधु कुल देस, जप तप बिद्या बेद बिधि । रहै न इनकौ लेस, नारि जु मुखहि लगाइये ४८
प्रीत हियै दिढ जानि, विधना ताके कर गहै । तितहि टिकावत आनि, जितहि सबै मन कामना४९

।।इति श्रीज्ञानदीपिकायां श्रीगुसाईंतुलसीदास कृते श्रुतिपुरानानुमते सिच्छा-मार्गवर्ननो नाम पंचमोऽध्यायः ।।

।। इति श्रीग्यानदीपिका संपूर्न ।। सुभमस्तु माह सुदी ९ गुरुवासरे संवत् १८७८ ।।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२५

तुलसी-हजारा

[गोस्वामी तुलसीदासजीके नामसे 'तुलसी-हजारा' नामके ग्रन्थका विवरण भी प्राप्त हुआ है जिसकी एक ही पूर्ण प्रति कालाकाँकरके कुँवर सुरेशसिंहके संग्रहालयमें थी जो अब काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कला-भवनमें विद्यमान है। इस तुलसी-हजारामें किसीने रामचरितमानस, दोहावली और रामाज्ञा-प्रश्नसे अधिकांश दोहे और सोरठे तुलसी-हजाराके नामसे संगृहीत कर दिए हैं। इस संग्रहमें गोस्वामीजीके उपर्युक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त भी कुछ दोहे और सोरठे हैं जिनमेंसे कुछमें तुलसी नाम दिया है और कुछमें नहीं है। इस संग्रहमें रचनाकाल भी नहीं दिया हुआ है जैसा कि तुलसी-सतसईमें दिया है। जान पड़ता है गोस्वामी तुलसीदासके ग्रन्थोंसे लिए हुए दोहोंके अतिरिक्त किसीने अपनी ओरसे कुछ दोहे और सोरठे मिला दिए हैं जिनमेंसे कुछमें तो तुलसी नाम दिया है और कुछमें नहीं है। ऐसे कुछ छन्द श्री उदयशंकर दुबेने नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ७२, संवत् २०२४ अंक ३ के पृष्ठ ३२३ से ३२५ तक दिए हैं जो ज्योंके त्यों दिए जा रहे हैं।]

तुलसीदासजीके नामसे युक्त छन्द—

काँमधेनु पारस सवरि कल्प वंछ्छ कर बार। तुलसी हर की भक्ति बिनु ग्रह तै भलि अजियार ॥११५॥
राम नाम हिय महि धरौ, ब्रथा बात कै दूर। तुलसी लहरूर बाल ज्यो बीज स्वाद कछु और ॥११७॥
तुलसी षोटै दास कौ रघुपति राषत मान। ज्यौं मूरख उपरोहितहि दान देत जिजिमान ॥१८०॥
नहिं सेवा नहि बुध्ध बल नहि विद्या नहिं दाँम। तुलसी पतित पतंग की तुम पति राषौ राम ॥१८४॥
तुलसी छल बल छाँड कै करिय राम सो नेह। परदा कह भरतार सौ जिहि देषी सब देह ॥१८६॥
ज्यौं कामीके चित्तमें चढी रहत नित बाँम। ऐसै हो कब लागहै तुलसीके मन राम ॥२८७॥
ज्यौ गरोब की देहि मैं माहु पूसकी घाम। ऐसे हो कब लागहौ तुलसी के मन रांम ॥२८८॥
तीन टूक कोपीन के अरु भाजी बिन लौन। तुलसी रघुबर उर बसै इन्द्र बापुरौ कौन ॥२९०॥
तुलसी दल को दलन है दीनानाथ दयाल। साधु रूप को साध है काल रूप कौ काल ॥३१५॥
तुलसी रघुबर सेवतहि मिटि गयो कालौ काल। नारी पलट सो नर भयो यै कैसे दीनदयाल ॥३१७॥
रामघाट मंदाकिनी भई विमानन भीर। तुलसिदास चंदन घिसै तिलक देत रघुबीर ॥३१८॥
कहा कहौ छबि आजुकी भले बनै है नाथ। तुलसी मस्तक जब नवै धनुष बाँन लिये हाथ ॥३१९॥
आव घास सब कहत है आक ढाक अरु कैर। तुलसी ब्रजके लोग सौ कहा राँम सो बैर ॥३२१॥
तुलसी मथुरा राँम है जो कर जानै दोइ। दोउ बरनके मध्यमै ताके मुषमैं सोइ ॥३२२॥
मुरली मुकुट दुरायके नाथ भये रघुनाथ। तुलसी रुच लख दासकी धनुष बान लियो हाथ ॥३२३॥
राग दोष गुन दोष को साषी हृदय सरोज। तुलसी बिगसत मित्र लषि सकुचत देषि मनोज ॥३२४॥
पसुभट ते नर भये भली श्रृंग अरु पूंछ। तुलसी हर को भक्ति विनु धृग दाढ़ी धृग मूंछ ॥३३७॥
तुलसी उदरन भरत हौ मकराहके चून। अब तौ राम प्रताप-तै लुचई दो दो जून ॥३४५॥
तुलसी या जग आय कौन बन भयौ समरथ्थ। येक कंचन एक कुचन पर कौ न पसारो हथ्थ ॥३६२॥

तुलसीदासजीके नामसे रहित छन्द—

सरतरुचिंतामनि सुरभि कहु क्यौं भये उदार। एक बार रघुवीर कौ सुनौ नांम उच्चार ॥
विमल विलग सुष संपदा जीवन मरन सुनीत। रहित राषिये राम की गये तौ उचित अनीत ॥
येक भरोसो राम को किये पाप भर मोट। जैसे नारि कुनारि को बड़े षसम की ओट ॥
कित मुरली कित चंद्रका कित गोपिन कौ साथ। अपने जनकै कारनै नाथ भये रघुनाथ ॥
पाँच पहर धंधे गए तीन पहर गये सोई। येक घरी ने हर भजे कुसल कहा ते होई ॥

॥ तुलसी-ग्रन्थावलीका द्वितीय खण्ड पूर्ण हुआ ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अभिधान-कोष

पंडित श्रीकृष्ण शुक्ल

अगस्त्य : मित्रावरुणोंके पुत्र हैं। समुद्रमें छिपे हुए इन्द्रादिकोंको जब असुरोंने सताना प्रारम्भ किया तब देवताओंने अग्नि तथा वायुको समुद्र सोखनेको कहा। परन्तु जल-जन्तुओंके नष्ट हो जानेके भयसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। तब मैत्रावरुणोंके वीर्यसे कुंभमें अगस्त्यका जन्म हुआ, इससे उनका नाम घटयोनि और कुम्भज पड़ा। देवताओंके अनुरोधसे कुंभजने समुद्रको पी लिया। पितरोंके आज्ञानुसार विदर्भके राजाकी कन्या लोपामुद्रासे विवाह कर लिया। अपने अतुल सामर्थ्यसे इल्वलकी सम्पत्ति इन्होंने अपनी पत्नीको दी। वनवासके समय जब राम इनके आश्रममें गए थे तब इन्हींने रामको स्वर्णका धनुष, अमोघ बाण, अक्षय तूणीर (तरकश) तथा स्वर्णका खड्गकोश (म्यान) दिया था।

अंगद : १—बृहस्पतिके अंशसे उत्पन्न बालि और ताराका पुत्र था। बालिने मरते समय इसे रामको सौंप दिया था। रामने उसे युवराज बना दिया था। यह भाषण-कलामें बड़ा निपुण था। इसने वज्रदन्तका बध किया और कुंभकर्णके साथ भी भयंकर युद्ध किया था। इसे अयोध्यासे विदा करते समय रामने अपने गलेकी माला और भुजबंद दिया था।

२—लक्ष्मणके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम अंगद था जिसने अंगदीया नामकी नगरी बसाई थी।

अंजना : पुंजक-स्थली नामक अप्सरा ही शापके कारण पृथ्वीपर कुंजर नामक वानरकी पुत्री और केसरी नामक वानरकी पत्नी हुई। मतंग ऋषिके कहनेपर इसने एक सहस्र वर्षतक तपस्या की। तब वायुके आशीर्वादसे इसे हनुमान् पुत्र हुए।

अकम्पन : रावणका गुप्तचर, जिसने सर्वप्रथम खर और दूषणके मारे जानेकी सूचना रावणको दी थी। इसीने सीताको चुरानेकी सम्मति रावणको दी थी। इसे हनुमान्ने मार डाला था।

अक्षयवट : वह वट-वृक्ष जिसके पत्रपर विष्णु भगवान् प्रलय होनेपर शिशु रूपमें लेटे रहते हैं। प्रयागके किलेमें स्थित वटवृक्षको अक्षयवट कहते हैं।

अक्षकुमार : (अच्छकुमार) रावणका पुत्र, जिसे हनुमान्ने अशोक-वाटिकामें मार डाला था।

अगुरु : (अगर) यह सुगंधित विशाल वृक्ष सिलहट (बंगाल) और आसामकी पहाड़ी-पर होता है। इसके चूरेसे अगरबत्ती और गोंदसे गुग्गुल बनाई जाती है।

अजामिल : कान्यकुब्ज देशका दुराचारी ब्राह्मण था, जिसने वेश्याके प्रेममें पड़कर माता, पिता और पत्नीको त्याग दिया था। इस वेश्यासे उत्पन्न उसके दस पुत्रोंमें सबसे छोटेका नाम नारायण था। मरते समय इसने नारायणको पुकारकर प्राण त्याग दिया, जिससे वह विष्णुलोक (वैकुण्ठ) पहुँच गया।

अतिकाय : धान्यमालिनीसे रावणका पुत्र। बहुत मोटा होनेके कारण उसका यह नाम पड़ा। इसने इन्द्रको परास्त किया तथा वरुणको जीतकर उनका पाश छीन लिया था। इसने ब्रह्माकी आराधना करके उनसे अस्त्र, कवच, दिव्य रथ तथा सुर और असुरोंसे अबध्य होनेका वर प्राप्त किया था। लक्ष्मणने इसे मारा था।

अतिथि : अभ्यागत। पहलेसे सूचना दिए बिना जो ऐसा अभ्यागत अकस्मात् आ जाय जिसका नाम, गोत्र, स्थिति कुछ ज्ञात न हो वह अतिथि है।

यस्य न ज्ञायते नाम न च गोत्रं न च स्थितिः।
अकस्मात् गृहमायाति सोऽतिथिः प्रोच्यते बुधैः॥

जिसके घरसे अतिथि असम्मानित लौट जाता है वह उसका पुण्य भी साथ लिए चला जाता है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

अत्रि : मंत्र-द्रष्टा ऋषि थे। ये लोक-शासित राज्यके इतने बड़े पक्षपाती थे कि एक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बार इसी बातपर राजासे लड़ गए और कारावास भोगा। इनकी पत्नी अनसूया बड़ी पतिव्रता थीं।

अथर्वणी : देखो वशिष्ठ।

अदिति : मित्रावरुणाकी तथा अर्यमाकी माता थीं, इसीसे इन्हें राजमाता कहा जाता है। पुराणोंमें अदितिको दक्षकी कन्या तथा कश्यपकी पत्नी बताया गया है। ये देवमाता और दाक्षायणी भी कहलाती हैं।

अनंग : देखो कामदेव

अनंत-बंधु : अनंत (शेषके अवतार लक्ष्मण)-के भाई रामचन्द्र।

अनसूया : ये कर्दम तथा देवहूतिकी कन्या और अत्रि ऋषिकी पत्नी थीं। तीन सौ वर्षों तक निराहार रहकर शंकरकी तपस्या करनेपर इन्हें दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा चन्द्र नामके तीन पुत्र हुए। वनवासके समय जब राम अत्रिके आश्रममें गए थे तब अनसूयाने सीताको पातिव्रत धर्मकी महिमा बताई थी। एक बार जब दस वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई तब इन्होंने अपने तपोबलसे आश्रमके निकट मंदाकिनी गंगा प्रकट की और पर्याप्त फल-फूल उत्पन्न करके प्राणियोंका जीवन बचाया।

अन्तर्धान : सहसा लुप्त हो जाना, दिखाई न देना।

अन्धक : बड़ा बलवान् और उपद्रवी दैत्य था। इसने ब्रह्माकी आराधना करके वर प्राप्त किया था कि जब मुझे ज्ञान प्राप्त हो जाय तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा मैं जीवित रहूँ। यह वरदान पाकर वह त्रैलोक्य-विजयी हो गया। इसके भयसे देवता मंदराचल पर्वतपर भाग गए। देवताओंकी पुकारपर महादेवने उसे जब त्रिशूल मारा तब वह वहीं बैठकर महादेवके ध्यानमें मग्न हो गया। उसने अपनी भक्तिसे महादेवको प्रसन्न करके वर माँगा कि मुझे आपकी अनन्य भक्ति प्राप्त हो। जब उसे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ तभी उसकी मृत्यु हो गई।

अपर्णा : हिमाचलकी पुत्री पार्वतीने शंकरको पतिरूपमें पानेके लिए उग्र तपस्याके साथ कन्द, मूल, फल, फूल, जल यहाँतक कि बेल-पत्र खाना भी त्याग दिया तब इनका नाम अपर्णा (पत्ते न खानेवाली) पड़ा।

अबीर : आरारोट या सिंघाड़ेके आटेमें लाल रंग मिलाकर सुखा देते हैं। वही अबीर या गुलाल कहा जाता है। होलीके अवसर पर लोग एक दूसरेको अबीर या गुलाल मलते हैं।

अभिजित् नक्षत्र : यह दो तारोंके समूहका नक्षत्र सिंघाड़ेके आकारका होता है। ब्रह्मा इसके अधिपति हैं। उत्तराषाढ नक्षत्रके शेष १५ दण्ड और श्रवण नक्षत्रके प्रथम ४ दण्ड, इन १९ दण्डोंमें अभिजित् नक्षत्र पड़ता है। इस नक्षत्रमें जन्म लेनेवाला मनुष्य सुन्दर, सज्जन और बड़ा प्रतापी होता है। रामका जन्म इसी मुहूर्त (नक्षत्र)-में हुआ था।

अमरावती : (इन्द्रपुरी) इसे विश्वकर्माने सुमेरु पर्वतपर देवताओंके लिये बनाया था और इसके स्वामी इंद्र हैं। यहाँके निवासी देवता जरा, मृत्यु, शोक, संतापसे मुक्त रहते हैं। यहीं-पर कामधेनु गौ, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, अप्सराएँ और नंदनवनके पाँच प्रकारके वृक्ष (मंदार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन) भी हैं। इस पुरीके भीतरसे अलकनन्दा नदी (स्वर्गगा) बहती है।

अमृत : पृथुराजके भयसे जब पृथ्वी गौ बन गई तब देवताओंने इन्द्रको बछड़ा बनाकर सुवर्ण पात्रमें गौ-रूपी पृथ्वीको दूहा। उसीके स्तनसे अमृत निकला था जो दुर्वासाके शापसे समुद्रमें जा गिरा। समुद्र-मन्थनके समय जो १४ रत्न निकले उनमें अमृत भी था। इसीको पीकर देवता अमर हुए थे।

अंबारी : (अ० अम्मारी) हाथीकी पीठपर लगाया जानेवाला छतरीदार आसन (हौदा)।

अंबरीष : अयोध्याका विष्णुभक्त सूर्यवंशी राजा और नाभागका पुत्र। एक बार कार्तिककी एकादशीके व्रतके अगले दिन पारणके समय ऋषि दुर्वासा इनके यहाँ आ गए और स्नान करने चले गए। उस समय द्वादशी समाप्त होनेको थी। अतः, इन्होंने विष्णुका चरणामृत लेकर व्रत तोड़ दिया। दुर्वासाने लौटकर जब यह जाना तब उन्होंने अपनी जटा खोलकर इनपर कृत्या छोड़ी। किन्तु विष्णुका सुदर्शन चक्र कृत्याका निवारण करके दुर्वासाके पीछे पड़ गया। तब विष्णुके कहनेसे वे लौटकर अंबरीषके ही पास आए। इस बीच एक वर्ष-

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तक अम्बरीष भूखे ही रहे। अम्बरीषने इनका स्वागत किया। भक्तिके कारण इन्हें मोक्ष मिला।

अयोध्या : विम्नांकित सात मोक्षदायिनी पुरियोंसे एक पुरी—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैता मोक्षदा पुरयः स्मृताः॥

यह काशीसे उत्तर-पश्चिम उत्तर-प्रदेशके फैजाबाद जिलेमें सरयू नदीके दाहिने तटपर बसी है। यह कोशलके सूर्यवंशी राजा (इक्ष्वाकु-वंशी रघुवंशी) राजाओंकी राजधानी रही है। राजा दशरथके पुत्र 'राम' की जन्म-भूमि होनेके कारण इसकी महिमा बढ़ गई।

अर्थ : १—अर्थ, धर्म काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंमेंसे एक। अर्थ तीन प्रकारका होता है, शुक्ल, शबल (चितकबरा) और कृष्ण। अपने वर्णके कार्यके अनुसार उपार्जित धनको शुक्ल, अपनेसे नीच वर्णकी वृत्ति-द्वारा उपार्जित धनको शबल, तथा चोरी, जुआ, ठगी आदिके द्वारा उपार्जित धनको कृष्ण (काला धन) कहते हैं।

अरणि : (अरनी)—यज्ञमें एक लकड़ीपर जो दूसरी लकड़ी मथानी बनाकर खड़ी की जाती है और जिसकी रगड़से (अरणि-मंथनसे) अग्नि उत्पन्न हो जाती है। इस दोनों लकड़ियोंके बीचमें कुश या रूई रख दी जाती है जिसे आग पकड़ लेती है। यही अग्नि यज्ञमें काम आती है।

अरिमर्दन : १—केकय देशके राजा सत्यकेतुका द्वितीय पुत्र।

अरुण-शिखा : मुर्गा, जिसके सिरपर लाल रंगकी खड़ी चोटी (कलँगी) होती है। यह सूर्योदयसे पहिले ही कुकड़ूँ-कूँ स्वरमें बाँग देने लगता है।

अरुन्धती : १—कर्दम ऋषिकी कन्या, वशिष्ठ मुनिकी पत्नी।

२—सप्तर्षि तारामंडलमें वशिष्ठ तारेके पास छोटा-सा तारा जो ऐसे लोगोंको नहीं दिखाई देता जिनकी मृत्यु समीप होती है।

दीपनिर्वाणगंधञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः॥

(दीपक बुझानेपर जिसे उसकी गन्ध न लगे, जिसे अपने मित्रोंकी बात न अच्छी लगे और जिसे अरुन्धती तारा न दिखाई पड़े तो समझ लेना चाहिए कि इसके दिन पूरे हो चले हैं)।

३—जिह्वाको भी अरुन्धती कहते हैं। जिसकी मृत्यु शीघ्र होनेवाली होती है उसे अपनी जिह्वाकी नोक दिखाई नहीं देती।

अर्घ-पाँवड़े : अतिथिके आगे आगे अर्घ्य देते (जलकी धारा गिराते) चलना।

अर्थार्थी : अर्थ = धन, सम्पत्ति + अर्थी = चाहने वाला, अर्जन करनेवाला। जिसका मन किसी प्रकारकी कामनाकी सिद्धिमें लगा हुआ हो।

अलंकार : 'अलंक्रियते अनेनेति अलंकारः', जिस साधनके द्वारा कवि अपनी रचनाको अलकृत करे उसे 'अलंकार' कहते हैं। काव्यमें ये अलंकार तीन प्रकारके होते हैं—१—शब्दगत, जिसे शब्दालंकार कहते हैं, २—अर्थगत, जिसे अर्थालंकार कहते हैं, एवं ३—शब्द और अर्थ दोनोंमें एक साथ ही आनेवाले अलंकारको उभयालंकार कहते हैं।

अवतार : उतरना, प्रकट होना, उदय होना। पृथ्वीपर जब-जब धर्मकी हानि होती है, तब-तब परमात्मा अपने विशेष अंशसे किसी रूपमें पृथ्वीपर छाए हुए पापोंका नाश करने, गिरी हुई धर्म-व्यवस्थाका अभ्युत्थान करने तथा साधु-संतों और सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये अवतार लेता है। विष्णुके दस अवतार हैं—मत्स्य, कूर्म, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम (या कृष्ण), बुद्ध और कल्कि। इस श्वेत-वाराह कल्पमें इनमेंसे नौ अवतार तो हो चुके हैं, अब अंतिम कल्कि अवतार होनेको है। कुछ ग्रंथोंमें २४ अवतार माने गए हैं—ब्रह्मा, नारद, नर, नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कच्छप, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हंस, हयग्रीव।

अवाँ : कुम्हारकी जलती हुई वह भट्टी जिसमें वह मिट्टीके पात्र पकाता है। यह उपलों (कण्डों) से चिनकर ऊपरसे मिट्टीसे भली प्रकार लिपे रहनेके कारण अत्यधिक तप जाती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अवरेव : टेढ़ी उक्ति या वक्रोक्ति अलंकार।

अश्वमेध : स्वर्गका राज्य चाहनेवाले लोग अश्वमेध यज्ञ करते हैं। इस यज्ञके लिये एक श्यामकर्ण (जिसका एक कान काला हो) घोड़ा छोड़ा जाता है जो सभी राज्योंसे विजयी होकर लौट आनेपर यज्ञमें बलि दिया जाता है। इस यज्ञका बड़ा माहात्म्य है। १०० अश्वमेध यज्ञ कर लेनेवाला इन्द्र हो जाता है।

अश्वत्थामा : द्रोणाचार्य और कृपीका पुत्र। महाभारतके युद्धमें कृष्णने भीमके द्वारा अश्वत्थामा नामक हाथी मरवाकर द्रोणाचार्यको युद्धिष्ठिरसे कहला दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। तब उन्होंने समझा कि मेरा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया। उन्होंने युधिष्ठिरसे पूछा कि कौन अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिरने कहा—'अश्वत्थामा हतः, नरो वा कुंजरो वा।' द्रोणाचार्यने 'कुंजरो वा' शब्द नहीं सुना। वे अपने पुत्रका मरण समझकर मूर्च्छित हो गए और धृष्टद्युम्नने उनका सिर काट लिया। इसपर अश्वत्थामाने द्रौपदीसे पांडवोंके पाँचों पुत्र सोते हुए मार डाले और अभिमन्युके गर्भस्थ पुत्र परीक्षितपर ब्रह्मास्त्र चलाकर उसे नष्ट करना चाहा था पर कृष्णने अपने चक्रसे उसकी रक्षा कर ली। भीमने उसके मस्तकसे मणि निकाल कर उसे छोड़ दिया। कृष्णने उसे तीन सहस्र वर्षोंतक रक्त और पीपसे भरा दुर्गन्धित शरीर लेकर घूमते रहनेका शाप दिया। वह चिरञ्जीवी माना जाता है।

अश्विनीकुमार : जो विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा (या अश्विनी) और सूर्यके जुड़वाँ पुत्र और देवताओंके वैद्य हैं। इनका यौवन और सौन्दर्य शाश्वत है। ये सूर्यकी पुत्री सूर्याके पति हैं। इन्होंने विशालाको लोहेका पैर लगा दिया था।

अष्टसिद्धि : अणिमा (सूक्ष्म हो जाना), महिमा (बहुत विशाल हो जाना), गरिमा (बहुत भारी हो जाना), लघिमा (बहुत हलका हो जाना), प्राप्ति (जो चाहें प्राप्त कर सकना), प्राकाम्य (सदा भरपूर रहना), ईशित्व (सबका स्वामी और शासक बन जाना) और वशित्व (दूसरोंको वशमें करना)। ये ही आठ सिद्धियाँ हैं।

असम-शर : (अ-सम = विषम संख्या, १,३,५,७ आदि + शर) पाँच बाणवाला कामदेव। कामदेवके पाँच पुष्पोंके बाण—

अरविन्दमशोकञ्च चूतञ्च नवमल्लिका।
नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य शायकाः।

(लाल कमल, अशोक, आमकी मंजरी, नवमल्लिका, नीला कमल)। इनके गुण हैं—द्रवण (चंचल करना), शोषण, (सुखाना), तापन (तपाना), मोहन (मोहित करना) और उन्मादन (पागल कर देना)।

असुर : राक्षस, दैत्य। कश्यपके वे पुत्र जो उनकी दिति नामकी पत्नीसे उत्पन्न हुए थे और देवताओंके विरोधी थे। देवताओंके सभी विरोधियों (राक्षसों)-को असुर कहा जाने लगा।

अस्ताचल : वह कल्पित पर्वत जिसपर सायंकाल पश्चिममें सूर्यका अस्त होना माना जाता है।

अस्त्र : वे हथियार जो फेंककर मारे जाते हों—बाण, बरछी, गोले, गोफा आदि।

अहल्या : यह वृद्धाश्वकी कन्या और गौतम ऋषिकी पत्नी थी। इन्द्रने छलसे गौतमका रूप धारण करके इसका पातिव्रत्य धर्म नष्ट किया, जिससे गौतमने अहल्याको शाप दिया कि तुम शिला हो जाओ। त्रेतायुगमें विश्वामित्रके साथ उनके यज्ञकी रक्षा करके धनुषयज्ञ देखने मिथिला जाते हुए रामके चरण-स्पर्शसे इसकी मुक्ति हो गई।

अक्षर (आखर) : जिनका नाश न हो। नागरी वर्णमालाका प्रत्येक वर्ण अक्षर है। चाहे कोई अकेला अक्षर हो अथवा वह शब्दमें आया हो, उसके उच्चारणमें कोई अन्तर नहीं होगा। संस्कृत वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरका अर्थ होता है, अतः वह शब्द भी है। ये अक्षर शंभुके मतानुसार ६३ या ६४ हैं। (त्रिषष्टिश्चतुषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः) [अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, चार यम (कवर्गके प्रथम चार वर्ण क, ख, घ, ग, घ से परे 'न' आ जाय उसके बीच बोला

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जानेवाला वर्ण जैसे पलिक्क्नी, चख्खनतुः, अग्गिन, निच्छन्तिमें क्, ख्, ग्, घ्), अनुस्वार (ं), विसर्ग (:), ◡क (जिह्वामूलीय) ◡प (उपध्मानीय), दुःस्पृष्ट, प्लुत लृकार (ऌ)]।

आकाश : शून्य स्थान। पाँच भूतों या तत्त्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश)-मेंसे एक। इसका गुण है शब्द।

आकाशवाणी : दैवी वाणी, दैवी संकेत।

आगम : (शास्त्र) १—जिन ग्रन्थोंमें मनुष्योंके उचित कर्तव्य तथा अनुचित कार्योंका निषेध बताया गया हो। ये स्मृतियाँ कहलाती हैं, जिनमें मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति, पाराशर स्मृति प्रधान है। कलियुगमें पाराशर - स्मृति प्रधान है—'कलौ पाराशरस्मृतिः।'

२—वे शास्त्र जिनमें ईश्वर, जीव, जगत्की मीमांसा तथा ईश्वर (ब्रह्म)-को प्राप्त करनेके मार्ग बनाए गए हैं। ये छह आस्तिक शास्त्र माने गए हैं—कपिलका सांख्य, गौतमका न्याय, पतञ्जलिका योग, कणादका वैशेषिक, जैमिनिका पूर्व मीमांसा, बादरायण व्यासका उत्तर मीमांसा (वेदान्त)।

आदिकवि (वाल्मीकि) : प्रचेता ऋषिके वंशमें रत्नाकर नामके दसवें पुरुष थे। इन्होंने रामके जन्मसे बहुत पहले ही रामायणकी रचना कर डाली थी। कहा जाता है कि ब्राह्मणके पुत्र होनेपर भी उन्होंने शूद्रासे विवाह करके कई सन्तानें उत्पन्न कीं और किरातोंकी भाँति लूटपाट करके ये अपने परिवारका पालन करते रहे। एक बार जब इन्होंने ऋषियोंको लूटनेके लिये घेरा तो उन्होंने पूछा कि तुम्हारे इस पापके भागी तुम्हारे परिवारवाले भी हैं या नहीं। जब परिवारवालोंने पापका भागी बनना अस्वीकार कर दिया तब इन्हें ज्ञान हुआ। इन्होंने उन्हीं ऋषियोंसे अपने पापोंसे मुक्तिका उपाय पूछा। ऋषियोंने इन्हें राम-नाम जपनेको कहा। पर ये उलटा नाम 'मरा मरा' ही जपते रहे। बहुत कालके बाद इनके शरीरपर मिट्टी जमते - जमते बाँबी (वल्मीक) उठ आई। जब ये उससे बाहर निकले तभीसे इनका नाम 'वाल्मीकि' या 'वाल्मीक' पड़ गया। सीताके वनवासके समय रामके दोनों पुत्रों (लव-कुश) को इन्होंने ही शिक्षा दी थी। प्रथम कवि होनेके कारण ही वाल्मीकिको आदि-कवि और इनके रामायणको आदि-काव्य कहते हैं।

आदि-काव्य : एक दिन तमसा नदीके तटपर संध्या करने जाते समय वाल्मीकिने देखा कि एक व्याधने क्रौञ्च (सारस)-के जोड़ेके एक पक्षीको मार डाला और दूसरे पक्षीने चिल्ला-चिल्लाकर अपने प्राण दे दिए। इससे वाल्मीकि बड़े मर्माहत हुए और उन्होंने व्याधको शाप दे दिया—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमबधीः काममोहितम् ॥

(अरे व्याध ! तू अनन्त वर्षोंतक शान्ति न प्राप्त करे क्योंकि तूने क्रौञ्चके काम-मोहित जोड़ेमें-से एकको मार डाला)। अपने मुँहसे यह नया छन्द निकला देखकर इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। तब ब्रह्माके कहनेसे इन्होंने प्रथम काव्य रामायण काव्यकी रचनाका संकल्प किया। नारदने उन्हें रामका परिचय दिया। यह काव्य सबसे पहला काव्य है इसलिये इसे आदि-काव्य कहते हैं।

आदिशक्ति : भगवती दुर्गा या माया। ईश्वरकी वह शाश्वत शक्ति जो प्रकृति या माया नामसे सदासे रहती आई है और जो इस नाम-रूपात्मक जगत्की सृष्टि करती है।

आभीर : अहीर, ब्राह्मणके औरस और अम्बष्ठ (ब्राह्मण पिता और वैश्य माताकी कन्या)-के गर्भसे उत्पन्न हुए थे। विष्णुपुराणमें इन्हें म्लेच्छ बताया गया है। कृष्णके वैकुंठ-गमनके पश्चात् जब इन्द्र उनकी पत्नियोंको लिए चले जा रहे थे उस समय सिन्धु-नदीके तटवर्ती आभीरोंने कृष्णकी रमणियाँ उनसे छीन ली थीं। शकोंसे पहले आभीरोंने सिन्धु-प्रदेशमें दस पीढ़ियोंतक राज्य किया था।

आर्त्त : जो सब प्रकारसे निस्सहाय और निराश्रय हो, जिसे ईश्वरके अतिरिक्त और कोई दूसरा सहारा या आश्रय न रह गया हो। सीताहरणके समय सीताकी तथा चीरहरणके समय द्रौपदीकी आर्त अवस्था थी।

आशुतोष : (देखो शंकर, महादेव) शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाले देवता।

आश्रम : नदीके तीरपर बस्तीसे दूर वनमें ऋषियोंका वह निवास-स्थान, जहाँ सब जीव वैर भुलाकर रहते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आहुति : यज्ञकुंडमें हवनके लिये पदार्थ डालना जिन्हें हव्य या हविष्य भी कहते हैं।

आभरण (बारह) : नूपुर, किंकिणी, हार, वलय (चूड़ी), मुद्रिका, कंकण, (बजनेवाला कड़ा), अंगद, कंठश्री, बेसर, बिरिया (कानका आभूषण), टीका, सिरफूल।

इन्द्र : स्वर्गके अधिपति देवताओंके राजा। पुराणके अनुसार ये कश्यप और अदिति पुत्र हैं किन्तु ऋग्वेदके अनुसार ये निष्टिग्री और एकाष्टकाके पुत्र हैं। इनकी माताने इन्हें सहस्रों मासों और अनेक वर्षोंतक गर्भमें रोक रक्खा था। इन्होंने स्वयं वीर्यपूर्ण होकर जन्म लिया। जन्मके समय इनकी माता प्रमत्त हो गई थी। इन्होंने अपने पिताको दोनों पैर पकड़कर मार डाला था। त्वष्टाने इन्द्रके लिये दधीचिकी हड्डीसे वज्र तैयार किया था जिससे इन्होंने वृत्रासुरको मारा था। इन्द्रने समुद्रकी फेनसे नमुचि दैत्यको मारा। पुलोमी या शची इनकी पत्नी और जयन्त इनका पुत्र है। इन्द्रने छलसे अहिल्याका शील-हरण किया था इसलिए गौतमने इसे सहस्र भग (देह भरमें योनि) होनेका शाप दे दिया किन्तु प्रार्थना करनेपर वे भग सभी नेत्र बन गए।

इंदिरा : विष्णुप्रिया लक्ष्मी। समुद्र-मन्थनसे निकले हुए १४ रत्नोंमें से एक।

इंदिरा-रमण : लक्ष्मीके पति विष्णु (राम)।

इष्टदेव : जिस देवता या महापुरुषमें सच्ची भक्ति और निष्ठा हो।

ईति : (अकाल) छह प्रकारकी ईतियाँ होती हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डियाँ, चूहे, पक्षी, राजाका आक्रमण।

अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभाः मूषिकाः खगाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडैता ईतयः स्मृताः॥

ईर्ष्या : डाह। कुढ़न। इसके तीन रूप होते हैं—१. ईर्ष्या, किसी की उन्नति देखकर मनमें दुखी होना, २. मत्सर, किसीकी उन्नति देखकर उसे नीचा दिखाने (अवनत करने)-का प्रयत्न करना, ३. स्पर्धा, किसीकी उन्नति देखकर उससे भी अधिक बढ़कर उन्नति करनेका प्रयत्न करना। इसमें दुर्भाव नहीं होता।

ईशान : स्वामी। (देखो महादेव, शंभु, शंकर)। ये ईशान (पूर्वोत्तर) दिशाके दिक्पाल या स्वामी माने गए हैं।

ईश्वर : परमात्मा, जो सर्वव्यापी, निराकार, निर्गुण, निरीह, सर्वान्तर्यामी, सर्वद्रष्टा, निर्लेप, निरंजन, त्रिगुणातीत माना गया है।

उग्रसेन : राजा आहुकके बाद यही मथुराका राजा हुआ। इसके नौ पुत्र और पाँच कन्याएँ थीं। इसकी पत्नीका नाम पद्मावती था। इसका ज्येष्ठ पुत्र कंस बड़ा दुष्ट था। वह अपने पिता (उग्रसेन)-को बंदीगृहमें डालकर स्वयं मथुराका राजा बन बैठा। कृष्णने कंसको मारकर पुनः उग्रसेनको मथुराकी राजगद्दीपर बैठाया।

उज्जयिनी (उज्जैन, विशाला, पुष्पकंटकिनी) : शिप्रा नदीके दक्षिणी तटपर बसी हुई मध्यभारतमें मालवाकी पुरानी राजधानी है जहाँ अनंतकालेश्वर या महाकाल नामक ज्योतिर्लिंग है, जिसके कारण इसे पीठस्थान भी कहते हैं। यहाँ प्रति बारहवें वर्षपर कुंभ (सिंहस्थ)-का विराट् मेला लगता है।

उत्तानपाद : ध्रुवके पिता, स्वायंभुव मनु और शतरूपाके कनिष्ठ पुत्र थे। इनके सुनीति और सुरुचि नायकी दो पत्नियाँ थीं। सुनीतिसे इनके चार पुत्र हुए—ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान् और वसु। सुरुचिसे उत्तम नामक एक पुत्र हुआ। ये सुरुचिको अधिक मानते थे। एक बार सुरुचिने ध्रुवको राजाकी गोदमें जानेपर झिड़क दिया। इसीसे संतप्त होकर ध्रुवने तपस्या करके ध्रुवलोक प्राप्त कर लिया।

उदयगिरि : वह कल्पित पर्वत जिस-परसे पूर्वमें सूर्यका उदय होना माना जाता है।

उद्धव : देवभाग और कंसाके पुत्र उद्धव बड़े दार्शनिक थे। इन्हें जब अपने अध्यात्म ज्ञानका बड़ा अभिमान हो गया तब कृष्णने इन्हें गोपियोंका मन प्रेमसे हटाकर ज्ञानकी ओर प्रवृत्त करने ब्रज भेजा। वहाँ जाकर इनके दर्शन-ज्ञानका सारा घमंड चूर हो गया।

उमा (पार्वती) : हिमाचलकी पुत्री। शंकरको पति-रूपमें पानेके लिये इन्होंने बड़ी कठोर तपस्या की थी। इनकी माता मेनाने इन्हें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तपस्यासे विरत करनेके लियेकहा था—उ (अरी!) मा (ऐसा मत करो)। तभीसे इनका नाम उमा पड़ गया।

उमा-रमण : उमाके पति महादेव।

उर्मिला : राजा जनक (सीरध्वज)-के भाई कुशध्वजकी कन्या और लक्ष्मणकी पत्नी।

उलूक : उल्लू पक्षी, दिनान्ध, जिसे दिनमें दिखाई नहीं देता। यह दिनभर पेड़के खोखलेमें दुबका पड़ा रहता है। लक्ष्मीका वाहन उलूक ही है। ये कुछ छोट आकारके होते हैं कुछ बड़े। यह रातको निकलकर पक्षियोंको मार खाता है।

ऊँट : (सं० उष्ट्र) लम्बी गर्दनवाला बड़ा सा पशु जिसकी पीठपर एक या दो कूबड़ होते हैं। इसके चारों पैरोंके तलवे ऐसे गद्देदार होते हैं कि यह सरलतासे रेतीली भूमिपर चल सकता है। यह कई दिनोंके लिये इकट्ठा जल पीकर अपने उदरमें रख लेता है। यह काफी बोझा अपनी पीठपर ले जा सकता है। कहीं-कहीं इसे रथ या गाड़ी (सिकरम)-में भी जोतते हैं। यह मरुभूमिका जहाज कहलाता है। ऊँटनीको साँड़नी कहते हैं। वह रेतमें अधिक वेगसे दौड़ती है।

ऋक्षेश : (रिछेसा)—प्रजापति तथा ऋक्षाके पुत्र जाम्बवान् (जामवंत)। इनकी पत्नीका नाम व्याघ्री और कन्याका नाम जाम्बवती था। ब्रह्माकी जम्हाईसे यह उत्पन्न हुआ था इस कारण इसका नाम जाम्हवान् रक्खा गया। यह रीछोंका राजा था। रामके राज्याभिषेकके समय यही सब समुद्रोंका जल लाया था। रामने अश्वमेधके लिये जो घोड़ा छोड़ा था, उस समय शत्रुघ्नके साथ यही गया था। यह रामका युद्ध-मंत्री भी था। द्वापरमें जब स्यमन्तक मणि खोजते हुए कृष्ण इसकी गुफामें पहुँचे तो इसने अपनी पुत्री जाम्बवती कृष्णको भेंट कर दी।

ऋचा : वेदका प्रत्येक मंत्र।

ऋतुराज : (रितुराजा), वसंत ऋतु। वर्षमें छह ऋतुएं (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर) होती हैं। पहली वसंत ऋतु चैत्र और वैशाखमें होती है। इस ऋतुमें सभी वृक्षोंके पुराने पत्ते झड़ जाते और नये निकल आते हैं। चारों ओर रंग-बिरंगे मधुगंधी फूल खिल उठते हैं। इसी कारण वसंतको 'ऋतुराज' कहते हैं।

ऋद्धि : सम्पत्ति, ऐश्वर्य। यह गणेशकी पत्नी मानी जाती है।

ऋष्यमूक : यह पर्वत तमिलनाडुमें पम्बे या पम्पा नदीका उद्गम स्थान है। इसे अनमलय या हस्तिगिरि कहते हैं। इसपर मतंग ऋषि तपस्या करते थे। बालिने दुंदुभि राक्षसको मारकर उसे इस पर्वतपर उठा फेंका। मतंग ऋषिने शाप दिया कि बालि जब इस पर्वतपर आवेगा तो मर जायगा। इसीलिये सुग्रीव इस पर्वतपर रहने लगा था।

एकतनु : राजा प्रतापभानुने इसका राज्य छीन लिया था। यह वनमें जा छिपा। जब राजा प्रतापभानु आखेट खेलने गए, इसने राजाको पहचान लिया और उनसे बदला लेनेके लिये अपना नाम एकतनु बताकर छलसे राजा प्रतापभानुका सर्वनाश करा डाला।

ऐरावत : इन्द्रका श्वेतवर्णका हाथी जो पूर्व दिशाका दिग्गज है। यह भी समुद्र-मन्थनसे निकले हुए चौदह रत्नोंमें-से था।

औषध : १. जड़ी-बूटियोंका समूह या जड़ी बूटियोंसे तैयार किया हुआ रोग दूर करनेका साधन। २. रक्षाका उपाय।

कच्छप : पुराणोंके अनुसार जब समुद्र-मंथनके समय मंदराचल नीचेको धँसने लगा तब नारायणने कच्छप बनाकर मंदराचल अपनी पीठपर खड़ा करके समुद्र मथवाया था।

कथा-शत-सपत्नि : (कथा सत-सवतिकर) राजा चित्रकेतुकी सौ रानियोंकी कथा। शूरसेन देशके राजा चित्रकेतुकी सौ वन्ध्या रानियाँ थीं। अंगिरस ऋषिके पुत्रेष्टि यज्ञ करनेपर यज्ञका हुत शेष डालनेपर इसकी पटरानी कृतश्रुतिके पुत्र हुआ। उसकी सौतें यह नहीं सह सकीं। उन्होंने उस बालकको विष दे दिया और वह मर गया।

कद्रू : (नागोंकी माता)—दक्ष प्रजापति तथा असिक्नीकी कन्या कद्रूका बिवाह कश्यपसे हुआ। यह बहुत सुन्दर तथा गुणवती रानी थी। इसने कश्यपसे वर माँगा था कि मेरे समान बलवाले सौ सर्प (पुत्र रूपमें) मुझे हों। इसने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अपनी सौत विनतासे कहा कि उच्चैःश्रवा घोड़ेका रंग काला है। यह प्रमाणित करनेके लिये उसने अपने पुत्रों (सर्पों)-से कहा कि तुम सब उच्चैःश्रवाके शरीरमें लिपट जाओ। सर्पों ने ऐसा ही किया और कद्रूकी जीत हुई। विनताका कष्ट देखकर उसके पुत्र गरुडने उन साँपोंको मार डाला और विनता जीत गई।

कनककशिपु : (हिरण्यकशिपु) दैत्य कुल-का आदि पुरुष था जो अपनेको ईश्वर मानता था। इसका पुत्र प्रह्लाद तो रामका भक्त था। उसे हिरण्यकशिपुने बहुत समझाया, अनेक यातनाएँ दी। अंतमें भगवान्ने नृसिंह रूपमें प्रकट होकर सायंकाल, उसे भवनकी देहलीपर बैठकर अपनी जाँघपर लिटाकर नखोंसे फाड़ डाला क्योंकि उसने वर पा लिया था कि दिनमें, रातमें, भीतर, बाहर, पृथ्वीपर, आकाशमें, किसी अस्त्र-शस्त्रसे, कोई देवता, मनुष्य, पशु मुझे न मार सके।

कपास : वह पेड़, जिसमें रुईका डोडा फलता है। कपासके बीजको बिनौला कहते हैं। इसकी फली (डोडी) सूखकर फट जाती है तब उसे ओटकर रुई निकाल लेते हैं। घुनकीसे घुनकर चरखेके द्वारा सूत कातते हैं। यह कपास कई प्रकारका होता है।

कपिल : सांख्य-दर्शनके प्रणेता, कर्दम और देवहूतिके पुत्र थे। अश्वमेधका घोड़ा जब इन्द्रने चुराकर पाताल लोकमें कपिल मुनिके आश्रममें ले जा बाँधा, तब सगरके साठ हजार पुत्र खोजते-खोजते कपिलके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ घोड़ा बँधा देखकर वे कपिल मुनिको गालियाँ देने लगे। कपिलने समाधि तोड़कर उनकी ओर ऐसी क्रोधभरी दृष्टिसे देखा कि वे सब पुत्र भस्म हो गए। उन्हींके उद्धारके लिये राजा भगीरथ तपस्या करके गंगा ले आए थे।

कश्यप : ब्रह्माके मानस पुत्र, मरीचि और कलाके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। इन्होंने १७ कन्याओंसे विवाह करके देव, दैत्य, दानव, अश्व, गन्धर्व, राक्षस, वृक्ष, अप्सरा, सर्प, गृध्र, चौपाए, जलजन्तु, गरुड, अरुण, नर, पतंग, और शलभ (टिड्डियों)-को जन्म दिया। मार्कण्डेय पुराणमें इनकी १३ पत्नियाँ कही गई है— अदिति, दिति, दनु, विनता, खशा, कद्रू, मुनि, क्रोधा, अरिष्टा, इरा, ताम्रा, इला और प्राधा।

कबंध : यह चित्ररथ नामक गन्धर्व शापसे दनु नामक दानव हो गया। उसकी तपस्या-पर प्रसन्न होकर ब्रह्माने उसे दीर्घायु होनेका वर दे दिया। वह इन्द्रसे युद्ध करने पहुँच गया। इन्द्रने वज्र मारकर उसका सिर उसके धड़में धँसा दिया। बहुत प्रार्थना करनेपर इन्द्रने इसके हाथ एक-एक योजन लंबे कर दिए और धड़के ऊपर मुँह बना दिया। रामके वनगमनके समय जब इसने अपने हाथमें राम, लक्ष्मण और सीता-को समेट लिया तब रामने इसके हाथ काटकर इसे मार डाला।

कमलासन : विष्णुकी नाभिसे निकले हुए कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा।

कर्दम : (देवहूतिके पति) इनका जन्म स्वायंभुव मन्वन्तरमें हुआ था। ये पूर्व जन्ममें क्षत्रिय थे और ब्रह्माकी छायासे उत्पन्न हुए थे। सरस्वती नदीके किनारे रहकर इन्होंने दस हजार वर्षों-तक विष्णुकी कृपाके लिये तपस्या की। विष्णुने आकर कहा कि ब्रह्मदेवका पुत्र मनु सार्वभौम राजा है। वह ब्रह्मावर्तमें रहकर पृथ्वी-का पालन करता है। वह अपनी पटरानी शतरूपा-के साथ यहाँ आवेगा। उसकी कन्या देवहूतिके गर्भसे मैं उत्पन्न हूँगा और कपिल नामसे सांख्य दर्शनका निर्माण करूँगा।

कर्मनाशा : बिहारके शाहाबाद जिलेकी नदी जिसके जलका स्पर्श करनेसे समस्त कर्मों (पुण्यों)-का नाश होना माना जाता है।

कर्ण : सूर्यके अंशसे उत्पन्न कुन्तीका पुत्र था। इसके जन्मते ही कुन्तीने इसे नदीमें छोड़ दिया। यह बहते-बहते चर्मण्वती नदीसे होता हुआ गंगामें आया तो धृतराष्ट्रके सारथी अधिरथने निकालकर इसे अपनी पत्नी राधाको दे दिया। जन्मते ही इसके शरीरपर कवच और कुण्डल थे। राधाने इसका पालन-पोषण किया। बड़े होनेपर इसे दुर्योधनने अंग (बिहार) देशका राजा बना दिया और महाभारतके युद्धमें भीष्मके शर-शय्यापर जा पड़नेके पश्चात् सेनापति बना दिया। यह बहुत बड़ा दानी और धनुर्धर प्रसिद्ध है। युद्धभूमिमें इसका पहिया धरतीमें फँस गया, उसी समय अर्जुनने इसे मार डाला।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कर्णघंटा : वाराणसीके मध्यमें कर्णघंटा महादेवका मन्दिर है।

कर्पूर : एक सुगन्धित श्वेत पदार्थ। यह देवताओंकी आरती करने तथा औषधिके काममें आता है। कहा जाता है कि केलेमें स्वातिका जल पड़ता है तो कपूर हो जाता है।

कलश : मंदिरोंके ऊपर कमल पुष्पके आकारके ताँबेके कलश लगाए जाते हैं। इन कलशोंपर चाँदी या सोनेका पानी चढ़ा दिया जाता है।

कलहंस : मधुर बोलनेवाला श्वेत हंस।

कला : १. चन्द्रमाका एक अंश। चन्द्रमाकी १६ कलाएँ मानी गई हैं—अमृता, मानदा, पूषा, पुष्टि, तुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा तथा पूर्णामृता। (देखो चन्द्र-कला भी)

२. इसी प्रकार सूर्यकी भी १२ कलाएँ मानी गई हैं—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीची, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भौमदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी, क्षमा।

कला : (महाविद्या) कारीगरी, शिल्पकर्म। शिल्प-नैपुण्य। इसके ६४ भेद हैं—

गीत (गाना), वाद्य (बजाना), नृत्य (नाचना), नाट्य (अभिनय), आलेख्य (चित्रकारी), विशेषकच्छेद (तिलकके साँचे बनाना), तण्डुल-कुसुमावलि-विकार (चावल और फूलोंसे चौक पूरना), पुष्पास्तरण (फूलोंकी शय्या रचना या बिछाना), दशन-वसनाङ्गराग (दाँत, कपड़े, अंग और दाँतोंके लिये मञ्जन, मिस्सी आदि, वस्त्रोंके लिये रंग और रँगनेकी सामग्री तथा अंगोंमें लगानेके लिये चंदन, केसर, मेंहदी, महावर आदि बनाना और उनके बनानेकी विधिका ज्ञान), मणिभूमिका-कर्म (ऋतुके अनुकूल घर सजाना), शयन-रचना (बिछावन या पलँग सजाना), उदकवाद्य (जलतरंग बजाना), उदकघात (पानीके वेगसे काम लेना जैसे, पनचक्की, पिचकारी आदिसे काम लेनेकी विद्या), चित्रयोग (अवस्था परिवर्तन करना, जवानको बुड्ढा और बुड्ढेको जवान करना इत्यादि), माल्य-ग्रन्थविकल्प देव-पूजनके लिये या पहननेके लिये माला गूँथना), केश-शेखरापीड-योजना (सिरपर फूलोंकी अनेक प्रकारकी रचना करना या सिरके बालोंमें फूल लगाकर गूँथना)। नेपथ्य-योग (देशकालके अनुसार वस्त्र, आभूषण आदि पहिनना), कर्ण-पत्र-भंग (कानोंके लिये कर्णफूल आदि आभूषण बनाना), गन्ध-युक्ति (सुगन्धित पदार्थ जैसे गुलाब, केवड़ेका इत्र, फुलेल आदि बनाना), भूषण-योजना, इन्द्रजाल, कौचुमारयोग (कुरूपको सुन्दर करना या मुँहपर और शरीरमें मलने आदिके लिये ऐसे उबटन आदि बनाना जिनसे कुरूप भी सुन्दर हो जाय), हस्त-लाघव (हाथकी सफाई, फुर्ती या लाग), चित्र-शाका-पूप-भक्ष्य-विकार-क्रिया (अनेक व्यंजन तथा विविध प्रकारकी तरकारियाँ, पूए और पकवान बनाना)। सूपकर्म, पानक-रस-रागासव-योजना (पीनेके लिये अनेक प्रकारके शर्बत, अर्क और शराब आदि बनाना), सूची-कर्म (सीना-पिरोना), सूत्रक्रम (तरह-तरहके कपड़े बुनना, रफूगरी और कसीदा काढ़ना तथा तागेसे तरह-तरहके बेलबूटे बनाना), प्रहेलिका (पहेली-बुझौवल, पहेली कहना और बूझना), प्रतिमाला (अन्त्याक्षरी अर्थात् श्लोकका अन्तिम अक्षर लेकर उसी अक्षरसे आरम्भ होनेवाला दूसरा श्लोक कहना), दुर्वाचक योग (कठिन पदों या शब्दोंका तात्पर्य निकालना), पुस्तक-वाचन (उपयुक्त रीतिसे पुस्तक पढ़ना), नाटिकाख्यायिका-दर्शन (नाटक देखना या दिखाना, कहानी कहना), काव्यसमस्यापूर्ति, पट्टिका-वेत्र-वाणविकल्प (नेवाड़, बाध या बेंतसे चारपाई आदि बुनना), तर्कुकर्म (तकुआ-सम्बन्धी सारे काम), तक्षण (बढ़ई, संग-तराश आदिका काम करना), वास्तु-विद्या (घर बनाना, इंजिनियरी), रूपरत्नपरीक्षा (सोने, चाँदी आदि धातु और रत्न परखना), धातुवाद (कच्ची धातुओंको साफ करना या मिली धातुओंको अलग-अलग करना), मणिराग-ज्ञान (रत्नोंके रंग जानना), आकर-ज्ञान (खानोंकी विद्या), वृक्षायुर्वेदयोग (वृक्षोंका ज्ञान, चिकित्सा और उन्हें रोपने आदिकी विधि), मेष-कुक्कुट-लावक-युद्ध-विधि (मेढ़ा, मुर्गा, बटेर, बुलबुल आदि लड़ानेकी विधि), शुक-सारिका प्रलापन (तोता, मैना, पढ़ाना), उत्सादन (उबटन लगाना और हाथ, पैर, सिर आदि

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दबाना), केशमार्जन-कौशल (बाल मीसना और तेल लगाना), अक्षर-मुष्टिका-कथन (करपलई), म्लेच्छित-कलाविकल्प (म्लेच्छ या विदेशी भाषाएँ जानना), देशभाषा-ज्ञान (प्राकृत या देशी बोलियोंको जानना), पुष्प-शकटिका-निमित्त-ज्ञान (दैवी लक्षण जैसे बादलका रंग, पवन बादलकी गरज, बिजलीकी चमक इत्यादि देख-कर आगामी घटनाके लिये भविष्य-वाणी करना), यन्त्रमातृका (सब प्रकारके यन्त्रोंका निर्माण), धारणामातृका (स्मरण-शक्ति बढ़ाना), सम्पाठ्य (दूसरेको कुछ पढ़ते हुए सुनकर उसी प्रकार पढ़ देना), मानसी काव्य-क्रिया (दूसरेका अभिप्राय समझकर उसके अनुसार तुरन्त कविता करना या मनमें काव्य करके शीघ्र कहते जाना), क्रिया-विकल्प (किसी पदार्थकी क्रियाके प्रभावको पलटना), छलिक योग (छल या ऐयारी करना), अभिधानकोष, छन्दोज्ञान, वस्त्रगोपन (वस्त्रोंकी रक्षा करना), द्यूतविशेष (जुआ खेलना), आकर्षण-क्रीडा (खींचने, फेंकनेवाले सारे खेल), बाल-क्रीडा-कर्म (लड़का खेलाना), वैनायिकी विद्या-ज्ञान (विनय, सभाजन और शिष्टाचार), वैजयिकी विद्याज्ञान (शत्रुपर विजय पानेका कौशल), व्यायामिकी विद्या-ज्ञान (खेल, कसरत, योगासन, प्राणायाम आदि व्यायाम)।

कल्प : ब्रह्माका एक दिन। १००० युगोंका एक कल्प होता है अर्थात् ४३ करोड़ २० लाख वर्षका एक पर्याय (महायुग) होता है, ७१ महायुगोंका एक मन्वंतर होता है, एवं १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है। पौराणिक गणनाके अनुसार आजकल श्वेत-वाराह-कल्प चल रहा है। इस कल्पमें छह मन्वन्तर (स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत एवं चाक्षुष) बीत चुके हैं। इस समय वैवस्वत नामक सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। इसके आगे सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, रौच्य एवं भौत्य नामक सात मन्वन्तर और आने-वाले हैं।

कवच : वर्म, पक्खर, ज़िरह-बख़्तर। लोहेका बना वह अंग-रक्षक जो छातीपर बाँधा जाता है। भुजाओंपर जो बाहुरक्षक पहना जाता है उसे 'हस्तावाप' कहते हैं।

कवित्त : कविताके-गुणसे सम्पन्न रचनाका नाम कवित्त, कविता या काव्य है।

कल्पवृक्ष : इन्द्रके नन्दनकाननका वह वृक्ष, जो मनोवांछित फल देनेवाला माना जाता है। इसे कल्पलता भी कहते हैं।

कवीश्वर : (देखो आदि कवि)।

काक-भुशुण्डि : (काग-भुसुंडी) अनेक बार अनेक योनियोंमें जन्म लेकर कलियुगमें अयोध्यामें शूद्रके घर जन्म लेकर शिवकी सेवा करता था पर अन्य देवताओंकी निन्दा करता था। एक बार अकालसे त्रस्त होकर अयोध्यासे चलकर उज्जैन पहुँच गया। वहाँ अपने गुरुका अपमान कर दिया जिससे शिवने अजगर होनेका शाप दे दिया पर गुरुकी प्रार्थनापर यह कहा कि एक सहस्र जन्मतक तो शाप भोगना पड़ेगा पर तुझे अपने सब जन्मोंकी कथाका स्मरण रहेगा। यह भोगनेपर उसका ब्राह्मण कुलमें जन्म हुआ पर ये सगुणकी प्रशंसा और निर्गुणका ब्रह्मकी निन्दा करने लगे। जब लोमश ऋषिसे भी इन्होंने वाद-विवाद किया तो उनके शापसे कौवे हो गए। किन्तु उन्होंने कृपा करके उन्हें रामके बालरूपका ध्यान करनेका उपदेश दिया। तबसे जब-जब रामका जन्म होता तब-तब वहाँ जाकर रामका चरित्र देखा करते हैं। उन्हें उसी कौवेके शरीरसे रामके दर्शन हुए थे इस-लिये वही शरीर उन्हें प्रिय है। वे कल्प-कल्पांत तक ऐसे ही रहे हैं और रहेंगे। (रामचरित-मानस उत्तरकाण्ड दोहा सं० ९६ क से दोहा सं० ११४ तकका काकभुशुण्डि-गरुड संवाद देखो)।

काम : कामना, कामदेव। सब प्रकारकी इच्छाएँ। 'काम' भी मनोविकार है जिसमें किसीको प्राप्त करनेकी वासना होती है।

कामदेव : ब्रह्माके हृदयसे उत्पन्न पुत्र और रतिका पति। देवताओंके कहनेसे इसने समाधिस्थ शंकरके मनमें काम उत्पन्न करनेके बड़े उपाय रचे। जब शंकरकी समाधि नहीं टूटी तब आमके वृक्षकी ओटसे इसने शंकरपर बाण चलाया। शंकरकी समाधि टूटी और उन्होंने अपने तृतीय नेत्रकी ज्वालासे इसे भस्म कर दिया। रतिके बहुत विलाप करनेपर शंकरने उसे वर दिया कि अबसे कामदेव शरीर-रहित होकर जगत्में व्याप्त रहेगा। तभीसे कामका नाम अनंग (अतनु) पड़ा। यही कामदेव आगे चलकर रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न नामसे श्रीकृष्णका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कामदुहा : (कामधेनु) यह स्वर्गकी गौ है जिससे जो कुछ माँगो, प्राप्त होता है। दक्ष कन्याकी गौसे रोहिणीका और शूरसेनके पुत्र सूकेसे कामधेनुका जन्म हुआ। चारों वेद इसके चारों पैर हैं और इसके स्तनोंसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप दुग्ध निकलता है। युवावस्थामें वैतालने वृषभ रूप धारण करके इससे एक विशाल वृषभ उत्पन्न किया जो शिवका वाहन बना।

कालकूट : (हलाहल विष) : समुद्र-मंथनसे निकले हुए १४ रत्नोंमें कालकूट (हलाहल विष) भी था। इसके निकलते ही सुर और असुर बड़े व्याकुल हो उठे। तब शंकरने इसे पीकर अपने कण्ठमें रख लिया। तभीसे शंकरका नाम नीलकंठ पड़ा।

कालनेमि : रावणका मामा था। लक्ष्मण-को शक्ति लगनेपर जब द्रोणाचलपर औषधि लेने हनुमान् गए थे तब यह बीचमें कपटी साधु बनकर बाधा देने जा पहुँचा। यह चाहता था कि हनुमान्को मगरी निगल जाय। पर हनुमान्ने मगरीको मारकर मुक्त कर दिया और इसे भी मार डाला।

कालिय नाग : गरुडसे युद्धमें हारकर यह यमुनामें छिपकर रहता था। इसीसे कालिय कहते हैं। इस नागको श्रीकृष्णने नाथकर जंगल-में भेज दिया था।

कालिका : महाकाली (दुर्गा)ने अनेक रूपोंमें चंड, मुंड, महिषासुर, शुम्भ, निशुम्भ आदि महादैत्योंका संहार करके देवता और मुनियोंका परम कल्याण किया।

काशी : अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका, द्वारका नामक सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक। यह विश्वनाथकी पुरी भी कही जाती है। यह पुरी धनुषाकार उत्तरवाहिनी गंगाके तटपर बसी हुई है। यह नगरी सदासे विद्याका प्रधान केन्द्र रही है। यहाँ विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग स्थापित हैं।

किंकिणी : कमरमें पहनी जानेवाली सोने-चाँदीकी बनी हुई बजनेवाली तगड़ी (करधनी)। इन्हीं करधनियोंमें क्षुद्रघंटिका (घुंघुरू) भी बाँध देते हैं।

किरात : तमकुंडसे लेकर रामक्षेत्र-तक किरातोंका देश है। ये नैपालसे असम तथा ब्रह्मदेश (बर्मा) तक फैले हुए हैं। ये लोग कन्या मोल लेकर विवाह कर लेते हैं। लूटपाट करना ही इनकी जीविका है। ये जंगली आदि-वासी कहे जाते हैं। यह लड़ाकू जाति बाण चलानेमें बड़ी निपुण है। रामके वनवासके समय इन्होंने चित्रकूटमें रामके लिये पर्णकुटी बना दी थी और ये रामके भक्त बन गए थे।

किन्नर : देवयोनिमें एक प्रकारके देव जिनका मुख अश्वके समान और शरीर मनुष्यके समान होता है। इन्हें किंपुरुष, अश्वमुख और गीतमोदी भी कहते हैं। ये अत्यन्त गीत-प्रेमी होनेके कारण निरन्तर गाते रहते हैं।

किरीट : शिरोवेष्टन, मुकुटका वह भाग जो सिरके चारों ओर टोपीके समान पहना जाता है। उसके आगे जो कलँगीके समान सिरके बीचमें लगाया जाता है उसे मुकुट कहते हैं।

कुंकुम : लाल रोली।

कुठार : फरसा (गँड़ासा), परशु नामक शस्त्र।

कुन्द : सफ़ेद पुष्प जो जाड़ोंमें होता है। इसकी ४–५ फीट ऊँची झाड़ी होती है जो नीचे-से ऊपर तक छोटे-छोटे उजले फूलोंसे लद जाती है।

कुबेर : विश्रवा और इडविडा (मन्दाकिनी) के पुत्र तथा रावणके भाई थे। ये अपनी तपस्यासे लोकपाल हुए। ब्रह्माने इन्हें पुष्पक विमान और पिताने लंकाका राज्य दिया, पर रावणके भयसे वे लंकाका राज्य छोड़कर कैलासके पास साकेतमें यक्ष और किन्नरोंपर शासन करने लगे। इनका रंग श्वेत, इनके आठ दाँत और तीन पैर हैं। इनके पुत्रका नाम नलकूबर था। इनके पारिषद् थे—विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, पर्वत, चित्रासन, चित्ररथ और चक्रधर्मा।

कुमुख : रावणकी सेनाका प्रमुख राक्षस।

कुमुद : कोईंका फूल। यह रातमें जलमें खिलता है। कमलके समान किन्तु कमलसे कुछ छोटा होता है।

कुंभकर्ण : (कुंभकरन)—वैवस्वत मन्वन्तर-में कैकसीसे उत्पन्न विश्रवा ऋषिके चार पुत्रोंमें दूसरा यह था। रावणके साथ इसने भी तपस्या की थी। रावणकी प्रार्थनापर ब्रह्माने इसे छह

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मास सोनेपर एक दिन जागनेका वर दिया था। जब रावणने कुबेरसे लंका छीन ली तब यह भी रावणके साथ लंकामें रहने लगा। इसने रावणको सीताहरणका दोष लगाया फिर भी इसने जाकर रामसे युद्ध किया और रामके हाथसे मरकर परम धाम प्राप्त किया।

कुशकेतु : (कुशध्वज) राजा जनक (सीरध्वज)-के भाई थे। रामके विवाहके समय इनकी तीन कन्याओं—माण्डवी, उर्मिला, और श्रुतिकीर्तिका विवाह क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे कर दिया गया था।

कुश (कुशा) : एक प्रकारकी लंबी घास जिसकी जड़में काँटे होते हैं और जिसे उखाड़ना कठिन होता है। भाद्रपदकी अमावास्या (कुशोत्पाटिनी अमावास्या)-को पंडित लोग कुशा उपाड़कर लाते हैं। कुशाके आसनपर पूजा-पाठ करना शुभ और पवित्र होता है।

कुम्भज : देखो अगस्त्य।

कूट : (१) सब प्रकारके गोपनीय कार्य करना या शब्द कहना, छलना, घुमा-फिराकर बातें करना। (२) जालसाजी, धोखेधड़ी और चालाकीके कार्य।

कूबरी : (त्रिवक्रा नामकी कुबड़ी)। इसका शरीर तीन स्थानोंसे टेढ़ा था। इसीलिये इसका नाम त्रिवक्रा पड़ा। इसकी पीठपर कूबड़ होनेके कारण इसे कुब्जा या कुबड़ी भी कहते थे। यह मथुराके राजा कंसकी सेविका थी। जिस समय कृष्ण और बलराम कंसके यहाँ जा रहे थे, तभी कंसके लिये चन्दन ले जाती हुई कुब्जा इन्हें मार्गमें मिली। इन्होंने उससे थोड़ा-सा चन्दन माँगा। कुब्जाने दोनोंके लिये काफी चन्दन दे दिया। तब कृष्णने इसका पैर दबाकर ठोड़ीमें हाथ लगाकर ऊपर खींच दिया जिससे इसका कूबड़ दूर हो गया तथा यह बड़ी सुन्दरी स्त्री हो गई।

कूबरी-रमण : कुबड़ीसे कृष्ण प्रेम करने लगे थे इसलिये गोकुलकी गोपियाँ कृष्णको कूबरी-रमण कहने लगी थीं।

कृतान्त : काल, यम।

कृष्ण : मथुरा-निवासी वसुदेव और देवकीके पुत्र और कंसके भानजे। श्रीमद्भागवतके अनुसार देवकीको वसुदेवके साथ बिदा करते समय आकाशवाणी हुई थी कि इस देवकीका आठवाँ पुत्र तेरा काल होगा। इसपर कंसने वसुदेव और देवकीको अपने भवनमें बंद कर रक्खा। कंसने देवकीके छह पुत्रोंको मार डाला। सातवाँ गर्भ रोहिणीके उदरमें पहुँच गया। आठवें गर्भमें कृष्ण आए तब कंसने कड़ा पहरा बैठा दिया। कृष्ण तो भगवान्‌के अवतार थे। अतः जन्मते ही माताको विष्णु-रूपमें दर्शन देकर कहा कि इसी समय गोकुलके सरदार नन्दके यहाँ कन्या उत्पन्न हुई है, मुझे वहाँ पहुँचा दो और मेरे स्थानपर उसी कन्याको ला दो। वसुदेवने ऐसा ही किया। कृष्ण गोकुलमें पहुँचा दिए गए और नन्द यशोदाकी सद्यः जन्मी कन्या मथुरामें देवकीके पास ला पहुँचाई गई। कन्याके जन्मका समाचार पाते ही ज्योंही कंसने उसे पटका त्योंही वह हाथसे छूटकर आकाशसे बोली—'तेरा काल तो गोकुलमें उत्पन्न हो गया है।' वही कन्या विन्ध्यवासिनी नामसे विन्ध्य पर्वतपर विराजमान हुई। कृष्णका बालपन गोकुलमें बीता जहाँ उन्होंने पूतना, अघासुर, बकासुर आदिको मारा, कालिय नागको यमुनासे बाहर किया, इन्द्रके कोप करनेपर गोवर्धन पर्वतके नीचे ले जाकर ब्रजवासियोंकी रक्षा की, मथुरा पहुँचकर कुबलयापीड हाथी तथा चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लोंको और कंसको मारा, देवकी-वसुदेवको मुक्त किया, सांदीपनिके यहाँ उज्जैन जाकर शिक्षा प्राप्त की, जरासंधके भयसे द्वारका बसाई, पाँडवोंकी रक्षा की, अर्जुनका रथ हाँका, गीताका उपदेश दिया और विजय दिलाई और अन्तमें जरा नामके व्याधके बाणसे आहत होकर अपने धाम चले गए।

केतु : (१) सौर- मण्डलका नवाँ छाया-ग्रह। पुराणोंके अनुसार यह सैंहिकेय राक्षसका कवच है। इसके केवल धड़ ही है। राहु इसका सिर है। यह क्रूर ग्रह माना जाता है। (२) धूम्रकेतु जिसे पुच्छल तारा भी कहते हैं। यह माना नाता है कि इस तारेकी पूँछ जिस ओर होती है उस ओरके राष्ट्रमें किसी बड़े पुरुषका निधन होता है। यह बहुत अशुभ माना जाता है।

केसरी : गोकर्ण नामक पर्वतपर रहनेवाला यह वानर ही अंजनीका पति था। इसकी दो पत्नियाँ थीं। अंजनी तथा मार्जारास्या। शेषसदन नामक असुरने जब ऋषियोंको बहुत कष्ट दिया तब केसरीने उसे मार डाला। इसपर

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऋषियोंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हें बड़ा प्रतापी, बलवान् और भगवद्भक्त पुत्र होगा। उसी आशीर्वादसे रामके परम भक्त हनुमान्‌का जन्म हुआ।

कैकेयी : केकय देशके राजा अश्वपतिकी कन्या कैकेयी। यह राजा दशरथकी सबसे छोटी पत्नी थी। एक बार देव-दानवोंके युद्धमें संयोगवश दशरथके पहियेकी कील टूट गई, तब कैकेयीने कीलके स्थानपर उँगली डालकर राजाको बचा लिया। राजाने इसपर प्रसन्न होकर दो वर माँगनेको कहा पर इसने कहा कि आवश्यकता होगी तब माँग लूँगी। रामके अभिषेकके समय इसने मंथराके सिखानेसे भरतको राज्य तथा रामको १४ वर्षका वनवास माँग लिया।

कैटभारि : मधु और कैटभ नामक दो दैत्य विष्णुके कानके मैलसे उत्पन्न हुए थे। जब वे ब्रह्माको मारने दौड़े तब विष्णुने जागकर इनका वध किया। तभीसे विष्णुका (और विष्णुके सब अवतारोंका) नाम कैटभारि पड़ गया।

कैलास : हिमालयके उत्तरमें तिब्बतकी सीमामें मानसरोवरके तटपर पर्वत है जिसपर महादेव और यक्षराज कुबेर रहते हैं। यह रावण-ह्रदसे ५० मील दूर है। यहींसे सिंधु, शतद्रु और ब्रह्मपुत्र नामक नद उत्पन्न हुए हैं। अब यह पर्वत चीनके अधिकारमें है। तिब्बतमें इसे तिवि कहते हैं।

कोपभवन : किसी कारणवश कोप होने या रूठनेपर जिस एकान्त घरमें जा बैठते हैं, वह कोपभवन कहलाता है।

कोल : किरातोंकी श्रेणीकी एक आदिवासी जंगली जाति। इनका भी रहन-सहन किरातोंकी भाँति होता है। ये मध्यप्रान्तमें कोल या भील कहे जाते हैं। ये लकड़ी, पत्ते तथा जंगली जड़ी-बूटी लाकर नगरोंमें बेचते तथा बोझा ढोनेका काम करते हैं। वर्तमान कालमें मुंडा, हो (होरे या होरो), उराँव, भूमिज आदि सब कोल हैं। इनमेंसे 'लड़का कोल' या 'हो' ही वास्तविक कोल हैं जो बिहारके छोटा नागपुर और सिंहभूमि प्रदेशमें रहते हैं। (हो=मनुष्य, लड़का=योद्धा)।

कोशल : (कोसल) काशीसे उत्तर-पूर्वका अयोध्या-सहित सरयू-तटका सब भाग। यह सूर्यवंशी राजाओंका राज्य था। अयोध्या इसकी राजधानी थी।

कौमोदकी : विष्णुकी गदाका नाम है। खांडव वन जलानेके समय कृष्णको अग्निसे प्राप्त हुई थी। (देखो गदा २)

कौरव : कुरुवंशीय क्षत्रिय कौरव कहलाते थे। वर्तमान दिल्लीके आस-पासका प्रदेश कुरु कहलाता था। कुरुवंशीय क्षत्रियोंके पूर्व राजा संवरण और उनकी पत्नी सूर्यकन्या तपतीके गर्भसे कुरुका जन्म हुआ। ये ही पांडवों और धृतराष्ट्र आदिके पूर्वज थे। कुरुने समन्तपञ्चक (वर्तमान कुरुक्षेत्र) में इसलिये हल चलाया कि इस भूमिमें जो शरीर छोड़ेगा वह स्वर्ग पहुँचेगा। आगे चलकर केवल धृतराष्ट्रके पुत्र तो कौरव कहलाए और पांडुके पुत्र पांडव।

कौल: (वाममार्गी)–वाममार्गी सिद्धान्तके अनुयायी। ये शक्तिके उपासक हैं, अतः शाक्त भी कहे जाते हैं और पंच मकार (मांस, मदिरा मत्स्य, मुद्रा (भुना अन्न), मैथुन)-का सेवन करते हैं। उड़ीसा-बंगालमें इनकी अधिकता है। ढोंगी-को भी कौल कहा गया है—

अन्तश्शाक्ताः बहिः शैवाः समामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधरा कौलाः विचरन्ति महीतले॥

क्रोध : यह भाव रौद्र रसका स्थायी भाव है। अपने तथा दूसरेका अनिष्ट करनेके अन्तः-करणके क्षोभको क्रोध कहते हैं। यह राजसिक मनका लक्षण माना जाता है। असहन (किसी वचन या व्यवहारको न सह सकने) के आवेगको क्रोध कहते हैं। अत्याचारके निवारणके लिये क्रोधको सात्विक, अधिकार-मदके कारण उत्पन्न क्रोधको राजस और स्वार्थ तथा अत्याचार-के लिये उत्पन्न क्रोधाग्निको तामस कहते हैं। इसकी तीन अवस्थाएँ होती हैं–कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार छोड़कर क्रोधकी अवस्थाको सम्मोह, विचारकर किए हुए क्रोधको सुविचारित और मन ही मन क्रोध करनेको असिद्ध कहते हैं। गुरुजनों-पर क्रोधको अनैतिक कहते हैं।

क्षमा : प्रतिकारकी शक्ति होते हुए भी अपने प्रति किए हुए किसी अपराध या अप्रिय व्यवहारको सहकर उसका बदला न लेना, उसकी उपेक्षा कर जाना तथा उसके प्रति दुर्भाव न रखकर सद्भाव दिखाना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कौशल्या : कोशलराज भानुमान्‌की कन्या, राजा दशरथकी पटरानी और रामकी माता थी। इनके पिताने इन्हें एक हजार गाँव दहेजमें दिए थे। कैकेयी इसपर सदा व्यंग्य करती रहती थी और कभी-कभी कटु वचनोंसे अपमानित भी करती थी। इसका स्वभाव निश्छल, द्वेष-रहित, तथा अति सौम्य था।

कौशिक : (कौशिक, विश्वामित्र) राजर्षि कुशिक (गाधि) के पुत्र थे। इन्होंने कौशिक गोत्र चलाया। कुशिकने इन्द्र-जैसा प्रतापी पुत्र प्राप्त करनेके लिये तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर इन्द्रने ही विश्वामित्रके रूपमें जन्म लिया।

क्षीरसागर : श्वेतद्वीपमें दूधका (श्वेत जल-वाला) समुद्र, जिसमें विष्णु भगवान् शेषनागपर योगनिद्राके समय शयन करते हैं। देवताओं और दैत्योंने इसे मथकर १४ रत्न निकाले थे— ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कालकूट विष, रंभा अप्सरा, पारिजात (कल्पतरु), चन्द्रमा, लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, शार्ङ्ग धनुष, कामधेनु, धन्वन्तरि वैद्य, वारुणी, अमृत और शंख।

श्री, मणि, रम्भा, वारुणी, अमृत, शंख, गजराज। धन्वन्तरि, धनु, धेनु, शशि, कल्पवृक्ष, विष, बाज॥

(बाज = वाजि = घोड़ा)

क्षेमकरी : (छेमकरी) सफेद सिरवाली केसरिया रंगकी चील। यात्राके समय इसका दर्शन शुभ माना जाता है।

खंजन : खंजरीट (खिंडरिच, ममोला) यह छोटा-सा काला सफेद चिकत्तीवाला पक्षी शरद् ऋतुमें पहाड़ोंसे आता है। यह निरन्तर अपना सिर नीचे ऊपर किया करता और पूँछ ऊपर-नीचे करता रहता है। इसे हुदहुद भी कहते हैं। चंचल नेत्रोंकी उपमा खंजन पक्षीसे दी जाती है। विजयादशमीको इसके दर्शनका बड़ा माहात्म्य बताया गया है। मीठे सुगन्धित फलवाले वृक्ष, जलाशय, हाथी, घोड़े या सर्पके सिरपर, दालान, उपवन, कोठे, गोशाला, यज्ञशाला, घुड़साल या हथसारमें खंजन दिखाई पड़ जाय तो संपत्ति मिलती है। बृहत्संहितामें विस्तारसे खंजनके दर्शनका फल लिखा है। नदी-तटपर प्रायः दिखाई पड़ता है।

खच्चर : (बेसर) बोझा ढोनेवाला पशु जो गधे और घोड़ेका मिश्रण है। यह गधेसे कुछ ऊँचा और बड़ा होता है। इसे बोझा ढोनेके ही काममें लाते हैं। यह अधिक दिन जीता और अधिक शक्तिशाली होता है।

खद्योत : (जुगनू, पटबीजना, सोनकिरवा)। वर्षामें यह कीट उत्पन्न होता है। उड़नेपर इसमेंसे चमक निकलती है। (ख = आकाश, द्योत = चमकनेवाला)।

खर : (दण्डकारण्यका प्रमुख राक्षस)— राका नामकी पत्नीसे विश्रवा ऋषिका पुत्र। यह रावणका सौतेला भाई था। शूर्पणखा इसकी बहिन थी। यह बचपनमें वेदवेत्ता, शूर तथा बड़ा सदाचारी था और अपने पिताके साथ गंधमादन पर्वतपर रहता था। यह दक्षिणमें रावणका सीमा-रक्षक था। इसके १४ हजार सैनिक तथा १४ सेनापति थे। लक्ष्मणने जब शूर्पणखाके नाक-कान काट लिए तब खर अपनी १४ हजारकी सेना लेकर रामसे लड़ने आया और रामके हाथों सेना-सहित मारा गया। इसके एक ही पुत्र था मकराक्ष।

खरारि : (खर+अरि) खरके शत्रु। खर नामक राक्षसको पंचवटीमें मार डालनेवाले राम।

खस : वर्तमान गढ़वाल और तिब्बतके नारीखोर-सूम जिलेके एक राजाके वंशज खस कहलाए। राजतरंगिणीमें कहा गया है कि ये (खश) मिहिरकुलके समय (५११ई०) नरपुरमें रहते थे। कश्मीरकी रानी दिहाकी खस लोगोंपर विशेष कृपा थी। किसीके मतसे दिहा महारानी भी खश-सम्भूता रहीं। आजकल ये लोग नैपाल राज्यमें रहते और अपनेको क्षत्रिय-जैसा मानते हैं। ये सनातन-धर्मावलम्बी, ब्राह्मणोंके बड़े भक्त और श्रद्धालु हैं। नैपाली ब्राह्मण इनकी कन्यासे विवाह करने लगे हैं। नैपालकी सेनामें खश जातिके सैनिक अधिक हैं।

खेतके धोखे : (खेतकी रक्षाके लिये बनवाया हुआ आदमीका नकली पुतला) इसे गाँवोंमें धोखा कहते हैं।

खौर : चन्दनका आड़ा तिलक जो नाकके ऊपर द्वितीयाके चन्द्रमाके आकारका लगाया जाता है।

गंगा : गंगाका उद्गम हिमालयमें गंगोत्रीसे हुआ है। जब विष्णुने बलिको छलनेके लिये

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

विराट् रूप धारण किया था उस समय ब्रह्माने उनके नख धोकर जल अपने कमण्डलुमें रख लिया। राजा सगरके वंशज भगीरथकी तपस्यापर प्रसन्न होकर ब्रह्माने वही ब्रह्मद्रव शिवकी जटापर उँडेल दिया था। शिवने प्रसन्न होकर अपनी जटा-से तीन बूँद जल दे दिया जिसकी एक बूँदसे आकाश-गंगा, दूसरी बूँदसे पाताल-गंगा तथा तीसरी बूँदसे भागीरथी-गंगा प्रकट हुई। कपिल मुनिके शापसे भस्म हुए सगरके साठ हजार पुत्रों-का उद्धार करती हुई ये सागरमें जाकर मिल गई।

गदा : १. मुद्गरके समान शस्त्र। प्राचीन कालमें भारतीय युद्धमें इसका प्रयोग किया जाता था। २. गद नामक असुरको मारकर विष्णुने उसकी हड्डियोंसे वह कौमोदकी नामकी गदा बनवाई जिसे धारण करनेके कारण वे गदाधर कहलाए।

गज : रामकी सेनाका विशिष्ट वानर।

गजेन्द्र : पूर्व जन्ममें यह पांड्य देशका राजा था। तप करते समय ध्यानस्थ होनेके कारण वह अगस्त्य ऋषिको देख नहीं पाया। अगस्त्यने शाप दे दिया कि तू मदोन्मत्त हाथी हो जा। फिर प्रार्थना करनेपर ऋषिने कहा कि जब तुझे पानी-में मगर पकड़ेगा तब विष्णु तुझे मुक्त करेंगे। देवल ऋषिके शापसे हूहू नामका गन्धर्व त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें मगर होकर रहता था। जब यह हाथी पानी पीनेको सरोवरमें उतरा तब वही मगर इसका पैर पकड़कर खींचने लगा। हाथीने नारायणका स्मरण किया, तब विष्णुने अपने चक्रसे मगरको मारकर हाथीको मुक्त किया।

गणेश : महादेवके पुत्र। एक बार पार्वतीने स्नान करते समय इन्हें द्वार-रक्षक बनाकर आदेश दिया कि किसीको भीतर न आने देना। इतनेमें स्वयं शंकर आ गए। जब इसने शंकरको रोका तब शंकरने इसका सिर काट दिया और भीतर चले गए। यह सुनकर पार्वती रोने लगीं। तब शंकरने इन्द्रके हाथीका मस्तक इसके धड़पर लगाकर जीवित कर दिया। तभीसे गणेशजी 'गजानन' नामसे विख्यात हुए। एक बार देवताओं-में होड़ लगी कि जो सबसे पहले सृष्टिका चक्कर लगा आवेगा वही प्रथम पूज्य होगा। सब चल दिए पर गणेशने 'राम' नाम लिखकर उसीका चक्कर लगा लिया। बस तभीसे वे प्रथम पूज्य हो गए। जबतक गणेशकी पूजा नहीं हो जाती तब-तक कोई देवता पूजा नहीं ग्रहण करता। एक बार गणेशको द्वारपाल बनाकर शिव और पार्वती बात कर रहे थे। इतनेमें परशुराम आ गए। गणेशने उन्हें रोका तो दोनोंमें लड़ाई ठन गई और परशुरामके फरसेसे गणेशका एक दाँत टूट गया। तबसे वे एकदन्त हो गए।

गन्धर्व : कश्यप तथा अरिष्टाकी संततिको गन्धर्व कहते हैं। हाहा, हूहू, तुंबुरु, किन्नर आदि इनके कई भेद हैं। ये हिमालयके मध्य भागमें रहते हैं। गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ अप्सराएँ हैं जो कश्यप और खसाकी सन्तान हैं जिनमें उर्वशी, रम्भा, मेनका, घृताची आदि विशिष्ट हैं। गन्धर्व और अप्सराएँ देवसभामें नाचते, गाते और नाट्य आदि करते हैं। यह अत्यन्त सुन्दर जातिकी देवयोनि है।

गन्धमादन : रोमक पत्तनके उत्तरमें नील और निषध-तक फैला हुआ पर्वत है। विष्णु-पुराणके मतसे यह सुमेरुके दक्षिणमें है। इसके पूर्वमें चैत्ररथ, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें वैभ्राज और उत्तरमें नन्दन नामके चार मनोहर उपवन हैं। इस पर विशेषतः किन्नर, किन्नरियाँ, सिद्ध, चारण, विद्याधर और विद्याधरियाँ विहार करती हैं।

गणिका (गनिका) : १. मिथिलाकी पिंगला नामकी वेश्या, जो एक दिन जब कोई ग्राहक न आया तो इसे विराग हो आया और वह साधु-संगतिसे मुक्त हो गई। २. जीवन्ती नामकी वेश्या सुग्गेको राम-राम पढ़ानेके कारण मुक्त हो गई।

गरुड : गरुडकी माता थीं विनता और पिता थे कश्यप। इनके लँगड़े भाई अरुण सूर्यके आगे-आगे चलते हैं। ये स्वयं अंडा फोड़कर निकले थे। एक बार गरुड अमृत लेकर विष्णुके साथ जा रहे थे। विष्णुने कहा—'वर माँगो।' गरुडने कहा—मैं आकाशगामी होकर आपके ऊपर रहूँ और अमृतके बिना ही अजर-अमर रहूँ।' फिर गरुडने विष्णुसे कहा—'आप भी वर माँगिए।' विष्णुने कहा—'आप मेरे वाहन होकर रहिए और मेरे ध्वजमें ऊपर रहिए।' तबसे गरुड विष्णुके वाहन हैं। काक-भुशुण्डिसे इन्होंने 'रामचरितमानस' (रामका चरित) सुना था।

ग्रह : ग्रह नौ माने गए हैं—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

इनके अतिरिक्त प्लूटो (यम), यूरेनस (वरुण), नेपचून (कुबेर) और हर्षल नामक चार ग्रह और खोज निकाले गए हैं। वास्तवमें सूर्य तो तारा है और चन्द्रमा उपग्रह है। राहु और केतु छाया-ग्रह माने गए हैं। इनका कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। ग्रह वह पिंड है जो सूर्यके चारों ओर घूमता है।

गादुर : (चमगादर) यह पक्षी रातमें सूने घरोंमें दिखाई देता है। इसके दाँत भी होते हैं और पंख भी। यह पुराने और सूने मकानोंकी छतोंमें रातके समय लटका रहता है। यह मुखसे ही बीट भी करता है और रातमें निकलकर छोटे पक्षियोंका आखेट करता है।

गिरा : (सरस्वती)—१. यह ब्रह्माकी कन्या है। इसे ज्ञानशक्ति, सावित्री, गायत्री, वाक् (वाणी) भी कहा गया है। ये गायन-वादन कलाओं तथा विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवी हैं।

२. गंगा-यमुनाके साथ अन्तःसलिला सरस्वती-की धारा बहती है। किसी समय ये तीनों धाराएँ प्रयागमें मिलती थीं। इन तीनों धाराओंके संगमको त्रिवेणी कहते हैं।

गिरिराज (गिरिराऊ) : (हिमालय) भारतके उत्तरमें है। इसकी सबसे ऊँची चोटीको गौरीशंकर (एवरेस्ट, अपरास्त) कहते हैं।

गिरिजा : हिमाचलकी पुत्री पार्वती। नारद-के कहनेपर इन्होंने शिवको वर-रूपमें पानेके लिये बड़ी कठोर तपस्या की। तब शिवजीने प्रकट होकर इन्हें वरदान दिया और इनका पति होना स्वीकार किया। देखो उमा, अपर्णा।

गृध्र : (जटायु गिद्ध) सूर्यके सारथि अरुण और उसकी पत्नी श्येनीसे जटायु और उसके भाई सम्पाती नामके गिद्धोंका जन्म हुआ था। जटायु तो दशरथका मित्र था। जब सीताको रावण हरे ले जा रहा था तब इसने रावणको घायल कर दिया था। रावणने इसके पंख काट डाले और यह गिर पड़ा। सीताके हरे जानेकी बात रामको बताकर रामकी गोदमें इसने प्राण त्याग दिया। रामने उसकी क्रिया की। जब जटायुके बड़े भाई सम्पातीको उसकी मृत्युका पता लगा तब उसने तिलाञ्जलि दी और वानरोंको सीताका पता बतलाया। जटायुके तीन पुत्र थे—काक, गृध्र और कर्णिक। मृत्युके समय जटायुकी अवस्था साठ हजार वर्षकी थी।

गुण : १—त्रिगुण (सत्त्व, रज और तम)। इनके मेलसे यह सृष्टि हुई है।

२—काव्यके तीन गुण—माधुर्य, ओज और प्रसाद हैं। कुछ विद्वानोंने दस काव्य-गुण माने हैं—श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद-सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्ति। भोजने सरस्वती-कंठाभरणमें चौदह गुण बताए हैं—उदाहरण, ओजस्त्व, प्रेयस्, सुशब्दता, सौक्ष्म्य, गाम्भीर्य, विस्तार, संक्षेप, संमितत्व, भाविकता, गति, रीति, उक्ति, प्रौढि। इनके भी बाह्य, आभ्यन्तरिक और वैशेषिक भेदसे ७२ भेद कर दिए गए हैं। अग्निपुराणमें १८ गुण बताए गए हैं।

३—पुरुषके ८ सात्त्विक गुण : शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थिरता, तेज, लालित्य और औदार्य।

४—नायकके गुण : विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, शुचि, रक्तलोक (लोकप्रिय), वाग्मी, रूढवंश, स्थिर, युवा, बुद्धिमान्, प्रज्ञावान् स्मृतिसंपन्न, उत्साही, कलावान् शास्त्रचक्षु, आत्मसम्मानी, शूर, दृढ, तेजस्वी, धार्मिक।

गुंजा : मसूरकी दालके बराबर एक प्रकारका बीज जो रंगमें लाल या सफ़ेद होता है और और जिसके ऊपर एक काली बिन्दी लगी रहती है। इसे घुँघची या रक्तिका (रत्ती) भी कहते हैं। सोना या रत्न तौलनेमें इसका प्रयोग होता है। यह बहुत हलकी होती है।

गुणनिधि : श्रोत्रिय यज्ञदत्तका पुत्र गुण-निधि अत्यन्त दुर्व्यसनी और दुर्गुणी था। किन्तु शिवपूजा देखने तथा शिव-दीपकी बत्ती प्रज्वलित करनेके कारण यह मुक्त हुआ। एक कथाके अनु-सार शिवकी पिंडीपर चढ़कर घंटा चुराने चला तो शिवने यह सोचकर उसे मुक्ति दे दी कि यह तो स्वयं अपनेको मुझपर चढ़ाए दे रहा है। कुबेरने इसे उत्तर दिशाका अधिपति नियुक्त किया।

गुरु : १. देवताओंके गुरु बृहस्पति हैं। ये मरीचि प्रजापतिकी सुरूपा नामकी पुत्री तथा-अंगिरससे उत्पन्न हैं। ये महान् वेदवेदांग पारंगत माने जाते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२. बृहस्पति ग्रह, जो आकारमें सब ग्रहोंसे बड़ा है। यह ११.८६२ वर्षमें सूर्यका चक्कर लगाता है। इसपर ११ या १२ चन्द्रमा हैं।

गुह (निषादराज) : १. रामके वनवास-के समय दण्डकारण्यमें गुह नामके निषादने रामकी बड़ी सेवा की। उसने चित्रकूटमें रामके लिये कुटी तैयार कराई और कंद, मूल, फल आदि ला-लाकर दिए। यह दशरथका परम मित्र था। (जिस केवटने नावपर चढ़ानेसे पूर्व रामके पैर धोए थे वह इस गुहका सेवक सामान्य मल्लाह था)।

२. मनुके अनुसार ब्राह्मण पिता और शूद्रा मातासे निषाद जाति उत्पन्न हुई है। कुछ लोग इन्हें धीवर (मल्लाह) भी मानते हैं।

गोदावरी : (गौतमी)—यह दक्षिण भारत-की प्रधान नदी है। इसका उद्गम नासिक जिलेके त्र्यम्बकेश्वर स्थानसे हुआ है और यह बंगालकी खाड़ीमें समुद्रसे जा मिली है। तीर्थयात्राको जाती हुई किसी ब्राह्मणीसे किसी कामुकने बलात्कार किया। उससे उत्पन्न पुत्रको ब्राह्मणीने परित्याग कर दिया और तप किया। वही ब्राह्मणी ही गोदावरी नदी हुई। यह भी गंगाके समान पवित्र मानी जाती है।

गोमती (धेनुमती) : यह नदी हिमालयसे निकलकर वाराणसी ज़िलेमें मार्कण्डेय महादेवके पास गंगामें मिल गई है।

घटयोनि : (घट-जोनी) देखो अगस्त्य।

घमोई : (भँड़भाँड़) इस दो फुट ऊँचे पौधेके पत्ते श्वेतता लिए हुए हरे, कँटीले और फूल पीले रंगके होते हैं। यह मूल-सहित अनेक रोगोंकी औषधिमें पड़ता है। इसे सत्यानाशी भी कहते हैं। बाँसकी जड़में इसका बीज पड़कर पौधा निकल आनेपर बाँस नष्ट हो जाता है। खेत भी इससे नष्ट हो जाते हैं।

घुणाक्षर न्याय : (घुनाच्छर न्याय) बिना प्रयासके संयोगवशात् किसी कार्यका हो जाना, जैसे घुन लगनेसे कोई अक्षर बन जाना।

चकवी : देखो चक्रवाक।

चकोर : यह तीतरके आकारका उन्नावी रंगका पक्षी होता है। चमकीली लाल वस्तु देखते ही उसे खाने दौड़ता है। यहाँतक कि यह आगके छोटे-छोटे अंगारे भी अपनी ठोरसे उठाने चलता है पर गरम लगनेपर छोड़ देता है। पहले इसे राजा लोग भोजन करते समय अपने सामने बिठा रखते थे। विषाक्त भोजन-पदार्थ देखते ही चकोरकी आँखें लाल हो जाती हैं और वह कुछ क्षणोंमें मर भी जाता है। इसीसे इसे 'विष-दर्शन-मृत्यु' भी कहते हैं।

चक्रवाक : (चकवा) जलके पास रहनेवाला यह पक्षी देखनेमें हंसके समान होता है। इसकी लंबाई २५-२६ इंच होती है। कहा जाता है कि दिनमें चकवा और चकवी दोनों चोंच मिलाकर बैठते हैं और साथ-साथ जलमें तैरते हैं किन्तु रातमें अलग-अलग हो जाते हैं। इनके माथेकी चोटी तथा दोनों पंखोंका रंग गेरुआ होता है और छाती तथा पीठका रंग घना नारंगिया होता है। इनकी गर्दनके नीचे और छातीके ऊपरके हिस्सेमें तीन चार अंगुल चौड़ा एक चमकीला काले रंग-का फीता-सा बना होता है, जो छातीसे लगाकर पीठके ऊपर तक घूमा रहता है। यह चकवेको होता है, चकवीको नहीं। कुछ चकवोंका, पीछेका निचला भाग कुछ-कुछ पीलापन लिये होता है, कुछ चकवोंका यह भाग लाल होता और उसपर काले डोरे भी होते हैं। इनके पंख और पेट आदि अन्य रंगोंके भी होते हैं। चकवीकी देहका रंग पीला और ललाई लिए हुए श्वेत होता है, मस्तक और गर्दनका रंग चूहेके रंगका तथा चोंच और पैर काले होते हैं। ये बड़े सजग रहते हैं इसलिये अहेरी लोग इन्हें जल्दी मार नहीं पाते हैं। भारत-में ये जाड़ेके दिनोंमें दिखाई पड़ते हैं।

चन्द्रमौलि : जिसके ललाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा है (शिव)।

चर-अचर : चल फिर सकनेवाले जीव कीट पतंगादि चर कहलाते हैं और स्थिर रहनेवाले उद्भिज (वृक्ष) आदि अचर।

चरण-रेखा : महापुरुषोंके चरणोंमें वज्र, अंकुश, कमल, चक्र, छत्र, ध्वज, धनु आदि रेखाएँ होती हैं।

चन्द्रकला : १. कामशास्त्रके अनुसार चन्द्रमाकी ये कलाएँ तिथि-भेदसे स्त्रियोंके भिन्न-भिन्न अंगोंमें रहती हैं—पूषा, यशा, सुमनसा, रति, प्राप्ति, धृति, ऋद्धि, सौम्या, मरीचि, अंशुमालिनी, अंगिरा, शशिनी, छाया, सम्पूर्णमंडला, तुष्टि और अमृता।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

२. चन्द्रमाकी १६ कलाएँ—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, अमृता।

चातक : (पपीहा) कवि-समय (कवियोंकी कल्पना) है कि यह पक्षी स्वाती नक्षत्रकी वर्षाके जलके अतिरिक्त दूसरा जल नहीं पीता। चातकके शरीरका अग्र भाग हरा, पंख काले और पंखकी जड़में काला-सफेद मिला हुआ रंग होता है। इसके पैर और चोंचका रंग पीला और भूरा होता है। यह प्रायः वर्षामें पिउ-पिउ रटता रहता है।

चामर : चँवर (चमरी मृग या सुरा गायकी पूँछ)। यह राजचिह्नों (छत्र, दंड, चँवर)-में से एक है। हिमालयपर श्वेत चामरी मृग (सुरा गाय) की पूँछ काटकर चँवर बनाए जाते हैं।

चार फल : धर्म अर्थ, काम और मोक्ष, ये ही जीवनके चार फल या चार पुरुषार्थ हैं।

चाष : (चाख, चाहा, स्वर्ण चातक, नीलकंठ) इसका दर्शन करके ये नाम कहनेसे कार्यकी सिद्धि होती है—किकीदवि, नीलांग, पुण्यदर्शन, हेमतुंड, मणिग्रीव, स्वस्तिक, अपराजित, अशोक, विशोक, नन्दन, पुष्टिवर्द्धन। इसके सिर और गलेका रंग कुछ ललाई लिए हुए नीला, पेट भूरे रंगका, पूँछ पीली झलक लिए नीली, पैर ललाई लिए पीला, चोंच धूसर रंगकी और पलकें पीली होती है। यह १३ इंच तक लंबा होता है। यात्राके समय उत्तरकी ओर इसका दर्शनसे कार्यकी सिद्धि होती है।

चैतन्य : चेतन आत्मा, वह शक्ति जिसके शरीरमें रहनेपर सब प्रकारका ज्ञान तथा सुख-दुःखका अनुभव होता है।

छत्र : राजा और राज्यकी मर्यादाके लिये राजाके ऊपर जो शोभाके लिये सुनहरे कामवाली बड़ी-सी लाल छतरी लगाई जाती है।

छत्रक : वर्षा ऋतुमें गंदे घूरे या घास-फूसपर छातेके आकारका छोटा-सा पौधा निकल आता है। इसे कुकुर-मुत्ता भी कहते हैं।

छन्द : (छन्दःशास्त्र) वर्ण और मात्राओंके नियमित क्रमके अनुसार पद्यकी रचनाको छन्द कहते हैं। ये तीन प्रकारके होते हैं—मात्रिक (मात्राकी गणनाके अनुसार), वर्णिक (वर्णकी गणनाके अनुसार वर्णवृत्त) तथा मुक्त (जो मात्राओं तथा वर्णोंके नियन्त्रणसे मुक्त हो)।

२. छन्दस् = वेद।

३. छन्द = कपट राजनीति, कूटनीति।

छाछ : दही मथनेपर नवनीत या मक्खन तो ऊपर उतर आता है, जो शेष बच रहता है उसे छाछ, तक्र या माठा (मट्ठा) कहते हैं।

जटामुकुट : जटाओंको समेटकर मुकुटकी भाँति बनाकर फूलोंसे सजाकर बाँध लेना।

जटायु : यह सम्पातीका छोटा भाई था। जटायुने पंचवटीपर सीताको छुड़ानेके लिये रावणसे युद्ध किया था और वह घायल होकर रामकी गोदमें मरा। रामने उसे पिताके समान मानकर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की। उसीने रावणके द्वारा ले जाती हुई सीताकी सूचना रामको दी थी। रामने उसे अपने धाम भेज दिया। देखो गृध्र।

जडता : हाथपर हाथ धरे बैठे रहना, समझानेपर भी न समझना, कुछ भी करनेके लिये हाथ-पैर न चलाना, उचित समझानेको भी उलटा समझना।

जनक : निमि-वंशके इस द्वितीय पुरुष मिथिने मिथिलापुरी बसाई थी। इनका वास्तविक नाम सीरध्वज और इनके छोटे भाईका नाम कुशध्वज था। इनकी पुत्री जानकीका विवाह रामसे हुआ। कुशध्वजकी तीन कन्याएँ माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे उसी मण्डपमें ब्याही गईं। (देखो निमि भी)।

जनवासा : (जन-आवास) ऐसा स्थान जहाँ लोग इकट्ठे होकर बैठते और विश्राम करते हों। किन्तु अब विवाहके अवसरपर बारातियोंके ठहरने और विश्राम करनेके स्थानको ही जनवासा कहने लगे हैं।

जप : माला लेकर गिनती करते हुए मन्द स्वरसे कोई नाम या मन्त्र बार-बार कहते चलना। जप तीन प्रकारसे किया जाता है—१. मानस (मन ही मन), २. उपांशु (धीमे स्वरसे जीभ-ओठ चलाते हुए); ३. वाचिक (वाणी द्वारा मन्त्र बोलते हुए)। एक जिह्वा जप भी होता है जिसमें केवल जीभसे ही जपा जाता है। वाचिक जपसे उपांशु जप दस गुना,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जिह्वाजप सौगुना और मानस जप सहस्रगुना श्रेष्ठ होता है। जपकी गिनती अवश्य करनी चाहिए। ऊँचे स्वरसे जप करना अधम, उपांशु जप मध्यम और मानस जप उत्तम होता है।

जय-विजय : देवहूतिसे उत्पन्न कर्दम प्रजापतिके पुत्र। ये बड़े विष्णु-भक्त थे। सदा षडक्षर मंत्र—'ॐ विष्णवे नमः' जप करते थे और विष्णुका व्रत करते थे। इससे विष्णुका साक्षात्कार हुआ। ये यज्ञ-कर्ममें भी कुशल थे।

जयंत : पौलोमी (इन्द्राणी, शची)से उत्पन्न इन्द्रका पुत्र। रामके चित्रकूट-वासके समय कौएका रूप धारण करके इसने सीताके स्तनपर चोंच जा मारी, इस कारण रामने इसका एक नेत्र फोड़ दिया था। देवासुर-युद्धमें इसने कालेय नामके राक्षसका वध किया था।

जयमाल : दूर्वा (दूब) की डंठलमें महुआ गूँथकर बनाई हुई माला जो स्वयंवरमें कन्या अपने चुने हुए वरको पहनाती है।

जह्नु-बालिका (गंगा) : जब भगीरथ गंगाको ला रहे थे तब मार्गमें राजा सुहोत्रके पुत्र जह्नु ऋषि यज्ञ कर रहे थे। गंगाने सारी यज्ञ-सामग्री बहा दी। तब जह्नु एक ही आचमनमें सारी गंगा पी गए। भगीरथकी प्रार्थनापर उन्होंने कानसे गंगाको निकाल दिया। इसीलिये गंगाको जाह्नवी या जह्नु-बालिका कहते हैं।

जातरूप : सुवर्ण। इसके अन्य पर्यायवाची वाची शब्द हैं—हाटक, कंचन, पुरट, हिरण्य, अग्निशिख आदि। पुराणके मतानुसार सप्तर्षियोंकी अत्यंत सुन्दरी पत्नियोंको देखकर अग्निदेवका जो वीर्य पृथ्वीपर गिरा, वही स्वर्ण हुआ।

जातकर्म : सोलह संस्कारोंमेंसे चतुर्थ संस्कार। पुत्रके जन्मका समाचार पाते ही पिता आकर कहे—'नाभि मा कृन्तत, स्तनं च मा ददत' (नाल मत काटना, स्तनका दूध न पिलाना)। तब बालका पिता सचैल स्नान, मार्कण्डेय-षोडश मातृका-पूजन, वसु-धारा और नान्दीश्राद्ध करके बाईं हथेलीपर पिसा हुआ जौ रखकर दाहिने हाथकी अनामिका और अँगूठेसे 'कुमारस्य जिह्वां निर्माष्टि' इस मंत्रके साथ बालककी जीभमें वह छुआवे। तदनंतर बालककी जिह्वापर स्वर्णसे घृत छुवाकर 'नाभिं कृंतत स्तनं च ददत' कहकर नालच्छेदन और स्तन-पान करानेकी आज्ञा दे। पुत्र-जन्मके समय अशौच रहनेपर भी पिताको जातकर्म करना चाहिए।

जाबालि : कश्यप वंशके मुनि, दशरथके गुरु थे। इन्होंने चित्रकूटपर रामको राज्य ग्रहण करनेके लिये अनेक युक्तियाँ देकर आग्रह किया था।

जाम्बवान् : (जामवन्त)-ये ब्रह्माके पुत्र ऋक्षराज थे और सुग्रीवके मंत्री थे। इन्होंने लंकाके युद्धमें रामकी बड़ी सहायता की थी। द्वापर युगमें सिंहको मारकर उससे स्यमन्तक मणि ले आए थे। जब स्यमन्तक मणिकी चोरीका कलंक श्रीकृष्णको लगा तब उन्होंने जाम्बवान्से घोर युद्ध करके उसे परास्त कर दिया। जाम्बवान्ने अपनी पुत्री जाम्बवती श्रीकृष्णको ब्याह दी और वह स्यमन्तक मणि उन्हें यौतुक (दहेज) रूपमें दे दिया।

जालन्धर : (जलन्धर) एक बार इन्द्रने शिवलोक जाकर देखा कि वहाँ एक भयानक रूपवाला मनुष्य बैठा है। शिवका ठिकाना पूछनेपर उसने जब कोई उत्तर न दिया तो इन्द्रने उसपर वज्र चला दिया। उधर उस मनुष्यके मस्तकसे ज्वाला फूट पड़ी। तब इन्द्रने उसे महादेव समझकर स्तुति की। महादेवने वह अग्नि समुद्रमें उठा फेंकी जिससे एक बालक उत्पन्न होकर भयंकर स्वरसे रोने लगा। ब्रह्माने आकर समुद्रसे पूछा तो उसने कहा—यह मेरा पुत्र है, ले जाकर इसका संस्कार कीजिए। ब्रह्माकी गोदमें आते ही वह ब्रह्माकी दाढ़ी खींचने लगा, जिससे ब्रह्माकी आँखोंमें आँसू आ गए। इसलिये उसका नाम जलन्धर (आँसू लानेवाला) रख दिया गया। ब्रह्माके वरसे वह सर्वशास्त्रवेत्ता और शंकरको छोड़कर सबसे अजेय हो गया। इसने कालनेमिकी पुत्री वृन्दासे विवाह किया। उसके पातिव्रत्यके कारण जालंधरको कोई मार नहीं सकता था। उसने जब अमरावतीपर भी अधिकार कर लिया तो इन्द्रने शिवकी शरण ली। इसने पार्वतीपर मुग्ध होकर उन्हें पकड़ मँगानेको दूत भेजा। इसपर शंकर बड़े क्रुद्ध हुए और उससे युद्ध ठान दिया। इधर विष्णुने जालन्धरका रूप बनाकर वृन्दाका पातिव्रत्य नष्ट किया और जालन्धरको शिवने अपने अंगुष्ठरेखोत्थ नामके चक्रसे मार डाला। विष्णुने वृन्दाको सान्त्वना देकर कहा—तुम सती हो जाओ। तुम्हारे अंगसे तुलसी, धात्री (आँवला),

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पलाश और अश्वत्थ (पीपल) ये चार पवित्र वृक्ष उत्पन्न होंगे और मैं सदा तुलसी रूपमें तुम्हें अपने सिरपर धारण करूँगा।

जिज्ञासु : ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करनेको इच्छुक।

जीव : तीन प्रकारके माने गए हैं—जलचर, स्थलचर और नभचर जो, चार प्रकार (आकर)-से उत्पन्न होकर अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज कहलाते हैं।

जीवन्ती गणिका : सत्ययुगमें रघु नामक वैश्यकी जीवन्ती नामकी सुन्दरी कन्या थी जो परशु (वैश्य)-से ब्याही गई थी। कुछ कालके पश्चात् वह विधवा हो गई। व्यभिचारिणी हो जानेपर वह ससुरालसे पिताके घर चली आई। जब उसके पापाचरणसे उसके पिता कुपित हुए तब वह नगरमें जाकर वेश्या हो गई। वहाँ उसने एक सुग्गा पाल लिया। किसी सन्तके कहनेपर वह उस सुग्गेको राम-नाम पढ़ाने लगी। राम-नामके प्रभावसे उसके सब पाप नष्ट हो गए और दोनोंको एक साथ परम धाम प्राप्त हुआ। देखो गणिका भी।

जुआ : दाँव लगाकर पासे, कौड़ियाँ या अन्य किसी पदार्थसे ऐसा खेल खेलना जिसमें हार-जीत या हानि-लाभ संयोगसे होता हो, बुद्धि, परिश्रम या कौशलसे नहीं।

ज्ञान : बुद्धि और विवेकके द्वारा किसी वस्तु या तत्त्वको यथार्थ रूपसे जान लेना। ब्रह्म या परमात्मका ज्ञान प्राप्त कर लेना।

ज्ञानी : जिसने समझ लिया हो कि संसार असार और मिथ्या है, जिसने अपने आत्मकी पहचान लिया हो और जिसे ब्रह्मका परिचय मिल गया हो।

झखकेतु : (झषकेतु) कामदेव, जिसके झंडेपर मछली बनी है।

झाँझ : बड़े मजीरेके आकारका पीतल या काँसेका चपटा झनझन बजनेवाला वाद्य।

डमरू : एक प्रकारका छोटा-सा वाद्ययन्त्र जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा रहता है और जो बीचमें पतला होता है। यह शिवजीका प्रसिद्ध वाद्य है जिसे बजानेपर सनक आदि सिद्धोंका उद्धार हुआ और जिनसे निकले स्वरसे पाणिनिने अपने व्याकरणके सूत्र बनाए।

तत्त्व : वास्तविक स्थिति। किसी भी वस्तु या सिद्धान्तका सार, परमात्मका ज्ञान।

तप : किसी इष्ट-सिद्धिके निमित्त शरीर और मनकी कठिन साधना करना। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारको अपने वशमें करते हुए आत्ममें पूर्ण रूपसे तल्लीन हो जाना।

तमसा : (टौंस नदी) जिसके स्मरण मात्रसे पापोंका नाश हो वह तमसा है। प्रयाग और काशीके बीच इलाहाबाद जिलेमें रामनगरके पास यमुनामें दक्खिनसे आकर मिल जाती है। वाल्मीकिका आश्रम इसी नदीके तटपर था।

तारक मन्त्र : काशीमें मरते हुए प्राणीके कानमें शिव 'तारक मन्त्र' (राम) कहते हैं। मुक्ति देनेवाला मन्त्र। स्वामी रामकृष्ण परमहंसने मणिकर्णिका घाटपर यह दृश्य प्रत्यक्ष देखा था।

तारकासुर : ब्रह्मदेवकी कृपासे वज्रांग तथा वरांगीको यह पुत्र प्राप्त हुआ। तारकासुरने देवताओंको जीतनेके लिये दस हजार वर्ष पारियात्र पर्वतपर तप किया पर कोई फल नहीं हुआ। तब उसके मस्तकसे ऐसा प्रचंड तेज निकला कि देवता जलने लगे। देवताओंकी प्रार्थनापर ब्रह्माने उससे वर माँगनेको कहा तो उसने कहा—'मेरे समान् कोई बलवान न हो और शिवके सात दिनके पुत्रके अतिरिक्त किसीसे न मारा जाऊँ। इसे शिवके पुत्र स्कन्द (स्वामिकार्त्तिकेय)-ने मारा।

तारा : सुषेण वानरकी पुत्री तथा बालिकी पत्नी। इसके पुत्रका नाम अंगद था। सुग्रीवके कहनेपर रामने बालिका वध किया और अंगदको अपनी शरणमें ले लिया। बालिके मरनेपर सुग्रीवने ताराको पत्नी बना लिया।

तारे : रात्रिमें आकाशमें जो टिमटिमाते हुए प्रकाश-कण दिखाई पड़ते हैं वे सभी तारे या नक्षत्र हैं। इनमेंसे कुछ तो ग्रह हैं जो सूर्यकी परिक्रमा करते रहते हैं। कुछ उपग्रह हैं जो ग्रहोंकी परिक्रमा करते हैं तथा कुछ (२७) नक्षत्र हैं जो तारोंके समूह हैं। छोटे-छोटे तारोंके समूहको नीहारिका कहते हैं। एक प्रकारका पुच्छल तारा भी होता है जिसे धूम्रकेतु कहते हैं। कुछ तारे तो हमारे सूर्यसे भी कई सहस्र गुने बड़े हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तालके वृक्ष : (सप्तताल)-ये सात ताड़के पेड़ थे जिन्हें रामने एक ही बाणसे बेध डाला था। बालिको यह कहा गया था कि जो एक बाणसे सातों ताल बेध देगा, वही बालिको मार सकेगा।

तापस : (तेहि अवसर एक तापस आवा) १. ये तापस मुनि सनत्कुमार थे। देखो रामचरित-मानस पृष्ठ ४५५-४५६ की टिप्पणी।

२. श्रवण कुमारके पिता (श्रावण) और माता दोनों अन्धे थे। श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिताको बहँगीपर बैठाकर तीर्थ-यात्रा कराते थे। एक बार वे किसी जंगलसे होकर जा रहे थे कि इनके माता-पिताको प्यास लगी। पुत्र जब जल लेनेके लिये नदी-तटपर गया और उसने जलके लिये घड़ा डुबोया तो जलका घध-घध शब्द सुनकर आखेटके लिये आए हुए राजा दशरथने हरिण समझकर शब्दवेधी बाण चला दिया। वह बाण श्रवणकुमारको जा लगा और वह चीखकर गिर पड़ा। उसकी चीख सुनकर राजाने दौड़-कर उसे पकड़ उठाया। श्रवणकुमारने प्राण छोड़ते समय कहा कि मेरे माता-पिता प्यासे हैं, उन्हें यह जल पिला देना। यह कहकर उसने प्राण त्याग दिए। जब दशरथ जल लेकर उन अंधे माता-पिताके पास आए और बिना कुछ बोले ही उन्हें जल देने लगे तो उनके पूछनेपर दशरथने पूरी घटना कह सुनाई। दोनोंने कहा हमें पुत्रके पास ले चलो। वहाँ जाकर उन्होंने पुत्रको जलाञ्जलि दी और दशरथसे कहा कि जैसे हम पुत्र-शोकमें तड़पकर मर रहे हैं वैसे ही तुम भी पुत्रके-शोकमें तड़पकर मरोगे।

तापसत्रिय : (देखो अहल्या)

तिलक : मस्तकपर चन्दन या कुंकुमका लगा हुआ एक बड़ा टीका जो नीचे मोटा, ऊपर पतला होता है। वैष्णव लोग दो खड़ी पाईका तिलक लगाते हैं और बीचमें एक खड़ी पाई देते हैं। ऐसे तिलकको 'ऊर्ध्व पुण्ड्र' कहते हैं। शैव सम्प्रदायवाले चन्द्राकार तीन बेड़े तिलक लगाते हैं उसे त्रिपुण्ड्र कहते हैं। शाक्त लोग कुंकुमकी लाल बिन्दी लगाते हैं।

तीन अवस्था : जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति; अथवा बालपन, यौवन और जरा।

तीर्थ :—ऐसा पवित्र स्थान, जहाँ लोग तीर्थयात्राके निमित्त जाते हों और वह भी किसी पवित्र नदी तटपर होनेके कारण अधिक महत्त्वका माना जाता हो। तीर्थ तीन प्रकारके माने गए हैं—जंगम, मानस और स्थावर। संत, महात्मा तो जंगम तीर्थ हैं। सत्य, क्षमा, संतोष, दान, ज्ञान, धैर्य आदि मानस तीर्थ हैं। गंगा आदि नदियाँ, काशी, अयोध्या, प्रयाग आदि नगर, कैलास, विन्ध्य, चित्रकूट आदि पर्वत, मानसरोवर आदि सर तथा तपोवन, आश्रम आदि स्थावर तीर्थ हैं। पद्मपुराणने साढ़े तीन करोड़ तीर्थ माने हैं।

तीर्थदेव : (तीरथ-देवा) त्रिवेणी, माधव, सोमनाथ, भरद्वाज, वासुकि, अक्षयवट और शेषनाग ये सातों प्रयागराजके देवता हैं।

तुम्बरि : (सं० तुम्बर)—एक प्रकारका वाद्य यन्त्र तानपुरा।

तुलसिका : १. (तुलसी, वृन्दा) यह कालनेमि (दैत्य) एवं स्वर्णाकी कन्या तथा जालंधर दैत्यकी पत्नी थी। (जालन्धर देखो) जालन्धरकी मृत्युके पश्चात् इसने अग्नि प्रवेश किया। इसकी पति-भक्ति देखकर विष्णु प्रसन्न हुए और उन्होंने इसके अग्नि - प्रवेशके स्थानपर गौरी, लक्ष्मी एवं स्वराके अंशसे क्रमशः धात्री (आँवला), तुलसी एवं मालती वृक्षोंका निर्माण किया। उसी दिनसे ये तीनों पेड़ देव-तुल्य पवित्र और पूज्य माने जाने लगे। वृन्दा ही तुलसी नामसे प्रसिद्ध हुई।

२. तुलसी, शंखचूड नामक असुरकी स्त्री थी। इसके पातिव्रत्यके कारण शंखचूड देवताओंके लिये अजेय हो गया। विष्णुने छलसे तुलसीका पातिव्रत्य भंग किया और तब शिवने शंखचूडका वध किया। तब तुलसीने विष्णुको शाप दिया कि तुम शिला - रूप हो जाओ। तुलसीके शापसे विष्णु शालग्राम रूप हो गए और उन्होंने तुलसीसे कहा कि तुमको हम सदा अपने सिरपर धारण करेंगे और तुम्हारे बिना हम जल तथा भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। तभीसे शालग्राम विष्णुरूपमें पूजनीय हुए और बिना तुलसी-दलके विष्णु कोई नैवेद्य ग्रहण नहीं करते। जिस वस्तुमें तुलसीदल छोड़ा जाता है, वह विष्णुको अर्पित समझ लिया जाता है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसीदास : कहा जाता है कि बाँदा जिलेके दुबे ब्राह्मण परिवारमें आत्माराम दुबेकी पत्नी हुलसीके गर्भसे अभुक्त मूल नक्षत्रमें संवत् १५५४ (१५८३, १५८९, १६००) में तुलसीदास उत्पन्न हुए । जन्मते ही इनके मुँहसे 'राम' निकला इसलिये इनका नाम 'रामबोला' पड़ गया । कुछ ही कालमें इनके माता-पिता दोनों ही मर गए । तब मुनिया नामकी दासीने इनका पालन-पोषण किया । ५ वर्षके होनेपर दासी भी मर गई । फिर तो यह घर-घर जाकर माँग कर खाते और कहीं भी सो रहते थे । महात्माओंके संसर्गमें आकर उन्होंने काशीमें शेष सनातनसे विद्याध्ययन किया । कहा जाता है कि तुलसीदासने दीनबन्धु पाठककी कन्या रत्नावलीसे विवाह कर लिया था और उसीके उपदेशसे ये विरक्त होकर चले गए । अयोध्यामें इन्होंने रामचरित-मानस तथा काशीमें विनय-पत्रिका लिखी । फिर ये समस्त भारतमें भ्रमण करते हुए अन्त समयमें काशी ही लौट आए । रामचरितमानसके अतिरिक्त इनके लिखे हुए और भी ११ ग्रन्थ प्रामाणिक माने गए हैं । सं० १६८० वि० में श्रावण कृष्ण तृतीया, शनिवारको काशीमें इनका देहान्त हुआ ।

तोमर : १—लोहेका डंडा ।

२—एक मात्रिक सम छंद । तोमर छन्दमें बारह मात्राएँ होती हैं और अंतके दो वर्ण गुरु-लघु (ऽ।) होते हैं ।

तूणीर : तरकश । पीठ या कमरपर बाँधा जानेवाला चोंगा जिसमें बाण रक्खे जाते हैं और जिसका मुँह दाएँ कंधेकी ओर उठा रहता है । इसमें बाणकी नोक नीचेकी ओर तथा पंख लगा हुआ भाग ऊपरकी ओर निकला रहता है, जिसे पकड़कर बाण खींच लिए जाते हैं जिन्हें धनुषकी डोर (प्रत्यञ्चा) पर चढ़ाकर दाहिने हाथके अंगूठे और तर्जनी उँगलीकी सहायतासे कानतक खींचकर छोड़ते हैं ।

तोरण : द्वारकी सजावट । मंगल अवसरोंपर अशोक तथा आम्रपल्लवोंमें गूँथकर द्वारपर टाँगते हैं । पहले मणियोंकी झालरोंके तोरण भी बाँधे जाते थे ।

त्रिकाल : भूत काल (जो समय बीत गया), वर्तमान काल (जो समय चल रहा है) और भविष्यत् काल (जो समय आगे आनेवाला है) ।

त्रिकालज्ञ : भूत, भविष्य, वर्तमानको जान सकनेवाला ।

त्रिकूट : इसके तीन उत्तुङ्ग शिखर होनेके कारण ही इसका नाम त्रिकूट पड़ा । इसी पर्वत-शिखरपर मय दानवने कुबेरके लिये लंका नगरी बनाई थी । कुबेरसे रावणने छीनकर वहाँ अपनी राजधानी बनाई । रामने रावणको मारकर विभीषणको वहीं लंकाका अधिपति बनाया ।

त्रिजटा : (लंकाकी एक राक्षसी) यह विभीषणकी बहिन थी और अशोक-वाटिकामें जानकीकी रखवालीके लिये नियुक्त की गई थी । यह सीताको सान्त्वना देती रहती थी ।

त्रिपथगा : त्रिपथगामिनी गंगा ।
१—वियद्गंगा (अलकनन्दा) जो स्वर्गलोकमें है ।
२—भागीरथी गंगा जो मृत्युलोकमें है ।
३—पाताल-गंगा जो पाताल लोकमें है ?

त्रिपुर : (त्रिपुरासुर) तारकासुरके तीन पुत्रों (तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली)-ने कठोर तपस्या करके ब्रह्मासे वर माँगा कि कोई प्राणी हमें मार न सके । पर ब्रह्माने जब यह वर देना स्वीकार नहीं किया तब इन्होंने वर माँगा कि हम तीनों तीन पुरोंमें रहें और जनसमाज हमारी पूजा करे । एक हजार वर्ष बाद जब हम तीनों एक साथ मिल जावें तब जो कोई तीनों पुरोंको एक ही बाणसे समाप्त कर दे उसीके हाथसे हमारी मृत्यु हो । ब्रह्माने 'तथास्तु' कहा । तीनोंके लिये मय दानवने स्वर्गमें काञ्चनमय, अन्तरिक्षमें रजतमय और मर्त्यलोकमें लौहमय—तीन पुरोंका निर्माण किया । तारकाक्ष कांचनमय पुरीका, कमलाक्ष रजत-मय पुरीका और विद्युन्माली लौहमय पुरीका अधीश्वर हुआ । जब ये देवताओंको कष्ट देने लगे, तब महादेवने तीनों पुरोंपर ऐसा बाण छोड़ा कि उसी क्षण वे भूतलपर गिर पड़े । इस प्रकार तारकासुरके तीनों पुत्रों (त्रिपुर)-को महादेवने मार डाला और उनका नाम त्रिपुरारि पड़ गया ।

त्रिपुरारि : देखो त्रिपुर ।

त्रिविक्रम : (वामनावतार विष्णु) शाहाबाद जिलेके बक्सर स्थानपर भाद्र शुक्ल १२ को वामन अवतार हुआ था । इस तिथिको वामन द्वादशी कहते हैं । बलि वैरोचनसे तीन

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पैर भूमि माँगनेपर वामन-रूप विष्णुने बढ़कर दो पगसे पृथ्वी और आकाश नाप लिया तथा एक पगसे बलिको नापकर उसे परिवार-सहित सुतलमें भेज दिया। केरलमें विश्वास है कि श्रावणमें दस दिनके लिये अपनी प्रजाका कुशल-मंगल लेने महाबलि आया करते हैं। उन दिनों वहाँ ओणम् नामका उत्सव मनाया जाता है।

त्रिशंकु : राजा त्रिशंकुने सशरीर स्वर्ग जानेकी कामनासे अपने गुरु वशिष्ठसे यज्ञ करनेको कहा। परन्तु वशिष्ठने और उनके पुत्रोंने स्वीकार नहीं किया। जब वह अधिक हठ करने लगा तब वशिष्ठके पुत्रोंने इसे शाप दे दिया कि तुम चाण्डाल हो जाओ। ऋषिके शापसे यह चाण्डाल हो गया। तब यह विश्वामित्रकी शरणमें गया। विश्वामित्रने उसे सदेह स्वर्ग भेजनेके लिये यज्ञका आयोजन करके वशिष्ठके पुत्रोंको बुलवाया। परन्तु वे नहीं आए। यह सुनकर विश्वामित्रने उन्हें शाप दिया कि 'वशिष्ठके पुत्र मांसाहारी भंगीकी योनिमें जन्म-लेकर सात सौ वर्षोंतक भटकते रहेंगे।' विश्वामित्रने यज्ञ प्रारंभ करके देवताओंको हवि दिया तो कोई देवता नहीं आया। विश्वामित्रने अपने तपोबलसे त्रिशंकुको सशरीर स्वर्ग भेज दिया तो स्वर्गसे इन्द्रने उसे ढकेल दिया। फिर भी विश्वामित्रकी आज्ञासे वे बीचमें ही नक्षत्र बनकर लटके रह गए।

त्रिशिरा : दूषण राक्षसका अमात्य, जो रामके हाथसे मारा गया।

त्रिशूल : वह अस्त्र जिसमें आगे तीन नोकदार पैने लोहेके काँटे लगे होते हैं।

त्रेता : सत्ययुगके पश्चात्का युग। इसी युगमें रामावतार हुआ था। यह युग ३००० देव वर्ष या १२९६००० मानव वर्षका होता है।

दक्ष प्रजापति : ब्रह्माके अँगूठेसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुआ। स्वायंभुव मनुकी कन्या प्रसूति इसकी पत्नी थी। इससे दक्षके १६ कन्याएँ हुईं। सबसे कनिष्ठ कन्या सतीका विवाह शंकरसे हुआ था।

दक्षकुमारी : (दच्छकुमारी सती)—दक्ष एवं प्रसूतिकी कन्या सतीका विवाह शंकरसे हुआ था। जब दक्ष प्रजापतिने यज्ञमें शंकरको निमंत्रित नहीं किया और सतीने यज्ञ-स्थलमें शंकरका भाग नहीं देखा तो उन्होंने योगाग्निसे शरीर छोड़ दिया (वे अग्निकुण्डमें कूदकर भस्म हो गईं)। यह देखकर शिवके गणोंने यज्ञ विध्वंस कर दिया।

दंडपाणि : (दंडपाणि भैरव) १. काशीमें विश्वनाथ मंदिरके पश्चिमवाली गलीमें दंडपाणि महादेवका मंदिर है। इन्हें विश्वनाथका द्वारपाल कहते हैं।

२. मत्स्यपुराण तथा भागवतके मतसे यह वहीनरका पुत्र एवं वायु पुराणके मतसे मेधवीका पुत्र बताया गया है।

दंडक-वन : (दंडकारण्य)—विन्ध्य पर्वतके दक्षिणसे गोदावरीके किनारे-तकके वनको दंडकवन या दण्डकारण्य कहते हैं। इस वनमें दंडक (लाठी बनानेके ठोस बाँस) होते हैं।

दधिमुख : रामकी सेनाका विशिष्ट वानर।

दधीचि : महान् तत्ववेत्ता ऋषि थे। इन्हें दध्यञ्च आथवर्ण भी कहते हैं। देवासुर-संग्रामके समय इन्होंने गौसे शरीर चटवाकर अपनी हड्डियाँ वज्र बनानेके लिये इन्द्रको दे दी थीं। इस त्यागके कारण इन्हें 'त्यागमूर्ति' भी कहते हैं।

दनुज : कश्यप और दनुकी सन्तति दानव (दनुज) कहलाई।

दानव : देखो दनुज।

दया : किसीका दुःख देखकर दुखी हो उठना और उसका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करना।

दशरथ : (दसरथ)—इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न सूर्यवंशी राजा अजके पुत्र दशरथ कोशलके बड़े प्रतापी, धर्मनिष्ठ राजा थे। अयोध्या इनकी राजधानी थी। कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी इनकी तीन प्रमुख रानियाँ थीं और ७०० सामान्य रानियाँ थीं। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इनके चार पुत्र थे। कैकेयीने अपने पुत्रको राज्य दिलानेके लोभसे दशरथको प्रेरित करके रामको वनवास दिलाया। रामके शोकमें विह्वल होकर दशरथने प्राण त्याग दिया। ये इतने प्रतापी थे कि इनका रथ दसों दिशाओंमें जा सकता था।

दहेज : (सं० यौतुक) विवाहके समय कन्याका पिता कन्यादानके समय अपने जामाता-को जो कुछ वस्त्र, आभूषण, भूमि, धन आदि अर्पण करता है उसे 'दहेज' या दाइज कहते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दादुर : (सं० दर्दुर) मेंढक।

दारु-योषित : (दारु-योषिता, शाल-भंजिका) कठपुतली।

दावाग्नि : अग्नि पाँच प्रकारकी मानी गई है—१. भौमाग्नि, जो भौतिक पदार्थोंसे उत्पन्न होती है। २. जठराग्नि, जो हृदय और नाभिके बीचसे उत्पन्न होकर क्षुधा उत्पन्न करके भोजन पचाती है। ३. दावाग्नि, जो जंगलोंमें पेड़ोंकी रगड़से पैदा हो जाती है। ४. बाडवाग्नि, जो समुद्रमें उत्पन्न होती है। ५. दिव्याग्नि, जो आकाशसे बिजलीके रूपमें प्रकट होती है। ऋग्वेदका प्रादुर्भाव अग्निसे ही माना गया है।

दिक्पाल : दस दिशाओंके स्वामी। पूर्वके इन्द्र, आग्नेयके अग्नि, दक्षिणके यम, नैर्ऋत्यके निर्ऋति, पश्चिमके वरुण, वायव्यके मरुत्, उत्तरके कुबेर, ईशानके ईश्वर (शिव), ऊर्ध्वके ब्रह्मा, अधोदिशाके अनन्त।

दिगम्बर : (दिक्+अम्बर) दिशाएँ ही हैं अम्बर (वस्त्र) जिसके। वस्त्रहीन, नग्न (शिव, सनक, सनन्दन, सतातन, सनत्कुमार)।

दिग्गज : आठ दिशाओंके रक्षक आठ हाथी जो पृथ्वीको सँभाले रखते हैं—पूर्वमें ऐरावत, आग्नेय (पूर्व-दक्षिण)-में पुंडरीक, दक्षिणमें वामन, नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) में कुमुद, पश्चिममें अंजन, वायव्य (पश्चिम-उत्तर)-में पुष्पदन्त, उत्तरमें सार्वभौम, ईशान (उत्तर-पूर्व)-में सुप्रतीक।

दिति : ये प्रचेता नामक दक्ष प्रजापतिकी कन्या और कश्यपकी पत्नी थीं। इन्हींकी सन्तति दैत्य कहलाई।

दिनकर-कन्या : (यमुना नदी) सूर्यकी पुत्री तथा यमकी बहन मानी जाती है। यह नदी हिमालयमें यमुनोत्रीसे निकलकर गंगाके समानान्तर बहती हुई प्रयागमें गंगामें मिल जाती है जहाँ यमुनाका श्याम और गंगाका श्वेत जल स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

दिशिकुंजर : देखो दिग्गज।

दिशिराज : (दिगपाल) देखो दिक्पाल।

दीनता : दैन्य। अपनेको अपने स्वामी या इष्टदेवके सम्मुख अत्यन्त तुच्छ, नगण्य, असमर्थ समझना।

दुन्दुभि : (एक राक्षस) मयासुरका पुत्र। कठिन तपस्या करके इसने एक हजार हाथीका बल पाया था। इसने महिष (भैंसे) का रूप धारण करके समुद्रको युद्धके लिये ललकारा। समुद्रने इसे हिमालयके पास भेज दिया। हिमालयने इसे बालि (वानर)-के पास भेजा। बालिसे युद्धमें पराजित होकर वह एक गुफामें जा छिपा। वहाँ जाकर बालिने इसका वध किया। इसके मृत शरीरको बालिने दूर उठा फेंका तो वह मतंग ऋषिके आश्रममें ऋष्यमूक पर्वतपर जा गिरा। ऋषिने शाप दिया कि मेरे आश्रममें आते ही तेरी मृत्यु हो जायगी। ईसीसे बालि वहाँ नहीं जाता था।

दुर्मुख : रामकी सेनाका वानर।

दुर्योधन : धृतराष्ट्र तथा गांधारीके सौ पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठ पुत्र। यह बड़ा विद्वान्, शूर, शस्त्रास्त्र-विद्यामें निष्णात और गदायुद्धमें प्रवीण था किन्तु बड़ा क्रूर, द्वेषी और दुष्ट था। पाण्डवोंको इसने बहुत कष्ट दिया। पाण्डवोंकी सम्पत्ति हरण करनेके लिये इसने द्यूतविद्यामें निपुण अपने मामा शकुनिको उभाड़ा और उसकी सहायतासे पाण्डवोंका सर्वस्व अपहरण करके १२ वर्षके लिये वनवास तथा १ वर्षके लिए अज्ञातवास दिलाया। इसे जलस्तम्भ (जलमें डूबे रहनेकी) विद्या आती थी। महाभारतके युद्धमें हारकर यह सरोवरमें जा छिपा। भीमके ललकारनेपर यह बाहर निकला और अन्तमें भीमके हाथ मारा गया।

दुर्वासा : ये अत्रि तथा अनसूयाके तीन पुत्रोंमेंसे एक थे। पुत्र-प्राप्तिके लिये अत्रिने ऋक्षकुल पर्वतपर कठिन तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आए। ब्रह्मा तो सोमके रूपमें, विष्णु भी दत्तके रूपमें एवं शंकर भी दुर्वासाके रूपमें इनके पुत्र हुए।

दुःशासन : धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक। दुर्योधनका छोटा भाई। यह परम नीच प्रकृतिका था। इसीने भरी राजसभामें द्रौपदीका चीर खींचकर उसे नग्न करनेका प्रयास किया था परन्तु कृष्णकी कृपासे वह अपमानित होनेसे बच गई। महाभारतके युद्धमें भीमने उसे पछाड़ मारा था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

दूषण : खर राक्षसका भाई। इसके दो और भाई वज्रवेग तथा प्रमाथी नामके थे। रामने खरके साथ इसका भी वध किया था।

देव : प्राचीन वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थोंमें वर्णित देव, असुर, राक्षस, पितर आदि मानव जाति-संघोंमेंसे एक। ये स्वर्गलोकके निवासी कहे जाते हैं। ये पृथ्वीसे ऊपर उठे रहते हैं और पलक नहीं गिराते।

देवकी : कंसके चाचा देवककी कन्या, यदुवंशी वसुदेवकी पत्नी तथा कृष्णकी माता थी। इसके विवाहके समय आकाशवाणी हुई कि इसके आठवें पुत्रसे मथुराके राजा कंसका वध होगा। इसके आठवें पुत्र कृष्णने कंसका वध किया था।

देवता : (तैंतीस कोटि) तैंतीस कोटिका अर्थ तैंतीस करोड़ नहीं, ३३ श्रेष्ठ देवता हैं जिनमें ८ वसु (धर, ध्रुव, सोम, अह या आय, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास), ११ रुद्र (अज, एकपाद, अहिब्रघ्न, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शंभु, हर, ईश्वर), १२ आदित्य (विवस्वान्, अर्यमान्, पूषा, त्वष्टा, सविता, भृगु, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र, उपक्रम), इन्द्र और प्रजापति। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणमें ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति और वषट्कारको मिलाकर ३३ सोमप (सोम पीनेवाले) देवता और ११ प्रयाग, ११ अनुयाग और ११ उपयाग देवताओंको असोमप (सोमरस न पीनेवाले) देवता बताया गया है। पद्मपुराणके उत्तर खंडमें बताया गया है कि देवता, उनकी स्त्रियाँ और गण मिलाकर तैंतीस कोटि हैं।

देवहूति : यह स्वायंभुव मनुकी कन्या एवं कर्दम प्रजापतिकी पत्नी थीं। इनके नौ कन्याएँ और एक पुत्र कपिल थे जिन्होंने सांख्य-शास्त्र रचा। ये शरीर छोड़कर नदी हो गईं।

दूधकी मक्खी : (सर्वथा त्याज्य) दूध-जैसे उत्तम पदार्थमें मक्खी पड़ जानेसे वह त्याज्य समझी जाकर निकालकर फेंक दी जाती है वैसे ही इस शब्दका लक्ष्यार्थ है सर्वथा त्याज्य।

देवापगा : गंगा। (देव + अप + गा)।

दोष : (काव्यगत) १—पद-दोष, २—पदांश-दोष, ३—वाक्य-दोष, ४—अर्थ-दोष एवं ५—रस-दोष। ऐसे ४९ दोष जयदेवने अपने चन्द्रालोकमें गिनाए हैं।

दोहा : मात्रिक अर्द्धसम छन्द, जिसके सम चरणोंमें १३-१३ तथा विषम चरणोंमें ११-११ मात्राएँ होती हैं।

दोहा दीरघ अरथके, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं।

(दोहेके थोड़े अक्षरोंमें बहुत भाव भरा होता है जैसे कि बेंतकी कुण्डलीमेंसे नट सिमट-कर पूरा कूद निकलता है)।

द्रुपद-तनया : द्रौपदी, पांचाल देशके सुविख्यात राजा द्रुपदकी पुत्री थी। इसके स्वयंवरमें द्रुपदका यह प्रण था कि जलकी छायामें मत्स्यका बिम्ब देखकर उसे एक ही बाणसे विद्ध करनेवालेको द्रौपदी दी जायगी। अर्जुनने उसी प्रतिज्ञानुसार मत्स्यको एक बाणसे बेधा और वह द्रौपदीको ले आया।

द्रोणाचल : (द्रोनाचल) आधुनिक देहरादूनकी पहाड़ीको ही द्रोणाचल मानते हैं।

द्रोणाचार्य : (द्रोन) महाभारत-कालीन सुविख्यात अस्त्र-शस्त्र-शास्त्री। ये कौरव एवं पाण्डवोंके गुरु तथा आंगिरस-गोत्रीय भरद्वाज ऋषिके पुत्र थे। आंगिरस-गोत्रीय कृपाचार्यकी बहिन कृपी इनकी पत्नी थी। उससे इन्हें अश्वत्थामा नामका पुत्र हुआ। महाभारतके युद्धमें द्रोणाचार्य, कौरवोंके सेनापति थे। जब ये युधिष्ठिरके मुँहसे 'अश्वत्थामा मृतः, नरो वा कुंजरो वा'का प्रथम अंश सुनकर शस्त्र छोड़कर बैठ गए तब धृतराष्ट्रने इनका गला काट लिया।

द्वादशाक्षर मन्त्र : 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'।

द्विविद : रामकी सेनाका विशिष्ट वानर।

द्वीप : टापू। सप्त द्वीप— जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर। भारतवर्ष जम्बू द्वीप (एशिया)-में है।

धनद : (धनेश) देखो कुबेर।

धनुष-यज्ञ : वह समारोह, जिसमें धनुष उठाने, उसपर डोरी चढ़ाने और धनुषका प्रयोग करके पराक्रमका प्रदर्शन होनेवाला हो। पुराणों-में तीन धनुष-यज्ञ प्रसिद्ध हैं—१. जनकका धनुष-यज्ञ

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

जिसमें यह प्रण था कि जो शिवका धनुष झुकाकर (तोड़कर) उसपर डोरी चढ़ा देगा उसीसे सीताका विवाह होगा। दूसरा धनुषयज्ञ कंस करनेवाला था। उसमें कोई प्रण नहीं था। वह केवल पराक्रम–प्रदर्शनके लिये था। कृष्णने वह धनुष तोड़ डाला था। तीसरा द्रुपदके यहाँ धनुषयज्ञ था जिसमें यह प्रण था कि ऊपर नाचती हुई मछलीको नीचे पानीमें देखकर जो वेध देगा उसका विवाह द्रौपदीसे कर दिया जायगा।

धर्म : प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य। दूसरेका हित करते रहना। अपने कर्तव्यका निष्ठाके साथ पालन करते रहना। मनुने धर्मके दस लक्षण बताए हैं—

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(धैर्य रखना, जो अपने साथ अपकार भी करे उसे क्षमा कर देना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, दूसरोंकी वस्तु न लेना, न चुराना, शरीर, मन, बुद्धि और आत्माको पवित्र रखना, बुद्धि विवेकसे काम लेना, सदा सत्य व्यवहार करना, कभी क्रोध न करना)। परहित सरिस धरम नहिं भाई। परोपकारः पुण्याय।

धर्मबुद्धि : चोलवंशी राजा। नास्तिकोंके मतसे यह दूसरे जन्ममें गैंडा बना। उस समय सुलोचनाने वीरवर नामक पुरुषका वेष धारण करके इसका वध किया था। गंगासागर-संगम-तीर्थमें मरनेके कारण इसका उद्धार हुआ।

धर्मरुचि : केकय देश (पंजाब)-के राजा प्रतापभानुका मंत्री।

धेनुमती : वर्तमान गोमती नदी जो हिमालयसे निकलकर काशीके पास गंगामें आ मिलती है।

धूम्र : रामकी सेनाके गद्गद नामक वानरका पुत्र।

धूम्रकेतु : धूमकेतु नामका पुच्छल तारा। इस तारेके पीछे एक बड़ी लम्बी चमकीली पूँछ होती है। कहते हैं कि जिस दिशामें इसकी पूँछ होती है, उस ओरके किसी राष्ट्रपर आपत्ति आ पड़ती है।

धैर्य : मनमें विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि) आनेका कारण उपस्थित होनेपर भी विचलित न होना। (विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न येतांसि त एव धीराः)।

ध्यान : सब ओरसे मन समेटकर एक ही ओर लगाना।

ध्रुव : राजा उत्तनपादकी रानी सुनीतिका पुत्र। बाल अवस्थामें इसने नारदके उपदेशसे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका जप करते हुए कठिन तपस्या की थी। उससे प्रसन्न होकर विष्णु भगवान्ने इसे आकाशमें (उत्तर दिशामें) ध्रुवपद (अटल राज्य) दिया।

ध्वजा : (झंडा) वह डंडा, जिसके ऊपरी सिरेपर पताका लगी रहती है।

ध्वनि : (धुनि) १–काव्यका एक विशेष रूप। उसी काव्यमें ध्वनि मानी जाती है जिसके व्यंग्य अर्थमें चमत्कार हो, जिसके शब्दोंके सामान्य अर्थसे भिन्न कोई नया अर्थ निकलता हो।

२–चार प्रकारकी ध्वनियाँ : मंगल गान, वेद-ध्वनि, जय-ध्वनि और ब्राह्मणोंके आशीर्वादकी ध्वनि।

नंद : गोकुल एवं नंदगाँवका रहनेवाला गोपोंका सरदार। कृष्णका पालक पिता। इसकी पत्नी यशोदा थी। यह द्रोण नामक वसुके अंशसे उत्पन्न हुआ था।

नंदरानी : गोकुलके सरदार नंदकी पत्नी यशोदा, कृष्णका पालन करनेवाली।

नंदिग्राम : अयोध्यासे दक्षिण प्रायः १२ मीलपर यह आश्रम स्थित है। यहाँपर भरतने १४ वर्षतक रामनामका जप और तपस्या की थी तथा वहीं रहकर रामकी खड़ाऊँ राजगद्दीपर रखकर उसकी आज्ञासे अयोध्याका राज्य चलाया था।

नभगनाथ : (नभगेश) देखो गरुड।

नमुचि : इस प्रतापी दैत्यने तपस्या करके ब्रह्मासे वर ले लिया था कि 'मैं किसी अस्त्र-शस्त्र या किसी शुष्क या आर्द्र पदार्थसे न मरूँ।' जब देवासुर-संग्राममें देवता इससे त्रस्त हो गए तब इन्द्रने इसे समुद्रके फेनसे मारा। यह हिरण्यकशिपुका सेनापति था। स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा इसकी पत्नी थी।

नरक : यमपुरी। धर्मशास्त्रके अनुसार वह स्थान जहाँ पापियोंको अपने कृत्योंका फल

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

भोगनेके लिये जाना पड़ता है। ये नरक २८ हैं :—पापवास, तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकर-मुख, अंधकूप, कृमि-भोजन, सन्दंश, तप्तशूर्मि, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीची, अयःपान, दन्दशूक, अवटनिरोधन, क्षारकर्दम, रक्षोगण-भोजन, शूलप्रोत, पर्यावर्तन, सूचीमुख।

नर-नारायण : (नर-नारायन, कृष्ण और अर्जुनके लिये प्रयुक्त) अर्जुनको नर और कृष्णको नारायणका रूप कहते हैं। स्वायंभुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें भगवान् वासुदेवके चार अवतार हुए। उनके नाम क्रमशः नर, नारायण, हरि और कृष्ण थे। उनमें नर और नारायण ये बन्धु-द्वय पहले देवता रूपमें, पश्चात् ऋषि रूपमें एवं महाभारत कालमें अर्जुन और कृष्ण रूपमें अपने पराक्रम और क्षात्र तेजसे सुविख्यात हैं। नर-नारायणने बदरिकाश्रममें जाकर तपस्या की थी।

नरहरि : (नृसिंह) हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लादको किसी अन्य भगवान्पर विश्वास और निष्ठा करानेका निषेध करके हर तरहसे हार गया। एक दिन राजसभामें उसने पुत्रसे कहा कि यदि तेरा राम सर्वव्यापी है तो मैं इस खंभेपर खड्ग का प्रहार करता हूँ, वह इसमेंसे बाहर निकल आवे। उसने ज्योंही खड्गका प्रहार किया, त्यों ही वह खम्भा बीचसे फट गया और उसमेंसे नृसिंह रूप भगवान् प्रकट होगए। उन्होंने तत्काल हिरण्यकशिपुको पकड़कर अपनी जाँघपर लिटाकर उसे नखोंसे फाड़ डाला। यही भगवान्का नृसिंहावतार कहा जाता है। (देखो प्रह्लाद)

नल : विश्वकर्मा और घृताचीका वानर पुत्र था। एक ब्राह्मणको गंगामें शालग्राम विसर्जन करनेमें सहायताके कारण वर मिला था कि तुम जो पत्थर छू दोगे वह जलपर तैरने लगेगा। इसने समुद्रपर पत्थरसे पुल बाँधा था।

नव खंड : १—भरत, २—इलावृत, ३—किंपुरुष, ४—भद्र, ५—केतुमाल, ६—हरि, ७—हिरण्य, ८—रम्य और ९—कुश।

नव गुण : (नव गुन) यज्ञोपवीतके नौ गुण (धागे)—ओंकार, अग्नि, नाग, सोम, इन्द्र, प्रजापति, वायु, सूर्य और विश्वेदेव।

नवधा भक्ति : (नवधा भगति)—१. रामने शबरीको नौ प्रकारसे भक्ति करनेके ढंग बतलाए—१—सन्तोंका संग करना, २—भगवान्की कथा सुनना और सुनाना, ३—मान-रहित होकर गुरुके चरणोंकी सेवा करना, ४—निष्कपट भावसे भगवान्का गुणानुवाद करना, ५—दृढ विश्वासपूर्वक रामनाम जपना, ६—दम, शील, और वैराग्यपूर्वक सज्जनोचित धर्मका पालन करना, ७—सारा जगत् समान भावसे मुझमें (राममें) ओत-प्रोत है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) यह समझना, ८—जितना मिले उतनेमें ही सन्तोष करना और स्वप्नमें भी पराए दोष न देखना। ९—सरल भावसे सबसे छलरहित मिलना, केवल रामका भरोसा करना और न हर्षित ही होना न दैन्य ही दिखाना।

२—भागवतके अनुसार नवधा भक्ति—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(भगवान् विष्णुकी कथा सुनना, उनके नामका कीर्तन करना, उनकी पूजा करना, उन्हें प्रणाम करना, अपनेको उनका दास समझना, मित्र समझना और उनके हाथ अपनेको समर्पित कर देना।

नव निधि : पद्म, महापद्म, शंख, मकर कच्छप, मुकुंद, कुन्द, नील और खर्व।

नवरस : काव्यके अनुसार नौ रस—१ रति स्थायी भावसे शृंगार रस। २—हाससे हास्य रस। ३—शोकसे करुण रस। ४—उत्साहसे वीर रस। ५—भयसे भयानक रस। ६—क्रोधसे रौद्र रस। ७—आश्चर्यसे अद्भुत रस। ८—ग्लानिसे बीभत्स रस। ९—शम (शान्ति)-से शान्त रस। इनमें शृंगारको रसराज कहते हैं क्योंकि उसमें दो आलम्बन (नायक-नायिका), सबसे अधिक अनुभाव और संचारी भावोंका समावेश होता है।

नवसप्त : ९ + ७ = १६ (१६ प्रकार-के शृंगार)—उबटन लगाना, स्नान करना, वस्त्र-धारण करना, बाल सँवारना, नेत्रोंमें आँजन लगाना, सिन्दूर भरना, महावर लगाना, भालका तिलक बनाना, ठोडीपर तिल बनाना, मेंहदी रचना, सुगन्धित द्रव्योंका प्रयोग करना, आभूषण धारण करना, पुष्पहार पहनना, पान खाना, ओठ रँगना और दाँतों में मिस्सी लगाना।

नहुष : चन्द्रवंशी राजा आयुके पुत्र और पुरुरवाके पौत्र थे। ये बड़े प्रतापी चक्रवर्ती राजा

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

थे। जब वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्याके डरसे इन्द्र कमल-नालमें जा छिपा तब बृहस्पतिने नहुष-को ही इन्द्र बना दिया। नहुषने इन्द्राणीपर मोहित होकर उसे अपने पास बुलाना चाहा। इन्द्राणीने कहला भेजा कि आप सप्त ऋषियोंके कंधेपर पालकीपर चढ़कर आइए। पालकीपर चढ़कर इन्होंने सप्त ऋषियोंसे कहा–'सर्प-सर्प' (जल्दी चलो)। इसपर अगस्त्यने शाप दे दिया कि तुम सर्प हो जाओ। फिर इनके प्रार्थना करने-पर मुनिने कहा कि युधिष्ठिर तुम्हें शापसे मुक्त करेंगे। बहुत दिनोंतक ये सर्प होकर पड़े रहे। जब भीम इनकी पकड़में आए तब युधिष्ठिरने भीमको छुड़ानेके लिये इसको सर्पयोनिसे मुक्ति दी।

नाग : दक्षकी कन्या कद्रूको कश्यप ऋषिसे एक सहस्र सर्प उत्पन्न हुए। उन नागपुत्रोंमें निम्नांकित आठ (अष्टकुल) नाग मुख्य थे– अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कलिक।

नान्दीमुख श्राद्ध : (नन्दीमुख सराध) पुत्रोत्पत्ति होनेपर अथवा अन्य मङ्गल कार्योंपर पितरोंका जो श्राद्ध होता है उसे नान्दीमुख श्राद्ध कहते हैं। पुत्र-जन्मके समय नाल काटनेसे पहले यह श्राद्ध किया जाता है।

नामकरण : हिन्दू धर्मके अनुसार गर्भाधान-से मृत्यु हो जाने-तक कुल सोलह संस्कार माने गए हैं, जिनमें यह (नामकरण) पाँचवाँ संस्कार है। यह संस्कार जन्मके दसवें और कहीं बारहवें दिन होता है। उस दिन शिशुका नाम रक्खा जाता है।

नारद : ये ब्रह्माके मानस पुत्र, विष्णुके तृतीय अवतार, धर्मज्ञ, तत्त्वज्ञ, राजनीतिज्ञ और संगीतके आचार्य माने जाते हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माके कंठसे हुई है। ये देवर्षियोंमें प्रधान माने जाते हैं। इन्हें तीनों लोकोंमें आकाशमार्गसे चलनेकी शक्ति प्राप्त है। इनके शरीरपर श्वेत वस्त्र, कानोंमें सुवर्णका कुंडल, हाथमें महती नामकी वीणा और सिरपर कोमल चोटी है। दक्षके पुत्रोंको उन्होंने ऐसा उपदेश दिया कि वे विरक्त हो गए। इसपर दक्षने शाप दिया कि तुम सदा घूमते रहो, टिककर न बैठो। यह शापकी कथा विभिन्न पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे दी गई है। ये देवताओंके संदेशवाहक रहे हैं।

निगम : (देखो वेद)।

निधि : (देखो नवनिधि)।

निमि : इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने मिथिलाका विदेह-वंश चलाया। एक बार निमिने वशिष्ठसे यज्ञ करानेको कहा पर इन्द्रके यहाँ यज्ञ कराने जानेके कारण वे न आ सके। इसपर निमि अन्य ऋषियोंको बुलाकर यज्ञ कराने लगे। वशिष्ठने इसे अपना अपमान समझकर निमिको शाप दे दिया कि तू दीन होगा और तेरी मृत्यु होगी। निमिकी मृत्यु हो गई और उनका शरीर सुगंधित पदार्थोंमें रख दिया गया। यज्ञ समाप्त होनेपर ऋत्विजोंकी प्रार्थनापर देवताओंने निमिसे कहा– 'उठो, वर माँगो।' निमिने कहा—'मेरी इच्छा है कि मैं सब मनुष्योंकी आँखोंपर रहा करूँ।' तबसे वे मनुष्योंकी पलकोंपर रहते हैं। इसके पश्चात् निमि मर गए। मुनियोंने उनकी देह मथी तो मृत देहसे उत्पन्न होनेवाले बालकका नाम 'मिथि' रक्खा गया। उसीसे प्रदेशका नाम मिथिला और वंशका नाम जनक हो गया।

निमिराजः राजा जनक (सीरध्वज)। देखो निमि।

निमिष : क्षण, पल, जितनी देरमें पलक गिरे। देखो निमि।

नियम : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (कुछ न लेना)। कुछ लोग इसके साथ दया, क्षमा, दान, अकल्मषता (शुद्धता), मधुर व्यवहार, इन्द्रिय-दमन, ऋजुता (निष्कपटता), प्रीति और मृदुता भी सम्मिलित करते हैं। 'शरीर साधनापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः।' (शरीरकी साधनाके लिये जो नित्य कर्म करना आवश्यक है उसे यम कहते हैं)।

निर्गुण ब्रह्म : (निर्गुन ब्रह्म) निराकार, निर्विकार, अव्यक्त, एक, निरंजन, त्रिगुणातीत परब्रह्म।

निशठ : रामकी सेनाका विशेष वानर।

निशान : राजाकी सवारी या सेनाके आगे-आगे ऊँटपर बजाया जानेवाला नगाड़ा। यह विजय और प्रतापका सूचक होता है।

निशुंभ : यह विष्णुके कानकी मैलसे उत्पन्न शुम्भ दैत्यका भाई और जालंधरका सेना-पति था। इन्द्रकी अमरावती जीतनेके बाद जालंधरने इसे युवराज-पद देना चाहा था। चंडिकाने इसका वध किया।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

नील : १. (वानर) रामकी सेनाका वानर जो नलका भाई था और जिसने समुद्रपर पुल बनानेमें नलकी सहायता की थी। (देखो नल)। २. निषधदेशका राजा, दमयन्तीका पति।

नीलकंठ : समुद्र-मंथनके समय इन्होंने समुद्रसे निकला हुआ कालकूट (विष) पी लिया था, इसीसे इनका नाम नीलकंठ पड़ा। (देखो महादेव)।

नृग : यह सत्ययुगमें बड़ा दानी राजा हो गया है। यह प्रतिदिन एक करोड़ गौएँ दान किया करता था। एक दिन एक ब्राह्मणको दान दी हुई गाय भूलकर इसकी गायोंमें आ मिली। राजाने अपनी अन्य गायोंके साथ इसे भी दूसरे ब्राह्मणको दे दिया। जब पहले ब्राह्मणने अपनी गाय खोजते हुए इस ब्राह्मणके घरमें अपनी गाय पहचानी और उसके प्राप्त होनेका समाचार जाना तब उसने राजाको शाप दे दिया कि तुम गिरगिट हो जाओ। तब राजा गिरगिट होकर एक सहस्र वर्षतक द्वारकापुरीके एक कुएँमें पड़ा रहा। श्रीकृष्णने इसे कुएँसे निकाला। फिर यह शापसे मुक्त होकर दिव्य शरीर धारण करके वैकुण्ठ धाम चला गया।

नैमिष : (नैमिषारण्य)–अवधका प्राचीन वन। हिन्दुओंका तीर्थ-स्थान। यह हिमालयके सीतापुर जिलेमें पड़ता है। इसे आजकल मिसरिख कहते हैं।

न्योछावर : १—किसीके ऊपरसे घुमाकर कोई द्रव्य या वस्तु किसीको उपहार रूपमें देना कि उसका सब अनिष्ट दूर हो जाय।

२–नेग। किसी उत्सव या मंगलकार्यमें समाज-द्वारा निश्चित मात्रामें द्रव्य आदि बाँटना।

पंचक्रोशी : (पँचकोसी)–समस्त काशीपुरी की २५ कोसकी परिक्रमा पाँच दिनोंमें करनेको ही पंचक्रोशी यात्रा कहते हैं। इस यात्रामें पाँच स्थानोंपर टिकाव होता है—कर्दमेश्वर (कँदवा), भीमचंडी, रामेश्वर, शिवपुर और कपिलधारा।

पंचनद : (पंचगंगा) काशीका प्रसिद्ध घाट। गंगाके साथ यमुना और सरस्वती प्रयागमें मिलकर काशीमें आती हैं। यहाँपर यमघाटके निकट कीर्णा और धूतपापा नदियोंके दो सोते नीचेसे आकर नदीकी धारामें मिलते हैं। इन्हीं पाँच धाराओंका मिश्रित नाम पंचनद या पंचगंगा है।

पंचवटी : पीपल, बेल, बट, आँवला, अशोक–इन पाँचों वृक्षोंको क्रमशः पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ईशानमें स्थापित करनेसे पंचवटी बनती है। यह स्थान महाराष्ट्रके नासिक जिलेमें है। यहींपर लक्ष्मणने शूर्पणखाके नाक-कान काटे थे तथा रामने खर, दूषण, त्रिशिरा और उनके १४ हजार योद्धाओंको मारा था।

पंचाक्षरी : (पंचाच्छरी)–'नमः शिवाय' या 'रामाय नमः'।

पताका : किसी ध्वजके ऊपरी सिरेपर फहराता हुआ चौकोर या तिकोना कपड़ेका झंडा जिसपर किसी राजा या राष्ट्रका चिह्न बना रहता है, जैसे भारतकी तिरंगी पताका।

पदिक : हारके नीचे बीचमें लटकनेवाला आभूषण 'चौका' (जुगनी, टिकड़ी)। यह रत्नों आदिसे जड़ा हुआ चौकोर या अन्य आकारोंवाला होता है।

पन : (प्रण) प्रतिज्ञा। कोई कार्य करनेके लिये कोई निश्चय ठान लेना, जैसे राजा जनकने प्रण किया था कि जो शिवका पिनाक झुकाकर उसपर डोरी चढ़ा देगा (तोड़ेगा) उसीके साथ सीताका विवाह होगा।

पंपासर : दक्षिण भारतमें पंपा नामकी एक झील। वेल्लारि जिलेमें तुंगभद्रा नदीके दक्षिण तटपर पंपासर नामका जलाशय।

परमानन्द : आनन्दका अर्थ है मनमें किसी प्रकारका दुःख न होना। यह आनन्द ढाई प्रकारका होता है—१. ब्रह्मानन्द या ब्रह्मके ज्ञानसे आनंद या परमानन्द। शाश्वत आनन्द। २. काव्यके पठन, श्रवणका आनन्द या 'काव्यानंद'। इसे ब्रह्मानंदका सहोदर कहते हैं। २॥. आधा या क्षणिक आनन्द वह है जो इन्द्रियोंके क्षणिक सुखसे प्राप्त होता है (विषयानन्द)।

परलोक : मृत्युके पश्चात् जिस लोकमें आत्मा पहुँचे।

परशुराम : जमदग्नि और रेणुकाके पुत्र। ब्राह्मण होते हुए भी ये क्षत्रिय स्वभावके थे, इसीसे ये धनुष, बाण और कुठार लिए रहते थे। एक बार सहस्रबाहुने इनके पिताको मारकर उनसे उनकी कामधेनु छीन ली थी। इसपर रेणुकाने दुःखित होकर २१ बार अपनी छाती

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

पाटी। इसीपर परशुरामने २१ बार पृथ्वीके क्षत्रियोंको खोज-खोजकर मारा और उनकी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको बाँट दी। रामका अवतार होनेपर इन्होंने विष्णुका दिया हुआ शार्ङ्ग धनुष रामको दे दिया और सह्याद्रिपर तपस्या करने चले गए। इन्होंने कुठार फेंककर समुद्रकी जो भूमि ले ली थी वही केरल है।

पराग : फूलोंके केशर (ज़ीरे)-के ऊपर फैली हुई पीली या हलकी भूरी फूलकी धूल।

परिघ : मूसल।

परिजन : आश्रित जन; जैसे, घरमें लगे हुए धोबी, नाई, बारी, मजदूर-मजदूरनी, दरजी, बारी, कहार आदि।

परीक्षित् : अर्जुनका पौत्र एवं अभिमन्यु और उत्तराका पुत्र। एक बार शिकार खेलते हुए उसने देखा कि एक काला-सा पुरुष एक गाय और बैलको खदेड़ रहा है। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि यह कलियुग है और पृथ्वी तथा धर्म दोनों गाय और बैलका रूप धारण करके भाग रहे हैं। राजाने जब कलिको मारनेके लिये खड्ग निकाला तब कलि आकर राजाके चरणोंपर गिर पड़ा और अपने रहनेका स्थान पूछने लगा। तब राजाने उसे जुआ, मद्य, व्यभिचार (वेश्यालय), हिंसा और स्वर्णमें रहनेकी आज्ञा दे दी। वह झट राजाके स्वर्णमुकुटमें जा बैठा। कलिके प्रभावसे वे प्यासके मारे जब शमीक मुनिके आश्रममें चले गए और वहाँ बहुत पुकारनेपर भी ऋषिकी समाधि नहीं टूटी, तब राजाने पासमें पड़ा एक मृत सर्प ऋषिके गलेमें डाल दिया। जब ऋषिके पुत्र शृंगीने आकर यह देखा तो उसने शाप दे दिया कि आजके सातवें दिन तक्षक सर्पके काटनेसे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। तब राजाने सात दिनों-तक श्रीमद्भागवतका सप्ताह पाठ सुना और सातवें दिन तक्षकके काटने-पर स्वर्ग चले गए।

परिछन : (परीक्षण) जिस समय 'वर' पालकीपर सवार होकर जानेके होता है तब घरकी बड़ी-बूढ़ी (प्रायः माता) सिल-बट्टा या मूसल उसके चारों ओर घुमाती और सवारीके नीचे-ऊपर झाँककर देखती हैं। इसका अभिप्राय यह जानना होता है कि सवारी ठीक है या नहीं और वर ठीकसे सावधान होकर सवारीपर जाता है या नहीं।

पाक-रिपु : (पाकारि, पाकशासन) पाक नामक राक्षसको मारनेवाले इन्द्र।

पाखण्डी : देव, ऋषि और पितरोंके पूजन-का जो खण्डन करता हो। ढोंगी, धार्मिक प्रदर्शन मात्र करनेवाला व्यक्ति। दिखावेके लिये काम करनेवाला व्यक्ति।

पाणि-ग्रहण : विवाहके समय कन्याका पिता अपनी पुत्रीका हाथ पकड़कर वरके हाथपर रख देता है और वर उसका हाथ पकड़कर अपनी दाहिनी ओर बैठाता है। इसी क्रियाको पाणिग्रहण कहते हैं।

पाण्डव : हस्तिनापुरके राजा पांडुके पुत्र। कुन्तीसे युधिष्ठिर अर्जुन, और भीम तथा माद्रीसे नकुल और सहदेव हुए थे।

पाताल : नीचेके सात लोकोंमेंसे अंतिम सातवाँ लोक। भूलोकसे नीचेके सात लोक—(१) तल, (२) अतल, (३) वितल, (४) सुतल, (५) तलातल, (६) रसातल और (७) पाताल।

पातिव्रत-धर्म : अपने पतिको ही सर्वस्व मानना और अन्य सब पुरुषोंको पिता, पुत्र या भाई मानना और किसी पर-पुरुषसे सम्पर्क न रखना।

पाँवड़े : अतिथि, प्रिय या आदरणीय व्यक्तिके स्वागतमें जो कपड़े (पाँवपोश) बिछा दिए जाते हैं, उसे ही 'पाँवड़े' कहते हैं।

पाप : वे काम जिनसे दूसरोंको कष्ट हो। (पापाय परपीडनम्), पर-पीड़ा-सम नहिं अधमाई।

पारस : एक कल्पित पत्थर, जिसके स्पर्शसे लोहेका सुवर्ण हो जाना माना जाता है।

पितर : (१) मृत पूर्वज। (२) माता-पिता।

पिशाच : (पिसाच)=पिश्+अच्, कच्चा मांस खानेवाले। ये अपवित्र और गन्दी योनिवाले माने जाते हैं।

पिनाक : शिवका धनुष।

पिंगला : मिथिलाकी वेश्या। एक दिन वह शृङ्गार करके अपने प्रेमीकी प्रतीक्षामें आधी रात-तक बैठी रही। जब वह न आया तब उसे ध्यान आया कि इतना समय यदि भगवान्‌के ध्यानमें लगाती तो मेरा उद्धार हो जाता। उस दिनसे उसने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वेश्यावृत्ति छोड़ दी और भगवद्भजन करने लगी। भगवान्‌की कृपासे उसका उद्धार हो गया। इसने अवधूतको आत्मज्ञानका उपदेश दिया था। देखो गणिका भी।

पुण्य : (पुन्य) वे सब कर्म, जिनसे दूसरोंका कल्याण होता हो—परोपकारः पुण्याय।

पुत्रेष्टि यज्ञ : पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छासे किया हुआ यज्ञ। आश्वलायन श्रौतसूत्र (२।१०।८) में इसका पूरा विधान लिखा है। चरकके शारीर-स्थानके अष्टम अध्यायमें इसका विवरण दिया गया है।

पुरन्दर : पुर नामक राक्षसको मारनेवाला, इन्द्र।

पुराण : (अठारह पुराण)—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथाऽन्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्।
आग्नेयमष्टकं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशं तथा।
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कादं चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा।
मत्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डाष्टादशं तथा।

(ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड और ब्रह्माण्ड—ये ही अठारह पुराण हैं)।

पुरारि : (देखो त्रिपुर, त्रिपुरारि, शंकर, महादेव)।

पुरारिपुर : काशी।

पुरोहित : पुरः हितं करोति इति पुरोहितः। जो आगे (भविष्य)-के लिये हितकारी कार्य करता और बताता रहे, वही पुरोहित कहलाता है। यजमानके पापोंका भागी पुरोहितको भी होना पड़ता है।

पुष्पक : कुबेरका विमान, जो इच्छानुसार चलता था। रावणने यह विमान कुबेरसे छीन लिया था, फिर रावणका वध करनेके पश्चात् रामने इसे कुबेरके पास लौटा दिया था।

पूतना : राक्षसी, जो कंसकी बहिन और घटोदरकी पत्नी थी। श्रीकृष्णको मारनेके लिये इसे कंसने गोकुल भेजा था। तरुणी स्त्रीका रूप धारण करके अपने स्तनोंमें विष लगाकर श्रीकृष्णको मारनेके अभिप्रायसे यह नंदके घर गोकुल पहुँच गई। ज्यों ही इसने श्रीकृष्णको अपने स्तनसे लगाया त्यों ही श्रीकृष्णने उसके प्राण खींच लिए। वह वहीं तड़प-तड़पकर मर गई।

पुरुषार्थ : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

पुलस्त्य : ब्रह्माके आठ मानस पुत्रोंमेंसे एक शक्तिशाली महर्षि। स्वायंभुव मन्वन्तरमें ब्रह्माके उदान (वायु)-से उत्पन्न हुए थे। ये स्वायंभुव दक्षके दामाद तथा शंकरके साढ़ू थे। दक्ष-द्वारा अपमानित होनेपर शंकरने इसे भी दग्ध करके मार डाला। दक्षकी कन्या प्रीति इसकी पत्नी थी। पुलस्त्यको अपनी पत्नी इड़विड़ासे विश्रवा नामक पुत्र हुआ। विश्रवासे ही राक्षस वंशकी उत्पत्ति हुई जिनमें रावण और कुम्भकर्ण भी था। रावणकी माताका नाम कैकसी था। विश्रवाकी दूसरी पत्नी मालिनीसे विभीषण उत्पन्न हुआ।

पूजा : सम्मान करना किसी देवताकी पूजा अर्पित करनेकी सोलह रीतियाँ हैं, जिन्हें षोडशोपचार पूजन कहते हैं—

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमस्नानं वसनाभरणानि च॥
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा।

(आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा प्रार्थना)।

पृथुराज : अत्यन्त दुष्ट राजा वेनका बेटा पृथु पहला राजा था, जिसके नामपर भूमिका नाम पृथ्वी पड़ा। वेन स्वभावसे बड़ा दुष्ट और यज्ञ-पूजा आदिका विरोधी था इसलिये ऋषियोंने उसे मार डाला और उसकी दाहिनी भुजाको मथकर उससे अग्निके समान तेजस्वी पुत्र पृथु उत्पन्न करके उसे राजा घोषित कर दिया। पृथुने स्वायंभुव मनुको बछड़ा बनाकर (प्रेरणा देकर) गौ - रूपिणी पृथ्वीको दुहा (खेती कराई), जिससे अन्न, फल-फूल, शाक-भाजी आदि उत्पन्न हुए।

पृथ्वी : (पृथिवी) मर्त्यलोक, भूलोक। चौदह लोकोंमेंसे जो सात ऊपरके लोक हैं, उनमेंसे पहला लोक।

प्रणाम : सादर अभिवादन।

उरसा शिरसा दृष्टया मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

(हृदय, सिर, दृष्टि, मन, वाणी, पैर, हाथ और जानु जोड़कर जो अभिवादन किया जाता है उसे प्रणाम कहते हैं)।

प्रतापभानु : राजा सत्यकेतुका ज्येष्ठ पुत्र जो राज्यका अधिकारी, बड़ा पराक्रमी, धर्मात्मा, नीति-निधान और रणधीर था।

प्रबन्ध (काव्य) : जिस काव्यमें कथाका वर्णन हो।

प्रमथ : शिवका गण।

प्रयाग : देखो तीर्थराज।

प्रवर्षण : (प्रवरषन) किष्किन्धाके पासका एक पर्वत जिसपर रामने सुग्रीवसे मित्रता करनेके पश्चात् वर्षा ऋतुमें वास किया था।

प्रसव-पीर : बच्चा होते समय स्त्रीके उदरमें होनेवाली पीड़ा। अपान वायुके वेगसे ही गर्भसे बच्चा निकलता है।

प्रहस्त : रावणका पुत्र।

प्रह्लाद : (प्रहलाद) हिरण्यकशिपुका पुत्र जो बचपनसे ही रामका भक्त था। पिताके बार बार निषेध करनेपर तथा अनेक प्रकारकी यातना सहनेपर भी इसने रामका भजन नहीं छोड़ा। जब उसे आगमें झोंका गया तो उसने कहा—

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना। (राम नाम जपनेवालेको किसका डर पड़ा है। वह तो सब ताप मिटा डालनेवाली एक मात्र औषधि है। देखिए पिताजी! मेरे पासकी यह आग भी जल बनकर लहर ले रही है)।

प्राकृत कवि : प्राकृत या लोक-भाषामें काव्य रचना करनेवाले कवि, लोक-कवि।

प्राण : शरीरमें पाँच प्राण-वायु होते हैं—'प्राणापानोदानसमानव्यानाः, इति पञ्च प्राणाः।' १—प्राण-वायु, सिर छाती और कण्ठ-तक रहता है और बुद्धि, हृदय और चित्तको सँभालता है। २—अपान-वायु, गुदामें रहता है और कटि (कमर), बस्ति (मूत्राशय), लिंग और जाँघ-तक चलता है। मल, मूत्र, वीर्य, रज, आर्तव (स्त्रियोंका ऋतु-स्राव) और गर्भ आदि इसीके सहारे चलते हैं। ३—उदान-वायु, छातीमें रहता और नासिका, नाभि और गलेमें चलता है। भोजन करना, छींक, डकार और जँभाई इसीके कारण होती है। ४—समान-वायु, यह नाभिमें रहता है और कोष्ठमें रहकर अन्न ग्रहण करता, पकाता और विरेचन करता है। ५—व्यान-वायु, यह हृदयमें रहता और सारे शरीरमें व्याप्त रहता है। उपक्षेपण (ऊपर फेंकना), अपक्षेपण (नीचे गिराना) और निमेष (पलक गिराना) आदि इसीसे होते हैं। जब ये पाँचों वायु शरीरसे निकल जाते हैं तब प्राणान्त हो जाता है।

प्रियव्रत : स्वायंभुव मनु और शतरूपाके पुत्र थे जिन्होंने पृथ्वीपर सात द्वीपों तथा सात समुद्रोंका निर्माण किया। इनका पुत्र मेधातिथि शाकद्वीपका राजा था। प्रियव्रत अत्यन्त धर्मशील राजा और नारदका शिष्य था। इसने दस कोटि वर्षों-तक राज्य किया। उसने शाकद्वीपमें बड़ा भारी सूर्यका मन्दिर बनवाया, परन्तु उस द्वीपमें एक भी ब्राह्मण न होनेके कारण इसने सूर्यका आवाहन किया जिसकी कृपासे आठ ब्राह्मणोंका वहाँपर प्रादुर्भाव हुआ।

प्रेत : मृत्यु हो जानेपर प्रत्येक प्राणी प्रेत योनि प्राप्त करता है। मनुष्य तो प्रेत-पिण्डके बाद प्रेतयोनिसे मुक्त होकर पितर श्रेणीमें आ जाता है, किन्तु अन्य जीव अपने कर्मानुसार फल भोगकर यथासमय पितर श्रेणीमें आते और नहीं भी आते हैं।

फल : (चार) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जो चार पदार्थ या पुरुषार्थ भी कहलाते हैं।

फ़िरोजा : बहुत हलके हरे रंगका पत्थर, जिसे तराशकर नगीनेकी भाँति अँगूठी आदि गहनोंमें जड़ते हैं।

बक : बगलेके रूपवाला बकासुर नामक एक असुर जिसे कंसने कृष्णका वध करनेके लिये गोकुल भेजा था। वहाँ कृष्णने उसे मार डाला।

बगमेल : घुड़सवारोंका युद्ध।

बदरिकाश्रम : हिमालयमें हरिद्वारसे उत्तर १९२ मील (३०५ किलोमीटर) पर नर और नारायणने तपस्या की थी। उन्हींके कारण यह स्थान बदरिकाश्रम कहा जाता है।

बधावा : किसीके घर पुत्रोत्पन्न होनेपर या अन्य किसी मांगलिक अवसरपर गीत-वाद्यके साथ वस्त्रालंकार आदि उपहारकी वस्तुएँ उसके घर ले जाना।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बनमाला : घुटनों-तक लटकी हुई ऋतुके श्वेत फूलोंसे गूँथी हुई सुंदर माला जिसमें नीचे मोटा कदम्बका फूल लगा हो।

आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला।
मध्यस्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता॥

बनि : पारिश्रमिक, मजदूरी, मेहनताना।

बर्रै : पीले रंगका उड़नेवाला कीड़ा (ततैया) जिसकी पूँछमें डंक होता है। यह डंक मारता है तो बड़ी पीड़ा होती है। यह मधुमक्खीकी भाँति छत्ता बनाकर रहता है। यह अनायास काट लेता है। इसका काटा हुआ स्थान फूल जाता है और प्रायः दो तीन दिनों-तक बहुत पीडा देता है। जो इन्हें छेड़ता है उसके पीछे ये झुण्ड बाँधकर पड़ जाते हैं और बिना डंक मारे नहीं छोड़ते।

बलदाऊ : (बलराम) श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेव, जो वसुदेवकी पत्नी रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। वसुदेवकी प्रथम पत्नी देवकी तो गोकुलमें रहती थी। जब देवकीको सातवाँ गर्भ हुआ तब महामायाने उस गर्भको रोहिणीके उदर-में भेज दिया। इसी गर्भके संकर्षणके कारण उनका नाम 'संकर्षण' भी पड़ा। वे शेषावतार, हली, हलधर और शितिवास भी कहे जाते हैं। इनकी पत्नीका नाम रेवती था। गर्ग मुनिने इनका नामकरण किया था और उज्जयिनीके सान्दीपनि मुनि इनके गुरु थे। इन्होंने भीम और दुर्योधन दोनोंको गदा चलाना सिखाया था। इसलिये महाभारतके युद्धमें ये किसीकी ओरसे भी नहीं लड़े।

बलि : यह प्रह्लादका पौत्र, विरोचनका पुत्र, बड़ा विष्णु-भक्त और पातालका राजा था। अपनी दानशीलताके कारण उसे अभिमान हो गया था कि मेरे यहाँसे कोई भी याचक विमुख नहीं जा सकता। विष्णुने इसका अहंकार नष्ट करनेके लिये बौने ब्राह्मणका वेष बनाकर इसके पास जाकर तीन पग पृथ्वी माँगी। दान दे देनेपर वामनने दो पगमें ही पृथ्वी और आकाश नाप लिया और बलिकी पाताल भेजकर कहा—तुम पाताल लोकमें जाकर निवास करो। वहाँ मैं तुम्हारा द्वारपाल होकर रहूँगा। मेरा सुदर्शन चक्र सदैव तुम्हारी रक्षा करेगा। बलि भी चिर-जीवी माने जाते हैं।

बाजिमेध : (देखो अश्वमेध)।

बाण : (बान, बाणासुर) सुविख्यात असुर (दानव), जो राजा बलि और शोणितपुर (असम प्रदेश)-के राजाका पुत्र था। शिवका पार्षद होनेके कारण यह 'महाकाल' भी कहा जाता था। यह बड़ा शिव-भक्त था। इसने अनेक प्रकारसे शंकरको प्रसन्न करके वर प्राप्त किया था। इसकी पुत्री ऊषाका विवाह श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धसे हुआ था।

बायन : १. मंगल कार्य होनेपर मित्रों या सम्बन्धियोंके यहाँ भेजी जानेवाली मिठाई या उपहारकी वस्तु। २. बायन देना—'भले घर बायन दिया,' ऐसे शक्तिशालीसे पाला पड़ना जो ठीक कर दे।

बारी : घरमें लगे हुए परिजनों (सेवकों)-में वह व्यक्ति जो उत्सवों, ज्योनारों, आदिमें पत्तल-दोने आदि बनाकर देता है अथवा राजाओंको पान खिलाता है।

बालि : (वानर) बालि और सुग्रीव दोनों सगे भाई थे। ब्रह्माने इन दोनोंको किष्किधा-में राज्य करनेकी आज्ञा दी थी। बालि अपनी स्त्री ताराके साथ तथा सुग्रीव अपनी स्त्री रुमाके साथ वहाँ रहने लगे। एक दिन वहाँ दुन्दुभि नामक दैत्य आया जिससे लड़ता हुआ बालि पर्वतकी गुफामें जा घुसा। सुग्रीव भी पीछे पीछे गया और गुफाके बाहर बैठा रहा। जब उस खोहमेंसे रुधिरकी धारा बह निकली तब सुग्रीव-ने समझा कि बालि मारा गया और वह दैत्य मुझे भी आकर मारेगा। गुफाके द्वारपर पत्थर अड़ाकर वह किष्किधा चला आया और तारासे विवाह करके स्वयं किष्किधाका राजा बन बैठा। बालिने आकर सुग्रीवकी दोनों पत्नियों (तारा और रुमा) छीन लीं और उसे मार भगाया। सुग्रीव जाकर ऋष्यमूक पर्वतपर रहने लगा जहाँ मतंग ऋषिके शापके कारण बालि नहीं जा सकता था क्योंकि उसने दुंदुभिको मारकर उसका शव मतंगके आश्रममें उठा फेंका था। रामने सुग्रीवसे मित्रता करके बालिको मार डाला।

बीभत्स : घृणोत्पादक, दुर्गन्धियुक्त, जुगुप्सा-जनक। काव्यके नौ रसोंमेंसे एक रस।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

बीसी विश्वनाथकी : (रुद्र बीसी) ज्योतिषके अनुसार बीस-बीस वर्षोंकी एक-एक बीसी होती है। प्रथम 'ब्रह्मबीसी' में नये-नये निर्माण होते हैं। दूसरी 'बिष्णुबीसी' में सुरक्षा-सुव्यवस्था होती है तथा अंतिम 'रुद्रबीसी' में जनता अनेक आधि-व्याधियोंसे पीडित रहती है। तुलसीदासके अन्तिम समयमें (सं० १६६५ से १६८५) तक रुद्रबीसी चल रही थी।

बेल-पत्र : बेलके पत्ते। मधुमेहका रोगी, यदि बेलके पत्ते खावे तो मधुमेह दूर हो जाता है। शिवपर बेलके पत्ते चढ़ाए जाते हैं। तपस्या-कालमें पार्वतीने कुछ समय बेलपत्र खाकर बिताया और जब बेलपत्र खाना भी त्याग दिया तब उनका नाम अपर्णा (पत्ते भी न खानेवाली) पड़ गया।

बेसर : १– एक प्रकारका नाकका आभूषण, बुलाक। इसे स्त्रियाँ नाकमें पहनती हैं जो ओठके ऊपर बीचमें लटका रहता है।

२–खच्चर (देखो खच्चर)।

ब्रह्म : सत्त्व, रज और तम गुणोंसे परे, विशुद्ध, सत्, चित् और आनन्दस्वरूप, ज्ञानमय परमात्मा जो सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करता है। वही केवल सत्य और वही ब्रह्म है।

ब्रह्मचर्य : १. आठ प्रकारके मैथुनसे बचकर वीर्य-रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।

(स्त्रियोंका स्मरण, उनका वर्णन, उनके साथ खेलना, उनसे एकांतमें प्रेमालाप करना, उन्हें प्राप्त करनेका संकल्प करना, प्रयत्न करना और सहवास करना)।

२. गुरुकी सेवा करते हुए वेदका अध्ययन करना और ब्रह्मविद्या प्राप्त करना।

ब्रह्मा : सम्पूर्ण सृष्टिके कर्त्ता, धाता और विधाता आदिदेव ब्रह्मा ही हैं। पुराणोंके अनुसार भगवान् विष्णुकी नाभिसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। महाभारतके अनुसार जब सृष्टि-निर्माणके सम्बन्धमें भगवान् विष्णु विचार करने लगे उसी समय ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई।

ब्रह्माण्ड : सृष्टिके प्रारम्भमें सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था। उस समय एक विशाल प्रकाशमान अण्ड प्रकट हुआ जो सारी सृष्टिका अविनाशी बीज था। उसी दिव्य (हिरण्यगर्भ) अण्डमेंसे ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म अव्यक्त रूपसे प्रकट हुआ। उस अण्डसे ही प्रथम देहधारी प्रजापालक पितामह ब्रह्माका आविर्भाव हुआ।

ब्रह्मानन्द : निर्विकल्प समाधिकी अवस्थामें जो स्थायी आनन्द मिलता है उसे ब्रह्मानन्द, आत्मानन्द और परमानन्द कहते हैं।

ब्राह्मण : चार वर्णोंमेंसे पहला वर्ण अग्रजन्मा। परमात्मा ब्रह्मके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, जंघेसे वैश्य एवं पैरसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई। मनुस्मृतिके अनुसार—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते।
वेदाध्यायी भवेत् विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

(कोई भी मानव जन्मसे शूद्र, संस्कारोंसे द्विज, वेदाध्ययन करनेपर विप्र और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेपर ही ब्राह्मण होता है)। देखो वर्ण।

ब्याध : जरा नामका ब्याध, जिसने लेटे हुए कृष्णके लाल-लाल चरण देखकर हरिणके धोखेमें बाण मार दिया था। कृष्णने उसे परम धाम भेज दिया और फिर स्वयं भी स्वधाम चले गए।

भक्त : सेवक, पूजक, श्रद्धालु, अनुरक्त। जो आँख मूँदकर किसीको अपना पूज्य मान बैठता है और उसीको अपना सर्वस्व समझता है वह भक्त कहलाता है।

भक्ति : १. देखो नवधा भक्ति।

२. भक्ति शब्दका अर्थ है विश्वासपूर्वक किसीमें पूज्य भावनासे मन लगाना, उसका भजन, पूजन और उसकी आराधन करना। यह भक्ति दो प्रकारकी होती है—(१) सकाम, (२) निष्काम। जो भक्ति किसी कामनाकी पूर्तिके लिये की जाती है वह सकाम या हैतुकी भक्ति कहलाती है। ऐसी भक्ति स्वार्थपूर्ण होती है। जिस भक्तिमें अपना कोई स्वार्थ न हो, किसी प्रकारकी कामना न हो, वह निष्काम भक्ति है। आजके युगमें निष्काम भक्ति करनेवाला बिरला ही कोई है। प्रायः सभी सकाम भक्ति करनेवाले हैं।

भगवान् : जिसमें समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य भरे हों उसे भगवान् कहते हैं—

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

जो प्राणियोंकी उत्पत्ति, प्रलय, अगति (दुर्दशा), गति (सुदशा), विद्या और अविद्याको जानता हो उसे भगवान् कहते हैं—

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति॥

भगीरथ: सूर्य (इक्ष्वाकु)-वंशी राजा असमंजसके प्रपौत्र, अंशुमान्के पौत्र और दिलीपके पुत्र। कपिलके शापसे जब राजा सगरके साठ हजार पुत्र भस्म हो गए तब उनका उद्धार करनेके लिये राजा भगीरथ ही तप करके पृथ्वीपर गंगाको लाए। इसीसे गंगाका नाम भागीरथी भी है।

भगीरथ-नन्दिनी : गंगा। भगीरथने ही तप करके गंगाको ब्रह्मा और शिवसे प्राप्त किया था। इसलिये गंगाको भगीरथ-नन्दिनी कहते हैं। देखो गंगा।

भरत : दशरथके द्वितीय पुत्र, रामके छोटे भाई। इनकी माता कैकेयी थी। रामके वनवास होनेपर ये १४ वर्ष-पर्यन्त नन्दिग्राममें तपस्या करते रहे और अयोध्याका राज्य चलाते रहे।

भरत-कूप : जब रामको मनानेके लिये भरत चित्रकूट गए थे तब अपने साथ रामके राज्याभिषेकके लिये अनेक तीर्थोंका जल भी लेते गए थे। जब रामने लौटना अस्वीकार कर दिया तब अत्रिके कहनेपर वह जल चित्रकूटके पास एक कूपमें छोड़ दिया गया। वही भरत-कूप है।

भरत-पुत्र : भरतके दो पुत्र थे तक्ष और पुष्कल।

भरद्वाज : ये बृहस्पति अंगिरस और ममता-के पुत्र और वैशालीके रहनेवाले थे जहाँ मरुत् राजाओंका राज्य था। ये त्रेतायुगके प्रारम्भमें उत्पन्न हुए थे। वन जाते हुए प्रयागमें राम इनके आश्रममें गए थे।

भँवर : जलमें पड़ा हुआ जलका चक्र, जलावर्त। इस भँवरमें जो मनुष्य या नाव फँस जाती है वह उसीमें डूब जाती है।

भवसागर : सब प्रकारके प्रलोभनों, आकर्षणों और दुःखोंसे भरी हुई यह सृष्टि ही भवसागर है। इसमें एक बार जो फँस गया फिर उसका निकलना अति दुष्कर है।

भवानी : (पार्वती) भव (शिव)-की पत्नी पार्वती, जो हिमालयकी पुत्री थी।

भाँग : एक प्रकारका छोटा पौधा जिसकी पत्ती पीसकर पीनेसे मादकता होती है। यह पौधा बहराँइच और उसके आस-पास तथा हिमाचलकी तराईमें बहुत होता है। यह औषधिके प्रयोगमें भी आता है।

भाट : राजाओंके यहाँ उनके पूर्वजोंका गुण-कीर्तन करनेवाली एक जाति, जिसे भाट (भट्ट) या बंदीजन कहते हैं।

भाव : किसी वस्तुको देखकर, सुनकर, छूकर, सूँघकर या चखकर मनमें जो प्रतिक्रिया हो, या स्वतः कोई विचार उठता हो उसे भाव कहते हैं। यह दो प्रकारका होता है—(१) स्थायी भाव, (२) संचारी भाव। मनमें सदा बने रहनेवाले भावको स्थायी भाव कहते हैं जो नौ माने गए हैं—रति, हास, शोक, उत्साह, भय, क्रोध, ग्लानि (जुगुप्सा), आश्चर्य और शम (निर्वेद)। संचारी भाव निरंतर आते-जाते रहते हैं—निर्वेद, ग्लानि, शंका, गर्व, चिन्ता, मोह, विषाद, दैन्य, असूया, मृत्यु, मद, आलस्य, श्रम, उन्माद, अवहित्था (आकृति-गोपन), चपलता, अपस्मार, भय, व्रीडा, जडता, उग्रता, मति, हर्ष, आवेग, अमर्ष, विमर्श, वितर्क, स्मृति, उत्सुकता, धृति, निद्रा, प्रबोध और स्वप्न।

भावी : वह ईश्वरीय व्यवस्था जिसके अनुसार सृष्टिकी सब घटनाएँ निश्चित रूपसे होती रहती हैं।

भाषा : अपने मनकी बात दूसरोंको समझाने-के लिये जिस वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक निरुक्त वाणीका प्रयोग किया जाता है उसे भाषा कहते हैं।

भिंदिपाल : ढेलेको किसी रस्सीमें लपेटकर उसे घुमाकर फेंकते हैं। उसे ढेलवाँस या गोफी भी कहते हैं। इसकी चोट गोलीके समान लगती है।

भीम (भीमसेन) : पाँडुके पांच पुत्रोंमें-से तीसरे। ये कुन्तीसे उत्पन्न तीन पुत्रों युधिष्ठिर, भीम अर्जुनमेंसे बीचके थे, इसलिये मध्यम पांडव

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कहलाते थे। भीम गदाधारी और बड़े बलवान् थे। इन्होंने बलरामसे गदा चलाना सीखा था। इन्होंने दुर्योधन और दुःशासनको मार डाला था।

भीष्म पितामह : (भीष्म, गांगेय) हस्तिनापुरके राजा शान्तनुके द्वारा गंगाके गर्भसे अष्ट वसुओंमेंसे आठवें वसुके अंशसे उत्पन्न हुए। इसका नाम देवव्रत था। इन्होंने अपने पिता शान्तनुके सुखके लिये आजीवन विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा की थी, इसीसे भीष्म कहलाए और इसी बातपर शान्तनुने इच्छा-मृत्यु (इच्छाके अनुसार मृत्यु पानेका) वर दिया था। महाभारतके युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे बिंधे रहनेपर भी ये तबतक शरशय्यापर पड़े रहे जबतक सूर्य उत्तरायण नहीं हुआ। ५८ दिन शरशय्यापर पड़े रहनेके बाद माघ शुक्ला ८ को उन्होंने शरीर त्याग किया।

भुवन : (चौदह) भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, तथा सत्य नामके सात ऊपरके लोक हैं तथा—तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल और पाताल ये लोक नीचेके लोक या भुवन माने गए हैं।

भूत : मृत्युके पश्चात् वह अलक्ष्य योनि जिसमें प्रेतात्मा रहता है और सांसारिक जीवोंसे संपर्क रखकर कभी-कभी दुःख भी देता है।

भू-नन्दिनी : (सीता) एक बार जनकके राज्यमें बड़ा भयंकर अकाल पड़ा था। ऋषियोंके कहनेपर स्वयं राजाने खेतमें सोनेका हल चलाया। उस समय भूमिसे निकले हुए घड़ेमें एक कन्या मिली जिसे जनकने अपनी पुत्रीके समान पाला। 'सीता' (हल) चलानेसे प्राप्त होनेके कारण कन्याका नाम 'सीता' पड़ गया। विदेह जनककी पुत्री होनेके कारण यह वैदेही, जानकी, जनक-नंदिनी कही जाती है।

भूर्जतरु : (भोजपत्रका पेड़) एक प्रकारका मझोले आकारका पेड़ जो हिमालयमें १४००० फीटकी ऊँचाईपर अधिक पाया जाता है। इसकी छालको भोजपत्र कहते हैं जिसपर तांत्रिक लोग मन्त्र लिखकर यन्त्र रूपमें पहननेको देते हैं। पहले भूर्जपत्रोंपर पत्र और ग्रन्थ भी लिखे जाते थे। अब भी कश्मीरमें इसका बहुत प्रयोग होता है।

भृङ्गी : शिवका एक गण।

भेरी : डंका, दुन्दुभि। राजाकी सवारी या सेनाके आगे ऊँटपर रक्खे दो नगाड़े बजाए जाते हैं जो राजाकी सवारी या सेनाके आनेकी सूचना देते हैं।

भोगवती : नागलोककी राजधानी।

भोगी : वह सांसारिक प्राणी, जो संसारमें रहकर सदा भोग भोगनेके ही प्रयत्नमें लगा रहता है।

भोजन : (चार प्रकारका) भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य। भक्ष्य : जो निगलकर खाया जाय, जैसे हलवा, खीर आदि। भोज्य : जो दाँतोंकी सहायतासे कुचलकर खाया जाय, जैसे रोटी, चावल, पूरी आदि। चोष्य : जो चूसकर खाया जाय, जैसे देशी आम, गन्ना आदि। लेह्य : जो चाटकर खाया जाय, जैसे—चटनी, रायता, शहद, आदि। दो प्रकारके और भी भोज्य पदार्थ बताए गए हैं, (१) चर्व्य, जो दाँतोंसे चबाकर खाया जाय, जैसे चबैना, दालमोट, पापड़ आदि। (२) पेय (जो पिया जाय, जैसे—दूध, शर्बत आदि। इन दोनोंकी गणना भोज्य पदार्थोंमें नहीं की गई है, ये तो मन-बहलावके लिये या भोजनके ठोस पदार्थके अभावमें भूख मिटानेके साधारण आधार मात्र हैं)।

भ्रम : मनकी वह स्थिति जिसमें या तो कुछ निश्चय न हो या अनुचित और असत्यको सत्य समझ लिया जाता हो।

मकर : (१) मच्छ, मगर (नक्र, घड़ियाल)। (२) देखो मकरगत रवि।

मकर-केतु : जिसके झंडेपर मच्छ बना हो, कामदेव।

मकरगत रवि : जब सूर्य मकर राशिपर (मकरकी संक्राति, १४ जनवरीसे) आता है तब प्रयागमें एक मासतक लोग कल्पवास करते हैं।

मकरंद : पुष्पका रस, जो फूलोंकी कटोरीमें नीचे रहता है। इसीको मधुमक्खी पीकर मधु बनाती है तथा भौंरे इसकी गंधसे मदमत्त होकर दिन-भर पड़े रहते हैं। मकरंदसे ही पुष्पकी गंध उड़कर फैलती है। पुष्पकी उस धूलिको 'पराग' कहते हैं जो उसके जीरे (किञ्जल्क)-के ऊपर फैली रहती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

मगरी (मकरी) : यह धान्यमालिनी नामकी अप्सरा थी जो मुनिके शापसे मगरी हो गई थी। जिस समय द्रोणागिरिपर हनुमान गए थे उस समय कपट मुनि कालनेमिके आदेशपर जब सरोवरमें हनुमान गए और मकरीने उन्हें पकड़ा तो हनुमानने उसे पछाड़ मारा और वह मुक्त हो गई।

मग : (मगध) काशीसे पूर्व बिहारमें पटना, गया तथा उसके आसपासके क्षेत्रको मगध या मगह प्रदेश कहते हैं। शतपथ ब्राह्मणके अनुसार यहाँके निवासी ब्राह्मण-धर्म छोड़ बैठे थे। इनमें अनार्य लोगोंकी संख्या अधिक थी। इनके आचार-विचार, खान-पान और रहन-सहन सभी अनार्योंके-से थे। इसे मगह या मगध कहते हैं।

मंगल दर्शन : दधि, घृत, दूर्वा, माला, चावल, जलपूर्ण घट, पका हुआ अन्न, श्वेत सरसों, चन्दन, दर्पण, शंख, मांस, मछली, गोरोचन, मृत्तिका, गोधूलि (जंगलसे लौटती हुइ गौओंके पैरसे उड़नेवाली धूल), देवमूर्ति, वीणा, फल, भद्रासन (व्यासपीठ या सिंहासन), पुष्प, आँजन, अलंकार, अस्त्र, ताम्बूल, यान, आसन, परई, ध्वज, छत्र, व्यजन (पंखा), वस्त्र (काला या नीला नहीं), पद्म, भृंगार (बड़ा मटका), प्रज्वलित अग्नि, हाथी, बकरा, कुश, अश्व, चँवर, रत्न, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, बंग (राँगा), मेष (भेड़), ओषधि (जड़ी-बूटी), मद्य, नवपल्लव, सपुत्रा स्त्री, प्रसन्न ब्राह्मण, राजा, वेश्या, कुमारी, अश्वारूढ, गजारूढ, छत्रधारी पुरुष, चन्दन-चर्चित या भोजन करता हुआ ब्राह्मण, पुष्पहार लिए हुए स्त्री।

मंगल द्रव्य : पान, सुपारी, दधि, दूर्वा, कुंकुम, रोचना, हरिद्रा, पुष्प, अक्षत, (चावल) धूप, दीप, जलपात्र, आम्रपल्लव, अशोक-पल्लव, सिन्दूर, तुलसीदल, शमीपत्र, बिल्वपत्र, ऋतुफल।

मणि : १. कोई भी रत्न। २. मणि या माणिक्य (मानिक, लाल) इसके छोटे-छोटे कणोंको चुन्नी कहते हैं। मंगलकी शान्तिके लिये माणिक्य (लाल) रत्न धारण किया जाता है।

मणिकर्णिका : (मनिकरनिका) काशीमें गंगा-तटपर प्रसिद्ध कुंड। १. कहते हैं जब दक्षके यज्ञमें सतीने शरीर छोड़ा तो शिव उनका शव कंधेपर उठाए हुए विश्वभरमें घूमे। उस समय इस कुंडमें सतीके कानका मणि गिर पड़ा था, इसीसे इसका नाम मणिकर्णिका पड़ा। इस कुण्डके आगे कीर्णा और धूतपापा नदियोंकी धाराएं मिलकर पंचगंगाके नामसे प्रसिद्ध हैं। २. जब काशीमें विष्णुकी घोर तपस्या देखकर शिवने घबराकर अपना सिर हिलाया तो उनके कानसे मणि-जटित कर्णभूषण यहाँ गिर गया था। इसीलिये इसका नाम मणिकर्णिका पड़ा।

मत्सर : किसीकी उन्नतिको न सह सकना और उसे हानि पहुँचानेका उपाय करना मत्सर कहलाता है। देखो ईर्ष्या।

मत्स्य : (मत्स्यावतार) पद्मपुराणके अनुसार शंखासुर जब वेदको हरण कर ले गया था तब विष्णुने मत्स्य अवतार लेकर शंखासुरको मारकर वेदोंका उद्धार किया।

मद : मनकी वह प्रवृत्ति जिसमें मनुष्य अपने आगे किसीको कुछ नहीं समझता। मद अनेक प्रकारका होता है। धनमद, प्रभुत्वमद, विद्यामद, शक्तिमद, यौवनमद, जन-मद आदि।

मधुकर : भौंरा (उद्धवके लिये प्रयुक्त)। कृष्णके कहनेसे जब उद्धव मथुरासे गोकुल जाकर गोपियोंको निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका उपदेश देने लगे उसी समय एक भौंरा वहाँ उड़ा चला आया। बस उसीको लक्ष्य करके गोपियोंने उद्धवको बहुत बनाया, उनपर छींटे कसे और उनका नाम ही मधुकर (भौंरा) रख दिया।

मधुवन : ऋष्यमूक पर्वतके पास सुग्रीवका उपवन।

मनु : मानव सृष्टिका प्रवर्तक आदि पुरुष, जो समस्त मानव जातिका पिता माना जाता है। पुराणोंमें चौदह मनुओंके नामसे चौदह मन्वन्तर माने गए हैं—१–स्वायंभुव, २–स्वारोचिष, ३–उत्तम (औत्तमि), ४–तामस, ५–रैवत, ६–चाक्षुष, ७–वैवस्वत, ८–सावर्णि ९–दक्षसावर्णि, १०–ब्रह्म-सावर्णि, ११–धर्मसावर्णि, १२–रुद्र-सावर्णि, १३–रौच्य १४–भौत्य। इनमेंसे स्वायंभुवसे चाक्षुष तकके सात मन्वन्तर बीत चुके हैं। आजकल आठवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है।

मन्त्र : १–किसी देवताको प्रसन्न करनेके निमित्त अपनी कामनाकी सिद्धिके लिये वैदिक

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

अथवा तांत्रिक ऋचाओंको मन्त्र कहते हैं। २–प्रार्थनापरक शब्द मन्त्र कहलाता है। ३–गुप्त सलाह। गुप्त गोष्ठी।

मंथरा : दुंदुभि नामकी गंधर्वके अंशसे उत्पन्न कुबड़ी दासी। देवताओंकी प्रेरणासे सरस्वतीने इसी मंथराकी बुद्धि बिगाड़ दी थी, जिसने कैकेयीको भड़काकर चौदह वर्षका रामको वनवास और भरतको युवराज पद-दिलानेका कुपाठ पढ़ाया था।

मन्दाकिनी : १–गंगा नदीका पर्य्याय। २–चित्रकूट (मध्य प्रदेश)-के पास बहनेवाली पयोष्णी (पय, पयस्विनी) नदीको भी मन्दाकिनी कहते हैं।

मन्वन्तर : देखो मनु।

ममता : जिस व्यक्ति या वस्तुके नष्ट होने, ओझल होने या उसपर विपत्ति पड़नेसे कष्ट हो, उसके प्रति अत्यन्त आत्मीयता होनेको ही ममता कहते हैं।

मय : कश्यपकी दनु नामक पत्नीसे मयका जन्म हुआ। यह बहुत बड़ा शिल्पी था। यह मन्दोदरीका पिता और नमुचि दैत्यका भाई था।

मयंद : रामकी सेनाका विशिष्ट वानर।

मरकत : हरे रंगका रत्न, पन्ना। बुधकी ग्रह-दशा होनेपर इसे धारण किया जाता है। यह सर्पका विष भी दूर करता है। यह फ़िरोजा जातिका रत्न स्लेट या ग्रेनाइट खानोंसे निकलता है। इसे संस्कृतमें गरुड, गरलारि, मरकत, अश्मगर्भ और बुध-रत्न भी कहते हैं। यह सुग्गेके पंखके समान हरा, स्निग्ध और लावण्ययुक्त होता है। इसके भीतर ऐसा जान पड़ता है कि बहुत बारीक स्वर्णका चूर्ण भरा है।

मराल : राजहंस। कवियोंने इसे विद्वत्ता, न्याय एवं विवेकका प्रतीक मानकर उपमानके रूपमें प्रयोग किया है। यह मानसरोवरमें विशेष रूपसे पाया जाता है। यह लंबी गर्दनवाला सफ़ेद रंगका बहुत सुन्दर पक्षी होता है। ठंडे पहाड़ों, झीलों और तालोंमें घूमता फिरता रहता है। यह जलजन्तु (छोटी मछलियाँ आदि) खाता है। 'हंस' शब्दका अर्थ सूर्य, विद्वान्, ज्ञानी एवं विवेकी भी होता है। कवियोंने हंसको ही इनका प्रतीक माना है। कहा जाता है कि दूधमेंसे पानी छोड़कर यह दूध-दूध पी जाता है।

मरु : रेतीला प्रदेश। राजस्थानमें थार नामक मरुभूमि है।

मलयपवन : मलयाचलसे आनेवाला सुगन्धित पवन, मलयानिल।

मलयाचल : दक्षिण भारतके केरल प्रान्तका वह पर्वत जो पश्चिमी घाट (मैसूर)-से दक्षिण और तिरुवरांकूरके पूर्वतक फैला हुआ है। यहाँ चंदनके वृक्ष बहुत होते हैं।

महामंत्र : 'राम' नाम।

महिषासुर : देखो महिषेश।

महिषेश : (महिषासुर) महिषासुर नामक भैंसेके-से मुँहवाला मोटा दैत्य जिसका वध दुर्गाने किया।

मागध : वे लेखक जो राजाके साथ-साथ रहते और उनके कीर्ति-पूर्ण कार्य लिखकर इतिहासके रूपमें संचित कर रखते थे। वे प्रायः मगध देशके होते थे।

माणिक्य : (मानिक) लाल नामका मणि। देखो मणि।

माण्डवी : जनक (सीरध्वज)-के भाई कुशध्वजकी पुत्री, जो भरतसे ब्याही गई थी। इसके तक्ष और पुष्कल नामके दो पुत्र थे।

मातलि : इन्द्रका सारथि, जिसकी पत्नीका नाम सुधर्मा था, जिससे गोमुख नामक पुत्र और गुणकेशी नामकी कन्या उत्पन्न हुई। गुणकेशीका विवाह पाताल लोकके नागकुमारके साथ हुआ था। राम-रावण युद्धके समय इन्द्रने मातलिको रथके साथ रामके पास भेजा था।

माधव : (बिन्दु-माधव) प्रयागके दारागंज मुहल्लेमें बिन्दुमाधवका प्रसिद्ध मन्दिर है। (बिन्दुमाधव भी देखो)।

माघ : माघ मास प्रायः जनवरी और फरवरीके बीचमें पड़ता है। इस सौर मकर मासमें जब (१४ जनवरीको) सूर्य मकर राशिमें आ जाता है, प्रयागमें त्रिवेणी-स्नानका बड़ा माहात्म्य माना गया है। कुछ लोग तो वहाँ पूरे माघ या मकर-भर रहकर कल्पवास करते हैं। इस मासमें तिलके सेवनका बड़ा माहात्म्य है। माघ कृष्ण एकादशीको षट्तिला एकादशी कहते हैं। इस दिन काले तिलका व्यवहार छह प्रकारसे किया जाता है—काले तिलोंका दर्शन, स्पर्श, तैलमर्दन, स्नान, भक्षण और दान।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

माया : 'स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके माया तेन प्रकीर्तिता ।' (स्वप्न और इन्द्रजालके समान जिसका फल जाना नहीं जा सकता उसीको माया कहते हैं)। प्रकृति, अविद्या, अज्ञान आदि माया हैं। मायाके प्रभावसे ही नश्वर जगत्‌के प्रति मोह और ममता उत्पन्न होती है।

मायावी : मय दानवका पुत्र, मन्दोदरीका भाई।

मार : (देखो कामदेव)।

मारीच : सुकेतु यक्षकी कन्या और सुन्दकी पत्नी ताटका (ताड़का)-का पुत्र तथा सुबाहुका भाई था। सीताका हरण करनेके लिये रावणने इसे ही मायामृग बनकर भेजा था।

मार्कण्डेय : मृकंडु और मनस्विनीके पुत्र मार्कण्डेय मुनि बड़े तपोनिष्ठ थे। उनकी उग्र तपस्या देखकर इन्द्र इतने भयभीत हो गए कि उन्होंने उनकी तपस्या नष्ट करनेके लिये कामदेव-को भेजा। जब कामदेव सब कला करके हार गया तब भगवान् नर-नारायण रूपमें उनके सम्मुख उपस्थित हुए और उनसे वर माँगनेको कहा। मार्कण्डेयने कहा कि मुझे अपनी माया दिखलाइए। फलस्वरूप उन्हें सारा ब्रह्माण्ड प्रलयमें जलमग्न होता दिखा दिया। भगवान्‌ने उन्हें चिरजीवी होनेका वर दिया।

मालव : (मालवा) मालवा देश। नर्मदा नदीके उत्तर और राजस्थानके दक्षिण-पश्चिमका वह प्रदेश जिसकी राजधानी सैकड़ों वर्षोंतक उज्जयिनी बनी रही।

माहिष्मती : (महिष्मती) नर्मदाके तटपर मध्य-प्रदेशका वर्त्तमान मण्डला नगर। यह हैहय राजाओंकी राजधानी थी।

मिथिला : मैथिल देश। विदेहोंका देश। (देखो निमि)।

मीनकी शनीचरी : जब मीन राशिपर शनि आता है तब राजा नष्ट होते हैं और भयंकर रक्तपात होता है। (कवितावली पद सं० १७७ की टिप्पणी देखो)।

मुक्ता : (मुकता) मोती। यह शुक्ता (सीपी)-से उत्पन्न होता है। जब कोई बालूका कण सीपीकी खालमें पड़ जाता है,वही धीरे-धीरे फोड़ेके समान बढ़ते-बढ़ते मोती हो जाता है।

मुनि : ऋषि, महात्मा, संन्यासी, सन्त, ब्राह्मण इन सबको मुनि कहते हैं। मुनि-त्रय : पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि। मुनि सप्त (देखो सप्तर्षि)।

मुर : राक्षस, जिसे विष्णुने मार डाला था। इसीसे राम और कृष्णका नाम भी 'मुरारि' पड़ा।

मृगजल : ग्रीष्म ऋतुमें रेतीले मैदानमें सूर्यकी किरणोंके कारण वायुकी जो लहरें पृथ्वीके समानान्तर चलने लगती हैं वे पानीकी लहरों-जैसी लगती हैं। प्यासे मृग उसे जल समझकर दौड़ पड़ते हैं और छटपटाकर प्राण दे डालते हैं।

मृगमद : कस्तूरी। कस्तूरी-मृगकी नाभिमें एक थैली होती है। जवान होनेपर मृगकी नाभि पकने लगती है जिसकी सुगन्धि आस-पास फैलने लगती है। मृग नहीं समझता कि यह मेरी नाभिसे निकली है। वह पासकी घासमें सुगंधि समझकर इधर-उधर घूमता रहता है। इसके पैर मुड़ते नहीं। यह घूमता ही रहता है। इसे पकड़ने-वाले लोग एक टेक खड़ी कर देते हैं जिसमें कस्तूरी लगा देते हैं। जब हरिण उसे सूँघता हुआ टेक लगाकर खड़ा होता है तो टेक खींचकर गिरा देते हैं और मृगको पकड़ लेते हैं।

मृगया : मृग आदि जंगली पशुओंका आखेट, जो क्षत्रियोंका मनोरञ्जक और स्वास्थ्यवर्धक व्यायाम माना जाता है।

मृगांक : आयुर्वेदके अनुसार एक रस, जो क्षय आदि भयंकर रोगोंमें दिया जाता है। (देखो तुलसी-ग्रन्थावली भाग २, कवितावली, सुन्दरकांड कवित्त २५ की टिप्पणी)।

मृणाल : कमलकी डंठल, जो बहुत कोमल होती है और जिसके आधारपर कमलका फूल जलमें खड़ा रहता है।

मृदंग : ढोलककी भाँति बजनेवाला ढोलकसे लंबा तथा एक ओर चौड़े मुँह और दूसरी ओर सँकरे मुँहवाला वाद्य। इसके चौड़े मुँहपर आटेकी लोई लगा देते हैं, तब बजानेमें ठीक स्वर देता है। बाजोंके चार भेद माने गए हैं—१. तत, २. आनद्ध, ३. सुषिर, ४. घन। वीणा, सितार, सारंगी आदि तारवाले बाजे 'तत'; खालसे मढ़े हुए मृदंग, ढोल, तबला आदि

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

आनद्ध; वंशी, तुरही, शंख आदि मुँहसे बजाए जानेवाले छेदवाले बाजे सुषिर; तथा घंटा, झाँझ, मजीरा आदि ठोककर बजाए जानेवाले बाजे घन कहलाते हैं।

मेकल पर्वत : भारतकी मेखलाके समान विन्ध्य पर्वतके बीचमें मेकल (मेखल) पर्वत है। यहींसे नर्मदा (मेकलसुता) नदी निकली है।

मेकलसुता : नर्मदा नदी। मेकल पर्वतसे निकलनेके कारण इसे मेकल-सुता (मेकल-कन्या) कहते हैं। यह रीवाँ राज्यके अमरकंटक पहाड़से ७० फ़ीट नीचे गिरकर कपिलधारा प्रपात बनाती है और भड़ोंच (गुजरात)-के पास अरब सागरमें जा गिरती है। यह विन्ध्यसे दक्षिणमें ७०० मील-तक बहती है। पुराणके अनुसार यह शंकरकी देहसे निकली है। इसमें स्नान करना पुण्य माना जाता है।

मेघनाद : रावणका पुत्र। मेघोंमें छिपकर मेघके समान गर्जन करते हुए युद्ध करनेके कारण इसका नाम मेघनाद पड़ा। इसने इन्द्रको भी जीत लिया था, इससे इसे इन्द्रजित् भी कहते हैं। इसे लक्ष्मणने मारा था क्योंकि इसे वर मिला हुआ था कि जो १२ वर्षतक ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ निरन्तर व्रत रखकर जागता हुआ यती होगा वही इसे मार पावेगा।

मेधा : धारणा-शक्ति। (धीर्धारणावती मेधा) समझकर जाने हुए प्रसंगको स्मरण किए रखनेकी शक्ति।

मेना : आप्य (या वैराज) नामक पितरोंकी कन्या, हिमांचलकी धर्मपत्नी, पार्वतीकी माता।

मैनाक : यह पंखवाला पर्वत हिमालय और मेनाका पुत्र है। इन्द्रके डरसे यह समुद्रमें जा छिपा था। लंका जाते समय इसने समुद्रकी आज्ञासे हनुमान्‌को आश्रय देना चाहा था पर हनुमान् केवल उसे प्रणाम करके ही आगे बढ़ गए।

मोह : अज्ञान, भ्रम। किसी वस्तुका वास्तविक ज्ञान न होकर बुद्धि-भ्रमसे असत्यको सत्य समझ बैठना ही मोह (मूढता, अज्ञान) है।

मौर : विवाहके समय वरके सिरपर जो फूल, कागज, स्वर्ण आदिका मुकुट पहनाया जाता है (मुकुट>मउड़>मौर)।

यज्ञ : याग, हवन, कोई विशेष धार्मिक कृत्य। गृहस्थ ब्राह्मणके लिये प्रतिदिन पञ्चमहा-यज्ञ करनेका विधान है—१. भूतयज्ञ(बलिवैश्व-देव), २. मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सेवा), ३. पितृयज्ञ (तर्पण), ४. देवयज्ञ (अग्निहोत्र) और ५. ब्रह्मयज्ञ (विद्यादान, स्वाध्याय)। यज्ञके चार ऋत्विज् होते हैं—१. होता (यज्ञ करानेवाला पुरोहित), २. अध्वर्यु, ३. उद्‌गाता तथा ४. ब्रह्मा।

यदु-वंश : ययाति और देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र यदुके वंशज क्षत्रिय। आजकल अहीर भी अपनेको यादव या यदुवंशी क्षत्रिय कहते हैं, किन्तु ये आभीर है जिन्हें 'गोप' या गोपालक कहते हैं।

यम : (जम) १. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहका पालन करना ही 'यम' कहलाता है। २. दक्षिण दिशाके दिक्पाल। ये मृत्युके देवता माने जाते हैं।

यमपुर : यमलोक, वह कल्पित स्थान जहाँ प्रत्येक प्राणीको कर्मके अनुसार दंड या पुरस्कार दिया जाता है।

यमलार्जुन : एक बार कुबेरके पुत्र नलकूबर और मणिग्रीवने प्रमादवश नारद मुनिकी हँसी उड़ाई। इसपर नारदने शाप दे दिया कि तुम लोग जड़ (वृक्ष) हो जाओ। बादमें प्रार्थना करनेपर दयालु नारदने कहा कि जब गोकुलमें भगवान् कृष्णका अवतार होगा तब उनके चरणोंके स्पर्शसे तुम्हारा उद्धार हो जायगा। एक दिन यशोदाने जब कृष्णको ऊखलमें बाँधा तो वे उसे खींचते हुए उस जुड़े हुए अर्जुनके वृक्षके पास पहुँच गए और दोनों वृक्षोंके बीचमें ऊखल अड़ाकर उन्होंने ऐसा झटका दिया कि दोनों वृक्ष उखड़कर गिर गए और यमलार्जुन (नलकूबर, मणिग्रीव) का उद्धार हो गया।

यमुना : (जमुना) यह हिमालयकी यमुनोत्तरी पहाड़ीसे निकलकर प्रयागमें गंगामें मिल गई है। मार्कण्डेय पुराणने यमुनाको सूर्यकी कन्या और यमकी बहन माना है। यम और यमुना दोनों ही माताके गर्भसे यमज (जुड़वाँ) उत्पन्न हुए। इन दोनोंका वर्ण साँवला है। भ्रातृ-द्वितीया (यम-द्वितीया) को भाई-बहन हाथ पकड़कर यमुनामें स्नान करते हैं।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ययाति : (जजाति) राजा नहुषके पुत्र ययातिने शिकार खेलते समय जंगलमें शुक्राचार्य-की कन्या देवयानीको कुएँमें पड़ा देखकर उसका हाथ पकड़कर बाहर निकला। ययातिपर देवयानी मुग्ध हो गई और विवाह करनेको कहने लगी। परन्तु राजाने कहा कि ब्राह्मण-कन्यासे मैं क्षत्रिय कैसे विवाह कर सकसा हूँ। देवयानीने अपने पिता शुक्राचार्यसे पूछा तो उन्होंने स्वीकार कर लिया और देवयानीसे ययातिका विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद वृषपर्वा नामक दैत्यकी कन्या शर्मिष्ठाने भी ययातिसे संभोगकी प्रार्थना की जिससे उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब यह समाचार शुक्राचार्यको विदित हुआ तो उन्होंने ययातिको शाप दे दिया कि तुम बूढ़े हो जाओ। पर ययातिने अपने सबसे छोटे पुत्र पुरुसे सहस्र वर्ष-तकके लिये जवानी ले ली और यौवनका उपभोग किया।

यशोदा : देवक नामके गोपकी कन्या और गोकुलके गोप-सरदार नन्दकी पत्नी, जिसने बालक कृष्णको पाला था। इसे द्रोण नामक वसुकी पत्नी धराका अवतार माना गया है।

याज्ञवल्क्य : (जागबलिक)—यज्ञवल्क्यके वंशज, वाजसनिके पुत्र और उद्दालक आरुणिके शिष्य याज्ञवल्क्य बड़े भारी दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता (ब्रह्मज्ञानी) थे। विष्णुपुराणमें इन्हें ब्रह्मरातका पुत्र और वैशंपायन का शिष्य बताया गया है। आदि-कवि वाल्मीकिने सर्वप्रथम भरद्वाज ऋषिको रामायणकी कथा सुनाई थी। भरद्वाजने वही कथा याज्ञवल्क्यको सुनाई।

युक्ति : (जुगुति) उपाय, योजना। देश-कालके अनुसार कार्य-सिद्धिके लिये उचित उपाय।

युग : सत्ययुग (४००० देव-वर्ष या १७२८००० मानव-वर्ष), त्रेता (३००० देववर्ष या १२९६००० मानव-वर्ष), द्वापर (२००० देव-वर्ष या ८६४००० मानव-वर्ष) और कलियुग (१००० देव-वर्ष या ४३२००० मानव-वर्ष)।

युग चार (चतुर्युगी) : ४३२०००० वर्ष। ७१ चतुर्युगियोंका (४३२००० × ७१ वर्षोंका) एक मन्वन्तर होता है। ऐसे १४ मन्वन्तर बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है। देखो मनु और मन्वन्तर।

योग : (जोग) १. सांख्य, योग, न्याय, वैशे-षिक, मीमांसा और न्याय नामक छह दर्शनोंमें-से योग भी एक दर्शन है। इसकी रचना पतञ्जलिने की है। उनके अनुसार चित्तवृत्तियोंको वशमें कर लिया जाय तो मोक्ष प्राप्त हो सकता है। योगके आठ अंग हैं (अष्टांग योग)—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार (इन्द्रियदमन), धारणा (तत्त्वमसिकी भावना), ध्यान (सोऽहंकी भावना), समाधि (ब्रह्म या आत्ममें लीन हो जाना)।

२. चित्तवृत्तिका निरोध करके आत्मामें परमात्माका दर्शन और चिन्तन योग कहलाता है (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः)। आत्माको परमात्मामें मिलाकर एक-रूप देखना ही योग है।

३. २७ मुहूर्त (विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, असृक्, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्र, ब्रह्म, इन्द्र, वैधृति)। इनमेंसे परिघ योगके प्रथमार्द्ध, विष्कम्भके प्रारम्भिक पाँच दण्ड, शूलके छह दण्ड, हर्ष और वज्रके प्रथम नौ दण्ड तथा वैधृति और व्यतीपात योगोंमें कोई शुभ कर्म नहीं किया जाता। कभी-कभी कुछ विशिष्ट वारों, तिथियों और नक्षत्रोंके एक साथ आनेपर या किसी नियमके अनुसार पड़नेपर अमृत-सिद्धि-योग, सर्वार्थ-सिद्धि-योग या रवियोग आदि पड़ते हैं।

योगाग्नि : योगके द्वारा उत्पन्न अग्नि। इससे शरीर जलता नहीं है, प्राण निकल जाते हैं।

योगिनी : दुर्गाकी शक्ति-रूपिणी सेवकाएँ। इनकी संख्या ६४ है जो चतुःषष्टि योगिनीके नामसे प्रसिद्ध हैं—नारायणी, गौरी, शाकम्भरी, भीमा, रक्तदंतिका, पार्वती, दुर्गा, कात्यायनी, महादेवी, चन्द्रघंटा, महाविद्या, महातपा, भ्रामरी, सावित्री, ब्रह्मवादिनी, भद्रकाली, विशालाक्षी, रुद्राणी, कृष्णपिंगला, अग्निज्वाला, रौद्रमुखी, काल-रात्रि, तपस्विनी, मेघस्वना, सहस्राक्षी, विष्णुमाया, जलोदरी, महोदरी, मुक्तकेशी, घोररूपा, महाबला, श्रुति, स्मृति, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, विद्या, लक्ष्मी, सरस्वती, अपर्णा, अम्बिका, योगिनी, डाकिनी, शाकिनी, हारिणी, हाकिनी, लाकिनी,

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

त्रिदशेश्वरी, महाषष्ठी, सर्वमंगला, लज्जा, कौशिकी, ब्रह्माणी, ऐन्द्री, नारसिंही, वाराही, चामुण्डा, शिवदूती, विष्णुमाया, मातृका, कार्तिकी, विनायकी, कामाक्षी।

योगा : वह व्यक्ति जो सांसारिक प्रपंचोंसे दूर रहकर भोगका सर्वथा त्याग करके ब्रह्ममें अपने आपको लीन कर सकता हो, जिसने परमात्माके साथ अपने आत्माका योग कर लिया हो।

योजन : चार कोस। सत (शत)-योजन = ४०० कोस = बहुत दूर। १ कोस = २ मील।

रक्तबीज : शुम्भ-निशुम्भके सेनानी रक्तबीज दैत्यको वर मिला हुआ था कि इसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरेंगी उनसे उतने ही रक्तबीज उत्पन्न हो जायँगे। चामुंडाने इसे मार डाला क्योंकि उसके शरीरसे गिरते रक्तको वे चाट जाती थीं।

रघुवंश : अयोध्याके प्रतापी राजा दिलीपके पुत्र और रामके प्रपितामह (परदादा)। रघुके प्रतापके कारण यह वंश रघुवंश कहलाता है।

रति : धर्म ऋषिके पुत्र कामदेवकी पत्नी, जो दक्ष-प्रजापतिके धर्म बिन्दुओंसे उत्पन्न हुई थी। जब शंकरने कामदेवको भस्म कर डाला तब शंकरने कह दिया कि अबसे तेरा पति कामदेव अंग-रहित (अनंग) होकर सबको प्रभावित करता रहेगा।

रथ : घोड़े या बैलसे खींचा जानेवाला चार पहियोंका यान जिसपर अम्बारी या छतरी लगी रहती है। भारतीय चतुरंगिणी सेना (पैदल, घुड़सवार, रथ और हाथी)-का एक अंग। सेनाके रथोंमें घोड़े ही जोते जाते थे।

रंतिदेव : संकृति और सत्कृतिका पुत्र भरतवंशीय सम्राट्। इसे सांकृत्य भी कहते हैं। ये बड़े दानी थे। इनके यहाँ कोई भी याचक कभी विमुख नहीं लौटता था। इन्होंने गवालंभ किया था जिसके पशुओंका चर्म नदीमें फैंकनेके कारण नदीका नाम चर्मण्वती (चंबल) पड़ गया।

रंभादिक (अप्सराएँ) : समुद्रमन्थनके समय (जलसे उत्पन्न होनेके कारण) इनका नाम अप्सरा पड़ा। वाल्मीकीय रामायणमें इनकी संख्या ६० करोड़ बताई गई है किन्तु उनमें मुख्य हैं— घृताची, मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा, सुकेशी, मिश्रकेशी, मञ्जुघोषा, अलम्बुषा, विश्वाची, पञ्चचूडा, भानुमती, अबला, रम्भा, पुञ्जिकस्थला, महारंगवती, विद्युत्पर्णा, अरुणा, रक्षिता, केशिनी, सुबाहु, सुरता, सुरसा, सुप्रिया, अतिबाहु, उग्रम्पश्या, उग्रजित्।

रवि-तनुजा : सूर्यकी पुत्री और यमकी बहन यमुना।

रस : (काव्यके आठ रस) शृंगार, हास्य, करुण, वीर, भयानक, रौद्र, अद्भुत और बीभत्स। शान्तको भी नवाँ रस माना गया है। २. छह भोज्य रस : मधुर, तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और लवण। ३. रसो वै सः। ब्रह्मानन्द ही परम रस है।

रवि-सुवन : (रविसुवन) सूर्यके औरस और विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे उत्पन्न पुत्र थे। इनका यौवन और सौन्दर्य शाश्वत है। ये देवताओंके वैद्य हैं। संज्ञाका दूसरा नाम अश्विनी भी है, इसीसे इन्हें अश्विनीकुमार कहते हैं।

राकेश : (राका + ईश)—पूर्णिमाका चंद्रमा।

राजधानी : (रजधानी)—वह नगर जहाँ किसी देशका राजा रहता हो तथा जहाँसे पूरे देशकी व्यवस्था होती हो, जैसे कोशलकी राजधानी अयोध्या थी।

राधा : वैश्य वृषभानु नामक गोपकी पत्नी कलावतीसे राधाका जन्म भाद्र शुक्ल ८ को प्रातः हुआ था। वैशाख शुक्ल ३ को रोहिणी नक्षत्रमें कृष्णसे इनका विवाह हुआ। राधा-कृष्णके उपासक इस प्रकार राधाको स्मरण करते हैं—

रा शब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।
धा शब्दोच्चारणाद दुर्गे धावत्येव हरेः पदम्॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च येन राधा प्रकीर्त्तिता॥
(ब्रह्मवैवर्त्त २, ४८, ४०, ४२)

राम : इक्ष्वाकु-वंशमें राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र। इनकी माता कौशल्या तथा इनकी पत्नी सीता थी। राम विष्णुके अवतार थे। तुलसीदासने इन्हें साक्षात् ब्रह्म ही माना है जो भक्तोंके लिये अवतार धारण करते रहते हैं और जो सारी सृष्टिके कर्ता-धर्ता-हर्ता हैं। पुराणोंमें इन्हें

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

द्वादश अंशयुक्त विष्णुका सातवाँ अवतार माना गया है।

रामचरितमानस :–रामके चरित्रकी जिस कथाको शिवने अपने हृदय (मानस)-में रचकर रक्खा था और सुअवसर पाकर पार्वती-को सुनाया था वही कथा 'रामचरितमानस' के रूपमें तुलसीदासने कुछ विचित्र कथा-प्रबन्ध बनाकर प्रकट की। यही कथा शिवसे याज्ञवल्क्यने पाई और भरद्वाजको सुनाई। शिवने ही काक-भुशुंडिको भी रामचरितका अधिकारी जानकर यह कथा सुनाई। इसीको अनेक पुराण वेद, शास्त्र, इतिहास आदिकी विविध सम्मतियोंसे सुसज्जित करके 'रामचरितमानस' के नामसे तुलसीदासने विख्यात किया।

राम-धाम : वैकुण्ठ, परम धाम, साकेत।

रामायुध : रामका आयुध धनुष-बाण है जो सदा उनके साथ रहता है। अपने युगमें राम सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर थे। उन्होंने विश्वामित्रसे अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी थी।

रामेश्वर : (राम-द्वारा स्थापित शिवलिंग) लंका जानेसे पूर्व रामने समुद्र-तटपर जाकर शिव-लिंगकी स्थापना की थी जो रामेश्वरम् नामसे प्रसिद्ध है। यह मंदिर तमिलनाडु प्रान्तके रामनद तहसीलमें समुद्रतटपर पड़ता है। काञ्चीके राजाने सिंहलसे पत्थर मँगवाकर यह मन्दिर बनवाया था। उसपर मदुराई (दक्षिण मथुरा)-के दो सरदारोंने मिलकर उसका बाहरी चित्रमय मण्डप बनवाया। इसकी लम्बाई १००० फीट, चौड़ाई ३५७ फीट और ऊँचाई १२० फीट है। इसके चार गोपुरोंमेंसे केवल पश्चिमका गोपुर १२० फीट ऊँचा पूरा बना है। अन्य गोपुर अपूर्ण हैं।

रावण : (रावन) पुलस्त्य ऋषिका पौत्र तथा विश्रवाका पुत्र था। इसकी माता कैकसी थी। इसने कुबेरसे सुवर्णकी लंका छीन ली थी और स्वयं लंकाका राजा बन बैठा था। राम-वनवासके समय यह छलसे सीताको हर लाया था। इस कारण युद्धमें रामके हाथसे मारा गया। यह वेदोंका महापंडित था। इसीने शाखाओंके क्रमसे वेदोंका विभाजन किया था। रावण-कृत ऋग्वेदका भाष्य, नाडी-विज्ञान, इन्द्रजाल, कुमारतन्त्र आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

राहु : पुराणोंमें इसे कश्यप एवं दनुका पुत्र और भागवतमें इसे विप्रचित और सिंहिका-का पुत्र कहा गया है। समुद्र-मन्थनके समय अमृत पीनेके लिये इसने भी देवमंडलीमें सूर्य और चन्द्रके बीच बैठकर अमृत पी लिया। सूर्य और चन्द्रके संकेतपर विष्णुने इसका सिर धड़से अलग कर दिया। वही सिर राहु तथा धड़ केतु हुआ। ये दोनों पाप ग्रह माने जाते हैं। द्वेषके कारण सूर्य और चन्द्रको राहु ग्रसता रहता है।

रुद्रगण : शृङ्गी, भृङ्गी, रिटि, तुण्डी, नन्दिक और नन्दिकेश्वर ये शिवके गण हैं।

लक्ष्मण : (लछिमन) राजा दशरथकी द्वितीय रानी सुमित्रासे उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र। यह स्वभावके बड़े ही उग्र थे। धनुष-यज्ञके समय इन्होंने जनक और परशुरामको बड़ा फटकारा था। रामके वनगमनका समाचार सुनकर ये रामके साथ वन चले गए। ये रामके बड़े भक्त और सेवक थे। इन्होंने इन्द्रजित् मेघनादको मारा था। मेघनादको ब्रह्माका वरदान था कि जो १२ वर्ष-तक ब्रह्मचारी रहकर यति-धर्मका पालन करे एवं क्षुधा और निद्राका परित्याग करे वही तुमको मार सकता है। अतः लक्ष्मण ही उसके वधके लिये उपयुक्त व्यक्ति थे। अयोध्यामें जब राम राज्य कर रहे थे उस समय जब काल-पुरुष रामसे मिलने आया तब रामने लक्ष्मणको द्वारपर बैठाकर आज्ञा दी कि जबतक हम तुमको न बुलावें तबतक न तुम आना न किसीको आने देना। जो आवेगा उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। संयोगवश उसी समय दुर्वासा ऋषि आ गए और उन्होंने लक्ष्मणसे रामको अपने आने-की सूचना देनेको कहा। इन्होंने सूचना तो दे दी परन्तु रामकी आज्ञाका भंग करनेके कारण उन्होंने कटि-पर्यन्त जलमें खड़े होकर योगके द्वारा प्राण त्याग कर दिया।

लक्ष्मी : देवता और असुरों-द्वारा समुद्र-मन्थनसे निकले हुए १४ रत्नोंमें एक 'श्री' (लक्ष्मी) भी थीं जिन्हें विष्णुने पत्नी-रूपमें ग्रहण किया।

लग्न-पत्रिका : विवाहके समय कन्या-पक्ष-की ओरसे वरपक्षको विवाहके लग्न (समय, मुहूर्त आदि)-के सम्बन्धमें जो पत्रिका भेजी जाती है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लंका : भारतके दक्षिणमें समुद्रसे घिरी हुई लंकापुरीकी रचना मय दानवने त्रिकूटपर की थी। यह कुबेरके अधिकारमें थी। ब्रह्मासे वर-पाकर रावणने कुबेरसे लंकापुरी छीन ली और उसे अपना निवास-स्थान बना लिया। लंकाके भवन स्वर्णके थे। हनुमान्‌ने जब लंका जला दी तो स्वर्ण पिघल कर बह गया, केवल सधारण पुरी बच रही।

लंकिनी : लंकाकी पहरेदारिन। जब हनुमान् लंकामें प्रवेश करने लगे, तब इसने उन्हें रोका। हनुमान्‌ने उसके मुँहपर ऐसा घूँसा मारा कि वह मुँहसे लहू फेंकती हुई धरतीपर आ लुढ़की पर तुरन्त सँभलकर और हाथ जोड़कर हनुमान्‌से बोली—'रावणको वर देते समय ब्रह्माने मुझसे कहा था कि जब बन्दरका घूँसा खाकर तू तड़प उठेगी, तब समझ लेना कि अब राक्षसोंका विनाश होनेवाला है।'

लव-कुश : जब रामने गर्भवती सीताको लक्ष्मणके साथ वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचा भिज-वाया तब वहीं (आश्रम)-पर सीताने दो पुत्रों-को जन्म दिया जिनके नाम ऋषिने लव और कुश रक्खे थे। जब रामके अश्वमेधका घोड़ा छोड़ा गया था, तब लवने उसे पकड़कर बाँध लिया था। इस कारण लव और कुशसे रामकी सेनाका युद्ध हुआ। इस युद्धमें जब इनसे सभी परा-जित हो गए तब राम आए और उन्होंने इनको पहचान लिया। इसी अश्वमेध-यज्ञके समय वाल्मीकि इन दोनों बालकोंको लेकर अयोध्या आए और उनसे रामायणका गान सुनवाया और रामसे इन कुश-लवका परिचय कराया।

लवणासुर : मथुराका बड़ा प्रतापी और दुराचारी राजा। इसके अत्याचारसे सब ब्राह्मण जब त्राहि-त्राहि कर उठे तब रामकी आज्ञासे शत्रुघ्नने मथुरा जाकर लवणासुरको मारकर त्रस्त प्रजाको सुखी किया।

लवा : तीतरकी जातिका तीतरसे छोटा पक्षी। धरती-पर अधिक रहता है। इसके पंजे लम्बे होते हैं। जाड़ेमें ये झुंडके झुण्ड झाड़ियोंमें और धरतीपर दिखाई देते हैं। यह पक्षी दाने और कीड़े खाता है।

लोकप : (लोकपाल)—दस दिशाओंके ये दस लोकपाल हैं—पूर्वके इन्द्र, आग्नेय कोणके अग्नि, दक्षिणके यम, नैर्ऋत्यके निर्ऋति, पश्चिमके वरुण, वायव्यके वायु, उत्तरके कुबेर, ईशानके शिव, आकाशके ब्रह्मा और पातालके शेष।

लोक : संसार। स्थूल रूपसे तो लोक तीन ही हैं—स्वर्ग लोक (पृथ्वीसे ऊपरके छह लोक) २—भूलोक (मर्त्यलोक, बीचका लोक) ३—पाताल (भूलोकके नीचेके सात लोक)।

लोमश मुनि : दीर्घजीवी महर्षि थे। शरीरमें अधिक लोम (रोएँ) होनेसे इनका नाम लोमश पड़ा। प्रत्येक कल्पान्तमें इनका केवल एक रोआँ (बाल) झड़ जाता है। एक बार इन्होंने सौ वर्ष-तक कमलके फूलसे शिवकी पूजा की। प्रसन्न होकर शिवने प्रत्येक कल्पान्तमें शरीरका एक रोआँ झड़ने और प्रलयके अन्तमें मुक्ति प्राप्त करनेका आशीर्वाद दिया।

लोल-दिनेश : लोलार्क-कुंड नामका प्रसिद्ध कुंड जो काशीके भदैनी टोलेमें तुलसीघाटके सन्निकट है। पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे भाद्र शुक्ल ६ को इस कुंडमें स्त्रियाँ स्नान करती हैं। इस गहरे कुंडमें उतरनेके लिये पत्थरकी खड़ी सीढ़ियाँ बनी हैं।

लोवा : लोमड़ी। झबरी पूँछवाली, सियार जातिकी बहुत धूर्त मानी जाती है।

वज्र : वृत्रासुरका वध करनेके लिये इन्द्रने दधीचिकी अस्थिसे वज्र बनवाया था। इन्द्रने इसी वज्रसे वृत्रासुरका वध किया था।

वज्रदन्त : १. त्रिपुरासुरका सेनापति। इसने जब पाताल-लोक जीत लिया तब त्रिपुरासुरने इसे गाँव तथा वस्त्रालंकार देकर इसका बड़ा सम्मान किया। २. रावणका राक्षस सैनिक जिसे अंधकने मार डाला था।

वनमाल (वनमाला) : जंगली सफ़ेद फूलोंकी माला जिसके बीचमें मोटा कदंबका फूल लगा रहता हो और जो घुटने-तक लटकती हो—

आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तु-कुसुमोज्ज्वला।
मध्यस्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता॥

वंदी (बंदी) : राजाके दरबारमें राजाका आदेश सबको सुनाना इनका काम था।

वरदान : किसीकी तपस्या, सेवा या उत्तम कार्यसे प्रसन्न होकर अनुग्रह-पूर्वक उसकी इच्छाके अनुसार या उसके कल्याणके लिये ऐसा आशीर्वाद देना जो निश्चित रूपसे सफल हो।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वरणा : बरना नदी । काशीके उत्तरमें बहती हुई आदिकेशवके मन्दिरके पास गंगामें जा मिली है ।

वराहवपु : (बराहबपु) वाराह अवतार । विष्णुका तीसरा अवतार । जब पृथ्वीको शंखासुर चुराकर ले गया उस समय भगवान्‌ने वराह रूप धारण करके शंखासुरको मारकर पृथ्वीका उद्धार किया था ।

वर्ण : (चतुर्वर्ण) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र । केवल मनुष्य ही नहीं, चर, अचर सारी सृष्टि (पशु, पक्षी, जल, काष्ठ, रत्न, स्वर, नक्षत्र आदि) ही गुण, कर्म और स्वभावके अनुसार इन चार वर्णोंमें बँटी हुई है ।

वशिष्ठ : ये ब्रह्माके प्राणसे उत्पन्न हुए थे । कर्दमकी पुत्री अरुन्धती इनकी पत्नी थीं । ऋग्वेदके सप्तम मंडलका अधिकांश इन्हींकी कृति है । ये अथर्ववेदके आचार्य होनेके कारण 'अथर्वणी' भी कहलाते थे । इन्होंने सूर्यवंशका पौरोहित्य इसीलिये स्वीकार किया था कि इस वंशमें राम अवतार लेंगे ।

वसंत : छह ऋतुओंमें से पहली ऋतु (ऋतुराज) । चैत्र और वैशाख मासमें वसंत ऋतु होती है ।

वसुदेव : यदुवंशी शूर और मारिषाके पुत्र, कृष्णके पिता, देवकीके पति, कंसके बहनोई, उसके पिता उग्रसेनके मंत्री और कुन्तीके भाई थे । इनका नाम 'आनकदुन्दुभि' भी था क्योंकि इनके जन्मके समय देवताओंने आनक और दुन्दुभि नामके बाजे बजाए थे । देवकीके अतिरिक्त भद्रा, रोहिणी और मदिरा आदि इनकी कई पत्नियाँ थीं ।

वामदेव : राजा जनकके पुरोहित थे ।

वासुदेव : वसुदेवके पुत्र कृष्ण, जो कंसकी चचेरी बहन देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे और जन्मके पश्चात् गोकुलमें नन्दके घर पुत्रवत् पाले गए । इससे इनको नन्दनन्दन, नन्दलाल आदि भी कहते हैं । ये विष्णुके दशावतारोंमें-से आठवें अवतार माने जाते हैं । कुछ विद्वान् इन्हें आठवाँ अवतार न मानकर बलरामको आठवाँ अवतार मानते हैं और कृष्णकी स्वयं भगवान् मानते हैं—'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' ।

वारिचर-केतु : देखो कामदेव ।

वारुणी : (बारुनी) मदिरा । समुद्र-मन्थनसे निकले हुए १४ रत्नोंमें वारुणी भी थी ।

वाल्मीकि : देखो आदिकवि ।

विकटास्य : रामकी सेनाका एक वानर ।

विज्ञान : विशेष ज्ञान, ब्रह्म या परमात्माका ज्ञान ।

विदुर : नीतिवेत्ता, तत्त्वज्ञ, धार्मिक और कौरवोंके मुख्य मंत्री थे । ये कृष्णद्वैपायन व्यासके द्वारा विचित्रवीर्यकी पत्नी अंबिकाकी दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इन्होंने कूट भाषामें पाँडवोंको सावधान कर दिया था जिससे वे लाक्षाग्रहमें जलनेसे बच पाए थे । ये कृष्णके बड़े भक्त थे । कृष्ण जब पांडवोंके दूत बनकर दुर्योधनके पास आए तब दुर्योधनका आतिथ्य स्वीकार न करके विदुरके घर भोजन करने चले गए थे । दासीसे उत्पन्न होनेके कारण इन्हें 'क्षत्ता' भी कहते हैं ।

विदूषक : राजाका मनोरंजन करनेवाला हँसोड़ मित्र, जो किसी व्यक्ति या घटनापर व्यंग्य कसता हुआ राजाका मनोरंजन करता था । इसकी वेषभूषा भी विचित्र, बेढंगी, हास्योत्पादक होती थी ।

विदेह : मिथिलाके विदेह-वंशी राजा सीरध्वजका नाम जनक, विदेह आदि है । ये योगी और ब्रह्म-ज्ञनी होनेके कारण देहसे विरक्त रहते थे ।

विद्या : ज्ञानकी शाखाएँ । विद्याएँ १४ मानी गई हैं—चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद), छह वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द), मीमांसा, तर्क (न्याय), धर्मशास्त्र, पुराण (इतिहास) ।

षडंगमिश्रिता वेदा धर्मशास्त्रं पुराणकम् ।
मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्दशाः ।।

विधात्री : देवीभागवतमें लिखा है कि अनन्त शक्तिने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके लिये क्रमसे सरस्वती, लक्ष्मी और कालीको प्रदान किया । सृष्टिके प्रारम्भमें अनन्त शक्तिने ब्रह्मासे कहा कि तुम इस दिव्यरूपा महासरस्वतीको पत्नी रूपमें ग्रहण करो और इससे सृष्टि उत्पन्न

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

करो। वही महासरस्वती ही विधात्री (ब्रह्माणी) नामसे ब्रह्माकी पत्नी हुईं।

विनता : प्राचेतस दक्ष प्रजापति और असिक्नीकी कन्या, गरुडकी माता और कश्यपकी पत्नी। यह कुबड़ी थी। एक बार इसकी सौत कद्रूने बाजी लगाकर कहा कि उच्चैःश्रवा घोड़ेका रंग काला है। विनताने कहा—'नहीं सफेद है।' इसपर कद्रूने अपने पुत्र सर्पोंसे कहा कि तुम सब घोड़ेकी पूँछमें लिपट जाओ। ऐसा करनेपर जब घोड़ेकी पूँछ काली दीख पड़ी तब विनताने हार मान ली और वह १००० वर्षोंतक कद्रूकी दासी होकर रही। फिर विनताके पुत्र गरुडने उन सब सर्पोंको मार भगाया और उच्चैःश्रवाकी पूँछ श्वेत दिखाई देने लगी। तब विनताकी मुक्ति हुई।

विनय : विशेष नम्र होना, कृतज्ञतापूर्ण व्यवहार, निवेदन करना, कृतज्ञता प्रकट करना, उपकार मानना।

विन्ध्य : (विन्ध) १. भारतवर्षके मध्यभागमें पूर्वसे पश्चिम-तक फैला हुआ पर्वत। यह विन्ध्याचलके नामसे भी प्रसिद्ध है। २. भागवत तथा दुर्गा सप्तशतीके अनुसार जब कृष्णका जन्म होनेपर वसुदेव उसे लेकर गोकुल गए और सद्यःप्रसूता यशोदाकी कन्या लाकर कृष्णके स्थानपर सुला दी तब कंसने ज्यों ही उस कन्याको पटकना चाहा त्यों ही वह देवी उड़कर चली गई। वही विन्ध्यवासिनी देवी हुई।

विबुध-वैद्य : देखो रवि-सुवन।

विभीषण : विश्रवा ऋषिके तीन पुत्रों (रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण)-में से यह कनिष्ठ था। यह रावणका सौतेला भाई था। इसकी माताका नाम मालिनी था। यह सात्त्विक वृत्तिवाला और विष्णुका भक्त था। इसीने हनुमान्‌को सीताका पता बताया था। रावणसे विरोध होनेके कारण यह रावणके चरण-प्रहारसे रुष्ट होकर रामकी शरणमें चला गया। यह लंका और रावणका सारा भेद रामको बतलाता रहा। रामने रावणको मारकर विभीषणको ही लंकाका राजा बनाया।

विमान : व्योमयान। आकाशमें उड़नेवाला यान।

वियोगी : जो व्यक्ति सांसारिक प्रपंचोंसे विरक्त हो गया हो उसे विरागी, वियोगी या त्यागी कहते हैं।

विराट : ब्रह्मका वह स्वरूप जिसमें सारी सृष्टि समाई हुई मानी गई है।

विवेक : ज्ञान और अज्ञान, सत्य और असत्य, वास्तविक और अवास्तविक, उचित और अनुचितका निर्णय करनेवाली बुद्धिको विवेक कहते हैं। औचित्य और अनौचित्यका सूक्ष्म निर्णय करना ही विवेकका धर्म है।

विश्व : सम्पूर्ण सृष्टि। सारा संसार।

विश्वकर्मा : वह देव-शिल्पी जो सम्पूर्ण शिल्प-कलाओंके आचार्य माने जाते हैं। ये प्रभास नामक वसु तथा वृहस्पतिकी ब्रह्मचारिणी बहिनके पुत्र थे। इन्होंने ही देवताओंके लिये विमान बनाए थे।

विश्वनाथ : काशीके अधीश्वर महादेव। विश्वेश्वर। १२ ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक। देखो महादेव, शंभु, वृषकेतु।

विश्वमोहिनी : नारदको अहंकार हो गया था कि मैंने कामदेवको जीत लिया है। उनका अभिमान दूर करनेके लिये विष्णुने अपनी मायासे अत्यन्त सुन्दरी नगरीका निर्माण करके शीलनिधिको उसका राजा बनाया जिसकी विश्वमोहिनी नामकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। नारदके प्रार्थना करनेपर विष्णुने उन्हें हरि (वानर)-का मुख देकर भेजा जिससे विश्वमोहिनीने उनकी ओर देखा-तक नहीं। इसी बीच विष्णु आए और उनके गलेमें विश्वमोहिनीने जयमाला डाल दी।

विश्वास : किसीको निश्चित रूपसे हितैषी मानना ही विश्वास कहलाता है।

विष : (१) हलाहल। समुद्र-मन्थनसे निकले हुए १४ रत्नोंमेंसे एक। उसकी झारसे सबको जलते देखकर शिवने उसे पीकर अपने कण्ठमें रख लिया था। इसीसे शिवका नाम गरल-कंठ या नीलकंठ पड़ा। (२) कोई भी पदार्थ, जिससे प्राणीकी मृत्यु हो जाय।

विष्णु : सृष्टिका भरण-पोषण करनेवाले आदि देव, क्षीरसागरमें शेष-शय्यापर शयन करते हैं और जिनकी नाभिसे उत्पन्न होनेवाले कमलसे

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। महाप्रलय होनेपर केवल विष्णु भगवान् बालमुकुन्द बनकर अक्षयवटके पत्रपर लेटे रहते हैं।

विष्णुयश : इनके पुत्रके रूपमें संभल (जिला मुरादाबाद उत्तर प्रदेश)-में कल्कि अवतार लेनेवाले हैं।

विहार : (१) मनोरंजन या मनोरंजनका स्थान। विलास-भूमि। २. बौद्धोंके मठ और आश्रम, जहाँ बौद्ध भिक्खु रहते हैं।

वीणा : एक प्रकार वाद्य यन्त्र, जिसकी दोनों ओर दो तुम्बे लगे रहते हैं और बीचमें एक तार-दंड (प्रवाल) होता है जिसपर लोहेके तीन पक्के और पीतलके चार कच्चे तार लगे होते हैं और एक सिरेपर उन्हें कसनेकी खूँटियाँ बनी होती हैं। महादेवकी वीणाका नाम लम्बी, सरस्वतीकी कच्छपी, नारदकी महती और तुंबुरुकी कलावती है। इसके अतिरिक्त त्रितन्त्री, किन्नरी, विपञ्ची, रञ्जनी, शारदी, रुद्र और नागेश्वर आदि और भी वीणाके अनेक भेद होते हैं। इसका सिरा बाएँ कंधेपर टेककर या गोदमें रखकर इसे उँगलीसे या किसी धातु-पत्रसे झनकारकर बजाते हैं।

वीरभद्र : शिवका पार्षद जो शिवके क्रोधसे उत्पन्न हुआ था। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें दक्ष-प्रजापतिने शिवका अपमान किया था, जिससे क्रुद्ध होकर शिवने अपनी जटा झटककर इसे उत्पन्न किया था। जब दक्षके यज्ञमें सतीने योगाग्निसे शरीर त्याग किया तब वीरभद्रने ही दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था।

वृषकेतु : महादेव, जिनके झंडेपर बैल बना रहता है।

वेद : ब्रह्माके चारों मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन चारों वेदोंके क्रमशः चार उपवेद भी हैं। धन्वंतरिने ऋग्वेदसे आयुर्वेद निकाला, विश्वामित्रने यजुर्वेदसे धनुर्वेद निकाला, भरतमुनिने सामवेदसे गान्धर्ववेद निकाला और विश्वकर्माने अथर्ववेदसे स्थापत्य-वेद (अर्थवेद) निकाला।

वेदशिरा : भृगु मुनिके पौत्र और मार्कण्डेय ऋषि तथा मूर्धन्याके विद्वान् तपस्वी पुत्र। श्वेतवाराह-कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमेंसे पन्द्रहवें युगचक्रमें उत्पन्न हुए थे।

वेणी : (त्रिवेणी) प्रयागमें यमुना जहाँ गंगाकी धारामें मिलती है उसी संगमको त्रिवेणी कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि वहींपर अन्तः-सलिला सरस्वती भी आकर मिलती हैं।

वेदी : किसी भी प्रकारके यज्ञमें देवताओं, होताओं, आचार्यों, ऋत्विजों आदिके बैठने और यज्ञ-कुण्डके लिये जो ऊँचा चौतरा बनाया जाता है। यज्ञकी वेदीके लिये कर्मकांडमें उसकी लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाईका विस्तृत विधान है।

वेन : (राजा वेन) अंग देश (बिहार)-का दुष्ट राजा, जो अंग एवं मृत्युकी मानस-कन्या सुनीथाका पुत्र था। इसके दुष्कर्मोंसे ऊबकर इसके पिता देश छोड़कर चले गए थे। यह अपनेको ईश्वर मानता था। ऋषियोंने मिलकर इसका वध कर डाला। देखो पृथु।

वैताल : १. भाट, २. जादूगर, ३ प्रेत योनियोंमेंसे एक योनि।

व्यंग्य : १. शब्दकी व्यञ्जना शक्ति-द्वारा ध्वनित होनेवाला वह अर्थ जो सामान्य अर्थसे भिन्न और नया हो। २. फबतियाँ कसना, बोली बोलना।

व्यास : महाभारत एवं पुराणोंके कर्ता कृष्णद्वैपायन व्यासका जन्म वैशाखकी पूर्णिमाको हुआ था। ये महर्षि पराशर और सत्यवतीके पुत्र थे। यमुनाके बीच द्वीपमें जन्म होनेके कारण ये 'द्वैपायन' तथा माता 'काली' के प्रसादके कारण कृष्णद्वैपायनके नामसे प्रसिद्ध हुए। आषाढ पूर्णिमाको व्यास रूपमें इनकी प्रतिष्ठा और पूजा हुई इसीसे इस तिथिको व्यास-पूर्णिमा (गुरु-पूर्णिमा) कहते हैं।

शक्ति : पराक्रम, सामर्थ्य, उत्साह। शक्तिके तीन तत्त्व हैं—प्रभुशक्ति या प्रभाव-शक्ति, मन्त्र-शक्ति या सत्परामर्श अथवा सदुपदेश-शक्ति और आत्मोत्साह शक्ति या प्रेरणाशक्ति। शक्तिके अन्य तीन स्रोत हैं—मन्त्र-शक्ति, तन्त्र-शक्ति, यन्त्रशक्ति। सामान्य व्यवहारमें शक्तिके निम्नांकित रूप हैं—धन-शक्ति, जन-शक्ति, सैन्य-शक्ति, शारीरिक शक्ति, संघशक्ति।

शंख : १. समुद्रमें उत्पन्न होनेवाला जीव, जिसकी खोल बड़ी कड़ी और श्वेत होती है। उसे भीतरसे साफ करके और ऊपर छेद करके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

देव-पूजनमें बजाते हैं। भगवान् विष्णुके चार हाथोंके पदार्थों (शंख, चक्र, गदा, पद्म)-मेंसे एक। यह विष्णुके ऊपरवाले बाएँ हाथमें रहती है।

शठ : रामकी सेनाका वानर।

शतरूपा : (सतरूपा) ब्रह्माकी मानस-कन्या जो उनके वामांगसे उत्पन्न हुई थी। इसने दीर्घकाल-तक तपस्या करके स्वायंभुव मनुको पति-रूपमें प्राप्त किया था।

शत्रुघ्न : सुमित्रासे दशरथके सबसे छोटे पुत्र। ये भरतसे अधिक हिले-मिले रहते थे। इनकी पत्नीका नाम श्रुतिकीर्ति था जो जनक (सीरध्वज)-के भाई कुशध्वजकी कन्या थी। इनके दो पुत्र थे—सुबाहु और शत्रुघाती।

शफरी : (सफरी) सौरी मछली। गंगामें बहुत होती है।

शबरी : (सबरी) शबर जातिकी स्त्री थी जो पंपासरके तटवासी मतंग ऋषिकी परि-चायिका और रामकी अनन्य भक्ता थी। सीताकी खोज करते हुए जब राम पंपासरपर आए तब मतंगके वरदानके अनुसार इसके आश्रममें राम गए थे। रामने बड़े प्रेमसे भक्तिन शबरीके जूठे बेर खाए थे। रामकी कृपासे यह मुक्त हो गई। रामने इसे माताके समान मानकर अंतिम संस्कार किया।

शम : (सम) किसी भी दशामें मनको कभी विक्षुब्ध न होने देना, शान्त रखना।

शम्बुक : शंख, सीपी, घोंघा आदि।

शंभुगण : शिवके गण हैं—भृङ्गी, भृङ्गी, रिटि, तुण्डी, नन्दिक और नन्दिकेश्वर।

शरद् : छह ऋतुओंमेंसे एक, जो वर्षाके बाद आती है। यह आश्विन और कार्तिक मासोंमें पड़ती है। यह बहुत सुहावनी ऋतु होती है। इस ऋतुमें चन्द्रमाकी ज्योति अत्यन्त निर्मल होती है।

शरभंग : (सरभंग) गौतम कुलमें उत्पन्न ऋषि जो दण्डकारण्यमें गोदावरीके तटपर रहते थे। वाल्मीकि रामायणमें इनका आश्रम मंदा-किनी (पयोष्ण)-के तटपर चित्रकूटके पास बताया गया है। वनवासके समय राम उनके आश्रममें गए थे।

शर्व : (सर्व) प्रलयके समय सबका संहार करनेवाले और भक्तोंका पाप नष्ट कर डालनेवाले (शिव)।

शर्वरीनाथ : (सर्वरीनाथ), शर्वरी (रात्रि)-के स्वामी चन्द्रदेव।

शशक : (सस) खरगोश। मृग-जातिका छोटासा पशु, स्वभावका बड़ा कोमल, चंचल और सीधा होता है। यह घास खाता है और जंगलोंमें बड़े वेगसे दौड़ता है। इसके कान लंबे होते हैं।

शस्त्र : वह हथियार जो हाथमें लेकर चलाया जाय, जैसे—तलवार, खड्ग, गदा, मुद्गर, लाठी आदि।

शहनाई : पिपिहरीके समान मुँहसे बजाया जानेवाला १॥ फ़ीट लंबा मधुर वाद्य जो ऊपरसे सँकरा और नीचे गोल चौंगेके मुँहवाला होता है। एक व्यक्ति केवल स्वर देता है और दूसरा आरोहण-अवरोहणपूर्वक राग बजाता है। शहनाई बहुत पुराना और मधुर वाद्य है।

शाप : किसीपर कुपित होकर उसके अनिष्टके लिये ऐसे दुर्वचन कहना कि निश्चय ही अनिष्ट हो।

शारदा : (सारदा) देखो सरस्वती।

शार्ङ्गपाणि : (सारँगपानी) समुद्र-मन्थनसे जो १४ रत्न निकले थे उनमें 'शार्ङ्ग धनुष' भी था। इसे विष्णुने ले लिया। इसीलिये विष्णुको 'शार्ङ्गपाणि' या 'शार्ङ्गधन्वा' कहते हैं।

शिखंडी : (सिखंडी) पांचाल देशके राजा द्रुपदका यह पुत्र शिखंडिनी नामक कन्याके रूपमें उत्पन्न हुआ था। स्थूणाकर्ण नामके यक्षकी कृपासे यह पुरुष बन गया। इसका दूसरा नाम 'याज्ञसेनि' भी है। महाभारतके युद्धमें यह पाण्डवोंकी ओरसे एक अक्षौहिणी सेनाका सेनापति होकर लड़ा था। जब भीष्म पितामह किसीके मारे न मर पाए तब भीष्मने अर्जुनको अपनी मृत्युका उपाय बताते हुए कहा कि तुम कल शिखंडीको आगे करके मुझपर बाण चलाना। मैं शिखंडीको देखते ही हथियार रख दूंगा, क्योंकि मैं अब भी शिखंडीको स्त्री ही समझता हूँ। अर्जुनने ऐसा ही किया और भीष्म पितामहको अपने बाणोंसे बींध डाला।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शिवि : (सिवि)—राजा उशीनरका पुत्र शिवि अपनी दानवीरताके लिये विख्यात था। इसकी दानवीरताकी परीक्षाके लिये एक बार कबूतर बने हुए अग्निका पीछा करते हुए बाज (इन्द्र) शिविके पास आ पहुँचे। कबूतर (अग्नि) को शरण देकर शिविने बाज (इन्द्र)-से उसकी प्राण-रक्षाकी प्रार्थना की। बाज इस बात-पर सहमत हुआ कि यदि आप इस कबूतरके तौलके बराबर अपने शरीरका मांस काटकर दे दें तो मैं छोड़ दूँगा। शिविने तुलाके एक पलड़ेपर कबूतरको बैठाकर अपने शरीरका मांस काट-काटकर दूसरे पलड़ेपर रखना प्रारंभ किया, पर जब बहुत सा मांस काट रखनेपर भी कबूतरके बराबर न हुआ तब शिवि स्वयं पलड़ेपर जा बैठे। इसपर अग्नि और इन्द्रने प्रकट होकर उन्हें अनेक वरदान दिए।

शिशिर : माघ और फाल्गुन मासोंमें शिशिर (जाड़ेकी) ऋतु होती है।

शिशुपाल : चेदि देशके राजा दमघोष और वसुदेवकी बहन श्रुतश्रवाका पुत्र, श्रीकृष्णका फुफेरा भाई और पाण्डवोंका मौसेरा भाई था। इसे चैद्य और सुनीथ भी कहते हैं। कृष्णको सौसे अधिक गालियाँ देनेपर उन्हींके हाथों मारा गया था।

शिल : (सीलसिल) खेतका अनाज कट जानेपर जो दाने खेतमें पड़े रह जाते हैं उन्हें शिल कहते हैं। ब्रह्मचारी इसे चुन ले जाते थे और उसीको खाकर सन्तोष करते थे। इस प्रकार शिल चुनकर खानेकी वृत्तिको शिलोञ्छवृत्ति कहते हैं।

शीलनिधि : विश्वमोहिनीका पिता (देखो विश्वमोहिनी और नारद)।

शुनासीर : (सुनासीर) देखो इन्द्र।

शुक : (सुक, रावणका दूत) जब रामकी शरणमें विभीषण आया तब रावणने अपने दो भेदिए (शुक और सारण) पीछे-पीछे भेद लेने लगा दिए थे। जे जब रामकी सेनामें पहचान लिए गए तब उन्हें लक्ष्मणने रावणको देनेके लिये एक पत्र दिया और उन दूतोंको सकुशल वापस भेज दिया।

शुकदेव : (सुक) घृताची अप्सरा (अरणी)-के गर्भसे उत्पन्न महर्षि व्यासका पुत्र। यह बाल अवस्थामें ही विरक्त हो गया था। इसके उपनयनके समय इन्द्रने इसे कमण्डलु और काषाय वस्त्र दियाथा, वृहस्पतिने वेदादिका ज्ञान कराया था तथा व्यासने उपनिषद्, इतिहास, राजनीति एवं मोक्षादि धर्म (दर्शन-शास्त्र)-का ज्ञान कराया था। व्यासकी आज्ञासे यह राजा जनकसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये मिथिल गया था। इसने नारदसे भी आत्म-कल्याणका उपाय पूछा था।

शुक्राचार्य : दैत्योंके (पुरोहित, गुरु) भार्गव कुलमें उत्पन्न ऋषि। जब राजा बलिने वामनको तीन पग (त्रिपाद) भूमि देनेका निश्चय किया, तब संकल्पके समय शुक्रने जलपात्र (झारी) की टोंटीमें प्रवेश करके जलधारा रोकनी चाही। वामनने कुशकी नोकसे झारीका मुँह खोल दिया। वह कुश शुककी आँखमें जा लगा और उनकी एक आँख जाती रही। तबसे इनका नाम एकाक्ष भी पड़ गया। ये संजीवनी विद्याके पंडित थे और इन्होंने यह विद्या वृहस्पतिके पुत्र कचको सिखाई थी।

शुम्भ : शुम्भ और निशुम्भ नामक दोनों भाई दिग्विजयी दैत्य थे। इन्होंने सुना कि हिमालय पर्वतपर अत्यन्त सुन्दरी दुर्गा बैठी हैं तो उन्हें अपने पास लानेके लिये दूत (धूम्रलोचन) भेजा। परंतु दुर्गाने कहा कि जो मुझे संग्राममें जीतेगा, मेरा गर्व नष्ट करेगा तथा जो बलमें मेरा सामना कर सकेगा वही मेरा पति हो सकता है। दुर्गाने धूम्रलोचन (दूत) चंड, मुंड, रक्तबीज, शुम्भ और निशुम्भ सभीको मार डाला।

शूकरक्षेत्र : (सूकरखेत) घाघरा-सरयूके संगमपर गोंडा जिलेमें वराहतीर्थ सूकरखेत है। यहींपर तुलसीदासने अपने गुरुसे राम-कथा सुनी थी।

शूर्पणखा : (शूर्पनखी, सूपनखा) विश्रवा और कैकसीकी पुत्री, खर और दूषणकी मौसेरी बहन, रावणकी बहन तथा कालकेय राक्षसोंके राजा विद्युज्जिह्वकी पत्नी थी। एक बार यह कामोन्मत्त होकर रामसे विवाह करने पंचवटी जा पहुँची। रामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया और लक्ष्मणने उसके नाक-कान काट डाले। यह रोती हुई अपने मौसेरे भाई खर और दूषणके पास गई पर रामने उन्हें भी सेना-सहित मार गिराया। महाभारतमें इसकी माताका नाम राका और खर तथा दूषणको इसका सगा भाई बताया गया है।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

शृंगवेरपुर : (सिंगवेरपुर, सिंगरौर) गंगाके उत्तर तटपर प्रयागसे २२ मीलपर उत्तर-पश्चिममें है। प्रयाग पहुँचनेसे पहले राम यहीं ठहरे थे।

शृंगी ऋषि : (सिंगी ऋषि) ये विकलांग ऋषि थे। वशिष्ठके कहनेपर दशरथने इन्हींसे पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया था। राजा दशरथने इनसे अपनी पुत्री शान्ताका विवाह भी कर दिया था।

शेष : (सेस) पाताल लोकके लोकपति शेष नागके सिरपर पृथ्वी टिकी हुई मानी गई है। जब महाप्रलयमें सारी सृष्टि जलमग्न हो जाती है तब लक्ष्मी-सहित विष्णु भगवान शेष-शय्या पर आ लेटते हैं। शेषनाग अपने फणसे इनके ऊपर छाया किए रहते हैं। इसीसे विष्णु शेषशायी और जलशायी भी कहलाते हैं। लक्ष्मण और बलरामको शेषका अवतार माना जाता है।

शैलराज : (सैलराज) संसारके सभी पर्वतोंमें सबसे ऊँचा होनेके कारण ही हिमालयको शैलराज कहते हैं। देखो हिमांचल।

शोणनद : सोन या शोणभद्र नामक नद जो गोंडवानासे निकलकर (बिहारमें) पटनेके आगे गंगामें गिरता है। इसका पाट बहुत चौड़ा है।

श्यामकर्ण : जिस घोड़ेका सारा शरीर श्वेत हो और एक कान काला हो।

श्यामा : (सं० कृष्ण-सारिका) काली मैना।

श्रद्धा : विश्वास, प्रेम और भक्तिके साथ पूज्य भाव।

श्रीपति : लक्ष्मीके पति विष्णु।

श्रुतिकीर्ति : (स्रुतिकीरति) जनक (सीरध्वज)-के भाई कुशध्वजकी पुत्री, जो शत्रुघ्नसे ब्याही गई थी।

श्रोता त्रिविध : तीन प्रकारके श्रोता—जीवन्मुक्त, विरक्त और सांसारिक।

षट-रस : (षड्-रस) (१) मधुर (मीठा)। (२) तिक्त (तीता, नीमके समान)। (३) कटु (कड़वा, मिर्चके समान)। (४) कषाय (कसैला, बहेड़े-हरेंके समान)। (५) लवण (नमकीन)। (६) अम्ल (खट्टा, आँवलेके समान)।

षड्वदन कुमार : (स्वामि-कार्तिकेय) शिवके पुत्र और देवताओंके सेनापति। इनके छह मुख हैं और इनका वाहन मोर है। इन्हें स्वामिकार्तिक, कार्तिकेय, षण्मुख, कुमार और षडानन भी कहते हैं। शिवका वीर्य अग्निको मिला किन्तु उसका तेज सहन न करनेके कारण उसने उसे गंगामें डाल दिया जहाँ ये उत्पन्न हुए। छह कृत्तिकाओंने इनका पालन किया और इन्हें लेनेके लिये झगड़ने लगीं। तब पार्वती इन्हें उठा ले गईं। इन्होंने ही देवताओंके सेनापति बनकर तारक नामके असुरको मारा था।

षट्पद : (छपद, भौंरा) श्रीकृष्णने गोपियोंको ज्ञानोपदेश देनेके लिये उद्धवको गोकुल भेजा। जिस समय वे गोपियोंको उपदेश दे रहे थे, उसी समय एक भौंरा वहाँ आ पहुँचा। उसे लक्ष्य करके गोपियोंने षट्पद (भ्रमर) नाम दे दिया। उन गोपियोंने इनके निर्गुण ब्रह्मको और इन्हें बहुत मूर्ख बनाया। यह प्रसंग साहित्यमें भ्रमरगीत कहलाता है।

षड् ऋतु : वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर—ये छह ऋतुएँ हैं। 'शिशिरश्च वसन्तश्च ग्रीष्मो वर्षा शरद्धिमः।' प्रत्येक ऋतु दो-दो महीनेकी होती है। वसन्त ऋतुको ऋतुराज कहते हैं। कुछ लोग हेमन्त और शिशिर-को एक मानकर पाँच ही ऋतुएँ मानते हैं।

षडानन : (देखो षड्वदन कुमार)।

संत : जो सांसारिक मोह-माया त्यागकर केवल परोपकारमें लगा हो। गोस्वामीजीने 'मानस'में सन्तोंके लक्षण कई स्थानोंपर विस्तारसे दिए हैं। संक्षेपमें सन्त वही है जो अपकार करनेवालेके साथ भी उपकार करे।

सन्निपात : वात, पित्त और कफ जब कुपित हो जाते या बिगड़ जाते हैं उसे ही त्रिदोष या सन्निपात कहते हैं। उसमें रोगी बकझक करने लगता है। यह असाध्य रोग है।

संपाती : (गृध्र, जटायुका बड़ा भाई) श्येनीके गर्भसे उत्पन्न अरुणका पुत्र। यह उटायुका बड़ा भाई था। जब इन्द्रने वृत्रासुरको मार डाला तब ये दोनों भाई इन्द्रको जीतनेके लिये सुरपुर जा पहुँचे। वहाँ जानेपर जब सूर्यकी प्रचंड ज्वालासे जटायुके पंख जलने

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

लगे तब संपातीने जटायुपर अपने पंखोंकी छाया कर दी । जटायु तो बचकर लौट आया पर सूर्यके तापसे संपातीके पंख जल गए। जब हनुमान् आदि सीताकी खोजमें जा रहे थे तब उन्हें समुद्र-तटपर संपाती मिला था। उसने हनुमान्को लंकाका मार्ग बता दिया। उसी समय उसके पंख पुनः निकल आए ।

संस्कार : १६ संस्कार माने गए हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, केशान्त, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, गार्हपत्य और अन्त्येष्टि। संस्कारका अर्थ है अशुद्धको शुद्ध करनेकी क्रिया ।

संयम : मनको अपने वशमें रखना । कभी किसी भी दशामें उत्तेजित न होना ।

संवत् : १. विक्रम संवत्, (जो खीष्टाब्दसे ५७ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था) चैत्र शुक्ल १ से आरम्भ होकर चैत्र कृ० ३० को समाप्त होता है। २. 'शक' संवत् कनिष्कने चलाया था, जो विक्रमाब्दके १३५ वर्ष बादसे चला है। भारत सरकारने यही संवत् स्वीकार किया है ।

संवाद : प्रवचन, कथा, बातचीत, जोड़-तोड़के प्रश्नोत्तर, जैसे—लक्ष्मण-परशुराम और अंगद-रावणके संवाद ।

सगर : इक्ष्वाकु वंशमें बाहुक और कालिंदी (या केशिनी)-का पुत्र सगर बड़ा धर्मात्मा, दानवीर, सत्यव्रती और पराक्रमी था। इसके अश्वमेध यज्ञका घोड़ा इन्द्रने कपिल मुनिके आश्रम (पाताल)-में ले जा छिपाया। सगरके साठ हजार पुत्रोंने घोड़ेको कपिलके आश्रममें बंधा पाकर कपिलका बड़ा अपमान किया। कपिल मुनिके नेत्रकी अग्निसे सगरके सभी पुत्र भस्म हो गए ।

सगुण ब्रह्म : (सगुन ब्रह्म) जिस महान् पुरुषमें ब्रह्म अपने तेजके साथ प्रकट होता है उसे सगुण ब्रह्म-स्वरूप (अवतारी पुरुष) मानते हैं। राम, कृष्ण आदि ब्रह्मके सगुण स्वरूप हैं।

सच्चिदानंद : परब्रह्म परमात्माका रूप सत् (सदा रहनेवाला), चित् (ज्ञानमय) और आनन्दमय है। इसीसे वह 'सच्चिदानंद' कहा जाता है ।

संजीवनी बूटी : एक प्रकारकी बूटी (औषधि) जो मृतकको भी पुनर्जीवन प्रदान करती है। लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर यही बूटी हिमालयसे हनुमान्जी ले आए थे जिसके खिलाते ही लक्ष्मण तुरन्त चैतन्य हो उठे थे ।

सतानंद : (शतानंद) गौतम शारद्वत तथा ब्रह्माकी मानस कन्या और दिवोदासकी बहन अहल्या (गौतमकी पत्नी)-के पुत्र थे। ये राजा जनकके पुरोहित थे। इनके पुत्रका नाम सत्यधृति था ।

सती : दक्ष प्रजापति और प्रसूतिकी पुत्री तथा शिवकी पत्नी थी। जब दक्षने प्राजापत्य यज्ञ किया तब उसने शिवको आमंत्रित नहीं किया। पतिके इस अपमानसे दुखी होकर सतीने दक्षके यज्ञमें आत्माहुति देकर प्राण विसर्जन कर दिया। वही सती हिमांचलके घर मेनाके गर्भसे पार्वती नामसे उत्पन्न हुई और कठिन तपस्या करके शिवकी अर्द्धांगिनी हुई ।

सत्यकेतु : केकय देशके राजा धर्मकेतुका महापराक्रमी पुत्र और धृष्टकेतु राजाका पिता ।

सदाचार : उत्तम आचरण, श्रेष्ठ पुरुषोंका-सा आचरण। देश-कालके अनुसार धर्म-पूर्वक वह आचरण करना जो उन अवसरोंपर श्रेष्ठ पुरुष आचरण करते आए हों ।

सनकादि : ब्रह्माके पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदिने एक बार ब्रह्मासे पराविद्या (ब्रह्मविद्या)-सम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे। ब्रह्मा जब उनके प्रश्नोंका उत्तर न दे सके तो उन्हें बड़ा गर्व हुआ। ब्रह्माने उनके हृदयकी बात जानकर भगवान् विष्णुका स्मरण किया। तत्काल वहींपर विष्णु भगवान् हंसके रूपमें प्रकट हो गए और हंसरूप भगवान्ने परा विद्याका सारांश कह सुनाया। उसे सुनकर सनकादिका गर्व जाता रहा। निम्बार्क सम्प्रदायवाले इसी हंसको अपने सम्प्रदायका आदि आचार्य मानते हैं। ये सनकादि पाँच वर्षके तेजस्वी बालकके समान नंगे रहते हैं ।

सन्तोष : कोई इच्छा न करना। जो कुछ मिल जाय उसीमें तृप्त हो रहना ।

सप्तद्वीप : १—जम्बू, २—प्लक्ष, ३—शाल्मलि, ४—कुश, ५—क्रौञ्च, ६—शाक और ७—पुष्कर ।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सप्तर्षि : (सप्त रिषीसा) ब्रह्माके ७ मानस पुत्र, प्रारंभिक ऋषि—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और प्रचेता। वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं—विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप। प्रत्येक मन्वन्तरके पृथक् पृथक् सप्तर्षि होते हैं।

समाधि : सब ओरसे मन हटाकर ब्रह्ममें लीन कर लेना। यह योगकी आठवीं (अन्तिम) अवस्था है। ब्रह्मचिन्तनमें पूर्ण लीन हो जाना। अपने आत्माको ब्रह्ममय कर देना ही समाधि अवस्था है। (देखो योग)

समिधा : यज्ञमें जलानेके लिये पलाश या आमकी लकड़ी।

सरयू : नदी, जिसके दाहिने तटपर अयोध्यापुरी स्थित है। यह नदी हिमालयसे निकली है औरछपरा-बलिया ज़िलोंकी सीमापर गंगामें मिल गई है।

सरव : पटा-बनेठीका खेल।

सरस्वती : (सरसई)–१–यह नदी पंजाबमें सिरमूर राज्यकी पहाड़ीसे निकलकर अंबाला, थानेश्वर और कुरुक्षेत्र होती हुई सिरसा ज़िलेकी कागार (दृषद्वती) नदीमें विलीन हो गई है। यह पहले गंगा और यमुनासे प्रयागमें मिलकर संगम करती थी जिसे त्रिवेणी कहते हैं। पर अब वहाँ सरस्वतीकी धारा अन्तःसलिला रूपमें धरतीके नीचेसे आकर मिलती हुई मान ली गई है।

२–देवी, शुक्ल वर्णवाली वीणा-पुस्तक-स्फटिक माला-धारिणी, वेद-शास्त्रोंकी जननी, विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवी, अज्ञानान्धकार दूर करके शुद्ध बुद्धि-प्रदायिनी महाशक्ति।

सहस्रनयन (सहस्रनयन) : जब इन्द्रने छलसे महर्षि गौतमकी पत्नी अहल्याका पातिव्रत नष्ट किया, तब महर्षि गौतमने उन्हें शाप दिया कि तू सहस्र भग वाला हो जा। साथ ही अहल्याको भी शाप दिया कि तू शिला हो जा। दोनोंकी प्रार्थनापर गौतमने इन्द्रसे कहा कि तुम्हारे भग सहस्र नेत्र हो जायँगे तथा अहल्याको कहा कि त्रेतायुगमें राम जब मुनि विश्वामित्रके साथ उनके यज्ञकी रक्षाके लिये आवेंगे तब मिथिला जाते समय तेरे ऊपर उनके चरण पड़ेंगे तो तेरा उद्धार हो जायगा।

सहस्रबाहु : (कार्यवीर्यार्जुन, सहस्रार्जुन, हैहय) राजा कृतवीर्य और राकावतीका पुत्र, माहिष्मती (वर्त्तमान मंडला)-का राजा जो सुदर्शन चक्रका अवतार माना जाता है। इसने जमदग्नि ऋषिसे बलपूर्वक उनकी कामधेनु छीनकर ऋषिको मार डाला। उनके पुत्र परशुरामने बदलेमें सहस्रबाहुको मार डाला।

सांख्य-शास्त्र : कपिल मुनिने अपने सांख्य-दर्शनमें पचीस तत्त्वोंके ज्ञानसे दुःखका नाश होना बताया है। ये २५ तत्त्व हैं १. ज्ञ (पुरुष), १. अविकृति (मूल प्रकृति), ७ प्रकृति-विकृति [बुद्धि, अहंकार पाँच तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)], १६ विकृति [पंच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), पाँच ज्ञानेन्द्रिय (आँख, नाक, कान जीभ, त्वचा), पाँच कर्मेन्द्रिय (मुख, हाथ, पैर, गुदा, लिंग) और मन।]

साढ़े साती : (साढ़े साती शनिश्चरका कोप)। शनि पाप ग्रह है। यह जिस राशिपर आता है उसे एक साथ साढ़े सात वर्ष-तक अथवा ढाई-ढाई वर्षोंमें तीन बार सताता है। इसके कोपसे आधि-व्याधि, धन-नाश, अपमान आदि बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं।

साधक : किसी कार्य या अनुष्ठानकी साधना करनेवाला 'साधक' कहलाता है। जब साधक अपनी साधनामें सफल हो जाता है तब वह 'सिद्ध' कहलाता है।

साबरमन्त्र : (शाबरमन्त्र) अर्थहीन और अनमिल अक्षरोंवाले वे मन्त्र, जिनकी रचना शिवने की है और जिन्हें झाड़-फूँकवाले प्रयोगमें लाते हैं।

सारिका : (सारी) मैना पक्षी। यह काले रंगका होता है। इसकी चोंच पीली या नारंगिया रंगकी होती तथा टाँगें और पूँछ लम्बी होती है। इसका सारा शरीर काले परसे ढका रहता है। यह बहुत ही स्पष्ट रूपसे मनुष्यकी बोलीका अनुकरण कर लेता है। यह कीड़ा, सत्तू और पका फल खाता है। हिमालयके पहाड़ी प्रदेश और असममें अधिक पाया जाता है।

सिंह : (शेर बबर) इस शब्दकी व्युत्पत्ति 'हिंस्' धातुसे हुई है। वर्ण-विपर्ययके अनुसार 'हिंस्'से 'सिंह' हो गया है। सिंहके गर्दनपर बड़े-बड़े बाल (अयाल, केसर), उसकी छाती चौड़ी और कमर पतली होती है। कहा जाता है कि सिंहके

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

एक ही बच्चा होता है। हाथीका सबसे बड़ा शत्रु सिंह ही है। वह दूरसे ही झपटकर हाथीके मस्तकपर चढ़ बैठता है और अपने नखोंसे उसका मस्तक फाड़ डालता है। एक मुख, और मुखके ही समान भयंकर नुकीले नखोंवाले चार पंजोंके कारण इसे 'पंचानन' (पाँच मुखवाला) भी कहते हैं।

सिंहासन : राजा या देवताका सम्मानित विशेष आसन। इसमें दोनों ओर हाथ रखनेके स्थानपर प्रताप और पराक्रमके प्रतीक सिंहकी आकृति बनी रहती है, इसलिये इसे सिंहासन कहते हैं। राजाको सिंह या व्याघ्र-चर्मपर बैठना चाहिए, इससे उनका तेज बढ़ता है।

सिंहिका : लंकाके समुद्रमें रहनेवाली राक्षसी, जो आकाशसे उड़कर लंकामें आनेवाले जीव-जन्तुओंकी छाया देखकर उन्हें पकड़ खींचती थी और खा डालती थी। जब उसने हनुमान्‌को भी खींचा तो हनुमान्‌ने एक ही घूँसेमें उसके प्राण ले लिए।

सिद्धि (सिधि) : (देखो अष्ट सिद्धि)।

सिद्ध : किसी प्रकारकी सिद्धि (दैवी शक्ति) प्राप्त कर लेनेवाला व्यक्ति।

सीता : विदेह (मिथिला) देशके राजा सीरध्वज (जनक)-की कन्या, जो इक्ष्वाकु वंशके राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामकी पत्नी थीं। एक बार जब राजा सीरध्वज (जनक) अकाल पड़नेपर वर्षा-यज्ञके लिये सोनेका हल चला रहे थे उस समय वैशाख शुक्ल नवमीको उनके उस हलकी नोकसे टकराए हुए मिट्टीके पात्रमें एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या मिली जिसका पालन राजाने पुत्रीके समान किया। एक दिन जनकने देखा कि सीताने पूजा-घरमें रक्खा हुआ शिवका धनुष उठाकर एक ओर रख दिया है। तभी उन्होंने प्रतिज्ञा की कि सीताका विवाह शिवका पिनाक धनुष चढ़ानेवालेके साथ करूँगा। स्वयंवरमें रामने उठाकर उस धनुषको तोड़ डाला। सीताका ब्याह रामसे हो गया। सीता शब्दका अर्थ है 'हल जुती हुई भूमि।' इसीसे उनका नाम सीता पड़ा।

सीप : तालों, नदियों और समुद्रोंमें रहनेवाला जीव, जो मोटी खोलके भीतर रहता है। उसकी इस खोलको ही सीप या सीपी कहते हैं। घोंघा आदि सब जीव इसी श्रेणीके हैं। संस्कृतमें इसे शुक्ति कहते हैं। मोती भी एक प्रकारके बड़े समुद्री सीपसे निकलता है।

सुग्रीव : (सुकंठ) किष्किन्धाका वानर, जो महेन्द्र एवं ऋक्ष-कन्या विरजाका पुत्र था। यह बालिका छोटा भाई था। बालिसे झगड़ा होनेके कारण यह उसके भयसे ऋष्यमूक पर्वतपर रहने लगा था। उसने रामसे मैत्री कर ली और रामने बालिको मारकर उसे किष्किन्धाका राजा तथा बालिके पुत्र अंगदको युवराज बना दिया। इसने वानरोंकी विशाल सेना लेकर राम-रावण-युद्धमें रामकी पूरी सहायता की थी।

सुतीक्ष्ण : (सुतीक्ष्न) इन्होंने अगस्त्यसे ज्ञान एवं कर्मकी समुच्चय शिक्षा ली थी। इन्होंने रामकुंडपर दीर्घ कालतक कठिन तपस्या करके स्वेच्छया त्रैलोक्यमें विचरण करनेका सामर्थ्य प्राप्त किया था। वनवास-कालमें दो बार राम इनके आश्रममें ठहरे थे।

सुदामा : कृष्णका सहपाठी मित्र, अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण। एक बार गुरु सान्दीपनिकी पत्नीने सुदामा और कृष्णको कुछ चने देकर कहा कि तुम दोनों बाँटकर खा लेना। पर सुदामाने भूखके कारण कृष्णका भाग भी खा लिया। इसीलिये यह जीवनभर दरिद्र रहा। बुढ़ापेमें अपनी पत्नीके कहनेपर जब वह कृष्णके पास द्वारका गया तब श्रीकृष्णने इसे धन, धान्य, भवन, वैभवसे परिपूर्ण कर दिया।

सुफलक : मथुरा नगरका नागरिक।

सुफलक-सुत : सुफलकके पुत्र अक्रूर। कंसके कहनेपर ये रथ लेकर कृष्णको गोकुलसे मथुरा लिवा लाए थे।

सुबल : गान्धार देशका सुविख्यात राजा। यह धृतराष्ट्रकी पत्नी गान्धारी और शकुनिका पिता था। यह प्रह्लादके शिष्य नग्नजित्‌के अंशसे उत्पन्न हुआ था। इसकी सभी सन्तानें धर्म-विरोधी और धर्मनाशी हुईं।

सुबाहु : सुन्द और ताटका (ताड़का)-का पुत्र तथा मारीचका भाई। विश्वामित्रके यज्ञमें बाधा डालनेके कारण रामने इसे मार डाला।

सुबेल : लंकाके उत्तरी भागका पर्वत, जिसपर रामने जाकर डेरा डाला था।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सुभद्रा : वसुदेव और देवकीकी कन्या जो कृष्ण और बलरामकी छोटी बहिन थी। अर्जुन इसे हरकर ले आए थे। अभिमन्यु इसीका पुत्र था।

सुमंत्र : (सुमन्त) राजा दशरथके मंत्री और सारथि थे। रामको वनवास मिलनेपर ये रामको रथपर चढ़ाकर गंगातट-तक ले जाकर छोड़ आए थे।

सुमित्रा : मगधके राजा शूरकी पुत्री और राजा दशरथकी रानी, लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी माता। जब रामके वनगमनके समय लक्ष्मण भी उनके साथ वन जानेको तैयार हुए तो सुमित्राने प्रसन्नतासे लक्ष्मणको रामके साथ जानेकी आज्ञा दे दी थी।

सुयोधन : (दुर्योधन) धृतराष्ट्रका ज्येष्ठ पुत्र, जो पाण्डवोंको हटाकर स्वयं राज्य करना चाहता था। इसीने जूएमें हराकर पाण्डवोंको १२ वर्षके लिये वनवास दिलाया था और अन्तमें कृष्णके द्वारा पाँच गाँव माँगनेपर भी नहीं दिए। इसी बातपर महाभारतका युद्ध हुआ जिसमें सभी कौरव मारे गए। भीमने गदासे इसकी जाँघ तोड़कर इसे मार डाला था।

सुरगुरु : (वृहस्पति) १. देवताओंके गुरु, सब विद्याओंके आचार्य हैं। २. नवग्रहोंमेंसे पाँचवें ग्रह हैं। यह बहुत उत्तम ग्रह माना जाता है। जिसकी कुण्डलीमें केन्द्रमें वृहस्पति होता है वह व्यक्ति सदा सम्पन्न और सुखी रहता है—'किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे वृहस्पतिः।' देखो वृहस्पति।

सुरपति-सुत : (जयंत) सुरपति इन्द्रके पुत्र जयन्तने कौवेका रूप धरकर चित्रकूटपर सीताके स्तनपर चोंच जा मारी। रामने एक सींकका बाण जो चलाया तो उससे भयभीत होकर वह चारों ओर घूमता फिरा अन्तमें वह रामकी शरणमें आ गया। रामने उसकी एक आँख फोड़कर उसे छोड़ दिया। देखो जयन्त।

सुरसा : नाग-माता। कश्यप और क्रोधवशाकी कन्या और कंककी माता। जब हनुमान् समुद्र लाँघकर लंका जाने लगे तब इन्हें देवताओंने हनुमान्‌की शक्ति और बुद्धिकी परीक्षा लेने भेजा। इन्होंने अपना मुँह ज्यों-ज्यों बढ़ाया त्यों-त्यों हनुमान् दूने बढ़ते चले गए। अन्तमें मच्छरके समान रूप धरकर उनके मुँहमें जाकर हनुमान् बाहर निकल आए। उनका पराक्रम और उनकी बुद्धि देखकर सुरसाने उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम रामका कार्य अवश्य कर आओगे।

सुर-सेनप : (स्वामिकार्तिकेय) यह देवताओंके सेनापति थे। (देखो षडानन, षड्वदन-कुमार)।

सुरा : मदिरा। समुद्र-मंथनसे निकले हुए १४ पदार्थोंमेंसे एक। देखो वारुणी।

सुरुचि : राजा उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं—सुरुचि, सुनीति। एक दिन सुनीतिका पुत्र ध्रुव राजाकी गोदमें बैठने लगा। सुरुचिने देखा तो उसे बहुत झिड़ककर गोदसे उतार दिया। ध्रुव रोता हुआ अपनी माँके पास चला गया। माता सुनीतिने उसे भगवान्‌की ओर मन लगानेको कहा। बालक ध्रुवने नारदसे द्वादशाक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) लेकर घोर तपस्या करके भगवान्‌को प्रसन्न करके पहले राज्य तत्पश्चात् अचल पद (ध्रुवलोक) प्राप्त किया।

सुषेण : (सुखेन) लंकाका वैद्य। लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर विभीषणके कहनेपर हनुमान् रातमें ही भवन-सहित इसे सोते हुए उठा लाए थे और इसीके कहनेपर संजीवनी बूटी लेने हिमालय (द्रोणागिरि) चले गए थे। लक्ष्मणकी मूर्च्छा दूर होनेपर हनुमान् उसे ज्योंका त्यों लंकामें पहुँचा आए।

सूत्रधार : कार्य-सञ्चालक या व्यवस्थापक। जो किसी भी कार्यका पूरा प्रबन्ध करता हो। नाटकका प्रबन्ध करनेवाला—

सूत्रयन्काव्य-निक्षिप्त-वस्तु - नेतृ-कथा - रसान्।
नान्दीश्लोकेन नान्द्यन्ते सूत्रधार इति स्मृतः॥

(नाटकमें निर्दिष्ट कथा, नायक और रसका ठीक-ठीक संयोजन करनेवाला और नान्दीके पश्चात् नान्दी श्लोक पढ़नेवाला सूत्रधार होता है।)

सूपशास्त्र : पाकशास्त्र, जिसमें सब प्रकारके भोज्य पदार्थ बनानेकी विधियाँ बतलाई गई हैं।

सेतुबन्ध : रामने लंकापर चढ़ाई करनेके लिये नल-नील आदि वानरोंकी सहायतासे समुद्रपर जो पुल तैयार किया था।

सेवरा : (सेवड़ा) १. जैन धर्मावलम्बी विशेष समुदाय। २. शाक्त।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

सेवार : (सं० शैवाल, सुकलाई)। एक प्रकारकी घास, जो जलाशयोंमें उगकर पानीमें नीचे फैल जाती है और भीतर जानेवालोंके पैरोंमें इस प्रकार उलझ जाती है कि इसका छुड़ाना कठिन हो जाता है। सेवारसे सुकलाई (साफ़ की हुई) शक्कर बहुत मीठी और शीतल होती है।

सोरठा : यह मात्रिक अर्द्धसम छंद है। इसके विषम (१, ३) चरणोंमें ११-११ मात्राएँ एवं सम (२,४) चरणोंमें १३-१३ मात्राएँ होती हैं। यह दोहेका ठीक उलटा होता है।

स्रुवा : यज्ञ-कुण्डमें घी डालनेके लिये खदिर (खैर) या आमके काष्ठका बना हुआ गहरे गोल मुँहवाला पात्र, जिसमें एक डंडी लगी रहती है जिसे पकड़कर हवन-कुंडमें घी छोड़ते हैं।

स्वभाव : सत्त्व, रज, और तम—इनमेंसे एक, दो या तीनों गुणोंके मिश्रणसे अथवा उनके न्यूनाधिक अनुपातके प्रभावसे जीव, मात्रकी प्रकृति बनती है। मनुष्य उसी प्रकृतिके अधीन होकर अपने विचार प्रकट करता और कार्य करता है। इसी प्रकृतिको स्वभाव कहते हैं।

स्वर्ग : १. १४ लोकोंमेंसे ऊपरवाले सात लोकोंमें तीसरा लोक। (ऊपरवाले सात लोक हैं—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक महर्लोक जनःलोक, तपोलोक, सत्यलोक)। शुभाशुभ कर्मोंका फल भोग लेनेके पश्चात् बन्धन-मुक्त हो जानेपर पुण्यात्माको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (देखो लोक, भुवन)। २. देवताओंका आलय, देवलोक। पुण्यके फलस्वरूप मृत्युके बाद कर्मके अनुसार कुछ निश्चित अवधिके लिये जो सुखसे भरा स्थान मिलता है उसे स्वर्ग कहते हैं। स्वर्गमें दिव्य रमणीय नन्दन-कानन, आकाशगंगा, कल्पवृक्ष, कामधेनु आदि माने गए हैं। यहाँ रोग, शोक, जन्म, जरा, मृत्यु, भूख, प्यास कुछ भी नहीं सताती।

स्वाति : सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे यह १५ वाँ नक्षत्र है जो प्रायः कार्तिक मास (वर्षाकी समाप्ति और शरद्के आरम्भ)-में १५ दिनोंतक रहता है। कहते हैं कि इस नक्षत्रकी वर्षासे सीपीमें मोती, बाँसमें वंशलोचन, केलेमें कपूर और सर्पमें विष होता है। कहा जाता है कि चातक इसीका जल पीता है।

स्वायंभुव (स्वायंभू) : स्वायंभुव नामक पहले मन्वन्तरका अधिपति राजा मनु ही मनुस्मृतिके कर्त्ता माने जाते हैं। इनकी पत्नीका नाम शतरूपा था। इनके दो पुत्र थे प्रियव्रत, उत्तानपाद।

हनुमान् (हनुमन्त): कुंजर नामक वानरकी पुत्री अंजनाके गर्भसे हनुमान्की उत्पत्ति हुई। केसरी इनके पिता थे। मारुति, महावीर, पवनपुत्र, अंजनीनन्दन आदि इनके नाम हैं। ये महान् वीर, वेद-वेदांग, संगीत आदि विद्याओंके पारंगत विद्वान्, बाल-ब्रह्मचारी, रामके अनन्य सेवक और उपासक हैं। इनका शरीर वज्रके समान पुष्ट और कठोर है। इसीसे इन्हें वज्रांग भी कहते हैं। ये चिरजीवी हैं।

हरिश्चन्द्र : (हरिचन्द) इक्ष्वाकु-वंशीय त्रिशंकु और सत्यवतीके पुत्र, रामसे ३५ पीढ़ी पूर्व उत्पन्न हुए थे। इनकी दानशीलताकी परीक्षा लेनेके लिये इन्द्रने विश्वामित्रको भेजा, जिन्होंने स्वप्नमें राजासे सारी पृथ्वी माँग ली थी। दूसरे दिन विश्वामित्रके आनेपर उन्होंने महर्षिको सारी पृथ्वी दान कर दी। इस महादानकी दक्षिणा देनेके लिये हरिश्चन्द्र काशी आकर श्मशानके डोम चौधरीके हाथ एक सौ स्वर्णमुद्रापर बिक गए। जब इनका पुत्र रोहिताश्व सर्प-दंशसे मर जानेपर श्मशान लाया गया तब इन्होंने अपनी पत्नी शैव्या तारामतीसे भी श्मशानका कर माँगा। ज्यों ही शैव्या अपनी आधी साड़ी फाड़कर देनेको उद्यत हुई त्यों ही विष्णु भगवान्ने प्रकट होकर रोहिताश्वको जीवित कर दिया और राजाको परम धाम भेज दिया। वशिष्ठ इनके गुरु थे।

हलधर : हलधर (बलराम)। देखो बलदाऊ।

हाटक-लोचन : (हाटक = स्वर्ण + लोचन = आँख = हिरण्याक्ष) कश्यप एवं दितिका पुत्र तथा हिरण्यकशिपुका भाई दैत्य। यह स्वायंभुव मन्वन्तरमें उत्पन्न हुआ था। जब उसने देवताओंको बहुत त्रस्त किया तब विष्णुने इससे युद्ध करना आरम्भ किया। जब यह हारने लगा तब यह पृथ्वीको उठाकर पातालमें भाग गया। विष्णुने वराहरूप धारण करके इसका वध किया और उससे पृथ्वी छीनकर पूर्ववत् ला स्थापित की।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

हस्तरेखा : मनुष्य, वानर आदिके हाथ और पैरके तलुवोंमें कुछ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ होती हैं। सामुद्रिक (हस्तरेखा-शास्त्र)-में इन रेखाओंके शुभ और अशुभ फलका विस्तृत वर्णन है। हाथमें कमल, चक्र, वज्र, ध्वजा आदि चिह्न शुभ माने जाते हैं।

हिमवंत, हिमांचल : भारतके उत्तर भागमें स्थित बर्फसे ढका हुआ बड़ा ही विशाल लंबा पर्वत है। सभी पर्वतोंसे ऊँचा होनेसे यह शैलराज (पर्वतोंका राजा) कहा जाता है। इसीके उत्तरमें शंकरका कैलास है। गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र एवं पंचनद (सतलज, व्यास, रावी, चिनाब और झेलम) इसीसे निकले हैं। पुराणके अनुसार पार्वती (उमा) इसकी पुत्री हैं जो शंकरसे ब्याही हैं। इसमें अनेक प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं। 'गौरीशंकर' इसकी सबसे ऊँची चोटी है।

हिरण्यकशिपु : कश्यप और दितिका महाप्रतापी दैत्य पुत्र, जिसने तपस्या करके ब्रह्मासे वर प्राप्त कर लिया था कि मैं मनुष्य या पशुसे, दिन या रातमें, अस्त्र या शस्त्रसे, घरमें या बाहर न मरूँ। यह वर पाकर वह अत्याचार करने लगा। उसका पुत्र प्रह्लाद, भगवान्‌का परम भक्त था। हिरण्यकशिपुके कहने और सतानेपर भी उसने भक्ति नहीं छोड़ी। एक दिन राजसभामें हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको एक खंभेसे बाँधकर तलवार निकालकर पूछा—'बता तेरा भगवान् कहाँ है ?' प्रह्लादने निर्भय होकर कहा—'भगवान् मुझमें, तुममें, खड्गमें सर्वत्र है।' इतना सुनते ही हिरण्यकशिपुने अत्यन्त कुपित होकर ज्यों ही प्रह्लादपर तलवार चलाई त्यों ही खम्भा फट गया और उसमेंसे नृसिंह रूप (नर-सिंह) भगवान्‌ने प्रकट होकर उस दैत्यको सायंकाल, देहलीपर बैठकर अपनी जाँघपर लिटाकर अपने नखोंसे उसका पेट फाड़कर मार डाला।

विशेष

१. द्रौपदी (पाँचाली, कृष्णा, याज्ञसेनी), पांचालके राजा द्रुपदके पुत्रेष्टि-यज्ञ द्वारा लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न अयोनिज कन्या, धृष्टद्युम्नकी बहन, पांडवों (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव)-की पत्नी थी, जिसे मत्स्यवेध करके अर्जुनने जीता था। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इसे सीताका अवतार माना गया है। दुर्योधनकी सभामें उसका चीर खींचते समय कृष्णने चीरका रूप धारण कर लिया और द्रौपदीकी लज्जा रह गई। इसने पांडवोंके साथ वनवासमें बहुत दुःख उठाए। उसके पाँच पुत्र थे—युधिष्ठिरसे प्रतिबिन्ध्य, भीमसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुतकीर्त्ति, नकुलसे शतानीक तथा सहदेवसे श्रुतसेन। इन्हें महाभारत युद्धके पश्चात् रातको सोते हुए अश्वत्थामाने मार डाला। देखो अश्वत्थामा।

२. रामका अवतार वैवस्वत मन्वन्तरके चौबीसवें त्रेताके चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको मध्याह्न अभिजित् नक्षत्र, वसन्त ऋतुमें अयोध्यामें हुआ। इस गणनाके अनुसार रामका जन्म ईसासे १८१४८१०२ वर्ष पूर्व हुआ। इन्होंने अपने पुत्र कुशको अयोध्याका, लवको अयोध्याके उत्तर (नैपाल)-का, शत्रुघ्नके पुत्रोंको मथुराका, लक्ष्मणके प्रथम पुत्र चन्द्रकेतुको चन्द्रबलापुरीका और द्वितीय पुत्र अंगदको अंगदेश (बिहार)-में कारथापुरीका, भरतके ज्येष्ठ पुत्र तक्षको तक्षशिलाका और द्वितीय पुत्र पुष्करको पुष्करावती (पेशावर)-का राज्य दिया था। इन्होंने ११००० वर्ष राज्य किया। इन्होंने जबतक अपनी आयु भोगी तबतक सीताको अपने पास रक्खा। जब अपने पिताकी आयु भोगनेका अवसर आया तब सीताको साथ रखना अनुचित और अनैतिक समझकर उन्हें वाल्मीकिके आश्रममें पहुंचवा भिजवाया।

३. वाल्मीकि-रामायणकी रचना रामके जन्मसे बहुत पहले की जा चुकी थी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परिशिष्ट १

समीक्षा-ग्रंथ तथा शोध-प्रबन्ध

डा० बैजनाथ मिश्र,

एम्० ए०, पी-एच० डी,० आचार्य, साहित्यरत्न

गोसाईं-चरित–डा० किशोरीलाल गुप्त, वाणी वितान, काशी सं० २०२१

गोसाईं तुलसीदास–आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान, काशी सं० २०११

गोस्वामी तुलसीदास—शिवनन्दन सहाय, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना सं० २०१५

गोस्वामी तुलसीदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० १९८०

गोस्वामी तुलसीदास—श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, सन् १९३१

गोस्वामी तुलसीदास—सीताराम चतुर्वेदी, चौखम्बा विद्याभवन, काशी सन् १९५६

गोस्वामी तुलसीदास और रामकथा–सत्यदेव चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सृजन परिषद्, जौनपुर, सन् १९५७

गोस्वामी तुलसीदासकी दृष्टिमें नारी और मानवजीवनमें उसका महत्त्व—डा० ज्ञानवती त्रिवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सन् १९६७

गोस्वामी तुलसीदासकी समन्वय साधना—प्रथम भाग—व्यौहार राजेन्द्र सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० २००३

गोस्वामी तुलसीदासकी समन्वय साधना—द्वितीय भाग—व्यौहार राजेन्द्र सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

तुलसी—रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, तृतीय सं० सन् १९५२

तुलसीः आधुनिक वातायनसे—डा० रमेश कुन्तल मेघ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९६८

तुलसी और उनका काव्य–रामनरेश त्रिपाठी, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सन् १९५३

तुलसी-काव्य-मीमांसा—डा० उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६६

तुलसीकी काव्य-कला—डा० भागवती सिंह सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा सन् १९६२

तुलसीकी काव्यकला और दर्शन—(संकलित) डा० राम गोपाल शर्मा दिनेश, सरस्वती सदन कार्यालय, आगरा सन् १९६५

तुलसीके काव्यमें नीति—डा० बैजनाथ मिश्र, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, ललिता घाट, वाराणसी

तुलसीके भावात्मक गीत—डा० वचनदेव कुमार, हिन्दी-साहित्य संसार, दिल्ली

तुलसी-ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड—रामचन्द्र शुक्ल आदि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पहला सं० सन् १९८०

तुलसी - चरित - विमर्श—श्रीकान्तशरणजी, सद्गुरु कुटी, गोलाघाट, अयोध्या सन् १९६९

तुलसी-दर्शन—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९४२

तुलसी रसायन—डा० भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद सन् १९५४

तुलसी साहित्य और विचार—हरिशरण अवस्थी

तुलसी स्मारिका—गिरिराज शरण अग्रवाल, राज प्रिंटिंग वर्क्स, सम्भल सन् १९७२

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

तुलसी साहित्यकी भूमिका––रामरतन भटनागर, रामनारायण लाल, पब्लिशर और बुकसेलर सन् १९६५

तुलसी साहित्य-सूची तथा समीक्षा––डा० श्रीमती कृष्णकुमारी सिंह, खालपुरा, गुल्टेनगंज, सारन, बिहार

तुलसी शोध––मानस संघ, रामवन, सतना, मध्य प्रदेश

तुलसी साहित्य रत्नाकर––रामचन्द्र द्विवेदी, सत्साहित्यप्र-काशक मण्डल, नया टोला सं० १९८६

तुलसी सूक्ति-सुधा––वियोगी हरि, साहित्य सेवा सदन, बनारस, प्रथम सं०, सं० १९८६

तुलसीदास––चन्द्रबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४

तुलसीदास––माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी-परिषद् प्रयाग, सन् १९४२

तुलसीदास–डा० रामरतन भटनागर, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९४६

तुलसीदास और उनका युग––डा० राजपति दीक्षित, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं० २००९

तुलसीदास और उनका साहित्य––विमल कुमार जैन, साहित्यसदन, देहरादून, सं० २०१४

तुलसीदास और उनके ग्रन्थ––भगीरथ प्रसाद दीक्षित, अशोक प्रकाशन, लखनऊ सन् १९५५

तुलसीदासकी जीवन-भूमि–चन्द्रबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०११

तुलसीदासकी भाषा–देवकीनन्दन श्रीवास्तव लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०१४

तुलसीके चार दल––सद्गुरुशरण अवस्थी

तुलसीदासः जीवनी और विचार धारा––डा० राजाराम रस्तोगी, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर सं० २०२०

तुलसीदासः वस्तु और शिल्प––डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा सन् १९५९

दशहरा––दीवाली बनाम रावण-वध––राम-राज्याभिषेक––इन्द्रचन्द्र नारंग, हिन्दी भवन, जालन्धर सन् १९६४

पद-पद्म-पराग––सियारामशरण, गोरेलाल गिरिवर श्री हनुमत् प्रेस, अयोध्या सं० २०२७

मानस अनुशीलन––शम्भुनारायण चौबे, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० २०२४

मानस पाठपर मौलिक शोध––चन्द्रशेखर चतुर्वेदी, मानस शोध भवन, मारू गली, मथुरा सं० २०२८

मानस-मन्थन-डा० स्वामीनाथ शर्मा, आशुतोष प्रकाशन, चेतगंज, वाराणसी, सन् १९६६

मानस सिद्धान्त-विवरण––श्रीकान्तशरणजी सद्गुरु कुटी, गोलाघाट, अयोध्या सं० २०१५

मानस-हंस अथवा तुलसी-रामायण-रहस्य––यादव शंकर जामदार, नागपुर, सन् १९२६

मानसका सामाजिक दर्शन––बैजनाथ सिंह सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, सन् १९७३

मानसकी रामकथा––परशुराम चतुर्वेदी किताब महल, इलाहाबाद सं० २०१०

मानसकी रूसी भूमिका––श्री ए० पी० वारान्निकोव अनुवादक––डा० केशरीनारायण शुक्ल, विद्यामन्दिर, रानी कटरा, लखनऊ सन् १९५४

राम-कथा––कामिल बुल्के, राँची

रामचरितमानसका काव्य-शास्त्रीय अनुशीलन–डा० राजकुमार पाण्डेय, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, सन् १९६३

रामचरितमानसका तुलनात्मक अध्ययन––डा० शिवकुमार शुक्ल, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर, सन् १९६४ ई०

रामचरितमानसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डा० जगदीश प्रसाद शर्मा, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९६४

रामचरितमानसकी भूमिका––रामदास गौड़, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, हरिसन रोड, कलकत्ता, सं० १९८२

रामचरितमानस नाम नहीं, किन्तु मानस-रामचरित––आचार्य मधुसूदन शास्त्री भदैनी काशी

रामचरितमानसमें अलंकार-योजना––डा० वचनदेव कुमार, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली

रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय डा०––भगवती प्रसाद सिंह, गोरखपुर विश्वविद्यालय

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यक मूल्याङ्कन—डा० रामप्रकाश अग्रवाल, प्रकाशन प्रतिष्ठान, सुभाष नगर, मेरठ, सन् १९६६

वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानसका तुलनात्मक अध्ययन—डा० विद्या मिश्रा, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय सं० २०१५

विश्व-साहित्यमें रामचरितमानस—राजबहादुर लमगोडा

श्रीमानस-पाठ-निरूपण—चन्द्रशेखर चतुर्वेदी

श्रीमानस-समाधान-रत्नावली — रामकुमार दासजी, तुलसी साहित्य प्रचारक समिति, शृंगवेरपुर, इलाहाबाद

श्रीरामचरितमानसके तीन क्षेपक—रामकुमार दासजी, रामग्रन्थागार, मणिपर्वत, अयोध्या, सन् १९६७

संत तुलसीदास और उनके संदेश—डा० राजपति दीक्षित, गोविन्द मुद्रणालय, वाराणसी, सं० २०१३

साहित्य-सम्राट् तुलसीदास—गंगाधर मिश्र, सरस्वती मन्दिर, जतनबर, वाराणसी सं २०१३

[यह सूची पूर्ण नहीं समझनी चाहिए। विस्तृत सूचीके लिये मानस-संघ, रामवन, सतना तथा पंडित रामकुमारदासजी, मणिपर्वत, अयोध्यासे संपर्क स्थापित कीजिए।]

परिशिष्ट : २

राम-चरित-साहित्य

डा० बैजनाथ मिश्र

एम० ए०, पी एच्० डी०, आचार्य, साहित्यरत्न

अगस्त्य रामायण
अगस्त्य संहिता
अग्नि पुराण
अत्रि रामायण
अद्भुत रामायण (संस्कृत)
अद्भुत रामायण (हिन्दी)
अद्भुतोत्तर खण्ड
अध्यात्म रामायण
अनर्घ राघव
अनामक जातकम्
अभिधर्म महाविभाषा
अभिषेक नाटक
आदि पुराण
आदि रामायण
आनन्द रामायण
आल्हा रामायण (चतुर्भुज मिश्र)
आश्चर्य चूडामणि
उत्तररामचरित
उदार राघव
उपनिषद् अंक (गीता प्रेस)
उमा संहिता
ऋग्वेद
ऋष्यश्रृंग संहिता
ऐतरेय ब्राह्मण
कण्व संहिता
कंबन रामायण
कपिलदेव संहिता
कपिल रामायण
कल्याण (रामायणाङ्क)
कलि धर्माधर्मनिरूपण
कविता कौमुदी
कवितावली
कश्यप संहिता
काकाविन रामायण
कठक गृह्यसूत्र
काठक संहिता
कात्यायन संहिता
कालिका पुराण
काश्मीरी रामायण
कुण्डलिया रामायण (तुलसीदास)
कुण्डलिया रामायण बालगोविन्द मिश्र)
कुण्डलिया रामायण (गुरुदास-कवि)
कुन्दमाला

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

कूर्म पुराण
कूर्म संहिता
कृत्तिवास रामायण
केशव संहिता
कौशिक संहिता
कौंडिन्य संहिता
क्रौञ्च रामायण
क्षेमेन्द्र संहिता
खोतानी रामायण
गणेश पुराण
गणेश संहिता
गणेश्वर संहिता
गरुड पुराण
गरुड रामायण
गरुड संहिता
गर्ग संहिता
गयावासी रामायण
गालव संहिता
गीतावली
गोविन्द रामायण
गौतम रामायण
गौतम संहिता
चम्पू रामायण
चान्द्र रामायण
छप्पय रामायण
जटायु रामायण
जमदग्नि रामायण
जमदग्नि संहिता
जयरामदास रामायण
जातकमाला
जानकी-परिणय
जानकी-मंगल
जानकी-हरण
जाबालि संहिता
जैमिनि पुराण
जैमिनि रामायण
जैमिनि संहिता
ज्ञानदीपिका
तिब्बती रामायण
तुलसी सतसई
तुलसी हजारा
तैत्तिरीय ब्राह्मण
तोरावे रामायण
दशरथ-कथानकम्
दशरथ जातक
दशावतारचरित
दुरन्त रामायण
देव रामायण
देवल संहिता
देह रामायण
दूतांगद
दोहावली
द्विपाद रामायण
धनञ्जय संहिता
धनेश्वर संहिता
धन्वन्तरि संहिता
धर्म रामायण
धर्म संहिता
धर्मात्म दर्शन संहिता
नन्दिकेश्वर संहिता
नन्दि पुराण
नारद पुराण
नारद संहिता
नारदीय भक्तिसूत्र
नारदीय रामायण
नारदोक्त रामायण
रामायण संहिता
नीलकंठ संहिता
नृसिंह पुराण
पंचतंत्र
पउमचरिय (विमल सूरि)
पउमचरिय स्वयंभूदेव
पद्म पुराण
पराशर संहिता
पारमहंस्य संहिता
पारस्कर गृह्यसूत्र
पुरुषोत्तम संहिता
पुलस्त्य संहिता
पौलस्त्य संहिता
प्रजेश संहिता
प्रतिमा नाटक
प्रसन्नराघव
बरवै रामायण
बालबोध रामायण
बृहत् कौशल खण्ड
बृहत् संहिता
बृहद् धर्मपुराण
बृहत् शिशु पुराण
बृहन्नारदीय पुराण
बृहस्पति संहिता
ब्रह्म पुराण
ब्रह्मवैवर्त पुराण
ब्रह्म रामायण
ब्रह्माण्ड पुराण
भक्तिसूत्र
भट्टि काव्य
भरत रामायण
भरत संहिता
भरद्वाज रामायण
भविष्योत्तर पुराण
भागवत पुराण
भागवताङ्क (गीता प्रेस)
भागुरि संहिता
भार्गव पुराण
भुशुण्डि रामायण
मंजुल रामायण
मत्स्य पुराण
मनु रामायण
मनोहर रामायण (चतुर्भुजदास)
महानाटक
महावीर चरित
महाभागवत (देवी पुराण)
महाभारत
महा रामायण
महीधर संहिता
महेश्वर रामायण
महेश्वर संहिता
मार्कण्डेय पुराण
मार्कण्डेय संहिता
मार्तण्ड संहिता
मूल रामायण
मैन्द रामायण
मोल्ला रामायण
याज्ञवल्क्य रामायण
याज्ञवल्क्य संहिता
योगवाशिष्ठ
रघुवंश
रमेश्वर संहिता

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रसिक-विलास रामायण (अक्षय कुमार)
राधेश्याम रामायण (राधेश्याम)
राम-उत्तरतापनीयोपनिषद्
रामाक्येन (रामाख्यान)
रामचन्द्रिका
रामचरित (अभिनन्द कृत)
रामचरित-चिन्तामणि
रामचरितमानस
रामचरितमानस बोध (मधु-कवि)
रामपूर्वतापनीयोपनिषद्
राम-रहस्य
राम-रहस्योपनिषद्
राम-रसार्णव
रामलला-नहछू
राम लिङ्गामृत
रामलीला नाटकाकार रामायण
रामसंहिता
रामाज्ञा प्रश्न
रामायण छन्दावली
रामायण मणिरत्न
रामायण महामाला
रामाश्वमेध
रावण-वहो
रुद्र संहिता
रे आमकेर (हरिनाथ पाठक)
ललित रामचरित
ललित रामायण
लाट्टायन संहिता
लोमश रामायण
लोमश संहिता
वशिष्ठ पुराण
वशिष्ठ रामायण
वशिष्ठ संहिता
वह्नि पुराण
वामदेव पुराण
वामदेव संहिता
वामन पुराण
वाराह पुराण
वाल्मीकीय रामायण
विनयपत्रिका
विभीषण रामायण
विरंचि रामायण
विश्वामित्र रामायण
विश्वामित्र संहिता
विष्णुधर्मोत्तर पुराण
विष्णु पुराण
विष्णु संहिता
शतपथ ब्राह्मण
शाण्डिल्य संहिता
शिवपुराण
शिव रामायण
शिव संहिता
शुक्र पुराण
शौनक संहिता
श्रवण रामायण
श्रीकंठ संहिता
श्रीकौशलेन्द्र-कौतुक
श्रीबजरंगबाण
श्रीरामनाम-कला-कोशमणि-मयूख
श्रीमदानन्दसार रामायण (काण्डू लाल गुर्दा)
श्रीमद्देवीभागवत पुराण
श्रीमद्भागवत पुराण
श्वेतकेतु रामायण
संकटमोचन
संक्षिप्त रामायण
संक्षेप रामायण (पल्टू भगत)
सरोज रामायण
सरल रामचरित (रामेश्वर प्रसाद)
संवर्त संहिता
सत्योपाख्यान
सनक संहिता
सनत्कुमार संहिता
सनन्दन संहिता
सनातन संहिता
साकेत
संबुला जातक
संवृत्त रामायण
सुग्रीव रामायण
सुदर्शन संहिता
सुनन्द रामायण
सुमंत्र रामायण
सुमंत्र संहिता
सुवर्चस रामायण
सूत संहिता
सूर सागर
सूर्य रामायण
सेरत काण्ड
सेरी राम
सौपण्य रामायण
सौभरि रामायण
सौर रामायण
सौहार्द रामायण
स्कन्द पुराण
स्कन्द रामायण
स्कन्द संहिता
स्वायंभुव रामायण
हनुमत्संहिता
हनुमद्रामायण
हनुमन्नाटक
हनुमान-चालीसा
हनुमान-साठिका
हरिवंश पुराण

(यह सूची पूर्ण नहीं समझनी चाहिए ।)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

परिशिष्ट : ३

मानसके टीकाकार

१. श्री अंजनीनन्दन-शरणजी
२. ,, ईश्वरीप्रसाद जी
३. ,, श्रीकान्त शरणजी
४. ,, करुणासिन्धुजी महाराज
५. ,, ज्वाला प्रसाद मिश्र
६. ,, जानकीदासजी
७. ,, बन्दन पाठक जी
८. ,, बैजनाथजी
१०. श्री रामनरेश त्रिपाठी
११. ,, रामपदारथदासजी
१२. ,, रामबालक दासजी
१३. ,, रामदास गौड़
१४. ,, विनायकरावजी
१५. ,, विजयानन्द त्रिपाठी
१६. ,, शिवलाल पाठक
१७. ,, संतसिह पंजाबी
१८. श्री सियाराम शरण मिश्र
१९. ,, सीताराम चतुर्वेदी
२०. ,, सूर्यदेव शुक्ल
२१. ,, हरिहर प्रसादजी
२२. ,, हनुमान प्रसाद पोद्दार
२३. ,, हरिहर दासजी
२४. ,, त्रिभुवन चौबे

(यह सूची पूर्ण नहीं समझनी चाहिए।)

परिशिष्ट : ४

मानस-कोष - सूची

श्री रामचन्द्र सिंह .

१. मानस-अलंकार-कोश : डा० वचनदेव कुमार, हिन्दी साहित्य-संसद, दिल्ली
२. मानस-दीपिका : बाबा रघुनाथ दास (सं० १९२६)
३. मानस-कोष : श्री अमीन सिंह (सं० १८९०)
४. मानस-कोष : इंडियन प्रेस, प्रयाग (सन् १९०९)
५. मानस-कोष : श्री रामजसन मिश्र
६. मानस शब्दसागर : श्री रामदास गौड़ (रामचरितमानसकी भूमिकाके साथ)
७. तुलसी शब्दसागर : श्री बदरीनाथ अग्रवाल
८. मानस शब्दसागर : श्री भोलानाथ तिवारी
९. रामायण कोष : पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र (मानसकी टीकाके अन्तमें)
१०. रामायण शब्द-सूची : पं० सूर्यकान्तजी

(यह सूची पूर्ण नहीं समझनी चाहिए।)

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

रामायण-कालीन भारत

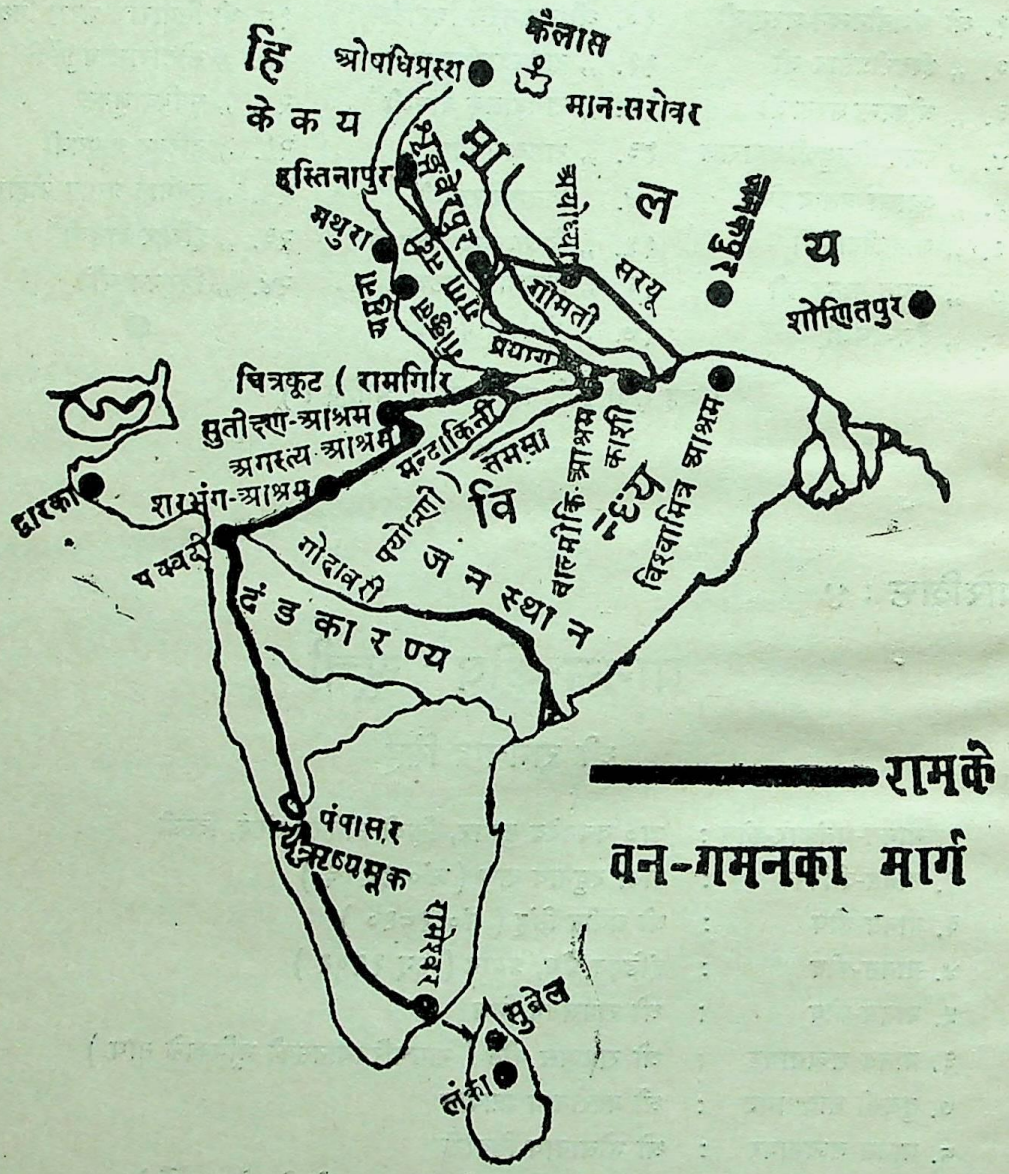

॥ तुलसी ग्रन्थावली द्वितीय खंड संपूर्ण ॥

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative

Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust Donations

६१/४९ उत्तर बेनिया बाग, वाराणसी।

CC-O. In Public Domain. A Sarayu Foundation Trust and eGangotri Initiative